JEVAN SAHITY 1940 G.K.V

028240

078740

COMPILED

078740

वर्ष १ : अंक १ :: १ अगस्त : १९४०

RT-01300

सम्पादक

हरिभाऊ उपाध्याय

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

कनाट सर्कस ꙮ नई दिल्ली

शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

ल्य : दो रुपया

एक प्रति का : चार आना

३. जीवन-साहित्य
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
४. साहित्य की बुनियाद ६
[श्री जवाहरलाल नेहरू]
५. 'लोकमान्य' की पुण्यतिथि ७
[श्री बाळ गंगाधर खेर]
६. असहयोग-तत्त्व ८
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
७. पृथिवी-पुत्र ११
[श्री वासुदेवशरण अग्रवाल]
८. न पढ़ने योग्य अच्छी पुस्तकें १४
[श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला]
९. विद्या का क्रम १६
[श्री काका कालेलकर]
१०. भावी जीवन की आधार-शिला १७
[आचार्य कृपालानी]
[श्री सुधीन्द्र]
१४. विज्ञान और समाज
[श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय]
१५. साहित्य से सर्वोदय
[श्री जनार्दनराय]
१६. एक सहृदय संस्था : हिन्दी ग्रंथ रत्नाक
[श्री जैनेन्द्रकुमार]
१७. कसौटी पर (समालोचनायें)
'जीवन-संदेश'; 'झूठसच'; 'राज
१८. क्या और कैसे ? (टिप्पणियाँ)
'जी० सा०' ही क्यों ? ; लेखक-ले
से; समालोचक बन्धुओं से; सा
किनके लिए? ; सुरुचि न छोड़िए
युद्ध के अन्त में ? रक्षा का प्रश्न
१९. 'मण्डल' की ओर से

—दैनिक पत्र—

"हिन्दुस्तान"

नई दिल्ली

६ साल के अर्से में उत्तर भारत के घर-घर में अपना स्थान बना लिया है। यद्यपि लड़ाई ने आदर्श पत्र बनने में कुछ कठिनाइयाँ पैदा कर दी हैं, तो भी इस मौजूदा हालत में यह अपना सानी नहीं रखता।

078740

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

१ अगस्त १९४०
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक पहला

हिन्दी के लिए क्षेत्र पैदा करो

[महात्मा गांधी]

"हिन्दी में जो-कुछ साहित्य निकलता है, वह प्राय: अनुवाद है। यदि कुछ मौलिक वस्तु निकलती है तो वह प्रभाव-रहित देखी जाती है। यह कह सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ हर जगह पैदा नहीं होते हैं, तुलसीदास करोड़ों में से एक ही होते हैं, पर तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ इत्यादि के पैदा होने के लिए क्षेत्र हम सब तैयार कर सकते हैं। नवयुवकों का सच्चा उत्साह ही वह क्षेत्र है। उनका प्रेम जब हिन्दी-भाषा के प्रति बढ़ेगा, तब हिन्दीमय वायुमण्डल पैदा हो जायगा और उसमें से कुछ कवि भी निकल सकते हैं।"

'हिन्दी नवजीवन' से]

हमारी जीवन-दृष्टि

'जीवन-साहित्य' पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है। यह तो कहना ही न होगा कि साहित्य इसका अपना क्षेत्र होगा। 'जीवन-साहित्य' वर्तमान हिन्दी-साहित्य तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों संस्थाओं और कार्यों को अपने विशिष्ट दृष्टि-बिन्दु से देखेगा और उसके प्रकाश में अपने विचार उनपर प्रदर्शित करेगा। 'जीवन-साहित्य' मानता है कि जो भी साहित्य रचा जाय, जो भी साहित्यिक हलचल की जाय, जो भी साहित्यिक प्रवृत्ति बनाई जाय, वह जीवनस्पर्शी हो, जीवन के विकास और उसकी पूर्णता की साधक हो। वास्तविक साहित्य वही है जो जीवन में से निकलता है। साहित्य से बना जीवन पोपला होता है, पर जीवन में से निकले साहित्य में जीवन--जान--होता है। 'साहित्य' का यहाँ संकुचित अर्थ नहीं है। केवल गद्य-पद्यात्मक काव्य या तद्विषयक ग्रन्थों को ही यहाँ 'साहित्य' नहीं माना गया है। जीवन की जितनी भी स्थूल अभिव्यक्तियाँ लिपि-बद्ध हो सकती हैं, जीवनोपयोगी जो-कुछ भी लिखा या प्रकट किया जा सकता है, वह सब 'साहित्य' के अन्तर्गत यहाँ है। अतः केवल काव्य, नाटक, उपन्यास, कथा-कहानी ही नहीं, विविध शास्त्र-ग्रन्थ, वर्णन-ग्रन्थ, चित्र, नृत्य तथा संगीत आदि कलायें ही नहीं, विचार तथा तत्त्व-दर्शन भी 'जीवन-साहित्य' के क्षेत्र में आवेंगे और 'जीवन-साहित्य' यह दिखाने का प्रयत्न करेगा कि जीवन की पूर्णता की दृष्टि से साहित्य (संकुचित अर्थ में), कला, विज्ञान, दर्शन आदि कहाँ हैं, किधर जा रहे हैं, किधर जाने की जरूरत है, और इस सबके लिए हिन्दी-लेखकों, साहित्य-सेवियों, विचारकों और कार्यकर्त्ताओं के क्या-क्या कर्त्तव्य हैं?

यदि 'जीवन-साहित्य' के कार्य की यह रूपरेखा पाठकों को पसन्द हो, 'जीवन-साहित्य' के द्वारा उन्हें हिन्दी-जीवन के किसी अभाव की पूर्ति की आशा होती हो, तो 'जीवन-साहित्य' तथा 'सस्ता-साहित्य-मंडल' को हर तरह प्रोत्साहन एवं सहयोग देना उनका कर्तव्य है।

'जीवन-साहित्य' में विचारात्मक, समालोचनात्मक, विवेचनात्मक, एवं क्रियात्मक साहित्य को विशेष स्थान रहेगा, कल्पनात्मक, भावनात्मक या मनोरंजनात्मक साहित्य को भी स्थान दिया जायगा, परन्तु उसकी योग्यता और आवश्यकता के अनुरूप ही, क्योंकि 'जीवन-साहित्य' की दृष्टि में भावुकता, काल्पनिकता और आमोद-प्रमोद जीवन का प्रधान अंग या मुख्य स्वरूप नहीं है। उसके नजदीक जीवन कोरा आनन्द नहीं, साधना है। जीवन में बहा नहीं जा सकता, जीवन साधा जाता है, तभी वह अपने तथा समाज या जगत् के लिए किसी काम का हो सकता है। अतएव लेखक-लेखिकायें 'जीवन-साहित्य' के लिए जो कुछ लिखने की कृपा करें, वह अध्ययन, मनन, अनुभव और साधना का फल होना चाहिए, न कि कल्पना-विलास का, भावना-प्रवाह का या आनन्दोर्मि का। वह हृदय से अवश्य निकले, पर बुद्धि से छनकर जगत् के सामने आवे। हृदय जहाँ बल का अखण्ड स्रोत है, तहाँ मस्तिष्क प्रकाश का सजीव स्तम्भ। जीवन बल के बिना निकम्मा और प्रकाश के बिना अन्धा रहेगा। अतएव हृदय और मस्तिष्क--भावना और बुद्धि--का उचित सामञ्जस्य 'जीवन-साहित्य' की एक विशेषता रहेगी।

ईश्वर ने मानव को प्राकृतिक बनाया, लेकिन उसने अपनेको सांस्कृतिक बनाने में कोई कसर

बाकी नहीं छोड़ी। प्रकृति ने उसे जो-कुछ दिया, उसे उसने अपनी बुद्धि, ज्ञान, अनुभव से घटाया-बढ़ाया। यह प्रक्रिया ही संस्कृति है। इसे हम नित्य करते हैं। यह प्रक्रिया ही जीवन की साधना है--ऐसा कहें तो हर्ज नहीं। इस अर्थ में 'जीवन-साहित्य' संस्कृति का उपासक होगा—ऐसी संस्कृति का जिसका मूलाधार प्रकृति हो, लेकिन जो आगे देखती हो ईश्वर या आत्मा की तरफ़। क्योंकि प्रकृति से छूटकर पुरुष हो रहना ही तो हमारे जीवन की स्वाभाविक गति है।

लेखक भाई-बहनों से मैं प्रार्थना करूँगा कि वे जीवन की इस कसौटी पर कसकर अपने अध्ययन, चिन्तन, मनन और अनुभव के फल 'जीवन-साहित्य' के लिए भेजते रहने की कृपा करें। अपनी प्रतिभा और पौरुष का उपयोग वे इस दिशा में करेंगे, तो मुझे विश्वास है कि हिन्दी-साहित्य अवश्य परिष्कृत, सुसंस्कृत और समृद्ध साहित्य होकर रहेगा। आज की उसकी स्थिति उस मोटे आदमी की तरह है, जिसका वजन चाहे कई मन हो गया हो, पर जो कदम-कदम पर हाँफता हो और जिसका चेहरा फीका या मलिन दिखाई पड़ता हो। वह स्थलकाय पर अंतःसार-शून्य है, जो उन्नति का नहीं, ह्रास का ही चिह्न हो सकता है। हमें उसे सजीव, तेजस्वी, क्रियाशील नवयुवक बनाना है। 'जीवन-साहित्य' और 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' इस दिशा में कुछ भी करके दिखा सकें, तो इनका जीवन सफल समझा जायगा।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय।

—हरिभाऊ उपाध्याय

जीवन-साहित्य'

जिस प्रकार सत्य ईश्वर है और ईश्वर सत्य है, उसी प्रकार जीवन साहित्य है और साहित्य जीवन है। जिस जीवन में साहित्य नहीं, वह जीवन बोझ है और जिस साहित्य में जीवन नहीं, वह साहित्य निरर्थक ह।

जीवन का अर्थ है प्रगति, परिवर्तन और वृद्धि। वही जीवन-साहित्य है जो उन गुणों का विकास करता है। राजनैतिक गुलामी की अपेक्षा विचारों की गुलामी अधिक गहरी है। जो साहित्य प्राचीनता की गुलामी करता है, भूतकाल का ही अनुकरण करता है वह साहित्य जीवन-साहित्य नहीं। जीवन-साहित्य भूतकाल को समझता है, वर्तमान काल का अवलोकन करता है और भविष्य का निर्माण करता है। ऐसा जीवन-साहित्य व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का निर्माता होता है। आज भारत के पुनर्निर्माण का विशाल क्षेत्र हमारे सामने है। इस पुनर्निर्माण की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी साहित्य पर है। और जीवन-साहित्य ही विधायक क्रांति, स्फूर्ति और त्याग का संदेश देकर इस राष्ट्र को जगा सकता है तथा मनुष्य जाति को सर्वांगीण विकास की ओर ले जा सकता है।

'जीवन-साहित्य' इस प्रकार के साहित्य-निर्माण में सहायक होकर अपना जीवन सार्थक करे।

अकोला]

—ब्रिजलाल बियाणी

जीवन-साहित्य

[हरिभाऊ उपाध्याय]

'जीवन-साहित्य' को पढ़ना शुरू करने से पहले हम यह जानलें कि जीवन-साहित्य किसे कहना चाहिए ? जीवन की वैज्ञानिक, शास्त्रीय, या दार्शनिक परिभाषा जो भी हो, मेरे विचार में जीवन का सबसे बड़ा व प्रथम लक्षण 'चैतन्य' है । चैतन्य में गति, प्रवाह, वेग, बल— इतने भाव आवश्यक रूप से आते हैं । अर्थात् जीवन उसे कहना चाहिए, जिसमें परिवर्तन करने, बढ़ने या विकास करने का गुण हो । यह क्रिया यदि ज्ञान-युक्त है तो ही सार्थक हो सकती है, इसलिए चैतन्य में ज्ञान का भी समावेश हो जाता है, या कर लेना चाहिए। तब जीवन का अर्थ हुआ ज्ञान-युक्त विकासशीलता और अन्त में परिपूर्णता ।

सृष्टि में अनन्त जीव हैं । मानव उनमें से क है । मानव में ही ज्ञान का विकास पाया जाता है । 'जीवन-साहित्य' में हमें मानव-जीवन का ही अधिक विचार करना है । अतएव जो साहित्य मानव-जीवन को पूर्णता की ओर, उपनिषद् के शब्दों में कहें तो—'असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर लेजाता हो, वह जीवन-साहित्य हुआ । या जो साहित्य जीवन की साधना में से उत्पन्न होता है, उसे जीवन-साहित्य कहना चाहिए ।

'साहित्य' सहित का भाववाचक है, जिसका अर्थ हुआ सहितता, एकत्रता, सामूहिकता, सामाजिकता आदि । जो अनेक को एकत्व में लाता है वह साहित्य है । सृष्टि बाह्य-रूप में अनेकविध है, आन्तरिक या तत्त्वरूप में एकविध । एक से अनेक और अनेक से फिर एक—यही उसका क्रम है । द्वन्द्व या द्वैत से आरम्भ होकर अद्वैत में उसका लय होता है । साहित्य का काम है इस संसार-यात्रा में मानव की सहायता करना, उसे पथ-प्रदर्शन करना और प्रोत्साहन देना । ऐसे साहित्य को मैं जीवन-साहित्य कहता हूँ । जो साहित्य मनुष्य को उसके पूर्ण विकास की दिशा और प्रयत्न से हटाता, उदासीन या गाफिल बनाता है, तथा भ्रम-मोह-विलास में उलझाता-फँसाता है, वह जीवन-साहित्य नहीं, मरण या विनाश-साहित्य है ।

जीवन में अच्छे-बुरे सभी भाव, प्रेरणा, ज्ञान और कर्म पाये जाते हैं । क्योंकि सृष्टि सत्-असत् का ही मेल है । मूल निराकार, निरीन्द्रिय सत् ने जब साकार—असत्—रूप धारण किया, तब वही सृष्टि कहलाई । जीव का प्रयत्न है साकार से निराकार की ओर, असत् से सत् की ओर, बुरे से अच्छे की ओर प्रयाण करना । यह तभी हो सकता है, जब जीव या मानव अपने प्रत्येक भाव, प्रेरणा, विचार-आचार में अच्छे-बुरे का, ग्राह्य-अग्राह्य का विवेक या भेद करता और समझता रहे । इससे वह अपनी तथा समाज की बुराइयों को मिटाता और अच्छाइयों को बढ़ाता रहेगा । इसी पुरुषार्थ ने साहित्य और संस्कृति को जन्म दिया है । इस काट-छाँट के बिना जीवन का न कोई मूल्य है, न प्रगति का सहारा । अतएव जीवन-साहित्य सत्साहित्य को ही कह सकते हैं । जो साहित्य सद्भावों, सद्गुणों, सत्-शक्तियों को बढ़ाता है, हमेशा सत्प्रेरणायें देता है, सत्क्रियाओं में हमें लगाता है, उसीको हम जीवन-साहित्य कह सकते हैं ।

हमारे अन्दर सैकड़ों सद्भाव, सद्गुण, सत्प्रेरणा आदि रहते हैं । वे सभी सब समय उपयोगी नहीं होते । इसलिए हमें यह विचार

करने पर आमादा होना ही पड़ता है कि कौनसा सद्भाव, सद्गुण, या सत्प्रेरणा आज हमारे लिए आवश्यक, उपयोगी और अनुकूल है। उनका मुख्य रूप से पोषण करना जीवन-साहित्य का काम हुआ। यदि आज भारतीय मानव पराधीन, दीन-दुर्बल, अकिंचन और नंगा-भूखा है, तो उसके इस अभाव को दूर करने का प्राणपण से प्रयत्न करना जीवन-साहित्य का पहला काम है।

इस तरह जीवन-साहित्य में जहाँ जीवन के आदर्श को बतानेवाला शाश्वत साहित्य आता है, तहाँ जीवन में आज सहायक होनेवाला युग-साहित्य भी आता है। 'जीवन-साहित्य' जहाँ शाश्वत या अमर-साहित्य की ओर सतत दृष्टि लगाये रहेगा, तहाँ वह युग-साहित्य की मशाल लेकर आपके साथ, वल्कि आगे, दौड़ता हुआ चलेगा भी।

शरीर के सब अवयवों की तरह जीवन के प्रत्येक अंग उपयोगी हैं। उनका विशिष्ट काम और उपयोग है। शरीर में गुह्य और अशौच समझी जानेवाली इन्द्रियों को कोई निरुपयोगी कह सकता है? इसी प्रकार जीवन-संबंधी कोई साहित्य अश्लील नहीं हो सकता। अश्लीलता ज्ञान में नहीं है, ज्ञान के दुरुपयोग में, ज्ञान का उपयोग करने की कुप्रणाली या कुरीति में है। अश्लीलता तारतम्य के भंग में है, अविवेक में है, मर्यादाओं के अज्ञान और अपालन में है। यही अनर्थकारी है। ज्ञान किसी तरह अनर्थ का मूल नहीं बन सकता। इसलिए 'जीवन-साहित्य' में जीवन के सभी अंग-प्रत्यंगों के ज्ञान का समावेश रहना चाहिए। हाँ, उसमें विवेक, तारतम्य, सुरुचि, मर्यादा, आवश्यकता का ध्यान अवश्य ही रहना चाहिए।

समाज में अनीति के काम 'पाप' और नीति के काम 'पुण्य' कहे जाते हैं। हत्या, चोरी, डाका, व्यभिचार और बलात्कार ये अनीति अर्थात् पाप-कर्म समझे जाते हैं। यदि विचार करके देखा जाय, तो इन तथा ऐसे दूसरे पाप-कर्मों का आधार असत्य और हिंसा ही सिद्ध होते हैं। बिना झूठ और हिंसा के शायद ही कोई पापकर्म किसीसे बन पड़े। मनुष्य यदि पुण्यात्मा या नीतिमान् बनना चाहे तो उसे झूठ और हिंसा से सदैव बचना चाहिए। झूठ और हिंसा उसे अधोगति की ओर तथा सत्य और अहिंसा उन्नति की ओर ले जायँगे। अतएव 'जीवन-साहित्य' में असत्य और हिंसा का विरोध, तथा सत्य और अहिंसा का आग्रह रहना चाहिए।

आशा है, यह विवेचन 'जीवन-साहित्य'-संबंधी हमारी कल्पना को स्पष्ट कर देगा।

आशीर्वाद

''मेरी राय में हिन्दी-साहित्य धर्म के आधार पर स्थित और मन को ऊँचा करनेवाला होना चाहिए...मैं हृदय से आपके प्रयत्न की सफलता चाहता हूँ।''

काशी]

—मदनमोहन मालवीय

साहित्य की बुनियाद

[जवाहरलाल नेहरू]

हम लोग जो राजनतिक क्षेत्र में काम करते हैं, देश के और ज़रूरी पहलू अक्सर भूल जाते हैं। किसी देश की असली जागृति उसके नये साहित्य से मालूम होती है, क्योंकि उसमें जनता के नये-नये विचार और उमंगें निकलती हैं। जो जाति सिर्फ़ पुराने साहित्य पर रहती है, चाहे वह कितना ही ऊँचा क्यों न हो, वह पूरी तौर से जीवित नहीं है और आगे नहीं बढ़ सकती। इसलिए अगर हिन्दुस्तान की आजकल की हालत का अन्दाज़ा किया जाय, तो हमें उसके नये साहित्य को, जो इस देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में है, देखना चाहिए। इससे मालूम होता है कि एक नई जागृति ज़रूर हमारी सभी भाषाओं—हिन्दी, उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी इत्यादि में है। लेकिन फिर भी आजकल के क्रान्तिकारी समय में यह कुछ कम मालूम होती है। अभीतक हमने कोई बहुत अच्छे राष्ट्रीय गाने भी नहीं पैदा किये जो कि ऐसे समय में अक्सर पैदा होते हैं। चीन में भयानक लड़ाई हो रही है, और बीस बरस से वहाँकी हालत बहुत ख़राब है, फिर भी वहाँके नये साहित्य ने बहुत तरक्क़ी की है, और वह जानदार है। इससे चीन के लोगों की अन्दरूनी शक्ति का असल अन्दाज़ा होता है, और हमें विश्वास होता है कि वह किसी बाहरी हमले से दब नहीं सकती। इसलिए हमारे लिए यह ज़रूरी है कि हम अपने साहित्य की तरफ़ काफ़ी ध्यान दें और उसको एक नया रूप दें, जिससे वह नये हिन्दुस्तान की हुलिया का एक आइना हो। हम हिन्दी और उर्दू या बंगला या किसी और भाषा की फिज़ूल बहसों में न पड़ें, बल्कि सभीकी उन्नति की कोशिश करें। एक के बढ़ने से दूसरी भी बढ़ेगी। मुझे ख़ुशी है कि उर्दू एकेडेमी उर्दू का काम करती है। इसी तरह से हिन्दी-साहित्य के लिए भी काम करना चाहिए, और दोनों को मिलकर हिन्दुस्तानी साहित्य की मज़बूत बुनियाद डालनी चाहिए। इस बात की हमें बहुत फ़िक्र नहीं करनी चाहिए कि हिन्दी और उर्दू में इस समय कितना फ़र्क़ है। अगर दोनों का उद्देश्य एक है—यानी आम जनता की तरक्क़ी—तब तो दोनों क़रीब आती जायँगी। बुनियादी बात यही है कि हमारे साहित्यकार इस बात को याद रक्खें कि उनको थोड़े-से आदमियों के लिए नहीं लिखना है, बल्कि आम जनता के लिए लिखना है। तब उनकी भाषा सरल होगी और देश की असली संस्कृति की ताक़त उसमें आजायगी। वह ज़माना जाता रहा, जबकि किसी देश की संस्कृति थोड़े-से ऊपर के आदमियों की थी। अब वह आम जनता की होती जाती है और वही साहित्य बढ़ेगा, जो इस बात को सामने रक्खेगा।

आजकल की दुनिया में चारों तरफ़ लड़ाई, दंगा, फ़साद हो रहा है। हिन्दुस्तान में भी काफ़ी फ़साद है, और तरह-तरह की बहसें पेश होती हैं। ऐसे मौक़े पर यह और भी आवश्यक होता है कि हम अपनी नई संस्कृति की ऐसी बुनियाद रक्खें, जिसमें आजकल की दुनिया के विचार जम सकें। और जब हमारे सामने पेचीदा मसले आयें, तो हम बहके-बहके न फिरें। संस्कृति तो एक ऐसा पारस पत्थर होना चाहिए, जिससे हर चीज़ की आज़माइश हो सके। अगर किसी जाति के पास यह नहीं है, तो वह दूर तक नहीं जा सकती। हमें अपने सांस्कृतिक मूल्य क़ायम करने हैं और उनको अपने साहित्य की और सभी काम की बुनियाद बनाना है।

'हिन्दुस्तान की समस्यायें' से]

'लोकमान्य' की पुण्यतिथि

[बाळ गंगाधर खेर]

जीवन और **साहित्य** में सामंजस्य स्थापित करनेवाले इस मासिक के प्रथमांक के लिए मैं कुछ लिखूँ, ऐसी संपादक महोदय की इच्छा है। हमारा आधुनिक साहित्य कृत्रिम और निर्जीव क्यों मालूम होता है, उसको सजीव और स्फूर्तिप्रद कैसे बनाया जा सकता है, इस विषय पर आजकल दैनिकों और मासिकों में बहुत चर्चा चल रही है। इस दिशा में अभिप्राय प्रकट करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है, तथापि साहित्य की एक व्याख्या मैंने कहीं पढ़ी थी जो मुझे अभी याद आ रही है: "साहित्य का आरम्भ तब होता है, जब किसी वीरपुरुष के पराक्रमों का वर्णन भावी सन्तति के मार्गदर्शन के लिए किया जाता है"[१] लोकमान्य तिलक एक ऐसी ही कोटि के वीर पुरुष थे, जिनका चरित्र भावी पीढ़ी के लिए स्फूर्तिप्रद और मार्गदर्शी हुआ है।

एक या दो पृष्ठों में उनका चरित यहाँ लिखा नहीं जा सकता। हाँ, उनके गुणों का स्थूल दिग्दर्शन किया जा सकता है। ४० साल की उनकी देश-सेवा इतनी विविधरूपिणी और प्रभावशालिनी है कि उनका जीवन इस भारतभू का एक आभूषण ही सा बन गया। प्रखर कुशाग्र बुद्धिमत्ता, निःस्वार्थ अनन्य देशभक्ति, असामान्य धैर्य, कठोर परिश्रम और त्याग, ज्वलन्त सच्चारित्र्य और विनय—ये गुण उनमें इतने विकसित रूप में थे कि अगर इनमेंसे एक भी किसीमें दीख पड़ता, तो देश उसको वन्दनीय ही समझता। फिर इन सभी गुणों का समन्वय लोकमान्य को देश का एक अतुलनीय और वंद्य नेता बनावे तो इसमें क्या आश्चर्य है? जिसकी आँखों ने उनकी स्मशान-यात्रा का दिव्य दृश्य बम्बई शहर में देखा——लाख-दो-लाख बूढ़े और जवान, औरतें और बच्चे रास्ते में ऐसे फूटफूटकर रोते थे, जैसे उनका अपना ही कोई निकटतम आत्मीय सदा के लिए बिछुड़ गया हो—और जो उस दृश्य का साक्षी बना, वही समझ सकता है कि उनकी 'लोकमान्य' पदवी का क्या अर्थ था? विद्यार्थी-अवस्था में ही लोकमान्य ने अपने जीवन का ध्येय निश्चित कर लिया था। वह ज़माना ऐसा था कि अगर वह चाहते तो आसानी से सरकार के एक बड़े भारी वेतनभोगी अधिकारी या फिर लाखों रुपये कमानेवाले एक उत्कृष्ट वकील हो सकते थे; किन्तु उनका जो कानूनी ज्ञान था, उसका लाभ उन्होंने बिना मूल्य अपने दरिद्र देशबन्धुओं को बड़ी खुशी से दे दिया। उनके पास जो विद्या थी, उसका दान उन्होंने 'न्यू इंग्लिश स्कूल' और 'फर्ग्युसन कालेज' नाम की दो राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं में स्वल्प वेतन स्वीकार करके, उनके छात्रगणों को निःस्वार्थ बुद्धि से दिया। लो० तिलक ने लोक-शिक्षण के पवित्र लक्ष्य के लिए "केसरी" नामक मराठी साप्ताहिक निकालना शुरू किया, जिसमें उन्होंने ऐसे प्रभावशाली और स्फूर्तिप्रद लेख लिखे, कि जो आज भी साहित्य के अमूल्य रत्न समझे जाते हैं। क्योंकि वे सजीव हैं, इसलिए आज भी जिन्दा हैं।

'लोकमान्य' केवल एक प्रथम श्रेणी के संपादक ही न थे, योद्धा भी थे। अपने अल्पज्ञ और दलित देश की स्वातंत्र्य-साधना के लिए अंग्रेज अधिकारियों से 'लोकमान्य' ने संघर्ष लेना शुरू किया, जिसके परिणाम-स्वरूप भारत-सरकार

---

[१] Literature begins with the attempt to delineate the mighty deeds of man and to commemorate them for the imitation of posterity" **Challenge of life** by **Jacks.**

उनको अपना प्रबल शत्रु मानने लगी और सन् १८९७ में उनको राजद्रोह के अपराध में कारावास का दण्ड भोगना पड़ा। वही वक्त था; जब उनके अप्रतिम धैर्य और आत्मविश्वास की प्रतीति उनके देशबन्धुओं को हुई। लोकमान्य राजनीति–धुरंधर होते हुए भी अपनी विद्वत्ता और बुद्धि वैभव से दुनिया को चकित कर सकते थे। उनका ओरायन-(Orion) मृगनक्षत्र ग्रंथ इतना विद्वत्तापूर्ण था कि उसने मैक्समूलर-जैसे विश्वविख्यात विद्वान् को आकर्षित किया और उन्हें लोकमान्य का भक्त बना दिया। इसी प्रकार उनका 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज' (Arctic Home in the Vedas) ग्रंथ भी अत्यन्त विद्वन्मान्य हुआ। १९०८ में एकबार फिर सरकार ने उनपर राजद्रोह का मुकदमा चलाया, जिसमें उनको छः साल के लिए काले पानी की सजा दे दी गई। इसपर भी उनका चित्त-स्वास्थ्य बिलकुल भंग न होने पाया और उन्होंने सजा सुनानेवाले न्यायाधीश को सुनाया––"मानवी अदालतों से अत्यन्त अधिक समर्थ ईश्वरीय अदालत है। मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। मेरे कारावास से मेरे देश का अधिक कल्याण होगा, ऐसी ही ईश्वरीय योजना होगी।" सज़ा होने पर उनको मंडाले-जेल में ले जाया गया। वहाँ उन्होंने छः साल के अद्भुत अध्यवसाय से राष्ट्र को अपना "गीतारहस्य" समर्पित किया। भगवद्गीता का इतना सुन्दर और सविस्तर विवेचन अन्य किसी ग्रंथ में नहीं दिखाई देता है।

'लोकमान्य' गीता के 'स्थितप्रज्ञ' थे। **"प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः"** उनका जीवन मन्त्र था। उनकी मृत्यु को आज बीस साल पूरे होगये हैं, मगर वह अमर हैं। उनकी स्मृति उनके करोड़ों कृतज्ञ देश-बन्धुओं के हृदयों में आज भी ताजी है, और उनको प्रतिदिन संदेश दे रही है कि **'स्वराज तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'** आज उनकी पुण्यतिथि के अवसर पर हम उनकी पुनीत स्मृति में अपनी अकिंचन श्रद्धांजलि समर्पित करें। ऐसे महामहिम पुरुष को जो भूमि जन्म दे सकती है, वह जरूर स्वतंत्र होकर रहेगी।

शुभकामनायें

" 'जीवन-साहित्य' आपके उपयुक्त सम्पादन में हमारे बड़े काम की वस्तु होगी, ऐसी आशा है। मैं उसकी सफलता हृदय से चाहता हूँ।"

चिरगाँव, झाँसी]

—सियारामशरण गुप्त

" 'जीवन-साहित्य' के प्रकाशन का समाचार मिला। आपका विचार बहुत ठीक है, इसमें कोई शक की बात नहीं है। ऐसे साहित्य की बहुत आवश्यकता है।"

गुरुकुल, कांगड़ी]

—अभयदेव

"यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि आप 'त्यागभूमि' को 'जीवन-साहित्य' के रूप में पुनर्जीवित करने जा रहे हैं। 'त्यागभूमि' की तृष्णा बहुत दिनों से बनी थी, वह अब मिट सकेगी।"

बीकानेर]

—नरोत्तमदास स्वामी

असहयोग-तत्त्व

[हरिभाऊ उपाध्याय]

पहली अगस्त भारत के इतिहास में दो महान् घटनाओं के कारण चिरस्मरणीय रहेगी—एक तो लोकमान्य का स्वर्गारोहण और दूसरे असहयोग का जन्म । लोकमान्य गये तो, पर ऐसा मालूम होता है कि वे महात्माजी के द्वारा असहयोग-तत्त्व को अपनी विरासत के रूप में छोड़ गये । लोकमान्य ने लोक-हृदय में जो जबरदस्त प्रतिकार-भावना पैदा की, उसीका अगला क़दम असहयोग था । सहयोग जैसे जीवन का धर्म है, असहयोग वैसे ही जीवन के उत्कर्ष की एक आवश्यकता है । जीवन अच्छे और बुरे तत्त्वों का मिश्रण है । प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में गुण और दोष दोनों पाये जाते हैं । संखिया मारक विष है, तो उचित मात्रा और योग्य विधि से सेवन करने पर वह तारक रसायन का काम भी देता है । अंगूर महान् जीवनदायी रस है, पर विशेष प्रक्रिया से वही उन्मत्त करनेवाला मद्य हो जाता है । इसमें गुलाब का फूल भी है और अफ़ीम का भी । राम भी है और रावण भी । जब सब एक-रूप, एक-रस था, तब सृष्टि थी ही नहीं । द्विधा या द्वैत का उद्गम होते ही सृष्टि का अंकुर फूटा । द्विधा, द्वैत या द्वन्द्व का ही सम्मिश्रण यह जगत् है । मनुष्य जन्मते ही अपने को द्वन्द्व के बीच पाता है । सुख-दुःख, हर्ष-शोक, हानि-लाभ, जीवन-मरण, अच्छा-बुरा, धूप-छाँह स्वार्थ-परमार्थ, दिन-रात, ये परस्पर-विरोधी बल और वस्तुयें उसको अपनी-अपनी तरफ़ खींचते हैं । मनुष्य के जैसे संस्कार होते हैं, उसी तरफ़ वह स्वभावतः खिचता है । जो विवश होकर खिंचता चला जाता है, वह प्रवाह-पतित की तरह बहता ही चला जाता है, उसे कहीं ओर-छोर नहीं मिलता । जो विवेक से चुनाव करता है और पुरुषार्थ से उसपर दृढ़ रहता है, वह तिरता और किनारे लगता है । इसमें उसे इष्ट के साथ सहयोग और अनिष्ट के साथ असहयोग करना पड़ता है । इस चुनाव पर ही उसके जीवन की सफलता या सार्थकता का आधार होता है । मानव-जीवन का यही नियम साहित्य, समाज, राष्ट्र सब पर लागू पड़ता है ।

अनुकूल तथा हितकारक बातों में मन और शक्ति को लगाना सहयोग एवं प्रतिकूल तथा अहितकारक बातों से मन-बुद्धि हटाना असहयोग है । जहाँ असत्य, अन्याय, अत्याचार, पाप हो वहाँसे अपने को दूर रखना, उसकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई ज़िम्मेदारी अपने पर न लेना असहयोग है और जहाँ सत्य, न्याय, सदाचार, पुण्य होता हो, उसमें अपनेको हर तरह लगाना सहयोग है । इसके बिना न अच्छी बातों और अच्छे व्यक्तियों को बढ़ावा और प्रोत्साहन मिल सकता है, न बुरी बातों से बुरे व्यक्तियों को निराशा तथा छुटकारा हो सकता है । कहाँ और कितना सहयोग तथा असहयोग करना चाहिए, यह मनुष्य के विवेक पर निर्भर होता है । भावना जितनी शुद्ध और बुद्धि जितनी सात्विक होगी, उतना ही पुण्य-पाप का ज्ञान स्पष्ट और सहयोग-असहयोग की स्फूर्ति निश्चित होगी ।

महात्माजी ने भारत को असहयोग का पाठ ऐसे समय में दिया, जबकि उसे ब्रिटिश साम्राज्य-वाद से छुटकारे का कोई निश्चित और स्पष्ट मार्ग दीख नहीं रहा था । शस्त्र-युद्ध तो ठीक, सशस्त्र बलवे तक की अनुकूलता और साधन

देश के पास नहीं थे। गुप्त षड्यन्त्रों एवं छिट-फुट हत्याओं के द्वारा देश का नवयुवकदल उस के उद्धार का असफल प्रयत्न कर रहा था। देश की आत्मा जाग्रत हो रही थी और वह किसी उपयुक्त, प्रभावशाली शस्त्र की तलाश में थी कि महात्माजी ने उसे असहयोग का दिव्य शस्त्र प्रदान किया। इसके किंचित् प्रयोग से भारत का बल बढ़ा, उसका सिर ऊँचा उठा और वह छाती तानकर चलने लगा। अब वह समय आया दीखता है, जब अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों में भी शस्त्र-युद्ध की जगह अहिंसात्मक असहयोग का मार्ग सुझाया जाय। महात्माजी आजकल इसी दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं।

शुभ कामनायें

"यह जानकर आनन्द हुआ कि आप एक नया मासिक पत्र निकालने का आयोजन कर रहे हैं।...विश्वास है कि मासिक वाचनीय होगा, हिन्दी-साहित्य को योग्य मार्ग-दर्शन करेगा और समाज-सेवा का एक अच्छा साधन बनेगा।"

बंबई]

—बाळ गंगाधर खेर

"मुझे प्रसन्नता है कि सस्ता-साहित्य-मण्डल की ओर से आप 'जीवन-साहित्य' निकाल रहे हैं। यदि आपका पत्र हिन्दुस्तान भर के साहित्यिकों के बीच सम्पर्क कायम कर सके, तो वह एक बड़ी सेवा करेगा। मैं आपके पत्र की हर प्रकार से सफलता चाहती हूँ।"

बंबई]

—लीलावती मुंशी

"'जीवन-साहित्य' प्रकाशित करने का आपका विचार बहुत शुभ है। मैं हृदय से चाहता हूँ कि आपको इस उद्योग में सफलता मिले।"

दिल्ली]

—इन्द्र 'विद्यावाचस्पति'

"'जीवन-साहित्य' यदि विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका रहे, तो ठीक है।...मैं आपकी सफलता चाहता हूँ।"

ज्वालापुर]

—नरदेव शास्त्री

"आप पत्र अवश्य निकालें। यदि मैं कोई सेवा कर सका तो हाज़िर रहूँगा।"

बनारस]

—सम्पूर्णानन्द

पृथिवी-पुत्र

[वासुदेवशरण अग्रवाल]

हिन्दी के साहित्य-सेवियों को पृथिवी-पुत्र बनना चाहिए। वे सच्चे हृदय से यह कह और अनुभव कर सकें——**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः** **(अथर्ववेद)** "यह भूमि माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूँ।" लेखकों में यह ज्ञान न होगा तो उनके साहित्य की जड़ें मजबूत नहीं होंगी, आकाश-बेल की तरह वे हवा में तैरती रहेंगी। विलायती विचारों को मस्तिष्क में भरकर उन्हें अधपके ही बाहर उँडेल देने से किसी साहित्य का लेखक लोक में चिर-जीवन नहीं पा सकता। हिन्दी-साहित्यकारों को अपनी खुराक भारत की सांस्कृतिक और प्राकृतिक भूमि से प्राप्त करनी चाहिए। लेखक जिस प्रकार के जीवन-रस को चूसकर बढ़ता है, उसी प्रकार की हरियाली उसके साहित्य में भी देखने को मिलेगी। आज लोक और लेखक के बीच में गहरी खाई बन गई है, उसको किस तरह पाटना चाहिए, इसपर सब साहित्यकारों को पृथक्-पृथक् और संघ में बैठकर विचार करना आवश्यक है।

प्राकृतिक भूमि

हिन्दी-लेखक को सबसे पहले भारत-भूमि के भौतिक रूप की शरण में जाना चाहिए। राष्ट्र का भौतिक रूप आँख के सामने है। लाखों वर्षों से इसकी सत्ता एक-सी चली आई है। राष्ट्र की भूमि के साथ साक्षात् परिचय बढ़ाना आवश्यक है। एक-एक प्रदेश को लेकर वहाँकी पृथिवी के भौतिक रूप का सांगोपांग अध्ययन हिन्दी-लेखकों में बढ़ना चाहिए। यह देश बहुत विशाल है। यहाँ देखने और प्रशंसा करने के लिए अतुल सामग्री है। उसका ज्ञान करते हुए हमें एक शताब्दी लग जायगी। पुराणों के महामना लेखकों ने भारत के एक-एक सरोवर, कुंड, नदी और झरने से साक्षात् परिचय प्राप्त किया, उसका नामकरण किया और उसको देवत्व प्रदान कर उसकी प्रशंसा में माहात्म्य बनाया। हिमवन्त और विन्ध्य-जैसे पर्वतों के रम्य प्रदेश हमारे अर्वाचीन लेखकों के सुसंस्कृत माहात्म्य-गान की प्रतीक्षा कर रहे हैं। देश के पर्वत, उनकी ऊंची चोटियाँ, पठार और घाटियां सब हिन्दी के लेखकों की लेखनी का वरदान पाने की बाट देख रही हैं। देश की नदियाँ, वृक्ष और वनस्पति, ओषधि और पुष्प, फल और मूल, तृण और लतायें सब पृथिवी के पुत्र हैं। लेखक उनका सहोदर है। लेखक को इस विशाल जगत् में प्रवेश कर के अपने परिचय का क्षेत्र बढ़ाना चाहिए। चरक और सुश्रुत ने ओषधियों के नामकरण का जो मनोरम अध्याय शुरू किया था, उसका सच्चा उत्तराधिकार प्राप्त करने के लिए हिन्दी के लेखक को बहुत परिश्रम करने की जरूरत है। और सब से अधिक आवश्यक है एक

नया दृष्टिकोण

जिसके बिना साहित्य में नवीन प्रेरणा की गंगा का अवतरण नहीं हुआ करता। हिन्दी के लेखकों को वनों में जाकर देश के वनचरों के साथ सम्बन्ध बढ़ाना है। वन्य पशु-पक्षी सभी उसके सगोती हैं, वे भी तो पृथिवी-पुत्र हैं। अथर्ववेद के पृथिवी-सूक्त के ऋषि की दृष्टि जो कुछ पृथिवी से जन्मा है सबको पूजा के भाव से देखती है :

हे पृथिवी, जो तेरे वृक्ष, वनस्पति, शेर, बाघ आदि हिंस्र जन्तु, यहाँतक कि साँप और बिच्छू भी हैं, वे भी हमारे लिए कल्याण करने वाले हों।

पश्चिमी जगत् में पृथिवी के साथ यह सौहार्द का भाव कितना आगे बढ़ा हुआ है! भूमध्यसागर

या प्रशान्त महासागर की तलहटी में पड़े हुए सीप और घोंघों तक की सुध-बुध वहाँ के निवासी पूछते हैं। भारतीय तितलियों पर पुस्तक चाहें, तो अंग्रेजी में मिल जायगी। हमारे जंगलों में कुलाचें मारनेवाले हिरनों और चीतलों के सींगों की क्या सुन्दरता है, हमारे देश के असल मुर्गों की बढ़िया नस्ल ने संसार में कहाँ-कहाँ जाकर कुश्ती मारी है, इसका वर्णन भी अंग्रेजी में ही मिलेगा। ये सब विषय एक जीवित जाति के लेखकों को अपनी ओर खींचते हैं। क्या हिन्दी-साहित्य के कलाकार इनसे उदासीन रहकर भी कुशल मना सकते हैं? आज नहीं तो कल, हमें अवश्य ही इस सामग्री को अपने उदार अंक में अपनाना पड़ेगा। यह कार्य जीवन की उमंग के साथ होना चाहिए। यही साहित्य और जीवन का संबंध है।

देश के गाय और बैल, भेड़ और बकरी घोड़े और हाथी की नस्लों का ज्ञान कितने लेखकों को होगा। पालकाप्य मुनि का हस्तायुर्वेद अथवा शालिहोत्र का अश्व-शास्त्र आज भी मौजूद हैं, पर उनका उत्तराधिकार चाहने वाले मनुष्य नहीं। मल्लिनाथ ने माघ की टीका में हमें 'लीलावती' नामक ग्रन्थ के उद्धरण दिये हैं, जिनसे मालूम होता है कि घोड़ों की चाल और कुदान के बारे में भी कितना बारीक विचार यहाँ किया गया था। पश्चिमी एशिया के अल-अमनी गांव में ईसा से १४०० वर्ष पूर्व की एक पुस्तक मिली है, जिसमें अश्वविद्या का पूरा वर्णन है। उसमें संस्कृत के अनेक शब्द जैसे एकावर्तन, द्वयावर्तन, त्र्यावर्तन आदि घोड़ों की चाल के बारे में पाये गये हैं। उस साहित्य के दाय में हिस्सा माँगनेवाले भारतवासियों की आज कमी दिखलाई पड़ती है।

हमने अपने चारों ओर बसनेवाले मनुष्यों का भी तो अध्ययन नहीं शुरू किया। देशी नृत्य, लोकगीत, लोक का संगीत सबका उद्धार साहित्य-सेवा का अंग है। एक देवेन्द्र सत्यार्थी क्या, सैकड़ों सत्यार्थी गाँव-गाँव घूमें, तब कहीं इस सामग्री को समेट पावेंगे। इस देश में मानों अपरिमित साहित्य-सामग्री की प्रतिक्षण वृष्टि हो रही है, उसको एकत्र करनेवाले पात्रों की कमी है। लोक की रहन-सहन, वेष और आभूषण, भोजन और वस्त्र सबका अध्ययन करना है। जनपदों की भाषायें तो साहित्य की साक्षात् कामधेनुयें हैं। उनके शब्दों से हमारा निरुक्त-शास्त्र भरापूरा बनेगा। हिन्दी शब्द-निरुक्ति, बिना जनपदों की बोलियों का सहारा लिये बन ही नहीं सकती। जनपदों की बोलियाँ कहावतों और मुहावरों की खान हैं। हम चुस्त राष्ट्रभाषा बनाने के लिए तरस रहे हैं, पर उसकी जो खानें हैं उनको खोदकर सामग्री प्राप्त करने की ओर हमने अभी तक ध्यान नहीं दिया। हिन्दी-भाषा की तीन हज़ार धातुओं को यदि ठीक तरह ढूँढ़ा जाय, तो उनकी सेवा से हमें भाषा के लिए क्या शब्द नहीं मिल सकते? पर हमारा धातु-पाठ कहाँ है, वह हिन्दी के पाणिनि की बाट देख रहा है! खेल और क्रीड़ायें क्या राष्ट्रीय जीवन के अंग नहीं हैं? मेले, पर्व और उत्सव सभी हमारी पैनी दृष्टि के अन्तर्गत आजाने चाहिएँ। इस आँख को लेकर जब हम अपने लोक के आकाश में ऊँचे उठेंगे, तब सैकड़ों-हज़ारों नई चीज़ों को देखने की योग्यता हमारे पास स्वयं आजायगी।

संस्कृत-साहित्य की शरण

हमारा विशाल संस्कृत-साहित्य हमारे आदर्शों और विचारों का ब्राह्मसर है। वहाँसे लोक की सरस्वती जन्म पाकर सबको प्रकाश और बल

देगी। पुरातन संस्थाओं और सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद हम राष्ट्र-गठन का सच्चा रहस्य जान पायँगे। पौर-जानपद-सभाओं से साहित्य और समाज की परिषदों से, श्रेणी निगम और यूग की समितियों से परिचय प्राप्त करने के लिए हमें अपनी संस्कृति की भूमि की शरण में जाना चाहिए, जिसका द्वार संस्कृत-साहित्य में खुला हुआ है। इस देश में आलोचना के सिद्धांतों के बारे में क्या सोचा जा चुका है, रस, रीति, ध्वनि क्या हैं, उनका दार्शनिक और साहित्यिक स्वरूप क्या है और मानव जीवन के सनातन मनोभावों के साथ उनका क्या सम्बन्ध है, इसको बिना पढ़े जो आलोचक केवल मैथ्यू आर्नोल्ड या वोर्सफोल्ड के विचारों को घोटकर हिन्दी-साहित्य की क्रूर समीक्षा करने लग जाते हैं, उनका लिखा हुआ साहित्य, और चाहे जो हो, लोक की वस्तु नहीं बन सकता; राष्ट्रीय वृद्धि के कीटाणु उसमें नहीं पनप सकते। शब्दों के निर्वचन और व्याकरण या शिक्षा के किन सिद्धान्तों का इस देश में पहले विचार हो चुका है, उसकी बारहखड़ी से भी जो अपरिचित रह जावें, वे लेखक हिन्दी के भाषा-शास्त्र का विवेचन करते हुए कोरे पश्चिमी ज्ञान की लाठी के सहारे ही चल पावेंगे। इस समय हिन्दी की नई वर्णमाला का स्वरूप स्थिर करने के लिए अर्ध एकार और अर्ध ओकार पर खासी बहस देखने में आती है, पर क्या हमें मालूम है कि ईसा से भी कई सौ वर्ष पहले सामवेद की सात्यमुग्रि और राणायनीय शाखाओं के आचार्यों ने अपनी परिषदों में इन दोनों उच्चारणों का ठीक-ठीक निर्णय कर दिया था? इस प्रकार के कितने विमर्श भारत के अतीत साहित्य से हमें प्राप्त करने हैं! यूनान के साहित्य और संस्कृति का उत्तराधिकार यूरोप ने प्राप्त किया, अपने आपको उस विद्या-दाय में शामिल करके यूरोप के विद्वान् अपनेको धन्य मानते हैं, तो क्या भारतवासी अपने इस ब्रह्मदाय से पराङ्मुख रहकर अपने राष्ट्र के भावी मस्तिष्क या ज्ञान-कोष का स्वस्थ निर्माण कर सकेंगे? कदापि नहीं। हमको तो इस विराट् साहित्य के रोम-रोम में भिदकर हिन्दी-भाषा के द्वारा उनको नये-नये रूपों में देखना पड़ेगा। उसके साथ हमारा सम्बन्ध आज का नहीं है, वह साहित्य हमारे पूर्वजों के भी गुरुओं का है। अपने राष्ट्रीय नवाभ्युत्थान के समय हम उस मूल्यवान् साहित्य को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं। हिन्दी-लेखक जबतक इस ऋषि-ऋण से उऋण नहीं होंगे, वे लोक-साहित्य की सृष्टि में पिछड़े रहेंगे। कल्पना कीजिए कि व्यास की 'शतसाहस्री संहिता' को जिसे पूर्व लोगों ने श्रद्धा के भार से 'पंचम वेद' की पदवी दी थी, छोड़कर हम कितने दरिद्र रह जाते हैं? उस 'जय' नामक इतिहास को अथवा आदि-कवि के शब्द-ब्रह्म के नवावतार 'रामायण' को साथ लेकर आगे बढ़ने में हमारा विद्यादाय समृद्ध बन जाता है।

भारत के साहित्यकार, विशेषतः हिन्दी के साहित्य-मनीषियों को चाहिए कि इस नवीन दृष्टिकोण को अपनाकर साहित्य के उज्ज्वल भविष्य का साक्षात् दर्शन करें। दर्शन ही ऋषित्व है। ऋषियों की साधना के बिना राष्ट्र या उसके साहित्य का जन्म नहीं होता।

न पढ़ने योग्य अच्छी किताबें

[किशोरलाल घ० मश्रुवाला]

अच्छे उद्देश्य से लिखी हुई होने पर भी युवकों के ज्यादा न पढ़ने लायक़ पुस्तकों में मैं ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी पुस्तकों का समावेश करता हूँ। 'ब्रह्मचर्य-संदेश', 'संजीवनी विद्या' इत्यादि ब्रह्मचर्य का पोषण करने के लिए प्रामाणिकता से लिखी गई कई पुस्तकें मैंने देखी हैं, पर मुझे शक है कि उन पुस्तकों से विकारों के साथ झगड़ने वाले युवकों को, कुल मिलाकर, बहुत लाभ होता होगा। बल्कि इन किताबों में कई बातें तो ऐसी होती हैं कि जो विकारों के कुछ प्रकारों का परिचय उन लोगों को करा देती हैं, जो उनसे अपरिचित होते हैं।

'जीवन-बीज' और 'जीवन-वृद्धि' विषयों को जानने का कुतूहल कई युवकों के मन में उत्पन्न होता है, और इसकी अपेक्षा कि वे गुप्त और उचित मार्ग से इसका ज्ञान प्राप्त करें, यह कभी-कभी लाभप्रद हो सकता है कि वे धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति द्वारा गम्भीरतापूर्वक लिखी पुस्तक पढ़ें; लेकिन ऐसी भी अनेक पुस्तकों का वाचन तो किसी भी हालत में इष्ट नहीं हो सकता। फिर कई युवक तो अपने ऐसे दोषों से मुक्त होने के लिए जो उन्हें दिन-रात सताते रहते हैं, इस तरह की पुस्तकें खोजते रहते हैं, लेकिन उन्हें उनके द्वारा अमली और प्रचुर उपाय शायद ही मिलते हों। उल्टा उन पुस्तकों का पठन उस समय विषय की अधिक ही याद दिलाता है और दोषों की ओर ढकेलता है।

अतएव विकारों से मुक्त होने की दृष्टि से ऐसी पुस्तकें अधिक उपयोगी साबित नहीं होतीं। इसका मार्ग पुस्तकों द्वारा शायद ही मिलता है। यह लड़ाई तो हमें खुद अपने साथ ही लड़ लेनी है। इसके लिए नीचे लिखी सूचनायें उपयोगी हो सकती हैं :—

(१) ऐसा उपाय करना, कि जिससे विषय का स्मरण ही न हो, निर्भय मार्ग है। इसके लिए मन और शरीर को हमेशा कार्यरत रखना चाहिए। किसी कार्य, अभ्यास या शुभ प्रवृत्ति में मन को इतना लवलीन कर देना चाहिए कि जिससे न मन को फ़ुरसत मिले और न वह विषयों की ओर दौड़े। इसलिए कार्य ऐसा चुना जाय कि जिसमें सिर्फ़ शरीर ही नहीं, मन भी लगा रहे।

कॉलेज के दिनों में मैंने सुप्रसिद्ध रसायन-शास्त्री जॉन डॉल्टन का जीवन-चरित पढ़ा था। उसकी एक बात मैं कभी न भूल सका। मुझे उसमें सहज ब्रह्मचर्य का आदर्श दिखाई देता है। उनकी वृद्धावस्था में किसीने उनसे पूछा 'आप अविवाहित क्यों रहे ?' डॉल्टन इस प्रश्न से विचार में पड़ गये और थोड़ी देर बाद कहा—'भाई, आज ही आपने इस बात की ओर मेरा ध्यान दिलाया है। अपने वैज्ञानिक प्रयोगों में मेरा जीवन कैसे बीत गया, इसका मुझे पता ही नहीं चला। विवाह करूँ या नहीं और मैं विवाहित हूँ या अविवाहित, यह विचार ही मेरे दिल में कभी नहीं आया।'

हमारे पुराणों के अत्रि ऋषि और अनसूया की कथा भी जिस तरह मैंने सुनी है, इसी तरह का आदर्श उपस्थित करती है। वे विवाहित दम्पती थे, फिर भी ऋषि का यौवन अपने अध्ययन में और सती का जीवन उनकी साल-सँभाल तथा काम-काज करने में इस तरह बीत गया कि बुढ़ापे के आने का उन्हें पता ही न चला।

पुराणकार कहते हैं कि एक बार अत्रि ऋषि अध्ययन में लीन थे कि दिये में तेल ख़तम हो गया। अत्रि ने तेल मँगाने की इच्छा से ऊपर देखा तो थकान से अनसूया की आँखें मिच गई थीं। अत्रि अनसूया की तरफ देखते रहे। उन्हें वह वृद्धा प्रतीत हुई। उन्होंने अपनी दाढ़ी को देखा, वह सफ़ेद दिखाई दी। यौवन कब चला गया, इसका अत्रि को भान ही न रहा। इसमें काव्य की अतिशयोक्ति भले ही हो, लेकिन इसमें ब्रह्मचारी के लिए अध्ययन-रत जीवन का एक उत्तम आदर्श बताया गया है और डॉल्टन की अनुभव-वाणी का इससे समर्थन होता है।

(२) फिर भी यदि विकार उत्पन्न हों तो उसका शत्रु या मित्रभाव से विचार न करके किसी नये विचार में मन को लगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(३) जिस व्यक्ति या मूर्ति के प्रति इतना आदर हो कि जिसके नज़दीक रहने से विकार शमन होते हों या जिसके समीप विकार-वश न होने का बल मिलता हो, उसका सहवास रखना चाहिए। सहवास के अभाव में उसका स्मरण भी सहायक हो सकता है।

सर वॉल्टर स्कॉट के बारे में यह कहा जाता है कि उसकी दादी को इस बात की बड़ी चिढ़ थी कि बच्चे उससे सटकर बैठें और स्कॉट को वह कभी अपनेसे सटकर नहीं बैठने देती थी। बुढ़ापे में भी सटकर न बैठने की आदत स्कॉट की क़ायम रही और वह कहते थे कि कई बार सटकर बैठने की इच्छा हो जाती है, मगर फौरन ही मानों दादी आँखें तरेरती हुई सामने बैठी दिखाई पड़ती है, और वह इच्छा शान्त हो जाती है।

(४) जो खान-पान पहनाव या आदतें स्वानुभव से विकारों की सहायक साबित हुई हों उनका व्रतपूर्वक त्याग किया जाय और आम तौर पर नीचे के नियम पाले जायँ——

(क) भोजन बहुत देर से न किया जाय। रात को भारी, अधिक या गरमागरम भोजन न किया जाय।

(ख) देर से न सोया जाय।

(ग) जल्दी उठा जाय।

(घ) दिन में इतना परिश्रम किया जाय कि रात के आठ-नौ बजे ही आँखें घिरने लगें, और पिछले पहर में सोते रहने का लोभ कभी न रक्खा जाय।

(च) सादे और स्वच्छ जीवन की इच्छा रक्खी जाय।

(छ) रसिक दिखाई पड़ने का मोह न किया जाय।

ऐसा नहीं है कि इतना ही करने पर समस्या हल हो जायगी। कई नवयुवकों पर विकार अपना रंग जमाये बिना रहता ही नहीं। लेकिन यदि ऊपर की हिदायतों से उसे बहुत मदद न मिले तो पूर्वोक्त पुस्तकों से भी मदद मिलना सम्भव नहीं है। ऐसे नवयुवकों को मेरी सलाह है कि यदि ऐसी एकाध पुस्तक पढ़कर भी उनकी उलझनें न सुलझ सकी हों, तो उन्हें ऐसी दूसरी पुस्तकें हरगिज़ न पढ़नी चाहिएँ। उनसे उसे कोई मार्ग-दर्शन नहीं होगा।

अनु०——शकुन्तला उपाध्याय

लेखक की 'स्त्री-पुरुष-मर्यादा' नामक गुजराती पुस्तक से]

विद्या का क्रम

[काका कालेलकर]

छांदोग्य-उपनिषद् में जो सत्यकाम जाबाल की कथा है, उसे सब-कोई जानते हैं। गुरु के पास जब वह विद्या पढ़ने गये, तब अपने आश्रम में दाखिल करने से पहले गुरु ने उनसे उनका गोत्र पूछा। सत्यवादी शिष्य ने सरल और सच्चे भाव से उत्तर दिया कि––"जब मेरी माँ को ही इसका पता नहीं है, तो मैं आपको कहाँ से बताऊँ ?" ऐसा सत्यवादी बालक तो वर्ण का ब्राह्मण ही हो सकता है, यह समझकर गुरु ने उसका यज्ञोपवीत-संस्कार किया और आश्रम की खेती की व्यवस्था उसके सुपुर्द की। सत्यकाम ने पशु-पक्षी और अग्नि के पास से सारा ज्ञान प्राप्त किया और गुरु ने उनकी परीक्षा लेकर उन्हें ब्रह्मवेत्ता की पदवी दी। धीरे-धीरे सत्यकाम आचार्य बन गये।

× × ×

ब्रह्मचारी कमलपुत्र उपकोसल आचार्य सत्यकाम जाबाल के पास ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए बारह वर्ष तक रहे और उन्होंने गुरु की अग्नि की सेवा की। बारह वर्ष बीत जाने के बाद गुरु ने दूसरे सारे विद्यार्थियों को उत्तीर्ण कर दिया, और घर जाने की आज्ञा दी। केवल एक उपकोसल को ही छुट्टी नहीं मिल सकी। वह बेचारा अपनी हिकमत लगाने के लिए गुरु-पत्नी के पास गया। गुरु-पत्नी ने आचार्य से सिफारिश की :

"उस बेचारे ब्रह्मचारी ने हमारी अग्नि की बारह वर्ष तक भलीभाँति सेवा की है। अब तो उसको अपना ब्रह्मज्ञान बताइए न...? इतनी सेवा करने के बाद भी आप उसे ज्ञान नहीं देते हैं, तो हमारे अग्निदेव आपको उलहना देंगे।" आचार्य ने कोई जवाब नहीं दिया और दूसरे गाँव जाने के लिए निकल पड़े।

दुखी ब्रह्मचारी ने उपवास शुरू किया। आचार्य-पत्नी ने उससे पूछा, "बेटा, भोजन क्यों नहीं करता ? कुछ तो खा।" ब्रह्मचारी ने जवाब दिया, "मनुष्यों में बहुत-सी अभिलाषायें बनी रहती हैं। इसी प्रकार की एक अभिलाषा की व्याधि से मैं दुखी हूँ। इसीलिए मैं कुछ नहीं खा रहा हूँ।"

उसने दृढ़ता से अग्नि की फिर ध्यानपूर्वक सेवा की। अंत में अग्निदेव संतुष्ट हुए। उन्होंने विचार किया कि, इस ब्रह्मचारी ने हमारी उत्तम उपासना की है; चलो, हम स्वयं ही प्रकट होकर उसे ज्ञान दें। उसके बाद गार्हपत्य अग्नि, अन्वाहार्यपचन अग्नि, और आहवनीय अग्नि ने प्रकट होकर अपने व्यापक स्वरूप तथा इस विश्व में जो तत्व काम करते हैं, उनका ज्ञान दिया। दुनिया में अनन्तत्व ही सुख है यह बताया और कहा, "बेटा, हमने तुमको अपनी आत्म-विद्या तो बता दी। आगे का मार्ग तो गुरु-गम्य है। इसलिए यह तो आचार्य ही तुम्हें बतावेंगे।"

आचार्य सत्यकाम जब घर वापस लौटे, तब उपकोसल को देखते ही उसके चेहरे से उन्होंने यह जान लिया कि वह अब पहले-जैसा नहीं रहा। वह बोले, "बालक ! मालूम होता है, तुझे ज्ञान हो गया है। बता तो, तूने किसके पास से ज्ञान प्राप्त किया ? उपकोसल ने तीनों अग्नियों के साक्षात् प्रकट होने की बातें विस्तार से कहदीं। गुरुजी ने संतुष्ट होकर कहा, "अग्नियों ने तुझे सब लोकों का ज्ञान दे दिया है। चल, अब मैं तुझे ब्रह्मज्ञान सिखाता हूँ।" गुरु के पास से

ब्रह्मविद्या सीख कर तथा कृतार्थ हो कर शिष्य ने विदा ली ।

× × ×

ग्रीस में सबसे पहले पदार्थ-विज्ञान (Physics) सीखने के बाद ही दर्शन-शास्त्र या तत्वज्ञान पढ़ाते थे । सत्यकाम जाबाल और उनके शिष्य उपकोसल की बातों पर से यही क्रम दिखाई देता है। पशु-पक्षी और अग्नि आदि का लौकिक ज्ञान अपने प्रयत्न से निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोगों को प्राप्त करने के बाद ही गुरु औपनिषदिक विद्या यानी ब्रह्मज्ञान देते थे ।

अनु० ——बृहस्पति उपाध्याय

गुजराती मासिक 'शिक्षण अने साहित्य' से]

भावी जीवन की आधार-शिला

[आचार्य कृपलानी]

गांधीजी का तत्वज्ञान अमुक सिद्धान्तों पर आधारित है । इन सिद्धान्तों के आधार पर इन्होंने अपने द्विविध—लड़ाई और रचनात्मक——कार्यक्रम की रचना की है । ये कार्यक्रम व्यापक और एक-दूसरे से संबद्ध हैं । वे व्यक्ति और राष्ट्र दोनों को रास्ता बताते हैं ।

इन कार्यक्रमों और इनके मूलभूत सिद्धान्तों में जीवित सम्बन्ध रहा है : दोनों मिलकर संपूर्ण बनते हैं । व्यक्ति और राष्ट्र से गांधीजी खास प्रकार की चरित्र-शीलता की अपेक्षा रखते हैं; और इस चारित्र्य की दृष्टि से ही उन्होंने नई शिक्षण-योजना की कल्पना की ।

राजनीतिक जीवन में, सत्य और अहिंसा का प्रवेश करने से प्रारम्भ करके उसमें से, गांधीजी ने अपना चर्खा और खादी, अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, स्त्री-उद्धार (भौतिक जीवन में स्त्रियों को पुरुषों के समान आमोद-प्रमोद के अधिकार मिलें इस पश्चिमी व्याख्या के अनुसार नहीं बल्कि उनके द्वारा समाज-सेवा हो और उनको अपनी वैयक्तिक उन्नति के भी अवसर मिलें, इस अर्थ में) पुराने ग्रामोद्योगों का पुनरुद्धार और नयों का विकास—इन सब योजनाओं को विकसित किया । इन सबमें से अब वह अपनी नवीन शिक्षण-योजना की ओर बढ़े हैं । स्वाभाविक रीति से यही होता भी है; क्योंकि शिक्षा को क्रिया का अनुसरण करना चाहिए । इस प्रकार यह अपनी समस्त भावी क्रियाओं के श्रेयार्थ होजाता है । यह और दूसरी क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होनेवाली जीवन व्यवस्था के लिए है तथा भविष्य में उत्पन्न होने वाले न्यायमूलक और नीतिमान् समाज में बालक अपने योग्य स्थान पा सकें, इसके लिए उन्हें तैयार करना इस शिक्षण-योजना का ध्येय है ।

शोषणरहित समाज में जैसी चरित्रशीलता नागरिक में होनी चाहिए—यह उसका निर्माण करने के लिए है । गांधीजी ने जिस सामाजिक और राजनैतिक जीवन की कल्पना की है, उसके भवन की आधार शिला यही शिक्षण योजना है ।

अंग्रेजी से]

लेखक से—

[वियोगी हरि]

तुम कुछ-न-कुछ साधारण या असाधारण बात लिखने के लिए आख़िर इतने व्याकुल क्यों रहते हो ? क्या तुम्हें लगता है कि तुम अपनी लेखनी-द्वारा अपूर्ण जगत् में संपूर्णता भर दोगे ?

तुम्हारे शब्दों में क्या सचमुच इतनी शक्ति है कि वह अपूर्ण को पूर्ण की ओर ले जाये ? असुंदर को सुंदर में परिणत कर दे ? कदाचित् हो, किंतु पूर्णता और सुन्दरता की व्याख्या वह तुम्हारी ही कल्पना की होगी । उससे तुम्हारे सीमित कर्त्तृत्व को शायद संतोष मिल जाता होगा; पर सुना और देखा तो यह गया है कि पूर्ण और सुन्दर तुम्हारे शब्दों की तरफ़ कभी अपना रुख भी नहीं करते ।

और, सबकी तरह सामान्य बने रहने में क्या कोई ग़लती है ? सामान्यत: जीवन का विकास होने देने में क्या कोई हर्ज है ? इसमें क्या कुछ कम साहित्यिकता है ? तुम्हारे असामान्य शब्द-सृष्टा बनने के प्रयास में जीवन-कला यदि रूठ गई, तो यह बहुत बड़ी भूल होगी; इस व्यर्थ प्रयास में जगत् का तो कोई हित-साधन होगा नहीं, तुम्हारा खुद का भी अहित ही होगा ।

क्या तुम्हें कुछ ऐसा लगता है कि तुम्हारे पास कोई ऐसी चीज़ देने को है कि वह न दी गई तो संसार में सूनापन आ जायेगा ? दिल या दिमाग़ पर विचारों का बोझ बहुत भारी लग रहा हो, तो उसे तो बिना बोले या बिना लिखे ही हलका किया जा सकता है । क्या जानते नहीं कि जो विचार सामान्य को भाररूप प्रतीत नहीं होते, वे भी असामान्य बनने की चेष्टा करनेवाले को विकल कर देते हैं ? कारण कि, सामान्य लोगों के विचार उनके जीवन में तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, जबकि तुम-जैसे वाग्विलासियों की विचार-संपत्ति जीवन से नाता तोड़कर एक व्यर्थ का बोझ बन जाती है । और उसको हलका करने का तुम्हारा यह तरीक़ा भी ग़लत है ।

तुम ढेरों शब्द बोलते हो, और ढेरों लिखते हो, पर इस मनों भूसी में से, बताओ तो, सार-तत्त्व कितना निकलता है ? क्या किसी गणित-शास्त्रीने हिसाब लगाकर देखा है कि काग़ज़, क़लम और स्याही का जितना अनाप-शनाप खर्च बढ़ा है, उसके मुक़ाबले में जीवन को 'जीवन' बनानेवाले ज्ञान में कितनी वृद्धि हुई है ? परस्पर के विश्वास और प्रेम ने तुम्हारे निर्दिष्ट मार्ग पर कितनी प्रगति की है ? सत्य की कितनी प्रकाश-किरणें तुम्हारी वाणी और लेखनी ने तुम्हारी प्रवृत्तियों पर डाली हैं ? तुम समझते होगे कि तुम्हारी रचनाओं से जगत् में नवप्रकाश फैला है, तुमने जीवन-प्रकाश का अभाव अनुभव करके जगत् को साधारण तल से ऊँचा उठाने की ग़रज़ से लेखनी पकड़ी होगी, पर तुम्हारा जगत् तो रेलगाड़ी के डिब्बे की तरह है—प्रकाश केवल उसीके अन्दर है, बाहर तो उसके दूर-दूरतक घोर अन्धकार काले-काले पर फैलाये दौड़ रहा है । तुमने जगत् को प्रकाश दिया, यह दावा तो तुम्हारा ही है न; जगत् कब मानता है कि वह तुम्हारे अर्थ-विहीन शब्द-प्रकाश से आलोकित है ? इतना भारी भ्रम क्या अब भी तुम्हारी समझ में नहीं आया ?

इस तरह मन को समझाना था, दिल को बहलाना था; तो इसके तो और भी कई साधन ढूँढ़ने से मिल सकते थे ।

आख़िर इतने तमाम संदेश, इतने सारे लेख विविध विषयों पर तुम्हारे पास हमेशा तैयार

कैसे रहते हैं ? हर किसीकी रुचि को संतोष देने की इस कला में तुम आख़िर इतने निष्णात कैसे हो गये ? क्या इस नीरस धंधे से तुम्हें कभी असंतुष्टि और आत्मग्लानि नहीं हुई ?

और, जब तुम्हारे वाग्विलास की दुनिया में कोई क़द्र नहीं होती, तब तुम न जाने कितनी शिकायत करते हो, कितना कोसते हो अरसिक जनता को —मानों, जनता के साथ तुमने कोई बड़ा अहसान किया है ! तुम जो क़लम घिसते-घिसते भी भूखों मरते हो, कर्ज़दार रहते हो, इसी-से सिद्ध हो जाता है कि जिसे तुम साहित्य-साधना का नाम दिये बैठे हो, वह कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि जिसके लिए अपने-अपने काम-धन्धे में लगे हुए लोग तुम्हारे अहसानमन्द हों, और तुम्हारी पूजा-प्रतिष्ठा करें ।

कल्पना का हवाई मार्ग न बनाकर, जाओ लोगों के आवागमन की सामान्य सड़क बनाओ; ककड़ तोड़-तोड़कर उसपर बिछाओ और पानी और मुरम डाल-डालकर उसे दुरमुट से ख़ूब कूटो । दूसरों को अरसिक और अकृतज्ञ कहने और दिन-रात शिकायत करते रहने की यह बुरी आदत छोड़दो ।

क्यों, तुम्हारे लिए कोई 'निधि' इकट्ठी की जाये ? क़लम पकड़ते-पकड़ते तुम्हारे हाथ क्या इसने कमज़ोर और निकम्मे हो गये हैं, कि घास की दस पूलियाँ भी नहीं कटतीं ? दस-पाँच दरख़्त भी नहीं सींच सकते ? क्या आजतक तुमने जगत् को भ्रान्त, और जड़ बनाना ही सीखा ?

रहँट या कोल्हू चलाने अथवा चूने की चक्की खींचने के लिए अगर तुम्हारी छाती समर्थ न हो, तो समाज और देश का भार वहन करने का तुम्हारा यह शाब्दिक दावा निकम्मा ही नहीं, दण्डनीय भी है । क्या तुम सचमुच मानते हो कि जो कुछ तुम लिखते हो, उससे प्रभावित होनेवाले लोगों की एक बहुत बड़ी संख्या होगी ? तो यह तुम्हारा भारी भ्रम है ।

जैसे लोक में कुशल-क्षेम पूछा जाता है, उसी तरह जब तुम किसी अन्य साहित्यकार या लेखक से मिलते हो, तो तुम उससे और वह तुमसे पूछता है, "कहिए, आजकल आप क्या लिख रहे हैं ?" मानों, लिखना मिजाज़पुर्सी की तरह आवश्यक और सहज-सा बन गया है ।

तुम्हारी इस लेखन-प्रियता ने तुम्हारा आज कैसा-कुछ अस्वाभाविक-सा रूप कर दिया है—बाह्य भी और आंतरिक भी तुम जैसे सामान्य से अलग, और असामान्य से बहुत दूर फेंक दिये गये हो, सीधे बात करना तो तुम जैसे भूल ही गये हो ।

कभी-कभी तुम्हारा यह भी दावा होता है कि तुम तो "स्वान्तः सुखाय" लिखते हो, तो क्या वे अपने आपको सुखी बनाना नहीं जानते, जिनके हाथ क़लम और स्याही से सदा अछूते रहते हैं, पर जो श्रम और संतोष के निकट परिचय में आकर अपनी बहती हुई जीवन-धारा को सामान्य मनुष्य की तरह प्यार करते हैं ?

"स्वान्तः सुख" तो स्वयंतृप्ति का सहज परिणाम है, मूकपन का प्रसाद है, तब उसके लिए कुछ लिखने या बोलने की आवश्यकता कैसी ?

श्रम-पूजा

(साहित्य और जीवन की प्राथमिक माँगें)

[प्रभाकर माचवे]

: १ :

मेरे मित्र श्रीमान् 'साहित्यिक' जी एक बड़े विद्यालय में अध्यापक हैं। अंग्रेजी-दाँ हैं। दिन-रात 'साहित्य' में मशगूल रहते हैं। 'व्हीलर-स्टॉल' से लगाकर शहर की पब्लिक लाइब्रेरी तक में जितना कुछ छापे की स्याही से रँगा जाता है, वह सब बँधा हुआ या न बँधा हुआ कागज़ आपकी नज़रों से गुजरता रहता है, यानी आपकी दृष्टि इतना अधिक परिश्रम करती है कि उसने दूसरे अवयवों से शक्ति छीन ली है, और साथ ही सहायक उप-नेत्रों की भी आपको आवश्यकता लगने लगी है। अक्सर डॉक्टरों के दरवाजे झाँकते हुए मैंने आपको पाया है। अपनी ज़बान में हर तीसरे शब्द पर एक अंग्रेज़ी शब्द और हर तीसरे वाक्य पर अंग्रेजी के किसी बड़े लेखक-दार्शनिक-कवि वगैरा का नाम आप लेते जाते हैं। इस सब परिचय के साथ आप यह भी जोड़ लीजिए कि आपका व्यावहारिक ज्ञान कम है और आर्थिक दृष्टि से आपको कोई चिन्ता नहीं है। श्वसुर और विद्यालय के अन्नदाता पर, परमात्मा की कृपा से, उलूक जिसका वाहन है, वह देवी प्रसन्न है।

एक रोज की बात है कि इन मेरे मित्र श्रीमान् 'साहित्यिक' जी को धुन सवार हुई कि चलो, देहात चलें। शहर में रहते-रहते बहुत जी ऊब चुका था। वही तंग गलियाँ, वही गन्दगी! वही दूकानें और उनका सभ्य व्यवस्थित शोषण!! इस झंझट से कुछ तो छुट्टी मिले।

श्रीमान् साहित्यिक जी चले, तो विचार करने लगे कि चतुरस्र लेखक तो वे हैं ही, अतः देहात में जाकर 'प्रकृति की नयनाभिराम शोभा' का वह नज़ारा देखेंगे, और 'मुकुलित कलिका पर अलि-कुल का कलरव कोमल' सुनाई देगा और संभव है कि उनके छायावादी मानस में दो-चार कविताओं का सृजन हो जाय। और मुमकिन है कि गाँववालों की जो बहुत बुरी दशा सुनते हैं, तो दरिद्रनारायण पर एक गद्यकाव्य और किसान-मजदूर-कारीगर-संबंधी तीन कहानियाँ भी प्रसूत हो जायँ। अन्त में साहित्यिक जी ने कुछ-कुछ दार्शनिक होनेसे, यह भी सोच लिया कि एक-आध लेख भी स्फुरित होने की आशा है। लेख का विषय 'अर्थ-नीति और भारतीय ग्रामों का भविष्य' या ऐसा-सा ही कुछ। बस, दो गीत, दो कविता, एक गद्यकाव्य, तीन कहानियाँ, एकाध लेख——और अमुक-अमुक पत्र के लिए अमुक-अमुक रचना ठीक होगी, अमुक पारिश्रमिक मिलेगा आदि-आदि, इन अपने शेखचिल्ली-से ख्यालों और अन्दाज़ों में श्रीमान् साहित्यिक जी का ताँगा, देहात के पास, जहाँतक वह जा सकता था, आ पहुँचा। उतरे और देहात की ओर चलने लगे।

बारिश का मौसम था, पर उमस गहरी थी। बादल अब बरसूँ-अब बरसूँ कर रहे थे। चलते-चलते एक खेत पार हुआ, फिर दूसरा। आखिर वे थककर, पसीना पोंछते हुए एक किसान के सामने आ खड़े हुए। ढलती दुपहरी का वक्त था। कल्लू किसान अपनी जुताई की जोड़ी और हल के पास इस नये आदमी को एकदम ठिठकते देखकर सहम गया।

: २ :

कल्लू किसान——राम-राम बाबूजी!

साहित्यिक जी——(पहले हाथ उठाकर शहरी

078740

ढँग से 'नमस्ते' करना चाहते हैं। फिर 'वन्दे-मातरम्' कहने का विचार होता है, फिर कुछ भी निर्णय न करके कहते हैं) राम-राम। (फिर चुप रह जाते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि बोलने के लिए उनके और विशेषतः ऐसे मैले-कुचैले गँवार के बीच में कोई 'common ground'—कोई मज़मून नहीं है।)

क०—आज इधर कैसे आना हुआ बाबू सा०?

सा०—कुछ नहीं, कुछ नहीं। छुट्टी थी। सोचा, 'आउटिंग', ना, ना 'ट्रिप', नहीं, कुछ दिलबहलाव हो जाय।

क०—(निर्विकार मुद्रा से खड़ा है, अप्रभावित) छुट्टी? हाँ, शहर वालों को छुट्टी ही छुट्टी।

सा०—आखिर आदमी हैं या बैल? कहाँ तक हमें जोतेंगे? काम करते-करते दिमाग की हालत ऐसी हो जाती है कि बस कुछ न पूछो—

क०—ओह हो! बहुत काम करना पड़ता है आपको भी? क्या काम होता है आपका बाबूजी?

सा०—मैं, मैं प्रोफ़ेसर हूँ।

क०—यह कौन कारोबार है जी?

सा०—अरे, मास्टरी, कॉलेज में पढ़ाना।

क०—अच्छा, अच्छा कालेज-इस्कूल। पढ़ाने में इतना काम होता है? दिन भर पढ़ाते हैं जी?

सा०—ना, ना वैसे पढ़ाना तो दो ही घंटा यानी घंटा चालीस मिनट का, डेढ ही घंटा होता है। मगर तुम क्या जानो! अंग्रेज़ी पढ़ानी होती है! लिटरेचर (फिर यह एक अंग्रेजी शब्द अपने और कल्लू किसान के बीच में जबान से क्यों कूद पड़ा, इसपर अपने आपको सँभालते हैं)

क०—अंग्रेजी पढ़ाते हैं बाबूजी, आप?

सा०—हाँ, साहित्य, अंग्रेजी साहित्य। मैं साहित्य-प्रेमी हूँ। साहित्य लिखता हूँ, साहित्य पढ़ता हूँ।

क०—यह 'साहित' क्या है बाबू?

सा०—वाह, तुम जानते नहीं? तुम क्या समझोगे? अरे, अखबार, किताबें—छपी हुईं। मैं किताबें लिखता हूँ, अखबारों में लिखता हूँ।···

क०—(बीच ही में रोक कर) हाँ, हाँ, हाँ, ठीक-ठीक, तो आप अखबार लिखते हैं। तो आप तो बहुत बड़े आदमी हैं फिर! पर हमारी, सरकार, अखबार में कोई सुनवाई नहीं होती। किताब और अखबार लिखने से कुछ फायदा है बाबू?

सा०—फायदा? (कुछ सोचकर) हाँ, वैसे तो प्रत्यक्ष लाभ कुछ नहीं। मगर हाँ, देश-सेवा, समाज-सेवा।

क०—मेरे कुछ समझ में नहीं आया बाबू! आपकी तनखाह कितनी है?

सा०—ढाई-सौ माहवार कॉलिज में। ऊपर लेख-वेख और पुस्तकों से, एक्ज़ामिनरशिप से। कुल चार सौ माहवार समझ लो।

क०—ओह हो! धन्य हैं आप!! चार सौ रुपैया आपको मिलते हैं। बाबू, आते कहाँ से हैं ये रुपैये?

सा०—(जरा सिटपिटाकर) कहाँसे? यानी? हमारी शिक्षण-संस्था हमें देती है। प्रकाशक देते हैं। यूनिवर्सिटियाँ देती हैं।

क०—कोई देता हो, पर आखिर उनके भी पास ये रुपैये कहाँसे आते हैं?

सा०—तुम्हारे कहने का मतलब क्या? कहींसे भी आते हों, तुम्हें उससे क्या?

क०—नहीं जी, मेरे पूछने का मतलब यह नहीं है। जैसे ये खेत है। इसके लिए भगवान पानी बरसायें, तब ही खेती हो। नहीं तो फसल बिगड़ जाय। उस तरह रुपैया आप पर आसमान से तो नहीं बरसता?

सा०—वाह जी, क्या बुद्धू-जैसी बात करते हो ? रुपया जहाँ सिक्के बनते हैं उन टकसालों में ढलता है । धातु का होता है वह, जो खदानों से निकलती है ।

क०—वह सब ठीक है बाबू ! पर आज सब ही कुछ तो रुपैया कर रहा है । सफ़र करना हो तो रुपैया । साँस लेना हो तो रुपैया । । अच्छे-अच्छे लीडर देखे । रुपैया देखते ही मुँह में पानी आ जाता है । और फिर सब कुछ चलता है । और एक हम हैं कि रुपैया नहीं है और ये फटे कपड़े पहन रहे हैं । करें भले कपास की ही खेती ।

सा०—सच तो है । आह, तुझे देखकर सहानुभूति होती है ! मेरा हृदय पिघल रहा है !! मैं तुम पर एक प्रगतिशील कविता अवश्य लिखूँगा! ! ! ···'मेरे किसान ! ओरे किसान! !,

क०—(केवल हँसता है, ऐसी हँसी जिसमें तीव्र वेदना घुली है ।)

सा०—बस तुम हँस रहे हो ? काव्य का मंगल रस और रागात्मिक, वृत्ति का लोक-कल्याण से संबंध···अ हा हा ! मगर इससे ज्यादा हमारा बस भी क्या है ? सब तो किसान नहीं बन सकते ?

क०—(फिर हँसता है) कौन जाने, जमाना क्या-क्या कराये ! परसों ही तो सुना पढ़े-लिखे बहुत बेकार फिरते हैं । और बी० ए० एमे पास मोची का काम करते हैं, तो उनका पेट भर जाता है; नहीं तो भूखों ही मरें ।

सा०—सच है । मगर हम चाहते हैं कि बजाय हम तुम्हारी स्थिति पर पहुँचने के तुम लोगों को हमारी स्थिति पर उठायें । मैं वैसे 'सोशलिस्टिक रिकन्स्ट्रक्शन' में 'बिलीव' करता हूँ । (फिर सकपकाकर कि मैं एक किसान से अंग्रेज़ी में बोल रहा हूँ, अनुवाद करते हैं) मैं वैसे समाजवादी उद्धार में विश्वास करता हूँ ।···

क०—आपकी और मेरी बराबरी ! (फिर वैसी ही दर्दभरी हँसी हँसता है ।) इसमें आप फर्क तो समझते हैं । पर आप जानते हैं कि मेरी या मुझ से भी बुरी दुर्दशा में कितने लोग हैं और आपके जैसे कितने-से मिलेंगे, सौ में दो-चार ! किसान तो हमारे देश में, लीडर कहते थे, अस्सी फी-सदी हैं । ऐसे ही । मेरे-जैसे फटे हाल—अधभूखे ।

सा०—तो क्या हुआ ? हम यानी धनी-वर्ग कुछ थोड़ा नीचे झुकेंगे और कीच में फँसे इस दलितवर्ग को ऊपर उठा लेंगे ।

क०—आप तो 'कुछ थोड़ा'-सा झुकेंगे और चाहेंगे इतने-इतने करोड़ लोगों का उद्धार ? लेकिन मैं यह सब कुछ नहीं जानता । मुझे देर हो रही है । वह देखिए आसमान में 'मघवा' दिखाई दे रहा है, और बारिश से पहले यह उस मेंड़ तक तो जुताई हो ही जानी चाहिए ।

[साहित्यिक जी सोच में पड़ गये । राम-राम भी करना भूल गये । एक-साथ उनके दिमाग में सैकड़ों सवाल चक्कर काटने लगे—

यह ज़मीन किसकी है? ···

इसमें से धान उपजता है सो किसका है ?

वह हमें किस-किस ज़रिये से मिलता है ?

वह न मिले तो क्या हम जी सकेंगे ?

और न जी सकेंगे तो क्या लिखेंगे और क्या बकेंगे ?

और अगर इस धान की व्यवस्था ठीक नहीं होती है; अगर रोटी हमारे लिए—यानी हमारे पैंतीस करोड़ के कुटुम्ब के लिए—एक प्रश्न बनी हुई है; तो क्या हक़ है हमें यह सब लिखने-बकने और नखरे और चोंचले करने का ? और फिर क्या है यह सब साहित्य-फ़ाहित्य ?

क्या कोई भी इतना हृदयहीन 'नीरो' हो सकता है कि जब उसकी माँ और भाई घर में भूखों मर रहे हों, तब खुद बीन अलापे, रसगुल्ले उड़ाये और रस-चर्चा करते बैठे—ये साहित्यिक! निठल्ले, आलसी, असामयिक! ! ···और उनमें से एक मैं भी ! ! !]

(अगले अंक में समाप्य)

हिन्दी के कवि किधर ?

[सुधीन्द्र]

आज से ठीक ३ साल पहले अपने चारों ओर की निराशा और दुःख के गान सुनते-सुनते हम में आई हुई एक शिथिलता में, उस नीरसता और एकरागिता में एक सुखद परिवर्तन की ओर संकेत करनेवाली एक कविता-पुस्तक की भूमिका लिखते हुए श्री रामनाथ 'सुमन' ने एक माँग हिन्दी के कवियों से की थी :

"जब हमें पहाड़ को काटकर रास्ता बनाना है और दुर्गम घाटियाँ जब हमारे विजयोल्लास से ध्वनित हो उठने में गर्वित होंगी, तब बीती हुई मंज़िल की याद में घुल-घुलकर मरने से न होगा; हमें विलास-रजनी की स्मृतियों को ढोकर अपने को खो देने से न होगा। तब मधु-पात्रों को लात मारकर चूर कर देना होगा और मद्यभाण्ड तोड़ देने होंगे।……तब आज के कवि से हमें अपेक्षा यह है कि वह हमारे सुप्त प्राणों को जगा दे, हमारी नसों में विद्युत्प्रवाह प्रवाहित करदे, वह जिसका स्वर पहाड़ों और चोटियों से टकराये, घाटियों को थर्रादे और दुर्गम पथों पर गूँज उठे। वह जो हमारे पौरुष और हमारी साहसिकता को चैलेंज देकर जगादे; हमारी शिराओं में हमारे रक्त-बिन्दुओं के साथ दौड़े।"

जान पड़ता है कि ये उनके आँख खोल देने वाले शब्द केवल शून्य में ही तिरोहित होकर रह गये, अन्यथा आज हमारे काव्य का स्वर ही बदल जाना चाहिए था और जाग्रति और नव-जीवन-पूर्ण कविताओं की ही ध्वनि-प्रतिध्वनि जिधर देखो उधर सुनाई देनी चाहिए थी।

हिन्दी साहित्य—विशेषतः काव्य—के इतिहास की गवेषणा और समीक्षा करनेवाले कहते हैं कि कवि युग का प्रतिनिधि और उसकी कविता युग-जीवन का प्रतिविम्ब होती है। युग का स्वर और वाणी उसकी कविता में प्रतिध्वनित होते हैं और युग की दुरूह समस्याओं का निराकरण उसमें अंतर्भूत होता है, किन्तु प्रश्न उठता है कि यह बात सत्य होते हुए भी क्या हमारी आधुनिक हिन्दी-कविता के विषय में सोलहों आने सच है ? इसका उत्तर खोजने के लिए हम कुछ कवियों की कवितायें देखें।

'नवीन' को तो हिन्दी जनता सगर्व हिन्दी का राष्ट्रीय कवि कहकर पुकारती है न ? किन्तु उनकी

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये
एक हिलोर उधर से आये

पंक्तियाँ सुनकर हम कुछ ऐसे मुग्ध-लुब्ध होगये कि जब उनकी लेखनी से

मुझ निष्कंचन की सोने की
प्रतिमे, ओ चपला बाले !
क्यों खिड़की की ओट होगईं
उस नीरव संध्याकाले?

और

उस दिन तुम तो ओट होगईं
दे नयनों में चोट सखी,
मची खलबली, हुआ हृदय में
छोटा-सा विस्फोट सखी !

× × ×

मुझे खींच ले जाती है
उत्कंठा उस आँगन की ओर—
जहाँ खिसकता है, डुलता है
प्रतिमे ! तव अंचल का छोर

—जैसी पंक्तियाँ निकलने लगीं तो हमने उन्हें पढ़ा-देखा ही नहीं, सुना-अनसुना ही नहीं कर दिया, बल्कि उनकी रसिकता की दाद दी ! कहाँ से वह चले थे, कहाँ वह जाना चाहते थे और कहाँ चले गये ? कवि 'नवीन' की राष्ट्रीयता उनकी १-२ पंक्तियों में ही बँधी रह गई। 'नवीन' का 'कुंकुम' देखा, पर उसमें हमें उनकी राष्ट्रीयता की लाली न मिल सकी।

बहन सुभद्रा ने जिस दिन "वीरों का कैसा हो वसन्त" में

आ रही हिमाचल से पुकार
है उदधि गरजता बार-बार
सब पूछ रहे हैं दिग्दिगन्त—
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

× × ×

हल्दीघाटी के शिला-खण्ड
ऐ दुर्ग ? सिंहगढ़ के प्रचण्ड !
'राणा', 'ताना' का कर घमंड
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत

गाया उसदिन हिन्दी-भारती ने अवश्य स्वर्णोत्सव मनाया होगा; उसदिन युग के पीड़ित और व्यथित स्वर ने संतोष की एक साँस ली होगी । परन्तु— उसके पश्चात् सुभद्रा की कविता या तो अपने कल्पना-लोक ही में अदृष्ट होगई या उन्होंने स्वयं गहरी निद्रा ग्रहण करली !

श्री माखनलालजी चतुर्वेदी की अनेक कवितायें क्रांति, साहस, विजयोन्माद और राष्ट्र-भावना का उन्मेष करनेवाली हैं, परन्तु वे भी मासिक पत्रों के पृष्ठों पर लिखी रह गईं और अलमारियों में बन्द होंगी । आज वे घर-घर में कहाँ गूँज रही हैं ।

इसी बीच में इलाहाबाद के एक अलबेले मधु-आसक्त युवक कवि ने उमर ख़य्याम के महामहिम वेदान्त की आड़ में दूषित मदिरा का ऐसा स्रोत बहाया कि हमारे चपलचरण रसिक-हृदय कवि और कविप्रिय श्रोतागण उसीमें बह चले ! वह मदिरा की बाढ़ आज किसी भी मासिक या साप्ताहिक पत्र के अंक उठाकर देख लीजिए आपको दृष्टिगोचर होगी । उस बाढ़ ने न जाने कहाँका कूड़ा-कर्कट और कर्दम लाकर हमारे कविता-साहित्य को मलिन कर डाला है ! हमने ऐसी कविता को प्रोत्साहन दिया, यह क्या हमारी कमजोरी नहीं ? हाला की छलछल, प्याले की खनखन और मधुशाला की चहल-पहल से आज हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठ गूंज रहे हैं और इसका स्वर ऐसा व्याप्त हो गया है कि उमर का देश भी एक बार लज्जा से सिर नीचा कर रहा है ! एक ओर देश में सदियों से हम पर लदी हुई गुलामी दूर कर-करने की महासाधना और समाज-परिवर्तन का अनुष्ठान हो रहा है और दूसरी ओर उसी राष्ट्र के कवि की वाणी गाती है :

"पियें अभी मधुराधर चुम्बन
गात गात गूँथें आलिङ्गन,
सुने अभी अभिलाषी अन्तर
मृदुल उरोजों का मृदु कम्पन
(प्रभातफेरी : नरेन्द्र)

बादल से बरसने की विनय करते हुए 'निराला' की रसिक दृष्टि उन्हें किसी स्वप्न में खींच ले जाती है; वह लिखने लगते हैं :

दूर ग्राम की कोई वामा
आये मंदचरण अभिरामा,
उतरे जल में अवसन श्यामा
अंकित उर-छवि सुन्दरतर हो !
(अनामिका : निराला)

खेद है कि आज के अतिरसिक कवि को कोई कामना है, तो दीन-दुखी जन के दुख दूर करने की नहीं, वह है उसीके शब्दों में—

चाहता हूँ चित्र प्रिय का सदा सम्मुख ही रहे !
चाहता हूँ हर घड़ी, हर साँस में प्रिय नाम लूँ
ध्यान में अपनी प्रिया के मैं सदा डूबा रहूँ···

शायद कवि स्वानुभव ही सुनाने बैठ गया है—

चूम चूम मादक अधरों से
मूँद दिये फिर चल लोचन,
फिर खिलखिला उठी कलिका-सी
सहसा भर प्रेमालिङ्गन !

× × ×

आज न सोने दूँगी बालम !
यौवन-सरिता उमड़ पड़ी है,
मधु की बेला आई बालम !
भरी सेज उमड़ी फूलों से,
व्याकुल हैं माला की कलियाँ,

तुम्हें भेंटने की आशा में
चंचल तन की पुलकावलियाँ
भूखे अधर मधुर मद-प्यासे
रस के प्यासे लोचन बालम!

× × ×

आज विश्व से छीन तुम्हें प्रिय,
निज वक्षस्थल में भर लूँगी,
मृदुल गोल गोरी बाहों में
कंपित अंगों में कस लूँगी–
(प्रभातफेरी : नरेन्द्र)

एक स्थल पर कवि अपने पिछले दिनों की याद में

प्रेयसि, याद है वह गीत ?
गोद में तुम को लिटा कर,
कंठ में उन्मत्त स्वर भर,
गा जिसे मैंने लिया था स्वर्ग का सुख जीत।

गा रहा है, तो दूसरी जगह कह रहा है :

जो पथ पकड़ा, वह पथ पकड़ा,
'पथभ्रष्ट' जगत को मस्ती की
अब राह बताने हम आये
मधुप्यास बुझाने हम आये
(बच्चन)

कवि को जहाँ समाज के पुनर्निर्माण के, राष्ट्र के जागरण के, जीवन-निर्माण के स्वप्न देखने चाहिएँ, वहाँ वह कैसे स्वप्न देखता है, देखिए :

विधु-वदन, भरी गोरी ग्रीवा
उन्नत पुलकित उभड़े उरोज
यौवन-उमंग-उद्गम-अधीर,
छविसर पर ज्यों फूले सरोज !
उसने फैलाया बाहु-पाश
था उषा-प्रात का आलिङ्गन;
मैं झुका मदिरदल अधरों पर
अंकित करने विह्वल चुंबन !
(प्रभातफेरी : नरेन्द्र)

कवि नरेन्द्र की कवितायें तो प्रायः विलासिता और कामुकता-पूर्ण चित्र हैं, जिनमें मानसिक व्यभिचार ही साफ़ दिखाई देता है। ऐसी पंक्तियाँ एक दो नहीं, अनेक हैं, जो हमारी मा-बहनों के सामने निर्लज्ज हुए बिना नहीं पढ़ी जा सकतीं।

हिन्दी की एक श्रेष्ठ कवयित्री ने लिखा है :

"आज करो प्रियतम ! तुम मेरा फूलों से शृंगार
कैसी सुन्दर मधु ऋतु आई
पात-पात में लाली छाई
सफल बनादो पल भर मेरा
जीवन का शृंगार !"

हम समझते थे कि हिन्दी के कवि ही इधर बह रहे हैं, कवयित्रियों की कलम से भी ये चीज़ें निकलेंगी, तो हिन्दी-साहित्य क्या होगा, इसकी कल्पना भी भीषण है। जो कवि (श्री भगवती चरण) 'मधुकण' में कवि के लिए गाये :

कौन तुम अग्नि-शिखा की ज्वाल ?
तुम्हारा शुभ सन्देश !
तुम्हारा निर्मल हृदय विशाल !
विश्व को देकर जीवनदान
कर रहा आशा का संचार;

वही फिर 'मनसिज' का अभिषेक करने प्रेम-गली में भटक जाये और कहने लगे––

थोड़ा साहस ! इतना कहदो–
तुम प्रेम-लोक की रानी हो !
जीवन के मौन रहस्यों की
तुम सुलझी हुई कहानी हो !
तुम में लय होने को उत्सुक
अभिलाषा उर में ठहरी है,
फिर धीरे से इतना कहदो
तुम मेरी ही दीवानी हो।

× × ×

आज मधुकर कर रहा मधु पान है;
आज कलिका दे रही रस दान है;

× × ×

आज नयनों में भरा उत्साह है;
आज उर में एक पुलकित चाह है;
आज श्वासों में उमड़ कर बह रहा
प्रेम का स्वच्छन्द मुक्त प्रवाह है;

डूब जायें देवि! हम तुम एक हो।
आज मनसिज का प्रथम अभिषेक हो।

उधर एक दूसरा 'क्रांतिसृष्टा' कवि अपने पावसगान में कह उठा है :

यह सावन की अनमोल रात
इस प्रेरित लोलित रति-गति में
जब झूम झमकता विसुध गात
गोरी बाहों में कस प्रिय को
कर दूँ चुम्बन से सुरास्नात
(अपराजिता : अंचल)

ये उदाहरण देकर मेरा यही बतलाना उद्देश्य है कि हमारे हिन्दी-कवि इस भोगवाद में पड़कर न जाने कहाँके कहाँ चले जा रहे हैं!

तो क्या हिन्दी के कवियों ने कविता का महत्व ही नहीं समझा? सृष्टा की अनुपम विभूति—कवि की विश्व को एक अप्रतिम उपहार है। कविता वह है जिसके एक-एक शब्द में जीवन हो—जो मृत में भी प्राण फूंकता हो, सोते हुओं में भी जाग्रति भरता हो और उन्मदों में भी संज्ञा का संचार करता हो। कवि वह है जिसकी वाणी में वह क्षमता हो जो सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन में घोर क्रांति और उथल-पुथल उपस्थित कर दे, संक्रांति का स्फुरण करदे। कविता हृदय से नाता रखनेवाली वस्तु है, निरी मस्तिष्क से प्रसूत वस्तु ही नहीं। कविता-सरिता का उद्गम-स्थल मस्तिष्क नहीं, हृदय है और इसका मूल कल्पना नहीं, अनुभूति है और ध्येय है चिरन्तन सत्य। सच्चा कवि वह है जो जड़ और चेतन तक अपना अमर सन्देश पहुँचा सके, सच्ची कविता वह है जो कवि के हृदय के अन्तराल से उद्भूत होकर सीधी विश्व-प्राणियों के हृदय को स्पर्श करे। हमारे सन्त और पैगम्बर स्थूल अर्थ में कवि न होते हुए भी सच्चे कवि थे, क्योंकि उनके एक-एक शब्द में सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वय रहता था।

हिन्दी में कुछ २-३ कवियों को छोड़ दें—जो हिन्दी काव्य में अवश्य युग की प्रतिध्वनि ला रहे हैं—तो हिन्दी में बहुत कम ऐसे मिलेंगे जिन्होंने अपने कवि-धर्म को पहचाना है। यहाँ हमारा उद्देश्य ऐसे कवियों का नाम गिनाना नहीं है और न किसी कवि के अस्तित्व या महत्व की अवगणना करना ही है।

इस राष्ट्र-जागरण और समाज-संक्रान्ति के युग में अवश्य हमें जब-तब ऐसी कवितायें सुनने को मिलती रही हैं और वे क्रांति का, युग-धर्म का दीपक प्रज्वलित करती रही हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि "राष्ट्र के जागरण का कवि अनिवार्यत: राजनीतिक कवि हो, यह गलत है, पर यह है कि वह राजनीति को प्रकाश देगा; वह जीवन के दीर्घ कण्टक-पथ पर चलते हुए हमारे थकावट से भर रहे दिलों को ताजा और हरा कर देगा। वह हमारे अंदर जो सर्वश्रेष्ठ मूर्च्छित पड़ा है, उसे जाग्रत करेगा; वह हमें यौवन का ओज और स्फूर्ति देगा।"

संसार स्वयम् एक विराट् सत्य की साधना का महायात्री है और वह सत्य जनता के सामने कैसे प्रस्तुत किया जाय, इसे पहचान लेना ही कवि का, दार्शनिक का, नीतिकार का, उपदेष्टा का, नेता का और चित्रकार का धर्म है। सत्य की परिभाषा करने बैठें तो उसका व्यावहारिक फलितार्थ होगा हमारी परम आवश्यकतायें। एक भूखे को जो कुछ चाहिए वही उसके लिए सत्य है। एक मरीज़ को औषधि चाहिए, इसलिए चिकित्सा अथवा स्वास्थ्य उसके लिए सत्य है। जो देश या राष्ट्र ग़ुलाम है, उसके लिए 'स्वतंत्रता' है। इसी सत्य की साधना की ओर जीवन को प्रेरित करना कवि-कर्तव्य है।

आज जो हममें—हमारे मानस में इतनी विलासप्रियता, इतनी क्रांति-विरोधिनी जड़ता भर गई है, जो क्या हमारी वाणी और क्या हमारे व्यवहार में झलकती है, और कवियों की कविता में भी फूट पड़ती है, उसका एक कारण यही है कि हम अपने सत्य-धर्म को नहीं पहचान पाये हैं। यह जड़ता, यह विलासमयी भावना या तो तब आती है, जब हम सुख-सम्पन्न हों, समृद्ध हों या फिर तब आती है जब हम गुलामी में पड़े

रहकर इतने बेबस, निकम्मे और निस्सत्त्व हो गये हों कि अपनी व्यथा और वेदनामयी परिस्थिति में ही सुख-संतोष का अनुभव करने लगें। हमारी यह जड़ता या भ्रान्ति निश्चय ही इस दूसरे ढंग की है। सदियों की परवशता ने और उससे उत्पन्न निराशा ने हममें उससे उबरने का कोई आग्रह ही नहीं रहने दिया है; बल्कि इसके विपरीत उनसे समझौता करके हमारा जीवन विलासिता की ओर दौड़ने लगा है। कभी-कभी तो, और प्राय: अधिकांश में, यह हुआ है कि शरीर से विलास और वासनाओं में लुप्त न हो पाकर भी हम मानसिक विलास-लीलाओं में फँसे रहते हैं। आधुनिक हिन्दी-कविताओं में प्राय: यही विलासलिप्सा, और वासना पाई जाती है। यह मानसिक विलास जो हमारा पल्ला पकड़े हुए है, एक प्रकार का व्यामोहजनित उन्माद है। यह केवल एक मृगतृष्णा है जो भ्रामक है, सत्य नहीं है और इसलिए अकल्याणकर है।

इस प्रकार की कविताओं की हिमायत करने वाले यह कहते हैं कि कविता में यथार्थवाद अधिक होना चाहिए, आदर्शवाद उतना नहीं। कुछ लोग कविता को युग के बंधन में नहीं बाँधना चाहते, आदि आदि। ये विषय तो विद्वानों के लिए गंभीर वादविवाद के हैं और थोड़े में निर्णीत नहीं हो सकते, परन्तु यदि कवि या कलाकार आज की आवश्यकता को प्रथम स्थान दे और अपनी रुचि को गौण, तो वह समाज की अधिक कल्याण-साधना कर सकेगा। क्योंकि आखिर तो सत्य की साधना ही अजर-अमर वस्तु है।

हम जो सत्य, शिव और सुन्दर का राग अलापा करते हैं--उसके मर्म को शायद आज हिन्दी का सामान्य कवि नहीं समझ पाया है। जो वस्तु समाज को सत्य की साधना में अग्रसर करने के लिए लोक-संग्रह को उद्दिष्ट लक्ष्य मान कर चले, वह शिव है। जो शिव है वह आप ही सुन्दर है। आज हमारे हिन्दी-कवि को इसी सत्य-शिव-सुन्दर का साधक बनना होगा।

हमारी हिन्दी-कविता का इतिहास ऐसे उदाहरणों से ओत-प्रोत है, जब कवियों ने न सिर्फ युग-धर्म को ही पहचाना और अपनी कविता-द्वारा जग-जीवन की गति-विधि को संचालित किया, बल्कि बिल्कुल दूसरी ओर जाती हुई समाज-जीवन की धारा को एक इष्ट दिशा में मोड़ दिया और अपनी कल्याणकारिणी कविता द्वारा वह कार्य कर दिखाया, जो एक महान् पैगम्बर या उपदेष्टा ही कर सकता था। तुलसी, कबीर, भारतेन्दु और भूषण इसीलिए तो हिन्दी-काव्य के इतने जाज्वल्यमान् रत्न गिने जाते हैं।

समाज की विचार-धारा जानने के लिए जहाँ समाज के कवि की कविता देखना ही वांछनीय नहीं होता, बल्कि पर्याप्त होता है, वहाँ यह भी देखा जाता है कि ज़माने के कवियों की कविता समाज-निर्माण में कितना भाग ले रही है। राष्ट्रों के इतिहासों के आधार पर यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि कविता का एक बहुत बड़ा कर्त्तव्य राष्ट्रनिर्माण (छोटे मापदण्ड पर) और जीवन-निर्माण (बड़े मापदंड पर) होना चाहिए।

इस कसौटी पर हम देखें कि आज के कितने हिन्दी-कवियों की कविता खरी उतरती है। हमें चाहिए कि हम हमारे कवियों में उस मानसिक बल की अपेक्षा करें, जो इन्हें निरन्तर युग की वाणी बोलने के लिए प्रेरित करता रहे और आजसे बरसों बाद जब इतिहास-लेखक देश की सामाजिक और राजनीतिक पुनरुत्थान की—काया-पलट की—कहानी लिखने बैठे और उसका कोई तारतम्य युग की कविता से ढूंढ़ने बैठें तो उसे निराश होकर यह न कहना पड़े कि"—× × × × एक ओर जब देश में सामाजिक और राजनीतिक जीवन अपने इतिहास के नये पन्ने उलट रहा था, वहाँ कवि-जीवन न जाने किस अज्ञात लोक की न जाने किस अज्ञात विचारधारा में बह रहा था।"*

***लेख में प्रतिपादित मतों के लिए लेखक ही जिम्मेदार हैं।** **—सम्पादक**

विज्ञान और समाज

[चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय]

पिछले कुछ वर्षों की घटनाओं नें, और खासकर इस युद्ध ने, ऐसी स्थिति पैदा करदी है कि विज्ञान और उसके उपयोग को आलोचना की दृष्टि से देखा जाँय और यह जाँचा जाय कि विज्ञान की उन्नति का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है। अबतक यह समझा जाता था कि विज्ञान के आविष्कारों से मनुष्य-जीवन की बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर हो जावेंगी और चारों ओर सुख तथा समृद्धि छा जायगी। लेकिन वर्तमान युद्ध ने साबित कर दिया कि विज्ञान का जितना उपयोग मनुष्य-जाति को सुख पहुँचाने में किया जा सकता है, उससे अधिक मनुष्य-जाति के विनाश के लिए किया जा रहा है। यहाँ तक कि कुछ लोग तो कहने लगे हैं कि मानवी सभ्यता को बचाने के लिए विज्ञान के सारे प्रयोग ही बन्द कर दिये जाने चाहिएँ। ख़ुद वैज्ञानिक लोग भी अनुभव करने लगे हैं कि उनके काम का मनुष्यों की सामाजिक और आर्थिक अवस्था पर बुरा असर पड़ रहा है। लेकिन संकुचित राष्ट्रीयता और राजनैतिक दबाव से बाहर निकलने का मार्ग जबतक वैज्ञानिकों के सामने न होगा, तबतक वे अपनी क्रियाओं को पथभ्रष्ट होने से रोक सकेंगे इसमें सन्देह है। नैतिक व्यभिचार की तरह जिस दिन वैज्ञानिक व्यभिचार भी निन्दनीय समझा जाने लगेगा उसी दिन विज्ञान अपने वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा।

अभीतक विज्ञान की प्रवृत्ति मुख्यतया औद्योगिक और सामरिक रही है। विज्ञान की खोजों का लक्ष्य यही रहा है कि वस्तुओं का उत्पादन इस ढंग से बढ़ाया जावे कि लागत कम से कम बैठे; और दूसरा यह है कि शस्त्रास्त्रों के नये-नये तथा विकराल रूप प्रकट हों। परिणाम यह हुआ है कि कल-कारखानों की वृद्धि और बनावटी चीज़ों की उपज से बेकारी बढ़ गई है और पुराने उद्योग-धन्धों तथा कलाओं का विनाश हो रहा है। दूसरी ओर, युद्ध के नये साधनों की खोज में लगे रहने के कारण वैज्ञानिक लोग ऐसी खोजें नहीं कर सके हैं, जिनसे मनुष्य जाति का स्वास्थ्य सुधरे, उसकी भोजन की व्यवस्था ठीक हो और उसका घरेलू जीवन सुखमय हो। शरीर-विज्ञान, औषधि-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, कृषि-विज्ञान, इत्यादि उपयोगी शाखाओं के विकास की ओर वैज्ञानिकों का उतना ध्यान नहीं है, जितना भौतिक और रसायन के विकास में। और हो भी कैसे? आज तो संसार के ९९ फ़ीसदी वैज्ञानिक सरकारी या अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं के अन्तर्गत काम कर रहे हैं। उन्हें अपनी सरकारों और अपने स्वामियों की इच्छा के अनुसार विज्ञान का उपयोग करने के लिए विवश होना पड़ता है। विज्ञान परतंत्रता और कुटिल राजनीति की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है।

देखने और समझनेवालों के लिए विज्ञान की यह अवस्था और घोर असफलता बड़ी दुखप्रद है। जनता की उच्च आत्मिक और मानसिक प्रवृत्तियों का नाश, बेकारी और युद्ध के बहाने संगठित हत्या, यही इस विज्ञान की देन नज़र आ रही हैं। विज्ञान इस चित्र को बदल सकता है; लेकिन यह तभी होगा जब विज्ञान उन सामाजिक ताकतों के साथ मिलकर चले, जो विज्ञान के उपयोग को जानती हैं और जिनका लक्ष्य केवल एक ही है—मनुष्य जीवन को सुखी और सफल बनाना। जितनी शक्ति और जितना

धन युद्ध के साधनों पर खर्च किया जा रहा है, उसका दसवाँ हिस्सा भी लोकहितकारी कामों में लगाया जावे, तो संसार की काया पलट हो सकती है। परन्तु अनुभव यह हो रहा है कि तोपों और बमों के लिए रुपया इकट्ठा करना और निकालना जितना सरल है, उतना अस्पतालों और स्कूलों के लिए नहीं। अकेला इंग्लैंड इस युद्ध में लगभग ६० लाख पौंड (करीब आठ करोड़ रुपये) रोज़ खर्च कर रहा है !

अतः यह स्पष्ट है कि अगर विज्ञान को सार्वजनिक हित का साधन बनाना है, तो उसके संगठन में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। छोटे-मोटे सुधारों से काम नहीं चलेगा। यह काम वैज्ञानिक लोगों के या किसी एक सरकार के बस का नहीं है। इसके लिए संसार के सारे राष्ट्रों के सम्मिलित सहयोग की जरूरत है; और यह तभी सम्भव है, जब ये तमाम राष्ट्र एकमत होकर कोई मार्ग निकालें। लेकिन यह दिन तो अभी बहुत दूर है। फिर भी, इस दिशा में प्रयत्न तो जारी रहने ही चाहिएँ।

पहला क़दम तो यह होना चाहिए कि वैज्ञानिकों को खोज करने की खुली छूट हो और उनको राजनीति के बंधनों से अलग रक्खा जावे। यदि अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् (लीग ऑफ नेशन्स) की तरह कोई अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिषद् बन सके, जिसके संगठन में रहकर वैज्ञानिक लोग केवल जनहितकारी खोजों में ही अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा का उपयोग करें, तो सबसे अच्छा। लेकिन अगर ऐसा न हो सके तो भी हर देश में इसी ढंग की कोई संस्था होनी चाहिए। इस प्रकार के संगठित प्रयत्न से उस देश का तो लाभ होगा ही, साथ ही दूसरे देश भी उससे लाभ उठा सकेंगे।

दूसरी बात है विज्ञान की शिक्षा के ढंग में परिवर्तन। हमारे देश के स्कूलों में विज्ञान एक ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है, और वह भी बड़े नीरस ढंग से। विद्यार्थी विज्ञान की पढ़ाई से उतना ही घबराते हैं, जितना दूसरे विषयों की पढ़ाई से। इस ढंग को बदलना पड़ेगा। विज्ञान का तो हमारे जीवन से सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। दैनिक घटनाओं में पग-पग पर विज्ञान की बातें भरी हुई और बिखरी हुई मिलेंगी, बशर्ते कि हम उनको देख और समझ सकें। अतः विज्ञान की बातें तो बालकों को शुरू से ही दूसरे विषयों के अनुबन्ध से बतलाई जा सकती हैं। आगे चलकर विज्ञान के मोटे-मोटे नियमों का ज्ञान सबके लिए आवश्यक रूप से होना चाहिए। विज्ञान की शिक्षा स्कूल के पाठयक्रम का मुख्य अंग होनी चाहिए, क्योंकि इससे व्यावहारिक और मानसिक दोनों लाभ प्राप्त होते हैं। विश्वविद्यालयों में 'डॉक्टर' की डिग्री प्राप्त करने के लिए जो खोज की जाती है, उसका रूप भी कोरा सैद्धान्तिक न रखकर व्यावहारिक बनना चाहिए। हमारे देश में विज्ञान के कितने ही 'डॉक्टर' आज मिल सकते हैं, लेकिन उनमें से कितनों ने नये आविष्कार किये हैं? यह सारा दोष है वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का, जिसे दूर करना सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। यही बात कुछ अंशों में संसार के सब देशों पर लागू की जा सकती है।

वैज्ञानिक पुनस्संगठन में महत्त्वपूर्ण तीसरी बात है वैज्ञानिक ग्रन्थों का प्रकाशन। सारे संसार के वैज्ञानिक प्रयत्नों का संयोजन सुचारु रूप से हो सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि वैज्ञानिकों की खोजों और अनुभवों के परिणाम और वर्णन संसार की सब भाषाओं में प्रकाशित

किये जावें। लेकिन साथ ही यह भी आवश्यक है कि साधारण जनता को भी कुछ पता लगता रहे कि विज्ञान के क्षेत्र में क्या-क्या नई बातें पैदा हो रही हैं और विज्ञान का हमारे दैनिक जीवन से क्या सम्बन्ध है? इसके लिए आवश्यकता है लौकिक वैज्ञानिक साहित्य की, जिससे साधारण पढ़े-लिखे लोग लाभ उठा सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समाचारपत्र, सिनेमा और रेडियो भी बड़े अच्छे साधन बन सकते हैं।

विज्ञान का सबसे महत्व का पहलू है मनुष्य के लाभ के लिए उसका उपयोग, अर्थात विज्ञान के द्वारा मनुष्य-जाति की आवश्यकताओं की पूर्ति। आजकल के युग में हमारी आवश्यकतायें दो तरह की हैं: वैयक्तिक और सामाजिक। वैयक्तिक आवश्यकताओं में हम इन चीज़ों को गिन सकते हैं: भोजन, वस्त्र, मकान, स्वास्थ्य, काम और मनोरंजन। विज्ञान इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो सकता है। विज्ञान के द्वारा ऐसे ढंग निकाले जा सकते हैं, जिनसे हमको पौष्टिक भोजन आसानी से मिले; सुन्दर वस्त्र सस्ते मूल्य पर मिलें; साफ-सुथरे और हवादार मकान रहने के लिए हों; चिकित्सा के लिए उत्तम प्रबन्ध हो; आराम से रहने लायक जीविका के लिए पर्याप्त काम मिले; तथा काम के बाद मनोरंजन की सामग्री सुलभ हो।

वस्तुओं की पैदावार, कल-कारखाने चलाने के लिए शक्ति, इंजीनियरिंग, यात्रा के तथा माल भेजने के साधन——ये सब सामाजिक आवश्यकतायें हैं। इस दिशा में तो काफ़ी प्रयत्न हो भी रहे हैं।

परन्तु, जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है, विज्ञान का सबसे बड़ा उद्देश्य है मनुष्य की वैयक्तिक, मानसिक तथा सामाजिक उन्नति। खाली सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने से मनुष्य की आत्मा तृप्त नहीं हो सकती। विज्ञान के सामने सबसे बड़ा यही प्रश्न है। इसका हल तभी हो सकता है, जब विज्ञान का ढाँचा ही बदल दिया जावे। परन्तु यह ढाँचा तभी बदला जा सकता है, जब वर्तमान समाज विज्ञान के सच्चे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे। इस मार्ग में व्यावहारिक कठिनाई इतनी नहीं है। केवल सामाजिक तथा राजनैतिक कठिनाइयाँ हैं। इनको दूर करने के लिए यह समझना लाज़मी है कि समाज का रुख किधर है तथा राष्ट्रों की द्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा किस प्रकार मिट सकती है? सम्भव है, इस युद्ध के फलस्वरूप कोई नई सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था प्रकट हो, जो विज्ञान की इस समस्या को सुलझाकर उसे मनुष्य-जाति का सेवक बना दे।

शुभकामनायें

"हिन्दी-साहित्य को उन्नत और हितकारी बनाने के लिए आप जो प्रयत्न करने जा रहे हैं, उससे मेरी हार्दिक सहानुभूति है। मैं यथाशक्ति आपके इस कार्य में सहायक होऊँगा। आप बड़ी ही आवश्यकता के अवसर पर इस ओर लौटे हैं। स्वागत करता हूँ।"

सुल्तानपुर (अवध)]

—रामनरेश त्रिपाठी

"यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि बहुत दिनों के बाद 'त्यागभूमि' का नया अवतार होने जा रहा है। मुझसे जो कुछ सेवा इसकी बन पड़ेगी, वह मैं ज़रूर करूँगा।"

शान्ति-निकेतन बंगाल]

—हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

साहित्य से सर्वोदय

[जनार्दनराय]

जीवन के तत्त्व विवाद के विषय नहीं, स्वीकार के विषय हैं। विवाद, खोज तथा निर्णय हम तभीतक करते हैं, जबतक हमें जीवन के किसी तत्त्व का पूर्ण निश्चय नहीं हो जाता। तत्त्वज्ञान के बाद ही हम उसे अपने हृदय-खेत में उगाने की चेष्टा करते हैं। संक्षेप में, सभ्यता जीवन के शाश्वत तथ्यों की निरंतर खोज, अनुभूति और उन पर कर्म-संस्कार खड़े करना है। वह जीवन का सन्देश ही नहीं, जीवन का पूर्ण——अधिकपूर्ण और सम्पूर्ण——प्रदर्शन है। जिस संस्कृति में अपनी प्रजा को निरंतर जीवन देने की सहज और सुगम क्षमता नहीं होती वह टिक नहीं सकती; और उसका टिकना कोई अर्थ भी नहीं रखता। देखा जाय तो कातर, निराश, हिस्र और अंधकारपूर्ण करनेवाली परिपाटी संस्कृति का विशेषण पाने का अधिकार ही नहीं रखती। सभ्यता की कसौटी उसकी तीव्र अचूक और अथाह सत्य-शोधक अन्तर्दृष्टि है: संस्कृति का स्वरूप एक गतिशील, नित्य सुसंगत, सर्वस्पर्शी कर्म-रंगभूमि है, जहाँ हमेशा, हर घड़ी मनुष्य जीवन के आलोक के लिए अभिनय किया करता है। प्रजा को जीवन का दूध जो पिला नहीं सकती, उसे हम मृत्यु की बूटी ही कहेंगे।

जीवन की खोज, अनुभव और विकास क्यों? यह प्रश्न हमें एक और अन्तिम प्रश्न तक ला छोड़ता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि इस अन्तिम प्रश्न का उत्तर देने की गम्भीर चेष्टायें उस तरह से नहीं की गईं, जिस तरह से की जानी चाहिए थीं। व्यक्तियों की प्रेरणादायक चेष्टा अवश्य ही हमें महान् समय और महान् आन्दोलनों की भेंट दे गई है; पर इतिहास का दारुण पाठ हमें रह-रहकर सुझाता है कि कहीं न कहीं यह मूलभूत प्रश्न या तो टाल दिया गया है या उचित रीति से नहीं समझा गया है; नहीं देखा गया है। एक दीर्घ और चिरकालीन मौन अवलम्ब-हीन-सा हमें ढँक गया है। परिणाम में हमारे मनोवैज्ञानिक उद्गम रुँध-से गये हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि हमने जीवन को महत्त्वपूर्ण समझा ही नहीं, और न जीवन को हम समाप्त ही कर पाये। हमारे अगणित युद्ध, असंख्य साम्राज्य, ग़लत व्यवहार-पहलू और विषम विरोधियों का रहन-सहन मूल में हमारी जीवन-विनाशिनी क्रिया में ही हैं, पर जीवन का रहस्यमय प्रवाह अपने आस-पास और बीच में कोई रुकावट या बाँध मंजूर नहीं करता। युग-वैभवों से युग-क्रांतियाँ कहीं ज्यादा रमणीय और महिमामय रही हैं। जीवन नष्ट होना जानता ही नहीं। अपने नाश की प्रत्येक क्रिया, भावना तथा संकल्प को वह भीमकाय संघर्ष के द्वारा कुचल देता है। जितना ही वह जीवन-प्रवाह रहस्यपूर्ण, अनिद्य और अनादि है, उतना ही वह अथाह, सुन्दर, सरस और नवनवोन्मेषक है। जीवन अनंत संजीवन है, हम यही कह सकते है।

अतः मैं दूसरे दृष्टिकोण से उसी सनातन प्रश्न का उत्तर दूँगा: जीवन के 'क्यों' के बारे में चर्चा हो सकती है। खोज-खबर नहीं। वह अनुभूयमान और अनुभवजन्य है। वह है। इससे अधिक स्पष्ट, सहज और स्थिर उत्तर देने का प्रयत्न पांडित्य में गिना जायेगा; पर मैं उसके लोभ में न पड़ूँगा। जिस ज्ञान-कुल में जीवन का भी कारण तलाश किया जाता है, मैं समझता हूँ, वहां मृत्यु को अन्तिम तत्त्व भी माना जाता

होगा । जीवन का प्रादुर्भाव, जिसे हम जन्म कहते हैं, जीवन का तिरोभाव, जिसे हम मृत्यु कहते हैं हमारी समझ के भ्रम-मात्र हैं । रात-दिन के रंग पलटे मौन सर्व-व्यापी आकाश के भ्रमों में दो हैं । जीवन ही के प्रसार, विकाश और विलास में हमें उसका अन्त और आदि कैसे मिलेगा ? अतः हम जीवन के ध्रुव तत्त्वों की निरंतर खोज और उन्हें निरंतर अपने हृदय में उतारने का एकमात्र लक्ष्य रखकर अपने मनन में आगे बढ़ेंगे ।

जीवन है; अतः मैं भी हूँ––यह जगत् भी है । इस अनुभूति के अविचल मूल में हमें अपने सर्वोत्तम के प्रति यात्रा की स्पष्ट और गहन प्रेरणा मिलती है । जिस प्रकार जीवित चरणों के जड़ चरण-चिह्न जड़ मार्ग पर छप जाते हैं, उसी प्रकार जीवन के चिर-पिपासु अमृत-पान के दरम्यान साधनवत् जड़त्व का हमें स्वीकार ही नहीं, निर्माण भी करना पड़ता है । मुँह देखने के दर्पण के समान अपना सरस सुन्दर चिर-ज्योतिर्मय साक्षात् करते जाने के लिए भी हमें दृष्टि के दर्पण की आवश्यकता है । अतः संगति और चिर-निर्माण की आवश्यकता । इस चिर-निर्माण का क्रम ि-मुखी है;––हम सोचते हैं, हम अनुभव करते हैं, हम करते हैं । व्यक्तिगत निर्माणों से लोक-सामान्य निर्माण मिलते चलते हैं । सामान्य या लोकमान्य निर्माणों द्वारा अपने आपका लोकमान्य साक्षात किये चलना जीवन-अनुभव में अधिक गहनता प्राप्त करना है । अतः सर्वोदय ही हमारी सभ्यता का मूल-मन्त्र ठहरता है ।

सर्वोदय के मूल विचार को स्पष्ट किये बिना साहित्य और सर्वोदय का एक प्राण सम्बन्ध स्पष्ट न होगा । हमारी मौजूदा व्यवहार-भूमि तो अजीब-अजीब विषमताओं का घर हो रही है । हमारे घमण्ड बहुत हैं, तो हमारे प्रमाद भी बहुत हैं । हमारी बौद्धिक वाहवाहियाँ जहाँ ढेरों हैं, तो वहाँ हमारी मूर्खतायें भी कम नहीं हैं । आज का बौद्धिक अपने पुस्तकालयों, प्रयोग-शालाओं और मंचों को देख-देख कर इतरा रहा है; पर वह आत्मघात की सूक्ष्म जड़ पकड़ गई हुई प्रवृत्ति की ओर सजग होना नहीं चाहता । जीवन को समाप्त करने का जितना अज्ञात पर संगठित प्रयत्न आधुनिक मनुष्य ने किया है, उतना जंगली कहे जानेवाले आदिम पुरखों ने भी नहीं किया । एक बेहोशी हमें अपनी स्तब्ध-कारिणी मूर्च्छा में डुबाये बहा ले जा रही है । आजके मनुष्य का आन्तरिक हाथ अत्यन्त भयंकर है । परिवर्तन, असफलता, सत्ता, वैभव और स्वार्थ के लिए अधिक संगठित, सूक्ष्म और सावधान संहार-तत्परता और तैयारी हमारी स्वच्छन्द पैशाचिकता ही का प्रदर्शन है । अपने रक्त-स्नात हाथों और रक्त-रंजित अधरों में मनुष्य आज जितना ही भयंकर दीखता है, उतना ही वह दीन है; क्योंकि वह जीवन के स्वागत की संगीत-भूमि छोड़कर मृत्यु की ज्वाला ही में जला दिया गया है । वह अमृत-पान के लिए जन्मा हुआ, इतर सृष्टि के योग-क्षेम का वाही, प्राणियों में सबसे अधिक बुद्धिमान, स्वतन्त्र तथा जन्मान्तरों के अनुभव से समृद्ध––अतः सबसे अधिक जिम्मेदार––मानव आज धरती से घृणा कर, प्रकृति को लूट-खसौट कर, आपस का रक्त बहाकर, कहा करे तो कहा करे कि मैं प्रतिपल ज्ञान की खोज कर रहा हूँ; मैंने जल, थल तथा हवा को जीत लिया है; मैंने अपने पुरखों को पछाड़ दिया है । लेकिन उसे समझ रखना चाहिए कि अपने वायुयान और बम के साथ, अपने तोप-पोतों के साथ, अपने टैंकों

और मशीनगनों के साथ वह प्रतिपल जीवन के आनन्दमय अनुभव से दूर पड़ता गया है। उसने जीवन का अभिशाप ही स्वीकार किया है; जीवन का वरदान नहीं। परिवर्तनों, हलचलों, क्रान्तियों और कोलाहलों से भले ही वह अपने आपको एक गहगहते हुए वातावरण का केन्द्र समझ ले; परन्तु केवल परिवर्तन ही—विचारों का, अनुभूतियों और कर्मों का,—जीवनतत्त्व की खेती और लहलहाहट की दृष्टि से अधिक महत्त्वशील नहीं ठहरता। यह युग-वाक्य कि जीवन केवल संघर्ष है; वह अनन्त निरुद्देश्य मार्ग है; वह वेदना है——समाप्त हो जाना चाहिए। प्रकृति के विजय की असफल और राक्षसी तमन्ना हमारी संहार-प्रवृत्तियों को अधिक महीन कर गई है : हम पशु-मानव मिटकर पशु-राक्षस हो गये हैं। लूटखसोट और अन्य प्राणी की हत्या कर जीवन (!) बनाये रखने का वाद डाकुओं का फिलसुफ़ाना ढोंग-भर ठहरा है। जिस दिन ईश्वर के स्वाभाविक मनोराज को जीतने का भाव ईश्वर के पुत्र के स्वरूप में उठा, उसदिन मेरे नम्रमत से तो सन्तों और सेवकों की जननी वसुन्धरा के ज्योतिर्मय नयन अन्धे हो गये! हमारी आज की संस्कृति एक दुर्भाग्यपूर्ण घातक विरासत भर है। 'हम वसुधा को अनंत तक भोगने वाले हैं; हम प्रकृति और दूसरों के सम्राट हैं; हम भोग ही के लिए जन्मे हैं।' यह मूलभूत प्रचोदक भाव और तत्त्वज्ञान अपने मर्म में जीवन की अनुभवहीनता——अतः आनन्द और आशा के मौलिक स्पर्श से रहित घोर निराशा तथा मृत्यु की अवस्था का अज्ञात स्वीकार है। जीवन का सर्वोदयी सन्देश देने में मनुष्य आज जितना अशक्त और दीन है, मैं सोचता हूँ, वह पहले कभी था क्या ? हमारी जीवन-परिपाटी में विषों का उपयोग, भोगविलास की रंगीन लीला और उन्हें बराबर बनाये रखने के लिए पाशविक सत्ता पर स्थित समाज-रचना हमारी जीवन की वसन्त-शक्ति का करारा ह्रास जाहिर करती है। मनुष्य आज अन्धकार की दानवी मूर्त्ति बना हुआ है।

अतः हम यह स्वीकार करेंगे कि हमारी पहली और अन्तिम आवश्यकता जीवनाराधन की है। ज्ञानी अमृत की खोज करे; उपासक आनन्द की लौ लगाये रहे; कर्मी जीवन की सर्वोदयी सर्वकल्याणी खेती करे, मंगल—चिरन्तन मंगल—इस पल——आज-कल और सर्वदा——प्राणीमात्र का होता चले, ऐसा व्यावहारिक जीवन-मार्ग हमारा लक्ष्य और साधन हो, यह आज के प्रत्येक जिम्मेदार नागरिक का कर्त्तव्य है। हमें डरना न चाहिए, यदि हमें परम्परागत जड़ प्रथायें, मोहक फिलसुफियें, चित्ताकर्षक सम्पत्ति और मनोरंजक आमोद-प्रमोद उठा देने पड़ें; हमें भयभीत न होना चाहिए, यदि हमारे पालने में पड़े मिले विश्वासों, धारणाओं और विचारों को सत्य की निर्मल स्वच्छ वारिधारा एक गंदे कीचड़ के समान बहा ले जाय। प्रथम दर्शन पर सत्य विकराल लगता है; पर उसका परिचय स्वास्थ्य देता है; उसकी मैत्री जीवन के आनन्द और अमृत की अथाह और चिर नूतन भेंट देती है। जीवन जीवन ही की पूजा के लिए है। हमें अधिकार ही नहीं कि हम उसमें मृत्यु के व्याघात उत्पन्न किया करें।

(आगामी अंक में समाप्य)

एक सहृदय संस्था

'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर'

[जैनेन्द्रकुमार]

बम्बई के हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर से मेरा संबंध सन् '२९ में हुआ। किताबों पर से उसका सुयश मैं जानता था। पर उस प्रतिष्ठा के पीछे वास्तविकता क्या है, सो जानने का अवसर सन् '२९ में आया।

तब लेखक-वेखक तो मैं था नहीं। अपने बारे में एकदम अविश्वासी था। यों समय गँवाने को कुछ लिख गया था। 'परख' की पाण्डुलिपि मेरे एक मित्र-प्रकाशक ले गये थे। कह गये थे कि जल्दी छाप देंगे, तीन महीने में तो अवश्य। पर तीन महीने हो गये, चौथा भी हो गया। पाँचवें महीने मैंने कहा कि भाई, किताब छपनी है तो ऐसे कब छपेगी?

प्रकाशक-मित्र ने अपनी कठिनाइयाँ बतलाईं और कहा कि छप जायगी।

मेरी पुस्तक छप जायगी, यही मेरे आश्वासन को बहुत था। पर मित्र की अपने ही वायदे के प्रति लापरवाही मुझे अच्छी नहीं लगी। मैंने पूछा कि भाई, कुछ अवधि बता सकते हो कि जबतक वह छप जायगी?

बोले कि यह तो नहीं कह सकता। पर छाप दूँगा।

मैंने कहा कि तो पाण्डुलिपि मुझे देदो। छापने का सुभीता हो जाय तब चाहो तो फिर ले लेना।

वह बोले कि जैनेन्द्र, तुम से तो वह मेरे पास ही सुरक्षित है। और यह सोचते हो कि कोई और छाप देगा तो तुम्हारी भूल है। भला कौन छापने बैठा है? अपनी चीज़ सबको अच्छी लगती है। पर तुमने कभी क्या लिखा है और तुम्हें कौन जानता है? कहा मानो। इसे मेरे पास रहने दो। होगा तब छाप देंगे।

मित्र से ज्यादा तो मैं ही जानता था कि मेरा लिखा छपने-योग्य नहीं हो सकता। जानता था कि किताब मेरे पास पड़ी रहेगी। मुझे इतनी तक हिम्मत न होगी कि किसी को देखने भी भेजूँ। तो भी मैंने कहा कि भाई, लाओ किताब लौटा ही दो।

मित्र ने हँसकर किताब मुझे देदी। बोले—देखो, मैं कहता हूँ कि न ले जाओ। फिर तीन महीने बाद तुम्हीं मुझे देने आओगे। मैं मित्र ठहरा, छाप दूँगा। व्यवसायी प्रकाशक तो कोई उधर आँख भी न देगा।

ख़ैर, किताब मैं ले आया। अब क्या करूँ? किसी प्रकाशक को भेजूँ? पर क्या लाभ? अपनी ही ख्वारी होगी। भेजने में डाक-खर्च लगेगा। तुम जानते हो आठ-दस आने तुम्हारे लिए कितनी बड़ी चीज़ हैं और भेजने चले हो किस हिम्मत पर! तुम कुछ जानते हो? पढ़ा है? लिखा है? सीखा है?...

इस तरह महीना-डेढ़ महीना और हो गया। कहीं किताब भेजने का साहस न हुआ। मन गिर आने लगा और किताब भी भूल चली। उन दिनों मेरी ज़िन्दगी मुझे भार थी। मैं एकदम अपने को व्यर्थ लगता था। आवारगी ही आवारगी। काम न धाम। संगी न साथी। क्या करूँ, क्या न करूँ? प्रकाशकों की बहुत सी कहानियाँ सुनीं थीं और नये लेखकों की मुसीबतों की कहानियाँ भी सुनी थीं।

कुछ ठीक याद नहीं कि इस तरह की उधेड़-बुन में कितना समय निकालने के बाद बड़ा साहस बाँधकर, माँ से एक रुपया ले, वह पाण्डुलिपि 'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर', बम्बई को मैंने भेज दी। सोचा कि चलो, अपनी मूर्खता ही तो प्रकट होगी और यह एक रुपया चला जायगा। घाते में पाण्डुलिपि भी चली जाय, (ऐसी ही बातें सुन रक्खी थीं) तो भी क्या बुरा है ? मेरे है वह किस काम की ! और यह तो है ही कि बम्बई वाले कुछ जवाब नहीं देनेवाले हैं। किताब वह रद्दी की टोकरी में पड़ जायगी। साथ जो टिकट भेज रहा हूँ--अजी, कौन परवा करता है ? अँह, जायँ तो वह भी जायँ।

तीर छूटा सो छूटा।

पर मेरे अचरज का ठिकाना न था, जब चौथे ही रोज़ खत मिला कि आपकी पाण्डुलिपि मिली है। देखकर दो रोज़ में उत्तर दूँगा।

यह सौजन्य मेरे लिए एकदम अप्रत्याशित था। दो रोज़ बाद जवाब दिया ही जाने वाला है तो तत्काल लिखने की क्या ज़रूरत थी कि दो रोज़ बाद देखकर लिखेंगे ? मुझ घबराये हुए नये आदमी को यह अतिरिक्त सज्जनता संजीवनी हुई।

दो रोज़ बाद पत्र आया कि पुस्तक हम छाप देंगे। अमुक महीने में। टर्म्स लिखें।

मैं क्या जानूँ कि 'टर्म्स' क्या चीज़ होती है ! खैर, पूछ-ताछ कर कुछ लिख दिया।

जवाब में तत्काल बम्बई से पत्र आया कि मंजूर है। लेकिन खेद है कि पुस्तक इसी महीने प्रेस में नहीं जा सकती, हाथ भरे हैं। पर आप पुरस्कार पेशगी चाहें तो हम भेज सकते हैं।

मैं माँ का अकेला बेटा था। जवान होगया था, पर एक कौड़ी कमाने लायक़ नहीं था। मैंने लिखा कि हाँ, पेशगी भेज दीजिए।

तुरन्त ही चैक आगया। मैंने गर्व के भाव से उसे माँ को दिया। माँ की आँखें भीग आईं। मेरा गर्व जाने क्या हुआ ? शायद वह कृतार्थ हुआ। मैं भी रो पड़ा।

उसके बाद यह नहीं कि मेरी कोई किताब और कहीं नहीं छपी। लेकिन यह ज़रूर है कि टर्म्स में भारी-से-भारी अंतर होने के कारण भी 'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' को छोड़कर किसी और तरफ़ जाने लायक़ मैं नहीं रह गया।

'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' की मैं यही विशेषता मानता हूँ। वह कार्यालय है, पर जड़ नहीं है। यदि वह संस्था है तो ऐसी नहीं कि जहाँ क़ायदे-क़ानून के पालन के पीछे हृदय सुरक्षित अर्थात् चुप रहे। हृदय-धर्म से अतीत वह नहीं हो सका है, जो कि एक संस्था का सबसे बड़ा खतरा है।

'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' श्री नाथूराम प्रेमी हैं। नाथूरामजी साहित्यिक हैं। व्यवसाय करते हैं, और यह नहीं कि व्यावसायिक नहीं हैं, पर व्यवसाय-द्वारा मानों साहित्य-साधना करते हैं। प्रकाशक हैं जिन्हें बिल्कुल पता नहीं कि उनकी अमुक पुस्तक में क्या है ? उन्हें इस पुस्तक के हिसाब से मतलब है, आत्मा से नहीं। प्रेमीजी उल्टे हैं। अपने प्रकाशन की पक्ति-पंक्ति में वह जाते हैं। पुस्तक उनको जँच जाय, फिर न बिकने वाली ही चाहे वह हो, उसके प्रकाशन से वह मुँह नहीं मोड़ेंगे। अपने कार्यालय से प्रकाशित पुस्तक की भावना के प्रति उनकी-सी सावधानता मैंने और कहीं नहीं देखी। वह हैं कि बीच में कुछ छापे की अयत्ना और प्रकार की अशुद्धि मालूम होने पर फ़ार्म-का-फ़ार्म रद्दी कर देंगे, अशुद्धि नहीं जाने देंगे।

साहित्य के बारे में वह अपनी सीधी राय बनाते हैं—जज बनकर नहीं, सहज पाठक के रूप

में; लिहाज़ या आतंक में नहीं पड़ते। अपने विश्वासों के प्रति उनमें साहस है। तभी तो है कि कई नामी लेखकों की पहली रचना उनके यहाँ से निकली है। बाज़ार में तो जो आज चलता है, कल बदल भी जाता है। बाज़ार की ताबेदारी में प्रगति थोड़े ही है। और प्रकाशन के विषय में 'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' है कि मुझ नये अनजान लेखक की चीज़ उन्हें ठीक लगी, तो अपनी प्रतिष्ठित सीरीज़ में उसे निकालने में नहीं हिचके।

'ग्रंथ-रत्नाकर' हिन्दी की सबसे पुरानी प्रकाशन-संस्थाओं में से है। तब से रुचियाँ बदली हैं, पुरानी चीज़ें मर गई हैं, नई पुरानी पड़कर बेकाम हो गई हैं। पर 'ग्रंथ-रत्नाकर' अब भी जीवित और उपयोगी है। उसकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण है। तब से अबतक के उसके प्रकाशन-इतिहास में सुरुचि और प्रौढ़ता की एक अटूट धारा है। वह झुका नहीं, बदला नहीं, हलका नहीं पड़ा, यद्यपि प्रत्येक नवीनता में से आवश्यक और स्थायी अंश को वह अपनाता गया।

रवीन्द्र, शरत् और द्विजेन्द्रलाल को हिन्दी-वालों ने उनके द्वारा अपनी यथासंभव मौलिक प्रतिभा में प्राप्त किया है। उनके अनुवाद शायद अधिक प्रामाणिक हैं। उस बारे में प्रेमीजी अत्यन्त सावधानता बरतते हैं। अभी हाल मैंने देखा कि शरच्चन्द्र की 'दत्ता' (हिन्दी, 'विजया') के अनुवाद को देखते-देखते उन्होंने उसे एकदम नया बना दिया है, जबतक मूल-भाव अनुवाद में पूरा नहीं आ झलका, उन्होंने संतोष नहीं माना है।

'ग्रंथ-रत्नाकर' यदि अवैयक्तिक संस्था नहीं है और अपने समूचेपन में एक व्यक्ति की ही प्रतिकृति है, तो इस कारण उसकी कुछ मर्यादायें भी बन गई हैं। संगठन उसका विशाल नहीं है। इतनी बिक्री नहीं कर सकते कि पुस्तक के कई संस्करण निकल जायँ। प्रेमीजी का अनवकाश या अस्वास्थ्य हुआ तो इसी कारण कार्यालय रुक-सा जाता है। इस तरह इकट्ठी कोई बड़ी योजना वह नहीं उठा सकता है। लेकिन इसकी उसमें स्पर्धा नहीं है और कुल मिलाकर यह अच्छा ही है। संस्था इतनी अधिक कार्यालय-मय नहीं है कि सहृदय न रह जाये।

शुभ कामनायें

“जीवन-साहित्य के विषय में आपका परिचय मिला। आपकी देखरेख में जो चीज़ निकलेगी, सुन्दर और उपयोगी निकलेगी, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। मैं यथाशक्ति इस सम्बन्ध में सहर्ष सेवा करने को उद्यत हूँ।”

प्रयाग]

—बाबूराम सक्सेना

“मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आप फिर से त्यागभूमि की जगह 'जीवन-साहित्य' नाम का पत्र निकाल रहे हैं। पत्र के नाम और लोगों के चुनाव से ही यह तो साबित होता है कि यह पत्र ऐसा होगा, जिसकी उन लोगों को जो केवल सुरुचिपूर्ण और सजीव साहित्य पढ़ना चाहते हैं, आवश्यकता रहती है।

“मैं आपको इसके लिए बधाई देता हूँ और आपके शुभ प्रयत्न के उद्देश्य की पूर्ति की हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।”

कलकत्ता]

—भागीरथ कानोड़िया

कसौटी पर

जीवन-सन्देश : मूल-लेखक—खलील जिब्रान; अनुवादक—श्री किशोरीरमण टण्डन; प्रस्तावना-लेखक--काका कालेलकर; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल; पृष्ठ-संख्या ११२, दाम ।)

'जीवन-सन्देश' अनुवाद होते हुए भी हिन्दी में अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है। इसका लेखक कोरा साहित्यिक नहीं, वास्तविक साहित्यकार है; क्योंकि उसने जीवन के तत्त्व का दर्शन करके उसे अपनी चमत्कारिणी लेखनी से संसार के सामने चित्रित किया है। जो तत्त्वदर्शी है, जो द्रष्टा है, वही सच्चा साहित्यकार हो सकता है। 'पाण्डित्य' एक वस्तु है और 'दर्शन' दूसरी। पाण्डित्य समूचे जीवन को नहीं छूता, बुद्धि को ही स्पर्श करके रह जाता है। 'दर्शन' जीवन-व्यापी साधना का फल होता है। खलील जिब्रान द्रष्टा, कवि, लेखक और चित्रकार सब-कुछ था। वास्तव में तो चूँकि वह द्रष्टा था, तत्त्वदर्शी था, इसीलिए वह ऊँचे दरजे का कवि, लेखक, चित्रकार हो सका। 'जीवन-सन्देश' की प्रत्येक पंक्ति में ज्ञान, कवित्व और चमत्कार की त्रिवेणी बहती है। अनुवाद की भाषा सरल और सजीव है।

मूल-पुस्तक की स्तुति में काका साहब के शब्द ही दुहरा देना काफ़ी होगा--

"'जीवन-सन्देश' में कवि ने एक नाममात्र कथा का निर्माण करके उसके पतले धागे पर जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाले अपने विचार और जीवन-सिद्धान्त पिरो दिये हैं। ये हैं उसके विषय—प्रेम, विवाह, बालक, दान, खान-पान, श्रम, हर्ष-क्रोध, क्रय-विक्रय, अपराध और दण्ड, विचार और विकार...आदि।

"स्पष्ट है कि कवि को एक नया हृदय-धर्म चलाना है। उसकी अपनी एक दृष्टि निश्चित हो चुकी है। उसीका विनियोग जीवन के अंग-प्रत्यंग में कराके एक नवीन मानवता वह तैयार कर रहा है। इस किताब का आकर्षण मुख्यतया वही है। पूरा ग्रंथ पढ़ने के बाद मनुष्य के मन में सन्तोष होता है कि सचमुच हमें एक दिव्य दृष्टि मिली है।...इतनी विशद शैली में जीवन का विधान और भविष्य के लिए नवनिर्माण शायद ही किसी अन्य ग्रंथ में किया गया होगा।"

ह० उ०

झूठसच : लेखक—श्री सियारामशरण गुप्त; प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव, (झाँसी); पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य २)

लब्धकीर्ति कविवर श्री सियारामशरण गुप्त ने हिन्दी-भारती के चरणों में कविता ही नहीं, कहानियाँ और उपन्यास भी भेंट किये हैं। निबंध-लेखक के रूप में वह अभी तक जाने नहीं गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनके २८ निबन्धों का संकलन है। 'निबन्ध' केवल इसीलिए कहा जा रहा है कि स्वयम् लेखक इन रचनाओं को निबन्ध की कोटि में रख रहा है, यद्यपि हमारा यहाँ मतभेद है। प्रस्तुत 'निबन्धों' में से 'झूठसच' तो—जिसे पुस्तक के नामकरण का सद्भाग्य मिला है - एक कहानी है। "साहित्य और राजनीतिक", "शुष्कोवृक्षः", "साहित्य में क्लिष्टता," "हिमालय की झलक," "उसकी बोली" आदि को छोड़कर अन्य रचनायें भिन्न-भिन्न प्रसंगों में विविध विषयों पर लेखक के मस्तिष्क और मन में उत्पन्न हुए विचारों तथा भावनाओं का लिपिबद्ध संकलन ही कहा जा सकता है। "एक शीर्षक" (या शीर्ष ?) "ऋणी", "अन्य भाषा का मोह", "आशु रचना", "कवि-चर्चा", "निज कवित्त", "धन्य-वाद", "नया संस्कार" आदि लेखक के अपने

जीवन में घटित घटनाओं से निकट सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर लिखे गये लेख सम्पादकीय टिप्पणियों-जैसे हैं। कहने का आशय यह नहीं कि उनका कोई मूल्य नहीं है, परन्तु निबन्ध में जो सूक्ष्म विवेचन, गवेषणा और विश्लेषण होना चाहिए, उसकी उनमें कमी है। हाँ, उनमें मनोरंजन की सामग्री है और उससे साहित्यिक जीवन के विविध प्रश्नों को हल करने की प्रेरणा मिलती है। "साहित्य और राजनीतिक" "शुष्कोवृक्षः" तथा "साहित्य में शिष्टता" साहित्य-प्रेमियों के अध्ययन की चीज़ें हैं। "मनुष्य की आयु दो सौ वर्ष," "एक दिन", "छुट्टी" "छत पर" "घर की बात" आदि रचनाओं में लेखक की दार्शनिक तथा विचारक की सी प्रवृत्ति झलकती है। "मुंशीजी", और "बाल्यस्मृति" लेखक के बालजीवन की मनोरम स्मृतियों को प्रस्तुत करते हैं। 'मुंशी अजमेरी' क्या थे और उनका जीवन कैसा था? इसकी अच्छी जानकारी 'मुंशीजी' में मिलती है।

यह तो हुआ ग्रंथ के विषय के सम्बन्ध में, अब शैली के सम्बन्ध में भी कुछ विचार करना ठीक होगा।

प्रस्तुत संग्रह में सब से अधिक सुन्दर सजीव और कवित्वमय रचना है "हिमालय की झलक"। यह रचना किसी भी पाठ्य-पुस्तक की शोभा बढ़ा सकती है। पढ़ते-पढ़ते हिमालय का मनोरम चित्र आँखों के आगे आ जाता है, और पाठक भी लेखक के मनोभावों से तादात्म्य अनुभव करने लगता है। यही लेखनशैली की विशेषता है। कई स्थल तो बड़े ही आलंकारिक हैं। उनके व्यंगों, कवि-कल्पनाओं और उपमाओं को पढ़कर हृदय आनन्द-विभोर हो जाता है। एक पार्वतीय नदी के वर्णन में वह लिखते हैं: "काले रंग की मोटी रेत का लम्बा-चौड़ा पाट और उसके बीच में धूप से चमचमाती हुई एक पतली रजत-जलधारा। मानों बहुत अधिक मार्जिन देकर छपी हुई कोई हृदयहारिणी कविता हो।"

एक दूसरी कल्पना—**"आगे किसी जगह दूर से एक क्षीण जलधारा देखकर बड़ा कौतूहल हुआ। पता नहीं, किस पुनीत सरिता का बाल्यकाल उसमें था।...किसी बहुत बडे लोकनायक को, किसी वन्दनीय कविर्मनीषी को लौट कर हम उसके बाल्यकाल में देखें, चित्र में नहीं प्रत्यक्ष, तब जो पुलक हममें उठ खड़ा हो, वही इस जलधारा से मेरे मन में हुआ।"**

दृश्यों का वर्णन करने में गुप्तजी ने कमाल किया है। व्यंग भी कम चुभनेवाले नहीं हैं:—
"यहाँ का तापमान जानने के लिए आतिथेय महोदय ने दिल्ली के एक इंग्लिश-पत्र की शरण ली। बात साधारण है, फिर भी कम कौतुककर नहीं।"

"समुद्रतल से लगभग सात हजार फुट की ऊँचाई यह है। इसका मतलब यह हुआ कि सूर्य के इतने निकट पहुँच गया हूँ। साधारण न्याय से सूर्य का उत्ताप यहाँ अधिक होना चाहिए। पर बडों के सम्बन्ध में साधारण न्याय से विचार करना कदाचित् ठीक नहीं होगा।" कितना गहरा व्यंग्य है इसमें?

एक विनोदमय व्यंग्य और देखिए:—

"पानी बरस जाने से लैम्प के आसपास और पूरे डिब्बे में पतंगों की भरमार थी। इन बिना टिकटों की संख्या का प्रश्न ही क्या? अपने प्रेमी के निकट आकर आत्म-समर्पण करने का अधिकार उनका था। खेद और दुःख इतना ही है कि हम सभी यात्रियों को उन्होंने लैम्प का ही भाई बन्द समझ रक्खा था। ढेर-के-ढेर आ-आकर ऊपर गिरते थे। हम लोग किसी तरह उन्हें विश्वास न दिला

सके कि हमारे भीतर या बाहर कहीं एक कण चिनगारी नहीं, तुम धोखा खा रहे हो ।"

लेखक की शैली में यथेष्ट सजीवता और प्रवाह है ।

"साहित्य में क्लिष्टता" लेख में वे लिखते हैं : वह वैसी ही हास्यास्पद बात हुई जैसी कि मूर्ति देखकर हम उसे खोटा पत्थर समझ लें । कहें कि कौन था, जिसने इसे इस तरह बिगाड़ डाला है ? इसमें कहीं उँचाई है और कहीं निचाई और कहीं छोटी-छोटी रेखायें; साफ सपाटपन तो इसमें एक जगह भी नहीं दिखाई देता । यह न हमारे लेटने के काम आ सकता है और न बैठने के ही ।' व्यंग्यात्मक शैली में यह कितना गहरा असर करती हैं ।

बाल्यस्मृति में कई स्थलों पर उन्होंने अपने बाल्यजीवन की वृत्तियों को अत्यन्त चित्ताकर्षक ढंग से व्यक्त किया है ।

संग्रह के-जैसे लेख हिन्दी में कम लिखे गये हैं और पुस्तकाकार तो प्रकाशित हुए ही नहीं । गुजराती में तो काका कालेलकर आदि के लेख छपे हैं भी । "झूठसच" हिन्दी-लेखकों के लिए एक मार्गदर्शक का काम देगा, ऐसी आशा है । हिन्दी-साहित्य में इस नई शैली का सूत्रपात्र करने की दृष्टि से हम 'झूठसच' का बड़ा मूल्य आँकते हैं । आशा है हिन्दी-जगत् उसका समुचित स्वागत करेगा ।

एक बात और । पुस्तक में पौने तीन सौ पृष्ठ हैं, किन्तु मूल्य उसका रक्खा गया है २) । यदि हमें साहित्य को—जिसे हम अच्छा समझते हैं—जनता में पहुँचाना चाहते हैं तो उसको इतने दामों में देना ठीक नहीं है ।

'राजस्थानी'—त्रैमासिक : प्रकाशक-राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता ।

हिन्दुस्तान के प्रान्त-प्रान्त में प्राचीन साहित्य की अमूल्य निधियाँ अज्ञात और उपेक्षित अवस्था में पड़ी हैं, यह निर्विवाद है । हरेक प्रान्त में कुछ अन्वेषणशील कर्मठ साहित्यिकों का एक-एक संघ इस प्रकार प्राचीन कृतियों की खोज करने में जुट जाय तो हमारे भारतीय साहित्य की कितनी श्रीवृद्धि हो ! राजस्थान में साहित्यिक तथा ऐतिहासिक अनुसन्धान करनेवाली राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता ने अपना त्रैमासिक मुखपत्र 'राजस्थान' आज से पाँच वर्ष पूर्व राजस्थानी इतिहास, भाषा, साहित्य, संस्कृति और कला के लुप्त, विस्मृत और उपेक्षित चिन्हों को जनता के समाने लाने के उद्देश्य से निकालना प्रारंभ किया था । दो वर्ष तक वह निकलकर साहित्य के इस अंग की उपयोगी सेवा करता रहा, परन्तु उसके संपादक के देहावसान के पश्चात् ही वह बन्द हो गया । यह एक दुर्घटना थी ।

सद्भाग्य की बात है कि ऐसी परम आवश्यकता की पूर्ति शीघ्र ही हो गई और 'राजस्थान' का अवतार अब 'राजस्थानी' के रूप में हुआ है ।

'राजस्थानी' के अक्तूबर, जनवरी और जुलाई सन् १९३९ तथा अप्रैल १९४० के चारों अंक हमारे सामने हैं । इसके परामर्श-मण्डल में हिन्दी-साहित्य के गौरव महामहोपाध्याय माननीय ओझाजी, दीवान-बहादुर श्री हरविलास सारडा, डॉक्टर रघुवीरसिंह, श्री विशेश्वरनाथ रेउ तथा श्री नरोत्तम स्वामी-जैसे इतिहासकार, पुरातत्ववेत्ता और साहित्यान्वेषक हैं । प्रस्तुत अंकों में अनेक लेख ऐसे हैं, जो किसी भी संग्रह की शोभा हो सकते हैं । इन प्रकाशित रचनाओं में ओझाजी का "मध्यकालीन भारत का एक राजवंश", श्री नरोत्तम स्वामी का "राजस्थानी भाषा और साहित्य;"

श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ का "राजपूताने के वातालर्थ" तथा श्री अगरचन्द नाहटा के "पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ", "बीसलदे रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ" और "राजस्थानी भाषा का एक छन्दशास्त्र" तो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

पत्र में अनेक उपयोगी स्तंभ हैं। 'अभिलेख' स्तंभ में शिलालेखों के विवरण; 'ग्रंथ-परिचय' स्तंभ में साहित्यिक कृतियों के परिचय तथा 'राजस्थान के रत्न' में राजस्थानी-साहित्य की विभूतियों के सजीव जीवन-चरित प्रकाशित होते हैं। 'आधुनिक राजस्थानी साहित्य' तथा इसी प्रकार "प्राचीन साहित्य" स्तंभ तो इस पत्र की विशेषतायें हैं। इनके अन्तर्गत राजस्थानी भाषा में लिखे नवीन तथा प्राचीन लेखकों की रचनायें छपती हैं। पहले से राजस्थानी के आधुनिक साहित्य की गतिविधि का विवरण और दूसरे से उसके पुरातन साहित्य की अमूल्य किन्तु अज्ञात मणियों का परिचय मिलता है। 'लोक-साहित्य' स्तंभ में लोकविश्रुत गीतों, दूहों तथा 'बातों' का प्रकाशन होता है, जो साहित्य का एक सजीव अंग है।

'राजस्थानी' पत्र से हमें अच्छी आशायें हैं। हम सोसाइटी तथा इसके परामर्श-मण्डल को इनकी इस साहित्य-सेवा के लिए सजगता पर बधाई देते हैं। **सु०**

'जीवन-साहित्य' से आशा

[एक पत्रांश]

" 'जीवन-साहित्य' के प्रकाशन का आपका सदुद्देश्य देखा। वस्तुतः हमारे आज के हिन्दी जगत् की यह रीढ़ की समस्या है कि हमारे साहित्यकार और उसके जीवन का उचित और शक्य समन्वय किस प्रकार हो। जीवन और उसके सरस आलेखन के बीच द्रोह सच्ची प्रतिभा की समझ में आनेवाली चीज़ है। हमारे मौजूदा रहन-सहन ने निर्विवाद हममें मन, वचन और कर्म के आपसी द्रोह पैदा कर दिये हैं। हम विषम तथा स्वद्रोही जीवन जीते हैं। मैं इसे जीवन ज़ीना कहकर केवल एक आदती बात ही कह रहा हूँ। मौत के वशीभूत होते चलना जीवन नहीं है। वह जीवन का क्रमशः तिरोभाव है। 'जीवन-साहित्य' के द्वारा आप-हम हमारी उज्ज्वल-भविष्य-मंडित संस्कृति के चोले में एक नवनव-उन्मेषिनी प्राण-शक्ति संचरित करें, यह हमारी एकांत आवश्यकता है।

अवश्य, ऐसे पुण्य प्रयत्न के साथ-साथ कई व्यावहारिक समस्यायें पैदा होंगी। पर उनका हल हमें निर्माणोन्मुख प्रगतिशील समाज में मिल जायगा। हिन्दी भाषा और साहित्य तथा उसके साथ सुन्दर सजीव जगत् के निर्माण के लिए हमें दसों-सैकड़ों की तादाद में तपस्या तथा त्याग करना पड़ेगा। हमारे कष्ट, कठिनाइयाँ तथा वेदनायें एक नहीं, अनेक हैं। आशा है, आप 'जीवन-साहित्य' के द्वारा जाग्रत और अहिंसक भारत के साहित्यकार का एक सजीव, सुन्दर, सरस व्यक्तित्व पैदा करने का पतितपावन प्रयत्न करेंगे।"

उदयपुर]

जनार्दनराय

क्या और कैसे ?

'जीवन-साहित्य' ही क्यों ?

'मण्डल' से पहले 'त्यागभूमि'. निकल रही थी। दिल्ली आने के बाद उसको फिर से प्रकाशित करने के इरादे से डिक्लेरेशन दिये पर हमारा इरादा उसे साहित्य तथा विचार-प्रधान पत्रिका बनाने का होते हुए भी, सभी बार ज़मानत माँग ली गई। तब 'जीवन-साहित्य' नाम से डिक्लेरेशन दाखिल किया गया। किंतु-नॉन-रेगुलेटेड प्रांत होने से—दिल्ली में डिक्लेरेशन प्राप्त करने में महीनों लग जाते हैं। इधर डिक्लेरेशन मिला और उधर बम्बई से भाई भानुकुमार जैन के संचालन में निकलनेवाले 'जीवन-साहित्य' के ३-४ अंक सामने आये। मन में तुरन्त ही ख़याल आया कि इस एक ही नाम के दो पत्रों से पाठकों को भ्रम तो न होगा ? पर नया डिक्लेरेशन फिर प्राप्त करने की स्थानीय कठिनाइयों और जिस प्रकार का पत्र बंबई से निकल रहा है, उसे देखकर मण्डल की ओर से निकलनेवाले इस पत्र के विषय, मैटर तथा उद्देश्य का जब विचार किया तो लगा कि दोनों पत्र एक नाम के होते हुए भी स्वतंत्र रूप से चल सकते हैं। हमारा कार्यक्षेत्र तथा उद्देश्य बम्बई के 'जीवन साहित्य' से बिल्कुल ही अलग रहेगा। उससे प्रतिस्पर्द्धा होने या करने का हमारे मन में ज़रा भी ख़याल नहीं है। हम भाई भानुकुमारजी के प्रयत्नों की पूर्ण सफलता चाहते हैं और जो साहित्य वह अपने पत्र में देते हैं तथा पुस्तिकाओं के रूप में निकालते हैं, उसके हम प्रशंसक हैं। उसके प्रचार में हमसे जो कुछ हो सकेगा वह करने को सदा प्रयत्नशील रहेंगे।

पाठकों या लेखकों का आशय अगर भाई भानुकुमारजी के 'जीवन साहित्य' से हो तो वह **साधना मन्दिर, १०४ सी० पी० टैंक रोड, बम्बई** को लिखें और हमारे 'जीवन साहित्य' से हो तो उसके लिए **सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, लखनऊ** या **इन्दौर** को लिखने की कृपा करें।

मा० उ०

लेखक-लेखिकाओं से—

मैं चाहता हूँ कि 'जीवन-साहित्य' में जीवन के प्रत्येक अंग पर लेख आवें। वे लेख इन प्रश्नों के उत्तर में लिखे जायेंगे तो 'जीवन-साहित्य' के लिए विशेष उपयोगी होंगे—

(१) जिस विषय पर हम लिखने जा रहे हैं, उसका हमारे जीवन से क्या सम्बन्ध है और जीवन में उसका कितना स्थान है ?

(२) अब तक इस विषय में हिन्दी में क्या-क्या लिखा गया है ?

(३) जो-कुछ लिखा गया है वह इस जीवन-दृष्टि से कितना ग्राह्य और कितना अग्राह्य है ?

(४) इस विषय पर और क्या-क्या तथा किस तरह लिखा जाना चाहिए, जिससे वह जीवन के उस अंग को पूर्णता की तरफ ले जा सके ?

(५) मैं स्वयं इस दिशा में क्या प्रयत्न कर सकता हूँ ?

(६) किस वर्तमान साहित्य-संस्था को इस विषय में दिलचस्पी लेनी चाहिए ?

(७) इसके लिए क्या किसी नई संस्था की आवश्यकता है ?

यदि एक ही लेख में सब प्रश्नों का उत्तर न समाया जा सके तो एक-एक प्रश्न के उत्तर में एक-एक लेख बनाकर भेज सकते हैं।

समालोचक-बन्धुओं से—

समालोचना पर जीवन का बनाव-बिगाड़ बहुत-कुछ अवलम्बित रहता है। पर खरी समा-

लोचना करने और उसे सुनने तथा उससे लाभ उठानेवाले विरले ही होते हैं। इसलिए हमें 'समालोचना' पर काफी ध्यान देना है और उसका महत्व तथा विस्तार बढ़ाना है। जिन विद्वानों तथा कृपालु मित्रों की सेवा में पुस्तकें समालोचनार्थ भेजी जावें वे नीचे लिखी बातों पर ध्यान देकर समालोचना लिख सकेंगे तो उससे 'जीवन-साहित्य' का ही नहीं, सारे हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-जीवन का वास्तविक हित होगा—

(१) पुस्तक-लेखक ने इस पुस्तक द्वारा क्या विशिष्ट बात समाज या जगत् को दी ?

(२) जो-कुछ उसने दिया वह हमारे जीवन, समाज या साहित्य के लिए किस अंश तक उपयोगी या अनुपयोगी है ? इसकी कसौटी यह हो कि वह जीवन को किस अंश तक पूर्णता की ओर अर्थात् बन्धन से मुक्ति की ओर ले जाता है।

(३) लेखक को इस पुस्तक के लिखने का अधिकार कहाँतक है ?

(४) विवेचन, विषय-प्रतिपादन और लेखन-शैली तथा भाषा कैसी है ? उसमें क्या-क्या सुधार करने की आवश्यकता है ?

(५) छपाई-सफाई, बाह्य सौन्दर्य, पृष्ठ संख्या मूल्य आदि कैसा क्या है ?

साहित्य किनके लिए ?

हम जो कुछ साहित्य-रचना करते हैं, वह अधिकांश में उच्च कोटि के, पढ़े-लिखे सुशिक्षित कहलानेवालों के, या धनी-मानी रईसों के काम की होती है। इससे पहले के युग में समाज पर इन्हीं वर्गों का प्रभाव था, यही समाज के नेता, संचालन, व्यवस्थापक रहे हैं। प्राचीन काल में क्षत्रिय राजाओं के प्रेम और युद्ध की कथा-गाथाओं से साहित्य भरा रहता था। अब यद्यपि समय ने पलटा खाया है और देश-भक्ति, समाज-सेवा, समाज-सुधार के भावों का प्रतिबिम्ब हमा साहित्य में दिखाई देने लगा है, फिर भी व महाजन-लक्षी जितना है उतना जनता-लक्षी नह है। भारतीय जनता ग्रामों की गोद में रहती है उस हमारी ग्रामीण जनता के लिए हम कितन साहित्य रचते हैं ? कुछ साल पहले गुजरात साहित्य-परिषद् में सभापति की हैसियत महात्माजी ने इस विषय की ओर गुजरात साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित किया था उन्होंने कहा था—

"आज गुजराती में ऐसा साहित्य नहीं है ज देहात की निरक्षर जनता के सामने रक्खा ज सकता है और जो उसे आनन्द देने के साथ ह उसकी मानसिक भूख को भी बुझा सके। आ का साहित्य रोगयुक्त है, उसकी रचना मुट्ठीभ लोगों के आमोद-प्रमोद के लिए होती है। उस ऐसा कुछ नहीं रहता जो ग़रीब ग्रामीण-जनत के सामने पेश किया जा सके। जो खेतों में का करते हैं, जो कुओं से खेती सींचते हैं, जो खे निराते और पशु चराते हैं, उनके सामने हम क्य रक्खेंगे ? जो साहित्य लाखों और करोड़ों उपभोग के लिए न हो, उस साहित्य को निकम्म ही कहना होगा।"

गुजरात के सेवक तो इस दृष्टि से साहि रचना करने भी लगे हैं। क्या हम हिन्दी-भा गुजरात से पीछे रहेंगे ?

सुरुचि न छोड़िए

हाल ही में 'वीणा (इंदौर) और 'सैनि (आगरा) में एक विवाद चल पड़ा था, जिसे प कर सभी सुरुचि रखनेवालों को दुःख हुआ होगा उसमें सुरुचि और सभ्यता दोनों की उपेक्षा गई थी। कुछ हीन और अपशब्दों का प्रयोग परस्पर किया गया था। मतभेद और विवा

तो होते ही रहेंगे । यह कोई अनहोनी, आश्चर्य की या अभद्र बात नहीं है । हमें अपना पक्ष सबल प्रमाणों और युक्तियों के साथ रखने का पूरा हक़ है, और यह हमारा कर्त्तव्य भी है । परन्तु प्रतिपक्षी को तुच्छता पूर्वक संबोधन करना, उसका क्षुद्रता के साथ उपहास करना, अपमानजनक या अपशब्दों का प्रयोग करना, न तो हमारे पक्ष की प्रबलता का ही न सभ्यता या सुरुचि का ही परिचायक हो सकता है । व्यक्ति की टीका या आलोचना के समय एक बड़ी अच्छी कसौटी मुझे पूज्य स्वर्गीय द्विवेदीजी ने बताई थी--"जो किसीके मुंह पर न कह सको वह उसके पीठ पीछे न लिखो ।" सच पूछा जाय तो लेखक या संपादक को वाणी या लेखनी का तप सिद्ध करना चाहिए । उसकी वाणी जैसे 'सत्यपूत' होनी चाहिए वैसे ही 'अनुद्वेगकर' भी होनी चाहिए । 'वाङमय तप' का गीता में बहुत ही उपयुक्त लक्षण बताया है--

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङमयं तप उच्यते ॥
(अ० १७, श्लो० १५)

हम, जो भी साहित्य-सेवक हैं और इस नाते जो लोगों के पथ-प्रदर्शक समझे जाते हैं, वही यदि क्षुद्रता और कुरुचि को आश्रय देने लगेंगे तो साधारण जनता के ऐसे दोषों और मनोविकारों को संयम में लाने की शिक्षा और प्रेरणा कैसे मिलेगी ?

युद्ध के अन्त में—?

सब लोगों के दिमाग में यह सवाल उठता है कि योरपीय युद्ध के अन्त में दुनिया की क्या हालत होकर रहेगी ? पं० जवाहरलाल नेहरू ने यह भविष्य कथन किया है कि छोटे छोटे राष्ट्र नहीं रह जायेंगे; कुछ महाराष्ट्र संसार पर अधिपत्य करेंगे जैसे—रूस, जर्मनी, जापान, अमेरिका आदि । अमेरिका और ब्रिटेन का संयुक्त राज्य हो जायगा—ऐसा भी उनका मत है । यदि सचमुच ऐसा ही हुआ तो इसका अर्थ यह होगा कि इन महाराष्ट्रों के पास आज से अधिक घातक शस्त्र और सैन्य-बल रहेगा; किसी समझौते के बावजूद भी वे परस्पर शंकित और भयभीत रहेंगे और आश्चर्य नहीं कि फिर उनमें वर्चस्व के लिए घनघोर युद्ध ठने । इसमें १०-५ वर्ष का समय लग सकता है । परन्तु पंडितजी के भविष्य के अनुसार दुनिया इस युद्ध के अन्त में अधिक स्वतंत्र, अधिक निर्भय, अधिक सहयोग-प्रवृत्त रह जायगी । यह नई संसार व्यवस्था तो आकर्षक और स्वागत-योग्य नहीं मालूम होती ।

इसके विपरीत मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि बीच में समझौता न हुआ तो युद्ध के अन्त में जर्मनी और ब्रिटेन दोनों बहुत कमज़ोर पड़ जावेंगे और उसके भीषण परिणामों में से शस्त्र और हिंसा के प्रति ग्लानि पैदा होगी एवं अहिंसात्मक समाज-रचना की ओर विश्व के राजकाजियों का--विचारकों का ही नहीं--ध्यान जायगा । फलतः इस महा भयंकर बुराई में से विश्व के लिए एक मंगलदायक व्यवस्था जन्मेगी । शस्त्र-बल-रहित एकाधिकार प्रथा का उच्छेद होगा और अहिंसा-सहयोग-मूलक शासन-पद्धति प्रचलित होगी । ये राष्ट्र छोटे रहें या बड़े, राष्ट्र की मर्यादा क्या हो--भौगोलिक, सांस्कृतिक या और कुछ ?--यह स्वतंत्र प्रश्न है । अब आगे समाज या शासन-व्यवस्था शस्त्र-बल पर आधारित रहेगी या नैतिक बल पर यही असली सवाल है ।

यदि दुर्योधन की इस उक्ति के कि **"केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि"**

युद्ध्यमान राष्ट्र सुधबुध ही खो बैठें तब तो पं० नेहरू का भविष्य ही सच होकर रहेगा। परन्तु यदि राष्ट्र और समाज के ज़िम्मेदार नेता और महान् पुरुषों की तरह उन्होंने इस महा-विग्रह के मूल और परिणाम पर विचार किया और उसमें से भविष्य के लिए मार्ग ढूंढना चाहा तो मेरा भविष्य सच निकलना चाहिए। संसार को सुख शांति और स्वाधीनता तो इसी भविष्य की सत्यता पर अवलम्बित रहेगी।

रक्षा का प्रश्न

योरपीय महायुद्ध जिन स्थितियों में से गुजर रहा है उन्हें देखते हुए हिन्दुस्तान में यह आशंका हो रही है कि यहाँ भी संभव है बाहरी हमले हों और भीतरी उत्पात या अराजकता फूट निकले। भारत न 'नाजीवाद' की विजय चाहता है, न 'साम्राज्यवाद' के चुंगल में फँसा रहना चाहता है, न किसी दूसरे ही राष्ट्र का गुलाम बनना बरदाश्त करेगा ऐसी दशा में यह सवाल है कि, देश की रक्षा के लिए क्या उपाय होना चाहिए। जिनका हिंसात्मक उपायों में विश्वास है वे सेना और शस्त्रास्त्रों की तैयारी में लग रहे हैं; पर वे भूल जाते हैं कि योरप की संग्राम-भूमि में शस्त्र-सेना-सज्जित राष्ट्रों के तमाम शस्त्रास्त्र बेकार साबित हुए हैं; तब क्या भारतवर्ष, जो १५० वर्षों से शस्त्रहीन है, जिसके शस्त्रास्त्र-संस्कार भी लुप्त होगये हैं, जो शस्त्रास्त्र-साधन-शून्य भी है, इसी घड़ी अमोघ शस्त्रास्त्रों और अपराजेय सेना की व्यवस्था कर सकता है? और यदि कर भी सका तो क्या इससे विषम, क्याकुल, अधीर, असहाय-सी बन रही दुनिया को कोई सान्त्वना, पाठ, उदाहरण आदर्श, मार्ग-दर्शन मिलेगा? इनका निश्चित उत्तर यही है कि न तो शस्त्रास्त्र और सेना कारगर ही हो सकते हैं और न अभीष्ट ही हैं। सिद्धान्त और व्यवहार दोनों कसौटियों पर वे नहीं उतरते।

तब अहिंसात्मक रक्षा कैसे की जाय? यहाँ 'रक्षा' का अर्थ समझ लेना चाहिए। बाहरी हमलाइयों या भीतरी उत्पातियों के मुकाबले का नाम ही 'रक्षा' नहीं है। ऐसे हालात पैदा कर देना, ऐसी व्यवस्था व व्यूह रचना करना कि जिससे हमले या उत्पात की सम्भावना ही नहीं या कम रह जाय, 'रक्षा' का प्राथमिक, प्रबल, अवरोधक और कारगर उपाय हो सकता है। जैसे आततायियों, उनके पृष्ठ-पोषकों के परिचय में आया जाय, उन्हें अपने सद् हेतु और सद्भावना से प्रभावित किया जाय, उनके दुष्कृत्यों के फल का चित्र उनके सामने खड़ा किया जाय और घर-घर में अहिंसात्मक असहयोग की भावना फैला दी जाय। किसी भी उत्पाती या हमलाई से मुहल्ले, गाँव, शहर, तहसील, ज़िला, प्रान्त और सारे देश के लोग किसी प्रकार का सहयोग न करें। इस समय तो इस भावना और ऐसे संगठन के लिए बड़ा ही सुयोग है।

साथ ही हम अहिंसात्मक वीरों का एक दल खड़ा करें जो प्रत्यक्ष हमले या उत्पात के अवसर पर डँटकर, कतार बाँधकर या कुण्डल बनाकर या स्थिति के अनुसार और तरह से हमलाइयों और उत्पातियों का मुकाबला करें। उनकी एक ख़ास वर्दी हो, झण्डा हो, सीटी या बिगुल हो, कुछ नारे हों, और जैसे हिंसात्मक फौज या पुलिस मारने-पीटने के लिए पहुँचती है उसी तरह यह दल बचाने और मरने के लिए आगे बढ़ेगा। आततायी इन्हें मारकर ही या असमर्थ बनाकर ही आगे बढ़ सकेगा। इसके बावजूद यदि हमला-

इयों ने कब्जा कर लिया या उत्पात सफल हो गये तो रक्षा के लिए कर लिया गया हमारा रचनात्मक काम इस अवसर पर हमारे खूब काम आवेगा। पूरे और पक्के असहयोग के द्वारा उनकी स्थिति को असह्य और असम्भव बना दे सकेंगे। इसके लिए आवश्यकता है अथक प्रयत्न की और मर-मिटने की तैयारी की। जहाँतक मेरी बुद्धि और दृष्टि काम करती है, हिंसा का मार्ग हिन्दुस्तान के लिए ईश्वर ने ही बन्द कर दिया है। यदि किसी अंश में सफल रक्षा करने की हम आशा रख सकते हैं तो अहिंसात्मक असहयोग और प्रतिकार के ही द्वारा। यदि यह असम्भव मालूम होता हो तो हमें गुलामी के नरक में फँसे रहने के लिए तैयार रहना चाहिए। सवाल बहस और दलील का नहीं, काम करने का है। सजीव क्रियाशीलता सौ दलीलों का जवाब हुआ करती है।

१९-७-४० ह० उ०

मण्डल की ओर से—

सम्पर्क बढ़ाने का साधन

बहुत अरसे से हमारी यह इच्छा थी कि कोई ऐसा साधन पैदा किया जाय जिससे 'मण्डल' की पुस्तकों के प्रेमी पाठकों से उनकी इच्छा और रुचि का हमें ज्ञान होता रहे और उनतक अच्छी और उपयोगी पुस्तकों की सूचना नियमित रूप से पहुँचती रहे। हमें इस बात की खुशी है कि अब 'जीवन-साहित्य' के ज़रिये हम अपनी बातें आपतक नियमित रूप से पहुँचा सकेंगे। आपको भी हम निमन्त्रण देते हैं कि आपके पास कोई ऐसे विचार हों, जिनको आप अपने साथी पाठकों के पास पहुँचाना चाहें, उनको हमारे पास भेजा करें। उन्हें हम पाठकों तक पहुँचाने का अवश्य प्रयत्न करेंगे।

'जीवन-साहित्य'

यह 'जीवन-साहित्य' आपके ही लिए ख़ास तौर से निकाला जा रहा है। इसका वार्षिक मूल्य २) है। पर जो सज्जन १) देकर 'मण्डल' के स्थायी ग्राहक बन चुके हैं या बनेंगे, उनके लिए इसका वार्षिक मूल्य १) ही रहेगा। पर मण्डल के जो ग्राहक वर्ष भर में ५) की मण्डल की पुस्तकें नहीं लेंगे, उनसे 'जी० सा०' के २) ही लिये जावेंगे। जो सज्जन २) देकर 'जी० सा०' के ग्राहक बनेंगे, उनको 'मण्डल' की पुस्तकें पौने मूल्य में दी जावेंगी और वे 'मण्डल' के भी ग्राहक मान लिये जावेंगे। पर उनको वर्ष में ५) के बजाय ४) की ही पुस्तकें ख़रीदनी होंगी। जी० सा० के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं। पर ग्राहक बनने के लिए रुपया मनिआर्डर, पोस्टल सर्टिफिकेट या पोस्ट के टिकटों के रूप में ही भेजना होगा। वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

पुस्तकें तथा 'जीवन-साहित्य' मिलने की सुविधा

पिछले महीने में 'मण्डल' के ग्राहकों को नवीन पुस्तकों की सूचना गई है। उनसे सबको यह पता लग ही गया है कि पंजाब, दिल्ली, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त (हिन्दी), तथा राजपूताना-मध्यभारत चर्खा-संघ के अपने खादी-भंडारों पर 'मण्डल' से प्रकाशित पुस्तकें बिकने को काफ़ी तादाद में रहती हैं। आज से 'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों को 'मण्डल' की पुस्तकें उपरोक्त भण्डारों से पौने मूल्य में मिला करेंगी। 'जीवन साहित्य' भी वहीं से ऊपर बताये नियमों पर मिला करेगा।

कानपुर में सोल एजेन्सी

इसके अलावा कानपुर नगर में भी 'मण्डल' की सोल एजेन्सी 'साहित्य निकेतन' को दी

गई है। 'मण्डल' की सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को वहाँसे पौने मूल्य में मिल सकेंगी तथा 'जी० सा०' के ग्राहक भी वहाँ बन सकते हैं।

एक शिकायत

ग्राहक-बन्धुओं से यह हमारी एक आम शिकायत है कि उनको जो सूचना-पत्र भेजे जाते हैं, उनके उत्तर, बग़ैर पोस्टेज लगाये भेज देने की सुविधा कर देने पर भी, वे नहीं देते हैं। यह ठीक नहीं है। जब आपको पोस्टेज नहीं देना पड़ता तो—आप पुस्तकें लें या न लें,——अपने निर्णय का उत्तर तो देना ही चाहिए। आशा है आगे से आप इस पर ज़रूर ख़याल करेंगे और पिछले महीने जो सूचनायें गई हैं, उनके उत्तर ज़रूर देंगे। यह भी देखा गया है कि सब ग्राहक वर्ष भर में ५) की पुस्तकें ख़रीदने के नियम का पूरा पालन नहीं करते हैं। इससे हमें बड़ी असुविधा उठानी पड़ती है। अगर यह मालूम हो जाय कि 'मण्डल' के इतने ग्राहक नियमित रूप से इतनी पुस्तकें लेने वाले हैं, तो पुस्तकें छापने में बड़ी सहूलियत हो जाय। ग्राहकों से प्रार्थना है कि इस मामले में वे हमारी कठिनाई को हलका करने का प्रयत्न करेंगे।

'मण्डल' की शाखाओं का कार्य

पाठक यह तो जानते ही हैं कि दिल्ली शहर, लखनऊ तथा इन्दौर में 'मण्डल' कीशाखायें खुली हुई हैं और उत्तमता से अपना कार्य कर रही हैं। बिक्री निरंतर बढ़ रही है और ज्यों-ज्यों पाठकों और ग्राहकों का अधिकाधिक सहयोग मिलता जायगा, त्यों-त्यों 'मण्डल' को बहुत बढ़ी हुई संस्था के रूप में आप देखेंगे। आपका सहयोग बढ़ता रहा——जोकि बढ़ेगा ही—और परिस्थितियां अनुकूल रहीं तो भारत के और दूसरे प्रधान-नगरों में मंडल की शाखायें खोलने का विचार चल रहा है।

नये प्रकाशन

जुलाई महीने के अंततक जो पुस्तकें छप चुकी हैं, उनकी सूचनायें तो ग्राहकों के पास जाचुकी हैं। अगस्त के अंततक निम्न पुस्तकों के छपजाने की आशा है, जो प्रेस में छप रही हैं——

१. **समाजवाद : पूँजीवाद**—जार्ज बर्नाड शा की प्रसिद्ध पुस्तक Intellegence Women's Guide to Socialism and Capitalism को पढ़कर उसके आधार पर श्री शोभालाल गुप्त ने स्वतंत्र भाषा में इसे लिखा है। मूल्य लगभग ।।।) होगा।

२. **मेरी मुक्ति की कहानी**—टॉल्स्टाय की आत्म-कहानी। मूल्य लगभग ।।)

३. **खादी-मीमांसा**——खादी-विषयक आजकल के तमाम प्रयोगों और परीक्षणों को ध्यान में रखकर ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय ढंग से लिखी गई पुस्तक——दाम लगभग १।।)

४. **संसार की शासन-प्रणालियाँ**——दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों की शासन-प्रणालियों का परिचय देने वाली पुस्तक——दाम १)

छपने जानेवाली पुस्तकें

निम्न पुस्तकें बिलकुल तैयार रखी हैं और प्रेस में किसी भी समय छपने दी जा सकती हैं——

१. हमारी आज़ादी की लड़ाई (हरिभाऊ उपाध्याय)
२. विद्यार्थी-धर्म (म० गांधी)
३. मंदिर (सात एकांकी नाटक : हरिकृष्ण 'प्रेमी')
४. हमारे आर्थिक प्रश्न (छगनलाल जोशी)

पुरस्कार-योजना

इस वर्ष 'मण्डल' से हम कृषि, स्वास्थ्य और गोपालन पर कुछ पुस्तकें पुरस्कार देकर लिखवाने की योजना कर रहे है। हमारा विश्वास है कि अगले अंक में सम्पूर्ण योजना पाठकों के सामने रख सकेंगे।

पुनर्मुद्रण की पुस्तकें

रोटी का सवाल, व्यावहारिक सभ्यता, जब अंग्रेज़ नहीं आये थे, गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ, हिन्दुस्तान की समस्यायें आदि पुस्तकों के नये संस्करण हो गये हैं। समाज-विज्ञान, अंधेरे में उजाला, स्त्री-पुरुष, क्या करें ?, फांसी, आगे बढ़ो, हमारे राष्ट्रपति, मेरी कहानी, गांवों का सुधार और संगठन आदि पुस्तकों के संस्करण समाप्त हो रहे हैं और इनमें से कई पुस्तकें फिर से छप रही हैं, कई छपने जा रही हैं।

——मंत्री

हमारा नया प्रकाशन

हिन्दी-साहित्य की भूमिका

लेखक—शान्ति-निकेतन के संस्कृत-हिन्दी अध्यापक

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, शास्त्राचार्य

द्विवेदीजी हिन्दी के मार्मिक समालोचक और अध्ययनशील ग्रन्थकार हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ में एक नये ही दृष्टिकोण से हिन्दी-साहित्य पर विचार करके उन भूलों से सावधान किया है, जो अभी तक के हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने की हैं। (१) हिन्दी-साहित्य की विशेषता, (२) भारतीय चिन्ता का स्वाभाविक विकास, (३) सन्त-मत, (४) भक्तों की परपरा (५) योगमार्ग और सन्त-मत, (६) सगुण-मतवाद, (७) मध्य-युग के सन्त, (८) भक्ति-काल के प्रमुख कवियों का व्यक्तित्व, (९) रीति-काव्य, हमारा (१०) साहित्य और उसके गुण-दोष, ये दस अध्यायऔर अन्त में सात बड़े-बड़े परिशिष्ट हैं। **मूल्य २ रुपया**

शिवाजी

लेखक—**सर जदुनाथ सरकार**

मुगलकालीन इतिहास के विषय में सरकार महाशय सबसे अधिक प्रामाणिक विद्वान् माने जाते हैं। अंग्रेज़ी और बँगला में इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण हो चुके हैं। उसीका यह हिन्दी-संस्करण है और हिन्दी में खुद सरकार महाशय ने लिखा है। इसमें अबतक की नई खोजों को भी उन्होंने शामिल कर दिया है और ये नई खोजें पहले-पहल इस हिन्दी-संस्करण में ही प्रकाशित हो रही हैं। साथ ही कई महत्त्व के प्राचीन ऐतिहासिक दुर्लभ चित्र भी दिये गये हैं। इसमें निष्पक्ष होकर गुणों के साथ शिवाजी के दोष और उनकी भूलें भी दिखलाई गई हैं, और प्रत्येक बात सप्रमाण लिखी गई है। **मूल्य डेढ़ रुपया**

कल्याणी

लेखक—**श्री जैनेन्द्रकुमार**

श्री जैनेन्द्रकुमार का नया सामाजिक उपन्यास। एक सुशिक्षित महिला की करुण कथा; सामाजिक जीवन में स्त्री की स्थिति का वास्तविक चित्र। वर्तमान समाज के सम्मुख एक नया प्रश्न। **मूल्य दो रुपया**

शरत्-साहित्य

शरत्-साहित्य का अठारहवाँ भाग भी प्रकाशित हो गया। इसमें 'दत्ता' नामक बहुत ही दिलचस्प उपन्यास निकला है। पहले के १७ भाग भी मँगाइये। हिन्दी में इतनी सस्ती और अच्छी पुस्तकमाला दूसरी नहीं है।

नोट—एक कार्ड लिखकर हमारा सूचीपत्र मँगाइये।

संचालक—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग़, बम्बई ४**

ज़रा ठहरिये!

इतनी जल्दबाज़ी की ज़रूरत नहीं !!

यह जान का बीमा है !!!

आपके भविष्य का प्रश्न है; आश्रितों के प्रति आपका पवित्र कर्तव्य है; वृद्धावस्था में आपको खुशहाली अथवा तङ्ग-दस्ती का सवाल है; आपके दूधपीते बच्चों की ज़िन्दगी का तार इससे बँधा हुआ है।

इसलिए

बीमा कराने से पहले ठण्डे दिल से सोचिए कि हम कब, कहाँ और किस प्रकार का बीमा करायें ?

परन्तु

न्यू एशियाटिक

'लाइफ़ इन्श्योरेन्स कम्पनी, लिमिटेड' में

आप बिना किसी पशोपेश के आज ही बीमा कराके निश्चिन्त हो सकते हैं।

मैनेजिङ्ग एजेन्ट्स :— **मेसर्स बिड़ला ब्रदर्स, लिमिटेड**
प्रधान कार्यालय:— **न्यू एशियाटिक बिल्डिंग्स, नई दिल्ली।**
शाखायें:— समस्त भारत के प्रमुख नगरों में

साधना-मंदिर-प्रकाशन

ये सब पुस्तिकायें प्रचारार्थ, लागत-मूल्य रखकर प्रकाशित की गई हैं;
इन्हें इकट्ठी तादाद में मँगवाकर मुफ्त बँटवाइए और इनका प्रचार कीजिए

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी-लिखित जीवनियाँ

१ जापान के गाँधी कागावा
२ अराजकवादी एमा गोल्डमेन
३ अराजकवादी लुई माइकेल
४ अराजकवादी मैलटेस्टा
५ प्रिंस क्रोपाटकिन
६ महापंडित राहुल सांकृत्यायन
७ अराजकवादी माइकेल वाकूनिन
८ इवान तुर्गनेव
९ पतिव्रता जयिनी
१० श्रीमती हैरियट एलीजबेथ स्टो
११ भारतभक्त दीनबंधु एण्ड्रूज़
१२ पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
१३ स्व० देवमित्र धर्मपाल

अन्य लेखकों की लिखी

१४ मंगलमय महावीर
१५ स्वामी भवानीदयाल संन्यासी
१६ भगवान् बुद्ध
१७ बाल-शिक्षण और माँ-बाप
१८ विप्लव-गान या क्रान्ति-गीत
१९ अमर-गान भाग--१
२० मेरी भावना
२१ पुस्तक-महिमा और पुस्तकालय
२२ शान्तिनिकेतन का हिन्दी-भवन

प्राप्ति स्थान—**साधना-मंदिर**
चन्द्रबाग, सी० पी० टैंक रोड, गिरगांव, बम्बई

अपने बालक को मैं कैसे समझूँ ?

क्या मैं सचमुच में
शिक्षक हूँ ? माता-पिता हूँ ?

इन प्रश्नों के प्रामाणिक उत्तर और बाल-जीवन के प्रत्येक पहलू पर मनोवैज्ञानिक मनन

इस पत्र की ख़ास विशेषता है

१. प्रतिमास 'बालहित' ३२ पृष्ठों का ठोस मनोवैज्ञानिक वाचन देता है।
२. प्रतिमास देश-विदेश के धुरन्धर विद्वान् तथा अनुभवी शिक्षक अपने अनुभव देते हैं।
३. 'बालहित' हिन्दी-संसार का पहला मासिक है, जो नूतन शिक्षण का संदेश फैला रहा है।
४. कलकत्ता विश्व-विद्यालय के प्रायोगिक मनोविज्ञान के आचार्य श्री हरिपद मैति प्रतिमास माता-पिता तथा शिक्षकों की कठिनाइयों के निःशुल्क उत्तर देते हैं।

इतना होने पर भी एक ८० पृष्ठ का संग्रहणीय विशेषांक ग्राहकों को मिलता है। तिसपर भी **वार्षिक मूल्य केवल २), नमूना ≡) आज ही ग्राहक-श्रेणी में आ बिराजिए।**

व्यवस्थापक, 'बालहित', उदयपुर

'राजस्थान'

[देशी राज्यों का सर्व-प्रमुख राष्ट्रीय हिन्दी साप्ताहिक]

पढ़ें और पढ़ावें

इससे,

गैरजानकार जानकार होंगे
साहसहीन साहसी होंगे
असंगठित संगठित होंगे

देशी राज्यों की समस्याओं पर विचारों और समाचारों का बेजोड़ संकलन

'राजस्थान'

द्वारा पाँच रुपये वार्षिक में प्रति सप्ताह आपके पास पहुँचेगा

मुफ्त नमूने की प्रति } :: { व्यवस्थापक, 'राजस्थान', अजमेर,

राजपूताना और मध्य भारत के लिए 'राजस्थान' ही विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन है

साहित्य-सन्देश

सम्पादक—गुलाबराय एम० ए०, श्री महेन्द्र

आप क्यों पढ़ें?—इसलिए कि

(१) हिन्दी की साहित्यिक और विशेषकर आलोचनात्मक जागृति का यह अग्रदूत है।
(२) हिन्दी के प्रमुख विद्वानों के विचारों का माध्यम है।
(३) आलोचना-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ मासिक है।
(४) हिन्दी में प्रकाशित पुस्तकों की जल्दी से जल्दी निष्पक्ष आलोचना प्रकाशित करना इसका मुख्य उद्देश्य है।
(५) वह होनहार विद्यार्थियों को साहित्य के पथ पर अग्रसर करता है।
(६) लेखकों को प्रोत्साहन देकर, उनकी कृतियों को लोकप्रिय बनाता है।
(७) वह हिन्दी-साहित्य की सभी प्रवृत्तियों एवं हिन्दी के सभी लब्धप्रतिष्ठित साहित्यिकों के बारे में नियम पूर्वक अध्ययनपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है।

यह पत्र यू० पी०, सी० पी० बिहार आदि की प्रान्तीय सरकारों तथा ग्वालियर जयपुर आदि कितने ही देशी राज्यों द्वारा स्वीकृत हैं। ३) वार्षिक। विद्यार्थियों तथा शिक्षा-संस्थाओं से २) मात्र। आज ही मनिआर्डर भेजकर ग्राहक बनियें। नमूना मुफ्त मँगाकर देखें

पत्र-व्यवहार का पता—"साहित्य-सन्देश" कार्यालय, आगरा

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

जूट कारपेट

अति सुन्दर और आकर्षक होने पर भी,
मज़बूत तथा क़ीमत में भी बहुत सस्ते हैं।

इसलिए
किसी भी प्रकार की सजावट के लिए
सब लोग जूट कारपेट को ही पसन्द करते हैं।

मिलने का पताः—
सभी जूट कारपेट की दुकानों में
तथा
खन्ना इन्डस्ट्रीज, बनारस सिटी
नेशनल नॉवेल्टी स्टोर, कानपुर
जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग
और
बङ्गाल स्टोर्स, लिमिटेड

टेलीफोन नं० कलकत्ता ३९३३, नं० ८ ए चौरंगी प्लेस कलकत्ता में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपके इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

एजेंसी के लिए निम्न पते पर लिखें :—

टेलीफोन नं० कलकत्ता ५६५ टेलीग्राम—जूट वीवर

बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता।

सर्वोदय

गांधीमत के अनुसार जीवनस्पर्शी सब विषयों की चर्चा करनेवाला
हिन्दी मासिक

सम्पादक—काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

इसमें निम्न सज्जनों के भी लेख आते हैं :—
गांधीजी, श्री राजेन्द्र बाबू, किशोरलालभाई मशरूवाला, डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या, विनोबाजी, जे० सी० और भारतन् कुमारप्पा, सतीशचन्द्र दासगुप्त, डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष, आचार्य जावडेकर, जयरामदास दौलतराम, जी० रामचन्द्रन्, निर्मल कुमार बसु, नरहरिभाई परीख, मगनभाई देसाई, कविवर मैथिलीशरणजी और सियारामशरणजी गुप्त आदि।

(हर महीने पहली तारीख को सर्वोदय कार्यालय, वर्धा से प्रकाशित होता है)
मूल्यः—एक अंक का छह आना
वार्षिक मूल्य—देश में रु. ३; ब्रह्मदेश में रु. ३॥; विदेश में ६ शिलिंग या १.५० डॉलर

राष्ट्रभाषा के प्रचारमें सभी प्रकारकी सहायता देनेवाली मासिक पत्रिका

"सबकी बोली"

वार्षिक चन्दा १।)
[राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा से संचालित]
सम्पादक—काका कालेलकर, श्रीमन्नारायण अग्रवाल
हर महीने की १५ वीं तारीख को निकलती है

इसमें आपको राष्ट्रभाषा-प्रचार-आन्दोलन की बहुत उपयोगी ताजी सामग्री, प्रचार-आन्दोलन की दिशा के संकेत, हिन्दी विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों के काम की बातें, कहानी, सरल कविता, शब्द-चर्चा, सरल शैली के निबन्ध, पात्र-चरित्र-चित्रण, कभी-कभी परीक्षा-प्रश्न-पत्रों के सरल उत्तर, महापुरुषों की जीवनियाँ इत्यादि पढ़ने को मिलेंगे। पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने में भी यह पत्रिका अपनी ओर से यथाशक्ति प्रयत्न करेगी। हिन्दुस्तानभर के राष्ट्रभाषा-प्रेमी इसके द्वारा अपने प्रचार तथा अनुभव राष्ट्र के सामने रख सकेंगे।

जो परीक्षार्थी 'सबकी बोली' के ग्राहक बनते वक्त **अपनी परीक्षा की क्रम-संख्या** लिख भेजेंगे, उन्हींको यह रु० १) में दी जायगी।

व्यवस्थापक—'सबकी बोली', वर्धा

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. 'जीवन-साहित्य' अंग्रेज़ी महीने की पहली तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

२. 'जीवन-साहित्य' मण्डल की दरीबा, दिल्ली; अमीनुद्दौलापार्क, लखनऊ; और बड़ा सराफ़ा, इन्दौर शाखाओं पर पाठकों को नियमित रूप से मिल सकेगा और वहां ग्राहक भी बन सकेंगे। कानपुर के हमारे सोल-एजेंट 'साहित्य-निकेतन' तथा युक्त प्रांत, बिहार, मध्यप्रांत, राजपूताना-मध्यभारत, दिल्ली तथा पंजाब के चर्खा-संघ खादी-भंडारों पर भी वह मिलेगा और वहाँ भी उसके ग्राहक बनाये जायेंगे।

३. ग्राहक किसी भी महीने से बन सकेंगे, परन्तु साल भर से कम के लिए ग्राहक नहीं बनाये जावेंगे।

४. मास के पहले सप्ताह में यदि अंक पाठकों के पास न पहुँचे, तो पहले अपने स्थानिक डाकघर में तलाश करके फिर अपने नाम तथा ग्राहक-संख्या सहित कार्यालय को लिखना चाहिए।

५. 'जीवन-साहित्य' में प्रकाशनार्थ लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें आदि संपादक के नाम तथा व्यवस्था-सम्बन्धी पत्र, चन्दा आदि व्यवस्थापक के नाम आने चाहिएँ।

६. पत्र का वार्षिक मूल्य इस प्रकार है :—

भारत में	**बर्मा में**	**विदेश में**	**एक प्रति का**
२)	२॥)	५ शिलिंग	।)

नमूने की प्रति के लिए चार आने के टिकट भेजना चाहिए।

७. पत्र का वार्षिक मूल्य डाक के टिकटों में या पोस्टल आर्डर से भेजा जा सकता है; पोस्टल आर्डर को क्रॉस न करें।

८. पता ज्यादा समय के लिए बदलवाना हो, तो कार्यालय को पत्र लिखकर बदलवालें। यदि थोड़े समय के लिए बदलवाना हो, तो स्थानिक डाकघर से ही व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

९. पत्र-व्यवहार करते समय **अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।**

१०. 'जीवन-साहित्य' में शिष्ट साहित्य, उपयोगी देशी वस्तुओं आदि का विज्ञापन लेने की गुंजाइश रक्खी गई है। पत्र में जिस प्रकार का साहित्य रहेगा, उसके विपरीत दृष्टिकोण का विज्ञापन नहीं लिया जायगा। विज्ञापन के दर इस प्रकार होंगे :

कवर का दूसरा पृष्ठ	४०)	**प्रति मास**
" **तीसरा पृष्ठ**	३५)	"
" **चौथा पृष्ठ**	५०)	"
पत्र के अंत में (पाठ्य विषय के सामने)	३०)	"
साधारण पृष्ठ	२५)	"

११. विज्ञापन-एजेंटों को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। एक वर्ष के विज्ञापन का दाम पेशगी आने पर ३३% कमीशन दिया जायगा।

व्यवस्थापक,

'जीवन-साहित्य'

सस्ता साहित्य मण्डल,

कनॉट सर्कस, नई दिल्ली।

Regd. No.....L-4671.

'मण्डल' का परिचय

१—सस्ता साहित्य मंडल 'सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट' के अनुसार रजिस्टर्ड एक सार्वज संस्था है ।

२—हिन्दी में उच्च कोटि का राष्ट्रीय साहित्य सस्ते मूल्य में प्रकाशित करने के उद्देश्य से १९२५ में अजमेर में सर्वश्री जमनालाल बजाज, घनश्यामदास बिड़ला, हरिभाऊ उपाध्याय, महावीरप्र पोद्दार, जीतमल लूणिया आदि सज्जनों ने इसकी स्थापना की ।

३—१९३४ में मण्डल का कार्यालय अजमेर से दिल्ली आगया । अब मण्डल का प्रधान कार्या कनाट सर्कस, नई दिल्ली में है । लखनऊ, इन्दौर तथा पुरानी दिल्ली में उसकी शाखायें हैं ।

४—' मण्डल ' से निम्नलिखित मालाओं में पुस्तकें प्रकाशित होती हैं—

(१) सर्वोदय साहित्य माला—इस माला के अन्तर्गत जनरल पुस्तकें तथा नीचे की नं० २, ३, मालाओं की पुस्तकें निकलती हैं ।

(२) लोक साहित्य माला—इसमें साधारण जनता के काम की सब विषयों पर ज्ञानवर्द्धक विचारोत्तेजक पुस्तकें निकलती हैं ।

(३) गांधी साहित्य माला—इसमें गांधीजी के चुने हुए लेखों का विषयवार संग्रह निकलता है

(४) टाल्स्टाय ग्रंथावलि—इसमें टाल्स्टाय के चुने हुए ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं ।

(५) नवजीवन माला—इसमें लोकोपयोगी छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तकें निकलती हैं ।

(६) सामयिक साहित्य माला—इसमें संसार तथा हिन्दुस्तान के सामयिक प्रश्नों तथा समस्या पर विचारोत्तेजक पुस्तकें निकलती हैं ।

५—ऊपर लिखी सब मालाओं में मण्डल से अबतक लगभग १२५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी जिसमें लगभग आधी के दो से लगाकर सात संस्करण तक हो चुके हैं । यह मण्डल की पुस्तकों के सर्वप्रि होने का प्रमाण है ।

६—अपने स्थापित होने के समय से अब तक मण्डल ने लगभग ३२००० पृष्ठों की ४०००० पुस्तकें छापकर बेची हैं !

७—मण्डल से महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, स० राधाकृष्णन्, च० राजगोपालाचार्य त डॉ० पट्टाभि सीतारामैया-जैसे महान् नेता; टॉल्स्टॉय, ह्यूगो, मोटले, क्रोपाटकिन, केम्पिस, मार्डेन, मैक्सि खलील जिब्रान जैसे पश्चिमी विचारकों तथा डॉ० भगवान्दास, काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाल स्व० रामदास गौड़, हरिभाऊ उपाध्याय, वियोगी हरि, वामन मल्हार जोशी जैसे भारतीय साहित्य प्रसिद्ध लेखकों की रचनायें प्रकाशित हुई हैं ।

८—मण्डल के संचालक-मंडल में भारतवर्ष के निम्नलिखित सुप्रसिद्ध लोकनेता, व्यवसा साहित्यसेवी और कार्यकर्ता हैं :—

सर्वश्री घनश्यामदास बिड़ला, नई दिल्ली (अध्यक्ष); बाबू राजेन्द्रप्रसाद, पटना; जमनालाल बजा वर्धा; काका कालेलकर, वर्धा; हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर; पारसनाथ सिंह, कलकत्ता; देवदास गां नई दिल्ली; महावीरप्रसाद पोद्दार, गोरखपुर; जीतमल लूणिया, अजमेर तथा मार्तण्ड उपाध्याय, (मंत्री नई दिल्ली ।

९—'मण्डल' की सब शाखाओं की दुकानों में हिन्दी साहित्य की सभी विषयों की उच्चकोटि पुस्तकें हमेशा मिलती हैं ।

१०—संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत, बिहार, राजस्थान तथा पंजाब के खादी भण्डारों पर से मंडल पुस्तकें मण्डल के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में मिला करेंगी । कानपुर में 'साहित्य निकेतन' मण्डल सोल एजेंट हैं ।

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहीं से मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित ।

—तमसो मा ज्योतिर्गमय—

पुस्तकालय

जीवन साहित्य

वर्ष १ : अंक २ : : सितंबर : १९४०

सम्पादक

हरिभाऊ उपाध्याय

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

कनाट सर्कस नई दिल्ली

शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

क मूल्य : दो रुपया : : (मण्डल के ग्राहकों से १) : : एक प्रति का : चार

विषय-सूची

१. पूजागीत [श्री सोहनलाल द्विवेदी एम्. ए., एल-एल. बी.] ४७
२. 'साहित्यिक' क्या करें ? [सम्पादकीय] ४८
३. सिर्फ़ शिक्षण [आचार्य विनोबा] ५०
४. इंग्लिस्तान और भारत का आपसी सम्पर्क [श्री श्रीप्रकाश एम. एल. ए., बार-एट-लॉ] ५२
५. वेदों का उत्सर्जन और उपाकरण ५५
[डॉ० हरि रामचन्द्र दिवेकर एम. ए., डी. लिट्, साहित्याचार्य]
६. साहित्य और जीवन ५७
[श्री बनारसीदास चतुर्वेदी]
७, श्रम-पूजा ६१
[प्रो० प्रभाकर माचवे एम. ए.]
८. साहित्य से सर्वोदय ६५
[श्री जनार्दनराय बी. ए.]
९. अली की मा [श्री प्रभुदास गांधी] ६८
१०. आर्य-संस्कृति के प्रतिष्ठाता तुलसीदास ७०
[श्री सुधीन्द्र एम्. ए.]
११. जीवन-साहित्य का एक उपेक्षित अंग
[श्री सत्यदेव विद्यालंकार]
१२. प्रस्तुत प्रश्न
हमारे अभाव; राजस्थान
साहित्यिक संगठन की समस्या;
'स्वानुभूति' और 'मनोवे
का रेचन' ?; हम क्या करें
१३. कसौटी पर
'दिमाग़ी ऐयाशी'; साधना-
मंदिर-प्रकाशन; 'एक क़दम आ
१४. हिन्दी-संसार में [साहित्यिक हालचाल
१५. क्या और कैसे ? [टिप्पणियाँ]
किन शब्दों में; जी० सा०
ललित साहित्य; सहेतुक या
अहेतुक; एक उपयोगी प्रस्ताव;
रा० हि० सा० सम्मेलन; दुःखद
स्थिति; पत्र-पत्रिकाओं का
स्टैण्डर्ड; एक पुकार; पृष्ठ संख्या
व पुरस्कार; स्व० अध्यापकजी;
१६. 'मण्डल' की ओर से—
१७. सुहृदों की नज़र में—

उन्नति लोक-प्रियता का प्रमाण है
पूरे हुए नये काम के आँकड़े

१९३५ १,२३,२८,६६५) रुपये
१९३७ १,४०,०८,७२५) ,,
१९३९ १,४२,८१,०५०) ,,

PROMPT & LIBERAL
HEAD OFFICE
BOMBAY

प्रॉसपेक्टस की कापी या एजेन्सी के नियमों के लिए लिखें :

दिल्ली ब्रांच : बॉम्बे लाइफ़ बिल्डिङ्ग नई दिल्ली
लखनऊ ब्रांच : लालबाग रोड लखनऊ
लाहौर ब्रांच : २६ दी माल लाहौर
चीफ एजेण्ट्स : राजपूताना एन्ड अजमेर मेरवाड़ श्रीनगर रोड अजमेर

दी बॉम्बे लाइफ एश्योरेंस कं०, लि०

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

सितम्बर १९४० — सम्पादक — वर्ष पहला
नई दिल्ली — हरिभाऊ उपाध्याय — अंक दूसरा

पूजा-गीत

वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो,
बंदिनी माँ को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो,
अर्चना के रत्न कण में एक कण मेरा मिला लो,
जब हृदय का तार बोले
शृङ्खला के बंद खोले,
हों जहाँ बलि सीस अगणित, एक सिर मेरा मिला लो।

सोहनलाल द्विवेदी

'साहित्यिक' क्या करें ?

[हरिभाऊ उपाध्याय]

मुझे आशा है कि डा० बाबूराम सक्सेना का लेख[१]—सम्मेलन क्या करे, क्या न करे—सब हिन्दी-भक्तों और हि० सा० सम्मेलन के प्रेमियों ने उतने ही ध्यान से पढ़ा होगा जितनी सच्चाई, सरगर्मी और स्पष्टहृदयता से उन्होंने उसे लिखा है। परीक्षाओं द्वारा, भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में हिन्दी का प्रवेश कराकर, तथा अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में हिन्दी-प्रचार-सम्बन्धी महात्माजी के आयोजन को हार्दिकता से अपनाकर सम्मेलन ने जो सेवायें की हैं, उनपर प्रत्येक हिन्दी-हितैषी को अभिमान ही हो सकता है। फिर भी हमारे जो साहित्यिक बन्धु सम्मेलन से असंतुष्ट हैं, उनके दृष्टि-बिन्दु और विचारों को समझ लेना आवश्यक है। इस आक्षेप को कि श्रद्धेय टण्डनजी सम्मेलन के सर्वेसर्वा हो रहे हैं, मैं सम्मेलन की अबतक की सफलता का मुख्य कारण मानता हूँ। सार्वजनिक संस्थाओं में जबतक कोई एक व्यक्ति प्राणरूप या पथप्रदर्शक-रूप नहीं होता तबतक, कम-से-कम भारत में तो, इस समय कोई संस्था फूल-फल नहीं सकती—यह निरपवाद अनुभव है। ऐसी आपत्तियाँ अक्सर कार्यमग्न लोगों की अपेक्षा विचारमग्न व्यक्तियों द्वारा ज्यादा उठाई जाती हैं। इसमें उनका दोष भी नहीं है। प्रकृत कार्य या संगठन के अनुभव की कमी के कारण उनसे ऐसा हो जाता है। वे अपनी इस मर्यादा को समझकर टीका-टिप्पणी और आक्षेप करें, तो वह अधिक फलप्रद हो सकता है। लेकिन उनकी इस अभिलाषा के साथ मेरी पूरी सहानुभूति है कि सम्मेलन को उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखवाने, ऐसे लेखकों को प्रोत्साहित करने या उनका संगठन बनाने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। मुझसे यदि पूछा जाय तो मैं सम्मेलन का हिन्दी-भाषियों में वही स्थान देखना चाहता हूँ जो भारतीयों के हृदय में काँग्रेस का है। सम्मेलन समय तक जितनी प्रचारक संस्था है, उत नियामक या नियंत्रक संस्था नहीं बनी है। कठोर समालोचक, अनुशासक और नियन्त्र बनना चाहिए। साहित्यिक गतिविधियों निर्भीक और निश्चयात्मक पथदर्शक उसे हो चाहिए। 'सम्मेलन-पत्रिका' की वही धाक हो चाहिए, जो 'कांग्रेस बुलेटिन' की है। लेखकों कुरुचियों, कुप्रवृत्तियों, प्रकाशकों की स्वार्थपर यणता या अनुचित प्रतिस्पर्द्धा, साहित्य-सेवि और संस्थाओं के पारस्परिक वैमनस्य तथा द्वे इनपर उसका प्रभावकारी अंकुश होना चाहिए

साहित्य-सेवी और राष्ट्र-सेवी—ऐसे दो भे खड़े करना अस्वाभाविक और आत्मघातक है क्या साहित्य-सेवी और क्या राष्ट्र-सेवी, दोन जीवन के उपासक हैं—दोनों के उपकर भिन्न-भिन्न हैं, अभिव्यक्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं दोनों विरोधक नहीं, परस्पर पूरक हैं। हिन्दी लिए यह बड़े गौरव की बात है कि उस अच्छे-अच्छे सेवक और लेखक आज देश नेतावर्ग में हैं और देश की पराधीनता के प्रश्न को हल करते हुए हिन्दी-माता की प्रगति मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। उनको अरुचि की दृष्टि से देखना, उनके प्रति मन में असूया का भाव आने देना हमारी अपनी ही हीनता का सूचक होगा।

'साहित्य' को केवल 'ललित साहित्य' तक मर्यादित या संकुचित करके अपना अलग जत्था या जाति कायम करना हानिकारक होगा। 'ललित साहित्य' की उन्नति या विकास के लिए ऐसा किया जाय तो वह वाञ्छनीय है। जो भूगर्भशास्त्र, सुजननशास्त्र, मनोविज्ञान, शिक्षण-विज्ञान या राजनीति पर ज्ञान और अनुभवपूर्ण ग्रंथ लिखें, वे क्या साहित्यिकों की श्रेणी में बैठने योग्य नहीं समझे जाने चाहिएँ? या जो हिन्दी का

---

[१] "सम्मेलन-पत्रिका" संख्या १०-११ में प्रकाशित

प्रचार, संगठन अथवा विस्तार करने में लगे हुए हैं, उनके लिए सम्मेलन के सभापतित्व का पद निषिद्ध होना चाहिए ? हमारे जीवन की तरह हमारा 'साहित्य' और 'साहित्य-सम्मेलन' सर्वव्यापी ही हो सकता है ।

सभापतित्व को मानादर की वस्तु बना लेना सम्मेलन को निष्प्राण बनाने और सभापति को निकम्मा समझने के बराबर हो जाता है । सभापति के चुनाव में योग्यता और सेवा के साथ ही कार्यक्षमता और कार्यलीनता का भी विचार होना चाहिए ।

उर्दू की बुराई करने से हिन्दी का कोई भला और लाभ नहीं हो सकता । हिन्दी अपनी उत्तमता और उपादेयता को बढ़ाती रहेगी, तो उर्दू के प्रचार से उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता । अपाहिज, आलसी, अकर्मण्य ही दूसरों को कोसते हैं; समर्थ, कर्मवीर और पुरुषार्थी अपने निश्चित पथ पर निश्चित कदम से आगे बढ़ते चले जाते हैं । हिन्दू-मुसलमान यदि हिन्दुस्तान से बाहर नहीं किये जा सकते, तो दोनों को भाई बनकर ही रहना है । इसी तरह हिन्दी-उर्दू को भी बहनें बनकर ही रहना होगा । मेरी तो समझ में ही नहीं आता कि यह मोटी-सी बात हमारे उन विद्वानों के गले क्यों नहीं उतरती, जो हिन्दी-उर्दू के झगड़ों में इतना रस लेते हैं ? भाषा कोई ईश्वर या ईश्वरीय नियम की तरह अटल वस्तु तो है नहीं ; देवभाषा गई, प्राकृत आई; प्राकृत भी गई और उसकी जगह भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषायें हो गईं । हिन्दी आज भी उन सबमें सर्वोपरि है । हिन्दी का भी स्वरूप दिन-दिन बदलता जा रहा है और यह उसकी सजीवता का लक्षण है । आज की हिन्दी चन्द बरदाई को ज़रूर अखरेगी; और चन्द बरदाई की हिन्दी को न हमारे पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी और न वीर सावरकर ही आज अपनावेंगे । देश-काल की आवश्यकतानुसार भाषा का रूप सर्वदा बदलता रहेगा । मुझे तो विश्वास है कि यदि हम धीरज, दूरदर्शिता और समयसूचकता से काम लेंगे, तो हिन्दी-उर्दू का झगड़ा भी अपने आप खतम हो जायगा । हम अपना समय व शक्ति हिन्दी की सेवा और उन्नति में ही लगावें, उर्दू का विरोध और बुराई करना क़तई बन्द कर दें ।

जैसे नेता किसीके बनाये नहीं बनता, वैसे ही साहित्यिक भी बनाया नहीं जा सकता । जिसके हृदय में साहित्य-सेवा की अदम्य प्रेरणा उठेगी, और जिसमें ऐसी योग्यता भी होगी, वह न किसी के दबाये दबेगा, न किसीके रोके रुकेगा । वह अपना संदेश देकर ही, अपना मिशन पूरा करके ही रहेगा । रोटी, परिवार, सुख, स्तुति, मान, पद, इन सबके वह ऊपर रहेगा; ये उसके चरणतल तक ही पहुँचकर रह जायेंगे । जबतक ये बातें हमको प्रभावित करती हैं, तबतक समझ रखना चाहिए कि हिन्दी में अभी 'साहित्यिक' पैदा नहीं हुआ । ऐसे साहित्यिक पैदा करने का उपाय है 'तप' । 'तप' से हमारा पुण्य बढ़ेगा । तभी सच्चे साहित्यिक के जन्म लेने योग्य वातावरण तैयार होगा ।—

यद्दुरापं दुराम्नायं दुराधर्षं दुरन्वयम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ।।[1]

अर्थात् संसार में जो कुछ भी कठिन या असंभवप्राय हो वह सब तप से सिद्ध हो जाता है । किसान के तप से ही खेती फूलती-फलती है; मजदूर-कारीगर के तप से कारखाने चलते व पनपते हैं; हम साहित्य में खपनेवाले जब स्वेच्छापूर्वक कष्टसहन द्वारा शरीर, वाणी और मन को पवित्र और समर्थ बनाने का यत्न करेंगे, तभी 'रवीन्द्र', 'तिलक', 'गांधी', 'बर्नर्ड शा' 'रोमाँ रोलाँ'-जैसों का अवतार अपने बीच में कर सकेंगे ।

---

१. महाभारत, आश्वमेधिक पर्व अ० ५१,श्लोक १७

सिर्फ शिक्षण

[आचार्य विनोबा]

एक देशसेवाभिलाषी युवक से किसीने पूछा—"कहिए ! अपनी समझ में आप क्या काम अच्छा कर सकते हैं ?"

उसने उत्तर दिया "मेरा ख़याल है मैं सिर्फ़ शिक्षण का काम कर सकता हूँ और उसीका शौक़ है ।"

"ठीक है, अक्सर आदमी को जो आता है, मजबूरन उसका उसे शौक़ होता है, पर यह कहिए कि आप दूसरा कोई काम कर सकेंगे या नहीं ?"

"जी, नहीं । दूसरा कोई काम नहीं करना आवेगा । सिर्फ़ सिखा सकता हूँ । वह अच्छा सिखा सकता हूँ, यह विश्वास है ।"

"हाँ, हाँ, अच्छा सिखाने में क्या शक़ है; पर अच्छा क्या सिखा सकते हैं ? कातना, धुनना, बुनना अच्छा सिखा सकेंगे ?"

"नहीं, वह नहीं सिखा सकता ।"

"तब सिलाई ? रंगाई ? बढ़ईगिरी ?"

"ना, यह सब भी कुछ नहीं ।"

"रसोई बनाना, पीसना वग़ैरा घरेलू काम सिखा सकेंगे ?"

"नहीं काम नाम से तो मैंने कुछ किया ही नहीं, मैं सिर्फ़ शिक्षण का............

"भाई, जो पूछा जाता है, उसीमें 'नहीं' कह देते हो; और कहते हो सिर्फ शिक्षण का काम कर सकता हूँ; इसके मानी क्या हैं ? बाग़वानी का काम सिखा सकिएगा ?"

देशसेवाभिलाषी ने ज़रा गरम होकर कहा "यह क्या पूछते हैं ? मैंने शुरू में कह दिया न, मुझे दूसरा कोई काम करना नहीं आता । मैं हिन्दी-साहित्य सिखा सकता हूँ ।"

प्रश्नकर्त्ता ने ज़रा मज़ाक से कहा—"अबकी ठीक बात कुछ आपके समझ में आई ! आप 'रामचरितमानस' जैसी पुस्तक लिखना सिखा सकते हैं क्या ?"

अब तो देशसेवाभिलाषी महाशय का पारा गरम हो गया और कुछ ऊटपटाँग बोलनेवाले ही थे कि प्रश्नकर्त्ता बीच में ही बोल उठा—"शान्ति, क्षमा, तितिक्षा रखना सिखा सकेंगे ?"

लीजिए, हद हो गई । आग में जैसे मिट्टी का तेल उँडेल दिया हो । यह संवाद ख़ूब ज़ोर से भभकता, लेकिन प्रश्नकर्त्ता ने तुरन्त पानी डालकर बुझा दिया ।

"मैं आपकी बात समझ गया । आप लिखना-पढ़ना सिखा सकेंगे और इसका भी जीवन में थोड़ा-सा उपयोग है; बिलकुल नहीं हो ऐसा नहीं है लेकिन आप यह बतलाइए कि आप बुनाई सीखने को तैयार हैं ?"

"अब कोई नई चीज सीखने का हौसला नहीं है और उसमें भी बुनाई का काम तो मुझे आने ही का नहीं । क्योंकि आजतक हाथ को ऐसी किसी चीज़ की आदत ही नहीं ।"

"माना, सीखने में कुछ ज्यादा वक्त लग जायगा, लेकिन आवेगा ही नहीं कैसे ?"

"मैं समझता हूँ आवेगा ही नहीं । पर मानिए बड़ी मेहनत से आया भी तो मुझे इसमें बड़ा झंझट लगता है; इसलिए मुझसे नहीं होगा; यही मानिए ।"

"ठीक है, जैसे लिखना सिखा सकते हैं, वैसे खुद लिखने का काम भी कर सकते हैं ?"

"हाँ, जरूर कर सकता हूँ । लेकिन सिर्फ बैठे लिखते रहने का काम है झंझटी; फिर भी उसके करने में कोई आपत्ति नहीं है ।" यह बातचीत यहीं पूरी हो गई । नतीजा इसका क्या हुआ, यह जानने की हमें जरूरत नहीं ।

शिक्षकों की मनोवृत्ति समझने के लिए यह बातचीत काफ़ी है । शिक्षक याने

किसी तरह की भी जीवनोपयोगी क्रिया-शीलता से शून्य;

कुछ नई कामलायक चीज़ सीखने में असमर्थ;

क्रियाशीलता से बराबर परेशान;
सिर्फ़ शिक्षण का घमण्ड रखनेवाला;
सिर्फ शिक्षण का मतलब है जीवन से तोड़कर विलग किया हुआ मुर्दार शिक्षण और शिक्षक के माने 'मृतजीवी' मनुष्य।

'मृतजीवी' को ही कोई-कोई बुद्धिजीवी कहते हैं। पर यह सरासर वाणी का व्यभिचार है, तब बुद्धिजीवी किसे कहना चाहिए? कोई गौतम बुद्ध, सुकरात, शंकराचार्य अथवा ज्ञानेश्वर आदि बुद्धि-जीवन की ज्योति जगाकर दिखाते हैं। 'गीता' में बुद्धि-ग्राह्य जीवन का अर्थ अतीन्द्रिय जीवन बतलाया है। जो इन्द्रियों का गुलाम है, जो देहासक्ति से मारा हुआ है, वह बुद्धिजीवी नहीं हो सकता। बुद्धि का पति आत्मा है। उसे छोड़कर देहपरायण हो जानेवाली बुद्धि व्यभिचारिणी बुद्धि है। ऐसी व्यभिचारिणी बुद्धि के जीवन के माने हैं मरण; और ऐसा जीवनधारी मृतजीवी कहा जायगा। सिर्फ शिक्षण पर जीनेवाले जीव इस विशेष अर्थ में मृतजीवी होते हैं। इन सिर्फ शिक्षण पर जीनेवालों को मनु ने 'मृतकाध्यापक' उर्फ 'वेतन-भोगी शिक्षक' नाम देकर श्राद्ध के काम में उनका निषेध किया है। ठीक ही है। श्राद्ध में तो मृत पूर्वजों की स्मृति को जीवित करते रहना है और जिन्होंने प्रत्यक्ष जीवन को मृत कर दिखाया है, उनसे इस काम में क्या उपयोग है?

शिक्षकों को पहले 'आचार्य' कहा जाता था। आचार्य अथवा आचारवान्। स्वयं आदर्श जीवन का आचरण करते हुए राष्ट्र से उसका आचरण करालेनेवाला आचार्य है। ऐसे आचार्यों की करनी से ही राष्ट्र बने हैं। आज हिन्दुस्तान का नया ढाँचा बनना है। राष्ट्र-निर्माण का काम आज हमारे सामने है। आचारवान् शिक्षकों बिना वह सम्भव नहीं है। तभी तो राष्ट्रीय-शिक्षण का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण है। उसकी व्याख्या और व्याप्ति हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए।

राष्ट्र का सुशिक्षित वर्ग निरग्नि और निष्क्रिय होता जा रहा है। इसका उपाय राष्ट्रीय शिक्षण की आग चेताना ही है।

पर वह अग्नि चाहिए। अग्नि की दो शक्तियाँ मानी गई हैं। एक 'स्वाहा' और दूसरी 'स्वधा'। ये दोनों शक्तियाँ जहाँ हैं वहाँ अग्नि है। 'स्वाहा' के माने हैं आत्माहुति देने की, आत्म-त्याग की शक्ति और 'स्वधा' के माने हैं आत्म-धारण की शक्ति। ये दोनों शक्तियाँ राष्ट्र-शिक्षण में जाग्रत होनी चाहिएँ। इन शक्तियों के होने पर ही वह राष्ट्रीय शिक्षण कहलावेगा। बाक़ी सब 'ठन-ठन गोपाल' है। सिर्फ शिक्षण ऊपर से दिखाई देता है।

अबतक हमारे राष्ट्रीय शिक्षकों ने बड़ा आत्मत्याग किया है। पर यह उतना सही नहीं। छुटपुट स्वार्थ-त्याग अथवा मतलबी त्याग के माने आत्मत्याग नहीं हैं। उसकी कसौटी है। आत्मत्याग की शक्ति के साथ-साथ आत्मधारणा की शक्ति न हुई तो त्याग कोई काहे का करेगा? जो आत्मा अपने को खड़ा ही नहीं रख सकता, वह कूदेगा कैसे? मतलब, आत्मत्याग की शक्ति में आत्मधारण पहले से शामिल है। यह आत्म-धारणा की शक्ति—'स्वधा'——राष्ट्रीय शिक्षकों ने अभी तक भी सिद्ध नहीं की है। इसलिए आत्मत्याग का जो आभास-सी है, वह आभास भर ही है।

पहले स्वधा होगी; उसके बाद स्वाहा। राष्ट्रीय शिक्षण को, अर्थात् राष्ट्रीय शिक्षकों को अब स्वधा-सम्पादन की तैयारी करनी चाहिए।

शिक्षकों को 'सिर्फ शिक्षण' की भ्रामक कल्पना छोड़कर स्वतंत्र जीवन की ज़िम्मेदारी——जैसी किसानों पर होती है वैसी—अपनेपर लेनी चाहिए और विद्यार्थियों को भी उसी में दायित्व पूर्ण भाग देकर उनके चारों ओर शिक्षण की रचना करनी चाहिए, अथवा अपने-आप होने देनी चाहिए। **'गुरोः कर्माणि शेषेण'** इस वाक्य का अर्थ 'गुरु के काम पूरे करके वेदाभ्यास करना' यही लेना ठीक है। नहीं तो गुरु की व्यक्तिगत सेवा इतना ही अगर 'गुरोः कर्म' का अर्थ लें तो गुरू की सेवा वह इतनी कितनी ज्यादा होगी? और उसके लिए कितने लड़कों को

कितना काम करने को रह जायगा ? इसलिए 'गुरोः कर्म' करने के माने हैं गुरु के जीवन में जिम्मेदारी से हिस्सा लेना। वैसा दायित्वपूर्ण-भाग लेकर उसमें जो शंका वग़ैरा पैदा हो उन्हें, गुरु से पूछें और गुरु को भी चाहिए कि अपने जीवन की ज़िम्मेदारी निबाहते हुए और उसी का एक अंग समझकर उसका यथाशक्ति उत्तर देता जाय। यह शिक्षण का स्वरूप है। इसी में थोड़ा स्वतन्त्र समय प्रार्थनास्वरूप, वेदाभ्यास के लिए रखना चाहिए। प्रत्येक कर्म ईश्वर की उपासना के लिए ही होने पर भी जैसे सुबह-शाम थोड़ा वक्त उपासना के लिए देना पड़ता है, वही न्याय वेदाभ्यास अथवा शिक्षण के लिए लागू करना चाहिए। मतलब, जीवन की जवाबदारी के काम ही दिन के मुख्य भाग में करने और उन सबों को शिक्षण का ही काम समझना चाहिए। साथ ही अलग एक दो वक्त 'शिक्षण के निमित्त' मान कर देने चाहिएँ।

राष्ट्रीय जीवन कैसा होना चाहिए, इसका आदर्श अपने जीवन में उतारना राष्ट्रीय शिक्षक का कर्तव्य है। यह कर्तव्य करते रहने से उसके जीवन में से अपने आप उसके आसपास शिक्षा की किरणें फैलेंगी और उन किरणों के प्रकाश से आसपास के वातावरण का अपने आप काम हो जायगा। इस प्रकार का शिक्षक यह स्वतः शिक्षण-केन्द्र है और उसके समीप रहना ही शिक्षण पाना है।

मनुष्य को पवित्र जीवन बिताने की फ़िक्र करनी चाहिए। शिक्षण की फिक्र करने को वह जीवन ही समर्थ है; उसके लिए 'सिर्फ शिक्षण' की हवस रखने की ज़रूरत नहीं है।

[मराठी से]

इंग्लिस्तान और भारत का आपसी सम्पर्क

[श्रीप्रकाश]

स्वर्गीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने अपनी भारत-सेवक-समिति की सदस्यता के लिए यह अनिवार्य नियम बनाया था कि जो कोई उसमें आवे, वह अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रकार की भी प्रतिज्ञा ले कि 'मेरी धारणा है कि ईश्वर के अज्ञेय उद्देश्यों की सिद्धि के अर्थ भारत के हित के लिए उसका सम्बन्ध इंग्लैण्ड से हुआ है।' यों तो सभी व्यक्तियों और देशों का आपसी सम्पर्क एक दूसरे को लाभ पहुँचाता ही है, पर भारत और इंग्लैण्ड का जो--अभाग्यवश जेता और विजित के रूप में--सम्पर्क हुआ है, उससे भी वहुत-सी बातों में एक दूसरे को लाभ हुआ है। इंग्लैण्ड को क्या लाभ हुआ है यह तो साफ़ है। इतने बड़े भूखंड पर उसका आधिपत्य हो जाने से संसार में उसे विशेष पद मिल गया। इतनी बड़ी विशाल जाति और इतनी पुरातन सभ्यता को इसके अधीन देख उसका गौरव अन्य देशों और जातियों के मन में बहुत बढ़ गया। उसके आर्थिक लाभ का तो कुछ कहना ही नहीं है। उसके व्यापार और वाणिज्य की तो बेहद तरक़्क़ी हुई है। उसके कितने ही पुत्रों को अच्छी-से-अच्छी नौकरियाँ यहाँ मिलीं। उसके ज्ञान-भंडार की भी बहुत वृद्धि हुई।

एकता की प्राप्ति

इस सम्पर्क से भारत को प्रधान लाभ यह हुआ है कि उसने अपनी एकता को प्राप्त किया। भारतवासियों के मन में हमेशा से यह भावना रही है कि हम एक हैं। भारत-भूखंड वास्तव में एक है। जब-जब हमें कोई महान् पुरुष मिला है, हम देखते हैं कि उसने अपने कार्यक्षेत्र में इस एकता को स्थापित करने का भगीरथ-प्रयत्न किया है, और कुछ-न-कुछ सफलता भी पाई है। धार्मिक क्षेत्र में बुद्ध और शंकराचार्य का और राजनीतिक क्षेत्र में पुराणकाल में युधिष्ठिर और रामचन्द्र का तथा ऐतिहासिक काल में अशोक, अकबर, शिवाजी सबकी यह कोशिश रही है कि

भारत एक हो। पर, संघटन की कमी होने के कारण जैसे ही इन व्यक्तियों का लोप हुआ, वैसे ही भारत फिर छिन्न-भिन्न हो गया। यद्यपि आन्तरिक भावना सदा एक करने की ही रही, तो भी हमारी प्रकृति हमें बराबर छिन्न-भिन्न करती रही। अंग्रेज़ों के आने के बाद हम एक प्रकार से स्थायी रूप से एक हो गये। चाहे प्रान्तीयता बीच-बीच में ज़ोर करती हो, और साम्प्रदायिक भावना के आवेश में 'पाकिस्तान' आदि की योजना सामने आ जाती हो, पर इसमें शक नहीं कि हमारे हृदय में अब इस एकता का भाव इतने ज़ोर के साथ प्रवेश कर गया है कि सबका यही यत्न रहता है कि चाहे जो हो, हम अपने को फिर टुकड़े-टुकड़े न होने दें।

नई दुनिया से सम्पर्क

दूसरा लाभ यह हुआ कि हमारा सम्पर्क यूरोपीय देशों से हुआ, और ऐसे समय हुआ, जब वहाँ की जातियाँ नया जीवन प्राप्त कर रही थीं; अपने अन्धकार के युग से निकल कर नये संसार की सृष्टि कर रही थीं; राजनीति, कला-कौशल, व्यापार, वाणिज्य सभी में एकाएक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। इस नई दुनिया से हमारा सम्पर्क हुआ, और हम वहाँ के ज्ञान और विज्ञान आदि को अपनाकर अपना भी बहुत कुछ विकास कर सके। यद्यपि हम भारतीय एक दूसरे की भाषा सीखने से परहेज करते रहे, पर हमने जब सर्वव्यापी राजभाषा अंग्रेज़ी देखी, तो कितने ही कारणों से भारत के सभी प्रदेशों के कितने ही लोगों ने इसे अपनाया और इस प्रकार से हमें आपस के विचारों और भावों के विनिमय के लिए एक सांधारण समुन्नत बलशाली भाषा मिली। इसके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोग एकत्र होकर गूढ़-से-गूढ़ विषयों पर वार्तालाप कर सके, और इस प्रकार अपनी एकता को पहिचानते हुए अपनी आकांक्षा को केन्द्रीभूत भी कर सके, जिसके कारण आज हमारी राष्ट्रीयता इतना विशाल रूप धारण करने में सफल हो सकी।

पराधीनता और पतन

हमारी सबसे बड़ी हानि जो इस सम्पर्क से हुई, वह सम्पर्क में ही निहित किसी महादोष के कारण नहीं हुई। वह विशेष परिस्थिति के कारण हुई, जिससे कि इस सम्पर्क ने राज का रूप धारण कर लिया और हम दूसरे के पूर्णतया अधीन हो गये। स्वतन्त्रता ऐसी महत्त्व की वस्तु है कि उसके खोने से जाति निर्वीर्य, असहाय और परावलम्बी हो जाती है। बस आत्मरक्षा की हमारी सब शक्ति जाती रही। हमारा वाणिज्य व्यापार, व्यवसाय, सब नष्ट हो गया और हमें अपने ही पर कुछ भरोसा नहीं रह गया। राजनीतिक दासता के साथ-साथ हम आर्थिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी पराधीन हो गये। इस प्रकार के आत्मसमर्पण का जो सबसे हानिकर परिणाम हुआ है, वह यह है कि हमने कार्यक्षेत्र से अपनेको अलग कर लिया है, रूढ़ियों के बन्धन के कारण जो थोड़ा-बहुत खेती आदि का कार्य अनिवार्य रूप से हम करते रहे, वह तो हम करते गये, पर और किसी रूप से विकास करने की अभिलाषा एकदम लुप्त होगई। हम सब बातों में दलाली करने लगे और देश में विदेशी राज होने के कारण हमारी आपसी सहानुभूति की भावना जाती रही। हम एक-दूसरे की बुराई करने में ही सुख पाने लगे और हमने इस प्रकार अपने देश को संसार की दृष्टि में गिरा डाला।

कानून-पद्धति

हमें खेद विशेषतः इस बात का है कि जितना लाभ हम इस सम्पर्क से प्राप्त कर सकते थे, वह हम नहीं कर पाये। अब हम विस्तार से उन कारणों की समीक्षा-परीक्षा करना चाहते हैं जिनसे अंग्रेज जाति और इंग्लैण्ड के देश से इतना घनिष्ठ सम्पर्क होते हुए भी हम उनके गुण नहीं सीख सके। जहाँ तक मैं विचार कर सका हूँ, इंग्लैण्ड की सबसे खराब देन हमारे देश को उसके कानून की पद्धति साबित हुई है। इंग्लैण्ड को तो इसका बड़ा नाज़ है, और कई दृष्टि से यह अनुचित भी नहीं है कि उनके यहाँ कानून

का शासन है, अर्थात् सब कोई कानून के सामने बराबर है और बिना कानून के तै-शुदा जाबितों का पालन किये, चाहे कोई कितना ही छोटा क्यों न हो, दण्ड नहीं पा सकता, और चाहे कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो, अपने अनुचित कामों के लिए दण्ड अवश्य पायेगा। सिद्धान्ततः कानून के सामने सब एक होते हैं, पर वास्तव में इसका असर क्या पड़ता है, यह बात दूसरी हो जाती है। इंग्लैण्ड में चार्ल्स डिकिन्स आदि लेखकों ने कानून की पोल अच्छी तरह खोली है और यह दिखाया है कि किस प्रकार कानून दरिद्र लोगों पर ज्यादती करता है और किस प्रकार धनी उससे अनुचित लाभ उठाते हैं। फिर भी इंग्लैण्ड के समाज पर कानून का वैसा बुरा प्रभाव नहीं पड़ा, जैसा हमारे देश में पड़ा है। कुछ अपने राष्ट्रीय स्वभाव के कारण, कुछ सदियों के अनुभव के कारण, और बहुत-कुछ यूरोपीय परम्परा के कारण, अंग्रेज जाति कानून की बड़ी पाबन्द होती है। कानून तोड़ना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है, और कानून में परिवर्तन करने का प्रकार लगातार बने रहने के कारण, और कानून बनानेवाली संस्था अर्थात् पार्लमेंट की दिन-प्रतिदिन की कार्यवाही में जनता के लगातार दिलचस्पी लेने के कारण, कानून को तोड़ने का भाव अथवा कानून से अनुचित लाभ उठाने की अभिलाषा बहुत ही संकुचित क्षेत्र में मर्यादित रहती है।

कानून के प्रधानतः दो अंग होते हैं—एक तो है कानून की दफायें, जिसमें मोटे तौर से दीवानी और फौजदारी कानून पाया जाता है। फौजदारी कानून के विरुद्ध चलने के लिए दण्ड मुकर्रर रहता है और दीवानी कानून में सम्पत्ति आदि के सम्बन्ध में उचित अनुचित आचरण बतलाया जाता है। परन्तु कानून का दूसरा पहलू भी है, जो बड़ा जटिल होता है। अपना हक स्थापित कराने का जो जाबिता है, वह बड़ा कठिन है। भिन्न-भिन्न प्रकार की अदालतों, गवाहियों के तरीके और तमादी आदि के नियम सब ऐसे हैं कि साधारण कानून जानते हुए भी उनके अनुसार अपना अधिकार कायम करने में मनुष्य कानून के जाल में फँस जाता है। कितने ही लोग उससे भयभीत होकर अपना हक छोड़ देते हैं। कानून की ऐसी गुत्थियों को हल करने के लिए वकीलों का एक बहुत बड़ा तबका कायम हो गया है और साधारण लोग उनके हाथ की कठपुतली हो गये हैं।

कानून की जटिलता

कानून का दूसरा अंग (जो सहायक अंग भी कहा जाता है) ऐसे रूप में हमारे सामने मौजूद है कि जिससे अक्सर लोगों का यह ख्याल है कि सच से सच मुकदमा भी बिना कुछ झूठी गवाही के स्थापित नहीं हो सकता। हमारे देश में कानून की खराबी इसी कारण आ गई है। किसी दूसरे देश में साधारण लोगों के बीच कानून और मुकदमे आदि की इतनी चर्चा मैंने नहीं सुनी जितनी अपने देश में। गाँव और शहर के बड़े-छोटे सब लोगों के पीछे कोई-न-कोई मुकदमा लगा रहता है या उन्हें किसी-न-किसी मुकदमे में दिलचस्पी रहती है। अधिकतर लोगों को मैंने बराबर मुकदमों की ही बातें करते पाया है। गरीब देश होने के कारण गरीबी के जितने दुष्परिणाम होते हैं, वे हम सबको मिले हैं। एक-दूसरे की चीज़ों को जैसे-तैसे ले लेने का भाव हममें बराबर रहता है। अधिकतर हम ग्रामीण हैं। गाँवों के जीवन की कटुता बहुत ही अधिक होती है। साथ ही वहाँ का जीवन एक प्रकार से खुला-सा रहता है। कोई बात किसी से छिपी नहीं रहती। सब कोई सबका हाल जानते हैं। जब कानून के जरिये यह सम्भव होने लगा कि हम चालाकी से अपनी जायदाद की वृद्धि कर सकते हैं, तो उसकी शरण में लोग जाने लगे। पुराने विदेशी यात्रियों ने हमारे देश की सत्यपरायणता की बड़ी चर्चा की है। आज कानून की जटिलता ने हमारे कितने ही सच्चे लोगों को झूठा बना दिया है।

अँग्रेज़ों की यह विशेषता है कि वे अपना तरीका ही सबसे अच्छा मानते हैं, और किसी

भी दशा में उसे छोड़ने को तैयार नहीं होते । हमारे देश में भी उन्होंने अपना ही रहन-सहन जारी रक्खा, और तीस-तीस चालीस-चालीस वर्ष यहाँ रहकर भी वे न हमारी भाषा अच्छी तरह सीखते हैं, न वे हमारे किसी भी तौर-तरीके को जाने या समझे हैं । वे दूसरों को ही अपनी तरह से रहने के लिए मजबूर करते हैं और इसके लिए वे दूसरे को काफी लालच भी देते हैं । हमारे देश में भी अपना काम निकालने के लिए उन्होंने ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध किया, जिससे यहाँ के लोग काफी संख्या में उनकी भाषा सीख कर उनकी सहायता कर सके । उनके साहित्य को पढ़ कर, उनके महत्त्व को स्वीकार करके उनके रीति-रस्म को पसन्द करने लगे । इस प्रकार से अपने विचार के कानून के अनुसार जीवन-निर्वाह करने में उनको सहायता मिली । कानून के पेशे को हमारे देश में बड़ी तत्परतासे अपनाया गया और अदालतों का एक विशाल महकमा हमारे देश में कायम हो गया जिसके चारों तरफ हम सब खुशी से नाचने लगे । न्याय की हमारी पुरानी प्रणाली सब मिट गई । पंच परमेश्वर अब एक-समान नहीं रह गये । हलफ़ उठा कर झूठी गवाही देने का कोई सामाजिक दण्ड नहीं रह गया । वकीलों और अदालतों के जरिये झूठ का महत्त्व बढ़ने लगा, और लोग अपने मुकदमों के फैसले के लिए अपने ही गाँव के बूढ़ों के पास न जाकर, जो सब बातों को पहले से ही जानते हुए बात की बात में मामला तय कर देते, वे सच को झूठ और झूठ को सच साबित करने की आशा में अदालतों की शरण जाने लगे । जहाँ तक मैं अनुसंधान कर सका हूँ, हमारे ग्रामीण लोग अदालतबाजी के ही कारण अधिकतर ऋणग्रस्त होते हैं । भारत और इंग्लैण्ड के सम्पर्क का सबसे बड़ा कुफल, इन सब बातों पर विचार करते हुए, इस कानून की पद्धति के कारण हुआ है जो इंग्लैण्ड भारत में लाया है । जो उनके देश में बड़ी प्रशंसा और गौरव की चीज है, वही हमारे यहाँ भयावह साबित हुई, क्योंकि उससे हमारा नैतिक पतन हुआ ।

[अगले अंक में समाप्य]

वेदों का उत्सर्जन और उपाकरण

[हरि रामचन्द्र दिवेकर]

जीवन और साहित्य का सम्बन्ध नित्य है । यदि जीवन में साहित्य नहीं, तो जीवन नीरस है और यदि साहित्य जीवन से सम्बद्ध नहीं, तो वह निष्प्राण है । दोनों का अन्योन्य सम्वन्ध है और जैसे-जैसे यह सम्बन्ध छूटता जाता है, वैसे-वैसे क्या जीवन और क्या साहित्य केवल भारभूत होते जाते हैं । आज हमारे देश में यह सम्बन्ध छूटा-सा ही है । जिस साहित्य का आजकल निर्माण होता है, वह या तो होता है 'टकसाली' या होता है 'बाजारी ।' जीवन के सामने जो समस्यायें मुँह फाड़े खड़ी हैं, उनका विवेचन साहित्य में प्रायः नहीं होता । उसी प्रकार हमारे लेखकों द्वारा जो नवीन कल्पनायें साहित्य में खड़ी की जाती हैं, वे बहुधा स्वप्निल होती हैं, और प्रत्यक्ष जीवन से उनका सम्बन्ध बहुत ही कम रहता है । इसका कारण है एकमात्र हमारी शिक्षा । हमारी शिक्षा-प्रणाली हमारे जीवन से बिलकुल बिछुड़ी हुई है । इसी कारण इस शिक्षा में रँगे हुए हमारे शिक्षित विद्वान्, जो आजकल के साहित्य-निर्माता हैं, प्रत्यक्ष जीवन की समस्याओं से पूर्णतया अपरिचित रहते हैं । तो फिर यह क्रमप्राप्त ही है कि इन अपरिचित लेखकों-द्वारा जिस साहित्य का निर्माण हो, वह भी जीवन से असंबद्ध ही रहे । कहने का मतलब यह नहीं कि जीवन और साहित्य बिलकुल टाँग से टाँग बाँधकर चलें । यदि ऐसा किया जाय तो दोनों की प्रगति रुक जावेगी । पर दोनों

के प्रवाह स्वतन्त्र और अव्याहत रखते हुए भी इनमें समन्वय करने की अत्यन्त आवश्यकता है। भारतवर्ष में पूर्व काल में यही समन्वय किया जाता था।

प्राचीन काल में वैदिक आचार्यों का एक सत्र रहता था, जिसमें ये लोग नये ज्ञान का विचार करते थे। इस कर्म को उपाकर्म या उपाकरण कहते थे। उपाकर्म का ऋषियों ने क्यों आरंभ किया इस का कारण शांखायन ऋषि अपने गृह्यसूत्रों में यों देते हैं—"अपनी विद्या एक-सी सतेज, सन्मान्य और समर्थ रखने के हेतु ऋषियों ने उपाकर्म खोज निकाला"[१] आरंभ इस सत्रका होता था श्रावणी पूर्णिमा को या श्रावण शुक्लपक्ष में, जिस दिन हस्त नक्षत्र हो उस दिन। लगभग पाँच महीने यह सत्र चलता था और फिर पौषी पूर्णिमा के लगभग किया जाता था वेदोत्सर्जन। उपाकरण और उत्सर्जन का अर्थ स्पष्ट है--स्वीकार और त्याग। वेदों का स्वीकार और त्याग करने से प्रयोजन है नई विद्याओं को अपने ज्ञान में समाविष्ट करना और निरुपयुक्त–नये आविष्कारों के कारण से मिथ्याप्रतीत--ज्ञान का आग्रहरहित होकर त्याग करना। जबतक यह किया जाता था, तब तक आर्यों की विद्या सतेज, सन्मान्य, और समर्थ रहती थी। वह प्रत्यक्ष जीवन से संबद्ध रहती थी। साल भर में जो नया साहित्य निर्मित होता था उसकी छानबीन इस पंचमासिक सत्र में बड़े-बड़े आचार्यों द्वारा होती थी और फिर नये पुराने साहित्य में ग्राह्य क्या और त्याज्य क्या है, इसका निर्णय होकर ग्राह्य का स्वीकार करके, त्याज्य का उत्सर्ग किया जाता था।

परन्तु अब तो इन सब प्राचीन बातों का मतलब अज्ञात होकर कोरी बातें ही शेष रह गईं। ब्राह्मण, आचार्यों का काम छोड़कर सेवक हो गये, पर फिर भी अपने को 'ब्राह्मण' कहते रहे। वेद शब्द का अर्थ 'ज्ञान' छोड़कर हमने वेदों को चार संहितादि ग्रंथों की चहारदीवारी में बन्द कर दिया। अर्थात् वेदों का—इन वेदों का—न उपाकरण हो सकता, न उत्सर्जन। इस लिये 'वेद' शब्द का अर्थ दर्भ करके दर्भों का ही ग्रहण और त्याग बाकी रह गया। पर जैसे अलंकारों के जाते रहने पर भी अलंकार-धारण के लिये शरीर में जो छेद किये जाते हैं, वे रहते ही हैं और प्राचीन अलंकारों की कम-से-कम स्मृति तो दिलाते ही हैं, वैसे ही अभी तक हमारे कर्मों के संकल्पों की भाषा वही रही है। आज भी उत्सर्जन और उपाकर्म दोनों एक ही श्रावणी पूर्णिमा के दिन करते हुए हम संकल्प करते हैं। उसमें कहते हैं--जिस ज्ञान का हमने अध्ययन किया है और अध्ययन करनेवाले हैं उसमें योग्य स्थानों पर–बातों पर जोर न देने से और अयोग्य स्थानों पर जोर देने से--जो निःसारता पैदा होती है, उसे दूर करने के कारण इत्यादि-इत्यादि।[१] जब तक यह कर्म बराबर वर्ष प्रति वर्ष होता रहा, हमारा वाङमय, हमारा साहित्य, हमारा ज्ञान प्रगतिशील रहा और उसका अर्थ न समझ कर जब केवल हवन करना, यज्ञोपवीत धारण करना इत्यादि केवल विधि बाकी रही, तो वही ज्ञान अप्रवाही—बँधे—जल के समान सड़ने लगा, अनेक रोगबीजों का उत्पादक हुआ।

आज भी हमारे साहित्य की ठीक यही दशा है। साहित्य के विषय में आज पूर्ण अराजकता हो रही है। कोई किसी को नहीं पूछता और कोई किसी की पर्वा नहीं करता। उनके लेखों का समाज पर या जीवन पर क्या परिमाण होगा, इसका विचार लेखकगण बिलकुल नहीं करते। छापनेवाले भी इधर ध्यान नहीं देते और पढ़नेवालों का तो पूछना ही क्या? परिणाम यह होता है कि हमारा साहित्य मिथ्या, अनुपयुक्त, नकली, हानिकर होता जाता है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे विद्वान्, निष्पक्ष, समाज के हितत्पर पुरुषों की एक समिति हो जो साल भर में निर्मित हुए साहित्य की समीक्षा कर उसमें कौन-कौन से दोष

---

[१] शां० गृ० ४ :था अध्याय, ५ वाँ खंड, १५ वाँ सूत्र

[१] **"अधीतानां छंदसां अध्येष्यमानानां च अस्थानोच्छ्वासादि-जनित-यातयामता-निरासेन इत्यादि।"**

आगये हैं, यह दिखलावे तथा कौन-सी समाजोपयुक्त कल्पनायें लेखकों ने प्रस्तावित की हैं, इसका प्रदर्शन कर उसका प्रचार करने का प्रयत्न करे। यदि इन नई कल्पनाओं के कारण कुछ पुरानी कल्पनायें त्याज्य ज्ञात हों, तो उनका भी त्याग करने का उपदेश करे और समाज को सन्मार्ग पर चलने में सहायता दे। यह काम सुलभ नहीं है; पर बिना इस प्रकार के काम के हमारे साहित्य की समुन्नति नहीं हो सकती। प्राचीन काल में यह काम बड़े-बड़े आचार्यों द्वारा किया जाता था जिस का प्रतीक मात्र अब ‘श्रावणी’ रह गया है। अब श्रावणी का अर्थ भस्म-गोमय-मृत्तिकादि लगाकर स्नान, यज्ञोपवीत-धारण तथा हवन करना--इतना ही रह गया है। इस वेदोत्सर्जन का ही उत्सर्जन करने का समय अब आ पहुँचा है; नहीं, वह होता ही जाता है। पुरानी प्रथायें नष्ट होने का भय नहीं, किन्तु न नई और न पुरानी हो ऐसी अकर्मण्यता का डर है। आशा है, ‘जीवन-साहित्य’ के पाठक इस पर विचार करेंगे और ज्ञान का उपाकरण तथा उत्सर्जन कर उसे सतेज और समर्थ रक्खेंगे।

साहित्य और जीवन

[बनारसीदास चतुर्वेदी]

२८ वर्ष का नशा

हम लोगों को, लेखकों और कवियों को कीर्ति का नशा रहता है और इस नशे का मुझे भी कुछ तजुर्बा है। पत्रों में लेख छपते हैं, अपना नाम छापे में छपा देखकर बड़ी खुशी होती है, और लेख लिखे जाते हैं, फिर छपते हैं; और इस प्रकार लेखक को प्रसिद्धि मिलती जाती है। यह कोई नहीं पूछता कि **वास्तविक जीवन** से उन लेखों का कुछ सम्बन्ध भी है। जून सन् १९१२ में मेरा प्रथम लेख काशी के ‘नवजीवन’ में छपा था और उसका नाम था ‘स्वावलम्बन’। वह अंग्रेजी पुस्तक Self-help के आधार पर लिखा गया था। यदि लेख के अनुसार मैंने अपना जीवनक्रम बनाया होता, तो आज आप मुझे अवश्य ही स्वावलम्बी पाते, पर हम लेखक-लोग, बक़ौल बाबा तुलसीदास, ‘परउपदेशकुशल’ होते हैं। अट्ठाईस वर्ष तक खुराफात लिखने के बाद भी जीवन-सम्बन्धी मेरा व्यावहारिक ज्ञान बहुत ही कम बढ़ा और ऐन मौक़े पर आकर परीक्षा में मैं बिलकुल फेल हो गया।

कोरमकोर

पूज्य द्विवेदीजी के यहाँ जब मैं तीसरी बार दौलतपुर को तीर्थयात्रा करने गया था, तब तक ग्राम-संगठन पर ‘विशाल-भारत’ में अनेक लेख छाप चुका था। द्विवेदीजी मुझे अपने बाग की ओर ले गये। मार्ग में उन्होंने कुछ प्रश्न किये, पर चौबेजी उनके विषय में कोरमकोर थे। कई वृक्षों के नाम उन्होंने पूछे, पर मैं उन्हें पहचान भी नहीं सका। न रीठे का पेड़ पहचान सका और न महुए का। बातचीत के सिलसिले में द्विवेदीजी ने पूछा—‘‘अपने आगरा जिले को भली भाँति जानते हो? अपने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की रिपोर्ट पढ़ी है?’’ मैं चुप था। क्या जवाब देता? फिज़ी, कैनिया, जंजीबार, युगाण्डा और टांगानिक्या इत्यादि के चक्कर में ज़िन्दगी के बीस वर्ष बरबाद कर चुका था, पर न तो कभी आगरा ज़िले का भ्रमण किया था और न कभी आगरा-डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की रिपोर्ट ही पढ़ी थी। कभी क्यों, आजतक नहीं पढ़ी!

पूज्य द्विवेदीजी झुंझलाकर बोले:—‘‘आखिर बैठे-बैठे क्या किया करते हो? कुछ पढ़ते-लिखते भी हो? न तुमने काश्तकारी-कानून का अध्ययन किया है, न ग्रामीण पंचायतों के बारे में कुछ जानते हो। खेती और किसानों के रहन-सहन के बारे में तुम्हारा ज्ञान है ही क्या? सम्पादक यों

ही बन बैठो हो!"

बड़ी शर्म आई। हिन्दी-पत्रकारों का इन विषयों पर कितना ज्ञान है, यह मैं कह नहीं सकता, लेकिन अगर कहीं हिन्दी-पत्रकारों के लिए कोई विद्यालय खुले, तो छात्र के रूप में इसमें भर्ती होने की इच्छा जरूर है।

पत्रकार-विद्यालय और समाज-विज्ञान-कॉलेज

हिन्दी-जगत् में इस समय इन दो विद्यालयों की सख्त जरूरत है। नये-नये कॉलेज हमारे यहाँ खुलते जाते हैं और उनमें वे ही पुराने विषय पढ़ाये जाते हैं—ऐसे विषय जिनका विद्यार्थी के भावी जीवन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। पत्रकार प्रौढ़ों के शिक्षक हैं, जनमत को बनाना-बिगाड़ना उनके हाथ में है और उनके द्वारा समाज की बड़ी भारी सेवा हो सकती हैं, अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रयाग, काशी, दिल्ली, पटना, आगरा या नागपुर विश्वविद्यालयों द्वारा इन विषयों की पढ़ाई का प्रबन्ध किया जाय। बम्बई के "ताता समाज-विज्ञान-विद्यालय" की तरह की संस्था उत्तर भारत में भी होनी चाहिए। जो ग्रंथ वहाँ अंग्रेज़ी में पढ़ाये जाते हैं, उनका हिन्दी में अनुवाद कराना चाहिए; अथवा वैसे ही मौलिक-ग्रंथ लिखाये जाने चाहिएँ। दूरदर्शिता के ख्याल से ये काम अत्यन्त आवश्यक हैं। जब भारत स्वाधीन हो जायगा (आज न सही, आठ-दस वर्ष में सही) तो उस समय स्थानीय प्रश्नों का महत्त्व अखिल भारतीय प्रश्नों के समान ही हो जायगा। उस समय गुलामी का रोना रोने और विदेशी शासकों की निन्दा करने के बजाय हमें देश के कोने-कोने में छोटे-बड़े नगर तथा ग्रामों में समाज-सेवा के अनेक रचनात्मक कार्य प्रारम्भ करने पड़ेंगे, इन कार्यों के लिए कार्यकताओं को अभी से विशेष ट्रेनिंग देने की ज़रूरत है।

उपर्युक्त प्रश्न पर तथा अन्य ऐसे ही सवालों पर विचार करने के लिए उन लेखकों का, जिनकी रुचि मुख्यतया समाज-सेवा की ओर है, मिलना जरूरी है, यह काम कोई परोपकार का नहीं, बल्कि स्वार्थ का है।

हम लोग अपने आस-पास के मानव-जगत् से ही नहीं वृक्ष-जगत् से भी बहुत कम परिचित हैं। इसी तरह पशु के विषय में भी हमारा ज्ञान बहुत कम है। नर-पशुओं की बात जाने दीजिएगा। उन्हें तो हम थोड़ा बहुत जानते भी हैं और वे भेड़ियों की तरह हर मुल्क और मिल्लत में पाये जाते हैं। हमारे साहित्य-संसार में कितने ही ऐसे व्यक्ति होंगे, जो आसपास के पशु-पक्षी, वृक्ष तथा मानव-जगत् के विषय में प्रायः लालबुझक्कड़ हैं।

जरायमपेशा लेखक

कितने ही लेखक ऐसे हैं, जिन्हें ज़रायमपेशा (Criminal tribes) कहना चाहिए। उदाहरण के लिए, उन व्यक्तियों को लीजिए, जिन्होंने हिन्दी में 'काम-शास्त्र' पर किताबें लिखी हैं उनमें दो-तीन व्यक्यियों को छोड़कर शेष का ज्ञान इस विषय पर न-कुछ के बराबर है। बस इधर-उधर से लेकर चाहे जो आदमी 'काम-शास्त्र' पर पुस्तक लिख देता है। आप जानते ही हैं कि मैं साहित्य में किसी भी सरकार के शासन का घोर विरोधी हूँ। सार्वजनिक मत या पबलिक ओपीनियन का नियंत्रण ही उसके लिए पर्याप्त समझता हूँ। फिर भी यदि कोई सरकार हिन्दी के उन कामशास्त्रियोंको जिन्होंने अनधिकारपूर्वक इस विषयपर छोटी-मोटी पुस्तकें लिखी हैं, पकड़-पकड़ कर तीन-तीन वर्ष के लिए अपने यहाँ सपरिश्रम आतिथ्य-ग्रहण करावे, तो मैं एक शब्द भी इस सरकार के विरोध में नही लिखूँगा। आवश्यकता इस बात की है कि इस विषय पर अधिकारी व्यक्तियों द्वारा सरल से सरल भाषा में और सस्ते-से-सस्ते ग्रंथ लिखाये जावें।

गृहस्थों का अज्ञान

साधारण गृहस्थ लोग भी इस विषय में बहुत कम जानते हैं और जो कुछ ज्ञान उन्हें प्राप्त होता भी है, यह बहुत धक्के खाकर और अनेक दुर्घटनाओं के बाद। हमारे एक सबसे

बड़े शत्रु, या यों कहिए सबसे बड़े मित्र हैं, जिन्हें प्रसूति के अर्थ तब मालूम हुए जब आप प्रसूति में अपनी पत्नी को खो बैठे। चार बच्चों के बाप होने पर भी आप प्रसूति के विषय में सोलह आने अनभिज्ञ थे।

प्रकाशक क्या कर रहे हैं?

हमारे प्रकाशकों को समय की गति का कुछ भी खयाल नहीं है। जीवन के प्रश्नों से उनका कुछ भी परिचय नहीं और उनमें से अधिकांश अपने को सर्वज्ञ समझ बैठे हैं। विलायत के अच्छे-अच्छे प्रकाशक अपने यहाँ भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञ रखते हैं, जिनकी सम्मति से वे ग्रन्थ लेते और छापते हैं, पर हमारे यहाँ के प्रकाशक मुफ्त में भी विशेषज्ञों की सम्मति नहीं लेना चाहते। हाँ, पुस्तकों को छापने के बाद बिना जिल्द की एक प्रति भेजकर उस पर विस्तृत आलोचना चाहनेवाले प्रकाशकों की हमारे यहाँ कमी नहीं। अपनी बारह आने की किताब पर जो उन्हें बारह पैसे में पड़ी होगी, आपके बारह रुपये का समय माँगने के अव्यापार में वे अवश्य कुशल हैं। यदि प्रकाशकों में कुछ भी बुद्धि होती, तो वे स्वयं आपस में मिलकर इस बात की जाँच के लिए एक कमेटी मुकर्रर करते कि साधारण जनता अथवा विशेष वर्गों के जीवन के लिए किस-किस प्रकार के साहित्य की ज़रूरत है?

आखिर हम क्या चाहते हैं?

श्रोता लोग पूछ सकते हैं कि 'तो फिर क्या कला और सौन्दर्य के प्रति आपके हृदय में कुछ भी प्रेम नहीं है? ऐसे प्रश्नकर्ताओं की सेवा में मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मैं कला तथा सौन्दर्य का उतना ही प्रेमी हूँ, जितना कि एक मामूली लेखक को होना चाहिए। पर हर चीज़ का एक बल होता है और युगधर्म के अनुसार कला और सौन्दर्य का उपयोग विशेष उद्देश्यों को लेकर होना चाहिए। यदि आपके नगर के शौचालय अत्यन्त गन्दे हैं और उनसे हर साल हैजा फैलता है, तो आपके यहाँ की साहित्य-समिति पर जितना रुपया व्यय होता है, उसमें से कुछ अंश इस गन्दगी को दूर करने के लिए खर्च होना चाहिए। आखिर वह हमारे हृदय तथा मस्तिष्क की भीतरी अस्वच्छता है, जो हमारी गन्दी गलियों तथा सड़कों के रूप में सामने आती है।

आयर्लैंण्ड के सुप्रसिद्ध कवि तथा कलाकार जार्ज रसैल ए० ई० ने अपनी पुस्तक 'National Being' में एक बड़े मार्के की बात लिखी थी:

"सभी व्यक्तियों का यह कर्तव्य और ज़िम्मेदारी है कि वे अपने अन्तर में जिस सौन्दर्य की कल्पना करते हैं, तदनुसार यथासम्भव अपनी वाह्य-परिस्थिति को भी बनावें। सौन्दर्य-प्रेमी कभी ऐसे घर में रहना पसन्द नहीं करेगा, जहाँ सब चीज़ें विकृत रुचि की परिचायक हों। बुद्धि-प्रधान मनुष्य अव्यस्थित समाज से घृणा ही करेगा हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि वाह्य परिस्थितियों से मनुष्यों के आंतरिक जीवन का पता लग सकता है। जब जनता में बौद्धिक जीवन का विकास होगा, तभी ये चीज़ें बदलेंगी, लेकिन इसके भी पूर्व उसमें आध्यात्मिक भावना का प्रवेश होना चाहिए। ज्यों-ज्यों व्यक्तियों के चरित्रों में परिवर्तन आता जाता है; त्यों-त्यों घर-घर और ग्राम-ग्राम में संस्कृति तथा सभ्यता का रूप भी बदलता जाता है। जब हम राष्ट्र की आतमा में एक उच्च जगत् का निर्माण करना प्रारम्भ कर देते हैं। तब हमारे देश का वाह्य रूप भी सुन्दर तथा सम्मानयोग्य बन जाता है।

कोरमकोर कर्मशील पुरुषों की अपेक्षा हमें इस समय ऐसे विद्वानों की, अर्थशास्त्रियों की, वैज्ञानिकों की, विचारकों, शिक्षा-विशेषज्ञों तथा साहित्यसेवियों की अधिक आवश्यकता है जो जातीय-ज्ञान के क्षेत्र को, जो इस समय गम्भीर रेगिस्तान के समान है, विचारों की धारा से सींचकर ज़रखेज़ बना दें।

कवीन्द्र का आदर्श

कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसी युगधर्म के तकाज़े को अपनी पुस्तिका 'नगर और

ग्राम' में बड़ी खूबी के साथ बतलाया है। उन्होंने लिखा है :

"हमारा उद्देश्य यह है कि ग्राम-जीवन की नदी की तह में जो झाड़-झंखाड़ों और कूड़ा-करकट से भर गई है, और जिसमें प्रवाह नहीं रहा है, आनन्द की लहर की बाढ़ लावें और इस कार्य के लिए हमें विद्वानों, कवियों, गायकों तथा कलाकारों के सम्मिलित प्रयत्न की आवश्यकता है। ये सब मिलकर अपनी-अपनी भेंट शुष्क ग्राम-जीवन को सरस बनाने के लिए लावेंगे। यदि ये लोग ऐसा नहीं करते तो समझना चाहिए कि ये जौंक की तरह हैं, जो ग्रामवासियों का जीवन-रस चूस रहे हैं और उसके बदले में उन्हें कुछ भी नहीं दे रहे हैं। इस प्रकार का शोषण जीवनरूपी भूमि की उर्वरा शक्ति को नष्ट कर देता है। इस भूमि को बराबर जीवन-रस मिलता ही रहना चाहिए और उसका तरीका यही है कि जो कुछ उससे लें, वह उसे किसी अच्छे रूप में वापिस दें और इस प्रकार दान-प्रतिदान का चक्र बराबर चलता रहे।"

कवीन्द्र निरे कल्पनाशील व्यक्ति ही नहीं हैं। उन्होंने जीवन को पूर्णरूप में देखा है और मानव-समाज के सर्वांगीण विकास के लिए उनका आदर्श, जिसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने शान्तिनिकेतन, विश्वभारती और श्रीनिकेतन की स्थापना की है, हिन्दी जनता के लिए अनुकरणीय है। उनका श्रीनिकेतन शान्ति-निकेतन का पूरक है। वे जीवन को शुष्क नहीं बनाना चाहते। उनके वर्षोत्सव, शरदोत्सव और वसन्तोत्सवों को जिन्होंने देखा है, वे कह सकते कि कवीन्द्र जीवन को एकांगी बनाने के सख्त विरोधी हैं। क्या ही अच्छा होता यदि हिन्दी लेखकों, कवियों, गायनाचार्यों और विद्वानों का कोई डैपूटेशन शान्तिनिकेतन तथा श्रीनिकेतन की यात्रा इस उद्देश्य से करता कि हम वहाँ का विशेषताओं का अध्ययन करके उन्हें हिन्दी-भाषा-भाषियों की संस्थाओं में लावेंगे। कवीन्द्र रवीन्द्र वस्तुतः महान् कर्मयोगी भी हैं।

हमारा ध्येय क्या हो ?

लेखक का काम खासतौर पर दुभाषिये का है। वह प्रकृति का दुभाषिया मानव-समाज के लिए है और स्वयं मानव-समाज के एक भाग का दूसरे भाग के लिए। विश्व में तथा मानव-जगत् में इस समय जो इतना कलह मचा हुआ है, उसका एक कारण यह भी है कि संसार में उपयुक्त दुभाषियों की कमी है। इसके सिवाय अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध संग्राम करने के लिए कटिबद्ध रहना भी लेखक का ही कर्तव्य है। यह ज़माना कोरमकोर विचार-जगत् में विचरने का नहीं है। यह है अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने का युग। किसी ने रोमाँ रोलाँ से पूछा था—आप नवयुवकों के लिए क्या सन्देश देंगे? उन्होंने उत्तर दिया: नवयुवकों को मेरा सन्देश एक वाक्य में आता है—'विचारों से कार्य को अलग मत करो।' कार्य दो प्रकार के होते हैं एक तो निकट का, अभी हाल का और दूसरा दूर का यानी भविष्य का। ऐसा न होना चाहिए कि दूर के कार्य के कारण हम वर्तमान कर्तव्य की उपेक्षा करें, अथवा वर्तमान कार्य हमारी दृष्टि को संकुचित कर दे और विचारों का क्षितिज हमारी आँखों से ओझल हो ही जावे। जो बुद्धिजीवी वास्तव में सच्चा और सजीव है, वह उपर्युक्त दोनों कर्तव्यों को साथ-साथ निबाहेगा। वह एक के लिए दूसरे का परित्याग न करेगा। जो विचारक है वह अपने विचारों-द्वारा भिन्न-भिन्न कार्यों की धारा को प्रभावित करने का प्रयत्न करेगा। जो विचार क्रियाशील नहीं है, वह विचार दर-असल विचार ही नहीं है, वह तो कोई स्थिर चीज़ है, मुर्दा है।

आज-कल हमारे समाज के विशेष व्यक्ति जिस सौन्दर्य-उपासना का ढोंग रचते हैं और विचारों का उद्देश्य विचार बतलाते हुए कार्यक्षेत्र से भागते हैं, वह सौन्दर्योपासना वास्तव में बाँझ है और वह पतन के गड्ढे के किनारे पर ही है। उसमें मुद की सड़ाँध आने लगी है। जो क्रिया-

शील है, वही जीवित है ।

रोमाँ रोलाँ का कथन वस्तुतः सोलह आने ठीक है । हमारे जो लेखक अथवा कवि केवल अपने मन-मन्दिर में प्रगतिशील बनने का अभिमान करते हैं, पर जिनके जीवन के रहन-सहन तथा नित्य प्रति के कार्यों में वही पुरानी प्रतिक्रियात्मक पद्धति विराजमान है, वे साधारण जनता को कभी स्फूर्ति दे सकेंगे, इसकी कोई सम्भावना नहीं । जिनका हम 'उद्धार' करना चाहते हैं, उनके बीच में जाने से झिझकते हैं, इससे अधिक बिडम्बना की बात क्या हो सकती है? और सच तो यह है कि यह 'उद्धार' शब्द ही गलत है, हमें दूसरों का नहीं अपना 'उद्धार' करना है ।

साहित्य और जीवन का सम्पर्क

एक वाक्य में जो कहें तो हम साहित्य को अपने चारों ओर के जीवन के सम्पर्क में लाना चाहते हैं । चारों ओर से हमारा अभिप्राय केवल अपने ग्राम, नगर या मंडल अथवा जिले का ही नहीं है । संसार की प्रगति से जो नावाकिफ़ है, जगत की घटनायें जिसे प्रभावित नहीं करतीं, उसके प्रति जो संवेदनशील नहीं है, वह दरअसल लेखक या कवि नहीं । उस दकियानूसी जीव को तो किसी अजायबघर में स्थान मिलना चाहिए । वास्तव में हमें आवश्यकता है ऐसे सैकड़ों लेखकों तथा कवियों की जिनका मस्तिष्क भले ही आकाश में हो, पर जिनके पैर ठोस जमीन पर हों, जिनका दृष्टिकोण अखिल भारतीय ही नहीं पर अखिल मानवीय भी हो, पर जो एक परिमित क्षेत्र में अपनी सारी शक्तियों को केन्द्रित करके आसपास की जनता के लिए ज्ञान तथा संस्कृति के प्रकाश-पुंज या डाइनैमो बन जावें ।

वास्तव में हिन्दी-लेखकों, कवियों और कलाकारों की जिम्मेदारी इस भारत-भूमि में सबसे अधिक भारी है ।

आयरलैंडके अमर कलाकार ए० ई० के शब्दों में 'अर्थशास्त्री हमें दैनिक रोटी दे सकते हैं, पर भावी दिनों के लिए जिस भोजन की जरूरत प्रभु ईसा ने बतलाई थी, उसका प्रबन्ध तो कोई दूसरे ही करेंगे । वह कार्य है कवियों का, कलाकारों का, गायकों का और उन वीरतापूर्ण तथा उदारचरित महान् व्यक्तियों का, जिनका जीवन नमूने के तौर पर जनता के सामने पेश किया जा सके । वे लोग ही उन आदर्शों को जन्म दे सकते हैं, जिनसे हमारा समाज प्रभावित तथा शासित होगा कलाकारों का कर्त्तव्य है कि वांछनीय जीवन की कल्पित मूर्ति हमारे सामने उपस्थित करें, आदर्श मानव-जगत् की झलक हमें दिखलायें और राष्ट्र की आत्मा का चित्र हमारे सामने खींचकर रखदें ।

हिन्दी-भाषा-भाषी ग्रामों की संख्या चार लाख से कम न होगी । अब वक्त आ गया है कि हिन्दी-लेखक और कवि, गायक और कलाकार आपस में मिलकर इस प्रश्न पर विचार करें कि चार लाख हिन्दी-भाषा-भाषी ग्रामों में, 'जहाँ जीवन-सरिता की तह झाड़-झंखाड़ों और कूड़ा-करकट से भर गई है, किस प्रकार जीवन, आनन्द और उल्लास की लहर लाई जा सकती है ?

ओह, कितना महान् कार्य और कितना उच्च लक्ष्य है हमारे सामने !

''संगीत तो भावना की भाषा, जीवन का उद्गार है । सच्चा संगीत जीवन का प्रतिबिम्ब ही होता है । आगे चलकर वही जीवन का मार्गदर्शक भी बन जाता है । जीवन में जब सब रसों का विकास होता है तभी साहित्य, कला और संगीत में भी नवरस खिलने लगते हैं । समस्त समाज का जीवन जाग्रत होगा तो संगीत भी सर्वत्र जाग्रत रहेगा ।''

'जीवन साहित्य' से]

—काका कालेलकर

श्रम-पूजा

(गतांक से आगे)

[प्रभाकर माचवे]

: ३ :

खैर, श्रीमान् 'साहित्यिक' जी आगे बढ़े। गाँव की हद मिली। गाँव में दस-पचास झोंपड़े होंगे। पहिले ही झोंपड़े पर साहित्यिक जी रुके। वह एक जुलाहे का मकान था। टीन की फ्रेम का चश्मा लगाये, एक छोटी-सी डाढ़ी का बुड्ढा मुसलमान वहाँ एक 'हाथ करघे' पर कुछ बारीक काम कर रहा था। शायद वह किनारी का डिज़ाइन बनाने के फेर में था। कपड़े उसके फटे थे। आँगन में रंगीन कपड़े सूखने के लिए बिछे थे। साहित्यिक जी को आते देखते ही उसने अपना हाथ उठाकर कहा—'सलाम बाबू ! अरे एहसान ! (एक सात बरस के बच्चे को जो पास ही ताने पर माँड़ी चढ़ा रहा था, बुलाकर) एक चटाई तो, ले आना। आइए, बैठिए। यहाँ कैसे आये बाबू साहब ?'

सा०--कुछ नहीं, कुछ नहीं। यही गांव की दशा देखने को आगया था। कैसा चलता है तुम्हारा ? महीने भर में कितना हो जाता होगा?

जग्गू जुलाहा—हमारी हालत क्या पूँछते हैं, गरीबपरवर ? आपही लोग मालिक हैं। एक लड़का था रहमान। बचपन से मैं बीवी से कहता था इसकूल न भेज—आखिर वही होकर रहा। भई पुराने जमाने में हमने इंगरेजी नहीं पढ़ी तो हमारी इन्सानियत में तो कोई कमी नहीं आगई। तो क्या कह रहा था, वही रहमान इसकूल में था। एक रोज लालच में आगया, और पड़ोस के शहर में भाग गया। तीन बरस होने आये, उसका खत नहीं, पता नहीं। खुदा जाने कहाँ गया ? सुना था किसी मिल मे काम करने लगा है। ये पुतलीघर—कहीं का नहीं रहने देंगे हमको···

सा० (बीच ही में) तो आखिर तुम्हारा इतना मोटा खुरदरा खद्दड़ पहनेगा कौन ? तुम पुतलीघर को कोसते हो, मगर इस ज़िन्दगी में कभी वैसा महीन और टिकनेवाला कपड़ा तुम बना भी सकोगे ?

जु०—मगर, ग़रीब-परवर पहली बात तो यह है कि मोटा कपड़ा पहिनने से वह बदन को काट तो खाता नहीं ? दूसरे उसे पहनकर देहात में सैकड़ों इन्सान जी रहे हैं ? महीन कपड़ा पहनने से 'बाबू' 'मुंशी', 'साहब' ज़रूर सब लोग कहने लग जाते हैं; लेकिन उससे क्या ? और जो बात आपने हम मिल के मानिन्द कपड़ा बना सकेंगे या नहीं, इस बारे में कही तो, देखिए जितना सुभीता और पूँजी मिलों पर लगाई जाती है, उससे आधी हम जुलाहों पर लगायें, फिर देखिए नफ़ीस कपड़ा हम न बना दें तो मैं चाहे जो हार जाऊँ ?

सा०—मिल से बहतर ? (कुत्सा से हँसकर) ये सब शेखचिल्ली के ख्वाब हैं ख्वाब ! पर मैं एक बात कहता हूँ कि शहरों में इतना सस्ता और अच्छा कपड़ा मिलने पर भला ऐसा खराब और जल्दी फट जानेवाला कपड़ा खरीदेगा कौन ?

जु०— तो कौन कहता है आप मुझसे खरीदें। अपने आप कात लीजिए, बुन लीजिए न !

सा०—हः। कहते हो, अपने आप कात लो, बुन लो ! बेवकूफ हो !! हमारे समय का हम दुरुपयोग करें ? हमारा वक्त खाली नहीं होता तो हमारे मिनट-मिनट की कीमत होती है। जितने वक्त में आलसी आदमी की तरह 'घर-घर-घर' चरखा हम चलायें, उतने में तो शहर के कारोबारी लोग हजारों कमाते हैं। वकील और डाक्टरों की मिनटों की फ़ीस हुआ करती है। समझे ?

जु०—(हँसकर) हमारे गाँव में एक मारवाड़ी सेठ हैं। सटोरिया। वह तो मिनटों में लाखों के वारे-न्यारे करता है। और लाख के आगे करोड़। करोड़ के आगे दस करोड़—उसका कोई हिसाब है। इस तरह तो एक मिनिट की कीमत बेहिसाब हो जायगी। सवाल यह है

कि वकील या डाक्टर या सटोरिये या आप जिनको शहर के कारोबारी लोग कहते हैं, उनके पास आता है कहाँ से ? आसमान से तो नहीं गिरता?

सा०—फिर वही सवाल ? पैसा आता है कहाँ से ? भई, मेहनत-मज़दूरी से पैसा आता है। वे दिमाग खपाते हैं, डाक्टर मर्ज़ों का इल्म रखता है, वकील क़ानूनी सलाह देता है। इस सबके बदले पैसा लेता है। कोई लूट-खसोट तो नहीं करता। लोग खुशी से पैसा ला देते हैं, इसका कोई क्या करे ?

जु० —खैर, हमें तो कोई खुशी से कुछ नहीं ला देता। माँगने से घर की आबरू जाती है। पर अब तो यह हालत आगई है कि माँगकर भी हमें कोई कुछ नहीं देता। पर वह छोड़िए, आप बहुत दूर से आये हुए जान पड़ते हैं। थकान का पसीना साफ़ कह रहा है। पानी-वानी पियेंगे ? ओ रहमान की माँ···

सा०—ना, ना। तकल्लुफ रहने दो बड़े मियाँ ! बात तो तुम्हारी जँच रही है। सचमुच पैसा कहाँ से आता है, कहाँ जाता है ? वह तो जीवात्मा नहीं है कि 'अनादि-अनन्त' कह कर काम चल जाय ! वह तो ठोस चीज़ है, जिसके आने-जाने के कोई मानी हैं। अगर एक तरफ ढेर लग रहा है तो साफ है कि दूसरी तरफ़ कहीं-न-कहीं गड्ढा हो रहा है। बात तो तुम ठीक कहते हो पर आदत —

जु०—आदत ऐसी कौनसी बाबू, जो इन्सान से भी ज़ोरावर हो। इन्सान बड़ा है या आदत ? खैर, जैसी आपकी मर्ज़ी। मैने तो एक बात की बात कही अच्छा। सलाम···

[साहित्यिकजी बेचैन होकर उठ जाते हैं। उनका विचारचक्र बेरोक चल रहा है—जीवन की दो प्राथमिक मलभूत माँगें—अन्न और वस्त्र—इन्हीं की उपेक्षा करके—इन्हींके उत्पादकों की उपेक्षा करके आज हमारी यह दानत्री यंत्र-संस्कृति पनप रही है !! यह शहरी सभ्यता--जहाँ अप्रत्यक्ष श्रमविभाजन द्वारा 'पैसा' नामक चीनाई दीवाल खड़ी करके हमने आदमी और आदमी के बीच का सीधासादा प्रेम का रिश्ता खो दिया ! और हमारा साहित्य आज इसी मौलिक उपेक्षा के आधार पर जीवन से विच्छिन्न होकर जीना चाहता है ? उफ़् ! ···]

: ४ :

अब साहित्यिक जी बिसेसर बढई के यहाँ पहुँचते हैं, जो एक दरवाजे की चौखट बना रहा है। रंधा, बसूला, करवत और न जाने कितने औजार बिखरे पड़े हैं। साहित्यिक जी के आते ही एक लकड़ी की टूटी-सी कुर्सी उनके बैठने के लिए देकर वह 'नमस्ते' कहता है।)

सा०—तुमने तो 'नमस्ते' कहा ! राम-राम नहीं ?

बि०—मेरा किसी 'राम-वाम' में विश्वास नहीं है। मैं उस शहर में रहता था, तभी से बाबू लोगों से नमस्ते कहना सीख गया। आप कहाँ रहते हैं ?

सा०—यहीं···शहर में।

बि०—वहाँ आपका अपना मकान है ?

सा०—नहीं तो।

बि०—फिर किराये से रहते हैं ? अपना खुद का मकान क्यों नहीं बनवा लेते ? शहरों में किराया तो बहुत होगा न ? मकान किराया, मैं जानता हूँ, मै बैठा हूँ इतने से एक कमरे का आठ-आठ दस-दस रुपैया ले लेते हैं।

सा०—बम्बई में तो इतनी जगह का २५) किराया होगा और अच्छे मौक़े से दूकान की जगह हो तो सैकड़ों रुपया।

बि०—(आश्चर्य से) सचमुच ?

सा०—क्यों इसमें आश्चर्य की बात क्या है ? मकान भी तो लाखों रुपयों के बनते हैं ?

बि०—ओह हो ! तो बम्बई शहर में बढ़ई लोगों की खूब बनती होगी !!

सा०—अरे, कहाँ की बात करते हो ? बढ़ई को कौन पूछता है ! सीमेंट-कंकरीट के बँगले और इमारतें बनती हैं। सीमेंट इतना अपने देश में तो बनता नहीं। और सात-आठ कारखानों में जो भी बनता है तो मशीनरी तो सब बाहर ही

से आती है। बड़ी-बड़ी मशीनों से और उन कारखानों से जो फायदा मिलता है, वह पूँजीपतियों के मोटरें खरीदने में या लड़के या लड़की के विलायत पढ़ने में, यानी इस-न-उस ज़रिये से मुल्क के बाहर ही जाता है वह पैसा। वहाँ बढ़ई को कौन पूछता है? अरे ऐसे धीमे-धीमे एक दिन में एक चौखट बनने लग जाय, तो सभी चौपट हो जाय कारोबार!

बि०—सच है। हम ग़रीबों की कहाँ गुजर है—न शहर में, न देहात में। देहातों में और भी बुरी हालत है। काम बड़ा मद्दा पड़ गया है। साल में कभी-क़दास तो काम आता है और सो भी लोग इसपर तुले हैं कि मजूरी कम से कम दें और काम ज्यादा से ज्यादा लें।

सा०—अरे, यह तो अर्थशास्त्र का मौलिक नियम है। यही अर्थशास्त्र हमें कॉलिजों में पढ़ाया जाता है। और हम आगे भी पढ़ा रहे हैं। मगर देखो, वह बात छोड़ो। तुम लोगों की जाति मे गीत-वीत गाये जाते हैं? तुम शायद जानते नहीं 'लोक-साहित्य' के विषय में अब हमारा साहित्य भी बहुत जागरुक हो रहा है। और मैं ग्राम-गीतों का संकलन करता हूँ।

बि०—क्या कहते हैं आप? गीत कहाँ के गीत और कैसे गीत!! खाने को तो पेट भर मिलता नहीं, और आपको भी अच्छा मज़ाक़ सूझ रहा है? अजी दाना हो तो चक्की चले। और चक्की चले तो गाना हो। पहले खाना-दाना, फिर गाना-वाना सब कुछ।

सा०—परन्तु तुम लोगों की भी बड़ी भूल हो रही है। तुम्हें नवीनतम आधुनिक साधनों का उपयोग···

बि०—(रोक कर) किस ज़बान में बात कर रहे हैं आप? मेरी तो समझ में नहीं आता। आप जानते हैं मेरे कुटुम्ब में आठ बच्चे हैं, तीन बूढ़े। दो बेवा बहिनें, मैं और मेरी स्त्री। इतने लोगों को पहिले खाना लाऊँ या आप क्या कह रहे हैं उस चक्कर में पड़ूँ? बताइए।

सा०—ओह! मुझे बड़ी हमदर्दी होती है।

बि०—मगर बाबू साहब, कोरे ज़बानी जमा खर्च से काम नहीं चलता। बोलिए, आप मे मदद करने को तैयार हैं? कहिए, क्या म करेंगे?

सा०——(सिटपिटा जाते हैं) न, न, न वै मेरा अर्थ नहीं···मैं, तुम···तुम्हारे-जैसे सैकड़ों जो मरभुखे हैं, जिन्हें——और मेरे अकेले से क होगा।

बि०——जाइए आप। नमस्ते। बुरा म मानिए। मैंने एक बात कही। अकेला चना भी क्या भाड़ नहीं फोड़ता?···

: ५ :

[साहित्यिकजी उठे और चलने लगे। जीव की तीसरी मौलिक माँग——मकान——उनके साम प्रश्न बनकर खड़ी होगई। अन्न, वस्त्र औ आश्रय-स्थान! फूस की झौंपड़ी के और शान दार महल के खूब नक्कासी किये हुए छत के नीचे क्या छाया एकसाँ नहीं होती? क्या वर्षातपहि से संरक्षण, झोंपड़ी की अपेक्षा महल में ज्याद मिल जाता है? नहीं, नहीं यह सब मानव-म की प्रवंचना है। धन-राक्षस (Mammon) क आदमी ने अपने ऊपर हावी होने दिया है। य उसी की लापरवाही का नतीजा है। और अ उसी धनराक्षस की पूजा के इतने सारे ज़रि निकाले हैं, जिन्हें बड़े-बड़े नाम दिये हैं——अर्थ शास्त्र, राजनीति, समाजविज्ञान···

मानव मानव को रौंद रहा है। मानव प बन गया है। नर-मांस-भक्षक! और ऊप साहित्य और प्रेम-धर्म की, महन्तपन और आदर्श वाद की चिकनी-चुपड़ी बहकी-बहकी बातें भ करता है। यह इन्सान भी कैसा दुमुँहा जानवर है

शोषण——सार्वत्रिक शोषण को मिटाने लिये यदि साहित्यिक और उसका साहित्यक किसी प्रकार उपादेय सिद्ध नहीं हो रहा है त वह विफल है। वह साहित्य नहीं 'राहित्य' है ऐसे साहित्य का एक गुलाम राष्ट्र में पनप अनर्थकारी है। यह अफ़ीम की खेती है।

साहित्यिकजी इस प्रकार सोचते-सोचते लौ

रहे थे देहात से शहर में——और इतने में ज़ोर की आँधी और वर्षा ने उन्हें घेर लिया । पूरी तरह भींग गये । कीचड़ में पूरे पैर सन गये । महीन सफ़ेद धोती पर कीचड़ के दाग़ों की सुन्दर छपाई हो गई । और उस बाहर के प्राकृतिक तूफान ने उनके मन में भी भयानक हलचल उत्पन्न करदी । परिणामतः साहित्यिकजी ने घर आकर निम्न निश्चय किये——

१. केवल कल्पनाजीवी और जीवन से असंबद्ध साहित्य वे नहीं पढ़ेंगे और न लिखेंगे ।

२. वे अपने जीवन में पहले और साहित्य में बाद में श्रम का महत्त्व समझेंगे और उसी को आचरण में लायेंगे ।

३. बौद्धिक, शारीरिक और आत्मिक श्रम में तारतम्य और सामंजस्य-निर्माण, या एक शब्द में 'साधना' उनका ध्येय रहेगा ।

४. इसीसे श्रम को वे धर्म मानेंगे, क्योंकि श्रम ही सत्य है । और किसी स्वप्न-जगत के काल्पनिक परमेश्वर से श्रम की पूजा को अधिक पवित्र और ज़रूरी समझेंगे ।

५. अतः वे अपने घर से 'जप-माला-छापा तिलक'-जैसी आधुनिक काल में शिक्षितों की महँगी किताबें और महँगे नोटपेपर और ऐसी ही गैर-ज़रूरी फैशन की चीज़ों को स्तीफा देकर, हल, करघा और बढ़ई के औज़ारों की अपने देवालय में स्थापना करेंगे । किताबों के द्वारा जीवन को न जानकर, प्रत्यक्ष संसर्ग से जीवनानुभव ग्रहण करेंगे । जियेंगे और इस तरह कि उसमें और भी जी सकें——सह नौ भुनक्तु !]

साहित्य से सर्वोदय

(गतांक से आग)

[जनार्दनराय]

जीवनोत्थान के हमारे सर्वस्पर्शी प्रयत्नों में साहित्यिक सृजन भी एक प्रभावशाली प्रयत्न है । वह प्रयत्न से अधिक गहन चीज़ है । जीवन की रक्षा निर्वाह और प्रसव के लिए चौमुखी निर्माण हम किया करते हैं । ज्ञान की दृष्टि से हमारा निर्माण शास्त्रों और तत्त्वज्ञानों की सम्पदा देता है; भावना की दृष्टि से हम वे सुख-दुख अमर रखना चाहते हैं, जो हमारी लोक-सामान्य आत्मवत् सर्वभूतेषु-अनुभूतियों को, उनकी महिमामय स्मृतियों और उनके नित्य सपनों के लिए, पोषित करते हैं । यह साहित्यिक सृजन है । सरल शब्दों में हमने उसे 'शेष सृष्टि के साथ रागात्मक संबंध' प्रसार और निर्वाह कहा है । अधिक गर्भित शब्दों में हमने उसे रसमय वाक्य कहा है । पर यह मंगल-तपस्वी मानव-हृदय के विश्व-श्रेय के चिर नवीन, चिर मंजुल संघर्ष का सहृदय चित्रण है । हमारे प्रतिपल दिव्यीकरण का रसीला अन्तर्दर्शन है । वह जीवन की सुन्दर-सरस सार्थक भूत, भविष्य या वर्तमान ही की एक कहानी है । वह उदात्त मानव-हृदय के स्मृति-सपनों का दिव्य अभिव्यंजन है ।

हम देख सकेंगे, ऐसी अवस्था में साहित्यकार का लक्ष्य सर्वोदय ही हो सकता है । क्योंकि वह जीवन का स्वभाव है; क्योंकि वह सभ्यता की आवश्यकता, अर्थ और मर्म है; क्योंकि वह अनिवार्यतः कलाकार का धर्म है । सर्वोदय के लिए साहित्य एक सजीव औरएक मात्र सांस्कृतिक भूमि है । यह मेरे मत से असम्भव है कि तत्त्वज्ञान और नीतिपूर्ण व्यवहार गतिशील कर्म-परम्परा का जन्म साहित्य की रसमय शक्ति के बिना दे सकें । जिस सांस्कृतिक सामञ्जस्य की ओर हमारा प्रयत्न और प्रगति है, उसकी धीमान कुंजी साहित्यकार के हाथ में है । हृदय के खेत में चरित्र के बीज बोये जाते हैं । जीवन की सुन्दर और रसमय अनुभूतियों और बिम्बों का प्रसार केवल उदात्त हृदय ही में सम्भव है । साहित्य

की मंगलप्रसविनी रस-शक्ति को पिये बिना जीवन का सार्थक सृजन मुझे तो सम्भव नहीं दिखता। अतः साहित्य मनोरंजनार्थ न होकर आत्म-मनोरथ के लिए है। समाज के सामूहिक हृदय की भावना-निधि को गहरी, सजीव और सम्यक् कर्म-प्रसविनी बनाये रखने के लिए रसवती भारती की ही आवश्यकता है। सामान्यतया हम क्षुब्ध रहते हैं। हमारे क्लेश विषयों के आदतन् स्पर्श हैं। उनमें उनके प्रतिदिन के बिला जाने वाले विषय-कोषों के सहित भाववृत्तियों के आविर्भाव की शक्ति संचित नहीं होती। साहित्यकार भाववृत्तियों के निर्माण का आनन्ददायी कार्य करता है। भाववृत्तियाँ मंगलोन्मुखी ही होती हैं। विषम क्षोभ-ग्रन्थियों को हम भाववृत्तियों की संस्कारजनक क्षमता से हीन केवल रोग-जनक ही पायेंगे। अतः जिस समूह और जिस व्यक्ति के पास रसमय वाक्य नहीं है, उस समूह और व्यक्ति के पास चरित्र के लिए बीज नहीं है; फसल नहीं है। लोकमान्य मंगल-मण्डित प्रसंगों और अनुभूतियों को अमर रखने की मर्मवेधी कला में ही रसनिधि वाक्य का उद्गम छिपा है। सम्पूर्ण जीवन के अनुभव-तीर्थ का तन्मयकर आनन्द हमें कवि के 'उज्जवल तीर की टीसभरी पीड़ा' में प्राप्त हो जाता है। यावत् जीवन का समन्वशील अनुभव साहित्यकार की लेखनी ही करवाती है। इसीलिए साहित्य किसी भी राष्ट्र का लिखित श्रेष्ठ हृदय-वैभव कहा जाता है।

मौजूदा मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता उसमें मंगलोन्मुखी सृजनशील भाववृत्तियों का निर्माण करना है। तभी वह यावत् जीवन के प्रति उन्मुख और रुचि-सम्पन्न होगा। भोगगामी जीवन-परिपाटी और वातावरण में उसे तीव्र तथा उद्दीपक क्षोभों ही की भेंट मिली है। अतः वह विश्रामगृह के शृंगार के समान कुछ मिनिटों की क्षुब्ध तथा ऊन मानसिक कहानी पढ़ लेना चाहता है। यह फोटोग्राफ सा वर्णन और मन के घात-प्रति-घात पाकर हुलस उठता है। वह समझता और प्रचार करता है कि साहित्य स्वा मनोरंजन है। साहित्य मनोरंजन नहीं, वह लो जीवन में अमृत और आनन्द का सिंचन क की अटूट शक्ति है। सर्वोदय के लक्ष्य की ओ सहज तथा सुन्दर गमन के लिए हमें मनुष्य हृदय की उदात्त भाव-भूमि की मूलभूत आव श्यकता होती है। क्षोभ-कातरता-विदीर्ण अस्त व्यस्त तथा ध्वस्त हार्दिकता लेकर नित नवजीव की खेती करने वाली हृदयभूमि हमें मिल न सकती। हमें सजा हुआ रँगा हुआ शव नहीं कुरूप ही सही, सजीव मनुष्य चाहिए। शेष सृ के साथ निस्वार्थ मैत्री तबतक सम्भव न हो जबतक सुन्दर हृदय, सुन्दर नयन हम न पा सकें

सर्वोदय के लिए प्राणीमात्र के श्रेय की जलाये बैठा हुआ हृदय चाहिए, जिसमें स्वा और पर-पीड़क कामनाओं के ज़हरीले पतंग भस होते रहें। जीवन की एकाग्र और अखण्ड पू तथा खेती मे ही सृष्टि के धारण ओर पाल पोषण का मर्म है। वह फिलसुफी क्या जो जीव घातिनी है ? वह शास्त्र क्या, जो जीवन कला तथा विधि नहीं देता ? यह साहित्य क्य जो जीवन का सजीव रसभरा अनुभव नहीं देता आज हम मृत्यु को लिए बैठे हैं। अतः मृ के उत्तेजक प्रेरकों से ही हम गतिशील हैं। प यह गति, यह हलचल केवल नशे की अवस् है। जीवन की तोड़ अब तीव्र हो गई है। ब खुची पकड़ रखने की केन्द्रीय शक्ति पर अ मलबों का खूब भार आ पड़ा है। यदि सर्वोद को हमारे जीवन के क्षेत्र में पुनर्स्थापित कर है, तो साहित्यकार का जीवन-पूजक रस-निर्झ ज़रूरी है।

हमारे राष्ट्र का इस समय नव-निर्माण हो रहा है। हम एक अभूतपूर्व युग के रंगमंच प अपना निर्माणकारी महत्त्वशील भाग अदा कर के लिए डटे हुए हैं। हमारी स्वाधीनता क लड़ाई सर्वोदयी जीवन-रचना का भगीरथ-प्रयत तथा साधना है। स्वाधीनता की प्राप्ति ए मुक्त परिणामात्मक नहीं है; वह साधनात्मक

तथा अंश-प्राप्त जीवन-शक्ति है । स्वावलंबन और अनन्त सुन्दर जीवन ही उस निर्माणकारी क्रान्ति का ध्येय है । हमनें प्राणीमात्र के मंगल और क्रोध के अनुकूल, अनुकूल क्यों, उसीके लिए, स्वतन्त्र भारत का स्वप्न-दर्शन किया है । हमारा अद्वितीय तरीक़ा भी उसी ध्येय के अनुसार और अद्वितीय हैं । हमारी युग-युग पुरातन संस्कृति के संगीत में आज नये सुर ताल उठे है; जीवन-व्यापी मनोरथ हममें उत्पन्न हुए हैं । हमने अपने दुःख-दर्द के कारणों का पता लगा लिया है । वे खण्ड-जीवन के स्वीकार में हैं । वे पशुता के स्वीकार में हैं । पूर्ण, अधिकपूर्ण होना ही जीवन की चिरंतनता है । यही साहित्य की आवश्यकता और उद्गम है । हमारे राष्ट्र का ध्येय मानव-जाति के परे जाकर भूतमात्र को शान्ति, सुख और कल्याण का लोकधर्म देना है । ऐसे पतित-पावन पुण्य अनुष्ठान के लिए जीवन की रस-शक्ति की एकान्त आवश्यकता है । आनंद की वृत्ति जब हमारे राष्ट्र के व्यापारों की प्रेरक होगी, तब हमें सर्वोदय की नितान्त आवश्यकता स्पष्ट होगी । सर्वोदय एक स्वीकार करने योग्य मन-पसन्दगी की चीज़ नहीं है । वह स्वाभाविक सभ्यता की आधारशिला है । मनुष्य का आदिर्भाव ही इसीलिए हुआ है । अतः उसका जीवनालेखन भी उसीके लिए है । यह वह दर्पण है, जिसमें स्वयं का मुख देखा जाता है । साहित्य वर-वरण के लिए अन्तिम आवश्यकता है ।

इस दृष्टि से जीवन और साहित्य का तादात्म्य प्रचार की वस्तु न रह जाकर अनिवार्य हो जाता है । जीवन ही के लिए साहित्य है; साहित्य के लिए जीवन नहीं है । जब सारी साधन-स्वरूप सृष्टि ही जीवन के पूर्ण सर्वोदयी प्रसार और पूजा के लिए है, तब साहित्य अलग नहीं रह सकता । साहित्य भी साधन है, तत्त्वज्ञान भी साधन है । साधन साध्य ही से अनुप्राणित है । हमारे जीवन और साहित्य को यदि हमारे साहित्यकार एकाकार कर सकें, तो राष्ट्र को उसके आदर्शों और ध्येयों के नज़दीक जाने में सहज गति और अन्तर्दृष्टि प्राप्त होगी । जिस सहजानुभूति की हमें आवश्यकता है, वह साहित्यकार को अपने प्रति की शुद्ध सच्चाई से सम्भव होगी । सजीव साहित्यकार का सजीव साहित्य सजीव समाज को निश्चयतः जन्म देगा । तत्त्वज्ञानी ज्ञान की खेती करता है; और राष्ट्र-आत्मा में ज्ञान का दीपक जलाता है; साहित्यकार भावों की पीयूष-सरणियाँ संचार करता है । जीवन का वैभव अपने अथाह सौन्दर्य और शक्ति के साथ तभी खिलता है, जब ज्ञान की भूमि और किनारों में हिलोंरें लेती हुए पुण्य स्रोतस्विनी प्रवाहित हुआ करे ।

सर्वोदय के लिए तपस्या और त्यागभावी जीवन की आवश्यकता है । साहित्य इस लक्ष्य को अपने संघर्ष के द्वारा पूर्ण करता है । जैसा संघर्ष जीवन के रंगमंच पर होगा, वैसा ही साहित्यकार की लेखनी से प्रसूत होगा । उत्तम कोटि का जीवन-संघर्ष, जो जीवन विकास के लिए आवश्यक दो आदर्शों में स्थिति-प्रसंगवश होता है, और जो लोकसंग्रही कर्त्तव्यों के कारण प्रणीत होता है, सर्वोदयी वातावरण के लिए आवश्यक सहजानुभूति और रसज्ञाता उत्पन्न करता है । पुण्य और श्रेयकामी जीवन-निर्माण का संघर्ष ही सनातन हुआ करता है; क्योंकि वह सर्व जीवन की पूजा ही का रुदन-हास प्रस्तुत करता है । मैं समझता हूँ साहित्य के द्वारा सर्वोदय ऐसे संघर्ष के यथार्थ चित्रण से अनुप्राणित होता है । मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ, कि ऐसे पुण्यभावी संघर्ष के द्वारा जो रसानुभव होगा, वही उदात्त भाव-भूमि उत्पन्न कर सकेगा, जो लोक को भूतमात्र के कल्याण करने की पुण्य शक्ति, पुण्य मन और पुण्य प्रयत्न देगा ।

अली की मा

[प्रभुदास गांधी]

हमारा गाँव ब्राह्मणों का है। ब्राह्मण जमींदार है, ब्राह्मण किसान है, ब्राह्मण दूकानदार है, ब्राह्मण मुखिया है, ब्राह्मण मुंशी (स्कूल-मास्टर) है; थनैत[१] और ठेकेदार भी ब्राह्मणों में से हैं और गाँव से बाहर सरकारी गैरसरकारी नौकरियों में जानेवाले ब्राह्मणों की संख्या भी कम नहीं है। हमारे गाँव के प्रधान कांग्रेसी ब्राह्मण हैं और प्रधान कांग्रेस-विरोधी भी वे ही हैं। गाँव का नाम आसफपुर-फकावली है, परन्तु ब्राह्मणों की फकावली के लाक्षणिक नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

वैसे गाँव की आबादी में ब्राह्मणों का परिमाण बहुत ज्यादा नहीं है। तीन सौ घरों में पचास के क़रीब घर उनके हैं, परन्तु उनका वर्चस्व बहुत है। दूसरी और दस बारह बिरादरियाँ हमारे गाँव में हैं। परन्तु गाँव का नेतृत्व, अच्छाई और बुराई में, ब्राह्मणों के ही हाथ में है। कभी-कभी मुसलमानों के जो दस-पन्द्रह घर गाँव में हैं, उनको ब्राह्मणों का अंकुश कड़वा मालूम देता है। किसी दावत के लिए कलिया पकाने की तैयारी करते हुए मुसलमान भाई पाये जाते हैं तो सारे गाँव में सन्नाटा छा जाता है, बड़ी काना-फूँसी चलती है और किसी-न-किसी तरह ब्राह्मण लोग मुसलमानों को बकरे की जान बचाने के लिए राजी कर ही लेते हैं। फिर भी मुसलमानों को अधिक भय नहीं है, क्योंकि हमारे गाँव से लगा हुआ--सिर्फ दो फर्लांग की दूरी पर--मुसलमानों की नब्बे फीसदी वर्चस्व का समर्थ गाँव है। जिले में और आसपास हिन्दू-मूसलमान की तनातनी तीव्र हो जाने पर भी हमारे गाँव में झगड़ा फैलता नहीं है, क्योंकि पड़ोसी गाँव पूरे समर्थ और जागरुक हैं। दोनों के बीच सहयोग और भाईचारा है, यद्यपि मुझे इस भाईचारे से प्रसन्नता नहीं मिलती। अक्सर
ऐसे किस्से सामने आ जाते हैं, जिनसे पता चल
है कि दोनों ही संप्रदायवाले मन ही मन ए
दूसरे के प्रति कितने अश्रद्धालु, अनुदार औ
असभ्य बनते जाते हैं। धुआँधार और धध
ज्वालामुखी की भाँति दोनों संप्रदाय के विचार
दुःखी, बेचैन और भयभीत नजर आते हैं, पर
संघर्ष को दूर धकेलने में सबको सबका कल्या
नजर आता है।

दो ही उदाहरण लीजिए। हमारे गाँव
ठाकुरों के घर पूरे दस भी नहीं हैं पर अप
भभकी से वे गाँव के हर किसी शख्स को कं
देते हैं। ब्राह्मणों को भी इन ठाकुरों की नार
ज़गी से बचने की सावधानी रखनी पड़ती है
जब ठाकुर 'कलिया' उड़ाता है, तब ब्राह्मणों
जीव-दया जाने कहाँ सो जाती है? हमारे मुस
ग्राम-बन्धु यह वाक़या जानते हैं और इसलि
उनको कलिया छीने जाने का सख्त रंज होता है
उधर भूल से भी हमारे गाँव से कोई गाय-बछि
अपने रखवाले की निगाह चुकाकर पड़ो
मुसलमान गाँव की हद में पहुँच जाती है,
उसकी जिन्दगी ख़तरे से ख़ाली नहीं रहती। य
वह भक्ष्य बनने से बच जाती है, तो भी बे
लाठी की मारों से यमराज के दूतों का द
किये बिना नहीं लौट पाती। गौ-माता पर हो
वाली इस बेरहमी को देखकर हमारे गाँव
ब्राह्मणों का कलेजा टूक-टूक हो जाना लाजि
है, पर वे फिर भी ग़म खाते हैं। इसीलिए मैं
कहा कि हमारे यहाँ हिन्दू-मुसलमानों का झगड़
नहीं फैलता, क्योंकि दोनों एक-से समर्थ हैं प
यह मर्यादा हिंसा की नींव पर खड़ी है। अहिंस
की नींव पर कायम होनेवाले भाईचारे की सुर
तो कुछ और ही होगी। गांधीजी के आदेश औ
सद्गत श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के उदाहरण क
सामने रखते हुए हम लोग उस अहिंसक नींव क
उपासना करते हैं। पर मौजूदा स्थिति तो वह

---

[१] "जमीदारों के जमादार"

है जो मैंने ऊपर बयान की। यानी ऊपर से हाथ-मिलाप पर अन्दर से बेचैनी और भय।

कड़ाके की गरमी की संध्या में बरस कर ठंडक पहुँचानेवाली बदली की तरह हमारे गाँव में दिल को आनन्द पहुँचानेवाली अली की मा है। ब्राह्मण और ठाकुरों के गाँव में यदि गाय-माता की सेवा करनेवाली कोई है, तो वह अली की मा है। गाँव में किसी के पास इतनी गौएँ नहीं हैं, जितनी गौएँ अली की माँ के पास हैं। जब मुझे गाय के दूध या घी की ज़रूरत होती है, तब मैं लुटिया लेकर सीधा अली की मा के आँगन में पहुँच जाता हूँ। साठ-पैंसठ वर्ष की बुढ़िया होने से वह मुझ पर पुत्र का-सा भाव रखती है। "आओ भैया बैठो। तुम दरवाजे पर क्यों खड़े रहते हो? यह तुम्हारा ही घर है। बेखटके चले आओ। देखो इस गाय का दूध ख़तम हुआ। अब मेरी चार गायें बिरुकी हुई हैं और दो अभी ब्याई हैं। तुम दूध मँगा लिया करो। खुद तकलीफ क्यों करते हो? बच्चे को भी भेज दोगे तो बिना पानी का दूध तुम्हें मिल जायेगा। दूध में पानी मिलाना मेरे लिए हराम है। अली के बाप को पता चले कि दूध में किसीने पानी मिलाया है, तो वह हमारी मिट्टी पलीत कर देगा। बेईमानी की कमाई पानी में डूब जाती है, गाय के दूध में पानी देने से गाय हमें पोसती नहीं है। अगर हम बेईमान होंगे तो गाय से बरक्कत हमें कभी न मिलती। हमारी तो सारी बरक्कत गाय की बदौलत है। हिन्दू गाय को बेच देते हैं और कसाई के हाथ कट जाने देते हैं, पर मैं कभी गाय को बेचती नहीं, चाहे कितनी ही बूढ़ी क्यों न हो जाय।"

और अली की माँ की यह आत्म-प्रशंसा ज़रा भी अनुचित नहीं है। गाँव का बच्चा-बच्चा कहता है कि गाय रखना अगर कोई जानती है, तो वह अली की मा है।

पाठक यह न समझें कि यह कोई भोली-भाली मुसलमान बुढ़िया होगी। भोली वह जरा भी नहीं है। अपने व्यापार में इतनी चतुर है कि दस-दस मील तक के ताज़े-से-ताज़े भाव का उसे पता है। वह जानती है कि मैं गाय के घी का लालची हूँ, इसलिए बाज़ार में भैंस के घी से गाय का एक छटाँक अधिक बिकता है, फिर भी वह मुझे भैंस के घी से गाय का घी तेज देती है। वह कहेगी "देखो भैया, गाँव में तो नौ छटाँक का घी बिक रहा है, पर मैं तुम्हें दस छटाँक दूँगी अगर सारी हंडिया ले लोगे तो।"

× × ×

एक दिन अली की मा से मैंने हिन्दू मुसलमान की बहस छेड़ दी। कहने लगी—"हम ऐसे वैसे मुसलमान नहीं है। हम हैं पक्के मुसलमान। तुम चमार-भंगी का छुआ खा-पी लेते हो, पर हम कभी नहीं खाते। पाक मुसलमान से ही हमारा खाना-पीना होता है। मेरा पोता तो गोश्त से भी बड़ी नफ़रत करता है। पिछले दिनों उसके बाबा कहीं से कलिया ले आये। मैं तो न खाती हूँ, न रसोई में जाने देती हूँ। मेरे बरतन सब ऐसे पवित्तर हैं कि तुम कभी अन्देशा मत करना। उसको पकाने के लिए मैंने बाहर चूला बनाया और नई हँडिया चढ़ाई। वह लड़का आया तो पूछने लगा इसमें क्या है? मैंने कहा कुछ नहीं। उसने खोलकर देखा और ऐसा बिगड़ा कि लठिया मार कर हँडिया फोड़ दी। हम लोग बहुत चोखे हैं और खरे मुसलमान हैं।"

जब कभी मेरे घर पर अली की मा आती है तब मेरी घरवाली और बच्चों के साथ बहुत भाव दिखाती है। बच्चों के स्वास्थ्य के बारे में माँ को नसीहत देती है और यदि घर में मैं अकेला हूँ, मेरी पत्नी बाहर गाँव गई हों तो मेरे खाने-पीने-पकाने के कष्टों को बूढ़ी चाची की तरह पूछती है। मैं कहता हूँ "तुम पकादो तो मैं खाऊँगा और मुझे आराम मिलेगा।" पर वह इसे मजाक समझती है। खुद मुसलमान होते हुए हिन्दू की रसोई में घुसना और हिन्दू-चित्त को कष्ट देना उसका कोमल हृदय मंज़ूर नहीं करता। जब उसे कहता हूँ कि मैंने मुसलमानों के साथ खाया है और आश्रम में रोज खाते हैं, तब

वह क्षुब्ध हो जाती है। कहती है 'खाया होगा।'

दूसरी भी बहुत तारीफ़ें अली की मा में है। उसका आँगन बहुत स्वच्छ रहता है। उसने कई बार मुझे सुनाया है कि "तुमने सारे गाँव में झाड़ू लगाया है, पर कभी हमारे यहाँ लगाना पड़ा? ऐसी ना समझ नहीं हूँ। तुमसे कभी अपना आँगन साफ़ न करवाऊँगी।"

अली में अपनी मा की-सी प्रतिभा नहीं है। फिर भी अली बड़ा महनती किसान है। घोर अन्धेरी रात में मूसलाधार पानी में वह आम के बागों की रखवाली के लिए जाता है। एक दिन वह दूध लेकर आया। तब मैं अखबार पढ़ रहा था। उसी रोज उसमें काँग्रेस-मिनिस्ट्री के मुसलमानों पर होनेवाले अत्याचारों का हाल, जिन्ना साहब का व्याख्यान और पाकिस्तान की योजना आई थी। मैंने उसे वह सब सुनाया और पूछा कि बताओ भाई, हम काँग्रेसी, तुम मुसलमान! हमारी तुम्हारी दुश्मनी साँप-नेवले की-सी ही बनी रहेगी?" अली पढ़ा-लिखा न होने पर भी सूक्ष्म बुद्धिवाला है। अपने मुसलमान बिरादरों में कुछ भी अप्रिय शब्द बोलने में उसे अपने ईमान का द्रोह प्रतीत होता था, पर मुझे अपना दुश्मन बताने की कल्पना उसके लिए वज्रपात की थी। उसके चेहरे का रंग बदल गया।

वह बोला "ऐसा कहीं होता है? उन वा से हमें क्या मतलब?" इसके बाद फीकी मुस्क दिखता हुआ वह लौट गया।

अली की मा और उसका परिवार को बाहर का परदेशी या विधर्मी परिवार है, ऐ खयाल ब्राह्मण गाँव के लोगों में भी उठता हु मैंने नहीं देखा। उसकी नेकी में सबको विश्वा है। और हम लोग जब कभी चर्खा-धुनकी लेक उसके मुहल्ले में पहुँचते हैं, तब वह पड़ौसियों हमारा अच्छा प्रचार करती है।

बुद्धि के जोर से लोग भले ही सिद्ध कर कि हिन्दू हिन्दू है, मुसलमान मुसलमान है औ दोनों की तहजीब एक दूसरे से विपरीत है; प हृदय से जब अली की मा के जैसे हृदयों पहिचान होती है, तब उम्दा से उम्दा बुद्धि भी धोखादेही महसूस करनी पड़ती है।[१]

---

[१] **ऐसी जीवनदायिनी 'सत्यकथाओं' का 'जीवन-साहित्य' में विशेष रूप से स्वागत होगा क्योंकि उनका जन्म प्रत्यक्ष जीवन में से होत है।**

—सम्पादक

आर्य-संस्कृति के प्रतिष्ठाता तुलसीदास

[सुधीन्द्र]

तुलसीदास का रामचरितमानस आर्य-संस्कृति का उज्ज्वल दर्पण है, जिसमें हम अपनी आदर्श नीतिमत्ता को शताब्दियों से देखते चले आ रहे हैं। यों तो भारतभूमि पर अनेक सन्तों, महापुरुषों और धर्म-संस्थापकों ने जन्म लेकर उदात्त जीवन का आग्रह अपनी वाणी में रक्खा है और हम जब-जब भी अपनी पुनीत-संस्कृति की निष्ठा में शिथिल हुए, तब-तब इन युग-पुरुषों ने हमें चेतना दी और हमें अपना भूला मार्ग बतला दिया, परन्तु तुलसीदास का अवतरण और उनके द्वारा रामचरित-मानस का प्रणयन हिन्दी-साहित्य के ही नहीं, समस्त उत्तरापथ के इतिहास में ए अविस्मरणीय घटना है। मुसलिम शासन अपनी संस्कृति और सभ्यता की मलिन छाया भारत देश पर डालता जा रहा था, जनता नीति, धर्म और आदर्श की ओर से उदासीन होती जा रही थी, एक प्रकार की निराशा, जड़ता और हीनता की चादर हमें ढकती जा रही थी; ऐसे समय में यदि देश की उस अंधकारमय पथ की यात्रा में कोई सम्बल हो सकता था, तो वह भगवान् की शक्ति का था। उस भगवान् के आसरे की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति जन-समाज में भक्ति की गंगा

बहा कर ही पैदा की जासकती थी। तुलसी ने यही किया। एक विकलता, एक निस्सहायता, अव्यवस्था, अरक्षितता, अनिश्चितता और अशान्ति जो हमें एक दुरवस्था की ओर घसीट रही थी, मानस की अमृतमयी, सर्वप्लाविनी, संजीवनकारिणी धारा के स्पर्श से तिरोहित होने लगी। तुलसी की वाणी का उद्बोधक, प्राणोत्पादक घोष घर-घर पहुँचकर मानव-हृदयों को स्पर्श करने लगा, कहने लगा कि तुम निराश न हो, दीनबन्धु भगवान् तुम्हारी पीठ पर हैं, निर्बल के बल-राम तुम्हारे जीवन से अभिन्न हैं। इस आश्वासन वाणी ने हिन्दू-जाति को सञ्जीवनी दी। रावण की अनीति और अत्याचार की पराकाष्ठा में ही राम के उद्भव का बीज है, यह एक पीड़ित, पददलित, निराशप्राय जनता ने समझा। और जब जनता स्वस्थ हुई कि कुछ सुन सके, कुछ देख सके, कुछ ग्रहण कर सके तो तुलसी का रामचरित्र जीवन की प्रत्येक स्थितिमें प्रवेश कर अपने लोकमंगलकारी रूप का दर्शन उसे कराने लगा।

रामचरित की हृदय को छूनेवाली जीवन-व्यापकता ने क्या लघु और क्या महान्. क्या हीन और क्या श्रेष्ठ, क्या धनी और क्या अकिंचन सबको मुग्ध और अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। हिन्दू-जीवन अपने हृदय में अपने 'राम' की प्रतिष्ठा कर अपने को धन्य समझने लगा और धीरे-धीरे राममय हो रहा। हमारे सुख-दुख,सम्पत्ति-विपत्ति आशा-निराशा, विजय-पराजय सबमें सर्वत्र 'राम' रम गये। उन्होंने दिखाया विपत्ति में धैर्य का अवलम्ब न छोड़ने का, संसार भर के भीषण-संकट सहकर भी कर्त्तव्यपालन से विमुख न होकर दूसरे के लिए 'स्व' को उत्सर्ग कर देने का व्यक्ति की उच्चता का चिरन्तन आदर्श।

यों इस घोर निराशांधकार में अपने सत्य और शिव स्वरूप को भूली हुई हिन्दू जाति में नवजीवन भर कर तुलसीदास ने जो दूसरा कार्य किया वह है उनके जीवन-क्रम में अपनी चिर-पुनीत उदात्त संस्कृति की प्राण-प्रतिष्ठा। व्यक्तिगत, कौटुंबिक, सामाजिक और राजनीतिक सब क्षेत्रों में उन्होंने अपने मानस-द्वारा आर्य-संस्कृति का अभिषेक किया। राम और दूसरे चरित्रों द्वारा तुलसी ने मानव-संस्कृति की आदर्श कल्पना को साकार रूप दिया। मनुष्य-मनुष्य का ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं जिसके आदर्श रूप को रामचरितमानस ने प्रस्तुत नहीं किया हो। आर्य संस्कृति के मूल में—मानव संस्कृति के मूल में एक आदर्श रहा है कि:

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्

परिवार के लिए व्यक्ति का, समाज के लिए परिवार का, राज्य के लिए समाज का और विश्वकल्याण के लिए राज्य का उत्सर्ग कर देना ही आर्य-संस्कृति, मानव संस्कृति का प्राण है। मानस के द्वारा तुलसी ने इसी संस्कृति की प्रतिष्ठा की। हृदय कितनी उदात्त भावनाओं से भर जाता है, जब हम पाते हैं कि अयोध्या के राज-परिवार का प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के सुख-सन्तोष के लिए अपने सुखों को छोड़ने पर कटिबद्ध है! हमें तो रामचरितमानस में प्रत्येक चरित्र अपने आदर्श के चरम उत्कर्ष में मिला। राम में पितृ-भक्ति, स्ववचन-पालन, नीतिनिष्ठा का अप्रतिम आदर्श है तो भरत में भ्रातृभक्ति, निष्काम और ज्वलंत त्याग का, लक्ष्मण में भ्रातृसेवा, त्याग, धैर्य, और कष्ट-सहन का तो सीता में अनन्य पातिव्रत का, कौशल्या में मातृसुलभ वात्सल्य का, तो दशरथ में **'प्राण जाइ पर वचन न जाई'** की 'रघुकुल-रीति पालन की अद्वितीय निष्ठा का और हनुमान में स्वामी-भक्ति का तो केकैयी में विषाद और पश्चात्ताप का आदर्श हमें मिलता है। भाई का भाई के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, शिष्य का गुरु के प्रति, पुत्र का माता-पिता के प्रति, सेवक का सेव्य के प्रति और मित्र का मित्र के प्रति क्या कर्त्तव्य होना चाहिए, इसके आदर्श का पदार्थ-पाठ रामचरितमानस के पात्रों ने दिया। लक्ष्मण का अपने भाई राम की सेवा के लिए सांसारिक सुख और वैभव को ठुकराकर १४ वर्ष तक वन-सेवन की कठोर साधना करना, सीता का अपने पति

के सुख-दुख, संपत्ति-विपत्ति में साथ रहने की वृत्ति से पातिव्रत-धर्म में निरत रहकर निर्जन बन और अन्त में एकान्त-प्रवास के असाधारण संकट झेलना, दशरथ का अपने वचन की रक्षा के लिए अपने प्राणप्यारे पुत्र को अपने से अलग करके वीरतापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करना, भरत का अनायास ही मिल गये राजवैभव और विलास को हेय समझकर अपने ज्येष्ठ भ्राता के अभाव में उसे तृणवत् त्यागकर विरागी-जीवन बिताना, हनुमान की अपने स्वामी के लिए अपने प्राणों को भी नगण्य मानकर संसार का दुष्कर-से-दुष्कर कार्य कर लेने की सजग तत्परता आदि-आदि जीवन के आदर्शों के कितने ज्वलन्त उदाहरण हैं ! योरप में तो जहाँ शेक्सपियर के नाटकों में इसके विपरीत सांसारिक वैभव और मानसिक आसुरी वृत्तियों की वेदी पर अपने रक्त-संबधी की भी हत्या करके रक्त की धारा बहाई गई है और कई पाशव भावनाओं और वृत्तियों का चित्रण किया गया है, ऐसी आदर्श कर्त्तव्यपालन या धर्मपरायणता की मिसाल ढूँढने जाना व्यर्थ है ।

ऊपर कहा गया है कि मानस के राज-परिवार में जो पिता-पुत्र का, भाई-भाई का, पति-पत्नी का मधुर और आदर्श सम्बन्ध देखने को मिलता है, उसमें उत्सर्ग का—त्याग का—सौंदर्य खिल उठा है । यह उत्सर्ग आर्य-संस्कृति का आध्यात्मिकता का प्रतीक है । 'व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को परिवार से समाज और समाज से राज्य में लय करते हुए अन्त में उसे विश्वात्मा में लय करने का पाठ सीखता है ।' भारतीय समाज-व्यवस्था के आधार-स्तंभ वर्ण-व्यवस्था धर्म और आश्रम धर्म हमारी संस्कृति के इसी आध्यात्मिक तत्त्व की ओर संकेत करते हैं । नवीनता अथवा स्वतन्त्रतावादियों को इस व्यवस्था में अन्याय और अत्याचार मानकर उससे चौंकने की आवश्यकता नहीं है, वल्कि ज़रूरत है इसके मूल तत्त्व को––हार्द को समझ लेने की । यह ग़लत है कि इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दमन किया जाता है या समा में ऊँच-नीच की भावना को बल मिलता है औ सामूहिक उन्नति और विकास में वाधा पड़ती है परन्तु आर्य-संस्कृति के व्यक्ति-स्वातंत्र्य औ पश्चिम के भौतिकवाद के व्यक्ति-स्वातंत्र्य में व अन्तर है । जहाँ भौतिकवाद का व्यक्तिग स्वातंत्र्य मनुष्य को बन्धन में डालता है, वह हमारी आर्य संस्कृति का व्यक्ति-स्वातंत्र्य उ मुक्त करता है । हमारी आदर्श वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-धर्म मुक्ति के इस आदर्श की सि ही के लिए हैं । यहाँ वर्ण-विभाजन आध्यात्मिकत के क्रमागत विकास के परिणाम के आधार प किया गया है । जैसे ब्राह्मण-धर्म में भौतिक सु का उत्सर्ग जितना है, उतना क्षत्रिय-धर्म पालन में नहीं है और वणिक्-धर्म में तो क और भी कम है । इसी प्रकार धर्म-पठन-पाठन तत्त्वचिंतन, यज्ञादिकर्म-ज्ञान और विद्या की रक्षा समाज-कल्याण के लिए उदात्त आचरण और आत्म-बल की साधना ब्राह्मण-धर्म में जितनी है उतनी क्षात्र-धर्म में नहीं है और वाणिज्य अथवा सेवा-धर्म में तो वह है ही नहीं । इसलिए जबतक ऊँचे कर्त्तव्यवालों के प्रति समाज में आदर-सम्मान का भाव नहीं रहेगा, तबतक यह व्यवस्था ठी नहीं चल सकेगी; हाँ इन ऊँचे कर्त्तव्यों के पालन में शिथिलता अथवा दम्भ नहीं आना चाहिए परिवार में जिस प्रकार कम और अधिक सम्मान ऊँची और नीची श्रेणी मानी जाती है, ठीक उसी प्रकार समाज में विद्या, बुद्धि, शील, शक्ति त्याग, उत्सर्ग आदि के परिणाम से वे श्रेणियाँ आप ही आप घटित होजाती हैं, और जबतक उच्च श्रेणियों के कर्त्तव्य की कठिनाई हम आँखों से देखा करेंगे, तबतक नीची श्रेणियों में ईर्षा-द्वेष की भावना आ ही नहीं सकती । कर्त्तव्य के शिथिल पड़ने पर और अधिकार के ज्यों के त्यों बने रहने पर ही यह स्थिति को विषम बनाने वाली अवस्था उत्पन्न होती है ।

आज जो समाज का वैषम्य छुआछूत के रूप में नज़र आता है, उसकी तुलसी ने रामचरित

मानस द्वारा विगर्हणा की है । गुह और राम का प्रेम-मिलन छुआछूत के हिमायतियों की आँखें खोल देनेवाला दृष्टान्त है ।

ऋषि वसिष्ठ और गुह का मिलन भी कितना गद्गद्कारी है :—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू ।
कीन्ह दूर तें दण्ड प्रनामू ।।
राम-सखा ऋषि बरबस भेंटा ।
जनु महि जात सनेह समेटा ।।

राजधर्म का भी तुलसी ने रामचरितमानस में राम के चरित्र द्वारा पदार्थ-पाठ दिया है । आज जो राजा और प्रजा में कटुता, वैमनस्य, और संघर्ष छाया हुआ है, उसका अदृश्य कारण चाहे जो कुछ हो, परन्तु प्रत्यक्ष कारण यह है कि राजा प्रजा के प्रति अपने धर्म को—अविवेक से, लोभ, लालच से, झूठे भय अथवा आशंका से—भूल-से गये हैं । यदि आज भी वे रामचरितमानस के

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी''

को अपने कर्तव्य का ध्रुवतारा बनालें, तो सारी समस्यायें अपने आप सुलझ जायँ और उनका स्वेच्छाचारी निरंकुश अथवा अत्याचारी कहा जानेवाला राज कल ही 'रामराज' या 'धर्म-राज' कहा जाने लगे ।

आज राजनेतागण कह रहे हैं कि प्रजातंत्र आदर्श राज-व्यवस्था है, परन्तु प्रत्यक्ष तो यह है कि प्रजातंत्र-जैसी आदर्श शासन-व्यवस्था भी विशेष परिस्थितियों में एकतंत्री शासन से भी कठोर और दुर्भर हो जाती है । ऐसे प्रजातंत्रों में कुछ मुख्य दलों का प्राधान्य औरअधिपत्य हो जाता है, किन्तु राम-राज्य का जो आदर्श ऊपर दिखाया गया है, उसमें ऐसी स्थिति पनप ही नहीं सकती । आज हिन्दुस्तान 'स्वराज्य' की माँग लेकर लड़ रहा है, परन्तु वह क्या उसकी ठीक-ठीक कल्पना कर सका है ? महात्मा गांधी ने 'रामराज' को ही 'स्वराज' कहा है, क्योंकि 'राम' ही 'स्व' हैं और 'राम'-जैसे राजाओं का उस 'स्वराज' में सम्यक् स्थान है । वे प्रजारंजन के लिए, प्रजा-कल्याण के लिए भौतिक सुखों को तिलांजलि देनें और प्राणों को भी उत्सर्ग कर देने की राम-जैसी निष्ठा रक्खें, यही रामचरितमानस से तुलसी ने उन्हें सिखाया ।

'रामराज' की एक झलक 'मानस' से हम लें :

वयरु न करु काहू सन कोई,
राम प्रताप विषमता खोई ।
दैहिक, दैविक, भौतिक तापा,
रामराज नहिं काहुहिं व्यापा ।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती,
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुतिरीती ।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न हीना,
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ।

सच तो यह है कि ऐसी स्थिति में ही प्रजा शक्तिशालिनी, समृद्ध, शीलवान, मेधावी, प्रेममय, धर्मरत और अध्यात्मप्राण हो सकती है ।

मानस ने आदर्श राजा का रूप रक्खा है कि उसका जीवन प्रजा के लिए खुला रहे । प्रजा को अधिकार रहे उसे अनीति से रोकने का । राम ने जब 'गुरुद्विज पुरवासी सब' से

''जौं अनीति कुछ भाखौं भाई,
तौ मोहिं बरजउ भय बिसराई ।''

कहा होगा, तब क्या यही आदर्श नरेशधर्म उनके सामने न था ?

कर-प्रथा के लिए तुलसी ने सूर्य का दृष्टान्त देकर एक सुन्दर व्यवस्था बाँधी है । सूर्य जैसे धरती के जल को अपने 'कर' (किरण) की गर्मी से खींचकर उसे बादल का रूप देकर पुनः धरती पर बरसा देता है, इसी प्रकार राजा भी प्रजा से ही कर के रूप में द्रव्य लेकर उसे लोक-कल्याणकारी कार्यों में व्यय करके पुनः उसे दे दे ।

आदर्श राज्य केवल कर्मों का नियंता, न्याय का संचालक या प्रतिष्ठापक ही नहीं होता, लोकरक्षक होता है, हृदयस्पर्शी होता है, उदात्त होता है । आर्य संस्कृति का राजा शक्ति और धन का संचित प्रतीक नहीं होता, धर्म-

शक्ति का देवता होता है। 'नररूपेण महती देवता' होकर भी वह प्रजा का सेवक है। उसकी रक्षा के लिए वह अपने वैभव को एक ओर धर कर दौड़ पड़ता है, प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए अपनी प्राणप्राणा पत्नी का दारुण वियोग सह लेता है। प्रजा के सुख-दुख को अपना सुख-दुख समझ लेना ही आर्य संस्कृति के राजा का धर्म है और यही रामचरितमानस में प्रतिपादित किया गया है।

रामचरितमानस जीवन के सब क्षेत्रों, स अवस्थाओं में एक आदर्श मानव संस्कृति क झाँकी प्रस्तुत करता है। क्या व्यक्ति, क्या परिवा क्या समाज और क्या राज्य सब के आदर्श स की प्रतिष्ठा तुलसी ने रामचरितमानस में की है

तुलसीदास एक महाकवि थे, महापुरुष थे भक्त-शिरोमणि थे, पर उनका जो सब से अधि महत्त्वपूर्ण स्वरूप है, वह यह है कि वह उदा आर्य संस्कृति के—मानव संस्कृति के प्रतिष्ठाता है

जीवन-साहित्य का एक उपेक्षित अंग

[सत्यदेव विद्यालंकार]

लेखक का, कवि का, साहित्यकार का अपनी रचना के आधारस्तंभ कथानक, घटना, और चरितनायक के साथ आत्मसात् हो जाना ही साहित्य में सजीवता, प्राण-शक्ति और अमरता पैदा कर सकता है। 'रामचरितमानस' ही को ले लें, जो आज देश में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है और जिसमें जनता को एक अद्भुत आकर्षण, अद्वितीय मनोमोहकता और अमर आत्मीयता मिली है। उसका मुख्य रहस्य यही है कि 'मानस' की रचना के पूर्व 'मानसकार' ने उसके हार्द के साथ अपने को आत्मसात् कर दिया। उसमें असली जीवन-शक्ति आई है उस अनुशीलन, मनन और साधन से, जिसे हम भक्ति कह कर उपेक्षित कर देते हैं—उसमें कल्पना या भावनाओं का ही वैभव नहीं है, वरन् उसमें एक अनुभूति है, जिसमें भावना और कल्पना के मनके पिरोये गये हैं। यह अनुभूति तुलसी में न होती तो उनकी रचना में हृदय को बलवान् और मस्तिष्क को तेजस्वी बनाने का सामर्थ्य भी न होता, आज 'मानस' लाखों करोड़ों के लिए स्फूर्ति का पुंज न होता, आत्मसात् करने का ही नाम स्वानुभूति है। इस दृष्टि से 'मानस' लोकोत्तर ग्रंथ है और उसकी लोकोत्तर लोकप्रियता का यही प्रधान रहस्य है।

यह स्वानुभूति जिस साहित्य में नहीं है, वह दूसरों को अनुप्राणित नहीं कर सकता। मदारी के खेल के समान, उसके बिना की गई रचना अवास्तविक सृष्टि है, जो कुछ समय के लिए ही विनोद, आमोद या मनोरंजन का साधन बन सकती है। उससे व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र के निर्माण के लिए कोई ठोस या स्थिर सहायता प्राप्त नहीं की जा सकती।

हमारे समाज की रचना का आधार वैदिक दृष्टि से 'यज्ञ' या 'होम' की जो भावना है, उसका सीधा-सादा अर्थ अपने व्यक्तित्व को समष्टि के लिए उत्सर्ग कर देना है। वेदान्त की व्यावहारिकता भी इसी भावना में निहित है। दिया यदि अपने तेल और बत्ती का उत्सर्ग नहीं करे, तो वह दुनिया में उजाला करने का साधन बन नहीं सकता। रत्नगर्भा पृथिवी के पेट में बीज यदि अपने को गला न दे, तो उसके गर्भ से पैदा होने वाली बनस्पति दुर्लभ हो जाय और उसपर निर्भर रहने वाले प्राणियों का जीवन दूभर हो जाय। लेखक या साहित्यिक के पास उत्सर्ग करने के लिए क्या है? शब्द-कोष, शब्द-प्रयोग, पद-योजना, वाक्य-रचना, प्रबन्ध-शैली, भाषा-लालित्य रस-माधुर्य, अलंकार-सौन्दर्य, दृश्य-वर्णन, चरित्र-चित्रण, भाव-अभिव्यक्ति और प्रतिभा एवं भावुकता के चमत्कार आदि से प्रगट होनेवाला

काव्य-कौशल साहित्य का केवल स्थूल शरीर है। लेखक, कवि या साहित्यिक उसमें स्वानुभूति से ही उस आत्मा की प्रतिष्ठा कर सकता है, जो उसमें दीप्ति, चेतना और जीवन पैदा करके दूसरों के लिए उसे चुम्बक बना देती है। इस स्वानुभूति के रूप में ही वह दूसरों के लिए अपना उत्सर्ग करता है और समाज की रचना तथा राष्ट्र के निर्माण के महान् कार्य में योगदान करता हुआ अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकता है। बिना इसके कुम्हारों के घड़ों की तरह पोथियों को तैयार करते जाना किसी भी महान् उद्देश्य या आदर्श की पूर्ति में सहायक नहीं हो सकता।

लेखक व साहित्यिक के आत्मसात् और स्वानुभूति की दृष्टि से सर्वोत्तम साहित्य का एक सुन्दर अंग 'पत्र-साहित्य' है, जिसकी ओर हम लोगों का अभी ध्यान ही नहीं गया। दूसरी भाषाओं में इस साहित्य का अच्छा सम्मान है। वह आदर की दृष्टि से देखा जाता है और बहुत चाव से पढ़ा जाता है। कुशल-क्षेम के पत्रों तक में उनको लिखनेवाला जैसे अपना दिल खोलकर रख देता है, वैसे ही किसी महान् मिशन, लक्ष्य, उद्देश्य अथवा आदर्श की पूर्ति में लगे हुए महापुरुषों के पत्रों में भी उनके हृदय की असली छाप अंकित हो जाती है। मुझे इसकी प्रतीति सबसे पहले तब हुई, जब मैं स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की जीवनी लिखने में लगा हुआ था। उनके कागज़ों की छान-बीन करने से कुछ ऐसा पता चला कि अपने सब पत्रों की नकल रखना उनका स्वभाव-सा बन गया था। अपने सब पत्रों के जवाब का मसविदा वे स्वयं अपने हाथों से तय्यार किया करते थे। उनका क्लर्क उसकी नकल करके डाक में छोड़ देता था और वह मौलिक मसविदा फाइल में पिरो दिया जाता था। उनके इस प्रकार सँभालकर रक्खे हुए बहुत पुराने पत्र-व्यवहार को पढ़ने का उस समय अवसर मिला और मैंने यह अनुभव किया कि उनके अन्तरात्मा की ध्वनि उन पत्रों में बराबर गूँज रही थी और उनके हृदय का असली चित्र उनमें झलक रहा था। अफ्रीका से गांधीजी के साथ हुआ उनका पत्र-व्यवहार, राजर्षि गोखले के साथ हुई उनकी चिट्ठी-पत्री और ऐसे ही कुछ और पत्र भी कितने बोधप्रद प्रतीत हुए! दीनबन्धु एण्ड्रूज के साथ हुआ पत्र-व्यवहार तो एक छोटी-सी पुस्तिका बन सकता है और उसमें दो महापुरुषों की जागती व उठती हुई आत्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। 'जागती व उठती' शब्द मैंने इसलिए कहे कि उस समय न तो एण्ड्रूज 'दीनबन्धु' बने थे और न मुंशीरामजी 'स्वामी श्रद्धानन्द' बन पाये थे। दो उगती हुई आत्माओं ने 'महान्' पद के शिखर पर पहुँचने के लिए अँधियारे में एक-दूसरे के लिए सहायक होकर जो रास्ता टटोला था, उसका सजीव चित्र उनके उन पत्रों में अंकित है। 'गुरुकुल' उनके जीवन का सर्वश्रेष्ठ कार्य है। उससे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रों में गुरुकुल के प्रति उनकी भावना कहीं-कहीं सजीव होकर जाग उठती है। स्वामी जी के जीवन की प्रगतियाँ जैसे चतुर्मुखी थीं, वैसा ही उनका पत्र-व्यवहार भी है।

इस साहित्य के दो ताज़े उदाहरण हम सबके सामने हैं। 'सरस्वती' के संचालकों ने आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी के पत्रों का संकलन करने के लिए 'सरस्वती' में उन्हें प्रकाशित करना शुरू किया हुआ है। वे कितने उद्बोधक स्फूर्तिदायक और मनोरंजक भी होते हैं,—यह उन्हें पढ़नेवालों से छिपा नहीं होना चाहिए। 'हरिजन' या 'हरिजन-सेवक के' कालमों में एक नया शीर्ष 'डाक का थैला' इन्हीं महीनों में शुरू किया गया है। वह गांधीजी के साथ होनेवाले पत्र-व्यवहार की सार्वजनिक बाजू है। उसे पढ़ने से जो स्फूर्ति, प्रेरणा एवं उत्साह मिलता और पथ-प्रदर्शन होता है, वह अद्भुत है। किसी भी एक पाठक के पत्र के जवाब में लिखी गई दस-पाँच पंक्तियाँ सैंकड़ों की मानसिक शांति का साधन बन जाती हैं।

बात यह है कि पत्र लिखने में मनुष्य को शब्द-योजना, वाक्य-रचना अथवा भाषा-साहित्य आदि किसी भी दृष्टि से कुछ थोड़ी-सी भी बना-

वट नहीं करनी पड़ती । उसमें बिल्कुल सीधी-सादी, सरल भाषा में, हृदय की भावनाओं को मौलिक रूप में उतार दिया जाता है । न वहाँ पाठकों की रुचि का सवाल सामने होता है और न किसी को प्रसन्न करने का । किसी की आलोचना का भी कोई खयाल सामने नहीं आता । 'सस्ता-साहित्य-मंडल' ने श्री 'सुमन' जी की एक पोथी 'भाई के पत्र' के नाम से प्रकाशित की है । वे पत्र सम्भवतः इस पोथी के लिए ही लिखे गये हैं, फिर भी उनमें अपना अनोखा सौन्दर्य है । भाई उससे बढ़िया सीख बहिन को और क्या दे सकता है ? यदि कहीं वे मौलिक पत्र होते, तो सोने में सुगंध हो जाती । विवाह के अवसर पर अपने नये साथी (पत्नी) के लिए मैं किसी सुन्दर भेंट की खोज में था कि कलकत्ते में सहसा मेरे हाथ योगीराज श्री अरविन्द के वे पत्र लग गये, जो उन्होंने सम्भवतः पहिली जेल-यात्रा का अवसर उपस्थित होने पर अपनी सहर्धामिणी को लिखे थे । मैंने कुछ पत्रों की उस पुस्तिका के सिवा कोई और उपहार अपने विवाह में अपने हाथों से अपने नये साथी को नहीं दिया । मुझे खुले शब्दों में अभिमान व गौरव के साथ यह स्वीकार करना चाहि कि हम दोनों में विद्यमान साधारण-सी राष्ट्रीयत को उत्तरोत्तर बढ़ाने में उन पत्रों से यथेष्ठ व मिला है ।

महापुरुषों के पत्र वस्तुतः उनकी अनुभूतिय के चित्र ही तो होते हैं । महापुरुषों के छाया-चित्रों एवं चरित्रों से मिलनेवाली स्फूर्ति से कहीं अधिक प्रेरणा इन भावना-चित्रों से मिल सकती है । लेकिन हिन्दी में ऐसे उपयोगी साहित्य क प्रायः अभाव है । उसे 'अत्यन्ताभाव' कहना भी कोई अत्युक्ति नहीं । चरित्र-चित्रण-सम्बन्धी जीवन-साहित्य का हिन्दी-साहित्य में अभी विका हुआ ही नहीं । 'पत्र-साहित्य' जीवन-साहित्य क ऐसा अंग है कि उसके बिना उसका पनपना जरा मुश्किल जान पड़ता है । लेकिन, उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता । जीवन, प्रेरक शक्ति और स्फूर्ति के पुंज इस साहित्य की ओर भी जीवन-साहित्य के निर्माताओं का ध्यान ज़रूर जाना चाहिए ।

शिक्षा

[खलील जिब्रान]

इसके बाद एक अध्यापक ने कहा, शिक्षा के विषय में हमें ज्ञान दीजिए ।

वह बोला : "तुम्हारे ज्ञान के सूर्योदय में अर्ध-निद्रित अवस्था में जो कुछ पहले से ही मौजूद है उससे अधिक कोई क्या बतावे ?

जो शिक्षक मन्दिर की छाया में अपने विद्यार्थियों के बीच घूमता है, वह उन्हें अपने ज्ञान का अंश ही नहीं, बल्कि अपना प्रेम और विश्वास भी सौंपता है ।

यदि वह वास्तव में बुद्धिमान है तो वह तुम्हें अपने ज्ञानमन्दिर में घुसने की आज्ञा कभी न देगा, बल्कि तुम्हें तुम्हारी बुद्धि के प्रवेशद्वार तक पहुँचाने का प्रयत्न करेगा ।

ज्योतिषी तुम्हें आकाश के सम्बन्ध में अपना ज्ञान कह सकता है, किन्तु वह अपना ज्ञान तुम्हें प्रदान नहीं कर सकता ।

और गायक तुम्हें दिशा-दिशा में व्याप्त स्वरैक्य गाकर सुना सकता है, परन्तु उस स्वर को पकड़नेवाले कान नहीं दे सकता और न उनको प्रतिध्वनित करनेवाली आवाज़ दे सकता है ।

और जिस प्रकार ईश्वर की आँखों में भी तुममें से प्रत्येक का अलग-अलग स्थान है, उसी प्रकार तुम्हें भी अपने ईश्वरीय और लौकिक ज्ञान में स्वतन्त्र और अकेला रहना चाहिए ।

['जीवन-संदेश' से]

प्रस्तुत प्रश्न

हमारे अभाव

'जीवन-साहित्य' के एक परम हितैषी और मेरे प्रिय मित्र ने मेरे अनुरोध पर 'जीवन-साहित्य' के सुधार और उन्नति के लिए बहुत ही उपयोगी सुझाव व विचार पेश किये हैं जो मेरे और 'जीवन-साहित्य' के ही लिए नहीं वरन् सभी हिन्दी लेखकों, सम्पादकों व प्रकाशकों के लिए मार्गदर्शक हो सकते हैं :—

'जीवन-साहित्य' का क्षेत्र

" 'जीवन-साहित्य' को जादू की पिटारी न बनाकर उसका अपना एक अलग क्षेत्र होना चाहिए। हिन्दी में ऐसे बहुत कम पत्र हैं। अधिकतर तो 'कहा न समुद्र समाय' वाले ही हैं; ब्रह्मचर्य भी और सिनेमा भी और साथ ही सिनेमा सुन्दरियों के चित्र भी। पंसारी की दूकान की तरह संखिया और शहद सब एक ही जगह मिल जाता है। किसी तरह का गाहक वापस न न जाने पावे। उस सूरदास की तरह जो पैसा पाने पर भजन गा देता है और ठुमरी ठप्पा भी।

" 'जीवन-साहित्य' को एक नया रास्ता लेकर अपनी ज़रूरत सिद्ध करनी चाहिए, नहीं तो हज़ार-पाँच सौ शब्दों को इधर-उधर उलट-पुलट कर कुछ समझने, कुछ न समझने, ज़रा-सा बाकार और अधिक बेकार लिखकर श्रम, स्याही और काग़ज़ बिगाड़ने में क्या धरा है ?

पहला उपयोग

"हिन्दी में एक अच्छे समालोचक पत्र की कमी बहुत अखरती है। "जीवन-साहित्य" को इस ओर क़दम बढ़ाना चाहिए। जैसे पूरे पैसे देकर और मिलावटी खाद्य पदार्थ लेकर लोग अपना स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं वैसे ही कूड़ा-कर्कट साहित्य लेकर पाठक का मन और पैसा दोनों बिगड़ता है। जैसे खराब खाद्य पदार्थ के लिए म्यूनिसिपैलिटियाँ स्वास्थ्य-अफ़सर रखती हैं, वैसे ही खराब साहित्य को रोकने के लिए भी कुछ उपाय होना चाहिए। अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध कभी छोटी-सी भी पोथी निकल जाय तो सरकार फ़ौरन् ज़ब्त करती है पर लोगों की रुचि बिगाड़नेवाले चाहे पोथे के-पोथे निकलते रहें पर कोई बोलनेवाला नहीं। भला करें भगवान् श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी का जिन्होंने कुछ दिनों पहले घासलेटी साहित्य के खिलाफ आवाज़ बुलन्द की थी। लेकिन अकेला चना क्या भाड़ फोड़ सकता है ? कहीं से मदद नहीं मिली, चुप हो रहे। यह काम ज़रूरी ह, पर है मुश्किल। इसके लिए बड़े मज़बूत दिल का आदमी चाहिए, किसीने सच्ची कही और उसकी सात पुश्त तक की खबर ली जाने लगी। जनता का हित ज़रूर सधेगा पर जिनके यश और जेब पर चोट पड़ेगी वह माफ नहीं करेंगे। समालोचक को भी उसी धरातल पर लाने की कोशिश की जायगी। अगर समालोचक इसमें फँस गया, तो गया समझिए। जो गन्दगी दूर करने चला वह खुद ही उसमें फँस गया, तो फिर बाकी क्या रहा ? उसमें दम चाहिए सत्य कहने का और दुर्वाक्य सहने का। यह धीरज न हो तो इस पथ पर पाँव ही न धरे।

आज क्या होता है ?

"आज तो हिन्दी में प्रायः समालोचना मुँह देखी होती है। कहीं सही आलोचना हुई और वह प्रकाशक या लेखक के विरुद्ध पड़ी तो आलोचक से सदा के लिए बैर बँध जाता है। खरे आलोचक के पास लोग पुस्तकें भेजना भी कम पसन्द करते हैं। उन्हें तो तारीफ करने वाला चाहिए। सम्पादक भी बैर मोल लेना नहीं चाहता; चाहता है दो चार लकीर लिख कर पिण्ड छुड़ाना और समालोचना के नाम पर अपनी लाइब्रेरी सजाना। सच्ची के कहने और सुननेवाले दोनों 'वक्ता श्रोता च दुर्लभः'। कभी-कभी आलोचना होती है कसर निकालने को। गुणों पर पर्दा डालकर दोष ही दोष सामने धरे जाते हैं। कभी केवल अपना पाण्डित्य दिखाने को होती है। मूल से आलोचना बड़ी हो जाती है। केवल शब्दाडम्बर होता है। कुछ उर्दू के

मुहावरे और कुछ संस्कृत के चुने हुए शब्दों से आलोचना' भरी रहती है। ज़रा सार, घना शब्दाडम्बर।

"आज हिन्दी का कोई धनी-धोरी नहीं जान पड़ता। जैसा जिसका जी चाहता है, गलत-सही लिख मारना है। ऊटपटाँग भाषा और वैसे ही विचार। यह में उनकी बात कहता हूँ जो अपना लेखकों में कोई दर्जा समझते हैं। कोई चाहिए जो बड़ी नरमी से इन्हें इशारा करे। इनकी चीजें सामने रखकर आलोचना करे। अक्सर लेखकों की पुस्तक में देखा जाता है कि आरम्भ में भूमिका में कुछ हिस्सा तो अपने घर की बातों में जरूर ले लेते हैं। खुद बीमार पड़ गये या पत्नी, इससे पुस्तक के निकलने में देर हो गई और अशुद्धियाँ भी रह गईं, पाठक सुधार कर पढ़ें। यह सिर्फ एक मिसाल है। यदि दस-पाँच जगह से संग्रह किया जाय तो एक मजेदार लेख बन जायगा। कोष और व्याकरण की पुस्तकों की भूमिकाओं तक में ऐसी चीजें मिलती हैं। मानों पाठक प्रथमारम्भ में लेखक की आत्मकथा सुनने को ही पोथी खरीदता है। कुछ में हितू, मित्र, शिष्य, स्त्री, अड़ोसी-पड़ोसी सबको धन्यवाद देने में भूमिका का कुछ भाग खर्च कर दिया जाता है। कुछ अपनी भूलों के सुधार के लिए पाठकों को निमन्त्रण देने लगते हैं। पुस्तक निकालने की इतनी जल्दी रहती है कि पहले संस्करण में भूलें सुधारने की परवाह ही नहीं की जाती। हलवाहा खेत ठीक नहीं जोतता तो उसे उलाहना मिलता है——गँवार, कैसे जोता? यह कैसे छोड़ गया? पर इन लेखकों को कोई नहीं कहता, क्योंकि ये तो खुद ही दुनिया के उपदेशक ठहरे! कौन कहे, कौन सुने?

"हिन्दी में कोई पत्र इस बात की चर्चा नहीं करता कि हिन्दी में किस विषय की पुस्तकों की कमी है। बस कहानियाँ और अनुवादित उपन्यास; बंगला के एक-एक उपन्यास के कई-कई अनुवाद; अंग्रेजी की जूठन बंगला में और उसकी जूठन हिन्दी में। हिन्दी में 'मुस्लिम सन्त' एक पुस्तक है, वह गुजराती से अनुवादित है, गुजराती अनुवाद बंगला से है और बंगला की पुस्तक फार की 'तजक़िरुल औलिया' के आधार पर लि बतलाई गई है! हिन्दी में क्या कोई फारसी नहीं था जो सीधे उक्त पुस्तक के आधार एक पुस्तक लिख सकता? जैसे चार मुँह औ कानों से गुजरते-गुजरते बात की शक्ल कुछ कुछ हो जाती है, वैसी ही हालत इन पुस्तकों होती है। लोगों को अनुवाद का और उसे से प्रकाशित करने का कुछ ऐसा चाव रहता कि एक लेखक की जो सड़ी-गली पुस्तक मि जाती है, उसीका अनुवाद करने बैठ जाते हैं; उ लेखक की और दस पुस्तकें पढ़कर उसमें अच्छी चुनने का कष्ट नहीं उठाते। न बहुत लेखकों को पढ़कर उनमें से अच्छे को हिन्दी लाने की ओर ध्यान देते। अच्छे लेखक के लि अच्छा पढ़ाक होना बहुत जरूरी है, इसका ह बहुत कम ख्याल है। बहुतेरे हैं जो मौलिकता नशे में झूमते रहते हैं। पढ़ें तो उनकी मौलिकता में बट्टा लग जाय।

"हम लोग विचार करने बैठें तो पता चले कि हमारी हिन्दी की कैसी दीन दशा है।

"बहुतेरे अच्छे लेखकों को भी यह पता नहीं रहता कि हिन्दी में किस विषय की पुस्तकें किसकी नहीं। मेरी समझ में 'जीवन-साहित्य को इन चीजों का ज्ञान कराने का साधन बनना चाहिए।

"एक मित्र इधर गोपालन, खेती और प्राकृति चिकित्सा पर हिन्दी की अच्छी पुस्तकें ढँढने लगे तो देखा कि तीनों विषयों पर नहीं के बराबर पुस्तकें हैं। ये तो रोज़मर्रा काम में आने वाली चीज़ें हैं। इन विषयों पर अच्छी पुस्तकें न होना बड़े दुःख की बात है।

आचार्य ढूँढना चाहिये

"'जीवन-साहित्य' के मार्फ़त हमें कोई आचार्य ढूँढना चाहिए। अपने ज़माने में स्वर्गीय पं॰ महावीरप्रसाद जी द्विवेदी इस विषय के आचार्य थे। लेखकों को उनसे सूचना, सलाह-मशविरा,

उत्साह बराबर मिलता रहता था। लेकिन आज ? कोई नज़र नहीं आता।

अच्छी पुस्तकों को उत्तेजन देना चाहिए

“आज देखा जाता है कि हिन्दी में विज्ञापन के बल कूड़ा बिक जाता है और अच्छी पुस्तकें प्रकाशक के यहाँ पड़ी सड़ा करती हैं। एक हज़ार के संस्करण में कहीं सौ-दो सौ कापियाँ बिकीं तो बिकीं। भला किस बल-बूते पर कोई अच्छी किताब निकाले, लिखे ? ऐसों को उत्तेजन देने की कोशिश होनी चाहिए, अच्छी चीजों की तारीफ़ करके उनकी बिक्री में मदद देनी चाहिए। ‘जीवन-साहित्य’ का यह भी एक काम है। ये सुझाव मेरे ध्यान में आये सो मैंने बताये हैं। और भाइयों को भी ‘जीवन-साहित्य’ का ठीक क्षेत्र बताने, बनाने में मदद करनी चाहिए।”

इन मित्र के प्रत्येक सुझाव का समर्थन करता हुआ इनके अन्तिम अनुरोध के सुर में मैं भी अपना सुर मिला रहा हूँ।

ह० उ०

राजस्थान में साहित्यिक संगठन की समस्या

राजस्थान में साहित्यिक संगठन की समस्या और प्रान्तों से कहीं ज्यादा जटिल है। वहाँ के साहित्यिक विभिन्न रियासतों में बिखरे हैं, जहाँ के क़ानून-क़ायदे भिन्न हैं, या यों कहें कुछ-नहीं-से हैं। आज के साहित्य की प्रगतिशीलता प्राण-वायु है, और अप्रगतिशील वातावरण में पनपे राजाओं और राज्य-संचालकों के लिए चौंका देने की चीज़ है। उनमें से जो साहित्य की उपयोगिता और शक्ति को समझते होंगे, उनके लिए साहित्यिक और उनका संगठन भय की वस्तु है; क्योंकि साहित्य से जनता जाग्रत होगी और जाग्रत जनता से उसके उचित अधिकार अधिक दिनों तक दूर नहीं रक्खे जा सकते। रियासतों की स्थिति ही वहाँ की जनता के पुरातन-प्रेमी, अन्ध-विश्वासी, वर्तमान से अनभिज्ञ और मन-वचन-कर्म से अप्रगतिशील होने पर निर्भर है। फिर वे, प्रगतिशीलता के दूत साहित्य को अपनी सीमाओं में पनपने देकर अपनी जड़ों को खुद काटें ?

साहित्यिकों की निर्धनता तो निर्धन भारत में सब जगह समान है, इसलिए यह राजस्थान की विशेष समस्या नहीं है। लेकिन यह अवश्य एक बड़ी समस्या है कि राजस्थान के अधिकांश साहित्यिक अर्थ-स्वावलम्बी न होने के कारण रियासतों के आश्रित हैं और, इसीलिए, किसी प्रगतिशील संगठन में खुल कर भाग लेना उनकी अपनी समस्या है। इस ओर कदम उठाने में आर्थिक-पीड़न के अलावा राज-कोप का तथा राज-सभा में पीढ़ियों से बना-बनाया स्थान मिट जाने का भय भी उनको है ही। जिनका स्थान राज-सभाओं में नहीं है, वे राज्य-संचालित संस्थाओं के अधीन हैं।

फिर राजस्थान में साहित्यिक प्रगति के साधनों का शोचनीय अभाव है। रिय़ासतों के व्यय के आँकड़े देखने से पता चलेगा कि सरकारी तौर से शिक्षा-साक्षरता-प्रचार के लिए नहीं-सा प्रयास होता है। गैर-सरकारी तौर से जो कुछ हो रहा है, वह राजस्थान-से लम्बे-चौड़े प्रांत के लिए अत्यन्त अल्प है। ऐसी भी कुछ रियासतें मिलेंगी, जहाँ बीस-बीस गाँवों पर एक-एक पाठशाला या मकतब होगा और जिनकी सीमाओं में पुस्तकालय और वाचनालय जैसी कोई जगह नहीं पाई जायगी। ऐसी दुर्दशा में यहाँ अशिक्षा और निरक्षरता का अंधकार स्वाभाविक है। इस अंधकार के घने बादलों में साहित्यिक संगठन के सूर्य को प्रकट होनें में बहुत कठोर प्रयास करना पड़ेगा। दूसरे प्रांत के लोग राजस्थानी समस्याओं की ओर कम ध्यान देते हैं, इसमें दूसरे प्रान्तवासियों से ज्यादा दोष हमारा है, जो अपनी सच्ची हालत भी दूसरे प्रान्तवालों को नहीं बता-पाये फिर भी दूसरे प्रांतवालों का जहाँ राजस्थानी भी अच्छी संख्या और स्थिति में हैं, राजस्थान के प्रति जो कर्तव्य है, वह अभी तक पूरा नहीं हुआ है—यह सत्य है।

प्रान्त में दैनिक समाचारपत्र कोई नहीं है।

इसकी आवश्यकता है, सफलतापूर्वक चलने की गुंजाइश भी है—यदि संचालक साधन-सम्पन्न, धुन के पक्के और सहनशील हों। जो साप्ताहिक हैं, वे बहुत ओछे स्टेन्डर्ड के हैं। वे चल रहे हैं, चूँकि राजस्थान की गतिविधि से परिचित रहने का उनके सिवाय या उनसे अच्छे साधन, इस लम्बे-चौड़े प्रान्त में और प्रान्त के बाहर दूर-दूर तक बिखरे राजस्थानियों के सामने नहीं हैं। कुछ पत्र राज्याश्रित हैं, जिनसे किसी प्रगतिशील आन्दोलन में सहायक होने की आशा करना वृथा है। राजस्थानी साहित्यिकों को यह भी शिकायत रही है कि उनके प्रांत के पत्र उनका योग्य आदर, उनसे उचित सहयोग और उनकी आवश्यक सहायता नहीं करते। फिर भी कुछ साप्ताहिक पत्र साहित्यिक संगठन के स्थापन में सहयोग दे सकते हैं, दे रहे हैं, और अपने पैर जमाने के बाद प्रान्त की पत्रकार-कला की ओर ध्यान देना उस संगठन का काम होगा ही।

प्रान्त में साहित्यिक संगठनों के कई प्रयास हुए, जिनकी असफलता की शोचनीय और करुणापूर्ण कहानी है। उन सब की संयुक्त असफलता की पृष्ठभूमि पर, मेवाड़ रियासत की राजधानी उदयपुर में, अगले अक्टूबर मास में, 'राजस्थान हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' का ढाँचा तैयार करने का प्रयास होने जा रहा है। वहाँ के सुप्रसिद्ध साहित्यिकों ने स्वागत-समिति बनाकर प्रारम्भिक कार्य शुरू कर दिया है। साहित्यिक क्षेत्रों में इसकी चर्चा भी बढ़ रही है।

यहाँ हम यह बता देना अपना कर्तव्य मानते हैं कि सम्मेलन की सफलता की कसौटी क्या होगी? यदि सम्मेलन एक सुव्यवस्थित और भव्य समारोह-भर रहा तो हमारा उसे सफल कहना ठीक न होगा। उसका काम है बिखरी हुई व्यक्तिगत और सामूहिक शक्तियों का संगठन कराना, उन्हें उनकी शक्ति और कर्तव्य का भान कराना, उनको उत्साहित करना, उनका मार्गदर्शन करना, उनका पथ आसान करना तथा उनके सामने वह मौका ला देना है, जो केवल उनके असंगठित होने के कारण अव उनसे दूर रहा। काम बड़ा है। इसके लिए स की पूरी सहायता अनिवार्य है। सम्मेलन कर्तव्यों के विस्तार में हम यहाँ न जायेंगे, में, उसे वह सब कुछ तो करना ही है जो प्रय का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और काशी नागरीप्रचारिणी सभा कर रही है; साथ उसे राजस्थान की विशेष समस्याओं को अपने हाथ में लेकर सुलझाना है। राजस्थ को प्रकृति ने मरुभूमि बनाया है। लेकिन मनु ने इस साहित्य से हरी-भरी भूमि को—अं की बातें सचमुच गौरवपूर्ण हैं—अपने हा साहित्यिक मरुभूमि बना डाला। प्रस्तुत सम्मे को उसके निराकरण की ओर बढ़ना है।

राजेन्द्रशंकर

'स्वानुभूति' और 'मनोवेगों का रेचन'

[नीचे के विचार कुछ उग्रता से व्यक्ति कि गये हैं। सुधारेच्छु की भाषा में उग्रता की अपे सहानुभूति की अपेक्षा अधिक की जाती है फिर भी मैं इसे ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर दे चाहता हूँ—इसलिए कि पाठक और हमा कवि-समाज जान सके कि लोगों के दिलों में विषय पर कैसा तूफान उठता रहता है। इस दूसरे पक्ष में भी यदि कोई कवि या साहि मित्र लिखेंगे तो उनके विचारों को भी सा स्थान दिया जायगा। —संपादक

'साहित्य-सन्देश' के अगस्त के अंक 'जीवन-साहित्य' के प्रथमांक के 'हिन्दी के क किधर?' नामक लेख के कुछ अंशों को उस विद्वान् सम्पादक महोदय ने उद्धृत करने की कृ की है और उसके साथ एक सम्पादकीय नोट दिया है। नोट की और बात तो ठीक है, एक दो बातें, जिनसे उन्होंने इन प्रगतिशी कवियों का बचाव किया है, बुरी तरह खटक हैं। और कुछ कह कर बचाव होता तो एक बा थी, पर जो कहा गया वह इतना लचर औ ऊटपटाँग है कि इन पंक्तियों को लिखे बि

कोई चारा ही नहीं । वे बातें ये हैं—

"....अपने साहित्य का सृजन समाज, राष्ट्र और सत्य के लिए चाहते हैं, तो क्या हम कल। के युग-युग के सत्य को, जो इन कवियों की स्वानुभूति से व्यक्त होता है, आज की विषम परिस्थितियों में बिलकुल छोड़ देना चाहते हैं ? यह सत्य है कि जहाँ राष्ट्रनिर्माण का प्रश्न मुख्य होता है, वहाँ साहित्य का मापदंड अवश्य ऊँचा होना चाहिए । किन्तु इसका दूसरा पक्ष भी है । वह यह कि तीव्र मनोवेगों के मानसिक रेचन के लिए कोई अवकाश नहीं रहता तो वे उद्वेगजनक और अनिष्टकर होजाते हैं । उद्वेगों के दबाने की आवश्यकता नहीं, उनके नियमन और संतुलन की आवश्यकता है ।"

ठीक है । मनोवेगों का नियमन और संतुलन कैसे हो ? उनको दबाना तो चाहिए नहीं । परिणाम स्पष्ट है कि आज हमारे असंख्य कवियों के मनोवेगों की धारा की धारा (जिनके उदाहरण 'हिन्दी के कवि किधर ?' नामक लेख में दिये गये हैं) सुन्दर और आकर्षक आवरणों के अन्दर सज-धज कर बह रही है ।

आज-कल **स्वानुभूति** शब्द इतना सस्ता हो गया है कि प्रत्येक लेखक और कवि इसका प्रयोग धड़ल्ले के साथ कर देता है । जो कुछ वह लिखता है सब कुछ 'स्वानुभूति' ही होती है । तुलसीदास जी जो 'स्वान्तः सुखाय' इतनी बड़ी रामायण लिख गये वह भी इन 'स्वानुभूति'-जन्य पंक्तियों के आगे हेय समझी जाती है । मानते हैं कि 'स्वानुभूति' भी एक वस्तु होती ह । पर उसका अधिकारी भी होना चाहिए । उस स्वानुभूति के पीछे कौनसा तप है, कौन सा त्याग है कौन सी प्रतिभा है और कौनसा मिशन है, जो देश, समाज और साहित्य को ऊँचा उठाता है, यह क्या हमें नही देखना चाहिए ? क्या सड़क पर नंगा घूमनेवाला, आम जगह पर... करनेवाला व्यक्ति दण्डनीय नहीं है ? तब क्यों

पियें अभी मधुराधर चुम्बन
गात गात गूंथें आलिंगन
सुने अभी अभिलाषी अन्तर
मृदुल उरोजों का मृदु कंपन या
उन्नत पुलकित उभडे उरोज या
दूर ग्राम की कोई वामा

× × ×

उतरे जल में अवसन श्यामा,
अंकित उरछवि सुन्दरतर हो या
चूम चूम मादक अधरों से
मूँद दिये फिर चल लोचन या
मृदुल गोल गोरी बाहों में
कंपित अंगों में कस लूँगी या
इस प्रेरित लोलित रतिगति में
जब झूम झमकता विसुध गात
गोरी बाहों में कस प्रिय को
कर दूँ चुम्बन से सुरास्नात

आदि कामुकतापूर्ण शब्द-चित्र अपराध न समझे जाने चाहिएँ ? किसी को गटर का मल-मूत्र मिला गन्दा पानी सुन्दर बोतलों में सजाकर पीते देखा है ? कोई कवि अपनी इन प्रियाओं के साथ अपनी कविता में वर्णित तसवीर खिंचाकर बिकवाना पसंद करेगा? पर वह 'स्वानुभूति' न होगी न ! खुदा खैर करे—आज तो असहाय हिन्दी-संसार इन कवियों के मनोविकारों के गन्दे नालों में जिसे 'कला का युग-युग का सत्य' और 'कवियों की स्वानुभूति' के सुन्दर नाम दिये जाते हैं, बुरी तरह बह रहा है और उन्हें 'तीव्र मनोवेगों का मानसिक रेचन' कहकर जायज़ ठहराया जाता है ! ठीक है । इस न्याय से तो फिर तीव्र मनोवेगों का शारीरिक रेचन—खुले आम बलात्कार और व्यभिचार—भी आप क्षम्य समझने लग जायेंगे ।

हम पूछते हैं कि उन बाज़ारू मजनुओं द्वारा सरे आम गाई जानेवाली ऐसी ही गन्दी गज़लों या कव्वालियों, और इन सुशिक्षित, सुसंस्कृत कवियों की अलंकार, रस आदि गुणों से विभूषित और 'कला के युग-युग के सत्य' को स्वानुभूति से व्यक्त करनेवाली इन 'तीव्र मनोवेगों का मानसिक रेचन' नामधारिणी कविताओं में क्या कोई खास अन्तर है ?

माना कि कवि भी आदमी है । उसकी भी

भावना होती है—मनोविकार आते हैं। मन चंचल है। जिधर उसे नहीं जाना चाहिए उधर जाता है—जितना रोकते हैं उतना ही ज्यादा जाता है। पर उसको खुला छोड़ना और विषयों का आस्वादन करना या उसका नियमन करना स्वतः कवि का व्यक्तिगत कार्य है। उसमें वह चाहे जैसा बरते। अपने घर में चाहे जैसा आचरण करे, पर अपने मनोविकारों से साहित्य को गँदला करने का उसे क्या अधिकार है? यह तो सीधा सादा प्रश्न है—चीज़ को आप बना सकते हैं—सुधार सकते हैं—सँवार सकते हैं—साफ रख सकते हैं—गन्दा नहीं कर सकते। घर में आप चाहें जैसे रहें, सड़क पर तो धोती पहन कर ही निकलना होगा। वहाँ अगर नंगा होकर नाचने की 'स्वानुभूति' हो तो जेलखाने या पागलखाने की सैर करनी होगी।

और अजब तो यह है कि कवि ऐसे निरे कामुकतापूर्ण शब्द-चित्र तैयार करता है—पत्र-पत्रिकाओं में भेजता है—वे उसे प्रथम पृष्ठ पर छापते हैं। फिर ऐसे चित्रों का संग्रह तैयार होता है, प्रकाशक खोजे जाते हैं और इस प्रकार के 'प्रगतिशील' चित्रों के प्रकाशक मिल भी जाते हैं और अगर न भी मिलें तो कवि स्वयं उनको तैयार करके बाज़ार में भेजता और प्रकाशक से रॉयल्टी तथा खुद की प्रकाशित हो तो मुनाफा कमाता है। क्या यह व्यापार, क्षमा कीजिए, वेश्यावृत्ति के व्यापार-जैसा नहीं है? पर हिन्दी में तो ऐसे भी हैं जो इन दोनों को अच्छा समझते हैं, उसमें गर्व अनुभव करते हैं। पर मैं तो उन महानुभावों से पूछता हूँ, जो ऐसे कवियों को बढ़ाते हैं, उनकी पीठ ठोंकते हैं, उनके मनोविकारों को जनता के सामने रखते हैं, कि ऐसा करके वे साहित्य की क्या सेवा करते हैं? क्या हमारा और उनका कर्तव्य नहीं है कि इस गन्दी धारा को बन्द किया जाय?

'भास्कर'

हम क्या करें?

बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने साहित्य और संस्कृति-प्रचार की एक महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य योजना प्रस्तुत करते हुए 'विशाल भारत' एक लेख लिखा है, जिसका सारांश हम नी देते हैं:—

"हिन्दी-भाषा-भाषियों की संख्या १४- करोड़ कही जाती है, और जिन प्रान्तों में वे रहे हैं, वे एक दूसरे से सैंकड़ों मील दूर हैं। करोड़ों आदमियों तक सांस्कृतिक सन्देश पहुँचा उनके बीच में ज्ञान का प्रकाश फैलाना अथ साहित्यिक जाग्रति उत्पन्न करना किसी संस्था अथवा दस-बीस आदमियों का नहीं है।

वर्षों के अध्ययन और मनन के बाद हम सिद्धान्त पर पहुँचे हैं कि १५ करोड़ आदमि की साहित्यिक भूख को मिटाने का काम अकेला साहित्य-सम्मेलन कर सकता है और नागरी-प्रचारिणी सभा ही। इन दोनों मह संस्थाओं के महत्त्वपूर्ण कार्यों की यथोचित प्रशं करना हम सब का कर्त्तव्य है। कौन ऐ कृतघ्नी होगा, जो इनके महत्त्व से इन्कार करे पर मुख्य प्रश्न यह है कि क्या हम अपनी सम् साहित्यिक शक्ति को प्रयाग अथवा काशी वर्धा में केन्द्रित करना पसन्द करते हैं? य हम ऐसा करेंगे, तो हिन्दी के साहित्यिक श को लकवा मार जायगा। ज़रूरत इस बात है कि हमारे यहाँ ज़िले-ज़िले में और नगर-न में साहित्य-सभायें और साहित्य-परिषदें त हिन्दी-समाज और नागरी-प्रचारिणी सभा क़ायम हों। ज्योति तथा शक्ति का केन्द्र छोटी-छोटी संस्थाओं को बनाना चाहिए। बड़ बड़ी संस्थाओं का मुहँ ताकते रहने से हम लो परमुखापेक्षी तथा निर्बल ही बन जायेंगे। सा प्रश्न है decentralisation—केन्द्रीय शक्ति सम्पूर्ण हिन्दी-जगत में व्याप्त करने—का। रा नैतिक क्षेत्र में किसी एक व्यक्ति अथवा एक स के हाथ में सम्पूर्ण शक्ति दे देने का समर्थन कारण से किया भी जा सकता है कि हम लो पराधीन हैं और हमें अपने विरोधियों के हाथ सत्ता छीन कर स्वयं अपने घर का मालिक बन

है; पर साहित्य-क्षेत्र में ऐसी कोई बात नहीं है। और फिर कांग्रेस भी तो ज़िला, ताल्लुक़ा और ग्राम कांग्रेस-कमेटियों की स्थापना पर ज़ोर देती आ रही है। आशा है कि इस प्रारम्भिक ग़लतफ़हमी को दूर करके हम अपने कार्य को अग्रसर करने में समर्थ होंगे।

यहाँ पर यह बतला देना भी आवश्यक है कि दिल्ली के अधिवेशन में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने हमारे इस विभाजन-सम्बन्धी सिद्धान्त को स्वीकार भी कर लिया था। अब वक़्त आगया है कि इस पद्धति के अनुसार आगे बढ़ा जाय। हम लोग इस उम्मीद में कि कभी सम्मेलन हमारी दशा पर करुणा करके इधर ध्यान देगा, कब तक बैठे रहेंगे? दूसरों को अपने कर्त्तव्य के पालन करने का उपदेश देने के बजाय यह कहीं अच्छा है कि हम लोग स्वयं अपने काम पर जुट जायँ। 'Be the man thou seekest'—'जिस आदमी की तुम तलाश कर रहे हो, वह खुद ही बन जाओ।'

पहला काम जो हमें करना है, वह है अपने क्षेत्र की जाँच या सर्वे करना। यह ज़रूरत नहीं है कि हम एक साथ दस-बीस ज़िले ले बैठें। बेहतर तो यह होगा कि हम प्रारम्भ में दो तीन ज़िलों में ही पारस्परिक साहित्यिक सहयोग स्थापित कर लें। पेश्तर इसके कि कोई काम शुरू किया जाय, यह निहायत ज़रूरी है कि दो-तीन आदमियों का एक डेपूटेशन भिन्न-भिन्न स्थानों की जाँच करके वहाँ की परिस्थिति को पहचान ले।

इन छोटे-छोटे केन्द्रों को स्वावलम्बी बनाना चाहिए। चन्दा करने का काम स्थानीय व्यक्तियों का है, और उन्हें और साधारण जनता को साफ़ साफ़ कह देना चाहिए कि भई, एक पैसा भी हम आपसे नहीं चाहते। आप ख़ुद ही रुपया इकट्ठा करें और ख़ुद ही व्यय करें। विशेष अनुनय-विनय की भी आवश्यकता नहीं। मान लीजिए कि कोई स्थानीय संस्था इसी में अपना हित समझती है कि वह हमारे मण्डल से अलग ही रहे, तो उसपर किसी भी प्रकार का दवाव डालने की ज़रूरत नहीं।

क्षेत्र की जाँच के बाद कार्यक्रम का सवाल आता है। कार्यक्रम में हम—(१) पुराने पुस्तकालयों को परामर्श, (२) नवीन पुस्तकालयों की स्थापना, (३) व्याख्यान-माला का प्रबन्ध, (४) साहित्यिक क्लबों की योजना और (५) साहित्यिक यात्रायें आदि को ले सकते हैं।

इस कार्य के लिए एक छोटी-सी पत्रिका की ज़रूरत है, जो साइक्लोस्टाइल पर निकाली जा सकती है। ऐसे कितने ही पत्र हैं, जो सहर्ष हमारे समाचारों को और छोटे-मोटे लेखों को छाप देंगे। इन लेखों के रिप्रिण्ट भिन्न-भिन्न स्थानों को भेजे जा सकते हैं। नवीन पत्र निकालकर धन का अपव्यय करने की ज़रूरत नहीं।

साहित्य-सम्बन्धी कार्य बहुत धीरे-धीरे ही अग्रसर होते हैं, क्योंकि प्रायः साहित्य-सेवी साधनहीन हैं और उनके पास इतना अवकाश भी नहीं कि वे अपनी जीविका चलाकर इस प्रकार के कार्यों के लिए भी अधिक शक्ति व्यय कर सकें। यदि हम साल-दो-साल में किसी आश्चर्यजनक परिणाम की आशा करेंगे, तो अन्त में हमें नाउम्मेद होना पड़ेगा।

भिन्न-भिन्न संस्थाओं का सहयोग पारस्परिक सद्भाव पर ही निर्भर रहेगा। हाँ, इतना प्रबन्ध तो करना होगा कि पोस्टेज तथा काग़ज़ इत्यादि का व्यय केन्द्रीय संस्था को मिल जाय। ज़ोर-ज़बरदस्ती का तो कोई मामला है ही नहीं।

प्रायः संस्थाओं में प्रधान, सेक्रेटरी इत्यादि के पदों के लिए झगड़े उठ खड़े होते हैं। इस प्रकार की कुचेष्टाओं को रोकने के उपाय हमें प्रारम्भ में ही सोच लेने चाहिएँ। जो आदमी पदलोलुप हों, उन्हें हर्गिज़ कोई पद न दिया जाय।

हमें एक मुख्य उद्देश्य सदैव सम्मुख रखना चाहिए। केन्द्रीय संस्था का नियन्त्रण कम-से-कम हो और वह भी केवल परामर्श के रूप में। स्थानीय संस्थाओं को अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता हो।

हमें जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह है सजीव

व्यक्तित्व। संस्थायें तो पुरुष की छाया-मात्र होती हैं। यदि आपमें इतना दम नहीं है कि साहित्य-क्षेत्र के लिए अपने समय और शक्ति का एक अच्छा भाग दे सकें, तो बेहतर है कि आप अपने घर बैठें और हिन्दी-माता की यथाशक्ति सेवा करते रहें। यह भी कोई छोटी बात नहीं, और आपके रचनात्मक कार्यों की हम प्रशंसा ही करेंगे; पर साहित्य-क्षेत्र का नेतृत्व अब उन हाथों में नहीं रह सकता, जो दान लेना ही जानते हैं, देना नहीं, और न वह रह सकता है उन बहुधंधी नेताओं के कर-कमलों में, जो राजनीति और साहित्य इन दो घोड़ों की बग्घी में बैठकर बागडोर अपने ही हाथ में रखना चाहते हैं। हिन्दी-साहित्य में ज़माना इस तेज़ी के साथ आगे बढ़ रहा है कि २५ वर्ष के बजाय पीढ़ी अब १०-१२ वर्ष की ही होने लगी है। इसमें अपरिग्रही तथा निरन्तर दानशील व्यक्ति ही सजीव तथा स्फूर्तिमय रह सकते हैं।

अब हमें किसीका इन्तज़ार करने की ज़रूरत नहीं। हम लोगों में जितने भी इस कार्यक्रम से सहमत हों, उन्हें आपस में मिलकर आगे बढ़ना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि बुन्देलखण्ड के चार-पाँच आदमी भी इस उद्देश्य को अपना लें, तो साल-दो-साल के अन्दर ही कुछ उल्लेख-योग्य काम कर दिखा सकते हैं। और यदि बुन्देलखण्ड तथा ब्रजमण्डल के कार्यकर्ताओं का पारस्प सहयोग स्थापित हो जाय, तब तो कहना ही है। हम उस दिन की कल्पना कर रहे हैं, जब हमारे प्रान्तों के अलग-अलग साहित्य-मण्डल और ज़िलों की भिन्न-भिन्न साहित्य-परि नगर-नगर में हिन्दी-पुस्तकालय तथा हिन्दी-सम होंगे और ग्राम-ग्राम तक हिन्दी-साहित्य सन्देश पहुँचेगा।"

हम हिन्दी भाषा-भाषियों और साहित्य सेवा करने और अपने साहित्य को जीवित साहि बनानेवालों के सामने अनेक बार ऐसी अमू योजनायें आती रही हैं, परन्तु हममें उस आ का अभाव है जो हमें इस कार्य में जुटादे; ह वह कर्तव्यशक्ति की प्रेरणा नहीं है, जो हमें योजनाओं को कार्यरूप में परिणत करने के गतिशील कर दे।

इतनी चेतावनियों और योजनाओं के बाव हमारा साहित्य जिस ओर जा रहा है, उस कल्पना भयावह है। हमें अब बैठे नहीं रहना अब आँखें खोल देने का वक्त आ गया है। आशा है, जिस किसी हिन्दी भाषा-भाषी के सा यह योजना पहुँचेगी, यह उसके हृदय की साहि सेवा और संस्कृति-प्रचार की लौ को प्रज्वलि करेगी और वह अविलम्ब इस दिशा में प्रयत्नशी होगा।

आज के इस युग में, जबकि दुखों की सीमा बढ़ती जा रही है और वस्तुओं का मूल्य औ महत्त्व लुप्त होता जा रहा है, जबकि महाद्वीप और देश तेजी से विपत्तियों में फँसते जा रहे हैं, जब बर्बरता को खुली छूट मिल गई है और जबकि विज्ञान क़ब्जा जमाने की अमानुष प्यास को बढ़ा जा रहा है, तब किसी विश्वबन्धुत्व-जैसे सिद्धान्त की बात करना निरा काल्पनिक लगेगा।

परन्तु हिंसा का समय, चाहे वह कितना ही भयावना क्यों न हो, मर्यादित होता है और हमें जो इसके परे रहते हैं और समय की अधिक विशाल वास्तविकता पर निर्भर हैं—ऐसी संस्कृति शाश्वत विकास में अपना विश्वास बनाये रखना चाहिए, जो हमें अन्तिम लक्ष्य की ओर ले जाती हो

'शान्तिनिकेतन' में]

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कसौटी पर

दिमाग़ी ऐयाशी (प्रहसन) : लेखक—**श्री रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग; पृ० सं० ११८; मूल्य ।।)**

मनोरंजन के साथ-साथ "दिमाग़ी ऐयाशी" के प्रहसन उन कवियों की कविता पर गहरी चोट करते हैं, जो अब भी कविता में नायक-नायिकाओं के ही फेर में पड़े हुए हैं। जो नाजुक ख़याली और बारीकबीनी ही में कविता की जान समझे बैठे हैं, जो नख-सिख को अब भी गले से लगाये हुए हैं और जिनकी कविताओं में—जबकि जमाना बहुत आगे बढ़ गया है—आलिंगन, चुम्बन, रहःसंभाषण और न जाने किन-किन कृत्यों के ऐयाशीवाले चित्र ही भरे रहते हैं। जी० सा० के पिछले अंक में "हिन्दी के कवि किधर ?" शीर्षक लेख में कवियों के जिस 'मानसिक व्यभिचार' की ओर संकेत किया गया है, वही अर्थ त्रिपाठीजी का 'दिमाग़ी ऐयाशी' से है।

लेखक कहता है कि 'दिमाग़ी ऐयाशी' नाम बाजारू-सा है, पर हम कहते हैं कि इन भोगवाद और विलासितापूर्ण कविताओं के लिए बाजारू-सा नाम ही होना चाहिए। ऐसी प्रवृत्ति की जितनी भर्त्सना और विगर्हणा की जाय थोड़ी है। इससे सुन्दर नाम दूसरा नहीं हो सकता था।

कला और टैकनीक की दृष्टि से त्रिपाठी जी के ये प्रहसन उच्च कोटि के हैं। उनके व्यंग्य मर्म पर चोट करते हैं। वह व्यंग्य और प्रहसन लिखने में सिद्धहस्त हैं। नखशिख, छायावादी कविता आदि का उन्होंने जो खाका उड़ाया है, वह उनकी सफलता का द्योतक है।

"दिमाग़ी ऐयाशी" में दिमाग़ी ऐयाशी, कवि, नख-शिख, नायिकाभेद, कवियों की कौंसिल, स्त्रियों की कौंसिल, छायावादी कवि और चित्रकार तथा मुंशी मनबोधलाल शीर्षक प्रहसन हैं। पहला और अन्तिम चार प्रहसन तो इस संग्रह की जान हैं।

इन प्रहसनों से उद्धरण दिये बिना पाठकों को 'दिमाग़ी ऐयाशी' के हार्द का परिचय नहीं मिल सकेगा। छायावादी कविता का हास्यात्मक नमूना उन्होंने दिया है :

(कवि गाकर सुनाता है—)
सजनि ! तुम्हारे केशों की
छाया में खड़ा हुआ यह जूँ
है देख रहा अपलक प्रेयसि ! तुम
ब्योर रही हो बाल
मनोहर बाल।
दिखाई पड़ता है वह स्वर्ग,
जिन्हें उडुगण कहते हैं अबुध।
अहा कैसा सुन्दर है स्वर्ग !
मदिर, नीरव, निस्तब्ध !—
('छायावादी कवि और चित्रकार')

एक दूसरा नमूना और देखिए :

स्त्री—तुम नये कवियों की पुस्तकें खरीद लाये थे। मैं उन्हें पढ़ गई। उनमें तो वैसी ही अश्लील बातें भरी पडी हैं, जिनके लिए पुराने कवि बदनाम किये जाते हैं। मैं पूछती हूँ कि हमारे-तुम्हारे बीच की बात को गली-गली गाते फिरना या पुस्तकों में छपवाकर सबको पढ़वातें फिरना कहाँ की शिष्टता है ? और किसी कवि को ऐसा करने का क्या अधिकार है ?

कवि—(हँसकर) तुमने क्या पढ़ा ? सुनाओ तो सही।

(स्त्री दूसरे कमरे में जा कर कुछ पुस्तकें उठा लाती है और एक-एक को बारी-बारी से खोलकर पढ़ती है)

गुञ्जन—

नयन से नयन, गात से गात
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण
भुजों से भुज, कटि से कटि शात
आज तन-तन मन-मन हो लीन।

अनामिका—

दूर देश की कोई वामा
आये मन्दचरण अभिरामा।

उतरे जल में अवसन श्यामा
अंकित उर-छवि सुन्दरतर हो।

भला, बताओ, नग्न स्त्री को स्नान करती हुई देखना कितने शर्म की बात है! कवि ने मानो लाज-शर्म सब धोकर पी ली है। फिर वे लोग ब्रज-भाषा के कवियों की निंदा क्यों करते हैं?

कवि—जाने दो। नये कवियों में ज्यादातर रंडुवे और क्वारे ही हैं। इसे भगवान् की कृपा ही समझो कि वे दिमाग़ी ऐयाशी ही तक रुके हुए हैं। वे किसी तरह रस की बातें कह-सुन कर जी की कसक निकालते रहते हैं, नहीं तो छापा मारते फिरते न?

(स्त्रियों की कौंसिल)

इसमें से कई प्रहसन 'स्टेज' किये जा सकते हैं। हम प्रत्येक त्रिपाठी जी के शब्दों में 'दिमाग़ी ऐयाश' कवि से यह संग्रह पढ़ने की ज़ोरदार सिफारिश करते हैं। **'विश्वास है कि वह एक स्थायी प्रभाव उत्पन्न करेगा और कविता में अवांछनीय कामुकता और आधारच्युत अतिशयोक्तियों की धारा को मन्द कर देने में किसी हद तक समर्थ भी होगा।'**

सु०

साधना-मन्दिर प्रकाशन : प्रकाशक—श्री भानुकुमार जैन, अधिष्ठाता, साधना-मन्दिर, १०४ सी० पी० टैंक रोड, गिरगाँव, बम्बई। प्रत्येक ट्रैक्ट का मूल्य एक आना (मेरी भावना को छोड़ कर जिसका मूल्य दो पैसे है)।

साधना-मन्दिर के १६ ट्रैक्ट हमारे सामने हैं। इनमें से अधिकांश विभिन्न देशों की महान् विभूतियों और अराजकवादियों के हिन्दी के सुविख्यात लेखक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखे रेखा-चित्र हैं। प्रस्तुत ट्रैक्टों की विवेचना करने से प्रथम हम एक बात कह देना चाहते हैं जो इन ट्रैक्टों को देख कर हमें खटकी है। इन ट्रैक्टों में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के रेखा-चित्र को छोड़ कर शेष सभी रेखा-चित्र विदेशियों के हैं। हमारे अपने देश में ही अनेक ऐसे महान् पुरुष और देवियाँ हुई हैं और हैं, जिनके उत्सर्ग की गाथायें इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखी हैं और जिनके ऋण से देशवा मुक्त नहीं हो सकते। उनके प्रति उदासीन क्यों? यदि उदासीनता नहीं है, तो उनके रे चित्र पहले छपने चाहिएँ थे। हमें आशा है साधना-मन्दिर के अधिष्ठाता अब भी इस ध्यान देंगे।

प्रकाशनों में प्रथम ट्रैक्ट है—**'जापान गाँधी कागावा'**। श्री कागावा जापान की नहीं, संसार की एक विभूति हैं। अपना परि देते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है—

"मैं तो एक सिपाही हूँ, और सर्वसाधार के अंतःकरण को जाग्रत करने के लिए आंदो करना ही मेरा काम है।...जापान के साढ़े पां सौ वेश्यालयों को दफ़न करना है, १५ करो पौण्ड की शराब की धारा को रोकना है, लाख मजदूरों का उद्धार करना है और २ करो किसानों को स्वाधीन बनाना है। यही मेरे जीव की आशा है।" श्री कागावा महान् विपत्ति को सहते हुए भी किस प्रकार सेवा-व्रत औ सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में तत्पर हैं, उसका यह बड़ा ही सजीव और रोचक रेख चित्र है।

'अराजकवादी ऐमा गोल्डमेन'—इस ट्रैक्ट रूस की सुप्रसिद्ध अराजकवादिनी ऐमा गोल्डमे के जीवन की मनोरंजक घटनाओं का बड़ा मनोरम चित्र है। ऐमा गोल्डमेन आज जीवित हैं। अपने अराजकवादी विचारों के लि उन्होंने कारावास की कठोर यातनायें सहर्ष स हैं। उनके अदम्य उत्साह का पता इस वाक्य चलता है, जो उन्होंने जेल जाते समय अप बन्धुओं को लिखे पत्र में लिखा था—

"हमारे लिए बाहर रहकर मुहँ बन्द रख की अपेक्षा जेलखाने के सीखचों के भीतर रह कहीं अधिक संतोषजनक है। हमारी स्पिरि (जलन की आग) को कोई दबा नहीं सक और हमारी दृढ़ इच्छाशक्ति को कोई तोड़ न सकता।" आजकल वह निर्वासित होकर शाय कनाड़ा में रह रही हैं। उनके जीवन की अ

अनेक घटनाओं का वर्णन भी इस टेक्ट में है।

'अराजकवादी लुई माइकेल'——इसमें फ्रांसीसी महिला लुई माइकेल के क्रांतिकारी विचारों और कार्य की बड़ी ही सुन्दर कथा है। विद्रोही होने के अभियोग में लुई को सालों कारावास में नरक-यातनायें भोगनी पड़ीं, अनेक अत्याचार सहने पड़े। बचपन से ही वह क्रांतिकारी उद्देश्यों के लिए जीती-जागती चिता में जलाये जाने के कल्पित खेल खेला करती थीं। क्रांतिकारी गाने गाती थीं। बड़े होते-होते इन विचारों की जड़ें इतनी परिपुष्ट हुईं कि उनका उच्छेद न किया जा सका। लुई के इस रेखा-चित्र को पढ़कर हृदय सिहर उठता है!

प्रिंस क्रोपाटकिन : इस रूसी महापुरुष ने किस प्रकार सुख-सम्पन्नता और वैभव को तिलांजलि देकर गरीबी की हालत में बढ़ईगिरी तथा जिल्दसाजी करके अपनी गुजर करना उचित समझा, ज़ार के पार्श्वद और गवर्नर-जनरल के सेक्रेटरी होने के बजाय जिसने किसानों तथा मजदूरों का सखा होना अधिक गौरवयुक्त माना और जिस प्रकार अराजकवाद के प्रचार के लिए उन्होंने अपने जीवन को बीसियों बार खतरे में डाला, उसका सजीव वर्णन ए० जी० गार्डनर और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने इस ट्रेक्ट में किया है।

'अमर-गान' रवि बाबू की प्राण-प्रेरक कविता 'दुःसमय' का हिन्दी अनुवाद है। **महावीर** और **भगवान बुद्ध, श्रीमती हेरियट एलीजबैथ स्टो** भी अत्यन्त रोचक, शिक्षाप्रद और मानव जीवन पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालनेवाले ट्रेक्ट हैं।

प्रत्येक ट्रेक्ट के ऊपर लिखी पंक्ति——'कोई अधिकार रक्षित नहीं, जो चाहे सो छाप ले'— हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। वह पंक्ति महत्त्वपूर्ण है। उससे पता चलता है कि इन ट्रेक्टों के प्रकाशित करने में प्रकाशक का ध्येय पैसा कमाना नहीं है, बल्कि इनका प्रचार करना है। पर हिन्दी पाठक समुचित रूप से इन्हें नहीं अपना रहे हैं। जबकि अन्य भाषाओं में वे लाखों की संख्या में हाथों-हाथ निकल जाती हैं, हमारा विश्वास है हिन्दी जनता भी इन जीवनियों के प्रचार में अधिक-से-अधिक सहयोग देगी। य०

एक क़दम आगे : प्रकाशक—हिन्दुस्तानी-तालीमी-संघ, सेवाग्राम; पृष्ठ-संख्या २४+२९०, मूल्य १)।

'बुनियादी तालीम' के प्रयोगों के पहले साल के नतीजे का सिंहावलोकन करने और शुरू की दिक्कतों को सुलझाने के उद्देश्य से पूना में अक्टूबर, १९३९ में बुनियादी तालीम की पहली कान्फ्रेंस बुलाई गई थी। उसमें भारत-सरकार की आल-इंडिया एज्युकेशन एडवाइजरी बोर्ड द्वारा निर्मित खेर-समिति के मेम्बरों के अलावा बंबई, बिहार, मद्रास, सीमा-प्रान्त, युक्तप्रांत, मध्यप्रांत और उड़ीसा के कितने ही शिक्षा-विशेषज्ञ और सरकारी तालीमी अफसर सम्मिलित हुए थे। कान्फ्रेंस के प्रधान काश्मीर रियासत के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर प्रो० ख्वाजा गुलाम सैयदेन थे और इसका उद्घाटन आचार्य कृपालानी ने किया था। कान्फ्रेंस में बुनियादी तालीम के हर पहलू पर चर्चायें और तक़रीरें हुईं और बहुत-सी मुफ़ीद बातें तय की गईं।

'एक कदम आगे' उक्त कान्फ्रेन्स की पूरी-पूरी रिपोर्ट है। महात्मा गांधी के (हरिजन में प्रकाशित) शब्दों में——

"शुरू के वर्क़ों के अलावा, जिनमें ठोस बातें भरी हैं, इस रिपोर्ट के तीन हिस्से हैं। पहिले हिस्से में तक़रीरें और चर्चायें हैं। दूसरे में बुनियादी तालीम पर लोगों की जुदा-जुदा रायें हैं और तीसरे में बुनियादी तालीम की नुमायश का बयान है, जिसकी जिम्मेदारी खासतौर पर श्री० आशा देवी ने उठाई थी। परिशिष्ट में कान्फ्रेन्स में शरीक होने वाले नुमायन्दों और बुलाये गये महानुभावों के नाम और पते हैं। अपनी रिपोर्ट के उपसंहार में श्री० आर्यनायकम् लिखते हैं——

'परिषद् और नुमायश ने बुनियादी राष्ट्रीय

शिक्षा की योजना को आखिर बहस-मुबाहसे के दर्जे से ऊपर उठा दिया है और तालीमी दुनिया को यह बतला दिया है कि बुनियादी उसूलों, अंदरूनी बातों और तरीक़ों के बारे में इस नई तालीम का दावा एक साल के काम के तजुरबे से सही साबित हो गया है।'

"कान्फ्रेन्स की कार्रवाई इस दावे का सबूत है। रिपोर्ट का कोई भी हिस्सा यहाँ देने का लोभ-संवरण करना पड़ेगा। जो लोग तालीम में दिलचस्पी रखते हैं, उन्हें इसकी एक कापी रखनी ही चाहिए। मेरे लिए तो यह बड़ी तसल्ली की बात है कि मेरी यह सबसे नई कोशिश, हालाँ कि शायद यह आखिरी नहीं होगी, दुनियाभर को पसन्द आई है। एक साल का लेखा देख कर इस तजुरबे की आयंदा तरक्की बड़ी होनहार मालूम पड़ती है।"

प्रस्तावना-लेखक प्रो० सैयदेन के अनुसार 'जो लोग इस स्कीम के मकसदों और तरीकों को अच्छी तरह नहीं समझ पाये हैं, वे इस रिपोर्ट को पढ़कर अच्छी जानकारी हासिल कर सकेंगे।' इसलिए बुनियादी तालीम के आलोचकों, इस प्रसंग में दिलचस्पी रखनेवालों और इसका काम करनेवालों, तीनों के लिए 'एक कदम आगे' एक निहायत जरूरी पुस्तक है। हर लाइब्रेरी में इसकी एक-एक कापी रहनी चाहिए।

च०

समालोचनार्थ

'जीवन-साहित्य'-कार्यालय में आई हैं:--

(१) भारतवर्ष की पशुसम्पत्ति : लेखक-ई० वी० एस० मनियम; प्रकाशक--पैंट ए कंपनी, कानपुर;

(२) मैं भूल न सकूँ : [अविस्मरणीय घट संग्रह] संपादक श्री जयन्त; प्रकाशक--वि पुस्तक भंडार, दिल्ली;

(३) गौसेवा तथा गौवंश रक्षा : लेखक-काशीनाथ उदगिर 'नारायण'।

(४) तपस्विनी (नाटक): मूल लेखक-रेजीनाल्ड बर्कले; प्रकाशक--विद्या-मन्दि लिमिटेड, नई दिल्ली।

(५) सत्य सिद्धान्त सहस्त्री : लेखक--ला मेलाराम जी वैश्य; प्रकाशक--नरसिंहदा रोशनलाल, भिवानी (पंजाब);

(६) व्यक्ति और राज : लेखक-- संपूर्णानन्दजी;

काशी नागरीप्रचारणी सभा से प्रकाशित;

(७) उर्दू का रहस्य : श्री चन्द्रबली पाण्डे

(८) मध्यप्रदेश का इतिहास : लेखक-स्व० रायबहादुर डॉक्टर हीरालाल

(९) मुल्क की जबान और फाजिल मुस मान : संग्रहकर्त्ता-शाह साहब नासिरुद्दीन पुरी।

(१०) नहुष (काव्य):-लेखक श्री मैथिल शरण गुप्त; साहित्य सदन, चिरगाँव (झांसी)

राजा के गुण

"राजा को इस बात का ज्ञान रखना चाहिए कि अपने राज्य के साधनों की विस्फूर्ति औ वृद्धि किस तरह की जाय और खजानें को किस प्रकार पूर्ण किया जाय; धन की रक्षा किस तरह जाय और किस प्रकार, समुचित रूप से उसका खर्च किया जाय।

यदि समस्त प्रजा की पहुँच राज तक हो और राजा कभी कठोर वचन न बोले, तो उस राज्य सबसे ऊपर रहेगा। जो राजा खुशी के साथ दान दे सकता है और प्रेम के साथ शासन कर है, उसका नाम सारी दुनिया में फैल जायगा। धन्य है वह राजा, जो निष्पक्ष न्याय करता है औ अपनी प्रजा की रक्षा करता है। वह मनुष्यों में देवता समझा जायगा।

जो राजा उदार, दयालु और न्यायनिष्ठ है और जो अपनी प्रजा की प्रेमपूर्वक सेवा करता है वह राजाओं के मध्य में ज्योतिस्वरूप है।"

'तामिलवेद' से]

—**ऋषि तिरुवल्लुवर**

हिन्दी संसार में

नव प्रकाशित साहित्य

कविता और गद्य-काव्य

१. जीवन-संगीत : रचयिता–श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'; प्रकाशक–हिन्दी-साहित्य-मंडल काशी; पृष्ठ संख्या २०१, मूल्य २) ।

कवि की १९२२ से १९३६ तक की सौ चुनी हुई कविताओं का प्रथम संग्रह है; सचित्र है।

२. ग्राम्या : रचयिता–श्री सुमित्रानन्दन पंत; प्रकाशक–भारती-भंडार, काशी; पृष्ठ संख्या १०८,मूल्य १।); लेखक की नवीनतम ग्रामविषयक रचनाओं का संग्रह है। पंत की काव्यकला के अध्येताओं को अवश्य पढ़नी चाहिए ।

३. मकरन्द : रचयित्री–स्व० रामेश्वरीदेवी 'चकोरी'; प्रकाशक–गंगापुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ; पृष्ठ संख्या ९३; मूल्य ।।=) ।

स्व० श्री 'चकोरी' जी का 'किंजल्क' कविता-संग्रह जिन्होंने पढ़ा, वे उनकी कविताओं का माधुर्य्य जानते हैं, उनकी अप्रकाशित रचनाओं को उनके पति श्री० अरुण बी० ए० ने प्रकाशित कराकर हिन्दी जनता के प्रति उपकार किया है। कविताओं में माधुर्य्य और मनोमोहकता है ।

४. हमारा ग्राम-साहित्य : सम्पादक–श्री रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक–हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग; पृष्ठ संख्या ३६०, मूल्य १।) ।

युक्तप्रान्तीय सरकार की प्रेरणा से ग्राम-गीतों के अन्यतम लेखक और संग्राहक श्री त्रिपाठी जी ने यह संग्रह प्रस्तुत किया है। इसमें त्यौहार, विवाह, प्रसूति, सावन, कोल्हू, चक्की, नृत्य, विदा, आदि आदि अवसरों पर गाये जानेवाले गीत संकलित हैं। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है ।

५. जौहर : रचयिता–श्री रामकुमार वर्मा; प्रकाशक–हिन्दी-भवन, लाहौर; पृ० सं० भूमिका (६४)+१२८; मूल्य १।) । कवि की पूर्व-प्रकाशित कविता-पुस्तकों ('चित्तौड़ की चिता', 'रूपराशि', 'निशीथ', चन्द्रकिरण' आदि) से नमूने की चुनी हुई कविताओं का एक संग्रह है ।

६. एक दिन : रचयिता–श्री भगवतीचरण वर्मा; प्रकाशक–गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ; पृ० सं० १३१; मूल्य ।।।); स्वयं लेखक के शब्दों में 'महान् ग्रंथ', लेकिन कुछ अतुकांत, कुछ तुकान्त, 'रबड़' छन्दों में रची हुई 'कविताओं' तथा कुछ 'गद्य काव्यों' की अजीब खिचड़ी-सी यह चीज़ है !

७. शारदीया (गद्यकाव्य) **:** रचयित्री––कुमारी दिनेशनंदिनी चोरड़िया; प्रकाशक––गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ; पृ० सं० १०८; मूल्य ।।।) ।

यह 'मौक्तिक माल' और 'शबनम' के बाद के गद्य-गीतों का संग्रह है ।

८. दुलारे-दोहावली : रचयिता––श्री दुलारेलाल भार्गव; प्रकाशक––गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ; पृ० सं० १६०; मूल्य ।।)

श्री दुलारेलाल की दुलारे-दोहावली के इस नये संस्करण में ५० नये दोहे मिलाये और उतने ही निकाले गये हैं, कुछ संशोधन भी किया गया है।

९. अष्टछाप-पदावली : संकलनकर्त्ता––श्री सोमनाथ गुप्त, एम० ए०; प्रकाशक––हिन्दी भवन, लाहौर; पृ० सं० २४६; मूल्य २) 'अष्टछाप' के आठों सुप्रसिद्ध कवियों के पदों का सुन्दर संग्रह ।

१०. वैदेही-वनवास– : रचयिता––श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध'; प्रकाशक–हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस; पृ० सं० ३०६; मूल्य २।) 'प्रियप्रवास' की भूमिका में जिस काव्य-ग्रंथ की पूर्वसूचना हरिऔध जी ने दी थी, वही यह है। एक करुणापूर्ण तुकान्त महाकाव्य है।

११. नहुष : लेखक–श्री मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक–साहित्यसदन, चिरगाँव (झाँसी), एक नवीन काव्य ।

कथा-साहित्य

१. कल्याणी : लेखक–श्री जैनेन्द्रकुमार, प्रकाशक––हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर,बम्बई, पृष्ठ संख्या २०६; मूल्य २); श्री जैनेन्द्र का नवीनतम उपन्यास।

२. नादिरा : लेखक--श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' प्रकाशक--गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ, पृ० सं० ३४४; मूल्य १।।); हिन्दू-मुसलिम ऐक्य का प्रतिपादक सामाजिक उपन्यास ।

३. प्रत्यागत : लेखक--श्री वृंदावनलाल वर्म्मा; प्रकाशक--उपरोक्त; पृ० सं० २२५ मूल्य १) : एक सामाजिक उपन्यास ।

४. गृहदाह : लेखक--श्री शरच्चन्द्र; अनु० श्री धन्यकुमार जैन; प्रकाशक--हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर, बम्बई; पृ० सं० २९६; मूल्य १।) : इसी नाम के शरद् बाबू के उपन्यास का अनुवाद।

५. दत्ता : लेखक--श्री शरच्चन्द्र; अनु०--श्री सुन्दरलाल त्रिपाठी, हेमचन्द्र मोदी; प्रकाशक उपरोक्त, पृ० सं० १६७; मूल्य ।।=) : शरद् बाबू के 'विजया' उपन्यास का ग्रंथ-रत्नाकर द्वारा प्रकाशित नवीनतम अनुवाद ।

६. शरीर बीबी : लेखक मिर्ज़ा अज़ीमबेग़ चग़ताई; प्रकाशक--छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग; पृ० सं० २१४; हास्यरस की ९ कहानियों का सुन्दर संग्रह ।

७. गल्प-संसार-माला (मराठी) : प्रकाशक, सरस्वती प्रेस, काशी; प्रस्तुत पुस्तक मराठी कथाकारों की श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है ।

आलोचना-ग्रंथ

१. हिन्दी-साहित्य की भूमिका : लेखक--श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक--हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर, बम्बई; पृ० सं० २५०; मूल्य २) : हिन्दी-साहित्य के प्रचलित इतिहासों को पढ़ने से पूर्व इसका अध्ययन कर लेने से उन्हें ज्यादा समझा जा सकता है। यह उनके लिए एक 'गाइड' का काम करती है ।

२. ईरान के सूफ़ी कवि : संपादकद्वय--श्री बाँकेबिहारी तथा श्री कन्हैयालाल; प्रकाशक--भारती-भण्डार, काशी; पृ० सं० ४११; मूल्य ४।।) ।

ईरान के सूफ़ी कवि सनाई, उमर ख़य्याम, निजामी, फ़रीदुद्दीन अत्तार, रूमी, शेख़ सादी, शब्सतरी, हाफ़िज़ और जामी की चुनी हुई सुन्दर रचनाओं का संग्रह ।

३. निबन्धिनी : लेखक--श्री गंगाप्र पांडेय; प्रकाशक--छात्रहितकारी पुस्तकमा दारागंज (प्रयाग); पृ० सं० १९४; मूल्य १) साहि कला, कवि, कहानी, कबीर, सूर, तुलसी, द्वि जी, गुप्तजी, महादेवी वर्म्मा, निराला, पंत, बच्च आदि पर लिखे विवेचनात्मक निबंधों का संग्र

राजनीति

१. सोवियत् न्याय : लेखक--श्री राहु सांकृत्यायन; प्रकाशक--वाणी-मन्दिर, छपर पृ० सं० २५७; मूल्य १।।)

२. बारकछाया : लेखक--श्री 'बा रियासती'; प्रकाशक--'प्रदीप'-कार्यालय, मुरा बाद; पृ० सं० १२६; मूल्य ।।।) ।

रियासती अत्याचारों का रोमांचकारी सजी वर्णन, उपन्यास की भाँति रोचक ।

विविध

१. शिवाजी : लेखक सर जदुनाथ सरका प्रकाशक--हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर, बम्बई; पृ० सं २७५; मूल्य १।।) : प्रसिद्ध इतिहास-अन्वेष सरकार का शिवाजी के सम्बन्ध में लिखा हु खोजपूर्ण ग्रन्थ ।

२. उर्दू का रहस्य : लेखक--श्री चन्द्र बली पाण्डे; प्रकाशक--नागरी प्रचारिणी सभ काशी; पृ० सं० १४२; मूल्य १।।)

३. भाषा की शिक्षा : लेखकद्वय--श्री सीता राम चतुर्वेदी तथा श्री शिवप्रसाद मिश्र; प्रकाशक हिन्दी-साहित्य कुटीर, काशी; पृ० सं० ३०० मूल्य २) भाषा-शिक्षण-शिक्षा की अद्भुत पुस्तक

प्रकाशन की ओर

छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागं (प्रयाग) से (१) देश-प्रेम की कहानियों क संग्रह (देश की आन पर), (२) आत्म-संयम (३) चरित्रनिर्माण की कहानियाँ तथा (४) मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई की हास्यरसपू कहानियों का एक संग्रह, ये चार पुस्तकें अगले महीनों में निकलनेवाली हैं ।

नोट :--ऊपर लिखी तमाम पुस्तकें सस्ता-साहित्य-मण्डल की दिल्ली, लखनऊ तथा इन्दौर शाखाओं में मिल सकती हैं ।

क्या और कैसे ?

किन शब्दों में ?

'जी० सा०' के प्रथमांक को पाते ही जिन-जिन मित्रों और हितैषियों ने अपनी शुभ और सच्ची सम्मतियाँ भेजी हैं, उपयोगी सुझाव व प्रस्ताव पेश किये हैं, उनके स्नेह और ममत्व के लिए मैं किन शब्दों में 'जी० सा०' की कृतज्ञता प्रदर्शित करूँ ? गोस्वामीजी ने तो कहा है—'निज कवित्त केहि लाग न नीका ।' पर मेरी स्थिति सूरदास की उक्ति की तरह हो रही है—'मो सम कौन कुटिल खल कामी ?' सच पूछिए तो मेरा साहित्य-क्षेत्र में कदम रखना अनधिकार चेष्टा ही है, क्योंकि मैं 'साहित्यिक' नहीं 'सैनिक' हूँ; मगर मैंने इस क्षेत्र में पाँव रखने का साहस इसलिए किया है कि 'जी० सा०' 'सस्ता-साहित्य-मंडल' का पत्र है और मंडल को हिन्दी-संसार में अपने लिए अनेक सहायक, प्रशंसक, सहयोगी व सहानुभूतिकर्त्ता प्राप्त करने का सद्भाग्य मिला है । 'जी० सा०' तो हिन्दी-जनता से, जो उसके लिए परमात्मा का प्रतिरूप ही है, यही निवेदन करना चाहता है—

"नहिं साधन, बल, वचन चातुरी,
एक भरोसो चरणे गिरधारी !"

'जीवन-साहित्य' में ललित साहित्य

हिन्दी की कोई भी ऐसी पत्र-पत्रिका न होगी जिसमें कहानी, कविता, चित्र आदि ललित साहित्य की भरमार न हो । जब 'जीवन-साहित्य' निकालने का निश्चय किया गया, तभी यह सोच लिया गया था कि इसका अपना विशेष क्षेत्र होना चाहिए । जिस अंग की पूर्ति अन्य पत्र-पत्रिकाओं द्वारा पहले से ही हो रही है और काफी हो रही है, उन्हींपर विशेष ध्यान देना 'जी० सा०' के लिए आवश्यक या उपयोगी न होगा । चूँकि हमारी यह स्थिति पाठकों और लेखक-बन्धुओं के सामने पूरे तौर पर स्पष्ट नहीं हुई, हमारे पास कवितायें आने लगी हैं, नाटकों के बारे में पूछताछ शुरू हुई है; इसलिए मैं लेखक-बन्धुओं से निवेदन करना चाहता हूँ कि 'जीवन-साहित्य' में जीवन-सम्बन्धी किसी विषय का बहिष्कार न होगा; परन्तु 'ललित' कहा जानेवाला वही साहित्य उसमें दिया जायगा, जो जीवन की दृष्टि से परम उत्कृष्ट और आवश्यक तथा उच्च कोटिका होगा । अतएव जो ललित साहित्य 'जी० सा०' के लिए भेजा जाय, वह इस कसौटी पर खूब कस कर भेजा जाय ।

सहेतुक या अहेतुक ?

महाराजकुमार श्री रघुवीरसिंहजी (सीता-मऊ) अपने एक पत्र में लिखते हैं—"मैं इस नये पत्र का हृदय से स्वागत करता हूँ । हिन्दी में विचारपूर्ण साहित्यिक पत्रिका की कमी मैं बहुत दिनों से अनुभव करता आया हूँ । आज हमारे साहित्य में 'कला के लिए कला' या 'स्वान्तः सुखाय' के नाम से जो अराजकता फैली है और उसीके फलस्वरूप साहित्य में जो अनेकानेक अवांछनीय प्रगतियाँ (प्रवृत्तियाँ ?) घर कर गई हैं, उनसे साहित्य का अहित ही होने की आशंका है । मैं आशा करता हूँ कि 'जीवन-साहित्य' में इस बात का पूरा प्रयत्न किया जायगा कि इन सब सम्भावनाओं को दबावे । विचारपूर्ण लेखों द्वारा साहित्यिक क्षेत्र में नवीन तथा स्वस्थ आदर्शों का प्रवेश कराना हिन्दी-साहित्य की ही नहीं, हिन्दी-भाषा-भाषी समाज की भी एक बड़ी सेवा होगी ।"

हिन्दी-साहित्य की शुद्धि और प्रगति की इस चिन्ता के लिए महाराजकुमार हमारे धन्यवाद के पात्र हैं । 'जीवन-साहित्य' की अल्पशक्तियाँ तो इसी दिशा में लगनेवाली हैं, मैं तो जब 'कला के लिए कला' या 'स्वान्तः सुखाय' की युक्ति या आदर्श पर बिचार करता हूँ, तो उससे वर्तमान उच्छृंखलता, अराजकता या मर्यादाहीनता का किसी प्रकार समर्थन नहीं होता । किसी की कोई

कृति 'अहेतुक' कैसे हो सकती है, यह समझना कठिन है। महान् योगिराज, सिद्ध या पूर्ण पुरुष के बारे में 'अहेतुक' अर्थात् 'समाधिस्थ' होने की कल्पना तो आ सकती है; गोस्वामीजी 'स्वान्त-सुखाय' रामायण लिखें, यह भी समझ में आजाता है, परन्तु हम-जैसे साधारण लेखक, या कवि, या कलाकार उसका दावा करें तो यह 'अव्यापारेषु व्यापार' ही कहा जा सकता है। 'कला के लिए कला' का आदर्श उपस्थित करनेवालों का आशय यही हो सकता है कि हम कला की सृष्टि स्वार्थमय उद्देश से न करें, किसी भौतिक लाभ के लिए भी न करें, परन्तु निर्मल सात्त्विक आनन्द और तन्मयता की भी प्राप्ति उससे न हो, मानसिक स्फूर्ति, सन्तोष और समाधान भी उससे न मिले—यह उसका अर्थ कदापि नहीं हो सकता। 'स्वान्तः सुखाय' का आदर्श तो इसलिए बहुत उपयोगी है कि हमें परोपकारी बनने का अभिमान भी स्पर्श न कर सके। जिसे सेवा या परोपकार कहा जाता है, जब वह हमारे जीवन का स्वभाव या स्वभाव का जीवन बन जाय, तभी हम 'कला के लिए कला' या 'स्वान्तः सुखाय' के आदर्श को पहुँचेहुए कहे जा सकते हैं। आवश्यकता है कि हम अपनी अराजक प्रवृत्तियों के मूल आशय को देखें और परखें। हम सोचें कि कहीं हम इन ऊँचे आदर्शों को गलत समझकर इन्द्रियाराधन के चक्कर में तो नहीं पड़ रहे हैं ?

एक उपयोगी प्रस्ताव

उसी पत्र में महाराजकुमार एक उपयोगी प्रस्ताव भी उपस्थित करते हैं—"पुनः जब सस्ता-साहित्य-मण्डल जैसी संस्था इस पत्र को निकालने का आयोजन कर रही है, तब एक प्रस्ताव रखने का साहस करता हूँ। चिरकाल से मेरी इच्छा रही है कि जैसी इंग्लैण्ड में 'बुक सोसायटी' है वैसी हमारे यहाँ भी एक समिति बना दी जाय जो हमारे हिन्दी-पाठकों को पुस्तकों के चुनाव एवं सत्साहित्य की प्राप्ति में सहायक हो सके। हमारे यहाँ कई-एक उच्च कोटि की पुस्तकें इसी कारण भुलाई जाती हैं कि उनके गुणों की ठीक-ठीक परख न हुई और न उनका विज्ञापन ही ठीक-ठी हुआ है। मैं मानता हूँ कि 'जीवन-साहित्य' अपना खास उद्देश है; परन्तु उसी उद्देश्य को सा रखकर भी ऐसे चुनाव उसी विशिष्ट दृष्टिको से किये जा सकते हैं। अधिक नहीं तो यही सही

और इसी सम्बन्ध में मुझे हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ प्रकाशक का कथन याद आ ग है। वह कहते थे--'आजकल हिन्दी मासि पत्रों में समालोचनार्थ पुस्तकें भेजना व्यर्थ प्रतियाँ खोना है। न तो कोई उन आलोचना को पढ़ता है और न कोई उनमें प्रदर्शित विचा से ही प्रभावान्वित होता है।' अतएव कृप उक्त सज्जन की यह शिकायत भी ध्यान रक्खें। मैं यह देखना चाहता हूँ कि 'जी० सा में निकलनेवाली आलोचनायें इस कोटि की कि उनका साहित्यिक एवं पाठकों के क्षेत्र कुछ वजन पड़े। आशा है, आप मेरे इस प्रस्ता पर कुछ ध्यान देंगे।"

'बुक-सोसायटी' जैसी समिति बनाने के प उपयोगी प्रस्ताव पर 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा' तथा 'सस्त साहित्य-मण्डल' के सञ्चालकों का ध्यान अव जाना चाहिए। इसके लिए एक अधिकारी औ प्रभावशाली समालोचकवर्ग होना चाहिए 'जी० सा०' ऐसे समालोचक मित्रों की सहा भूति और सहयोग प्राप्त करने का अवश्य प्रयत करेगा। प्रकाशक महोदय की शिकायत पर हि सब पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को विचा करना चाहिए। मैंने पहले अंक में समालोच बन्धुओं से जो निवेदन किया है, उसके अनुसा यदि खरी समालोचनायें लिखी जायँ, तो साहित्य शुद्धि तथा सत्साहित्य की वृद्धि और प्रसार अवश्य बड़ी सहायता होगी। समालोचक जैसा व्यक्तित्व अर्थात् ज्ञान, तप, पुण्य, सामर्थ होगा, वैसा ही प्रभाव साहित्यिक तथा वाचक-क्षे पर उसका होगा। स्वर्गीय आचार्य द्विवेदी जी के ज़माने में 'सरस्वती' में प्रकाशित समालोच नाओं की बड़ी धाक थी। यदि पुस्तक

तारीफ छप गई तो प्रकाशक और लेखक अपना अहोभाग्य समझते थे, यदि बुराई छप गई तो उन पर घड़ों पानी पड़ जाता था। हमें उसी खरी प्रणाली का अनुकरण करना होगा।

रा० हि० सा० सम्मेलन

राजस्थान-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आयोजन की ओर सभी राजस्थानियों और हिन्दी-प्रेमियों की आँखें लग रही हैं। एक बड़े अभाव की पूर्ति का प्रयत्न उदयपुर के हिन्दी-भक्त कर रहे हैं। इसकी सफलता कौन न चाहेगा? समारोह जितना शानदार हो, उससे अधिक ध्यान इस बात की ओर रहना चाहिए कि स्थायी साहित्य-सेवा और संगठन की बुनियाद पड़े। ऐसे संगठन की केन्द्रीय शक्ति या तो सभापति हो सकता है या मंत्री। किसी भी एक 'वर' के बिना न यह 'बरात' सज सकती है, न आगे निभ सकती है। 'पंचों' के भरोसे रहने से संस्थाओं का काम, कम-से-कम हिन्दुस्तान में तो, नहीं चल सकता। 'सात का काम किसीका काम नहीं' ऐसा अनुभव हर जगह होता है। उदयपुर के मित्रों को एक सारा समय देनेवाला 'भारवाही' ढूँढ रखना चाहिए।

सम्मेलन की कार्यदिशा क्या हो? प्राचीन जीवन-साहित्य की खोज व संग्रह, नव साहित्य का निर्माण और साहित्यिकों का संगठन। सम्मेलन के अधिवेशन में इनकी योजना बननी चाहिए। योजना और समारोह इतना कठिन नहीं है, जितना स्थायी कार्य-संगठन। परमात्मा इस कठिन कार्य को करने की सुविधा व बल उदयपुर के हिन्दी-भक्तों को दे।

दुःस्सह स्थिति

मैं अक्सर अपने कवि और लेखक-मित्रों को सलाह दिया करता हूँ कि वे प्रकाशक बनने के झंझट में न पड़ें। जिसको जो विशेषता परमात्मा ने दी है उसी के द्वारा वह समाज या जगत् की सेवा करें। मगर बाज़ बाज़ कवि या लेखक सेवा भाव से, प्रचार दृष्टि से या शायद लोभ, महत्त्वाकांक्षा, अनुभवहीनता, अथवा अविचार के वशवर्ती होकर प्रकाशक भी बनते हैं, छापाखाना खोलते हैं और फिर साँप-छछूँदर की सी हालत में अपनेको पाते हैं। एक मित्र ने अपने पत्र में ऐसे मित्रों के मानसिक संघर्ष या उतार-चढ़ाव का अच्छा चित्र खींचा है, जिसे पढ़ कर हमारी सहानुभूति कवि या लेखक–प्रकाशकों के साथ बढ़े बिना नहीं रह सकती। वे लिखते हैं—

"लेखक तो शानदार जीव है न? साहित्य का यह बिकरी-बट्टे का काम उससे कैसे हो? बिक्री से होने वाले नफ़े का हिस्सेदार वह हो सकता है पर उसमें होनेवाली किचकिच उसे नहीं सुहाती! कहाँ वह कवि की ऊँची उड़ान और कहाँ यह नगद-उधार, डूब-तर और कमीशन का झमेला। लेखक उम्मीद करता है कि उसकी रचना के बल से क्रांति हो सकती है, लोगों के हृदय पलट सकते हैं। पर दूकान पर बैठकर देखता है कि हजार समझाने-बुझाने पर भी ग्राहक ४० सैंकड़ा कमीशन पर अड़ा हुआ है। टस से मस नहीं होता। भला कहिए, तब बेचारे लेखक के आत्माभिमान को कितनी ठेस लगती होगी? फिर या तो वह लेखक का बाना छोड़े या दूकानदारी। पर दोनों में ही कुछ लोभ रहता है। दोनों हाथ लड्डू चाहिए, एक को भी छोड़ नहीं सकता। और जी भी घुटता रहता है कि धत्तेरे की! कहाँ के जंजाल में आ फँसे! जिस कलम की नोक से बड़े-बड़े बादशाहों को भी भला-बुरा कहा जा सकता है, उस कलम की नोक या शब्द-विन्यास मनहूस ग्राहक के हृदय पर ज़रा असर भी पैदा नहीं करते। कृष्ण के चले जाने पर अर्जुन के बाणों की सी दशा हो गई है। अपनी पोथियों की तारीफ तरह-तरह के विज्ञापन, उसी प्रभावशालिनी लेखिनी से लिखते हैं, पर माँग ही नहीं आती। मानों लेखनी में जंग लग गया या पाठक मुर्दा-दिल हो गये।"

अब प्रश्न यह है कि इस झंझट और मानसिक चिन्ता या यन्त्रणा से ये मित्र छूटें कैसे? साहस के बिना यह असम्भव है। जब हम कहीं फँस जाते हैं, तब दृढ़ निश्चय और साहस के

बिना निकला नहीं जा सकता। किसी एक तरफ घाटा उठाये बिना भी गति नहीं है। अगर प्रेस उठाते हैं, या प्रकाशन बन्द करते हैं, तो आर्थिक घटी के साथ-साथ 'अपयश' का भी भय रहता है। इसे सहने की हिम्मत होनी चाहिए। वे 'स्वधर्म' से भटक कर 'परधर्म' के चक्कर में आ गये हैं, यह उन्हें हृदयंगम हो जाना चाहिए। इसके बाद ही उनमें आवश्यक साहस पैदा हो सकता है। ईश्वर उनकी सहायता करे।

पत्र-पत्रिकाओं का स्टैंडर्ड

साहित्यिकों में अक्सर यह चर्चा होती रहती है कि आजकल हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं का स्टैंडर्ड काफ़ी गिर गया है। राजपुरुषों, राज्य-कर्ताओं, धनी-मानी-रईसों के मुँह से भी मैंने प्रायः सुना है कि हिन्दी के पत्रकार 'लफंगे' होते हैं, 'ब्लेकमेलर' होते हैं, हम पर अब उनकी टीका-टिप्पणियों का कोई असर नहीं होता। फ़लाँ हमसे रुपया माँगने आये थे। हमने उन्हें सूखा जवाब दे दिया। ये रिमार्क सुनकर किस स्वाभिमानी हिन्दी-प्रेमी के दिल को गहरी ठेस न लगती होगी? हमारे पत्र-पत्रिकाओं पर जो ऐसी टीका-टिप्पणी करते हैं, उन्हें समय पर यथोचित जवाब भी दे दिये जाते हैं; परन्तु इन आक्षेपों में जहाँ तक सत्य का अंश है, वहाँ तक उसका क्या जवाब दिया जा सकता है? जवाब देने के बनिस्बत तो उचित यही है कि ये त्रुटियाँ दूर की जायँ। स्टैंडर्ड नीचा होने या 'ब्लैक मेलिंग' के मूल कारण तलाश किये जायँ। समाज इसका दोष-भागी कितना है और पत्रों के संचालक या सम्पादक कितने हैं, इसकी छानबीन की जाय। एक अमली उपाय इसका यह हो सकता है कि हिन्दी के सम्पादकों का एक मण्डल कायम किया जाय और वह पत्र-पत्रिकाओं का जो स्टैंडर्ड नियत करे, उससे नीचे के स्टैंडर्ड की पत्र-पत्रिकाओं को किसी प्रकार का प्रश्रय न दिया जाय। पाठकों से भी अपील की जाय कि वे उसके ग्राहक न बनें। 'ब्लैकमेलिंग' की शिकायतें भी उस मंडल के पास भेजी जायँ और वह उसकी जाँच करके अपना फ़ैसला दे। जो दोषी प्रमाणित हो वह उचित प्रायश्चित्त करे। पत्र-सम्पादन-सम्बन्धी अन्य कठिनाइयों को भी यह मण्डल हल करे। ऐसे मण्डल के बनने और चलाने में जो दिक्कतें आ सकती हैं, उनका कुछ ख्याल मुझे अवश्य है। परन्तु ऐसा कोई उपाय किये बिना हम सम्पादक कहलानेवालों के सिर से न तो यह कलंक ही धुल सकता है, न इस दोष का कारगर इलाज ही हो सकता है।

एक पुकार

हिन्दी के सुपरिचित भाई काशिनाथ जी त्रिवेदी लिखते हैं—"आपको यह जानकर दुःख होगा कि 'हिन्दी शिक्षण पत्रिका' के प्राण फिर संकट में पड़ गये हैं। इन्दौर-राज्य से अब तक कोई ३५० ग्राहक मिला करते थे, अगले वर्ष से ये बन्द हुआ चाहते हैं। केवल '५० प्रतियाँ लेने की बात कही जा रही है। यदि इंदौर का यह सहारा सचमुच टूट गया तो फिर पत्रिका नहीं बच सकेगी। कल ही श्री तारा बहन का पत्र आया है कि कोई दूसरा प्रबन्ध न हो सका तो सितंबर का अन्तिम अंक निकाल कर उसे सदा के लिए हिन्दी-संसार से विदा हो जाना पड़ेगा।"

वास्तव में इस खबर से मुझे ही नहीं हिन्दी के प्रत्येक शिक्षक, माता-पिता व अभिभावक को दुःख होना चाहिए। बाल-शिक्षण-सम्बन्धी प्रयोग व अनुभव-सिद्ध ज्ञान-दान करनेवाली, बालकों और शिक्षकों को ही नहीं, माताओं को भी जाग्रत रखने और नित नई जानकारी देनेवाली पत्रिका इससे बढ़कर मैंने नहीं देखी। यह एक ऐसी उत्तम शिक्षण-संस्था की पत्रिका है, जिसमें शिक्षण-सम्बन्धी विविध प्रयोग अच्छे शिक्षण-शास्त्रियों द्वारा होते हैं। इसे जीवित ही नहीं फूलता-फलता रखना प्रत्येक हिंदी-भाषी व्यक्ति, संस्था, राज्य तथा समाज का कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास है कि भाई काशिनाथ जी की यह दर्दभरी पुकार प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी के कान तक पहुँचेगी और इन्दौर राज्य के शिक्षाधिकारी इसे सहानुभूति के साथ सुनने की कृपा करेंगे।

पृष्ठ-संख्या व पुरस्कार

कुछ मित्रों का कहना है कि जी० सा० के पृष्ठ कम हैं, अधिक होने चाहिएँ। हम खुद भी इस कमीको महसूस करते हैं। लेकिन 'जी०सा०' स्वावलम्बी बनकर ही अधिक जीवित रह सकता है और उपयोगी सेवा कर सकता है। मण्डल 'कमाऊ' संस्था नहीं है जिससे बचत की रकम 'जी० सा०' के घाटे में भरी जा सके। जैसे-जैसे उसके ग्राहक तथा सुचारुपूर्ण और अच्छी चीज़ों के विज्ञापनदाता बढ़ते जावेंगे और घटी की सम्भावना कम रहती जायगी, वैसे-वैसे पृष्ठ-संख्या अवश्य बढ़ती रहेगी।

कुछ आदणीय मित्रों का यह भी सुझाव है कि 'जी० सा०' में मौलिक लेख ही रहने चाहिएँ और कुछ की सूचना है कि लेखकों को उचित पुरस्कार भी दिया जाना चाहिए। दोनों की आवश्कता को हम स्वीकार करते हैं। हिन्दी में मौलिक लेखक दो श्रेणी के हैं। एक तो कालेजों और विश्वविद्यालयों के अध्यापक जिन्हें पुरस्कार की उतनी आवश्यता नहीं, जितनी शायद समय या रुचि की कमी हो; दूसरे विद्वान पेशेवर (अच्छे भाव में) हैं जिन्हें पुरस्कार दिया जाना आवश्यक है। दोनों श्रेणियों के लेखक यदि कुछ समय तक 'जी० सा०' पर सतत कृपा करते रहें, तो सम्भव है हम अगले वर्ष तक पुरस्कार देने की भी व्यवस्था कर सकें। सुलेखकों की अच्छी आर्थिक सेवा भी 'मण्डल' यदि पुस्तकों तथा लेखों के पारिश्रमिक के रूप कर सके तो यह उसके कार्य का एक अंग ही है। सद्विचारों और सद्ग्रन्थों के प्रचार के ही लिए 'मण्डल' का और 'जी० सा०' का जन्म हुआ है। ह० उ०

स्व० अध्यापक जी !

गत १३ अगस्त ने लगभग २ वर्ष से तपैदिक से युद्ध करते आरहे हिन्दी-संसार के इस सुलेखक और अनन्य सेवक को छीन लिया! अध्यापक श्री रामरत्नजी आगरा नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्थापक थे तथा वर्षों हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के परीक्षा-मंत्री रहे थे। वे साधारण अध्यापन कार्य से बढ़ते-बढ़ते अच्छे सम्पन्न प्रकाशक की स्थिति पर पहुँच गये थे, यह उनकी अध्ययवसायिता का ही परिचायक था। उन्होंने हिन्दी की अनेक पुस्तकें लिखीं, जो स्कूलों के पाठ-क्रम में हैं। ऐसे अथक साहित्य-सेवी को खोकर आज हम संतप्त हैं। जगन्नियंता उनकी दिवंगत आतमा को चिर शांति और उनके परिजनों को धैर्य्य-धारण की क्षमता प्रदान करे। सु०

'मण्डल' की ओर से—

धन्यवाद

'जीवन-साहित्य' को—जैसा भी वह बन सका—हमने पाठकों की भेंट किया और उन्होंने इसे जिस उत्साह और जोश के साथ अपनाया, उससे हमारा साहस बढ़ा है। हमें यह आशा हो गई है कि जल्दी ही यह अपने पाँव पर खड़ा हो जायगा और हम इसका आकार-प्रकार शायद बढ़ा सकें। जिन पाठकों ने इसे पूरी तरह अपनाया है और जो उसे अपनाते जारहे हैं, उनको हम हृदय से धन्यवाद देते हैं। पाठकों ने इसे अपनाने में जो उदारता दिखाई, वह स्थायी रही तो पाठक 'जीवन-साहित्य' को जल्दी ही विशाल वृक्ष के रूप में देख लेंगे।

एक सुझाव—

इस अंक के कवर के तीसरे पृष्ठ पर ही 'मण्डल' की एक सूचना पाठकों को मिलेगी। हमारी प्रार्थना है कि 'मण्डल' से प्रेम रखनेवाले तथा 'मण्डल' की पुस्तकों की तरफ़ किसी-न-किसी रूप में आकर्षित होनेवाले पाठक उसे अवश्य पढ़ जायँ और अगले अंक में जो प्रश्न दिये जायँ, उनके उचित उत्तर भरकर भेजने की कृपा करें।

स्थायी ग्राहकों के नाम काटे गये

हम काफ़ी अर्से से समय-समय पर यह सूचना अपने स्थायी ग्राहकों को देते रहे हैं कि 'मण्डल' के स्थायी ग्राहक-सम्बन्धी नियम नं० ५ के अनुसार हर साल कम-से-कम ५) की मण्डल की पुस्तकें

ग्राहकों को लेनी ही चाहिएँ। इस पर बहुतों ने अब तक ध्यान नहीं दिया। पर बहुत-से ग्राहक तो ऐसे हैं, जो पत्रों तथा सूचनाओं का उत्तर भी नहीं देते। उनके पास 'व्यापारिक उत्तर पत्र' (Business Reply Card) भेजा जाता है। उत्तर देने का उनको कुछ भी खर्चा नहीं करना पड़ता। केवल कार्ड की खाना पूरी करनी पड़ती है और डाक में डाल देना होता है। पर इतना भी वह नहीं करते। **ऐसे कई ग्राहकों के नाम जिनके किसी प्रकार के उत्तर हमारे कार्यालय में नहीं आयें हैं तथा जिन्होंने ५) की पुस्तकें नहीं ख़रीदी हैं स्थायी ग्राहक-रजिस्टर से काट दिये गये हैं। उनको 'जीवन-साहित्य' के इस अंक के द्वारा सूचना भेजी जा रही है कि अगर वह ग्राहक बने रहना चाहते हैं तो उनके लिए यह जरूरी होगा कि 'मण्डल' की प्रकाशित पुस्तकों में से तुरन्त ही कम-से-कम ५) की पुस्तकें मँगा लें। इस प्रकार जो पुस्तकें मँगालेंगे उनके नाम हम वापस लिख लेंगे। अगर अभी यह नहीं करेंगे उनको १) देकर फिर स्थायी ग्राहक बनना होगा।**

इन्दौर-शाखा का स्थान-परिवर्तन

इन्दौर-शाखा की दुकान तथा दफ्तर पहले **बड़ा सराफ़ा** में था। पर गत महीने के बीच से दुकान तथा दफ्तर **खजूरी बाजार** में चला गया है। 'मण्डल' के ग्राहक तथा पाठक स्मरण रखने की कृपा करें।

और स्पष्टीकरण

इन्दौर-शाखा के व्यवस्थापक सूचित करते हैं कि मण्डल के कुछ ग्राहकों का यह ख़याल है कि 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक 'मण्डल' के प्रधान (कार्यालय) नई दिल्ली से ही बन सकते हैं तथा 'मण्डल' की पुस्तकें आदि भी पौनी क़ीमत में नई दिल्ली से ही मिल सकती हैं, शाखाओं से नहीं। उनका यह खयाल ग़लत है। पिछले अंक में यह स्पष्टतया सूचित किया जा चुका था कि **'मण्डल' की इन्दौर, लखनऊ तथा दिल्ली की शाखाओं के अलावा संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, राजपूतान-मध्यभारत तथा पंजाब के चर्खा संघ के खादी-भंडारों तथा पूना के 'हरि कार्यालय से** 'मण्डल' की नई-पुरानी सब प्र की पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में सकती हैं; तथा वहाँसे वे 'जीवन-साहित्य' 'मण्डल' के नये ग्राहक भी बन सकते हैं ग्राहक बन जाने पर वहीं से पौनें मूल्य में पु भी ले सकते हैं। जिन नई पुस्तकों की सू भेजी जाती है, वे भी उपरोक्त पतों पर स ग्राहकों को अपना प्रमाणपत्र कार्ड दिखाने हमेशा पौने मूल्य में मिल सकती हैं।

नया प्रकाशन

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने मह गांधी के जीवन पर **'बापू'** नाम से एक बहुत सुन्दर मार्मिक और रोचक पुस्तक लिखी उसको आगामी गाँधी-जयंति पर (२ अक् को) 'मण्डल' से प्रकाशित कराने का इरादा रहा है। प्रकाशित होने पर यथासमय उ सूचना दी जायगी। इसके साथ ही इसी 'खादी मीमांसा', 'मेरी मुक्ति की कहानी' 'समाजवाद-पूँजीवाद' ये तीन पुस्तकें भी तै हो रहीं हैं और जल्दी ही पाठकों की सेवा पहुँचेंगी।

'गांधी-जयन्ति' की भेंट

पाठकों को याद होगा कि पिछली 'ग जयंति' पर हमने सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् संपादित 'गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ' प्रकाशित कि था। उसका पहला संस्करण तो देखते-दे में निकल गया। गत रामगढ़-कांग्रेस के म पर उसका दूसरा संस्करण किया गया। आ तो है कि प्रत्येक विचारशील पाठक के पास ग्रंथ पहुँच गया होगा। पर जिनके पास न पहुँ हो और अर्थाभाव से न ख़रीद सके हों, उ लिए इस वर्ष 'गांधी-जयन्ति' पर मँगाने पर पौ क़ीमत में दिया जायगा। 'जीवन-साहित्य' अगले अंक में हम एक 'कूपन' छापेंगे जिसे भर भेजने से वह पौने मूल्य में मिल सकेगा।

'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बननेवालों से

जो सज्जन 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक हों

चाहते हैं, उनके लिए ज़रूरी है कि वे २) का मनिआर्डर भेजा करें। जो सज्जन 'मण्डल' के ग्राहक हैं, वे १) भेजें। यह रक़म या तो डाक के टिकटों या पोस्टल आर्डर से सस्ते में भेजी जा सकती है। कई सज्जन वी० पी० भेजने को लिखते हैं। उनको भी हमारी यही सलाह है कि वी० पी० मंगाने में ।) का खर्च ज्यादा होजाता है और यों डाक के टिकिटों में -) में ही आप मूल्य भेज सकते हैं। आशा है, ग्राहकगण ख़याल रखेंगे।

नमूने मँगाने वालों से--

जो सज्जन 'जीवन-साहित्य' नमूने के लिए मंगाते हैं उनको ।) के टिकिट भेजना जरूरी है। ।) का टिकिट आये बिना नमूने का अंक नहीं भेजा जा सकेगा।

—मंत्री

सुहृदों की नज़र में

" 'जीवन-साहित्य' मिला तो था। लेकिन सम्मतिप्रदान की ज़िम्मेदारी ध्यान में नहीं आई थी। देखा! विविध दिलचस्पियों से भरपूर है। मानता हूँ कि लोकोपयोगी होगा।"

पवनार] **—विनोबा**

"कितनी आवश्यकता थी आपके इस 'जीवन-साहित्य' की! हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में 'मधुशाला' का गन्दा नाला बह रहा है, जिसकी दुर्गंध के कारण भले लोगों का रास्ता चलना मुश्किल हो गया है। इसे बन्द करने के लिए किसी निर्भय व्यक्ति की आवश्यकता थी, सो आपने यह काम उठा लिया है। मैं हृदय से आपकी सफलता चाहता हूँ।

ईश्वर करे कि आपकी पत्रिका का खूब प्रचार हो और हिन्दी-कवि तथा लेखकों के लिए यह पथ-प्रदर्शक बने।

ज्वालापुर] **—(स्वामी) सत्यदेव परिव्राजक**

" 'जीवन-साहित्य' का पहला अंक देखा। यदि केवल नदी के विकास की दृष्टि से ही देखना हो तो सुन्दर है। परन्तु यदि भविष्य में प्रकाशित होनेवाले अंकों के अग्रदूत की दृष्टि से देखा जाय, तो अभी उन्नति के लिए काफ़ी गुंजाइश है।

वर्धा] **--दादा धर्माधिकारी**

यह उच्चकोटि का एक मासिक होगा इसमें, आपके सम्पादकत्व का लाभ मिलने से, कुछ भी अन्देशा नहीं; परन्तु यह प्रथमांक भी इसकी खात्री देता है।

प्रति मास पहली तारीख को 'सर्वोदय' एवम् यह मासिक मिलेगा, यह हिन्दी के सौभाग्य की बात है।

इचलकरंजी] **–(सरदार) माधव विनायक किबे**

" 'जीवन-साहित्य' के लिए आप लोगों को बधाई। मुझे सन्देह था, उपाध्याय जी इसकी भाषा न जानें कैसी रक्खेंगे--परन्तु पत्र देखकर सन्तोष हुआ। खेद है, शरीर और मन स्वस्थ न रहने से मैं बहुत थोड़ा लिख पाता हूँ। फिर भी मेरी शुभकामनायें सेवा में समर्पित हैं।"

चिरगाँव] **--मैथिलीशरण गुप्त**

"गांधीवाद की दृष्टि से जो दो सुथरे व्यक्तित्व के मासिक मुझे देखने को मिले, उनमें एक तो 'सर्वोदय' है और दूसरा आपका 'जीवन-साहित्य'। अपने पत्र के द्वारा जीवन की जिस व्याख्या को देने का आपका उद्देश्य है, उससे मेरा किसी प्रकार का विरोध नहीं है। मैं आपके पत्र की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।"

इलाहाबाद] **--सुमित्रानन्दन पन्त**

" 'जीवन-साहित्य' को पढ़कर 'त्याग-भूमि' की याद आ गई। इस अंक को मैं आरम्भ से अन्त तक पढ़ गया।

'जीवन-साहित्य' के लेख उपादेय हैं। 'जीवन' के पहलुओं पर विचार किया गया है। लेखों से स्पष्ट है कि साहित्य 'सुन्दर' होते हुए 'शिव' भी हो सकता है।

इस सुन्दर, सुलभ और उपयोगी पत्र की हित-कामना करता हूँ।"

हि० सा० स० प्रयाग] **--बाबूराम सक्सेना**

" 'जीवन-साहित्य' ऐन वक्त पर और बहुत अच्छा निकला। ऐसे पत्र की निहायत ज़रूरत थी। हिन्दी की अदबी दुनिया में यह मुफ़ीद रिसाला अपना स्थान जल्दी ही बना लेगा। 'पृथिवी पुत्र' इस अंक की जान है, वैसे सभी लेख एक-से-एक बढ़िया हैं।

बन्धुवर हरिभाऊ जी ने हिन्दी-साहित्य की उपमा उस मोटे आदमी से दी है, जिसका वज़न कई मन हो गया है, पर जो चलने में कदम-कदम पर हाँफता है। हिन्दी लिटरेचर की बढ़ती हुई तौंद को, जो दरअसल काहिली की निशानी है, पटका कर वे उसे फिर से छरछरे बदन का और चुस्त नौजवान बनाना चाहते हैं। उम्मेद है कि उन्हें इस माकूल इलाज में कामयाबी हासिल होगी। ब्योरेवार रिव्यू अगले हफ्ते में भेजूँगा। अगर गुस्ताखी मुआफ हो इतना अर्ज कर दूँ कि भाषा को आमफहम बनाने की ज़रूरत है।"

टीकमगढ़] —**बनारसीदास चतुर्वेदी**

अनेक धन्यवाद। मैं इसे आज ही पूरा पढ़ गया—आनन्द हुआ, आशा हुई कि ऐसा विलक्षण-पत्र जीवित रह सकेगा।……दल और राजनैतिक मत-विशेष से यह सुरक्षित रहे—यह मेरी कामना है।"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय] —**अमरनाथ झा**

" 'जीवन-साहित्य' में आपकी तपस्या लग रही है, इसलिए मुझे आशा है कि यह उत्तरोत्तर निखरता ही जायगा। जिस सात्त्विक दृष्टि को इसने अपनाया है, उसके प्रसार की बहुत आवश्यकता है।"

चिरगाँव] —**सियारामशरण गुप्त**

"मैं इस नये पत्र का हृदय से स्वागत करता हूँ। हिन्दी में विचारपूर्ण साहित्यिक पत्रिका की कमी मैं बहुत दिनों से अनुभव करता आया हूँ।……विचारपूर्ण लेखों द्वारा साहित्यिक क्षेत्र में नवीन तथा स्वस्थ आदर्शों का प्रवेश कराना हिन्दी-साहित्य की ही नहीं, हिन्दी भाषाभाषी समाज की भी बड़ी सेवा होगी।"

सीतामऊ] —**(राजकुमार) रघुबीरसिंह**

" 'जीवन-साहित्य' के लिए मेरी हा बधाई स्वीकार कीजिए। पत्रिका पृष्ठ-सं की दृष्टि से साधारण होते हुए भी विषय दृष्टि से अद्भुत है। एक-एक शब्द सजीव श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला का 'न पढ़ने यो अच्छी किताबें' शीर्षक लेख मुझे सबसे अधि पसन्द आया। व्यक्तिगत रूप सें मेरे लिए तो पत्रिका अमृत है। एक बार फिर बधाई।"

इलाहाबाद] —**श्रीनाथ**

"हार्दिक बधाई!……आशा है, 'जीव साहित्य' दिन-पर-दिन प्रगति करेगा औ हिन्दी-साहित्य में अपना जीने योग्य स्थान प्रा करेगा।"

अकोला (बरार)] —**ब्रिजलाल बियाणं**

"आपने बड़ा सुन्दर प्रकाशन आर किया है।"

प्रयाग] —**ज्योतिप्रसाद 'निर्म**

"सभी लेख सुप्रसिद्ध देशसेवकों तथा साहि सेवकों के हैं। सब सुन्दर और संग्राह्य हैं, इ सन्देह नहीं। यह मासिक हिन्दी-संसार में ब उच्चकोटि का साहित्य निर्माण तो करेगा ही, इ अलावा यह राष्ट्रीयता को भी जीवन देगा, ऐ मेरा विश्वास है। आज की परिस्थिति में अ की सजधज बहुत खर्चीली हो गई है, तब 'त्यागभूमि' के पाठकों को 'जी० सा०' का सा स्वरूप कुछ अखरता ज़रूर है।"

उज्जैन] —**त्र्यंबक दामोदर पुस्त**

भूल-सुधार

पिछले अंक में छापे की कुछ गंभीर भू चली गई हैं; पाठक कृपया उन्हें सुधार लें।

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६	१	१६	कवि की	कवि—की कवि
"	२	२५	औषधि	ओषधि
४२	१	२२	जो भी	जो कि
४३	२	१२	सहयोग-प्रवृत्त	सहयोग-प्रवृत्त न
"	२	२४	शस्त्र-बल-रहित	शस्त्र-बल-सहित

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित होगा।

२. किसी भी महीने ग्राहक बन सकते हैं, पर साल से कम के नहीं।

३. 'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इंदौर शाखाओं तथा संयुक्त प्रांत, विहार, मध्य प्रांत, राजपूताना-मध्य भारत, व पंजाब के चर्खा-संघ के खादी-भंडारों तथा 'हरिजन कार्यालय' पूना नं० ४ से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बन सकते हैं।

४. हर मास के पहले हफ्ते में पत्र न मिले तो अपने यहाँ के डाकखाने से पूछ-ताछ करके **अपनी ग्राहक संख्या के साथ** पत्र लिखना चाहिए। उचित कार्रवाई की जायगी।

५. अपने पते में कोई परिवर्त्तन करना हो तो तुरन्त सूचना दिया करें——**ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।**

६. पत्र का चंदा इस प्रकार है——

भारत में	बर्मा में	विदेश में	एक प्रति
२)	२।।)	५ शिलिंग	।)

नोट——नमूने के अंक के लिए ।) के टिकट भेजें। वार्षिक मूल्य डाक के टिकटों में भी भेजा जा सकता है।

७. पत्रव्यवहार करते समय **अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।**

८. 'जीवन-साहित्य' में शिष्ट साहित्य तथा उपयोगी सुरुचिपूर्ण और देशी वस्तुओं के विज्ञापन लेने की गुंजाइश रक्खी है——

दर निम्न प्रकार हैं——

कवर का दूसरा पृष्ठ		प्रतिमास	४०)
,,	तीसरा ,,	,,	४०)
,,	चौथा ,,	,,	५०)
पाठ्य विषय के सामने		,,	४०)
साधारण पृष्ठ——		,,	२५)

९. विज्ञापन एजेण्टों को कमीशन आदि के लिए पत्रव्यवहार करना चाहिए।

पता——

व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य',
कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दांत और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँतक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजाओं-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं। कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

कुछ प्रशंसा-पत्रों का सार

मि० एच. एम. हैरिस, (लन्दन)——मैंने बाज़ार के प्रायः सब प्रकार के दन्तरोग नाशक मञ्जनों का प्रयोग किया, किन्तु किसीसे इतना लाभ नहीं पहुँचा, जितना आपके 'दन्तामृत मञ्जन से। **तब से मेरे दाँत में एक बार भी दर्द नहीं हुआ।**

ठा० माधोसिंहजी, होम मैम्बर, जोधपुर स्टेट——मेरे दाँतों के लिए आपका मञ्जन रामबाण सिद्ध हुआ।

मिलने का पता——**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

सस्ता साहित्य मण्डल

[एक रुपया देकर स्थायी ग्राह

(इस ×निशान वाले

| पूरा सेट लेने पर कमीशन के अला

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन-साहित्य १।) ३. तामिल वेद ।।।) ४. व्यसन और व्यभिचार ।।।=) ५. समाजिक कुरीतियांँ× ।।।) ६. भारत के स्त्री-रत्न ३) ७. अनोखा× १।=) ८. ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।=) ९. यूरोप का इतिहास २) १०. समाज-विज्ञान ।।।) ११. खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र× ।।।≡) १२. गोरों का प्रभुत्व× ।।।=) १३. चीन की आवाज़× ।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।) १५. विजयी बारडोली× २) १६. अनीति की राह पर ।।=) १७. सीता की अग्नि-परिक्षा ।-) १८. कन्या शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ।।) २२. अँधेरे में उजाला ।।) २३. स्वामीजी का बलिदान× ।-) २४. हमारे ज़माने की ग़ुलामी× ।) २५. स्त्री और पुरुष ।।) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें ? १) २८. हाथ की कताई-बुनाई× ।।-) २९. आत्मोपदेश× ।) ३०. यथार्थ आदर्श जीवन× ।।।-) ३१. (देखो नवजीवन माला) ३२. गंगा गोविंदसिंह× ।।=) ३३. श्रीरामचरित्र १।) ३४. आश्रम-हरिणी ।) ३५. हिन्दी मराठी कोष× २) ३६. स्वाधीनता के सिद्धान्त× ।।) ३७. महान् मातृत्व की ओर ।।।=) ३८. शिवाजी की योग्यता ।=) ३९. तरंगित हृदय ।।) ४०. नरमेध× १।।) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४२. ज़िन्दा लाश ।।) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) १।।) ४४. जब अंग्रेज़ आये× १।=) ४५. जीवन विकास १।) ४६. किसानों का बिगुल× =) ४७. फाँसी ! ।=) ४८. (दे० नव-जीवन माला) ४९. स्वर्ण विहान× ।=) ५०. मराठों का उत्थानपतन २।।) ५१. भाई के पत्र

५२. स्वागत× ।=) ५३. युगधर्म× १=) ५४.
समस्या १।।।) ५५. विदेशी कपड़े का मुक़ाबि
।।=) ५६. चित्रपट ।=) ५७. राष्ट्रवाणी×
५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।) ५९. रोटी
सवाल ।।।) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६१. जीवन
।।।) ६२. हमारा कलंक ।।=) ६३. बुद्बुद ।।)
संघर्ष या सहयोग ? १।।) ६५. गांधी-वि
दोहन ।।।) ६६. एशिया की क्रांति× १।।।)
हमारे राष्ट्र-निर्माता १।।) ६८. स्वतन्त्रता
ओर १।।) ६९. आगे बढ़ो ! ।।) ७०. बुद्ध-वा
।।=) ७१. काँग्रेस का इतिहास २।।) ७२. ह
राष्ट्रपति १) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू)
७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहर
नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों ? ।।)
नया शासन विधान ।।।) ७७. (१) गाँवों
कहानी ।।) ७८. (२-९) महाभारत के पात्र
७९. सुधार और संगठन १) ८०. (३) संतवा
।।) ८१. विनाश या इलाज ।।।) ८२. (
अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।।)
(५) लोक-जीवन ।।) ८४. गीता-मंथन १।।)
(६) राजनीति प्रवेशिका ।।) ८६. (७) अ
कार और कर्त्तव्य ।।) ८७. गांधीवाद : समा
वाद ।।।) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ।।)
(८) सुगम चिकित्सा ।।) ९०. प्रेम में भगवा
।।) ९१. महात्मा गांधी ।=) ९२. ब्रह्मचर्य
९३. (१०) हमारे गाँव और किसान ।।)
अभिनन्दन-ग्रंथ २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्या
१) ९६. जीवन-सन्देश ।।) ९७. समन्वय (डॉ
भगवान्दास) २)

नोट—जिन पुस्तकों के पहले कोष्टक में न
लगे हैं वे 'लोक साहित्य माला' की पुस्तकें हैं।

का सम्पूर्ण साहित्य

बनने पर पौने मूल्य में]

पुस्तकें अप्राप्य हैं)

सागवान का पॉलिश किया हुआ सुन्दर शेल्फ भेंट में]

नवजीवन माला

१. गीताबोध −) २. मंगलप्रभात −) ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय −) ५. नवयुवकों से दो बातें −) ६. हिन्दस्वराज ≡) ७. छूतछात की माया −) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १०. खादी गादी की लड़ाई =) ११. मधुमक्खी पालन =) १२. गावों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गायन =) १४. खादी का महत्व −)।। १५. जब अंग्रेज नहीं आये थे ≡)

सामयिक साहित्य माला

१. कांग्रेस का इतिहास १९३५-३९ ।−) २. दुनिया का रंगमंच =) ३. हम कहां हैं ? =) ४. युद्ध संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे ? ≡) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।)

बाल साहित्य माला

१. सीख की कहानियाँ =) २. कथा कहानी—१=) ३. शिवाजी चरित्र=) ४. देश-प्रेम की कहानियाँ =)

विविध पुस्तकें

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू ।) २. जवाहरलाल नेहरू =) सप्तसरिता (काका कालेलकर) =)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ।।) ३. चारा-दाना =) ४. फ्रांस की राज्य-क्रांति १।।) ५. गांधीवाद की रूपरेखा १) ६. सन् १९४० १) ७. मेरा देश ।) ८. पिता के पत्र पुत्री के नाम ।।) ९. आर्थिक संगठन ।।।) १०. योग के चमत्कार १) ११. रूपांतर ।।) १२. पौराणिक कथायें १।।) १३. अनोखा बलिदान ।।)

‘मण्डल’ की ये पुस्तकें कहाँ मिलती हैं ?

निम्न स्थानों पर ‘मण्डल’ की पुस्तकें स्थाई ग्राहकों को पौने मूल्य में मिला करेंगी ।

संयुक्तप्रान्त—सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ, साहित्यनिकेतन, कानपुर, श्री गांधी आश्रम खादी भण्डार मुरादाबाद, इलाहाबाद, मेरठ, मुज्जफ्फरनगर, काशी, मथुरा, बरेली, देहरादून, फैजाबाद, गोरखपुर, सहारनपुर, डिबाई, फरूखाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, अक़बरपुर ।

बिहार—चर्खासंघ खादी भण्डार हाजीपुर, रांची, मधुबनी, बेतिया हजारीबाग, लरियासराय, मुजफ्फरपुर, गया, सीतामढ़ी, पटना, डाल्टन गंज, बेगूसराय, मोतीहारी, भागलपुर ।

मध्यप्रान्त—महाराष्ट्र चर्खा संघ खादी भण्डार नागपुर (सीताबर्डी) गोंदिया, जबलपुर, रायपुर खण्डवा ।

राजपूताना मध्यभारत—सस्ता साहित्य मंडल, इंदौर राजस्थान चर्खा संघ खादी भंडार अजमेर, जयपुर, जोधपुर बीकानेर, उदपुयर, मन्दसौर ग्वालियर, इन्दोर, मुकुन्दगढ़ नवलगढ़ ।

पंजाब—गांधी खादी-भंडार, भिवानी, आदमपुर, लाहौर ।

उपन्यास-अंक

सितम्बर में प्रकाशित हो रहा है
यह
हिन्दी के प्रगतिशील आलोचनात्मक मासिक

साहित्य संदेश

का

विशेषांक और प्रवेषांक भी है

इसमें हिन्दी के सभी श्रेष्ठ उपन्यासकारों, जैसे प्रेमचन्द, प्रसाद, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, वृन्दावनलाल वर्मा, उषा मित्रा आदि नये उपन्यासकारों के अतिरिक्त मराठी, बंगला, गुजराती, अंग्रेजी, उर्दू, फ्रेंच, लेटिन आदि के उपन्यासों प भी विस्तृत प्रकाश डाला जायगा।

हिन्दी के सभी श्रेष्ठ लेखकों का सहयोग 'साहित्य संदेश' को प्राप्त है

श्री रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, वासुदेवशरण अग्रवाल, बनारसीदास चतुर्वेदी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, जैनेन्द्र, सत्येन्द्र, नगेन्द्र, स० ही० वात्स्यायन, प्रकाशचन्द्र गुप्त, प्रभाक माचवे आदि अनेकों लेखक इस अंक में अपनी अनुपम कृतियों के साथ प्रकट हो रहे हैं।

इसकी पृष्ठ संख्या साधारण अंक से तीन गुनी अधिक हो जायगी। काग़ज की तेजी के कारण यह अंक अधिक न छपाया जा सकेगा इसलिए

शीघ्र ही इसके ग्राहक बन जाइए

इसका अलग से मूल्य १ रुपया है परन्तु 'साहित्य सन्देश' का ग्राहक बन जाने पर मुफ्त ही मिल जायगा।

पत्र का वार्षिक मूल्य केवल ३) रुपये हैं और विद्यार्थियों, पुस्तकालयों तथा स्कूलों कालेजों से केवल २) रुपये वार्षिक ही लिया जायगा।

पत्र व्यवहार का पता—
'साहित्य सन्देश', आगरा।

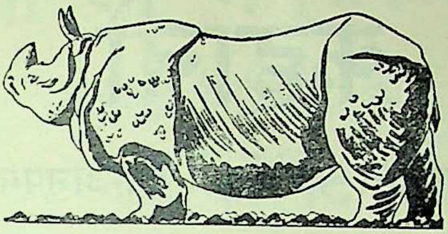

गैंडा मार्का

क्राफ्ट

कागज़

मज़बूती और टिकाऊपन में

सबसे उत्तम है

पत्र व्यवहार करें

ओरियण्ट पेपर मिल्स, लिमिटेड

मेनेजिंग एजेण्ट्स

बिरला ब्रदर्स लिमिटेड, कलकत्ता

कहानी

कथा-साहित्य के प्रेमियों को अनुपम भेंट

कहानी का विशेषांक

अथवा

अमर कलाकारों की कृतियों का

अनुपम संग्रह

सितम्बर ४० के अन्तिम सप्ताह तक प्रकाशित हो जायगा ।

कथा-साहित्य के प्रेमियों तथा 'कहानी' के कृपालु ग्राहकों को यह जानकर अत्यन्त हर्ष कि गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी हम 'कहानी' का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं । हमारे विशेषांक की सभी पत्रों, प्रेमी पाठकों तथा सुविज्ञ समालोचकों ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की थी। वर्ष का विशेषांक भी पिछले विशेषांक की भाँति हिन्दी के कहानी-साहित्य में एक मौलिक और वस्तु होगी । करीब २०० पृष्ठों के इस विशेषांक में सुप्रसिद्ध कहानीकारों की कृतियों का सम रहेगा । जिनकी रचनाएँ इस विशेषांक में आ रही हैं उनमें से कुछ के नाम ये हैं : सर्वश्री रवीन् ठाकुर, शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय, रमणलाल देसाई, जैनेन्द्रकुमार, 'अज्ञेय', 'विष्णु', रामकुमार भगवतीचरण वर्मा, शान्तिप्रसाद वर्मा, कमलादेवी चौधरी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, भगवती चन्दोला आदि-आदि, तथा संसार की बीसीयों सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ । इतना सुन्दर सर्वश्रेष्ठ वि हिन्दी के पत्रकारी के इतिहास में अश्रुतपूर्व है ।

यह नोट करने की बात है कि—

क़रीब २०० पृष्ठों की इस तथ्यपूर्ण, रोचक, रोमांचक, कौतूहलोद्दीपक तथा विचार- सामग्री को हम केवल छः आने में पाठकों की भेंट कर रहे हैं और वार्षिक ग्राहकों के लि हमने २) नाममात्र वार्षिक चन्दा रखा है । पुस्तकालयों के लिए सिर्फ़ १।।) ही वार्षिक चन्दा है । इसके अतिरिक्त मात्र छः आना पोस्टेज भेजने पर १।।) मूल्य की एक भेंट-पुस्तक बिना प्रदान की जाती है । कृपया आज ही २।=) का मनिआर्डर कर दीजिए अन्यथा भेंट पुस्तक आ प्राप्त नहीं हो सकती ।

विस्तृत परिचय और गतवर्ष के विशेषांक के नमूने के लिए आज ही एक कार्ड लिखिये :

सरस्वती-प्रेस,

बनारस

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

जूट कारपेट

अति सुन्दर और आकर्षक होने पर भी,
मज़बूत तथा क़ीमत में भी बहुत सस्ते हैं।

इसलिए

किसी भी प्रकार की सजावट के लिए
सब लोग जूट कारपेट को ही पसन्द करते हैं।

मिलने का पताः—

सभी जूट कारपेट की दुकानों में

तथा

खन्ना इन्डस्ट्रीज, बनारस सिटी
नेशनल नॉवेल्टी स्टोर, कानपुर
जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग

और

बङ्गाल स्टोर्स, लिमिटेड

टेलीफोन नं० कलकत्ता ३१३३, नं० ८ए चौरंगी प्लेस, कलकत्ता में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपके इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

एजेंसी के लिए निम्न पते पर लिखें :—

टेलीफोन नं० कलकत्ता ५६५ टेलीग्राम—जूट वीवर

बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर का श्रेष्ठ साहित्य

कुछ चुने हुए ग्रन्थ

सदाचार और तत्त्वज्ञान

मानव-जीवन	१॥)
सफलता और उसकी साधना	॥।≡)
मितव्ययता	॥।≡)
आनन्द की पगडण्डियाँ	१)
प्रभावशाली जीवन	॥।)
सामर्थ्य, समृद्धि, शान्ति	१॥)
संजीवन-सन्देश	॥=)
चरित्र-गठन और मनोबल	≡)
युवाओं को उपदेश	॥=)
नीति-विज्ञान	२॥)
प्रपंच-परिचय	१॥)
ज्ञान और कर्म	३॥)

रवीन्द्र-साहित्य

प्राचीन-साहित्य (निबन्ध)	॥-)
राजा और प्रजा ,,	१)
स्वदेश ,,	॥=)
शिक्षा ,,	।)
चिरकुमार सभा (उपन्यास)	१)
आँख की किरकिरी ,,	१॥)
रवीन्द्र कथाकुंज (कहानी)	१=)
मुक्तधारा (नाटक)	॥≡)

शरत्साहित्य

शरद् बाबू की कहानियों और उपन्यासों के अब तक अठारह भाग निकल चुके हैं। प्रत्येक भाग का मूल्य दस आना।

इतिहास

शिवाजी (सर जदुनाथ)	१॥)
मुग़ल साम्राज्य का क्षय (प्रो० इन्द्र)	४॥)
भारत के प्राचीन राजवंश (दो भाग)	६)
मध्य प्रदेश का इतिहास	१॥)

काव्य

सिद्धार्थ महाकाव्य (अनूप)
सुमनांजलि ,,
शतदल (बख़्शी)
झंकार (सुदर्शन)
मौक्तिकमाल (दिनेशनन्दिनी)

आलोचना

साहित्य-शिक्षण
साहित्य मीमांसा
कालिदास और भवभूति
हिन्दी-साहित्य की भूमिका
साहित्य की अनुक्रमणिका

द्विजेन्द्र नाटकावली

मेवाड़पतन	॥।=)	ताराबाई
दुर्गादास	१)	चन्द्रगुप्त
शाहजहाँ	१)	लंकाविजय
नूरजहाँ	१=)	भीष्म
राणा प्रताप	१॥)	सीता
अहल्या	॥=)	उस पार
सुहराब रुस्तम	॥=)	सूम के घर धूम

उपन्यास-कहानियाँ

ग्राम्य-जीवन की कहानियां (प्रेमचन्द)
नारी जीवन की कहानियाँ ,,
मानसरोवर (दो भाग) ,,
कल्याणी (जैनेन्द्रकुमार)
परख ,,
त्याग-पत्र ,,
वातायन ,,
चार कहानियाँ (सुदर्शन)
पनघट ,,
दो फूल (सत्यवती मल्लिक)

नोटः—एक कार्ड लिखकर सूचीपत्र मंगाइए।

संचालक—हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

साधना

सम्पादक—श्री सत्येन्द्र एम० ए०

[विविध-विषय-विभूषित सांस्कृतिक मासिक-पत्रिका]

वार्षिक मूल्य २) : : एक प्रति का ।)

यों तो हिन्दी जगत में अनेक पत्र और पत्रिकायें हैं पर दो रुपये मात्र वार्षिक मूल्य में केवल 'साधना' ही उच्चकोटि की विविध विषय-विभूषित सामग्री भेंट करती है। आप भी नमूने का एक अंक मँगाकर देखिए। इसमें निम्नलिखित बातें आप पायेंगे:—

१—विद्यार्थियों के योग्य ज्ञानवर्द्धक लेख।
२—नवीन और प्राचीन साहित्य की सत्समालोचना।
३—आज और कल के पठनीय विचार।
४—भावपूर्ण गद्यगीत और सरस कवितायें।
५—समाज-सुधार के सम्बन्ध में उपादेय विवेचना।
६—शिक्षाप्रद कहानियाँ।
७—ठोस और गम्भीर सम्पादकीय विचार।

अबतक पत्रिका के १० अंक प्रकाशित हो चुके हैं, वर्ष की समाप्ति पर 'साधना' एक सुन्दर साहित्यिक और सामयिक विशेषांक अपने पाठकों को भेंट करेगी। जो लोग अभी से ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा लेंगे उन्हें यह विशेषांक मुफ्त में मिलेगा। दूसरे लोगों को उसका मूल्य अलग से देना होगा। अतः विशेषांक को बिना मूल्य प्राप्त करने के लिए आप शीघ्र ही साधना की ग्राहक-श्रेणी में अपना नाम लिखाइए।

'साधना' कार्यालय, बाँके-विलास, आगरा

कौन क्या कहता है ?

(१)……साधना के कई अंक भी मिले। मुझको अच्छे लगे। धन्यवाद। आपका प्रयत्न सफल, हो यह कामना है।

—पुरुषोत्तमदास टण्डन

(२)……साधना की उत्तरोत्तर उन्नति की अभिलाषा करता हुआ उन अनेकों शुभकामनाओं में, जो आपको अबतक पत्रिका के विषय में प्राप्त हुई हैं, मैं भी अपनी शुभकामना भेंट करता हूँ।

—श्री राजगोपालाचार्य

[इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी सम्मतियाँ हैं।]

पत्रव्यवहार का पता—

एज्यूकेशनल प्रेस, बाँके-विलास, आगरा

नया बीमा क़ानून बनने और यूरोप में रणभेरी बज उठने पर भी

चट्टान की तरह सुदृढ़

हिमालय की भांति सुरक्षित और

छाया की भांति बीमादारों का साथ देनेवाली

न्यू एशियाटिक

जीवन-बीमा कम्पनी लि० की लोकप्रियता का

और क्या प्रमाण हो सकता है

जीवन के चौथे वर्ष में पहले ही चिट्ठे पर
सरप्लस .... ३०,९९३ रुपये
मुनाफ़ा घोषित .... १५ रु० प्रति सहस्र प्रति वर्ष आजीवन बीमों पर।
१२ रु० प्रति सहस्र प्रति वर्ष मियादी बीमों पर।

केवल ६ वर्ष में

२ करोड़ रुपये का काम पूरा किया !

परन्तु यह सब क्यों ?

हर प्रकार की आकर्षक पॉलिसियां, लाजवाब उदारशर्तें, बीमादार के साथ सद्व्यवहार, दावों के भुगतान में अपूर्व सुविधा और काम करनेवालों को पुश्तैनी कमीशन के कारण मेसर्स बिड़ला ब्रदर्स लि०-जैसी प्रसिद्ध और लोक-प्रिय फर्म की देख-रेख में

आप भी आज से ही इसके साथ-साथ उन्नति कीजिए

विशेष विवरण के लिए आज ही पत्र लिखिए :

प्रधान कार्यालय : न्यू एशियाटिक बिल्डिंग्स, नई दिल्ली

शाखा :—कलकत्ता, बंबई, मद्रास, पटना, लाहौर, नागपुर, हैद्राबाद (दक्षिण)

आरती

[कलापूर्ण प्रगतिशील मासिक]

संपादक { सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

प्रत्येक हिन्दी-पाठक के लिए नियमित रूप से आरती पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि इसके हर अंक में आपको मिलेगा—

—विश्व की विविध प्रवृत्तियों का परिचय।
—भारतीय साहित्य की गति-विधि का निर्देश।
—साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर नवीनतम विचार।
—ओजपूर्ण कहानियाँ और कवितायें।
—संसार के महापुरुषों का उत्कृष्ट शब्द-चित्र।
—उत्पीड़ित मानवता की विद्रोहपूर्ण हुंकार।
—गम्भीर और प्रभावशाली टिप्पणियाँ।

ग्राहक बनकर और विज्ञापन देकर लाभ उठाइए

वार्षिक मूल्य ५)　　एक प्रति ।=)

नमूने के लिए आठ आने का टिकट भेजिए।

आरती-मंदिर, पटना सिटी

अपने बालक को मैं कैसे समझूँ ?

क्या मैं सचमुच में

शिक्षक हूँ ? माता-पिता हूँ ?

इन प्रश्नों के प्रामाणिक उत्तर और बाल-जीवन के प्रत्येक पहलू पर मनोवैज्ञानिक मनन

इस पत्र की ख़ास विशेषता है

१. प्रतिमास 'बालहित' ३२ पृष्ठों का ठोस मनोवैज्ञानिक वाचन देता है।
२. प्रतिमास देश-विदेश के धुरन्धर विद्वान् तथा अनुभवी शिक्षक अपने अनुभव देते हैं।
३. 'बालहित' हिन्दी-संसार का पहला मासिक है, जो नूतन शिक्षण का संदेश फैला रहा है।
४. कलकत्ता विश्व-विद्यालय के प्रायोगिक मनोविज्ञान के आचार्य श्री हरिपद मैति प्रतिमास माता-पिता तथा शिक्षकों की कठिनाइयों के निःशुल्क उत्तर देते हैं।

इतना होने पर भी एक ८० पृष्ठ का संग्रहणीय विशेषांक ग्राहकों को मिलता है। तिसपर भी वार्षिक मूल्य केवल २), नमूना =) आज ही ग्राहक-श्रेणी में आ बिराजिए।

व्यवस्थापक, 'बालहित', उदयपुर

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमेन--सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये
भुगतान पूँजी--१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का
बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइये या एजेंसी लिजिए

जहां हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन बीमा विभाग के लिए
एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

जनरल मैनेजर:—

८, रॉयल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

या

बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना, शाखाओं को।

आपने कभी सोचा है ?

आप अर्से से 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ग्राहक हैं। 'मण्डल' की दर्जनों पुस्तकें आपने खरीदी होंगी, पढ़ी होंगी, मित्रों को भेंट में दी होंगी और आपने परिचितों को 'मण्डल' की पुस्तकें लेनें को उत्साहित किया होगा। कई बार आप 'मण्डल' से नाराज़ भी हुए होंगे। मन में कुड़बुड़ाये होंगे, झुंझलाये होंगे। पर यह सब क्यों ? यह

आपने कभी सोचा है ?

न सोचा हो तो हम अब आपका ध्यान इस ओर दिलाते हैं। आप सोचें कि 'मण्डल' के प्रशंसक आप क्यों बने ? 'मण्डल' की कौन-सी पुस्तकें आपको अच्छी लगीं ? 'मण्डल' की कौन-सी प्रवृत्ति के आप प्रशंसक हैं और क्यों हैं ? 'मण्डल' को कौनसी पुस्तकें निकालनी चाहिएँ, जिससे आपकी राय में 'मण्डल' की प्रतिष्ठा बढ़ेगी ? मण्डल की कौन-सी पुस्तक आप पसन्द न कर सके और क्यों न कर सके ? 'मण्डल' की व्यवस्था में कौन-सी त्रुटियाँ हैं ? क्या सुधार होने से 'मण्डल' अधिक सक्षम होकर आपकी और हिन्दी भाषा की अधिक सेवा कर सकता है ? आदि प्रश्न ऐसे हैं कि जिन पर हम चाहते हैं कि आप विचार करें और अपने विचारों से हमें सूचित करें।

'जीवन साहित्य' के अगले अंक में हम आपके लिए उपरोक्त आशय का एक प्रश्न पत्र तैयार करके देने का विचार करते हैं। आशा है इसे भर कर आप भेजने की कृपा करेंगे।

हम आपसे इस दिशा में पूरी सहायता की उम्मीद करते हैं। हम अधिक योग्य और उन्नत होकर आपकी सेवा करना चाहते हैं।

मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ

को

'गांधी-जयंति' पर पौने मूल्य में प्राप्त करने की सूचना अन्दर देखिए

"सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने मेरे इकहत्तरवें जन्मदिन को खास महत्त्व दे डाला
उन्होंने मुझे अपनी यह पुस्तक भेजी जिसमें मेरे प्रति परिचित तथा अपरिचित मित्रों की प्रशं
हैं। × × × मैं नहीं जानता कि इस ग्रंथ में जमा किये गये उन सब बधाई के लेखों को
का समय कब पाऊँगा। मैं तो यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि ईश्वर मुझे शक्ति दे कि लेखकों के
में जो तस्वीर मेरी है मैं वैसा बन सकूँ।"

मो. क. गांधी

बापू

सस्ता साहित्य मण्डल का
नवीन प्रकाशन

卐

गान्धी जयन्ती की इस वर्ष

१ : अंक ३ सम्पादक अक्तूबर : १९४०
हरिभाऊ उपाध्याय

हमारा अर्घ्य

गांधीजी को छोड़कर वर्तमान भारत में कौन ऐसा अहिन्दी-भाषी है, जिसने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार के लिए इतना सफल उद्योग किया है ? भारत के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक महान् नेता ही नहीं, बल्कि हिन्दी के परम उद्धारक होने के नाते भी उनकी वर्षगाँठ (गांधी-जयन्ती) मनाना हम कृतज्ञ हिन्दी-भाषी, हिन्दी-भक्तों का तो दुहरा कर्तव्य है ।

गांधीजी ने संसार को एक ही—सत्याग्रह का—सन्देश भारत के द्वारा दिया है, जिसे वह 'सत्य' व 'अहिंसा' के नाम से अधिक पुकारा करते हैं । इनका एक आचार-प्रतीक भी उन्होंने हमें दिया है—**खादी** । हम हिन्दी-प्रेमी भी इस पुण्य पर्व पर ग़रीबों की खादी के अपने इस राष्ट्रीय बाने को प्रेम, उत्साह व उमंग के साथ अपनाने का व्रत लें और इस भावना से गद्‌गद् हों कि हमारा अहोभाग्य है कि ईश्वर ने इस दरिद्र, पराधीन, पीड़ित भारत पर करुणा करके अपना जो दिव्य-दूत यहाँ भेजा है, हम उसके समय में जीवित हैं ।

भगवान् हमें ऐसा बल दे कि हम उसकी सेना के एक छोटे सिपाही, उसकी प्रयोग-शाला की एक अदना चीज़, उसके 'पागलखाने' के एक 'पागल' जीव बनें । हम सबका पुण्य, तेज, बल मिलकर उसे दीर्घायु करे और उसे अपने जीवन-कार्य में सफल बनावे ।

हमें इतनी पवित्रता मिले कि हमारा यह अर्घ्य उसतक पहुँच सके ।

ह० उ०

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस नई दिल्ली

गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ

को

'गांधी-जयंति' पर पौने मूल्य में प्राप्त करने की सूचना अन्दर देखिए

[हरिभाऊ उपाध्याय]
७. मेरा राग—['जटायु' बी-एस० सी] १११
८. पत्रकार से—[वियोगी हरि] ११४
९. इंग्लिस्तान और भारत का आपसी सम्पर्क (२)— ११६
[श्री श्रीप्रकाश बार-एट-लॉ, एम. एल. ए.]
१०. प्रस्तुत प्रश्न—[विचारणीय प्रश्न] १२०
अभ्रंकष; भारतीय संस्कृति का खजाना; अश्लीलता क्या है ? प्रकाशकों का कर्तव्य; कोकशास्त्र; प्रगतिशीलता क्या है ?
१५. सैर-सपाटा—
१६. क्या और कैसे ?—[सम्पादकीय]
युगान्तरकारी; हि०सा०स० की समस्या; संकीर्णता ?; मेंडकों की तौल ?; साहित्यिक संस्थाओं से; साहित्य-प्रेमियों से; प्रकाशकों के बारे में; अभीष्ट विषय; सस्ती ख्याति ।
१७. 'मण्डल' की ओर से—
१८. सुहृदों की नज़र में—(२)

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित होता है ।

२. किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं, पर साल से कम के नहीं ।

३. 'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इंदौर शाखाओं तथा संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रांत, राजपूताना-मध्य भारत, व पंजाब के चर्खा-संघ के खादी-भंडारों तथा 'हरिजन कार्यालय' पूना नं० ४ से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बन सकते हैं ।

४. हर मास के पहले हफ्ते में पत्र न मिले तो अपने यहाँ के डाकखाने से पूछ-ताछ करके **अपनी ग्राहक संख्या के साथ** पत्र लिखना चाहिए । उचित कार्रवाई की जायगी ।

५. अपने पते में कोई परिवर्त्तन करना हो तो तुरन्त सूचना दिया करें—**ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें ।**

६. पत्र का चंदा इस प्रकार है—

भारत में	बर्मा में	विदेश में	एक प्रति
२)	२।)	५ शिलिंग	।)

नोट—नमूने के अंक के लिए ।) के
भेजें । वार्षिक मूल्य डाक के टिकटों में भी
जा सकता है ।

७. पत्रव्यवहार करते समय **अपनी**
संख्या अवश्य लिखें ।

८. 'जीवन-साहित्य' में शिष्ट साहित्य
उपयोगी सुरुचिपूर्ण और देशी वस्तुओं के वि
लेने की गुंजाइश रक्खी है ।

दर निम्न प्रकार हैं—
कवर का दूसरा पृष्ठ प्रतिमास ४०)
,, तीसरा ,, ,, ४०)
,, चौथा ,, ,, ५०)
पाठ्य विषय के सामने ,, ४०)
साधारण पृष्ठ— ,, २५)

९. विज्ञापन एजेण्टों को कमीशन आ
लिए पत्रव्यवहार करना चाहिए ।

पता—
व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य'
कनाट सर्कस, नई दिल्ली ।

सस्ता साहित्य मण्डल का

नवीन प्रकाशन

बापू

卐

लेखक—

श्री घनश्यामदास बिड़ला

भूमिका

श्री महादेव देसाई

卐

गान्धी जयन्ती की इस वर्ष
की अनूठी भेंट

卐

गांधी जयन्ती की ३२० वर्ष
की अनूठी भेंट

अपने समय की एक मौलिक और
अनोखी पुस्तक

यह क्या है ? और इसमें क्या है ?

यह आप श्री महादेव देसाई से ही सुनिए—

"जाग्रत अध्ययन, अनुभव और समालोचना का यह एक सुन्दर फल है।"

"इसमें लेखक ने एक-एक छोटी-मोटी बात को लेकर गांधीजी को देखने का प्रयत्न किया है।"

"गांधीजी की आत्म-कथा तो हम सब पढ़ चुके पर उसके कुछ भागों पर श्री घनश्यामदासजी ने जैसा भाष्य किया है वैसा हममें से शायद ही कोई करता है।"

"सारी पुस्तक बिरलाजी की तलस्पर्शी परीक्षण-शक्ति का सुन्दर नमूना है।"

"औरों को भी इसका पठन पाठन विशुद्धिकर और उन्नतिकर मालूम होगा।"

पुस्तक में ग्यारह चुने हुए और लगभग अप्रकाशित और ऐतिहासिक महत्त्व के चित्र हैं। दो सुन्दर पेन्सिल स्केच हैं। पुस्तक के तीन संस्करण हैं। २५० पृष्ठ की सुन्दर सादे संस्करण का दाम ।।।) और बढ़िया सुनहरी जिल्द का १।) तथा हाथ के काग़ज़ पर छपी और खादी की जिल्द का २)

पुस्तक जैसी महत्वपूर्ण है उसे देखते यह हाथों-हाथ बिकनेवाली है

अतः अपने लिए सबसे पहले पुस्तकें मंगालें

पुस्तक 'मण्डल' की सब शाखाओं एजेंसियों तथा पीछे लिखे सब खादी भंडारों पर मिलेगी।

सस्ता साहित्य मण्ड

[एक रुपया देकर स्थायी ग्राह

(इस ×निशान वा

| पूरा सेट लेने पर कमीशन के अला

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन साहित्य १।) ३. तामिल वेद ।।।) ४. व्यसन और व्यभिचार ।।।=) ५. समाजिक कुरीतियाँ× ।।।) ६. भारत के स्त्री-रत्न ३) ७. अनोखा× १।=) ८. ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।=) ९. यूरोप का इतिहास २) १०. समाज-विज्ञान ।।।) ११. खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र× ।।।≡) १२. गोरों का प्रभुत्व× ।।।=) १३. चीन की आवाज़× ।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।) १५. विजयी बारडोली× २) १६. अनीति की राह पर ।।=) १७. सीता की अग्नि-परिक्षा ।-) १८. कन्या शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ।।) २२. अँधेरे में उजाला ।।) २३. स्वामीजी का बलिदान× ।-) २४. हमारे ज़माने की गुलामी× ।) २५. स्त्री और पुरुष ।।) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें ? १) २८. हाथ की कताई-बुताई× ।।-) २९. आत्मोपदेश× ।) ३०. यथार्थ आदर्श जीवन× ।।।-) ३१. (देखो नवजीवन माला) ३२. गंगा गोविंदसिंह× ।।=) ३३. श्रीरामचरित्र १।) ३४. आश्रम-हरिणी ।) ३५. हिन्दी मराठी कोष× २) ३६. स्वाधीनता के सिद्धान्त× ।।) ३७. महान् मातृत्व की ओर ।।।=) ३८. शिवाजी की योग्यता ।=) ३९. तरंगित हृदय ।।) ४०. नरमेध× १।।) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४२. ज़िन्दा लाश ।।) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) १।।) ४४. जब अंग्रेज़ आये× १।=) ४५. जीवन विकास १।) ४६. किसानों का बिगुल× =) ४७. फाँसी ! ।=) ४८. (दे० नव-जीवन माला) ४९. स्वर्ण विहान× ।=) ५०. मराठों का उत्थानपतन २।।) ५१. भाई के पत्र

५२. स्वागत× ।=) ५३. युगधर्म× १=) ५४. सं
समस्या १।।।) ५५. विदेशी कपड़े का मुक़ाबिल
।।=) ५६. चित्रपट ।=) ५७. राष्ट्रवाणी× ।
५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।) ५९. रोटी
सवाल ।।।) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६१. जीवन
।।।) ६२. हमारा कलंक ।।=) ६३. बुद्बुद ।।)
संघर्ष या सहयोग ? १।।) ६५. गांधी-विचा
दोहन ।।।) ६६. एशिया की क्रांति× १।।।)
हमारे राष्ट्र-निर्माता १।।) ६८. स्वतन्त्रता
ओर १।।) ६९. आगे बढ़ो ! ।।) ७०. बुद्ध-वा
।।=) ७१. काँग्रेस का इतिहास २।।) ७२. हम
राष्ट्रपति १) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू)
७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरला
नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों ? ।।)
नया शासन विधान ।।।) ७७. (१) गाँवों
कहानी ।।) ७८. (२-९) महाभारत के पात्र
७९. सुधार और संगठन १) ८०. (३) संतवा
।।) ८१. विनाश या इलाज ।।।) ८२. (
अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।।)
(५) लोक-जीवन ।।) ८४. गीता-मंथन १।।)
(६) राजनीति प्रवेशिका ।।) ८६. (७) अ
कार और कर्त्तव्य ।।) ८७. गांधीवाद : समा
वाद ।।।) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ।।)
(८) सुगम चिकित्सा ।।) ९०. प्रेम में भगवा
।।) ९१. महात्मा गांधी ।=) ९२. ब्रह्मचर्य
९३. (१०) हमारे गाँव और किसान ।।)
अभिनन्दन-ग्रंथ २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्या
१) ९६. जीवन-सन्देश ।।) ९७. समन्वय (डॉ
भगवान्दास) २)

नोट—जिन पुस्तकों के पहले कोष्टक में नम्ब
लगे हैं वे 'लोक साहित्य माला' की पुस्तकें हैं।

का सम्पूर्ण साहित्य

बनने पर पौने मूल्य में]

पुस्तकें अप्राप्य हैं)

सागवान का पॉलिश किया हुआ सुन्दर शेल्फ भेंट में]

नवजीवन माला

१. गीताबोध -) २. मंगलप्रभात -) ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय -) ५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज ≡) ७. छूतछात की माया -) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १०. खादी गादी की लड़ाई =) ११. मधुमक्खी पालन =) १२. गावों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गायन =) १४. खादी का महत्व -)॥ १५. जब अंग्रेज़ नहीं आये थे ≡)

सामयिक साहित्य माला

१. कांग्रेस का इतिहास १९३५-३९ ।-) २. दुनिया का रंगमंच =) ३. हम कहां हैं ? =) ४. युद्ध संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे ? ≡) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।)

बाल साहित्य माला

१. सीख की कहानियाँ =) २. कथा कहानी–१=) ३. शिवाजी चरित्र=) ४. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ५. सीख की कहानियां—२ =)

विविध पुस्तकें

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू ।) २. जवाहरलाल नेहरू =) सप्तसरिता (काका कालेलकर) =)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ।।) ३. चारा-दाना =) ४. फ्रांस की राज्य-क्रांति १।।) ५. गांधीवाद की रूपरेखा १) ६. सन् १९४० १) ७. मेरा देश ।) ८. पिता के पत्र पुत्री के नाम ।।) ९. आर्थिक संगठन ।।।) १०. योग के चमत्कार १।) ११. रूपांतर ।।) १२. पौराणिक कथायें १।।) १३. अनोखा बलिदान ।।)

'मण्डल' की ये पुस्तकें कहाँ मिलती हैं ?

निम्न स्थानों पर 'मण्डल' की पुस्तकें स्थाई ग्राहकों को पौने मूल्य में मिला करेंगी ।

संयुक्तप्रान्त—सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ, साहित्यनिकेतन, कानपुर, श्री गांधी आश्रम खादी भण्डार मुरादाबाद, इलाहाबाद, मेरठ, मुज्जफ्फरनगर, काशी, मथुरा, बरेली, देहरादून, फैजाबाद, गोरखपुर, सहारनपुर, डिबाई, फरूखाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, अक़बरपुर ।

बिहार—चर्खासंघ खादी भण्डार हाजीपुर, रांची, मधुबनी, बेतिया हजारीबाग, लरियासराय, मुजफ्फरपुर, गया, सीतामढ़ी, पटना, डाल्टन गंज, बेगूसराय, मोतीहारी, भागलपुर ।

मध्यप्रान्त—महाराष्ट्र चर्खा संघ खादी भण्डार नागपुर (सीताबर्डी) गोंदिया, जबलपुर, रायपुर खण्डवा ।

राजपूताना मध्यभारत—सस्ता साहित्य मंडल इंदौर, राजस्थान चर्खा संघ खादी भंडार अजमेर, जयपुर, जोधपुर बीकानेर, उदयपुर, मन्दसौर ग्वालियर, इन्दौर, मुकुन्दगढ़, नवलगढ़ ।

पंजाब—गांधी खादी-भंडार, लाहौर, भिवानी, आदमपुर ।

दिल्ली—सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस नई दिल्ली, तथा दरीबा कलां, श्री गांधी आश्रम ।

कलकत्ता—शुद्ध खादी भंडार, हरिसन रोड ।

'जीवन साहित्य' के पाठकों को

गांधी साहित्य : रिआयती मूल्य में

पिछले अङ्क में 'गांधी अभिनन्दन-ग्रन्थ' को पौने मूल्य में देने की सूचना दी थी पर बाद में हमने सम्पूर्ण 'गांधी-सहित्य' रिआयती मूल्य में देने का निश्चय किया है। वह इस प्रकार है :—

गांधी-साहित्य (१)—३॥) में

आत्म-कथा (दो खण्ड)	१)
दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह	१।)
अनीति की राह पर	॥=)
अनासक्तियोग	=)
गीताबोध	-)
मंगलप्रभात	-)
हमारा कलंक	॥=)
स्वदेशी और ग्रामोद्योग	।)
ब्रह्मचर्य	।)
सर्वोदय	-)
हिन्द स्वराज	≡)
ग्राम-सेवा	=)
सत्याग्रह क्यों कब कैसे—	≡)
कुल	५।-)

गांधी-साहित्य (२)—३॥) में

गांधीवाद : समाजवाद	।।।)
गांधी विचार दोहन	।।।)
गांधीवाद की रूपरेखा	१)
इंग्लैण्ड में महात्माजी	।।।)
गाँधी अभिनन्दन-ग्रंथ	२)
कुल	५।)

रिआयती मूल्य में चाहनेवालों को यह कूपन काटकर भेजना होगा

मैं जी० सा० का नियमित पाठक हूँ। मुझे गांधी-साहित्य नं०……३॥) में पेकिंग पोस्टेज जोड़कर (वी० पी०) से भेज दें। मैं (वी० पी०) छुड़ा लूँगा। मेरा पता यह है :—

नाम पता ______________________________

____

व्यवसाय ______________________________

पोस्ट ____________ ज़िला ____________ स्टेशन ____________

मिलने का पता-**सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली**

दरीबा कलां अमीनुद्दौला पार्क खजूरी बाज़ार
शाखायें :—दिल्ली : : लखनऊ : : इन्दौर

कानपुर एजेण्ट—साहित्य निकेतन श्रद्धानन्द पार्क

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

अक्तूबर १९४० सम्पादक वर्ष पहला
नई दिल्ली हरिभाऊ उपाध्याय अंक तीसरा

आरती

देव, अगणित कर तुम्हारी कर रहे हैं आरती !
व्योम-मण्डप यह तुम्हारा दीप-दीपित है,
विश्व-आँगन, स्वर्ग–जीवन-गीत-गुंजित है;
प्रकृति प्राण-प्रदीप में भर स्नेह, तूल सँवारती !

× × ×

पर उधर ?—'विस्फोट', 'नरसंहार', 'कोलाहल' !
देह स्तंभित, हाथ कम्पित, थाल भी चञ्चल !!
पड़ रही इस घोष में हा ! मन्द मानव-भारती !
इस प्रलय में देव, क्या बुझ जाय मंगल आरती ?

सुधीन्द्र

लेखक या जनता ?

कुछ मित्रों का आग्रह है कि 'जीवन-साहित्य' में मौलिक लेख ही रहें। प्रथमांक में अनुवादों को देखकर हमारे एक मित्र तो बहुत निराश हो गये। हमने अपनी तरफ़ से कोशिश काफी की, शायद ही कोई प्रतिष्ठित हिन्दी-लेखक बचे हों, जिनसे हमने लेख भेजने के लिए अनु ही नहीं, एक दो से अधिक याददिहानियाँ भी न की हों। साथ ही उन भाइयों से भी, जिन् मौलिक लेखों का न होना पत्र की एक कमी बताई है, मौलिक लेख लिखकर भेजने का आग्रह कि गया, परन्तु कुछ बन्धुओं को छोड़कर, जिनके प्रति हम बहुत कृतज्ञ हैं, किसीने 'मौलिक' ले भेजने की कृपा नहीं की। सम्भव है, 'जीवन-साहित्य' उन्हें अपने सुनाम के योग्य न जँचा हो, सम् है, वे पुरस्कार पाकर ही लिखते हों; सम्भव है, समयाभाव या और कोई कठिनाई रही हो; सम्भव 'जीवन-साहित्य' का रंग-ढंग देखकर लेख भेजने का विचार किया हो। जो हो, मैं यह तो साफ़ ही चुका हूँ कि मौलिक लेख जहाँ तक मिलेंगे, अवश्य दिये जायँगे; पर मन में यह सवाल उठता कि हम जनता को अच्छे भाव, अच्छे विचार और अच्छे संस्कार देने का आग्रह रक्खें या मौलि लेख देने का? यदि किसी कारण से मौलिक लेख न मिलें, तो क्या दूसरी भाषाओं के विचार और महापुरुषों के सन्देश या विचार हम अपनी जनता को, अनुवाद के रूप में, न दें?

'साहित्य' एक तरह से शिक्षण का सहायक है। शिक्षण का काम है मन में ऊँचे और प भाव भरना, अच्छे विचार और ज्ञान की वृद्धि करना और पवित्र संस्कारों का पोषण करना साहित्य अपने लेखों, कविताओं, कथावार्ताओं और ग्रन्थों द्वारा इसी काम को करता है। वेद, कुरा इञ्जील, जेन्दावेस्ता, गीता के अनुवाद संसार की सब भाषाओं में क्यों हैं? हमारे सामने जन होनी चाहिए या लेखकवर्ग? यदि मौलिक चीज का ही आग्रह रक्खा जाय, तो सम्भव है, इससे कु लेखकों और विचारकों को प्रोत्साहन मिले। दूसरों के प्रोत्साहन से लिखनेवाले लेखक और सो वाले विचारक दूसरी ही श्रेणी में होंगे, पहली श्रेणी में नहीं और साहित्य का सिर ऊँचा कर सक हैं पहली श्रेणीवाले ही, जो स्वयं-प्रेरणा से लिखते और सोचते हैं। वे न पुरस्कार की राह देखें न उसके लिए रूठेंगे।

हिन्दी-भाषियों में इस समय तो मुझे एक ही ऐसे विचारक और विद्वान् मालूम होते हैं, स्वतन्त्र रूप से सोचते और लिखते हैं। वे हैं महर्षि डॉक्टर भगवान्दास। मगर हमारे दुर्भाग्य बात है कि वे हिन्दी में बहुत कम लिखते हैं।

इसके बाद जिन लेखकों में मौलिकता और प्रतिभा है, वे हैं सर्वश्री ओझाजी, राहु सांकृत्यायन, सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्रीप्रकाश, आचार्य अभयदेव, हरि रामचन्द्र दिवेक जैनेन्द्र, वासुदेवशरण अग्रवाल, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, वियोगी हरि, रामचन्द्र शुक्ल, न दुलारे वाजपेयी, जयचन्द्र विद्यालंकार, बनारसीदास चतुर्वेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामनाथ 'सुम पराड़कर जी, वेंकटेशनारायण तिवारी, रामनरेश त्रिपाठी, प्रो० इन्द्र आदि (भूल से जिनके ना रह गये हों उनसे क्षमा)। यहाँ हमारे कवियों को मैंने जानबूझकर छोड़ दिया है।

ऐसे लेखक भी हैं जो इधर-उधर की पुस्तकों या लेखों के अध्ययन और संकलन के बल प लिखते हैं। उनके लेखों की अपेक्षा दूसरी भाषाओं के मौलिक लेखकों और विचारकों की सुन्द वस्तु अनूदित करके देना क्या अधिक लाभकारी नहीं होगा?

दूसरी भाषाओं को देखिए। विनोबा के सदृश मौलिक विचारक सारे हिन्दुस्तान में शाय ही कोई हो। किशोरलाल भाई की जैसी पैनी दृष्टि का तर्कशुद्ध विचारक भी मुझे तो हिन्दुस्ता

में दूसरा नहीं दिखाई देता। काका के सदृश प्रसन्न ज्ञान-प्रसू लेखनी परमात्मा ने किसे दी है ? महात्माजी और 'गुरुदेव' की बात मैं यहाँ नहीं करता। वे हमारे साहित्य, संस्कृति, ज्ञान, तप के श्रेष्ठ नमूना हैं। मैं जब कभी विनोबा, काका या किशोरलाल भाई के पास बैठा हूँ, तो उपनिषद्-कालीन ऋषियों के वातावरण में अपनेको पाया है। यही अनुभव मुझे महर्षि भगवान्दास के नजदीक भी हुआ।

मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि जबतक जीवन की साधना नहीं की जायगी, तबतक न हम मौलिक लेखक बन सकते हैं न कवि। जीवन की साधना सत्य की साधना का दूसरा नाम है। सत्य ही विचारने, सत्य ही ग्रहण करने, सत्य ही लिखने, सत्य ही पर डट रहने और सत्य ही के प्रचार करने का नाम ही जीवन की साधना है। यही जीवन का तप है। जबतक हम किसी को प्रसन्न करने के लिए, किसी के औॅर्डर पर, पुरस्कार-प्रशंसा की इच्छा से पढ़ते, सोचते और लिखते रहेंगे, तबतक हम कदापि स्वतंत्र और मौलिक लेखकों तथा विचारकों की कोटि में नहीं आ सकते। और जबतक हिन्दी में ऐसे लेखक बहुत संख्या में नहीं लिखने लग जाते, तबतक केवल मौलिक लेखों का ही आग्रह रखने से हमारी गिनती

"तातस्य कूपोयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति"

में होने लगे तो आश्चर्य नहीं !

हरिभाऊ उपाध्याय

खादी और अर्थशास्त्र

[बालूभाई मेहता]

जो अर्थशास्त्र व्यक्ति के अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण का विघातक है, वह अनीतिमूलक अतएव पापयुक्त 'आसुरी' अर्थशास्त्र है।

पश्चिमीय अर्थशास्त्र का एक सिद्धान्त है कि "बाज़ार में जो सस्ता और सुन्दर अथवा मुलायम माल हो वही लिया जाय।" इस सिद्धांत का अनुसरण कर कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं कि "हम मोटी-झोटी महँगी खादी क्यों खरीदें ? क्या अर्थशास्त्र की दृष्टि से खादी काम में लाना श्रेयस्कर है ?

अर्थशास्त्र का धातु-अर्थ है वह शास्त्र जो व्यक्ति के अर्थ—स्वार्थ—की ओर न देखकर राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाता है। इसका आशय यह है कि व्यक्तिगत दृष्टि से एकाध वस्तु महँगी पड़ती हो, तो भी राष्ट्र के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से उस व्यक्ति के लिए उस वस्तु का ख़रीदना एक पवित्र कर्तव्य होता है।

इसलिए, एकबारगी देखने से खादी व्यक्तिगत दृष्टि से महँगी प्रतीत होने पर भी वास्तविक अर्थात् नीतिमूलक अर्थशास्त्र की दृष्टि से उसमें राष्ट्र का कल्याण ही है। इसीलिए तो "खादी के सिवा अपने उद्धार का और कोई उपाय नहीं है।" यह कहा जाता है कि खादी महँगी पड़ती है; लेकिन अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण करना खर्चीला होने पर भी हम इसीलिए उन्हें मार नहीं डालते। यह बात ठीक है कि अगर हम अपने बच्चों को मार डालें तो हम कम खर्च में अपना काम चला सकेंगे; लेकिन ऐसा करना हम अधर्म मानते हैं और इसलिए ऐसा करते नहीं हैं। इसी तरह करोड़ों लोगों को अन्न-जल देनेवाली खादी छोड़कर कदाचित् हम कम खर्च में काम चला सकें, लेकिन ऐसा करना ठीक नहीं है।"

['सस्ता साहित्य मण्डल' से प्रकाशित होनेवाली 'खादी-मीमांसा' से]

सम्राट् मरुत्त

[रामनरेश त्रिपाठी]

चन्द्रवंश में करन्धम नाम का एक राजा था। उसका पुत्र अवीक्षित बड़ा वीर और चरित्रवान् था। एक बार विदिशा के राजा विशाल की कन्या का स्वयंवर था। अवीक्षित ने स्वयंवर-सभा में पहुँचकर कन्या का हरण करना चाहा; पर सभा में उपस्थित राजाओं ने उसे घेरकर पकड़ लिया और बाँध दिया। यह समाचार जब करन्धम को मिला, तब वह पुत्र को बन्धन-मुक्त करने के लिए विदिशा गया। वह स्वयं एक अच्छा योद्धा था। उसने स्वयंवर में उपस्थित समस्त राजाओं को परास्त करके पुत्र को बन्धन-मुक्त किया।

राजा विशाल ने अपनी कन्या का विवाह अवीक्षित से करने की इच्छा प्रकट की। इसपर अवीक्षित ने कहा—मेरे मन में सभा में पराजित होने का दुःख है। ऐसी दशा में मैं विवाह नहीं करूँगा। राजा विशाल ने अपनी कन्या को दूसरा वर चुन लेने के लिए आदेश किया। पर कन्या ने कहा—मैं राजकुमार अवीक्षित के सिवा और किसीके साथ विवाह नहीं करूँगी। वे शक्तिशाली होने के साथ उच्च पुरुषों का हृदय भी रखते हैं।

पिता को चिंतित और अवीक्षित को राज़ी करने में असमर्थ देखकर कन्या ने कहा—हे पिता! जिसे मैंने मन में वरण किया है, वह यदि पाणिग्रहण के लिए तैयार नहीं है, तो इस जन्म में उसके सिवा मेरा दूसरा कोई पति नहीं हो सकता। मुझे तो तप करने की आज्ञा दीजिए।

राजा विशाल कोई उत्तर नहीं दे सके और कन्या पिता को प्रणाम करके तप करने के लिए वन में चली गई।

तपस्या से उसका शरीर दिनोंदिन क्षीण होने लगा। चारों ओर उसके घोर तप की चर्चा होने लगी। देवताओं ने भी सुना। उन्होंने कन्या के पास अपना दूत भजा। दूत ने आकर उसे देवताओं का यह सन्देश दिया कि राजकुमारी! मनुष्य का यह शरीर दुर्लभ है। तुम इ
त्यागो। तुम्हारे इस शरीर से एक चक्रव
होगा, जो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके
पृथ्वीमंडल पर राज्य करेगा।

कन्या ने पूछा—स्वामी के बिना मुझे
पुत्र कैसे प्राप्त होगा ? मैं तो अवीक्षित के
और किसीसे विवाह करूँगी नहीं; मैंने
बहुत अनुनय-विनय की, मेरे और उनके
भी उन्हें बारबार समझाया-बुझाया, पर वे
तरह राज़ी नहीं हुए।

देवदूत ने कहा—मैं केवल इतना ही
आया हूँ कि इस शरीर की रक्षा करना;
हत्या का पाप अपने ऊपर न चढ़ने देना।
शरीर से अवश्य एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हो

दूत सँदेशा सुनाकर चला गया। राजकु
बड़े असमंजस में पड़ी कि उसे क्या करना चा

उधर तो वन में उक्त घटना घट रही
इधर अवीक्षित की माता ने पुत्र को बुलाकर
कि मैं एक अनुष्ठान करना चाहती हूँ, तुम
सहायता करना।

अवीक्षित ने कहा—माता ! धन मेरे
का है, उसपर मेरा कुछ अधिकार नहीं है,
शरीर तुम्हारा है, जो मेरे अधिकार में है।
जो सेवा हो सके, मैं करने को तैयार हूँ।

अवीक्षित का यह उत्तर करन्धम ने
तो वह उसके पास गया और बोला—बेटा
तुमसे कुछ माँगने आया हूँ।

अवीक्षित ने हाथ जोड़कर कहा—पिता
वह कौन-सी वस्तु है, जो मैं नहीं दे सकता ?
संकोच छोड़कर आज्ञा दें।

राजा करन्धम ने कहा—मैं अपनी गोद
अपने पौत्र को खेलते देखना चाहता हूँ।
मनोरथ पूरा करो।

अवीक्षित ने नम्रतापूर्वक कहा—पिता !
आपका एकमात्र पुत्र हूँ; अभी तक ब्रह्मचारी

मैं अविवाहित हूँ, तब आपका मनोरथ कैसे पूरा होगा ?

राजा करन्धम ने कहा—तुमने मुझे वचन दिया है। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ बनो और विवाह करके मेरा मनोरथ पूरा करो।

अवीक्षित राज़ी हो गया।

एक दिन वह शिकार खेलने को निकला। नगर से बहुत दूर घने वन में जाकर उसने किसी स्त्री के रोने की आवाज़ सुनी और वह शब्द के सहारे उसके निकट पहुँचा। उसने पूछा—तुम कौन हो ? और क्यों रोती हो ? स्त्री ने कहा—मैं महाराज करन्धम के पुत्र तेजस्वी अवीक्षित की भार्या हूँ। मुझे एक राक्षस यहाँ उठा लाया है।

पहले तो अवीक्षित को सन्देह हुआ कि यह कोई मायाविनी हो और मुझे छलना चाहती हो। पर तुरन्त विचार किया कि कोई हो, मैं पुरुष होकर एक स्त्री को दुःख में पड़ी हुई छोड़कर कैसे जा सकता हूँ ? उसने खोज की तो उसे ज्ञात हुआ कि दनु के पुत्र दृढ़केश असुर ने उस का अपहरण किया है। उसने दृढ़केश से घोर युद्ध करके उसे मार डाला।

इसके बाद तुलय नाम का गन्धर्व अपने सहचरों के साथ वहाँ पहुँचा और उसने अवीक्षित से कहा—यह मेरी कन्या मालिनी है। अगस्त्य मुनि के शाप से यह राजा विशाल की कन्या होकर जन्मी है, तुम इसका पाणिग्रहण करो। इसके गर्भ से एक चक्रवर्ती पुत्र होगा।

अवीक्षित ने उस कन्या से विवाह कर लिया। कुछ दिनों के उपरान्त उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बालक का नाम 'मरुत्त' रक्खा गया।

राजा करन्धम ने एक दिन अवीक्षित से कहा—पुत्र ! मैं अब बहुत वृद्ध हो गया। तुम राज-पाट सँभालो। अब मैं वन जाऊँगा। अवीक्षित ने कहा—पिताजी ! आज तक मेरे मन से स्वयंवर-सभा में पराजित होने की लज्जा नहीं गई है, अतएव मैं राजा होना नहीं चाहता। मन की शुद्धि के लिए मैं स्वयं वन में जाकर तप करने का विचार कर रहा हूँ। आप किसी अन्य को राज्य सौंप दें।

राजा करन्धम ने कहा—पिता-पुत्र में क्या अन्तर है ? मैंने ही तो तुम्हारा बन्धन खोला था।

इसपर पुत्र ने कहा—किसी भी अन्य की सहायता से बंधन-मुक्त होने में मैं बहुत लज्जा अनुभव कर रहा हूँ। मुझमें पौरुष होता तो मैं स्वयं बन्धन-मुक्त हो जाता। पौरुष के बिना राज्य-शासन कैसे चलेगा ? इतनी आयु होने पर भी मैं पिता के उपार्जित धन का उपभोग करता हूँ, मुझे धिक्कार है !

जब बहुत समझाने पर भी अवीक्षित राज्य लेने पर राज़ी न हुए तब राजा करन्धम और अवीक्षित दोनों 'मरुत्त' को राज्य सौंपकर बन को चले गये।

मरुत्त बड़ा प्रतापी राजा हुआ। वह प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। उसने कई यज्ञ किये और देवराज तक को परास्त किया।

उसके पितामह राजा करन्धम और्व-आश्रम में रहकर तपस्या करते थे। वहाँ नागों ने बड़ा उत्पात मचा रक्खा था। एक दिन मरुत्त की पितामही ने एक तपस्वी द्वारा उसके पास यह सन्देश भेजा—तुम्हारे पितामह और पूर्वजों के समय से अनोखा अत्याचार तुम्हारे शासन-काल में हो रहा है ! जान पड़ता है कि तुम्हें अपने कर्त्तव्य का ध्यान नहीं रह गया है। तुम विषय-वासना के वशीभूत होकर इंद्रियों के क्षणिक सुख में ऐसे लिप्त हो गये हो कि प्रजा के सुख-दुख का तुम्हें पता ही नहीं है। पाताल से आकर नागों ने बड़ा उत्पात मचा रक्खा है। वे जलाशयों में मल-मूत्र त्यागकर उसे भ्रष्ट कर देते हैं; यज्ञ में अस्थि आदि डालकर उसे अशुद्ध कर देते हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने सात ऋषि-कुमारों को मार भी डाला है। ऋषि-गण उन्हें दण्ड देने में समर्थ हैं, पर ऐसा होने से राजा के गौरव को क्षति पहुँचती है। तुम सावधान हो।

सम्राट् मरुत्त क्रोध से काँपने लगे। उन्होंने धनुष उठाया और सीधे और्व-आश्रम में जाकर सातों ऋषिकुमारों को मरा हुआ देखा। राजा

नें नागों के पास सँदेशा भेजा कि मैं तुमको ऐसा दण्ड दूँगा कि तुम्हारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी को याद रहेगा।

मरुत्त ने सम्वर्त्तक अस्त्र से नागों का संहार करना प्रारम्भ किया। नाग लोग बहुत भयभीत हुए। वे मरुत्त की माता मालिनी की शरण में गये, जो तपस्वी अवीक्षित के साथ वन में रहती थी। मालिनी ने अवीक्षित से नागों की रक्षा के लिए कहा। सब समाचार सुनकर अवीक्षित ने कहा—नागों का अत्याचार असह्य है। मरुत्त का क्रोध सहज में शांत नहीं होगा।

अब नाग लोग अवीक्षित की शरण में पहुँचे और शरणागत होकर प्राण-रक्षा के लिए बारबार विनय करने लगे। अवीक्षित ने मालिनी से कहा—कल्याणी, तुम्हारे और नागों के अनुरोध से मैं मरुत्त के पास जाता हूँ। क्षत्रिय के लिए यह शोभा की बात नहीं है कि वह शरणार्थी को विमुख लौटने दे।

अवीक्षित ने मरुत्त के पास जाकर कहा—पुत्र ! क्रोध के वशीभूत न हो और इन नागों का अपराध क्षमा करो। मरुत्त ने पिता को प्रणाम करके कहा—आप मुझे मेरे कर्त्तव्य से च्युत न करें। इन नागों ने अक्षम्य अपराध किया है। इन्होंने मेरे शासनकाल में सात निरपराध ऋषिकुमारों को मार डाला है। इन्होंने कितने ही जलाशय नष्ट कर डाले, यज्ञ विध्वंस किये और मेरी प्रजा को कष्ट पहुँचाया है। इसीसे मैं उनके वध के लिए उद्यत हुआ हूँ।

अवीक्षित ने कहा—यह सच है कि इन्होंने गुरुतर अपराध किया है, पर ये काफ़ी दंड पा चुके, अब इन्हें क्षमा करो। मरुत्त ने कहा—राज्य का शासन मेरे हाथ में सौंपते समय पितामह ने और आपने भी मुझे आदेश दिया था कि मैं यथाशक्ति राजधर्म का पालन सावधानी के साथ करूँ। यदि मैं इन अपराधियों को दण्ड नहीं देता हूँ, तो मेरा धर्म नष्ट होता है और मैं नरक का अधिकारी बनता हूँ। अतएव मेरा निवेदन है कि आप मुझे धर्म-पालन से विरत न करें।

अवीक्षित ने तीसरी बार कहा—इन ने मेरी शरण ली है। शरणागत की रक्षा क्षत्रिय का धर्म है; तुम मुझ पर दया करो अब अस्त्र चलाना बन्द करो।

मरुत्त ने कहा—दुष्टों का दमन करना शिष्टों का पालन करना राजा का धर्म है। तक मैं राजा हूँ, तब तक मैं राज-धर्म का दृढ़तापूर्वक करूँगा।

इस पर क्रुद्ध होकर, शरणागत की लिए, अवीक्षित ने कालास्त्र उठा कर मैंने कई बार कहा; पर तुमने मेरी की। तुम्हीं अस्त्र चलाना नहीं जानते, जानता हूँ। तुम पिता का कहना नहीं तुमको लज्जा आनी चाहिए।

मरुत्त ने कहा—मैंने संवर्त्तक अस्त्र और अत्याचारियों का वध करने के लिए है, आपके लिए नहीं। मैं आपका पुत्र हूँ; तक मैं आपही की आज्ञा का पालन करता रहा हूँ। आपने आज्ञा दी थी कि प्रजा का वत् पालन करना। फिर आप मेरे साथ क्यों कर रहे हैं ?

अवीक्षित ने कहा—मैं भी शरणागत रक्षा करके अपना कर्त्तव्य पालन करूँगा। तो तुम अस्त्र से मुझे मारकर इन नागों संहार करो, या मैं तुम्हें मारकर इनकी करूँ। कर्त्तव्य-पालन का लक्ष्य दोनों तरफ़

इस पर मरुत्त ने दृढ़तापूर्वक कहा— तक मैं राजा हूँ, तब तक प्रजापालन मेरा है। प्रजापालन में राजा को गुरु, पिता, बन्धु-बान्धव कोई भी हो, जो विघ्न उप करे, उसका वध करना चाहिए। आप राज्य-च्युत करके राज्य-शासन अपने हा ले लीजिए, तब मैं पुत्र की हैसियत से आपकी एक आज्ञा का पालन करूँगा, अन्यथा नहीं।

दोनों अस्त्र लेकर मरने-मारने को हो गये। ऋषि-मुनियों को खबर लगी, वे कर आये। उन्होंने मरुत्त से कहा—पिता अस्त्र चलाना धर्म नहीं।

मरुत्त ने कहा—दुष्टों का दमन करना और शिष्टों का पालन करना मेरा धर्म है। मैं धर्म नहीं छोड़ूँगा।

ऋषि-मुनि अवीक्षित के पास पहुँचे और उससे बोले—तुम्हारा यह पुत्र भारत के राजवंश का रत्न है, इस पर तुम अस्त्र न उठाओ।

अवीक्षित ने कहा—शरणागत की रक्षा क्षत्रिय का धर्म है। मैं धर्म नहीं छोड़ूँगा।

इस पर ऋषियों ने कहा—अगर नाग लोग ऋषि-कुमारों को जीवित कर दें, तो तुम दोनों का धर्म रह जायगा।

उसी समय अवीक्षित की माता वीरा वहाँ आ उपस्थित हुई। उसने कहा—मेरे ही उलाहने से मरुत्त नागों के नाश के लिए उद्यत हुआ है। यदि नाग लोग ऋषि-कुमारों को जीवित कर दें तो शरणागत नागों की रक्षा हो सकती है।

नागों ने दिव्य ओषधियों के प्रयोग से ऋषि-कुमारों को जीवित कर दिया।

मरुत्त पिता के चरणों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़ कर बोला—पिताजी! मेरा अपराध क्षमा कीजिएगा। मैंने आपकी ही आज्ञा का पालन किया था।

पिता ने पुत्र को छाती से लगा कर अनिर्वचनीय सुख अनुभव किया और उसे आशीर्वाद देकर अपने आश्रम को प्रस्थान किया।

ऋषि-मुनि पिता-पुत्र का यह सम्मिलन देख कर आनंदित हुए और दोनों को आशीर्वाद देकर अपने-अपने आश्रम को चले गये।

सम्राट् मरुत्त ने बड़ी आयु तक न्यायपूर्वक प्रजा का पालन किया और धार्मिक जीवन व्यतीत किया। मरुत्त के सात रानियाँ और अठारह पुत्र थे। पाँच रानियों के नाम ये हैं:

१—विदर्भराज की कन्या प्रभावती,
२—सुवीर की कन्या सौवीरा,
३—केकय की कन्या सैरिन्ध्री,
४—सिन्धु की कन्या वसुमती,
५—चेदि की कन्या सुशोभना।

जिनको यह कथा विस्तारपूर्वक जाननी हो, वे मार्कंडेय पुराण से इसे प्राप्त कर सकते हैं। भागवत में भी इसका उल्लेख है।

क्रय-विक्रय का आदर्श

[दयाशंकर दुबे]

"देखो मोहन, वह वृद्ध आदमी जो धीरे-धीरे टहलता हुआ जा रहा है, जानते हो, कौन है? ये सेठ रामधन हैं। अब इनकी अवस्था सत्तर वर्ष से ऊपर है। लेकिन जब ये चौदह वर्ष के थे, तो मंगलपुर से कानपुर भाग आये थे। कहते हैं, उस समय इनके पास फूटी कौड़ी भी न थी। साथ में केवल एक लोटा-डोर था। ओढ़ने और बिछाने तक के लिए इनके पास कपड़े न थे।

मोहन ने आश्चर्य्य से कहा—अच्छा!

चाचा—और आज ये हमारे नगर के गौरव हैं।

मोहन—किन्तु यह तो केवल आर्थिक दृष्टि से उन्नति करने की बात हुई।

चाचा—पर आर्थिक दृष्टि से उन्नति करना कोई मामूली बात नहीं है। जो व्यक्ति अपनी ईमानदारी, मेहनत और असाधारण प्रतिभा की बदौलत इतनी उन्नति कर सकता है, अवश्य ही वह हमारी प्रशंसा का पात्र है।

मोहन—अच्छा तो बतलाइए। मैं अब बीच में नहीं बोलूँगा।

चाचा—सबसे पहले इन्होंने एक हलवाई की दूकान पर कढ़ाई आदि बर्तन मलने का काम किया। कुछ दिनों के बाद इन्हें हलवाई की दूकान छोड़कर एक नये दूकानदार के यहाँ नौकरी मिल गई। उनको १०) मासिक वेतन मिलने लगा।

यह दूकान किसी एक चीज़ की नहीं बल्कि बहुतेरी चीज़ों की थी। एक शब्द में कहूँ, तो कहना होगा कि उसके दूकानदार जनरल मर्चेण्ट थे।

किन्तु रामधन का अबतक का यह जीवन ऐसा था, जिसे हम अपने पैरों खड़ा होने योग्य बनने का पहला क़दम कह सकते हैं। इस दशा में रामधन ने केवल तीन वर्ष नौकरी की। अब उसके पास लगभग दो सौ रुपये हो गये थे। रात-दिन वह यह सोचा करता था कि क्या कभी कोई ऐसा दिन भी होगा, जब इसी तरह की एक दूकान उसकी भी होगी। काम करते-करते वह इसी तरह के स्वप्न देखा करता।

रामधन सेवा के कार्य में बड़ा निपुण था। दूकान पर उसके सुपुर्द जो कुछ काम था, उसे तो वह पूरा करता ही था। साथ ही दूकानदार लाला जगतनारायण के घर पर अक्सर चला जाता और जगतबाबू के घर के अन्दर जाकर गृहस्थी-सम्बन्धी आवश्यक सामान भी ले आता। इसका फल यह हुआ कि धीरे-धीरे वह लालाजी के परिवार का एक विश्वासपात्र नौकर हो गया।

इसी तरह दो साल और बीत गये। अब रामधन को वेतन में १२) मिलते थे। ७) महीने की बचत वह अब उससे बराबर कर ही रहा था। इस तरह कुल मिलाकर अब उसके पास लगभग पाँच सौ रुपये हो गये थे, जो सेविंग बैंक में उसीके नाम से जमा थे।

उन्हीं दिनों जगतबाबू का एक मकान बन रहा था और उस मकान में उनका सारा रुपया लग चुका था। जाड़े के दिन थे, माल क़रीब-क़रीब चुक गया था और नया माल मँगाने के लिए अब उनके पास और रुपये नहीं रह गये थे। सोच-विचार में बैठे-बैठे वे इतने उदास थे कि चिन्ता-भाव उनकी मुद्रा से स्पष्ट झलकता था। दूकान बढ़ाकर जब वे घर चलने लगे, तो जगतबाबू ने कहा—कुछ रुपये की ज़रूरत आ पड़ी है। दूकान में माल इस क़दर कम है कि अगर एक हज़ार रुपये का और इन्तज़ाम न हुआ, तो दूकान उठा देनी पड़ेगी। उसके बा क्या होगा, यही सोचता हूँ। चाहूँ तो मकान आधार पर क़र्ज़ मिल सकता है। पर यह बा है कितनी बेइज्ज़ती की कि मकान पूरा बन न पाये और उसे गिरवी रखने की नौबत जाय ! घर में ज़ेवर मुश्किल से दो हज़ार होगा। बीबी से उसे उतरवाता हूँ तो भी की शाँति भंग होती है। क्या करूँ, क्या न क कुछ समझ में नहीं आता, रामधन। ऐसा जा पड़ता है, यह मकान मुझे खा जायगा !

रामधन से अब और सहन न हुआ। झट वह बोल उठा—आपकी पूरी सेवा के लायक़ मैं अभी नहीं हुआ, लेकिन पाँच सौ रुपये जमा कर ही लिये हैं। आप चाहें, तो कल निकाल लूँ।

जगतबाबू इस बात को सुनकर उछल पड़े बोले—अच्छी बात है ! रुपये तुम कल उठा लो रह गये पाँच सौ, सो इतने का प्रबन्ध मैं कि तरह कर लूँगा।

दूसरे दिन रामधन ने ५००) निकालक जगतबाबू के हाथ पर रख दिये। उधर जगतबा ने पाँच सौ रुपये बैंक से कर्ज़ ले लिये। इस तर उस समय की उनकी आवश्यकता की पूर्ति हो गई

धीरे-धीरे साल का अख़ीर आया और हानि लाभ का चिट्ठा बनने लगा। वर्ष के अन्त में ज खाता नया बनाया गया और बही का पूजन हो गया तो जगतबाबू ने रामधन से कहा—इस साल जितना लाभ हुआ उतना कभी नहीं हुआ था। सो इस साल की जो आमदनी हुई है, उसमें तुम्हारे एक आने हिस्से की रक़म दो सौ के लग-भग होती है। पाँच सौ तुम्हारी जो पूँजी है, वह इससे अलग है। कुल मिलाकर ७००) होते हैं। ये रुपये या तो तुम मुझसे कल ले लो, या दूकान के हिस्से के रूप में जमा रक्खो।

उस दिन से रामधन जगतबाबू की दूकान पर एक आने का हिस्सेदार हो गया। लेकिन रामधन की उन्नति का यह इतिहास तो अभी

प्रारम्भ का ही है। जगतबाबू एक दिन इस असार संसार को छोड़कर चलते बने। और तब रह गये उनके वे बच्चे, जो अभी पढ़ ही रहे थे। और कुछ आवारा दोस्तों ने उनके कान भर दिये। और उसका फल यह हुआ कि रामधन को उसका हिस्सा देकर उन्होंने उसे दूकान से अलग कर दिया।

तब रामधन ने अलग दूकान कर ली। उसके बाद उसकी दूकानदारी जो बराबर उन्नति करती गई, उसका भी एक रहस्य था।

मोहन—वह क्या ?

चाचा—बात यह है कि उसने कभी भी अपने ग्राहकों को ठगने का प्रयत्न नहीं किया। ईमानदारी से काम करना ही उसकी सफलता की कुंजी थी। कभी-कभी वस्तुओं के दाम अनापशनाप बढ़ जाया करते हैं। दूकानदारों को यह मौक़ा रहता है कि वे चाहें तो समय के अनुसार कुछ अधिक रुपया लाभ रूप में पैदा कर लें, और चाहे अपनी दूकान की साख और भी अधिक बैठा लें।

मोहन—लेकिन जब वस्तुओं का दाम बढ़ गया हो, तब उन बढ़ी हुई क़ीमतों पर माल न बेचना भी कोई बुद्धिमानी तो है नहीं।

चाचा—बात यह है कि वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाने पर भी जो दूकानदार उनका अधिक मूल्य नहीं बढ़ाता, थोड़ा ही लाभ लेकर सन्तोष कर लेता है, उसके ग्राहकों की संख्या अधिक बढ़ जाती है। और दूकानदारी का यह एक नियम-सा है कि जो ग्राहक एक बार जम जाते हैं, वे बिना विशेष कारण के जल्दी नहीं उखड़ते। रामधन ने ऐसा ही किया। एक तो उसने अन्य दूकानदारों की अपेक्षा वस्तुओं का मूल्य अधिक नहीं बढ़ाया, दूसरे बढ़ी हुई क़ीमतों से होनेवाले लाभ की रक़म को विशेष कोष के रूप में जमा रक्खा। उसकी दूकान इस बात के लिए भी प्रसिद्ध थी कि एक तो उसमें माल विशुद्ध और नया मिलता था, दूसरे भाव-ताव करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, सब वस्तुओं का दाम निश्चित था। कोई भी व्यक्ति; चाहे वह बच्चा ही हो, चला जाय, दामों में कोई अन्तर न होगा। परिणाम यह हुआ कि कुछ वर्षों के बाद जब वस्तुओं का मूल्य बराबर घटने लगा, तब उसके अन्य साथी-व्यवसायी तो घाटे में आकर समाप्त हो गये, किन्तु रामधन के व्यवसाय पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

मोहन—अच्छा, ठीक है। किन्तु यह प्रयोग उसे सूझा किस तरह ?

चाचा—बात यह है कि रामधन अब इतना समर्थ हो गया था कि अर्थशास्त्र की बारीक बातों के मर्म को समझ सकता था। उसका अध्ययन बराबर जारी था। एक बार उसने किसी अर्थशास्त्री से वार्तालाप में क्रय-विक्रय के आदर्श के सम्बन्ध में बहुतेरी बातें जान ली थीं। अवसर आने पर उसने उनका प्रयोग किया और उसे सफलता मिली। और इसी तरह ये रामधन उन्नति करते-करते आज दिन ऐसी ऊँची हैसियत को पहुँच गये हैं।

मोहन—तो क्रय-विक्रय का आदर्श आप यही मानते हैं न कि लाभ थोड़ा लिया जाय, ताकि विक्रय का परिमाण बढ़ता रहे ? वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाने पर लाभ के एक अंश को विशेष-कोष के रूप में संचित रक्खा जाय, जो उस समय काम आये, जब वस्तुओं का मूल्य घट रहा हो। वस्तुयें विशुद्ध और नई दी जायँ और सबके लिए दाम एक हो।

चाचा—हाँ बस, सार रूप में तो यही है।

चाचा-भतीजे ये बातें करते हुए जिस समय घूमकर लौट रहे थे उसी समय रामधन भी उधर से आ निकले।

मोहन सोचने लगा—मनुष्य धूल-भरा हीरा है। कौन जानता था कि एक अनाथ बालक एक दिन इतना बड़ा आदमी बन जायगा !

मेरी प्यारी किताब

[काका कालेलकर]

कोई भी शख्स सदा के लिअे किसी अेक किताब को अपनी प्यारी किताब ठहरा सके, यह मैं मानता ही नहीं; और जिसके भाग्य में अनेक भाषाओं की आज़ादी आगअी हो, वह तो कभी न कह सकेगा कि यही अेक मेरी प्यारी किताब है।

'रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' के पहले संपादक स्टेड साहब ने अेक बार अिंगलैण्ड के बड़े-बड़े लोगों से यह सवाल किया कि आपके जीवन पर किस किताब ने अधिक से अधिक असर डाला है? साथ ही अुस चतुर सम्पादक ने अेक शर्त भी रख दी, कि अपना अुत्तर अेक कार्ड पर ही लिख भेजिअेगा। अगर कुदरत ने शुरू से ही यह नियम बना रक्खा होता कि हर लेखक को अपनी राम-कहानी लिखते हुअे जो आनन्द प्राप्त होता है वही आनन्द अुतने ही अंश में, उसके पढ़नेवालों को भी प्राप्त होता रहे, तब तो वैसी चतुराअी की ज़रूरत न होती, मगर लेखकों और पाठकों की दुनिया तो अलग-अलग है। और संपादकों को तो दोनों ही का ख्याल रखना लाज़िमी है। तभी तो स्टेड साहब की सी बेड़ियाँ और ज़न्जीरें अुन्हें घड़नी पड़ती हैं।

अब मैं जो जवाब देने बैठा हूँ तो मुझे अिन बातों का ख्याल रखना ही चाहिअे। अगर सच-सच कह दूँ, तो कुदरत ही मेरी प्यारी से प्यारी पुस्तक है। क्या ही अद्भुत किताब! अुसे खोलते देर नहीं लगती, अुसे पढ़ते कोअी दिक्क़त नहीं होती। अुसके प्रकरण हम अपनी मरज़ी के मुताबिक छोटे-बड़े बना सकते हैं। अुसे उम्र भर, दिन-रात पढ़ते चले जाओ, कभी कहीं बेज़ारगी की बू तक अपनेको छू नहीं जाती। कुदरत की मूक वक्तृता की बराबरी अबतक कोई भी मानव-भाषा नहीं कर सकी है।

मगर, अफ़सोस! कुदरत प्रश्नकर्ता की दृष्टि से 'किताब' ही कहाँ है? वह तो मामूली किताब की बात पूछ रहा है, यानी जो काग़ज़ पर लिखी या छापी जाती है, 'किताब' के से पुकारी और पहचानी जाती है, और अक्षरों के द्वारा वाचकों से बोलचाल भी सकती है। वह तो सवाल करे अैसी कि के बारे में, और मैं लग जाअूँ अपने 'सृष्टि-शास्त्र' का वर्णन करने, तो यह बि भी मुनासिब न होगा। तो फिर जिन मानों लेकर मुझसे सवाल किया गया है, मैं भी मानों को लेकर जवाब दे दूँ तो बेहतर। तो यह कहूँगा कि भगवद्गीता ने जिन आद्य-ग्रंथों प्रेरणा पाअी और जो आद्य-ग्रंथ आजतक भी पु नहीं होने पाये हैं, वे अुपनिषद ही मेरी प्रिय प्रिय किताब है।

अुपनिषदकारों ने अपने विचार ज़ा करते हुअे यह नहीं सोचा कि वे कच्चे हैं पक्के, जैसे स्फुरित हुअे वैसा ही ताज़ा का ता उन्हें लिख दिया; अितना देखने को भी द लिया कि उनके वचन आपस में मेल तक हैं या नहीं।

अुपनिषद काल के ऋषियों को अपने हृ पर विश्वास था--और वह अिस दरजे तक अुन्होंने लिखा है "हृदय ही मन है, हृदय बुद्धि है, हृदय ही आत्मा है, जो सत्य को जान चाहते हो, तो वह भी हृदय ही के द्वारा हो स है, तुम जिसे धर्मशास्त्र कहते हो, सो भी महर्षियों के अंत:करणों से निकली हुअी चीज़ है अैसे अिन आत्मविश्वासी और आस्तिक विचा वीरों के लेख मेरे हृदय को जो सन्तोष दे वह कुछ अनोखा ही होता है।

मगर अब जो आप मुझसे पूछें कि "छो अिन पुराने ग्रंथों की बात! यह तो बता आज-कल के लेखकों में से किसकी किताब तु सबसे प्यारी है?" तो मैं मजबूरन यही जवा दूँगा कि "मेरी अपनी!" अैसा न करना मैं वाचकों और प्रकाशकों पर अन्याय करने

समान होगा । मैं वही लिखूँगा जो मुझको भा जाय ? और जो मुझको ख़ास तौर पर भा जाय, मैं अुसीके छापने या पढ़ने की तकलीफ़ लोगों को दूँगा ? मैंने यह कभी नहीं माना कि मेरा लेख और सबों से बढ़-चढ़कर है; पर अितना जरूर है कि जो विचार, अनुभव और कल्पनायें मुझको विशेष आकर्षक मालूम हुअीं, प्रिय लगीं और वर्णनीय दीखीं, मैंने अुन्हींको लिखा है । लिहाज़ा, जिन वाचकों की ख़ातिर मैं यह जवाब लिख रहा हूँ, अुनके साथ अिन्साफ़ करने के लिअे भी मैं यही कहूँगा कि अपनी ही किताबें प्रिय मानने पर मैं बिल्कुल मजबूर हूँ ।

और जबतक उपनिषदों का पूरी तरह सन्तोषकारक अनुवाद मैं बता या कर न पाऊँ, तबतक मेरा यह जवाब अुनके लिअे तो एक बंद मुट्ठी ही के समान होगा कि जो अपनी मातृ-भाषा के सिवा और कोअी ज़बान जानते ही नहीं । लिहाजा अिसका विस्तार भी करना फ़िज़ूल होगा ।

'क़ुदरत' को अगर संकुचित अर्थ में न समझा जाय तो अुस किताब का वर्णन करते हुअे मैं आज तक थका ही नहीं । अिसकी वजह यह है कि जब मनुष्य-समाज या साहित्य मेरे हृदय की ख़्वाहिशें पूरी नहीं कर सकता, तब मैं कुदरत के पास दौड़ जाता हूँ--और वहाँ से कभी ख़ाली हाथ नहीं लौटता ।

सच्ची बात तो यह है कि क़ुदरत को मैं कभी जड़ न मान सका--अब वाचकगण इसे मेरी प्रतिभा समझें या मेरा पागलपन । क़ुदरत मुझे बुलाती है; मुझसे बातें करती है; मुझे लाड़ करती है, मुझे सिखलाती है । जब कभी मैं निराश होता हूँ, मुझको दिलासा देती है । और सबसे बढ़कर तो यह कि मेरी उम्र का बोझा मुझसे छीन लेकर मुझको सनातन बालक बना देती है ।

कोअी अैसा न समझे कि मैं मनुष्य-बस्ती से बेजार हुआ हूँ; यह न मान ले कि दरख़्त और पत्ते, फल और फूल, पशु और पक्षी, नदियाँ और सरोवर, समुद्र और आकाश, तितलियाँ और जहाज़ों के चमकते चिट्टे पाल, बादल और चंचल मन-तरंगें--बस इतनी ही चीज़ों को मैं 'क़ुदरत' में शुमार करता हूँ । नहीं ! गाँव-वासियों की अपने हाथों बाँधी हुअी झोंपड़ियाँ और कलारसिकों के शौक़ से बनाये हुअे प्रासाद; संतों का आर्य जीवन, और जीवनानन्द की प्राप्ति के लिए किये विलासियों के निष्फल प्रयत्न सबको मैं तो क़ुदरत की दृष्टि ही से निहारता हूँ । मेरी निगाह अिन सबको यथार्थ रूप में ही देखती है ।

अभी चन्द रोज़ ही हुअे कि राष्ट्रभाषा-प्रचार और वर्धा-योजना के सिलसिले में मुझको गुजरात में घूमने-घामने का मौका मिला था । कभी रेलगाड़ी और कभी मोटरों में फिरता रहा, कभी गाड़ी पर सवार, तो कभी किश्तियों पर । हर जगह बस कुदरत का आनन्द ही मैं देखता रहा । और ख़ास करके अब की बार खेतों के बीच और रास्तों की कोरनुमा बाड़ों पर मेरी निगाह पड़ी और ठहर गअी—और मै अुनपर मुग्ध हो रहा । अब जबतक मैं यह बाड़-काव्य न लिख पाऊँगा, तबतक मुझको चैन न होगी । यह काव्य तो कब लिखूँगा भगवान जाने ! मगर अिस मौक़े को गनीमत समझकर वाचकों से अेक विनती ज़रूर कर लूँगा कि आप पैदल सफर करते हों या तैल-वाहनों में दौड़े चले जाते हों, अनेक अूँची-नीची सँकड़ी-चौड़ी बाड़ों पर ध्यान ज़रूर दीजिअेगा, अुनकी ख़ूबियाँ पहचानने के लिअे । यदि आपके पास नज़र न हो, तो बख़ुशी मुझसे माँग लीजिअे--मगर अिन बाड़ों के प्रकरण शुरू से अख़ीर तक पढ़ ज़रूर जाअिअे । आपको अिससे बहुत-कुछ जानने और सोचने का मसाला मिल जायगा । अिन बाड़ों में रहनेवाले--बाड़वासी--साँप और चूहे, परिन्दे और उनके बच्चे, मकड़ियाँ और चींटियाँ--अिन सबों की दुनिया को अेक बार जो आप समझ गये, तो आप प्यार किये बिना न रहेंगे और आप कहेंगे—अहो ! यह तो कोई नअी ही यात्रा हमें नसीब हुअी है ! और ख़ास फ़ायदा तो

आपको यह होगा कि आपके दिल में जो संकीर्णता की बाड़ बँधी हुई होगी सो खुद-ब-खुद टूटकर मटियामेट हो जायगी ।

मेरा जवाब आपको भाये या न भाये—मे सच्चा और पूरा-पूरा जवाब तो यही है कि मे अत्यन्त प्रिय पुस्तक क़ुदरत ही है ।

प्रेम और काम : आनन्द और रस

[हरिभाऊ उपाध्याय]

प्रेम आकर्षण है मिलन का । चैतन्य-सिन्धु की लहरें फटीं, बूँदें छिटक पड़ीं । वे एक दूसरे से मिलने दौड़ती हैं । सिन्धु में समा जाने के लिए ललकती हैं । जिस बल से वे एक दूसरे की ओर समुद्र की ओर आर्कषित होती हैं वही प्रेम है । यह आकर्षण मिलन के लिए होता है ।

बूँदें जब मिलकर अपना फल पीछे छोड़ जाना चाहती हैं तब प्रेम काम बनने लगता है । प्रेम मिलन के लिए और काम सृजन के लिए है । मिलन स्वभाव-सिद्ध है, अतएव निष्काम है । सृजन प्रयत्न-साध्य है, अतएव सकाम है । सकाम प्रेम ही काम है ।

आलिंगन प्रेम है, मैथुन काम है । मिलन के लिए आलिंगन प्रेम है, सृजन या मैथुन के लिए आलिंगन काम है ।

बच्चों का सरल पवित्र आलिंगन प्रेम है; युवक-युवती का सकाम सविकार आलिंगन काम है ।

काम स्वतः त्याज्य या हेय नहीं । जब सृजन की कामना न हो, तब काम अनावश्यक अतएव वर्ज्य है । जहाँ सृजन की इच्छा नहीं, वहाँ काम का काम नहीं । जब सृजन की कामना रोकी नहीं जा सकती, तब काम आवश्यक कार्य या कर्तव्य हो जाता है ।

प्रेम अमर्याद है; क्योंकि वह स्वभाव-सिद्ध है । काम की सीमा है; क्यों कि वह निश्चित फल निकालना चाहता है । प्रेम में मिलन ही आनंद है; काम में सृजन की कामना ही तृप्ति है । अतः प्रेम निर्दोष आनन्द है और काम सकाम कर्तव्य है ।

सृजन की कामना से आगे बढ़कर जब काम शारीरिक सुख की चाह में फँसता या पड़ता है तब वह वासना, कामुकता, भोग, विलासि बन जाता है ।

वासना जब नीति, समाज और सदाचार की मर्यादा छोड़ देती है, तब व्यभिचार कहलाती है । वासना जब एकनिष्ठ नहीं रहती तब व्यभिचा बन जाती है ।

प्रेम एक प्रबल प्राकृतिक आकर्षण है, प काम एक कामना का वेग है । मिलन प्रेम का धर्म है और सृजन काम का कर्तव्य है । वासना या भोग एक विकार है और व्यभिचार एक दुराचार । वासना का फल है बन्धन और व्यभिचार का पतन ।

प्रेम से काम, काम से वासना, वासना से व्यभिचार—यह पतन का क्रम है; प्रेम से मिलन, मिलन से निर्दोष, सात्विक, मानसिक या सहज आनन्द और आनन्द से आत्मविस्मृति, आत्मार्पण—बिन्दु का सिन्धु में लीन हो जाना—उत्थान का क्रम है ।

× × ×

आनन्द मानसिक संस्कार है; रस इन्द्रिय-सुख की धारा ।

सृष्टि अव्यक्त आत्मशक्ति की व्यक्त कला है । आत्मशक्ति में स्फुरणा हुई । उसके चैतन्य ने पार्थिव रूप ग्रहण किया । कवि ने इस स्फुरणा को 'आनन्द' कहा और उससे जो सुन्दर सृष्टि बनी उसे कहा 'कला' । सृष्टि में जो विविधता, विचित्रता, अद्भुतता, मनोरमता, व्यवस्थितता चित्राकर्षकता या मनोमोहकता है वही विधाता की कला है ।

मानसिक 'आनन्द' जब पार्थिव होने लगता है, तब 'रस' बन जाता है। कला आनन्द से जन्म लेकर रस में बहती हुई फिर आनन्द में विराम पाती है। यह कवि की भाषा हुई। आत्मतत्व सृष्टि-रूप में व्यक्त होकर फिर अपनेमें लय पाता है। यह तत्त्वदर्शी या ज्ञानी की भाषा हुई।

सौन्दर्य आनन्द और रस का आधार है। सृष्टि का यह सारा वैभव, प्रकृति का यह अनुपम रूप-लावण्य सौन्दर्य का उपादान है। इस वैभव का जो सामूहिक शान्त, मृदुल, मधुर, स्निग्ध, रम्य एक प्रकार से अनिर्वचनीय प्रभाव मन पर पड़ता है, वही सौन्दर्य है। सौन्दर्य से जो अनुकूल वेदनायें मन में होती हैं, वह आनन्द है। आनन्द जब शरीर-विषयक या रूप-लुब्ध होता है, तब रस हो जाता है। रस में आनन्द की अतिशैयता और निरंतरता होती है।

फूल रचयिता की सृष्टि है। इसका रूप, इसकी छटा, इसकी सुगन्ध, इसकी सुकुमारता, इसका रस, यह सब इसका सौन्दर्य है और यही रचयिता की कला है। सृष्टि-सौन्दर्य या सृष्टि-कौशल ही कला है।

फूल के सौन्दर्य या कला के सुख को मन से अनुभव करना आनन्द है; इन्द्रियों द्वारा अनुभव करना और करते रहना रस है।

आनन्द को आत्मिक और रस को लौकिक कहें। रस में भोग और आनन्द में ज्ञान है। आनन्द से रस की ओर गति अधःपात है; रस से आनन्द की ओर रुचि उन्नति या प्रगति है।

मेरा राग

[जटायु]

'जीवन-साहित्य' के पहिले अंक मे 'हिन्दी के कवि किधर ?' लेख पढ़ा। उसी दिन इत्तफाक से 'रोटी का राग' देखने में आ गया। इत्तफाक ही जो ठहरा। वैज्ञानिक लोगों का अन्दाज़ा है कि यह सारी कुदरत इत्तफ़ाकिया घटनाओं से बनकर तैय्यार हुई है। किसी मूलतत्त्व का कोई ज़र्रा इत्तफाक से किसी दूसरे मूलतत्त्व के ज़र्रे से जा मिला। बस, एक नई चीज़ तैय्यार हो गई। सर जेम्स जीन्स का कहना है कि अगर दो-चार बन्दरों को एक-एक टाइपराइटर मशीन दे दी जाय और वे लाख-दो लाख या करोड़-दो करोड़ साल तक खटाखट करते रहें तो शेक्सपियर ने अपने नाटकों में जितने शब्दों का इस्तैमाल किया है, उन सब को वे बन्दर इत्तफाक से कभी-न-कभी टाइप कर ही देंगे। मगर मालूम होता है सर जेम्स ने तबतक हिन्दी का टाइपराइटर नहीं देखा था, वरना इत्तफ़ाक की थ्योरी शायद न बनाते। अपने राम का तो खयाल है कि दो-चार बन्दर तो क्या दो-चार आदमी भी यों कल्प तक हिन्दी के टाइपराइटर पर कालिदास के शब्दों के शुद्ध रूप न टाइप कर सकेंगे। खैर, कहने का मतलब यह है कि हिन्दी के कवियों और रोटी के राग का जो इत्तफ़ाक हुआ, उससे अपने राम के दिल में भी एक नई चीज पैदा हो गई, यानी कविता लिखने की भँड़ास। प्रतिभा के बदले 'भँड़ास' शब्द इसलिए काम में लिया कि प्रतिभा तो कवियों में होती है और अपने राम को कवि होने का दावा न था, न है, न होगा। जैसे, पंडित लोग जब लड़ते हैं तो वह 'शास्त्रार्थ' कहलाता है मगर आम लोगों की लफ्जी लड़ाई को बहस या गाली-गलौज भी कह देते हैं। हाँ, तो इसी भँड़ास को पूरा करने के लिए जो क़लम उठाई तो एक कविता न मालूम कहाँ से टपक पड़ी! तुलसीदास जी ने लिखा है कि 'सुमिरत सारद आवत धाई'। मुमकिन है सरस्वती को हमारे ज़रिये कुछ काम करवाना हो, जैसे मंथरा के जरिये रामचन्द्र को बनवास भिजवाया गया था। यह हुआ उस भँड़ास का परिणाम——

दुनियाँ तो पड़ी है
…के चक्कर में,
अरे, तू ?
हाँ मैं !
क्या कर रहा है
बैठा……की तरह ?
उठ कमर कस कर
जल्दी………।

मालूम होता है इस स्थल पर सरस्वती देवी का काम पूरा हो गया और अपने राम की भँड़ास भी जाती रही। लेकिन अब एक और समस्या पैदा हो गई ! भला इस कविता को समझेगा कौन ? इसमें तो कई शब्दों की जगह भी छोड़ दी गई हैं। तुर्रा यह कि न तुक, न लय।

कहते हैं कि बॉस्वैल न होता तो शायद जॉन्सन को कोई जानता भी नहीं। लेकिन अपना बॉस्वैल तो कोई दिखाई नहीं देता, जिससे हम कह दें कि "मंन तुरा हाजी बगोयम तू मरा क़ाज़ी बगो"। फिर बर्नार्ड शॉ का जो ख़याल आया तो तबियत को ज़रा तसल्ली हुई। शॉ अपने नाटक की भूमिका में (जो नाटक से ज़रा कुछ बड़ी होती है) अपना इरादा साफ़ जाहिर कर देता है जिससे पढ़नेवाले ऊटपटाँग न समझ बैठें। तो फिर अपने राम भी इस कविता की भूमिका या टीका ख़ुद ही क्यों न लिख मारें ? इसमें किसी दूसरे का एहसान भी न होगा और अपना मतलब भी बन जायगा।

पहला सवाल यह हुआ कि कविता का नाम क्या रक्खें ? बहुत सोच-विचार के बाद "लात" नाम पर आकर गाड़ी रुकी। इस कविता का मक़सद है लोगों को सचेत करना। और "लात" से बढ़कर ज़्यादा कारगर तरीक़ा इस ज़माने के लोगों को जगाने का अभी तक दूसरा ईजाद नहीं हुआ है। 'लात' शब्द तो हिंसात्मक मालूम होता है पर भाव इसमें अहिंसा का है। वह इस तरह—एक बार भृगुजी को तीनों देवों की परीक्षा लेने की सूझी तो पहले वे पहुँचे ब्रह्माजी के पास और जमाई उनके एक 'लात'। ब्रह्माजी उनको शिष्टाचार के बारे में कुछ ज्ञान देनेवाले ही थे कि भृगुजी वहाँ से खिसक आये। फिर शिवजी पर भी यही हथियार (इसे 'पैरियार' कहना ठीक होगा, क्योंकि लात पैर से लगाई जाती है) आजमाया। शिवजी की भ्रूभंगी से जाहिर हुआ कि वे कोई शाप न दे दें, इसलिए भृगुजी वहाँ से भी भागे। अब आये विष्णु भगवान् के पास, जो क्षीर-सागर में शेष-शय्या पर शयन कर रहे थे। भृगुजी ने उनकी छाती पर कसकर लात का जो प्रयोग किया तो विष्णु भगवान् चौंके, लेकिन फ़ौरन ही सम्हलकर मुस्कराये और भृगुजी के पैर को सहलाते हुए बोले—"मेरी छाती तो कठोर है, आपके पैर में चोट तो नहीं आई ?" बस भृगुजी ने अपना फ़र्स्ट प्राइज़ फौरन विष्णु भगवान को दे डाला। कहते हैं, उस लात का निशान आज तक विष्णु भगवान् के वक्षस्थल पर मौजूद है। हो या न हो, अपने राम ने तो सोचा कि जिस तरह भृगुजी की लात ने तीनों देवों का भेद जाहिर कर दिया उसी तरह शायद अपने राम की "लात" भी मनुष्यों का भेद स्पष्ट कर दे। यानी इसको पढ़कर जिसके दिल में हिंसा की वृत्ति पैदा हो वह थर्ड क्लास आदमी और जो हमारी क़लम (क्योंकि यह "लात" उसीसे प्रकट हुई है) चूमने को दौड़ा आवे वह सच्चा अहिंसक—फ़र्स्ट क्लास आदमी। तो यह कविता एक कसौटी है जो बतला देगी कि पढ़नेवाला मन-वचन-कर्म से अहिंसक है या नहीं।

अब इसकी टीका को लीजिए। कहा है—'दुनिया तो पड़ी है…के 'चक्कर' में। किसके चक्कर में भला ? यहाँ ज़रा चक्कर शब्द की व्यापकता पर गौर कीजिए। मान लीजिए कोई कहे——ज़माने के मुताबिक़——कि दुनिया तो पड़ी है 'हिटलर' के चक्कर में; तो देखिए 'हिटलर' यहाँ कैसी आसानी से आ बैठा, मानो चेकोस्लोवाकिया ही हो। हिटलर के हवाई ज़हाज़ों वग़ैरा में इंजन के पहिये वग़ैरा सब गोल——यानी चक्कर, उसकी बातों में चक्कर, और वह ख़ुद

भी घनचक्कर। 'रोटी का राग' वाले कहें, हमें हिटलर-बिटलर से कोई सरोकार नहीं; तो ठीक है, आप समझ लीजिए 'दुनिया तो पड़ी है रोटी के चक्कर में'। अपनी कविता तो कामधेनु है, हिटलर न सही, रोटी ही सही। और तारीफ़ यह कि रोटी भी गोल, यानी चक्करदार! लेकिन कुछ लोगों का खयाल है कि आजकल जो कुछ हो रहा है वह सब रुपये का चक्कर है। बहुत अच्छा, 'दुनिया तो पड़ी है रुपये के चक्कर में'। रुपया भी तो आखिर गोल-गोल चक्कर की ही शकल का है। और फिर रुपये का चक्कर भी कैसा, कि कहीं रुकने का नाम ही नहीं!

एक और मजा देखिए। अगर छायावादियों की तरह कह उठें, 'दुनिया तो पड़ी है अनन्त के चक्कर में, तो भी बिल्कुल ठीक। उर्दू शायरों को खुश करना हो तो 'ज़ुल्फ़ों का चक्कर' भी कह सकते हैं। देखा आपने इस 'चक्कर' शब्द का प्रताप और इसे कविता में उपयोग करने की सूझ! कवित्व-प्रतिभा इस मौलिकता के सामने क्या झख मारेगी? चक्कर क्या हुआ हज़रत मूसा का सोटा हुआ कि जो चाहो बन जाय। मगर उसे इस्तैमाल भी तो हज़रत मूसा ही कर सकते थे। दूसरे के हाथ में गया कि फिर वही सोटा का सोटा। मतलब यह कि खाली जगह जो छोड़ी गई, उसपर आप अपनी रुचि के मुताबिक लफ्ज़ बैठा लीजिए और कविता का आनन्द उठाइए।

अब 'तू' और 'मैं' पर ज़रा ग़ौर कीजिए। 'तू' शब्द लठ्ठमार तो ज़रूर है, लेकिन कितना अपनापन झलकता है इसमें! राजा भोज को एक बार किसी अपराधी ने 'तू' सम्बोधन किया तो वह नाराज हुआ, लेकिन जब उस अपराधी ने 'तू' शब्द की महिमा बताई तो राजा भोज ने उसे रिहाई के अलावा इनाम भी दे डाला। अगर आज कोई राजा भोज की तरह कविता समझनेवाला हो तो इस 'तू' के लिए अपने राम को मेडल नहीं तो कम-से-कम सार्टिफिकेट तो ज़रूर दे डाले। कवि धरापे के साथ पूछता है "अरे तू ?", तो कोई (समझनेवाला) कह उठता है "हाँ, मैं"। मै यानी असली 'मैं', कोई दूसरा नहीं। ऐसा मैं नहीं जिसमें सारी दुनिया समाई हो, या जिसे 'अन्य पुरुष' के ज़रिये व्यक्त किया जाता हो। जैसे, बजाय यह कहने के कि "हम बड़े विद्वान हैं, हमारी कोई क़द्र नहीं करता", आजकल लोग कहते हैं "दुनिया में विद्वानों की कोई क़द्र ही नहीं"। तो हमारा 'मैं' बिल्कुल बेलौस है, यह समझ लेना चाहिए। तो उसी 'मैं' से कवि पूछता है, कि "अरे तू, क्या कर रहा है बैठा···की तरह ?"

'···की तरह'। किसकी तरह? यह व्याख्या बहुत गूढ़ है। इसके सम्बन्ध में और इस कविता की व्युत्पत्ति और 'वाद' और बेतुकेपन के बारे में फिर कभी प्रकाश डाला जायगा।

कला और कविता

[टॉल्सटॉय]

"जबतक मैं खुद अपनी ज़िन्दगी नहीं बिताता था, तबतक कविता और कला में जीवन की छाया या विचार पाकर मुझे खुशी होती थी; कला के आईने में जीवन के दर्शन करना अच्छा लगता था। लेकिन जब मैंने जीवन का तात्पर्य जानने की कोशिश की तब यह आईना मेरे लिए अनावश्यक, फ़ालतू, बेहूदा और दुःखदायी हो गया, इसलिए अब मुझे इससे शांति नहीं मिलती थी।

जब अपनी अन्तरात्मा की गहराई में मैं विश्वास करता था कि जीवन का कुछ अर्थ है, तब-दृश्य देखने में सुहावना लगता था—जीवन में प्रकाश के हास्यजनक, दुःखान्त, करुण, सुन्दर और भयंकर खेलों से मेरा मनोरंजन होता था। पर जब मैं जान गया कि ज़िन्दगी बेमानी और भयंकर है, तब आईने में प्रकाश के खेल मेरा दिल न बहला सकते थे।"

[**सस्ता-साहित्य-मंडल से प्रकाशित होनेवाली 'मेरी मुक्ति की कहानी से'**].

पत्रकार से

[वियोगी हरि]

पत्रकारो ! नये-नये समाचारों के तुम न केवल प्रचारक हो, बल्कि उत्पादक भी हो। तुम्हारे उपजाऊ मस्तिष्क और अस्थिर लेखनी की सृजन-शक्ति कमाल की है। प्रशांत वातावरण को तो तुम उपहास और घृणा की नज़र से देखते हो, अतः उसमें सनसनी पैदा करने के लिए तुम सदा व्याकुल रहते हो !

लोगों पर तुमने कुछ अजब मोहिनी डाल रक्खी है। अखबारों के उपासक तुम्हारे उपजाऊ मस्तिष्क की नई-नई कृतियों का दर्शन जबतक नहीं कर लेते, तबतक उन्हें अपना जीवन और जगत् सूना और नीरस लगता है। अखबार-वाहक को ज़रा-सी भी देर कभी हो गई तो उपासकों की व्याकुलता कुछ-कुछ वैसी ही देखने में आती है, जैसी धूम्र-पान करने वालों की सबेरे-सबेरे बीड़ी-सिगरेट न मिलने पर होती है। बड़े-बड़े शहरों में वे ब्राह्ममुहूर्त से ही पत्र-उपासना करने बैठ जाते हैं। सबसे पहले वे तुम्हारे बड़े-बड़े शीर्षक-सूत्रों का दर्शन करते हैं। देखते हैं—कहाँ लोग आपस में लड़े-मरे; कहाँ आज भीषण दंगा हुआ; कहाँ रेलगाड़ियाँ लड़ीं; कहाँ जहाज़ डूबा; कहाँ अग्नि-काण्ड हुआ; कहाँ कैसी उथल-पुथल हुई !

तुम खोज-खोजकर देते भी ऐसे ही अमंगल-समाचार हो ! तुम पत्रकारों की दृष्टि में अशुभ या अमंगल ही सृष्टि का आदि है, और अमंगल ही अन्त। वर्बर-युग में पुराने लोग ब्राह्ममुहूर्त में मंगल-उपासना करते थे। आज के लोग तुम्हारे घोर प्रयास से अमंगल की आराधना करने लगे हैं। तुमने उनके रूढ़िप्रिय मानस में यह गज़ब की क्रान्ति की है !

तुम चाहते हो कि जगत् में सदा उथल-पुथल ही होती रहे; मेदिनी प्रतिक्षण काँपती ही रहे। स्थिरता या शान्ति को तुमने मृत्यु का नाम दे रक्खा है, और अस्थिरता या अशान्ति को जीवन का।

तुमने लोगों की बुद्धि को कुछ ऐसा खरीद लिया है कि उसपर दूसरा कोई रंग ही चढ़ता। अखबार की बात ही को वे 'ब्रह्म-वा मानते हैं। रात को मूसलधार वर्षा क्यों न हुई पर दैनिक पत्रके प्रभात-संस्करणमें वर्षा का उ न हो, तो गीला आँगन देखकर वे शायद कहेंगे कि हमारी आँखें ही हमें धोखा दे रही हैं

अधिकांश को तुम अपने कौशल से इस में डाले रहते हो कि तुम किसी खास उद्दे आदर्श को लेकर अखबार निकालते हो। कम कम तुम दावा तो कुछ ऐसा ही करते हो। तुम वास्तविक उद्देश का ठीक-ठीक पता कितने प वालों को लगता है ? विज्ञापन के योगक्षेम ज्ञान थोड़े-से ही पाठकों को होगा।

दुर्भाग्य से या तुम्हारे सौभाग्य से तुम अखबार की एक-एक पंक्ति प्रामाण्य समझ पढ़ी जाती है। परन्तु पढ़नेवालों की अख बुद्धि तब कैसे निर्णय करे, जबकि एक कॉल तो ब्रह्मचर्य और संयम की स्तुति देखने में है, और वहीं ठीक उसके सामने कामोत्ते दवाइयों का अश्लील विज्ञापन छपा रहता है जहाँ एक तरफ़ गुड़ की महिमा का लेख देखते वहाँ दूसरी तरफ़ चीनी के विज्ञापन में गुड़ बुरी तरह मज़ाक उड़ाया जाता है—तब बे वाचक किसे त्यागे, और किसे ग्रहण करे ? में तो दातुन का गुण गाया जाता है, और वि पन में बालों की झाड़ू से दाँत बुहारने की सि रिश की जाती है ! एक जगह ग्रामीण चमारों दुर्गति का उल्लेख रहता है, तो दूसरी जगह 'ब के जूतों का विज्ञापन देखकर श्रद्धालु वाचकों बुद्धि चक्कर में पड़ जाय, तो आश्चर्य ही क्या

और चाय को तो तुम पत्रकारों ने आध्यात्मिक स्थान दे दिया है, जो ईरान के खय्याम ने अंगूरी शराब को दिया था।

तुम्हारे अखबारों का उदर कितना बड़ा है कैसे ही सड़े-गंदे विज्ञापन हों, भक्ष्याभक्ष्य

विचार किये बग़ैर अपने विशाल उदर को वे भरते ही रहते हैं। सिनेमा का विज्ञापन तो उनका मुख्य आहार है। संस्कृति और चारित्र्य का विनाशक सिनेमा तुम्हारे अखबारों की नसों में रक्त-संचार करता है, और अखबार सिनेमा को जीवन-दान देते हैं। कई अखबारों को देखकर तो ऐसा लगता है कि उनका जन्म मानों चित्रपटों और गंदी दवाइयों के प्रचार के लिए ही हुआ है।

लोगों को तुम धड़ल्ले के साथ विनाश-पथ की ओर लिये जा रहे हो, पर तुमने उन्हें कुछ ऐसा सम्मोहित कर रक्खा है कि उन्हें इसका पता भी नहीं। वे तो समझते हैं कि तुम ज्ञान-विज्ञान के प्रचारक और स्वर्गीय संदेशों के अपूर्व वाहक हो।

और जब तुम कोई नया पत्र निकालना चाहते हो, तब उसके उद्देशों का जो सब्ज़बाग़ दिखाते हो, वह देखते ही बनता है। तुम्हारे बहुत बड़े दावे होते हैं। तुम धरा-धाम पर स्वर्ग का राज्य उतार देने का दावा करते हो। तुम मान लेते हो कि समाज में जैसे जीवन नहीं रहा, और तुम उसमें अपने पत्र द्वारा जीवन डाल दोगे। लोग तुम्हारी आकाश-वाटिका पर मोहित हो जाते हैं। और उनके मोह पर तुम ख़ुश होते हो! इस विश्व-प्रवंचना पर तुम्हें कभी आत्मग्लानि भी नहीं होती!!

तुम्हें हमेशा दूर की ही सूझती है; तुम्हारा ज्ञान दूर-दूर के देशों का ही होता है; तुम्हारा सब-कुछ विराट्-ही-विराट् होता है। पास की चीज़ तुम्हें नज़र ही नहीं आती : छोटी-छोटी बातों पर तुम कभी ध्यान ही नहीं देते। कारण, चिंता तुम्हें समूचे राष्ट्र और विश्व के व्यापक कल्याण की है!

इसलिए तुम ओटावा-पैक्ट या भारत और जापान के व्यापारिक समझौते की बारीकियों पर बहस करते नहीं थकते। पर इन छोटी-छोटी बातों का तुम्हें शायद पता भी न हो कि तुम्हारे चूल्हे में जो लकड़ियाँ जलती हैं वे बाज़ार से क्या भाव आई हैं, और भिंडी आजकल आलू के भाव से सस्ती है कि महँगी!

दूर-दूर के शहरों की ग़लीज़ बस्तियों पर दुनिया का ध्यान खींचने के लिए तुम बढ़िया-से-बढ़िया सम्पादकीय टिप्पणी लिखते हो, पर संपादकीय कमरे के सामने जो कचरे का ढेर लगा रहता है, और पिछवाड़े में जो डोमों की नरक-तुल्य बस्ती है, वहाँ तुम्हारी सूक्ष्म दृष्टि कभी जाती ही नहीं!

पत्रकारो! इतना तमाम विष फैलाये बग़ैर क्या किसी दूसरे साधन से तुम उपार्जन नहीं कर सकते? तुम अपना और अपने पत्रों का अस्तित्त्व क़ायम रखने के लिए जगत् में बिष-बीज बोते कभी थकते भी नहीं? क़ौम-क़ौम के बीच, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच तुम द्वेष और विग्रह नगण्य स्वार्थ की खातिर खड़े कर देते हो——उपार्जन का यह तरीक़ा तुम्हें आख़िर क्यों प्रिय है?

गली-कूचों या नालियों में लोग गन्दगी देखते हैं, तो म्युनिसिपैलिटियों से शिकायत करते हैं, पर तुम जो रोज़-रोज़ लोगों के दिलों और दिमाग़ों में गंदगी फैला रहे हो, इसकी शिकायत लोग किसके आगे ले जायें?

तुम भले ही अखबार निकालो; पर इसके पहले क्या तुम्हारे जीवित अनुभव और मूक साधना ने तुम्हें इतना ज्यादा व्याकुल कर दिया है कि तुम्हारे विचारों का लाभ उठाये बग़ैर दुनिया का काम चल ही नहीं सकता?

जिन जगहों में तुम्हारे अखबार नहीं जाते, वहाँ क्या घोर अँधेरा छाया रहता है? वहाँ दूर-दुनिया की बातों से लोग भले ही बेखबर रहें, पर वे अपने नज़दीकवालों को तो भली-भाँति पहचानते हैं। वे अपने पड़ोसियों को ठीक-ठीक पहचानते हैं, क्योंकि उनकी आँखों पर तुम्हारा अखबार भ्रम का पर्दा नहीं डालता। उनकी आँखें उनकी 'अपनी' होती हैं, 'अखबारी' नहीं।

इसलिए कहता हूँ कि ज़रा एक बार प्रयोग करके देख तो लो—दस साल के लिए अपने तमाम अखबारों को विश्राम दे दो; फिर देखो, तुम्हारे अखबारी ज्ञान की छाया न पड़ने से जगत् के कल्याण का स्रोत और खुलता है या रुक जाता है?

इंग्लिस्तान और भारत का आपसी सम्पर्क

: २ :

[श्रीप्रकाश]

र्तमान शिक्षा-प्रणाली

इंग्लैण्ड की भारत को दूसरी देन हमारी प्रचलित शिक्षा-प्रणाली है। अंग्रेजी भाषा और साहित्य की जितनी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी है और इस भाषा के प्रचार से हमारे देश की एकता स्थापित होने में जो लाभ हुआ है, उसकी चर्चा मैं ऊपर कर चुका हूँ। परन्तु भाषा का प्रचार एक बात है और शिक्षा-प्रणाली दूसरी ही बात है। हमारे देश में जो शिक्षा-प्रणाली इंग्लैण्ड ने कायम की, उसका एक उद्देश्य तो यह अवश्य था ही कि भारतीयों से अंग्रेजों को भारत के शासन के संचालन में सहायता मिले। यह मैं पीछे कह आया हूँ। साथ ही साथ उनके मन में यह भी हो सकता था—मैकाले ने यह कहा भी है—कि पश्चिमी सभ्यता का सम्पर्क जब अंग्रेजी-साहित्य द्वारा इस प्राचीन जाति से होगा तो वह अपनी हानिकर रूढ़ियों में से बाहर निकल कर सभ्य जातियों की पंक्ति में बैठने योग्य हो जायगी। आरम्भ में अंग्रेजों ने हमारी परम्परा नहीं समझी थी, और न यही जाना था कि हमारी भी बड़ी भारी सभ्यता रही है।

राजा का प्रभाव प्रजा पर बहुत पड़ता ही है। यह शिक्षा केवल थोड़े ही लोगों तक मर्यादित नहीं रही, जो राजा की नौकरी का पेशा उठा सकते थे। यह शिक्षा फैलने लगी और साधारणतः प्राणीमात्र शिक्षा किसी पेशे में योग्यता प्राप्त करने के लिये ही लेते हैं। इस कारण सरकारी नौकरी के लिए बहुत लोग इच्छुक होने लगे और ऐसी जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्विता पैदा हो गई कि हमारा सारा आर्थिक संघटन ही अस्त-व्यस्त हो गया। सब लोग अपने घर के कामों को छोड़-छोड़कर, उसे हेय और अपमानजनक भी मान कर, उसका तिरस्कार करके सरकारी नौकरी के पीछे दौड़े। सरकारी नौकरी महत्त्व और गौरव भी बहुत बढ़ गया। हम सब गैरसरकारी कार्य खराब हो गया। सर नौकरी के अतिरिक्त सरकार से सम्बन्ध सम्पर्क रखनेवाला पेशा वकालत का रहा। में भी लोगों की भरमार हो गई। ये दोनों पेशे गैरसरकारी काम के उन्नत होने पर निर्भर होते हैं, क्योंकि ये पेशे सम्पत्ति नहीं करते, सम्पत्ति का व्यय मात्र करते प्राकृतिक साधनों के सदुपयोग से ही सम पैदा होती है। सच्ची सम्पत्ति कृषि, खान, वि हवा, पानी आदि में ही रहती है। नई शिक्षा कारण उसका ह्रास होने लगा। उसकी तर लोगों का मन हट गया। पुराने जमाने में वि से विद्वान् भी कृषि आदि का अपना पु काम नहीं छोड़ते थे और विद्या का विद्या लिए उपार्जन करते थे। उसे बेचकर पैसा करने की आकांक्षा नहीं रखते थे। उदर के लिए उनकी जीविका दूसरी ही रहती पर इस शिक्षा का यह परिणाम हुआ कि प्राकृ कार्यों से लोग हट गये और दूसरा कार्य लगे। इसमें पैसा भी अधिक मिलने लगा उसका आकर्षण बढ़ा। अंग्रेजी शिक्षित लोग पेशे में भरने लगे। इस प्रकार से हमारी बड़ी हानि यह हुई कि हमारे देश का सब गार चला गया। हम दूसरे के मुहताज हो हमारा धन चला गया। हमारा आर्थिक ह हो गया। देश धनी होने के बदले दरिद्र हो

जातियों का पार्थक्य

इंग्लैंड और भारत के सम्पर्क का एक बड़ा दुष्परिणाम हुआ है। हमारे देश के पु आक्रमणकारियों की तरह अंग्रेज हमारे बी नहीं बसे। वे अपने को सदा अलग रखते पहले जितनी जातियाँ हमारे यहाँ आई

मारे बीच में बस गईं। वे हमसे मिलकर एक हो
ईं। परस्पर का प्रभाव पड़ा। एक यदि दूसरे से
छ बुरी बातें सीख जाता था, तो कुछ अच्छी बातें
ी सीख जाता था। अंग्रेज़ों को केवल हमने विजेता
ही रूप में देखा, अर्थात् उन्हें हमने अधिकार
स्थानों पर ही दूर से देखा। उन्हें अपने
ीच में साधारण नरनारियों की तरह नहीं देखा,
जससे कि हम उनके व्यक्तिगत गुणों को अपना
कें। जिस प्रकार से वे नागरिक कर्तव्यों और
धिकारों का पालन करते हैं, नियंत्रण का जीवन
सर करते हैं, घर के भीतर और घर के बाहर
निश्चित नियमों के अनुसार ही रहते हैं, बच्चों
लालन-पालन का विशेष ध्यान रखते हैं, समय
ो व्यर्थ नहीं बिताते, तरतीब से काम करते
ं,—यह सब हम उनसे नहीं सीख सके। यह
व तो घनिष्ठ पारस्परिक सम्पर्क से ही सीखा
ा सकता है। हमने उनकी अकड़ देखी, उनकी
ान देखी। थोड़े में, हमने उनका रुद्ररूप ही
खा पर उनका मानुषिक आचरण और प्रतिदिन
ा साधारण जीवन नहीं देखा। उनके सम्बन्ध
ं हमारे मन में भय या घृणा का ही भाव रहा,
म और सहानुभूति का भाव नहीं आ सका।

उन्होंने भी हमें साधारणतः ऐसे ही रूपों में
खा, जिसमें हम अपने जीवन का खराब पहलू
ो उनके सामने उपस्थित कर सके। अदालतों
उन्होंने हमें मुजरिमों के रूप में अर्थात् चोर
कू और नाना प्रकार के समाज-विरोधी कार्यों
अभियुक्त के रूप में देखा। दफ्तरों में
नीत मातहतों या नौकरी के लिये दरख्वास्त देने-
लों के रूप में देखा। अपने घरों पर खुशा-
दियों और सिफारिश करनेवालों के रूप में
ं देखा। ऐसी अवस्था में उन्होंने हमारा
च्छा रूप देखा ही नहीं। फिर हमारे लिए
नके मन में आदर और सम्मान हो ही कैसे
कता है? एक तो विजेता का विजित जातियों
सम्बन्ध में यों ही खराब ख्याल रहता है, दूसरे
ब वे उनमें से निकृष्ट लोगों को ही देखते हैं तो
की धारणा और दृढ़ हो जाती है। साधारणतः
सामाजिक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न गैर-सरकारी पेशों में, जीवन-निर्वाह करते हुए एक दूसरे के सुख-दुःख में भाग लेते हुए हमने एक-दूसरे को नहीं देखा। कुछ अंग्रेज पादरी जो अपने संप्रदाय का प्रचार करने और सामाजिक सेवा के लिए हमारे बीच बसे, उन्होंने भी हममें से प्रायः ऐसे ही लोगों को देखा जो हमारे देश के अतिशय दीन, दुखी और दरिद्र थे, जिसके कारण उनका रहन-सहन बहुत ही निकृष्ट था, और जिनका विचार भी कुछ ऐसा था कि देश के सम्प्रदायों और धार्मिक आदर्शों को भी इन अंग्रेज पादरियों ने निकृष्ट रूप में ही देखा।

दुःखद परिणाम

यदि मुझे किसी बात का अधिक खेद है तो इसका कि इंग्लैंड और भारत के सम्पर्क में यह नहीं हो सका कि हिन्दुस्तानी और अंग्रेज अगल-बगल बसें। मुझे संदेह नहीं है कि यदि ऐसा होता तो हमारे लिये अंग्रेजों के मन में बहुत कुछ सहानुभूति उत्पन्न हो सकती और हम भी उनके गुणों को सीखकर अपना भला कर सकते, श्रेणी-दर-श्रेणी हम परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित कर सकते और दो सौ वर्षों के बाद भी जिस प्रकार से हम एक दूसरे के प्रति अजनबी हो रहे हैं, ऐसी दशा न रहती। शायद ही कभी संसार के इतिहास में दो जातियों का इतना निकटस्थ सम्बन्ध होते हुए भी एक का दूसरे के जीवन पर इतना कम प्रभाव पड़ा हो, जितना कि इंग्लैंड और भारत के सम्पर्क से अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियों पर पड़ा है।

हम पीछे कह आये हैं कि वर्तमान कानून की प्रथा देश में प्रचलित करने का कुप्रभाव यह हुआ कि कई प्रकार से हमारा नतिक अधः पतन हो गया। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के कारण हम केवल दलाल मात्र रह गये। हमने अपना परम्परागत रोजगार खो दिया, और नये रोजगारों को निकालने और बढ़ाने लायक भी नहीं रह गये, जिससे हमारा आर्थिक अधःपतन होगया। अंग्रेज़ों और हिन्दुस्तानियों के एक दूसरे के पास न बसने

के कारण और एक दूसरे के सामाजिक जीवन से सम्बन्ध न रखने के कारण हम भारतीय अंग्रेजों का कोई गुण नहीं सीख सके और उनकी तरफ से सशंक ही बने रहे। जिस रूप में उन्होंने हमें देखा उनके मन में हमारे प्रति घृणा ही बनी रह गई।

एक और कुप्रभाव

एक और भीषण कुप्रभाव भी हमारे देशमें इस सम्पर्क का हुआ। राजा का असर प्रजा पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। जो विजित जाति के धनी-मानी होते हैं, वे स्वभावतः राजा के अनुरूप रहने लगते हैं। हमारे यहाँ की भी बड़े लोग इस प्रकार से रहने की चेष्टा करने लगे, जिस प्रकार से उनकी समझ में अंग्रेज़ रहते हैं। सामाजिक सम्बन्ध न रहने के कारण वास्तविक हाल तो वे जान नहीं सके, इस कारण ऊपर से वे नकल मात्र कर सके। यह क्रम बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी कर्मचारियों से आरम्भ हुआ। पहले तो बहुत थोड़े-से उच्च हिन्दुस्तानी सरकारी कर्मचारी होते थे। उनका भाव अधीन का ही था। वे अपने ही लोगों के बीच में रहते थे। पर कर्मचारियों की संख्या बढ़ने लगी और राजनीतिक दबाव के कारण अंग्रेज़ों और हिन्दुस्तानी कर्मचारियों का कुछ दूर-दूर परस्पर भी होने लगा। इससे ये अंग्रेज़ी ढंग से रहने भी लगे, और उच्च हिन्दुस्तानी कर्मचारियों की अलग जाति-सी बन गई। उनकी देखादेखी उनके हिन्दुस्तानी मित्रगण भी उनकी नकल करने लगे।

इस प्रकार से अंग्रेजी जीवन के एक खराब अंश को हमारे उच्च श्रेणी के लोग अपनाने लगे जिससे उनकी बहुत-सी बुरी आदतें पड़ीं। उनका अपना ऊपरी खर्च भी बेहद हो गया। अन्ततोगत्वा उसका भार ग्रामीणों पर ही पड़ता है क्योंकि मूल में उन्हींके यहाँ से सब धन आता है। ये लोग अपना काम-धाम छोड़कर ऐसी जगहों में बसने भी लगे, जहाँ अँग्रेज़ों की बस्ती हो। इस तरह से उनका सम्पर्क अपने भाइयों से ही दिन-प्रति-दिन कम होता गया। यह भयावह स्थिति हमारे आधुनिक जीवन की विशेष हो रही है। हमारे देश में कुछ प्रतिष्ठित शाली लोगों का एक अलग वर्ग बन जिनका खान-पान, वस्त्र-भूषा, रहन-सहन में अंग्रेज़ों का सा मालूम होता है। उन्हें देश के भाइयों के आचार-विचारों से बहुत सहानुभूति होती है। वे अपने जीवन के विदेशी प्रकारों में और यथासम्भव विदेशि बीच में खोजते हैं। ये देश पर एक अजीब रूप हो गये हैं। वास्तव में ऐसे लोगों के भिन्न-भिन्न अंगों का नेतृत्व लेना चाहि वे दूसरे की नकल में ही ऐसे लिप्त हैं कि वे लिए बेकार हो गये हैं। वे अपने समाज से हो गये और अंग्रेज़ी समाज में निकट भरती होने में असमर्थ बने रहे। ये लोग अपने मन में, अपने सम्बन्ध में कुछ भी रखें, पर वे वास्तव में दया के पात्र हैं। द्वारा पर्याप्त हानि भी भारतीय समाज रही है।

गुण-दोषों की विवेचना

गुण-दोषों की इस प्रकार से विवेचना पर यह दुख ही रह जाता है कि दो जातियों, दो महती परम्पराओं, दो गौरव सभ्यताओं का दो सौ वर्षों तक लगातार रहते हुए भी परिणाम केवल इतना ही आज जब संसार क्रान्ति के युग से गुज़र जब यूरोपीय युद्ध ने पश्चिमी सभ्यता को दे रक्खी है, जब चारों तरफ से अस्तव्यस्त ही स्थिति दीख पड़ रही है, जब सब लोग हो रहे हैं, जब कितने ही लोग अनुभव कर कि हमारा ही जीवन भयभीत है, जब कि भी आगे की गति ठीक प्रकार से नहीं दीख पड़ है, उस समय मुझ-जैसे आदमी को जिसे कुल की शिक्षा-दीक्षा और संस्कारों के अपने देश की पुरातन बातों को समझने उन्हें सम्मान से देखने का और उनके रहने की भावना जन्म से ही रही है और ही जिसका अंग्रेज़ों से भी काफी सम्पर्क

जिसे उनके साथ उठने, बैठने, पढ़ने, लिखने, रहने आदि का भी अवसर मिला है और जिनके साहित्य और इतिहास को देखने और अध्ययन करने तथा उनकी प्रचलित सभ्यता से पर्याप्त सम्पर्क रखने का मौका मिला है, उसके लिए आज की स्थिति बड़ी ही शोचनीय है ।

मुझे तो इसका पूरा विश्वास है कि यदि थोड़ी बुद्धिमानी से काम लिया जाता, यदि थोड़ी सहानुभूति रक्खी जाती तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि इंग्लैण्ड और भारत का सम्पर्क एक-दूसरे के लिए वास्तव में लाभदायक होता और हमारे देश की दासता की बेड़ी कभी की केवल कट ही न गई होती, पर वास्तव में पारस्परिक सहयोग के साथ स्वतंत्र रहकर ये दोनों जातियाँ संसार में एक नया युग खड़ा कर सकतीं । विचारवान् इतिहासकारों के लिए यह बड़े दुख का विषय रह जायगा कि इतना बड़ा सुअवसर और सुयोग दोनों ही जातियों ने जान-बूझकर खो दिया और यह सम्बन्ध परिणाम की दृष्टि से दोनों में किसी के लिए भी गौरव और सम्मान का नहीं हुआ ।

मेरी झिझक !

[जवाहरलाल नेहरू]

मैं यों अक्सर कुछ-न-कुछ लिखा करता हूँ और लिखने में दिलचस्पी भी है । फिर यह झिझक कैसी ? कभी-कभी गांधीजी पर भी लिखा है । लेकिन जितना मैंने सोचा यह मज़मून मेरे क़ाबू के बाहर निकला । हाँ, यह आसान था कि मैं कुछ ऊपरी बातें जो दुनिया जानती है दोहराऊँ । लेकिन उससे फ़ायदा क्या ? अक्सर उनकी बातें मेरी समझ में नहीं आईं, कुछ बातों में उनसे मतभेद भी हुआ । एक ज़माने से उनका साथ रहा, उनकी निगरानी में काम किया, उनका छापा मेरे ऊपर पड़ा, मेरे ख़याल बदले और रहने का ढंग भी बदला । ज़िन्दगी ने एक करवट ली, दिल बढ़ा, कुछ-कुछ ऊँचा हुआ, आँखों में रोशनी आई, नये रास्ते देखे और उन रास्तों पर लाखों और करोड़ों के साथ हमक़दम होकर चला । क्या मैं ऐसे शख्श के निस्बत लिखूँ, जोकि हिन्दुस्तान का और मेरा एक ज़ुज़ हो गया और जिसने कि ज़माने को अपना बनाया । हम जो इस ज़माने में बढ़े और उसके असर में पले, हम कैसे उसका अन्दाज़ा करें ? हमारे रग और रेशे में उसकी मोहर पड़ी और हम सब उसके टुकड़े हैं ।

जहाँ-जहाँ मैं हिन्दुस्तान के बाहर गया, चाहे यूरोप का कोई देश हो या चीन या कोई और मुल्क, पहला सवाल मुझसे यही हुआ—"गांधी कैसे है ? अब क्या करते हैं ?" हर जगह गांधीजी की शोहरत पहुँची थी । ग़ैरों के लिए गांधी हिन्दुस्तान था और हिन्दुस्तान गांधी । हमारे देश की इज्ज़त बढ़ी, हैसियत बढ़ी । दुनिया ने तसलीम किया कि एक अजीब ऊँचे दर्जे का आदमी हिन्दुस्तान में पैदा हुआ, फिर से अँधेरे में रोशनी आई । जो सवाल लाखों के दिल में थे और उनको परेशान करते थे, उनके जवाबों की कुछ झलक नज़र आई । आज उसपर अमल न हो, तो कल होगा, परसों होगा । जवाब में और भी जवाब मिलेंगे, अँधेरे में रोशनी पड़ेगी, पर वह बुनियाद पक्की है; उसीपर इमारत खड़ी होगी ।

आजकल की दुनिया में लड़ाई का तूफ़ान फैल रहा है और हरएक के लिए मुसीबत का सामना और इम्तिहान का वक्त है । हम क्या करें, यह हर हिन्दुस्तानी के सामने सवाल है । वक़्त इसका जवाब देगा । लेकिन जो भी कुछ हम करें उसकी बुनियाद उन उसूलों पर हो जिनको हमने इस ज़माने में सीखा । बड़े कामों में हम पड़े, पहाड़ों की ऊँची चोटियों की तरफ़ निगाह डाली और लम्बे क़दम उठाकर हम बढ़े, लेकिन सफ़र दूर का है । इसके लिए हमको भी ऊँचा होना है और छोटी बातों में पड़कर अपने देश को छोटा नहीं करना है ।

'गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ' से

प्रस्तुत प्रश्न

अभ्रंकष

"आप इस शीर्षक से घबरायें नहीं । इस शब्द का अर्थ जानते हों तो लेखक को अज्ञ मान लें न समझ में आया हो तो लेख का आनन्द लें । मेरी तो हज़ारों किताबों की पढ़ाई पर इस शब्द ने पानी फेर दिया ।

इस शब्द के पीछे एक मज़ेदार किस्सा बन गया है । जयपुर रियासत में निवाई स्टेशन से पाँच मील पर एक छोटा-सा गाँव वनस्थली है । वहाँ का राजस्थान-बालिका-विद्यालय मैं कुछ दिन हुए देखने गया । उसके संस्थापक श्री हीरालालजी (बी० ए०) शास्त्री और उसकी प्राणस्वरूप उनकी धर्मपत्नी श्री रतनजी शास्त्री वहाँ लड़कियों को 'पीर, बबर्ची, भिश्ती, खर' सब कुछ बना देना चाहते हैं । 'वीरबाला' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका वहाँ से निकलती है । अध्यापक, अध्यापिकायें, लड़कियाँ सभी उसमें लिखते हैं । नये अंक के लिए लेख छपने जा रहे थे, देखे जाने को शास्त्रीजी के पास आये । बन्दा भी पास ही बैठा था । लिखने-पढ़ने से कुछ मुहब्बत समझकर शास्त्री जी ने कुछ लेख पढ़ने को दिये, जिससे मुझे वहाँ के अध्यापक-अध्यापिका-मण्डल की विचारधारा का पता लग जाय और लड़कियों के दिमाग पर भी पढ़ाई का कितना-कैसा असर पड़ा है, यह देख सकूँ । आखिर तो आदमी के भीतर जो होता है, वही तो क़लम से बाहर निकलता है, बशर्ते कि उसमें छिपाव न हो ।

उन लेखों में एक आठवें दर्जे की जगवती लड़की का था । इसमें इस शीर्षकवाला **'अभ्रंकष'** शब्द प्रासाद के साथ विशेषण के रूप में लगा हुआ था । प्रसंग से समझ में आया कि ऊँचे से मतलब है और अभ्र के जितना, पर 'कष' का कुछ अर्थ न बैठा । शास्त्री जी से कहा, लड़की पास हो तो ज़रा पुछवाइए यह शब्द उसने कहाँ से लिया ? मालूम हुआ विद्यालय में गई है । वहाँ लड़की को खोजने के पहले 'हिन्दी शब्द सागर' में 'अभ्रंकष' की हुई । काहे को मिलना था । सिद्धान्त-कौमु सहारा लिया, 'कष' हिंसा अर्थ में मिला । गया शायद 'कश' हो, वह गति अर्थ में फिर 'शब्द सागर' में 'कस' देखा । कई और कई बी० ए०, एम० ए० मिलकर भी संगति न बैठी । मन ही मन कुढ़ रहे थे शब्द ने हम लोगों की पोल ही खोल दी । लड़की से पूछने की ठहरी कि उसके यह 'अभ्रंकष' कहाँ से आया कि इतने अध्यापक ने एक संग्रहीत पाठ्य पुस्तक ला धरी । एक कविता में 'अभ्रंकष' सहित सुशोभित था । पर इससे शब्द की तो दूर नहीं हुई । कविता का लेखक कौन श्री मैथिलीशरणजी गुप्त । और कोई हो दो-चार जली-कटी कहकर दिल का बुखार लेते पर गुप्तजी की शान में कुछ कहने को खुली नहीं । और-और धंधों में लग गये मेरा मन ऊहापोह में लगा ही रहा ।

आखिर आज यह जो काव्य लिखे जा क्यों ? ख़ुद लिखें और ख़ुदा समझे । गुप्तजी तो सरल, समझ में आनेवाली चीज़ लिखते मानते थे । गुप्तजी की 'भारत-भारती' बड़े पढ़ी थी । 'जयद्रथ-वध' पर लट्टू था, मन-ही उसकी कड़ियाँ गुनगुनाया करता था । 'रंग-मे तो दो बार पढ़ा याद आता है । 'वि व्रजांगना' और 'मेघनाद-वध' तक नहीं और फिर तो पोथियाँ पढ़ना ही छूट गया कविता तो ख़ास तौर से । कभी भूले-भटके में पढ़ लीं, कुछ समझ में आईं, कुछ नहीं । जी का 'साकेत' निकला तो बड़ी तारीफ़ उसकी, गांधीजी ने भी सराहा । ललचाया पर हिम्मत न पड़ी, ऐसे ही जैसे कवि का उड़ान ऊँची लेता है, पर कार्य में घुटने टेक है । यों पुस्तकें छूने की कसम नहीं खाई कविता-पुस्तकें भी पूरी न सही दो-चार पन्ने

प्रायः बहुतों के पढ़े होंगे। पर समझ में ही कम आईं, इसलिए रुचिकर नहीं हुईं। अजब शब्दावली और अजब भाव। समझ में नहीं आता कि स्वर्गीय हैं कि नारकीय। मित्रों में चर्चा तो होती ही रहती है। उलहना मिलता, तुम रहस्यवादी कवियों को दाद नहीं देते। कैसे दे दाद कोई, कुछ जान हो न? कोरी बकवास का क्या बने? चीज़ हो तो अपने आप दाद दिला दे। न डिगने का इरादा करके बैठे हों तो भी हँसा दे, रुला दे, कवि की भाषा में——रोम-रोम को सपुलक कर दे। पर मन की बहक से, टकों के लिए, मान-सम्मानार्थ, सिद्धि और शराब के नशे में लिखी चीज़ कैसे हिला दे दिल को? कुछ हो उसके पीछे साधना, त्याग, तपस्या तो ठहरे चीज़ मैदान में। है न कविता तुलसीदास की जो बालक-वृद्ध-युवा, नर-नारी सबको भाती और सुहाती है। टीकाकारों ने टीका करके अपने को कृतकृत्य किया है, नहीं तो यों भी जन-साधारण उसे समझने-समझाने में कहाँ दिक्कत महसूस करते थे?

कभी-कभी मन कहता है 'अपन' की अक्ल कुछ सुथरी हो गई है, इसलिए आज की कविता समझ में नहीं आती। पर दुनिया में अगर सबसे मुश्किल कोई बात है तो अपने को 'कमसमझ' समझने की है। जहाँ कहीं अपने मन का किसी को पाता हूँ, तो फिर मन में उठती है——नहीं इन कवियों का ही कसूर है, ये लिखते ही ऊलजलूल हैं।

पिछले दिनों की बात है। एक मित्र के साथ एक साहित्य-विद्यालय में गया। २५-३० विद्यार्थी रहे होंगे। सब बड़ी उम्र के। कई चीज़ों की चर्चा होती रही। अन्त में एक भाई ने 'रहस्यवाद' और 'छायावाद' की चर्चा छेड़ दी। मैंने बखेड़े से बचने के लिए साफ़ कबूल कर लिया कि ऐसी कविताओं के लिए मैं नालायक हूँ। पर बातचीत जो आगे बढ़ी तो पता चला कि बेचारे विद्यार्थी भी उनसे परेशानहाल हैं। कहाँ सम्मेलनवालों ने उनके सिर यह बला डाल दी। बातों-बातों में मैंने कहा कि मैं अपने पर दुराग्रही होने का इलज़ाम नहीं आने देना चाहता। यदि आपके अध्यापक महोदय कुछ चुनी हुई कविताओं का भाव मुझे समझा सकें तो मैं उसका रस लेने को तैयार हूँ। अध्यापकजी गम्भीर मुद्रा बनाये बैठे थे, मुस्करा दिये। क्या मालूम था मुझे कि दूसरे दिन सचमुच पढ़ाने पहुँच जायँगे! बोले, मैं आपको दो-चार अच्छी कवितायें सुनाना चाहता हूँ, मतलब था समझाना। पूछा, 'यामा' है? मौजूद थी। पन्त का संग्रह? वह भी। दिनकर? सामने ही रक्खे थे। कई कवितायें रसपूर्वक सुनाईं-समझाईं। एकाध मन को भाई भी। पर ज्यादा तो ऐसी थीं कि समझकर आलोचक दृष्टि से पढ़ने पर बाद को खुद उन्हें फीकी लगीं। अपनी जान में तो उन्होंने आसमान से बातें करनेवाली चीज़ चुनी थी। मैंने उन्हें कहा, भाई साहब, अगर सचमुच इनमें कोई माकूलियत है, तो लेखकों को टीका के साथ ये चीज़ें जनता को देने की दया करनी होगी। वर्ना लोग अपनी बुद्धि पर तरस खाने लगेंगे या इन भाई-बहनों की। और आम रिवाज के अनुसार तो अपनी बुद्धि पर कौन तरस खाता है?"

[हम अपने एक जिन्दादिल मित्र के इस लेख के सर्वांश से तो सहमत नही हैं, पर इसे छापते इस इरादे से हैं कि हमारे कवि-मित्र ज़रा देखें कि लोग उन्हें कैसा देखते-समझते हैं? किसी की निन्दा-स्तुति से गरज़ नहीं है। जवाब में कोई कवि किसी नामी रहस्यपूर्ण कविता की टीका लिखकर भेजेंगे तो अवश्य छापी जा सकेगी।

——सम्पादक]

भारतीय संस्कृति का ख़जाना

'जी० सा०' के लिए एक पौराणिक गाथा, जो कि इसी अंक में जा रही है, भेजते हुए श्री रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं——

"हमारे पुराण ललित कथाओं के भाण्डार हैं। खेद की बात है कि एक तो संस्कृत भाषा में होने के कारण, दूसरे पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से अपनी अनमोल विभूतियों पर अश्रद्धा बल्कि घृणा होने के कारण इस देश के शिक्षित कहे जानेवाले लोग भी उनसे मिलनेवाले लाभों से वंचित रह

जाते हैं। यदि कोई संस्था ऐसी खड़ी होती जो केवल पुराणों का हिन्दी-अनुवाद सस्ते दामों पर प्रकाशित करती, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह विदेशी नाटकों, उपन्यासों और जीवन-चरितों को हिन्दी में प्रकाशित करके जिस लोक-सेवा की कल्पना किये हुए है, जनता का उससे कहीं अधिक सच्चा कल्याण वह आँखों के सामने होता हुआ देखती; क्योंकि पुराण हमारे हैं और उनमें हमारे उन पूर्वजों की यशोगाथाओं के संग्रह हैं, जिनसे हमारा रक्त-सम्बन्ध है। वे हमें स्वभावत: प्रिय हैं और उनका प्रभाव केवल हमारे मस्तिष्क ही पर नहीं, हृदय पर भी पड़ता है।

अधिकांश अंग्रेज़ी-दाँ लोग यह कहकर पुराणों का उपहास करते हैं कि उनमें मिथ्या बातों का बाहुल्य है, जो असंभव और अलौकिक भी है। पर वे ही लोग 'अरेबियन नाइटस' को पढ़कर आनन्द अनुभव करते हैं और पुराणों को उतने सम्मान का भी अधिकारी नहीं मानते। यदि वे मनोरंजन के लिए ही पुराणों को पढ़ते, तो भी उनको अलौकिक कथाओं के साथ ऐसी कथायें भी पढ़ने को मिलतीं, जो उनके जीवन के अन्धकारमय मार्ग में प्रकाश उत्पन्न करतीं और इतिहास की कसौटी पर भी खरी उतरतीं।

पाँच-छ: वर्ष पहले तक पुराणों के प्रति मेरी भी श्रद्धा कुछ ऐसी-ही-वैसी थी। पर जब मैं रामचरितमानस की टीका लिख चुकने के बाद उसकी भूमिका लिखने की तैयारी में था, मैंने यह निश्चय किया कि लाओ, इसी समय अपने पूर्वजों के साहित्य को भी अधिक से अधिक जितना पढ़ सकूँ, पढ़ लूँ। इस निश्चय के अनुसार मैंने काव्यों के साथ अधिकांश पुराणों को भी, पढ़ डाला। मुझे जो आनन्द मिला वह वर्णनातीत है। पुराण स्वयं अपने पाठकों की त्रुटियों को पहचानते हैं और उनकी शंकाओं को निर्मूल करते चलते हैं। इससे उनके प्रति मेरे मन में जो थोड़ी-बहुत अरुचि थी, वह तो निर्मूल हो ही गई, साथ ही उनमें मुझे इतिहास की इतनी सामग्री मिली कि जिसका समावेश किये बिना भारत का इति कभी पूर्ण हो ही नहीं सकता। पुराण तो वह भाण्डार है, जिनमें छोटी-से-छोटी चीज़ लेकर बड़ी-से-बड़ी चीज़ तक एक स्थान पर करके रख दी गई है। हम उनके एकमात्र कारी हैं; हम उनकी उपेक्षा करें तो यह ह अभाग्य है।

पर जबतक उनके और हमारे बीच में का परदा है, तबतक न हम उन्हें देख पाते और न पहचान सकते हैं; इससे यह आवश्यक कि कोई एक सहृदय धनी व्यक्ति, जैसे घनश्यामदास बिड़ला या मारवाड़ियों तथा रातियों में से अन्य कोई सेठ, या हमारे रा महाराजा, या कोई संस्था जैसे गीता-प्रेस या स साहित्य-मण्डल, केवल इसी एक काम में त होकर पुराणों को शब्दश: हिन्दी में अनुवा करा डालें और प्रकाशित करें। इसका परि हिन्दू-संस्कृति को पुष्ट करने में क्या होगा, देखने की बात होगी; हमारी वर्तमान भाषा तो इसका प्रभाव पड़ेगा ही। आज जो ह लेखक, कवि, कहानी और उपन्यासकार विदे लेखकों की कृतियों से 'प्लॉट' उड़ाया करते उनको अपने ही घर में 'प्लॉटों' का एक ऐ खज़ाना मिल जायगा, जो विदेशी लेखकों चकाचौंध उत्पन्न कर देगा।"

सहृदय पाठक देखें कि क्या हमारे साहि कारों को ऐसी गाथाओं की ओर, जो हमारी संस्कृति की अजर-अमर निधि हैं, खोज औ संग्रह नहीं करना चाहिए। जो हमारे साहित्य गौरव बढायें ?

—संपादक

अश्लीलता क्या है ?

श्री सुधीन्द्र का "हिन्दी के कवि किधर ? और श्री भास्कर का "स्वानुभूति और मनोवे का रेचन ?" पढ़कर मेरे हृदय में कुछ विचार उत्पन्न हुए, उन्हें प्रकट कर रहा हूँ।

संसार के साहित्य पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि किसी भी नवीन प्रगति पर पुरा समालोचक, नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं औ

उन नवीन लेखकों की भावहीनता, उच्छृंखलता और अश्लीलता पर कटाक्ष करते हैं। कीट्स की 'ऐंडीमियान" के बारे में भी ये ही भाव प्रकट किये गये थे। और अंग्रेज़ी की आधुनिक कविता "Victorian hypocrisy" को फोड़कर निकली तव वे भी इस लांछन से अछूते न रहे। स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर भी यही लांछन लगाया गया था।

अभीतक यह पता नहीं लग पाया है कि अश्लील क्या है? कुछ समय पहले जो रचनायें अश्लील मानी जाती थीं, वे आज अत्यन्त कलापूर्ण मानी जाने लगी हैं। "नाना" "मादम बावेरी" "स्टडीज इन दी साइकालॉजी ऑफ सेक्स" को आज कोई भी अश्लील नहीं मानता। हाँ, यह अवश्य माना जाता है कि अपरिपक्व मस्तिष्कों के लिए वे नहीं हैं। पर उन्हें जीवन से अलग कर देना बहुत अधिक हानिकारक होगा। "उरोज" "अवसन" "मधुराधर चुम्बन" आदि शब्दों को देखकर ही अश्लीलता की छाप उस कृति पर लगा देना कहाँ तक उचित है? अश्लीलता की अभी तक जो परिभाषायें हुई हैं, उनमें से सबसे मान्य व उचित परिभाषा उस न्यायाधीश की है, जिससे जेम्स जोयेस की कृति "यूलेसिस" को सुन्दर और कलापूर्ण बताते हुए कहा है कि अश्लील वह है जो कि निम्न कोटि के भावों को जाग्रत करे। निम्न कोटि के भावों के अन्तर्गत प्रेम और शारीरिक प्रेम की भावनायें नहीं आती, पर आते हैं Unnatural perverse sexual ideas (अस्वाभाविक अप्राकृतिक काम-भाव)। इस दृष्टि से देखा जाय तो

"पियें अभी मधुराधर चुम्बन,
गात-गात गूँथें आलिंगन,
सुने अभी अभिलाषी अन्तर,
मृदुल उरोजों का मृदु कंपन।"

बहुत कलापूर्ण पंक्तियाँ हैं। भावातिरेक अत्यन्त सुन्दर है। **वियोग में जब प्रेमी भावातिरेक में प्रिया से एक हो जाता है, और उसका वर्णन कवि करता है, तो वह सुन्दर एवं योग्य है—पर उसी भावातिरेक को संयोग के अन्तर्गत अश्लील क्यों कहा जाय?** उनकी इच्छा है कि भावों का वर्णन हो, भावातिरेक का वर्णन हो पर अवयवों की कल्पना तथा वर्णन न हो। संयोग में अवयवों की कल्पना और उनका सामीप्य तो भावों को उत्पन्न करने व उन्हें चरम सीमा तक पहुँचाने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं, उनके बिना भावातिरेक का वर्णन करना असंभव है। जो कवि इन्हें भूल जाता है वह अधूरा है—और समय उसे भूलने में समय न लगायेगा। उपर्युक्त कविता में "उरोज" के स्थान पर "हृदय" रख दिया जाय, तो पंक्ति इस प्रकार हो जावेगी—

"सुने अभी अभिलाषी अन्तर
मृदुल हृदय का मृदु कंपन।"

और "अश्लीलता का दोष" भाग जावेगा। भला किसी भी अंग का नाम लेने से क्या होता है? मैं तो सन्त आगस्ताइन के समान कहूँगा—"What God has not been ashamed to create I shall not be ashamed to name" (जिसका ईश्वर निर्माण करने में नहीं शरमाया, उसका नाम लेने में मैं भी नहीं शरमाऊँगा) यह सिद्ध हो चुका है कि नग्नता अश्लीलता नहीं। **अश्लीलता अस्वाभाविक अप्राकृतिक काम-भावना को जागृत करनेवाली है।** और इन दोनों लेखों के अन्तर्गत दिये हुए उदाहरणों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो कि अस्वाभाविक अप्राकृतिक काम-भावनाओं को जाग्रत करे।

इन्दौर] —**राजेन्द्रकुमार**

प्रकाशकों का कर्त्तव्य

'जी०-सा०' के प्रथमांक का '**हिन्दी के कवि किधर**' और द्वितीयांक में प्रकाशित '**स्वानुभूति' और मनोवेगों का रेचन?** नामक लेख आज की काव्य-धारा को दिशा-प्रदर्शन तो कर सकेंगे पर क्या इस प्रकार की नुकीली व पैनी छुरियाँ इस प्रवृत्ति को समूल नष्ट करने में समर्थ होंगी?

कवि तो अपने 'मूड' में आकर कविता करता है, भावावेश में उसे स्वयं ही पता नहीं रहता कि म

क्यों व्यक्त कर रहा हूँ और फिर उसे तो गोस्वामी तुलसीदास के

'निज कवित्त केहि लाग न नीका
सरस होय अथवा अति फीका'

के अनुसार अपनी कृति में अभूतपूर्व आनन्द मिला ही करेगा, दूसरों की दृष्टि में चाहे उसका कोई मूल्य हो, या न हो।

कवि की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसकी कविता जनता के सामने आये, जिससे वह भी उसके रस में प्लावित हो कुछ 'सुख' का अनुभव करे। पर उसकी यह इच्छा पूर्ण करता कौन है? प्रकाशक ही न?

कवियों को यदि दोषी माना जाय तो प्रकाशकों को उससे भी ज्यादा दोषी क्यों न समझा जाय? उन्होंने तो उसकी प्रशंसा की और निरन्तर उसका विज्ञापन किया। स्पष्ट शब्दों में कहें तो उन्होंने उस साहित्यकार को प्रोत्साहन तथा पुरस्कार दिया। और फिर आज की इस शृंगार-धारा को रोकना ही है, तो वह कविताओं के उदाहरण देने से नहीं रुक सकती। उदाहरणों से तो दिन-दूना रात-चौगुना प्रचार बढ़ेगा। उनसे अपरिचित भी परिचित होंगे, वे भी वह निकलेंगे। मेरी राय में प्रकाशकों के हाथ में ही इस धारा को रोकने की सच्ची कुंजी है।

ऐसी परिस्थिति में प्रकाशकों को सावधान होना चाहिए। यदि कवि अपने कर्त्तव्य को भूल गया है, तो क्या प्रकाशक को भी इधर-उधर भटक जाना चाहिए? यदि वह भटकता है तो बहुत बड़ी गलती करता है, क्योंकि प्रकाशक कवि और पाठकों में मध्यस्थ है। उसकी भूल से पाठकों को जितना नुकसान होगा उसकी कोई सीमा है? इसलिए प्रकाशकों का कर्त्तव्य है कि वे अश्लील शृंगार के विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित न करें। इसके लिए उन्हें यदि, पाठकों के हित में, कवियों या लेखकों को नाराज भी करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं। वे जो कुछ भी प्रकाशित करें, उसका योग्य, अनुभवी व विद्वानों से जरूर सम्पादन करा लें। यदि प्रकाशित पुस्तकें विद्वानों की दृष्टि से समाज-जीवन के लिए हानिकार पतनकारी ठहरती हैं तो वे लौटा दी जाँ उनको अपनी स्पष्ट राय दे दी जाय। समझ में इस सुझाव को कोई भी हिन्दी- अस्वीकार न करेगा।

—प्र० प

कोकशास्त्र

दो देवियाँ आईं। कहने लगीं—'को दो।' मेरे मन में बिजली-सी दौड़ गई। गया मैं!

दोनों पंजाबिन थीं; अक्सर अच्छी खरीदने आया करती थीं। उम्र में क्रम और २८ की होंगी। सुन्दर तो थी हीं। अप आधुनिक सभ्यता से लबरेज़। मोटर में आई थीं, इसलिये भले और पैसेवाले घ मालूम होती थीं।

मैंने सोचा कैसे इन्हें 'कोकशास्त्र' दूं? में न जाने कैसी गुमसुमी-सी छा गई। दोनों नहीं मानीं। आग्रहपूर्वक उन्होंने वे ही दुहराये—"कोकशास्त्र दीजिए।" एक ज कोकशास्त्र उठाकर मैंने उन्हें दे दिया। उसमें उन्हें चित्र न मिले। गंदे आसनों का नहीं मिला। कहने लगीं—"गुप्त को चाहिए।" मैंने कहा—"गुप्त-उप्त मैं कुछ रखता। यही है।" पर वे ऐसे माननेवाली थीं? पीछे पड़ गईं—"आपके पास है। छुपाइए मत। डरिए मत...",

मन में जितना भी संकोच, शर्म और इस नाते था, वह सब मैंने दर्शाया। पर वे कायल न थीं। संकोच को तुड़ाकर बर मेरी शर्म को उन्होंने छीन लिया। व्यापार करने से वास्ता था। ऐसी पुस्त लाभ क्या कुछ कम होता है? मैंने जो कोकशास्त्र' था उसे बहाना बना-बनू निका लाकर उनके आगे रख दिया। उन्होंने खोला। एक-एक पन्ना गौर से देखने लगीं। सचित्र था। खुश हुईं और मैंने देखा कि मुख पर के भाव कुछ बदल रहे हैं। सुखी जा रहे हैं।

मैं लज्जा के मारे गड़ा जा रहा था। ग्लानि मेरे हृदय में नाच रही थी। मन भीषण असमंजस में पड़ा हुआ था कि क्या यही जीवन है ?

मैं उनके चेहरे को नतमस्तक पर जिज्ञासा भाव से तिरछी निगाह से देखता जाता था; और मुझे ऐसा लगा कि उस समय उन्होंने लाज-संकोच को छोड़ दिया था। पर मुझे शर्म सता रही थी। दिल कह रहा था कि "यदि तुझे शर्म है तो तू आँखें बंद कर ले या फिर इन देवियों के सामने से हट जा"—पर "लोभ पाप का मूल है"। चाँदी-ताँबे के टुकड़े किसे अच्छे नहीं लगते ?

उन्होंने मुझसे पूछा—"ऐसी पुस्तकें और भी हैं ?" मैं दब-सा गया। क्या उत्तर दूँ ? कुछ पसीने में भीगता-सा भी जाता था। चाहा कि कह दूँ—"मेरे पास कुछ नहीं है।" पर फिर भी लोभ ही सवार निकला। और मैंने ऐसी-वैसी गंदी-से-गंदी और अत्यन्त उत्तेजक १०–२० पुस्तकें उनके आगे पटक दीं। प्रत्येक की तारीफ़ भी करने लगा। जो जितनी ज्यादा उत्तेजक होती, उसका विषय उतनी ही स्पष्टता से पर जरा दबे भाव से कुछ-कुछ समझाता। आखिर उन्होंने क़रीब २१ रु० की पुस्तकें लीं, जिनमें क़रीब १५ रु० मुझे फ़ायदे के मिले होंगे।

ऊपर लिखी घटना से मुझे सदा एक बात का ख़याल बना रहता है। काशी में होनेवाले पिछले 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के अवसर पर पुस्तक-व्यवसायी-सम्मेलन में मैंने अपने ये विचार आंशिकरूप से ज़ाहिर भी किये थे। क्या हिन्दी के प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं का ध्यान इस ओर नहीं खेंचा जा सकता ? पुस्तक-प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता की ज़िम्मेदारी मैं किसी भी एक समर्थ लेखक और संपादक से कम नहीं समझता। उसे साहित्यिकों की श्रेणी में ही लेना चाहता हूँ। क्योंकि बिना साहित्यिक हुए, कोई भी समर्थ प्रकाशक या पुस्तक-विक्रेता अपने धंधे में सफलतापूर्वक कमाई नहीं कर सकता। और साहित्यिक का उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वह 'सत्यं, शिवं सुन्दरम्' के भाव को सदा लक्ष्य में रक्खे।

राष्ट्र की आत्मा प्रत्येक बाल-बच्चे पर निर्भर है। हमारी मातायें, पुत्रियाँ और बहिनें जगदुद्धारिणी शक्तियाँ हैं। उनके यौवन को वे यों क्यों गवाँ दें ? उन्हें ठीक मार्ग-निर्देश किया जाय, ताकि वे भावी के युगनिर्माता निर्माण कर सकें। जब मैं देखता हूँ,—भले घर की औरतें इस प्रकार गंदी और ज़लालतभरी किताबों को पढ़कर अपनी यौवनश्री को लजाती हैं; अपनी संतान पर उसका क्या असर होगा, यह वे नहीं देखतीं, तो बड़ा रंज होता है। यह हमारा दूषण हमें ही खा जायगा। राष्ट्र की आत्मा में घुन लग जायगा और वह नष्ट हो जायगी।

पुस्तक-प्रकाशकों और विक्रेताओं ने अपने पाप को नहीं समझा है। थोड़े-से चाँदी के टुकड़ों के लिए वे अपने हृदय को बेचकर खा जाना चाहते हैं। पर यह नहीं देखते कि उनका नौनिहाल बच्चा उन्हीं की दूकान में से चुरा-चुराकर और आँखें बचाकर ऐसी गंदी पुस्तकें पढ़ता है और अपने जीवन को गंदे उपायों से इस योग्य बना लेता है कि वह कहीं का नहीं रहता। सोचिए तो सही, जिस बच्चे को आप ऊँची शिक्षा देकर, अपना हृदय समझकर राष्ट्र का जवाहर बनाने की सोच रहे हैं, वहाँ आपके १००–५० रु० के सालाना लोभ ने उसके जीवन को नष्ट कर दिया है ! मुझे तो तब विचार आता है कि जब एक पुस्तक-विक्रेता किसी स्कूल के विद्यार्थी को ऐसी किताबें पढ़ने का चुपके-चुपके चस्का लगाता है। पर यदि उससे कहा जाय कि "तुम अपने ही बच्चे को यह किताब पढ़ने को तो दो", तो वह बुरी तरह आपको खाने को दौड़ेगा।

पुस्तक-विक्रेताओं के लिए इससे बढ़कर कलंक का टीका और क्या हो सकता है ? सुबह ईश्वर-भजन कर आनेवाले और चर्खा कातकर खादी पहननेवाले साहित्यिक पुस्तक-विक्रेताओं और प्रकाशकों ने भी गंदे कोकशास्त्र और अश्लील किताबें बेचने में अपनी जात को नहीं

समझा। छोटे-मोटे पुस्तक-विक्रेताओं को जाने दें, तो भी बड़ों की भी यही दशा है। हमारा 'पाप' इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

व्यावहारिक दृष्टि से वे यह नहीं समझते कि राष्ट्र के जीवन के घाटे में उनका भी घाटा है और राष्ट्र के जीवन के फायदे में उनका भी फायदा है। आज तो मैं चाहूँगा कि हिन्दी के प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता इस लत को छोड़ें। जो कुछ उनके यहाँ ऐसा स्टाक मौजूद है, उसे तुरन्त बेचना बंद करदें। नया तो मँगावें ही नहीं। ग्राहक अश्लील किताबें माँगे, उसे नसीहत बल्कि यदि संभव हो तो यहाँ तक करें कि अ किताबों के ढेर को पब्लिक सभा में आग लगा दे

राष्ट्र के कल्याण के लिए एक सुकर यह भी है।

लेखक खुद पुस्तक-विक्रेता है और उपर्युक्त पाप में ग्रस्त है। लेकिन उससे छुट पाने की कोशिश में है। ——भानुकुमार

प्रगतिशीलता क्या है?

प्रगति का मैं 'आज से आगे क़दम' इतना ही अर्थ नहीं करता, बल्कि करता हूँ—'सत्पथ की ओर आगे का क़दम' जैसे चोरी करने की कला में हिन्दुस्तान के चोरों की अपेक्षा, सुनते हैं, कि यूरोप-अमेरीका के डाकू ज्यादा आगे बढ़े हुए हैं। वहाँ के तौर-तरीक़े यदि हिन्दुस्तान में जारी किये जायँ तो क्या उसे चोर-कला की प्रगति कहेंगे?

इसका यह अर्थ हुआ——'हर किसी दिशा में आगे कदम रखने' को प्रगति नहीं कह सकते; बल्कि सत्पथ की ओर जो प्रगति हो उसीको वास्तविक प्रगति समझना चाहिए और इसके विपरीत प्रत्याघात का अर्थ 'सत्पथ की ओर प्रगति में विघ्न डालनेवाला' या 'असत्पथ में आगे का कदम' समझना चाहिए।

अब सत्पथ क्या है,——इसके धात्वर्थ के अनुसार 'सच्चाई और अच्छाई का पथ' है। केवल सत्य दिखाई देनेवाली घटना जो जीवन की वास्तविकता प्रकट करती है सब सत् नहीं है। इस सत्य को भलाई की कसौटी पर भी खरा उतरना चाहिए। अर्थात् सत्य का प्रकाशन, प्रकाशक की, सामनेवाली की और सारे समाज की भलाई का पोषक तथा मनोजय अथवा आत्म-संयम के संस्कार, आकांक्षा और बल का उत्पादक होना चाहिए। चुगलखोर सच कहने पर भी 'सत्यवादी' की ख्याति नहीं पा सकता। उसी प्रकार जीवन के गन्दे सत्यों का प्रकाशन हमेशा 'सत्' नहीं कहा जा सकता।

प्रगतिशीलता का एक और पहलू भी मनुष्य भूतकाल के आईने में प्रतिबिम्ब की भविष्य-काल का दर्शन करता है। इससे जैसे प्र बिम्ब में दिशा-भ्रम होता है, वैसे ही भूतकाल आदर्श को हमें लौटना है, ऐसा काल-भ्रम हो ज है। सच पूछिए तो भूतकाल ज्यों-का-त्यों लौटा नहीं जा सकता। बच्चे का चेहरा या स्वभाव दादा या दादी की तरह लगता है, इससे बहु माँ-बाप यह कहते हैं, मानों दादा और दादी ही फिर से अवतार हुआ है। पर सच तो यह कि वही स्वभाव और वही मुंह ज्यों-का-त्यों ही नहीं सकता और मिलता-जुलता होने पर भी नई परिस्थिति में नये ढंग से ही प्रकट होते हैं

सोवियट ग्राम-रचना अति प्राचीन काल गोत्रों के यूथ जैसी दिखाई दे, या गांधीजी वर्ण-व्यवस्था या उद्योग-योजना मध्यका दिखाई दे, तो वह सब ऊपरी सा ही। उसका रंग एक-सा हो तो भी उसका कलेवर और दोनों नये होंगे। इस तरह ऊपर से प्रत्याघ दिखाई देनेवाला स्वरूप भी वास्तव में प्रग शील हो सकता है। यहाँ ध्येय की अपेक्षा सा अथवा पद्धति ही अधिक जाँचने योग्य मा होती है। यदि वह मेरी व्याख्या के अनुसर प्रग शील हो तो प्रत्याघाती दिखाई देनेवाला ध्येय प्रगतिशील है और यदि प्रत्याघाती हो तो प्र रूप में उपस्थित होने पर भी वह प्रत्याघा ही है।

—किशोरलाल घ० मश्रुवा

सहयोगियों में से

बेगम सीता !!

बिहार में डॉ० सैयद महमूद के नाम पर एक 'महमूद सीरीज' निकलती है। उसकी भाषा अजीब खिचड़ी है। प्रकाशक ने किसी से कह दिया कि महमूद साहब ऐसी ही हिन्दी चाहते हैं। उसकी एक किताब में श्रीरामचन्द्रजी की कहानी है। उसके सिलसिले में काका कालेलकर ने 'सबकी बोली' में एक मजेदार घटना लिखी है। वे लिखते हैं कि उस कहानी में——

"वशिष्ठ को बादशाह दशरथ के बच्चों का अुस्ताद बताया गया। दशरथ बादशाह के तीन बेगमें थीं, अैसा भी बताया गया। लोग बिगड़ गये। कहने लगे, अगर दशरथ बादशाह हैं तो राम भी बादशाह हुअे, और सीता भी बेगम बन जायगी। हिन्दू-धर्म पर कितना बड़ा संकट आ गया! सारे देश में हंगामा मच गया कि सीता राम की बेगम बनाअी गअी। हिन्दू-मात्र को अिससे सदमा पहुँचे, यह स्वाभाविक ही था।

जहाँ कहीं भी नया प्रयोग किया जाता है, भूलें हो ही जाती हैं। अगर अुत्तर भारत के हिन्दू लोगों को यह महमूदी छाप की हिन्दुस्तानी आमतौर पर पसन्द होती, तो सिर्फ अेक पाठ पर वे अितना अैतराज़ जाहिर न करते। किन्तु अुन्हें तो हिन्दुस्तानी की बला ही टालनी थी। अिसलिअे अुन्होंने अपना सारा विरोध अेक सूत्र में लाने के लिअे 'बेगम सीता' का नारा लगाना पसंद किया।

लोगों ने मान लिया कि बेगम सीता डॉ० महमूद की ही सुझाअी हुअी चीज़ है। अुनका विरोध होने लगा। अितना होकर भी क्या बिहार के मुसलमान डॉ० महमूद से ख़ुश थे? अुन्होंने तो हल्ला मचाया ही कि डॉ० महमूद आर्यसमाजी हो गये हैं। वे मुसलमानों को गोमूत्र का तिलक लगाना चाहते हैं। डॉ० महमूद ने सोचा कि दोनों तरफ़ से गालियाँ बरस रही हैं। कहाँ तक लोगों को समझाता फिरूँ कि आप जैसा कहते हैं वैसा गुनाह मैंने किया ही नहीं। वे तो अन्त तक चुप ही रहे।

अिधर प्रकाशक ने हल्ला मचाया कि हमारी किसी भी किताब में बेगम सीता का नाम-निशान हो तो बताअिअे। आज तक हमारे यहाँ युक्त-प्रांत के प्रकाशकों की ही किताबें चलती थीं। अब बिहार का बाज़ार हमारे हाथ में आ गया है, अिसलिअे युक्त-प्रान्त के प्रकाशक हमसे जल रहे हैं, अिसलिअे 'बेगम सीता' की बातें अुन्होंने चलायी हैं। हम चुनौती देते हैं कि हमारी किसी भी किताब में 'बेगम सीता' का कोअी ज़िक्र बता दे। देखा तो सचमुच कहीं भी 'बेगम सीता' न थी।

अिधर के लोग कहने लगे, अजी वह थी। लेकिन, हमने शोर मचाया तब बाजार की सब प्रतियाँ वापस खींचकर जला दी गअीं, और अब कहने लगे कि अैसा कुछ नहीं था।

अब हिन्दू-संस्कृति और अिसलामी तमद्दुन की बात अेक ओर रही, और युक्त-प्रान्त और बिहार के परस्पर आक्रमण का झगड़ा शुरू हुआ। पाठक यह न समझें कि हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का झगड़ा शान्त हुआ। नहीं; वह तो बिहार और युक्तप्रान्त से बाहर निकलकर पंजाब और महाराष्ट्र तक जा पहुँचा। जहाँ कोई राष्ट्रभाषा का प्रचार करता है या हिन्दुस्तानी का नाम लेता है, अुसके सामने 'बेगम सीता' की तोप आज भी दागी जाती है।

अित्तफ़ाक़ से डॉ० महमूद साहब से मिलना हुआ हमने कहा——डॉक्टर साहब, आपने यह क्या किया? हमारा सारा काम आपने चौपट कर दिया। क्या आपको यह पसन्द है, कि सीतादेवी को हम 'बेगम सीता' कहें? उन्होंने कहा—"मैंने ये सब बातें सुनी हैं। लेकिन अभी तक वह किताब पढ़ी नहीं है, जिसमें वशिष्ठ 'मौलाना' बनाये गय हैं और सीता 'बेगम'। अगर मेरे देखने में वह आता, तो मैं तुरन्त अुसे बन्द कर

देता। मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है कि वशिष्ठ को मौलाना कहा जाय या सीतामाओी को बेगम कहा जाय।" मेरे मुँह से निकला "काश! आप तुरन्त अपनी ओर से अैसा ही अेक स्टेटमेण्ट ज़ाहिर कर देते। आपने चुप्पी पकड़ ली और अिससे हिन्दुस्तानी की हमारी सारी हलचल को धक्का पहुँचा। अब भी अगर हो सके, तो आप अेक स्टेटमेण्ट निकालें। और अगर आपको सीता को बेगम कहना ही पसन्द है, तो वैसा भी साफ़-साफ़ कहें। किन्तु यह आपकी चुप्पी अच्छी नहीं है।" वे कहने लगे, "मैंने तो तुरन्त महात्माजी को अेक ख़त लिखा था, कि मुझे यह सब पसन्द नहीं है।"

"महात्माजी को लिखने से क्या हुआ? आपको अपनी सफ़ाअी महात्माजी को थोड़े ही देनी थी? जैसी कुछ भूल हो गअी, तुरन्त अुसको स्वीकार कर लेने से मामला बिगड़ने से बच जाता है।"

ख़ैर, गुजरात में किसी सभा में मुझसे भी पूछा गया कि क्या आप भी सीता को 'बेगम' कहना पसन्द करते हैं? मैंने कहा, "मैं सीता को कैसे 'बेगम' कह सकता हूँ। किन्तु कोअी मुसलमान सीता को राम की बेगम कहे, तो मैं बिगड़ नहीं बैठूँगा। क्या हम पिछले सौ-डेढ़सौ बरसों से अंग्रेज़ी रीडरों में रोज़ 'Queen Sita' पढ़ते नहीं चले आ रहे हैं?"

बस, मैं भी अुसी गुनाह में शरीक किया गया, और मेरे ख़िलाफ़ भी हो-हल्ला शुरू हो गया।

जब हम अिस शंका-युग में अेकता के लिअे कोशिश कर रहे हैं तब बहुत सँभलकर चलना होगा। अेक भी भूल हुअी तो बरसों की मेहनत बरबाद हो जायगी।"

साहित्य और हिंदू-मुस्लिम-एकता

इस युग में भारत के सामने हिन्दू-मुस्लिम-एकता का प्रश्न बहुत जटिल है। क्या कला और साहित्य इस प्रश्न को सुलझा सकते हैं?

× × ×

साहित्यकार अपने दूसरे बन्धु राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, धर्मगुरु और समाज-सुधारक से समाज के अधिक नजदीक है। ये लोग तो पार्थिव रू में मंच पर आकर जनता के मन और मस्तिष्क को अपील करते हैं। उनका विरोध भी होता है पर कलाकार विरोध की भावना से अछूता प्रकाशन की चिन्ताओं से मुक्त, अपने अथांग आत्मा के आनन्द में मग्न, कहीं निबिड़ अन्धकार में ज्योति के अमर और अमिट चित्र खींचता रहता है। वे आत्मा के चित्र हैं। आत्मा एक है तब वे मानवता के नाते सारी सृष्टि के लिए एक-सा संदेश देते हैं। आत्मा का संदेश सत्य, शिव और सुन्दर का संदेश है।

× × ×

कलाकार चाहे तो इस प्रश्न को सुलझा सकता है। उसे प्रॉपेगैण्डा करने की ज़रूरत नहीं है। उसे कोलाहल में आकर अपना स्वर ऊँचा करके मानव-एकता के गीत गाने की भी ज़रूरत नहीं है। उसे तो केवल जीवन के लिए कला की सृष्टि करने की ज़रूरत है। 'सर्वजीवनहिताय' या 'सर्वजन-हिताय' एक ही बात है।

× × ×

मानव काल, प्रकृति, सभ्यता इन सब के भेद के ऊपर उठकर दो देशों के साहित्यकारों की रचना में समता देख सकता है। इन सारे भेदों के रहते हुए भी जो सन्देश या कलाकार का कथन है, वह बहुत कुछ समान है; क्योंकि मानव मूलतः एक है। भले ही मरने के बाद वह अलग-अलग स्वर्ग में अलग-अलग परमात्मा के पास जावे, परन्तु जबतक जीता है उसकी छाती में एक ही प्रकार का हृदय स्पंदन करता रहता है। उन्हें समान भूख-प्यास लगती है; वे सब इन्द्रियों से समान काम लेते हैं। भाषा-प्रश्न की जटिलता बाधक नहीं है, जटिलता तो यह साम्प्रदायिकता है। ऐसे अनेक कवि, लेखक और कलाकार हुए हैं, जिन्होंने मानव-मानव के बीच में निरन्तर खाई खोदने का प्रयत्न किया है। वास्तव में तो वह कलाकार कहलाने के योग्य नहीं है। हमें उनकी उपेक्षा करनी होगी। उपेक्षा घृणा से नहीं होती।

उपेक्षा तो उस निर्जीव कलाकार के स्थान पर जीवन-प्राणमय साहित्य उपस्थित करने पर ही हो सकती है। यहीं पर तो साहित्य-मन्दिर के आलोचक की ज़रूरत होती है।

भारत में हिन्दू-मुसलमान दोनों रहते हैं, परन्तु मुसलमानों में एक विचित्र प्रवृत्ति है। वह अपने को भारतीय कहते शर्माते हैं, परन्तु भारत के हिन्दू हिन्दू हैं और मुसलमान मुसलमान हैं। वे भारतीय या हिन्दुस्तानी हैं ही नहीं। अचरज तो यह है कि भारत का मुसलमान यह कभी भी मानने को तैयार नहीं कि तथागत बुद्ध उसके पूर्वज थे, यद्यपि उसकी नसों में बुद्ध और बौद्धों का रक्त बह रहा है। जिस प्रकार ताजमहल पर प्रत्येक भारतीय को गर्व करने का हक़ है, उसी प्रकार प्रत्येक हिन्दुस्तानी को चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, गंगा की पवित्रता पर भी गर्व करने का हक़ है और उन्हें हक़ है प्राचीन भारतीय दर्शन और ज्योतिष पर नाज़ करने का। मिश्र के मुसलमान मिश्र की प्राचीन सभ्यता और पिरामिड्स पर गर्व करते हैं। रज़ाशाह पहलवी ने ईरान को प्राचीन संस्कृति का मान करने के लिए बम्बई से पारसी महापुरोहित को आमन्त्रित किया था। महमूद गज़नवी के अनुरोध करने पर फिरदौसी ने महाकाव्य 'शाहनामा' लिखा था, जिसकी प्रसिद्ध कहानी इस्लामी ज़माने से पहले की है।

यह एक छोटी सी बात है, पर इसी के मूल में प्रश्न है। विरोध की इस भावना को मिटाने के लिए ऐसा साहित्य पैदा होना चाहिए, जो भारतीयों को बुद्ध, शंकर, अशोक और अकबर पर एक-सा अभिमान करना सिखावे। जो महान मस्जिदों की मीनारों और सौन्दर्य से पूर्ण मन्दिरों के कलशों को एक ही दृष्टि से देखने को विवश करे। यह कहा जा चूका है कि हिन्दू-मुसलमान के झगड़े हिन्दू की मुसलमान के प्रति घृणा के कारण नहीं है। यह तो मानव की बर्बरता का प्रदर्शन है। इसे दूर करने के लिए अबतक की विषमता को भूल जाना होगा। मानव मानव के हाथ का छुआ न खावे, यह कल्पना भी चौंका देनेवाली है। पर ऐसा होता है और अभिमान के साथ होता है। हम इसे कब तक सहते रहेंगे? अचरज तो यह है कि जब से हमें इतिहास मिला है, इन बातों का विरोध होता रहता है, पर ये बात मिट न सकीं। कारण यही था कि उन आन्दोलनों के मूल में मानवमात्र की एकता की भावना नहीं थी। जो एकता थी, वह दूसरी एकता का विरोध करने के लिए थी। इसी कारण बर्बरता की मूल प्रवृत्ति नष्ट न हुई।

× × ×

अब कलाविद् चित्रकार, गायक, कवि, गल्पकार और निबन्ध-लेखक इन सब को अपना दायित्व समझना होगा कि वे सृष्टा हैं और यह कि उनकी तूलिका में समस्त मानव जाति के जीवन-मरण का रहस्य भरा है। चित्र, कविता, गल्प, उपन्यास, नाटक सब जीवन के चित्र हैं। वे जीवन का प्रदर्शन करते हैं और जीवन की आलोचना करते हैं। कलाकार इनकी रचना करने में स्वतन्त्र है। प्रोत्साहन भी उसे अन्दर से लेना है, परन्तु वह उन्हें लोक-कल्याण की भावना से मुक्त नहीं कर सकता।

× × ×

कलाकार के अतिरिक्त सम्पादक, समालोचक और प्रकाशक का दायित्व भी कम नहीं है। कलाकार नेत्र मूंदकर तूलिका चला सकता है। वह दिव्य चक्षुधारी और सृष्टा है, परन्तु यदि इन लोगों ने भी आँखें मींच लीं, तो यह अपना ही सत्यानाश नहीं करेंगे, बल्कि अपने साथ जनता को भी ले डूबेंगे। कलाकार लोक के प्रोत्साहन को इन्हीं के द्वारा प्राप्त कर सकता है।

समालोचक साहित्य-मन्दिर का पुजारी है। उसे मन्दिर में उन्हीं कला-कृतियों को सजाना होगा जो जीवन शक्ति को बढ़ा सकें। प्रकाशक और सम्पादक को साहित्य-मन्दिर की इन कृतियों को जनसाधारण के लिए सुलभ बना देना होगा। जिससे वे परस्पर की विषमता को छोड़कर एकता का मार्ग ग्रहण करें। सम्पादक को तो

बहुत ही सतर्क रहने की ज़रूरत है। उसीके पत्र के द्वारा जनता जगत् को देख पाती है। जनता की बुद्धि को समाचारपत्र भोजन ही नहीं देते बल्कि उसे वह शक्ति भी देते हैं जो साम्राज्य को बना और बिगाड़ सकती है।

साहित्यकार का प्रभाव कभी भी शीघ्र फल नहीं देता। बहुधा उसकी साधना और तपस्या युगों के बाद फल लाती है। लेकिन इससे डरकर वह रुकता नहीं। वह कभी थकता भी नहीं, उसे परिणाम की चिन्ता भी नहीं होती। लेकिन उसका परिणाम होता है। वह परिणाम क्रान्तिकारी होता है और चिरस्थायी होता है, क्योंकि संस्कृति की क्रान्ति शान्त होती है। वह परिणाम संस्कार यानी संस्कृति का रूप लेकर रक्त के कण-कण में बस जाता है।

'हंस' से]

—श्री वि

जीवन-दिशा

क्या कभी तुम्हें जीवन में दुखद आघातों का अनुभव हुआ है ? जीवन-संवेदना में से कोई प्रश्न तुम्हारे आगे आकर खड़ा होता है, जिसका हल तुम्हें सूझता ही न हो ? 'यह क्या है ?' 'इसका क्या अर्थ ?' जीवन क्या है ?' 'मृत्यु किसे कहते हैं ?' इस प्रकार के सनातन प्रश्नों की दीवार पर तुमने माथा पटका है ? और परिणाम-स्वरूप निरुत्साह और निराशा की खाई में गिरे हो ? मानव शक्तिहीन पामर है, वह भला जान ही क्या सकता है ? इस प्रकार की शंकाशीलता और अश्रद्धा की अवधि में से गुज़रे हो न ?

पर कहीं यह न समझ बैठना कि यह अनुभूति ही अन्तिम है। ऐसी मर्मवेधक संवेदना का भी हल है, अन्तर की गहराइयों में से आनेवाली श्रद्धा की पुकार सुनो। वह कह रही है कि इस बात का भी जीवन में कुछ-न-कुछ मूल्य अवश्य है। जबतक मानव-जीवन के मूल्यांकन की पद्धति में समूल परिवर्तन नहीं हो जाता, तबतक तो इसकी चाबी हाथ आती दिखाई नहीं देती। कोई दिव्य प्रणयी जीवन की इस महादुखद यात्रा की अन्तिम सीमा पर, शायद इसके उद्देश्य रूप में बैठा अनन्त काल से हमारी राह देख रहा है। उसकी एक चितवन ही हमारी अनन्तकाल की पीड़ाओं और वेदनाओं को भुलकर हमें आनन्द-विभोर कर देने के लिए काफ़ी है। वहाँ मोह कैसा, और शोक कहाँ ? उसकी एक-एक चितवन में वह ज्ञान-ज्योति भरी है कि उसे निहारते ही हमें सोचना पड़ता है कि क्या सचमुच ऐसे-ऐसे कारण भी हमें दुखी कर लिया करते थे ?

यह परम प्रेम-प्रेरित, ज्ञानज्योतिपूर्ण, करुणामय दिव्य-शक्ति हमारे ऊपर अपना दिव्य साम्राज्य तभी फैलाती है, जब स्वयं हमें उसकी चाह हो। जबतक हम स्वेच्छापूर्वक उसकी ओर नहीं जाते, तब-तक वह अपनी सर्वशक्तिमत्ता के बल हमसे आज्ञापालन नहीं करवाती, जबतक हम अपने आप-अपना सबकुछ उसके चरणों पर न्यौछावर नहीं कर देते—अपना अन्तर और बाह्य उसे ही सौंप नहीं देते—तबतक वह दिव्य प्रणयी हमारे अन्तर के द्वार खड़ा प्रतीक्षा किये जाता है। उसके अटूट धैर्य और अपार करुणा में हमारे भूतकाल का कोई लेखा है ही नहीं। उसकी प्रेमभरी दृष्टि के आगे हमारा विषाद और हमारा क्रोध, हमारा सुख और हमारे दुख कैसे हेच लगते हैं !

जीवन की संवेदनाओं में से हम उसकी ओर को चल पड़ें तो कैसा अहोभाग्य ! कोई हँसता-खेलता उस ओर जा रहा है, कोई निश्चयपूर्वक कदम बढ़ा रहा है, तो किसी ने व्रत लेकर यात्रा शुरू कर दी है। और हाँ, कितने सारे रोते-धोते, नयनों में नींद लिये उसी राह पर चलते चले जा रहे हैं। सभी मार्ग उसीके हैं न ?

—अम्बालाल पुराणी

जीवन-समस्यायें

[जब मनुष्य जीवन पर—जीवन-सुधार व उन्नति पर—विचार करने लगत। है और जीवन की साधना में प्रवृत्त होता है, तब कई समस्यायें ऐसी आ उपस्थित होती हैं, जिनका हल मिलने तक वह बड़ी दुविधा और पशोपेश में रहता है; आगे का मार्ग नहीं सूझता। ऐसी कुछ समस्यायें मेरे पास आई हैं और पाठक चाहते हैं कि उन्हें सुलझाया जाय। उन्हें सहायता पहुँचाने की दृष्टि से यह स्तम्भ खोला गया है। ह० उ०]

(१) एक मित्र पूछते हैं––"मनुष्य को अपनी शक्ति और समय ख़ुद के विकास में लगाना चाहिए अथवा 'समाज' के विकास में? यदि केवल ख़ुद के विकास में ही आदमी तल्लीन रहे तो फिर सामाजिक और राजनैतिक बुराइयाँ कैसे दूर होंगी? यदि व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह के विकास में मनुष्य को प्रयत्न करने की ज़रूरत हो, तो उसमें कितना समय व्यक्तिगत विकास में और कितना सामाजिक विकास में लगाया जावे? इस विषय का आप 'जी० सा०' में उत्तर देने की कृपा करें।"

असल में व्यक्ति व समाज एक दूसरे से भिन्न या पृथक् नहीं हैं। व्यक्ति का विकास समाज—बिन्दु से सिन्धु—और समाज का केन्द्र या घटक व्यक्ति––सिन्धु के बिन्दु–– हैं। समाज व्यक्ति की परिधि व व्यक्ति समाज का केन्द्र है। अतएव दोनों के स्वार्थ या हित या विकास एक-दूसरे से जुदा नहीं है। विकसित समाज में व्यक्ति का विकास बहुत आसानी से हो सकता है। इसी तरह विकसित व्यक्तियों के समूह का ही नाम विकसित समाज है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति का विकास होगा, त्यों-त्यों वह समाज बनता जायगा––उसके स्वार्थ व हित अधिकाधिक सामाजिक होते जायँगे। जब व्यक्ति अपने सुख-दुःख को और अपने कुटुंबियों के सुख-दुःख को एक-सा समझने लगता है, तब वह व्यक्ति न रहा, कुटुम्ब बन गया। इसी तरह जब वह समाज के सुख-दुःख में अपने सुख-दुःख की एकता का अनुभव करने लगता है, तब वह सामाजिक मनुष्य या समाज बन गया। अतएव मनुष्य चाहे व्यक्ति के विकास से शुरू करे चाहे समाज के विकास से, यदि अपने इरादे में सच्चा व उद्योग में पक्का है तो दोनों का परिणाम एक ही होगा। पहले यदि समाज या देश-सेवा में लग गया तो वह देख लेगा कि अपने व्यक्तिगत गुणों का व शक्तियों का विकास हुए बिना वह समाज तथा देश की अच्छी तरह सेवा नहीं कर सकता। इसी तरह यदि व्यक्तिगत स्वार्थ से शुरू करेगा तो भी देख लेगा कि वह अपने कुटुम्बियों, पड़ौसियों आदि के सुख-स्वार्थ या विकास का उद्योग बिना नहीं सध सकता।

किसमें कितना समय लगाया जाय, यह व्यक्ति की अपनी परिस्थिति अर्थात् देश, काल, पात्र के विचार पर अवलम्बित रहेगा। इसका कोई सामान्य नियम नहीं बनाया या बताया जा सकता।

(२) एक साथी ने अपने एक मित्र का पत्र भेजा है—"भाई, इस साल मुझे काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ा।...को...आदमियों ने मिलकर पिताजी पर लाठियों से हमला किया। वह सुबह तालाब पर कुल्ला कर रहे थे। उनके बदन पर करीब २०-२२ लाठियाँ लगीं, सिर पर २, बाकी हाथों और पैरों पर।······मुकदमा चल रहा है। अब हम लोगों का इरादा बदला लेने का है। हम उन्हें बतला देंगे कि जैसे का फल तैसा होता है।" साथी पूछते हैं––"एक अहिंसक सेना का रँगरूट होने के नाते मुझे क्या उत्तर देना चाहिए? नवयुवकों के नये ख़ून में यह बात खास तौर से पाई जाती है कि वह अपने प्रिय पर अत्याचार होते देखकर अपने को काबू में नहीं रख सकता। पकी उम्र का कोई विचारवान

व्यक्ति उस स्थान पर हो तो शायद वह अपने आपको रोक भी सके। इस मानव-स्वभाव को मद्देनज़र रखके आप इस प्रश्न का उत्तर दें।"

किसी पर भी अत्याचार हो तो प्रत्येक भले आदमी को वह असह्य होना चाहिए—चाहे वह हिंसावादी हो, या अहिंसावादी। प्रश्न-कर्ता अहिंसक सेना के रँगरूट हैं, इसलिए वे बदला लेने की तो सलाह दे ही नहीं सकते, भले ही उनके नवीन खून पर कितना ही जोर पड़े। जब एक बार सोच-समझकर हमने एक मार्ग पकड़ लिया, तो हमें ऐसी दुर्घटनाओं का रास्ता अपने सिद्धान्त और आदर्श के अनुकूल ही खोजना चाहिए। इसका मूल कारण ढूँढना चाहिए कि हमलाइयों ने ऐसा हमला क्यों किया? आक्रमिक व्यक्ति क्या सचमुच ही बेकुसूर हैं? फिर जब मुकद्दमा चल ही रहा है तो और बदला लेने की क्या ज़रूरत? मुकदमे में उन्हें उनके अपराध का दण्ड मिलेगा ही। बदला लेने से हमलाइयों को चोट भले ही पहुँचे, आक्रमित व्यक्ति की चोट उससे कैसे अच्छी हो जायगी? यदि हमलाइयों को नसीहत देना हो, या उनका सुधार करना हो तो उसका सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि यदि आक्रमित व्यक्ति का कोई कुसूर पाया जाय तो पहले उसका परिमार्जन कराया जाय। इससे हमलाइयों को अपने कुकृत्य पर विचार करने और पछतावा होने का अवसर मिलेगा। यदि उन्होंने बेकुसूर पर ही यह वहशियाना हमला किया है तो उस गाँववालों की सहानुभूति आक्रमित व्यक्ति की तरफ होनी और बढ़ानी चाहिए। हमलाइयों के साथ गाँव के तथा बिरादरी के लोग बिल्कुल असहयोग करें—इसका आन्दोलन व आयोजन होना चाहिए। इसमें हमारी भावना उन्हें दण्ड देने की नहीं, बल्कि अपनी गलती या अत्याचार को महसूस कराने की होनी चाहिए। अहिंसात्मक मार्ग तो यही है। बदला लेने के उपाय कानून व अहिंसा दोनों की स्पिरिट के विरुद्ध अतएव त्याज्य है।

(३) मैं राजस्थान के अहिंसा-भक्तों की एक सूची तैयार कर रहा हूँ। उस सिलसिले में एक साथी कार्यकर्ता लिखते हैं—"सिर्फ आत्म-बल पर अपने जान-माल की रक्षा कर लेनेवाला आज कोई व्यक्ति मुझे यहाँ नहीं दीखता। दबाव-वश २-४ आदमी अपना नाम मुझे लिखवा भी दें तो वह कोई ठोस चीज नहीं होगी। सूची तैयार करके भिन्न-भिन्न दलों में लोगों को बाँटने के बजाय सिर्फ कांग्रेस की नीति लोगों को समझाकर अधिक तादाद में उन्हें कांग्रेस के साथ रखना अधिक श्रेयस्कर होगा। सूची तैयार करना ही है तो कांग्रेस से ही इसका ऐलान करना चाहिए।"

ऐसा मालूम होता है कि सारी स्थिति मित्र की समझ में अच्छी तरह नहीं आई है। नैतिक दबाव के अलावा किसी तरह का दबाव अहिंसा-मार्ग में जायज नहीं है। अहिंसा-भक्तों की सूची तो कांग्रेस की प्रतिस्पर्द्धा या कांग्रेस में फूट डालने के विचार से नहीं बनाई जा रही है। कांग्रेस आज एक हद से आगे अहिंसा की दिशा में बढ़ने के लिए तैयार नहीं है। अतएव जो लोग आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हें उसका अवसर मिले और वे कांग्रेस का और आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त कर सकें—इसके लिए यह प्रयास है। जो कांग्रेस की मर्यादा से आगे नहीं जा सकते, उन्हें कांग्रेस की मर्यादा में ही चलना है। जो आगे जाना चाहते हैं, वे अहिंसा के मामले में कांग्रेस की मर्यादा या अनुशासन में कैसे रह सकेंगे? ऐसी दशा में कांग्रेस से ऐसी सूचना निकालने का प्रश्न ही अप्रासंगिक है।

ह० उ०

कसौटी पर

त्रिवेणी स्नान[1]—इस बार की बीमारी ने मुझे त्रिवेणी-स्नान करा दिया। 'नहुष' 'ग्राम्या', 'रोटी का राग' में डूबने-उतराने का आनन्द मिला। 'रोटी का राग' बहुत पहले गाया जा चुका है; 'नहुष' व 'ग्राम्या' ने हाल ही दर्शन दिये हैं। जब 'रोटी का राग' शुरू हुआ, तब मैंने सुना था कि हिन्दी के कवि-संसार ने नाक-भौं सिकोड़ी थी। कुछ कवियों ने उसका मजाक भी उड़ाया था। अबकी जब 'ग्राम्या' का स्तनपान किया तो मन ने कहा—पन्तजी ने बड़ा त्याग करके ग्रामों और ग्रामीणों की सुध ली है। पन्तजी हिन्दी के एक कवि-सम्प्रदाय के गुरुवर्ग में हैं। सुना है कि जबसे उन्होंने ग्राम-जीवन की ओर अपनी प्रतिभा मोड़ी है, तब से उनके शिष्यों या साथी-वृन्द में यह कानाफूँसी होने लगी है कि पन्तजी रहस्यवाद या छायावाद की बड़ी हानि कर रहे हैं। यदि यह सच है तो मैं कहूँगा कि पन्तजी का यह त्याग ऐन मौक़े पर हुआ है और 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' के द्वारा वे नवीन युग का पथदर्शन कर रहे हैं। मैं अपने मन से यह कह ही रहा था कि पन्तजी हिन्दी के सर्वप्रथम कवि हैं जिन्होंने जनता की ओर मुँह मोड़ा है, कि मुझे सहसा 'रोटी का राग' याद आ गया। उसे पढ़ा तो मालूम हुआ कि उसमें हृदय को पकड़ लेने की अच्छी शक्ति है। मैं समझता था रूखी-सूखी रोटियाँ ही होंगी; पर मुझे उसमें रस की धारा मिली—अधर-रस की नहीं, करुण रस की। श्रीमन्नारायणजी अपने इन वेदनामय गीतों के द्वारा वाचकों के मन में किसानों, श्रमिकों अछूतों के प्रति समवेदना का स्रोत बहाने में सफल हुए हैं। यह 'रोटी का राग' वास्तव में दलित-पीड़ितों की दर्दभरी चीख है, जो पाठकों के दिल को द्रवित किये बिना नहीं रह सकती।

कवि अपने परम्परागत पथ पर चल रहा था; सहसा उसके शोधक मन में पृच्छा हुई—

> **"क्या होगा गाकर 'अनन्त' का**
> **नीरव और 'मदिर' संगीत ?"**
> **"क्यों 'पागल' बनकर मैं घूमूँ**
> **भूल सकल मानव संसार ?"**

उसकी युग-समवेदना के अन्तस्तल से उत्तर मिला —

> **"साधारण जीवन के सुख-दुख**
> **गाऊँ सब आडम्बर त्याग,**
> **सम्पति-विद्या-हीन जनों का**
> **करुणामय रोटी का राग।"**

कहते हैं—कविता का जन्म वेदना से होता है। वेदना ही को बहाती हुई वह आपके-हमारे दिलों में वेदना के स्रोत उमड़ाती है। 'रोटी का राग' इस मानी में सचमुच कविता है और अग्रवालजी ने इस दिशा में पहल की है।

पहल चाहे श्रीमन्‌जी ने की हो; पर पंतजी ने 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' के द्वारा हिन्दी कवि-समाज में जो उद्‌बोधन और क्षोभ पैदा किया है उसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती। श्रीमन्‌जी ने 'हृदय' से 'रोटी का राग' गाया है, तहाँ 'ग्राम्या' पन्त जी के मस्तिष्क का आन्दोलन है। 'ग्राम्या' के साथ श्रीसुमित्रानन्दन पन्त गाँवों की ओर बढ़े हैं। 'युगांत' और 'युगवाणी' के पश्चात् उनकी काव्यधारा का यह क्रम स्वाभाविक ही था। 'ग्राम्या' का प्रणयन स्वानुभूति और कला के चिरन्तन सत्य अथवा प्रगतिशीलता के आराधक कवियों के लिए अच्छा दिशा-संकेत है।

सचमुच, जहाँ कवि मानवता के अमर तत्त्वों का अंकन करे, वहाँ यह भी इष्ट है कि कम-से-कम कुछ तो ऐसा लिखे, जिसमें युग-युग की पीड़ित मानवता अपनी दर्दभरी पुकार सुने, अपने जीवन

---

१. **नहुष : श्री मैथिलीशरण गुप्त; प्रकाशक साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी); मू० ।=)**

२. **ग्राम्या : श्रीसुमित्रानन्दन पन्त; प्रकाशक भारती-भवन, लीडर प्रेस, प्रयाग; मू० १।);**

३. **रोटी का राग : श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल; प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल; मू० ।।)**

की झाँकी देखे और अपनी नित्य-समस्याओं की सुलझन पावे । हमारे कवि काल्पनिक जगत् में विहार करना अधिक चाहते हैं, दृश्य और वस्तु-जगत् की ओर देखना हेय समझते हैं। मैं तो कवि उसे कहूँगा, जिसकी लेखनी जग-जीवन के स्पंदन को व्यक्त करे, ठीक वैसे ही जैसे थर्मामीटर शरीर की गर्मी को । वस्तु-जगत् में रहकर केवल स्वप्निल लोक की-सी बात करना कविता और कला दोनों के साथ न्याय न करना है । कवि ने 'ग्राम्या' प्रस्तुत करके इस दिशा में प्रभावशाली नेतृत्व किया है । भले ही उनके इस नये 'टर्न' से छायावाद को गहरी क्षति पहुँची हो, पर वह जीवन के लिए, समाज और राष्ट्र के लिए और स्वयं काव्यकला के लिए आवश्यक था, यह मेरा निश्चित मत है ।

'ग्राम्या' में एक ग्रामीण वातावरण है। उसमें भले ही 'ग्राम-जीवन' में मिलकर, उसके भीतर से न लिखी जाने के कारण जहाँ-तहाँ कृत्रिमता बोल उठती हो, फिर भी हमारे चिरउपेक्षित जीवन का एक चित्र वहाँ है, जिसे हमारे कवि अबतक क्या इसीलिए नहीं खींचना चाहते थे कि—

यहाँ न पल्लव वन में मर्मर,
यहाँ न मधु-विहगों में गुंजन
जीवन का संगीत बन रहा
यहाँ अतृप्त हृदय का रोदन

या इसलिए कि

यहाँ धारा का मुख कुरूप है,
कुत्सित गर्हित जन का जीवन,
सुन्दरता का मूल्य वहाँ क्या,
जहाँ उदर है क्षुब्ध, नग्न तन ?

कवि ने ठीक ही कहा है कि—

वृहद् ग्रंथ मानव जीवन का
काल ध्वंस से कवलित,
ग्राम आज है पृष्ठ जनों की
करुण कथा का जीवित ।

यह सब होते हुए भी

मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों ही में अन्तर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ हैं अविकृत

एक जगह तो गहरी बात कवि कह गया है:

देख रहा हूँ अखिल विश्व को मैं ग्रामीण नयन
सोच रहा हूँ जग पर, मानव जीवन पर जन मन
रूढ़ि नहीं हैं, रीति नहीं हैं, जातिवर्ण केवल
जन जन में है जीव, जीव जीवन में सब जग है

मैंने पाया कि 'ग्राम्या' में ग्रामश्री है, ग्रामी सौन्दर्य है, ग्रामीण दृष्टि है, ग्रामीण सरलता ग्रामीण जीवन का स्पन्दन है, ग्रामीण संस्कृति चित्रण है ।

ग्राम-जीवन ने पन्तजी के हृदय को छू ज़रूर है; परन्तु, जैसा कि उन्होंने खुद स्वीक किया है, इसमें 'बौद्धिक सहानुभूति' है । हृदय अनुभव करना और मस्तिष्क का बोलना तरह से विकास का, प्रौढ़ता का लक्षण है। 'ग्राम्' में शब्द-चित्रों और सहानुभूति के साथ ही ज्ञा तर्क, विवेचन भी है। इसलिए वह रसलोलुप पाठ को चाहे शुष्क, नीरस लगे, परन्तु जिज्ञासु चिन्तनशील पाठक के मन में यह अवश्य उथ पुथल मचा देगी । युग के पैग़ाम को प्रौढ़ता अधिकार के साथ उन्होंने सुनाया है ।

मैंने इधर-उधर देखा है कि पंतजी की ऐ कुछ वास्तव रचनाओं का उपहास किया गया है मेरी राय यह है कि कला की वस्तु को उस हार्द में पैठ कर देखना चाहिए । कलाकृति आप 'जँची', 'नहीं जँची' कह सकते हैं; उस चीरफाड़ तो अरसिकता ही नहीं निर्दयता है। कल कविता, सौन्दर्य, रस अनुभव करने और आन लेने की चीज़ें हैं; विचार, ज्ञान अलबत्ता वि पण, विवेचन की वस्तु है । इसलिए मैं अव कहा करता हूँ कि कविता, कला की समालोच कैसी ? बुद्धिगम्य वस्तु की आलोचना तो हो सकती है, अनुभवगम्य की कोई क्या आलोच करेगा ? जब महाराजकुमार श्री रघुबीरसिंहजी अपनी 'शेष स्मृतियाँ' मुझे भेजी तो लिखा था यह संपादक की टेब्रुल पर चीर-फाड़ करने लिए नहीं है । मैंने उनकी चिन्ता को ठीक समझा पन्तजी कोई अनाड़ी और अनघड़ कवि तो हैं नहीं जो 'चींटी'-जैसे विषय पर यो ही ऊटपटाँग कु

लिखने बैठ जायें। बल्कि समर्थ लेखक व कवि का एक यह भी लक्षण है कि बहुत मामूली, दैनिक और सहसा किसीकी निगाह में न आने वाले विषय पर भी उसकी पैनी दृष्टि पड़ती व गड़ती है और उसकी प्रतिभा उसमें सजीवता ला देती है।

इतना कहने को जी जरूर चाहता है कि यदि पन्तजी ग्राम जीवन के हार्द में डूबकर लिखते तो 'ग्राम्या' में पाठक को अपने साथ बरबस बहा ले जाने का गुण प्रचुर मात्रा में आ जाता।

अब 'नहुष'। मैथिलीशरणजी नपी-तुली साधु भाषा, समतोल भाव व पवित्र विचारों के समर्थ कवि हैं। हिन्दी के प्रथम पंक्ति के कवियों में उनका सभादरणीय स्थान है। हिन्दी में राष्ट्रीय भावों के वही पहले कवि हैं। 'नहुष' इसी मंजे हुए कवि की नवीन कृति है। इसकी पृष्ठभूमि में 'नहुष' की इन्द्रत्व-प्राप्ति और स्वर्गभ्रष्ट होने का आख्यान है। मानव अपने तप और साधना से उच्चतम स्थिति पर पहुँचता है, लेकिन अपनी कमजारियों के कारण वहाँसे गिर भी पड़ता है। फिर भी मानवीय प्रकृति और उदात्त वृत्ति उसे फिर-फिर ऊँचे उठने की साधना में लगाती रहती है। यह गति, यह क्रम ही जीवन है और अंत में मनुष्य यदि पुरुषार्थी और ईश्वरपरायण है तो पूर्णता को जा पहुँचता है।

इन्द्रपद पा जाने पर भी नहुष आखिर मानव ही तो है और इसीलिए वह इन्द्र की वियोग-विधुरा पत्नी शची के रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर उसे अपनी 'इंद्राणी' बनाना चाहता है।

शची का नारीसुलभ शील और स्वाभिमान नहुष के सन्देश पर कहे गये उसके इन शब्दों में अच्छी तरह बोल रहा है––

'सौंपा धन-धाम तुम्हें और गुण-कर्म भी
रख न सकेंगी हम अन्त में क्या धर्म भी ?
त्यागो शची-कांत बनने की पाप-वासना,
हर ले नरत्व भी न कामदेवोपासना !'

और समाज की निरंकुशता पर कैसा दर्द भरा उलहना है !'––

सत्ता हाँ समाज की है, वह जो करे, करे;
एक अबला का क्या, जिये, जिये; मरे, मरे।

और अन्त में तो

जाकर नहुष से अकेली ही अड़ूँगी मैं,
लड़ न सकूँगी तो पदों पर पड़ूँगी मैं

में नारी की आत्मशक्ति और बेबसी दोनों समन्वित होकर करुणा उपजाते हैं।

उधर नहुष का भी मोहावरण हट जाता है–बादल फट जाने पर जैसे घाम निकल आया हो ! –

मानता हूँ, आड़ ही ली मैंनें स्वाधिकार की,
मूल में तो प्रेरणा थी काम के विकार की।

परन्तु मानव की मनस्वी वृत्ति––कभी न हारने की वृत्ति नहुष में चमक उठती है––

मानता हूँ और सब हार नहीं मानता
अपनी अगति नहीं आज भी मैं जानता
आज मेरा भुक्तोज्झित हो गया है स्वर्ग भी
लेके दिखा दूँगा कल मैं ही अपवर्ग भी।

× × ×

गिरना क्या उसका उठा ही नहीं जो कभी ?
मैं ही तो उठा था आप, गिरता हूँ जो अभी।
फिर भी उठूँगा और बढ़के रहूँगा मैं,
नर हूँ, पुरुष हूँ मैं, चढ़के रहूँगा मैं।

यही 'नहुष' का मंगल-सन्देश है।

अपनी मानसिक विषण्णता के क्षणों में भी गुप्तजी यह जीवन-सन्देश देने में समर्थ हुए हैं, यह बात हिन्दी-साहित्य के लिए आशाप्रद है।

ह० उ०

प्रेम में भगवान् : अनुवादक––श्री जैनेन्द्रकुमार; प्रकाशक–सस्ता-साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या २३८, मूल्य आठ आना।

प्रस्तुत पुस्तक टॉल्सटॉय की सत्रह कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ, जैसाकि अनुवादक ने अपने 'निवेदन' में कहा है, अपने समय, समाज या भूमि के बारे में जानकारी पहुँचाने के लिए उतनी नहीं, जितनी नैतिक समाधान के विचार से लिखी गई थीं।

संग्रह की प्रत्येक कहानी में कोई-न-कोई

संदेश निहित है। पहली कहानी **'प्रेम में भगवान्'** को ही लीजिए। उसका मुख्य पात्र मार्टिन एक मोची है, परिस्थिति-वश जिसकी निष्ठा ईश्वर में से उठ जाती है। अचानक एक दिन एक वृद्ध यात्री के आदेश पर उसका भगवान पर खोया विश्वास फिर लौट आता है। बन्धुत्व और अपरिग्रह की भावना उसमें पैदा होती है और पर-सेवा में तत्पर, वह बिना ऊँच-नीच के भेद-भाव के सारी मानव-जाति को प्रेम करने का पाठ सीखता है। इससे उसके जीवन में शान्ति आती है और आनन्द रहने लगता है। इंजील की शिक्षा से उसका सारा अहं और स्वार्थ मिट जाता है और उसकी मानव-जाति के प्रति प्रेम-भावना दृढ़तर हो जाती है। अंत में उसे अपनी इसी प्रेम की भावना के कारण रक्षक प्रभु के साथ साक्षात्कार करने की अनुभूति होती है।

ऐसी ही शिक्षा पुस्तक की हरेक कहानी में है। कई एक कहानियों में अच्छाई (Good) और बुराई (Evil) के बीच संघर्ष दिखाया गया है और अन्त में अच्छाई की विजय हुई है।

वर्तमान काल में जो सम्पत्ति-संचय और अधिकार (Possession) और आपाधापी के दृश्य देखने में आते हैं, उनमें **'कितनी जमीन ?'** कहानी अनमोल शिक्षा देती है। दीना को लालसा उसे अधिक-से-अधिक ज़मीन हथिया लेने के लिए बाध्य करती है। पर अंत में सिर से पाँव तक कुल छः फुट ज़मीन उसे काफ़ी होती है।

एक और कहानी है **'मूरखराज'** जिसमें श्रम की महिमा है। उसमें एक आदर्श राज्य की (उसे रामराज कहा जा सकता है) कल्पना की गई है। उसमें राजा का कोई अधिकार नहीं है और न उनमें कोई भी व्यक्ति अपनी कुलीनता या अन्य किसी विशिष्टता के कारण अधिक पाने का अधिकारी है। श्रम करो और पाओ। अपने हाथ-पैर से परिश्रम न करने वाले रोटी पाने के हक़दार नहीं हैं। "बस राज में एक नियम है। यह यह कि जिसके हाथ काम से खुरदरे होंगे, उसे तो मान की रोटी मिलेगी। बाकी को बचे-खुचे में से ही मिल सकेगा।"

पुस्तक की प्रत्येक कहानी मनन करने है। अनुवाद अत्यन्त ही सरल और सजीव कुछ कहानियों का भारतीयकरण कर दिया है। उसमें श्री जैनेन्द्रकुमार ने इतनी सिद्धह दिखाई है कि ये कहानियाँ हिन्दी की मौलि कहानियाँ जान पड़ती हैं, पर भाव में कहीं मूल-लेखक के साथ अन्याय नहीं किया गया

छपाई बहुत ही सुन्दर स्वच्छ और शुद्ध और हद दर्जे की सस्ती है।

तपस्विनी (नाटक)**: मूल लेखक–रेजीना बर्कले; अनुवादिका—श्रीमती प्रकाश गौड़ प्रकाशक—विद्यामन्दिर लि०, कनाट सर्कस, दिल्ली; मूल्य ॥I); प्रकाशक तथा स० सा० मं की सब शाखाओं से प्राप्य।**

'तपस्विनी' अंग्रेजी नाटक The Lady W a Lamp का हिंदी अनुवाद है। मूल पुस्तक अंग्रे में इतनी लोकप्रिय हुई है कि उसके प्रथम महीनों ही में ३ संस्करण समाप्त हो गये! भारतीय विश्वविद्यालयों में भी वह पाठ्यक्रम स्वीकृत है।

यह प्रामाणिक नाटक फ्लारेंस नाइटिंगेल वास्तविक जीवनी पर प्रकाश डालनेवाला है इसे पढ़नें से पता लगता है कि उस महिला ने सुदूर लन्दन में बैठे-बैठे ग़रीब हिन्दुस्तानियों लिए कितने सुधार करवाये थे। इंग्लैण्ड के मंत्रि डल में उसनें तहलक़ा मचा दिया था औ उसका जादू लॉर्ड पामर्स्टन-सरीखे स्वाभिमा व्यक्ति पर भी चलता था। उसने युद्ध में घायल और पीड़ितों की सहायता की थी और उन लिए रेडक्रॉस तथा नर्सिंग की संस्थायें खुलवा तथा युद्ध-विभाग में भी कई सुधार करवा ये। भारतीय शिक्षिता महिलाओं के लिए ऐतिहासिक घटनापूर्ण नाटक सचमुच जीवन निर्माणकारी है।

'तपस्विनी' नाटक **'विश्व-महिला-साहित्यमाला'** की प्रथम पुस्तक है। और हम कहेंगे कि शुरुआ अच्छी हुई है। २२५ पृष्ठों की सर्वांगपूर्ण, कप

की सुन्दर जिल्द और जैकट पर के आकर्षक दुरंगे चित्र और छपाई-सफ़ाई तथा अनुवाद की उत्कृष्टता को देखते हुए उसका स्वल्प मूल्य ।॥) रखना प्रकाशकों की सद्वृत्ति का परिचायक है।

आशा है, मूल पुस्तक की भाँति हिन्दी अनुवाद भी लोकप्रिय होगा और पाठकों के सहयोग से माला के अगले प्रकाशक भी ऐसे ही सुन्दर और महिलोपयोगी होंगे।

वीरबाला : त्रैमासिक-प्रो० प्रेमनारायण माथुर एम० ए० आदि वार्षिक मू० १॥), एक प्रति ॥=)

वनस्थली (जयपुर राज्य) के राजस्थान-बालिका-विद्यालय की, जो बालिका-शिक्षण में एक नमूना बन रहा है यह त्रैमासिक पत्रिका है। चौथे वर्ष का दूसरा, तीसरा और चौथा अंक हमारे सामने है।

पत्रिका में विद्यालय के संस्थापक, आचार्य तथा अध्यापक-वृन्द के शिक्षण-जगत् के लिए उपयोगी लेख रहते हैं। विद्यालय की मेधावी और उदीयमती बालिकाओं के भी कई लेख उसमें हमने पढ़े—स्त्री का आदर्श, हिन्दू-समाज में स्त्री-शिक्षा, ग्राम्य-जीवन के अनुभव, साम्प्रदायिक समस्या, आदर्श जीवन आदि। सबमें छात्राओं की विद्यालय में उपार्जित की हुई संस्कृति और शिक्षा की छाप स्पष्ट है।

प्रो० प्रेमनारायण माथुर अर्थशास्त्र के सुयोग्य विद्वान् हैं। उनके गांधीवाद और समाजवाद, अर्थ-रचना और सामाजिक हित अत्यन्त विद्वत्ता और सूक्ष्म गवषेणापूर्ण लेख हैं।

विद्यालय की शिक्षणनीति, शिक्षणप्रणाली और वहाँ की शिक्षण-क्षेत्र की प्रगति का यथार्थ रूप जानने के लिए 'वीरबाला' का प्रत्येक अंक पठनीय है।

सु०

मैं भूल न सकूँ : संपादक——श्री जयन्त; प्रकाशक–विजय-पुस्तक-भंडार दिल्ली; पृष्ठ, संख्या १६८; मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक में सर्व श्री श्रीनाथसिंह, अज्ञेय, देवीदत्त शुक्ल, 'पहाड़ी', उषा मित्रा, श्रीमती होमवती, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, 'अंचल', 'हरिऔध', काका कालेलकर आदि साहित्यकारों की क़लम से लिखी हुई उनके जीवन की सबसे अधिक 'न भूल सकनेवाली' साथ ही सबसे अधिक रोचक घटनाओं का संकलन है।

हिन्दी में यह प्रयत्न नया ही है और हम उसका स्वागत करते हैं। घटनाओं के कथानकों में जहाँ लेखकों के व्यक्तिगत जीवन की कुछ मनोरम झाँकियाँ मिलती हैं, वहाँ उनकी हृदय-ग्राहिणी लेखन-कला भी छुपी नहीं रहती। हमें कुछ घटनाएँ ऐसी लगी कि जो मानव जीवन पर स्थाई और गहरा असर डालनेवाली हैं,।

पर ज्यादातर घटनाओं में हमें प्रेम ही सर्वत्र बोलता दिखाई दिया, अपने विविध रूपों में; कहीं उसने हमें अपूर्व उल्लास से भर दिया और कहीं निराश भी किया। प्रायः सारी घटनाएँ इसी एक ही दृष्टिकोण से लिखी और लिखवाई जान पड़ती हैं। लेखकों को दृष्टिकोण की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए थी।

जो हो, संपादक श्री जयन्त ने हिन्दी के अच्छे-अच्छे साहित्यिकों की चीज़ें जुटाई हैं।

—वि० वि०

समालोचनार्थ प्राप्त—

गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ, के प्रकाशन

जागरण (उपन्यास) : लेखक—श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह

जूनिया (उपन्यास) : लेखक—श्री गोविन्द-वल्लभ पन्त

तुम क्या हो ? : लेखक—श्री सर्वदानन्द वर्म्मा

दुलारे-दोहावली (कविता) : रचयिता—श्री दुलारेलाल भार्गव

नक्षत्र-मण्डल (कहानियाँ) : लेखक—विभिन्न यूरोपीय कथाकार

प्रत्यागत (उपन्यास) : लेखक—श्री वृंदावन-लाल वर्म्मा

प्रश्न (उपन्यास) : लेखक——श्री सर्वदानन्द वर्म्मा

लगन (उपन्यास) : लेखक——श्री वन्दावन-लाल वर्म्मा

विकास (दो भागों में) : उपन्यास : लेखक—श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव

विजय (दो भागों में) : (उपन्यास) : लेखक——श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव

सन्ध्या-प्रदीप (कहानियाँ) : लेखक——श्री गोविन्दवल्लभ पन्त

सुधर गँवारिन (उपन्यास) : लेखक——लाला रामजीदास वैश्य

संगम (उपन्यास) : लेखक——श्री वृन्दावन-लाल वर्म्मा

सिंहगढ़-विजय (कहानियाँ) : लेखक——श्री चतुरसेन शास्त्री

हिलोर (कहानियाँ) : लेखक——श्री भगवती-प्रसाद वाजपेयी

गीता प्रेस, गोरखपुर के प्रकाशन

भक्त-सौरभ : संपादक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

महात्मा विदुर : लेखक—श्री शांतनुविहारी द्विवेदी

दोहावली [तुलसी] अनुवादक—श्री हनुमान-प्रसाद पोद्दार

Philosophy of Love : लेखक—श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

The Divine name and Its Practi
लेखक——श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

राजस्थान के ग्रामगीत (१) : संग्राहक—स्व० सूर्यकरण पारीक एम० ए० ; गणपति स्वा
प्रकाशक——गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा।

भारतीय गौशालायें : लेखक——उत्तम
मोहता ; प्रकाशक युवक समिति, सिरसा (पंजा

रामायण-ग्रंथावली : संपादक तथा प्रकाशक
पं० कमलाकान्त उपाध्याय ; कांति कुटीर, आ

गाँवों का सुधार : लेखक तथा प्रकाशक—
पं० पावनिप्रसाद शर्म्मा, आयुर्वेदाचार्य, अजमे

अर्थशास्त्र की रूपरेखा : लेखक—
दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल० एल० बी
प्रकाशक——साहित्य-निकेतन, दारागंज (प्रयाग)

निर्वाचन-पद्धति (तृतीय संस्करण) : ले०—
प्रो० दयाशंकर दुबे तथा श्री भगवानदास के
प्रकाशक——भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन

सत्यना प्रयोगो अथवा **आत्मकथा** : गुजरा
(देवनागरी लिपि में) : लेखक——महात्मा गां
प्रकाशक——नवजीवन-प्रकाशन-मंदिर, अहमदा

पडोसी (कहानियाँ) : लेखक—श्री श्रीनाथ
प्रकाशक——नेशनल लिटरेचर कम्पनी ; कलकत्ता

सैर-सपाटा

पिछले महीने सबसे ज्यादा हलचल मचाने वाला लेख शायद श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का **'साहित्य और जीवन'** रहा, उसे 'जी० सा०' के पाठकों ने भी सार-रूप में देखा होगा। **'विशाल-भारत'**, **'कमला'** **'साधना'** और **हिन्दुस्तान** ने उसे एक-साथ प्रकाशित किया है। उसे पढ़ने और ठीक-ठीक समझने के लिए 'वि० भा०' के सितम्बर-अंक के **'तुम्हारा नगर और उसकी सेवा'** तथा **आयर्लैंड के अमर कलाकार ए० ई०'** लेख भी साथ पढ़े जाने चाहिएँ। तीनों एक-दूसरे के पूरक हैं। **'साहित्य और जीवन'** में दिखाया गया है कि हमारे साहित्यिक—क्या कवि और क्या लेखक—वास्तविक जीवन से कितने दूर जा पड़े हैं औ
निरे काल्पनिक हो गये हैं, उनकी लेखनी
फल कल्पना-प्रधान अधिक होते हैं, अनुभव-प्रध
कम। चतुर्वेदीजी की यह चेतावनी सम
पयोगी है।

पत्र-पत्रिकाओं में आज-कल एक
गरमागरम चर्चा चल पड़ी है, जिसने उग्र
धारण कर लिया है और वह कुछ कटु भी
गई है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के बारे में
से लोगों को कुछ शिकायतें होंगी, उनका स्पष्ट
करते हुए प्रधान-मन्त्री डॉ० बाबूराम सक्सेना
'सम्मेलन-पत्रिका' में **सम्मेलन क्या करे, क्या**

करे? नामक लेख लिखा। **'सर्वोदय'** और **'विशाल भारत'** ने उसपर अपने-अपने मत प्रकट किये। श्री वेंकटेशनारायण तिवारी ने गहरा रोष प्रकट किया और **'जागृति'** में श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित ने डॉ० सक्सेना की बातों का घोर विरोध करते हुए उनपर तथा सम्मेलन पर लोगों को धोखे में रखने, कार्यालय की अव्यवस्था तथा दूसरे गोलमाल आदि के गम्भीर आक्षेप किये हैं। मामला बहुत बढ़ गया जान पड़ता है और शंका होने लगी है कि यह साहित्यिक लड़ाई कबतक कागज, रुपये को खराब और वातावरण को क्षुब्ध करती रहेगी। इसका अन्त होना चाहिए। एक निष्पक्ष जाँच-समिति द्वारा सारे मामले की जाँच क्यों न हो जाय?

पिछले मास से भाई श्री वात्सयायन और 'मुक्त' के संयुक्त संपादन में पटना सिटी से **'आरती'** मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ है। ८० पृष्ठों की इस सर्वांग-सुन्दर पत्रिका में हमें अच्छे-कवियों और सुलेखकों की रचनायें पढ़ने को मिली हैं। कविवर पन्त का **'राष्ट्र गान'** जहाँ कइयों को मुग्ध कर देगा, वहाँ कइयों के लिए दुरूह भी होगा। राष्ट्रगान की भाषा और भाव को इतना क्लिष्ट नहीं होने देते तो अच्छा था। सुश्री महादेवी वर्मा का **'गीत'** और रामनरेशजी त्रिपाठी की **'ओ गाँव से आनेवाले बता!'** का ग्रामीण चित्र, माचवेजी का शब्द-चित्र और हजारीप्रसादजी का **'रीति काव्य'** हमें बहुत रुचे। 'आदि मानव की कला लेख और 'मत अपनाओ' कवितायें भी सुन्दर हैं।

'साधना' का प्रकाशन तो नई घटना नहीं है, परन्तु पिछले मास से उसके सम्पादक श्री सत्येन्द्र हुए है जो एक जागरूक आलोचक हैं। सितम्बर के अंक में श्री प्रभाकर माचवे का लेख—**'लिखूं? तो किसलिए'**—हिन्दी-लेखकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। उसके साथ 'जी० सा०' के इस अंक का अग्रलेख भी पाठकगण अवश्य पढ़ें।

'साहित्य-सन्देश' के पिछले अंक में श्री नगेन्द्र का **'हिन्दी कविता की नवीनतम प्रगति'** लेख अच्छा है। **विचार-विमर्ष** स्तम्भ तो पूरा ही पठनीय है। उस अंक में उग्रजी का **आदर्श उपन्यास** लेख भी है, जो समय से पूर्व ही प्रसूत हो गया ऐसे शिशु दीर्घजीवी नहीं होते, पर इसका उत्तर तो समय देगा। प्रभाकर माचवे ने **हिन्दी का कथा साहित्य'** शीर्षक समीक्षापूर्ण निबन्ध **'आरती'** में लिखा है। **'वीणा'** के सितम्बर अंक में **गुँजन का दृष्टि कोण** पढ़ने को मिलता है और मिलता है गुलाबराय एम० ए० का हास्य रसपूर्ण **'राज दरबार में मैं**; जो उनकी 'जीवन-कथा' का एक चित्र है।

'वीणा' का यह अंक नरेन्द्र का **'आत्मबोध'** लाया है, इसलिए उसे और कवि को बधाई।

'सब की बोली' में पं० जवाहरलाल नेहरू—ने **'दुनिया काम से चलती है'** के द्वारा हमारे देश के नौजवानों को अच्छी सीख दी है। काकासाहब ने **'बेगम सीता!!'** में बिहार की बेगम सीता वाले प्रकरण का गुप्त रहस्य खोल दिया है। पाठक उसे इस अंक में भी देखेंगे। काका की **'रेल की दुनिया'** से पूर्ण सहमत न होते हुए भी हमें वह प्रयत्न कुछ सोचने को मजबूर करता है।

'कमला' (सितम्बर) में श्री बनारसीदास जी द्वारा प्रकाशित **'श्रद्धेय गणेशजी के आठ पत्र'** गणेशजी के जीवन पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। शीलाकुमारी पन्त की कविता **'तुम्हारी'** बहुत-ही अच्छी लगी। साहित्य-स्तम्भ में चतुर्वेदीजी का **'हिन्दी-संस्थाओं की जाँच और विवरण'** एक अच्छा सुझाव है।

× × ×

पिछले दिनों श्रीमती सत्यवती मल्लिक की कहानियों का संग्रह 'दो फूल' नामक हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर बम्बई ने निकाला है। श्री भगवतीचरण वर्म्मा की नई कविताओं का संग्रह भी 'मानव' नाम से विशाल-भारत बुक-डिपो ने प्रकाशित किया है। कलकत्ते के मुसकान-मन्दिर ने भी अपनी पहली "मुसकान" "कुकड़ूँकूँ" के नाम से प्रकट की है।

क्या और कैसे ?

युगान्तरकारी

हाल ही कांग्रेस की महासमिति ने केवल स्वतन्त्रता-प्राप्ति के ही लिए नहीं, वरन् स्वराज्य-संचालन में भी जो अहिंसा पर अपनी श्रद्धा प्रकट की है और यह निश्चय प्रकट किया है कि विश्व-निःशस्त्रीकरण की योजना में काँग्रेस भरसक अपना ज़ोर लगावेगी, यह अवश्य ही एक युगान्तरकारी प्रस्ताव है। इसके द्वारा कांग्रेस ने विश्व-शान्ति और युद्धों को निर्मूल करने की दिशा में ऐसा दृढ़ कदम उठाया है जिसने नये इतिहास की–विश्व के नव निर्माण की नींव डाल दी है। जैसे-जैसे समय जायगा महात्माजी के इस नेतृत्व का महत्व और अहिंसा का चमत्कार शंकाशील लोगों को भी प्रभावित किये बिना न रहेगा। निस्सन्देह इससे उन लोगों की जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है जो अपनेको अहिंसाभक्त कहते हैं। उन्हे तो अग्नि-परीक्षाओं में से ही गुजरना होगा।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की समस्या

डॉ॰ बाबूराम सक्सेना के लेख पर कुछ आलोचनात्मक लेख देखने में आये हैं। उनसे चिन्ता पैदा हुई, तरह-तरह की आशंकायें मन में उठीं। लेकिन, हाल ही डॉ॰ बाबूराम सक्सेना का एक पत्र मिला है, जिससे चिन्ता और आशंका कुछ दूर हो रही है। 'जी॰ सा॰' के 'साहित्यिक क्या करें ?' नामक लेख के विषय में वह लिखते हैं——

"मैं उससे अक्षरशः सहमत हूँ। मैं स्वयं चाहता हूँ कि सम्मेलन को कांग्रेस की तरह गुरुत्व प्राप्त हो, उसे जनता का 'सैंक्शन' मिले। तभी वह कोई पक्का काम कर सकेगा। अब मुझे इस दिशा में आशा की झलक दिखाई पड़ती है। × × × कल की कार्य-समिति में सम्मेलन ने निश्चय किया है कि एक छोटी-सी प्रश्नावली निकालकर हिन्दी-साहित्यिकों से सम्मति माँगी जाय और फिर सम्मेलन किस दिशा में कार्य करे, इस बात पर परामर्श देने के लिए एक परिषद् की आयोजना नवम्बर में की जाय।"

'बुक-सोसायटी' के ढंग की समिति क के सुझाव के बारे में वह लिखते हैं कि "सम्मे **एक त्रैमासिक आलोचनात्मक रिपोर्ट तैयार क तथा बुक-सोसाइटी के ढंग की एक परामर्श दा समिति का संगठन करे, ये दोनों काम सम्मे कर सकेगा।"**

मेरी राय में सम्मेलन की कार्य-समिति उचित दिशा में ज़रूरी कदम उठाया है। जि मित्रों को सम्मेलन की व्यवस्था से या क पद्धति से शिकायत है उन्हें, उचित है कि वे क्रियात्मक और रचनात्मक सहयोग देकर सम्मे को सुधारने और बलशाली बनाने का यत्न क इसमें पूरी सफलता तभी मिल सकेगी, जब सम्मे लन के आलोचकों में या वर्तमान संचालकों कोई ऐसा व्यक्ति आगे बढ़े, जिसमें संकल्प दृढ़ता; कार्यपटुता और व्यापक सहानुभूति हो।

संकीर्णता ?

'जीवन-साहित्य' के पहले अंक की स लोचना करते हुए 'हंस' में यह आशंका प्रकट गई है कि **'जीवन-साहित्य' एक ही विचार धा और वह भी गांधी-विचार-धारा के प्रचार साधन न बने, क्योंकि यह संकीर्णता होगी। चाहता है कि 'जीवन-साहित्य' 'उस विचार-धा को भी समीक्षा के लिए जनता के सामने र जो संसार के एक बडे देश में करोडों लोगों जीवन को रूपान्तरित करने का प्रयत्न कर है और जिसको अपने प्रयत्न में किसी हद त सफलता मिली है। हमारा तात्पर्य समाजवाद है × × × वास्तव में हमें प्रकाश की चाह त उसका स्वागत करने की अभिलाषा होनी चाहि फिर चाहे वह प्रकाश कहीं से आये। सत्यं, शि सुन्दरं के खोज का यही एक मार्ग है और य हमें साम्य का तथा समन्वय का पथ भी ब सकता है।"**

जीवन यदि संकुचित और एकांगी नहीं व्यापक और परिपूर्ण है, तो उसका दावा क

वाले 'जी० सा०' से संकीर्णता का भय किसी को न रखना चाहिए। चाहे गांधीवाद हो, चाहे समाजवाद, चाहे फासिस्टवाद, 'जी० सा०' सबको जीवन की कसौटी पर कसेगा और उसे जो ग्राह्य मालूम होगा, उसका समर्थन वह दृढ़ता से करेगा। विचार-क्षेत्र में मानव-जीवन से हम प्रेरणा पायेंगे, लेकिन कर्म-क्षेत्र में हमें भारतीय जीवन की मर्यादा स्वीकार करनी होगी; क्योंकि भाव या विचार क्षेत्र में हम जितने व्यापक रह सकते हैं, कर्मक्षेत्र में उतने नहीं। भाव और विचार-जगत् में केवल हमारे मन-बुद्धि को ही काम करना पड़ता है, जिनकी गति अबाध है; परन्तु, कर्म-क्षेत्र में हमें अपनी जड़ इन्द्रियों से काम लेना पड़ता है, जिनकी गति और शक्ति स्वभावतः बहुत मर्यादित है।

गांधीवाद, साम्यवाद, समाजवाद, फासिस्टवाद--इनमें कुछ फर्क है, तभी तो ये अलग-अलग हैं। हमें अपने जीवन की उपयोगिता और आवश्यकता की दृष्टि से इनमें से किसी एक को चुनना होगा, सबको तो हम एक साथ नहीं अपना सकते। चर्चा और बहस हम सबकी कर सकते हैं, पर अपने लिए हमें दिशा या मार्ग तो एक ही ग्रहण करना होगा। यदि ऐसा करना संकीर्णता है, तो इससे हमारा छुटकारा किसी तरह नहीं हो सकता। प्रकाश कहींसे आवे उसका तो स्वागत ही करना चाहिए, पर हमारे जीवन की आवश्यकता के प्रकाश में उस प्रकाश की हमें जाँच तो करनी ही होगी न। यदि 'हंस' इस स्थिति को स्वीकार करता है, तो उसे 'जी० सा०' के संकीर्ण बनने की आशंका न रखनी चाहिए।

मेंडकों की तौल ?

'जी० सा०' बड़भागी है कि मित्र लोग बहुत बारीकी से उसे देखते हैं और छोटी-से-छोटी त्रुटि की ओर प्रेम से ध्यान दिलाने का कष्ट करते हैं। जबतक 'जी० सा०' की पीठ पर ऐसे क्रियाशील सहायक हैं तबतक अवश्य ही उसके उन्नति के मार्ग पर बढ़ने की सम्भावना रहेगी। दूसरे अंक की मेरी एक टिप्पणी पर हिन्दी-संसार के एक अच्छे जानकार और आदरणीय मित्र लिखते हैं--

"जी० सा० के द्वितीय अंक को ध्यानपूर्वक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। चबा-चबा कर भोजन करने की आदत तो अभी तक नहीं डाल पाया, पर मानसिक भोजन के विषय में अब पहले की अपेक्षा अधिक सावधान हो गया हूँ।

"यद्दुरापं दुराम्नायं' इत्यादि श्लोक बहुत फिट बैठा। सम्पूर्ण चीज़ को भगवान् व्यास ने कितने संक्षेप में कह दिया है !

"आप इधर कई वर्ष से साहित्य-क्षेत्र के निकट सम्पर्क में नहीं रहे। इस कारण आपका बाजबाज परामर्श अव्यावहारिक हो गया है। पृष्ठ ९४ पर जिस 'सम्पादक मण्डल' की स्थापना की सिफारिश आपने की है वह दर असल अव्यवहार्य है। हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में पूर्ण अराजकता ('अराजकवाद' नहीं अराजकता) विद्यमान है। कोई किसीकी नहीं सुनता। आप मेंडकों को कैसे तौलेंगे ? जबतक एक को तराजू पर रक्खेंगे तबतक दूसरा नीचे कूद जायगा ! सर्वोत्तम उपाय यही है कि समानशील-व्यसनवाले साहित्यिकों तथा पत्रकारों का पारस्परिक संबंध दृढ़तर बनाया जाय। अवाञ्छनीयों की सर्वथा उपेक्षा कीजिए। उनके नाम का भी हवाला मत दीजिए। इस भयंकर अस्त्र का उपयोग तो कीजिए।

"भगवान् महावीर ने २००० वर्ष पहले कहा था--

'माध्यस्थ भावो विपरीत वृत्तौ'। जिनसे अपना स्वभाव नहीं मिलता उनके प्रति माध्यस्थभाव रक्खे, न मित्रता न शत्रुता। यही सर्वोत्तम नीति भी है। पर आप जैसा मुनासिब समझें करें।"

निकट सम्पर्क न रहने की स्थिति या कमी को मैं स्वीकार करता हूँ। यह दुःख व दुर्भाग्य की बात है कि हम शिक्षित, लोक-पथ-प्रदर्शक समझे जानेवाले संपादकों की स्थिति की तुलना एक ज़िम्मेदार व्यक्ति को 'मेंडकों की तौल' से करनी पड़े ! यदि संपादक किसी संगठन या अनुशासन

में नहीं आ सकते तो कहना होगा कि नमक ने ही खारीपन छोड़ दिया ! क्या सममुच ऐसी निराश होजाने योग्य हालत हम लोगों की हो गई है ?

मित्र के दूसरे प्रस्ताव––समानगुणशीलों के सम्बन्ध को दृढ़तर बनाना––का मैं हृदय से समर्थन करता हुँ । यदि मेरा प्रस्ताव 'अव्यावहारिक' है तो फिर इस दूसरे प्रस्ताव से बढ़कर व्यावहारिक तजवीज नहीं हो सकती । काम करने का सही और कारगर तरीका यहीं हो सकता है ।

जो अपने विरोधी हैं या अपनेसे दूर हैं, उनके प्रति माध्यस्थ वृत्ति या उपेक्षा भाव सफल जीवन का परम सूत्र है । अहिंसा की यह बहुत अच्छी व्यावहारिक शिक्षा है । 'जी० सा०' को मित्र के दोनों सुझाव मंजूर हैं ।

साहित्यिक संस्थाओं से

हमारा विचार है कि अगले अंक से साहित्यिक समाचारों की डायरी प्रति मास 'जी० सा०' में छपा करे । हमने अनेक संस्थाओं को पत्र लिखे हैं और याददिहानी भी की है कि वे अपनी संस्था की हलचलों के समाचार हमें भेजें । अब इस निवेदन के द्वारा भी हम हिन्दी की हरेक प्रचार-सभा, पुस्तकालय, वाचनालय, साहित्य-समिति आदि को सचेत करना चाहते हैं कि वे प्रति मास २० ता० तक हमें अवश्य समाचार भेज दिया करें । समाचार महत्वपूर्ण हों । कागज के एक तरफ़ सुवाच्य लिपि में लिखे गये हों और भरसक संक्षेप में हों । आशा है, संस्थाओं के संचालकगण इस उपयोगी कार्य में हमारे साथ पूरा सहयोग करेंगे ।

साहित्य-प्रेमियों से

जी० सा० के पृष्ठों में जहाँ जगह खाली होती है वहाँ 'मण्डल' की पुस्तकों से अच्छे चुने हुए जीवनोपयोगी उद्धरण हम देते रहते हैं । हम चाहते हैं कि ये उद्धरण 'मण्डल' की पुस्तकों तक ही सीमित न रहें । हिन्दी की दूसरी अच्छी और जीवनोपयोगी पुस्तकों में से भी हम उद्धरण लेना चाहते हैं ।

अपने आप तो इस प्रकार के उद्धरण पुस्तकों में से हम छाँटकर दिया ही करें, पाठकों से भी प्रार्थना है कि अगर कोई उद्धरण जो उनको 'जी० सा०' के लिए उप लगे उसे अच्छी तरह नक़ल करके पुस्तक के तथा प्रकाशक के नाम और पृष्ठ संख्या सहि भेज दिया करें तो हम उनके बड़े आभारी है

प्रकाशकों के बारे में

जी० सा० से स्नेह रखनेवाले और दिलचस्पी लेनेवाले एक माननीय मित्र लिखते

"जी० सा० में हिन्दी के छोटे-बड़े प्रकाशकों के बारे में एक लेख आना चाहि बल्कि इस विषय पर तो एक विशेषांक भी सकता है । प्रकाशक का नाम, पता, काम करने का समय, अबतक के प्रकाशित ग्रन्थों सूची, हानि-लाभ और कुछ अनुभव । जो दु वश उठ गये उनका और जो सद्भाग्य से रहे हैं, उन सबका व्यौरा इसमें आना चाहि

इस सूचना का हम हृदय से स्वागत हैं । इस बारे में शीघ्र ही हम एक प प्रकाशित करने का विचार करते हैं । इस यह नोट जिन प्रकाशक-बन्धु या विचार पाठक की निगाह से गुजरे उनसे निवेदन है इस बारे में उनके पास जो कुछ जानकारी सामग्री हो उसे हमें भेजने की कृपा करें।

अभीष्ट विषय

जब 'जी० सा०' का निकालना तय हो तभी मैंने संपादकीय प्रयोजन के लिए उन वि की एक सूची बनाई थी जिनपर 'जी० सा० लिखाये जाने की आवश्यकता मैंने महसूस थी । अब मैं उसे यहाँ प्रकाशित कर देना उ समझता हूँ जिससे लेखक-बन्धुओं को अ लेख लिखने में सुविधा हो । चूँकि 'जी० सा अभी पृष्ठ बहुत कम हैं, लेख छोटे भेजने की प्रा है । सूची इस प्रकार है :—

१. दर्शन-साहित्य २. पुराण-साहि
३. साहित्यिक-साहित्य ४. कला-साहित्य
५. विज्ञान या शास्त्रीय-साहित्य

६. काम-साहित्य
७. ललित-साहित्य
८. बाल-साहित्य
९. स्त्री ,,
१०. हरिजन-साहित्य
११. सत्याग्रह ,,
१२. साम्यवादी ,,
१३. चिकित्सा ,,
१४. व्यापार-वाणिज्य ,,
१५. समालोचना ,,
१६. खेती-बागवानी ,,
१७. इञ्जीनियरी ,,
१८. यंत्र-साहित्य
१९. खादीग्रामोद्योग ,,
२०. शिक्षण-साहित्य
२१. व्यायाम-खेलकूद ,,
२२. सिनेमा ,,
२३. युद्ध ,,
२४. सामयिक ,,
२५. शासन ,,
२६. यात्रा ,,
२७. व्यंग-विनोद ,,
२८. विज्ञापन ,,
२९. लेखन ,,
३०. इतिहास ,,
३१. पुरातत्त्व ,,
३२. सौन्दर्य ,,
३३. स्वास्थ्य ,,
३४. शिकार ,,
३५. आहार ,,
३६. कला-कौशल ,,
३७. अहिंसा ,,
३८. गौरक्षा ,,
३९. धार्मिक ,,
४०. सन्तान-निग्रह ,,
४१. गृह-व्यवस्था ,,
४२. समाज-व्यवस्था ,,
४३. अन्तर्राष्ट्रीय ,
४४. नैतिक ,,
४५. उत्सव-त्यौहार ,,
४६. योग ,,
४७. राजस्थानी ,,
४८. वैदिक-साहित्य
४९. संत ,,
५०. क़ानून ,,
५१. पत्र ,,

मुझे यह दुहराने की तो आवश्यकता ही नहीं है कि लेख 'जीवन' को सामने रखके लिखे जायें।

सस्ती ख्याति

हमारे सार्वजनिक जीवन में सस्ती ख्याति की बीमारी जड़ पकड़ती जा रही है। तब 'साहित्य क्षेत्र' उससे वंचित कैसे रह सकता है? थोड़ा व्याख्यान देना आगया, लच्छेदार भाषा में लेख लिखना सीख गये, एकाध बार जेल के दर्शन कर आये, किसी सभा या जलसे में सभापति बन गये, किसी कार्यवश इधर-उधर तारीफ होने लगी, बस हम समझ लेते हैं कि हम प्रशंसा और ख्याति के पूरे अधिकारी हो गये। इस नाम के साथ फिर मान का भी भूत सिर पर चढ़ने लगता है। लेख अस्वीकार करने पर, उसमें कांट-छांट करने पर, भाषण का अवसर न देने पर, कमेटियों में न लेने पर, आदर-पूर्वक आव-भगत या बातचीत तथा विज्ञापन या प्रशंसा न करने पर लोगों के नाराज होने के अवसर मुझे मिले हैं और मिलते रहते हैं। उचित बात और योग्य व्यक्ति की कद्र करना प्रत्येक जिम्मेदार आदमी का फर्ज है; परन्तु अपनी योग्यता या क़ीमत को बढ़ा-चढ़ा कर आँकना या समझना और कम दाम मिलने पर नाराज होना, और आपे से बाहर हो जाना भी बड़ा दोष है, जिससे प्रत्येक उन्नतिशील व्यक्ति को बचने का यत्न करना चाहिए।

सेवा और सत्कार्य करना हमारे जिम्मे है; कद्र और प्रशंसा करना लोगों के जिम्मे है। हम अपने जिम्मे का काम छोड़कर लोगों की जिम्मेदारी को सिर पर लेने लगेंगे, तो हमारी रही-सही पूँजी भी घट जायगी। यदि हम योग्य हैं, हमारा काम अच्छा है, तो हमें यह विश्वास रखना चाहिए—और हमें विश्वास रहेगा ही——कि लोगों को आज नहीं तो कल हमारी कद्र करनी पड़ेगी। यदि हमारी आशा-अपेक्षा से कम दाम लोगों की तरफ़ से हमें मिलते हों, तो हमें खुद ही गहराई के साथ आत्मनिरीक्षण करना चाहिए, न कि लोगों को उसके लिए जिम्मेदार ठहरा कर उन्हें कोसना चाहिए। भला पारस या सोने के टुकड़े को कोई भी पनाले में पड़ा रहने देगा?

जैसे सस्ती चीज़ अन्त में महँगी पड़ती है, वैसे ही सस्ती ख्याति भी अन्त में बड़ी मँहगी साबित होती है। वह हमारे मन में एक मिथ्या महत्व का भाव पैदा कर देती है, जिसे निबाहने में हम अन्त को असमर्थ सिद्ध होते हैं और धड़ाम से नीचे गिरने की नौबत आती है। उस समय की निराशा, चिन्ता, व्याकुलता, बदनामी, हानि आदि से बचना हो तो सस्ती ख्याति से प्रत्येक साहित्य-सेवक और जन-सेवक को सदैव बचना चाहिए।

ह० उ०

मण्डल की ओर से—

तीन नई पुस्तकें

'मण्डल' इस वर्ष **कृषि, गोपालन** और **आरोग्य** पर तीन मौलिक पुस्तकें लिखवाना चाहता है। २०×३० : १६ पेजी पायका टाइप में छपे ३०० पृष्ठों की पुस्तक **कृषि** पर और २०० पृष्ठों की **गोपालन** और **आरोग्य** पर होनी चाहिए। **कृषि** की पुस्तक पर ५००) और **आरोग्य** और **गोपालन** की पुस्तकों पर ३००-३००) पारिश्रमिक देना 'मण्डल' ने तय किया है। पाण्डुलिपि फुलस्केप साइज़ के कागज पर एक तरफ लिखी और दोनों तरफ पूरा हाशिया छोड़कर अच्छे अक्षरों में लिखी होनी चाहिए। उपरोक्त पुस्तकों की पाण्डुलिपि 'मण्डल' के मंत्री के पास दिसम्बर के अन्त तक पहुँच जानी चाहिए।

इनकी जाँच के लिए 'मण्डल' उन-उन विषयों के अनुभवी तथा विद्वान् लोगों की एक कमिटी नियुक्त करेगा। कमिटी जो ग्रंथ पसन्द करेगी, उसे मण्डल छः महीने के अन्दर प्रकाशित करेगा। पारिश्रमिक का आधा रुपया पाण्डुलिपि पास हो जाने पर और आधा रुपया प्रकाशित हो जाने पर दिया जायगा। इन पुस्तकों का कॉपीराइट 'मण्डल' के पास रहेगा। पर दूसरे संस्करण पर लेखक को कुछ रॉयल्टी देने की व्यवस्था पर भी विचार हो रहा है। पुस्तक की क़ीमत 'मण्डल' १) और ।।-।।) आना रखेगा।

इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करनी हो, तो 'मण्डल' के मंत्री को लिखना चाहिए।

नवीन प्रकाशन

बापू, खादी मीमांसा, मेरी मुक्ति की कहानी तथा **समाजवाद : पूँजीवाद** इन तीन पुस्तकों की छपाई समाप्त हो गई है। ये अक्तूबर में प्रकाशित हो जावेंगी। नवम्बर के 'जीवन-साहित्य' के अंकमें हम मण्डल के स्थायी ग्राहकों को इसकी सूचना दे सकेंगे। इस बीच जिन ग्राहकों के नाम काटे जाने की सूचना दी गई थी, वे अपने नाम नहीं कटवाना चाहते हों, तो पिछले अंक में तथा
अंक में भेजे गये कार्ड को भरकर तुरन्त भेज

स्थायी ग्राहकों को सूचना

जिन स्थायी ग्राहकों के नाम काटे जाने
सूचना पिछले अंक में दी गई थी, उनमें से
कम के उत्तर आये हैं। जिन्होंने उत्तर नहीं
हैं, उनसे फिर प्रार्थना है कि कार्ड भर कर
देने की कृपा करें।

उनमें से कुछ को पिछले अंक में कार्ड
भेजे जा सके। उनको इस अंक में जा रहे
इन सबसे प्रार्थना है कि सब अपने-अपने
भरकर भेज दें।

'जीवन-साहित्य' के ग्राहक होनेवालों से

'मण्डल' के जिन ग्राहकों के पास 'जीव
साहित्य' के ग्राहक होने की सूचना गई थी, उन
आशा से अधिक उत्तर आये हैं। फिर भी जि
लोगों ने कार्ड भरकर नहीं भेजा हो, वे भी शी
ही भरकर भेज देने की कृपा करें।

गांधी-जयन्ति की रिआयत

इस अंक में अन्यत्र गांधी जयंति की रिआय
के नाम से जो विज्ञापन निकला है, उसके अनुसा
मण्डल के प्रधान कार्यालय, तीनों शाखा
कानपुर की एजेन्सी तथा संयुक्त प्रान्त, बिहा
महाराष्ट्र, मध्य-प्रांत, राजपूताना—मध्यभार
कलकत्ता, दिल्ली, लाहौर आदि के चर्खा-संघ
खादी-भण्डारों से कूपन भरकर देने पर रिआय
मूल्य में पुस्तकें मिलेंगी। यह ध्यान में रहे
कूपन भरना आवश्यक होगा।

एक सुन्दर भेंट

इस महीने के अंत तक मण्डल से प्रकाशि
होनेवाली **सर्वोदय साहित्य माला** तथा लो
साहित्य माला की पुस्तकों की संख्या १०
हो जावेगी। **नवजीवन माला, सामयिक साहि**
माला, बाल साहित्य माला विविध प्रकाशन औ
सोल एजेंसी की पुस्तकें अलग हैं। इन सब

संख्या मिलाकर कोई १३४ के होती हैं। इनमें ३२ पुस्तकें अप्राप्य हैं। बाकी बची १०२ पुस्तकों का मूल्य ८०) के लगभग होता है। इन सारी पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या लगभग २६०००·होती है । यह सारा सेट एक साथ मँगानेवाले सज्जन या संस्था को हम ६०) में देंगे । उसके साथ एक सुन्दर पालिश किया हुआ शेल्फ भी मुफ्त में देंगे, जिसमें ये पुस्तकें सजाकर रखी जा सकें । इनको भेजने का रेल-किराया भी 'मण्डल' देगा। आशा है पाठक, या शिक्षण-संस्थायें और पुस्तकालय इससे पूरा लाभ उठावेंगे ।

—**मंत्री**

सुहृदों की नज़र में

(२)

"आशा करता हूँ कि उसके सिद्धहस्त और यशस्वी सम्पादक के प्रयत्न से 'जीवन-साहित्य' की गणना उच्चकोटि के मासिक-पत्रों में होगी । अवश्य ही 'जीवन-साहित्य' हिन्दी के सामयिक साहित्य में एक बहुमूल्य वृद्धि करके उसका मुख उज्वल करेगा ।"

बिलासपुर स्टेट (पंजाब)] —**रामचन्द्र वर्म्मा**

"'जीवन-साहित्य' बहुत अच्छा निकला है । लेख बहुत सुन्दर, विचारोत्तेजक और ज्ञानवर्धक हैं। अस्वाभाविक परिस्थितियों के कारण जीवन से बिदककर भागते हुए साहित्य की जीवन से गँठ-जोड़ी करने में 'जीवन-साहित्य' सफल होगा । जिस विकास को कुछ लोग केवल परिवर्तन के रूप में देखने के आदी हो गये हैं, उसमें परिष्कार को भी समन्वित कर सकेगा, इसका मुझे विश्वास है। यह भी आशा बँधती है कि उसके द्वारा परिष्कार के नाम पर साहित्य के क्षेत्र में दमन-नीति का सूत्रपात न होगा और 'जीवन-साहित्य' की विस्तृत परिधि अखण्ड बनी रहेगी ।

आपकी सफलता की कामना के साथ ।"

लखनऊ] —**पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल**

"मुझे इसी प्रकार की पत्रिका पसन्द है । दो रुपये मूल्य रखकर इसे आपने और भी लोकोपयोगी बनाने का सद्प्रयत्न किया है, इसके लिए बधाई !

"आशा है, जिस भावना-धारा का नेतृत्व 'त्यागभूमि' करती रही है, उसकी यह सुचारु पूर्ति करेगी। मैं इसका सहर्ष अभिनन्दन करता हूँ ।"

बिन्दकी (यू० पी०)] —**सोहनलाल द्विवेदी**

"उसके पृष्ठों में एक निश्चित उद्देश्य-भाव झलक रहा है, श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का "पृथिवी-पुत्र" लेख तो हृदय में घर करने लायक़ है । हिन्दी के साहित्यकार को वास्तव में 'पृथिवी-पुत्र' ही का नमूना बनना है ।"

उदयपुर] —**जनार्दनराय**

"पढ़कर अत्यानन्द हुआ······शुद्ध एवम् सात्विक विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए हिन्दी-साहित्य में बहुत कम पत्रिकायें हैं । मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि आपके अध्ययन, मनन और अनुभव का निचोड़ पाठकों को प्रति मास मिला करेगा । आजके इस कठिन, घर्षणशील वातावरण में इसकी बहुत आवश्यकता है । मैं आपके इस सदुद्योग की पूरी सफलता चाहता हूँ ।"

नागपुर] —**अनन्तगोपाल शेवड़े**

"'जीवन-साहित्य' बहुत अच्छा निकला है । बधाई ।"

जबलपुर] —**गोविन्ददास मालपाणी**

"'जीवन-साहित्य' कुछ अंश में 'त्यागभूमि' की पुनीत स्मृति दिलाता है । आपका प्रकाशन-कार्य जैसे उद्देश्य से चल रहा है, उसीका वह सुन्दर प्रतीक है ।······"

वृन्दावन] —**भगवानदास केला**

"'जीवन-साहित्य' का प्रथमांक मिला । हाथ में आते ही देख डाला । बड़ा ही सुरुचिपूर्ण पत्र है । हाथ से छूटना कठिन होगया । एक-से-एक बढ़िया लेख हैं । मुझे इस पत्र को देखकर बड़ा ही सुख हो रहा है । मैं इसकी मंगल कामनायें करता हूँ ।" —**गणेशदत्त "इन्द्र"**

"कृतज्ञ हूँ। हिन्दी साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति करने का आपने आयोजन किया है। हमारे जीवन में ऐसे पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी। मेरी शुभकामना आपके साथ है। यदि मेरे योग्य कोई सेवा हो सके तो मुझे सहर्ष स्वीकार होगी।"

मेरठ] **—कमलादेवी चौधरी**

"हमें तो लगता है कि 'जीवन-साहित्य' 'सर्वोदय' का अनुपूरक भाई होगा। 'सर्वोदय' में जो साहित्य और जीवन-दृष्टि मर्यादा से नहीं आ सकती, वह 'जीवन-साहित्य' देगा और हिन्दी-साहित्य में अपना स्थान उत्तम कक्षा के सामयिकों में बना लेगा।"

सौराष्ट्र कालय, राणपुर] **—निरंजन वर्मा**

"आपने सम्मति माँगी है। समझ में नहीं आता कि क्या सम्मति दूँ। Stereotyped प्रशंसात्मक वाक्य लिखने को जी नहीं चाहता। केवल इतना ही लिखूँगा कि पत्र मुझे बहुत ही पसन्द आया।……"

बीकानेर] **—नरोत्तम स्वामी**

"बधाई। 'मालव-मयूर', 'त्यागभूमि' और इन दोनों का विकसित और परिमार्जित स्वरूप 'जीवन-साहित्य' द्वारा हिन्दी-प्रेमियों को देखने को मिलेगा। उसका अपना ढंग तो अनोखा है ही—क्या कहना!"

बम्बई] **—गोपालकृष्ण पौराणिक**

"हिन्दी-साहित्य के निर्माण और प्रकाशन की इतनी सुथरी और निष्पक्ष विवेचना में किसी अन्य पत्र में नहीं देख सका। 'अहंभाव' से भरे हुए हिन्दी के अधिकांश लेखकों और प्रकाशकों को ठीक रास्ते पर लाने के लिए ऐसे पत्र की आवश्यकता थी।

"आशा है, 'जीवन-साहित्य' को आप और भी उपयोगी बनाने की चेष्टा करेंगे।"

प्रयाग विश्वविद्यालय] **—रामकुमार वर्मा**

"'जीवन-साहित्य देखकर प्रसन्नता हुई है। आशा है, उसकी उत्तरोत्तर उन्नति होगी।"

प्रयाग] **—दयाशंकर दुबे**

"जी० सा० बड़ा अच्छा निकला है। ऐ पत्र की बड़ी आवश्यकता थी।"

काशी] **—चन्द्रभाल जौह**

"इसके लिए क्या कहना होगा? आपका नाम ही उसके साथ पर्याप्त है और 'त्यागभूमि' आज भी हिन्दी में स्मरण की जाती है। जी० सा० अपने ढंग का एक है। मैं तो यही चाहता हूँ कि यह भी 'त्यागभूमि' जैसा ही सर्वांगसुन्दर, पुष्ट कलेवर हो। मैटर की माँग बनी रहती है कि कुछ और होता तो उत्तम होता।"

उज्जैन] **—सूर्यनारायण व्या**

"'जीवन-साहित्य' की सफलता हृदय से चाहता हूँ। परमात्मा उसे चिरंजीवी करें।"

काशी] **— अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध**

"'जीवन-साहित्य' को देखकर तो ईर्ष्या उत्पन्न होती है कि हम भी ऐसा पत्र निकालें और 'जीवन-साहित्य' को उलटकर संसार को वस्तुतः 'साहित्य-जीवन' से युक्त कर दें। आपके पत्र की उन्नति चाहता हूँ। और चाहता हूँ कि यह पत्र साहित्य-सेवियों और साहित्य-जीवियों दोनों के लिए सुविधा से उपयोग में आने योग्य है।

अजमेर] **—जयदेव शर्मा**

"पढ़कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। हिन्दी-साहित्य तथा हिन्दी-संसार को इसका पथ-प्रदर्शन अत्यन्त उपयोग है। 'जीवन-साहित्य' के केवल दो अंकों से ही उसकी उपयोगिता हिन्दी-संसार महसूस करने लगा है। ऐसे सुसम्पूर्ण और सुन्दर भविष्य का सन्देश देनेवाले पत्र की बड़ी आवश्यकता थी। 'जीवन-साहित्य' से जहाँ एक ओर हिन्दी की अभिवृद्धि होगी, वहाँ दूसरी ओर क्रियात्मक दृष्टि से भी हिन्दी-लेखकों तथा साहित्यिकों का भला होगा। इसमें तनिक सन्देह नहीं। 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' और आप ऐसे सुन्दर और सस्ते पत्र के प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

प्रयाग] **—ज्योतिः प्रसाद निर्मल**

(असमाप्त)

सस्ता साहित्य मण्डल की

दिल्ली, लखनऊ और इंदौर शाखाओं की दुकानों पर निम्न प्रकाशकों की चुनी हुई उत्तम तथा सुरुचिपूर्ण पुस्तकें मिला करती हैं—

१. हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, २. छात्रहितकारी पुस्तकमाला, ३. भारती-भण्डार, ४. हिंदुस्तानी एकेडेमी, ५. नागरी प्रचारिणी सभा, ६. इंडियन प्रेस लि०, ७. गंगा पुस्तक माला, ८. हिंदी पुस्तक एजेन्सी, ९. साहित्य भवन लि०, १०. हिन्दी मन्दिर, ११. किताबिस्तान, १२. तरुण-भारत ग्रंथावलि, १३. आर्य साहित्य मंडल, १४. नवयुग साहित्य मन्दिर, १५. भारती साहित्य संघ, १६. साहित्य सदन, १७. सरस्वती प्रेस, १८. हिन्दी भवन, १९. वाणी मन्दिर, २०. प्रकाश पुस्तकालय, २१. नवयुग पुस्तक भंडार, २२. नवशक्ति प्रकाशन मन्दिर, २३. भूगोल कार्यालय, २४. पुस्तक भण्डार, २५. काशी विद्यापीठ, २३. ज्ञानमण्डल, २७. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, २८. हिन्दी पुस्तक भण्डार, २९. भारतीय ग्रन्थ माला, ३०. विशाल भारत बुकडिपो ३१. रामनारायणलाल बुकसेलर्स, ३२. रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, ३३. भार्गव पुस्तकालय, ३४. नवलकिशोर प्रेस, ३५. आदर्श ग्रन्थ माला, ३६. मोतीलाल बनारसीदास, ३७. मेहरचन्द लक्ष्मनदास, ३८. खेमराज श्रीकृष्णदास, ३९. गीता प्रेस, ४०. गीता-विज्ञान कार्यलय, ४१. नवजीवन कार्यालय, ४२. तिलक ब्रदर्स, ४३. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, ४४. परमश्रुत श्रावण मण्डल, ४५, देवीदत्त शर्मा के किंडर गार्टन बक्स, ४६. युगान्तर प्रकाशन समिति । आदि

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दांत और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँतक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजाओं-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं। कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

कुछ प्रशंसा-पत्रों का सार

मि० एच. एम. हैरिस, (लन्दन)—मैंने बाज़ार के प्रायः सब प्रकार के दन्तरोग नाशक मञ्जनों का प्रयोग किया, किन्तु किसीसे इतना लाभ नहीं पहुँचा, जितना आपके 'दन्तामृत मञ्जन से। **तब से मेरे दाँत में एक बार भी दर्द नहीं हुआ।**

ठा० माधोसिंहजी, होम मैम्बर, जोधपुर स्टेट—मेरे दाँतों के लिए आपका मञ्जन रामबाण सिद्ध हुआ।

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

कुछ अनमोल अंग्रेज़ी पुस्तकें

My Experiments with Truth	(Gandhiji)	4	0	0
Hind Swaraj	,,	0	4	0
Self restraint *Vs.* Self-Indulgence	,,	2	0	0
To the Students	,,	2	0	0
Cent per cent Swadeshi	,,	1	8	0
Satyagrah in South Africa	,,	4	8	0
From Yervada Mandir	,,	0	2	0
Bleeding wound	,,	0	12	0
Bhagavad-Gita	(C. R.)	0	6	0
Upanishad	,,	0	6	0
The Power of Non violence	(R. B. Gregg)	2	0	0
An Autobiography	(Jawaharlal Nehru)	5	4	0
Glimpses of World History	,,	6	0	0
Letters from a father to his daughter	,,	0	8	0
History of the Congress	P. Sitaramayya	2	8	0
Home and Village Doctor	Satish C. Dass Gupta	5	0	0

मंगाइए—

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

शाखायें : दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—यह पुस्तक एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना उतना कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना कठिन है। इस पुस्तक में अपने मन, वाणी, आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर सहज सरल उपाय बताये गये हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। मूल्य ।)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय। इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति के लिये अपने सर्वस्व निछावर करने वाले वीर, वीरागनाओं की कहानियों का संग्रह है। प्रत्येक कहानी बहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और जोरदार में लिखी हुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनाने वाली हैं। सुन्दर कवर से युक्त पुस्तक का मूल्य १)

चरित्र निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथित हृदय। इस पुस्तक में उन कहानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती हैं। चरित्र-निर्माण के लिये इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ।।।)

मैनेजर—**छात्र हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग**

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमैन--सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये
भुगतान पूँजी--१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइये या एजेंसी लिजिए

जहां हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन बीमा विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

जनरल मैनेजर:—
८, रॉयल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता
या
बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना, शाखाओं को।

आरती

[कलापूर्ण प्रगतिशील मासिक]

संपादक { सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

प्रत्येक हिन्दी-पाठक के लिए नियमित रूप से आरती पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि इसके हर अंक में आपको मिलेगा—

—विश्व की विविध प्रवृत्तियों का परिचय।
—भारतीय साहित्य की गति-विधि का निर्देश।
—साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर नवीनतम विचार।
--ओजपूर्ण कहानियाँ और कवितायें।
—संसार के महापुरुषों का उत्कृष्ट शब्द-चित्र।
--उत्पीड़ित मानवता की विद्रोहपूर्ण हुंकार।
--गम्भीर और प्रभावशाली टिप्पणियाँ।

ग्राहक बनकर और विज्ञापन देकर लाभ उठाइए

वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति ।।)

नमूने के लिए आठ आने का टिकट भेजिए।

आरती-मंदिर, पटना सिटी

हिन्दी-संसार में नई धारा की कविताओं का संग्रह

रोटी का राग

(द्वितीय संस्करण)

रचयिता—श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

(आचार्य—नव भारत विद्यालय वर्धा)

महात्मा गांधी—"'रोटी का राग' में पढ़ गया हूँ। कवितायें मुझको अच्छी लगी हैं। हेतु स्पष्ट और निर्मल है।"

श्री मैथिली शरण गुप्त—"श्री. श्रीमन्नारायणजी का 'रोटी का राग' हम भूखों-टूटों को रुचेगा, इसका कहना ही क्या? ········हमें नये कवि का कृतज्ञ ही होना चाहिए जिनका हृदय हमारी जठराग्नि से पिघल उठा है।"

आचार्य काका कालेलकर—"सरल, संस्करण और सहृदय, इन्ही शब्दों में श्रीमन्नारायणजी की कविता का वर्णन हो सकता है।"

मूल्य : आठ आना

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर का श्रेष्ठ साहित्य

कुछ चुने हुए ग्रन्थ

सदाचार और तत्त्वज्ञान

मानव-जीवन (कैरेक्टर)	१।।)
सफलता और उसकी साधना के उपाय	।।।≡)
मितव्ययता (सेम्युअल स्माइल्स)	।।।≡)
आनन्द की फाउण्डियाँ (जेम्स एलेन)	१)
प्रभावशाली जीवन ,, ,,	।।।)
सामर्थ्य, समृद्धि, शान्ति (स्वट मार्डेन)	१।।)
संजीवन-सन्देश (टी० एल० वास्वानी)	।।=)
चरित्र-गठन और मनोबल (राल्फ वा० ट्रा०)	≡)
युवाओं को उपदेश (विलियम काबेट)	।।=)
नीति-विज्ञान (आचारशास्त्र)	२।)
प्रपंच-परिचय (प्रो० विश्वेश्वर)	१।।)
ज्ञान और कर्म (सर गुरुदास बनर्जी)	३।।)

रवीन्द्र-साहित्य

प्राचीन-साहित्य (निबन्ध)	।।-)
राजा और प्रजा ,,	१)
स्वदेश ,,	।।=)
शिक्षा ,,	।)
चिरकुमार सभा (उपन्यास)	१)
आँख की किरकिरी ,,	१।।)
रवीन्द्र कथाकुंज (कहानी)	१=)
मुक्तधारा (नाटक)	।।≡)

शरत्साहित्य

शरद् बाबू की कहानियों और उपन्यासों के अब तक अठारह भाग निकल चुके हैं। प्रत्येक भाग का मूल्य दस आना।

इतिहास

शिवाजी (सर जदुनाथ सरकार)	१।।)
मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण (प्रो० इन्द्र)	४।।)
भारत के प्राचीन राजवंश (दो भाग)	६)
मध्य प्रदेश का इतिहास और नागपुर के भौंसले	१।।)

काव्य

सिद्धार्थ महाकाव्य (अनूप)	३)
सुमनांजलि ,,	२)
शतदल (बख्शी)	।।)
झंकार (सुदर्शन)	।।)
मौक्तिकमाल (दिनेशनन्दिनी)	१)

आलोचना

साहित्य-शिक्षा (बख्शी)	१।।)
साहित्य मीमांसा	१।=)
कालिदास और भवभूति (डी० एल० राय)	१।।)
हिन्दी-साहित्य की भूमिका (पं० हजारी प्र०)	२)
साहित्य की अनुक्रमणिका (पं० किशोरीदास)	।।।)

द्विजेन्द्र नाटकावली

मेवाड़पतन	।।।=)	ताराबाई	१)
दुर्गादास	१)	चन्द्रगुप्त	१)
शाहजहाँ	१)	लंकाविजय	१।)
नूरजहाँ	१=)	भीष्म	१।)
राणा प्रताप	१।।)	सीता	।।=)
अहल्या	।।=)	उस पार	१।)
सुहराब रुस्तम	।।=)	सूम के घर धूम	।)

उपन्यास-कहानियाँ

ग्राम्य जीवन की कहानियां (प्रेमचन्द)	१।)
नारी जीवन की कहानियाँ ,,	१।।)
मानसरोवर (दो भाग) ,,	२), २)
कल्याणी (जैनेन्द्रकुमार)	२)
परख ,,	१)
त्याग-पत्र ,,	१।)
वातायन ,,	१।।)
चार कहानियाँ (सुदर्शन)	२)
पनघट ,,	१।।)
दो फूल (सत्यवती मल्लिक)	१।)

नोटः—अपने पास के दूकानदारों से खरीदिये। नहीं तो हमसे मँगाइए। एक कार्ड लिखकर सूचीपत्र मंगाइए।

संचालक—**हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय** हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

नोटः—'हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर' की उत्तम पुस्तकें 'मण्डल' की तीनों शाखाओं पर भी मिलती हैं।

साधना

सम्पादक—श्री सत्येन्द्र एम० ए०

[विविध-विषय-विभूषित सांस्कृतिक मासिक-पत्रिका]

वार्षिक मूल्य २) : : एक प्रति का)

यों तो हिन्दी जगत में अनेक पत्र और पत्रिकायें हैं पर दो रुपये मात्र वार्षिक मूल्य में केवल 'साधना' ही उच्चकोटि की विविध विषय-विभूषित सामग्री भेंट करती है। आप भी नमूने का एक अंक मँगाकर देखिए। इसमें निम्नलिखित बातें आप पायेंगेः—

१—विद्यार्थियों के योग्य ज्ञानवर्द्धक लेख।
२—नवीन और प्राचीन साहित्य की सत्समालोचना।
३—आज और कल के पठनीय विचार।
४—भावपूर्ण गद्यगीत और सरस कवितायें।
५—समाज-सुधार के सम्बन्ध में उपादेय विवेचना।
६—शिक्षाप्रद कहानियाँ।
७—ठोस और गम्भीर सम्पादकीय विचार।

अबतक पत्रिका के १० अंक प्रकाशित हो चुके हैं, वर्ष की समाप्ति पर 'साधना' एक सुन्दर साहित्यिक और सामयिक विशेषांक अपने पाठकों को भेंट करेगी। जो लोग अभी से ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा लेंगे उन्हें यह विशेषांक मुफ्त में मिलेगा। दूसरे लोगों को उसका मूल्य अलग से देना होगा। अतः विशेषांक को बिना मूल्य प्राप्त करने के लिए आप शीघ्र ही साधना की ग्राहक-श्रेणी में अपना नाम लिखाइए।

'साधना' कार्यालय, बाँके-विलास, आगरा

कौन क्या कहता है ?

(१)……साधना के कई अंक भी मिले। मुझको अच्छे लगे। धन्यवाद। आपका प्रय सफल, हो यह कामना है।

—पुरुषोत्तमदास टण्डन

(२)……साधना की उत्तरोत्तर उन्नति की अभिलाषा करता हुआ उन अनेकों शुभकामना में, जो आपको अबतक पत्रिका के विषय में प्राप्त हुई हैं, मैं भी अपनी शुभकामना भेंट करता ह

—श्री राजगोपालाचार्य

[इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी सम्मतियाँ हैं।]

पत्रव्यवहार का पता—

एज्यूकेशनल प्रेस, बाँके-विलास, आगरा

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

जूट कारपेट

अति सुन्दर और आकर्षक होने पर भी,
मज़बूत तथा क़ीमत में भी बहुत सस्ते हैं।

इसलिए
किसी भी प्रकार की सजावट के लिए
सब लोग जूट कारपेट को ही पसन्द करते हैं।

मिलने का पताः—
सभी जूट कारपेट की दुकानों में
तथा
खन्ना इन्डस्ट्रीज, बनारस सिटी
नेशनल नॉवेल्टी स्टोर, कानपुर
जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग
और
बङ्गाल स्टोर्स, लिमिटेड

टेलीफोन नं० कलकत्ता ३६३२, नं० ८ए चौरंगी प्लेस, कलकत्ता में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपके इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

एजेंसी के लिए निम्न पते पर लिखें :—

टेलीफोन नं० कलकत्ता ५६५ टेलीग्राम—जूट वीवर

बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

'हंस-परिवार' की अनुपम योजना के सदस्य बनिये

[१] भारतीय-पुस्तक-माला
  (क) कायाकल्प (३ भाग)
  (ख) स्नेह-यज्ञ [१-२]
  (ग) कोकिला [भाग १-२]

[२] 'हंस' पुस्तकें
  (क) मा [भाग १-२]
  (ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग ३]
  (ग) सात इनक़लाबी इतवार [भाग १-२-३]

[३] गल्प-संसार-माला
  १० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी संग्रह ।

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
  (क) नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रंथावली
  (क) सोभा ले : इन्द्र वसावड़ा
  (ख) संजीवनी ले : 'सोपन'
  (ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] ले : सोपन

[६] जागृत-महिला-साहित्य
  (क) पिकनिक; लेखिका—कमलादेवी चौधरी
  (ख) पिया; लेखिका—उषादेवी मित्रा
  (ग) कौमुदी; लेखिका—शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
  (क) कँटीलेतार [भाग १-२]
  (ख) कार्ल और ऐना और ९ पुस्तकें

[८] 'हंस' मासिक १२ अंक

[९] 'कहानी' मासिक के १२ अंक और एक भेंट—पुस्तक ।

इसके साथ हम जिनके प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों को मात्र २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की महँगी के ज़माने में कितनी हानि उठानो पड़ेगी यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं : यह संस्था तो सेवा के लिए ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम 'हंस-परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे ।

इस मूल्य में घर बैठे बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठसंख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर रु० २।।) में १००० पृष्ठ मिलते हैं। इतनी सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है । यह योजना बेजोड़ है । निस्सन्देह।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा :

[१] १२०० पृष्ठ में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषोओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं । [४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों तथा कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह । १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे । [५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उपस्थिति किया गया है। [६] महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न । यह आपके परिवार में पत्नी तथा मा-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे । [७] 'आज की किताब' के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुलझाव रहेगा । अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

मोर छाप कागज़

[पोस्टर, क्रीमलेड, ह्वाइट प्रिंटिंग, मनीला]

आप अपने इस्तैमाल के लिए

पसन्द करेंगे तो आप निश्चय ही सन्तुष्ट होंगे

पत्र व्यवहार करें

ओरियण्ट पेपर मिल्स, लिमिटेड

मैनेजिंग एजेण्ट्स,

बिरला ब्रदर्स लिमिटेड, कलकत्ता

सर्वोदय

गांधीमत के अनुसार जीवनस्पर्शी सब विषयों की चर्चा करनेवाला
हिन्दी मासिक

सम्पादक—**काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी**

इसमें निम्न सज्जनों के भी लेख आते हैं :—

गांधीजी, श्री राजेन्द्र बाबू, किशोरलालभाई मशरूवाला, डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या, विनोबाजी, जे० सी० और भारतन् कुमारप्पा, सतीशचन्द्र दासगुप्त, डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष, आचार्य जावडेकर, जयरामदास दौलतराम, जी० रामचन्द्रन्, निर्मल कुमार बसु, नरहरिभाई परीख, मगनभाई देसाई, कविवर मैथिलीशरणजी और सियारामशरणजी गुप्त आदि।

(हर महीने पहली तारीख को सर्वोदय कार्यालय, वर्धा से प्रकाशित होता है)

मूल्यः—एक अंक का छह आना

वार्षिक मूल्य—देश में रु. ३; ब्रह्मदेश में रु. ३॥; विदेश में ६ शिलिंग या १.५० डॉलर

राष्ट्रभाषा के प्रचारमें सभी प्रकारकी सहायता देनेवाली मासिक पत्रिका

"सबकी बोली"

वार्षिक चन्दा १।)

[राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा से संचालित]

सम्पादक—काका कालेलकर, श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हर महीने की १५ वीं तारीख को निकलती है

इसमें आपको राष्ट्रभाषा-प्रचार-आन्दोलन की बहुत उपयोगी ताजी सामग्री, प्रचार-आन्दोलन की दिशा के संकेत, हिन्दी विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों के काम की बातें, कहानी, सरल कविता, शब्द-चर्चा, सरल शैली के निबन्ध, पात्र-चरित्र-चित्रण, कभी-कभी परीक्षा-प्रश्न-पत्रों के सरल उत्तर, महापुरुषों की जीवनियाँ इत्यादि पढ़ने को मिलेंगे। पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने में भी यह पत्रिका अपनी ओर से यथाशक्ति प्रयत्न करेगी। हिन्दुस्तानभर के राष्ट्रभाषा-प्रेमी इसके द्वारा अपने प्रचार तथा अनुभव राष्ट्र के सामने रख सकेंगे।

जो परीक्षार्थी 'सबकी बोली' के ग्राहक बनते वक्त **अपनी परीक्षा की क्रम-संख्या** लिख भेजेंगे, उन्हींको यह रु० १) में दी जायगी।

व्यवस्थापक—**'सबकी बोली', वर्धा**

जीवन-यात्रा में

विधवा का करुण क्रन्दन

पाषाण पुरुष-हृदय

पर कोई असर नहीं करता है।

क्योंकि

वह अपनी वृद्धावस्था के लिये अथवा अपनी प्रिय पत्नी के लिये या अपने प्यारे बच्चों के लिये संकट-समय का एकमात्र सहारा जीवन-बीमा नहीं कराता।

सहृदय होकर बिड़ला बन्धुओं द्वारा प्रबन्धित

न्यू एशियाटिक में

बीमा कराइये

जिसने १९३४ ई० में	१५,३८,५००
,, १९३५ ,,	२५,०१,०००
,, १९३६ ,,	३०,६६,७५०
,, १९३७ ,,	३५,५९,५००
,, १९३८ ,,	४१,७४,७५०
,, १९३९ ,,	५०,११,७६८

बीमे किये हैं

और जो प्रगतिशील बीमा कम्पनी है।

योग्य एजेण्टों की शहरों तथा कस्बों में आवश्यकता है।

न्यू एशियाटिक लाइफ इन्शुरेंस कम्पनी, लिमिटेड

कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएं;—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर; हैदराबाद (दक्षिण), लाहौर, पटना,
संगठन कार्यालय—अर्नाकुलम (कोचीन), कानपुर, तंजोर, त्रिचीनापल्ली, कोलम्बो, रंगून, इत्यादि।

जिसकी आप बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहे थे

वही

कहानी का विशेषांक

अथवा

अमर कलाकारों की कृतियों का

अनुपम संग्रह

सुन्दर व सुसज्जित रूप में प्रकाशित होगया

भावपूर्ण चित्रों से युक्त १५० पृष्ठों के इस विशेषांक में आप रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मैक्सिम गोर्की, डोरोथी कैरस, रैमन, देलवाली-इल्कान, बंकिमचन्द्र,
धूमकेतु, चिंचलीकर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामकुमार वर्मा,
भदन्त, आनन्द, कौसल्यायन, उपेन्द्रनाथ अश्क,
प्रकाशचन्द्र गुप्त; गुलाबराय आदि

ख्याति प्राप्त लेखकों व साहित्यिक महारथियों की अनूठी व अभिनव
कहानियां, एकांकी नाटक तथा लेख पढ़िये।

पाठकगण कृपया नोट करलें।

कथा-साहित्य के इस बहुमूल्य ग्रन्थ को तो हम 'कहानी' के प्रेमी 'ग्राहकों को भेंट करेंगे ही, साथ ही **जो सज्जन ३१ अक्तूबर ४० तक 'कहानी' के ग्राहक बन जायेंगे उनको १॥) मूल्य की 'कोकिला' पुस्तक भेंट करेंगे।** 'कहानी' का वार्षिक चन्दा केवल २) है। पुस्तकालयों के लिये १॥)। भेंट पुस्तक के पोस्टेज के लिए ।=) और चाहिये।

सरस्वती-प्रेस,
बनारस

ट्रेड मार्क

तारा छाप कागज़

स्वदेशी

भारतीय मूलधन, प्रबंध
परिश्रम का

सस्ता

सुन्दर

टिकाऊ

ध्यान रखते हुए सदा
स्टार पेपर मिल का कागज़ व्यवहार करें

एजेन्ट—

बिहारीलाल मदनलाल जयपुरिया

श्री महालच्मी मारकेट
फोन नं० ६६३५
: :
इम्पीरियल बैंक के पास दिल्ली

Regd No L 4671

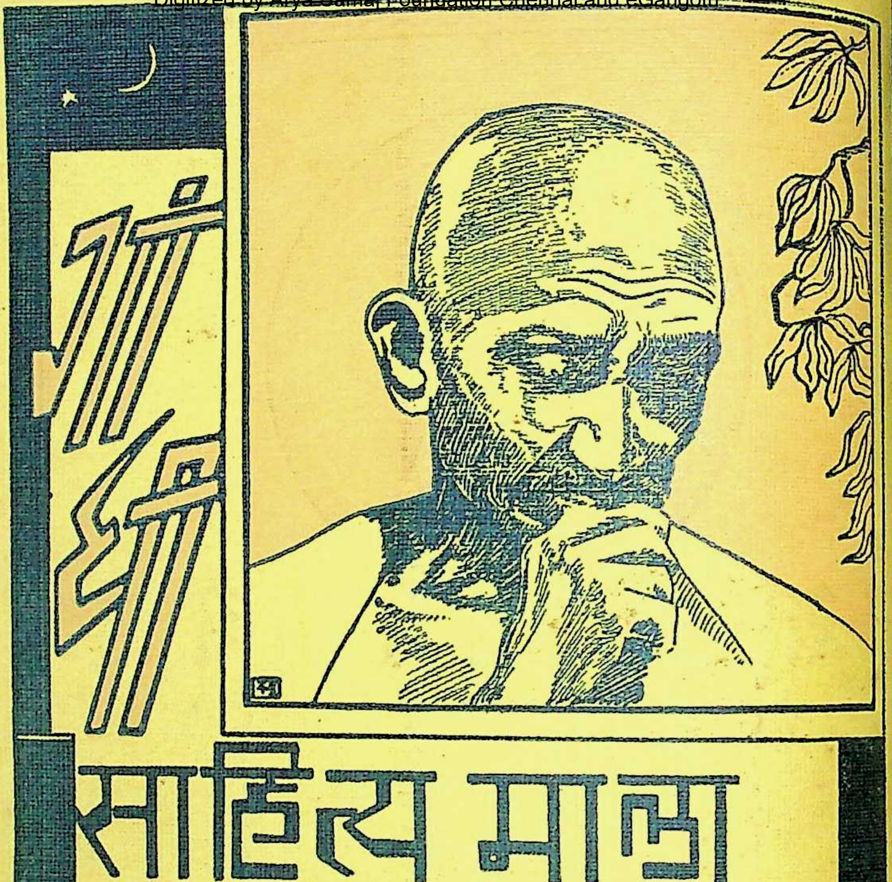
गांधी
साहित्य माला
सस्ता साहित्य मण्डल
की प्रधान विशेषता
—है—

'जीवन-साहित्य' के पाठकों के लिए

गांधी-जयन्ती की रिआयतें : अंदर देखें

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहांसे मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

* तमसो मा ज्योतिर्गमय *

जीवन साहित्य

१ : अंक ४

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

नवम्बर : १६४०

मीठे अनुभव

महात्माजी ने देश के सार्वजनिक जीवन में अद्भुत क्रान्ति कर दी है। ऐसी प्रवृत्तिवालों का एक गिरोह यहाँ पैदा कर दिया है जिसे पद, मान, प्रतिष्ठा की उतनी पर्वा नहीं है जितनी सच्ची सेवा की। हाल ही इसके दो मीठे अनुभव मुझे हुए हैं। उदयपुर के राजस्थान-साहित्य-सम्मेलन के मन्त्रीपद का जब सवाल उठा, तो जोधपुर, अजमेर व उदयपुर तीनों जगह के मित्रों ने यह भावना प्रदर्शित की कि जहाँसे काम अधिक होने की संभावना हो वहाँ कार्यालय रहे व जो अधिक-से-अधिक काम करने का हौसला रक्खे उसे मंत्री बनाया जाय। हममें जिसपर भी जिम्मेदारी आ जायगी वह जी-जान से काम करने में कसर नहीं रक्खेगा। पद के लोभ में कार्यालय की छीना-झपटी की प्रवृत्ति नहीं दिखाई दी।

अभी मैं मुरैना (ग्वालियर-राज्य) की सार्वजनिक सभा के वार्षिक अधिवेशन से लौट रहा हूँ। वहाँ भी मुझे यही सुखद अनुभव हुआ। पद न लेते हुए भी सच्चे दिल से काम व सेवा करने का आश्वासन देते हुए कई मित्रों को देखा। इसमें मिथ्या विनय या शिष्टाचार नहीं था। गांधीजी ने हमारे विचारों पर ही नहीं, आचार पर भी कितना पवित्र प्रभाव डाला है यह इन उदाहरणों से ज़ाहिर होता है। बिना पद या मान के जो सेवा की जाती है उससे सेव्य व सेवक दोनों का श्रेय होता है।

ह० उ०

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. आत्मा का कैसा कारागृह (कविता)
(प्रो॰ प्रभाकर एम॰ ए॰) १४७
२. बहें या तैरें ?
(श्री हरिभाऊ उपाध्याय) १४८
३. पुण्य-स्मृतियाँ
(भदन्त आनन्द कौसल्यायन) १५०
४. हमारी संस्कृति की अविच्छिन्न धारा
(श्री सम्पूर्णानन्द) १५३
५. स्व॰ द्विवेदीजी का एक महत्त्वपूर्ण पत्र
(श्री बनारसीदास चतुर्वेदी) १५५
६. हवा-खाना
(श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह) १५७
७. जीवन-साहित्य
(आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ) १५८
८. प्रेमचन्द : एक इंटर्व्यू
(श्री जैनेन्द्रकुमार) १६०
९. स्व॰ इक़बाल की एक रुबाई १६१
१०. अबोहर का साहित्य-सदन
(आचार्य काका कालेलकर) १६२
११. बाल-साहित्य
(श्री रामकृष्ण 'खद्दरजी') १६३
१२. मेरा राग (श्री जटायु) १६५
१३. प्रस्तुत प्रश्न
हिन्दी-उर्दू पर पं॰ लक्ष्मीधरजी; ए प्रश्न; 'कामसूत्र' या अन्य काम-शास्त्र १६६-
१४. कसौटी पर (समालोचनायें)
बापू; राजस्थान के ग्रामगीत; दो फूल; मिश्रबन्धु-कार्यालय का बाल-साहित्य; समालोचनार्थ प्राप्त १७५-
१५. सिंहावलोकन
१६. हिन्दी की हलचलें
१७. क्या और कैसे ? (सम्पादकीय)
सम्मेलन-प्रश्नावलि; सफल सम्मेलन सभापति का भाषण; विनोबा; कालिदास-स्मृति-दिवस; अभिनंदनीय; बधाई; साधुवाद १८५-
१८. 'मण्डल' की ओर से—
नई पुस्तकों की सूचना; 'विनोबा और उनके विचार'; युद्ध के पक्ष और विपक्ष में; मण्डल के ग्राहकों से निवेदन; अप्राप्य पुस्तकें; हिन्दी-मराठी कोष १८९-

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित होता है।

२. किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं, पर साल से कम के नहीं।

३. 'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इंदौर शाखाओं तथा संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रांत, राजपूताना-मध्य भारत, व पंजाब के चर्खा-संघ के खादी-भंडारों तथा 'हरिजन कार्यालय' पूना नं॰ ४ से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बन सकते हैं।

४. हर मास के पहले हफ्ते में पत्र न मिले तो अपने यहाँ के डाकखाने से पूछ-ताछ करके **अपनी ग्राहक-संख्या के साथ** पत्र लिखना चाहिए। उचित कार्रवाई की जायगी।

५. अपने पते में कोई परिवर्त्तन कराना हो तो तुरन्त सूचना दिया करें—**ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।**

६. पत्र का चंदा इस प्रकार है—

भारत में	बर्मा में	विदेश में	एक प्रति
२)	२॥)	५ शिलिंग	।)

नोट—नमूने के अंक के लिए ।) के टि भेजें। वार्षिक मूल्य डाक के टिकटों में भी भे जा सकता है।

७. पत्रव्यवहार करते समय अपनी ग्रा **संख्या अवश्य लिखें।**

८. 'जीवन-साहित्य' में शिष्ट साहित्य त उपयोगी सुरुचिपूर्ण और देशी वस्तुओं के विज्ञा लेने की गुंजाइश रक्खी है।

दर इस प्रकार हैं—
कवर का दूसरा पृष्ठ प्रतिमास ४०)
,, तीसरा ,, ,, ४०)
,, चौथा ,, ,, ५०)
पाठ्य विषय के सामने ,, ४०)
साधारण पृष्ठ— ,, २५)

९. विज्ञापन-एजेण्टों को कमीशन आदि लिए पत्रव्यवहार करना चाहिए।

पता—
व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य',
कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

सस्ता साहित्य मण्डल

[हिन्दी की श्रेष्ठ राष्ट्रीय एवं सार्वजनिक प्रकाशन-संस्था]

शाखायें—दिल्ली, लखनऊ, इन्दौर

नई दिल्ली १ नवम्बर, १९४०

स्थायी ग्राहकों के नाम
नवीन पुस्तकों की सूचना

इस पत्र के रैपर पर आपके नाम के पहले जो नम्बर है उसे कार्ड में भरकर अवश्य भेजें

बन्धुओ,

पिछली बार जुलाई तथा अगस्त महीने में नई पुस्तकों की सूचना आपको दी गई थी । उसके बाद तुरंत ही यह 'जीवन-साहित्य' पत्र निकला । अबकी बार इसी पत्र द्वारा हम आपको अपनी नवीन पुस्तकों की सूचना दे रहे हैं । इस बार हमने सात नई पुस्तकें निकाली हैं—

१. समाजवाद : पूंजीवाद (शोभालाल गुप्त)	।।।)
२. मेरी मुक्ति की कहानी (टॉल्स्टॉय)	।।)
३. खादी-मीमांसा (बालूभाई मेहता)	१।।)
४. बापू (घनश्यामदास बिड़ला)	।।।)
***५. विनोबा और उनके विचार**	।।।)
***६. सत्याग्रह क्यों शुरू हुआ ? (संकलन)**	।=)
७. सीख की कहानियाँ	=)
कुल मूल्य	४।।।)
स्था० ग्रा० कमीशन	१≡)
कुल	३।।-)

नोट—*निशान लगी पुस्तकें नवम्बर के दूसरे हफ्ते में प्रकाशित हो जावेंगी ।]

उपरोक्त पुस्तकों का पूरा परिचय कवर के चौथे पृष्ठ पर दिया गया है ।

इनमें से नं० १, ३, ४, ५, वाली पुस्तकें सर्वोदय साहित्य माला की, नं० २ टॉल्स्टॉय-ग्रंथावलि की, नं० ६ सामयिक साहित्य माला की, और नं० ७ बाल-साहित्य माला की है ।

१. अब आपको यह मालूम होगया होगा कि खादी-भंडार लाहौर और भिवानी, संयुक्त-प्रांत के तमाम गांधी-आश्रम खादी-भंडार, बिहार चर्खा-संघ के खादी-भंडार, महाराष्ट्र चर्खा-संघ के खादी-भंडार, राजस्थान चर्खा-संघ के खादी-भंडार तथा कलकत्ता के शुद्ध खादी-भंडार और 'हरिजन' कार्यालय, पूना पर मंडल की सब पुस्तकें मंडल के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में मिल सकती हैं । ाप सब के पास 'ग्राहक प्रमाणपत्र' तो है ही । उसे बताकर ये सब पुस्तकें मंडल की शाखाओं, कानपुर की 'मण्डल' की एजेन्सी तथा इन भंडारों पर से शीघ्र ले लें ।

२. आप में से बहुतों ने 'जीवन साहित्य' का जो कार्ड भर कर भेजा है उसमें लिखा है कि जी० सा० का मूल्य १) पुस्तकें मँगावें तब जोड़लें । अत: अब वह रुपया जोड़ने का भी आप उल्लेख कर दें ।

३. कुछ बन्धुओं ने लिखा है कि जी० सा० का रुपया भेज रहे हैं, पर भेजा नहीं है । अत: अबतक जिन्होंने न भेजा हो वे भी इन पुस्तकों के साथ वी० पी० में उसे जुड़वालेने की कृपा करें ।

४. जी० सा० पत्र आपके लिए खासतौर से निकाला गया है। इसको स्वावलम्बी
और इसकी उन्नति में दिलचस्पी लेना आपका काम है। हम चाहते हैं कि मंडल का प्रत्येक
जी० सा० का ग्राहक बन जाय। इसीलिए हमने मंडल के ग्राहकों से इसका मूल्य आधा र
साल में १) कोई बड़ी बात नहीं है। इतने स्वल्प मूल्य में आप शुद्ध और श्रेष्ठ साहित्य का
साहित्यिक गति-विधि का अवलोकन तथा संस्कारवान् विचारों का परिचय प्राप्त कर सकते हैं।
आपमें से जो इसके ग्राहक नहीं बने हैं वे शीघ्र ही बन जाने की कृपा करें।

५. आप लोगों से हमारी सबसे बड़ी शिकायत तो यह है कि आप शीघ्र और
उत्तर देने की कृपा नहीं करते। कार्ड तो छपा-छपाया आपकी सेवा में जाता ही है। सिर्फ
कर भेजना होता है। उसे भेजने के टिकिट का भी खर्चा हमने आपका बचा दिया है। अ
जितने कार्ड आपकी सेवा में जायँ वे भरकर आ ही जाने चाहिएँ।

६. पिछले दो महीनों में जिन सज्जनों के नाम 'मण्डल' की ग्राहक-श्रेणी में से काटे
उनमें से जिन लोगों ने जैसा भी कुछ उत्तर भेजा उन सबको हमने फिर से ग्राहक-श्रेणी में
दिया है। और भी जो सज्जन भेजे गये कार्ड को भरकर भेज देंगे उनका नाम हम ग्राहक-श्रे
रहनें देंगे। काटेंगे नहीं। अतः शीघ्र उत्तर दें।

७. पिछली बार, निम्न पुस्तकों की सूचना आपको दी गई थी। ये सोल एजेन्सी विभाग
प्रचारित पुस्तक विभाग की हैं। इनपर आपको 'मण्डल' की पुस्तकों के समान ही कमीशन मिले

सन् १९४०, पिता के पत्र पुत्री के नाम, मेरा देश, आर्थिक संगठन। इन पर आपका
ध्यान नहीं गया मालूम होता है। आशा है, इस बार पुस्तकें मँगाते समय इनको भी मँगावेंगे।

८. इस बार प्रचारित पुस्तकों में निम्न पुस्तकें हमारे पास और आई हैं—उनको भी
साथ मँगालें तो खर्च में बचत हो जायगी।—योग के चमत्कार १।), पौराणिक कथायें १॥),
चंद्रिका ४)

९. 'आगे बढ़ो' तथा 'चारादाना और उसको खिलाने के उपाय' का नवीन परिवर्द्धित सं
हो गया है।

१०. आप लोगों को 'जीवन-साहित्य' पिछले तीन अंकों से लगातार जाता रहा है। और
की बात है कि आप में से बहुत से लोग इसके ग्राहक बन गये हैं। आपने इसे देख-परख लिया।
अगर इसके ग्राहक बन जाना चाहें तो इसी आर्डर-कार्ड पर इसके ग्राहक बनने के बारे में जो
है उसे भी भर दें और स्वीकार कर दें। यह स्पष्ट है कि इसके बाद अगर आप ग्राहक नहीं
फिर यह पत्र आप लोगों के पास हमेशा नहीं जाता रहेगा। अगले अंक से यह बन्द कर
जायगा। पर 'मण्डल' के प्रकाशनों तथा हिन्दी की साहित्यिक गतिविधि से परिचित रहने के
इसका ग्राहक बन जाना ही अच्छा है। आशा है इसका ध्यान रक्खेंगे।

**११. पुस्तकें मँगाते समय अपना रैपर पर लिखा हुआ नम्बर अवश्य लिखने
कृपा करें।**

भवदीय

मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री और व्यवस्था

विशेष—कुछ आवश्यक कारणों से 'सत्याग्रह क्यों शुरू हुआ ?' का प्रकाशन स्थगित कर
गया है।
—

'सस्ता साहित्य मण्डल' का सम्पूर्ण साहित्य

[एक रुपया देकर स्थायी ग्राहक बनने पर पौने मूल्य में]

(इस × निशानवाली पुस्तकें अप्राप्य हैं)

पूरा सेट लेने पर कमीशन के अलावा सागवान का पॉलिश किया हुआ सुन्दर शेल्फ भेंट में

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन-साहित्य १।) ३. तामिल वेद ।॥) ४. व्यसन और व्यभिचार ॥=) ५. समाजिक कुरीतियाँ× ।॥) ६. भारत के स्त्री-रत्न ३) ७. अनोखा× १।=) ८. ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥=) ९. यूरोप का इतिहास २) १०. समाज-विज्ञान ।॥) ११. खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र× ॥≡) १२. गोरों का प्रभुत्व× ॥=) १३. चीन की आवाज़× ।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।) १५. विजयी बारडोली× २) १६. अनीति की राह पर ॥=) १७. सीता की अग्नि-परिक्षा ।-) १८. कन्या शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ॥) २२. अँधेरे में उजाला ॥) २३. स्वामीजी का बलिदान× ।-) २४. हमारे ज़माने की गुलामी× ।) २५. स्त्री और पुरुष ॥) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें ? १) २८. हाथ की कताई-बुनाई× ॥-) २९. आत्मोपदेश× ।) ३०. यथार्थ आदर्श जीवन× ॥-) ३१. (देखो नवजीवन माला) ३२. गंगा गोविंदसिंह× ॥=) ३३. श्रीरामचरित्र १।) ३४. आश्रम-हरिणी ।) ३५. हिन्दी मराठी कोष २) ३६. स्वाधीनता के सिद्धान्त× ॥) ३७. महान् मातृत्व की ओर ॥=) ३८. शिवाजी की योग्यता ।=) ३९. तरंगित हृदय ॥) ४०. नरमेध× १॥) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४२. ज़िन्दा लाश ॥) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) १॥) ४४. जब अंग्रेज़ आये× १।=) ४५. जीवन विकास १।) ४६. किसानों का बिगुल× =) ४७. फाँसी ! ।=) ४८. (दे० नवजीवन माला) ४९. स्वर्ण विहान× ।=) ५०. मराठों का उत्थानपतन २॥) ५१. भाई के पत्र १) ५२. स्वागत× ।=) ५३. युगधर्म× १=) ५४. स्त्री-समस्या १॥) ५५. विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला× ॥=) ५६. चित्रपट ।=) ५७. राष्ट्रवाणी× ॥=) ५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ।॥) ५९. रोटी का सवाल ।॥) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६१. जीवन-सूत्र ।॥) ६२. हमारा कलंक ॥=) ६३. बुद्बुद ॥) ६४. संघर्ष या सहयोग ? १॥) ६५. गांधी-विचार-दोहन ।॥) ६६. एशिया की क्रांति× १।॥) ६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता १॥) ६८. स्वतन्त्रता की ओर १॥) ६९. आगे बढ़ो ! ॥) ७०. बुद्ध-वाणी ॥=) ७१. काँग्रेस का इतिहास २॥) ७२. हमारे राष्ट्रपति १) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू) २॥) ७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों ? ॥) ७६. नया शासन विधान ।॥) ७७. (१) गाँवों की कहानी ॥) ७८. (२-९) महाभारत के पात्र १) ७९. सुधार और संगठन १) ८०. (३) संतवाणी ॥) ८१. विनाश या इलाज ।॥) ८२. (४) अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ॥) ८३ (५) लोक-जीवन ॥) ८४. गीता-मंथन १॥) ८५. (६) राजनीति प्रवेशिका ॥) ८६. (७) अधिकार और कर्त्तव्य ॥) ८७. गांधीवाद : समाजवाद ।॥) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ॥) ८९. (८) सुगम चिकित्सा ॥) ९०. प्रेम में भगवान् ॥) ९१. महात्मा गांधी ।=) ९२. ब्रह्मचर्य ॥) ९३. (१०) हमारे गाँव और किसान ॥) ९४. अभिनन्दन-ग्रंथ २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्यायें १) ९६. जीवन-सन्देश ॥) ९७. समन्वय २) ९८. समाजवाद-पूँजीवाद ।॥) ९९. मेरी मुक्ति की कहानी ॥) १००. खादी मीमांसा १॥) १०१. बापू ।॥) सजिल्द १।) २) १०२. विनोबा और उनके विचार ।॥)

नवजीवन माला

१. गीताबोध -) २. मंगलप्रभात -) ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय -)

कोष्टकवाली 'लोक साहित्य माला' की पुस्तकें हैं।

५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज ≡) ७. छूतछात की माया -) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १०. खादी गादी की लड़ाई =) ११. मधुमक्खी पालन =) १२. गावों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गायन =) १४. खादी का महत्व -)॥ १५. जब अंग्रेज नहीं आये थे ≡)

सामयिक साहित्य माला

१. कांग्रेस का इतिहास १९३५-३९ ।-) २. दुनिया का रंगमंच =) ३. हम कहां हैं ? =) ४. युद्ध संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब,कैसे ? ≡) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।) ७. सत्याग्रह क्यों शुरू हुआ ? ।=)

बाल साहित्य माला

१. सीख की कहानियाँ =) २. कथा कहानी— १=) ३. शिवाजी चरित्र=) ४. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ५. सीख की कहानियां (२) =)

विविध पुस्तकें

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू ।) २. जवाहरलाल नेहरू =) ३. सप्तसरिता (काका कालेलकर) =) ४. चारा दाना और उसको खिलानें के उपाय =)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ॥) ३. फ्रांस की राज्य-क्रांति १।) ४. गांधीवाद की रूपरेखा १) ५. सन् १९४० १) ६. पिता के पत्र पुत्री के नाम ॥)

प्रचारित पुस्तकें

१. आर्थिक संगठन ।।।) २. योग के चमत्कार १।) ३. रूपांतर ।।) ४. पौराणिक कथायें १॥) ५. अनोखा बलिदान ।।) ६. पाकचंद्रिका ४) ७. मेरा देश ।)

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—लेखक—पं० जगपति चतुर्वेदी। यह पुस्तक कई प्रसिद्ध अंग्रेजी, संस्कृत, पाली तथा हिन्दी पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना उतना कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना कठिन है। इस पुस्तक म अपने मन, वाणी, आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर सहज सरल उपाय वताये गये हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। मूल्य १)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय। इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति के लिये अपने सर्वस्व निछावर करने वाले वीर, वीरागनाओं की कहानियों का संग्रह है। प्रत्यक कहानी वहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और जोरदार में लिखी हुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनाने वाली हैं। सुन्दर कवर से युक्त पुस्तक का मूल्य १)

चरित्र निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथित हृदय। इस पुस्तक में उन कहानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती हैं। चरित्र-निर्माण के लिये इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ।।।)

मैनेजर—**छात्र हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग**
कानपुर के सोल एजेंट-साहित्य निकेतन, कानपुर

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

नवम्बर १९४०
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक चौथा

आत्मा का कैसा कारागृह ?

आत्मा का कैसा कारागृह ?
ये क्षणजीवी पार्थिव बन्धन, वह युग-आत्मा का सत्याग्रह !
ये लौह पाश, ये हथकड़ियाँ,
ये प्रहरी जो गिनते घड़ियाँ,
ये जड़ लौकिक, ये आत्मबद्ध ; स्वाधीन असीम चेतना वह !
ये जड़, वह तो है रे चेतन;
वह मुक्ति-कामना, ये बन्धन !
क्या क्रूस, शूल, काला पानी, उसको जिसका व्रत अपरिग्रह !
उसको क्या बाँधेगी कारा ?
बन्धन बिखरे जिसके द्वारा !
उस आत्मा के आगे आहत ऐहिक-दैविक आज्ञा अहरह !
वह सहिष्णुता का आगर है,
वह विशद अहिंसा-सागर है,
आते जिसमें मिलने सौ-सौ हिंसा के नद-निर्झर बह-बह !!
आत्मा का कैसा बंदीगृह ?

प्रभाकर

बहें या तैरें ?

कामुकता, शृंगार, अश्लीलता, कुछ भी कहिए, इसकी जो धारा कुछ हिंदी-कवियों की रचनाओं बही है उसके खिलाफ 'जी० सा०' में आवाज उठी है। अब पक्ष में भी कुछ लेख व विचार आने हैं। पिछले अंक में श्री राजेन्द्रकुमार का लेख 'अश्लीलता क्या है ?' उसका नमूना है। मुझसे चाहा गया है कि अपने विचार 'जी० सा०' में लिखूँ। मैं इन तीनों में से किसी को स्वतन्त्र मान विचार नहीं करता, क्योंकि जीवन—जीवन का विकास, जीवन की परिपूर्णता––सर्वप्रथम व सर्वोपरि है। शरीर से स्वतन्त्र उसके अवयवों का विचार करना या उन्हें शरीर से अधिक महत्व जैसे अस्वाभाविक, हानिकर व हास्यास्पद होगा, वैसे ही कामुकता, शृंगार, अश्लीलता आदि को जी से पृथक् मानकर चलने से होगा। कामुकता एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है, शृंगार की ओर मनुष्य झुकाव स्वाभाविक है एवं अश्लीलता संस्कृति या सभ्यता के उतार-चढ़ाव से सम्बन्ध रखती है। ऐ दशा में इनका ऐकान्तिक विरोध नहीं किया जा सकता। इनके पक्ष में सन्त आगस्ताइन का वचन पेश किया जाता है कि जब ईश्वर को या प्रकृति को गुह्य अंगों के बनाने में शर्म नहीं आ तो हमें उनका नाम लेने में––उनका वर्णन करने में––क्यों शर्माना चाहिए ? जिन क्रियाओं आचरणों के करने में दोष या पाप नहीं है, उनका वर्णन जन-समुदाय के सामने करना क्यों आपत्ति जनक समझा जाना चाहिए ? इन दलीलों की आंशिक सचाई से इनकार करना कठिन है। मगर ईश ने क्या बनाया, प्रकृति ने हमें क्या दिया, इसका ज्ञान जितना हमारे जीवन के लिए उपयोगी व आवश्यक है उतना ही यह भी उपयोगी और आवश्यक है कि हम यह सोचें कि ईश्वर या प्रकृति वस्तुओं, गुणों, भावों, शक्तियों का उपयोग हम जीवन को बनाने में कैसा और कितना करें ? ईश या प्रकृति ने शेर बनाया है तो क्या हम उसके मुँह में घुस जायँगे ? संखिया बनाया है तो क्या उ खाकर मर जायेंगे ? ईश्वर ने जहाँ कई तरह की चीजें बनाई हैं तहाँ उसने मनुष्य को यह बुद्धि तो प्रदान की है कि वह सोचे कि किस वस्तु का कैसा, कितना, किस तरह उपयोग करे जिससे उ लाभ अधिक व हानि कम हो। इस बुद्धि-शक्ति या विवेक का उपयोग हम नहीं करेंगे तो अ को ईश्वर की सृष्टि का उपभोग करने के अयोग्य सिद्ध करेंगे और उसके दण्ड से हरगिज न ब सकेंगे। बिना सावधानी के यदि आप शेर के मुँह में हाथ देंगे, आग में कूद पड़ेंगे, जहर खा लेंगे इसका फल या दण्ड किसे भुगतना होगा ? प्रकृति ने स्त्री को मनोहर बनाया है तो क्या हम उस उलझ मरें ?

जीवन के लिए ज्ञान व रस दोनों आवश्यक हैं। यदि आप स्त्री-पुरुषों के अंग-उपांगों का ज्ञा प्राप्त करना चाहते हैं, प्रसंगवश उनके ज्ञान की चर्चा करना चाहते है, आविष्करण करना चाहते हैं शौक से करें; उनके सदुपयोग के मार्ग शोधना चाहते हैं, जरूर शोधें; वैद्यक-विद्यालय इनके लि समुचित स्थान हैं––न कि अखबार या कविता-पुस्तक। सृष्टि की रमणीयता का रसास्वादन कर चाहते हैं तो उसके लिए भी मैं मना नहीं करूँगा; लेकिन यह चेतावनी जरूर दूंगा कि रमणीयता से पोषक रस को पीजिए, मादक और मारक रस से दूर रहिए। दूध—संजीवन-रस—आप खूब पीजि और दिल खोलकर सबको पिलाइए; परन्तु मद्य या संखिया-रस न खुद पीजिए, न दूसरों को पिला की चेष्टा कीजिए। यदि आप डाक्टर-वैद्य हैं तो अपने मरीज के रोग-निवारणार्थ उनका जित उपयोग वाजिब है उतना भले ही करें।

इसकी तह में जो सवाल है वह यह कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध क्या है और क्या हो ? इनमें काम-विकार है वह आनन्द, भोग, तृप्ति के लिए है या उसका कोई और उपयोग है ? स्त्री-पुरुष ए दूसरे के भोग-साधन बनने के लिए, काम-तृप्ति के लिए विवाह करते हैं या माता-पिता बनने के लि

अथवा समाजोपयोगी बनने के लिए, और आगे बढ़ें तो आत्म-कल्याण के लिए, जीवन की परिपूर्णता के लिए ?

इसका विचार व निर्णय करते समय हमें यह न भूलना चाहिए कि मनुष्य पशु नहीं है; पशुता से मानवता की ओर उसका सतत प्रयाण है, यही उसका इतिहास है। यही उसकी संस्कृति या सभ्यता का माप-दण्ड है। बुद्धि इसमें उसको मार्ग दिखाती है, प्रकाश देती है और पुरुषार्थ उसे उसपर चलने का, चलते रहने का बल देता है। मानवी बुद्धि ने मनुष्य को अबतक विकारों को संयम में रखने, उनपर विजय या प्रभुत्व प्राप्त करने की सलाह व प्रेरणा दी है और इसी प्रयत्न ने संसार में मानवी भावों की वृद्धि की है। आनन्द और भोग के उपदेशक भी हुए हैं; परन्तु अनुभव ने हमेशा उनके खिलाफ फैसला दिया है और इसीलिए वे बढ़ व पनप नहीं सके। यदि आप अनुभवियों से शिक्षा लेना नहीं चाहते हैं, तो थोड़े दिन प्रयोग के लिए, 'कच-कुच-कटाक्ष' या 'मद्य-मांस-मैथुन' में लिप्त रहकर देख लीजिए कि आपके शरीर, मन, आत्मा पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है ? यदि आप एक वैज्ञानिक प्रयोगकर्त्ता होंगे, तो थोड़े ही समय में अपनी भूल पकड़ लेंगे।

ऐसी दशा में यदि हम यह मानकर चलें कि स्त्री-पुरुष कामसक्ति से ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं, काम-तृप्ति ही उनके जीवन का उद्देश है, विवाह भी काम-भोग के ही लिए किया जाता है, तो भी प्रत्यक्ष अनुभव हमें इसके विपरीत मार्ग पर ले जाये बिना नहीं मानेगा। मेरी राय में तो स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध परस्पर सहयोग का, मैत्री का है; उनका पारस्परिक आकर्षण स्नेह का है, कभी-कभी वह काम का भी हो जाता है। विवाह वे माता-पिता बनने और कुटुम्बी या समाजोपयोगी होने के लिए करते हैं; माता-पिता बनने की क्रिया में सहज ही उनकी काम-तृप्ति भी हो जाती है और इतने पर ही उन्हें सन्तुष्ट रहना चाहिए। आत्म-कल्याण या जीवन की परिपूर्णता का लक्ष्य थोड़े ही लोगों के सामने होता है; सारे समाज के सामने यह लक्ष्य होना और रखना चाहिए।

इस विवेचन का सार यह निकला कि यदि आपको रमणी के 'उरोज', आलिंगन या नग्नता का वर्णन या रसपान करना है और कराना है तो आप यह सोच लीजिए कि जीवन की साधना के लिए यह कहाँ तक वाँछनीय और सहायक है ? आपके यौवन की तरंगों से इसका निर्णय मत लीजिए, बल्कि शांत और एकान्त चिन्तन से लीजिए।

अब रही अश्लीलता। कुँजड़ों-भटियारों के समाज में माँ-बहन की गालियों में भी असभ्यता, कुरुचि नहीं मानी जाती; भाँड़ों के समाज में तो सभ्यता या सुरुचि शब्द ही विजातीय हैं; पर शिक्षित, सभ्य और शिष्ट समाज में एक भद्दा, ग्राम्य शब्द भी कुरुचि और अशिष्टता का सूचक समझा जाता है। क्या इस सुरुचि, संस्कृति या शिष्टता की आवश्यकता नहीं है ? नग्नता से सब परिचित होते हैं, 'उरोज' या 'आलिंगन' शब्द में स्वयं कोई कुरुचि या अश्लीलता नहीं है, पर जब आप उनका उपयोग कामोद्दीपन के लिए करते हैं, या उसके फलस्वरूप कामोद्दीपन होता और हो सकता है, और ऐसा वर्णन शिष्ट-जन-सम्मत भी नहीं है, तो फिर इस मोह या प्रवृत्ति को रोकना क्या आवश्यक और हितावह नहीं है ? अश्लीलता का दूसरा नाम है कुरुचि, अशिष्टता, अभद्रता, असंस्कारिता। मेरी राय में सुरुचि, संस्कारिता, शिष्टता के भावों का मूल मनुष्य की अहिंसावृत्ति में, दूसरों को अकारण कष्ट, दुःख या क्षोभ न होने देने की भावना में है। मनुष्य की मृदुल भावनायें जितनी विकसित होंगी उतनी ही उसकी रुचि परिष्कृत और शिष्टता उच्च प्रकार की होगी। ऐसे नाज़ुक प्रसंगों के वर्णन में कई बार कवि अपनी कला-कोमलता का अच्छा परिचय देते हैं और यदि केवल कला-रसिकों का समाज हो तो उसमें में उनकी कला की दाद भी दूँगा; पर जब वे सर्वसाधारण जनता के सामने यह प्रदर्शन करते हैं, तब मुझे वह अप्रासंगिक, हानिकर, लक्ष्य-बहिर्गत अतएव प्रति-

कारणीय मालूम होता है ।

राजेन्द्रकुमारजी के मतानुसार अश्लीलता की सबसे मान्य परिभाषा है––'अस्वाभा अप्राकृतिक, कामभाव को बढ़ानेवाली––इसमें शारीरिक प्रेम की भावनायें नहीं आतीं । मेरी में शारीरिक प्रेम-भाव की इतनी अधिकता कि मनुष्य को काम व विषय-भोग ही इतना प्रिय हो कि जीवन के दूसरे कर्त्तव्यों को विसार बैठे, विवेक व तारतम्य को खो दे, निम्न कोटि के भावों आनी चाहिए ।

राजेन्द्रजी ने सन्त आगस्ताइन का जो उद्धरण दिया है उसके बारे में हमें यह न भू चाहिए कि वह एक सन्त का वचन है, कवि का नहीं; और उसने यह अपने लिए कहा है, आपके ह लिए नहीं । जैन-साधु नग्न रहते और फिरते ही हैं न ? हम उनका अनुकरण क्यों नहीं करते ? उनकी साधना ने यह सामर्थ्य और अधिकार दे दिया है । जिस दिन हम उस कोटि में पहुँच जा उस दिन हममें से उतना बल और साहस अपने-आप फूट निकलेगा । तब यदि हम सन्त आगस्ता की भाषा में बोलें तो किसी को आपत्ति न होगी ।

अन्त में मेरा निवेदन कवि और कलाकार से यह है कि वह जो कुछ लिखे जीवन को मानकर लिखे; भावों और भावनाओं का अनुगामी बनकर नहीं, स्वामी बनकर लिखे । जब वह स्वा बनने का प्रयत्न करेगा तो देखेगा कि उसे अपने आपसे कितना लड़ना पड़ता है । यह लड़ाई ही उस साधना है और यदि वह इसे जारी रक्खेगा तो रवीन्द्र, रोमारोलाँ, टाल्स्टाय के समीप जा पहुँचेगा कवि का कर्म बहना नहीं तैरना है । तैर कर भी उसे पार जाना है, और पार जाने की राह व बताना है । पार जाने का बल भी देना है । यदि कवि स्वयं ही बहने और बहनें ही नहीं डूबने जाय तो······? इस 'तो' का उत्तर कवि अपने ही दिल से पूछें ।

हरिभाऊ उपाध्या

पुण्य-स्मृतियाँ

[आनन्द कौसल्यायन]

जब मुझे अपने दिल को कुछ पवित्र करना होता है, मैं उनकी याद कर लेता हूँ । वे कौन हैं ?

सिंहल द्वीप के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक अखबार 'सिलुमिन' में प्रति सप्ताह 'दादा की चिट्ठी' छपती थी । रंग-ढंग ऐसा होता था कि जैसे कोई बड़ा-बूढ़ा अपने पोतों पर-पोतों को सम्बोधन करके लिख रहा हो । भाषा ऐसी कि लाख प्रयत्न करने पर भी नक़ल न की जा सके !

अख़बार हाथ में आते ही लोग सबसे पहले 'सियागे ल्यूम' (दादा की चिट्ठी) पढ़ते । बात उसमें वही रहती जिसे प्रत्येक बौद्ध बालक जानता है । लेकिन उसकी अभिव्यक्ति ऐसे अनूठे ढंग की होती कि सिंहल के बड़े-से-बड़े धर्मोपदेशक भी पढ़ने के लिए लालायित रहते । बच्चों का कहना ही क्या ? उनके लिए तो 'सिलुमिन' मतलब ही हो गया था—'सियागे ल्यूम' ।

परन्तु 'दादा' के अपने बच्चों को दिये वे अमृत-भरे उपदेश पत्र के ईसाई-ग्राहकों खटकने लगे ! वे अपनें बच्चों को 'सिलुमि पढ़ने से रोकते । कारण, उसमें 'सियागे ल्यू छपती है । कई लोगों ने अपने बच्चों को लेखमाला के प्रभाव से बचाये रखने के अख़बार को खरीदना ही छोड़ दिया । 'दा की उन चिट्ठियों में एक भी शब्द किसी व्यक्ति या धर्म के खिलाफ़ नहीं रहता था । जो व

रहती थी वह कल्याणी। तब भी सम्प्रदाय-विशेष के लोग उससे डरते थे। किसी की लेखनी के ज़ोरदार होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा? सिंहलवासियों को जब 'दादा की चिट्ठी' पर इस प्रकार लट्टू देखता तो मैं सोचता—कौन होंगे ये बड़े-बूढ़े दादा जो प्रति सप्ताह द्वीप-भर के बालकों को ऐसी ओज-भरी भाषा में अमृत-पान कराया करते हैं? किसी दिन इन्हें देखना चाहिए। यह इच्छा दिन-प्रति-दिन बलवती होने लगी।

इसी बीच में सिंहल के 'दिनमिन-कार्यालय'[1] से एक तरुण आया। बोला—मुझे कार्यालय ने एक धार्मिक प्रश्न के बारे में, जो कि उन दिनों लंका में विवाद-ग्रस्त था, आपका और राहुलजी का 'इंटर्व्यू' लेने के लिए भेजा है। जो कुछ उसने पूछा, बता दिया। वह चला गया।

यह उस तरुण से प्रथम परिचय था।

फिर कभी-कभी उसकी चिट्ठी आती कि लेख भेज दें। राहुलजी संस्कृत में बोलकर सिंहल में लेख लिखवा देते और वे वहाँ छपते।

एक दिन मुझे किसी कार्य-वश 'दिनमिन' कार्यालय जाना पड़ा। वहाँ मेरा कोई परिचित नहीं था। मुझे उसी तरुण की याद आई। नाम का पूरा-पूरा ध्यान नहीं था। मैंने शक़ल-सूरत बताकर कार्यालय के कर्मचारियों से उसका पता लगाना चाहा। पता लग गया। भेंट करने पर—परिचय बढ़ने पर—उसदिन पहली बार पता लगा कि वह तरुण स्वयम् 'सिलुमिन' का सम्पादक था और 'सिलुमिन' में प्रति सप्ताह प्रकाशित होनेवाली 'सियागे ल्यूम' का लेखक भी। मुझे अपने से बड़ी निराशा हुई। विश्वास ही न होता था कि यह 'सियागे ल्यूम' का लेखक है।

उन्हीं दिनों उसे 'दिनमिन' के एक विशेषांक का सम्पादन-भार सौंपा गया। वह इतना सुन्दर निकला कि उसने उसे और भी मेरी नज़रों में चढ़ा दिया।

× × ×

यह स्मृति शायद सन् ३० की है और अब है सन् १९४०। दो साल हुए पता लगा कि एक दिन उन्होंने अपने वेतन का अधिकांश अपने एक मित्र की मार्फ़त घर भेज दिया। थोड़े-से रुपयों से एक सादा धोती-कुर्ता ले, रेल में बैठ धनुष्कोडी से रामेश्वरम् तक जहाज़ में आये और भारत-तट पर उतरे। अपना कोट, अपनी पतलून, अपनी हैट, अपने बूट जो कुछ भी पहने थे, सब उतार कर जो भिखमंगा पहले मिला उसे दे दिये। स्वयं धोती-कुर्ता पहन, खाली हाथ उत्तर-भारत के बौद्ध तीर्थ-स्थानों की ओर चल दिये। भूख लगती, किसी दाता से कुछ माँग कर खा लेते। किसी 'बस-स्टैण्ड' पर जा खड़े होते, कोई बिठलाता, बैठकर चल देते। इसी प्रकार सुना सारनाथ भी आये। किसीसे पूछा कि बाहर यात्री यहाँ धर्मशाला में कितने दिन ठहर सकते हैं? उत्तर देनेवाले ने कहा—तीन दिन। वे बिना किसी से कुछ कहे-सुने तीसरे दिन चले गये। यहाँ से विचरते हुए वे कलकत्ते पहुँचे और वहाँ से चटगाँव। चटगाँव में दीक्षा ग्रहण कर पीत वस्त्रधारी भिक्षु हो गये। वहाँ मलेरिया ने पकड़ा। किसी प्रकार छुटकारा पाकर कलकत्ते आये। मुझे पता लगा तो मैंने श्री देवप्रियजी (मंत्री महाबोधि सोसाइटी) को लिखा कि भिक्षु मैत्रेय मेरे पूर्व परिचित हैं। आप उन्हें मेरी ओर से आग्रह करके ले आयें। वह यहाँ आये। तीन महीने हमारे साथ रहना स्वीकार किया। आग्रह करने पर एक महीने और रहे। क्या आप अपने किसी भी परिचित या मित्र का नाम ले सकते हैं, जिसके बारे में आप कह सकें कि वह चार महीने लगातार साथ रहा और इतने अरसे में उसने एक भी शब्द न झूठ कहा, न कठोर; और न ही बोला एक भी शब्द फ़ज़ूल? भिक्षु मैत्रेय के

---

[1] सिंहल के दो साप्ताहिक—एक सिंहल भाषा में, दूसरा तमिल में—और दो दैनिक—एक सिंहल भाषा में, दूसरा अंग्रेजी—में इस एकही कार्यालय से निकलते हैं। 'दिनमिन' सिंहल दैनिक है और प्रभावशाली। इसीसे लोग उसे प्रायः 'दिनमिन-कार्यालय' ही कहते हैं। 'दिन' का मतलब है सूर्य और 'मिन' का मणि : दिनमिन = सूर्यमणि।

बारे में (और केवल भिक्षु मैत्रेय के बारे में) मैं यह कह सकता हूँ। उनकी याद से इस समय वाणी ही नहीं, संकल्प-विकल्प तक शांत होते प्रतीत हैं।

कुछ दिन वे हम लोगों के साथ हमारे भोजनालय में भोजन करते रहे; लेकिन हम लोगों की वाचालता कदाचित उनको नहीं रुची। वे रोज़ अपना भिक्षा-पात्र लेकर भोजनालय के पास आ खड़े होते। जो कुछ उन्हें मिलता, ले जाकर कहीं बैठकर खा लेते और पात्र धोकर रख देते। कभी-कभी ऐसा होता कि रास्ते में उन्हें एक अंधी भिखारिन भीख माँगती मिलती; वे अपना सब दाल-भात उसके बरतन में उँड़ेल देते और अपना पात्र धोकर शान्ति से जा बैठते। कभी उन्हें कोई ऐसा करते देख लेता, तो दौड़कर दुबारा दाल-भात ला देता। नहीं तो अपना 'सर्वस्व' देकर स्वयं दूसरे दिन तक निराहार रहते। एक दिन किसी ने पूछा—भन्ते, आपने अपना भोजन उस अंधी भिखारिन को क्यों दे दिया ?

उत्तर में तीन शब्दों का केवल एक वाक्य था—She was hungry. (वह भूखी थी !)

किसी को भोजन देने के लिए इसके अतिरिक्त और क्या विचारणीय है ?

× × ×

वह यहाँ से चले गये। बहुत रोकने पर भी नहीं रुके। एकबार उनका एक पत्र आया था। मुझे याद है, उसमें उन्होंने सारनाथ के पशुओं तक के लिए मंगल-कामना भेजी थी ! यहाँ की गौएँ भी उन्हें क्यों भूलेंगी ? वे उन्हें भिक्षा-पात्र में से जो बचता था, खिलाते थे। यहाँ के स्कूलों के विद्यार्थी भी उन्हें क्यों भूलने लगे ? वे उन्हें नित्य अपने वचनों से आह्लादित और उत्साहित करते थे। और यहाँ के भिक्षु तो प्रायः उनकी याद करते ही हैं। किसी-न-किसी प्रसंग में उनका नाम आ ही जाता है। वे मुझसे आयु और पद में छोटे थे। इसलिए प्रायः रोज सायं-प्रातः प्रणाम किया करते। बाह्यरूप से वे मुझे प्रणाम करते, लेकिन अपने मन में मैं ही उन्हें प्रणाम करता था।

पिछले दिनों अंग्रेज़ी में उनका 'Arya Silence' (आर्य मौन) शीर्षक एक लेख देखा उसमें उन्होंने लिखा है—

"सच्चे मौन की शक्ति है मौनी का गह प्रेम; सच्चे मौन की पवित्रता है मौनी का निष्प जीवन; उसका उपभोग है वही जो प्रदीप का मौन के प्रकाश में जीवन-मुक्त को प्रत्येक व अपने यथार्थ स्वरूप में दिखाई देती है।

"आर्य-मौन की पवित्रता शब्दों का वि नहीं; और जैसे सच्ची पवित्रता दुर्लभ है वैसे ही यह भी। यह जीवितों की शान्ति है, मृतों नहीं। यह चन्द्रमा की शीतलता है, जो अप ओर भौंकनेवाले गीदड़ों को भी शान्त करती है यह शाल वृक्ष की छाया है, जो हमारे भीतर विकास की परिचायक है—जिसका एकमात्र उद्दे है संसार की सेवा।

"यह फूल की कली का मौन है, जो पूर्ण से विकसित होने के लिए शक्ति संग्रह कर रहा है

"यह न चोर का मौन है न घातक का। उ मुर्ग़ी का मौन है जो अपने अंडे को से रही है। य उस माता का मौन है जो अपनें सोते बच्चे प झुकी हुई है।

"जिस प्रकार माँ चुपचाप अपने बच्चे कं पालती है, उसी प्रकार जीवन्मुक्त चुपचाप संसा की सेवा करता है। वह अपने प्रेम-बल से संसा की रक्षा करता है।

"मौन तो गूँगे भी रहते हैं, लेकिन उनके दि में तूफ़ान उठते हैं। आर्य-मौन का एक क्षण स्व को पृथ्वी पर ला सकता है।...........

आर्य-मौन जागरूक रहकर युद्ध करने के लिए है, आलसी बने रहकर सोने के लिए नहीं......

"यह आर्य-मौन हँसी नहीं, खेल नही। केवल वही यह मौन रख सकता ह, जिसके सभी स्वार्थ-मय विचार जाते रहे हैं, जिसको कठोर शब्द बोलने की आवश्यकता नहीं और आवश्यकता नहीं किसी को तनिक हानि पहुँचाने की।......"

हमारी संस्कृति की अविच्छिन्न धारा

[सम्पूर्णानन्द]

हमारी—हिन्दुओं की ही नहीं, भारतीय-मात्र की—संस्कृति का इतिहास कितना पुराना है, इसकी ओर हमारा ध्यान कम जाता है। जो लोग यह माने बैठे हैं कि हमारी संस्कृति सनातन, अनादि और अनन्त है, वह तो कुछ अधिक सोचने की आवश्यकता नहीं समझते। सोचा भी क्या जाय? लिखने की तो और बात है, पर सोचने में बहुत बड़ी संख्याओं में कम भेद प्रतीत होता है। एक, दस, सौ, हज़ार तक तो बुद्धि पृथक् पृथक् पकड़ती है, सापेक्ष गुरुत्व का अनुभव करती है; परन्तु लाख, करोड़ शंख, नील, पद्म, अनन्त—इनका पारस्परिक भेद ठीक-ठीक बुद्धिग्राह्य नहीं है। इसीलिए सनातनता विचार के बाहर की वस्तु हो जाती है। दूसरी ओर वह समुदाय है जिसपर पाश्चात्य विद्वानों की खोज की छाप पड़ी है। यह लोग मिश्र की सभ्यता को पाँच हज़ार वर्ष से पुरानी मान सकते हैं, पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति को चार हज़ार वर्ष पहले ले जाने में संकोच करते हैं।

यह संस्कृति हमारी बुद्धि, हमारे शरीर में इस प्रकार ओतप्रोत है कि हमारे लिए इसके सम्बन्ध में शुद्ध **दृश्यगत** विचार करना कठिन है। उठते-बैठते, सोते-जागते, विवाह में और मृत्यु में, खेत में, और मन्दिर में, महल में और झोंपड़ी में इसका प्रभाव दीख पड़ता है। समय-समय पर हमारे मन में जैसे भाव उदय होते हैं, जैसी उपमायें सहज ही सूझती हैं, जैसी बातें मुहँ से निकल जाती हैं उनको देखिए, उनका विश्लेषण कीजिए। मुझे विश्वास है कि उनकी तह में ऐसे विचार मिलेंगे, जिनकी परम्परा गुप्त और मौर्यकाल से होती हुई, पौराणिक काल के भी उस पार, ब्राह्मणकाल से भी पीछे, वेदों तक चली गई है। घर-गृहस्थी के साधारण कृत्यों का पूर्व-रूप ऋग्वेद में दिखाई पड़ जाता है। एक अविच्छिन्न धारा, एक अप्रतिहत प्रवाह न जाने कबसे चला आ रहा है और न जाने कबतक चला जायगा! किसी बड़े ही सजीव स्रोत से इसका उद्‌गम हुआ है, तभी तो आज तक इसकी गति नहीं रुकी।

इस संस्कृति की प्राचीनता के विषय में पुष्टतम प्रमाण स्वयं वेदों से—वेदों में भी ऋग्वेद से जो प्राचीनतम है—मिल सकते हैं। वेदों में जिस सभ्यता का वर्णन है, वह कई हज़ार वर्षों के विकास का ही परिणाम हो सकती थी। खेती की जाती थी, पशुपालन होता था, रथ चलते थे, धातु के शस्त्र और कवच बनते थे, छोटे-बड़े नगर भी होते थे। मंत्रों की भाषा और भी छन्द दीर्घकालीन विकास और संस्कार का परिचय देते हैं। पर हाँ, वर्षों की किसी संख्या का निर्देश नहीं है; फिर भी ऐसा नहीं कि कोई संकेत ही न हो। कई मंत्रों में ज्योतिष-संबंधी तत्कालीन दृग्विषयों का वर्णन है। ज्योतिषी लोग यह गणना कर सकते हैं कि वह घटना कितने दिन पूर्व की है। यह ऐसा प्रमाण है जिसे असंदिग्ध होना चाहिए; परंतु कभी-कभी मंत्रों के ठीक-ठीक अर्थ के विषय में मतभेद होता है। अस्तु, ऐसी ही गणना के आधार पर इन्दौर के श्री दीनानाथ शास्त्री चुलेट वेदकाल को आज से तीन लाख पूर्व का बताते हैं। इस मत को जाने दीजिए। ऋग्वेद के दशम मण्डल के पचासिवें सूक्त के तेरहवें मंत्र को लीजिए। यह मन्त्र इस प्रकार है:

सूर्याय वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते॥

इसका सरल अर्थ यह है: पतिगृह में जाते समय सूर्य ने सूर्या को जो चादर दिया था, वह आगे-आगे चला। (अघा) मघा में चादर के साथ दी गईं गायों को डण्डे से हाँका जाता है और अर्जुनियों अर्थात् दोनों फाल्गुनियों में उस चादर को रथ से ले जाया जाता है। इस सूक्त में सूर्या के विवाह का प्रसंग है। मन्त्र में नक्षत्रों के उल्लेख से यह अर्थ लगाया जाता है कि उन दिनों जब सूर्य मघा नक्षत्र में जाता था तो उसकी 'गावः' (किरणें) बेदम हो जाती थीं अर्थात् उस समय सूर्य अपनी

दक्षिणायन-यात्रा की सीमा पर होता था। फाल्गुनी से वह फिर उत्तर की ओर तेज़ी से चलता था। यदि मन्त्र का यह अर्थ ठीक है—और बहुत से विद्वानों की सम्मति में दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता—तो यह घटना सोलह हज़ार वर्ष पुरानी है। अतः इस मन्त्र का समय सोलह हज़ार वर्ष पूर्व हुआ। फिर ऋग्वेद में सबसे पुराना मन्त्र यही हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। इससे भी पुराने मन्त्र होंगे ही। अतः ऋग्वेद का कुछ अंश सोलह से बीस हज़ार वर्ष पुराना होगा। तीन लाख की अपेक्षा तो बीस हज़ार बहुत कम है, परन्तु किसी संस्कृति का इतिहास बीस हज़ार वर्ष पूर्व तक जाना भी कम गौरव की बात नहीं है।

वर्तमान ऋग्वेद के बहुत पहले से यह संस्कृति चली आती है इसका परिचय स्वयं ऋग्वेद देता है। उसमें बारबार प्राचीन काल और प्राचीन ऋषियों का, जिनके उस समय भी नाम तक भूल गय थे, उल्लेख आया है। प्रथम मण्डल के दूसरे मन्त्र—**अग्निःपूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत**—के ऋषि मधुच्छन्दा कहते हैं कि अग्नि की स्तुति प्राचीन ऋषियों ने भी की थी और नूतन ऋषि भी करते हैं। नहीं कहा जा सकता कि यह 'पूर्व' शब्द कितने प्राचीन काल की ओर संकेत करता है। दशम मण्डल के चौदहवें सूक्त के ऋषि स्वयं वैवस्वत यम हैं, जो धर्मराज हैं, यमपुरी के अधिष्ठाता हैं, जिनके सामने मरकर सब जाते हैं। अतः वह तो परम स्थविर—बड़े बुजुर्ग—हैं। वह इस सूक्त में बारबार उन लोगों का जिक्र करते हैं जो अब सर्वपूज्य पितर हो गये हैं और यम के समान ही सोमादि का यज्ञों में ग्रहण करते हैं। इनमें से **अंगिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः**—हमारे पितृ अंगिरा, नवग्वा, अथर्व और भृगु—का नामतः उल्लेख भी है। पर ये सब शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुए हैं अर्थात् इन मन्त्रों की रचना-काल के बहुत पहले कई अंगियों, नवग्वों, अथर्वों और भृगुओं की गिनती पितरों में हो चुकी थी। सूक्त का दूसरा मन्त्र कहता है: '**नैषा गव्यूतिरपभर्तवा**'–यम के इस मार्ग का कोई विनाश नहीं कर सकता। पर इस मार्ग की प्रशस्ति कैसे हुई यह बात पन्द्रहवें मन्त्र—**नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः**—में मिलती है।

उन ऋषियों को जो पूर्वज थे, पूर्व (प्राचीन) थे, जिन्होंने पथ बनाया, प्रणाम है। इस मंत्र में पथ बनाने का अर्थ यही हो सकता है कि जिन्होंने इस मंत्र की रचना की उसके और अनुमानतः उसके समकालीनों के मत में ये ऋषिलोग सबसे पहले मनुष्य थे जो सबसे पहले मरे। इनकी प्राचीनता का अनुमान इससे भी होता है कि तृतीय मंत्र कहता है कि इन्द्र कव्याद पितरों की, यम अंगिरों की और बृहस्पति ऋक्व पितरों की सहायता से बढ़ते हैं—**यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्**—जिनको देवगण बढ़ाते हैं और जो देवों को बढ़ाते हैं। अर्थात् यह पितर अपनी प्राचीनता के कारण देवों के समकक्ष हो चुके थे। नहीं कह सकते कि कितने हज़ार वर्षों की क्षीण स्मृति इन शब्दों में निहित है! आज भी नित्य नहीं तो पितृपक्ष में लाखों हिन्दू मरीचि, अंगिरा, भृगु आदि का नाम लेकर तर्पण करते हैं। उनको यह नहीं पता है कि इन नामों के अनेक ऋषि हो गये हैं, जिनकी परम्परा हज़ारों वर्ष पीछे तक चली जाती है। कव्यवाड, अर्यमा, सोमपा, वर्हिषद् पितरों का तर्पण करते समय किसको यह बात सूझती है कि मैं अपनी जाति, अपने देश, अपनी संस्कृति के संस्कर्ता उन अतिप्राचीन पूर्वजों की याद कर रहा हूँ, जिनके नाम तक आज से दस हज़ार पूर्व विस्मृत हो चुके थे, जो इतने पूर्वकाल के थे कि उनको यम का समकक्ष और प्रथम मनुष्य कहना यथार्थोक्ति से बहुत दूर नहीं था? पर यह पूर्व-पितर आदिम किमनुष्य, आधे जंगली, नर-वानर नहीं थे। वे आर्य्य संस्कृति की नींव डाल चुके थे। ऋग्वेद में बार-बार कहा गया है कि हम उन्हीं यज्ञों को कर रहे हैं जिनको हमारे पहिले नवग्व, दशग्व, भृगुगण आदि कर गये हैं।

मैंने शुरू में ही कहा है कि यह संस्कृति

केवल हिन्दुओं की सम्पत्ति नहीं है, भारतीयमात्र का इसपर अधिकार है, भारतीयमात्र के जीवन में इसका स्थान है। आज किसी साम्प्रदायिक आवेग में पड़कर कोई भले ही अपने को इस प्रवाह के बाहर जान बूझकर डालने का प्रयत्न करे और अरबी रंग में रँग जाने में ही धन्यता समझे; पर स्वच्छन्द रूप से वह पुरानी संस्कृति मुसलमानों के जीवन को भी प्रवाहित कर रही है। घर बनानेवाले मुसलमान राजगीर को बुलाइए और उसकी बात सुनिए। वह हिन्दू-मुसलमान दोनों के घर बनाता है और उन्हीं पुराने नियमों के अनुसार मकान को 'सुद्ध' बनाता है। क़व्वाली सुनिए, नाम और कुछ शब्द बदले होंगे पर वही भाव, वही उपमावाली पाइएगा जो भक्तिसंगीत में मिलती है। कई पुश्त के मुसलमानों के यहाँ विवाहों में नारा-रोली का प्रयोग देखा है। भारतीय इस्लाम में अरबी इस्लाम से कुछ निरालापन है। इसके साथ ही अरबी और ईरानी संस्कृतियों नें और अब पाश्चात्य संस्कृति ने उस प्राचीन धारा में अपना-अपना जल मिलाकर उसको और भी पुष्ट कर दिया है। मुझको विश्वास है कि इस भारतीय संस्कृति में इतनी क्षमता है कि यह न केवल भारतीय जीवन वरन् मनुष्य-मात्र जीवन को संस्कृत कर सकती है। इसलिए न केवल हम भारतीय किन्तु मनुष्यमात्र उन लोगों के चिरऋणी रहेंगे, जिन्होंनें प्रत्यभिज्ञा और इतिहास की पहुँच से दूर अतीत में सिन्धु और सरस्वती के किनारे इसको जन्म दिया था। हम ऐसा मुक्तकण्ठ से कह सकते हैं :

नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्‌भ्यः

स्वर्गीय द्विवेदीजी का एक महत्त्वपूर्ण पत्र

स्वर्गीय पूज्य द्विवेदीजी के निम्नलिखित पत्र का कुछ इतिहास है। एक दिन लोकोक्ति-कोष के रचयिता श्री दामोदरदास जी खत्री 'विशाल भारत'-कार्यालय में पधारे और बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा कि द्विवेदीजी के पास तो कई लाख रुपये हैं। मुझे उस समय एक धूर्तता सूझी यानी मैंने अपनी एक चिट्ठी में इस बात का ज़िक्र कर दिया। साथ ही एक बेवक़ूफ़ी और भी की। द्विवेदीजी से आत्मचरित ५) फ़ी पृष्ठ पर लिखने का अनुरोध कर दिया। सम्पादन-कार्य करते हुए मुझे कुल जमा साढ़े नौ महीने हुए थे और अपनी अनुभवहीनता ही के कारण मैंने यह ग़लती की थी।

इसके सिवाय दो भूलें मुझसे और हो गईं। चिट्ठी बहुत लम्बी लिखी और प्रवासी भारतीयों के लिए जो कार्य मैंने किया था उसपर लिखी हुई सम्मतियाँ भी चिट्ठी के साथ भेज दीं। पूज्य द्विवेदीजी के स्वास्थ्य के विषय में मुझे पता नहीं था। अब बारह वर्ष बाद मुझे अपनी मूर्खताओं पर हँसी आती है और पश्चात्ताप भी होता है। पर सन्तोष इतना ही है कि इस प्रकार पूज्य द्विवेदी जी का एक महत्त्वपूर्ण पत्र मिल गया, जो हम लोगों के लिए—विशेषतः हिन्दी-लेखकों के लिए—एक सन्देश रखता है।

इस पत्र को पढ़कर यदि पाठकों को कुछ भी लाभ हुआ (उस महान् साहित्यिक तपस्वी की अनुपम साधना से कुछ भी शिक्षा मिली) तो उसके पुण्य से मेरे अपराध का कुछ तो प्रायश्चित्त हो ही जायगा।

टीकमगढ़ १-१०-४०]   **बनारसीदास चतुर्वेदी**

दौलतपुर (रायबरेली)
२२-१०-१९२८

प्रियवर चतुर्वेदीजी,

नमोनमः। १९ अक्तूबर की चिट्ठी मिली उसकी लम्बाई देखकर ही डर गया। यह सोच कर कि मुझे उससे भी लम्बा जवाब लिखना पड़ेगा, मैं घबरा-सा गया। ख़ैर, जो भोग भाग्य में बदा है, उसे भोगना ही पड़ेगा।

आपके सर्टिफिकेट पढ़कर परमानन्द हुआ। उनमें जो कुछ है, मैं आपको उससे भी अधिक

प्रशंसा का पात्र समझता हूँ । दीर्घायुर्भूया ।

जिस कुटुम्ब के साथ मैं रहता हूँ वह कुटुम्ब, जिसमें तीन प्राणी हैं, एक महीना हुआ, कानपुर चला गया । दो को कुछ बीमारी थी, उसीका इलाज कराने के लिए जाना पड़ा । वे लोग अब तक वहीं कमर्शल प्रेस में हैं । बहुत दूर के रिश्ते में मेरी एक भानजी है । वही यहाँ रह गई है । वही मुझे जिला रही है । छटाँक भर गेहूँ का दलिया, थोड़ी सी तरकारी (फल यहाँ मिलते नहीं) और सेर भर दूध, बस यही मेरी ख़ुराक २४ घंटे में है । इसीसे मैं अपनी शरीर-रक्षा कर रहा हूँ । जैसा कि मैंने आपको लिखा था मैं भी अबतक कानपुर चला गया होता । मगर नहीं जा सका । कारण–कुछ दुर्लभ संस्कृत पुस्तकें–पंच-भारती आदि–मैंने हाल में मँगाई थीं । उन्हें दो-चार रोज़ थोड़ा-थोड़ा देखा । इतने ही मानसिक श्रम से मेरा दिमाग़ पकने सा लगा । पुराना उन्निद्र रोग फिर जी उठा । आज कई रोज़ से नींद नहीं । रात को आँखें बन्द करता हूँ तो स्वप्न से देखा करता हूँ । तबीयत परेशान है । आराम कर रहा हूँ । लीडर तक नहीं पढ़ता । जी होमकर आपको यह पत्र लिख रहा हूँ । यह तो मेरी हालत है । इस पर आप मुझसे Memoirs या आत्मचरित लिखाना चाहते हैं । मैं अब बहुत ही कम मानसिक परिश्रम करने योग्य हूँ । मेरे पिछले जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कोई नोट्स भी मेरे पास नहीं । फिर पुरानी बातों को याद करना मेरे लिए बहुत ही कष्टदायक है । क्षमा कीजिए । अभी आप मुझसे मिलने का कष्ट न उठाइएगा । ऐसा लिखना सदाचार का विघात करना है । पर मैं साफ़दिल और सच कहनेवाला हूँ । इससे कोई बात छिपाना नहीं चाहता ।

अपनी याददाश्त लिखने के लिए आप मुझे ५) पृष्ठ देने को तैयार हैं, एतदर्थ धन्यवाद । आप शायद नहीं जानते कि सरस्वती, सुधा और माधुरी वाले मुझे मेरे साधारण नोटों के लिए भी करीब-करीब इतना ही देते हैं । अभी उस दिन बिड़ला-पार्क-मेगज़ीन वालों ने मेरे कोई दो कालम के एक नोट की उजरत २५) भेजे हैं । सो य मैं कभी कुछ लिख भी सका तो ५) के लोभ फँसकर मैं न लिखूँगा । हाँ, यदि कोई ५) काल दे और ५०००) पर कापी राइट भी, दस्तावे लिखकर, देने को तैयार हो जाय, तो सामर्थ्य हो पर शायद मैं उसकी इच्छा-पूर्ति कर सकूँ । प भी ५०००) अपने लिए न लूँगा । खैरात क डालने के लिए लूँगा । मेरे पीछे रायल्टी लेनेवा कोई नहीं । यह शर्त मैं क्यों करूँगा ? May 19 की Strand Magazine देखिए । उसमें ए आदमी ने अपना हाल लिखा है । इंडियन प्रेस उसे, २ वर्ष हुए, मेरे पास भेजा था । उस इच्छा थी कि मैं भी अपना हाल वैसा ही लिखूँ पर नहीं लिख सका इससे आप जान जायेंगे आपकी तरह और लोग भी मुझ से वैसा का कराना चाहते हैं ।

हिन्दी-लेखकों की दशा अच्छी नहीं । प्रकाश उनसे भी बदतर हैं । रद्दी कहानियाँ ये लोग दौ दौड़ छापते हैं । मेरे फुटकर लेखों की कोई पुस्तकें हुईं । बाबू शिवप्रसादजी गुप्त ने सब नकल करा दी । उनमें से कोई १० पुस्तकें प हुई हैं । कोई पूछता ही नहीं । ऐसे लोगों के लि आत्मचरित लिखकर बेचने की इच्छा नहीं होती हो भी तो लिखने की शक्ति नहीं ।

आपने अपनी चिट्ठी में कुछ खानगी बा लिखी हैं । इससे आपका निष्कपट भाव औ हृदय-सारल्य प्रकट होता है । अतएव मैं भ आपका अनुसरण करने को तैयार हूँ, क्योंकि सज्जनों के साथ सात बातें हो जाने से भी मैत्री-सूत्र से बद्ध-से हो जाते हैं । "यतः सतां बुधवर्यं संगतं मनीषिभिः साप्तपदीन मुच्यते ।" लोकोक्ति-कोषवाले खत्रीजी (शायद दामोदर दास) को यह चिट्ठी दिखाइए और उनसे कहिए कि मैं उनसे, मुर्शिदाबादवाले नवाबी जगत्सेठों से तथा कारनेगी और राकफेलर से भी अधिक अमीर हूँ । अमीर किसे कहते हैं, यह शायद वे नहीं जानते । शंकराचार्य जानते थे । उनका कहना है कि जो जितना ही अधिक सन्तोषशील

है, वह उतना ही अधिक अमीर है। और जो जितना ही तृष्णालु है, वह उतना ही दरिद्र। मैं तो दुनियाभर के अमीरों को, लक्षाधीशों ही को नहीं, कोट्यधीशों को भी अपने सामने तृणवत् समझता हूँ। क्योंकि

"निस्पृहस्य तृणं जगत्"

इसे वे अपने कोष के दूसरे संस्करण में रख सकते हैं। ये लोग दूसरों के माल-मत्ते की नाप-तौल अपने मान-दण्ड से तो करते हैं, पर यह नहीं कभी सोचते कि इनसे पूछें किसी चीज की इन्हें कमी तो नहीं; और हो तो उसे दूर करने की कोशिश करें।

१७ वर्ष की उम्र में मैंने रेलवे में मुलाज़िमत शुरू की। सिर्फ १५) रु० मासिक पर। २१ वर्ष बाद जब छोड़ी, तब सिर्फ़ १५०) रु०+ Personal Allowance ५०) रु० = २००) रु० मिलते थे। १८ वर्ष तक सरस्वती का काम किया। छोड़ने के वक्त सिर्फ १५०) रु० मिलते थे। तब से सिर्फ़ ५०) रु० मासिक पेन्शन। कभी एक पैसा भी किसी से हराम का नहीं लिया। मेरी रहन-सहन, घर-द्वार सब आपका देखा हुआ है। कानपुर का कुटीर भी आप देख चुके हैं। इस तरह रहकर जो कुछ बचाया वह सब प्रायः ख़ैरात कर दिया। यथा :—

कई लड़कों को अपने खर्च से पढ़ा दिया। उनमें से कुछ एम. ए., बी. ए. भी हैं। रिश्ते में अपनी ३ भानजियों की शादियाँ और गौने किये। गैरों की भी २ लड़कियाँ ब्याहीं। गाँव में कई गरीब घरों की लड़कियों की शादियों में मदद दी। कई विधवाओं का पालन किया। दो-एक अब भी वृत्तियाँ पाती हैं। पिता की इच्छायें पूर्ण की, गया-श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन, दान-पुण्य, मकान और कूप आदि निर्माण के रूप में।

गत वर्ष मेरे कुटुम्ब की अन्तिम स्त्री मरी। तब मैंने अन्त्येष्टि-कर्म्म करने के सिवा १०००) रु० दीन-दुखियों को बाँट दिया। कानपुर का पुस्तक-संग्रह ना० प्र० स० को पहले ही दे चुका था। एक गाड़ी पुस्तकें छै महीने हुए यहाँ से उसे और भेजीं। दो गाड़ियाँ अभी और भेजना है। १०००) रु० इस सभा को अभी-अभी जो दिये हैं सो आप जानते ही हैं। अब भी लोकोक्तिकार के अनुमित लाख-डेढ़ लाख या करोड़-दो करोड़ जो बच रहे हैं, वे प्रायः सब-के-सब हिन्दू-विश्वविद्यालय को देनेवाला हूँ। पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ, जनवरी-फरवरी में शायद आप और खत्री जी भी सुन लें कि कितने लाख हैं।

यह सब मैंने लिख तो दिया; पर डर है कि मेरे मरने पर कहीं आप ये बातें छपवाने न दौड़ पड़ें। मैं इसकी ज़रूरत नहीं समझता। लाख-दो लाख का स्वप्न देखनेवालों का स्वप्न में भंग नहीं करना चाहता।

आपका——
म० प्र० द्विवेदी

हवा-खाना

हम सबेरे-शाम हवा खाने जाते हैं। जिन्हें खाने को काफ़ी है, वे हवा खाकर उसे पचाया करते हैं। दिन में बारबार गले तक ठूँस-ठूँसकर खा लेने पर भी हवा खाने की भूख बनी ही रहती है। उसी सड़क पर दल के दल ऐसे नर-नारी मिलते हैं जो हवा की तलाश में नहीं वरन् खाने की तलाश में निकलते हैं। दोनों समय वे रास्ते में मिलते हैं—सबेरे काम पर जाते हुए और शाम को काम पर से लौटते हुए। दोनों को भूख की शिकायत है—हमें भूख न लगने की और उन्हें भूख न बुझने की। दिन भर घर में दिमाग़ी काम कर हम हवा के पाचन द्वारा भूख बढ़ाना चाहते हैं; और वे दिनभर चोटी का पसीना एड़ी तक बहाकर स्वेद-जल से स्वास्थ्य-पौधों को सींचते हैं, तो भी उनकी भूख नहीं बुझती। जिनके पास है, उनके पास उसे पचाने की भूख नहीं! जिनके पास नहीं है, उनके पास प्रचुर भूख है!!

—ब्योहार राजेन्द्रसिंह

जीवन-साहित्य

[नरदेव शास्त्री]

जीवन-साहित्य वह साहित्य है, जिससे व्यक्ति का जीवन ऊँचा उठ सके। जीवन-साहित्य वह उपयोगी साहित्य है, जिससे व्यक्ति तथा समाज अपने-अपने कर्त्तव्य तथा अधिकारों को भली-भाँति समझकर व्यवहार में परस्पर-साधक रहें। कोई साहित्य केवल व्यक्तिगत जीवन पर इतना अधिक बल देता है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जो कुछ है व्यक्तिगत जीवन ही है और वह समाज के सम्पर्क में आने से नष्ट हो जायगा। वस्तुतः यह बात नहीं; व्यक्तिगत उच्च जीवन समाज का परिपोषक जीवन होना चाहिए और सामाजिक जीवन व्यक्ति के उच्च जीवन में बाधक नहीं होना चाहिए। बस इसी तत्त्व को ध्यान में रखकर जो साहित्य निर्माण किया जायगा वह जीवन-साहित्य होगा। मनुष्य-स्वभाव को दृष्टि में रखकर ही ऐसे साहित्य का आयोजन होना चाहिए। प्राचीन संस्कृत वाङमय में ऐसा जीवन-साहित्य अधिकांश में देखने को मिलेगा।

मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं, इसलिए तीन प्रकार का ही जनसमुदाय होगा और व्यष्टि और समष्टि का ध्यान रखकर तीन प्रकार का ही जीवन-साहित्य रहेगा—(१) तामसी प्रवृत्ति के समुदाय को, राजसी प्रवृत्ति के समुदाय में लाते हुए उसको सात्विक जीवन की झलक दिखला कर ऊँचा उठानेवाला साहित्य, (२) राजसी प्रवृत्ति में पड़े हुए समुदाय को सात्त्विक आनन्द दिलानेवाला साहित्य और (३) जो अधिकतर सात्विक हैं, उनकी सात्विक प्रवृत्ति को अक्षुण्ण रख सके, ऐसा साहित्य। सारांशतः ऐसे साहित्य का निर्माण होना आवश्यक है कि जिसके व्यक्ति या समाज अध्ययन, अनुशीलन, मनन से जहाँ खड़ा है, उस स्थान से आगे-ही-आगे बढ़ता जाय।

वस्तुतः शुद्ध 'सात्विक,' शुद्ध 'राजस' या शुद्ध 'तामस' न कोई व्यक्ति होता है और न कोई जन-समुदाय। सब में सत्व, रज, तम तीनों गुण न्यूनाधिक परिमाण में रहते तथा मिलते हैं। सात्विक पुरुष में राजस-तामस अंश, राजस में सात्विक-तामस अंश और तामस में राजस-सात्विक अंश रहते ही हैं। जिस व्यक्ति अथवा जिस समुदाय में जो अंश अधिक होगा, उसी गुणवाला वह पुरुष या समाज कहलायेगा। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर जीवन-साहित्य का निर्माण आवश्यक है।

संसार के समस्त राष्ट्रों के गुण-दोष पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि उस-उस जाति तथा उस-उस राष्ट्र में विशेष-विशेष गुणों का परिपोष मिलता है और वह परिपोष परम्परागत क्रम द्वारा ही हुआ होता है। जिस-जिस राष्ट्र में जो विशेष गुण होता है, उसीसे वह अपना सिर ऊँचा उठाता रहता है। उस देश के लोग उन्हीं गुणों के कारण अपना गौरव समझते रहते है। उस देश के कवि और लेखक उस अथवा उन गुणों को उज्ज्वल रखने के लिए विविध साहित्य का निर्माण करते रहते हैं। दूसरे प्रकार के साहित्यकार राष्ट्र के दोषों पर दृष्टि रखकर ऐसे साहित्य का संचार तथा प्रसार करते रहते हैं, जिससे राष्ट्र का वह दोष एक-दो पीढ़ियों में दूर हो सके।

एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि संकुचित राष्ट्रवृत्ति के कारण संकुचित वृत्ति के साहित्यकार ऐसे साहित्य के निर्माण में लगे रहते हैं जिससे उनका जीवन-साहित्य भी सीमित ही रह जाता है। ऐसी संकुचित वृत्तिवाले ग्रन्थकार, कवि अथवा साहित्यकार कभी भी यथार्थ जीवन-साहित्य का निर्माण नहीं कर सकते। व्यापक-दृष्टि से देखा जाय तो अधिकतर मानव जाति की भलाई के लिए इस प्रकार का जीवन-साहित्य निर्माण करनेवाले हमारे ऋषि-मुनि महर्षि तथा कवि ही हुए हैं। पर अन्य देशों में इस प्रकार के साहित्य का सर्वथा अभाव हो सो बात नहीं है। है, पर इतना थोड़ा कि वर्तमान प्रचण्ड रजोगुण

के चक्र में वह सर्वथा नगण्य है। उधर जनता का ध्यान ही नहीं जा सकता।

हमारे पूर्वजों में पहले तो संकुचित विचार ही नहीं थे, इसीलिए संकुचित राष्ट्रवृत्ति नहीं थी, जोकि देश-काल से सीमित रहती। उन्होंने जब सोचा तब सम्पूर्ण मानवसमाज की हित की दृष्टि से सोचा, जब लिखा तब सम्पूर्ण मानवसमाज की हितभावना से लिखा। जब कोई अमर काव्य लिखा गया, तब वह भी सम्पूर्ण मनुष्यसमाज के मार्ग-दर्शक के रूप में रचा गया। इसी जीवन-साहित्य के कारण भारतवर्ष आज भी नीति, सदाचार, राष्ट्रधर्म आदि में संसार का मार्गदर्शक है। भारत की कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की व्याख्या मानव-समाज के स्वभावशास्त्र का ध्यान रखकर की गई है। सदसद्विवेकरचना भी मानवसमाज को इतनी ऊपर उठानेवाली है कि निर्बल व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और देश उसको केवल "उच्च आदर्श" कहकर, मनुष्य इतना उच्च नहीं हो सकता, मानव समाज इतना उच्च नहीं जा सकता, ऐसे कहकर सन्तोष कर लेते हैं।

आजकल हमारे देश के साहित्यकारों की दृष्टि भी संकुचित-सी हो रही है। कारण है, इसका अन्य देश के साहित्यिकों का अन्धानुकरण। इसी कारण अन्य देश के साहित्य में जो दोष आगये हैं, वे हमारे इस नवयुग के नव-साहित्य में आते ही। वे ही संकुचित भाव, वे ही संकुचित स्वार्थ—उच्च आकाशमण्डल में उड़कर चतुर्दिक दृष्टि डालने का वह स्वभाव ही नष्ट होगया है। हमारे नवयुवकों के हाथों में जिस प्रकार का साहित्य पड़ता है वे उसी विचार के हो जाते हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है?

इसलिए भारतीय साहित्य-कोष में अनुवादात्मक, अनुकरणात्मक, छायात्मक साहित्य की अभिवृद्धि की अपेक्षा सच्चे अर्थों में जीवन-साहित्य की अधिक अपेक्षा है, जिससे भारत अपने उदारस्वरूप को अनुभव कर एकबार फिर संसार का मार्गदर्शक हो सके। इसके बिना संसार की संकुचित भावनायें संकुचित स्वार्थ, संकुचित राष्ट्रभाव दूर नहीं होंगे। जबतक ये दूर न होंगे संसार दुःख, अशान्ति का घर बना रहेगा—

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"
(महाभारत)

चाहे व्यक्ति हो, या समाज हो, या राष्ट्र हो, जो बात, जो व्यवहार अपने को अच्छा नहीं लगता, उस प्रकार की बात, उस प्रकार का व्यवहार हमको भी अन्य व्यक्ति, अन्य समाज, अन्य राष्ट्रों के साथ नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार का भाव प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के आशांकुर बालकों और नवयुवकों के हृदयों पर अंकित करने वाले जीवन-साहित्य का होना चाहिए।

"यदन्येषां हितं न स्याद् आत्मनः कर्म पौरुषं"
(महाभारत)

अपना कोई कार्य अथवा पुरुषार्थ, जिससे दूसरों का हित न हो, प्रयत्नपूर्वक छोड़ना चाहिए—इस प्रकार के सच्चे राष्ट्रधर्म के द्योतक जीवन-साहित्य का निर्माण काव्य, इतिहास, पुराण आदि द्वारा होना चाहिए। इसमें ध्यान रखने की केवल यही बात है कि साहित्य-निर्माण भी अधिकारी के अनुरूप हो। अच्छे अधिकारी पुरुषों द्वारा लिखी गई चार पंक्तियाँ राष्ट्र में दिव्य स्फूर्ति का संचार कर सकती हैं। आज जो यह बरसाती मेंढकों की तरह साहित्याभास साहित्य का निर्माण हो रहा है, इससे तो व्यक्ति और समाज की कुरुचि का परिपोष हो रहा है, न कि सुरुचि, उच्च भावना का। उच्च साहित्य का परिपोष, चाहे वह किसी रूप में हो, अभीष्ट ही है। जैसे कवि के काव्य में एक रुचि अथवा एक रस नहीं रहता, इसी प्रकार रस ग्रहण करने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति अथवा समाज अपने स्वभावानुरूप उन-उन बातों को भिन्न-भिन्न रसों में देखने का अभिलाषी रहता है। रोगी जिस प्रकार भी ओषधि सेवन कर सके उसी प्रकार प्रयोग करना चाहिए। इसीलिए निपुण आयुर्वेदाचार्यों ने नाना प्रकार के अनुपान रक्खे हैं। दवाई वही जिसको जैसा रुचे, जैसा भाये उस अनुपान के साथ लिया जा सके।

प्रेमचन्द

व्यक्ति, कलाकार और साहित्य-स्रष्टा

[श्री जैनेन्द्र स्व० प्रेमचन्द को निकट से देखने और अच्छी तरह समझने वालों में से हैं। 'जीवन-साहित्य' के प्रतिनिधि ने श्री जैनेन्द्र से प्रेमचन्द के बारे में जो भेंट (इण्टर्व्यू) की, उसे पाठकों के लाभार्थ यहाँ दिया जाता है। उससे प्रेमचन्द के व्यक्तित्व, उनकी कला और उनकी साहित्य-साधना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—संपादक]

प्रश्न—एक व्यक्ति के रूप में प्रेमचन्द के किस गुण ने आपको सबसे अधिक आकर्षित किया ?

उत्तर—उनकी साफगोई और सादगी ने।

प्र०—क्या उनमें किसी तरह की त्रुटियाँ, अवगुण या खामियाँ भी थीं ?

उ०—हाँ, शरीर से वह दुर्बल थे। दूर के ख्याल में पास की जरूरत उन्हें नहीं दीखती थी। व्यवहार की त्रुटियाँ उनमें थीं। ऊपरी शिष्टाचार की वह अवहेलना कर देते थे। कोशिश और इच्छा करके भी वह व्यावहारिक व्यक्तित्व को परिवार के दायरे से ऊँचा नहीं ले जा सके। इसीकी तकलीफ़ उनके उपन्यासों में भी है। उपन्यासों में वह धन के दुश्मन हैं। यह दुश्मनी इसलिए तीव्र होकर प्रकट होती है कि जीवन में वे उसे नहीं उतार सके थे; पर जीवन में वे धन के दुश्मन नहीं थे। संचय भी करते ही थे।

प्र०—उनके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा कौन-सी थी, जो उनकी उन्नति में सहायक हुई ?

उ०—मानसिक आदर्श से वह अपने दैनिक जीवन का साम्य देखना चाहते थे। इसी प्रयास में वे उन्नति करते रहे। अन्तिम दिनों में, मैं कह सकता हूँ कि, बड़ा आदमी बनने या नामवर होने आदि की इच्छायें उनमें अशेष हो गई थीं।

प्र०—साहित्यकार की दृष्टि से प्रेमचन्द में कौन-कौनसी विशेषतायें थीं, जो औरों में नहीं हैं ?

उ०—वह अपने दृष्टिकोण का आरोप अपने पात्रों पर कम-से-कम करते थे। पात्रों ही के दृष्टिकोण से उन सबको देखने की कोशिश करते थे, याने मताग्रह उन्हें नहीं था। इस तरह अनायास भाव से बहुत व्यापक क्षेत्र का वह आकलन कर सके। एक 'गोदान' उपन्यास में ही कितने पात्र-पात्रियाँ हैं—कोई २०० नमूने तो होंगे—और ऐसा मालूम होता है कि सब अपनी निजता में अलग हैं।

प्र०—प्रेमचन्द की कला पर कुछ प्रकाश डालिए यानी 'कला कला के लिए' या 'कला जीवन के लिए' प्रेमचन्द दोनों में से किसके समर्थक थे ?

उ०—असल में वे किसी फ़िकरे के गुलाम नहीं थे। इसलिए कला को जीवन के लिए मान कर जो कला को कला के लिए मानते हैं, उनकी स्थिति को भी वह निभा सकते थे। तो भी यदि तात्विक बहस उनसे छेड़ दी जाती तो मालूम होता कि कला का अन्तिम समर्थन वह उसी में नहीं मानना चाहते। कला को वे अवश्य ही उपयोगी देखना चाहते थे।

प्र०—हिन्दी के किसी दूसरे लेखक में भी वह बात है ?

उ०—हाँ, हिन्दी के श्री वृंदावनलाल वर्मा में भी वह बात है। हिन्दी के जैनेन्द्र में वह बिल्कुल नहीं है।

प्र०—साहित्य-सृष्टि में उनका मुख्य उद्देश्य क्या रहा ?

उ०—समाज-निर्माण उसमें उनका मुख्य उद्देश रहा; किन्तु वह किसी वैधानिक संशोधन या परिवर्तन द्वारा नहीं, बल्कि व्यक्ति-मानस के विस्तार द्वारा—व्यक्ति-चरित्र के निर्माण द्वारा।

प्र०—उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना आप किसे मानते हैं और किस आधार पर ?

उ०—उपन्यासों में 'गोदान' को, क्योंकि वह मुझे सबसे अधिक मानवीय लगा। गोदान

के बाद दूसरा कोई उपन्यास याद नहीं आ रहा है, जिसमें उन्होंने अपनी ओर से जीवन-समस्या के समाधान का मानों चित्र ही न देना चाहा हो। हाँ, पिछले दिनों के यानी 'काया-कल्प', 'ग़बन', 'कर्मभूमि' में क्रमशः यह बात कम होती गई है। उनके बाद 'गोदान' जैसे उनका तर्क-शुद्ध विकास है। उनकी कहानियों में 'पञ्च परमेश्वर' मुझे सबसे अच्छी लगी। और सारी कहानियाँ मैंने पढ़ी भी नहीं हैं। 'आत्माराम' कहानी को दो संग्रहों में मैंने सिफ़ारिश करके रखवाया है। आधुनिकता की दृष्टि से 'कफ़न' बहुत मार्मिक कहानी है, पर भारतीय पाठक का उसे गलत समझने का भी ख़तरा है।

प्र०--उनकी रचनाओं के इतनी लोकप्रिय होने का रहस्य क्या है?

उ०--कथा-शिल्प की दृष्टि से कहना चाहिए कि घटना की इतिवृत्तात्मकता से बहुत हटकर वह किसी विवेचन आदि में नहीं पड़ते हैं। यह उनकी लोकप्रियता का कारण है। पर सच पूछिए तो लोग उन्हें प्रिय थे, इसलिए लोगों के भी वे प्रिय ही हो सकते थे। असल चीज़ तो रचना में प्रेम की वास्तविकता है। कहानी-शिल्प से दूर और तटस्थ होने का दावा तो मुझे अपने लिए आप करने न देंगे, तो भी सच यह है कि मैं मानता हूँ कि किसी तरह का शिल्प-कौशल प्रेम के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकता। दिल में सहानुभूति नहीं है, तो कहानी में लाख शिल्प-व्यंजन डालिए, वह असल स्वाद नहीं दे सकेगी। प्रेमचन्द की लोकप्रियता का भेद तो यह है, बाक़ी पंडितलोग जो कहें।

प्र०—उनकी स्मृति कायम रखने के लिए क्या कोई उपयुक्त योजना आप सुझा सकेंगे?

उ०—नहीं भाई, क्योंकि उसका घाव मेरे अन्दर है। आप शायद जानते हैं, 'स्मारक' की बात उनके देहान्त पर ही उठी थी। मैं भी उसमें दोषी था। वह बात कहीं नहीं पहुँची, हृदय ही में रह गई। उसमें भी मैं अपने को दोषी मानता हूँ, इसलिए क्या कहूँ? लेकिन सोचता हूँ कि एक दिन वह 'स्मारक' बनेगा, क्योंकि लोक-जीवन के हृदय में तो उनकी स्मृति है ही। वह क्या सहज मिटनेवाली है? उसका व्यक्त प्रतीक भी एक दिन होना ही है। आज के साहित्य-नेता नहीं जागरूक हैं तो क्या? पाठक तो अपने कृतज्ञ हृदय का बोझ मूक भाव से अनन्त काल तक नहीं उठाता रहेगा। एक दिन उसके चैतन्य से साहित्य-धुरीणों को सचेत होना होगा, तब सब ठीक हो जायगा। अब मैं उसपर मुहँ क्या खोलूँ?

स्व० इक़बाल की एक रुबाई

दिला ना दानिये परवाना ताकै।
नगीरी शेवये मर्दाना ताकै।
यके ख़ुद राज सोजे खेश तन सोज़।
तवाफ़े आतिशे बेगाना ताकै।

—इक़बाल

हृदय, कबतक रहेगा तू बना नादान परवाना?
न सीखेगा भला कबतक बनाना राह मर्दाना?
अरे, तू सीख ले पहले स्वयं की आग में जलना—
बना बेकाम दीवाना; अरे, यह आग बेगाना

अनु०—सुधीन्द्र

हृदय, तू कबतक पतंगे की तरह गलतियाँ करता रहेगा ?
कब तू पुरुषत्व के मार्ग पर चलना सीखेगा ?
पहले अपनें आप को अपनी निजू आग में जलाना सीख !
जो आग तेरी नहीं है, उसके चारों ओर घूमते फिरना किस काम का ?

अबोहर का साहित्य-सदन

[काका कालेलकर]

अबोहर पंजाब और राजस्थान के सीमाप्रांत में मशहूर मंडी है। अुसके अिर्द-गिर्द देशी रियासतें हैं। जो प्रदेश प्रान्तीय राजधानी के नज़दीक होते हैं अुनको अनायास ही तरह-तरह के संस्कार मिलते हैं और अुनकी बौद्धिक तथा व्यावहारिक अुन्नति आपही आप होने लगती है। पर यह सौभाग्य अबोहर को प्राप्त नहीं है। अिस प्रदेश को हम पिछड़ा हुआ तो नहीं कह सकते, किन्तु यह एक कोने में पड़ा हुआ ज़रूर है। अैसे स्थान पर संस्कृति का अेक केन्द्र स्थापित करना और प्रतिकूल परिस्थिति में भी अुसका अुत्तरोत्तर विकास करना कोअी मामूली बात नहीं है। सचमुच अबोहर का साहित्य-सदन अेक अद्वितीय संस्कृति-केन्द्र है, जिसको 'रेगिस्तान का नन्दनवन' नाम दिया जाय, तो तनिक भी अत्युक्ति नहीं होगी।

अेक साल पहले अिस संस्कृति-मन्दिर को देखने का मौक़ा स्वामी केशवानन्दजी ने हमें दिया। स्वामीजी अेक सच्चे कर्मयोगी हैं। निवृत्ति का आसान जीवन छोड़कर अुन्होंने यह प्रवृत्ति अपने हाथ में ली और अखण्ड अुद्योग से अेक बड़ी अिमारत, अभिमानयोग्य अेक पुस्तकालय, एक छोटा-सा प्रेस, अेक सुन्दर-सा मासिक, अेक मनोहर बगीचा, अेक विशाल कुआँ, अुसी के पास व्यायामशाला आदि सेवा के अनेक साधनों का निर्माण किया है। अितनी सेवा के लिअे अबोहर की जनता को स्वामी जी के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिअे। हर-साल तुलसी-जयन्ती मनाने के बहाने देश के अन्यान्य सेवकों को वे अबोहर की ओर खींचते हैं और अबोहर में जाग्रति का वायुमण्डल पैदा करते हैं। अिस कार्य की देश के अनेक नेताओं ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। निःस्पृह स्वामीजी ने अिस संस्था की सारी जायदाद हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को अर्पण की है और वे केवल परिश्रम के ही मालिक रहे हैं।

लेकिन मेरे मन अिस संस्था की सच्ची मु अुसके 'चलते-पुस्तकालय' में है। अिस पुस्तका के द्वारा वे आसपास के गाँवों में और साधार लोगों के घरों में जो प्रवेश पा सके हैं औ वहाँ अिस संस्था ने जो जीवन-क्रान्ति की अुसका हिसाब हम कभी लगा ही नहीं सकते अिस संस्था का स्थायी और ठोस कार्य यही है

अबोहर में हम तीन दिन ठहरे। अनेक लो से परिचय और वार्तालाप हुआ। लेकिन वहाँ रवाना होते-होते अेक नम्र सेवक ने अपनी रामकहानी सुनाअी, अुससे मैं खूब प्रभावित हुआ

किसी भी देश में अज्ञान का होना अेक अ शाप है ही, पर जब कोई संस्था स्वयं अज्ञान डूब जाती है और अज्ञान का ही प्रचार कर है, तब अैसी संस्था की हस्ती देश का सबसे ब दुर्भाग्य है। हमारे देश में अैसी अेक बड़ी संस् है भिखमंगे साधुओं का वर्ग। अिस संस्था संस्थापकों में असाधारण गुण ज़रूर थे। आ भी साधुओं में चन्द अच्छे व्यक्ति पाये जाते जो हमें आश्चर्य-चकित करते हैं। किन्तु अे वर्ग के नाते यह संस्था कालग्रस्त हुअी है औ अिसके द्वारा अज्ञान का, वहम का और दैववा का जो अधार्मिक प्रचार होता है समाज निचले में होने के कारण अुसकी भयानक मध्यम वर्ग के ध्यान में नहीं आती। और निचल वर्ग तो हित क्या और अहित क्या है, यह नहीं जानता। अैसे अज्ञान-प्रचारक साधुओं के फंदे आकर जिसने अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था बरबाद की, उसको ज्ञान के प्रचार का महत्त्व सब से अधिक प्रतीत हो तो अिसमें आश्चर्य ही क्या है! आज यह भाअी गाँव-गाँव में जाकर, घर-घर में सद्ग्रन्थों का प्रचार करने में अपने जीवन की सफलता मान रहे हैं।

केशवानन्दजी के कार्य का बाहरी स्वरूप सब कोअी देख सकते हैं, किन्तु अुनकी शक्ति

अच्छा परिचय अिससे पाया जाता है कि अुन्होंने भिन्न-भिन्न वृत्ति के और अलग-अलग शक्ति के चार-पाँच प्रथम कोटि के सेवकों को अेकत्र लाकर अुनमें बन्धुभाव पैदा कर दिया है और उनका मानो अेक कुटुम्ब बना दिया है। श्री तेगरामजी श्री वंशीधरजी, श्री कुलभूषणजी जैसे सेवकों को चुन-चुन कर अिकट्ठा करना और अुनके लिअे समाज-सेवा का क्षेत्र तैयार कर देना स्वामी केशवानन्दजी की ही असाधारण शक्ति का फल है। अिन सब मित्रों की सादगी और नम्रता अुनकी विशेषता है। अिसी शक्ति के कारण वे गाँवों में काम कर सके हैं और वहाँ के समाज पर असर डाल सके हैं।

बड़े-बड़े शहरों में संस्थायें चलाना अेक तरह से आसान है। पर पिछड़ेहुअे स्थानों में, गाँवों में और अेक कोने में पड़ेहुअे ग्रामीण वातावरण में संस्था चलाना मामूली बात नहीं है। साधनों की कमी कोअी बड़ी कठिनाई नहीं है। साधनों की कमी कभी-कभी मनुष्य की शक्ति को बढ़ाती है। किन्तु पिछड़ेहुअे प्रदेशों में संकुचित दृष्टि-वाले भोले किन्तु अीर्ष्यालु लोगों के कारण अनेक कठिनाइयाँ अुत्पन्न होती हैं। अुनका सामना करना और अपने आपको अैसे वातावरण से ऊँचा रखना, परे रखना कोअी मामूली तपस्या नहीं है--खासकर अुन लोगों के लिअे जो अपना पोषण अुसी समाज से प्राप्त करते हैं। यह कठिनाअी अीसाअी मिशनरियों के सामने नहीं रहती, क्योंकि उनका नैतिक और आर्थिक पोषण अुन्हें स्वतन्त्ररूप से मिलता रहता है। किन्तु अुसी सहूलियत में अुनके कार्य की विफलता भी भरी हुअी है।

साहित्य-सदन, अबोहर का कार्य वहाँ की जनता के लिअे आशीर्वाद-रूप है। अुसके लिअे हम कौन-सी शुभ कामना कर सकते हैं? यह अेक बड़ी संस्था हो जाय, उसके कार्यकर्त्ताओं की संख्या बढ़े, अुसका धन-कोष बढ़े, अुसकी किताबें हज़ारगुनी हो जायँ—ये ही आजकल के लोगों की शुभ कामनाअें होती हैं। आजकल का ज़माना सिर्फ़ गुणाकार को ही जानता है।

हमारी दृष्टि में अबोहर के साहित्य-सदन की सफलता अिसी में होगी कि अिस संस्था से प्रेरणा लेकर देश में स्थान-स्थान पर स्वतन्त्र केशवानन्द पैदा हो जायँ और अुनकी मदद को तेगरामजी, बंशीधरजी और कुलभूषणजी जैसे सेवक तैयार हो जायँ। अेक ही वटवृक्ष की शाखायें सर्वत्र फैलती रहें--यह अेक प्रकार है और स्थान-स्थान पर अलग-अलग वटवृक्ष अुग-अुग कर सारे देश को हरा-भरा बनादें--यह दूसरा प्रकार है। हम अिस दूसरे प्रकार के पक्षपाती हैं। हम मानते हैं कि स्वामी केशवानन्दजी का भी झुकाव अिसी तरफ़ होगा।

बाल-साहित्य

[रामकृष्ण खद्दरजी]

लोग 'जीवन' के विषय में चाहे-कुछ क्यों न लिखें, लेकिन बालक के माध्यम बिना मुझे तो सब रूखा-सूखा ही दिखाई पड़ता है। मैं तो प्रति-क्षण इस छोटी-सी देह में रहनेवाली आत्मा के दर्शन करता रहता हूँ और इस अद्भुत दर्शन से ही मुझे जीवित जीवन-साहित्य का परिचय होता रहता है।

क्या घरों में, क्या स्कूलों में और क्या साहित्य में सर्वत्र बालक की उपेक्षा करके और दुनियाँ भर की बातें करके हमने अब तक क्या पाया? खोया ही खोया है। बहुतों ने तो अभीतक अनुभव भी नहीं किया है कि बालकों के अध्ययन बिना पुस्तकों का अध्ययन निरर्थक है। गुरु के उपदेश के बिना ग्रंथ का परिचय निरर्थक है। और सब से उत्तम गुरु तो बालक स्वयम् है, क्योंकि बालक बिना बोले उपदेश करता है, क्योंकि उसके उपदेश के पीछे किसी प्रकार का राग-द्वेष नहीं होता, क्योंकि उसका उपदेश उन्हीं सच्चे और सनातन

सिद्धान्तों को लेकर होता है जिनमें सबका हित है।

मानव-जीवन में बाल्यावस्था ही तो एक ऐसी अवस्था है, जिसमें मनुष्य निश्चिन्त रहकर धूल में लोटते हुए भी, नन्दन-विहार का आनन्द उठाता है। परन्तु इस आनन्द-रस में साधना, संस्कृति, शिक्षण आदि पवित्र नामों की ओट में जो कंकड़ मिला दिये जाते हैं, उनमेंसे बालक का स्वर्गीय आनन्द ही नहीं छिन जाता, उनकी मनुष्यता भी कुण्ठित हो जाती है। हम अपने अत्याचारों से उन्हें बनाने के स्थान पर नष्ट कर डालते हैं।

अन्य देशों में जहाँ इस ओर सर्वस्व ही इन बालकों के अर्पण कर दिया गया है, इतना कि वे तो उन्हीं के लिए जीते और मरते हैं, वहाँ भारतवासी तो उनकी परवाह भी नहीं करते। यहाँ तो 'परमात्मा ने दिये और धरतीमाता ने लिये', वाला कथन चरितार्थ होता है। बालक गलियों में मारे-मारे फिरते हैं और गन्दे खेल खेलते हैं। घरों में माँ-बापों की झिड़कियाँ खाते हैं तो स्कूल में शिक्षकों के क्रोध के भाजन बनते हैं और इधर-उधर सबकी दुतकार सहते हैं। हमने उन्हें झूठे वहमों का शिकार, डरपोक, कायर, झूठा और मिथ्यावादी ही बनाया है, उनको नहीं बनाया, अपनी आत्मा की विकृति की ही उन पर छाप लगा दी है।

फिर भी मालूम नहीं, हमारी आँखें क्यों नहीं खुलतीं? जबतक राष्ट्रीय स्वतंत्रता की समस्या शिक्षण-समस्या के साथ-साथ न चलेगी, तबतक कभी स्थायी उद्धार की आशा रखनी ही नहीं चाहिए। जिस तरह नक्षत्र-मंडल के केन्द्र में सूर्य और उसके आसपास ग्रह हैं, उसी तरह भविष्य की पाठशाला के केन्द्र में बालक और उसके आसपास शिक्षक और शिक्षापद्धति रहनी चाहिए। मानव-जाति की अखण्ड ज्योति के रूप में अकेला बालक ही स्वयम् प्रकाशित रहेगा। दूसरे सब उसके तेज में रहकर मानव-जाति की उन्नति के साधक बनेंगे।

आज हमारे यहाँ साहित्य की वैसे ही बड़ी खराब हालत है, मौलिकता का लोप हो है, इसके अलावा बाल-साहित्य के निर्माण ओर तो किसी का ध्यान अभी जितना चाहि उतना आकर्षित ही नहीं हुआ है। लोगों आम शिकायत है कि हिन्दी की पुस्तकें बिक नहीं। बिकें भी कहाँ से? बालकपन से विविध पुस्तकों के अध्ययन की रुचि का विका बालकों में किया ही नहीं गया है। उनमें सुवाच की आदत को पनपने देना तो दूर, उलटा कुचल दिया गया है। फिर वे साहित्यिक अथवा पुस्तकों के अध्ययन की रुचि लायें तो क से? यह कहना तो व्यर्थ होगा कि हिन्दी जाने वालों की संख्या कम है; लेकिन बात यह है रुचि रखनेवालों की संख्या कम है। हम सब साहित्यिक बाल-साहित्य के प्रचारकों को पूरा-पू प्रोत्साहन दें, तो देखेंगे कि बड़ी पुस्तकों का किस धड़ल्ले से प्रचार होता है।

आजकल 'बाल-साहित्य' कुछ निकल बेशक रहा है, लेकिन उसको देखकर दुःख हो है। छपाई और ऊपरी टीपटाप के अलावा पुस्तकों में सारतत्त्व कुछ नहीं होता। बालक पुस्तकों को पढ़कर मनोरंजन-मात्र कर लेता है ज्ञान को नहीं बढ़ा पाता। यह तो हुई आजक के प्रकाशित 'बाल-साहित्य' की बात। दूसरी बात यह कि लेखकगण सुयोग्य भले ही हों, लेकि उनका बाल-मनोविज्ञान से अपरिचित होना बड़ी भारी त्रुटि है। उनके सामने कभी यह बा आती ही नहीं कि जो कुछ उन्होंने लिखा उ मनोविज्ञान की कसौटी पर कसकर देख लिया जा कि वह खोटा है अथवा खरा।

कुछ ऐसे सज्जन भी हैं जो बाल-मनोविज्ञा का शास्त्रीय अध्ययन रखते हैं और लेखक हैं लेकिन उनका व्यावहारिक ज्ञान अधिक न होने वे कभी अपनी चीज़ों को व्यावहारिक बाल-मनोविज्ञान की कसौटी पर कस ही नहीं सकते।

अब आती है उन लोगों की बारी, जो स्वयं बच्चों के साथ काम करते हैं—व्यावहारि बाल-मनोविज्ञान से पूरा परिचय रखते औ

लेखक भी हैं। पर जब वे अपनी पुस्तकें प्रकाशन के लिए लेकर जाते हैं, तो उनको प्रकाशन-संस्थाओं के इन्कार पर बड़ी निराशा होती है। क्या ऐसे बाल-साहित्य का हिन्दी में प्रचार न हो सकेगा? हो तो सकता है यदि एकदम सब साहित्यिक और साहित्य-धुरंधर लोग ऐसे साहित्य-निर्माण की ओर ध्यान दें और उसके प्रचार और प्रसार में जी तोड़कर प्रयत्नशील हो जायँ।

गुजरात की दक्षिणामूर्ति संस्था से स्वर्गीय गिजुभाई और तारा बहन मोड़क के सम्पादन में सकड़ों ही उम्दा पुस्तकें बालकों के लिए प्रकाशित हुई और हो रही हैं। उनका गुजरात में पूरा-पूरा स्वागत हुआ है। स्व० गिजुभाई और तारा बहन ने लेखक होने के साथ-साथ बालकों के साथ वर्षों काम भी किया और व्यावहारिक बाल-मनोविज्ञान को ठीक-ठीक समझा है। फिर भी प्रकाशन में कई कठिनाइयाँ आईं। प्रकाशन-संस्थाओं ने ऐसी पुस्तकों को छापने की अनिच्छा प्रगट की। लेकिन उन्होंने कुछ धनवानों की सहायता से एक स्वतंत्र प्रकाशन-मन्दिर खोलकर उन पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। ख़ूब प्रचार हुआ। साहित्यिकों ने प्रशंसा की। नेताओं ने अपनाया और आम जनता ने भी। हिन्दी-जगत् में भी ऐसे ही भगीरथ-प्रयत्न की आवश्यकता है। प्रकाशन-मन्दिरों से प्रार्थना है कि वे राष्ट्र की भावी पीढ़ी बननेवाले बालकों के हित में क्यों न एक-एक हज़ार का नुकसान समझ कर ही ऐसी पुस्तकें निकाल देते? दूसरा मार्ग यह है कि **प्रकाशकगण आपस में एक संघ बनायें** और बठकर यह निश्चय करलें कि बालकों के हाथों ऐसी-वैसी किताबें ही न देंगे बल्कि जीवन ढालनेवाली पुस्तकें निकालेंगे। कुछ अर्से तक कठिनाई होगी, लेकिन फिर वे देखेंगे कि इन्हीं पुस्तकों की कितनी खपत हो जाती है और बाल-साहित्य की पुस्तकों की घनी खपत का मतलब है अन्य बड़ी और साहित्यिक पुस्तकों की अधिकाधिक खपत। स्कूलों में भी फिर अच्छी ही पुस्तकों का साम्राज्य हो जायगा और एक निर्मल तथा स्वस्थ वातावरण उत्पन्न हो जायगा।

इस छोटे-से लेख के पाठकगण इस समस्या पर विचार करें और सुझाव पेश करें कि कौन-कौन से ऐसे तरीक़े हो सकते हैं, जिनसे बाल-साहित्य में क्रान्ति लाई जा सके और उसका पूर्ण रूप से प्रचार हो सके।

मेरा राग

[जटायु]

: २ :

मामूली तौर पर घुलनेवाले रसायनी पदार्थों के गरम और गाढ़े घोल को ठंडा करने पर उनके रवे बन जाते हैं; जैसे खाँड कीं गरम चाशनी को ठंडा करने से मिश्री। मगर क़ुदरत भी ठठ्ठेबाज़ ठहरी। उसने कुछ लवण ऐसे बना दिये कि उनके घोल को आप ठंडा करते ही चले जाइए, रवे न बनेंगे—जबतक कि आप घोल को छेड़ें नहीं। मगर एक बार छेड़ा कि फिर तो वह तड़ातड़ रवे बनने लगते हैं कि उनका रोकना असम्भव हो जाता है। ऐसे घोल को सुपर-कूल्ड (super cooled) कहते हैं। मतलब यह है कि इस 'मेरा राग' ने अपने राम के सुपर-कूल्ड दिमाग़ को ऐसा छेड़ा कि भावों की लड़ी की लड़ी बेभाव के ही बननी शुरू हो गई और तबीयत चाहने लगी कि एक पूरा महाभाष्य लिखकर नोबल प्राइज़ के लिए भेज दिया जाय, क्योंकि अपने देश में तो अभी इतने ऊँचे दर्जे की रचना की दाद देनेवाले शायद कम ही मिलेंगे। दूसरे न तो अपना नाम ही अभी चालू सिक्का हुआ है और न अपनी क़लम ही इतनी मँज पाई है कि जो कुछ कूड़ा-कचरा लिख मारा वही सोना

मान लिया जाय। तीसरे, साहित्यिक क्षेत्र में अभी अपने मिलनेवाले भी कम हैं। उल्टा डर है कि आलोचक कहीं यह न कह बैठें कि सुपर-कूल्ड वाला भाव तुलसीदासजी से चुराया गया है क्योंकि उन्होंने लिखा है कि हृदय-सिन्धु की मतिरूपी सीप में राम-चरितरूपी स्वाति की बूंद पड़ने से कविता के मोतियों की माला अपने आप तैयार हो जाती है । ठीक है। लेकिन जनाब तुलसीदासजी की उपमायें आजकल नहीं चलेंगी। आजकल तो मोती भी नक़ली बनने लगे हैं और भाव लाने के लिए स्वाति के बेरंग पानी की जगह कुछ लोग दूसरे क़िस्म के रंग-बिरंगे पानी लेने लगे हैं। तुलसीदासजी के ज़माने में मिश्री को तो लोग जानते थे पर सुपर-कूल्ड घोल तो इसी सदी की ईजाद है। जिन्हें शक हो वे तुलसीदासजी के पास जाकर दरयाफ्त कर सकते हैं। जाने का खर्चा अपने-राम देने को तैयार हैं। अगर वे कह भी दें कि यह नक़ल है तो इतना ज़रूर कहेंगे कि वास्तव में **मौलिक** नक़ल है। मगर हाँ, महाभाष्य का इरादा अभी छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि लड़ाई की वजह से काग़ज़ महँगा हो गया है। फिलहाल तो प्रकाशकों पर दया करके इस सागर को गागर में ही भरना पड़ेगा।

तो जब कवि (टीकाकार की हैसियत से हम अपने-आपको कवि लिख सकते हैं) पूछता है, "अरे तू क्या कर रहा है बैठा······की तरह ?" तब इस सवाल को जो चाहे सो जिस तरह चाहे पूरा कर सकता है । खाली कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं। जैसे क़ायदे-आज़म जिन्ना की तरह फावड़ा-पन्थी लोग, यानी अंग्रेज़ी मुहावरे के मुताबिक़ फावड़े को फावड़ा कहनेवाले लोग यह कह सकते हैं, "क्या कर रहा है बैठा **उल्लू** की तरह ?" अंग्रेज़ी भी क्या ला-जवाब ज़बान हिन्दुस्तानियों को मिली है कि कोई खराब या बे-कहनी वात कहनी हो तो फौरन अंग्रेज़ी का दामन जा पकड़ा। मसलन्, हमारे पढ़े-लिखे लोग स्त्री, माता, पिता कहने में तो झेंपते हैं मगर वाइफ़, फ़ादर, मदर वड़े धड़ल्ले के साथ कहते हैं ! राम जाने न होती तो इनका क्या हाल होता ? एक नौ के श्रीमुख से सुना, "टुमॉरो तो मैं पर आ सकूँ ।" पता नहीं बेचारे 'कल' और ' ने इनका क्या बिगाड़ा था ? खैर, हम मज़मून पर आते हैं । जो लोग ज़बान पर या गन्दा लफ़्ज़ लाना पसन्द नहीं करते वे " **मानस"** शब्द यहाँ ठूँस सकते हैं । अपने राम राय में **गदहासुर** कुछ फ़िट बैठता है । गदहा का साधारण अर्थ गधे के सुरवाला, यानी ' राग' को गधे के सुर में गानेवाला, हो है । लेकिन हम यहाँ ज़रा बहुव्रीहि समास चमत्कार दिखाना चाहते हैं । (१) गदहासुर गद + हा + सुर = रोग + नाश करनेवाला देवता = महावैद्य या घोर डाक्टर । (२) रोग नाश करनेवालों + का देवता = वैद्य या डाक् का देवता, यानी वैद्य या डाक्टर को लम्बी-चौ फ़ीस देनेवाला डायबेटीज़, गठिया वग़ैरा का मरीज़ । इसलिए कवि मानो पूछता है, "अरे डाक्टर या डायबेटीज़ के मरीज़ की तरह पर हाथ धरे बैठा क्या कर रहा है ?" कवि विश्वज्ञान का मुलाहिज़ा कीजिए कि कविता डायबेटीज़ के मरीज़ तक की खबर ले डाली दिदरो (Diderot) वाल्तेयर (Voltaire) व विश्व-कोषकारों (Encyclopaedists) की पर इसे पढ़ा जाय, तो कोई ताज्जुब कि क़ब्रें हिल उठें । कोई डायबेटीज़ का म हमारे महाभाष्य के प्रकाशन का खर्च उठाने तैयार हो जाय, तो भी कोई ताज्जुब की नहीं ।

अब रह गई आखरी लाइन । लेकिन पूरा करने से पहले एक मज़ेदार घटना का ब कर देना लाज़िमी है । एक समझदार बहन अ बच्ची को खिला रही थीं । 'मेरा राग' के आ तक जो पहुँचीं तो उनके मुहँ से अनायास निकल गया, "जल्दी से एक प्याला दूध पी बस अपने राम तो कृतकृत्य हो गये और स लिया कि अब कविता के लिए तो क़लम

ही देनी चाहिए। आजकल के कवि तो **स्वानुभूति** के पीछे लट्ठ लेकर पड़े हैं, वे भला 'मेरा राग' की इस **परानुभूति** को क्या दाद देंगे? अपने-अपने भाव तो कविता में सब कोई लिखते हैं—चाहे वे किसी की समझ में आयें या न आयें—लेकिन दूसरे के भावों को इस तरह खींच लेना कुछ काम रखता है, काम। इस लिहाज़ से 'मेरा राग' एक लासानी चीज़ है। ग़ालिब का एक शेर है—

'तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।'

इसे सुनकर एक बड़े नामी शायर ने कहा था कि अगर यह एक शेर उन्हें मिल जाता, तो वे अपना सारा दीवान (कबिताओं का संग्रह) जला डालते! अपने राम के पास तो जलाने के लिए कुछ है नहीं, पर जो हिन्दी कवि अपनी रचनायें मियाँ चिराग़ अली के हवाले करना चाहें, उन्हें अपने राम यह 'मेरा राग' मुफ्त देने लिए तैयार हैं।

हमारे लिए सबसे बड़ा सवाल है देश की आज़ादी। इस लिहाज़ से दो ही पार्टी हैं—कांग्रेस और सरकार। बाक़ी तो सब पाँचवें सवार हैं। कांग्रेस के कर्णधार इस वक्त हैं गांधीजी और सरकार के लार्ड लिनलिथगो। हमें गांधीजी के पीछे चलना है, इसलिए हम कहेंगे, "जल्दी चरखा चला।" लेकिन जो लोग किसी वजह से वायसराय के सुर में सुर मिलाना चाहते हैं वे कह सकते हैं, "जल्दी लड़ाई में मदद दे।" ये दोनों एक्स्ट्रीमिस्ट व्यू-पॉइंट हैं। इसलिए मॉडरेट बात यह है कि "जल्दी हिटलर को कोस।" कोसने में आपको न तो चरखा चलाने की ज़रूरत है और न लड़ाई में चन्दा देने की। बस लिया और सर चिमनलाल सीतलवड की तरह स्टेटमेण्ट निकाल दिया, या किसी वार-पब्लिसिटी की मीटिंग में जमनादास मेहता की तरह स्पीच झाड़ दी। हर्र लगे न फिटकरी, रँग चोखा आवे। अगर किसी को 'फ़िफ्थ-कालम' का डर हो तो वह मन में भी कोस सकता है। इसमें एक और भी फ़ायदा है। मन ही मन कोसने में एक-तिहाई हिंसा और दो तिहाई अहिंसा है, क्योंकि अहिंसा= मन+वचन+कार्य। जिस तरह राजाजी देश की भीतरूनी शान्ति के लिए महात्माजी के फार्मूले में एक-तिहाई हिंसा का अंश मिलाने को तैयार हैं, उसी तरह दिल की भीतरूनी शान्ति के लिए कोसा भी जा सकता है। यानी साँप को मार दिया और लाठी भी न टूटी। इसके अलावा अगर जर्मनी का कोई हवाई जहाज़ हिन्दुस्तान में आकर बम गिरा जाय (आर० ए० ऐफ़० के रहते ऐसा होना मुश्किल तो बहुत है) तो हम लोग सिवाय यह कहने के कि "हिटलर के हवाई जहाज़ों में कीड़े पड़ें," और कर ही क्या सकते हैं? इसलिए हिटलर को कोसने की बात 'मेरा राग' में ऐसे मज़े से बैठती हैं जैसे सड़क के बीच में सांड।

मतलब यह कि अपनी-अपनी रुचि और भावना के मुताबिक 'मेरा राग' को सब कोई पढ़, सुन और समझ सकते हैं और परमुटेशन-कॉम्बिनेशन (गणित के नियम) के ज़रिये इसके अनगिनती अर्थ निकाल सकते हैं। मसलन्, हिटलर के साथ उल्लू जोड़ दिया, भलेमानस को ज़ुल्फों के चक्कर में डाल दिया, गदहासुर को अनन्त के साथ बैठा दिया, रोटी को दूध के साथ मिला दिया, वग़ैरा, वग़ैरा। तारीफ़ यह कि हर कोई इसे 'मेरा राग' ही कहेगा। तू-तू मैं-मैं की इसमें कोई गुंजायश ही नहीं। एक किस्सा है कि एक बार अहिभुक नाम के एक हज़रत नाव में बैठकर यात्रा कर रहे थे। नाव में ज्यादा भीड़ जो देखी तो सोचा कि कहीं इस भब्बड़ में खो न जायँ, इसलिए अपनी कुछ पहचान कर लेनी चाहिए। बस पैर में एक रंगीन डोरा बाँध लिया और निश्चिन्त होकर पड़ रहे। कैवर्त्त (मल्लाह) ने इनके पैर में रंगीन डोरा जो देखा तो समझा कोई तावीज है, लिहाज़ा उसने खोलकर उसे अपने पैर में बाँध लिया। जब अहिभुक साहब की आँख खुली तो पाँव में डोरा न देखकर बड़े घबराये और समझ लिया कि जिस बात का डर था वही हुई, यानी खोये गये। कैवर्त्त के पैर में जो डोरा बँधा देखा

तो फ़ौरन याद आ गई और आप उससे पूछते हैं कि "तू **मैं** है, या मैं **तू** हूँ?" कैवर्त्त जवाब देता है, "तू **मैं** है," तो आप कहते हैं कि "नहीं, मैं **तू** हूँ।" गरज़े कि दोनों अपने आपको खोबैठे। लेकिन यहाँ तो जब एक समझनेवाला कहेगा कि यह 'मेरा राग' है, तो दूसरा भी कहेगा यह 'मेरा राग' है। बस **मैं** और **तू** का सारा भेद जाता रहेगा।

इसलिए अपने राम की राय नाकिस में तो जिस दिन हिन्दुस्तान के लोग अपनी-अपनी डफली ले-ले कर 'मेरा राग' अलापने लगेंगे। उस दिन देश का ज़रूर उद्धार हो जायगा। अहिभुख और कैवर्त्त की तरह सब **मैं** और **तू** का भेद जायँगे और 'अहं ब्रह्मासि' के मंत्र की तरह राग' जंपते हुए सीधे स्वर्ग सिधार जा इतिश्री जटायु अ-कवि विरचित 'मेरा राग' ना विश्वकोषीय[1] या चों-चों का मुरब्बानुमा की परानुभूतिप्रदर्शक स्वयंभू व्याख्या खतमशुद

---

१. विश्वकोषीय इसलिए कहा कि 'मेरा रा में साहित्य, विज्ञान, दर्शन, राजनीति, इत् सबकी छाया देखने को मिलती है, खाली 'कोकापन्थ' नहीं है। इस नवीन 'कोकापन्थ बारे में फिर लिखा जायगा।

भाषा और लिपि

[हरिभाऊ उपाध्याय]

साहित्य की भाषा और देश के अन्तर्प्रांतीय विचार-विनिमय तथा बोलचाल की माध्यम राष्ट्रभाषा में कुछ न कुछ भेद तो होगा ही। साहित्यिक भाषा राष्ट्रभाषा से कुछ अधिक परि और टकसाली रहेगी, किन्तु राष्ट्रभाषा अधिक उदार, अन्यप्रांतीय भाषाओं के अच्छे सुबोध शब्दों मुहावरों को पचा सकने में समर्थ, सरल, सुगम व प्रगतिशील रहेगी। उसमें चाहे थोड़ा अटपटापन आवे तो वह हमें अच्छी स्पिरिट में बिना नाक-भौं सिकोड़े बर्दाश्त करना उचित होगा।

अब प्रश्न उठता है कि राष्ट्रभाषा का निर्माण स्वाभाविक रूप से हो या प्रयत्नतः भी मेरा मत यह है कि देश और काल की बदलीहुई परिस्थिति के अनुकूल किसी खास उद्देश्य के लि जबतक हम प्रयत्नशील न हों, तबतक हम अपने स्वभाव और वृत्ति में भी परिवर्तन नहीं कर पाते प्रयत्न ही धीरे-धीरे स्वभाव का रूप ग्रहण कर लेता है और प्रयत्न से गढ़ीहुई भाषा भी धीरे-धी स्वाभाविक रूप से विकसितहुई भाषा-जैसी प्रिय और श्रुतिमधुर हो जाती है।

लिपि के सम्बन्ध में भी हम साहित्य-सेवियों की वृत्ति एक वैज्ञानिक और सत्य-शोधक होनी चाहिए। यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हमारी लिपि में हमें कोई ख़ामी या त्रुटि नज़र आती तो उसे दूर करने के लिए कौन-सी वस्तु ग्राह्य है और कौन-सी त्याज्य—यह जानने, समझने औ उसके प्रकाश में क्रियाशील होने की दृढ़ता और बल हममें होना आवश्यक है। हमारा हरएक क़द और आग्रह--चाहे वह कितना ही अटपटा लगे—अगर वैज्ञानिक अर्थात् सत्य-शोधक की भित्ति प है तो लाख असुविधाओं और विरोधों के होते हुए भी हमें अडिग रहना चाहिए।

[प्रथम राजस्थान-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, उदयपुर के समारोह-भाषण से]

प्रस्तुत प्रश्न

हिन्दी-उर्दू पर पं० लक्ष्मीधरजी

लखनऊ
१२–९–४०

प्रियवर हरिभाऊ जी,

"जीवन-साहित्य" के दूसरे अंक में "साहित्यिक क्या करें?" शीर्षक आपका लेख आज मैंने पढ़ा। आपके विचार सदैव ही अनूठ रहते हैं; और मैं उनको पसन्द करता हूँ।

इस लेख में उर्दू-हिन्दी के झगड़े पर आपने एक पैराग्राफ़ लिखा है, उसमें वीर सावरकर के नाम के साथ-ही-साथ आपने मेरा भी नाम स्मरण करने की कृपा की है। इससे जान पड़ता है कि हिन्दी भाषा के स्वरूप पर मेरे वर्तमान विचार क्या हैं, इस विषय में आप पूरे-पूरे परिचित नहीं हैं।

मैं खुलासा क्यों न कर दूँ? हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में कार्य करते हुए आज पैंतीस वर्ष से अधिक मुझे हो गये हैं—उर्दू की बुराई मैंने कभी नहीं की, और न कभी उर्दू-हिन्दी के झगड़े में पड़ा। हाँ, उर्दू-भाषा जिस लिपि में लिखी जाती है, उसका विरोधी मैं रहा हूँ और अब तक हूँ। बल्कि मैं तो अबतक जोश में आकर कभी-कभी कह दिया करता हूँ कि हमारे मुसलमान भाई यदि अपनी लिपि छोड़ दें, तो मैं उनकी भाषा ग्रहण कर लूँगा।

हाँ, हिन्दी-हिन्दुस्तानी का जो झगड़ा इधर कई वर्षों से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के जरिये उठाया गया है, उसमें मैंने अवश्य कुछ दिलचस्पी ली है, और उसके विषय में अवश्य मेरे अपने कुछ निज के विचार हैं; और शायद वीर सावरकरजी के विचारों से मेरे विचार बहुत भिन्न रहेंगे। जहाँ तक मैं जानता हूँ, सावरकरजी की 'संस्कृतनिष्ठ हिन्दी' का यह तात्पर्य होगा कि हिन्दी-भाषा में फारसी-अरबी के जो तद्भव और तत्सम शब्द बोलचाल में प्रचलित हैं वे भी चुन-चुनकर निकाल डाले जायँ और उनकी जगह संस्कृत शब्द ही व्यवहार में लाये जायँ। हिन्दू-राष्ट्र की दृष्टि से देखा जाय, तो ऐसा करना कुछ अनुचित भी न होगा क्योंकि संस्कृति और राष्ट्रीयता में बहुत गहरा सम्बन्ध है, ऐसा मेरा दृढ़ विचार है; और किसी भी राष्ट्र की भाषा भी उसकी प्रतिध्वनि ही है। इसके सिवाय शब्दों में एक परम्परागत शक्ति भी संरक्षित रहती है, जिसका प्रभाव वर्तमान और भविष्य की राष्ट्रीयता पर पड़ता है। मैंने सुना है, मालूम नहीं कहाँतक सत्य है, ईरानी और तुर्की भाषा से, अभी कुछ ही वर्ष के बीच में, अरबी के शब्द चुन-चुनकर निकाल दिये गये हैं। टर्की यद्यपि इस्लामी राष्ट्र है, फिर भी वहाँ अरबी-लिपि का बहिष्कार किया गया है। परन्तु भारतवर्ष की दशा भिन्न है, इसको मैं लगभग ४० वर्ष से समझता हूँ; और मेरा ऐसा पक्का विश्वास है कि हिन्दुस्तान में न केवल हिन्दू या मुसलमान राष्ट्र उतने सहज में बन सकता है जितना कि वीर सावरकर या क़ायदे आज़म जिन्ना चाहते हैं। मैं अपने इसी विश्वास के अनुसार न सिर्फ़ साहित्य या भाषा का ही, बल्कि राष्ट्र का भी काम ३५ वर्ष से यथाशक्ति कर रहा हूँ। मुझे अपना विज्ञापन नहीं करना है, पर हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य का मैंने मौके-बे-मौके बहुत ही सच्चे दिल से और जोश के साथ काम किया है।

रहा भाषा का सवाल—सो मेरा पक्का विश्वास है कि कोई भी भाषा बनाई नहीं जाती, वह आवश्यकतानुसार प्रवाहपतित रूप से लुढ़कती-पुढ़कती आप ही आप बनती चली जाती है और लिखने-पढ़नेवाली जनता उसको अपने अनुकूल समझकर आप ही आप उसको ग्रहण करती जाती है। 'हिन्दुस्तानी' के नाम से आजकल जो एक नवीन कृत्रिम भाषा गढ़ी जा रही है, और जिसका प्रचार वर्धा-शिक्षा-योजना और कांग्रेसी सरकारों के द्वारा कराया जा रहा था, उसका मैं सख्त विरोधी हूँ, क्योंकि वह जान-बूझकर गढ़ी जा रही है, और जो लोग उसे स्वाभाविक रूप

से नहीं लिख पढ़ सकते; और न पसन्द ही करते हैं, उनके सिर वह जबरन थोपी जा रही है। कहा यह जाता है कि इस प्रकार की राष्ट्रीय भाषा बनाकर आगे के लिए हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य का रास्ता साफ़ किया जा रहा है। पिछले बीस-पच्चीस वर्ष के अन्दर हमारी ओर से ऐसे कितने ही प्रयत्न हुए हैं, उनका ही परिणाम आज "पाकिस्तान" के रूप में हमारे सामने आया है; और तमाम देश में हिन्दू-मुसलमानों के रहन-सहन भाषावेश और भावों में इतना बिलगाव इस समय दिखाई दे रहा है कि जितना इसके पहले कभी नहीं था। यहाँ तक कि रेल में "मुसलमानों के पीने का पानी" "हिन्दुओं के पीनें का पानी", पान की दूकानें, चाय की दूकानें, परचूनी और हलवाई की दूकानें भी विलग हो गई हैं और कई शहरों में तो'पाकिस्तान'की स्कीम काफ़ी सफलता तक पहुँच गई है। हिन्दू-मुसलमानों के अलग-अलग मुहल्ले तथा बाज़ार बस गये हैं और अब तक बस रहे हैं। मेरा अपना तो पक्का विश्वास है कि यदि वर्तमान अग्नि-परीक्षा में ब्रिटिश साम्राज्यशाही नष्ट न हुई और किसी तरह भी जीवित रह गई, तो भारतीय राष्ट्र में पाकिस्तान कायम होकर राष्ट्र दो टुकड़ों में अवश्य ही सदैव के लिए बँट जायगा। ब्रिटेन का ऐसा अभिप्राय स्पष्ट जान पड़ता है और इस आयोजन की बन्दिश हो चुकी है। देहातों में भी हिन्दू-मुसलमानों का वैमनस्य दिन पर दिन मुस्लिम-लीग के संगठन के जरिये बढ़ाया जा रहा है।

अस्तु। ऐसी दशा में हिन्दी-भाषा के अन्दर केवल फ़ारसी-अरबी के नवीन-नवीन शब्द भरकर उसको'हिन्दुस्तानी' बना देने से क्या हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य सिद्ध होगा, मेरी समझ में नहीं आता। भाषायें हमेशा अपने-अपने रंग पर चलती रही हैं और चलती रहेंगी; उनको ऐसे ही चलने देना चाहिए। भाषा के आधार पर इस समय अथवा निकट भविष्य में भी कभी हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य हो जायगा, इसकी हमको बिलकुल सम्भावना नहीं दिखाई देती। ऐसी दशा में जो हिन्दी-भाषा अपनी साधारण चाल से मजे में चल रही है, उसको विकृत बनाना और भौंड़े रूप में उसको अन्य भाषा-भाषी प्रान्तों के सामने, राष्ट्रभाषा कहकर, उपस्थित करना मुझको तो कोई बुद्धिमत्ता का काम दिखाई नहीं देता। फिर ऐसे प्रान्तों में जहाँ की प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत शब्दों की बहुलता है, अरबी-फ़ारसी शब्दों के मिश्रण से विकृत राष्ट्रीय भाषा प्रचारित करना मानो अपने पैर में आप ही कुल्हाड़ी मारना है।

हाँ, हिन्दी-भाषा में जो अरबी-फारसी के तत्सम और तद्भव शब्द पहले से चले आ रहे हैं, और जिनको उत्तर-भारत की ग्रामीण जनता भी बोलती तथा समझती है, उनकी जगह पर कठिन संस्कृत शब्दों की स्थापना करने के पक्ष में मैं नहीं हूँ। मैं स्वयं जो भाषा लिखता हूँ उसमें ऐसे प्रचलित उर्दू के शब्द आते ही रहते हैं, जिनको मैं रोज बातचीत में बोलता रहता हूँ; और मेरा तो ऐसा पक्का विचार है कि जो भाषा हम आपस में बातचीत में बोलते हैं, वही लेखों और पुस्तकों में भी लिखनी चाहिए, उसमें न हम संस्कृत शब्दों का बाहुल्य करें और न अरबी-फारसी शब्दों का। परन्तु हमको खेद होता है जब हम अपने कई मित्रों को ऐसी भाषा लिखते हुए देखते हैं कि जो उनकी बोलचाल की नहीं है—जैसे कि "जीवन-साहित्य" के इसी दूसरे अंक के सफा ९८ की तीसरी पंक्ति में "अदबी दुनिया में यह मुफीद रिसाला" शब्द जानबूझकर हिन्दी को 'हिन्दुस्तानी' जामा पहनाने के लिए डाले गये से जान पड़ते हैं—ऐसे कई हिंदी-लेखक शौकिया 'हिन्दुस्तानी' लिखनें की कोशिश करने लगे हैं। "अदबी दुनिया" इत्यादि साधारण बोलचाल की भाषा नहीं है।

अस्तु। आशा है, इतने से आप मेरे भाषा-सम्बन्धी विचारों से अच्छी तरह परिचित हो जायँगे। यदि आप अनुचित न समझें तो मेरे इस पत्र को "जीवन-साहित्य" के अगले अंक में अवश्य छाप दें, जिससे आपके पाठकों को मालूम हो जाय

कि वीर सावरकर और मेरे दृष्टिकोण में कितना अन्तर है ?

भवदीय

लक्ष्मीधर वाजपेयी

[भाई श्री लक्ष्मीधरजी का यह पत्र ज्यों-का-त्यों छाप रहा हूँ, जिससे उनकी स्थिति या मत के बारे में 'जी० सा०' के पाठकों की कोई गलतफ़हमी न हो। वाजपेयीजी से मेरा निवेदन इतना ही है कि भाषा का रूपान्तर आखिर किसी के करने से ही होता है। जब-जब नये शब्द, मुहावरे आदि का प्रयोग किया जायगा, तब-तब शुरू में वे अवश्य ही बहुतों को अखरेंगे पर लिखने पढ़नेवाली जनता उसको अपने अनुकूल समझकर आप ही आप उसको ग्रहण करती जाती है न ? फिर नित्य प्रयोग से हमारे कान अभ्यस्त हो जाते हैं और उसका अटपटापन निकल जाता है। इस स्वभाव-नियम पर वे गौर करेंगे तो, मैं समझता हूँ, नई बननेवाली भाषा पर उनकी आपत्ति कम हो जायगी।

ह० उ०]

एक प्रश्न

उस दिन एक गीत एक प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका में पढ़ने को मिला। पढ़कर कवि के और पत्रिका के सम्पादक के प्रति जैसे भाव पैदा हुए, उन्हें यहाँ व्यक्त न करने ही में समझदारी है। वह गीत यह है :—

रानी! याद तुम्हारी आई,
आईं याद प्यार की बातें—
साँसें बनीं विषम हथकड़ियाँ,
कारागार बन गईं रातें !
कैसा था अद्भुत अपूर्व वह
महानन्द का एक अमर क्षण,
विश्व भर गया था जब मधु से
क्षण भर का वह प्रेमालिंगन !
तीव्र श्वास, पुलकाकुल स्वेदित,
शिथिलगात, मधु रात अचेतन,
प्राणों में जब भेद नहीं था,
एक हो गये थे दोनों तन ?
प्रणय-अंध पुलकित बाहों के
भरे हुए गहरे आलिंगन !

इन पंक्तियों में जो चित्र है, क्या उसने पाठक के हृदय में 'नारी' के प्रति एक काम-वासनापूर्ण भाव ही नहीं जाग्रत किया ? इस कविता को पढ़ने पर हृदय की वृत्तियों को उदात्त और ऊँचा बनानेवाली कौन-सी प्रेरणा हमें मिल सकती है ? 'कारागार' में पड़े कवि को अपनी 'रानी' की जीवन-भर की एक ही स्मृति आ रही है, मानसिक व्यभिचार में वह पड़ गया है और न जाने क्या-क्या कह जाता है ! इसे पढ़कर……रत दम्पती के चित्र के सिवा और कुछ आँखों के आगे आता ही नहीं। क्या कवि की काव्य-साधना का साध्य यही है ? क्या यह कविता मैं अपनी माँ या बहन या किसी भी देवी के आगे पढ़कर गर्व से कह सकूँगा कि यह हमारे हिन्दी-काव्य की प्रतीक-ध्वनि है; आज हमारी कविता का Theme यही है ? न जाने और भी कितने ही प्रश्न एक दम दिमाग में चक्कर काट गये !

एक अरसे पहले हिन्दी के एक श्रेष्ठ कलाकार कवि की ये पंक्तियाँ भी पढ़ने में आई थीं :—

नयन से नयन, गात से गात
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण
भुजों से भुज, कटि से कटि शात
आज तन-तन, मन-मन हो लीन

ऐसा लगता है, जैसे यह किसी प्रणयान्ध का 'सुहागरात' मनाने के वक्त का उद्गार हो। ये सुहागरात के चित्र बिहारी, पदमाकर, मतिराम आदि की परम्परा कबतक चलाते रहेंगे ? क्या हमें अब भी ऐसे चित्रों की प्रदर्शिनी देखने को मिलती रहेगी ?

अवश्य ही, हमारे समाज का नैतिक मापदण्ड कुछ नीचा है अन्यथा ऐसी कवितायें आज बर्दाश्त नहीं हो सकती थीं। राष्ट्रीय सरकार को ऐसी कवितायें ज़ब्त कर लेनी चाहिए थीं। सम्पादक और प्रकाशकगण उन्हें जमींदोज़ कर देते, भट्टी में झोंक देते, पर समाज के आगे न जाने देते। अगर कवि को अपनी कविता से जीवन को ऊंचा उठाना नहीं आता है, उदात्त भावनायें भरना नहीं आता है, तो मुझे कहने दिया जाय कि उसे

क्या अधिकार है कि जनता के—पाठकों के—चित्त पर, संस्कृति पर, जीवन पर इन वासनापूर्ण पंक्तियों की काली छाया पड़ने दे और शारीरिक व्यभिचार के जनक मानसिक व्यभिचार को उत्तेजन देकर समाज की नैतिक ऊँचाई को लज्जित करे ? ये 'सुहागराती' कवितायें क्या अब भी हम बर्दाश्त करते रहेंगे ?

आज पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी ही कविताओं की प्रशंसा में कितनी ही ऊलजलूल पंक्तियाँ छपी मिलेंगी। व्यक्तिगत पत्रों में भी इनका समर्थन कम नहीं मिलता। एक भाई लिखते हैं :—

"गीतिकाव्य शाश्वत है, उसका महत्त्व जीवन के किसी देश और काल में मिट नहीं सकता। नीग्रो जाति का गीतिकाव्य मैंने एक बार पढ़ा था। उसमें बहुत-सी कल्पनायें इतनी सुन्दर थीं कि टैगोर, रोसेट्टी और शेक्सपियर उनसे अभी भी सीख सकते हैं"........."अश्लीलता हमारे जीवन में है—उसी से हमारा जीवन उत्पन्न है। अगर वह न होती तो हमारी 'माँ' कैसे होती ? और बहनें भी। बहनें भी माँ बनती ही हैं, क्या बग़ैर अश्लीलता के ?"

ठीक है, जो भाई ऊपर की पंक्तियाँ निस्संकोच कह सकते हैं उनकी 'अश्लीलता' की परिभाषा न जाने क्या है ?

कई क्रियायें ऐसी होती हैं जो अश्लील न होते हुए भी नैतिकता की दृष्टि से मर्यादा के बन्धन में रक्खी जाती हैं। पति-पत्नी का आलिंगन, चुम्बन, संभोग, प्रसव आदि क्रियायें जीवन के लिए आवश्यक और अश्लील होते हुए भी एकान्त की ही वस्तुयें हैं। उनका खुला प्रदर्शन हमारी नैतिकता का भंग और अपराध है।

जो हो, हमारा कहना यह है कि कवियों को ऐसी कवितायें लिखनी नहीं चाहिएँ। 'स्वानुभूति' हो और 'युग-युग का सत्य' कला द्वारा व्यक्त करने की urge ही हो तो लिखें, उसे स्वयं गुनगुनायें, गायें, उससे मस्त हों, पर अपना वह चित्र दुनिया को न दिखाएँ। क्योंकि एक कवि समस्त कविसमाज का और कविसमाज राष्ट्र के जीवन का प्रतीक है। उसकी कविता राष्ट्र की वाणी का स्वर और राष्ट्र की संस्कृति का प्रतिबिम्ब है और न हो तो होनी चाहिए।

और 'नारी' का आखिर एक ही—रमणी, कामिनी, सजनी, 'रानी' का रूप ही दृष्टा कवि ने क्यों देखा ? नारी 'रमणी' 'कामिनी'-भर ही नहीं है, वह जन्मदात्री है, जगत्-शक्ति है, वसुन्धरा है, अमृतपयोधरा है, बहन है, माता है। इन रूपों में से किसी ने उसे आकर्षित नहीं किया ? जिसने उसे जन्म से लेकर शैशव और बाल्य तक अपने वात्सल्य की मधुर अमृतमयी छाया में रक्खा, अपना जीवन तक उत्सर्ग किया, उसे वह इतनी जल्दी कैसे उपेक्षित ही नहीं, तिरस्कृत और अपमानित करने लगा ? नारी के शाश्वत प्रेम के, दुलार के, वात्सल्य के, स्नेह के, उसके 'माता-रूप' पर प्राणोत्सर्ग कर देने की प्रेरणा भरनेवाले गीत उसने क्यों न गाये ? बस हमारा प्रश्न यही है।

नारी का वर्णन करते हुए उसका रूप-सौन्दर्य ही हमें मुग्ध-लुब्ध कर सकता है, यह नहीं है। उरोज, चुम्बन, प्रेमालिंगन, परिरंभण—आदि आदि का उल्लेख करने के बदले यदि उसके प्रेम के अजर-अमर स्वरूप का आलेखन कवि-तूलिका करे तो क्या कला की सृष्टि नहीं हो पाती ? क्या 'स्वानुभूति' यहीं जाकर सार्थक होती है ? नारी का पुण्य, पुनीत, पवित्र, प्रोज्ज्वल और निर्मल चित्र कविगण अंकित करें, गर्हित, अश्लील और निन्दनीय दुश्चित्र नहीं—इसी में कवियों की कला की सार्थकता है।

सुधीन्द

'कामसूत्र' या अन्य कामशास्त्र

पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी का 'साहित्य और जीवन' लेख कई पत्रों में प्रकाशित होकर खूब प्रचारित हुआ है। उसमें उन्होंने लिखा है—"वात्स्यायन ने ज़िन्दगी भर तपस्या करके कामशास्त्र पर अपना ग्रन्थ लिखा था और वात्स्यायन के आधुनिक अवतार ऋषिवर हैवलाक एलिस ५० वर्ष तक इसी विषय का अध्ययन करते रहे। यहाँ नये पाठकों की वात्स्यायन के प्रति एक श्रद्धा जग जाती है, पुरानों की तो है ही। लेकिन

मेरी धारणा इससे बिल्कुल विपरीत है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं काम-शास्त्र या जातीय विज्ञान के ग्रन्थों के निर्माण या प्रचार के विरोध में हूँ; पर इस विज्ञान का आधार मुख्यतया मानसिक और शारीरिक है। इसी को लक्ष्य करके इस विषय की तमाम पुस्तकें लिखी जानी चाहिएँ। भारतीय आचार्यों ने (यद्यपि मैं उन्हें आचार्य नहीं कह सकता) इस विषय पर ग्रन्थ लिखे हैं, लेकिन मेरा विश्वास है कि उनका आधार मानसिक और शारीरिक दृष्टिकोण उतना नहीं था, जितना कि लालसा या शारीरिक विलास का।

मनुष्य की प्रक्रिया और विक्रिया सार्वक्षेत्रीय है। उसका उपयोग उसने बुद्धि और मन द्वारा अच्छे और बुरे दोनों ही रूप में किया है। बुरी वस्तु ज्यादा अपनाई जाती है। कोई-कोई वर्ग तो बुरेमार्ग को ही सुख और संतोष का मार्ग समझ बैठा है। वात्स्यायन और अन्य ऐसे ही—जयदेव, कोका पंडित, कल्याणमल्ल, वीरभद्र देव नृपति आदि को मैं इसी श्रेणी में मानता हूँ। और नासमझी के कारण, अथवा हमारी परम्परानुसार उन्हें आचार्य मान लेने के कारण, हमने उनकी रचनाओं को श्रद्धापूर्वक शुभ साहित्य समझ लिया है, पर वास्तव में वे समाज और राष्ट्र का अत्यन्त अहित कर रहे हैं।

प्राकृतिक ज्ञान और शिक्षा तो अपने आप मिला करती है। पशुपक्षियों और मूक प्राणियों को ऐसे शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती और छापों के पहले भी तो जन-समाज को इनका ज्ञान था। आज भी संसार की अधिकांश आबादी अशिक्षित है। इन्हें कौन इस विषय की शिक्षा देने आता है? कहना नहीं होगा कि यह सब प्रकृति द्वारा ही होता है। इस सृष्टि का प्रजनन-कार्य क्या कभी रुका है और कोई रोक सकता है? फिर इसके लिए शिक्षा-शास्त्र के नाम से कोकशास्त्र और कामशास्त्र-सूत्रों की आवश्यकता कैसी?

पर, मनुष्य की तो बुद्धि का दिवाला निकल गया है। वे पशु-पक्षी अच्छे हैं, जिनमें बुद्धि का विकास ही नहीं है। ये सब चराचर प्राकृतिक ढंग से अपना कार्य करते चले जाते हैं, पर मनुष्य अपनी बुद्धि को विज्ञान के आविष्कार से नरसंहारकारी भी बना देता है। शरीर के क्षयरूपी शास्त्र को भी वह खोज लेता है। यह भ्रष्टाचारी मार्ग जबतक बन्द न होगा, समाज की उन्नति नहीं हो सकती। इन कामशास्त्र के लेखकों ने इस विज्ञान को विकृत कर दिया है। इन वात्स्यायन आदि कथित महामुनियों ने सिर्फ राजपुरुषों या विलासी सामन्तों के लिए ही इन शास्त्रों की रचना की है। यदि इनमें जरा भी विवेक होता तो ऐसे 'कूड़ापंथ' का ये प्रचार न करते। ज़रा सोचिए, अप्राकृतिक मैथुनासनों का वर्णन कितना भयानक है! जो कभी शरीर और स्वास्थ्य की दृष्टि से साधे नहीं जा सकते, उनका विविध वर्णन कर और सुखाभिवृद्धि का साधन बता कर जनता को उनपर अमल करने के लिए उकसाया जाता है। कई-कई ग्रन्थों में तो मुखरति और गुदा-मैथुन का भी ज़िक्र है। नैतिकता की इतनी हत्या उन व्यक्तियों ने की है, जिन्हें आप लोग आचार्य, ऋषि और मुनि मान बैठे हैं! लेकिन अब समय बदल गया है। श्रद्धा के साथ ही मनुष्य को बुद्धि भी उपयोग में लानी चाहिए। यदि भारतवर्ष स्वतन्त्र हो, तो इन सब रचनाओं का एकदम नष्ट किया जाना ज़रूरी है। भावी संतान के लिए इन ग्रन्थों और इनके आचार्यों के नाम का महत्व भी मिटा देना चाहिए।

हैवलाक एलिस, फ्रायड और श्रीमती मेरी स्टॉप्स आदि पाश्चात्य लेखक-लेखिकाओं के लिए मैं नहीं कहता। श्रीयुत हैवलाक एलिस ने ५० वर्ष से इस विषय के लिए मानव-समुदाय की एक प्रयोगशाला ही खोल रखी है और मानव-शास्त्र तथा शरीरशास्त्र के आधार पर प्रत्येक वस्तु की छान-बीन और बारीकी से निर्णय करके उन्होंने सुन्दर मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ लिखे हैं। फ्रायड की भी रचनायें ऐसी ही हैं और श्रीमती मेरी स्टॉप्स की भी। आप इन तीनों लेखकों की कोई सी भी रचना ले लीजिए और उसमें इतने

सुन्दर तथा विशद ढंग से विषयनिरूपण पाइएगा कि आपके मन में किंचित् भी विकार नहीं आने पायगा। इन तीनों की रचनाय आप अपने घर में खुली भी पड़ी रहने देंगे, और बालक-बालिकायें या जवान स्त्री-पुरुष भी यदि उन्हें पढ़ लेंगे, तो यह सच मानिए कि वे अपनी चित्तवृत्तियों को किसी भी ढंग से कुत्सित मार्ग की ओर नहीं झुकायेंगे। विशुद्ध-निर्दोष कामशास्त्र और जातीय विज्ञान आप इन लेखकों की रचनाओं में पायेंगे क्योंकि उनका आधार सत्य, मनोविज्ञान और शरीर-शास्त्र की सम्पत्ति को सुरक्षित बनाये रखना है।

भानुकुमार जैन

'बापू'

[घनश्यामदास बिड़ला]

"गांधीजी को एक महात्मा के रूप में हमने देखा, एक नेता के रूप में भी देखा, पर गांधीजी का असल रूप तो 'बापू' के रूप में देखने को मिलता है। सेवाग्राम में बड़े-बड़े मसले आते हैं। वाइसराय से ख़तोकिताबत होती है, वर्किंग कमेटी की बैठकें होती हैं, बड़े-बड़े नेता आते हैं। मन्त्रिमंडल के लोग कांग्रेस-राज के ज़माने में सलाह-सूत के लिए आते ही रहते थे। पर आश्रमवासी न बड़े लोगों की चिट्ठियों से चौंधियाते हैं, न बड़े नेताओं को देखकर मोहित होते हैं। न राजनीति में उन्हें कोई बड़ी भारी दिलचस्पी है। उन्हें तो बापू नें क्या खाया, क्या पिया, कब उठ गये, कब सो गये, फलाँ से क्या कहा, फलाँ ने क्या सुना, इन बातों में ज्यादा रस है। और गाँधीजी भी आश्रम की छोटी-छोटी चीज़ों में आवश्यकता से अधिक रस लेते हैं।

आश्रम भी क्या है, एक अजीब मण्डली है! उसे शिवजी की बरात कहना चाहिए। कई तरह के तो रोगी हैं, जिनकी चिकित्सा में गांधीजी खास दिलचस्पी लेते हैं। पर सब-के-सब बापू के पीछे पागल हैं। मैंने एक रोज़ देखा कि एक रोगी के लिए जाड़े में ओढ़ने के लिए रज़ाई बनाई जा रही है। बा की फटी-पुरानी साड़ियाँ लाई गईं। गांधीजी ने अपने हाथ से उन्हें नापा। कितना कपड़ा लगेगा, इसकी कूत की गई। रजाई के भीतर रुई की जगह पुराने अख़बारों को एक के ऊपर दूसरी परत रखकर कपड़े के साथ सिया जा रहा था। गाँधीजी ने सारा काम दिलचस्पी से कराया। मुझे बताया कि अख़बार रूई से ज्यादा गरम है। मुझे लगा कि ऐसे-ऐसे कामों में क्या इनका बहुमूल्य समय लगना चाहिए? मैंने मज़ाक में कहा, "जान पड़ता है, आपको आश्रम के इन कामों में देश के बड़े-से-बड़े मसलों से भी ज्यादा दिलचस्पी ह।" "ज्यादा तो नहीं, पर उतनी ही है, ऐसा कहो।"

बात सच्ची है। गांधीजी रात-दिन यदि गंभीर मसलों पर ही विचार किया करें, तो फिर उन्हें तनिक भी विश्राम न मिले। आश्रम गांधीजी का कुटुम्ब है। महान्-से-महान् व्यक्ति को भी कौटुम्बिक सुख की चाह रहती है। गांधीजी का वैसे तो सारा विश्व कुटुम्ब है, पर आश्रम के कुटुम्ब की उनपर विशेष ज़िम्मेदारी है। उस ज़िम्मेदारी को वह निर्मोही होकर निबाहते हैं।

आश्रम में उन्होंने इतने भिन्न-भिन्न स्वभाव और शक्ति के आदमी रक्खे हैं कि बाहरी प्रेक्षक को अचम्भा होता है कि यह शिवजी की बरात क्यों रक्खी है! परन्तु एक-एक का परिचय करने से पता चलता है कि हरेक का अपना स्थान है। बल्कि गांधीजी उनमें से कई को कुछ बातों में तो अपने से भी अधिक मानते हैं। किसी आध्यात्मिक प्रश्न का निराकरण करना होता है तो वे अक्सर अपने साथियों—विनोबा, किशोरलाल भाई, काका साहब आदि—को बुला लेते हैं। ऐसे साथियों को रखकर ही मानो उन्होंने अपने मन में उच्च-नीच-भावना नष्ट कर डाली है। जो काम हल्के-से-हल्का माना जाता है, उसे करनेवाला और जो काम ऊँचे-से-ऊँचा माना जाता है, उसे करनेवाला—दोनों आश्रम में भोजन करते समय साथ-साथ बैठते हैं।"

['सस्ता-साहित्य-मण्डल' से प्रकाशित 'बापू' से

कसौटी पर

बापू :—लेखक—श्री घनश्यामदास बिड़ला; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या २०३; मूल्य ॥)

बापू की या बापू के संबंध की कोई चीज़ हो तो उसे फौरन् पढ़ने की उत्सुकता को रोकना मेरे लिए मुश्किल हो जाता है। 'बापू' को मैंने प्रूफ कापी में ही पढ़ डाला था। इसके कुछ अंश, खासकर वह जिसमें अहिंसा का सूक्ष्म सुंदर विवेचन किया गया है, मुझे इतना पसंद आया था कि मैं उसे पुस्तक प्रकाशित होने के पहले ही 'जी० सा०' में देना चाहता था। अब तो सारी पुस्तक ही पाठकों के हाथ में है।

घनश्यामदासजी की लिखी होने के कारण पाठक इसे विस्मय, शंका व सावधानी के साथ पढ़ें तो आश्चर्य नहीं। तानाजनी, टीका-टिप्पणी, तर्क-वितर्क—कुतर्क भी—करें तो अस्वाभाविक नहीं; क्योंकि एक तो घनश्यामदासजी 'पूँजीपतियों' में खपते हैं, 'मिल-मालिकों' की श्रेणी में हैं, दूसरे वे लेखक कब से व कैसे हुए? पर यदि पाठक 'बापू' को एक बार पढ़ लेंगे तो उन्हें महादेवभाई के इन शब्दों में जरा भी अत्युक्ति न मालूम होगी कि **सारी पुस्तक बिड़लाजी की तलस्पर्शी परीक्षण-शक्ति का सुन्दर नमूना है।** उन्हें मानना होगा कि घनश्यामदासजी एक सूक्ष्म निरीक्षक, कुशाग्रबुद्धि व सहृदय लेखक हैं। यह इत्तिफाक की बात है कि उनका जन्म एक धनी-मानी के घर में हुआ है। उनकी भाषा में कितना चमत्कार है, विचारों में कितनी स्पष्टता व समतोलता है, लेखन-शैली कैसी संक्षिप्त पर साथ ही सुबोध है, इसका अनुभव पाठक को 'बापू' को हाथ में लेते ही हो जायगा।

बापू का व्यक्तित्व इतना महान् व अगाध है, उनका आदर्श इतना उच्च और व्यापक है कि दोनों के विषय में कुछ लिखना मामूली बात नहीं है। जब व्यक्तित्व पर विचार करने लगते हैं तो 'सिन्धु में बिन्दु' की तरह अपने को खो देना पड़ता है; जब आदर्श की ओर देखते हैं तो गौरीशंकर-शृंग की चढ़ाई-जैसा मालूम होता है। परन्तु बिड़लाजी ने दोनों कठिन कामों को हँसते-खेलते हुए किया है—ऐसा कहना पड़ता है। फिर भी इस पुस्तक को 'बापू' का समग्र जीवन-चरित या आदर्श-निरूपण नहीं कह सकते। लेखक ने अपने संबंध और सम्पर्क के सिलसिले में उन्हें जितना व जैसा देखा व समझा है, वैसा ही प्रस्तुत किया है। पर कहना होगा कि इसमें उन्होंने अपने व बापू दोनों के साथ न्याय ही किया है।

पुस्तक में २० प्रकरण हैं, और बापू के जीवन से संबंध रखने वाली कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना, उनके सिद्धान्त, आदर्श व कार्यक्रम का मूल्यवान् पहलू उनके उल्लेख व विवेचन से बचा नहीं है। बापू का दर्शन कराने में, सत्य-अहिंसा के हार्द तक पहुँचाने में 'बापू' अवश्य सफल होगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। एक धनपति इस कारीगरी में इतना निपुण सिद्ध हुआ है, यह हमारे लिए और भी आनन्द की बात है—दूसरे धनपतियों के लिए जगने, सोचने व अनुकरण करने-जैसी है। बापू की ७२ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर इसका प्रकाशन और गांधीजी के 'बास्वेल' या आधुनिक 'व्यास' महादेव देसाई द्वारा इसका 'आदि वचन'—दोनों ने इसकी महिमा और भी बढ़ा दी है। ह० उ०

राजस्थान के ग्राम-गीत (१) : संग्रहकर्त्ता स्व० श्री सूर्यकरण पारीक; संपादकद्वय श्री रामसिंह एम. ए. तथा श्री नरोत्तम स्वामी, एम. ए.; प्रकाशक—गयाप्रसाद एंड संस, आगरा; पृष्ठ सं० १११; मूल्य ॥), ।)

अपने साहित्यिक मित्र स्व० श्री सूर्यकरण पारीक की विद्वत्ता और साहित्य-सृजन में उनकी सच्ची लगन से मैं परिचित हूँ। ग्राम-गीत-साहित्य से जैसा उनको अनुराग था और ग्रामीण शब्दों

के अन्तस्तल तक पहुँचकर उनके सूक्ष्म भावों को ग्रहण करने की उनमें जैसी प्रतिभा थी, उससे भी मैं परिचित हूँ। असमय में उनके देहावसान से हिन्दी और राजस्थानी दोनों के साहित्य को बड़ी हानि पहुँची है। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनके दो सच्चे और प्रेमी मित्र ठाकुर रामसिंह एम० ए० और श्री नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए० उनके आरम्भ किये हुए साहित्यिक कामों को चालू रखने का प्रयत्न कर रहे हैं और इस प्रकार वे पारीकजी की स्मृति को स्थायित्व प्रदान कर रहे हैं।

राजस्थान के ग्राम-गीत उनके प्रयत्न का पहला फल है। इसके और भी कई भाग प्रकाशित होने वाले हैं, जिनके लिए हम लालायित रहेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में **प्रार्थना, बालिका-जीवन के गीत, सुखी गृहस्थी के गीत, चरखे के गीत, गृहस्थ-जीवन की कठिनता के गीत, धीणे के गीत, बिल्ली के गीत, पिल्ले के गीत, ऊँट और बैलों के गीत** और **भोज्य पदार्थों के गीत** हैं। बिल्ली, पिल्ले और ऊँट के गीतों तक पारीकजी पहुँच गये थे, इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि वे ग्राम-गीतों में कितना रस ले रहे थे और उनमें कैसी गंभीर भावुकता थी? कवित्व क्या वस्तु है, इसको वे खूब समझते थे, और उनकी इस समझदारी का लाभ हमको उनके ग्रामगीतों के चुनाव में मिलता है। अच्छे चुने हुए गीत अपने चुननेवाले का भी मूल्य आँक देते हैं। सो ग्राम-गीतों के इस चुनाव को देखकर पारीकजी की मृत्यु से हम और भी दुख अनुभव करेंगे, क्योंकि साहित्य के इस नवीन क्षेत्र का एक नेता हमारे बीच से उठा लिया गया।

इस पुस्तक में जो गीत दिये गये हैं, वे बहुत ही सरस हैं। वे हृदय में सीधे पहुँचकर रस उत्पन्न करते हैं। और जब वे गाते हुए सुने जायँगे, तब तो हृदय अपनी सुध-बुध ही भूल जायगा। बालिका के इस गीत में, देखिए कितनी करुणा है :–

अम्मा ए खेलण द्यौ दिन चार।
फिर खेलन नहीं आऊँ, मेरी अम्मा ए,
खेलण द्यौ दिन च्यार॥
मैं हूँ अम्मा तेरी चिडी ए चिड़कली,
डेल गेरयाँ उड़ जाय।
अम्मा ए, खेलण द्यौ दिन च्यार॥
गुड़ियाँ भी छोडी अम्मा आले ए दिवाले
छोड़यो सहेल्यां रो साथ।
अम्मा ए, खेलण द्यौ दिन च्यार॥
कै आऊँगी मैं ओसर मोसर
के बीरां रे ब्याव।
अम्मा ए, खेलण द्यौ दिन च्यार।
फेर खेलन नहीं आऊँ, मेरी अम्मा ए
खैलण द्यौ दिन च्यार॥

—अरी माँ! मुझे दो-चार दिन अभी और खेल लेने दे। मैं फिर खेलने नहीं आऊँगी।

री माँ! मैं तेरी चिड़िया हूँ, जो ढेला मारते ही उड़ जाती है।

गुड़िया तो मैं भीत के ताक पर छोड़ चली और सहेलियों का साथ भी छोड़ चली; अब या तो मैं ओसर-मोसर (किसी कुटुंबी की मृत्यु पर होने वाले जाति-भोज) पर आऊँगी या भाइयों के विवाह पर। माँ! मुझे चार दिन और खेल लेने दे, मैं फिर खेलने नहीं आऊँगी।

कैसा करुण-रस से ओत-प्रोत गीत है! विदा होती हुई बेटी का यह आत्म-रोदन न सुनकर कौन सहृदय ऐसा होगा, जो करुणार्द्र न हो जायगा?

युक्तप्रांत में भी बेटी की बिदा के समय के गीतों में ऐसे ही सरस भाव मिलते हैं। एक उदाहरण लीजिए :—

जैसे बना की कोइलिया उड़ि बागाँ गई
फुलवरियाँ गई।
तैसे बपैया घर छोड़ि कै अब मैं ससुरे चली
ससुररिया चली॥
जाने दे भैया जाने दे, बाबा लगन धरी
अम्मा साज करी।
ऐहों मैं काजे परोजन बिरन तोर ब्याह भये,
तोरे बेटा भये॥

—जैसे बन की कोयल कभी उड़कर बाग़ में गई, कभी फुलवारी में ! वैसे ही मैं भी अपने मा-बाप का घर छोड़कर ससुराल चली।

हे भाई ! जाने दो, जाने दो, पिता ने विवाह कर दिया, माँ ने बिदा की तैयार कर दी। अब मैं किसी काज-परोजन (किसी कुटुंबी की मृत्यु के ज्ञाति-भोज) पर या तुम्हारे विवाह में और जब तुम्हारे बेटा होगा, तब आऊँगी।

भिन्न-भिन्न प्रांतों के गीतों के अध्ययन से ऐसा जान पड़ता है कि स्त्रियों में सर्वत्र एक ही आत्मा बोल रही है। जब राजस्थान के चुने हुए गीत, जैसा इस पुस्तक के प्रकाशकों का संकल्प है, प्रकाशित हो जायेंगे, तो हमको अपने प्रांत के गीतों से उनकी तुलना करने में बहुत ही सुविधा हो जायगी; और दोनों प्रांतों के हृदय एक दूसरे के अधिक निकट आ जायँगे।

इस पुस्तक के लिए मैं इसके संपादकों और प्रकाशक को भी बधाई देता हूँ। गीतों के अनुवाद की भाषा सरल और सरस है और भावों को प्रभाव-स्थान तक पहुँचा देने में समर्थ भी है।

रामनरेश त्रिपाठी

दो फूल—लेखिका––श्रीमती सत्यवती मलिक; प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई; पृष्ठ संख्या १३६; मूल्य १।)

आजकल हिन्दी में जैसी बेमानी कहानियाँ धड़ल्ले से लिखी और पढ़ी जाती हैं उनमें हम श्रीमती सत्यवतीजी की इन कहानियों को शरीक नहीं कर सकते। सत्यवतीजी की कहानियाँ हिन्दी-संसार में एक नई प्रणाली, नया दृष्टिकोण उपस्थित करती हैं। इनमें एक ऐसी खासियत है जो बहुत कम रचनाओं में दिखाई पड़ती है।

'दो फूल' की किसी भी कहानी को लीजिए, और उसमें मानव मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पायेंगे। कहानियाँ जीवन को, जीवन की समस्याओं को छूती हुई हैं, मानव जीवन के संघर्ष का और मानव-स्वभाव का उनमें बड़ी सफलता से चित्रण किया गया है। मानव-स्वभाव की जटिलताओं को सुलझाने में आप स्वयं तो जटिल नहीं हुई ही हैं, बल्कि अपने सुलझेहुए दिमाग़ से आपने उन जटिलताओं को भी सरल कर दिया है। आजकल की कहानियों में हम आमतौर से प्रेम और प्रणय का ही प्राधान्य देखते हैं। 'दो फूल' की कहानियों में यह चीज़ अणु-मात्र भी नहीं है; और इसी से हम कहते हैं कि आपने कहानी में नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है।

कहानियों को पढ़ते ही हम उनकी ओर आकर्षित होते हैं। और कहानियों की तरह वे सिर्फ़ दो क्षणों के लिए हमारा मनोरंजन भर नहीं करतीं, हमपर एक अमिट छाप छोड़ जाती हैं। वे सिर्फ़ हमारा मनोरंजन ही नहीं करतीं, एक प्रकाश, जीवन को समझने और उस पर विचार करने की एक सर्वोपरि दृष्टि प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए पहली ही कहानी 'दो फूल' लीजिए। छोटी कंपिला की जीवन को समझने की उलझन को सुलझाने की जिज्ञासा हम उसमें पाते हैं। उस मुरझाये हुए फूल का मूक प्रश्न–– "क्या तुम्हारे मानव जीवन का इतिहास भी मेरे समान नहीं है ?" हमारे सामनें एक समस्या खड़ी कर देता है। और इसका जवाब तो हम प्रतिक्षण प्रत्यक्ष पाते हैं। जीवन की बीतती हुई घड़ियाँ हमें इसका जवाब दे ही देती हैं। यदि इनसे हमें जवाब न मिलता हो तो इसी संग्रह की कहानियों––'जीवन-संध्या', 'वसन्त है या पतझड़' में श्रीमती मलिक दे देती हैं। इसी तरह और कहानियों में भी हम यही जीवन-स्पर्शी दृष्टि पाते हैं। मालूम होता है एक-एक कहानी सत्यवतीजी ने जीवन की एक-एक समस्या को सुलझाने और चित्रण करने के लिए लिखी है। उदाहरण के लिए 'नारी-हृदय की साध' 'भाई-बहन', 'बेकारी में' 'हसन' 'श्यामा,' 'साथी' 'उलझन' 'डायरी से' 'सगाई के दिन' आदि का नाम विशेषरूप से लिया जा सकता है।

इस संग्रह की सभी कहानियाँ सुन्दर, कला-पूर्ण और सरस हैं। कहानियाँ जीवन के अलग-अलग पहलू पर लिखी गई हैं, इससे इनकी तुलना

आसानी से की भी नहीं जा सकती, फिर भी यह कहा जा सकता है कि अन्तिम कहानी 'क़ैदी' बहुत अच्छी बन पड़ी है। इस कहानी में आपने मनुष्य-मात्र के अन्तर में सतत-जाग्रत मातृभूमि और मातृभाषा के आकर्षण और स्नेह को चित्रित किया है। अपने संसार-प्रसिद्ध रमणीय, सुन्दर-तम काश्मीर से लगातार ७ सालों से बिछुड़े हुए उस लोथ-क़ैदी को कलकल करते हुए झरने, हिमाच्छादित पर्वतश्रेणियाँ, शीतल-मंद समीर, चाँद की रजत-चाँदनी तक सजीव मालूम होती ह और यही सजीवता उसके मृतप्राय शरीर में नवजीवन का संचार करती है। इसी के साथ-साथ इस कहानी में मनुष्य-स्वभाव भी बड़ी ख़ूबी से चित्रित किया गया है। क़ैदी की करुणाजनक दशा से एक नारी में दया और करुणा का संचार होता है, मगर पुरुष के लिए तो वह उसके मनो-विनोद का एक साधन-मात्र है। उस क़ैदी को बस में बैठे हुए सभी मुसाफ़िर--क्या वृद्ध, क्या बच्चे और क्या युवक सभी अपने दिलबहलाव की चीज़ समझते हैं। उसका रोना मुसाफ़िरों में करुणा उत्पन्न नहीं करता, उसकी करुण कहानी से उस पर किसी को दया नहीं आती, और लॉरी से उतरता हुआ खानसामा कहता है—"वाह जनाब! खुश रहो, रास्ता अच्छा कट गया।" और सब हँसते-हँसते लौट-पौट होजाते हैं। आज के समाज के लिए पीड़ित की पीड़ा, वेदना और कसक सहानुभूति और करुणा की चीज़ नहीं, उसे खुश करने का, उसे हँसाने का एक साधन-मात्र है। कोई उसके अन्तर को समझने का प्रयत्न नहीं करता, उसे अपने मज़ाक का ज़रिया सभी बना लेते हैं! मानव के इस स्वभाव को कितनी ख़ूबी से सत्यवतीजी ने चित्रित किया है। चरित्र-चित्रण की यह स्वाभाविकता, मानव-समाज का यह मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण ही उनकी कला का प्राण है।

संग्रह अनूठा है, सिर्फ यदि सत्यवतीजी की भाषा कुछ अधिक मुहाविरेदार और बहती हुई होती तो कहानियाँ और अधिक प्रभावशाली बन जातीं। भाव जितने सजीव हैं भाषा भी उतनी ही मुहाविरेदार हो जाती तो यह संग्रह भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से अद्वितीय सिद्ध होता। श्रीमती मलिक की शैली बड़ी हृदयग्राही है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं।

इस पुस्तक को ऐसे समय, जबकि हिन्दी कविता की तरह हिन्दी-कहानियों में भी लीला-विलास, साजन और सजनी की बाढ़ आ रही है, प्रकाशित करके हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय ने कहानी का विषय ही बदल दिया है। कार्यालय का यह कार्य हिन्दी-संसार के लिए अनुकरणीय है। आशा है, श्रीमती मलिक अपनी और नई-नई रचनाओं से हिन्दी-भारती के रत्नभण्डार को और अधिक सम्पन्न व समृद्ध बनाती रहेंगी।

श० उ०

मिश्रबंधु-कार्यालय का बाल-साहित्य:

लेखक—श्री नर्मदाप्रसाद मिश्र बी० ए०, एम० एल० ए० प्रकाशक—मिश्रबंधु-कार्यालय, जबलपुर पृष्ठ संख्या १४ से १६ तक, चित्र-संख्या १४ से १६ तक, मूल्य प्रत्येक पुस्तक का दो आना।

उक्त कार्यालय की श्री नर्मदाप्रसाद मिश्र की लिखीहुई, **बदक का खेल, उड़न-छू दरी, साहसी सुरेश, सुरेश की दयालुता, सुरेश की सेवा, भूत का घर, हाथी की सवारी, चतरूराम, गज्जू की खिलवाड़, लुक्को मौसी, गज्जू का झूला, और फुल्लू की फुलझड़ी**—ये बारह सुन्दर सचित्र बालोपयोगी पुस्तकें हमारे सामने हैं। ये सब पुस्तकें पाँच वर्ष के छोटे-छोटे बच्चों के लिए, कि जिन्हें अक्षरों और मात्राओं का ही ज्ञान हो पाया हो, रोचक और उपयोगी होंगी। इनमें अच्छी बात यह है कि लेखक ने इस अवस्था के बालकों की रुचि का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा है, इसलिए पहली ६ पुस्तकों में एक भी संयुक्त अक्षर नहीं रक्खा गया है, शेष पुस्तकों में फुल्लू, गज्जू, गम्पू, लुक्को, बक्को, भल्लू आदि नामवाची मिलावट के शब्द ज़रूर आये हैं, पर वे अच्छे लगते हैं।

लेखक नें छोटे बालकों के मस्तिष्क का मनो-वैज्ञानिक अध्ययन किया है और वह उनकी रुचि से भली-भाँति परिचित है। ऐसे बच्चे प्रायः इसी

तरह की आदमियों और जानवरों की रंगीन तस्वीरें अधिक पसंद करते हैं, नटखटपन की कहानियाँ उन्हें अधिक दिलचस्प होती हैं, और जानवरों के नाम भी टीपू, रीछू, गज्जू, लुक्को, भल्लू ही उन्हें अधिक भाते हैं। हरेक पोथी में ६-७ अलग-अलग कहानियाँ होते हुए भी वे एक सिलसिले में हैं, इसलिए एक कहानी पढ़कर उसके आगे-पीछे की कहानियाँ पढ़ने को आप ही आप जी चाहता है। कई कहानियाँ तो छोटे बच्चों का ही नहीं, बड़े बच्चों का भी दिल बहला सकती हैं। साथ ही पृष्ठ-पृष्ठ पर चित्र होने से कहानियाँ समझने में बहुत मदद मिलती है।

रंगीन छपाई, चित्रों का बाहुल्य और छपाई-सफ़ाई की बाहरी सज-धज के अलावा भीतरी आकर्षण भी होने से बाल-साहित्य में इससे अच्छी वृद्धि हुई है; पर १६-१६ पृष्ठों का मूल्य =) कुछ अधिक है। आशा है, लेखक अपनी इस सराहनीय सफलता के बाद बालक्षेत्र में और आगे बढ़ेंगे।

वि० वि०

समालोचनार्थ प्राप्त

राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : लेखक श्री मोतीलाल मेनारिया, एम०, ए०, प्रकाशक–छात्र हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग पृ० सं० २५८; मूल्य २।)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के प्रकाशन

डिंगल में वीर-रस : संपादक—श्री मोतीलाल नारिया, एम० ए०; पृ० सं० १२७; मूल्य १॥)

प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग) : संपादक श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय और श्री दिनेश-नारायण उपाध्याय 'साहित्यरत्न'; पृ० सं० ६३४; मूल्य ४॥)

बाल-भारती : लेखक—ठाकुर श्रीनाथसिंह, पृ० सं० ८०; मूल्य ।=)

वीर शतमन्यु : लेखक—श्री सभामोहन वधिया, 'स्वर्णसहोदर'; पृ० सं० ५२; मुल्य ।)

छत्रपति शिवाजी : लेखक—श्री गुर्ती सुब्रह्मण्य एम० ए०, 'विशारद; पृ० सं० ६०; मूल्य ।)

बाल-कवितावली : लेखक—श्री सत्यप्रकाश कुलश्रेष्ठ; पृ० सं० ५६, मूल्य ।)

बाल-कथा : लेखिका—श्रीमती सौ० कमलाबाई किबे; पृ० सं० ९५; मूल्य ।=)

× ×

श्री गुरु गोविन्दसिंह (काव्य) : लेखक—श्री 'साहित्यरत्न' भँवरलाल भट्ट 'मधुप', प्रकाशक—गुरुमत विद्यालय, नई दिल्ली; पृ०८८; मूल्य ॥)

हिल्लोल (काव्य) : लेखक—श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'; प्रकाशक—शांतिसदन, काशी विश्वविद्यालय; पृ० सं० ९६ मूल्य १)

कलापिनी (काव्य) : लेखक—श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', एम० ए०; प्रकाशक—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ; पृ० सं० १३४; मूल्य ॥।)

हमारा योग और उसके उद्देश्य : लेखक–श्री अरविन्द घोष; संपादक—आचार्य अभयदेव विद्यालंकार; प्रकाशक—श्री अरविन्द ग्रंथमाला, पांडीचेरी; पृ० सं० ५६; मूल्य ॥)

विद्याविभाग काँकरोली के प्रकाशन

सम्प्रदाय प्रदीप : अनुवादक—श्री कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'

प्राचीन वार्ता-रहस्य (१) : सम्पादक—द्वारकादास पु० परिख

काँकरोली का इतिहास : लेखक—श्री कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'

रसिक-रसाल : लेखक—श्री कुमारमणि शास्त्री

विद्या-विभाग, काँकरोली : संपादक—पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री

श्री 'मानिक' भींडर (मेवाड़) के प्रकाशन

मानिक-मनन : लेखक—श्री विजय माणिक्य
माणिक्य-मंजरी : " "

× ×

मेवाड़ की विभूतियाँ (२ भाग) : लेखक—श्री मोतीलाल मेनारिया, एम० ए० प्रकाशक—श्री जगदीशप्रसाद बी० काम०, एज्युकेशनल प्रेस, आगरा

Pratap the Great : लेखक–एच० एस०

मोरडिया, बी० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एस; उदयपुर

मांसाहार-विचार (२ भाग) : लेखक—श्री पं० ईश्वरलाल जैन विशारद, गुजरानवाला

प्राकृतिक स्वास्थ्यग्रह, प्रयाग के प्रकाशन

क्या और कैसे खायें ? : लेखक—डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

स्वास्थ्य के नुस्खे : संपादक—ब्रजभूषण मिश्र एम० ए०

सवाई महायुद्ध (१९३९-४०) : लेखक—श्री कृष्णराव रामचन्द्र खण्डकर, देवास (जूनियर)

साहित्य-निकेतन दारागंज प्रयाग के प्रकाशन

आरती के दीप : लेखक—श्री मोहनलाल महतो; पृ० सं० १८२; मूल्य १)

बुनाई-विज्ञान : लेखक—श्री विश्वेश्वरदयाल पाठक, पृ० सं० १९१; मूल्य १॥)

हिन्दी-कविता का विकास : लेखक— आनन्दकुमार; प्रकाशक—हिन्दी-मन्दिर, प्र पृ० सं० २७९; मूल्य २)

पत्र-पत्रिकायें और विवरणादि

साहित्य (जावर-वनशाला-अंक) : प्रका विद्याभवन, उदयपुर

सुदर्शन (कहानी-विशेषांक) : प्रकाशक—सुदर्शन प्रेस, एटा

विद्याभवन-उदयपुर की अष्टम वार्षिक रि

राजस्थान-महिला-विद्यालय, उदयपुर वार्षिक रिपोर्ट

बम्बई-हिन्दी-विद्यापीठ के प्रकाशन

आचार्य क्षितिमोहन सेन शास्त्री, एम० ए का दीक्षान्त भाषण

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य का प्रव

सिंहावलोकन

[यह अवलोकन उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं तक सीमिति है जा 'जीवन-साहित्य' के परिवर्तन में हमें उपलब्ध हैं।]

श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी के हलचलकारी लेख **'साहित्य और जीवन'** पर शान्तिनिकेतन से श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और आगरे से श्रीगुलाबराय ने 'विशाल-भारत' और 'साहित्य-संदेश' में थोड़ा-बहुत विरोध प्रकट किया है।

'साधना' में श्री यादवेन्दु ने **'गांधीजी का सत्यदर्शन'** किया है और अच्छे ढंग से। श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' का **'लोई'** (एकांकी) कबीर के जीवन के एक उदात्त स्वरूप को चित्रित करता है। एकांकियों में 'लोई' का अपना स्थान होगा। इसी अंक में श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने **'प्रगतिशील साहित्य'** में साहित्यिकों के अध्ययन और अनुशीलन के लिए अच्छे विचार जुटाये हैं।

'सुधा' के भाद्रपद के परिशिष्टांक में श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का **भारतवर्ष में वैदिक साहित्य** पर लिखा लेख एक आवश्यक दिशा ओर संकेत करता है। श्री कालिदास कपूरने स् के खुलने का समय कब-से-कब तक हो, छुट्टि कितनी व किस तरह दी जायँ—इस पर शिक्षि परिषदों ही नहीं, प्रत्येक शिक्षा-विभाग शिक्षा-शास्त्री के ध्यान देने योग्य सु सुझाये हैं। उनके प्रस्ताव की नींव मज़बूत है **'हिन्दी-कविता पर त्रिपाठीजी की एक दृष्टि'** सुरुचिपूर्ण नहीं रहा, लेकिन श्री धर्मेन्द्र शा मनीषी का **'यशोधरा की कारुण्यधारा'** लेख अच्छा है। उसी के साथ-साथ अक्तूबर 'आरती' में प्रकाशित **'साकेत की कारुण्यधारा'** पढ़ा जाना चाहिए। दोनों लेखों से गुप्तजी के दो काव्यों का अध्ययन अच्छा हो जाता है। 'आ में श्री मुक्त का **'साहित्य बनाम समाज'** साहि और समाज के सम्बन्ध का एक दृष्टि प्रस्तुत करता है। इस मास के समीक्षात्मक ले में श्रावण-भाद्रपद की 'सम्मेलन-पत्रिका' के

में प्राप्य गोस्वामी तुलसीदास के **जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री की बहिरंग परीक्षा**', 'हिन्दी-काव्य में श्रीकृष्ण' और '**काव्यों में लक्ष्मण का चरित्रचित्रण**' हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों के काम के हैं ।

अक्तूबर की 'वीणा' में '**साकेत**' और '**अचल-सुहाग**' पर अच्छे विवेचनात्मक लेख हैं । श्री आरसीप्रसाद की कहानी—'**कालरात्रि**'--आवश्यकता से अधिक (पूरे १६ पृष्ठ) लम्बी है । कहानी इतनी लम्बी नहीं होनी चाहिए । सुश्री महादेवी वर्मा की रचना '**यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो**' अत्यन्त भावमयी है ।

'माधुरी' में '**कविवर भारतेन्दु**' श्री सन्तराम बी० ए० का '**उज्जैन-यात्रा**', तथा '**उपनिषद् एवं सन्तवाङमय**', '**भारतीय-चित्रपट**' '**प्रेमचन्द और ग्रामसमस्या**' '**आधुनिक पाठचक्रम और गणित-शास्त्र**' तथा कहानी कला पर लिखी '**गल्प-रचना की समस्या**' सब लेख एक-से-एक अच्छे हैं ।

अक्तूबर की 'सबकी बोली' में काका कालेलकर का '**स्त्री-जाति की उद्धारक**' लेख नई विचार-शैली प्रस्तुत करता है और उनका '**परीक्षा और समाज**' तो बहुत मर्मस्पर्शी और करुण है ।

अक्तूबर के 'दीपक' में '**शिशु-शिक्षा**' व '**प्राकृतिक अध्ययन**' ये दो लेख उपयोगी हैं । बालक के हित में 'बालहित' में भी '**बालक की तोड़-फोड़**' लेख बालकों के अभिभावकों को अवश्य पढ़ना चाहिए ।

बालकों के मासिकों में 'बालक' की सामग्री बालकों के बहुत-काम की हुआ करती है । सितंबर के 'बालक' में श्री सोहनलाल द्विवेदी की 'निर्झर' बहुत सुन्दर कविता थी, तो अक्तूबर में 'स्वर्णसहोदर' की '**झरना**' अच्छी है । पिछले अंक में **वर्षा-जीवन** से सम्बन्धित दो लेख, '**प्रेसीडेण्ट मेसरिक**' लेख आदि बालकों की जानकारी बढ़ानेवाले थे, तो इस अंक में **दयालबाग**, ज़हरीली गैसें और **मास्टर मनहर बर्वे** लेख को भी बालक बहुत पसन्द करेंगे ।

'किशोर' में '**राह**' कविता बड़ी उत्साहवर्द्धक है । उसके '**जापान**' '**सर जगदीशचन्द्र बोस**' आदि लेख भी बालकोपयोगी है ।

'हल' में वैसे सभी लेख हलधरों के काम के हैं, पर '**फल के पेडों में हड्डी की खाद का प्रयोग**', '**पर्वतीय बागों का कीडों के नुकसान से बचाव**', '**पशुओं की बीमारियाँ और उनका इलाज**' और '**बच्चों के रोग**' सचमुच उनके बड़े काम के हैं ।

'जीवन-सखा' में '**पाचन-क्रिया**' '**ऋतुचर्या**' व '**किशोरावस्था में काम-वासना**' आरोग्यशास्त्र के अच्छे लेख हैं ।

लाहौर की 'प्रीतिलड़ी' पत्रिका एक शिव और सुन्दर उद्देश्य को लेकर निकल रही है । उसके सभी लेखों में प्रेम, मानवता, भाईचारा, आदर्श समाज और जीवन-निर्माण-सम्बन्धी विचार भरे हैं । '**मन की शान्ति**'' '**प्रीतसेना क्या करेगी ?** लेख और '**दैनिक-जीवन की शिक्षा**' स्तंभ बहुत जीवनोपयोगी हैं ।

२ अक्तूबर को दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' ने 'गांधी-अंक' निकाला है, जिसमें हिन्दी के प्रसिद्ध विचारकों के लेखों के अतिरिक्त साधारण पाठकों के भी गांधीजी के जीवन से मिलीहुई शिक्षाओं के अनुभव दिये गये हैं । इस दृष्टि से पत्र का यह प्रयत्न अभूतपूर्व है और अंक संग्रहणीय बन गया है ।

१४ अक्तूबर के 'विश्वमित्र' में **हमारी** '**भयंकर ग़रीबी और बच्चों की बढ़ती हुई मृत्युसंख्या**' और 'नवजीवन' (नागपुर) में '**काव्यकानन की कोकिला**' **: श्रीमती** '**सुभद्राकुमारी चौहान**' लेख अच्छे हैं ।

१८ अक्तूबर के 'योगी' में श्री सन्तराम बी० ए० का '**नारी की आधुनिक प्रगति का खतरा**' नामक लेख प्रगतिशील समाज-सुधारकों का ध्यान आकर्षित करता है ।

२० अक्तूबर की 'जाग्रति' में '**हिन्दी काव्य में नवयुग**' यथा '**प्रेमचन्द की महत्ता**' लेख हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं के लिए उपयोगी हैं । २१ अक्तूबर के 'नवजीवन' में '**समाज में नारी का**

स्थान' लेख भी विचारपूर्ण है। 'जाग्रति' और सुदर्शन ने कहानी-अंक निकाले हैं। कलेवर दोनों का छोटा ही है। परन्तु साप्ताहिकों का कहानी-अंक निकालना उनकी विशेष प्रगति का सूचक है। दोनों आंशिकरूप में ही सफल कहे जा सकते हैं क्योंकि प्रतिष्ठित कहानीकारों की कृतियाँ इनमें देखने को नहीं मिलतीं। यह अभाव सचमुच खटकता है।

'सैनिक' **जब्ती से छूटकर पुनः** निकलने लगा था, कि फिर उसपर प्रहार होगया !

पिछले दिनों 'नवजीवन' और 'माहेश्वरी' तथा अंग्रेज़ी में Social Welfare नामक साप्ताहिकों का उदय हुआ, जिनका हम स्वागत करते हैं। इस अँग्रेजी पत्र के संपादक बम्बई के माननीय श्री कन्हैयालाल मुन्शी और मद्रास के श्री पी० सुब्बारायन हैं। समाज और संस्कृति का निर्माण इसका उद्देश है ! हम सहयोगी की सफलता चाहते हैं।

× × ×

श्री आरसीप्रसाद सिंह की **'रसवन्ती'**, श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी की **'पाञ्चजन्य'**, श्रीमती तोरणदेवी शुक्ल 'लली' की **'जागृति'** और श्री हंसकुमार तिवारी की **'रिमझिम'** नई कविता-पुस्तकें निकली हैं।

भारती-भंडार काशी से श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के साहित्यिक निबन्धों का संग्रह **'प्रबन्ध-प्रतिमा'**, मध्यभारत-हिन्दी-साहित्यि समिति, इंदौर से श्री ताराशंकर पाठक का **'हिन्दी के सामाजिक उपन्यास'** और सस्ता साहित्य मण्डल से श्री घनश्यामदास बिड़ला का **'बापू'**, श्री वालूभाई मेहता की **'खादी-मीमांसा'**, श्री टाल्स्टॉय की **'मेरी मुक्ति की कहानी'** और श्री शोभालाल गुप्त की **'समाजवाद : पूँजीवाद'** प्रकाशित हुई हैं।

इण्डियन प्रेस प्रयाग से श्री सोहनलाल द्विवेदी की **'भैरवी'** नवयुगदर्शी कवितायें लेकर आ रही है और सस्ता साहित्य मण्डल से प्रथम सत्याग्रही आचार्य श्री विनोबा भावे के लेख और प्रवचन हिन्दी में पहली बार पुस्तकाकार में निकल रहे हैं और साथ ही **'सत्याग्रह क्यों ?'** के रूप में रामगढ़ से लगाकर सत्याग्रह तक की भारतीय राष्ट्रीय गतिविधि का पूरा विवरण भी।

हिन्दी की हलचलें

श्री सत्यनारायण पुस्तकालय-वार्षिकोत्सव

चिरकुण्डा (मानभूमि-बिहार)

२१-९-४० की संध्या को श्री सत्यनारायण पुस्तकालय का वार्षिकोत्सव समारोहपूर्वक मनाया गया। इसमें कई विद्वानों के भाषण हुए। समाजसेवी श्री नागरमल ने कविता में हिन्दी की विशेषता का मनोरंजक परिदर्शन कराया और दूसरों ने भी कवितायें पढ़ी। सभापति श्री बलीराम तेनजा ने हिन्दी भाषा की महत्ता बतलाते हुए पुस्तकालय को २५०) का दान दिया।

हिन्दी-साहित्य-गोष्ठी, आगरा

२९ सितम्बर, १९४० को सायंकाल साढ़े छः बजे आगरा के 'नोकझोंक' कार्यालय में एक साहित्य-गोष्ठी बुलाई गई, जिसमें नगर के प्रायः सभी साहित्यिक उपस्थित थे। साधारण साहित्य-चर्चा के अतिरिक्त श्री हरिशंकर शर्मा ने वर्तमान समालोचना-प्रणाली पर एक मज़ेदार पैरोडी पढ़ी। व्यंगात्मक होने के कारण लेख का उपस्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ा और समालोचना की गतिविधि पर काफ़ी देर तक चर्चा चलती रही। इसके बाद कविता-पाठ भी हुआ। श्री 'मानव' जी की कविता सबको पसन्द आई; और फिर तो घनाक्षरियों तथा सवैयों का एक समा-सा बँध गया।

युक्तप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को इस बार आगरे में ही आमंत्रित करने का भी एक प्रस्ताव आया। नागरी-प्रचारिणी-सभा के सुप्रतिष्ठित अधिकारियों से विशेष रूप से प्रार्थना की गई

कि वे सम्मेलन को आगरा बुलानें का अवश्य प्रयत्न करें।

प्रेषक—ओम्प्रकाश शर्मा एम० ए०, आगरा]

राजस्थान-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, उदयपुर

६, ७, ८, ९ १० **अक्तूबर को राजस्थान हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन** का प्रथम अधिवेशन उदयपुर में मुनि श्री जिनविजयजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

'राजस्थान' शब्द का व्यावहारिक अर्थ तो स्वागत-समिति ही 'राजपूताना' मान चुकी थी, सम्मेलन ने भी इसे स्वीकार किया। निश्चय हुआ कि सम्मेलन का कार्यक्षेत्र **फिलहाल** राजपूताना ही रहे। क्षेत्र-निदर्शन करते वक्त **फिलहाल** शब्द का प्रयोग बताता है कि सम्मेलन अपने कार्यक्षेत्र के विस्तार को अकल्पनीय नहीं मानता। पर अभी तो यही समस्या सामने है कि पूरे राजपूताने के लिए एक साहित्यिक मंच तैयार किया जाय। उदयपुर-अधिवेशन तो अभी यह नहीं दिखा सका। बीकानेर, जयपुर, कोटा, बूंदी, भरतपुर आदि बड़ी-बड़ी रियासतों के सच्चे साहित्यिक प्रतिनिधि उदयपुर नहीं आ सके। न आने का कितना उत्तरदायित्व न आनेवालों पर है और कितना स्वागत-समिति पर, यह जाना नहीं जा सका।

सम्मेलन प्रारम्भ होने के पहले ही इस बात पर काफ़ी ज़ोर दिया गया था कि उदयपुर-अधिवेशन की सफलता कार्यक्रम के समारोह-अंग की सफलता पर नही कूँती जायगी; उसकी सफलता की कसौटी होगी—प्रान्त के साहित्यिक भविष्य के लिए उसकी देन। इस दिशा में सम्मेलन में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव हुआ, जिसमें अगले एक वर्षों का कार्यक्रम रक्खा गया: (१) प्राचीन साहित्य का संग्रह और प्रकाशन, (२) अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं का प्रचार और संगठन और (३) प्रांत में साक्षरता प्रचार। यह भी निश्चय हुआ कि प्रान्तभर में साहित्यिक कुलों (संगठनों) की स्थापना की जाय। यदि केन्द्रीय कार्यालय उपरोक्त रचनात्मक कार्यों को स्वयं न उठाकर, उनके उठानेवाले भी प्रान्त भर में पैदा कर सके तो वह आशाजनक होगा।

उदयपुर-अधिवेशन की स्वागत-समिति ने आगामी वर्ष के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए बहुत कुछ दिया। स्वागत-स्थान उदयपुर सम्मेलन का प्रधान-कार्यालय हुआ; स्वागताध्यक्ष उप-प्रधान हुए; स्वागत-मंत्री सम्मेलन के मंत्री हुए; उप-स्वागताध्यक्ष सम्मेलन की कार्यकारिणी के सदस्य हुए। स्वागत-समिति ने प्रतिनिधियों का वास्तविक स्वागत उपरोक्त भेंट देकर ही किया है।

सम्मेलन का समारोह-अंग भी कुछ कम सफल नहीं रहा। साहित्यिक-प्रदर्शिनी में प्राचीन एवं वर्तमान साहित्य (विस्तृत अर्थ में) का सुन्दर संकलन था। इसका मेवाड़ राज्य के विवेकशील प्रधानमंत्री द्वारा उद्घाटन होने से और उद्घाटन के समय के उनके हिन्दी के प्रति उद्गार जानने से सम्मेलन को यह विश्वास होता है कि अगर उसने अपने को योग्य साबित किया, तो उसकी गाड़ी साधन-सामग्री की कमी के कारण कभी न अटकेगी।

श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी की अध्यक्षता में कवि-सम्मेलन हुआ और सफल हुआ। श्री हरिभाऊ उपाध्याय की अध्यक्षता में साहित्य-परिषद्, श्री जैनेन्द्रकुमार की अध्यक्षता में समाज-विज्ञान-परिषद्, श्रीहरभाई त्रिवेदी की अध्यक्षता में शिक्षा-परिषद और श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द की अध्यक्षता में महिला-परिषद् हुई। सीमित समय में सब खूब हुईं, वक्त की कमी की ही शिकायत रही। शिकायत उनको ज्यादा रही जो विधान-समिति आदि के कार्य के कारण इनमें से कुछ में हिस्सा लेने तक की फुरसत न पा सके। सम्मेलन में राजस्थान-रत्न सेठ जमनालालजी बजाज तथा सेकसरिया-पुरस्कार-प्रदाता सेठ सीतारामजी का आगमन विशेष उल्लेखनीय था।

सम्मेलन ने अगले अधिवेशन के लिए जोधपुर का निमंत्रण स्वीकार किया, जिसकी सफलता में जोधपुर के उत्साह को देखते हुए पूरी आशा है।

उदयपुर-अधिवेशन में जो कमियाँ रह गईं, प्रान्त का जो आंशिक प्रतिनिधित्व ही सम्मेलन में हुआ—इन बातों का उतना मूल्य और महत्त्व तब नहीं रह जाता, जब हम यह न भुलाएँ कि उदयपुर-अधिवेशन तो प्रारम्भिक अधिवेशन ही था। इस अधिवेशन में ही **'राजस्थान हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन'** की नींव रक्खी गई। इस अधिवेशन की सफलता के लिए प्रयत्न करनेवाले छोटे-बड़े आड़े-ठेढ़े होते हुए भी कहलायेंगे तो नींव ही के पत्थर। नींव पड़ गई—यह है उदयपुर-अधिवेशन का निष्कर्ष। नींव पर भवन-निर्माण—यह होगा आगे का कार्यक्रम।

प्रेषक—राजेन्द्रशंकर भट्ट, अजमेर]

दिल्ली कवि-सम्मेलन

ता० ११ अक्तूबर को आल इण्डिया रेडियो विभाग ने दिल्ली-स्टेशन में भारत के कतिपय प्रख्यात हिन्दी-कवियों को निमंत्रित करके एक नया क़दम उठाया है। रात को ८ बजे से रावराजा श्री श्यामबिहारी मिश्र के सभापतित्व में कविता-पाठ शुरू हुआ, जिसमेंसर्वश्री 'निराला' सोहनलाल द्विवेदी, बच्चन, रामकुमार वर्मा, 'हृदयेश' शिवमंगलसिंह 'सुमन', हरिजू, अज्ञेय और श्रीमती विद्यावती 'कोकिल' ने अपनी-अपनी सुन्दर कवितायें सुनाईं।

१२ अक्तूबर को स्थानीय हिन्दी-प्रचारिणी-सभा के तत्वावधान में, रामजस कालेज, दरियागंज में भी एक कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया। प्राय: उक्त सभी कवियों ने इसमें भाग लिया। द्विवेदीजी, निरालाजी और कोकिलजी की कवितायें अधिक पसन्द की गईं।

——

भारत में संस्कृतियों का संगम

हिन्दू, जरथुस्त, बौद्ध और जैन आर्य धर्म हैं और यहूदी, ईसाई और इसलाम सैमेटिक धर्म। संसार में इन्हीं सात धर्मों का आधिपत्य है। जरथुस्त धर्म ने यहूदी धर्म को और उसके द्वारा ईसाई तथा इस्लाम धर्म को प्रभावान्वित किया था। इसने उनमें एकैश्वरवाद, अमरत्व, स्वर्ग और नरक की आस्थाओं का समावेश किया।

इस्लाम ने जरथुस्त को पारस से भगा दिया और वे लोग अपनी प्राचीन-सनातन भारतमाता की गोद में आकर आश्रित हुए। वह समय ८ वीं ईसवी शताब्दी का था और तब से वे भारत में फूले-फले।

हिन्दू-मुसलिम संस्कृतियों और धर्मों के संगम के विषय में यहाँ यही कहना पर्याप्त है कि संगीत, चित्रकला, और वास्तुकला में ही नहीं दोनों संस्कृतियों के उच्चतम आदर्शों में यहाँ सुन्दर समन्वय हुआ। इसके परिणाम-स्वरूप 'ताज' और 'इत्र' का ही उद्भव नहीं हुआ, बल्कि भारतीय सूफ़ीवाद ने धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी अपनी विशिष्ट सुन्दरताओं का समावेश किया और चैतन्य, कबीर और नानक आदि महासन्तों ने दोनों धर्मों के मूलभूत विचारों और सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। इसलाम ने हिन्दू रहस्यवाद और आदर्शवाद को तथा हिन्दू-धर्म ने मुसलिम जनतन्त्रवाद को ग्रहण किया। ब्रिटिश शासनकाल में ईसाई-धर्म के सेवा के आदर्शों, सामाजिक बन्धुत्व और परमार्थ ने हिन्दुत्व और इसलाम को प्रभावित किया तथा हिन्दुस्तान के जरथुस्त-धर्म को भी; तथा बदले में पारसी और हिन्दुस्तानी सूफ़ीवाद तथा हिन्दू-वेदान्त की मनोरम झलक भी ग्रहण की।

इस प्रकार भारत के समस्त धर्मों और संस्कृतियों के अंगों में कुछ न कुछ भारतीयत्व की छाप है—एक प्रकार की जीवन की पवित्रता, विश्वबन्धुत्व की भावना, उच्च नैतिकता, आक्रमण से आत्मरक्षण करने की प्रवृत्ति, एक कोमल रहस्यवादी भावना और ईश्वर के विषय में गहरी धारणा। भारत में संस्कृतियों का संगम वास्तविक है और आगे भी हम देखेंगे कि भारतीय राष्ट्र के जीवन में यही भारतीय संस्कृति चिर-प्रवाहित होती रहेगी।

अँग्रेज़ी 'आर्यन पाथ'] **रामस्वामी शास्त्री**

क्या और कैसे ?

सम्मेलन की प्रश्नावलि

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान-मंत्री की ओर से एक प्रश्नावलि भेजी गई है जिसमें, मेरी राय में, नीचेलिखे प्रश्न विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

(१) राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी में कोई परिवर्तन हो या नहीं ?

(२) छापेखाने और टाइप-राइटर की सुविधा के खयाल से नागरी-लिपि में कोई सुधार हो या नहीं ?

(३) हिन्दी-साहित्य-सेवियों के संगठन व प्रोत्साहन के लिए क्या उपाय किया जाय ?

इनके सम्बन्ध में मेरी राय यह है—

(१) राष्ट्रभाषा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो भारत की ज़रूरत को पूरा कर सके। उसमें दूसरी बहन-भाषाओं के उपयुक्त शब्द, मुहावरों आदि का यथोचित मिश्रण करना होगा। वह बहुत सरल बोलचाल की भाषा होगी। उसमें कठिन संस्कृत व अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग नहीं, या बहुत कम होगा। एक तरह से वह साहित्यिक हिन्दी से भिन्न भाषा बन जायगी। इस परिवर्तन का हमें स्वागत करना चाहिए।

(२) विशेषज्ञों की सम्मति से नागरी-लिपि में आवश्यक सुधार अवश्य करने चाहिएँ। हमें रूढ़िवादी न रहकर युग की आवश्यकता के साथ रहना और चलना चाहिए। एक वैज्ञानिक और समाज-शास्त्री की मनोवृत्ति से काम लेना चाहिए। जो हमारी विवेक-बुद्धि को ग्राह्य मालूम हो उसे अपनाने व त्याज्य मालूम हो उसे छोड़ने की तैयारी व साहस हममें अवश्य होना चाहिए।

(३) विशेष पुरस्कारों की आयोजना करके लिखित पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध करके या कराके।

आशा है, इस प्रश्नावलि के तथा विशिष्ट साहित्यिकों के प्रस्तावित सम्मेलन के फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अधिक सुव्यवस्थित, सबल व कार्यक्षम हो सकेगा।

सफल सम्मेलन

राजस्थान सा० सम्मेलन, उदयपुर का अधिवेशन उपस्थिति, उत्साह तथा भावी संगठन की नींव पड़ जाने की दृष्टि से काफ़ी सफल रहा। साहित्य, विज्ञान व शिक्षा-परिषदें भी अच्छी सफलता के साथ होतीं, यदि उनका आयोजन स्वतन्त्र समय में स्वतन्त्र रूप से किया गया होता। यदि उदयपुर के साहित्य-भक्तों में इतनी लगन, दृढ़ संकल्प और संगठन का भाव न होता, यदि अजमेर के साहित्य-प्रेमियों ने सम्मेलन के लिए प्रचार व दौड़-धूप करके ज़मीन तैयार न की होती, यदि जोधपुर की साहित्य-परिषद् के मित्रों ने अच्छी तादाद में उदयपुर आकर हार्दिक व सक्रिय सहयोग न दिया होता, यदि मुनिश्री जिनविजयजी जैसे प्रभावशाली सभापति न मिले होते और यदि राज्य की ओर से सम्मेलन के कार्य म पूरा सहयोग न मिला होता, तो सम्मेलन को ऐसी सफलता शायद न मिलती। काँकरौली के गोस्वामीजी के द्वारा सम्मेलन का उद्घाटन किया जाना भी सम्मेलन के लिए अच्छा सहायक हुआ है। इस सफलता व उदयपुर के मित्रों के उत्साह को देखकर ही अजमेर व जोधपुर के प्रतिनिधियों व उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने सम्मेलन के कार्यालय को फिलहाल उदयपुर रखना ही पसन्द किया।

सम्मेलन का अधिवेशन जिसउत्साह के साथ उदयपुर-वासियों ने किया, उससे अधिक दृढ़ लगन के साथ सम्मेलन का काम इस वर्ष करने की ज़िम्मेदारी अब भाई जनार्दनराय व उनके साथियों पर आ गई है। मुनिश्री की अध्यक्षता, श्री लक्ष्मीलाल जी जोशी (डायरेक्टर शिक्षा विभाग, उदयपुर) की उपाध्यक्षता, जनार्दन रायजी के मंत्रित्व व राजस्थान के विभिन्न भागों के साहित्यिकों की सदस्यता में अच्छी कार्यकारिणी बन गई है। राजस्थान के हिन्दी-भक्तों के लिए इससे बढ़कर आनन्द की बात और क्या

हो सकती थी ? उनकी चिरवांछित अभिलाषा ईश्वर ने इस वर्ष पूर्ण की। जैसा शुभ श्रीगणेश हुआ है, उससे यह आशा अवश्य होती है कि सम्मेलन राजस्थान में ठीक-ठीक साहित्यिक जागृति, संगठन व साहित्य-सेवा कर सकेगा।

फिलहाल सम्मेलन की परीक्षाओं का प्रचार, साक्षरता-प्रसार, प्राचीन ग्रंथों व ग्राम-गीतों आदि का संग्रह इतना ही कार्यक्रम रक्खा गया है। नव-निर्माण की दिशा में अभी कदम नहीं बढ़ाया गया है। भारी-भरकम कार्यक्रम बनाकर थोड़ा काम कर सकने की अपेक्षा छोटा कार्यक्रम बनाकर अधिक काम कर दिखाना अच्छी नीति है। सम्मेलन की कार्यकारिणी ने इसी व्यवहार-नीति को अपनाया है। अभी तो अच्छा संगठन कर लेना ही मुख्य बात है। हमें आशा करनी चाहिए कि सम्मेलन एक वर्ष का अपना अच्छा हिसाब दे सकेगा

सभापति का भाषण

मुनिश्री का भाषण उनके पुरातत्त्व-विषयक ज्ञान से भरपूर था। अपने को प्रगतिगामी विचारों और आचारों का परम उपासक और प्रशंसक तथा 'शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि' और 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चादि नव्य-मिति वाप्यवद्यम्' इन उक्तियों का कायल बताते हुए राजस्थान की जनता की प्रशंसा में आपने कहा—

"भारत की अभिजातीय महत्ता और आर्यत्व की स्वाभिमानिता का जैसे रक्षण, इस निकट-पूर्व इतिहास-काल में राजस्थान की जनता ने किया है, और किसीने नहीं किया। स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा के निमित्त जैसा महान् उत्सर्ग राजस्थान के वीरों ने किया, वैसा संसार में शायद ही अन्य किसी ने किया हो। भारत के और सब प्रधान प्रदेश जब शताब्दियों पूर्व ही अपनी स्वतन्त्रता सम्पूर्णतः खो बैठे हैं, तब राजस्थान की संतान उस स्वतंत्रता को अब तक भी किसी न किसी स्वरूप में निभा रही है, यह राजस्थान ही के सत्पुत्रों के कियेहुए सर्वस्वत्याग का सुफल है कि आज भी हम राजपूताने के गाँव-गाँव में उन प्राचीन देव-मन्दिरों को अखण्ड रूप में खड़े देख रहे हैं, जो हमारी संस्कारिता के केन्द्र और कला के अद्वितीय स्मारक हैं। काशी के विश्वेश्वर की, सोरठ के सोमेश्वर की और उज्जयिनी के महाकालेश्वर की दीपक-ज्योति, इन पिछले एक हजार वर्षों में, म्लेच्छों के क्रूर आक्रमणों के कारण अनेक बार बुझ चुकी, परन्तु, राजस्थान के राष्ट्रदेव एकलिंगेश्वर की वह ज्योति, आज कम-से-कम तेरह सौ वर्ष से तो, अखण्ड रूप में जल रही है। इस दुनिया में इतनी पुरानी अखण्ड देवज्योति और कहीं नहीं जलती होगी। इस ज्योति को खण्डित न होने देने के लिए राजस्थान के कितने किशोर, युवा और वृद्ध वीरवरों ने हँसते-हँसते, युद्ध की वेदी में अपने प्राणों की आहुति दे दी, और उन वीरों की कितनी सती मातायें, बहिनें, पुत्रियाँ और पत्नियाँ इसके लिए मंगल गीत गाती हुई अग्नि की भयंकर ज्वाला में स्वाहा हो गईं, इसकी गिनती कौन कर सकता है ?"

फिर वे साहित्य-सेवियों के कर्त्तव्य की ओर संकेत करते हैं—

"लेकिन इस वीर-जीवन की कथाओं के सिवा राजस्थानियों के उक्त अन्यान्य रसपरिपूर्ण जीवन की जो असंख्य जातीय कथायें हैं उनका परिचय करने-कराने का अभी तक कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं हुआ है। विद्वानों का लक्ष्य अभी तक, खास करके, राजवंशों से सम्बद्ध राजकीय इतिहास का संकलन और संशोधन करने तक ही सीमित रहा है। समग्र प्रजा-जीवन से सम्बद्ध व्यापक इतिहास का अनुसन्धान कर प्रजाकीय सामाजिक संस्कारों और सामूहिक व्यवहारों के इतिहास के विषय में व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करने की तरफ़ अभी तक हमारा कोई प्रयत्न नहीं है। जातीय और राष्ट्रीय प्रजा-जीवन का ठीक-ठीक स्वरूप जानने के लिए प्रजा-समूह के विविध धार्मिक भाव, सामाजिक संस्कार, लौकिक व्यवहार और वैयक्तिक कार्यकलाप इत्यादि विषयों में हमें खूब अन्वेषण और पर्या-

शोधन करना चाहिए। राजस्थान में इस विषय की साधन-सामग्री अब भी यथेष्ट परिमाण में उपलब्ध हो सकती है। अतएव अब हमारा प्रथम कर्तव्य यह है कि हम शीघ्र ही अपनी इस जातीय और राष्ट्रीय, जीवन की सम्पत्ति को, जो नाशोन्मुख हो रही है, गाँव-गाँव में भटककर खोज निकालें और उसका रक्षण करें।

"मेरी दृष्टि में प्रजा को इस जीवन-सम्पत्ति के सच्चे रक्षक और उद्धारक और कोई नहीं, आप स्वयं--साहित्यसेवीगण ही हैं। इस सम्पत्ति के रक्षक न राजा लोग हैं और न राजनीतिज्ञ नेतागण हैं। राजा और राजनीतिज्ञ किसी अर्थ में कुछ रक्षक हो सकते हैं तो वे सिर्फ हमारी इस मिट्टीमय भूमि के और धातुमय जड़ सम्पत्ति के; लेकिन प्रजा के इस आंतरिक जीवन की सम्पत्ति के रक्षक और उद्धारक तो वे ही हैं जो साहित्यिक नेता और साहित्योपासक विद्वान् हैं। मैंने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि हमारे लिए तो भारतवर्ष की पुरातन संस्कृति के रक्षक पुरुष रामचन्द्र और कृष्ण नहीं हैं परन्तु महर्षि वाल्मीक और वेदव्यास हैं। इन साहित्य-सम्राट् महाकवियों ने यदि रामायण और महाभारत की रचना न की होती, तो हम यह कैसे जानते कि भगवान् रामचन्द्र और योगेश्वर कृष्ण कौन थे और उन्होंने क्या किया था? इस प्रकार राजा और प्रजा के इस जीवन-धन के सच्चे रक्षक आप साहित्यसेवी जन ही हैं। राष्ट्र के सार्वजनिक भाग्यनिर्माण और भाग्यरक्षण का भार आप ही के ऊपर निर्भर है।

"ईश्वर ने आपको वह शक्ति दी है कि जिसका आप सदुपयोग करें तो इस मृतप्राय जाति को कुछ ही समय में प्रबल पौरुषवाली बना सकते हैं—अज्ञान पंक में आकण्ठ गर्क बनी हुई इस प्रजा को विज्ञान के मैदान में सबसे आगे दौड़ा सकते हैं। अगर आप अपनी ईश्वरदत्त इस महाशक्ति का राष्ट्र निर्माण के लिए ऐसा सदुपयोग नहीं करते, तो आप ईश्वर और राष्ट्र के सामने अपने को बड़ा अपराधी सिद्ध करते हैं। आप साहित्य-सेवी राष्ट्र के भाव वैद्य हैं। आपका कर्तव्य है कि राष्ट्र के आरोग्य की पूरी सँभाल रखें और इसके संवर्द्धन और संरक्षण का अप्रमत्तभाव से प्रयत्न करें।"

मुनिश्री के इस उपदेश पर अधिक ज़ोर देना अनावश्यक है।

विनोबा

प्रथम सत्याग्रही विनोबा के परिचय में गांधीजी ने 'हरिजन' में जो-कुछ लिखा है, उससे ज्यादा अच्छा और कौन लिख सकता है? मैं १९२१ से विनोबा के सम्पर्क में हूँ। भावना, ज्ञान, व तप का वह एक सुन्दर संगम हैं। जिनके पास जाने मात्र से ही मेरे मन को शान्ति मिलती है व जिनसे चर्चा करने के बाद बुद्धि को समाधान होता है, जिनका जीवन देखकर कठोर साधना की स्फूर्ति होती ह और जीवन को कार्यमय, श्रममय बनाये रखने की प्रवृत्ति होती है उनमें विनोबा का बहुत ऊँचा स्थान है। हिन्दी के बहुत कम पाठक जानते हैं कि विनोबा ऊँचे दरजे के साहित्यकार हैं। इसका प्रमाण यहां देने की बनिस्बत मैं यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि उनके लेखों का एक संग्रह 'सस्ता साहित्य मण्डल' बहुत जल्दी प्रकाशित कर रहा है। उसे देखकर पाठकों को मेरी इस राय का यक़ीन हो जायगा कि विनोबा जैसे मौलिक विचारक हिन्दुस्तान में शायद ही कोई हों।

कालिदास-स्मृति-दिन

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा (१५ नवम्बर १९४०) को महाकवि कालिदास का पुण्य स्मृति-दिवस मनाने की सुन्दर योजना उज्जैन के भाई श्री सूर्यनारायण व्यास ने प्रस्तुत की है— "कालिदास का जितना 'कवि' के नाते आदर है, अमर नाटककार के नाते महत्त्व है, उससे भी अधिक उनका राष्ट्रीय महत्त्व है। जिस समय 'भारत' के विषय में पश्चिम भू-भाग में एक अज्ञान का अँधेरा फैला हुआ था, दासत्व की शृंखला से विवश भारतीयों की 'कीलित जिव्हा'

अपने अस्तित्व-प्रदर्शन में भी बन्धनानुभव करती थी, उस कठिन काल में महाकवि की महामूल्यवान कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' ने एक पाश्चात्य न्यायाधीश के हृदय में अनुराग की अग्नि-शिखा प्रज्वलित की। उसके साधारणतम अनुवाद मात्र ने किसी शुभ मुहूर्त में यूरोप जाकर वह काम किया, जो 'हज़ार नेता' प्रचार से नहीं कर सकते थे। महाकवि गेटे-जैसों को आनन्दोर्मि में तन्मय हो डुबकी लगाना पड़ी। उस एक मात्र नाटक ने यूरोप के दूषित वातावरण में——घोर अन्धकार में——विद्युत की तरह प्रकाश की रेखा दिखलाकर भारतीयों के प्रति सहसा सद्भावना जाग्रत कर दी थी।

"उस दिन, कालिदास के विश्वविश्रुत नाटकों का अभिनय किया जाय, कालिदास के काव्यों की रसवन्ती से अपरिचितों को उस रोज काव्यामृत रसास्वाद करवाया जाय, काव्यगत विशेषताओं का विवेचन किया जाय काव्यांतर्गत, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, प्रकृति-वर्णन, ज्योतिष और स्थानों की ऐतिहासिक संगति पर आलोचनात्मक, ऐतिहासिक निबन्ध पढ़े जायँ और निबन्ध-लेखन के लिए पुरस्कार आदि का आयोजन किया जाय। अनेक प्रकार से यह दिन मनोरंजक गम्भीर और विद्वानों से लेकर सर्वसाधारण तक प्रिय एवं रोचक बनाया जा सकता है। कालिदासीय साहित्य पर अनेक पहलू से विचार-विमर्श किया जा सकता है।

"मुझे विश्वास है, समस्त भारतीय, विद्यानुरागी, पुरातन संस्कृति के अभिमानी और विशेषतः कालिदासीय साहित्यानुरागी सज्जनगण अवश्य ही महाकवि कालिदास-जैसी अमर विभूति की स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने का सार्वजनिक आयोजन करेंगे।"

जहाँ-जहाँ यह स्मृति-दिवस मनाया जाय, वहाँ-वहाँ से उसकी सूचना 'जीवन-साहित्य' को तथा भारतीभवन, उज्जैन को भिजवाने की कृपा हो।

ह० उ०

अभिनन्दनीय

देशवन्द्य महात्मा गांधी का यह स्वप्न—कि संस्कृति में से निकली सभी भाषाओं की एक ही लिपि—देवनागरी—हो—सत्य करने का प्रयत्न सब चाहते हैं कि हो परन्तु किसीको इस दिशा में नेतृत्व करने का साहस नहीं होता था। सम्भवतः उसी दैवी शक्ति के हाथों इस पुनीत यज्ञ का भी श्रीगणेश होना था। उन्होंने अपनी गुजराती 'आत्म-कथा' को देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराया है और इस दिशा में अग्रणी का कार्य किया है।

पुस्तक की भूमिका में वह लिखतेहैं कि—

"मैं तो दक्षिण आफ्रिका थी स्वप्नुं सेव्युं छे के संस्कृत मांथी निकळेली बधी भाषाने एकज लिपि होय, नें ते देवनागरी। पण ते हजु तो स्वप्नुंज छे। एक लिपिनी हिलचाल तो खूब चाले छे, पण 'बिलाडी ने गळे टोकरी कोण बांधे?'वाळी वात थई पडी छे।"

गीताकार के शब्दों में हम तो यही कहना चाहते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

और आशा करते हैं कि अब वह 'स्वप्न' शीघ्र ही सत्य होकर रहेगा। यह शुभ श्रीगणेश कितना अभिनन्दनीय न होगा ?

बधाई

'जागृति' की कवयित्री श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल 'लली' बहुत दिनों से कविता लिखती आ रही हैं और उनसे हिन्दी-पाठक भलीभाँति परिचित हैं। प्रसन्नता की वात है कि उनकी 'जागृति' पुस्तिका को इस बार का 'सेकसरिया-पुरस्कार' देकर सम्मानित किया गया है। कविता में स्वाभाविक सरलता के साथ हृदयग्राही भाव प्रकट कर देना 'लली' जी की विशेषता है। छायावादी वाग्जाल से उनकी कवितायें दूर हैं, इसलिए वे चित्त पर सीधा प्रभाव डालती हैं। उन्हें बधाई देते हुए हम आशा करते हैं कि वह दिनों-दिन अपनी काव्य-प्रतिभा से मा-भारती का कोष भरती रहेंगी।

साधुवाद !

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा के पाठ्यक्रम में श्री वियोगीहरिजी द्वारा सम्पादित 'ब्रजमाधुरी-सार' स्वीकृत था। एक महिला ने उसमें संकलित कुछ कविताओं पर आपत्ति प्रकट करते हुए उसे पाठ्यक्रम में से हटा देने का सुझाव रक्खा था, क्योंकि बहनों को भी उसे परीक्षा देने के नाते पढ़ना पड़ता था।

श्री वियोगीहरिजी ने उस सुझाव का स्वागत ही नहीं किया था बल्कि सम्मेलन से आग्रह भी किया था कि उसे शीघ्र ही पाठ्यक्रम से हटा दिया जाय। सम्मेलन ने उसे पाठ्यक्रम में से हटा दिया है, इसपर हम सम्मेलन को साधुवाद देना चाहते हैं।

इसी प्रकार पंजाब-विश्वविद्यालय के प्रभाकर-कोर्स में भी एक कविता-संग्रह था, जिसमें कई स्थल बड़े आपत्तिजनक थे। रहीम के दोहों में संकलन-कर्त्ता महोदय ने यह दोहा भी रख दिया था :

"सैना तो नैनाँ करैं, उरज उमेठे जाहिं"

पंजाब विश्वविद्यालय ने भी प्रकाशकों को सूचित कर दिया है कि इस प्रकार के अश्लील और अवांछनीय अंश अपनी पुस्तकों में से निकाल दें और अगर नहीं निकाले गये तो अमुक समय के बाद वे कोर्स से हटा दी जावेंगी। इसके अनुसार शायद अब वह पुस्तक भी पाठ्यक्रम में नहीं है। इन दो उदाहरणों के बाद पाठ्यक्रम नियत करने वालों की ही नहीं, संकलनकर्ताओं और सम्पादकों की भी यह ज़िम्मेदारी हो जाती है कि ऐसे आपत्तिजनक स्थलों को पढ़ाई की पुस्तकों में न आने दें और ऐसी पुस्तकों को पाठ्यक्रम में स्वीकृत न करें। आशा है इससे शिक्षण संस्थायें शिक्षा लेंगी। सु०

'मण्डल' की ओर से

नई पुस्तकों की सूचना

'मण्डल' के नये प्रकाशनों की सूचना इस अंक में ग्राहकों को दी जा रही है। शुरू में ही कवर के बाद ग्राहकों के लिए आर्डर-कार्ड लगा है। उसे भरकर शीघ्र ही भेज देने की कृपा करें।

'विनोबा और उनके विचार'

प्रथम सत्याग्रही आचार्य विनोबा तथा उनके विचारों से हिंदी भाषाभाषी लोग परिचित नहीं हैं। बहुत से लोग तो अज्ञानवश पूछते हैं—"महात्माजी ने क्या विनोबाजी को पहला सत्याग्रही बनाया! किसी अच्छे पहली श्रेणी के नेता को बनाते।" ऐसे लोगों की जानकारी के लिए ही 'मण्डल' उपर्युक्त पुस्तक निकाल रहा है कि अनजान और शंकाशील पाठक जानें कि सन्त विनोबा पहले दर्जे के नेताओं से भी उच्च कोटि के पुरुष हैं। यह पुस्तक नवम्बर के पहले या दूसरे सप्ताह तक प्रकाशित हो जायगी। इसी प्रकार '**सत्याग्रह क्यों शुरू हुआ?**' नामक एक संग्रह भी इस दृष्टि से किया गया है कि वे सब कारण मालूम हो जायँ जिनसे महात्माजी को अब सत्याग्रह शुरू कर देना पड़ा। इसमें रामगढ़ कांग्रेस के बाद से अबतक के सरकारी और काँग्रेसी तथा महात्मा गांधी के वक्तव्यों का संग्रह है। यह भी विनोबाजी की पुस्तक के साथ प्रकाशित होगा।

युद्ध के पक्ष और विपक्ष में

इसके बाद हम एक विचारणीय पुस्तक की और तैयारी कर रहे हैं। आजकल यूरोपीय युद्ध को लेकर संसार भर में यह चर्चा चल पड़ी है कि युद्ध अच्छा है या बुरा। तानाशाही विचारों के लोग उसे ठीक मानते हैं और शांतिवादी बुरा। इन दोनों विचारों की दलीलें एक जगह एकत्र करके देना इस पुस्तक का उद्देश्य है। इसमें महात्मा गांधी, टॉल्स्टॉय, रोमाँ रोलाँ, रवीन्द्रनाथ, मालवीयजी, सर्वपल्ली राधाकृष्णन् आदि आदि प्रमुख विचारकों, राजनीतिज्ञों और विद्वानों के विचार रहेंगे।

'मंडल' के ग्राहकों से निवेदन

अबतक 'मंडल' के सब ग्राहकों को जी० सा० का अंक जाता रहा है। उनमें से बहुत से जी० सा० के ग्राहक बन भी गये हैं **पर अगले अंक से जो 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक नहीं बने हैं, उनको 'जी० सा०' भेजना बंद कर दिया जायगा।** अतः जो ग्राहक बन जाना चाहें वे शीघ्र ही बनजाने की कृपा करें। इन चार अंकों से लोग जी० सा० से परिचित तो हो ही गये हैं। इसलिए उनको और कुछ कहना या बताना तो है नहीं। उनको ग्राहक बन जाने की जल्दी करनी चाहिए।

अप्राप्य पुस्तकें

'जीवन-साहित्य' में मण्डल की पुस्तकों की पूरी सूची लगी रहती है। उसमें कुछ पुस्तकों के सामने × निशान लगा है। वे अप्राप्य हैं। कई सज्जन इन अप्राप्य पुस्तकों के आर्डर बनाकर भेज देते हैं। सूची-पत्रों में भी स्पष्ट लिखा रहता है कि ये अप्राप्य हैं, पर उधर उनका ध्यान नहीं जाता। अतः आर्डर देनेवाले ग्राहकों से प्रार्थना है कि अप्राप्य पुस्तकों के आर्डर न दें।

हिन्दी-मराठी-कोष

अभी तक 'मण्डल' की सूची में हिन्दी-मराठी कोष' अप्राप्य लिखा जाता रहा है। पर हमें पता चला है कि हिन्दी-ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई के पास उसकी कुछ प्रतियाँ हैं। अतः जो ग्राहक इस पुस्तक को चाहें, या तो हमसे या बम्बई से मँगा लिया करें।

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दांत और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँतक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजाओं-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं। कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

कुछ प्रशंसा-पत्रों का सार

मि० एच. एम. हैरिस, (लन्दन)—मैंने बाज़ार के प्रायः सब प्रकार के दन्तरोग नाशक मञ्जनों का प्रयोग किया, किन्तु किसीसे इतना लाभ नहीं पहुँचा, जितना आपके 'दन्तामृत मञ्जन से। **तब से मेरे दाँत में एक बार भी दर्द नहीं हुआ।**

ठा० माधोसिंहजी, होम मैम्बर, जोधपुर स्टेट—मेरे दाँतों के लिए आपका मञ्जन रामबाण सिद्ध हुआ।

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर का श्रेष्ठ साहित्य

कुछ चुने हुए ग्रन्थ

सदाचार और तत्त्वज्ञान

मानव-जीवन (कैरेक्टर)	१।)
सफलता और उसकी साधना के उपाय	।।।≡)
मितव्ययता (सेम्युअल स्माइल्स)	।।।≡)
आनन्द की फाउण्डियाँ (जेम्स एलेन)	१)
,, ,,	।।।)
प्रभावशाली जीवन	
सामर्थ्य, समृद्धि, शान्ति (स्वट मार्डेन)	१।)
संजीवन-सन्देश (टी० एल० वास्वानी)	।।=)
चरित्र-गठन और मनोबल (राल्फ वा० ट्रा०)	≡)
युवाओं को उपदेश (विलियम काबेट)	।।=)
नीति-विज्ञान (आचारशास्त्र)	२)
प्रपंच-परिचय (प्रो० विश्वेश्वर)	१।)
ज्ञान और कर्म (सर गुरुदास बनर्जी)	३।)

रवीन्द्र-साहित्य

प्राचीन-साहित्य (निबन्ध)	।।-)
राजा और प्रजा ,,	१)
स्वदेश ,,	।।=)
शिक्षा ,,	।)
चिरकुमार सभा (उपन्यास)	१)
आँख की किरकिरी ,,	१।।)
रवीन्द्र कथाकुंज (कहानी)	१=)
मुक्तधारा (नाटक)	।।≡)

शरत्साहित्य

शरद् बाबू की कहानियों और उपन्यासों के अब तक अठारह भाग निकल चुके हैं। प्रत्येक भाग का मूल्य दस आना।

इतिहास

शिवाजी (सर जदुनाथ सरकार)	१।।)
मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण (प्रो० इन्द्र)	४।।)
भारत के प्राचीन राजवंश (दो भाग)	६)
मध्य प्रदेश का इतिहास और नागपुर के भौंसले	१।।)

काव्य

सिद्धार्थ महाकाव्य (अनूप)	३)
सुमनांजलि ,,	२)
शतदल (बख़्शी)	।।)
झंकार (सुदर्शन)	।।)
मौक्तिकमाल (दिनेशनन्दिनी)	१)

आलोचना

साहित्य-शिक्षा (बख़्शी)	१।।)
साहित्य मीमांसा	१।=)
कालिदास और भवभूति (डी० एल० राय)	१।।)
हिन्दी-साहित्य की भूमिका (पं० हजारी प्र०)	२)
साहित्य की अनुक्रमणिका (पं० किशोरीदास)	।।।)

द्विजेन्द्र नाटकावली

मेवाड़पतन	।।।=)	ताराबाई	१)
दुर्गादास	१)	चन्द्रगुप्त	१)
शाहजहाँ	१)	लंकाविजय	१।)
नूरजहाँ	१=)	भीष्म	१।)
राणा प्रताप	१।।)	सीता	।।=)
अहल्या	।।=)	उस पार	१।)
सुहराब रुस्तम	।।=)	सूम के घर धूम	।)

उपन्यास-कहानियाँ

ग्राम्य जीवन की कहानियां (प्रेमचन्द)	१।)
नारी जीवन की कहानियाँ ,,	१।।)
मानसरोवर (दो भाग) ,,	२), २)
कल्याणी (जैनेन्द्रकुमार)	२)
परख ,,	१)
त्याग-पत्र ,,	१।)
वातायन ,,	१।।)
चार कहानियाँ (सुदर्शन)	२)
पनघट ,,	१।।)
दो फूल (सत्यवती मल्लिक)	१।)

नोटः—अपने पास के दूकानदारों से खरीदिये। नहीं तो हमसे मँगाइए। एक कार्ड लिखकर सूचीपत्र मंगाइए।

संचालक—**हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।**

नोटः—'हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर' की उत्तम पुस्तकें 'मण्डल' की तीनों शाखाओं पर भी मिलती हैं।

'हंस-परिवार' की अनुपम योजना के सदस्य बनिये

[१] भारतीय-पुस्तक-माला
- (क) कायाकल्प (३ भाग)
- (ख) स्नेह-यज्ञ [१-२]

[२] 'हंस' पुस्तकें
- (क) मा [भाग १-२]
- (ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग ३]
- (ग) सात इनक़लाबी इतवार [भाग १-२-३]

[३] गल्प-संसार-माला
१० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी संग्रह।

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
- (क) नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रंथावली
- (क) शोभा ले : इन्द्र वसावड़ा
- (ख) संजीवनी ले : 'सोपन'
- (ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] ले : सोपान

[६] जागृत-महिला-साहित्य
- (क) पिकनिक; लेखिका—कमलादेवी चौधरी
- (ख) पिया; लेखिका——उषादेवी मित्रा
- (ग) कौमुदी; लेखिका——शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
- (क) कँटीलेतार [भाग १-२]
- (ख) जाई-जुई और ९ अन्य पुस्तकें

[८] 'हंस' मासिक १२ अंक

[९] 'कहानी' मासिक के १२ अंक और १।।) मूल्य की एक भेंट—पुस्तक।

इसके साथ हम जिनके प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों को मात्र २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की महँगी के ज़माने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं : यह संस्था तो सेवा के लिए ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम 'हंस-परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे।

इस मूल्य में घर बैठे बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठसंख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर रु० २।।) में १००० पृष्ठ मिलते हैं। इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है। यह योजना बेजोड़ है। निस्सन्देह।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा :

[१] १२०० पृष्ठ में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद। [२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद। [३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषोओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं। [४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों तथा कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह। १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे। [५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उपस्थिति किया गया है। [६] महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न। यह आपके परिवार में पत्नी तथा मा-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे। [७] 'आज की किताब' के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुलझाव रहेगा। अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

जूट कारपेट

अति सुन्दर और आकर्षक होने पर भी,
मज़बूत तथा क़ीमत में भी बहुत सस्ते हैं।

इसलिए

किसी भी प्रकार की सजावट के लिए
सब लोग जूट कारपेट को ही पसन्द करते हैं।

मिलने का पताः—

सभी जूट कारपेट की दुकानों में

तथा

खन्ना इन्डस्ट्रीज, बनारस सिटी
नेशनल नॉवेल्टी स्टोर, कानपुर
जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग

और

बङ्गाल स्टोर्स, लिमिटेड

टेलीफोन नं० कलकत्ता ३६३३, नं० ८ ए चौरंगी प्लेस, कलकत्ता में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपके इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

एजेंसी के लिए निम्न पते पर लिखें :—

टेलीफोन नं० कलकत्ता ५६५ टेलीग्राम—जूट वीवर

बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

आरती

[कलापूर्ण प्रगतिशील मासिक]

संपादक { सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

प्रत्येक हिन्दी-पाठक के लिए नियमित रूप से आरती पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि इसके हर अंक में आपको मिलेगा—

—विश्व की विविध प्रवृत्तियों का परिचय।
—भारतीय साहित्य की गति-विधि का निर्देश।
—साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर नवीनतम विचार।
—ओजपूर्ण कहानियाँ और कवितायें।
—संसार के महापुरुषों का उत्कृष्ट शब्द-चित्र।
—उत्पीड़ित मानवता की विद्रोहपूर्ण हुंकार।
—गम्भीर और प्रभावशाली टिप्पणियाँ।

ग्राहक बनकर और विज्ञापन देकर लाभ उठाइए

वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति ।।)

नमूने के लिए आठ आने का टिकट भेजिए।

आरती-मंदिर, पटना सिटी

राष्ट्रभाषा के प्रचारमें सभी प्रकारकी सहायता देनेवाली मासिक पत्रिका

"सबकी बोली"

वार्षिक चन्दा १)

[राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा से संचालित]

सम्पादक—काका कालेलकर, श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हर महीने की १५ वीं तारीख को निकलती है

इसमें आपको राष्ट्रभाषा-प्रचार-आन्दोलन की बहुत उपयोगी ताजी सामग्री, प्रचार-आन्दोलन की दिशा के संकेत, हिन्दी विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों के काम की बातें, कहानी, सरल कविता, शब्द-चर्चा, सरल शैली के निबन्ध, पात्र-चरित्र-चित्रण, कभी-कभी परीक्षा-प्रश्न-पत्रों के सरल उत्तर, महापुरुषों की जीवनियाँ इत्यादि पढ़ने को मिलेंगे। पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने में भी यह पत्रिका अपनी ओर से यथाशक्ति प्रयत्न करेगी। हिन्दुस्तानभर के राष्ट्रभाषा-प्रेमी इसके द्वारा अपने प्रचार तथा अनुभव राष्ट्र के सामने रख सकेंगे।

जो परीक्षार्थी 'सबकी बोली' के ग्राहक बनते वक्त **अपनी परीक्षा की क्रम-संख्या** लिख भेजेंगे, उन्हींको यह रु० १) में दी जायगी।

व्यवस्थापक— **'सबकी बोली', वर्धा**

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमेन--सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये

भुगतान पूँजी---१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइये या एजेंसी लिजिए

जहां हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन बीमा विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजर:—
८, रॉयल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता
या
बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना, शाखाओं को।

कर्मयोगी

भारत की पारिवारिक पत्रिका

'कर्मयोगी' का इतिहास इतना गौरवान्वित तथा क़ुर्बानियों का इतिहास रहा है कि देशवासियों को इसका परिचय देने की आवश्यकता नहीं। उसे केवल इतना ही कहना है :

उड़ाए कुछ वरक़ लाले ने, कुछ नर्गिस ने, कुछ गुल ने !
चमन में हर तरफ़ बिखरी पड़ी है, दास्ताँ मेरी !!

'कर्मयोगी' प्रत्येक शहर और क़स्बे के प्रतिष्ठित न्यूज़-पेपर-एजेण्ट तथा समस्त भारत में मेसर्स ए० एच० ह्वीलर कम्पनी के प्रत्येक बुक-स्टॉल पर आपको मिलेगा। एक बार उसकी ठोस सामग्री देखकर आप भी इत्मीनान कर लें अथवा हमें लिखें :

वार्षिक .... ७) रु०
छ:माही .... ४) रु०

विदेश के लिए वार्षिक १०) रु०
बर्मा के लिए वार्षिक ८।।) रु०

एक प्रति का मूल्य केवल १० आना

'कर्मयोगी', कर्मयोगी प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद

लक्ष्मी इन्श्योरेन्स कम्पनी, लिमिटेड

स्थापित : १९२४ : : प्रधान कार्यालय : लाहौर

में

पारिवारिक आमदनी और बच्चों के बीमे वग़ैरा की
आकर्षक आयोजनायें हैं

आँकड़े (३१–१२–३६ के मुताबिक)

चालू काम	....	...	८,२४,५४,००० रुपये
नया काम	....	....	१,५०,१०,००० "
जीवन-कोष	....	...	१,३३,४८,००० "
जमा पूंजी	....	....	१,४६,४१,००० "

विशेषता

दावों का तुरन्त निर्णय

विशेष जानकारी के लिए लिखिए

लाला दीनानाथ चड्ढा,

ब्रांच-मैनेजर, नई दिल्ली

जीवन-सखा

—प्राकृतिक चिकित्सा का एक मात्र सचित्र मासिक पत्र—

यदि आप डाक्टर, वैद्यों से परेशान हो गये हैं, दवा खाते खाते घबरा गये हैं तो जीवन-सखा पढ़िये और अपना इलाज घर बैठे स्वयं कीजिये। जीवन-सखा पढ़कर कितने ही व्यक्तियों ने अपने को असाध्य रोगों से बिना दवा के मुक्त कर लिया। यदि आप अपने और अपने परिवार के स्वास्थ्य और सौन्दर्य में वृद्धि करना चाहते हैं तो जीवन-सखा अपनाइए। इसके विषय हैं—आहार-शास्त्र, व्यायाम-विज्ञान, विश्राम-विज्ञान, आसन, प्राणायाम एवं मनोविज्ञान।

जीवन-सखा पांच वर्ष से नियमित रूप से निकल रहा है। नमूने के लिए एक आने के टिकट के साथ आज ही लिखिये।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया।

प्रबन्धक—**जीवन-सखा, इलाहाबाद।**

बिहार, युक्तप्रान्त और बड़ौदा के शिक्षा-विभाग से स्वीकृत

किशोर

संपादक— { रामदहिन मिश्र
हंसकुमार तिवारी }

विद्यार्थियों, किशोरों और नवयुवकों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्द्धक पठन-सामग्री देनेवाला हिन्दी-संसार में अपने ढंग का अकेला मासिक ।

किशोर विज्ञान, हिन्दुस्तान की प्राचीन संस्कृति, साहित्य व्यायाम और स्वास्थ्य आदि विभिन्न विषयों के संबंध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शांत करता है ।

अपने पाठकों को मानव-जीवन क्रम का, दुनिया के इतिहास का, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराता है ।

प्रेरक कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख, किशोर की विशेषतायें हैं ।

किशोर का एकमात्र उद्देश्य है किशोर-सेवा, इसलिए वह किशोरों के रोज़ की चर्चायें छापता है, उनके प्रश्नों पर विचार करता है; उनका एकमात्र धर्म है अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सतत उद्योग । वह आपकी सहायता का इच्छुक है ।

किशोर ने अपने पहले वर्ष ५९८ पृष्ठों का और दूसरे वर्ष ६१६ पृष्ठों का ठोस जीवनदायी साहित्य पेश किया है । तीसरे साल के कुछ अंक अबतक प्रकाशित हो चुके हैं।

पत्र अत्यन्त सुन्दर, सुपाठ्य और सर्वोपयोगी है । बिहार का यह गौरव है और हिन्दुस्तानी किशोरों का पथप्रदर्शक ।—(स्वामी) भवानीदयाल संन्यासी (नेटाल, दक्षिण अफ्रीका)

पत्र इतना सुन्दर निकल रहा है कि हम हिन्दुस्तान की किसी भी भाषा के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ बालोपयोगी पत्रों के साथ इसका मुक़ाबिला कर सकते हैं ।—गोपालसिंह नेपाली

हमें निश्चय है कि किशोर अवस्था के पाठकों में यह पत्र बहुत प्रिय होगा ।—विशाल भारत

हिंदी भाषा में बालोपयोगी जितने भी पत्र निकल रहे हैं, 'किशोर' उन सब में निःसन्देह एक क़दम आगे है ।—सोहनलाल द्विवेदी

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।-)

अपने गाँवों, शिक्षण संस्थाओं और पुस्तकालयों में 'किशोर' को अवश्य स्थान दीजिये । इतना सुन्दर पत्र इतने सस्ते मूल्य में आपको न मिलेगा ।

किशोर, बाल-शिक्षा-समिति, बाँकीपुर (पटना)

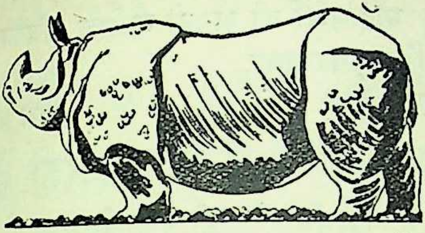

गैंडा मार्का

क्राफ्ट

काग़ज

मज़बूती और टिकाऊपन में
सबसे उत्तम है

पत्र व्यवहार करें
ओरियण्ट पेपर मिल्स, लिमिटेड
मेनेजिंग एजेण्ट्स
बिड़ला ब्रदर्स लिमिटेड, कलकत्ता

कमला

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]

सम्पादक—**श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर**
वार्षिक मूल्य ४।।) विदेश में ६।।)

सहायक—**श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी**
एक प्रति का ।=) विदेश में ।।)

'कमला' कैसी निकल रही है ?

मनीषियों की दृष्टि में—

(डा०) भगवान्‌दास—

जहांतक मैंनें देख पाया, इसमें शिष्ट मनोरंजन, ज्ञानवर्धन, विचार-प्रोत्साहन, कवितास्वादन, सभी प्रकार की कुछ न कुछ आधुनिक सामग्री रहती है।

काका कलेलकर—

स्त्री-जाति की सर्वांगीण उन्नति के लिये 'कमला' को छोड़कर और कौन मासिक है ?

मैथिलीशरण गुप्त—

बहुत अच्छी निकल रही है।

(डा०) बाबूराम सक्सेना—

(प्रधान मंत्री हि० सा० स०, प्रयाग)

देखकर तबीयत खुश हुई।

बनारसीदास चतुर्वेदी—

कितने ही लेख ऐसे निकले हैं, जो कन्याओं की पाठ्यपुस्तकों में उद्धृत किये जा सकते हैं।

नवयुवक साहित्य-सेवियों को 'कमला' ने प्रोत्साहन दे रही है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।

उषा मित्रा—

'कमला' जो सुन्दर होकर निकलती है उसके लिए मुझे तनिक भी विस्मय नहीं है, क्योंकि प्रसिद्ध साहित्य सेवियों के हाथ से उसका साधारण होकर निकलना ही एक विस्मय की बात थी। यदि विस्मय है तो इस बात पर कि इतने अल्प मूल्य में, विशद आकार-प्रकार में 'कमला' ऐसी पुष्ट होती किस प्रकार से है ?

पत्र-पत्रिकाओं की दृष्टि में—

'प्रताप' कानपुर—

कन्याओं और गृहिणियों के लिए उपयोगी एवं शिक्षाप्रद मनोरंजक सामग्री का इसमें सुरुचिपूर्ण संकलन किया गया है। कविता, कहानी, उपदेश, मनोरंजक चुटकुले, घरगृहस्थी की दैनिक आवश्यकता, स्वास्थ्य, सफ़ाई आदि कितने ही उपयोगी विषयों पर योग्य लेखक लेखिकाओं की रचनाएँ दी गयी हैं।

'साहित्य सन्देश', आगरा—

भारतीय महिला को जिसकी ज़रूरत है वह सभी मसाला इस पत्रिका में है।

यू०पी० सरकार का मासिक पत्र 'हल', लखनऊ—

इसमें कविताओं, कहानियों तथा स्त्री-संबंधी उपयोगी लेखों का सुन्दर चयन हुआ है। इसमें केवल सामाजिक लेखों को ही स्थान नहीं दिया गया है बल्कि राजनैतिक तथा अन्य विषयों के लेखों की भी अधिकता है। सम्पादन अच्छी तरह किया गया है। इसकी छपाई सफ़ाई भी सुंदर है।

'जनता', पटना—

सुरुचि और सादगी इसकी अपनी कला है। लेखों का चयन बहुत ही सुन्दर होता है। पाठ्य सामग्री काफ़ी रहती है। हिन्दी के माने जाने लेखकों का सहयोग 'कमला' को प्राप्त है।

'सुदर्शन', एटा—

हम अधिकारपूर्वक कह सकते हैं कि यदि हम अपनी महिलाओं को पश्चिमी रंगीन संस्कृति से सुरक्षित रख कर उन्हें भारतीय सभ्यता के अनुकूल बनाना चाहते हैं तो 'कमला' जैसी पत्रिका को हमें उनके निकट पहुँचाना ही होगा।

पता—मैनेजर, 'कमला', गायघाट, बनारस।

जीवन-यात्रा में

विधवा का करुण क्रन्दन

पाषाण पुरुष-हृदय

पर कोई असर नहीं करता है।

क्योंकि

वह अपनी वृद्धावस्था के लिये अथवा अपनी प्रिय पत्नी के लिये या अपने प्यारे बच्चों के लिये संकट-समय का एकमात्र सहारा जीवन-बीमा नहीं कराता।

सहृदय होकर बिड़ला बन्धुओं द्वारा प्रबन्धित

न्यू एशियाटिक में

बीमा कराइये

जिसने १९३४ ई० में १५,३८,५००
,, १९३५ ,, २५,०१,०००
,, १९३६ ,, ३०,६६,७५०
,, १९३७ ,, ३५,५९,५००
,, १९३८ ,, ४१,७४,७५०
,, १९३९ ,, ५०,११,७६८

बीमे किये हैं

और जो प्रगतिशील बीमा कम्पनी है।

योग्य एजेण्टों की शहरों तथा कस्बों में आवश्यकता है।

न्यू एशियाटिक लाइफ इन्शुरेंस कम्पनी, लिमिटेड

कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएं;—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर; हैदराबाद (दक्षिण), लाहौर, पटना,
संगठन कार्यालय—अर्नाकुलम (कोचीन), कानपुर, तंजोर, त्रिचीनापल्ली, कोलम्बो, रंगून, इत्यादि।

साधना

सचित्र साँस्कृतिक मासिक पत्रिका

वार्षिक मूल्य केवल २) रु०

प्रतिमास ४० पृष्ठ के लगभग ठोस और उपयोगी सामग्री

इतना सस्ता, इतना उपयोगी, इतना सुरुचिपूर्ण दूसरा पत्र नहीं

इसमें—

१—हिन्दी के चोटी के विद्वानों के लेख, साहित्य-सम्बन्धी और आलोचानात्मक

२—कृत-विद्य कलाकारों की कला-कृतियाँ कहानी, एकांकी कविता, गद्य-काव्य

३—सचित्र लेख—ग्राम-समस्या, समाज-समस्याओं पर, ऐतिहासिक वर्णनों और ऐतिहासिक शोधों पर

४—विश्व की आधुनिकतम विचार-धाराओं का परिचय

५—नये और होनहार लेखकों को परामर्श

६—युवकों के भावों, विचारों और आचारों का विश्लेषण

७—स्फूर्ति और उन्नति देनेवाली जीवनियाँ, ये सब बातें एक साथ—और फिर वर्ष में एक

विशेषांक

शीघ्र ही ग्राहक बनिए। इसमें आपका ही लाभ है।

नोट—पत्रिका यू० पी०, सी० पी०, बरार, भूपाल, अलवर, बीकानेर आदि कितने ही देशी राज्यों द्वारा पुस्तकालयों और शिक्षा-संस्थाओं के लिए स्वीकृत है।

व्यवस्थापक, 'साधना'
बाँके विलास, आगरा

दिल्ली में

सब प्रकार की उत्तम छपाई

और खास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से

किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं।

मा

जीवन ज्योति का मूल स्रोत

सम्पादक
रामचन्द्र शर्मा

परिवार के सब जनों का अकेला मासिक
महारथी प्रकाशक

एक प्रति की भेंट ।=)
एक वर्ष की भेंट ४)

मोटे कागज पर आदि से अन्त तक

बढ़िया दो रंगी छपाई और सुन्दर भाव पूर्ण बहुरंगे चित्र से युक्त

०'मा' घड़ी दो घड़ी के लिए केवल एक बार पढ़कर फेंक देनेवाला पत्र नहीं है ।

०'मा' किसी भी समय पढ़ने, सोचने और सलाह लेने योग्य पुस्तक सी है जिसे अपने संग्रह में रखकर कोई भी गर्व करेगा ।

०'मा' में जीवन की भिन्न-भिन्न अनेक छोटी बड़ी समस्याओं का हल मिलेगा ।

०'मा' प्रतिमास जीवन सुखी, सुन्दर, शान्त और महान बनाने के नये से नये उपाय बतायेगी और अपने एवं अपनों के लिए जीने की हौंस पैदा करेगी ।

०'मा' पर स्त्रियाँ अभिमान करती हैं; पुरुष इसे आदर की वस्तु समझते हैं, और बच्चे इसे छाती से लगाये फिरते हैं ।

यह एक ऐसा मासिक है

जिससे घर भर का काम चला सकता है । यह व्यापार की नहीं व्यवहार की चीज है ।

-) का टिकट आने पर नमूना भेजा जाता है ।

पता—**प्रबन्धक 'मा', महारथी कार्यालय, दीवान हॉल, देहली ।**

सुन्दर, बढ़िया और सही छपाई का ठिकाना—महारथी प्रेस, चाँदनी चौक, देहली ।

माधुरी का विशेषांक

प्रकाशित हो गया । इसमें हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों और कवियों की कहानियाँ, कविताएँ, लेख और निबन्ध हैं । पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर । दो भावपूर्ण तिरंगे चित्र, कई व्यंग्य चित्र और अनेक सादे चित्र । मूल्य १।)

इसी संख्या से जो लोग ग्राहक बनेंगे, उनको यह विशेषांक मुफ्त ही मिलेगा । विशेषांक बहुत नहीं छपा है । देर से ग्राहक बननेवाले इसे न पा सकेंगे ।

आज ही वार्षिक मूल्य ६।।) भेजकर ग्राहक बनिए

मैनेजर—माधुरी, लखनऊ

जिसकी आप बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहे थे

वही

कहानी का विशेषांक

अथवा

अमर कलाकारों की कृतियों का

अनुपम संग्रह

सुन्दर व सुसज्जित रूप में प्रकाशित होगया

भावपूर्ण चित्रों से युक्त १५० पृष्ठों के इस विशेषांक में आप रवीन्द्रनाथ ठाकुर
मैक्सिम गोर्की, डोरोथी कैरस, रैमन, देलवाली-इल्कान, बंकिमचन्द्र,
धूमकेतु, चिंचलीकर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामकुमार वर्मा,
भदन्त, आनन्द, कौसल्यायन, उपेन्द्रनाथ अश्क,
प्रकाशचन्द्र गुप्त, गुलाबराय आदि
ख्याति प्राप्त लेखकों व साहित्यिक महारथियों की अनूठी व अभिनव
कहानियां, एकांकी नाटक तथा लेख पढ़िये।

पाठकगण कृपया नोट करलें।

कथा-साहित्य के इस बहुमूल्य ग्रन्थ को तो हम 'कहानी' के प्रेमी 'ग्राहकों को भेंट करेंगे ही, साथ ही जो सज्जन ३० नवम्बर ४० तक 'कहानी' के ग्राहक बन जायँगे उनको १॥) मूल्य की 'कोकिला' पुस्तक भेंट करेंगे। 'कहानी' का वार्षिक चन्दा केवल ३) है। पुस्तकालयों के लिये १॥)। भेंट पुस्तक के पोस्टेज के लिए ।=) और चाहिये।

सरस्वती-प्रेस,
बनारस कैंट

गुलदस्ता

लाइट-रीडिंग लिटरेचर की सर्वोत्तम पत्रिका

हिन्दोस्तानी ज़बान जाननेवाला व्यक्ति-मात्र
बिना आद्योपान्त पढ़े इसे छोड़ नहीं सकता—

यह हमारा खुला चैलेंज है !!

हास्य-रस के सर्वोत्तम लेख,
दुर्लभ और शिक्षाप्रद कार्टून
कहानियाँ, सङ्गीत,
चुटकियाँ

हिन्दी और उर्दू की कविताएँ
दुबे जी की चिट्ठी
विनोद, गल्प,
व्यङ्ग, आदि

गुलदस्ता की विशेषता है ! हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध लेखक-लेखिकाओं का सहयोग हमारी लगभग २० वर्षों की तपस्या का व्यापक प्रमाण है; तथा सफ़ाई-छपाई, गेट-अप, मौलकिता तथा पथ-प्रदर्शन संस्था का जन्म-सिद्ध अधिकार !!

काग़ज़, स्याही, ब्लॉक तथा छपाई-सम्बन्धी, प्रत्येक साधन का अकाल होते हुए भी, सर्वसाधारण की सुविधा के लिए ८८ पृष्ठों की इस नायाब पत्रिका का मूल्य केवल ६ आना रखना हद्द दर्जे का दुस्साहस है !

वार्षिक ५) रु०
छःमाही ३) रु०

बर्मा के लिए वार्षिक ६।।) रु०
विदेशों के लिए वार्षिक ८) रु०

स्थाई ग्राहक बनें अथवा फुटकर ख़रीद कर पढ़ें, कुछ तो करना ही होगा । सैकड़ों एजण्टों के अलावा समस्त भारत में मेसर्स ए० एच० व्हीलर कम्पनी के प्रत्येक बुक-स्टॉल पर से भी आप ख़रीद सकते हैं ।

माँगें अधिक होने के कारण गुलदस्ता का उर्दू संस्करण भी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है ।

मैनेजर, 'गुलदस्ता', कर्मयोगी प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद

ट्रेड मार्क

तारा छाप काग़ज़

स्वदेशी

सस्ता

सुन्दर

टिकाऊ

भारतीय मूलधन, प्रबंध परिश्रम का ध्यान रखते हुए सदा स्टार पेपर मिल का कागज़ व्यवहार करें

एजेन्ट—

बिहारीलाल मदनलाल जयपुरिया

श्री महालक्ष्मी मारकेट

फोन नं० ६६३५

इम्पीरियल बैंक के पास दिल्ली

नोट:—'जीवन-साहित्य' का यह अंक 'स्टार पेपर मिल' के बने २०×२६, २४ पौण्ड व्हाइट प्रिंटिंग पर छपा है।

सस्ता साहित्य मण्डल

का

नवीन प्रकाशन

—स्थायी ग्राहक शीघ्र मँगावें—

* * *

इसी अंक में शुरू-शुरू में ग्राहकों की इन नई पुस्तकों की सूचना आ रही है—इस पत्र में लगा ग्राहक कार्ड भरकर तुरन्त भेजें—

१. **समाजवाद : पूँजीवाद**—इसमें सरल से सरल भाषा में दोनों वादों को समझाया है और बताया है कि दुनिया की भलाई किस विचारधारा पर विचारपूर्वक अमल करने से होगी। अंग्रेज़ी की मशहूर पुस्तक Intelligent women's Guide to Socialism and Capitalism के आधार पर लिखित। दाम ।।।)

२. **मेरी मुक्ति की कहानी**—टॉल्स्टॉय की आत्मकथा। दाम ।।)

३. **खादी मीमांसा**—इसमें खादी के सभी पहलुओं पर नवीन आँकड़ों और दृष्टिकोण से विचार किया है। अबतक खादी के बारे में निकली पुस्तकों से यह ज्यादा प्रामाणिक है। दाम १।।)

४. **बापू**—लेखक—श्री घनश्यामदास बिड़ला। आदि-वचन—श्री. महादेव देसाई। इसमें लेखक ने गांधीजी की एक-एक छोटी-मोटी बात को लेकर देखने का प्रयत्न किया है। महादेव भाई के शब्दों में "यह जाग्रत अध्ययन, अनुभव और समालोचना का सुन्दर फल है।" दाम ।।।) सजिल्द १) हाथ के काग़ज़ की १।।)

५. **विनोबा और उनके विचार**—महात्मा गांधी द्वारा नियुक्त प्रथम सत्याग्रही आचार्य विनोबाजी के परिचय और उनके सुन्दर, रोचक और विचारोत्तेजक विचारों का यह संग्रह होगा। उत्तर भारत के विनोबा से अनभिज्ञ पाठकों को इसमें वे विचार मिलेंगे जो उन्हें एक बार सोच में डाल देंगे कि अबतक वे ऐसे संत पुरुष के विचारों से कैसे अजान बने रहे? दाम ।।।)

६. **सत्याग्रह क्यों शुरू हुआ?**—रामगढ़ कांग्रेस के मुख्य प्रस्ताव से लगाकर वाइसराय के वक्तव्य तथा महात्मा गांधी के अन्तिम वक्तव्य तक के कांग्रेस और महात्मा गांधी के वक्तव्य और प्रस्ताव संकलित हैं। इनके एक जगह इकट्ठे हो जाने से आप जान सकेंगे कि महात्माजी को सत्याग्रह क्यों शुरू करना पड़ा? दाम ।=)

७. **सीख की कहानियाँ (२)**—बालोपयोगी, सुन्दर और शिक्षावर्द्धक कहानियाँ। दाम =)

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

* तमसो मा ज्योतिर्गमय *

जीवन साहित्य

र्ष १ : अंक ५

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

दिसम्बर : १९४०

जीवित भाषा

जीवित भाषा तो एक फड़कतीहुई जानदार चीज़ है—हमेशा बदलती रहनेवाली, हमेशा विकास पानेवाली और उसे बोलने व लिखनेवाले लोगों का अक्स दिखानेवाली। उसकी बुनियाद तो जनता में है, भले ही उसका ऊपरी ढाँचा कुछेक लोगों की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता हो। तब यह कैसे हो सकता है कि हम उसे बदल डालें या प्रस्तावों ओर आज्ञाओं से अपने मन के मुताबिक बना डालें? फिर भी मैं देखता हूँ कि यह भ्रम लोगों में बहुत फैला हुआ है कि अगर हम सिर्फ चाहें तो किसी भाषा को जिस तरफ चाहें उस तरफ ले जा सकते हैं। यह सच है कि आज की परिस्थिति में लोक-शिक्षण और पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, सिनेमा और रेडियो के जरिये पुराने जमाने की बनिस्बत भाषा को हम कहीं तेज़ी से बदल सकते हैं लेकिन फिर भी वह तब्दीली उन जल्दी-जल्दी होनेवाले परिवर्तनों ही का आइना तो है—जो उस भाषा को इस्तेमाल करनेवाले लोगों में हो रहे हैं।

अगर कोई भाषा जनता से सम्पर्क न रखे तो अपनी शक्ति खो बैठेगी और निहायत बनावटी, बेजान चीज़ बन जायगी—और जैसी जानदार और ताकतवर ख़ुशनुमा चीज़ उसे होना चाहिए वैसी नहीं रहेगी। किसी विशेष दिशा में भाषा को मज़बूरन् ले जाने से, मुमकिन है, हम उसे विकृत कर दें और उसकी आत्मा ही को कुचल डालें।

जवाहरलाल नेहरू

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. **कवि, आज क्रान्ति-युग का बन्दन !** (कविता) [श्री सुधीन्द्र, एम. ए.] १९१

२. **रहस्यवाद-छायावाद** [श्री हरिभाऊ उपाध्याय] १९२

३. **विवाह किसलिए ?** [टॉल्स्टॉय] १९४

४. **कविता और बन्धन** [श्रीमती महादेवी वर्मा] १९५

५. **ग्रामोद्धारक से** [श्री वियोगी हरि] १९८

६ **साहित्य की दिशा-भूल** [आचार्य विनोबा] २००

७. **घूमते-फिरते** ['नया पुराना'] २०१

८. **'मारना' व 'मरण देना'** [आचार्य काका कालेलकर] २०२

९. **आजकी हिन्दी-कहानी**[श्रीसन्तोषकुमार] २०५

१० **हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन** [श्री नारायणदत्त पाण्डे, एम. ए., एल-एल. बी.] २०८

११. **हिंसा व अहिंसा** [श्रीहरिभाऊ उपाध्याय] २१०

१२. **प्रस्तुत प्रश्न**— २११
हिन्दी-साहित्य में विश्वकवि (श्री ब्रजमोहन गुप्त एम. ए.); हिन्दी की १०० अच्छी पुस्तकें (श्री सुधीन्द्र एम. ए.) एक प्रतिवाद (श्री रामचन्द्र गुप्ता) पाप का प्रचार (श्री इन्द्र० 'स्वाधीन')

१३. **कसौटी पर** [समालोचनाएँ] २१
The Philosophy of Love; राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा; साहित्य सम्मेलन का बाल-साहित्य; प्रेमघन-सर्वस्व; मेरी मुक्ति की कहानी

१४. **सैर-सपाटा** २२१

१५. **हिन्दी की हलचलें** २२३

१६. **जीवन-समस्याएँ** २२५

१७. **सहयोगियों में से** [चयन] २२६

१८. **क्या और कैसे ?** [सम्पादकीय] २२८
राष्ट्रनिर्माण में हिन्दी, अपमानकारक ?; सही रास्ता; हमारी परीक्षा; शिक्षा व सरकार; एक और सबूत; नवीन-विश्वव्यवस्था; हरिजन-उद्योगशाला; गंभीर साहित्य की कमी; विज्ञापन-नीति; गीता-जयन्ती; हिन्दी-प्रेमियों से

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित होता है ।

२. किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं, पर साल से कम के लिए नहीं ।

३. 'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इंदौर शाखाओं तथा संयुक्तप्रांत, बिहार, मध्य प्रांत, राजपूताना-मध्य भारत, व पंजाब के चर्खा-संघ के खादी-भंडारों तथा 'हरिजन कार्यालय' पूना नं० ४ से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बन सकते हैं ।

४. हर मास के पहले हफ्ते में पत्र न मिले तो अपने यहाँ के डाकखाने से पूछताछ करके अपनी **ग्राहक-संख्या के साथ** पत्र लिखना चाहिए । उचित कार्रवाई की जायगी ।

५. अपने पते में कोई परिवर्त्तन कराना हो तो तुरन्त सूचना दिया करें—**ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें ।**

६. पत्र का चंदा इस प्रकार है—

भारत में	बर्मा में	विदेश में	एक प्रति
२)	२।)	५ शिलिंग	।)

नोट—नमूने के अंक के लिए ।) के टिकट भेजें । वार्षिक मूल्य डाक के टिकटों में भी भेजा जा सकता है ।

७. पत्रव्यवहार करते समय अपनी **ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें ।**

८. 'जीवन-साहित्य' में शिष्ट साहित्य तथा उपयोगी सुरुचिपूर्ण और देशी वस्तुओं के विज्ञापन लेने की गुंजायश रक्खी है ।

दर इस प्रकार हैं—

कवर का दूसरा पृष्ठ प्रतिमास ४०)
,, तीसरा ,, ,, ४०)
,, चौथा ,, ,, ५०)
पाठ्य विषय के सामने ,, ४०)
साधारण पृष्ठ— ,, २५)

९. विज्ञापन-एजेण्टों को कमीशन आदि के लिए पत्रव्यवहार करना चाहिए ।

पता—

व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य',
कनाट सर्कस, नई दिल्ली ।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

दिसम्बर १९४०
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक पाँचवाँ

कवि, आज क्रान्ति-युग का वन्दन !

कवि, आज क्रान्ति-युग का वन्दन
है आज पुरातन लगा रहा नूतन के मस्तक पर चन्दन !
शोणित में आया नवचेतन,
साँसों में छाया नव स्पन्दन,
वीणा में फूटा स्वर नूतन,
कण्ठों में आज नया गायन,
युग-युग के आज अचानक ही जर्जर हो बिखर पड़े बन्धन !
कवि, आज क्रान्ति-युग का वन्दन

: २ :

बरसे स्वर-स्वर से जीवन-कण,
लहलहे लता बन लघु जीवन,
उतरे विष भी, उन्माद मिटे,
चेतन कीलित-से मानव-मन,
लोहित-तर्पण से ऊब रहा मानव का दानव आनन्दन !
कवि, आज क्रान्ति-युग का वन्दन

: ३ :

कर-कर उर से अमृत-सिंचन,
अभिषिक्त करो ये पुण्य चरण,
शत-शत प्राणों के दीप जगा
होने दो नूतन पूजार्चन !
चिर-अमर सत्य-शिव-सुन्दर का अब हो अभिवन्दन-अभिनन्दन !
कवि, आज क्रान्ति-युग का वन्दन !

सुधीन्द्र

रहस्यवाद-छायावाद

कवियों के दरबार म जाने या बैठनेलायक में नहीं। फिर रहस्यवाद-छायावाद की गो में तो और भी मुश्किल। परन्तु हिन्दी के काव्य-साहित्य में इन दिनों रहस्यवाद-छायावाद का द दौर-दौरा है और बहुतेरे आधुनिक प्रतिष्ठित एवं होनहार कवि, जिनकी प्रतिभा ने आधुनिक साहि को चमकाया है, इसके हिमायती हैं। रहस्यवाद-छायावाद क्या हैं, एक ही हैं या अलग-अलग, इ सम्बन्ध में मतभेद भी दीखता है। रहस्यवादी-छायावादी कवियों की तीव्र आलोचना और उपहा होताहुआ भी देखा जाता है। ऐसी दशा में 'जी० सा०' की दृष्टि और स्थिति भी पाठकों के साम आजाना जरूरी है।

यदि काव्य या कविता जीवन के लिए आवश्यक और उपयोगी है तो फिर रहस्यवाद व छायावाद, जो कि कविता का ही एक अंग या स्वरूप है, जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। कविता जीवन को रस या प्राण देती है। यही उसकी जीवन को अमूल्य व सब से बड़ी देन है। प यदि वह प्राण देने के बदले लेने लगे तो? तो भी क्या आप उसे गले लगावेंगे? कविता कहेंगे! इसी तरह रहस्यवाद और छायावाद यदि जीवन को बढ़ाते हैं, उसमें बल, ओज, उत्साह, आनन्द सुख, शान्ति की वृद्धि करते हैं तो अवश्य ही अपनाने और स्वागत करनेयोग्य हैं। कवि चाहे सृष्टि के गूढ़ रहस्य का पता लगाने में मग्न हो, उसको हमारे सामने खोलकर रखता हो—या अपने इष्ट दे अथवा देवी से, उनकी छाया से अथवा उनसे छाया में बातचीत—आत्मनिवेदन करता हो, चाहे किसी कथा, आख्यान, घटना के सहारे रस-सृष्टि करता हो, या किसी कल्पना, भाव या अन्य वस्तु को लेकर कोई सुन्दर चित्र खड़ा करता हो, ये तो उसके साधन, उपादान या उपकरण-मात्र हैं, यदि ये सब जीवन की उपासना में ही लीन हैं और जीवन को उद्ग्रीवी बनाने में ही रुचि रखते हैं तो हमारे लिए अवश्य ही स्वीकार व आदर करनेयोग्य हैं।

पर प्रश्न यह है कि कविता-कला को जीवनोपयोगिता की कसौटी पर कसा जाय या नहीं? काव्य या छन्द के नियमों—रूढ़ियों—को आप मानें या न मानें, इसकी मैं इतनी परवा नहीं करता। 'रबड़' 'केंचुआ' या इससे भी खराब नाम से पुकारे जानेवाले छन्द, तर्ज वगैरा लावें इससे मैं नहीं घबड़ाता। पर मैं पूछता हूँ कि क्या कवि या कलाकार का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह सोचे कि वह जीवन को सुला रहा है या जगा रहा है, बेहोश कर रहा है, या होश में ला रहा है, अमर बना रहा है या विनाश अथवा मृत्यु की ओर ले जा रहा है? इसका ध्यान रखना भी क्या 'बन्धन' की गिनती में आता है?

मानस सर की मंजु मराली मुक्त गगन में गाती है।
धरती पर जीवन बरसाती कविता बहती जाती है॥

कविता के इस परिचय, स्वरूप या व्याख्या से—यदि कविता की कोई व्याख्या हो सकती हो तो—यदि आप सहमत हैं तो 'जी० सा०' आपकी तमाम कविताओं का, भले ही लोग उसे रहस्यवादी-छायावादी तो ठीक 'भँडास' भी कह दें तो समर्थन करेगा। आपकी कविता मुक्त गगन में ऊँचे उड़े व गाये, उसका संगीत भी चाहे जितना मंजु-मधुररसपूर्ण हो, यदि मानव के लिए वह जीवन बरसाती है तो उसकी धारा में कौन अभागा स्नान करके प्रोत्साहित व पवित्र न होगा? क्या यह शर्त भी कविता को मंजूर नहीं?

भाई बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जो अनिर्बन्ध कविता के हामी हैं, अपने 'कुंकुम' की प्रस्तावना --कुछ बातें—में लिखते हैं--"मैं स्वयं कविता के मापदण्डीकरण (Standardization) का शत्रु हूँ। मैं नहीं चाहता कि कविता या कला की कोई भी अन्य कृति इस प्रकार के बन्धनों में जकड़ी

जाय । × × कला एक प्रकार के व्यक्तिगत उन्माद की भावनामूलक, कल्पनासहगामिनी, सत्-चित्-आनन्दमयी अभिव्यक्ति है । इसे कोई कैसे बाँधे ? वह बाँधे भी बँधी न रहेगी । आजकल कला की कृतियों को उपयोगितावाद की शृंखला में बाँधने की चर्चा ज़ोरों पर है । कला को सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक जाग्रति का शकटमात्र ही क्यों न बनाया जाय ? × × मेरी प्रार्थना यह है कि वे महानुभाव जीवन को सर्वांग रूप में समझने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं जब वे काव्य या कला में घोर पदार्थमूलक उपयोगितावाद (Materialistic utilitarianism) का ही सर्वस्व चाहने लगते हैं । × × कला, काव्य, साहित्य इन सब का संबंध तो सनातन रस-राग-अभिव्यंजना से है । केवल वर्तमान का दर्शनमात्र ही चिरन्तन कला का ध्येय नहीं है । × × कला का निर्माण किसी ध्येय को लेकर जरा मुश्किल से ही होता है । अरस्तू ने Ethics (नीति धर्म) और Aesthatics (कला) की कृतियों में भेद समझातेहुए यह स्पष्ट कर दिया है कि ईथिक्स की कृतियों में प्रणोदना, प्रेरणा (motive) देखी जाती हैं और इस्थेटिक्स की कृतियों में कृतिमात्र का ही अवलोकन किया जाता है । हमारे कुछ दोस्त आज कला को उपयोगवाद के दायरे में महदूद कर देना चाहते हैं, मुझे यक़ीन है कि वे इस प्रयास में सफलता प्राप्त न कर सकेंगे ।"

इसपर इतने प्रश्न उठते हैं:––क्या कविता या कला अनिर्बन्ध है ? भौतिक उपयोगितावाद की कसौटी पर न सही, जीवनोपयोगिता की कसौटी पर भी वह न कसी जाय ? कला में कृतिमात्र ही देखी जाय, उसका हेतु या परिणाम न देखा जाय ? मेरी समझ से शर्माजी कला की अपनी व्याख्या––× × × सत्‌चित्‌आनन्दमयी अभिव्यक्ति है––में ही उसपर बंधन लगा देते हैं । अभिव्यक्ति 'सत्', 'चित', और 'आनन्द' मयी होनी चाहिए । यदि शर्माजी की कविता और कला 'सत्' याने वास्तविकता से युक्त चित् याने ज्ञान, व जीवन से युक्त और आनन्दमयी इन गुणों से युक्त हो तो ये बन्धन, शर्तें या मर्यादा मेरे लिए काफी हैं । लेकिन इतनी मर्यादाओं से युक्त कला 'अनिर्बन्ध' कैसे रहेगी ?

यदि यह माना जाय कि कला में कृतिमात्र ही देखी जाय उसका हेतु या परिणाम न देखा जाय तो फिर आगे चलकर शर्माजी ने जो विचार प्रकट किये हैं वे इससे मेल नहीं खाते । वे प्रश्न करते हैं—"क्या कला या काव्य का केवल यही धर्म है कि वह मानवहृद्‌गत भावों को व्यक्त करे ? मैं कहता हूँ नहीं । सच्चा कलाकार वीभत्स भावों के प्रति हमारे हृदय में विराग भी तो उत्पन्न करता है । × × × असत् एवं असुन्दर के प्रति विराग तथा सत् एवं सुन्दर के प्रति अनुराग उत्पन्न करना एवं जीवन में जो कुछ अनमिल है उसका लोप करके समता एवं सामञ्जस्य स्थापित करना कलाकार का काम है । मानव प्रयत्न तो सदा ऊर्ध्वगामी है । अतः सच्चा कलाकार भावनाओं को उद्‌ग्रीवी क्यों न बनाएगा ? यत्नतः या अपने-आप ही सुन्दर कला कृति का द्रष्टा मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनाने में सहायक होता है ।" यदि कलाकार का हेतु मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनाना हो, या उसकी कृति का ऐसा ही परिणाम निकले तो फिर मेरा उस कला या कविता से कोई झगड़ा नहीं है, भले ही आप उसे 'अनिर्बन्ध' 'स्वच्छन्द' 'मुक्त' आदि-आदि कहते रहें ।

इतनी लम्बी-चौड़ी चर्चा करने से मेरा मंशा यह बताने का है कि संसार की कोई वस्तु 'अनिर्बन्ध' नहीं हो सकती । उसका गुण, बल, सौन्दर्य इसी में है कि वह तारतम्य (Sense of proportion) को स्वीकार करती है । खुद हमारी सृष्टि या विश्व भी 'अनिर्बन्ध' है ? निराकार परमतत्व ने जब शरीर, पार्थिवतारूपी बन्धन को मंजूर किया तभी तो वह सृष्टिरूप में हमारे सामने आया और हमें उसके रूप, गुण, बल प्रभाव उपयोगिता का पता चला । कवि की कल्पना या भावना उस महाकवि की उड़ान से तो ऊपर नहीं जा सकती न ? अतएव यदि आप इतना मान

लेते हैं कि कविता या कला का हेतु या परिणाम 'जीवन को उदग्रीवी बनाना' है तो फिर आप उसे रहस्यवाद कहिए, छायावाद कहिए, नखशिख कहिए, हाला-प्यालावाद कहिए, रूढ़िवाद कहिए, और किसी भी विषय पर, कैसे भी छन्द में, कैसी ही कविता की सृष्टि कीजिए, मैं उससे डरना नहीं चाहता। हाँ, जैसी कविता होगी वैसा नम्बर उसे अवश्य दिया जायगा; पर उसे अपने स्वागत-क्षेत्र में आने की मनाही मैं नहीं करूँगा।

हाँ, जो कुछ गद्य या पद्य लिखा जाय वह ऐसा हो जो सरलता से समझ में आ जाय। मैंने कितनी ही रहस्यवादी और छायावादी कविताओं में पढ़ी है, लेकिन उनका आशय या भाव समझने में मुझ-जैसे को मुश्किल होती है। ऐसी रचनायें जनसाधारण में कैसे तो पहुँच सकती हैं, कैसे प्रिय हो सकती हैं और कैसे उनके लिए उपयोगी साबित हो सकती हैं? गूढता नहीं सरलता—कविता का गुण होना चाहिए।

हरिभाऊ उपाध्याय

विवाह किसलिए ?

[टॉल्स्टॉय]

जो लोग केवल प्रमादपूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए विवाह करना चाहते हैं, वे अपने मनोरथ को कभी सफल नहीं कर पाते। विवाह को अर्थात् अपने प्रेम-पात्रके साथ के संयोग को, जीवन की अन्य सब वस्तुओं से बढ़-चढ़ कर सबसे परे, जीवन का एकमात्र मुख्य हेतु बनालेना बडी भारी ग़लती करना है। यदि मनुष्य थोड़ा भी विचार करे, तो उसे अपनी यह ग़लती तुरन्त सूझ सकती है। क्या विवाह ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है? अच्छा, मान लीजिए कि मनुष्य ने विवाह किया। उसके बाद वह क्या करेगा? जब शुरू से मनुष्य के सामने जीवन का कोई ध्येय निश्चित नहीं होता, तो ब्याह के बाद स्त्री-पुरुष दोनों के लिए दोनों को रुचिकर होनेवाला कोई जीवनोद्देश्य निर्धारित करना या पाना कठिन होता है। ऐसी दशा में निश्चित तो यही प्रतीत होता है कि शादी से पहले दोनों के सामने कोई सम-समान जीवनोद्देश्य न होने से, यह सम्भव नहीं रहता कि दोनों एक-दूसरे के अधिक निकट खिंच सकेंगे और किसी एक ही विषय में एक साथ केन्द्रित हो सकेंगे। उल्टे, एक-दूसरे से अलग होकर विरुद्ध दिशा में दूर तक ढिलते जाने की संभावना ही अधिक है। वैवाहिक जीवन सुखी तभी हो सकता है, जब दोनों का जीवनोद्देश्य एक ही हो!

यात्रियों का साथ तो तभी सधता है जब वे किसी एक ही मार्ग पर जाकर मिल जाते हैं और एक-दूसरे को देख कर वह उठते हैं कि "चलिए अब हम साथ ही साथ चलेंगे।" इस तरह जो साथी मिलता है, वही सच्चा साथी होता है। ऐसे साथी परस्पर सहायक बन सकते हैं। लेकिन जब यात्री आपसी आकर्षण के कारण अपने विभिन्न मार्गों को छोड़कर एकत्र होते हैं, तो वे सहकारी या सहयोगी नहीं बन सकते।

इसलिए मैं तुम्हें, तुम दोनों को एक तो यह सलाह देता हूँ कि तुम्हें अपना जीवन गंभीरतापूर्वक, सोच-विचार के साथ बिताना चाहिए क्योंकि जब तुम ऐसा करोगे, तभी तुम यह तय कर सकोगे कि अया तुम दोनों एक ही मार्ग पर चल रहे हो या नहीं, और यह कि तुम जीवन भर एक-दूसरे के सखा बनकर रह सकोगे या नहीं! इसके साथ ही मेरी दूसरी सलाह यह भी है कि अगर तुम्हारी नीयत साफ़ हो, तो तुम दोनों को भविष्य में सिद्ध होनेवाले किसी उद्देश्य के लिए कटिबद्ध होजाना चाहिए। केवल वैवाहिक सुखोपभोग ही तुम्हारे जीवन का हेतु नहीं है। अपने व्यवहार द्वारा जगत् में विशिष्ट प्रेम और सत्य का प्रचार ही तुम्हारा जीवनोद्देश्य होना चाहिए। विवाह इसीलिए है कि इस उद्देश्यकी सिद्धि में एक-दूसरे के सहायक बन सको।

[अनु०—काशिनाथ त्रिवेदी

कविता और बन्धन

[महादेवी वर्मा]

['रहस्यवाद-छायावाद' को मैंने बहन महादेवीजी की राय के लिए भेजा था। उस पर उन्होंने अपने कुछ विचार लिख भेजने की कृपा की है, जिन्हें यहाँ दे रहा हूँ। यदि पंतजी व निरालाजी भी लिखने की कृपा करें तो मैं कृतज्ञ हूँगा। ह० उ०]

छायावाद और रहस्यवाद के सम्बन्ध में आपका लेख विचार के लिए बहुत सामग्री देगा विवाद के लिए भी।

कविता को किस अर्थ में 'निर्बन्ध' होना चाहिए, उसमें कोई ध्येय ढूंढ़ना कहाँ तक उचित है, व्यापक अर्थ में 'उपयोगिता' की किसी कसौटी पर उसे कसना सम्भव है या नहीं आदि सभी प्रश्न सामयिक हैं। अच्छा है यदि हमारे विद्वान् और कलाकार इस पर निष्पक्ष भाव से विचार करें।

व्यक्तिगत रूप से, स्थूल बन्धनों के सम्बन्ध में मैं दो ही स्थितियों की कल्पना कर सकती हूँ— एक वह जिसमें यह बन्धन अपने से बहुत ऊँचे एक व्यापक वन्धन के सृजन-कार्य में बाधक वन जाते हैं और दूसरी वह जिसमें यह एक निम्न उच्छृंखलता को रोककर उसके ध्वंस को सीमित रखते हैं। दण्डविधान के अभाव में या तो वह स्थिति सम्भव है जिसमें मानवता का पूर्ण विकास होगया हो या वह जिसमें सब अपराध की स्वतन्त्रता पा चुके हों।

कला की वन्धनहीनता पहली स्थिति से सम्बन्ध रखती है क्योंकि उसी दशा में वह अपने पूर्ण रूप में प्रतिष्ठित हो सकती है। प्रत्येक कला में एक सामञ्जस्यमूलक सूक्ष्मतम बन्धन तो रहेगा ही अन्यथा विषम उच्छृंखलता और सृजन-शील कला में अन्तर ही क्या होगा? परन्तु यह बन्धन मुक्ति का बन्धन है।

काव्यकला या किसी भी कला का ध्येय उसकी परिभाषा में छिपा है। उसे चाहे सत्-चित्, आनन्दमयी अभिव्यक्ति कहें, चाहे सत्यं-शिवं-सुन्दरं की व्याख्या, दोनों ही दशाओं में 'सत्' अथवा 'सत्य' और हमारे बीच में सबसे निकट की सीढ़ी 'आनन्द' और सुन्दरं' ही है। इन दोनों शब्दों को अन्त में रखनेवाले मनीषी का हमें कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि चिरन्तन माननीय मनोविज्ञान का वह ज्ञाता था। बिना 'आनन्द' और 'सुन्दरं' के हम 'चित्' और 'शिवं' तक नहीं पहुँचते और बिना वहाँ तक पहुँचे न हमें सत् की अनुभूति होती ह न सत्य की। इसीसे हमारे ज्ञानक्षेत्र के ब्रह्म को भी सच्चिदानन्द की संज्ञा मिली है। साधारण जीवन में भी यह क्रम टूटता नहीं। पहले हमें किसी वस्तु की ओर आकृष्ट करने में उस वस्तु का रूप ही साधन बनेगा, फिर उसके सम्बन्ध में हमारा ज्ञानकोश बढ़ेगा और अन्त में हमें सत्य की उपलब्धि होगी।

कवि या कलाकार सत्य को सौन्दर्य्यमय करके देता है। जो इस पहली सीढ़ी पर सँभल जाता है वह कलाकार बिना प्रयास के ही सत्य तक पहुँच सकता है परन्तु इस सोपान पर पैर फिसल जाने की भी बहुत सम्भावना रहती है।

साधारणतः इस 'सुन्दरं' या सामञ्जस्य का बाह्य रूप हमारे उस बाह्य जीवन से सम्बन्ध रखता है जो युग-युग की विशेषताओं में ढलता रहता है परन्तु इसकी अन्तर्चेतना हमारे अन्तर्जगत् से मिली हुई है जो चिरन्तन होने के कारण ही परिवर्त्तन का आधार बनाहुआ है। इस प्रकार हमारे बाह्य और अन्तर्जगत के समान कला का भी दोहरा रूप है। प्रत्येक युग का सच्चा कलाकार बदलेहुए प्रतीकों और शाश्वत सत्य का समन्वय करके ही कलात्मक सृष्टि करता है। न वह कला की चिरन्तन आत्मा को भूलता है और न उसके परिवर्तनशील रूप को। इसी से एक युग के कवि और कलाकार आनेवाले युगों के लिए अपरिचित नहीं बन जाते।

सौन्दर्य्य के द्वारा जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति करनेवाली कलाओं में कविता का स्थान बहुत उन्नत है परन्तु इसके भटक जाने की सम्भावना भी अधिक है। सौन्दर्य्य के भ्रम में वह उस निम्न उत्तेजक स्थूल को भी ले सकती है जो हमें आनन्दानुभूति न देकर वासनामूलक क्षणिक उत्तेजना देता है और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भावना में स्नान करके हमारा हृदय जितनी स्फूर्ति पाता है उत्तेजना से उतनी ही क्लान्ति। कविता की आनन्दानुभूति और उत्तेजक स्थूल के बीच में सीमारेखा बनाने के लिए समय-समय पर जो नियम बनते रहे हैं उन्होंने रूढ़िमात्र बन कर काव्यकला के ध्येय को इतना अस्पष्ट कर दिया है कि आज हमें कविता की रक्षा के लिए न जाने कितने ढीले-तंग कवच गढ़ने पड़ रहे हैं।

यह सत्य है कि कविता के ध्येय के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क का बहुत अवकाश है क्योंकि हम प्रायः उसकी अन्तर्चेतना और बाह्य रूप को एक ही मान लेते हैं और उसकी कसौटी एक तात्कालिक उपयोगिता मान बैठते हैं। वास्तव में जीवन का ध्येय जीवन का विकास है और इस विकास के लिए मनुष्य के मस्तिष्क तथा हृदय का, या दूसरे शब्दों में बुद्धि और भावना का परिष्कार आवश्यक है। मनुष्य का ज्ञान और चिन्तन बुद्धि का परिष्कार करता है परन्तु अपनी भावना के परिष्कार के लिए मनुष्य ने सदा कला का आश्रय लिया है। बालू के कण-कण जैसे जमकर शिला में परिवर्तित हो जाते हैं, वैसे ही हमारे बहुरूपी स्वार्थों के क्षण, हृदय पर एक ऐसी संकीर्णता की कठिन तह जमाते चलते हैं जो जीवन की सम्वेदनशक्ति को निर्जीव किये बिना नहीं रहती। कला, और विशेष रूप से काव्यकला, ऐसा स्तर नहीं जमने देती। उसकी रसानुभूति में जितनी बार हमारा हृदय स्नान करता है उतनी ही बार वह एक नया जन्म ग्रहण करता है।

संभव है हमारा बुद्धिवादी युग इस पर विश्वास न करे परन्तु. इसे असत्य प्रमाणित करना कठिन होगा। वास्तव में जीवन का कोई भी निस्वार्थ स्नेह, सहानुभूति, बन्धुता आदि का आदान-प्रदान केवल तर्क के बल पर नहीं चल सकता। तर्क की कसौटी पर बहुत हल्के, पर जीवन के तुलाधार पर गुरुतम लगनेवाले, अनेक आत्म-त्याग और बलिदान हृदय की सहज संवेदनशीलता से ही सम्भव हो सके हैं। इस संवेदनशीलता को जीवित रखना और उसे नई स्फूर्ति देना ही कविता की चरम परिणति है। चाहे वह जीवन की विषमता के प्रति हमें क्षुभित करे, चाहे सामञ्जस्य की आनन्दानुभूति दे, चाहे स्थूल की गहराई की ओर हमें सजग करे, चाहे अध्यात्म की व्यापकता का संवेदन दे, हर दशा में हमारे हृदय को छू लेना ही उसका अभीष्ट है।

इस विषय में सबसे बड़ी समस्या हमारे स्थूल उपयोगितावाद ने उत्पन्न कर दी है जो कविता को केवल बौद्धिक कसौटी पर कसना चाहता है। उपयोगिता की एक परिभाषा कठिन है क्योंकि यह बहुत संकीर्ण और बहुत व्यापक अर्थ में समान रूप से प्रयुक्त होता है। एक वस्तु के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के निकट भिन्न-भिन्न उपयोग हो सकते हैं और उसी वस्तु के एक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भी भिन्न उपयोग हो सकते हैं। साधारणतः अपने स्थूल रूप में उपयोगितावाद निरन्तर बदलता रहता है अतः उसका एक तुलाधार मिलना ही असम्भव है। मेरे आँगन में लगे फूल के पौधे का मेरे निकट इतना ही उपयोग है कि सवेरे वह अपने किसी फूल की अधखिली पंखड़ियों में मोती भरे खड़ा रहता है, मेरी विद्यार्थिनियाँ कलियों को तोड़कर उनसे अपने कमरे या केश सजाने में ही उसकी सार्थकता मानती हैं और एक अध्यापिकाजी उसकी पत्तियों को सुखाकर कोई ओषधि बनाने के लिए ही उस पौधे का रहना आवश्यक समझती हैं। मेरी स्फूर्ति या क्लान्ति के क्षणों में भी उस पौधे का, कलियों के फूल बनाना और फूलों को बिखराकर फिर कलियाँ बनाना भिन्न-भिन्न संवेदन देता रहता है। अब यदि केवल स्थल तुला पर तोला जाय तो उस

का उपयोग उस शाक से कम है जो मेरे भोजन में काम आता है पर सूक्ष्म उपयोग की कसौटी पर उसका महत्त्व कितना अधिक हो जायगा यह बताने की आवश्यकता नहीं । इसी प्रकार किसी दुखी की गोद में हीरे-मोती न बन सकनेवाले हमारे दो आँसू भी व्यवसाय की किसी तुला पर न तोले जा सकेंगे ।

कविता ने सदा इस बदलते और स्थायी उपयोग के अन्तर को समझा है अन्यथा जीवन के स्थूल रूप के लिए आवश्यक विधिनिषेधों से भरी मनुस्मृति को काव्य के अन्तर्गत रखना सम्भव हो जाता । सामयिक उदाहरणों की भी कमी नहीं है । आर्य्यसमाज ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए न जाने कितने भजनों से सहायता ली थी; पिछली राष्ट्रीय जागृति के अवसर पर कुछ तात्कालिक समस्याओं को लेकर न जाने कितनी तुकबन्दियाँ हुई थीं परन्तु समय के साथ ही उनकी समाप्ति हो गई है । इसके विपरीत हृदय के सहज भावों का सरल चित्र देनेवाले लोकगीत आज भी अमराइयों और खेतों में गूँज रहे हैं । इतना ही नहीं अब तो हम अपने साहित्य में भी उन्हें प्रतिष्ठित करने को उत्सुक हो उठे हैं । अवश्य ही इन गीतों में खेतों की उपज का ब्योरा और लगान का हिसाब नहीं मिलता ।

राष्ट्र और समाज की तात्कालिक समस्याओं के भीतर छिपे व्यापक जीवन को जो रचनायें छू सकी हैं उन्हें स्थायित्व मिला ही है । उदाहरण के लिए हम 'वन्देमातरम्' को ले सकते हैं जो अपनी अनेक त्रुटियों के साथ भी हमारी राष्ट्रीयता का प्राणसंगीत बन गया है । मेरे छोटे भाई ने जिनेवा से एक पत्र में अपने क्लबके एक उत्सव का विवरण देतेहुए लिखा था कि 'वन्देमातरम्' अपनी उदात्त भावनाओं और स्वर-सामञ्जस्य में [illegible] १ दर्जन से अधिक देशगीतों में श्रेष्ठ समझा गया । परन्तु स्थूल उपयोगिता के तुलाधार पर इसका कोई मूल्य नहीं क्योंकि यह स्थूल जीवन के लिए विधिनिषेध नहीं देता और न इसमें जीवन का कोई व्यावसायिक ब्योरा या तात्कालिक समस्याओं का समाधान ही मिल सकता है ।

अतः मेरा विश्वास है कि कविता जीवन के व्यापक सत्य की संगिनी होने के कारण ही खण्ड-खण्ड में विभक्त और परिवर्तनशील पदार्थवाद की कसौटी नहीं स्वीकार करती । जब वह केवल विधिनिषेध के स्थूल रूप को लेकर चलती है तब वह अपनी संवेदनशीलता खो देती है । जब वह तात्कालिक समस्याओं में सीमित हो जाती ह तब वह चिरन्तन नहीं रहती और जब वह वस्तुवाद के उस नियम से शासित होती है जो पानी को मोती-जैसा न कह कर उसे वैज्ञानिक के समान जड़ द्रव्य का संघातमात्र ही कह सकता है तब उसकी रागात्मिका प्रेरणा ही समाप्त हो जाती है । परन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि वह स्थूल अर्थ म निर्बन्ध या उच्छृंखल है ।

वास्तव में कविता वह नदी है जो अपने तट स्वयं बनाती चलती है, बरसाती नाला नहीं जो हमारे बनाये बाँध को भी तोड़ कर दिशाहीन बह निकलताहै । जैसे उन्नत पर्वत की आर्द्रता को ले जाकर समुद्र की सजल व्यापकता से मिला देना ही नदी का ध्येय है, उसी प्रकार अपने संस्कृत हृदय के कारण कुछ विशिष्ट कवि की व्यक्तिगत रसानुभूति को जीवन की व्यापकता में मुक्ति देना कविता का अभीष्ट है । तट के ग्राम, खण्डहर उपवन, निर्जन, मरु, उर्वर सब अपनी ग्रहणशक्ति के अनुसार नदी से आर्द्रता ले सकते हैं परन्तु उनमें से किसी को यह कहने का अधिकार नहीं कि तुम यहीं रुक जाओ । हमारी कविता ही नहीं प्रत्येक सच्ची कला हमारे जीवन की वाह्य परिस्थितियों में से किसी एक में अपनी गति को सीमित नहीं कर देगी, इस पर विवाद की आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।

पिछले छायायुग का काव्य-साहित्य कला की किसी व्यापक कसौटी पर कसा जा सकता है या नहीं, उसके सहज बोधगम्य न होने का दोष उसकी अर्थहीनता से उत्पन्न है या सूक्ष्म भावनाओं से—आदि पर अपने विचार फिर लिखूंगी ।

ग्रामोद्धारक से

[वियोगी हरि]

ग़लती से कुछ लोग तुम्हें 'ग्राम-सेवक' जैसे हल्के नाम से पुकारते हैं। असल में तो तुम ग्रामोद्धारक हो, ग्राम-विधाता हो।

ग्राम-सेवक नाम के जन्तु तो दूसरे ही होते हैं। उन बेढंगे प्राणियों की तुम्हारे साथ पटरी नहीं बैठ सकती।

वे अपने को देहातियों-जैसा ही बेवकूफ़ बना लेते हैं। कभी उनके हाथ में झाड़ू होती है, कभी खुरपा और कभी कुदाल। चर्खे को तो वे ग्राम-सेवक ऐसे लिये फिरते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ी निधि हो। देहातों में रहते-रहते उनकी भी बुद्धि देहातियों की जैसी ही जड़ होजाती है। उन्हें न तो सभ्य समाज में उठने-बैठने की तमीज़ होती है, न कपड़ा पहनने की।

कुछ अजीब-से प्राणी होते हैं। अपनी अयोग्यता छिपाने को कोई-कोई प्रायः मौन धारण किये रहते हैं और बोलते हैं तो अशिष्टतापूर्वक बेलिहाज़ होकर।

उन असंस्कारी ग्राम-सेवकों के साथ तुम ग्रामोद्धारकों का मुक़ाबला करना बेवकूफ़ी है। कहाँ सेवक, कहाँ उद्धारक!

ग्रामों का सचमुच यह सद्भाग्य है कि तुम-जैसे श्रेष्ठ शहरातियों को उनकी याद ने आज इतना अधिक व्याकुल कर दिया है। अब तो उनके उत्थान में देर नहीं।

मारे व्याकुलता के देहात के ऊबड़-खाबड़ रास्तों से अपनी मोटरगाड़ी को उछालतेहुए तुम वहाँ 'गरुड़-गति' से पहुँच जाते हो।

व्याकुलता बहुत ज्यादा बढ़ जाती है तो महीनों शहर का मुहँ नहीं देखते। देहात की जटिल समस्याएँ वहीं गर्द और गोबर के घूरों के पास बैठकर सुलझानी पड़ती हैं।

पर तुम्हारे सीधे-सादे रहन-सहन को देहात के अनघड़ लोग बड़े कुतूहल से देखते हैं। तुम उनकी झोंपड़ियों के सामने बैठकर जब चीनी मिट्टी की प्यालियों में शहर से लाईहुई ठंडी चाय और बासी डबल रोटी का—तथा रूखे फलों का सेवन करते हो तब वे तुम्हारी तरफ़ अशिष्टतापूर्वक ताका करते हैं। तुम्हारे इतने महान् त्याग और तप की वे ग्रामीण कुछ भी क़द्र नहीं करते।

तुम्हारे हजामत के सरंजाम को, तुम्हारी साबुनदानी को, ब्रुश को, चम्मच को और तुम्हारे अखबारों और ग्रामीण अर्थशास्त्र की बड़ी-बड़ी किताबों को वे कुछ अजीब-सी दृष्टि से देखते हैं। फिर भी, तुम्हारे दयार्द्र-हृदय में उनके उत्थान की व्याकुलता दिन-दिन बढ़ती ही जाती है।

दुर्भाग्यवश उनकी कुंठित बुद्धि न तुम्हारे विज्ञान-संगत युक्ताहार की बात समझती है, न शास्त्रीय सफ़ाई और स्वास्थ्य की। तुम उन्हें कितनी ही नई-नई बातें सिखाने के लिए गांवों की खाक छानते फिरते हो, पर उनकी जड़ बुद्धि तुम्हारी एक भी बात को ठीक तरह से नहीं पकड़ती।

तुम इसीलि दिन में कई बार उनके आगे दूध और फलों के रस का, केवल उनकी खातिर, सात्विक पान करते हो कि वे तुम्हारे सुन्दर उदाहरण से कुछ तो सीखें। पर उन्हें तो वही पतले-से-पतला मट्ठा और भात का माँड़ पीना ही पसन्द है। उनकी ज्वार-बाजरे या जौ-चने की मोटी-झोटी रोटी क्या तुम्हारी मक्खनयुक्त पावरोटी से कुछ सस्ती पड़ती होगी या वह कुछ अधिक स्वादिष्ट होगी? सेब-संतरे को भी वे अपनी मोटी बुद्धि से रोटी-प्याज के मुक़ाबले में मइँगा या अस्वादिष्ट समझते होंगे, नहीं तो ऐसे स्वास्थ्यप्रद सात्विक आहार की अवहेलना क्यों करते?

तुम गाँव में अपनी नमूने की कुटिया में उनकी खातिर स्थापत्य-कला का जो थोड़ा-सा उपयोग करते हो, उसे भी वे कमबख्त ग्रहण नहीं करते।

तुम यह ठीक ही कहते हो कि गोबर के बीच में रहते-रहते उन ग्रामीणों के दिमाग़ में भी

गोबर भर गया है।

यह तो तुमने जाकर उन्हें बताया कि वे ऐसे गन्दे वातावरण में रहते हैं, जो अनेक रोगों के कीटाणुओं से भरा पड़ा है।

उन भोंदुओं को सफ़ाई और स्वास्थ्य के गुर समझाने में तुम्हें कितना घोर परिश्रम करना पड़ता है, जो अपने घरों को गँदले गोबर से लीपते हैं, कीटाणु फैलानेवाली गायों को अपने सिरहाने बाँधते हैं और बीमार पड़ने पर कठवैद्यों की बताई हरड़-बहेड़े की गोलियों में विश्वास करते हैं!

तुम्हारी यह शोध बिल्कुल ठीक है कि शहर के हृष्ट-पुष्ट लोगों के मुक़ाबले में ग्रामीणों का स्वास्थ्य जो इतना गिरा हुआ दिखाई देता है इसका सबसे जबर्दस्त कारण यही है कि 'जर्म-विज्ञान' से वे सर्वथा बेखबर रहते हैं।

तुम्हारे सम्पर्क में आने से पहले उन्हें इतना भी प्रारम्भिक ज्ञान नहीं था कि संक्रामक रोग के रोगी के पास उठना-बैठना कितना खतरनाक प्रयत्न है।

पहले तो मूर्ख ग्रामीण रोगी को घेरकर उसकी खटिया के पास बैठ जाते थे। रोगी को घर से अलग कर देने का फर्ज़ अदा करना तो तुम्हींने उन्हें सिखाया। इस तरह निर्ममत्व की आध्यात्मिक शिक्षा देकर ग्रामीणों का तुमने सचमुच बड़ा उपकार किया है।

तुम उनके दिमाग़ में से उस सड़न को भी निकाल देने की चेष्टा कर रहे हो, जिसे भूल से धार्मिक वृत्ति का नाम दे दिया गया है।

तुम्हारा यह प्रयास स्तुत्य है कि तुम राष्ट्रीय चेतना लानेवाले नये-नये गीत सिखाकर ग्रामीणों में पुरातन काल से प्रचलित साधु-सन्तों के सड़े-गले नीरस भजनों को उड़ा देना चाहते हो। लोक-गीतों और धार्मिक भजनों में तुम्हें राष्ट्रीय चेतना पैदा करनेवाली शक्ति दिखाई नहीं दी, यही तो तुम्हारी उद्धारक दृष्टि की निर्मलता है।

उन्हें तुम व्रत-उपवास और पूजन-अर्चन-जैसे निरर्थक धार्मिक कृत्यों से विरत कर देना चाहते यह भी तुम्हारा एक सत्प्रयत्न है।

कुछ लोगों की एक ग़लत धारणा है कि ग्रामोद्धारक ग्रामीणों से भी बहुत-कुछ सीख सकता है, अतः उसे ग्रामों में सीखने की भी दृष्टि लेकर जाना चाहिए।

यह तो कुछ वैसी ही बात हुई कि अध्यापक को छात्रों से, वैद्य को रोगियों से और नेता को अपने अनुयायियों से सीखना चाहिए!

जिन ग्रामवासियों को सब-कुछ सीखना-ही सीखना है और सीख-सीखकर ही ऊँचा उठना है वे तुम सिखानेवालों को भला क्या सिखायेंगे? हो सकता है कि वे तुम्हें इस प्रकार की अर्थहीन बातें सिखाने बैठ जायें कि गेहूँ और जौ के पेड़ में क्या अन्तर होता है। उन्हें जो कुछ पुराना-धुराना आता है, उसे भुला देने का प्रयत्न करना ही तुम्हारा परमधर्म है। और इसीलिए उनके तमाम पुराने धार्मिक और सामाजिक मूल्यों को तुम आज ग़लत ठहरा रहे हो। तुम्हारे इस प्रयत्न के परिणाम में तुम्हारी प्रतिष्ठा भी निहित है।

तुम्हें तो अन्त में ग्रामों का चित्र ही बदल देना है; ग्रामवासियों के सनातन काल से चले आये अबतक के जीवन-चित्र को बिल्कुल पोंछ डालना है। इस विराट् कायाकल्प के लिए तुम भारी परिश्रम कर रहे हो।

ग्रामीणों की हर बात की तुम इसीलिए पूछताछ कर रहे हो। उनकी हालत को नापने-तौलने के लिए सैकड़ों प्रश्न तुमने तैयार कर रक्खे हैं। तुम्हारी कुटिया में जाँचसम्बन्धी बीसियों फाइलें रक्खी हैं; दीवारों पर उन्नत देशों के नक्शे टँगे हुए हैं; ग्राम-पुनर्रचना के सैकड़ों ग्रंथ तुमने पढ़े हैं और ढेर-के-ढेर कागज रँग डाले हैं। क्या अपने उद्धार और उत्थान में अब भी वे सन्देह करेंगे?

चूँकि तुम्हें ग्रामीणों का सारा ही चित्र पलट देना है, इसलिए तुम उनके धर्म-स्थान को दफ्तर में, उनके सत्संग को "मीटिंग" में और उनके आनन्द-विनोद को समाज-सुधार के गम्भीर चिन्तन-दिवस में परिणत कर देना चाहते हो।

तर्कवाद के कुठार से उनकी धर्म-श्रद्धा की

जड़ काट डालने का तुम्हारा यह निश्चय प्रशंसनीय हैं। अंध अश्रद्धा का बीजारोपण करके ग्रामों की तुम वास्तव में भारी सेवा कर रहे हो।

ग्रामीण साफ़-ही ग़लत रास्ते पर जा रहे थे। जड़ प्रकृति के साथ परिचय बढ़ाते-बढ़ाते वे खुद भी जड़ बनते जा रहे हैं, यह सत्य तुम्हें वहाँ जाते ही स्पष्ट होगया और प्रकृति से उन्हें हठात् अलग कर दिया। सचमुच उनकी यह कितनी भारी भूल थी कि मानवी सभ्यता से सम्बन्ध न बाँधकर उन असंस्कारियों ने पशु-पक्षियों, पेड़-पत्तियों और खेत-खलिहानों से जाकर नाता जोड़ा! तुमने इस सम्बन्ध में जो सत्प्रयास किया है, उससे ग्रामोद्धार के इतिहास में तुम्हारा नाम अजर-अमर रहेगा।

साहित्य की दिशा-भूल

[विनोबा]

पिछले दिनों एक बार हमने इस बात की खोज की थी कि देहात के सर्वसाधारण पढ़े-लिखे लोगों के घर में कौन-सा मुद्रित वाङमय (छपा हुआ साहित्य) पाया जाता है। खोज के फलस्वरूप देखा गया कि कुल मिलाकर पाँच प्रकार का वाङमय पढ़ा जाता है :—

(१) समाचारपत्र, (२) शालोपयोगी पुस्तकें, (३) उपन्यास, नाटक, काव्य, कहानियाँ आदि, (४) भाषा में लिखेहुए पौराणिक और धार्मिक ग्रन्थ और (५) वैद्यक-सम्बन्धी पुस्तिकाएँ।

इससे यह अर्थ निकलता है कि हम यदि लोगों के हृदय में उन्नति करना चाहते हैं, तो उक्त पाँच प्रकार के वाङमय की उन्नति करनी चाहिए।

पारसाल का ज़िक्र है। एक मित्र ने मुझसे कहा, "मराठी भाषा कितनी ऊँची उठ सकती है यह ज्ञानदेव ने दिखाया; और वह कितनी नीचे गिर सकती है यह हमारे आज के समाचारपत्र सिखा रहे हैं!" (साहित्य-सम्मेलन के) अध्यक्ष की आलोचना का और हमारे मित्र के उद्गार का अर्थ "प्राधान्येन व्यपदेशः" सूत्र के अनुसार निकालना चाहिए अर्थात् उनके कथन का यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि सभी समाचारपत्र अक्षरशः पैसिफिक महासागर की तह तक जा पहुँचे हैं। मोटे हिसाब से परिस्थिति क्या है, इतना ही बोध उनके कथनों से लेना चाहिए। इस दृष्टि से दुःखपूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि यह आलोचना यथार्थ है।

लेकिन इसमें दोष किसका है? कोई कहते हैं सम्पादकों का, कोई कहते हैं पाठकों का, कोई कहते हैं पूँजीपतियों का। गुनाह में तीनों ही शरीक हैं, और 'कमाई का हिस्सा' तीनों को बराबर-बराबर मिलनेवाला है, इसमें किसी को कोई शक नहीं। परन्तु मेरे मत से—अपराधी ये तीनों भले ही हों—अपराध करनेवाला दूसरा ही है, और वही इस पाप का वास्तविक 'धनी' है। वह कौन?—साहित्य की परिभाषा करनेवाला चटोरा अथवा रुचिभ्रष्ट साहित्यकार।

"विरोधी विवाद का बल, दूसरों का जी जलाना, जली-कटी या पैनी बातें कहना, मखौल (उपहास), छल (व्यंग्य), मर्मभेद (मर्म-स्पर्श), आड़ी-टेढ़ी सुनाना (वक्रोक्ति), कठोरता, पेचीदगी, संदिग्धता, प्रतारणा (कपट)"—ये ज्ञानदेव ने वाणी के अवगुण बतलाये हैं। परन्तु हमारे साहित्यकार तो ठीक उन्हीं अवगुणों को 'अलंकार' या साहित्य की सजावट मानते हैं! पिछले दिनों एक दफा रामदास की 'ओछी तबीयतवालों को विनोद भाता है' इस उक्ति पर कई साहित्यिक बहुत गरम हुए थे। रामदास के भावार्थ पर ध्यान देकर, उससे उचित उपदेश

ने के बदले इन लोगों नें यह आविष्कार किया कि रामदास विनोद का जीवन और साहित्य में जो स्थान है, वही नहीं समझ पाये थे। उपहास, छल, मर्मस्पर्श आदि ज्ञानदेव ने अस्वीकार किये, वह भी हमारे साहित्यकार—अपनी साहित्य की परिभाषा के अनुसार—ज्ञानदेव के अज्ञान का ही फल समझेंगे।

ज्ञानदेव या रामदास को राष्ट्र-कल्याण की तड़पन थी और हमारे विद्वानों को चटपटी भाषा की फ़िक्र रहती है, चाहे राष्ट्रघात ही क्यों न होता हो—यह इन दोनों में मुख्य भेद है। हमारी साहित्य-निष्ठा ऐसी है कि चाहे सत्य भले ही मर जाये, साहित्य जीता रहे।

"हे प्रभो, अभीतक मुझे पूर्ण अनुभव नहीं होता है, तो क्या मेरे देव, मैं केवल कवि ही कर रहूँ?"—इन शब्दों में तुकाराम ईश्वर से अपना दुखड़ा रोता है और ये (साहित्यकार) खोज रहे हैं कि तुकाराम के इस वचन में काव्य कहाँ तक सधा है! हमारी पाठशालाओं की शिक्षा का सारा तरीक़ा ही ऐसा है। मैंने एक निबन्ध पढ़ा था। उसमें लेखक ने तुलसीदास की शेक्सपियर से तुलना की थी और किसका स्वभाव-चित्रण किस दर्जे का है इसकी चर्चा की थी। मतलब यह कि जो तुलसीदास की रामायण हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों के लिए—देहातियों के भी लिए—जीवन की मार्ग-प्रदर्शक पुस्तक है, उसका अध्ययन भी यह भला आदमी स्वभाव-चित्रण की शैली की दृष्टि से करेगा। शायद कुछ लोगों को मेरे कथन में कुछ अतिशयता प्रतीत हो, लेकिन मुझे तो कई वार ऐसा ही जान पड़ता है कि इन शैली-भक्तों ने राष्ट्र के शील की हत्या का उद्योग शुरू किया है।

शुकदेव का एक श्लोक है, जिसका भावार्थ यह है कि **"जिससे जनता का चित्त शुद्ध होता है वही उत्तम साहित्य है।"** जो साहित्य-शास्त्रकार कहलाते हैं, और जिनसे आज हम प्रभावित हैं, वे यह व्याख्या स्वीकार नहीं करते। उन्होंने तो शृंगार से लेकर वीभत्स तक विभिन्न रस मान्य किये हैं और यह निश्चित किया है कि साहित्य वही है जिसमें ये रस हों। साहित्य की यह समूची व्याख्या स्वीकार कर लीजिए, उसमें कर्त्तव्य-शून्यता मिला दीजिए, फिर कोई भी बतला दे कि आज के मराठी समाचारपत्रों में जो पाया जाता है, उसके सिवा और कौनसे साहित्य का निर्माण हो सकता है?

घूमते-फिरते

रोज़ की तरह आज सुबह भी घूमने निकला। लौटते वक्त मार्ग में नित्य के घूमनेवाले एक बूढ़े मुसलमान सज्जन और एक हिन्दू युवक की जोड़ी मिली। हिन्दू युवक ने अपनी बात पूरी की थी कि उक्त वृद्ध सज्जन हँसकर बोले—"मेरे वालिद के एक मिलनेवाले थे उनकी बीबी थीं और माँ भी जिन्दा थीं। (किसी बात पर) माँ ने एक दिन बेटे से कहा—"भड़ुए, मैं चिल्लाकर कहती हूँ तो भी नहीं सुनता और बीबी आहिस्ता से कहती है तब भी सुन लेता है।" मैं तेज़ी से चला आ रहा था, इसलिए पीछे की और बात नहीं सुन सका पर इस टुकड़े नें ही कुछ मिनटों के लिए मन को खुराक दे दी। है उलाहना, पर है सरस। बात-बात में कुलीनता का एक रिवाज स्पष्ट होता है, माँ का चिल्लाकर बोलना भी जायज, पर बीबी का तो आहिस्ता बोलना ही बजा है! मेरे अन्दाज़ उक्त वृद्ध सज्जन की उम्र ६५-७० की होगी। इस हिसाब से बात पचास बरस पहले की होनी चाहिए। जान पड़ता है 'मातृदेवोभव' का पाठ उसके पहले खत्म हो गया था, माँ के मुक़ाबले बीवी की ज्यादा सुनने की शिकायत तब जारी हो गई थी। और आज के ज़माने में तो बात माँ की न सुनने या कम सुनने तक ही महदूद नहीं रही बल्कि गालियाँ सुनाने और मारने तक तरक्की कर गई है। प्रगतिशील युग है!

'नया पुराना'

'मारना' व 'मरण देना'

[काका कालेलकर]

[श्री काकासाहब का नीचे लिखा पत्र श्री घनश्यामदासजी विरला से हमने प्रकाशनार्थ ले लिया है। पत्र पढ़ने से स्पष्ट है कि यह प्रकाशन के लिए नहीं लिखा गया था। अगर काकासाहब के वश की बात होती तो वे इसे प्रकाशित ही नहीं करते। लेकिन हमारे आग्रह से उन्होंने संकोच के साथ इसे छापने की इजाजत दी है।

काकासाहब लिखते हैं कि कलकत्ते में जब उन्होंने इस पुस्तक के प्रूफ पढ़े तब इसके बछड़ा-प्रकरण को लेकर उन्होंने वहाँ के पर्युषण-पर्व में अहिंसा का विवरण करते हुए उक्त-प्रकरण का समर्थन किया था। जो समाज श्री दरबारीलालजी और मुनि जिनविजयजी की अहिंसा की कल्पना हजम कर सका वही बछड़े के बारे में साबरमती के तट पर किये गये शुद्ध अहिंसा के प्रयोग का समर्थन सुनकर काफी उत्तेजित हो उठा। जैनियों की अहिंसा मानों पशु-पक्षी और कृमि-कीट को न मारनें तक ही सीमित ह। काकासाहब इस प्रकरण को फिर से छेड़ना नहीं चाहते थे क्योंकि आज उसका कोई प्रयोजन या प्रसंग नहीं है और नाहक का वादविवाद वे पसन्द नहीं करते हैं। किन्तु इस पत्र के छपने से शायद यह चर्चा फिर से छिड़ उठे। उसे टालने के लिए उन्होंने हमारे द्वारा पाठकों से प्रार्थना की है कि उनका यह पत्र पढ़कर उनकी दृष्टि अगर पाठक समझ सकें तो आनन्द की बात है। अन्यथा पाठक इस बछडा-प्रकरण को भूल जायँ और दुनिया में जो मनुष्य-संहार आज चल रहा है उसे बन्द करने के मूलग्राही इलाज की बात सोचें ?

—सम्पादक]

वर्धा, २६-९-४०

"प्रिय घनश्यामदासजी,

कलकत्ते में आपने मुझे आपके 'बापू' के प्रूफ पढ़ने को दिये थे। उन्हें मैं वहाँ पूरा न पढ़ सका। आज ही सुबह अुन्हें पूरा कर सका हूँ। अड़तीस गेली तक का ही भाग आपने मुझे दिया था। बाकी का भाग अिसी के साथ पढ़ लेता, तो आनन्द की पूर्ति होती।

आपने सचमुच अेक अच्छी और अनोखी चीज हिन्दुस्तान को दी है। यह पूज्य बापूजी का चरित्र नहीं बल्कि स्टडी (study) है। अंग्रेजी में अिसका शीर्षक रखना पड़ता—Mahatma Gandhi : a close and intimate study लेकिन 'बापू' शब्द की खूबी और मिठास अुसमें नहीं आती। मैंने तो आपकी पुस्तक का अेक घरू नाम रख दिया है—'बापू-मनन'। संस्कृत में अेक ग्रन्थ है—'वासुदेव-मनन'। अुसी से मुझे यह नाम सूझा है।

आपकी अिस पुस्तक का प्रारम्भ कुछ भारी-भारी-सा लगा। लेकिन आगे बढ़ते ही शैली की प्रसन्नता प्रकट हुअी। कोअी बड़ा रथ चलाते हुअे पहले-पहल कठिनाअी-सी मालूम होती ही है पर अेक बार अुसे गति मिली तो फिर वह अपने ही वेग से आगे बढ़ता जाता है। अथवा यों कहूँ कि अगर किसी गाय को अेक-दो दिन दुहा न हो और तीसरे दिन दुहने बैठें तो पहले-पहल दूध कुछ विशेष गाढ़ा और चिकना निकलता है पर बाद में गो-रस की स्वाभाविकता और सुपाच्यता अुसमें आ जाती है। पढ़ते-पढ़ते आपकी शैली ने मुझे मंत्र-मुग्ध कर डाला। अगर आप हमेशा कुछ-न-कुछ लिखने की आदत डालें तो आपकी शैली का तेज और भी बढ़ेगा। आपकी शैली की मोहिनी अैसी है कि आपके विचार लोगों को Pre-digested food की तरह सेवन करते ही हजम हो जावेंगे। किन्तु मुझे अितना तो कहना चाहिए कि अिस पुस्तक में आपकी सफलता का श्रेय जितना आपकी शैली को है अुससे भी अधिक आपके बापू के अध्ययन को है। आपकी भक्ति अंध नहीं—श्रद्धायुक्त है। अिसीसे सारा निबन्ध सरल, प्रमाणपुष्ट और अुद्बोधक हुआ है।

जैसा कि मैंने कलकत्ते में आपसे कहा था आपकी हिंसा-अहिंसा का आधार आपने गीता से लिया है और अुसी की कसौटी पर आप गांधीजी की अहिंसा को कसते हैं। गांधीजी की अहिंसा समझने के लिअे गीता की अहिंसा से आरम्भ नहीं करना चाहिअे। बापूजी भले ही गीता को अपना जीवन-कोष कहें और अपनी अहिंसा पूर्ण रूप से गीता में पावें किन्तु अुनकी अहिंसा अुनकी अपनी है। भारत के किसी भी धर्म या पंथ में वह पूर्णतया नहीं पायी जाती। हो सकता है कि बापूजी की अहिंसा अुन्हें भारतवर्ष के हृदय से ही मिली हो।

गीता की अहिंसा, जैनियों की अहिंसा, गौतम बुद्ध का अवैर का सिद्धान्त, टॉल्स्टॉय का अप्रतिकार, 'क्वेकर'-लोगों का शान्तिवाद (Pacifism) और बापूजी की अहिंसा अिन सब में साम्य है जरूर; लेकिन, बापूजी की अहिंसा औरों के अुपदेशों में नहीं पायी जाती है। वह अुनकी बिलकुल निजी--बिलकुल मौलिक चीज है और जीवनानुभव में से विकसित हुअी है। बापूजी की अहिंसा निर्भय अजातशत्रु विश्वप्रेमी की अहिंसा है। वैदिक और यौगिक मैत्री-करुणा मुदिता के रूप की है। अगर अुसके लिअे गीता का कोअी श्लोक उपयुक्त है तो वह है:—

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

--गीता १३-२८

बापूजी की अहिंसा अुनके व्यावहारिक और [illegible] अद्वैत से अुत्पन्न हुअी है। मैंने देखा है कि अुन्हें किसी के लिअे द्वेष तो पैदा होता ही नहीं। और किसी का अधःपात देखते ही मानों वह अपना ही अधःपात हो रहा है अैसी आत्मीयता से अस्वस्थ और दुःखी हो जाते हैं।

अहिंसा के अिस अद्वितीय आधार से हम बछड़े के प्रकरण पर विचार करें।

आपने अपने विवेचन में अिस भूमिका को ग्रहण किया है कि जो स्थितप्रज्ञ है वही बछड़े का खून कर सकता है। गीता का जो श्लोक है—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स अिमान्लोकान् न हन्ति न निबध्यते॥

अुसी के आधार पर आपने बछड़ा-प्रकरण का अूहापोह किया है। मेरा ख्याल है अिस सब घटना का सारा किस्सा दूसरी ही दृष्टि से देखना चाहिअे। जब बछड़े की हर तरह से सेवा कर लेने के बाद भी साफ़ दिखाअी दिया कि यह बछड़ा बचनेवाला नहीं है और अब केवल मरण की वेदना का ही अनुभव कर रहा है तब बापूजी ने केवल शुद्ध दया-भाव से प्रेरित होकर अुस बेचारे के दुःख का अन्त करने का निश्चय किया। पू० बापूजी ने अपना निश्चय प्रकट करके हम आश्रमवासियों की भी राय पूछी। हममें से किसी का यह दावा था ही नहीं कि हम स्थितप्रज्ञ हो चुके हैं। मैंने पू० बापूजी से कहा कि अपनी राय देनें के पहले मुझे गोशाला में जाकर बछड़े की हालत अपनी आँखों से देखनी चाहिअे। जब मैं गोशाला पहुँचा तब बछड़ा असह्य वेदना से संज्ञाहीन होकर निश्चेष्ट पड़ा था। पहले तो मैंने समझा बेचारा सो रहा है, अिसे जहर देने की क्या आवश्यकता है? पर थोड़ी देर में ही अुसकी वेदना फिर से उठ खड़ी हुअी। ज़मीन पर पड़ा-पड़ा वह अपने पैर पटकने लगा अुसकी वेदना चुपचाप देखते रहना भी क्रूर कर्म था। मैंने तुरन्त अपनी राय दी कि बछड़े को **मरण देना** ही चाहिअे।

किसी को 'मारना' अेक चीज है, 'मरण देना' दूसरी चीज है। प्यासे को हम पीने के लिअे पानी देते हैं, भूखों को अन्न देते हैं, थके को सोने की सुविधा कर देते हैं, डरेहुअे को आश्वासन देते हैं, बीमारों को दवा देते हैं; अिसी तरह जिसे अन्तिम वेदनाअें होती हों, अुसको अुसी के हित के लिअ हम मरण और शान्ति देते हैं। मरण देकर ही हम अुसे (दुःख से) बचा सकते हैं।

अैसी समाज-सेवा करना, अपना अुत्तरदायित्व समझनेवाले हर अेक विचारवान सज्जन का धर्म है। अिस धर्म के पालन के लिअे स्थित-

प्रज्ञ की अूँचाई तक पहुँचने की आवश्यकता ही नहीं है। जिस तरह आजकल के दंत-वैद्य सलाह देते हैं कि हमारा दाँत ठीक हो सकता है या अुसे निकाल ही देना पड़ेगा या जिस तरह डॉक्टर राय देता है कि सड़ाहुआ पाँव दवा से ठीक हो जायेगा या अुसे काटना ही होगा, अुसी तरह अमुक शरीर बच सकता है या अुसे तो मरण देना ही श्रेयस्कर है—यह भी कोअी सुयोग्य डॉक्टर मरीज के स्नेही साथियों या सगे-सम्बन्धियों के साथ सलाह करके निश्चित कर सकता है। जब शरीर के टिकने की आशा ही न रही तब अुसे वेदना सहन करने देने की अपेक्षा अुसे मरण देकर शान्ति देना ही अधिक अच्छा है।

निस्सन्देह कभी-कभी अैसे निर्णय में भूल भी हो सकती है। लेकिन, भूल तो दवा करने में या नश्तर लगाने में भी हो सकती है! भूल होने के डर से अगर हम चिकित्सा ही न करें, तो वह सबसे बड़ी भूल होगी।

बालकों के लिअे माँ-बाप ही निश्चय कर सकते हैं कि दवा दी जाय या नहीं। पशुओं के बारे में अुनके **पालक ही** फैसला कर सकते हैं कि अमुक पशु को मरण देने की आवश्यकता है या नहीं।

मनुष्य-प्राणी के लिअे मरण का निश्चय करने के पहले हम मरीज से पूछ सकते हैं और वह भी स्वयं अपनी अिच्छा व्यक्त कर सकता है। पशुओं के प्रति हम अितने नाजुक होकर सोच नहीं सकते। अच्छे समाज में अपना अुत्तरदायित्व समझकर मरण देने की बात अुतनी ही स्वाभाविक और साधारण होनी चाहिअे जितनी कि आहार, दवा और आराम देने की बात होती है।

किसी प्राणी का देहान्त होना कोअी बड़ा कष्ट है अैसा हम क्यों मानें? जैसे जीने के लिअे हम मदद करते हैं वैसी ही मरण पाने में भी मदद हो सकती है।

आज की दुनिया में जैसे लोभ, अीर्षा, मत्सर, द्वेष आदि दोष बेहद बढ़ गये हैं अुसी तरह जीने-जिलाने का मोह भी हद से ज्यादा हो गया है।

हिंसा करते समय मनुष्य किसी के अस्तित्व से अूब जाता है और अुसे खत्म करने में अपना लाभ देखता है। मरण देने में शुद्ध दया-भाव और सेवा-भाव ही होता है। अिस कर्तव्य के पालन के लिअे अेक क्षण की भी स्थितप्रज्ञ-अवस्था तक पहुँचने की आवश्यकता नहीं है। किसी के अैसे मरण की जिम्मेवरी अपने सिर पर लेना कोअी असाधारण बात नहीं होनी चाहिअे। अितनी हिम्मत कोई भी विचारवान आदमी कर सकता है।

कुछ लोग कहते हैं कि मत्यु अेक अैसी आत्यंतिक वेदना है कि अुसके सामने साधारण सी वेदना तो कोअी चीज ही नहीं है। लेकिन अुससे यह नहीं सिद्ध होता कि मरण देने से हम अुस प्राणी की वेदना को बढ़ा रहे हैं। अगर मृत्यु में आत्यंतिक वेदना है तो हम अुसे किसी भी हालत में टाल नहीं सकते। मरण दो घंटे जल्दी देने से जीवन-द्रोह नहीं होता है—और बेचारे प्राणी की वेदना भी हम कुछ घंटे कम कर सकते हैं।

मेरी समझ में मेरी विचार-प्रणाली स्वाभाविक और सहजग्राह्य है। मनुष्य-जाति में मरण के बारे में जो कायरता आ गयी है अुसी के कारण अुक्त विचार भयानक-सा प्रतीत होता है। हम मरण की जिम्मेवरी ले ही नहीं सकते, अैसा कहना अुसी कायरता का अेक भिन्न रूप है।

अिस दृष्टि से सोचकर बछड़ा-प्रकरण का अपना विवेचन कृपया फिर से पढ़ें। '**यस्यनाहं-गतो भावो**' गीता का यह श्लोक किसी का घात करने की—वध करने की—अिच्छा के साथ जाता है। बछड़ा-प्रकरण में तो केवल अंतिम वैद्यक सहायता देने का ही सवाल था।

फिर से हिन्दुस्तान को अेक सुन्दर और अुद्बोधक पुस्तक देने के लिअे आपका अभिनन्दन करता हूँ। पत्र बड़ा हुआ है अिसके लिअे क्षमा-प्रार्थी हूँ।

आपका
काका कालेलकर

आज की हिंदी-कहानी

[सन्तोषकुमार]

[प्रस्तुत लेख लेखक द्वारा उदयपुर में होनेवाले राजस्थान प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की साहित्य-परिषद् में पढ़ा गया था। सभापति और श्रोताओं ने उसे पसन्द किया था।

—सम्पादक]

यद्यपि आज के हमारे पत्र कहानियों से भरे पड़े मिलते हैं दो-तीन पत्र तो सिर्फ कहानियाँ ही छापते हैं पर आज के कहानी-साहित्य में कोई प्रगति दिखाई नहीं दे रही है। पिछले छः वर्षों में हिन्दी-साहित्य के दूसरे अंगों ने भले तरक्की भी हो, पर कहानी-साहित्य में तो वही स्थिरता और शून्यता है। स्वर्गीय प्रेमचन्द के बाद तो मानो कहानी-साहित्य डूबने-सा लग गया हैं।

फिर कहनियाँ इतनी अधिक भी क्यों? इसलिए कि हम जीवन की कठिनाइयों से बचना चाहते हैं? मुहँ चुराना चाहते हैं? हम इस भ्रम और भ्रान्ति में हैं कि साहित्य का सब से सीधा और सरल अंग कहानी है। यह भ्रम अब दूर होना चाहिए। न होगा तो हमारा कहानी-साहित्य और भी ख़तरे में पड़ जायगा। अपनी असफल और अपूर्ण इच्छाओं के प्रकटीकरण का सीधा मार्ग हमारे आज के लेखकों ने कहानी मान लिया है!

कथानक

हमारी कहानियों के कथानक तो प्रायः प्रेम-लीलाओं और अठखेलियों तथा विरह के वर्णनों तक ही सीमित हैं। ऐसी भी अर्थहीन कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते हम थक गये हैं, जिनमें कथानक कुछ भी नहीं हैं, जो है सो केवल शब्द-जाल ही। एक प्रोफेसर की पत्नी से दूसरा प्रोफेसर प्रेम करे और वह पत्नी स्वयं विश्वास-घातक बनें और अन्त में एक आत्म-हत्या करे और दूसरा डूब मरे यही हाल है, तो बेचारे उन लेखकों ने, जिन्होंने तिलस्मी कहानियाँ रचीं, प्रेम-वियोग की बातें लिखीं, गुलो-बुलबुल की दास्तानें रचीं, क्या गुनाह किया था? आज हम उन प्रेम-वियोग की कहानियों को झूठे यथार्थवाद की आड़ में जाकर बहुत बड़ा महत्त्व दे डाल रहे हैं।

कहानियों में मनोविज्ञान

प्रेमचन्दजी की आशा थी कि—"आधुनिक हिन्दी-कहानियों का आधार मनोवैज्ञानिक होगा!" मुझे तो वह निष्फल होती दीख रही है। आज की कोई कहानी उठाकर यों कहने की हिम्मत ही नहीं की जा सकती कि यह मनुष्यों के मनोविचारों या मनोभावों को स्पष्टतया अंकित करती है।

आज हिन्दी के किसी अच्छे पत्रको उठा लीजिए और देखिए तो किसी कहानी के ऊपर लिखा मिलेगा—एक बहुत सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानी। आज प्रत्येक कहानी को "मनोवैज्ञानिक" कहा जा रहा है। याद आता है कि कोई छः महीने पहले एक कहानी-संग्रह की आलोचना करते हुए एक आलोचक ने "हंस" में लिखा था कि सब कहानियाँ **"सूक्ष्म मनोविज्ञान की समस्याओं को लिये हुए हैं।"** पढ़ने पर वे कहानियाँ विरह, आत्महत्या आदि इन्हीं पुराने कथानकों पर नये शब्दों में लिखी कहानियाँ निकलीं। हमारे हिन्दी-कहानी–लेखकों ने "मनोविज्ञान" शब्द ही को लाञ्छित कर दिया है।

प्रेमचन्द जी ने एक जगह लिखा है—"वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय **समझती** है।" उस महान कलाकार ने किस बड़ी आशा और जिम्मेदारी से यह बात कहने का साहस किया होगा! कहानियाँ दुखान्त हों अथवा सुखान्त, स्वाभाविक और यथार्थ तो हों। मनोविज्ञान की आड़ लेकर छिछली कहानियों को नाजायज़ महत्व देकर हम अपने को धोखा देते हुए समाज को छलते हैं।

इतना ही नहीं, हम अपने साहित्य की दूसरे साहित्यों के सामने क़द्र घटाने में कारण बनते हैं।

प्रगति-रोध

यह प्रगति क्यों रुकी है ? इसका उत्तर निर्मल आकाश की तरह स्पष्ट है। हमारे कहानी लेखकों में न तो कोई खास अध्ययन है और न उन्होंने कभी अध्ययन करने की चिन्ता तक की है। जब मैं बँगला और अंग्रेज़ी की कहानियाँ पढ़ता हूँ तो सर घूम जाता है हमारी स्थिति का भान होते ही ! जीवन के विविध दृष्टिकोणों पर लिखी गई बँगला कहानियाँ अंग्रेज़ी की अच्छी कहानियों से टक्कर ले गई हैं। शरत् की "सुमति" ही पढ़ देखिए। इतनी सीधी-सादी भाषा में इतनी सुन्दर कहानी हिन्दी में कोई लेखक अब तक नहीं लिख सका है। हमारे लेखक बड़े-बड़े और मधुर शब्दों के जाल में फँस जाते हैं और मुख्य वस्तु—भाव—को न जाने कहाँ ओझल कर देते हैं। बात यह है कि हमारे कहानी-लेखकों में भाव बहुत कम है, क्योंकि न तो पुस्तकीय अध्ययन ही है और न .जीवन के विविध विषयों का पूर्ण ज्ञान ही !

हमारा कहानी-साहित्य बँगला कहानी-साहित्य का ऋणी है। लेकिन बँगला के कहानी-लेखक सच्चे लेखक हैं। उनमें अध्ययन है, समझ है, लिखने का अच्छा तरीका है। उन्होंने मन में उठते भावों को तथा उसके परिणाम स्वरूप कीगई क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को समझा है और वैसे ही बिना कृत्रिमता के चित्रित किया है, अतः उनमें सजीवता है। हमारे कुछ अनुभवहीन अध्ययनहीन लेखकों ने बँगला-लेखकों का अनुकरण करना—अनुकरण ही नहीं, अन्ध और ग़लत अनुकरण आरम्भ किया। बँगला की कहानी-कला को समझा ही नहीं। हमारी हिन्दी की कहानियों के अधिकतर कथानक बँगला कथानकों के बिगड़े स्वरूप हैं। जैनेन्द्र की "भाभी", सेंगर की "दीदी", भगवती प्रसाद वाजपेयी की "पीपल का वृक्ष" ये सब बँगला कथानकों के बिगड़े रूप हैं। हालाँकि जैनेन्द्र की "भाभी" और दो से अधिक अच्छी है, पर है वह अन्धानुकरण। दूसरों की रोटी पर कब तक आस लगाये रहें ? अपने पैरों पर खड़ा होने का समय तो हिन्दी-साहित्य में बहुत पहले से आ चुका, पर हमारे लेखकों के कान पर जूँ न रेंगी क्योंकि उनके पास तो बना-बनाया मसाला तैयार रहता है, केवल शब्दों के फेरफार के साथ उसे पत्रों में भेजना है। फिर इतनी तक़लीफ़ उठाए कौन ? इस प्रवृत्ति को अब विदा देनी पड़ेगी, नहीं तो उद्धार का कोई रास्ता नहीं रहता।

अध्ययन की कमी हमें मानव-जीवन की या मनोविज्ञान की सूक्ष्म समस्याओं पर पहुँचने नहीं देती। कोशिश करते ही सर चकराता है। यही कारण हमारे छिछले होने का है।

प्रेमचन्द और प्रसाद के अतिरिक्त मैंने जैनेन्द्र को पढ़ा। देखा कि जैनेन्द्र ने जीवन की समस्याओं को देखा है, पर समझा ग़लत है। उन्होंने जीवन में नंगापन ही अधिक देखा है। यह बुरा नहीं, पर उन्होंने इस तरीके से उसे व्यक्त किया है कि वह अस्वाभाविक और अयथार्थ-सा जँचता है। उनकी "एक रात" कहानी मेरे कथन की पुष्टि कर देगी। इनकी कहानियों में नवीनता है। उनकी कहानियों ने मनोविज्ञान को छुआ है, पर बहुत थोड़ा छुआ है।

श्री भगवतीचरण वर्मा की कहानियों में मैंने एक गुण पाया है। बिना किसी शब्दाडंबर के सीधी-सादी भाषा में उन्होंने अपनी कहानियाँ लिखी हैं जो स्वाभाविक ही मन को छू जाती हैं। कहानियों में मनोविज्ञान और मनुष्य के जीवन के पहलुओं पर सूक्ष्म प्रकाश भले न पड़ा हो, पर वे कहानियाँ, ऐसा मालूम होता है कि जैसा अनुभव किया गया है वैसे ही लिखी गई हैं। लेखक ने कृत्रिमता से बचने की पूरी कोशिश की है।

कल्पना, प्रकृति-वर्णन व अन्य वर्णन

हमारी कहानियों में प्रकट की हुई कल्पना भी इतनी होती है कि पढ़कर तरस-सा आता है! हमारे वर्णन ऐसे नीरस होते हैं कि ऊब जाना पड़ता है और कभी-कभी तो क्या, अक्सर कहानी बिना अन्त तक पहुँचे ही अलग रख देनी पड़ती है।

कल्पना की कमी तो इसी से प्रकट हो रही है कि हमें कहानी के लिए विभिन्न कथानक खोजने में कठिनाई होती है। कल्पना बिना आधार के कैसे परिमार्जित और विकसित हो? हमारी हिन्दी-कहानियों में गहराई तो खोजे नहीं मिलती; सतह के ऊपर ही ऊपर तैरने में इसने अपना गौरव मान रखा है।

जैनेन्द्र की "खेल" नामक कहानी में प्रकृति वर्णन बड़ा स्वाभाविक मिलता है। जनार्दनराय की कहानियों में भी प्रकृति के बड़े सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन आये हैं। प्रकृति-वर्णन श्री विनोदशंकर व्यास की कहानियों में भी हैं। उनके वर्णन अच्छे लगे।

पर आज के नये कहानी-लेखक की एकरसता (monotony) तो मानो जड़ता से कम नहीं। उनके प्रकृति-वर्णन में कोई सजीवता नहीं और सौंदर्य नहीं। प्रकृतिवर्णन के साथ-साथ आज की कहानी खुलती है। पर देखिए कितना मरता-सा वर्णन है—

"आकाश उस दिन मेघाच्छन्न था। बड़ी विकट घनगर्जना हो रही थी। बिजली जोर जोर से चमककर विलीन हो जाती थी।" अधिकतर कहानियों के वर्णन कुछ इसी तरह के होते हैं। सूर्योदय का वर्णन करना हो तो—"सूरज उग रहा था", सूर्यदेव अपनी यात्रा पर रवाना हुआ" आदि-आदि एक से रहेंगे। अब टैगोर के द्वारा चित्रित एक प्रकृति-वर्णन देखिए—

"खिड़की के सहारे अनन्त की यात्रिणी की भाँति निस्तब्ध नीरव रात्रि चुपचाप खड़ी थी—और उसके तारे—जिन्होंने युगयुगान्तर के असंख्य मरण-दृश्यों को आँखों देखा था—उसमें से भीतर झाँकने लगे।"

यह बँगला से अनुवादित है, पर देखिए कितनी सजीवता है! कितना भावपूर्ण यह वर्णन है!!

पूछा जा सकता है कि क्या हिन्दी में ऐसी कोई कहानी है जिसमें वस्तुस्थिति का कल्पना के साथ स्वाभाविक सामंजस्य हो? मैं कहूँगा, है। "बच्चन" की "निशा-निमंत्रण" पढ़ते समय पहले ही पहले एक कहानी पढ़ने को मिली थी। वह ऐसी कहानी का उत्कृष्ट नमूना है।

अँग्रेज़ी में मैंने कई कहानियाँ पढ़ीं और प्रत्येक लेखक ने प्रत्येक वर्णन को एक नये ही तरीके से पाठकों के सामने रक्खा है। हिन्दी-कहानी में इस मौलिकता की पूरी-पूरी ज़रूरत है। वह पूरी होनी चाहिए।

आज-कल हिन्दी में कई सुन्दर और पूर्ण कहानियाँ ज़रूर लिखी गई हैं, पर हाँ वे नामी लेखकों के नाम से सामने नहीं आई हैं। पत्रों में जिन आधुनिक लेखकों के लिए ढिढोरा पीटा जाता है उनकी कहानियाँ पढ़कर तो निराशा ही हुई। हाँ, अ-नामी लेखकों की कहानियाँ पढ़कर सन्तोष हुआ, राहत मिली! वर्ष में एक-दो बार बिजली की तरह चमककर लीन हो जानेवाले लेखक मैंने देखे हैं। दो-तीन वर्षों पहले 'विशाल-भारत' में छपी श्री रामकृष्ण गर्ग की "रूप" शीर्षक कहानी की बराबरी आज की, याने बाद में लिखी, कोई कहानी कर सके, इसमें मुझे सन्देह है। वैसी यदि महीने में पाँच कहानियाँ ही लिखी जा सकें तो कहानी-साहित्य का अवश्य कल्याण होगा।

——

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

[नारायणदत्त पाण्डे]

सम्वत् १९६७ वि० में हिन्दी भाषा तथा साहित्य का उत्थान और हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि का प्रचार—इन दो उद्देश्यों को लेकर प्रयाग में जिस सम्मेलन की स्थापना हुई थी वह आज-दिन एक बहुत बड़ी सजीव संस्था है। समस्त भारतवर्ष के अतिरिक्त नैपाल और ब्रह्मदेश तक आज उसका कार्यक्षेत्र है और इस समय सम्मेलन के साथ देश की पैंतालीस संस्थाएँ सम्बद्ध हैं।

सम्मेलन का कार्य पृथक्-पृथक् विभागों में बँटाहुआ है जो एक समिति के द्वारा चलाया जाता है। साहित्य-समिति, संग्रह-समिति, प्रचार-समिति, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति तथा विश्व-विद्यालय-परिषद् अपना-अपना कार्य पृथक् रूप से करती हैं। शासन-सम्बन्धी तथा अन्य साधारण कार्य कार्य-समिति द्वारा संचालित होते हैं। विशेष महत्त्वपूर्ण विषय स्थायी समिति द्वारा तय होते हैं। स्थायी समिति सम्मेलन की सबसे बड़ी समिति है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति को छोड़कर अन्य सभी समितियों की कार्यवाही सम्मेलन के केन्द्रीय कार्यालय प्रयाग से ही होती है। सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन प्रतिवर्ष देश के विभिन्न स्थानों में हुआ करते हैं।[१]

सम्मेलन की **साहित्य-समिति** निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयत्न करती है—

(१) हिन्दी-साहित्य के सब अंगों की पुष्टि तथा उन्नति करना।

(२) नागरी-लिपि को मुद्रणसुलभ तथा लेखनसुलभ बनाने की दृष्टि से उसे अधिक विकसित करना।

(३) हिन्दी भाषा को अधिक सुगम, मनोरम, व्यापक और समृद्ध बनाने के लिए समय-समय पर उसके अभावों को पूरा करना और उसकी शैली और त्रुटियों का संशोधन करना।

(४) हिन्दी के ग्रन्थकारों, लेखकों, कवियों, पत्र-सम्पादकों, प्रचारकों और सहायकों को समय-समय पर उत्साहित करने के लिए पारितोषिक, प्रशंसापत्र, पदक, उपाधि आदि से सम्मानित करना।

(५) हिन्दी-साहित्य की वृद्धि के लिए उपयोगी पुस्तकें लिखवाना और प्रकाशित करना।

(६) हिदी भाषा और साहित्य-सम्बन्धी अनुसन्धान का प्रबन्ध करना।

साहित्य-समिति उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भरसक प्रयत्न करती रही है। उद्देश्य (५) के अनुसार समिति ने सुलभ-साहित्य-माला साधारण पुस्तकमाला, बाल-साहित्य-माला, वैज्ञानिक-पुस्तक-माला, साहित्यरत्न-माला तथा देव-पुरस्कार-ग्रन्थावली में कई उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन किया है और इन मालाओं के अतिरिक्त फुटकर रूप से भी कई ग्रन्थ निकाले हैं।

उत्कृष्ट साहित्य के प्रोत्साहन के लिए सम्मेलन द्वारा प्रतिवर्ष (१) मंगलाप्रसाद पारितोषिक (१२००)), (२) सेकसरिया पारितोषिक (५००)), (३) मुरारका पुरस्कार (५००)), (४) रत्नकुमारी पुरस्कार (२५०)), (५) राधामोहन गोकुलजी पुरस्कार (२५०)) व (६) नारंग पुरस्कार (१००)) हिन्दी की अच्छी-अच्छी पुस्तकों पर दिये जाते हैं।

संग्रह-समिति का उद्देश्य हिन्दी की हस्तलिखित और प्राचीन सामग्री तथा हिन्दी भाषा और साहित्य के निर्माताओं के स्मृतिचिन्हों की खोज करना और इनके तथा प्रकाशित पुस्तकों

---

[१] **सम्मेलन का आगामी २९ वाँ अधिवेशन महाराष्ट्र प्रान्त के पूना नगर में २५ से २९ दिसम्बर १९४० को युक्त प्रान्त के भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्दजी के सभापतित्व में होने जा रहा है।**

के संग्रह और रक्षा के निमित्त सम्मेलन की ओर से एक वृहत् संग्रहालय की व्यवस्था करना है। संग्रहालय के लिए एक विशाल भवन सम्मेलन के पास बन चुका है किन्तु अभी इस भवन को वास्तविक संग्रह-भवन का रूप देना शेष है। इस समय संग्रहालय में लगभग ९००० प्रकाशित पुस्तकें, २०० से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ तथा कई साहित्यसेवियों और विद्वानों के विविध स्मृति-चिन्ह संग्रहीत हैं। संग्रहालय के अन्तर्गत एक वाचनालय भी है जिसमें हिन्दी की प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। संग्रहालय की पुस्तकों तथा अन्यान्य संग्रहणीय वस्तुओं की संख्या-वृद्धि के लिए हिन्दी-प्रेमी सज्जनों, हिन्दी के प्रकाशकों तथा पत्रकारों की सहायता अपेक्षित है।

प्रचार-समिति का कार्यक्रम निम्नलिखित उद्देश्यों को दृष्टि में रखतेहुए संचालित होता है—

(१) हिन्दीभाषी प्रान्तों, और देशी राज्यों की पाठशालाओं, कालेजों, विश्वविद्यालयों, म्यूनिसिपैलिटियों और अन्य संस्थाओं, समाजों, जनसमूहों तथा व्यापार, जमींदारी और अदालत के कार्यों में देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रचार का उद्योग,

(२) सारे देश के युवकों में हिन्दी के प्रति अनुराग उत्पन्न करने और बढ़ाने का प्रयत्न, और

(३) जहाँ आवश्यकता समझी जाय वहाँ पाठशाला, समिति तथा पुस्तकालय स्थापित करने और कराने का उद्योग तथा इस प्रकार की वर्तमान संस्थाओं की सहायता करना

प्रचार-समिति अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिकांशतः सम्मेलन की सम्बद्ध संस्थाओं तथा प्रान्तीय सम्मेलनों द्वारा प्रयत्न करती है। इस समय कई संस्थाएँ अच्छा प्रचार-कार्य कर रही हैं।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति प्रचार-समिति के द्वितीय तथा तृतीय उद्देश्यों के अतिरिक्त देशव्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ करने के लिए राष्ट्र-लिपि देवनागरी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार का भी प्रयत्न करती है। इस समिति का कार्य-संचालन वर्धा से होता है। अहिन्दी प्रान्तों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करना समिति का प्रधान उद्देश्य है। इसके लिए समिति द्वारा कई राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाएँ (प्रारंभिक, प्रवेश, परिचय तथा कोविद) भी ली जाती हैं। इन परीक्षाओं से अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का अच्छा प्रचार हुआ है और सुदूर दक्षिण, बंगाल तथा असम-जैसे प्रदेशों में भी हिंदीविदों की संख्या में अच्छी वृद्धि हो रही है। पिछले वर्ष इन परीक्षाओं में सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थियों की संख्या ११८८५ थी, जिनमें से ९५४७ सफल हुए।

सम्मेलन का **हिन्दी विश्वविद्यालय** हिन्दी के माध्यम द्वारा उच्च परीक्षाओं का संचालन करता है। इस समय **उत्तमा (साहित्यरत्न, विज्ञानरत्न), मध्यमा (विशारद)** प्रथमा, कृषिविशारद, वैद्यविशारद, शीघ्रलिपिविशारद, सम्पादनकला विशारद, आरा व जनवीसी तथा मुनीमी परीक्षायें विश्वविद्यालय द्वारा ली जाती ह। परीक्षा-संचालन का कार्य सम्मेलन ने संवत् १९७१ से प्रारम्भ किया था। तबसे कितने ही 'रत्न' और 'विशारद' सम्मेलन से निकल चुके हैं। सम्मेलन की परीक्षाओं का प्रचार बड़ी शीघ्रता से बढ़ता जा रहा है। इन परीक्षाओं की पढ़ाई के लिए प्रयाग, आगरा, पटना, बरहज (गोरखपुर), वर्धा, इन्दौर, काशी और कलकत्ता में समुचित प्रबन्ध है।

सम्मेलन बराबर इस बात का ध्यान रखता आया है कि परीक्षाओं का तल ऊँचा रहे। 'रत्न' परीक्षा का तल अन्य विश्वविद्यालयों की एम० ए० के बराबर ही रखा गया है और 'विशारद' का बी० ए० के बराबर। बिहार की प्रान्तीय सरकार ने सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षाओं को क्रमशः मैट्रिक, इंटरमीजिएट तथा बी० ए० परीक्षाओं के समकक्ष मान लिया है।

युक्तप्रान्तीय इंटरमीजिएट बोर्ड तथा दिल्ली बोर्ड द्वारा भी सम्मेलन की मध्यमा (विशारद) परीक्षा इस अर्थ में सम्मानित हो चुकी है कि इस परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र उक्त

बोर्डों की हाई स्कूल परीक्षाओं में केवल अंग्रेजी विषय लेकर सम्मिलित हो सकते हैं, जिसमें पास हो जाने पर उन्हें हाई स्कूल का प्रमाणपत्र प्राप्त हो जायगा।

सम्मेलन की वैद्यविशारद परीक्षा यू० पी० इण्डियन मेडिसिन बोर्ड द्वारा सम्मानित हो चुकी है।

मध्य प्रान्तीय सरकार, ग्वालियर, इन्दौर तथा अन्य देशी राज्यों ने भी सम्मेलन की परीक्षाओं को प्रोत्साहन देना प्रारम्भ किया है। आशा है कि निकट भविष्य ही में ये परीक्षाएँ पूर्ण रूप से सम्मानित हो जायँगी।

सम्मेलन ने हिन्दी शीघ्रलिपि के शिक्षण का भी प्रबन्ध किया है। इसके लिए दो प्रकार का आयोजन किया गया है—(१) विद्यार्थी सम्मेलन के शीघ्रलिपि विद्यालय में प्रविष्ट होकर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं या (२) डाक से भी उन्हें शिक्षा दी जा सकती है। पिछले वर्षों में सम्मेलन ने कई 'शीघ्रलिपि विशारद' तैयार किये हैं, जो इस समय अच्छे-अच्छे स्थानों पर काम कर रहे हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भारतवर्ष-भर में अपने ढंग की सबसे बड़ी संस्था है। अपने जन्मकाल से आजतक इसने हिन्दी की कितनी बड़ी सेवा की है—यह जानकारों से छिपा नहीं है।

अपने उद्देश्यों की पूर्ति में उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है और उसका भविष्य और भी उज्ज्वल दिखाई देता है।

हिंसा व अहिंसा

[हरिभाऊ उपाध्याय]

हिंसा व अहिंसा मनकी भावना—मनकी दशा है।

परमात्मा जब सृष्टि-रूप हुआ तो एक से दो नहीं, अनेकरूप हो गया। उसके ये विशेष रूप एक दूसरे से टकराते हैं तो हिंसा की और जब मिलते हैं तो अहिंसा की भावना दर्शाते हैं।

टकराना अस्वाभाविक और ऊपरी, मिलना स्वाभाविक व असली प्रवृत्ति है।

जब मूल को गौणता और ऊपरी भेदों को महत्त्व देते हैं तो परस्पर टकराते हैं; जब मूल को पकड़ रखते हैं और बाह्य भेद-भाव की परवा नहीं करते तब एक दूसरे से मिलते हैं।

जब मूल को भूल जाते हैं और भेदों को असल मानने लगते हैं तब हिंसा अत्याचार बन जाती है; विश्व की विविधता जब प्रेम के बदले भय उपजाती है तब अहिंसा कायरता हो जाती है।

अत्याचार व कायरता एक सिक्के के दो पहलू हैं। कायर स्वरक्षा में अत्याचारी बनता है। अत्याचारी बड़े अत्याचारी के सामने कायर हो जाता है।

अत्याचारी व कायर दोनों का मूल विश्वास एक ही होता है—बाह्य या भौतिक साधनों रक्षा करना; अहिंसक का विश्वास होता है आत्म-बल से रक्षा करना।

भौतिक बल की तात्कालिक तीक्ष्णता हिंसक को फुसलाती और फँसाती है; आत्मिक बल की सतत निश्चित सफलता अहिंसक को उत्साहित करती है।

शस्त्र बल का नहीं, भय का चिह्न है। क्षमा कमजोरी नहीं, शौर्य है। शस्त्र दबाता है, क्षमा उठाती है।

हिंसा दोनों पक्षों को पशु और अहिंसा मनुष्य बनाती है—हिंसा विकृति और अहिंसा संस्कृति है।

सृष्टि समाप्त हुई तो हिंसा-अहिंसा भी समाप्त हुई। परमात्मा के पास हिंसा-अहिंसा की भाषा नहीं है; वहाँ द्वन्द्व ही नहीं है।

कायरता से हिंसा की ओर बढ़ना प्रगति हिंसा से अहिंसा की ओर बढ़ना संस्कृति अहिंसा से आत्मा की प्रतीत करना मुक्ति है।

प्रस्तुत प्रश्न

हिन्दी-साहित्य में विश्व-कवि

बात अधिक पुरानी नहीं है। मेरे एक साहित्यिक मित्र ने पूछा, "हिन्दी के किस वर्तमान कवि को आप विश्व-कवि मानते हैं ?" मैंने उत्तर दिया, "वर्तमान हिन्दी-साहित्य में तो मेरे दृष्टि-कोण से कोई भी विश्व-कवि नहीं है।" साथ ही अचानक मेरे मुहँ से निकल गया, "मुझे तो अभी बीस वर्ष तक भी हिन्दी में विश्व-कवि के जन्म के आसार दिखाई नहीं देते।

बात वहीं समाप्त होगई, किन्तु मस्तिष्क इस कटु सत्य के विचार से छुटकारा न पा सका। इस बात को लगभग आठ महीने हो गये किन्तु इतने दिनों गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद, आजभी मुझे अपनी इस धारणा में किसी प्रकार के संशोधन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। विश्व-कवि की बात तो दूर की है, मैं पूछता हूँ कौन-सा वर्तमान हिन्दी-कवि भारतीय संस्कृति का हमारे राष्ट्रीय जीवन तथा संघर्ष का सजीव तथा पूर्ण चित्र अपनी रचनाओं में उपस्थित कर पाया है? अधिक से अधिक कुछ वर्तमान कवियों को हम हिन्दू संस्कृति का प्रतिनिधि-कवि कह सकते हैं।

हिन्दी राष्ट्र-भाषा बन चुकी है। अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार हो रहा है। जितनी पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी में निकल रही हैं, उतनी भारतवर्ष की और शायद किसी भी भाषा में नहीं निकलतीं। फिर भी हम अभी तक ऐसे साहित्यिक के लिए मार्ग तैयार नहीं कर सके हैं जो संसार को संदेश दे सकता, संपूर्ण मानव-समाज जिसे पाकर अपने को धन्य मानता या कम से कम समूचे राष्ट्र का प्रतिनिधि जिसे कहा जा सकता। यह हमारा और राष्ट्र-भाषा का कितना बड़ा दुर्भाग्य है !

इस स्थिति का कारण क्या है, इस प्रश्न पर हमें विचार करना होगा। वर्तमान हिन्दी-साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अभी तक इसकी जड़ हमारे दैनिक वास्तविक जीवन में गहरी नहीं गई हैं (प्रेमचन्द जी आदि कुछ अपवाद भी हैं)। हमारे साहित्य में कल्पना तथा भावुकता का अंश अधिक रहा है, अनुभूति का कम। जो-कुछ हमने लिखा उसके प्रति निजी जीवन में हमने सच्चा रहने का प्रयत्न नहीं किया। हमने प्रेमिका की कल्पना करके प्रेम-गीत लिखे, विदेशी टाई और स्टिफ़ कालर लगाकर भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय-जाग्रति की कविता लिखी और किसी भूख से मरतेहुए व्यक्ति के प्राण बचाने के लिए एक दिन सिनेमा देखने के पैसों का बलिदान कर सकने में असमर्थ होते हुए हमने ग़रीबी तथा शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाई। एक वाक्य में कहा जा सकता है कि हम में सच्चाई—सिंसिएरिटी—का अभाव रहा।

वास्तविक संघर्ष की कटुता से बचने के लिए हमने साहित्य की दीवार खड़ी की जिसके निजी जीवन में संघर्ष की कटुता ने आधिपत्य जमा लिया। वह निराशावादी होगया। मजदूर और किसान के संघर्षमय जीवन का चित्रण जिसने किया भी, उसने शहरों के सुखद भवनों में बिजली की रोशनी और बिजली के पंखे की हवा में बैठकर उस साहित्य का सृजन किया, इसलिए ग्रामीण जनता के प्रति थोड़ी सी बौद्धिक सहानुभूति प्रदर्शित करने के अतिरिक्त वह और कुछ भी न कर सका।

हिन्दी के अनेक वर्तमान कवियों के प्रति मेरी अत्यधिक श्रद्धा की भावना है। मैं मानता हूँ कि अनेक वर्तमान कवियों ने हिन्दी का मस्तक ऊँचा किया है; फिर भी मैं पूछता हूँ, कहाँ है वर्तमान हिन्दी-साहित्य में वह कवि, जिसके विषय में कहा जा सके कि उसके जीवन में मानव को देने के लिए एक संदेश रहा है, उसी संदेश के लिए वह जी रहा है और अवसर आने पर उसी के लिए वह मर भी सकता है ? संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हम में साधना की कमी रही है,

हमारे वर्तमान हिन्दी-साहित्य में तप का अभाव रहा है।

मैं इस बात से अनभिज्ञ नहीं हूँ कि हिन्दी के बहुत से साहित्यिकों को एक समय भी पेट भर खाना नहीं मिला, तन ढकने के लिए उन्हें वस्त्र का भी अभाव रहा; पर मैं पूछता हूँ, इस आर्थिक शोषण और संघर्ष के युग में परिस्थिति-वश यदि किसी को खाना कपड़ा नहीं मिलता तो क्या इसे उसकी साधना समझ ली जाय ?

तुलसीदास संसार को मानस-जैसा अमरग्रन्थ प्रदान कर सके, किन्तु एक भावना के पीछे उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन खपा दिया, यही उनकी साधना थी। कबीर अपने दृष्टिकोण के अनुसार हिन्दुओं और मुसलमानों के आडम्बरों की निर्भीकतापूर्वक कठोर से कठोर आलोचना कर सके और आजीवन हिन्दुओं और मुसलमानों के भेदभाव मिटाकर उन्हें एकता के तल पर लाने का प्रयत्न करते रहे। यही उनका तप था।

कहाँ है आज हिन्दी में वह कवि जो अनेक संस्कृतियों के सम्मिलन से उद्भूत भारतीय संस्कृति का आदर्श चित्र उपस्थित कर सका हो ? जो सदियों की खुमारी से अंगड़ाई लेकर जागतीहुई भारत की ग्रामीण जनता की, भारत के पीड़ित और शोषित किसानों और मज़दूरों की आत्मा की मूक पुकार को ध्वनि प्रदान कर सका हो ? जो स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती हुई भारतीय राष्ट्र की आत्मा का जीता-जागता चित्र खींच सका हो ? जो स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर बलिदान होने के लिए अपने पुत्रों, भाइयों तथा पतियों को भेजनेवाली माताओं, बहिनों और पत्नियों के नेत्रों के आँसुओं और अधरों की मुसकान को अमरता प्रदान कर सका हो ?

हिन्दी में विवाद अधिक चले हैं और उन्होंने अनेक वादों को जन्म दिया है। इन वादों ने साहित्य के क्षेत्र को संकीर्ण परिधियों में विभाजित किया है और साहित्यिक वातावरण को विषैला बनाया है।

अन्त में मैं उपाध्यायजी के शब्दों में कहना चाहूँगा कि "संसार में जो कुछ भी कठिन या असम्भवप्राय हो वह सब तप से सिद्ध हो जाता है। किसान के तप से ही खेती फूलती-फलती है; मज़दूर-कारीगर के तप से कारखाने चलते व पनपते हैं। हम साहित्य में खपनेवाले जब स्वेच्छापूर्वक कष्टसहन द्वारा शरीरवाणी और मन को पवित्र और समर्थ बनाने का यत्न करेंगे, तभी 'रवीन्द्र', 'तिलक', 'गांधी', 'बर्नर्ड शा', 'रोमाँ रोलाँ' जैसों का अवतार अपने बीच में कर सकेंगे।

ब्रजमोहन गुप्त

हिन्दी की १०० अच्छी पुस्तकें

'हिन्दी की सौ श्रेष्ठ पुस्तकें' शीर्षक लेख बहुत पहले 'विशालभारत' में स्व० श्री सूर्यनाथ तकरू एम० ए० ने लिखा था। वह प्रयत्न अच्छा था और उससे बहुत दिनों तक हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं व पाठकों में चर्चा चलती रही थी। आज तकरूजी हमारे बीच नहीं हैं—अन्यथा वह प्रश्न एकदम भुला-सा नहीं दिया जाता। उस चर्चा को फिर जारी करने का उद्देश रखकर यह छोटा-सा लेख लिखा गया है।

यह सूची श्रेष्ठ पुस्तकों की अवश्य है, परन्तु श्रेष्ठता के साथ यह भी दृष्टि रखी गई है कि वह हिन्दी-साहित्य के विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करे। आज यदि हिन्दी में विज्ञान पर किसी दूसरी भाषा में लिखी पुस्तक के मुक़ाबले की पुस्तक नहीं है तो कोई चिन्ता नहीं। जो सर्वश्रेष्ठ पुस्तक उस विषय पर उपलब्ध है, उसीको लेकर सन्तोष करना होगा। जो महत्त्वपूर्ण विषय हिन्दी में बिल्कुल अछूता ही है, उसके लिए तो विवशता है। हिन्दी-कविता और कथा-साहित्य अधिक समृद्ध होने से उनकी सूची सहज ही बड़ी होगई है।

आज चूँकि समाज का नवोत्कर्ष और नवोत्थान हो रहा है इसलिए हमें चेतन और प्रबुद्ध करने के लिए काल्पनिक साहित्य के स्थान पर जीवन-निर्माणकारी साहित्य को श्रेष्ठता मिलनी चाहिए और समाजविज्ञान और राजनीति विषय की अच्छी-अच्छी और अधिक-से-अधिक पुस्तकें

मिलनी चाहिएँ। लेकिन खेद है कि इस विषय पर अभी पुस्तकें बहुत कम लिखी गई हैं।

साथ ही एक बात और भी है। स्वर्गीय शुक्लजी के लेख में केवल हिन्दी के मौलिक ग्रंथों ही का आग्रह था, यहाँ वह दृष्टि जानबूझकर छोड़ दी गई है। हिन्दी-प्रेमियों के घर-घर में आदर पानेवाली और उनका कण्ठहार हो जानेवाली कोई पुस्तक यदि देशी या विदेशी भाषा से भी हिन्दी में अनूदित हुई है तो वह मौलिक न होने की बिना पर ही यहाँ छोड़ नहीं दी गई है। वह हिन्दी में उपलब्ध है, हिन्दी-जनता उसका अमृतपान कर सकती है, इतना ही होना बस है। आत्मकथा, मेरी कहानी, गीतारहस्य, हिन्द-स्वराज्य आदि इसी कोटि के ग्रंथ हैं। इन्हें सूची में देने को इन पंक्तियों का लेखक नितान्त विवश है।

चुनाव का विषय ही बहुत-कुछ व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर होने के कारण ऐसी कोई सूची सर्वमान्य हो सके, यह बड़ा कठिन है; फिर भी बहुमत से किसी निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। हिंदी के दिनोंदिन समृद्ध होनेवाले साहित्य में से १०० पुस्तकों की सूची बहुत दिनों तक एक रह भी नहीं सकती।

सबसे बड़ी दृष्टि चुनाव में यह है कि ये पुस्तकें जीवननिर्माण करने तथा हिंदी साहित्य की समृद्धि की रूपरेखा जानने के लिए प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को पढ़नी और घरेलू पुस्तकालय में रखनी चाहिएँ।

कविता-गद्यकाव्य (१६)

१. रामचरित मानस (तुलसीदास)
२. संक्षिप्त सूरसागर या सूरपंच रत्न (सूरदास)
३. कबीर वचनावली (कबीर)
४. पदमावत (जायसी)
५. साकेत (मैथिलीशरण)
६. कामायनी (प्रसाद)
७. पल्लविनी (पन्त)
८. यामा (महादेवी)
९. मुकुल (सुभद्राकुमारी)
१०. पथिक (रामनरेश त्रिपाठी)
११. भारतभारती (मैथिलीशरण)
१२. प्रियप्रवास ('हरिऔध')
१३. रेणुका (दिनकर)
१४. वीर सतसई (वियोगी हरि)
१५. साधना (रायकृष्णदास)
१६. बापू (सियारामशरण)

नाटक (१०)

१. अभिज्ञान शाकुन्तल (कालिदास)
२. सत्य हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु)
३. स्कन्दगुप्त (प्रसाद)
४. चन्द्रगुप्त (प्रसाद)
५. कृष्णार्जुन युद्ध (माखनलाल चतुर्वेदी)
६. प्रताप-प्रतिज्ञा (मिलिन्द)
७. वरमाला (गोविंदवल्लभ पंत)
८. शिवा-साधना (प्रेमी)
९. संन्यासी (लक्ष्मीनारायण)
१०. नूरजहाँ (द्विजेन्द्रलाल राय)

कथा-साहित्य (१४)

१. रंगभूमि (प्रेमचन्द)
२. प्रेमाश्रम (प्रेमचन्द)
३. देहाती दुनिया (शिवपूजनसहाय)
४. गढ कुंडार (वृन्दावनलाल वर्मा)
५. परख (जैनेन्द्र)
६. कंकाल (प्रसाद)
७. नारी (सियारामशरण)
८. विदा (प्रतापनारायण श्रीवास्तव)
९. हृदय की प्यास (चतुरसेन शास्त्री)
१०. दो फूल (सत्यवती मलिक)
११. प्रेम पच्चीसी (प्रेमचन्द)
१२. श्रेष्ठ कहानियाँ (संपा०—नं० दु० बाजपेयी)
१३. चित्रशाला (कौशिक)
१४. चित्रलेखा (भगवतीचरण वर्मा)

जीवनचरितात्मक (७)

१. आत्मकथा (गांधीजी)
२. मेरी कहानी (जवाहरलाल नेहरू)
३. कल्याणमार्ग का पथिक (श्रद्धानन्दजी)
४. गणेशशंकर विद्यार्थी (देवव्रत)
५. बापू (घनश्यामदास बिरला)

६. सत्यनारायण कविरत्न (बनारसीदास)
७. हमारे राष्ट्रनिर्माता (सुमन)

इतिहास (८)

१. भारतीय इतिहास की रूपरेखा (जयचन्द्र)
२. इतिहास-प्रवेश (जयचन्द्र)
३. विश्व-इतिहास की झलक (ज० ला० नेहरू)
४. भारत में अंग्रेज़ी राज (सुन्दरलाल)
५. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (ओझा)
६. कांग्रेस का इतिहास (पट्टाभि सीतारामैया)
७. मौर्य साम्राज्य का इतिहास (सत्यकेतु)
८. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता (वेणीप्रसाद)

समाजशास्त्र-राजनीति (८)

१. समाजवाद (सम्पूर्णानन्द)
२. हिन्दू राजतंत्र (काशीप्रसाद जायसवाल)
३. राजनीति शास्त्र (प्राणनाथ)
४. स्वतंत्रता की ओर (हरिभाऊ उपाध्याय)
५. दुखी भारत (लाजपतराय)
६. गांधीवाद : समाजवाद (स० सा० मंडल)
७. हिन्द स्वराज (गांधीजी)
८. व्यक्ति और राज्य (संपूर्णानन्द)

अर्थशास्त्र (५)

१. संपत्तिशास्त्र (म० प्र० द्विवेदी)
२. भारतीय अर्थशास्त्र (केला)
३. देशदर्शन (ठा० शिवनंदनसिंह)
४. अर्थशास्त्र की रूपरेखा (दयाशंकर दुबे)
५. खादी-मीमांसा (बालूभाई मेहता)

विविध विज्ञान (१०)

१. विज्ञान हस्तामलक (रामदास गौड़)
२. मनोविज्ञान (सुधाकर एम. ए.)
३. हमारे शरीर की रचना (त्रिलोकीनाथ वर्मा)
४. प्राण-चिकित्सा (दुर्गाशंकर नागर)
५. वृक्षविज्ञान (प्रवासीलाल वर्मा)
६. सूर्य किरण चिकित्सा (गो० बा० टोंगू)
७. सौर-परिवार (डा० गोरखप्रसाद)
८. फोटोग्राफ़ी (डा० गोरखप्रसाद)
९. प्रसूतितंत्र (डा० रामदयाल कपूर)
१०. आरोग्य शास्त्र (जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी)

महिलोपयोगी (४)

१. भाई के पत्र (सुमन)
२. सुहागरात (कृष्णकान्त मालवीय)
३. स्त्री के पत्र (चन्द्रशेखर शास्त्री)
४. स्त्रियों की स्थिति (चन्द्रावती लखनपाल)

हिन्दी-साहित्य-शास्त्र (९)

१. भाषा-रहस्य (श्यामसुन्दरदास)
२. भारतीय लिपिमाला (ओझा)
३. हिन्दी-साहित्य का इतिहास (रामचंद्र शुक्ल)
४. हिन्दी भाषा और साहित्य (श्यामसुन्दरदास)
५. हिन्दी नवरत्न (मिश्रबन्धु)
६. कविता-कौमुदी (२) (रामनरेश त्रिपाठी)
७. साहित्यालोचन (श्यामसुन्दरदास)
८. संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर (काशी नागर
प्रचारिणी)
९. उर्दू-हिन्दी कोष (हिन्दी ग्रंथरत्नाकर बंबई)

धार्मिक और तात्त्विक (९)

१. गीता रहस्य (तिलक)
२. गीतामन्थन (कि० घ० मश्रुवाला)
३. सत्यार्थप्रकाश (दयानन्द)
४. गांधी विचार दोहन (कि० घ० मश्रुवाला)
५. गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ (राधाकृष्णन्)
६. समन्वय (डॉ० भगवान्दास)
७. आस्तिकवाद (गंगाप्रसाद उपाध्याय)
८. तमिलवेद (ऋषि तिरुवल्लुवर)
९. विनोबा के विचार (विनोबा)

आशा है, इस विषय पर अन्य हिन्दी-प्रे सज्जन भी अपने-अपने विचार प्रकट करेंगे।

सुधीन्द्र

एक प्रतिवाद

'जीवन-साहित्य' के अक्तूबर के अंक ''भारतीय संस्कृति का खजाना'' शीर्षक ए लेख छपा है जिसमें पं० रामनरेशजी त्रिपा के पत्र का जिक्र है। पंडितजी ने लिखा ''पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से अपनी अनमो विभूतियों पर अश्रद्धा बल्कि घृणा होने कारण इस देश के शिक्षित कहे जानेवाले लो भी उनसे (उपनिषद आदि प्राचीन संस्

साहित्य से) मिलनेवाले लाभों से वंचित रह जाते हैं।"

इस देश के प्राचीन संस्कृत-साहित्य के प्रति अपने शिक्षित समाज में जो उपेक्षा का भाव है, उसकी उत्पत्ति पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता के प्रभाव से तो अवश्य हुई है किन्तु हम लोगों ने इस धारणा को केवल विवेकहीनता के कारण ही अपने हृदय में स्थान नहीं दे लिया है। संस्कृत-साहित्य की मनोवृत्ति का भली-भाँति अध्ययन कर लेने के बाद ही मै तो इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से मानसिक गुलामी की भावना दृढ़ होती और स्वतन्त्र विचार की भावना नष्ट होती है। संस्कृत-साहित्य में श्रद्धा रखनेवाला आदमी कभी इस बात को समझ ही नहीं सकता कि दुनिया किस ओर प्रगति कर रही है? वह तो इस बात को ध्यान में ही नहीं ला सकता कि हमारे प्राचीन साहित्यकारों ने जो लिख लिया उससे भी आगे ज्ञान का विस्तार हो सकता है। नये विचारों को ग्रहण करने की भावना उसमें आती ही नहीं। संस्कृत-साहित्य का ज्ञान तो आदमी की आँख पर अंधविश्वास का एक ऐसा पर्दा डाल देता है जिससे मनुष्य किसी भी नई विचार-धारा को समझने में असमर्थ हो जाता है। कुएँ में पड़ा हुआ मेंढक जिस प्रकार समुद्र के विस्तार का अनुमान नहीं लगा सकता, उसी प्रकार संस्कृत-साहित्य की परिधि में घूमनेवाला आदमी कभी संसार के विस्तृत ज्ञानभंडार का अनुभव कर ही नहीं सकता।

मैं यह मानता हूँ कि हमारे पुराण ललित कलाओं के भंडार हैं। उनमें हमारे पूर्वजों का यशोगान निहित है जिसके अध्ययन से हमारे हृदय को बल प्राप्त होता है किन्तु यह बात भी अवश्य है कि उनमें मिथ्या बातों का बाहुल्य है। 'अरेबियन नाइट्स' की कथायें भी मिथ्या और काल्पनिक हैं किन्तु उसके लेखक ने अपनी कल्पना पर धर्म का पर्दा डालकर उनको सत्य प्रमाणित करने की चेष्टा कभी नहीं की। पुराणों को हम ऐसी पुस्तकों की श्रेणी में रखकर उनकी तुलना नहीं कर सकते। हमारे पुराणकारों ने अपनी कल्पना पर धर्म का आडंबर चढ़ाकर हमारे लिए ज्ञान का मार्ग बन्द कर दिया है। साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य पुराणों को पढ़कर केवल धार्मिक आडंबर की ही शिक्षा प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि हमारा प्राचीन साहित्य हमारे देश में अंधविश्वास फैलाने में और ब्राह्मण वर्ग के पाखण्ड का झंडा फहराने में तो अवश्य सहायक हुआ है, परन्तु इसके अध्ययन से देश में ज्ञान की वृद्धि हुई हो ऐसा तो मुझे कहीं दिखाई नहीं दिया।

इसके अतिरिक्त एक बात और है। किसी पुस्तक के अध्ययन और मनन से ही आदमी को उसका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। बिना समझेहुए किसी पुस्तक को पढ़ जाने-मात्र से ही कोई लाभ कदापि नहीं हो सकता। हमारे देश में लाखों, नहीं करोड़ों आदमी ऐसे हैं जो संस्कृत भाषा का एक शब्द भी न जानने के बावजूद नित्य सवेरे उठकर गीता आदि का पाठ करते हैं और अपने को उसके समस्त ज्ञान का अधिकारी मानते हैं। बहुत से आदमी तो ऐसे भी मिल जायँगे जिनका यह विश्वास है कि गीता के नाम का उच्चारण कर लेने से ही गीता का समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

पुराणों का हिन्दी अनुवाद पढ़कर हजारों वर्षों से ब्राह्मणों के पाखंड के जंजाल में फँसे हुए हमारे देशवासी, हमारे साहित्य का गौरव बढ़ायेंगे, इसकी तो कोई आशा दिखाई नहीं देती।

रामचन्द्र गुप्ता

पाप का प्रचार

मासिक पत्रों में लाल-पीले काग़ज़ों में खास तरह के आकर्षण के साथ काफी बड़ी संख्या म बाजारू चीज़ों के विज्ञापन मिलते हैं। साप्ताहिक पत्रों में विज्ञापन के लिए अच्छी जगह वह मानी जाती है, जहाँ कि लेख का शीर्षक हो या अन्त। प्रसिद्ध व्यक्तियों के लेखों एवं महत्त्वपूर्ण घट-

नाओं के संवादों के पास और साथ-साथ वाली जगह भी अच्छी क़ीमती मानी जाती है। दैनिक पत्रों में मुख-पृष्ठ पर या और कहीं भी, अच्छी जगह में, प्रायः सभी प्रकार के विज्ञापन पाये जाते हैं। पाठक अपनी निगाह से उन विज्ञापनों को भी देखते ही हैं। इनमें अबोध बालक और बालिकाओं की तथा अर्द्धशिक्षित लोगों की पर्याप्त संख्या होती है। उनका असर भी थोड़ा-बहुत हर पाठक पर होता ही है।

जीवनोपयोगी साहित्य तथा जनता के हित (खासकर राजनैतिक हक़ों की रक्षा) की दुहाई देनेवाले 'पत्रों' में भी ऐसे विज्ञापन बहुतायत से पाये जाते हैं, कि जो 'झीन सीन गोल्ड टॉनिक पिल्स", 'नपुंसकतानाशक' तथा "महात्माजी के चमत्कार" सरीखे आकर्षक, प्रभावकारी और मोटे शीर्षकों से दिये जाते हैं। पत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों में प्रायः सभी में गन्दे चित्रों और दूषित विचार लानेवाली भाषा का खूब प्रयोग होता है। मुझे तो कई बार खयाल आता है कि क्या सम्पादकजी उस गंदे विज्ञापनवाले पृष्ठ पर छपेहुए संवाद या जीवनोपयोगी साहित्य को अपनी माँ-बहिनों के साथ बैठकर पढ़ या सुन सकते हैं! बात कड़वी है, पर इसलिए कहता हूँ कि इसका घातक प्रभाव समाज को बिगाड़ दे रहा है।

हिन्दी में इने-गिने ऐसे पत्र ज़रूर हैं कि जिनमें हर तरह के विज्ञापन नहीं निकलते। पैसों के अभाव का बहाना बनाकर गंदे विज्ञापन देने की बात तो 'पत्र' और सम्पादक के कर्त्तव्य के खिलाफ़ जानी चाहिए।

'जीवन-साहित्य' के उत्पादकों से मैं यह आशा करूँगा कि जिस तरह वे अपने पत्र को विज्ञापनबाज़ी की इस बुराई से बचाये रखने की साधना कर रहे हैं, उसी तरह वे अपने अन्य सहयोगियों पर भी इसका कुछ असर डालें और उन्हें इस पाप के प्रचार से बचावें। --इ०

समालोचनार्थ प्राप्त

ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर के प्रकाशन

रिमझिम [कविताएँ] : लेखक—हंसकुमार तिवारी; पृष्ठ संख्या १२६; मूल्य १)

साहित्यिकी [लेख-संग्रह] : लेखक—शान्तिप्रिय द्विवेदी; पृ० सं० २५६; मूल्य १।।)

जीवनयात्रा : लेखक—शान्तिप्रिय द्विवेदी; पृ० सं० १४२; मूल्य ।।।=)

बुलबुल [कहानियाँ] : लेखक—जोतिनप्रसाद; पृ० सं० १२०; मूल्य ।।=)

लालचीन : लेखक—रामवृक्ष बेनीपुरी; पृ० सं० २३६; मूल्य २)

प्रजातंत्र : लेखक—बा० रा० मोड़क; अनुवादक-लक्ष्मण नारायण गर्दे; पृ० सं० २४४; मूल्य १।।)

बिहार के दर्शनीय स्थान : लेखक—गदाधरप्रसाद अम्बष्ठ, पृ० सं० २०८, मूल्य १।।)

ग्राम-पंचायत : लेखक—विनायक गणेश वझे; पृ० सं० १०० मूल्य ।।=)

—

प्राणदान [१४ एकांकी नाटक] : लेखक—'व्यथित हृदय'; पृष्ठ संख्या १३६

खिलौनाघर : लेखक—प्रो० विश्वमोहनकुमारसिंह पृ० सं० १२०; मूल्य ।।।)

गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा के प्रकाशन

हमारे गद्य-निर्माता : लेखक—प्रेमनारायण टण्डन; पृ० सं० २१८; मूल्य १)

कादम्बरी कथा-सार : संपादक—गुलाबराय; पृ० सं० ९१; मूल्य ।।=)

अनुराधा (कहानियाँ) : लेखक—श्यामसुन्दर पंड्या 'सुशील'; पृ० सं० १५१; मूल्य ?

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा के प्रकाशन

अभिनव एकांकी नाटक : लेखक—उदयशंकर भट्ट; पृ० सं० १२२; मूल्य १)

छलना [रूपक] : लेखक—भगवतीप्रसाद बाजपेयी; पृ० सं० १२१; मूल्य १।।)

—

मानव [कविताएँ] : लेखक—श्रीमन्नारायण अग्रवाल; प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर, बंबई; पृ० सं० ७३; मूल्य ?

कसौटी पर

The Philosophy of Love. (*Bhakti Sutras of Devarshi Narada*).—**सम्पादक एवं टीकाकार—हनुमानप्रसाद पोद्दार; प्रकाशक—गीता प्रेस, गोरखपुर; पृष्ठ ९+३४२; मूल्य १)**

श्रीयुत हनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा सम्पादित "भक्तिसूत्र" नामक हिन्दी ग्रन्थ का ही यह अंग्रेज़ी अनुवाद है। यह अंग्रेज़ी ग्रन्थ गीता-प्रेस से प्रकाशित होनेवाले अंग्रेज़ी मासिक "कल्याण-कल्पतरु में क्रमशः प्रकाशित हो चुका है। पुस्तक की छपाई बहुत ही साफ़ एवं सुन्दर हुई। श्री राधा-कृष्ण का एक तिरंगा चित्र भी दिया गया है, परन्तु कला की दृष्टि से वह बहुत ही साधारण एवं निम्नकोटि का है।

पोद्दारजी भूमिका में लिखते हैं "**कणाद, गौतम आदि ऋषियों द्वारा निर्मित अन्य षड्-शास्त्रों के समान इन भक्तिसूत्रों की भी शास्त्रों में गणना की जाने लगी है भक्त लोग तो इन्हें सातवाँ शास्त्र** मानते हैं।" पुस्तक के प्रारम्भ में देवर्षि नारद पर एक निबन्ध है, जिसका आधार विशेषतया श्रीमद्भागवत एवं महाभारत में दियाहुआ वर्णन ही है। उसके बाद देवर्षि नारद कृत 'भक्ति-सूत्रों' को, अन्तर्गत भाव को समझाने के लिए, अर्थ-सहित विशद व्याख्या की गई है, जो विशेषतया भावपूर्ण ही है। इस व्याख्या में यत्र-तत्र **विष्णु-पुराण, गरुड़ पुराण, गीता, भागवत, रामचरितमानस**, विनयपत्रिका आदि ग्रन्थों से उद्धरण भी दिये गये हैं और भक्तों के पदों को भी यत्र-तत्र उद्धृत किया गया है; पर सूत्रों पर दी गई व्याख्या के सम्बन्ध में पोद्दार जी ने स्वयं लिखा है कि "**जो कुछ भी बातें मैंने अनेकानेक भक्तों, सन्तों या सत्पुरुषों से सीखी हैं, उन्हींको एकत्र कर मैंने टीका में लिख दिया है; इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है।**" सम्भव है यह व्याख्या भक्तों या भक्तिमार्ग का अनुसरण करनेवालों को बहुत ही सुन्दर एवं सच्ची जान पड़े, किन्तु विद्वानों को तो इस प्रकार के सम्पादन में गहरी विद्वत्ता का पूर्ण अभाव ही दीख पड़ेगा।

भारत के अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में या भारत से बाहर विदेशों में ऐसे ग्रन्थों के प्रचार से हिन्दी-भाषियों या भारतीयों की विद्वत्ता के प्रति उन देशों के विद्वानों को क्या धारणा रह जायगी, यह बताना कठिन नहीं। जिन लोगों ने यूरोपीय विद्वानों द्वारा सम्पादित संस्कृत ग्रन्थों के संस्करण देखे हैं. वे स्वयं ही इस बात का अनुभव कर लेंगे कि यह संस्करण कितना साधारण है। ये सूत्र कब लिखे गये ? इनकी रचना किसने की ? आदि प्रश्नों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। व्याख्या सरल एवं भावपूर्ण अवश्य है, परन्तु वह पूर्णतया अवैज्ञानिक ढंग से लिखी गई है। व्याख्याकार एक ऐसे दृष्टिकोण को लेकर चले हैं, जिसमें वैज्ञानिक विचारधारा या दार्शनिक अन्वेषण का कोई स्थान नहीं है। गीता, भागवत् आदि के उद्धरण देकर उन्ही के आधार पर यह व्याख्या लिखी गई है और वह एक भक्त की भावनाओं का संग्रह-मात्र कही जा सकती है। विद्वत्तापूर्ण विवेचना या दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण उसमें नहीं मिलता। ऐसी टीका कहाँ तक अंग्रेज़ी भाषा-भाषियों की ज्ञान-पिपासा शान्त कर सकेगी ?

इधर गीता-प्रेस ने इसी प्रकार के सैकड़ों ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं और भारत-जैसे धर्म-प्रधान भक्तिभावनापूर्ण देश में उनकी बहुतायत से खपत होना स्वाभाविक ही है। किन्तु विचार-शील लोगों के सम्मुख यह प्रश्न अवश्य उठता है कि भारत की वर्तमान परिस्थिति में ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन एवं प्रचार कहाँ तक राष्ट्रीय दृष्टि से हितकर है ? भारत में हम जनतावाद को सफल बनाने के लिए उत्सुक हैं, तब क्या ऐसे ग्रन्थ उसमें बाधक नहीं होंगे ? यदि ऐसे ग्रन्थों की विवेचना दार्शनिक ढंग से की जावे एवं उसी ढंग से उनका अध्ययन हो, तो उसपर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु ऐसे ग्रन्थों

या भावनाओं को लेकर जनसमाज में भावपूर्ण ढंग से उनका प्रचार होने से राष्ट्र के एक बड़े अंग में एक ऐसी प्रवृत्ति उठ खड़ी होगी जो राष्ट्र के सांसारिक वर्तमान एवं भविष्य से पूर्णतया उदासीन ही रहेगी। बहुत समय तक इस प्रश्न की उपेक्षा करना अनुचित ही नहीं, हानिकारक भी होगा। र०

'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा': लें०—मोतीलाल मेनारिया, एम० ए०; प्रकाशक—छात्रहितकारी पुस्तकमाला; प्रयाग, पृ०सं० २५८; मूल्य २॥)

लेखक ने उपर्युक्त नाम की एक खोजपूर्ण पुस्तक लिखकर राजस्थानी भाषा, साहित्य तथा कवियों का विवेचनात्मक परिचय देने का सफल प्रयास किया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के वीरगाथाकाल में राजस्थानी डिंगल-साहित्य की जिन अमूल्य मणियों का नाम-निर्देश-सा ही किया गया है और जिनको इतिहासकारों ने हिन्दी-साहित्य का अंग भी नहीं माना, उनका ज्वलन्त रूप हिन्दी-प्रेमियों को दिखाने के लिए ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है। यह भूल हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखकों ने महसूस न की हो, ऐसी बात तो नहीं है, परन्तु उसे जितना महत्त्व दिया जाना चाहिए उतना अवश्य नहीं दिया गया। प्रस्तुत ग्रंथ में लेखक ने राजस्थानवासी चारण कवियों और कवयित्रियों की डिंगल कविताओं के अतिरिक्त पिंगल की कविताओं को भी लिया है, जिससे राजस्थान के समूचे प्राचीन और नवीन साहित्य की एक झलक मिल सके।

आधुनिक साहित्यकारों का भी इस ग्रन्थ में यथेष्ट उल्लेख है अवश्य, किन्तु वह सर्वथा त्रुटिरहित हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जीवित साहित्यिकों के विषय में अपना मत प्रकट करना बड़ा कठिन कार्य है और उसमें किसको कितना स्थान या महत्त्व दिया जाय यह निर्णय करना दुष्कर है, इसलिए ऐसी भूलें होना स्वाभाविक है।

रूपरेखा में लगभग १०० नये-पुराने, बड़े-छोटे, डिंगल-पिंगल के गद्य-पद्य के रचयिताओं के (उनकी रचनाओं सहित) परिचय हैं—तथा इस दृष्टि से यह संग्रह बहुत काफ़ी है। फिर आधुनिक साहित्यकारों के परिचय में अधिक सावधानी की आवश्यकता थी। पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट में ऐसे कवियों की, जिनका उल्लेख भीतर कहीं नहीं हो सका, कविताओं के नमूने भी दिये गये हैं।

जो हो, अपने ढंग का यह पहला और अच्छा प्रयास है। राजस्थानी साहित्य की खोज में वह बहुत सहायक सिद्ध होगा।

साहित्य-सम्मेलन का बाल-साहित्य

श्री वियोगी हरि ने अपने "वीर सतसई" पर मिलेहुए मंगलाप्रसाद पारितोषिक की १२००) की निधि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को भेंट कर दी थी जिसको वीर-रसपूर्ण बाल-साहित्य के प्रकाशन में लगाने का निश्चय सम्मेलन ने किया था।

सम्मेलन की ओर से इस योजना के अन्तर्गत उत्तमोत्तम बालोपयोगी कविता-कहानी तथा जीवनचरित्र, निकाले गये हैं। माला का चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ व आठवाँ सुमन हमारे सामने हैं।

(१) बाल-भारती : लेखक—श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह; पृ० सं० ८०; मूल्य ।=)

(२) वीर शतमन्यु : लेखक—श्री 'स्वर्ण-सहोदर'; पृ० सं० ५२; मूल्य ।)

(३) छत्रपति शिवाजी : लेखक—श्री गुर्ती सुब्रह्मण्य, एम० ए०; पृ० सं० ६०; मूल्य ।)

(४) बाल-कवितावली : लेखक—श्री सत्यप्रकाश कुलश्रेष्ठ, पृ० सं० ५६; मूल्य ।)

(५) बाल-कथा : लेखिका—श्रीमती कमलाबाई किबे; पृ० सं० ९५; मूल्य ।=)

बाल-भारती के लेखक 'बाल-सखा' के सिद्धहस्त संपादक हैं और बाल-जगत् में उनका अपना श्रेष्ठ स्थान है। 'भारती' की कवितायें सरल, सुबोध, सरस और बालकों में अच्छे आदर्श भाव भरनेवाली हैं। बढ़े चलो, हम, बानरसेना का गीत, वीर

प्रतिज्ञा, चिनगारी आदि कवितायें बालकों में काफ़ी जोश पैदा कर सकती हैं। बालकों के मनोविज्ञान का जिसने गहरा अध्ययन किया है, वही उनके भावों को उत्तेजित करने का ढंग भी जानता है। हरेक कविता बालकों के लिए अच्छा सन्देश है। प्रकृति की सुन्दरता पर भी बालक अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं, उनकी इस वृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए 'शरद पूर्णिमा', 'फूलों का गीत', 'बादल' आदि कवितायें भी इस संग्रह में हैं, जिनसे अन्त में बालक कुछ-न-कुछ सीख ग्रहण कर सकते हैं।

बाल-कवितावली में तो भावों की दृष्टि से और भी अधिक उत्साहप्रद कवितायें हैं—जैसे 'रणभेरी', मतवाले' 'गीत', 'तिरंगा झंडा' आदि। साथ ही जुगनू, तारों, झरना, चंदामामा आदि पर भी सरस कवितायें हैं। इसकी कवितायें अधिक सरल हो गई हैं और छोटे बच्चों को बहुत प्रिय होंगी।

बाल-कथा में सुयोग्य लेखिका ने अपनी मराठी में लिखी कहानियों को हिन्दी में प्रस्तुत किया है। कहानियाँ बालकों के जीवन से विशेष सम्बन्ध रखनेवाली हैं—इसलिए उन्हें अधिक रुचिकर होंगी, ऐसा विश्वास है।

छत्रपति शिवाजी में शिवाजी की जीवनी बालकोपयोगी सरलता और रोचकता के साथ दी गई है। लेखक का ध्येय इसमें शिवाजी के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं का नीरस ब्योरा-मात्र देना नहीं, बल्कि उनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का सजीव वर्णन करना है। प्रत्येक पाठ एक मनोरंजक कहानी बन गया है—जिसका स्वतन्त्र रूप से आनन्द लिया जा सकता है। कथा बालकों में वीरता, साहस और गौरव का संचार करेगी।

'वीर शतमन्यु' के लेखक श्री स्वर्णसहोदर, बाल-कविताओं के यशस्वी रचयिता हैं और बाल-जगत् में उनकी देन अमूल्य है। इस छोटी सी पुस्तिका में शतमन्यु नाम के एक वीर बालक के बलिदान की घटना का वर्णन किया गया है। देशव्यापी अकाल के निवारण के निमित्त किये जानेवाले नरमेध-यज्ञ के लिए एक बलि की आवश्यकता थी। उस समय इस बालक ने अपने आपको प्रस्तुत करके त्याग और बलि का आदर्श स्थापित किया था! कहानी सीधी-सरल कविता में लिखी गई है और रोचक हुई है। शतमन्यु की यह जीवन-कथा बालकों में अवश्य देश-प्रेम और और प्राणोत्सर्ग की भावना जाग्रत करनेवाली है।

सु०

प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग) **प्रकाशक—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग; पृ० सं० ६३४; मूल्य ४॥)**

श्री बदरीनारायणजी चौधरी 'प्रेमघन' हिन्दी-साहित्य के भारतेन्दु-युग के स्तम्भ हैं। प्रस्तुत ग्रंथ उन्हीं की सब पद्य-रचनाओं का संकलन है। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है और काव्य की नयी-नयी धाराएँ आती-जाती हैं, त्यों-त्यों पुराना-युग, भले ही वह हमारे कितने ही निकट का क्यों न हो—विचारों द्वारा हम से दूर पड़ता जाता है। परन्तु यह तो निर्विवाद है कि आज के हिन्दी-काव्य को भारतेन्दु युग की देन बहुमूल्य है। उस काल के काव्य-साहित्य का प्रामाणिक संग्रह तैयार होना एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति है। साहित्य-सम्मेलन ने इस दिशा में कई प्रयत्न किये हैं—जिनमें से एक यह भी है।

प्रस्तुत संग्रह—प्रेमधन-सर्स्वव—तीनविभागों में विभाजित है। प्रथम में 'प्रेमघन' जी के दोनों प्रबन्ध काव्य—**जीर्ण जनपद** और **अलौकिक लीला**—संकलित हैं, दूसरे में उनकी २२ लम्बी-लम्बी स्फुट कविताएँ हैं और तीसरे में उनके लिखेहुए गीत, गालियाँ, फाग, होली आदि। इस प्रकार ६३४ पृष्ठ के इस ग्रंथ में उनकी समस्त काव्य-कृतियाँ आगई हैं।

संग्रह की कविताओं को एकत्र पाने से विदित होता है कि कविता लिखना उन्हें एक व्यसन था। अभी तो उनके नाटक, समालोचना की पुस्तकें तथा दूसरी गद्य-रचनाएँ भी संकलित होने को हैं, जिसकी प्रतीक्षा हिन्दी-संसार में बड़ी

उत्सुकता से होगी।

'प्रेमघन'जी की कविताओं में सच्चा कवि-हृदय बोलता नजर आता है। कई रचनाओं में तो वे आज ही के युग की बात कह रहे हैं। उनका एक चरखागीत है:—

चला चल चरखा तू दिन-रात
ज्यों-ज्यों तू चलता त्यों-त्यों आता स्वराज नियरात।
परतन्त्रता-दीनता भागी जाती खाती लात ॥
चलना तेरा बन्द हुआ जब से भारत में तात।
दुखी प्रजा तब से, न यहाँ की अन्न पेट भर खात॥
चल तू जिससे खाय दुखी भरपेट दाल औ भात।
सस्ता सुद्ध स्वदेसी खद्दर पहिन छिपावें गात॥
हिन्दू, मुसलिम, जैन, पारसी, ईसाई सब जात।
सुखी होयँ हिय भरें प्रेमघन सकल भारती भ्रात॥

प्राचीन वाणी और नवीन विचारों का कितना सुन्दर संगम हुआ है यहाँ!

संग्रह में सर्वत्र कवि की विविध वृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है—उनके हृदय की झाँकियाँ मिलती हैं। वे शृंगार रस पर लिखनेवाले भारतेन्दु-जैसे प्रेमी जीव ही नहीं थे, करुण, हास्य और दूसरे रसों पर भी उन्होंने अपनी कलाकुशल और शक्तिशालिनी लेखनी चलाई थी। हिन्दी में वे 'प्रेमघन' बनकर पीयूष-वर्षा करते थे, तो उर्दू में भी 'अब्र' नाम से लिखते थे। अब्रजी की उर्दू-कविताएँ भी इसमें मिलती हैं।

आरंभ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेमघनजी के जीवन की झाँकी दी है, जो एक अच्छा स्कैच (रेखाचित्र) है। पुस्तक में प्रेमघनजी के जीवन की अनेक अवस्थाओं के चित्र भी हैं।

'प्रेमघन-सर्वस्व' का संकलन-संपादन श्री प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय तथा श्री दिनेशनारायण उपाध्याय 'साहित्यरत्न' ने किया है। अन्त में माननीय पुरुषोत्तमदास टण्डन के 'दो शब्द' से ऋण लेते हुए इतना ही करना चाहता हूँ कि—

"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अंबिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और गोविन्दनारायण मिश्र उस युग के नाम हैं जो हमारे बहुत निकट है किन्तु हमसे अब कुछ हट गया है। जिस डोर ने हमें उनसे बाँध रखा है, वह अभी बहुत स्पष्ट है। जो केन्द्र उन्होंने बनाया था हम उसी की सीधी किरनें हैं, यद्यपि हमने अपना भी अब नया केन्द्र बना लिया है"····'जिन प्रतिभाओं ने वह युग बनाया और हमारे युग का बीज डाला उनकी कृतियाँ हमारी संपत्ति हैं और रक्षा के योग्य हैं। आगे के लिए जो नया रास्ता बनानेवाले हैं उनके लिए यह जानना उचित है कि किस रास्ते से वे आये हैं। उस ज्ञान की रक्षा में यह 'प्रेमघन-सर्वस्व' सहायक होगा।"

मेरी मुक्ति की कहानी[1]

टॉल्स्टॉय संसार के एक महापुरुष—महान् विचारक, तत्त्वचिन्तक ऋषि और महान् क्रान्तिकारी होगये हैं। उनके ग्रन्थों का आज यूरोपीय और पूर्वीय राष्ट्रों में अत्यन्त आदर है। महात्मा गांधी पर भी टॉल्स्टॉय के जीवन का काफ़ी प्रभाव पड़ा है। ऐसे महान् व्यक्ति के ग्रन्थों को हिन्दी में सुलभ करने की दृष्टि से सस्ता-साहित्य-मण्डल ने जिस 'टॉल्स्टॉय ग्रन्थावलि' का श्रीगणेश किया है, वह सर्वथा अभिनन्दनीय होगो। 'मेरी मुक्ति की कहानी' उसकी प्रथम मणि है।

महापुरुषों के जीवन का उत्थान उनके जीवन में घटित होनेवाली घटनाओं तथा मानस में उत्पन्न होनेवाली अशान्ति की वेगवती प्रतिक्रिया के रूप में ही हुआ करता है। उन्हें स्वयम् अपने जीवन की गतिविधि पर (बाह्य आग्रहों से कम परन्तु आत्मप्रेरणा से अधिक प्रेरित होकर) आत्ममंथन और आत्मचिन्तन करने को बाध्य होना पड़ता है। **"मैंने लड़ाई में आदमियों को क़त्ल किया और मैंनें लोगों को मारने के लिए उनको द्वन्द्वयुद्ध में ललकारा; मैंने जुआ खेला और**

---

[1] **मूललेखक—टॉल्स्टॉय के** My confession **तथा** My Recollections **का सम्मिलित अनुवाद; अनुवादक—श्री रामनाथ 'सुमन'; परमेश्वरीदयाल विद्यार्थी; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली, मूल्य ॥)**

उसमें हारा, मैंने किसानों से बेगार लीं और उन्हें सजाएं दीं; बुरे आचरण किये और लोगों को धोखा दिया। झूठ बोलना, लोगों को लूटना, हर तरह का व्यभिचार, मद्यपान, हिंसा, खून—मतलब कोई ऐसा जुर्म नहीं था, जिसे मैंने न किया हो।" यह है उन्हीं के शब्दों में उनके प्रारंभिक युवा-जीवन की झलक! और आज टॉल्स्टॉय उन महान् आत्माओं में गिने जाते हैं जिन्हें दुनिया युगों के पश्चात् पाती है और जिनके वचनों में लोग नीति-विधान की रेखाएँ खोजते हैं। उनके ऐसे जीवन का यह मंगल-उत्थान कैसे हुआ—इसे स्वयम् उनसे बढ़कर और कौन समझा सकता था? **'मेरी मुक्ति की कहानी'** में टॉल्स्टॉय ने अपने भाव या विचार-जगत् में हुई इसी क्रान्ति की कहानी कही है। जीवन की सूक्ष्म या स्थूल घटनाओं का इसमें ऐतिहासिक ब्यौरा खोजा नहीं जा सकता। वह तो उनके आत्मन् के विकास और उत्कर्ष की कहानी है।

वैभव और समृद्धि की गोद में रहनेवाले शरीर की आत्मा में जो असन्तोष और विकलता उत्पन्न होती है, वही जीवन में क्रान्ति का विधान करती है—उनके आत्मन् की प्रगति भी जीवन में हुई इसी असन्तोष की प्रतिक्रिया है।

किस प्रकार 'ईश्वर' और 'धर्म' के विषय में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं ने उनके मानसपटल पर नई-नई छापें छोड़ीं और हृदय को आन्दोलित किया, किस प्रकार जीवन के विषय में उपार्जित किये उनके विश्वास परिस्थितियों और घटनाओं के आघात से चकनाचूर होते गये और वे एक तत्त्व-चिन्तक, दृष्टा और जीवन की समस्याओं के व्याख्याता ऋषि के रूप में प्रकट हुए, इसकी कहानी इसमें मिलती है।

समस्त जीवन और दृश्यजगत् उन्हें एक विराट् प्रश्न के सामने ला खड़ा कर देता था और घोर उथल-पुथल में डाल देता था। **"शुरू में मुझे परेशानी और उलझन का अनुभव होता था, जैसे जिन्दगी की रफ्तार बन्द होगई है और मैं नहीं जानता कि किस तरह जीना चाहिए और क्या करना चाहिए। मैं अपने को खोया हुआ और मायूस अनुभव करने लगा।** वह एक स्थल पर लिखते हैं—**……गो मैं अपने को पैदा करनेवाले 'किसी' को मानता न था फिर भी इस तरह का खयाल संभवतः मेरे मन में पैदा होता था कि किसी ने इस दुनिया में लाकर मेरे साथ बुरा और भद्दा मजाक किया है।"** इससे टॉल्स्टॉय के मानस-जीवन में होनेवाली उथल-पुथल की रूपरेखा ठीक-ठीक व्यक्त होती है। अपनी मुक्ति की कहानी कहतेहुए उन्होंने शॉपनहॉवर, सुलेमान, सुकरात, बुद्ध आदि के जीवन-विषयक विचारों के आलोक में जीवन की अपनी व्याख्या दी है। साथ ही 'धर्म' के विषय में भी उन्होंने अपना सूक्ष्म चिन्तन दिया है। उन्होंने बौद्ध-धर्म और इस्लाम का अध्ययन किया और सबसे ज्यादा उन्होंने किताबों के ज़रिये और अपने इर्द-गिर्द के लोगों से ईसाई-धर्म का अध्ययन किया। अंत में उन्हें प्रकट हो गया कि **"सम्पूर्ण मानवता को जीने के लिए समर्थ बनाना है और अगर हम यह चाहते हैं कि जीवन का एक अर्थ, एक प्रयोजन समझतेहुए जिन्दगी को कायम रक्खें तो इसके लिए इन करोडों आदमियों को श्रद्धा वा विश्वास का एक दूसरा ही सच्चा ज्ञान होना चाहिए……मैंने इन आदमियों से प्रेम करना सीखा…उनके लिए मेरा प्रेम बढ़ता गया और मेरे लिए जीना आसान होता गया। लगभग दो घण्टों तक मेरी यह हालत रही और इस बीच मेरे अन्दर एक जबर्दस्त परिवर्त्तन होगया।"**

जीवन में जो गाँठ घुल गई थी, वह इस प्रकार जाकर खुली और फिर उनके जीवन की धारा जिधर मुड़ी, उसने समाज का कितना मंगल और कल्याण किया—यह आज छुपा नहीं है।

टॉल्स्टॉय के ग्रन्थों को समझने के लिए उनकी विचार-धारा के इस उत्थान-पतन से परिचित होना पहले आवश्यक है। इस प्रकार यह उनकी महान् रचनाओं की भूमिका है।

पुस्तक में उस महात्मा के लिखे स्वजीवन के संस्मरण भी दिये गये हैं, जिससे उनके जीवन के बाह्य स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। **सु०**

सैर-सपाटा

पिछले महीने हिन्दी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रों में श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने **हिन्दी और हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में सम्मेलन की नीति** स्पष्ट की है। उससे कम-से-कम हिन्दी भाषा-भाषियों का बहुत-सा भ्रम दूर हो जाता है।

'सुधा' में प्रो० धर्मदेव शास्त्री का लेख है—**ऋग्वेद की एक भविष्यवाणी (अथवा नैतिक पतन के गर्त्त में)**। उसमें आज हमारे घर और समाज में फैलेहुए दुराचार की कठोर भर्त्सना की गई है—जो हमारे नैतिक जीवन के नियामक नेताओं का ध्यान आकर्षित करती है। इसी अंक में हिन्दी विद्यापीठ देवघर के श्रीयुत रामचरित्र-सिंह ने राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं के कुछ अभाव और अवगुण बतलाये हैं और राष्ट्र के कर्णधारों और शिक्षा-शास्त्रियों से उसे दूर कराने का आग्रह किया है।

'माधुरी' के **'वर्तमान कवि-सम्मेलन'** लेख में आज के कवि-सम्मेलन की कुछ बुराइयाँ बताई गई हैं और उनके दूर करने के उपाय भी—जो उपयोगी लगते हैं। **हिन्दी-साहित्य में आलोचना** लेख में आलोचनाओं की त्रुटियाँ बताई गई हैं—जिनसे विचारशील पाठक भी सहमत होंगे। उसमें बताया गया है आज की आलोचनाएँ अपना उचित मार्ग छोड़ कर कुमार्ग पर भटक रही हैं और 'गालीगलौज' बन गई हैं, विचार के बदले व्यक्ति की आलोचना होने लगती है। वास्तव में आलोचनायें निष्पक्ष और सहृदयतापूर्ण होनी चाहिएँ।

पिछले मास से श्रीमती महादेवी वर्मा ने पिछले ९ वर्षों में लिखे अपने जीवन के संस्मरण **'अतीत के चल चित्र'** नाम से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ दिये हैं। 'कमला' और 'हंस' में प्रकाशित संस्मरण न केवल एक उपेक्षित वर्ग का जीवित चित्र प्रस्तुत करते हैं—बल्कि स्वयम् कवयित्री के मानस और हृदय की भी अत्यन्त मनोरम झलक देते हैं।

'स्वर्गीय द्विवेदीजी का एक महत्त्वपूर्ण प 'जीवन साहित्य', 'विशाल भारत', 'कमला' औ पत्रों में प्रकाशित हुआ है। उसमें हिन्दी-लेख के लिए जो सन्देश अन्तर्निहित हैं वही उन जान है।

'सर्वोदय' में श्री किशोरलाल मश्रुवाला दो महात्माओं, महात्मा गांधी और तपस्वी अरवि के दो परस्पर-विरोधी कार्य्यों से होनेवाले साम जनता के बुद्धिभेद को दूर करने के लि **'महात्माओं में मतभेद'** में समझाया है कि ह अपने कर्तव्य का स्वतन्त्र बुद्धि से हमारे अं विवेक, संस्कार और परिस्थति के अनुसार नि करना चाहिए। इस विषय में केवल आत्मज्ञान ही कारण कोई महात्मा प्रमाणभूत नहीं सकता।

वियोगी हरिजी के व्यंग्यात्मक लेख पि दिनों 'जीवन साहित्य' और 'सर्वोदय' के अं में निकले हैं और आगे भी निकलनेवाले हैं इसमें शक नहीं कि जिनको सम्बोधित कर वे लेख लिखे गये हैं उनके मर्म को स्पर्श कर हैं और उन्हें आत्मनिरीक्षण करने के लिए उत्ते देते हैं। नवम्बर के 'सर्वोदय' में 'शिक्षक उनकी ऐसी लेखमाला का एक मोती है।

'विशाल भारत' में आचार्य क्षितिमोहन का भाषण **'ज्ञान की तपस्या'** अत्यन्त चेतनाप्र है। **'साहित्य-सेवा'** लेख में साहित्य के आद की व्याख्या की गई है। श्री रणजितराय कुछ **'अशुद्ध शब्द'** लेख बतलाता है कि आ हिन्दी में कई ग़लत शब्द प्रचलित होगये हैं जिनका 'शुद्धीकरण' होना चाहिए। अवश्य जो शब्द विवादग्रस्त हैं उनके सम्बन्ध में विद्वा का निर्णय मिलना चाहिए। यह प्रश्न वास्त में निरुक्ति और भाषा-विज्ञान का है और इ विषयों के पण्डितों को इधर ध्यान देना चाहिए।

वैशाख की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका **'देवनागरी लिपि और मुसलमानी शिलाले**

लेख में डॉ० हीरानन्द शास्त्री ने सिद्ध किया है कि वर्णमाला के साथ धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं रहा, न है, न रहेगा। इसी प्रकार डॉ० ईश्वरदत्त ने एक दूसरे लेख में रोमन लिपि को हमारी राष्ट्रलिपि बनाने की सूझ की अव्यावहारिकता सिद्ध की है। नागरी और रोमन लिपियों की तुलनात्मक विवेचना से उस लेख में यथार्थ बल आगया है। किन्हीं श्रीयुत सैयद आले मुहम्मद मेहर जायसी ने कविवर **मलिक मुहम्मद जायसी** का प्रामाणिक **जीवनचरित** भी पत्रिका में दिया है—जो हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों को पढ़ना चाहिए।

और 'साहित्य-सन्देश' का **'उपन्यास अंक'** प्रतीक्षा के उपरान्त आखिर निकला और अच्छा निकला। उपन्यास के सभी अंगों पर तात्त्विक और सैद्धान्तिक विवेचन उसमें मिलता है। प्रमुख हिन्दी उपन्यासों की उसमें आलोचनाएँ हैं और उपन्यास-लेखकों ने अपनी-अपनी कलम से अपने मानसिक विकास और कला के रहस्य को खोला है—अंक आदि से अन्त तक पढ़ने की चीज़ है। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, श्री गुलाबराय, श्री नन्ददुलारे बाजपेयी, श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, श्री हरिवंशराय, श्री प्रभाकर माचवे आदि अनेक लेखकों के लेख इसमें हैं। अंक संग्राह्य ह।

'प्रीतलड़ी' का अग्रलेख—**स्वराज्य और हिन्दू-मुस्लिम एकता** सामयिक है और पढ़ने की चीज़ है। **"दैनिक जीवन की शिक्षा"** स्तंभ में से भी अनेक जीवन-मंत्र जीवन-साधकों द्वारा खोजे जा सकते हैं।

हिन्दी की हलचलें

कालिदास-दिवस

कविशिरोमणि कालिदास का स्मृति-दिवस कार्तिक शुक्ला १ को उज्जैन में संस्कृतवाग्वर्धिनी सभा की ओर से मनाया गया, जिसमें पण्डित सूर्यनारायणजी आदि के विद्वत्तापूर्ण भाषण हुए और महोत्सव को स्थायी रूप देने का प्रस्ताव स्वीकार करके ग्वालियर-नरेश की सेवा में भेजा गया।

ब्रज-साहित्य-सम्मेलन, मथुरा

१९-२० अक्तूबर को मथुरा के चम्पा अग्रवाल इण्टर कॉलेज में ब्रजवासी साहित्यिकों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें आगरे के साहित्यिकों के अतिरिक्त 'विशालभारत'-सम्पादक श्री श्रीराम शर्मा, श्री जैनेन्द्रजी, श्री मोहनवल्लभ पन्त आदि ने भाग लिया। महेन्द्रजी, ठाकुर देशराजजी और श्रीरामजी के भाषण हुए।

'ब्रजसाहित्य मण्डल' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य ब्रजभाषा-साहित्य की रक्षा और प्रचार का प्रयत्न करना नियत किया गया। सूरसागर, लोकगीत-संग्रह, ब्रजभाषाकोष-निर्माण आदि की कार्ययोजना सम्मेलन में स्वीकृत हुई और उसके लिए एक कार्य-समिति की रचना हुई—जिसके पदाधिकारी इस प्रकार निर्धारित हुए—

सभापति—श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम० ए०, एल०-एल० बी०

उपसभापति—श्री प्रो० गुलाबरायजी, एम० ए० तथा श्री मदनलालजी जैन, एम० ए०

प्रधान मंत्री—श्री सत्येन्द्रजी, एम० ए०

संयुक्त मंत्री—श्री जगदीशप्रसादजी चतुर्वेदी तथा श्री गोपालप्रसादजी व्यास

कोषाध्यक्ष—डा० विश्वपालजी शर्मा

सदस्य—सर्वश्री श्रीरामशर्मा, हरिशंकर शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त (आगरा), पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० गोकुलचन्द्र शर्मा (अलीगढ़), जैनेन्द्रकुमार (देहली) आदि।

हिन्दी-विद्यापीठ का दीक्षान्त-समारोह, बम्बई

२० अक्तूबर को हिन्दी-विद्यापीठ का पदवी-दान-समारोह हुआ, जिसमें विश्वभारती, शान्ति-

निकेतन के रिसर्च विभाग के प्रधान आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन ने दीक्षान्त-भाषण दिया और श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रवचन।

हिन्दी-प्रचारिणी सभा, दिल्ली

सभा की ओर से एक सूचना प्रकाशित हुई है कि "हिन्दू और हिन्दी" विषय पर लिखेगये सर्वोत्तम प्रस्ताव पर सभा की ओर से १०) और ५) के २ पारितोषिक प्रदान किये जायँगे। ५) वाला पुरस्कार केवल विद्यार्थियों के लिए होगा। प्रस्ताव २००० शब्दों के लगभग (विद्यार्थियों के द्वारा भेजेहुए में १२००) हो तथा वह फूल्स कैप साइज़ के कागज़ के एक ही ओर चौथाई हाशिया छोड़कर स्याही से सुन्दर लिखा होना चाहिए।

प्रस्ताव ७ दिसम्बर १९४० तक प्रधानमंत्री, हिन्दीप्रचारिणी सभा कार्यालय (३८, मोती बाज़ार, चाँदनी चौक, दिल्ली) में पहुँच जाना आवश्यक है। लिफ़ाफ़े पर 'प्रस्ताव-प्रतियोगिता' लिखा होना चाहिए।

भारती-भवन,वार्षिकोत्सव, फिरोजाबाद

२३, २४, २५ अक्तूबर १९४० को हुए भारती-भवन-पुस्तकालय फिरोजाबाद (यू. पी.) के वार्षिकोत्सव के सुअवसर पर एक हिन्दी-कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया।

समारोह में आगरे से 'साहित्य-सन्देश' के श्री गुलाबराय, श्री महेन्द्र और श्री गोपालप्रसाद व्यास, 'नोकझोंक' के श्री केदारनाथ भट्ट और श्री दामोदरदास चतुर्वेदी, 'विशालभारत'-संपादक श्री श्रीराम शर्मा के अतिरिक्त श्री जैनेन्द्र, श्री सोहनलाल द्विवेदी, श्री हरिशंकर शर्मा, श्री गोकुलचन्द्र शर्मा श्री नगेन्द्र, श्री नलिनविलोचन शर्मा, श्री भारत-भूषण, श्री नेमिचन्द्र, श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी, श्री सुधीन्द्र आदि सम्मिलित हुए थे।

२३ की रात्रि को मनोनीत-सभापति वृन्दावनलालजी वर्मा की अनुपस्थिति के कारण श्री श्रीराम शर्मा ने सभापतित्व किया और सभापति तथा वनारसीदासजी चतुर्वेदी के भाषण हुए।

२४ को सवेरे अतिथि-निवास में एक साहित्यिक गोष्ठी हुई, जिसमें श्री बनारसीदासजी अपनी साहित्य और संस्कृति-प्रचार की योज प्रस्तुत की, और उसपर बहुत-काफ़ी विचा विमर्ष हुआ। योजना का हार्द यह था साहित्यिक सेवा के कार्य को व्यापक और विस् करने के लिए विकेन्द्रीकृत किया जाय और साहित्यसेवी जन अपने-अपने स्थानों ही में साहि संस्कृति प्रचार के लिए शक्तिशाली ओर प्राण मान संगठन बना लें और नागरी-प्रचारि सम्मेलन आदि विशाल संस्थाओं के आसरे अकर्मण्यवत् न बैठे रहें। योजना का पूरा जी० सा० के सितम्बर के अंक के 'प्रस्तुत प्रश्न में दिया जा चुका है। कुछ मतभेदों और शंक समाधान के पश्चात् चतुर्वेदीजी की योज को काफ़ी समर्थन मिला। श्री महेन्द्रजी भारती-भवन के कार्य को भी शक्तिशाली ढंग चलाने के लिए एक व्यावहारिक योजना सुझायी

रात्रि को ८॥ बजे से श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के संयोजकत्व में कार्य प्रारम्भ हुआ श्री हरिशंकर शर्मा ने एक लेख पढ़ा, जिसमें उन्हों यह सिद्ध किया कि हिन्दी का पिंगल-शास् अत्यन्त व्यापक है और वह दूसरी भाषाओं छन्दों और बहरों को भी आत्मसात् किये हुए है उन्होंने उदाहरणस्वरूप करीब-करीब सब प्रका की उर्दू बहरों के हिन्दी नाम बताये, जिन्हें हाज़ राने जलसा ने पहुत पसन्द किया

कवि-सम्मेलन का श्रीगणेश श्री सोहनला द्विवेदी की 'वासवदत्ता' के साथ हुआ। इस पश्चात् सर्वश्री हरदयाल जी (दैत्यवंश), नगे जी, सुधीन्द्रजी, प्रयागनारायणजी त्रिपाठी, नेमि चन्द्रजी, भारतभूषणजी, गोपालप्रसादजी, दामो दरदासजी आदि ने कविता-पाठ किया। क हास्यरस की कविताएँ और व्यंग काव्य पढ़े ग जिन्हें अधिक पसन्द किया गया। कवि-सम्मेलन खड़ी बोली और ब्रज दोनों के संगम में श्रोता ने स्नान किया। अन्त में श्री द्विवेदीजी 'खादी' कविता से इस यज्ञ की पूर्णाहुति हुई।

जीवन-समस्याएँ

प्रश्न—'सहनशीलता' का अर्थ क्या है ? किसी में कोई बुराई हो उसका सहन कर लेना अथवा कोई अपने को अथवा समाज को हानि पहुँचावे उसको सहन करना ?

यदि हमें कोई नुक़सान पहुँचावे और उसको हम सहन करलें और उससे कुछ न कहें तो फिर क्या इससे उसके दोष को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा ? इसी प्रकार यदि किसी सामाजिक दोष को भी सहन कर लिया जावे तो उससे भी दोषी को प्रोत्साहन मिलेगा। यदि हमने उसको समझाया और वह नहीं समझा तो फिर उसे दण्ड दिया जावे या नहीं ? यदि दण्ड नहीं दिया जावे तो वह उस दोष को कैसे छोड़ेगा और यदि दण्ड दिया जावे तो फिर 'सहनशीलता' का भंग न होगा ?

उत्तर—न तो किसी बुराई को ही सहन करना चाहिए, न समाज की हानि को ही। जिसमें बुराई हो वह यदि हमारा मित्र है तो उसे उसकी बुराई बताना और प्रेम से तथा स्वयं कष्ट उठाकर उसे दूर करना हमारा कर्त्तव्य है। हमें कोई व्यक्तिगत हानि पहुँचावे तो उसे क्षमाशीलता के साथ सहन करना उनके ऊँचे दरजे की अहिंसा है। शुरुआत में इससे यदि दोष को थोड़ा-बहुत प्रोत्साहन मिलता दीखे भी, तो अन्त में इसका असर अच्छा पड़े बिना नहीं रहेगा। उसका अन्तःकरण धीरे-धीरे जाग्रत होने लगेगा। सामाजिक दोष का विरोध करना चाहिए। अहिंसक सुधारक के यहाँ 'दण्ड' की नहीं 'प्रायश्चित्त' की विधि और भाषा होती है। सुधारक का काम है ग़लती महसूस करा देना। फिर तो अपराधी अपने आप प्रायश्चित्त की याचना करता है। यह याचना ही उसकी सच्चाई का सबूत होगी।

प्रश्न—न्याय करने में दण्ड देना शामिल है या नहीं ? दुष्ट को यदि नहीं दिया जावेगा तो समाज-व्यवस्था कैसे क़ायम रहेगी ? स्वराज्य की योजना में जुर्माना, जेलखाना तथा बेंत की सज़ा को स्थान होगा या नहीं ?

हिंसात्मक या हिंसा-प्रधान समाज में 'दण्ड' देना न्याय का एक कार्य है। अहिंसा-प्रधान समाज में 'दण्ड' का स्थान 'प्रायश्चित्त' लेगा। बुराई से असहयोग व बुरे को रोगी समझकर उसके साथ व्यवहार करने से समाज-व्यवस्था अच्छी चल सकेगी। अहिंसात्मक स्वराज्य की योजना में जुर्माना, जेल, बेंत की सजा नहीं रहनी चाहिए। जेलखाने सुधारगृह होने चाहिएँ।

प्रश्न—गाँवों की जनता तक साहित्य और ज्ञान कैसे पहुँचाया जाय ?

उत्तर—उन्हें अक्षर-ज्ञान देकर पुस्तकों आदि के पठन द्वारा या मौलिक चर्चा, व्याख्यान, कथा–पुराण–कीर्तन आदि के द्वारा। गाँवों में पाठशाला में वाचनालय आदि खोले जायें और पाठशालाओं के शिक्षक इस काम को करें।

प्रश्न—गाँवों की जनता निर्धन है, उसमें पठन-पाठन की साहित्यिक रुचि नहीं या कम है। ये कठिनाइयाँ कैसे दूर हों ?

उत्तर—जिनके पास अधिक धन है, और जो गाँवों की जनता के दुःखों को महसूस करते हैं वे उनकी सहायता के लिए धन देते रहें। जो पढ़े-लिखे या साहित्यिक हैं वे अपने प्रयत्न व व्यासंग के द्वारा उनमें अभिरुचि पैदा करें। समय-समय पर छोटे नाटक, प्रहसन, कवि-सम्मेलन, साहित्यिक खेल, प्रदर्शिनी आदि वहाँ किये जायें।

[**सूचना**—प्रश्नकर्त्ताओं से निवेदन है कि वे प्रश्न बहुत संक्षेप में लिखने की कृपा किया करें।]

ह० उ०

सहयोगियों में से

संस्कृति, विद्या और कला की त्रिवेणी

[आचार्य क्षितिमोहन सेन]

"आज हम केवल राजनीतिक दासता के बन्धन से ही जकड़े हों, ऐसी बात नहीं है। इससे भी भयंकर बन्धन हमारे अपने तैयार कियेहुए हैं, जो भीतर के भी हैं, बाहर के भी। हमें उन सबसे मुक्त होना है। अपनी इस मुक्ति के लिए हमें उपयुक्त तीर्थ-स्थान खोज निकालना होगा। जहाँ दो नदियों का समागम होता है वह संगम-क्षेत्र इस देश में बहुत पवित्र माना जाता हैं; जहाँ और भी अधिक नदियों का संगम हो वह तीर्थ और भी श्रेष्ठ होता है। तीन नदियों के संगम से प्रयाग का माहात्म्य इतना अधिक है कि वह तीर्थराज कहलाता है। काशी में छोटे-छोटे नालों के संगम का भी जहाँ अधिक समावेश हुआ है उस पवित्र पंचगंगा घाट को अशेष-पुण्य-दाता माना गया है। अपनी मुक्ति के लिए भी हमें साधनाओं और संस्कृतियों का संगम ढूँढ़ निकालना होगा। भाषा को केवल भाषा मानकर हम चुप नहीं रह सकते। हमें उसे संस्कृतियों, विद्याओं और कलाओं का महान् संगम-तीर्थ बना देना होगा। अंग्रेज़ी भाषा की महिमा इसलए नहीं है कि वह हमारे मालिकों की भाषा है, बल्कि इसलिए कि उसने संसार की समस्त विद्याओं को आत्मसात् किया है। अंग्रेज न भी रहेंगे तो उनकी भाषा का आदर ऐसा ही बना रहेगा। हिन्दी को भी यही होना है। उसे भी नाना संस्कृतियों, विद्याओं और कलाओं की त्रिवेणी बनाना होगा।"

'विशाल भारत'

हमारी भाषा

[हजारीप्रसाद द्विवेदी]

"हमारा पुराना अनुभव बताता है कि हम आसेतु-हिमाचल एक भाषा से संस्कार, एक विचार, एक मनोवृत्ति तैयार कर सकते हैं। और वह एक भाषा संस्कृत है। हमें एक ऐसी भाषा चुन लेनी है जो हमारी हजारों वर्ष की परम्पराओं से कम-से-कम विच्छिन्न हो और हमारी नूतन परिस्थि का सामना अधिक-से-अधिक मुस्तैदी से कर स हो; संस्कृत न होकर भी संस्कृत-सी हो साथ ही जो प्रत्येक नये विचार को, प्र नई भावना को अपना लेने में एकदम हिचकिचा न हो—जो प्राचीन परम्परा की उत्तराधिकारि भी और नवीन चिन्ता की वाहिका भी हो।

अधिकांश मनुष्य जिस भाषा में बोल सक हों, अधिकांश मनुष्यों की नाड़ी के साथ जि भाषा का अच्छेद्य सम्बन्ध हो, वह भाषा क्या है ? आपसे कहने की आवश्यकता नहीं; पर आपको संस्कृत की याद एक बार फिर दिला दे हूँ। हिन्दी या हिन्दुस्तानी हमारी अधिक ज की समझ में आनेवाली अधिक प्रचलित भा ज़रूर है, पर संस्कृत ने हमारे सर्व देश की भा पर जो अपना अनुत्सारणीय (न हटाया जा सके वाला) प्रभाव रख दिया है वह कम नहीं है।

मैं भाषा के संस्कृत बनाने की वकालत न कर रहा हूँ। मैं कह रहा हूँ कि पिछले हजा वर्ष के इतिहास ने हमें जो कुछ दिया है, उ हम सबक़ सीखें। हमारे कथन का तात्पर्य नहीं है कि हम विदेशी शब्दों का बहिष्कार करें मैं ऐसा कैसे कह सकता हूँ जब कि हमारी श्रे संस्कृत भाषा ने ही विदेशी शब्दों को ग्रहण कर का रास्ता दिखाया है। हमारे संस्कृत-साहित्य होरा, द्रेक्काण, अपोक्लिम, पणफर, कौर्प्य, जू लेय, हेलि आदि दर्जनों ग्रीक शब्द व्यवहृत हु हैं। ये ग्रीक शब्दों के संस्कृतवत् रूप हैं; संस्कृतवत् रूप हैं परन्तु संस्कृत में इतने अधि प्रचलित हो गये हैं कि कोई संस्कृत का पंडि इनकी शुद्धता में संदेह नहीं करता। 'ताज नीलकंठी' (एक ज्योतिष-ग्रंथ) से यदि मैं ए श्लोक पढ़ूँ तो आप शायद समझेंगे कि मैं कुर की आयत पढ़ रहा हूँ—

'खल्लासरं रद्दमथो दुफालिः कुत्थं तदुत्थोत्थदिवी नामा।' 'स्यादिक्कवालः इशराफ योगः'—इत्या

रमल ('रमल' नामक ज्योतिष विद्या) के ग्रंथों में कोड़ियों अरबी और फारसी के शब्द व्यवहृत हुए हैं। एक श्लोक में 'तारीख' शब्द का ऐसा व्यवहार किया गया है मानो वह पाणिनि का ही शब्द है-'तारिखे च त्रितये त्रयोदशे'। सुलतान शब्द का 'सुरत्राण' रूप संस्कृत के काव्य-ग्रंथों में ही नहीं मुसलमान बादशाहों के सिक्कों पर भी पाया जाता है। पुरातन प्रबन्ध-संग्रह में एक जगह मसजिद को 'मसीति' बनाकर ही प्रयोग नहीं किया गया है, अनुप्रास के साँचे में बैठाकर "अशीतिर्मसीति" कहकर उसमें सुकुमारता भी लायी गई है। नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप विदेशी शब्दों को निकालना शुरू करें। मुझे गर्व है कि आपने आज जिस भाषा को अपने लिए सामान्य भाषा के रूप में वरण किया है, उसने उर्दू के रूप में इतने विदेशी शब्दों को हजम किया है कि संसार की समस्त विदेशी भाषाओं को वह पाचन-शक्ति की प्रतिद्वन्दिता में पीछे छोड़ गयी है। प्रचलित शब्दों का त्याग करना मूर्खता है; पर मैं साथ ही ज़ोर देकर कहता हूँ कि किसी विदेशी भाषा के शब्दों के आ जाने भर से वह विदेशी भाषा संस्कृत के साथ बराबरी का दावा नहीं कर सकती। वह हमारे नवीन भावों के प्रकाशन के लिए संस्कृत के शब्दों को गढ़ने से हमें नहीं रोक सकती। प्रचलित शब्दों को विदेशी कहकर त्याग देना मूर्खता है; पर किसी भाषा के शब्दों का प्रचलन देखकर अपनी हज़ारों वर्ष कीं परंपरा की उपेक्षा करना आत्म-घात है। संस्कृत ने भिन्न-भिन्न भाषाओं से हजारों शब्द लिये हैं; पर उन्हें संस्कृत बनाकर। हम अब भी विदेशी शब्दों को लें तो उन्हें भारतीय—इस देश के उच्चारण और वाक्य-रचना-परम्परा के अनुकूल बनाकर।"

[हिन्दी-विद्यापीठ, बम्बई के दीक्षांत-समारोह पर]

शक्ति का अपव्यय

[प्रो० हरिदत्त दुबे एम० ए०]

हममें से प्रायः सभी की शक्ति का प्रधान भाग विचार-सृजन में व्यय होता है। तब यह निश्चित समझिए कि शक्ति के व्यय का प्रश्न प्रधानतः विचारों के राज्य में उठता है। यह तो सभी जानते हैं कि हमारे जीवन की सभी प्रेरणायें मूलतः विचार-राज्य में उत्पन्न होती हैं। कुछ प्रेरणायें स्थल संसार में उतर आती हैं, कुछ विचार में ही सीमित रहती हैं। इन प्रेरणाओं का विचार-सीमा से बाहर न निकलना दो कारणों से हो सकता है। एक तो तब ऐसा होता है, जब विचार और कार्य का अत्यधिक अन्तर कार्य-परिणति को असम्भव-सा कर देता है; और दूसरे तब जब कर्त्ता का विवेक विचार को इतना नीच समझता है कि वह उसे कार्य में परिणत करना ही नहीं चाहता।

× × ×

इस बात को ध्यान में रखकर कि प्रत्येक तीव्र इच्छा बहुमूल्य आत्म-बल का गुप्त प्रवाह है, यह सोचिए कि कितनी शक्ति का अपव्यय हमारे दैनिक जीवन में होता है। बस यही छोटी-सी बात सफलता के प्रश्न को हल कर देती है। सफल और महान् व्यक्तियों की इच्छाओं और कार्यों की दिशा एक ही हुआ करती है किन्तु असफल और साधारण व्यक्तियों के जीवन में इन दोनों में या तो विरोध होता है या औदासीन्य। अपने नीच विचारों को हम अपनी समझ में भले ही भीतर दबाकर रखने का प्रयत्न करें और लोगों को धोखा देकर अपने आपको उनकी दृष्टि में साधु सिद्ध करने में समर्थ भी हो जावें, पर जीवन की शक्ति को कभी हम धोखा नहीं दे सकते।

यदि हम पानी को उचित मार्ग से न बहने देंगे तो वह रुद्ध होकर इधर-उधर से बह निकलेगा और उत्पात का कारण होगा। हम इस अपने महान् अपव्यय की ओर ध्यान दें। जबतक यह अपव्यय नहीं रोका जाता, कोई भी व्यक्ति सफल और महान् नहीं हो सकता। हमें ऐसे प्रत्येक विचार से अपने अन्तरात्मा को दूर रखने का प्रयत्न करना चाहिए, जिसे हम कार्य में व्यक्त नहीं होने देते। ऐसा प्रत्येक विचार हमारी आत्मिक हार और हमारे आत्म-बल का अपव्यय है।

'कल्पवृक्ष']

क्या और कैसे ?

राष्ट्रनिर्माण में हिन्दी

भारतीय राष्ट्र का निर्माण होना है, धीरे-धीरे हो भी रहा है। स्वराज्य-प्राप्ति का आन्दोलन दरअसल तो राष्ट्रनिर्माण ही के लिए है इसीलिए महात्माजी राष्ट्रनिर्माणकारी रचनात्मक कार्यक्रम पर बार-बार जोर देते हैं। पहले उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम के चार अंग गिनाये थे-- राष्ट्रीय शिक्षण, कौमी एकता, खादी व अस्पृश्यता-निवारण। अब उन्होंने इनका विस्तार करके १३ विषय देश के सामने रक्खे हैं--

(१) हिन्दू-मुस्लिम या साम्प्रदायिक एकता,
(२) अस्पृश्यता-निवारण,
(३) नशा-निषेध,
(४) खादी,
(५) दूसरे ग्रामोद्योग,
(६) ग्राम-स्वच्छता,
(७) नई या बुनियादी शिक्षा,
(८) प्रौढ़-शिक्षा,
(९) स्वास्थ्य-शिक्षण,
(१०) स्त्री-सेवा,
(११) राष्ट्रभाषा प्रचार,
(१२) मातृभाषा-प्रेम,
(१३) आर्थिक समानता।

आप देखेंगे कि इनमें राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार भी शामिल है। इसका अर्थ यह हुआ कि महात्माजी अकेले हिन्दीभाषियों से ही हिन्दी का प्रचार नहीं चाहते हैं, बल्कि प्रत्येक भारतवासी से उसके प्रचार की अपेक्षा रखते और आग्रह करते हैं।

हिन्दी अब अकेले हिन्दीभाषियों के ही नहीं समस्त भारत के गर्व व गौरव की वस्तु बन रही है। ऐसी दशा में उसके साहित्य की वृद्धि और प्रचार की अब और भी ज्यादा जिम्मेदारी हमारी हो जाती है।

अपमानकारक

हिन्दी के सुलेखक व मेरे एक प्रिय मित्र के दिल को 'लेखक या जनता ?' नामक मेरे लेख से बड़ी चोट पहुँची है। एक मित्र ने उनका पत्र मुझे दिखाया जिसका संबंधित अंश इस प्रकार है।

"श्री उपाध्यायजी ने चलतेहुए सहज भाव से न जाने कितनों के दिल पर हथोड़े की चोट मार दी है। हालाँकि अहिंसा-सत्य के वे दावेदार हैं, वे लिख सकते हैं। उनकी भाषा, उनकी प्रतिपादन-शैली एक चीज़ है और नवीनतायुक्त होती है। 'जीवन-साहित्य' आते ही आद्यंत पढ़ने की चीज़ होती है। यह सब गुण होतेहुए भी वे साहित्य की प्रचलित-धारा से बहुत दूरी पर हैं। अतएव जब इसपर वे मत देने का साहस करते हैं तो वज्रपात कर देते हैं! उन्होंने गतांक में जो मौलिक-अमौलिक की चर्चा छेड़ी है, वह सर्वथा स्वाभिमानी लेखक के लिए अपमानास्पद है। यह उनका गुरुतर अपराध है, 'अव्यापारेषु व्यापार' है। मैं मनसा-वाचा उपाध्यायजी को ज्येष्ठ बन्धु से ज्यादा समझता हूँ। तथापि 'दोषा वाच्या गुरोरपि' के न्यायानुसार उनका वह 'अभियोग' (अमौलिकता का) मैं अपमानकारक मानता हूँ। इसलिए मैंने जो लिखा था, वह भी दूसरी जगह भेज दिया। वहाँ 'गणना' तो नहीं है? जिनके नाम उन्होंने गिनाये हैं वे ही साहित्य-धारा के उनके अज्ञान के नमूने हैं।"

मैं इसलिए यह अंश उद्धृत कर रहा हूँ कि मुझे मालूम हुआ है कि और लेखक भाई-बहनों को भी बुरा लगा है। मगर वे यकीन रखें कि इन मित्र का पत्र मिलने से पहले मुझे ऐसी आशंका तक नहीं हुई थी। जो व्यक्ति कुछ सेवा करना चाहता है वह किसी का अपमान करने की भावना तो रख ही कैसे सकता है? मैंने दुबारा उस लेख को पढ़ा। नाम गिनाना दरअसल बड़ा टेढ़ा काम है। इसलिए जिनके नाम छूट गये उनसे मैंने वहीं क्षमा माँगली है। उसका अर्थ तो हरगिज़ नहीं है कि वह कोई पूरी सूची है या उसमें योग्यतानुसार क्रम रक्खा गया है। हाँ, हिन्दी की वर्त्तमान साहित्य-धारा से और सब साहित्यिकों

से मैं पूरा परिचित नहीं हूँ। 'त्याग-भूमि' के बन्द होने के बाद साहित्यिक जगत् से मेरा संपर्क छूट-सा गया था। ऐसी हालत में कुछ च्युतियाँ या त्रुटियाँ मित्रों व पाठकों को क्षमा ही करनी होंगी। इन मित्र ने जिस खरेपन के साथ अपने विचार व भाव लिखे हैं वह मुझे बहुत अच्छा लगा। जो मुझे गलतियाँ बताकर सावधान करते हैं व जाग्रत रखते हैं उनका मैं आभारी ही हो सकता हूं।

'लेखक या जनता' में तो मैंने अपनी मजबूरी या दरिद्रता दिखाई है। हिन्दी के विद्वान मौलिक लेख और पुस्तकें लिखें—लिखते रहें—यही उद्देश उस लेख के लिखने का था। मुझे बड़ी खुशी होगी यदि कोई ऐसी विधि मेरे हाथ लग जाय जिससे हमारा उद्देश भी पूरा हो जाय और किसी का दिल भी न दुखे। एक अहिंसावादी की राह कितनी मुश्किल है, यह इस पत्र से अच्छी तरह मालूम हो जाता है। मगर मुश्किल होते हुए भी सही राह वही है। मेरी राय में अहिंसा की सही कसौटी यह नहीं है कि किसी को दुःख पहुँचा या नहीं, बल्कि यह है कि दुःख देने या पहुँचाने की नीयत थी या नहीं। अहिंसावादी की अभिव्यंजना भी अहिंसात्मक होनी चाहिए अर्थात् वह ऐसे ढंग से कही, लिखी या की जानी चाहिए जिससे सामनेवाले को भी अहिंसात्मक या शुद्धभावनात्मक प्रतीत हो। मेरी कोशिश हमेशा ऐसी ही रहती है मगर यह पत्र दिखाता है कि हमें कितना सजग रहने की ज़रूरत है ?

सही रास्ता

अबकी कांग्रेसी सदस्यों के उपस्थित रहने से बड़ी धारासभा में खूब चहल-पहल रही। सरकार की तरफ़ से युद्ध-खर्च की मंजूरी चाही गई। कांग्रेसी सदस्यों ने इसका विरोध किया। सरकार के पास एक ही दलील थी—हिन्दुस्तान खतरे में है, ब्रिटेन की सहायता करना हिन्दुस्तान को खतरे से बचाना है। विरोधी पक्ष का कहना है कि यह युद्ध साम्राज्य-रक्षा के लिए है। हिन्दुस्तान की, सचमुच रक्षा करना है तो उसे अपनी राष्ट्रीय-सरकार बना लेने दीजिए; फिर वह दिलोजान से अपनी रक्षा की चिन्ता कर लेगा और वह ब्रिटेन की सब से बड़ी सहायता होगी। यदि ब्रिटेन के राजनेता सचमुच हिन्दुस्तान को दूसरे उपनिवेशों के बराबर मानते हैं तो क्यों हिन्दुस्तान को अपनी सरकार नहीं बनाने दी जाती ? युद्ध के उद्देशों के सिलसिले में क्यों यह साफ़ शब्दों में नहीं कह दिया जाता कि यह युद्ध दुनिया के तमाम देशों और राष्ट्रों के प्रजातन्त्रों की रक्षा के लिए किया जा रहा है ? इन प्रश्नों का कोई सन्तोषजनक जवाब सरकार-पक्ष की तरफ़ से नहीं दिया गया।

इस तरह एक ओर असेम्बली में यह वाद-विवाद हुआ, तहाँ दूसरी ओर महात्माजी ने सत्याग्रह छेड़ दिया है। उनकी माँग है कि युद्ध के सम्बन्ध में हमें सही राय जाहिर करने की आजादी होनी चाहिए। यह खींचातानी हिन्दुस्तान व ब्रिटेन दोनों को अशान्ति में डालेगी। इस स्थिति को ठीक करने का सही रास्ता तो यही है कि कांग्रेस व सरकार का कुछ निपटारा हो। राष्ट्रीय सरकार बनाने से अच्छा हल इस समय तो इसका नहीं देखाई देता।

हमारी परीत्ता

अब रहा हिन्दुस्तान की रक्षा का सवाल। सच पूछिए तो इसकी चिन्ता का भार भारतवासियों पर ही रहना और छोड़ देना चाहिए। वे ही अच्छी तरह सोच सकते हैं कि किसके साथ रहने में भारत की भलाई है ? आज भारत के सभी दलों के नेता 'नाज़ीवाद' के खिलाफ़ व प्रजातन्त्रवाद के पक्ष में हैं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि वे युद्ध में ब्रिटेन के साथ सहानुभूति रखें व रखेंगे। ऐसी हालत में तो यह और भी उचित है कि भारत-रक्षा की ज़िम्मेदारी से ब्रिटेन अपने को मुक्त करले व हिन्दुस्तान जितनी सहायता अपनी रक्षा के लिए उससे माँगे वह उसे दे और हिन्दुस्तान से अपनी रक्षा के लिए भी उचित सहायता माँगे व प्राप्त करने का उद्योग करे। मगर ब्रिटेन जो कुछ सोचता व करता है, उसके

बावजूद भारतवासियों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने देश की रक्षा के उपाय सोचें व उसकी तैयारी करें।

इसमें दो मत के लोग हैं, एक तो कहते हैं कि इस युद्ध में अंग्रेज़ों का साथ देकर ही हम भारत की रक्षा कर सकते हैं, स्वतन्त्ररूप से हम कुछ नहीं कर सकते। दूसरे लोग कहते हैं कि हम स्वतन्त्र रूप से अपनी रक्षा करें, लेकिन उनका विश्वास शस्त्रबल में नहीं है। अहिंसात्मक प्रतिकार उनका मार्ग है। किन्तु वे यह महसूस करते हैं कि अभी इतना अहिंसात्मक संगठन देश में हो नहीं गया है जिससे किसी बाहरी हमले का सफलतापूर्वक मुक़ाबला किया जा सके। 'सफलतापूर्वक' मुक़ाबला करने की गैरण्टी तो आज शस्त्रबल के हामी भी शायद ही दे सकें। शस्त्रबल हो या आत्मबल—दोनों दशाओं में बस-भर उद्योग ही किया जा सकता है। तब फिर अहिंसात्मक संगठन में ही अपनी सारी शक्ति क्यों न लगाई जाय?

लेकिन महात्माजी के सत्याग्रह ने अभी तो देश का ध्यान 'रक्षा' के प्रश्न की बनिस्बत 'वाणी स्वातन्त्र्य' की ओर खींच लिया है। बहरहाल यह निर्विवाद है कि भारत की रक्षा की पहली व आखिरी जिम्मेदारी हिन्दुस्तानियों की है और वह उन्हीं पर रहनी चाहिए।

शिक्षण व सरकार

सरकार के बीसों कर्त्तव्यों में शिक्षाप्रचार भी एक है। शिक्षा की ज़रूरत ज्ञान, सुसंस्कार व निर्वाह के लिए है। ऐसी शिक्षा सरकार के नियंत्रण से मुक्त रहकर ही दी जा सकती है। अक्सर सरकार अपने साँचे में ढालने की दृष्टि से शिक्षा-योजनायें बनाती हैं। जहाँ सरकार राष्ट्रीय हो वहाँ तो फिर भी उसका नियंत्रण एक हद तक समझ में आ जाता है मगर भारत के जैसी अ-राष्ट्रीय सरकार के हाथ में भारतीय शिक्षा-दीक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था रहना अस्वाभाविक व हानिकारक है और हाल ही युद्ध के या सत्याग्रह के सिलसिले में महाराष्ट्र व यू० पी० की सरकारों की तरफ़ से विद्यार्थियों पर जो पाबन्दियाँ लगाई हैं और शिक्षा-विभाग से यह चाहा गया है कि वे हड़ताल या प्रदर्शन करनेवाले विद्यार्थियों की सूची बनाकर सरकार को दे—इस कार्रवाई ने और भी भले प्रकार इस बात को सिद्ध कर दिया। मेरा भी मत यही है कि विद्यार्थियों को राजनीति और राजनैतिक हलचलों का अध्ययन तो करना चाहिए पर उनमें पड़ना नहीं चाहिए और खासकर जब खुद महात्माजी उन्हें मना करते हैं तब तो उन्हें अनुशासन तोड़ना ही नहीं चाहिए। परन्तु मैं यह भी अनुचित समझता हूँ कि सरकार इस मामले में शिक्षा-विभाग से अपने सी० आई० डी० का काम ले। अनुशासन-भंग की अवस्था में शिक्षा-विभाग के अधिकारी अपने-आप उचित कार्रवाई करेंगे। सरकार को क्यों बेजा दस्तन्दाजी करनी चाहिए? मगर ऐसा जान पड़ता है कि सरकार युद्ध के मामले में जरूरत से ज्यादा 'छुई-मुई' हो गई है और इससे उसकी समतोलता घटती जा रही है। यह शुभचिन्ह नहीं है।

एक और सबूत

सरकार की समतोलता कम होने का एक और सबूत है उसकी अखबारों पर लगाईगई पाबन्दी। युद्ध विरोधी या यों कहें कि सत्याग्रह सम्बन्धी कोई खबर, बयान तक न छापने का आदेश भारत-सरकार ने जारी किया था। मगर यह गलती तो उसने, अखबारवालों के हल्ला मचाने से, ठीक करली। लोगों को सही खबरें देना व उन्हें शिक्षित करना अखबारों व व्यवसायिक पत्रों का काम व कर्तव्य है। इससे सरकार को भी बड़ा लाभ पहुँचता है। उसे जनता के मत व भाव ठीक मालूम हो जाते हैं और अपनी नीति तथा कार्यक्रम निर्धारित करने में सहायता मिलती है। सरकार का पूर्वोक्त आदेश समाचार-पत्रों को इस आवश्यक व उपयोगी कर्त्तव्य के पालन से रोक देता था और इसलिए उनका दिल्ली में सम्मिलित होकर विरोध की आवाज उठाना स्वाभाविक ही था। सरकार ने अपनी

इस गलती को दुरुस्त कर लिया, यह अच्छा हुआ। आशा है, विद्यार्थियों-सम्बन्धी अनुचित पाबन्दियों को भी वह उठालेगी।

नवीन विश्व-व्यवस्था

हिटलर नवीन विश्व-व्यवस्था की तजवीजें बनाने में लवलीन है। इसमें तो कोई शक नहीं कि संसार वर्तमान व्यवस्था से ऊब उठा है। इस व्यवस्था ने किसी को शान्ति या सुख नहीं पहुंचाया। उन्नति व समृद्धि जो दिखाई दी वह भी अब नष्ट-भ्रष्ट हो रही है। ज़रूर इस व्यवस्था के मूल में भारी दोष है। दोष दुहेरा है––एक तो सिद्धान्त व नीति संबंधी; दूसरा क्षेत्र-विभाग-सम्बन्धी। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धांत बदलना होगा। उसकी जगह 'जहाँ प्रेम तहाँ क्षेम' यह उसूल जारी करना होगा इसी तरह छोटे राष्ट्रों को हड़पने—राजनैतिक या आर्थिक दृष्टि से उन्हें अपना दास बनाने, की नीति हटाकर 'सबकी समान स्वतन्त्रता' की या यों कहें कि 'सर्वोदय' की नीति मंज़ूर करनी होगी। अभी का क्षेत्र-विभाग शोषण-नीति के अनुसार हुआ है। उसकी जगह मनरो का यह सिद्धान्त कि 'अपना देश––अपना शासन' दृढ़ता से चलाना होगा। प्रत्येक भूखण्ड के निवासी अपनी शासन-व्यवस्था में स्वतंत्र रहें—अमेरिका में अमेरिकन, योरप में योरपियन, एशिया में एशियन व अफ्रिका में अफ्रिकन आदि। भूखण्ड के अन्तर्गत भी प्रत्येक राष्ट्र आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मानकर अपने में स्वतंत्र व परिपूर्ण रहे––ऐसी व्यवस्था बनानी होगी। पता नहीं हिटलर की विश्व-योजना इन्हीं सिद्धान्तों व नीतियों के अनुसार बनेगी या नहीं। अभी जैसा समाचार मिला है कि उसकी व्यवस्था में हिन्दुस्तान रूस को दे दिया जायगा––वह तो यही सूचित करता है यह व्यवस्था मनमानी होगी। हिन्दुस्तान के भाग्य-निर्णय का अधिकार हिन्दुस्तानियों को है और उन्होंने तो स्वतन्त्र ही रहने का निश्चय किया है। अब देखना है यह महायुद्ध किस प्रकार का नया युग और नयी व्यवस्था लाता है। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है कि जो व्यवस्था स्वतन्त्र, समता, सर्वोदय, आत्म-निर्णय, परस्पर सहयोग के सिद्धान्त पर बनेगी वही अधिक दिन टिकेगी। 'स्वतन्त्रता' का अर्थ 'ऐकान्तिकता' हरगिज न मानना चाहिए। ऐकान्तिकता––एकाकीपन––एक बेमानी व अस्वाभाविक वस्तु है। स्वाधीनता के दावे का सच्चा अर्थ है आत्मनिर्णय ही।

हरिजन-उद्योगशाला

हरिजन बालकों को जीवनोपयोगी शिक्षा देना हरिजन-सेवा का एक महान् अंग है। किंग्स वे दिल्ली की हरिजन-उद्योगशाला ऐसा ही उद्योग कर रही है। उस दिन उसका दीक्षान्त-समारोह हुआ, जिसमें शाला के व्यवस्थापक श्री वियोगी हरि ने (अपनी वार्षिक रिपोर्ट में) तथा हरिजन सेवक संघ के मन्त्री श्रीयुत ठक्कर बाप्पा ने (अपने भाषण में) यह बतलाया कि शाला से दीक्षित हुए हरिजन-विद्यार्थी घर जाकर न केवल अपनी जीविका ही ईमानदारी से कमा रहे हैं, बल्कि उनके मन और हृदय में जो अच्छे संस्कार यहाँ जम गये हैं, उनके प्रकाश में वे अपने हाथों जो कुछ समाज-सेवा बन पड़ती है, करते हैं।

इससे यह आशा करने के लिए पर्याप्त कारण हैं कि जनता का यथोचित सहयोग इस संस्था को मिलता रहा तो एक दिन ऐसा आयेगा जब 'हरिजन-निवास में ऐसे लड़के तैयार हों, जिससे अस्पृश्यता का जड़मूल से नाश होवे।" यह महात्मा-जी की आशा फलवती होगी।

गम्भीर साहित्य की कमी

कई मित्र यह शिकायत करते हैं कि हिन्दी में गम्भीर व शास्त्रीय साहित्य की बहुत कमी है। प्रकाशक सिर धुनते हैं कि गम्भीर विषय की पुस्तकों के खरीदार बहुत कम होते हैं। लेखक लम्बी साँस छोड़ते हैं कि हमने परिश्रम करके पुस्तक लिखी, पर कोई छापने को तैयार नहीं। और पाठक शायद कहें कि गहन विषयों की पुस्तकों में हमारा मन ही नहीं लगता।

यह बात निर्विवाद है कि यदि हम 'लोकरुचि

की आराधना' की नीति को मानकर चलेंगे तब तो गम्भीर और शास्त्रीय साहित्य के लिखने-छपने की गुंजायश शायद ही रहे। लोकरुचि को बदलने का प्रयत्न हमें करना चाहिए। इसका सबसे अच्छा उपाय है शिक्षा-प्रचार। इससे उनमें ज्ञान-लालसा उत्पन्न होगी। हम लेखक-संपादक पाठकों में भावनायें तो खूब भरते हैं; पर उनकी ज्ञान-पिपासा को कम जगाते हैं। भावपूर्ण साहित्य की अपेक्षा हमें युक्ति और ज्ञान-पूर्ण साहित्य अधिकाधिक देना चाहिए। भावपूर्ण साहित्य से जोश व बल तो बढ़ता है, साहस भी आता है, परन्तु बुद्धि और विवेक नहीं बढ़ते, जिससे उनका पथ प्रकाशरहित रहता है। न सोचने-समझने या जानकारी बढ़ाने की उत्सुकता ही उनमें बढ़ती है। कथा-कहानी, उपन्यास, नाटक, सिनेमा में भावोद्दीपन की ओर जितना ध्यान रहता है, उतना ज्ञानवर्धन की ओर नहीं।

इस समय तो क्या लेखक और क्या प्रकाशक सब अधिकांश में लोकरुचि के गुलाम से हो रहे हैं। उनकी बेबसियाँ भी स्पष्ट हैं। लेखक दरिद्र और कई प्रकाशक टुटपूँजिए हैं। लेखन और प्रकाशन अभी हिन्दी में ऐसा धन्धा बना नहीं कि हमारे धनपति कपड़े और शकर की मिलों की तरह उनमें अपना धन जी खोलकर लगावें। गरीब हिन्दी को न तो कोई राजाश्रय ही प्राप्त है, न कुबेराश्रय ही। हैदराबाद के निजाम की ओर से आज जितना रुपया उर्दू-साहित्य की श्री-वृद्धि के लिए खर्च हो रहा है, उसका शतांश भी कोई हिन्दी-भाषी नरेश या धनीमानी खर्च कर रहे हैं? विद्या और कला को कोई आश्रय चाहिए। सच्चा आश्रय तो जनता का ही हो सकता है; परन्तु जनता जबतक जाग्रत और प्रबुद्ध नहीं होती, तब तक समाज के उच्चशिक्षित, धनीमानी, राजा-रईसों का कर्तव्य है कि वे इनको आश्रय दें और इनकी वृद्धि में हर तरह सहायक हों।

विज्ञापन-नीति

मैं पिछले एक अंक में यह साफ़ कर चुका हूँ कि 'जी० सा०' का एक उद्देश सद्विचारों व सद्ग्रंथों का प्रचार है। ग्रंथों में 'मंडल' के हैं; नहीं अन्य प्रकाशकों के अच्छे ग्रंथ भी शामिल हैं। 'जी० सा०' के द्वारा ग्रन्थों का प्रचार तो विज्ञापन द्वारा ही मुख्यतः हो सकता है। इसलि 'जी० सा०' में ऐसे विज्ञापन तरह-तरह से दि जाते हैं। इसपर मित्रों ने कुछ आशंकाएँ प्रक की हैं, कुछ चेतावनियाँ दी हैं। 'वीणा' ने विनोद स्तम्भ में एक मीठी चुटकी ली है। आशंकि होनेवाले विद्वान् मित्र लिखते हैं—

"संभव है, कई लोग पत्र को 'मण्डल' क विज्ञापन-पत्र आदि कहकर हँसी उड़ाएँ। आ उसकी चिन्ता न करें। उन्हें कहें कि जिस दे में गन्दी चीज़ों के इतने विज्ञापन होते हैं, उ देश में सात्विक साहित्य के विज्ञापन-पत्रों का कम महत्त्व नहीं है।"

चेतावनी देनेवाले आत्मीय मित्र सुझाते हैं-

"लोगों के विज्ञापन बुरी तरह भर गये हैं और बड़े-बड़े। × × × गांधीजी के नाम क औरों को सहारा नहींहमें कुछ है, उस पूँजी को सँभालकर रखना चाहिए।"

इनपर 'जी० सा०' की तरफ से सफा होना ज़रूरी है। 'जी० सा०' के विज्ञापन दो हिस्सों में बँट जाते हैं (१) साहित्यिक (२) इतर। साहित्यिक विज्ञापन तो मण्डल की तथ बाहरी अच्छी पुस्तकों और सामयिक पत्रों के रहेंगे और दूसरे विज्ञापन उन्हीं चीज़ों के दि जायँगे, जो जीवनोपयोगी हों, कम-से-कम जीवन को हानि पहुँचानेवाली न हों। और तो ठीक ज पुस्तकें भी जीवन के लिए हानिकारक होंगी, उन् न मण्डल में स्थान रहेगा, न उनका विज्ञापन ह 'जी० सा०' में किया जायगा। मेरा मत तो अब भी यही है कि पैसे लेकर विज्ञापन न छा जायँ; परन्तु यह विषय संपादकीय क्षेत्र के बाह है और फिलहाल मैंने बुरी चीज़ों के विज्ञापन देने के दायरे में सन्तोष मान लिया है।

यदि मण्डल का उद्देश अच्छी पुस्तकों क प्रकाशन व प्रचार है, मुनाफा कमाना कतई नहीं

और 'जी० सा०' का भी एक उद्देश यह है तो फिर अच्छी पुस्तकों का तो जितना अधिक विज्ञापन हो, उतना ही पाठकों का लाभ तथा साहित्य की सेवा है। यदि पुस्तकों की बिक्री बढ़ी तो लेखकों को अधिक और गम्भीर विषयों पर पुस्तकें लिखने व प्रकाशकों को प्रकाशित करने का उत्साह मिलेगा। आज सभी प्रकाशक यह शिकायत करते हैं कि हम गम्भीर विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित करने को तैयार हैं, अधिक रुपया लगाने व खर्चने को भी राज़ी हैं; परन्तु पुस्तकें जब बिकती नहीं, तो न पाठकों को लाभ पहुँचता है न हमारा ही उत्साह अधिक रुपया लगाने को बढ़ता है। ऐसी दशा में 'जी० सा०' के द्वारा यदि अच्छी पुस्तकों की बिक्री बढ़ी, तो विशेष सेवा ही समझी जायगी। यह 'जी० सा०' के लिए हिचक की या शर्म की नहीं, गौरव की बात होनी चाहिए।

ह० उ०

गीता-जयन्ती *

कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर अर्जुन को गीता का उपदेश मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को दिया गया था, यह विद्वानों ने माना है। इसे सही मानकर चलने में कोई हर्ज नहीं है। इससे '**मासानां मार्गशीर्षोऽहं**' महीनों में मार्गशीष महीना मेरी विभूति है, इस वचन को विशेषता मिलती है। उस दिन हिन्दुस्तानभर में सर्वत्र गीता का स्वाध्याय-प्रवचन होने का प्रस्ताव है।

प्रस्ताव यह उचित है। पर गीता-धर्म का प्रचार केवल प्रवचन से न होगा, यह भूलना न चाहिए। गीता ज़बानी जमा-ख़र्च का शास्त्र नहीं बल्कि आचरण-शास्त्र है। इसका प्रचार आचरण किया और किसी तरह भी नहीं होने का। गीता का धर्म एक खुला धर्म है। किसी के लिए उसके छूने की मनाही नहीं। स्त्री, वैश्य, शूद्र जिनमें वेद के गहरे कुएँ में से पानी निकालने की शक्ति नहीं है, उनके लिए गीता के बहते झरने से मनमाना पानी पाने की सुविधा है। गीतामैया के यहाँ छोटे-बड़े का भेद नहीं है, बल्कि खरे-खोटे का है। जिसकी तपश्चर्या करने की तैयारी नहीं, जिसके हृदय में भक्ति का प्रवाह नहीं, सुनने की जिसकी तीव्र इच्छा नहीं, अथवा जिसकी बुद्धि में निर्मत्सर भाव नहीं है, उसके सामने यह रहस्य भूलकर भी प्रकट मत करना, भगवान् ने अर्जुन को यह आदेश दिया है।

गीता के प्रचार के मानी है निष्काम कर्म का प्रचार। गीता के प्रचार के मानी हैं भक्ति का प्रचार। गीता के प्रचार के मानी हैं त्याग का प्रचार। यह प्रचार पहले अपनी आत्मा में होना चाहिए। जिस दिन उससे आत्मा भरपूर हो जायगा, उस दिन वह दुनिया में फैले बिना न रहेगा। गीता पर आजतक हिन्दुस्तान में प्रवचनों की कमी नहीं रही है। तरह-तरह की टीकाएँ भी लिखी गई हैं। गीता के तात्पर्य के सम्बन्ध में समाचार-पत्र वग़ैरा में पुराने, नये शास्त्री पंडितों का वाद-विवाद भी काफ़ी हुआ है; पर अनुभव से यह नहीं जान पड़ता कि उसकी वजह से साक्षात् निष्काम कर्म को उत्तेजन मिला हो। उलटे, उससे रजोगुण की मात्रा का ज़ोर बढ़ा है। मन भर चर्चा की अपेक्षा कन भर आचरण श्रेष्ठ है। 'उठ भोर राम का चिन्तन कीजे' इस वाक्य के लिखनेवाले का उद्देश्य यह नहीं है कि लोग बैठकर इसे घोखें बल्कि यह है कि प्रातःकाल उठकर राम का चिन्तन करें।

गीता का रहस्य गीता की पोथी में छिपा हुआ नहीं है। वह तो खुला हुआ है। भगवान् खुद ही कहते हैं कि मैंने उसे सूर्य से कहा है। इतना साफ़ है कि जिसके आँखें हों वह देख सकता है और यदि छिपाहुआ ही है तो गीता की पोथी में तो निश्चय ही नहीं छिपा है। वह हृदय की गुफा में छिपा है। इस गुफा का मुहँ पाप के पत्थर डालकर बन्द कर दिया गया है। उन्हें हटाकर अन्दर देखना चाहिए। उसके लिए मेहनत करनी पड़ेगी।

गीता 'कुरु' क्षेत्र में कही गई है। संस्कृत में

---

* सस्ता-साहित्य-मंडल से प्रकाशित 'विनोबा और उनके विचार' में से

'कुरु' का अर्थ है कर्म कर । कुरुक्षेत्र यानी कर्म की भूमि । इस कर्म की भूमिका पर गीता कही गई है और वहीं उसे मेहनत के कानों से सुनना है ।

बहुतेरों की समझ है कि मिशनरी लोग जैसे बायबल की प्रतियाँ मुफ्त बाँटते हैं । उसपर व्याख्यान देते फिरते हैं, कोई सुने या न सुने अपना राग अलापे जाते हैं, वैसे ही हम गीता के बारे में करें, तो हमारे धर्म का प्रचार होगा । पर यह कोरा वहम है । मिशनरियों ने जो बहुत ही थोड़ा-सा सच्चा धर्म-प्रचार किया है वह उनमें के कुछ सज्जनों की सेवा का फल है । बाक़ी के उनके धर्म-प्रचार को तो दंभ ही कहना चाहिए । पर इस दंभ से उनके काम को नुक़सान पहुँचा है । उनके अनुकरण से हमारा कोई लाभ नहीं होगा ।

अतः गीता-जयन्ती के दिन गीता के प्रचार की बाहरी कल्पना पर ज़ोर न देकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हाथ से कुछ भी निष्काम सेवा बने । साथ ही, भक्तियुक्त चित्त से यथाशक्ति गीता का थोड़ा-सा पाठ करना भी उपयुक्त है ।

हिन्दी-प्रेमियों से

'जी० सा०' का 'हिन्दी की हलचलें' स्तम्भ हम चाहते हैं कि, हमारे विशाल हिन्दी-जगत् में होनेवाली हलचलों की मासिक डायरी बन सके परन्तु बिना हिन्दी-प्रेमियों के सहयोग के ऐसा नहीं हो सकता । अतः समस्त हिन्दी-संस्थाओं, सभाओं, सम्मेलनों और हिन्दी-प्रेमियों से पुनः प्रार्थना है कि वे ऐसी महत्त्वपूर्ण हलचलों के सम्वाद छोटे-से-छोटे करके शीघ्र से शीघ्र 'जीवन-साहित्य' के लिए भेज दिया करें ।

इसी प्रकार प्रकाशकों से भी निवेदन है कि वे भी अपनी प्रकाशित पुस्तकों तथा भविष्य की योजनाओं की सूचना शीघ्र से शीघ्र हमें भेज दिया करें ।

सु०

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं ।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया । मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

कुछ प्रशंसा-पत्रों का सार

मि० एच. एम. हैरिस, (लन्दन)—मैंने बाज़ार के प्रायः सब प्रकार के दन्तरोग नाशक मञ्जनों का प्रयोग किया, किन्तु किसीसे इतना लाभ नहीं पहुँचा, जितना आपके 'दन्तामृत' मञ्जन से । **तब से मेरे दाँत में एक बार भी दर्द नहीं हुआ ।**

ठा० माधोसिंहजी, होम मैम्बर, जोधपुर स्टेट—मेरे दाँतों के लिए आपका मञ्जन रामबाण सिद्ध हुआ ।

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

'सस्ता साहित्य मण्डल' का सम्पूर्ण साहित्य

[एक रुपया देकर स्थायी ग्राहक बनने पर पौने मूल्य में]

(× इस निशानवाली पुस्तकें अप्राप्य हैं)

पूरा सेट लेने पर कमीशन के अलावा सागवान का पॉलिश कियाहुआ सुन्दर शेल्फ भेंट में

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन साहित्य १।) ३. तामिल वेद ॥।) ४. व्यसन और व्यभिचार ॥=) ५. सामाजिक कुरीतियाँ× ॥।) ६. भारत के स्त्री-रत्न ३) ७. अनोखा× १।=) ८. ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।=) ९. यूरोप का इतिहास २) १०. समाज-विज्ञान ॥।) ११. खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र× ॥=) १२. गोरों का प्रभुत्व× ॥।=) १३. चीन की आवाज़× ।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।) १५. विजयी बारडोली× २) १६. क्रांति की राह पर ॥=) १७. सीता की अग्नि-परीक्षा ।-) १८. कन्या-शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ॥) २२. अँधेरे में उजाला ॥) २३. स्वामीजी का बलिदान× ।-) २४. हमारे ज़माने की गुलामी× ।) २५. स्त्री और पुरुष ॥) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें ? १) २८. हाथ की कताई-बुनाई× ॥-) २९. आत्मोपदेश× ।) ३०. यथार्थ आदर्श जीवन× ॥।-) ३१. (देखो नवजीवन माला) ३२. गंगा गोविंदसिंह× ॥=) ३३. श्रीरामचरित्र १।) ३४. आश्रम-हरिणी ।) ३५. हिन्दी मराठी कोष २) ३६. स्वाधीनता के सिद्धान्त× ॥) ३७. महान् मातृत्व की ओर ॥=) ३८. शिवाजी की योग्यता ।=) ३९. तरंगित हृदय ॥) ४०. नरमेध× १॥) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४२. ज़िन्दा लाश ॥) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) १॥) ४४. जब अंग्रेज़ आये× १।=) ४५. जीवन-विकास १।) ४६. किसानों का बिगुल× =) ४७. फाँसी ! ।=) ४८. (दे० नवजीवन माला) ४९. स्वर्ण-विहान× ।=) ५०. मराठों का उत्थान-पतन २॥) ५१. भाई के पत्र १) ५२. स्वगत× ।=) ५३. युगधर्म× १=) ५४. स्त्री-समस्या १॥) ५५. विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला× ॥=) ५६. चित्रपट ।=) ५७. राष्ट्रवाणी× ॥=) ५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ॥।) ५९. ५९. रोटी का सवाल ॥।) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६१. जीवन-सूत्र ॥।) ६२. हमारा कलंक ॥=) ६३. बुद्बुद ॥) ६४. संघर्ष या सहयोग ? १॥) ६५. गांधी-विचार-दोहन ॥।) ६६. एशिया की क्रांति× १॥।) ६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता १॥) ६८. स्वतन्त्रता की ओर १।) ६९. आगे बढ़ो ! ॥) ७०. बुद्ध-वाणी ॥=) ७१. काँग्रेस का इतिहास २॥) ७२. हमारे राष्ट्रपति १) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू) २॥) ७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों ? ॥) ७६. नया शासन-विधान ॥।) ७७. (१) गाँवों की कहानी ॥) ७८. (२-९) महाभारत के पात्र १) ७९. सुधार और संगठन १) ८०. (३) संतवाणी ॥) ८१. विनाश या इलाज ॥।) ८२. (८) अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ॥) ८३. (५) लोक-जीवन ॥) ८४. गीता-मंथन १॥) ८५. (६) राजनीति-प्रवेशिका ॥) ८६. (७) अधिकार और कर्त्तव्य ॥) ८७. गांधीवाद : समाजवाद ॥।) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ॥) ८९. (८) सुगम चिकित्सा ॥) ९०. प्रेम में भगवान् ॥) ९१. महात्मा गाँधी ।=) ९२. ब्रह्मचर्य ॥) ९३. (१०) हमारे गाँव और किसान ॥) ९४. अभिनन्दन-ग्रंथ २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्यायें १) ९६. जीवन-सन्देश ॥) ९७. समन्वय २) ९८. समाजवाद-पूँजीवाद ॥।) ९९. मेरी मुक्ति की कहानी ॥) १००. खादी-मीमांसा १॥) १०१. बापू ॥।) सजिल्द १।) २) १०२. विनोबा और उनके विचार ॥)

नवजीवन माला

१. गीताबोध -) २. मंगलप्रभात -) ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय -)

कोष्ठकवाली 'लोक साहित्य माला' की पुस्तकें हैं।

५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज =) ७. छूतछात की माया -) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १०. खादी-गादी की लड़ाई =) ११. मधुमक्खी पालन =) १२. गावों का आर्थिक सवाल =) १३. राष्ट्रीय गायन =) १४. खादी का महत्त्व -)॥ १५. जब अंग्रेज़ नहीं आये थे =)

सामयिक साहित्य माला

१. कांग्रेस का इतिहास १९३५-३९ ।-) २. दुनिया का रंगमंच =) ३. हम कहाँ हैं ? =) ४. युद्ध-संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब,कैसे ? =) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।) ७. सत्याग्रह क्यों शुरू हुआ ? ।=)

बाल साहित्य माला

१. सीख की कहानियाँ =) २. कथा-कहानी—१=) ३. शिवाजी-चरित्र=) ४. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ५. सीख की कहानियाँ (२) =)

विविध पुस्तकें

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू ।) २. जवाहरलाल नेहरू =) ३. सप्तसरिता (काका कालेलकर) =) ४. चारा दाना और उसको खिलाने के उपाय =)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ।) ३. फ्रांस की राज्य-क्रांति १।) ४. गांधीवाद की रूपरेखा १) ५. सन् १९४० १) ६. पिता के पत्र पुत्री के नाम ।।)

प्रचारित पुस्तकें

१. आर्थिक संगठन ।।।) २. योग के चमत्कार १।) ३. रूपांतर ।।) ४. पौराणिक कथायें १) ५. अनोखा बलिदान ।।) ६. पाकचंद्रिका ७. मेरा देश ।)

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—लेखक—पं० जगपति चतुर्वेदी। यह पुस्तक कई प्रसिद्ध अंग्रेज़ी, संस्कृत, पाली तथा हिन्दी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना उतना कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना कठिन है। इस पुस्तक में अपने मन, वाणी आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर अधिकार करने के सहज सरल उपाय बताये गये हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। मूल्य १)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय। इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति के लिए अपने सर्वस्व निछावर करने वाले वीर-वीरांगनाओं की कहानियों का संग्रह है। प्रत्येक कहानी बहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और ज़ोरदार भाषा में लिखीहुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनानेवाली हैं। सुन्दर कवर से युक्त पुस्तक का मूल्य ।।।)

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथितहृदय। इस पुस्तक में उन कहानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती हैं। चरित्र-निर्माण के लिए इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ।।।)

मैनेजर—**छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग**
कानपुर के सोल एजेंट-साहित्य निकेतन, कानपुर

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला

१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)

२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)

३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)

४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)

५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

कथा-कहानी; गल्प-उपन्यास पढ़ने में भी परख, विवेक व सतर्कता की आवश्यकता है।

'कहानी'

ही इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है।

* * *

इसकी विशेषताएँ हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील मौलिक रचनाएँ।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय व अन्तर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।

(३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासोंकी रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ।

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का

वार्षिक मूल्य केवल ३) है।

एक प्रति का दाम चार आना है।

नवीन ग्राहकों से निवेदन—

१ नवम्बर ४० से हमने 'कहानी' का वार्षिक मूल्य ३) और पुस्तकालयों के लिए २।।) कर दिया है। अभी हमारे पास 'कोकिला' नामक उपन्यास की जो गुजराती के सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक श्री रमणलाल बसन्तलाल देसाई की अनुपम कृति है, कुछ प्रतियाँ शेष हैं। जो महानुभाव 'कहानी' के शीघ्र ग्राहक बन जावेंगे उनको, ।=) पोस्टेज के लिए लेकर, हम यह पुस्तक भेंट में दे देंगे।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियां

श्री जैनेन्द्र—

'…विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं! उनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है…'

श्री सुदर्शन--

'…इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है।…मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'…छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब--सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है…'

श्री उषादेवी मित्रा--

'…'कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है-अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना…'

श्री देवराज उपाध्याय—

'…कथा-साहित्य सम्बन्धी जितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है'

श्री उदयशंकर भट्ट—

'…पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा…इस अंक की संम्पूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई है।'

श्री रवीन्द्र—

'Cheap Sentimental कहानियों से मुझे बैर है, पर इस बार विशेषांक देखकर तबियत खुश होगई…'

श्री पहाडी--

…'कहानी' के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेगीं।'

कृपया आज ही ३।=) मनीआर्डर से भेज दें: पुस्तकालय २।।।=) भेज सकते हैं।

सरस्वती प्रेस, बनारस

संग्रह करने योग्य ग्रन्थ

मानव

[श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल का कविता-संग्रह]

काका सा० कालेलकर के शब्दों में यह हरएक मानव के लिए प्यार से पढ़ने की और उसपर अपना जीवन कसकर देखने की चीज़ है। सुन्दर छपाई, बढ़िया काग़ज़, मू० दस आने।

दो फूल

श्रीमती सत्यवती मलिक के इस कहानी–संग्रह की समालोचना करते हुए 'जीवन-साहित्य' (नवम्बर) में लिखा है, "ये कहानियाँ हिन्दी-संसार में एक नई प्रणाली, एक नया दृष्टिकोण उपस्थित करती हैं। इनमें एक ऐसी ख़ासियत है जो बहुत कम रचनाओं में देखी जाती है। इस संग्रह की सभी कहानियाँ सुन्दर, कलापूर्ण और सरस हैं।" मू० १)

उर्दू हिन्दी कोश

(संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण)

इस अत्यन्त उपयोगी कोश में उर्दू और उर्दू में काम आनेवाले अरबी, फारसी, तुर्की, इब्रानी, पोर्तुगीज आदि भाषाओं के लगभग साढ़े ग्यारह हज़ार शब्दों का सरल हिन्दी में अनेक पर्यायवाची शब्द देकर अर्थ किया गया है और यह भी बतलाया गया है कि प्रत्येक शब्द किस भाषा का है, साथ ही लिंग, विशेषण, अव्यय आदि भी बतलाये हैं। मुहाविरों और क़ानूनी शब्दों का भी संग्रह किया गया है। अब की बार पहले से एक हज़ार शब्द अधिक दिये गये हैं। मूल्य वही २॥) ढाई रुपया।

नीति-विज्ञान

[ले० श्रीगोवर्द्धनलाल एम० ए० बी० एल०]

नीति, सदाचार या धर्म की वैज्ञानिक आलोचना। हिन्दी में अपने विषय का सबसे पहला ग्रंथ। सदाचार की उत्पत्ति, उसका विकास, धर्म और ईश्वर से उसका सम्बन्ध, धर्मों के द्वारा कियेगये अत्याचारों का इतिहास, धर्म और मज़हब आदि बातों पर अपूर्व प्रकाश। लेखक की वरसों की समस्या का फल। विद्वानों द्वारा अतिशय प्रशंसित। मूल्य २) रुपया, राजसंस्करण का ३) रु०

अरबी काव्य-दर्शन

[ले० प्रो० महेशप्रसाद आलिम-फ़ाज़िल]

अरबी भाषा के काव्य-साहित्य में से नीति, युद्ध, शृंगार, वैराग्य आदि की सूक्तियों को चुनकर इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है। एक-एक सूक्ति पढ़कर आप फड़क उठेंगे। मू० १)

नोट—अपने नज़दीक की दूकान से ख़रीदिए, नहीं तो फिर हम से मँगाइए। हमारा सूचीपत्र मँगालीजिए।

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई ४**

उपरोक्त पुस्तक सस्ता साहित्य मण्डल की सब शाखाओं पर मिलती हैं।

सिरीज़ का प्रकाशन पहली जनवरी से आरम्भ

सरस्वती-सिरीज़
क्रान्तिकारी
क्रान्तिकारी
२
आठ आना
दस पुस्तकें पहली जनवरी को तैयार

हमारी प्रथम योजना १०० पुस्तकें प्रतिवर्ष के हिसाब से ५ वर्ष में ५०० पुस्तकें निकालने की है। ये पुस्तकें सभी मुख्य-मुख्य विषयों पर होंगी और इनसे एक सुन्दर

घरेलू-पुस्तकालय

बन जायगा। प्रत्येक पुस्तक की पृष्ठ-संख्या २००-२५०, गेट-अप सुन्दर और मूल्य आठ आना होगा।

ग्राहक बनने के नियम

प्रत्येक पाठक (क) सिरीज़ की कुल पुस्तकों के लिए, (ख) कुछ विभागों की कुल पुस्तकों के लिए या (ग) चुनी हुई किन्हीं २० पुस्तकों के लिए ग्राहक बन सकता है।

पेशगी चंदा १) है।

२० पुस्तकें मिल जाने के बाद यह फिर से जमा होगा। पोस्टेज-पैकिंग माफ़ रहेगा। चुनने के लिए पूरी पुस्तकों की सूची फ़ार्म भर कर आने पर भेज दी जायगी।

निम्नलिखित १० पुस्तकें
पहली जनवरी को तैयार हो जायंगी।

१ दैनिक जीवन और मनोविज्ञान २ क्रान्तिकारी ३ समरक़ंद की सुन्दरी ४ चक्रभेद ५ रूसी कहानी-संग्रह ६ सूर-संदर्भ ७ रामकृष्ण चरितामृत ८ आधुनिक जापान ९ पृथ्वी का इतिहास १० मेरा संघर्ष (हिटलर)

५०० पुस्तकें निम्न प्रकार से १० विभागों में निकलेंगीं–

विचारधारा	५०	विश्व उपन्यास	५०	आधुनिक उपन्यास और नाटक	५०
कहानी-संग्रह	५०	रहस्य-रोमांच	१००	ऐतिहासिक विचित्र कथा	५०
विज्ञान	३०	जीवनचरित्र	२०	हिन्दी-साहित्य	६०
		धर्मग्रन्थ	४०		

सरस्वती-सिरीज़, इंडियन प्रेस, लि; प्रयाग

मेरा नाम पूरी सिरीज़ के / विभाग के / २० पुस्तकों के ग्राहकों में लिख लीजिए।
चन्दा वी० पी० भेजकर वसूल कर लीजिए। / मनीआर्डर से भेज रहा हूँ।
नाम
पता

जिस विषय तथा ढङ्ग की पुस्तकों की कमी से हमारा हिन्दी-साहित्य एवम् हिन्दी-भाषी समाज अपूर्ण था, उन्हीं पुस्तकों का प्रामाणिक तथा सर्व-सुलभ सिरीज़

प्रत्येक २००-२५० पृष्ठ की सुन्दर पुस्तक केवल आठ आने में

सरस्वती सिरीज़, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

दिल्ली में

सब प्रकार की उत्तम छपाई

और ख़ास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली :: फ़ोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से

किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था
'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें
हमारे यहाँ छपती हैं ।

'हंस-परिवार' की अनुपम योजना के सदस्य बनिए

[१] भारतीय-पुस्तक-माला
- (क) कायाकल्प (३ भाग)
- (ख) स्नेह-यज्ञ [१-२]

[२] 'हंस' पुस्तकें
- (क) मा [भाग १-२]
- (ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग ३]
- (ग) सात इनक़लाबी इतवार [भाग १-२-३]

[३] गल्प-संसार-माला
१० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी संग्रह ।

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
- (क) नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रंथावली
- (क) शोभा ले : इन्द्र वसावड़ा
- (ख) संजीवनी ले : 'सोपान'
- (ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] ले : सोपान

[६] जागृत-महिला-साहित्य
- (क) पिकनिक; लेखिका—कमलादेवी चौधरी
- (ख) पिया; लेखिका—उषादेवी मित्रा
- (ग) कौमुदी; लेखिका—शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
- (क) कँटीलेतार [भाग १-२]
- (ख) जाई-जुई

और ९ अन्य पुस्तकें

[८] 'हंस' मासिक १२ अंक

[९] 'कहानी' मासिक के १२ अंक और १।।) मूल्य की 'कोकिला' नामक पुस्तक भेंट ।

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों को मात्र २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की महँगी के ज़माने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं : यह संस्था तो सेवा के लिए ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम 'हंस-परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे ।

इस मूल्य में निश्शुल्क बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठसंख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर रु० २।।) में १००० पृष्ठ मिलते हैं। इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है । यह योजना बेजोड़ है। निस्सन्देह।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा :

[१] १२०० पृष्ठ में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं । [४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों, कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह । १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे । [५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उपस्थित किया गया है। [६] महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न । यह आपके परिवार में पत्नी तथा मा-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे । [७] 'आज की किताब' के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुलझाव रहेगा । अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

जूट कारपेट

अति सुन्दर और आकर्षक होने पर भी
मज़बूत तथा क़ीमत में भी बहुत सस्ते हैं ।

इसलिए
किसी भी प्रकार को सजावट के लिए
सब लोग जूट कारपेट को ही पसन्द करते हैं ।

मिलने का पताः—

सभी जूट कारपेट की दुकानों में
तथा

खन्ना इन्डस्ट्रीज, बनारस सिटी
नेशनल नॉवेल्टी स्टोर, कानपुर
जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग
और
बङ्गाल स्टोर्स, लिमिटेड

टेलीफोन नं० कलकत्ता ३६३२, नं० ८ए चौरंगी प्लेस, कलकत्ता में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपकी इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं ।

एजेंसी के लिए निम्न पते पर लिखें :—

टेलीफोन नं० कलकत्ता ५६५ टेलीग्राम—जूट वीवर

बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

आरती

[कलापूर्ण प्रगतिशील मासिक]

संपादक { सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

प्रत्येक हिन्दी-पाठक के लिए नियमित रूप से आरती पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि इसके हर अंक में आपको मिलेगा—

—विश्व की विविध प्रवृत्तियों का परिचय ।
—भारतीय साहित्य की गति-विधि का निर्देश ।
—साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर नवीनतम विचार।
—ओजपूर्ण कहानियाँ और कवितायें ।
—संसार के महापुरुषों का उत्कृष्ट शब्द-चित्र ।
—उत्पीड़ित मानवता की विद्रोहपूर्ण हुंकार ।
—गम्भीर और प्रभावशाली टिप्पणियाँ ।

ग्राहक बनकर और विज्ञापन देकर लाभ उठाइए

वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति ।।)

नमूने के लिए आठ आने का टिकट भेजिए ।

आरती-मंदिर, पटना सिटी

राष्ट्रभाषा के प्रचारमें सभी प्रकारकी सहायता देनेवाली मासिक पत्रिका

"सबकी बोली"

वार्षिक चन्दा १।)

[राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा से संचालित]

सम्पादक—काका कालेलकर, श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हर महीने की १५ वीं तारीख को निकलती है

इसमें आपको राष्ट्रभाषा-प्रचार-आन्दोलन की बहुत उपयोगी ताजी सामग्री, प्रचार-आन्दोलन की दिशा के संकेत, हिन्दी विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों के काम की बातें, कहानी, सरल कविता, शब्द-चर्चा, सरल शैली के निबन्ध, पात्र-चरित्र-चित्रण, कभी-कभी परीक्षा-प्रश्न-पत्रों के सरल उत्तर, महापुरुषों की जीवनियाँ इत्यादि पढ़ने को मिलेंगे । पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने में भी यह पत्रिका अपनी ओर से यथाशक्ति प्रयत्न करेगी । हिन्दुस्तानभर के राष्ट्रभाषा-प्रेमी इसके द्वारा अपने प्रचार तथा अनुभव राष्ट्र के सामने रख सकेंगे ।

जो परीक्षार्थी 'सबकी बोली' के ग्राहक बनते वक्त **अपनी परीक्षा की क्रम-संख्या** लिख भेजेंगे, उन्हींको यह रु० १) में दी जायगी ।

व्यवस्थापक— **'सबकी बोली', वर्धा**

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमैन--सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये
भुगतान पूँजी--१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहाँ हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजरः—
८, रॉयल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता
या
बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को।

कमला

(महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका)

नारी-जागरण की अग्रदूती

सम्पादक—**बाबूराव विष्णु पराड़कर**

प्रकाशक—**भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।**

नारी-जागरण का महान् सन्देश सुनानेवाली हिन्दी की प्रमुख सर्वोत्तम मासिक पत्रिका 'कमला' के प्रकाशन से हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में एक अजीब तहलका मच गया है। हरएक उसकी गम्भीरता और उपयोगिता का कायल हो रहा है। कुछ एक पत्रों ने तो यहाँतक कहा है कि आजतक हिन्दी में एक भी ऐसी पत्रिका नहीं निकली। यदि आपको विश्वास न हो तो एक प्रति मँगाकर देख लें। नमूने के लिए ।≡) का टिकट भेजिये। वार्षिक मूल्य केवल ४॥) रखा गया है। आज ही चन्दा भेजिए या नमूना मँगाइए।

मनेजर—**'कमला'**

गायघाट, बनारस।

किशोरों का एकमात्र सचित्र मासिक

संपादक—**रामदहिन मिश्र**
गेट अप आकर्षक
वा० मू० ३)

किशोर

सह०—**हंसकुमार तिवारी**
चित्रादि नयनाभिराम
नमूने की एक प्रति।)

बिहार, संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत और बरार तथा बड़ौदा के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत

इसमें प्रेरक कवितायें, देश और दुनिया का मुख उज्ज्वल करनेवाले अमर नर-वीरों की जीवन-गाथायें, किशोर-जीवन की रोज-दिन की समस्यायें, उनके कुछ प्रश्न और प्रश्नों के समाधान, साहसिक कथा-वार्ता, देश-विदेश की बात, साहित्य, शिल्प, समाज और राजनीति की सहज-सरल आवश्यक चर्चा, ज्ञान-विज्ञान, जीव-जंतु, इतिहास आदि सभी ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला जाता है। देश के भावी भाग्य-विधायकों के लिए 'किशोर' एक उपयोगी ज्ञान-विज्ञान का कोष ही नहीं, उज्ज्वल भविष्य के निर्माण का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

इसमें आचार्य काका कालेलकर, हरिऔधजी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, श्री रामवृक्ष वेनीपुरी, मुक्त, डॉक्टर रविप्रताप, श्री राधाकृष्ण, आरसी, नेपाली, श्री सोहनलाल द्विवेदी, स्वर्ण सहोदर, केसरी आदि की उपयोगी रचनायें छपती हैं।

भावी नागरिक-निर्माण की सद्प्रेरणा से अपने-अपने घरों, गाँवों, शिक्षण-संस्थाओं, पुस्तकालयों और वाचनालयों में 'किशोर' को स्थान दीजिए।

व्यवस्थापक—'किशोर', बाँकीपुर (पटना)

लक्ष्मी इन्श्योरेन्स कम्पनी, लिमिटेड

स्थापित : १९२४ : : प्रधान कार्यालय : लाहौर

में

पारिवारिक आमदनी और बच्चों के बीमे वग़ैरा की
आकर्षक आयोजनायें हैं

आँकड़े (३१—१२—३६ के मुताबिक)

चालू काम	८,२४,५४,००० रुपये
नया काम	१,५०,१०,००० ”
जीवन-कोष	१,३३,४८,००० ”
जमा पूंजी	१,४६,४१,००० ”

विशेषता

दावों का तुरन्त निर्णय

विशेष जानकारी के लिए लिखिए

लाला दीनानाथ चड्ढा,
ब्रांच—मैनेजर, नई दिल्ली

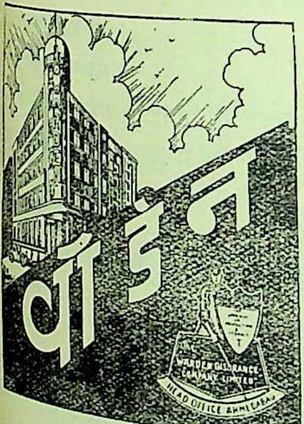
वॉर्डन
WARDEN INSURANCE COMPANY LIMITED
HEAD OFFICE AHMEDABAD

वॉर्डन

सबसे आगे क्यों है ?
इसलिए............कि
वह सबसे अधिक सहूलियतें
देती है ।

आइए, आज ही वार्डन
इन्श्योरेन्स कं० के एजेन्ट बनने के लिये पत्र व्यवहार करें—

बालकृष्ण शाह एण्ड कं० इन्दौर सिटी

प्रकाशित होगया !

साहित्य संदेश का उपन्यास-अंक

उपन्यास-अंक के कुछ लेख और उनके लेखक

उपन्यास—	श्री हजारीलाल
उपन्यास का शरीर विज्ञान—	श्री गुला
उपन्यासों का स्वरूप—	श्री विनोदशंकर
कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ—	श्री शांतिप्रिय
हिन्दी का कथा-साहित्य—	श्री पदुमलाल पुन्नालाल
हिन्दी-उपन्यासों का प्रवृत्ति-गत विकास—	श्री गोपालप्रसाद
हिन्दी उपन्यास का भविष्य—	श्री प्रकाशचन्द्र
हिन्दी उपन्यासों के कुछ अभाव—	श्री ताराशंकर
उपन्यासों का वर्गीकरण—	श्री रामचन्द्र

* * *

हिन्दी उपन्यासों के तीन अग्रदूत—१—श्री देवकीनन्दन खत्री, २—श्री गोपाल गहमरी, ३—श्री किशोरीलाल

प्रेमचन्द—	श्री गोपालप्रसाद
प्रसादजी के उपन्यास—	श्री कृष्णदेवप्रसाद
जैनेन्दकुमार : दो दृष्टिकोण से—	१—श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी २—श्री प्रभाकर
बृन्दावनलाल वर्मा : तुलनात्मक अध्ययन—	श्री ज्ञानचन्द्र
सियारामशरणजी उपन्यासकार के रूप में—	श्री गुलाब
उपन्यासकार कौशिकजी—	श्री शर्मनलाल
भगवतीचरण वर्मा (उपन्यासकार)—	श्री प्रकाशचन्द्र
श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के तीन उपन्यास—	श्री चिरञ्जीलाल
पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास—	श्री 'उदयशंकर
पं० चतुरसेन् शास्त्री—	श्री बद्रीप्रसाद
निरालाजी के उपन्यास—	श्री गोपालप्रसाद

पंच-पात्र : १ श्रीनाथसिंह, २ उषादेवी, मित्रा, ३ पांडेय बेचन शर्मा, ४ अनूपलाल मंडल, ५ राजा राधिकारमण

* * *

प्राचीन कथा-साहित्य—	श्री वासुदेवशरण
बंगला का आधुनिक उपन्यास-साहित्य—	प्रो० निर्मलचन्द्र
मराठी के राजनीतिक उपन्यास—	श्री प्रभाकर
गुजराती का उपन्यास-साहित्य—	श्री नट
अंगरेजी उपन्यासों का विकास—	श्री हरिवंशराय

* * *

हिन्दी के उपन्यासकार—परिचय और उनके अनुभव—

श्री ऋषभचरण जैन, श्रीमती उषादेवी मित्रा, श्री भगवतीचरण श्री सियारामशरण गुप्त, श्री विश्वम्भरनाथजी कौशिक, श्री वृन्दावनलाल वर्मा, श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री

इस अंक का मूल्य १) है। स्थायी ग्राहकों को मुफ्त। पत्र का वार्षिक मूल्य ३) है। विद्यार्थियों से २) मात्र।

पता—मैनेजर, साहित्य-सन्देश, साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

जीवन-यात्रा में

विधवा का करुण क्रन्दन

पाषाण पुरुष-हृदय

पर कोई असर नहीं करता है।

क्योंकि

वह अपनी वृद्धावस्था के लिए अथवा अपनी प्रिय पत्नी के लिए या अपने प्यारे बच्चों के लिए संकट-समय का एकमात्र सहारा जीवन-बीमा नहीं कराता।

सहृदय होकर बिड़ला-बन्धुओं द्वारा प्रबन्धित

न्यू एशियाटिक में

बीमा कराइए

जिसने १९३४ ई० में १५,३८,५००
" १९३५ " २५,०१,०००
" १९३६ " ३०,६६,७५०
" १९३७ " ३५,५९,५००
" १९३८ " ४१,७४,७५०
" १९३९ " ५०,११,७६८

बीमे किये हैं

और जो प्रगतिशील बीमा कम्पनी है।

योग्य एजेण्टों की शहरों तथा कस्बों में आवश्यकता है।

न्यू एशियाटिक लाइफ इन्शुरेंस कम्पनी, लिमिटेड

कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएं:—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), लाहौर, पटना,
संगठन कार्यालय—अर्नाकुलम (कोचीन), कानपुर, तंजोर, त्रिचनापल्ली, कोलम्बो,
गून इत्यादि।

साधना

सचित्र सांस्कृतिक मासिक पत्रिका
वार्षिक मूल्य केवल २)

प्रतिमास ४० पृष्ठ के लगभग ठोस और उपयोगी सामग्री

इतना सस्ता, इतना उपयोगी, इतना सुरुचिपूर्ण दूसरा पत्र नहीं।

इसमें—

१–हिन्दी के चोटी के विद्वानों के लेख, साहित्य-सम्बन्धी और आलोचनात्मक
२–कृत-विद्य कलाकारों की कला-कृतियाँ, कहानी, एकांकी, कविता, गद्य-काव्य
३–सचित्र लेख–ग्राम-समस्या, समाज-समस्याओं पर ऐतिहासिक वर्णनों और ऐतिहासिक शोधों पर
४–विश्व की आधुनिकतम विचार-धाराओं का परिचय
५–नये और होनहार लेखकों को परामर्श
६–युवकों के भावों, विचारों और आचारों का विश्लेषण
७–स्फूर्ति और उन्नति देनेवाली जीवनियाँ, ये सब बातें एक साथ–और फिर वर्ष में एक

विशेषाङ्क

इसमें आपका ही लाभ है। अतः शीघ्र ही ग्राहक-श्रेणी में अपना नाम लिखाइए

नोट—पत्रिका यू० पी०, सी० पी०, बरार, भूपाल, अलवर, बीकानेर, गवालियर आदि कितने ही देशी राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा पुस्तकालयों और शिक्ष.-संस्थाओं के लिए स्वीकृत है।

जीवन–सखा

—प्राकृतिक चिकित्सा का एक मात्र सचित्र मासिक पत्र—

यदि आप डाक्टर वैद्यों से परेशान हो गये हैं, दवा खाते-खाते घबरा गये हैं तो जीवन-सखा पढ़िए और अपना इलाज घर बैठे स्वयं कीजिए। जीवन-सखा पढ़कर कितने ही व्यक्तियों ने अपने को असाध्य रोगों से बिना दवा के मुक्त कर लिया। यदि आप अपने और अपने परिवार के स्वास्थ्य और सौन्दर्य में वृद्धि करना चाहते हैं तो जीवन-सखा को अपनाइए। इसके विषय हैं—आहार-शास्त्र, व्यायाम-विज्ञान, विश्राम-विज्ञान, आसन, प्राणायाम एवं मनोविज्ञान।

जीवन-सखा पाँच वर्ष से नियमित रूप से निकल रहा है। नमूने के लिए एक आने के टिकट के साथ आज ही लिखिए।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया।

प्रबन्धक—जीवन-सखा, इलाहाबाद।

“तारा” छाप कागज की सभी क्वालिटी

प्रिन्टिंग बैंक कवर एन्टिक

रंगीन मनीला

सफेद लेजर

स्वदेशी सस्ती सुन्दर टिकाऊ

[ट्रेड-मार्क]

भारतीय कागज व्यवसाय में तारे की तरह चमक रही हैं

आप भी—
भारतीय, मूलधन, प्रबन्ध
और परिश्रम का ध्यान
रखते हुए सदा स्टार पेपर
मिल लिमिटेड का
कागज व्यवहार करें।

एजेन्ट—
बिहारीलाल मदनलाल
श्री महालक्ष्मी मारकेट,
इम्पीरियल बैंक के पास दिल्ली
फोन नं० ६३५९

नोट:—'जीवन-साहित्य' का यह अंक 'स्टार पेपर मिल' के बने २०×२६, २४ पौण्ड व्हाइट प्रिंटिंग पर छपा है।

Regd No L 4671

सस्ता साहित्य मण्डल

के १९४० के प्रकाशन

स्थायी ग्राहकों के पास न पहुँचे हों तो ख़रीद लें

(सर्वोदय साहित्यमाला)

१. प्रेम में भगवान—टॉल्स्टॉय की १७ चुनी हुई सदाचार और नीति की कहानियाँ । दाम ॥)

२. हमारे गाँव और किसान—हमारे गाँवों और किसानों की हालत उनके दुखदर्द के हाल तथा उनको दूर करने के उपाय इसमें बताये गये हैं । दाम ॥)

३. ब्रह्मचर्य—महात्माजी के ब्रह्मचर्य-संबंधी लेखों का संग्रह । दाम ॥)

४. गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ—

महात्मा गांधी की ७१ वीं वर्ष गाँठ पर समर्पित तथा सर्वपल्ली राधाकृष्णन् द्वारा संपादित अभिनंदन ग्रंथ । दाम २)

५. हिन्दुस्तान की समस्यायें—

जवाहरलाल नेहरू के हिन्दुस्तान की समस्याओं पर लिखे विचारपूर्ण लेख । दाम १)

६. जीवन-संदेश—

खलील जिब्रान की सुप्रसिद्ध पुस्तक The Prophet का अनुवाद । दाम ॥)

७. समन्वय—

डॉ० भगवानदासजी के विचारों का संग्रह । दाम २)

८. समाजवाद : पूँजीवाद—

प्रसिद्ध अँग्रेज़ी लेखक बर्नाड शॉ की प्रसिद्ध पुस्तक के आधार पर लिखी । दाम ॥।)

९. मेरी मुक्ति की कहानी—

महर्षि टॉल्स्टॉय की आत्म-कहानी तथा उनके बचपन के संस्मरण । दाम ॥)

१०. खादी-मीमांसा—

खादी-विचारधारा को तर्क तथा आँकड़ों और उद्धरणों से समझानेवाली पुस्तक । दाम १।)

११. बापू—

महात्मा गांधी का अत्यंत निकट से कियाहुआ विश्लेषण, अनेक निजी तथा रोचक स्मरणीय प्रसंगों से पूर्ण–१३ सुन्दर चित्रों सहित; दाम ॥।) सजिल्द १।), हाथ का कागज की २)

१२. 'विनोबा' और उनके विचार—

प्रथम सत्याग्रही विनोबा के विचारों को पढ़कर आप जीवन जीना जान जावेंगे। यह समझेंगे कि सफल जीवन उसीका है जिसने जीवन जीना सीखा । दाम ॥)

नवजीवन माला की पुस्तकें

१. राष्ट्रीय गान—चुनीहुई राष्ट्रीय स्वदेश-भक्ति-पूर्ण कविताओं और गायनों का संग्रह—)

२. खादी का महत्त्व—खादी के बारे में आप इससे सहज में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। लेखक : गुलजारीलाल नंदा; दाम)॥

सामयिक साहित्य माला

१. युद्ध-संकट और भारत

यूरोप में युद्ध शुरू होने के बाद से भारत का उस युद्ध के प्रति क्या रुख हो इस विषय पर कांग्रेस और सरकार में जो चर्चा छिड़ी उसपर दियेगये वक्तव्यों और लेखों का संग्रह; ।)

२. सत्याग्रह कब, क्यों और कैसे ?—

सत्याग्रह क्यों हो, कब हो और कैसे हो इस पर महात्माजी के लेखों का यह संग्रह है। दाम ३)

३. राष्ट्रीय पंचायत—

कांग्रेस की माँग—विधान-सभा (Constituent assembly) पर देश के नेताओं के विचार—।)

बाल साहित्य माला

१. कथा-कहानी—बालोपयोगी रोचक कहानियाँ दाम ३)

२. सीख की कहानियाँ (२ भाग) बालोपयोगी शिक्षाप्रद कहानियाँ; प्रत्येक भाग का दाम ३)

३. शिवाजी चरित्र—छत्रपति शिवाजी का बालोपयोगी जीवनचरित दाम ३)

४. देशप्रेम की कहानियाँ—दुनिया के इतिहास में से चुनीहुई देशप्रेम की ५ कहानियाँ; दाम ३)

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

जीवन साहित्य

र्ष १ : अंक ६

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

जनवरी : १९४१

युग-धर्म पहिचानें !

मैं आधुनिक कविता को देखता हूँ। मुझे यह भरोसा है कि वह इस युग का प्रतीक बनने का प्रयत्न कर रही है। उसमें निराशा, खोज, शंका, अश्रद्धा, अतृप्ति, संघर्ष, विप्लव, वेदना, सब भाव जो आज सहस्र-सहस्र भारतीय नर-नारियों को उद्वेलित कर रहे हैं—मिलते हैं, पर अभी उसके स्वर में आशाभरी दृढ़ता नहीं है; उसके पास सन्देश नहीं है। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही यह अभाव भी दूर होगा और कवि नवयुग का पथ-प्रदर्शक बनेगा। पर इसके लिए उसको तपस्या करनी पड़ेगी। सत्य बिना आयास के नहीं मिलता। तपस्या के साथ त्याग भी चाहिए। व्यास और वाल्मीकि ने जिस मार्ग को प्रशस्त किया है, उसपर त्याग, तपस्या और निर्भयता का ही पाथेय काम देता है। जो ऐसा कर सकता है वही समाज का पथ-प्रदर्शक बन सकता है। उसीकी वाणी अमर होगी।

अपने लेखकों से एक निवेदन और करना है। वे युग-धर्म पहिचानें। हम ठीक कहते हैं कि जो साहित्य दर्बारों के दूषित वातावरण में पला था वह स्वयं दूषित था—उसमें जनता के हृदयोच्छ्वासों की ध्वनि नहीं थी। पर यही दोष उस साहित्य में भी है और होगा, जिसकी सृष्टि आज के मध्यम-वर्ग के कृत्रिम वातावरण में होगी। यह वर्ग जनता—सच्ची जनता से बहुत दूर है। इसकी अनुभूतियाँ, इसकी आकांक्षाएँ जनता की मानव उथल-पुथल की छाया से दूर हैं। दो-चार दिन किसी गाँव में बैठकर ग्रामीण जीवन पर रचना करना, उसकी दयनीयता दिखलाना, उसकी हँसी उड़ाना है। दया और भिक्षा के टुकड़ों से ही तो धनिक-वर्ग और उसके पीछे पूँछ हिलानेवाला मध्यम-वर्ग दलितों, शोषितों, पीड़ितों को धोखा देना चाहता है। यदि आप उनके साथ तन्मयता प्राप्त करके उनके साथ सहानुभूति नहीं कर सकते तो, उनपर दया दिखलाकर उनका अपमान मत कीजिए। आपको प्रगतिशीलता का यश तो मिलता है, पर आप पाप के भागी बनते हैं।

सम्पूर्णानन्द

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. बढ़े चलो, बढ़े चलो ! (प्रयाण-गीत) १३५
[श्री सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०]
२. भ्रम-निवारण–[श्री हरिभाऊ उपाध्याय] २३६
३. क्या मैंने ग़लत सुना है ?— २३८
[श्री अनिरुद्ध, एम० ए०, साहित्यरत्न]
४. साहित्य का धर्म–[श्री कामेश्वर शर्मा] २३९
५. 'जीवन-साहित्य'—एक दृष्टि २४१
[श्री जैनेन्द्रकुमार]
६. भाव व विचार—[श्री हरिभाऊ उ०] २४४
७. तकली-माता— २४५
[श्री हरिहरप्रसाद गुप्त, एम०ए०एल०टी]
८. जीवन का उषाकाल— २४६
[श्री प्रभुदास गांधी]
९. तर्कवादी से—[श्री वियोगी हरि] २४८
१०. मानवधर्मसार : एक समालोचना — २५०
[साहित्याचार्य डॉ० हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम० ए० डी० लिट्]
११. साहित्य और सत्य—[श्री प्रेमनाथ] २५२
१२. मैथिलीशरण गुप्त की देन— २५३
[श्री दीनदयाल 'दिनेश', बी० ए०]
१३. भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन—
[श्री विद्याभूषण अग्रवाल, एम० ए०]
१४. प्रस्तुत प्रश्न—रुचि या आवश्यकता ? (हरिभाऊ उपाध्याय) २५७-६
साहित्यिक और साहित्य (चतुरसेन शास्त्री
मौलिकता (ओम्प्रकाश गोविल.)
एक पाठक के विचार (कुँवर किशोर सेठ, बी० ए०)
एक अभाव (सुबोधचन्द्र 'नूतन')
१५. कसौटी पर— २६२—६
'रिमझिम', 'मानव', 'डिंगल-काव्य में वीर रस', 'हमारे गद्य निर्माता', निर्वाचन पद्धति', 'मेरे विचार', 'समाजवाद :—पूंजीवाद',
१६. हिन्दी की हलचलें २६७
१७. श्री सम्पूर्णानन्दजी का भाषण २६८
१८. सैर-सपाटा २७२
१९. भारती के चरणसेवी : कृष्णमन्दिर के पुजारी २७३
२०. "मण्डल" की ओर से २५७

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित होता है ।

२. किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं, पर साल से कम के लिए नहीं ।

३. 'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इंदौर शाखाओं तथा संयुक्तप्रांत, बिहार, मध्य प्रांत, राजपूताना-मध्य भारत, व पंजाब के चर्खा-संघ के खादी-भंडारों तथा 'हरिजन कार्यालय' पूना नं० ४ से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बन सकते हैं ।

४. हर मास के पहले हफ्ते में पत्र न मिले तो अपने यहाँ के डाकखाने से पूछताछ करके अपनी ग्राहक-संख्या के साथ पत्र लिखना चाहिए । उचित कारंवाई की जायगी ।

५. अपने पते में कोई परिवर्त्तन कराना हो तो तुरन्त सूचना दिया करें—ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें ।

६. पत्र का चंदा इस प्रकार है—

भारत में	बर्मा में	विदेश में	एक प्रति
२)	२।)	५ शिलिंग	।)

नोट—नमूने के अंक के लिए ।) के टिकट भेजें । वार्षिक मूल्य डाक के टिकटों में भी भेजा जा सकता है ।

७. पत्रव्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें ।

८. 'जीवन-साहित्य' में शिष्ट साहित्य तथा उपयोगी सुरुचिपूर्ण और देशी वस्तुओं के विज्ञापन लेने की गुंजायश रक्खी है ।

दर इस प्रकार-हैं—

कवर का दूसरा पृष्ठ		प्रतिमास	४०)
,,	तीसरा ,,	,,	४०)
,,	चौथा ,,	,,	५०)
पाठ्य विषय के सामने		,,	४०)
साधारण पृष्ठ—		,,	२५)

९. विज्ञापन-एजेण्टों को कमीशन आदि के लिए पत्रव्यवहार करना चाहिए ।

पता—
व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य',
कनाट सर्कस, नई दिल्ली ।

महापुरुषों की महान् रचनाएँ

नये
संसार के
निर्माण में व्यस्त
प्रकृति के हाथों की झंकार
हैं और उस नये संसार में रहने
के लिए हमें जानना होगा
कि उस झंकार
में क्या
है ?

और

हमारा
यह दावा है
कि यदि आप इस
ओर से उदासीन नहीं
हैं तो आप अवश्य मानते
होंगे कि इस दिशा का
समुचित ज्ञान प्राप्त
कराने में
केवल

सस्ता साहित्य मण्डल का ही प्रकाशन
आपका साथ देता रहा है

मानव-जीवन को सुखी और कान्तिमय बनाने के लिए देश-विदेश के महान-व्यक्तियों की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक (१०० से अधिक) पुस्तकों की लम्बी सूची के अन्त में

प्रकाशित

पाँच पुस्तकें

१—**बापू :** ले० घनश्यामदास बिड़ला मूल्य ।।।), १।) २)

२—**विनोबा और उनके विचार :** प्रथम सत्याग्रही आचार्य विनोबा के मननीय विचार मूल्य ।।)

३—**खादी-मीमांसा :** मूल्य १।)

४—**समाजवाद : पूँजीवाद** मू० ।।।)

५—**मेरी मुक्ति की कहानी :** महात्मा टॉल्स्टाय के जीवन-संस्मरण । मूल्य ।।)

और

१—**लड़खड़ाती दुनिया** (ले० जवाहरलालनेहरू)
२—**युद्ध और अहिंसा** (लेखक महात्मा गांधी)
३—**मालवीय जी के साथ ३० दिन** (ले० रामनरेश त्रिपाठी)
४—**सेवा-धर्म : सेवा-मार्ग** (श्री कृष्णदत्त पालीवाल एम. ए.)

अभी छप रही हैं

यदि आप इन पुस्तकों अभी न खरीद सकें हों, तो शीघ्र आर्डर भेज दीजिए।

सस्ता साहित्य मण्डल कनाट, सर्कस, नई दिल्ली
शाखायें:— दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

सस्ता साहित्य मण्डल

[एक रुपया देकर स्थायी ग्राहक

(इस×निशान वाली

[पूरा सेट लेने पर कमीशन के अलावा

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन-साहित्य १।) ३. तामिल वेद ।।।) ४. व्यसन और व्यभिचार ।।।=) ५. सामाजिक कुरीतियां× ।।।) ६. भारत के स्त्री-रत्न ३) ७. अनोखा× १।=) ८. ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।=) ९. यूरोप का इतिहास २) १०. समाज-विज्ञान ।।।)११. खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र× ।।।≡) १२. गोरों का प्रभुत्व× ।।।=) १३. चीन की आवाज़× ।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।) १५. विजयी बारडोली× २) १६. अनीति की राह पर ।।=) १७. सीता की अग्नि-परीक्षा ।-) १८. कन्या-शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ।।) २२. अँधेरे में उजाला ।।) २३. स्वामीजी का बलिदान× ।-) २४. हमारे ज़माने की गुलामी× ।) २५. स्त्री और पुरुष ।।) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें? १) २८. हाथ की कताई-बुनाई× ।।-) २९. आत्मोपदेश× ।) ३०. यथार्थ आदर्श जीवन× ।।।-) ३१. (देखो नवजीवन माला) ३२. गंगा गोविंदसिंह× ।।=) ३३. श्रीरामचरित्र १।) ३४. आश्रम-हरिणी ।) ३५. हिन्दी मराठी कोष २) ३६. स्वाधीनता के सिद्धान्त× ।।) ३७. महान् मातृत्व की ओर ।।।=) ३८. शिवाजी की योग्यता ।=) ३९. तरंगित हृदय ।।) ४०. नरमेध× १।।) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४२. ज़िन्दा लाश ।।) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) १।।) ४४. जब अंग्रेज़ आये× १।=) ४५. जीवन-विकास १।) ४६. किसानों का बिगुल× =) ४७. फाँसी! ।=) ४८. (दे० नवजीवन माला) ४९. स्वर्ण-विहान× ।=) ५०. मराठों का उत्थान-पतन २।।) ५१. भाई के पत्र १) ५२. स्वगत× ।=) ५३. युगधर्म× १=) ५४. स्त्री-समस्या १।।।) ५५. विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला× ।।=) ५६. चित्रपट ।=) ५७. राष्ट्रवाणी× ।।=) ५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।) ५९. ५९. रोटी का सवाल ।।।) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६१. जीवन-सूत्र ।।।) ६२. हमारा कलंक ।।=) ६३. बुद्बुद ।।) ६४. संघर्ष या सहयोग? १।।) ६५. गांधी-विचार-दोहन ।।।) ६६. एशिया की क्रांति× १।।।) ६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता १।।) ६८. स्वतन्त्रता की ओर १।।) ६९. आगे बढ़ो! ।।) ७०. बुद्ध-वाणी ।।=) ७१. काँग्रेस का इतिहास २।।) ७२. हमारे राष्ट्रपति १) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू) २।।) ७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों? ।।) ७६. नया शासन-विधान ।।।) ७७. (१) गाँवों की कहानी ।।) ७८. (२-९) महाभारत के पात्र १) ७९. सुधार और संगठन १) ८०. (३) संतवाणी ।।) ८१. विनाश या इलाज ।।।) ८२. (४) अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।।) ८३. (५) लोक-जीवन ।।) ८४. गीता-मंथन १।।) ८५. (६) राजनीति-प्रवेशिका ।।) ८६. (७) अधिकार और कर्त्तव्य ।।) ८७. गांधीवाद : समाजवाद ।।।) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ।।) ८९. (८) सुगम चिकित्सा ।।) ९०. प्रेम में भगवान् ।।) ९१. महात्मा गांधी ।=) ९२. ब्रह्मचर्य ।।) ९३. (१०) हमारे गाँव और किसान ।।) ९४. अभिनन्दन-ग्रंथ २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्यायें १) ९६. जीवन-सन्देश ।।) ९७. समन्वय २) ९८. समाजवाद-पूँजीवाद ।।।) ९९. मेरी मुक्ति की कहानी ।।) १००. खादी-मीमांसा १।।) १०१. बापू ।।।) सजिल्द १।) २) १०२. विनोबा और उनके विचार ।।)

नवजीवन माला

१. गीताबोध -) २. मंगलप्रभात -)
३ अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय -)

कोष्ठकवाली पुस्तकें 'लोक साहित्य माला' की हैं।

का सम्पूर्ण साहित्य

बनने पर पौने मूल्य में]

पुस्तकें अप्राप्य हैं)

सागवान का पॉलिश किया हुआ सुन्दर शेल्फ भेंट में]

५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज ≡) ७. छूतछात की माया -) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १०. खादी-गादी की लड़ाई =) ११. मधुमक्खी पालन =) १२. गावों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गायन =) १४. खादी का महत्त्व -)॥ १५. जब अंग्रेज़ नहीं आये थे ≡)

सामयिक साहित्य माला

१. कांग्रेस का इतिहास १९३५-३९ ।-) २. दुनिया का रंगमंच =) ३. हम कहाँ हैं ? =) ४. युद्ध-संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे ? ≡) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।) ७. सत्याग्रह क्यों शुरू हुआ ? ।=)

बाल साहित्य माला

१. सीख की कहानियाँ =) २. कथा-कहानी— ।-) ३. शिवाजी-चरित्र =) ४. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ५. सीख की कहानियाँ (२) =)

विविध पुस्तकें

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू ।) २. जवाहरलाल नेहरू =) ३. सप्तसरिता (काका कालेलकर) =) ४. चारा दाना और उसको खिलानें के उपाय =)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ।।) ३. फ्रांस की राज्य-क्रांति १।।) ४. गांधीवाद की रूपरेखा १) ५. सन् १९४० १) ६. पिता के पत्र पुत्री के नाम ।।)

प्रचारित पुस्तकें

१. आर्थिक संगठन ।।।) २. योग के चमत्कार १।) ३. रूपांतर ।।) ४. पौराणिक कथायें १।।) ५. अनोखा बलिदान ।।) ६. पाकचंद्रिका ४) ७. मेरा देश ।)

'मण्डल' की ये पुस्तकें कहाँ मिलती हैं ?

निम्न स्थानों पर 'मण्डल' की पुस्तकें **स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में** मिला करेंगी ।

संयुक्तप्रान्त—सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ, साहित्यनिकेतन, कानपुर, श्री गांधी आश्रम खादी भण्डार मुरादाबाद, इलाहाबाद, मेरठ, मुजफ्फरनगर, काशी, मथुरा, बरेली, देहरादून, फैजाबाद, गोरखपुर, सहारनपुर, डिबाई, फर्रुखाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, अक़बरपुर, शामली ।

बिहार—चर्खासंघ खादी भण्डार हाजीपुर, रांची, मधुबनी, बेतिया हजारीबाग, लहेरियासराय, मुजफ्फरपुर, गया, सीतामढ़ी, पटना, डाल्टनगंज, बेगूसराय, मोतीहारी, भागलपुर ।

मध्यप्रान्त—महाराष्ट्र चर्खा संघ खादी भण्डार नागपुर(सीताबर्डी),गोंदिया, जबलपुर, रायपुर, खण्डवा ।

राजपूताना-मध्यभारत—सस्ता साहित्य मंडल इंदौर, राजस्थान चर्खा संघ खादी भंडार अजमेर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, मन्दसौर, ग्वालियर, इन्दौर, मुकुन्दगढ़, नवलगढ़ ।

पंजाब—गांधी खादी-भंडार, लाहौर, भिवानी, आदमपुर ।

दिल्ली—सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस नई दिल्ली, तथा दरीबा कलाँ, श्री गांधी आश्रम ।

कलकत्ता—शुद्ध खादी भंडार, हरिसन रोड ।

बम्बई प्रान्त—'नवजीवन' कार्यालय बम्बई, नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद, खादी भंडार भुसावल, खादी भंडार जलगाँव, हरिजन कार्यालय, पूना ।

'जीवन-साहित्य' या 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ग्राहकों को,

पौने मूल्य में

स्वाधीनता के भाव, उच्च संस्कार, शील-प्रेरणा और स्फूर्ति के लिए

साधना-मन्दिर-प्रकाशन

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय शब्दचित्र और जीवनी-लेखक हैं। उनकी तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दीनबन्धु एण्ड्रूज, साधु वास्वानी और भदन्त आनन्द कौसल्यायन की लिखी कृतियाँ पढ़िए और प्रचारित कीजिए।

बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित

१ जापान के गांधी कागवा -)
२ अराजकवादी एमा गोल्डमेन -)
३ अराजकवादी लुई माइकेल -)
४ अराजकवादी मैलटेस्टा -)
५ प्रिंस क्रोपाटकिन -)
६ महापंडित राहुल सांकृत्यायन -)
७ अराजकवादी माइकेल बाकूनिन -)
८ इवान तुर्गनेव -)
९ पतिव्रता जयिनी -)
१० श्रीमती हैरियट एलीजबेथ स्टो -)
११ भारत भक्त दीनबन्धु एण्ड्रूज -)
१२ स्व० देवमित्र धर्मपाल -)
१३ मंगलमय महावीर (साधु वास्वानी) -)
१४ स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (राजबहादुर सिंह) -)
१५ भगवान बुद्ध (भदन्त आनन्द कौसल्यायन) -)
१६ बालशिक्षण और माँ-बाप (भानुकुमार जैन) -)
१७ विप्लव-गान या क्रान्ति-गीत -)
१८ अमर-गान भाग१ (रविन्द्रनाथ ठाकुर) -)
१९ मेरी भावना (जुगलकिशोर मुख्तार))॥
२० पुस्तक महिमा और पुस्तकालय (लक्ष्मण त्रिपाठी))॥
२१ शान्तिनिकेतन का हिन्दी-भवन (दीनबंधु एण्ड्रूज) मुफ्त

सेठ गोविन्ददास के नाटक

१. तीन नाटक [सजिल्द, एक रंगे बढ़िया डस्ट कवर सहित] ४॥)
२. कर्त्तव्य [पौराणिक नाटक] १।),सजिल्द १॥)
३. हर्ष [ऐतिहासिक ना०] १।), ,, १।)
४. प्रकाश [सामाजिक ना०] १॥, ,, १॥)
५. स्पर्धा [एकांकी ना०] ।=)
६. सिद्धान्त-स्वातंत्र्य ।)
७. सेवा-पथ ॥)
८. नाटक आलोचना और उद्धरण १)
९. नाट्य-कला-मीमांसा ।)
१०. अंकुर [पद्य-संग्रह] रत्नकुमारी ।), ,, ॥)

अन्य पुस्तकें

११. संसार को भारत का सन्देश [अनु० लाला कन्नोमल जैन एम. ए.] १॥)
१२. शिक्षा-मीमांसा [लेखक पं० गोपाल दामोदर तामसकर एम. ए. एल. टी.] १।), सजिल्द १॥)
१३. औद्योगिका [ले० पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी] ॥) सजिल्द १)
१४. रसज्ञ-रंजन [ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी] ॥)

प्राप्ति स्थान :—सस्ता-साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली

शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

जनवरी १९४१
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक छठा

बढ़े चलो, बढ़े चलो !

[प्रयाण-गीत]

१

न साथ एक शस्त्र हो,
न हाथ एक अस्त्र हो,
न अन्न, नीर, वस्त्र हो,
हटो नहीं,
डटो वहीं,
बढ़े चलो,
बढ़े चलो !

२

रहे समक्ष हिमशिखर,
तुम्हारा प्रण उठे निखर,
भले ही जाय तन बिखर,
झुको नहीं,
रुको नहीं,
बढ़े चलो,
बढ़े चलो !

३

घटा घिरी अटूट हो,
अधर में कालकूट हो,
वही अमृत का घूँट हो,
जिये चलो,
मरे चलो,
बढ़े चलो,
बढ़े चलो !

४

गगन उगलता आग हो,
छिड़ा मरण का राग हो,
लहू का अपने फाग हो,
अड़ो वहीं,
गड़ो वहीं,
बढ़े चलो,
बढ़े चलो !

५

अशेष रक्त तोल दो,
स्वतन्त्रता का मोल दो,
कड़ी युगों की खोल दो,
डरो नहीं,
मरो वहीं,
बढ़े चलो,
बढ़े चलो !

सोहनलाल द्विवेदी

भ्रम-निवारण

'जी० सा०' के पिछले अंक में श्री रामचन्द्र गुप्ता का एक लेख 'प्रस्तुत प्रश्न' में छपा है। उन्होंने पुराणों के खिलाफ़ अपना मत प्रकट किया है। उसके प्रतिवाद में मुझे दो पत्र मिले हैं। एक मेरे प्रतिष्ठित मित्र श्री रामदेवजी चोखानी का, और दूसरा मेरे विद्वान् मित्र श्री सूर्यनारायणजी व्यास का। 'शारदा' (कार्तिक, ९७) ने 'इतना द्वेष क्यों' नाम का लेख लिखकर 'जी० सा०' पर 'बराबर संस्कृत भाषा, ब्राह्मण और महर्षियों के विरोध' का इल्जाम लगाया है। श्री चोखानीजी लिखते हैं—

"हाल में आपका नाम देखकर मुझे 'जी० सा०' का ग्राहक बनने की इच्छा हुई। दिसम्बर के अंक में २१४-२१५ पृष्ठों पर रामचन्द्र गुप्ता का 'एक प्रतिवाद' शीर्षक नोट प्रकाशित हुआ है। जिसमें उन्होंने 'भारतीय संस्कृति' के सिलसिले में लिखते हुए पंडित रामनरेशजी त्रिपाठी पर तथा संस्कृत साहित्य तथा हमारे धर्म-ग्रन्थों पर अकारण कई एक बातें ऐसी लिखी हैं, जो हृदय पर चोट करती हैं।

संस्कृत-साहित्य, जिसकी प्रशंसा भारतवर्ष ही नहीं, सारा संसार कर रहा है, आर्य जाति का गौरवस्वरूप है। यदि संस्कृत-साहित्य न होता, तो विदेशों में भारतीयों का जो थोड़ा-बहुत आदर है वह भी न होता। वह हमारी संस्कृति की जान है। दुःख तो इस बात का है कि जर्मनी में संस्कृत साहित्य के अध्यापन के लिए ४१ केन्द्र खुलें और संस्कृत के पुजारी उसके साहित्य को बेकार बतावें और 'सहस्ररजनी चरित्र' जैसे उपन्यासों से तुलना करें। यह बड़ा ही दुःखद प्रसंग है। साथ ही सब से बड़ा दुःख यह देखकर होता है कि आपके संपादकत्व में ऐसे नोट प्रकाशित होते हैं। हाल में ही 'भारतीय विद्या' नामक जर्नल के अंग्रेज़ी संस्करण की नवम्बर की संख्या में आपके सुपरिचित कन्हैयालाल जी मुनशी का लेख, जिसका शीर्षक है 'Fundamentals of Aryan Culture' आपने देखा होगा। उसमें भी इस विषय का काफी वर्णन है। इसी मास की १० वीं तारीख की 'अमृतबाजार पत्रिका' में कमला लेक्चरों के सिलसिले में श्री हीरेन्द्रनाथदत्त का भाषण प्रकाशित हुआ है। उसे भी आपने पढ़ा होगा। इधर तो विद्वानों का यह मत और उधर गुप्ता-जैसे लोगों की यह करतूत और आपका उसमें सहयोग! यह समझ में नहीं आता।

मैं तो चाहता हूँ कि आप इस विषय पर अगले अंक में यथेष्ट प्रकाश डालेंगे। इसीलिए मैं गुप्ताजी का प्रकट रूप से उत्तर न देकर आपके लेख की बाट देख रहा हूँ। साथ ही यह भी आशा रखता हूँ कि भविष्य में आप ऐसे अनर्गल विचार रखनेवाले लोगों को अपने पत्र में प्रश्रय न देंगे।

इसी अंक में आपने उसी पृष्ठ पर 'पाप का प्रचार' शीर्षक नोट भी प्रकाशित किया है, जिसे देखकर बहुत प्रसन्नता हुई।"

भाई व्यासजी ने भी अपने पत्र में संस्कृत-साहित्य की महिमा पर अच्छा प्रकाश डाला है। वह इस तरह है—

'जीवन-साहित्य' के इस (दिसम्बर) अंक में 'गुप्ता' नामक सज्जन ने बड़ा अज्ञानपूर्ण पत्र, पं० रामनरेशजी त्रिपाठी के उत्तर में, लिखा है। वह छापने योग्य नहीं था, वह सारे संस्कृत-साहित्य को ही कोस रहे हैं, जिसमें महाभारत-जैसा महान् नीति-भाण्डार ग्रन्थ है, चाणक्य-जैसे डिक्टेटरी के आचार्य की राजनीति है, दुनिया के श्रेष्ठतम सांस्कृतिक ज्ञान-भाण्डार वेदोपनिषद् आदि हैं, वाल्मीकि की रामायण-जैसी महान् कृति है। राजनीति, समाज, कला के व्यापक स्वरूप के स्रोत-ग्रंथ जिस जगच्छिरोमणि भाषा में विद्यमान हैं, उसे उन्होंने बहुत ही अज्ञता से स्मरण किया है। पुराणों को उन्होंने गप्पों का आगार बतलाया है। अभी उन्हें इतिहास और पुराणों की संगति बिठलाने की क्षमता और ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, तब वे इसके अधिकारी होते हैं कि इनपर कुछ कहें। पुराण रूपक के रूप में ऐतिहासिक तथ्यों के रोचक संग्रहालय हैं, आध्यात्मिक गाथाओं के विशद-मधुर वर्णन-ग्रंथ

हैं। वे किसी पुराण को उठा देखें कि जिस स्थल, नगर, देश का वर्णन, वे देखेंगे वह उसमें कितना सत्य-स्पष्ट है। जिन्होंने इनका अनुशीलन किया है, वे इस बात के कायल हैं। पुराणों को कोसने की प्रथा पाश्चात्यों का अन्धानुकरण है, वरना आज पौराणिक कथायें ईजिप्शियन, सुमेरियन संस्कृतियों के साम्य का दिग्दर्शन करा रही हैं। मोहंजोदारो वग़ैरा ने यह प्रकट कर दिया है कि पुराण-प्रणीत वर्णनादि भी इतिहास से सुसंगत हो रहे हैं। दूसरे देशों ने जिस भाषा के विविध अंगों की सम्पूर्णता, वैज्ञानिकता और महत्ता मान ली है, उसके साहित्य के विषय में गुप्ताजी-जैसे व्यक्ति ही ऐसे लांछन लगा सकते हैं!

रही इस भाषा-साहित्य के जानकारों की स्थिति की बात। वह तो उनके अध्ययन के 'दृष्टिकोण' का अभाव है। यदि कोई गांधीजी की आत्म-कथा को भगवान् के (या गांधीजी की मूर्ति के) सामने घी का दिया-धूप लगाकर पाठ करे, कथा को 'सत्यनारायणजी की कथा' माने, तो 'आत्म-कथा' का अपराध तो नहीं? संस्कृत-साहित्य राजनीति, समाज, विज्ञान, कला, अध्यात्म, शिक्षा, उद्योग, विविध शास्त्र, व्याकरण, न्याय, धर्म, नीति सभी दृष्टियों से इतना पुष्ट है कि अब भी वह सर्वतोपरि है। आज की विकसित ज्ञान-साधना का मौलिकरूप उसमें निहित है। जो भारत के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखनेवाला साहित्य है, उसके विषय में गुप्ताजी-जैसे ही अज्ञान प्रकट कर सकते हैं। उन्होंने पुराणों को ठीक उसी तरह शायद देखा होगा, जैसे पेटभरू पंडितों ने चार पैसे की 'कथा' कहने के लिए देखा, या सुना-पढ़ा है। अन्यथा पुराणों से वे इतने भड़कते नहीं। पुराणों से वे बहुत-कुछ पा सकते थे, और हैं। पर वे प्रेजुडिस् होगये हैं, बिना जाने-देखे ही। यदि पुराणों को 'गप्प' केवल 'कथा' से ही समझ सकते हैं, तो विश्व के अप्रतिम साहित्य 'वेद' के विषय में पता नहीं उनकी क्या धारणा हो? क्योंकि वेद भी आध्यात्मिक भावनाभिभूत दर्शनों से भरा हुआ है। उसे भी वे सैकड़ों स्थानों पर रहस्यमय-रूपकों से, आध्यात्मिक संपुटों से आवृत काल्पनिक कथाकृति का साहित्य समझेंगे। उन्होंने आधुनिक, व्यापक दृष्टिकोण-रहित संकुचित-'अथ-यानंतरं-याकेनंतर' कहनेवाले पंडितों को देखकर यह मत बनाया होगा, परन्तु यह उस महान् साहित्य का अपराध नहीं, मुग़लों और पाश्चात्यों की देन का प्रतिफल है। यह शिक्षा-क्रम का दोष है, वरना इन्हीं पुराणों ने राम-कृष्ण का घर-घर में प्रचार कर विरोधी शक्ति के विरुद्ध विद्रोह जगा दिया था। आज भी यदि इन पुराणों से राजनैतिक-सामाजिक जन-जाग्रति का काम लिया जाय, तो मैं विश्वास रखता हूँ कि आज की विदेशी सरकार इन्हें 'वर्जित साहित्य' करार देने में देरी न करेगी। मैं यह आपको इसलिए लिख रहा हूँ कि 'जीवन-साहित्य' में ऐसी ग़ैरजिम्मेदारी की, साहित्य और संस्कृति पर अज्ञानपूर्ण आक्रमण की बातें नहीं आयें तो ठीक। इतना तो सम्पादक ही को काट देना चाहिए। वह पत्र भद्दा है।"

'शारदा' के लेखक सम्बन्धित अवतरण देकर इस तरह टिप्पणी करते हैं—"हमारी यह इच्छा कदापि नहीं कि इन उद्धरणों को पढ़कर कोई संस्कृत भाषा का हितैषी उत्तेजित हो। इनको प्रकाशित करने का उद्देश्य केवल यह बताने का है कि हिन्दीवाले संस्कृत भाषा, भारत को जगद्गुरुत्व का पद दिलानेवाले उसमें लिखे विषयों, ऋषियों, मुनियों, आचार्यों और ब्राह्मणों एवं वर्णाश्रमियों पर इतना कटु आक्षेप करते हैं कि जितना अंग्रेज़ों और मुसलमान लेखकों ने भी नहीं किया।"

जहांतक संस्कृत भाषा व साहित्य की महत्ता से संबंध है, दोनों मित्रों ने जो-कुछ लिखा है सब यथार्थ है। उनके एक-एक शब्द व भाव का मैं हृदय से समर्थन करता हूँ। मेरी तो यह पक्की राय है कि प्रत्येक हिन्दू कहलानेवाले को संस्कृत का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। आधुनिक विज्ञान को छोड़ दें, तो संस्कृत के बराबर ज्ञान-भाण्डार किसी दूसरे साहित्य में नहीं मिलेगा। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने बंबईवाले भाषण में संस्कृत के राष्ट्रभाषात्व पर जो प्रकाश डाला है, वह मुझे बहुत

ही उचित व यथार्थ मालूम होता है। परन्तु गुप्ताजी-जैसों के विरोधी मत प्रकाशित करने के संबं में 'जी० सा०' के हेतु या निर्णय के बारे में इन सब मित्रों को गलतफ़हमी हुई मालूम होती है। 'जी० सा०' का 'प्रस्तुत प्रश्न' स्तम्भ इसी उद्देश्य से खोला गया है कि उसमें भिन्न-भिन्न प्रश्नों की चर्चा होती रहे। यह तभी अच्छी तरह हो सकता है जब प्रश्न का प्रत्येक पहलू पाठकों के सामने आवे। गुप्ताजी का लेख एक अपना पक्ष उपस्थित करता है। इसमें कोई दोष की बात मुझे नहीं मालूम होती। इस स्तम्भ में जो कुछ छपता है, उसे 'सम्पादकीय' न समझना चाहिए। सम्पादकीय वक्तव्य 'क्या और कैसे?' में या सम्पादक के लेखों में उसके नाम से छपते हैं। 'जी० सा०' में छपे सभी लेखों या विचारों के लिए सम्पादक को जिम्मेदार मान लेने की आवश्यकता नहीं है। ये मित्र, 'शारदा' के लेखक तथा 'जी० सा०' के सभी पाठक यह जान लें कि 'जी० सा०' संस्कृत-भाषा व साहित्य तथा आर्य संस्कृति का उपासक है, परम्परागत या अन्धविश्वास से नहीं, तर्क-बुद्धियुक्त जाग्रत विश्वास से। आशा है, इस स्पष्टीकरण के बाद 'जी० सा०' की स्थिति के संबंध में किसी किस्म की भ्रान्ति न रह जायगी।

हरिभाऊ उपाध्याय

क्या मैंने ग़लत सुना है ?

[अनिरुद्ध]

मैंने सुना है, तेरा देश संसार की सभ्यता के इतिहास का प्रथम पृष्ठ है, मानवता की कलियों को खिलानेवाला प्रथम सूर्य-कर है, विश्व भर में शक्ति, सुव्यवस्था एवं संस्कृति की संस्थापना करने की ओर पहला क़दम है। तेरे हाथ जिन सलिल और समीर और ज्योति और ध्वनि की अर्चना कर पवित्र हुए, तेरी आँखें उन्हींको पाशविकता से व्यभिचारित होते हुए देख रही हैं। तेरी वाणी जिन ऋक् और साम का गान कर कृतार्थ हुई, तेरी प्रयत्नशील लेखनी उसीको कलुषित करने का स्वप्न देखने के लिए स्फुरित हो उठी है!

मैंने सुना है, दब हृदय, लड़खड़ाती ज़बान और बेबसी की मुद्रा से तू अपने बीते दिनों की याद करता रहा है, तुझमें हथेली पर प्राणों को रख केसरिया पहिनने की धुन मौजूद है, तुझमें अपनी अधोमुखी प्रवृत्तियों को रोक, पुनः संसार को नवीनतम, अश्रुतपूर्व संगीत सुनाने की लहर अवशिष्ट है।

मैंने सुना है, तू देख रहा है कि आज की दुनिया को मानवधर्म से ग्लानि हो चुकी है—शस्त्रों की झनझनाहट और तोपों के धुएँ से पृथ्वी बहरी और अन्धी हुई जा रही है। तू यह भी देख रहा है कि अन्धी और बहरी दुनिया का चैतन्य किसी विकृत संगीत से मूढ़ और अकर्मण्य बनाये जाने की घड़ियाँ गिन रहा है। तू इसका प्रतिकार चाहता है। तेरी आत्मा में किसी दैवी अंश का अवतार होने लगा है।

मैंने यह भी सुना है कि तू राम, कृष्ण और अशोक से भी स्पृहणीय हो सके ऐसी युद्ध-प्रणालियों को अपने ही देश में आविष्कृत होते हुए देख रहा है; वाल्मीकि और वेदव्यास तुझपर अपनी सुयोग्य सन्तान होने का गर्व कर सकें, ऐसे साहित्य—ऐसे क्रियाशील, जीवित साहित्य का निर्माण करने में तू दत्तचित्त है; नेपोलियन, नेल्सन, बिस्मार्क और सिकन्दर के वंशधर तेरे प्रयोग की सफलता को देख रहे हैं—कुछ सहमे हुए-से। होमर और शेक्सपियर के अनुगामी गंगा-यमुना की पवित्र भूमि से पुनः अलौकिक और अकल्पित गान सुन सकेंगे—कुछ बहके हुए से। तू दूसरे ही क्षण अपने इस पावन कार्य का अनुष्ठान अपनी समग्र शक्ति के साथ करने के लिए लालायित है।

ओ भारतीय रक्त! चालीस करोड़ चेतन हृदयों की विद्युत्-शक्ति से अनवरत संचालित तेजःपुञ्ज! मैं पूछता हूँ कि यह सब-कुछ क्या मैंने ग़लत सुना है?

साहित्य का धर्म

[कामेश्वर शर्मा]

कस्मै देवाय हविषा विधेम—हमारी सनातन जिज्ञासा है। हृदय का अपार सौन्दर्य, प्राणी की अनन्त पिपासा, युग-युग की अतृप्त लालसा, जन्म-जन्म की भूखी-प्यासी साध किसे पाकर शांत होगी—यही सारे उद्वेग के मूल में है। उसी मध्य बिन्दु अथवा केन्द्र को पाने के लिए हम कई जन्मों से तड़पते आ रहे हैं। परिधि की प्यास केन्द्र में एक हो जाने की ही है;—वह केन्द्र जो परिधि का सर्वस्व होते हुए भी स्वयं अगोचर है। केन्द्र की रूप-रेखा कौन बतलाये? जो वहाँ पहुँचा मौन हो गया, आत्मा की आत्मा जब वहाँ गयी तो स्वयं उसी में लय हो गयी। जब जानेवाला ही नहीं लौटा तो फिर सन्देश कौन सुनावे, प्रियतम की बात कौन बतलाये?

समस्त साहित्य एक संकेतमात्र है। उसमें जो-कुछ वर्णन है, वह अपूर्ण अथवा अधूरा नहीं, किन्तु अस्पष्ट और धुँधला भी है। और दूसरे शब्दों में यह धुँधलापन ही साहित्य का जीवन है। धुँधलापन यदि निकल जाय, तो साहित्य से खासकर आधुनिक साहित्य से न जाने कितने काव्यों, निबन्धों और गल्पों की मृत्यु हो जाय। परन्तु धुँधलेपन का दर्शन हमें सिर्फ़ आधुनिक साहित्यों ही में नहीं होता, प्रत्युत साहित्य-सृष्टि के आदि काल से ही उसकी झलक हमें मिलती है। आर्यों के परम पूज्य और अति प्राचीन ग्रंथ वेदों को लीजिए। प्रथम दर्शन में हम शायद इनका एक अक्षर भी न समझ सकें। कदाचित् अपने निर्माण-काल में वे इतने अस्पष्ट नहीं रहे हों, पर तब वे इतने पूज्य भी नहीं होंगें। ज्यों-ज्यों इनकी अस्पष्टता बढ़ती गयी, त्यों-त्यों इनकी पूज्यता भी बढ़ती गयी। प्राचीन साहित्य के अध्ययन का कारण भी यही है। जिसमें जितनी अधिक अस्पष्टता है, उसका उतना ही आदर है।

सौन्दर्य और लालित्य का आधार भी अस्पष्टता पर है। स्वर और ताल पर गानेवाले गवैये की अपेक्षा दूर से सुन पड़नेवाली कोयल की आवाज़ हमारे हृदयों में अनोखा भाव जाग्रत करती है। बाघ और सिंह की स्पष्ट और इच्छा-सूचक गर्जन की अपेक्षा समुद्र का अस्पष्ट स्वर—आह्लादकारक प्रतीत होता है। लोक-सृष्टि से कल्पना-सृष्टि अधिक सुन्दर लगती है क्योंकि कल्पना-सृष्टि अपेक्षाकृत अस्पष्ट है; अन्यथा जुगुनुओं से सूर्य के प्रकाश की कल्पना कैसे की जा सकती है, जहाँ सूर्योदय कभी हुआ ही नहीं? इसीलिए मनीषयों ने मान लिया है कि साहित्य का काम, साहित्य का धर्म है कि वह मानवजाति के हृदय में एक अथाह ज्वाला जगा दे, उसके प्राणों में एक प्रेरणा भर दे, उसकी अन्तरतम की सुप्त प्यास को उकसा दे। शेक्सपियर ने मैकबैथ, ओथेलो और हैमलेट में क्या किया है? जीवन के जिस दुहरे-तिहरे द्वन्द में हम घिरे हुए हैं और जो देखने में दुःखान्त (Tregedy) ही प्रतीत होता है, वस्तुतः सत्यं, शिवं, सुन्दरं की एक झलक है। परम कल्याणमय प्रभु से अकल्याणमय की वर्षा कैसे होगी? हमारा विश्वास जो जाग्रत की ट्रेजेडी से हिल उठता है, विश्वास नहीं है। विश्वास तो सत्, चित् और आनन्द के आश्रय पर ही टिकता है। विश्वास निराशा की गोद में नहीं पलता। विश्वास तो वह जो निराशा को चीरता हुआ हरि की ओर हमें लेता चले। साहित्य इस प्रच्छन्न निराशा के घने आवरण को हटाकर प्राणाधार की परम मधुर ध्वनि को पग-पग पर दिखलाता चलता है:—

Light whose smile kindles the universe,
That beauty in which all things work
and move.

साहित्य हृदय की प्यास को बुझाता नहीं, वरन् उकसा देता है। आत्मा की प्यास को जगत् की कोई भी वस्तु कैसे बुझा सकेगी? अमर-अनादि इस शान्त विश्व में कैसे विरम सकेगा? जगत के चलते चित्रों को देखकर एक क्षण के लिए भले ही हमारी गति मन्द पड़ जाय, पलभर

के लिए प्रेम भले ही हमें लुभाले, परन्तु जिस अमृत से प्यास बुझनेवाली है, उसीकी खोज में आत्मा अहर्निश, सोते-जागते लगी हुई रहेगी। जगत की जगत ही से प्यास नहीं बुझती; फिर जो जगत से परे है, वह भौतिकता में कैसे अटकेगा? संसार आत्मा को रोक नहीं सकता -- बाँध नहीं सकता। विराट आत्मा की अनन्त प्यास नन्हा-सा संसार कैसे सँभालेगा?

The thirst that from the soul doth rise,
Doth ask a drink divine.

परन्तु स्थूल का सूक्ष्म से, जड़ का चेतन से, प्रकृति का पुरुष से जो ग्रंथि-बन्धन हुआ है, वह भी तो सनातन सत्य है। हम न केवल जड़ ही हैं, न केवल चेतन ही है, न केवल शरीर ही हैं, न केवल आत्मा ही हैं। हमारा 'मैं' शुद्ध चेतन होते हुए भी शरीर का अहंकार लेता हुआ चल रहा है। शरीर का 'अहं' आत्मा के 'अहं' से भिन्न है, यह सभी जानते हैं। पर इस भेद को सर्वत्र सतर्कतापूर्वक पहचान लेना कितना कठिन है? प्रेय की ओर शरीर का और श्रेय की ओर आत्मा का आकर्षण है। शरीर के प्रति शरीर का जो आकर्षण, जो झुकाव है, उसमें आत्मा की 'हाँ' जहाँ प्राप्त होती-सी मालूम होती है, वहीं जीवन का पतन प्रारम्भ होता है। शरीर का आकर्षण होता रहे, परन्तु आत्मा स्वस्थ होकर उसे चिताती रहे, कठोर माँ-बाप और शासक की तरह राह पर लाती रहे, तबतक तो साधना का पथिक ठीक रास्ते पर है, परन्तु जब स्वय प्रेरक आत्मा ही आवरणों में पड़कर पाप और अनाचार में हाँ भर दे, तो फिर पथ-भ्रष्ट होते क्या देर लगेगी? पाप करते हुए भीतर से कोई टोक दे, कोई अंकुश मार कर हमें जगा दे, तबतक तो समझना चाहिए कि विवेक बुद्धि भोटी नहीं हुई।

साहित्य सदैव स्थूल से सूक्ष्म की ओर, जड़ से चेतन की ओर, प्रकृति से पुरुष की ओर हमें आकृष्ट करता रहे, तभी वह अपने पथ पर आरूढ़ है। साहित्य सदैव हमें प्रेय के बहाने श्रेय का आश्रय देता रहे, तभी वह अपने धर्म पर डटा हुआ समझा जाय। स्थूल में ही लिपट जाय, जड़ में ही विरम जाय, प्रकृति में ही उलझ जाय, तो वह साहित्य कैसा? प्रकृति में क्रीड़ा करते हुए 'पुरुष' की छवि जो नहीं दिखा सके, वह साहित्य कैसा!

देखउँ परम हंस परिछाँही?
नैन ज्योति सो बिछुरत नाहीं॥

साहित्य स्थूल से स्थूल सौन्दर्य का वर्णन करे; परन्तु स्वयं अधरों और अलकों में न फँसे। वह हमें अलकों और पलकों की राह ले जाकर भी उससे हमें मुक्त कर दे। सौन्दर्य की मदिरा पिलाकर भी हमें आत्मानन्द में डुबा ले। असत् का लोप कर सत् में लय कर दे। नायिका-भेद पढ़ कर यदि हमें कुमार्ग में प्रोत्साहन मिले, तो उस साहित्य को संसार में ठहरने का क्या अधिकार है? इन नायिकाओं की जो परम नायिका है, जिसकी शोभा पर कोटि-कोटि उषायें और संध्यायें बलिहार हैं, उस ओर खींचनेवाला नायिका-सौन्दर्य सर्वथा अभिनन्दनीय है और साहित्य हृदय के इसी अमृत मंथन की ओर बार-बार संकेत कर रहा है। रसों का प्रकरण पढ़कर यदि हम नव रस में ही संकुचित और सीमित रहे और दशम रस या परम रस की ओर न मुड़े, तो हमारा रस-ज्ञान अधूरा ही समझना चाहिए। शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार के साथ सजी हुई वाणी जिस परम पुरुष के चरणों की रेणु है, उन चरणों की ओर आत्मा न मुड़ी, तो अलंकार-ज्ञान कोरा किताबी ही रहा। लिखकर उसका क्या संकेत किया जाय? इसलिए जो कुछ भी लिखा-पढ़ा जा सकता है, उससे परे जाना होगा और अपने भीतर सोये हुए नचिकेता और शुकदेव को जगाना होगा, जो हमें रूप के बाजार में विरमने न देकर 'हरि' के मन्दिर में पहुँचा देंगे। सत् साहित्य अनादि काल से यही प्रेरणा भरता आ रहा है।

'जीवन-साहित्य'—एक दृष्टि

मान्य श्री उपाध्यायजी,

'जीवन-साहित्य' मुझे शुरू से मिल रहा है। और मैं अबतक कृतज्ञता भी नहीं जतला पाया। वह त्रुटि अब पूरी करता हूँ।

पत्र उपयोगी दिशा में चल रहा है। और भी [illegible] करता हूँ। पर उस तरह की बातों से आप मुझे छुट्टी नहीं देंगे। नज़दीक हूँ, इससे आप असहमति पूछेंगे। वही मैं कहूँ।

कुछ पहले आपने हिन्दी में मौलिकता की कमी और माँग पर एक नोट दिया था। उसमें नाम थे और उन नामों में दरजे भी थे। वहाँ नामों का ज़िक्र मुझे अनिवार्य नहीं लगा। उस तरह की राय खुलकर एक मित्र से मैंने कही भी थी। आपसे भी मिलने का सुयोग चाहता था कि अपनी कहकर आपकी सुनूँ। पर सुयोग मिला नहीं। क्या यह काफ़ी है कि आपका उसमें अभिप्राय था? मुझे लगता है कि जबतक अनिवार्य कर्तव्य न हो जाय, तबतक इस ढंग पर नाम गिनाने से बचना चाहिए। उसका असर ठीक नहीं होता। उल्टे बाधा बढ़ती है। नाम चुनने का काम नेता को करना पड़ जाता है, पर नेतृत्व उसे देना चाहिए, लेना नहीं। वृत्त-विवेचन या तत्त्व-विवेचन करते-करते व्यवहार में भी उस तरह की ज़िम्मेदारी सिर आ रहे, तब नामों के चुनाव का काम भी किया जा सकता है। उससे पहले बचना संभव हो, तो वह श्रेयस्कर भी होना चाहिए।

दूसरे, इधर यह क्या हो रहा है! 'हो रहा' इसलिए कहता हूँ कि आप शायद वह करना नहीं विचारते। आपके पत्र के हाल के अंकों से कुछ ऐसी स्थिति बन रही है कि जैसे 'आनंद' और 'उपयोगिता' में अनबन हो। मानो 'उपयोगिता' के वाद को अखाड़े के एक तरफ़ और आनंदवाले जिसे 'कला' का वाद कहें, उसे दूसरी तरफ़ खड़ा कर दिया गया है कि दोनों में तर्क हो और देखा जाय कि कौन पक्ष प्रबल है? पर 'आनंद' कब अनुपयोगी है और 'उपयोगिता' भी कौन 'आनंद' की शत्रु है? पर आपकी ओर से जैसे उन दोनों के तनाज़े को शह मिल रही है। महादेवीजी के लेख की किस बात को ग़लत कहना होगा? आप कहेंगे कि कि 'भई, मुझे ही बताओ कि मेरे लिखे में क्या ग़लत है?' मैं कहूँगा कि ग़लत कुछ नहीं है। पर भूल तो वहीं हो जाती है जहाँ 'उपयोग' और 'आनंद' में विमुखता देखी जाती है।

हाँ, झगड़ा भी है। वह 'आनंद' और 'उपयोग' में नहीं, उनके 'वादों' में है। वाद में आग्रह होता है। उन आग्रहों में तो 'मैं-तू' मचना ही हुआ। क्या आप आग्रह बढ़ाना चाहेंगे?

साहित्य की सृष्टि को आप अपना लक्ष्य पहनाना क्यों चाहें? स्रष्टा और सृष्टि के बीच आप अपने आदर्श की प्रतिष्ठा देखना चाहते हैं, तो मतलब होता है कि आप उनमें फ़ासला चाहते हैं। बीच में अन्तर पड़े तभी तो वहाँ आपका उद्देश्य बैठे। पर यह तो अदया है। सृष्टि को स्रष्टा से क्यों काटिए? वे कटकर दो हों भी कैसे? मेरी समझ में जीवन की ओर से उनमें अभिन्नता ही चाही जा सकती है। लेख में और रचना में जितना ऐक्य होगा, उतना ही उत्कृष्ट जीवन-साहित्य प्राप्त होगा। अन्तर पड़ने से उत्कृष्टता खंडित होगी।

मैं कहना चाहता हूँ कि अलग से पकड़ा गया, रोपा गया, पिरोया गया आदर्श रचना को जीवन से किंचित् दूर डाल देगा। आदर्श वही चलेगा जो लेखक की आत्मव्यथा में घुल रहेगा। उसकी और रेखा नहीं, स्वयं रचना वह रेखा है। वह आदर्श बौद्धिक नहीं, शाब्दिक नहीं, उससे अधिक चिन्मय है। वही लेखक की प्रेरणा है। और इस दृष्टि से कोई भी बाहरी कर्तव्य नहीं, बल्कि एक आनन्द यानी व्यथा ही कलासृष्टि की प्रेरणा होती है। स्रष्टा ने क्यों सृष्टि रची? अनुभवियों के पास से इसका एक ही उत्तर मिला : लीला। सृष्टि स्रष्टा की लीला है। उस स्थल पर किसी भी प्रयोजनाशय का आरोप विडंबना है।

कहीं मैं भारी तो नहीं हो गया ? पर बात मैं सीधी कहा चाहता था। वह यह कि बालक आपको सुन्दर चाहिए, तो माता के कमरे को सुन्दर बालकों के चित्रों से सजने दीजिए। उसके मानस में उस सौंदर्य को मूर्त्त होने दीजिए। पर हिदायतनामा कहीं न जारी कीजिए कि इस डिज़ाइन के मुताबिक़ ही बच्चा चाहिए, वैसा न न हुआ तो तुम कलंकिनी होगी और शिशु बहिष्कृत। डिज़ाइन वह विज्ञान की ओर से बावन तोले पाव रत्ती सही हो, पर कहना होगा कि मातृत्व पर कृपा चाहिए।

तो क्या अच्छे बच्चे पाने की कोशिश न की जाय ? नहीं, कोशिश होगी। उसके उपाय हैं। स्वस्थ बच्चों की प्रदर्शिनी हो, माताओं को इनाम दिया जाय। उस विषय की शिक्षा सुलभ हो। लोग आदर्श बच्चे को देखें और समझें। पर माँ और बच्चे के बीच कृपया कोई न आवे। बच्चे को माँ आनंद द्वारा प्राप्त करके प्राणों के रस से सांगोपांग करेगी। और कोई राह गर्भाधान की नहीं है।

इसमें नीति क्या चाहती है ? बालक को आने दो। फिर वह मरेगा तबतक नीति के हाथ में होगा। इससे पहले सृष्टि के रहस्य के प्रति नीति को निर्वाक् और नतशिर बनने दो। नीति अनीति करेगी, अगर वह अपने प्रभु को भूलेगी। उसका प्रभु है स्रष्टा।

तो क्या यह नहीं हो सकता कि आप लेखक और लेखन के बीच अभिन्नता रहने दें ? ऐसी अभिन्नता कि प्रश्नों के जवाब में लेखक लाचार बन जाय, और झुँझलाकर कहे कि "मैं क्या बताऊँ कि मेरी कला किसलिए है ? शायद वह अपने लिए है। भई, हाथ जोड़ता हूँ, मुझे छोड़ो, जाओ, कला कला के लिए है।" इस कथन की लाचारी के साथ क्या उपयोगिता का सामंजस्य बिठाया ही नहीं जा सकता ? मैं मानता हूँ कि बिठाया जा सकता है। बल्कि सच्चा जीवन वह सामंजस्य ही है। और 'जीवन-साहित्य' अपने नाम की सार्थकता में उस सामंजस्य को ही प्रतिष्ठित कर सकता है।

लेखक लिख रहे हैं। अपनी-अपनी प्रेरणा का प्रकाश ही उनके पास है। किसी की लौ मद्धम है, किसी की तेज़ है। कोई घासलेट की बत्ती से अपनी कोठरी जगाकर जी रहा है, दूसरे ने झोंपड़ी में कड़ुए तेल से अपना दिया सँजोया है, भगवान बिजली पा गया है। पर जीवन की आरती में सब अपनी लौ जलाये जी रहे हैं। टिमटिमाती लौ भी बुझने की आस में जगे तब तक जी रही है। अरे, कुछ बातियाँ हैं, जो उजाले से अधिक धुआँ देती है, पर वे भी अपने में जल ही रही हैं। उनका स्नेह ही ऐसा है। धुआँ कौन वे खुद चाहती हैं ? पर क्या करें ? आखिर कैसे भी हैं, जले ही जा रही हैं।

ऐसी नाना जीवन-बातियों से साहित्य की आरती जग रही है। आप सब बातियों को स्वच्छ चाहते हैं ? शुभ्र चाहते हैं ? तेज़ चाहते हैं ? क्या चाहते हैं ? जो चाहते हैं, स्वयं वह हो:कर अपनी जोत भी आरती में मिला दीजिए। उजेले को बढ़ाइए। फूँक से किसी कच्ची या बुझती बाती को बुझाइए क्यों ? फूँक आपके पास है। पर आपकी जोत भी आपके पास है। उस जोत को जगाकर आइए न। उसे देखकर टिमटिमाता दिया निस्तेज होगा, तो भी खुश होगा। क्योंकि आरती दमकेगी। उसे प्रसन्न करके भी उसे निस्तेज करने का यह उपाय है। जिनके पास जीवित श्रद्धा है, वे उसके बल पर अपने आदर्श का मूर्त रूप क्यों न सामने लावें ? कर्तृत्व हो तो उसे अपने में ही उतारें। स्वयं आराध्य बनें। वह नहीं, तो उसे कला में उतारें। दें कोई तेजस्वी प्रोज्वल मूर्ति — फिर चाहे वह प्रस्तर में हो, शब्द में हो, रंग में हो, ध्वनि में हो। वह देने चलेंगे तो उस तरह का प्रयत्न करनेवालों की कठिनाइयों को भी समझेंगे। उससे पहले राजनीति की कमची लेकर आप उनको हाँक भी सकते हैं और फूँक देकर इस-उस को बुझा भी सकते हैं। पर इससे क्या उजेला बढ़ेगा ?

मैं कहना चाहता हूँ कि आपके 'जीवन-

साहित्य' में जितना जीवन है, उतना ही साहित्य है, तो जितनी आलोचना है, उतना ही स्नेह भी क्यों नहीं ? मैं चाहूँगा कि जितना स्नेह भर सकें उससे अधिक पत्र में आलोचनाओं को मत बढ़ने दीजिए। पहले स्नेह, फिर आलोचना। स्नेह से पहले और बिना ही आलोचना का जो अयाचित दान हर तरफ़ देखने में आता है, क्या वही आज का त्रास और रोग नहीं है ?

आप कहेंगे कि यह तो हुआ, पर हम अमल के, कर्म के आदमी हैं। गोल बात नहीं, अमल की बात कहो। बस तुम्हारे साहित्य में यही तो है कि कहाँ दूर की कहने बैठ जाते हो !

पर मैं दूर से पास की अभी नहीं कहूँगा। अमल की नहीं कहूँगा। वह दूसरे अवसर पर। अभी तो रुख के बारे में ही कहा चाहता था। गांधीजी सामने हैं। गुजराती तो छोड़ें, यहाँ तक कि उनसे क्या अँग्रेज़ी और हिन्दी को भी दिशा नहीं मिली ? व्यक्तित्व से नहीं, क़लम से। वह क्या साहित्य के बारे में क़लम चलाकर उन्होंने दी ? नहीं। पहले तो वह उसकी मूर्ति स्वयं बने। जीवन में आदर्श की प्रतिमा को स्वयं पर उतारा। अर्थात् कोई आदर्श मूर्त करे, उनसे स्वयं वह मूर्त्त हुआ। यही जीवन का कलाकार बनना है। और इस राह उन्हें जो लिखना हुआ, उसकी शक्ति ने स्वयं साहित्य को मोड़ दिया। अर्थात् तार्किक या तात्त्विक छेड़-छाड़ नहीं बल्कि आपकी क़लम की साहित्यिक शक्ति ही कुछ प्रभाव ला सकेगी। साहित्य की दिशा स्वयं साहित्य-सृष्टि से मिलेगी। अर्थात् जिस दिशा में आप चाहते हैं कि साहित्य जाय, उसी दिशा का अधिक सशक्त साहित्य आपको पैदा करके दिखाना होगा। दूसरों को उसकी दिशा से मोड़, अपनी दिशा पर डालकर काम करालेने की इच्छा अपने दायित्व को दूसरों पर आरोपित करने के समान है।

गांधीजी गुजरात-साहित्य-परिषद् के सभापति बनकर कला-विवेचन में नहीं पड़े। उन्होंने यों कहा कि मेरा मुँह गाँव की तरफ़ है, लाओ गाँव के लायक़ मुझे क्या देते हो ? मुन्शी के उपन्यास क्या उन्हें जाकर दूँ ? नहीं तो बताओ क्या दूँ ?' इसमें गर्भित आलोचना तो आ गयी और निर्णय की ज़िम्मेदारी बच गयी। इस पद्धति से अपने काम के योग्य साहित्य को चुन-चुनकर इतर को आप अपने-आप छँटने दे सकते हैं। यह सरल उपाय है। इसमें साहित्याचार्य को पदच्युति का डर भी नहीं है और आपका काम भी चल जा सकता है।

संक्षेप में, आप हिन्दी-साहित्य में काम करनेवालों में से ही हैं, यह ध्वनि देकर अपनी टिप्पणियों को लिख सकते हैं। वैसा न होने पर उस क्षेत्र के कर्मियों को लगेगा कि आप उन्हें मार्ग बताने आते हैं, बोझ बँटाने नहीं। पर उनमेंका ही बनकर जो नेतृत्व किया जायगा, वह तो सफल होगा, अलग किनारे से पथ-प्रदर्शन, बुद्धिभेद और दल वृद्धि करके रह जायेगा। मैं चाहूँगा कि सलाह और सेवा से जिनका हित आपको साधना है, उनके दुखदर्द के संगी बनें, उनकी आकांक्षा-वासनाओं को समझें। जिस देवता को वे पूजते हैं उसीमें पूज्यभाव पैदा करके, उन्हींकी भाषा में, मानो उन्हींके दर्शन को अपनाकर आप उनसे बातचीत करें, तो देखिएगा कि ग़लतफ़हमी कम होती है और फल अधिक होता है।

यह लीजिए। कब सोचा था कि इतना लिख जाऊँगा। लेकिन इस वक़्त आप दूर हैं, तभी बात लम्बी हो गयी। आपके स्नेह के भरोसे लिखा है। इसीसे हो सकता है कुछ बढ़कर कह गया हूँ। उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। सादर आपका

जैनेन्द्र कुमार

[भाई जैनेन्द्रजी ने जिस स्नेह व ममत्व से यह सुन्दर पत्र लिखा है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। यह 'जीवन-साहित्य'-संबधी उनकी दृष्टि को प्रदर्शित करता है और मैं कहूँगा कि बडी सफलता के साथ। उनका दृष्टि-बिन्दु अपनी जगह बहुत मौज़ूँ और सुस्थित है। 'जी० सा० के कार्य व कार्य-पद्धति पर उन्होंने सुझाव रखे हैं। कार्य से जहाँतक संबंध है, वे 'सामञ्जस्य'

की और पद्धति से जहाँतक संबंध है, वे आलोचना के बजाय 'स्नेह' का—प्रोत्साहन, सहयोग, सहायता की सलाह देते हैं। गांधीजी का नमूना उन्होंने बताया है। उचित होगा कि मैं 'जी०सा०' की स्थिति उनके सुझावों व सलाहों के प्रकाश में स्पष्ट कर दूँ। 'जी० सा०' का उद्देश्य ऐसे साहित्य को प्रोत्साहन देना है, जो जीवन को सत्य, शिव, सुन्दर की ओर ले जाय। जो साहित्य जीवन को अधोगति की ओर ले जाता हो, उसे रोकना, आलोचना आदि के द्वारा भी, उसका कर्तव्य हो जाता है। जीवन में सामञ्जस्य सत् व असत् अच्छे व बुरे का नहीं हो सकता; सत्प्रवृत्तियों में परस्पर व असत्प्रवृत्तियों में परस्पर हो सकता है। सत् व असत् का, शिव व अशिव का सामञ्जस्य ईश्वर में ही दीखता है। उसीमें यह क्षमता है। हमें मनुष्य व मनुष्य-समाज का ही विचार करना है। ऐसी दशा में हम अपना जीवन 'त्याज्य' व 'ग्राह्य' में भेद किये बिना नहीं बना सकते, न चला सकते हैं। घासलेट की बत्ती यदि वहाँ जले जहाँ अँधेरा ही अँधेरा हो और दूसरी बत्ती सुलभ न हो, तो अवश्य उसकी कद्र होगी; परन्तु आरती में तो घृत की शुद्ध व शुभ्र दीप-ज्योति ही रहनी चाहिए। इसका आग्रह तो अनुचित या अवांछनीय नहीं माना जाना चाहिए।

गांधीजी का उदाहरण यहाँ मौजूं नहीं है। गांधीजी का जीवन सत्योपासना का है, साहित्योपासना का नहीं। साहित्य को उनके द्वारा अप्रत्यक्ष लाभ हुआ है। 'जी० सा०' का क्षेत्र प्रत्यक्ष साहित्य-सेवा है। अतएव वह गुण-दोष की चर्चा किये बिना नहीं रह सकता—हाँ, उसमें कटुता न होनी चाहिए, सुरुचि का भंग न होना चाहिए, बहुत शिष्टता व सौजन्य के साथ होनी चाहिए, क्योंकि उसका उद्देश्य किसी बत्ती को बुझाना या प्रकाश को धूमिल कर देना नहीं है बल्कि राख को फूंककर आग को चेताना है।

स्वयं अच्छी मूर्ति बनाने, प्रोज्वल ज्योति जगाने की सूचना अवश्य ही स्वागत व आदरयोग्य है। उपदेश व हिदायतों की अपेक्षा अप्रत्यक्ष सूचना व ध्वनि अवश्य ही अधिक प्रभावकारी होती है और यह सच्ची कला भी है; परन्तु अधिकार-भेद से ही इनका प्रयोग किया जा सकता है। फिर ऐसी योग्यता व क्षमता सबमें तो नहीं होती।

इस पत्र में भाई जैनेन्द्रजी ने एक और ऐसे सुन्दर पत्र की आशा दिलायी है। पाठक उसकी राह देखें। मैं चाहता हूँ कि जैनेन्द्रजी ऐसे कई पत्र 'जी० सा०' को लिखें। ह० उ०]

भाव व विचार

[हरिभाऊ उपाध्याय]

भाव एक स्फुरणा है, विचार एक योजना है। पहले परमात्म-शक्ति में व्यक्त होने का भाव आया, व्यक्त संसार की योजना बनी। पहले भाव, फिर विचार।

भाव में गति, वेग, बल है। विचार में विश्लेषण, काट-छाँट, व्यवस्था, योजना है।

भाव युवा, विचार प्रौढ़ है।

सृष्टि-सौन्दर्य परमात्म-भाव है; सृष्टि-रचना परमात्म-योजना है।

भाव हृदय का उभाड़ है, स्पन्दन है; विचार मस्तिष्क की चेतना है, प्रकाश है।

भाव में रस, विचार में ज्ञान है; भाव मस्ती व विचार जाग्रति है।

भाव में स्नान किया जाता है, बहा जाता है, डूबा जाता है; विचार में तैरा जाता है, आलोचन-प्रत्यालोचन होता है।

भाव से ज्ञान में परिणति ऊर्द्ध्वगति है।

भाव और हृदय—विचार और मस्तिष्क—का मेल मानव-जीवन है।

तकली-माता

[हरिहरप्रसाद गुप्त]

तकली-माता ! कितना आनंद मिलता है तुझे माता कहने में !

माता मनुष्य को जन्म देती है, उसे भोजन देती है, पालन-पोषण करती है। मनुष्य नंगा पैदा होता है, उसे वस्त्रदान देती है। तू भी सचमुच माता है।

कितनी ममता है तुझमें तकली-माता ! और वह सबपर एक-सी है ! **'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।'** कोई एक बार यह प्रण करले कि जबतक खाने को न मिलेगा तुझे न छोड़े। बस, फिर उसे खाने-पहिनने की चिन्ता से तू मुक्त कर देती है।

और तू निरी माता ही नहीं है। तुझमें तो माता, पिता, गुरु सबका एकीकरण है। माता की तरह तू प्यार करती है, पिता की तरह तू पालन करती है और गुरु की तरह तू ज्ञान देती है। कितनी महानता है तुझमें, मा !

और तेरा स्वरूप कितना अद्भुत है। भारत की सच्ची परिस्थिति की तू द्योतक है। तुझे देखकर कृषि-प्रधान भारत, कला-प्रधान भारत तथा सादगी-प्रधान भारत को कौन स्मरण न करेगा ? तू तो भारत की जीवनदायिनी शक्ति है। तू भारत की सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक है। भारत से तू कैसे अलग हो सकती है और भारत तुझसे कैसे अलग हो सकता है ?

राम के धनुष के रूप में, कृष्ण की मुरली के रूप में और अब गांधी की तकली के रूप में तूने अवतार लिया है, माँ ! हर युग में तूने मनुष्य का कल्याण किया है। तेरा वह शक्ति-रूप, तेरा वह माधुर्य-रूप और तेरा अब यह क्रियाशील रूप एक-ही शक्ति के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। भूखे भारत को अब तेरे इसी रूप की आवश्यकता थी। शक्ति से सम्पन्न हो, सौंदर्य में मुग्ध हो, भारत अपनी क्रियाशीलता को छोड़ बैठा था, उसे कर्मशील बनाने के लिए तूने यह रूप चुना है।

राम शक्ति की पराकाष्ठा थे, कृष्ण सौंदर्य के अवतार थे और गांधी कर्म के स्वरूप हैं। एक का जन्म राजनगरी में हुआ था, एक का जन्म अहीरों के घर हुआ था और एक का जन्म भूखे, भिखारी, दलित समाज के बीच में हुआ है। एक ने अपनी मर्यादा से लोगों को चरित्र की शिक्षा दी थी; एक ने अपनी गीता से मनुष्य को शांति का पाठ पढ़ाया था और एक अपनी तकली से मनुष्य को ज्ञान-कर्म-भक्ति के समन्वय की ओर ले जारहा है। एक ने अधर्म से नष्ट होते हुए आर्यावर्त की राक्षसों से रक्षा की थी, एक ने कंसादि के अन्याय और पापाचार से लोगों को मुक्त किया और एक भारत की परतंत्रता की बेड़ी काटकर उसे स्वतंत्र कर रहा है। तीनों में तू ही प्रेरक शक्ति रही है मा !

तेरे पीछे तो एक इतिहास है माता ! सारे संसार का इतिहास तेरे साथ सम्बद्ध है। सृष्टि के आदि में मनुष्य नग्न था। उसने तेरी उपासना की, तू प्रकट हुई तूने वस्त्र-दान देकर उसे सभ्य बनाया, तूने उसे शिक्षित किया, जीविका दी, तूने उसे अपने पैरों खड़ा होना सिखलाया। मनुष्य जगा। उसकी ज्ञान की आँखें खुलीं। वह कर्मशील बना। उसकी भावनाओं में शक्ति आयी। ओह ! लेकिन मनुष्य ? वह सब भुला बैठा। अपनी उन्नति के मद में उसने तुझे त्याग दिया। तेरी सचाई, अहिंसा, उद्योग और परोपकार की भावना का उसने परित्याग कर दिया और मनुष्य होते हुए भी पाशव वृत्तियों का दास बनकर काम-क्रोध-मद लोभ-मोह के पाश में फँस गया। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की, एक देश दूसरे देश की रोटी छीनने में अधर्म नहीं समझता ! एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का गला घोटना अपना कर्त्तव्य समझने लगा है। दूसरे के पेट खाली देखने में ही उसे प्रसन्नता होती है। ईर्ष्या, द्वेष, आतंक और हिंसा का साम्राज्य है। नीति और धर्म दूर की चीजें हो गयी हैं। क्या इसी पाप-चक्र से बचाने के लिए

और पुनः धर्म-राज्य स्थापित करने के लिए तूने गांधी को अंगीकार किया है, माँ ? एक बार भारत क्या फिर अपनी महानता से संसार को सत्य और अहिंसा का मार्ग दिखलायेगा ? माँ, तुझे कुछ भी असंभव नहीं है। तू अनन्त शक्ति की जन्मदात्री है।

और तेरा चित्र ? तेरा वास्तविक चित्र तो दूसरा ही है माँ ! वह तो अब धीरे-धीरे उदय हो रहा है और वह है एक स्वतंत्र शक्ति-संपन्न और सजीव भारत।

जीवन का उषाकाल

[प्रभुदास गांधी]

[दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के बसाये हुए 'फीनिक्स आश्रम' की इस धारावाही कथा "जीवन का उषाकाल" के लेखक महात्मा गांधी के पौत्र और श्री छगनलाल गांधी के पुत्र हैं। 'मगन चरखा' और 'ग्रामचक्र' के आविष्कारक के नाते भी उनकी ख्याति है। इस समय वह आसफ़पुर (बदायूँ) में ग्राम-सेवा केन्द्र के संचालक हैं। लेखक के अपने जीवन के उषाकाल की तो यह कथा है ही, लेकिन साथ-ही-साथ इस समय जगत को आलोकित करनेवाले महापुरुष के उद्भव तथा भारतीयों में आनेवाले नवजीवन के उषाकाल की कथा भी इस कहानी में समाविष्ट है। इस कथानक में आनेवाले घरेलू वातावरण के साथ पाठक आसानी से समरस हो सकें, इसलिए प्रारम्भिक प्रकरण में गांधी-कुटुम्ब का पूर्वपरिचय दिया गया है।—संपादक]

प्रारंभिक

चौदह वर्ष पहिले जब मैं सत्याग्रह आश्रम, साबरमती के विद्यार्थियों के हस्तलिखित द्विमासिक पत्र 'मधपूड़ो' का संपादक था, तब लेखों की कमी रहने लगी थी। उस समय हमारे नियमित लेखकों में से करीब-क़रीब सब जेल में थे या बारडोली, नवजीवन, विद्यापीठ और अन्य रचनात्मक प्रवृत्तियों में संलग्न थे। फिर एक-एक लिखनेवाले के पीछे मारे-मारे फिरकर डेढ़-दो महीने में थोड़े-से पृष्ठ बटोर लाने की फ़ुरसत हम विद्यार्थियों के पास थी भी नहीं। चर्खे की उपासना में सारा दिन बीत जाता था। लिखने-पढ़ने के लिए बहुत थोड़ा समय रहता था।

शिक्षकों के लेखों से सज-धजकर प्रकाशित होनेवाले 'मधपूड़ो'-के द्वारा हमारे विद्यार्थी-मंडल ने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। शिक्षकों के लेखों के अभाव में उस प्रतिष्ठा का भंग होना स्वाभाविक था, जो मुझे अच्छा नहीं लगता था। विद्यार्थियों का पूरा सहयोग प्राप्त न हो सकने के कारण सारा का सारा काम मुझपर आ पड़ा।

उपदेश-प्रद लेख लिखने का साहस तो मुझे होता कैसे ? और इतिहास, विज्ञान, साहित्य या अन्य किसी शास्त्र का मुझे ऐसा परिचय था नहीं, जो वैसे लेख में लिख सकूँ। पाठकों की दिलचस्पी बनाये रखने के लिए कहानी और कविताओं की आवश्यकता है, इसका मुझे पता था; परन्तु छंदशास्त्र की तो मुझसे दुश्मनी थी और कहानी के लिए कोई उम्दा कथा-वस्तु मेरे दिमाग़ में आती न थी। सोचते-सोचते मुझे फीनिक्स की कहानी लिखने का विचार सूझ गया।

यह तो मैं देख चुका था कि बापू की छोटी-मोटी हर क़िस्म की बातें सुनने में लोगों को आनंद आता है। हमारे आश्रम का प्रारंभ कैसा था ? बापू के आस-पास कैसे-कैसे लोग थे ? बापू क्या करते थे, कैसे पढ़ाते थे ? किस तरह मजदूरी करते थे ? हम बालकों की शरारत कैसे बर्दाश्त करते थे ? शैतान विद्यार्थियों को किस तरह बस में लाते थे ? छोटी-मोटी यात्रा में हमें कैसा आनंद देते और जेल जाने के लिए किस

तरह उत्साहित करते थे ? ये सब बातें कहानी की तरह लोग सुना करते थे। इन पृथक्-पृथक् अनुभवों के आधार पर मैंने फ़ीनिक्स की कहानी याद कर-कर के लिखना आरंभ किया।

जिस समय की कहानी मैं लिख रहा हूँ उस समय मेरी आयु बारह वर्ष से भी कम थी। अब तो अपने उस बाल्यकाल के उन दिनों का आल्हादमय स्मरण भर मेरे पास रहगया है। यहाँ मैं अपने बाल्यकाल के उन पवित्र संस्मरणों को जहाँ तक हो सकेगा तटस्थ बनकर लिखने का प्रयत्न करूँगा।

ये संस्मरण आत्म-कथा लिखने की दृष्टि से नहीं लिखे हैं। वह तो बड़ी चीज़ है। मैं तो अल्प जीव हूँ। फिर भी यह सारी कथा मैंने अपने को केन्द्र में रखकर लिखी है। दूसरे प्रकार से लिखना संभव भी न था। मनुष्य की चार से बारह वर्षों तक की आयु ही ऐसी है, जिसमें वह सारी दुनिया को अपनेसे लगाकर ही देखता है। बड़े-से-बड़े महात्मा को या बड़े-से पुरुष को भी वह अपना ही गज लेकर नापेगा, पहिचानेगा और स्वानुभव में लायेगा। उस समय मुझे यह [illegible] न थी कि जिस वायुमंडल में मैं पनप रहा हूँ वह दुनिया का कोई अनोखा वायुमंडल है। और इसकी तो कल्पना भी कैसे हो सकती थी कि जिनकी गोद में चढ़ने का मौक़ा मुझे मिल रहा है, वे हमारे घर के 'मोहनदास काका' संसार के अद्वितीय व्यक्ति बन जायेंगे। सारांश यह कि यदि मैं चाहूँ तो भी याददाश्त को जगा-जगाकर लिखा हुआ यह लेख बापू या मगनकाका के जीवनचरित के स्वरूप में मुझसे नहीं लिखा जा सकता था। आश्रम के इतिहास के रूप में भी मैं नहीं लिख सकता था और दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास के ढंग पर तो हरगिज़ ही नहीं। बापू के शिक्षण के प्रयोगों के विवरण के रूप में लिखने में शायद मैं सफल होता, परंतु इसके वनिस्वत अपने निज के बाल-जीवन का आलेखन करने में ही कम-से-कम बनावट और ज्यादा-से-सच्ची बातें दी जा सकती थीं।

'मधपूड़ो' के पाठकों को लक्ष्य रखकर यह लिखा गया है, इसलिए इसमें घरेलू बातें हैं। आश्रम हमारा घर है। घर की सब तरह की चर्चा घर में करने में संकोच की बात नहीं रहती, परंतु अब जब इसे छपने के लिए दे रहा हूँ, तब उन पाठकों से जिनसे मैं अपरिचित हूँ, मैं विनय करना चाहूँगा कि इसमें जो कुछ अनुचित दीख पड़े या विनय या शिष्टता में कमी नज़र आवे, तो वे उदारतापूर्वक मुझे क्षमा करें। **'प्रासाद-शिखरस्थो हि काकोऽपि गरुड़ायते'** जैसा कुछ आभास इसमें मिले, तो उसे प्रमाद समझकर कुछ भी विपरीत असर सुविज्ञ पाठक अपने ऊपर न पड़ने देंगे, ऐसी उम्मीद है। गांधी-परिवार दुनिया में अनोखा और अपूर्व कुटुंब है। सत्याग्रह-आश्रम या जिसमें उसका बीज था वह 'फीनिक्स आश्रम' पूर्णतया आदर्श संस्था थी, ऐसा मैंने कभी नहीं माना है। तो फिर उसके बूते अपनी बड़ाई गाने की गुंजाइश तो रह ही कहाँ जाती है ?

(क्रमशः)

स्वाधीनता ही स्वाधीनता का अन्त नहीं है। धर्म, शांति, काव्य, आनन्द और भी बड़े हैं। इसके परम विकास के लिए ही स्वाधीनता चाहिए, नहीं तो उसका मूल्य ही क्या है ?

× × × × ×

हम सभी राहगीर हैं, पथिक हैं। मनुष्य को मनुष्यता की राह पर चलने के सब तरह के दावे मानते हुए हमें समस्त बाधा-विघ्नों को रोंदतेहुए चलना चाहिए। हमारे बाद जो लोग आयेंगे, वे बिना किसी उपद्रव के चल सकें, उनकी अबाध गति को कोई रोक न सके, यही हम लोगों का प्रण होना चाहिए।

[हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बम्बई से प्रकाशित श्री शरत् बाबूके पथ के 'दावेदार' से]

तर्कवादी से

[वियोगी हरि]

मानव-बुद्धि की धार पहले बहुत ही कुंठित थी। ज़हन एकदम कुंद था। मामूली-सी-मामूली चीज़ को भी तब का मंदबुद्धि मानव अतर्क्य और अचिंत्य कह दिया करता था।

उस कुंठित युग में कहा जाता था कि जो वस्तु अतर्क्य हो, उसमें तर्क को मत भिड़ाओ। तर्कबुद्धि का प्रयोग करने से पहले ही वे उसकी असमर्थता या अगम्यता स्वीकार कर लेते थे।

तुमने वह दयनीय स्थिति आज बदल दी। तर्क की सिल्ली पर घिस-घिसकर उसकी मोथरी धार को तुमने आज इतना तेज़ कर दिया है कि वह चाहे जिस चीज़ को काट सकती है—यहाँतक कि स्वयं अपने को भी काट सकती है। इसलिए आज न कुछ अकाट्य है, न अतर्क्य है, न अचिन्त्य है।

तुम्हारे युक्तिवाद के अस्त्र में दोनों ही ओर तेज़ धार है। अतः एकसाथ ही दो-दो, तीन-तीन पक्षों को काटने की उसमें क्षमता है।

दुर्बल बुद्धि के कारण सत्य और असत्य के बीच व्यर्थ ही उन लोगों ने एक ऊँची दुर्भेद्य दीवार खड़ी कर रखी थी। और स्याह और सफ़ेद को एक दूसरे के विरुद्ध क़रार दे दिया गया था।

तुमने अब उस भ्रम को अपने तर्कबल से दूर कर दिया है। सत्य और असत्य में—तत्त्वत: चाहे जो हो—व्यवहारतः तुम कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं करते। और स्याह और सफ़ेद को भी तुम वैसा परस्पर-विरोधी नहीं मानते। जगत् का इस प्रकार तुमने बहुत बड़ा उपकार किया है।

तुम चाहे जिस पक्ष को अपनी विलक्षण युक्तियों से सतेज कर देते हो। मानव-बुद्धि को तर्कवाद का शुद्ध आधार देकर तुमने अच्युत बना दिया है।

तुम्हारी यह शोध भी अभिनंदनीय है कि तुमने बुद्धितत्त्व को आचरण-धर्म न मानकर केवल शास्त्रीय वाद का वाहन माना है। तुम्हारा विकास इसीलिए पूर्णता तक पहुँच गया है कि तुम खालिस बुद्धिवादी हो।

दलील को तुमने विचार-विनिमय में इतना ऊँचा स्थान दे डाला है कि चिंतन, अनुशीलन अनुभव और आचरण की आज वैसी क़ीमत नहीं रही।

तर्क की बेलिहाज़ कसौटी पर कसे जाने के भय से अन्दरूनी आवाज़ या आकाशवाणी सुनने या ईश्वर का आदेश पाने के अब वैसे हवाई दावे नहीं किये जा सकते।

तुम्हारे युक्तिवाद ने सबसे बड़ा काम तो यह किया है कि किसी भी सिद्धान्त को बिना अपवाद के नहीं रहने दिया। अपवाद के भी अपवाद खोज निकाले हैं और सिद्धान्त को अपवादों से इतना अधिक लाद दिया है कि उसका शरीर तक ढँक गया है।

युक्तिमान्य अपवादों ने सिद्धान्त और नियम को इतना ज्यादा लचीला बना दिया है कि कोई भी सैद्धान्तिक व्रत बिना किसी हिचकिचाहट के लिया जा सकता है, और वैसे ही तोड़ा भी जा सकता है।

'करूँगा' के पहले एक 'प्रयत्न' शब्द जोड़ देने से प्रतिज्ञा की किश्ती का चलाना एकदम आसान हो जाता है।

नये-नये अर्थों की गुंजाइश हर जगह रखने में तुमने सचमुच बड़ी उदारता और दूरदर्शिता से काम लिया है।

और यही कारण है कि तुम्हारी अनेकमुखी भाषा में 'परन्तु', यद्यपि', 'संभवतः', 'शायद' 'लगभग' आदि शब्दों की भरमार रहती है। और तुम्हारी 'हाँ' और 'ना' का भी अर्थ साधारण अर्थ से कुछ भिन्न होता है।

बौद्धिक विकास की तेज़ रोशनी में आज चाहे जैसी असंगतियों को संगत सिद्ध किया जा सकता है, और तुमने ऐसा कर दिखाया है।

तुमने अपने युक्तिबल से जगत् में असम्भव या अशक्य कुछ भी नहीं रहने दिया। युक्तिबल

जो तुमने निराकार वस्तुओं का भी संगठन कर दिखाया; शून्य का भी बटोर-बटोरकर ढेर लगा दिया।

शायद ही कोई ऐसा सिद्धान्त, ऐसा नियम नज़र आता है, जिसके अनेक अर्थ न किये गये हों। दलीलों के डर से अर्थ हमेशा काँपता ही रहता है, कभी स्थिरता को नहीं पहुँचता।

पहले के तर्कशून्य कवि ने शरीर-सेवा को अविवेकी मनुष्य का काम बताया था। आज वह पुरानी विचार-धारा उलट गयी है। तब शायद सुन्दर को सत्य और शिव के धुँधले दर्पण में देखने का दार्शनिक प्रयास किया जाता होगा।

तहाँ तुम शरीर-सेवा को या सुन्दर वेशभूषा को विवेकशील मनुष्य का 'धर्म' मानते हो। तुम्हारी दलील है कि आत्म-देवता तो स्वच्छ और आकर्षक है ही, स्वच्छ और परिष्कृत रखकर सजावट तो देह-मंदिर की करनी है।

तुम तर्कवादियों ने मंदिरों को बेहद महत्त्व दे डाला है। इस न्याय से तो तर्कयुग की संस्कृति को 'मन्दिरी संस्कृति' कहना ही युक्तिसंगत होगा।

शृंगार को तब शृंगार ही कहते थे। विकास के अभाव में यथार्थ देखने की ही तब परिपाटी थी—और ही कुछ सिद्ध करने के पक्ष में तब कोई जोरदार दलील नहीं आयी थी। तुमने शृंगार को 'संस्कार' का सुन्दर नाम दे दिया है, और इस नये नामकरण ने मूर्ख आरोपियों के आगे तुम्हें निर्भीक बना दिया है। शरीरोपासना के प्रति सेवा का तुच्छ भाव रखनेवालों को तुम्हारे समाज में इसीलिए आज असंस्कारी कहा जाता है।

इसी तरह, जिसे कोई-कोई भूल से सजावट के हलके नाम से पुकारते हैं, उसे तुमने देह के 'सहज धर्म' का तात्त्विक नाम दे दिया है। तुम्हारे सहज धर्म को लोग शृंगार और सजावट क्यों कहते हैं, इसपर तुम्हें आश्चर्य होता है।

अस्पृश्यता पर धर्म की छाप लगाकर जैसे उसे शास्त्रीय प्रतिष्ठा दे दी गयी थी, वैसे ही तुमने बाहरी वेशभूषा को संस्कृति का वाहन बनाकर सामाजिक प्रतिष्ठा के आसन पर बिठा दिया है।

मनोविकारों की व्याख्याएँ भी तुम्हारी अलग हैं। जैसे, सामान्य लोग जिसे अनबन कहते हैं उसके लिए तुम्हारा तर्कशुद्ध शब्द 'मतभेद' है, हालाँकि जो विकसित होते-होते अनबन के भी आगे संघर्ष तक पहुँच जाता है।

एक कठिनाई है। वह यह कि तुम्हारे कई रूप हैं और कई हैसियतें हैं। दृष्टिकोण भी तुम्हारे अनेक हैं, हालाँकि आँख के यूँ दो ही कोण होते हैं। कमसमझ लोगों को अक्सर समझने या मतलब निकालने में भ्रम हो जाता है कि तुम्हारा रूप असल में क्या है, किस हैसियत से तुम क्या मानते हो, किस समय किस दृष्टिकोण से देखते हो?

यद्यपि श्रद्धा या निष्ठा के लिए तुम्हारे तर्क-क्षेत्र में कोई प्रतिष्ठा का स्थान नहीं है, तो भी जहाँतक तर्क की स्वतन्त्र सत्ता में श्रद्धा कोई बाधा नहीं पहुँचाती, वहाँतक उससे फ़ायदा उठाने में तुम कोई हर्ज़ नहीं समझते।

श्रद्धा के फेर में पड़कर लोग जहाँ अतर्क्य वस्तुओं के बहाव में बहे जा रहे थे, तहाँ तुमने उन्हें वस्तु-दर्शन की विविध दृष्टियाँ देकर स्वस्थ, शान्त या जड़ बन जाने से बचा लिया है। इसके लिए जगत् तुम्हारा सदा कृतज्ञ रहेगा।

"अगर आप तमाम शारीरिक पीड़ाओं और कष्टों से अलग रहना चाहते हैं और पूर्ण स्वास्थ्य का आनन्द होना आपको अभीष्ट है, तो आप अपना दिमाग़ ठीक कीजिए और अपने विचारों को एक रंग के बनाकर उनमें एकता लाइए, आनंददायी विचारों को सोचिए और सदिच्छा के रसायन को अपनी रगों में प्रवाहित होने दीजिए। फिर किसी दूसरी ओषधि की आवश्यकता ही न होगी।

[**गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से प्रकाशित** जेम्स ऐलन कृत **"भिखारी से भगवान"** से]

मानवधर्मसार : एक समालोचना

[हरि रामचन्द्र दिवेकर]

जब किसी मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है—ऐसा बिगड़ जाता है कि वह मरणासन्न जान पड़ता है, तब उसके सगे लोग घबरा उठते हैं। उसका उपचार करने के लिए बुलाये गये वैद्य, डाक्टर, हकीम की भी दृष्टि धुँधली हो जाती है। हर एक अपने-अपने मत के अनुसार उसके अस्वास्थ्य का निदान करता है और उसके रोग पर अपनी-अपनी औषध-योजना करता है। कभी-कभी ये निदान और ये ओषधियाँ ऐसी परस्पर-विरोधी होती हैं कि घर के लोग किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। वे ठीक-ठीक समझही नहीं सकते कि कौनसी दवा दी जाय और किस दवा से रोगी को आराम होगा ? ठीक यही दशा आज प्यारी भारत-माता की है। पारतंत्र्य-रोग से इसकी चेतना ऐसी क्षीण हो गयी है कि इसकी सन्तानों के मन में से इसके चंगे होने की आशा बिलकुल उड़ गयी है। वे तो ईश्वर पर भरोसा छोड़, 'जो होनहार है सो होगा, अपने बस तो अब कुछ बनता नहीं' कहते हुए हाथ-पर-हाथ और पैर-पर-पैर धर, निराश बने बैठे हैं। इसके चैतन्य-प्रदान के लिए कुछ बड़े-बड़े विद्वानों की ओर से अनेक उपाय सुझाये जा रहे हैं। इन उपायों में कई एक-दूसरे के बिलकुल खिलाफ़ होने से इस माता के अच्छे-अच्छे भक्ति-युक्त पुत्रों को भी यह संदेह होने लगा है कि "**कस्मै देवाय हविषा विधेम ?**"

वास्तव में ऐसे संशय में पड़ने की आवश्यकता नहीं। अगर ऐसे संशय में ही हम भारत-संतान पड़ जावें, तो '**संशयात्मा विनश्यति**' के न्याय से हमारा नाश निश्चित ही है। इसलिए सबसे पहले हमें इस बात का निर्णय करना आवश्यक है कि जो लोग—वैद्य, हकीम या डॉक्टर—उपाय सुझा रहे हैं, क्या वे सचमुच रोगी का रोग पहचानकर उसे चंगा करने के लिए उपाय सुझा रहे हैं, या केवल अपनी फीस वसूल करने के लिए, अपना स्वार्थ संपादन करने के लिए ही। तात्पर्य यह है कि देव—सत्वगुण युक्त—कौन हैं और तमोगुण युक्त असुर कौन हैं. पहले इसकी जाँच करनी चाहिए। जाँच के बाद यदि वे उपाय सुझानेवाले 'देव' प्रमाणित हो जावें, तो उनके सुझायेहुए उपाय करने में कोई हानि नहीं है; क्योंकि फिर तो '**कस्मै देवाय हविषा विधेम**' सूत्र के अंत में जोड़े गये मंत्र के अनुसार '**यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु**' की प्राप्ति निश्चित ही है। जब सारा शरीर रोगग्रस्त होता है, तो अनेक उपाय करने ही पड़ते हैं। केवल देखना यही होता है कि एक उपाय दूसरे के परिणाम को मिटा न दे।

भारतमाता के विषय में भी यही हाल है। बहुत से सत्वगुण युक्त 'देवों' का कथन है कि भारत की अवनति का प्रधान कारण धर्मक्षय है। हम भारतनिवासी अपने-अपने धर्मों को भूल गये और इसी कारण हमारी अवनति हुई। अर्थात् यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि भारत का पुनरुत्थान करना हो, तो अपने-अपने धर्म का ही पालन करना होगा। इसी मत के जो अनेक विद्वान् हैं, उन्हींमें काशी के प्रसिद्ध पंडित, रईस और देशसेवक बाबू भगवान्दासजी हैं। आपकी विद्वत्ता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। वह सूर्य-प्रकाश के समान प्रकाशित है। आपने हाल ही में एक संस्कृत रचना की है 'मानवधर्मसार'। नाम से कल्पना हो सकती है कि यह मनुस्मृति का सार होगा, पर केवल एक मनुस्मृति का ही नहीं, बल्कि प्रायः सारे धार्मिक ग्रन्थों का इसमें निचोड़ आ गया है। और वह ऐसे विवेक से लिया गया है कि साम्प्रदायिकता का मैल कहीं भी न उतर सका। '**धर्म**' शब्द का अर्थ केवल लिया गया है—'**धारणाद्धर्म इत्याहुः**' या '**धर्मोधारयति प्रजाः**'। अर्थात् अपना जीवन कैसे बिताना चाहिए और कैसे बिताने से समाज का धारण होगा, इसी धर्म का मनुष्यमात्र के लिए मनु की हर संतान के लिए इस पुस्तक में विचार किया गया है। जीवन कैसे जीना चाहिए, इस विषय में जो सनातन नियम हैं, जो सारे धर्मों पर

साधु हैं और पक्षपातरहित सज्जन विद्वानों के हृदयस्थ ईश्वर को प्रतीत होते हैं, उन्हींका इसमें संग्रह किया गया है।

बाबू भगवान्दासजी का निश्चित मत है कि “सुव्यवस्थां विना सौख्यं समाजस्य न कस्यचित् । विनाश्रमांश्च वर्णांश्च सा व्यवस्था न सिद्धयति ।।” —वर्ण और आश्रम के विभाग किये बिना समाज सुव्यवस्थित नहीं हो सकता और समाज के सुव्यवस्थित हुए बिना किसीको सुख नहीं मिल सकता। यदि यह ठीक है तो वर्णाश्रम-विभाग ही जिसका विशेष अंग है ऐसे हिन्दू-धर्म का और उसका पालन करनेवाले हिन्दू-समाज का ह्रास क्यों हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर में आप दो कारण देते हैं। पहला है हिन्दुओं की संख्या का कम होना। यह संख्या अपने धर्म में से किसी कारण निकाले जानेवाले लोगों के कारण कम होती है। स्त्री-पुरुष के अनाचार में हिन्दू-धर्म केवल स्त्री को ही दण्ड देता है, उसीको जाति-बहिष्कृत करना है। दूसरा उपाय न रहने से वे स्त्रियाँ परधर्मियों का आश्रय लेती हैं और उन्हीकी संतानें बढ़ती हैं। साथ में ज़रा-ज़रा-सी छोटी-मोटी बातों के लिए भी हिन्दू लोग बहिष्कृत किये जाते हैं और विवश होकर उन्हें अन्य धर्मों का अवलम्बन करना पड़ता है। पर यह कारण गौण है। प्रधान कारण है जन्मवर्ण दुराग्रह—अर्थात् केवल जन्म से वर्ण निश्चित करने का हठ। कोई किसी वर्ण का क्यों है ? इसलिए नहीं कि वह उस वर्ण के कर्तव्यों का पालन करता है, पर केवल इसलिए कि वह उस वर्ण में पैदा हुआ है। इसी कारण से हिन्दुओं में जन्मत: उच्च-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य इत्यादि कुविचार फैले हैं, जिनके कारण सर्वत्र अहंकार तथा तिरस्कार की सृष्टि हो रही है। जिस समाज में एक के प्रति दूसरे के मन में अहंकार या तिरस्कार हो, वहाँ एकता कैसे रह सकती है ? और यदि एकता न हो, तो दूसरा कोई भी हमारे सिर पर आ बैठ सकता है। इस लिए ‘जन्मवर्ण दुराग्रह’ को छोड़ वर्णव्यवस्था कर्म पर ही निर्भर रखनी चाहिए। ‘कर्म’ शब्द से भी उसका सांप्रदायिक अर्थ न लेते हुए उपजीविका का साधन समझना चाहिए और पुरुष जिस प्रकार की उपजीविका करे, समाज-हित के लिए उसे उसी वर्ण का मानना चाहिए।

साथ ही आपकी एक सूचना बड़े महत्त्व की है। आपका कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र ये संज्ञायें अब वर्ण-बोधक न रह कर जाति-वाचक हो चुकी हैं। अतएव अब वर्णवाचक तथा वृत्तिसूचक नयी संज्ञाओं की आवश्यकता है, ताकि जाति और वर्ण की गड़बड़ी न हो। आपने कई संज्ञायें सुझायी हैं। ब्राह्मण वे हों जो शिक्षक का पेशा करें; क्षत्रिय वे हों जो रक्षकों का काम करें; वैश्य वे जो समाज के पोषक हों और शूद्र हों धारक। अथवा ज्ञानद, त्राणद, प्राणद, साह्यद ये चार शब्द प्रचलित किये जा सकते हैं, जिनसे किस वर्ण से समाज को क्या लाभ होता है, इसका बोध हो। बोधी, शुष्मी, ज्ञानी, श्रमी अथवा शास्त्री, शस्त्री, धनी, धारी इत्यादि अन्य नाम भी आपने सुझाये हैं। सबसे सुगम नाम हैं—विद्योपजीवी, रक्षोपजीवी, वार्तोपजीवी और भृतिजीवी। मनुष्य संसार-भार अपने कंधे पर लेते समय जो उपजीविका अंगीकार करे, उसीसे उसका वर्ण निश्चित किया जाय। इन नयी संज्ञाओं के कारण जातिवाचक या धर्मवाचक उच्च-नीच भेद-भाव नष्ट होंगे, हरएक पुरुष को अपनी इच्छा के अनुसार वर्ण का स्वीकार करने का अधिकार रहेगा और समाज की व्यवस्था सुनियमित रहेगी। हिन्दू-समाज के ह्रास को रोकने का यह उपाय आपने सुझाया है और इसमें सन्देह नहीं कि वह विचारणीय है।

वर्ण चार ही क्यों ? यदि उपजीविकायें अनेक हैं तो वर्णों की संख्या चार ही में क्यों सीमित है ? इस प्रश्न का उत्तर है—कितनी भी उपजीविकायें क्यों न हों, जिन गुणों से वे की जाती हैं, वे हैं तीन—सत्व, रज, तम। अर्थात् जिनमें सत्वगुण अधिक हो, या रजोगुण या तमोगुण ये तीन और जिनमें एक भी गुण का आधिक्य न हो वह चौथा। क्रम से ये ही

चार वर्ण हैं। आज हम सब चौथी कक्षा में हैं। न हम जनहित से भरे हुए हैं, न किसी निर्माण-क्रिया से और न बुरी वस्तुओं की नाशबुद्धि से। आज तो हम जर्जरित, जराजर्जर, गुणरहित बन चुके हैं और यही हमारे अधःपतन का कारण है।

पर इस प्रकार वर्णों की व्यवस्था की जाय, तो उपजीविका करनेवाले पुरुषों का वर्ण तो निश्चित होगा, पर स्त्रियों के विषय में क्या? बाबूजी का कथन है कि आज जिस प्रकार पाणिग्रहण के समय कन्या का गोत्र बदल जाता है उसी प्रकार उसका वर्ण भी बदल जावेगा, आज भी राजा जिस स्त्री से विवाह करे, वह नौकरानी हो या बनियाइन, क्षत्राणी हो या ब्राह्मणी, आखिर वह बनेगी तो रानी ही? इसी प्रकार से यदि समाज नयी पद्धति पर रचा जावे, तो वर्ण-व्यवस्था कर्मों पर (अर्थात् आजीविका पर) निर्भर रहेगी। जन्म से कोई भी उच्च-नीच न समझा जायगा। समाज के सारे अंग समान योग्यता के होंगे और भारतीय समाज दिन-प्रतिदिन उन्नति करेगा। केवल जाति के ही नहीं, धर्म के भी भेद मिट जायेंगे। जिस प्रकार आज दाक्षिणात्य ब्राह्मण, औदीच्य ब्राह्मण इत्यादि भेद हुए हैं, उसी प्रकार बलाई ब्राह्मण, हरिजन ब्राह्मण इस्लामी ब्राह्मण, ईसाई ब्राह्मण इत्यादि वर्णों के अंतर्गत जाति, धर्म इत्यादि से भेद रहने भी वर्ण सबका एक ही रहेगा। इसी एकता के आधार पर समाज उच्च-नीच भाव छोड़कर समृद्ध होगा। इसी मानव धर्म का—अर्थात् मनुष्यमात्र के धर्म का, चाहे वह किसी जाति का, किसी देश का या किसी धर्म का हो — इस ग्रंथ में विचार किया गया है।

आवश्यकता है इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भारतीय भाषाओं में होने की। श्री भगवानदास जी का कथन है कि—

"सर्वप्रांतेषु यन्नैकं प्राकृतं प्रतिबुध्यते।
बुध्यते संस्कृतं त्वार्यैरतो व्याहृयतेऽत्र तत्॥

—सारे प्रान्तों में एक ही प्राकृत समझी नहीं जाती और इसीलिए यह ग्रंथ संस्कृत में रचा है क्योंकि सारे आर्य संस्कृत समझते हैं।" यदि किसी भाषा-भाषी की इच्छा इसका अनुवाद करने की हो, तो उसे करने व प्रकाशित करने का अधिकार आपने सबों को निःशुल्क दे दिया है। जीवन-साहित्य में इस प्रकार के साहित्य की बहुत कमी है, यह अवश्य पूरी होनी चाहिए। इस लेख में 'मानवधर्मसार' का यह रहस्य दिया गया है। इसके अनुसार—हिन्दू नहीं हिन्दी—समाज की रचना कैसे की जा सकती है और वैसा करने में क्या आपत्तियाँ आ सकती हैं और उनका निवारण करना कैसे कठिन है? इत्यादि का विचार अगले लेख के लिए रख आज यहीं विराम लेता हूँ।

साहित्य और सत्य

"हमारी साहित्य-निष्ठा ऐसी है कि चाहे सत्य भले ही मर जाये, साहित्य जीता रहे।"
—"विनोबा और उनके विचार"

एक प्रकार से साहित्य जीवन की आलोचनात्मक व्याख्या है। वह जीवन ही से जीवित है। उसके जीवन की सार्थकता जीवन के ही लिए है। जीवन में यदि सत्य नहीं, तो वह जीवन नहीं। इसी प्रकार यदि उसकी आलोचनात्मक व्याख्या—साहित्य—में सत्य नहीं, तो न वह वास्तव में साहित्य है और न कल्याणकारी ही, क्योंकि साहित्य (स+अ+हि+त्य) में से सत्य (स+त्य) निकाल लेने पर अकल्याणकारी अहि (साँप) ही बचता है।

प्रेमनाथ

मैथिलीशरण गुप्त की देन

[दीनदयाल 'दिनेश']

इस विषय में आज दो मत नहीं हो सकते कि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्वाधिक पठित और प्रशंसित कवि हैं। अपनी कविताओं को उन्होंने केवल कल्पना का खिलवाड़ नहीं बनाया, 'कला कला के लिए' ही मानकर मा-भारती की वीणा को झंकृत नहीं किया। वे अपनी कविताओं में चिरन्तन आदर्श के साथ आधुनिक युग के आदर्श का समन्वय करके जनता का पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं, प्रेरणा देते रहे हैं। उनकी कविताओं में हृदय की शक्ति और मस्तिष्क का प्रकाश है। यह शक्ति और प्रकाश समन्वित रूप से हिन्दू जाति के उद्बोधन के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं। उनके काव्यों में हिन्दू-हृदय की पीड़ा है, हिन्दू-संस्कृति की अभिव्यक्ति है और है हिन्दू आदर्शों के लिए सर्वस्व निछावर कर देने की प्रेरणा। समाज की पीड़ाओं और वेदनाओं से उन्होंने अपना गुंजन पाया है और उसीकी कल्याण-कामना में उसे विसर्जन कर दिया है।

मैथिलीशरण गुप्त कवि और नाटककार के रूप में हमारे सामने आते हैं। पर उनके नाटककार को उनके कवि ने आच्छादित कर लिया है और शायद इसीलिए उनका नाटककार खिल नहीं सका है। 'अनघ', 'चन्द्रहास' और 'तिलोत्तमा' ये तीन नाटक उनकी लेखनी से प्रसूत हुए हैं। 'अनघ' महात्मा गांधी के सत्याग्रह-आन्दोलन से प्रसूत भावनाओं का फल है। उसका नायक 'मघ' एक त्यागी है, साधक है। हमारे आज के राजनैतिक क्षेत्र में उसका अपनापन है। उसकी राजनीति अभिमान की चीज है। इस मौलिकता ने 'अनघ' को गुप्तजी के नाटकों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया है। इतना सब होने पर भी नाटककार मैथिलीशरण को वह सफलता नहीं मिली, जो कवि मैथिलीशरण ने प्राप्त की है।

सबसे पहले गुप्तजी को 'भारत-भारती' काव्य ने जनता के सामने रखा। उनकी 'भारत-भारती' प्रारम्भिक काल की प्रौढ़ रचना है। उस समय के वातावरण और परिस्थितियों को ऐसी चीज़ की माँग थी, और उन्होंने 'भारत-भारती' देकर उसकी पूर्ति की। 'भारत-भारती' के सम्बन्ध में स्वर्गीय द्विवेदीजी ने लिखा था—

'यह काव्य वर्तमान हिन्दी-साहित्य में युगांतर उत्पन्न करनेवाला है। वर्तमान और भावी कवियों के लिए यह आदर्श का काम देगा। यह सोतों को जगानेवाला है, भूले हुओं को राह पर लानेवाला है, निरुद्योगियों को उद्योगशील बनानेवाला है, आत्म-विस्मृतों को पूर्व-स्मृति दिलानेवाला है और निरुत्साहियों को उत्साहित करनेवाला है। इसमें यह संजीवनी शक्ति है कि जिसकी प्राप्ति हिन्दी के और किसी भी काव्य से नहीं हो सकती।'

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि सोतों को जगाने और निरुत्साहियों को उत्साहित करने में 'भारत-भारती' को काफ़ी सफलता मिली। उसके कवित्वगुण से लोगों को मतभेद हो सकता है, पर उसकी प्रचार-शक्ति से सभी को सहमत होना चाहिए। और यही कारण है कि भारत के घर-घर में 'भारत-भारती' की गूँज पहुँची है।

मैथिलीशरण गुप्त में हिन्दुत्व का प्राण है, फिर भी भारतीयता उनके लिए उपेक्षा की वस्तु कभी नहीं रही। हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष से उन्हें विरोध है। निम्न वृत्ति के हिन्दू को वे किसी मुसलमान पर विशेषता नहीं देते। उनकी दृष्टि में मनुष्यता जातीयता से ऊपर है—

हिन्दू हो या मुसलमान हो, नीच रहेगा फिर भी नीच,
मनुष्यत्व सबके ऊपर है मान्य मही-मंडल के बीच।

अतएव

हिन्दू मुसलमान दोनों अब,
छोड़ें वह विग्रह की नीति। (गुरुकुल)

देश-भक्ति की भावना का भी गुप्तजी की रचनाओं में गहरा पुट है। 'अनघ' तो राजनैतिक

नाटिका है ही, 'यशोधरा' और 'साकेत'–जैसे प्रबंध-काव्यों में भी देश-भक्ति के लिए तड़प स्पष्ट दिखायी देती है। जन्म-भूमि को लक्ष्य करके 'यशोधरा' में सिद्धार्थ कहते हैं।

"तब जन्मभूमि तेरा महत्त्व
जब मैं ले आऊँ अमर तत्त्व
यदि पा न सके तू सत्य सत्त्व,
तो सत्य कहाँ भ्रम और भ्राम !
ओ क्षणभंगुर भव, राम ! राम ! !"
—(यशोधरा)

समाज-सेवा उनकी कविताओं का मुख्य अंग है। समाज-सेवा की भावनाओं ने ही विकसित होकर उन्हें विस्तृत राष्ट्रीयता अपनाने को प्रोत्साहित किया है। समाज-सेवा ही उनके काव्य की मूल प्रेरक है। मैथिलीशरण गुप्त सम्पूर्णतः सनातन वैष्णव कवि होते हुए भी समाज की एक-सी गति को अपरिवर्तित नहीं देखना चाहते। वे समाज में सुधार के हामी हैं। इसका उन्होंने यत्र-तत्र प्रतिपादन किया है। वे कहते हैं—

जीर्ण वस्तुओं की ममता से घर ही घूड़ा होगा,
अहा ! आज का कुसुम-हार भी कल का कूड़ा होगा।
यदि मानस-गोमुखी हमारी निरवधि नहीं झड़ेगी,
तो गर्तों में ही जीवन की धारा पड़ी सड़ेगी।
—(द्वापर)

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि और गो० तुलसीदास द्वारा उपेक्षित उर्मिला के पक्ष में जब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आवाज़ उठायी और कवियों को उर्मिला-विषयक उदासीनता भंग करने के लिए आमंत्रित किया, तो गुप्तजी ने 'साकेत' का सृजन किया। इसमें उन्होंने उर्मिला के प्रति की गयी उपेक्षा की पूरी भरपाई करदी। 'साकेत' में उसका चित्रण अत्यंत सुंदर और कलात्मक हुआ है। सच तो यह है कि 'साकेत' की उर्मिला ने ही लक्ष्मण के चरित्र-चित्रण में चार चाँद लगा दिये हैं। 'साकेत' की एक विशेषता यह भी है कि उसने 'रामचरितमानस' की तरह अपने पाठकों को अज्ञात शक्ति के हस्तक्षेप पर छोड़ना उचित नहीं समझा। जहाँ अज्ञात शक्तियाँ हस्तक्षेप करती हैं, मनोविज्ञान असफल हो जाता है। ऐसी दशा में रचना हमारे नित्य-प्रति के जीवन से खिसक कर विलग हो जाती है। 'साकेत' में कम-से-कम ऐसा नहीं है।

समाज के साथ-साथ, समाज के महत्त्वपूर्ण अंग नारी की असम्बद्ध स्थिति के लिए भी उन्हें सहानुभूति है, समवेदना है। नारी की दलित अवस्था देखकर उनकी आत्मा पुकार उठती है—

"नर के बाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आयी !
माँ, बेटी या बहिन हाय ! क्या संग नहीं वह लायी !

अन्त में, विवश होकर वे सलाह देते हैं:—

किन्तु, आर्य नारी तेरा है केवल एक ठिकाना
चल तू वहीं जहाँ जाकर फिर नहीं लौट कर आना।
—(द्वापर)

'साकेत' की उर्मिला ओर 'यशोधरा' की यशोधरा, ये दो व्यक्तित्व ऐसे हैं, जो गुप्तजी के काव्य के अमर रत्न हैं। उर्मिला संसार की कल्याण-कामना के लिए अपने आनंद का उत्सर्ग कर देती है। लक्ष्मण के वन-गमन पर वह कहती है—

अब मैं माँगूँ भला और क्या फैलाकर ये हाथ ?
मुझे भूलकर ही त्रिभुवन में विचरें मेरे नाथ !
मुझे न भूले उनका ध्यान।
हे मेरे प्रेरक भगवान ! (साकेत)

इसी प्रकार यशोधरा विश्व-सुख पर अपने सुखों की भेंट चढ़ा देती है। वह आर्य ललना कहती है :—

मेरे दुखमें भरा विश्व-सुख क्यों न भरूँ फिर मैं हामी !
बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघंशरणं गच्छामी।
—(यशोधरा)

मैथिलीशरण गुप्त ने समाज के कल्याण की भावना को सामने रखकर जो साहित्य-सृजन किया है, उसमें यद्यपि उन्होंने शैली, कल्पना, भावना-सम्बंधी किसी नवीनता का आविष्कार नहीं किया, परन्तु जो कुछ भी रखा है वह अत्यन्त परिष्कृत और उपादेय है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता समय के साथ चलना है। मैथिलीशरण

की कविता ही एकमात्र ऐसी कविता है, जिसमें प्राचीन शैली के उपासक द्विवेदी-युग के कवि और आज के कलाकार अपने आत्म-संतोष की चीज़ खोज निकालते हैं और इस प्रकार आत्मतुष्टि कर लेते हैं ।

रहस्यवाद की खोज करनेवालों को भी गुप्तजी की कविता में उत्कृष्ट रत्न मिलेंगे——

तार-तार से मेरी तान-तान का हो विस्तार
अपनी अंगुलीके धक्केसे खोल अखिल श्रुतियोंके द्वार

अपने प्रियतम के खोज में वे बेचैन और चिन्तित हैं——

बड़े यत्न से माला गूँथी किसे इसे पहनाऊँ ?
और खोजती हूँ मैं किसको ?
मैं ही क्यों न पहन लूँ इसको ?
श्रम करके गूंथा है जिसको ?
पर निज मुख से निज कर-चुम्बन
कर किस भाँति अघाऊँ ?
बड़े यत्न से माला गूँथी,
किसे इसे पहनाऊँ ?

तात्पर्य यह है कि मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी-भारती के मंदिर में जो पुष्प चढ़ाये हैं, वे विलक्षण न होते हुए भी अनुपम अवश्य हैं। उन्होंने हिन्दी-काव्य के विकासोन्मुख युग में वह चीज़ प्रदान की, जिसकी हमें आवश्यकता थी। एक रूढि को लेकर वे बैठ नहीं गये, समय के साथ उन्होंने गति की। अब भी उनकी यशस्वी लेखनी गतिशील है और उससे अनेक बहुमूल्य रत्न मिलने की हमें आशा है। परमात्मा सरस्वती के इस अनन्य पुजारी को दीर्घायु करे।[1]

---

[1] लेखों में प्रतिपादित सभी मतों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
——सम्पादक

भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन

[विद्याभूषण अग्रवाल]

यों तो मथुरा ही एक तीर्थ है, परन्तु श्री केलाजी का घर मानो वहाँका सचमुच साहित्यिक तीर्थ-स्थान होगया है। वहीं एक दिन मैंने एक फटे-हाल व्यक्ति को देखा। खद्दर की धोती-बनियान से ही मालूम होता था कि यह व्यक्ति खद्दर को फैशन न मानकर राष्ट्र-सेवा का एक मात्र साधन मानता है। उस व्यक्ति की साहित्यिक तपस्या उसकी मुख-मुद्रा से प्रकट हो रही थी। शरीर से जो दधीचि के समान है और हृदय से जो भीष्म है——ऐसे हैं हमारे अनेक ग्रन्थों के रचयिता श्रीयुत भगवानदासजी केला। श्री केलाजी का एक सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है, कि वे विज्ञापन-युग में उत्पन्न हुए हैं। युग की दौड़ में वे पीछे रह गये हैं, यद्यपि युगीन तथा सामयिक ठोस साहित्य-रचना में वे प्रायः सभी से आगे हैं। परिचितों में जो सबका स्नेह-भाजन है, अपरिचितों का वह 'अज्ञेय' है। केलाजी निश्चय रूप से उन दुर्लभ व्यक्तियों में से है, जो साहित्य-सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बनाते हैं। उनके लिए साहित्य-रचना एक career नहीं, साध्य है, ध्येय है, तप है, या यों कहें कि जो साहित्य-निर्माण को ही अपना mission मानते हैं। ऐसे प्राणी को यदि बहुत-से लोग न जानें तो यह कोई विशेष चिन्तनीय बात नहीं है।

शायद अमेरिका के एक प्रसिद्ध महात्मा तथा निबन्ध-लेखक ने एक बार कहा था कि संस्थायें व्यक्तियों का फैलाव होती हैं। संस्था के पीछे एक व्यक्ति का जीवन होता है और उसकी संस्था उसकी ही छाया होती है। भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन निश्चित रूप से श्री केलाजी की प्रतिच्छाया है। केलाजी के गम्भीर व्यक्तित्व को उनकी संस्था से जाना जा सकता है। हिन्दी के प्रकाशक का जो मानसिक चित्र हमारे सामने बहुधा आया करता है, उससे यह संस्था बहुत दूर है। रद्दी की टोकरी में फेंक देने योग्य घासलेटी साहित्य को प्रकाशित कर एक-एक पुस्तक के बीसियों

संस्करण निकालकर पैसा कमानेवाले प्रकाशकों से हम सभी खूब परिचित हैं। पर साधारण जन-समुदाय के मानसिक विकास के उद्देश्य को अपने सामने रखकर, राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद करनेवाले स्वस्थ साहित्य के प्रकाशन का ध्येय लेकर एक संस्था को पचीस वर्ष तक सँभाल लेना हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में कोई आसान बात नहीं है। केलाजी की संस्था भारतीय ग्रंथमाला आज अपने पचीस वर्ष पूरे कर चुकी है और प्रारम्भ से आज तक इसमें ठोस जीवन-प्रद राष्ट्रीय साहित्य का प्रकाशन हुआ है। इतना जानकर ही हम बीच में आनेवाले संकटों का सहज में अनुमान कर सकते हैं। केलाजी सर्वदा से साधन-हीन रहे हैं, परन्तु साधनाभाव ने उनमें अदम्य उत्साह और सक्रिय शक्ति भर दी है। अकेले उन्होंने इस संस्था को अनेक वर्षों तक अर्थाभाव में चलाया है और आज भी वे संकटों से जूझने को तत्पर रहते हैं। मेरे विचार से भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन हिन्दी में एक आदर्श प्रकाशन-संस्था है। अनेक प्रलोभनों एवं संकटों के बीच वह अपने ध्येय पर अविचल है।

इस संस्था ने अपने लिए केवल एक क्षेत्र चुन लिया। वहाँसे अन्य प्रकाशन-गृहों की तरह विहारी दोहावली, अप्सरा, सन्तति-निरोध आदि चाहे जिस विषय की पुस्तकें नहीं प्रकाशित हुईं। भारतीय ग्रंथमाला का सदा से एक ही उद्देश्य रहा है। वह है भारतीय जन-साधारण में नागरिक शास्त्र का प्रचार करना। वर्तमान युग में यह सबसे बड़ी राष्ट्रीय सेवा है। आज हमें नागरिकता को ही धर्म मान लेने की आवश्यकता है। हमारी शक्ति तो जनता-जनार्दन से ही आती है। उसमें नवोन्मेष का संचार नागरिकता ही कर सकेगी। इस संस्था ने ऐसे साहित्य का निर्माण किया है, जिससे हमारे जन-समुदाय में तथा नागरिक भावों की चेतना हो। नागरिकता के राष्ट्रीय क्षेत्र को चुनकर इस संस्था ने हमारे जीवन के एक-एक कोने को झाँका और जहाँ-जहाँ अकर्मण्यता तथा विचाराभाव देखा, वहीं उसी आवश्यकता के अनुरूप साहित्य-रचना की गयी। जीवन और साहित्य का सम्पर्क करानेवाली इस संस्था को कितने लोग जानते हैं, या यों कहें कि इस विज्ञापन के युग में इस छोटी सी परन्तु आदर्श प्रकाशन-संस्था को जानने की कितने लोगों को इच्छा है ?

इस ग्रंथमाला की स्थापना सन् १९१५ में हुई थी। जैसा ऊपर कहा जा चुका है इसका मूल उद्देश्य नागरिक और आर्थिक साहित्य प्रस्तुत करना रहा है। अबतक इस ग्रंथमाला में २४ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 'भारतीय शासन' सबसे अधिक प्रचलित हो चुकी है। अब इस पुस्तक का आठवाँ संस्करण चल रहा है। कई पुस्तकों के तीन-तीन संस्करण हो चुके हैं। यथा "भारतीय-विद्यार्थी विनोद" "हमारी राष्ट्रीय समस्यायें" "निर्वाचन-पद्धति" और "भारतीय जाग्रति।" इसके अतिरिक्त "भारतीय राजस्व" "भारतीय अर्थशास्त्र", "राजनीति शब्दावलि" और "नागरिक शिक्षा" सभी के दूसरे संस्करण चल रहे हैं। शेष पुस्तकों का केवल एक ही संस्करण हुआ है। इस प्रकार संस्था ने अबतक काफ़ी सफलता प्राप्त कर ली है। अबतक इन पुस्तकों की ४४७५ प्रतियाँ प्रकाशित हुई हैं और इनमें से ३८६२ प्रतियाँ पाठकों के पास पहुँची हैं। इस संख्या से हम इसके ठोस कार्य का अनुमान लगा सकते हैं! कितनी अधिक सफलता प्राप्त की जा चुकी है! और अभी कितना और करने को है ?

हिन्दी-साहित्य के अछूते अंग की पूर्ति इस ग्रंथमाला ने की है। नागरिक तथा आर्थिक साहित्य प्रस्तुत करने में इस संस्था ने जो अभूतपूर्व कार्य किया है, वह स्तुत्य है। और मेरे निकट तो संस्था से भी बढ़कर वह व्यक्ति है जिसकी प्रेरणा तथा स्पन्दन इस संस्था के मूल में काम कर रहा है। वास्तव में केलाजी हमारे साहित्य-जगत के दधीचि हैं। उनके त्याग, तपस्या तथा साधना का मूल्यांकन अभी हिन्दी-जगत् को करना है।

प्रस्तुत प्रश्न

[प्रस्तुत स्तम्भ साहित्य-जगत् की विभिन्न समस्याओं और विवादग्रस्त तथा विचारणीय विषयों की खुली चर्चा के लिए खुला हुआ है। इसमें प्रकाशित किसी लेख, विचार या टिप्पणी को सम्पादकीय मत नहीं समझना चाहिए।—सम्पादक]

रुचि या आवश्यकता ?

साहित्य के प्रधानतः दो कार्य हैं–एक तो वह समाज का दर्पण है अर्थात् समाज की अवस्था का प्रतिबिम्ब दिखाता है और दूसरे वह समाज के लिए सर्चलाइट है अर्थात् समाज को उसका मार्ग दिखाता है। या यों कहें कि साहित्य समाज के लिए त्रिकालदर्शी महात्मा है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों का हृदय खोलकर उसके सामने रख देता है। हम क्या थे और क्या हैं—ये दो बातें यदि हमें अच्छी तरह मालूम हों, तो क्या होंगे, इसका अनुमान करना बहुत कठिन नहीं होता। पर क्या थे, क्या हैं, यह जानना ही सबसे कठिन है। इसके लिए पारदर्शिनी दृष्टि और बुद्धि की आवश्यकता है। जिन्हें यह दृष्टि बुद्धि और शक्ति प्राप्त हो, वे ही सच्चे साहित्य की सृष्टि कर सकते हैं, क्योंकि बिना समाज की भावी गति और स्थिति पर दृष्टि रखे समाज के वर्तमान जीवन के लिए उपयोगी साहित्य की रचना हो ही नहीं सकती। यदि हम कल पर ध्यान न रखें तो आज बिना निशाने की बन्दूक़ हो जायेंगें।

क्या हिन्दी-साहित्य की सृष्टि कल पर दृष्टि रखकर होती है? यदि हाँ, तो फिर उसमें समाज की आवश्यकता की पूर्ति पर उतना ध्यान क्यों नहीं दिया जा रहा है, जितना समाज की रुचि का अनुकरण किया जाता है? समाज की रुचि का अनुकरण करना वैसा ही है जैसा कि रोगी की इच्छानुसार उसके इलाज और पथ्य का प्रबन्ध करना। वैद्य रोगी की गति-विधि पर ध्यान रख कर दवा देता है, रोगी की रुचि के अनुसार नहीं। साहित्य-विधाता समाज के वैद्य हैं, विदूषक नहीं। हाँ, मधु-मिश्रित औषध देनेवाला वैद्य अवश्य ही कुशल माना जायगा; पर वह रोगी को मधु की जगह मधु के अभाव में 'मीठा जहर' नहीं दे सकता। साहित्य के सृष्टा यदि मनोरंजक सामग्री के साथ, मनोहर भाषा में, आवश्यक भावों और विचारों को समाज के अन्दर पहुँचावें, तो यह समझ में आ सकता है। पर यदि वे मनोरंजन के स्थान पर विलास और मनोहरता के स्थान पर शृंगार की योजना करने लगें, तो उससे आवश्यकता की पूर्ति के बजाय भ्रष्टता ही अधिक होगी।

हिन्दी-समाज की वर्तमान आवश्यकता क्या है? शृंगार-विलास या शूर-वीरता! निस्सन्देह शूर-वीरता। इसमें दो मत हो नहीं सकते। फिर हिन्दी-साहित्य में शृंगार-विलास-प्रधान साहित्य की सृष्टि क्यों हो रही है? पुस्तकों के मुख-पृष्ठ पर, मासिक पत्रों के भीतर-बाहर सब जगह कामिनियों के चित्र हम क्यों देखते हैं? हमारा समाज क्षय-रोग से दिन-दिन क्षीण हो रहा है। हम उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए रंभा और मेनकाओं को नियुक्त करते हैं और इतना ही नहीं हम उन्हें हाव-भाव-कटाक्षों के प्रयोग के लिए भी स्वाधीनता दे देते हैं, मानो हमारे इतिहास में माताओं, देवियों और साध्वियों की कमी है, जो हमें नायिकाओं की सृष्टि का कार्यालय खोजना पड़ता है। इसका क्या कारण है? हमारा ध्यान रोगी का रोग दूर करने की तरफ़ उतना नहीं है, जितना रोगी को रिझाने की तरफ़ है। यदि हम चाहते हों कि हमें बल-पौरुष की आवश्यकता है, तो हमें यह प्रवृत्ति बन्द कर देनी चाहिए।

ह० उ०

साहित्यिक और साहित्य

सच्चा साहित्यिक तो वह है जो देश, धर्म या राष्ट्र किसीकी सीमा से बद्ध नहीं है। अगर

साहित्यिक किसी एक राष्ट्र के गीत गाता है तो अपने आपको बहुत नीचा कर लेता है। वास्तव में उसका कोई देश, जाति या घर नहीं है। सच्चा साहित्यिक तो **केवल** मनुष्यमात्र को देखता है, मानवता के उत्कर्ष के लिए चीखता-चिल्लाता और मरता-जीता है।

मेरे मित्र भले ही साहित्यिक की मेरी इस व्याख्या पर कुपित हों और उनकी देश-प्रेम की भावनायें विद्रोह कर उठें। कहें कि क्या हम देश के गीत न गाएँ? राष्ट्र के लिए अपनी लेखनी न चलएँ? पर मैं कहता हूँ कि एक खास देश के लिए साहित्यिक क्यों मरेगा, जो दूसरों के लिए जी रहा है? वह मरेगा तो मनुष्य-जाति के लिए। साहित्यिक का धर्म तो देश के वातावरण में क़ैद हो जाने पर अपने पद से नीचे गिर जाता है।

साहित्यिक तो अपने साहित्य द्वारा अतिमानव की सृष्टि करता है। और वह अतिमानव क्या है? उस अतिमानव की रूपरेखा वह अपनी लेखनी से बनायेगा। अगर वह मानव की रूपरेखा ही बनाने लग जाये, तो उसे मानव क्यों पढ़े, क्यों देखे? वह तो अतिमानव का चित्र आँकता है, इसलिए मानव उसकी कृति को देखकर चौंक पड़ता है।

वह अतिमानव की सृष्टि करता है, इसलिए वह अतिमानव का भी सृष्टा—महामानव—हुआ। तुलसी ने राम, सीता, लक्ष्मण, भरत आदि अतिमानवों की सृष्टि की, इसलिए वे सच्चे साहित्यिक थे।

हिटलर ने आज वैज्ञानिकों के साथ-साथ साहित्यिकों और कलाकारों तक को खरीद लिया है। उन्होंने ऐसे यंत्रों का आविष्कार किया, ऐसा साहित्य निर्मित किया, जिससे नर-संहार हुआ और ख़ून की नदियाँ बह निकलीं। क्या साहित्यिक ऐसी ग़ुलामी कर सकता है? एक व्यक्ति के कहने पर हम चर्खा, खद्दर आदि के गीत गाने लगते हैं। साहित्यिक इतनी नीची चीज़ नहीं है। उसका वातावरण इतना छोटा नहीं है। उसका ध्येय तो यह होना चाहिए कि वह ऐसा लिखे—जिसमें बताये कि मनुष्य कैसे निर्भय हो, संसार के मनुष्य कैसे एक-दूसरे को ठीक-ठीक समझें और मित्र, प्रेमी, बन्धु बन कर रहें।

× × ×

आज के हमारे कवि अनुभूति से नहीं बल्कि काल्पनिक वेदना से प्रेरित होकर लिखते हैं। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि आज के कवियों को कोई सच्ची वेदना नहीं है। पुरुषों की बात छोड़ें, कुमारी लड़कियाँ भी, जिनकी न शादी हुई, न जिन्हें बच्चे हुए, न जो विधवा बनीं, क्यों प्रेमपीड़ा, विरह, कसक और वेदना के गीत गाती हैं? क्या वह सच्ची अनुभूति है? अरे, एक **निराश, बेबस राष्ट्र को ऐसी कविता से क्या लाभ है, जो स्वयम् पीड़ा, वेदना और निराशा से व्यथित है? उसे तो ऐसी कविता चाहिए, जिसमें उल्लास, आनन्द, ओज, उत्साह हो।**

हम कविता में रस की प्रतिष्ठा करते हैं। वीर रस का क्या यह अर्थ है कि दूसरों का खून बहाया जाये, सिर धड़ से अलग कर दिया जाये, उनके ख़ून से फाग खेला जाये? एक इन्सान दूसरे इन्सान का दुश्मन कैसा? एक इन्सान को दूसरे इन्सान के देह में सुई तक चुभाने का अधिकार नहीं, हथियार चलाना तो दूर। ऐसे **वीर रस के साहित्य को अब जगह नहीं होनी चाहिए।**

और शृंगार रस? हमने—हमारे विद्यापति, विहारी, पदमाकर आदि कवियों ने—अबतक कृष्ण-राधा की आड़ में जो व्यभिचार और अनैतिक प्रेम की नदियाँ बहायी हैं, उनसे हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है। वह वासना, वह व्यभिचार क्या केवल हमारी कविता तक ही रहा, साहित्य तक ही रह गया? नहीं (वह परंपरा चलती गयी और) वह हमारे रक्त में घुल-मिल गया और हम नष्ट हो गये। आज भी इस परंपरा को हम छाती से लगाये रखना चाहते हैं!

ऐसे साहित्य को हम एक तरफ़ रख दें।

भूतकाल की ओर न देखें। नये साहित्य की प्रतिष्ठा करें। हम साहित्यिक अति-मानव की रचना करें, नये विश्वव्यापी भ्रातृभाव की सृष्टि करें, रसों की नयी व्याख्यायें स्थापित करें और युगान्तर लायें।

चतुरसेन शास्त्री

[७ दिसम्बर, ४० को दिल्ली के कमर्शियल कालेज में श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपने भाषण में 'साहित्य' और 'साहित्यिक' के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये, वे विचारणीय हैं और इसी दृष्टि से यहाँ उनका सार प्रस्तुत किया गया है। सं०]

मौलिकता

आज हिन्दी-जगत् में मौलिकता की माँग दिन-प्रति-दिन जोर पकड़ती जा रही है। हिन्दी के इस अल्प-जीवन में इस उच्चकांक्षा का होना उसकी वर्त्तमान और भावी उन्नति का सूचक है। प्रत्येक राष्ट्र-भाषा-प्रेमी को इस मनोवृत्ति पर सन्तुष्ट और हर्षित होना चाहिए।

किन्तु इस माँग का फलितार्थ यह होता है कि हिन्दी में सर्वथा मौलिकता का अभाव रहा है या कुछ मौलिकता है, तो वह केवल नाम-मात्र को या मौलिक की अपेक्षा अनुवादित साहित्य अधिक मात्रा में प्रकाशित होता है। मौलिकता के अधिकांश समर्थकों का पिछलेवाला मतलब होता है।

जहाँ तक 'अभाव' का सम्बन्ध है, उसके बारे में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। स्वर्गीय भारतेन्दु और आचार्य द्विवेदीजी केवल कोरे अनुवादक नहीं थे, न आजतक स्वर्गीय प्रेमचन्दजी को कोई कोरा अनुवादक ठहरा पाया है। 'हरिऔध', गुप्तजी और 'प्रसाद' की मौलिक रचनायें हिन्दी-भाषा की अमूल्य निधियाँ हैं। काव्य, नाटक आदि के अतिरिक्त साहित्य के विविध अंगों पर मौलिक पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं। इससे इन्कार करना हिन्दी-साहित्य से अपनी अनभिज्ञता का परिचय देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। सच पूछा जाये, तो हमारे विचार में तो इस थोड़े से ही समय में कितना मौलिक साहित्य रचा जा चुका है, यदि अधिक नहीं, तो इतना अवश्य है कि उसपर किसी भी हिन्दी-प्रेमी को सिर नीचा करने की आवश्यकता नहीं।

जहाँ तक दूसरी बात यानी अनुवादित साहित्य की प्रचुरता का प्रश्न है, हमें इसके बारे में यही कहना है कि किसी भी भाषा के साहित्य को उठाकर देख लीजिए—चाहे वह अंग्रेज़ी हो, चाहे फ्रेंच, चाहे बँगला हो, चाहे मराठी—सबमें मौलिक के साथ अनुवादित साहित्य भी विपुलता से मिलेगा। अंग्रेज़ी को इस समय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त है और उसमें प्रति वर्ष जितना साहित्य प्रकाशित होता है, उसका एक अच्छा खासा भाग अनूदित होता है। हम और हमीं क्यों, लगभग सारा विद्वत्समाज, शेक्सपियर को संसार के प्रथम श्रेणी के साहित्यिकों में मानता है। मगर यदि हम विचार-मौलिकता के हिसाब से माप करें, तो मालूम नहीं कि शेक्सपियर की गिनती आधुनिक तीसरे दर्जे के लेखकों में हो सकेगी कि नहीं, क्योंकि उसके जितने भी नाटक हैं, वे लगभग सब के सब दूसरों से मसाला लेकर बनाये गये हैं। लेटिन, फ्रेंच, ग्रीक आदि भाषाओं की पुस्तकों से विषय-वस्तु लेकर शेक्सपियर ने उसे नया जामा पहिनाकर संसार को भेंट किया है और फिर भी उसकी महानता में रत्ती भर बट्टा नहीं लगता। अंग्रेज़ी-साहित्य को उस पर नाज़ है और शेक्सपियर एक विभूति माना जाता है।

अब प्रश्न यह है कि यदि अनुवाद अवांछनीय या उपेक्षणीय है, तो वह वहाँ सर्वमान्य कैसे बन बैठा? इसका उत्तर हमें उसी साहित्य के दूसरे महारथी, प्रसिद्ध कलाशास्त्री रस्किन के शब्दों में मिलता है। वह कहता है—

Virtue of originality that men so strain after is not in newness—it is only in genuineness—not very different from what I call transparency—what we call genius is largely extreme genuineness—

मौलिकता का गुण, जिसके पीछे लोग जी तोड़कर लगे रहते हैं, कोई नूतनता या नयापन नहीं है

बल्कि वह तो वास्तविकता का होना है, जोकि पारदर्शकता से अधिक भिन्न नहीं—जिसे हम प्रतिभा कहते हैं, वह अधिकांश में अत्यधिक वास्तविकता ही है।

कहने का मतलब, संक्षेप में यह है कि मौलिकता अच्छी और आवश्यक है, मगर अनुवाद भी, जबकि उसके अन्दर वास्तविकता का गुण हो, त्याज्य और 'अछूत' नहीं समझा जाना चाहिए। हम हिन्दी-साहित्य-कोष में अधिक-से-अधिक मौलिक रत्न भरें, किन्तु दूसरों की प्रदान की हुई सच्ची निधियों को भी इसलिए नहीं फेंक दें कि वे दूसरों ने दी हैं। इस मूर्खतापूर्ण प्रयास से कोई भी भाषा अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती।

हिन्दी के लिए तो अनुवादित साहित्य वांछित ही नहीं, बल्कि उसके सफल राष्ट्र-भाषा बनने के लिए अनिवार्य है। उसे प्रान्तीय भाषाओं से बहुत कुछ लेना-देना है। हो सकता है, इस समय 'लेना' अधिक हो रहा हो, मगर वह दिन भी अधिक दूर नहीं दिखायी पड़ता, जबकि इस 'बीज' के हिन्दी की उर्वर भूमि में पड़कर समर्थ वृक्ष होने पर उसीमें ऐसे मधुर फल लगें, जिनका रसास्वादन करना हमारे दाता अपना अहो-भाग्य समझें।

ओमप्रकाश गोविल

एक पाठक के विचार

जबसे भारत में भारतीय साहित्य, विज्ञान तथा सभ्यता के पुनर्निर्माण की चेष्टायें हो रही हैं, हमने अपनी विवेक-बुद्धि को प्रायः दूसरी जातियों के वैज्ञानिक आविष्कार, वैधानिक प्रभुत्व, राष्ट्रीय सम्पत्ति, सामाजिक विकास और साहित्यिक विकास के अर्पण कर दिया है। साहित्य-संसार में मौलिक और अनुवाद-स्वरूप, अच्छी-बुरी सब प्रकार की और प्रायः सब विषयों पर पुस्तकें बेतहाशा प्रकाशित हो रही हैं।

जब मनुष्य सत्य का आधार खो देता है, तो कृत्रिम साधनों के प्रयोग से अपनी सत्यता की घोषणा करता है। जैसे एक युवती अनुपम रूप के अभाव की पूर्ति 'लिप स्टिक', 'पाउडर' आदि वस्तुओं के प्रयोग से करती है, ठीक उसी प्रकार साहित्यकार अपनी प्रतिभा का चमत्कार अधिकाधिक पुस्तकों से दिखाना चाहते हैं। उनके जीवन की एक यही अभिलाषा होती है कि पाठक उनकी रचनाओं को अंगीकार करें, उनकी सराहना करें और प्रशंसा के पुल बाँध दें और पुस्तक की उत्तमता का निर्णय होता है उसकी बिक्री से। तभी तो लेखक और पत्रकार अपनी रचनाओं को रोचक बनाने में संलग्न रहते हैं। उनकी पुस्तकों और लेखों का आशय होता है पाठकों को रिझाना व उन्हें सदा प्रसन्न करना। क्या यह अश्लीलता का प्रमुख कारण नहीं?

यदि एक वर्ग अश्लील साहित्य की उत्पत्ति करता है, तो साहित्यकारों का दूसरा वर्ग करता है इसकी तीव्र आलोचना। परन्तु अश्लीलता को दमन करने का कोई वास्तविक और प्रभावशाली प्रयत्न नहीं किया जाता। करने की आवश्यकता भी नहीं समझी जाती। जिन लेखकों के लेख प्रकाशित होते हैं, वे उस वर्ग के सदस्य हैं, जो समस्त समाज के लिए सोचते-विचारते हैं। उनके विचारों का प्रकाशन होते ही उनका कार्य समाप्त हो जाता है। अब रह जाता है कार्य उस वर्ग का, जो इन शुभ भावनाओं को कार्यरूप में परिणत करे। न कोई ऐसा वर्ग होगा, न अश्लीलता का अन्त होगा। बस शेष रहा कोरा आडम्बर। यह अश्लील है, वह सद्विचार सम्पन्न है—यह रही केवल अध्यात्म-वादविवाद की बात।

मिल्टन के अनुसार एक अच्छी पुस्तक एक महान आत्मा का बहुमूल्य जीवन-धन है, जिसके संग्रह तथा संचय करने का यह अभिप्राय है कि उसका उपयोग भावी जीवन में भी हो सके। यदि ऐसे आदर्श साहित्य के निर्माण की कामना हमारे साहित्यिक करते हैं, तो उनके जीवन में ऐसा ओज, ऐसा उत्साह, ऐसी कठिन तपस्या का सामंजस्य होना चाहिए, जिसका कबीर, गुरु नानक, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी आदि के जीवन से कुछ आभास मिलता है। आदर्श

साहित्य तो एक महान् तपस्या का फल होता है, परन्तु अश्लीलता के रोकने का एक सुगम मार्ग भी है। वह है बुक-सासायटी की स्थापना। परन्तु बुकसोसायटी का स्थान जैसा 'जीवन-साहित्य' के सम्पादक का विचार है, किसी मासिक पत्रिका की 'खरी आलोचना' जो सदा नवीन पुस्तकों की हुआ करती है, नहीं ले सकती।

इस बुक-सासायटी का कार्य कुछ इसप्रकार का होना चाहिए—

१—प्रत्येक वर्ष में भिन्न-भिन्न विषयों की प्रकाशित पुस्तकों में से उत्तमोत्तम रचनाओं का विवेचन करना।

२—सोसायटी के सदस्यों को साहित्य-संबंधी विषयों पर परामर्श देना। कठिनाई होती है पुस्तक के निर्वाचन में, किसी विशेष विषय की तलाश में। पुस्तकालय भी हमारी सहायता नहीं कर सकते। पत्रिकाओं में आलोचना नवीन प्रकाशनों की होती है। सदा उस विषय की पुस्तकों का उल्लेख नहीं होता, जिसकी तलाश होती है।

३—इसके अतिरिक्त पाठकों का शंका-निवारण करना, पाठकों के प्रश्नों का योग्य व्यक्तियों से उत्तर प्राप्त करना और उल्लेखनीय प्रश्नों का उत्तर एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित करना।

४—प्रतिवर्ष की हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन की अनुक्रमणिका बनाना।

ऐसी बुक-सोसायटी की स्थापना अर्थ-लाभ की इच्छा से नहीं बनायी जा सकती, अपितु श्रद्धा, प्रेम तथा त्याग की भावना से ऐसी सोसायटी का निर्माण हो सकता है। तभी तो पक्ष-रहित होकर खरी आलोचना की जा सकती है। साहित्य के प्रचार में सदाचार की नीति के अवलम्बन के लिए उत्कृष्ट रचनाओं को मृत्यु के मुँह से बचाने के लिए और अश्लील साहित्य को रोकने के लिए, बुक-सोसायटी का निर्माण ही सहज उपाय प्रतीत होता है।''

कुँवर किशोर सेठ

एक अभाव

मैं 'बाल-शिक्षण-साहित्य' और 'बाल-मानस-विज्ञान-साहित्य' का विद्यार्थी हूँ और इन विषयों की हिन्दी-पुस्तकों की खोज में एक वर्ष से हूँ, पर कई स्थानों पर लिखने पर भी पा न सका। विवश होकर मुझे गुजराती भाषा की शरण लेनी पड़ी। श्री 'दक्षिणामूर्ति' संस्था की प्रकाशित पुस्तकों से इन विषयों के अध्ययन में मुझे पर्याप्त सहायता मिली है।

'जीवन-साहित्य' के नवंबर मास के अंक में हिन्दी की सौ उत्तम पुस्तकों की सूची छपी है। मैंने उसे भी ध्यानपूर्वक पढ़ा, परन्तु वहाँ भी हताश होना पड़ा।

इस सूची में नाटक, उपन्यास, कविता, इतिहास, धर्मशास्त्र आदि की पुस्तकों को स्थान मिला है। 'बाल-शिक्षण-साहित्य' और 'बाल-मानस-विज्ञान-साहित्य' को इसमें न देखकर मेरे मन में दो विचार उत्पन्न हुए—(१) हिन्दीवालों की दृष्टि में ये दोनों उपयोगी विषय नहीं हैं या (२) इन विषयों की पुस्तकों का हिन्दी में अभाव है।

जो हिन्दी 'राष्ट्रभाषा' के उन्नत पद को सुशोभित कर रही है, जो विश्व-विद्यालयों में प्रवेश रही है और जो ऊँची-से-ऊँची शिक्षा का माध्यम बनने जा रही है, उसमें इन विषयों का अभाव क्यों? यह एक विचारणीय प्रश्न है। जो बालक मानव-जीवन का मूल स्रोत है, जो देश की अमूल्य निधि है, जिसके ऊपर देश का भविष्य निर्भर है, उसकी हिन्दी में उपेक्षा का कारण खोजना हमारा सबका कर्तव्य है।

—सुबोधचन्द्र 'नूतन'

आज़ादी ख़तरे में है! अपनी पूरी ताक़त से उसे बचाइए !!

[सस्ता-साहित्य-मण्डल से शीघ्र प्रकाशित होनेवाली 'लड़खड़ाती दुनिया' से]

कसौटी पर

'रिमझिम' और 'मानव'

१. रिमझिम : लेखक—हंसकुमार तिवारी; प्रकाशक—ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर, पृ० सं० १२६; मूल्य १)

२. मानव : लेखक—श्रीमन्नारायण अग्रवाल; प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर, बम्बई; पृ० सं० ७२; मूल्य ॥=)

आज जबकि हमारी कविता का दृष्टिकोण बदल रहा है और बदलने जा रहा है और हमारी अपनी संस्कृति की विरोधिनी हालाप्यालावादी कवितायें धीरे-धीरे अतीत के खुमार की तरह मिटती जा रही हैं, तब नये प्राण, नव आशा, नव आदर्श और नव-जीवन की कविता में प्रतिष्ठा करना कवियों को अनिवार्य हो गया और पाठकों को अभिनन्दनीय।

प्रसन्नता है कि "रिमझिम" का कवि

भरता नव जीवन का आसव
झरता है प्रकाश अभिनव-नव
आज स्वर्ग-सुखमा के नीचे
सोया बुरी भावना का शव

कहकर सोये प्राणों को जगाता है—

ले उठा निज वीण
उल्लसित स्वर में विसुध इस विश्व को कर लीन
आज नवनिर्माण आये
जीर्ण जग नव प्राण आये
गर्व से उद्दीप्त मानवता विजय के गान गाये
शाप हर वरदान छाये
पिन्हा नव परिधान
जाग सोये प्राण !

कवि अपने आपको पहचानने के लिए प्राण से कहता है—

जग क्षणिक, जीवन क्षणिक
लघुता यहाँ विस्तृत अमर पर
प्राण मेरे ! जाग जगकर
आप को पहचान
जाग सोये प्राण !

अब वह समय आगया है जब जन को जन-जन में, जन-मन में खोजाना है, अपनी ही मस्ती में नहीं—

जग में मन-मन के भावों में
पाने दो मुझको अमर शरण
मेरी इस छोटी सीमा को
पाने दो अग-जग में प्रसार
खुल गये हृदय के बंद द्वार !

'रिमझिम' का कवि 'मरण' को नवजीवन का अग्रदूत मानकर कहता है—

यह मरण रे
अमर मेरे प्राण को देता नया तन, नव चरण रे
नवल जीवन
नवल मन, नव भावना-धन
शक्ति नूतन
मुक्तिमय गति शुभ चिरन्तन
तिमिर-युग पर डाल देता जागरण की नव किरण रे

कवि का दावा ठीक है कि

मैं नूतन का राग चिरन्तन
प्रगति नित्य करती पदवंदन
इन्हीं बाहुओं में बैठे रे,
स्वर्ग सैकडों, सौ-सौ नन्दन

कवि ने आत्मगीत, चेतनगान, नूतनगान, कामना संगीत, जीवन संगीत, जागरण गान आदि में अगीत रागिनियों को स्वर दिया है। एक स्थल पर तो कवि ने मानो अपनी आत्मा घोल दी है:

प्राण के सम्बल, नयन की ज्योति
बल हैं निबल मन के
सींचती करुणा इन्हें है
काम के केशर मुकुल से
है भरा संयम सुसौरभ
त्याग के मृदु फल अतुल ये
गीत ये सन्देश नवयुग के जगत् कल्याण के रे,
गान मेरे !

कवि से हमें इस नव-नूतन दिशा में अनेक आशायें हैं।

'रिमझिम' के कवि ने नवयुग के भावों को अपने सरस, रागमय और मनोरम स्वर से हृत्तन्त्री को छूते हुए गाया है, तो 'मानव' के कवि ने अपने सीधे-सरल निरलंकृत ढंग से 'मानव-प्रेम' को गाया है।

उस अव्यक्त सत्ता (ईश्वर) का अस्तित्व मानव-जगत् से दूर भागकर एकान्त जीवन की साधना में नहीं बल्कि हृदय में ही मानव-प्रेम को प्रतिष्ठित करने में है—

भागकर मानव जगत से
अस्त जीवन चाहता था ;
पा गया पर हृदय में ही
प्रेममय जीवन-उदय को

कवि की दृष्टि संसार में सर्वत्र मानवता के धर्म की व्याप्ति देखना चाहती है—

किये बिना कम पीर जगत की
जीवन क्या बस एक भार है ;
मानवता का धर्म भूलकर
अन्धकार–ही–अन्धकार है !

कवि की दार्शनिकता ने देखा है कि

मरण नहीं जीवन में, दुनिया !
जीवन तो अविरत प्रवाह है ;
मरना कैसा नित प्रवाह में
जिसका अन्त अनन्त थाह है !

इसीकी अधिक कलात्मक विवृति दूसरी जगह कवि ने की है:

जीवन की मधुमय वीणा का
है अति मृदु आलाप
गुंजित किन्तु मृत्यु-तंत्री में
अनुपम मृदु उल्लास !

जीवन कभी एकांगी, एकरूप नहीं, बल्कि द्वन्द्वात्मक है। इसीको कवि दो पंक्तियों में अच्छी तरह व्यक्त कर सका है:—

इस दिल के दो टूक हुए हैं;
विहसूं एक, एक से रोऊँ।

करुणाकलित इस जीवन में जब सुख-सम्पन्नता केवल इन्द्र-धनुष–जैसी क्षणिक है, तो उसके लिए सुखी होने में क्या लाभ है ?

करुण व्यथा के कंपित स्वर में
क्यों न मिलावें प्रेमिल गीत ?
दुख-सागर के निर्जन तट पर
भाई ! आओ गावें गीत !

दुख को भी हँसते-हँसते सुख मानकर सह लेना ही तो सच्चा पौरुष है। कवि की दृष्टि में जीवन अवश्य निराशा और व्यथा से ओतप्रोत है, परन्तु उसे मरण ही में जीवन है और रुदन ही में हास्य। किन्तु एक जगह उसका सरल हृदय भी बालकोचित विद्रोह कर उठा है—

मानव-जीवन में अथाह दुख
जिसने भरा न जाने क्योंकर,
गा-गाकर उस ही का गौरव
समय बिताऊँ क्यों मेरी माँ !

दानव और पशु में भी वह मानव की ही सत्ता अन्तर्निहित पाता है:

गिरि की सूखी चट्टानों में
छिपी हुई जल-स्रोत-सरसता
क्रूर जनों की हड्डी में भी
भरी हुई कोमल मानवता
शाश्वत छिपा, जगत-क्षणभंगुर,
रजनी में प्रभात का अंकुर।

कवि की अभिव्यक्ति में यद्यपि कवित्व कम है, किन्तु हेतु उसका मंगल और श्रेयस्कर है। वाणी में मार्मिकता भले ही न हो पर प्रेम और करुणा से वह उज्वल और निर्मल है। 'मानव' की एक कविता उसके हार्द के रूप में कही जा सकती है—

दुख से दुखी न होकर प्यारे
नाच उठो तुम पुलकित होकर,
मनुज--प्रेम का गौरव गाकर
सुखी बनाओ मनुज दुखारे
क्या गाते हो सागर प्यारे ?

डिंगल-काव्य में वीर रस : संपादक— श्री मोतीलाल मेनारिया, एम. ए.; प्रकाशक हि० सा० स० प्रयाग; पृ० सं० १२७; मू० १।।।) राजस्थानी साहित्य की निधि डिंगल-काव्य में है और उसके बारे में यह कथन निर्विवाद है कि यदि प्राचीन हिन्दी-साहित्य में से डिंगल के वीर-रस-प्रधान काव्यों को निकाल दिया जाये, तो भूषण, लाल आदि कवियों की कविता को छोड़-

कर वीर-रस का नामोनिशान भी नहीं रहेगा। डिंगल-काव्य के प्रणेताओं का जीवन ही ओज-स्फुरणा करनेवाले युद्धों में व्यतीत होता था, अतः उनकी नस-नस में वीर रस का ही ओजस् समाया हुआ था। कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सम्मति तो यहाँ तक है कि—

"भक्ति रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी-न-किसी कोटि का पाया जाता है। राधाकृष्ण को लेकर एक प्रांत ने मंद या ऊँची कोटि का साहित्य पैदा किया है—लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं भी नहीं मिलता।"

डिंगल-काव्य का कोई छात्रोपयोगी संग्रह अभी तक न होने से 'डिंगल-काव्य में वीर-रस' प्रस्तुत करके उसके सुयोग्य संपादक ने समयोपयोगी कार्य किया है।

पृथ्वीराजरासो के महाकवि चन्द बरदाई, अनेक ग्रंथों के रचयिता कविराज बाँकीदास, 'वंश भास्कर'—जैसे रासो के कोटि की ग्रंथ के प्रणेता कविराजा सूर्यमल तथा दुरसाजी और पृथ्वीराज के डिंगल-काव्य हिन्दी साहित्य के के ज्वलन्त रत्न हैं। इन्हीं ५ की वीर-रस की डिंगल-कवितायें इसमें संकलित की गयी हैं तथा आरम्भ में विद्वान् लेखक ने डिंगल-काव्य पर ५३ पृष्ठ में एक विद्वत्तापूर्ण निबन्ध भी दिया है, जिसमें डिंगल भाषा की उत्पत्ति और उसके व्याकरण के साथ-साथ उसके संक्षिप्त इतिहास का भी विवेचन किया गया है, जो बहुत उपयोगी है। पाद-टिप्पणियों में कविताओं के कठिन शब्दों का अर्थ देकर संग्रह को पूर्ण छात्रोपयोगी बताने का प्रयत्न किया गया है। सम्मेलन ने इसे उत्तमा परीक्षा के पाठक्रम में ले लिया है। पर यह परीक्षार्थियों के अतिरिक्त डिंगल-काव्य के अध्येताओं के भी काम की चीज़ है। सु०

हमारे गद्यनिर्माता—ले०—श्री प्रेमनारायण टण्डन। प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सन्स, हस्पताल रोड, आगरा; मूल्य १।)

प्रस्तुत पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट है। हिन्दी-साहित्य के अनेक प्रमुख गद्यनिर्माताओं का संक्षिप्त परिचय देने के बाद उनकी हिन्दी-साहित्य-सेवा, शैली और भाषा का परिचय दिया गया है। शैली बताने के लिए प्रत्येक के विविध नमूने भी दिये गये हैं, जिनसे विभिन्न महारथियों की लेखन-शैली का परिचय हो जाता है। इस दृष्टि से पुस्तक-लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

लेकिन पुस्तक-लेखक के चुनाव में शायद कुछ कमी रह गयी है। अनेक हिन्दी गद्यनिर्माताओं की लेखक उपेक्षा कर गये हैं। भाषा का निर्माण केवल हिन्दी-साहित्य—संकुचित शब्दों में—के निर्माण से नहीं हुआ। हिन्दी-गद्य के विकास में स्वामी दयानन्द के धार्मिक साहित्य का विशेष स्थान है, इसे हिन्दी-साहित्य का कोई भी ऐतिहासिक स्वीकार करेगा। उनकी शैली ने भावी साहित्य पर कम प्रभाव नहीं डाला। इसी तरह राजा लक्ष्मणसिंह आदि का भी संक्षिप्त परिचय अन्त में दे देना उनकी सेवाओं के साथ अन्याय है। हिन्दी के राजनैतिक साहित्य-गद्य के निर्माण में श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी की शैली ने—'प्रताप' और 'प्रभा' की शैली ने सैकड़ों पत्र-सम्पादकों और कार्यकर्ताओं की शैली पर प्रभाव डाला है। उसे द्विवेदी-शैली कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता। लेकिन मालूम होता है कि लेखक ने हिन्दी-गद्य को सिर्फ संकुचित साहित्य के अर्थों में लिया है।

निर्वाचन-पद्धति—ले०—श्री दयाशंकर दुबे और श्री भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृंदावन; मूल्य ॥-)

आजकल भारत में जैसे नयी-नयी राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं का आविर्भाव हुआ है और विकास हो रहा है, उनके लिए निर्वाचन-पद्धतियों का ज्ञान जरूरी है। प्रस्तुत पुस्तक में मतदाता के अधिकारों और कर्तव्यों, निर्वाचन की विभिन्न पद्धतियों और उनके गुणावगुणों तथा निर्वाचितों की ज़िम्मेदारियों पर प्रकाश डाला गया है। निम्नलिखित शीर्षकों से पुस्तक का विषय स्पष्ट

हो जायगा—**निर्वाचन संघ, सांप्रदायिक पृथक् चुनाव, संयुक्त चुनाव, निर्वाचक, उम्मेदवार,** मत देना, मतगणना-प्रणाली, **निर्वाचन-अपराध, मैं** किसे मत दूं ?

श्री केलाजी की यह पुस्तक पहले किसी बनाने में भले ही सिर्फ़ उच्च शिक्षितों के काम की रही हो, लेकिन आजकल तो सर्वसाधारण को इसकी जानकारी होनी चाहिए। लेकिन इस दृष्टि से इसका मूल्य कुछ अधिक है, जो साधारण हिन्दी-पाठक के लिए भारी है।

मेरे विचार—ले० श्री श्रीप्रकाश एम. एल. ए.; प्रकाशक—**युगांतर साहित्य मंदिर, भागलपुर;** मूल्य ॥=)

इस पुस्तक में बाबू श्रीप्रकाश एम. एल. ए. के कुछ विविध विषयों पर लिखे लेखों का संग्रह किया गया है। दो लेख तो हिन्दू धर्म और मजहब पर हैं। शेष लेख सामयिक समस्याओं—धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक विषयों पर हैं। बाबू श्रीप्रकाश की विचार-शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रत्येक विषय पर स्वतंत्र विचार रखते हैं। वह लोकप्रियता के प्रवाह में बहकर अपने व्यक्तित्व को खो नहीं देते। उन्हें सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन का भी पर्याप्त अनुभव है, फिर अपने विद्वान पिता श्रद्धेय बाबू भगवानदास के चरणों में रहकर उन्हें उनकी गंभीर विचार-शैली और बहुश्रुतता का भी अपूर्व अवसर मिला है। इसलिए उनके विचार केवल पढ़कर फेंक देने योग्य नहीं, बल्कि विचार और मनन की वस्तु हैं।

कांग्रेसी सरकारों में मन्त्रियों के ५००) रु० मासिक वेतन की आलोचना करते हुए वे ठीक ही कहते हैं कि मकान, मोटर आदि खर्चों को मिलाकर वस्तुतः उनपर २०००) से कम व्यय नहीं होता, जो करदाताओं पर बहुत अधिक बोझ है। १५००) रु० वेतन बाँध देना चाहिए, इसी में उन्हें सब व्यय पूरे करने चाहिएँ। १५००) रु० वेतन बहुत तो दीखता है, लेकिन वस्तुतः इससे भी ज्यादा खर्च होता है। इसी तरह असेम्बली सदस्यों के चुनाव, उनके निर्वाह-व्यय और रेल-किराये पर स्वतन्त्र और व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है, केवल कोरे आदर्श की लकीर नहीं पीटी गयी। असेम्बलियों और उससे अधिक कांग्रेसी चुनावों में जो गन्दगी विदेशी चुनाव-पद्धति के एक भारी दोष के रूप में आ गयी है, उसे दूर करने के लिए उन्होंने कुछ अमली सुझाव भी पेश किये हैं, लेकिन हमें सन्देह है कि मनुष्य इतना स्वार्थी प्राणी है कि वह अच्छे से अच्छे नियमों की ओट में भी अपना शिकार खेल ही लेता है। धर्म की आड़ में सब से भीषण पाप होते हैं। परन्तु फिर भी यह निश्चय है कि बाबू श्री प्रकाशजी के उपायों से चुनावों में कुछ गन्दगी कम हो सकती है। प्रांतीय कॉंग्रेस के चुनावों का चार्ज लेने के कारण चुनाव की बुराइयों का उन्हें ज्ञान भी खूब है।

आर्थिक समस्याओं पर भी उन्होंने विचार किया है। वे साम्यवाद चाहते हैं, लेकिन मानव की स्वाभाविक भिन्नता को समझते हुए सबको एक सतह पर लाना असामयिक और हानिकर समझते हैं। वे बड़े-बड़े पूँजीपतियों को उड़ाना नहीं चाहते, लेकिन उनकी आय १५००) रु० मासिक से अधिक भी नहीं होने देना चाहते। उनका कहना है कि जब कानूनन् वे इससे अधिक ले ही नहीं सकते, तो स्वभावतः लाभ को मज़दूरों में बाँटेंगे और इस तरह आज की चौड़ी खाई कुछ कम होगी। हाथ की उँगलियों में भेद तो है, लेकिन ज़मीन-आसमान का नहीं। वस्तुतः इस प्रश्न पर वह कोरे आदर्शों में नहीं बहे और न वाहवाही लूटने के लिए यूरोपियन साम्यवादियों की नकल ही की है। उनके ये विचार अधिक क्रियात्मक और भारतीय आदर्शों के अनुकूल हैं।

आजकल किसानों की समस्या पर बहुत विचार होता है और इससे सहानुभूति भी बहुत दिखायी जाती है। लेखक को भी किसानों से सहानुभूति है, लेकिन वह इसके साथ ही यह भी नहीं भूल गया कि किसान अपनी समस्या स्वयं

भी है। गांव का किसान अत्यन्त धूर्त, स्वार्थी, कुटिल और शूद्र है। हरएक किसान अपने पड़ौसी का नुकसान करना चाहता है। कहीं पर खलिहान जल रहा है, कहीं खेत कट रहा है, कहीं डण्डे चल रहे हैं, कहीं अदालतबाज़ी हो रही है, दूसरों का नुकसान करने के लिए अमले की रिश्वतों का बाज़ार गर्म है। इन समस्याओं की ओर किसी सार्वजनिक कार्यकर्ता का ध्यान नहीं गया। योग्य लेखक ने इधर ध्यान दिया है। लेकिन इन सब बातों के साथ वे वर्णव्यवस्था को जन्मत: मान लेने का कैसे समन्वय करते हैं, यह समझ में नहीं आया। बाबू भगवान्दासजी की सम्मति में हिन्दू जाति के पतन का एक प्रधान कारण वर्णव्यवस्था को जन्मानसार मान लेना है।

अन्त में एक बात नाम के बारे में। 'मेरे विचार' में अहंकार की बू तो नहीं आती, जैसा कि लेखक को संदेह है, लेकिन नाम से विषय का स्पष्टीकरण भी नहीं होता।

कृष्ण

समाजवाद : पूँजीवाद : **लेखक—श्री शोभालाल गुप्त; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली; पृष्ठसंख्या २१२, छपाई सुन्दर, मूल्य बारह आने मात्र।**

प्रस्तुत पुस्तक प्रसिद्ध साहित्यकार बर्नार्ड शॉ की "The Intelligent Women's Guide to Socialism and Capitalism" नामक अंग्रेज़ी पुस्तक के आधार पर लिखी गयी है और सारांश में इसे मानव-जगत् की वर्तमान अशान्ति की समाप्ति की एक उत्तम और आवश्यक योजना कहना चाहिए।

यह पुस्तक समाजवाद व पूँजीवाद दो स्तम्भों में लिखी गयी है और दोनों विषयों के अलग-अलग ज्ञातव्य पहलुओं का भी अलग-अलग अध्यायों व प्रकरणों में गम्भीर विश्लेषण किया गया है। लेखक ने संसार के अर्थ-विभाजन की प्रचलित पद्धति के कारण बने हुए धनिक और निर्धन दो महान् जन-समूहों को अत्यन्त निकट से देखने और उनमें सामंजस्य स्थापित करने की एक विचारपूर्ण युक्ति प्रकट की है; भले ही आज की राजनीतिक प्रणालियाँ अभी कुछ समय तक उससे टकराती रहें।

पूँजीवाद के अध्याय में—पूँजीवाद में ग़रीबों की हानि, पूँजी और उसका उपयोग, पूँजी के अत्याचार, पूँजी और श्रम का संघर्ष आदि प्रकरण पाठक की आँखों के सामने धनिक-वर्ग का एक ऐसा चित्र उपस्थित कर देते हैं, जहां मनुष्य ही दानव बनकर खुले रूप में मनुष्य का संहार कर रहा है, और मानवरक्त के सिंचन से एक ऐसी भूमि तैयार हो रही है, जो कालान्तर में मनुष्यों के क्रमशः सभी वर्गों की संहार-भूमि होगी और पूँजीपति भी जिसमें अपना विनाश न बचा सकेंगे। समाजवाद के स्तम्भ में—निर्धनता या धनिकता, असमान आय के दुष्परिणाम, फिर विचार करें, विभाजन कैसे करें, विभाजन की सात योजनायें आदि प्रकरणों में उन पैंतरेबाजियों का वर्णन है, जिनके द्वारा अपने परिश्रम का का लाभ दूसरों को देकर अपने जीवन की घड़ियाँ बितानेवाले मजदूरों और निर्धनों की अनगिनत कठिनाइयाँ बतलायी गयी हैं।

उक्त दो स्तम्भों के पश्चात, 'बदलें कैसे ?' नामक तीसरे स्तम्भ में समाजवाद और पूँजीवाद के एक-दूसरे से टकरानेवाले अंगों की आवश्यक काट-छाँट की युक्तियाँ दी गयी हैं और यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि इन युक्तियों का प्रयोग मानव जगत् के वर्तमान संघर्ष और असन्तोष की जड़ों को खोखली कर सकेगा और निकट भविष्य में ही उसके द्वारा ऐसा वातावरण पैदा किया जा सकेगा, जिससे सारी दुनिया एक सुखी परिवार के रूप में परिवर्तित हो सके।

सारी योजना का क्रियात्मक रूप दिखाने के लिए अन्त में रूसी साम्यवाद—फैसिस्टवाद का भी इस पुस्तक में वर्णन मिलता है। सन् १९१७ से पहले रूस क्या था, मार्क्स, लेनिन, ट्राट्स्की आदि ने उसे आज के रूप में लाने के लिए किन-किन साधनों को अपनाया—इन सबको पढ़कर

के सुधारवादियों को समाज-निर्माण के अनेक दृष्टिबिन्दु मिलते हैं, जिनकी भित्ति पर मानव का कल्याणकारी भविष्य बनाया जा सकता है।

इस पुस्तक का विषय ऐसा है कि विशेषतः की भारतीय राजनीति के मनोवैज्ञानिक प्रभाव पर टिकी हुई खराबियाँ और पेचीदगियाँ, जिन्हें परिवर्तन के प्रचण्ड कोलाहल में पहचानना कठिन हो गया है, ऐसी पुस्तकों के अध्ययन से प्रकाश में आ सकती हैं और इसलिए समाज की व्यवस्था पर राजनीति की प्रतिष्ठा चाहनेवालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़ लेनी चाहिए। **म० श०**

हिन्दी की हलचलें

साहित्यकारों के भाषण

७ दिसम्बर को दिल्ली के कमर्शियल कालेज श्री चतुरसेन शास्त्री और श्री जैनेन्द्रकुमार 'मैं और मेरा साहित्य' विषय पर वक्तृतायें शास्त्रीजी के भाषण का सार अन्यत्र 'प्रस्तुत में दिया गया है। श्री जैनेन्द्रकुमार किस उन्होंने हिन्दी-कहानी लिखना शुरू किया, बोले।

प्रांतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार सम्मेलन

के राष्ट्रभाषा-प्रचारक-मण्डल ने दिसंबर के अन्तिम सप्ताह में जो सम्मेलन करनें का किया था, वह देशकी राजनैतिक परिस्थिति फ़िलहाल स्थगित कर दिया गया है।

हिन्दी

नागरी-प्रचारिणी सभा से गीता- मार्गशीर्ष शुक्ल (१० दिसम्बर) से नाम की मासिक पत्रिका निकलने लगी का उद्देश्य हिन्दी भाषा पर खुले और होनेवाले आक्रमणों से उसकी रक्षा करना और नागरी लिपि की रक्षा और करना है। साथ ही हिन्दी की देशव्यापी तथा उत्थान से सम्बन्धित लेख और को भी वह स्थान देगी। पत्रिका का मूल्य ।।) मात्र है।

कविसम्मेलन, मिर्ज़ापुर

४ दिसम्बर को लाजपत स्मारक पुस्त- के तत्त्वावधान में आचार्य श्री रामचन्द्र और श्री सोहनलाल द्विवेदी के संयुक्त में हिन्दी कवि-सम्मेलन का विराट् आयोजन किया गया।

बनारस से श्री 'बेढब', और श्री 'सुमन', प्रयाग से श्री 'बच्चन', पटना से श्री हंसकुमार तिवारी, बलिया से श्री श्यामनारायण पाण्डेय, बरेली से श्री निरंकार सेवक, उन्नाव से श्री सुमित्राकुमारी सिनहा और दिल्ली से श्री देवदत्त शास्त्री और श्री सुधीन्द्र आये। कवि-सम्मेलन बहुत सफल रहा। आयोजन का सारा श्रेय श्री बटुकनाथ अग्रवाल और श्री हरगोविन्द सेठ को है।

आगामी 'जनगणना' में हिन्दी

हिन्दी-प्रचारिणी सभा, दिल्ली ने एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किया है। उसमें हिंदी-भाषी समस्त जनता से अनुरोध किया गया है कि वह आगामी जनगणना के समय 'निजू भाषा' के खाने में केवल राष्ट्रभाषा 'हिंदी' ही लिखवाये।

'आकाशवाणी'

इस नाम से लखनऊ से श्री जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' के सम्पादन में रेडियो की प्रगति और गतिविधि-सम्बन्धी नया मासिक निकलने लगा है।

'भारती'

नागरी लिपि को माध्यम रखकर बँगला, मराठी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी, उर्दू तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य से परिचित करने तथा इस प्रकार साहित्यिक और सांस्कृतिक सम्पर्क पैदा करने की दृष्टि से विद्या मन्दिर लि० नयी दिल्ली से विभिन्न भाषाओं के विद्वानों के सम्पादन में 'भारती' नाम की मासिक पत्रिका जनवरी १९४० से निकलनेवाली है। पत्रिका का वार्षिक मूल्य २) रहेगा।

हिन्दी गल्पकार-सम्मेलन, दिल्ली

हिन्दी प्रचारिणी सभा, दिल्ली की ओर से १६ दिसम्बर को आचार्य चतुरसेन शास्त्री के सभापतित्व में एक कहानीकार-सम्मेलन हुआ। श्रीमती सत्यवती मलिक, श्री लेखराम बी० ए०, श्री निर्मलकुमारी 'प्रभाकर', श्री शिवोलारानी 'कुसुम', श्री कैलाशचन्द्र 'पीयूष', श्री जयंतकुमार तथा श्री कुन्तलकुमारी ने अपनी-अपनी रचनायें सुनायीं। समारोह में श्री जैनेन्द्रजी तथा श्री स० ही० वात्स्यायन भी उपस्थित थे।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का २९वाँ अधिवेशन, पूना

सभापति श्री सम्पूर्णानंदजी का भाषण

मनोनीत सभापति श्रीयुत सम्पूर्णानन्दजी का जो भाषण पूना में होनेवाले २९वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में २५ दिसम्बर को पढ़ा गया, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और हिन्दी-साहित्य की सब आधुनिक समस्याओं की विवेचना करता है। उसके मुख्य अंश इस प्रकार हैं :—

अच्छी पुस्तकों का अभाव

हमारा वाङ्मय-भण्डार उत्कृष्ट कोटि के ग्रन्थों से भरता जाता है। यह बात सत्य है, पर जिस गति से यह बात हो रही है वह सन्तोषप्रद नहीं है। मैं जानता हूँ कि कई विषय ऐसे हैं जिनपर यदि पुस्तक लिखी जाय, तो उसकी खपत होना कठिन हो जाता है। खेद की बात है कि अभी विज्ञान या दूसरे विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों की माँग नहीं है। दूसरों की तो बात ही न्यारी है, हिन्दू विश्वविद्यालय ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। नैपाल स्वतन्त्र राज है और प्राचीन भारतीय संस्कृति का संरक्षक माना जाना जाता है। उसको चाहिए था, अपनी सीमा में एक विश्वविद्यालय स्थापित करता और राष्ट्र भाषा हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाता। काश्मीर और बड़ौदा तथा दो-एक और राज भी ऐसा कर सकते हैं। यदि उनका ध्यान उधर जाय, तो उनकी प्रजा में शिक्षा का प्रचार बढ़े, संस्कृति का विकास हो। हिन्दू-समाज में दार्शनिक विषयों के अध्ययन के प्रेमियों की बड़ी संख्या है, परन्तु दुःख की बात है कि पाश्चात्य की कौन कहे प्राच्य दर्शन पर भी अच्छी पुस्तकों का अभाव है। अंग्रेज़ी तथा यूरोपियन भाषाओं में बच्चों की ज्ञान-वृद्धि के लिए जैसी पुस्तकें मिलती हैं वैसी केवल हिन्दी जाननेवाले प्रौढ़ों को भी उपलब्ध नहीं है। मेरा विश्वास है कि यदि इन विषयों पर अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित किये, जायें तो उनके ग्राहकों की कमी न रहेगी।

काव्य-रचना की परम्परा

हमें अपने कवियों की रचना पर उचित अभिमान है। गद्य भले ही बहुत पुराना न हो, पर पद्य-रचना की परम्परा तो सैकड़ों वर्षों से अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। उसने समय के साथ अपने रूप में भी परिवर्तन किया है। उसने अस्ताचल पर क्षण भर के लिए टिके हुए भारत के स्वातन्त्र्य-सूर्य को अपने सामने डूबते देखा है, आर्य और अनार्य संस्कृति का संघर्ष उसकी आँखों के सामने हुआ, उसे उन दर्बारों में आश्रय मिला था, जहाँ भोग-विलास में डूबकर अपनी खोई हुई आत्मा की स्मृति भुलायी जाती थी और आज वह भारत का स्वराज-आन्दोलन तथा पृथ्वी पर नव-युग का प्रसव अपनी आँखों देख रही है। कवि के कानों में जगती के शोषितों और दलितों का क्रंदन है, उसकी आँखों के सामने एक ओर अपमानित भारत का क्लान्त कलेवर और कोटि-कोटि नंगों-भूखों के कंकाल और दूसरी ओर कारखानों की गगनचुम्बी चिमनियाँ और श्रीमानों के नन्दन-कानन-प्रतिस्पर्धी विलासगृह हैं। उसका हृदय इन घातों से विताड़ित होता है, विचलित होता है। सच्चा कवि इस पृथिवी को छोड़कर भाग नहीं जाता। वह रोता है, पर आँसुओं की झड़ी के पीछे उसे आशा की किरणें भी देख पड़ती हैं। उसकी

आँखों के सामने भविष्य का चित्र भी नाच उठता है। वह वाणी न सही, पर उसको भी सत्य की अलौकिक झलक देख पड़ती है। वह इसीलिए साक्षात्कार कर सकता है कि उसे सत्य का साक्षात्कार हुआ है और सत्य ही सुन्दरम् है। जो सच्चा कवि है, कला को जीवन से पृथक् करने का यत्न नहीं करता। सत्य केवल सुन्दर नहीं है, कल्याणकर भी है अतः सत्कवि की वाणी में तृषित पीड़ित मानव जाति को सन्देश और उपदेश मिलना चाहिए।

आज-कल की कविता जैसे शून्य में उद्भूत होती है। जो कवि इस देश की पुरानी परम्परा से अलग हो गया है, वह विदेशी स्रोतों से स्फूर्ति लेता देख पड़ता है। ऐसी उपमायें दी जाती हैं, जिनका हमारे जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। हिन्दी के कवि ने कमल और भ्रमर को छोड़कर ईरान के गुलाब और बुलबुल को अपनाया; जिनको न उसने देखा था, न उसके श्रोताओं ने। जिस भारत में मांस खाना कुछ बहुत अच्छी बात नहीं समझी जाती, जो भारत अपने पूर्वजों के पवित्र सोमरस का पान छोड़ चुका था और सुरापान को निंद्य मानता था उसके सामने कबाब और सीख, शराब और साक़ी का चित्र खींचा जाता। यह रचना चाहे कितनी ही श्रुति-मधुर हो, पर हमारे समाज की आत्मा के अनुकूल न थी, अतः मुट्ठी भर लोगों तक ही रह गयी, लोकप्रियता न प्राप्त कर सकी। मैं चाहता हूँ कि हमारे उदीयमान कवि इस बात को न भूलें।

लेखक-प्रकाशकों से

मैं जानता हूँ कि बहुधा किसी ऐसे व्यक्ति को जो अंग्रेज़ी जानता है और कुछ हिन्दी लिख लेता है, ऐसे विषयों की पुस्तकों का अनुवाद करने (और कभी-कभी स्वतंत्र पुस्तक लिखाने) का काम सौंपा जाता है, जिनका उसने कभी अध्ययन नहीं किया। वह स्वयं जिस बात को नहीं समझ पाता उसे दूसरों को क्या समझायेगा? यह प्रबंध प्रकाशक के लिए सस्ता पड़ता है, पर हिन्दी वाङ्मय पर, जिसके नाम पर प्रकाशक कमाता-खाता है, कुठाराघात होता है। मैंने सुना है कि आठ आने फार्म पर पुस्तकें लिखायी जाती हैं, आठ आना पृष्ठ तो जैसे बहुत बड़ी बात हो गयी। उपन्यास या कहानी ही सही, पर जो लेखक भूख की ज्वाला पर छींटे देने के लिए इन शर्तों पर लिखना स्वीकार करता है, वह कलाकार नहीं हो सकता। सब लोग प्रेमचन्द नहीं हो सकते, पर ऐसी परिस्थिति में प्रेमचन्दों का पनपना भी कष्टसाध्य है। ग्रंथकारों को इन बातों से कष्ट होता है; पर अभी वह सतर्क नहीं हुए हैं। सरस्वती का उपासक शान्त होता है, सन्तोषी होता है; परन्तु यदि वह इस प्रकार अपनी लेखनी को थोड़े से लोगों की स्वार्थसिद्धि का उपकरण बनने देता है, तो वह वाग्देवता की अप्रतिष्ठा करने का अपराधी है। यदि स्थान-स्थान में लेखक-संघ स्थापित हो जायें, तो हिन्दी की सेवा हो, सुरुचि का प्रसार हो और लेखकों के स्वत्वों की भी रक्षा हो।

हिन्दी पर प्रहार

हिन्दी पर चौमुख प्रहार हो रहा है। हम इस प्रहार से डरते नहीं। पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में हिंदी को राजाश्रय नहीं मिला, उलटे उसे राज की उदासीनता और विरोध का सामना करना पड़ा है। आपत्तियों की गोद में वह पली है। हमको विश्वास है कि वह आज की परिस्थिति को भी झेलने में समर्थ होगी। अमर भारती की इस लाड़ली के स्वरों में भारत की राष्ट्रीय आत्मा बोलती है, उसे कोई कुचल नहीं सकता।

फिर भी परिस्थिति को समझ तो लेना ही चाहिए। सरकार की हिन्दी और नागरी पर कभी कृपा नहीं रही। जिस लिपि को कोटि-कोटि भारतवासी अपनी पवित्र लिपि मानते हैं, उसको भारत की मुख्य मुद्रा (रुपये) पर स्थान नहीं है। आप उसे रुपये के नोट पर न पायेंगे। सरकार का रेडियो-विभाग तो हिन्दी के पीछे हाथ धोकर पड़ा है। कहने को तो वह अपने को हिन्दी-उर्दू से अलग रखकर हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा मानता है, पर उसकी हिन्दुस्तानी उर्दू का ही

नामान्तर है। यदि 'मृग' जैसा शब्द भी आ गया तो 'यानी हिरन' कहने की आवश्यकता पड़ती है; पर 'शफ़क' 'तसव्वर' 'पेशकश', 'तखय्युल'-जैसे शब्द सरल और सुबोध माने जाते हैं। रेडियो का 'अनाउन्सर' कभी नमस्कार नहीं करता, उसकी संस्कृति में 'आदाब अर्ज़' करना ही शिष्टाचार है। संस्कृत शब्दों के शुद्ध उच्चारण करने की तो शपथ खा ली गयी है। नामों तक की दुर्गति कर दी जाती है। आचारिया, विकरमाजीत, इन्दर, यह सब तो इनके बायें हाथ के खेल हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार ने हिन्दी भाषा को बिगाड़ने और जनता में उस संस्कृति का, जिसकी यह भाषा प्रतीक है, विकृत रूप उपस्थित करने के लिए ही इनको नौकर रख छोड़ा है। हिन्दू त्यौहारों पर अरबी-फारसी शब्दों से लदी ऐसी भाषा में भाषण सुनने में आये हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को सरकार पर दबाव डालना चाहिए और हिन्दी-पत्रों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए।

हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी

अब मैं हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी के संबंध में कुछ कहना चाहता हूँ। हमारी भाषा का नाम 'हिन्दी' इसे कतिपय मुसलमान लेखकों ने दिया, पर हमने इसे अपना लिया। यह नाम हमको प्यारा है और इसमें साम्प्रदायिक या अन्य किसी प्रकार का दोष नहीं है। इसे उर्दू नाम से पुकारने का कोई कारण नहीं है। पृथिवी पर भारत ही तो एक देश नहीं है। दूसरी जगहों में भाषा का नाम देश के नाम पर होता है। फ्रान्सीसी, अंग्रेज़ी, जापानी, अरबी, ईरानी—ये सब नाम देशों से सम्बन्ध रखने हैं। हिन्दी भी ऐसा ही नाम है, पर उर्दू में यह बात नहीं है। यह नाम इस देश के नाम से सम्बन्ध नहीं रखता। अब यह प्रश्न उठाया जाता है कि राष्ट्र-भाषा को न हिन्दी कहा जाय न उर्दू, प्रत्युत हिन्दुस्तानी नाम से पुकारा जाय। मैं स्वयं तो उन लोगों में हूँ, जो इस बात को मानने को प्रस्तुत हैं। यदि हिन्दुस्तानी कहने-भर से काम चल जाय तो यह समझौता बुरा नहीं है। यह देश हिन्दुस्तान भी कहलाता ही है, पर मुख्य प्रश्न नाम का नहीं, भाषा के स्वरूप का है। विवाद ऊपर से भले ही नाम के लिए किया जाता हो, पर उसके भीतर भाषा के स्वरूप का विवाद छिपा है। इस बात को समझकर हमको अपना मत स्पष्ट कर देना है।

हिन्दी (या वह हिन्दुस्तानी जिसकी मैं कल्पना करता हूँ) जीवित भाषा है और रहेगी। वह मुट्ठी-भर पढ़े-लिखों तक ही परिसीमित न रहेगी। उसके द्वारा राष्ट्र के हृदय और मस्तिष्क का अभिव्यंजन होना है। उसको दार्शनिक विचारों, वैज्ञानिक तथ्यों और हृद्गत भावों के व्यक्त करने का साधन बनना है।

हमको भारत के बाहर से आये हुए शब्दों का प्रयोग करने में कोई लज्जा नहीं है। अरबी, फारसी के सैकड़ों शब्द बोले जाते हैं, लिखे जाते हैं। यह बात आज से नहीं, चन्दबरदाई और पृथ्वीराज के समय से चली आ रही है। सूर, तुलसी, कबीर, रहीम सबने ही ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। अंग्रेज़ी के शब्दों को भी हमने अपनाया है। आगे भी जो ऐसे शब्द आते जायेंगे वे हमारे होंगे। पर उनके आ जाने पर भी भाषा हिन्दी ही है और रहेगी। जिस प्रकार पचा हुआ भोजन शरीर का अविभाज्य अंग हो जाता है, उसी प्रकार वह हिन्दी के अंग हैं और होंगे। उनकी पृथक् सत्ता चली जायगी। जीवित भाषाएं ऐसा ही करती हैं। हम संस्कृत के शब्दों को भी इसी प्रकार अपनाते हैं, उनको हिन्दी शब्द बना लेते हैं। इसका बड़ा प्रमाण यह है कि वे हिन्दी में आने पर संस्कृत के व्याकरण को छोड़ देते हैं, हिन्दी व्याकरण के अधीन हो जाते हैं। संस्कृत व्याकरण के विरुद्ध होते हुए 'अन्तर्राष्ट्रीय' हिन्दी में व्यवहृत है। मैंने शुद्ध रूप चलाना चाहा, पर सफल न हुआ। पर शुद्ध उर्दू-लेखक सुलतान का बहुवचन सलातीन, मुल्क का मुमालिक, खातून का खवातीन लिखता है। ये शब्द अपना

विदेशीपन नहीं छोड़ते और इन्हीं विदेशीपन के अभिमान से भरे हुए शब्दों में ही उर्दू का उर्दूपन है, संज्ञा क्रिया, सर्वनाम, उपसर्ग, अव्यय——वे सब शब्द जो भाषा के प्राण हैं—हिन्दी-उर्दू में एक ही हैं। हम ऐसी कृत्रिम भाषा को, जो जनता में फैल ही नहीं सकती, हिन्दी या हिन्दुस्तानी नहीं मान सकते। वह हमारे किसी काम की न होगी। हम तो कृत्रिम भ.षा के, जिसमें व्यर्थ अरबी-फारसी शब्द ठूसे जाते हैं, विरुद्ध हैं।

मेरा तो यह विश्वास है कि यदि हमारी भाषा में स्वाभाविक प्रकार से एक ही अर्थ के द्योतक अनेक शब्द—एक संस्कृत का, एक अरबी या फारसी का, आ जाय, तो उससे भाषा का भण्डार भरता है और वाङ्मय में सुन्दरता आती है। अंग्रेजी को लीजिए। एक ही अर्थ में क्वेरी, क्वेश्चन, इण्टरोगेशन, इण्टर्पेलेशन जैसे शब्द आते हैं। इनमें क्रमशः थोड़ा-सा सूक्ष्म प्रयोगभेद होता है। ऐसा हमारे यहाँ भी क्यों न हो? एक ग्रंथ में बार-बार एक ही शब्द क्यों प्रयुक्त हो?

भाषा का स्वरूप

मैं फिर कहता हूँ, हमको हिन्दी नाम प्यारा है, हम इसे छोड़ना नहीं चाहते। फिर भी यदि केवल इतनी ही बात होती, तो हम हिन्दुस्तानी नाम को सहर्ष मान लेते। पर यहाँ तो प्रश्न भाषा के स्वरूप का है और इस सम्बन्ध में हम अपना मत स्पष्ट कर देना चाहते हैं। भाषा भाव और संस्कृति का प्रतीक होती है। हम भारतीय संस्कृति का, उस संस्कृति का जिसको हिन्दू और मुसलमान दोनों ने मिलाकर बनाया है, जिसकी धारा ऋग्वेद-काल के पहले से अजस्ररूपेण चली आ रही है—और उस भाषा को—जिसको हिन्दू और मुसलमान लेखकों ने मिलकर पुष्ट किया है, जो देववाणी, पाली और प्राकृत की उत्तराधिकारिणी है, जिसकी जड़ों को अनेक वाग्धाराओं ने सिंचित किया है—कुछ प्रमत्त सम्प्रदायवादियों और उनकी भोली-भाली कठपुतलियों के हाथों नष्ट न होने देंगे। हिन्दी ने ऐसे बहुत से आघातों को झेला है। अब भी झेल जायगी, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

लिपि-समस्या

भाषा के साथ ही दो शब्द लिपि के संबन्ध में कहना है। आजकल लिपि के सुधार का प्रश्न उपस्थित हो गया है। मैं भी समझता हूँ कि कुछ परिशोधन की आवश्यकता है, परन्तु ऐसा न होना चाहिए कि केवल छापे की सुविधा के नाम पर हम सारी पुरानी परम्परा से नाता तोड़कर एक नये प्रकार की ही लिपि का निर्माण कर डालें। देवनागरी लिपि भारत के सभी कोनों में न्यूनाधिक प्रचलित है और बिना प्रबल कारणों के उसमें यों ही परिवर्तन न करने चाहिएँ।

‘तुलसी-सदन’, टाण्डा

समाचार मिला है कि उक्त स्थान में हिन्दी प्रचार-समिति का ‘तुलसी-सदन’ नामक पुस्तकालय भवन तैयार किया गया है। जिसमें २ बड़े-बड़े कमरे और वाचनालय के रूप में १ बड़ा बरामदा है। हॉल बनवाने के लिए आर्थिक दान की उन्हें आवश्यकता है।

‘विश्ववाणी’

‘भारत में अंग्रेजी राज्य’ के यशस्वी लेखक पं० सुन्दरलाल की संरक्षता में ‘विश्ववाणी’ नाम की हिन्दी मासिक पत्रिका के प्रकाशन की सूचना मिली है। पत्रव्यवहार का पता है—१४२ साउथ मलाका, इलाहाबाद।

विश्वनाथप्रसादजी का देहावसान

इन पंक्तियों को लिखते हुए हमारा हृदय हमारे सहयोगी भाई श्री विश्वनाथप्रसादजी के आकस्मिक चिरवियोग से व्यथित है। वह ‘लीडर’ तथा हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध पत्र ‘भारत’, प्रयाग के व्यवस्थापक थे और व्यक्तिशः आप अत्यन्त सहृदय, सज्जन और सौम्यप्रकृति थे।

भाई विश्वनाथप्रसादजी के कुटुम्बियों और ‘लीडर’ तथा ‘भारत’-परिवार के प्रति हम हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

सैर-सपाटा

'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' से सम्बन्धित श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के लेख पर 'सुधा'-सम्पादकों ने नवम्बर की सुधा' में अच्छे विचार प्रकट किये हैं, जो विचारणीय हैं। लेख में हिन्दी और हिन्दुस्तानी के बदले 'भारती' नाम सुझाया है। काका कालेलकर ने 'सबकी बोली' में 'हिन्दुस्तानी' नाम की हिमायत करते हुए अन्त में कहा है कि 'अगर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनना है, तो वह 'हिन्दुस्तानी' शब्द से नफरत, झिझक या भीति नहीं रख सकती।' इसी सम्बन्ध में दिसम्बर के 'विशाल भारत' में भी श्री अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी ने **'हिन्दुस्तानी' ही क्यों?** लेख में हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी शब्दों का इतिहास और अर्थ बताते हुए वस्तुस्थिति को स्पष्ट किया है और सलाह दी है कि हम 'स्वाभाविक रीति से हिन्दी-उर्दू को आगे बढ़ने दें; कल आप ही निर्णय कर देगा कि देश की भाषा क्या है?' सच तो यह है कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में यह समस्या उलझ-सी गयी है और साधारण पाठक को तो इससे बुद्धिभेद होने की पूरी संभावना है। अगर यह सवाल इस प्रकार उलझ रहा है, तो क्या यह अच्छा न होगा कि हम वाजपेयीजी की सलाह को मान लें?

नवम्बर के 'हंस' और दिसंबर की 'वीणा' में श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' का भाषण **'हिन्दी कविता की समस्यायें'** प्रकाशित हुआ है। वर्तमान हिन्दी-कविता के कुछ वादों का उसमें अच्छा विश्लेषण है। 'हंस' के उस अंक में श्री व्रजमोहन गुप्त का लेख **'वर्तमान हिन्दी-कविता और उसकी प्रगति'** हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों के काम का है। दिसंबर के 'साहित्य-सन्देश' में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी **'वर्तमान कविता का क्रमविकास'** अंकित किया है। उसमें उन्होंने 'द्विवेदी युग' और छायावादी युग के क्रमिक विकास का यथायथ विश्लेषण किया है। द्विवेदीजी प्रौढ़ लेखनी के धनी हैं और उनकी शैली में सजीवता, प्रांजलता और अधिकार होता है।

'साहित्य-संदेश' के उक्त अंक में एक खोज-पूर्ण लेख है **'भाषा विज्ञान का इतिहास,'** जिसमें लेखक श्री राममूर्ति मेहरोत्रा, एम० ए० ने सन् १४५० ई० पू० से इस इतिहास का सूत्र खोजा है और १८७५ ई० तक उसकी प्रगति का अच्छा विवेचन किया है। आशा है, इस विषय में वह और भी अच्छे-अच्छे लेख लिखेंगे और भाषा-विज्ञान का अद्यवत् अध्ययन पाठकों को देंगे।

दिसम्बर की 'साधना' में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी का लेख **'साहित्यिकों के जीवन का प्रश्न'** आज के हिन्दी-लेखक की आन्तरिक व्यथा और रोष से अनुरंजित है। और लेखकों के (१) साधक वर्ग, (२) ग्रहस्थ-मध्यमवर्ग (३) सम्पन्न-वर्ग और (४) व्यापारी (रीडरबाज़) वर्ग यह वर्गीकरण करते हुए लेखक ने अपील की है कि हिन्दी के लेखकों की जीवन-समस्या हल की जाकर हिन्दी के साहित्यिक कलाकारों को बलि-छागल होने से बचाया जाना चाहिए।

कविताओं का स्वर धीरे-धीरे बदलता जा रहा है, यह अभिनन्दनीय है। 'बच्चन' जी-जैसे अनेक नवोदित कवियों के दिशादर्शक कवि की इन दिनों जो कवितायें छप रही हैं, वे पुण्यभाव-प्रेरक हैं। 'कर्मयोगी' की **'जब-जब मेरी जिव्हा डोले'** तथा 'विशाल भारत' की **'लक्ष्य क्या तेरा यही था?'** कवितायें आशाजनक हैं। हम अपेक्षा करते हैं कि कवि इस नयी दिशा की ओर तीव्रता से अग्रसर हो।

इन दिनों श्री सोहनलाल द्विवेदी की **'वासवदत्ता'** कविता को सबसे अधिक ख्याति मिली है। ज्ञात हुआ है कि उनकी **'उर्वशी'** और दूसरी मुक्तक कवितायें और भी सुन्दर हैं। **'वासवदत्ता'** अत्यन्त शक्तिशाली है और आशा दिलाती है कि यदि द्विवेदीजी इस ओर बढ़े तो उन्हें मुक्त छन्द-रचना में विशेष स्थान मिले बिना नहीं रहेगा। दिसम्बर की 'माधुरी' में 'निराला' जी की एक कविता

के प्रति' छपी है। पर उसमें कवि-बन्धुओं नामोल्लेख की वृत्ति प्रसादजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि की भावना को कुचलती हुई आगे गयी है। नवम्बर के 'किशोर' में श्री 'स्वर्ण-' की 'नवल तरुण' कविता भी ओजपूर्ण है। श्री अम्बिकादत्त पाठक की **'कवि और** ' भी सुन्दर है।

पत्रों में 'हिन्दी' और 'आकाशवाणी' का स्वागत करते हैं। पत्रिकाओं का उद्देश नाम से स्पष्ट है। दीपावली से जोधपुर राज्य लोक-परिषद का मुखपत्र 'प्रजासेवक' निकलने लगा है। उसके सब अंक सुन्दर निकले हैं। राजपूताना के देशी राज्यों में वह अपने ढंग का अकेला और पहला पत्र है। 'मधुकर' नामक एक पाक्षिक पत्र भी श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के सम्पादन में वीरेन्द्र-केशव साहित्य-परिषद्, टीकमगढ़ से निकलने लगा है। पत्र में अनेक जीवनोपयोगी लेख निकलते रहते हैं। सहयोगियों की प्रगति की हम कामना करते हैं।

भारती के चरणसेवी कृष्णमंदिर के पुजारी !

नोबा : उन्हें साहित्यिक कहना तो उनका घटाना है। वह तो ऐसे महान् हैं कि जिनके रों से साहित्य प्रेरणा पाता है। जिनके मुहँ कली हुई एक-एक बात साहित्य में अमिट बनाती चलती है। मराठी-साहित्य को देन अमूल्य है।

गोपालाचार्य : हाँ, राजाजी में भी साहित्य प्रतिभा है। तमिल के वह प्रकाण्ड विद्वान् और अंग्रेजी के सुलेखक हैं। संस्कृत के भी वे हैं। उनकी उपनिषदों और भगवद्-पर लिखी टीकायें प्रसिद्ध हैं। उनकी हिन्दी में **'दुखी-दुनिया : प्रलय-प्रतीक्षा'** आयी हैं। वे सुप्रसिद्ध तमिल पत्र 'आनंद' में प्रायः लिखा करते हैं।

रोजिनी नायडू : भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू अंग्रेजी की प्रतिभाशालिनी कवयित्री न्होंने अंग्रेजी में ३ काव्य लिखे हैं, जिनका भाषाओं में अनुवाद हुआ है, कुछेक का यूरो-भाषाओं में भी हुआ है। वह देशभक्ति की और क्रांति की गायिका हैं।

वाहरलाल नेहरू : हिन्दी-साहित्य जिनकी सिद्ध **'मेरी कहानी'** और **'विश्व-इतिहास** ' नाम के अनुवाद-ग्रंथों से ही गौरवा-है, उन जवाहरलाल का आज की हिन्दी ऋण है। राष्ट्रभाषा आदि के प्रश्न में गहरी दिलचस्पी है।

पूर्णानन्द : युक्तप्रान्त के इस कांग्रेसी शिक्षा-मन्त्री व 'मर्यादा'-संपादक की हिंदी-सेवाओं का आदर करते हुए हिन्दी जनता ने उन्हें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन का सभापति चुना; किन्तु आज वह सीखचों में हैं। संपूर्णानन्दजी समाज-विज्ञान और राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान् हैं और उनकी लेखनी से **'अन्तर्राष्ट्रीय विधान,' 'समाज विज्ञान' 'व्यक्ति और राज'** जैसी प्रसिद्ध पुस्तकें निकली हैं।

मुंशी-दम्पत्ति : भारतीय साहित्य-परिषद के ज़माने के **'हंस'** के पाठक कन्हैयालाल मुन्शी से सुपरिचित हैं। वह मूलतः गुजराती के अग्रणी साहित्यकार हैं। उन्होंने ९ उपन्यास, ६ सामाजिक और ६ पौराणिक नाटक लिखे हैं और "I follow the Mahatma" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी है। उनका लिखा **'लोपामुद्रा'** उपन्यास हिंदी को मिल चुका है। वह एक कुशल संपादक हैं।

और उनकी धर्मपत्नी लीलावती मुन्शी साहित्यिक और राजनीतिक दोनों जीवन में उनकी संगिनी हैं। वह भी उपन्यासलेखिका हैं। नाटक, निबन्ध, कहानियाँ भी लिखती हैं। उनके कई ग्रंथ पाठचक्रम में स्वीकृत हैं। गिरफ्तारी के समय श्रीयुत मुन्शी **'सोशल वेलफ़ेयर'** के सम्पादक थे। उनके पश्चात् श्रीमती मुन्शी ने एक-दो सप्ताह उसका सम्पादन करने के बाद जेलयात्रा की।

रणजीत पण्डित : जवाहरलालजी की बहन विजयलक्ष्मी के पति आर. एस. पण्डित के नाम से कांग्रेसी-क्षेत्र में तो विख्यात हैं ही, किन्तु

साहित्य-क्षेत्र में भी उनका अपना स्थान है। श्रीयुत पण्डित ने काश्मीरी कवि कल्हण की **'राजतरंगिणी'** का संस्कृत से अंग्रेज़ी में सुन्दर अनुवाद किया है। आजकल जेल में वह श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के आग्रह पर उसका हिन्दी अनुवाद भी कर रहे हैं। साथ ही **'मुद्राराक्षस'** नाटक का भी हिन्दी अनुवाद उन्होंने शुरू किया है।

श्रीकृष्णदत्त पालीवाल : 'सैनिक' पत्र के सर्वस्व पालीवालजी को कौन हिन्दीभाषी नहीं जानता होगा? वह एक सफल पत्रकार के अतिरिक्त सफल लेखक और अनुवादक भी हैं? हाल केन के **'इटरनल सिटी'** का हिन्दी अनुवाद **'अमरपुरी'** नाम से उन्होंने किया है। उनके लेखों का **'सेवा-धर्म : सेवा-मार्ग'** संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : कवि 'नवीन' को किस परिचय की आवश्यकता है? इतना ही कहना काफ़ी है कि इने-गिने विप्लववादी और प्रेम के दीवाने मस्ताने कवियों में 'नवीन' जी का अन्यतम स्थान है। **'कुंकुम'** संग्रह के अतिरिक्त 'नवीन' जी की कई ओजपूर्ण कवितायें अभी अप्रकाशित हैं।

सेठ गोविन्ददास : वह राष्ट्र के कर्मठ सेवक ही नहीं हैं, सरस्वती की अर्चना में भी उनके जीवन के बहुमूल्य क्षण लगे हैं। वह त्रिपुरी में होनेवाले विराट् राष्ट्रीय मेले के स्वागताध्यक्ष ही नहीं हैं, केन्द्रीय धारासभा के सदस्य ही नहीं हैं, वह हिन्दी में अनेक नाटकों के रचयिता भी हैं।

सन १४ में सेठ गोविन्ददास ने पहला नाटक **'विश्व-[illegible]** लिखा फिर ३० तक दीर्घ अवकाश। ले[illegible] तक जेल-जीवन में एकदम १३ नाटक। [illegible] जिनमें से **'कर्त्तव्य'**, **'हर्ष'**, **'प्रकाश'**, **'स्पर्द्धा**, **सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य'** पुस्तकाकार छप चुके हैं। **धुआँधार'** और **'दलित कुसुम'** नामक फ़िल्म उनके नाटकों से बनाये गये हैं। ३८ तक उन्होंने ढेर-के-ढेर नाटक लिखे। **'सप्तरश्मि'** नाम से उनके सात एकांकियों का संग्रह निकलने जा रहा है। प्रसिद्ध हिन्दी-पत्रिकाओं में उनके एकांकी नाटक आजकल प्रकाशित होते रहते हैं।

वेंकटेशनारायण तिवारी : तिवारीजी को हिन्दी-जनता **'भारत'** के **भूतपूर्व संपादक** होने के **नाते ही नहीं जानती** बल्कि वह साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के उच्चपदाधिकारी भी रह चुके हैं। भाषा-समस्या में इनकी विशेष अभिरुचि है।

नरेन्द्र शर्मा : खुर्जा के पास के एक ग्राम के निवासी इस कवि का हिन्दी-कविता के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान है। वह प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी के एम० ए० हैं। १९३१ में सरस्वती के मन्दिर में कविता लेकर पदार्पण किया। **'शूल-फूल'** **'कर्णफूल'** कविता-संग्रहों के पश्चात् **'रूपाभ'** में श्री सुमित्रानन्दन पन्त के साहचर्य से कवि का व्यक्तित्व और कवित्व और भी खिला। ये कुछ दिनों अ० भा० कां० महा-समिति (A. I. C. C.) प्रयाग के कार्यालय में भी रहे और अभी काशी-विद्यापीठ में अध्यापक थे कि दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में गिरफ्तार हो गये।

मधुरभाषी, सौम्य-प्रकृति, बाहर से कोमल, किन्तु वाणी से सौज, सबल और निर्भीक।

उमा नेहरू : इनी-गिनी राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त महिलाओं में वह सबसे अधिक पुरानी हैं। उन्होंने 'सहेला' पत्र के सम्पादन द्वारा महिला-समाज की विशेष सेवा की है। 'मदर इंडिया का जवाब' नाम की पुस्तक भी उन्होंने लिखी है।

कमलापति त्रिपाठी : त्रिपाठीजी प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक 'आज' के सम्पादक के नाते सुपरिचित हैं।

नर्मदाप्रसाद मिश्र : "श्री शारदा" के भूतपूर्व सम्पादक और मिश्रबन्धु कार्यालय, जबलपुर के वह संचालक हैं। उन्होंने अनेक बालोपयोगी पुस्तकें लिखी हैं।

द्वारकाप्रसाद मिश्र : मध्यप्रान्त के ये भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्री भी 'लोकमत' तथा 'श्री शारदा' के सम्पादक रह चुके हैं।

व्यौहार राजेन्द्रसिंह : जबलपुर के रईस हैं और हिन्दी में आलोचनात्मक लेख लिखने में काफ़ी प्रसिद्ध हो चुके हैं। बड़े अध्ययनशील हैं ग्रामसाहित्य के विशेषज्ञ हैं और भाषा बड़ी संयत लिखते हैं।

'मण्डल' की ओर से

नव वर्ष

मण्डल का वर्ष जनवरी से शुरू होता है। पिछले वर्ष जिन महानुभावों ने मण्डल के कार्य में किसी भी प्रकार से सहायता दी और द्वारा उत्साह बढ़ाया उसके लिए हम उनके आभारी हैं और उनको धन्यवाद देते हैं तथा प्रार्थना करते हैं कि इस वर्ष भी उदारता-पूर्वक पिछले वर्ष की भाँति स्नेह और कृपा-भाव बनाये रखेंगे और मण्डल के कार्य में रस लेकर उत्साह बढ़ाते जावेंगे।

इसी प्रकार मण्डल के किन्हीं कार्यों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में किसी को कोई नुकसान पहुँचा हो या जान या अनजान में कोई कष्ट पहुँचा हो, तो इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। हम प्रार्थना करते हैं आगे हमसे कोई ऐसा कार्य न हो, जिससे किसीको व्यर्थ की हानि या कष्ट हो।

स्थायी ग्राहकों से

मण्डल के सब स्थायी ग्राहकों को यह सूचना दी जाती है कि खादी-भण्डारों पर मण्डल से प्रकाशित नयी पुस्तकें पहुँच गयी हैं। जिन्होंने वे पुस्तकें न ली हों, वे शीघ्र ही अपने स्थ न के खादी-भण्डार से ले लेने की कृपा करें। इन दिनों जो पुस्तकें निकली हैं, उनमें से अधिकांश इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि जल्दी ही उनका दूसरा संस्करण कराना पड़ रहा है। ऐसी पुस्तकों में बापू (ले०—घनश्यामदास बिड़ला) सर्व प्रथम है। दो महीने में इसकी २५०० प्रतियां समाप्त हो गयीं। अब १।) वाला सजिल्द संस्करण बचा है। वह भी केवल ५०० प्रतियाँ हैं। अतः ग्राहक-गण अपनी पुस्तकें शीघ्र मँगालें, नहीं तो फिर नये संस्करण की राह देखनी पड़ेगी। उनको यह भी ध्यान में रखना है कि १।) की पुस्तकें न लीं, तो उनका नाम स्थायी ग्राहकों में से कट जायगा।

खादी-भण्डारों से

यह प्रार्थना की जाती है कि वे अपने यहाँ मण्डल की प्रकाशित पुस्तकें पर्याप्त संख्या में रखें। अब जबकि हमेशा यह प्रचार होता है कि हिन्दी-भाषी प्रांतों को चर्खा-संघ के खादी-भण्डारों में मण्डल की सब पुस्तकें मिलती हैं और स्थायी ग्राहकों को पौनी क़ीमत में दी जाती है, तो वहाँ सब पुस्तकें रखना ज़रूरी होजाता है। कई ग्राहकों की शिकायतें आयी हैं कि भण्डारों में वे पुस्तकें लेने गये, पर उन्हें पुस्तकें नहीं मिलीं। अतः भण्डार-व्यवस्थापकों से निवेदन है कि वे अपने यहाँ पुस्तकें मँगा रखें।

स्वाधीनता-दिवस पर

मण्डल गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ का तीसरा और सुलभ संस्करण प्रकाशित कर रहा है। सजिल्द मोटे कागज़ का संस्करण २) वाला ज्यादा मूल्य का मालूम होने से १।) वाला सुलभ संस्करण निकाला जारहा है। इसी प्रकार पं० जवाहरलाल नेहरू की नवीन पुस्तक

लड़खड़ाती दुनिया

भी इसी स्वाधीनता-दिवस पर प्रकाशित होने जारही है। यह अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति और उसके फलस्वरूप भारत की स्थिति को समझाता हुआ रोचक लेख-संग्रह है। दाम सिर्फ़ आठ आने होगा।

फिर हिन्दी में भारत-भूषण महामना मदनमोहन मालवीयजी की सुलभ और रोचक जीवनी की कमी हिन्दी में बहुत दिनों से खटक रही थी। यह ऐसी कमी थी, जिसका पूरा किया जाना बहुत ज़रूरी था। पंडित रामनरेशजी त्रिपाठी के सहयोग और परिश्रम से यह कमी भी बड़ी कुशलता के साथ पूरी की गयी है। और मण्डल इन्हीं दिनों

मालवीयजी के साथ तीस दिन

के नाम से यह ग्रंथ भी अतिशीघ्र निकालने जा रहा है। यह ग्रंथ भी 'बापू' के आकार-प्रकार का और विविध चित्रों से सुसज्जित होगा।

पिछले अक्तूबर के अंक में हमने तीन पुस्तकें कृषि, गोपालन और आरोग्य पर पुरस्कार देकर लिखाने की सूचना की थी। उसमें जो समय की अवधि थी, वह लेखकों को कम लगी। कई लोगों के पत्र आये हैं कि यह अवधि कम है, अतः वह बढ़ा दी जाये। उसपर विचार करके यह अवधि मार्च १९४१ के अंततक बढ़ा दी गयी है। आशा है, लेखक बन्धुओं को अब काफ़ी समय मिल जायगा और वे इसमें और भी प्रयत्न करेंगे और हिन्दी-साहित्य की सेवा ही करेंगे।

पुनर्मुद्रण

निम्न पुस्तकें फिर से छपने को प्रेस में दे दी गयी हैं। आशा है कि सब आगामी २ महीनों में छपकर तैयार हो जायँगी—

१. **मेरी कहानी** (जवाहरलाल नेहरू)
२. **स्त्री और पुरुष** (टाल्स्टॉय)
३. **क्या करें ?** ''
४. **तरंगित हृदय** (स्वामी अभयदेव)
५. **द० अ० का सत्याग्रह** (प्रथम भाग)
(म० गांधी)

—मंत्री

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायारिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

श्रीयुत. एम के. आचार्य, एम. एल. ए. (मद्रास)—"आपका दंत-मंजन तो **मैंने अपनी दंत-पीड़ा के लिए गत पाँच वर्षों में व्यवहृत देशी-विदेशी सब मंजनों से श्रेष्ठतर पाया।** मंजन दाँतों, मसूड़ों और तालु के घावों पर जादू का-सा असर दिखलाता है।"

श्री. एम० एस० वरदाचार्य एडवोकेट (मद्रास हाईकोर्ट)—"दो वर्ष पूर्व मुझे दंत-पीड़ा हुई थी जो बढ़ती ही गयी और मसूडों में घाव हो गये; **परन्तु आपके मंजन से अब मेरे मसूड़े स्वस्थ हैं और दाँत में पीड़ा नहीं होती।** मैं तो कहूँगा कि मेरे व्यवहृत दंत-मंजनों में सर्वश्रेष्ठ आपका दंतामृत ही है।"

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

बीमा कम्पनी ही क्यों?

अधिक ब्याज दे सकने का कारण !

बीमा कम्पनी और बैंकों की रुपया देने की नीति में बड़ा अन्तर है। बैंकें अपना रुपया कभी लम्बी मियाद के लिए देना पसन्द नहीं करती क्योंकि उन्हें कभी भी रुपए की ज़रूरत पड़ सकती है। और इसीलिए वे ज्यादा ब्याज भी पैदा नहीं कर पातीं। इसके विपरीत बीमा-कम्पनियाँ सदा यह चाहती हैं कि अगर उनका रुपया सुरक्षित है तो वह ज्यादा से ज्यादा समय के लिए लगा रहे और इसलिए रुपया सुरक्षित रखते हुए भी वे ब्याज अच्छी पैदा कर लेती हैं और इस दृष्टि से वे बैंकों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं। और इसीलिए वे अपने ग्राहकों के लिए ज्यादा ब्याज पैदा कर सकती हैं।

स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड

ने सारा खर्च काट कर और जोखिम के लिए रुपया अलग निकाल कर भी ६) प्रतिशत से अधिक ब्याज पैदा किया है और उसीसे प्रभावित और उत्साहित होकर स्वदेशी ने अपने यहाँ रुपया जमा करने की नयी योजना निकाली है कि जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति १००) से लेकर १०,०००) तक कम्पनी में डिपाजिट के रूप से निम्न ब्याज पर जमा कर सकते हैं—

एक वर्ष की मुद्दत पर	...	३) प्रतिशत
दो वर्ष की मुद्दत पर	...	३।) प्रतिशत
तीन वर्ष की मुद्दत पर	...	४) प्रतिशत

ब्याज हर छठे महीने मिलता है। विधवाओं, बच्चों और संस्थाओं को यह सूद हर महीने भी मिल सकता है।

सफलता का प्रमाण

रुपया जमा करने की यह योजना जनवरी १९४० से शुरू हुई है। इस थोड़े समय में ही उसमें काफी सफलता मिली है और अधिकाधिक मिलती जारही है। प्रमाण लीजिए—

१ जनवरी से ३० जून तक	६ मास में जमा हुए—३९,४३४) रु०
१ जुलाई से ३० नवम्बर तक	५ मास में जमा हुए—९०,६९३) रु०
	११ मास में कुल रुपया जमा हुआ १,३०,१२७) रु०

कम्पनी की मज़बूती का बड़ा प्रमाण

उसने अपने बीमेदारों को आजीवन और मियादी बीमे पर
१८) तथा १४) रुपया प्रतिवर्ष बोनस दिया है।
और हिस्सेदारों को कई वर्ष से ९) प्रतिशत मुनाफ़ा दे रही है।

विशेष ब्यौरा जानने के लिए लिखिए या मिलिए

श्रीचन्द दौनेरिया, मैनेजिंग डायरेक्टर
स्वदेशी बीमा कम्पनी लि०, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

संग्रह करने योग्य ग्रन्थ

मानव

[श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल का कविता-संग्रह]

काका सा० कालेलकर के शब्दों में यह हरएक मानव के लिए प्यार से पढ़ने की और उसपर अपना जीवन कसकर देखने की चीज़ है । सुन्दर छपाई, बढ़िया काग़ज़, मू० दस आने ।

दो फूल

श्रीमती सत्यवती मलिक के इस कहानी–संग्रह की समालोचना करते हुए 'जीवन-साहित्य' (नवम्बर) में लिखा है, "ये कहानियाँ हिन्दी-संसार में एक नयी प्रणाली, एक नया दृष्टिकोण उपस्थित करती हैं । इनमें एक ऐसी खासियत है जो बहुत कम रचनाओं में देखी जाती है। इस संग्रह की सभी कहानियाँ सुन्दर, कलापूर्ण और सरस हैं ।" मू० १)

उर्दू हिन्दी कोश

(संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण)

इस अत्यन्त उपयोगी कोश में उर्दू और उर्दू में काम आनेवाले अरबी, फारसी, तुर्की, इब्रानी, पोर्तुगीज आदि भाषाओं के लगभग साढ़े ग्यारह हज़ार शब्दों का सरल हिन्दी में अनेक पर्यायवाची शब्द देकर अर्थ किया गया है और यह भी बतलाया गया है कि प्रत्येक शब्द किस भाषा का है, साथ ही लिंग, विशेषण, अव्यय आदि भी बतलाये हैं । मुहाविरों और क़ानूनी शब्दों का भी संग्रह किया गया है । अब की बार पहले से एक हज़ार शब्द अधिक दिये गये हैं । मूल्य वही २।।) ढाई रुपया ।

नीति-विज्ञान

[ले० श्रीगोवर्द्धनलाल एम० ए० बी० एल०]

नीति, सदाचार या धर्म की वैज्ञानिक आलोचना । हिन्दी में अपने विषय का सबसे पहला ग्रंथ । सदाचार की उत्पत्ति, उसका विकास, धर्म और ईश्वर से उसका सम्बन्ध, धर्मों के द्वारा किये गये अत्याचारों का इतिहास, धर्म और मज़हब आदि बातों पर अपूर्व प्रकाश । लेखक की बरसों की समस्या का फल । विद्वानों द्वारा अतिशय प्रशंसित । मूल्य २) रुपया, राजसंस्करण का ३) रु०

अरबी काव्य-दर्शन

[ले० प्रो० महेशप्रसाद आलिम-फ़ाज़िल]

अरबी भाषा के काव्य-साहित्य में से नीति, युद्ध, शृंगार, वैराग्य आदि की सूक्तियों को चुनकर इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है । एक-एक सूक्ति पढ़कर आप फड़क उठेंगे । मू० १)

नोट––अपने नज़दीक की दूकान से खरीदिए, नहीं तो फिर हम से मँगाइए । हमारा सूचीपत्र मँगा लीजिए ।

संचालक––हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई ४

उपरोक्त पुस्तक सस्ता साहित्य मण्डल की सब शाखाओं पर मिलती हैं।

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमैन—सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये

भुगतान पूँजी—१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का
बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहाँ हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए

एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजर:—

८, रॉयल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

या

बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को ।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४॥)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १॥)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ॥)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १॥)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १॥)

बाल-साहित्य-माला

१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)

२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)

३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)

४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)

५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

दिल्ली में

सब प्रकार की उत्तम छपाई

और खास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से

किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं।

बाजारू कहानियों व गल्पों के [illegible] से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है ।

इसकी विशेषताएँ हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएँ ।

(२) अंतर्राष्ट्रीय व अंतर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद ।

(३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ ।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि 'कहानी' सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है ।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इंडियन पी० ई० एन—

'...इसमें जो कहानियाँ हैं, वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं ।...इस विशेषांक की कहानियाँ पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं...यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है... हिन्दी के प्रेमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये ।

श्री जैनेन्द्र—

'···विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं । उनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है...'

श्री सुदर्शन—

'···इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है ।...मैं आपको बधाई देता हूँ ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'···छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है । गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है ।...'

श्री उषादेवी मित्रा—

'····'कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है—अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना...'

श्री देवराज उपाध्याय—

'कथा-साहित्य संबंधी जितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है...'

श्री उदयशंकर भट्ट—

'···पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा...इस अंक की संपूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई ।'

श्री रवीन्द्र

'Cheap Sentimental कहानियों से मुझे वैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश हो गई...'

श्री पहाडी—

'...'कहानी' के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेंगीं ।'

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल तीन रु० है। एक प्रति का चार आना।

कृपया आज ही ३) मनीआर्डर से भेज दें : पुस्तकालय २।।) भेज सकते हैं ।

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट ।

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्डबक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

फोन नं० ६३२८

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
[illegible]
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमार
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

'हंस-परिवार' की अनुपम योजना के सदस्य बनिए

[१] भारतीय-पुस्तक-माला
- (क) कायाकल्प (३ भाग)
- (ख) स्नेह-यज्ञ [१-२]

[२] 'हंस' पुस्तकें
- (क) मा [भाग १-२]
- (ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग ३]
- (ग) सात इनक़लाबी इतवार [भाग १-२-३]

[३] गल्प-संसार-माला
१० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी-संग्रह ।

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
- (क) नया हिन्दी-साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रंथावली
- (क) शोभा : ले० इन्द्र वसावड़ा
- (ख) संजीवनी : ले० 'सोपान'
- (ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] : ले० सोपान

[६] जाग्रत-महिला-साहित्य
- (क) पिकनिक; लेखिका— कमलादेवी चौधरी
- (ख) पिया; लेखिका— उषादेवी मित्रा
- (ग) कौमुदी; लेखिका— शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
- (क) कँटीले तार [भाग १-२]
- (ख) जाई-जुई और ९ अन्य पुस्तकें

[८] 'हंस' मासिक १२ अंक

[९] 'कहानी' मासिक के १२ अंक और १।।) मूल्य की 'कोकिला' नामक पुस्तक भेंट ।

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता ह । पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों को मात्र २५ रु० में दें । इसमें हमें आज की महँगी के ज़माने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी, यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं : यह संस्था तो सेवा के लिए ही खड़ी है । इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम 'हंस-परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे ।

इस मूल्य में नि:शुल्क बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठसंख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर २।।) रु० में १००० पृष्ठ मिलते हैं । इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है । यह योजना बेजोड़ है । निस्सन्देह ।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है, इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा ।

[१] १२०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं । [४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों, कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह । १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे । [५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उपस्थित किया गया है । [६] महिलाओं के लिए उन्हींके दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न । ये आपके परिवार में पत्नी तथा माँ-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे । [७] 'आज की किताब' के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुलझाव रहेगा । अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे ।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग
कम्पनी लिमिटेड के
जूट कारपेट

अति सुन्दर और आकर्षक होने पर भी
मज़बूत तथा क़ीमत में भी बहुत सस्ते हैं ।

इसलिए
किसी भी प्रकार की सजावट के लिए
सब लोग जूट कारपेट को ही पसन्द करते हैं ।

मिलने का पताः—
सभी जूट कारपेट की दुकानों में
तथा
खन्ना इन्डस्ट्रीज, बनारस सिटी
नेशनल नॉवेल्टी स्टोर, कानपुर
जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग
और
बङ्गाल स्टोर्स, लिमिटेड

टेलीफोन नं० कलकत्ता ३१३३, नं० ८ ए चौरंगी प्लेस, कलकत्ता में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपकी इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं ।

एजेंसी के लिए निम्न पते पर लिखें :—

टेलीफोन नं० कलकत्ता ५६५ टेलीग्राम—जूट वीवर
बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

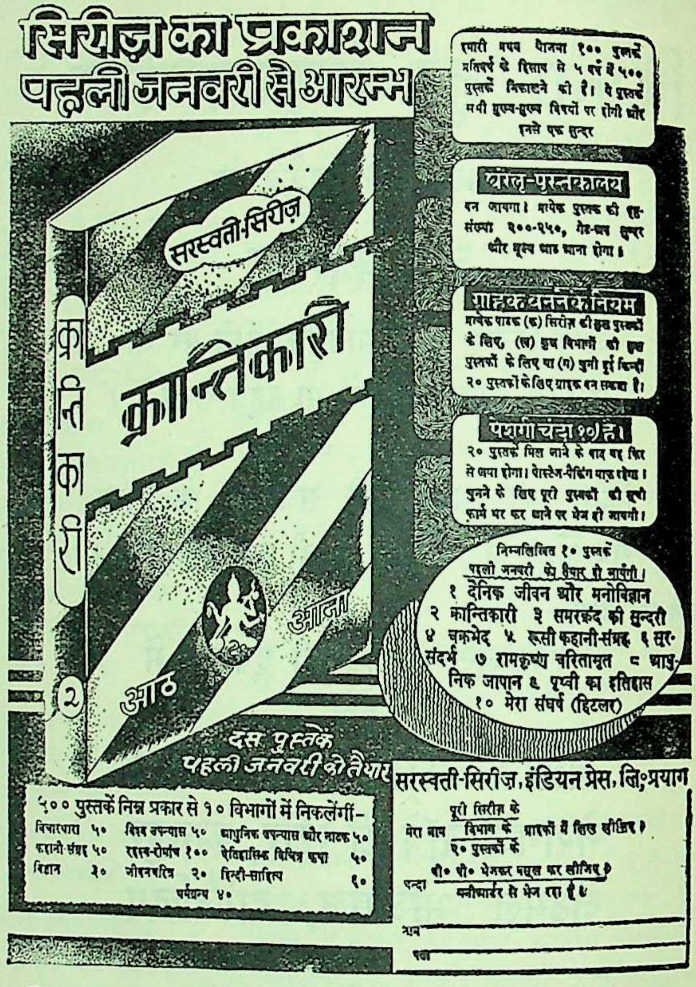

सिरीज़ का प्रकाशन पहली जनवरी से आरम्भ

हमारी प्रथम योजना १०० पुस्तकें प्रतिवर्ष के हिसाब से ५ वर्ष में ५०० पुस्तकें निकालने की है। ये पुस्तकें सभी मुख्य-मुख्य विषयों पर होंगी और इनसे एक सुन्दर

गृह-पुस्तकालय

बन जायगा। प्रत्येक पुस्तक की पृष्ठ-संख्या २००-२५०, गेट-अप सुन्दर और मूल्य आठ आना होगा।

ग्राहक बनने के नियम

प्रत्येक पाठक (क) सिरीज़ की कुल पुस्तकों के लिए, (ख) कुछ विभागों की कुल पुस्तकों के लिए या (ग) चुनी हुई किन्हीं २० पुस्तकों के लिए ग्राहक बन सकता है।

पेशगी चंदा १०) है।

२० पुस्तकें मिल जाने के बाद वह फिर से जमा होगा। पोस्टेज-पैकिंग माफ़ होगा। चुनने के लिए पूरी पुस्तकों की सूची फ़ार्म भर कर आने पर भेज दी जायगी।

निम्नलिखित १० पुस्तकें पहली जनवरी को तैयार हो जाएंगी।

१ दैनिक जीवन और मनोविज्ञान २ क्रान्तिकारी ३ समरकंद की सुन्दरी ४ चक्रभेद ५ रूसी कहानी-संग्रह ६ सूर-संदर्भ ७ रामकृष्ण चरितामृत ८ आधुनिक जापान ९ पृथ्वी का इतिहास १० मेरा संघर्ष (हिटलर)

दस पुस्तकें पहली जनवरी को तैयार

५०० पुस्तकें निम्न प्रकार से १० विभागों में निकलेंगी–

विचारधारा	५०	विश्व उपन्यास	५०	आधुनिक उपन्यास और नाटक	५०
कहानी-संग्रह	५०	रहस्य-रोमांच	१००	ऐतिहासिक विचित्र कथा	५०
विज्ञान	३०	जीवनचरित्र	२०	हिन्दी-साहित्य	६०
		पर्यटन	४०		

सरस्वती-सिरीज़, इंडियन प्रेस, लि; प्रयाग

मेरा नाम पूरी सिरीज़ के / विभाग के / २० पुस्तकों के ग्राहकों में लिख लीजिए।

चन्दा वी० पी० भेजकर वसूल कर लीजिए / मनीआर्डर से भेज रहा हूँ।

नाम ________________

पता ________________

जिस विषय तथा ढङ्ग की पुस्तकों की कमी से हमारा हिन्दी-साहित्य एवम् हिन्दी-भाषी समाज अपूर्ण था, उन्हीं पुस्तकों का प्रामाणिक तथा सर्व-सुलभ सिरीज़

प्रत्येक २००-२५० पृष्ठ की सुन्दर पुस्तक केवल आठ आने में

सरस्वती सिरीज़, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

जीवन-यात्रा में

विधवा का करुण क्रन्दन

पाषाण पुरुष-हृदय

पर कोई असर नहीं करता है।

क्योंकि

वह अपनी वृद्धावस्था के लिए अथवा अपनी प्रिय पत्नी के लिए या अपने प्यारे बच्चों के लिए संकट-समय का एकमात्र सहारा जीवन-बीमा नहीं कराता।

सहृदय होकर *बिड़ला-बन्धुओं द्वारा प्रबन्धित*

न्यू एशियाटिक में

बीमा कराइए

जिसने १६३४ ई० में १५,३८,५००
" १६३५ " २५,०१,०००
" १६३६ " ३०,६६,७५०
" १६३७ " ३५,५६,५००
" १६३८ " ४१,७४,७५०
" १६३६ " ५०,११,७६८

बीमे किये हैं

और जो प्रगतिशील बीमा कम्पनी है।

योग्य एजेण्टों की शहरों तथा कस्बों में आवश्यकता है।

न्यू एशियाटिक लाइफ इन्शुरेंस कम्पनी, लिमिटेड

कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ:—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), लाहौर, पटना,
संगठन कार्यालय—अर्नाकुलम (कोचीन), कानपुर, तंजोर, त्रिचनापल्ली, कोलम्बो,
इत्यादि।

आरती

[कलापूर्ण प्रगतिशील मासिक]

संपादक { सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

प्रत्येक हिन्दी-पाठक के लिए नियमित रूप से आरती पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि इसके हर अंक में आपको मिलेगा—

—विश्व की विविध प्रवृत्तियों का परिचय।
—भारतीय साहित्य की गति-विधि का निर्देश।
—साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर नवीनतम विचार।
--ओजपूर्ण कहानियाँ और कवितायें।
—संसार के महापुरुषों का उत्कृष्ट शब्द-चित्र।
--उत्पीड़ित मानवता की विद्रोहपूर्ण हुंकार।
--गम्भीर और प्रभावशाली टिप्पणियाँ।

ग्राहक बनकर और विज्ञापन देकर लाभ उठाइए

वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति ।।)

नमूने के लिए आठ आने का टिकट भेजिए।

आरती-मंदिर, पटना सिटी

माधुरी का विशेषांक

प्रकाशित हो गया। इसमें हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों और कवियों की कहानियाँ, कविताएँ, लेख और निबन्ध हैं। पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर। दो भावपूर्ण तिरंगे चित्र, कई व्यंग्य चित्र और अनेक सादे चित्र। मूल्य १।)

इसी संख्या से जो लोग ग्राहक बनेंगे, उनको यह विशेषांक मुफ्त ही मिलेगा। विशेषांक बहुत नहीं छपा है। देर से ग्राहक बननेवाले इसे न पा सकेंगे।

आज ही वार्षिक मूल्य ६।।) भेजकर ग्राहक बनिए

मैनेजर—**माधुरी, लखनऊ**

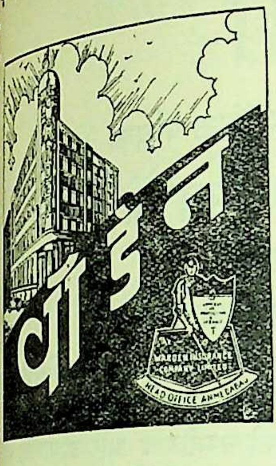

वॉर्डन

सबसे आगे क्यों है ?
इसलिए............कि
वह सबसे अधिक सहूलियतें
देती है ।

आइए, आज ही

वा र्ड न

इन्स्योरेन्स कं० के एजेन्ट बनने के लिये पत्र व्यवहार करें—

बालकृष्ण शाह एण्ड कं० इन्दौर सिटी

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—लेखक—पं० जगपति चतुर्वेदी। यह पुस्तक कई प्रसिद्ध अंग्रेज़ी, संस्कृत, ी तथा हिन्दी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना ा कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना न है। इस पुस्तक में अपने मन, वाणी आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर अधिकार करने के सहज सरल उपाय वताये गये हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। मूल्य १)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय। इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति के लिए अपने सर्वस्व निछावर करनेवाले वीर-वीरांगनाओं की कहानियों का संग्रह है। क कहानी बहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और ज़ोरदार भाषा में खी हुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनानेवाली हैं। सुन्दर कवर से न पुस्तक का मूल्य ।||)

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथितहृदय। इस पुस्तक में उन हानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती है। चरित्र-निर्माण के लिए इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ।||)

मैनेजर—**छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग**
कानपुर के सोल एजेंट-साहित्य निकेतन, कानपुर

कमला

(महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका)

नारी-जागरण की अग्रदूती

सम्पादक—बाबूराव विष्णु पराड़कर

प्रकाशक—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

नारी-जागरण का महान् सन्देश सुनानेवाली हिन्दी की प्रमुख सर्वोत्तम मासिक पत्रिका 'कमला' के प्रकाशन से हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में एक अजीब तहलका मच गया है। हरएक उसकी गम्भीरता और उपयोगिता का कायल हो रहा है। कुछ एक पत्रों ने तो यहाँतक कहा है कि आजतक हिन्दी में एक भी ऐसी पत्रिका नहीं निकली। यदि आपको विश्वास न हो तो एक प्रति मँगाकर देख लें। नमूने के लिए ।≡) का टिकट भेजिए। वार्षिक मूल्य केवल ४॥) रखा गया है। आज ही चन्दा भेजिए या नमूना मँगाइए।

मनेजर—**'कमला'**

गायघाट, बनारस।

उत्तरी भारत की एक देशी रियासत की चहारदिवारी के भीतर से निकलनेवाला और रियासती जनता के हकूकों के लिये लड़नेवाला हिन्दी का राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र

प्रजा-सेवक

वार्षिक मूल्य ४) (सम्पादक—अचलेश्वरप्रसाद शर्मा) एक प्रति -)॥

इस पत्र में आप प्रति सप्ताह भिन्न-भिन्न रियासतों के ताजे समाचार, लेख, कविताएँ, कहानियाँ, चित्र, कार्टून आदि पढ़िए।

इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और देश की राजनैतिक गति-विधि के भी पूरे समाचार पढ़िए।

चूँकि यह अखबार प्रत्येक रियासत में जाता है और अपनी निर्भीक नीति के कारण दिनों-दिन इसकी ग्राहक-संख्या बढ़ती जा रही है, इसलिए यह विज्ञापन का भी एक सर्वोत्तम साधन है।

विज्ञापन की दरों और अन्य जानकारी के लिए निम्न पते से पत्र-व्यवहार करें।

पता—

मैनेजर—प्रजा-सेवक कार्यालय, गांधी बाजार, जोधपुर।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
के नवीन प्रकाशन

* * *

बुद्ध-चरित—रचयिता पं. रामचन्द्र शुक्ल, मूल्य २॥) । महात्मा बुद्ध का उज्ज्वल चरित्र, सुन्दर व्रजभाषा काव्य, इस पुस्तक की महत्त्वपूर्ण भूमिका में व्रज, खड़ी और अवधी भाषाओं का व्याकरण-विवेचन किया गया है ।

सोवियत् भूमि—ले० महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, मूल्य ५) । इस के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए हिन्दी में अद्वितीय ग्रन्थ ।

मूर्तिकला—ले० राय कृष्णदास, मूल्य १।) भारतवर्ष की मूर्तिकला की आद्योपांत तात्विक व्याख्या ।

चित्रकला—ले० राय कृष्णदास, मूल्य १।) । चित्रकला पर अपने ढंग की सर्वोत्तम पुस्तक ।

बाल मनोविज्ञान—ले० पण्डित रामजीलाल शुक्ल, मूल्य १।) हिन्दी में बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी सर्वश्रेष्ठ रचना ।

मआसिरुल् उमरा, भाग १ और २—अनु० बाबू ब्रजरत्नदास, मूल्य ४) प्रति भाग । मुगल शासनकाल के सरदारों की सबसे प्रमाणिक जीवनियाँ ।

बिहार में हिन्दुस्तानी—ले० पण्डित चन्द्रवली पाण्डेय, मूल्य ।) बिहार प्रान्त में हिन्दी हिन्दुस्तानी समस्या की तात्विक व्याख्या ।

भाषा का प्रश्न—ले० पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय, मूल्य ।।।) । भाषा सम्बन्धी प्रश्नों का विस्तृत और विवेचनापूर्ण उत्तर ।

कचहरी की भाषा और लिपि—ले० पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय, मूल्य ।।।) । अदालतों की भाषा और लिपि का विस्तृत विवेचन ।

मध्यप्रदेश का इतिहास—ले० रायबहादुर डॉ० हीरालाल बी० ए०, मूल्य १।) । मध्यप्रदेश का सबसे प्रमाणिक और शोधपूर्ण इतिहास ।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास—ले० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, मूल्य ५) प्रवर्धित संस्करण । हिन्दी-साहित्य का सबसे अच्छा और विस्तृत इतिहास ।

राजरूपक—सम्पादक-महतावचन्द खारैड, मूल्य २) । डिगल भाषा का अत्युत्तम काव्य ।

नेपोलियन बोनापार्ट—ले० राधामोहन गोकुलजी, मूल्य १।) नैपोलियन की प्रमाणिक जीवनी ।

सिक्खों का उत्थान और पतन—ले० पण्डित नन्दकुमार देव, मूल्य १।) सिक्ख जाति के अभ्युदय और पतन का सर्वांगपूर्ण इतिहास ।

भीष्म पितामह—ले० गणपति जानकीराम दूबे, मूल्य १।) । भीष्म पितामह की जीवन-घटनाओं का बहुत ही मार्मिक और मनोरंजन वर्णन ।

आदर्श और यथार्थ—ले० बाबू पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव, मूल्य ।।।) काव्य में आदर्श और यथार्थवाद का बहुत स्पष्ट और ऐतिहासिक विवेचन ।

माला—ले० श्रीमती मालती शर्मा, मूल्य ।।) पन्द्रह उत्तमोत्तम कहानियों का संग्रह ।

त्रिवेणी—लेखक-पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, मूल्य १) । सूर, तुलसी और जायसी पर लेखक के आलोचनात्मक निवन्धों के विशिष्ट अंशों का संग्रह ।

मिलने के पते—

आपके नगर के प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेता अथवा **नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।**

क्या आपको हिन्दी की नयी प्रवृत्ति के संबन्ध में जानकारी है ?

सन् १९३७
सन् १९३८
सन् १९३९
सन् १९४०

में हिन्दी की नयी पुस्तकें छपी हैं ?

यदि आप यह जानना चाहते हैं और सचमुच अपने पुस्तकालय को
आप बहुत ही अपटूडेट देखना पसन्द करते हैं तथा
राष्ट्रभाषी हिन्दी की नयी से नयी प्रवृत्ति
से सान्निध्य रखना चाहते हैं
तो
हमारा नया सूचीपत्र मुफ्त मँगाकर देखने की कृपा कीजिए

हिन्दी में यह हमारा दावा रहा है कि हम नयी से नयी और
उत्तम से उत्तम हिन्दी पुस्तकें अपने स्टाक में रखते हैं
और अपने ग्राहकों को कभी भी किसी शिकायत
का अवसर नहीं आने देते

हमारी दो प्रवृत्तियां

आलोचना जगत् का एकमात्र मासिक **"साहित्य सन्देश"** सम्पादक—**श्री गुलाबराय एम० ए०** तथा **श्री महेन्द्र** वार्षिक—३ रु०, विद्यार्थियों से २ रु० मात्र	**समालोचनात्मक ग्रन्थों का प्रकाशन** हिन्दी-साहित्य का सुबोध इतिहास। साहित्य की झाँकी। सुमित्रानन्दन पन्त। गुप्तजी की कला, प्रसादजी की कला तथा साकेत : एक अध्ययन आदि।

पत्र-व्यवहार का पता—
साहित्यरत्न-भण्डार, ५३ ए सिविल लाइन, आगरा।

जीवन-सखा

—प्राकृतिक चिकित्सा का एक मात्र सचित्र मासिक पत्र—

यदि आप डाक्टर वैद्यों से परेशान हो गये हैं, दवा खाते-खाते घबरा गये हैं तो जीवन-सखा पढ़िए और अपना इलाज घर बैठे स्वयं कीजिए। जीवन-सखा पढ़कर कितने ही व्यक्तियों ने अपने को असाध्य रोगों से बिना दवा के मुक्त कर लिया। यदि आप अपने और अपने परिवार के स्वास्थ्य और सौन्दर्य में वृद्धि करना चाहते हैं तो जीवन-सखा को अपनाइए। इसके विषय हैं—आहार-शास्त्र, व्यायाम-विज्ञान, विश्राम-विज्ञान, आसन, प्राणायाम एवं मनोविज्ञान।

जीवन-सखा पाँच वर्ष से नियमित रूप से निकल रहा है। नमूने के लिए एक आने के टिकट के साथ आज ही लिखिए।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया।

प्रबन्धक—जीवन-सखा, इलाहाबाद।

किशोरों का एकमात्र सचित्र मासिक

किशोर

संपादक—रामदहिन मिश्र
गेट अप आकर्षक
वा० मू० ३)

सह०—हंसकुमार तिवारी
चित्रादि नयनाभिराम
नमूने की एक प्रति।)

बिहार, संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत और बरार तथा बड़ौदा के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत

इसमें प्रेरक कवितायें, देश और दुनिया का मुख उज्ज्वल करनेवाले अमर नर-वीरों की जीवन-गाथायें, किशोर-जीवन की रोज-दिन की समस्यायें, उनके कुछ प्रश्न और प्रश्नों के समाधान, साहसिक कथा-वार्ता, देश-विदेश की बात, साहित्य, शिल्प, समाज और राजनीति की सहज-सरल आवश्यक चर्चा, ज्ञान-विज्ञान, जीव-जंतु, इतिहास आदि सभी ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला जाता है। देश के भावी भाग्य-विधायकों के लिए 'किशोर' एक उपयोगी ज्ञान-विज्ञान का कोष ही नहीं, उज्ज्वल भविष्य के निर्माण का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

इसमें आचार्य काका कालेलकर, हरिऔधजी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, मुक्त, डॉक्टर रविप्रताप, श्री राधाकृष्ण, आरसी, नेपाली, श्री सोहनलाल द्विवेदी, स्वर्ण सहोदर, केसरी आदि की उपयोगी रचनायें छपती है।

भावी नागरिक-निर्माण की सद्प्रेरणा से अपने-अपने घरों, गाँवों, शिक्षण-संस्थाओं, पुस्तकालयों और वाचनालयों में 'किशोर' को स्थान दीजिए।

व्यवस्थापक—'किशोर', बाँकीपुर (पटना)

साधना

(साहित्यिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मासिक पत्रिका)

सम्पादक

श्री सत्येन्द्र, एम० ए०

महत्त्वपूर्ण लेख और सारगर्भित रचनाओं से सुसज्जित

परिचयाङ्क

१ फरवरी को प्रकाशित हो रहा है।

३० जनवरी तक ग्राहक बननेवालों को

विशेषांक मुफ्त

वार्षिक मूल्य २) : विशेषांक का मूल्य १)

मनीआर्डर भेजने का पता—

साधना-कार्यालय, बांके-विलास, आगरा

कैसी भी साहित्यिक, सामाजिक व स्कूल सम्बन्धी पुस्तक क्यों न हो हमसे मँगाइए।

अप्राप्त पुस्तक भी हमारे यहाँ आसानी से व उन्हीं दामों में मिल जाती है।

गयाप्रसाद एण्ड सन्स

पुस्तक-प्रकाशक व विक्रेता, आगरा

"तारा" छाप कागज की सभी क्वालिटी

प्रिन्टिंग बैंक कवर एन्टिक

रंगीन मनीला

सफेद लेजर

स्वदेशी सस्ती सुन्दर टिकाऊ

[ट्रेड-मार्क]

भारतीय कागज व्यवसाय में तारे की तरह चमक रही हैं

श्राप भी—
भारतीय, मूलधन, प्रबन्ध
श्रौर परिश्रम का ध्यान
रखते हुए सदा स्टार पेपर
मिल लिमिटेड का
कागज व्यवहार करें।

एजेन्ट—
बिहारीलाल मदनलाल
श्री महालक्ष्मी मारकेट,
इम्पीरियल बैंक के पास दिल्ली
फोन नं० ६९३५

नोट:—'जीवन-साहित्य' का यह अंक 'स्टार पेपर मिल' के बने २०×२६, २४ पौण्ड व्हाइट प्रिंटिंग पर छपा है।

सस्ता साहित्य मण्डल

का १९४० का प्रकाशन

चर्खासंघ के खादीभाण्डारों तथा प्रधान पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य

(सर्वोदय साहित्यमाला)

९१. **प्रेम में भगवान**—टॉल्स्टॉय की १७ चुनी हुई सदाचार और नीति की कहानियाँ। दाम ।।)

९२. **हमारे गाँव और किसान**—हमारे गाँवों और किसानों की हालत उनके दुखदर्द के हाल तथा उनको दूर करने के उपाय। दाम ।।)

९३. **ब्रह्मचर्य**—महात्माजी के ब्रह्मचर्य-संबंधी लेख। दाम ।।)

९४. **गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ**—

महात्मा गांधी की ७१ वीं वर्ष गांठ पर समर्पित तथा सर्वपल्ली राधाकृष्णन् द्वारा संपादित ग्रंथ। दाम २)

९५ **हिन्दुस्तान की समस्यायें**—

जवाहरलाल नेहरू के हिन्दुस्तान की समस्याओं पर लिखे विचारपूर्ण लेख। दाम १)

९६. **जीवन-संदेश**—

खलील जिब्रान की सुप्रसिद्ध पुस्तक The Prophet का अनुवाद। दाम ।।)

९७ **समन्वय**—

डॉ० भगवानदासजी के लेखों का संग्रह। दाम २)

९८. **समाजवाद : पूँजीवाद**—

प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक बर्नार्ड शॉ की प्रसिद्ध पुस्तक के आधार पर लिखी। दाम ।।।)

९९. **मेरी मुक्ति की कहानी**—

महर्षि टॉल्स्टॉय की आत्म-कहानी तथा उनके बचपन के संस्मरण। दाम ।।)

१००. **खादी-मीमांसा**—

खादी-विचारधारा को तर्क तथा आँकड़ों और उद्धरणों से समझानेवाली पुस्तक। दाम १।)

१०१. **बापू**—

महात्मा गांधी का अत्यंत निकट से कियाहुआ विश्लेषण, अनेक निजी तथा रोचक स्मरणीय प्रसंगों से पूर्ण—१३ सुन्दर चित्रों सहित; दाम ।।।) सजिल्द १।), हाथ का कागज की २)

१०२. **'विनोबा' और उनके विचार**—

प्रथम सत्याग्रही विनोबा के विचारों से यह समझेंगे कि सफल जीवन उसीका है जिसने जीवन जीना सीखा। दाम ।।)

(नवजीवन माला)

१. **राष्ट्रीय गायन**—चुनीहुई राष्ट्रीय स्वदेश-भक्तिपूर्ण कविताओं और गायनों का संग्रह—।)

२. **खादी का महत्त्व**—खादी के बारे में आप इससे सहज में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। लेखक : गुलजारीलाल नंदा; दाम ⁻)॥

(सामयिक साहित्य माला)

१. **युद्ध-संकट और भारत**

युद्ध के प्रति क्या रुख हो, इस विषय पर कांग्रेस और सरकार में जो चर्चा छिड़ी उसपर दियेगये वक्तव्यों और लेखों का संग्रह; दाम ।)

२. **सत्याग्रह कब, क्यों और कैसे ?**—

सत्याग्रह क्यों हो, कब हो और कैसे हो, इस पर महात्माजी के लेखों का यह संग्रह है। दाम ≡)

३. **राष्ट्रीय पंचायत**—

कांग्रेस की माँग—विधान-सभा (Constituent assembly) पर देश के नेताओं के विचार। दाम ।)

(बाल साहित्य माला)

१. **कथा-कहानी**—बालोपयोगी रोचक कहानियाँ दाम ≡)

२. **सीख की कहानियाँ (२ भाग)** बालोपयोगी शिक्षाप्रद कहानियाँ; प्रत्येक भाग का दाम ≡)

३. **शिवाजी चरित्र**—छत्रपति शिवाजी का बालोपयोगी जीवनचरित दाम ≡)

४. **देशप्रेम की कहानियाँ**—दुनिया के इतिहास में से चुनीहुई देशप्रेम की ५ कहानियाँ; दाम ≡)

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री, सस्तासाहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

* तमसो मा ज्योतिर्गमय *

जीवन साहित्य

: अंक ७

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

फरवरी : १९४१

२-२-४१
पुस्तकालय

सुनहला स्वप्न

आज हमारी संस्कृति पर कुछ खतरे दिखायी दे रहे हैं। इस संस्कृति का निर्माण सदियों में हुआ है और यहाँ आयी हुई विभिन्न जातियों ने उसमें अपना सहयोग दिया है। भारतवर्ष केवल भौगोलिक सीमाओं से ही एक राष्ट्र नहीं है, बल्कि मनोवैज्ञानिक कारणों से भी वह अखण्ड है। विभिन्न धर्मानुयायी होकर भी भारतीयों की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि एक ही-सी है हिन्दुओं और मुसलमानों का गुरुजनों के प्रति आचरण, पारिवारिक सम्बन्ध, वैवाहिक प्रथायें और कर्मानुसार जाति-पद्धति के आधार प्रायः एक ही हैं। साहित्य, संगीत और कला में दोनों जातियों का संसर्ग स्पष्ट झलक रहा है। कोई भी बाहरी आक्रमण हमारी इस मनोवैज्ञानिक एकात्मता को नष्ट नहीं कर सका। भारत के जन-समाज में अब भी वे झगड़े कहाँ हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न समुदायों के नेतृत्व का दम भरनेवाले शिक्षित-वर्ग सीटों के बटवारे के लिए उलझे हुए हैं?

आजादी के लिए हम उत्सुक हैं और यह बिल्कुल स्वाभाविक है, परन्तु उसकी पाने की चेष्टा के साथ-साथ हमें वह योग्यता भी अर्जन करनी चाहिए, जिससे हम उसकी रक्षा कर सकें। और उस योग्यता का मूल स्रोत तो व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुशासन ही है। उसके बिना स्वतन्त्रता एक सुनहला स्वप्न-भर है।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. **झाँकी** (कविता)—[श्री देवदत्त शास्त्री, एम. ए., एम. ओ. एल.] २७७
२. **पूना का साहित्यिक पर्व**— [श्री हरिभाऊ उपाध्याय] २७८
३. **चारित्र्य**— [श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला] २८३
४. **एक स्मृति**—[श्री महादेवी वर्मा, एम. ए.] २८५
५. **पठन-पाठन का प्रचार**— [श्री कालिदास कपूर, एम. ए. एल. टी.] २८७
६. **जीवन में 'साधन' और 'साध्य'**— [श्री प्रेमनारायण माथुर, एम. ए.] २९०
७. **सौष्ठव-पूजा**— [श्री प्रभाकर माचवे, एम. ए., साहित्यरत्न] २९४
८. **'कल्याणी' का अकल्याणी चित्रण**— [श्री नरोत्तमप्रसाद नागर] २९७
९. **सुन्दर समन्वय**—[श्री गणेशलाल शर्मा] ३००
१०. **हिन्दी के बाल-साहित्य पर एक दृष्टि**— [श्री सुमनेश : श्री सुधीर]
११. **बन्दी**—[श्री 'विकल']
१२. **प्रस्तुत प्रश्न**—
'अश्लीलता' किसे कहें ? (श्री किशोरलाल मश्रुवाला); **'साहित्य' और 'प्रगतिशील** (श्री नन्ददुलारे बाजपेयी एम. ए.)
१३. **नयी पुस्तकें**—
१४. **कसौटी पर**— 'साहित्यिकी'; 'जीवन-यात्रा'; 'आहुति', 'हमारा योग व उसके उद्दे दो नयी किताबें
१५. **सैर-सपाटा**—
१६. **कृष्ण-मन्दिर में**—
१७. **क्या और कैसे ?**—
आदर्श; हिन्दी पत्रकार-संघ; गागर में साग एक सुझाव; भूल-सुधार; स्व० श्री कृष्णकान्त मालवीय

'मण्डल' की ओर से

'मंडल'के एक प्रेमी पाठककी इच्छा है कि

श्री घनश्यामदास बिड़ला की 'बापू' पुस्तक

की ५० प्रतियाँ उन व्यक्तियों में मुफ्त बाँट दी जायें जो राष्ट्रीय विचार के हों पर गांधी-विचार धारा से मतभेद रखते हों। इसलिए जो व्यक्ति इस कोटि में आते हों, वे इस बात के प्रमाण के साथ =)॥। आने डाक के टिकट भेजें, उन्हें पुस्तक की एक प्रति बुकपोस्ट से पोस्टल सार्टीफिकेट लेकर मुफ्त में भेज दी जायगी।

पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि

हाथ-काग़ज के लिफ़ाफ़े, कार्ड व चिट्ठी लिखने के काग़ज

नये वर्ष से हमने अपने प्रधान-कार्यालय नई दिल्ली तथा इन्दौर-शाखा में विक्रयार्थ रखे हैं। हमने लेटरहैड आदि छापने का भी प्रबन्ध कर रखा है। जो सज्जन कोरे काग़ज या लिफ़ाफ़े चाहें तो वैसे और अपने नाम के छपाने चाहें तो वैसे हम उनको हमेशा उनकी रुचि और मर्ज़ी के अनुसार दे सकेंगे। नमूने के लिए।) के टिकट भेजिए।

सस्ता-साहित्य-मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

री, १९४१
ई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक सातवाँ

झाँकी

१
आज मा की श्री निराली !
नत वदन, तन धूसरित है
हत विभव, मन संकुचित है
तप्त कांचन-वल्लरी सी पड़ गयी है देह काली !
आज मा की श्री निराली !

२
अंग सब जकड़े कड़े हैं
रूक्ष कच बिखरे पड़े हैं
भाल पर संताप से है जल रही सिन्दूर-लाली !
आज मा की श्री निराली !

३
काँपता पल-पल उरस्थल
साँस लेता ज्यों मरुस्थल
कनक-कुण्डल की कथा क्या ? दीखते सब अंग खाली !
आज मा की श्री निराली !

४
दीनवसना, लुंठिता - सी
विह्वला - सी, कुंठिता - सी
नयन में अमृत झलकता, हाथ में है गरल-प्याली !
आज मा की श्री निराली !

देवदत्त

पूना का साहित्यिक पर्व

पूना का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन बड़ी आशंकाओं और सरगर्मियों के वातावरण में हुआ। पिछले दिनों स्वागत-समिति में जो झगड़े हुए उनसे तथा मनोनीत सभापति श्री सम्पूर्णानन्दजी के जेल जाने से यह आशंका भी होने लगी थी कि सम्मेलन हो सकेगा या नहीं—ख़ैर वह हो गया और कहना होगा कि काशी के मुक़ाबले ठीक-ठीक ढँग से ही हुआ। 'राष्ट्रभाषा की व्याख्या' इस सम्मेलन की चर्चा व सरगर्मी का प्रधान विषय था। इंदौर-सम्मेलन में जो व्याख्या तय पायी थी उसके एक अंश का बड़ा विरोध कुछ हल्कों में हो रहा था। 'जो नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती हो' इस व्याख्यांश में से वे 'उर्दू लिपि' को निकाल डालना या उर्दू के साथ अन्य जैसे कैथी, रोमन, आदि लिपियों का नाम जोड़ना चाहते थे। उनका आशय यह था कि 'उर्दू लिपि' राष्ट्रलिपि नहीं है, और उर्दू भाषा तथा कुछ प्रान्तीय सरकारें उसे हिन्दीभाषियों पर, इस व्याख्या के सहारे थोप देना चाहती हैं। उनका यह सन्देह व भय दूर करने के लिए वह अंश पूना-सम्मेलन में इस तरह बना दिया गया है 'जो साधारणतः राष्ट्रलिपि नागरी में व कहीं-कहीं फारसी लिपि में लिखी जाती हो'। इसके द्वारा नागरी को साफ़ शब्दों में 'राष्ट्रलिपि' माना गया है और 'फारसी' का प्रचलित व्यवहार भी स्वीकार किया गया है। यह परिवर्तन वस्तुस्थिति का निदर्शक भी है। इसलिए अब यह आशा की जा सकती है कि इस विवाद का और इसके कारण उत्पन्न हुई कटुता का अंत हो जायगा। इस प्रश्न पर स्वागताध्यक्ष श्री वैशम्पायन व अन्त में उनके मित्रों ने भी समझदारी, दूरदर्शिता तथा राष्ट्रीय भावना का अच्छा परिचय दिया। 'राष्ट्रभाषा' का लक्षण ठहराने में हमें यह न भूलना चाहिए कि वह किसी जाति, प्रान्त या संस्कृति-विशेष की भाषा नहीं है, बल्कि सारे भारत-राष्ट्र के लोक व राज-व्यवहार की भाषा है और उसका स्वरूप व्यापक तथा प्रकृति लचीली ही रह सकती है। हिन्दी को जिन प्रान्तवासियों ने जैसे गुजरात, महाराष्ट्र आदि ने राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया है वह इसी अर्थ में व इसी अर्थ से कि वह राष्ट्रीय भाषा है, न कि किसी जाति या प्रान्त विशेष की जातीय या प्रान्तीय भाषा। यदि उसके मूल में राष्ट्रीय-संगठन का भाव न रहे, या उनके फल-स्वरूप राष्ट्रीय-संगठन न होता दिखायी दे, तो उसे उन भाषियों के लिए अपने सिर पर बिठाना फजूल समझना चाहिए। अतएव उन प्रान्तभाषा-भाषियों से भी निवेदन है कि वे राष्ट्रभाषा के स्वरूप का निर्णय करते समय संकुचित, जातीय, प्रान्तीय भावनाओं का आश्रय न लें और लोहे के छड़ की तरह तना व अ-नम न बनें।

'लिपि-सुधार' के प्रश्न की चर्चा में भी सरगर्मी दीख पड़ी। 'ए' की जगह 'अे' व 'र' की जगह 'र्' चिन्ह मंजूर होने के अलावा तमाम संशोधन-सूचनायें पुनर्विचार के लिए फिर एक उपसमिति के सिपुर्द हुईं। पाँच वर्षों में, उपसमिति, स्थायी समिति, आदि के मन्थन-स्वरूप सिर्फ दो अक्षरों के सुधारों का स्वीकृत होना और शेष का फिर अनिश्चित भविष्य के हाथों में सौंप दिया जाना—यह दिखलाता था कि हम कितने मन्दगामी हैं और अपनी तथा समय की आवश्यकता के प्रति कितने शिथिल व निर्जीववत् हैं! बड़े व दूर-परिणामकारी निर्णय करने के साहस का अभाव इसमें दिखायी देता है। विज्ञान व सत्य की शोध हमें जहाँ ले जाती है, वहाँतक बेधड़क दौड़ जाने की एवं समय की आवश्यकतायें हमसे जो कुछ चाहती हैं, उसे दिल खोलकर एक साँस में दे डालने की हिम्मत का परिचय जबतक हम न देंगे, तबतक हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि, राष्ट्रभाषा का प्रचार व उसके द्वारा राष्ट्रीय एकता की सिद्धि बहुत कठिन रहेगी।

हैदराबाद रियासत का लड़कियों की पाठशालाओं में भी उर्दू पढ़ाना अनिवार्य कर देना, पंजाब सरकार का जन-गणना में पंजाबियों की मातृ-भाषा 'हिन्दुस्तानी' लिखने का सरक्युलर, बम्बई

र का उर्दू-शिक्षा-सम्बन्धी सरकुलर, इन कार्रवाइयों का सम्मेलन ने विरोध किया। शिक्षण का प्रान्तीय भाषा व राष्ट्र-व्यवहार का माध्यम 'हिन्दी' या 'हिन्दुस्तानी'—जो भी नाम रख लिया —यदि इस सिद्धान्त को हम सब भारतवासी मान लें, और हमें मान ही लेना चाहिए—तो फिर जैसी आपत्ति-योग्य कार्रवाइयाँ न होंगी; न होनी चाहिएँ। यदि हम सब भारतवासी यह न हों कि हमें राष्ट्र-भाषा के रूप में 'अँगरेज़ी' व राष्ट्र लिपि के तौर पर 'रोमन' स्वीकार करनी तो हमें पूर्वोक्त सिद्धान्त को अपनाये विना गति ही नहीं है। जहाँतक लिपि का सम्बन्ध है, नागरी में फारसी लिपि का टिकना स्वभावतः व विज्ञानतः ही अशक्य है। जैसे-जैसे हमारी वृत्ति वैज्ञानिक व शोधक होती जायगी, वैसे-वैसे खुद फारसी-लिपि के हामी भी अपने दुराग्रह को छोड़ते चले जायँगे। संसार में वही वस्तु टिकी रहेगी जो सत्य अथवा विज्ञान के अधिष्ठान रखेगी तथा समयोपयोगिता के अनुसार अपने स्वरूप, गति-विधि आदि में संशोधन, परिवर्द्धन करती रहेगी। सत्य या विज्ञान को पकड़ रखने से हमारी दिशा-भूल न होगी योगिता पर ध्यान रखने से हमारी गति अकुण्ठित व सार्थक होती रहेगी।

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष भी वैशम्पायन का भाषण सरस, ओजस्वी व राष्ट्र-प्रेम से सना सुन्दर हिंदी का नमूना था। उन्होंने राष्ट्र-भाषा के लिए 'हिन्दी' नाम का व शुद्ध स्वरूप का किया। हमारी संस्कृति की ओर संकेत किया और बताया कि 'हिन्दी' 'हिन्दुस्तानी' वास्तव में नहीं 'हिन्दू' व 'मुस्लिम' वर्चस्व का विवाद है। हिन्दुस्थान में सब हिन्दुस्थानियों का पंचायती हो या हिन्दुओं का राज्य हो—इन विचारधाराओं के भेद या लक्ष्य से इसका संबंध है। उनका मुझे ठीक मालूम होता है। मगर इसका उपाय या इलाज हमारी स्पिरिट या वृत्ति के में नहीं, व्यापकता में है। यदि हम नामों व व्याख्याओं के बन्धन या मर्यादा में घूमते रहेंगे, राष्ट्रीयता को असम्भव बना देंगे, यदि हम 'स्पिरिट' को पकड़े रहेंगे तो जीते रहेंगे व फूले-। अनीश्वरवादी 'बुद्ध' को अवतार मान लेना 'स्पिरिट' का काम व परिणाम था—ईश्वरवादी व ईसा को अवतार-श्रेणी में बिठाने की सूझ न आना या हिम्मत न होना नाम व व्याख्या में घूमते रहने का परिणाम हुआ। 'हिन्दू' शब्द व व्याख्या के चक्कर में पड़े रहेंगे, तो हिन्दू- और टुकड़े बनाने में सहायक होंगे; हिन्दू-स्पिरिट को बढ़ावेंगे—आर्यता का सन्देश अपने व उच्चवृत्तियों अर्थात् विशालता, उदारता, सर्व-संग्राहकता द्वारा देंगे तो हिन्दू या आर्य को फैला सकेंगे। शुद्ध वृत्ति का आग्रह व बाह्याचार के प्रति उदार व सहिष्णु बनने से ही सकेगा। वैशम्पायनजी ने हिन्दी विद्वानों व नेताओं के भाषणों को अविकल रूप में छापकर करने तथा आधुनिक नाट्यकला के अनुसार रंगमच के योग्य व आधुनिक राजनैतिक को लेकर लिखे गये नाटकों के अधिक लेखन की आवश्यकता बतायी।

सभापति श्री सम्पूर्णानन्दजी का भाषण हिन्दी-साहित्य व राष्ट्रभाषा-संबंधी मुख्य मुद्दों पर प्रकाश डालनेवाला व मार्ग दिखलानेवाला था। उन्होंने यही नहीं बताया कि किन-किन पर हिन्दी में ग्रन्थ लिखे जाने चाहिएँ—पर यह भी बताया कि ग्रन्थ किसलिए व किन के जाने चाहिएँ। कवियों को उन्होंने जगती के शोषितों और दलितों के क्रन्दन तथा अपमा- के क्लान्तकलेवर और कोटि-कोटि नंगे-भूखों के कंकालों की ओर संकेत करके सुझाया है कि कवि है, कला को जीवन से पृथक् करने की बात नहीं करता। सत्य केवल सुन्दर नहीं है, भी है। अतः सत्कवि की वाणी में तृप्ति, उत्पीड़ित मानवजाति को सन्देश व उपदेश मिलना आधुनिक कवि से उन्होंने 'आशा भरी दृढ़ता' न होने की शिकायत की है और उसे जताया लिए उसे तपस्या करनी पड़ेगी। व्यास व वाल्मीकि ने जिस मार्ग को प्रशस्त किया

है, उसपर त्याग, तपस्या व निर्भयता का ही पाथेय काम देता है। जो ऐसा कर सकता है वही समाज का पथ-प्रर्शक बन सकता है। उसी की वाणी अमर होगी।'

आपके भाषण का मुख्यांश पिछले अंक में आ ही चुका है। कुल मिलाकर यह भाषण बहुत नपा-तुला व काम की बातों से भरा हुआ था।

सम्मेलन के साथ दूसरी—जैसे इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र आदि की परिषदें करने का भी रिवाज पड़ गया है। मेरी राय में सम्मेलन के साथ एक राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन तथा साहित्य-कला प्रदर्शिनी के अलावा और कोई परिषद् न होनी चाहिए। थोड़े समय में इन परिषदों का काम इतनी भाग-दौड़ में करना पड़ता है कि इनके साथ न्याय किया नहीं कहा जा सकता। ये परिषदें स्वतन्त्र रूप से होनी चाहिएँ और उनमें उन-उन विषयों के प्रश्नों पर सांगोपांग चर्चा होनी चाहिए। सम्मेलन का अधिवेशन भी दो दिन में पूरा हो जाना चाहिए। हम लोग समय की बचत का व उसके सदुपयोग का पूरा खयाल रखें, तो दो दिन में अवश्य सब काम पूरा हो सकता है।

पूना में भी राष्ट्र-भाषा, साहित्य, विज्ञान, दर्शन व समाज-शास्त्र-संबंधी कुल ५ परिषदें और हुईं। राष्ट्र-भाषा व साहित्य-परिषदों में स्वागताध्यक्षों व सभापतियों के भाषण के अलावा और कार्रवाई को असफल प्रदर्शन ही कहना होगा। राष्ट्र-भाषा परिषद् में काका साहब कालेलकर का भाषण उनके विरोधियों के लिए भी विश्वासोत्पादक हुआ था। साहित्य-परिषद् के स्वागताध्यक्ष मराठी के प्रसिद्ध साहित्यिक प्राध्यापक (प्रोफेसर) फड़के ने मराठी-साहित्य के वैभव का परिचय बहुत संक्षेप में कराया। पूना-जैसे मराठी इतिहास व संस्कृति के प्रमुख केन्द्र में हि० सा० सम्मेलन कराने का एक हेतु आपने बताया—"**हिन्दी और मराठी भाषाओं में सहयोग सरल हो जाय और बढ़ता भी रहे।'''अलग-अलग प्रान्तों की भाषाओं में जितना अधिक सहकार्य होगा, उतनी ही सहानुभूति अधिक निर्माण होगी। इसलिए प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यिकों को चाहिए कि वे एकत्र होकर विचार-विनिमय करें। इस दृष्टि से एक सामान्य भारतीय अथवा राष्ट्रीय भाषा को मानना ही चाहिए और (इसके लिए) हिन्दी का स्वीकार ओर समर्थन करना अनिवार्य ही सिद्ध होगा। मराठी के अभिमानी सेवकों को हिन्दी-भाषा के साथ विरोध रखने का कोई कारण नहीं हो सकता। मराठी साहित्य के एक प्रतिनिधि के नाते मैं आपको मराठी साहित्यिकों की ओर से हार्दिक सहायता का आश्वासन देता हूँ।**"

सभापति श्री नंददुलारेजी का भाषण बहुत मार्मिक व साहित्यिक मनोविश्लेषणात्मक था। उसका आवश्यक अंश अन्यत्र दिया गया है। मौखिक भाषण में उन्होंने साहित्यिकों की व्यावहारिक समस्याओं की ओर भी संकेत किया था, जो कि विचार करने योग्य थीं। इस भाषण में यदि साहित्यिक समस्याओं पर व गतिविधियों पर व्यावहारिक आलोचनात्मक प्रकाश भी डाला जाता, तो यह भाषण सर्वांगपूर्ण हो जाता। वाजपेयी जी का भाषण जितना ही मनन-योग्य था, सभा-संचालन में वह उतने ही असफल सिद्ध हुए।

विज्ञान-परिषद् के स्वागताध्यक्ष प्रा० आपटे ने भौतिक विज्ञान परिषद् के दो कार्य बताये—एक नये उपलब्ध ज्ञान का विचार-विनिमय व दूसरा भौतिक ज्ञान का जनता में अधिकाधिक प्रचार। इसमें हिन्दुस्तान के भाषा-वैचित्र्य की बाधा का उल्लेख करते हुए स्वीय देशी भाषा को सर्वांग समर्थ बनाना। वैज्ञानिक पारिभाषिक संज्ञाओं के निर्माण के संबंध में आपने हिन्दी से सहयोग व मार्गदर्शन की अपेक्षा प्रकट की। महाराष्ट्र के गण्यमान्य विद्वानों के द्वारा हिन्दी के गौरव का यह समर्थन किस हिन्दी-प्रेमी को आल्हादित न करेगा?

विज्ञान-परिषद् के सभापति हिन्दी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर सत्यप्रकाश थे। उनके भाषण

ों ने वैज्ञानिक तथ्यों पर प्रकाश पाने की आशा की थी; किन्तु आपका अधिकांश भाषण भाषा-संबंधी विषयों के ऊहापोह में ही समाप्त होगया। यह भाषण हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के ति का भाषण जँचता था न कि वैज्ञानिक परिषद् के सभापति का। आपने अहिन्दी प्रान्तों में ों को उच्च शिक्षण का माध्यम बनाने पर ज़ोर दिया, जिसका काका कालेलकर ने अपने भाषण में किया। उच्च शिक्षण का माध्यम हिन्दी बनाने से प्रान्तीय भाषाओं का महत्त्व व स्थान नष्ट ता है—यह काका साहब की दलील थी। डा० सत्यप्रकाश ने हिन्दी-हिन्दुस्तानी शब्द का घोर किया व राष्ट्रभाषा का नाम 'हिन्दी' व रूप विशुद्ध रहने पर ज़ोर दिया। पारिभाषिक शब्दों में आपने अपनी नीति इस प्रकार घोषित की—

(१) हिन्दी और उर्दू के समझौते की आशा व्यर्थ है। हम चाहते हैं कि जिन्हे उर्दू से हो, वे उसके साहित्य की अभिवृद्धि करें। जिस प्रकार संसार की अन्य भाषाओं से हमारा नहीं, उसी प्रकार इससे भी विरोध नहीं है। पर हाँ, हम अपनी शक्ति हिन्दी की सेवा में , और इसकी हमें स्वतंत्रता होनी चाहिए।

(२) जितने शब्द संस्कृत और प्राकृत साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं उनका तदर्थ में व्यवहार चाहिए।

(३) ऐसे पाश्चात्य शब्द जो यूरोप की सब भाषाओं में समान हों, उनको सुविधा के लिए किया जा सकता है, यदि उनके कोई पर्याय हमारे यहाँ नहीं हैं। पर ये सब विशेष परिभाषाओं ही हैं, न कि साधारण शब्दों के लिए।

(४) अपनी भाषा की मर्यादा एवं रूपरेखा पर दृष्टि रखते हुए फारसी-अरबी शब्द (यदि नितांत आवश्यक हो तो) अपनाये जायँ, पर अपनाते समय भावना किसी के साथ न हो।

(५) कहाँ पर संस्कृत शब्द लेने चाहिएँ और कहाँ प्राकृत, अंग्रेज़ी, जर्मन या फारसी—इसके नियम नहीं बनाया जा सकता है। यह बात विशेषज्ञों और जनता दोनों के अधीन है। है कि कुछ शब्दों के हिन्दी, उर्दू और पाश्चात्य पर्याय तीनों ही प्रचलित होते रहें। जैसे (१) दूरबीन, टेलस्कोप। (२) वायुयान, हवाई जहाज़ और एयरोप्लेन (३) डाकखाना ऑफिस। (४) कोर्ट, कचहरी और न्यायालय। ये पर्याय अमर हो गये हैं, और ने इनको स्वीकार कर लिया है। एक के लिए कई पर्यायों के उपयोग होने में कोई हानि भी है।

(६) जबतक रासायनिक व्यापार पर हमारा अधिकार नहीं है, और जबतक हमारा राष्ट्र को यथोचित महत्त्व न देगा, तबतक व्यापारिक पदार्थों के लिए हमें विदेशी शब्द ही ग्रहण होंगे।

(७) पारिभाषिक शब्दों में जबतक कोई विशेष कारण न हो परिवर्तन न करना चाहिए।

(८) उच्च वैज्ञानिक साहित्य की अभिवृद्धि केवल राष्ट्रीय भाषा के साहित्य में की जानी । सब प्रान्तीयों को राष्ट्रभाषा की "विज्ञान-परिषद" का सदस्य होना चाहिए। वे बंगाली, मराठी, गुजराती और द्राविड़ सबके सहयोग से एक पारिभाषिक शब्दावली बनावें।

(९) जिस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज़ी विद्वान् जर्मन या फ्रेन्च के अध्ययन में गौरव नहीं समझते हैं, उसी प्रकार जिस किसी व्यक्ति को आवश्यक हो वह अपनी निकटवर्ती उर्दू भी अध्ययन करके उसके साहित्य से लाभ उठावे। इसमें न कोई द्वेष की बात है और न की।

दर्शन-परिषद् के स्वागताध्यक्ष प्रा० जलोटा ने अपने सरस भाषण के द्वारा यह साबित कर दिया कि दर्शन जैसे रूखे विषय में भी कैसे रस डाला जा सकता है ? आपने बताया कि "साहित्य का मूल कारण निरा मनोविनोद ही नहीं है। उसका एक प्रमुख कारण प्राकृतिक अनुभवों को योग्य रूप में प्रकट करना भी है। कथा-कहानियों, काव्य वा नाटक में चरित्र-चित्रण में, प्रकृति का साक्षात् कराना ही साहित्यिक की योग्यता का माप है। मूल प्रकृति वा साहित्यिक चित्रण में केवल यह भेद रहता है कि लेखक महाशय अपने अनुभव के अनुसार ही अपने दृष्टिकोण से प्रकृति के एक अंग-मात्र का ही चित्र-चित्रण कर पाते हैं और प्रकृति इतनी विशाल है कि उसके अगणित दृष्टिकोणों से अनेकानेक व्यक्ति आंशिक दर्शन करते हैं।' फिर आपने दिखाया कि जो साहित्य प्राकृतिक अनुभव की मूल शक्ति से वंचित हो जाता है वह निर्जीव व नीरस होजाता है। ऐसे शिथिल साहित्य की कला में कौशल तो अवश्य रहता है, किन्तु कर्म करने की शक्ति नहीं होती। साहित्य व दर्शन के क्षेत्रों के पारस्परिक संबंध के बारे में आपने बहुत यथार्थ कहा है—'साहित्य का प्रमुख कर्त्तव्य प्रकृति के अनुभव को अथवा प्रकृति के दर्शन को सर्वसाधारण के प्रमुख प्रकट करना है, और यही इष्ट है दर्शन-शास्त्र का। भेद केवल इतना ही है कि साहित्य की अनुभूति का प्रकाश सुलेखक की विवेकशक्ति के कौशल से कलामय, आकर्षक और सर्वप्रिय होता है, और दर्शन, विज्ञान आदि का आदर्श सर्वप्रियता नहीं केवल यथार्थता है।' इसी को मैं अपनी भाषा में कहूँ, तो साहित्य का ध्येय 'सुन्दर दर्शन' व दर्शन का ध्येय 'यथार्थ दर्शन' है। अन्त में आपने यह विश्वास प्रदर्शित किया कि यदि हमारी साहित्यिक दर्शन की जिज्ञासा, विज्ञान की अन्वेषणा, नीतिशास्त्र के नियमों और मनोविज्ञान के आधुनिक विचारों को साधन मात्र समझकर अपनी इष्टदेवी कला को सिद्ध करने का यत्न करें, तो निस्सन्देह वह साहित्य व दर्शन दोनों को ही प्रसिद्ध करने में सफल रहेंगे।

सभापति श्री गुलाबरायजी का भाषण बहुत विस्तृत था।

समाजशास्त्र परिषद् के स्वागताध्यक्ष प्रा० माटे ने मराठी साहित्य व विचारधाराओं तथा संस्थाओं के विकास का इतिहास बहुत अच्छे ढंग से बताया। आपकी राय में न्यायान्याय, समता-विषमता, व्यष्टि-समष्टिवाद, अर्थवाद इत्यादि सब बातें सापेक्ष्य हैं। उनमें स्थल-काल की विशेषता के अनुसार बार-बार बदल होगा और उनके अनुसार समाज में भी परिवर्तन होंगे। पर यदि इससे अधिक स्थिर और शाश्वत अधिष्ठान हम पा जायें, तो समाज-सुधार अधिक योग्य, हितप्रद और स्थायी होगा। यह अधिष्ठान है आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों का।

अन्त में आपने कहा—हमारे बीच भाषा की अर्गला है जो हमें दूर रखती है। हम एक राष्ट्र के पुत्र होकर भी एक दूसरे को समझ नहीं पाते। अब यह देखकर कि हिन्दी के द्वारा यह अलगाव और फुटकरपन दूर हो रहा है। मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है।"

सभापति श्री काका कालेलकर ने अपने मौखिक परन्तु सारगर्भ भाषण में बताया कि पहले समाज में वंशवाद था, बाद में वर्णवाद आया और अब वर्गवाद आ रहा है। अन्तःशुद्धि या अन्तः साधना से शून्य बाह्य साधनों को बढ़ाकर समाज में शान्ति व न्याय स्थापित करने का जो प्रयत्न हुआ उससे वर्गवाद व वर्तमान विग्रह का ज़ोर बढ़ा है। अतः हमें बाह्य साधनों को नहीं, बल्कि अन्तः साधना को दूसरे शब्दों में दैवी सम्पद को बढ़ाना है,

इन भिन्न-भिन्न परिषदों के कारण पूना ज्ञान-सत्र या साहित्यिक पर्व का केन्द्र बन गया था। पूज्य श्रद्धेय टण्डनजी के व्यक्तित्व ने कई कठिनाइयों को हलका करने में काफ़ी सहायता पहुँचायी। पूज्य काका सा० इस सम्मेलन में साक्षी-मात्र रहे। ऐसा लगता है, और यह बड़े दुःख व दुर्भाग्य की बात है, कि सम्मेलन काका सा० को खो रहा है। काका सा० के ये शब्द कि 'मैं अलग रहूँगा, परन्तु सम्मेलन

इ कदापि नहीं करूँगा' मेरे कानों में अबतक गूँज रहे हैं। क्या काका सा० के आलोचक इस प्रतिज्ञा से प्रभावित न होंगे ?

स्थायी समिति तथा खुले अधिवेशन में डा० बाबूरामजी व प्राध्यापक चतुर्वेदीजी की चोंचें के लिए चाहे मनोरंजक होती हों, पर दूसरों के लिए क्षोभजनक हो जाती थीं। सम्मेलन व इस क पर्व के परिणाम व लाभालाभ पर जब मैं विचार करता हूँ, तो मुझे कहना पड़ता है कि राष्ट्र को हमने इन आयोजनों के द्वारा दिया कम व उससे लिया अधिक। हिन्दी-भाषियों को होकर महाराष्ट्र के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। हिन्दी-भाषी व हिन्दी-साहित्य अपनी देन ों को चमत्कृत करने के गौरव का आनन्दलाभ कब करेंगे ?

हरिभाऊ उपाध्याय

चारित्र्य

[किशोरलाल घ० मश्रुवाला]

मानता आया हूँ कि पुरुषों की अपेक्षा यों को अपने शील की अधिक चिन्ता और आदर होता है और होना भी चाहिए। की लज्जा भी प्रकृति ने स्त्रियों के लिए कठोर और अधिक प्रकट बनायी है। नयी पीढ़ी की स्त्रियों के क्या विचार नहीं जानता; मगर एक पीढ़ी पहले स्त्रियों का यही विश्वास था कि पुरुष एक ही भ्रष्ट जीवन बितायें, मगर स्त्रियाँ हालत में नहीं बिता सकतीं।

अंशतः सत्य कहा जा सकता है। पुरुष बिना भी अपने आपको कई तरह से भ्रष्ट कता है, और इसीलिए यह नहीं कहा कि जो पुरुष स्त्रियों से दूर रहा हो चारी और संयमी भी ही होगा। हो सकता लड़कों को विषय-ज्ञान अज्ञान दशा दूसरे बिगड़े हुए लड़कों द्वारा होता हो, दूसरे प्राणियों को देखकर होता हो, इस विषय की चर्चा यहाँ करने का मेरा नहीं है। वह किसी भी तरह होता हो, यह निश्चय है कि स्त्री की अपेक्षा पुरुष चरित्र-रक्षा में अधिक कठिनाइयाँ हैं इसीलिए पुरुष की भ्रष्टता को स्त्रियाँ भी करती आयी हैं अथवा यह कहें कि पुरुष पर हमेशा ही शक करती रही हैं। उन्हें अपने चरित्र की रक्षा की अधिक चिन्ता और अभिमान भी रहता है।

इससे, जब भी कभी मैं यह सुनता हूँ कि अमुक स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध गन्दा है, तब मेरे लिए यह एक पहेली ही बनी रहती है कि उसमें स्त्री का पतन कैसे हुआ ? हिन्दू-शास्त्रों ने स्त्री को पुरुष की अपेक्षा अठगुनी कामासक्त बताया है और यह सूचित किया है कि स्त्री का शील रक्षण उसके चरित्र-बल के कारण नहीं, बल्कि समाज के अथवा पुरुष के अंकुशों और चौकीदारी के कारण होता है। महाभारत में तो यहाँ तक कहा है कि स्त्री की भोगेच्छा सदा अतृप्त रहती है। मुझे इन वचनों पर विश्वास नहीं हुआ। मुझे ऐसा प्रतीत नहीं हुआ कि पूर्ण अनुभव के बाद ये वाक्य लिखे गये हैं। मेरा अबतक यह मत कायम है कि अनुभव इसके विपरीत ही है।

इसलिए जब स्त्री के पतन की बात सुनता हूँ, तो मैं भौंचक् हो जाता हूँ। शायद यह मेरा भोलापन ही हो। यदि ऐसा कोई कहे कि किसी भी समाज में स्त्रियों का चरित्र अधिकांश पुरुषों से अधिक उच्च हो यह अपेक्षा ही मूर्खतापूर्ण है, तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। स्त्री और पुरुष दोनों एक ही वर्ग के प्राणी हैं। दोनों एक ही प्रकार की वासनाओं के पिण्ड और परिणाम हैं, इसलिए नब्बे फ़ीसदी पुरुषों के मन

में शील, पत्नीव्रत और ब्रह्मचर्य के प्रति जितना आदर होगा, उतना ही नब्बे फ़ीसदी स्त्रियों के मन में होगा; इससे कम तो नहीं हो सकता।

हो सकता है कि इस विचार में कुछ सत्यांश हो। लेकिन फिर भी मुझे हमेशा प्रतीत होता रहता है कि इसमें और भी कुछ विचार करने की गुंजायश रह जाती है, कुछ और स्पष्टीकरण होने की आवश्यकता रहती है।

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध मानस-शास्त्री डाक्टर मेक्डुगल ने इस विषय में जो स्पष्टीकरण किया है वह विचार करने लायक है। वह कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव अधिक भावुक होता है। उसके प्रति जो सहानुभूति प्रकट की जाती है, उसका असर पुरुष की अपेक्षा उसपर अधिक होता है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि स्त्री की भोगेच्छा सदा अतृप्त ही रहती है, बल्कि यह कि स्त्री आमतौर से हमेशा स्नेह की, ममत्त्व की भूखी होती है। इससे उसके प्रति जो दाक्षिण्य प्रकट किया जाता है उसकी प्रतिध्वनि उसके हृदय में इतने जोर से उठती है कि उसे अपने हिताहित का अधिक भान नहीं रहता है और अपने प्रति स्नेह या सहानुभूति प्रकट करनेवाले को संतुष्ट करने के लिए वह सब कुछ करने को तैयार हो जाती है। यह हो सकता है कि यह वेग क्षणिक हो। बाद में उसका उद्वेग पहले वेग से भी अधिक बलवान हो, लेकिन उस क्षण तो वह भान भूल जाती है। धूर्त पुरुष उसके इस स्वभाव का फ़ायदा उठाते हैं और उसे अपना शिकार बनाते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्रियाँ कभी पुरुषों से अधिक विकाराधीन या धूर्त नहीं होतीं, और पुरुष उसे फँसाने के बदले खुद उसके जाल में नहीं फँस जाता। ऐसे उदाहरण भी बहुत-से मिलते हैं। लेकिन मैं मानता हूँ अधिकतर पुरुष की तरफ़ से ही पहल होती है और स्त्री उसमें बह जाती है।

इसलिए, जो स्त्री यह चाहती है कि उसका शील कभी खतरे में न पड़े, उसको अधिक सावधान रहना चाहिए। सबसे पहले उसे यह खयाल या अभिमान बिल्कुल ही छोड़ देना चाहिए कि सतीधर्म और पातिव्रत के उसके संस्कार इतने जबरदस्त हैं कि उसके बल के प्रभाव से उसपर कोई भी पुरुष मोहित होगा ही नहीं। ये संस्कार महत्त्वपूर्ण हैं, उनका बल भी बहुत है। फिर भी उस बल को इतना महत्त्व न देना चाहिए कि वह यह विचार दृढ़ कर सके कि पुरुषों के सहवास और संसर्ग में कोई भी मर्यादा न हो तो भी वह सुरक्षित है। इससे यह मानते हुए भी कि इन संस्कारों का बल सबसे ज़बरदस्त है, स्थूल मर्यादाओं के पालन की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

पातिव्रत के संस्कार डालने का प्रयत्न शास्त्रों, शिक्षकों और गुरुजनों ने कितना भी किया हो तब भी यह सदैव याद रखना चाहिए कि पानी 'कुँएँ में होगा तभी घड़े में आवेगा।'

यदि पुरुष शील में ढीला होगा, तो स्त्री का उसमें दृढ़ होना संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा नहीं देखा जाता कि लड़की को भी पिता के गुण-दोष विरासत में न मिलते हों। इसलिए पुरुष की पत्नीव्रत सम्बन्धी भावना तीव्र होगी तो ही स्त्री की भावना भी तीव्र होगी; और चूंकि पुरुष में पत्नीव्रत की तीव्र भावना दिखायी नहीं देती, स्त्रियों को भी अपने पातिव्रत पर अधिक विश्वास नहीं रखना चाहिए।

जहाँ स्त्री के मन में अपने पति या कुटुम्ब से कुछ असंतोष हो, जहाँ उसका अनादर होता हो या उसके गुणों की क़द्र न होती हो, उसके प्रति कोई प्रत्यक्ष मधुर व्यवहार न दिखाया जाता हो, जहाँ आदर्श या स्वभाव-भेद का भान हो, वहाँ दूसरा पुरुष अपने आदर्श या स्वभाव के अधिक अनुकूल व्यवहार करनेवाला मिल जाय और ममता का तथा आदरयुक्त बर्ताव करे, सहानुभूति या अनुकूल भाव प्रकाशित करे, सिखावे, समझावे या उपयोगी बने, तो उसके प्रति मन में समभाव पैदा होना स्वाभाविक ही है। ऐसे पुरुष के दिल में यदि चोर छिपा हो अथवा बाद में आ घुसे तो पूर्वोक्त स्त्री-स्वभाव की भावनावशता

और कुशल बुद्धि का उसके द्वारा दुरुपयोग होने का अंदेशा है।

इसलिए राजमार्ग—सैकड़ों स्त्रियों के लिए निर्भयता से विचरने का मार्ग—तो यही है कि पुरुष कितना भी निष्कपट, सादा, स्नेहमय, शुद्ध आदर्शवादी क्यों न प्रतीत होता हो, उसके साथ एकान्त में न रहना, मज़ाक न करना, ख़ास कारण के बिना अंगस्पर्श न करना और न होने देना, अर्थात् कुल मिलाकर मर्यादायुक्त व्यवहार रखना चाहिए।

ऐसे स्त्री-पुरुष लाखों आदमियों में एक-दो ही हो सकते हैं, जो मर्यादा के बंधन में न रहते हुए भी पवित्र रहें। वे हमेशा यही अनुभव करते हैं कि उनकी उम्र पाँच साल की ही है और स्त्री-पुरुषों को माता या पिता अथवा लड़की या लड़के के सिवा और कुछ समझ ही नहीं सकते। ऐसे साधु-साध्वी पूज्य हैं, लेकिन जो कभी विकार का अनुभव कर चुके हों उन्हें तो—

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोऽन्वखंडित धीः पुमान् ।
ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ? ॥

—"ब्रह्मा से लेकर देव, दानव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि कोई भी सर्जन-कार्य में स्त्री-पुरुष माया से खंडित न हुआ हो ऐसा पुरुष ऋषि नारायण के के सिवा कौन है ?" भागवत् का यह वचन सच मानकर ही चलना चाहिए। जो बात पुरुष के लिए है वही स्त्री के लिए भी समझनी चाहिए।[1]

अनु०—शकुन्तला विशारदा

---

[1] लेखक की 'स्त्री-पुरुष मर्यादा' नामक गुजराती पुस्तक से।

एक स्मृति

[महादेवी वर्मा]

न जाने क्यों स्त्रियों की समस्याओं का ध्यान आते ही मेरे स्मृति-पट पर एक चित्र अपनी सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ अंकित हो जाता है !

हम लोग बदरीकेदार की यात्रा के बहाने उत्तराखण्ड की उन ऊँची-नीची पर्वतश्रेणियों से परिचित हो रहे थे जो कहीं हिम से गली चाँदी और कहीं चाँदनी के समान लगती थीं, कहीं धूप से सोने के तारों से बुने हुए दुकूल-सी फैली हुई थीं, कहीं गहरी हरीतिमा के कारण मरकत के प्रसाद की होड़ करती थीं और कहीं तृणहीनता के कारण से धूल के गगनचुम्बी बवंडर की भ्रान्ति उत्पन्न कर देती थीं।

सभ्यता के शेष चिन्हों से सौ मील दूर एक छोटे-से गाँव में से जाते-जाते, मार्ग के दक्षिण ओर पत्थर से छाये हुए, जीर्ण-शीर्ण घरौंदे-जैसे घर के कच्चे सहन में कुछ बालकों को पट्टी लिए पढ़ते देखकर मेरा मन कौतुक से भर गया और जिज्ञासा से पैर उसी ओर बढ़ने लगे। बच्चे कुछ अधनंगे, कुछ टाट के विचित्र पैंजामे पहने, कुछ कम्बल के टुकड़ों से गूँथे हुए और कुछ सूत के तार-तार होकर झूलनेवाले कुरते लटकाये शिव के बराती जैसे जान पड़ते थे। हमें देखकर कई आश्चर्य से मुहँ खोले हुए ही रह गये, कई हमें किसी दूसरे लोक का प्राणी समझकर हमारी प्रत्येक गतिविधि का यथार्थ निरीक्षण करने के लिए उठकर खड़े हो गये और कई सुई-डोरे का का अक्षय वरदान माँगने दौड़ पड़े। उनके बीच में जो स्त्री बैठी हुई थी उसे मैंने तब देखा जब वह उस कोलाहल को रोकने के लिए खड़ी हो गयी। उसकी गोद में ४–५ मास का दुधमुहाँ शिशु था, और शरीर पर अन्य पहाड़िनों-जैसा पतले, काले और खुर्दरे कम्बल का परिधान, जिसे उसने कमर पर लपेटकर किसी धातु के काँटे के सहारे कंधे पर अटका रखा था। तेल के अभाव में काली से भूरी हो जानेवाली, रूखी और हवा से उड़ती हुई लटें उस सुकोमल

मुख की प्रहरी सी लगती थीं। आकृति सौम्य, कृश, पर तपस्या से दीप्त थी।

उसे देखकर मेरे मन में प्रश्नों का समारोह विकास पाने लगा। वह बालकों को पढ़ा रही थी अतः उसे कोई निरक्षर पहाड़ी स्त्री समझ लेना कठिन था और हमारे यहाँ की कोई सुशिक्षित महिला इस जीवित समाधि को स्वीकार करेगी यह विचार कल्पनातीत था। पर उस प्रशान्त मुखमण्डल पर विस्मय का कोई भाव न होकर एक ऐसा परिचयभरा स्वागत था, जो विदेश में अपने सजातीय को देखकर सहज ही उमड़ आता है और तब उसका परिचय भी प्राप्त हुआ। वह और उसके पति दोनों ही युक्त-प्रान्तीय सुशिक्षित मिश्नरी हैं और उन पहाड़ी ग्रामों की अकथनीय दुर्दशा से आर्द्रहृदय होकर वहीं बस गये हैं। उनका वह बालक भी उन्हीं पहाड़ों के निष्करुण और कठोर अंक में भूमिष्ठ हुआ है। पति को तो आस-पास के ग्रामों की खोज-खबर रखना भी अच्छा लगता है, पर शिशु को लेकर दूर जाने में असमर्थ होने के कारण वह पड़ोसियों के बच्चों को ही पढ़ाती-लिखाती रही है, तब हृदय के किसी कोने में संस्कारजन्य उपेक्षा ने 'उँह, यह तो मिश्नरी है' में अपना परिचय दिया अवश्य, परन्तु मेरे जीवन का सम्पूर्ण सत्य उस स्त्रीत्व और मातृत्व की गरिमा के सामने आदर से प्रणत होगया। असंख्य विलास और सुख के साधनों से भरे-पूरे समाज से विदा लेकर वह २२ वर्ष की युवती, उन नंगे मलिन बालकों की माँ बनने वहाँ गयी है, जहाँ आभूषणों का नाम नहीं, वस्त्रों का पता नहीं और प्रसाधनों की पहुँच नहीं! उपचार के साधनों से अपरिचित उस लोक में यमराज ही वैद्य बन जाते हैं और मृत्यु ही व्याधि से छुटकारा देनेवाली ओषधि की भूमिका निभाती है। सूर्य को मस्तक पर चढ़ाकर भी 'दीप तले अँधेरा' की कहावत चरितार्थ करने के लिए हृदय में अज्ञान को पाले हुए उस देश में मूक पशु जैसे प्राणी ही मित्रता की भीख देते हैं और चीड़ और देवदार के वन ही सहचर होने का गर्व करते हैं। प्रकृति के रौद्र और सौम्य रूप को एक ही मूर्त्ति में प्रतिष्ठित करनेवाले उस पाषाणी मन्दिर में क्रन्दन के आरोह-अवरोह में मँडराती हुई वायु का तीर सा स्पर्श ही मनोरंजन की व्याख्या करता है और अचल हिम से ज्वालामयी किरणों की चंचलक्रीड़ा ही विनोद की संज्ञा पाती है।

इन्हीं दम घोट देनेवाले पत्थरों के बीच में, मसले फूल के समान जान पड़नेवाली जर्जरित कुटिया की छाया में बिना किसी सुविधा के उसने अपने इस शिशु को जन्म दिया है, जिसके नवनीत से अंग कम्बल के टुकड़े से छिल-छिल कर दृढ़ बन रहे हैं। उसने अपने सारे लौकिक सुख और अलौकिक स्वप्न मानो आँसुओं के साथ ही इस सभ्यता से चिरउपेक्षित वर्ग को संकल्प कर दिये हैं, तभी इन विषम परिस्थितियों में भी एक त्यागमय आनन्द उसके साधनापूत शरीर में पारे-सा दौड़ता जान पड़ता है।

मैंने जब अपने वर्ग में से उस महीयसी के लिए कोई उपमान ढूँढना चाहा, तो मेरा मन मानो खिलौनों की दुनिया में घूमकर खाली हाथ लौट आया। इसके साथ किसी को तौलना क्या सहज है?

हमारी जगमगाती सभायें, हमारे अलंकृत व्याख्यान और हमारे उलझे-सुलझे प्रस्तावों के गोरखधंधे क्या हमारी सहज आत्मविज्ञप्ति के साधनमात्र नहीं हैं? यह सत्य है कि हम पलित-केशों के वार्धक्य से लेकर कुञ्चित अलकोंवाली किशोरता तक समान रूप से प्रसाधित शृंगारित होकर केवल रमणीत्व की दुहाई देती हुई, इन्द्रधनुषी मेघाडम्बर के समान किसी भी सुधार-सभा को प्रदर्शिनी में बदल सकती हैं। पर क्या यह भी सत्य है कि हमारा हृदय उस दलित-पीड़ित मातृत्व के प्रति जागरूक है, जो हमारे चारों ओर फैली हुई जीवन की सुरीली लय को आर्तक्रन्दन में बदलता रहता है?

क्या हम जानती हैं कि जब हम अपने नेत्रों में विद्युत् भरने के लिये अंजन सार रही हैं, तब

स्त्रियों की आँखों की ज्योति जलते आँसुओं में बुझ रही है ? क्या हमने कभी अनुमान किया है कि जब हम अपने ओठों पर लालिमा सँवारते हैं, तब करोड़ों पीड़िताओं को अपने विवर्ण और सूखे ओठों को दाँतों से दबा-दबाकर हृदय के उठते हाहाकार को रोकना पड़ता है ? क्या हम जानते हैं कि जब हमारे कानों के लिए बिजली और तारामण्डल की समता करनेवाले कुण्डल बनाये जाते हैं, तब अगणित दुःखिनी माताओं के कानों में, भूखे बच्चों का क्रन्दन गला शीशा डाला रहता है ? क्या कभी रंग-बिरंगी साड़ियों और अमूल्य प्रसाधनों के लोक में बैठ कर हमने अनुभव किया है कि हम उन अभागिनियों की भी प्रतिनिधि हैं, जिनके पैरों में दुर्बलता के मारे खड़े होने की भी शक्ति नहीं है, जिनके हाथ काम करते-करते चलनी हो गये हैं, जिनके शरीर पर लज्जानिवारण के लिए पर्याप्त चिथड़ा भी नहीं है और जिनकी रूखी जटा बनी हुई लटों को कड़ुआ तेल तक देवदुर्लभ पदार्थ है ? अवश्य ही हमने यह जीवन नहीं देखा, नहीं समझा, नहीं अनुभव किया, इसी से बालकों के समान खिलौनों को ही हमने सब महत्त्व दे डाला, जिस दिन जीवन के महान् सत्य से हमारा साक्षात्कार हो जायगा, उस दिन उसी मिशनरी महिला के समान हम 'करनी' और 'कथनी' के बीच की खाई को अपनी सहज साधना से सम कर देंगी।

पठन-पाठन का प्रचार

[कालिदास कपूर]

भारतवर्ष में पुस्तकें नहीं बिकतीं, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की खपत बहुत कम है। यह शिकायत सभी प्रकाशकों की है, देशी भाषाओं के अंग्रेज़ी भाषा के। अंग्रेज़ी भाषा की पुस्तकों तथा समाचारपत्रों अथवा पत्रिकाओं की जो कुछ खपत है, उसका अधिकांश श्रेय यूरोपीय जनता को है जो अपना देश छोड़ यहाँ बसी हैं। जिन भारतवासियों पर अंग्रेज़ी सभ्यता का काफ़ी रंग चढ़ चुका है, उनमें भी पुस्तकें तथा समाचारपत्रों को ख़रीदकर पढ़ने का शौक है। परन्तु इसके आगे अंधकार-ही-अंधकार है। निरक्षरों की बात छोड़िए, उन्हें पढ़ने-पढ़ाने का शौक न हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, पढ़े-लिखे लोगों में भी पुस्तकें तथा समाचारपत्रों को ख़रीदकर पढ़ने का शौक बहुत-कम है। क्या कारण है ? पुस्तकों की कम बिक्री पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहुत कम होने के कारण ही नहीं है। यह ठीक है कि पुस्तक पढ़ने योग्य व्यक्तियों की संख्या प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। परन्तु भारत की जनसंख्या को देखते हुए पाँच प्रतिशत के हिसाब से भी पढ़ने-लिखने योग्य व्यक्तियों की बहुत-कुछ संख्या हो जाती है। संसार में १७ करोड़ व्यक्तियों की मातृभाषा अंग्रेज़ी है। लगभग इतने ही भारतवासी हिन्दी बोलते हैं। १७ करोड़ में लगभग एक करोड़ पढ़े-लिखे ज़रूर हैं। परन्तु पढ़ने योग्य सामग्री की बिक्री इस हिसाब से भी कम है। लगभग ७ करोड़ जापानियों के बीच प्रायः १२०० दैनिक पत्रों का प्रचार है। इन पत्रों में कोई ही ऐसा अभागा पत्र होगा, जिसकी-ग्राहक-संख्या ४००० से कम हो, ओसका मैनिची और असाही शिबुन नामक दैनिक पत्र तो अपनी-अपनी ग्राहक-संख्या लगभग बीस-बीस लाख से भी अधिक बताते हैं। मासिक पत्रिकाओं की संख्या लगभग ५००० होगी। इनमें राजनीति, विज्ञान जैसे गम्भीर विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या साठ-सत्तर हज़ार के ऊपर है। जन-संख्या के विचार से हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में जापान का सप्तांश पठन-पाठन होना चाहिए, दशांश नहीं, द्विदशांश भी नहीं। हिन्दी में 'कल्याण' को छोड़कर किसी भी मासिक पत्रिका की ग्राहक-संख्या ४००० से अधिक नहीं है। दैनिक हैं कितने, तिस

पर भी किसी की ग्राहक-संख्या ४००० से अधिक न होगी।

दूसरा बहाना निर्धनता का है। कहते हैं कि भारत बहुत निर्धन है। ठीक, व्यक्तिगत आमदनी का औसत इस देश में बहुत कम है। परन्तु, पाठक आश्चर्य करेंगे, व्यक्ति पीछे जितना सोना-चांदी अब भी इस देश में है इतना संयुक्तराज, इंग्लिस्तान और फ्रांस को छोड़कर शायद ही किसी अन्य देश में हो। फिर जो कुछ निर्धनता है, आमदनी का औसत जिन लोगों के कारण गिर जाता है, उनमें से अधिकांश वही हैं जो निरक्षर हैं। साक्षरों में निर्धनता नहीं है। उनके पास इतना अवश्य है कि खाने-पीने, कपड़े और किराये का खर्च निकालकर (यदि घर अपना न हो) दैनिक पत्र के लिए तो खर्च कर सकें। नहीं, पढ़ने की सामग्री आवश्यक चीज़ समझी नहीं जाती। पुस्तकों के लिए तभी खर्च किया जाता है जब लड़के-लड़की को पढ़ाना अनिवार्य समझा जाता है और पढ़ाना तभी अनिवार्य माना जाता है जब उससे लड़कों की रोज़ी का सहारा हो, लड़की को अच्छा वर मिल सके। लड़के को रोजी मिल गयी, लड़की को वर मिल गया, पढ़ना खतम, पुस्तकों से पिंड छुटा।

अन्य सभ्य देशों में रईस लोग पुस्तकों का आदर करते हैं। पढ़ें या न पढ़ें, परन्तु एक अपना पुस्तकालय जरूर रखेंगे। साहित्य का ज्ञान सामाजिक जीवन का एक अलंकार समझा जाता है। नहीं पढ़ते, तो बढ़िया जिल्द की पुस्तकों से अपना पुस्तकालय तो सजाये रखते हैं। यहां देखिए। अवध हिन्दी का केन्द्र है, कितने ताल्लुकेदार हैं, कितना रुपया, मोटरों पर खर्च करते हैं! उन्हें मोटर का शौक है, और अन्य शौक हैं, पुस्तकालय का शौक कितनों को है? क्यों नहीं, पुस्तकालय न रखने से उनकी इज्ज़त में बट्टा नहीं लगता? जनता के हृदय में, सभ्य समाज के हृदय में भी पुस्तकों के प्रति, पठन-पाठन के प्रति श्रद्धा नहीं है।

पढ़े-लिखे लोगों में भी पुस्तकों और पठन-पाठन के प्रति जो इतनी रुचि नहीं है उसके कुछ कारण तो समझ में आते हैं। उसमें से एक यह है कि देश में निरक्षरता इतनी अधिक है कि साक्षर भी उनमें डूब जाते हैं। सौ पीछे यदि पांच साक्षर भी हुए तो अपनी रुचि, अपने रहन-सहन को उन्हें पचानवे निरक्षरों के ही अनुकूल बनाना पड़ेगा। भारतीय समाज निरक्षर है, यहां अंधकार का राज्य है, इधर-उधर के दीपक टिम-टिमाते ही दिखायी देते हैं, उनसे प्रकाश नहीं होता। मालूम होता है अपनी स्थिति पर वे आप शर्मा रहे हैं।

दूसरा कारण यह मालूम होता है कि हमारे स्कूलों और पाठशालाओं में बालक-बालिकायें पढ़ायी जाती हैं, परीक्षा के लिए। पढ़ाई का उद्देश्य यह नहीं होता कि पाठकों के हृदय में पुस्तकों के प्रति रुचि पैदा हो, उन्हें पुस्तकों में आनन्द मिल सके। पढ़ाई का अर्थ रटाई मान लिया गया है, जिसका नतीजा यह होता है कि पढ़नेवालों के हृदय में पुस्तकों के प्रति घृणा हो जाती है। स्कूल अथवा कालेज छोड़कर वे पढ़ने का नाम नहीं लेते।

किस प्रकार पढ़ने-लिखने का शौक बढ़ाया जाय, पुस्तकों के प्रति रुचि पैदा की जाय, साहित्य का निर्माण और प्रचार हो, लेखकों और प्रकाशकों का पोषण हो?

पहली आवश्यक बात तो यह है कि हम, अपनी शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करें। पढ़ाने का काम याद कराना न हो, अपितु विषय में रुचि पैदा कराना हो। परीक्षा हो, परन्तु उसका उद्देश्य और ढंग दूसरा हो। शिक्षा के सम्बन्ध में हमें पूर्ण स्वराज्य प्राप्त है। विदेशी शासन का बहाना लेकर हम बैठे नहीं रह सकते। यदि सुधार न कर सकें, तो इसमें हमारा ही दोष है।

दूसरी बात प्रचार की है। चाय कोई बहुत अच्छी चीज़ नहीं है, तो भी प्रचार-कार्य ने चाय की खपत भारत में कितनी बढ़ा दी है, इसका पता इंडिया टी मार्केट एक्सपैंशन बोर्ड के आंकड़े देखने से चलता है। कोई ऐसा मेला नहीं होता जिसमें चाय न बटती हो। कोई ऐसा बड़ा स्टेशन नहीं

जिनमें चाय का गुण बतानेवाले विज्ञापन न दिखायी देते हों, कोई ऐसा बड़ा अखबार नहीं जिसमें चाय का विज्ञापन न हो। क्या हम इस प्रचार-कार्य की सफलता से पुस्तक प्रचार-साहित्य प्रचार के पुनीत कार्य के लिए सबक नहीं ले सकते?

प्रस्ताव यह है कि भारत के प्रकाशक, देशी भाषाओं के हों अथवा अंग्रेज़ी भाषा के, मिलकर एक केन्द्रीय संस्था बनायें, जिसका काम जनता में पठन-पाठन के प्रति रुचि पैदा करना हो। सरकार इस संस्था की आर्थिक और नैतिक सहायता करे, क्योंकि रुचि बढ़ने ही पर सयाने स्वयं पढ़ेंगे और अपने लड़के-लड़कियों को भी पढ़ने भेजेंगे। शिक्षा-प्रचार होगा तो उससे शासन-व्यवस्था उन्नत होगी, देश संगठित होगा, उसकी आर्थिक उन्नति भी होगी।

इस संस्था को बिना किसी कष्ट के आर्थिक सहायता मिल सकती है यदि यह नियम बना दिया जाय कि प्रत्येक प्रकाशक और लेखक को अपनी आमदनी का निश्चित अंश सेस (Cess) के रूप में इस संस्था को देना होगा। प्रकाशकों और लेखकों के वोट से इस संस्था का चुनाव हो और निष्पक्ष भाव से यह संस्था लोगों को पुस्तकें तथा समाचारपत्र खरीदने और बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करे। मेलों, सभा-भवनों, सिनेमा-घरों, स्टेशनों, मन्दिरों और मसजिदों सभी जगह ऐसे आकर्षक विज्ञापनों द्वारा जनता के हृदय में पुस्तकों के प्रति रुचि बढ़ायी जाय। सरकारी अफ़सर और राष्ट्रीय नेता अपने व्याख्यानों और बातचीत में पुस्तकों और पुस्तकालयों का प्रचार करें। जगह-जगह पुस्तकालय खोले जायँ और उनकी धूम मचायी जाय। मेलों और स्टेशनों पर लाउडस्पीकरों द्वारा दिन में कई बार नयी पुस्तकों और पत्रिकाओं की सूचना दी जाय और जनता को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। प्रत्येक मेले में पुस्तकों की प्रदर्शिनी हो, अन्य देशों में पुस्तक-प्रचार के आँकड़े दिखाये जायँ और दर्शक को समझाया जाय कि पुस्तक सोने-चाँदी के गहने से कम आदरणीय आभूषण नहीं हैं।

इस प्रचार-कार्य के साथ-साथ सस्ते और सरल साहित्य का निर्माण भी किया जाय और उसका प्रचार किया जाय। अभी साधारण जनता में भारी ग्रंथों के प्रति रुचि पैदा करना कठिन है। अभी उसके लिए हलकी पुस्तकों की आवश्यकता है, दाम कम हों, भाषा सरस हो, शैली मनोरंजक हो, विषय बोधगम्य हो।

इस सम्बन्ध में सरकारी सहयोग की और जो कुछ आवश्यकता हो, डाक-विभाग के सहयोग की बहुत आवश्यकता है। इस देश में पुस्तकों पर पोस्टेज बहुत ज्यादा है। वी० पी० करने में पुस्तक के दाम बढ़ जाते हैं। डाक-विभाग का नुक्सान न होगा और प्रचार-कार्य को सहायता मिलेगी यदि पुस्तकों पर पोस्टेज अखबारके बराबर कर दिया जाय। हमारी सरकारें करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष देहाती उन्नति और शिक्षा-प्रचार पर खर्च करती हैं। इस खर्च को सफल करना है। साधारण साक्षरों को साक्षर बनाये रखना है, उनकी साक्षरता को बढ़ाना है। यह सब काम पुस्तक-प्रचार से ही हो सकेगा। आशा है, देश के नेता डाक-विभाग का ध्यान इस सुधार की ओर आकृष्ट करेंगे।

प्रकाशकवृन्द, यह लेख खास तौर से आपके लिए लिखा गया है। इस ओर ध्यान दीजिए, संगठन कीजिए। इसमें आपका लाभ है, जनता का उपकार है, देश की सच्ची सेवा है।

जीवन में 'साधन' और 'साध्य'

[प्रेमनारायण माथुर]

जीवन में साधन और साध्य का क्या स्थान है, यह प्रश्न प्राय: उठाया जाता है। महात्मा गांधी जब यह कहते हैं कि हम सत्य और अहिंसा को अपना धर्म (Creed) समझें, केवल नीति नहीं, तो वह इसी प्रश्न के संबंध में अपने मत को प्रकट करते हैं। उनकी मान्यता यह है कि पवित्र साधन के बिना किसी पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है, इसकी कल्पना करना भ्रम है। यहाँ साधन और साध्य की तनिक विवेचना कर लेना उचित होगा। 'साधन' एक मार्ग है, निरंतर बहनेवाला। साधन, गति है, अनन्त। इसके विपरीत 'साध्य' एक निर्दिष्ट स्थान है, उसमें अनन्त की नहीं, अंत की कल्पना है। 'साध्य' गन्तव्य है गति नहीं। हम यह सोचते हैं कि 'साधन' के द्वारा 'साध्य' की प्राप्ति होती है, इसलिए जीवन में मुख्य स्थान 'साध्य' का और गौण स्थान 'साधन' का है। 'साधन' धर्म नहीं हो सकता, ऐसा कर्त्तव्य नहीं बन सकता जिसका त्याग करने की कल्पना ही न की जा सकती हो। वह तो नीति का ही रूप ले सकता है। जो धर्म बन गया, वह फिर साधन कहाँ रहा? वह तो 'साध्य' हुआ। साधन और साध्य के संबंध में उक्त विचार-धारा सामान्य रूप से स्वीकार की जाती है।

परन्तु इस प्रश्न पर विचार करने का एक-दूसरा दृष्टिकोण भी है। यह दृष्टिकोण जीवन में 'साधन' को प्रमुख स्थान देगा और 'साध्य' को गौण। इसका कारण स्पष्ट है। इस दृष्टिकोण को माननेवालों की दृष्टि में पहली चीज़ 'साधन' है, क्योंकि 'जीवन' का मेल 'साधन' ही से बैठ सकता है। 'साधन' ही निरन्तर बहनेवाला मार्ग है और जिसे हम 'साध्य' मानते हैं, वह तो उस मार्ग पर खड़े माइल स्टोन्स (Mile Stones) हैं, जिनका उस मार्ग से स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं। उनका महत्त्व तो केवल इतना ही है कि वे इस बात के द्योतक हैं कि हम कितना मार्ग तय कर चुके हैं। अगर मार्ग ही न हो, तो उन माइलस्टोन्स का अस्तित्व ही कहाँ रह जाता है? और मनुष्य का जीवन भी तो एक मार्ग के रूप में है। 'जीवन' का अर्थ ही निरन्तर चलना है। गति ही जीवन है। अत: जीवन में 'साधन' का क्या स्थान है, यह प्रश्न ही ग़लत है। जीवन तो स्वयं ही 'साधन' है! परन्तु साधन है किस बात का? उस स्थिति का जो इस 'साधन' का अन्त और उद्गम दोनों ही है, और इस वास्ते उससे परे है। उदाहरण से बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी—जीवन एक निरन्तर बहनेवाली नदी के समान है और 'सागर' वह स्थिति है जो नदी से बाहर है और जो नदी का अन्त है, तो उसका उद्गम भी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जीवन का अगर कोई 'साध्य' है तो वह जीवन के अन्तर्गत नहीं हो सकता, वह तो उसके परे ही होगा, क्योंकि जीवन तो स्वयं ही साधन है। इसके अन्तर्गत जो होगा वह 'साध्य' नहीं हो सकता, वे तो केवल वे माइल स्टोन्स होंगे जो हम अपने मार्ग पर कहाँ तक आगे बढ़ चुके हैं, इसका संकेत करते हैं। ऐसी दशा में जीवन साधन है और 'मुक्ति' जीवन का साध्य। अस्तु जीवन में असली चीज़ साधन है, उसका त्याग करके हम अपने सच्चे 'साध्य' तक नहीं पहुँच सकते। उपरोक्त विचार जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण के परिणाम हैं। इसको हम जीवन-संबंधी आध्यात्मिक दृष्टिकोण का नाम दे सकते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार के दृष्टिकोण को मानते हैं, उनके लिए जीवन में, संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं हो सकता जिसे वह लक्ष्यरूप मान लें। उनकी दृष्टि में तो इस संसार में किसी काम की उपयुक्तता तथा औचित्य का प्रमाण ही यह है कि उनकी पूर्ति अपने निर्दिष्ट मार्ग पर चलते रहने के सिलसिले में हो जाये। अगर इसके विपरीत किसी कार्य की पूर्ति के लिए उस निर्दिष्ट मार्ग अथवा साधन से हटने की आवश्यकता मालूम पड़े, तो वह कार्य ही अनुचित और त्याज्य है। उदाहरणार्थ यदि हम सत्य

और अहिंसा के सिद्धांतों के अनुसार आचरण अपना जीवन का धर्म मान लेते हैं, तो संसार में कौनसा कार्य हमारे करने योग्य है और कौनसा नहीं? किसके लिए हमको चिन्तित होना चाहिए और किसके लिए नहीं? ये प्रश्न ही नहीं उत्पन्न हो सकते। सत्य को लक्ष्य मानकर उसकी प्राप्ति के लिए अहिंसक मार्ग का अनुसरण करने के सिलसिले में जो सांसारिक कार्य पूरे हो जाते हैं, वे ही उचित हैं और अन्य का अनौचित्य भी इसी से स्पष्ट होजाता है। इसीलिए तो महात्मा गांधी ने कई बार इस बात को दुहराया है कि हिंसा से मिलनेवाली आज़ादी मेरे लिए त्याज्य है, मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता। हां, एक बात अवश्य है। इस प्रकार के विचार रखनेवाले लोगों का यह विश्वास और यह श्रद्धा होती है कि प्रत्यक योग्य सांसारिक लक्ष्य उन्हीं मार्ग पर चलने में अवश्य ही पूरा होगा। जब महात्मा गांधी यह कहते हैं कि हिंसा से मिली आज़ादी मेरे लिए त्याज्य है, तो उसका अर्थ यह है कि उनका यह विश्वास है कि वह आज़ादी जो वास्तव में लेने योग्य है, अवश्य सत्य और अहिंसा के मार्ग पर आरूढ़ रहते उनको प्राप्त हो सकेगी। आख़िर अच्छे और बुरे की पहिचान क्या है? जो चीज़ सत्य की ओर ले जानेवाली है वही अच्छी है, योग्य है, और जो हमको उससे परे हटानेवाली है, वही बुरी है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है, अर्थात् सत्य की प्राप्ति है। अतः इस जीवन में भी वही योग्य है, जो इस सत्य की प्राप्ति में हमारा सहायक हो। उपरोक्त विचार-धारा में 'साधन' और 'साध्य' की बहस रह नहीं जाती। यह इस [illegible] का प्रश्न नहीं है। यहाँ तो साधन ही साध्य है, उस मार्ग पर चलते रहना ही एकमात्र हमारा लक्ष्य है।

किन्तु जीवन के प्रति एक और दृष्टिकोण भी हो सकता है। यह दृष्टिकोण संसार की वास्तविकता और व्यावहारिकता को स्वीकार करता है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के सामने हर समय काल और परिस्थिति की उपयुक्तता और आवश्यकता का ध्यान रखते हुए एक-न-एक सांसारिक लक्ष्य अवश्य रहता है, जिसकी प्राप्ति के लिए वह बराबर प्रयत्नशील रहता है। जीवन के यही लक्ष्य उसके 'साध्य' होंगे। अब प्रश्न यह है कि अमुक 'साध्य' तक पहुँचने के लिए जो 'साधन' काम में लाये जायें, उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार की मर्यादा क़ायम रखना उचित है अथवा नहीं? इस दृष्टिकोण के अनुसार 'साधन' का निर्णय 'साध्य' का ध्यान रखकर ही किया जाना चाहिए। (The end justifies the means) अगर हमारा साध्य उत्तम है, तो उसके लिए जिन साधनों का भी प्रयोग करना हमें अनिवार्य मालूम पड़े उनका प्रयोग करना उचित होगा। यहाँ 'साध्य' और 'साधन' के सापेक्षिक महत्त्व का ध्यान रखना होगा। एक जितना महत्त्वपूर्ण होगा दूसरे का औचित्य अथवा अनौचित्य उसी हदतक पहले पर निर्भर रहेगा। इस बात को और अधिक स्पष्ट करने के पहिले 'पवित्र साधन' क्या है, इसपर कुछ विचार कर लेना उचित होगा।

पवित्रता का सम्बन्ध उससे है, जिसे हम रोज़मर्रा की भाषा में नैतिक कहते हैं। पवित्र साधन से हमारा तात्पर्य नैतिक साधन से होता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक? हम जानते हैं कि सत्य, प्रेम, सहानुभूति, ईमानदारी आदि गुणों की गिनती नैतिक गुणों में की जाती है। इनके विपरीत जितने भी गुण हैं, जैसे झूठ, रागद्वेष, हृदयहीनता और बेईमानी आदि, वे सब अनैतिक गुण माने जाते हैं। ऐसा क्यों है? अमुक गुण नैतिक और अमुक अनैतिक किस आधार पर माने जाते हैं? अगर हम बारीक और ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करें, तो मालूम होगा कि जो गुण अनुभव से सामाजिक हित और उसके लिए सामाजिक व्यवस्था को क़ायम रखने की दृष्टि से ज़रूरी जान पड़े उनको मनुष्य ने नीति का जामा पहनाया और जो सामाजिक

हित और उसके अनुरूप व्यवस्था के लिए बाधक मालूम पड़े उनको अनैतिक स्वीकार किया गया। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि अगर प्रत्येक मनुष्य दूसरे को धोखा देना, दूसरे से द्वेष का व्यवहार करना आरम्भ कर दे, तो हमारी सारी जीवन-व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न हो जायगी। अतः सामाजिक हित के लिए सामाजिक संगठन आवश्यक है और उस संगठन का सुचारु रूप से संचालन करने के लिए एक विशेष प्रकार का पारस्परिक व्यवहार ज़रूरी है और उस व्यवहार के अन्तर्गत आनेवाले गुणों को नैतिक गुणों का नाम दिया गया है। अस्तु, नैतिक और अनैतिक का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उनके पीछे सामाजिक उपयोगिता का दृष्टिकोण काम करता है। दूसरे शब्दों में अमुक गुण अच्छे इसीलिए माने जाते हैं कि साधारणतया वे सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हैं। इसका यह भी अर्थ निकलता है कि विशेष समय पर ऐसी विशेष परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं कि जब वे ही गुण समाज और व्यक्ति के सच्चे हित-साधन की दृष्टि से बाधक साबित हों। ऐसी परिस्थिति में वह व्यक्ति जो नैतिक गुणों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार नहीं करता, वरन् उसका महत्त्व इसी कारण से मानता है कि उनके पीछे सामाजिक हित की दृष्टि छिपी हुई है, किसी भी सामाजिक हित (जिसके अंतर्गत सच्चा व्यक्तिगत हित आ जाता है) के मुक़ाबले में अमुक नैतिक कहे जानेवाले गुणों को कदापि महत्त्व न देगा। कुछ उदाहरण लेने से हमारा तात्पर्य अधिक स्पष्ट हो सकेगा। किसी व्यक्ति को सफर करते समय रास्ते में एक चोर मिलता है। वह उस चोर से अपनी सम्पत्ति की रक्षा करना चाहता है; और ऐसा करने के लिए उसे झूठ बोलना पड़ता है। अब प्रश्न यह है कि ऐसी परिस्थिति में उस व्यक्ति का झूठ बोलना, जो साधारणतया अनैतिक गुण है, उचित था अथवा अनुचित? चूँकि झूठ बोलने का हेतु यहाँ उत्तम था, हम उस व्यक्ति का झूठ बोलना उचित समझेंगे। परन्तु यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि यदि उस सम्पत्ति की रक्षा करने के विचार से वह व्यक्ति उस चोर की हत्या कर डालता है तो उसकी हत्या करना उचित होगा अथवा अनुचित? संभवतः हमें कहना पड़ेगा कि चोर की हत्या करना अनुचित होगा! क्योंकि समाज की निगाह में साधारणतया मनुष्य की अपेक्षा धन का मूल्य कुछ न होगा। किन्तु इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य अपनी आत्म-रक्षा के लिए किसी दूसरे मनुष्य की हत्या कर डालता है, तो वह अवश्य ही क्षम्य होगा। उपरोक्त उदाहरणों का यह अर्थ निकलता है कि जीवन में 'साधन' और 'साध्य' के स्थान का निर्णय करते समय निर्णय करनेवाले को दोनों का उसकी दृष्टि में क्या सापेक्षिक महत्त्व है, यह तौलना होगा। यही तो कारण है कि यदि एक मनुष्य चार पैसे के लिए अपने किसी साथी से ज़रा झगड़ता भी है, तो हम उसे उचित नहीं समझते, जबकि दस हज़ार रुपये के लिए उसके विरुद्ध मुक़दमा चलाना भी हम बुरा नहीं मानते।

यहाँ दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं। कौन-सा 'साध्य' उत्तम है और कौन-सा हीन, इसका निर्णय कैसे हो? क्या नैतिक साधनों के द्वारा ही हम अपने 'साध्य' की प्राप्ति नहीं कर सकते?

पहले उत्तम साध्य के प्रश्न को हम लेंगे। इस संबंध में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि इस बात को स्वीकार करते हुए भी कि क्या उत्तम है और क्या हीन, इस बारे में सचाई के साथ मतभेद हो सकता है, साधारणतया यह तय करना कठिन न होगा कि वास्तव में क्या सही है?

दूसरा प्रश्न साधन का है। नैतिक साधनों द्वारा हम अपने 'साध्य' तक पहुँच सकते हैं अथवा नहीं, इस प्रश्न के साथ एक मर्यादा जो प्रत्येक व्यवहारिक मनुष्य के सामने रहती है, उसे हमें भूलना नहीं चाहिए। वह मर्यादा है समय की। हम अमुक साध्य की पूर्ति अमुक समय में ही करना आवश्यक समझते हैं, उसकी पूर्ति के लिए अनन्त तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। अतः आपके

संभावना उत्पन्न हो सकती है कि
विरोधी आपकी सचाई और ईमानदारी
करके आपको अपने निश्चित लक्ष्य
निश्चित समय में पहुँचने से रोक सके।
परिस्थिति में एक व्यावहारिक व्यक्ति के
अपनी लक्ष्य-पूर्ति के लिए कुछ ऐसे
अपनाने पड़ सकते हैं जो सामान्यतया
माने जाते। अपने लक्ष्य की पूर्ति के
सीमा तक आपको साधन के सम्बन्ध
(Compromise) करना पड़ेगा।
ऐसा करने से इन्कार किया और अपने
पर आप अटल रहे, तो संसार आपके
और आपके सिद्धान्तों की सराहना कर
किन्तु वह आपको अपने पथ-प्रदर्शन के
माने में कभी स्वीकार नहीं करेगा
किसी देश अथवा वर्ग ने इस प्रकार
दृष्टि को अपनाया, तो उसकी शक्ति
ही रहेगी। इस प्रकार का 'साधन'
दो परिस्थितियों में विशेष रूप
—जब हमारे विरोधी के विरोध
उसके आर्थिक और वर्गहित हैं, अथवा
विरोधी कोई ऐसा व्यक्ति है जिसकी
एक सामाजिक प्राणी (Social
में नहीं की जा सकती है अर्थात् जिसमें
की दृष्टि का सर्वथा अभाव है।
में राजनैतिक और आर्थिक संघर्ष
और दूसरी श्रेणी में ऐसे व्यक्ति जैसे
आदि।

'साधन' और 'साध्य' के विषय में जो कुछ हमने उक्त पंक्तियों में लिखा है, उसके आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण जीवन के प्रति वास्तविकता और व्यावहारिकता लिये हुए है, जो एक अनिश्चित समय तक अपनी लक्ष्य-पूर्ति के लिए प्रतीक्षा करने की कल्पना नहीं करता, उसके सामने मानव दुर्बलताओं के कारण ऐसे अवसर आ सकते हैं कि जब अपने 'साध्य' की पूर्ति के लिए उसे अपने उचित माने जानेवाले साधनों के साथ किसी हद तक समझौता करना पड़े। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार के समझौते की एक मर्यादा रखनी होगी। किन्तु इस मर्यादा को शब्द-बद्ध करना कठिन है। पिछले दिनों हिंसा-अहिंसा के प्रश्न को लेकर श्री राजगोपालाचार्य और महात्मा गांधी में जो मतभेद उत्पन्न हुआ था, उसका आधार यही दृष्टि-भेद था। एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ के नाते श्री राजाजी ने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए 'साधन' के (अहिंसा) प्रश्न पर समझौता करना ज़रूरी समझा। हाँ, श्री राजाजी की यह मान्यता कि इस प्रकार उन्होंने अहिंसा-सिद्धान्त के साथ किसी प्रकार समझौता (Compromise) नहीं किया है, अवश्य ही भ्रममूलक है। आदर्श और व्यवहार का सम्पूर्ण समन्वय आज तक कोई नहीं कर सका है और भविष्य में यह सम्भव हो सकेगा, ऐसी आशा रखना निराधार जान पड़ता है।

बड़े-बड़े उलट-फेर हो गये हैं और फिर भी दिन-पर-दिन यह अधिक-से-अधिक प्रत्यक्ष
है कि यह तो जो कुछ होनेवाला है, उसकी भूमिका है। हम महज़ एक बड़ी व्यापक
उसकी भयंकर बरबादियों को ही नहीं देख रहे हैं, बल्कि आज हम एक बड़े महत्त्वपूर्ण
में रह रहे हैं—जो आजतक के इतिहास के पन्नों मे आये हुए युग से भी अधिक व्यापक
है। इस युद्ध का परिणाम कुछ भी हो, यह इन्क़िलाब तो अपना काम पूरा करेगा ही।
होता रहेगा, तबतक इस धरती पर शांति और संतुलन कायम नहीं हो सकता।
यह समझ लेना चाहिए कि पुरानी दुनिया बीत चुकी है। जो लोग उसके सबसे ज्यादा
उनका कोई अस्तित्व नहीं रहा। वे तो उस गये-गुज़रे कल के प्रेतमात्र बनकर
दुनिया']

—जवाहरलाल नेहरू—

सौष्ठव-पूजा

[प्रभाकर माचवे]

['कलावंत' या 'कलाकार' शब्द तो आपने सुना होगा ? उसका मतलब भी आप जानते होंगे। इस लफ्ज़ के अन्दर राजा रविवर्मा और अभी स्वर्गवासी हुए शारदाचरण उकील से लगाकर अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी के परदे रँगनेवाले मियाँ और हरएक शहर में एकाध मिल जानेवाले 'फैंसी साइन-बोर्ड पेंटर' जैसे चित्रकार; उस्ताद अब्दुलरहीम खाँ और विष्णु दिगम्बर पलुस्कर से लगाकर 'राधेश्याम' के सहारे उपजीविका चलानेवाले हमारे गँवई पाँडेजी और बेड़नी मुन्नी; ताजमहल का नक्शा जिस इटालियन शिल्पी ने बनाया था वह और हमारे मोतीराम मिस्त्री वग़ैरह ललित-कलाओं के सब उपा-सक आते हैं। वैसे ही अगर अफ़लातून का ललित-कला और उपयोगी कलावाला वर्गीकरण मान्य किया जाये, तो गाँव के मोची, छीपा, नाई, कुम्हार, लुहार, सुनार वग़ैरह सभी सज्जन एक-न-एक प्रकार से कलाकार साबित हो सकते हैं।

एक शहर-निवासी बाबू कलाकान्त जिन्हें चित्रकला का काफ़ी ज्ञान है, संगीत के जो मर्मज्ञ हैं, स्थापत्य का जिनका गहरा अध्ययन है, काव्य के जो विशेषज्ञ हैं और गाँवों की हालत से जो बिलकुल नावाकिफ़ हैं, हाल ही में अमरीका में जो अपने चित्रों की प्रदर्शिनी पर नाम कमाकर स्वदेश लौटे हैं, जिन्होंने ज्यादा नहीं तो डेढ़ सौ से ऊपर कला-संबंधी और सौंदर्य-शास्त्र-विषयक किताबें अंग्रेज़ी हिन्दी वग़ैरह में पढ़ी होंगी; और जो सुवक्ता और चित्रपट की समालोचनाएँ आदि लिखने में भी माहिर हैं, पहली बार गाँव पर जाते हैं।

१. पेण्टर मियाँ, २. कथावाचक पाँडेजी, ३. मुन्नी बेड़नी, ४. मोचीराम, ५. रंगीले छीपा, ६. ननकुआ नाई, ७. कल्लू कुम्हार ८. हरिजी हलवाई, ९. लछमन दर्जी, १०. सीताराम सुनार से उनका जो वार्तालाप होता है, वह नीचे दिया गया है।]

पेण्टर मियाँ

[पेंटर मियाँ का सील खाया हुआ मकान। लकड़ी और टीन के बड़े-छोटे टुकड़े। ब्लैक जपान, डिब्बे के और रँग, 'बुरुस', बेलतेल। भींत पर जर्जर पर्दा जिसपर किसी ऊँची हवेली के पास भद्दे और बेडौल किस्म के बगीचे और फव्वारों का चित्र भड़कीले रंगों में बना है। दूसरी तरफ़ काँच के फ्रेम में जड़ा हुआ, धनीराम सेठ की भावशून्य साँवली मुद्रा का एक 'एनलार्जमेंट' (जिसके गले में पन्ने के हार और सोने की चेन वग़ैरह बनायी गयी है, सिर पर पगड़ी और माथे पर चंदन)। मियाँ दुबले-पतले आदमी हैं। खस-खसी दाढ़ी। पान से रँगे दाँत। रंगीन जाकिट। मगर आँखों और चेहरे से हिंदू जान पड़ते हैं। धोती पहिनते हैं। हाँ, एक बात मार्के की—खद्दर पहिनते हैं। बाबू कलाकांत अपना पेंट-सूट डाटे, गले में सस्ती जपानी मफलर, सिगरेट पीते जाते हैं और बातें करते जाते हैं।]

क०—ये ऐसे इस पेशे को करते हुए आपको कै बरस हुए ?

मियाँ०—पीढ़ी-दर-पीढ़ी पेशा है जनाब। आप क्या समझते हैं ? मेरे वालिद ने नवाबसाहब की वो आला दर्जे की 'फोटू' बनायी थी कि मूँछों का हर-एक बाल गिन लो।

क०—अच्छा ? मगर यह पर्दा जो भींत पर टँग रहा है—

मियाँ०—हाँ, जी उसका एक किस्सा है। हमारे यहाँ एक बार रामलीलावाली एक कंपनी आयी थी। उसने हमसे पर्दा बनवाने की बात ठहरायी। रुपै की बात चली तो मैंने कहा—अजी दाम-वाम का क्या, वो तो आजायेंगे बाद में भी। काम देखिए। वो ख़ूबसूरत बगीचे की सीनरी बनेगी कि बस तबीयत फड़क उठे। फिर साहब, मैं उनकी भलमनसाहत पर भरोसा करके हमारे पड़ौसी पाँडेजी से पाँच रुपै उधार लेकर शहर गया। रँग लाया। छः दिन मिहनत

है। और रामलीलावाले महंत बाबा कहते क्या कि देखो भई, डेढ रुपै में पर्दा दे दो, तो ले है। बोलो साब, डेढ़ रुपै का तो कपड़ा ही होगा। सौदा नहीं पटा। और रह गयी । फिर मैं जनाब, एक बार बंबई गया था। की कुछ न पूछो। जिन्दगी में वह भी खासी खायी। अब शहर का नाम नहीं लूँगा । वहाँ सीखा 'फोटूगिराफी' और यह पर्दा बड़े फोटू खींचनेवालों के लिए काम देता बड़ा नफीज़ है। आप भी शौक़ करना होंगे—

क०—ना, ना, ना। फोटो-वोटो तो मैं अपने नहीं करता। मगर आपको यह खयाल नहीं कि इस बगीचे में जो फव्वारा आपने है वह महल से भी बड़ा बन गया ह ?

मि०—देखिए, नुक्स मत निकालिए। नुक्स बैठेंगे तो खुदा की इस कारीगरी में भी नुक्स हैं? '**रंगी को नारंगी कहते और को खोया। चलती को गाडी कहते कबिरा रोया।**' अब बोलिए, मुझ हुनर आदमी की, जिसने ज़िन्दगी रंग-में बिता दी, उसकी यह हालत हो फटे कि आप जैसे कोई मेहर्बां आ भी जायें मोढ़ा बैठने को नहीं दे पाऊँ। छिः छिः.........

क०—हाँ, सचमुच, यह बुरी हालत है। खुदा की, कहाँ, इनसान की ही कारीगरी का नमूना है! और बुरा मत मानना, यों ही एक बात-की-बात कही थी। यह जो एनलार्जमेंट बन रहा है, उसके कितने देंगे तुमको?—

मि०—'इनलारिजमिट'? बडा मक्खीचूस है धनीराम सेठ! आप क्या समझे हैं?— किस्सर कागज, 'फिरेम', काँच-वाँच, लिखा लेंगे और घर पर बगीचे के नाम अलग से लिखा लेंगे और इस में, हाथ पर बड़ी मुश्किल से, पाँच आयें, तो समझ लो, ग़नीमत! सो भी सेठानी-साहिबा की मुझपर ज़रा खास मेहर्बानी रहती है, इसलिए।

क०—त्च्, त्च्, त्च्। 'ओनली फाइव रुपीज़ फार ए पोर्ट्रेट!!' विलायतों में एक-एक तस्वीर ये पैसेवाले लोग बाज़ी लगाकर हजारों गिन्नियों से खरीदते हैं।

मि०—आप भी कहाँ की बात छेड़ते हैं? कहाँ विलायत, कहाँ हम!

क०—तो इस तरह तुम्हारी माहवार आमदनी क्या हो जाती होगी?

मि०—क्या महावार साहब? ये तो ऐसा है कि 'सीज़न-सीज़न' की बात है। कभी मेला-शेला हो गया तो फोटू-फोटू के ही आठ-दस रुपये एक रोज़ में हो जायँ। और नहीं तो महीने-के-महीने अठन्नी पर गुज़र जाते हैं। कभी तो फाक़ाकशी कर लेते हैं। हर रोज़ रोज़ेवाले को ईद कैसी? अब ये बारिश के दिन हैं तो छात्रियों पर नाम-लिखाई के कुछ मिल जायेंगे।

क०—छत्रियों पर नाम क्या दाम पर लिखते हो?

मि०—अंग्रेज़ी हरूफ दो पैसे, उर्दू-हिंदी एक पैसा। सुन्हेरी हरूफ डेढ़ पैसा—

क०—बड़ी कम है जी तुम्हारी आमदनी! शहरों में सिनेमा के इश्तिहार रँगनेवालों को बीस-पच्चीस माहवार मिल जाता है और सिनेमा के आर्ट-डाइरेक्टर की तनख्वाह तो बीस-पच्चीस-सौ होती है।

मि०—कहाँ की बात कर रहे हैं आप? गरीबी में किसी कदर गुज़र कर लेते हैं। यहाँ तो यही राग है।

कथावाचक पांडेजी

[कलाकांतजी यह सोचकर गाँव में आये थे कि गाँववालों में कुछ आर्ट-सेंस (कला-दृष्टि) जाग्रत की जाय। उन्हें सौंदर्य के आध्यात्मिक आदर्शों पर कुछ सूचनायें दी जायें। उन्हें बताया जाय कि कला में प्रतीकों का क्या महत्व है, बिंबवाद क्या चिड़िया है, क्यूबिज्म किसे कहते हैं?…

…और वहाँ चित्रकला के नाम पर उन्होंने पाया सेठ का एनलार्जमेंट, छत्री पर सुनहरे नाम, पर्दे पर वह बँगला जो पेंटर मियाँ को इस ज़िन्दगी में नसीब नहीं होगा, और उसकी सालाना आय उतनी, जितना कलावंत महाशय को प्रदर्शिनी में बताये गये उनके एक स्केच की क़ीमत हो—पाँच-छः-सौ रुपये !

कलाकांतजी दुःखित हृदय से आगे बढ़े। और उन्हें रास्ते में ही एक जगह बड़ी मंडली जुड़ी हुई मिल गयी। कथावाचक पांडेजी हारमोनियम पर 'राधेश्याम-विरचित रामाइन' गा रहे थे। बहतर शब्द तो यही होगा कि चीख रहे थे। पाँडेजी स्थूलकाय सज्जन थे, माथे पर चंदन, गले में रुद्राक्ष। बाक़ायदा बालों में माँग-पट्टी पड़ी थीं, चुटिया भी उसी में झलक रही थी, अलग। कलाकान्तजी को संगीत और काव्य का वह एक साथ अपमान सहन नहीं हुआ और उन्होंने सोचा कि कथावाचकजी को खूब आड़े हाथों लिया जाय। इतने में कथा समाप्त हो चुकी थी। आरती घूम रही थी। पैसे गिर रहे थे। श्रोतागण अपनी-अपनी जूतियों की खोज में व्यस्त, धीरे-धीरे, बिखर रहे थे। कलाकान्तजी पांडेजी के पास पहुँचते हैं और डाँटना शुरू करते हैं—]

'आपने यह सब क्या काव्य की हत्या करनी शुरू की है ? भोले-भाले लोगों की धर्मभावना को उकसाकर, उसे एक्स्प्लॉइट करके…

पाँडेजी बड़ी देरतक इस बकवास की ओर ध्यान ही नहीं देते। फिर किंचित घृणा से—'आर्या जान पड़ते हैं आप ! कहिए, बाबूसाहब, आपको क्यों प्रभु-नाम रुचेगा ? अंग्रेज़ी जो पढ़ गये। ये दो-दिन के लड़के…'

क०—'नहीं, मैं सचमुच जानना चाहता हूँ कि आप क्या रामायण पर कोई बहतर पुस्तक नहीं पढ़ सकते ? वाल्मीकि रामायण, रामचरित मानस, साकेत—

पाँ०—क्या बोले साहब आप—शाकेत या भाकेत, यह सब क्या बलाय है ?

क०—नहीं, मैं समझता हूँ कि राधेश्यामी तर्ज पर जो रामायण आप पढ़ते हैं वह एकदम काव्यगुणों से हीन—

पाँ०—क्या कहा आपने ? फिर कभी न कहिए। आप क्या समझे हैं अपने आपको ? यह रामाइन पंडित द्वारकानाथ के पुत्र और गुरुवर पंडित घासीराम के शिष्य (अपनी ओर इशारा करके) शालिग्राम शास्त्री, सकल वेदशास्त्रपारंगत ने बनायी है। आपने इसे क्या मजाख समझ रक्खा है ?

क०—अच्छा तो यह आप ही काव्यकृति है ? खैर। वह जानें दीजिए। और यह गाना जो आप गाते हैं इसमें अपने कंठ पर और श्रोताजनों की श्रवणेंद्रियों पर आप अत्याचार नहीं कर रहे हैं ? ऐसा आपको नहीं लगता ? और यह हारमोनियम-बाजा तो विदेशी वाद्य है, क्या इससे अच्छे ओर वाद्य अपने यहीं नहीं हैं ? जिनके द्वारा अपनी संस्कृति…

पाँ०—कथाबाचकी हमारे यहाँ पुश्तैनी चलती है। यह बिद्या अब तुम कल-के-छोकड़े मुझे सिखाने आये हो। मैंने कहा न घोर कलजुग आगया। हाँ, तो रामबोला (अपने शिष्य की ओर संकेत करके) क्या आरती में दक्षिणा केवल छप्पन पैसा ही निकली ? बस श्रद्धा इस दुनिया से उठ चली। पतितपावन ! तूही पार लगा—!! राम-राम !!

[क्रमशः

यहाँ के कई फ़ौजी अफ़सर ग़दर के ज़माने में लूटपाट करके हिन्दुस्तान से कुछ जवाहरात ले गये थे।…पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह चीज़ उनके वंश में चली आती थी। अब गांधीजी यहाँ आये तो उनके कुटुम्ब की स्त्रियाँ आयीं और वह हार जो पुखराज का था गांधीजी के चरणों में रखकर कहने लगीं—हमारे पुरखे लूटकर भारत से यह लाये थे, बहुत दिन रखा, अब आपके तप का बखान सुना तो रख की हिम्मत नहीं होती। गांधीजी ने हार को स्वीकार कर लिया। तप का ही यह चमत्कार है, व भेड़िये के मुहँ में गया ग्रास वापस नहीं आता।

'डायरी के कुछ पन्ने'] —घनश्यामदास बिड़ला— [सस्ता साहित्य मण्डल

'कल्याणी' का अकल्याणी चित्रण

[नरोत्तमप्रसाद नागर]

जैनेंद्रकुमारजी के नये उपन्यास का नाम है 'कल्याणी'। दो सौ से कुछ ऊपर इसमें पृष्ठ हैं, तीन खण्डों में यह बँटा हुआ है। इन खण्डों को उपन्यास का सिर, पेट और पाँव कह सकते हैं। सिर का नाम दिया गया है प्रारम्भिक। यह केवल एक पृष्ठ का है। इसमें एक वकील साहब का वकीली भाषा में परिचय दिया गया है। उपन्यास के पात्रों ने जो कुछ किया, किस तरह वे आगे बढ़े, उनकी विभिन्न क्रियाओं को खुद वकील साहब ने किस रूप में देखा, यह सब लिखकर वकील साहब छोड़ गये हैं। उन्हीं को, डॉक्युमेण्टरी विवरण के रूप में, जैनेन्द्रकुमारजी ने प्रस्तुत किया है।

उपन्यास को यथार्थ का रूप देने की यह टेक्नीक है। उपन्यास की भलाई-बुराई से, उसे लिखने की ज़िम्मेदारी तथा उसे लेकर उठनेवाले प्रश्नों से अपने को तटस्थ रखने का एक ढंग भी इसे कह सकते हैं। वकीली भाषा का प्रयोग करें, तो पाठकों को भ्रम में डालने का यह [illegible] अपराध भी हो सकता है। लेकिन इन बातों को छोड़कर यहाँ हमें स्वर्गीय श्री० प्रेमचन्द का एक कथन याद आ रहा है। भविष्य में उपन्यास कैसे होंगे, इसकी रूपरेखा बताते हुए उन्होंने कहा है, '**भविष्य में उपन्यास जीवन-चरित्र के रूप में लिखे जायेंगे—वे जीवन-चरित्र किसी बड़े आदमी के हों, या छोटे को। आज हम झूठ को सच बनाकर दिखाते हैं—अपने कल्पित चरित्र चित्रित करते हैं; कल हमें सच को झूठ बनाकर देना होगा—अर्थात् सच्चे चरित्रों को कहानी बनाकर पेश करना होगा।**' जैनेन्द्रजी का यह उपन्यास सम्भवतः उसी तरह का एक प्रयत्न है।

प्रारम्भिक के बाद अब उपन्यास के पेट को लें। यह काफ़ी बड़ा है। उपन्यास के सिर और पाँव (जो केवल एक-एक पृष्ठ के हैं) के अनुपात में पेट इतना बड़ा है कि सिर और पाँव जैसे उसमें खो जाते हैं, केवल पेट-ही-पेट बाक़ी रह जाता है। पेट ख़ाली नहीं है, भरा हुआ है। इस उपन्यास की नायिका का जन्म चाहे जब हुआ हो, लेकिन उपन्यास का प्रारम्भ उस समय से होता है, जबकि वह गर्भवती होती है घटनाओं का काम भी एक ही वर्ष तक है—अर्थात् सन्तान के उत्पन्न होने तक। पेट जब तक भरा रहता है, उपन्यास चलता है, नायिका भी जीती है। इसके बाद उपन्यास भी खत्म हो जाता है और नायिका भी। तीन बजे उन्होंने पुत्र को जन्म दिया। तब स्वस्थ थीं, प्रसन्न थीं। अचानक, कुछ देर बाद हृदय की गति बन्द हो जाने से उनका देहान्त हो गया। कहानी यहाँ खत्म हो जाती है। इसके बाद जीवन शुरु होता है—उस नवजात शिशु का जीवन। लेकिन इस जीवन से सम्भवतः लेखक को कोई ग़रज़ नहीं—जब पैदा हुआ है, तो जी ही जायगा। उसके 'जीने' को देखने के लिए जब कल्याणी ही नहीं रुकी, तो लेखक क्यों रुके?

कल्याणी मरकर इतना दुःख, वेदना, कुत्सा छोड़ गयी है कि उपन्यास का पेट उसीसे भर जाता है। नवजात शिशु का यह दुर्भाग्य है कि उसे उपन्यास में स्थान नहीं मिल पाता। उपन्यास का प्रारम्भ उस मकान के चित्रण से शुरू होता है, जिसमें कल्याणी रहती थी। उस मकान का ही नहीं, उस मकान तक जानेवाले गली-कूचों का भी ज़िक्र है। सब कुछ उजाड़ और सूना हो गया है, उस घर की श्री चली गयी है। पीछे छोड़ गयी है वह एक शिशु और अपने बारे में इधर-उधर की चरित्र-सम्बन्धी कुत्सा—ऐसी कुत्सा, जिससे कल्याणी की इज्ज़त पर ही आ बनती है। इसी कुत्सा को लेकर इस डॉक्युमेण्टरी उपन्यास का निर्माण हुआ है। इधर-उधर के परिचित-अपरिचित, कल्याणी के पति, स्वयं लेखक सब इस कुत्सा को, लाञ्छना को, लेकर आगे बढ़ते हैं। औरों की बात जाने दीजिए, स्वयं कल्याणी इस लाञ्छना को जैसे जीवन का

पर्यायवाची समझती है। इस उपन्यास का पेट ही नहीं, वरन् जैसे स्वयं कल्याणी का गर्भ भी इस लाञ्छना से परिपूर्ण है। इस लाञ्छना ने उसे क़ैद कर दिया है, इसीके लिए वह जीती है और उसे आशंका है कि एक वर्ष से अधिक वह नहीं जी सकेगी। अपने गर्भ को उपलक्ष्य कर वह कहती है—'**इसीने मुझे क़ैद कर रखा है। नहीं तो अबतक मैं मर जाती...लेकिन मैंने भी तो इसे कैद कर रखा है। इस अनजन्मे पर मैं गुस्सा क्या करूँ ?**"

कल्याणी डॉक्टर है। उसकी डॉक्टरी एक आवरण के रूप में इस उपन्यास में आती है। रोगों को अच्छा करने या बढ़ाने वाली डाक्टरी के रूप में वह यहाँ नहीं आती बल्कि वह एक परदा बनकर आती है। कहा गया है—'**जानते हैं, डॉक्टरी क्या है ? डॉक्टरी है परदा। परदे के पीछे क्या है, सो भी आप जानते हैं ? पीछे जाने क्या नहीं है ?**"

परदे के पीछे क्या है ? निश्चित रूप से कहा जा सकता है, जीवन एक अनजन्मे शिशु का जीवन। लेकिन उपन्यास का आधार वह नहीं है। आधार है परदे के बाहर फैलनेवाली कुत्सा—ऐसी कुत्सा, जो जायज़ सन्तान को नाजायज़ बना देती है। जिसे सन्तान से जायज़-नाजायज़ की चिन्ता अधिक होती है। परदे को उठाकर उस जीवित सत्य को देखना वह नहीं चाहती—उसके अपराधी हाथ काँप उठते हैं। केवल बाहरी और ऊपरी व्यवसाय का अभिनय वह चलाती है। यह अभिनय ही अनिवार्य जीवन बनकर इस उपन्यास में आया है और इसका निर्माण हुआ है उस अजन्मे जीवित शिशु की उपेक्षा करके—सिर्फ़ इसलिए कि इस उपन्यास में कहानी कहनी है, जीवन नहीं देखना है, किसी चरित्र का निर्माण नहीं करना है। कहा गया है—"**उसकी मूर्ति गढ़ने का कष्ट मैं क्यों उठाऊँ ? मुझे तो कहानी कहनी है. इसमें संवेदन हुआ तो मैंने भर पाया।**' लेकिन संवेदन से दिल हल्का किया जासकता है. जीवन को नहीं सींचा जा सकता !

नतीजा इसका सामने है। उपन्यास का पेट काफ़ी बड़ा होगया है। उसमें समाया भी बहुत कुछ है। क्षेत्र उसका व्यापक है। लेकिन उसका होना न होना बराबर है। अजन्मे शिशु के जीवन के साकार और सफल रूप की आशा हम कर सकते हैं, लेकिन इस आशा का इस उपन्यास से जैसे कोई सम्बन्ध नहीं। इस उपन्यास में जीवन जिसे कहा गया है, जीवन का जो एकमात्र और अनिवार्य रूप हमारे सामने आता है, उसकी परिधि में इसका स्थान नहीं। स्थान रहने की गुंजायश होनी चाहिए, इस ओर देखने का अवसर तक नहीं मिलता। उद्देश्य नाम की चीज़ का अगर किसी उपन्यास अथवा साहित्यिक रचना से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, तो कहना होगा कि इस उपन्यास का उद्देश्य और चाहे जो हो, जीवन की ओर देखना नहीं है। मानो जीवन किसी कुमारी माता के पेट का कलंक है। इस कलंक की ओर आँख उठाकर वह नहीं देख सकती। जबतक वह बाहर नहीं आता, तबतक किसी तरह साँस लेती रह सकती है। बाहर आनेपर उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं।

ऐसी दुर्घटनायें जीवन में होती हैं, लेकिन उनसे जीवन की रचना नहीं की जा सकती—विशेषकर उपेक्षित शिशु की ओर से आँख फेरकर।

जीवन-शिशु सामने पड़ा है। डाक्युमेण्टरी यथार्थ चित्रण ने उसका अस्तित्व सम्भव कर दिया है। उस जीवन-शिशु पर पड़ा है एक परदा—डाक्टरी का, क्रांति का, तपोवन का, गांधीवाद अथवा किसी और जीवन-नामधारी प्रवृत्ति का। कुछ लोग आते हैं। एक ने उँगली उठाकर प्रश्न खड़ा किया। दूसरे ने श्लीलता तथा भलमनसाहत की दुहाई देते हुए कहा—परदे के पीछे क्या है, यह किसने जाना है ? केवल ईश्वर ही जानते हैं। कुछ जानने का प्रयत्न करना ग़लत है। लेकिन इतने में यथार्थवादी हवा का एक झोंका आता है। दिखाई पड़ा, कुछ काला-काला है। यह कुछ क्या है, यह जानने

ली, १९४१]

रत नहीं। आगे बढ़ने के लिए इतना ही ही है। यथार्थवादी हवा का दूसरा झोंका उस णी माता को सामने ला खड़ा करता है। र भी डाक्टरी का आवरण पड़ा है— ल्याणी में यही अनबूझ है। **चार में तीन की बात अनकही रखकर सिर्फ़ एक हिस्सा** ही।" जीवन को बढ़ाने में यह स्थिति चाहे र दे, लेकिन उपन्यास को बढ़ाने में खूब देती है। 'कल्याणी' उपन्यास का सिर- चाहे जितना छोटा हो, लेकिन पेट कम नहीं सूत्र बराबर बढ़ता ही जाता है। इस हद भारी हो चलता है, कि सँभाले नहीं सँभलता। पात्रों के लिए वह बोझल हो उठता है। मुक्ति ती है उस समय, जब कल्याणी सन्तान को न देती है—सन्तान को जन्म नहीं देती, इस उपन्यास की बलिवेदी पर अपना न चढ़ा देती है। रह जाता है वह जीवन- । ज़रूरत है ऐसे लेखक की जो उस शिशु से जीवित-साहित्य को शुरू करे। इस की संवेदनशील गोद में उसके लिए नहीं है।

× × ×

बंजर भूमि पर इस उपन्यास का निर्माण है। इसका प्रत्येक चरित्र, प्रत्येक घटना, सर्ग—सबका उद्देश्य इसी बंजरता को कर रखना है। कल्याणी की डाक्टरी, गर्भ,—यह सब इसी बंजरता की पैरेड है। कल्याणी के पास सब कुछ है, लेकिन जीवन ही शून्यता को उभारने के लिए है। के पास रह जाती है। उद्देश्य रोग को करना नहीं, वरन् कुत्सा को उभारकर है। प्रत्येक रोगी जैसे अवैध प्रेमी बनकर आता है, लांछना और कुत्सा से पूर्ण। नी न होकर वह वेश्या भी हो सकती अपने शरीर को, शाब्दिक मानी में, तिल- कर बेचती है। उसके जीवन की सम्पूर्ण , उसका सार्वजनिक जीवन— सभी का ही निर्माण करते हैं। वह एक ऐसा अन्धा कुआँ बनकर सामने आती है, जिसमें आज का सम्पूर्ण जीवन, इस जीवन के सभी पहलू—सभी वाद—खोते चले जाते हैं। ग़रीबों को मुफ्त दवा देती है, लेकिन व्यर्थ; क्रांतिकारी को आश्रय देती है लेकिन निरर्थक। उसके जीवन में, ले-दे कर प्रकाश की एक किरण दिखायी पड़ती है। लेकिन वह भी गाँधीवाद में जाकर गुम हो जाती है। रह जाता है एक अन्धा कुआँ—जिसे न जगन्नाथ का धाम पूरा कर पाता है, न दरिद्र-नारायण की सेवा, न लाल क्रांति, न गाँधीवाद और न ही काँग्रेसी प्रीमियर। अकेली वहीं रह जाती है—अकेली, अकेली, अकेली। दम तोड़ते हुए कहती है—**एक थे। वह अब गाँधी के हैं। गाँधी-सेवासंघ में क्या स्नेह को सुख[1] दिया जायगा—यह तो गाँधी को गांधीवाद में भून देना होगा। इससे बड़ी अकृतज्ञता—गाँधी की हत्या—और क्या हो सकती है?**

बस गाँधी की हत्या पर ही नहीं है। मरकर भी कल्याणी एक जीवित शिशु को जन्म दे गयी है। क्या वह दिन कभी आयेगा, जब इस शिशु के चरित्र-निर्माण को कोई लेखक अपना विषय बनायेगा? अबतक वह नहीं बन पाया है। उसकी खबर हमने ली भी है, तो उस समय जब वह बेहया और बेशर्म की तरह जीता बच कर जवान होने पर सामने आता है—एक प्रश्न और व्यंग बनकर। उस समय भी हम उसकी ओर उतना ध्यान नहीं देते, जितना कि उसकी प्रेमिका पर। वह केवल असंख्य कल्याणियों की संवेदनशील गोद का निर्माण करने की जैसे एक मशीन-मात्र है। लेखक को यह गोद मिल जाये और उस प्रेमिका की आँखों से गिरे हुए दो-चार आँसू—बस इतना ही काफ़ी है।

कल्याणी सबको आतमसात करनेवाली इसी कुण्ड का—जीवन की सम्पूर्ण शक्तियाँ जहाँ पनप नहीं पातीं, ऐसी बञ्जर भूमि का—प्रतीक बनकर सामने आती है। उसकी बंजरता पर लेखक ने

---

[1] श्री जैनेन्द्रजी से सूचना मिली है 'सुख' शब्द मूल पुस्तक में ग़लत छपा है, 'सुखा' होना चाहिए था।

परदा डालकर अस्पष्ट कर दिया है। इस अस्पष्टता को, परदे को, लेखक दूर करना नहीं चाहते। कहते हैं :—**"क्या आप सब कुछ जानना चाहते हैं? एक स्त्री का सब कुछ जानना चाहते हैं—सब कुछ तो ईश्वर ही जानता है।"**

× × ×

कल्याणी की मृत्यु का स्कैण्डल चित्रित करने के बाद जैनेन्द्रजी की लेखनी रुक गयी है। जीवित रूप में कल्याणी सामने नहीं आती। किसी वकील के क़ागज़ों में से यह पुराना दफ़ीना निकला है। मालूम होता है, उसके शव को लेकर छीछालेदर चल रही है। आज का समाज, दुनिया का सारा ढाँचा निर्दय और नृशंस हो सकता है, लेकिन यह सब होते हुए भी उसमें 'उदारता' की कमी नहीं है। जीते जी वह भले ही कुछ न करे, लेकिन मरने के वक्त 'कफन' का टोटा कभी न होगा। यहाँ आकर सभी स्कैण्डलों का, दुनियाभर की लांछना और कुत्सा का, अन्त हो जाता है। जैनेन्द्रजी की संवेदन-शील लेखनी ने दफ़नायी हुई इस कुत्सा को फिर से उभारा है। चाहते तो कल्याणी का परिचय उसकी जीवित स्मृति, कल्याणी-शिशु के द्वारा भी दे सकते थे। जीवित संसर्ग-स्पर्श की ज़मीन पर संवेदन खड़ा हो सकता था। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। मृत्यु के प्रबल आकर्षण ने जैनेन्द्रजी की लेखनी को जीवन से दूर फेंक दिया है। संवेदन नहीं, यहाँ झुंझलाहट पैदा होती है—कल्याणी के प्रति नहीं, जैनेन्द्रजी की लेखनी के प्रति इसलिए नहीं कि उसने कल्याणी का चित्रण किया है, बल्कि इसलिए कि जीवित को छोड़कर गड़े मुर्दे को उसने उखाड़ा है।

कल्याणी, अपने-आप में, एक ऐसी भूमिका बनकर रह गयी है, जिसके मूल ग्रंथ का कुछ पता नहीं चलता। इस भूमिका का आधार मूलग्रंथ का अध्ययन नहीं, बल्कि इधर-उधर सुनी-फैली छिछली बातें, कुत्सा और लांछना हैं। मूल ग्रंथ को पढ़े बिना ही जैसे २०६ पृष्ठों की यह भूमिका लिखी गयी है। दुःख तो यह है कि लेखक इसीको जीवन और साहित्य मानते हैं। इसके आगे-पीछे भी कुछ हो सकता है, इसे वह देखना नहीं चाहते।

क्या सचमुच में जैनेन्द्रजी अपने साहित्य को इसी दायरे में रखना चाहते हैं? यही उनकी साहित्य-रचना का उद्देश्य है? उद्देश्य की इसी परिणति को क्या वह सफल मानते हैं? एकाएक विश्वास नहीं होता। जैनेन्द्रजी से अनुरोध है, इस पर प्रकाश डालने की कृपा करें। यह ज़रूरी है। यह केवल जैनेन्द्रजी का ही नहीं, साहित्य का प्रश्न है—साहित्य की इसी परिणति पर क्या लेखक, आलोचक और पाठक को 'गर्व' करना होगा?

सुन्दर समन्वय

[गणेशलाल शर्मा]

गाँवों में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का, आहार-व्यवहार का, खान-पान का, रहन-सहन का, रीति-रिवाज़ का, वेशभूषा का और आचार-विचार का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण हो चुका है कि बहुत से स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम का भेद मालूम करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। सदियों से एकता के बन्धन में बँधे हुए और वर्षों से साथ-साथ जीवन बितानेवाले ये देहाती भाई न मि० जिन्ना को जानते हैं और न ये अबोध भाई पाकिस्तान योजना को जानते हैं। न वे मुस्लिम लीग को जानते हैं न उसके कर्णधारों को। ये तो अपने उदर-पोषण के कार्य में दिन-रात ऐसे संलग्न रहते हैं कि इनको व्यर्थ की बातों के लिए समय ही कहाँ? हाँ, शाम को काम से छुट्टी पाने के बाद थोड़ी देर हिन्दू-मुसलमान सब आपस में बैठकर आपस के सुख-दुःख की बात अवश्य करते हैं। प्रत्येक बात में ये लोग ऐसे घुल-मिल गये हैं कि इनकी मंडली में आप जावें, तो शनाख्त नहीं कर

ते कि कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान ! सब भाव छोड़कर आपस में चिलम और बीड़ी पीते हैं। झगड़े-लत्ते सबों के समान हैं। असली समस्या इनके सामने गरीबी की है, जिसे दूर करने के लिए ये दिन-रात अनवरत परिश्रम करते हैं। यदि इनसे हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर कोई बात पूछा जाता है, तो सरलता से इनका यही उत्तर होता है—हमारी तो पीढ़ियाँ ही यों ही खप गयीं। हमारी आपस में कौन-सी दुश्मनी है ? हम तो लड़ते-झगड़ते हैं फिर भी दुःख में तो ये ही आपस के काम आते हैं। ये तो पढ़े-लिखे लोगों की बातें हैं, जो हममें फूट डालने की कोशिश करते हैं।

यह गांव छोटा-सा कस्बा है। शिक्षा में पिछड़ा हुआ है। इसमें मुसलमानों के सौ से ऊपर घर हैं। सब-के-सब किसान हैं। ग़रीबी का असर सबों पर है। यहाँ के ब्राह्मण और वैश्य भी खेती करते हैं। अधिक किसान धाकड़ जाति के हैं। यहाँ पर हिन्दू-मुसलमानों की एकता का और उनके परस्पर सुसम्बन्ध का ऐसा अनुपम उदाहरण मुझे देखने को मिला जिसने मुझे ये पंक्तियाँ लिखने को प्रेरित किया।

यहाँ के सभी किसान दिनभर खेतों में काम करते हैं। शाम को या कभी सुबह, झुण्ड-के-झुण्ड लोग एक चबूतरे पर बैठकर अपनी-अपनी फसल की और अपने सुख-दुःख की बातें किया करते हैं। इनका आपस में इतना कौटुम्बिक संबंध है कि हिन्दू लोग मुसलमान-परिजनों को **नूरा काका**, **...ना काकी** और **फातमा बहन** कहकर बुलाते हैं। इधर ये लोग हिन्दू कुटुम्ब को **भेरा दादा**, **...मामा**, **जमना मामी** और **आनंदी बहन** आदि रिश्ते के शब्दों से सम्बोधित करते हैं। ये बातें यहांतक ही सीमित नहीं हैं। एक बात और यह है कि हिन्दुओं के नाम यहाँ मुस्लिम ढंग के अनुसार और मुसलमानों के नाम हिन्दू ढंग पर हैं! यहाँ **नूरा माली** हिन्दू है और **बरकाराम** मुसलमान है। यहाँ **माँगीलाल** मुसलमान युवक का नाम है और **पार्वती** एक मुसलिम युवती का। मैंने एक बार यह प्रश्न किया कि "तुम आपस में ऐसा नाम क्यों रखते हो ?" इस पर उत्तर सीधा-सादा यह है कि "......काका ने प्रेम से रख दिया तो अब हम क्यों बदलें ?" एक ने कहा—"पार्वती गणेशजी की माँ का नाम है इसलिए हमें बहुत अच्छा लगता है।" यहाँ के हिन्दू लोग पीर (जिन्हें ये शहीद महाराज न कह कर **'सेद'** महाराज कहते हैं) की पूजा बड़ी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करते हैं और मुसलमान बजरंगबली की मनौती मानकर उनके प्रति प्रसाद चढ़ाते हैं। यहाँ के **'सेद'** महाराज हिन्दुओं के दुःख दूर करते हैं और हनुमानजी मुसलमानों के। क्या इतने गहरे सुदृढ़ सम्बन्ध को और इस अगाध श्रद्धा को, इस सुन्दर समन्वय को और प्राचीन संस्कृति को, इस मधुर मिलन को और एकता के दृढ़तर गठबंधन को मि० जिन्ना दूर कर सकेंगे ? कहाँ वह खोखला ज्ञान और मिथ्या कल्पना और कहाँ यह वास्तविक जगत का चिर संबंध ! सुन्दर सत्य !! अविचल आनंद !!!

त्यौहारों पर यहाँ हिन्दू-मुस्लिम की गंगा-जमुना का संगम अवर्णनीय ही है। आनंदातिरेक में ये लोग सब भेद-भाव भूलकर सब त्यौहारों पर खुशियाँ मनाते, पूजा करते और नये-नये वस्त्र पहनकर एक-दूसरे के यहाँ भेंट ले जाते हैं। संक्षेप में इतना ही लिखना पर्याप्त है कि होली के त्यौहार पर हिन्दू-मुसलमान सभी एक होकर फगुआ गाते हैं और रँग-गुलाल डालकर परस्पर बड़े उत्साह से इस महोत्सव का आनंद लूटते हैं। मोहर्रम के समय नये-नये वस्त्र पहनकर हिन्दू लोग अपने गले में ढोल लेकर मोहर्रम के आगे नाच-कूदकर जो तान लगाते हैं, वह देखने ही योग्य होती है। 'तहज़ीब' के ठेकेदारों को, मुस्लिम मत के 'रक्षकों' और हिन्दुओं के हिमायतियों को इधर आकर देखना चाहिए कि असली भारत कहाँ बसा हुआ है ? इसका संबंध कैसा है ? इसको कौन और कैसे तोड़ सकता है ? यदि किसी ने दुस्साहस किया भी, तो इनका परिणाम क्या होगा ?

अत्यन्त हृदयग्राही बात तो शाम को मन्दिरों में देखने को मिलती है। **रामवचन पांडे** रामायण पढ़ता है और **मुश्ताक** फड़क कर ढोलक बजाता है, **सुखराम** करताल से तान मिलाता है और **खुदाबख्श** अपनी मधुर लोचदार आवाज़ से संगीत में सरसता पैदा कर देता है। एक दिन मुझे भी इनकी मण्डली में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ पहुँचा तो फिर क्या था! सब लोग मारे खुशी के उछल पड़े। **खुदाबख्श** ने कहा "मास्टर साहब पेटी (हारमोनियम) आप बजाइए। मैं और पांडेजी आपका बतलाया हुआ भजन गाते हैं।" मैंने बाजा हाथ में लिया और वे दोनों गाने लगे—

"बन चले राम रघुराई, सँग चली जानकीमाई।"

श्रोतागण मंत्र-मुग्ध-से हो गये और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु-बरसने लगे! इन लोगों का प्रेम और भक्ति देखकर मैं भी उस दिन बहुत प्रभावित हुआ। क्या ये बातें अमिट नहीं हैं? अधिक क्यों, ही जब उस मुसलमान बालक **मसीतअली** ने झूम-झूमकर मस्त होकर जब यह भजन गाया तो मैं बाजा बजाना भी भूल गया! ऐसा मस्त हुआ।

मसजिदों में है खुदा और मन्दिरों में राम है।
जपते हैं हिन्दू-मुसलमाँ दोनों का एक नाम है॥
शंख काशी में बजाया और अजाँ काबे में दी।
खुद पुजारी खुद बिलाले आशिके इसलाम है॥
गौएँ गोकुल में चरायीं बकरियाँ मक्का में जा।
आप ही अहमद बनें और आप ही घनश्याम हैं॥
माला और तस्बी में बस एक नाम का ही फ़र्क़ है।
सच अगर पूछो हमें तो दोनों का एक काम है॥

इस वास्तविक भारत की झाँकी जिन्ना साहब को ज़रा भी दृष्टिगोचर हो जाय, तो वे अवश्य ही अपनी कुख्यात योजना को भूल जायँगे।

हिन्दी के बाल-साहित्य पर एक दृष्टि और एक योजना की रूपरेखा

[सुमनेश : सुधीर]

हिन्दी में कई एक संस्थाओं ने बाल-साहित्य प्रकाशित किया है और आज भी इस दिशा में प्रयत्न जारी है, परन्तु जिस शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक ढंग से यह साहित्य तैयार किया जाना चाहिए, उसका सबमें सर्वथा अभाव है।

आजतक जिन प्रकाशकों ने बाल-साहित्य का प्रकाशन किया है उनका मुख्य उद्देश्य प्रायः पैसा कमाना ही रहा है--यह कहते संकोच नही होता। उन्होंने अधिकतर वे ही पुस्तकें निकालीं, जिनके विषय में उन्हें विश्वास हो गया कि वे स्कूलों में चल सकेंगी। कई पुस्तकें ऐसी भी प्रकाशित हुई हैं, जो पाठ्यक्रम या पाठशाला में नहीं आतीं, पर उनके विषय में भी यह साफ सही बात है कि वे पुस्तकें बालकों के लिए निकाली जाकर भी बालकों के लिए सर्वांग-संपूर्ण काम की नहीं हो सकीं—नहीं हो सकतीं। कारण स्पष्ट है कि प्रकाशकों के दिमाग में यह दिशा भी एक व्यवसाय की धारा बन गयी और वे बिना किसी संकोच या हिचकिचाहट के बाल-साहित्य के प्रकाशक बन बैठे! वे बाल-विज्ञान से कोसों दूर-दूर आजतक रहे हैं और बालकों के लिए साहित्य-सृजन या प्रकाशन के पहले बालकों को पढ़ने का उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया। शास्त्रीय और मनोविज्ञानिक दृष्टिकोण उनके सामने तक नहीं आया और वे सही माने में नहीं जान सके कि बालकों के मानसिक विकास में सहारा और सहायता देनेवाली कैसी चीज़ हिन्दी में तैयार की जाये।

भारत की अधिकांश भाषाओं में निकले हुए बाल-साहित्य के अध्ययन का अवसर हमने पाया है और हिन्दी के बाल-साहित्य को भी हम ग़ौर और गहराई से देख गये हैं। हमारा यह निश्चित मत है कि भारतीय भाषाओं में बाल-साहित्य का प्रतिनिधित्व करने का श्रेय केवल गुजराती भाषा को है। कारण यही है कि गुजराती में बाल-साहित्य के प्रधान सृष्टा आचार्य

गिजुभाई थे और वे बाल-मनोविज्ञान के पंडित और अद्वितीय शिक्षा-शास्त्री थे, उनकी देखरेख में जो भी चीज़ें निकली वे नितान्त सुन्दर, उपयोगी और उत्कृष्ट हैं। हिन्दी के बाल-साहित्य के पीछे बल कितना कितनी समस्या है? कितना अध्ययन है? लगन है?

हिन्दी में उम्र के साथ-साथ चलनेवाला बाल-नहीं है। हमारे प्रकाशक एक डंडे से सब हाँकते आये हैं। उन्होंने पुस्तकें प्रकाशित दीं। यदि कोई बच्चों के लिए पुस्तकें खरीदने के पास जायें, तो विक्रेता महोदय भी के लिए निकाली हुई पुस्तकें ला देंगे। न यह जानने की आवश्यकता है कि बच्चे क्या है? न यह कि बच्चा क्या पढ़ता है? (प्रकाशकों) ने जहाँतक हमारा मत बाल-साहित्य को शिक्षण से आजतक भिन्न है और परिणाम यही हुआ है कि पाठ्य जिस प्रकार भिन्न-भिन्न वर्ग के लिए की जाती हैं वैसे उनका साहित्य सब उम्र बालकों के लिए नहीं हो सका है। फिर भी का बालक यदि ७ वर्ष का है तो भी १५ के बालक के लिए निकाली हुई पुस्तक उसे जायेगी। ५ वर्ष से लगाकर ११ वर्ष तक या वर्ग के लिए शास्त्रीय पुस्तकों की कमी है! जबलपुर के मिश्रबन्धु कार्य्या- इस दिशा में अवश्य ही एक प्रयत्न किया और कुछ पुस्तकें प्रकाशित की हैं, परन्तु वे बाल-साहित्य की सर्वांग संपूर्णता के लिए में एक बूंद के समान हैं।

यह है कि लोगों ने बाल-साहित्य के को एकदम साधारण-सी बात ही समझ है। बाल-मनोविज्ञान के ज्ञाता इस तरफ उदासीन रहे। साहित्य-महारथी और शास्त्रियों ने बच्चों के लिए लिखना अपना समझा। इस सबके परिणामस्वरूप जो साहित्य वही आज हो रहा है। ज्ञान का बालक हमसे क्या चाहता है, इसे आजतक किसनें पहचानने की कोशिश की? किस लेखक या प्रकाशक ने आजतक इस बात की चिन्ता की कि किस आयु में बालक को क्या मिलना चाहिए? किस उम्र में वह परियों की कहानियाँ पसन्द करता है? किस उम्र में वीरता या जौहर की? किस उम्र में विज्ञान, स्वास्थ्य या हँसी-मजाक और चतुराई की?

बाल-साहित्य में नाटक और एकांकी नाटक अंगुलियों पर गिनने लायक भी नहीं। बालकों के पत्रों की पुस्तकें हमारी नज़र में एक भी नहीं आयी। संलाप भी अपूर्ण और नगण्य। यात्रा, विज्ञान, साधारण ज्ञान, स्वास्थ्य-ज्ञान, स्वास्थ्य, करतब, पशुपक्षी, कीड़े-मकोड़े, जलजन्तु, भूगोल, भूगर्भ और खगोल आदि के सम्बन्ध में हिन्दी में बच्चों के लिए हैं ही कितनी पुस्तकें?

कहानियों के लिए हिन्दी-मन्दिर प्रयाग का प्रयत्न निस्सन्देह प्रशंसनीय है, परन्तु वहाँ भी हमें कहानियों का क्रम आयु और शास्त्रीय श्रेणियों के अनुसार नहीं मिलता। इसी प्रकार जीवन-चरितों के लिए छात्र-हितकारी पुस्तकमाला दारागंज, प्रयाग ने भी बहुत-कुछ किया है, परन्तु वह सब कुछ है केवल श्रेणी-विशेष के लिए ही। जिस श्रेणी और वर्ग के लिए उनकी पहली पुस्तक निकल गयी, उसी को स्टैण्डर्ड मानकर आगे की पुस्तकें प्रकाशित होती गयीं। गंगा ग्रंथाकार ने भी अपने कदम इस ओर बढ़ाये हैं परन्तु उनके साहित्य को बाल-साहित्य या शिशु साहित्य न रहकर किशोर-साहित्य कहना अधिक उपयुक्त होगा। इंडियन प्रेस द्वारा प्रकाशित बाल-साहित्य भी इसी श्रेणी में आता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने भी बाल-साहित्य प्रकाशित किया है, पर वह बाल-साहित्य है भी कि नहीं इसमें हमें सन्देह है। उनकी प्रायः तमाम पुस्तकों पर लिखा रहता है :

'बच्चों और बूढ़ों सबको हँसनेवाली कहानियाँ

यदि हास्यरस के साहित्य को पूरा करने के लिए उनकी पुस्तकें निकली हों, तो वे जानें पर उनकी वे पुस्तकें—इसमें कोई सन्देह नहीं—

बच्चों के काम की जरा भी नहीं बन सकी हैं। बच्चों के लिए हास्य लिखने पर—साफ़ जाहिर हो जाता है कि उन्होंने बच्चों को समझाने का जरा भी अभ्यास नहीं किया। बच्चों के लिए हास्य कैसा हो? यह भिन्न लेख का विषय है; पर यह स्पष्ट ह कि इस उद्देश्य में वे सफल नहीं रहे। ७ से १५ वर्ष के भिन्न-भिन्न बालकों को उनकी पुस्तकें सुनाकर उनका मत जानने का प्रयोग भी किया गया, पर हास्य या मनोरंजन तो दूर रहा, कई-कई बालक उकता तक गये! भद्दे-भद्दे अजीबोगरीब नाम ही तो हास्य के उत्पादक नहीं हैं। भोंदूराम, पेटूमल, दमड़ीबाई, छदामीलाल, ढपोरशंख और निठल्लू आदि नामों ने तो कई बालकों में हास्य के स्थान पर घृणा तक उत्पन्न कर दी है।

इसमें कोई शक नहीं कि व्यवसाय को सफल बनाने के लिए हिन्दी पुस्तक एजेन्सीवालों ने पुस्तकों का कागज बढ़िया लिया है, छपाई सुन्दर है, चित्र भी हैं, जो बालकों और बाल-प्रेमियों को आकर्षित करने के लिए काफी है; उनकी गिनती की कुछ पुस्तकें साधारणतया अच्छी भी हैं।

अपने आपको बाल-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक कहने और माननेवाला शिशु-कार्य्यालय भी इस दिशा में काफ़ी पिछड़ा रहा है। उनकी शायद बालकों के लिए सबसे अधिक पुस्तकें निकली हैं, परन्तु वहाँ भी न कोई आयु का लिहाज रखा गया है न कोई श्रेणी का क्रम। उनकी पुस्तकें हमने चाव और उमंग से देखीं; पर देखजाने पर हमारा मत यही हुआ कि कुछ-एक पुस्तकों को छोड़कर वे भी दूसरे प्रकाशकों से आगे नहीं निकल सके। केवल पुस्तकों की संख्या अधिक प्रकाशित करने से ही कोई सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक नहीं हो जाता। फिर भी उन्होंने बच्चों के लिए कहानियों के अतिरिक्त खेलकूद, स्वास्थ्य, जीवन-चरित, कविता, विज्ञान आदि के सम्बन्ध में जैसे-तैसे कुछ-कुछ लेने का प्रयत्न किया है, लेकिन शिशु-साहित्य वे सम्पूर्ण हद तक प्रकाशित नहीं कर सके।

यदि ५ से १२ वर्ष की शिशु की आयु मानी जाये, तो उनकी अधिकांश पुस्तकें ९ से १२ वर्ष के काम की ही रहेगी। बहुत कम पुस्तकें ऐसी होंगी जो ५ से ९ वर्ष तक के काम की हो सकें! इतना होने पर भी बाल-साहित्य में एक कमी ज्यों की त्यों बनी ही रही है।

बाल-साहित्य के प्रमुख प्रकाशकों के अतिरिक्त आदर्श ग्रंथमाला प्रयाग, हिन्दी पुस्तकालय मथुरा, पुस्तक भण्डार लहेरियासराय, हिन्दी भवन लाहौर, शारदा मन्दिर दिल्ली, पुस्तक भंडार कलकत्ता, बाल-साहित्य समिति कलकत्ता, युगान्तर प्रकाशन समिति पटना, बाल-शिक्षा समिति बाँकीपुर, ग्रंथमाला कार्य्यालय बाँकीपुर, हिन्दी प्रेस प्रयाग, साहित्य निकेतन प्रयाग, साहित्य सेवक संघ काशी, साहित्य कार्य्यालय प्रयाग, प्रसिद्ध पुस्तकालय, प्रमोद पुस्तकालय, तरुण भारत ग्रंथावली, सिटी बुक हाउस कानपुर, मरुधर प्रकाशन मन्दिर और अवस्थी आश्रम जोधपुर, पुस्तक भंडार जयपुर, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्य्यालय बम्बई, राजस्थान बुकडिपो दिल्ली और सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली आदि कई प्रकाशकों ने अपना छुटपुट प्रयत्न इस दिशा में किया अवश्य है, परन्तु उनका उद्देश्य ऊपर बतायी हुई प्रेरणा के अनुसार ही अधिकतर रहा है। बाल-साहित्य का प्रकाशन करने के पवित्र उद्देश्य ही से उन्होंने ऐसा किया हो, सो बात नहीं है।

बालक के लिए साहित्य-सृजन करने के पहिले बालक को, उसकी वृत्ति को और उसकी अपनी बात दुनिया को जान लेना नितान्त आवश्यक है। यदि हम अपनी ही दृष्टि से बाल-साहित्य का निर्माण करेंगे तो निश्चय ही बालकों के हित की अपेक्षा अधिक अहित होने की सम्भावना रहेगी। इसलिए आयु की प्रत्येक श्रेणी और उसकी आवश्यकता को ध्यान में रखकर तैयार किया गया साहित्य ही उत्तम साहित्य कहा जा सकेगा।

निम्नलिखित योजना ऊपर के प्रस्ताव का एक संकेत मात्र है। बाल-मनोविज्ञान के

ार पर शास्त्रीय दृष्टिकोण के सहारे बालकों िक विकास में सहायक होने के उद्देश्य ाहित्य-सृजन करने की योजना की रूपरेखा होनी चाहिए :—

दो श्रेणियों के लिए साहित्य निकाला जाये :

१. शिशु श्रेणी २. किशोर श्रेणी

आयु के क्रम से शिशु श्रेणी के ३ भाग हों

) ५ वर्ष से ७ वर्ष (२) ७ वर्ष से ९ वर्ष

) ९ वर्ष से ११ वर्ष

ई एक विशेष जानकारों ने यह भी सुझाया ५ से ९ वर्ष तक ही चार श्रेणियाँ हो और श्रेणी ९ से ११ वर्ष तक हो।

इसी प्रकार किशोर श्रेणी के भी आयु के से ४ विभाग किए जाये :

(१) ११ वर्ष से १३ वर्ष (२) १३ वर्ष १४ वर्ष (३) १४ वर्ष से १६ वर्ष (४) १६ से १७ वर्ष

शिशु-श्रेणी के लिए आयु के उपरोक्त र पर बाल-साहित्य निम्नांकित रूपों में होना चाहिए :

(१) कहानी (२) संलाप (३) एकांकी (४) पत्र

(१) कहानी (२) गीत (३) लोरियाँ हेली बुझौवल (५) फुटकर—चित्रों पर

इसी प्रकार किशोर-साहित्य भी आयु के क्रम दृष्टि में रखते हुए निम्नांकित रूपों में होना चाहिए :

(१) कहानी (२) संलाप (३) एकांकी (४) नाटक (५) पत्र (६) निबन्ध

पद्य (१) कहानी (२) गीत (३) फुटकर

शिशु और किशोर-श्रेणी में गद्य के लिए जो कहानी विषय रखा है, उसका क्षेत्र हमारी योजना में काफी विस्तृत है। हमने कहानी के २० भाग कर दिये हैं प्रत्येक में २० तरह की कहानियाँ हैं—

स्वास्थ्य, भूगोल, खगोल, धर्म, विज्ञान, साधारण ज्ञान, प्रकृति, इतिहास, मनोरंजन, यात्रा, महापुरुषों की, देश-विदेश की, जन्तु जगत, जल-संसार, दादी-नानी, काल्पनिक, गुपचुप, संस्था करतब की और फुटकर कहानियाँ।

और इस तरह हमारा समस्त साहित्य उपरोक्त विषयों से भरा-पूरा कला और कल्पना के आधार पर इस प्रकार तैयार किया हुआ होगा कि जिससे बालकों का साधारण ज्ञान इतना उन्नत और परिमार्जित हो सके कि उनको रात-दिन में काम आनेवाली बातों और वस्तुओं के परिचय में अनभिज्ञता न रहे और जीवन के क्षेत्र में वे सच्चे सफल युवक, युवतियों की तरह आगे बढ़ते नज़र आवें।

इस प्रकार की यह योजना बाल-समाज में मानसिक, शारीरिक और आत्मिक विकास के अभाव की सम्यक् पूर्ति करके बाल संसार में ऐसी संजीवनी फूँकनेवाली है कि जिससे राष्ट्र के कुम्हलाये हुए नव अंकुरों के पुनः पुष्पित और फलित होने की पूर्ण आशा है। **[लेखकों का अपना दृष्टिकोण लिये हुए यह लेख इसलिए यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है कि हम अपनी भाषा के अभाव को, यदि वह सचमुच है तो, दूर करने की ओर बढ़ें। इस सम्बन्ध में भिन्न दृष्टिकोण के लेखों का भी हम स्वागत करेंगे।—सम्पादक]**

'चरित्र' नहीं 'चारित्र्य'

"हमें महापुरुषों के चारित्र्य का अनुसरण करना चाहिए, न कि उनके चरित्र का। दरअसल चारित्र्य का है। शिवाजी महाराज ने सौ दो सौ किले बनवाकर स्वराज्य प्राप्त किया। इस-आज यह नहीं समझना चाहिए कि उसी तरह किले बनाने से स्वराज्य प्राप्त होगा। किन्तु जिस उन्होंने अपना जीवन बिताया और लड़ाई की, वह वृत्ति, वे गुण हमें चाहिएँ। जिस वृत्ति से ने काम किया उस वृत्ति से हम आज भी स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। ……इसीलिए उपयोगी नहीं, चारित्र्य उपयोगी है।

—आचार्य विनोबा—

[सस्ता साहित्य मण्डल ा और उनके विचार']

बंदी

['विकल']

कारागार की अँधेरी, छोटी कोठरी में भयंकर निशा के वक्ष-स्थल पर ताण्डव नृत्य करनेवाले रुद्र ! ऊँची-ऊँची पत्थर की विशाल चहारदीवारी से घिरी हुई लोहे की चमचमाती हुई प्रौढ़ शलाकाओं के बीच गले में तौक़, हाथों में हथकड़ी, पैरों में बेड़ी पहने हुए भी एक जगह न ठहर कर लाल-लाल आँखों से अंगारे बरसा, भीषण दहाड़ के साथ चक्कर काटनेवाले शेर ! अपने हृदय में न जानें कितनी अभिलाषाओं की बुरी तरह से गर्दन मसोस कर एक कसक के साथ बड़ी ही मस्ती से इठलाते हुए तसले पर 'इन्क़िलाब जिंदावाद' का प्रलयंकर गान गानेवाले राष्ट्रीय गायक ! पशुवत् व्यवहार को भी शान्ति के साथ नीची निगाह किये हुए सहनशीलता की सीमा से दो हाथ आगे जाकर सहन करनेवाले सहनशील ! दूसरों की सेवा में अपने को खपा डालनेवाले स्वार्थपरता से रहित निस्वार्थ सेवी ! सुख को दोनों पैरों की ठोकर से ठुकरा कर दुख को हँसते हुए असीम आनंद के साथ गले से लगानेवाले देवता ! कलेजे में एक आह के साथ आग लगा देनेवाली चाह को लिये हुए पत्थर को चूर-चूर कर देनेवाली अहिंसा के उपासक ! भूले-भटकों तथा अंधों की आखें खोलकर सत्य की मशाल को जला उसके प्रकाश में सत्य मार्ग बतलानेवाले सत्पथ प्रदर्शक ! सर्दी, गर्मी, वर्षा, आँधी, भूख प्यास, सुख, दुख और आपदाओं की कुछ भी परवाह न करके गर्व के साथ सर को ऊँचा उठाकर दुनियाँ को देखनेवाले अचल हिमालय ! माता, पिता, भाई, बन्धु, बहन, स्त्री, पुत्र इत्यादि सगे साथियों और कुटुम्बियों के मोह को छोड़ देनेवाले निर्मोही ! शत्रु, मित्र, छूत, अछूत, जाति-पाँति के भेदभाव को त्याग जो भी सामने आ जाय उसीके चरणों में प्रेम से अपना सर रख देनेवाले आदर्श प्रेमी ! पीटर ! पीर ! प्रताप ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्गुणों का खून करके उसी रँगीले रँग में दिल को रंग कर इन्द्रिय-संयम करनेवाले संन्यासी ! तेग, तबर, तलवार, तमंचा, गोली, छुरी, बर्छी, कटारी, भाला इत्यादि सभी के आगे अन्याय का नाश करने के लिए जालिम के जुल्मों से डरकर मस्तक न झुका हर्ष से सीना ताने खड़े रहनेवाले स्वाभिमानी ! अत्याचार होते हुए देख अपने जले दिल की राख में छिपी क्रांति की चिनगारी को हवा लग जाने के कारण उठते हुए धुआंधार से विश्व को खाक न बना, शान्ति, प्रेम, दया की धाराओं से बनी त्रिवेणी की धार में रोते और हँसते स्नान करनेवाले ठंडे ज्वालामुखी ! किसी दीन की दयनीय दशा को अश्रुधार के भंवर में पड़, चक्कर काटते, हाथ पैर पीटते, छटपटाते तथा बेदम को दम-दिलासे द्वारा उसे उछल-उछल कर डूबने से बचानेवाले सफल तैराक़ ! भूखे की पुकार को सुन अपने शरीर के समस्त रक्त को आहों से उड़ा, पुतलियों की काली घटा में छिपा कड़क और गड़गड़ाहट के साथ छपछपाते पलकों से कभी-कभी चपला को चमकने का मौक़ा देते हुए एक-एक बिन्दु का कण-कण बिखेर मूसलधार तथा गठरी बाँधकर बरसनेवाले जलधर ! अपनी आन और बान के हित के शरीर टुकड़े-टुकड़े भी कराकर याचक को निराश न होने देनेवाले महादानी शिवि ! अपने शत्रु के लिए भी मन, वचन, कर्म किसी भी प्रकार से अहित न करके इस उच्च आदर्श को सामने रख संसार को 'अहिंसा परमोधर्मः' का पाठ पढ़ानेवाले पाठक ! घर में सड़-सड़ कर मरने की अपेक्षा अपने देश की स्वतंत्रता के लिए शम-ए-आजादी का परवाना बन तिल-तिल करके मर-मिटने की अभिलाषा रखनेवाले वीर सत्याग्रही ! तेरे चरणों में किस अभिमानी का मस्तक गर्व के साथ नत न होगा। विश्व की विभूति बंदी ! तू धन्य है।

प्रस्तुत प्रश्न

'अश्लीलता' किसे कहें ?

अश्लीलता-संबंधी जो चर्चा 'जी० सा०' में चल रही है उसपर मैंने श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला की सम्मति माँगी थी। श्री मश्रुवाला न केवल गहरे विचारक व तत्वचिन्तक ही हैं, बल्कि सत्य-मार्गदर्शक भी हैं, सुधीन्द्र के कुछ अवतरण तथा मेरे लेख के कुछ शब्द उन्हें खटके। उनकी ओर संकेत करते हुए वे एक पत्र में लिखते हैं—

प्रिय हरिभाऊजी

"मुझे कवि मुक्तानंद की एक बात याद आती है। उनकी भाषा में कभी हलके शब्द नहीं आते थे, सहजानंद स्वामी[1] ने उन्हें आज्ञा दी कि लोग होली में वीभत्स गीत गाते हैं, उसके बदले कुछ अच्छे भजन उसी शैली के बनाओ। उन्होंने **'अविद्या छे नकटी नार, हरिथी पाछी भागे'** ऐसा एक पद बनाया, उसके आखिर की पंक्ति में उन्होंने लिखा—**'मुक्तानंद कहे एवा नरने पूरा दीसे पाजी जो'**। सहजानंद स्वामी ने देखा कि मुक्तानंद के पद में पाजी जैसा हलका शब्द आ गया, यह आश्चर्य है। इससे मालूम होता है कि 'फाग' की कल्पना ही वीभत्सता पैदा कर देती है। फिर ज्यादा पद बनाने से रोक दिया!

इस तरह आपने अश्लीलता की निन्दा करने के लिए उन्हीं शब्दों का इस्तैमाल किया, जिनके द्वारा अश्लीलता की वेल बढ़ती है! मेरे कहने में गलती हो तो बताइएगा। बाकी, सारा लेख अच्छा है।

इस लेख में पूछा गया है—"अश्लीलता क्या है?" किसी ने पूछा है—जो प्रकृतिधर्म है, और जिस व्यवहार को भले ही दाम्भिक शिष्टता के कारण साफ शब्दों में न कहे, पर जिसे सारा जगत आनन्द के साथ ही करता है, उसका उत्साह-पूर्ण स्पष्ट वर्णन करने में क्या अश्लीलता है?

इसका दूसरे सिरे से विचार किया जाय। वैसे अनेक प्रकृतिधर्म हैं, जिनका सारा जगत व्यवहार करता है और आनंद अनुभव करता है—उदाहरण शौच-क्रिया, दतौन वग़ैरा, क्यों इस विषय पर कभी कोई काव्य नहीं लिखता? क्योंकि इस प्रकृतिधर्म के आचरण में से मद पैदा नहीं होता—सिर्फ़ प्रसन्नता ही होती है। ये योग-क्रियायें हैं, याने संयमधर्म के अनुकूल हैं।

लेकिन भोजन, शृंगार आदि के प्रकृतिधर्म मादक हैं। उनसे चित्त शुद्धि या शरीर-शुद्धि की सहज प्रसन्नता नहीं पैदा होती, पर मद का उन्माद—जिसे आनंद माना जाता है—होता है। जहाँ मादकता है वहाँ मर्यादा-धर्म उत्पन्न हो ही जाता है। इसलिए खान-पान के विषय में मर्यादा आवश्यक होती है, शृंगार में भी। जिस तरह इनके आचार में मर्यादा चाहिए वैसे ही उनके विचार और उच्चार में। जहाँ आचार में, विचार में या भाषा में मर्यादा टूटती है, वहाँ अश्लीलता आ जाती है—प्रकट या गुप्त। तब इन प्रकृतिधर्मों का आचार-विचार और उच्चार (उच्चार में इशारे का भी समावेश हो जाता है) में उचित मर्यादा का भंग ही अश्लीलता है।

लेकिन साहित्य और भाषा में से उच्चार की अश्लीलता तबतक नहीं जावेगी, जबतक इन प्रकृतिधर्मों के आचार और विचार में ही मनुष्य में मर्यादा को स्थान न हो। दारूबाज आदमी दारू-रस के गान को अश्लील मान न सकेगा। भोजन-प्रिय मनुष्य भोजन-रस के गीत को अश्लील कथा न मान सकेगा। इसी तरह काम-लोलुप स्त्री-पुरुषों की बात है। फिर, उसमें केवल शब्दों की तब्दीली होती रहेगी। गालियों में आयी हुई भाषा की जगह—अँग्रेज़ी या संस्कृत शब्दों का उपयोग होगा, स्पष्टोक्ति के बदले वक्रोक्ति, व्यंग्योक्ति, सूचना और (आज के समाज में) पारिभाषिकोक्ति (वैद्यक और विज्ञान की भाषा)

---

[1] गुजरात के स्वामीनारायण सम्प्रदाय के आद्य आचार्य।

इस्तेमाल होगी। किसी-न-किसी तरह काम को उत्तेजित करने का काम चलता ही रहेगा। कभी-कभी निषेध के रूप में भी वही काम किया जायगा। असल ज़रूरत हमारे जीवन के आचार और विचार में ही मर्यादा लाने की है। श्री सुधीन्द्र की टिप्पणी में और आपके लेख के दो-तीन वाक्यों में मुझे जो खटका, वह इसी कारण खटका। अस्तु। **किशोरलाल**

इस मार्गदर्शन के लिए मैं पूज्य किशोरलाल भाई का बहुत कृतज्ञ हूँ। ह० उ०

‘साहित्य’ और ‘प्रगतिशीलता’

“आज हमारे साहित्य में एक नया प्रगतिशील आन्दोलन आरंभ हो चुका है। साहित्य के सभी नये आन्दोलन एक अर्थ में प्रगतिशील कहे जा सकते हैं क्योंकि वे किसी-न-किसी नयी सामाजिक या सांस्कृतिक प्रगति से उत्पन्न होते और किसी-न-किसी नवीन प्रगतिशील विचारधारा के सहचर हुआ करते हैं। मैं कहना यह चाहता हूँ कि पिछले तीन-चार प्रगतिशील आन्दोलनों के रहते अपने अति नवीन आन्दोलन का नाम ‘प्रगतिशील’ रखना विशेष उपयुक्त नहीं हुआ। इस नामकरण से भ्रम होता है कि हमारे पहले के आन्दोलन प्रगतिशील नहीं थे। प्रगतिशील ही नहीं वे प्रचलित साहित्य-सरणियों के विरुद्ध विद्रोहात्मक भी थे! ऐसी अवस्था में केवल इस अन्तिम आन्दोका नाम ‘प्रगतिशील’ रखना कुछ ऐसा भ्रम है जैसे पुत्र अपना नाम पिता के नाम पर रख ले।

फिर, मेरे विचार से किसी साहित्यिक आन्दोलन का प्रगतिशील होना ही काफ़ी नहीं है। प्रगति तो प्राकृतिक गति है। वह परिवर्तनशील वस्तु-व्यापार का आवश्यक परिणाम है। तो क्या परिवर्तन का प्रतिबिंब होना ही साहित्य का स्वरूप या लक्ष्य है? मेरे विचार से नहीं। प्रथम तो परिवर्तन की सारी दिशाओं का परिज्ञान होना चाहिए। विकासमूलक शक्तियों और दिशाओं की पहचान होनी चाहिए! तभी हम कृत्रिम साधनों से (जिसके अन्तर्गत मानसिक रूढ़ियाँ, संस्कार और बाहरी सामाजिक अथवा राजनीतिक शक्तियाँ भी शामिल हैं) रोके हुए आवश्यक परिवर्तन को साहित्य द्वारा उद्घाटित कर सकेंगे और साथ-ही कृत्रिम साधनों से बढ़ाये हुए अनावश्यक परिवर्तन या विच्छेद को रोक भी सकेंगे।

यहाँ आप पूछेंगे कि साहित्यिक को इस प्रकार के बुद्धिव्यवसाय या विवाद में पड़ने की आवश्यकता क्या है? वह तो भाव-जगत का प्राणी है। वह यदि अपने भावों को सौन्दर्यपूर्ण साहित्यशैली से प्रकाशित कर देता है तो उसके लिए इतना ही पर्याप्त होना चाहिए। मैं इसे नहीं मानता। साहित्य केवल व्यक्तिगत भावों के प्रदर्शन की की भूमि नहीं हो सकता। व्यक्तिगत भाव भी आखिर क्या हैं? उस व्यक्ति-विशेष पर पड़े हुए विभिन्न ज्ञात-अज्ञात उपकरणों का प्रभाव। वे उपकरण उसे कहाँ से मिले? अपने समय के समाज और सामाजिक चेष्टाओं से। तब प्रश्न यह है कि वह उस समाज और उन चेष्टाओं को आँख मूँदकर क्यों ले? आँखें खुली क्यों न रखे और क्यों न अपने सामूहिक उत्तरदायित्व को समझे? यह केवल एक उत्तरदायित्व ही नहीं है, व्यक्तित्व का उन्नायक साधन भी है। फिर यह ऊपर से लदा हुआ कोई बोझ भी नहीं है, यह मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने की स्वाभाविक सूचना है।

व्यक्ति और समाज के बीच चलनेवाले स्वाभाविक आदान-प्रदान को सचेत होकर ग्रहण करता काव्य-साहित्य को प्रगतिशील ही नहीं, उत्थानमूलक भी बनाने में उपयोगी सिद्ध होगा। यदि हमने अनुकृति के आधार पर अथवा प्रतिरोध करने की क्षमता के अभाव के कारण कुछ विश्वासों, प्रभावों या अनुभवों को धारण कर रखा है, तो स्पष्ट है कि हममें साहित्यिक उत्कर्ष की संभावना बहुत थोड़ी है। यह असंभव नहीं कि इन व्यक्तिगत प्रभावों के आधार पर हम ऐसे साहित्य का निर्माण करें (बशर्ते हममें कुछ काव्यशक्ति है) जो कुछ दोनों तक बहुत काफी लोकप्रिय हो जाय, क्योंकि जनसाधारण तो अपना प्रतिबिंब ही साहित्य में देखना चाहता है और

काल की ओर चलने में उसे सुविधा मालूम है, पर देश और जाति के स्थायी साहित्य नीचे की ओर लुड़कना स्थान न पा गा।

यह न समझें कि मैं साहित्य के लिए रूढ़िबद्ध ऊँची नीति अथवा आदर्शवाद की कर रहा हूँ। ऐसा करना बिल्कुल ही नहीं है। किसी बँधी-बँधाई लीक अथवा बँधे आदर्शों के पैमाने पर साहित्य की प्रगति उसका उन्नयन नहीं हो सकता। बदलते हुए के साथ प्रगति का मार्ग भी बदलेगा। हमारे में भी परिवर्तन और उलट-फेर होंगे। आग्रह केवल इतना है कि हम आँख मूँदकर वस्तु को न लें। न हम आये हुए प्रभावों नवीनता के झोंके में बह जायें और न विगत का स्वप्न देखते रहें। निराशा के लिए की फुलझड़ियाँ बरसाना हम साहित्य में कर दें और साथ ही आकाशकुसुम की भी छोड़ दें।

मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि साहित्य को अथवा ऊँची आदर्शात्मक कल्प- को उठा देना होगा। उठाना या बैठाना हमें नहीं। साहित्य में आशा और निराशा, और वीर सबके लिए समान स्थान है और किन्तु उनकी नियोजना प्रगतिमूलक और करनी होगी, निरुद्देश्य और अस्तव्यस्त । शेक्सपियर के दुःखान्त नाटक अथवा भव- का उत्तर रामचरित करुणा से भरे हुए क्या वे शक्तिहीनता और निर्बलता करते हैं? नहीं, वे हमारी भावना का संस्कार करते हैं कि उनसे जीवन के मूल्यों के प्रति आस्था बढ़ती है। इसी परिपाटी की रक्षा हमें करनी होगी और होगा जब हम साहित्य की प्रगति को साथ संबद्ध किये रहेंगे।

साहित्य के साथ जीवन को संबद्ध किये का मतलब सिर्फ़ इतना है कि जीवन की आधारभूत चेतना साहित्य से लुप्त न हो जाये। हम मृत्यु के अथवा अगति के उपासक न बन जायँ। निराशा और आत्मपीड़न को अर्घ्य न देने लगें। इसका यह आशय नहीं कि साहित्य में निराशामूलक प्रवृत्तियों का चित्रण ही न किया जाय। किया वह अवश्य जाय पर आदर्श बनाकर नहीं। रचनाकार स्वयं उनमें अभिभूत होकर जीवन का लक्ष्य न छोड़ दे। जीवन का लक्ष्य है जीना। जीना जितना ही व्यापक और समुन्नत स्वरूप धारण कर सके, उतनी ही साहित्यकार की कृतकार्यता होगी। यहाँ मैं फिर कहूँगा कि जीने का व्यापक और समुन्नत स्वरूप कोई रूढिबद्ध वस्तु नहीं है, किन्तु वह सचेत सतत विकास है।

क्या इस सूत्र को मैं बुद्धिवाद या बुद्धिसूत्र कहूँ? बहुत व्यापक अर्थ में इसे यह नाम दे सकूँगा। आशय यह है कि वाद के रूप में बुद्धिवाद कुछ मोटी रेखाओं के भीतर घिरा है। साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास में ऐसे युग आये हैं और आ सकते हैं जिसमें यह मोटी रेखाओंवाला बुद्धिवाद सहायक नहीं हुआ या न हो (उदाहरण के लिए बुद्धिमूलक के बदले विश्वासमूलक प्रगतियाँ भी हुई हैं) किन्तु प्रगतिशील चेतना के रूप में बुद्धि सदैव विकास के साथ रही है।

यदि इस सूत्र के कुछ बाहरी निदर्शन या दृष्टांत आप चाहें तो मोटे तौर पर मैं नीचे के निदर्शन दूँगा :

१· अति शृंगारोन्मुख प्रवृत्तियाँ (Morbidity) प्रगति के विरुद्ध हैं।

२. अति उदासीन प्रवृत्तियाँ प्रगतिमूलक नहीं।

३. केवल कौतूहल प्रगति के लिए बड़ी वस्तु नहीं।

४. केवल मनोरंजन प्रगति के लिए पर्याप्त नहीं।

५. बाह्य संघर्ष की अपेक्षा बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक संघर्ष प्रगतिशील साहित्य में अधिक महत्त्व रखते हैं। यह दृष्टांत मैं साहित्यिक इतिहास के आधार पर दे रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि ये वैज्ञानिक भी हैं।

इसे मैं आत्मचेतना अथवा जीवन-चेतना के नाम से पुकारूँगा। इसके अभाव में साहित्य सच पूछिए तो साहित्य-पद का अधिकारी नहीं होता। वह क्षयशील कला भी क्या कला कहा सकती है जो मृत्यु, आत्मपीड़न अथवा जीवनशोषण की ओर प्रगतिशील हो? इसके उत्तर में संभव है कुछ लोग कहें कि जीर्ण जीवन की अनिवार्य समाप्ति मृत्यु में ही होगी और नवीन जीवन का उद्भव उसके पश्चात् ही होगा। जीर्ण जीवन का अन्त मृत्यु ठीक है, किन्तु क्या वह मृत्यु हमारा आदर्श हो सकती है? आदर्श तो हमारा जीवन ही होगा। क्षय के लिए क्षय और मृत्यु के लि मृत्यु की वरेण्यता हम किसी प्रकार प्रतिपादित न कर सकते। दूसरे शब्दों में हम ह्रासोन्मुख जीवन-विघातिनी कला की कला कहकर प्रशं नहीं कर सकेंगे।

नन्ददुलारे बाजपे

(हि० सा० सम्मेलन की साहित्य-परिषद के सभापतित्व भाषण से)

नयी पुस्तकें

पिछले दिनों नीचे लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं:—

भारती-भंडार, काशी के प्रकाशन

दो एकांकी नाटक : लेखक—सद्गुरुशरण अवस्थी; पृ० सं० ८९; मूल्य ॥=)

सितारों के खेल [उपन्यास] : लेखक—उपेन्द्रनाथ 'अश्क'; पृ० सं० २५०; मूल्य १॥)

वन-श्री [कविता-संग्रह] : लेखक—गुरुभक्तसिंह 'भक्त'; प्रकाशक—सरस्वती-मंदिर, काशी; पृ० सं० १३१; मूल्य १)

रामनारायणलाल, इलाहाबाद के प्रकाशन

सरल अर्थशास्त्र : लेखक—दुबे और केला; पृ० सं० ६०३; मूल्य ३)

नागरिक शास्त्र की विवेचना : लेखक—गोरखनाथ चौबे, एम० ए०; पृ० सं० ३९७; मूल्य ३)

गद्यभारती [राष्ट्रभाषा हिन्दी की चुनीहुई गद्य-रचनाएँ] : संपादक—केशवप्रसाद मिश्र, पद्मनारायण आचार्य; पृ० सं० ५७६; मूल्य २॥)

विचार-विमर्श : [विवेचनात्मक लेखों का संग्रह] लेखक—सद्गुरुशरण अवस्थी; पृ० सं० १४६, मूल्य १॥)

चार उपन्यास [संसार के चार मशहूर उपन्यासों का संक्षिप्त भावानुवाद] : अनुवादक—इलाचन्द्र जोशी; पृ० सं० १४६; मूल्य ॥)

महाकवि 'हरिऔध' का 'प्रिय प्रवास' [आलोचना] प्रो० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री एम० ए०; पृ० सं० १७०; मूल्य १)

विश्व की कहानियाँ [खगोल विषयक] लेखक—श्री "देव"; पृ० सं० १०४; मूल्य ॥)

पुस्तक-मंदिर, कलकत्ता के प्रकाशन

भारतीय शासन-व्यवस्था : लेखक—श्री श्रीकान्त ठाकुर; पृ०सं० ३५३; मूल्य १॥) सजिल्द१॥

हवाई युद्ध : लेखक—डॉ० सत्यनारायण; पृ० सं० ६६; मूल्य ॥)

टैंक-युद्ध : लेखक—डॉ० सत्यनारायण; पृ० सं० ६६; मूल्य ॥)

हवाई हमले से हिफ़ाजत : लेखक—श्रीरा बाजपेयी; प्रकाशक लीडर प्रेस प्रयाग; पृ० सं० १२७; मूल्य १)

पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय के प्रकाश

पारिजात—हरिऔधजी की अनेक कविता का ५१५ पृष्ठों का विराट् संग्रह, मूल्य ४)

भाषा और साहित्य का विकास—लेखक—श्री हरिऔधजी, ७३१, मूल्य ५)

कानन—श्री जानकीवल्लभ शास्त्री की १ कहानियों का संग्रह; पृष्ठ २०७; मूल्य १

विश्व-दर्शन—लेखक श्री व्रजनन्दनसहाय 'व्रज वल्लभ; पृ० सं० १५३; मूल्य १)

सस्ता-साहित्य-मण्डल नई दिल्ली

लड़खड़ाती दुनिया : पं० जवाहरलाल नेहरू पृ० सं० १७५; मूल्य ॥)

डायरी के कुछ पन्ने : श्री घनश्यामदास बिड़ मूल्य १॥)

कसौटी पर

शान्तिप्रिय द्विवेदीजी की दो पुस्तकें—

(१) साहित्यिकी: प्रकाशक—ग्रंथमाला ..., बांकीपुर; मूल्य १।।)

इस पुस्तक में श्री शान्तिप्रियजी के २६ निबंधों का संग्रह है। इन निबंधों का विषय हिंदी के प्राचीन और नवीन साहित्य है। कुछ निबंध ..., शरत्चंद्र और रवीन्द्रनाथ के संबंध में हैं। निबंधों की शैली अधिकतर व्याख्यात्मक ... की है, जिसमें लेखक का ध्यान साधारणतः आलोच्य ग्रंथ या ग्रंथकार के उस पहलू पर केन्द्रित है जो उनके मत से उत्तम और ... है। यह व्याख्यात्मक दृष्टि ही इन निबंधों की ... है। निबंधों का विषय साहित्य होने के कारण यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि ये किसी ... साहित्यिक आलोचना की जाति के हैं। वस्तुतः ऐसा भ्रम हुआ भी है और ... ने इसी भ्रम के कारण द्विवेदीजी के निबंधों के साथ ऐसे निबंधों की तुलना की जो साहित्यिक आलोचना की जाति के हैं। ... द्विवेदीजी के ये निबंध रचनात्मक साहित्य के हैं। इन्हें सहृदय पाठक इनके आलोच्य ग्रंथों को समझने के लिए नहीं पढ़ेगा, बल्कि निबंधों को समझने के लिए पढ़ेगा। हिन्दी में ... साहित्यिक ग्रंथों पर वैयक्तिक विचार ... शायद हैं ही नहीं। न-जाने क्यों ... शुरू से ही साहित्य को निर्णयात्मक ... का विषय ही मान लिया गया है। ... ने भी इन निबंधों में कहीं-कहीं साहित्य ... दृष्टि से देखने का उपक्रम किया जरूर ... वे इस श्रेणी के आलोचक नहीं हैं। ... की अपेक्षा संवेदना की प्रवृत्ति ... वे अपने को यथासंभव दूर रखकर ... नहीं देखते, बल्कि यथासंभव नजदीक ... हैं। इन निबंधों की उपस्थापन- ... भंगी और सजीव-भाषा, इसमें व्यक्त ... और विश्लेषणों की अपेक्षा अधिक महत्त्व की चीज़ हैं। श्री रामकुमार वर्मा ने इसी बात को कविजनोचित भाषा में इस प्रकार कहा है कि "लेखक ने अपना हृदय पिघलाकर उन (अपनी आलोचना के) आदर्शों को प्राप्त किया है। ये आदर्श लेखक के हृदय से उसी प्रकार निकले हैं जिस प्रकार सीपी के हृदय से मोती।" निस्संदेह यह पुस्तक आदर पाने योग्य है।

(२) जीवन-यात्रा—प्रकाशक वही; मू० ।।।=)

यह पुस्तक भी द्विवेदीजी के व्यक्तिगत विचारों का संग्रह है। इसका विषय साहित्य नहीं है, इसलिए इसके विषय में उस प्रकार का भ्रम नहीं हो सकता, जैसा कि पहली पुस्तक के विषय में संभव है। इसमें भी द्विवेदीजी का संवेदना-प्रवण रूप व्यक्त हुआ है। वे जीवन को दूर बैठकर निरपेक्ष आलोचन की भाँति नहीं देखते, बल्कि अपनी अनुभूतियों, वेदनाओं और संस्कारों से (जो प्रधानतः संवेदना-मूलक हैं) सानकर ही देखते हैं। इसीलिए इन निबंधों में पाठक द्रष्टा की अपेक्षा भोक्ता का आनंद अधिक पाता है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

आहुति—लेखक-श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'; प्रकाशक-हिन्दी भवन अनारकली, लाहौर। मूल्य ।।=)

'आहुति' एक छोटा-सा नाटक है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने कई नाटक लिखे हैं। मुझे उनके और कई नाटकों के भी पढ़ने का अवसर मिला है। 'प्रेमी' जी नाटचकला से पूर्ण परिचित हैं।

यह इतिहासिक नाटक है। इतिहास की घटनाओं के साथ कुछ हेर-फेर किया गया है परन्तु नाटचकला की मर्यादा के अनुकूल ही यह परिवर्तन है। नाटक की घटनावली और पात्रों के क्रम-विकास में जो प्रधान उपकरण हैं उनकी ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है। इससे अधिक नाटचकार का उत्तरदायित्व भी नहीं।

पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों और नायकों के चयन में जहाँ एक आबद्ध धारणा के

कारण उसमें लेखक अधिक हेरफेर की स्वतंत्रता से वंचित रहता है, वहाँ दूसरी ओर उसी अतीत की पृष्ठभूमि की एक आलोक-परिधि भी होती है जिसके कारण वह जनरुचि के लिए पहिचानी पगध्वनि की भाँति आह्लादकर होती है।

'आहुति' में कथा की पेचीदगी नहीं है। यही सारल्य उसका गुण और कलावादी के लिए दोष है। पत्रों की गुम्फना में किसी गहरे अंतर्द्वन्द्व-प्रदर्शन के झमेले में न पड़कर सीधी-सादी दैनिक भावनाओं की अभिव्यंजना मिलेगी। विचार-संघर्ष जहाँ भी है गूढ़ नहीं। वह विचारों को परेशान करनेवाला नहीं है। वह केवल भावुकता को सजग कर देनेवाला है। इसमें क्षत्रियकुल की ऐतिहासिक वीरता की परिचालना की गयी है। मुस्लिम संस्कृति और उनकी मनुष्यता को भी बड़ी सहानुभूति के साथ ऊपर उठाकर मानव मात्र के अभिन्न स्वभाव की ओर संकेत किया गया है।

'वीर' और 'करुण' इस नाटक के स्वीकृत रस हैं। उनकी प्रतिष्ठा पूर्ण रूप से हुई है। स्थान-स्थान पर कथा का झुकाव वस्तुस्थिति की ओर अधिक न होकर आदर्श की ओर अधिक रहा है। कहीं-कहीं पर भाषा के प्रयोगों में मौलिकता और उक्तियों में लाक्षणिकता और सुखद विस्मयापन्नता है। परन्तु अधिकांश में 'प्रेमी'जी की शैली नितांत सरल, सुबोध और व्यक्त है। उसे साधारण कक्षा के बच्चे भी पढ़कर आनन्द ले सकते हैं। मुसलमान पात्र हिन्दीमिलवाँ उर्दू बोलते हैं, परन्तु वैसे और सभी पात्र बोल-चाल की साधारण भाषा का प्रयोग करते हैं। संवादों में उतनी वाक्चातुरी चाहे न हो परन्तु दौड़ है और रसात्मक आकर्षण भी है। अभिनय के लिए नाटककार को जिस तल पर उतरना पड़ता है उसपर 'प्रेमी'जी उतरे हैं और उन्होंने नाटक के प्रमुख अंग रसात्मकता को नहीं छोड़ा है। नाटक का अंत जिस प्रकार किया गया है उसमें 'प्रेमी'जी की कला का अच्छा पता लगता है।

सद्गुरुशरण अवस्थी

हमारा योग व उसके उद्देश[1]

'योग' में आम लोगों की कोई दिलचस् नहीं। उसे वे साधु-संन्यासियों और वैरागियों काम का समझते हैं। जिन्होंने गीता पढ़ी है हिन्दू-धर्म में झाँका है, वे योग को तरह-तरह जानते व मानते हैं। गीता में भी कहीं कहा है 'समत्वं योग उच्चते' और कहीं बताया है 'यो कर्म सुकौशलम्'। फिर ज्ञानयोग, कर्मयोग, भ योग आदि भी बताये गये हैं। पढ़े-लिखे लो आमतौर पर योग से 'हठयोग' या 'पातञ्ज योग' समझते हैं। पतञ्जलि ने योग की व्याख् की है—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" जितने विद्वा उतने अर्थ व व्याख्या हो गयी है। मेरे खयाल में 'जीव को शिव से मिला देना' योग का स अर्थ व उद्देश है।

इस जमाने के पढ़े-लिखों में श्री अरविन्द ने एक खास तौर के योग की साधना की है। मू प्रेरणा और आधार तो उन्हें उपनिषदों और गी ही से मिला है; परन्तु उसके मार्ग या साधना नवीनता और उद्देश में विस्तार है। हिन्दी उनके अंग्रेज़ी निवन्ध 'The Yoga and objects' का हिन्दी अनुवाद 'हमारा योग उसके उद्देश्य' नाम से, आचार्य अभयदेवजी के सम्पादन में श्री अरविंद ग्रंथमाला पांडिचेरी प्रकाशित हुआ है। उसे जब हिन्दी-पाठक पढ़ें तो मेरी बात का समर्थन करेंगे। वे कहते हैं, योग का 'उद्देश व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है, यद्यपि मुक्ति योग की एक आवश्यक अवस्था है, बल्कि इस उद्देश है मनुष्य-जाति की मुक्ति। या सतयुग को फिर से पृथ्वी पर लाना। व्यक्तिगत मुक्ति को 'ज्ञान की संकुचित गति' मानते हैं और कहते कि ज्ञान की गति जब विस्तृत होती है तब ज अजातशत्रु और कार्तवीर्य जैसे योगी संसार सिंहासनों पर आरूढ़ होते हैं और विभिन्न रा का शासन करते हैं।' वे मानते हैं कि भारत

---

[1] १. मूल्य ।।), पृष्ठ संख्या ५६, छोटी सा सोल एजेंण्ट्स दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार स (पुस्तक मन्दिर), त्यागरायनगर, मदरास।

श्वर ने इस कार्य के लिए कम-से-कम इस के लिए चुना है। उनका यह अवलोकन कि मनुष्य और वस्तुओं की प्रवृत्ति इस समय हो गयी है, इनका सामञ्जस्य बेसुरा हो है। उनको पुनः सामंजस्यपूर्ण, सुरीली बनाने मनुष्य के हृदय, कर्म और मन के समग्र परिवर्तित होने की आवश्यकता है। उनके वह इस योग द्वारा ही हो सकता है। योग-साधना की त्रिविध प्रक्रियायें हैं—

आत्म-समर्पण का संकल्प करना।"

आत्मज्ञान के द्वारा आधार से अलग होकर में प्रतिष्ठित होना।

, समस्त वस्तुओं में और समस्त घट-में ईश्वर का दर्शन करना, कर्मफलों को स्वयं कर्मों को भी ईश्वर के अर्पण करना, इसके फलस्वरूप अज्ञान से, अहंकार से, पा जाना, और शुद्ध, मुक्त, सिद्ध और हो जाना।

इसका सविस्तर विवेचन भरसक सरलशैली किया गया। योगी अरविन्द की योग-कल्पना को जानने की यह प्रारंभिक पुस्तक है और इस रूप में वास्तव में पढ़ने व मनन करने योग्य है। 'योग' शब्द पढ़कर ही हमें चौंक न उठना चाहिए। योग के ज्ञान व साधन की आवश्यकता उस प्रत्येक मनुष्य के लिए है जो अपने जीवन को कुछ बनाना चाहते हैं। सफल व सार्थक जीवन के लिए तो योग-साधन उसी तरह अनिवार्य है जिस तरह पौधे के लिए पानी, प्रकाश व हवा। नियत, नियमित व निश्चित जीवन योग की प्रथम सीढ़ी है। इस प्राथमिक साधना से ही मनुष्य बड़े-बड़े कार्यों को करने में समर्थ हो जाता है। तब पूर्ण योग-साधन से सामर्थ्य कितना बढ़ सकता होगा, उसकी दिव्य शक्तियों का कितना विकास हो सकता होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। 'नर को नारायण करने' की शक्ति योग में ही है। प्रस्तुत पथदर्शिका को पढ़कर पाठक योग बल को पहचाने और योगी अरविंद के व्यापक योगादर्श की झाँकी किये बिना न रहेगा।

ह० उ०

दो नयी किताबें

नयी किताबों का ज़िक्र करना है। किताबें समय देनेवालों ने चाहा कि मैं सम्मति पढ़ने पर दोनों ने मन को छुआ भी। वे इसी से नयी नहीं, हिंदी लेखनशैली परम्परा में भी नयी हैं। वे हैं श्री घनश्यामदास की 'बापू' और 'डायरी के कुछ पन्ने'।

'बापू' पुस्तक निकलने से पहले भी देख सका कुछ अंश फिर देख गया हूँ। घनश्यामदास गांधीजी का काफ़ी साथ मिला है। तब मिला जब बिड़लाजी कुछ हरे थे। विचार पक रहे हैं तब भी गांधीजी की पड़ ही रही है। कहना चाहिए उस छाप के बिड़लाजी का मानसिक विकास हुआ। को अध्ययनीय से अधिक बापू के रूप उन्होंने लिया। तो भी बापू की छाप वाले की विवेक-बुद्धि को स्तब्ध तो करे, नहीं करती। और बिड़लाजी जैसे शायद अपने सगे पिता को सप्रश्न भाव से देख सकने में असमर्थ हों वैसा गांधीजी के प्रति उनका सम्बन्ध नहीं हो सकता। गांधी उनके लिए कम पिता नहीं हैं पर मानों उन्हीं बापू से उन्हें उत्तेजन मिलता है कि बिड़ला उनको समझें और आदर के साथ विवेकपूर्वक भी उन्हें अंगीकार करें।

'बापू' पुस्तक में यही दोनों तत्त्व हैं। गांधीजी के प्रेमल संस्मरण हैं। साथ ही उनके गांधीपन को यानी गांधीजी के जीवन की मूल निष्ठा को आकलन करने का भी प्रयास है।

संस्मरणात्मक भाग एकदम निर्मल, कोमल और हृदयस्पर्शी है। अनायास वह अपने आप में हिंदी-लेखनकी स्वच्छ शैली का नमूना हो गया है।

विवेचनात्मक भाग, कुछ बौद्धिक और भारी हो गया है। उसका कारण एक कठिनाई है। गांधीजी के जीवन के दो सूत्र हैं: सत्य और अहिंसा। इन सूत्रों को समझना कैसे हो? गांधीजी

तो प्राणों द्वारा उन्हें साधने के प्रयासी हैं। अर्थात् उनके लिए अहिंसक होने से अलग अहिंसा को जानने जैसा कुछ नहीं है। इसी तरह सत्य का शोध सत्यमय होते जाना है। परिणाम यह कि गाँधीजी का तर्क अनुभव से आगे नहीं बढ़ता। अनुभव में जो पाया है, बुद्धि-तर्कना द्वारा उसीको रूप और उसी को व्याख्या मिली है। जो भीतर में उपलब्ध नहीं है बुद्धि द्वारा उसे पकड़ने का प्रयास गांधीजी में नहीं है। गांधीजी के यह प्रमुख विशेषता है।

बिड़लाजी अहिंसा को बुद्धि से पकड़ने की ओर वहाँ तक बढ़ गये हैं कि जहाँ स्पष्ट मालूम होता है कि उनका अनुभव साथ न दे सका होगा। बछड़ेवाली चूक तो भूमिका में महादेवभाई ने सुझा ही दी है। राम और कृष्ण को ईश्वरवाची अर्थ में नहीं वरन् व्यक्ति रूप में देखने और फिर उनकी हिंसा का अहिंसा के साथ पूर्ण समन्वय समझने की भूल भी काका साहब के पत्र में बतायी गयी है। ये भूलें आकस्मिक नहीं। ये उनको चुभी नहीं, इसीसे जान पड़ता है कि अहिंसा सम्बन्धी उनका प्रतिपादन अनुभव-सिद्ध से अधिक तर्क-साध्य धरातल पर चला है। विवेचनात्मक भाग में सावधान साधक को वैसी कचाई लग सकती है। अहिंसा और सत्य जैसी प्राण-शक्तियों को बुद्धि से बाँधने में वह खतरा है ही। इस क्षेत्र में जानना होने से भिन्न नहीं है। Knowing is be coming. अहिंसा को अहिंसक होने के द्वारा और सत्य को सत्याचरण के द्वारा ही जाना जा सकता है। बाकी ज्ञान अज्ञान है।

अध्यात्म की ज़मीन पर शब्द शब्द नहीं रहते, स्फुलिंग हो जाते हैं। कहा है कि मन्त्र की एक मात्रा का फ़र्क़ इष्ट को अनिष्ट बना देता है। पर उस ऊँचाई की कचाई बिड़लाजी की पुस्तक में दीख भी मिले, बाक़ी पुस्तक निर्दोष कही जा सकती है।

'बापू' अध्ययन नहीं है। बिड़लाजी गांधी से इतनी दूर नहीं हैं कि अध्ययन का उन्हें सुभीता हो सके। उस विषय में वह पूरी तरह अपने को परे नहीं कर सकते। मैं अपने को बचाकर समझने की पद्धति का उतना क़ायल भी नहीं। लेकिन अध्ययन के लिए दृष्टि तटस्थ चाहिए। पर पुस्तक में गांधी व्यक्ति नहीं 'बापू' हैं। बापू के रूप में गांधीजी के व्यक्तित्व के अवयवों और समवाय का पृथक्करण दुर्लभ है। उस काम के लिए युग की समूची परिस्थिति की पृष्ठिभूमि देकर गांधीजी को एक जवाब, एक इलाज, एक घटना के रूप में देखना होगा, जिससे हमारा इतना ही संबंध हो कि हम उसके दर्शक हैं। बिड़लाजी में गांधी से इतनी दूरी या अनासक्ति नहीं है। अतएव गांधीजी से अधिक गांधी से प्रभावित बिड़लाजी का व्यक्तित्व इससे व्यक्त होता है। ठीक भी तो है, धूप से हम सूरज को देखते हैं और गांधी के प्रभाव में गांधी की वास्तविकता को देख सकते हैं। 'बापू' पुस्तक उसके लेखक पर बापू की छाप का सही लेखा है। वह सही है, इसीमें पुस्तक की क़ीमत है। सही बिड़लाजी के अभ्यंतर की ओर से, क्योंकि गाँधीजी की ओर से सही होने का तो सवाल ही नहीं है। और वह चित्र सजीव और सहज है, यह पुस्तक की साहित्यिक सफलता है। मैं मानता हूँ कि हिन्दी का आज का लेखक खरेपन और स्वच्छता के लिए उसे अपने आगे नमूने के तौर पर रख सकता है।

दूसरी पुस्तक है 'डायरी के कुछ पन्ने।' डायरी सन् ३१ की है, तभी लिखी गयी। पर कारणवश पुस्तक सन् ४० की होकर भी ४१ की कही जा सकती है। डायरी यह हृदय की नहीं, समय की है। सबसे क़ीमती आत्मा की डायरी होती है। उसकी क़ीमत साधक के लिए और सर्वकालीन है। पर समय की डायरी की भी कम क़ीमत नहीं। इतिहास के लिए वह दस्तावेज़ का काम देती है। कम-से-कम यह पुस्तक तो एक क़ीमती ऐतिहासिक दस्तावेज ज़रूर रहेगी।

इतिहास के बाजार में घटनाओं का पक्का माल आता है। भीतर कारखाने के अन्दर उन घटनाओं के ताने और बाने में क्या कुछ होता जाता है, इतिहास की आँख वहाँ नहीं पहुँचती; यद्यपि

स का हृदय उसके लिए उत्सुक रहता है। नक्श हूबहू उतार जाना छोटी बात नहीं । भावुक भावना में गाढ़ा रंग डालना घटना बनाता है, पंडित घटना को हिसाब में भावना का दारिद्रय रहने देता है। दासजी की डायरी में बहुत अच्छा है। गोलमेज़ के नाटक का नेपथ्य अपनी में सामने दीख आता है।

पुस्तक में गांधी केन्द्र-रूप हैं। परिधि भी के हिसाब से होती है। गोलमेज़ का इसे नहीं कह सकते; पर जितना है सच्चा है। बेशक उसमें लेखक की रुचि-आ गयी है। चित्र में भी तो श्याम-गौर है। सच्चाई में वह बाधक नहीं। पुस्तक उनकी रुचियाँ और अरुचियाँ व्यक्त होती पर उसमें कौशल और ईमानदारी का है। वही कला।

पुस्तक में दो बातें अपूर्व मिलीं। अपूर्व से मतलब कि हिन्दी पुस्तकों में वह गुण नहीं मिलते। एक यह कि बड़ी-से-बड़ी बात सहज घरेलू ढंग पर कही गयी है। उसमें प्रयास नहीं है, खींच-तान नहीं है। जीवन का स्वस्थ और यथानुपात दृष्टिकोण है। जैसे छोटी बात भी छोटी नहीं और बड़ी बात भी बड़ी नहीं। अपनी-अपनी जगह दोनों का एक-सा महत्त्व है। बिड़लाजी की इस क्षमता पर मुझे अचरज तक है और मैं उसका अभिनन्दन करता हूँ। दूसरी है, उनकी अलिप्त और अनाविल शैली। प्रान्तीय और घरेलू शब्दों को उन्होंने ऐसी खूबी से डाला है कि उनकी जगह शिष्ट और संस्कृत समझे जानेवाले शब्द फीके रहते। उन्होंने बात को सम्हाला है और भाषा अपने-आप सँवर गयी है। मन को और बुद्धि को थाम कर चलाया है और भाषा इसमें संयत होकर भी सहृदय रही है। इस पुस्तक की ताजगी "बापू" से भी मुझे बढ़ी हुई मालूम हुई।

जैनेन्द्रकुमार

समालोचनार्थ प्राप्त

हित्य-सदन, अबोहर (पंजाब) के प्रकाशन

आज का जापान : संपादक–रघुवीरसहाय; सं० १६२; मूल्य १)

विश्वपाय : लेखक—भगवानदास वर्मा; पृ० ६४; मूल्य ।)

ग्रामसुधार (नाटक) : लेखक—सैयद कासिम-; पृ० सं० ९९; मूल्य ।।=)

ईसप-नीति-निकुंज (१) : रचयिता—अध्या-रामेश्वर 'करुण'; पृ० सं० ९६; मूल्य ।।)

बाल-गोपाल : लेखक—अध्यापक रामेश्वर; पृ० सं० ४०; मूल्य =)।।

बाल-गीत : लेखक–रामावतार विद्याभास्कर; सं० १०४; मूल्य ।।)

युगांतर-साहित्य-मंदिर, भागलपुर

पुण्यवाणी (कविता) : ले०–माहेश्वरीसिंह, एम० ए०, पृ० सं० ४७; मूल्य ।।=)

सुहाग (कविता): ले० उपर्युक्त; पृ० ५२; मूल्य ।।)

मानव (कविता) ले० श्यामविहारी शुक्ल 'तरल'; प्रकाशक—साहित्य-निकेतन कानपुर; पृ० सं० ८०; मूल्य ।।)

सेवा-पथ (नाटक) : ले०—सेठ गोविंददास; प्रकाश-हिन्दी भवन, लाहौर पृ० सं० १०८; मूल्य ।।।)

भार्गव-पुस्तकालय, बनारस के प्रकाशन

भाभी के पत्र: ले०—श्री 'व्यथित हृदय'; पृ० सं० १४४ मूल्य १)

पर्वोत्सव विवरण: ले०—श्री 'सुदर्शन'; पृ० सं० १२४; मूल्य ।।=)

सवारियों की कहानियाँ: ले०—श्री 'व्यथित हृदय'; पृ० सं० १२३; मूल्य ।।=)

वर्तमान-साहित्य-मण्डल, दिल्ली के प्रकाशन

पोलैण्ड का बलिदान: ले०—ठा० राजबहादुर सिंह पृ० सं० १५३; मूल्य १), १।)

हिटलर और युद्ध: ले०—आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री; पृ० सं० १५६; मूल्य १।)

पंचप्रदीप (कहानियाँ): लेखक—श्री कप्तानसिंह 'चंचल'; प्रकाशक—एम० बी० जैन एण्ड ब्रदर्स, ग्वालियर; पृ० सं० १११; मूल्य ।।।)

रोग-विज्ञानम् : लेखक—श्री सुरेन्द्रकुमार शर्म्मा; प्रकाशिक—पंडित सरोजनी देवी वैद्या, चिड़ावा; पृ० सं० ११६; मूल्य २।।)

हिन्दी व्याकरण : ले०—श्री रुद्रदत्त मिश्र 'साहित्यरत्न'; प्रकाशक—रूपलाल एण्ड सन्स, लश्कर; पृ० सं० १५६; मूल्य ।।)

आर्यसमाज के उज्वल रत्न : लेखक—पं० जयदेव शर्मा, विद्यालंकार; प्रकाशक-आर्यसाहित्य मण्डल लि० अजमेर; पृ० सं० ८०; मूल्य ।)

हितैषी-पुष्पांजलि : संग्राहक—"हितैषी"; प्रकाशक—हितैषी पुस्तक भंडार, उदयपुर; पृ० सं० ३००; मूल्य ।), ।-)

षष्ठांश : मूललेखक—स० सुब्रह्मण्य भारती; अनु०—षष्ठांश के सेवक; प्रकाशक–भारती प्रचुरालयम्, तिरुवल्लिक्केणी, मद्रास; पृ० सं० ४०; मूल्य ≡)

भारतीय सभ्यता का विकास : लेखक—श्री कालिदास कपूर; मूल्य ।।)

साम्राज्य और उनका पतन : लेखक—श्री भगवानदास केला; प्रा० भारतीय, ग्रन्थमाला, वृन्दावन; पृ० सं० २२८ मूल्य १);

अनुभूत पशु- चिकित्सा : लेखक—श्री कुँवर सुरेन्द्रसिंह 'इन्द्र'; प्रकाशक—युवराज-प्रकाशन-मन्दिर; पृ० सं० १४४; मूल्य ।।)

हिन्दुस्तान बनाम पाकिस्तान : लेखक—श्री रुद्रनारायण अग्रवाल; प्रकाशक-लाजपतराय पब्लिशिंग कम्पनी, कलकत्ता; पृ० १५७; मूल्य ।।।)

समाजवाद, क्रान्ति और कांग्रेस : लेखक ?; प्रकाशक—आचार्य नरेन्द्रदेव; पृ० १०१; मू० ।=)

खिलौना : लेखक—डॉक्टर इन्द्रसेन; पृ० सं० १६; मूल्य =)

शम्भू के साथ एक दिन : लेखक—तया प्रकाशक श्री के० एस० वेंकटरमणी; पृ० सं० ३२ : मू० ≡)

गुजराती

शुभसंग्रह—(भाग ९ वाँ) : सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय; पृ० संख्या ७०४; मूल्य २)

ग्राम पंचायतनो कायदो : ले०—नरहरि द्वा० परीख; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; पृ० सं० ५०; मूल्य ।)

सैर-सपाटा

नया वर्ष नया सन्देश, नया जीवन लेकर आता है, तो क्यों न वह नया साहित्य भी लेकर आये ! कई नवोदित सहयोगियों ने अपने सफल वर्ष समाप्त किये हैं। 'जीवनसखा', 'प्रीतलड़ी', ने अपने-अपने नववर्षांक निकाले हैं और 'विशाल भारत' ने एंड्रूयूज़ अंक ।

'जीवनसखा' के अंकों और इस विशेषांक को देखकर यह कहना होगा कि इसका नाम बिल्कुल सार्थक है। आरोग्य-शास्त्र का सुन्दर मासिक होने से यह वास्तव में 'जीवन सखा' ही है। विशेषांक में **प्राकृतिक चिकित्सा, इंद्रियनिग्रह की समस्या, प्रकृति बनाम दवा, आधारनिदान, भाजी और फल, भोजन और धूप, योग और स्वास्थ्य, विटामिन की कहानी, विद्युत-चिकित्सा,** आदि लेखों से पता चलता है कि सम्पादक स्वास्थ्य के विषय में सब विचार-धाराओं के लेख जुटाने में कितने सतर्क हैं। कहना नहीं होगा कि एक-एक लेख इसका पठनीय और आचरणीय है।

'प्रीतलड़ी' पत्र भी अपने ढंग का अनोखा है। इसमें एक ऐसी विचार-धारा प्रवाहित रहती है कि जो हमें ईर्ष्या, वैमनस्य, मनोमालिन्य, कुत्सा के अनिष्ट वातावरण से दूर ले जाकर प्रेम, स्नेह, भ्रातृभाव, और सुसंस्कृति के स्वर्ग में बिठा देती है। आज की दुनिया में कम-से-कम ऐसे साहित्य की बहुत आवश्यकता है। पर अंकों के देखने से लगता ऐसा है कि ऐसे सुन्दर आनन्द के उत्सव में जितनों को हाथ बँटाना चाहिए, उतने बँटाते नहीं।

'विशाल भारत' के 'एंड्रूयूज़ अंक' से दीनबन्धु के जीवन की विविध घटनाओं की जानकारी

ी है। उसमें दीनबन्धु की समस्त जीवन नाओं का क्रमिक वृत्त ढूँढना व्यर्थ होगा। फिर भारतीयों के दीनबन्धु के संपर्क और सह- ं के संस्मरण पर्याप्त मात्रा में हैं, जिनसे के मानव-प्रेम, भ्रातृभाव, करुणा और सच्ची ता के भावों से ओतप्रोत हृदय की झलक ती है। इसके अतिरिक्त श्री इलाचन्द्र जोशी छायावादी तथा प्रगतिपंथी **कवियों का मनो-** निक विश्लेषण' मननीय लेख है। एक लेख में ीराम शर्मा ने सम्मेलन की कुल विचारणीय याओं का हल सुझाया है और हिन्दी-उर्दू, , हिन्दी-प्रचार, संस्थागत संगठन, साहित्य- के साधनों आदि के बारे में उनके विचार संगत और व्यावहारिक हैं। अंक संग्रह- है।

श्री बनारसीदासजी का 'मधुकर' हर पखवाड़े र नयी-नयी काम की बातें बतला जाता है। ा यह प्रस्ताव कि 'कार्यक्षेत्र का विभाजन र्व-शक्ति का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए।' ा व्यावहारिक है यह 'मधुकर' के अंकों की ी देने से ही पता चल सकता है।

धुकर' के अंकों में ग्रामों में ज्ञान और का प्रचार, ग्रामगीतों, कहानियों, कहावतों ों का संग्रह, स्वास्थ्य संबंधी व जीवनोपयोगी ों की जानकारी आदि अच्छी-अच्छी बातें हैं, जिनसे हम व्यावहारिक जीवन में लाभ उठाते हुए अपने साहित्य, भाषा, व संस्कृति की सर्वांगीण उन्नति का उपक्रम कर सकते हैं। विशेषता यह है कि लेख जितने ही रोचक हैं उतने ही उपयोगी भी हैं। अगर हरेक प्रांत में या राज्य में 'मधुकर'-जैसे पत्र चल निकलें 'जो अपना दृष्टिकोण व्यापक रखते हुए परिमित क्षेत्र में ठोस काम कर सकें और देश-विदेश के सांस्कृतिक उपवनों से जीवनप्रद रस ग्रहण करके जनता के सामने रख सकें', तो हमें विश्वास है कि वे जनता की ज्यादा सफल सेवा कर सकें। आशा है, 'मधुकर' दिन-दिन ठोस कार्य करता रहेगा।

'हंस' ने नये साल से **'साहित्य-समस्या'** स्तंभ खोला है, जिसमें श्रीजैनेन्द्र ने **'युद्ध और लेखक'** में युद्ध की व्याख्या करते हुए लेखक को युद्ध के प्रति क्या रुख रखना चाहिए, यह बतलाया है। उसी अंक में श्री शिवदानसिंह चौहान ने **'विश्व-साहित्य के प्रकाशन की योजना'** रखी है जो प्राणमान है। इसके अनुसार संसार का सर्वश्रेष्ठ साहित्य हिन्दी में अनुवादित किया जायगा। विषयों को उन्होंने २० भेदों में विभक्त किया है; जिनमें मानव से सम्बन्धित खास-खास शास्त्र आ जाते हैं। योजना पर उन्होंने सम्मति भी चाही है, सहयोग भी चाहा है। प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को उसे देखना चाहिए। **सु०**

कृष्ण-मन्दिर में

आचार्य नरेन्द्रदेव : काशी विद्यापीठ के आचार्य)पद पर रहने के कारण आचार्य नाम से त नरेन्द्रदेवजी संस्कृत, इतिहास, राजनीति समाजशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित हैं। आचार्यजी ी में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

श्री श्रीप्रकाश : विद्वद्वर डॉक्टर भगवान्दास त्र श्रीप्रकाशजी विद्वान पत्रकार और सिद्ध- क हैं। राजनीति आपका अत्यन्त प्रिय है।

श्री सुभद्राकुमारी चौहान : 'झाँसी की रानी' की रचयित्री सुभद्राकुमारी हिन्दी की राष्ट्रीय कवयित्री हैं। उनकी 'मुकुल' (कवितायें) तथा 'बिखरे मोती' (कहानी-संग्रह) कृतियों पर दो बार सेकसरिया पुरस्कार मिला है।

श्री पद्मकान्त मालवीय : अभी-अभी दिवंगत हुए प्रख्यात पत्रकार और लेखक पं० कृष्णकान्त मालवीय के सुपुत्र, हिन्दी के सुकवि हैं।

श्री नरदेव शास्त्री : हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और ज्वालापुर महाविद्यालय के आचार्य हैं।

श्री बद्रीदत्त पांडे तथा **श्री रघुकुल तिलक** सुपरिचित हिन्दी-लेखक हैं।

श्री भवानीप्रसाद तिवारी : मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध कवि और राजनीति के विद्वान हैं।

क्या और कैसे ?

आदर्श

महात्माजी के तत्वावधान में जो सत्याग्रह देश में चल रहा है वह अहिंसा-प्रयोग की दृष्टि से आदर्श व बहुत ध्यान देने योग्य है। अहिंसा की परीक्षा ही यह है कि वह प्रतिपक्षी के मानस को बदलने का प्रयत्न करती रहे। यह तभी हो सकता है जब हमारे मन में किसी तरह का हिंसा, प्रतिहिंसा या द्वेषभाव हमारे विरोधी के प्रति न हो। इसकी क्या पहचान ? हम उसके कष्ट व दुःख से लाभ न उठावें, उसे विपत्ति में पड़ा देखकर खुश न हों, अपना विरोध प्रदर्शित करते हुए भी उसके नैतिक भावों को आघात न पहुँचने का ध्यान रक्खें। सत्याग्रह में विजय का आधार सत्याग्रही का स्वयं कष्टसहन है, न कि विरोधी-प्रतिपक्षी को परेशान करना या मुसीबत में डाल देना। इसलिए सत्याग्रही उन तमाम अवसरों को बचावेगा जो सत्याग्रह के दर्म्यान विरोधी को अकारण परेशानी में डाल सकते हों। खुद सत्याग्रह से उसके सामने जो-कुछ कठिनाइयाँ खड़ी होती हों, सत्याग्रह-संचालन के सिलसिले में महात्माजी सरकार को परेशानी न हो, इसका बड़ी बारीकी से खयाल रख रहे हैं। पटना व लाहौर में भीड़ ने मर्यादा तोड़ दी तो उन्होंने भीड़ होने देना बन्द कर दिया। भाई प्यारेलाल नायर ने जब वर्धा के आसपास सत्याग्रह किया तो जनता को जानबूझ कर खबर नहीं की गयी। सत्याग्रह का प्रभाव भीड़ के कारण नहीं, सत्याग्रही की योग्यता के कारण होता है। भीड़ भी उनके प्रभाव का एक चिन्ह जरूर है; परन्तु वही भीड़ जो सत्याग्रह के नियमों का पालन करती हो। जो उनका भंग करती है वह तो उल्टा सत्याग्रह को कमज़ोर बनाती है, उसपर धब्बा लगा देती है। यह बात सत्याग्रहियों को अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए।

इसी तरह महात्माजी ने यह आदेश दिया था कि बड़े दिनों में सत्याग्रह रोक दिया जाय इसका यही उद्देश्य था कि अंग्रेज़ों के धार्मिक त्यौहार के दिनों में उन्हें सत्याग्रह-संबंधी कार्रवाइयों की चिन्ता में न रहना पड़े। एक और ताजा मिसाल लीजिए। उन्होंने आदेश दिया है कि जो सत्याग्रही जुर्माना दे सकते हों वे खुशी से दे दिया करें। जब्तियों से जो कटुता बढ़ती थी वह इससे रुक जायगी। कटुता न बढ़ने देना अहिंसा का एक लक्षण है। प्रतिपक्षी के मनोभावों के प्रति इस मृदुलता के मर्म को कई लोग समझ नहीं पाते और महात्माजी व सत्याग्रह-पद्धति पर आक्षेप करने लगते हैं। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि सत्याग्रह का मुख्य हेतु प्रतिपक्षी के दिलोदिमाग पर असर डालना ही है—अपने स्नेह-युक्त कष्ट-सहन के द्वारा। यही सच्ची तपस्या है। और इस दृष्टि से वर्तमान सत्याग्रह प्रत्येक समाज-शास्त्री व मानस-शास्त्री के अध्ययन की चीज़ है। यदि समाज में से हिंसा, युद्ध, कलह को मिटाना है तो समाज-व्यवस्था व समाज-शान्ति के अहिंसात्मक, सभ्य-शिष्ट उपाय हमें ढूँढ़ने ही होंगे। अतः महात्माजी इस समय जो पदार्थ-पाठ हमें दे रहे हैं उसका बहुत बारीकी से व तन्मय होकर हम सबको अध्ययन व मनन करना चाहिए।

हिन्दी पत्रकार-संघ

यह खुशी की बात है कि दिल्ली में तारीख २७-१-४१ को अ० भा० हिन्दी पत्रकार-संघ की स्थापना हो गयी। वैसे तो संपादक-सम्मेलन के रूप में एक आयोजन समय-समय पर होता रहा है, परन्तु हिन्दी पत्रकार-सम्मेलन के अवसर पर उसे हिन्दी पत्रकार-संघ के नाम से अब स्थायी रूप देकर हिन्दी पत्रकारों ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। हिन्दी पत्रकारों में सौहार्द-सहयोग व सद्भाव बढ़ाना, पत्रकारों व पत्रकार-कला के गौरव व मर्यादा की तथा हितों व अधिकारों की रक्षा करना, पत्रकार-कला की उन्नति के अन्य आयोजन करना उसका उद्देश स्थिर किया गया है। प्रथम वर्ष के लिए बाबू मूलचन्दजी अग्रवाल

(विश्वमित्र'-संचालक) अध्यक्ष, पंडित इन्द्र (अर्जुन'-संचालक) उपाध्यक्ष, श्री हरिशंकर विद्यार्थी ('प्रताप'-संपादक) मंत्री, श्री विष्णुदत्त शर्मा सहायक मंत्री व श्री मिहिरचन्द धीमान् कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। इनके अलावा १० प्रतिष्ठित पत्रकारों की मिलकर कार्य-समिति बनायी गयी है। अगले अधिवेशन के लिए इन्दौर का निमंत्रण स्वीकार किया गया है।

पत्रकार-सम्मेलन की मूल-प्रेरणा का उद्भव वाली अंग्रेजी सम्पादक-परिषद्-सम्बन्धी हिन्दी पत्रकारों के असन्तोष से हुआ और उसे व्यक्त करनेवाला एक प्रस्ताव भी सम्मेलन ने पास किया, फिर भी उसका अन्तिम फल इस स्थायी संस्था के रूप में मधुर निकलता दीखता है—यह बड़े सन्तोष की बात है। परमात्मा इसके कार्य-कर्ताओं को दृढ़ता के साथ अपनी महान् जिम्मेदारी के निवाहने का बल व धैर्य देते रहें। ह० उ०

गागर में सागर

'जीवन-साहित्य' जहाँ थोड़े ही दिनों में लेखकों की कृपा व स्नेह का पात्र बन गया है वहाँ उसका आकार छोटा होने के कारण वह प्रतिदिन मिलने-वाले सहयोग को अपना नहीं पा रहा है इसका हमें बड़ा खेद है। जी० सा० में प्रकाशनार्थ इतने लेख आ चुके हैं और आते रहते हैं कि उन्हें यथावसर दे सकना भी कठिन हो रहा है। कई लेखों को तो ३-३ मास पूर्व स्वीकृत कर लेने पर भी अभी तक दिया नहीं जा सका। इसके लिए हम उन लेखक-बन्धुओं से क्षमाप्रार्थी हैं।

परन्तु जबतक कई अनिवार्य कारणों से आकार नहीं बढ़ाया जाता तबतक इसका एक सरल और सफल उपाय यह है कि हमारे कृपालु लेखक जो कुछ लिखें, नपा-तुला लिखें—जैसे सुनार सोना तोला जाता है, वैसे शब्द-शब्द, अक्षर-अक्षर तोला जाये।

छोटे टाइप के जी० सा० के ३ पृष्ठ तो इसकी पराकाष्ठा निश्चित हुई है, इससे भी छोटे-छोटे लेखों और विचारों का जी० सा० स्वागत करेगा। वस्तुतः लेख का मूल्य उसके विस्तार से नहीं आँका जाना चाहिए, बल्कि अर्थगांभीर्य से, विचारों की प्रौढ़ता से। यह तभी हो सकता है जब लेखकबन्धु यह तय कर लें कि उन्हें अपने लेखों की गागर में विचारों का सागर भरना है। सागर के पास जाते हमें डर लगता है, पर गागर पल-पल पर हमारी प्यास बुझाती रहती है।

निराधार विरोध

कुछेक पत्र-संपादकों ने रुपये की पत्र-मुद्रा (नोट) पर हिंदी भाषा-नागरी लिपि में एक 'रुपया' न छपा होने का इलज़ाम सरकार पर लगाया है। पर वह विरोध है निराधार। उसमें अवश्य ही 'एक रुपया' छपा है, फ़र्क सिर्फ़ इतना ही है कि 'रुपया' में 'र' का वही रूप प्रयुक्त हुआ है जो आज साहित्य-सम्मेलन ने मंजूर कर लिया है 'ɤ'। यह चिन्ह नया नहीं है, बल्कि पुरानी सब हस्तलिखित प्रतियों में पाया जाता है और श्र, प्र, घ्र आदि का ऐसा रूप होने का कारण 'ɤ' का होना ही है। कालान्तर में हमने 'र' का पूर्व-रूप बदल कर ही आज की मुसीबत पैदा कर ली है।

एक सुझाव

'र' का 'ɤ' रूप पुनः मंजूर करके साहित्य सम्मेलन ने बड़ी समझदारी का काम किया है। इससे 'र' को संयुक्त करने की सारी कठिनाई एक दम समाप्त हो जाती है बल्कि 'रेफ़' का टण्टा ही मिट जाता है। 'रेफ़' के चिन्ह(ॅ) को यदि अब हम छोटी 'इ' की मात्रा के रूप में लगाने लग जायें, तो कितना अच्छा हो? यही एक मात्रा ऐसी थी जो वर्ण के पहले लगा करती है। इस प्रकार यह भी वर्ण के बाद में लगने लग जाया करेगी। सु०

भूल-सुधार

२७८ पृष्ठ की अंतिम-पंक्ति में कुछ भूलें रह गयी हैं। पाठकगण उसे इस प्रकार समझें:—

भारतीय सरकार का जन-गणना में हिन्दी-भाषियों की मातृ-भाषा 'हिन्दुस्तानी' लिखने का सरक्युलर, बम्बई व पंजाब

स्व० श्री कृष्णकान्तजी मालवीय !

पंडित कृष्णकान्तजी मालवीय के आकस्मिक देहावसान से हिन्दी का एक महारथी लेखक उठ गया। हिन्दी में सर्वप्रथम राजनैतिक मासिक पत्रिका—'मर्यादा' निकालने का श्रेय आप ही ने प्राप्त किया था। 'अभ्युदय' के वे वर्षों संपादक रहे। हिन्दी के स्वतन्त्र और निर्भीक लेखकों में उनका ऊँचा स्थान था। अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में उनकी गति बहुत अच्छी थी। देशभक्ति और राष्ट्रीयता उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। उनकी लिखी 'सुहागरात' आदि पुस्तकें आज हिन्दी-पाठकों में बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। उन्होंने उस काल में हिन्दी-सेवा आरम्भ की थी, जबकि आजकल के कई ख्यातनामा लेखकों और कवियों का जन्म भी नहीं हुआ था या शैशव-काल था। उनका हिन्दी-सेवाव्रत अखण्ड कायम रहा। उनको यमराज ने ऐसे समय में हमसे छीन लिया, जबकि उनका विद्यमान रहना हिन्दी की उन्नति के लिए मूल्यवान था। ईश्वर उनके परिवारवालों और सुहृदों को उनके इस कठिन वियोग को सहन करने का बल दे और उनकी स्वर्गस्थ आत्मा को शांति।

ह० उ०

ज़रूरी सूचना

हमारे पास 'जीवन-साहित्य' के प्रथमांक की एक भी प्रति नहीं रही है, इसलिए ग्राहकगण कृपया उस अंक को मँगाने का कष्ट न उठावें। —व्यवस्थापक

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

श्रीयुत. एम. के. आचार्य, एम. एल. ए. (मद्रास)—"आपका दंत-मंजन तो मैंने **अपनी दंत-पीड़ा के लिए गत पाँच वर्षों में व्यवहृत देशी-विदेशी सब मंजनों से श्रेष्ठतर** पाया। मंजन दाँतों, मसूडों और तालु के घावों पर जादू का-सा असर दिखलाता है।"

श्री. एम० एस० बरदाचार्य एडवोकेट (मद्रास हाईकोर्ट)—"दो वर्ष पूर्व मुझे दंत-पीड़ा हुई थी जो बढ़ती ही गयी और मसूडों में घाव हो गये; **परन्तु आपके मंजन से अब मेरे मसूडे स्वस्थ हैं और दाँत में पीड़ा नहीं होती।** मैं तो कहूँगा कि मेरे व्यवहृत दंत-मंजनों में सर्वश्रेष्ठ आपका दंतामृत ही है।"

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

बीमा कम्पनी ही क्यों ?

अधिक ब्याज दे सकने का कारण !

बीमा कम्पनी और बैंकों की रुपया देने की नीति में बड़ा अन्तर है। बैंकें अपना रुपया कभी लम्बी मियाद के लिए देना पसन्द नहीं करती क्योंकि उन्हें कभी भी रुपए की ज़रूरत पड़ सकती है। और इसीलिए वे ज्यादा ब्याज भी पैदा नहीं कर पातीं। इसके विपरीत बीमा-कम्पनियाँ सदा यह चाहती हैं कि अगर उनका रुपया सुरक्षित है तो वह ज्यादा से ज्यादा समय के लिए लगा रहे और इसलिए रुपया सुरक्षित रखते हुए भी वे ब्याज अच्छी पैदा कर लेती हैं और इस दृष्टि से वे बैंकों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं। और इसीलिए वे अपने ग्राहकों के लिए ज्यादा ब्याज पैदा कर सकती हैं।

स्वदेशी बीमा कम्पनी, लिमिटेड

ने सारा खर्च काट कर और जोखिम के लिए रुपया अलग निकाल कर भी ६) प्रतिशत से अधिक ब्याज पैदा किया है और उसीसे प्रभावित और उत्साहित होकर स्वदेशी ने अपने यहाँ रुपया जमा करने की नयी योजना निकाली है कि जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति १००) से लेकर १०,०००) तक कम्पनी में डिपाजिट के रूप से निम्न ब्याज पर जमा कर सकते हैं—

एक वर्ष की मुद्दत पर	···	३) प्रतिशत
दो वर्ष की मुद्दत पर	···	३।) प्रतिशत
तीन वर्ष की मुद्दत पर	···	४) प्रतिशत

ब्याज हर छठे महीने मिलता है। विधवाओं, बच्चों और संस्थाओं को यह सूद हर महीने भी मिल सकता है।

सफलता का प्रमाण

रुपया जमा करने की यह योजना जनवरी १९४० से शुरू हुई है। इस थोड़े समय में ही उसमें काफी सफलता मिली है और अधिकाधिक मिलती जारही है। प्रमाण लीजिए—

१ जनवरी से ३० जून तक	६ मास में जमा हुए—३९,४३४) रु०
१ जुलाई से ३० नवम्बर तक	५ मास में जमा हुए—९०,६९३) रु०
	११ मास में कुल रुपया जमा हुआ १,३०,१२७) रु०

कम्पनी की मज़बूती का बड़ा प्रमाण

उसने अपने बीमेदारों को आजीवन और मियादी बीमे पर १८) तथा १४) रुपया प्रतिवर्ष बोनस दिया है। और हिस्सेदारों को कई वर्ष से ९) प्रतिशत मुनाफ़ा दे रही है।

विशेष ब्यौरा जानने के लिए लिखिए या मिलिए

श्रीचन्द दौनेरिया, मैनेजिंग डायरेक्टर

स्वदेशी बीमा कम्पनी लि०, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।

संग्रह करने योग्य ग्रन्थ

कुलीनता

[ले० सेठ गोविन्ददासजी]

त्रिपुरी के कलचुरि नरेश विजयसिंह देव और राजगोंड़ वंश स्थापक यदुराय के ऐतिहासिक कथानक को लेकर इस नाटक की रचना की गयी है। स्टेज पर खूब सफलता के साथ खेला जा सकता है। हिन्दी के मौलिक नाटकों में इसे प्रधान स्थान दिया जायगा। मूल्य १)

सुनीता

श्री जैनेन्द्रकुमार का यह बहुविख्यात उपन्यास अबकी बार सुलभ साहित्य माला में प्रकाशित किया गया है। मूल्य तीन रुपया की जगह अब सिर्फ दस आने है। बढ़िया छपाई और काग़ज़। पृ० सं० २००; सस्तेपन की हद है।

उर्दू हिन्दी कोश

(संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण)

इस अत्यन्त उपयोगी कोश में उर्दू और उर्दू में काम आनेवाले अरबी, फ़ारसी, तुर्की, इब्रानी, पोर्तुगीज आदि भाषाओं के लगभग साढ़े ग्यारह हज़ार शब्दों का सरल हिन्दी में अनेक पर्यायवाची शब्द देकर अर्थ किया गया है और यह भी बतलाया गया है कि प्रत्येक शब्द किस भाषा का है, साथ ही लिंग, विशेषण, अव्यय आदि भी बतलाये हैं। मुहाविरों और क़ानूनी शब्दों का भी संग्रह किया गया है। अब की बार पहले से एक हज़ार शब्द अधिक दिये गये हैं। मूल्य वही २॥) ढाई रुपया।

नीति-विज्ञान

[ले० श्रीगोवर्द्धनलाल एम० ए० बी० एल०]

नीति, सदाचार या धर्म की वैज्ञानिक आलोचना। हिन्दी में अपने विषय का सबसे पहला ग्रंथ। सदाचार की उत्पत्ति, उसका विकास, धर्म और ईश्वर से उसका सम्बन्ध, धर्मों के द्वारा किये गये अत्याचारों का इतिहास, धर्म और मज़हब आदि बातों पर अपूर्व प्रकाश। लेखक की बरसों की समस्या का फल। विद्वानों द्वारा अतिशय प्रशंसित। मूल्य २) रुपया, राजसंस्करण का ३) रु०

अरबी काव्य-दर्शन

[ले० प्रो० महेशप्रसाद आलिम-फ़ाज़िल]

अरबी भाषा के काव्य-साहित्य में से नीति, युद्ध, शृंगार, वैराग्य आदि की सूक्तियों को चुनकर इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है। एक-एक सूक्ति पढ़कर आप फड़क उठेंगे। मू० १।)

नोट--अपने नज़दीक की दूकान से खरीदिए; नहीं तो फिर हम से मँगाइए। हमारा सूचीपत्र मँगा लीजिए।

संचालक--हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई ४

उपरोक्त पुस्तक सस्ता साहित्य मण्डल की सब शाखाओं पर मिलती हैं।

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमेन--सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये

भुगतान पूँजी—१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहां हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजर:—

८, रॉयल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

या

बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—व्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला

१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

एक नए नगर की स्थापना

आगरे में "स्वदेशी" का विराट आयोजन

आगरे की स्वदेशी बीमा कम्पनी के प्रधान संचालक श्रीमान दौनेरियाजी अपनी सूझ-बूझ, और परिश्रम के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी दस वर्ष की तपस्या तथा कम्पनी के माननीय डाइरेक्टरों अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप आज "स्वदेशी" ने अपना जो स्थान बना लिया है वह सचमुच में डालनेवाला है। बीमे के उसूलों के लिहाज से स्वदेशी की तुलना आज किसी भी बड़ी से की जा सकती है। उसका आजीवन दुर्घटना का बीमा तो सर्वथा एक नई चीज़ है और काफ़ी प्रचार हुआ है। अधिक ब्याज पर सुरक्षित रूप से रुपया जमा करने की उसकी योजना निरन्तर सफल होती जा रही है। अलीगढ़ में सूत का एक बड़ा मिल अभी हाल में कम्पनी ने है जिसमें अच्छा मुनाफा होने की सम्भावना है। कम्पनी के प्रधान कार्यालय के लिए अपनी हाल ही में खरीदी गई है। जिसके साथ की ज़मीनें बेचकर कोई दस हज़ार का मुनाफ़ा हुआ और कोठी मुफ्त में बच गई है। लाखों रुपया और दूसरे कामों में लगाने के बाद अब कम्पनी धन्धों और मकानों की उन्नति में कुछ रुपया लगाना चाहती है और इसके लिए उसकी—

एक और नई योजना

एक आदर्श नगर की स्थापना सम्बन्धी है। इस नगर में एक हजार कोठियों के लिए स्थान और प्रत्येक कोठी को एक बीघे तक स्थान मिलेगा। नगर के लिए शहर से अलग, पर चुंगी एक के अन्दाज़ पर स्थान तलाश किए जा रहे हैं और चार ऐसी बड़ी-बड़ी जमीनें देखी हैं जहाँ यह नगर बस सकेगा। इस नूतन "नगर" में यह विशेषताएँ होंगी—

१—बिजली और पानी का अपना प्रबन्ध होगा। जिसमें खर्च आगरा शहर से बहुत कम होगा।
२—पक्की सड़कें, नालियाँ, पार्क और बगीचे होंगे। और अपना स्कूल, अस्पताल आदि होंगे।
३—शहर आने जाने के मोटर बस रहेंगी जिनमें नाम मात्र के किराए पर नगरवासी आ-जा सकेंगे।
४—नगर में आवश्यक वस्तुएँ मिलने के लिए छोटा-सा बाज़ार होगा।
५—जमीन की कीमत बहुत कम क़रीब पाँच छः आने प्रति वर्ग गज होगी।
६—इस नगर में आगामी दस-बारह साल में कम्पनी अपनी तरफ से १५–२० लाख रुपया लगावेगी। जिससे जो लोग जमीन या मकान के लिए रुपया लेना चाहेंगे उन्हें मामूली ब्याज पर रुपया मिल सकेगा। और जिसे वे धीरे-धीरे क़िस्तों में अदा कर सकेंगे।
७—शहर के सैकड़ों झगड़ों से यह नगर बरी रहेगा। यहाँ लोग आराम से सुख-शान्तिपूर्वक रह सकेंगे। रिटायर्ड लोगों के लिए तो यह नगर स्वर्ग समान होगा।

कम्पनी ने इस नगर की योजना को सफल बनाने के लिए एक अलग विभाग खोल दिया एक्सपर्ट एंजीनियर की अधीनता में काम शुरू होगया है और मकान बनवाने के दूसरे के अपने कारखाने खोले जा रहे हैं। ईंटों के लिए दो भट्टे खोल दिए गए हैं।

जो महानुभाव इस योजना में शामिल होना चाहें वे अभी से अपना नाम कम्पनी के दफ्तर करा सकते हैं। इसके लिए उन्हें प्रति बीघा सिर्फ २५) रु० पेशगी जमा कराने होंगे। को वे वापस भी ले सकेंगे यदि ३० सितम्बर १९४१ तक उन्हें जमीन न मिल सके या वे की शर्तों को मंजूर न करें।

स्वदेशी ने अपनी कोठी के साथ की जमीन के २८ प्लाट एक दिन में बेच दिए थे और आदमियों को निराश रहना पड़ा था। इस नगर में भी ऐसी समस्या होने की सम्भावना है शहर के सैकड़ों आदमी इस नगर में आना पसन्द करेंगे। अतः जो लोग इस योजना से लाभ चाहें वे अपना नाम जल्दी रजिस्टर करालें।

सर्वोदय

के

दूसरे वर्ष की जिल्द

जिसमें

श्री विनोबा की 'ईशावास्योपनिषत्' की अर्थ-सहित टिप्पणियाँ
श्री काकासाहब की 'वर्धा-शिक्षण-विषयक' तथा 'आकाश-दर्शन'
पर
आकृतियों के साथ लेखमाला
'आश्रमवासी उल्लू' के परिहासात्मक
और
राष्ट्रभाषा, लिपिसुधार, वर्धा-शिक्षण अेवं सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक विषयों पर
अधिकारी व्यक्तियों के लेख हैं
गांधी-सेवा-संघ के महत्त्वपूर्ण मालिकन्दा सम्मेलन के अवसर पर दिये हुअे
पू० गांधीजी *तथा* **सरदार वल्लभभाअी के**
महत्त्वपूर्ण तथा अधिकृत भाषण भी आप इसमें पढ़ सकेंगे। मू० सिर्फ़ रु० ४)

व्यवस्थापक **सर्वोदय कार्यालय** बजाजवाडी, वर्धा (सी० पी०)

किशोरों का एकमात्र सचित्र मासिक

संपादक—**रामदहिन मिश्र**
गेट अप आकर्षक
वा० मू० ३)

किशोर

सह०—**हंसकुमार तिवारी**
चित्रादि नयनाभिराम
नमूने की एक प्रति।)

बिहार, संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत और बरार तथा बड़ौदा के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत

इसमें प्रेरक कवितायें, देश और दुनिया का मुख उज्ज्वल करनेवाले अमर नर-वीरों की जीवन-गाथायें, किशोर-जीवन की रोज-दिन की समस्यायें, उनके कुछ प्रश्न और प्रश्नों के समाधान, साहसिक कथा-वार्ता, देश-विदेश की बात, साहित्य, शिल्प, समाज और राजनीति की सहज-सरल आवश्यक चर्चा, ज्ञान-विज्ञान, जीव-जंतु, इतिहास आदि सभी ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला जाता है। देश के भावी भाग्य-विधायकों के लिए 'किशोर' एक उपयोगी ज्ञान-विज्ञान का कोष ही नहीं, उज्ज्वल भविष्य के निर्माण का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

इसमें आचार्य काका कालेलकर, हरिऔधजी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, मुक्त, डॉक्टर रविप्रताप, श्री राधाकृष्ण, आरसी, नेपाली, श्री सोहनलाल द्विवेदी, स्वर्ण सहोदर, केसरी आदि की उपयोगी रचनायें छपती हैं।

भावी नागरिक-निर्माण की सद्प्रेरणा से अपने-अपने घरों, गाँवों, शिक्षण-संस्थाओं, पुस्तकालयों और वाचनालयों में किशोर' को स्थान दीजिए।

व्यवस्थापक—**'किशोर', बाँकीपुर (पटना)**

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये

फोन नं०
६३२८

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
[illegible]
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषताएँ हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएँ।

(२) अंतर्राष्ट्रीय व अंतर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।

(३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि 'कहानी' सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इंडियन पी० ई० एन—

'...इसमें जो कहानियाँ हैं, वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।...इस विशेषांक की कहानियाँ पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं...यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है...हिन्दी के प्रेमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'...विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। उनके चुनने में गहरे विवेक की दष्टि दीखती है...'

श्री सुदर्शन—

'...इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है।...मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'...छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है।...'

श्री उषादेवी मित्रा—

'...'कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है—अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना...'

श्री देवराज उपाध्याय—

'कथा-साहित्य संबंधी जितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है...'

श्री उदयशंकर भट्ट—

'...पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा...इस अंक की संपूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई।'

श्री रवीन्द्र

'Cheap Sentimental कहानियों से मुझे बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश हो गई...'

श्री पहाडी—

'...'कहानी' के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेंगीं।'

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल तीन रु० है। एक प्रति का चार आना। कृपया आज ही ३) मनीआर्डर से भेज दें : पुस्तकालय २।।) भेज सकते हैं।

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट।

जीवन-यात्रा में

विधवा का करुण क्रन्दन

पाषाण पुरुष-हृदय

पर कोई असर नहीं करता है।

क्योंकि

वह अपनी वृद्धावस्था के लिए अथवा अपनी प्रिय पत्नी के लिए या अपने प्यारे बच्चों के लिए संकट-समय का एकमात्र सहारा जीवन-बीमा नहीं कराता।

सहृदय होकर *बिड़ला-बन्धुओं द्वारा प्रबन्धित*

न्यू एशियाटिक में

बीमा कराइए

जिसने	१९३४ ई० में	१५,३८,५०
,,	१९३५ ,,	२५,०१,०००
,,	१९३६ ,,	३०,६६,७५०
,,	१९३७ ,,	३५,५९,५००
,,	१९३८ ,,	४१,७४,७५०
,,	१९३९ ,,	५०,११,७६८

बीमे किये हैं

और जो प्रगतिशील बीमा कम्पनी है।

योग्य एजेण्टों की शहरों तथा कस्बों में आवश्यकता है।

न्यू एशियाटिक लाइफ इन्शुरेंस कम्पनी, लिमिटेड

कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ:—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), लाहौर, पटना,
संगठन कार्यालय—अर्नाकुलम (कोचीन), कानपुर, तंजोर, त्रिचनापल्ली, कोलम्बो,
इत्यादि।

'हंस-परिवार' की अनुपम योजना के सदस्य बनिए

[१] भारतीय-पुस्तक-माला
- (क) कायाकल्प (३ भाग)
- (ख) स्नेह-यज्ञ [१-२]

२] 'हंस' पुस्तकें
- (क) मा [भाग १-२]
- (ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग ३]
- (ग) सात इनक़लाबी इतवार [भाग १-२-३]

[३] गल्प-संसार-माला

१० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी-संग्रह ।

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
- (क) नया हिन्दी-साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रंथावली
- (क) शोभा : ले० इन्द्र वसावड़ा
- (ख) संजीवनी : ले० 'सोपान'
- (ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] । ले० सोपान

[६] जाग्रत-महिला-साहित्य
- (क) पिकनिक; लेखिका— कमलादेवी चौधरी
- (ख) पिया; लेखिका— उषादेवी मित्रा
- (ग) कौमुदी; लेखिका— शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
- (क) कँटीले तार [भाग १-२]
- (ख) जाई-जुई

और ९ अन्य पुस्तकें

[८] 'हंस' मासिक १२ अंक

[९] 'कहानी' मासिक के १२ अंक और १॥) मूल्य की 'कोकिला' नामक पुस्तक भेंट ।

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों को मात्र २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की महँगी के ज़माने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी, यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं : यह संस्था तो सेवा के लिए ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम 'हंस-परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे ।

इस मूल्य में निःशुल्क बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठसंख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर २॥) रु० में १००० पृष्ठ मिलते हैं । इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है । यह योजना बेजोड़ है । निस्सन्देह ।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है, इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा ।

[१] १२०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं । [४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों, कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह । १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे । [५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उपस्थित किया गया है । [६] महिलाओं के लिए उन्हींके दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न । ये आपके परिवार में पत्नी तथा माँ-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे । [७] 'आज की किताब' के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुलझाव रहेगा । अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे ।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

दिल्ली में

सब प्रकार की उत्तम छपाई

और ख़ास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से

किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं।

आरती

[कलापूर्ण प्रगतिशील मासिक]

संपादक { सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

प्रत्येक हिन्दी-पाठक के लिए नियमित रूप से आरती पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि इसके हर अंक में आपको मिलेगा—

—विश्व की विविध प्रवृत्तियों का परिचय।
—भारतीय साहित्य की गति-विधि का निर्देश।
—साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर नवीनतम विचार।
—ओजपूर्ण कहानियाँ और कवितायें।
—संसार के महापुरुषों का उत्कृष्ट शब्द-चित्र।
—उत्पीड़ित मानवता की विद्रोहपूर्ण हुंकार।
—गम्भीर और प्रभावशाली टिप्पणियाँ।

ग्राहक बनकर और विज्ञापन देकर लाभ उठाइए

वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति ।।)

नमूने के लिए आठ आने का टिकट भेजिए।

आरती-मंदिर, पटना सिटी

माधुरी का विशेषांक

प्रकाशित हो गया। इसमें हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों और कवियों की कहानियाँ, कविताएँ, लेख और निबन्ध हैं। पृष्ठ-संख्या २ ० से ऊपर। दो भावपूर्ण तिरंगे चित्र, कई व्यंग्य चित्र और अनेक सादे चित्र। मूल्य १।)

इसी संख्या से जो लोग ग्राहक बनेंगे, उनको यह विशेषांक मुफ्त ही मिलेगा। विशेषांक बहुत नहीं छपा है। देर से ग्राहक बननेवाले इसे न पा सकेंगे।

आज ही वार्षिक मूल्य ६।।) भेजकर ग्राहक बनिए

मैनेजर—माधुरी, लखनऊ

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

जूट कारपेट

अति सुन्दर और आकर्षक होने पर भी
मज़बूत तथा क़ीमत में भी बहुत सस्ते हैं।

इसलिए
किसी भी प्रकार की सजावट के लिए
सब लोग जूट कारपेट को ही पसन्द करते हैं।

मिलने का पताः—
सभी जूट कारपेट की दुकानों में
तथा
खन्ना इन्डस्ट्रीज, बनारस सिटी
नेशनल नॉवेल्टी स्टोर, कानपुर
जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग
और
बङ्गाल स्टोर्स, लिमिटेड

टेलीफोन नं० कलकत्ता ३९३३, नं० ८ए चौरंगी प्लेस, कलकत्ता में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपकी इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

एजेंसी के लिए निम्न पते पर लिखें :—

टेलीफोन नं० कलकत्ता ५६५ टेलीग्राम—जूट वीवर
बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

परिचयांक

फरवरी में प्रकाशित हो रहा है

यह

साहित्यिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मासिक पत्रिका

साधना

सम्पादक
श्री सत्येन्द्र
एम० ए०

संचालक
गयाप्रसाद
एण्ड संस

का

साधना

विशेषांक होगा

इसमें

हिन्दी-साहित्य के धुरन्धर विद्वानों और लेखकों के महत्त्वपूर्ण लेख और सारगर्भित रचनायें तथा उनका पूरा परिचय दिया जायगा। इसकी पृष्ठ-संख्या साधारण अंक से चौगुनी होगी। इसका अलग से मूल्य १) है; किन्तु

३० फरवरी तक ग्राहक बननेवालों को

विशेषांक मुफ्त

यों तो हिन्दी-जगत में अनेक पत्र-पत्रिकायें हैं पर

साधना

ही एक ऐसी मासिक पत्रिका है जो केवल २) वार्षिक मूल्य में ही उच्चकोटि की विविध-विषय विभूषित सामग्री भेंट करती है, आप भी ग्राहक बनिए।

मनीआर्डर भेजने का पता—

साधना-कार्यालय, बाँके-विलास, आगरा

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—गया प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा

उत्तरी भारत की एक देशी रियासत की चहारदिवारी के भीतर से
निकलनेवाला और रियासती जनता के हकूकों के लिये लड़नेवाला
हिन्दी का राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र

प्रजा-सेवक

वार्षिक मूल्य ४) (सम्पादक—अचलेश्वरप्रसाद शर्मा) एक प्रति -)॥

इस पत्र में आप प्रति सप्ताह भिन्न-भिन्न रियासतों के ताजे समाचार, लेख, कविताएँ, कहानियाँ, चित्र, कार्टून आदि पढ़िए।

इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और देश की राजनैतिक गति-विधि के भी पूरे समाचार पढ़िए।

चूंकि यह अखबार प्रत्येक रियासत में जाता है और अपनी निर्भीक नीति के कारण दिनों-दिन इसकी ग्राहक-संख्या बढ़ती जा रही है, इसलिए यह विज्ञापन का भी एक सर्वोत्तम साधन है।

विज्ञापन की दरों और अन्य जानकारी के लिए निम्न पते से पत्र-व्यवहार करें।

पता—

मैनेजर—प्रजा-सेवक कार्यालय, गांधी बाजार, जोधपुर।

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—लेखक—पं० जगपति चतुर्वेदी। यह पुस्तक कई प्रसिद्ध अंग्रेज़ी, संस्कृत, पाली तथा हिन्दी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना उतना कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना कठिन है। इस पुस्तक में अपने मन, वाणी आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर अधिकार करने के सहज सरल उपाय बताये गये हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। मूल्य १)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय। इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति के लिए अपने सर्वस्व निछावर करनेवाले वीर-वीरांगनाओं की कहानियों का संग्रह है। प्रत्येक कहानी बहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और जोरदार भाषा में लिखीहुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनानेवाली हैं। सुन्दर कवर से युक्त पुस्तक का मूल्य ॥।)

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथितहृदय। इस पुस्तक में उन कहानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती है। चरित्र-निर्माण के लिए इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ॥।)

मैनेजर—छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग
कानपुर के सोल एजेंट-साहित्य निकेतन, कानपुर

प्राकृतिक चिकित्सा
का
सचित्र मासिक
पत्र

जीवनसखा

का
विशेषाङ्क प्रकाशित
हो गया

विशेषाङ्क के कुछ लेख और उनके लेखक

औषधोपचार व्यर्थ—महात्मा गांधी
स्वास्थ्य और प्राकृतिक चिकित्सा—प्रिन्सिपल केदारनाथ गुप्त
प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास-एक प्रकृतिवादी
आधार-निदान—डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह
इन्द्रिय-निग्रह की समस्या—डा० बरनर मैकफेडेन
गांधीजी की दिनचर्या—श्री घनश्यामदास बिड़ला
योग और स्वास्थ्य—स्वामी शिवानन्द
बेवकूफी की भी हद होती है—भदन्त आनन्द कौसल्यायन
प्रकृति बनाम दवा—श्री आनन्दवर्धन
रोग और जडी-बूटियाँ—डा० एल० कामेश्वरम्
हम क्या अवश्य खायें ?—श्री महेशचन्द्र अग्रवाल
विटामिन की कहानी—डा० एस० जे० सिंह
फल और भाजियाँ—श्री जानकीशरण वर्मा
भोजन और धूप—श्रीयुत ए० विजय घोष
विद्युत-चिकित्सा—डा० दिलकश
जीर्ण रोग, उनका कारण और निवारण—श्री विट्ठलदास मोदी
बद्धकोष्ठ चिकित्सा—प्रो० भवानीप्रसाद
आँखों का सौन्दर्य कैसे सुरक्षित रहे ?—डा० आर० एस० अग्रवाल

पचास से अधिक चित्रों से सुसज्जित वृहद् विशेषाङ्क का मूल्य केवल १) है; पर यह सभी नये और पुराने ग्राहकों को मुफ्त मिलेगा। वार्षिक चंदा ३) आज ही भेजकर प्राप्त कीजिए

मैनेजर—जीवनसखा, इलाहाबाद

महापुरुषों की महान रचनाएँ

नये
संसार के
निर्माण में व्यस्त
प्रकृति के हाथों की झंकार
हैं और उस नये संसार में रहने
के लिए हमें जानना होगा
कि उस झंकार
में क्या
है ?

और

हमारा
यह दावा है
कि यदि आप इस
ओर से उदासीन नहीं
हैं तो आप अवश्य मानते
होंगे कि इस दिशा का
समुचित ज्ञान प्राप्त
कराने में
केवल

सस्ता साहित्य मण्डल का ही प्रकाशन

आपका साथ देता रहा है

मानव-जीवन को सुखी और शान्तिमय बनाने के लिए देश-विदेश के महान-व्यक्तियों की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक (१०० से अधिक) पुस्तकों के अन्त में

प्रकाशित

नयी पुस्तकें

—**खादी-मीमांसा** : खादी पर अद्वितीय ग्रंथरत्न। मूल्य १।)

—**मेरी मुक्ति की कहानी** : महात्मा टॉल्स्टाय की जीवन-कथा और संस्मरण। मूल्य ।।)

—**समाजवाद : पूँजीवाद** : बर्नार्ड-शॉ की एक किताब के आधार पर लिखी सुन्दर पुस्तक। मू० ।।।)

४—**विनोबा और उनके विचार** : प्रथम सत्याग्रही आचार्य विनोबा के मननीय विचार। मूल्य ।।)

५—**बापू** : घनश्यामदास बिड़ला की प्रसिद्ध पुस्तक। मू. ।।।), १।) २)

६—**लड़खड़ाती दुनिया** : पंडित जवाहरलाल नेहरू के आज की दुनिया का सच्चा चित्र खींचने वाले लेख। मूल्य ।।)

[सोल एजेन्सी-प्रकाशन]

डायरी के कुछ पन्ने—श्री घनश्यामदास बिड़ला की दूसरी रोचक पुस्तक जिसमें दूसरी गोलमेज़ परिषद् के मधुर संस्मरण हैं। दाम १।)

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखायें:— दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

क्या आपको हिन्दी की नई प्रवृत्ति के सम्बन्ध में जानकारी है ?

सन् १९३७
सन् १९३८
सन् १९३९
सन् १९४०

की छपी हुई हिन्दी की नवीन पुस्तकों का

वार्षिक विवरण ज्ञात है ?

क्या आप अपने पुस्तकालय को बहुत ही अपटूडेट देखना पसंद करते हैं तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी की नई-से-नई प्रवृत्ति से सान्निध्य रखना चाहते हैं

—— यदि हाँ, तो ——

हमारा नया सूचीपत्र मुफ्त मँगाकर देखने की कृपा कीजिए

हमारा यह दावा है कि हम नई से नई और उत्तम से उत्तम हिन्दी पुस्तकें अपने स्टाक में रखते हैं और अपने ग्राहकों को कभी भी किसी शिकायत का अवसर नहीं आने देते।

हमारी दो प्रवृत्तियाँ

आलोचना-जगत का एकमात्र मासिक

साहित्य-सन्देश

सम्पादक—श्री गुलाबराय एम० ए०
तथा
श्री महेन्द्र

वार्षिक ६)रु०, विद्यार्थियों से २) रु० मात्र
अभी बननेवाले ग्राहकों को उपन्यास-अंक मुफ्त मिलेगा।

समालोचनात्मक ग्रन्थों का

प्रकाशन

हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास,
साहित्य की झाँकी :: सुमित्रानंदन पंत,
गुप्तजी की कला :: प्रसादजी की कला,
तथा
साकेत : एक अध्ययन आदि

पत्र व्यवहार का पता—

साहित्य-रत्न-भण्डार, ५३ ए, सिविल लाइन्स, आगरा।

'जीवन-साहित्य' या 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ग्राहकों को,

पौने मूल्य में

स्वाधीनता के भाव, उच्च संस्कार, शील-प्रेरणा और स्फूर्ति के लिए

साधना-मन्दिर-प्रकाशन

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय शब्दचित्र और जीवनी-लेखक । उनकी तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दीनबन्धु एण्ड्रूज, साधु वास्वानी और भदन्त ानन्द कौसल्यायन की लिखी कृतियाँ पढ़िए और प्रचारित कीजिए ।

बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित

१ जापान के गांधी कागवा	-)
२ अराजकवादी एमा गोल्डमेन	-)
३ अराजकवादी लुई माइकेल	-)
४ अराजकवादी मैलटेस्टा	-)
५ प्रिंस क्रोपाटकिन	-)
६ महापंडित राहुल सांकृत्यायन	-)
७ अराजकवादी माइकेल बाकूनिन	-)
८ इवान तुर्गनेव	-)
९ पतिव्रता जयिनी	-)
१० श्रीमती हैरियट एलीजबेथ स्टो	-)
११ भारत भक्त दीनबन्धु एण्ड्रूज	-)
१२ स्व० देवमित्र धर्मपाल	-)
१३ मंगलमय महावीर (साधु वास्वानी)	-)
१४ स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (राजबहादुर सिंह)	-)
१५ भगवान बुद्ध (भदन्त आनन्द कौसल्यायन)	-)
१६ बालशिक्षण और माँ-बाप (भानुकुमार जैन)	-)
१७ विप्लव-गान या क्रान्ति-गीत	-)
१८ अमर-गान भाग १ (रविन्द्रनाथ ठाकुर)	-)
१९ मेरी भावना (जुगलकिशोर मुख्तार)	)॥
२० पुस्तक महिमा और पुस्तकालय (लक्ष्मण त्रिपाठी)	)॥
२१ शान्तिनिकेतन का हिन्दी-भवन (दीनबंधु एण्ड्रूज)	मुफ्त

सेठ गोविन्ददास के नाटक

१. तीन नाटक [सजिल्द, एक रंगे बढ़िया डस्ट कवर सहित] ४॥)
२. कर्तव्य [पौराणिक नाटक] १॥), सजिल्द १॥।)
३. हर्ष [ऐतिहासिक ना०] १।), ,, १॥)
४. प्रकाश [सामाजिक ना०] १॥, ,, १॥।)
५. स्पर्धा [एकांकी ना०] ।=)
६. सिद्धान्त-स्वातंत्र्य ॥)
७. सेवा-पथ ॥।)
८. नाटक आलोचना और उद्धरण १।)
९. नाट्य-कला-मीमांसा ।)

१०. अंकुर [पद्य-संग्रह] रत्नकुमारी ॥), ,, ॥।)

अन्य पुस्तकें

११. संसार को भारत का सन्देश [अनु० लाला कन्नोमल जैन एम. ए.] १॥।)
१२. शिक्षा-मीमांसा [लेखक पं० गोपाल दामोदर तामसकर एम. ए. एल. टी.] १॥), सजिल्द १॥।)
१३. औद्योगिका [ले० पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी] ॥।) सजिल्द १)
१४. रसज्ञ-रंजन [ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी] ॥।)

प्राप्ति स्थान :—सस्ता-साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली

शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

कमला

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]

संपादक—श्री बाबूराम विष्णु पराड़कर

सहायक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

मैनेजर, 'कमला',
गायघाट, बनारस

नारी-जागरण का महान् सन्देश सुनानेवाली हिन्दी की प्रमुख सर्वोत्तम मासिक पत्रिका 'कमला' के प्रकाशन से हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में एक अजीब तहलका मच गया है। हर एक उसकी गम्भीरता और उपयोगिता का कायल हो रहा है। यदि आपका विश्वास न हो तो एक प्रति मँगाकर देख लें। नमूने के लिए ।=) के टिकट भेजिए। वार्षिक मूल्य ४।।) रखा है। आज ही चंदा भेजिए या नमूने मँगाइए।

विनयपत्रिका पर दैनिक 'आज' की सम्मति--

टीकाकार श्री देवनारायण द्विवेदी; प्रकाशक-भार्गव पुस्तकालय, गायघाट बनारस। पृष्ट ३८४, मूल्य ग्लेज काग़ज़ का २।), रफ का २)। कमीशन ।) प्रति रुपया।

गोस्वामी तुलसीदास का यह पावन ग्रन्थ भक्तिरस से ओतप्रोत है। इसमें भक्ति, वैराग्य और दीनता की वह निर्झरिणी प्रवाहित होती है जिसमें निमज्जन कर हृदय निर्मल हो जाता है। इसके एक-एक पद में हमें गोस्वामीजी के भक्ति-प्रवण अन्तस्तल की झाँकी मिलती है। परन्तु भाषा की क्लिष्टत के कारण बहुत से पाठक गोस्वामीजी की इस अमर कृति के आस्वादन से वंचित रह जाते हैं। रामचरित मानस की भाषा में यह बात नहीं है। इसी से अपढ़ ग्रामीणों के मुख से भी हमें रामायण की चौपाइयाँ सुनने को मिल जाती हैं। पर विनयपत्रिका की भाषा कुछ क्लिष्ट है। भक्तवर बैजनाथ तथा अन्य कितने ही विद्वानों ने इसी कठिनाई को दूर करने के लिए इसकी टीकाएँ की हैं। नयी टीकाओं में श्री वियोगी हरि की टीका बहुत प्रसिद्ध है। टीका में स्थान-स्थान पर श्री वियोगी हरि की टीका की अशुद्धियों की चर्चा की गयी है। यह ठीक है कि ऐसे उत्तम ग्रन्थों को टीका की भूलें खटकती हैं, किन्तु ऐसे पावन ग्रन्थ में यत्र-तत्र किसी की अशुद्धियों की चर्चा करते जाना तो और भी खटकता है। माना कि द्विवेदीजी ने किसी असत् उद्देश्य से ऐसा नहीं किया पर इस प्रसंग को छोड़कर भी वे टीका कर सकते थे।

प्रस्तुत टीका में पहले पद दिये गये हैं। फिर क्रमशः भावार्थ, शब्दार्थ और 'विशेष', विशेष में गीता, श्रीमद्भागवत, रामचरितमानस देवीमहात्म्य से तथा सूरदास, ललित किशोरी, कालिदास आदि के तुलनात्मक पद दे देने से टीका की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। टीका की भाषा सरल और सुबोध है। पुस्तक संग्रहणीय है।

विवाहोपलक्ष्य में भेंट देने की महान् वस्तु क्या ?

वही स्त्री-जगत् में हलचल मचानेवाली पुस्तक

क्या आप किसी के पिता और पति हैं ?

यदि हाँ तो

भाभी के पत्र

पढ़िए और अपनी स्त्री तथा कन्याओं को पढ़ाइए,

भूमिका-लेखक—कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' बनारसी   लेखक—श्री व्यथित हृदय

मूल्य सजिल्द १)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, ब्रांच, चौक, कचौड़ी गली, बनारस।

ट्रेड मार्क

तारा छाप कागज़

स्वदेशी

सस्ता

सुन्दर

टिकाऊ

भारतीय मूलधन, प्रबन्ध
परिश्रम का
ध्यान रखते हुए सदा
स्टार पेपर मिल का कागज़ व्यवहार करें

एजेन्ट—

बिहारीलाल मदनलाल जयपुरिया

श्री महालक्ष्मी मारकेट
फोन नं० ६६३५ : : इम्पीरियल बैंक के पास दिल्ली

Regd No L467

पंडित जवाहरलाल नेहरू
की
नवीन चमत्कारपूर्ण रचना

हिन्दुस्तान की कहानी

सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

१००० सज्जनों को 'जीवन-साहित्य'

आधे मूल्य में

'जीवन-साहित्य' तथा मण्डल के वर्तमान ग्राहकों की सिफ़ारिश पर

ग्राहक बन्धु,

' की महत्ता एवं उपयोगिता को समझकर आपमें से अनेक बन्धुओं ने

कि हम 'जीवन-साहित्य'

लेखकों का सवाल

"हम दया चाहते हैं ? दया भी मिल जायगी, अगर हम काफ़ी दयनीय बनें। लेकिन हमें हिम्मत के साथ कहना चाहिए कि दया हमें नहीं चाहिए। क्योंकि दया और दयनीय का सम्बन्ध दो आदमियों के बीच अप्राकृतिक सम्बन्ध है और अगर दया नहीं चाहिए तो हम दयनीय न बनें। आर्थिक दैन्य इसीसे बुरा है कि वह व्यक्ति में आत्मिक दैन्य लाता, उसे दयनीय बनाता है। लेकिन अर्थ-मुक्ति संत की शक्ति और अपरिग्रह ब्राह्मण की शोभा है। कौन कहता है कि निर्धन होकर व्यक्ति गौरवशाली नहीं हो सकता ? बल्कि सच्चे गौरव का मार्ग स्वेच्छित निर्धनता के सिवा दूसरा है ही नहीं। अतः धन न हो, पर लेखक उस कारण दयनीय न बने। कर्तव्य पर ज़ोर इसलिए है कि लेखक पहले मानसिक दैन्य से छूटे, प्रकृति की ओर से वह अधिकारी बने। प्रकृत अधिकार कर्तव्य-पालन के सिवाय और किसी राह नहीं आता। कर्तव्य-पालन से इधर-उधर हट कर शोर-संगठन से अगर क़ानूनी अधिकार कुछ पा भी लिया जा सकता हो तो प्रकृत शक्ति के अभाव में वह बेकार ही रहता है, उस क़ानूनी सुविधा से लाभ लेने वाले भी दूसरे निकल आते हैं।"

जैनेन्द्रकुमार

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

नाट सर्कस नई दिल्ली

Regd No L467

पंडित जवाहरलाल नेहरू
की
नवीन चमत्कारपूर्ण रचना

...वराज उपाध्याय एम. ए.] ३३८
९. जीवन का उषाकाल—[प्रभुदास गांधी] ३४१
१०. पूना-सम्मेलन के अनुभव— ३४३
[भानुकुमार जैन]
११. मक़बरे—[शादीराम जोशी, एम. ए.] ३४५
१८. क्या और कैसे ? [सम्पादकीय]
लेखक व 'मण्डल'; हमारी प्राचीन राष्ट्र-भाषा; नवीन हिन्दू धर्म; अभी देर है; 'विश्ववाणी'; स्व० आचार्य शुक्लजी!
१९. मण्डल की ओर से—

कुछ अनमोल अंग्रेज़ी पुस्तकें

My Experiments with Truth	(Gandhiji)	4	0	0
Hind Swaraj	”	0	4	0
Self restraint *Vs.* Self-Indulgence	”	2	0	0
To the Students	”	2	0	0
Cent per cent Swadeshi	”	1	8	0
Satyagraha in South Africa	”	4	8	0
From Yervada Mandir	”	0	2	0
Bleeding wound	”	0	12	0
Bhagavad-Gita	(C. R.)	0	6	0
Upanishad	”	0	6	0
The Power of Non violence	(R. B. Gregg)	2	0	0
An Autobiography	(Jawaharlal Nehru)	5	4	0
Glimpses of World History	”	6	0	0
Letters from a father to his daughter	”	0	8	0
History of the Congress	P. Sitaramayya	2	8	0
Home and Village Doctor	Satish C. Dass Gupta	5	0	0

मँगाइए—

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

शाखायें : दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

१००० सज्जनों को 'जीवन-साहित्य'

आधे मूल्य में

'जीवन-साहित्य' तथा मण्डल के वर्तमान ग्राहकों की सिफ़ारिश पर

प्रिय ग्राहक बन्धु,

'जीवन-साहित्य' की महत्ता एवं उपयोगिता को समझकर आपमें से अनेक बन्धुओं ने कई बार अपने मित्रों, साथियों या परिचित संस्थाओं के लिए चाहा कि हम 'जीवन-साहित्य' उनको आधे मूल्य में दें। अतः हमने तय किया है कि आगामी २ महीने के अन्दर आप जिन-जिन लोगों की सिफ़ारिश करेंगे उनको 'जीवन साहित्य' १) वार्षिक में दिया जायगा। उसके लिए निम्न नियमों को ध्यान रखना आवश्यक होगा।

१—इस पत्र के दूसरी ओर छपा फार्म भरकर भेजना होगा।

२—ग्राहकों का मूल्य इस आर्डर फार्म के साथ ही पोस्टल सार्टिफिकेट या डाक के टिकटों के रूप में आना चाहिए।

३—प्रत्येक ग्राहक चार सज्जनों से अधिक की सिफारिश नहीं कर सकेंगे।

४—इन ग्राहकों के रुपये हर हालत में पेशगी आनी चाहिएँ। वी. पी. से अंक नहीं भेजा जायगा।

५—ऐसे ग्राहकों को मण्डल के स्थायी ग्राहकों अथवा 'जीवन-साहित्य' के साधारण ग्राहकों को मिलनेवाली पुस्तकों पर कमीशन-संबंधी रियायत नहीं मिल सकेगी।

६—अप्रैल के अन्त तक यह संख्या पूरी हो जानी चाहिए। पर अगर इससे पहले यह पूरी हो गयी तो १००० से ज्यादा ग्राहक १) में नहीं बनाये जावेंगे। अतः हर हालत में दो महीने तक ठहरना नहीं चाहिए। शीघ्रता करें।

भवदीय

मार्तण्ड उपाध्याय

मन्त्री

सस्ता साहित्य मण्डल

यह पत्र भरकर भेजिए

जी० सा० ग्राहक-संख्या
मण्डल
(यहाँ अपनी ग्राहक सं० लिखें)

स्थान ______________________

ता० ______________________

आपकी सूचना पढ़ी। ठीक है। मैं अपने निम्न ४ मित्रों के नाम और पते लिखता हूँ और इनके ४) पोस्टल सार्टिफिकेट / डाक के टिकिटों या मनीआर्डर से भिजवा रहा हूँ। आप इनको······ अंक से १ वर्ष के लिए जी० सा० का ग्राहक बना लें।

भवदीय

नाम ______________________

पूरा पता ______________________

____

____

मित्रों के नाम

(१) ______________________

(२) ______________________

(३) ______________________

(४) ______________________

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्माऽमृतंगमय।

मार्च, १९४१
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक आठवाँ

निर्वाण·भिक्षा

खो गया मैं डगर में ही, रह गया अन्वेष प्रीतम !
द्वीप मैं जल से रहा घिर
उच्च तो भी गर्व से सिर,
यों जलधि उमड़े कि मेरा चिह्न हो निःशेष प्रीतम !
भ्रान्त मैं, घूर्णित बवंडर
परिधि अपनी बाँध, बँधकर,
हे महामारुत ! उठो, मैं मिल बहूँ अनिमेष प्रीतम !
जीत मैं, चढ़ अमर-मन्दिर
आज उल्का-सा रहा गिर,
किन्तु गिरते भी चलूँ दे ओज का उन्मेष प्रीतम !
दीप हूँ मैं मृत्तिका का
एक युग से टिमटिमाता,
ज्योतिमय, तुममें बुझूँ, बस एक कण्ठश्लेष प्रीतम !

सत्यव्रत 'सुजन'

'बापू' और मेरी कुछ शङ्कायें

[डॉ० भगवान्दास]

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला

नमस्कार

कल रात आपकी लिखी पुस्तक समाप्त की। एक-एक अक्षर पढ़ा—जिस दिन मिली (प्रायः तीन महीने हुए), उसी दिन कुछ पत्र पढ़े—बहुत रोचक जान पड़ी—छोड़ने का जी नहीं चाहता था—पर अन्य आवश्यक कार्य आकर विघ्न करते रहे हैं—आपाततः पन्ने उलटने से तृप्ति नहीं—अक्षर-अक्षर पढ़ने को जी चाहता था—ऐसे ही पढ़ा। प्रत्येक पृष्ठ पर लाल पेंसिल से कई-कई निशान बनाता जाता था, इसीसे समाप्त करने मे इतना विलम्ब हो गया। अवकाश मिलने पर फिर भी पढ़ने का विचार है।

गांधीजी ऐसे उत्तमोत्तम अलौकिक चरित-नायक ही से कथा सुन्दर हो जाती है—जैसे रामजी की कथा। फिर जब चरित का निरूपण करनेवाला भी सब प्रकार से योग्य मिले तब क्या कहना, सोने मे सुगन्ध। चित्रण के विषय जैसे मनोग्राही हैं, वैसी ही आपकी भाषा भी सुन्दर है। गांधीजी का रूप सामने आ जाता है। पच्चीस वर्ष का घनिष्ठ परिचय; बहुत सहवास, गांधीजी के आश्रमों मे, वा नगर-नगर के आपके ही गृहों मे; गौरवशाली, दूरगामी, व्यापक फल-वाले भी, और साधारण भी, राजनीतिक कार्यों मे चरित-नायक का निकटतम संग-साथ; उनके कुटुम्बभूत आश्रमो से और आश्रमवासियों से पूरा परिचय; महात्माजी के लिए, चिर-परिचय से उत्पन्न हार्दिक श्रद्धा-भक्ति—वह भी अन्ध-श्रद्धा नहीं, बहुत समय तक नितान्त छिद्रान्वेषण में विफल होकर, विवेकपूर्ण; सांसारिक व्यवहार में अतिसाधारण दक्षता—यह सब योग्यता जब लेखक मे हो, जैसी आपमें है, तब क्यों न ग्रन्थ बहुत उपयोगी, बहुत रोचक, तथ्य-प्रदर्शक, शिक्षाप्रद भी हो। आपमे, जैसा स्वाभाविक व्यवहार का कौशल है, वैसी ही स्वाभाविक उत्तम साहित्य के निर्माण की शक्ति भी है, यह मुझे पहले विदित नहीं था; इस ग्रन्थ की रचना से प्रमाणित हुआ। इसमे, अपने-अपने स्थान पर ललित हास्य रस भी मिलता है—यथा गांधीजी की 'कंजूसियों' के वर्णन मे; पर उसमे जो हँसी आती है वह अवहास नहीं, प्रीतिहास है; उससे भी गांधीजी के लिए, पाठक के मन मे स्नेहमय भक्ति ही बढ़ती है। एवं बहुत कोमल करुण रस भी है, यथा एक मरणासन्न स्त्री की, महात्माजी को एक बेर देख लेने की इच्छा को पूरा करने के लिए, बहुत कष्ट उठाकर भी महात्माजी का उसके पास जाना। महात्माजी की धर्म-वीरता का और भीष्म-प्रतिज्ञाओं के पालन का, अनशन आदि तपस्या का वीर रस तो पृष्ठ-पृष्ठ पर देख पड़ता है; उपमा स्थान-स्थान पर बड़ी रोचक और हृदयग्राही दी गयी है; आचार-नीति और राजनीति के प्रश्नों का विचार भी भरा हुआ है; दोनों का समन्वय महात्माजी किस रीति से करते हैं, इसका बहुत अच्छा निरूपण किया है। स्थान-स्थान पर संस्कृत के श्लोक और योग के सूत्र और संयुक्त प्रान्त की तथा राजपूताना की हिन्दी के दोहे आदि, बड़े मौक़े से, ठीक स्थल पर, रखकर, प्रसंग और आशय उज्ज्वल कर दिया गया है, और उन संस्कृत आदि वाक्यों का जीवद् भाष्य, महात्माजी के चरित के उदाहरण से, कर दिया गया है।

आपने, इस ग्रन्थ से, हिन्दी-साहित्य-भांडार को एक उत्तम रत्न समर्पण किया है।

कुछ और लिखना आवश्यक है। जिस वाक्य से आपने ग्रन्थ समाप्त किया है, "को जाने क्या की", उसीसे इस शेष वक्तव्य का आरम्भ करता हूँ। यदि गांधीजी का अति उदार, अति सात्त्विक, अति अथक, अति तपोमय महाप्रयास सफल हो गया (और भारत-माता का प्रत्येक सच्चा सन्तान हृदय से मानता है कि सफल हो जाय) तब तो युग-युग तक महात्माजी, न केवल भारत मे अपितु समस्त मानव संसार मे, 'अवतार' कर-

हो जायँगे। अन्यथा, यदि सफलता मे त्रुटि रही, अधूरी, कच्ची रही तो उनके भीतर ही कोई प्रतिबन्ध रहा, ऐसा पीछे आनेवाले इतिहास-लेखक को मानना पड़ेगा। जब उनका कोई विशेष प्रयत्न सफल नहीं होता, तब वे स्वयं भी कह दिया करते हैं कि मेरे मे ही कोई त्रुटि रही; उनका आशय प्रायः तपस्या और सद्भाव की बुद्धि की त्रुटि से रहता है। इतिहास-लेखक, ज्ञान, विचार मे त्रुटि, कार्यक्रम के संकल्पन-सम्पादन प्रतिपादन मे न्यूनता को विफलता का हेतु बतावेगा।

मेरे ऐसे तपोहीन, क्षुद्रबुद्धि से पुरानी पोथियों के वाक्यों का ही अथ लगानेवाले, किन्तु,

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति,
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया",

को जैसा स्वयं साक्षात् महात्माजी मानते हैं, उतना ही अथवा उससे भी अधिक व्यापक अर्थ मे माननेवाले, जीव को, महात्माजी के परम प्रभाव वाले प्रयोगों मे, एक भारी न्यूनता आज बीस-वर्ष से जान पड़ती रही है; जिसीसे, मेरी रजस से दूषित, अस्वच्छ दृष्टि में कांग्रेस के प्रयत्न, पुनः पुनः बहुत वेग से आगे बढ़कर, पुनः पुनः रुक जाते हैं। यह तो नहीं कह सकते कि फिर पुरानी अवस्था को लौट जाते हैं; पर, हाँ, यह देख पड़ता है, कि सारी अवस्था संशयित हो जाती है; और कभी-कभी तो, पुरानी अवस्था से भी अधिक नीची अवस्था मे गिर जाने का भय होने लगता है। मेरा आशय, इस विषय मे, जो है, वह प्रायः आपको विदित ही है। हिन्दी-अंग्रेजी पत्रों मे, बीस वर्ष से निरन्तर लिखता ही रहा हूँ।

आपने स्वयं, मृदु शब्दों मे, इस त्रुटि का स्वीकार किया है। "निर्णय पहिले करते हैं और दलील पीछे उपजाते हैं; तर्क कुछ लूला-सा रहता है", "उनकी दलील निर्णय के बाद बनती है, इसलिए पंगु-जैसी लगती है" (पृष्ठ १४३-१४४)। ऐसे वाक्य आपने पुनः पुनः पुस्तक के अन्तिम भाग मे लिखे हैं; और अपनी ही शंका का समाधान भी आपने पुनः पुनः किया है। पर शंका रही जाती है। जैसे ऊपर कहा, इस शंका का समाधान भविष्य ही करेगा। यह आशा तो अवश्य है कि महात्माजी ने, जैसा, मैत्री आदि की भावना से, अपने चित्त का, अपने हृदय का अत्यन्त मार्जन और प्रसादन किया है, "**मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां पुण्याऽपुण्य सुख दुःख विषयेषु भावनातः चित्तप्रसादं**" (योग-सूत्र), तो परमात्मा उनके लिए उस सूत्र को भी सिद्ध कर देगा, जिसका आपने उद्धरण किया है—"**सत्यप्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्**" पर यह भी देख पड़ता है, कि महात्माजी ने ही सत्य के साथ असत्य को मिला रखा है, अहिंसा के साथ हिंसा को; नहीं तो उसी की 'महामाया' देवी का संसार-कार्य बंद हो जाय। महामहर्षियों, पूर्ण कहलानेवाले अवतारों के भी संकल्प सब सरोतर पूर्ण नहीं हुए। शरीरधारी अवतार भी निर्दोष नहीं हो सकता। अथ च, अवतारों को भी क्षुद्रतर सेवकों का, सहायकों का, भय-स्थानों की चेतावनी देनेवालों का, बनकटी करनेवालों का, प्रयोजन होता ही है। रामजी ने तो वानरों से सहायता ली। इसलिए तपः-शून्य, अन्तःप्रकाश शून्य, अतः शक्तिहीन हृदयवाले, पर यथाकथंचित् मानव-समाज की क्षुद्र सेवा करने की इच्छा रखनेवाले, मेरे ऐसे जीव को, जो महात्माजी के प्रयोग-क्रम मे न्यूनता जान पड़ी, उसकी सूचना उनको तथा जनता को देते रहना, कर्त्तव्य धर्म समझ पड़ा; इसलिए ऐसा करता रहा। वह आपको विदित ही है।

यह पुनः कहता रहता हूँ, और फिर से कहता हूँ, कि गांधीजी के प्रयोग में 'दोष' नहीं, केवल 'न्यूनता' है। जो किया गया, वा किया जा रहा है, वह तो उत्तम ही था, और है; पर उसके साथ-साथ कुछ और भी करने की नितान्त आवश्यकता है—इतना ही वक्तव्य है।

गीता मे, कृष्ण ने, "**अभयं सत्त्वसंशुद्धिः**" और "**ज्ञानयोगव्यवस्थितिः**," दोनो की आवश्यकता दिखायी है। देवी भागवत मे कहा है,

मूल प्रकृतिरूपिण्याः संविदो, जगदुद्भवे,
प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं, प्राण-बुद्धि-अधिदैवतं ।

प्राण भी चाहिए, बुद्धि भी चाहिए । मनु ने कहा है, **तपो, विद्याच, विप्रस्य निःश्रेयसकरं परं ।**

इसको यदि यों पढ़ें,

तपो, विद्याच, लोकस्य सर्वश्रेयस्करं परं ।

तो और भी अधिक समयोपयोगी हो । तप भी हो, समाज-व्यवस्था करनेवाली विद्या भी हो, तभी सबका सब प्रकार का कल्याण हो सकता है ।

जैसा आपने लिखा है, जैसा समस्त मानव जगत् देख रहा है, गांधीजी ने भारत के मुमूर्षु शरीर मे नये 'प्राण' का संचार कर दिया है । पर 'बुद्धि' का, उत्तम समाज-व्यवस्था को साधनेवाली विद्या का, वैसा नया संचार नहीं किया है । इसी से तरह-तरह का भय है । उनका कहना है, कि हृदय शुद्ध होने से ज्ञान भी आप से आप हो जायगा । किन्तु प्राचीन ऋषियों का ऐसा मत नहीं है । दोनों की शिक्षा साथ-साथ होनी चाहिए । किसी भी बच्चे को, कोई भी माता, पिता, आचार्य, केवल सदाचार की शिक्षा नहीं देते । साथ-ही-साथ सद्विद्या का भी आरम्भ कर देते हैं । आपने स्वयं पुनः पुनः लिखा है कि महात्माजी 'स्वराज' का अर्थ और रूप दूसरा समझते हैं, उनके अनुयायी दूसरा; 'आज़ादी' का वे दूसरा, अनुयायी दूसरा; 'कांस्टिटचुएंट असेम्बली' शब्द के अर्थ का भी शायद यही हाल है; आत्यंतिक अहिंसावाद के विषय मे, द्वितीय हृदय जैसे उनके अन्तरंग, श्री राजगोपालाचारी से भी उनका मतभेद हो गया (पृ० १६८-१७६) । अधिनायक मे एक ओर, अवान्तर नायकों मे और साधारण योधाओं मे दूसरी ओर, इस प्रकार से बुद्धि का असाम्य, वैषम्य, ज्ञान और विचार का भेद—यह कांग्रेस के और भारत के लक्ष्य की सिद्धि के मार्ग मे बड़े भय का स्थान है । मेरे ऐसे दुर्बल-दृष्टिवाले को ऐसा सूझ पड़ता है । इसी भयस्थान की सूचना, और "मनु" के कहे, परम 'स्वदेशीय' 'स्वराजीय' प्रकार से, उस भयस्थान के बचाने के उपाय की सूचना, केवल सेवाबुद्धि से, आज बीस वर्ष से, मै कर रहा हूँ ।

देशव्यापी अभय का संचार भी चाहिए, तो देशव्यापी ज्ञान के योग की भी प्राप्य लक्ष्य के ठीक स्वरूप के ज्ञान - सहित - प्रयोगरूपिणी दूरदर्शिता की भी, साथ ही साथ आवश्यकता है । देशव्यापी नया प्राण भी चाहिए, तो देशव्यापिनी नयी (अर्थात् पुनर्नवीकृत अति प्राचीन) बुद्धि भी चाहिए । देशव्यापी तपस् भी चाहिए, तो देशव्यापिनी, स्वराज के सच्चे रूप की, (उत्तम परमार्थी 'स्व' के राज की, न कि अधम स्वार्थी 'स्व' के राज की), विद्या भी चाहिए । एक बार, काशी मे, ९ जनवरी, सन् १९२७ को, गांधीजी से, इस विषय पर, मुझे प्रायः १ घंटे से अधिक, प्रश्नोत्तर रूप मे, आलाप करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उस समय, उन्होंने ऊपर कही, 'स्वराज' की व्याख्या को विसष्ट स्वीकार किया था । पर इस व्याख्या का, देश में, चर्खा और खादी के ऐसा, प्रचार करने से इन्कार किया था । जो हेतु इस इन्कार के लिए उन्होंने बताये, वह आज तक मेरी समझ मे नहीं आये । यह प्रश्नोत्तरी, काशी के 'आज' पत्र मे, १९ फरवरी सन् १९२७ के अंक मे, महात्माजी से परिशोधन करा लेने के बाद, छपी है ।

निष्कर्ष यह कि, 'स्वराज', 'पूर्ण स्वतन्त्रता', 'अहिंसा', 'सत्य', 'सत्याग्रह', आदि शब्दों की आवश्यक व्याख्याओं का अभाव, और 'एकान्त-वाद' और 'अत्यन्तवाद' का भाव—इन दो कारणों से, स्वयं गांधीजी के वाक्यों और कार्यों मे असंगति है, और उनके और अनुयायियों के भावों और समझों मे भेद होता रहता है; जिससे कांग्रेस का कार्य बन-बनकर बिगड़-बिगड़ जाता है, और फिर-फिर बनाना पड़ता है—जैसे बिना 'सिमेंट' के बालू का मकान । 'अभय', 'श्रद्धा', 'देशभक्ति', 'तपस्या', 'आत्मबलि'—ये सब बालू और ईंट हैं; लक्ष्यभूत 'स्वराज' के सच्चे रूप का ज्ञान 'सिमेंट' है । केवल जोश से

नहीं बनेगा; होश भी परमावश्यक है। और न्तिकता, ऐकान्तिकता सृष्टि में है ही नहीं; ने इसे बनाया, उसीने 'द्वं-द्व'-मयी बनाया; -मयी उससे भी बन ही न सकी। आपने ही ा है कि गांधीजी स्वयं मानते हैं, जैसा भागवत हा है, कि "जीवो जीवस्य जीवनं"। मुझे याद काशी में ३० नवम्बर, १९२० को, सेंट्रल कालेज के पास एक मैदान मे, असहयोग ग्रह के आरंभ के लिए, महात्माजी ने सार्व-क सभा को, व्याख्यान द्वारा, उपदेश दिया; उन्होंने कहा कि यदि कोई ठीक-ठीक 'सत्य' ना चाहे तो उसे 'मौन' रहना पड़ेगा। यही -सम्मत है; 'अहिंसा' भी, 'सत्य' भी, सापेक्ष हैं। यह सब बातें भी जनता को समझाते हना चाहिए। प्राचीन ग्रन्थों के परिशीलन सका समन्वय सहज में हो जाता है। निरप-को पीड़ा देना, 'हिंसा' है; ऐसी 'हिंसा' न 'अहिंसा' है; अपराधी को न्याय-प्राप्त, मात्रा मे, उचित रूप में पीड़ा देना नहीं है, 'दण्ड' है, जो 'कर्त्तव्यधर्म' है; की वर्त्तमान अवस्था मे, राजनीतिक से, भारत-जनता का, 'निरुपद्रव' और प्रतिरोध ही, वर्त्तमान शासन के रूप को के लिए, परम कर्त्तव्य है। हाँ, सन्यासी जीवन के सभी व्यवहारों मे, आत्मत्राण भी, व्याघ्र, सर्प आदि का भी हनन है, इनका त्राण, 'योधा', 'क्षत्रिय', राजा-री', 'दण्डधर' का कर्त्तव्य है। इसी हेतु से, राम के पिता जमदग्नि के मामा, महर्षि मित्र ने, सर्व अस्त्र-शस्त्रों के परम वेत्ता प्रयोक्ता होकर भी, रावण के मामा मारीच, आदि राक्षसों के निवारण के लिए, राम को दशरथजी से माँगा; दशरथ के पूछने कि आप स्वयं सर्वसमर्थ होकर क्यों नहीं का हनन कर देते, तो उन्होंने उत्तर "त्यक्तदण्डा वयं विभो", हमने तो राज्य का, दण्ड का, सन्यास कर दिया क्षण के द्वारा ही यह सब राक्षसों के निवारण का कार्य होना है, उन्हीको सब अस्त्र-शस्त्र की विद्या दूँगा। यदि 'एकान्तवाद' का असत्याग्रह न किया जाय, तो वाक्यों और कार्यों मे असंगति न हो। 'गर्म कपड़ा न पहनो'—जाड़े मे; 'ठंडा कपड़ा पहनो'—गर्मी मे; कोई असंगति नहीं। 'परम अहिंसा-भाव से लड़ाई'—भारत के वर्त्तमान शासन से; 'दण्डरूपिणी हिंसा'—आत्म-रक्षणार्थ, अन्य अवस्थाओं मे; कोई असंगति नहीं। श्री महादेव देसाई ने, आपकी पुस्तक के 'आदि वचन' मे, जो सेवाग्राम पर पागल शृगाल के आक्रमण की कथा लिखी है, और किस तरह गांधीजी से बाज़ाबिता बाक़ायदा इजाज़त लेकर तब उस बेचारे दयापात्र सियार की हिंसा हत्या, नितरां अकारुण्य से (!) की गयी है, उससे महात्माजी के कोमल चित्तवाले अनुयायियों को घोर विचार उत्पन्न होगा, और बलवान चित्त-वाले अनुयायियों को (जैसे श्री कृपलानीजी को) प्रबल हँसी आवेगी।

जिस तरह आपने महात्माजी के अन्य विचारों, भावों, चरितों की समीक्षा-परीक्षा की है, उसी तरह, आपने यदि उनकी लिखी 'हिन्द-स्वराज' पुस्तिका के भावों और विचारों पर, और वर्त्त-मान समय मे उनकी उपयोगिता पर, अपने विचार प्रकट किये होते, तो पुस्तक अधिक रुचिकर और उपयोगी हो जाती। एक ही स्थान पर, केवल अस्पतालों ही के सम्बन्ध मे, उसका नाम-ग्रहण मात्र आपने कर दिया है। ग्रन्थ मे, कितने ही स्थानों पर, कोमल शब्दों की ओट मे, यह तो संकेत आपने कर ही दिया है, कि गांधीजी के सभी विचार और भाव समयोपयोगी नहीं हैं; किन्तु इनपर सब जनता के समक्ष, उसकी बुद्धि की वृद्धि और राजनीति की शिक्षा के लिए, विस्पष्ट विचार होना आवश्यक है। आप भी जानते हैं, कि गांधीजी के घनिष्ठ अनुयायियों मे से एक भी, उनके इन 'अति-वादों' से सहमत नहीं है; और साधारण जनता तो चक्कर मे पड़ी ही रहती है; यद्यपि उनकी तपस्या, त्याग, निस्स्वार्थता, हृदय-शुद्धि के हेतु से, उनके प्रयोगों

को, परम श्रद्धा से, अनुयायी जन अपनाते हैं, और उनसे देश मे बड़ी प्रगति, एक प्रकार की, हुई है; यद्यपि उसमे भारी भयस्थान, नेता और नीत मे भावैक्य होते हुए भी, बुद्धि के अनैक्य के कारण उत्पन्न हो रहे हैं।

जैसा, महात्माजी ने, 'हिन्द-स्वराज' ग्रन्थ मे लिखा है, क्या आप उससे सहमत हैं कि, रेल, तार, डाक, सभी यंत्र, छापाखाना और छपी पुस्तक भी, घड़ी, मोटरकार, कला की वस्तु, स्फटिक (संगमरमर) के प्रासाद, मन्दिर, बाजे, चिकित्साशास्त्र, चित्र, सौगन्धिक वस्तु, हिंस्र पशुओं के निराकरण के लिए तलवार, बन्दूक आदि, बाइसिकिल, मोटरकार आदि, यहाँ तक कि लम्प, लालटेन का भी, और बिजली, गैस, आदि वा हो तो अवश्य ही, तथा निजी सम्पत्ति, सभी का, पृथ्वी से लोप कर दिया जाय और केवल ग्राम-जीवन, और सूर्यदेव ही के साथ जागना, सोना, रह जाय? 'स्वराज' के रूप का, अभी से ही, स्पष्टीकरण यदि न कर दिया जाय तो पीछे, ऐसी बातों पर, घोर मतभेद होकर, महा उत्पात, भयंकर उपद्रव इस देश मे उत्पन्न होंगे; जैसे योरप मे इस समय उत्पन्न हो गये हैं, जैसे-जैसे स्पेन से दो तीन वर्ष तक, जन-धन-संहारकारक, गृह-कलह हुआ।

यदि आर्ष, अति प्राचीन, अति स्वदेशी, आध्यात्मिक तत्वों से, और वर्ण-आश्रम-धर्म के सच्चे उसूलों से, परस्पर परामर्श और निर्णय करके काम लिया जाय, तो यह सब उलझनें सहज में दूर हो जायँ।

"तस्माद् विद्वान् भवति नाऽतिवादी" (उपनिषत्)
"आश्रयेत् मध्यमां वृत्तिं; अति सर्वत्र वर्जयेत्।"

बीच का रास्ता पकड़ो; अति मत करो; तो रेल, तार, कल-कारखाने, निजी सम्पत्तियाँ, सभी वस्तु उपयोगी, मानव-जाति का सुख बढ़ानेवाली होंगी। अन्यथा ग्राम-जीवन ही पर क्यों सन्तोष किया जाय; जंगली मनुष्यों की सी और अधिक सादगी क्यों न अपनायी जाय; वा वन्य पशुवत्, वा वृक्षवत्, वा पाषाणवत् जीवन क्यों नहीं; वा प्रलय की महाशान्ति ही क्यों नहीं? 'रामराज' महात्माजी को प्रिय है; तो वाल्मीकि रामायण में अयोध्या नगरी का वर्णन पढ़िए; क्या वह ग्रामजीवन ही था? रावण की लंका जैसी ही वह नगरी विशाल, समृद्ध, सम्पन्न, प्रासादमयी, यंत्रमयी थी; पर हाँ, वहाँ राक्षसी हिंस्र भाव नहीं था; सब जीवन मर्यादित था।

"देश-काल-निमित्तानां भेदैः धर्मो विभिद्यते।"

भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के लिए धर्म भिन्न होते हैं। विविध वर्ण-धर्मों और आश्रम-धर्मों मे, गांधीजी के भावों के लिए भी, वनस्थ और संन्यास आश्रमो मे, साधारण जनता के भावों का; नियमन नियंत्रण के साथ। दंड-रूपिणी हिंसा के लिए, गृहस्थ धर्म और क्षात्र धर्म मे; ऐकांतिक अहिंसा के लिए, वनस्थ और संन्यास धर्म मे; और उससे घटकर, ब्राह्मण धर्म मे; इत्यादि। इस समय 'पोलिटिकल सन्यासियों' को ही सत्याग्रह मे जाना चाहिए, यह विचार जो गांधीजी ने अब अपनाया है, वह सर्वथा न्याय-संगत, आर्ष सिद्धान्तसमत है। पर इसको तरह-तरह से, साधारण जनता को समझाते रहना चाहिए। मुसलमानो के लिए 'सयासती फ़क़ीर' और हिन्दुओं के लिए 'राजनीतिक संन्यासी', ऐसे शब्दों का प्रयोग करके कहना चाहिए कि, इस महाप्रयत्न के लिए ऐसे ही आदमी चाहिएँ, जो 'दुनियवी ख़ाहिशों, ख़ुदग़र्ज़ियों, हिर्सों, हवसों' का, दिल से तर्क कर चुके हों, 'जो सांसारिक स्वार्थों, व्यावहारिक वासनाओं, इच्छाओं, लोभों' को मन से, चित्त से, हटा चुके हों, देश की और स्वतंत्रता, स्वाधीनता, स्वराज के लिए, उस स्वराज का स्वरूप ऐसा ऐसा होगा।

एक और बात विचारने की है, 'हिन्दू-मुस्लिम एका करो', 'छूत-अछूत-भेद छोड़ो' ऐसा गांधीजी के निरंतर पुकारते रहने पर भी हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य ही बढ़ा; अछूतपन की जड़ नहीं कटी; हिन्दुओं की जात-पाँत का वैसा ही बना है; खादी भी स्वयं बद्धमूल नहीं हुई, कांग्रेस के बल से ही चल रही है; कां

तर, व्यक्तियों मे, कमेटियों मे भी एका नहीं है, प्रत्युत परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, पदलोलुपता, और झगड़े बहुत हैं; इस सबका क्या कारण है? महात्माजी की तपस्या के सफल होने में क्या प्रतिबन्धक है? यह सोचने, विचारने, प्रकाश करने की बात है। मै इस विषय मे अपना मत पत्रों में सैकड़ों, बार प्रकाशित कर चुका हूँ।

आपसे भी मेरी सूचना है कि आप इन बातों पर, गांधीजी के विचार और अपने विचार विस्तार से, पुस्तक की दूसरी जिल्द के रूप मे प्रकाशित करें, तो लोक का बहुत उपकार होगा।

यदि मुझसे कोई अनुचित शब्द, महात्माजी के लिए लिख गये हों, तो मै उनके श्रद्धालु भक्तों से क्षमा की प्रार्थना करता हूँ। और यह भी दावे के साथ कहता हूं कि मै भी उनके, इस समय मे अद्वितीय गुणों का श्रद्धालु ही हूँ; पर अंधभक्त नहीं हूं। जैसे सब 'अतियों' को बचाना चाहिए वैसे 'अतिश्रद्धा' को भी। काशीखंड में कथा है, शिव और विष्णु की परस्पर भक्ति प्रसिद्ध है, शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः'' व्यास ने, शिव के मन्दिर में अपनी अति भक्ति, विष्णु के लिए, स्तुतियों से प्रकट की, शिव के पार्षद नन्दी को क्रोध हुआ; शापाशापी की नौबत आयी। दूसरे अवसर पर देवताओं ने वश, ऐसी ही कूटनीति के प्रकारों से, को लेना और बढ़ावा देना के) स्वयं शिव और विष्णु मे युद्ध करा दिया; अस्त्र-शस्त्र से युद्ध हो गया; शिव का परशु विष्णु के वक्षस्थल पर घाव करके टूट गया; विष्णु ने शिव का गला जोर से पकड़ा, इससे उसमे खून का दाग हो गया। पीछे समझे कि, माया देवी की सहायता से, देवताओं ने नाटक कराया; शर्माये; मेल किया; फर्से का घाव, श्रीवत्स का शोभावर्धक अंक होगया; गले पर जमे रक्त का उत्तम नीलवर्ण होगया; विष्णु का एक नाम और बढ़ गया, श्रीवत्सांक; शिव के दो, खंडपरशु और नीलकंठ यह सब पुरानी कथाएँ, पुराण मे, रूपक बनाकर रोचक भी, और सांसारिक व्यवहार के लिए नितान्त शिक्षाप्रद भी ऋषियों ने रख दी हैं।

पत्र 'अति' विस्तीर्ण हो गया। क्षमा कीजिएगा। निष्कर्ष कि, मै भी महात्मा गांधी का हृदय से श्रद्धालु हूँ; और उनकी तपस्या, उनका महाप्रयत्न, भारत जनता के उद्धार के लिए सफल हो, यह प्रतिदिन परमात्मा से मनाता ही रहता हूँ; और उनके कार्य की पुष्टि के ही लिए, यदि कुछ न्यूनता उसमे, मेरी अल्प बुद्धि को, जान पड़ती है, तो उसकी सूचना उनको और जनता को दे देना, अपना कर्त्तव्य धर्म समझता हूँ। किसीको इसमें सन्देह मत हो।

सुन्दर पुस्तक के लिए पुनरपि धन्यवाद।

शुभचिंतक

भगवान्दास

"स्कूल में मैं पानी नहीं पीता था। प्यास लगती तो घर जाकर पी आता था। एक दिन मौलवी साहब ने छुट्टी देर से दी। प्यास बहुत लगी थी। घर गया तो रोता हुआ गया। माँ से शिकायत की कि मौलवी साहब ने छुट्टी नहीं दी और प्यास के मारे मुझे बड़ी तकलीफ हुई, मैं अब स्कूल नहीं जाऊँगा। उसी वक्त मेरे ताऊ पण्डित लीलाधर, जो मेरी बातें सुन रहे थे वहाँ आगये। उन्होंने मेरी पीठ पर एक थप्पड़ दिया और घुड़ककर कहा—जाओ स्कूल। नहीं जायेंगे! क्यों नहीं जाओगे? "मै बिना पानी पिये ही, रोता हुआ उलटे पाँव लौट गया। तबसे पानी की व्यवस्था स्कूल ही में की गयी। एक लोटा रखा गया। नन्हकू कहार लोटे को माँजकर अलग रखता था। जब प्यास लगती तो उसीसे पानी पिया करता।

३० दिन : मालवीयजी के साथ

अश्लीलता का आरम्भस्थान

[किशोरलाल मश्रुवाला]

शृंगार-रसिक साहित्य में सुरुचि की हद कब पूरी होती है, और अश्लीलता कब शुरू होती है इस विषय पर श्री हरिभाऊजी ने मेरी राय माँगी है। किसी एक लेख में यह विचार जाहिर किया गया है कि कामना में से हम पैदा हुअे हैं। इसके मारने से हजारों में से अेकाध मनुष्य ही छूट सकता है। दूसरे सबके सब वर्षों तक उसमें आसक्त रहते हैं। इस वास्तविकता का हम खयाल करें, तो इसमें श्लील-अश्लीलता का वाद मचाना दंभ है, और अकारण है। इसमें सिर्फ लेखन-शैली की सुरुचि-कुरुचि, याने रोचकता-अरोचकता की दृष्टि से टीका की जा सकती है। जैसे कि ग्राम्य-गाली की भाषा का उपयोग साहित्यिक क्षेत्र में अरुचिकर माना जायगा। लेकिन संस्कृत, फारसी या अंग्रेजी विद्वत्तायुक्त शब्दों द्वारा, या परोक्ष-संकेत (Indirect Suggestion) द्वारा किया हुआ वर्णन रोचक माना जायगा। याने, यह भाषा-प्रागल्भ्य का विषय है, श्लीलता-अश्लीलता का नहीं। अगर भाषा की ग्राम्यता और अप्रगल्भता को अश्लील मान लें तो अश्लीलता की यही सरल व्याख्या मिल जायगी। इस दृष्टि से, जैसे कई साहित्यकार मानते हैं, 'परोक्ष-संकेत' 'संस्कृत शब्द', जैसे भाषा-संकर-कारक शब्द प्रयोग—यद्यपि उसका शृंगाररस से कोई सम्बन्ध नहीं—अश्लीलता है।

यह शायद आखिरी हद की राय है। लेकिन ठीक विचार पर पहुँचने के लिअे अैसी सीमान्त राय ठीक उपयोगी होती है।

इसमें यह विचार बताया गया है कि श्लील-अश्लीलता का वाद दंभ है। दंभ कब पैदा होता है? जब अेक काम से परहेज रखने में आमतौर पर मनुष्य को भलाई और सच्चाई का अनुभव और फायदा मालूम हुआ है, लेकिन जब अेक शख्स वह परहेज रख नहीं सकता, फिर भी उसका लाभ उठाना चाहता है, तब वह दंभ का आसरा लेता है। याने, दंभ भलाई और सच्चाई का मायावी रूप है। इसलिअे, यदि कोई शिष्टता का दंभ ही करता हो, तो उसके मूल में कुछ भलाई और सच्चाई बसती है। वह कौन-सी है, यह हमें खोजना चाहिअे।

काम-वासना के साथ अश्लीलता का खयाल पैदा ही क्यों हुआ? यह सवाल पूछते हैं तो और भी दो सवाल पैदा होते हैं। मनुष्य को दिगम्बर दशा की क्यों लज्जा लगी? और दूसरे प्राणियों की तरह अपने कामाचार को प्रकट करने से वह क्यों लज्जित हुआ? क्यों उसके साथ अेकान्त सेवन की जरूरत महसूस की? इसमें नीति-अनीति की भावना पैदा होने के पहले कौपीनधारण और काम-गोपन में कुछ भलाई और सच्चाई का जब मनुष्यजाति ने आम-तौर पर अनुभव किया होगा, तभी नग्नता और प्रसिद्ध कामाचार में अनीति, अश्लीलता, लज्जा वगैरा महसूस की होगी। और जब नग्नता और प्रसिद्ध कामाचार को दोषरूप समझने लगा, तभी उसका वर्णन करने में भी वह श्लीलता-अश्लीलता का विवेक करने लगा।

न केवल कामाचार ही, बल्कि और भी दूसरी प्राकृतिक क्रियायें हैं, जो मनुष्य अेकान्त में ही करना पसन्द करता है, और उसके वर्णन में कुछ-न-कुछ परहेज रखता है। उदाहरणार्थ मलमूत्र-विसर्जन। सुना है कि अरबलोग दतौन भी अेक दूसरे के सामने नहीं करते। किसी को जाहिर में करते हुअे देखकर उन्हें वैसी ही घृणा होती है, जैसे किसी को वमन या नाक या गला साफ करते हुअे देखकर कई लोगों को होती है। कह सकते हैं कि ये सब प्रकृति-धर्म हैं, इनके दर्शन, श्रवण और व्याख्यान में घृणा क्यों? विचार करने से मालूम होता है कि इन सब क्रियाओं के पीछे अेकसमान बात है। वह यह कि इन्हें करते हुअे कुछ-न-कुछ अशौच-गंदगी पैदा होती है। इन सब क्रियाओं के बाद कुछ-न-कुछ सफाई की जरूरत रहती है। वह सफाई न होने से रोग

होते हैं। इन क्रियाओं को बार-बार करने की जरूरत पैदा होना रोग का चिन्ह है। प्रकृति-वश मनुष्य इनसे मुक्त नहीं हो सकता। फिर भी ये सब शरीर में पैदा हुअे किसी-न-किसी अशुद्ध पदार्थ को बाहर फेंक देने के लिअे उत्पन्न हुअे प्रकृति-धर्म हैं। कफ, पित्त, श्लेष्म पैदा ही न हों तो सबसे अच्छा है, और अगर मलमूत्र के पैदा हुअे बगैर खुराक पच सकती तो कोई उसकी इच्छा न करता। लेकिन, जब वे पैदा होते ही हैं तब उनका बाहर फेंका जाना ही अच्छा है। अन्दर रुक जाने से वे शरीर को हानि पहुंचाते हैं। बाहर निकल जाने से आराम देते हैं। लेकिन बाहर जाकर वे गंदगी फैलाते हैं। इसलिअे इनका प्रत्यक्ष दर्शन घृणास्पद होता है। यही बात कामाचार की है। अगर मनुष्य स्थिर-वीर्य बन सके, वीर्य-वमन की उसे कोई तलब न हो, तो उसे कोई असन्तोष न होगा। दस साल में अेक बार भी उलटी न हो, अेक बार भी खांसी न हो, नाक को नाम-मात्र ही साफ करना पड़े, तो क्या कोई उसे कष्ट मानेगा; या सद्भाग्य समझेगा? इसी तरह कोई मनुष्य यह अनुभव न बता सकेगा कि जितने समय उसे कामेच्छा हुई, उतने समय में कोई वास्तव में हानि पहुँची है।

जब पेट में पित्त बहुत जोर करता है पर उलटी नहीं होने पाती, जब फेफड़ों में कफ जमा है और निकलने नहीं पाता, जब नाक में श्लेष्म जमा हुआ है पर छूट नहीं सकता, जब मलमूत्र का अवरोध हो जाता है, तब आदमी परेशान हो जाता है। फिर जब उलटी हो जाती है, कफ-श्लेष्म छूटने लगता है, मलमूत्र के मार्ग खुले होते हैं, तब उसे आराम होता है, स्वास्थ्य अनुभव करता है। लेकिन किसी स्वस्थ आदमी को क्या कभी यह इच्छा हो सकती है कि हर रोज दिन में दो-चार बार उलटी करने की खांसी और श्लेष्म बने रहें, और दिन में १०-१२ बार मल-मूत्र-त्याग की तलब उत्पन्न हो? क्या वैसा होने के लिअे वह कोई ओषधि का सेवन करता है? क्या इन क्रियाओं पर कवितायें बनाता है? अथवा, संकेत (Suggestion) द्वारा इनकी तलब अपने या दूसरों में पैदा करने की कोशिश करता है?

यही बात कामाचार की है। कामविकार तीव्र रूप में उत्पन्न होने पर उसके शमन की इच्छा होना, और पित्त-विकार होने पर उलटी करने की इच्छा होना, दोनों स्वास्थ्य की दृष्टि से अेक-सी चीजें हैं। दोनों के वमन से कुछ सेहत मालूम होती है। सेहत कुछ-न-कुछ अंश में आनन्दप्रद होती ही है। लेकिन कामविकार के साथ प्रकृति ने अपना अेक दूसरा हेतु जोड़ दिया है, और इसलिअे इस विकार के साथ प्रकृति ने ज्यादा जोशीले और सुख के स्व-सूचन (Auto-suggestions) जोड़ दिये हैं। और इन सूचनों ने इतर प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य (विशेषत: पुरुष) को इतना ज्यादा उत्सुक बना दिया गया है। रात-दिन वह उसी के पीछे पागल बन जाता है। कई बीमारियाँ असी होती है कि उसमें मनुष्य को खाने और उलटी करने की तलब आरी-पारी से होती है। कहते हैं कि रोमन लोगों में यह रोग फैशन के रूप में स्वीकारा गया था। तब उसमें भी आनंद के स्व-सूचन होते थे। सद्भाग्य से असे आदमी कम होते हैं और हमारे देश में इसमें सुख की भावना करानेवाला ललित साहित्य नहीं है। पर काम-विकार में आनन्दसूचन कराने का संस्कार आदि काल से चला आया है, और सारी मानवजाति में व्याप्त है। उसका असर समाज और व्यक्ति के जीवन के अन्य सम्बन्धों तक पहुँचता है, और इसी कारण से इसके वर्णन आदि में विवेकशीलता की जरूरत पैदा होती है।

कई बहुत बड़े विद्वानोंकी राय है कि स्त्री-पुरुष के प्रेम और कामविकार में अन्वय-व्यतिरेकी सम्बन्ध है। याने, या तो कामविकार से स्त्री-पुरुष-प्रेम हो सकता है, अथवा स्त्री-पुरुष प्रेम से कामविकार कुछ-न-कुछ अंश में रहता ही है। इन विद्वानों ने माता-पुत्र, पिता-पुत्री और भाई-बहन

के प्रेम में भी कामविकार का बीज खोज निकाला है। मेरे नम्र मत में यह प्रेम का विकृत अथवा विकृत प्रेम का ही दर्शन है, और कामविकार में बहुत अधिक ध्यानग्रस्त और रोगग्रस्त होने का परिणाम है। स्वस्थ दशा में कामशामक प्रेम का भी अनुभव हो सकता है, और वह दाम्पत्य प्रेम में भी—बल्कि विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम में अधिक मात्रा में—हो सकता है।

अगर मेरी इस दृष्टि में गलती न हो, तो अश्लीलता का आरम्भस्थान निश्चित करना मुश्किल न होगा। स्त्री-पुरुष के प्रेमयुक्त संबंधों का आलेखन चित्र द्वारा, शब्द द्वारा, नाटक द्वारा, या संकेत (इशारे के) द्वारा हो, अगर उसका कुल मिलाया हुआ परिणाम प्रेक्षक या श्रोता के तथा लेखक और भाग लेनेवाले पात्रों के दिल में कामविकार को संचरित करनेवाला और अन्त में उसमें वीर्यवमन की तलब पैदा करनेवाला हो, तो वह अश्लील है। फिर चाहे उसका बाह्य-स्वरूप ग्राम्य हो या शिष्ट साहित्यिक या वैज्ञानिक हो। अगर वह आलेखन कामशामक हो, और मनुष्य को स्थिर-वीर्य होने में मदद देनेवाला हो, तो वह श्लील है। उसके फल से उसकी परीक्षा की जाय।

इसी न्याय से कृष्ण और गोपियों के प्रेम व्यवहार के वर्णनों का किसी ने बचाव किया वह कहता है कि जिस प्रेम ने गोपियों के कामविकार को स्थाअी रूप से नष्ट करके उन्हें निष्काम कर डाला, उसे कैसे अश्लील कहें? इन वर्णनों के विषय में यह उत्तर सही हो या न हो, यह कसौटी अवश्य ठीक है।

अेक बात सच है कि अश्लील शब्द, साहित्य और कला का रोग हमारे देश में इतना जूना और व्यापा हुआ है कि करीब-करीब वह असाध्य-सा मालूम होता है। अपशब्द कहने की आदत अभी अन्तिम पच्चीसी तक शिक्षित-अशिक्षित, गुरु-शिष्य सभी में लगभग व्यापी हुई थी। हमारे संस्कृत और प्राकृत दोनों के शृंगार-रसिक साहित्य और कला में अश्लीलता की पराकाष्ठा है। यह वस्तु गयी नहीं, सिर्फ नये रूप में आ रही है। उसे नापसन्द करनेवाले इतने अल्पमति में हैं कि उनकी अवगणना हो सकती है। लेकिन अेक ही हो, तो भी उसका धर्म है कि वह अपनी नापसंदगी स्पष्ट रूप में जाहिर करे।

हमारा दोष भी भूषण है।

आचार्य विनोबा

अंग्रेज या यूरोपीय इतिहासकार हमसे कहा करते हैं कि 'तुम आपस में लड़ते रहे। अन्तस्थ कलह करते रहे।' आपस में लड़ना बुरा है, यह तो मैं भी मानता हूँ। लेकिन यह दोष स्वीकार करते हुए भी मुझे इस आरोप पर अभिमान है। हम लड़े, लेकिन आपस में। इसका अर्थ यह हुआ कि हम एक हैं, यह बात इन इतिहासकारों को भी मंजूर है। उसके आक्षेप में ही यह स्वीकृति आ गयी है। कहा जाता है कि यूरोपीय राष्ट्र एक दूसरे से लड़े; लेकिन अपने ही देश में, आपस में नहीं लड़े। लेकिन इसमें कौनसी बड़ाई है। एक छोटे से मानव-समुदाय को अपना राष्ट्र कहकर यह शेखी बघारना कि हमारे अन्दर एकता है, आपस में फूट नहीं है, कौनसी बहादुरी है? मान लीजिए कि मैंने अपने राष्ट्र की 'मेरा राष्ट्र यानी मेरा शरीर' इतनी ही संकुचित व्याख्या बनाली; तो आपस में कभी युद्ध भी नहीं होगा। हाँ, मैं ही अपने मुँह में चट से थप्पड़ जड़ दूँ तो अलबत्ता लड़ाई होगी। परन्तु 'मैं ही मेरा राष्ट्र हूँ' ऐसी व्याख्या करके मैं अपने भाई से, माँ से, किसी से भी लड़ूं, तो भी वह आपस की लड़ाई नहीं होगी। क्योंकि मैंने तो अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर को ही अपना राष्ट्र माना है। सारांश, हम आपस में लड़े यह अभियोग सही है, परन्तु वह अभिमानास्पद भी है क्योंकि इस अभियोग में ही अभियोग लगानेवाले ने यह मान लिया है कि हम एक हैं, हमारा एक ही राष्ट्र है।

[सस्ता साहित्य मण्डल 'विनोबा और उनके विचार']

स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल

[पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल]

तीन तारीख़ फर्वरी के प्रातःकाल 'पहाड़ी' जी ने रेडियो स्टेशन से आकर बताया कि पं० रामचंद्र शुक्ल अब इस संसार में नहीं हैं! मैं ठक्-सा रह गया। विश्वास करने को जी नहीं करता था। १९ जनवरी को वे लखनऊ विश्वविद्यालय की पाठ्यक्रम-समिति में सम्मिलित हुए थे और मेरे यहां ठहरे थे। काशी विश्वविद्यालय की हिन्दी-साहित्य-समिति की ओर से एक चिट्ठी, जिसमें उन्होंने हस्ताक्षर किये थे, मुझे तीन ही चार दिन पहले मिली थी। कौन जानता था कि इतने शीघ्र ही अनभ्र वज्रपात हो जायगा? शायद समाचार गलत हो, कुछ समय तक यह आशा बनी रही। किन्तु जब काशी से आकर डाक्टर गौरीनारायण शुक्ल ने बताया तो पता चला कि वह आशा निराशा ही थी।

शुक्लजी का निधन समस्त हिन्दी-जगत् के लिए एक अतुलनीय दुःखद घटना है। उनके शिष्यों और सहयोगियों के लिए तो जिनके हृदय में वे घर कर गये थे और जिनके लिए उनके हृदय में जगह थी, वह उसी प्रकार व्यक्तिगत क्षति है जैसे उनके परिवार के लिए। मैंने ६-७ वर्षों तक उनके चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण की है और उतने से अधिक समय तक अध्यापन कार्य में मैं उनका सहयोगी रहा। इस बीच उनके हृदय के सौंदर्य का दर्शन करने का जो सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ उसने इस समय मेरे शोक को अत्यन्त तीव्र कर दिया है। हिंदी-साहित्य का तो आज एक स्तंभ टूट गया है। उनके निधन से इसकी जो क्षति हुई है वह अनुमान लगाने की बात नहीं। हिन्दी के विभिन्न क्षेत्रों को उनकी प्रतिभा का दान मिला है और ऐसा कोई विषय नहीं जिसे उन्होंने छुआ हो और अलंकृत नहीं किया हो।

हिंदी-जगत् में वे अद्वितीय निबंधकार थे। उनके निबंध हिन्दी की अमूल्य निधि हैं। निबंधों के लिए उन्होंने मनोविज्ञान की कठिन भूमि को चुना। करुणा, क्रोध, भय, उत्साह, लोभ और प्रीति, श्रद्धा-भक्ति, लज्जा और ग्लानि आदि विषयों पर उन्होंने निबंध लिखे। उनकी दृष्टि विस्तृत किन्तु अत्यंत पैनी थी। उनका विश्लेषण गहरा और विवेचन सूक्ष्म होता था। विचारों की गहराई के कारण उनकी भाषा का कहीं-कहीं दुरुह हो जाना आवश्यक था किन्तु उन्होंने विषय को इस निपुणता के साथ स्पष्ट किया है कि पाठक यदि थोड़ा-सा प्रयत्न करे तो जटिल-से-जटिल गुत्थी शीघ्र ही खुल जाती है और बात आसानी से समझ में आ जाती है। उनका दृष्टिकोण दार्शनिक था। हेकल के 'रिडल ऑव दि यूनिवर्स' का उन्होंने हिन्दी अनुवाद किया था। उसकी भूमिका के रूप में उन्होंने जो विवेचन दिया है, उससे उनके दर्शनशास्त्र के पांडित्य का पता चलता है।

'हिन्दी-शब्दसागर' हिन्दी का सबसे बड़ा कोष है जो गहन पांडित्य और वर्षों के अनवरत अध्यवसाय का परिणाम है। उसके सहकारी संपादकों में शुक्लजी प्रमुख थे। उस यज्ञ के सफलता से पूर्ण होने में शुक्लजी के पांडित्य और उनकी प्रतिभा का बड़ा हाथ है। कह सकते हैं कि शुक्लजी की प्रतिभा ने शब्दसागर को गहराई दी।

साहित्य की गतिविधियों और प्रवृत्तियों का युगानुरूप निरूपण करते हुए **'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास'** उन्हीने निर्मित किया। उस इतिहास को पढ़ने से पता चलता है कि शुक्लजी का हिन्दी-साहित्य का ज्ञान कितना गहरा था। हिंदी-साहित्य की पूरी कहानी तो उन्होंने अपने उक्त ग्रंथ में दी ही, उसके साथ-साथ उन्होंने विभिन्न कवियों पर जो मार्मिक दृष्टि डाली है और उनकी विशेषताओं का स्पष्टीकरण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

साहित्य के इतिहास ही में नहीं सामान्यतया इतिहास में भी उनकी गहरी रुचि थी। इसी रुचि के कारण उन्होंने मेगास्थनीज़ के भारतीय

विवरण को हिंदी रूप दिया था और फारस का एक इतिहास बड़ी छानबीन के बाद लिखा था।

हिंदी में नवीन आलोचना का सूत्रपात तो एक प्रकार से शुक्लजी ने ही किया है। आलोचना के क्षेत्र में निर्णय दे देने भर की प्रवृत्ति को उन्होंनें उतना प्रश्रय नहीं दिया। उन्होंने प्रधानता दी आलोचना के व्याख्यात्मक स्वरूप को। जिन परिस्थितियों में कवि या लेखक का उदय हुआ, उसके मस्तिष्क का निर्माण हुआ, उसकी प्रवृत्तियों को रूपाकार मिला, पृष्ठभूमि के रूप में उनका वर्णन करके उन्होंने रचना के अंतरतम में प्रवेश किया और उसकी बहुविध विशेषतायें दिखलायीं। इस प्रकार उन्होंने काव्य के अध्ययन के संबंध में वह परिस्थिति उपस्थित की जिससे पाठक अपने आपको उस स्थिति में अनुभव करे जिस स्थिति में अनुभव करके रचयिता ने अपनी रचना का निर्माण किया। यह समानुभूति शुक्लजी की आलोचनाओं की विशेषता है, जिसने उनकी तीव्र अंतर्दृष्टि को वस्तुत तथ्य-निरूपण में समर्थ बनाया। **'हिंदी काव्य में रहस्यवाद'** में उनकी आलोचनात्मक दृष्टि पूर्ण प्रखरता के साथ प्रकट हुई, प्रखरता ने उसमें समानुभूति को थोड़ी देर के लिए एक ओर ढकेल दिया था, परंतु बहुत समय तक यह बात न रही और आधुनिक काव्य के संबंध में भी वह समानुभूति उनके हिंदी-साहित्य के इतिहास के नवीन संस्करण में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित दिखायी दे रही है।

पर शुक्लजी साहित्य के समर्थ विश्लेषक और साहित्य-सिद्धांत के शुष्क विवेचक ही नहीं थे। वे स्वयं भी भावुक कवि थे। उनका प्रसिद्ध काव्य **'बुद्धचरित'** उनकी ओर से साहित्य को एक बहुमूल्य भेंट है। व्रजभाषा के ऊपर यह लांछन सा लगाया जाता था कि उसमें कोई उच्च कोटि का महाकाव्य नहीं है, जो कुछ बने भी वे सर्वप्रिय न हो सके। शुक्लजी के इस ग्रंथ ने इस अभाव की पूर्ति की। यद्यपि आर्नल्ड के 'लाइट ऑव एशिया' के आधार पर इस काव्य का प्रणयन हुआ है फिर भी आनंद आता है उसमें स्वतंत्र काव्य का सा ही और यह पता भी नहीं चलता कि विदेशी भाषा में लिखे किसी ग्रंथ की इसमें छाया भी है।

उनकी स्फुट कविताओं की संख्या भी काफी है। उन्होंने अपनी कुछ कविताओं का शीर्षक रखा था **'हृदय के मधुर भार'**। ये कवितायें सचमुच उनके उदय के मधुर भार को वहन करनेवाली हैं और इस प्रकार सच्ची कवितायें हैं। किंतु उनमें भी उनका चिंतक स्वरूप छूटा नहीं। उनकी भावुकता भी इनमें दार्शनिकता की आवरण पहनकर आयी है। कुछ लोगों के लिए इस आवरण को वेधकर उनकी भावुकता का दर्शन करना कठिन हो जाता है। इसलिए उनकी कविता के वास्तविक मूल्य का अंकन नहीं हो पाता।

स्वयं शुक्लजी का विचार था कि उनका स्वाभाविक क्षेत्र रचनात्मक साहित्य है। उन्हें बड़ा भावुक हृदय मिला था। रचनात्मक साहित्य को छोड़कर आलोचना और अध्यापन के क्षेत्र में आने में उन्हें बड़ा त्याग करना पड़ा। साहित्य के अपने गहरे ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने के उद्देश्य से उन्होंने स्रष्टा होने के अमिट आनन्द का परित्याग कर दिया। परन्तु थोड़ा-सा दुःख इस बात का उनके अंतरतम में बना ही रहा कि उन्हें दूसरों की ही कृतियों का पर्यालोचन करने को वाध्य होना पड़ता है और अपनी ही सृष्टि करने के लिए अनवच्छिन्न अवकाश नहीं मिलता। यदि यह अवकाश उन्हें मिला होता तो वे साहित्य को कितना अभिनव दान दे जाते, जो विस्तार और गहराई दोनों में महान् होता।

किन्तु इस त्याग से जहाँ हम एक क्षेत्र के दान से वंचित रहे, वहाँ दूसरे क्षेत्र में उसने इस कमी को कहीं अधिक मात्रा में पूरा कर दिया। इससे हमें अत्यंत उत्कृष्ट आलोचनायें प्राप्त हुईं और हिंदी-साहित्य के गहन अध्ययन का विद्यार्थियों में विस्तार हुआ। इतना ही नहीं, उनके स्रष्टा स्वरूप ने उनकी आलोचनाओं को भी केवल आलोचना से ऊपर उठाकर वह रूप दे

जिससे वे स्वयं रचनात्मक स्थायी साहित्य कोटि में आ गयी। उनकी आलोचनाओं को समय केवल मस्तिष्क ही सक्रिय नहीं होता, का भी विस्तार होता है। 'गोस्वामी तुलसीदास' में राम-राज्य की व्याख्या पढ़ते हुए में अपने आप तरंगमालायें उठ आती हैं। ऐसे स्थल उनकी रचनाओं में विरल नहीं हैं। भाषा के ऊपर शुक्लजी का बड़ा अधिकार। उनके सूक्ष्म विचारों ने उसे उन्हें व्यक्त में क्षम बनाया। परंतु वे स्वयं भाषा के और अधिकारी लेखक ही नहीं थे, भाषा-के प्रगाढ़ पंडित भी थे। इसका पता उनके के आरंभ में दिये हुए निबंध से चलता जिसमें उन्होंने व्रज, अवधी और खड़ी का भेद या है।

शुक्लजी का व्यक्तित्व उनकी विद्वत्ता से आकर्षक था। पांडित्य और सौजन्य में दुर्लभ मणिकांचन संयोग था। वे बड़े और निरभिमान थे। पांडित्य का गर्व छू भी न गया था। उनकी गंभीर मुद्रा दूर से उनके प्रति आदरभाव उत्पन्न करती। पहले-पहले देखनेवालों को वे दूर-दूर हटे-थे। किंतु धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों उनके साथ बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों व्यक्ति उनको निकट-से-निकट पाता था। वे जितने ही सरल ही तरल भी। उनका हृदय सदैव सबके सद्भाव और स्नेह से भरा रहता था। जो संपर्क में आता, उसके हृदय में उनके लिए घर कर जाती और वह सदा के लिए उनका भक्त बन जाता। उनके चारों ओर शांति, पवित्रता और शीतलता का मंडल घिरा रहता था, जो सबके लिए संक्रामक होता था।

साथ ही उनकी प्रकृति बड़ी विनोदी थी। पद-पद पर विनोद भरी बातें कहते थे। कक्षा में उनके भाषण सुनने में बड़ा आनंद आता था। कभी-कभी तो ऐसी विनोदभरी बात कह जाते थे कि कक्षा की कक्षा खिलखिला उठती थी, किंतु विशेषता यह कि उनकी गंभीर मुद्रा में जरा भी अंतर नहीं आता था। कक्षा में शुक्लजी को देख कर विद्यार्थी कभी-कभी सोचा करते थे, शुक्लजी भी कभी हँसते होंगे? किंतु जब अध्यापन कार्य में मैं उनका सहयोगी हो गया, तब मुझे पता चला कि शुक्लजी भी कितना जी खोलकर हँसते हैं। उनकी इसी विनोदशीलता के कारण उनके गहन पांडित्य से भरे व्याख्यान भी मनोरम लगते थे।

शुक्लजी के बहुमुखी पांडित्य की गहराई का पूरा-पूरा अनुमान उनके ग्रंथों से भी नहीं लग सकता। कागज पर सब कुछ आ भी कहाँ पाता है? इसका अनुमान वे ही लगा सकते हैं जिन्होंने स्वयं उनके मुहँ से शिक्षा पायी है। इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान, भाषाशास्त्र तथा संस्कृत, अंगरेज़ी और बंगला साहित्य के वे अच्छे ज्ञाता थे। हिंदी के विषय में कहना ही क्या है। उसके साहित्य ने पिछले पचास वर्षों में जो आभ्यंतर उन्नति की है उसके तो वे प्रतीक ही हैं। लगभग पचास वर्ष पहले हिंदी-साहित्याकाश ने चंद्रास्त का अनुभव किया था। आज फिर वही अनुभव उसके प्राणों को रुला रहा है।

Princes and Captains leave a little dust,
And Kings a dubious legend of their reign
The swords of Caesars, They are less than rust
THE POET DOTH REMAIN

कुछ रजकण ही छोड़ यहाँ से चल देते नरपति-सेनानी
सम्राटों के शासन की बस रह जाती संदिग्ध कहानी
गल जाती हैं विश्वविजेता-चक्रवर्त्तियों की तलवारें,
युग-युगतक, पर, इस जग में है अजर-अमर कवि (कवि की वाणी)
अनु० सुधीन्द्र

तरुण से

[वियोगी हरि]

जैसे कवि है, कलाकार है, सैनिक है, नेता है, वैसे तुम्हारा भी व्यवस्थित स्थान है। तरुण, तुम्हारा अपना एक संप्रदाय है, अपना एक विज्ञापन है।

वैसे यौवन कोई नयी चीज़ नहीं; वह सनातन से है। पर उसका कोई संप्रदाय पहले नहीं था; विज्ञापन उसका दुनिया के सामने नहीं आया था।

बूढ़ों ने सदा तुम्हारी अप्रिय टीका की, पर तुम्हारे पूर्वकालिक युवक उनकी टीका से रुष्ट नहीं होते थे। शायद उनके संक्रामक असर से वह अकालवृद्ध हो जाते थे। आत्मदुर्बलता-सूचक शील उनके तारुण्य को अंदर-ही-अंदर खोखला करता चला जा रहा था, और उन्हें इस महान् क्षय का पता भी नहीं चलता था।

बाद को तुम्हें अपने पूर्व के युवकों की यह कमज़ोरी नज़र आयी, और यौवन-पुष्प को पूर्ण विकसित कर देनेवाले अविनय को तुमने भरसक उत्तेजन दिया।

तुम्हें यह सत्य स्पष्ट हो गया कि शील या विनय के रहते, जो बुढ़ापे के सहचर हैं, यौवन का मादक फूल कभी खिल नहीं सकता।

विनय की रस्सी से जीर्ण-शीर्ण शरीर ही आबद्ध हो सकता है। युवक-शक्ति के जोरदार झटके को विनय बर्दाश्त नहीं कर सकती।

तरुणाई वह प्रबल बाढ़ है, जो शील और विनय-जैसे जीर्ण ठूँठों को बहा ले जाती है।

विनय के ज़ोर से गलितयौवन ही झुकते हैं। शक्तिधर तारुण्य को झुकाने की उसमें ताक़त नहीं। उद्दण्डता उसका भूषण है; और नम्रता है दूषण।

जिसकी आँखों पर आवरण न चढ़ा हो, वह युवक ही कैसा? तुम्हारी उत्तान आँखों में खुमारी का होना स्वाभाविक है। इसीलिए सीधा पैर रखना तुम्हारे लिए अधर्म है।

जिनका यौवन गलित हो चुका है, वही नाप-नापकर या फूँक-फूँककर पैर रखते हैं। कूद-फाँद करनेवाले अल्हड़ युवक ज़मीन की तरफ़ देखकर नहीं चला करते।

गंभीर विचार और उच्च चिंतन तुम्हारे सामने आने की भी हिम्मत नहीं करते। तुम इन दोषों से हमेशा सावधान रहते हो। तुम मानते हो कि विचार या चिंतन से यौवन में शिथिलता पैदा होती है, उसकी सहज तेजस्विता मारी जाती है।

सर्वत्र तुम खूब खुलकर खेलना चाहते हो। न किसीको बाँधना चाहते हो, न खुद बँधना चाहते हो। यौवन के अमर्याद राज्य में तुम्हारा मन बिल्कुल मुक्त विचरता है। नियंत्रण का पाश तुम बर्दाश्त नहीं कर सकते।

तरुण शक्तियों को तुम अत्यंत उदारता से ख़र्च करते हो। संयमशीलता, तुम्हारी दृष्टि में कृपणता है।

तरुण कभी कृपण नहीं होता। और जो हृदय का उदार है, उसका विचार या चिंतन से क्या सरोकार? सोचते-विचारते तो बूढ़े कृपण हैं जिन्हें सदा शक्ति-संचय का ही लोभ रहता है।

बाढ़ ठहरना नहीं जानती। उसमें तो वेग-ही-वेग होता है। ठहरना और सड़ना तो तालाब के जीर्ण जल के भाग्य में लिखा है।

तुम्हारे विपक्ष में भी काफ़ी कहा जाता है। लेकिन आलोचना के आघातों से जगत् में बचा ही कौन है?

एक बड़ा आरोप तुम्हारे ऊपर यह किया जाता है कि तुमसे विषय-विकारों को उत्तेजन मिलता है। ठीक है; पर विकारों को निदि क्यों माना जाये?

विकारों को तुम बलपूर्वक रोकना या निर्दयता से बाँधना नहीं चाहते—तो क्या यह कोई गुनाह है? स्वाभाविक है कि युवक का सरल हृदय किसी विकार पर अंकुश नहीं रखना चाहता। यौवन का तक़ाज़ा है कि तुम स्वच्छन्द विचरो और तुम्हारे मनोविकार भी सर्वथा स्वच्छन्द विचरें!

फिर तुम सभी मनोविकारों को एकसमान गन देते हो। कभी काम को हृदय से चिपटा- ते हो, कभी क्रोध को; इसी तरह कभी विराग और कभी अनुराग को। तुम अहंकार और से भी घृणा नहीं करते। मोह को भी प्यार ते हो, और मात्सर्य को भी। मनोविकारों के तुम्हारे निष्पक्ष प्रेम की कोई क्यों टीका ? तुम्हें तो सभी विकारों में एक-सा आनंद ता है।

विकार तो ठंडे मट्ठे के जैसा है, उसे तुम पसन्द करोगे? तुम तो गरम चाय के जैसा तेजक विकार ही पसन्द करोगे।

तुम मानते हो कि यौवन की सुखद यात्रा 'रोमांस' का होना आवश्यक है। रोमांसहीन न तुम्हारी दृष्टि में बिना गंध का फूल है।

चढ़ती हुई जवानी में उस प्रेम का होना री है, जिसे बूढ़े टीकाकार मोह और पाप ते हैं; उस जोश का होना उसमें ज़रूरी है, से वे ईर्ष्यालु आलोचक अविचार और दुस्साहस कहते हैं; उस स्वातंत्र्य का होना उसमें आवश्यक जिसे उन्होंने अविनय और अनियंत्रण का नाम रखा है।

और सच कहा जाये तो इन्हीं तत्त्वों से का निर्माण होता है; यौवन के सुनहरे इन्हींसे बनते हैं! युवक तो सदा स्वप्न ही ता है; न कभी वह सोता है, न जागता है। तो अबोध बच्चे हैं, और जागते हैं चिन्ता- बूढ़े।

तुम्हारे गजब के स्वप्न होते हैं। कभी तो तुम जैसे प्रणय के सुखद वायुमण्डल में तैरने हो, और कभी द्वेष के शांतिप्रद दावानल लगते हो। तुम्हारे राग और विराग के ही स्वप्न रसपूर्ण होते हैं।

तुम एक ही क्षण में अपना तन, अपना मन अपना सर्वस्व कोमल या कठोर वासना के पर अर्पण कर देते हो। तुम अपने यौवन- में कवि-जगत् की नयी-पुरानी उपमाओं का करते-करते कभी थकते नहीं।

तुम्हारी मान्यता है कि कमबख्त मनुष्य-योनि प्रेम को 'प्रगट' करने के लिए उपयुक्त नहीं। इसलिए तुम कभी तो भ्रमर और कीट बन जाते हो; कभी चकोर और चातक; और कभी मीन और मयूर!

ठोस आलोचक तुम्हारे उन्मत्त कल्पना-विहार को मोह और गंदगी में सना हुआ भले ही देखें, तुम तो उसे अपनी ज़बान या क़लम से शुद्ध और दिव्य प्रेम ही कहोगे।

तुम्हारी 'दिव्य' की व्याख्या भी अनूठी है। तुम स्वर्ग को कभी देखते हो, तो शैतान में ही। तुम्हारे ईश्वर का वास वासना में है, अतः तुम्हारी प्रत्येक वासना दिव्य है। जिसे कि वे नरक मानते हैं उसे तुम स्वर्ग कहते हो; और जिसे वे स्वर्ग समझते हैं, उसे तुम नरक कहते हो। वृद्ध-दृष्टि और युवक-दृष्टि में यही तो मूलतः अन्तर है।

जो जैसा हो उसको वैसा ही देखना या मानना युवक का धर्म नहीं; यथार्थ दर्शन तो जड़ या स्थिर बुद्धिवालों का काम है। स्थित-प्रज्ञता का दोष तरुणों में नहीं मिलेगा।

तुम्हारा एक-एक शब्द वज्र के हथौड़े से गढ़ा हुआ होता है, यद्यपि होता वह मोम का है। जब तुम बोलते हो, तुम्हारी शब्दयोजना तब बड़ी भीषण और मोहक होती है।

तुम्हारा स्वाभाविक गुण अहंकार फूला नहीं समाता, जब तुम छाती ठोक-ठोककर कहते हो—"सागर को मैं श्वास के स्फुलिंगों से ही सुखा दूँगा; हिमालय की पसलियाँ अपने वज्र मुक्के से चूर-चूर कर दूँगा; मेरे गंभीर गर्जन से पृथिवी थरथर काँपने लगेगी; सूर्यमंडल को तो एक ही झटके से नीचे गिरा दूँगा। मैं युवक हूँ; मैं विप्लव का प्रलयंकर दूत हूँ।"

यथार्थवादी आलोचक तुम्हारा सिंहनाद सुनकर कहेगा—यह सब तुम्हारा उन्मत्त प्रलाप है। न तो सागर ही सूखा, न हिमालय की पसलियाँ ही चूरचूर हुईं, न पृथिवी ही डगमगायी, और न सूर्यमंडल ही ऊपर से गिरा।

ग़रीब आलोचक इसीलिए गड़बड़ में पड़ जाता

है कि वह तरुणों की अतुकान्त कविता को समझता नहीं। गणित का दुर्बल ज्ञान रखनेवाला ठोस आलोचक युवक के रोमांचकारी भाव और भाषा का अर्थ कैसे समझ सकता है ?

अहंकार और मनोविकारों को दबाने या दफनाने का दुर्भाग्यपूर्ण प्रयत्न करनेवालों की घातक बुद्धि तुम्हारी कठिन-कोमल भाषा को ग्रहण कर ही नहीं सकती।

कई पूर्वकालिक युवकों ने पथभ्रष्ट होकर अपनी यौवन-संपत्ति को कठोर तपश्चर्याओं में लगा दिया था। यौवन-काल के आरंभ में ही वे रोग, जरा और मृत्यु से भयभीत हो गये थे। जीवन के रमणीय बसंत में उन अभागों ने अपने हाथों आग लगा दी थी और इसी तरह रक्त-संघर्ष से भी पीछे क़दम हटा लिया था।

फिर भी उलटी खोपड़ी के स्तुतिकारों ने उनके ऐसे-ऐसे युवक-विरुद्ध आचरणों की महिमा गायी। उन अकालवृद्ध युवकों की नीरसता को बड़ी शान से 'मार-विजय' का नाम दिया गया, और उनकी कायरता को 'विश्व विजय' के नाम से पुकारा गया !

युवकों को उनके इस कृत्य से शर्मिन्दगी उठानी पड़ी।

उनके अनुचित कृत्यों का तुम्हें आज प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है। काम और क्रोध को अपने यौवन-रक्त से सींच-सींचकर उनके ऐतिहासिक कलंक को तुम आज धो रहे हो।

पूर्वकाल के उन पथ-भ्रष्ट तरुणों को तुमने तार दिया। तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन सुख है।

सौष्ठव-पूजा

[प्रभाकर माचवे]

(गतांक से आगे)

मुन्नी बेड़नी

[थोड़ी दूर जाने पर कलाकान्तजी ने देखा गाँव के एक सिरे पर कलाली की दूकान है। यहाँ पर भी उतनी ही भीड़ है जितनी पंडितजी की कथा में इट्ठी हुई थी। कलाल की दूकान से सटकर ही एक छोटा-सा मकान। कुछ साफ। दीये के आसपास गुलाबी कागज का चिराग़दान। उसकी भीषण रोशनी में एक नारी आकृति। हाँ, नारी-आकृति ही कहना ठीक होगा : क्योंकि मुद्रा उसकी अभ्यस्त लज्जाहीनता से काफ़ी परुष और कठोर दीखती है। खोटे सलमे-गोटे की किनारी की भड़कीली ओढनी, वैसा ही भड़कीला लहँगा। खोटे ज़ेवरात। मुहँ में काफी-सा पान। यह बेड़नी है। उसके पीछे एक ढोलक बजानेवाला है, और यह बेड़नी अपने बीभत्स हावभावों से एक प्रकार का नृत्य करने का अभिनय करती है, जो एकदम सुरुचि को आघात पहुँचानेवाला है। साथ ही नाक के स्वर में कुछ गाती जाती है, जिसके शब्द काफी विकारोत्तेजक और अर्थहीन हैं।

कलाकांतजी यहाँ रुक जाते हैं। थोड़ी देर ठहरते हैं। मजमा जब कम हो जाता है, तब उससे प्रश्न पूछते हैं।]

क०——तुम यह पेशा क्यों करती हो ?

बे०——क्योंकि मेरे लिए दूसरा पेशा नहीं है।

क०——तुझे इस नरक में किसने ढकेला ?

बे०——मेरी माँ ने।

क०——माँ ने ?

बे०—हाँ माँ के पेट ने ? पेट की आग प्रबल होती है ?

क०—तो तुम्हारा इस छोटे से गाँव में नाचने गाने पर निर्वाह हो जाता है ?

बे०—आप सवाल पूछकर मुझे क्यों हैरान कर रहे हैं ? मैंने कहा न कि नाचना-गाना अब कहाँ रहा है ? जो कुछ है, निरा बहाना है। सामने कलाल है। लोग आते हैं। पीते हैं। उनके मनबहलाव को मैं हूँ, मेरे साथी हैं। [illegible]

और मांस'''

(कलाकांत के दिमाग में सहसा ईसा की मदिरा मेरा रक्त समझो और यह रोटी मांस'—यह पंक्ति घूम जाती है।)

क०—एँ! रक्त और मांस! मांस और त!—मृत और जीवित!—क्या तुम सचमुच और नहीं कर सकतीं ?

बे०—और क्या करूँ? पढ़ी-लिखी तो हूँ हीं।

क०—चरखा तो कात सकती हो ?

बे०—वह काफी हो जायगा? दो-आना रोज़? और अबतक के संस्कार? और मेरे ही पुरखों के संस्कार नहीं, इस सारे समाज के संस्कार। हमें संसार कुलीना मान लेगा ?

क०—तो इस नृत्य और संगीत को ही क्यों नहीं एक ऊँचे किस्म का पेशा बनाती हो ?

बे०—आपके कहने का मतलब क्या है ?

क०—यानी यही कि तुम सिर्फ नाचो-गाओ। शरीर-विक्रय न करो। नृत्यकला —कथाकलि की मुद्राएँ, उदयशंकर की ति, रागिणी देवी का पौर्वात्य नृत्य···

बे०—आप कौन-कौन से नाम ले रहे हैं? मैं उनमें से एक भी नहीं जानती। मैं इतना जानती हूँ कि मेरे नाच और गाने में से वह बात जिसे आप जैसे समझदार पढ़े-लिखे घृणा करते हैं, निकाल दीजिए। अगर वही चीज़ कम हो जाय, तो आप जानते हैं, हमारी क़ीमत दो-कौड़ी की बाकी रहेगी। हमारा यहाँ रहना नहीं हो सकेगा। गाना जो मैं कभी-कभी धार्मिक या अच्छे भाव से गाती हूँ, तो उसे मेरे सामने की से आनेवाले श्रोता कहते हैं—अलोना, फीका।

क०—(खुद से) हाँ, 'pep'! उस की चरपराहट जिसे हम अश्लील और और त्याज्य कहकर जीवन से काट देने चाह कर रहे हैं—वह जीवन से बँधी हुई वृत्ति है। उसे समूल उखाड़कर फेंकना नहीं है उस वृत्ति को आप संस्कृत कर सकते हैं। पर उसके लिए जिस बौद्धिक विकास की आवश्यकता है—वह आज हरएक पा सकता है? हमारी आज की आर्थिक व्यवस्था (या दुर्व्यवस्था) में वह सुविधा हर एक के पास है ?

और सभ्य समाज भी क्या करता है? उसमें भी कहाँ है सुरुचि? व्यवहार-पूजा के नाम पर वह उन्हीं ग़लत मूल्यों को, जीवन की अर्थशून्य और खोखली क़ीमतों को दिल से चिपटाये बैठा है। आज बेड़नी का गाना—'अँधरिया है रात सजन रँबो के जैबो' हमें अश्लील लगने लगता है और रविबाबू ने ज़रा ज्यादह अवगुंठित शब्दों में वही भावना कह दी कि—'Traveller must thou go?' कि बस, हम उसमें रहस्यवाद और न जाने कौनसे-कौनसे 'वाद' खोजने लग जाते हैं। यहाँ से वहाँ तक मनुष्य-स्वभाव एकसा है। जन्म से हम समान हैं। मृत्यु में हम समान हैं। तो जीवन और मरण के बीच के इस छोटे से व्यवधान में हमने प्रभु को पाने की जो राहें बनायीं—सत्य की राह, शिव की राह, सुंदर की राह—उनमें क्यों झगड़ा पैदा कर लिया? क्यों हमने सत्य से सुंदर को विलग माना, क्यों सुंदर को अशिव??······

नहीं, सौन्दर्य भावना हर-एक में है वही जन्म-जात। वह बेड़नी हो कि बाणभट्ट की महाश्वेता हो। कम-अधिक प्रमाण में परिष्कृत। देहात की उस नाचनेवाली के जो बच्चा है, उसके साथ उसकी स्निग्ध मातृ-सुलभ दृष्टि तुमने देखी है? कलाकार, तू वह नहीं देख पाया है। वह देख लेना। और फिर तुझे बेड़नी से बचने की, घबराने की और भागने की ज़रूरत नहीं रहेगी। जो जितना ही अधिक चरित्रहीन है, वह उतना ही अधिक दया का पात्र है। हम उससे घृणा नहीं कर सकते, क्योंकि वैसा मैं दावे के साथ अपने लेखक-मित्र और प्रत्येक पाठक से—चाहे वह शहरी हो या देहातीं—पूछूँ, तो चरित्रहीन कौन नहीं था? या नहीं हो सकता? हम सब मानव हैं, दुर्बल मानव देहधारी!!! ईसा ने मैग्डैलीन पर पत्थर फेंकनेवाले हरएक से पूछा था—तुममें से पत्थर

वही फेंके जिसने आजीवन एक भी पाप नहीं किया हो। एक की भी हिम्मत नहीं हुई थी।

अतः कलाकार, आगे चलो। मन में वही एक ईसा का पवित्र वचन घूम रहा है—'Judge not, lest ye be judged' (किसी की टीका-टिप्पणी करो, क्योंकि तुम खुद टीका-टिप्पणी के विषय बन सकते हो) आगे चलकर क्यों न यों कहें—Begin by judging ourselves—पहले आत्मनिरीक्षण होना चाहिए।……

(क्रमशः)

एक पत्र

जसवन्त कॉलिज, जोधपुर

श्रद्धेय सम्पादकजी, नमोनमः

हाल ही में एक कवि-सम्मेलन में जाने का अवसर मिला था। यहाँ के प्रायः सब कवि और हिन्दी के साहित्यानुरागी व्यक्ति उपस्थित थे। कविता-पाठ की समाप्ति होने पर एक सज्जन खड़े हुए और उन्होंने कविता पर विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा कि में कविता के इर्द-गिर्द जो झाड़-झंखाड़ सा उठ आया है, और जिसके कारण उसका स्वरूप छिप ही नहीं गया, विकृत हो गया है मानो वह राहु-ग्रस्त चाँदनी-सी सिसकती हो, उसकी सफ़ाई कर दूँ। झाड़-झंखाड़ में प्रमुख हाथ संगीत और शब्दाडम्बर का है, और जबतक इन दोनों से कविता मुक्त नहीं होगी, उसका वास्तविक स्वरूप निखरकर हमारे सामने नहीं आ सकता। न जाने क्यों, अपनी-अपनी रुचि ही तो है। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे उनकी बातें आयीं और ऊपर-ऊपर ही चली गयीं, हमारे हृदय को छू नहीं सकीं। मन में प्रश्न-सा रह गया।

बात यहीं तक नहीं रही। जब हम अपने दो साहित्यिक मित्रों के साथ चले, तो फिर वही चर्चा छिड़ी। अमुक की कविता में यह त्रुटि थी, अमुक की कविता में शब्द-योजना ठीक नहीं थी और 'उसकी कविता तो आज जमी ही नहीं' इत्यादि-इत्यादि। मेरा मन तो उपरोक्त शब्दाडम्बर और संगीत के नाम पर की गयी कविता की सफ़ाई को लेकर उलझा हुआ था ही। इस वार्तालाप से और भी ज़रा चिन्तनोन्मुख हो गया, और मेरे मन में विचारों की लड़ी सी बँध गयी और रोना आ गया, हिन्दी-साहित्य की वर्तमान दशा पर। सोचा और समझ पाया कि क्या कारण है कि आज हिन्दी में यूरोपीय लेखकों की तरह मसलन् बर्नार्ड शा, तुर्गनेव, चेकव और गोर्की की तरह तेजःपुज नक्षत्रों का उदय नहीं होता? हमारे यहाँ इनका उदय ही कैसे हो? किसी महान् प्रतिभाशाली क्रान्तिद्रष्टा हृदय के चिर-मुँदे गुहा-द्वार को अपनी स्वर्ण-किरणों से छू देनेवाला लेखक तो आसमान से टपक पड़ता नहीं। हमारे समाज में उत्पन्न किन्ही परिस्थितियों की लाचारी, बेबसी ही उसे हमारे सामने खड़ा करती है। लेखक का अवतीर्ण होना ही क्यों? इतिहास की कोई भी घटना Engels के शब्दों में innumerable intersecting forces and infinite series of parrallelogram of forces के resultant स्वरूप हैं। वह बौद्धिक चेतना, वह समाज के हृदय को चीरकर बहने वाली जीवन्त धारा ही हमारे पास कहाँ है, जिन्होंने उन विश्ववंद्य कलाकारों को जन्म दिया था? जब हमारे यहाँ के पाठकों का दल जरा ऊँचा उठकर विचार करेगा, अपने धरातल को ऊँचा उठायेगा और अपने साहित्यिक धर्म तुला को ठीक करेगा, तभी तो लेखकों को भी बरबस ऊँचा उठना पड़ेगा। नहीं तो जबतक हम 'बुधुआकी बेटी', 'सरकार तुम्हारी आँखों में' इत्यादि से ही संतुष्ट हैं, तबतक लेखकों को क्या पड़ी है कि अपने को कष्ट दें? इसी शब्दाडम्बर की बात लीजिए न। माना कि शब्दाडम्बर है ही। पर क्यों है? क्यों लेखक शब्दाडम्बर के पीछे हाथ धोकर पड़े रहते हैं?

इसलिए न कि हम इसे पसन्द करते हैं, शब्द-कविता पर दाद देते हैं और संगीत पर तालियों की गड़गड़ाहट से सर पर आसमान उठा लेते हैं। मैं कहता हूँ कि जरा-सी उपेक्षा इन सब चीजों के प्रति दिखलावे, फिर देखें, कौन माई का लाल नहीं है जो एक पग भी इस ओर बढ़ने का साहस करता है?

इधर के मित्रों की बातचीत से यह बात मालूम हुई कि जैसे ये लोग साहित्य के क्षेत्र में अभ्यंतर और बाह्य को पृथक् समझते हैं, भाव, कल्पना और उनकी अभिव्यक्ति को अलग-अलग चीज़ मानते हैं। भाषा को अर्थ से भिन्न समझते हैं। पर क्या वास्तव में वे भिन्न हैं? क्या हम एक को दूसरे से अलग रखकर विचार कर सकते हैं और क्या ऐसा करना समीचीन होगा? मैं मानता हूँ कि किसी साहित्यिक रचना की शब्द-योजना, रूप-विधान, और वाह्य रूप को लेकर चर्चा चलती है, कविता में आये अलंकारों और शब्दों को लेकर विचार-विनिमय हुआ करते हैं, परन्तु यह वहाँ तक ठीक है जबतक ये आलोच्य विषय के स्वाभाविक अंग-से प्रतीत होते हों, बाहर से लगाये-से नहीं। इन दोनों को अलग-अलग करके देखना मानो सजीव साहित्य का अंग-भंग करना होगा। यहाँ पर हमें फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक फ्लॉबर्ट (Flanbert) के लेख का कुछ-अंश याद आरहा है। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वे रचनायें जिनमें रूप और शैली पर अधिक ध्यान दिया गया-सा प्रतीत होता है, अधिकतर निम्न कोटि की हैं, उच्चतम श्रेणी की नहीं। और एक जगह तो उसने यहाँतक कहा है कि जिसे हम निर्दोष, निर्मल और पूर्ण शैली कहकर पुकारते हैं वह एक व्यर्थ के वाग्जाल के सिवा और कुछ भी नहीं। उसने विश्व के महान साहित्यिक महारथियों के बारे में लिखते हुए कहा है कि उन्हें शैली के लिए प्रयत्न करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। सारी खामियों के होते हुए भी वे शक्तिशाली हैं; पर हम लोगों की कृतियों की पूर्णता की ही गिनती होती है। जो बहुत बड़े लेखक होते हैं वे अक्सर बहुत बुरा लिखते हैं; यही उनके लिए अच्छा भी है। हमें उनमें कला और रूप की खोज नहीं करनी चाहिए, बल्कि छोटों में करनी चाहिए। मैं इन पंक्तियों को प्रत्येक साहित्यानुरागी और आलोचक के विचार के लिए सामने रखता हूँ। मेरा विश्वास है जहाँ पर हम शब्दों के चुनाव में त्रुटि पाते हैं; भावों की अभिव्यक्ति में विशृंखलता पाते हैं, वहाँ अवश्यमेव आत्म-स्पर्श की अनुभूति में विडम्बना है, कवि अपनी अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया है। अनुभूति जिस मात्रा में हमारे हृदय को स्पर्श करेगी, उसी मात्रा में हमारी भाषा और वाणी में शक्ति आयेगी।

अपनी बात स्पष्ट करने के लिए एक और उदाहरण दे दूँ। आजकल 'गुंजन' इन्टर की कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ा रहा हूँ। 'गुंजन' है भी थोड़ा सा कठिन; पर विद्यार्थीगण जब मुझसे यह कहते हैं कि मैं 'गुंजन' की कविताओं को समझ तो गया हूँ, पर उन्हें express (व्यक्त) नहीं कर सकता तो यह बात मेरी समझ में नहीं आती। मेरा उत्तर यह होता है कि यह असंभव है कि यदि आपने कविता के भावों को हृदयंगम कर लिया है तो उसके अर्थ लिख न सकें। या तो आपने भावों को ठीक से समझा नहीं है या आप व्यर्थ ही आत्म-विश्वास को खोकर यह कह रहे हैं कि आप अर्थ लिख नहीं पाते। जिस कवि-सम्मेलन की चर्चा चल रही है, उसके कवियों से यदि मैं एक ही प्रश्न पूछता कि भाई, तुम हृदय पर हाथ रखकर कहो कि आपमें से यहाँ कितने हैं, जिन्होंने इसलिए कविता लिखी कि वे इसके लिए लाचार थे, किसी अन्तर्प्रेरणा ने उन्हें अपने को बेताब कर दिया था; क्या आपमें से बहुतों की संख्या ऐसी नहीं थी जिन्होंने 'कूँख-काँखकर' इसलिए कविता लिखी, कि कवि-सम्मेलन में कविता सुनानी थी, तो इस प्रश्न का वे क्या उत्तर देते? उच्च साहित्य के प्रणयन के लिए एक ही नियम है और वह है ईमानदारी का। ईमानदारी अपने प्रति, अपने भावों के प्रति,

अनुभूतियों के प्रति और पाठकों के प्रति । इसी ईमानदारी के अभाव में साहित्यिक विडम्बनायें उठ खड़ी होती हैं ।

समालोचना के क्षेत्र में एक तरह की भ्रांत धारणा होती है, जिसको मैं एक व्यक्तिगत अनुभव और सच्ची घटना को लेकर स्पष्ट करने की कोशिश करूँगा । हमारे यहाँ तीन स्कूल के कवि हैं । (वह स्कूल-वस्कूल तो नहीं, पर मैंने चर्चा की सुविधा के लिए यह नाम दे रखा है) (१) इस पार स्कूल (२) उस पार स्कूल (३) मझदार स्कूल । पहले स्कूल का कवि कहता है "ले चलेगा क्या मुझे इस पार से उस पार नाविक" ? दूसरा कहता है "क्यों चलें उस पार कवि, इस पार ही मधुमास होगा" । तीसरा कहता है "इस पार नहीं, उस पार नहीं, मझदार डुबा देना नाविक" । तीसरे स्कूल की कविता को लेकर एक बार चर्चा चली । यहाँ के एक बड़े साहित्यिक और आलोचक ने कहा कि भाई मेरा वंश चलता तो मझधारवाली कविता की तरह कविताओं पर साहित्यिक नियंत्रण करता क्योंकि इस कविता के द्वारा नवयुवकों में अकर्मण्यता का प्रचार होता है । क्या ही विकृत आदर्श है कि मनुष्य कायर होकर समर-क्षेत्र से भाग जाय और बीच ही में डूब मरने की कामना करे ! मैंने कहा भाई "इसमें अकर्मण्यता की क्या बात है ?" उन्होंने कहा, "मझधार का अर्थ है ही क्या, इस पार नहीं उस पार नहीं, तो मझदार में जाओगे ही कहाँ ?" मैंने कहा कि साहित्य प्रधानतः काव्य, तो शुद्ध भाव है और है Communication । कविता के लिए हमारे पास एक ही माप-दण्ड है और वह यह है कि जो कुछ कवि कहना चाहता है, अच्छा या बुरा इससे मुझे मतलब नहीं, वह हमारे हृदय के अनुभूति-खण्ड से कहाँ तक लगाव ला सका है, वह जिस 'मूड' में है उस 'मूड' में हमें कहाँ तक प्रवाहित कर सका है ? यदि हम उसकी एक-एक स्वर लहरी पर, वधिक की वीणा पर न्यौछावर हो जानेवाले मृगशावक की तरह आत्म-समर्पण कर देते हैं तो काव्य सफल है । (Duty of on artist is to communicate a mood) मझधारवाली कविता पर विचार करते समय हमें यह देखना चाहिए कि जिस खीझ या झुँझलाहट के भाव को कवि हमारे सामने रखना चाहता है उसे कितनी सजीवता के साथ रख सका है; शब्दों के द्वारा हृदय की किस गहराई में ले जाकर हमारी वेदना जागरित कर सका है ? मैं यह कभी नहीं कहता कि मझधारवाली कविता उच्च कोटि की है, परन्तु कहना यही है कि कविता के ऊपर विचार करते समय हम जिस कसौटी का आश्रय ले रहे हैं वही भ्रामक है । सच्चे हृदय से निकले उद्गार हृदय के सच्चे भाव, कभी भी मनुष्य को मानवता से गिरा नहीं सकते । वे हमें बल देते हैं । शक्ति प्रदान करते हैं । क्या तुलसी की यह कविता 'मोसम कौन कुटिल खल कामी !' आपमें आत्मविश्वास की कमी पैदा करती है ?

सम्पादकजी, यह एक लम्बा सा पत्र मैं आपके पास लिख गया । पहला कारण तो यह कि आपके विचारों से लाभ उठाना चाहता हूँ। और दूसरा यह कि मेरे मन में ग्लानि-सी थी कि मैंने आपके लिए बहुत दिनों से कुछ नहीं लिखा, सोचा, चलो 'माखन बेचत हरि मिले, एक पंथ दो काज' ।

आपका विनीत
देवराज उपाध्याय

जीवन का उषाकाल

[प्रभुदास गांधी]

(क्रमागत)

मूल स्थान

बालकपन की स्मृतियाँ ताज़ी करने बैठते ही स्मृति-पटल की दरारों से एक के बाद एक कई क्रमबद्ध कहानियाँ निकल पड़ती हैं। स्वर्गवासी काका जब पहलेपहल हमें अफ्रीका ले गये, तब मैं मुश्किल से चार बरस का हूँगा। फिर भी आज ऐसा पड़ता है मानो वह यात्रा अभी-अभी हुई हो।

गाँव जैसे अतीत की साक्षिणी है, उसी तरह कान भी हैं। निरे बचपन से पिताजी, काका, तथा मगन काका से उनके स्वभाव के, संकट की और उनके कार्यकलाप की बातें कहानियों की तरह सुनता आया हूँ। इसलिए अपनी बात कहते-कहते उनकी याद सहज आ जाती है। आप-बीती का स्मरण करने में पुरखों के अनुभव के संस्मरण भी दृष्टि-पथ में दौड़ आते हैं। इसलिए कहानी का आरम्भ पोरबन्दर से शुरू करने की जगह कुतियाणा से ही शुरू करना उचित जान पड़ता है।

कुतियाणे में गांधी-कुल की कुल-देवी—यदि मेरी स्मृति ठीक है तो—सतीमा का मन्दिर है। [illegible] आदि जिसके लिए रूढ़ियाँ नहीं हैं, ऐसे हमारे कुल के युवक को विवाह के समय नववधू के साथ कुतियाणे जाकर कुल-देवी के चरणों में रखकर अपना विवाह मंजूर कराना पड़ता है। आज दक्षिण अफ्रीका, पूर्व अफ़्रीका, अदन और भारत में चारों ओर हम चचेरे भाई फैले हुए हैं, फिर भी मूल-स्थान हमारा कुतियाणा है—यह इस रिवाज से ज्ञात होता है। हमारे पुरखे वहाँ कब, कहाँ से आकर बसे—इसका अन्वेषण नहीं हो सका है। जो नाम आज प्राप्त हैं, उनमें सर्व-प्रथम लालजी गांधी का नाम आता है। लालजी गांधी की पाँचवीं पीढ़ी में गांधी-कुल के महाजन—गांधी-कुटुम्ब के पितामह—उत्तमचन्द गांधी पैदा हुए और सातवीं पीढ़ी में विश्ववन्द्य महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी।

कोई २४ वर्ष पहले एक बार जब मैं अपने मूलस्थान गया, तब कुल के मूलपुरुषों की कथा—इतिहास—की अपेक्षा कुल की मूलभूमि—भूगोल—का प्रभाव मेरे मन पर गहरा पड़ा था। 'बापू' के जाज्वल्यमान अद्वितीय व्यक्तित्व के मूल में कैसे समाज की भूमिका थी, यह यदि डेढ़-पौने दो सौ वर्ष की आयु का कोई पोरबन्दर-निवासी और जीवित समाजशास्त्री मिल सके, तो उससे यथावत् सुन सकेंगे। शान्तनु से लगाकर जनमेजय तक की आठ पीढ़ियों के प्रत्यक्ष दृष्टा बादरायण मुनि थे, तभी वे महाभारतीय समाज को लिपिबद्ध कर सके। 'बापू' के आगे पीछे के समाज का इतना लम्बा और अपनी विवेक-बुद्धि को जागरूक रखकर तटस्थ रहते हुए इतना गहरा अवलोकन करनेवाला कौन मिलेगा? बापू की अपनी कलम से अधिक श्रेष्ठ साक्षी मिलना सम्भव नहीं दीखता, परन्तु भूगोल तो अपनी कथा युग-युग तक कहेगा ही।

कुतियाणा काठियावाड़ की जूनागढ़ रियासत का एक क़स्बा है, जो भादर नदी के तट पर है। प्रायः भादर नदी का पट चौड़ा है, पानी बहुत उथला है, पर कुतियाणे से कुछ आगे चलकर काले और सख्त पत्थरों की काली मजबूत क़तार को चीरकर नदी ने अपना मार्ग बनाया है। मुलायम पानी ने पत्थर की चट्टान के दो टुकड़े कर डाले हैं जैसे चाकू खरबूजे के दो टुकड़े कर देता है। विशाल पट में बहता हुआ उथला पानी एकत्र और गहन बनकर गम्भीर घोष करता हुआ वहाँ से आगे बढ़ता है।

एक ओर भादर नदी उत्पीड़न में से निर्मलता और नम्रता के साथ मार्ग निकालने की कला दिखाती है, तब दूसरी ओर हिमालय के आगे रजकण-जैसी तुच्छ वस्तु पर स्वस्थान पर सुशोभित 'बरड़ा' की पहाड़ी सहिष्णुता की प्रेरणा देती है। शिखर इसके औसतन् छः सौ से आठ सौ फ़ीट

ऊँचे हैं, कुछ घनी झाड़ियों से दुर्गम दीखते हैं, तो कुछ संन्यासी के मुण्ड की भाँति हैं और ग्रीष्म के उग्र सूर्यातप फैलाते हुए ऐसे दुर्द्धर्ष बन जाते हैं कि उनपर निगाह नहीं ठहरती। पश्चिमी सीमा में बिछी हुई बरडा की पहाड़ी, पूर्व की ओर उठा हुआ उन्नत गिरनार, बगल में पहरा देती हुई ओसम की घाटी मानो बहारवटा[1] खेलने का निरन्तर निमंत्रण दे रही है। प्रत्येक चोटी जीवन की धूप-छाँह के बारे में लापरवाह होने का मंत्र मनुष्य को सिखा रही है। 'सौराष्ट्र की रसधार' के मर्मज्ञ कवि श्री मेघाणी के पदचिन्हों पर जो कोई वहाँ के 'चारण' और 'मेर' जातियों के बीच परिभ्रमण करेगा उसको वह सारी भूमि सभ्यता से ओतप्रोत बहारबटे के रणघोष से गूँजती हुई जान पड़ेगी।

कुतियाणे से दो मंजिल दक्खिन में पोरबन्दर नगरी के परकोट को छूता हुआ नील सिन्धु अहर्निश धीर-गंभीर निनाद करता हुआ अपने जल का अर्घ्य चढ़ाकर संतप्त मातृभूमि को सतत शीतल बनाता रहता है। द्वारिका से लेकर भावनगर तक के किनारेवाले इस रत्नाकर-सागर के सामने की ओर कोई किनारा है ही नहीं। ऐसे भव्य सागर-तट के वे दिव्य ज्वारभाटे, आकाश से लगा हुआ उसका असीम अंचल भीषण वीचिमाला की उसकी अनन्त श्रेणियाँ और उसका गहरा नीला रंग मानव-हृदय में अतृप्त जिज्ञासा संसार की थाह लेने की महत्त्वाकांक्षा और नयी-नयी साहसिकता के लिए आगे बढ़ने की आकांक्षा उत्पन्न करते हैं।

फिर इधर महासागर के तट पर पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ बालू का विशाल पट चित्त पर निराला ही असर डालता है। इस पट में यात्रा करते हुए न तो दीखता है समुद्र का पानी और न नज़र आती है शस्यश्यामल भूमि। जरा-सी धूप तेज होते ही वहाँ पर मृगजल के सरोवर लहराते हुए नजर आते हैं और उस निर्मल जल के किनारे झूलती हुई नारियल की वृक्ष-घटा अपनी मनमोहक परछाईं उसमें डालती हुई दीख पड़ती है। बुद्धि और पिछला सारा अनुभव चीख-चीख कर कहता रहे कि वहाँ पर जमीन है, पानी है ही नहीं, फिर भी आँखें हमें उस स्थान पर घसीट लाकर जब बुद्धू बनाती हैं, तभी उन सरोवरों का और किनारेवाले नारियलों का मिथ्यात्व प्रतीत होता है। फलतः कट्टर-से-कट्टर नास्तिक को भी वेदांत की—संसार के मिथ्यात्व की—तरंगों में दिलचस्पी आने लगती है।

संक्षेप में 'बरडा' के उस छोटे-से प्रदेश में पृथ्वी की सारी भूगोल के लाक्षिणक स्वरूप मौजूद हैं। सब प्रकार की भौगोलिक संस्कृतियों को वहाँ शरण मिल सकती है। नदी-किनारे की प्रेरणा वहाँ प्राप्त है। भादर के तटवर्ती हरे-भरे खेत संतोष प्रदान करते हैं। पहाड़ियों की तपस्या आकर्षक है। 'बरडा' की चोटी और दरियों में मतंगाकार भैंसों को लेकर जाते हुए अहीर और चारणों की ऊँची ललकारें वेदकालीन ऋचाओं की याद दिलाती हैं; समुद्र की गंभीरता हृदय को गहराई में ले जाती है; सामुद्रिक व्यापार देश-विदेश की संस्कृनियों का संबंध पैदा करता है और मृगजल की माया सावधान बनाती है। ऐसी जगह पर बसा हुआ समाज सर्वतोमुखी कुशल हो, यह स्वाभाविक ही है। यदि नहीं होता तो उसका सबब बाहर से सिरपर सवार होनेवाला कोई ख़तरनाक संकट ही हो सकता है। (क्रमशः)

---

[1] राजा के साथ झगड़ा हो जाने पर राज्य के भाई-बन्धु या बहादुर राज कर्मचारी या फ़ौजी व्यक्ति रियासत का त्याग कर रियासत के प्रति बाग़ी हो जाता है तब वह 'बहारवटिया' कहलाता है। हिन्दी में इसका कुछ भाव 'बटमार' शब्द में आता है परन्तु बहार-वटिया अकसर राजनैतिक भूमिका के बटमार होते हैं।

पूना-सम्मेलन के अनुभव

[भानुकुमार जैन]

[मैं समझता हूँ कि भानुकुमारजी के इन आलोचनात्मक विचारों को पाठक आत्म-निरीक्षण की भावना से पढ़ेंगे। अपने पत्र में उन्होंने यह आशंका प्रकट की है कि 'इसे छापने का साहस हिन्दी के अन्य पत्रों को न होगा।' मैं नहीं कह सकता उनका यह भय कहाँतक उचित व न्याय्य है? ह० उ०]

पूना सम्मेलन में जाने की पूर्व तैयारी न थी। अभी-अभी १५ दिन स्वदेश और अन्य स्थानों में भ्रमण कर लौटा ही था कि साथियों ने कहा—पूना-सम्मेलन चलना है। ७ बहिनें और ५ भाइयों का संघ चल पड़ा। यह संघ 'बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ' के कार्य्यकर्त्ताओं का था।

पूनेवाले अतिथियों का स्वागत करना खूब जानते हैं। उनके आराम का पूरा खयाल रखते हैं। विनय और स्वयंसेवकी—पथप्रदर्शकवृत्ति उनमें खूब है। स्त्री पुरुषों का एक क्षेत्र में समरस होकर कार्य करना, निष्ठा, लगन और तत्परता ये सब महाराष्ट्र के ग्रहण करने योग्य गुण और संस्कार हैं।

स्वागत-समिति की अपनी कठिनाइयों के होते हुए भी जिस व्यवस्था से सम्मेलन का कार्य्य हुआ, वह अभिनंदनीय था। सुना है—स्वागत-समिति के पास हिन्दी के कई प्रतिष्ठित विद्वानों के ऐसे पत्र आये थे जिन्होंने पुणें आने के लिए स्वागत-समिति से कई अप्रासंगिक और उजड्ड मांगें पेश की थीं कि जिनका उत्तर देना भी इष्ट नहीं था। हिन्दी-भाषी विद्वानों की संस्कृति का यह एक नमूना था।

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से (या स्वतंत्र ?-पता नहीं) एक पुस्तक-विक्रेता वहाँ पुस्तकें बिछाकर बैठे थे। नयी प्रकाशित 'हिन्दी' पत्रिका और कुछ अन्य छोटे ट्रैक्ट श्री वैशंपायनजी (स्वागताध्यक्ष महोदय) को खरीदने पड़े। कम-से-कम पत्रिका तो बिना मूल्य और प्रचारार्थ देना उन पुस्तक-विक्रेता महोदय का कर्त्तव्य था। लेकिन वे स्वागताध्यक्ष महोदय को भी न जान सके और शायद उन्हें इसका अधिकार भी न हो! लेकिन ऐसे मौकों पर प्रमुख व्यक्तियों को जो व्यक्ति जान सके ऐसा ही कार्यकर्त्ता होना चाहिए।

श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर का भाषण मननीय था। श्री संपूर्णानंदजी का भाषण पठनीय, काम की बातों से युक्त और व्यवहार्य था। मुख्य और विभागीय स्वागत-भाषणों में जितनी विचार-सामग्री, राष्ट्र और संस्कृति के प्रति प्रेम, लगनशीलता समर्पणवृत्ति और भावना-पूर्णता थी वह हमारे हिन्दी के महारथी भाषण-कर्त्ताओं के लिए अनुकरणीय और आदर्श थी।

पूज्य टंडनजी का भाषण काफी गंभीर था; जो उनके हृदय की सचाई और उनके व्यक्तित्व को प्रगट करता था। उनपर होनेवाले तरह-तरह के आक्षेपों का पूर्ण निराकरण श्री टंडनजी ने किया। सम्मेलन के मुख्य कर्णधार श्री टंडनजी ही हैं, महाराष्ट्रवासियों ने इस तथ्य को पुणें में अनुभव किया।

पूज्य काका साहब का अंतिम दिन का और इतिश्री का भाषण मार्मिक था। काशी-सम्मेलन में इससे भी ज्यादह मार्मिक भाषण हम उनका सुन चुके थे।

मनोरंजन का कार्यक्रम बिना जातीय भेद-भाव के महाराष्ट्र में प्रचुर मिलते हैं। स्त्री-पुरुष सम्मिलित रूप से नाटकादि और अन्य सामाजिक कार्य्यों में हिस्सा ले सकते हैं। इसे हिन्दी प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने वहाँ देखा। इस एकीकरण को उन्हें अपनाना चाहिए। औंध की राजकन्या का कीर्तन प्रायः सबको पसंद आया। मैंने तो अन्य प्रौढ़ कीर्तन देखे हैं, इसलिए उसमें सिर्फ अभिनयात्मक ढंग ही लगा। लेकिन राष्ट्रीय और प्रचार कार्य के लिए, खासकर ग्रामीणों, अपढ़ और मूर्ख जनता के लिए—मेरा विश्वास है—हरिकीर्त्तन से बढ़कर और कोई अच्छा उपाय

नहीं है। एक बात और है—इस हरिकीर्त्तन में चाहे भगवद्भजन ही हो और कुछ व्यक्ति चाहे उस भगवद्भजन को नापंसद ही करते हों; लेकिन कई व्यक्तियों के झुंड का लय और तालबद्ध होकर एक स्वर में आत्मानंद को प्राप्त होना कितना सुखदायक है! इसे हरिकीर्त्तन में बैठकर ही जाना जा सकता है। मतवाली मीरा का आत्मानंद और भगवान कृष्ण की रासलीला का आनंद शायद इसमें मिल सकता है; पर मेनका और उदयशंकर आदि विश्वविख्यात नर्त्तकों के नृत्य में नहीं। कारण—उनमें Professional (व्यापार) और दर्शाने की वृत्ति (भावना) ज्यादह काम करती है।

स्वागत-समिति ने कवि-सम्मेलन न रखकर दूरदर्शिता का काम किया था; पर मनचले दोस्तों को हिन्दी और हिन्दीवालों की कहाँ चिन्ता है? स्वागत-समिति द्वारा पूर्व निश्चित कार्यक्रम में भी खलल डालकर कविसम्मेलन कर ही डाला। "मान न मान, मैं तेरा मेहमान" का प्रदर्शन किया। एक षोडशवर्षीय कुमार भी शृंगारिक कविता सुना गये। लोग चकित हुए। श्री बेढबजी की एक-दो रचनाएँ भी श्रोतावर्ग को अप्रासंगिक लगीं। हमारा समाज या साधारण जन-वर्ग अभी इतना आगे नहीं बढ़ा है। और न सामूहिक अवसरों पर इतना आगे बढ़ना इष्ट ही है।

खुले अधिवेशन में एक साधारण प्रस्ताव पर कई घंटे सिर्फ मत लेने में ही गुज़र गये। जबकि टंडनजी (स्पीकर आफ दि यू० पी० एसेम्बली) मौजूद थे। सम्मेलन के कार्यकर्त्ता और विद्वान् प्रतिनिधियों की यह अक्षमता सराहनीय नहीं। काशी सम्मेलन की धींगामस्ती का हमें भान है। फिर हमारे बम्बई के जीवन में भी हिन्दी-भाषियों की जो दुर्दशा इस नाते है, उसका भी हमें कटु अनुभव है। हम हिन्दीवालों की यह दुर्दशा कब सुधरेगी, हम नहीं जानते।

मेरा खयाल है पुणेंवालों में सहयोग और कार्य्यप्रणाली का ज्ञान अच्छा है। लेकिन हम चाहे थोड़े से ही प्रतिनिधि वहाँ गये; उनपर हमने कोई स्थायी और प्रभावकारी छाप नहीं छोड़ी। व्यवहार, सफाई और साधारण शिष्टाचार के नियमों तक का हमने उल्लंघन किया है। नूतन मराठी विद्यालय के अधिकारियों ने विद्यालय को एक पवित्र और विद्याप्रचारिणी संस्था समझकर दम्पतियों को ठहराने की आज्ञा स्वागत-समिति को नहीं दी थी। लेकिन एक कुटुंब को यह शिकायत बड़े असंतोषपूर्ण शब्दों में करते मैंने सुना। नैतिक दृष्टि से इस शिकायत में कितना अविवेक था यह कल्पना की जा सकती है।

हमारे प्रतिनिधियों ने इस संस्था की गेलरियों, कमरों और दीवालों की जड़ों को पान की पीक और थूक से गंदा कर रखा था। पानी की टांकी वाले तुरंत साफ़ हो सकनेवाले पाखानों को भी गंदा हमने देखा। हमारे साहित्यिकों में स्वास्थ्य के नियमों की इतनी जानकारी तो होना ही चाहिए! इतना होने पर भी किसी स्वागत-सदस्य की ओर से इस वाजिब शिकायत की कानाफूसी तक हमें जानने का मौक़ा नहीं मिला। अतिथि-सत्कार में मौन सहनशीलता यहाँ देखने को मिली।

कई सम्मेलन के पदाधिकारियों और साहित्यिकों में हमें छिछलापन और बचपन नज़र आया। हमारे प्रतिष्ठित और मान्य कवियों—यहाँ तक कि किसी श्रद्धापात्र कवियित्री के लिए भी भद्दा मज़ाक हमने इन लोगों से सुना। हम शरम के मारे गड़ गये और हमारा दुःख इस नाते अपार है।

उच्च संस्कारिता, गंभीरता और व्यक्तित्व की छाप लेकर हम महाराष्ट्र से चले। अपने-अपने प्रान्त की योग्य संस्कृति का प्रतिनिधित्व और सभ्यता का प्रदर्शन हमें पुणें जाकर करना था; पर हम हिन्दीवालोंने वहाँ जाकर देने का तो कुछ गँवाया और सीखने का बहुत-सा मसाला लेकर चले आये।

'मक़बरे'

[शादीराम जोशी]

न जाने इस बात में क्या रहस्य है कि पहले आदमी बड़ी-बड़ी दीवारें और छतें खड़ी करके ताज़ी हवा का प्रवेश बंद कर दे और फिर पंखे लगाकर हवा को चलता हुआ अनुभव करने की कोशिश करे: पहले तो परदे डालकर दिन ही अँधेरा कर ले और फिर उस अँधेरे को दूर करने के लिए बिजली की बत्तियाँ जलाये; पहले प्रकृति से नाता तोड़कर ईंटों और पत्थरों के पिंजड़ों में अपने आपको बंद कर ले और फिर गमलों में फूल और पौदे लगाकर प्रकृति का आनंद प्राप्त करने की कोशिश करे।

मनुष्य के सर्वांगीण जीवन का विकास प्रकृति के संपर्क ही में हो सकता है। प्रकृति से दूर रह कर, बनावटी परिस्थितियों में रहकर, न शारीरिक विकास ठीक तौर पर हो सकता है और न मानसिक और आध्यात्मिक। पृथिवी, जल, वायु और प्रकाश का समन्वय शरीर की पुष्टि के लिए है। प्रकृति के साथ सम्पर्क में आने ही से मस्तिष्क और हृदय का विकास होता है। परन्तु जीवन के विकास को रोकने के लिए हम अपने आपको मकान कहे जानेवाले पिंजरों में बंद कर लेते हैं।

मक़बरों के अंदर तो मृतक शरीर ही को रखते हैं, पर इन मकान कहे जानेवाले मक़बरों के अंदर जीवित शरीर को मृत्यु के नज़दीक पहुँचाने के लिए रखा जाता है।

ये मक़बरे बनाये भी बड़ी मेहनत से जाते हैं। इनको हासिल करने के लिए झूठ, फरेब, बेईमानी, हिंसा सभी की शरण ली जाती है।

धूप, वर्षा, सर्दी और आँधी से बचने के लिए ही तो घर की ज़रूरत है, पर इस डर को इतना बढ़ा लिया गया है कि सारा जीवन इसी से पूरे तौर पर बचने के लिए इंतजाम करने में लग जाता है।

एक अजीब भाव मनुष्य में घुस बैठा है कि बड़ा कहलाने के लिए बड़ा 'मक़बरा' होना ज़रूरी है। इस 'बड़ा कहलाने' ने संसार में बहुत उपद्रव मचा रक्खा है। 'बड़ा बनना' तो शुभ बात है पर केवल 'बड़ा कहलाना' और बड़ा समझा जाना दूसरी बात है। मनुष्यत्व को न बढ़ाकर हम केवल बड़े 'मकबरे' की सहायता से बड़ा कहलाना चाहते हैं। जिस तरह हम मुर्दे को बड़ी भारी कब्र में दबाकर उसका गौरव बढ़ाना चाहते हैं उसी तरह बड़े मकान में रहकर हम अपने को बड़ा बनाना चाहते हैं।

मकान धन-सम्पत्ति का विज्ञापन करने के लिए भी बनाया जाता है और धन-सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए भी। पहले विज्ञापन करके चोरों को उकसाया जाता है और फिर उनके यत्न को विफल करने के लिए इंतज़ाम किया जाता है।

धर्म को भी 'मकबरों' में रहने की आदत हो गयी है। जितना बड़ा मंदिर या मस्जिद या धर्मस्थान, उतना ही अधिक वह पवित्र और दर्शनीय! जितना बड़ा धर्मस्थान होता है, जितना अधिक पत्थर, ईंट, चूना और लोहा इसमें लगा होता है अक्सर उतना ही यह पाप का पुंज होता है। यदि परमात्मा 'दरिद्रनारायण' है, यदि राम निर्बलों का है, तो वह ऐसे 'धर्मस्थान' में कब आने लगा?

शिक्षा को भी बड़े-बड़े 'मक़बरों' में कैद कर दिया गया है। जितनी बड़ी इमारत, उतनी ही बड़ी यूनिवर्सिटी। जितना अधिक पत्थर, चूना और लोहा इकट्ठा किया गया हो उतना ही बड़ा कालिज, विश्वविद्यालय, विद्यापीठ।

इन 'मक़बरों' ने हमारे जीवन के सभी अंगों पर अधिकार जमा लिया है। ईंट-पत्थर के पीछे पड़कर हमने जीवन के तत्त्व को नष्ट कर दिया है, जीवन के उद्देश्य को भुला दिया है और अंधाधुंध भागे चले जाते हैं।

प्रस्तुत प्रश्न

जीवन-साहित्य में समालोचना का स्थान

यदि हम साहित्य को जीवन का छायानुवाद कहें, तो समालोचना को जीवन से साहित्य को संलग्न करने का साधन कह सकते हैं । साहित्यकार अपने जीवन के अनुभव को, जीवन के आदर्शों को कलात्मक रूप देकर साहित्य द्वारा प्रदर्शित करता है, तो समालोचक रचनाओं के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन कर रचयिता के जाग्रत जीवन से पाठकों का निकट सम्बन्ध स्थापित करता है और बतलाता है कि लेखक नैसर्गिक नियमों और जीवन-सिद्धान्तों को समझने में कहाँ तक सफल हुआ है, वह निरूपण करता है और पाठकों के सामने जीवन का एक भावमय चित्र खींचता है; अतः समालोचना पूर्णतया जीवन-साहित्य कहलाने की अधिकारिणी है ।

समालोचना अब भी हिंदी-संसार में साहित्य का एक दूषित अंग ही समझी जाती है । कुछ हद तक ठीक भी है, जब अधिकांश समालोचकों ने साहित्यकारों व उनकी रचनाओं पर अनावश्यक दोषारोपण या उनकी अत्यधिक प्रशंसा करना ही अपना काम बना लिया है तो वह समझी भी क्या जाय ? हो सकता है कि कुछ लेखकों के उपेक्षा का पात्र होने पर या कुछ लेखकों के प्रति अपनी मित्रता निभाने के लिए वे ऐसी समालोचना करने लिए प्रेरित हों किन्तु वे भूलते हैं कि लेखकों को प्रोत्साहित या निरुत्साह करना ही उनका कर्त्तव्य नहीं है । पाठकों के प्रति भी उनके कुछ कर्त्तव्य हैं । रचनाओं के गुण-दोष-निदान व उनको साहित्यिक कसौटी पर कसकर उनके संबन्ध में अपना निर्णय देने के साथ-साथ उनकी बारीकियों को प्रत्यक्ष व स्पष्ट रूप में पाठकों के सामने रखना भी समालोचक का कर्त्तव्य है । यदि वह अपने ज्ञान व विशेष अध्ययन द्वारा रचनाओं के तत्त्वों को समझने में समर्थ हुआ है, तो यह कदापि अनुचित है कि वह उनके आनन्द से पाठकों को वंचित रखे । साहित्यकारों को उसे इधर-उधर न भटकने देकर ठीक रास्ते पर लाना चाहिए और पाठकों का ध्यान उस मार्ग की मनोरंजक व शिक्षाप्रद वस्तुओं की ओर आकर्षित करना चाहिए । साहित्यकारों के प्रति उसका कर्त्तव्य पथप्रदर्शक का है और पाठकों के प्रति परिदर्शक का ।

पथप्रदर्शक के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि समालोचक का ज्ञान-भांडार परिपूर्ण हो जो गम्भीर परिशीलन व मनन द्वारा ही सम्भव हो सकता है । यह बिल्कुल भ्रांत धारणा है कि केवल प्रतिभाशाली पुरुष ही आलोचना करने में समर्थ हो सकता है । एक तो यह जानना कठिन है कि कौन प्रतिभाशाली है और कौन नहीं, फिर यदि किसी में आलोचना की प्रतिभा वर्तमान भी हो तो उसको इतना स्वाभिमानी न होना चाहिए कि वह किसी भी लेखक पर और किसी भी विषय पर बिना उनके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त किये टीका-टिप्पणी करने बैठ जाये ।

इस प्रकार की आलोचनाओं में प्रायः यह देखा जाता है कि समालोचक ऐसे विचारों का प्रतिपादन करता है जिनका मुख्य विषय से कोई सम्बन्ध नहीं होता और कभी-कभी रचनाओं के आधार पर ही लेखक के आचरण के सम्बन्ध में अपनी सम्मति निर्धारित कर जाती है और उसपर व्यक्तिगत आक्षेप होने लगता है, इससे बड़ा अनर्थ हो जाता है । अँग्रेज़ी साहित्य के भावुक कवि कीट्स की तो समालोचकों ने जान ही ले डाली । समालोचक को कम-से-कम समकालीन साहित्य-का दिल दुखाकर उनको निरुत्साह नहीं करना चाहिए । यदि वह उनकी रचनाओं में कुछ दोष पाये, तो अच्छे साहित्य से उनकी तुलना करके यह दिखाये कि वे किस प्रकार जीवन-सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं और उच्च आदर्शों से कितनी नीचे गिर गयी हैं । यह हो सकता है कि किसी साहित्यकार की रचना कला की दृष्टि से उच्च-

ति की हो, पर उसमें उच्च आदर्शों का अभाव ने के कारण वह पाठकों को वासनामय जीवन की ओर प्रवृत्त करे। समालोचक को इन गुण-ों पर पूर्ण प्रकाश डालना चाहिए और यदि वह ठकों का ध्यान रचनाओं की उच्च कला की र आकर्षित करे, तो साहित्यकारों द्वारा निर्धा- त नियमों पर अनावश्यक जोर देकर किसी तशील रचयिता को जकड़ लेना भी चित नहीं है। बस यह देखना पर्याप्त है कि हित्यकार अपने भावों व सिद्धान्तों को प्रकट रने में कितना सफल हुआ है और उसकी शैली व्यञ्जना में किसी प्रकार बाधक तो नहीं है।

हिन्दी-साहित्य में समालोचना के एक अंग की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया है, वह है ष्ट रचनाओं के प्रति पाठकों के हृदय में अनु- ग उत्पन्न करना। कुछ हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के लोचना-स्तम्भों में रचनायें कसौटी पर तो कर बिठायी जाती हैं और उनके गुण-दोषों को अच्छी तरह तोल दिया जाता है, पर यदि णों का पलड़ा भारी हो तो उनकी तरफ़ पाठकों की दिलचस्पी पैदा करने के लिए बहुत कम प्रयत्न किया जाता है। किसी पुस्तक की आलोचना ढ़कर पाठक के हृदय में रह-रहकर यह विचार त्पन्न होना चाहिए कि उस पुस्तक का पढ़ना सके लिए अनिवार्य है और वह उसके जीवन में ई ज्योति ला सकती है। समालोचक को यह खाना चाहिए कि लेखक ने किस खूबी से सकी आशाओं, निराशाओं, उद्देश्यों व सिद्धान्तों र नया प्रकाश डाला है ताकि बिना पुस्तक को ढ़े हुए उसको चैन न पड़े। इस प्रकार पुस्तकों की बिक्री ही न बढ़ेगी बल्कि जनसाधारण में शिक्षा का प्रसार भी होगा और साहित्यकार भी उचित पारिश्रमिक पाकर अधिक साहित्य-सेवा करने में समर्थ हो सकेंगे।

मोहनचन्द्र जोशी

उलझन

मैं अपनी एक उलझन 'जीवन - साहित्य' परिवार के सामने रखना चाहता हूँ, और चूँकि इस उलझन का अनुभव और उसे सुलझाने का प्रयत्न हममें से बहुत से करते रहे होंगे, मैं उनसे प्रकाश की आशा रखता हूँ।

वैसे तो हमारे मुल्क में 'पढ़े-लिखों' की कमी है—शायद सौ में दस हों, ऐसा कुछ शास्त्री कहते हैं—और उन थोड़े से 'पढ़े-लिखों' में से भी ऐसे बहुत कम हैं जो अपनी स्कूली और कॉलेजी शिक्षा खत्म कर लेने के बाद भी किताबों से, या जिसे साहित्य कहते हैं उससे, प्रेम रखते हों। पर शायद मेरे जैसे अभागों की भी कमी नहीं है जिन्हें **"जितना कुछ छापे की स्याही से रँगा जाता है वह सब, बँधा हुआ या न बँधा हुआ काग़ज़** अपनी **नजरों से गुज़ारने"** का मर्ज़ आ गया है। इतनी ग़नीमत है कि यह शौक़, जहाँ तक शौक़ का ताल्लुक है, मेरे लिए ज्यादातर हिन्दी भाषा के साहित्य तक ही सीमित है। पर कभी-कभी तो मैं स्वयं घबड़ा जाता हूँ मेरी इस 'किताबियत' से। यह मर्ज़ अब यहाँ तक बढ़ गया है कि मैं अपने जगने के समय के एक क्षण में भी, जब मैं और कोई काम में न लगा हूँ—'चुपचाप' नहीं बैठ सकता। एक बार मेरे एक मित्र ने मेरी यह आदत देखकर कहा था कि यह भी आजकल के 'सभ्य समाज' के लोगों का एक मर्ज़ है कि वे एक मिनिट भी ख़ाली हुए कि छपी हुई कोई चीज़—किताब हो या सिनेमा मेगेज़ीन या और कोई पत्र-पत्रिका— उठा लेते हैं और बिना किसी मतलब या मक़सद के पढ़ते चले जाते हैं; पर यदि उनसे कहा जाय कि आप घंटा आध घंटा खुले आकाश के नीचे लेटकर और कुछ न कीजिए सिर्फ़ तारों को और उनकी गति को देखा कीजिए, तो यह उनसे न हो सकेगा।

पर इसमें मेरा दोष भी क्या है? ईश्वर की देन से अव्वल तो मेरा आजीविका सम्बन्धी काम भी ऐसा है कि मुझे रात-दिन लिखते-पढ़ते ही बीतता है। छोटी-बड़ी सब सरकारी रिपोर्टों और कमिटी-कमीशनों की रिपोर्टों से लेकर व्यापारिक सभी पत्र-पत्रिकाएँ और साहित्य—भारतीय और विदेशी—पढ़ना मेरे काम का एक अंग है। इसके बाद अपने जीवनादर्श और रुचि के अनुकूल कुछ

साहित्य पढ़ना भी तो ज़रूरी है। महात्मा गांधी के 'हरिजन'—और जबसे उन्होंने ज्यादातर लेख मूल गुजराती में लिखने की घोषणा की, तबसे गुजराती 'हरिजनबन्धु'—पढ़ना तो लाज़मी है ही। फिर इसी विचार-धारा की पुष्टि में 'सर्वोदय' को पढ़े बिना भी जी नहीं मानता। गांधीजी की अन्य प्रवृत्तियों के परिचायक 'नई तालीम', 'खादी-पत्रिका,' 'ग्रामोद्योग पत्रिका' और "सब की बोली" भी पढ़ना ही होता है। फिर हिन्दी 'साहित्य' से भी थोड़ा सम्पर्क बनाये रखने को 'विशाल-भारत' और 'हंस' भी मँगाता हूँ, और अब इस सारी लिस्ट में "जीवन-साहित्य" और बढ़ गया! अंग्रेज़ी में और तो नहीं, पर सुप्रसिद्ध अमेरिकन संकलन-मासिक "Reader's Digest" पढ़ने की इच्छा तो रहती ही है।

अब आपमें से कोई भी बतावे कि मैं इनमें से कौनसी चीज़ बिना पढ़े छोड़ दूँ? और सभी पढ़ने के लालच में मुझे अब एक क्षण भी बिना पढ़े रहने की फ़ुरसत नहीं मिलती और श्री प्रभाकर माचवे ने जैसा अपने लेख "श्रम-पूजा" में लिखा है—"दृष्टि इतना अधिक परिश्रम करती है कि उसने दूसरे अवयवों से शक्ति छीन ली है," हालाँकि दैवकृपा से अभी "सहायक उप-नेत्रों" की आवश्यकता नहीं हुई है। और यह तो मैंने सिर्फ़ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की बात कही। इसके अलावा पुस्तकों के रूप में स्थायी साहित्य पढ़ने की इच्छा भी लगी ही रहती है। पर यहाँ भी पढ़ने की सामग्री इतनी है कि न पूछिए! जब मैं कॉलेज में था तब दिन के दिन बल्कि यों कहना चाहिए कि मेरा सारा समय ही—इस उधेड़बुन में बीत गया कि पढ़ना आखिर शुरू किस लेखक की कौनसी पुस्तक से किया गया जाय? मुझे अच्छी तरह याद है कितने ही ऐसे दिनों की जब मैं लखनऊ और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों में किताबों की कतार के सामने खड़ा होकर घंटे-के-घंटे इसी पसोपेश में बिता देता था कि रस्किन की कृतियाँ पहले पढ़ना शुरू करूँ या टॉल्स्टॉय की? और समय पूरा होने पर बिना दोनों में से कुछ पढ़े वापस लौट आता था। जो आगे इस तरह चुनाव की ज़रूरत न समझते हों और "'व्हीलर-स्टॉल' से लगाकर शहर की पब्लिक लाइब्रेरी तक में जितना कुछ छापे की स्याही से रँगा हुआ" काग़ज़ मिले उसे ही पढ़ने लगे, उनके लिए समस्या शायद इतनी मुश्किल नहीं है!

छपाई के आविष्कार से संसार का बहुत बड़ा उपकार हुआ है इसमें सन्देह नहीं, पर जब मैं ऊपर लिखी बातों पर सोचता हूँ तो कभी-कभी मुझे यह भी ख़याल आता है कि अगर छापेखाने की ईजाद न हुई होती, तो ही क्या बुरा था? सितम्बर के 'जीवन-साहित्य' में श्री हरि रामचन्द्र दिवेकर ने अपने लेख में प्राचीन काल के वैदिक आर्यों के एक सूक्त का उल्लेख किया है। श्रावणी पूर्णिमा को इस सत्र का उपाकर्म, आरम्भ होता था और पौषी पूर्णिमा के लगभग उत्सर्जन! **"सालभर में जो नया साहित्य निर्मित होता था उसकी छानबीन इस पंचमासिक सत्र में बड़े-बड़े आचार्यों द्वारा होती थी...ग्राह्य का स्वीकार करके त्याज्य का उत्सर्ग किया जाता था।"** आज तो ऐसे सत्रों की अत्यधिक आवश्यकता है—पर छापेखाने के युग में यह बात लगभग असम्भव-सी लगती है। और किसी रूप में इस तरह का उपाकर्म और उत्सर्ग करने के बाद भी आज इतनी विपुल मात्रा में हमारे पढ़ने की सामग्री बच जाती है कि उससे किस तरह पेश आवें, यह एक बड़ी समस्या है। "जीवन-साहित्य" में प्रकाशित आचार्य विनोबा का 'सिर्फ़-शिक्षण', श्री माचवे का 'श्रम-पूजा', श्री वियोगी हरि का 'लेखक से—' श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का 'पृथिवी-पुत्र' आदि सभी लेख इसी विचारधारा की पुष्टि करते हैं कि कोरे पढ़ने-लिखने से हम हमारा या दूसरों का कोई उपकार नहीं कर सकते। हमें कुछ करना चाहिए। और कौन विचारशील व्यक्ति इससे इनकार करेगा? पर जैसा मैंने शुरू में कहा था, मेरे जैसों की उलझन कैसे दूर हो? थोड़ा बहुत चुना हुआ साहित्य पढ़ना भी चरित्र-गठन और

को बल देने को जरूरी है—पर यह 'थोड़ा-पढ़ने की लालच में ही जागने के सारे क्षण जाते हैं !

आपने भी तो ऐसी उलझन का सामना ना ही होगा ! क्या कोई उपाय बतायेंगे ?

सिद्धराज ढड्ढा

नामोपार्जन की लालसा

नामोपार्जन की लालसा कितनी प्रबल है, यह ही बतला रहा है तथा इसका किंचित आभास 'साहित्य' के गत अक्टूबर के "**क्या और**?" स्तम्भ के '**सस्ती ख्याति**' से मिलता है।

नामोपार्जन की इच्छा को हम बुरा नहीं झते और कार्यकर्त्ता या सच्चे कर्मवीर के नाम तो स्वतः ही परछांई की नांई दौड़ता जाता है, परन्तु व्यर्थ की यथोलिप्सा से नाम झंडा फहराने की कोशिश करना अपनी के मार्ग में कांटों का जाल बिछाना है।

नामोपार्जन में भी एक रहस्य भरा पड़ा है से नामेच्छुक ही जानते हैं। यह नामो-न की सनक जहाँ बुद्धिमता दर्शाने का जरिया हाँ नासमझी का द्योतक भी। जो विद्वान ने नाम के आगे उपाधियाँ लगाना तो हैं, परन्तु जो लोग नाम को ही अलंकृत ने मात्र की गर्ज से खरीदी हुई उपाधियों को पर बैठाये रहते हैं, उनकी मौके पर बड़ी छेदर होती है। साहित्य-क्षेत्र में ऐसे लोगों कमी नहीं है जो केवल नामोपार्जन की गर्ज ही बनने आपको उपाधियों से जबरन् विभूषित ना चाहते हैं।

आप यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि परीक्षा-केन्द्र के व्यवस्थापकों और परीक्षकों तक को इन नामोपार्जन के इच्छुकों ने अपने पाश में बाँध लिया है। मेरे कुछ मित्रों से पता चला कि उन्होंने किस तरह से परीक्षा पास की। केन्द्र-व्यवस्थापक के दबाव से परीक्षा में बैठ गये और उनकी सहायता से प्रश्नों को हल करके अच्छे नम्बरों में पास हो गये !

इस काम में पत्रकारों का भी कम हाथ नहीं है ! इस रोग के कीटाणु कई सम्पादकों के भी रोम-रोम में घर कर गये हैं। कई पत्र तो ऐसे हैं जिनका उद्देश्य ही सिर्फ नामोपार्जन की पिपासा शान्त करनेवालों से रुपया ऐंठना उनके चित्र-सहित उनके नाम से कविता और लेखादि छापना है—क्या ऐसे लोगों से भी पत्रकार-कला की प्रगति की आशा की जा सकती है ?

स्वयं निरक्षर-भट्टाचार्य रहते हुए बड़े-बड़े अक्षरों में अपने नाम से प्रकाशनार्थ निबन्ध भेजना, कवि-सम्मेलनों में लम्बी-लम्बी कवितायें पेश करना, खिताब के लिए न जाने कितना पैसा बहाना ये तो मामूली बातें हैं। हम सच्चे साहित्यक बनने की इच्छा रखें, साहित्य हमारा स्वागत करेगा; परन्तु हम नामोपार्जन की कुत्सित भावना को त्यागकर साहित्योन्नति की सद्भावना से काम करें। हमारा नाम अवश्य होगा। परिश्रम का फल अवश्यम्भावी है। काम करनेवालों को इश्तिहारबाजी की आवश्यकता नहीं, परिश्रमी का प्रकाश तो सूर्य-रश्मियों की भाँति स्वतः ही घर-घर फैल जायगा। फल तो ईश्वराधीन है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन"

कन्हैयालाल भिण्डा, 'शान्तेश'

समालोचनार्थ प्राप्त

गान (कविता-संग्रह): लेखक—हरिकृष्ण ; प्रकाशक—वाणी-मन्दिर, अस्पताल रोड, ; पृ० सं० ९६+११; मूल्य १)

निर्झर (कविता-संग्रह): लेखक—श्री भारती; मूल्य ॥) प्रकाशक—हिन्दी-न, लाहौर पृ० सं०, ७५

मुगल बादशाहों की हिन्दी : लेखक—चन्द्रबली पाण्डे; एम० ए०; प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृ० सं० १०४; मूल्य ॥)

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का २८वाँ वार्षिक विवरण (संवत् १९९६-९७)

प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग

(शेष पृष्ठ ३५३ पर)

कसौटी पर

लड़खड़ाती दुनिया : ले०–पं० जवाहरलाल नेहरू : प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल; नयी दिल्ली; पृ० सं० १७१; मूल्य ।।)

इसमें सन्देह नहीं कि अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में साधारण भारतीय जनता की रुचि पैदा करने में पं० जवाहरलाल अग्रणी हैं। उन्होंने सबसे ज्यादा यह आवाज़ उठायी थी कि भारतीय समस्या अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का ही एक अंग है। वह भारत के सम्बन्ध में जो कुछ सोचते हैं, दुनिया की परिस्थिति को सामने रखकर सोचते हैं। उनके इस व्यापक राजनीतिक दृष्टिकोण से भले ही किसी को मतभेद हो, लेकिन उनका अगाध अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन, संसार के विविध देशों में उनका अनेक बार भ्रमण और महान् राजनीतिज्ञों से वार्तालाप व परिचय और सबसे अधिक भारतीय राजनीति में उनका प्रभुत्व—ये सब बातें शायद ही किसी दूसरे भारतीय नेता में एक साथ मिलेंगी।

प्रस्तुत पुस्तक पं० जवाहरलाल के पिछले दो-तीन सालों में लिखे गये महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक लेखों का संग्रह है। किस तरह आज की दुनिया तेज़ी के साथ महाविनाश की ओर बढ़ती गयी, और लड़खड़ाती हुई नष्ट होने जा रही है, यह विभिन्न घटनाओं के विषय में लिखे इन लेखों से बहुत स्पष्ट हो जाता है।

लेखक का विश्वास है और उन्होंने विस्तार से इसे प्रतिपादित किया है कि वर्तमान महायुद्ध का मुख्य कारण ब्रिटेन की अदूरदर्शितापूर्ण विदेशी राजनीति रही है। बहुत समय तक लन्दन के राजनीतिज्ञ इस पसोपेश में पड़े रहे कि वे "तानाशाहियों को रोककर बर्बाद करके अपने साम्राज्य की रक्षा करें या थोड़ी और रियायतें देकर थोड़े और नरम होकर लड़ाई को हर हालत में टालने और मनाने की नीति अख्त्यार करके अपनी समाज-व्यवस्था की हिफ़ाजत करते रहें।" किस तरह ब्रिटिश राजनीतिज्ञ तानाशाहों के आगे झुककर इन्हें प्रबल बनाते रहे, किस तरह फ्रांस व ब्रिटेन में परस्पर अन्दर-ही-अन्दर इस नीति के परिणाम-स्वरूप कुछ मनोमालिन्य हुआ और किस तरह स्पेन, अबीसीनिया, आस्ट्रिया, अलबानिया और ज़ैकोस्लावेकिया खतम होने दिये गये, स्पेन में प्रजातंत्रवाद का जनाज़ा निकल जाने दिया गया, इसका सजीव वर्णन करते हुए लेखक ने बताया है कि इनकी वजह से युद्ध टला तो जरूर "लेकिन अब ऐसा वक्त आ गया था कि अपने जिस्म में से गोश्त-काट-काट कर देना पड़े।" यह खतरा भी टल सकता था, यदि ब्रिटेन व फ्रांस के राजनीतिज्ञ रूस के साथ हार्दिक संधि करके जर्मनी की प्रगति को रोकने की चेष्टा करते, परन्तु लेखक की सम्मति में मि० चैम्बरलेन आदि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ पूंजीवादी समाज-व्यवस्था को बचाने की खातिर ही सब खतरे उठाने के लिए तैयार हो गये, साम्यवादी रूस से संधि करने के लिए नहीं। सचमुच यह आश्चर्यजनक पहेली है कि ऐसे आड़े समय में भी रूस और मित्रराष्ट्र क्यों नहीं मिल पाये? पं० जवाहरलाल के उत्तर के सिवा कोई दूसरा कारण यद्यपि इसे भी पुष्ट करने के लिए हमारी नम्र सम्मति में कुछ और प्रबल कारणों की अपेक्षा है। शायद मित्रराष्ट्रों को विश्वास था कि रूस और जर्मनी तो कभी मिल ही नहीं सकते, रूस झख मारकर हमारे साथ मिलेगा, हम उससे क्यों मिलने जावें? फलतः दिल खोलकर प्रस्ताव रखे नहीं गये। रूस ने भी अपना भौतिक स्वार्थ जर्मनी के साथ मिलने में देखा। ब्रिटेन भी सिर्फ वहीं तक बढ़ने को तैयार हुआ, जहाँ तक वह रूस से दूर-दूर रहे जा सकता था। फलतः जर्मनी और रूस, जिन्हें परस्पर लड़ाने के ब्रिटिश राजनीतिज्ञ बरसों से कोशिश कर रहे थे, मिल गये और ब्रिटेन की राजनीतिज्ञता का दिवाला संसार के सामने स्पष्ट रूप से आ गया। पोलैण्ड, रूस व जर्मनी की संधि और पोलैण्ड के बटवारे पर

ती लेख का न होना पुस्तक में काफ़ी खटकता है।

पं० जवाहरलाल साम्यवादी हैं, रूस के भक्त थे, लेकिन वे भारत के हजारों साम्यवादियों की तरह आज रूस की प्रत्येक उसकी बुरी कार्रवाई के समर्थक नहीं रहे। उन्होंने खुले शब्दों में रूस की अवसरवादी नीति का विरोध किया है। वे कहते हैं कि अवसरवादी नीति से रूस की राजनैतिक सत्ता बढ गयी, लेकिन "उसके [illegible] को नुकसान ही हुआ। रूस की शक्ति उन सिद्धान्तों और आदर्शवादों में थी, जिनका वह समर्थन करता था।" रूस के पतन से पण्डित-जी को जो हार्दिक वेदना हुई है, वह उनके लेखों में स्पष्ट झलकती है। वे लिखते हैं :—अपनी मान्यताओं का उल्लंघन करने की भारी गलती के लिए उसे बड़ी भारी कीमत ऐसे सिक्के में चुकानी पड़ी कि जिसका अन्दाज नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह सिक्का है असंख्य मानव प्राणियों की इच्छाओं और आदर्शों का।" दूसरी जगह वे लिखते हैं—रूस के शासकों ने "अपने सिद्धान्तों पर इतनी गहरी चोट की है जितनी शायद बहुत से दुश्मन मिलकर भी नहीं कर सकते थे।"

लोग पं० जवाहरलाल के आदर्शवाद का मज़ाक उड़ाते हैं और कहते हैं कि वे यथार्थवादी नहीं हैं। जिससे वे सहानुभूति दिखाते हैं, वही [illegible]ता है। भारत की राजनीति तो स्वार्थ [illegible] को बलवान के साथ मेल करने की होनी चाहिए। रूस ने ठीक किया। पण्डित जी अपने ऊपर की गयी इन आलोचनाओं से नावाकिफ़ नहीं हैं, परन्तु वे बहुत ऊँचे उठ जाते हैं, जब वे सिद्धान्तों की दृढ़ चट्टान पर बैठे हुए इन आलोचनाओं का जवाब देते हुए कहते हैं—"यथार्थवाद या वास्तविकता है क्या? क्या उसके मानी [illegible] थोड़ी देर का फ़ायदा उठा लेना है या दूरदेशी का दृष्टिकोण हमें सामने रखना चाहिए? क्या सिद्धान्तों और आदर्शों की ओर [illegible] है या हम सिर्फ़ बाजारू परिभाषा में ही उनकी बात सोचें?"

पं० जवाहरलाल नेहरू फासिज्म या नाजीवाद के भी उतने ही कट्टर दुश्मन हैं, जितने साम्राज्यवाद के, फिर रूस के ऊँचे भक्त भी नहीं रहे, इसलिए उनका निरीक्षण मानवता की वेदना से विकल एक तटस्थ का निरीक्षण है। उनकी लेखनशैली प्रभावोत्पादक है, भाषा सजीव है, यद्यपि कहीं-कहीं अनुवादक के दोष से अनुपयुक्त उर्दू शब्द आ गये हैं। पण्डितजी अपने विचारों और भावों को दृढ़ता से प्रकाशित करते हैं, इसलिए भाषा में उक्त न्यूनता होते हुए भी प्रवाह की कमी नहीं आयी।

पुस्तक के उत्तरार्द्ध में चीन और स्पेन की दुःसाहसपूर्ण यात्राओं का सरस सजीव वर्णन राजनीति में रुचि न रखनेवाले साधारण पाठकों के लिए भी मनोरञ्जक व उपयोगी भी रहेगा।

कृष्णचन्द्र

बुलबुल : लेखक — श्री जोतिनप्रसाद; प्रकाशक — ग्रंथमाला-कार्य्यालय, बाँकीपुर; मूल्य ।।=)

पुस्तक के आरम्भ में श्री हंसकुमार तिवारी की लिखी एक प्रस्तावना है जिससे जान पड़ता है कि यह सोलह कहानियोंवाली पुस्तक किशोरों या बालकों के हाथ में देने के लिए लिखी गयी है। "प्रकृति की विभिन्न शोभाओं, पशु-पक्षी और दृश्य—प्रयोग, जीवन और जीवन की भिन्न भिन्न समस्यायें भी उनके (बालकों के) सामने रखनी हैं। साथ ही धीरे-धीरे उन विषयों को प्रकाशित करनेवाले शब्दों के प्रयोग में भी संयम से काम लेना है, उन्हें कुछ-कुछ नये शब्दों का भी परिचय देना है।……प्रस्तुत कहानियाँ इस दृष्टि से मनोरंजक और उपयोगी हैं।"—यह प्रस्तावना के लेखक का दावा है। परन्तु यह दावा आंशिक रूप में ही सत्य कहा जा सकता है। कहानियों में दो बातों की कमी है, एक तो उद्देश्य का केन्द्रीकरण नहीं है और दूसरे, अनावश्यक विस्तार है। पहली कमी बुरी तरह से खटकती है। कहानी पढ़ते-पढ़ते जबतक अन्त में न पहुँचा जाय

तबतक समझ में नहीं आता कि इसका उद्देश्य क्या है; अन्त में आकर ज़रूर जीवन और उसकी किसी-किसी समस्या की ओर लेखक अंगुलि-निर्देश करता है, परन्तु इस समस्या के प्रति शुरू से ही उत्सुकता बढ़ी हुई नहीं होती, इसलिए कहानी की सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु प्रभाव या effect की एकता तीव्रता के साथ अनुभूत नहीं होती। अधिक विस्तार से शायद बालक को फुसलाने का काम लिया गया है जो निश्चित रूप से ग़लत तरीक़ा है। परन्तु प्रस्तावना-लेखक का दूसरा दावा बिल्कुल ठीक है। जीवन की समस्याओं के सम्मुखी न होने के लिए जिन सुकुमार भावों की जानकारी बालक के लिए आवश्यक है उनका परिचय संयम के साथ कराया गया है और नये-नये शब्दों को भी परिचित कराने में कौशल से काम लिया गया है। भाषा में भी एक मिठास और प्रवाह है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

सेवापथ — लेखक — सेठ गोविंददास; प्रकाशक — हिन्दी भवन, लाहौर; मूल्य ।।।)

गोविन्ददासजी ने कई अनेकांकी और एकांकी नाटक लिखे हैं। वास्तव में उन्होंने वर्त्तमान नाटककारों में एक ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। नाट्यशास्त्र पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं। नाट्य-कला की उनकी अच्छी जानकारी है।

'सेठजी' की सबसे बड़ी विशेषता भाषा की सरलता और विचार-मौलिकता है। उलझी विचारधारा, दुरूह कल्पना और लाक्षणिक भाषा उनमें न मिलेगी। वे अग्राह्यता के स्थान पर स्पष्टता पर विश्वास करते हैं। उन्होंने कुछ पौराणिक कथाओं पर भी नाटक लिखे हैं जो अच्छे बन पड़े हैं। समय की साहित्यिक रुचि ने उनका स्वरूप-निरूपण किया है। समाज की रुचि-समीचीनता ने उनको निखार दिया है।

परन्तु उनके अधिकांश नाटक समसामयिक परिस्थितियों के दर्पण हैं। अधिकांश नाटकों का विषय राजनैतिक है। 'सेवापथ' का भी विषय राजनैतिक है। यह न भूलना चाहिए कि जहाँ वस्तुओं में सेठजी यथार्थवादी हैं, वहाँ प्रेरणा में वे आदर्शवादी ही कहे जायँगे। नाटकों का अंत इस धारणा को पुष्ट करता है।

'सेवापथ' में रईसों का वातावरण-निर्माण बहुत अच्छा बन पड़ा है। इतने शीघ्र लिखे जाने पर भी भाषा स्पष्ट है। उसमें उक्ति-वैचित्र्य अथवा ध्वन्यात्मकता का अभाव भले ही हो, परन्तु यथार्थता और वैयक्तिकता पर्याप्त है। अंग्रेज़ी, उर्दू, हिंदुस्तानी शुद्ध हिन्दी, बंगाली, मारवाड़ी अनेक भाषाओं की खिचड़ी सभी देखने में आती है। जैसा पात्र है वैसी ही बोली है। पात्रों के अनुकूल भाषा होने से अभिनय-सौन्दर्य अवश्य होता है, परन्तु अभिव्यञ्जना की चातुरी, सूक्तियों का विस्तार, रसात्मक सकेत, संवादों का फुर्तीलापन अनेक भाषाओं के सहारे एक ही लेखक के लिए सम्भव नहीं। और फिर अनेक भाषाओं का ज्ञाता होकर भी कोई लेखक एक नाटक में सब भाषाओं को प्रश्रय देकर उसे अजायबघर ही बना देगा। सेठजी का ध्यान इसी लिए केवल कथोपकथन की यथार्थता की ही ओर रह सका, उक्ति-चमत्कार की ओर नहीं। यह अच्छा ही हुआ।

इस नाटक में वर्तमान युग के राजनैतिक वादों का संघर्ष कराया गया है; विशेषकर समाजवाद का उभयपक्षीय चित्रण किया गया है। पात्रों में यथार्थता और सजीवता है। कथानक में सादगी और आकर्षण है। हास्यरस का आलम्बन एक मारवाड़ी सेठ को बनाया गया है। परन्तु ऐसा कौन सेठ होगा, जो 'नियाज' को 'पियाज' समझे व चुनाव में खड़े होने की प्रार्थना पर यह कहे—'कुर्सी पर जिनावर-इनावर तो कोनी है कि ?' 'शुक्रगुज़ार' को 'गँवार' समझे। इस दिशा में कुछ अतिरञ्जना से काम लिया गया है।

सद्गुरुशरण अवस्थी

प्राणदान—लेखक श्री 'व्यथितहृदय'; प्रकाशक-बाल-शिक्षा समिति बाँकीपुर, मूल्य ।।)

प्रस्तुत पुस्तक 'व्यथितहृदय'जी के १ एकांकी नाटकों का संग्रह है। इस समय एकांकी

क लिखने का एक फैशन चल गया है और अच्छे साहित्यिक अब इधर अग्रसर हुए हैं। 'प्राणदान' के सभी एकांकी नाटक करीब-करीब एक ही प्रकार के हैं। सबमें लगभग चार या पांच दृश्य हैं। वीर रस और मेवाड़ के वीरों का गुणगान उनकी विशेषता है। कुछ पौराणिक और अर्ध-ऐतिहासिक हैं। अन्तिम वाली नाटक में करुणा की विजय है और इसके दृश्यवाले में गौतम बुद्ध के अलौकिक प्रभाव का अंकन है। नाटक बच्चों के लिए कदाचित् लिखे गये हैं। सातवीं और आठवीं कक्षा के विद्यार्थी को वे अच्छे भी लगेंगे और इनका अभिनय भी वह पसन्द करेगा और स्वयं भी कर सकेगा। भाषा भी सरल है। कथोपकथन सादे हैं। अलौकिक घटनाओं को भी बच्चों की सरलता के साथ बनाया गया है। यह निश्चय है कि इसके पढ़ने से बच्चों में वीर रस का संचार होगा। इससे अधिक का ऊँचा रूप अभिव्यञ्जना की मौलिकता भावनाओं की ऊँची निबंधना, वाह्य स्थिति के यथार्थता की सार्वभौमिकता, गहरी भावनाओं और सहगामिनी और विरोधगामिनी वृत्तियों का घात-प्रतिघात, जिसका हल मानवता की बुद्धि को परास्त करनेवाला है—न मिलेगा। में यह पुस्तक पाठ्यक्रम में त्वरा-पाठन पुस्तकों की सूची में स्कूल की छोटी कक्षाओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

सद्गुरुशरण अवस्थी

मानव : लेखक श्री श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'; प्रकाशक-साहित्य निकेतन कानपुर; पृ० सं० ८०; मूल्य ।)

एक व्यथित हृदय का चित्र 'मानव' में है। गिने हुए ६६ सवैया छन्दों का यह संकलन मानव की निराशा और दीनता को एक हद तक व्यक्त करने में समर्थ हुआ है। इसमें कहीं कहीं अत्यधिक निराशा भी मिलेगी।

> "जायगा जीवन बीत ये शान्ति की
> कामना ही करता रह जायगा।"

कुछ ऐसा ही है। नवयुग को कर्मण्यता विशेष अपेक्षित है। 'ज्वाल', 'आश' 'वो' प्रभृति कुछ प्रयोग चिन्त्य हैं। फिर भी निःसन्देह 'मानव', कवि के भविष्य की ओर एक शुभ संकेत है।

साहित्य-सदन अबोहर (पंजाब) के बालोपयोगी प्रकाशन

१. **ईसपनीति निकुंज**–(प्रथम भाग) लेखक-अध्यापक रामेश्वर "करुण"; पृ० सं० ९६; मूल्य ॥)

२. **बालगीत**—लेखक रामावतार विद्याभास्कर पृ० सं० १०४ मूल्य ॥)

३. **बालगोपाल**—लेखक अध्यापक रामेश्वर "करुण" पृ० सं० ४० मूल्य =)॥

उपर्युक्त तीनों पुस्तकें जिनके लिए लिखी गयी हैं उनको लाभकारी ही सिद्ध होंगी क्योंकि इनकी भाषा सीधी और सरल है—यद्यपि सर्वत्र विशुद्ध नहीं। इसकी ओर लेखकों को ध्यान देना चाहिए। पुस्तकें मनोरंजक होने के साथ ही साथ शिक्षाप्रद भी हैं।

'अनिरुद्ध'

(पृष्ठ ३४९ का शेष)

शा ब्रदर्स, मंडी धनौरा (मुरादाबाद) के प्रकाशन

ताई-बुनाई : चंद्रसिंह पुंडीर, पृ० सं० ; मूल्य ।।।)

शिक्षक गीत-संग्रह : पृ० सं० ३२; मूल्य =)

शिक्षक तारीखी कहानियाँ (१) : लेखक—गोविन्ददास विनीत; पृ० सं० ९६; मूल्य ।=)

सैर-सपाटे की कहानियाँ (१) : गोविन्ददास 'विनीत' और रामकुमार अग्रवाल; पृ० सं० ६३; मूल्य ।)

हिन्दुस्तानी बातचीत (१) : रामकुमार अग्रवाल; पृ० सं० ३२; मूल्य =)

जीवन-समस्याएँ

[कुछ मित्रों ने ऐसे प्रश्न पूछे हैं जो दीखने में व्यक्तिगत हैं, मगर वास्तव में सार्वजनिक महत्त्व रखते हैं, इसलिए उनका उत्तर यहाँ दे रहा हूँ। ह० उ०]

प्रश्न—आपने कई लोगों की तरह-तरह से सहायता की, कई साथियों व मित्रों को आगे बढ़ाया, लेकिन जब आपकी सहायता व सहयोग का प्रश्न आता है तब वे क्यों किनारा कर जाते हैं ? मुझे उनके इस व्यवहार से बड़ा दुःख होता है। आप इसपर कुछ रोशनी डालेंगे ?

उत्तर—मुझमें ही कोई कमी होगी जिससे ऐसा होता है, हालाँकि मुझे उनसे इसकी कोई खास शिकायत नहीं होती है। जब कभी मेरी बुद्धि ऐसा हिसाब लगाने लग जाती है तब मेरे मन में भी अनुदार विचार आने लगते हैं, किन्तु मुझे अपने लिए वे अस्वाभाविक मालूम होते हैं और मैं जल्दी ही उनसे पिण्ड छुड़ा लेने का प्रयत्न करता हूँ। फिर मैं जब किसी के लिए कुछ करता हूँ तो इस खयाल से नहीं कि इसका कोई मावजा मुझे मिले। इसलिए उस बदले का ध्यान भी मुझे प्रायः नहीं रहता। तुम्हें या तुम जैसे मित्रों को दुःख शायद इसलिए होता है कि तुम सहायतादि के लिए आदान-प्रदान के भावों से प्रभावित होते रहते होगे और इसी दृष्टि से देखते रहते होगे।

मुझे यह अनुभव तो अवश्य हो रहा है कि हमारे सेवा-क्षेत्रों में भी निरपेक्षता की नहीं, आदान-प्रदान व हिसाब-किताब के भावों की प्रबलता है। मित्रता या स्नेह या साथीपन में यह हिसाब लगाया जाता है कि आखिर मुझे इससे लाभ क्या हुआ ? लाभ का अर्थ होता है, धन, पद, मान, कीर्ति, शुद्ध व स्वच्छ प्रेरणायें; सद्भावनायें, सत्परामर्श कितना मिलता है, सत्पथ-दर्शन कितना होता है, इसकी ओर कम ध्यान रहता है, इसकी कीमत जीवन में व व्यवहार में कम आँकी जाती है। इसीसे हमारा मापदण्ड भी छोटा या साधारण ही रहता है। लेकिन साथ ही मेरा यह विश्वास है कि हमारा समाज क्षुद्रता से उच्चता की ओर अग्रसर हो रहा है, लेन-देन की अपेक्षा नैतिक भावों, बलों व लाभों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है और ऐसा समय आ जायगा कि जब तुम या तुम जैसे मित्रों की मेरे प्रति इस दया के लिए स्थान न रह जायगा।

प्रश्न—तुम्हारी मधुरता में कई मित्र बनावट की व तुम्हारी सहानुभूति में खोखलेपन की शंका करते देखते जाते हैं। बाज-बाज लोग यह भी कहते हैं कि तुम एक क़िस्म के अवसरवादी हो। तुम्हारे प्रति आदर में उनकी हार्दिकता की अपेक्षा सौजन्य ही अधिक दीखता है। ऐसा क्यों होता है ?

उत्तर—मेरा यह मत है कि मनुष्य की अपनी ही त्रुटियाँ व कमजोरियाँ उसके आसपास के वातावरण में प्रतिबिम्बित होती रहती हैं। इसलिए यदि अधिकांश मित्रों का ऐसा ही अनुभव होता है, यदि मेरे घनिष्ठ व निकटवर्ती मित्रों का भी ऐसा ही अनुभव है तो अवश्य मुझमें कोई बड़ी खोट होनी चाहिए, जो अबतक मेरी दृष्टि में नहीं आयी है। सौजन्य छोड़कर यदि मित्र लोग वह मेरी निगाह में लावेंगे, तो मेरे प्रति अपने मित्र-धर्म का पालन करेंगे।

मेरी मधुरता, मेरे अपने अवलोकन में तो मुझे मेरे हृदय की कोमलता व मधुरता का ही अंग प्रतीत हुई है। मेरी सहानुभूति की मर्यादायें हो सकती हैं, मगर खोखलेपन का अनुभव मुझे नहीं हुआ। मर्यादायें मेरी अशक्ति, अविकास की सूचक हैं, कृत्रिमता या निःसारता की नहीं। फिर देखनेवाले की दृष्टि का भी हिसाब लगाने की जरूरत होती है। हमारी वृत्ति या दृष्टि में यदि सापेक्षता है, तो अपनी आशा-निराशाओं, लाभ-हानियों के हिसाब से हम उस सहानुभूति का मूल्य देखेंगे व जाँचेंगे। जब मैं यह देखता हूँ कि मैं किसी मित्र या साथी के लिए उनकी

ंशा के अनुसार उपयोगी नहीं साबित हो रहा है जो कई बार खुद मुझे अपनी बेबसी पर बड़ी ...होती है। एक बार तो मेरे मन पर अपनी इस असहाय अवस्था की बहुत ही बुरी प्रतिक्रिया हुई थी। लेकिन इसमें मुझे हेतु या भावना का दोष नहीं दिखायी देता, मित्रों की अपेक्षा की तुलना में साधन-सम्पन्नता की कमी ही इसका व असली कारण दिखायी देता है। जो हो; ...लोग मुझे अधिक आत्मनिरीक्षण की सामग्री देंगे तो मैं उनका कृतज्ञ हूँगा।

अवसरवादी के पास कोई निश्चित सिद्धान्त या मार्ग नहीं होता। निश्चित मार्ग पर चलते हुए भी मनुष्य को दूसरों के साथ अपना व्यवहार ...बनाने के लिए, दायें-बायें होना पड़ता है, ...अवसरवाद नहीं कह सकते। व्यक्ति अपने ...में बहुत ऊँचा उठा हुआ, आगे बढ़ा हुआ हो सकता है, लेकिन सामाजिक जीवन में उसे ...की वृत्ति से काम लेना पड़ता है। इसमें ...की ओर खींचती हुई उसकी व्यवहार-...को निर्णय करना पड़ता है। ऐसे निर्णयों में ...की व ग़लतियों की भी काफी गुंजाइश ...है। समाज की स्थिति व गति-विधि का तथा अपनी शक्ति-अशक्तियों का जितना यथार्थ ज्ञान व्यक्ति को होगा, आदर्श की ओर लेजाने वाली प्रेरणा जितनी प्रबल या निर्बल होगी, उसीके अनुसार उसका निर्णय व उस निर्णय का फल निकलेगा और उसीकी जाँच-पड़ताल पर उस व्यक्ति की सफलता-असफलता आँकी जायगी। यदि निर्णय या समझौता आदर्श की ओर झुकता हुआ अधिक है, तो तात्कालिक फल से उसके सही या ग़लत होने का फतवा नहीं दिया जा सकता। जब निर्णय लोक-स्थिति व लोक-व्यवहार को स्वीकार करता हुआ अधिक होगा, तो उसकी परीक्षा तात्कालिक फल से ही की जा सकती है। जहाँ तक मुझसे संबंध है, मेरे आदर्श की ओर झुकते हुए निर्णय करना अच्छा लगता है। लोक-स्थिति व लोक-व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करते हुए भी मुझे उसे अधिक महत्त्व देने की प्रवृत्ति स्वभावतः व संस्कारतः नहीं होती। अतएव 'अवसरवादी' होने की अपेक्षा तो 'व्यावहारिक' होने का आक्षेप मुझपर अधिक किया जाता है। लेकिन इस आक्षेप ने अबतक मेरे मन में कोई गहरी उथल-पुथल नहीं मचायी है।

ह० उ०

सहयोगियों में से

लालित्य का स्वामी—कालिदास

[मुंबई में कविकुल-कमल-दिवाकर कालिदास की जयन्ती के अवसर पर गुर्जर कवि-वरेण्य न्हानालाल दलपतराम द्वारा दिये गये भाषण से]

मधुर निर्झरों की सौन्दर्य भूमि काश्मीर देश से, आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण भारत ...के लिए निकला। "ललाटे काश्मीरम्"—...के भाल-देश पर, रविकिरणों से निर्मित ...आभा, केसर तिलक विराजमान था। इसके उत्तरीय (दुपट्टा) के नीचे भाग्य की पोथी थी। इसके लोचनों में जगद्विजय का तेज था। यह था सौन्दर्य देश का सौन्दर्यकुमार। यह सौन्दर्य जगत् को जीतने जा रहा था। यह था तक्षशिला का उछलता-कूदता, स्फूर्तिमान्, वत्स! काम्बोज और गांधार इसने देखे थे। कुरुक्षेत्र और हरिद्वार का भ्रमण कर, पूर्व सागर के तीर पर मोती चुनता हुआ, रामसेतु पर राम की वंदना कर, मलयानिल की लहरियों का आनन्द लेता हुआ, पम्पा-सरोवर में स्नान करके, सह्याद्रि की बन-छाया को पार करता हुआ यह नर्मदा के तीर पर आया। वहाँ उसने अवन्तीनाथ की कीर्तिगाथा सुनी!!

सम्राट् विक्रमादित्य की अवन्तिका उसने निहारी! सौन्दर्य देश का यह सुन्दर कुमार

पुरसुंदरियों के नयनों के साथ क्रीड़ा करता हुआ, उज्जयिनी नगरी में प्रविष्ट हुआ ! यह नगर-प्रवेश वापिस लौटने के लिए नहीं था। यह प्रवेश तो अपने को तथा नगरी को अमरत्व के शिखर पर स्थापित करने के लिए किया गया था। विश्व समस्त के कविता प्रदेश में दिग्विजय की दुन्दुभि बजाने के लिए था यह प्रवेश !!

इसने महाकालेश्वर की अर्चना की ! क्षिप्रानदी का घाट जीत लिया ! अट्टालिकाओं पर झूलती हुई पुरसुंदियों को इसने जीत लिया। राजमार्ग पर चमचमाती हुई दूकानों के रत्न-स्वामियों को इसने जीता। परदुःखभंजक शक-प्रवर्तक विक्रम महाराज की विद्वत् सभा में यह प्रविष्ट हुआ। वहाँ नवरत्नों को जीत लिया। "सहोदराः कुंकुम केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः"—इस प्रकार के सौन्दर्य-देश का यह सौन्दर्यकुमार था—कविकुल–कुमुद–कलानिधि कालिदास !!

शकुन्तला अर्थात् जगत के नाटकों की महारानी ! मेघदूत अर्थात् जगत् के गीतिकाव्यों (लिरिक) का महाराजा ! इस महारानी और महाराजा को बनानेवाला कौन ? वह था सौन्दर्य-देश का सौन्दर्यकुमार ! विद्‌जनों में यह बात तो अब लगभग सर्वमान्य-सी हो चुकी है कि कल्हण और बिल्हण, केसर और कुंकुम, निर्झर और सरोवर, पर्वत और हिमराजि की लीला-स्थली काश्मीर भूमि ही कालिदास की जन्मभूमि है तथा सांदीपनि, श्रीकृष्ण, सुदामा, भर्तृहरि, विक्रम, भोज की मालवभूमि ही कालिदास की कर्मभूमि है। इसका रघुदिग्विजय और मेघमार्ग कहता है कि इसने भारत-यात्रा की थी। इसका इन्दुमति-स्वयंवर बताता है कि यह महावैभव-शाली राज-दरबारों से परिचित था। कुमार-संभव में, शाकुन्तल में, मेघदूत में बारम्बार आनेवाले, हिमाचल के अद्‌भुत और चमत्कारी वर्णन हमें सूचित करते हैं यह हिमाद्रि का सौभाग्य-शाली संतान था। इसके अजविलाप और रति-विलाप बताते हैं कि वह शृंगार जितना ही करुण रस का स्वामी था। विक्रमोर्वशी नाटक बताता है कि यह विक्रम की राजसभा के नवरत्नों का कोहनूर था। इसे ग्राम्यरमणी और पुरसुंदरी दोनों का सन्मान प्राप्त था। "कालिदास" इस नाम के चारों ओर उगी हुई दन्तकथाओं की हरियाली कहती है यह गिरिराज सदृश मानवराज था। महाकालेश्वर का यह भक्त था। दो सहस्र वर्षों के विश्व-परिवर्तन को लाँघकर आयी हुई और आज बहुत प्रशंसित बनी हुई, विनाश के पथ पर अग्रसर होती हुई बीसवीं शताब्दी में यह हमारी पूजा का चाहनेवाला काव्यर्षि था। इसकी आँखों में विलास था। इसके भाग्य में उल्लास था। इसके हृदय में ऋषिभाव था। गिरिराज ऐसे होते हैं। काल को पी जानेवाला, उस महाकालेश्वर का यह कुमार था !!!

दो महाकाव्य—रघुवंश और कुमारसंभव, तीन नाटक—शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र, दो लघुकाव्य मेघदूत और ऋतुसंहार—ये सात ग्रन्थ कालिदास के नाम से प्रख्यात हुए हैं। मल्लीनाथ ने कालिदास पर संजीवनी छिड़की है या कालिदास ने मल्लीनाथ पर संजीवनी छिड़की है ? यह तो भगवान् जाने !!

भिन्न-भिन्न भावनाओं की परिवर्तित होती हुई ऋतुएँ, काव्य-रसिकों की काव्य रुचि के चित्र-विचित्र विप्लव, इतिहास के अस्त और उदय, तत्त्वज्ञान का प्रभात और संध्या, कला तथा सौन्दर्यरस के उत्तरायन और दक्षिणायन, दो-दो हज़ार वर्षों के विविध प्रकाश और अन्धकार से पूर्ण रंगबिरंगे युगांतर, काल-समुद्र के ज्वार भाटे की तरह आये, गरजे और चले गये ! परन्तु अविरत दोलायमान सागर के मध्य में चट्टान की चोटी पर पुण्यमंदिर बनाकर विराजनेवाली महादेवी की तरह शकुन्तला का रसमंदिर, महाकाल के तूफानी झंझावात और उथलपुथल के अन्दर भी अक्षुण्ण रहा है—सदा अडोल और अखंड रहकर अपनी विजय-वैजयन्ती फहराता रहा है। रस-सागर के बीचों-बीच रस के दीप-स्तंभ की तरह शकुन्तला युग-युगान्तर से खड़ी

है। अनेक नौकाओं और यात्री जहाजों को यह र्व रसमार्ग दिखा रहा है !!!

माघ की उपमाएँ गगनविहारिणी हैं। बाण की उपमाएँ गरजते हुए मेघाडम्बर में चमकती हुई बिजलियों जैसी हैं। भवभूति की उपमाएँ के परिमल सी हैं। कालिदास की उपमाएँ पूर्णिमा की चाँदनी जैसी हैं। कालिदास अर्थात् कान्त कमनीयता ! कालिदास अर्थात् पृथिवी से गगन मंडल की ओर उड़ता हुआ इन्द्र धनुष का फव्वारा !!!

गुजराती से]

अनुवादक
शंकरदेव विद्यालंकार

हिन्दी की हलचलें

भारतीय राष्ट्र का इतिहास

भारतीय इतिहास परिषद् या अंजुमन तारीख ए हिन्द की ओर से प्रकाशित होनेवाले **भारतीय राष्ट्र के इतिहास की योजना** प्रकाशित हो गयी है। यह सर्वांगपूर्ण इतिहास २० जिल्दों मे समाप्त किया जायगा जिसकी आजमाइशी योजना दे दी गयी है। भारन-ओर सिहल के विभिन्न भागों के ग एक सौ हिन्दू मुस्लिम विद्वानों ने परिषद् को सहयोग देने का वचन दे दिया है। इनमें ८० से अधिक विद्वान् परिषद् के बाजाब्ता सहयोगी बन गये हैं। इतिहास के लिए सम्पादक-मण्डल का संगठन इस प्रकार हुआ है :

1. सर यदुनाथ सरकार, डी०लि० अध्यक्ष।
2. रावबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित डाइरेक्टर जनरल आफ आरक्योलॉजी।
3. प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री।
4. डा० रमेशचन्द्र मजूमदार।
5. प्रो० मुहम्मद हवीब।
6. डा० प्रवोधचन्द्र वाग्ची।
7. प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार, मन्त्री।

बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

पटना

५ फरवरी को पटना में बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का १७ वाँ अधिवेशन द्ध साहित्यसेवी प्रो० शिवपूजन सहाय के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। कवि-सम्मेलन के सभापति बिहार के प्रसिद्ध कवि श्री केसरी थे।

हिन्दी-परिषद्-मेरठ

२३, २४ फरवरी को हिन्दी-साहित्य-परिषद् मेरठ का दूसरा वार्षिक अधिवेशन मेरठ में सम्पन्न हुआ, जिसमें इस प्रकार भाषण पढ़े गये :

पहला दिन

साहित्य और मनोविज्ञान : श्री जे०एल० मेहता,
संस्कृत, प्रगति और साहित्य : श्री नेमिचन्द जैन,
भारतीय परिषद् की एक योजना: श्री जैनेन्द्रकुमार,
प्रगति : श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त,
कला-समीक्षा की कुछ समस्यायें:श्रीप्रभाकर माचवे,
साहित्य और मनोविज्ञान : श्री गुलाबराय

दूसरा दिन

आधुनिक हिन्दी कविता : श्री रामविलास शर्मा,
आधुनिक हिन्दी कविता और संस्कृति : श्री सुधीन्द्र,
हमारी दो समस्यायें : श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार,
एकांकी नाटक : श्री सत्येन्द्र,
आज का नाट्य-साहित्य : श्री नगेन्द्र

एक प्रस्ताव द्वारा साहित्य-सम्मेलन से यह प्रार्थना की गयी कि वह परिषद् को अपनी स्वीकृत संस्था मानकर उसके प्रतिनिधि ग्रहण करे और परिषद् को भी निर्वाचनात्मक पद्धति पर संगठन करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।

हिन्दी कवि-सम्मेलन, हापुड़

१६ फरवरी १९४१ ई० को हिन्दी-साहित्य समिति की ओर से एक विराट हिन्दी कवि-सम्मेलन का आयोजन किया। जिसमें सर्वश्री 'श्याम' 'कमलेश' गोपालप्रसाद व्यास, 'करुणेश', 'पीयूष', 'सेवक', 'वीश', 'शेष', ब्रजमोहन गुप्त, 'अविकसित' 'हर्षित' सुधीन्द्र आदि अनेक कवि पधारे। कवि-सम्मेलन बहुत सफल रहा। इसके आयोजन का बहुत-कुछ श्रेय श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को है।

सैर-सपाटा

फरवरी की 'वीणा' में श्री नगेन्द्र का एक अध्ययनपूर्ण लेख है—**'साहित्य में कल्पना का उपयोग'** जिसमें उन्होंने 'कल्पना' की अच्छी विवेचना की है। श्री वल्लभदास सुगन्धी ने अपनें लेख **'भारतीय आर्यों का गणित ज्ञान'** में अपने विषय को प्रमाणों के साथ पुष्ट किया है, जो पढ़ने योग्य है।

श्रावण १९९७ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका में महामहोपाध्याय डॉ० गोरीशंकर ओझा ने एक लम्बे लेख में **'बीसलदेव रासो का निर्माणकाल'** पर विचार किया है। उन्होंने पृथ्वीराज रासो के संबंध में भी महत्त्वपूर्ण खोज की है, जिन्हें विद्वानों ने माना है। इधर भी विद्वानों का ध्यान जाना स्वाभाविक है।

फरवरी की 'सबकी बोली' में किशोरलाल घ० मश्रुवाला का लेख **'परिभाषा की रचना'** बड़ा महत्त्वपूर्ण और पठनीय है। हिन्दी में परिभाषीय (Technical) शब्दों के निर्माण की आवश्यकता कितनी है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस विषय में डॉ० सत्यप्रकाश का सम्मेलन का भाषण तथा यह लेख विचारणीय हैं। फरवरी के 'बालहित' में मनोवैज्ञानिक शब्दों के कुछ अनुवाद प्रस्ताव रूप में रखे गये हैं, उन्हें भी पाठकों को अवश्य देखना चाहिए।

विद्यामन्दिर लिमिटेड नयी दिल्ली से 'हिन्दी-पत्रिका' नाम की जो पत्रिका निकलने लगी है, उसका पहला अंक पत्रिका के कार्य-क्षेत्र का स्वरूप बनाने में समर्थ है, यद्यपि उसमें अभी पाठकों के सहयोग की कमी दिखायी देती है। फिर भी श्री ब्रजमोहन गुप्त, श्री वासुदेव शर्मा, और श्री रामचन्द्र तिवारी के **'हमारे साहित्य का एक नवीन अंग'**, **'भारतवर्ष की प्रमुख प्रान्तीय भाषाएँ और हिंदी'**, तथा **'राष्ट्र भाषा प्रचार का प्रश्न'** लेख पढ़ने योग्य हैं, अन्तिम लेख में अच्छे सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

'फरवरी' के कर्मयोगी में श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय **'प्रान्त रचना की विषम समस्या'** लेख में एक राष्ट्रीय समस्या पर विचार किया है। इसी अंक में 'जनगणना' पर श्री गिरिजेश का लेख भी सामयिक और महत्त्वपूर्ण है।

फरवरी के 'साहित्य-सन्देश' से श्री नेमिचन्द्र का **'हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य'** और श्री राममूर्ति मेहरोत्रा का **'भाषाओं का रचनात्मक वर्गीकरण'** लेख बहुत अच्छे हैं। दूसरा लेख तो भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों को पढ़ना ही चाहिए।

साधना में जो **ये और ए का बखेड़ा** निकला है, वह सुलझना चाहिए; इसके अलावा कई शब्दों और उनके प्रयोगों का निर्णय भी होना चाहिए, इस सम्बन्ध में वि० भा० में पहले श्री रणजित वेदालंकार का लेख भी अच्छा था।

'हिन्दी शिक्षण पत्रिका' हिन्दी में बालकों के अभिभावकों के योग्य पत्रों में अन्यतम है। उसमें स्व० गिजुभाई तारावहन की साधना लगी है, जो बालकों के लिए वरदान है। फरवरी के अंक में श्री काशीनाथजी त्रिवेदी का 'बालक की माँग' लेख अभिभावकों को पढ़ने की वस्तु है। गिजुभाई के लेखों के विषय में तो कहा ही क्या जाये?

कृष्ण-मन्दिर में

जमनालालजी बजाज : हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, राष्ट्रभाषा प्रचार के एक प्रधान स्तम्भ, हिन्दी व हिन्दी-भक्तों के बड़े प्रेमी व सहायक, सस्ता साहित्य मण्डल के प्रधान संस्थापक।

महावीरप्रसादजी पोद्दार : 'टॉम काका की कुटिया' के नाम से Uncle Tom's cabin के अनुवादकर्त्ता। मराठी और गुजराती के अच्छे ज्ञाता। सस्ता साहित्य मण्डल की संचालक-समिति के सक्रिय सदस्य।

बैजनाथजी केडिया : हिन्दी पुस्तक एजेन्सी के मालिक, हिन्दी के परम भक्त व लेखक।

श्री जयंत : 'वीर अर्जुन' के सम्पादक; श्री इन्द्रजी विद्यावाचस्पति के सुपुत्र।

श्री विद्यावती 'कोकिल' : हिन्दी की नयी पीढ़ी की प्रसिद्ध स्त्री-कवि।

क्या और कैसे ?

लेखक व 'मण्डल'

लेखकों व प्रकाशकों के लिए उचित व न्याय- संबंध क्या हों, इसके विषय में हिन्दी जगत् ठीक चर्चा चल रही है। 'सस्ता साहित्य ने इस विषय में काफी ध्यान दिया है व नान्य हितैषियों तथा मित्रों की सलाह- शों से लेखक व प्रकाशक के बीच होनेवाले रनामे के दो मसविदे तैयार किये हैं जो मं०' के अगले अंक में दिये जावेंगे। उनमें लिखे सिद्धान्तों का अनुसरण या पालन या गया है—

(१) लेखक के अधिकार व गौरव की पूरी हो व उसे अपने पारिश्रमिक का उचित व सस्ता पुस्तकों या रुपयों के रूप में मिल ।

(२) यह लेखक की इच्छा पर रहे कि वह ं को स्वत्वाधिकार (Copy Right) पर ने देता है या केवल प्रकाशनाधिकार lty) पर। मण्डल को स्वामित्वाधिकार लेने ई खास दिलचस्पी नहीं है।

डल के इकरारनामों के मसविदे पाठकों ने आजाने पर लेखक व प्रकाशकगण उन- ने सुझाव हमें भेजने की कृपा करें।

री प्राचीन राष्ट्रभाषा

हमारी आधुनिक राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विवाद खड़े हो गये हैं। ऐसे अवसर पर श्री हजारीप्रसादजी ने हमारी प्राचीन भाषा पर अच्छा प्रकाश डाला है। वे बम्बई- ने प्रवचन में कहते हैं—

हिमालय से सेतुबन्ध तक, सारे भारतवर्ष के दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि विषयों की कुछ सौ वर्ष पहले तक एक ही रही है। यह संस्कृत थी। भारतवर्ष का जो कुछ श्रेष्ठ जो कुछ उत्तम है, जो कुछ रक्षणीय है वह भाषा के भाण्डार में संचित किया गया है। दूर तक इतिहास हमें ठेलकर पीछे ले जा सकता है उतनी दूर तक इस भाषा के सिवा हमारा और कोई सहारा नहीं है। इस भाषा में साहित्य की रचना कम-से-कम छः हजार वर्षों से निरन्तर होती आ रही है। इसके लक्षाधिक ग्रन्थों के पठन-पाठन और चिन्तन में भारतवर्ष के हजारों पुश्त तक के करोड़ों सर्वोत्तम मस्तिष्क दिन-रात लगे रहे हैं और आज भी लगे हुए हैं। मैं नहीं जानता कि संसार के किसी देश में इतने काल तक, इतनी दूरी तक व्याप्त, इतने उत्तम मस्तिष्कों में विचरण करनेवाली कोई भाषा है या नहीं। शायद नहीं है।

फिर भी भाषा की समस्या इस देश में कभी उठी ही नहीं हो सो बात नहीं है। भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने संस्कृत के एकाधिपत्य को अस्वीकार किया था, उन्होंने लोकभाषा को आश्रय करके अपने उपदेश प्रचारित किये थे।

सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री हुएन्त्सांग जब इस देश में आये थे तब वे स्थविरवादी, महासांघिक, महीशास्त्रक, काश्यपीय, धर्मगुप्त, सर्वास्तिवादी आदि सम्प्रदायों के ५९३ ग्रन्थ अपने साथ ले गये थे। ये अधिकांश संस्कृत में थे।

भगवान महावीर के द्वारा पुनरुज्जीवित जैनधर्म के विषय में भी यह एक ही बात कही जा सकती है। सन् ईसवी के बाद सिद्धान्तोत्तर साहित्य में धीरे-धीरे संस्कृत का प्रवेश होने लगा और जैन आचार्यों ने नाना काव्य और नाटकों से भाषा को समृद्ध ही नहीं बनाया, उसमें नवीन प्राण भी संचारित किये। मैंने जैन-प्रबन्धों की प्राकृतगंधी संस्कृत देखी है और मैं साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि संस्कृत को इतना सरल और प्रांजल बनाना एकदम नवीन और स्फूर्तिदायक प्रयास था। जैन मुनियों ने इसमें प्रांजलता ले आने में कमाल का काम किया है। जैन-धर्म की श्रेष्ठ चिन्ता तो उनके दर्शन-शास्त्र हैं, जो अधिकांश में संस्कृत ही हैं। इस साहित्यांग ने संस्कृत के दर्शन-साहित्य

को नये सिरे से उत्तेजना दी है। जिन दिनों भारतवर्ष की सांस्कृतिक अवस्था अत्यन्त उतार पर थी उन दिनों भी जैन-दर्शन और न्यायदर्शन की बहसों ने भारतीय मस्तिष्क में थोड़ी बहुत गर्मी बनाये रखने का आश्चर्यजनक कार्य किया था।

मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि यद्यपि कभी इस भाषा में और कभी उस भाषा में धर्मोपदेश और काव्य आदि की रचना के प्रमाण पाये जाते हैं; परन्तु सब मिलाकर पिछले कई सहस्राब्दकों तक भारतवर्ष के सर्वोत्तम को—उसके ज्ञान और विज्ञान को, उसके दर्शन और अध्यात्म को, उसके ज्योतिष और चिकित्सा को उसकी राजनीति और व्यवहार को, उसके कोष और व्याकरण को और उसकी समस्त चिन्ता को—इस भाषा का ही सहारा मिला है।

विदेशियों के झुण्ड बराबर इस देश में आते रहे हैं और आकर इन्होंने बड़ी जल्दी सीख लिया है कि संस्कृत ही इस देश में उनके काम की भाषा हो सकती है। यह आश्चर्य की बात कही जाती है कि संस्कृत भाषा का सबसे पुराना शिलालेख जो अबतक पाया गया है वह गिरनार वाला शक महाक्षत्र रुद्रदामा का शिलालेख है जो सन् ईसवी के लगभग डेढ़-सौ वर्ष बाद खुदवाया गया था। इस शिलालेख ने उस भ्रम का निराकरण कर दिया है कि जो ऐतिहासिक पण्डितों द्वारा प्रचारित किया गया था कि संस्कृत का अभ्युत्थान बहुत शताब्दियों बाद गुप्त सम्राटों के हाथों हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुप्त सम्राटों के युग से संस्कृत भाषा ज़्यादा वेग से चल पड़ी थी, परन्तु यह नितान्त गलत बात है कि उससे पहले उसकी (संस्कृत भाषा) धारा एकदम रुद्ध हो गयी थी।

शुरू-शुरू में मुसलमान बादशाह भी इस भाषा की महिमा हृदयंगम कर सकते थे। पठानों के सिक्कों से नागरी अक्षरों का ही नहीं संस्कृत भाषा का भी अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है। इस समय भी भारतवर्ष की श्रेष्ठ चिन्ता का स्रोत संस्कृत के ही रास्ते बह रहा था। नाना शास्त्र-ग्रंथों की अतुलनीय टीकाएँ, धर्मशास्त्रीय व्यवस्था के निबन्ध-ग्रंथ, दर्शन और अध्यात्म विषयक अनुवाद और टीका-ग्रंथ, और सब से अधिक नव्य-न्याय और न्यायानुप्राणित-व्याकरण-शास्त्र इसी काल में लिखे जाते रहे।

संक्षेप में कहूँ तो—

(१) भारतवर्ष के दर्शन-विज्ञान आदि की भाषा सदा संस्कृत रही है।

(२) उसके धर्म-प्रचार की भाषा अधिकांश में संस्कृत रही है, यद्यपि बीच-बीच में साहित्य के रूप में और सदैव बोल-चाल के रूप में देशी भाषाएँ भी इस प्रयोजन के लिए काम में लायी जाती रही हैं।

(३) आज से चार पाँच-सौ वर्ष पहले तक व्यवहार, न्याय और राजनीति की भाषा भी संस्कृत ही रही है। पिछले चार पाँच-सौ वर्षों से विदेशी भाषा ने इस क्षेत्र को दखल किया है।

(४) काव्य के लिए सदा से ही काव्य देशी भाषाएँ काम में लायी गयी हैं और संस्कृत भी सदा इस कार्य के उपयुक्त मानी गयी है।

अब अगर आप ध्यानपूर्वक देखें तो हमारे हजारों वर्ष के इतिहास ने हमारी भाषा-समस्या को इस प्रकार सुलझाया है कि हमारे उच्चतर विचार, तर्क, दर्शन, विज्ञान, राजनीति, व्यवहार और हमारे न्याय की भाषा का सदा एक सामान्य स्टैण्डर्ड रहा है।

इस विशाल देश की भाषा-समस्या का हल आज से सहस्रों वर्ष पूर्व से लेकर अबतक जिस भाषा के ज़रिये हुआ है, उसके सामने कोई भी भाषा न्यायपूर्वक अपना दावा लेकर उपस्थित नहीं रह सकती—फिर वह स्वदेशी हो या विदेशी, इस धर्म के माननेवालों की हो या उस धर्म के, इतिहास साक्षी है कि संस्कृत इस देश की अद्वितीय महिमाशालिनी भाषा है—अविजित, अनाहत और दुर्द्धर्ष।

आज से डेढ़ दो-सौ वर्ष पहले तक संस्कृत भाषा ने हमारे भीतर विचारगत एकता बना

करने का प्रयत्न किया था। बंगाल के रघुनन्दन भट्ट अपनी व्यवस्थाएँ इसी भाषा के बल पर कन्याकुमारी से काश्मीर तक पहुँचा सके थे, काशी के नागेश भट्ट को व्याकरणशास्त्रीय-विचार सारे देश में फैला देने में कोई बाधा नहीं पड़ी थी, महाराष्ट्र के गणेश दैवज्ञ को अपनी ज्योतिष-शोध इस विशाल देश के इस कोने से उस कोने तक फैला देने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी।

इस तरह हमारा पुराना अनुभव बताता है कि हम आसेतु-हिमाचल एक भाषा से एक संस्कार, एक विचार, एक मनोवृत्ति तैयार कर सकते हैं। और वह एक भाषा संस्कृत है।

यह प्रकाश चाहे हमारी राष्ट्रभाषा की समस्या को हल न कर सके; परन्तु भारतीय जीवन में संस्कृत की महत्ता व प्रभाव इससे अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है।

'नवीन हिन्दू धर्म'

अन्तस्थ आत्मा के एक होते हुए भी उसके बाह्य विविध व परिवर्तनशील हैं। इसी प्रकार धर्म का आन्तरिक तत्व त्रिकालाबाधित होते हुए भी उसकी बाह्य मान्यता व आचार-व्यवहार प्रगामी व विकासशील होते हैं, एवं देशकाल के आवश्यकतानुसार बदले जाते व बदलते रहते हैं। यह निर्विवाद है कि 'हिन्दू-धर्म' की कई मान्यताओं व आचार-विचारों का देशकालानुसार नये सिरे से मन्थन व निर्णय होने की आवश्यकता है। राजनैतिक परिस्थिति व समागम अहिन्दू सत्ताओं का प्राबल्य आदि कारणों से धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में बड़ी उथलपुथल मच रही है। राज्यक्रान्ति के पहले धर्म-क्रान्ति व सामाजिक क्रान्ति आवश्यक होती है। उसके चिन्ह प्रत्यक्ष दिखायी देने लगे हैं। प्राचीन आचार-विचार, रीति-रिवाज की इमारत धड़ाधड़ गिरती हुई दिखायी देती है। प्रायः ऐसे प्रश्न उपस्थित होते हैं जिनका विचार व निर्णय करने में प्राचीन धर्मशास्त्र असमर्थ सिद्ध होते हैं। ऐसी दशा में डाक्टर भगवान्दासजी का 'मानव धर्म सार' इसी दिशा में एक प्रयत्न है। और महाराष्ट्र में, धर्मनिर्णय मंडल ने इस काम को अपने हाथ में लिया है। उसकी तरफ़ से हिन्दुत्व-दीपक श्री महादेव शास्त्री दिवेकर ने एक बृहत् प्रश्नावलि प्रकाशित की है जिसके अवलोकन मात्र से यह पता चल जाता है कि सचमुच प्रचलित हिन्दू धर्म' को नवीन प्रकाश में देखकर 'नवीन हिन्दू धर्म' स्थापित करने की कितनी आवश्यकता है उनके प्रश्नों के कुछ नमूने देखिए—

(१) धर्म-निर्णय की प्राचीन मीमांसा-पद्धति ग्राह्य या नवीन ऐतिहासिक वा तात्विक मीमांसा-पद्धति स्वीकार्य ?

(२) धर्म क्या सचमुच अपूर्व अदृष्ट, पुरुष-बुद्धि के लिए अगम्य, अभ्युदय-निरपेक्ष है ?

(३) नवीन हिन्दू धर्म का अधिष्ठान क्या हो ? वचन या विचार (प्राचीन हिन्दू धर्म का अधिष्ठान है—वचनात् प्रवृत्तिः वचनात् निवृत्तिः।)

(४) हिन्दू शब्द की व्याख्या क्या है ? हिन्दुत्व व राष्ट्रीयत्व में समव्याप्ति है क्या ?

(५) वर्तमान हिन्दू समाज जातिबद्ध है, भविष्यकाल उच्चतर समाज-रचना का है। अतः क्या हिन्दू समाज का भावी स्वरूप अखंड व एक-रस होगा क्या ?

(६) आहार, व्यवसाय व जन्मादि कारणों से व्यक्तियों में परस्पर उच्च-नीचता मानना उचित है क्या ?

(७) कलिवाद, दैववाद, देववाद, ग्रहवाद क्या हिन्दू समाज को निर्बल नहीं बना रहे हैं ?

(८) कुटुम्ब, विवाह - संस्थायें मिटा दी जायें ? सन्तति-नियमन के प्रश्न का हल क्या ?

(९) विवाह-पद्धति रखनी हो तो बधूवर की उम्र, मुहूर्त, गोत्रप्रवर विचार, उपजाति विवाह, तिलाक, एकपत्नीत्व, एकपतित्व—इन विषयों का विचार नवीन हिन्दू धर्म में करना आवश्यक नहीं क्या ?

इसी तरह, छुआछूत, व्यवसाय, आश्रम-व्यवस्था, संस्कार-विधि, सूतक-श्राद्ध-तर्पण, उत्सव-दान-व्रत-तीर्थ, पाप-पुण्य, दत्तक, दाय विभाग, पति की सम्पत्ति पर पत्नी का हक आदि विषयक प्रश्न पूछे गये हैं। नवीन हिन्दू धर्म के जयिष्णु

तत्वज्ञान के रूप में गीता अधिकृत ग्रन्थ हो सकता है या नहीं ? आचार धर्म की तरह नीति धर्म व तत्वज्ञान भी परिवर्तनशील व परिस्थिति-सापेक्ष्य हो सकता है क्या ? अवतार, मूर्तिपूजा, नवविधाभक्ति, नाममाहात्म्य, उपासना माहात्म्य आदि संबंधी अर्थवादात्मक व भ्रमात्मक कल्पनाओं का निराकरण कैसे किया जाय ? आत्मा, ईश्वर, पुनर्जन्म, कर्मविपाक, अध्यात्म शास्त्र, आत्म-साक्षात्कार, मोक्ष इन औपनिषदिक सिद्धातों का तर्कशुद्ध पद्धति से समर्थन कैसे किया जाय ? स्वराज्य व स्वातंत्र्य-प्राप्ति में धर्म व समाज-सुधार कितने सहायक होंगे ? धार्मिक, सामाजिक दोषों के दूर होते ही हिन्दू राष्ट्र वीर कैसे हो जायगा ? जाज्वल देशाभिमान, भौतिक शासन-संपन्नता, अनुशासन व संगठन और अखिल हिन्दू समाज का समष्टि-धर्म, ये क्या स्वातंत्र्य-प्राप्ति के साधन बन सकते हैं ? ऐसे प्रश्नों का भी उसमें समावेश किया गया है । ये प्रश्न केवल दिशा-दर्शक हैं । इनके उत्तर देश के भिन्न-भिन्न विद्वानों व समाज-शास्त्रियों से माँगे गये हैं । इनके उत्तरों के आधार पर श्रीमहादेव शास्त्री एक ग्रंथ लिखना चाहते हैं । प्रत्येक विचारशील हिन्दू इस ग्रन्थ की उत्सुकता से राह देखेगा ।

अभी देर है

भारत की राष्ट्रीय समस्या के जल्दी सुलझने के लक्षण नहीं दिखायी देते । मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की अवांछनीय व असम्भव माँग दृढ़ता से पेश कर रखी है, ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि समय समय पर ऐसे वक्तव्य देते हैं जिससे मुस्लिम लीग के दुराग्रह को बढ़ावा मिलता है और कांग्रेस के साथ उसकी तथा सरकार की सुलह होना कठिन होता जा रहा है । अँगरेज जीवन-मरण की लड़ाई में लग रहे हैं, फिर भी सरकार कांग्रेस की उपेक्षा जिस आसानी से कर रही है उसपर आश्चर्य व दुख होता है । अब तो अमेरी साहब ने उसपर झूठे आरोप व लांछन लगाना भी शुरू कर दिया है यह 'शेषं कोपेन पूरयेत्' की मनः स्थिति दिखलाता है । उन्हें हम विदेशी, बेगाने कहकर एक बार अपने मन को समझाने की कोशिश कर सकते हैं; किन्तु मुस्लिम लीग को क्या कहें ?

हृदय-परिवर्तन दो ही तरह से हो सकता है—युक्तियों के द्वारा, या तप और कष्टसहन के द्वारा । मुस्लिम लीग को युक्तियों से नहीं समझाया जा सकता—ऐसा दीखता है । इधर सरकार भी जानबूझकर, मजबूरी से या विपत्ति काल की मनोवृत्ति से, युक्तियों की पहुँच के परे होती जा रही है । ऐसी दशा में दोनों के हृदय-परिवर्तन के लिए कांग्रेस के पास अब 'तप' ही एक-मात्र साधन रह गया है और महात्माजी के नेतृत्व में कांग्रेस इस समय यही कर रही है। भले ही डा० नायडू इस पहेली को जल्दी सुलझाने की आशा दिलावें, मुझे तो महात्माजी के ये वचन ही सत्य दिखायी देते हैं कि युद्ध-समाप्त होने तक कांग्रेस का सरकार से समझौता या सुलह नहीं हो सकती । 'हनोज़ दिल्ली दूरस्त' । यह स्थिति निराशा की ओर नहीं अधिक दृढ़ संकल्प व धैर्य से काम करने की ओर संकेत करती है ।

'विश्ववाणी'

हिन्दी में पं० सुन्दरलालजी के संरक्षकत्व में एक प्रभावशाली पत्रिका प्रकाशित होने लगी है—'विश्ववाणी' । इसके दो अंक अभीतक निकले हैं । मानव-जाति के उत्थान व कल्याण के लिए राष्ट्रीयता से अधिक गहरा व पुख्ता आधार है संस्कारिता का । इस सांस्कृतिक नींव पर 'विश्ववाणी' भारतीय एकता के संदेश को लेकर आयी है, जो धार्मिक व सामाजिक संकुचित स्वार्थों से छिन्न-भिन्न हो रहे इस अभागे देश के लिए इस समय भूखे को भोजन व मरते को संजीवनी बूटी पिलाने के समान आवश्यक व सामायिक है। जिस कोटि के लेखकों का सहयोग इसे अबतक प्राप्त हुआ है वह एक हिन्दी पत्रिका के लिए वास्तव में गौरवपूर्ण है । जिन विषयों पर अबतक लेख आये हैं वे पत्रिका के उद्देश के पूरक व पाठकों की बुद्धि व अंतःकरण को अच्छा भोजन देनेवाले हैं । मैं इसका स्वागत करता हूँ ।

स्व० आचार्य शुक्ल जी !

आचार्य श्री रामचन्द्र शुक्ल के अचानक निधन पर समस्त हिन्दी-जगत् को खेद व शोक हुआ है। 'प्रसाद' व 'प्रेमचन्द' के चिरवियोग के बाद आचार्यश्री के महाप्रयाण से हिन्दी-साहित्य में जो अनेकविध क्षति हुई है उसकी पूर्ति बहुत कठिन है। उनकी मृत्यु ने विद्यमान साहित्य-सेवियों का भार गुरुतर कर दिया है। आचार्यजी की योग्यतापूर्ण सेवायें हिन्दी-लेखकों को सदैव अनुप्राणित करती रहेंगी।—इसमें सन्देह नहीं। सस्ता साहित्य मण्डल-परिवार की ओर से हम उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और संतप्त परिवार के लिए हार्दिक सहानुभूति।

ह० उ०

मण्डल की ओर से

एक शुभ-सूचना : १००० जी० सा० आधे मूल्य में

यह एक शुभ, समाचार है कि 'मंडल' के बहुत से ग्राहक जी० सा० के ग्राहक बन गये हैं। जो अबतक नहीं बने हैं, उनसे प्रार्थना है कि वे अभी ही इसके ग्राहक बन जावें, क्योंकि मंडल की पुस्तकों सम्बन्धी सूचनायें समय-समय पर इसमें निकलती रहती हैं सो उनको सारी सूचनायें मिल जाती हैं। परन्तु यहाँ तो इसकी एक शुभ सूचना देनी है।

इस अंक के शुरू में पाठक एक सूचना देखेंगे कि 'मंडल' ने १००० सज्जनों को जी० सा० आधे मूल्य में देने का तय किया है। पर यह उन्हीं सज्जनों को दिया जायगा जिनकी 'मंडल' के स्थायी ग्राहक या जी० सा० के ग्राहक सिफ़ारिश करेंगे। इस आशय का एक पत्र भी शुरू में दिया गया है। उसे भरकर भेज दें तथा आप उत्साह लेकर अधिक से अधिक ग्राहक बनाने की कृपा करें।

नवीन प्रकाशन

(१) स्वाधीनता दिवस (२६ जनवरी) पर पंडित जवाहरलाल नेहरू की 'लड़खड़ाती दुनिया' का प्रकाशन हो गया। और हमें यह सूचित करते प्रसन्नता होती है कि १ महीने के ज़रा से समय में इसकी १००० प्रतियाँ हाथों हाथ निकल गयीं। इसमें पंडितजी के अंतर्राष्ट्रीय तथा यूरोपीय युद्ध-समस्या पर लिखे लेखों का संग्रह है। दाम ।।) है।

(२) मालवीयजी के साथ तीस दिन, (रामनरेश त्रिपाठी), युद्ध और अहिंसा (महात्मा गांधी), दुनिया की शासन प्रणालियाँ और वर्तमान यूरोपीय युद्ध (रामचंद्र वर्मा) आदि पुस्तकें छप रही हैं और शीघ्र ही पाठकों की सेवा में जावेंगी।

पुनर्मुद्रण

और इसी आज़ादी के दिवस पर 'गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ' का सस्ता-संस्करण भी १।) में निकल गया। पहले का सजिल्द और मोटे काग़ज पर छपा संस्करण २) में भारी पड़ता था। जो लोग इतना नहीं दे सकते थे उनके लिए यह १।) वाला संस्करण तैयार है।

श्री घनश्यामदाजी बिड़ला के ख्यातिप्राप्त 'बापू' का नवीन संस्करण भी इसी समय तैयार हो गया और बाज़ार में आ गया है। अबकी इसका दाम और कम कर दिया गया है। पहले साधारण संस्करण का दाम ।।।) था; अब ।।=) है।

महर्षि टॉल्स्टाय का **'स्त्री और पुरुष'** का भी नया संस्करण तैयार हो गया है। अबकी बार वह टाल्स्टाय ग्रंथावलि में छपा है और सुन्दर आवरण पृष्ठ दिया गया है।

गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य स्वामी अभयदेवजी का **'तरंगित हृदय'** भी नये संस्करण में तैयार है। **क्या करें ?, मेरी कहानी,** और द० अ० का

सत्याग्रह (प्रथम खण्ड) प्रेस में दे रखे हैं। तैयार होने पर सूचित किया जायगा।

डायरी के पन्ने

श्री घनश्यामदास बिड़ला की दूसरी महत्वपूर्ण और रोचक पुस्तक **'डायरी के पन्ने'** अभी प्रकाशित हुई है। सोल एजेंसी 'मण्डल' के ही पास है। इसमें श्री बिड़लाजी ने दूसरी गोलमेज परिषद् में गांधीजी के साथ के अपने रोचक और महत्त्वपूर्ण संस्मरण लिखे हैं। पुस्तक मण्डल तथा जी० सा० के ग्राहकों को पौने मूल्य में दी जाती है। इसका दाम १।।) है। पुस्तक सजिल्द है।

हाथ-काग़ज-स्टेशनरी

पिछले अंक में हमने सूचना दी थी कि मंडल के प्रधान कार्यालय नई दिल्ली तथा दिल्ली, लखनऊ और इन्दौर की शाखाओं पर हाथ के बने चिट्ठी लिखने के कागज और लिफाफे विक्रयार्थ रखने का प्रबंध किया है। प्रधान कार्यालय, नई दिल्ली में तो लेटर-हेड और लिफाफे छपाने आदि का भी प्रबन्ध है। जो सज्जन हाथ के लेटर-हेड तथा उसी के रंग के लिफाफे चाहें वे मण्डल से तथा उनकी शाखाओं से मँगा सकते हैं। नमूने के लिए ।) के डाक के टिकिट भेजने चाहिएं।

'बापू' : ५० प्रतियाँ मुफ्त में

गांधी विचार-धारा से मतभेद रखनेवाले व्यक्तियों को श्री बिड़लाजी लिखित 'बापू' की ५० प्रतियाँ बिना मूल्य देने के बारे में पिछले अंक में एक सूचना छपी थी। 'मण्डल' के एक विनम्र प्रेमी की ओर से यह स्वल्प पर सुन्दर भेंट है। इसके अनुसार माँग तो बहुत आयी पर सूचना के अनुसार बहुतों ने अपने विचार विस्तार से नहीं लिखे। पत्र में अपने विचारों की स्पष्टता दलीलों से समझायी जानी चाहिए। अस्पष्ट और संक्षिप्त रूप से जो विचार लिखे होंगे उनको पुस्तक नहीं दी जायगी। आशा है पुस्तक मँगानेवाले सज्जन इसका खयाल रखेंगे।

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

श्रीयुत. एम. के. आचार्य, एम. एल. ए. (मद्रास)—"आपका दंत-मंजन तो मैंने **अपनी दंत-पीड़ा के लिए गत पाँच वर्षों में व्यवहृत देशी-विदेशी सब मंजनों से श्रेष्ठतर** पाया। मंजन दाँतों, मसूडों और तालु के घावों पर जादू का-सा असर दिखलाता है।"

श्री. एम० एस० बरदाचार्य एडवोकेट (मद्रास हाईकोर्ट)—"दो वर्ष पूर्व मुझे दंत-पीड़ा हुई थी जो बढ़ती ही गयी और मसूडों में घाव हो गये; **परन्तु आपके मंजन से अब मेरे मसूडे स्वस्थ हैं और दांत में पीड़ा नहीं होती।** मैं तो कहूँगा कि मेरे व्यवहृत दंत-मंजनों में सर्वश्रेष्ठ आपका दंतामृत ही है।"

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

संग्रह करने योग्य ग्रन्थ

कुलीनता

[ले० सेठ गोविन्ददासजी]

त्रिपुरी के कलचुरि नरेश विजयसिंह देव और राजगोंड़ वंश स्थापक यदुराय के ऐतिहासिक कथानक को लेकर इस नाटक की रचना की गयी है। स्टेज पर खूब सफलता के साथ खेला जा सकता है। हिन्दी के मौलिक नाटकों में इसे प्रधान स्थान दिया जायगा। मूल्य १)

सुनीता

श्री जैनेन्द्रकुमार का यह बहुविख्यात उपन्यास अबकी बार सुलभ साहित्य माला में प्रकाशित किया गया है। मूल्य तीन रुपया की जगह अब सिर्फ दस आने है। बढ़िया छपाई और कागज़। पृ० सं० २००; सस्तेपन की हद है।

उर्दू हिन्दी कोश

(संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण)

इस अत्यन्त उपयोगी कोश में उर्दू और उर्दू में काम आनेवाले अरबी, फारसी, तुर्की, इरानी, पोर्तुगीज आदि भाषाओं के लगभग साढ़े ग्यारह हज़ार शब्दों का सरल हिन्दी में अनेक पर्यायवाची शब्द देकर अर्थ किया गया है और यह भी बतलाया गया है कि प्रत्येक शब्द किस भाषा का है, साथ ही लिंग, विशेषण, अव्यय आदि भी बतलाये हैं। मुहाविरों और कानूनी शब्दों का भी संग्रह किया गया है। अब की बार पहले से एक हज़ार शब्द अधिक दिये गये हैं। मूल्य वही २॥) ढाई रुपया।

नीति-विज्ञान

[ले० श्रीगोवर्द्धनलाल एम० ए० बी० एल०]

नीति, सदाचार या धर्म की वैज्ञानिक आलोचना। हिन्दी में अपने विषय का सबसे पहला ग्रंथ। सदाचार की उत्पत्ति, उसका विकास, धर्म और ईश्वर से उसका सम्बन्ध, धर्मों के द्वारा किये गये अत्याचारों का इतिहास, धर्म और मज़हब आदि बातों पर अपूर्व प्रकाश। लेखक की बरसों की समस्या का फल। विद्वानों द्वारा अतिशय प्रशंसित। मूल्य २) रुपया, राजसंस्करण का ३) रु०

अरबी काव्य-दर्शन

[ले० प्रो० महेशप्रसाद आलिम-फ़ाज़िल]

अरबी भाषा के काव्य-साहित्य में से नीति, युद्ध, शृंगार, वैराग्य आदि की सूक्तियों को चुनकर इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है। एक-एक सूक्ति पढ़कर आप फड़क उठेंगे। मू० १)

नोट—अपने नज़दीक की दूकान से खरीदिए, नहीं तो फिर हम से मँगाइए। हमारा सूचीपत्र मँगा लीजिए।

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई ४**

उपरोक्त पुस्तक सस्ता साहित्य मण्डल की सब शाखाओं पर मिलती हैं।

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमेन--सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये
भुगतान पूँजी—१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहाँ हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजर:—

८, रॉयल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

या

बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को।

दिल्ली में

सब प्रकार की उत्तम छपाई

और ख़ास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से

किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था
'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें
हमारे यहाँ छपती हैं।

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

जूट कारपेट

अति सुन्दर और आकर्षक होने पर भी
मज़बूत तथा क़ीमत में भी बहुत सस्ते हैं।

इसलिए

किसी भी प्रकार की सजावट के लिए
सब लोग जूट कारपेट को ही पसन्द करते हैं।

मिलने का पता:—

सभी जूट कारपेट की दुकानों में

तथा

खन्ना इन्डस्ट्रीज, बनारस सिटी
नेशनल नॉवेल्टी स्टोर, कानपुर
जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग

और

बङ्गाल स्टोर्स, लिमिटेड

टेलीफोन नं० कलकत्ता २१३२, नं० ८ ए चौरंगी प्लेस, कलकत्ता में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपकी इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

एजेंसी के लिए निम्न पते पर लिखें :—

टेलीफोन नं० कलकत्ता ५६५
टेलीग्राम—जूट वीवर

बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

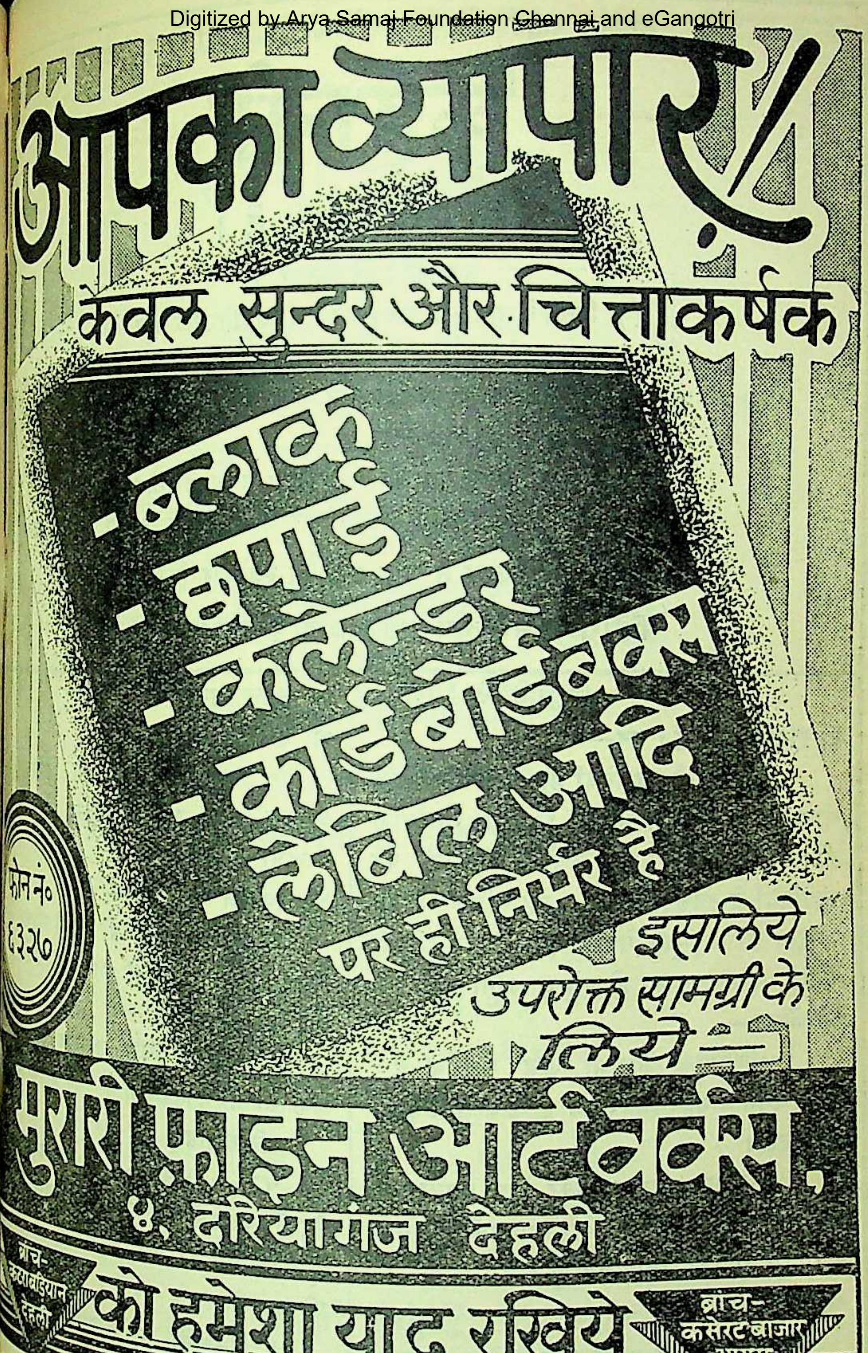

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

इसलिये उपरोक्त सामग्री के लिये —

फोन नं० ६३२७

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,

४, दरियागंज देहली

ब्रांच- कटराबडियान देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच- कसेरट बाजार आगरा

और हमारे

२० वर्ष के अनुभव

से लाभ उठाइए

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषताएँ हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएँ।

(२) अंतर्राष्ट्रीय व अंतर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।

(३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि 'कहानी' सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इंडियन पी० ई० एन—

'...इसमें जो कहानियाँ हैं, वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।...इस विशेषांक की कहानियाँ पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं...यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है...हिन्दी के प्रेमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'...विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। उनके चुनने में गहरे विवेक की दष्टि दीखती है...'

श्री सुदर्शन—

'...इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है।...मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'...छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है।...'

श्री उषादेवी मित्रा—

'...'कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है—अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना...'

श्री देवराज उपाध्याय—

'कथा-साहित्य संबंधी जितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है...'

श्री उदयशंकर भट्ट—

'...पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा...इस अंक की संपूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई।'

श्री रवीन्द्र

'Cheap Sentimental कहानियों से मुझे तबियत बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश हो गई...'

श्री पहाडी—

'...'कहानी' के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेंगीं।'

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल तीन रु० है। एक प्रति का चार आना। कृपया आज ही ३) मनीआर्डर से भेज दें : पुस्तकालय २ll) भेज सकते हैं।

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट।

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद दक्षिण, अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

'हँस-परिवार' की अनुपम योजना के सदस्य बनिए

[१] भारतीय-पुस्तक-माला
- (क) कायाकल्प (३ भाग)
- (ख) स्नेह-यज्ञ [१-२]

[२] 'हंस' पुस्तकें
- (क) मा [भाग १-२]
- (ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग ३]
- (ग) सात इनक़लाबी इतवार [भाग १-२-३]

[३] गल्प-संसार-माला
१० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी-संग्रह।

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
- (क) नया हिन्दी-साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रंथावली
- (क) शोभा : ले० इन्द्र वसावड़ा
- (ख) संजीवनी : ले० 'सोपान'
- (ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] : ले० सोपान

[६] जाग्रत-महिला-साहित्य
- (क) पिकनिक : लेखिका—कमलादेवी चौधरी
- (ख) पिया : लेखिका—उषादेवी मित्रा
- (ग) कौमुदी : लेखिका—शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
- (क) कँटीले तार [भाग १-२]
- (ख) जाई-जुई

और ९ अन्य पुस्तकें

[८] 'हंस' मासिक १२ अंक

[९] 'कहानी' मासिक के
१२ अंक और १।) मूल्य की 'कोकिला' नामक पुस्तक भेंट।

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों की मात्रा २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की मँहगी के ज़माने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी, यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं : यह संस्था तो सेवा के लिये ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम 'हंस-परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे।

इस मूल्य में निःशुल्क बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठ संख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर २।) रु० में १००० पृष्ठ मिलते हैं। इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है। यह योजना बेजोड़ है। निस्सन्देह।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है, इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा।

[१] १२०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद। [२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद। [३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं। [४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों, कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह। १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे। [५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उचित किया गया है। [६] महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न। ये आपके परिवार में पत्नी तथा माँ-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे। [७] 'आज की किताब' के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुझाव रहेगा। अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—लेखक—पं० जगपति चतुर्वेदी। यह पुस्तक कई प्रसिद्ध अंग्रेजी, संस्कृत, तथा हिन्दी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना उतना कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना कठिन है। इस पुस्तक में अपने मन, वाणी आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर अधिकार करने के सहज सरल उपाय बताये गये हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। मूल्य १)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय। इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति के लिए अपने सर्वस्व निछावर करनेवाले वीर-वीरांगनाओं की कहानियों का संग्रह है। प्रत्येक कहानी बहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और ज़ोरदार भाषा में लिखीहुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनानेवाली हैं। सुन्दर कवर से युक्त पुस्तक का मूल्य ।।।)

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथितहृदय। इस पुस्तक में उन कहानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती हैं। चरित्र-निर्माण के लिए इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ।।।)

मैनेजर—छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग

कानपुर के सोल एजेंट-साहित्य निकेतन, कानपुर

आरोग्य-शास्त्र का प्रतिनिधि पत्र

'जीवन-सखा' वास्तव में जीवन-सखा है

यह एक नहीं अनेकों की राय है : आप भी निर्णय कीजिए

आज, काशी—'जीवन-सखा' ने ५ वर्ष के ही अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। विशेषांक में…कही गई बातों के अनुसार व्यतीत कर हम अपार लाभ उठा सकते हैं।"

सरस्वती, प्रयाग—"प्रत्येक साध्य तथा मर्ज का निवारण प्रकृति द्वारा हो सकता यही इस पत्र का सन्देश है।"

जीवन-साहित्य, नई दिल्ली—जीवन-सखा शास्त्र का सुन्दर मासिक होने से यह में जीवन-सखा ही है। एक-एक लेख पठनीय और आचरणीय है।"

हिंदुस्तान, दिल्ली—"जीवन-सखा के लेख मनन करने और आचरण करने योग्य हैं।"

नवशक्ति, पटना—"यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य-सम्बन्धी पत्रिकाओं में……जीवन-सखा का सर्वोच्च स्थान है। छपाई सफ़ाई तो आदर्श है।"

विशाल-भारत, कलकत्ता—"जीवन-सखा का विशेषांक सब तरह से उपयोगी है।"

हंस, बनारस—"……हिन्दी में जीवन-सखा अपने ढंग का विशेष पत्र है।……"

"Leader", Allahabad

"The Special number contains a number of useful informative and thought-provoking articles....well written and require a carefal perusal. Needless to say, the highly educative value of the monthly is obvious and commendabele, and we have no doubt about its success in the world of journalism."

विशेषांक का मूल्य १) : वार्षिक चन्दा ३), आज ही भेजकर इसे प्राप्त कीजिए।

बहुत थोड़ी प्रतियां रह गई हैं।

मैनेजर—जीवन सखा कार्यालय, इलाहाबाद

साहित्य-सन्देश का साहस

अक्टूबर के महीने में अपना वृहद् उपन्यास-अङ्क निकालने के पश्चात्

[छः महीनों में चार विशेषांक]

पहला—परीक्षांक ! यह एक मार्च को पाठकों के हाथ में होगा। इस अंक का प्रकाशन विद्यार्थियों के लाभार्थ किया जा रहा है। इन्टर, बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थी इससे विशेष रूप में लाभ उठा सकेंगे और आगे चलकर सम्मेलन की परीक्षाओं में भी इस अंक का उपयोग हो सकेगा।

दूसरा—शुक्ल-अंक ! यह एक अप्रेल सन् १९४१ को तैयार होगा। इस अंक में शुक्लजी का प्रारम्भिक जीवन, उनकी समस्त कृतियों की आलोचना, आपकी शैली का विश्लेषण, हिन्दी के प्रति की गयी आपकी सेवाओं का विवेचन और आचार्य के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण संस्मरण इस अंक में छापे जायेंगे। हिन्दी के पाठकों को संदेश के प्रसाद-अंक' और 'द्विवेदी अंक' की याद न भूली होगी। कोशिश यह की जा रही है कि यह अंक भी अपनी पिछली परम्परा का आदर्श उपस्थित कर सके।

तीसरा—उपन्यास-अंक ! (दूसरा खण्ड) यह अंक १ जून सन् १९४१ को प्रकाशित होगा। हम उपन्यास-अंक का प्रथम खण्ड अक्टूबर सन् १९४० में निकाल चुके हैं। उक्त अंक में हिन्दी उपन्यासों का मार्मिक विवेचन किया गया था। अब इस अंक में भारत की प्रान्तीय भाषाओं के उपन्यासों एवं विश्व के उपन्यासों की मूल धाराओं पर प्रकाश डाला जायगा। हिन्दी के कुछ श्रेष्ठ उपन्यासों पर इस अंक में अधिकारी व्यक्तियों के अध्ययन प्रस्तुत किये जाएँगे। और हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार अपनी उपन्यास-कला के विस्तृत अनुभव स्वयं अपनी कलम से हिन्दी पाठकों को देंगे।

चौथा—आलोचनांक ! यह चतुर्थ वर्ष की समाप्ति के बाद नववर्षांक के रूप में सितम्बर सन् १९४१ को तैयार होगा। यह अंक एक प्रकार से हिन्दी जगत् में अभूतपूर्व होगा। यह हिन्दी समालोचना का इतिहास, उसके विभिन्न पहलू, आधुनिक समालोचना के मान और हिन्दी के सभी समालोचकों की शैलियों पर अपना पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करेगा। यह अंक उपन्यास-अंक से भी अधिक महत्वपूर्ण होगा।

इन सभी अंकों के दाम लागत के अनुसार फुटकर लेनेवालों को अधिक देने पड़ेंगे। इससे अच्छा यह है कि स्थायी ग्राहक बना जाय और ३) पेशगी भेज दिये जायँ। विद्यार्थी समाज तो २) में ही वर्ष भर ग्राहक रह सकता है।

साधारण अंक का नमूना मुफ्त मँगाकर देख लीजिए।

पत्र-व्यवहार का पता

साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

श्री घनश्यामदास बिड़ला के ग्रन्थ

बापू

[जिसके २ संस्करण हो चुके हैं और कई भाषाओं में अनुवाद हो रहा है]

"...पू' में बिड़लाजी एक उच्चकोटि के ...कार के रूप में प्रकट हुए हैं। × × ...और चिन्तन के अतिरिक्त आपने सूक्ष्म-... और विषय-प्रतिपादन में कारीगरी से ...लिया है। भाषा प्रांजल, सरल हृदयहारी है ... आगे चलकर 'बापू' पर अनेक किताबें ...ी जायेंगी, लेकिन बिड़लाजी की रचना का ... सुरक्षित रहेगा। —**हंस (हिन्दी)**

"......लखनारनी शैली, दृष्टि, प्रसंगनी ...ी, अमुक बाजू पर वधु ओछा भार मूकवानी ... आरे मां लखनारनो पोतानो प्राण प्रकट थई ...छे। अेटले आ पुस्तक मां आलेख्य करतां ...नूं व्यक्तित्व सुंदर रीते गुंजी उठेल छे। ...ी सारी पेठे प्रवाही अने स्वस्थ छे।" —**जन्मभूमि, (गुजराती)**

"His book gives us, accordingly, ... only an insight into the oceanic ... of his hero, but also into his ... in its struggles to understand him, ... to love is to understand, to under-... is to love, too. His language is a ...guage both of the head and the ...rt." —**माडर्न रिव्यू (अंग्रेजी)**

"...विवेक बुद्धि आणि भक्ति यांचा सुंदर मिलाप या ग्रंथांत झाला आहे। ग्रंथांत अनेक संस्कृत वचनें व महाभारतांतील सुंदर दाखले ठिकठिकाणी दिले आहेत।' —**भारत (मराठी)**

'एक-एक अक्षर पढ़ा। बहुत रोचक जान पड़ी। छोड़ने को जी नहीं चाहता था। × × आपमें जैसा स्वाभाविक विख्यात व्यवहार का कौशल है वैसी ही स्वाभाविक उत्तम साहित्य के निर्माण की शक्ति भी है, यह इस ग्रंथ की रचना से प्रमाणित हुआ....।" —**डा० भगवान्दास :**

आपने सचमुच एक अच्छी और अनोखी चीज़ हिन्दुस्तान को दी है। मैंने तो, आपकी इस पुस्तक का एक घरू नाम रख दिया है—'बापू-मनन'। संस्कृत में एक ग्रंथ है—'वासुदेव-मनन'। उसी से मुझे यह नाम सूझा है। —**काका कालेलकर :**

''.......चित्र सजीव और सहज है, यह पुस्तक की साहित्यिक सफलता है। मैं मानता हूँ कि हिन्दी का आज का लेखक खरेपन और स्वच्छता के लिए उसे अपने आगे नमूने के तौर पर रख सकता है।" —**जैनेन्द्रकुमार :**

''बापू' का दर्शन कराने में, सत्य-अहिंसा के हार्द तक पहुँचाने में 'बापू' अवश्य सफल होगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं है।" —**हरिभाऊ उपाध्याय :**

मूल्य। ।=) १) १।)

डायरी के कुछ पन्ने

[दूसरी गोलमेज परिषद् में गांधीजी के साथ]

...री के ये पन्ने क़ीमती ऐतिहासिक दस्तावेज़ हैं। इसमें गोलमेज के नाटक का नेपथ्य अपनी ...वता में सामने दीख आता है। यह पुरानी होते हुए भी ताज़ी लगती है। दाम १।)

—छप रही है—

बिखरे विचार

[जिसमें उनके विविध लेख संकलित हैं]

...स्ता साहित्य मण्डल तथा जी० सा० के ग्राहकों को पौने मूल्य में

Regd No L4671

सस्ता साहित्य मंडल का साहित्य

दामों में सस्ता किन्तु मूल्य में बहुमूल्य है !

गांधी साहित्य : टॉल्स्टाय साहित्य : जवाहर साहित्य

मण्डल की विशेषतायें हैं

आत्मकथा, मेरी कहानी, विश्वइतिहास की झलक, गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ, हमारे राष्ट्र-निर्माता, जीवनसन्देश, बुद्धवाणी, सन्तवाणी, समन्वय, लोकजीवन, गीता मन्थन, खादी मीमांसा, मेरी मुक्ति की कहानी, बापू, विनोबा के विचार, लड़खड़ाती दुनिया, आदि आदि जीवन निर्माणकारी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। सूचीपत्र तथा नियमावली मुफ्त मँगाकर देखिए।

नवजीवन माला तथा सामयिक साहित्य माला

सम्मतियाँ

××पुस्तकें बहुत सस्ती और बड़े अच्छे आकार प्रकार की हैं×× मैं कुल खादी भंडारों से इन्हें बिक्री के लिए रखने की सिफारिश करता हूँ।

गांधीजी

××मुझे ये बहुत पसन्द आईं। अच्छी और सस्ती हैं। इनको तो हज़ारों और लाखों घरों में पहुँचाना चाहिए।

जवाहरलाल नेहरू

'जीवन साहित्य'

नामक जीवन और साहित्य विषयक नया मासिक पत्र आपको अपने दैनिक जीवन में एक सच्चे मित्र का काम देता है, इसको हमेशा अपने पास रखें।

सब बातों का विवरण इस पते से मँगायें—

सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस नई, दिल्ली

शाखायें

दिल्ली :: लखनऊ :: इन्दौर

कानपुर के एजेण्ट: साहित्य-निकेतन

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहाँसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

जीवन साहित्य

: अंक ६

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

अप्रैल : १९४१

हिन्दी भाषा और उसका साहित्य

हिन्दी प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति की जड़ है। यह भाषा सबसे प्राचीन है। उसका साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। हिन्दी-साहित्य के अन्दर इतनी गहरी चीज़ है जैसी संसार के ऊँचे-से-ऊँचे साहित्य में नहीं मिलेगी। अंग्रेजी भाषा का तो मैंने ऊँचे-से-ऊँचा साहित्य पढ़ा है। होमर, शेक्सपियर और मिल्टन का साहित्य प्राचीन सांस्कृतिक माना जाता है, परन्तु यदि आप सूर, तुलसी और केशव को पढ़ेंगे, तो आप देखेंगे कि इनमें सब कुछ मौजूद है। उनका साहित्य प्राचीन संस्कृति से भरपूर है।

साहित्य का मूल्य व्हीलर की दुकान से नहीं आँका जा सकता। साहित्य का माप-तोल उसके लम्बे-चौड़े होने से नहीं होता, बल्कि भीतरी शक्ति से होता है। हिन्दी का साहित्य एक अतुल भण्डार है, वह प्रत्येक भारतीय के लिए जानने योग्य है। राष्ट्रभाषा बने या न बने, हिन्दी के भीतर शक्ति अवश्य है। वैसे तो वह राष्ट्रभाषा बहुत प्राचीन समय से ही बनी हुई है और वह समय अब भी आ गया है। अंग्रेजी साहित्य की रोशनी पड़ जाने से हमने अपने साहित्य को नहीं पहिचाना। हिन्दी ने तो वह काम कर दिया है जो अंग्रेजी ने आजतक करके नहीं दिखाया। अंग्रेजी एक अप्राकृतिक भाषा है। वह हमारी उन्नति करनेवाली नहीं हो सकती। हिन्दी हमारी शक्ति को बढ़ाती है। हिन्दी भाषा को जितना ही अधिक हम पढ़ते हैं उतना ही अधिक अमृत हमें उसके अन्दर से मिलता है। आज उसको छोड़कर ही हमारा ह्रास हो रहा है।

पुरुषोत्तमदास टंडन

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
कनॉट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. पूजागीत (कविता)— ३६५
[श्रीसोहनलाल द्विवेदी एम. ए. एल-एल.बी.]
२. लेखक बनाम प्रकाशक— ३६६
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
३. टूटी कुटिया— ३६८
[श्री विष्णु अम्बालाल जोशी, एम. ए.]
४. जीवन-विद्या-[आचार्य श्रीनानाभाई भट्ट] ३६९
५. आचार्यश्री का अन्तरंग-दर्शन— ३७२
[श्री विष्णुदत्त शर्मा, एम. ए. एल-एल. बी.]
६. आधुनिक हिन्दी कविता की कुछ प्रवृत्तियां [श्रीसुधीन्द्र एम. ए., साहित्यरत्न] ३७४
७. सौष्ठव पूजा— ३७७
[श्री प्रभाकर माचवे एम. ए., साहित्यरत्न]
८. तेरा उपहार— ३७९
[श्री डॉ॰ 'मृत्युञ्जय', एम. ए., डी. फ़िल.]
९. जीवन, साहित्य और जीवन— ३८०
[श्री छगनलाल परमार, बी. ए.]
१०. निजी पुस्तकालय बनाइए— ३८१
[श्री कालिदास कपूर, एम. ए., एल. टी.]
११. जीवन का उषाकाल— ३८४
[श्री प्रभुदास गांधी]
१२. अहिंसा—[श्री विद्यानन्द]
१३. प्रस्तुत प्रश्न— ३८
प्राकृतिक किसे कहें ? [हरिभाऊ उपाध्याय ३८
रेडियो की बोली कैसी हो ? [श्री दुलारेलाल
तथा सावित्री देवी भार्गव एम. ए.]
अनुवाद और अनुवादक[श्रीप्रवीणचंद्र पांडेय
बाल-साहित्य का अभाव[श्री दयाशंकर मिश्र
१४. समालोचनार्थ प्राप्त— ३९
१५. कसौटी पर— ३९
हिंदुस्तान बनाम पाकिस्तान; 'तरुण जैन' क
अहिंसा-अंक; भारतीय सभ्यता का विकास;
साम्राज्य और उनका वतन; स्टालिन;
महापुरुषों की जीवत-झांकी; चर्खाशाला;
अर्थशास्त्र की रूपरेखा।
१६. सहयोगियों में से— ३९
१७. सैर-सपाटा— ४०
१८. हिन्दी की हलचलें— ४०
१९. कृष्ण-मन्दिर में— ४०
२०. क्या और कैसे ?— ४०
तीन मुख्य घटनायें; बलिवीर गणेश
श्रद्धांजलि !; चेतावनी; दो शोक-संवाद
२१. मण्डल की ओर से— ४०

कुछ अनमोल अंग्रेज़ी पुस्तकें

My Experiments with Truth	(Gandhiji)	4	0	0
Hind Swaraj	,,	0	4	0
Self restraint *Vs.* Self-Indulgence	,,	2	0	0
To the Students	,,	2	0	0
Cent per cent Swadeshi	,,	1	8	0
Satyagraha in South Africa	,,	4	8	0
From Yervada Mandir	,,	0	2	0
Bleeding wound	,,	0	12	0
Bhagavad-Gita	(C. R.)	0	6	0
Upanishad	,,	0	6	0
The Power of Non violence	(R. B. Gregg)	2	0	0
An Autobiography	(Jawaharlal Nehru)	5	4	0
Glimpses of World History	,,	6	0	0
Letters from a father to his daughter	,,	0	8	0
History of the Congress	P. Sitaramayya	2	8	0
Home and Village Doctor	Satish C. Dass Gupta	5	0	

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

शाखायें : दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

१००० सज्जनों को 'जीवन-साहित्य'

एक रुपये में

'जीवन-साहित्य' तथा 'मण्डल' के वर्तमान ग्राहकों की सिफारिश पर

◆

प्रिय ग्राहक बन्धु,

'जीवन-साहित्य' की महत्ता एवं उपयोगिता को समझकर आपमें से अनेक बन्धुओं ने कई बार अपने मित्रों, साथियों या परिचित संस्थाओं के लिए चाहा कि हम 'जीवन-साहित्य' उनको आधे मूल्य में दें। अतः हमने तय किया है कि आगामी २ महीने के अन्दर आप जिन-जिन लोगों की सिफ़ारिश करेंगे उनको 'जीवन साहित्य' १) वार्षिक में दिया जायगा। उसके लिए निम्न नियमों को ध्यान रखना आवश्यक होगा।

१—इस पत्र के दूसरी ओर छपा फार्म भरकर भेजना होगा।

२—ग्राहकों का मूल्य इस आर्डर फार्म के साथ ही पोस्टल सार्टिफिकेट या डाक के टिकटों के रूप में आना चाहिए।

३—प्रत्येक ग्राहक चार सज्जनों से अधिक की सिफारिश नहीं कर सकेंगे।

४—इन ग्राहकों के रुपये हर हालत में पेशगी आनी चाहिएँ। वी. पी. से अंक नहीं भेजा जायगा।

५—ऐसे ग्राहकों को मण्डल के स्थायी ग्राहकों अथवा 'जीवन-साहित्य' के साधारण ग्राहकों को मिलनेवाली पुस्तकों पर कमीशन-संबंधी रियायत नहीं मिल सकेगी।

६—अप्रैल के अन्त तक यह संख्या पूरी हो जानी चाहिए। पर अगर इससे पहले यह पूरी हो गयी तो १००० से ज्यादा ग्राहक १) में नहीं बनाये जावेंगे। अतः हर हालत में दो महीने तक ठहरना नहीं चाहिए। शीघ्रता करें।

भवदीय

मार्तण्ड उपाध्याय

मन्त्री

सस्ता साहित्य मण्डल

यह पत्र भरकर शीघ्र भेजिए

स्थान ______________

ता० ______________

आपकी सूचना पढ़ी। ठीक है। मैं अपने निम्न ४ मित्रों के नाम और पते लिखता हूँ और इनके ४) पोस्टल सार्टिफिकेट / डाक के टिकिटों या मनीआर्डर से भिजवा रहा हूँ। आप इनको…… अंक से १ वर्ष के लिए जी० सा० का ग्राहक बना लें। मेरा ग्राहक नं० मंडल का……… जी० सा० का……………है।

भवदीय

नाम ______________

पूरा पता ______________

मित्रों के नाम

(१) ______________

(२) ______________

(३) ______________

(४) ______________

सस्ता साहित्य मण्डल

संक्षिप्त परिचय

१—सस्ता साहित्य मण्डल 'सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट' के अनुसार यह एक र्वजनिक रजिस्टर्ड संस्था है।

२—हिन्दी में ऊँचे दरजे का राष्ट्रीय, सामाजिक एवं नैतिक साहित्य सस्ते से सस्ते मूल्य ं प्रकाशित करना और इसी प्रकार की पुस्तकों का प्रचार करना इसका उद्देश्य है।

३—उपरोक्त उद्देश्य से सन् १६२५ में अजमेर में सर्वश्री जमनालाल बजाज, यामदास बिड़ला, हरिभाऊ उपाध्याय, महावीरप्रसाद पोद्दार, जीतमल लूणिया आदि ज्जनों ने इसकी स्थापना की।

४—१६३४ में 'मण्डल' का कार्यालय अजमेर से दिल्ली आगया और अब मण्डल ा प्रधान कार्यालय कनाट सर्कस, नई दिल्ली में है। लखनऊ, इन्दौर तथा दिल्ली में उसकी ायें हैं। आदर्श साहित्य मन्दिर ब्रह्मपुरी अजमेर, साहित्यनिकेतन कानपुर, और दक्षिण रत हिन्दी प्रचार सभा, मदरास अपने स्थानों के लिए सोल एजेण्ट हैं।

५—'मण्डल' से निम्नलिखित मालाओं में पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं—

(१) **सर्वोदय साहित्य माला**—इस माला में नीचे की नं० २, ३, ४ मालाओं ं तथा राष्ट्रीय उत्थान में सहायक खास-खास पुस्तकें निकलती हैं।

(२) **लोक साहित्य माला**—इसमें साधारण जनता के काम की सब विषयों पर नवर्द्धक और विचारोत्तेजक पुस्तकें निकलती हैं।

(३) **गाँधी साहित्य माला**—इसमें गाँधीजी की पुस्तकें निकलती हैं।

(४) **टाल्स्टाय ग्रंथावलि**—इसमें टाल्स्टाय के चुने हुए ग्रंथ प्रकाशित होते हैं।

(५) **नवजीवन माला**—लोकोपयोगी छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तकें इस ला में निकलती हैं।

(६) **सामयिक साहित्य माला**—इसमें संसार तथा हिन्दुस्तान के सामयिक प्रश्नों समस्याओं पर पुस्तकें निकलती हैं।

(७) **बाल साहित्य माला**—इसमें बालोपयोगी पुस्तकें निकलती हैं।

(८) **विविध प्रकाशन**—इसमें वे पुस्तकें निकलती हैं जो उपरोक्त मालाओं में न ती हों।

(९) इसके अलावा 'मण्डल' दूसरों की अपने उद्देश्यों के अनुकूल पुस्तकों की सोल जेंसी भी लेता है।

६—ऊपर लिखी सब मालाओं तथा सोल एजेंसी के अन्तर्गत मण्डल से अबतक भग १४० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं; जिसमें अधिकांश के दो से लगाकर सात-सात करण तक हो चुके हैं। यह मण्डल की पुस्तकों के सर्वप्रिय होने का जबर्दस्त प्रमाण है।

७—'मंडल' से 'जीवन साहित्य' नामक एक मासिक पत्र भी निकलना शुरू हुआ है। हिन्दी में साहित्य का जीवन के साथ मेल करने तथा सद्विचार और सद्ग्रन्थों के चार के उद्देश्य से यह निकाला गया है। इसका मूल्य २) है; पर मण्डल के ग्राहकों से) लिया जाता है। मण्डल के ग्राहकों के लिए इसे खरीदना जरूरी हो जाता है।

८—मण्डल से महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य तथा डॉ० पट्टाभि सीतारामैया-जैसे महान् नेता, टाल्स्टाय, ह्यूगो, मोटले, क्रोपाटकिन, केम्पिस, मार्डेन, मैक्स्विनी, खलील जिब्रान जैसे दुनिया के विचारकों तथा डा० भगवान्दास, विनोबा, काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला, स्व० रामदास गौड़, हरिभाऊ उपाध्याय, वियोगी हरि, वामन मल्हार जोशी जैसे भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध लेखकों की रचनायें प्रकाशित हुई हैं।

९—मण्डल के संचालकों में भारतवर्ष के निम्नलिखित सुप्रसिद्ध लोकनेता, व्यवसायी, साहित्यसेवी और कार्यकर्त्ता हैं :—

सर्वश्री घनश्यामदास बिड़ला नई दिल्ली, अध्यक्ष बाबू राजेन्द्रप्रसाद पटना, जमनालाल बजाज वर्धा, काका कालेलकर वर्धा, वियोगी हरि दिल्ली, हरिभाऊ उपाध्याय अजमेर, पारसनाथसिंह कलकत्ता, देवदास गांधी नई दिल्ली, महावीरप्रसाद पोद्दार गोरखपुर; जीतमल लूणिया अजमेर, मार्तण्ड उपाध्याय नई दिल्ली।

१०—'मण्डल' की सब शाखाओं की दुकानों में हिन्दी-साहित्य की सभी विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकें हमेशा मिलती हैं।

११—संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत, बिहार, राजस्थान तथा पंजाब के खादी-भण्डारों पर भी मण्डल की पुस्तकें मण्डल के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में मिल सकती है।

पुस्तकें मँगाने के नियम

१. स्थायी ग्राहकों के लिए—

१—एक रुपया प्रवेश-फीस देने से मण्डल के स्थायी ग्राहक हमेशा के लिए बन सकते हैं। स्थायी ग्राहकों को मण्डल से अबतक के प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ **पौने मूल्य में** मिलते हैं। प्रवेश-फीस का रुपया वापस नहीं लौटाया जाता है और न किसी हिसाब में मुजरा दिया जाता है।

२—स्थायी ग्राहकों को मण्डल के प्रकाशनों की **एक-एक प्रति ही** पौने मूल्य में मिलेगी। एक से ज्यादा लेने पर चौथाई कमीशन के बजाय दो आना रुपया कमीशन दिया जायगा।

३—'मंडल' के स्थायी ग्राहकों को **प्रतिवर्ष कमीशन काटकर पाँच रुपये की मण्डल से प्रकाशित पुस्तकें** अवश्य खरीदनी होंगी। एक साल न खरीदने पर दूसरे साल उनका नाम ग्राहक-श्रेणी से अलग किया जा सकेगा; पर खास हालतों में रियायत करने का अधिकार मंत्री को रहेगा।

४—जब नयी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं तो पहले उनका विवरण और मूल्य आदि का सूचना-पत्र स्थायी ग्राहकों के पास भेज दिया जाता है। (अब चूँकि 'जीवन-साहित्य' मण्डल का मुखपत्र निकल रहा है अतः यह सूचना इसी के द्वारा दी जाया करेगी। अतः अच्छा हो कि 'मण्डल' के सब ग्राहक उसके ग्राहक बन जायँ। ऐसा हो जाने से स्थायी ग्राहकों को मण्डल की पुस्तकों की सूचना जल्दी मिल जाया करेगी।)

ग्राहकों को चाहिए कि सूचना मिलते ही यदि उन्हें पुस्तकें मँगाना हो तो **पुस्तकें पसन्द करके विवरण-पत्र के साथ जानेवाले कार्ड पर अपना आर्डर लिखकर भेज दें। यदि पुस्तकें न लेना चाहें तो भी तुरन्त ही उसी कार्ड पर अपनी इनकारी भेज दें। उसे अधिक दिन रोकें नहीं।**

५—स्थायी ग्राहक जब कभी पत्र-व्यवहार करें तो उन्हें चाहिए कि वे अपना **ग्राहक-नम्बर अवश्य लिख दिया करें,** जिससे उनके आर्डर पर कमीशन काटने में तथा दूसरी कार्रवाई करने में हमें सुविधा हो।

६—दूसरे प्रकाशकों की पुस्तकें जो मण्डल की दिल्ली, लखनऊ तथा इन्दौर की दुकानों में

बिक्री के लिए रहती हैं, उनपर साधारणतः मण्डल के स्थायी ग्राहकों को ६¼%, १२½% और [illegible]% तक कमीशन दिया जायगा।

२. साधारण ग्राहकों के लिए—

७—साधारण ग्राहकों को मण्डल की १) से ५) तक की पुस्तकों पर एक आना रुपया और ५) से १०) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया और १०) से ऊपर तीन आना रुपया कमीशन दिया जायगा। बाहरी पुस्तकों पर एक आना रुपया और दो आना रुपया तक कमीशन दिया जायगा। ज्यादा कमीशन पाने के लिए स्थायी ग्राहक बन जाना ही अच्छा उपाय है।

३. अन्य नियम

८—१०) से अधिक या रेल से माल मँगाने पर जिसका आर्डर हो उसका **एक-चौथाई दाम** पेशगी भेजना चाहिए। बिना पेशगी रुपया आये माल नहीं भेजा जायगा।

९—पत्र-व्यवहार हिन्दी में ही करना चाहिए और साफ़ लिखा होना चाहिए। रेलसे माल मँगाना हो तो रेलवे **स्टेशन का नाम अंग्रेजी के ब्लॉक** अक्षरों में (A. B. C.) साफ़ लिखना चाहिए।

१०—२) रु० से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

११—ग्राहकों के पास वी० पी० पहुँचने पर, उनको हमारे हिसाब में अगर कोई भूल मालूम हो तो वी० पी० छुड़ाकर भूल की सूचना हमें दे दें। उनका पत्र आते ही भल सुधार दी जायगी। थोड़ी-सी भूल के लिए वी० पी० लौटा देना ठीक नहीं है। इससे आपकी ही हानि होती है; क्योंकि 'मण्डल' आपकी संस्था है।

१२—पहले आर्डर देकर फिर उसे वापस कर देना ठीक नहीं है। यदि भूल से या किसी कारणवश ऐसा हो जाय तो ग्राहक को चाहिए कि 'मण्डल' की जो पोस्टेज-हानि हुई हो, उसे भेज दें और पुस्तकें फिर भेजने को लिखें।

१३—आर्डर भेजते समय इस बात का भी खुलासा कर देना चाहिए कि जो पुस्तकें स्टॉक में न हों, उन्हें न भेजें या तैयार होने पर भेजें या जो हों वे ही भेजदें, आदि।

४. 'जीवन-साहित्य' के नियम—

१४—'जीवन-साहित्य' का वार्षिक मूल्य २) है पर 'मण्डल' के ग्राहकों से आधा मूल्य यानी १) लिया जाता है। जो सज्जन २) देकर जीवन साहित्य के ग्राहक बनते हैं उनको मण्डल की पुस्तकें जबतक वह जी० सा० का ग्राहक है तब तक पौने मूल्य में मिला करेंगी।

१५. जी० सा० के विस्तृत नियम पृष्ठ १६ में दिये गये हैं।

१६—इससे पूर्व प्रकाशित सभी नियम रद्द किये जाते हैं। इनमें भी समय-समय पर रद्दोबदल करने का अधिकार मंत्री को है।

—मंत्री

हाथ-काग़ज की स्टेशनरी

पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि 'मण्डल' के प्रधान कार्यालय तथा उसकी तीनों शाखाओं में हाथ के काग़ज के लेटर हेड, लिफाफे, कार्ड आदि बिकरी के लिए रखे गये हैं। कई साइज़ों में तथा कई तरह के मेल खाने वाले रंगों में लिफाफे और चिट्ठी लिखने के काग़ज मिलते हैं। ।) के टिकट भेजकर नमूना मँगाइए।

प्रधान कार्यालय में 'लेटर हेड' छपाने का भी प्रबंध है। लिखें—

व्यवस्थापक,
सस्ता साहित्य-मंडल,
कनाट सर्कस, नई दिल्ली.

सस्ता साहित्य मण्डल : 'सर्वोदय साहित्यमाला' के प्रकाशन

[×चिन्हवाली पुस्तकें अप्राप्य हैं। अप्राप्य पुस्तकें मँगाने का कष्ट न करें।]

१. **दिव्य जीवन** : स्वेट मार्डेन की 'The Miracles of Right Thought' नामक पुस्तक का अनुवाद। जीवन की कठिन समस्याओं से निराश युवकों के लिए, यह पुस्तक संजीवनी विद्या के समान है। उत्साह-वर्द्धक और ओजपूर्ण। ।=)

२. **जीवन-साहित्य** : काका कालेलकर के शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, राजनीति आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर लिखे निबन्ध। १)

३. **तामिल वेद** : दक्षिण के अछूत महात्मा तिरुवल्लुवर का उच्च कोटि की नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक शिक्षाओं से भरा हुआ ग्रन्थ। भूमिका-लेखक श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य। ।।।)

४. **भारत में व्यसन** और **व्यभिचार** : (ले० बैजनाथ महोदय) इसमें तथ्यों तथा आँकड़ों से यह बताया है कि भारतवर्ष में शराब, भाँग, गाँजा, अफीम आदि दुर्व्यसन कैसे फैले तथा उनसे भारतवर्ष की जनता को क्या हानियाँ हुई और हो रही हैं; व्यभिचार के पाप से भारतवासी किस प्रकार ग्रसित हो रहे हैं और किस प्रकार हम इन दुर्गुणों के पंजों से निकल सकते हैं। ।।।=)

×५. **सामाजिक कुरीतियाँ** : (टाल्स्टाय) [जब्त : अप्राप्य] ।।।)

६. **भारत के स्त्री-रत्न** : इस पुस्तक में भारतवर्ष की लगभग सभी प्रसिद्ध एवं पूजनीय देवियों की मनोहर तथा पवित्र जीवन-कथायें लिखी गयी हैं। बहनें इन्हें पढ़ें तथा अपने पवित्र और गौरवशाली भूतकाल की झाँकी देखकर स्वयं को आदर्श स्त्री-रत्न बनावें। तीन भागों में। चौथा भाग तैयार हो रहा है। ३)

[तीसरा भाग अप्राप्य है]

×७. **अनोखा** : (विक्टर ह्यूगो) [अ०] १।=)

८. **ब्रह्मचर्य-विज्ञान** : (जगन्नारायणदेव शर्मा) इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य की महिमा, उसके पालन की विधि, उसके लाभ आदि बातें बहुत अच्छे ढंग से बतायी गयी हैं। पुस्तक में वेद, उपनिषद्, पुराण आदि सद्ग्रन्थों के शुभ वचनों का बहुत अच्छा संग्रह है। ।।।=)

९. **यूरोप का इतिहास** : (रामकिशोर शर्मा) यह राष्ट्रीयता, आत्मबलिदान तथा आज़ादी का इतिहास है। हम भारतीयों को यह इतिहास ज़रूर पढ़ना चाहिए। २)

१०. **समाज-विज्ञान** : (संक्षिप्त संस्करण ले० चन्द्रराज भंडारी) समाज-रचना, उसके विकास तथा निर्माण पर इसमें बहुत अच्छी तरह विचार किया गया है। समाजशास्त्र पर हिन्दी की मौलिक पुस्तक ।।।)

×११. **खद्दर का संपत्ति-शास्त्र** : (ग्रेग) [अप्राप्य] ।।।≡)

×१२. **गोरों का प्रभुत्व** : [अप्राप्य] ।।।=)

×१३. **चीन की आवाज़** : [अप्राप्य] ।-)

×१४. **दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह** : (महात्मा गांधी) सत्याग्रह की उत्पत्ति तथा उसके प्रयोग का खुद गांधीजी द्वारा लिखा इतिहास पढ़ें कि किस प्रकार बहादुरी से इस शस्त्र द्वारा अफ्रीकावासियों ने अपने अधिकारों की बिना दूसरों को तकलीफ़ पहुँचाते हुए रक्षा की। १)

१५. **विजयी बारडोली** : [अप्राप्य] २)

१६. **अनीति की राह पर** : संयम, इंद्रिय-निग्रह तथा ब्रह्मचर्य पर गांधीजी की यह कृति अनुपम और सर्वश्रेष्ठ है। ।।≡)

१७. **सीता की अग्नि-परीक्षा** : (कालीप्रसन्न घोष) लंका-विजय के बाद सीताजी की अग्नि-शुद्धि का यह वैज्ञानिक विश्लेषण है। विज्ञान का हवाला देकर यह बताया गया है कि सीता की अग्नि-परीक्षा की घटना सच्ची है। ।-)

१८. **कन्या-शिक्षा** : स्व० चन्द्रशेखर शास्त्री ने इसमें बिल्कुल सरल ढंग से, शुरू से लेकर विवाह के बाद तक के कन्याओं के जीवन तथा उनके कर्तव्यों की चर्चा प्रश्नोत्तर के रूप में बड़े

न्दर ढंग से की है। कन्याओं के सीखने योग्य सी बातें इसमें आ गयी हैं। ।)

१९. कर्मयोग। अश्विनीकुमार दत्त की यह पुस्तक पढ़ने से पाठक 'कर्मयोग' के संसार में पा जाते हैं और उनको पारमार्थिक सुख का अनुभव होने लगता है। ।=)

२०. कलवार की करतूत : टॉल्स्टॉय की रल भाषा में शराब के आविष्कार की मनोरंजक और शिक्षाप्रद कहानी। =)

२१. व्यावहारिक सभ्यता : बच्चों, बूढ़ों तथा अवस्थाप्राप्त लोगों के लिए रोज़ के व्यवहार में आनेवाली शिक्षाओं की पोथी। रंजक, शिक्षाप्रद तथा ज्ञानप्रद। ।।)

२२. अँधेरे में उजाला : टॉल्स्टॉय के 'Light Shines in the Darkness' नामक नाटक का अनुवाद। इस नाटक में टॉल्स्टॉय ने अपने जीवन की छाया अंकित की है। यह उनके मनोभावों और हृदय-मंथन की अनुपम कहानी है। ।।)

×२३. स्वामीजी का बलिदान : (ह०उ०) [अप्राप्य] ।-)

×२४. हमारे ज़माने की गुलामी : (टॉल्स्टॉय) [जब्त : अप्राप्य] ।)

२५. स्त्री और पुरुष। संयम तथा विषयों पर टॉल्स्टॉय की यह पुस्तक बहुत महत्वपूर्ण है। स्त्रियों को अपनी इच्छा-पूर्ति का साधन समझनेवाले इसे पढ़ें और समझें कि स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध भोग-विलास का नहीं; बल्कि एक पवित्र उद्देश्य के लिए किया गया एक पवित्र बन्धन है। ।।)

२६. सफ़ाई : घर, गाँव तथा शरीर की सफ़ाई रखने आदि के बारे में उत्तम पुस्तक। ।=)

२७. क्या करें? टॉल्स्टॉय की सुप्रसिद्ध 'What to do ?' का अनुवाद। गरीबों और पीड़ितों की समस्यायें और उनका हल। यह नहीं, बल्कि समभावी हृदय का मंथन है १)

×२८. हाथ की कताई-बुनाई : [अप्राप्य] ॥=)

×२९. आत्मोपदेश : [अप्राप्य] ।)

×३०. यथार्थ आदर्श जीवन : [अप्राप्य] ॥-)

३१. जब अंग्रेज़ नहीं आये थे। (देखिए नवजीवन माला) ≡)

×३२. गंगा गोविन्दसिंह : [अप्राप्य] ॥=)

३३. श्रीरामचरित्र : श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य लिखित रामायण की कहानी। करुण और मधुर। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी का जीवन-चरित्र। १।)

×३४. आश्रम-हरिणी : (वामन मल्हार जोशी) [अप्राप्य] ।)

३५. हिन्दी-मराठी-कोष : २)

×३६. स्वाधीनता के सिद्धान्त : [अप्राप्य] ।।)

३७. महान् मातृत्व की ओर : (नाथूराम शुक्ल) इस पुस्तक में मातृत्व की ज़िम्मेदारी, उसकी गुरुता और आदर्श का दिग्दर्शन है। स्त्री-उपयोगी उत्तम और दिलचस्प पुस्तक। ॥=)

३८. शिवाजी की योग्यता : (तामस्कर) छत्रपति शिवाजी का चरित्र-विश्लेषण। उनकी शासन-प्रणाली का तर्कपूर्ण अध्ययन। ।=)

३९. तरंगित हृदय : आचार्य श्री अभयदेवजी के विचार-तरंगों का सुन्दर संग्रह। स्व० स्वामी श्रद्धानन्द के आशीर्वाद सहित। ।।)

४०—हालैण्ड की राज्यक्रान्ति [नरमेध] अंग्रेजी लेखक मोटले की 'Rise of the Dutch Republic' के आधार पर श्री चन्द्रभाल जौहरी का लिखा हुआ डच-प्रजा के आत्मयज्ञ का और रोमांचकारी इतिहास। १।।)

४१. दुखी दुनिया : ग़रीब और पीड़ित मानवी दुनिया के करुण चित्र। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य की सच्ची घटनाओं पर लिखी-कहानियाँ। मधुर, करुण और सुन्दर। ।=)

४२. जिन्दा लाश। टॉल्स्टॉय के 'The-

Living Corpse' नामक नाटक का अनुवाद । टॉल्स्टॉय के सब नाटकों में यह बड़ा ही करुण और मर्मस्पर्शी है । ॥)

४३. **आत्म-कथा :** (महात्मा गांधी) संसार के साहित्य का यह एक उज्ज्वल रत्न है । उपनिषदों की भाँति पवित्र और उपन्यासों की भाँति रोचक । चरित्र को निर्मल और मन को ऊँचा उठानेवाला । हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा किया गया प्रामाणिक अनुवाद । नवीन और सस्ता संस्करण । साधारण १) विशेष संस्करण १।)

×४४. **जब अंग्रेज़ आये :** [ज़ब्त : अप्राप्य] १।=)

४५. **जीवन-विकास :** डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त को विशद रूप से समझानेवाली हिन्दी में यह एक ही पुस्तक है । १।)

४६. **किसानों का बिगुल :** [ज़ब्त : अप्राप्य] =)

४७. **फाँसी :** विक्टर ह्यूगो लिखित 'Sentence to Death' नामक उपन्यास का अनुवाद । फाँसी की सजा पाये हुए एक युवक के मनोभावों का चित्रण । बेबस और करुण हृदय की झाँकी । ।=)

४८. **अनासक्तियोग : गीता-बोध ।** (देखिए नवजीवन माला) ।-)

×४९. **स्वर्ण-विहान :** (हरिकृष्ण प्रेमी) [ज़ब्त : अप्राप्य] ।=)

५०. **मराठों का उत्थान** और **पतन :** (गोपाल दामोदर तामस्कर) मराठा साम्राज्य का विस्तृत और सच्चा इतिहास । मराठी भाषा में भी मराठों का ऐसा सच्चा और बड़ा इतिहास नहीं है, ऐसा महाराष्ट्र के अनेक विद्वान् और नेता मानते हैं । २॥)

५१. **भाई के पत्र :** (रामनाथ 'सुमन') स्त्री-जीवन पर प्रकाश डालनेवाली; उनकी घरेलू एवं रोज़मर्रा की कठिनाई में पथ-प्रदर्शक; बहनों के हाथों में दिये जाने योग्य एक ही पुस्तक । नवीन और सस्ता संस्करण । १)

×५२. **स्वगत :** (हरिभाऊ उपाध्याय) [अप्राप्य] ।=)

×५३. **युगधर्म :** (हरिभाऊ उपाध्याय) [ज़ब्त : अप्राप्य] १=)

५४. **स्त्री-समस्या :** (मुकुटविहारी वर्मा) नारी-जीवन की जटिल समस्याओं का गम्भीर अध्ययन । स्त्री-आन्दोलनके इतिहास सहित स्त्रियों की समस्या पर यह अच्छी और संग्रह करने योग्य 'रेफ़रेन्स बुक' है । सुन्दर जिल्द । १॥)

×५५. **विदेशी कपड़ का मुक़ाबिला :** [अप्राप्य] ॥=)

५६. **चित्रपट :** प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा, एम० ए० के गद्य-गीतों का संग्रह । भावनामय, करुण और मधुर । ।=)

×५७. **राष्ट्रवाणी :** (गांधीजी) [अप्राप्य] ॥=)

५८. **इंग्लैण्ड में महात्माजी :** (महादेव देसाई) महात्माजी की दूसरी गोलमेज़ परिषद् के समय की इंग्लैण्ड की यात्रा का सुन्दर, सरस और मज़ेदार वर्णन । हिन्दी में अपने ढंग का सर्वोत्तम यात्रा-वृत्तान्त । सस्ता और नवीन संस्करण । ॥)

५९. **रोटी का सवाल** अथवा **भावी क्रान्ति का संगठन :** रूस के मशहूर क्रांतिकारी लेखक प्रिंस क्रोपाटकिन की अमर कृति 'Conquest of Bread' का सरल अनुवाद । अराजक समाजवाद का सुन्दर, सरल और सुबोध विवेचन । सस्ता नया संस्करण । ॥)

६०. **दैवी-सम्पद् :** उत्तम नैतिक एवं धार्मिक पुस्तक । 'दैवी-सम्पद् से मनुष्य को मोक्ष होता है ।' गीता की इस उक्ति का सुन्दर विवेचन । मनुष्य को मोक्ष का रास्ता बतानेवाली पुस्तक । ।=)

६१. **जीवन-सूत्र :** अंग्रेज़ी में थॉमस केम्पिस लिखित सर्व-प्रसिद्ध पुस्तक 'Imitation of Christ' का अनुवाद । जीवन को उन्नत और विचारों को सात्विक बनानेवाली पोथी । अंग्रेज़ी में इसको बाइबिल के समान माना जाता है । ॥)

६२. **हमारा कलंक :** अस्पृश्यता-निवारण पर महात्माजी के विचारों एवं लेखों का संग्रह,

के महान् उपवास की कहानी । महात्मा गांधी के आशीर्वाद सहित । ।।=)

नोट—इस पुस्तक का अंग्रेज़ी संस्करण भी 'Bleeding Wound' के नाम से मण्डल से निकला है। मूल्य १।।), यह 'मण्डल' के ग्राहकों को ।।।) में मिलेगा ।

६३. बुद्बुद् : (हरिभाऊ उपाध्याय) ऊँचे आदर्शों से जीवन का मेल मिलानेवाले युवकों के लिए मननीय पुस्तक । ।।)

६४. संघर्ष या सहयोग ? : क्रोपाटकिन की 'Mutual Aid' नामक पुस्तक का अनुवाद । इसमें बताया है कि पशु-पक्षियों से लेकर मनुष्य तक सबके जीवन का आधार सहयोग है, एकता है, संघर्ष नहीं । १।।)

६५. गांधी-विचार दोहन : (किशोरलाल मशरूवाला) इसमें महात्माजी के समस्त राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक विचारों का बड़ा सुंदर संकलन और दोहन किया गया है। महात्माजी की सम्मति सहित नवीन संस्करण ।।।)

x६६. एशिया की क्रांति : (सत्यनारायण) [ः अप्राप्य] १।।।)

६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता : (रामनाथ सुमन) इस सुन्दर पुस्तक में राष्ट्रनिर्माताओं के जीवन-परिचय और उनके जीवन की झलक दी गई है। १ ॥)

x६८. स्वतंत्रता की ओर : (हरिभाऊ उपाध्याय) [अप्राप्य] १।।)

६९. आगे बढ़ो : स्वेट् मार्डेन के 'Pushing to the Front' का संक्षिप्त अनुवाद । लड़ाई में पड़े युवकों को सच्चे साथी के समान काम बतानेवाली पुस्तक । ।।)

७०. बुद्ध-वाणी : (वियोगी हरि) भगवान् बुद्ध के चुने हुए वचनों का विषयानुक्रम से किया गया संकलन । बौद्ध-धर्म के विषय में हिन्दी में मिलनेवाले सब ग्रन्थों का सार-तत्त्व । ।।=)

७१. कांग्रेस का इतिहास : डॉ० पट्टाभि सीतारामैया की लिखी तथा कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती पर प्रकाशित अंग्रेज़ी पुस्तक 'History of the Congress' का हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा संपादित प्रामाणिक अनुवाद । २।।)

नोट—सन् १९३५ से अप्रैल १९३९ तक की घटनाओं का परिशिष्ट । ।-)

७२. हमारे राष्ट्रपति : (सत्यदेव विद्यालंकार) कांग्रेस के पहले अधिवेशन से अवतक के तमाम सभापतियों के जीवन-परिचय । भूमिका राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रबाबू ने लिखी है । सभापतियों के चित्रों के साथ । १)

७३. मेरी कहानी : पं० जवाहरलाल नेहरू की आत्म-कथा । हिन्दी अनुवाद और संपादन हरिभाऊ उपाध्याय ने किया है । वर्तमान समय की अद्वितीय पुस्तक । नवीन संस्करण । ३)

७४. विश्व-इतिहास की झलक : पण्डित जवाहरलालजी के अपनी पुत्री के नाम लिखे पत्रों का संग्रह । इसमें उन्होंने सारी दुनिया के इतिहास की झाँकी बड़ी सरलता से करायी है । ८)

नोट—दुनिया का रंगमंच १९३३ से १९३८तक का झलक का परिशिष्ट । =)

७५. हमारी पुत्रियाँ कैसी हों ? इसमें यह बताया गया है कि हम अपनी पुत्रियों को कैसी बनावें कि जिससे वे समाज और राष्ट्र का निर्माण कर सकें । लड़कियों तथा माता-पिता दोनों के पढ़ने योग्य । ।।)

७६. नया शासन-विधान [प्रान्तीय स्वराज्य]—(हरिश्चंद्र गोयल) इसमें बताया गया है कि किस प्रकार इस नये शासन-विधान में हमें कुछ भी अधिकार नहीं दिये गये हैं । इस विषय की ऐसी पुस्तक अभीतक हिन्दी में नहीं लिखी गई है । ।।।)

७७. (१) हमारे गाँवों की कहानी : (स्व० रामदास गौड़) इसे पढ़कर तो आप सिहर उठेंगे कि हमारे अन्नदाताओं ने जिनको मेहमान समझा और उनका इतना आदर-सत्कार किया, वे कितने कृतघ्न निकले और उनको कितना नीचे गिरा दिया ! ।।)

७८. (२-६) महाभारत के पात्र : (दो भाग) (आचार्य नानाभाई) महाभारत के प्रधान-प्रधान पात्रों का सरस, परिचय । प्रत्येक भाग का १)

७९. गाँवों का सुधार और संगठन (स्व० रामदास गौड़) हमारे गाँवों के सुधार और संगठन की समस्या पर हिन्दी में यह बहुत महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक पुस्तक है। १)

८०. (३). सन्तवाणी (वियोगी हरि) सुप्रसिद्ध संतों—कबीर, नानक, सूर, तुलसी, रैदास, दादू आदि की मुख्य-मुख्य वाणियाँ टीका सहित। ।।)

८१. विनाश या इलाज ? (म्यूरियल लेस्टर) लेखिका ने अपने अनुभव और ज्ञान से यह साबित किया है कि दुनिया जो हत्या व युद्ध के संकट से आज त्रस्त हो रही है वह सत्य और अहिंसा से ही मुक्ति पा सकती है और दूसरा कोई रास्ता कारगर नहीं हो सकता। ।।।)

८२. (४) अंग्रेज़ी राज में हमारी दशा : (ज़ेड० ए० अहमद) इसमें बताया गया है कि अंग्रेज़ों ने अपनी आर्थिक नीति से किस प्रकार भारतवासियों को चूसा और उन्हें नि:सत्व बना दिया। पुस्तक बड़ी रोचक है। ।।)

८३. (५) लोक-जीवन : काका कालेलकर के ग्राम-जीवन तथा ग्रामीण लोगों को रास्ता दिखानेवाले और उनके अज्ञान को दूर करनेवाले सरल और सुबोध निबन्धों का संग्रह। ।।)

८४. गीता-मंथन : (किशोरलाल मश्रुवाला) गीता का सरल सुबोध और सरस भावानुवाद। अबोध पाठक भी गीता के तत्त्व को आसानी से समझ सकते हैं। उपन्यासों की भाँति रोचक और सरल। १।।)

८५. (६) राजनीति-प्रवेशिका : प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान् हेरल्ड लास्की की 'Introduction to Politics' का अनुवाद मूल्य ।।)

८६. (७) हमारे अधिकार और कर्तव्य : (कृष्णचन्द्र विद्यालंकार) इस पुस्तक में लेखक ने बड़ी सरल भाषा में बताया है कि नागरिकों के क्या अधिकार होते हैं और देश, समाज और राष्ट्र के प्रति उनके क्या कर्तव्य हैं ? ।।)

८७. गांधीवाद : समाजवाद : इसमें इन दोनों विचार-धाराओं के प्रधान विचारकों, जैसे श्री किशोरलालभाई, डॉ० पट्टाभि सीतारामैया, कृपालानीजी, हरिभाऊजी, सम्पूर्णानंदजी, जयप्रकाशनारायण, एम० एन० रॉय आदि ने अपने विचार बताये हैं। दोनों वादों का तुलनात्मक अध्ययन है। काका कालेलकर के समन्वयात्मक निबंध सहित— ।।।)

८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग : इसमें महात्माजी के आजतक के इस विषय के चुने हुए लेखों का संग्रह है। इसमें महात्माजी की स्वदेशी की नयी व्याख्या पढ़िए। ।।)

८९. (८) सुगम चिकित्सा : श्री चतुरसेन शास्त्री ने इसमें सरल भाषा में देहात के लोगों के लिए सफ़ाई और चिकित्सा सम्बन्धी बातें बड़ी सरलता से बताई हैं। ।।)

९०. प्रेम में भगवान् : टॉल्स्टॉय की सत्रह चुनी हुई शिक्षाप्रद कहानियाँ, पृष्ठ २५०। टाल्स्टाय ग्रन्थावलि की तीसरी पुस्तक। ।।)

९१. महात्मा गांधी—(रामनाथ 'सुमन') : इसमें लेखक ने बड़े मार्मिक और कलापूर्ण ढंग से महात्माजी के जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है और उनके जीवन की झाँकियाँ दिखायी हैं। ।=)

९२. ब्रह्मचर्य : महात्माजी के ब्रह्मचर्य तथा संयम पर लिखे ताज़े लेखों का संग्रह है। पहले 'अनीति की राह पर' नामक इस विषय की पुस्तक निकल चुकी है। यह उसका दूसरा भाग ही समझिए। ।।)

९३. (१०) हमारे गाँव और किसान : चौधरी श्री मुख्तयारसिंह ने इस पुस्तक में हमारे गाँवों और किसानों की हद दर्जे की ग़रीबी का वर्णन किया है और बताया है कि गाँवों और किसानों की यह दशा कैसे सुधर सकती है। ।।)

९४. गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ : महात्मा गांधी की ७१वीं वर्षगाँठ पर समर्पित विश्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ। सम्पादक सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, सस्ता संस्करण १।) सजिल्द ३)

९५. हिन्दुस्तान की समस्यायें : पं० जवाहरलाल नेहरू के भारत की समस्याओं पर विचारपूर्ण निबन्ध। १)

९६. **जीवन-सन्देश :** सुप्रसिद्ध सीरियन कवि ख़लील जिब्रान की मशहूर पुस्तक 'The Prophet' का अनुवाद। ॥)

९७. **समन्वय :** हिन्दी के सुप्रसिद्ध विचारक और दार्शनिक विद्वान् श्री डॉ० भगवानदास के मौलिक लेखों और व्याख्यानों का उत्तम संग्रह। २)

९८. **समाजवाद : पूँजीवाद :** प्रसिद्ध अंग्रेज़ी लेखक बर्नार्ड शॉ की प्रसिद्ध पुस्तक के आधार पर लिखी। ॥)

९९. **मेरी मुक्ति की कहानी :** महर्षि टॉल्स्टॉय की आत्म-कहानी तथा उनके बचपन के संस्मरण। ॥)

१००. **खादी-मीमांसा :** खादी-विचारधारा को तर्क तथा आँकड़ों और उद्धरणों से समझानेवाली अद्वितीय पुस्तक। १॥)

१०१. **बापू :** (घनश्यामदास बिड़ला) महात्मा गांधी का अत्यन्त निकट से किया हुआ विश्लेषण, अनेक निजी रोचक तथा स्मरणीय प्रसंगों से पूर्ण-१३ सुन्दर चित्रों सहित; ॥=), सजिल्द १।), हाथ कागज़ की २)

१०२. **विनोबा और उनके विचार :** प्रथम सत्याग्रही विनोबा के विचारों को पढ़कर आप जीवन जीना जान जायेंगे। यह समझेंगे कि सफल जीवन उसीका है जिसने जीवन जीना सीखा। ॥)

१०३. **लड़खड़ाती दुनिया :** (जवाहरलाल नेहरू) आज की दुनिया की तस्वीर। देश-विदेश पर लिखे गये महत्त्वपूर्ण लेखों का सुन्दर संग्रह। भूमिका लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव। ॥)

१०४. **सेवाधर्म-सेवामार्ग :** प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता श्री कृष्णदत्त पालीवाल की सेवाधर्म पर लिखी सुन्दर पुस्तक। इसमें सेवा के क्षेत्र, सेवा के प्रकार और सेवा के तरीके पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला गया है। हमारे कर्मक्षेत्र के लिए उपयोगी पुस्तक है। १)

१ ५. **संसार की शासन प्रणालियाँ** तथा **यूरोप का वर्तमान युद्ध :** दुनिया की प्रचलित शासन प्रणालियाँ उनके संगठन तथा कार्य के साथ वर्तमान युद्ध की पृष्ठभूमि, उसकी वर्तमान गतिविधि तथा उसके होनेवाले असरों का रोचक वर्णन हैं। पुस्तक सामयिक तथा स्थायी महत्व की है। १॥)

१०६. **तीस दिन :** मालवीयजी के साथ

१०७. **युद्ध** और **अहिंसा :** (म० गांधी)

१०८ **महावीर-वाणी** (पं० बेचरदास दोशी)

'नवजीवनमाला' की पुस्तकें

१. **गीताबोध**—महात्मा गांधी द्वारा लिखा गीता का सरल तात्पर्य -)

२. **मंगल प्रभात**—महात्मा गांधी के जेल से लिखे सत्य, अहिंसा ब्रह्मचर्य आदि व्रतों पर प्रवचन। -)

३. **अनासक्तियोग**—गांधीजी द्वारा लिखी गीता की टीका—=), श्लोक सहित =), सजिल्द ।)

४. **सर्वोदय**—रस्किन के 'Unto This Last' का गांधीजी द्वारा किया गया रूपान्तर। -)

५. **नवयुवकों से दो बातें**—प्रिंस क्रोपाटकिन के 'A word to Youngmen' का अनुवाद। -)

६. **हिन्द-स्वराज**—महात्माजी की भारत की मौजूदा समस्या पर लिखी प्राचीन पुस्तक जो आज भी ताजी है। =)

७. **छूतछात की माया**- (अप्राप्य) -)

८. **किसानों का सवाल**-डॉ० ज़ेड० ए० अहमद की इस छोटी-सी पुस्तिका में भारत के ग़रीब प्रतिनिधियों-किसानों-के सवाल पर बड़ी सुन्दरता से विचार किया गया है। -)

९. **ग्राम-सेवा**—ग्राम-सेवा किस प्रकार हो—इसपर गांधीजी ने इसमें विशद प्रकाश डाला है। =)

×१०. **खादी** और **गादी की लड़ाई**—(अप्राप्य) =)

११. मधुमक्खी-पालन-- (अप्राप्य) =)

१२. गांवों का आर्थिक सवाल--गाँवों के आर्थिक प्रश्न तथा उनको हल करने की योजनाओं का इस पुस्तक में ग्राम-सेवक विद्यालय के अध्यापक श्री झवेरभाई पटेल ने संग्रह किया है =)

१३. राष्ट्रीय गायन-देशभक्ति-पूर्ण राष्ट्रीय गायनों और कविताओं का अपूर्व संग्रह । =)

१४. खादी का महत्व—श्री गुलजारीलाल नन्दा द्वारा लिखा खादी-विषयक प्रामाणिक और खादी की महत्ता और उपयोगिता बताने वाला निबन्ध । -)॥

१५. जब अँग्रेज़ नहीं आये थे—अँग्रेजों के आने के पहले की भारत की दशा का वर्णन। =)

१६. सोने की माया—श्री. किशोरलाल मशरूवाला का लिखा विनिमय और मुद्रा पर रोचक रूपक । दाम -)

सामयिक साहित्य माला

१. कांग्रेस-इतिहास (१९३५-३९)— 'कांग्रेस स्वर्ण-जयंती' से अबतक देश का राजनैतिक इतिहास इसमें दिया गया है। ।-)

२. दुनिया का रंगमंच (जवाहरलाल नेहरू) सन् १९३३ के बाद दुनिया में जो घटनायें हुई हैं उन पर पण्डित जवाहरलालजी ने अपनी विश्व-इतिहास की झलक का यह अंतिम अध्याय लिखा है। =)

३. हम कहाँ हैं? कांग्रेस की वर्तमान हालत और देश की मौजूदा समस्याओं पर पं० जवाहरलालजी के लेख। =)

४. युद्ध-संकट और भारत। वर्तमान यूरोपीय युद्ध और भारत की स्थिति पर कांग्रेस की ओर से तथा म० गांधी, राष्ट्रपति आदि द्वारा निकाले गये वक्तव्यों का संग्रह। ।)

५. सत्याग्रह : क्यों, कब और कैसे? (म. गांधी) सत्याग्रह कब, क्यों और कैसे शुरू किया जावे, इस पर महात्माजी के लेख। =)

६. राष्ट्रीय-पंचायत। भारत के अपना शासन-विधान बनाने की माँग तथा विधान-सभा 'Constituent Assembly' पर महात्माजी, पं० जवाहरलाल नेहरू, राजाजी आदि के लेख ।)

बाल साहित्य माला

१. कथा कहानी—बालोपयोगी रोचक कहानियाँ =)

२. सीख की कहानियाँ—(२ भाग) बालोपयोगी शिक्षाप्रद कहानियाँ =) =)

३. शिवाजी चरित्र—छत्रपति शिवाजी का बालोपयोगी जीवन चरित्र =)

४. देश प्रेम की कहानियाँ—इतिहास में से चुनी हुई देश प्रेम की ५ कहानियाँ =)

विविध प्रकाशन

१. पंडित मोतीलाल नेहरू—जीवन-झाँकी तथा चरित्र-परिचय। लेखक श्री रामनाथ सुमन।)

२. पंडित जवाहरलाल नेहरू—जीवन-झाँकी तथा चरित्र-परिचय। लेखक श्री सुमनजी =)

३. सप्तसरिता—भारत की सात लोकमाताओं का भक्तिपूर्वक किया हुआ उपस्थान लेखक आचार्य काका कालेलकर =)

४. चारा दाना और उसके खिलाने के उपाय—पशुपालन विषय की रोचक और वैज्ञानिक पुस्तक (परमेश्वरी प्रसाद गुप्त) =)

५. पशुओं का इलाज—पशुओं के इलाज पर अनुभूत और वैज्ञानिक पुस्तक ॥)

'सोल एजेन्सी' की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा—(श्री कन्हैयालाल मुन्शी) मुन्शी का यह ऋग्वेद कालीन उपन्यास बहुत नोहर और रोचक है। महान अगस्त्य ऋषि की लोपामुद्रा की यह जीवन कथा है १)

२. रोटी का राग—(श्री श्रीमन्नारायण वाल एम० ए०) यह रोटी का राग नये युग का राग है। महात्माजी के शब्दों में रचयिता का हुत स्पष्ट और निर्मल है।" और काका कालेलर के शब्दों में सरल संस्कारी और सहृदय ही शब्दों में श्रीमन्नारायणजी की कविता का र्णन हो सकता है। ।।)

३. फ्रांस की राज्य-क्रांति—(डॉ० सत्यतु विद्यालंकार) डॉ० सत्यकेतु यूरोप का आधुक इतिहास लिख रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसका ला भाग है। इसमें नैपोलियन तक का इतिस आया है। १।।)

४. गांधीवाद की रूपरेखा—(श्री रामनाथ मन) इस पुस्तक में सुमनजी ने सभी पहलुओं से धीवाद का विवेचन किया है और सभी दृष्टियों गांधीजी के विचारों को देखा परखा है। १)

५. पिता के पत्र पुत्री के नाम—(पंडित जवाहरलाल नेहरू) पंडितजी ने इस पुस्तक में अपनी पुत्री कुमारी इंदिरा नेहरू के नाम दुनिया के शुरू की कहानी पत्रों में लिखी है। ।।)

५. डायरी के पन्ने—(श्री घनश्यामदास बिड़ला) श्री० बिड़लाजी की डायरी के पन्ने उस समय के हैं जब वे सन् १९३१ ई० में दूसरी गोलमेज परिषद् में गांधीजी के साथ गये थे। रोचक और ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ यह इतिहास का शोध करनेवाले तथा राजनीति के विद्यार्थियों के लिए भी खास तौर से उपयोगी होंगी। अनेक चित्रों सहित १।)

७. बिखरे विचार—(ले० श्री घनश्यामदास बिड़ला) श्री बिड़लाजी के लेखों का यह संग्रह है। पुराने होते हुए भी विचारों की दृष्टि से ये लेख नये हैं और विचारणीय, मननीय और अनुकरणीय हैं। १।) २)

८. प्रलय-वीणा—(श्री सुधीन्द्र, एम. ए.) इसमें कवि की बिल्कुल नये दृष्टिकोणवाली नयी कवितायें संग्रहीत हैं। भूमिका-लेखक श्री सोहनलाल द्विवेदी के शब्दों में 'वे अतीत की काव्य-धारा के विरुद्ध एक प्रतिशोध हैं।' १)

'मण्डल' से आगे प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ

१. अहिंसा की शक्ति	(रिचर्ड बी. ग्रेग)
२. उद्देश्य और साधन	(आल्डस हक्सले)
३. हिन्दूधर्म की आख्यायिकायें	(आचार्य नानाभाई भट्ट)
४. रूमी की कहानियाँ	(चौ० शिवनाथसिंह शांडिल्य)
५. हमारी आज़ादी की लड़ाई	(हरिभाऊ उपाध्याय)
६. जीवन के बारे में—	(टॉल्स्टॉय)
७. मालिक और मज़दूर	"
८. विद्यार्थी धर्म	(महात्मा गांधी)
९. यंत्र की मर्यादा	(नरहरि परीख)
१०. हिन्दुस्तान की ग़रीबी	(दादाभाई नौरोजी)
११. हमारे आर्थिक प्रश्न	(छगनलाल जोशी)

प्रचारित पुस्तकें

१. मेरा देश—इसमें भगवत्प्रसाद सनातन की किशोर बालोपयोगी सुन्दर और मनोहर कवितायें हैं। पुस्तक बहुत दिलचस्प है। ।)

२. आर्थिक संगठन—दुनिया के मौजूदा पूंजीवादी संगठन की जगह किस प्रकार का संगठन हो जिससे ग़रीब जनता को आराम मिले और

लाभ पहुँचे, यही इस पुस्तक का विषय है ।।।)

३. **रूपान्तर**—श्री जगन्नाथ प्रसाद की लिखी सरल और हृदयग्राही कविताओं का संग्रह । ।।)

४. **पौराणिक कथायें**—इस ग्रन्थ में भिन्न-भिन्न पुराणों से संकलित प्राचीन भारत के महान् पुरुषों तथा सती-देवियों के जीवन की विशेष-विशेष घटनाओं का वर्णन है । १।।)

५. **आश्रम-भजनावलि**—महात्मा गांधी के आश्रम में प्रार्थना के समय गाये जानेवाले भजनों का सुन्दर संग्रह =)।।

७. **पाक चन्द्रिका**—भोजन बनाने आदि की शिक्षा देनेवाली उपादेय पुस्तक— ४)

८. **तुलसीदास और उनकी कविता**—पं० रामनरेशजी त्रिपाठी का लिखा खोजपूर्ण मौलिक ग्रंथ—दो भाग—— ४।।)

९. **रेल से माल भेजने का कायदा** (वाया गुड्स) इसमें भारतवर्ष की समस्त रेलवे लाइनों के नियम दिये हुए हैं । व्यापारियों के बड़े काम की चीज है । पुस्तकालयों व संस्थाओं के संग्रह-योग्य पुस्तक है । मू० ३)

१०. **हुगली का इमामबाडा** (ले० स्वर्ण-कुमारी देवी) ऐतिहासिक, शिक्षाप्रद उपन्यास । सचित्र मूल्य १।।।)

११. **भगवान महावीर** (सचित्र व सजिल्द) अहिंसा धर्म के प्रचारक एवं जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का प्रमाणिक जीवन । मूल्य ४।।) आर्टपेपर पर स्पेशल राजसंस्करण १)

१२. **हिन्दू विधवा या सती गौरव** (मौलिक उपन्यास) एक विधवा स्त्री संसार के प्रलोभनों में न फँसकर अपने जीवन को किस तरह सेवामय बनाती है इसका सुन्दर वर्णन मू० १)

१३. **गोरा** (रवीन्द्र बाबू का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास) मूल्य २।।) सजिल्द ३)

१४. **ग्राम-आन्दोलन की आवश्यकता** ।=)

१५. **सचित्र कृषि-शास्त्र** १।)

१६. **शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति** (महात्मा गांधी के शिक्षा विषयक लेख-संग्रह) ।।।)

१७. **कविता-कौमुदी भाग** (१-२) संपादक
(रामनरेश त्रिपाठी) प्रत्येक का ३)
१८. **बीस कहानियाँ** २)
१९. **हिन्दुओं के व्रत और त्योहार** १।।)
२०. **हिन्दुस्तानी कोष** २)
२१. **यूरोप की कहानियाँ** २।।)
२२. **योग के आसन** (सचित्र) १)
२३. **जादू की कहानियाँ** (बालोपयोगी) ।=)
२४. **स्वप्न** (काव्य : रामनरेशजी त्रिपाठी) ।।)
२५. **मोतीचूर के लड्डू** (बालोपयोगी) ।)
२६. **बानर-संगीत** ,, ।)
२७. **मिलन** (काव्य) ।।)
२८. **किसानों की कहावतें** ।)
२९. **जयन्त** (नाटक) ।।।)
३०. **पेखन** ।)
(बालोपयोगी एकांकी नाटक)
३१. **इतिहास की कहानियाँ** ।)
३२. **शिवा-बावनी** ।)
३३. **हमारा ग्राम-साहित्य** १।)
(ग्राम साहित्य की सुन्दर पुस्तक)
३४. **सोहर** ।)
३५. **मुस्लिम सन्तों के चरित्र** ३)
३६. **हिन्दी पद्य-रचना** ।।)
३७. **मारवाड़ के मनोहर गीत** ।)
३८. **वफाती चाचा** ।।)
३९. **राक्षसों की कहानियाँ** (बालपयोगी) ।=)
।।)
४०. **तरकस** ।।।)
४१. **प्रेमलोक** ।।)
४२. **मानसी** (कविता-संग्रह) ३)
४३. **गुपचुप कहानियाँ** (बालोपयोगी) १।)
४४. **पाकेट डिक्शनरी** ।।)
४५. **पथिक** (काव्य) ।।)
४६. **तूणीर**
४७. **बालकथा-कहानी भाग** १-१७ बालोपयोगी
उत्तम कहानी संग्रह (सम्पादक रामनरेश ।=)
त्रिपाठी) दाम प्रत्येक ।।।)
४८. **मोहन-माला** (बालोपयोगी) ।=)
४९. **हंसू की हिम्मत** ,, ।।)
५०. **बनाओ तो जानें** ,,

५१. घर का वैद्य ,, १२)
५२. परियों की कहानियाँ ,, ।=)
५३. खोजो, खोज निकालो ,, ।)
५४. उर्दू-हिन्दी कोष १)
५५. हिन्दी मुहावरा कोष १।।)
५६. हिन्दी कहावत ।)
५७. बहादुर सुन्दरी =)
५८. हिन्दी शिक्षण-विधान =)
५९. अनोखा बलिदान ।।)

हिन्दुस्तान में 'मण्डल' की पुस्तकें मिलने के स्थान

निम्न स्थानों पर 'मण्डल' की पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में मिला करेंगी

संयुक्तप्रान्त—सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ साहित्यनिकेतन, कानपुर, श्री गांधी आश्रम खादी भण्डार मुरादाबाद, इलाहाबाद, मेरठ मुज़फ्फ़रनगर, काशी, मथुरा, बरेली, देहरादून, फ़ैज़ाबाद, गोरखपुर, सहारनपुर, डिबाई, फर्रुखाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, अक़बरपुर, बस्ती, हरदोई, जौनपुर, सीतापुर, झांसी।

बिहार—चर्खासंघ खादी भंडार हाजीपुर, रांची, मधुबनी, बेतिया, हजारीबाग़, लहेरियासराय, मुज़फ्फरपुर, गया, सीतामढ़ी, पटना, डाल्टनगंज, बेगूसराय, मोतीहारी, भागलपुर, आरा, समस्तीपुर।

मध्यप्रान्त—महाराष्ट्र चर्खासंघ खादी भंडार नागपुर (सीताबर्डी), गोंदिया, जबलपुर रायपुर, खण्डवा।

राजपूताना-मध्यभारत—सस्ता साहित्य मंडल इन्दौर, आदर्श पुस्तक भण्डार अजमेर, राजस्थान चर्खा संघ खादी भंडार अजमेर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, मन्दसौर, ग्वालियर, इन्दौर, मुकुन्दगढ़, नवलगढ़, भेलसा

पंजाब—गांधी खादी-भंडार लाहौर, भिवानी, आदमपुर, गांधी सेवा आश्रम, शहादरा (लाहौर)

दिल्ली—सस्ता साहित्य मण्डल कनाट सर्कस नई दिल्ली, तथा दरीबा कलाँ, श्री गांधी आश्रम।

कलकत्ता—शुद्ध खादी भंडार, हरिसन रोड।

बम्बई-प्रान्त—'नवजीवन' कार्यालय, अहमदाबाद, और बम्बई, खादी भंडार भुसावल, खादी भंडार जलगाँव।

सिंध—खादी भंडार हैदराबाद, करांची, सक्खर।

खादी-भण्डारों के अलावा 'मण्डल' की पुस्तकें निम्न स्थानों पर भी मिलती हैं

अजमेर राजपूताना बुकहाउस आदर्श साहित्य भण्डार

इलाहाबाद हिन्दी मंदिर; साहित्य भवन लि०; छात्रहितकारी पुस्तकमाला; किताबिस्तान सरस्वती प्रेस; रामनारायण लाल

आगरा साहित्य रत्न भण्डार

कानपुर साहित्य निकेतन; प्रकाश पुस्तकालय;

भिवानी हिन्दी साहित्य भंडार

इन्दौर सस्ता साहित्य मण्डल खजूरी बाजार, सरस्वती प्रेस, सरूप ब्रदर्स

बीकानेर नवयुग ग्रंथ कुटीर

लखनऊ सस्ता साहित्य मण्डल; गंगा ग्रंथागार; सरस्वती प्रेस

बनारस सरस्वती प्रेस; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी; ज्ञानमण्डल पुस्तक-भंडार; लहरी बुकडिपो; पुस्तक भवन, भार्गव पुस्तकालय; इण्डिन बुक शॉप, विद्या भास्कर बुकडिपो

पटना नवशक्ति प्रकाशन मंदिर; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी; हिंदी साहित्य एजेन्सी; मोतीलाल बनारसीदास; एज्यूकेशनल बुक डिपो

छपरा वाणी-मंदिर
लहेरियासराय पुस्तक भण्डार;
कलकत्ता बंगाल स्टोअर्स, चौरंगी; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी; विशालभारत बुकडिपो; लहरी बुकडिपो, पुस्तक मंदिर, बंबई पुस्तक भंडार कलकत्ता पुस्तक भंडार, पुस्तक मंदिर
वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचारसमिति;प्रभुदयाल विद्यार्थी; महिलाश्रम, ग्रामसेवा मण्डल (नालवाड़ी)
बंबई हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर; भारतीय पुस्तक भण्डार; हिन्दी पुस्तक भण्डार; नवजीवन कार्यालय (प्रिंसेसस्ट्रीट)
ग्वालियर लायल बुक डिपो
मद्रास दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा
अहमदाबाद नवजीवन कार्यालय
मछलीपट्टम लोकमान्य हिन्दी मंदिर
हैदराबाद (दक्षिण) हिन्दी पुस्तक भण्डार
जबलपुर तेजमल सौभाग्यमल; महाकोशल साहित्य मंदिर
लाहौर हिन्दी भवन; मोतीलाल बनारसीदास; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
कराची एस. एस. बागड़िया एण्ड सन्स
कोटा मोहन न्यूज़ एजेन्सी
बरेली वैश्य बुकडिपो
भोपाल हिन्दुस्तान स्टोअर्स
अमृतसर भारत पुस्तक भण्डार
जम्मु तावी (काश्मीर) स्टूडेण्ट स्टोअर्स
उदयपुर हितैषी पुस्तक भंडार

'मण्डल' की दुकानों पर संसार के निम्न महापुरुषों, लेखकों और विचारकों की रचनायें मिलती हैं—

भारतीय

स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लो० तिलक, ऋषि तिरुवल्लुवर, महात्मा गांधी, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, जवाहरलाल नेहरू, सर राधा कृष्णन्, अरविन्द घोष, लाला लाजपतराय, आदि

विदेशी

टाल्स्टॉय, मेक्सिम गोर्की, अलेक्ज़ेण्डर ड्यूमा विक्टर ह्यूगो, तुर्गनेव, ख़लील जिब्रान, क्रोपाटकिन, जेम्स एलेन, स्वेट्मॉर्डेन, सेम्युअल स्यादल्स बुकर टी वाशिंगटन, मेरे कॉरेली, रोमाँरोलाँ, हेरल्ड लास्की, रिचर्ड ग्रेग, आदि

हिन्दी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी, स्व० प्रेमचन्द, स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी, स्व० जयशंकरप्रसाद, स्व० रामचन्द्र शुक्ल, स्व० कृष्णकांत मालवीय,मैथिलीशरण गुप्त,जैनेन्द्रकुमार, राहुल सांकृत्यायन, अयोध्यासिंह उपाध्याय, डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा, श्यामसुन्दर दास, राय कृष्णदास, जयचन्द्र विद्यालंकार, घनश्यामदास बिड़ला, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, सोहनलाल द्विवेदी भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हरिभाऊ उपाध्याय, वियोगी हरि, सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा, कमलादेवी चौधरी आदि

मराठी

हरि नारायण आपटे, वामन मल्हार जोशी, डॉ० हरि रामचन्द्र दिवेकर, सदाशिव नारायण दातार, विनोबा, गोविंद सखाराम सरदेसाई आदि

बंगला

बंकिमचन्द्र चटर्जी, द्विजेन्द्रलाल राय, शरत् चन्द्र चटर्जी, जदुनाथ सरकार, रमेशचन्द्रदत्त, निरुपमा देवी आदि

गुजराती

किशोरलाल मशरूवाला, काका कालेलकर, कन्हैयालाल मुन्शी, गिजूभाई, हरभाई त्रिवेदी, नानाभाई भट्ट आदि

कुछ अंग्रेजी पुस्तकें

	Rs.	as.	ps.
Home & village Leather Doctor			
Leather bound	6	0	0
cloth ,,	5	0	0
The Story of My Experiments with Truth (2 Vols.) (By Gandhiji)	4	0	0
Satyagraha in South Africa ,,	4	8	0
Self-Restraint Vs Self-Indulgence (2 Vols) ,,	2	0	0
My Soul's Agony ,,	0	8	0
From Yervada Mandir ,,	0	2	0
Hind Swaraj ,,	4	0	0
Cent per Cent Swadeshi ,,	1	8	0
To the Students ,,	2	0	0
The Story of Bardoli (M. D.)	2	8	0
The Epic of Travancore ,,	1	8	0
With Gandhiji in Ceylon ,,	1	0	0
Gandhiji in indian Villages ,,	2	0	0
Satyagraha in Champaran (Rajendra Prasad)	2	0	0
Public Finance and Our poverty (J. C. Kumarppa)	0	12	0
Seven Months with Mahatma Gandhi	3	8	0
Preparation for Science	0	12	0
The Epic Fast (Pyarelal)	1	4	0
Education for Life (J. C.)	0	3	0
A Survey of Matar Taluka ,,	2	0	0
The Heart of a Gopi (Miss R. Tyabji)	1	8	0
Indian Prohibition Manual	0	4	0
Plighted Word (C. R.)	0	2	0
Upanishad ,,	0	6	0
Bhagwad-Gita ,,	0	6	0
The Shastras on Untouchability	0	1	3
Cow Proteciton	0	13	0
The Power of Non-Violence (R. B. Gregg)	2	0	0

Through Congress Eyes (Subhas Bose)	2	8	0
Secret of Japan (Chaman Lal)	2	8	0
Bleedingwound (Gandhiji)	0	12	0
An Autobiography (JawaharLal)	5	4	0
Letters from a father to his Daughter	0	8	0
Hindu America (Chamanlal)	7	0	0

A. I. C. C. PUBLICATIONS

Congress and War Crisis.	1	0	0
Congress and War	0	2	0
The Indian Federation.	0	8	0
Excluded Areas Under The New Constitution.	0	3	0
Public revenue and expenditure in India.	1	0	0
Survey of South India Village.	0	2	0
Salaries of public Servants.	0	4	0
Indian Foreign Policy.	0	4	0
India on China.	0	8	0
Resolutions passed by the Congress during the period (January 1930 September 1634)	1	4	0
—do— 1934-36	0	10	0
—do—April 1936-Jan.1937	0	10	0
—do—1938-39.	0	8	0
History of the Congress	2	8	0
History of the (Congress (in Urdu)	2	8	0
The Gandhian Way.	2	0	0
Non-violent Revolution.	0	4	0
The Latest Fad.-Basic Education.	1	0	0
Our Countrymen Abroad.	0	8	0
India's Challenge to Christians	2	0	0
India's Stand.	0	2	0
Indian National Congress (1939-40.)	0	8	0

'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इन्दौर शाखाओं की दुकानों पर

निम्न प्रकाशकों की चुनी हुई उत्तम तथा सुरुचिपूर्ण पुस्तकें मिला करती हैं—

१. हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, २. छात्रहितकारी पुस्तकमाला, ३. भारतीय-भण्डार, ४. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, ५. नागरी प्रचारिणी सभा, ६. इंडियन प्रेस लि०, ७. गंगा पुस्तक माला, ८. हिंदी पुस्तक एजेन्सी, ९. साहित्य भवन लि० १०. हिन्दी मन्दिर, ११. किताबिस्तान १२. तरुण-भारत ग्रंथावलि, १३. आर्य साहित्य मंडल, १४. नवयुग साहित्य मन्दिर, १५. भारती साहित्य संघ, १६. साहित्य सदन, १७. सरस्वती प्रेस, १८. हिन्दी भवन, १९. वाणी मन्दिर, २०. प्रकाश पुस्तकालय, २१. नवयुग पुस्तक भंडार, २२. नवशक्ति प्रकाशन मन्दिर, २३. भूगोल कार्यालय, २४. पुस्तक भण्डार, २५. काशी विद्यापीठ, २६. ज्ञानमण्डल, २७. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, २८. हिन्दी पुस्तक भण्डार, २९. ३०. विशालभारत बुकडिपो ३१. रामनारायणलाल बुकसेलर्स, ३२. रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, ३३. भार्गव पुस्तकालय, ३४. नवलकिशोर प्रेस, ३५. आदर्श ग्रंथमाला, ३६. मोतीलाल बनारसीदास, ३७. मेहरचन्द लक्ष्मणदास, ३८. खेमराज श्रीकृष्णदास, ३९. गीता-प्रेस, ४०. गीता-विज्ञान कार्यालय, ४१. नवजीवन कार्यालय, ४२. तिलक ब्रदर्स, ४३. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, ४४. परमश्रुत श्रावक मण्डल, ४५, देवीदत्त शर्मा के किंडर गार्टन बक्स, ४६. निर्णयसागर प्रेस ४७. भारतीय ग्रंथ माला, ४८. भार्गव पुस्तकालय, ४९. मिश्रबन्धु कार्यालय, ५१. हिन्दी विश्व भारती ५१ साधना मन्दिर, ५२. हिन्दी साहित्य मण्डल, ५३. सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, ५४. चौधरी मुख्तार सिंह।

'जीवन-साहित्य' के नियम

१. हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित होता है।

२. किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं, पर साल से कम के लिए नहीं।

३. 'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इंदौर शाखाओं तथा संयुक्तप्रांत, बिहार, मध्य प्रांत, राजपूताना-मध्य भारत, व पंजाब के चर्खा-संघ के खादी-भंडारों तथा 'हरिजन कार्यालय' पूना नं० ४ से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बन सकते हैं।

४. हर मास के पहले हफ्ते में पत्र न मिले तो अपने यहां के डाकखाने से पूछताछ करके **अपनी ग्राहक-संख्या के साथ** पत्र लिखना चाहिए। उचित कार्रवाई की जायगी।

५. अपने पते में कोई परिवर्त्तन कराना हो तो तुरन्त सूचना दिया करें—**ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।**

६. पत्र का चंदा इस प्रकार है—

भारत में	बर्मा में	विदेश में	एक प्रति
२)	२॥)	५ शिलिंग	।)

नोट—नमूने के अंक के लिए ।) के टिकट भेजें। वार्षिक मूल्य डाक के टिकटों में भी भेजा जा सकता है।

७. पत्रव्यवहार करते समय **अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।**

८. 'जीवन-साहित्य' में शिष्ट साहित्य तथा उपयोगी सुरुचिपूर्ण और देशी वस्तुओं के विज्ञापन लेने की गुंजायश रक्खी है।

दर इस प्रकार हैं—

कवर का दूसरा पृष्ठ	प्रतिमास	४०)
,, तीसरा ,,	,,	४०)
,, चौथा दोरंगा	,,	६०)
,, ,, एकरंगा	,,	५०)
पाठ्य विषय के सामने	,,	४०)
साधारण पृष्ठ—	,,	३०)

९. विज्ञापन-एजेण्टों को कमीशन आदि के लिए पत्रव्यवहार करना चाहिए।

पता—

व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य',
कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

अप्रैल १९४१
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक नौवाँ

पूजा-गीत

डिग न रे मन !
आज आर्त, विषण्ण, दीना,
मातृ-मुख-श्री, कान्ति क्षीणा,
अन्न - धन - सर्वस्व - हीना,
पूत आज सपूत बन तू, पोंछ रे मा के विलोचन
डिग न रे मन !

सजल - नयन निहारती है,
विकल-व्यथित पुकारती है,
बुझ रही अब आरती है,
प्राण का घृत दे अमृत हे, बने ज्योतित मंद जीवन
डिग न रे मन !

कसकती हैं क्रूर कड़ियाँ,
सिसकती हैं प्रहर-घड़ियाँ,
तोड़ दे रे लौह-लड़ियाँ,
पुरुष ! तव पुरुषत्व पर यह, बज रही ज़ंजीर झनझन !
डिग न रे मन !

सोहनलाल द्विवेदी

लेखक बनाम प्रकाशक

इधर हिन्दी के लेखकों में ये भाव फैलते जा रहे हैं कि प्रकाशक उनकी मेहनत से और खासकर उनकी बेबसी से बेजा फ़ायदा उठा सकते हैं। जब यह सुनते हैं कि बाज़-बाज़ प्रकाशक दो आना फी पेज तक अनुवाद का मेहनताना देते हैं, तो यह आक्षेप सही मालूम होने लगता है। सस्ता-साहित्य-मण्डल उन प्रकाशकों में से नहीं है, जो मुनाफे के लिए पुस्तकों का कारबार करते हैं। इसलिए उसके मंत्री ने इस आवश्यक विषय की ओर मण्डल के हितैषियों का ध्यान दिलाया कि लेखकों से मण्डल के लेन-देन का सम्बन्ध किस आधार पर हो? लेखक व प्रकाशक के बीच प्रकाशनाधिकार का जो इकरारनामा हुआ करता है, वह कैसा हो?

मंत्रीजी ने चर्चा व विचार की सुविधा के लिए काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के इकरारनामे को नमूना या आधार मानकर उसे अपने गश्ती पत्र के साथ कई मित्रों को सम्मति व सुझाव के लिए भेजा। कुछ सज्जनों ने विचार करके अपनी आलोचना व सुझाव भेजने की कृपा भी की है। काका सा० कालेलकर ने अपनी सम्मतियाँ पेश करके सुझाया है कि एक ऐसा इकरारनामा जिसमें ग्रन्थकार व प्रकाशक दोनों का हित हो, बनाकर 'जी० सा०' में प्रकाशित किया जाय जिससे हिन्दी प्रकाशन-जगत् का वायुमण्डल शुद्ध हो। उससे लेखकों को पता लगेगा कि वे कहाँ तक अपेक्षा रख सकते हैं?

देशरत्न राजेन्द्रबाबू सूचित करते हैं—'मैं आशा करता हूँ कि लेखक के पुरस्कार की रकम ऐसी हुआ करेगी जिससे लेखकों को प्रोत्साहन मिले। बहुतेरे योग्य व होनहार लेखक निर्धन होने के कारण अपनी कृतियों को स्वयं प्रकाशित नहीं कर सकते हैं और बहुतेरे प्रकाशक उनकी ग़रीबी से नाजायज फायदा उठाते हैं। मण्डल को ऐसे ऐब से हमेशा बचना चाहिए। इसलिए एककालिक पुरस्कार के अलावा कुछ रायल्टी का भी प्रबन्ध रहे। इसकी भी गुंजायश रखनी चाहिए कि विशेष लेखक के साथ इन शर्तों में हेर-फेर भी हो सकता है।'

श्री किशोरलालभाई लिखते हैं—'लेखक व प्रकाशक के बीच इकरारनामे का मसविदा जो मेरे अभिप्राय के लिए आया है, यों मुझे ठीक मालूम होता है। पुरस्कार की कलमें तो तरह-तरह की हो सकती हैं। अगर किसी लेखक के साथ प्रति मुद्रण के समय कुछ पुरस्कार या मुनाफे में हिस्सा देने की शर्त की जाय तो वह कलम उस तरह बदलनी होगी।'

श्री रामनाथ 'सुमन' ने लिखा है कि इस मसविदे को पढ़कर प्रत्येक निष्पक्ष व विचारवान आदमी पर यही प्रभाव पड़ेगा कि स० सा० मण्डल एक स्वार्थी संस्था है और लेखकों का शोषण करके लाभ उठाना उसका उद्देश्य है। उन्होंने प्राय: प्रत्येक धारा पर अपनी विस्तृत सम्मति दी है और अपनी धाराओं के अनुसार इकरारनामे का एक नया मसविदा ही बनाकर भेजने की कृपा की है।

इन तथा अन्य सूचनाओं पर विचार करने के बाद मण्डल के मंत्रीजी ने अब जो मसविदा विचारार्थ बनाया है, वह इस लेख में दिया जाता है। यह तो दोहराना ही नहीं है कि मण्डल का उद्देश नफा कमाना नहीं, विशुद्ध साहित्य-सेवा करना ही है और यही कारण है कि मण्डल से ग्रन्थकर्त्ताओं का संबंध मीठा ही रहता है। अतएव लेखकों का शोषण करने की उसके मन में कल्पना भी नहीं आ सकती। जो मसविदा पेश किया गया है उसकी बुनियाद में यह नीति रखी गयी है—

(१) लेखक के अधिकार व गौरव की पूरी रक्षा हो व उसे अपने पारिश्रमिक का उचित व पूरा बदला पुस्तकों या रुपयों के रूप में मिल जाये।

(२) यह लेखक की इच्छा पर रहे कि वह मण्डल को स्वत्वाधिकार देता है या केवल प्रकाशनाधिकार। मण्डल को स्वत्वाधिकार लेने में कोई खास दिलचस्पी नहीं है।

पाठक जानकर खुश होंगे कि मण्डल ने बहुत पहले से यह तय कर रखा है कि किसी भी लेखक को जिसकी रचना का स्वत्वाधिकार मण्डल को दिया जाये, मौलिक के लिए १) व अनुवाद के लिए ॥) प्रति पृष्ठ से कम पुरस्कार हरगिज़ न दिया जाये जहाँ कि अन्य प्रकाशक मौलिक के ॥=) व अनुवाद के ।) ।=) प्रति पृष्ठ तक देते हैं। १) प्रति पृष्ठ तो इने-गिने प्रकाशक देते हैं।

लेखकों की जानकारी के लिए यहाँ यह साफ़ कर देना ज़रूरी है कि स्वत्वाधिकार में व प्रकाशनाधिकार में क्या फ़र्क़ है? स्वत्वाधिकार में ग्रन्थ का अनुवाद करने, संक्षेप व विस्तार करने का अधिकार शामिल रहता है, प्रकाशनाधिकार में नहीं। स्वत्वाधिकार में स्वामित्व के 'हक़ को बेच देने का भाव है, तहाँ प्रकाशनाधिकार में 'मुनाफे में हिस्सा लेने' भर का भाव आता है। लेखक मंडल अथवा दूसरे प्रकाशक को अपनी स्थिति व रुचि के अनुसार इसमें से कोई भी अधिकार देने में स्वतंत्र है।

लेखक और प्रकाशक के बीच इकरारनामा

"मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली (प्रकाशक) और........................ (लेखक) के बीच ता०.........सन् १९४...को यह इकरारनामा हुआ कि—

१—श्री.....................(आगे से लेखक) द्वारा लिखित-अनुवादित-संग्रहीत ....नामक पुस्तक लेखक द्वारा सस्ता साहित्य मण्डल (आगे से मण्डल या प्रकाशक) को प्रकाशित करने के लिए मिली है जिसे मण्डल ने अपने यहाँ से प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

२—इस पुस्तक में जो उद्धरण आदि दिये गये हैं, उनका कापी राइट नहीं है अथवा उनके देने (यदि पुस्तक अनुवाद है तो उसके अनुवाद करने) की अनुमति मूल-लेखक अथवा संग्राहक से प्राप्त कर ली गयी है। इस सम्बन्ध में आगे कोई आपत्ति उठे तो लेखक उसकी ज़िम्मेदारी लेते हैं।

३ (अ) मण्डल, पुस्तक छपजाने के बाद लेखक को..........(अंके............) रुपये और पुस्तक की २५ प्रतियाँ पुरस्कार-स्वरूप देगा। मण्डल को अधिकार होगा कि वह इस पुस्तक के चाहे जितने संस्करण करे। बाद के संस्करणों पर लेखक को किसी प्रकार का पुरस्कार पाने का अधिकार न होगा। यदि मण्डल आगे इसका कोई संस्करण न निकालना चाहे तो लेखक उसे अलग से छपवाने की व्यवस्था कर सकेगा। पर उस हालत में लेखक को जो पुरस्कार मिला है उसका एक तिहाई मण्डल को देना होगा।

३ (ब)—मण्डल, लेखक को पहले संस्करण पर.........प्रतिशत और दूसरे संस्करण पर.......प्रतिशत छपे मूल्य पर रॉयल्टी देगा। संस्करण समाप्त हो जाने पर एक वर्ष के अन्दर यदि मण्डल इसका कोई संस्करण प्रकाशित करने की व्यवस्था देकर इसे अलग से छपाने की व्यवस्था न करे तो लेखक प्रकाशक को ६ महीने का नोटिस देकर इसे अलग से छपाने की व्यवस्था कर सकेगा।

[नोट—उपरोक्त ३ (अ) और ३ (ब) में से लेखक जो बात स्वीकार करें वह रहने दें और दूसरी काट दें।]

४—नये संस्करण छपाने पर मण्डल इस पुस्तक में कुछ संशोधन-सम्पादन कराना चाहे तो वह लेखक से करा सकेगा और उसका अलग से पारिश्रमिक दिया जायगा। अगर मण्डल चाहे तो किसी अन्य सज्जन से इसका संपादन भी करा सकता है।

और आवश्यक समझे तो इसका कोई अंश छापने से रोक भी सकता है बशर्ते कि उसके न छापने से मूल पुस्तक के भावों या निष्कर्षों में कोई अन्तर न आता हो।

५—पुस्तक के मूल्य-निर्धारण, गेट-अप वगैरा का अन्तिम निर्णयकर्ता मण्डल होगा। पर लेखक के सुझावों पर भी मण्डल सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगा।

६—लेखक इसी विषय पर कोई दूसरी ऐसी पुस्तक किसी अन्य प्रकाशक के यहाँ से प्रकाशित न करेगा जिसमें इस पुस्तक के अंशों का बहुलता के साथ उपयोग किया गया हो या जिसमें रद्दोबदल के साथ इसी पुस्तक के अंश दे दिये गये हों।"

यदि लेखक और प्रकाशकगण इसपर अपने सुझाव भेजने की कृपा करेंगे तो उनकी रोशनी में इन मसविदों पर दुबारा विचार होकर वे अंतिम फैसले के लिए मण्डल के सामने रखे जायँगे।

हमें यह न भूलना चाहिए कि लेखक उत्पादक और प्रकाशक विस्तारक है। उत्पादक उच्च-कोटि के जीवन का नहीं तो साधारण जीवन बिताने योग्य पारिश्रमिक पाने का अधिकारी तो अवश्य ही है। सबको जीवन-वेतन दे चुकने के बाद ही चीज़ के दाम लगाने चाहिएँ और उन्हीं दामों पर चीज़ ख़रीदना न्यायोचित कहा जा सकता है। मौजूदा हालत में हम किस तरह इस न्याय की सीमा तक पहुँच सकें, इसपर भी विचार करने की आवश्यकता है। इस मसविदे के मज़मून से बढ़कर महत्त्व रखता है यह प्रश्न कि पारिश्रमिक का आधार क्या हो? आशा है, लेखक और प्रकाशक इसमें पूरी-पूरी दिलचस्पी लेंगे।

हरिभाऊ उपाध्याय

टूटी कुटिया

[विष्णु अम्बालाल जोशी]

मेरी टूटी कुटिया रेतीले नदी के तट पर स्थित एक सूखे टीले पर अकाल की भीषण घड़ियाँ गिन रही है। अब प्रातः-सांध्यकाल की लालिमा में गोधूलि के पुनीत धूलिकण उसके आँगन में पराग से नहीं छा जाते; अब कुटिया के उस एक-मात्र साथी वृक्ष की हरियाली के संग उसका मधुर कलरव भी अनन्त में माधुरी नहीं भर जाता।

इस नैराश्य-अचलता में गाँव मुझे छोड़कर धीरे-धीरे अन्यत्र चला गया, पर मैं अपनी सुखद घड़ियों की स्मृति कुटिया को छोड़कर न जा सका। सम्पूर्ण ग्राम शून्य है, मेरी कुटिया शून्य है और वह गगरी भी, जो सदा प्रत्येक अतिथि के लिए रसभरी पूर्णता से छलकती रहती थी।

जब दुर्वासा ऋषि के समान नक्षत्राधिपति मार्तण्ड अन्धकार में स्नानकर मेरे द्वार पर पदाघात करेंगे, मैं कंपित कुटिया के द्वार खोल प्रतिध्वनित गगरी के अवगुंठन को हटा, हृदय की समस्त दीनता को बिछा उनका स्वागत करूँगा। उस समय उनकी कोप-ज्वाला को शान्त करने के लिए एक अंजलि भर जल मैं कहाँ से पाऊँगा, देव? मेरी गगरी तो खाली है।

पर देव, जब तुम निस्तब्ध रात्रि के मंद पवन के साथ चारु-चंचल किरणों पर बैठकर मेरे द्वार पर आओगे, मेरी टूटी कुटिया के रंध्रों से झाँककर मुस्कराओगे तब निर्निमेष नेत्रों से मैं कुटिया के द्वार खोल गगरी के अवगुंठन को हटा पुलकित हृदय की समस्त भावनाओं को बिछा तुम्हारा स्वागत करूँगा, और मुझे द्रौपदी के समान यह कहते तनिक भी लज्जा न आयेगी कि मेरी गगरी खाली है देव!

मेरी कुटिया अकाल की घड़ियाँ गिन रही है।

जीवन-विद्या

[आचार्य नानाभाई भट्ट]

प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जड़ और [illegible]ल, ये पाँचों पडित सहस्र-सहस्र शिष्यों की [illegible] चलाते थे और अपनी संस्कारिता एवं [illegible] के प्रभाव से बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे। एक [illegible] वे सब एकत्र होकर अपने-अपने गुरुकुलों का [illegible] अपने निजी जीवन का विचार करने बैठे।

विचार-विमर्श का आरंभ करते हुए प्राचीन-[illegible] ने कहा: "हमने इन शिष्यों को एकत्र तो [illegible] है, किन्तु जिस उच्च जीवन की बड़ी-बड़ी [illegible] हम इनके सामने करते हैं, उस उच्च जीवन [illegible] हमने स्वयं किस हद तक अनुभव किया है?"

बुड़िल बोला: "भाई, मैं तो समझता ही [illegible] कि उच्च जीवन किस चिड़िया का नाम [illegible] जब-जब हम अपने आश्रमों में आत्मा, [illegible], उच्च जीवन, आदि-आदि शब्दों का [illegible] करते हैं, तभी तब मैं तो यही सोचा करता [illegible] कि यह हमारा निरा ढोंग नहीं तो और [illegible] है?"

जड़ ने कहा: 'इसे ढोंग कहना हो, ढोंग [illegible]; दुहेरा जीवन कहना हो, दुहेरा जीवन [illegible]; और आत्मवंचना कहना हो, तो आत्म-[illegible] कहलो। मैं स्वयं तो वर्षों से उच्च जीवन [illegible] जीवन की आध्यात्मिकता की बातें करता [illegible] हूँ। लेकिन यह आत्मा क्या चीज़ है, और [illegible] अध्यात्मवाद कौन बला है, मैं बिल्कुल नहीं [illegible]।"

[illegible]यज्ञ ने समर्थन करते हुए कहा: "बस, [illegible] भी यही दशा है। अपने जीवन-ध्येय को [illegible] नहीं जानते। इसमें संदेह नहीं कि [illegible] हालत ठीक उस अन्धे-सी है, जो दूसरे [illegible] के पीछे चल रहा था! फिर भी मैं तो [illegible] अन्धे-की-सी धृष्टता के साथ ही सबको [illegible] दिखाता हूँ और दिखाता रहूँगा।"

[illegible]द्युम्न ने सबकी बातें शान्ति से सुनीं [illegible] अन्त में कहा: "लेकिन इसमें निराश होने [illegible] बात है? आइए, हम सब ऐसे किसी महाशय के पास चलें, जिन्हें जीवन का और आत्मा का यथार्थ ज्ञान हो चुका है। हम उनसे प्रार्थना करेंगे कि वे हमें अपनी विद्या भली-भाँति सिखा दें। बस, हमारे जीवन की यह त्रुटि भी पूरी हो जायगी।"

बुड़िल ने कहा: "बिल्कुल ठीक है। जबतक हम इस विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते और अपने दैनिक जीवन में उसे ओत-प्रोत नहीं बना लेते, तबतक और सब व्यर्थ है। हमें इसके लिए किसी ज्ञानी के पास अवश्य जाना चाहिए।"

जड़ बोला: "ज्ञानी के पास चलने से मैं इन्कार नहीं करता; लेकिन ज्ञानी-ज्ञानी में भी तो अन्तर होता है। कुछ ज्ञानी ऐसे पुराण-प्रिय और वृद्ध होते हैं कि वस्तु को जानते हुए भी उसे अपने युग की भाषा में व्यक्त नहीं कर पाते। चूँकि ये ज्ञानी युगधर्म को नहीं पहचान पाते, अतः ये हमारे लिए निकम्मे हैं। दूसरे कुछ ऐसे भी ज्ञानी होते हैं, जो अपने युग को पहचानने का दावा तो करते हैं; पर उनके ज्ञान की जड़ें बहुत गहरी नहीं होतीं। हमें तो किसी ऐसे समर्थ पुरुष के पास जाना चाहिए, जिसने इस विषय का सूक्ष्म बुद्धि से विचार किया हो और इस चीज़ को अपने जीवन में ताने-बाने की तरह बुन लिया हो!"

यह सुनकर प्राचीनशाल बोल उठा: "तब तो हमें उद्दालक ऋषि के पास ही जाना चाहिए। उन्हें छोड़ दूसरा कोई ऐसा नज़र नहीं आता। वैसे तो कई वृद्ध ज्ञानी भी हैं, पर उद्दालक ऋषि युवकों से भी काम लेना जानते हैं, इसलिए वही हमारे ज्यादा काम के होंगे। इन वयोवृद्ध ज्ञानियों का एक ही दुःख है। इनका सबसे बड़ा दोष यह है कि इनके पास नये जमाने की-सी तड़क-भड़क नहीं!"

बुड़िल ने कहा: "सच है। उद्दालक इस युग के आदमी हैं। अपने काम में निपुण हैं।

उनके पास इस युग की भाषा भी है। चलो, हम सब उन्हींके पास चलें।"

फिर तो पाँचों पंडित उद्दालक ऋषि के पास पहुँचे। इन समर्थ ब्राह्मणों को अपने पास आते देखकर उद्दालक सोच में पड़ गये : "ये समर्थ कुलगुरु मुझसे जीवन के और गुरुकुलवास के अनेक अटपटे प्रश्न पूछेंगे। इनके प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देने की शक्ति मुझमें कहाँ ? यदि कहता हूँ : 'मुझे पता है, मैं जानता हूँ; किन्तु आप लोगों से क्या कहूँ ?' तो वह भी ठीक न होगा। अतएव क्यों न चर्चा शुरू होने से पहले ही मैं इनको कोई दूसरा मार्ग सुझा दूँ ?"

यह सोचकर उद्दालक उठे और पाँचों पंडितों की अगवानी के लिए बढ़े। स्वागत-सत्कार के बाद बातों ही बातों में ऋषि ने पंडितों से कह दिया : "महाशयो ! केकय राजा के पुत्र अश्वपति इस जीवन-विद्या को भलीभाँति जानते हैं, अतएव आइए हम सब उन्हीं के पास चलें। अच्छा हुआ जो आप आज इस प्रश्न को लेकर चले आये ! मेरे मनमें भी कई दिनों से आश्रम की संस्कारिता और ज्ञान के बारे में अनेक प्रश्न उठते रहे हैं।" यह कहकर उद्दालक ऋषि उन सबको अश्वपति के पास ले गये।

अश्वपति गादीपति भी थे। उन्होंने ज्ञान और विद्या में प्रख्यात अपने इन अतिथियों की पूजा की। फिर दूसरे दिन सवेरे नित्यकर्म से निपटकर धन की एक बड़ी राशि के साथ राजा इनके डेरे पर गये और बोले : "महाशयो ! यह निधि मैं आप ही के लिए लाया हूँ। इसे आप स्वीकारिए और मुझे उपकृत कीजिए।"

किन्तु पंडितों ने उस धनराशि की ओर आँख उठाकर भी न देखा। उन्हें तो जीवन-विद्या की ज़रूरत थी। घर आये हुए अतिथि धन का स्पर्श भी नहीं करते, यह देखकर अश्वपति सोच में पड़ गये और कहने लगे : "महाशयो ! आप सब बड़े-बड़े कुलपति हैं। मैंने आपके चरणों में अपना यह धन चढ़ाया है; किन्तु आप तो इसका स्पर्श भी नहीं कर रहे ! क्या आप मानते हैं कि मेरा धन भी दूसरे राजाओं की भाँति अत्याचार और पाप द्वारा कमाया हुआ है ? महाशयो ! मैं आपकी सेवा में यह निवेदन किया चाहता हूँ कि मेरे राज्य में न कोई चोर है, न कोई कंजूस है, न शराबी, न नास्तिक, न निरक्षर, और न कोई व्यभिचारी ही है। अतएव मेरा यह धन शुद्ध है। आप कृपापूर्वक इसका प्रतिग्रह कीजिए।"

राजा के ऐसे वचन सुनकर ये विद्वान् बोले : "राजन् ! आज हम आपके पास धन की इच्छा से नहीं आये। आजतक हम सब कई बार आपके पास आये हैं और आपसे अपनी आवश्यकतानुसार धन ले गये हैं। लेकिन आज हमारे आने का हेतु कुछ और ही है।"

अश्वपति ने पूछा : "आपका वह हेतु क्या है ?"

उद्दालक ऋषि बोले : "राजन् ! आज हम आपसे जीवन-विद्या सीखने आये हैं। आप इतने बड़े राज्य के स्वामी होते हुए भी इस जीवन-विद्या के सच्चे ज्ञाता हैं।"

अश्वपति ने कहा : "महाराज ! जीवन-विद्या आपके आश्रमों और गुरुकुलों में होगी या मेरे जैसे राजा के राजमहल में ?"

उत्तर में जड़ ने कहा : "महाराज ! जीवन-विद्या तो हमारे आश्रमों में ही होनी चाहिए। लेकिन आज हमारे आश्रम, आश्रम नहीं रहे हैं। हमारे समान क्षुद्र लोगों ने आश्रम-जीवन के बाहरी रूप को तो बनाये रखा है; पर उसकी आन्तरिक सामग्री को हम आज खो बैठे हैं। हाँ, हम जीवन-विद्या की भाषा में बोलते हैं; पर उसका प्रभाव हमारी जीभ तक ही रहा है, उसके आगे नहीं। महाराज अश्वपति ! हम सब अनेक शास्त्रों के ज्ञाता हैं; कई कलायें जानते हैं; बहुतेरी युक्ति-प्रयुक्तियों के प्रयोगकर्त्ता हैं; किन्तु जो सबसे बड़ा जीवन-शास्त्र है, जो सबसे महान् जीवन-कला है और जो सबसे श्रेष्ठ जीवन-युक्ति है, वह हमारे पास नहीं। अतएव विशालदेह होते हुए भी हमारे आश्रम हीनप्राण हैं; हमारे गुरुकुल चेतनाहीन हैं, हमारी विद्या निस्तेज है,

और हमारा जीवन शुष्क है। महाराज ! हम इसी हेतु से आपकी सेवा में आये हैं !"

महाराज अश्वपति ने इन विद्वान् ब्राह्मणों की बात शान्तिपूर्वक सुनी। फिर बोले : "महाशयो! आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं कल दूँगा।" इतना कहकर अश्वपति अपने स्थान को गये। इधर ये छहों विद्वान् जब अकेले रह गये तो इस प्रकार चर्चा करने लगे—

एक ने पूछा : "अश्वपति ने हमें जीवन-विद्या सिखाना स्वीकार क्यों न किया ?"

दूसरे ने कहा : "हमने उनका धन नहीं लिया, कदाचित् इसका उन्हें बुरा लगा होगा।"

तीसरा बोला : "नहीं जी, बुरा उन्हें लग नहीं सकता। अगर अश्वपति इस तरह बुरा मानने बैठेंगे, तो हमें जीवन-विद्या क्या ख़ाक सिखायेंगे ?"

अन्त में उद्दालक बोले : "मेरे मनमें एक शंका उठी है। आप लोग बुरा न मानें तो कहूँ ?"

सत्ययज्ञ ने कहा : "बुरा क्यों मानेंगे ?"

बुड़िल बोले : "इसमें बुरे का कोई प्रश्न ही नहीं।"

जड़ ने कहा : "जो है, सो साफ़-साफ़ कह डालिएगा ?"

उद्दालक ने सहज भाव से कहा : "मैं सोचता हूँ कि अश्वपति से जीवन-विद्या सीखने का हमारा यह तरीक़ा ही ठीक नहीं ! हम सब एक-एक गुरुकुल के अधिपति हैं; अपने आश्रमों में जब हम शिष्यों को विद्या दान देते हैं, तो उनसे एक निश्चित प्रकार की नम्रता और विवेक की अपेक्षा रखते हैं। मेरे विचार में जब लौकिक विद्या के आचार्य के नाते हम इतनी आशा रखते हैं, तो महाराज अश्वपति हमसे कितने विनय की आशा रखते होंगे ? हम तो एक साहूकार की भाँति यहाँ चले आये हैं, और राजा से जीवन-विद्या की वसूली करना चाहते हैं। इस अलौकिक विद्या के इच्छुक में जैसी उग्रता और विनय होना चाहिए, उसका शतांश भी हममें नहीं। इसीलिए मैं सोचता हूँ कि शायद अश्वपति हमें जीवन-विद्या सिखायेंगे ही नहीं। यदि सचमुच हमें यह विद्या सीखनी ही हो, तो हमको विशेष नम्रता धारण करनी चाहिए।"

जड़ ने कहा : मुझे भी आपकी बात जँचती है। मानव-जीवन की बहुमूल्य वस्तु प्राप्त करने के लिए हमें वैसी योग्यता भी दिखानी ही चाहिए। हमको महाराज अश्वपति के पास हाथ में समिध् लेकर जाना चाहिए, और उन्हें इस बात का विश्वास करा देना चाहिए कि हम जीवन-विद्या को प्राप्त करने के वास्तविक अधिकारी हैं।"

बुड़िल ने कहा : "तब तो आज महाराज हमें ढूँढते हुए इधर आवें, उससे पहले ही हमें उनकी शोध में निकल पड़ना चाहिए।"

सत्ययज्ञ बोला : "बस, चलो यह रही समिध्।"

इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि इतने में राजा अश्वपति स्वयं वहाँ आ पहुँचे और बोले : "महाशयो ! आप कहाँ जाने को तैयार हुए हैं ?"

ब्राह्मण बोले : "आप ही की सेवा में।"

अश्वपति ने कहा : "मैं तो स्वयं आपके पास आया हूँ।"

सबने निवेदन किया : "महाराज ! आप इस उच्चासन पर विराजिए और हमें कृपापूर्वक जीवन-विद्या का दान कीजिए, आप ही हमारे गुरु हैं।"

अश्वपति बोले : "महाशयो ! अब आप जीवन-विद्या के अधिकारी हुए हैं। जो बात मेरे मन में थी, वही आपके मन में भी उठी, यह हमारा सौभाग्य है। अब मैं आपको जीवन-विद्या सिखाता हूँ।" यह कहकर अश्वपति ने छःहों विद्वानों को जीवन-विद्या सिखायी, और फिर सब अपने-अपने स्थान को चले गये।

अनु०— काशिनाथ त्रिवेदी

[गुजराती से]

आचार्यश्री का अन्तरंग-दर्शन

[विष्णुदत्त शर्मा]

तम नें धोया नभपंथ सुवासित हिमजल से
सूने आँगन में दीप जला दिये झिलमिल से
आ प्रात बुझा गया कौन अपरिचित जानी नहीं !
—महादेवी

पूज्य आचार्यश्री पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के देहावसान पर आज लोकमान्य के निधन पर कवि की लिखी हुई ये पंक्तियाँ याद आ रही हैं—

'जनाज़ा क़ौम का दर से तेरे निकलता है
सुहाग क़ौम का तेरी चिता में जलता है'

अभी कल ही तो हिन्दी-मा को बिलखता छोड़कर 'प्रेमचन्द' और 'प्रसाद' महाप्रयाण कर गये। उनके वियोग के आँसू सूख न पाये थे कि यह वज्रपात हुआ ! आचार्य शुक्ल के निधन ने हिन्दी-संसार को कितना ग़रीब कर दिया है ! उदार-हृदयता, सदाशयता और महानता का यह हिमाचल दुर्भाग्य के प्रलय-कम्प ने भूमिशायी कर दिया। युगों की अश्रान्त साधना भी क्या इस कमी को पूरा कर देगी ?

सन् १९३४ के प्रायः मार्च मास की बात है। परीक्षा के लिए जाने के पहले हम हिन्दी-विभाग के विद्यार्थियों का एक स्नेह-सम्मेलन हुआ था जिसमें हमारे आचार्यगण भी सम्मिलित थे और विद्यार्थियों ने अपने आचार्यों के प्रति नेह-प्रदर्शन के लिए उनके नाम रखे थे जिनको उस हास-परिहासपूर्ण समारोह में आचार्य श्यामसुन्दरदास सम्बन्धित व्यक्तियों को देते चलते थे। आचार्य श्यामसुन्दरदास का नाम रखा गया था "**नागरी नायक**" और हरिऔधजी का कवि-केशव की प्रसिद्ध उक्ति के आधार पर "**बाबा कहि-कहि जाहिं**" और शुक्लजी का नाम रखा गया था "**बम-शंकर**"। शुक्लजी कम हँसते थे पर स्वतः निर्लिप्त रहकर इस प्रकार की बातें प्रायः कहा करते थे कि दूसरे बिना कहक़हा लगाये न रह सकें। उनकी मुख-मुद्रा प्रकृत गंभीर थी। मार्मिक और प्रायः भाराक्रान्त आँखें झुकाये हुए वे अपनी अगाध ज्ञान-गंगा बहाते चलते थे और इस बात की चेतना प्रायः उनको नहीं रहती थी कि इस समय में कौन आता-जाता है। उनके व्यक्तित्व के इस विशेष गुण के लिए ही हम लोगों ने चुनकर उनका उपरोक्त नाम रक्खा था। इस नाम के पढ़े जाने पर हास्य और तालियों का अविरल प्रवाह-सा वह निकला और इधर आचार्य की सौम्य मुखमुद्रा बोल उठी, "**बम-शंकर के साथी होकर आप लोगों को ताण्डव करना और गाल बजाना चाहिए न कि तालियाँ**" सात्विक परिहास से दूसरों को हँसाने में उनकी-सी संयत और गहन प्रवीणता कहीं देखने में नहीं आती। उनके विद्यार्थियों का आये दिन का अनुभव है कि शुक्लजी कोई बड़ी परिहास-पूर्ण और सुन्दर व्यंग से भरी हुई बात कह देंगे, उनके श्रोता उस परिहास के आनन्द में मग्न होकर ज़ोर से क़हक़हे लगायेंगे, परन्तु शुक्लजी की भूरी-भूरी मूछों के नीचे विद्युत् की भाँति एक हास्य-रेखा चमककर घने बादलों-सी फिर एकाकार हो जावेगी। किस सहृदय को यह जानकर धक्का न लगेगा कि वह निर्लिप्त गुरुता, संयत परिहास और सूक्ष्म मर्म-विवेचन अब स्वप्न होगये ? तुलसी की लोक-मंगल कामना जायसी की प्रेम-पियास और सूर की अन्तर्दृष्टि को समुद्र से चौदह रत्नों की तरह मथकर निकालनेवाला देव-नायक इस नश्वर संसार से मुहँ मोड़ गया। यों तो संसार विस्तृत है। "**समालोचना का क्षेत्र सूना होगया**" "**हिन्दी का एक जगमगाता विद्वान उठ गया**" ये सब तो ऐसी बातें हैं जिनको समय कभी-न-कभी पूरा कर देगा परन्तु एक बात है जिसके लिए मैं समझता हूँ, शुक्लजी का स्थान युगों तक खाली रहेगा।

वह बात है शुक्लजी के हृदय की महानता और औदार्य्य। प्रायः नित्यप्रति का अनुभव है कि दूर रहनेवाली दुनिया की दृष्टि में किसी कथित महापुरुषों के चारों ओर लौकिक

ति का एक आलोक-व्यूह सा बना रहता है और प्रकाश की उस दमक से आकर्षित होकर हम एक बड़ा आत्म-त्याग या बलिदान करके उसका सामीप्य प्राप्त कर लेते हैं तो मालूम होता है कि जिसको अबतक हीरा समझे बैठे थे वह एक चिकना कंकर मात्र है, जिसपर सूर्य की चमकीली किरणों ने भ्रांति का जाल बिछा रखा है। परन्तु मैं पूर्ण साहस और आत्म-विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि आचार्य शुक्ल उन थोड़े से महापुरुषों में थे, जिनको आप जितना देखते और परखते जाइए उतने ही उनकी सदाशयता, महानता और उदार-हृदयता के क़ायल होते जाइएगा। सरस्वती के उस भक्त, भारती के उस पुजारी और साहित्य के उस दधीचि के चरणों में आँखें झुकती ही जावेंगी। यह जगजाहिर बात है कि हिन्दी-काव्य की नवीन-धारा को वह अधिक पसन्द नहीं करते थे, परन्तु उसकी आलोचना में आज तक कोई हल्की बात उनके मुँह से नहीं सुनी गयी। आधुनिक कवियों के काव्य से अधिक प्रेम न होते हुए भी उसको पढ़ते समय कितने मनोयोग, परिश्रम और रुचि से उसकी गुत्थियाँ सुलझाया करते थे !

आज शुक्लजी के विषय में सोचते हुए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, इन्दौर के अधिवेशन की साहित्य-परिषद् का दृश्य सामने आता है जबकि सभापति के पद से शुक्लजी की गुरुगम्भीर मूर्ति अपनी समस्त नम्रता में झुकी हुई कह रही थी: **"इस जगमगाती विद्वन्मंडली के बीच मेरा काम मुहँ खोलने का न था, अपने दोनों कान खुले रखने का था, परन्तु मूर्ख हास्य रस के बहुत पुरानें आलम्बन हैं। लोग बना-बनाया मूर्ख पाकर हँसते भी हैं और हँसनें के लिए मूर्ख बनाते भी हैं। अस्तु मुझसे यदि आप लोगों का इतना भी मनोरंजन हुआ तो व्यर्थ समझूँगा।"** जरा इस सादगी और निरभिमानता की कल्पना कीजिए। अखिल-भारतीय साहित्य-परिषद् ने जिसे अपना शिरोमणि बनाया हो, सारे हिन्दी-संसार ने एक स्वर से जिसे आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित किया हो, जिसकी अपार विद्वत्ता का लोहा साहित्य-जगत का कोना-कोना मानता हो, उसके मुहँ से ये शब्द ऐसे लगते हैं मानो गौरव-गुरु हिमगिरि से विश्व-मोहन धरती पर मधुर जल का एक स्रोत प्रवाहित हुआ हो। मानो असंख्य बड़े और रस भरे आमों से लदा हुआ विशाल रसाल अपनी गरिमा के भार से कृतज्ञ होकर अनगिनती अवनत शाखाओं से धरती चूम रहा हो।

आचार्य का शिष्यत्व मेरे जीवन का एक गौरव-युग है। उनकी स्मृति-रक्षा और उनके प्रति आभार-प्रदर्शन के लिए हिन्दी-संसार शीघ्र ही कोई ठोस और उपयुक्त योजना उपस्थित करेगा। मैं आचार्य के दिवंगत श्रीचरणों में प्रणाम करता हूँ। यदि सरल-महानता को अपनाने की स्वर्ग में चाल है तो आचार्य विश्वात्मा के बहुत अपने होंगे, ऐसी आशा है।

स्वातन्त्र्य की प्रतिज्ञा

'व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये' इस वेद-वचन में स्वातन्त्र्य की प्रतिज्ञा व्यक्त की गयी है। व्यचिष्ठ का अर्थ है—अत्यन्त व्यापक, जिसमें सबको मत-दान का अधिकार है; और बहुपाय्य का मतलब है—जिसकी वहु संख्या अल्प संख्या की रक्षा के लिए सावधान है, ऐसे स्वराज्य के लिए हम कोशिश कर रहे हैं—यह उस प्रतिज्ञा का अर्थ है। मतलब यह कि अत्रि ऋषि के उस ज़माने से पंडित जवाहरलाल के इस जमाने तक वही स्वातन्त्र्य की प्रतिज्ञा विद्यमान है। वेद की प्रतिज्ञा जैसी आप चाहते हैं ठीक वैसी ही है। उसमें भी वहुवचन का प्रयोग है।

—विनोबा और उनके विचार से—

आधुनिक हिन्दी कविता की कुछ प्रवृत्तियाँ

[सुधीन्द्र]

यह युग संक्रमण का, संक्रान्ति का, परिवर्तन का, प्रलय का, सर्वांगीण पुनर्जागरण का, नव-निर्माण का युग है। इस युगारंभ के साथ ही हमारी शिराओं में भी एक नवीन लहर-सी आयी है और हमारी मानसिक वृत्तियों और जीवन की प्रवृत्तियों में विचार-प्रलय आया है। नूतन की ओर बढ़ने की इस अदम्य प्रेरणा ने हमारी अबतक की जड़ता को छिन्न-विच्छिन्न कर दिया है; हमारे कण्ठ अतीत के गौरवमय स्वर से मुखरित हो उठे हैं और आंखें भावी के उज्ज्वल प्रकाश से आलोकित हो उठी हैं। हमारे जीवन में पीढ़ियों से गहरी घुली-मिली निराशा, पीड़ा, व्यथा, वेदना अब आशा, उत्साह, ओज और उल्लास के आलोक में धूमिल हो चली है और उनसे अठखेलियाँ करते रहना कविता को अब नहीं सुहाता। युग को वह नवीन आलोक और आभा देना चाहती है।

क्रान्ति हम चाहते हैं और वह क्रियान्वित हो भी रही है, पर वस्तुतः उस क्रान्ति का श्रीगणेश तो मानसिक क्रान्ति के उपक्रम से ही होता है। कविता यदि व्यावहारिक जगत् में क्रांति का आवाहन नहीं कर सकती, तो कम-से-कम वह क्रांति के अनुकूल वातावरण की रचना तो कर ही सकती है, विचार को, क्रिया को एक दिशा तो दे ही सकती है, युग की समस्याओं की घुली हुई गाँठों को खोलने के लिए उदीयमती पीढ़ी को प्रोत्साहित तो कर ही सकती है, जिस जीवन में से कविता खिली है, उसकी कठोरताओं को कोमल करने की प्रेरणा तो दे ही सकती है।

विपक्ष में कहा जाता है कि कवि तो कल्पना-जगत का प्राणी है, उसे भौतिक वास्तविकता से क्या सरोकार? हाँ, कवि अवश्य कल्पना-विहंगिनी के साथ भावों के 'अनन्त' में उड़नेवाला मुक्तपंख विहंग है जो पृथिवी की व्यथा-वेदना से ऊपर उठकर अपनी रागिनी छेड़ सकता है, परन्तु यह बात भी तो है कि उसका नीड़ तो इसी धरतीपर है और उसे वहिर्जगत को छोड़कर अपनी कल्पनाओं के साथ अपने नीड़ में आना है। जब अपने पार्थिव नीड़ में उसकी कल्पना उन्मुक्त नहीं हुई होती है, तो यहाँ की वास्तविकता उसे ऐसी जकड़ लेती है कि उसके मन पर कुप्रभाव पड़ता है, उसमें जो उत्पीड़न और उससे जो विद्रोह घनीभूत होता है, वह कवि-हृदय से वाणी द्वारा फूट पड़ना चाहता है, या फिर अपनी परिणति या लय चाहता है। विश्ववेदना में व्यथित कवि की रहस्यवादी आध्यात्मिक-प्रेमगर्भित भावना ऐसी ही दुर्भर स्थिति से ऊबकर क्षण-दो-क्षण को अवर्णनीय सन्तोष में आत्मसात् हो जाने की छटपटाहट का सीधा परिणाम है। दुरूह न होने के लिए मुझे कहना चाहिए कि हम वास्तविकता की ओर से आँख मूँदकर ही उससे मुक्ति पाने की खोज में अध्यात्मवाद की ओर बढ़े हैं; पर कवि क्योंकि एक मानव प्राणी है, इसलिए ऐसी अवस्था चिरस्थायी नहीं हो सकती बल्कि दूसरी स्थिति ही अधिक चिरस्थायी है क्योंकि कम या अधिक अंशों में पार्थिव वास्तविकता की प्रतिक्रिया निरंतर उसपर होती रहती है, और इसलिए वह उससे कहाँतक बच सकता है? (पर इससे जब वह अपने दिल के दर्द को राहत देने का मार्ग खोजता है तो वह कविता मानव आत्मा की वेदना को व्यक्त करने में समर्थ भी हो सकती है) तो उसकी कल्पनाओं का प्रासाद केवल निस्सीम गगन में आध्यात्मिक धरातल पर ही खड़ा न हो 'मृत्तिका की धरणी' पर ही खड़ा होता है—भले ही वह उसकी ऊपरी गगनचुम्बी मंजिलों में ही विहार करता रहे—इसीको हम युगवाणी का स्पन्दन कहते हैं।

जहाँ तक इस विश्लेषण पर हम निर्भर हैं वहाँ तक तो हमें यह मानना होगा कि युग की कविता युग-युग की कविता की विरोधिनी नहीं बल्कि भित्तिरूप है। मनुष्य जहाँ संसार के युगनिर्माणकारी विराट आयोजनों में अपने जीवन

अमृत बहाता है, वहाँ वह घर की छोटी-छोटी उलझनों को भी तो सुलझाता है।

मानव-जीवन के चिरन्तन तत्त्वों पर लेखनी और कल्पना को गतिशील करके समसामयिक समस्याओं पर आना अधोगति है, परन्तु हमारा युग तो गढ़ा जा रहा है धरती पर बसनेवाले िक बन्धनों में पड़े हुए प्राणी द्वारा। उनको कविता की हुंकार से दिशानिर्देश मिले और इस त्व जगत् की उलझी हुई समस्याओं का हल कविता में व्यक्त हो, तो उसे हम भावजगत् की क्रान्ति कहेंगे।

हमारे काव्य का समस्त इतिहास इसी मानक क्रान्ति का आलेखन है। भक्तिमयी कविता शृंगारिक और छायावादी, रहस्यवादी तथा वादी कविताओं तक यह क्रांति बरबस ती है। यह कवितागत क्रांति युग और उसके से बँधी हुई परिस्थियों के द्वारा लायी हुई िक जगत् की क्रान्ति की प्रतिच्छाया ही है और जब क्रान्ति हमारे आचार-व्यवहार में, वेषभूषा में, वाङ्मय-भाषा सबमें ती है और हमारी विचारधाराओं में भी, कविता में—वाणी में—न उतर आये किसी भी दशा में अस्वाभाविक नहीं है। जगत् के कठोर सत्यों से कोई आँख मूँदे रह सकता और कविता इससे अछूती नहीं सकती। तो कवि पहले युग के प्रति उत्तरता है, फिर युग-युग के प्रति। जो कवि अपने नों के प्रति अनुराग नहीं रख सकता उसका बन्धुत्व या मानवता का निर्वाह करना दम्भ है।

साहित्य जहाँ राष्ट्रीय संस्कृति की पुंजीभूत है, वहाँ वह संस्कृति का दर्पण भी है। हित्य का अध्ययन करने से उसके राष्ट्र की संस्कृति और सुरुचि के क्रमागत विकास अध्ययन हो जाता है और काव्य-साहित्य के में तो और भी यथार्थ रूप में, क्योंकि में हमारे संस्कृत और सुरुचिपूर्ण हृदयों भावना निखरकर आती है। कविता गेय है, इसलिए कविता लोकवाणी के अधिक निकट जाती है और लोकवाणी का स्पन्दन बनने की अधिक क्षमता रखती है। और किसी भी भाषा की कविता पर इससे बढ़कर दूसरा कोई लांछन नहीं कि वह भाषा में प्रतिष्ठित मूलसंस्कृति से बहुत दूर जा रही है। यह ठीक है कि संस्कृति की रूपरेखा एकदम निर्धारित और अंकित नहीं की जा सकती, क्योंकि संस्कृति एक लचीली (flexible) वस्तु है, जिसकी व्याख्या बहुत तोड़ी-मरोड़ी जा सकती है और फिर एक संस्कृति की दूसरी सस्कृति पर छाप पड़ती है, जो कई अंशों में स्वास्थ्यकर भी होती है, परन्तु इससे देश-विशेष की अपनी संस्कृति का मूल्य या महत्त्व कम नहीं हो जाता। जो संस्कृति हमारे पंचप्राणों द्वारा हमारे रक्त में घुल-मिल गयी है उसका कविता में प्रतिनिधित्व होना अनिवार्य है।

आज की अधिकांश हिन्दी-कविता में हालाप्याला के अविरल प्रवाह को देखकर हमारी संस्कृति सिहर उठी है। एक नितान्त अपरिचित विदेशी भावधारा को यहाँ लाने का श्रेय (या अपराध !) मैं समझता हूँ हिन्दी-कविता ही को है। यह कोई तर्क नहीं है कि पाठकों को यह भावधारा बहुत प्रिय हुई है और ऐसी कवितायें बहुत सुनने में आ रही हैं। जहाँ तक जनरुचि का प्रश्न है, इनको पसन्द करने के पीछे कारण हैं——ठीक वे ही जिनसे जनरुचि कामोत्तेजक गीतों, दृश्यों (सिनेमा आदि में) तथा प्रसंगों में लुभा जाती ह। वस्तुत: ऐसी कविताओं में जो आकर्षण है वह शराब-साक़ी के बल पर नहीं, बल्कि इसलिए कि इस आवरण में एक तो कवि अनर्गल होकर अपनी वासनाओं को उँड़ेल सकता है. दूसरे इसलिए कि इसके उपकरण पाठकों और श्रोताओं के लिए भी एक ऐसा वातावरण रच देते हैं, जो औसत दर्जे की मानसिक वृत्तियों के छिछले, अनुदात्त, ऊपर-ऊपर तैर रहे तत्त्वों को उत्तेजन देता है। जो भावनायें हल्की होती हैं वे ऊपर सतह पर ही तैरा करती हैं; कवि को तो उन्हें

बचाकर गहरे तल में पैठकर मोती लाना है।

जीवन-रस, अमृत-रस आदि हमारी राष्ट्रीय संस्कृति में प्रतिष्ठित होते हुए भी 'हाला' के प्रवाह में हम बह जायें, यह धर्म नहीं हो सकता। पतन का पथ ढालू और रपटीला होता है और मानवीय प्रवृत्ति के पाँव गहरे जमे नहीं होते। कवि को उसे पाँव देना है, इस प्रवृत्ति को उत्तेजन देना नहीं, रोकना है, उसका उदात्तीकरण—मांगलीकरण (Sublimation) करना है। उसमें बह जाना और दूसरों को भी बहा ले जाना पौरुष नहीं है। कोई कह दे कि जीवन की निराशा और वेदनामयी परिस्थिति की प्रतिक्रिया के रूप में कवि-हृदय तो हाला की मस्ती में अपनी राहत खोजता है। परन्तु श्रेय की ओर जीवन का अमृत ही ले जा सकता है।

प्रेम के गीत गाते हुए जब कवि 'प्रेम' की महत्ता और उदात्तता के पाँवों में 'वासना' की जंजीरें डाल देता है तो वह कविता को भी कम कलंकित नहीं करता। प्रेम को मैं काव्य की आत्मा मानता हूँ। प्रेम ही कविता का प्राणवायु है, यह भी कह सकते हैं; परन्तु प्राणवायु को जब दुर्गन्ध स्पर्श कर लेती है, तो वह विष से भी घातक बन जाती है।

प्रेम और शृंगाररस साहित्य में पर्याय से हो गये हैं। शृंगाररस की सच्ची कसौटी मैं यह मानता हूँ कि उससे जो आनन्द प्राप्त हो, वह उदात्त वृत्तियों को ही उत्तेजन दे—असत् से सत् की ओर ही ले जाये। सत्-असत्, उदात्त-अनुदात्त का निर्णय करके मैं विज्ञ पाठकों की मेधा अवगणित नहीं करना चाहता।

प्रेम का जो वासनाजनित रूप है, वही प्रेम को उच्चासन से नीचे गिरा देनेवाला है। हमारा वह प्रेम प्रेम नहीं है, जो 'काम' में परिणति चाहता है। जहाँ शारीरिक आनन्द (या रस ?) की प्राप्ति की कामना है वहीं काम है। जहाँ आत्मिक या आध्यात्मिक आनन्द की प्रेरणा है वहाँ प्रेम है। इसी कसौटी ने कई हिन्दी कविताओं की मूल धारा को कामुकतापूर्ण ठहरा दिया है।

सभ्य-संस्कृत समाज में प्रेम को व्यक्त करनेवाली शारीरिक क्रियाओं का नग्न और खुला प्रदर्शन कोई कलापूर्ण बात नहीं समझी जाती और कविता तो वाङ्मय का अत्यन्त कलात्मक निखरा हुआ रूप है। यह वह सोना है जो स्वर्णकार के कलात्मक हाथ लगने से आभरण बन गया है। कविता हमारे साहित्य की वह देवता है, जिसके मन्दिर में कोई अशुचि वस्तु नहीं आनी चाहिए। प्रेम आरती का वह दीपक है, जिसके विषय में विश्वकवि ने कहा है:

वासना मोर जारेइ परश करे से,
आलोटि तार निबेये फेले निमेषे।
ओरे सेइ अशुचि, दुइ हाते तार,
जा एनेछे चाइने से आर,
तोमार प्रेम बाजबे ना जा
से आर आमि सइब ना

प्रेम में जो शारीरिक आसक्ति या वैषयिकता है, वह व्यवहार-जगत् में जितनी पतनकारी और विघातिनी होती है उतनी ही कविता में भी, बल्कि उससे भी अधिक; क्योंकि साहित्य तो एक ऐसा साँचा है, जिसमें हमारे मनोभाव ढलकर जनता के बन जाते हैं। जबतक कविता कवि के कण्ठ में है, तबतक वह शिव-अशिव, सुन्दर-असुन्दर जैसी है है, पर जब वह जनता के सामने आ जाती है तब उसे शिव-सुन्दर की कसौटी पर खरा उतरना ही चाहिए। अपेक्षा है कि हम कविता में अपनी मेधा और प्रतिभा का यह जानबूझकर व्यभिचार न होने दें, अपने प्रेम के चित्रण में भी सर्वथा, सर्वदा, सर्वत्र उदात्त और मंगल भावनाओं की ही सृष्टि करना सीखें।

सौष्ठव-पूजा

[प्रभाकर माचवे]

मोचीराम

[इतने में कलाकांतजी जो आगे बढ़े, तो उनके पाँव की चप्पलें टूट गयीं ।

और आप जानते हैं कि एक सूट डाटे हुए [illegible]वाली के लिए टूटी हुई चप्पल हाथ में लेकर चलने से अफ़सर की गालियाँ कम अपमानजनक लगती हैं। ख़ैर, यह तो था गाँव। किसी तरह कलाकान्तजी अपनी रेशमी रूमाल में वे चप्पलें लपेटकर चलते हैं, क्योंकि यहाँ उनका कोई परिचित नहीं है, जो इस क्रिया को हेय या हास्यास्पद समझे। और मोचीराम के यहाँ आ धमकते हैं ।]

मोचीराम–(उसने उस फैशन की चप्पलनुमा जूतियाँ अपनी ज़िन्दगी में पहिली बार देखी थीं। बड़े अचरज से दो-चार-बार उसे उलट-पुलटकर देखकर।) तो ईको कहा करिबो है ?

कला० (बिगड़कर) यह भी नहीं समझता ! देखो, इसका एक पैवन्द टूट गया है, उसे जोड़ देना है, बस।

मो०—जे किधर से जुड़ैगो बाबू साब ? और ये तो ओहो, नये ही तरज की जूती मैं देखत हों।

क०—अच्छा, तेरी तरज-वरज रहने दे। इसे ठीक से सी दे। यहाँ से, इस तरह।

[मोचीराम गाँव की गति से, धीरे-धीरे और बहुत धीरे अपना काम आरम्भ करता है—पहिले उसे टीन के डिब्बे में रखे हुए गंदे काले पानी में डुबोकर, फिर उसे ठोक पीटकर, उलटे-सीधे मोटे सूजे से छेदकर, टेढ़ी-मेढ़ी डोरियों से सीकर। कलाकान्त इसे देख-देखकर उकता जाते हैं।]

क०—जल्दी क्यों नहीं करता ?

मो०—अजी, महाराज। एक तो काम मिलो है कितने दिनन से। और तिसपर आप तो जैसे घोड़े पै सवार हो। जे हमने सुनी है महाराज कि आजकल लड़ाई जो चल रही है—

क०—(झल्लाकर) लड़ाई से तुझे क्या करना है ? लड़ाई के लिए मोचियों का कोई काम नहीं है।

मो०—क्यों घुड़सवारन की पलटन नाहीं जात होगी ? और तिनकी रिकाब, ज़ीन, लगाम, ऐराब सीने को काम नहीं पड़त होगो—

क०—कहाँ के घुड़सवार लेकर बैठे हो ? आल्हा-ऊदल की लड़ाई थोड़े ही है। लड़ाई अब होती है हवाई-जहाजों के बीच में—

मो०—ओ हो ओ, चीलगाड़ी ! (आश्चर्य से स्तम्भित कुछ देर के लिए काम डाल देता है) चीलगाड़ी ? हमने सुनी तो हती। तो लड़ाई उनसे होति है ? ओहो, ओहो !

(चप्पल सिलकर पूरी हो जाती है। इतने में एक देहाती अपना टूटा हुआ छाता वहाँ ले आता है और मोचीराम से पूछता है—छाता नहीं सुधार दोगे क्या ?)

मो०—हम क्या छाता सुधारनवारे हैं ? (हँसकर) अजी, हम तो जूते ही को काम करत हैं। ज्यादह-से-ज्यादह चमड़े को और काम। पर छाता-वाता यहाँ नाहीं सुधारो जात।

वह आदमी—बड़ी दूर से आये हैं। सुधार दो ना।

मो०—अरे, जात काहे नाहीं। अब देखो बाबू साहब, ऐसे गँवार भरे पड़े हैं। हम कहीं छाता सुधारनवारे हैं भला ?

क०—और तुम छाता सुधारने का काम कर दो तो—

मो०—कैसी बात करत हौ ? हमारो पेशा छोड़ दें :

क०—(जेब से चमड़े की मनी बैग निकालकर) यह लो एक आना।

मो०—छुट्टे पैसे तो हई नहीं सरकार !

क०—छुट्टे पैसे ? अरे पूरे आने की मज़दूरी की, और विलायत में तो इतनी सी बात के चार आने ले लेते !

मो०—कहाँ है जे विलायत, महाराज ! मौको वहीं पठाय देओ। (इकन्नी उठाली बजाकर माथे

से लगाकर) बोह्नी हुई सरकार। इहाँ तो डब्बलन से काम परत है। इकन्नी-दुअन्नी तो तेहवारन के रोज़ जिमींदार साहव से मिल जाति है। सोऊ सालभर सब्र काम हुइ जाय तब !

क०—तो तुम्हारी आमदनी क्या हो जाती होगी महीने की ?

मो०—गये क्वार दशहरे में कई जूते बनाये हते गाँववारन के। सो पाँच-दस रुपया मिलि गये हते। बाकी कबहूँ दुई-तीन रुपैया से ज्यादा मिलत नाहीं जा गाँव में। दलिद्दर गाँव है आप जैसे दाता बिरले ही होत।…

क०—और तुम्हारे घर आदमी कितने हैं ?

मो०—राम किरपा से चार बच्चे हैं, उनकी माँ, हमारी माँ, मौसी…

क०—तो और चीज़ें चमड़े की क्यों नहीं बनाते ?—मनीबेग, पोर्टमेंटो, स्ट्रैप्स, ये, वो, वगैरह-वगैरह…

मो०—क्या कही आपने ? जे नाम मैंने तो आज हो सुनै। गाँवन में तो लगाम, धानीवाले, बैलों के चमड़े की चश्मे पेटी जूती-वूती के सिवा और चमड़े को काम होत है ?

क०—तो तुम ये फैंसी चीज़ें खाली वक्त में बैठे बनाओ। ओर शहरों में बेचो।

मो०—(संशयग्रस्त सूखी हँसी हँसकर) शहरन में ? कौन लीहै ? जपानी माल इतनो सस्तो मिलत है कि हमारी लागतौ नाहीं निकरै [illegible]ाँ से शहर में जाओ, आओ, और एक-दो चीज़ बनाओ। और हमारो काम भला वाकी बराबरी कर सकत ?

क०—और चमड़ा कौनसा काम में लाते हो ?

मो०—जौन मिल जाय। मरी खाल ज्यादा तर हमारे यहाँ होति है, बूचड़खानेवारे तो शहरन में ही ले जायँ, अपनो चमड़ा—

क०—(खुद से ही) यह तो ठीक है। मरी खाल मारी हुई खाल से ज्यादह टिकाऊ होती है यह तो साइंस ने भी सिद्ध कर दिया है। मगर सवाल इतना ही है कि देशभर के लिए लगने वाला चमड़ा, हमारे यहाँ मरनेवाले जानवरों से मिल सकेगा ? जबतक आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध न हो…

(कलाकान्त सोचते जाते हैं कि तीन रुपये माहवार में आठ मुहँ दोनों जून खाते होंगे ? होगा कि मोचीराम की बहू भी मजूरी करती हो, मौसी भी। मगर वृद्धा माँ, और छोटे-छोटे बच्चे ? सब मिलाकर, घर में (क्योंकि स्त्रियों की मजूरी पाँच पैसा रोज़ वर्धा के आस-पास के गाँव में मिलती है) सात-आठ रुपये बमुश्किल पड़ते होंगे। और मजूरी भी हर वक्त कहाँ मिलती ? उसमें शादी, मृतक-क्रिया, धर्मोत्सव ! कर्जा !! कलाकान्तजी ने इसी सोच-सोच में अपने मुहँ में सुलगी हुई सिगरेट फेंक दी। उन्होंने एक रोज़ पहिले ही अखबार में पढ़ा—था विदेश से आनेवाली सिगरेटों की आयात में दो लाख रुपये सालाना बढ़े हैं। हमारे यहाँ के लाखों श्रमोपजीवी भूखें मरें—और लाखों, सिगरेट की राह विदेश जायँ ? यह कौनसी कला है ? और कौनसी सौन्दर्य-पूजा है ?…कलाकांतजी आगे बढ़े)

* * *

रंगीखाँ छीपा

(रंगीखाँ छीपे के घर पर लकड़ी के पाटों पर मोटा गाढ़ा बिछा है। पर्दे, गँवई साड़ियाँ, चादरें और लिहाफों के लिए रंगीन कपड़ों पर छपाई हो रही है। वही प्राचीन पद्धति। लकड़ी के, हाथ से दबाने के छापे। रंग बनाने के भी वही पुराने तरीक़े—रीठा, गेरू, हिंगुल, चूना।

रंगीखाँ रंगरेज़ भी है। मकान के बाहर रंगों से भरे बड़े-बड़े तसले हैं। कुछ पगड़ियाँ भयंकर लाल रंग में सनी सूख रही हैं। कुछ गाँठ बाँधकर भी कपड़ा रखा गया है। शायद उसपर लहरिया रंग होने को है।

कलाकान्त महाशय, जो रंगों से ज्यादा प्रेम रखते हैं, वहाँ पहुँचते हैं)

क०—ये पुराने ढंग के रंग तुम क्यों काम में लाते हो ?

रं०—विलायती रंग भी हम काम में लाते थे हज़ूर। मगर अब रंगों के भाव बढ़ गये हैं। एक पैसे का रंग अब एक आने में आने लगा है।

क०—मगर ये तुम्हारे फूलपत्ती, मोर के हैं और साँचे बड़े गँवारू किस्म के हैं। इनमें नये डिजाइन क्यों नहीं बनाते ?

रं०—नये डिजाइन बनें कैसे ? हमारे यहाँ कोई तो ये लकड़ी के साँचे खोदते नहीं। हमारे दादा जब मेरठ, बुलन्दशहर की तरफ एक बार गये थे, तब लाये थे ये साँचे। हम तो साँचे चलाते ही रहे।

क०—क्यों तुम लोगों के घर तुम्हारी स्त्रियाँ छपाई का काम नहीं कर सकतीं ? जापान में तो तीन बरस के बच्चे-बच्चियों से लगाकर…

रं०—आप कहाँ की बातें करते हैं ? एक तो यह बात नासमझदारी की है कि हम बढई बन जायें। ऐसा कहीं हो सकता है। हम ऐसे-वैसे नहीं हैं। खानदानी छीपे और रंगरेज हैं। समझे, मालिक !

क०—होगा, अगर जो काम प्राचीन परम्परा से करते आ रहे हो, उसमें जरा भी फर्क़ आ जाय तो तुम लोग इस कदर बौखला उठते हो—तो मुझे ऐसा लगता है कि इन गाँवों में अभी बीसवीं सदी का जन्म ही नहीं हुआ है। मशीन की बात कुछ जानते हो ?

रं०—हाँ, एक बार एक रंग का कारखाना खोला था। वहाँ तो हम भूखे मरने लग जायँ सरकार। यहाँ इतना तो है कि मैं छापता हूँ तो बहिन रँगती है, और बीबी कपड़ा कूटती है वगैरह। वहाँ तो इतने-सारों की ज़रूरत ही क्या है ? सब धान बाइस पसेरी। एक आदमी आया और काफी है। और वे तो बिजली से चलते हैं न ?

क०—हाँ, बिजली का भी प्रश्न है। पर तुम्हारे गाँव के पास जो यह बड़ी-सी नदी बहती जाती है उससे तो 'पावर' लायी जा सकती है।

रं०—बहुत कुछ हो सकता है साहब ! इनसान भी फरिश्ता बन सकता है। शैतान भी खुदा हो सकता है। मगर सकता-ही-सकता है। होता देखा तो नहीं गया—

क०—देखो हमारे यहाँ एक 'नेशनल प्लैनिंग कमिटी' बनायी गयी है, जो इन बातों को सोचेगी।

रं०—क्या कहा, कोई कमिटी ? अजी कमेटी-वमेटी से कुछ होनेवाला नहीं। हममें ही इत्तिफाक हो तो—

क०—तो वह कमिटी सब किस्म के कल-पुर्जे…

रं०—हाँ, हाँ, वो मन्सूर मियाँ होटलवाले अखबार पढ़ते हैं। उनने कही थी कि वो' कमेटी-वमेटी तो पेले मोटर बना रही है। क्यों सच्ची है न ? रंग कारखाने की पेले जरूरत थोड़े ही है मोटर की ज़रूरत है ?

क०—अरे, सब धीरे-धीरे एक साथ हो जायेगा। उम्मीद रखो। [क्रमशः]

तेरा उपहार

['मृत्युञ्जय']

मैंने तुझसे अपनेपन का अनमोल उपहार पाया। फिर तू और मैं दो हो गये।

मैं अपने से तुझको भिन्न समझने लगा। सन्तत तुझसे मिलकर एक होने का नित्य निष्फल प्रयत्न करता रहा।

परन्तु ज्यों-ज्यों मैं तेरी ओर बढ़ने का प्रयत्न करता, त्यों-त्यों तू मुझसे अधिकाधिक दूर-दूर होता चला गया।

अततः मैंने निश्चय किया कि मैं तेरा उपहार तुझे लौटा दूँ। तू मेरे पास आया, परन्तु ज्योंही मैंने तेरी ओर हाथ बढ़ाये तू मुस्कराकर एक ओर निकल गया।

मैंने दृढ़ संकल्प के साथ मेरा अपनापन सहर्ष तुझे लौटा दिया। तू मन्त्रमुग्ध-सा मेरी ओर देखा और तत्क्षण मेरापन तेरेपन में समा गया। फिर न तू रहा न मैं।

जीवन, साहित्य और जीवन

[छगनलाल परमार]

जीवन और साहित्य का परस्पर घनिष्ठ और अटूट संबंध है। वह एक और अभेद्य द्वंद्व है। साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है, पर निर्जीव प्रतिबिम्ब नहीं है। सिर्फ प्रतिबिम्ब ही नहीं है, परन्तु वह और भी कुछ है। जीवन में से पैदा होकर वह जीवन को गढ़ता भी है! वह प्रजा के जीवन और संस्कृति का इतिहास ही नहीं, बल्कि उस इतिहास का विधायक भी है, जीवन का यथार्थ दर्शन कराने के अलावा वह जीवन की मर्यादाओं एवं दोषों को निर्मूल करने की दृष्टि और प्रेरणा भी प्रदान करता है। उसका अर्थ यह है कि साहित्य और जीवन परस्परावलंबी और परस्परोपकारक हैं। वह ऐसा अटूट द्वंद्व है कि उनका गठबंधन छुड़ाने का विचार आत्मघातक, अशक्य और अनुचित है।

किसी भी देश या युग का साहित्य देखिए। उस देश या युग की वृत्तियों एवं प्रवृत्तियों का, महत्ताओं एवं मर्यादाओं का दर्शन आपको अच्छी तरह होगा। साहित्य एक ऐसी चीज़ है, जो हज़ारों वर्षों तक अमिट रह सकती है। पुराने कालों की संस्कृति और समाज-स्थिति का अविकृत और आनन्दप्रद दर्शन साहित्य ही करा सकता है। प्राणवान जीवनधर्मी साहित्यकारों की ज्ञानप्रसू और जीवनविधायिनी लेखनी से ही प्राणवान और प्रेरक साहित्य प्रकट हो सकता है। जैसा शील, वैसा साहित्य; अतएव साहित्य जीवन-दृष्टा और जीवन-सृष्टा साहित्यकारों के महान् आत्मा का सार होने के कारण उनके जमाने का सच्चा, अच्छा और सजीव चित्र रखता है। हज़ारों वर्षों से हिन्दू-धर्म के विराट काव्य रामायण, महाभारत और भागवत हिन्दू जीवन पर लगातार भारी असर करते आये हैं।

जबतक जीवन में महत्ता प्रकट नहीं होती, तब तक साहित्य में महत्ता प्रकट होना प्रायः असंभव है। जब भारतीय जीवन संस्कृति और समृद्धि के सर्वोच्च सिहासन पर था, तब उसका साहित्य भी उतना ही महान् था। जब से भारत पराधीनता और जड़ता में फँस गया, तबसे उसका साहित्य भी अल्पप्राण, अदूरदृष्टि, अपुरुषार्थी और भ्रान्त होने लगा। आज जब भारतीय जीवन में उन्नति और उत्कर्ष के आंदोलन बढ़ रहे हैं, तब सभी प्रांतीय और राष्ट्रीय साहित्य तेज़ी से विकसित हो रहा है इससे मालूम होता है कि साहित्य जीवन से कभी विमुख हो ही नहीं सकता, उसका नाता अटूट है। ये दोनों एक साथ ही आगे बढ़ते हैं और नीचे गिरते हैं।

साहित्य का मूलभूत ध्येय है रसनिष्पत्ति। जबतक साहित्यकार अपने हृदय के रसानन्द या संवेदन का पाठक के हृदय में संक्रमण नहीं कर सकता, तबतक उसकी साहित्य-कृति सफल नहीं होती, पर महान साहित्यकार मनोरंजन के एक ही उद्देश्य से संतुष्ट नहीं होते। 'कला के लिए कला' उसके साहित्य-सर्जन का प्रमुख ध्येय नहीं होता। जनता की मनोवृत्तियों में रससंचार करने के अलावा उसकी मनोवृत्तियों का शुद्धीकरण, संस्कृतीकरण और उच्चीकरण साधने का अरमान भी ऐसे साहित्यकारों के जनहितचिंतक हृदय में उछलता रहता है। महान साहित्यकारों का साहित्य-सर्जन सदा और सर्वत्र जीवनलक्षी ही जान पड़ा है।

साहित्य एक महान शक्ति है उसका सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों हो सकते हैं। बम, तोप और तलवार से भी वह ज्यादा उथल-पुथल कर सकता है आधुनिक काल में योरप में जो क्रान्तियाँ हुई हैं, उनको जगाने में साहित्यकारों का बड़ा हिस्सा था। वे निरे साहित्यकार नहीं थे, समाज-विधायक भी थे। उन्होंने अपने साहित्य में जीवन-सम्मुख और नयी दृष्टि की प्रतिष्ठा करके लोक-जीवनमें बड़ा परिवर्तन कर डाला, नये प्राण का संचार किया।

मानव-कुल का उद्धार कभी होगा तो वह कलाकारों के ही द्वारा होगा, उपदेशकों, सुधारकों,

नों और वैज्ञानिकों से प्रजा सुधर नहीं क्योंकि पाठक के हृदय में भावों का करने का मूल आशय रखनेवाला साहित्य के हृदय पर अपना स्वामित्व स्थापित सकता है। जनता के हृदय की शुद्धता व तो कान्ता जैसे मधुभाषी एवं सत्यव्रती कारों से ही सिद्ध हो सकेगी। जितना स्थान पुरुष-जीवन में स्त्री का है, ही महत्त्वपूर्ण स्थान मनुष्य-जीवन में का है।

साहित्य के अध्ययन के कारण हमारे देश में बहुत-सी ऐसी चर्चायें हैं कि साहित्य यथार्थवादी होना या आदर्शवादी ? सिर्फ कलालक्षी होना या जीवनलक्षी ? दूसरे देशों का अनुकरण हमें थोड़ा-सा लाभ हुआ है, पर लाभ हानि कहीं अधिक हुई है। हरेक देश विशिष्ट संस्कृति होती है और स्थिति होती है। जो प्रजा अपनी संस्कृति और वर्तमान स्थिति का सोच-करके जीवन-प्रवृत्तियाँ नहीं चलाती, वह पतनोन्मुख अवस्था में गिरती जाती है जैसे ज्वरग्रस्त आदमी को सभी प्रकार का भोजन पथ्य नहीं हो सकता, इसी तरह पराधीनता और दारिद्रय के रोग में फँसे हुए भारत को जीवनविमुख खाद्य कैसे पथ्य हो सकेगा ? इसीलिए हमारे पीड़ित, परतन्त्र और दरिद्र देश को जो साहित्य पथ्य और पोषक हो, वही साहित्य हमारे साहित्यकारों को आज रचना चाहिए। भारत के युगधर्म, राष्ट्रीयता को और उसके सर्वोदयकारी अहिंसा के सनातन धर्म को जो साहित्य जीवनव्यापी और सफल करे, उसी साहित्य का सर्जन हमारे जीवन को स्वस्थ, समृद्ध, समर्थ और स्वाधीन बनायेगा। स्वराजवादी प्रजा को अपनी सभी प्रवृत्तियों में जीवनलक्षी गांभीर्य समझना पड़ेगा। अगर हमारे सभी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार अपने मनोवेगों को राष्ट्रोन्नति की ओर अग्रसर करें और साहित्य के द्वारा जनता-जनार्दन की आराधना करने के लिए लोकभोज्य, लोकोपयोगी एवं लोककल्याणकारी साहित्य रचें, तो थोड़े ही वर्षों में राष्ट्र में कोई अद्भुत व अभूतपूर्व प्राण प्रकट हो जायगा और स्वराज आप-ही-आप आकर राष्ट्र की सेवा में खड़ा हो जायगा।

निजी पुस्तकालय बनाइए

[कालिदास कपूर]

पाठक,

कुछ समय पहले **'पठन-पाठन का प्रचार'** 'जीवन-साहित्य' में प्रकाशित हुआ लेख प्रकाशकों तथा लेखकों के लिए निवेदन किया गया था कि यदि चाय करना माज के लिए हितकर है चाय के कारखाने उसका प्रचार करने संगठन कर सकते हैं और उस संगठन प्रोत्साहन भी मिलता है, तो पठन-का प्रचार कोई ऐसी बला नहीं है जिसके प्रकाशक और लेखक संगठित न किये जा और जिसको सरकारी प्रोत्साहन न मिल सके। सच पूछिए तो सिनेमा और रेडियो के होते हुए भी पुस्तक तथा पत्र-पत्रिकाओं से बढ़कर घर बैठे ज्ञान और संस्कृति की उन्नति करने का कोई और साधन नहीं है।

लेख प्रकाशित हुआ, परंतु मैंने इस आशा से उसे नहीं लिखा था कि मेरा निवेदन भारतीय प्रकाशक स्वीकृत कर लेंगे और संगठन के लिए कुछ प्रयत्न करेंगे। संगठन की कमी हमारी जातीयता का लक्षण है और यदि कोई संगठन न हो सका, उसकी कुछ चर्चा भी पत्र-पत्रिकाओं में नहीं हुई तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भारतीय विचार-समूह को हिन्द महासागर का

अनुरूप समझिए, जिसमें वह लेख कुछ क्षण तक लहरें पैदा करके विलीन हो गया। मुझे कोई खेद नहीं है, मुझे अपने कर्तव्य के पूरा करने का संताप है।

यह लेख पत्र रूप में आपके लिए है, आप पढ़े-लिखे तो हैं ही, कदाचित् आप कभी-कभी वा संयम से किसी हिन्दी पत्र-पत्रिका को पढ़ते रहते हैं, इसलिए यदि यह पत्र आपकी दृष्टि में पड़ जाये, तो इसे आप अपने ही लिए समझिए।

मैं इस पत्र में अन्य देशों के पठन-पाठन की चर्चा नहीं करूँगा, करना उचित हो तो भी तुलना द्वारा अपनी हीनता का दुःख रोना न आपको रुचिकर होगा न मुझे। आपको पठन-पाठन में थोड़ी बहुत रुचि तो है ही। नहीं है, तो इस पत्र की पहुँच भी आपतक नहीं हो सकती।

क्षमा कीजिएगा। इस देश में आपका दल बहुत कमज़ोर है आपकी रुचि रखनेवाले लोग भारत में बहुत कम हैं। इस देश में सौ पीछे नव्वे तो निरक्षरभट्टाचार्य हैं, वे आपके दल में हैं ही नहीं। बचे दस, उनमें कई तो नव्वे के साथ हैं। आपकी रुचि लेकर वे नव्वे के नक्कू नहीं बनना चाहते, उनको आनंद मिलता है नाच-गाने में, सिनेमा थियेटर में। आपको थोड़ा-बहुत मिलता है पुस्तक-पत्रिका पढ़ने में। वे क्यों आपके शौक़ में शामिल हों?

मेरा पहला निवेदन है कि अपना दल बढ़ाइए। भारी काम है। निवेदन कर दूँ कि आपको नव्वे में से किसी को अपनी तरफ़ तोड़ने के लिए नहीं कहता। उनकी फ़िक्र भगवान करेगा, तभी उनका उद्धार होगा। आप केवल दस में उनको अपनी ओर ताड़िए जो पढ़-लिखकर भी पढ़ने का आनंद नहीं उठाते।

यह क्योंकर हो? आपकी पढ़ने के प्रति रुचि है; परंतु यह रुचि परिष्कृत नहीं हो सकती यदि आप पुस्तकों अथवा पत्र-पत्रिकाओं का अपना संग्रह न करें। इस संबंध में मैं अपने अनुभव की बात बताऊँ। पुस्तक से वही आनंद नहीं मिलता जो उसके विषय से संबंध रखता हो। हम अपने यौवन-काल में कोई पुस्तक अथवा पत्रिका पढ़ते हैं। जिस परिस्थिति में हम उसे पढ़ते हैं, उसका घनिष्ट संबंध पुस्तक के विषय से हो जाता है, अतीत हमेशा सुवर्ण-रंजित रहता है। हमारी अवस्था बढ़ती है, साथ ही अतीत की स्वर्ण-आभा भी बढ़ती है। इस आभा का आनंद हमें तभी मिलता है उस अतीत का हमारे हृदय में पुनर्जन्म उसी समय होता है, जब उससे संबंध रखनेवाली पुस्तक अथवा पत्रिका को हम दुबारा पढ़ते हैं। पुस्तक अपनी हो, उसके हाशियों पर आपके हाथ की लिखावट हो, जो उसमें आनंद है वह सार्वजनिक पुस्तकालय से उसी पुस्तक को लेकर पढ़ने में नहीं है।

निवेदन है कि यदि आपको पढ़ने का शौक़ है और यदि आपने अभी तक निजी पुस्तकालय नहीं बनाया है, जिसकी सब पुस्तकों पर आपके हस्ताक्षर हों, तो आज श्रीगणेश कीजिए।

मैं आपकी आर्थिक स्थिति का परिचय नहीं चाहता। आप धनी-मानी हों अथवा आपकी आय बहुत कम हो—कोई हर्ज नहीं—पुस्तकें, पत्र और पत्रिकायें भी आपकी जेब के अनुसार मिल जायँगी। अपनी अन्य जिम्मेदारियों का बहाना न कीजिए, लड़कों को पढ़ाना है, लड़कियों का ब्याह करना है; अथवा आप स्वयं विद्यार्थी हैं, पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त किसी और पुस्तक पर खर्च करने के लिए आपको आज्ञा नहीं मिल सकती। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप अपना निजी पुस्तकालय बनाना चाहते हैं तो उसके लिए खर्च निकल आवेगा। मैं नहीं कहता कि सौ-पचास पुस्तकों से शुरू कीजिए, शुरु करने के लिए पाँच काफ़ी हैं। प्रति वर्ष जहाँ और आपके खर्च हैं, वहाँ कुछ रक़म पुस्तकों पर भी खर्च कीजिए, आपका पुस्तकालय बढ़ता जायेगा।

समाज में ठाट-बाट के बिना काम नहीं चलता। आपके पुस्तकालय के लिए मैं यह भी चाहूँगा कि उसमें अच्छी जिल्द की पुस्तक हों, वे अलमारी में सजी हों और आपका पुस्तकालय

जगह हो जहाँ आपके मित्र पहुँच सकें ।

बहुत से पढ़ने का शौक रखने का दम भरनेवाले बहुधा माँगकर ही अपना शौक पूरा करते हैं। आप अपने पुस्तकालय का यह कठोर नियम बना लीजिए कि आप किसी को पुस्तक उधार नहीं देंगे, पुस्तकों को आपने उधार देना शुरू किया कि आपका पुस्तकालय बिगड़ा ।

आप यह शायद चाहेंगे कि जितना बढ़िया पुस्तकालय आपका हो, उतना आपके पड़ौसी का न हो। परन्तु विश्वास रखिए कि आपकी और आपके पुस्तकालय की कदर वही लोग करेंगे जो पढ़ने के शौक़ीन हैं, अपना पुस्तकालय बनाए हुए हैं, इसलिए निवेदन है कि अपने मित्रों को प्रोत्साहित कीजिए। अपना पुस्तकालय बनाइए। फिर जब किसी मित्र के घर जाइए तो पुस्तकालय की चर्चा कीजिए और उसके मन में यह विश्वास पक्का होने दीजिए कि मोटर और मकान रखते हुए भी यदि उसका निजी पुस्तकालय नहीं है तो वह सभ्य कहलाने योग्य नहीं है। विलायत में बहुतेरे रईस सजावट के लिए ही पुस्तकालय रखते हैं। पुस्तकालय उनके ड्राइंग-रूम-फर्निचर का एक अंग है।

आप कहेंगे कि पुस्तक-संग्रह करना तो हमने शुरू कर लिया, अब यह बताओ कि किन पुस्तकों का संग्रह करें। मेरा उत्तर है कि मैं आपकी रुचि का जानकार नहीं हूँ। साहित्य का आनन्द उसके वैचित्र्य में ही है और वह वैचित्र्य पाठक और लेखक की रुचि-वैचित्र्य का सम्मिलित परिणाम है। अपनी रुचि के अनुसार ही अपना पुस्तकालय बनाइए । हाँ, एक काम मैं कर सकता हूँ ।

आप पचास ऐसी हिन्दी पुस्तकों के नाम लिखिए, जो आपकी राय में आपके पुस्तकालय में होनी चाहिए, जिन्हें पढ़ना आप पसन्द करेंगे । हिन्दी-साहित्य अभी अधूरा है । कुछ ऐसे रुचिकर विषय हो सकते हैं जिनपर आपको हिन्दी में कोई पुस्तक ही न मिलती हो, इसलिए एक सूची में तो मुझे अपनी पसन्द की ऐसी पुस्तकों के नाम दीजिए जो आपकी पढ़ी हुई हों, और दूसरी सूची में उन विषयों का उल्लेख कीजिए जिनपर आप पुस्तकें चाहते हों । पहली सूची में पचास से अधिक नाम न हों और दूसरी में ५ से अधिक विषय न हों । आपकी सूचियों के मिलने पर और उन्हीं के आधार पर मैं आपके विचारार्थ एक सूची आपके पुस्तकालय के लिए प्रकाशित करूँगा और दूसरी सूची लेखकों और प्रकाशकों के लिए, जिससे आपकी बतायी कमियों की पूर्ति हो सके ।

यह पत्र पाठकों के लिए ही नहीं, पाठिकाओं के लिए भी है । हिन्दी-साहित्य को दोनों के सहयोग की आवश्यकता है । पाठिकायें ही गृह-स्वामिनी हैं, उन्हींसे साम्राज्य के भीतर में पुस्तकालय बनाने जा रहा हूँ । इसलिए पाठिकाओ, आपके सहयोग की विशेष आवश्यकता है । मैं जो सूची चाहता हूँ, उनके देने में यदि आप सहयोग दें, फिर यदि पुस्तकालय के बनाने में भी आप सहयोग दें सकें, तो हिन्दी-साहित्य और उससे पलनेवाले प्रकाशक और लेखक आपको निरन्तर आशीर्वाद देंगे कि आपके पतिदेव, पुत्र, और पौत्र संध्या के समय सिनेमा और क्लब न जाकर आपकी छत्र-छाया में ही आपके पुस्तकालय का कमखर्च बालानशीन आनन्द लूटें ।

ग़लतफ़हमी का निराकरण

अगर हिन्दुस्तान कृषिप्रधान राष्ट्र न होता; यहाँ रुई पैदा न होती, कपड़े के लिए प्रति वर्ष करोड़ रुपये विदेश को न जाते होते, किसानों के वर्ष में कम-से-कम तीन चार महीने बेकारी और आलस्य में न बीतते होते…और शरीर-संरक्षण के लिए कपड़े की अनिवार्य आवश्यकता न होती, तो 'चरखे और खादी' पर महात्माजी ने इतना तूमार न बाँधा होता । देश की विशेष परिस्थिति का सब दृष्टियों से विचार करने के बाद ही महात्मा जी ने चरखे और खादी की हिमायत की है ।

बालूभाई मेहता ['खादी-मीमांसा' सस्ता साहित्य मण्डल]

जीवन का उषाकाल

[प्रभुदास गांधी]

दूसरा प्रकरण

पूर्व-स्मरण

मौर्य्य साम्राज्य; गुप्त साम्राज्य और हर्षवर्धन के आंध्र राज्यों का जोर घटने पर सौराष्ट्र, आनर्त, लाट आदि पश्चिम भारत के प्रदेशों में दिग्विजयी राजाओं का प्रादुर्भाव हुआ। उस ज़माने से अंग्रेज़ों के आगमन तक खंभात की खाड़ी के सब बंदरगाह बहुत समृद्ध थे। यूरोप के यात्री इन नगरों को देख-देखकर चकाचौंध हो जाते थे। एक अंग्रेज़ मुसाफिर ने कुछ ऐसा लिखा है कि खंभात इतना समृद्ध और रौनकवाला है कि लंदन पर फूले न समाने वाले हम लोगों का गर्व यहाँ चूर-चूर हो जाता है।

गुजरात-काठियावाड़ के इतिहास से जो अपरिचित हैं उन्हें इस सिलसिले में वल्लभीपुर राज्य, सिद्धराज के साम्राज्य और हेमाचार्य सूरि के सांस्कृतिक दिग्विजय के बारे में कुछ जानकारी पाने में दिलचस्पी आवेगी। गुजरात-काठियावाड़ की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक रचना करने में शूरवीर क्षत्रियों का जितना हाथ रहा, उतना ही बनियों का भी रहा। प्राय: सभी बड़े-बड़े दिग्विजयी राजाओं के प्रधान अमात्य बनिये रहे। बनिये दो प्रकार के थे। एक जैनधर्मी दूसरे वैष्णव-पंथी। इन दोनों ने गुजरात की रग-रग में पीढ़ियों तक अहिंसा का प्रेम भर दिया। एक तरफ आबू गिरिनार की चोटियों पर ताजमहल से टक्कर लेनेवाले मीनाकारी मन्दिर खड़े किये और दूसरी ओर सामुद्रिक व्यापार बढ़ाकर तथा छोटे-छोटे व्यापारी और दस्तकारों तथा महाजनों के सुगठित सामर्थ्य को राजकीय फौजी सामर्थ्य से अधिक ऊँचा ले जाकर गुजरात और सौराष्ट्र की जनता को पीढ़ी-दर-पीढ़ी समृद्ध और व्यवहारदक्ष बनाया। इन प्राचीन-काल के बनियों में पुण्यश्लोक हेमाचार्य सूरि का नाम भारत की बड़ी-बड़ी विभूतियों में गिना जायेगा। गुजरात का, गुजरात की भाषा का, गुजरात की सभ्यता का सर्जन करने में उनसे बढ़कर दूसरा कोई शायद ही हो। महात्मा गांधी से सर्वज्ञानसम्पन्न आचार्य हेमाचार्यजी की तुलना की जा सकती है या हेमाचार्यजी से गांधीजी की। चार-छ: शतक के बाद का इतिहासकार ही इन दोनों में तुलना कर सकेगा। अभी हम महात्माजी के इतने निकट हैं कि हमें उनकी विशेषता अधिक प्रतीत होना स्वाभावि है। यद्यपि ऐतिहासिक संशोधन में नहीं कर पाया हूँ, फिर भी जो कुछ हेमाचार्यजी के बारे में जब-जब मैं पढ़ पाया हूँ तब-तब मुझे वे बापू जी की पूर्वावृत्ति से प्रतीत हुए हैं। और जब मुझे पता चला कि धंधूका के हेमाचार्यजी जन्म उसी मोढ़ बनिये की बिरादरी के थे, जिस गांधीजी का जन्म हुआ, तब गांधीजी में विकसि होनेवाले गुणों की जड़ वहीं से आरम्भ होने विश्वास मेरे दिल में हठात् पैदा हो गया गांधीजी के स्वभाव में जो बारीक-बारीक खूबि हैं उनका छोटे-मोटे रूप से उन्हीं पूर्व पुरुष जमाने से उत्तरोत्तर विकास होता चला।

गुजरात-काठियावाड़ में बनियों की कई उ जातियाँ सदियों से रही हैं। इनमें से गांधी-खान मोढ़ वणिकों में से है। ईसवी सन् के ग्यारहवें श के बाद गुजरात अपनी उन्नति की चरम सी पर जा पहुँचा था। राजधानी की प्रसिद्ध न पाटन के पास मोढेरा नाम का एक गाँव आ भी मौजूद है और वहाँ के 'मोढ़मंदिर' के स्था की आज भी काका साहब कालेलकर भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हम लोगों के इति का प्रारम्भ यहीं से समझना उचित होगा। मों गाँव, जो अहमदाबाद को ठीक उत्तर में तीन- मंजिल की दूरी पर आज भी स्थित है,

नों का मूल-स्थान है। असल में मथुरा, रा के वैश्य ही इस ओर आकर बसे होंगे— और अलग-अलग गाँव के नाम से उनकी अलग-अलग बिरादरी बन गयी होगी। जैसे झारोळा व के 'झारोळे' अडालजे के 'अडालजे' और ढेरा के 'मोढ'। यही मोढ अधिक दक्षिण में निकलकर कर्णावती (आधुनिक अहमदाबाद), लेरा, धन्धूका आदि व्यापारिक केन्द्रों में बसे, इसका पता हेमाचार्य के चरित से चलता है। जब उधर का व्यापार टूटा, तब ये लोग काठियावाड़ की भीतरी रियासतों में फैलते गये। इस तरह हमारे गांधी-कुटुम्ब का सिलसिला नागढ़' रियासत से प्राप्त होता है। चलती ती प्रथा के मुताबिक खानदान के कुछ लोग पार का और कुछ राजकर्मचारी का पेशा रते रहे। राजकर्मचारी को नौकरी के सिलसिले में रियासत की तहसीलों में घूमना पड़ता है। इस तरह घूमते हुए लालजी गांधी या उनके सी पूर्वज को जूनागढ़ के किसी पूर्वज को कुतियाणा कस्बे में नौकरी मिली। भादर का हरा-भरा किनारा, कुतियाणा का अच्छा व्यापार और मनोरम सृष्टि-सौन्दर्य के कारण नौकरी छूटने के बाद भी वे वहाँ बस गये।

कुटुम्ब का जो कुछ इतिहास मिलता है, इससे पता चलता है कि राजकीय खटपट सदा चलती रही। पिता की नौकरी यदि पुत्र को मिली है, तो, वह पुत्र के अपने बूते पर। विरासत में पिता पुत्र को नौकरी दिलवा सके हों, ऐसा वाक़या नहीं हुआ। जो बनिया तेजस्वी हो, विश्वासपात्र हो, चिट्ठी-पत्री लिख सके और खजाना सँभाल सके तथा अपने को शरीफ खानदान का तथा अपने पूर्वजों की वफ़ादारी का गहरा असर राजा पर डाल सके, उसको राजा अपनी नौकरी में रख लेता। राजा के ऊपर दूसरी जाति या कुटुंब की सिफारिश का ज्यादा असर पड़ने पर नौकरी करनेवाला कुटुंब स्तीफ़ा देकर अलग हो जाता और अपने वतन में शांति के साथ बैठे छोटे-मोटे व्यापार से अपनी गुजर करता।

इस परिपाटी से लालजी गांधी और उनके वंशजों ने जूनागढ़, पोरबन्दर और बाद में राजकोट, वाँकानेर इत्यादि रियासतों में, जहाँ उनका जोर बँधा वहाँ, नौकरियाँ की। कुतियाणा जूनागढ़ का कस्बा होने पर भी पोरबंदर के बहुत समीप में होने के कारण अंत में गांधीवंश की ज्यादातर नौकरियाँ पोरबन्दर में ही हुईं।

लालजी गांधी के पुत्र रामजी गांधी पोरबंदर राज्य में दफ्तरी थे। दफ्तरी का मतलब प्रधान मन्त्री का दायाँ हाथ।

रामजी गांधी के पुत्र रहीदास गाँधी ने भी पोरबंदर में नौकरी की थी, ऐसा सुना जाता है, परन्तु उन्हें कुतियाणा गाँव में जूनागढ़ के नवाब की ओर से इनामदारी की जमीन मिली है। आज भी वह जमीन सारे गांधी-कुटुम्ब की है। कुतियाणा पोरबंदर के मकान बिक गये, भाइयों में कुल मिल्कियत का बटवारा हो गया, परन्तु यह ज़मीन सारे कुटुम्ब की सदा बनी रही है। उसकी आमदनी कुल देवी के मन्दिर को जाती है। ज़मीन ज्यादा नहीं है, मुश्किल से एक एकड़ होगी।

रहीदास गांधी के दो पुत्र। हरजीवन गांधी और दमन गांधी। हरजीवन गांधी के सुपुत्र उत्तमचन्द गांधी, जिनसे हमारे खानदान का असली इतिहास शुरु होता है। हरजीवन गांधी भी पोरबंदर में दफ्तरी थे और दमन गांधी भी उसी नौकरी में पहुँचे थे।

दमन गांधी के साथ रहकर उत्तमचन्द गांधी जब पोरबंदर में काम करते थे, तब राणासाहब की निगाह उनकी ओर आकर्षित हुई। उनकी प्रतिभा देखकर राणासाहब ने उन्हें अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। [क्रमशः

---

१. परम भक्त नरसिंह मेहता की जन्मभूमि

अहिंसा

[विद्यानन्द]

प्रातःकाल का समय था। कुछ मित्रों के साथ सरयू-स्नान को चला। कुछ दूर राह सुगम थी, क्योंकि सड़क पक्की थी। परन्तु जब रेतीली ज़मीन आरम्भ हुई, चलना कठिन हो गया। आगे कुछ दलदल मिला। शरीर घुटने तक अन्दर। कठिनाई अधिक कठिन हो गयी। मित्रों के सहारे बाहर निकला। इसी तरह राह तय करता हुआ सरयू-तट पहुँचा और जल के अन्दर प्रवेश किया। इस यात्रा में ये विचार आये—

पक्की सड़क पर चलना अति सुगम होता है. उसको पैरों से कुचलना आसान है, क्योंकि वह कठोर है। हमारे कठोर आघातों का उत्तर वह कठोरता से ही देती है। बालू में कुछ नरमी आ जाती है, परन्तु वह नरमी बहुत गहराई तक नहीं रहती। जहाँ तक नरमी रहती है हमारा आक्रमण हमको ही कष्टप्रद होता है। दलदल की नरमी और अधिक गहराई तक है, अतः उसको अपने पदों से ठुकराना एक समस्या उपस्थित करना है। जल तो आदि से अन्त तक मुलायम, नरम है। किसी समय भी वह हमारे पद-प्रहार का उत्तर कठोरता से नहीं देता। उसपर आक्रमण करना मृत्यु का आवाहन है।

ठीक यही दशा मनुष्य के हृदय की है। हम जितना दूसरों को परेशान करने का यत्न करते हैं स्वयं परेशान होते हैं, यदि वह हमारी अनधिकार चेष्टा का उत्तर पूर्ण अहिंसा से देता है। हमारे हृदय का अहिंसात्मक भाव जितना गहरा होगा ठीक उसीके अनुसार दूसरे का प्रहार स्वयं लौटकर उसीपर प्रहार करेगा।

अहिंसा निर्बलता नहीं है। अहिंसा हिंसा के भावों का अभाव है। निर्बलता में हिंसा के भाव तो रहते हैं, परन्तु हिंसा के साधन नहीं रहते। इसके विपरीत अहिंसा में चाहे साधन हों या न हों, परन्तु भावों का पूर्ण अभाव रहता है। यह अहिंसा और निर्बलता के बीच की दीवाल है। आज असंख्य निर्बल मनुष्यों पर अत्याचार हो रहा है, परन्तु अत्याचारी मानो पक्की ज़मीन पर चल रहा है। कारण, अहिंसा का अभाव है। यदि एक बार भी वह अचानक गहरे पानी में पैर रख दे तो समाप्त। ठीक इसी प्रकार यदि एक पूर्ण अहिंसात्मक महात्मा पर कोई अत्याचार करे तो वह उसकी मृत्यु तक के लिए काफ़ी है।

अहिंसा में आत्मिक बल चाहिए। अहिंसा में शुद्ध हृदय चाहिए। अहिंसा में निर्मल मन चाहिए। यदि द्वेष का एक कण भी आ जाये तो अत्याचारी को पैर टिकाने का सहारा मिल जायेगा। अहिंसा आध्यात्मिक शास्त्र और शस्त्र दोनों हैं। यह व्यावहारिक ज्ञान है। यह पढ़ने और सुनने से नहीं आता, यह आक्रमणों के भय से नहीं आता। यह तो जलती हुई आग में कूदने से आता है। समस्याओं का ठण्डे दिमाग़ से सामना करने से यह बल प्राप्त होता है। अहिंसा के आचार्य के शब्दों में, जो उन्होंने श्री ताई ची ताऊ से Novel remedy की परिभाषा करते हुए कहा—'दो शब्दों में—वह है, बहादुर से बहादुर चीनी सैनिक की भाँति मरने को तैयार रहना, लेकिन विपक्षी को मारने की या उसे किंचिन्मात्र भी हानि, आक्रमण करके या अपना बचाव करके, पहुँचाने की कोशिश किये विना।'

कुछ महीनों में अगर नाज़ियों की जीत न हुई तो शायद एक अर्से तक लड़ाई चलेगी, जिनमें दोनों पक्ष बुरी तरह थक जायेंगे और दोनों को भारी नुकसान बैठेगा। इंग्लैण्ड और यूरोप का आर्थिक ढाँचा बिखर जायगा और एक ही मुमकिन नतीजा उसका यह होगा कि राष्ट्रों का एक विराट संघ या विश्व-संघ कायम होगा—एक मुख्तलिफ आर्थिक प्रणाली की बुनियाद पर—और उत्पत्ति, निर्यात और वितरण पर संसार का कड़ा नियन्त्रण रहेगा। आजकी पूँजीवाद-प्रणाली मिट जायगी।···छोटे-छोटे राष्ट्र स्वतन्त्र इकाई बनकर नहीं सकेंगे। ['लड़खड़ाती दुनिया'
सस्ता साहित्य मण्डल]

—जवाहरलाल नेहरू—

प्रस्तुत प्रश्न

प्राकृतिक किसे कहें ?

'अश्लीलता का आरम्भस्थान' नामक लेख में श्री किशोरलालभाई ने साधारण कामाचार के लिए 'वीर्य-वमन' शब्द का प्रयोग किया है। इसपर मैंने उन्हें सुझाया कि वमन अस्वाभाविक है, साधारण कामाचार को अस्वाभाविक नहीं कह सकते। साधारण कामाचार को प्रकृति, संयम को संस्कृति और कामातिरेक को विकृति या वीर्य-वमन कहना ठीक होगा। इसपर उन्होंने नीचे लिखा खुलासा किया है जो बहुत समाधानकारक है।

"'स्वाभाविक' शब्द हम बहुत अस्पष्ट रूप में इस्तेमाल करते हैं। जो कुछ होता है, वह प्रकृति के नियमों से ही होता है, इस दृष्टि से हर घटना को हम प्राकृतिक या स्वाभाविक कह सकते हैं और इस तरह विकृति—विकार जैसी कोई बात ही नहीं रहती। पर अगर हम प्राकृतिक या स्वाभाविक शब्द का अर्थ-संकोच करें, और कहें कि नीरोग, तेजस्वी और दीर्घायु जीवन के अनुकूल शरीर-धर्म प्राकृतिक—स्वाभाविक हैं, तो उसके प्रतिकूल धर्मों को अस्वाभाविक और विकार कहना होगा। पित्त का स्राव ही लीजिए वह भी एक हद तक ज़रूरी है और उसी हद तक प्राकृतिक है। उस हद के लाँघने पर वह पित्त-ज्वर,-प्रकोप,-विकार आदि कहलायेगा और पित्त-वर्धक (पित्त-वमन की तलब पैदा करनेवाली) वस्तुओं को बुरा मानना होगा। इसी न्याय से कामज्वर,-प्रकोप,-विकार का विचार करें। 'धर्म्य काम' प्रकृति है। वह नीरोग, तेजस्वी और दीर्घायु जीवन के अनुकूल होना चाहिए उसमें 'तलब' पैदा करने का गुण नहीं होना चाहिए।"

अगर किसी पेड़ के पत्ते कुम्हलाने लगें, तो कहना होगा कि उसके जीवन में कुछ अस्वाभाविकता या विकार ज़रूर आ गया है। इसी तरह हरे व लहलहाते हुए पत्ते और खिले हुए प्रसन्न फूलों को देखकर कहना होगा कि इनका विकास स्वाभाविक है। नियत काल से पहले ही जो पेड़-पौधे सूख जाते हैं, उनका जीवन भी अस्वाभाविक ही कहा जायगा। इन मिसालों से यही निचोड़ निकलता है कि वही वस्तु स्वाभाविक या प्राकृतिक मानी जानी चाहिए, जो नीरोग हो, तेजस्वी हो और परिपूर्ण अथवा दीर्घायु-प्राप्त हो। जहाँ इसके उलटे चिन्ह दिखायी दें, वहाँ विकार या अस्वाभाविक अवस्था ही माननी होगी।

ह० उ०

रेडियो की बोली कैसी हो ?

आज हमें यही सवाल हल करना है कि यह भाषा कैसी होनी चाहिए ? यू० पी०, सी० पी०, बिहार की आठ ख़ास बोलियों को हिन्दी नाम से पुकारा जाता है। इनमें से खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, कनौजी तथा बुंदेली, इन पाँच को भाषा-सर्वे में **पश्चिमी हिन्दी** नाम दिया गया है। बाक़ी तीन अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी को **पूर्वी हिन्दी** कहते हैं। इनमें से खड़ी बोली आजकल की हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी की जड़ है। खड़ी बोली अपने शुद्ध रूप में केवल एक बोली है, पर जब वह साहित्यिक रूप लेती है, तब कभी हिन्दी कही जाती है, और कभी उर्दू। जिस भाषा में संस्कृत के तत्सम और अर्द्ध-तत्सम शब्द अधिक आते हैं, वह हिन्दी कही जाती है, और जिसमें अरबी-फारसी के ज्यादा लफ्ज़ इस्तेमाल होते हैं, वह उर्दू। जब खड़ी बोली फ़ारसी और अरबी के तत्सम और अर्द्ध-तत्सम शब्दों को इतना अपना लेती है कि कभी-कभी उसकी वाक्य रचना पर भी कुछ विदेशी रंग चढ़ जाता है, तो उसे उर्दू कहते हैं। जब वह संस्कृत के तत्सम और अर्द्ध-तत्सम शब्दों को अपनाती है, और अपना ही व्याकरण रखती है, तो वह हिन्दी कहलाती है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी और उर्दू खड़ी बोली के ही दो साहित्यिक रूप-मात्र हैं। इन दोनों ही

का लिटरेचर धड़ल्ले से बढ़ रहा है, और बढ़ना भी चाहिए, पर बोलचाल के लिए ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए—एक बोली की पहेलि अब भी बनी हुई है। इस कमी को हम हिन्दुस्तानी से पूरा करना चाहते हैं। यह हिन्दुस्तानी जैसा ऊपर कहा जा चुका है, खड़ी बोली का ही एक रूप है, जिसे न तो शुद्ध साहित्यिक भाषा ही कह सकते हैं, और न ठेठ बोलचाल की।

आखिर **हिन्दुस्तानी** है क्या ? हमारी राय में संस्कृत, प्राकृत, व्रज-भाषा, खड़ी बोली, फ़ारसी, अरबी, अँग्रेज़ी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली वग़ैरा के मेल से जो एक नयी ज़बान आप-से-आप बन गयी, वही हिन्दुस्तानी कहला रही है। जिस तरह उर्दू के रूप में खड़ी बोली ने मुसलमानों की माँग पूरी की है, उसी तरह अँग्रेज़ी हुकूमत और तालीम की ज़रूरत पूरी करने लिए हिन्दुस्तानी कोशिश कर रही है। असल में इसे हिन्दुस्तानी नाम देनेवाले भी अँग्रेज़ अफ़सर हैं। वे जिस बोली में यहाँ के लोगों से बातचीत करते थे, उसे हिन्दुस्तानी कहने लगे। और अब तो इसे इंगलिस्तानी बनाया जा रहा है, क्योंकि इसमें अंग्रेज़ी के शब्द ज्यादा इस्तेमाल होने लगे हैं।

हाँ, तो हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी के झगड़े में तीन बातें सामने आती हैं—(१) लिपि, (२) व्याकरण और (३) शब्द।

लिपि का सवाल रेडियो ने अपने आप हल कर लिया है, क्योंकि जहाँ हवा में बातें की जाती हैं, वहाँ लिखने की बात ही नहीं रहती। व्याकरण की दृष्टि से खड़ी बोली के व्याकरण को ही हिन्दुस्तानी को अपनाना चाहिए। क्योंकि एक तो वह खड़ी बोली ही से निकली है, दूसरे, खड़ी बोली का व्याकरण भारतवर्ष की और प्रधान भाषाओं—ब्रज-भाषा, बँगला, गुजराती, मराठी आदि—के व्याकरण से मिलता-जुलता है, जिससे इन भाषाओं के बोलनेवालों को भी उसे अपना लेने में आसानी होगी। अगर हिन्दुस्तानी को हमें राष्ट्र-भाषा का हक देना है, तो राष्ट्रीय दृष्टि से यह ज़रूरी है कि उसका व्याकरण ऐसा सहज रखा जाय कि हमारे बंगाली, गुजराती, मराठी, मदरासी, पंजाबी, नेपाली, बिहारी, मध्यप्रान्तीय, राजस्थानी भाई भी उसे आसानी से सीख सकें। अब रही शब्दों की बात। बहुत-सी भाषाओं के शब्द उसमें आ ही चुके हैं। हमारी राय में बँगला गुजराती, मराठी आदि के भी आने चाहिए, तभी हम इसे राष्ट्र-भाषा बना सकेंगे—ऐसी बोली बना सकेंगे, जो भारतवर्षभर में बोली और समझी जा सके।

बेसिक इँगलिश की तरह बेसिक हिन्दुस्तानी बनायी जाय। घुमा-फिराकर न कहकर सहज शब्दों में, सीधे तौर से, बातें कही जायँ। ऐसी भाषा बने, जो कम-से-कम समय में सीखी जा सके, जिससे सारे हिंदुस्तान का काम चल सके। पर बेसिक इँगलिश की तरह बेसिक हिंदुस्तानी ८५० शब्दों में नहीं बनायी जा सकती। बेसिक हिंदी की सबसे बड़ी कठिनाई प्रीपोज़ीशनों का अभाव है। एक ही क्रिया के साथ कई प्रीपोज़ीशन लगाकर, Get up, get in, get away, get out आदि की तरह, तरह-तरह के भावों के शब्द नहीं बनाये जा सकते। हाँ, संस्कृत और फ़ारसी में ऐसा हो सकता है। उनसे मदद ली जाय। अभी हमें कम-से-कम ४,००० शब्दों की एक डिक्शनरी बना लेनी चाहिए। जनता में उसका प्रचार कर दिया जाय, और उसमें दिये हुए शब्दों का ही प्रयोग हमें अपनी रेडियो की टाँकों, खबरों और सूचनाओं में करना चाहिए। यह सूची सारे हिंदुस्तान को नज़र में रखकर तैयार की जाय, हिंदी-उर्दू का झगड़ा मिटाने के लिए नहीं। अभी हमें प्रेसिडेंट, सभापति और सदर, तीनों लफ़्ज़ इस्तेमाल करने पड़ेंगे। बाद को जनता अपने आप इनमें से एक शब्द चुन लेगी, और उसी का प्रयोग होने लगेगा। बेसिक अँगरेजी की तरह अभी हम कई पर्यायवाची शब्दों की जगह एक ही शब्द नहीं रख सकते। पानी, जल और आब, तीनों शब्द हिंदुस्तानी के लिए ठीक हैं;

महाराष्ट्र और बंगाल में 'जल' का ही प्रयोग होता है, इसलिए अभी हम चाहे आब, पानी और जल, तीनों का प्रयोग करें, पर आगे चलकर केवल जल ही रह जायगा। 'तालीम' शब्द का प्रयोग हिंदुस्तानी और मराठी में होता है, पर मराठी में 'तालीमबाज़' खिलाड़ी को करते हैं, और 'तालीमबाज़ी' का मतलब जमनास्टिक है। इसलिए यह शब्द या तो उस डिक्शनरी से हटा देना पड़ेगा, या मराठी में भी 'तालीम' को सही अर्थ में चलाना होगा। 'तारीफ़' शब्द बँगला में नहीं बोला जाता। इसे न बोलना ही ठीक है, अगर बंगालियों को भी हमें अपनी बात समझानी है।

हमें संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, जो भारत की सभी भाषाओं में प्रचलित हैं— खासकर बँगला, मराठी और गुजराती में। जो शब्द सब प्रांतों में समान रूप में न चल रहे हों, उन्हें बचाना चाहिए। बोलचाल के शब्द अंग्रेज़ी, फ़ारसी, बँगला, गुजराती, मराठी, सभी के ले लेने चाहिएँ। अंतर्राष्ट्रीय प्रचलित शब्द जैसे रेडियो, कोरस, टॉकी, क्लब बिना संकोच इस्तेमाल होने चाहिए। मोटर, रेल, स्टेशन, वग़ैरा लफ़्ज़ चल भी गये हैं। इन्हें इस्तेमाल करते रहना चाहिए! दियासलाई की जगह अग्निशलाका लिखना-बोलना अब ठीक नहीं।

हमारी राय में जो भाषा पंजाबी, हिंदुस्तानी, गुजराती, मराठी, मदरासी, राजस्थानी, बंगाली, मध्यदेशी आदि भाई अपने आप गढ़ रहे हैं और गढ़ते जा रहे हैं, और जिसे अब एक प्रांत (संयुक्त प्रांत) के नाम से हिंदुस्तानी कहा जा रहा है, उसे भारत-देश के नाम पर 'भारती' कहना चाहिए। इस शब्द में प्रांतीयता की झलक नहीं; हाँ, राष्ट्रीयता कूट-कूटकर भरी है। हिंदी-उर्दू के झगड़े का भी इससे अंत हो जाता है, और ऐसी भाषा सामने आती है, जिसे सभी प्रांतों के भाई-बहन आपस में व्यवहार करते हैं, कर सकते हैं, या आगे करेंगे। 'भारती' विद्या की देवी (Goddess of learning) सरस्वती का भी नाम है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख, जैन, बौद्ध, सभी भारत-निवासियों को विद्या की इसी देवी भारती का शृंगार, सेवा और पूजा करनी चाहिए।

'सुधा']

दुलारेलाल भार्गव
सावित्रीदेवी भार्गव

अनुवाद और अनुवादक

सबसे अच्छी बात तो यही है कि भाषा में मौलिक लेखक और मौलिक विचारक पैदा हों, जो अपने ज्ञान का उपयोग अपनी भाषा का भंडार भरने में करें, परन्तु यदि कोई ग्रन्थ दूसरी भाषा का रत्न होकर उसकी समृद्धि, शोभा व कीर्ति बढ़ा रहा हो, तो दूसरी भाषाओं को उसके ज्ञान का लाभ उठाना भी कम श्रेयस्कर नहीं है। इस दृष्टि से एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। इससे भाषाओं का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होगा और उन भाषाओं की समृद्धि भी होगी।

हिन्दी में गुजराती, मराठी, बँगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद करने की ओर लेखकों की विशेष रुचि बढ़ने लगी है। इससे हमारे हिन्दी-साहित्य-सेवियों की सजगता ही प्रकट होती है, जो अच्छा लक्षण है, परन्तु अगर अनुवाद और उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओं पर हमने ध्यान न दिया, तो उससे लाभ होने के बदले हानि होने की अधिक सम्भावना है। मौलिक लेख लिखने की अपेक्षा एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना कहीं कठिन काम है। मौलिक लेख लिखने में तो लेखक की क़लम उसकी अपनी विचार-धारा में बंधे होते हुए भी स्वतन्त्र है, लेकिन अनुवाद के विषय में तो अनुवादक की स्थिति ही दूसरी है। वहाँ तो अनुवादक की लेखनी लेखक के मूल भावों की चहारदीवारी में बन्द है; अधिक उपयुक्त शब्दों में कहें तो जंजीरों से जकड़ी हुई होती है—न तो मूल लेखक के भावों में वह परिवर्तन

कर सकती है न परिवर्धन। जहाँ एक इंच इधर या उधर हुए कि अनुवाद, अनुवाद नहीं रह जाता। अनुवादक का रास्ता तलवार की धार की तरह नुकीला, सँकड़ा और खतरनाक है। उसपर सफलतापूर्वक चलने में कुछ विशेष क्षमतायें होनी चाहिएँ।

सबसे पहली बात तो यह है कि अनुवादक को अनुवाद करने के पहले योग्यता की तराजू पर पूरी तरह तुल लेना चाहिए। यदि वह बिना अपनी योग्यता का विचार किये अनुवादक कहलाने के लोभ-मात्र से एकदम लेखनी उठा लेता है, तो वह स्वार्थ उसके परिश्रम को तो व्यर्थ करता ही है, साथ ही साथ मूल-लेखक के प्रति अन्याय भी, क्योंकि बुरे अनुवाद से लेखक की सच्ची प्रतिभा का पाठकों को अनुमान नहीं हो पाता। अतः अनुवादक होने के लिए विद्वान् और भाषा-मर्मज्ञ होना जितना ज़रूरी है, उतना ही उसके अध्ययन का गहरा और भाषा-शैली का उत्कृष्ट होना भी। शब्दों का अर्थ इधर-उधर से उलट-फेर कर देने और भाषा में जहाँ-तहाँ परिवर्तन कर देने से ही कोई अनुवाद अनुवाद नहीं बन जाता, क्योंकि मूल-शब्दों का अर्थ तथा भाषान्तर करना अन्य भाषा के अल्पज्ञ के लिए गौण बात है। श्रेष्ठ अनुवाद करना प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति में नहीं है और न 'हर ऐरा गैरा नत्थूखैरा' अनुवादक बन सकता है।

यद्यपि अनुवादक और समालोचक दो भिन्न पथों के पथिक हैं, तो भी उनमें किन्हीं बातों की समानता पायी जाती है। समालोचक को किसी लेखक की समालोचना में एक-एक शब्द मनन और विचार के उपरान्त रखना पड़ता है। उसे भय रहता है कि कहीं लेखक के प्रति अधिक अन्यायी या अधिक न्यायी न बन जाऊँ। ऐसी ही बात अनुवादक पर घटित होती है। अनुवादक को भी भय रहता है कि कहीं ऐसा न हो जाय कि मूल-लेखक का कोई भाव ठीक-ठीक अंकित न हो सके या बिगड़ जाये। इसीलिए अनुवादक को चाहिए कि वह अपना अनुवाद उसी समय जनता के सामने जाने दे, जब उसको वह निश्चय हो जाये कि अब मेरी भाषा में मूल-लेखक से सामंजस्य, उचित प्रवाह, गठन की सदृशता शैली में सजीवता तथा शब्दों में सन्तुलन हो गया है। हो सके तो किसी विख्यात विद्वान तथा उत्कृष्ट अनुवादक से संशोधन भी कराया जा सकता है। जब इतनी बातें हों तभी वह अनुवाद त्रुटिरहित बन सकता है। ऐसी दशा में अनुवाद में भी मौलिक का-सा आनन्द आने लगता है। यही अच्छे अनुवाद की पहचान है।

अनुवादक को अनुवाद करते समय सबसे पहले मूल-लेखक का हार्द समझना चाहिए। हार्द समझने के लिए उस भाषा में पारंगत होना लाजिमी है। इसके बाद अनुवादक जिस भाषा में उसे व्यक्त करना चाहता है उस भाषा पर भी उसका असाधारण अधिकार होना चाहिए। यदि अनवादक मूल-लेखक के भावों को समझने में असमर्थ है तो वह अनुवाद ही क्या करेगा? और यदि उसको अपनी भाषा पर अधिकार नहीं तो मूल-लेखक के भाव समझकर भी उन्हें सम्यक् रूप से व्यक्त नहीं कर सकेगा। जिस अनुवादक में ये दोनों क्षमतायें नहीं हैं, उसके अनुवाद में कई भूलें रह जाना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में कहीं उसकी शैली में सजीवता का अभाव होगा, कहीं वह दुरुह या शिथिल हो जायगी और कई उसमें अटपटापन आजायेगा।

मुहावरों के सम्बध में प्रोफेसर आज़ाद का तो कहना है कि एक ज़बान के मुहावरे का दूसरी ज़ुबान में तरजुमा करना जायज़ नहीं, क्योंकि एक भाषा के मुहावरे दूसरी भाषा में शब्दशः अनुवाद करने में बड़े कुरूप लगते हैं। यह कठिनाई तब अधिक हो जाती है, जब मूल ग्रंथ विदेशी भाषा उसी देश की भाषा में न होकर किसी भारतीय में होता है। अँग्रेज़ी भाषा से किसी भारतीय भाषा में अनुवाद करते वक्त कई अँग्रेज़ी मुहावरे ऐसे आते हैं जिनका शब्दशः अनुवाद किया जाय तो कोई अर्थ नहीं होगा, वहाँ भावानुवाद होगा

[illegible]। उदाहरण के लिए अँग्रेज़ी का 'बम्ब शैल' हिंदी में 'वज्रपात' से ही अच्छी तरह व्यक्त हो जाता है। 'टु टेक टु वन्स हील्स' का अर्थ सिर पर रखकर भागने से बढ़कर अच्छा और नहीं हो सकता, 'अपनी एड़ियाँ ले लेना' तो मक्खी की जगह मक्खी मारना है। इसी प्रकार 'हवाई महल' 'एयर कैसिल' का अनुवाद होकर भी ठीक नहीं। हमारे यहाँ इसे 'बालू की दीवार' या 'काल्पनिक' या 'मन के लड्डू' कहना ज्यादा ठीक है। इसी प्रकार मराठी के 'चेष्टा' 'शिक्षा' 'हरकत' और गुजराती के 'उपहार', 'राजीनामा' आदि शब्द हिंदी में दूसरा ही अर्थ रखते हैं, यह अनुवादक अच्छी तरह जानता हो, ऐसी आशा की जानी चाहिए। अतः अनुवादक को दोनों भाषाओं के मुहावरों का ज्ञाता होना भी ज़रूरी है।

एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस ग्रंथ का अनुवाद किया जाये, वह ग्रंथ उसी भाषा का मूल ग्रंथ होना चाहिए, दूसरी भाषा से अनूदित नहीं।

अब कुछ बातें अनूदेय वस्तु के विषय में भी

(१) जिस प्रकार के साहित्य का हमारी भाषा में अभाव हो, उसको अनुवाद करने में पहला स्थान देना चाहिए।

(२) जो ग्रंथ किसी भाषा के साहित्य में सर्वोत्तम हो उसे पहले, और इसी क्रम से अन्यान्य ग्रंथों को लेना चाहिए।

(३) ऐसे ग्रंथों का अनुवाद न करना चाहिए, जो देश में प्रचार होने से उस देश की संस्कृति, आचार-व्यवहार, और रीति-नीति पर कुप्रभाव डालें। जिस अनूदेय वस्तु के प्रतिपादित सिद्धान्त देश-विरुद्ध हों, देश-भाषा में उन्हें अनुवाद करके प्रचार करना वांछनीय नहीं।

(४) यदि अनुवाद किये जानेवाले ग्रंथ के नामों, शैली आदि को अनुवादक अपनी भाषा के अनुकूल बना ले, तो वह मौलिक का-सा रूप धारण कर लेता है।

ऐसे अनुवादों से ही किसी साहित्य को अधिक लाभ पहुँच सकता है। अनुवादक का ध्येय साहित्य की श्रीवृद्धि करना होना चाहिए, कीर्ति-सम्पादन करना नहीं।

प्रवीणचन्द्र पाण्डेय

बाल-साहित्य का अभाव

'जीवन-साहित्य' के पिछले किन्हीं दो अंकों में 'बाल-साहित्य' सम्बन्धी दो लेख क्रमशः भाई रामकृष्ण खद्दरजी और सुमनेश-सुधीरजी द्वारा लिखे गये, पढ़े थे। उक्त दोनों लेखों में 'बाल-साहित्य'-सम्बन्धी बहुत-कुछ बातें कह दी गयी हैं फिर भी 'हिन्दी में बाल-साहित्य-निर्माण क्यों नहीं हो रहा है?' प्रश्न के जवाब में मुझे कहना है।

बाल-साहित्य-विकास में अवरोधक सिद्ध होनेवाला सबसे बड़ा कारण है शिक्षणालयों में दिया जानेवाला अवैज्ञानिक शिक्षण जिसका उद्देश्य हुआ करता है—**'बच्चे का मस्तिष्क यंत्रवत् तैयार करके परीक्षा में उत्तीर्ण कराना'।** इस प्रकार के शिक्षण द्वारा बच्चे में साहित्यिक रुचि पैदा नहीं की जा सकती। परीक्षा पास करानेवाले डैस्क-स्कूल में तो थोड़ी-सी शिक्षण-विभाग द्वारा निर्धारित पाठ्य पुस्तकों के शब्दार्थ, भावार्थ रटा देना मात्र ही शिक्षक अपने कर्त्तव्य की सीमा मान बैठा है।

इस प्रकार की शाला में जो शिक्षक वैज्ञानिक शिक्षण द्वारा बच्चे में साहित्यिक रुचि पैदा करना भी चाहते हैं उनके सामने वही 'परीक्षा' पहाड़ बनकर सामने आ खड़ी होती है। परीक्षकों की आँखों पर चढ़ा ऐनक रटे हुए शब्दार्थ और भावार्थ चाहता है। इसके अभाव में उनकी कलम अंक देते हुए ठिठकती है। इसका कुपरिणाम यह होता है कि रटनेवाले लड़के से अपेक्षाकृत अधिक साहित्यिक रुचि एवं ज्ञान रखनेवाला विद्यार्थी कम अंक ही प्राप्त कर सकेगा। दुर्भाग्य से समाज में शिक्षक की क़ीमत वास्तविक ठोस कार्य के स्थान पर 'परीक्षा के परिणाम' पर आँकी जाती है। नतीजा यह होता है कि वह वैज्ञानिक शिक्षण देनेवाला शिक्षक भी मजबूर होकर 'सही' मार्ग छोड़ कर ग़लत रास्ते पर चल खड़ा होता है।

इस अवैज्ञानिक शिक्षण और परीक्षाके 'प्रकार' का परिणाम यह हो रहा है कि पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त शिक्षणालयों में 'बाल-साहित्य' की आवश्यकता ही महसूस नहीं की जाती। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। जब आवश्यकता ही न हो तब आविष्कार कैसा? बाल-साहित्य का जन्म ही कैसे हो जब शिक्षक पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य बाहरी पुस्तकें बच्चों के लिए 'अनिष्ट कारी' स्वीकारता हो? जब बाज़ार में माँग ही नहीं, तो लेखकों और प्रकाशकों ने भी इधर से अपनी आँखें फेर ली। आख़िर आर्थिक सवाल भी यूँ ही दर-गुज़र नहीं किया जा सकता।

जब रूस में साइबेरिया के अन्तर्गत इर्कुटस्क नामक केवल एक नगर से वहाँ के बाल-साहित्य-लेखक 'मार्शे' की एक पद्य-पुस्तक की पाँच लाख प्रतियों की माँग आ सकती है, जब वहाँ के बाल-साहित्य-लेखकों—'चूकोवस्की' 'इलीन' 'मार्शे' की पुस्तकें प्रकाशित होते ही विक्रेताओं के हाथों से छीन ली जाती हैं, तब हमारे देश में ग़रीब लेखकों द्वारा लिखा गया बाल-साहित्य ज्यों का त्यों रखा रहता है। कोई प्रकाशक उसे एक बार पढ़ना भी नहीं चाहता। प्रकाशक को पैसा चाहिए। लेखक के पास प्रकाशन के लिए पैसा नहीं। बाल-जगत द्वारा उसकी माँग नहीं, फिर बाल-साहित्य-निर्माण हो भी क्यों? मैं समझता हूँ जबतक इस अवैज्ञानिक शिक्षण के तरीके में परिवर्तन नहीं होता, बाल-साहित्य का विकास होना कठिन है।

उपरोक्त कारण के अतिरिक्त अन्य कारण भी हो सकते हैं और हैं। दूसरा कारण जो मैं समझ रहा हूँ वह है हिन्दी के महारथियों की 'बाल-साहित्य' के प्रति उपेक्षा? रूस में मैक्सिम गोर्की दादा चिट्ठी-पत्री द्वारा तथा गाँव-गाँव जाकर बच्चों से पूछते थे, 'बच्चो! तुम्हें कैसी कहानियाँ—कवितायें पसन्द हैं?' तब जाकर कहीं बच्चों की रुचि एवं मनोवृत्ति को ध्यान में रखकर वे लिखा करते थे। छोटे-छोटे लेखकों से लिखाया करते थे। किन्तु अपने देश के साहित्यिक महारथियों ने गोर्की दादा की भाँति इस बाल-साहित्य की तरफ कितना ध्यान दिया है? यह हम सब जानते हैं।

मैं 'जीवन-साहित्य' के उन पाठकों से जो बाल-साहित्य-निर्माण में दिलचस्पी रखते हैं, प्रार्थना एवं अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे 'बाल-कहानी' कैसी हो इसपर कुछ प्रकाश डालें। अच्छा हो, लिखने से पूर्व लेखक महोदय अपने चारों तरफ रहनेवाले बच्चों से प्रश्नों, बातचीत द्वारा उनकी मनोवृत्ति को समझ लिया करें।

दयाशंकर मिश्र

समालोचनार्थ प्राप्त

अभिनव-भारती-ग्रंथमाला, कलकत्ता

भारतवर्ष में जाति-भेद : लेखक—आचार्य क्षितिमोहन सेन, एम० ए०; शान्तिनिकेतन, पृष्ठ संख्या ३६२; मूल्य २)

मन के भेद : लेखक—राजाराम शास्त्री, काशी विद्यापीठ, काशी; पृ० सं० १३७, मू० १।)

आधुनिक हिन्दी-साहित्य : संपादक—श्री सच्चिदानन्द ही० वात्स्यायन; पृ० १७८ मूल्य १॥)

पूर्णिमा (पाठसंग्रह) : संपादक—श्री पद्मसिंह शर्मा 'साहित्य-रत्न'; प्रकाशक—भानुकुमार जैन मन्त्री, हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई; पृ० सं० ३६; मूल्य ।)

सहोदरा (कवितायें) : लेखिका—श्री कृष्णा कुमारी, रत्नकुमारी माथुर; प्रकाशक—पूर्णिमा माथुर; पृ० संख्या ८०; मूल्य ।=)

निर्झर (कवितायें) : लेखक—श्री रामकृष्ण 'भारती' शास्त्री; प्रकाशक—भारतीय-प्रकाशन-मन्दिर, लाहौर; पृ० सं० १२८; मूल्य १)

प्राचीन भारत (मासिक पत्र) : संपादक—महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा आदि; इंडियन रिसर्च इन्स्टीटयूट, मानिक तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता; वा० मू० २); एक प्रति ।=)

तूफ़ान (मासिक पत्र) : संपादक—विश्वनाथ पाण्डेय; वार्षिक मूल्य २); एक प्रति ।); 'तूफ़ान' कार्यालय, ११८ कीट गंज, इलाहाबाद

कसौटी पर

हिन्दुस्तान बनाम **पाकिस्तान : लेखक—** रुद्रनारायण अग्रवाल; **प्रकाशक—लाजपतराय** पब्लिशिंग कम्पनी, **कलकत्ता; पृ० १५७; मूल्य ।।।)**

हिन्दी में 'पाकिस्तान' पर यह पहली ही पुस्तक देखने में आयी। 'पाकिस्तान' की कल्पना व योजना ने हिन्दुस्तान की राजनीति में इतना स्थान पा लिया है कि उसपर एक किताब लिखे जाने की ज़रूरत थी, जिसमें 'पाकिस्तान' के सब पहलुओं पर अच्छी रोशनी डाली जाय। अंग्रेजी में डा० राजेन्द्रप्रसाद की पुस्तक [illegible] है। लेकिन उसके बाद तो 'पाकिस्तान' के नये अर्थ होने लगे हैं और विरोधी पहलू और सामने आ रहे हैं। श्री रुद्रनारायणजी की इस पुस्तक में मसाला तो अच्छा है, लेकिन विषय का विवेचन सुव्यवस्थित व शास्त्रीय नहीं बन पड़ा। वह 'शिक्षादायक' की जगह 'प्रचारिका' ज्यादह हो गयी है। यदि दूसरे संस्करण में अग्रवालजी इस त्रुटि को दूर कर सकें तो अच्छा हो।

तरुण जैन का **अहिंसा-अंक : संपादक—** श्री विजयसिंह नाहर, सिद्धराज ढड्ढा, भंवरमल सिंघी; **वार्षिक मूल्य ३।।); तरुण जैन-कार्यालय, ४८, इंडियन मिरर स्ट्रीट कलकत्ता।**

इसमें जैनधर्मियों के अहिंसा-सम्बन्धी विचारों व व्याख्याओं का अच्छा संग्रह हुआ है। समाज व राष्ट्र के विग्रहों का व्यावहारिक अहिंसात्मक हल ढूंढने की गरज से सम्पादकों ने कई उपयोगी प्रश्न जैन-धर्म के आचार्यों व नेताओं से पूछे, उनके जवाबों का यह संकलन है। अन्त में महात्माजी, काका साहब, किशोरलाल भाई आदि अहिंसा के अ-जैन आचार्यों व विचारकों के विचारों का भी अच्छी तरह समावेश किया गया है। सम्पादकों को जैन-धर्मियों से निराशा हुई है। उन्हें वांछित पथदर्शन उनसे नहीं मिला। इसका कारण तो यह मालूम होता है कि अहिंसा बुद्धि से समझने की बनिस्बत जीवन में लाने की वस्तु अधिक है। व्यावहारिक व दैनिक कठिनाइयों व उलझनों को जब हम अहिंसात्मक भावना व स्पिरिट से हल करने का प्रयत्न करेंगे, तभी हमें उसमें से नया अनुभव व नया प्रकाश मिल सकता है। व्याख्याओं व मीमांसाओं से हमारा काम ज्यादा नहीं चल सकता। व्यक्ति के जीवन में अहिंसा लाने का उपाय तो यह है कि हम दूसरों को **अभय** व **क्षमा** का आश्वासन दें। **अभय** दोनों अर्थ में—हम उन्हें नुकसान न पहुँचावें, व दूसरे उनके नुकसान पहुँचाने से हम दबें व डरें नहीं। **क्षमा**—उनके नुकसान पहुँचाने पर उनसे बदला न लें।

सामाजिक जीवन में अहिंसा लाने के लिए दण्ड प्रधान व शोषण-मूलक पद्धतियों व प्रथाओं को मिटाने का उद्योग करना चाहिए। शिक्षा व शासन-पद्धतियों व अर्थ-व्यवस्थाओं के दृष्टिबिन्दु में आमूल परिवर्तन करने की ज़रूरत है। अब जहाँ दूसरों को नुकसान पहुँचाकर भी अपना स्वार्थ साधना जायज समझा जाता है, तहाँ दूसरों के स्वार्थों की रक्षा करते हुए अपना स्वार्थ साधने की नीति व प्रवृत्ति चलानी होगी।

अहिंसा अपने आप में एक बड़ा गुण है—जिसका बड़ा शुद्धिकारक असर अपने व दूसरे दोनों पर पड़ता है। पर यदि 'अहिंसा' को बल के रूप में इस्तेमाल करना है, तो इसके साथ असहयोग को जोड़ना ही पड़ेगा। यदि हमें यह मंजूर है कि समाज व दुनिया से शस्त्रास्त्र उठ जायँ, तो उनके प्रभाव व उपयोग का स्थान अहिंसात्मक संगठित असहयोग को दिये बग़ैर चारा नहीं है। यदि 'तरुण जैन' के उत्साही व अहिंसा-भक्त संपादक अपने समाज में असहयोग का संगठन करने में शक्ति लगावेंगे, तो वे जैन, अजैन सब शंकाशीलों को अहिंसा की अमली महत्ता बताने में सफल हो सकेंगे।

एक और बात पर भी ध्यान जाना ज़रूरी है। 'अहिंसा' का जो शाब्दिक या रूढ़ अर्थ है

वह गांधीजी के आशय को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं करता। उनका अभिप्राय 'आत्मौपम्य' या 'समभाव' या अंगरेजी के charity शब्द से अधिक मिलता-जुलता है। समाज में सब दूसरों के सुख व हित को अपने समान ही समझें, सब एक-दूसरे के साथ स्नेह, सौजन्य, दया, समता का व्यवहार करें, कोई किसी का शोषण न करे, कोई किसी पर जबरदस्ती न करे, कोई किसी को दबावे-डराये नहीं, परस्पर सद्भाव व सहयोग से एक कुटुम्बी की तरह रहें, अच्छाई में सहयोग दें, बुराई में असहयोग रक्खें,—यह आशय उनकी अहिंसा का है। 'अहिंसा' शब्द के प्रचलित अर्थ में दुःख न देने का भाव प्रधान है। अतएव महात्मा जी की अहिंसा समझनी हो, तो उसके साथ इसके पर्याय के रूप में 'आत्मौपम्य' 'समभाव' या charity शब्दों का आशय हमारे सामने रहना चाहिए।

जैन-अजैन दोनों तत्ववेत्ताओं व विद्वानों के विचारों का संग्रह होने के कारण यह अंक वाचनीय व संग्रहणीय हुआ है—इसमें सन्देह नहीं।

ह० उ०

भारतीय सभ्यता का विकास : ले० श्री कालिदास कपूर; प्रकाशक—नवलकिशोर प्रेस हजरतगंज, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ८३; मूल्य ।)

पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट है। भारतीय सभ्यता का पश्चिम और पूर्व के सुदूर देशों में किस तरह प्रचार हुआ, इसका संक्षिप्त परिचय लेखक ने दिया है। लेखक स्वयं हिन्दू है और बृहत्तर भारत का परिचय देते हुए उसका हृदय पुलकित हो जाता है। लेकिन इसके साथ ही उसे एक और भीषण बाधा का मुकाबला करना पड़ जाता है और वह है रेडियो की हिन्दू-विरोधिनी नीति। इस पुस्तक के अध्याय रेडियो पर सुनाये गये थे और वहाँ सुनाने की आज्ञा मिलने के लिए लेखकों को अपना जो 'टोन' और जो खिचड़ी भाषा रखनी पड़ती है, उसकी झलक इसमें स्पष्ट रूप से विद्यमान है। कपूरजी सरल हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक हैं, लेकिन इसकी भाषा 'रेडियो' की भाषा है, जो कई जगह खटकती है।

रेडियो की नीति का दूसरा परिणाम हुआ ब्रिटिश राज की प्रशंसा कि उन्हीकी बदौलत भारत में विज्ञान का प्रचार हुआ है, मानों यदि अंग्रेज न आते, तो भारत में रेल-तार ही न आते! इस अध्याय में रवीन्द्र और गांधीजी के चित्र फबते नहीं। वस्तुतः लेखक को दो सीढ़ियों पर पैर रखकर चलना पड़ा है। एक तरफ़ भारतीयता से प्रेम, दूसरी ओर रेडियो की सरकारी नीति, इन दोनों के समन्वय से जो गुण-दोष हो सकते थे, वे इसमें आ गये हैं। पुस्तक में कई चित्र भी हैं। अपने विषय के परिचय की दृष्टि से पुस्तक उपयोगी है।

साम्राज्य और उनका पतन : ले० श्री भगवानदास केला; प्रकाशक—व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन; पृष्ठ-संख्या २२८ मूल्य १)

इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह एक मनोरंजक विषय है कि किस तरह बड़े-बड़े साम्राज्य जिनकी शक्ति और बल असीम थे, किस तरह एक के बाद एक खतम होते गये और कोई भी साम्राज्य एक डेढ़ सदी से आगे नहीं चल सका। सम्राट् अशोक और समुद्रगुप्त, अकबर और शाहजहाँ, सिकंदर के महान् साम्राज्य, चीन के मंगोल साम्राज्य, ईरानी, मिश्री, यूनानी और रोम साम्राज्य, कोई भी अधिक समय तक स्थायी नहीं रहे। जिस तरह प्राणी के शरीर का अन्त अवश्यंभावी है, उसी तरह राजनैतिक साम्राज्यों के संगठन भी छिन्न-भिन्न होनेवाले हैं।

परन्तु यह क्यों होता है, किस तरह साम्राज्य पैदा होते हैं, कालान्तर में उनमें क्या बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं और किस तरह उन्हें दुर्बल व शिथिल कर देती हैं, यही सब श्री केलाजी ने इस पुस्तक में दिखाया है। इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगी। लेखन-शैली सरल व मनोरंजक है। लेकिन यह सब पढ़ने के बाद पाठक के हृदय में यह एक स्वाभाविक निराशा पैदा होती है कि संसार-चक्र अपनी गति से चल रहा है, जवानी और बुढ़ापा

और मृत्यु जैसे रोके नहीं जा सकते, उसी तरह साम्राज्यों का उत्थान और पतन भी हजारों कोशिशें करने के बावजूद रोके नहीं जा सकते। साम्राज्यों का पतन स्वाभाविक है, उसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। लेकिन हम भारतीयों को पराधीनों को अभी तो आशा का संदेश मिलता है कि वर्तमान साम्राज्य भी विनाश की ओर जा रहे हैं और हमारे भी अच्छे दिन आनेवाले हैं।

पुस्तक की छपाई आदि ठीक है। लेकिन पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक दीखता है।

स्टालिन : ले० श्री त्रिलोकीनाथ 'विशारद'; प्रकाशक—राष्ट्रीय प्रकाशन-मन्दिर, बाजार सीताराम, दिल्ली; पृष्ठ संख्या १०८ मूल्य १।)

स्टालिन रूस का सर्वेसर्वा, हिटलर व मुसोलिनी से भी निरंकुश, सत्ताशाली और स्वेच्छाचारी है। परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज के संसार के कूट राजनैतिक दांवों में वह एक आश्चर्यजनक भाग ले रहा है। इसलिए अत्यन्त उत्सुकता से इस पुस्तक को पढ़ना शुरू किया, लेकिन पढ़ने पर उतनी ही निराशा हुई। प्रस्तुत पुस्तक में स्टालिन की पुरानी जीवन-घटनाएँ पढ़ने को अवश्य मिल जाती हैं लेकिन उसके जीवन की समस्या, उसकी आकांक्षा, उसकी नीति, उसके वर्तमान राजनैतिक दांवों और राजनैतिक चालों आदि पर यह पुस्तक पाठक को कुछ नहीं बताती। १९१७ की क्रान्ति अब पुरानी हो चुकी है और कम-से-कम उसके लिए स्टालिन की जीवनी कोई न पढ़ना चाहेगा। स्टालिन का जीवन तो आज का रूस समझने के लिए जरूरी है, लेकिन प्रस्तुत पुस्तक से इस बारे में कुछ सहायता नही मिलती। वर्तमान युद्ध और स्टालिन के उसमें लिये महत्त्वपूर्ण भाग पर एक पंक्ति भी लेखक ने नहीं लिखी। ट्राटस्की से मतभेद का सैद्धान्तिक रूप क्या था, इसपर भी लेखक ने प्रकाश नहीं डाला। पंचवार्षिक योजनाओं के द्वारा स्टालिन ने रूस में क्या कायापलट कर दिया है, इसका भी पुस्तक में कोई संकेत नही है। स्टालिन ने पिछले वर्षों में जो नृशंस हत्यायें करायी हैं, उनका उल्लेख जरूर किया है। लेकिन उसे पढ़ने के बाद भी रूस की वह उलझन वैसी ही पेचीदी रहती है। सम्पादक और प्रकाशक प्रेस में देने से पूर्व इस पुस्तक को अपटूडेट करा देते, तो अच्छा था। छपाई भी खराब है। १०८ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १।) रखना पाठकों की जेब के साथ भारी अन्याय है।

कृष्ण

महापुरुषों की जीवन-झाँकी : लेखक—प्रभुदयाल विद्यार्थी; प्रका०—छात्र-हितकारी पुस्तकमाला प्रयाग; मूल्य ।।=)

वर्धा और मगनवाड़ी में रहते हुए लेखक ने दस गाँधीनिष्ठ महापुरुषों—सरहद्दी गाँधी, राजेन्द्रबाबू, काका साहब, जवाहरलाल नेहरू, महादेवभाई, श्री कुमारप्पा, सेठ जमनालालजी, ठक्कर बापा, एण्ड्रूज और मीरा बहन की जीवन-झाँकियाँ ली हैं।

जीवनी-लेखक की खूबी यह हो कि किसी की भी जीवनी लिखते समय, और उस जीवनी को लिखने के लिए उपयुक्त मसाला एकत्र करते समय, अथवा तदुपयुक्त मसाले को अध्ययन करते समय पूरी तरह उसमें रम जाय—बह जाय।

प्रभुदयालजी शिक्षक हैं और अपने बाल-साथियों के लिए ही उन्होंने यह प्रयास किया है। जहाँतक इतनी बात है, वहाँतक तो मैं कहूँगा कि पुस्तक ठीक बनी है और लेखक में वह विकासशील सौन्दर्य है कि वे आगे जाकर सुन्दर जीवनियाँ पाठकों को भेंट दे सकें।

हम यह चाहते हैं कि प्रत्येक जीवनी-लेखक के दिल में प्रत्येक जीवनी-नायक की आर्द्रता ही आर्द्रता, सजीवता ही सजीवता और खूबी ही खूबी का असर न हो; बल्कि शुष्कता और चरित्र-लेखक की दृष्टि से जो खामियाँ भी मनुष्यता के नाते उसमें हों, उनका भी पूरी तरह मन पर असर हो। इस प्रकार की जीवनियों में चमत्कार और रस पैदा हो जाता है। जिससे पाठक के मन पर वे कुछ स्थायी असर छोड़ जाती हैं।

प्रस्तुत जीवनी में ऐसे नायक सिर्फ १-२ ही हैं कि जिनके सम्बन्ध में जनता में दो मत हो सकते हैं। परन्तु आगे के लिए हमारा यह इशारा शुभ हो सकता है।

साधारण पढ़ी-लिखी बहिनों, बालकों और इनाम में देने तथा पाठ्य-ग्रंथों में रखने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है। लेखक का प्रयास सराहनीय है। **'चन्द्रकांत'**

चर्खाशाला : लेखक—श्री मन्नूलाल 'शील', प्रकाशक—डॉ० गिरवरसहाय सक्सेना, स्वल्प विश्राम, बाँदा; पृष्ठ संख्या; मूल्य ।।), गीता साइज।

अनुकरण करने में हम पक्के हैं। कभी-कभी तो हम अपनी निजस्वता को भी भुला बैठते हैं। जबसे 'मधुशाला' ईरान से यहाँ आयी है, तबसे इसके अनुकरण पर **ताड़ी-शाला, विजया-शाला, मद-शाला, टी-शाला** तो खुल ही चुकी हैं उस दिन जान पड़ा कि 'चर्खा-शाला' भी खुल गयी। शायद इसका कारण, जैसा कि कवि ने लिखा है, यह हो कि 'मेरे मित्र श्री……ने अनुरोध किया कि चर्खाशाला क्यों नहीं लिखते क्योंकि आजकल शालाओं की बड़ी चाह है।'

नाम से स्पष्ट है कि चर्खाशाला में वर्तमान भारतीय राष्ट्रीय प्रगति और गांधीवाद की एक झलक है। जहाँ तक भावों का सम्बन्ध है वे बहुत सुन्दर हैं और उनमें विकल मानवता के लिए एक सन्देश है—

उदय हुआ प्राची में सूरज,
मुखरित हो वाणी निकली
फैली लाली वसुन्धरा में
मानवता की खिली कली
जग ने पाया शान्ति-सँदेशा
वसुधा ने नव-रस प्याला
जगी अहिंसा-सत्य-विधायक
गांधी की चर्खा-शाला

भाव कई जगह मौलिक हैं और भारतीय संस्कृति के अनुकूल हैं इससे इस अनुकृति-काव्य (Parody) में भी एक संतोष मिलता है।

सुरधुन सी टंकार रही है
शाला में धनु प्यारी
ब्रह्म-फाँस नित नयी बनाता
करघा लिये छटा न्यारी
बलिदानों का आमंत्रण ले
नाच रही तकली-बाला
युद्ध-भूमि सी बनी हुई है
गांधी की चर्खा-शाला

कवि ने संकेत किया है कि युग का संदेश कविता में होना चाहिए और युग को मंगल-संदेश भी मिलना चाहिए—

आज क्रान्ति के बादल छाये
रण-चण्डी हुंकार रही
मानवता कर मलकर रोती
दानवता ललकार रही
धँसी राजमहलों की नीवें
धरणी बनी रक्त-नाला
केवल शान्ति-सँदेश सुनाती
गांधी की चर्खाशाला

पुस्तक बापू को समर्पित की गयी है। कवि के कृतित्व से चीज़ अच्छी बन गयी है।

चर्खाशाला अन्य शालाओं का अनुकरण होते हुए भी उनका एक श्रेयस्कर जवाब है।

सु०

अर्थ-शास्त्र की रूपरेखा : लेखक—प्रोफेसर दयाशंकर दुबे एम० ए०; प्रकाशक—साहित्य निकेतन, दारागंज प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ४९१; मूल्य ६)

हिन्दी में अर्थ शास्त्र-सम्बन्धी साहित्य की बहुत कमी है। इस दिशा में जिन-जिन विद्वानों ने प्रयत्नों किया है उनमें स्वर्गीय प्रोफेसर राधाकृष्ण झा, स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, स्वर्गीय डाक्टर बालकृष्ण, ठाकुर शिवनन्दनसिंह, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार, श्री गदाधरप्रसाद जी अम्बष्ट, श्री शंकरसहाय सक्सेना, श्री भगवानदास केला और प्रोफेसर दयाशंकर दुबे मुख्य रहे हैं। केलाजी और दुबेजी तो जिस परिश्रम और साधना के साथ हिन्दी के अर्थ-

साहित्य की पूर्ति कर रहे हैं, वह केवल ही नहीं, बल्कि हमारे लिए गर्व की है। जिस समय हमारे बड़े-बड़े विद्वान विश्व- आदि के अध्यापन या अन्य कार्यों में के बाद, हिन्दी का क्षेत्र आर्थिक दृष्टि नहीं पाते, उस समय भी दुबेजी रचनाओं द्वारा हिन्दी की सेवा कर रहे प्राणनाथ, डाक्टर वेणीप्रसाद, डाक्टर त्रिपाठी, श्री पारसनाथ सिंह आदि के पुराने और मँजे हुए लेखकों में हैं, पर हिंदी में नहीं लिखते। यह हमारी और बदकिस्मती है !

युग प्रधानतः आर्थिक युग है। भक्ति न होहि गोपाला।" खाना-पीना, मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकतायें मनुष्य को इन आवश्यक सामग्रियों को करने में बहुत कम संघर्ष करना पड़ता ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास हो रहा मनुष्यों की आवश्यकतायें बढ़ रही हैं, जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने भी बढ़ रहा है। जाने-अनजाने हमारे में प्रायः सर्वत्र ही अर्थ-शास्त्र काम कर है। और इसलिए हमारे लिए आवश्यक हो है कि हम सोचें और विचारें कि आज अर्थ- का महत्व क्यों इतना बढ़ गया है—क्यों हमारे जीवन को भौतिक दृष्टि से संघर्षमय दिया है—और कैसे हम अर्थशास्त्र का के अन्य अंगों से समन्वय कर सकते हैं ? जीवन में अर्थशास्त्र का इतना महत्त्व भी, अर्थशास्त्र का विषय बड़ा कठिन बना दिया गया है। हमारे शिक्षा- उसका अध्ययन कालेज-जीवन से प्रारम्भ है। जरूरत इस बात की थी कि ऐसे विषय और मुहावरेदार भाषा में लिखा जावे, जिससे औसत दर्जे का पढ़ा-लिखा आदमी भी पढ़कर अर्थशास्त्र के नियमों को समझ सके। और श्रीयुत दुबेजी ने "अर्थशास्त्र की रूपरेखा" द्वारा यही कार्य किया है। इसमें उन्होंने बड़े अच्छे ढंग से संवादों द्वारा सरल भाषा में, अर्थशास्त्र के सब नियमों को अच्छी तरह समझाया है।

पुस्तक में पाँच खंड हैं—पहिले खंड के पाँच अध्यायों में अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी प्रारम्भिक बातें दी गयी हैं। शेष चार खंडों में अर्थशास्त्र के चार विभागों—उपभोग, उत्पत्ति, विनिमय और वितरण का विशद रूप से सरल भाषा में वर्णन है।

यह बड़े सन्तोष की बात है कि लेखक ने मनुष्य जीवन में अर्थशास्त्र की महत्ता के बारे में पुराने रूढ़िचुस्त अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण से काम नहीं लिया है। लेखक मानता है कि रोटी के अलावा जीवन में अन्य चीज़ों का भी स्थान है और जबतक रोटी और धर्म का समन्वय नहीं होगा, तबतक मनुष्य जाति वास्तविक सुख और शान्ति से परे रहेगी—और न उसका कल्याण होगा।

पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दों की सूची तथा शब्दानुक्रमणिका भी है जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गयी है। और मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि अपने विषय पर यह हिंदी में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। अंग्रेजी में भी शायद इस विषय पर इतनी विस्तृत पुस्तक, इतनी सरल ढंग से न लिखी गयी होगी। कम-से-कम मेरे देखने में नहीं आयी है। हाँ, छपाई-सम्बन्धी भूलें कहीं-कहीं अवश्य हैं। अन्त में हम लेखक को ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिए बधाई देते हैं और प्रयाग-विश्वविद्यालय के कुलपति श्री अमरनाथ झा के शब्दों में—जिन्होंने इस पुस्तक की सुन्दर भूमिका लिखी है—आशा करते हैं कि **हिन्दी साहित्य में इस पुस्तक का सम्मान होगा और विद्यार्थियों का इससे उपकार होगा।**"

श्यामलाल (एम० ए०)

सहयोगियों में से

आस्तिकता की पहचान

एक बार मैंने श्री विनोबा से पूछा, 'बापू कहते हैं कि जिसका ईश्वर में विश्वास न हो, वह सत्याग्रही नहीं हो सकता; परन्तु अमुक बड़े नेता तो ईश्वर को नहीं मानते; फिर वे सत्याग्रही कैसे हो सकते हैं ?'

विनोबा की विचार व्यक्त करने की शैली सहज अलंकारात्मक और रुचिर होती है। उन्होंने उत्तर दिया—"प्रेम दो प्रकार का होता है—एक कौशल्या का प्रेम और दूसरा जानकी का। कौशल्या रामचन्द्रजी की माता थीं; इसलिए वे सारा दिन 'मेरा राम, मेरा लाल !' कह-कहकर अपना प्रेम प्रकट करती हुई पुत्र की सेवा करती थीं। जानकी रामजी की भार्या थीं। वे बिना रामजी का नाम लिये ही दिन-रात उनके ध्यान और सेवा-टहल में मग्न रहती थीं।

'इसी प्रकार ईश्वर-निष्ठा भी दो प्रकार की होती है—एक तो उन भक्तों की जो हर दम नाम-स्मरण करते हुए जन-सेवा में लीन रहते हैं और दूसरी उन कर्मयोगी महापुरुषों की जो ईश्वर का कार्य करने में निरन्तर निरत रहते हैं, लेकिन उसका नाम लेने से इन्कार करते हैं। परन्तु जो लोक-सेवा में तत्पर और तल्लीन है, उसे भला नास्तिक कैसे कह सकते हैं ? तुम जिन नेता का जिक्र कर रहे हो, वे दूसरी श्रेणी के भक्त हैं—परम आस्तिक हैं।"

विनोबा के इस उत्तर ने मुझे एक नयी दृष्टि दी। मानों मेरी आँखें ही बदल दीं। × × हाई स्कूल में पढ़ी हुई 'अबू-बेन आदम' वाली कविता का रहस्य नये रूप में और नये प्रकाश में स्पष्ट हुआ। जो केवल ईश्वर के नाम की माला जपता है, परन्तु मनुष्य से प्रेम नहीं करता, वह ईश्वर-'वादी' है; ईश्वर-'परायण' या 'आस्तिक' नहीं है। आस्तिक वह है, जो मनुष्य से प्रेम करता है; वही श्रेष्ठ भगवद्भक्त है।

'सबकी बोली']

दादा धर्माधिकारी

ग्राम-साहित्य का संग्रह

आजकल ग्राम-गीतों को प्रकाशित करने की प्रथा-सी चल पड़ी है। हिन्दी के प्रायः सभी मासिक पत्रों में भारत के विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के ग्राम-गीत प्रकाशित होते रहते हैं। ग्राम-गीतों के कुछ संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। ग्राम-गीतों को हम साहित्यिक दृष्टि से ही देखते हैं। परन्तु इतिहास और पुरातत्त्व की सामग्री की भाँति वे हमारे लिए अध्ययन और मनन की वस्तु भी हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि ग्राम-गीतों में कभी-कभी ऐसे रत्न मिल जाते हैं जिनकी तुलना आधुनिक युग की श्रेष्ठ रचनाओं से की जा सकती है। इस प्रकार के गीत तो साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। परन्तु देहाती भाषा के ऐसे गीत जो देखने में अत्यन्त साधारण जान पड़ते हैं, अपना एक विशेष महत्त्व रखते हैं। जिन राछरों, पँवारों और गोठों को हम गँवारू गीत कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, उनके अन्दर ग्रामीण जनता के विचारों, धार्मिक विश्वासों और रीति-रिवाजों का इतिहास छिपा पड़ा है। अतएव जहाँ हम देखने में सुन्दर एवं भावपूर्ण ग्रामगीतों का संग्रह करने में लगे हुए हैं, वहाँ इन रचनाओं के प्रति भी हमें उचित ध्यान देना चाहिए।

परन्तु ग्राम-गीत और कहानियाँ ही ग्राम-साहित्य में सम्मिलित नहीं हैं, बल्कि मनुष्य के विचारों, रीति-रिवाजों और धार्मिक विश्वासों से सम्बन्ध रखनेवाली उसकी सभी मानसिक कृतियाँ उसके अन्तर्गत हैं। साथ ही एक और रूप में भी इस शब्द का प्रयोग होने लगा है। अँग्रेज़ी में ग्राम-साहित्य को 'फॉक-लोर' कहते हैं। यद्यपि साहित्य का अर्थ लिटरेचर है, परन्तु किसी अन्य अच्छे शब्द के अभाव में हम ग्राम-साहित्य को ही फॉक-लोर का पर्याय मानते हैं। फॉक-लोर का मतलब अनपढ़ और अशिक्षित जनता के साहित्य से ही नहीं है, वह अब एक

भी माना जाता है ।

ग्राम-साहित्य की सामग्री को मोटे तौर पर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

१ ग्रामीण जनता में प्रचलित विश्वास और रिवाज,

२ लोकोक्तियाँ और दंत-कथायें, और

३ कला और साहित्य

फिर और भी कई विभाग किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए पहले खंड में तरह-तरह के रीति-रिवाज, पूजा, पर्व-त्योहार, व्रत, कुल-देवताओं की पूजायें, खेलकूद और कौतुक तथा टोना, जन्म, तथा विवाह-सम्बन्धी विश्वास और कहावतें, पशु-पक्षियों तथा वृक्ष-सम्बन्धी और अंध-विश्वास तथा कृषि-सम्बन्धी अंध-विश्वास और भूत-प्रेत की पूजायें सम्मिलित हैं । दूसरे में किस्से-कहानियाँ, देवी-देवताओं की व्रत और पूजा के गीत और तुकबन्दियाँ (जिन्हें साहित्य में स्थान नहीं मिल सकता) कथायें और किंवदंतियाँ, (राछरे और आदि) लोरियाँ, कहावतें, बुझौअल, इन सबकी गणना की जा सकती है । तीसरे में ग्राम-कवितायें, ग्राम-काव्य जो साहित्यिक दृष्टि से पढ़ने और उपभोग करने के योग्य और नृत्य तथा नाटक आदि सम्मिलित हैं ।

यदि हम ग्राम-साहित्य का संग्रह करना चाहते हैं तो अव्वल तो यह कार्य वैज्ञानिक ढंग से होना चाहिए। फिर उसी तरह उसका अध्ययन होने की आवश्यकता है। अध्ययन के बिना संग्रह की उपयोगिता नहीं। परन्तु अभी तो हमने कहानियों का संग्रह भी विदेशियों के हाथ में छोड़ रखा है। तब उनका महत्त्व हम क्या समझेंगे ? देश की शायद ही कोई ऐसी भाषा हो जिसकी दो-चार ग्राम-कहानियों के अनुवाद अंग्रेज़ी में मौजूद न हों। तेलगू और तामिल से गोंड और भीलों तक की भाषा की कहानियाँ आपको मिल जायेंगी। उत्तर भारत में देहाती कहानियों के तो विशेष रूप से कई बड़े संग्रह मौजूद हैं। इतना ही नहीं, संग्रह-कर्ताओं ने अनेक कहानियों को ऐतिहासिक दृष्टि से देखने का भी प्रयत्न किया है और पढ़ने योग्य निबन्ध भी लिखे हैं । कथा-सरित्सागर का सुन्दर अनुवाद अंग्रेज़ी में मौजूद है । उस दिन श्रीमान् ओरछेश की प्राइवेट लाइब्रेरी में उसके दर्शन करके मेरे मुहँ से सहसा निकल पड़ा, "यह चीज़ हिन्दी में कब आयेगी ?" और तो और, हमारे यहाँ अभी पंचतंत्र-जैसे ग्रंथ का भी कोई सुन्दर और सुसम्पादित अनुवाद मौजूद नहीं है । हमारे देश के छोटे-छोटे गाँवों में भी कहानियों का अटूट भण्डार भरा पड़ा है । परन्तु फिर भी यह कितने दुख की बात है कि अनेक हिन्दी लेखक अँगरेज़ी कहानियों के आधार पर बालकों के लिये कथा-साहित्य निर्माण करने में लगे हैं !

'मधुकर'] **कृष्णानन्द गुप्त**

राष्ट्रीय इतिहास का मसला

भारत के राष्ट्रीय इतिहास का अभाव सभी को खटकता है । जबतक यह कमी पूरी न हो जायगी, तबतक बार-बार आवाज़ें उठती ही रहेंगी । श्री कन्हैयालाल मुंशी का इतिहास-प्रेम सभी जानते हैं। राष्ट्रीय इतिहास किस दृष्टि से लिखा हुआ कैसा होना चाहिए इस विषय में श्रीमुंशी कहते हैं कि "वह 'भारत की आत्मकथा'–सा लिखा जाना चाहिए । एक और बात उन्होंने कही । वह यह कि भारत के इतिहास बहुत-से हैं । ख़ास विषयों पर लिखी गयी पुस्तकें भी बहुत हैं, मगर उनमें बड़ा फ़र्क दृष्टि-भेद का है । वे कहते हैं कि वह साहित्य परदेशी की दृष्टि से लिखा गया है । भारत की दृष्टि से भारत का सम्पूर्ण इतिहास अभी तक नहीं लिखा जा रहा है ।"

हम जब राष्ट्रीय इतिहास के अभाव के दु:ख में आंसू बहा रहे हैं, तब पश्चिम राष्ट्रीयता और अराष्ट्रीयता के पार पहुँचकर विज्ञान और कला के सरहदी झगड़े में आ पहुँचा है । वहाँ के इतिहासकारों में चर्चा और विचार का विषय है कि इतिहास विज्ञान है या कला ? [**'फूलछाब'**

सैर-सपाटा

'आज' (साप्ताहिक) के पिछले कई अंकों में श्री भगवानदास हालना ने **'रामचरितमानस का शुद्ध पाठ'** लेखमाला में 'रामचरितमानस' के उन पाठान्तरों की ओर ध्यान दिलाया है, जो 'रामचरिमानस' जैसे ग्रन्थ में नहीं होने चाहिएँ।

'विशाल भारत' (मार्च) में श्री चेतराम शर्मा 'साहित्यरत्न' का **'संस्कृत भाषा का मूल प्राकृत नहीं'** शीर्षक लेख चौंकानेवाला है। उपपत्ति के लिए उन्होंने भाषा-विज्ञान, व्याकरण आदि के पुष्ट प्रमाणों का आश्रय लिया है। भाषा का इतिहास लिखनेवालों को इधर ध्यान देना चाहिए। इन्हीका एक लेख—**'हिन्दी में प्रमत्त रचना'** फरवरी की **'सुधा'** में भी निकला है जिसमें उन्होंने बतलाया है कि हिन्दी-लेखक शब्दों के प्रयोग आदि करने में कितनी असावधानी और प्रमाद कर जाते हैं, जिससे कालांतर में वे गलतियाँ रूढ़ हो जाती है। अनेक उदाहरणों से लेख रोचक और मननीय हो गया है। यद्यपि उनकी सारी बातों से सहमत होना कठिन है, फिर भी उनका कहना कई अंशों में ठीक है।

'सुधा' के 'चयन' में बुद्धिसागर वर्म्मा की **'व्यापार की कुंजी'** हरेक व्यापारी को अपने व्यापार की उन्नति और सफलता के लिए प्राप्त करनी चाहिए। हिन्दी के इतिहास में **'पृथ्वीराज रासो** का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उसपर महामहोपाध्याय श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का लेख विद्वत्तापूर्ण है। ओझाजी ही ऐसे पुरातन साहित्य पर अधिकारपूर्वक कुछ लिख सकते हैं।

मौलाना अबुलकलाम आज़ाद का **'विश्ववाणी'** में प्रकाशित **'धर्म और विधान'** लेख हिन्दू-मुसलमानों के लिए इत्तहाद का संदेश है। श्री लक्ष्मीकान्त झा का **'मानव संस्कृति का वैज्ञानिक अध्ययन'** अच्छा विवेचनात्मक लेख है। श्रीमती महादेवी वर्म्मा का **'कसौटी पर'** लेख प्रत्येक सिद्धान्तवादी के लिए मननीय है।

मार्च की **'कमला'** में श्री राजबहादुर लमगोड़ा ने **'तुलसीदास का नाटकीय महाकाव्य रामायण'** लेख में कला, विज्ञान और धर्म का अच्छा समन्वय कराया है।

'वीणा' (मार्च) में प्रकाशित श्रीनिवास चतुर्वेदी, एम० ए० का लेख—**'साहित्य-कला'** अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है उसमें प्रतिपादित विचार सुलझे हुए हैं। साहित्य व कलाकी विस्तृत विवेचना तथा समीक्षा करते हुए लेखक ने हिंदी-साहित्य की अनेकविध प्रगति पर भी दृष्टि डाली है।

मार्च के **'हंस'** में 'साहित्य-समस्या' स्तम्भ में श्री देवराज उपाध्याय का **'मार्क्स और साहित्य'** लेख है, जिसमें लेखक ने आधुनिक साहित्य में मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रभाव दिखाया है, साथ ही कई भ्रान्त धारणाओं को भी स्पष्ट किया है। विचार मननीय हैं और विचारोत्तेजक भी। इसी अंक में श्री शिवदानसिंह चौहान ने **'भारत की जन-नाटचशाला'** लेख में जनता की मानसिक संस्कृति के आलेखन के साथ-साथ दृश्य और श्रव्य कलाओं की संक्षिप्त समीक्षा करते हुए 'नाटचकला' के विकास की रेखा अंकित की है। श्री रामइक़बाल सिह 'राकेश' का **'लोक गीत : एक अध्ययन'** भी अपने विषय का अच्छा लेख है।

कविताओं में इस मास प्रेमीजी की 'वीणा' में प्रकाशित कविता—**होकर भी हम एक पृथक् हैं**—बड़ी गहरी है। **'हंस'** में प्रकाशित 'अञ्चल' का **'महाप्रयाण'** ओजस्वी है और **'विशाल भारत'** में प्रकाशित श्री सोहनलाल द्विवेदी की **'गाँवों में'** अत्यन्त भावपूर्ण और सुन्दर है। सरल-से-सरल भाषा में हृदय को छूनेवाले गहरे-से-गहरे भाव भरने की प्रतिभा का वह एक सजीव नमूना है। **'बालक'** में प्रकाशित उनके 'वसन्त-गीत' भी उत्कृष्ट हैं। प्रकृति-प्रेम और स्वर्गिक उल्लास को यदि कविता के घट में छलकता हुआ देखना हो तो इन्हें पढ़ा जाये। **'वीणा'** में श्री आरसी प्रसाद सिंह का **'मदनिका'** भावनाटय (कविता-त्मक) मनोरम है।

हिन्दी की हलचलें

हिन्दी पर निरन्तर बढ़ते हुए सब ओर के ओं से हिन्दी को बचाने और उसके प्रचार-ार आदि की हलचलों को प्रकाश में लाने के निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ (भारतेन्दु) को सिद्धान्त-वाक्य मानकर री प्रचारिणी सभा, काशी के तत्त्वावधान में दी' नाम की मासिक-पत्रिका प्रकाशित होने ी है और वह बड़ी तेज़ी के साथ हिन्दी की , प्रचार, प्रसार और प्रोत्साहन की ओर सर हुई है। पिछले दिनों जितने भी लेख कले हैं, वे हिन्दी के सिद्धहस्त और कृतविद्य खकों के हैं और उपादेय हैं।

सरकारी रेडियो-विभाग की हिन्दी भाषा के ति उदासीनता को खुले शब्दों में साहस के बतानेवाले लखनऊ के पत्र 'आकाशवाणी' भी भुलाया नहीं जा सकता।

मथुरा से **'व्रजभारती'**, कलकत्ता से **'प्राचीन** **रत'** और इलाहाबाद से **'तूफान'** नये मासिक निकलने लगे हैं।

पटना से शीघ्र ही देशरत्न राजेन्द्रबाबू के द्वारा उद्घाटन हो जाने पर "**'राष्ट्रवाणी'** नाम का हिन्दी दैनिक श्री देवव्रत शास्त्री के सम्पादन में निकलनेवाला है।

'साधना' के **'परिचयांक'** की तैयारियाँ बड़े जोरों से हो रही हैं।

'आज' तथा **'हिन्दुस्तान'** के विशेषांक अप्रैल के प्रथम सप्ताह में निकलनेवाले हैं। 'आज' का **'युद्धांक'** और **'हिन्दुस्तान'** का **'वर्षांक'**। **'साहित्य-सन्देश'** का यह अंक **'परीक्षांक'** है, जिसमें परीक्षोपयोगी अनेक अच्छे-अच्छे लेख हैं। 'आगामी अंक **'शुक्ल अंक'** होगा, जिसमें स्व० आचार्य शुक्लजी पर सब लेख होंगे। इसके बाद, समाचार है कि, जून १९४१ में **'उपन्यास-अंक'** और सितम्बर १९४१ में **'नववर्षांक'** निकलेगा। 'किशोर' मासिक का अगला अंक **'उपकथांक'** होगा, जिसमें संसार में सभी देशों और सभी प्रांतों की लोक-कथायें होंगी।

प्रयाग के इंडियन प्रेस से **'सरस्वती सीरीज'** (पुस्तकमाला) का प्रकाशन हिन्दी में एक खास घटना है। अबतक उसमें १४ पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे भी निकलनेवाली हैं। प्रत्येक पुस्तक में कम से कम २०० पृष्ठ और मूल्य ।।) रहता है। कई पुस्तकें बहुत अच्छी कोटि की हैं।

श्री घनश्यामदास बिड़ला की प्रसिद्ध पुस्तक **'बापू'** के अंग्रेज़ी तथा कई देश-भाषाओं में अनुवाद किये जा रहे हैं।

महात्मा गांधी के तीनों साप्ताहिक, सुना है, फिर निकलेंगे। तब हिन्दी **'हरिजन-सेवक'** भी पाठकों को शीघ्र ही मिलने लग जायेगा।

कानपुर में हाल ही में हुई हिन्दी-पत्रकार-संघ की बैठक के निर्णय से आशा होती है कि संघ का कार्य अब संगठित रूप से चलने लगेगा।

कृष्ण-मन्दिर में

श्री पट्टाभि सीतारामैया : विख्यात लेखक और ीय नेता, जिनकी 'हिस्ट्री ऑफ दि कांग्रेस' अनुवाद हिन्दी में **'कांग्रेस का इतिहास'** है।

श्री प्यारेलाल : महात्मा गांधी के सेक्रेट्री और गांधीजी-सम्बन्धी अनेक ग्रंथों के प्रसिद्ध लेखक। दुबारा सत्याग्रह किया।

श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल : एक बार छोड़े कर पुनः गिरफ्तार कर लिये गये।

श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' 'साहित्य-रत्न : हिन्दी के अच्छे लेखक कवि, और समालोचक, मेरठ-साहित्य-परिषद के एक सदस्य।

श्री रमेशचन्द्र 'आर्य' : 'मण्डल' के परिवार के सदस्य; 'अर्जुन' (साप्ताहिक) के भूतपूर्व संपादक, **'सुभाषचन्द्र वसु'** आदि जीवनियों के लेखक।

श्री बाबूलाल जैन ['तरुण बन्धु']; कृष्णलाल शाह ['सन्देश'] : श्री ज्योतिराम नन्दी [**'नयी दुनिया'**] ये सम्पादकगण भी गिरफ्तार हुए हैं।

क्या और कैसे ?

तीन मुख्य घटनायें

पिछले दिनों हिन्दुस्तान में तीन घटनायें ऐसी हुईं, जिनकी काफी चर्चा रही व जिन्होंने यहाँ की राजनैतिक गतिविधि पर कुछ अनुकूल असर डाला है—(१) पत्र-सम्पादकों की परिषद् व 'हरिजन' आदि पत्रों को फिर से छापने का महात्माजी का निश्चय; (२) निष्पक्ष नेताओं की बंबई वाली परिषद्; (३) असेम्बली में कायदे आजम साहब का पाकिस्तान की माँग के सम्बन्ध में खुलासा व सर सिकन्दर की अपनी विधान-योजना की घोषणा। पत्र-संपादक लोग अपनी परिषद् में कांग्रेस का साथ न दे सके, युद्ध के बारे में उन्हें सरकार को यह आश्वासन देना पड़ा कि हम युद्ध-प्रयत्नों में बाधा डालना नहीं चाहते; पर साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि दो बातों में उसने सरकार को झुकाया भी। एक तो सत्याग्रह-सम्बन्धी समाचारों को छापने की छूट व दूसरी महात्माजी के घोषणा-पत्रों, वक्तव्यों तथा अखबारों को छापने की स्वतन्त्रता। इनमें भी कुछ पखें लगी हुई हैं, लेकिन कुल मिलाकर इन दिशाओं में परिषद् ने काफी कामयाबी हासिल की है। इससे यह भी टपकता है कि सरकार महात्माजी को नाराज करना गवारा नहीं कर सकती। महात्माजी जिस शुद्धहृदयता से सत्याग्रह-आन्दोलन को चला रहे हैं, उसका लाजिमी असर इसी तरह का हो सकता था। पाठक महात्माजी के वचनामृत को पीने के लिए तरस रहे थे। अब फिर वे हर हफ्ते महात्माजी की आत्मा के सत्य-सन्देश सुनने लगेंगे।

निष्पक्ष नेताओं की परिषद् से एक फायदा जरूर दीखता है। उसकी माँगों से कांग्रेस तो सहमत नहीं हो सकती, लेकिन सरकार के लिए उसने दुविधा खड़ी कर दी है। माँग रखी भी ऐसे ढंग से गयी है कि अमेरी साहब अब यह नहीं कह सकते कि तुम कांग्रेस व मुस्लिम लीगवाले मिलकर आओ। उनकी माँग थोड़े में यह है—(१) यह ऐलान किया जाय कि लड़ाई खत्म होते ही जल्दी-से-जल्दी हिन्दुस्तान को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायगा; (२) युद्ध-काल में वाइसराय की कौंसिल के सब सदस्य हिन्दुस्तानी हों—युद्ध व अर्थ-मंत्री भी हिन्दुस्तानी हों और उनकी जिम्मेवरी सम्मिलित व सामूहिक रहे—भले ही वे उत्तरदायी धारासभा के प्रति न रहकर ताज (Crown) के प्रति रहें। वाइसराय की अगस्तवाली घोषणा से अवश्य ही यह बहुत आगे जाती है और ब्रिटिश सरकार की सचाई को फिर एक बार कसौटी पर रख देती है। यह कहकर कि कांग्रेस व मुस्लिम लीग न शरीक हों तो इन्हें छोड़कर दूसरे लोगों को कौन्सिल में ले लिया जाय, जब कांग्रेस आदि आजावें तो उनके लिए जगह खाली कर दी जाय, अमेरी साहब को मुहँतोड़ जवाब दे दिया गया है। अब जबतक सरकार इसपर कुछ बोलती नहीं है तबतक कांग्रेस के लिए उसपर कुछ कहना कठिन है। कांग्रेस की यह स्थिति साफ है कि उसकी माँग जनता के प्रतिनिधियों को वास्तविक सत्ता दिलाने की है, महज अपने लिए नहीं है, इसलिए वह इस बात पर ज्यादा ध्यान देगी कि वास्तविक सत्ता मिल कितनी रही है।

सरकार निष्पक्षों की बात मानेगी—यह जँचता नहीं है। उसका सारा ध्यान व शक्ति लड़ाई को कामयाब बनाने में लग रही है और इसी दृष्टि से वह इस समय हर चीज को देखेगी। इतनी सत्ता दे देने पर भी आज से अधिक धन-जन की सहायता हिन्दुस्तान की तरफ से मिलने की उसे आशा शायद ही हो। फिर महात्माजी व कांग्रेस के सत्याग्रह का सामना तो करना ही है। अगर युद्ध-विरोध की खुली छुट्टी दे दी जाय तो शायद यह उसे अपने पैरों कुल्हाड़ी मारना मालूम पड़े। बुद्धि जहाँतक हिसाब लगा सकती है वहाँतक तो सरकार इस बार भी इस

पर झुकती नज़र नहीं आती । फिर भी की दृष्टि से यह बात लाभ की है कि दल के व सरकार से सम्बन्धित रह चुके यों को भी उतने से कम में सन्तोष नहीं होगा, की मांग कुछ महीने पहले कांग्रेस के मुख से 'अधिक' व 'अतिशय' गिनी जा सकती थी । 'पाकिस्तान' शब्द व योजना ने एक अजीब ड़बोटाला फैला रखा है । उसका सींग-छ न तो दिखायी ही देता है, न समझ में आता है कि आखिर उसके प्रवर्तक चाहते या हैं? अच्छा हुआ कि सर सिकन्दर ने खुले उसमें अपना मतभेद जाहिर कर दिया कायदे आजम साहब ने भी यह स्पष्ट कर दिया युद्ध-काल की किसी तजवीज के लिए हम किस्तान' पर अड़ेंगे नहीं। सर सिकन्दर ने नयी योजना भी पेश की है जो जरूर गौर लायक है। इन दो वक्तव्यों ने कांग्रेस-लीग मतभेद को दूर करने के माफिक ही आबोहवा की है जिसको खेद है कि ढाके व आजम-गढ़ के दंगों ने काफी ठेस पहुँचायी है। पाकिस्तान नाम पर जो साम्प्रदायिक भावनायें उत्तेजित जाती हैं उनका यह लाजिमी नतीजा है, अगर लीगी नेता सबक न लेंगे तो वे देश के ही नहीं मुसलमानों के हितों का नाश कर डालेंगे। दुनिया अब छोटी-जातियों व फिरकों में बँधी नहीं रह गी, न रहने में किसी का फायदा ही है ।

बलिवीर गणेशजी

ढाके व आजमगढ़ के दंगों के बाद ही—को—शहीद गणेशशंकर की जयन्ति पड़ी। से २३ मार्च को हम हिन्दी के कुछ सम्पादक अपने सम्मेलन की का० का० की के लिए कानपुर में ही एकत्र थे। हमने प्रस्ताव द्वारा स्व० विद्यार्थीजी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। मैं तो जबतक कानपुर ऐसा लगता रहा मानो गणेशजी की आत्मा डोलती रहती थी। इन दंगों को देख-यही खयाल आया कि गणेशजी का बलिदान इस अभागे देश को बुरी तरह हजम हो गया ! हम हिन्दू-मुसलमान आज गणेशजी के जमाने से कहीं अधिक एक-दूसरे से दूर जा पड़े हैं । गणेशजी का बलिदान उसी दिन सार्थक होगा जिस दिन फिर सारा देश एक स्वर से बोलने लगेगा—'हिन्दू-मुसलमान की जय।' गणेशजी बलिवीर तो थे ही; पर वे हिन्दी के जबरदस्त प्राणवान् व प्राणदायी लेखक और प्रभावशाली संपादक थे । उनका एक अनूठा व बाँका व्यक्तित्व था । उनके सारे व्यक्तित्व पर व उनकी खूबियों पर रोशनी पड़ने की बहुत आवश्यकता है । क्या ही अच्छा होता यदि पं० श्रीराम शर्मा को भगवान् इतनी फुरसत दे देता कि वे गणेशजी की जीवनी उनकी इस जयन्ति के अवसर पर ही पूरी कर देते !

श्रद्धांजलि !

स्वर्गीय दीनबन्धु के स्मारक बनाने के लिए महात्मा गांधी ने ५ लाख रुपये एकत्र करने की अपील प्रकाशित की है। ५ अप्रैल दीनबन्धु की निधन-तिथि है । हम दीनबन्धु के प्रति अपने शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित न करके कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी के इन समर्थ और भावपूर्ण शब्दों में करते हुए —

सिंधु पार सुन पडी तुम्हें कैसे जननी की पीर ?
खिंच आये तुम इधर अचानक भरे नयन में नीर !
पूर्व जन्म का था क्या कोई यह आत्मिक संबंध ?
हिले प्राण के तार, बंधे तुम, सजा स्नेह-अनुबंध !
(बने मसीहा, स्नेहमूर्ति तुम, किये नित्य उपचार,
तन-मन-जीवन बना तुम्हारा दुर्बल का आधार ।)
भरा तुम्हारे मानस में था, कितना करुणा-सिंधु,
दीनानाथ बने न कभी तुम, बने दीन के बंधु !
आँखों में भारत की श्री, स्वर में भारत का गान,
कर में भारत की सेवा, उर में भारत का ध्यान,
रोम-रोम में रमा तुम्हारे, भारत का उत्थान,
रहे विदेशी कब ? तुम तो थे भारत की सन्तान !
(अपना पथ निर्माण किया, पकडी न पुरानी लीक
न्याय-नीति के लिए लडे तुम बनकरके निर्भीक!)
भारत-माता के चरणों में ही ली आँखें मूंद !

सोते तुम सुख की समाधि में, ढरके यश के बूँद !
दीनबंधु ऐंड्रूचूज, बंधुवर कैसे गायें गान ?
लिखा रहेगा नित्य गगन के उडुगण में आख्यान,
तपोपूत तुम, देवदूत तुम, शान्तिदूत, अवतार !
जयति देश की स्वतंत्रता के अचल शिला आधार!

महात्माजी के स्वर में अपना स्वर मिला रहे हैं।

चेतावनी

समालोचना साहित्यिक विकास के ही लिए नहीं जीवन-विकास के लिए भी अनिवार्य है। समालोचना का अर्थ है गुण-दोष का यथावत् निरीक्षण। जिसकी वृत्ति व बुद्धि जितनी समतोल होगी, उतना ही वह गुण-दोष-परीक्षण अच्छा कर सकता है। बुद्धि में समतोलता तभी आती है जब हम सदैव सत्य, न्याय के ही हामी होने की आदत डालें। एक के प्रति 'राग' रखा तो दूसरे के प्रति अपने-आप 'द्वेष' होने लगेगा। यह समता या समतोलता के विपरीत है। किन्तु कई बार हम सद्भावना से ही किसी पुस्तक या लेखक की अत्यधिक प्रशंसा कर देते हैं। अपने मन में हम कहते हैं—चलो उत्साह बढ़ाने के लिए दो अच्छी बातें कह दो। इसी तरह जब कोई पुस्तक या लेखक हमें अप्रिय मालूम होता है, तो सहज ही उसकी अधिक निन्दा करने की प्रवृत्ति हो जाती है। किन्तु सच बात तो यह है कि जब हमें किसी पुस्तक वस्तु या व्यक्ति की समालोचना करनी पड़े, तो हमें उससे अपने व्यक्तिगत संबंधों को भूल जाना चाहिए; क्योंकि व्यक्तिगत सम्बन्ध ही हममें एक के प्रति मोह और दूसरे के प्रति विराग पैदा करते हैं। यह बहुत कठिन काम अवश्य है और इसीलिए समालोचना करना भी कोई आसान बात नहीं है। किन्तु इसके विपरीत हम कई बार प्रत्यक्ष राग-द्वेष से या पक्षपात और प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर ही स्तुति या निन्दा करते हैं। जहाँ यह प्रवृत्ति हो वहाँ मनुष्यता का आरंभ हुआ ही न समझना चाहिए। मिथ्या स्तुति से जो बढ़ते हैं, खुश होते हैं, वे भी धोखा खाते हैं और झूठी निन्दा से जो घबरा जाते हैं वे भी गलती करते हैं। मिथ्या स्तुति करके हम किसी का भला नहीं करते। अवास्तव विशेषणों का प्रयोग करके हम न केवल अपनी वाणी को ही दूषित करते हैं, बल्कि सामनेवाले को भी गलत रास्ते ले जाने के जिम्मेदार बनते हैं।

शायद ऐसे ही विचारों से प्रेरित होकर श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने गुजरात साहित्य-सभा की एक सभा में गुजरात के साहित्यिकों को चेतावनी दी थी। उन्होंने कहा था—'मैंने देखा है कि गुजराती साहित्यिकों को थोड़ी ही शक्ति और सिद्धि से प्रशंसा मिल जाती है, जिसके फलस्वरूप शक्ति का प्रवाह रुक जाता है; मुझे आशा है कि गुजरात अपने उदीयमान कलाकारों को अत्यधिक प्रशंसा से बिगाड़ न डालेगा।" हमारे हिन्दी-साहित्यिकों के लिए भी क्या इस चेतावनी की आवश्यकता नहीं है? ह० उ०

दो शोक-संवाद

हृदय इस बात की कल्पना करके बड़ा व्यथित होता है कि प्रति मास हम हिन्दी-पत्रों को हिन्दी के महारथियों के महाप्रयाण की दुःखद सूचना देनी पड़ती है। इस बार भी हिन्दी-साहित्य के इतिहास के उद्धारक सर जॉर्ज ग्रियर्सन और तरुण-लेखक श्री योगेश्वरसिंह एम० ए० के देहावसान के समाचार देने का कष्टकर कार्य करना पड़ रहा है।

स्व० जॉर्ज ग्रियर्सन का हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन में हमपर जो ऋण है, वह हिन्दी के लिए विदेशी लेखक की सबसे बड़ी देन है। विदेशी होते हुए भी ग्रियर्सन साहब हिन्दी के अपने थे। उनके प्रति हम श्रद्धा के पुष्प अर्पित करते हैं!

श्री योगेश्वर सिंह का एक सुन्दर लेख जी० सा० में छपने के लिए आया हुआ है, पर वह उसे छपा हुआ न देख सके! ऐसे उदीयमान साहित्यकारों के असामयिक निधन पर नश्वर मानव शोकाश्रु बहाने के सिवा और कुछ कर भी तो नहीं सकता। मु०

मण्डल की ओर से

रियायत' के बारे में

पिछले अंक द्वारा यह सूचना दी गयी थी [illegible] सा० के ग्राहकों की सिफारिश पर ने १००० व्यक्तियों को १) में जी० स० ने का निश्चय किया है। उसपर कई ग्राहकों ने लाभ उठाया है। यद्यपि अभी १००० संख्या पूरी नहीं हुई है, परन्तु, आशा है, पाठकगण शीघ्र इस रियायत का लाभ उठा लेंगे।

नये अंक से ग्राहक बनें

स्टॉक में **दूसरे, चौथे,** और **सातवें** अंक को छोड़कर कोई अंक न बचा होने से हमारा अनुरोध है कि ग्राहकगण नये अंक ही से ग्राहक बनें।

मंत्री

शुद्धि-पत्र

पिछले (मार्च १९४१ के) अंक में

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२८	१	२३	शब्द	लफ्ज़
३२९	"	२३	कामेच्छा	कामेच्छा न
"	"	३५	करने की	हो,
३३०	"	२१	कामशायक	कामशामक

इस अंक में

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६६	पैरा १	२	उठा सकते	उठाते
"	पैरा ५	४	धाराओं	धारणाओं

पृष्ठ ३६७ पर इकरारनामे की १९-२०वीं पंक्ति में **'देकर इसे अलग छपाने की व्यवस्था'** शब्द फालतू छप गये हैं।

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

श्रीयुत. एम के. आचार्य, एम. एल. ए. (मद्रास)—"आपका दंत-मंजन तो **मैंने अपनी दंत-पीड़ा के लिए गत पाँच वर्षों में व्यवहृत देशी-विदेशी सब मंजनों से श्रेष्ठतर पाया।** मंजन दाँतों, मसूड़ों और तालु के घावों पर जादू का-सा असर दिखलाता है।"

श्री. एम० एस० बरदाचार्य एडवोकेट (मद्रास हाईकोर्ट)—"दो वर्ष पूर्व मुझे दंत-पीड़ा हुई थी जो बढ़ती ही गयी और मसूडों में घाव हो गये; **परन्तु आपके मंजन से अब मेरे मसूडे स्वस्थ हैं और दांत में पीड़ा नहीं होती।** मैं तो कहूँगा कि मेरे व्यवहृत दंत-मंजनों में सर्वश्रेष्ठ आपका दंतामृत ही है।"

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

फ्री इण्डिया

युद्ध-काल में रुपया लगाने के लिए सर्वोत्तम

केवल १९४० में ३,३०,०००) रु० से ऊपर दावे चुकाये गये

प्रभावशाली और परिश्रमी कार्यकर्ताओं के लिए

सफल भविष्य की गारन्टी

लिखिए—

फ्री इण्डिया जनरल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

हेड आफिस—१५ । १४१, सिविल लाइन्स, कानपुर

शाखाएँ—कलकत्ता, लाहौर, पटना और अजमेर ।

दफ्तर—बनारस और नौगाँव ।

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—लेखक—पं० जगपति चतुर्वेदी । यह पुस्तक कई प्रसिद्ध अंग्रेज़ी, संस्कृत, पाली तथा हिन्दी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है । संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना उतना कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना कठिन है । इस पुस्तक में अपने मन, वाणी आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर अधिकार करने के सहज सरल उपाय बताये गये हैं । हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है । मूल्य १)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय । इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति के लिए अपने सर्वस्व निछावर करनेवाले वीर-वीरांगनाओं की कहानियों का संग्रह है । प्रत्येक कहानी बहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और ज़ोरदार भाषा में लिखीहुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनानेवाली हैं । सुन्दर कवर से युक्त पुस्तक का मूल्य ।।।)

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथितहृदय । इस पुस्तक में उन कहानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती हैं । चरित्र-निर्माण के लिए इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती । मूल्य ।।।)

मैनेजर—**छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग**

कानपुर के सोल एजेंट : साहित्य निकेतन, कानपुर

पुस्तकालयों को समृद्ध बनाइए

हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर का प्रत्येक ग्रन्थ संग्रह करने योग्य है। प्रत्येक पुस्तकालय में उसके सभी ग्रन्थ रहना चाहिए। नीचे कुछ चुने हुए ग्रन्थों का परिचय दिया जाता है। एक कार्ड लिखकर पूरे ग्रन्थों का सूचीपत्र मँगा लीजिए।

मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण

अर्जुन-सम्पादक प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के कई वर्षों के अध्ययन का फल। मध्यकालीन इतिहास की गम्भीरतापूर्ण आलोचना। एक महान साम्राज्य के उत्थान और पतन की कहानी। उपन्यास की तरह मनोरंजक। मूल्य ४॥)

भारत के प्राचीन राजवंश

ले०—साहित्यचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ। इसका दूसरा और तीसरा भाग ही अब मिलता है। दूसरे भाग में शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, काण्व, आन्ध्र, ग्रीक, शक, पल्लव, कुशान, गुप्त, शशांक, हूण, वैस, मौखरी, लिच्छवि, ठाकुरी आदि वंशों का क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास है और तीसरे भाग में तमाम राष्ट्रकूट वंशों का अब तक का इतिहास है। मूल्य प्रत्येक भाग का तीन रुपया।

नीतिविज्ञान

ले०—श्रीगोवर्द्धनलाल एम० ए० बी० एल० आचार शास्त्र पर वैज्ञानिक पद्धति पर लिखा हुआ हिन्दी में यह एक ही ग्रन्थ है और बड़े ही परिश्रम से लिखा गया है। सदाचार, नीति और धर्म का वास्तविक स्वरूप इसके बिना समझ में नहीं आ सकता। मूल्य २) सजिल्द ३)

अरबी-काव्य-दर्शन

इसे हिन्दू यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर श्रीमहेश-प्रसाद मौलवी आलिम-फाजिल ने लिखा है और अरबी साहित्य के परिचय के लिए हिन्दी में एक ही ग्रन्थ है। अरबी कवियों के सुभाषित पढ़कर आप फड़क उठेंगे। मूल्य १)

ज्ञान और कर्म

कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ जज स्व० सर गुरुदास बनर्जी का लिखा हुआ अपूर्व ग्रन्थ गहरे से गहरे दार्शनिक और तात्त्विक विचारों से लेकर साधारण से साधारण व्यवहार की बातों का विवेचन। ऐसा कोई विषय नहीं जिसकी इसमें चर्चा न हो। मूल्य ३॥)

कालिदास और भवभूति

यह ग्रन्थ प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय का लिखा हुआ है। इसमें कालिदास के शाकुन्तल और भवभूति के उत्तर रामचरित की तुलनात्मक आलोचना की गयी है और इन दोनों कवियों पर बिलकुल नया प्रकाश डाला गया है। मूल्य १॥)

सिद्धार्थ

कविवर पं० अनूप शर्मा एम० ए०, एल० टी० का लिखा हुआ खड़ी बोली का अपूर्व काव्य। इसमें भगवान बुद्धदेव का बहुत ही सरस और सालंकार गुण-कीर्तन किया गया है। मूल्य ३)

नया प्रकाशन

सुनीता (उपन्यास)—जैनेन्द्रकुमार	॥=)
कुलीनता (नाटक)—सेठ गोविन्ददास	१)
पुष्पलता (कहानियाँ)—सुदर्शन	१।)
हिन्दी साहित्य की भूमिका—हजारीप्रसाद द्विवेदी	२।)
दो फूल (कहानियाँ)—सत्यवती मलिक	१।)
मानव (कविता)—श्रीमन्नारायण	॥=)
कल्याणी (उपन्यास)—जैनेन्द्रकुमार	२।
परख और स्पर्द्धा—जैनेन्द्रकुमार	॥=)

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।**

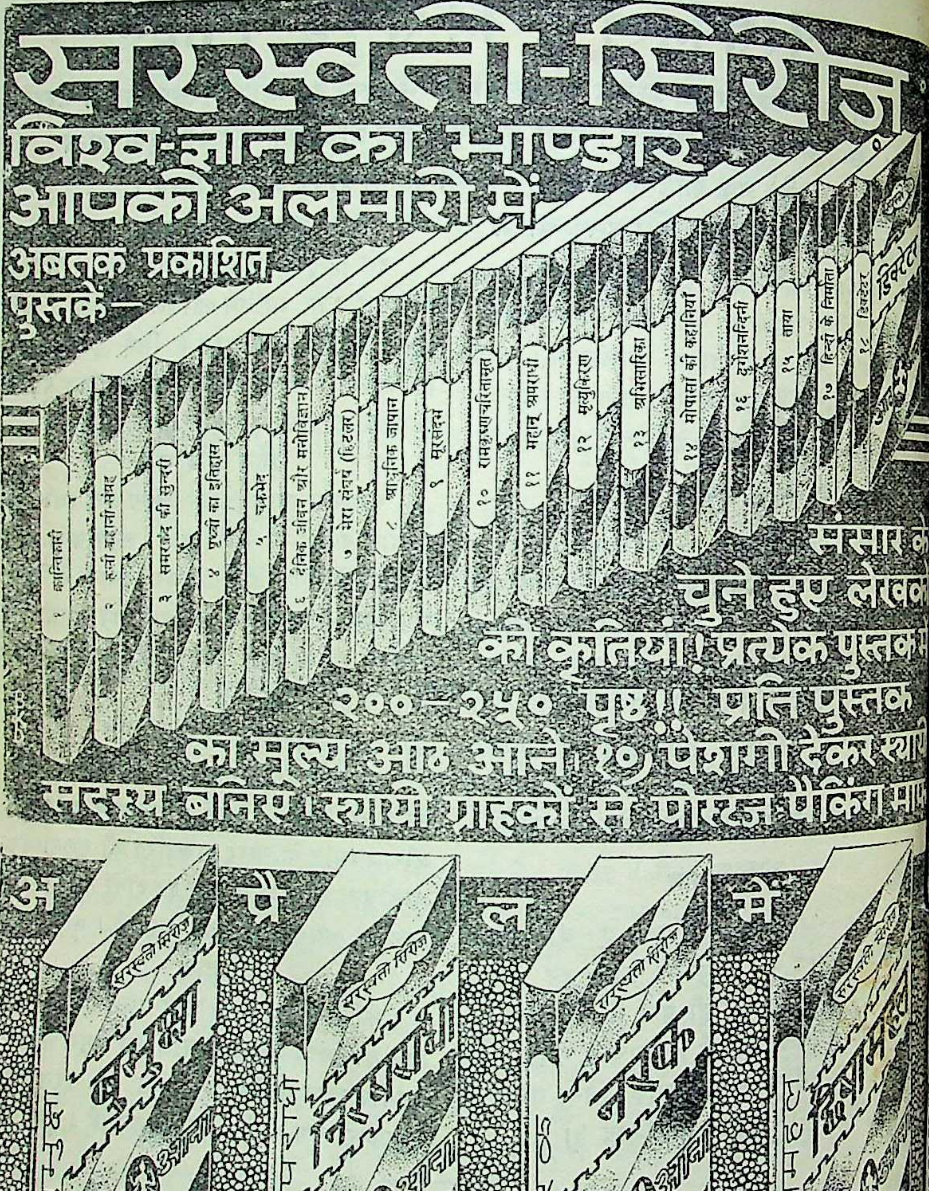
१ क्रान्तिकारी
२ रूसी कहानी-संग्रह
३ समरकंद की सुन्दरी
४ पृथ्वी का इतिहास
५ चक्रभेद
६ दैनिक जीवन और मनोविज्ञान
७ मेरा संघर्ष (हिटलर)
८ आधुनिक जापान
९ मूसोलिनी
१० रामकृष्णचरितामृत
११ महान् अपराधी
१२ मृत्युकिरण
१३ अभिसारिका
१४ मोपासाँ की कहानियाँ
१६ दुर्गेशनन्दिनी
१५ तारा
१७ हिन्दी के निर्माता
१८ डिक्टेटर
डिक्टेटर
सरस्वती सिरीज़
आठ आना
१९
२०
२१
२२

सरस्वती-सिरीज़
विश्व-ज्ञान का भाण्डार
आपकी अलमारी में
अबतक प्रकाशित
पुस्तकें—

संसार क
चुने हुए लेखक
की कृतियां! प्रत्येक पुस्तक
२००–२५० पृष्ठ!! प्रति पुस्तक
का मूल्य आठ आने। १) पेशगी देकर स्थायी
सदस्य बनिए। स्थायी ग्राहकों से पोस्टेज पैकिंग मा

अप्रैल में

इंडियन प्रेस, लि॰ प्रयाग

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,९६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपुर, हैदराबाद दक्षिण, अर्नाकुलम (कोचीन), लाहोर तथा पटना।

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषताएँ हैं

- (१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएँ।
- (२) अंतर्राष्ट्रीय व अंतर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।
- (३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि 'कहानी' सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इंडियन पी० ई० एन—

'...इसमें जो कहानियाँ हैं, वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।...इस विशेषांक की कहानियाँ पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं...यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है...हिन्दी के प्रेमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'...विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। उनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है...'

श्री सुदर्शन—

'...इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है।...मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'...छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है।...'

श्री उषादेवी मित्रा—

'...'कहानी' पत्रिका का विशेपत्व है— अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि वस्तुओं को भेंट देना...'

श्री देवराज उपाध्याय—

'कथा-साहित्य संबंधी जितनी पत्रिकाएँ नि लती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है...

श्री उदयशंकर भट्ट—

'...पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा... अंक की संपूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई

श्री रवीन्द्र

'Cheap Sentimental कहानियों से बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबि खुश हो गई...'

श्री पहाडी—

'...'कहानी' के विशेषांक में जितनी कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों शायद ही मिलेंगीं।'

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल तीन रु० है। एक प्रति का चार आना

कृपया आज ही ३) मनीआर्डर से भेज दें : पुस्तकालय २।।) भेज सकते हैं।

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट।

आपका व्यापार,
केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

फोन नं० ६३२८

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच- [illegible] देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच- कसेरट बाजार आगरा

और हमारे
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

बालोपयोगी इतिहास-माला

उथल-पुथल के इस ज़माने में अपने देश के भावी नागरिकों को संसार के उलट-फेर से परिचित कराने के लिये **'बालोपयोगी संसार का संक्षिप्त इतिहास'** ३७ खडों में निकालने की योजना है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से लिखी गयी हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस और उलझनदार न समझें। कहानी के ढंग पर लिखी पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार। **मूल्य प्रत्येक का १)**

प्रकाशित—**वैदिक भारत, पौराणिक भारत रामायण, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश और बौद्ध भारत।**

प्रेस में—**तुर्की भारत, मुगल भारत, राजस्थान, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) सिख जाति और महाराष्ट्र विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मँगाइए।**

विहार, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बड़ौदा
में शिक्षा-विभाग स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक पठन-सामग्री देनेवाला अपने ढंग का अकेला सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराना है।

प्रेरक कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।-)

अप्रेल का अंक **'उपकथांक'** है।

इस विशेषांक का मूल्य ।।=)

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा	३)
विहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट	५)
विहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,	१।)
प्रजातन्त्र	वा० रा० मोदक	१।)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	२)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१।)
जीवन-यात्रा	,, ,,	।।=)
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय	३)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	।।)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट	१)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	।)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	।।)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।=)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	।।)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	३)
स्टालिन	रामइक़बालसिंह	३)
खिलौना घर	हेनरिक इसेन	।।)
मज़दूरों की छाती पर	के० पी० झा	३)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१)
रजकण	,, ,,	।।)
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद	।।)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१।।)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	।।)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	।।)
जीवन-ज्योति	प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'	३)
विमान	गिरधारीलाल शर्मा	१)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	।।=)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	१।।)

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमेन—सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये

भुगतान पूँजी—१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहां हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजर:—

८, रॉयल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता

या

बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को।

'हँस-परिवार' की अनुपम योजना के सदस्य बनिए

[१] भारतीय-पुस्तक-माला
- (क) कायाकल्प (३ भाग)
- (ख) स्नेह-यज्ञ [१-२]

[२] 'हंस' पुस्तकें
- (क) मा [भाग १-२]
- (ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग ३]
- (ग) सात इनक़लाबी इतवार [भाग १-२-३]

[३] गल्प-संसार-माला

१० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी-संग्रह।

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
- (क) नया हिन्दी-साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रंथावली
- (क) शोभा : ले० इन्द्र वसावड़ा
- (ख) संजीवनी : ले० 'सोपान'
- (ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] : ले० सोपान

[६] जाग्रत-महिला-साहित्य
- (क) पिकनिक : लेखिका—कमलादेवी चौधरी
- (ख) पिया : लेखिका—उषादेवी मित्रा
- (ग) कौमुदी : लेखिका—शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
- (क) कँटीले तार [भाग १-२]
- (ख) जाई-जुई और ९ अन्य पुस्तकें

[८] 'हंस' मासिक १२ अंक

[९] 'कहानी' मासिक के १२ अंक और १॥) मूल्य की 'कोकिला' नामक पुस्तक भेंट।

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों की मात्रा २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की मँहगी के ज़माने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी, यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं : यह संस्था तो सेवा के लिये ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम 'हंस-परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे।

इस मूल्य में निःशुल्क बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठ संख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर २॥) रु० में १००० पृष्ठ मिलते हैं। इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है। यह योजना बेजोड़ है। निस्सन्देह।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है, इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा।

[१] १२०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद। [२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद। [३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं। [४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों, कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह। १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे। [५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उचित किया गया है। [६] महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न। ये आपके परिवार में पत्नी तथा माँ-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे। [७] 'आज की किताब' के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुझाव रहेगा। अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

अत्यन्त सुन्दर, मज़बूत और सस्ते

जूट के बने गलीचे, दरियां और आसन

प्रत्येक साइज़ में सभी हमारी दुकानों पर मिलते हैं

और विशेष रूप में

१ खन्ना इन्डस्ट्रीज़, बनारस सिटी
२ नेशनल नोवेल्टी स्टोर, कानपुर
३ जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग
४ एम. डी. जिन्दल, एन्ड सन्स,
दुकान नं० २० मरीना होटल, नई दिल्ली
५ नौर्दर्न ट्रेडिंग कम्पनी लाहौर
६ नॉवेल्टी स्टोर्स, अमृतसर
७ पंजाबी ब्रदर्स, लुधियाना
तथा पंजाब के बड़े-बड़े सभी शहरों में

और

बंगाल स्टोर्स, लिमिटेड

नं० ८ ए. चौरंगी प्लेस (टेलीफोन नं० ३६३३) कलकत्ता

में

भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपकी इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

टेलीफोन नं० ५६५

बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड

नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

टेलीग्राम 'जूट वीवर'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह । भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना । सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए० । मूल्य २) ।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना । सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए० । मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है । लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' । मूल्य ।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह । लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।) ।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह । यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है । मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें । मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं । हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है । सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है । इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं । वार्षिक मूल्य केवल १) ।

पता— **साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग ।**

दिल्ली में

सब प्रकार की उत्तम छपाई

और खास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से

किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं ।

साहित्य-सन्देश का साहस

अक्टूबर के महीने में अपना वृहद् उपन्यास-अङ्क निकालने के पश्चात्

[छः महीनों में चार विशेषांक]

पहला—परीक्षांक ! यह एक मार्च को पाठकों के हाथ में होगा। इस अंक का प्रकाशन विद्यार्थियों के लाभार्थ किया जा रहा है। इन्टर, बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थी इससे विशेष रूप में लाभ उठा सकेंगे और आगे चलकर सम्मेलन की परीक्षाओं में भी इस अंक का उपयोग हो सकेगा।

दूसरा—शुक्ल-अंक ! यह एक अप्रेल सन् १९४१ को तैयार होगा। इस अंक में शुक्लजी का प्रारम्भिक जीवन, उनकी समस्त कृतियों की आलोचना, आपकी शैली का विश्लेषण, हिन्दी के प्रति की गयी आपकी सेवाओं का विवेचन और आचार्य के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण संस्मरण इस अंक में छापे जायेंगे। हिन्दी के पाठकों को संदेश के प्रसाद-अंक' और 'द्विवेदी अंक' की याद न भूली होगी। कोशिश यह की जा रही है कि यह अंक भी अपनी पिछली परम्परा का आदर्श उपस्थित कर सके।

तीसरा—उपन्यास-अंक ! (दूसरा खण्ड) यह अंक १ जून सन् १९४१ को प्रकाशित होगा। हम उपन्यास-अंक का प्रथम खण्ड अक्टूबर सन् १९४० में निकाल चुके हैं। उक्त अंक में हिन्दी उपन्यासों का मार्मिक विवेचन किया गया था। अब इस अंक में भारत की प्रान्तीय भाषाओं के उपन्यासों एवं विश्व के उपन्यासों की मूल धाराओं पर प्रकाश डाला जायगा। हिन्दी के कुछ श्रेष्ठ उपन्यासों पर इस अंक में अधिकारी व्यक्तियों के अध्ययन प्रस्तुत किये जाएँगे। और हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार अपनी उपन्यास-कला के विस्तृत अनुभव स्वयं अपनी कलम से हिन्दी पाठकों को देंगे।

चौथा—आलोचनांक ! यह चतुर्थ वर्ष की समाप्ति के बाद नववर्षांक के रूप में सितम्बर सन् १९४१ को तैयार होगा। यह अंक एक प्रकार से हिन्दी जगत् में अभूतपूर्व होगा। यह हिन्दी समालोचना का इतिहास, उसके विभिन्न पहलू, आधुनिक समालोचना के मान और हिन्दी के सभी समालोचकों की शैलियों पर अपना पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करेगा। यह अंक उपन्यास-अंक से भी अधिक महत्वपूर्ण होगा।

इन सभी अंकों के दाम लागत के अनुसार फुटकर लेनेवालों को अधिक देने पड़ेंगे। इससे अच्छा यह है कि स्थायी ग्राहक बना जाय और ३) पेशगी भेज दिये जायँ। विद्यार्थी समाज तो २) में ही वर्ष भर ग्राहक रह सकता है।

साधारण अंक का नमूना मुफ्त मँगाकर देख लीजिए।

पत्र-व्यवहार का पता

साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।

श्री घनश्यामदास बिड़ला की कृतियाँ

बापू

एक पाठक की सम्मति

हिन्दी के लेखकों, पत्र-पत्रिकाओं, सम्पादकों आलोचकों और विचारकों ने तो 'बापू' को इसे तो एक अद्वितीय पुस्तक स्वीकार किया है, परन्तु नीचे एक ऐसे साधारण पाठक की सम्मति दी जाती है, जिन्हें इस कारण बापू पुस्तक मुफ्त भेजी गयी थी कि वह महात्मा जी की विचारधारा से मतभेद रखते हैं, पर उसे समझना चाहते हैं। वह लिखते हैं—

"आपकी तरफ़ से आयी हुई बहुमूल्य भेंट पुस्तक 'बापू' मुझको मिली है। 'बापू' पुस्तक मैंने बड़े चाव से पढ़ी है। मैंने अभीतक कई मराठी और अंग्रेज़ी भाषा में लिखे हुए महात्माजी के चरित्र-ग्रन्थ पढ़े हैं, लेकिन 'बापू' के समान उनके विचार, व्यक्तित्व और महनीयत्व का सम्यक् परामर्श देनेवाला चरित्र शायद ही दूसरा होगा। उपन्यास के समान वाचक का अवधान पुस्तक अपनी ओर खींच लेती है। मेरे मनपर इसके परिसीलन का प्रभाव तो बहुत ही हुआ है—मेरे परिचित और आप्त लोगों में यह पुस्तक मैं पढ़ने के लिए देता रहा हूँ। खुद मेरे लिए भी पढ़ने को प्राप्त नहीं होती, इतनी पुस्तक की माँग रहती है।

"मैं हिन्दी लिख नहीं सकता, इस कारण से मेरे विचार अप्रदर्शित रक्खे गये हैं—लेकिन सत्य यह है कि भेंट-पुस्तक ने मुझे बहुत ऋणी बनाया है। दिल चाहता है मैं उसे बार-बार पढ़ूं और मेरी विचार-सरणी उससे मिलती-जुलती रखने की कोशिश मनःपूर्वक करूँ।

शिरपुर, वेस्ट खानदेश }
२६-३-४१ }

आपका नम्र
जनार्दन वामन जोशी

डायरी के पन्ने

एक साहित्यिक की सम्मति

"डायरी यह हृदय की नहीं, समय की है। सबसे क़ीमती आत्मा की डायरी होती है। उसकी कीमत साधक के लिए और सर्वकालीन है। पर समय की डायरी की भी कम कीमत नहीं। इतिहास के लिए वह दस्तावेज का काम देती है। कम-से-कम यह पुस्तक तो एक कीमती दस्तावेज ज़रूर रहेगी।

"इतिहास के बाजार में घटनाओं का पक्का माल आता है। भीतर कारखाने के अन्दर उन घटनाओं के ताने और बाने में क्या कुछ होता जाता है, इतिहास की आँख वहाँ नहीं पहुँचती। घनश्यामदासजी की डायरी में बहुत अच्छा सन्तुलन है। गोलमेज के नाटक का नेपथ्य अपनी यथार्थता में सामने दीख आता है।

× × ×

"पुस्तक में दो बातें अपूर्व मिलीं। अपूर्व से मतलब कि हिन्दी पुस्तकों में वह गुण नहीं मिलते। एक यह कि बड़ी-से-बड़ी बात सहज घरेलू ढंग पर कही गयी है। उसमें प्रयास नहीं है, खींचतान नहीं है। जीवन का स्वस्थ और यथानुपात दृष्टिकोण है। जैसे छोटी बात भी बड़ी नहीं।···बिड़लाजी की इस क्षमता पर मुझे अचरज तक है और मैं उसका अभिनन्दन करता हूँ।

"दूसरी है, उनकी अलिप्त और अनाविल शैली।···उन्होंने बात को सम्हाला है और भाषा अपने आप सँवर गयी है। मन को और बुद्धि को थामकर चलाया है और भाषा इसमें संयत होकर भी सहृदय रही है। इस पुस्तक की ताजगी 'बापू' से भी मुझे बढ़ी हुई मालूम हुई।"

दिल्ली]

जैनेन्द्रकुमार

बिखरे विचार

"बिड़लाजी के कुछ व्यक्तिगत पत्रों तथा उन लेखों का संग्रह है जो समय-समय पर 'विश्वमित्र', 'त्यागभूमि', **'विशाल भारत'**, 'हरिजन-सेवक', **सरस्वती,' 'बिड़ला कॉलेज मैगजीन'** आदि पत्र-पत्रिकाओं में आज से कुछ वर्ष पहले प्रकाशित हो चुके हैं—अन्तिम लेख—**'हीरा'** इसी वर्ष की ताजी रचना है।" मूल्य १।।), २)

'मण्डल' तथा 'जीवन साहित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में

सस्ता साहित्य मण्डल

हिन्दी की एकमात्र प्रगतिशील, सार्वजनिक और लोकप्रिय प्रकाशन-संस्था है

उसके १४ वर्षों का कार्य ही उसकी निश्चित और ठोस प्रगति का तथा लोकप्रियता का जीवित प्रमाण है

※ सन् १६४० के अन्त तक मण्डल ने एकसौ पैंतीस पुस्तकें प्रकाशित कीं।

※ मण्डल से प्रकाशित इन पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या इकत्तीस हज़ार एक सौ होती है।

※ मण्डल के पूरे सेट का दाम एक सौ रुपया होता है।

※ इन १४ वर्षों में मण्डल ने अपनी प्रकाशित पुस्तकों की चार लाख चालीस हज़ार प्रतियाँ बेची हैं।

※ इन १४ वर्षों में मण्डल ने वर्ष भर में कम से कम चार हज़ार और अधिक से अधिक छासठ हज़ार रुपये की प्रति वर्ष बिक्री की है।

यह सब क्यों और कैसे हुआ ?

इसलिए कि मण्डल ने अपने लाभ की अपेक्षा पाठकों के लाभ का सदैव ध्यान रखा है।

इसलिए कि मण्डल ने हमेशा पाठकों के मन को लुभानेवाला नहीं, बल्कि दृढ़ और शुद्ध बनानेवाला साहित्य दिया है।

इसलिए कि देश के परखे हुए नेता और सेवक मण्डल का संचालन करते हैं।

इसलिए कि राष्ट्र-पुरुषों और नेताओं ने मण्डल को अपने आशीर्वाद दिये हैं।

अतः आप

निःशंक होकर अपने लिए मंडल से समय पर रिआयती दाम में पुस्तकें पाने के लिए

'मण्डल' और **'जीवन-साहित्य'** (मासिक पत्र) के ग्राहक बनिए।

(सम्पादक—हरिभाऊ उपाध्याय)

'जीवन-साहित्य' जीवनदायी विचारों के अलावा मंडल की अन्य पुस्तकों के समाचार भी देता है।

इस पते से
पत्र-व्यवहार करें :-

सस्ता साहित्य मंडल कनाट सर्कस नई दिल्ली

—शाखायें—

दरीबा कलाँ
दिल्ली

अमीनुद्दौला पार्क
लखनऊ

खजूरी बाजार
इन्दौर

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहीं से मार्तंड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

जीवन साहित्य

: अंक १०

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

मई : १९४१

पुस्तकालय
5-5-42

स्कूल का मक़सद

अगर किसी स्कूल का मक़सद यह हो कि किसी उद्योग के ज़रिये तालीम दी जाये तो उसे नीति और सुरुचि के गुणों को इज्ज़त देनी होगी और वह लगन पैदा करानी होगी जिससे वे हासिल हो सकें। ऐसा होगा तभी हमारे नौजवान आदर्शों के आगे झुकना सीखेंगे और तबतक जिन्दगी को बेमानी और फीकी समझेंगे, जबतक कि उसमें वे गुण नहीं झलकने लगेंगे, जिनपर समाज क़ायम है और जिससे उसे तेज़ी के साथ आगे बढ़ने की ताक़त मिलती है।

जिस स्कूल के वातावरण से या व्यापक समाज से विद्यार्थी लिये गये हैं, उसीमें व्यक्तिगत योग्यता और सहयोग को ही स्कूल अपना मक़सद नहीं बना सकता। सामाजिक गुणों के लिए उनके दिलों में जो इज्ज़त है वह ऐसे नैतिक गुणों के आगे झुक जानी चाहिए और जो होशियार नागरिक है उसे नैतिक दृष्टि से भी योग्य नागरिक पुरुष होना चाहिए। ऊँचे-से-ऊँचे मक़सद की खोज शुरुआत से ही हमें होनी चाहिए; और हमेशा उससे आगे बढ़ने की हौंस तो होनी ही चाहिए।

डॉ० ज़ाकिर हुसैन

सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

ायी ग्राहकों के लिए नई पुस्तकों की सूचना इस अंक में जा रही है।

विषय-सूची

१. आह्वान (कविता)—['अचल'] ४०५
२. पाठकों तक पहुँचें— ४०६
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
३. हिन्दी पुस्तकों की बिक्री— ४०७
[श्रीशंकरसहाय सक्सेना,
एम. ए. बी. कॉम]
४. विज्ञापनों की बीमारी— ४१०
[श्री के. सी. चौधरी]
५. दूसरी बुनियादी तालीम-परिषद्— ४१३
[श्री गोपाल रामचन्द्र कुलकर्णी]
६. गुप्त ठग [श्री रामनरेश त्रिपाठी] ४१६
७. जीवन का उषाकाल— ४१८
[श्री प्रभुदास गांधी]
८. कवि का धर्म— ४२१
[श्री सोहनलाल द्विवेदी
एम. ए. एल-एल. बी.]
९. 'अश्लील' और 'अश्लीलता'— ४२२
[श्री जैनेन्द्रकुमार]
१०. वृद्ध से—[श्री वियोगी हरि] ४२७
११. श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन : एक शब्द-चित्र [प्राप्त] ४२९
१२. प्रस्तुत प्रश्न— ४३०
शिक्षण का उद्देश [श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]
राष्ट्रभाषा [श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन]
बालकों की रुचि [श्री राजेन्द्रकुमार]
कवियों से [श्री सुधीन्द्र एम. ए.]
१३. समालोचनार्थ प्राप्त— ४३३
१४. कसौटी पर— ४३४
'लालचीन', 'कलापिनी', 'महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास' 'अनुभूत पशु चिकित्सा'; 'अभिनव एकांकी नाटक'
१५. सहयोगियों में से— ४३७
शिक्षा और शिक्षक; यह 'पातक' हैं ! ; मानव-धर्म
१६. सैर-सपाटा— ४३९
१७. कृष्णमन्दिर में— ३३९
१८. क्या और कैसे ? ४४०
ग़रीब लेखकों की समस्या; प्रकाशकों की चोरी; क्या लिखूँ ?; पाठकों से; अमल से दिखाओ; 'सैनिक' के साथ न्याय; समर्थन; स्वर्गीय गोयनकाजी; 'हृदय'जी; अमर भेंट !

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—लेखक—पं० जगपति चतुर्वेदी। यह पुस्तक कई प्रसिद्ध अंग्रेज़ी, संस्कृत, पाली तथा हिन्दी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना उतना कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना कठिन। इस पुस्तक में अपने मन, वाणी आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर अधिकार करने के सहज सरल उपाय बताये गये हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। मूल्य १)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय। इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति के लिए अपने सर्वस्व निछावर करनेवाले वीर-वीरांगनाओं की कहानियों का संग्रह है। प्रत्येक कहानी बहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और ज़ोरदार भाषा में लिखीहुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनानेवाली हैं। सुन्दर कवर से युक्त पुस्तक का मूल्य ।।।)

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथितहृदय। इस पुस्तक में उन कहानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती हैं। चरित्र-निर्माण के लिए इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ।।।)

मैनेजर—छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग
कानपुर के सोल एजेंट : साहित्य निकेतन, कानपुर

सस्ता साहित्य मण्डल

[हिन्दी की श्रेष्ठ राष्ट्रीय प्रकाशन संस्था]

कनाटसर्कस; नईदिल्ली

१ मई १९४१

: लखनऊ : इन्दौर

स्थायीग्राहकों के नाम
—सूचना-पत्र—

गतवर्ष नवंबर में नई पुस्तकों की सूचना आपको जी० सा० द्वारा दी गई थी। उसमें 'के विचार' तक पुस्तकें थीं। उसके बाद निम्न पुस्तकें और प्रकाशित हुई हैं।

१. लड़खड़ाती दुनिया (जवाहरलाल नेहरू)	||)
२. सेवाधर्म : सेवामार्ग (श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, एम० एल० ए०)	१)
३. दुनिया की शासन-प्रणालियाँ और आज का यूरोपीय युद्ध	१||)
४. यूरोपीय युद्ध और भारत (गांधीजी और जवाहरलाल नेहरू)	|)
५. देशी राजाओं का दरजा (प्यारेलाल)	|)
६. डायरी के पन्ने (घनश्यामदास बिड़ला)	|||)
×७. बिखरे विचार ,,	१||)
×८. प्रलय-वीणा (सुधीन्द्र)	१)
९. सोने की माया (किशोरलाल घ० मशरूवाला)	-)
१०. सत्यवीर सुकरात (गांधीजी)	-)
कुल मूल्य	६|||=)
स्था० ग्रा० कमीशन	१||≡)||
	५=)||

इन पुस्तकों का परिचय कवर के चौथे पृष्ठ पर दिया गया है। इनमें × निशानवाली सोल एजेन्सी विभाग की हैं।

पिछली बार जो सूचना गई थी उसके उत्तर में आपकी ओर से कइयों के पत्र मिले कि खादी-भण्डारों से पुस्तकें आप लेलेंगे पर अभी तक आपने भण्डारों से पुस्तकें नहीं लीं। अब भी पुस्तकें भण्डारों पर मिलेंगी पर उनसे यह सूचना मिलने के साथ ही जल्दी-से-जल्दी ले लिया करें; फिर पुस्तकें खतम हो जाती हैं और आप पाने से वंचित रह जाते हैं।

अभी भी आप में से कई सज्जन 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक नहीं बने हैं। पिछली बार के आर्डरों में से बहुतों ने लिखा तो कि जी० सा० भेजते रहें रुपया भेज देंगे, पर कई का रुपया तो अभी

तक नहीं आया। इसी कारण छठे अंक से ही हमें अंक भेजना बंद कर देना पड़ा था। आशा है अब आप शीघ्र ही जी० सा० के ग्राहक बन जावेंगे।

पिछले अंक में हमने यह सूचना भी छापी थी कि 'मण्डल' के या 'जी० सा०' के ग्राहक अपने किसी मित्र परिचित या प्रिय संस्था की सिफारिश करेंगे तो उनकी सिफारिश पर जी० सा० १) में वर्ष भर दिया जायगा। इस सूचना का लाभ जी० सा० के ग्राहकों ने तो काफ़ी उठाया। आप उठाना चाहें तो अपने परिचितों की सिफारिश कर सकते हैं और उनका रुपया आने पर १) में जी० सा० वर्ष तक भेजा जाया करेगा।

इस बार एक बहुत ज़रूरी सूचना आपको यह देनी है कि मण्डल के तथा जी० सा० के ग्राहकों को खादी-भण्डारों पर से मण्डल द्वारा प्रकाशित जो पुस्तकें पौनी क़ीमत पर मिल जाया करती थीं अब उसके बजाय ≡) रुपया कमीशन पर ही मिल सकेंगी। हमने सब भण्डारों और सोल एजेंसियों को यह सूचना भेज दी है। ग्राहक प्रमाण-पत्र का जो कार्ड आपके पास है उसे बताने पर अब आपको ≡) रुपया कमीशन मण्डल की पुस्तकों पर मिलेगा। हाँ मण्डल की शाखाओं (इन्दौर, दिल्ली लखनऊ) और प्रधान कार्यालय नई दिल्ली से आपको पौनी क़ीमत में पुस्तकें मिल सकती हैं।

पुस्तकें मँगाते समय जो कार्ड भरें उसमें अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें। जल्दी ही आर्डर-कार्ड भरकर भेजने की कृपा करें। उसमें टिकिट न लगावें।

भवदीय

मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री और प्रधान व्यवस्थापक

हाथ-काग़ज की स्टेशनरी

पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि 'मण्डल' के प्रधान कार्यालय तथा उसकी तीनों शाखाओं में हाथ के काग़ज के लेटर हेड, लिफाफे, कार्ड आदि बिक्री के लिए रखे गये हैं। कई साइज़ों में तथा कई तरह के मेल खाने वाले रंगों में लिफाफे और चिट्ठी लिखने के काग़ज मिलते हैं। ।) के टिकट भेजकर नमूना मँगाइए।

प्रधान कार्यालय में 'लेटर हेड' छपाने का भी प्रबंध है।

लिखें—

व्यवस्थापक,

सस्ता साहित्य-मंडल,

कनाट सर्कस, नई दिल्ली.

'सर्वोदय' : (हिन्दी)

"गांधीजी पर हिन्दी में कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, परन्तु यह अपने ढंग की निराली है। × × ऐसी रोचक और विचार-प्रेरक पुस्तक प्रकाशित करने के लिए सस्ता साहित्य मण्डल बधाई का पात्र है।"

'फूलछाब' : (गुजराती)

"××सिद्धांतोनी चर्चानुं उंडाण, अेनी प्रमाणिकता अने विशदता जोतां लागे छे के आ कोई अन्ध-भक्तनी गांधीपूजा नथी पण गांधीजीने अनेक रीते अवलोकनार, पछी छिद्रो शोधनार अने अे छिद्रो माटे ऊँडा उतरवा जतां आदर अने परिणामे भक्तिनुं मोती मेळवनार अेक अभ्यासीनुं तत्त्व-दर्शन छे। सरल अने प्रमाणपुष्ट शैली मां लेखके गांधीजी ना सिद्धान्तोनी सुन्दर समीक्षा करी छे।"

'हंस' : (हिन्दी)

"जीवन-चरित्र लिखना ही एक कठिन कला है; फिर गांधी जैसे व्यक्तित्व पर लिखना तो असाधारण साहस का काम है। बिड़लाजी ने अपनी गहरी भक्ति के कारण इस कठिन कार्य को अपूर्व सफलता से पूरा किया किया है। × ×× आगे चलकर 'बापू' पर अनेक किताबें लिखी जायेंगी, लेकिन बिड़लाजी की रचना का स्थान सुरक्षित रहेगा, क्योंकि वह हृदय और बुद्धि की वाणी है।"

'माडर्न रिव्यू' : (अंग्रेजी)

"श्री घनश्यामदास हैज़ अम्प्ली वॉक्ड इन् द शाइनिङ्ग फ़ुट स्टॅप्स ऑव गांधीजी फॉर ओवर ए स्कोर ऑव ईयर्स। कॉन्सीक्वॅण्ट्ली ही हैज़ बीन फॅमीलियर विद् एवरी एक्टिविटी ऑव हिज़, एण्ड सो इन् ए पोज़ीशन टु हैव हिज़ डाउट्स ऑन् द एलेज्ड इम्प्रैक्टिकेबिलिटी

एकॉर्डिङ्ली, नॉट ओनली एन इन्साइट इन्टु द ओशनिक माइण्ड ऑव हिज़ हीरो, बट ऑलसो इन्टु हिज़ ओन्, इन् इट्स स्ट्रग्ल्स टु अन्डरस्टैण्ड हिम, फॉर इफ़ टु लव इज़ टु अन्डरस्टैण्ड, टु अण्डरस्टैण्ड इज़ टु लव टू। हिज़ लैंग्वेज इज़ ए लैंग्वेज बोथ ऑव द हैड एण्ड द हार्ट। × ×

द इन्क्ल्यूज़न ऑव सम रेअर फ़ोटोग्रैफ्स ऑव गांधीजी इन् द बुक, कप्ल्ड विद् एक्सीलैण्ट प्रिंटिंग, हैज़ मेड 'बापू' एन ऑल्वेज़ वैल्कम कम्पैनियन ऑन वन्स प्राइवेट शैल्फ।"

'भारत' : (हिन्दी)

"× × सब मिलाकर पुस्तक लेखक की तलस्पर्शी सूक्ष्म दृष्टि तथा अध्ययनशील परीक्षण से पूर्ण है। × × भाषा में एक प्रवाह है, एक रोचकता है जो पाठक को कोई थकावट नहीं मालूम होने देती।

सुन्दर है।"

'सर्चलाइट' : (अंग्रेज़ी)

"श्री घनश्यामदासजी हैज़ बीन टु ए लार्ज एक्स्टॅण्ट सक्सॅसफुली एबल् टु मेक ए स्टडी आव् गांधीजी एण्ड टु अंडरस्टैण्ड एण्ड रियलाइज़ द ट्रू मीनिंग एण्ड सिगनिफिकेन्स ऑव द लाइफ एण्ड टीचिंग्स एण्ड दी इम्प्लिकेशन्स आव् ऑल दैट ही डज़ एण्ड सेज़। × × दिस बुक इज़ ए वेलुएबल ऐडीशन टु गांधियन लिटरेचर फॉर इट इज़ एन अॅटेम्प्ट, एण्ड ए सक्सेसफुल अॅटेम्प्ट, टु पोर्ट्रे गांधीजी एण्ड करेक्टली इंटरप्रीट हिज़ लाइफ़ एण्ड फिलॉसफी टु द हिंदी रीडिंग पब्लिक × × द बुक डिज़र्व्ज़ टु बी वाइडली रेड।"

'जन्मभूमि' : (गुजराती)

"× ×लखनारनी शैली, दृष्टि, प्रसंगनी पसन्दगी, अमुक बाजू पर वधु-ओछो भार मूकवानी वृत्ति वगेरे मां लखनारनो पोतानो प्राण

प्रकट थई जाय छे। अेटले आ पुस्तकमां आलेख्य करतां आ लेखकनुं व्यक्तित्व सुन्दर रीते गुंजी उठेल छे। शैली तो सारी पेठे प्रवाही अने स्वस्थ छे।''

'सोशल वेलफ़ेयर' : (अंग्रेज़ी)

''सच ए क्रिटिकल इण्टरप्रीटेशन ऑव महात्माजी प्रेजेण्टॅड इन ए सिम्पिल स्टाइल व्हिच कैन बी ईज़िली अण्डरस्टुड बाइ ईवन दोज़ हूज़ मदर-टंग इज़ नॉट हिंदी, अर्न्स फॉर हिज़ नाइसली प्रिण्टॅड बुक एन इम्पॉर्टेंस, व्हिच कैन नॉट बी इग्नोर्ड, नॉट ऑनली बाइ महात्माजीज़ फॉलोअर्स, बट आलसो बाइ दोज़ हू हैपन टु डिफ़र फ्रॉम हिम।''

'वर्त्तमान' : (हिन्दी)

''××हरेक नगर के दानशील सज्जन सौ-सौ, पचास-पचास, प्रतियाँ मँगवाकर इस पुस्तका काघर-घर में प्रचार कर दें। इसके द्वारा सत्य और अहिंसा और अपने देश के धर्मयुद्ध का सच्चा ज्ञान उन लोगों [illegible] ज्ञान के लिए प्यासे बने रह जाते हैं। दूसरी बात यह भी होनी चाहिए कि देश की अन्य प्रधान बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू आदि भाषाओं में भी इसका अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित हो।''

'प्रजासेवक' : (हिन्दी)

'बापू' की भाषा अत्यन्त परिमार्जित, वाक्य-विन्यास परम परिष्कृत एवं भाव के भव्यभवन में विराजनेवाली मा भारती के हृदयस्पर्शी भूषण हैं।

'जागरण' (हिन्दी)

''×× जो लोग महात्माजी के जीवन की अद्भुतता जानना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़नी चाहिए। हम तो समझते हैं कि बिड़लाजी ने हिन्दी-संसार के सामने यह एक नयी और उपयोगी वस्तु रखी है, जो उनकी कीर्ति को बढ़ाती हुई महात्माजी के सम्बन्ध में बहुत-सी ऐसी बातों पर प्रकाश डालेगी, जो उनसे निकट सम्पर्क रखनेवाला ही बतला सकता है।

'संघर्ष' : (हिन्दी)

''×× पुस्तक की शैली रोचक है और विषय का प्रतिपादन कलापूर्ण है। ××''

'नवशक्ति' : (हिन्दी)

''यह समीक्षा, बिड़लाजी आज अच्छे विद्वान या लेखक न माने जाते हों, तो भी समीक्षा की उत्तम पुस्तकों में स्थान पायेगी।'' हम श्री महादेव देसाई की इस सम्मति से सम्पूर्ण रूप से सहमत हैं।''

'वीर अर्जुन' : (हिन्दी)

''× × यह पुस्तक एक अन्ध श्रद्धालु की नहीं, लेकिन एक आलोचक की आलोचना है। भले ही इसमें श्रद्धा और भक्ति का पुट भी गहरा है। लेकिन इससे इसका आलोचकत्व कम नहीं होता। गांधीजी जैसे विश्व विभूति के हृदय, आत्मा और मस्तिष्क को समझाने का सुन्दर प्रयत्न करने के लिए लेखक हिन्दी-साहित्य के धन्यवाद का पात्र है। × ×''

'भारत' : (मराठी)

× × विवेचक बुद्धि आणि भक्ति यांचा सुन्दर मिलाप या ग्रंथांत झाला आहे। ग्रंथांत अनेक वचनो व महाभारतांतील सुन्दर दाखले ठिकठिकाणी दिले आहेत। × गांधीजीचें जीवन खरोखर समजून घेण्याची ज्यांची इच्छा आहे अशा सर्व वाचकांनां हा ग्रंथ उपकारक होणार आहे ×× गांधी वाङ्मयांत या ग्रंथात अपूर्व भर पड़ली आहे। × ×''

'स्वराज्य' : (हिन्दी)

''जब प्रस्तुत पुस्तक जैसी सुन्दर शैली में लिखी गयी पैनी एवं अन्तस्तलस्पर्शी विश्लेषण दृष्टि की रचना सामने आती है, तब साहित्यिकों की जमात में प्रथम प्रवेश में ही अनायास अग्रस्थान ग्रहण करनेवाले लेखक की ओर साश्चर्य दृष्टिक्षेप होने लगता है।''

'माहेश्वरी' : (हिन्दी)

''छिद्रान्वेषण से भक्ति के सोपान तक पहुँचनेवाले लेखक ने बापू का यह जीवन नहीं लिखा, प्रत्युत जीवन की कुंजी लिखी है। ×× महात्माजी के जीवन और धर्म के जिज्ञासुओं के लिए लेखक के पच्चीस वर्ष के सतत

सत्य और अहिंसा और अपने देश के धर्मयुद्ध का सच्चा ज्ञान उन लोगों [illegible] यक साबित होगा। ××''

'नवज्योति' : (हिन्दी)

'×× इस तरह पुस्तक केवल हरेक के पढ़ने योग्य ही नहीं, बल्कि संग्रह में रखने योग्य है।

'विशाल भारत' : (हिन्दी)

''× × श्री बिड़लाजी ने अपनी लेखनी से महात्मा गांधी की जीवनी उनकी ईश्वर-श्रद्धा, उनके सत्याग्रह आदि प्रश्नों पर विश्लेणात्मक ढंगसे से वे पते की बातें लिखी हैं, जिसके लिए लेखक की क़लम की प्रशंसा

बातों पर प्रकाश डालेगी, जो उनसे निकट सम्पर्क रखनेवाला ही बतला सकता है।

[illegible] × × × महात्माजी के सान्निध्य का जो प्रतिबिम्ब लेखक के मस्तिष्क पर पड़ा है, उसीका सुन्दर चित्र लेखक ने नपे-तुले और सजीव शब्दों में खींचा है अपने स्नेहपूर्ण हृदय-पटल पर लेखक ने महात्माजी के व्यक्तित्व, उनकी कार्य-प्रणाली और उनके जीवन-रहस्य का मार्मिक चित्र खींचकर लेखनी द्वारा उसे काग़ज़ पर अंकित कर दिया है। महात्माजी की प्रेम-निर्झरिणी के स्रोत-अहिंसा—तक पहुँचने में सफल हुआ है। × ×

'भारत' : (मराठी)

× × विवेचक बुद्धि आणि भक्ति यांचा सुन्दर मिलाफ या [illegible] पुस्तकांनी [illegible] कमी होता।''

'स्वराज्य' : (हिन्दी)

''××जो लोग श्री विनोबाजी के व्याख्यानों को सुन चुके हैं, अथवा जिन्होंने उनके लेखों का आस्वाद चखा है, उनके शुद्ध तर्क और मौलिक विचार-पद्धति को हृदयंगम किया है, वे जानते हैं कि विनोबाजी किस कोटि के पुरुष हैं।…सन्तोष की बात है कि श्री वियोगीहरि द्वारा सम्पादित इस पुस्तक ने विनोबाजी की वाणी हिन्दी-संसार को सुलभ कर दी। ×× प्रस्तुत पुतक में विनोबाजी के ४० लेख व भाषण संग्रहीत हैं जो विचार-प्रवर्तक अंतस्तलस्पर्शी है।''

'लीडर' : (अंग्रेज़ी)

''फ्रॉम द शॉर्ट डिस्क्रिप्शन दैट गांधीजी हैज़ गिवॅन एबाउट विनोबा इट सीम्स दैट इन थॉट एन्ड ऐक्शन नोबडी इज़ नीयरर द महात्मा दैन विन बा। ××

इट इज इम्पॉसिबिल टु समराइज़ एन्ड रीप्रोड्यूस द

है। ×× महात्माजी के जीवन और धर्म के जिज्ञासुओं के लिए लेखक के पच्चीस वर्ष के सतत [illegible] विनोबा [illegible] स्टाइल। ऑन रीडिंग दैट वन फ़ील्स दैट विनोबा इज द बेस्ट एक्सपोनेण्ट ऑव द गांधियन क्रीड।''

'साधना' : (हिन्दी)

''विनोबाजी के विचारों में विशेष तार्किकता और संगति है। …पुस्तक में विनोबाजी के राजनीतिक विचार ही नहीं हैं, वरन् धार्मिक, साहित्यिक और कला-सम्बन्धी लेख भी हैं।…''

'कहानी' : (हिन्दी)

''…विनोबाजी के छोटे-बड़े लेखों में जो पुस्तक में संग्रहीत हैं उनकी आध्यात्मिकता, सांस्कृतिकता एवं रचनात्मक कार्य-क्षमता का पर्याप्त पुट है। साथ ही उन लोगों का समाधान भी है जो गांधीजी द्वारा दिये गये उनके इस गौरव-पद के प्रति कुछ संशयालु हो उठे थे। 'बूढा तर्क', 'तरणोपाय कौन-सा ?' 'अस्पृश्यता-का निवारण का यज्ञ', 'खादी और गादी की लड़ाई', 'सेवा व्यक्ति की,

विनोबा और उनके विचार : सं०—वियोगी हरि पृ० सं० २००; मू० ।।)

'आज' : (हिन्दी)

''×× कहींसे भी पुस्तक को खोल लीजिए, मन लग जायगा। उन्हें जो कुछ कहना होता है उसे बड़े ही सुन्दर ढंग से वे कह जाते हैं। मजाल क्या कि श्रोता अथवा पाठक पर उसकी छाप न पड़े। पुस्तक सबके पढ़ने और मनन करने योग्य है और सस्ता-साहित्य मण्डल ने आचार्य विनोबा के लेखों लेखों और प्रवचनों का यह छोटा-सा संग्रह हिन्दी-जनता के सामने रखकर बधाई का कार्य किया है। पुस्तक सुसम्पादित है। छपाई-सफाई तो अच्छी है ही, विनोबाजी का एक चित्र भी है। और सबसे

भक्ति समाज की', 'सेवा का आचार- धर्म' आदि ऐसे विवेकमय लेख हैं—जिनसे गांधीवादी ही ही नहीं, कोई भी मनुष्य गांधीवाद के प्रति उठती हुई आशंकाओं का समाधान ले सकेगा। मण्डल ने ऐसी पुस्तक को जन्म देकर एक नयी दिशा की ओर निर्देश किया है।"

'सर्चलाइट' : (अंग्रेज़ी)

"दिस बुक विल गिव सम आइडिया टु द रीडर्स ऑव द स्टफ़ दैट विनोबाजी इज़ मेड ऑव। दीज़ फ्यू एसेज़ एन्ड राइटिंग्स ऑव हिज़ कन्टेनिंग हिज़ थॉट्स एन्ड रिफ्लैक्शन्स रिवील नॉट ओनली हिज़ ग्रेट इन्टेलैक्युअल अॅटेनमैंट्स बट ऑलसो द फैक्ट दैट इफ़ देयर इज़ वन अमंग द वॅरी फ्यू, हू हैज़ ट्रूली इंबाइब्ड द फ़िलॉसफ़ी ऑव गांधीजी एन्ड हैज़ बीन एब्ल इवन टु लाइन अप टु द स्पिरिट ऑव हिज़ आइडियल्स एन्ड टीचिंग्स इट इज़ श्रीयुत विनोबा भावे। ×× इट वाज़ देयरफ़ोर, एन एक्सीलेण्ट आइडिया टु पब्लिश दिस कलैक्शन ऑव हिज़ थॉट्स एन्ड रिफ्लैक्शन्स व्हिच आर ट्रूली इन्स्पायरिंग एन्ड इन्स्ट्रक्टिव।"

'प्रजासेवक' : (हिन्दी)

"प्रत्येक सद्गृहस्थ को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए और धनिक लोगों को इसकी हज़ारों प्रतियाँ अपनी तरफ़ से मुफ्त में बटवानी चाहिए।"

'वर्त्तमान' : (हिन्दी)

"विनोबा भावे के लेखों का इसमें सुन्दर संग्रह है। व्यावहारिकता के साथ-साथ अध्यात्मवाद का सूक्ष्म ज्ञान भी इन लेखों के पढ़ने से होता है, इसलिए यह प्रत्येक गांधी-साहित्य के साथ संग्रह की वस्तु है।"

'माहेश्वरी' : (हिन्दी)

"×× इन विचार रत्नों का महत्त्व किसी धर्मगुरु के विचारों से कम नहीं। इन विचारों में स्वयं श्री विनोबा की आत्मा-प्रतिबिंबित हुई है। उन्होंने राष्ट्र की और व्यक्ति के धर्म की हरेक समस्या और उसके हरेक पहलू का अध्ययन और मनन किया है। उस मनन में विचिकित्सा नहीं बुद्धि का अन्त्य परिपाक है। ×× पुस्तक का उपदेश-ग्रन्थ की तरह आदर हो यह हमारी कल्पना है।"

'विशाल भारत' : (हिन्दी)

"हमें दुःख है कि स्थानाभाव के कारण हम आलोच्य पुस्तक की विस्तृत आलोचना नहीं कर रहे; पर इस संग्रह को छापकर सस्ता साहित्य मण्डल ने देश की बड़ी सेवा की है। आचार्य विनोबा भारतवर्ष के उन इने-गिने साधुओं और तितिक्षुओं में से हैं, जिन पर किसी भी देश को नाज़ हो सकता है।

"हमारा आग्रह है कि प्रत्येक विद्यार्थी, अध्यापक, व्यापारी और पूँजीपति इस पुस्तक को पढ़े, मोल लेकर पढ़े या माँग कर पढ़े—चोरी करके पढ़ने की हम सिफारिश नहीं कर सकते।"

खादी-मीमांसा : लेखक—वालूभाई मेहता पृ० सं० ४००; मू० १॥)

'भारत' : (हिन्दी)

×× इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक में जो विचार प्रकट किये गये हैं और जो आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं वे मनन करने योग्य हैं। लेखक ने इस विषय का गहरा अध्ययन किया है और जो कुछ लिखा है, वह गंभीर चिन्तन का परिणाम है। प्रारम्भ में खादी का इतिहास वर्णन किया गया है। ×× पुस्तक न केवल खादी और खादी के प्रेमियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, बल्कि दूसरे लोग भी उसे पढ़कर लाभ उठा सकते हैं।"

'स्वराज्य' : (हिन्दी)

"...खादी से राष्ट्रीय सम्पत्ति में कितनी वृद्धि होती है, स्वशासन से उसका कहाँतक सम्बन्ध है, दुनिया में हस्त-व्यवसाय का महत्त्व कितना है, आदि गंभीर विषयों को प्रामाणिक ढंग से इस पुस्तक में समझाया गया है। खादी के सम्बन्ध

[illegible] ग्रंथ में मौजूद न हो।"

'माहेश्वरी' : (हिन्दी)

"लेखक ने प्राचीन वैदिक काल से लेकर खादी के विचार और क्रियात्मक रूप का महत्त्व और प्रचलन बताते हुए वर्तमान समय तक उसके विकास पर प्रकाश डाला है।…पुस्तक के अन्त में लेखक ने खादी-सम्बन्धी गणनायें तथा विविध प्रान्तों की खादी की विशेषता आदि का भी दिग्दर्शन कराया है। खादी का अर्थशास्त्र से जो सम्बन्ध है, उसका हरेक पहलू से तात्विक विवेचन हुआ है। पुस्तक भारतीय अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों और उन लोगों के लिए जो खादी के सम्बन्ध में अधिक जानना चाहें बहुत अधिक उपयोगी है।…"

……इसमें सन्देह नहीं कि खादी के पक्ष का इस पुस्तक में जितनी प्रामाणिकता के साथ समर्थन किया गया है, उतना हिन्दी में किसी दूसरी पुस्तक में नहीं।"

'फूलछाब' : (गुजराती)

"निःसंशय आ ग्रंथ खादीने, खादी धारण करनारों ने अने विरोधी ओनें पण उपकारक नीवड़शे।"

'वर्त्तमान' : (हिन्दी)

"×× प्रस्तुत पुस्तक में खादी-व्यवसाय पर हर तरह प्रकाश डाला गया है। ×× खादी पर किये जानेवाले आक्षेपों का जो खण्डन किया गया है, वह आक्षेपकों को निरुत्तर करनेवाला है। भारत के प्रत्येक हित-चिंतक को यह पुस्तक पढ़े बिना न रहना चाहिए।"

साहित्य।"

'सर्चलाइट' : (अंग्रेज़ी)

"'मेरी मुक्ति की कहानी' कन्टेन्स ट्रांसलेशन्स ऑव टॉल्स्टॉयज 'माइ कन्फेशन्स' एण्ड "माइ रिकलैक्शन्स"। इट इज़ वैलनोन दैट टॉल्स्टॉय'ज़ राइटिंग्स हैव ग्रेटली इन्फ्लुएंस्ड गांधीजी'ज़ थौट एण्ड ऐक्शन्स। द 'इण्डिपेण्डेण्ट थिंकिंग, द प्रोफाउण्ड मॉरैलिटी एण्ड ट्रुथफुलनैस आर सो वेल्युएबल इन ऑल द राइटिंग्स ऑव टॉल्स्टॉय्ज़ दैट वन कैन नॉट हैल्प बीइंग डीपली इम्प्रैस्ड बाइ दैम। 'माइ कन्फैशन्स' एण्ड "माइ रिकलैक्शन्स" रिवील्स द वर्किंग, द ग्रोथ एण्ड

टीचर्स ऑव द वर्ल्ड।"

'फूलछाब' : (गुजराती)

"टॉल्स्टॉयना 'माइ कन्फैशन्स' अने "माइ रिकलैक्शन्स" नो हिन्दी अनुवाद छे। टॉल्स्टॉये पोतानुं सलग सूत्र जीवनचरित्र नथी लख्युं अेटले अेना संस्करणो अने बीजा पुस्तको ऊपर थीज अे जाणवानुं रहे छे। आ पुस्तकमां टॉल्स्टॉयना जीवननी झांखी सारा पेठे थाय छे। चिन्तन अने विचार-गांभीर्य थी भरेला 'टॉल्स्टॉय साहित्य' नो अनुवाद करवो घणो कठिन छे, छतां अनुवादक ने ठीक सफलता मळी छे।"

पिछले वर्ष प्रकाशित 'मंडल' की इन प्रधान-पुस्तकों के बारे में भारत का पत्र-संसार क्या कहता है यह उपरोक्त सम्मतियों से आपसे मालूम होगा। यह भी आपको पता चलेगा कि 'मंडल' किस प्रकार एक प्रगतिशील और लोगों के दिलों में बसने वाली एक विशुद्ध साहित्यिक और सेवा-परायण संस्था है, जो आपके और अधिक सक्रिय और हार्दिक सहयोग की अपेक्षा रखती है।

—**व्यवस्थापक**

मेरी मुक्ति की कहानी : लेखक—टॉल्स्टॉय पृ० १७५ मू० ।।)

'नवशक्ति' : (हिन्दी)

जो लोग टालस्टाय के अत्यन्त उत्कृष्ट विचारों को उनकी मौलिक रूसी या अंग्रेजी भाषा में पढ़ने में असमर्थ हैं, उन्हें हिन्दी में उनकी ये पुस्तकें (टाल्स्टॉय ग्रंथावलि

हमारी अनोखी साहित्यिक पुस्तकें

१	अनुभूति (कविता) प्रो० जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' एम० ए०	१॥)
२	मीरा की प्रेम-साधना (आलोचना) श्रीयुत 'माधव' एम० ए०	१॥)
३	प्रेमचन्द की उपन्यास-कला (आलोचना) प्रो० 'द्विज' ए० मए०	१॥)
४	ज्योतिर्मयी (उपन्यास) श्रीयुत अनूपलाल मण्डल 'साहित्य-रत्न'	२)
५	चित्र-कथा (कहानियाँ) प्रो० कन्हैयाप्रसाद सिंह एम० ए०	१॥)
६	रुदन (कविता) श्रीयुत श्यामधारी प्रसाद	॥)
७	जान हथेली पर (कहानियाँ) श्रीयुय रामवृक्ष बेनीपुरी	।॥)
८	फलों का गुच्छा (कहानियाँ)—श्रीयुत रामवृक्ष बेनीपुरी	।॥)
९	पद-चिन्ह (जीवनियाँ—श्रीयुत रामवृक्ष बेनीपुरी	।≡)
१०	आज का सवाल (लेख-संग्रह) श्री चन्द्रमा राय शर्म्मा	॥=)
११	तलवार की धार पर (कहानियाँ) ,, ,, ,,	।॥)
१२	विरक्ति (कविता)—रचयिता—श्री रामनन्दन सिंह	।)
१३	तुम्हारी क्षय—श्री राहुल सांकृत्यायन	॥=)
१४	फुटबॉल की नियमावली—श्री वज्रबहादुर सिंह नेपाली	=)
१५	जोने के लिए (उपन्यास)—श्री राहुल साँकृत्यायन	२॥)
१६	सोवियत-न्याय—श्री राहुल सांकृत्यायन	१॥)
१७	पाक-विद्या—कुमारी विद्योत्तमा देवी, शास्त्रिणी	।॥)
१८	ईख की खेती—श्रीयुत रामलक्षण सिंह	।॥)
१९	कृषि और कृषक—श्रीयुत कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय	॥=)
२०	तेलहन की खेती— ,, ,, ,,	।=)
२१	किराने की खेती— ,, ,, ,,	॥)
२२	भदई की खेतो— ,, ,, ,,	।॥)
२३	रबी की खेती— ,, ,, ,,	॥)
२४	भारतीय कृषि विज्ञान— ,, ,, ,,	३)
२५	जीवन देवता की वाणी—प्रो० ज० प्र० मिश्र एम० ए०	१॥)
२६	अन्तर्ध्वनि (कविता)—श्रीयुत प्रो० 'द्विज' एम० ए०	॥)
२७	मेरे जनम-मरण के साथी—श्रीयुत 'माधव' एम० ए०	।॥)

कृपाकर आज ही एक पत्र डाल कर उपर्युक्त किताबें मंगाइये। सब किताबें एक साथ मंगाने पर सभी पौने दाम में मिलेंगी।

निवेदक—'वाणी-मन्दिर' छपरा (बिहार)

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

ई, १९४१
ई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक दसवाँ

आह्वान

ओ प्रकाश के पिण्ड ! कारवाँ अन्धकार का बढ़ता

आ

अपनी बाती आप जलाकर तुम न मिटो एकाकी
कोटि-कोटि मिट्टी के ये कोरे पुतले हैं बाकी
स्नेह भरा है, केवल तुमसे माँग रहे चिनगारी
एक तुम्हारी भरी लपट के ये कबसे अधिकारी !
इन्हें जलाओ ये अपनों का आँचल फोड़ उठें तो !
धूल और झंझा का भय क्या नव किरणें फूटें तो !

ह्वा

जीकर ही क्या हुआ न यदि मानव का मूल्य बढ़ाया ?
मरकर ही क्या मिला न यदि जन-जाग्रति ने बल पाया ?
किसी अलख प्रियतम की पूजा के उपकरण न बनकर
आज ज्योति में ज्योति मिला तुम बनो क्रान्ति के रहबर
मूल्य उसीके बुझने का जिससे जन-जन पथ पाते
गृद्ध-वृत्ति के जगती में संपाती मिटने आते

न

वे मन्दिर के दीप उन्हें पूजा का थाल सजाना
किसी देवदासी का अर्चन पत्थर तक पहुँचाना
किन्तु तुम्हें मानव के दुखते दिल में आग लगाना
तेजी से नाशोन्मुख जग का सच्चा रूप दिखाना
नवयुग ये कर्तव्य तुम्हें देकर दोनों अति भारी
महाक्रान्ति की आज तुम्हारे बल पर किये तयारी
ओ प्रकाश के पिण्ड ! कारवाँ अन्धकार का बढ़ता

अंचल

पाठकों तक पहुँचें

एक तरफ श्री सिद्धराजजी ढड्डा जैसे ऊँचे दरजे के पढ़े-लिखे लोगों के सामने यह पहेली है कि क्या-क्या पढ़ें ?—इतना साहित्य सामने आता है और बहुतेरा पढ़ने लायक भी होता है, लेकिन फुरसत नहीं। दूसरी तरफ़ प्रकाशक चिल्लाते हैं कि हिन्दी में पाठकों की कमी है, खुद खरीदकर पुस्तक पढ़नेवाले और भी कम हैं। नतीजा यह होता है कि ऊँचे दरजे की, शास्त्रीय, गम्भीर विषयों पर पुस्तकें छापने की उनकी हिम्मत नहीं होती। यदि छपती भी हैं, तो थोड़ी-सी बिकती हैं, बाकी पड़ी-पड़ी भण्डार का बोझ बढ़ाती रहती हैं। जब प्रकाशक छापने का उत्साह कम रखते हैं तो लेखकों को लिखने का हौसला नहीं होता। पाठक हैं भी तो वे उपन्यास, कहानियाँ, कवितायें, ज्यादा पढ़ते हैं, उनमें भी भावुकतापूर्ण व कामुकता की ओर खींचनेवाली किताबों की संख्या अधिक रहती है।

शिक्षितों की उलझन तो खासकर समय या फुरसत से सम्बन्ध रखती है, और वह थोड़े लोगों की है। उसका हल यह है कि वे अपने पढ़ने के विषयों की सीमा बना लें। दो ही उद्देशों से पढ़ना सार्थक हो सकता है; (१) अपने कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, अपने जीवन को बनाने के लिए, या (२) गुजर-बसर करने के लिए। जानकारी का दायरा बढ़ाने के लिए, मनोरंजन या आमोद-प्रमोद के लिए भी पढ़ने की जरूरत रहती है, लेकिन वह पढ़ने का मुख्य उद्देश नहीं हो सकता। बाज़ लोगों को जैसे बहुत और विविध व्यंजन खाने की आदत होती है वैसे ही बिना जरूरत के कुछ-न-कुछ पढ़ने का शौक कई लोगों को होता है। यह समय, धन, शक्ति तीनों का अपव्यय है। दिमाग को एक बीमारी-सी लग जाती है सो अलग। जैसे खाने-पीने में, आचार-व्यवहार में संयम की आवश्यकता व उपयोगिता है वैसे ही पढ़ने-लिखने में भी संयम लाजिमी समझना चाहिए।

लेकिन संयम एक बात है, और न पढ़ना या फजूल और ऊल-जलूल पढ़ना दूसरी बात है। पढ़ना मनुष्य के दिमाग के लिए उतनी ही जरूरी खुराक है जितना कि भोजन पेट के लिए है। जिन्हें अक्षर-ज्ञान नहीं है वे दूसरों से पुस्तकें या अखबार वगैरह सुनकर भी अपनी बुद्धि और ज्ञान को बहुत बढ़ा सकते हैं और बढ़ाना भी चाहिए। इस समय जबकि आवागमन के साधन बहुत बढ़ गये हैं और रेडियो ने सारी दुनिया को मानों एक कमरे में लाकर बिठा दिया है, किसी मनुष्य का ज्ञान व जानकारी से वंचित रहना अन्धा व बहरा हो जाने के बराबर है। अतएव जहाँ उच्च शिक्षितों व कार्यव्यस्त लोगों को पढ़ने में सीमा बाँध लेने की जरूरत है, तहाँ जो नहीं पढ़ते हैं उन्हें पढ़कर या सुनकर पुस्तकें आदि पढ़ने की निहायत जरूरत है। हाँ, यह उनके लिए भी जरूरी है कि वे देखें कि उन्हें क्या पढ़ना है, और क्या नहीं पढ़ना है। लेखकों, प्रकाशकों व प्रचारकों पर भी यह जिम्मेवरी है कि ऐसा ही साहित्य जन-साधारण तक पहुँचावें जिससे उनका जीवन बने व पनपे, उन्हें अपने नित्य जीवन व जीवन-कार्यों में सहायक एवं उपयोगी पाठ्य व ज्ञान-सामग्री मिले। हम जो कुछ साहित्य लिखें, छापें, बेचें, फैलावें वह ऐसा हो जो जनता तक पहुँचे और पहुँचकर उसे जाग्रत, प्रबुद्ध, सजीव, पुरुषार्थी और कर्त्तव्यपरायण बनावे, अर्थात् वह समाज और राष्ट्र के निर्माण व विकास के लिए लिखा और फैलाया जाय।

इस सबकी कुंजी यह है कि पाठक बढ़ें। इसका उपाय सभी को करना चाहिए। लेखक, प्रकाशक, प्रचारक व साहित्य, समाज तथा राष्ट्र के सेवक, सबका यह समान कर्त्तव्य है। इस दृष्टि से श्री कालिदास कपूर ने[1] जो दो लेख जी० सा० में लिखे हैं वे बहुत ध्यान देने योग्य हैं। वाचनालयों

---

[1] श्री कालिदास कपूर का पता है : हेडमास्टर, कालीचरण हाईस्कूल, लखनऊ।

पुस्तकालयों में जाकर या मित्रों से पुस्तकें मँगनी लेकर पढ़ लेना काफी नहीं है। भोजन जैसे माँगकर नहीं खाते हैं, कपड़े भी अपने ही पहनना पसन्द करते हैं, उसी तरह पुस्तकों की भिक्षा या पुस्तकें आदि पढ़ने की इच्छा भी एक किस्म का भिगमंगापन है, जो एक व्यक्ति की हैसियत से नहीं, समाज व राष्ट्र के एक सम्मानित सदस्य के नाते भी हमारे आत्मगौरव के खिलाफ़ समझा जाना चाहिए—खासकर उन लोगों के लिए जो अपना पैसा लगाकर अपना पुस्तकालय बना सकते हैं या जो फ़िजूलखर्ची को रोककर वह पैसा अपने पुस्तक-संग्रह में लगा सकते हैं। हाँ, जो पाठक इतना भी खर्च नहीं कर सकते, उनके लिए उनसे अधिक धन व साधन-सम्पन्न व्यक्तियों को अपनी सुविधाओं में से कुछ त्याग करके उन्हें पुस्तकें आदि मुफ्त या सस्ती मिलने की व्यवस्था करानी चाहिए। परन्तु यह सब लिखने या कहने से नहीं होने का। इसके संगठन में हमें लगना होगा। प्रत्येक हिन्दी-भाषी पठित व्यक्ति तक पहुँचने का आयोजन करना होगा। हिन्दी-भाषियों में पढ़ने की भूख बढ़ने लगी है। ज्यों-ज्यों हम स्वराज्य के निकट पहुँचेंगे व स्वराज्य का उपयोग करने लगेंगे, त्यों-त्यों यह भूख बढ़ेगी ही। जरूरत अब इसी बात की है कि हम प्रयत्न व योजनापूर्वक उनके पास पहुँचें और उनके हित की पाठ्य-सामग्री उनके सामने प्रस्तुत करें।

हरिभाऊ उपाध्याय

हिन्दी पुस्तकों की बिक्री

[शंकरसहाय सक्सेना]

हिन्दी में पुस्तकों का प्रकाशन आज तेज़ी से हो रहा है किन्तु फिर भी लेखक को अपनी कृति के प्रकाशन में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वे हिन्दी-जगत से छिपी हुई नहीं हैं। आज तो हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशन घाटे का सौदा बन गया है। प्रकाशक लेखक का अधिक-से-अधिक शोषण करके उस घाटे की पूर्ति कर रहा है। प्रकाशक कागज़, प्रेस, तथा कमीशन के बिल में तो कमी कर नहीं सकता अतएव वह लेखक के पारश्रमिक को या तो बिल्कुल न देकर अथवा नाममात्र देकर घाटे की पूर्ति करना चाहता है। प्रकाशकों के इस व्यवहार के सम्बन्ध में अधिक लिखकर मैं कटुता उत्पन्न नहीं करना चाहता किन्तु वस्तुस्थिति यही है कि हिन्दी-प्रकाशक हिन्दी-लेखक का शोषक बना हुआ है।

इसका एकमात्र प्रधान कारण यह है कि हिन्दी पुस्तकों की बिक्री बहुत कम होती है, उनका बाज़ार सुसंगठित नहीं है। इसका फल यह हुआ है कि प्रकाशक अधिक-से-अधिक कमीशन देकर पुस्तकों को निकालने का प्रयत्न करते हैं। एक ओर लेखक को कुछ न देकर अथवा बहुत कम देकर व्यय को घटाया जाता है और दूसरी ओर दूसरे सिरे पर पचास और साठ प्रतिशत कमीशन देने के परिणामस्वरूप मूल्य बढ़ाकर ग्राहक से अधिक धन वसूल किया जाता है। हिन्दी प्रकाशक यह कब समझेंगे कि आठ आना प्रतिपृष्ठ पर लिखायी गयी किताब पढ़ने के योग्य नहीं हो सकती और ऐसी रद्दी किताबों का उचित मूल्य से दुगुना मूल्य रखकर प्रकाशक अधिक ग्राहक नहीं पा सकता ?

हिन्दी प्रकाशक यह कहते नहीं अघाते कि हिन्दी-भाषियों में शिक्षा की कमी है, उनमें पढ़ने की रुचि नहीं है, वे पैसा देकर पुस्तकें खरीदना नहीं जानते, अंग्रेज़ी पढ़े लोग हिन्दी की पुस्तकों को न पढ़कर अंग्रेज़ी पुस्तकें पढ़ना पसंद करते हैं इत्यादि। ऊपर लिखे हुए आरोपों में कुछ तथ्य अवश्य है। जहाँतक शिक्षा की कमी का प्रश्न है, वह एक स्वतंत्र समस्या है। हिन्दी प्रकाशक उस दिशा में कुछ करने में असमर्थ हैं। परन्तु मैं पूछना चाहता हूँ कि हिन्दी प्रकाशकों ने हिन्दी पाठकों में रुचि उत्पन्न करने और

अंग्रेज़ी पढ़ों में हिन्दी पुस्तकों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने का कौनसा प्रयत्न किया है ?

आज चाय के बाग़ों के मालिक यह रोना नहीं रोते फिरते कि भारतीयों में चाय पीने की आदत नहीं है, बल्कि उन्होंने मिलकर एक केन्द्रीय बोर्ड बनाया और पिछले वर्षों में गाँव-गाँव चाय के प्रचार का जैसा भागीरथ प्रयत्न किया है वह किसी से छिपा नहीं है और उसका परिणाम भी स्पष्ट है ।

हमारे प्रकाशकों ने क्या कभी पाठकों में पुस्तक पढ़ने की रुचि को उत्पन्न करने का संगठित प्रयत्न किया है ? आज के औद्योगिक संगठन में उत्पादन से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य बिक्री के संगठन का है । प्रतिवर्ष उत्तर भारत में लाखों रुपये की तोता-मैना के किस्सों, ग़ज़लों, भजनों और इसी प्रकार की अन्य पुस्तकें कम पढ़े-लिखे लोग खरीदते हैं । शहरों के फुटपाथ पर, गाँवों की पैंठों और रेलवे स्टेशनों पर आपको बहुत बड़ी संख्या में इस प्रकार की पुस्तकों के विक्रेता दिखायी देंगे । क्या हमारे प्रकाशकों ने कभी इस अछूते क्षेत्र की ओर भी ध्यान दिया है ? यदि गाँववालों और कम पढ़े-लिखे हुए स्त्री-पुरुषों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सरल, सुबोध, सुरुचिपूर्ण और उपयोगी साहित्य प्रकाशित करके बिक्री का संगठित प्रयत्न किया जाय, उन लोगों में पुस्तकों के लिए रुचि उत्पन्न की जाय, तो इस क्षेत्र को अनायास ही अपने अधिकार में किया जा सकता है । यही नहीं, इस क्षेत्र को प्रयत्न करके कई गुना बढ़ाया जा सकता है ।

हिन्दुओं में विवाह, भोज, अतिथि-आगमन तथा अन्य अवसरों पर रुपया तथा वस्त्र भेंट करने की प्रथा है । यदि संगठित प्रयत्न किया जाय तो बंगाल की तरह हम हिन्दी-भाषियों में भी पुस्तकें देने की प्रथा प्रचलित की जा सकती है । उदाहरण के लिए यदि वधू-पक्ष की ओर से बरातियों को टीके या बिदाई में रुपये देने की अपेक्षा सुंदर पुस्तकें देने की प्रथा प्रचलित की जा सके तो विवाह के दिनों में ही प्रतिवर्ष लाखों रुपये की पुस्तकें खप सकती हैं । किसी को एक या दो रुपये देना कितना भद्दा प्रतीत होता है, इसपर हम लोगों ने कभी ध्यान ही नहीं दिया । उसके स्थान पर यदि एक अच्छी पुस्तक दी जाय तो वह कितनी सुंदर दिखे ! हमारे समाज में ऐसे अवसरों पर थाली और कटोरे तक देने का रिवाज है । तो फिर पुस्तकें देने में अधिक अड़चन न होगी ।

पुस्तकों की बिक्री में सबसे बड़ी कठिनाई पोस्टेज-सम्बन्धी है । कोई भी व्यक्ति एक रुपये की पुस्तक को सात आने पोस्टेज देकर मँगाना पसंद नहीं करेगा । पोस्टेज को कम करवाने का प्रश्न देशव्यापी प्रश्न है । सभी भाषाओं के प्रकाशकों को मिलकर इसके लिए आन्दोलन करना होगा । परन्तु इस समस्या को हल करने के लिए हिन्दी के प्रकाशकों को संगठित रूप से प्रयत्न करना होगा । पुस्तकें पाठकों के घर पर पहुँचनी चाहिएँ । तभी उनकी बिक्री बढ़ सकती है । सन लाइट साबुन और ताता कंपनी अपने साबुन के प्रचार के लिए प्रदर्शन-गाड़ियाँ (Demonstration Bus) भेजती हैं, परन्तु हिन्दी पुस्तक-प्रकाशकों के सामने पोस्टेज का भूत रहते हुए भी उन्होंने पुस्तक-बसें (Book Bus) भेजने पर ध्यान नहीं दिया । यदि कुछ प्रकाशक संगठित रूप में पुस्तक-बसें भेजने का प्रबंध करें जो अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचार तथा पुस्तकों की बिक्री करें, तो पुस्तकों की बिक्री बढ़ सकती है । किन्तु यह कार्य या तो बहुत बड़े प्रकाशक ही कर सकते हैं या वह एक संगठन के द्वारा किया जा सकता है । इस प्रकार की पुस्तक-बसों से एक लाभ यह होगा कि उन कस्बों और छोटे-छोटे शहरों में जहाँ कि हिन्दी-पुस्तकों की कोई दूकान नहीं है और पोस्टेज के कारण वहाँके लोग पुस्तकें मँगाने में असमर्थ हैं वहाँ भी हिन्दी की पुस्तकों की खपत हो सकेगी । संयुक्तप्रान्त बिहार, राजपूताना, मध्यप्रान्त और पंजाब में ऐसे बहुत से नगर हैं जहाँ वर्ष में चार-पाँच सौ की

पुस्तकें बिक सकती हैं परन्तु वहाँ पुस्तकें मिलनें का कोई प्रबंध नहीं है ।

संस्थाओं में परितोषिक वितरण करनें की प्रथा है परन्तु वहाँ भी मैडिल, कप तथा अन्य वस्तुएं ही अधिकतर दी जाती हैं । इस क्षेत्र की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है । हिन्दी प्रकाशकों को यह न भूल जाना चाहिए कि अंग्रेज़ी पढ़े लोग उस समय तक हिन्दी पुस्तकों की ओर आकर्षित न होंगे जबतक उन्हें अच्छी सामग्री नहीं मिलेगी । सस्ते दामों में अच्छा लेखक भी उत्तम कृति उत्पन्न नहीं कर सकता । अच्छी पुस्तक लिखने के लिए लेखक को अध्ययन करना पड़ता है, विशेष परिश्रम और समय लगाना पड़ता है, फिर वह सस्ते दामों पर अच्छी पुस्तक कैसे लिख सकता है ? हिन्दी प्रकाशकों के साथ केवल यही रोग नहीं है कि वह लिखाई बहुत कम देते हैं, बल्कि बहुत से प्रकाशक तो वह थोड़ी लिखाई देते ही नहीं । लेखक के एक मित्र को एक बहुत बड़े हिन्दी प्रकाशक को विवश होकर अदालती नोटिस देना पड़ा, तब कहीं रुपये वसूल हो सके । हिन्दी प्रकाशकों को यह समझ लेना चाहिए कि उनकी यह नीति अन्त में उनके लिए अहितकर सिद्ध होगी ।

आवश्यकता इस बात की है कि कुछ बड़े हिन्दी प्रकाशक अपनी पुस्तकों की बिक्री का संगठन करने व पुस्तकों के प्रति जनता में रुचि उत्पन्न करने के लिए बिक्री-समिति बनालें जो सबकी पुस्तकों की बिक्री का संगठन करे । यदि प्रकाशकों का केन्द्रीय संगठन न हो सके, तो लेखक ही एक ऐसी व्यापारिक संस्था खड़ी करें जो प्रकाशन का कार्य तो न करे, केवल बिक्री का कार्य करे । लेखक-प्रकाशक उसके सदस्य बन जायें । आज विवश होकर हिन्दी लेखकों को प्रकाशक भी बनना पड़ रहा है; परन्तु वे बिक्री का उचित प्रबंध नहीं कर पाते, इसी कारण असफल हो जाते हैं, और उनका अनवरत शोषण होता रहता है । लेखकों की व्यापारिक संस्था के स्थापित हो जाने से वे शोषण से बच सकते हैं और पुस्तकों की बिक्री का उचित प्रबंध हो सकता है ।

इस सम्बन्ध में हिन्दी के प्रमुख साहित्यिकों, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा तथा अन्य हिन्दी-प्रचार-संस्थाओं का भी यह कर्तव्य है कि वे जनता में हिन्दी पुस्तकों के प्रति रुचि उत्पन्न करने का काम करें । विवाह इत्यादि शुभ अवसरों पर हिन्दी पुस्तकों को भेंट देने का आन्दोलन, हिन्दी पुस्तक-बिक्री-सप्ताह का आयोजन, हिन्दी पुस्तक-ग्राहक-क्लब स्थापित करके ये सभायें और संस्थायें पुस्तकों की बिक्री को बढ़ा सकती हैं । प्रतिवर्ष प्रत्येक नगर में हिन्दी सप्ताह मनाया जाये । उसमें अन्य बातों के साथ प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को इस बात की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए कि वह अपना सारा कार्य हिन्दी में करेगा, हिन्दी की कुछ मूल्य की पुस्तकें वर्ष में ख़रीदेगा, और कम-से-कम एक लड़के-लड़की अथवा प्रौढ़ को हिन्दी पढ़ा देगा । इस प्रकार हम भविष्य में हिन्दी पुस्तकों के ग्राहक बढ़ा सकेंगे तथा प्रतिवर्ष लोगों को कुछ पुस्तकें खरीदने के लिए उत्साहित कर सकेंगे ।

यदि इस प्रकार कोई संगठित प्रयत्न हो जाय, तो कुछ समय में हिन्दी पुस्तकों के ग्राहकों की संख्या बढ़ सकती है और हिन्दी में उत्तम पुस्तकों का प्रकाशन हो सकता है ।

हमें राजकारण से सरोकार नहीं । हमें तो स्वराजकारण से मतलब है । अपनी इस पवित्र स्वराज्य-साधना में हम ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह हमें चाहे जिस कोने में फेंक दे, लेकिन भ्रम या मोह में न डाले । हम स्वराज्य-साधक हैं. हमें राज्य-कामना का स्पर्श न हो ।

'नत्वहं कामये राज्यम् ।'

—'विनोबा'

विज्ञापनों की बीमारी

[के० सी० चौधरी]

किसी भाषा का साहित्य ले लीजिए, उसमें समाचार-पत्रों का एक महत्त्वपूर्ण भाग होता है। दैनिक या साप्ताहिक पत्रों के और विशेषकर दैनिक पत्रों के रूप में जितना साहित्य रोज़मर्रा पाठकों तक पहुँच जाता है, शेष साहित्य के रूप में उसका बहुत थोड़ा भाग ही उनतक पहुँच पाता है। परन्तु इस पत्र-साहित्य में से भी एक बड़ा भाग ऐसी सामग्री से पूर्ण होता है, जिसे हम भले ही साहित्य न कहें, लेकिन वस्तुतः वह किसी भाषा के प्रकाशित साहित्य का एक बहुत महत्त्वपूर्ण भाग जाने या अनजाने बन जाता है। वह किसी भी दूसरे साहित्य की अपेक्षा बलपूर्वक हमारे जीवन के अधिक निकट आ जाता है और हमपर व्यक्तिशः या सामाजिक रूप से अधिक प्रभाव डालता है। यह साहित्य राजनीति या समाज-शास्त्र से सम्बन्ध नहीं रखता और न धर्मशास्त्र, नीति या इतिहास से ही इसका सम्बन्ध है। इसका सम्बन्ध है कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ से और विज्ञापन के रूप में यह हमारे सामने उपस्थित होता रहता है।

प्रतिदिन हिन्दी के दैनिक या साप्ताहिक पत्रों में भारी संख्या में छपनेवाले विज्ञापनों की यदि हम एक बार कल्पना करें, तो हमें मालूम हो जायगा कि विज्ञापन कितनी भीषण मात्रा में रोजमर्रा हमतक पहुँचते हैं और मज़ा यह कि हम अखबार उन्हें पढ़ने के लिए नहीं खरीदते। वे समाचारों और लेखों के साथ विवश होकर हमें लेने पड़ते हैं और चार पैसे देकर ८ पृष्ठ का जो अखबार हम लेते हैं, उसमें से ३-३॥ पृष्ठ यही विज्ञापन होते हैं।

महात्मा गांधी का लेख या दुनिया को थर्रा देनेवाला हिटलर का भाषण इतने आकर्षक रूप में हमारे सामने नहीं आता, जितने आकर्षक रूप में घोड़ा शराब, विनाशकारी तमाखू-सिगरेट, रमणविलासिनी बटी, कामदेव तिला, या ८४ नंगे कामोत्तेजक चित्रों से परिपूर्ण कोकशास्त्र के विज्ञापन हमारे सामने सज-धजकर आते हैं और जाने या अनजाने शनैः शनैः पाठकों के दिल व दिमाग पर अपना भीषण व स्थायी प्रभाव डालते रहते हैं।

जिस वस्तु का किसी भी भाषा के साहित्य में इतना अधिक और व्यापक स्थान हो, आज हम उसकी ओर से उदासीन हैं। कवि कालिदास या गोस्वामी तुलसीदास की कविता और 'साकेत' व 'पल्लव' काव्यों की आलोचनाओं और उनके मानव जीवन पर पड़नेवाले प्रभावों पर जितना विवेचन होता है, उसका सौवाँ भाग भी उससे कहीं अधिक प्रभावकारी—चाहे बुरे प्रभाव के ही रूप में हो—साहित्य की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है! जावे भी तो कैसे? साहित्य के महारथी, राष्ट्रों व समाजों के नेता, विवेकशील मार्गप्रदर्शक ही तो विज्ञापन-साहित्य के लिए जिम्मेदार हैं।

विज्ञापन पत्रों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। उसकी उपेक्षा का अर्थ है आर्थिक क्षति। यदि विज्ञापन न लें, तो अखबार नहीं चल सकता या कम-से-कम दो-चार पैसे में नहीं दिया जा सकता। फिर विज्ञापन भी तो एक प्रकार की सेवा है—न सिर्फ़ कारोबार चलानेवालों की, बल्कि अपने पाठकों की भी, जिन्हें हम यह बताते हैं कि उनकी आवश्यकता की विविध वस्तुएँ कहाँ-कहाँ मिल सकती हैं? विज्ञापनों से देश का कारोबार बढ़ता है, समृद्धि होती है—इत्यादि अनेक बातें पत्र-संचालक कहते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि उनकी उन बातों में काफी सचाई भी है।

यह एक ठोस सचाई है कि यदि विज्ञापन न लिये जावें, तो अखबार के भारी खर्च उठाने के बाद वह दो या चार पैसे में नहीं दिया जा सकता। और फिर आती लक्ष्मी कौन छोड़ता है? वर्तमान अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार भी कारोबार बढ़ाने के लिए विज्ञापन एक अमोघ साधन है।

लेकिन मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या संचालकों को इन युक्तियों से सब प्रकार के विज्ञापनों के लिए स्वयं आत्म-सन्तोष हो जाता है? माना कि विज्ञापन आय-वृद्धि के अच्छे साधन हैं और इसके लिए पत्र-संचालकों को दोष देना ठीक नहीं, हालाँकि वे ही देशभक्ति के ऊँचे शब्दों के नाम पर जनता को त्याग व बलिदान का उपदेश देते रहते हैं। लेकिन क्या मैं यह भी पूछ सकता हूँ कि विज्ञापन का अर्थ सब प्रकार के झूठे-सच्चे, हानिकारी विज्ञापन देना ही है या इसमें भी उनका कोई अपना उत्तरदायित्व है ? जब वे पाठकों से अखबार के लिए पैसा लेते हैं, तब क्या उनका कर्तव्य नहीं कि वे पाठकों को सिर्फ़ ऐसी ही सामग्री दें, जो उनके लिए उपयोगी हो, कम-से-कम हानिकर तो न हो ? क्या वे स्वयं नहीं जानते कि उनके पत्र में अत्यन्त आक्षेप-जनक और झूठे विज्ञापन छपते हैं ? पाठकों से पैसा लेने के बाद यह तो नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि पाठक के लिए ऐसी अहितकर सामग्री न दें जो उनके धन, चरित्र व स्वास्थ्य तीनों के लिए विनाशक हो।

कई बार पत्रों के प्रबन्ध-कर्ता या विज्ञापन-विभाग के अध्यक्ष कहते हैं कि 'हमें क्या पता कि कौन विज्ञापन झूठा है और कौन सच्चा, फिर यह 'बिज़िनैस' है। विज्ञापनदाता पैसा देता है और हम उसका विज्ञापन छापते हैं। हम किसी पाठक को बाधित तो नहीं करते कि वह विज्ञापित वस्तु खरीदे ही।'

दलीलें वे दे जाते हैं, लेकिन इनको [illegible] को भी सबसे अधिक वही समझते हैं। पैसे की झूठी घड़ी के लिए 'डसी' जैसा [illegible] शब्द देते हुए विज्ञापनदाता अपने पाठकों को उल्लू बनाने का ही संकल्प करता है और पत्र-संचालक भी इसे जानता है। अनेक विज्ञापनदाताओं के झूठे विज्ञापनों से ठगे जाने के पत्र भी अखबारों के कार्यालय में पहुँचते हैं, लेकिन वे पत्र मुस्कराकर रद्दी की टोकरी में ही डालने के योग्य समझे जाते हैं ! एक बार भी विज्ञापनदाता का ध्यान उसकी धोखेबाज़ी की ओर नहीं खींचा जाता और न वह विज्ञापन बन्द किया जाता है। निष्काम भाव से अपने पाठकों की जेब, जिसपर अखबारों का जीवन निर्भर है, खाली होने दी जाती है।

कामोत्तेजक विज्ञापनों की तो इतनी भरमार होती है और कभी-कभी वे इतनी अश्लील भाषा में लिखे जाते हैं कि लज्जा भी शर्म से गड़ जाती है, परन्तु भारत की प्रान्तीय भाषाओं के पत्र-संचालक निर्लिप्त भाव से उनपर दृष्टि डालकर फिर अपने काम में लग जाते हैं। उन विज्ञापनों के ३-४) या ५-१०) रु० तो आ जाते हैं, बस इतने से ही काम। देहरादून के एक प्रोफ़ेसर ने एक पत्र-सम्पादक के पास पत्र लिखा कि मैं आपके साप्ताहिक को अपनी कन्याओं के लिए मँगाता हूँ। उनमें से एक की उम्र १७ वर्ष, दूसरे की १५ और तीसरी की १२ वर्ष है। वे आपके पत्र में प्राय हर दूसरे-तीसरे पृष्ठ पर आनेवाले आकर्षक विज्ञापनों का अर्थ नहीं समझ पातीं; मुझसे पूछती हैं। बताइए, मैं उन्हें क्या उत्तर दूँ ? बेचारा सम्पादक क्या करता ? पानी-पानी हो गया, लेकिन उन विज्ञापनों को निकलवा देने का सामर्थ्य उसमें कहाँ था ?

विज्ञापनों का मैं विरोधी नहीं। पत्रकार के नाते मुझे पत्र की समस्याओं का थोड़ा-बहुत परिचय है। मेरा यह विश्वास है कि बिना विज्ञापनों की सहायता के अखबारों का जीवन चल ही नहीं सकता—स्वयं महात्मा गांधी द्वारा सम्पादित 'हरिजन-सेवक' वर्षों तक घाटे पर रहा और संभवतः कल भी वह स्वावलम्बी नहीं था—लेकिन इतनी तो तमीज की जा सकती है कि वे विज्ञापन न दिये जावें, जो सरासर झूठे हों या कामोत्तेजक भाषा में लिखे हों। मैं तो इसके लिए एक ही कसौटी रखना चाहता हूँ। जिस विज्ञापन को हम अपनी बहनों व बेटियों के हाथ में नहीं दे सकते या उसे पढ़ने की सिफ़ारिश नहीं कर सकते, समझ लीजिए

कि वह विज्ञापन ऐसा है कि जो दूसरों की बहू-बेटियों के लिए भी उतना ही अपाठ्य है। स्मृतिकार मनु का **'स्वस्य च प्रियमात्मनः'** धर्मलक्षण ही किसी विज्ञापन के भी उचित-अनुचित होने की कसौटी है।

पत्र-संचालक जानते हैं कि वशीकरण का या 'जो चाहो हो जायगा' का विज्ञापन सरासर धोखा है, लेकिन दो-चार सफेद गोल टुकड़ों के लिए उसी धोखादेही में स्वयं भी भागी बनते हैं और चाहते हैं कि इस धोखे की सारी जिम्मेदारी विज्ञापनदाता पर जाये !

क्या मैं पूछ सकता हूँ कि प्रजाहित क्या केवल राजनैतिक उन्नति में ही है ? उनके मितव्यय और झूठी-झूठी दवाइयों में उनके पैसों की फ़िज़ूल-खर्ची बचाने में उनके चरित्र-निर्माण में उनका हित नहीं है ? क्या वे राष्ट्रीय पत्र में शराब के विज्ञापन देकर अपने पाठकों का उस हित से अधिक अहित नहीं करदेते जो वे एक कार्यकर्ता पर मार-पीट का विरोध करके करते हैं ? मैं तो यहाँतक कहने का साहस करता हूँ कि एक राजा की झूठी प्रशंसा या खुशामद करके ५-७ सौ रु० ले लेना उस पाप से कहीं कम और कहीं अधिक अक्षम्य है, जो हम झूठे व कामोत्तेजक विज्ञापन छापकर अपने निरीह भोले-भाले पाठकों के चरित्र और धन के साथ करते हैं और इसके लिए हमें मिलता है सिर्फ १।।) या १) रु० इंच ! और अधिकांश हिन्दी पत्र तो ।~) और ।=) इंच पर ही अपना ईमान बेचने को तैयार रहते हैं !!

कुछ वरसों से विज्ञापनों का नया रूप हमारे सामने आया है। यह है चाय, चीनी और बनस्पति घी का प्रचार। यह प्रचार अत्यन्त संगठित है। इससे पत्रों की आय भी काफ़ी होती है और आज यह इतने व्यापक रूप में प्रचलित हो रहे हैं कि इन्हें धोखा या पाप कहने का साहस नहीं होता, लेकिन इतना तो हो सकता है कि हम इन विज्ञापनों के लिए स्वाभिमत का गला तो न घोंटें। बड़ी-बड़ी विज्ञापन-कम्पनियाँ आज 'राइट अप' के नाम से संपादक की कलम से कभी ऐसी चीज़ भी चाहती हैं जो ईमानदार सम्पादक कभी लिख ही नहीं सकता। लेकिन लिखना पड़ जाता है। 'आज' पत्र चाय-प्रचार-विभाग द्वारा भेजी गयी सूचनाओं के नीचे 'वि०' लिखकर युधिष्ठिर की भांति अर्धसत्य अवश्य बोलता है कि यह 'विज्ञापन' है। नपुंसकता-नाशक तिला आदि के विज्ञापनों में हमने अनेक प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्रों की सम्मतियाँ पढ़ी थीं। उन प्रतिष्ठित सम्पादकों ने उस कम्पनी की दवाइयों का कभी प्रयोग न किया होगा। लेकिन उन्हें सर्टीफ़िकेट देने के लिए शायद वे विवश थे।

यह प्रवृत्ति बढ़ते-बढ़ते आज पत्रकारों को यहाँतक नीचे ले गयी है कि सिनेमा के खेल में एक मुफ्त पास के बदले में वे अपनी लेखनी से व्यभिचार करने पर उद्यत हो जाते हैं। हीनोपमा के लिए माफी माँगता हूँ, लेकिन क्या मैं पूछ सकता हूँ कि चाकलेट की एक डिबिया के लिए ईमान बेचनेवाली अमेरिकन कन्या और १०-१२ आने के टिकट के लिए अपनी स्वतन्त्र सम्मति छिपाकर अपना ईमान बेचकर झूठी सम्मति लिखने में क्या बहुत अंतर है ? यह दशा है उन लोगों की जो अपने को आदर्श मानते हैं, जो राष्ट्र का नेतृत्व करते हैं !

लेख में अनेक स्थलों पर कठोर शब्द आ गये हैं, परन्तु सत्य कठोर भी होता है। मैं स्वयं साधारण पत्रकार हूँ और मैं मानता हूँ कि मैं भी साधारण पत्रकारों से अपने को अधिक ऊँचा नहीं मानता, परन्तु आत्मनिरीक्षण में अपने ही तो दोष देखने होते हैं।

दूसरी बुनियादी तालीम-परिषद्[1]

एक दृष्टिपात

[गोपाल रामचन्द्र कुलकर्णी]

बुनियादी तालीम का प्रयोग शुरू किये आज तीन साल होगये। इस प्रयोग में दो किस्म की संस्थायें काम कर रही हैं। एक भिन्न-भिन्न प्रान्तों की सरकारी संस्थायें, और दूसरी निजी ज़िम्मेदारी पर प्रयोग करनेवाली व्यक्तिगत संस्थायें। जब सूबों में कांग्रेस-सरकारें थीं तब बुनियादी तालीम का प्रयोग कुछ वेग से जारी था। लेकिन प्रयोग शुरू करने के बाद थोड़े ही दिनों में कांग्रेस ने प्रान्तों में अधिकार छोड़ दिया और इस प्रयोग का काम गवर्नरों के हाथ में आया। पिछले डेढ़ साल का अनुभव है कि गवर्नरों की वृत्ति इस प्रयोग के विषय में प्रान्त-प्रान्त में भिन्न-भिन्न है। किसी प्रान्त में, जैसे कि बिहार में, ज़ाहिर किया है कि हम न इस प्रयोग को आगे बढ़ावेंगे न रुकावट डालेंगे। वह जिस हालत में है उसी हालत में रहेगा। जबकि उड़ीसा ने तो सात महीने की ही आजमायश के बाद प्रयोग को निष्फल ठहराकर उसे स्थगित कर दिया। दरअसल तो बुनियादी तालीम की योजना ही सार्वजनिक लाजिमी तालीम की योजना है। इसलिए जबतक सरकार इस योजना को हाथ में न ले, तबतक उसका आम प्रचार नहीं हो सकता। लेकिन कांग्रेस-सरकारों के जाने के बाद राष्ट्रीय शिक्षा के अन्य प्रयोगों की तरह बुनियादी तालीम का प्रयोग भी खानगी संस्थाओं के सिर ही आ पड़ा है। बुनियादी तालीम की दूसरी परिषद् परिस्थिति की इस भूमिका पर हुई है।

असल में माना जाता था कि यह परिषद् यू० पी० सरकार की तरफ़ से की जायगी, लेकिन कुछ अनिवार्य परिस्थितियों से परिषद् का कार्य हिंदुस्तानी तालीमी-संघ को ही करना पड़ा। और डा० ज़ाकिरहुसैन की जामिया मिलिया ने अपनी संस्था के आश्रम में उस परिषद् को निमंत्रित किया। सारे प्रान्तों के मिलकर १५० के लगभग प्रतिनिधि इसमें आये थे। बिहार, यू० पी०, उड़ीसा, दिल्ली, गुजरात, काश्मीर, सी० पी० राजपुताना व महाराष्ट्र के प्रतिनिधि थे। खुशी की बात यह है कि यू० पी० सरकार ने कांग्रेस-सरकार के हट जाने के बाद भी बुनियादी तालीम को अपने सूबे में आम तौर पर दाखिल करने की नीति अंगीकार की है। यू० पी० के बुनियादी तालीम-अफ़सर डा० खान बतलाया कि नयी तालीम के लिए यू० पी० सरकार ने पाँच लाख रु० मंजूर किये हैं और क्रमशः यू० पी० के सारे प्राथमिक मदरसे बुनियादी मदरसों में बदल देने का निश्चय किया है। सारी परिषद् में यू० पी० के कार्य के बारे में काफ़ी चर्चा हुई थी। कई प्रतिनिधियों का यह ख़याल था कि यू० पी० ने इस प्रयोग का प्रचार करने में जल्दबाज़ी से काम लिया है, जिसका नतीजा यह हुआ है कि बुनियादी तालीम के असली उसूल उसमें तितर-बितर होगये। यह आक्षेप परिषद् में प्रतिनिधियों ने प्रकट किये थे और डा० खान ने उसके बारे में अपनी तरफ़ से खुलासा भी किया था। यह सारी चर्चा सुनने के बाद मेरी यह राय हुई है कि यू० पी० ने सचमुच सच्चे दिल से इस प्रयोग को अपना लिया है। यू० पी० के कांग्रेसी शिक्षा-मंत्री सम्पूर्णानंदजी अपने समाजवादी विचारों के लिए मशहूर हैं। सोवियत रूस की कार्य-पद्धति पर उनकी बड़ी श्रद्धा है। सोवियत रूस ने वर्षों से उमड़ती हुई नदी के माफ़िक़ देश भर में समाजवादी विचारों को फैलाया। उसी तरह सम्पूर्णानंदजी ने भी इस बुनियादी तालीम को सूबे भर में छः महीने के अन्दर ही प्रचलित करने की चेष्टा की।

---

[1] यह परिषद् जामियानगर, दिल्ली में गत ११ अप्रैल से १४ अप्रैल तक हुई थी।

लेकिन रूस में वेगवान् क्रान्ति के लिए जो वातावरण था वह हिन्दुस्तान में नहीं है, इसलिए बुनियादी तालीम का प्रचार क्रांति के द्वारा नहीं, विकास-क्रम से ही हो सकता है । इससे अगर यू० पी० में इस प्रयोग का स्वरूप विकृत हुआ हो तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । लेकिन बावजूद इस विकृति के यू० पी० का प्रयोग सारे प्रयोगों में अपना बड़ा हिस्सा दे रहा है ।

परिषद् का उद्घाटन राजेन्द्रबाबू ने किया था। परिषद् के सूत्रधार डा० जाकिरहुसैन थे । श्रीमती आशा देवी परिषद् की अदृश्य शक्ति थीं व श्री आर्यनायकम् उसके कार्यवाहक थे । आचार्य काका सा० व काश्मीर के डा० सैयदीन परिषद् के प्राणपूरक थे । डा० खान सा० परिषद् के सबसे बड़े आकर्षण-केन्द्र थे । ऐसी शक्तियों से परिपूर्ण परिषद् कितनी प्राणवान् बनी होगी इसका अन्दाज पाठक कर सकते हैं ।

परिषद् की कार्रवाई ४ दिन तक चली । पहले दिन उद्घाटन व उपाधि-वितरण हुआ । दूसरे दिन सरकारी संस्थाओं के कार्य-विवरण पढ़े गये व प्रदर्शिनी का उद्घाटन हुआ । तीसरे दिन खानगी संस्थाओं की रिपोर्टें सुनायी गयीं व बाद में अनुबन्ध-विज्ञान व पाठच-क्रम के बारे में चर्चा हुई । चौथे दिन अध्यापकों की तालीम में कला का स्थान, कताई के पाठचक्रम में फेर-फार की चर्चा हुई व बाद में परिषद् के निर्णयों को ठोस प्रस्ताव का रूप दिया गया व परिषद् समाप्त हुई । परिषद् के ही सिलसिले में प्रो० सैयदीन सा० ने देहली के टाउन हाल में बुनियादी तालीम के विषय पर एक भाषण भी किया था, जिसमें आचार्य कालेलकर अध्यक्ष थे ।

परिषद् के बाद हरएक प्रतिनिधि पर यही छाप रही कि सारी परिषद् बहुत कामकाजी ढँग से हुई । हर बात की चर्चा व्यवस्थित रूप से हुई । हरएक प्रतिनिधि अपने काम व जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझता था । हर चर्चा के बाद कुछ खास निर्णय एक मत से हुआ करते थे । हर विषय की चर्चा के बाद अध्यक्ष के नाते डा० ज़ाकिरहुसैन जो उपसंहार करते थे उसमें बुनियादी तालीम के तत्त्वज्ञान व अमल पर काफ़ी प्रकाश डालते थे । खासकर हर संस्था पाठचक्रम में जो मनचाहा परिवर्तन कर लेती थी उसके बारे में उन्होंने जो खुलासा किया व बुनियादी दस्तकारी साधन है वा साध्य, इस विषय में हुई बहस पर उन्होंने जो निर्णय दिया वह लोगों को कायल कर देता था। उन्होंने बताया कि पाठचक्रम जैसा है उसे वैसा ही लेकर उसपर सचाई के साथ प्रयोग करना चाहिए व प्रयोग के बाद अगर उसमें कुछ त्रुटियाँ मालूम हों, तो पाठचक्रम के विशेषज्ञों को मिलकर उसमें जरूरी परिवर्तन करना चाहिए । साध्य-साधन का झगड़ा सिर्फ़ शब्दों का ही" झगड़ा है—यह बताकर उन्होंने समझाया कि अच्छा साधन बुरे साध्य से कहीं अच्छा है ।

आचार्य कालेलकर ने अपनी अनुपम उपमा-शक्ति से परिषद् से सवाल किया—आप दस्तकारी को अपना बच्चा समझते हैं या गधा ? गधे से कितना काम लेना और उसपर कितना बोझ डालना इसका ही विचार सब लोग करते हैं; लेकिन बच्चे का विकास कैसे हो, वह सुखी कैसे हो, उसपर कम-से-कम बोझ कैसे पड़े, यह सोचते हैं । दस्तकारी गधा नहीं है, हमारा बच्चा है । दस्तकारी को शिक्षा का बोझ नहीं उठाना है बल्कि उसकी प्रगति करते हुए शिक्षा की उन्नति करना है । प्रो० सैयदीन ने अपने नपे-तुले शब्दों व मोहक शैली में अनुबन्ध-विज्ञान की मीमांसा की थी । पढ़े गये विवरणों में आर्य-नायकम्‌जी का मत था व मेरा भी ऐसा ही मत है कि मेरा निबन्ध जो कि अनुबन्ध-सम्बन्धी था, सबसे ज्यादा मौलिक व तलस्पर्शी था। सी० पी० के तोमर साहब का निबन्ध अच्छा था। दूसरे सज्जनों नें भी अनुबन्ध के विषय में निबन्ध पढ़े थे । रिपोर्टों में राजपीपला के बुनियादी मदरसे का वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयोग बुनियादी शिक्षा में एक नयी दिशा दिखाता था । पिलाणी

दस्तकारी के मजदूरी के आँकड़े, अगर उनमें भूल न हो तो, बताते थे कि काफ़ी प्रयत्न से शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने की गांधीजी की अभिलाषा पूरी हो सकती है। बिहार की में दस्तकारी के विकास के लिए किया प्रामाणिक प्रयत्न दिखायी देता था। कई पढ़ी गयीं, जो ऐसी कठिन उर्दू में थीं कि ७५ फी सदी नहीं समझ सका। इस- उनके बारे में कुछ नहीं कह सकता। इन में जामिया मिलिया की तो थी ही।

परिषद् का आकर्षक अंग था प्रदर्शिनी। -विभाग म अलग-अलग दस्तकारियों की थीं। जामिया मिलिया ने गत्ता व अब्री का बताया था। उनके अनुबन्ध के पाठ भी थे। राजपीपला ने अनुबन्ध के बारे में प्रत्यक्ष कार्य नक्शों के रूप में प्रदर्शिनी किया था। सारे पाठ्य-क्रम को किन चीज़ों व किस तरह अनुबन्ध में लिया जा है, यह उन्होंने एक तरतीब से बताया था। दस्तकारी को मनोविज्ञान की कसौटी पर बिल्कुल मौलिक था। सारी नुमाइश में की सहायता में काम आनेवाले जो चित्र राजपीपला या जामिया मिलिया ने बताये परिषद् की एक खासियत गिनें जाते हैं। मिलिया का पाठ्य-पुस्तकों का प्रदर्शन आकर्षक था। यू० पी० ने जो कला- किया था उससे बुनियादी तालीम को दिशा का दर्शन होता था।

परिषद् के निर्णयों में सभी काफ़ी महत्त्व के लेकिन उनमें दो ऐसे थे जो बुनियादी तालीम के कार्य में प्रत्यक्ष परिवर्तन करनेवाले थे। पूना की परिषद् ने बुनियादी शिक्षकों के तालीम की न्यूनतम काल-मर्यादा एक साल की निश्चित की थी। उसको बढ़ाकर देहली-परिषद् ने दो साल कर दिया। ज़ाकिरहुसैन कमिटी ने बुनियादी तालीम की सारी श्रेणियों में दस्तकारी का समय ३ घंटा २० मिनिट रक्खा है। उसमें फर्क करके पहली कक्षा में २ घण्टे, दूसरी में २॥ व तीसरी में ३ घण्टे इस परिषद् ने निश्चित किये। स्वीकृत प्रस्तावों में उड़ीसा सरकार के प्रति विरोध का एक प्रस्ताव था। आगामी परिषद् के लिए बिहार का निमंत्रण स्वीकार किया गया।

डा० जाकिरहुसैन ने प्रतिनिधियों की सारी व्यवस्था शाही ढंग पर की थी। उनकी मोटर बस प्रतिनिधियों के ही अधीन रहती थी। भोजन में वैज्ञानिक दृष्टि से सब आयोजन किया जाता था। गाय का ही दूध दिया जाता था नहाने के लिए हर रोज़ सुबह जमनाजी की यात्रा होती थी। सारे प्रतिनिधि बड़ी प्रसन्नता से रहे। अखीर में काका साहब ने जैसे कहा—प्रतिनिधियों को एक ही तकलीफ थी—उन्हें सारे दिन काम करना पड़ता था। यह परिषद् बुनियादी तालीम के इतिहास में युगनिर्माणकारी कही जा सकती है। डा० ज़ाकिरहुसैन की प्रखर बुद्धिमत्ता और कार्यकुशलता से यह परिषद् अत्यन्त सफल हुई। परिषद् से लौटते हुए हरएक प्रतिनिधि के मन में भविष्य में बुनियादी तालीम को किस तरह ज्यादा फलदायी बनाया जाय, यही एक विचार था।

साक्षर जीवन निरर्थक हो सकता है, इसके उदाहरण वर्तमान सुशिक्षित समाज में अनढूँढ़े मिल इसके विपरीत निरक्षर जीवन भी सार्थक हो सकता है, इसके अनेक उदाहरण इतिहास ने देखे वार 'सु'—शिक्षित और 'अ'—शिक्षित इनके जीवन की तुलना करते हुए **अक्षराणामका-** गीता के इस वचन में कहे अनुसार 'सु' के बजाय 'अ' ही पसंद करने लायक़ जान पड़ता है।

—**'विनोबा'**—

[**'विनोबा के विचार'** साहित्य मण्डल]

गुप्त ठग

[रामनरेश त्रिपाठी]

लोगों को अक्सर कहते सुनता हूँ कि **शहर की कमाई शहर में ही रह जाती है**; पर कभी इसे उलट-पलटकर समझने का अवसर नहीं मिला था। कल दो देहाती उसी बात को दुहराते हुए रास्ते में जाते हुए मिले। वे बुझी हुई आग में एक फूँक-सा लगा गये; और घर आकर मैं सोचने बैठा कि उक्त सिद्धांत-वाक्य की बुनियाद क्या किसी अनुभव पर है? या यों ही वह चल निकला है?

मैं स्वयं गाँव का रहनेवाला हूँ। किसान-कुटुम्ब का हूँ। सन् १९०८ में अपने खेत के मेंड़ों से शहर की सड़कों पर आया। कई वर्षों के अभ्यास के बाद गाँव की रहन-सहन छूटी और शहरी जीवन का रस मिलने लगा। अब मैं इस योग्य हो गया हूँ कि अपने निजी अनुभव की कसौटी पर ऊपर के सिद्धान्त-वाक्य को कसकर देख सकूँ। अस्तु; मैंने स्वयं अपने ही को अपनी परीक्षा में बैठा लिया।

सन् १९१६ से मैं प्रयाग में स्थायी रूप से रहने लगा। पहले मैंने 'साहित्य-भवन' खोला। उस समय तक मेरा जीवन शहर और गाँव का एक मिश्रित जीवन था। मेरे जीवन की गाड़ी यद्यपि कुछ सज गयी थी, पर उसे गाँव की सादगी और कमखर्च नाम के दो बैल खींच रहे थे। उसमें टीमटाम का एंजिन नहीं लग पाया था। इससे बचत कम नहीं थी।

'साहित्य-भवन' लिमिटेड हुआ। उन दिनों देश-सेवा की लगन ज़ोरों पर थी। मैं स्वतंत्र होकर कांग्रेस और किसान-सभाओं का प्रचार-कार्य करता रहा। इसके बाद जेल गया। एक वर्ष से अधिक जेल में रहकर बाहर आया, तब फिर काम-काज की सूझी।

१९२४ में मैंने 'हिन्दी-मन्दिर' खोला। उस समय मेरे पास एक पैसे की भी पूँजी नहीं थी। साहित्य-भवन लिमिटेड हो जाने के बाद मेरे पास जो कुछ बचा-खुचा था, उसे मैंने साल-दो साल में खा-पकाकर बराबर कर दिया था। लखनऊ जेल से सरकारी टिकट पर इलाहाबाद आया, तब एक मित्र से दो रुपये उधार लेकर मैं घर गया था। इलाहाबाद में मेरी केवल साख थी, जिसके आधार पर, बिना किसी पूँजी के मैंने 'हिन्दी-मन्दिर' खोल दिया। यहींसे अर्थात् १९२४ से मेरा शहरी जीवन शुरू होता है।

हमें ऊपर के वाक्य की सचाई जाँचनी है, इससे हम दूसरी बातों पर न जाकर केवल कमाई ही पर विचार करेंगे। कमाई मैंने कितनी की? इसका मैं अभी तक हिसाब नहीं लगा सका हूँ। पर ख़र्च भी कमाई का एक जुज़ है, उसका एक मोटा-सा हिसाब मैंने बैठे-बैठे तैयार कर लिया है। खर्च का टोटल देखकर मैं निस्तब्ध हो गया हूँ। आज तीसरा दिन है। मेरे मन की ऐसी हालत हो रही है, जैसे किसी ने मुझे ठग लिया है। मैं समझता हूँ, मेरी कहानी जो सुनेगा, अगर उसमें कुछ समझ-बूझ होगी तो वह भी एक आह भरकर स्तंभित हो जायगा।

अब १९२४ से १९४० तक, १६ वर्षों के मेरे ख़र्च के आँकड़े ये हैं :—

१९२४ से ३० तक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग के कर्मचारियों का मासिक वेतन और दूकान-भाड़ा प्रति १००) मास के हिसाब से, ६ वर्ष में	७२००)
मेरा निजी ख़र्च घर-भाड़ा सहित १००) मासिक के हिसाब से, ६ वर्ष में	७२००)
हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग के फुटकर ख़र्चे, जैसे स्टेशनरी, पान-सुपारी, आये-गये का स्वागत-सत्कार आदि ६ वर्ष में	६००)

१९३१ से ४० तक

हिन्दी-मन्दिर बुकडिपो और हिन्दी-मन्दिर प्रेस के कर्मचारियों का मासिक वेतन और प्रेस और दूकान का

...प्रतिमास ५००) के हिसाव से,
...वर्षों में ६००००)
...निजीखर्च घर-भाड़ा सहित
...मासिक के हिसाव से, १०वर्ष में २४०००)
...गीतों के संग्रह में १९२५ से
...तक ८०००)
१०७०००)

...हिसाव से अपनी कमाई में से एक लाख ...हजार रुपये मैंने शहर को दिये।

...तो निश्चित ही है कि मैं इतना कमा ...की शक्ति रखता था, पर अपनी शक्ति का ...लाभ मिला? केवल एक स्टाक जिसमें ...कागज़ ही कागज़ हैं, और मेरा यह ...जो गाँव की अपेक्षा शहर में ज्यादा खर्च ...आगे कुछ और वर्षों के लिए शहर ही की ...करने को प्रस्तुत है। शहर ने मुझसे एक ...हज़ार रुपये नक़द ही नक़द लिये। ...घरवालों के लिए तो मैंने ५-६ हज़ार रुपये ..., जिनसे एक पक्का मकान बन गया और ...गाँव का घर छोड़कर नज़दीक के ...में, पक्के मकान में आ गये।

...और घरवालों को गाँव से शहर में लाकर ...प्रकार से उनपर अत्याचार ही किया ...में वे गाय-भैंस रखते थे; ताज़ा दूध, ...और मट्ठा पीते थे। आज-कल मटर की ...और गन्ने के रस की बहार लेते थे। अब ...में वे सब चीज़ें खरीदकर खाते हैं। गाँव ...पीने की जो चीज़ें वे मित्रों में बाँटते ...थे, अब उन्हींके स्वयं मुहताज बने ...हैं।

...अपनी कमाई से मैंने लड़कों को शिक्षा ...शिक्षा ली, पर शिक्षा भी कौन-सी?—जिससे शहर ही को लाभ मिलेगा।

अब इसका अर्थ यह हुआ कि मानो शहर मुझसे कहता है कि मेरे लिए कमाओ, मेरे लिए बच्चों को पढ़ाओ-लिखाओ और मेरे लिए जिओ। मैं तुमको मरने नहीं दूँगा, पर यहाँ का धन गाँव को ले जाने भी नहीं दूँगा। मैंने अपनी जवानी के सुनहले दिनों की उपेक्षा करके अपना शरीर घिसा, बुद्धि-द्वारा जितना निगला उससे कई गुना उगला; संयम से रहकर शरीर और मन को स्वस्थ रक्खा; नाम पैदा किया, सबका लाभ शहर ही ने ले लिया? उसने मुझसे चाँदी ही चाँदी ली और काग़ज़ (स्टाक के रूप में) मेरे पास छोड़ दिया। जहाँ से मैं चला था और यह सोचकर चला था कि शहर से कुछ कमाकर फिर वहीं वापस जाऊँगा, वह तो स्वप्न हो गया। कैसी विडंबना है!

अब छपे हुए कागज़ों का एक बड़ा-सा स्टाक लिये मैं बैठा हूँ और शहर इस ताक में है कि उसमें से जितनी चाँदी बनती जाय, वह मैं उसे देता जाऊँ और स्टॉक की रखवाली भी करता रहूँ!

अब तो यह सच ही साबित हो रहा है कि **शहर की कमाई शहर ही में रह जाती है** और यह भी निखर आया कि शहर गाँव को किस तरह खा जाता है।

आज मुझे अपनी शक्ति का पता चला कि मैं एक लाख सात हज़ार कमा सका; पर साथ ही पश्चात्ताप भी हो रहा है कि शहर मुझे किस तरह विवश करके चुपचाप ठगता रहा।

क्या कोई अर्थशास्त्री ऐसा कोई रास्ता सुझायेंगे, जिससे गाँव की शक्ति, कुल न सही तो आधी-तिहाई ही सही, गाँव की उन्नति में भी लग सके?

[...साहित्य मण्डल]

प्रेम से की हुई मेहनत क्या है? यह है, तुम्हारे हृदय की रुई से काते हुए सूत से वस्त्र ...मानों स्वयं तुम्हारा प्रियतम इसे पहनेगा। यह है, स्नेह-सहित एक घर का निर्माण करना, ...स्वयं तुम्हारा प्रियतम इसमें निवास करेगा। यह है तुम्हारा सँभाल-सँभाल कर बीज बोना और ...फसल काटना मानों स्वयं तुम्हारा प्रियतम उन्हें खावेगा। यह है जिस चीज़ में हाथ ...उसे प्राणों के श्वास से सजीव कर देना।

खलील जिब्रान ['जीवन-सन्देश'

जीवन का उषाकाल

[प्रभुदास गांधी]

तीसरा प्रकरण

ओताबापा

ओतागांधी या ओताबापा के नाम से हमारे प्रपितामह उत्तमचंद गांधी अधिक प्रसिद्ध थे। मेरे दादाजी जब कभी अपने दादा ओताबापा और अपने चाचा कबाकाका की कथा सुनाते थे तब बड़े आदर और बड़ी बारीकी के साथ सुनाया करते थे। सुनते-सुनते मेरे दिल में यह अभिलाषा पैदा होती थी कि आज भी वे महापुरुष मौजूद होते और उसी तरह हमारा समूचा परिवार संयुक्त ढंग से बसता होता तो कैसा अच्छा रहता! पर अधिक सोचने पर जब देखता हूँ कि उसी विशाल परिवार का विकास पूज्य बापूजी ने आश्रम के रूप में किया है और उसमें पलने का सौभाग्य मैंने पाया है, तब मैं अपने को कम बड़भागी नहीं समझता।

कहा जाता है कि ओताबापा आजानुबाहु थे—सीधे खड़े रहने पर उनके हाथ घुटनों तक पहुँचते थे। यह लक्षण महापराक्रमी पुरुषों का माना गया है। ओताबापा के ललाट में बड़ी चमक थी और उनकी आँखों में ऐसा तेज था कि कच्चे दिल का आदमी उनसे बात करने में हड़बड़ा जाता था। गांधीलोगों ने दूकान चलायी थी, रियासतों में छोटी-मोटी नौकरियाँ भी की थीं, परन्तु प्रतीत होता है कि सचिव बनने का सर्वप्रथम पुरुषार्थ ओताबापा ने ही प्रकट किया।

कुमार-वय में ओताबापा कुछ रोजगार पाने के लिए कुतियाणा से अपने काका दमन गांधी के पास पोरबन्दर आये! दमन गांधी के दफ्तरी होने के कारण उनका रियासत में अच्छा वसीला था। उन्होंने **'मीठी मांडवी'** का ठेका ओताबापा को दिलवा दिया। 'मीठी मांडवी' सामुद्रिक चुंगी लेने का स्थान था। उन दिनों में भी पोरबन्दर का सामुद्रिक व्यापार कम नहीं था। मूछ की रेख अभी प्रकट हो ही रही थी, ऐसी छोटी आयु में पैंतरेबाज सामुद्रिक व्यापारियों से चुंगी लेने में ओताबापा ने अच्छी मुस्तैदी और चतुराई दिखायी। यह कड़ा काम अंजाम देने के साथ-साथ वह समय निकलकर दमाकाका के पास दफ्तर में तालीम भी लेने लगे और दफ्तर के काम में भी इतने निपुण हो गये कि कुछ ही दिनों में काका आराम करने के लिए उन्हें बाध्य करके स्वयं ही छोटा-मोटा काम निपटाने लगे।

एक दिन राणा विक्रमाजित् ने किसी काम से दमाकाका को बुला भेजा, पर वे दफ्तर में उपस्थित न थे। ओताबापा ने नाज़ुक मौक़े को सँभाल लिया। दमाकाका को बुलाने न दौड़े, पर खुद राणा साहब के सम्मुख उपस्थित हुए और झुककर प्रणाम करके उनसे विनयभरे वचन बोले—"मेरे चाचाजी बाहर गये हैं, जो आज्ञा हो मुझे बताइए। मैं भी आपका सेवक ही हूँ।" लड़के की फुर्ती और बोलने की शैली और निर्भीकता देखकर राणा साहब मुग्ध होगये। एक मँजे हुए ओहदेदार के करने का काम उन्होंने इस नौजवान को सौंपा और कामयाबी के साथ उसने उसे कर दिया। काम को सही-सही हुआ देखकर ओताबापा के लिए राणा साहब की उम्मीदें बढ़ गयीं और दूसरे दिन उन्हें फिर दरबारगढ़ में बुलाया और कहा—"ओता, एक विकट काम है। हिम्मत है?" ओताबापा: "ऐसा कौन-सा काम है जो आपके प्रताप से सिद्ध न हो?"

राणा साहब—माधवपुर[1] का ठेकेदार ऐंठने लगा है हमें कमज़ोर समझकर गाँठता नहीं है। लगातार वसूलयाबी खाली जारही है। उसे सीधा करना है।

ओताबापा—-कोई बात नहीं, मैं माधवपुर चला जाऊँगा।

---

[1] प्रभास पाटण और पोरबन्दर के बीचवाले समुद्र के किनारे एक बड़ा बन्दरगाह। रुक्मिणी-हरण के बाद कृष्ण भगवान के विवाह की स्मृति में यहाँ मेला लगता है।

राणा साहब—पर तू करेगा क्या, यह तो बता?

ओताबापा—मौक़ा देखकर ही तो पता चलेगा। आपके आशीर्वाद से फतह ही होगी। मेरी पीठ पर अपना वरद हस्त रखिए, फिर बेड़ा पार ही है। मुझे कहाँ अपने बूते पर कुछ करना है? आपके नाम ही से तो करना है।" इतना कहकर ओताबापा ने राणा साहब के चरणों में सिर झुकाया। राणा साहब ने आशीर्वाद की थपकी दी। बापा माधवपुर रवाना हुए।

उन दिनों में काठियावाड़ में अंग्रेज़ी शासन प्रवेश-मात्र हो रहा था। वहाँकी असंख्य रियासतें एक सम्राट की छत्रछाया में सारी-की-सारी अभी नहीं आयी थीं। जूनागढ़ और जामनगर-जैसी प्रबल रियासतें पोरबंदर जैसी निर्बल रियासतों पर तरह-तरह के आक्रमण करके उन्हें छिन्न-भिन्न कर रही थीं। पोरबंदर में मोर्चा लेने की ताक़त बची न थी। छीज-छीजकर पोरबंदर की अमलदारी अब चंद देहातों में ही रह गयी थी। जूनागढ़ के कुछ गाँवों में सिर्फ़ उगा खाने के छुटपुट पट्टियाँ रही थीं और माधवपुर जैसे बन्दरगाह में चुंगी लेने का हक भी कठिनाई से चल रहा था। जूनागढ़ के आसरे वहाँ की चुंगी का ठेकेदार भी अब चुंगी की रक़म अदा करने में लापरवाही करने लगा था। इस परिस्थिति में राणा साहब ने ओताबापा को माधवपुर भेजा। बापा ने दीर्घ दृष्टि से काम लिया। जूनागढ़ राज्य के साथ राजनैतिक परामर्श शुरू किया। जूनागढ़ के भिन्न-भिन्न देहातों की छुटपुट पट्टियों को उगा खाने का दीवानी हक छोड़ दिया। बदले में माधवपुर से पोरबन्दर तक के सारे समुद्री किनारे की एक चक जमीन और बीच के कुल देहातों को पूरे सियासी और दीवानी हक़ों के साथ पोरबंदर रियासत के लिए प्राप्त कर लिया। उस समय वह सारा प्रदेश रेतीली और नमकीन बंजरों से छाया हुआ था। परन्तु ओताबापा के हाथ की लिखी हुई नोंध आज भी पोरबन्दर रियासती दफ्तर में मिल सकती है कि "भादर नदी का बाँध बाँधा जाय तो यह सारी जमीन सोने की फसल देगी।" हुआ भी वैसा ही। उन दिनों ७०-८० रुपयों की उत्पत्तिवाले देहात अब पौन-पौन लाख रुपये की फसल पैदा कर रहे हैं, और जूनागढ़-पोरबंदर की उसी संधि के बदौलत आज पोरबंदर का स्थान प्रथम श्रेणी की रियासतों में है। जिसके पास पूरे दीवानी हक भी न थे, उसके पास आज अव्वल दरजे की रियासत के पूरे-पूरे हकूक हैं।

माधवपुर की संधि-चर्चा इतनी अधिक सफलता के साथ ओताबापा ने पार उतारी, कि उसे देखकर राणा साहब ने तुरन्त ही उन्हें वजारत की पौसाख दी। जवानी की देहलीज में कदम रखने के साथ-साथ पायी हुई उस वजारत को उत्तमचंद गांधी ने अखीर तक अपनी बुद्धिमत्ता, प्रतिभा, सत्यप्रियता और शूरता के सहारे सँभाला, क्रमशः उसे उज्ज्वल बनाया और अपने वारिसों को उदात्तता की सीख दी।

राणा साहब विक्रमाजित् दीर्घायु नहीं हुए। उनके पीछे कुँवर नाबालिग थे, इसलिए राजसत्ता रानी के हाथ में थी। परन्तु सारा काम ओताबापा ही चलाते थे। राज्य और प्रजा के हित को देखते हुए बापा को अनेक बार राणी की हाँ में हाँ मिलाना असंभव हो जाता था। खुशामद से परे रहकर जो कुछ अपने को सच्चा और कल्याणकारी जँचे उसीको करने में ओताबापा अपनी बुद्धि और शक्ति खपा देते थे।

ऐसे ही एक मौके पर बापा ने मौत को न्यौता दिया था, यह सुप्रसिद्ध बात है। खीमा कोठारी राज्य का खज़ानची और भंडारी था। रानी की दासियों को मनमानी चीजें भंडार से निकाल देने में वह अपना हाथ खींचता रहता था, इसलिए दासियाँ उसके खिलाफ रानी के कान भरती रहती थीं।

एक बार कोठारी पर भीषण दोषारोपण किया गया। उसे बाँधकर अपने सामने पेश करने का रानी ने हुक्म दिया। कोठारी दौड़कर बापा की शरण में आया और जीवन-दान माँगा। बापा

ने दिया। राणी ने बापा को अपने आगे बुलाया और खीमा कोठारी को सौंप देने की आज्ञा की। बापा ने इस तरह उसे सौंपने से साफ इंकार किया और बाकायदा मुकदमा चलाने के लिए राणी से प्रार्थना की। राणी ने नहीं माना और जबर्दस्ती कोठारी को छीन लेने की धमकी दी। बापा अडिग रहे। चार दिन तक दोनों के बीच सँदेशे चलते रहे। आखिरकार राणी ने एक फौजी टुकड़ी बापा के मकान पर भेजी। बाद में एक तोप भी मकान तोड़ने के लिए भेज दी। पोरबंदरी सफेद पत्थर का वह पक्का मकान था और दरवाजा भी किले के फाटक-जैसा था। दरवाजे में बापा के अंगरक्षक आरबों की एक छोटी टोली थी। आरबों ने बापा से कह दिया कि हमारा एक-एक सिर बलि चढ़ जाने पर ही आपको कोई छू सकेगा। बापा ने बाहर की रक्षा उन्हें सौंपकर घर में सब तैयारियाँ शुरू कीं। सत्य के लिए शांत चित्त से आहुति देने का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। घर के बीचोंबीच अपना आसन जमाया। अगल-बगल में उस समय मौजूद पाँचों पुत्रों और पुत्रों की माता को बिठाया। आठवें कोठारी को बिठाया। सत्य के लिए हँसते-हँसते बलि होने का सबको उपदेश दिया। बाहर से तोप के गोलों की मार चली और मोटी दीवार में छेद हुए।

अन्दर रामधुन मची और सत्य पर दृढ़ रहने की अभ्यर्थना चालू रही। ईश्वर को सारे के सारे वंश का बलिदान लेना उचित न लगा। उत्तमचंद बापा को तो स्वप्न में भी कल्पना न होगी कि बलरहित होने पर भी झुकने से इनकार करने और सच्चाई के पीछे मरना पड़े तो मरने का जो मोर्चा मैंने लिया है उसका विकास अपना ही पौत्र सार्वजनिक सत्याग्रह के रूप में करेगा और उसमें से जगत-परिवर्तन और धर्माभ्युदय होगा। परन्तु ईश्वर को तो इसका पता होगा ही। कुछ भी अनिष्ट परिणाम आने से पहले पोरबंदर की इस धाँधली के समाचार राजकोट पहुँच गये। काठियावाड़ के पोलिटिकल एजेंट ने बीच-बचाव किया और रानी के बलात्कार का अंत हुआ।

इस बखेड़े के बाद बापा ने पोरबंदर छोड़ा और कुतियाणा आकर अपना शेष जीवन शान्ति और भक्ति के साथ बिताया। कुतियाणा जूनागढ़ की मातहती में होने के कारण पोरबंदर छोड़कर आये हुए कुशल मन्त्री को नवाब ने न्यौता भेजा। बापा जूनागढ़ गये, परन्तु उन्होंने बायें हाथ से नवाब को सलाम किया। और अपना दाँया हाथ पोरबंदर को समर्पित हो चुका है यह कहकर अपनी एकनिष्ठा प्रकट की। उस जमाने में नवाब के प्रति ऐसा घोर अपमान करनेवाले को करारा दण्ड मिलता, परन्तु नवाब के दिल में इस एकनिष्ठा के प्रति समादर का भाव पैदा हुआ। अपने भरेपूरे दरबार के बीच नवाब साहब ने बापा की स्तुति की और बख्शीश के रूप में बापा को और उनके वारिसों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी कुतियाणा में बिना चुंगी दुकान चलाने का रुक्का लिख दिया।

कुतियाणा जाकर बापा ने कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं की। घुड़सवारी का शौक उन्हें शुरू से ही था। एक बढ़िया घोड़ी रक्खी थी, उसपर रोज कुतियाणा के इर्द-गिर्द दूर तक टहल आते और बाक़ी वक्त कथा-कीर्तन में बिताते। सुना है कि बापा और उनकी घोड़ी की सेवा मेरे प्रपितामह जीवनलाल बापा ने अखीर तक बड़े लगन के साथ की थी। जीवनबापा ओताबापा के चौथे पुत्र थे। बिना चुंगी के दुकान चलानें का जूनागढ़ के रुक्के का लाभ उन्होंने कुतियाणा में दुकान खोलकर ओताबापा की सेवा करते हुए यथासंभव लिया।

हमारे कुल के मूलतः पुष्टिमार्गी वल्लभसंप्रदायी होने के कारण हमारे यहाँ कृष्ण-भक्ति विशेष रूप से होनी चाहिए। परन्तु बापा की पोरबंदर के एक खाखी साधु पर श्रद्धा थी। उस साधु-बाबा के लिए बापा ने पोरबंदर में एक खाखी-चौक भी बनवाया है। खाखी रामजी का अनन्य उपासक था। उसके सत्संग से बापा भी बड़े राम-उपासक हुए। उत्तरवय में दिन का अधिक समय तुलसी-रामायण का पाठ सुनने में और उसके

में बापा ने बिताया।

बापा का भक्ति-रस दिखावा-मात्र नहीं, उनके जीवन की गहरी सतह तक पहुँच गया वह जैसे खीमा कोठारीवाले प्रसंग की सत्य- और बलिदान-वृत्ति से साफ़ नजर आती इसी तरह एक दूसरे मौके पर बतायी हुई वृत्ति और नेकदिली से भी स्पष्ट होता पोरबंदर में जब बापा प्रधान थे, तब उनका वेतन दो हजार कोरी (पाँच सौ रुपये) इसके अलावा कच्चा सीधा, साग-भाजी चीजें दरबार-गढ़ से मिलती थीं। यह कोई वेतन न था, फिर भी रिवाज के अधीन बापा ने अपने दो बड़े बेटे बल्लभजी और के विवाह में बहुत भारी भोज दिया। में बड़ा पुरुषार्थ सन्निहित होने की की भावना से ओताबापा मुक्त नहीं इस पुरुषार्थ को भी उन्होंने सीमा तक पहुँचा सारे नगर की चौरासी की, शहर के दरवाजे लगाकर दीन-ग़रीब हर किसी को का न्योता दिया। सात दिन तक तो घुड़- और बरात का प्रदर्शन किया। राणा खुद बरात के अगुआ बने। मेरे दादाजी कहते हैं कि "ऐसा भव्य भोज और घुड़सवारी ओताबापा के समय से आजतक कोई नहीं कर पाया है!"

ओताबापा प्रजाप्रिय दीवान थे। रैयत ने नजराना भी खूब दिया। जो-कुछ खर्चा हुआ, उससे नज़राना कम न था। मामूली आदमी यह देखकर फूला न समाता और सारे धन को घर में जमा करता, परन्तु बापा ने शादी का काम समाप्त होते ही सारा-का-सारा नज़राना राणा साहब के चरणों में धर दिया और कहा, "यह आपकी प्रजा का ही धन है आपके प्रताप से ही मैं चौरासी कर पाया हूँ।" राणा गद्गद् हुए और आज्ञा दी—"धन को राजकोष में जमा करदो और चौरासी का सारा खर्च राज्य के खाते में डालकर खाता सरभर करदो। तुम्हारे पुत्र मेरे ही पुत्र हैं।"

इस प्रसंग से कल्पना की जा सकती है कि अमात्य का पद रखते हुए भी बापा में नम्रता थी, धन-लोलुपता का अभाव था और निष्काम कर्म की ओर जिंदगी का झुकाव था। वे आजानुबाहु थे इतना ही नहीं, वे सचमुच महापुरुष थे।

कवि का धर्म

[सोहनलाल द्विवेदी]

काव्यकला का एक मात्र उद्देश है हमारी उदात्त वृत्तियों को जाग्रत करना। जो कविता को सज्जन, क्रूर को दयालु, दानव को मानव और मानव को देवता के रूप में प्रतिष्ठित न करे, जो हमारी आत्मा को ऊपर न उठाये, उसे हम निम्न कोटि की कविता कहेंगे।

इस प्रकार कविता का क्या असर पड़ता है—मन पर, विचारों पर, प्राणों पर, आकांक्षाओं हमारे चरित्रगठन में और अंत में समाज के उत्थान-पतन में, राष्ट्र-निर्माण में, जीवन-निर्माण में, कविता की अच्छाई-बुराई समझनी चाहिए।

कवि सामाजिक व्यक्ति है। उसका उत्तरदायित्व है, समाज के प्रति। जबतक समाज का जीव क्रियाशील व्यक्ति है, अंग है, तभीतक उसकी सार्थकता है। जब वह समाज के लिए पंगु जाता है, तब उसकी आवश्यकता नहीं।

कवि अपने समाज के प्रति उत्तरदायी है। जब वह उसके कल्याणकारी पक्ष में अपने प्राणों मिलाता है, तभी वह वन्दनीय होता है। पर जब इसके विपरीत समाज में प्रमाद से, लोभ स्वास्थ्यकर कीटाणुओं को उत्तेजन देनेवाला अहितकर स्वर छेड़ता है, तब निन्दनीय।

'अश्लील' और 'अश्लीलता'

[जैनेन्द्रकुमार]

प्रिय सम्पादकजी,

आपने चिट्ठी का सिलसिला मेरे सिर बाँध ही दिया। चलिए अच्छा हुआ। ऐसे खुद मुझे अपनेको समझने में मदद मिल जायगी।

मार्च-अंक में मशरूवालाजी का 'अश्लीलता' पर लेख पढ़ा। मैं तो भुगता प्राणी हूँ। अब भी सुन मिल जाता है कि मेरी अमुक रचना यों अश्लील है। स्तुति अनसुनी की जा सके पर त्रुटि-निर्देश पर अचेत कैसे रहा जा सकता है? चुनाँचे अश्लीलता को समझने की लाचारी मेरे सामने कई बार आयी है। परिणामस्वरूप मुझे सोचना पड़ गया है। पर सोच-विचार वह किसी किनारे आ लगा है इसका सन्तोष मुझे नहीं है। मशरूवालाजी के वक्तव्य से भी मन भरा नहीं। और मैं अपना निवेदन सुना चलना चाहता हूँ।

शुरू आपबीती से करूँ, क्योंकि जगबीती को समझने की दूसरी कुंजी क्या है? मुश्किल से बारह वर्ष उम्र का हूँगा कि एक पत्रिका के चित्र को लेकर मैंने अपना बुरा हाल कर लिया था। कहा जायगा कि चित्र सदोष रहा होगा। वह अश्लील होगा। पर वह चित्र अब भी जहाँ-तहाँ दीखता है और विकार नहीं उपजता। न चित्र में कुछ दोष पकड़ मिलता है। इससे उचित मालूम होता है कि अपनी दुरवस्था का सारा पाप मैं उठाऊँ और उसका तनिक भी भाग निमित्त बननेवाले उस चित्र पर न टालूँ।

इसपर से मैं नतीजा निकालना चाहता हूँ कि अश्लीलता यदि है तो वस्तु में नहीं, व्यक्ति में है। मेरे भीतर जिस निमित्त को लेकर बुराई उभर उठी है वह निमित्त उतना भर्त्सनीय नहीं जितना मैं स्वयम् हूँ। बुराई को अपने भीतर न टटोलकर उसे वस्तु में आरोपित करूँ तो यह मेरे हक़ में छल की बात होगी।

इस ढंग से सोचने पर शायद अश्लील कहीं कुछ रह ही न जाय। मेरे लेखे तो ऐसा हो तो हर्ज नहीं। मेरा काम तब भी चल जायगा। पर सुधारक का काम तब कैसे चलेगा? और सुधार अभीष्ट तो है ही। उसके लिए अश्लील को अपने से बाहर भी देखना लाज़िमी है। यानी अश्लीलता का एक मापक बनाकर समाज को देना होगा।

मशरूवालाजी का प्रयत्न इसी दिशा में है। पर मुझे मालूम होता है कि भलाई की वृत्ति की भूमिका में सचाई की दृष्टि चाहिए। अन्यथा भलाई की बुनियाद कच्ची होगी। और सचाई के लिहाज़ से शायद मशरूवालाजी के तर्क से आगे बढ़ा जा सकता है। उस ढंग से उनका माप मुझे अपर्याप्त और अयथार्थ दीखता है।

मशरूवालाजी ने फल में परीक्षा बतलायी है। यानी जिससे कामोत्तेजन हो और वीर्यपात की सम्भावना बढ़े, वह उतना ही अश्लील है। (मशरूवालाजी का वीर्य-वमन शब्द-प्रयोग मुझे अवैज्ञानिक, इसलिए तत्व-विचार की दृष्टि से ग़लत मालूम होता है।)

ऊपर जो मैंने अपने बचपन की बात कही, उसमें अनिष्ट का दुहरा कारण है। एक चित्र, दूसरा मैं। इन दोनों के मिलने से जो अनिष्ट फल हुआ, उसपर से चित्र के सम्बन्ध में मुझे अनधिकारी और मेरी अपेक्षा में चित्र को वर्जनीय कहा जा सकता है। मेरी अपेक्षा के अभाव में, अर्थात् अपने आप में, चित्र को अश्लील नहीं कहा जा सकता।

इस बात को और साफ़ करने के लिए एक मित्र की मिसाल दूँ। वह गांधीजी के परम भक्त हैं। उनकी आत्म-कथा उनके लिए एक धर्म-पुस्तक ही है। पर वह जब गांधीजी के उस अनुताप-प्रसंग पर आते हैं जहाँ पिता मृत्यु-शैया पर हैं और गांधीजी विषयलिप्त, तो वह अपने बावजूद उत्तेजित हो रहते हैं। यहाँतक कि वीर्य-रक्षण तब उनके लिए दुःसाध्य हो जाता है।

इस फल को देखकर क्या यह नतीजा निकाला जाय कि गांधीजी की आत्म-कथा अश्लील है अथवा वह प्रसंग ही अश्लील है? मेरे लिए तो वह गहरे पश्चाताप की अश्रु-कथा है। फिर भी कहते हैं कि उसको पढ़कर विकार में बेबस हो जाता है!

इधर से यह तो परिणाम निश्चयपूर्वक निकाला जा सकता है कि विषयोत्तेजन प्राप्त हो तो सान्निध्य और स्पर्श से बचो। लेकिन वह अथवा वह वस्तु अश्लील है, यह ठहराना ठीक नहीं है। हेय-उपादेय जैसे शब्दों से ऐसी मदद ली जा सकती है, क्योंकि हेयोपादेयता वस्तु में नहीं है। रोगी खटाई से बचे, क्योंकि उसके लिए हेय है। पर खटाई इसी कारण आश्रम में निषिद्ध तो नहीं है न।

इस द्वारा परीक्षा के नियम में बड़ी कठिनाई है कि किस व्यक्ति को औसत मनुष्य का प्रतिनिधि मानें? हर चीज का हर आदमी पर असर देखा जाता है। क्या सामान्य नियम बनाने के लिए गणित का सहारा लेना होगा और अधिकांश आदमियों पर क्या असर पड़ता है यह देखना होगा? पर इसकी जाँच का भी उपाय नहीं है। अन्त में जाकर यह काम अनुमान के सहारे ही किया जाता है।

पर एक उपाय है। वह यों कि गहराई में आदमी हर दूसरे का प्रतिनिधि है। आत्मा सबमें एक है न। इसलिए वह उपाय यह है कि अश्लीलता वस्तु में न देखकर व्यक्ति में देखने की चेष्टा की जाय। फल व्यक्ति-निर्भर है।

इस दृष्टि से सृष्टि में कुछ अश्लील नहीं है, और सब कुछ उसमें है।

एक युवक चिड़ियों और कबूतरों के जोड़ों को आसक्त भाव से देखते रह जाते हैं। अब हम क्या कहें? यह कहें कि चिड़िया या कबूतर अश्लील हैं, इसलिए उनपर आँख बन्द रक्खो, या कपड़े पहनाकर उन्हें सभ्य बनाना शुरू करो? या यह कहें कि युवक अभी कच्चे हैं, प्रकृति-दर्शन के योग्य नहीं है, इसलिए धर्म की और नीति की पुस्तकों में उन्हें अधिक ध्यान रखना चाहिए?

छुटपन में एक पुराण की कहानी सुनी थी। एक स्त्री का शव मरघट आता है। वहाँ चार जने चार तरह की कल्पना करते और चार तरह की भावनाओं में डूब जाते हैं। यहाँतक कि एक यह सोचकर कि यह स्त्री वेश्या ही न रही हो, कामान्ध बन जाता है। इस उदाहरण में स्खलन की उत्तेजना मिलने पर भी शव को अश्लील नहीं कहा जा सकता।

एक और दृष्टि से वीर्य-व्यय और अश्लीलता का सम्बन्ध जोड़ना असंगत है। परस्त्री के प्रति कुदृष्टि अश्लील है कि नहीं? अवश्य अश्लील है। किन्तु क्या पितृत्व और मातृत्व भी अश्लील हैं? कदापि नहीं।

मात्र कुदृष्टि में वीर्यपात का प्रश्न नहीं उठता। जब कि रजो-वीर्य संयोग बिना माता-पिता की कल्पना ही असम्भव है।

ऊपर से स्पष्ट हो कि एक जगह वीर्य-व्यय है लेकिन अश्लीलता नहीं है। दूसरी जगह वह व्यय नहीं है लेकिन अश्लीलता है।

नग्नता और आवरण से भी अश्लीलता के प्रश्न का सम्बन्ध नहीं है। मैं कह सकता हूँ कि सम्भ्रान्त श्रेणी में पहिनी जानेवाली चटकीली साड़ियाँ और निमंत्रण देते जम्पर-ब्लाऊज़ अश्लील हैं और जंगल में लकड़ी बीनती या घास छीलती नग्नप्राय एक भील युवती की मूर्त्ति में अश्लीलता नहीं है। क्योंकि एक तरफ़ कपड़े बदन को ढँककर भी बदन को उघाड़ते नहीं तो उसपर आँख तो खींचते ही हैं। दूसरी ओर शरीर पर आवरण नहीं पर उस शरीर का ध्यान भी नहीं है।

अर्थात् नग्न शरीर अश्लील नहीं है और पूरी तरह ढँका हुआ शरीर भी अपने-आप में अश्लीलता के दोष से बाहर नहीं है।

अब वह तत्त्व लें, जिसे ग्राम्यता, फूहड़पन vulgarity कहा जाता है। उसके पीछे एक प्रकार की अरुचि और अशुचि भावना है। सुनते हैं कि जहाँ पर्दा बहुत सख्त है वहाँ स्त्री के पैर

की एड़ी खुली दीख जाय तो मन में कुण्ठा-सी पैदा हो आती है। यानी स्त्री की ओर से यह फूहड़पन है कि उसकी एड़ी दिखलायी दे गयी।

आज जिस सभ्यता में साँस लेकर हम जी रहे हैं, मैं मानता हूँ कि वह बहुत कृत्रिम ह, आत्मा से उसका लगाव नहीं है। वह हठात् धन के प्रमाद में पैदा की हुई नाजुक-खयाली है। कहते है कि लखनऊ के नवाब की तरफ़ से कहलाया गया कि कम्पनी बहादुर उनके खतम करने की फ़िक्र में न पड़े। बाहर के सहन से महतरानी गुज़र जाय तो यही उनकी जान लेने को काफ़ी होगा। इस नज़ाकत के नजदीक भला क्या चीज़ फूहड़ न हो जायगी ?

कला और कुलीनता और शिष्टता के नाम पर बहुत-कुछ व्यर्थता आज पल और पुज रही है, पर वह निर्वीर्य है। जीवन का स्वास्थ्य विकसेगा तो यह मानी गयी भद्रता, शुचिता और कला-पूजा झर जायगी।

काका एक बार किन्हीं अतिशय कोमल रुचि की महिला की बात सुनाते थे। वह बहुत ऊँचे घराने की थीं और वस्त्र की ज़रा भी असावधानी उन्हें बरदाश्त न थी। पिंडली तो क्या, किसी का टखना भी खुला दीखे तो उनका मन जाने कैसा हो आता था। वही गांधीजी से मिलकर आयीं तो बेहद खुश। पूछा गया, कि गांधीजी सिर्फ़ पंछा पहनकर रहते हैं, सो ? पर उन्हें तो इस बात की सुध भी न थी। उन्हें यह मानने तक में दिक्कत हुई कि गांधीजी सचमुच उघाड़े बदन थे।

इसपर से प्रकट होगा कि ग्राम्यता कोई दोष नहीं है। बल्कि जबरदस्ती पैदा करली गयी नाज़ुकमिज़ाजी कुछ टूटनी ही चाहिए। अब भी तो ऐसे लोग हैं, स्त्रियाँ और भी अधिक हैं जो महतर का नाम सुनकर ग्लानि अनुभव करने लगते हैं। गांधीजी ने मैला ख़ुद साफ़ किया है। अपने सब शिष्यों से कराया है और बताया कि वे अकृतज्ञ हैं जो उनका मैला साफ़ करनेवाले के प्रति कृतज्ञता अनुभव नहीं करते। और जो उनको हीन मानकर अपने को श्रेष्ठ जानते हैं वे पाप कमाते हैं। अर्थात अहम्मन्यता—अहम्-सेवन की वृत्ति में से जो एक तहज़ीब की नज़ाकत खड़ी कर दी गयी है——वह असभ्य वस्तु है, गिरनी चाहिए।

धन में, बुद्धि में, कुल में और विद्या में श्रेष्ठ मानी जानेवाली श्रेणियों में इस तरह का छुआमुआपन काफ़ी देखने में आता है। ये श्रेणियां अश्लीलता के बारे में भी जरूरत से ज्यादा चौकन्नी हैं। इसलिए नहीं कि उन्हें संयम की साधना प्रिय है। बल्कि इसलिए कि सत्य की साधना का उन्हें साहस नहीं है। और ऊपर की सफ़ेद पोशी के सहारे भीतर के मैले अँधियारे को सहने और सम्हालने में उन्हें सुभीता होता है।

इस तरह जबकि मशरूवालाजी की कसौटी या कि दूसरी कसौटियाँ स्थूल होने से अपर्याप्त ठहरीं तब सवाल उठता है कि अश्लीलता का आरम्भ कहाँ ढूँढ़ना होगा ? मेरी धारणा है कि अश्लीलता छल के साथ है। जहाँ शरीर-संबंधी असत्य है, उसके वर्णन में, चित्रण में, सँवार-व्यवहार में, दर्शन-स्मरण में असत्य है, कपट है, वहीं अश्लीलता है।

असत्य, छल और कपट शब्दों का इस सिलसिले में शायद मुझसे खुलासा माँगा जा सकता है।

शरीरवर्णन जहाँ ध्यान को अपनी ओर अटकाने के लिए है, या वर्णन करनेवाले का ध्यान खुद शरीर में अटककर रह गया है, और इस तरह जहाँ समभाव और आत्मभाव का भंग है, वहाँ अश्लीलता है। किन्तु जहाँ शरीर-व्यापार द्वारा मनोवृत्ति को समझने-समझाने का अथवा उससे भी आगे बढ़कर उसके भीतर से आत्म-धर्म की शोध या प्रतिष्ठा का प्रयास है—वहां अश्लीलता नहीं है।

शरीर अपने आप में सत्य नहीं। भोग निमित्त होकर तो असत्य ही है। आत्म को साधने का साधन होकर वही सत्य हो जाता है। उस दृष्टि से हम शरीर के कोने-कोने को छान

हैं क्योंकि कहीं भी मैल रह गया तो मुक्ति होगी। इसी लिहाज़ से जितेन्द्रिय पुरुषों शरीर (काम) विज्ञान के बारे में ज्ञानपूर्वक में स्वच्छता लाने का प्रयत्न करना होगा।

महान् और अश्लील साहित्य में मूल में बहुत भेद है। थोड़ा है पर गहरा है। वह भेद का है। महान् साहित्य में से ढेर के ढेर ऐसे निकाले जा सकते हैं जिनमें अश्लीलता और दिखलायी जा सके। पर उससे क्या? महाभारत में क्या नहीं देखा-दिखाया ? क्या कुछ उनमें नहीं खोजा पाया जा ? पर यह भी प्रत्यक्ष है कि लोग हैं जो आत्म-स्फूर्ति और धर्म-प्रेरणा प्राप्त हैं।

जो अश्लील है उसमें या तो दुबकाचोरी या सीनाजोरी। वहाँ या तो चुनौती के साथ में शरीर का निरंकुश वर्णन होगा, नहीं के एक आडम्बर के नीचे लाग-लपेट वैसा कुतूहल पैदा करने की वृत्ति होगी। आड़े-बाँके सूचन हैं, जहाँ डॉट्स से काम गया है; जहाँ तीक्ष्ण (चाहे फिर वे के ही हों) विशेषण काम में लाये गये वहाँ अचूक अश्लीलता है।

एक भाई ने वेश्याओं पर किताब लिखी। उन्हें सख्त से सख्त दुर्वचनों से याद किया करतूतें खोलीं और उनका खतरा दिखाया था। का कहना था कि वह समाज के शरीर इस कोढ़ के दाग को मिटाना चाहते हैं। जो हो, पुस्तक अश्लील है। इसलिए कि वह वेश्या और उसके कार्य के बारे में बल्कि इसलिए कि उसमें छल है। घृणा है। वेश्या को प्रेम कर सकते हो तो उसपर भी सकते हो। पर उसके लिए छाती । तब उसके पाप तुम्हारे पाप होंगे। दिखाया जा सकता है, पर अपना पाप जा सकता है। दूसरे का पाप जबतक अपने भीतर नहीं दीखे तबतक कोई हक़ नहीं कि तुम उसे देखो। और वेश्या कही जानेवाली बहिनों के हृदय और आत्मा की अपेक्षा उनके निम्न समझे जानेवाले कर्मों को देखा और दिखलाया जायगा तो उससे मन में दुर्वचन के लिए जगह खाली नहीं रह जायगी, क्योंकि वह मन सहानुभूति से भर आयगा।

इस उदाहरण से साफ है कि जहाँ चुनौती और सीनाजोरी है वहाँ भी मूल में छल ही है—कपट और दर्प दोनों एक मर्ज़ हैं।

मन का यह असत्य ही वस्तु में अनिष्टता पैदा करता है।

अश्लीलता को लेकर हम आतंक में न पड़ें। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वैसा हो तो विवाह-संस्कार, गृहस्थ-धर्म, पितृऋण, मातृ-सेवा आदि सब शब्द झूँठे पड़ जायेंगे। विवाह से वर-कन्या पति-पत्नी बनते हैं। अर्थात् विवाह उन्हें परस्पर में (भोग द्वारा) सन्तति-सृष्टि करने की अनुमति देता है। विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है। इसी तरह पितृत्व, मातृत्व आदि समाज को कायम रखनेवाली पवित्र संस्थायें हैं।

'अश्लील' शब्द का प्रयोग उनके सम्बन्ध में एकदम असम्भव है। वहाँ वह शब्द ही अश्लील है। समाज की ओर से विवाहित होने के कारण उनकी असत्य-सृष्टि में सत्य का अंश है और असत्य का दम्भ नहीं।

असत्य (Supression) के आधार पर शिष्टता की और नैतिकता की बहुत ऊँची इमारत खड़ी की जा सकती है। पर नींव में घुन है इससे वह इमारत ढहने को ही खड़ी है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के पतन की कहानियों का क्या भेद है? वह है यही असत्य।

अश्लीलता के कीटाणु सत्य की धूप से ही मरेंगे। आँखों से उन्हें लुकाने-छिपाने की नीति से वे अँधेरा पाकर और भी बढ़ सकते हैं। बुराई अँधेरे में फैलती है। हवा और धूप लगने से वह छू होती दीखती है। यह कहना क्या गंगा को उलटा बहाना न हो जायगा कि हवा और धूप में अश्लीलता को न आने दो, क्योंकि इससे हवा

खराब होगी और धूप मैली पड़ेगी ।

महान् साहित्य में और धर्म में वह चीज़ यदि अनिवार्य रूप से है जिसको कहनेवाले अश्लील कह दें तो क्यों ? कारण, समस्तता और सम्पूर्णता में निषेध किसी का नहीं है । शरीर अपने प्रत्येक अवयव और जीवन अपनी सब प्रवृत्तियों को लेकर वहाँ स्वीकृत है । किसी को भी काटकर कम करने की जरूरत नहीं है । आत्मा की साधना में उनको नाश नहीं, वश करना है । अर्थात् साधक शरीर ह्रस्व और हीन नहीं होता केवल आत्मगत होता है । इसीसे जहाँ शरीर-धर्म एकदम अनुपस्थित है वहाँ आत्मा की महत्ता भी अप्रकट है । महत्ता के पेट में क्षुद्र इसी कारण क्षुद्र नहीं रहता कि महत्ता के साथ वह समरस हो जाता है । महान् साहित्य महान नहीं रहेगा अगर वह केवल 'नीका' और 'भला' रह जायगा । अपूर्णताओं के मेल से पूर्णता बनेगी । उन्हें छोड़ते चलने से पूर्ण नहीं, शून्य हाथ रह जायगा ।

पर यह सब कहने के बाद भी प्रश्न जो रह जाता है वह यह कि बच्चे के हाथ चाकू कैसे न पहुँचे ? चाकू ग़लत न हो, पर बच्चे के हाथ पड़कर तो उसमें खतरा है ।

सच पूछिए तो सवाल का रूप यही है । और इसका उपाय समझदार लोग जहाँ जैसी स्थिति हो, करें । ईश्वर की ओर से तो आदमी को बुद्धि मिल गयी है जो उसकी अनुकम्पा से परिमित भी है । अनन्तर ईश्वर ने उसके चारों ओर अपनी प्रकृति की खुली पुस्तक रख दी है । पुस्तक खुली है । हमारी अविद्या का ही बीच में पर्दा हो तो हो, स्वयं उसपर अवगुंठन नहीं है । जीव-जन्तु, लता-वनस्पति अपने रहस्यों को लेकर हमारी आँखों के आगे अपनी लीला सम्पन्न कर रहे हैं । अर्थात् ईश्वर ने मनुष्य का इतना विश्वास किया है कि दया की भी अधिकता नहीं की । अपनी अनोखी करुणा में उसने मनुष्य को अवसर दिया है कि वह प्रकृति को देखकर चाहे तो अपने को उद्भ्रान्त भी बना ले । हाँ, ऐसे ही वह अपने को उत्तरोत्तर मुक्त भी बना सकता है । ईश्वर की ओर से मनुष्य को तो स्वराज्य ही है ।

इसी तरह अश्लीलता के प्रश्न के बारे में मेरी धारणा है कि हवा और धूप खूब लगने देनी चाहिए । अश्लीलता कहाँ धरी है वस्तु में ? और हो तो उसमें दम कितना है ?

बालक बढ़कर किशोर होता है और उसमें लाज समा आती है । कन्या वय पाकर अपने आप ही में कंटकित हो रहती है । वे दोनों बढ़ते बढ़ते वर-वधू, पति-पत्नी, पिता-माता बनते हैं । यह सहज राह है । एक निगाह से देखो, तो यह बढ़ती हुई अश्लीलता की राह है । पर अश्लीलता कोई हौआ न हो । तो यही सहज जीवन की भी राह है ।

असल चीज़ अश्लीलता को समझाना नहीं, धर्म को समझना है । धर्म सबको धारण करता है । यहाँतक कि धर्म की श्वास से भोग भी न्याय्य होता है । गांधीजी के जीवन में धर्म का बीज ही तो था । उसको लेकर वह किशोरावस्था में किशोर यौवन में युवा और गृहस्थी में गृहस्थ रहे, फिर भी उन सब दशाओं में से होकर बराबर मुक्ति की ही दिशा में बढ़ते रहे ।

और धर्म वृत्ति का प्रश्न है, वस्तु का वह थोड़े है ।

पर लीजिए, यह जाने कहाँ किनारे से दूर में आ रहा । और कह गया इतना कि बिसात से बाहर । पर मशरूवालाजी मुझे गुरुतुल्य हैं और बालक को बहुत माफ़ होता है, यही ढाढ़स है । लेकिन आपके पत्र की जो इतनी जगह ली सो क्या आप भी माफ़ कर सकिएगा ?

विनीत

जैनेन्द्र

वृद्ध से

[वियोगी हरि]

लोगों का यह घोर अज्ञान ही है, जो उनसे कहलाता है कि तुम वृद्धावस्था से सदा परेशान रहते हो। जिन श्वेत केशों और दन्तविहीन मुँह ने तुम्हें आज बालकों और युवकों के सामने, बिना ही प्रयास के, 'श्रद्धा-भाजन' बना दिया उससे भला तुम कभी परेशान हो सकते हो? वृद्धावस्था तो तुम्हारे लिए एक वरदान है। ये शुभ दिन तुम्हें कितनी लम्बी प्रतीक्षा के बाद देखने को मिले हैं, इसका अंदाज़ा बेचारे युवकों को हो नहीं सकता। सेवा कराने की तुम्हारी सुन्दर जीवन-साध आज जाकर कहीं पूरी हुई है।

शरीर शिथिल न पड़ता तो दूसरों से सतत सेवा लेने का सुयोग तुम्हें मिलता ही कैसे? साथ ही तुमने उन्हें भी तो कृतार्थ किया है, जिन्हें सेवा करने का यह स्वर्ण-अवसर दिया है।

निरन्तर सेवा कराते-कराते उनके धैर्य की तुम कड़ी परीक्षा भी तो ले रहे हो। कारण कि परेशान तो सेवक ही हो सकता है, सेव्य कभी नहीं।

यह अच्छा है कि तुम उनकी सेवा-सुश्रूषा से सन्तोष नहीं मानते। तुम्हें आशंका बनी रहती है कि संतोष प्रकट करने से शायद उनकी सेवा की गति मन्द पड़ जाये, और इस तरह उन्हें कृतकृत्य होने का लाभ न मिले।

लेकिन सेवा करनेवाले भी कुछ ऐसे मिल जाते हैं, जो तुम्हारे असन्तोष को पराजित करके छोड़ते हैं। वे समझ लेते है कि तुम रीझोगे तो केवल सेवा से ही—तुम्हारी शिथिल बुद्धि के आगे दलीलें काम नहीं देंगी।

उनके कामों में तुम कुछ-न-कुछ दोष ढूँढ़ते ही रहते हो। अपने लम्बे घिसे-मिसे अनुभवों के आगे तुम्हें उनका हरेक काम अधूरा ही दिखता है।

और वे भी कैसे मूर्ख हैं, जो तुम्हें मन्द बुद्धिवाला समझकर धोखा देना चाहते हैं! कम्बख़्त यह नहीं समझते कि तुम बूढ़ों की दृष्टि को ईश्वर ने कान दिये हैं। देखने का काम तुम कानों से चला लेते हो, और सुनने का काम आँखों से।

अद्भुत है कि तुम्हारी एक इन्द्रिय शिथिल पड़ जाती है, तो दूसरी में तेज़ी आ जाती है। जिह्वा में तो ऐसी स्फूर्ति और जवानी आ जाती है कि देखकर आश्चर्य होता है। तुम्हारी बूढ़ी-वाणी का प्रवाह रुकना नहीं जानता। सुननेवाला कोई न भी हो, तब भी बोलना तुम्हारा उसी गति से जारी रहता है। चारपाई पर पड़े-पड़े खूँखूँ करते रहते हो, और ज़बान से फूल झड़ते रहते हैं।

भाँति-भाँति के स्वाद लेने की भी शक्ति तेज़ हो जाती है। स्वाद की रस-कला को तुम वृद्धों ने ही साधा है, क्योंकि बालक को तो कुछ भी देकर फुसला लिया जाता है, और युवक को उसके यौवन की मस्ती भुलावे में डाले रहती है। लक्कड़-पत्थर भी चबा जाता है, और स्वाद का पता नहीं चलता।

तुम कितने सहृदय हो कि अपने जर्जरीभूत शरीर के प्रति भी तुम्हारा अनुराग दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। जिस शरीर ने तुम्हें तीनों पनों में बेहद सुख पहुँचाया उसके प्रति चौथे पन में अत्यधिक अनुराग का होना स्वाभाविक है। देह-विराग तो किसी कृतघ्न वृद्ध को ही होता होगा।

युवावस्था में किसी 'रोमांस' के फेर में पड़कर जगत् को भले ही तुमने कभी मिथ्या माना हो, पर वृद्धावस्था में तो तुम उसे सत्य और सुखदायी ही मानते हो। संसार से ऊबकर आत्मघात अधिकतर अधीर युवक ही करते हैं—प्रबुद्ध वृद्धजन ऐसा पाप का काम कभी नहीं करते।

तुम खीज उठते हो कि लोग तुम्हें राम-नाम जपने का थोथा उपदेश क्यों देते रहते हैं?

जिसकी आँखों के सामने सारे जीवन का लेखा-जोखा रखा हो, कितने ही अधूरे काम करने को पड़े हों और बुढ़ापे में आराम से कुछ सोचने की फ़ुर्सत मिली हो, वह दुनिया से विदा होते समय क्यों व्यर्थ राम का नाम जपे ?

यह तो ध्रुव-प्रह्लाद-जैसे अबोध बच्चों का काम है, जिनके मुलायम कन्धों पर न तो कोई जिम्मेदारी होती है, न भला-बुरा सोचने की कुछ समझ ही।

समाज ने तुम्हारे ख़िलाफ़ प्राचीन काल में न जाने क्यों यह काला क़ानून बना डाला था कि तुम्हें चौथे पन में तप करना ज़रूरी है; और घर से तुम क़ानूनन निकाल बाहर कर दिये जाते थे। सद्भाग्य है कि आज वह दुष्ट क़ानून रद हो गया है। अब तुम्हें न तप की ज़रूरत है न जप की। जप-तप तो अनाथ-अपाहिज किया करते हैं--तुम्हारे जैसे पुत्र-पौत्रादि-संपन्न भाग्यवान वृद्ध नहीं।

और तुमने तो सारी ज़िंदगी ही तप किया। गृहस्थी चलाना क्या तप नहीं है ? उस महाजाप का ही यह फल है कि वासना और तृष्णा-जैसी दैवी सिद्धियाँ तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ी हैं।

तुम्हारी जिम्मेदारी कम नहीं हुई, बल्कि और बढ़ गयी है। लड़कों की कच्ची बुद्धि पर तुम्हारा विश्वास नहीं। और जिसने इतना बड़ा ज़माना देखा है, वह सहसा किसीपर विश्वास करे क्यों ?

तुम्हारी मान्यता है कि हमारे परिपक्व निर्णयों पर जो विश्वास नहीं करता, वह ग़लती करता है, पाप करता है--क्योंकि तुम मानते हो कि बूढ़े आदमी जो भी निर्णय करते हैं, वह हमेशा शुद्ध ही होता है।

तुम मानते हो कि लड़के किसी शुद्ध निर्णय पर पहुँच ही नहीं सकते, और तुम्हारी व्याख्या के अनुसार वे सब लड़के ही हैं, जिनकी उम्र तुमसे कम है—कम चाहे एक-दो साल ही क्यों न हो !

युवक कहते हैं कि उनके 'अविनयी' बनने की बहुत-कुछ जिम्मेदारी बूढ़ों पर है—बूढ़ोंने बलात्कारपूर्वक उनसे आज्ञा-पालन कराने का हमेशा ही प्रयत्न किया और इसीलिए वे उनके ख़िलाफ़ विद्रोही बन गये।

तुम्हारा कहना बिल्कुल सही है कि युवकों का यह आरोप भी अविनय से भरा हुआ है। तुम उसी युवक को विनयशील मानते हो, जो तुम्हारे सामने न तो आँख मिलाने की हिम्मत कर सकता है, न मुहँ खोलने की—जो बुज़ुर्गों के निर्णय को कभी शंका की दृष्टि से नहीं देखता, और उनकी बात का जवाब देना जो घोर पाप समझता है।

ऐसे विनयशील पुत्र-पौत्रादि तुम्हारे भाग्य में दुर्लभ हैं, अतः कलियुग को तुम हमेशा कोसते रहते हो—वैसे ही, जैसेकि तुम्हारे पिता ने तुम्हें और तुम्हारे पितामह ने तुम्हारे पिता को 'कुपूत' कहकर कलियुग को कोसा था।

तब क्यों न यह सिद्धान्त स्थिर कर लिया जाये कि बालक और युवक सब कलियुगी होते हैं और वृद्ध सभी सतयुगी ?

बुढ़ापे ने तुम्हारी दृष्टि को इतना तेज़ कर दिया है कि काल्पनिक ख़तरे को भी बहुत दूर से देख लेते हो। इसीलिए दूसरों के काम में तुम बहुत अधिक आपत्ति करते हो। ऐसी कोई चीज़ तुम्हारी नज़र से नहीं गुज़रती, जिसमें तुम कोई-न-कोई आपत्ति न उठाते हो, और चेताते रहने का तो तुम्हारा मानो स्वभाव बन गया है।

सलाह देना—अक्सर बिना चाहे ही—तुम्हें बहुत पसन्द है। सलाह तुम्हारी काफ़ी लम्बी चलती है। 'ज़रा देखो, सोचो, समझो'—यह बुज़ुर्गाना शब्द तुम्हारी सलाह में ज़रूर रहेंगे। मौत तुम्हें बुलाने आयेगी, तो उस नासमझ को भी तुम शायद यही नेक सलाह दोगे।

निरीक्षणों और अनुभवों का तुम्हारे सर पर इतना भारी बोझ है कि पैर मुश्किल से आगे को उठते हैं। क़दम किसी तरह उठाया भी, तो आगे रखने में हिचक होती है। तुम्हारी परिमा-

शंका-शीलता ने तुम्हें इतना ज्यादा सावधान बना दिया है !

यह तुम्हारी अनुभवसिद्ध सतर्कता का ही फल है, जो तुम हरेक बालक और युवक को संदेह की दृष्टि से देखते हो। तुम्हारी यह वृद्धोचित धारणा बिल्कुल दुरुस्त है कि शंका या संदेह करनेवाले केवल तुम्ही हो।

अपनी बात मनवाने की तुम बहुत ज्यादा जिद करते हो, क्योंकि तुम्हें भरोसा है कि तुम्हारे सफ़ेद बाल और पोपले मुहँ ने तुम्हें निश्चित बिंदु पर पहुँचा दिया है, अतः तुम्हारी बात मान लेने में ही भलाई है।

जगत् के प्रति तुम्हारी कल्याण-कामना इतनी अधिक बढ़ गयी है कि युवकों को ही नहीं बालकों को भी तुम अपने-जैसे ही समझदार, शान्त और धीर प्रकृति के देखना चाहते हो। तुम्हें कैसा लगता होगा कि वे इतने चुलबुले, इतने अधीर, इतने अल्हड़ और इतने नासमझ क्यों हैं ?

पर तुम शायद तब यह भूल जाते हो कि अज्ञान-सूचक उनके काले बाल अभी सफ़ेद कहाँ हुए हैं, अल्हड़ यौवन के प्रतीक दाँत अभी कहाँ गिरे हैं, उद्धतता की निशानी कमर अभी कहाँ झुकी है ?

तुम्हारे हृदय में रह-रहकर जलन-सी उठती होगी कि इन बालकों और युवकों में क्यों इतना उबाल और उफान है, यह उद्धत अभिमानी प्राणी तुम्हारे ही जैसे शिथिल और शान्त क्यों नहीं हो जाते !

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन : एक शब्दचित्र

तपे हुए संत तथा मँजे हुए सिपाही—यही संक्षेप में टंडनजी का परिचय है, जिनके विशाल नेत्रों में ओज और तप की आग एवं शील और करुणा का जल दोनों एक ही ठौर बसते हैं; जिन्होंने शुद्ध त्याग को अपना जीवन-सहचर बनाया, जो अपनी टेक को, रंक के धन की तरह छाती से लगाये हैं।

राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय संस्कृति को जिन्होंने अपना पूजा-स्थान बनाया—यह पूजा ही उनके जीवन की कला है, और यही साधना है। इस साधना-मंदिर की सीढ़ियों पर अपना सब कुछ बलिदान करने में उन्हें ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं होती।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के पीछे तो वह जन्म से दीवाने हैं—राष्ट्रसभा और राजसभा दोनों में ही उन्होंने उसका मान और दृढ़ता के प्रवेश कराया। काफ़ी आलोचना हुई कि सम्मेलन के प्रति उनका यह मोह है—जो त्यागवृत्तिवाले के लिए भूषण नहीं, दूषण है। पर इस टीका को भी उन्होंने हँसते-हँसते सिरमाथे धारण कर लिया। रिझाने या सौदा करने की हीनवृत्ति उनके लिए सदा त्याज्य रही, विश्वास को सच्चे अर्थ में दैवी संपदा के अंदर लिया—इस मान्यता के पीछे कितनी ही बार कुछ ठगे भी गये, पर कभी पछताये नहीं।

अहिंसा के अर्थों में ईमानदारी से कभी-कभी मतभेद भी रखा, पर सत्य को सदा 'सत्य' ही समझा। उनकी दृष्टि, उनकी वाणी, उनकी प्रत्येक क्रिया इस परम-सत्य की आग से प्रज्ज्वलित रही।

यही कारण हैकि राष्ट्रीय महासभा को वह कुंदन-सा शुद्ध देखना चाहते हैं। राजनीति के दावपेचों और क्षुद्र स्वार्थों की गंदगी से वह आजकल बहुत क्षुब्ध हैं। तथाकथित राष्ट्रीयता के आगे सत्य को वह निश्चय ही सर्वोपरि स्थान देते हैं।

इस बात का शायद कम को ही पता होगा कि टंडनजी संत-साहित्य के एक ऊँचे पारखी हैं, उनका अन्तर 'साखियों' और 'शब्दों' के रंग में रँगा हुआ है। वह पहले सत्य-शोधक हैं बाद को राष्ट्रकर्मी हैं; पहले प्रेमभक्ति के साधक हैं, पीछे और कुछ।

टंडनजी को राष्ट्र का एक शूरवीर संत-हृदय पुरुष क्यों न कहें ?

प्रस्तुत प्रश्न

शिक्षण का उद्देश

मनुष्य के मानव-प्रेम में स्वभावतः ही ज्ञान की क्षुधा रहती है। यदि हममें राजनैतिक वाद-प्रतिवादों के अतिरिक्त इस क्षुधा का सर्वथा अभाव हो तो भी कम-से-कम निष्काम ज्ञान-पिपासा ही हमें एक दूसरे के निकट ला सकती थी। परन्तु, इसमें भी हम असफल ही रहे और हमें हानि उठानी पड़ी क्योंकि ज्ञान की दुर्बलता शक्ति की दुर्बलता की भित्ति है। जबतक हमारे मन में भारतवर्ष का पूर्णरूप से स्पष्ट बोध नहीं हो जाता तबतक हम भारतवर्ष को उसके सत्य स्वरूप में नहीं प्राप्त कर सकते। और जहाँ सत्य ही अपूर्ण है वहाँ प्रेम का पूर्ण राज्य हो नहीं सकता। हमारे शिक्षण-केन्द्रों का वरिष्ठ कार्य हमें आत्मानुशीलन में सहायता देना है और तभी इसके साथ-ही-साथ आत्म-निवेदन के लिए प्रेरणा उत्पन्न करने का दूसरा उद्देश्य भी पूर्ण हो जायगा।

यूरोप की इतनी विशाल बौद्धिक शक्ति का कारण उसकी मानसिक शक्तियों का सहयोग है। यूरोप ने एक ऐसे साधन का विकास कर लिया है जिसकी सहायता से उस महाद्वीप के सब राष्ट्र एक साथ मिलकर सोच सकते हैं। विचारों की इतनी बड़ी संघटना अपनी गति के प्रचण्ड प्रवाह से स्वभावतः यूरोप के विचारों के सब वैयक्तिक विकारों तथा अयौक्तिकता के आतिशय्य को मिटा देती है। यह यूरोप की कल्पना की उड़ानों को उद्दाम नहीं होने देती और उसे उपयुक्त सीमा में रखकर शान्त किये रहती है। यूरोप की विभिन्न विचार-किरणें एक सामान्य संस्कृति में केन्द्रित हो गयी हैं और यह संस्कृति यूरोप के सभी विश्वविद्यालयों में पूर्णरूप से अभिव्यक्त होती है।

दूसरी ओर, भारत का चित्त विभक्त और विकीर्ण है। यहाँ कोई सामान्य मार्ग नहीं जिस पर चलकर हम इसतक पहुँच सकें। हमें बड़े दुःख से देखना पड़ता है कि हमारी मानसिक शक्तियों का निर्माण करनेवाली शास्त्रीय शिक्षा में संजीवनी-शक्ति की न्यूनता है। इन मनों द्वारा ज्ञान और सहानुभूति के सहयोग से देश के वृहत्तर मन को समुपलब्ध किया जा सकता है। हमारी शिक्षण-संस्थाओं का सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रत्येक विद्यार्थी को उसके व्यक्तित्व की उपलब्धि करने में सहायता देना है। यह उपलब्धि ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी यह उदारतापूर्वक अनुभव कर सके कि वह व्यक्तिरूप में समूची जाति का प्रतिनिधित्व कर रहा है और यह जानने में भी समर्थ हो सके कि इस विशाल मानव-जगत् में उत्पन्न होना उसके जीवन का महत्तम तथ्य है।

गुरुकुल कांगड़ी के
दीक्षान्त अभिभाषण में } **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**

राष्ट्रभाषा

हिन्दी राष्ट्रभाषा इसीलिए कही जाती है, और इसीलिए अन्यभाषाभाषी उसे राष्ट्रभाषा के स्वरूप में देखते हैं कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसमें हमारे देश की सब भाषाओं का समन्वय है। यह अच्छी तरह से ध्यान देने की बात है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा क्यों है? इसलिए नहीं कि वह प्रयाग, काशी, लखनऊ या देहली में बोली जाती है, बल्कि इसलिए कि दूसरी संस्कृतियाँ अर्थात् महाराष्ट्र संस्कृति, बंगीय संस्कृति, गुजराती संस्कृति, मद्रासी संस्कृति उस भाषा में अपने स्वरूप को भी देख सकती हैं। भाषा का सम्बन्ध संस्कृति से है और यह अच्छी तरह से विचार करने की बात है, विशेषकर उनके लिए जो राष्ट्रभाषा के प्रश्न का अध्ययन कर रहे हैं और भावी राष्ट्रभाषा का स्वप्न देख रहे हैं, कि हम जिस भाषा को राष्ट्रभाषा का स्वरूप देना चाहते हैं, उसमें यह आवश्यक गुण होना चाहिए कि वह अन्य सब देशी भाषाओं के समीप हो।

यहाँ पुणें में ही थोड़े दिन हुए मुझसे यह कहा गया कि यहाँपर उत्तर भारतीय कांग्रेसी

आये और उन्होंने अरबी-फ़ारसी-मिश्रित भाषा में जो भाषण दिये वे लोगों की समझ में नहीं आये। किन्तु मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि जब मैंने यहाँ भाषण दिया तो मुझसे यह कहा गया कि तुम्हारी भाषा हम लोगों ने अच्छी तरह समझ ली और अगर यह भाषा राष्ट्रभाषा होने जा रही है तो हमें कोई डर नहीं है। बात यह है कि कुछ वक्ता हिन्दुस्तानी के नाम पर ऐसी अपरिचित शब्दावली और मुहावरों का प्रयोग करते हैं जिसे हमारे देश के बहुत से लोग बिल्कुल ही नहीं समझ सकते। यह बात केवल महाराष्ट्रवालों के लिए ही नहीं, बल्कि बंगालियों के लिए, मद्रासियों के लिए और सब अहिन्दी-भाषियों के लिए लागू है। हमारी भाषा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसको सब साधारण भारतवासी अपने समीप देख सकें और ग्रहण कर सकें।

बहुत वर्षों से मैं इस बात का हामी रहा हूँ कि हमारी हिन्दी में दूसरी भाषा के शब्दों का समन्वय हो। राष्ट्रीयता की दृष्टि से यही उचित है कि हम लोग, जो देशभर में काम करना चाहते हैं और देश को एक सूत्र में बाँधना चाहते हैं दूसरी भाषाओं और उन भाषाओं की विचार-शैलियों के साथ आदान-प्रदान करने के लिए तैयार रहें। यह प्रेम से ही हो सकता है।

फ़ारसी और संस्कृत एक ही भाषा से निकली हैं दोनों का स्रोत एक ही है। फ़ारसी और संस्कृत का कोई झगड़ा हिन्दी और उर्दू में नहीं होना चाहिए, क्योंकि फ़ारसी और संस्कृत शब्दों का बड़ी आसानी से हमारी भाषा में समन्वय किया जा सकता है।

मैंने विश्लेषण आरम्भ किया तो मुझको मालूम हुआ कि फ़ारसी के ६० वा ७० सैकड़ा शब्द संस्कृत शब्दों के समीप हैं। फ़ारसी और संस्कृत शब्दों का समन्वय होना कोई कठिन समस्या नहीं है। खुसरो ने यह काम किया था। कबीर ने किया था।

पहले-पहल हमारी भाषा के लिए 'हिन्दी' शब्द मुसलमानों ने दिया। कुरान का पहला अनुवाद जो हमारी भाषा में हुआ उसकी भूमिका में अनुवाद की भाषा 'हिन्दी' कही गयी थी। हैदराबाद और दक्खिन में फ़ारसी-अरबी-मिश्रित ग़ज़लों की भाषा को भी पहले हिन्दी ही कहते कहते थे। मैं अपने महाराष्ट्रीय-गुजराती भाइयों से कहता हूँ कि राष्ट्रीयता के लिए आप हिन्दी को अपनाइए।

हिन्दी के द्वारा राष्ट्रीयता की भावना जागी है। कांग्रेस की पहुँच जनता के पास मुख्यकर इसीके द्वारा हुई है। अंग्रेज़ी में अपने घर का काम कर आप स्वयं अपने मुहँ से पुकारते हैं कि हम गुलाम हैं, गुलाम हैं। इस तरह से राष्ट्रीयता की आशा करना व्यर्थ है।

भाषा का भी स्वरूप बदलता रहता है। बालकृष्ण भट्ट की जो भाषा थी वह अब नहीं है। विचार और शैली दोनों में परिवर्तन हो रहा है। लेकिन दूसरों से घबड़ाकर या दुर्बलता के कारण हमको कोई परिवर्तन स्वीकार करना नहीं है। हममें हीनता का भावमंडल बनना नहीं चाहिए। बुद्धि और विवेक से हमें काम लेना है। हमारी भाषा में मराठी, तामिल, तैलगू, गुजराती सबके शब्द आवेंगे और हमारी भाषा इन नये शब्दों से प्रौढ़ होती जायगी और उसकी शक्ति बढ़ती जायगी। **पुरुषोत्तमदास टण्डन**

पुणे हि० सा० सम्मेलन में दिये भाषण में]

बालकों की रुचि

श्री सुमनेश व श्री सुधीर का लेख "हिन्दी के बाल-साहित्य पर एक दृष्टि और एक योजना की रूपरेखा" पढ़ा। मैं उनके विचारों से सहमत होता हुआ कुछ बातों में उनसे विभिन्न विचार रखता हूँ। अभी फिलहाल एक "बाल-मित्र" हस्तलिखित पत्र में सहयोग दे रहा था। उससे बालकों की रुचि से कुछ परिचित हुआ हूँ। मेरे अनुभव ये हैं—

१. यह बिलकुल सत्य है कि भद्दे और अजीब नाम उनमें कभी रुचि उत्पन्न नहीं करते। मैंने अधिक बुद्धिमान बालकों को ऐसी पुस्तक

फेंकते देखा है । सुन्दर नाम उनको अधिक पसंद आते हैं ।

२. बालकों में वीर-पूजा की भावना बहुत अधिक होती है । उनके कहानी-नायक में अगर कोई दुर्गुण हो तो वे उसे बिलकुल भी पसंद नहीं करते । उनका कहानी-नायक सर्वगुण-सम्पन्न होना चाहिए । नायिका को अनिवार्यतः सुन्दर होना चाहिए । पर अगर किसी कुरूप नायिका के हृदय के उद्गार स्पष्ट करने की चेष्टा की जाय तो वे उसे पसंद करते हैं । ज्यादा छोटे बालकों के लिए अंत में यह आवश्यक हो जाता है कि बाद में उसकी अच्छाई के बदौलत उसे सुन्दरता का पुरस्कार मिले । बड़े बालक उस कुरूप नायिका के जीवन का ध्येय पूरा हो जाने पर संतुष्ट हो जाते हैं ।

एक बालक में मैंने बड़ी अजीब रुचि पायी । उसमें शक्ति-पूजा की भावना है, जोकि अन्य बालकों में नहीं पायी जाती । उसको कोई भी कहानी सुनायी जाय उसमें शेर-हाथी आना आवश्यक है । कहानी में हाथी के पाँव के नीचे खरगोश दब जाने पर उसे कुछ भी दुख नहीं होता । अगर शेर किसी आदमी को खा जाय तो वह बहुत खुश होता है । बालक अभी बहुत छोटा है ।

३. कहानी में घटनाओं का बाहुल्य उन्हें बहुत अच्छा लगता है । हृदय के भावों को वे समझ जाते हैं, पर मनोवैज्ञानिक रूप से उनका विश्लेषण करने से वे थक जाते हैं और उनकी दिलचस्पी भाग जाती है ।

४. कहानी से किसी प्रकार का भी दिशा-परिवर्तन उन्हें पसंद नहीं । उसे वे सुनना नहीं पसंद करते ।

५. वे कहानी पढ़ने के बजाय सुनना अधिक पसंद करते हैं । इसका कारण मुझे बिलकुल भी समझ में नहीं आया ।

६. अगर कहानी के अंदर तुक का भी जरा स्थान हो तो वह कहानी उन्हें बहुत ही अधिक पसंद आती है ।

मेरी राय है कि कहानी कहनेवाले बूढ़ों से कहानी सुनकर उन्हें लिखने का प्रयत्न करना चाहिए । ये कहानियाँ बरसों सुनने-सुनाने के बाद इस रूप में आयी हैं और पसंदगी की टकसाल में ढल चुकी हैं । ये अवश्य बालकों की रुचि की होंगी । ग्राम-गीतों के समान नष्ट हो जाने के पहले इनका संकलन हो जाना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा एक ऐसा खज़ाना नष्ट हो जायेगा जिसकी हानि की पूर्ति कभी न हो सकेगी । अभी ही इनका प्रचार कम हो रहा है । मंडल को यह कार्य अवश्य हाथ में लेना चाहिए ।

राजेन्द्रकुमार

कवियों से

हम प्रेमगीत लिखें; न लिखेंगे तो हम जीवन के स्पर्श से दूर ही रहेंगे और कविता में स्थायित्व नहीं ला सकेंगे । परन्तु क्या हमारा दावा है कि हमने प्रेम को सत्य-शिव-सुन्दर रूप में ही अपनी कविता में ग्रहण किया है ? इतना विवेक कवि-मेधा को करना ही चाहिए ।

हमारी कविता जब वस्तु-जगत् की ओर से आँख मूँदकर उससे मुक्ति पाने की खोज में निकली, तो उसने प्रेमगीतों का रूप धारण किया । पर कवि उस स्थिति में जागरूक न रह सका और उसकी मानवोचित दुर्बलताओं ने उस उड़ान में भी उसका पीछा न छोड़ा और वह आध्यात्मिकता में भी शरीरी धारणा कर बैठा । उसके प्रेमगीतों में मानव-हृदयों की विलास-वासना और शृंगारिकता बोलने लगी और उसने दम्भ किया कि वह जो कुछ कहता है, सब अशरीरी, असीम, अरूप के प्रति है । यह तर्क कुछ ऐसा है कि जो सारी 'नाजायज़ हरक़तों' पर परदा डाल देता है । परन्तु जिन आलोचकों और समीक्षकों की निगाहें तीखी हैं, वे उनके मूल उद्गम को खोज लेते हैं और फिर कवियों का अन्तर्मन जैसे अपने समस्त आवरण दूर करके उनकी लेखनी के आगे आ जाता है । यह दशा दयनीय है । यह स्थिति हेय है, इसका जितना भी विरोध हो, समीचीन है ।

वैसे नारी करुणा, कोमलता, मातृत्व, ममत्व आदि प्रेम की अनेक विभूतियों की पुंजीभूत प्रतिमा है, परन्तु प्रेम की जो हीनतम, स्थूलतम अभिव्यक्ति भोग या काम है, उसने इन प्रेम-कविताओं में इतनी प्रधानता या आग्रह ग्रहण कर लिया है कि वह रचना जो प्रेम के हार्द के अलौकिक स्पर्श से अजर-अमर कृति होनी चाहिए थी, वह निरी मानवीय दुर्बलताओं का प्रदर्शन-मात्र बन रही है। जो कविता हमारी मनोवृत्ति, मनस्थिति और संस्कृति को ऊँचा उठानेवाली होनी चाहिए थी, वह हमें अपने न केवल शील बल्कि पुरुषत्व के आदर्श से गिरानेवाली बनती जा रही है।

नारी के सौन्दर्य पर मुग्ध होना कवि-हृदय के लिए कोई खराब बात नहीं है, क्योंकि सौन्दर्य मुग्ध करने ही के लिए है, परन्तु उसका प्रवाह कामातुरता की ओर तो नहीं होना चाहिए। यदि अनियन्त्रित उद्गार कविता के रूप में कवि की प्रतिभामयी लेखनी से प्रसूत होने लगें तो वह उसकी सौन्दर्य-प्रियता, जो अपने आप में कोई खराब वस्तु नहीं है, बल्कि कलाप्रियता या संस्कृत रुचि की ही परिचायिका है, सौन्दर्य-प्रियता नहीं रह जाती। सौन्दर्य का जो चित्रण आपके अन्तर में कर्त्ता के प्रति प्रेम, निर्मल प्रेम, श्रद्धा या अमृत आनन्द जाग्रत करे, वही सौंदर्य का सत्-चित्रण है, इसके विपरीत सौन्दर्य का जो चित्रण हमें सौन्दर्य के आधार के प्रति कामातुर करे और उस सौन्दर्य का अनैतिक उपभोग करना चाहने की प्रेरणा जगा दे, तो वह चित्रण असत् या अश्लील है।

यों तो श्लीलता, अश्लीलता व्यक्तिगत संस्कृति और सुरुचि के अनुसार निर्धारित होती है, इसलिए यह व्याख्या सम्भव है आपको ग्राह्य न हो, परन्तु सामान्य रूप से किसी भी प्रकार की अपुरुषोचित, अमंगल या असंस्कृत भावना को स्फूर्ति देनेवाली वस्तु अश्लील कही जायगी। जिन कविताओं में ऐसा आग्रह हो, जो इसी हीनवृत्ति को स्फूर्ति दें वे अश्लील हैं, सत्य से विमुख हैं और कविता-कला के खरा उतरने में बाधक हैं। इस प्रकार के अश्लील चित्रण को 'कला के चिरंतन सत्यों', 'मानव जीवन की व्याख्या', या 'सृष्टि के अमर तत्त्वों' के लुभावने शब्दजाल में लपेट दिया जाता है। यह मोह दूर होना चाहिए और जबतक आलोचक या विचारक की यह दृष्टि कवि के आगे रहेगी नहीं, तबतक कविता की धारा में परिष्कार या दिशा-परिवर्तन होना कठिन है।

सुधीन्द्र

समालोचनार्थ प्राप्त

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा

कताई गणित (१) : ले०—श्रीकृष्णदास गांधी; पृष्ठ संख्या ४४ : मूल्य ।।)

कताई गणित (२) : ले०—श्री कृष्णदास गांधी; पृष्ठ संख्या ६०; मूल्य ।)

खेती शिक्षा : ले० शंकर रामचन्द्र भिसे, हरिश्चन्द्र पाटिल; पृष्ठ संख्या १३०; मूल्य ।।।)

बुनियादी दस्तकारियाँ, ओटना धुनाई (उर्दू)—ले० सतीन, दफ्तर नयी तालीम संघ; पृष्ठ संख्या ८४; मूल्य ।=)

तकली : ले० श्री कुन्दर दिवाण; पृ० २८६; १)

हिन्दी-विद्यापीठ बम्बई

गद्यसुमन (संकलन) पृ० सं० ११०; ।।)

भारती—(संकलन): पृष्ठ संख्या ६४; मूल्य ।)

उन्मुक्त (काव्य) : ले०—श्री सियाराम शरण गुप्त, प्रकाशक—साहित्य सदन, चिरगाँव, (झाँसी); पृ० स० १६०; मूल्य अज्ञात।

नवरत्ननीति—(संस्कृत) : लेखक—गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'; नवरत्न-सरस्वती भवन-झालरापाटन; पृष्ठ संख्या १२, मूल्य =)।।

राष्ट्र-वाणी (दैनिक) : सं०—देवव्रत शास्त्री पटना; वा० मूल्य १२), छःमास ६), तीन, मास ३।।) एक प्रति =)

विश्व-वाणी—(साप्ताहिक) : सं० हेमचन्द जोशी डी० लिट० प्रभातचन्द्र शर्मा; वा० मूल्य ४); एक प्रति -)।

कसौटी पर

लालचीन : ले०—श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी; प्रकाशक—ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर; मूल्य २)।

यह कम आश्चर्य और दुःख की बात नहीं है कि हम ७००० मील दूर इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका के बारे में जितनी दिलचस्पी लेते हैं, उसका शतांश भी अपने निकटतम पड़ोसी चीन के बारे में नहीं लेते। और सोवियत चीन के बारे में तो बहुत ही कम जानकारी रखते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक स्वयं साम्यवादी हैं और अपने देश के ऊपर हो रहे चीन सोवियत के महान भगीरथ प्रयत्न को उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा से लिखा है,इसलिए शैली अत्यन्त सजीव हो गयी है। किस तरह विविध परिस्थितियों में चीन के साम्यवादी नेताओं ने प्रबल संगठन किया, इससे भी महत्त्वपूर्ण हजारों लाखों साम्यवादी चीनियों के अत्यन्त साहसिक महाअभिमान की कहानी है। वह इस पुस्तक की प्राण है। सचमुच वह कहानी इतनी अद्भुत और इतनी साहसपूर्ण है कि उसे ऐतिहासिक की अपेक्षा औपन्यासिक ही मानने को जी होता है। साम्यवादियों की प्रगति का इतिहास अधिक सुबोध करने लिए ज़रूरी था कि दो-तीन नक्शे आदि दिये जाते। सोवियत शासनपद्धति पर और अधिक प्रकाश डाला जाता, तो अधिक अच्छा होता।

समस्त पुस्तक को पढ़ने से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि लेखक ऐतिहासिक नहीं है, वह साम्यवादियों का भक्त है और इसलिए यह पुस्तक पढ़ने के बाद भी यह प्रश्न बिना हल हुए ही रह जाता है कि क्या सचमुच चांग काई शेक, जो आज चीन के स्वातंत्र्य-संग्राम का नेता है, इतना क्रूर, दुष्ट और स्वार्थी है, जैसा कि पुस्तककार ने दिखाया है। लेखक ने सिर्फ़ एक पक्ष रखा है और इसलिए पुस्तक सरस, सजीव और सूचनापूर्ण होते हुए भी एकांगी प्रतीत होती है। लेखक ने सोवियत नेताओं को ही नहीं, सिपाहियों तक को मनुष्य से देवता बना दिया है। आधे से अधिक योद्धा अखण्ड ब्रह्मचारी हैं, कभी किसी स्त्री की ओर बुरी दृष्टि तक नहीं डालते आदि अत्युक्ति से भरी हुई इन बातों पर सहसा हमको विश्वास नहीं होता। इसका कारण हमारे अपने चरित्र की दुर्बलता है। लेखक की अगाध श्रद्धा और अत्युक्ति साहित्यिक शैली ?

सोवियत चीन के महान् क्रान्तिकारी नेताओं का वर्णन पढ़ने योग्य ही नहीं है, अनुकरणीय भी है। विकट परिस्थितियों में इन महान नेताओं को गुजरना पड़ा, इसकी कहानी भी अनुप्राणित करनेवाली है।

यों सोवियत सेनाओं का संगठन, लाल बालकों का जीवन, लाल रंगमंच, शिक्षा-पद्धति आदि सभी किसी भी राष्ट्र के नेताओं के लिए विचारणीय हैं। परन्तु २३५ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य २) रु० बहुत अधिक दीखता है।

कृष्ण

कलापिनी—(कविता-संग्रह) : कवि—श्री केदारनाथ 'प्रभात' एम० ए०; प्रकाशक—नवलकिशोर प्रेस, हजरतगंज, लखनऊ; मूल्य ॥)

'कलापिनी' गीति-काव्य है और हिन्दी के उसी छायावादी वर्ग का, जो वास्तव में रोमेंटिक है। प्रिय का वियोग, मिलन, आशा, आकांक्षा ही इन गीतों के विषय हैं, अतः कोई नितान्त नवीनता नहीं है और गीतिकाव्य में नवीनता अथवा मौलिकता भावना में नहीं, भाव और उसके प्रतिपादन में होती है।

'कलापिनी' के गीतों का नाद-सौंदर्य, शब्दों की सुमधुर प्रांजलता और भावनाओं की अतिशयोक्तिरहित सुकुमारता कवि की कवित्व-शक्ति का यथेष्ट सुन्दर प्रमाण हैं। अपरिचित प्रिय की आराधना करनेवाले कवियों की अस्पष्टता और तारतम्यहीनता का कलापिनी में प्रायः अभाव है। केवल शब्द-सौंदर्य के लिए कोई भी पद-जाल इसमें नहीं बुना गया। साँझ का शतदल,

गीत, निशीथ आदि अति सुन्दर गीत हैं । प्रसाद-गुण 'कलापिनी' की विशेषता है । की-सी तन्मयता 'कलापिनी' का कवि भी द में प्रदर्शित करता है ।

जगमगाता आँसुओं की रात में
स्वर्ण-सा मधुमास मेरा
'कम्पन'

मांगता जीवन मरण से
आज प्रिय वरदान कैसा
'सांध्यगीत'

आंकते नक्षत्र जीवन का करुण इतिहास
'निशीथ'

शेष जीवन में मिटा बनता अशेष अचिन्ह
'अशेषदान'

'कलापिनी' आधुनिक प्रगतिशील साहित्य तः कोई योग नहीं है, किन्तु प्रकृति के मोहक सौन्दर्य की रंगीन छाया में पोषित नुभूती कल्पनाओं का प्रांजल आस्वाद अवश्य ती है। शाश्वत और स्थायी साहित्य का एक गुण है ।

पुस्तक का मुद्रण साधारणतया सुन्दर है और के लिए बारह आने खर्च करके पाठक पछ- ना नहीं ।

महाकवि हरिऔध का 'प्रिय-प्रवास' : क—प्रो० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री; प्रका- क—रामनारायणलाल प्रयाग; पृष्ठ संख्या ०; मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक हरिऔधजी के सुविदित महा- य 'प्रिय-प्रवास' की समालोचना है, जो से विद्यार्थी-वर्ग की आवश्यकताओं को त करके लिखी गयी है; किन्तु साधारण भी इसमें महाकाव्य के गुण-दोषों का संतुलित परिचय पा सकता है । यद्यपि समालोचना आलोचनात्मक कम और त्मक अधिक है, फिर भी खड़ी बोली में भाषा के क्रिया-पदों के प्रयोग पर स्वयं औधजी के तर्कों को सावधानी तथा शालीनता प्रमाणित करके अपनी सहज समालोचनात्मक विद्वत्ता का परिचय दिया है । 'प्रियप्रवास' में चरित्र-चित्रण की असफलता तथा तत्सम्बन्धी कारणों का समुचित विवेचन प्रोफ़ेसर साहब ने किया है । केवल प्रशंसा करने के लिए अर्थ का अनर्थ भी कहीं नहीं किया है ।

हरिऔध-साहित्य की विवेचना में प्रस्तुत समालोचना पथ-प्रदर्शक बन सकती है । छपाई, गेटअप साधारण है । लेखक के परिश्रम तथा इसकी उपादेयता को देखते हुए पुस्तक का मूल्य भी अधिक नहीं है । **चन्द्रकिरण (साहित्यरत्न)**

अनूभूत पशु-चिकित्सा : लेखक—श्री कुँवर सुरेंद्रसिंह, 'इन्द्र', आई डी. डी. साहित्य भूषण; प्रकाशक—युवराज-प्रकाशन-मन्दिर लखनऊ : पृष्ठ संख्या १४३; मूल्य १॥)

इस समय हिन्दी में गोपालन-साहित्य की बड़ी कमी अनुभव हो रही है । ऐसी पुस्तक का प्रकाशित होना यह ज़ाहिर करता है कि लेखकों तथा प्रकाशकों का ध्यान इस ओर गया है, जो शुभ चिन्ह है ।

पुस्तक के लेखक एक उत्साही और योग्य व्यक्ति हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने पुस्तक लिखने में खूब उत्साह दिखाया है ।

पुस्तक में जो चिकित्सा रोगों की बतायी गयी है उसके अनुभूत होने के विषय में टीका-टिप्पणी करना बड़ा कठिन है । इस प्रकार की देशी दवाइयों का इतना विस्तार है कि इस विषय पर कोई कुछ नहीं कह सकता । पर माँग करने में लेखक नीचे लिखी बातों की ओर ध्यान देते तो यह पुस्तक हमारी राय में अधिक उपयोगी हो सकती थी—

(१) रोगों का क्रम उनकी उत्पत्ति, बचाव या इलाज के क्रम से या अकारादि क्रम से रखते तो अच्छा रहता ।

(२) कुछ दवाइयों के नाम जरा कम समझ में आते हैं । जैसे—कुंभीर का अंडा चेचक की अत्युत्तम ओषधि बतायी गयी है और इसी प्रकार एक स्थान पर 'हलंच का शाक' खिलाने को बताया है । यदि ऐसी चीजें आमतौर

से लोग नहीं जानते और अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग नामों से पुकारी जाती है तो दूसरे प्रान्तों के नाम या उनके अंग्रेज़ी नाम भी साथ में दिये जाने से ठीक चीज़ प्राप्त करने में सुविधा होती है।

(३) कई जगह होमियोपैथिक दवाइयाँ भी बतायी हैं। वहाँ यह स्पष्ट नहीं किया है कि दवाइयाँ जो बतायी हैं वे सब मिलाकर ली जायें या अलग-अलग। इसी प्रकार कहीं-कहीं होमियोपैथिक और देशी (आयुर्वेदिक) दोनों दवाइयाँ काम में लेने को लिखा है, जो शायद होमियोपैथिक प्रणाली के अनुकूल न हो।

(४) जहाँ दवाइयों के नुसखे दिये हैं, वहाँ यह बहुत कम लिखा है कि एक दिन में कितनी बार यह दवा दी जाये ?

यह पुस्तक जितनी शहर या कस्बों में रहनेवालों को उपयोगी है उतनी गाँववालों के लिए प्रतीत नहीं होती। गाँववालों के लिए बाज़ार से दवा खरीदकर लाना कठिन है। उन्हें अपने घर, गाँव या आसपास के खेत और जंगल में मिलनेवाली दवा प्रयोग करने में सुविधा होती है। गाँववालों को पशुओं को छूत की बीमारी से बचाने के लिए अधिक विस्तार से समझाना पड़ेगा ताकि वे परम्परा से चले रिवाज को छोड़कर ठीक रिवाज को अपनायें। इतने पृष्ठ की पुस्तक का दाम ॥।) रखने से वह सर्वसुलभ नहीं हो सकती। परंतु अन्त में हम लेखक को उसके परिश्रम और उत्साह के लिए सराहते हैं और आशा करते हैं कि इस पुस्तक को वे अगले संस्करण में अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न करेंगे। **परमेश्वरीप्रसाद गुप्त**

अभिनव एकांकी नाटक : लेखक—श्री उदयशंकर भट्ट; प्रकाशक—लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा; पृ. सं. १२२; मूल्य १)

एकांकी नाटकों में मुझे विशेष दिलचस्पी नहीं थी। 'थी' इसलिए लिख रहा हूँ कि अब स्थिति वह नहीं है। उस दिन जब मैंने अपना सर्वप्रथम एकांकी—'राखी' लिखा तो ऐसा लगा कि उससे अच्छे रूप में उस कथानक को कहानी या कविता में मैं व्यक्त नहीं कर पाता। आज तबीयत खराब थी। लेटे-लेटे दिल-बहलाने की दृष्टि से भट्टजी का 'अभिनव एकांकी' संग्रह पढ़ना शुरू किया। दिल लग गया। पहले ही नाटक से रुचि उत्पन्न हुई। दूसरा पढ़कर प्रतीत हुआ कि भट्टजी में पाठक को आकर्षित करने की क्षमता है। एक-एक करके उसी हालत में छहों नाटक (**दुर्गा, नेता, उन्नीस सौ पैंतीस, वर-निर्वाचन, एक ही क़ब्र में, सेठ लाभचंद**) पढ़ डाले। इसलिए यह तो कहना होगा कि वे नीरस नहीं हैं। पर कला का लक्ष्य केवल मनोरंजन ही है ?

संग्रह के सब नाटकों में एक बात मिलती है कि भट्टजी के नाटकों के पात्र परिस्थिति में पलनेवाले होते हैं, परिस्थितियों से लोहा लेकर उन्हें बदलनेवाले नहीं। शायद लेखक खुद परिस्थितिवादी हों। उनका सुरेन्द्र बी० ए०, खादी का दृढ़ व्रती देशी राज्य की नौकरी मिलने की उम्मीद भर ही में अपना व्रत ताक में रखने को उतारू हो सकता है—

"सच तो यह है कि ग़रीब के लिए यह दुनिया होती नहीं। हम लोग जवानी में जिसे जीवन समझते हैं, क्लासरूम में बैठकर जिसे ध्येय मानते हैं, वह सपना निकलता है। देश की सेवा कौन नहीं करना चाहता, पर परिस्थिति भी तो कोई चीज़ है।"

और हरिजन-उद्धार का कट्टर पक्षपाती नेता भी इसी प्रकार कहता है—

"हमारा समाज अभी इस काम के लिए इतनी दूर जाने के लिए तैयार नहीं। मैं अब कोई व्याख्यान न दूँगा। मुझमें शक्ति नहीं है। मुझ में साहस नहीं है। मैं झूठा दंभी नेता था।

'एक ही क़ब्र में' में अवश्य समाज के एक कलंक को धोने के प्रयत्न में एक निष्ठावान् व्यक्ति अपना प्राणोत्सर्ग कर देता है, पर वह भी आकस्मिक दुर्घटना में।

सो इन एकांकियों में जीवन-संघर्ष करने

रंगा तो मिलती नहीं—पढ़कर मनोरंजन होगा, जैसा कि लेखक ने भूमिका में लिख भी दिया है, उसे आल्मारी में भले ही धर दें। पर चित्रण करने में कुशल हैं। अफ़ीम के एक राजपूत का, आधुनिक वाग्वीर नेता का, बेकारी के मारे ग्रेजुएट और उसकी ियों का, बैरिस्टर की बातचीत का, की अंग्रेजी पढ़ी-लिखी नयी सभ्यता में पली की मनोवैज्ञानिक वृत्ति का—सबका अंकन सच्चाई और सफलता के साथ हुआ है। प्रेस की भूलें जहाँ-तहाँ काफ़ी हैं। कहीं-कहीं कथोपकथन लम्बे हो गये हैं, कहीं-कहीं बातचीत में अस्वाभाविकता भी आगयी है, पर कुल मिलाकर सारे नाटक अच्छे हैं। उनमें समाज की तस्वीरें हैं और ठीक। यथार्थवादी कला से मेरा उतना अनुराग नहीं जितना आदर्शवादी से; तो भी मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से लेखनी को सफलता मिली है, यह मैं कहना चाहता हूँ।

इतने दिनों तक संग्रह की समालोचना नहीं कर सका, इसके लिए लेखक और प्रकाशक से क्षमा माँगता हूँ। **सुधीन्द्र**

सहयोगियों में से

शिक्षा और शिक्षक

पिछले दिनों बिड़ला कॉलिज पिलाणी के पारितोषिक-वितरणोत्सव के सभापति-पद से श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला के कुछ प्रश्नों का उत्तर दिया था——जो शिक्षा में रुचि रखनेवालों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। प्रश्न ये थे :——

क्या यह सम्भव है कि हम किसी विशेष गुण या क्षमतावाले युवक-युवतियों का निर्माण कर सकते हैं? यदि हाँ तो वे कैसे हों? और इस उद्देश्य के लिए हमें क्या करना चाहिए?

इनके उत्तर में सर राधाकृष्णन् ने कहा——

हाँ, सारा संसार इसका साक्षी है कि हम विशेष गुण और क्षमतावाले पुरुष-स्त्रियों का निर्माण कर सकते हैं। सामाजिक नव-निर्माण के लिए समस्त शिक्षण-तंत्र पर नियंत्रण करके किसी आदर्श के अनुसार युवकों का निर्माण करना होता है। ग्रीकों, रोमनों, यहूदियों ने ऐसा किया था। हिटलर, स्टालिन मुसोलिनी आदि शिक्षण-तन्त्र द्वारा ही अपने युवकों और युवतियों को कम्यूनिस्ट, फासिस्ट, या नाज़ी जैसा चाहें वैसा बना रहे हैं कि नहीं?

महज़ ज्ञान प्राप्त कर लेना ही काफ़ी नहीं है। उपनिषद में छात्र कहता है——मैंने चारों वेद पढ़े हैं। छहों शास्त्रों का पारायण किया है। परन्तु मैं मंत्रविद् ही तो हूँ——आत्मविद् नहीं।

आत्मज्ञान, आत्मसंयम ही भारतीय ज्ञान का आदर्श है। हम चाहते हैं हमारे नवयुवक और नवयुवतियाँ अपने जीवन के आत्मिक रूप का अधिक विकास करें। शिक्षा का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी उच्चतर जीवन में प्रवेश करें, भौतिक से भिन्न अदृश्य-अस्पर्श्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करें और समझें कि वे प्रकृति की उत्पत्ति-मात्र ही नहीं हैं। वे यहाँ जन्म लेने, पालित-पोषित होने, विवाह करने, संतति उत्पन्न करने, कुनबे क़ायम करने और मर जाने मात्र ही के लिए नहीं आये हैं। यह तो पशु-जीवन की ही आवृत्ति है। मानव-जीवन में तो कुछ विशेषता, कुछ अद्वितीयता होनी चाहिए। उसका शारीरिक के अतिरिक्त दूसरा रूप भी है। वह प्रकृति की पैदायश है, प्रकृति का अधिवासी है, परन्तु इतर जगत् से उसका नाता है। वह जगत् आध्यात्मिक जगत् है। और उसी का साक्षात्कार ही शिक्षाका वास्तविक लक्ष्य है।

शिक्षक का कार्य है कि हमें अपनी पूरी ऊँचाई तक पहुँचने में उनसे मदद मिले। शिक्षक

का कार्य है कि ऐसा वातावरण बनायें जिसमें शिष्य उनके अन्दर रहनेवाली आत्मिक क्षमताओं का साक्षात्कार कर सकें। शिक्षक इसे पूरा करें।

विश्वविद्यालयों का ध्येय है कि हमें उसी वातावरण में रहते हुए उच्चतर स्पिरिट को ग्रहण करने में समर्थ बनायें। धर्म सिखाया नहीं जाता, वह ग्रहण किया जाता है। वह तभी सीखा जा सकता है जब हमारे शिक्षक महान हों। हमें तो उसे वातावरण ही से ग्रहण करना है।

हम जितने ही सुशिक्षित होंगे, हमारा जन्म उतना ही उच्च कोटि का होगा और हमारा जन्म जितना ही उच्च कोटि का होगा उतने ही अधिक हम विनीत होंगे, अनुशासनशील होंगे। विद्या, धन और उच्च जन्म तो मद और अहंकार के स्रोत नहीं वरन् आत्मा के अनुशासन और विनय के मूल स्रोत होने चाहिएँ।

मानव-प्राणी शरीर, मन और आत्मा की एक त्रिपुटी है। सच्चा शिक्षित वह है जिसमें शारीरिक शक्ति, मानसिक जागरूकता और आत्मिक क्षमता तीनों हों। [**'हिन्दुस्तान टाइम्स'**

यह 'पातक' है !

किसी भी स्त्री का दर्शन तक न करना, स्त्रियों से काम-काज से भी न बोलना, स्पर्श से भी बचना आदि पुराने कट्टर नियम हम न पालें, परन्तु इनके साथ रहनेवाली सावधानी और जागरूकता को हम न भूल जायें। एक पुराने संस्कृत ग्रंथ में मैंने पढ़ा कि 'काष्ठ की बनी स्त्री-प्रतिमा को भी ब्रह्मचारी न देखे।' तुकाराम ने भी लिखा——

स्त्रियांचा तो संग, नको नारायण।
काष्ठा या पाषाणा मृत्तिकेच्या।

पहले तो मुझे भी ऐसी अति-सावधानी से चिढ़ आयी। लेकिन बाद में इसका विशेष अर्थ ध्यान में आ गया। कला, कौशल या सौन्दर्य-उपासना के नाम पर नग्न मूर्त्तियाँ, गुड़ियायें और चित्र आज जहाँ-तहाँ संग्रह किये और बखाने जाते हैं। पैसेवाले और प्रतिष्ठित लोगों के घरों में ऐसी मूर्त्तियों और चित्रों का संग्रह होना सस्कारिता का लक्षण गिना जाता है। मासिकों में भी अब इनकी बाढ़ आने लगी है। नीति-अनीति के बीच मर्यादा की रेखायें मिटती जाती हैं। पुराने लोगों का अत्यन्त विवेकहीन और बेहूदा दुराग्रह होता है, यह ठीक है, परंतु इसका लाभ लेकर कई नये लोग पुरानों की निन्दा करके दूसरी अति पर पहुँचकर नीतिमात्र का उच्छेद करने लगे हैं। नाटक, सिनेमा, उपन्यास आदि तथा अनाचार-पोषक चित्र और साहित्य बढ़ने लगे हैं। ऐसे अवसर पर जो कोई संकट-सूचना देता है, वह संकुचितमना, सूतकी और समाज-विद्रोही माना जाता है ! विकारोत्तेजक मूर्त्तियों और चित्रों का दर्शन अवश्य पातक (पात+क = गिराने वाला) है। लकड़ी की गुड़िया और चित्र न देखने की हिदायत उस जमाने में थी। आज तो सिनेमा और मासिक पत्रों में आनेवाले गंदे चित्रों पर ये नियम लगाये जाने चाहिएँ। पर नियमों से ही होगा क्या ? यह सब प्रेरणा तो भीतर से ही होनी चाहिए।

'शिक्षण अने साहित्य' गुजराती] **काका कालेलकर**

मानव-धर्म

जन-सामान्य को अपने-अपने ढंग से इष्टदेव की आराधना करने में स्वाधीन छोड़कर भी हमें सब धर्मों की मौलिक एकता में हिन्दू, मुसलमान सिक्ख, जैन, पारसी, और ईसाई के भेदों की असत्यता और हानिकरता को भी अनुभव करना होगा। और समस्त समाज को एक सच्चे सार्वभौम मानव-धर्म की ओर लाने का सस्नेह और प्रशान्त प्रयत्न करना होगा। मानवता, समता, मानव-प्रेम, परसेवा, स्वार्थ-त्याग, न्याय और सत्यता के उस सार्वभौम धर्म को अपना एकमात्र धर्म स्वीकार करना होगा, जिसतक मनसूर और कबीर जैसे अनेक सूफ़ियों और महात्माओं ने हमें लाने का प्रयत्न किया। **'विश्ववाणी'**

सैर-सपाटा

‘जीवन-साहित्य’ की पाठिका बहनों के काम की कोई बातें अभी तक नहीं बतायी गयीं, इससे उन्हें नाराज़गी होगी। यद्यपि ‘जीवन-साहित्य’ में ‘नारी’ से सम्बन्धित बहुत-कुछ निकलता है पर अभी वह काफ़ी नहीं है। महिलाओं की मासिक पत्रिका ‘कमला’ ने इस बार अपना [illegible] निकाला है जो सर्वांगपूर्ण है। कई लेख स्त्री-जीवन से अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखते हैं।

अप्रैल मास के ‘दीपक’ में **‘स्त्री शिक्षा’** पर भावनगर के आचार्य हरभाई त्रिवेदी का भाषण छपा है। सहशिक्षा तथा स्त्री-शिक्षा में रुचि रखनेवालों को उसे पढ़ना ज़रूरी है।

‘विशाल-भारत’ के अप्रैल-अंक में **घरेलू** धन्धे लेख है जिसे हमारी बहनों को ध्यान से पढ़कर जानना चाहिए कि राष्ट्र-निर्माण का कितना बड़ा अंग उनकी लगन की कमी में अछूता पड़ा है। उसी अंक में पशु-पालक पं० श्रीराम शर्मा ने **‘गाय की पहचान’** करने के लिए कई बातें बतायी हैं।

पत्र-साहित्य का जीवन-साहित्य में अपना विशेष स्थान है। अप्रैल की ‘सरस्वती’ में श्री महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल ने स्वामी श्रद्धानन्दजी के कुछ पत्रों के अंश प्रकाशित कराये हैं जिनसे स्वामीजी के बारे में जानकारी मिलती है। बाबू श्यामसुन्दरदासजी **मेरी आत्म-कहानी** नाम से अपनी जीवन-कथा ‘सरस्वती’ में ८ अंकों से लिख रहे हैं। उसे पढ़ने से हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास की कहानी का ज्ञान होता है।

अप्रेल की ‘माधुरी’ में प्रकाशित श्री सन्तराम बी० ए० के **साहित्य-संसार में अनुवादकर्त्ता का स्थान**’ लेख से अनुवाद के बारे में जो कई लोगों की उपेक्षा-सी हो गयी है वह दूर होती है।

‘विश्ववाणी’ के अप्रैल-अंक में चीनी और नीग्रो संस्कृति पर लिखे गये दोनों लेख जानकारी के लिए पढ़ने योग्य हैं। इन्हीं के साथ आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन का **‘निष्पक्ष साधन’** लेख हिन्दू धर्म और संस्कृति का दूसरी संस्कृति से छुआछूत का भाव रखनेवालों की आँखें खोलनेवाला है। डॉ० सैयद महमूद की **‘यह साम्प्रदायिक कटुता शुरू कैसे हुई ?** सामयिक वस्तु होने के कारण विशेष रूप से पढ़ने की चीज़ है।

‘किशोर’ के ‘उपकथांक’ में देश-विदेश की लोक कथायें, ग्राम्य कथायें, दन्त कथायें तथा रूप कथायें दी गयी हैं। हिन्दी-साहित्य में ऐसी चीजों की बड़ी आवश्यकता है।

‘कल्पवृक्ष’ के अप्रैल अंक में श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त की प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक **‘होम एण्ड विलेज डाक्टर**’ का कुछ अनुवाद निकला है, यदि यह प्रयत्न आगे भी रहे तो हिन्दी-पाठकों का सचमुच बड़ा लाभ हो। ऐसा ही अनुवाद ‘हल’ की अप्रेल की संख्या में भी निकला है। अप्रेल की ‘नयी तालीम में’ **‘छोटा देहाती स्कूल’** नामक लेख अपने विषय का सुन्दर लेख है। तालीम के बारे में जी० सा०के प्रस्तुत अंक में भी कई लेख व चर्चायें हैं।

‘शिक्षण पत्रिका’ (अप्रेल) में **‘वर्धा योजना’** पर आचार्य नानाभाई का दिया एक भाषण छपा है, जो अत्यन्त उपयोगी और सूचनापूर्ण है।

कृष्ण-मन्दिर में

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन : हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्राण और युक्तप्रान्तीय धारासभा के अध्यक्ष (स्पीकर) माननीय टण्डनजी को कौन नहीं जानता होगा ?

श्री मैथिलीशरण गुप्त : भारतीय और आर्य संस्कृति के अनन्य उपासक और प्रतिष्ठाता, ‘भारत भारती’ के गायक, ‘साकेत’ कार कवि-वरेण्य गुप्तजी आज राष्ट्र के प्रतिनिधि-कवि हैं।

श्री महेन्द्र : नागरीप्रचारिणी सभा आगरा के प्राण, हिन्दी साहित्यरत्न भंडार के संचालक तथा हिन्दी के एकमात्र आलोचना-मासिक ‘साहित्य-संदेश’ के संयुक्त सम्पादक।

क्या और कैसे ?

ग़रीब लेखकों की समस्या

लेखकों और प्रकाशकों के पारस्परिक सम्बंध के सिलसिले में श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने एक पत्र लिखकर ग़रीब लेखकों की समस्या की तरफ़ हमारा ध्यान दिलाया है, जिसकी हम क़द्र करते हैं। वे लिखते हैं——

'ऐसा मालूम पड़ता है मानो आपको आज के लेखकों के गहरे असन्तोष का पता नहीं। समस्या उनकी नहीं है, जिनको प्रकाशकों की कमी नहीं है, जिन्हें प्रकाशकों से मनचाहा मिल जाता है या जो अन्य प्रकार से घर-गिरस्ती, खाने-पीने की चिन्ता से दूर हैं। समस्या तो उनकी है, जिन्होंने साहित्य के पीछे जीविका के अन्य साधनों को छोड़ दिया है और जिन्हें वह भी नहीं मिलती।'

हिन्दी में लेखक भी दो वर्ग के हैं। एक वे जिनके निर्वाह का कोई दूसरा प्रबन्ध है। लेखन-व्यवसाय पर उनका गुज़र-बसर अवलंबित नहीं। दूसरे वे, जिनकी जीविका का एक मात्र सहारा लेखन है। अक्सर यह देखा जाता है कि साधन-सम्पन्न लेखक भी बिना दक्षिणा लिये और बाज़-बाज़ तो तगड़ी दक्षिणा लिये, न लेख लिखते हैं न पुस्तक। साधन-सम्पन्नता के कारण इनकी विख्याति और क़ीमत भी अधिक हो जाती है और उन्हें पुरस्कार भी अधिक मिल जाता है। दूसरी तरफ़ गरीब साधन-हीन लेखक के पल्ले ज़रूरी मेहनताना भी नहीं पड़ता। होना तो यह चाहिए कि जो ग़रजमंद हो उसे पहले और ज्यादा मिलना चाहिए और जो सुखी, सम्पन्न है, उसे देने की अपेक्षा उससे पाने की ज़रूरत है। भगवान् कृष्ण ने कहा है——

'दरिद्रान् भर कौन्तय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्

इसका यही आशय है। पुरस्कार की कसौटी ग्रंथ के लिए किया गया परिश्रम और उसकी श्रेष्ठता ही नहीं, लेखक की जीविका-सम्बन्धी आवश्यकता भी होनी चाहिए। बल्कि सही बात तो यह है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-निर्वाह की आवश्यक सामग्री प्रायः समान रूप से मिलनी चाहिए। वह उसे उसके परिश्रम के फल के रूप में मिले। उसकी आवश्यकता-पूर्ति के बाद जो समय या कृति बच रहती है, उसका लाभ समाज और जनता को मुफ्त मिलना चाहिए। ऐसी वृत्ति या नियम बना लेने पर ही इससे वास्तविक समाज या साहित्य-सेवा हो सकती है। साधन-सम्पन्न लेखकों से निवेदन है कि वे या तो पुरस्कार न लिया करें, सेवाभाव से ग्रन्थ-प्रणयन करें या थोड़ा पारिश्रमिक लेकर पुस्तक को सस्ता बनने दें या पूरा पुरस्कार लेकर उसका विनियोग ग़रीब लेखकों की सहायता में करें।

प्रकाशकों की चोरी ?

'लेखक बनाम प्रकाशक' नामक लेख और मेरे अनुरोध के अनुसार सम्माननीय मित्रों और हितैषियों ने अपने-अपने सुझाव भेजना शुरू कर दिया है। जिनमें विचार करने की अच्छी सामग्री दी गयी है। उनमें से इस समय तो एक ही बात की ओर यहाँ प्रकाशकों का ध्यान दिलाना ज़रूरी समझता हूँ, जिससे मुझे बहुत दुःख पहुँचा है और जो बतलाती है कि बाज़-बाज़ प्रकाशक किस तरह चोरी करते हैं। एक लब्धप्रतिष्ठ लेखक और प्रकाशक पूछते हैं—— यदि प्रकाशक किसी संस्करण की २ हज़ार प्रतियाँ छपाये और लेखक को १ ही हज़ार बताये तो लेखक क्या कर सकता है ? मैं मण्डल पर आक्षेप नहीं करता हूँ, पर मैं लेखकों को ठगनेवाली इस प्रकार की प्रवृत्ति के कुछ प्रकाशकों का परिचय रखता हूँ।'

एक प्रसिद्ध विद्वान् लेखक जो प्रकाशकों के प्रति असहिष्णुता का भाव नहीं रखते हैं, लिखते हैं—

'मेरी दृष्टि में इक़रारनामों का अधिक मूल्य नहीं है। यदि पुस्तक सहस्रों बिकती है तो

अवश्य बेईमानी करेंगे । और उनसे बचे रहना लेखक की शक्ति के बाहर है । पुस्तक प्रकाशित करनेवाली कोई भी तो मेरे अनुभव में ऐसी नहीं आयी, जो पूरी ईमानदार हो । ऊपर से जिनके हिसाब पक्के हैं, अन्दर से उतने ही कच्चे ।' एक विख्यात कवि भी प्रकाशकों की इस की शिकायत हमसे करते थे ।

इन मित्रों की प्रामाणिकता पर सन्देह करना है । ऐसी दशा में प्रकाशकों के लिए शिकायत पर विचार करना ज़रूरी है, प्रकाशकों को हर तरह से ऐसे आक्षेपों सन्देहों से परे अपनेको रखना चाहिए । पुस्तकों का व्यवसाय, जिससे मुनाफा जाता हो, नैतिक दृष्टि से उचित नहीं वह फिर भी समझ में आ सकता है । वह चोरी तो किसी प्रकार सहन करने नहीं है ।

क्या लिखूँ ?

कवि व लेखक की कई व्याख्यायें हैं । मेरे इनका जो चित्र खड़ा होता है वह महज के वर्तमान चित्र की प्रतिलिपि करनेवाले नहीं, बल्कि उस चित्र को सुधारने व भावी की झलक दिखानेवाले, समय की गति को नेवाले का होता है । उस दिन एक प्रख्यात राष्ट्रीय कवि-मित्र से बातें हुईं । मैंने कहा—पराधीनता की कड़ियाँ व बन्धन खुलना तो अब थोड़े समय का प्रश्न है, उसके बाद क्या ? आपका उस समय का भी कुछ चित्र अपने मन में है ? उसकी तैयारी का कुछ मसाला आप या नहीं ? मेरा सुझाव उनके हृदय के तह पहुँचा मालूम हुआ ।

स्वराज या आज़ादी पाना हमारे लिए एक बड़ा व विकट काम है, इसमें कोई सन्देह नहीं । इसके लिए जितना कष्ट व परिश्रम जाय, जितना कुछ स्वाहा किया जा सके है । परन्तु उसके बाद की जिम्मेदारियाँ कम आजमायश नहीं करेंगी । हमारा असली काम तो भारतवर्ष को 'सारे जहाँ से अच्छा' बना देना है । स्वराज्य-सत्ता मिल जाने भर से यह काम नहीं बन सकता । एक बड़ी भारी रुकावट या कठिनाई अलबत्ते दूर हो जायगी । तब हमें अपने समाज-जीवन के प्रत्येक अंग को पुष्ट और बलिष्ठ बनाते हुए उसे विकास की ओर ले जाना होगा । हमारे शरीर को स्वस्थ व बलिष्ठ बनाना होगा, हमारे मन-बुद्धि को निर्मल, जाग्रत, तेजस्वी, ज्ञानयुक्त करना होगा । हमारी दरिद्रता, दीनता मिटानी होगी । एक ओर महान् कंगाली व दूसरी ओर महान् साधन-सम्पन्नता—इस विषमता को दूर करना होगा । इसके लिए आर्थिक व औद्योगिक योजनायें तथा व्यवस्थायें करनी व बदलनी होंगी । समाज व राष्ट्र-रक्षा के प्रश्नों को हल करना होगा । यह सब इस दृष्टि से करना होगा कि हम दूसरे देशों के सामने उच्चता, योग्यता, सुव्यवस्थितता का नमूना पेश कर सकें । तभी तो **'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा'** बन सकेगा । आज तो हम इन कड़ियों को भक्तिभाव में झूम-झूमकर गाते हैं । पर कल हमें संसार को अपना यह दावा साबित कर दिखाना होगा । इन सबके लिए हमारा आज का कवि व लेखक-समुदाय कितना जाग्रत व कर्त्तव्य-रत है ? जबकि सारे संसार से ही अब हिंसा-बल व शस्त्रास्त्र के कम करने की नौबत आ रही है, तब भारतवर्ष के सामने तो यह प्रश्न और भी तेजी से आ रहा है । हमारी महान् राष्ट्रीय संस्था—कांग्रेस हिंसा को छोड़ चुकी है और अहिंसा की संगठित तालीम राष्ट्र को बरसों से दे रही है । हमें अपने घरेलू, संस्थागत व समाजगत ही नहीं, बाहरी हमले के प्रश्नों को भी अहिंसात्मक साधनों से हल करना है । इसकी तरफ़ कितने साहित्यिकों का सजग ध्यान रहने लगा है ? कितनों ने इसके मर्म को समझ लिया है, इसके महत्त्व को समझने में कितने लवलीन हो रहे हैं ? कितनों ने अपने निजी अनुभव व पारिवारिक जीवन में इनके प्रयोग किये हैं और अपने अनुभव देश व संसार

के सामने पेश करने की तैयारी कर रहे हैं ? ये सब प्रश्न हैं, जिन्हें मेरी समझ में एक सजीव व विकासशील––या प्रगतिशील कहूँ ?––लेखक अथवा कवि के दिमाग में उठते व चक्कर काटते रहना चाहिए। इनके उत्तर में वे जो कुछ लिखेंगे वह अवश्य नवीन, विचारणीय व आकर्षक होगा। टकशाली लेखों व विचारों की नहीं, सत्य व जीवन के नित्य-नये अनुभवजन्य विचारों व योजनाओं की आज हिन्दी-समाज को सबसे अधिक आवश्यकता है।

पाठकों से

'जीवन-साहित्य' के एक पाठक श्री ओंकारलालजी ने बड़े परिश्रम से मण्डल और जी० सा० के सम्बन्ध में कई उत्तम सुझाव मुझे लिख भेजे हैं। उनमें से एक जिसका सम्बन्ध सीधा पाठकों से है यहाँ प्राय: ज्यों-का-त्यों देता हूँ—

"जिस हिन्दी जनता के लिए, विद्वानों और लेखकों के लिए नहीं बल्कि साधारण जीवनयापी जनता के लिए, आपने यह पत्र (जी० सा०) प्रकाशित किया है, उसके अभावों को समझ लेना अतीव आवश्यक है, क्योंकि तबतक आप उनको हटाने का प्रयत्न नहीं कर सकते। अत: इसकी जानकारी पाने के लिए आप स्वत: सामान्य पाठकों के नाम 'जीवन-साहित्य' में एक चिट्ठी सर्क्युलेट कीजिए और पूछिए —

(१) आपको हिन्दी-साहित्य के किस अंग में क्या-क्या कमी मालूम होती है और उसको दूर किस तरह किया जाय ?

(२) हिन्दी में किस तरह की पुस्तकों का प्रचार अधिक होना चाहिए और किस प्रकार की पुस्तकें बन्द होनी चाहिएँ और ऐसा किस तरीके से किया जाय ?

(३) अन्य भारतीय भाषाओं या विदेशी भाषा की कौन-कौन-सी प्रवृत्ति को आधार मानकर हिन्दी-साहित्य में भी वही प्रवृत्ति चलायी जाय, और किस प्रकार से ?

(४) 'जी० सा०' के अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए किस-किस प्रकार के लेख उसमें होने चाहिएँ ? क्या वह अपना मौजूदा स्वतन्त्र मार्ग ही रखे अथवा इसे बदले ? यदि हाँ, तो क्यों और कैसे ?

(५) आपकी निगाह में 'जी० सा०' किस तरह का निकल रहा है ? उसमें कौन-कौन-सी कमियाँ दिखायी देती हैं ? इसमें और क्या-क्या संशोधन और परिवर्तन होना चाहिए ?"

आशा है जी० सा० के पाठक इन प्रश्नों के उत्तर देने और अपनी तरफ़ से भी नये-नये सुझाव भेजने की कृपा करेंगे।

अमल से दिखाओ

अभी कुछ समय पहले नरेन्द्र-मण्डल में बड़े लाट साहब ने हमारे राजा-महाराजाओं का ध्यान अपनी प्रजा की राजनैतिक माँगों की ओर दिलाते हुए कहा था कि उन्हें सन्तुष्ट करना उनका कर्त्तव्य है। जब फैडरेशन को चालू करने की धुन बड़े लाट साहब को थी, तब तो वे अक्सर हमारे राजा-महाराजाओं पर शासन-सुधार के लिए ज़ोर देते रहते थे पर अब तो ब्रिटिश-सरकार के दिमाग में युद्ध ही युद्ध भरा होने से हिन्दुस्तान में भी सरकार उसी निगाह से सब चीज़ों को देखती नज़र आती है और हमारे कई राजा-महाराजा या उनके अधिकारी भी युद्ध के नाम और प्रयत्न का सहारा लेकर राजनैतिक माँगों और प्रवृत्तियों की दाद देने में आनाकानी करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि कहीं-कहीं तो दमन के लिए भी युद्ध के नाम 'भारत-रक्षा कानून' का सहारा लेने में संकोच नहीं करते।

अभी इन्दौर-राज्य में प्रजामण्डल का अधिवेशन भारत-रक्षा कानून की मातहत ही रोका गया, जबकि प्रजामण्डल के नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया था कि युद्ध के मामले में वे बिल्कुल तटस्थ हैं। देशी राजा और उनके शासक कई बार बेधड़क यह कहते हैं कि अंग्रेजी भारत की तरह देशी रियासतों के राजा और प्रजा के हितों में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि हम सब हिंदुस्तानी हैं, मगर जहाँ जनता की माँगों का सवाल

...है और उनके आन्दोलनों का मुकाबला करने की नौबत आती है, तब वे अंग्रेजी हुकूमत से ज्यादा नीचे उतर आते हैं—-इसीका यह नतीजा है कि कई दफा लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तानी हाकिम और राजा से तो अंग्रेज हाकिम और हुकूमत कहीं अच्छी होती है ।

हमारे राजा-महाराजाओं और उनके हाकिमों को इस हालत पर अच्छी तरह गौर करके अपने अमल से यह परिचय देना चाहिए कि वस्तुतः उनके और प्रजाजनों के स्वार्थ ...एक हैं ।

ह० उ०

'सैनिक' के साथ न्याय

अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार-संघ के ... श्री मूलचन्द अग्रवाल ने वक्तव्य देते हुए कहा है—

"हमने आशा की थी कि आखिर यू० पी० सरकार को सद्बुद्धि आयेगी और वह 'सैनिक' ...उसके प्रेस से माँगी हुई ६०००) की जमानत के अन्यायपूर्ण हुक्म को वापस ले लेगी, परन्तु ...निराशा हुई ! सरकार इस विषय में ...है और कहती है कि इस मामले में कुछ भी नहीं हो सकता । समस्त हिन्दी-पत्रों ने मुझपर ...डाला है कि मैं यू० पी० सरकार से यह ...कहूँ कि वह पिछली बातों को भुलाकर ...उदारता और न्याय की भावना से एकबार ...इस मामले पर विचार करे ।"

स्मरण रहे कि 'सैनिक' का अपराध केवल ...था कि उसने विनोबाजी का मुकदमा चलने ...का वक्तव्य छापा था, जिसे एक भी ...पत्र ने नहीं रोका और जिसे जिम्मेदार ...एजेन्सी ने ब्रॉडकास्ट किया था ! निस्सन्देह 'सैनिक' के साथ इस विषय में बड़ा अन्याय हुआ और हम श्री अग्रवालजी की अपील का समर्थन करते हुए यू० पी० सरकार से अनुरोध करते हैं कि वह 'सैनिक' के साथ न्याय करे ।

'वीणा'-सम्पादकजी ने हमारा ध्यान फाल्गुन ...: मार्च १९४१ की 'वीणा' में प्रकाशित उस सम्पादकीय टिप्पणी की ओर दिलाया है जिसमें उन्होंने श्री रामानन्द चटर्जी के इस कथन का खण्डन किया है कि 'महाकवि रवीन्द्रनाथ ने पूर्व या पश्चिमवासी, जीवित या स्वर्गीय गीतकार से अधिक गीतों की रचना की है ।'

हमारा भी ऐसा ही खयाल है कि श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय का यह कथन अत्युक्तिपूर्ण है । स्वयम् कवीन्द्र भी शायद इस बात से इनकार करेंगे कि वे अबतक 'सूर' से अधिक गीत लिख चुके हैं । इन पंक्तियों के साथ हम 'वीणा'सपादक की उक्त टिप्पणी का समर्थन करते हैं ।

स्वर्गीय गोयनकाजी !

पिछला अंक छप चुकने पर यह दुःखद समाचार मिला था कि दिल्ली के लोकप्रिय समाज-सेवी, साहित्य और भाषा की उन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील सेठ श्री केदारनाथजी गोयनका का जेल से लायी गयी बीमारी से स्वर्गवास होगया ! यहाँकी हिन्दी-प्रचारिणी सभा के वह जन्मदाता थे, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे और यहाँ की प्रत्येक हिन्दी-प्रवृति के प्राणरूप थे, उनका दिल्ली में कोई उपयुक्त स्मारक बनाये जाने के लिए पूरा प्रयत्न होना चाहिए । यही उनके प्रति सबसे अच्छी हार्दिक श्रद्धांजलि होगी ।

'हृदय' जी !

"यह लिखते हुए हृदय विदीर्ण होता है कि आज हम लोगों के बीच प्रो० रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' एम० ए० नहीं रहे ! उनका भौतिक शरीर ता० २४ मार्च को पंचतत्त्व में विलीन हो गया !

स्व० शुक्लजी अभी सर्वथा युवावस्था में ही (३९ वर्ष) थे, वे मध्यभारत के साहित्य-सेवकों में अपने ढंग के अद्वितीय थे । वे गम्भीर-विचारक, दार्शनिक, निरन्तर अध्ययन-शील, साहित्य शास्त्र के ठोस पण्डित, दूरदर्शी, निष्पक्ष आलोचक, निस्पृही, सफल वक्ता, यशस्वी सम्पादक और

सर्वतोपरि 'कवि' थे। शुक्लजी की प्रतिभा चतुर्मुखी थी। श्री प्रो० माचवेजी का यह कथन उचित है कि 'वे श्री माखनलालजी चतुर्वेदी के बाद साहित्यिक विषय के सरस वक्ता थे।' दैनिक 'लोकमत' (जबलपुर) के वे यशःप्राप्त सम्पादक थे, उत्कृष्ट निबन्ध-लेखक थे। एकांकी नाटक भी उन्होंने लिखे और सफलता के साथ। कवितायें बहुत लिखीं, पर वे अपने को प्रकाशन में नहीं आने देते थे।

शुक्लजी मध्यभारत ही के नहीं, समस्त हिन्दी-साहित्य के प्रथम श्रेणी के साहित्यिक-विद्वान् एवं कवि थे। शुक्लजी के अस्तित्व से मध्यभारत गौरवान्वित था, और आज उन्हें खोकर अमूल्य निधि से वंचित हो गया है।"

१० वर्षों से उनके आत्मीय बने हुए बन्धुवर श्री सूर्यनारायणजी व्यास द्वारा भेजे गये एक बहुत सुन्दर संस्मरणात्मक लेख में से चुनी हुई इन पंक्तियों द्वारा हम स्व० 'हृदय'जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें चिर-शान्ति प्रदान करे।

अमर भेंट

स्वनामधन्य श्री मैथिलीशरण गुप्त भारत-राष्ट्र के प्रतिनिधि-कवि हैं। उस दिन भारत-सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। आज भी वह बन्दी हैं। भारत की भारती के गायक, राष्ट्र की संस्कृति के प्राण-प्रतिष्ठाता कवि-वरेण्य गुप्तजी का राष्ट्र-जननी की इस पुण्य पूजा में अपने जीवन के संचित तप-त्याग का अर्घ्य चढ़ाना तो प्रत्येक भारतवासी के लिए परम गर्व और गौरव का विषय है, पर उस राजतंत्र को यह क्या हो गया है कि जो 'भारत-रक्षा' के नाम पर भारत और उसकी भारती के रक्षक को सीखचों में रखना चाहता है?

राष्ट्र-भारत के इस मुक्तियज्ञ में राष्ट्र-कवि के रूप में हिन्दी की यह भेंट युग-युग तक इतिहास में अमर रहनेवाली है।

मु०

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

श्रीयुत. एम. के. आचार्य, एम. एल. ए. (मद्रास)—"आपका दंत-मंजन तो मैंने **अपनी दंत-पीड़ा के लिए गत पाँच वर्षों में व्यवहृत देशी-विदेशी सब मंजनों से श्रेष्ठतर पाया।** मंजन दाँतों, मसूडों और तालु के घावों पर जादू का-सा असर दिखलाता है।"

श्री. एम० एस० बरदाचार्य एडवोकेट (मद्रास हाईकोर्ट)—"दो वर्ष पूर्व मुझे दंत-पीड़ा हुई थी जो बढ़ती ही गयी और मसूडों में घाव हो गये; **परन्तु आपके मंजन से अब मेरेमसूड़े स्वस्थ हैं और दाँत में पीड़ा नहीं होती।** मैं तो कहूँगा कि मेरे व्यवहृत दंत-मंजनों में सर्व-श्रेष्ठ आपका दंतामृत ही है।"

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

आपके विज्ञापन का खर्च !

आधा से भी कम किया जा सकता है,

हमारे चारों हिन्दी टाइम-टेबुलों में विज्ञापन छपाकर ।

टाइमटेबुल रेलवे बोर्ड गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, तथा भारतीय रेलवेज़ के सहयोगसे प्रकाशित होते हैं :-

समस्त भारत खास करके महाराष्ट्र प्रान्त, गुजरात, काठियावाड़, सिन्ध, राजपूताना, पंजाब, मध्यप्रान्त, मध्यभारत, यू० पी०, बिहार, उडीसा एव बंगाल के लिए—

१. अखिल भारतीय रेलवे हिन्दी टाइम टेबुल तथा गाइड—मूल्य ।।।)—इसमें भारतवर्ष की रेलवे लाइनों के टाइमिंग्स देने के साथ ही किराये के तीन प्रकार के चार्ट—रेट, मील हिसाब से तथा एक स्थान से दूसरे स्थान जोड़ा हुआ—धर्मशाला-सूची, तीर्थ एवं दर्शनीय-स्थानों परिचय, स्वास्थ्यवर्धक स्थानों का विवरण, पर्व तथा मेले आदि कितनी ही आवश्यक बातें दी हैं। साथ में एक बहुत ही सुन्दर नक़शा दिया गया है, जिसमें हर एक लाइन अलग-अलग चिन्हों दिखलाई गई है, बड़ी, छोटी एवं सरकारी लाइनों का भी डिस्टिंक्शन किया गया है ।

गुजरात, महाराष्ट्र प्रान्त, गुजरात, कठियावाड़, राजपूताना, मध्यभारत के साथ ही मध्यप्रान्त तथा यू० पी० के पश्चिमीय हिस्से के लिए—

२. जी० आई० पी०, बी० बी० सी० आई०, गुजरात, काठियावाड़ तथा राजपूता टाइम -मूल्य ≡)—इसमें जी० आई० पी०, बी० बी० सी० आई० बार्सी लाइट, गायकवाड़ बड़ौदा मोरवी, गोंडल, भावनगर स्टेट, जूनागढ़ स्टेट, जामनगर, ऐंड द्वारका, कच्छस्टेट, जोधपुर, स्टेट, जयपुर स्टेट, उदयगढ़ चित्तोड़गढ़ धोलपुर स्टेट, ग्वालियर लाइट रेलवे का पूरा-पूरा ई० आई० आर०, बी० एन०, आर०, एन० डबल्यू आर० एम० एस० एम० तथा निजाम्स रेलवे के संक्षिप्त टाइम-टेबुल देने के साथ धर्मशाला-सूची तीर्थ एवं दर्शनीय स्थानों का परिचय, तथा लगेज का चार्ट भी है ।

यू० पी० बिहार, दिल्ली प्रान्त तथा पूर्वी बंगाल के लिए—

३. ई० आई० आर० टाइम-टेबुल—मूल्य =)—इसमें ई० आई० आर०, आरासहसराम, यारपुर-बिहार, फतुहा-इस्लामपुर, डेहरी रोहतास, शाहदरा-सहारनपुर तथा बर्दवान-कटवा-पुर रेलवे का पूरा तथा बी० एन० डबल्यू०, जी० आई० पी०, आर० के० आर०, बी० एन० व बी० बी० सी० आई० का संक्षिप्त टाइम-टेबुल देने के साथ ही धर्मशाला सूची तीर्थ एवं स्थानों का परिचय, पार्सल व लगेज के रेट, किराये का चार्ट आदि आवश्यकीय बातें दी हैं। रेलवे लाइन का नक़शा भी दिया गया है ।

पूर्वी राजपूताना, गुजरात, तथा मध्यभारत, यू० पी० वम्बई प्रान्त के कुछ हिस्से के लिए

४. बी० बी० सी० आई० टाइम-टेबुल—मूल्य -)—इसमें बी० बी० सी० आई० जयपूर स्टेट, पुर-चित्तोड़गढ़, गायकवाड़-बड़ौदा स्टेट रेलवे का पूरा टाइम-टेबुल देनें के साथ ही पार्सल-लगेज, धर्मशाला-सूची तथा तीर्थ एवं दर्शनीय स्थानों का संक्षिप्त परिचय भी है ।

भारतवर्ष के प्रायः सभी रेलवे स्टेशनों के व्हीलर के स्टाल पर मिलता है । कुछ शहरों या कस्बों में लोकल एजेण्टों के पास भी मिलता है ।

टाइम-टेबुल में विज्ञापन छपाने का अर्थ है—कम-से-कम खर्च में अधिक प्रचार

हमारा तीर्थयात्रा विभाग—रातभर सोते हुए आराम से तीर्थयात्रा कम खर्च में करने के लिए हमसे पूछिए ।

पत्र व्यवहार का पता— **रेलवे हिन्दी टाइम-टेबुल आफिस बनारस सिटी**

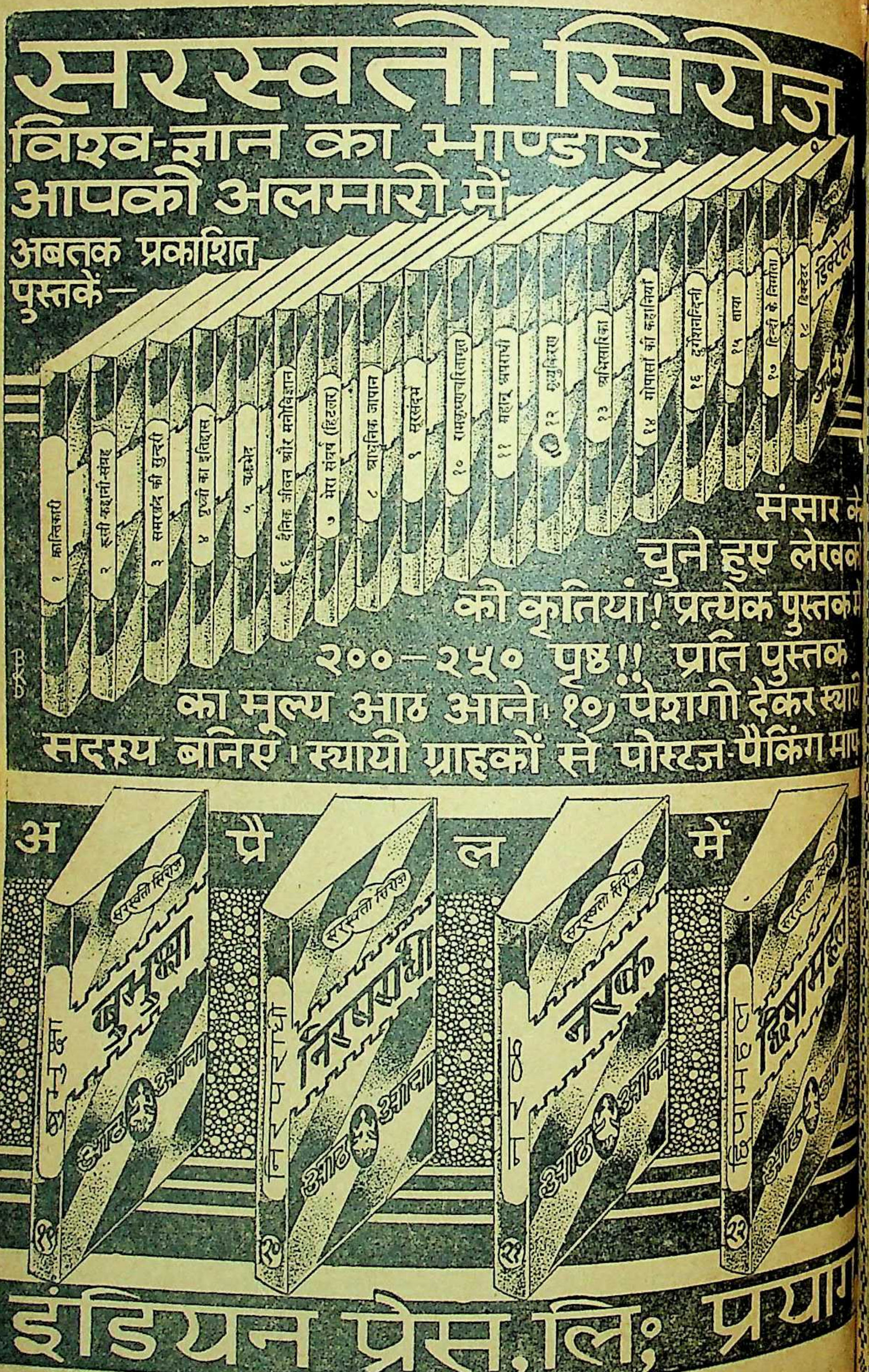
१ क्रान्तिकारी
२ रूसी कहानी-संग्रह
३ समरकंद की सुन्दरी
४ पृथ्वी का इतिहास
५ चक्रभेद
६ दैनिक जीवन और मनोविज्ञान
७ मेरा संघर्ष (हिटलर)
८ आधुनिक जापान
१० रामकृष्णचरितामृत
११ महान् आपदायें
१२ मृत्युकिरण
१३ अभिसारिका
१४ मोपासाँ की कहानियाँ
दुर्गेशनन्दिनी
माया
१७ हिन्दी के निर्माता
१८ डिक्टेटर
डिक्टेटर
सरस्वती सिरीज़
बुभुक्षा
निरपराधी
नरक
शीशमहल
आठ आना
१९
२०
२१
२२

सरस्वती-सिरीज़

विश्व-ज्ञान का भाण्डार आपकी अलमारी में

अबतक प्रकाशित पुस्तकें—

संसार के चुने हुए लेखकों की कृतियां! प्रत्येक पुस्तक में २००–२५० पृष्ठ!! प्रति पुस्तक का मूल्य आठ आने। १०) पेशगी देकर स्थायी सदस्य बनिए। स्थायी ग्राहकों से पोस्टज-पैकिंग माफ़

अ प्रै ल में

इंडियन प्रेस, लि॰ प्रयाग

हिन्दी पुस्तकों के प्रसिद्ध प्रकाशक

लहरी बुकडिपो

बनारस सिटी

आज पचास वर्षों से हिन्दी में पुस्तकें निकालकर हिन्दीभाषी जनता का मनोरंजन और उसमें ज्ञान की वृद्धि कर रहे हैं। हिन्दी में हमारी प्रकाशित पुस्तकें जितनी अधिक संख्या में छपी और बिकी हैं उतनी दूसरे किसी प्रकाशक की नहीं बिकी हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री रचित चन्द्रकान्ता और भूतनाथ आदि उपन्यासों के सैंकड़ों संस्करण हो चुके हैं और लाखों की संख्या में हिन्दी-प्रेमी पाठक उन्हें पढ़ चुके हैं। हमारे प्रकाशित सैंकड़ों उपन्यासों में से कुछ ये हैं—

चन्द्रकान्ता २८ भाग	९)	भूतनाथ २१ भाग	१०॥)
रोहतास मठ दो भाग	१॥)	चोर	१॥)
मीठी भूल	१)	सुफेद शैतान ४ भाग	६)
मृत्युकिरण ४ भाग	६॥)	लाल पञ्जा	२)
विचित्र-विधान	२।)	प्रवीन पथिक	१॥)
भयानक भ्रमण	२।)	कलंक कालिमा	१)
सुवर्ण-रेखा	२)	स्वर्ग पुरी	१॥)
कुसुमलता	१॥)	नरेन्द्र मोहनी	१।)
किसान की बेटी	१)	महात्मा	१)
नर-पिशाच	३॥)	टार्जन	३)

सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये

लहरी बुक डिपो, बनारस सिटी

लोकतन्त्र के लिए शिक्षा ?

※ आज के इस जलते हुए सवाल का उत्तर आपके पास क्या है ?

※ विश्व में युद्ध, कलह और अशान्ति क्यों है ? इसका मूल कारण आप जानते हैं ?

※ आपका लाडला इतना दुखी और अव्यवस्थित क्यों है ? वह स्कूल जाना क्यों पसन्द नहीं करता ? घर को सर पर क्यों उठाये हुए है ? इन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर आप जानते हैं ?

※ माता-पिता के कर्त्तव्य क्या है ? सच्चा शिक्षक और स्कूल क्या है, आप जानते हैं ? श्री हरिपद मैति कलकत्ता विश्व-विद्यालय के चित्त विश्लेषण के अभ्यासी विद्वान् हैं। वे बालकों के कठिन प्रश्नों का उत्तर देते हैं ! पर यह सब महत्वपूर्ण ज्ञान आपको—

बालहित

में प्रतिमास मिल जायेगा ।

वार्षिक २) नमूना ≡) उदयपुर (मेवाड़)

हिन्दी की सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

वीणा

सम्पादक

श्रीकालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'

प्रकाशक

श्रीमध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति,

डॉक्टर बाबूराम सक्सेना, एम. ए. डी. लिट्, भू. पू. प्रधान-मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग:—

" 'वीणा' हिन्दी की उच्च कोटि की पत्रिका है और मातृ-भाषा और साहित्य की प्रचुर सेवा कर रही है।"

वार्षिक मूल्य ४) नमूने का अंक फ्री नहीं भेजा जाता एक प्रति।≡)

व्यवस्थापक—'वीणा' इन्दौर

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता ।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५०० रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,००० ,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५० ,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५०० ,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५० ,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८ ,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५० ,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद दक्षिण, अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना ।

आरोग्य शास्त्र का प्रतिनिधि पत्र

जीवन सखा

वास्तव में जीवन-सखा है

यह एक नहीं अनेकों की राय है : आप भी पढ़कर यही कहेंगे।

'आज' काशी

"शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य के जबर्दस्त……हामी 'जीवन-सखा' ने ५ वर्ष के भीतर ही अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। विशेषांक में…कही गई बातों के अनुसार जीवन व्यतीत कर हम अपार लाभ उठा सकते है।"

'सरस्वती' प्रयाग

"प्रत्येक साध्य तथा असाध्य मर्ज़ का निवारण प्रकृति-द्वारा हो सकता है, यही इस पत्र का सन्देश है।"

'जीवन-साहित्य' नई दिल्ली

"जीवन-सखा के अंकों और विशेषांक को देखकर यह कहना होगा कि इसका नाम विलकुल सार्थक है। आरोग्य-शास्त्र का सुन्दर मानसिक होने से यह वास्तव में जीवन-सखा ही है। विशेषांक में प्राकृतिक-चिकित्सा, इन्द्रिय निग्रह की समस्या, प्रकृति बनाम दावा, अधार निदान, भाजी और फल, भोजन और धूप, योग और स्वास्थ्य, विटामिन की कहानी, विद्युत-चिकित्सा आदि लेखों से पता चलता है कि सम्पादक स्वास्थ्य के विषय में सब विचार-धाराओं के लेख जुटाने में कितने सतर्क हैं। कहना नहीं होगा कि एक-एक लेख इसका पाठनीय और आचरणीय है।"

'हिन्दुस्तान' दिल्ली

"जीवन-सखा……के विशेषांक में स्वास्थ्य सम्बन्धी पारायण करने योग्य भरपूर सामग्री दी गई है। लेख पढ़ने, मनन करने और आचरण करने योग्य हैं।"

'नवशक्ति' पटना

"यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रिकाओं में……जीवन-सखा का सर्वोच्च स्थान है। छपाई-सफ़ाई तो आदर्श है।"

'हल' प्रयाग

"……अंक सुपाठ्य और संग्रहणीय है। प्राकृतिक चिकित्सा के छोटे कोष का काम करता है।"

'विशाल-भारत' कलकत्ता

"जीवन-सखा का विशेषांक सब तरह से उपयोगी है।"

'हंस' बनारस

"……हिन्दी में जीवन-सखा अपने ढंग का विशेष पत्र है। विशेषांक…में स्वास्थ्य, व्यायाम, चिकित्सा आदि के समम्बन्ध में प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के विशेषज्ञों अथवा इसमें दिलचस्पी रखनेवालों—जैसे महात्मा गांधी, बरनर मैकफेडन, श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती आदि के पठनीय लेख हैं। हिन्दुस्तान के प्राकृतिक चिकित्सकों के पते देकर एक उपयोगी कार्य किया गया है।"

'Leader', Allahabad

"The Special January number is sumptuously got-up and contains a number of useful informative and thought-provoking articles......well written and require a careful perusal. Needless to say, the highly educative value of the monthly is obvious and commendable and we have no doubt adout its success in the world of journalism."

विशेषांक का मूल्य १) : वार्षिक चन्दा, ३ आज ही भेजकर इसे प्राप्त कीजिए।

बहुत थोड़ी प्रतियाँ रह गई हैं।

मैनेजर—जीवन-सखा कर्यालय, इलाहाबाद

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

फोन नं०
६३२७

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
कूचावाडियान
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषताएँ हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएँ।

(२) अंतर्राष्ट्रीय व अंतर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।

(३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि 'कहानी' सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इंडियन पी० ई० एन—

'...इसमें जो कहानियाँ हैं, वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।...इस विशेषांक की कहानियाँ पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं...यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है...हिन्दी के प्रेमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'...विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। उनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है...'

श्री सुदर्शन—

'...इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है।...मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'...छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है।...'

श्री उषादेवी मित्रा—

'...'कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है—अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना...'

श्री देवराज उपाध्याय—

'कथा-साहित्य संबंधी जितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है...'

श्री उदयशंकर भट्ट—

'...पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा...इस अंक की संपूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई।'

श्री रवीन्द्र

'Cheap Sentimental कहानियों से मुझे बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश हो गई...'

श्री पहाडी—

'...'कहानी' के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेंगीं।'

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल तीन रु० है। एक प्रति का चार आना।

कृपया आज ही ३) मनीआर्डर से भेज दें : पुस्तकालय २॥) भेज सकते हैं।

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट।

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमैन—सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये

भुगतान पूँजी—१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहाँ हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजर:—

८, रॉयल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता

या

बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को।

'हँस-परिवार' योजना सदस्य बनिए

७५) रु० की पुस्तकें २५) रु० में

युग की प्रतिनिधि : क्रांतकारी

उपयोगी : सस्ती

[१] भारतीय-पुस्तक-माला
- (क) कायाकल्प (३ भाग)
- (ख) स्नेह-यज्ञ [१-२-३]

[२] 'हंस' पुस्तकें
- (क) मा [भाग १-२-३]
- (ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग ३]

[३] गल्प-संसार-माला
- १० प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी-संग्रह ।

[४] प्रगतिशील पुस्तकें
- (क) नया हिन्दी-साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

[५] नवसृजन ग्रंथावली
- (क) शोभा : ले० इन्द्र वसावड़ा
- (ख) संजीवनी : ले० 'सोपान'
- (ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] : ले० सोगन

[६] जाग्रत-महिला-साहित्य
- (क) पिकनिक : लेखिका— कमलादेवी चौधरी
- (ख) पिया : लेखिका— उषादेवी मित्रा
- (ग) कौमुदी : लेखिका— शिवरानी देवी

[७] आज की किताब
- (क) कँटीले तार [भाग १-२]
- (ख) जाई-जुई और ९ अन्य पुस्तकें

[८] 'हंस' मासिक १२ अंक

[९] 'कहानी' मासिक के १२ अंक]

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता है । पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवृत्तियों की मात्रा २५ रु० में दें । इसमें हमें आज की मँहगी के ज़माने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी, यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं स्मरण रहे कि अंग्रेज़ी अथवा किसी दूसरी भाषा में मूल पुस्तक का जो मूल्य है, हंस-परिवार योजनान्तर्गत उस अनुदित पुस्तक को हम तिहाई मूल्य में दे रहे हैं । हमने हिसाब लगाकर देखा है कि हम ७५) की पाठ्य-सामग्री २५) में दे रहे हैं । यह संस्था तो सेवा के लिये ही खड़ी है । इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम 'हंस-परिवार' का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे ।

इस मूल्य में निःशुल्क बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठ संख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर २।।) रु० में १००० पृष्ठ मिलते हैं । इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है । यह योजना बेजोड़ है । निस्सन्देह ।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है, इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा ।

[१] १२०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं
के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [२] १२०० पृष्ठों में
संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद । [३] २४००
पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम
कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की
सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं । [४] प्रगतिशील
दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों, कहानियों और कविताओं के ६
संग्रह । १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे ।
[५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का
अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उचित किया गया है । [६]
महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों
और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न । ये आपके परिवार में
पत्नी तथा माँ-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन
प्रदान करेंगे । [७] 'आज की किताब' के अन्तर्गत एक
वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं
का सुझाव रहेगा । अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास
होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे ।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

बिरला जूट मेनुफैक्चरिंग

कम्पनी लिमिटेड के

अत्यन्त सुन्दर, मज़बूत और सस्ते

जूट के बने गलीचे, दरियां और आसन

प्रत्येक साइज़ में सभी हमारी दुकानों पर मिलते हैं

और विशेष रूप में
- १ खन्ना इन्डस्ट्रीज़, बनारस सिटी
- २ जेठमल भोजराज, दार्जिलिंग
- ३ एम. डी. जिन्दल, एन्ड सन्स, दुकान नं० २० मरीना होटल, नई दिल्ली
- ४ नौर्दर्न ट्रेडिंग कम्पनी लाहौर
- ५ नॉवेल्टी स्टोर्स, अमृतसर
- ६ पंजाबी ब्रदर्स, लुधियाना

(सब एजेन्ट)

तथा पंजाब के बड़े-बड़े सभी शहरों में

और

बंगाल स्टोर्स, लिमिटेड

नं० ८ ए. चौरंगी प्लेस (टेलीफोन नं० ३९३३) कलकत्ता

में

भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोहर डिज़ाइन, आपकी इच्छानुसार आपकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

टेलीफोन नं० ५६५

बिरला जूट मेनुफ़ैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड

नं० ८ रायल एक्सचेञ्ज प्लेस, कलकत्ता

टेलीग्राम 'जूट वीवर'

बालोपयोगी इतिहास-माला

उथल-पुथल के इस ज़माने में अपने देश के भावी नागरिकों को संसार के उलट-फेर से परिचित कराने के लिये **'बालोपयोगी संसार का संक्षिप्त इतिहास'** ३७ खंडों में निकालने की योजना है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से लिखी गयी हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस और उलझनदार न समझें। कहानी के ढंग लिखी पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार **मूल्य प्रत्येक का १)**

प्रकाशित—**वैदिक भारत, पौराणिक भारत रामायण, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश और बौद्ध भारत।**

प्रेस में—**तुर्की भारत, मुगल भारत, राजस्थान, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) सिख जाति और महाराष्ट्र विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मँगाइए।**

बिहार, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बड़ौदा
में शिक्षा-विभाग स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक पठन-सामग्री देनेवाला अपने ढंग का अकेला सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराना है।

प्रेरक कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।-)

अप्रेल का अंक **'उपकथांक'** है।

इस विशेषांक का मूल्य ।।=)

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा	३)
विहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट	५)
विहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,	१॥)
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक	१॥)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	२)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१॥)
जीवन-यात्रा	,, ,,	॥=)
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय	३)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	॥)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट	१)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	॥)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	॥)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।=)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	॥)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	३)
स्टालिन	रामइक़बालसिंह	३)
खिलौना घर	हेनरिक इब्सेन	॥)
मज़दूरों की छाती पर	के० पी० झा	३)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१)
रजकण	,, ,,	॥)
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद	॥)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१॥)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	॥)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	॥)
जीवन-ज्योति	प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'	३)
विमान	गिरधारीलाल शर्मा	१॥)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	।=)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	१॥)

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

'सबकी बोली'

सम्पादक—काका कालेलकर

[यह मासिक पत्रिका हर महीने की १५वीं तारीख को निकलती है।]

अिसमें आहिस्ता आहिस्ता हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की साहित्यिक और भाषा-विषयक बातें प्रकाशित हुआ करेंगी।

अिसका मुख्य अुद्देश्य है:—

हिन्दुस्तान की तमाम भाषाओं का आपस में हार्दिक संगठन करना।

भारतमाताको पहचानके लिये और अुसकी सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त करनेकी लिये जिन बातोंकी ज़रूरत होगी, अुन सभी विषयोंकी चर्चा 'सबकी बोली' में हुआ करेगी।

अिसके 'साहित्य-सत्कार-विभागमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सहयोग व राष्ट्रकी अुन्नति करनेवाले सेवकों की विचारधारा का परिचय तथा अुनके साहित्यकी आलोचना रहा करेगी।

अिसमें अेक खास विशेषता यह होगी—

पारिभाषिक शब्द-चर्चा, कहानी, प्रवास, विशिष्ट व्यक्तियोंके शब्द-चित्र राष्ट्रभाषा-आन्दोलन सम्बन्धी व विद्यार्थियोंके लाभ के नियमित लेख।

वर्धा-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति भी अपनी सभी ज़रूरी सूचनाअें अिसमें प्रकाशित करती है।

ख़ास सूचना:—

राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओंमें बैठनेवाले विद्यार्थी अपनी चालू क्रम-संख्या लिखकर, १ रुपया वार्षिक चन्दा देकर, अेक वर्ष के लिये 'बोली' पा सकते हैं। सर्व-साधारणसे वार्षिक चंदा रु० १-४-० मनीऑर्डरसे ही लिया जायगा। हम वी० पी० नहीं भेजते। पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम और पता साफ़-साफ़ नागरी हर्फों में लिखने की कृपा करें। फुटकर संख्याका तथा पुराने अङ्कका मूल्य दो आना। डाकख़र्च पुरानी संख्याके लिए प्रति अंक)॥। और नये अङ्कके लिये)। अङ्क की क़ीमतके साथ अवश्य आ जाना चाहिये।

पता—व्यवस्थापक,

सबकी बोली, वर्धा

एक प्रकाशित हो चुका है : [परीक्षाङ्क]
और अब दूसरा छप रहा है : [शुक्ल-अङ्क]

दो और भी छपने बाकी हैं

साहित्य-संदेश का साहस

छः महीने में चार विशेषाङ्क

शुक्ल-अङ्क १ मई को प्रकाशित हो रहा है

शुक्ल-अङ्क की रूप-रेखा :—

यह लगभग १२५ पृष्ठ का होगा और नये इलाहाबादी टाइप में सचित्र छपेगा। यह अंक तीन खण्ड में विभाजित है। प्रथम खण्ड में शुक्लजी का जीवन, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का विवेचन, उत्तम संस्मरण और लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिकों के इन्टरव्यू होंगे। इस अंक के लेखकों में सर्वश्री० श्यामसुन्दरदास, श्री अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, सूर्यकान्त निराला, नलिनीमोहन सान्याल, सोहनलाल द्विवेदी, शिवमंगलसिंह 'सुमन' और आचार्य के ज्येष्ठ पुत्र श्री० केशवचन्द्र शुक्ल पी० सी० एस० हैं। दूसरे खण्ड में आचार्य के साहित्यिक कार्य की विभिन्न दिशाओं और उसके द्वारा पड़े हुए हिन्दी पर प्रभाव की विस्तृत आलोचना रहेगी। इस प्रकार के लगभग २० लेख हैं जो हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ समालोचकों द्वारा अधिकार पूर्वक लिखाये गये हैं। कुछ नाम इस प्रकार हैं—

श्री हजारीप्रसाद जी द्विवेदी, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, श्री जैनेन्द्र, श्री शिवपूजनसहाय जी, वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०, श्री सत्येन्द्र जी, प्रो० नगेन्द्रजी, प्रो० रामविलास शर्म्मा, श्री० गुलाबराय एम० ए०, कन्हैयालाल सहल एम० ए०, श्री प्रभाकर माचवे एम० ए०, श्री ललिताप्रसाद शुक्ल एम० ए० आदि।

तीसरा खंड व्यक्तिगत आभार है, उसे पत्रों और लेखों के रूप में दिया जा रहा है।

इन सभी अंकों के दाम लागत के अनुसार फुटकर लेनेवालों को अधिक देने पड़ेंगे। इससे अच्छा यह है कि स्थायी ग्राहक बना जाय और ३) पेशगी भेज दिये जायँ। विद्यार्थी-समाज तो २) में ही वर्ष भर ग्राहक रह सकता है।

साधारण अंक का नमूना मुफ्त मँगाकर देख लीजिए।

पत्र-व्यवहार का पता **साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।**

सस्ता साहित्य मण्डल

[हिन्दी की श्रेष्ठ सार्वजनिक एवं राष्ट्रीय प्रकाशन-संस्था]

कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—दिल्ली :: लखनऊ :: इन्दौर

मई : १९४१

आशीर्वाद

१. **महात्मा गांधी**—"मैं इस सुन्दर सस्ते और उपयोगी हिंदी साहित्य के प्रकाशन के उद्योग का स्वागत करता हूँ। × × मैं कुल खादी भंडारों में इन्हें बिक्री के लिए रखनेकी सिफारिश करता हूँ।"

२. **पण्डित मदनमोहन मालवीय**—"मण्डल ने हिन्दी में उच्च कोटि की सस्ती पुस्तकें निकालकर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। सर्वसाधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।"

३. **डॉ० राजेन्द्रप्रसाद**—"मण्डल ने बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनमें कई पुस्तकें लोकमान्य हो गयी हैं। वे साधारण जनता के के लिए शिक्षाप्रद होती हैं। दाम भी उनका ऐसा होता है कि जनसाधारण उन्हें आसानी से मोल ले सकते हैं। आशा है कि जनता प्रकाशकों का उत्साह इसी प्रकार बढ़ाती जायगी।"

४. **पण्डित जवाहरलाल नेहरू**—"मण्डल बहुत दिनों से हिन्दी-साहित्य में सस्ती और अच्छी किताबों के छापने में और नये विचारों के फैलाने में बहुत अच्छा काम कर रहा है। मेरी भी कई किताबें उन्होंने छापी हैं जिसके लिए मैं उनका मशकूर हूँ। मैं आशा करता हूँ कि वह अपने काम में सफलता पाते जावेंगे।"

५. **आचार्य नरेन्द्रदेव**—"सस्ता साहित्य मण्डल आज १५ वर्षों से हिन्दी-साहित्य की अच्छी सेवा कर रहा है। 'मण्डल' का सदा यह उद्योग रहा है कि अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें पाठकों को सस्ते-से-सस्ते दामों में दी जायँ। 'मण्डल' पुस्तकों के चुनाव में सतर्क रहता है और इस कारण उसके द्वारा जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसका उद्देश्य जनता में सुरुचि उत्पन्न करना है। आशा है कि हिन्दी-संसार 'मण्डल' की सेवाओं का उचित आदर करेगा।"

अपने शहर के प्रधान पुस्तक-विक्रेता

तथा

चर्खासंघ के 'खादीभण्डारों' और 'गांधी आश्रमों' से ये पुस्तकें लीजिए

जीवन-साहित्य

[जीवन और साहित्य का समन्वयकार मासिक-पत्र]

संपादक—हरिभाऊ उपाध्याय

यह क्या है ? कैसा है ? और क्यों है ?

यह इन सम्मतियों से आप जान सकते हैं—

"मानता हूँ यह लोकोपयोगी होगा।" **विनोबा**

"× × आशा हुई कि ऐसा विलक्षण पत्र जीवित रह सकेगा।……" **अमरनाथ झा**

"अस्वाभाविक परिस्थितियों के कारण जीवन से बिदककर भागते हुए साहित्य की जीवन से गँठजोड़ी करने में 'जीवन-साहित्य' सफल होगा।"
पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

"जीवन के पहलुओं पर विचार किया गया है। लेखों से स्पष्ट है कि साहित्य 'सुन्दर' होते हुए 'शिव' भी हो सकता है।" **बाबूराम सकसेना**

"हिन्दी-साहित्य के निर्माण और प्रकाशन की इतनी सुथरी और निष्पक्ष विवेचना मैं किसी अन्य पत्र में नहीं देख सका।" **रामकुमार वर्म्मा**

"अपने पत्र के द्वारा जीवन की जिस व्याख्या को देने का आपका उद्देश्य है, उससे मेरा किसी प्रकार का विरोध नहीं है। मैं आपके पत्र की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।" **सुमित्रानन्दन पन्त**

"मैं इस नये पत्र का हृदय से स्वागत करता हूँ। हिन्दी में विचारपूर्ण साहित्यिक पत्रिका की कमी मैं बहुत दिनों से अनुभव करता आया हूँ।"
(राजकुमार) **रघुवीरसिंह**

"जिस सात्विक दृष्टि को इसने अपनाया है। उसके प्रसार की बहुत आवश्यकता है।"
सियारामशरण गुप्त

"विषय की दृष्टि से अद्भुत है। एक-एक शब्द सजीव।………मेरे लिए तो यह पत्रिका अमृत है।"
श्रीनाथसिंह

"अपने ढंग का हिन्दी-साहित्य में यह अकेला पत्र निकला है, इसमें सन्देह नहीं।" —**'देशदूत'**

" 'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र का प्रकाशन मण्डल की प्रवृत्तियों में एक शुभ वृद्धि है।"
—**'नेशनल हेरल्ड'**

"राष्ट्र के जीवन-निर्माण में कैसा साहित्य वाञ्छनीय है, इसकी रूपरेखा हमें 'जी०सा०' के अंकों में सहज ही देखने को मिल सकेगी।"
—**'साहित्य-संदेश'**

"पत्रिका का उद्देश्य ऐसे साहित्य की सृष्टि करना है, जो जीवनस्पर्शी हो, जीवन के विकास और उसकी पूर्णता का साधक हो।" —**'संघर्ष'**

"ऊँची कोटि और उच्चादर्श के कारण पत्र हिन्दी में अपना विशेष स्थान बना लेगा।"
—**'हिन्दुस्तान टाइम्स'**

"पत्र तेजस्वी और गम्भीर है। × × इसने शीघ्र ही साहित्य-जगत् में अपने लिए सम्माननीय स्थान बना लिया है।" —**'आरती'**

इसमें जीवन की कसौटी पर कसे हुए विशेष अध्ययन, चिन्तन, मनन व अनुभव से युक्त लेख रहते हैं।"
—**'दीपक'**

इसमें 'मण्डल' की तथा दूसरी पुस्तकों के उत्तमोत्तम समाचार रहते हैं।
इसमें छपा विज्ञापन प्रतिमास हज़ारों विचारशील और उपयोगी हाथों में जाता है।

वार्षिक मूल्य २) : : 'मण्डल' के ग्राहकों से १)

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

'मण्डल' के बारे में

भारत का पत्र-संसार क्या सोचता है ?

"'मण्डल'ने हिन्दी पाठकों की निस्सन्देह बड़ी सेवा की है ।" **—यंग इंडिया**

"सस्ता साहित्य मण्डल हिन्दी में सस्ती किताबें प्रकाशित करके हिन्दी-साहित्य की सराहनीय सेवा करने की ख्याति प्राप्त कर चुका है ।" **—नवशक्ति (पटना)**

"रोचक और अच्छे साहित्य को बहुत कम दामों में देकर उसे लोकप्रिय बनाने में सस्ता-साहित्य मण्डल प्रसिद्ध हो चुका है ।" **—माडर्न रिव्यू (कलकत्ता)**

"सस्ता साहित्य मण्डल (नई दिल्ली) हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में ऊँची कोटि के हिन्दी-ग्रंथ कम दामों में सुलभ करने के रूप में सेवा करने के लिए प्रसिद्ध हो चका है ।" **—'हिन्दुस्तान टाइम्स' (दिल्ली)**

"थोड़े दाम में जीवनदायक, राष्ट्रीय साहित्य सुलभ करने के लिए सस्ता साहित्य मण्डल के संचालकगण हमारे बधाई के पात्र हैं । हिन्दी-साहित्य-सेवा में मंडल सदैव गौरवपूर्ण स्थान का अधिकारी है। सस्तेपन तथा उत्कृष्टता के लिए मण्डल प्रसिद्ध है ।" **—सम्मेलन-पत्रिका (प्रयाग)**

"सस्ता साहित्य मण्डल ने अपनी समस्त प्रवृत्तियों से, जिनकी विशेषता एक आदर्श स्थापित करना और कल्याणकारी कार्य करना रही है, यश कमाया है । ऊँचे दर्जे की पुस्तकें प्रकाशित करके उसने हिन्दी की बहुमूल्य सेवा की है । आज जब कि हिन्दी में हानिकर प्रकाशनों की बाढ़ आ रही है, सस्ता साहित्य मण्डल की सेवाओं को देखकर बड़ी राहत मिलती है ।" **—नेशनल हेरल्ड (लखनऊ)**

"पत्र के प्रकाशकों का कार्य गौरवशाली रहा है । सामाजिक चेतना उत्पन्न करने और हमारे पाठकों की कोटि और रुचि को ऊँचा उठाने में उनकी देन अमूल्य रही है ।" **—इंडिपेंडेंट (नागपुर)**

"सस्ता साहित्य मण्डल ने गत १५ वर्षों में स्फूर्तिदायक, मननशील, सस्ता साहित्य हिन्दी-संसार को देकर भारी सेवा की है ।" **—दीपक (अबोहर)**

"सस्ता साहित्य मण्डल गत १५ वरस से हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में संलग्न है । मंडल द्वारा प्रकाशित साहित्य गंभीर एवं उच्च कोटि का है और मण्डल जब भी कोई प्रकाशन करता है, तो उसकी उच्चता में संशय नहीं हो सकता ।" **— हिन्दी मिलाप (लाहौर)**

"सस्ता साहित्य मण्डल की साहित्य-सेवा आज प्रत्येक देशसेवी या साहित्यिक के हृदय में अंकित है। अच्छे से अच्छा, सामयिक एवं उपयोगी साहित्य देने में सस्ता साहित्य मंडल-जैसी शायद ही कोई संस्था हिन्दी की हो, यह निस्संकोच कहा जायगा ।" **—बालक (लहेरियासराय)**

"आज दिल्ली का सस्ता साहित्य मण्डल अपने प्रकाशन के कार्य में सबसे खरा उतर रहा है। सेवा से नवीन विचार-धारा इस मण्डल के प्रकाशनों में मिलती है ।" **—वर्तमान (कानपुर)**

"सस्ता साहित्य मंडल ने लागत मात्र मूल्य पर राष्ट्रीय, ओजपूर्ण, बलप्रद और सुरुचिपूर्ण ग्रन्थ हिन्दी-जगत् की भेंट करके बहुत प्रसिद्धि हासिल कर ली है ।" **—प्रजा-सेवक (जोधपुर)**

"यह स० सा० मण्डल के प्रकाशनों की मुख्य विशेषताओं में से एक है कि मण्डल अपने प्रकाशनों से पैसा नहीं कमाना चाहता बल्कि आम तौर पर हिन्दी भाषी जनता की सच्ची सेवा करना और खास तौर पर हिन्दी-साहित्य की भी वृद्धि करना ही उसका उद्देश्य है ।" **—सर्च लाइट (पटना)**

"सस्ता साहित्य मण्डल हिन्दी प्रकाशन-संसार में अपना सानी नहीं रखता । वह उत्तम ग्रंथों को सस्ते मूल्य पर प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य की एक महान् सेवा कर रहा है ।" **—प्रताप (कानपुर)**

"(दिल्ली का) सस्ता साहित्य मण्डल सर्व-सुलभ राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण के लिए ख्याति प्राप्त कर चुका है । राष्ट्र के उत्थान और पुनर्निर्माण का लक्ष्य अपने सामने रखकर उसने साहित्य के प्रकाशन का कार्य किया है । भारत का निर्माण करने के महान् कार्य में मण्डल अपना हिस्सा सफलता के साथ अदा करने में समर्थ हुआ है ।" **—हिन्दुस्तान (दिल्ली)**

'मण्डल' के नवीन प्रकाशन

जनवरी १९४१ से अप्रैल १९४१ तक

प्रकाशित

इन पुस्तकों की सूचना इसी अंक में ग्राहकों को जारही है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि पुस्त शीघ्र ही मँगा लेने की कृपा करें, क्योंकि कई पुस्तकों की बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं।

१. **लड़खड़ाती दुनिया**—पंडित जवाहरलाल नेहरू के लिखे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति औ समस्या पर लेख। दाम ।|)

२. **सेवाधर्म : सेवामार्ग**—पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल एम. ए. एम. एम. एल. ए की लिखी सेवा के धर्म और सेवा किन मार्गों से की जानी चाहिए, इसपर सुन्दर पुस्तक। दाम १)

३. **दुनिया की शासन-प्रणालियाँ और वर्तमान यूरोपीय युद्ध**। कलतक संसार के प्रधान देशों में किस प्रकार की शासन प्रणालियाँ प्रचलित थीं और आज वे किस प्रकार तहस-नहस हो रही हैं इस सबका इसमें करुण, बीभत्स और ज्ञानप्रद दर्शन मिलेगा। दाम १।)

४. **यूरोपीय युद्ध और भारत (२)**—इसमें वर्तमान यूरोपीय युद्ध और भारत के राजनैति संकट पर महात्माजी के 'हरिजन' में प्रकाशित लेखों में से चुने हुए प्रधान अंश लिये हैं और जवाहरला जी के हाल ही प्रकाशित Parting of the ways का अनुवाद दिया गया है। दाम ।)

५. **देशी नरेशों का दरजा**—महात्माजी के प्रा० सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल के लिखे देशी नरेशों के दरजे और उनके अधिकार तथा अंग्रेज़ों के साथ हुई संधियों के बारे में अध्ययन और गवेषणापू लेखों का यह संग्रह है। इसकी भूमिका महात्मा गांधी ने लिखी है। दाम ।)

६. **डायरी के पन्ने**—श्री घनश्यामदास बिड़ला की 'बापू' के बाद की मौलिक और चमत्कारपूर्ण पुस्तक। दूसरी गोलमेज़ परिषद् में गांधीजी के साथ के तथा परिषद् के संस्मरण। नया सस्ता संस्करण। दाम ।।।) १)

७. **बिखरे विचार**—श्री घनश्यामदासजी के समय-समय पर लिखे और पत्र-पत्रिकाओं में छपे सुन्दर और विचारपूर्ण लेखों का संग्रह। दाम १।।) २)

८. **प्रलय-वीणा**—श्री सुधीन्द्र एम. ए., साहित्यरत्न की नवीन और भावपूर्ण युगसंदेश-वाहिनी कविताओं का संग्रह। दाम १)

९. **सोने की माया**—श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला का लिखा रुपये के चलन और विनिमय को समझानेवाला रोचक रूपक। दाम ~)

१०. **एक सत्यवीर की कथा**—महात्मा गांधी का लिखा यूनान के सुविख्यात महात्म सुकरात के मुक़दमे और उनकी सफाई का वर्णन। दाम ~)

इनमें से कुछ पुस्तकें इस महीने की ७ ता० तक तैयार होंगी। अतः इनका ७ ता के बाद ही आर्डर देने की कृपा करें।

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

जीवन साहित्य

: अंक ११

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

जून : १९४१

पुस्तकालय

१२-६-४१
पुस्तकालय

हमारा कर्तव्य

कायर न तो कभी शान्ति स्थापित कर सकते हैं और न स्वतन्त्रता ही प्राप्त कर सकते हैं। कांग्रेसियों को चाहिए कि वे साधारण जनता के हृदय से कायरता दूर भगा दें और उन्हें बतावें कि वे पूरी ताक़त लगाकर खतरों से आत्म-रक्षा करें। इस कार्य के लिए निर्भीकता और शूरता की जरूरत है। अपने पड़ौसियों के हृदय में निर्भीकता का भाव भरना प्रत्येक आदमी का परम कर्त्तव्य है।

गुण्डों से लड़ने के लिए स्वयं गुण्डा बन जाना कैसे उचित हो सकता है? कांग्रेस-जन किसी से घृणा नहीं कर सकता, अतः वह हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग और अन्य संस्थाओं के सदस्यों से मिलने जा सकता है और इस तरह शान्ति कायम करने का प्रयत्न कर सकता है।

गुण्डों का सामना करने के लिए दो ही तरीके हैं। या तो हमले का बदला हमले से लिया जाय अथवा यह कि हमले का सामना त्याग, सहिष्णुता और अहिंसा से किया जाय। पशु हिंसा का सामना हिंसा से करता है। फिर आदमी दंगों के डर क्यों भागे? आप साम्प्रदायिक एकता करने के लिए मरने को तैयार रहिए।

—महात्मा गांधी—

सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

—पुस्तक विक्रेताओं को सूचना—

विषय-सूची

१. प्रगति-गीत (कविता)— ४४५
[श्री सोहनलाल द्विवेदी एम. ए.]
२. प्रगतिशील साहित्य— ४४६
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
३. गांधीवाद के कवि : श्री सोहनलाल द्विवेदी—[श्री सुमित्रानन्दन पन्त] ४५०
४. राष्ट्रीयता और साहित्य— ४५३
[स्वर्गीय श्री योगेश्वरसिंह एम. ए.]
५. निजी पुस्तकालय— ४५५
[श्री कुँवरकिशोर सेठ, बी. ए. एल. एल. बी.]
६. भाषाओं का वंशनिर्णय— ४५७
[श्री राममूर्ति मेहरोत्रा, एम. ए.]
७. सुराज्य का एक आदर्श चित्र— ४६१
[श्री सूर्यनारायण चौधरी]
८. भाव : गुण : बल— ४६२
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
९. कवि कौन ? [श्री कामेश्वर शर्मा]
१०. सौष्ठव-पूजा— ४६७
[श्री प्रभाकर माचवे एम. ए.]
११. युद्ध का अर्थ—
[महात्मा रस्किन : अनु०—श्री रामनारायण विजयवर्गीय, बी. ए. एल-एल बी.
१२. प्रस्तुत प्रश्न—
साहित्यिक क्या करें ? [श्री हरचरण दास लूँबा,] 'उलझन' का एक हल [श्री अशोक बी. ए०, विशारद] आज की कविता [श्री उदयशंकर भट्ट] 'आत्मकथा' और हिन्दी अनुवाद [श्री बोधव्यास 'मालव्य']
१३. कसौटी पर—
'अग्निगान', 'तकली', 'समाजवाद', 'क्रान्ति और कांग्रेस', 'युगवाणी', 'भाभी के पत्र',
१४. समालोचनार्थ प्राप्त
१५. कृष्णमन्दिर में
१६. क्या और कैसे ? (सम्पादकीय)
क़ुरबानी का असर; दुनिया को नहीं अपने को; प्रतिभाशाली देशभक्त अच्छी योजना; दुःख की बात;

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और ख़ास करके
हिन्दी पुस्तकों की छपाई
का काम
फेडरल ट्रेड प्रेस
नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७
में
बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है
एक बार परीक्षा कर देखें
यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था
'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें
हमारे यहाँ छपती हैं।

'मंडल' की पुस्तकों का स्टाक / आर्डर

नाम
स्थान
ता०

दर	पुस्तक का नाम	संख्या	कुल मूल्य	दर	पुस्तक का नाम	संख्या	कुल मूल्य	दर	पुस्तक का नाम	संख्या	कुल मूल्य
।=)	दिव्य जीवन			१)	भाई के पत्र			॥)	हमारे गाँव और किसान		
॥=)	जीवन साहित्य–१			॥।)	इंगलैण्ड में महात्माजी			२)	अभिनन्दन ग्रंथ		
॥=)	,, ,, २			१॥।)	स्त्री-समस्या			१॥)	,, ,,		
॥।)	तमिल वेद			।=)	चित्रपट			१)	हिन्दुस्तान की समस्यायें		
॥।=)	व्यसन और व्यभिचार			॥।)	रोटी का सवाल			॥)	जीवन-संदेश		
१)	स्त्री-रत्न–१			।=)	दैवी सम्पद्			२)	समन्वय		
१)	,, २			॥।)	जीवन सूत्र			॥।)	समाजवाद : पूँजीवाद		
१)	,, ३			॥=)	हमारा कलंक			॥)	मेरी मुक्ति की कहानी		
॥।=)	ब्रह्मचर्य विज्ञान			॥)	बुद्बुद्			१॥)	खादी-मीमांसा		
॥।=)	यूरोप का इतिहास–१			१॥)	संघर्ष या सहयोग ?			२)	बापू (हाथ-कागज सजिल्द)		
॥-)	,, ,, २			॥।)	गांधी विचार दोहन			१॥)	,, (एंटिक सजिल्द)		
॥-)	,, ,, ३			१॥)	हमारे राष्ट्रनिर्माता			१)	,, ,,		
[illegible]	समाज विज्ञान			॥)	आगे बढ़ो			॥।)	,, सादा		
[illegible]	खद्दर का सम्पत्तिशास्त्र			॥=)	बुद्धवाणी			॥=)	,, (नया संस्करण)		
[illegible]	द० अ० का सत्याग्रह–१			२॥)	कांग्रेस का इतिहास			॥)	विनोबा और उनके विचार		
[illegible]	,, ,, १			१)	हमारे राष्ट्रपति			॥)	लड़खड़ाती दुनिया		
[illegible]	अनीति की राह पर			३)	मेरी कहानी			१)	सेवाधर्म : सेवामार्ग		
[illegible]	कन्या शिक्षा			४)	झलक (पहला भाग)			॥।)	डायरी के पन्ने		
[illegible]	कर्मयोग			४)	,, (दूसरा भाग)			१॥)	,, (सजिल्द)		
[illegible]	कलवार की करतूत			॥)	हमारी पुत्रियाँ कैसी हों ?				३० दिन मालवीयजी के साथ		
[illegible]	व्यावहारिक सभ्यता			॥।)	नया शासन विधान प्रा. स्व.			१॥)	दुनिया की शासन प्रणालियाँ		
[illegible]	अंधेरे में उजाला			॥)	गाँवों की कहानी			॥)	युद्ध और अहिंसा		
[illegible]	स्त्री और पुरुष			॥)	महाभारत के पात्र–१				**नवजीवन माला**		
[illegible]	सफ़ाई			१)	गाँवों का सुधार और संगठन			-)	गीता-बोध		
[illegible]	क्या करें ?–१			॥)	सन्तवाणी			-)	मंगल प्रभात		
॥=)	,, २			॥।)	विनाश या इलाज			।)	अनासक्ति योग स० जि०		
।)	आत्मोपदेश			॥)	महाभारत के पात्र–२			≡)	,, श्लोक सहित		
१।)	श्रीरामचरित्र			॥)	अंग्रेज़ी राज में हमारी दशा			=)	,, सादी		
।=)	शिवाजी की योग्यता			॥)	लोक-जीवन			-)	सर्वोदय		
॥)	तरंगित हृदय			१॥)	गीता-मंथन			-)	नवयुवकों से दो बातें		
।=)	दुखी दुनिया			॥)	राजनीति-प्रवेशिका			≡)	हिन्द-स्वराज		
॥)	जिन्दा लाश			॥)	अधिकार और कर्तव्य			=)	किसानों का सवाल		
१॥)	आत्मकथा (दोनो खंड)			॥।)	गांधीवाद-समाजवाद			=)	ग्राम-सेवा		
१)	,, (संक्षिप्त)			॥)	स्वदेशी-ग्रामोद्योग			≡)	गाँवों का आर्थिक सवाल		
॥)	,, (संक्षित्त)			॥)	सुगम चिकित्सा			=)	राष्ट्रीय गायन		
१॥)	जीवन विकास			॥)	प्रेम में भगवान			-)॥	खादी का महत्त्व		
।=)	फाँसी			।=)	महात्मा गांधी			≡)	जब अंग्रेज नहीं आये थे		
२॥)	मराठों का उत्थान पतन			॥)	ब्रह्मचर्य			=)	सोने की माया		

-) [illegible] की कहानियाँ (१)
=) ,, ,, (२)
=) कथा-कहानी
=) शिवाजी-चरित्र
=) देशप्रेम की कहानियाँ

सामयिक साहित्य माला

।=) कांग्रेस-इतिहास 'परिशिष्ट'
=) दुनिया का रंगमंच
=) हम कहाँ हैं ?
।) युद्ध-संकट और भारत
≡) सत्याग्रह क्यों,
कब और कैसे ?
।) राष्ट्रीय-पंचायत
।) युद्ध-संकट और भारत–२

विविध प्रकाशन

।) मोतीलाल नेहरू
=) जवाहरलाल नेहरू
[illegible] सप्त सरिता
[illegible] चारा-दाना
[illegible] पशुओं का इलाज

सोल एजेंसी की पुस्तकें

[illegible] लोपामुद्रा
[illegible] रोटी का राग
१॥) फ्रांस की राज्यक्रान्ति
[illegible] गांधीवाद की रूपरेखा
[illegible] पिता के पत्र पुत्री के नाम
१॥) बिखरे विचार
[illegible] ,, ,,
[illegible] प्रलय-वीणा

प्रचारित पुस्तकें

१।) योग के चमत्कार
।) मेरा देश
।॥) आर्थिक संगठन
॥) रूपान्तर
॥) अनोखा बलिदान
१॥) Bleedind Wound

हस्ताक्षर……………………

सस्ता साहित्य मण्डल

[हिन्दी की श्रेष्ठ राष्ट्रीय प्रकाशन-संस्था]

खायें
ल्ली, लखनऊ, इन्दौर

कनॉट सर्कस; नईदिल्ली

५ जून, १९४१

पुस्तकालयों के लिए ख़ास रियायतें

महोदय,

आप एक पुस्तकालय के व्यवस्थापक या मंत्री हैं। आपको अपने पाठकों के लिए हमेशा च्छी और उपयोगी पुस्तकों की ज़रूरत रहती होगी। आपके पाठक हमेशा ही दिलचस्प पुस्तकें ढ़ना चाहते होंगे—कुछ गंभीर ठोस और मन को ऊँचा उठानेवाला तथा दिल में उत्साह और उमंगें रनेवाला साहित्य भी माँगते होंगे! ऐसा साहित्य आप कहाँ खोजते हैं? ५०–६० प्रतिशत कमीशन ने वाले हॉकरों और एजेण्टों के पास? निश्चयपूर्वक वे ऊँचे दरजे का अच्छा साहित्य नहीं दे पाते हैं। क्योंकि उनकी पहुँच भी नहीं होती और वह उनको इतने ज्यादा कमीशन में पुसाता भी नहीं। सके लिए आपको प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेता या ख़ास उद्देश्य से कार्य करनेवाली किसी प्रकाशन-स्था के पास जाना पड़ेगा।

ऐसी संस्थाओं तथा पुस्तक-विक्रेताओं में 'सस्ता साहित्य मण्डल को आप प्रथम स्थान पर सकते हैं। उत्तर तथा मध्य भारत के तीन प्रधान नगरों में उसकी शाखायें हैं; २–३ शाखायें र खोलने का प्रयत्न चल रहा है। उत्तर तथा मध्य भारत के चर्खा-संघ के कोई ७५ खादी-भण्डारों 'मण्डल' की पुस्तकें मिलती हैं। 'मण्डल' की दुकानों पर उत्तम और चुना हुआ सब प्रकार का साहित्य ता है। 'मण्डल' से अपने पाठकों को नियमित उत्तम साहित्य और विचारों की जानकारी देने के ए 'जीवन साहित्य' नामक यह पत्र भी निकाला जा रहा है। हम इस पत्र का नमूना और 'मण्डल' चीपत्र आपके लिए भेजते हैं। साथ में एक आर्डर कार्ड भी है। इसे आप भरकर भेज देने पा करें। आपमें से बहुतसे तो शायद मण्डल के ग्राहक हों भी। वे तो पुस्तकें मँगावेंगे ही। जो नहीं हैं उनके लिए हम एक ख़ास रिआयत यह करनो चाहते हैं कि एकमुश्त १०) की कें 'मण्डल' से ख़रीद लेने पर उनको 'मण्डल' का एक वर्ष तक का स्थायी ग्राहक बना या जायगा, तथा 'जीवन-साहित्य' उन्हें एक वर्ष तक मुफ्त में दिया जायेगा। साथ का ड भरकर भेज देने की कृपा करें—

भवदीय
मार्तण्ड उपाध्याय
मन्त्री

सस्ता साहित्य मण्डल

[हिन्दी की श्रेष्ठ सार्वजनिक एवं राष्ट्रीय प्रकाशन-संस्था]
कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—दिल्ली :: लखनऊ :: इन्दौर
जून : १६४१

आशीर्वचन

१. **महात्मा गांधी**—"मैं इस सुन्दर सस्ते और उपयोगी हिन्दी साहित्य के प्रकाशन के उद्योग का स्वागत करता हूँ। × × मैं कुल खादी भंडारों में इन्हें बिक्री के लिए रखनेकी सिफारिश करता हूँ।"

२. **पण्डित मदनमोहन मालवीय**—"मण्डल ने हिन्दी में उच्च कोटि की सस्ती पुस्तकें निकालकर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। सर्व-साधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।"

३. **डॉ० राजेन्द्रप्रसाद**—"मण्डल ने बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनमें कई पुस्तकें लोकमान्य हो गयी हैं। वे साधारण जनता के के लिए शिक्षाप्रद होती हैं। दाम भी उनका ऐसा होता है कि जन-साधारण उन्हें आसानी से मोल ले सकते हैं। आशा है कि जनता प्रकाशकों का उत्साह इसी प्रकार बढ़ाती जायगी।"

४. **पण्डित जवाहरलाल नेहरू**—"मण्डल बहुत दिनों से हिन्दी-साहित्य में सस्ती और अच्छी किताबों के छापने में और नये विचारों के फैलाने में बहुत अच्छा काम कर रहा है। मेरी भी कई किताबें उन्होंने छापी हैं जिसके लिए मैं उनका मशकूर हूँ। मैं आशा करता हूँ कि वह अपने काम में सफलता पाते जावेंगे।"

५. **आचार्य नरेन्द्रदेव**—"सस्ता साहित्य मण्डल आज १५ वर्षों से हिन्दी-साहित्य की अच्छी सेवा कर रहा है। 'मण्डल' का सदा यह उद्योग रहा है कि अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें पाठकों को सस्ते-से-सस्ते दामों में दी जायँ। 'मण्डल' पुस्तकों के चुनाव में सतर्क रहता है और इस कारण उसके द्वारा जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसका उद्देश्य जनता में सुरुचि उत्पन्न करना है। आशा है कि हिन्दी-संसार 'मण्डल' की सेवाओं का उचित आदर करेगा।"

अपने शहर के प्रधान पुस्तक-विक्रेता

तथा

संघ के 'खादीभण्डारों' और 'गांधी आश्रमों' से ये पुस्तकें लीजिए

'मण्डल' के बारे में

भारत का पत्र-संसार क्या सोचता है ?

" 'मण्डल'ने हिन्दी पाठकों की निस्सन्देह बड़ी सेवा की है ।"

—यंग इंडिया

"सस्ता साहित्य मण्डल हिन्दी में सस्ती किताबें प्रकाशित करके हिन्दी-साहित्य की सराहनीय सेवा करने की ख्याति प्राप्त कर चुका है ।"

—नवशक्ति (पटना)

"रोचक और अच्छे साहित्य को बहुत कम दामों में देकर उसे लोकप्रिय बनाने में सस्ता-साहित्य मण्डल प्रसिद्ध हो चुका है ।"

—माडर्न रिव्यू (कलकत्ता)

"सस्ता साहित्य मण्डल (नई दिल्ली) हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में ऊँची कोटि के हिन्दी-ग्रंथ कम दामों में सुलभ करने के रूप में सेवा करने के लिए प्रसिद्ध हो चका है ।"—**'हिन्दुस्तान टाइम्स' (दिल्ली)**

" थोड़े दाम में जीवनदायक, राष्ट्रीय साहित्य सुलभ करने के लिए सस्ता साहित्य मण्डल के संचालकगण हमारे बधाई के पात्र हैं । हिन्दी-साहित्य-सेवा में मंडल सदैव गौरवपूर्ण स्थान का अधिकारी है । सस्तेपन तथा उत्कृष्टता के लिए मण्डल प्रसिद्ध है ।"

—सम्मेलन-पत्रिका (प्रयाग)

"सस्ता साहित्य मण्डल ने अपनी समस्त प्रवृत्तियों से, जिनकी विशेषता एक आदर्श स्थापित करना और कल्याणकारी कार्य करना रही है, यश कमाया है । ऊँचे दर्जे की पुस्तकें प्रकाशित करके उसने हिन्दी की बहुमूल्य सेवा की है । आज जब कि हिन्दी में हानिकर प्रकाशनों की बाढ़ आ रही है, तब सस्ता साहित्य मण्डल की सेवाओं को देखकर बड़ी राहत मिलती है ।"—**नेशनल हेरल्ड (लखनऊ)**

"पत्र के प्रकाशकों का कार्य गौरवशाली रहा है । सामाजिक चेतना उत्पन्न करने और हमारे विचारों की कोटि और रुचि को ऊँचा उठाने में उनकी देन अमूल्य रही है ।" —**इंडिपेंडेंट (नागपुर)**

"सस्ता साहित्य मण्डल ने गत १५ वर्षों में स्फूर्तिदायक, मननशील, सस्ता साहित्य हिन्दी-संसार को भेंट कर भारी सेवा की है ।"

—दीपक (अबोहर)

"सस्ता साहित्य मण्डल गत १५ बरस से हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में संलग्न है । मंडल द्वारा प्रकाशित साहित्य गंभीर एवं उच्च कोटि का है और मण्डल जब भी कोई प्रकाशन करता है, तो उसकी उच्चता में संशय नहीं हो सकता ।"

— हिन्दी मिलाप (लाहौर)

"सस्ता साहित्य मण्डल की साहित्य-सेवा आज प्रत्येक देशसेवी या साहित्यिक के हृदय में अंकित है । अच्छे से अच्छा, सामयिक एवं उपयोगी साहित्य देने में सस्ता साहित्य मंडल-जैसी शायद ही कोई संस्था हिन्दी की हो, यह निस्संकोच कहा जायगा ।"

—बालक (लहेरियासराय)

"आज दिल्ली का सस्ता साहित्य मण्डल अपने प्रकाशन के कार्य में सबसे खरा उतर रहा है। नवीन से नवीन विचार-धारा इस मण्डल के प्रकाशनों में मिलती है ।" —**वर्तमान (कानपुर)**

"सस्ता साहित्य मंडल ने लागत मात्र मूल्य पर राष्ट्रीय, ओजपूर्ण, बलप्रद और सुरुचिपूर्ण ग्रन्थ हिन्दी-जगत् की भेंट करके बहुत प्रसिद्धि हासिल कर ली है ।"

—प्रजा-सेवक (जोधपुर)

"यह स० सा० मण्डल के प्रकाशनों की मुख्य विशेषताओं में से एक है कि मण्डल अपने प्रकाशनों से पैसा नहीं कमाना चाहता बल्कि आम तौर पर हिन्दी भाषी जनता की सच्ची सेवा करना और खास तौर पर हिन्दी-साहित्य की भी वृद्धि करना ही उसका उद्देश्य है ।" —**सर्च लाइट (पटना)**

"सस्ता साहित्य मण्डल हिन्दी प्रकाशन-संसार में अपना सानी नहीं रखता । वह उत्तम ग्रंथों को सस्ते मूल्य पर प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य की एक महान् सेवा कर रहा है ।"—**प्रताप (कानपुर)**

"(दिल्ली का) सस्ता साहित्य मण्डल सर्व-सुलभ राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण के लिए ख्याति प्राप्त कर चुका है । राष्ट्र के उत्थान और पुनर्निर्माण का लक्ष्य अपने सामने रखकर उसने साहित्य के प्रकाशन का कार्य किया है । भारत का निर्माण करने के महान् कार्य में मण्डल अपना हिस्सा सफलता के साथ अदा करने में समर्थ हुआ है ।"

—हिन्दुस्तान (दिल्ली)

सस्ता साहित्य मण्डल

संक्षिप्त परिचय

१—सस्ता साहित्य मण्डल 'सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट' के अनुसार एक तिक और रजिस्टर्ड संस्था है।

२—हिन्दी में ऊँचे दरजे का राष्ट्रीय, सामाजिक एवं नैतिक साहित्य सस्ते से सस्ते मूल्य प्रकाशित करना और इसी प्रकार की पुस्तकों का प्रचार करना इसका उद्देश्य है।

३—उपरोक्त उद्देश्य से सन् १९२५ में अजमेर में सर्वश्री जमनालाल बजाज, श्यामदास बिड़ला, हरिभाऊ उपाध्याय, महावीरप्रसाद पोद्दार, जीतमल लूणिया आदि जनों ने इसकी स्थापना की।

४—१९३४ में 'मण्डल' का कार्यालय अजमेर से दिल्ली आगया और अब मण्डल प्रधान कार्यालय कनाट सर्कस, नई दिल्ली में है। लखनऊ, इन्दौर तथा दिल्ली में उसकी खायें हैं। आदर्श साहित्य मन्दिर ब्रह्मपुरी अजमेर, साहित्य निकेतन, कानपुर और दक्षिण रत हिन्दी प्रचार सभा, मदरास अपने स्थानों के लिए मण्डल के सोल एजेण्ट हैं।

५—'मण्डल' से निम्नलिखित मालाओं में पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं—

(१) **सर्वोदय साहित्य माला**—इस माला में नीचे की नं० २, ३, ४ मालाओं तथा राष्ट्रीय उत्थान में सहायक ख़ास-ख़ास पुस्तकें निकलती हैं।

(२) **लोक साहित्य माला**—इसमें साधारण जनता के काम की सब विषयों पर वर्द्धक और विचारोत्तेजक सरल पुस्तकें निकलती हैं।

(३) **गांधी साहित्य माला**—इसमें गाँधीजी की पुस्तकें निकलती हैं।

(४) **टाल्स्टाय ग्रंथावलि**—इसमें टाल्स्टाय के चुने हुए ग्रंथ प्रकाशित होते हैं।

(५) **नवजीवन माला**—इस माला में छोटी-छोटी लोकोपयोगी नवजीवनदायी स्तकें निकलती हैं।

(६) **सामयिक साहित्य माला**—इसमें संसार तथा हिन्दुस्तान के सामयिक प्रश्नों समस्याओं पर पुस्तकें निकलती हैं।

(७) **बाल साहित्य माला**—इसमें बालोपयोगी पुस्तकें निकलती हैं।

(८) **विविध प्रकाशन**—इसमें वे पुस्तकें निकलती हैं जो उपरोक्त मालाओं में न ती हों।

(९) इसके अलावा 'मण्डल' दूसरों की अपने उद्देश्यों के अनुकूल पुस्तकों की सोल ंसी भी लेता है।

६—ऊपर लिखी सब मालाओं तथा सोल एजेंसी के अन्तर्गत मण्डल से अबतक ग १८० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं; जिसमें अधिकांश के दो से लगाकर सात-सात तक हो चुके हैं। यह मण्डल की पुस्तकों के सर्वप्रिय होने का जबर्दस्त प्रमाण है।

७—'मंडल' से 'जीवन-साहित्य' नामक एक मासिक पत्र भी निकलना शुरू हुआ है। हिन्दी में साहित्य का जीवन के साथ मेल करने तथा सद्विचार और सद्ग्रन्थों के के उद्देश्य से यह निकाला गया है। इसका मूल्य २) है; पर मण्डल के ग्राहकों से जाता है। मण्डल के ग्राहकों के लिए इसे खरीदना जरूरी हो जाता है।

८—मण्डल से महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य तथा डॉ० पट्टाभि सीतारामैया जैसे महान् नेता, टाल्स्टाय, ह्यूगो, मोटले, क्रोपाटकिन, केम्पिस, मार्डेन, मैक्स्विनी, खलील जिब्रान जैसे दुनिया के विचारकों तथा डॉ० भगवान्दास, विनोवा, काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला, स्व० रामदास गौड़, हरिभाऊ उपाध्याय, वियोगी हरि, वामन मल्हार जोशी जैसे भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध लेखकों की रचनायें प्रकाशित हुई हैं।

९—मण्डल के संचालकों में भारतवर्ष के निम्नलिखित सुप्रसिद्ध लोकनेता, व्यवसायी, साहित्यसेवी और कार्यकर्त्ता हैं :—

सर्वश्री घनश्यामदास बिड़ला नई दिल्ली, 'अध्यक्ष' बाबू राजेन्द्रप्रसाद पटना, जमनालाल बजाज वर्धा, काका कालेलकर वर्धा, वियोगी हरि दिल्ली, हरिभाऊ उपाध्याय अजमेर, पारसनाथसिंह कलकत्ता, देवदास गांधी नई दिल्ली, महावीरप्रसाद पोद्दार गोरखपुर, जीतमल लूणिया अजमेर, मार्तण्ड उपाध्याय (मन्त्री) नई दिल्ली।

१०—'मण्डल' को सब शाखाओं की दुकानों में हिन्दी की सभी विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकें हमेशा मिलती हैं।

११—संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत, महाराष्ट्र, बिहार, राजस्थान, पंजाब तथा सिंध के खादी-भण्डारों पर भी मण्डल की पुस्तकें मण्डल के स्थायी ग्राहकों को तीन आना रुपया कमीशन पर मिल सकती है।

पुस्तकों तथा 'जीवन-साहित्य' के नियम

१. स्थायी ग्राहकों के लिए—

१—एक रुपया प्रवेश-फीस देने से मण्डल के स्थायी ग्राहक हमेशा के लिए बन सकते हैं। स्थायी ग्राहकों को मण्डल से अबतक के प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ **पौने मूल्य** में मिलते हैं। प्रवेश-फीस का रुपया वापस नहीं लौटाया जाता और न किसी हिसाब में मुजरा दिया जाता है।

२—स्थायी ग्राहकों को मण्डल के प्रकाशनों की **एक-एक प्रति ही** पौने मूल्य में मिलेगी। एक से ज्यादा लेने पर चौथाई कमीशन के बजाय दो आना रुपया कमीशन दिया जायगा।

३—'मंडल' के स्थायी ग्राहकों को **प्रतिवर्ष कमीशन काटकर पाँच रुपये की मण्डल से प्रकाशित पुस्तकें** अवश्य खरीदनी होंगी। एक साल न खरीदने पर दूसरे साल उनका नाम ग्राहक-श्रेणी से अलग किया जा सकेगा; पर खास हालतों में रियायत करने का अधिकार मंत्री को रहेगा।

४—जब नयी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं तो पहले उनका विवरण और मूल्य आदि का सूचना-पत्र स्थायी ग्राहकों के पास भेज दिया जाता है। (अब चूँकि 'जीवन-साहित्य' मण्डल का मुखपत्र निकल रहा है अतः यह सूचना इसीके द्वारा दी जाया करेगी। अतः अच्छा हो कि 'मण्डल' के सब ग्राहक उसके ग्राहक बन जायँ। ऐसा हो जाने से स्थायी ग्राहकों को मण्डल की पुस्तकों की सूचना जल्दी मिल जाया करेगी।)

ग्राहकों को चाहिए कि सूचना मिलते ही यदि उन्हें पुस्तकें मँगाना हो तो **पुस्तकें पसन्द करके विवरण-पत्र के साथ जानेवाले कार्ड पर अपना आर्डर लिखकर भेज दें। यदि पुस्तकें न लेना चाहें तो भी तुरन्त ही उसी कार्ड पर अपनी इनकारी भेज दें। उसे अधिक दिन रोकें नहीं।**

५—स्थायी ग्राहक जब कभी पत्र-व्यवहार करें तो उन्हें चाहिए कि वे अपना **ग्राहक-नम्बर अवश्य लिख दिया करें,** जिससे उनके आर्डर पर कमीशन काटने में तथा दूसरी कार्रवाई करने में हमें सुविधा हो।

६—दूसरे प्रकाशकों की पुस्तकें जो मण्डल की दिल्ली, लखनऊ तथा इन्दौर की दुकानों में

के लिए रहती हैं, उनपर साधारणतः मण्डल स्थायी ग्राहकों को ६¼%, १२½% और १५% तक कमीशन दिया जायगा।

२. साधारण ग्राहकों के लिए—

७—साधारण ग्राहकों को मण्डल की १) से ५) तक की पुस्तकों पर एक आना रुपया और ५) से १०) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया और १०) से ऊपर तीन आना रुपया कमीशन दिया जायगा। बाहरी पुस्तकों पर एक आना रुपया और दो आना रुपया तक कमीशन दिया जायगा। ज्यादा कमीशन पाने के लिए स्थायी ग्राहक बन जाना ही अच्छा उपाय है।

३. अन्य नियम

८—१०) से अधिक या रेल से माल मँगाने पर जिसका आर्डर हो उसका **एक-चौथाई दाम** पेशगी भेजना चाहिए। बिना पेशगी रुपया आये माल नहीं भेजा जायगा।

९—पत्र-व्यवहार हिन्दी में ही करना चाहिए और साफ़ लिखा होना चाहिए। रेलसे माल मँगाना हो तो **रेलवे स्टेशन का नाम अंग्रेजी के बडे-बडे** अक्षरों में (A. B. C.) साफ़ लिखना चाहिए।

१०—२) रु० से कम का वी० पी० नहीं भेजा जायगा।

११—ग्राहकों के पास वी० पी० पहुँचने पर, उनको हमारे हिसाब में अगर कोई भूल मालूम हो तो वी० पी० छुड़ाकर भूल की सूचना हमें दे दें। उनका पत्र आते ही भल सुधार दी जायगी। थोड़ी-सी भूल के लिए वी० पी० लौटा देना ठीक नहीं है। इससे आपकी ही हानि होती है; क्योंकि 'मण्डल' आपकी संस्था है।

१२—पहले आर्डर देकर फिर उसे वापस कर देना ठीक नहीं है। यदि भूल से या किसी कारणवश ऐसा हो जाय तो ग्राहक को चाहिए कि 'मण्डल' की जो पोस्टेज-हानि हुई हो, उसे भेज दें और पुस्तकें फिर भेजने को लिखें।

१३—आर्डर भेजते समय इस बात का भी खुलासा कर देना चाहिए कि जो पुस्तकें स्टॉक में न हों, उन्हें न भेजें या तैयार होने पर भेजें या जो हों वे ही भेजदें, आदि।

४. 'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र के नियम—

१४—'जीवन-साहित्य' का वार्षिक मूल्य २) है पर 'मण्डल' के ग्राहकों से आधा मूल्य यानी १) लिया जाता है। जो सज्जन २) देकर जीवन साहित्य के ग्राहक बनते हैं उनको मण्डल की पुस्तकें जबतक वह जी० सा० का ग्राहक है तब तक पौने मूल्य में मिला करेंगी।

१५. जी० सा० के विस्तृत नियम नीचे दिये गये हैं।

१६—इससे पूर्व प्रकाशित सभी नियम रद्द किये जाते हैं। इनमें भी समय-समय पर रद्दोबदल करने का अधिकार मंत्री को है।

—मंत्री

'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र के नियम

१. हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित होता है।

२. किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं, पर साल से कम के लिए नहीं।

३. 'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इंदौर शाखाओं तथा संयुक्तप्रांत, बिहार, मध्यप्रांत, महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब व सिंध के चर्खासंघ के खादी-भंडारों तथा साहित्य निकेतन कानपुर से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बन सकते हैं।

४. हर मास के पहले हफ्ते में पत्र न मिले तो अपने यहाँके डाकखाने से पूछताछ करके अपनी ग्राहक-संख्या के साथ पत्र लिखना चाहिए। उचित कार्रवाई की जायगी।

५. अपने पते में कोई परिवर्तन कराना हो तो तुरन्त सूचना दिया करें—**ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।**

६. पत्र का चंदा इस प्रकार है—

भारत में	बर्मा में	विदेश में	एक प्रति
२)	२॥)	५ शिलिंग	=)

नोट—नमूने के अंक के लिए ≡) के टिकट भेजें। वार्षिक मूल्य डाक के टिकटों में भी भेजा जा सकता है।

७. पत्रव्यवहार करते समय **अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।**

८. 'जीवन-साहित्य' में शिष्ट साहित्य तथा उपयोगी सुरुचिपूर्ण और देशी वस्तुओं के विज्ञापन लेने की गुंजायश रक्खी है।

दर इस प्रकार हैं—

कवर का दूसरा पृष्ठ प्रतिमास ४०)
,, तीसरा ,, ,, ४०)
,, चौथा (दोरंगा) ,, ६०)
,, ,, (एकरंगा) ,, ५०)
पाठ्च विषय के सामने ,, ४०)
साधारण पृष्ठ— ,, ३०)

९. विज्ञापन-एजेण्टों को कमीशन आदि के लिए अलग पत्रव्यवहार करना चाहिए।

पता—

व्यवस्थापक, 'जीवन-साहित्य',
कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

हिन्दुस्तान में 'मण्डल' की पुस्तकें मिलने के स्थान

निम्न स्थानों पर 'मण्डल' को स्थायी ग्राहकों को मंडल की पुस्तकें एक रुपये में तीन आने कमीशन पर मिला करेंगी तथा वहीं 'जीवन साहित्य' के ग्राहक भी बन सकते हैं—

संयुक्तप्रान्त—सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ साहित्य निकेतन, कानपुर, श्री गांधी आश्रम मुरादाबाद, इलाहाबाद, मेरठ, मुजफ्फरनगर, काशी, मथुरा, बरेली, देहरादून, फैजाबाद, गोरखपुर, सहारनपुर, डिबाई, फर्रुखाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, अक़बरपुर, शामली, हरदोई, जौनपुर, सीतापुर, झाँसी, गाज़ीपुर बलिया, नैनीताल।

बिहार—चर्खासंघ खादी भंडार हाजीपुर, राँची, मधुबनी, बेतिया, हजारीबाग़, लहेरिया-सराय, मुजफ्फरपुर, गया, सीतामढ़ी, पटना, डाल्टनगंज, बेगूसराय, मोतीहारी, भागलपुर, छपरा, समस्तीपुर।

मध्यप्रान्त—महाराष्ट्र चर्खासंघ खादी भंडार नागपुर (सीताबर्डी), गोंदिया, जबलपुर रायपुर, खण्डवा।

राजपूताना-मध्यभारत—सस्ता साहित्य मंडल इन्दौर, आदर्श पुस्तक भण्डार अजमेर, राजस्थान चर्खा संघ खादी भंडार अजमेर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, मन्दसौर, ग्वालियर, इन्दौर, मुकुन्दगढ़, नवलगढ़, भेलसा।

पंजाब—गांधी खादी-भंडार लाहौर, भिवानी, आदमपुर, गांधी सेवा आश्रम, शहादरा (लाहौर)

दिल्ली—सस्ता साहित्य मण्डल कनाट सर्कस नई दिल्ली, तथा दरीबा कलाँ, श्री गांधी आश्रम।

कलकत्ता—शुद्ध खादी भंडार, हरिसन रोड।

बम्बई-प्रान्त—'नवजीवन' कार्यालय, अहमदाबाद, और बम्बई, खादी भंडार भुसावल, खादी भंडार जलगाँव।

सिंध—खादी भंडार हैदराबाद, करांची, सक्खर।

खादी-भण्डारों के अलावा 'मण्डल' की पुस्तकें निम्न स्थानों पर भी मिलती हैं

अजमेर राजपूताना बुकहाउस आदर्श साहित्य भण्डार

इलाहाबाद हिन्दी मंदिर; साहित्य भवन लि०; छात्रहितकारी पुस्तकमाला; किताबिस्तान सरस्वती प्रेस; रामनारायण लाल

आगरा साहित्य रत्न भण्डार

कानपुर साहित्य निकेतन; प्रकाश पुस्तकालय;

भिवानी हिन्दी साहित्य भंडार

इन्दौर सस्ता साहित्य मण्डल खजूरी बाजार, सरस्वती प्रेस; सरूप ब्रदर्स

इंदौर नवयुग ग्रंथ कुटीर

लखनऊ सस्ता साहित्य मण्डल; गंगा ग्रंथागार; सरस्वती प्रेस

बनारस सरस्वती प्रेस; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी; ज्ञानमण्डल पुस्तक-भंडार; लहरी बुकडिपो; पुस्तक भवन; भार्गव पुस्तकालय; इण्डियन बुक शॉप; विद्या भास्कर बुकडिपो

पटना नवशक्ति प्रकाशन मंदिर; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी; हिंदी साहित्य एजेन्सी; मोतीलाल बनारसीदास; एज्यूकेशनल बुक डिपो

छपरा वाणी-मंदिर

लहेरियासराय पुस्तक भण्डार;

कलकत्ता बंगाल स्टोअर्स, चौरंगी; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी; विशालभारत बुकडिपो; लहरी बुकडिपो, पुस्तक मंदिर, बंबई पुस्तक भंडार; कलकत्ता पुस्तक भंडार; पुस्तक मंदिर

वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति; प्रभुदयाल विद्यार्थी; महिलाश्रम; ग्रामसेवा मण्डल (नालवाड़ी)

बंबई हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर; भारतीय पुस्तक भण्डार; हिन्दी पुस्तक भण्डार; नवजीवन कार्यालय (प्रिंसेसस्ट्रीट)

ग्वालियर लायल बुक डिपो

मद्रास दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा

अहमदाबाद नवजीवन कार्यालय

मछलीपट्टम लोकमान्य हिन्दी मंदिर

हैदराबाद (दक्षिण) हिन्दी पुस्तक भण्डार; प्रीमियर स्टोर्स सप्लाइंग कम्पनी

जबलपुर तेजमल सौभाग्यमल; महाकोशल साहित्य मंदिर

लाहौर हिन्दी भवन; मोतीलाल बनारसीदास; हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

कराची एस. एस. बागड़िया एण्ड सन्स

कोटा मोहन न्यूज़ एजेन्सी

भोपाल हिंदुस्तान स्टोअर्स; **बरेली** वैश्य बुकडिपो

अमृतसर भारत पुस्तक भण्डार

जम्मु तावी (काश्मीर) स्टूडेंट स्टोअर्स

उदयपुर हितैषी पुस्तक भंडार

'मण्डल' की दुकानों पर संसार के निम्न महापुरुषों, लेखकों और विचारकों की रचनायें मिलती हैं—

भारतीय

ऋषि तिरुवल्लुवर, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लो० तिलक, महात्मा गांधी, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, जवाहरलाल नेहरू, सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, अरविन्द घोष, लाला लाजपतराय, आदि

विदेशी

टाल्स्टॉय, मेक्सिम गोर्की, अलेक्ज़ेण्डर ड्यूमा, विक्टर ह्यूगो, तुर्गनेव, खलील जिब्रान, क्रोपाटकिन, जेम्स एलेन, स्वेट् मॉर्डेन, सेम्युअल स्माइल्स, बुकर टी वाशिंगटन, मेरे कॉरेली, रोमाँरोलाँ, हेरल्ड लास्की, रिचर्ड ग्रेग, आदि

हिन्दी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी, स्व० प्रेमचन्द, स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी, स्व० जयशंकरप्रसाद, स्व० रामचन्द्र शुक्ल, स्व० कृष्णकांत मालवीय, मैथिलीशरणगुप्त, सियारामशरण गुप्त, जैनेन्द्रकुमार, राहुल सांकृत्यायन, अयोध्यासिंह उपाध्याय, डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा, श्यामसुन्दर दास, रायकृष्णदास, जयचन्द्र विद्यालंकार, घनश्यामदास बिड़ला, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, सोहनलाल द्विवेदी भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हरिभाऊ उपाध्याय, वियोगी हरि, सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा, कमलादेवी चौधरी आदि

मराठी

हरि नारायण आपटे, वामन मल्हार जोशी, डॉ० हरि रामचन्द्र दिवेकर, सदाशिव नारायण दातार, गोविंद सखाराम सरदेसाई, विनोबा, आदि

बंगला

बंकिमचन्द्र चटर्जी, द्विजेन्द्रलाल राय, शरत् चन्द्र चटर्जी, जदुनाथ सरकार, रमेशचन्द्रदत्त, निरुपमा देवी आदि

गुजराती

किशोरलाल मशरूवाला, काका कालेलकर, कन्हैयालाल मुनशी, गिजुभाई, हरभाई त्रिवेदी, नानाभाई भट्ट आदि

सस्ता साहित्य मण्डल : 'सर्वोदय साहित्यमाला' के प्रकाशन

१. **दिव्य जीवन** : स्वेट मार्डेन की 'The Miracles of Right Thought' नामक पुस्तक का अनुवाद। जीवन की कठिन समस्याओं से निराश युवकों के लिए, यह पुस्तक संजीवनी विद्या के समान है। उत्साह-वर्द्धक और ओजपूर्ण। ।=)

२. **जीवन-साहित्य** : काका कालेलकर के शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, राजनीति आदि महत्त्व-पूर्ण विषयों पर लिखे निबन्ध। पहले भाग का मूल्य ।।=) दूसरा भाग दुबारा छप रहा है।

३. **तामिल वेद** : दक्षिण के अछूत महात्मा तिरुवल्लुवर का उच्च कोटि की नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक शिक्षाओं से भरा हुआ ग्रन्थ। भूमिका-लेखक श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य। ।।।)

४. **भारत में व्यसन और व्यभिचार** : (ले० बैजनाथ महोदय) इसमें तथ्यों तथा आँकड़ों से यह बताया है कि भारतवर्ष में शराब, भाँग, गाँजा, अफीम आदि दुर्व्यसन कैसे फैले तथा उनसे भारतवर्ष की जनता को क्या हानियाँ हुईं और हो रही हैं; व्यभिचार के पाप से भारतवासी किस प्रकार ग्रसित हो रहे हैं और किस प्रकार हम इन दुर्गुणों के पंजों से निकल सकते हैं। ।।।=)

✤५. **सामाजिक कुरीतियाँ :**

✤६. **भारत के स्त्री-रत्न** : इस पुस्तक में भारतवर्ष की लगभग सभी प्रसिद्ध एवं पूजनीय देवियों की मनोहर तथा पवित्र जीवन-कथायें लिखी गयी हैं। बहनें इन्हें पढ़ें तथा अपने पवित्र और गौरवशाली भूतकाल की झाँकी देखकर स्वयं को आदर्श स्त्री-रत्न बनावें। तीन भागों में। चौथा भाग तैयार हो रहा है। दुबारा छप रहा है ३)
[तीसरा भाग अप्राप्य है]

✤७. **अनोखा :** १।=)

८. **ब्रह्मचर्य-विज्ञान** : (जगन्नारायणदेव शर्मा) इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य की महिमा, उसके पालन की विधि, उसके लाभ आदि बातें बहुत अच्छे ढँग से बतायी गयी हैं। पुस्तक में वेद, उपनिषद्, पुराण आदि सद्ग्रन्थों के शुभ वचनों का बहुत अच्छा संग्रह है। ।।।=)

✤९. **यूरोप का इतिहास :** २)

१०. **समाज-विज्ञान** : (संक्षिप्त संस्करण ले० चन्द्रराज भंडारी) समाज-रचना, उसके विकास तथा निर्माण पर इसमें बहुत अच्छी तरह विचार किया गया है। समाजशास्त्र पर हिन्दी की मौलिक पुस्तक (छप रहा है) ।।।)

✤११. **खद्दर का संपत्ति-शास्त्र:** (ग्रेग)

✤१२. **गोरों का प्रभुत्व :** ।।।=)

✤१३. **चीन की आवाज़ :** ।-)

१४. **दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह :** (महात्मा गांधी) सत्याग्रह की उत्पत्ति तथा उसके प्रयोग का खुद गांधीजी द्वारा लिखा इतिहास पढ़ें कि किस प्रकार बहादुरी से इस शस्त्र द्वारा अफ्रीकावासियों ने अपने अधिकारों की बिना दूसरों को तकलीफ़ पहुँचाते हुए रक्षा की। १।।)

✤१५. **विजयी बारडोली :** [अप्राप्य] २)

१६. **अनीति की राह पर** : संयम, इंद्रिय-निग्रह तथा ब्रह्मचर्य पर गांधीजी की यह कृति अनुपम और सर्वश्रेष्ठ है। ।।=)

✤१७. **सीता की अग्नि-परीक्षा**

१८. **कन्या-शिक्षा** : स्व० चन्द्रशेखर शास्त्री ने इसमें बिल्कुल सरल ढंग से, शुरू से लेकर विवाह के बाद तक के कन्याओं के जीवन तथा उनके कर्तव्यों की चर्चा प्रश्नोत्तर के रूप में बड़े सुन्दर ढंग से की है। कन्याओं के सीखने योग्य सभी बातें इसमें आ गयी हैं। ।)

१९. **कर्मयोग** । अश्विनीकुमार दत्त की यह पुस्तक पढ़ने से पाठक 'कर्मयोग' के संसार में प्रवेश पा जाते हैं और उनको पारमार्थिक सुख का अनुभव होने लगता है। ।=)

२०. **कलवार की करतूत** : टॉल्स्टॉय की

✤ये पुस्तकें अप्राप्य हैं। इनको मँगाने का कष्ट न करें।

में शराब के आविष्कार की मनोरंजक शिक्षाप्रद कहानी। =)

२१. व्यावहारिक सभ्यता : बच्चों, तथा अवस्थाप्राप्त लोगों के लिए रोज़ के में आनेवाली शिक्षाओं की पोथी। शिक्षाप्रद तथा ज्ञानप्रद। ।।)

२२. अँधेरे में उजाला : टॉल्स्टॉय के Shines in the Darkness' नामक का अनुवाद। इस नाटक में टॉल्स्टॉय ने जीवन की छाया अंकित की है। यह उनके मनोभावों और हृदय-मंथन की अनुपम है। (दुबारा छप रहा है) ।।)

✤२३. स्वामीजी का बलिदान: (ह०उ०)

✤२४. हमारे ज़माने की गुलामी : ।)

२५. स्त्री और पुरुष। संयम तथा पर टॉल्स्टॉय की यह पुस्तक बहुत है। स्त्रियों को अपनी इच्छा-पूर्ति का समझनेवाले इसे पढ़ें और समझें कि स्त्री-का सम्बन्ध भोग-विलास का नहीं; बल्कि उद्देश्य के लिए किया गया एक पवित्र है। ।।)

२६. सफ़ाई : घर, गाँव तथा शरीर की रखने आदि के बारे में उत्तम पुस्तक। ।=)

२७. हम क्या करें ? टॉल्स्टॉय की सुप्रसिद्ध 'What shall we do then ?' का। पीड़ितोंकी समस्यायें और उनका हल। समभावी हृदय का मंथन है १)

✤२८. हाथ की कताई-बुनाई : ।।=)

✤२९. आत्मोपदेश : ।)

✤३०. यथार्थ आदर्श जीवन : ।।-)

३१. जब अंग्रेज़ नहीं आये थे। (देखिए माला) =)

✤३२. गंगा गोविन्दसिंह : ।।=)

३३. श्रीरामचरित्र : (श्री वैद्य) १।)

✤३४. आश्रम-हरिणी : (जोशी) ।)

३५. हिन्दी-मराठी-कोष : २)

✤३६. स्वाधीनता के सिद्धान्त : ।।)

✤३७. महान् मातृत्व की ओर : उसकी गुरुता और आदर्श का दिग्दर्शन है। स्त्री-उपयोगी उत्तम और दिलचस्प पुस्तक।

✤३८. शिवाजी की योग्यता : ।=)

३९. तरंगित हृदय : आचार्य श्री अभयदेवजी की विचार-तरंगों का सुन्दर संग्रह। स्व० स्वामी श्रद्धानन्द के आशीर्वाद सहित। ।।)

✤४०—हालैण्ड की राज्यक्रान्ति [नरमेध]

४१. दुखी दुनिया : ग़रीब और पीड़ित मानवी दुनिया के करुण चित्र। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य की सच्ची घटनाओं पर लिखी-कहानियाँ। मधुर, करुण और सुन्दर। ।=)

४२. ज़िन्दा लाश। टॉल्स्टॉय के 'The-Living Corpse' नामक नाटक का अनुवाद। टॉल्स्टॉय के सब नाटकों में यह बड़ा ही करुण और मर्मस्पर्शी है। (दुबारा छप रहा है) ।।)

४३. आत्म-कथा : (महात्मा गांधी) संसार के साहित्य का यह एक उज्ज्वल रत्न है। उपनिषदों की भाँति पवित्र और उपन्यासों की भाँति रोचक। चरित्र को निर्मल और मन को ऊँचा उठानेवाला। हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा किया गया प्रामाणिक अनुवाद। नवीन और सस्ता संस्करण। साधारण १) विशेष संस्करण १।)

✤४४. जब अंग्रेज़ आये : १।=)

४५. जीवन-विकास : डार्विन के विकास-बाद के सिद्धान्त को विशद रूप से समझानेवाली हिन्दी में यह एक ही पुस्तक है। १)

४६. किसानों का बिगुल : =)

✤४७. फाँसी : ।=)

४८. अनासक्तियोग : गीता-बोध। (देखिए नवजीवन माला) ।-)

✤४९. स्वर्ण-विहान : [ज़ब्त] ।=)

५०. मराठों का उत्थान और पतन : (गोपाल दामोदर तामस्कर) मराठा साम्राज्य का विस्तृत और सच्चा इतिहास। मराठी भाषा में भी मराठों का ऐसा सच्चा और बड़ा इतिहास नहीं है, ऐसा महाराष्ट्र के अनेक विद्वान् और

✤ये पुस्तकें अप्राप्य हैं। इनको मँगाने का कष्ट न करें।

नेता मानते हैं। २॥)

५१. भाई के पत्र : (रामनाथ 'सुमन') स्त्री-जीवन पर प्रकाश डालनेवाली; उनकी घरेलू एवं रोज़मर्रा की कठिनाई में पथ-प्रदर्शक; बहनों के हाथों में दिये जाने योग्य एक ही पुस्तक। (दुबारा छप रही है) १)

५२. स्वगत : ।=)

✣**५३. युगधर्म :** [ज़ब्त] १=)

५४. स्त्री-समस्या : (मुकुटबिहारी वर्मा) नारी-जीवन की जटिल समस्याओं का गम्भीर अध्ययन। स्त्री-आन्दोलनके इतिहास सहित स्त्रियों की समस्या पर यह अच्छी और संग्रह करने योग्य 'रेफ़रेन्स बुक' है। सुन्दर जिल्द। १॥)

✣**५५. विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला :**

✣**५६. चित्रपट :** ।=)

✣**५७. राष्ट्रवाणी :** (गांधीजी) ॥=)

५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी : (महादेव देसाई) महात्माजी की दूसरी गोलमेज़ परिषद् के समय की इंग्लैण्ड की यात्रा का सुन्दर, सरस और मज़ेदार वर्णन। हिन्दी में अपने ढंग का सर्वोत्तम यात्रा-वृत्तान्त। सस्ता और नवीन संस्करण। ॥)

५९. रोटी का सवाल अथवा **भावी क्रान्ति का संगठन :** रूस के मशहूर क्रांतिकारी लेखक प्रिंस क्रोपाटकिन की अमर कृति 'Conquest of Bread' का सरल अनुवाद। अराजक समाजवाद का सुन्दर, सरल और सुबोध विवेचन। सस्ता नया संस्करण। ॥)

६०. दैवी-सम्पद् : उत्तम नैतिक एवं धार्मिक पुस्तक। 'दैवी-सम्पद् से मनुष्य को मोक्ष होता है।' गीता की इस उक्ति का सुन्दर विवेचन। मनुष्य को मोक्ष का रास्ता बतानेवाली पुस्तक। ।=)

६१. जीवन-सूत्र : अंग्रेज़ी में थॉमस केम्पिस लिखित सर्व-प्रसिद्ध पुस्तक 'Imitation of Christ' का अनुवाद। जीवन को उन्नत और विचारों को सात्विक बनानेवाली पोथी। अंग्रेज़ी में इसको बाइबिल के समान माना जाता है। ॥)

✣**६२. हमारा कलंक :** ॥=)

नोट—इस पुस्तक का अंग्रेज़ी संस्करण भी 'Bleeding Wound' के नाम से मण्डल से निकला है। मूल्य १॥), यह 'मण्डल' के ग्राहकों को ॥) में मिलेगा।

✣**६३. बुद्बुद् :** (हरिभाऊ उपाध्याय)

६४. संघर्ष या सहयोग ? : क्रोपाटकिन की 'Mutual Aid' नामक पुस्तक का अनुवाद। इसमें बतलाया है कि पशु-पक्षियों से लेकर मनुष्य तक सबके जीवन का आधार सहयोग है, एकता है, संघर्ष नहीं। १॥)

६५. गांधी-विचार दोहन : (किशोरलाल मश्रुवाला) इसमें महात्माजी के समस्त राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक विचारों का बड़ा सुंदर संकलन और दोहन किया गया है। महात्माजी की सम्मति सहित नवीन संस्करण ॥)

✣**६६. एशिया की क्रांति :** [ज़ब्त] १॥)

६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता : (रामनाथ 'सुमन') इस सुन्दर पुस्तक में राष्ट्रनिर्माताओं के जीवन-परिचय और उनके जीवन की झलक दी हुई है। १॥)

६८. स्वतंत्रता की ओर : (हरिभाऊ उपाध्याय) (दुबारा छप रहा है) १॥)

६९. आगे बढ़ो : स्वेट् मार्डेन के 'Pushing to the Front' का संक्षिप्त अनुवाद। कठिनाई में पड़े युवकों को सच्चे साथी के समान रास्ता बतानेवाली पुस्तक। ॥)

७०. बुद्ध-वाणी : (वियोगी हरि) भगवान् बुद्ध के चुने हुए वचनों का विषयानुक्रम से किया गया संकलन। बौद्ध-धर्म के विषय में हिन्दी में मिलनेवाले सब ग्रन्थों का सार-तत्त्व। ॥=)

७१. कांग्रेस का इतिहास : डॉ॰ पट्टाभि सीतारामैया की लिखी तथा कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती पर प्रकाशित अंग्रेज़ी पुस्तक 'History of the Congress' का हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा संपादित प्रामाणिक अनुवाद। २॥)

✣ये पुस्तकें अप्राप्य हैं। इनको मँगाने का कष्ट न करें।

७२. हमारे राष्ट्रपति : (सत्यदेव …कार) कांग्रेस के पहले अधिवेशन से …के तमाम सभापतियों के जीवन-परिचय । …राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रबाबू ने लिखी है । …यों के चित्रों के साथ । १।)

७३. मेरी कहानी : पं० जवाहरलाल नेहरू …कथा । हिन्दी अनुवाद और संपादन …उपाध्याय ने किया है । वर्तमान समय …पुस्तक । पुस्तक पं० जी द्वारा …कर दी गयी है । नवीन संस्करण । ३)

७४. विश्व-इतिहास की झलक : पण्डित …लालजी के अपनी पुत्री के नाम लिखे पत्रों …ह । इसमें उन्होंने सारी दुनिया के इतिहास …की बड़ी सरलता से करायी है । ८)

✣७५. हमारी पुत्रियाँ कैसी हों ? ।।)

७६. नया शासन-विधान [प्रान्तीय …]—(हरिश्चंद्र गोयल) इसमें बताया …है कि किस प्रकार इस नये शासन-विधान …कुछ भी अधिकार नहीं दिये गये हैं । इस …की ऐसी पुस्तक अभीतक हिन्दी में नहीं …छपी है । ।।।)

७७. (१) हमारे गाँवों की कहानी : …रामदास गौड़) इसे पढ़कर तो आप सिहर …कि हमारे अन्नदाताओं ने जिनको मेहमान …और उनका इतना आदर-सत्कार किया, …कितने कृतघ्न निकले और उनको कितना नीचे …दिया ! ।।)

७८. (२-६) महाभारत के पात्र : (दो …) (आचार्य नानाभाई) महाभारत के प्रधान- …पात्रों का सरस, परिचय । १)

७९. गाँवों का सुधार और संगठन (स्व० …गौड़) हमारे गाँवों के सुधार और संगठन …पर हिन्दी में यह बहुत महत्त्वपूर्ण और …पुस्तक है । (दुबारा छप रहा है) १)

८०. (३) सन्तवाणी (वियोगी हरि) …संतों—कबीर, नानक, सूर, तुलसी, …दादू आदि की मुख्य-मुख्य वाणियाँ टीका सहित । दूसरा संस्करण छप रहा है ।।)

८१. विनाश या इलाज ? (म्यूरियल लेस्टर) लेखिका ने अपने अनुभव और ज्ञान से यह साबित किया है कि दुनिया जो हत्या व युद्ध के संकट से आज त्रस्त हो रही है वह सत्य और अहिंसा से ही मुक्ति पा सकती है और दूसरा कोई रास्ता कारगर नहीं हो सकता । ।।।)

८२. (४) अंग्रेज़ी राज में हमारी दशा : (ज़ेड० ए० अहमद) इसमें बताया गया है कि अंग्रेज़ों ने अपनी आर्थिक नीति से किस प्रकार भारतवासियों को चूसा और उन्हें निःसत्व बना दिया । पुस्तक बड़ी रोचक है । (दुबारा छप रही है) ।)

८३. (५) लोक-जीवन : काका कालेलकर के ग्राम-जीवन तथा ग्रामीण लोगों को रास्ता दिखानेवाले और उनके अज्ञान को दूर करनेवाले सरल और सुबोध निबन्धों का संग्रह । ।)

८४. गीता-मंथन : (किशोरलाल मश्रुवाला) गीता का सरल सुबोध और सरस भावानुवाद । अबोध पाठक भी गीता के तत्त्व को आसानी से समझ सकते हैं । उपन्यासों की भाँति रोचक और सरल । १।)

८५. (६) राजनीति-प्रवेशिका : प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान् हेरल्ड लास्की की 'Introduction to Politics' का अनुवाद मूल्य ।)

८६. (७) हमारे अधिकार और कर्तव्य : (कृष्णचन्द्र विद्यालंकार) इस पुस्तक में लेखक ने बड़ी सरल भाषा में बताया है कि नागरिकों के क्या अधिकार होते हैं और देश, समाज और राष्ट्र के प्रति उनके क्या कर्तव्य हैं ? ।)

✣८७. गांधीवाद : समाजवाद : ।।।)

८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग : इसमें महात्माजी के आजतक के इस विषय के चुने हुए लेखों का संग्रह है । इसमें महात्माजी की स्वदेशी की नयी व्याख्या पढ़िए । (दुबारा छप रहा है) ।)

८९. (८) सुगम चिकित्सा : श्री चतुरसेन शास्त्री ने इसमें सरल भाषा में देहात के लोगों

✣ये पुस्तकें अप्राप्य हैं । इनको मँगाने का कष्ट न करें ।

के लिए सफ़ाई और चिकित्सा सम्बन्धी बातें बड़ी सरलता से बतायी हैं। ।)

९०. **प्रेम में भगवान् :** टॉल्स्टॉय की सत्रह चुनी हुई शिक्षाप्रद कहानियाँ, पृष्ठ २५०। टाल्स्टाय ग्रन्थावलि की तीसरी पुस्तक। (दुबारा छप रहा है) ॥।)

९१. **महात्मा गांधी**—(रामनाथ 'सुमन') : इसमें लेखक ने बड़े मार्मिक और कलापूर्ण ढंग से महात्माजी के जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है और उनके जीवन की झाँकियाँ दिखायी हैं। ।)

९२. **ब्रह्मचर्य :** महात्माजी के ब्रह्मचर्य तथा संयम पर लिखे ताज़े लेखों का संग्रह है। पहले 'अनीति की राह पर' नामक इस विषय की पुस्तक निकल चुकी है। यह उसका दूसरा भाग ही समझिए। ।)

९३. (१०) **हमारे गाँव** और **किसान :** चौधरी श्री मुख्तयारसिंह ने इस पुस्तक में हमारे गाँवों और किसानों की हद दर्जे की ग़रीबी का वर्णन किया है और बताया है कि गाँवों और किसानों की यह दशा कैसे सुधर सकती है। ।)

९४. **गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ :** महात्मा गांधी की ७१वीं वर्षगाँठ पर समर्पित विश्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ। सम्पादक सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, सस्ता संस्करण १।) सजिल्द २)

९५. **हिन्दुस्तान की समस्यायें :** पं० जवाहरलाल नेहरू के भारत की समस्याओं पर विचारपूर्ण निबन्ध। १)

९६. **जीवन-सन्देश :** सुप्रसिद्ध सीरियन कवि खलील जिब्रान की मशहूर पुस्तक 'The Prophet' का अनुवाद। ।)

९७. **समन्वय :** हिन्दी के सुप्रसिद्ध विचारक और दार्शनिक विद्वान् श्री डॉ० भगवानदास के मौलिक लेखों और व्याख्यानों का उत्तम संग्रह। २)

नया संपादित संग्रह तैयार हो रहा है

९८. **समाजवाद : पूँजीवाद :** प्रसिद्ध अंग्रेज़ी लेखक बर्नार्ड शॉ की प्रसिद्ध पुस्तक के आधार पर लिखी। ॥।)

९९. **मेरी मुक्ति की कहानी :** महर्षि टॉल्स्टॉय की आत्म-कहानी तथा उनके बचपन के संस्मरण। ॥)

१००. **खादी-मीमांसा :** खादी-विचारधारा को तर्क तथा आँकड़ों और उद्धरणों से समझानेवाली अद्वितीय पुस्तक। १॥)

१०१. **बापू :** (घनश्यामदास बिड़ला) महात्मा गांधी का अत्यन्त निकट से किया हुआ विश्लेषण, अनेक निजी रोचक तथा स्मरणीय प्रसंगों से पूर्ण–१३ सुन्दर चित्रों सहित; ॥=), सजिल्द १।), हाथ कागज़ की २)

१०२. **विनोबा और उनके विचार :** प्रथम सत्याग्रही विनोबा के विचारों को पढ़कर आप जीवन जीना जान जायेंगे। यह समझेंगे कि सफल जीवन उसीका है जिसने जीवन जीना सीखा। ॥)

१०३. **लड़खड़ाती दुनिया :** (जवाहरलाल नेहरू) आज की दुनिया की तस्वीर। देश-विदेश पर लिखे गये महत्त्वपूर्ण लेखों का सुन्दर संग्रह। भूमिका लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव। ॥)

१०४. **सेवाधर्म-सेवामार्ग :** प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता श्री कृष्णदत्त पालीवाल की सेवाधर्म पर लिखी सुन्दर पुस्तक। इसमें सेवा के क्षेत्र, सेवा के प्रकार और सेवा के तरीके पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला गया है। हमारे कर्मक्षेत्र के लिए उपयोगी पुस्तक है। १)

१०५. **दुनिया की शासन प्रणालियाँ** तथा **यूरोप का वर्तमान युद्ध :** दुनिया की प्रचलित शासन प्रणालियाँ उनके संगठन तथा कार्य के साथ वर्तमान-युद्ध की पृष्ठभूमि, उसकी वर्तमान गति-विधि तथा उसके होनेवाले असरों का रोचक वर्णन है। पुस्तक सामयिक तथा स्थायी महत्व की है। १॥)

१०६. **डायरी के पन्ने**—(लेखक श्री घनश्यामदास बिड़ला) श्री बिड़लाजी की डायरी के ये पन्ने उस समय के हैं जब दूसरी गोलमेज़-परिषद् में वे गांधीजी के साथ गये थे। रोचक

■ ये पुस्तकें अप्राप्य हैं। इनको मँगाने का कष्ट न करें।

होने के साथ यह भारतीय राज-
के लिए बहुत उपयोगी है।
सहित—मू० ।ıı) १)

१०७. **तीस दिन :** मालवीयजी के साथ
१०८. **युद्ध** और **अहिंसा :** (म० गांधी)
१०९ **महावीर-वाणी** (पं० बेचरदास दोशी)

'नवजीवनमाला' की पुस्तकें

बोध—महात्मा गांधी द्वारा लिखा ―)
तात्पर्य

प्रभात—महात्मा गांधी के जेल
अहिंसा ब्रह्मचर्य आदि व्रतों पर ―)

सक्तियोग—गांधीजी द्वारा लिखी
टीका—=), श्लोक सहित ≡), ।)

दय—रस्किन के 'Unto This
द्वारा किया गया रूपान्तर। ―)

नवयुवकों से दो बातें—प्रिंस क्रोपाट-
word to Youngmen' का अनु- ―)

स्वराज—महात्माजी की भारत
पर लिखी प्राचीन पुस्तक जो
है। ≡)

त की माया- ―)

किसानों का सवाल-डॉ० ज़ेड० ए०
छोटी-सी पुस्तिका में भारत के
किसानों-के सवाल पर बड़ी
विचार किया गया है। =)

ग्राम-सेवा—ग्राम-सेवा किस प्रकार
गांधीजी ने इसमें विशद प्रकाश =)

१०. **खादी और गादी की लड़ाई**—(विनोबा) (दुबारा छप रही है) =)

✤ ११. **मधुमक्खी-पालन**— =)

१२. **गांवों का आर्थिक सवाल**—गाँवों के आर्थिक प्रश्न तथा उनको हल करने की योजनाओं का इस पुस्तक में ग्राम-सेवक विद्यालय के अध्यापक श्री झवेरभाई पटेल ने संग्रह किया है ≡)

१३. **राष्ट्रीय गायन**-देशभक्ति-पूर्ण राष्ट्रीय गायनों और कविताओं का अपूर्व संग्रह। =)

१४. **खादी का महत्व**—श्री गुलजारीलाल नन्दा द्वारा लिखा खादी-विषयक प्रामाणिक और खादी की महत्ता और उपयोगिता बताने वाला निबन्ध। ―)।।

१५. **जब अँग्रेज़ नहीं आये थे**—अँग्रेज़ों के आने के पहले की भारत की दशा का वर्णन। ≡)

१६. **सोने की माया**—श्री. किशोरलाल मशरूवाला का लिखा विनिमय और मुद्रा पर रोचक रूपक। दाम ―)

१७ **सत्यवीर सुकरात.** (म० गांधी) ग्रीस के महापुरुष सुकरात के मुक़दमे और उनके बयान का महात्मा गांधी द्वारा लिखा हुआ दिलचस्प और शिक्षाप्रद हाल। ―)

पुस्तकें अप्राप्य हैं। इनको मँगाने का कष्ट न करें।

सामयिक साहित्य माला

✤१. **कांग्रेस-इतिहास** (१९३५–३९)

✤२. **दुनिया का रंगमंच** =)

३. हम कहाँ हैं? कांग्रेस की वर्तमान हालत और देश की मौजूदा समस्याओं पर पं० जवाहरलालजी के लेख। =)

४. युद्ध-संकट और **भारत**। वर्तमान यूरोपीय युद्ध और भारत की स्थिति पर कांग्रेस की ओर से तथा म० गांधी, राष्ट्रपति आदि द्वारा निकाले गये वक्तव्यों का संग्रह। ।)

५. सत्याग्रह : क्यों, कब और **कैसे?** (म. गांधी) सत्याग्रह कब, क्यों और कैसे शुरू किया जावे, इस पर महात्माजी के लेख।

६. राष्ट्रीय-पंचायत। भारत के अप शासन-विधान बनाने की माँग तथा विधान-स 'Constituent Assembly' पर महात्मा पं० जवाहरलाल नेहरू, राजाजी आदि के लेख

७. देशी राजाओं का दरजा देशी राजा के अधिकार और दरजे के बारे में अधिकार पुस्तक (प्यारेलाल)

८. यूरोपीय युद्ध और भारत २ (गांधी जवाहर लाल) यूरोपीय युद्ध और भारती संकट को स्पष्ट समझानेवाली पुस्तक। इस पहले खण्ड से आगे का हाल है।

बाल साहित्य माला

१. कथा - कहानी—बालोपयोगी रोचक कहानियाँ =)

२. सीख की कहानियाँ—(२ भाग) बालोपयोगी शिक्षाप्रद कहानियाँ =) =)

३. शिवाजी चरित्र—छत्रपति शिवाजी बालोपयोगी जीवन चरित्र

४. देश–प्रेम की कहानियाँ—इतिहास से चुनी हुई देश प्रेम की ५ कहानियाँ

विविध प्रकाशन

✤१. **पंडित मोतीलाल नेहरू**—लेखक—श्री 'सुमन' ।)

✤२. **पंडित जवाहरलाल नेहरू**—लेखक—श्री 'सुमन' =)

३. सप्तसरिता—भारत की सात लोकमाताओं का भक्तिपूर्वक किया हुआ उपस्थान; लेखक—आचार्य काका कालेलकर =)

४. चारा दाना और उसके खिलाने उपाय—पशुपालन विषय की रोचक और वैज्ञानि पुस्तक (परमेश्वरी प्रसाद गुप्त)

५. पशुओं का इलाज—उपरोक्त लेख की पशुओं के इलाज पर अनुभूत और वैज्ञानि पुस्तक

'सोल एजेन्सी' की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा—(श्री कन्हैयालाल मुनशी) श्री मुनशी का यह ऋग्वेदकालीन उपन्यास बहुत मनोहर और रोचक है। महान अगस्त्य ऋषि की पत्नि लोपामुद्रा की यह जीवन कथा है १)

२. रोटी का राग—(श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल एम० ए०) यह रोटी का राग नये युग का राग है। महात्माजी के शब्दों में रचयिता का "हेतु स्पष्ट और निर्मल है।" और काका काले कर के शब्दों में सरल संस्कारी और सहृ इन्ही शब्दों में श्रीमन्नारायणजी की कविता वर्णन हो सकता है।

३. फ्रांस की राज्य-क्रांति—(डॉ० सत केतु विद्यालंकार) डॉ० सत्यकेतु यूरोप का आ निक इतिहास लिख रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक उस

✤ये पुस्तकें अप्राप्य हैं। इनको मँगाने का कष्ट न करें।

…है। इसमें नैपोलियन तक का इति-
…है। १।।)

…वाद की रूपरेखा—(श्री रामनाथ
…पुस्तक में सुमनजी ने सभी पहलुओं से
…का विवेचन किया है और सभी दृष्टियों
…के विचारों को देखा परखा है। १)

…पिता के पत्र पुत्री के नाम—(पंडित
…नेहरू) पंडितजी ने इस पुस्तक में
…कुमारी इंदिरा नेहरू के नाम दुनिया
…की कहानी पत्रों में लिखी है। ।।)

६. **बिखरे विचार**—(ले॰ श्री घनश्यामदास बिड़ला) श्री बिड़लाजी के लेखों का यह संग्रह है। पुराने होते हुए भी विचारों की दृष्टि से ये लेख नये हैं और विचारणीय, मननीय और अनुकरणीय हैं। १।।) २)

७. **प्रलय-वीणा**—(श्री सुधीन्द्र, एम. ए.) इसमें कवि की बिल्कुल नये दृष्टिकोणवाली नयी कवितायें संग्रहीत हैं। भूमिका-लेखक श्री सोहनलाल द्विवेदी के शब्दों में 'वे अतीत की काव्य-धारा के विरुद्ध एक प्रतिशोध हैं।' १)

'मण्डल' से आगे प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ

…हिंसा की शक्ति (रिचर्ड बी. ग्रेग)
…और साधन (आल्डस हक्सले)
…धर्म की आख्यायिकायें (आचार्य नानाभाई भट्ट)
…की कहानियाँ (चौ॰ शिवनाथसिंह)
…री आज़ादी की लड़ाई (हरिभाऊ उपाध्याय)
६. जीवन के बारे में— (टॉल्सटॉय)
७. मालिक और मज़दूर ,,
८. धर्म और सदाचार ,,
६. विद्यार्थी-धर्म (महात्मा गांधी)
१०. यंत्र की मर्यादा (नरहरि परीख)
११. हिन्दुस्तान की ग़रीबी (दादाभाई नौरोजी)
१२. हमारे आर्थिक प्रश्न (छगनलाल जोशी)

प्रचारित पुस्तकें

('मण्डल' के ग्राहकों को एक तिहाई कमीशन दिया जायगा)

१. **मेरा देश**—इसमें भगवत्प्रसाद सनातन
…बालोपयोगी सुन्दर और मनोहर
…है। पुस्तक बहुत दिलचस्प है। ।)

…**आर्थिक संगठन**—दुनिया के मौजूदा
…संगठन की जगह किस प्रकार का संगठन
…ग़रीब जनता को आराम मिले और
…, यही इस पुस्तक का विषय है ।।।)

…**रूपान्तर**–श्री जगन्नाथ प्रसाद की लिखी
…और हृदयग्राही कविताओं का संग्रह। ।।)

…**पौराणिक कथायें**—इस ग्रन्थ में भिन्न-
…पुराणों से संकलित प्राचीन भारत के
…तथा सती-देवियों के जीवन की
…घटनाओं का वर्णन है। १।।)

※५. **आश्रम-भजनावलि**—महात्मा गांधी के आश्रम में प्रार्थना के समय गाये जानेवाले भजनों का सुन्दर संग्रह =)।।

७. **पाक चन्द्रिका**—भोजन बनाने आदि की शिक्षा देनेवाली उपादेय पुस्तक— ४)

८. **तुलसीदास और उनकी कविता**—पं॰ रामनरेशजी त्रिपाठी का लिखा खोजपूर्ण मौलिक ग्रंथ—दो भाग— ४।।)

६. **रेल से माल भेजने का कायदा** (वाया गुड्स) इसमें भारतवर्ष की समस्त रेलवे लाइनों के नियम दिये हुए हैं। व्यापारियों के बड़े काम की चीज़ है। पुस्तकालयों व संस्थाओं के संग्रह-योग्य पुस्तक है। मू॰ ३)

१०. हुगली का इमामबाडा (ले० स्वर्ण-कुमारी देवी) ऐतिहासिक, शिक्षाप्रद उपन्यास। सचित्र मूल्य १।।)

११. भगवान महावीर (सचित्र व सजिल्द) अहिंसा धर्म के प्रचारक एवं जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का प्रमाणिक जीवन। मूल्य ४।।) आर्टपेपर पर स्पेशल राजसंस्करण ६)

१२. हिन्दू विधवा या सती गोरव (मौलिक उपन्यास) एक विधवा स्त्री संसार के प्रलोभनों म न फँसकर अपने जीवन को किस तरह सेवामय बनाती है इसका सुन्दर वर्णन मू० १)

१३. गोरा (रवीन्द्र बाबू का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास) मूल्य २।।) सजिल्द ३)

* **१४. ग्राम-आन्दोलन की आवश्यकता** ।=)
* **१५. सचित्र कृषि-शास्त्र** १)
* **१६. शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति**
(महात्मा गांधी के शिक्षा विषयक लेख-संग्रह) ।।)
१७. कविता-कौमुदी भाग (१–२) संपादक (रामनरेश त्रिपाठी) प्रत्येक का ३)
१८. बीस कहानियाँ २)
१९. हिन्दुओं के व्रत और त्योहार १।।)
२०. हिन्दुस्तानी कोष २)
२१. यूरोप की कहानियाँ २।।)
२२. योग के आसन (सचित्र) १)
२३. जादू की कहानियाँ (बालोपयोगी) ।=)
२४. स्वप्न (काव्य : रामनरेशजी त्रिपाठी) ।।)
२५. मोतीचूर के लड्डू (बालोपयोगी) ।)
२६. वानर-संगीत " ।)
२७. मिलन (काव्य) ।।)
२८. किसानों की कहावतें ।)
२९. जयन्त (नाटक) ।।।)
३०. पेखन ।)

(बालोपयोगी एकांकी नाटक)
३१. इतिहास की कहानियाँ
३२. शिवा-बावनी
३३. हमारा ग्राम-साहित्य
(ग्राम साहित्य की सुन्दर पुस्तक)
३४. सोहर
३५. मुस्लिम सन्तों के चरित्र
३६. हिन्दी पद्य-रचना
३७. मारवाड़ के मनोहर गीत
३८. वफाती चाचा
३९. राक्षसों की कहानियाँ (बालपयोगी)
४०. तरकस
४१. प्रेमलोक
४२. मानसी (कविता-संग्रह)
४३. गुपचुप कहानियाँ (बालोपयोगी)
४४. पाकेट डिक्शनरी
४५. पथिक (काव्य)
४६. तूणीर
४७. बालकथा-कहानी भाग १-१७ बालोपयोगी उत्तम कहानी संग्रह (सम्पादक रामनरेश त्रिपाठी) दाम प्रत्येक
४८. मोहन-माला (बालोपयोगी)
४९. हंसू की हिम्मत "
५०. बनाओ तो जानें "
५१. घर का वैद्य "
५२. परियों की कहानियाँ "
५३. खोजो, खोज निकालो "
५४. उर्दू-हिन्दी कोष
५५. हिन्दी मुहावरा कोष
५६. हिन्दी कहावत
५७. बहादुर सुन्दरी
५८. हिन्दी शिक्षण-विधान
५९. अनोखा बलिदान

(नोट—* इनपर ¼ कमीशन नहीं मिलेगा)

साधना-मन्दिर-प्रकाशन

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय शब्दचित्र और जीवनी-लेखक हैं। तथा महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दीनबन्धु एण्ड्रूज, साधु वास्वानी और भदन्त आनन्द कौसल्यायन की लिखी कृतियाँ पढ़िए और प्रचारित कीजिए। पूरे सेट के लिए ।।।=) के टिकिट भेजिए। पुस्तकें आपके घर मुफ्त पहुँचा दी जावेंगी।

बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित

- जापान के गांधी कागावा -)
- अराजकवादी एमा गोल्डमेन -)
- अराजकवादी लुई माइकेल -)
- अराजकवादी मैलटेस्टा -)
- प्रिंस क्रोपाटकिन -)
- महापण्डित राहुल सांकृत्यायन -)
- अराजकवादी माइकेल बाकूनिन -)
- इवान तुर्गनेव -)
- पतिव्रता जयनि -)
- श्रीमती हेरियट एलीजबेथ स्टो -)
- भारत भक्त दीनबन्धू एण्ड्रूज -)
- स्व० देवमित्र धर्मपाल -)

१३ मंगलमय महावीर (साधु वास्वानी) -)

१४ स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (राजबहादुर सिंह) -)

१५ भगवान बुद्ध (भदन्त आनन्द-कौसल्यायन) -)

१६ बालशिक्षण और माँ-बाप (भानुकुमार जैन) -)

१७ विप्लव-गान क्रान्ति-गीत -)

१८ अमर-गान भाग १ (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) -)

१९ मेरी भावना (जुगलकिशोर मुख्तार))।।

२० पुस्तक महिमा और पुस्तकालय (लक्ष्मण त्रिपाठी))।।

२१ शान्तिनिकेतन का हिन्दी-भवन (दीनबन्धु एण्ड्रूज) मुफ्त

'मण्डल' की दिल्ली, लखनऊ और इन्दौर शाखाओं की दुकानों पर

निम्न प्रकाशकों की चुनी हुई उत्तम तथा सुरुचिपूर्ण पुस्तकें मिला करती हैं—

१. हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, २. छात्रहितकारी पुस्तकमाला, ३. भारतीय-भण्डार, ४. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, ५. नागरी प्रचारिणी सभा, ६. इंडियन प्रेस, ७. गंगा पुस्तक माला, ८. हिंदी एजेन्सी, ९. साहित्य भवन लि० १०. ... मन्दिर, ११. किताबिस्तान १२. तरुण-भारत ग्रंथावलि, १३. आर्य साहित्य मंडल, १४. ... साहित्य मन्दिर, १५. भारती साहित्य ... १६. साहित्य सदन, १७. सरस्वती प्रेस, १८. हिन्दी भवन, १९. वाणी मन्दिर, २०. ... पुस्तकालय, २१. नवयुग पुस्तक भंडार, २२. नवशक्ति प्रकाशन मन्दिर, २३. भूगोल ... २४. पुस्तक भण्डार, २५. काशी ... २६. ज्ञानमण्डल, २७. हिन्दी साहित्य ... २८. हिन्दी पुस्तक भण्डार, २९. ३०. ... बुकडिपो ३१. रामनारायणलाल बुकसेलर्स, ३२. रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, ३३. भार्गव पुस्तकालय, ३४. नवलकिशोर प्रेस, ३५. आदर्श ग्रंथमाला, ३६. मोतीलाल बनारसीदास, ३७. मेहरचन्द लक्ष्मणदास, ३८. खेमराज श्रीकृष्णदास, ३९. गीता-प्रेस, ४०. गीता-विज्ञान कार्यालय, ४१. नवजीवन कार्यालय, ४२. तिलक ब्रदर्स, ४३. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, ४४. परमश्रुत श्रावक मण्डल, ४५, देवीदत्त शर्मा के किंडर गार्टन बक्स, ४६. निर्णयसागर प्रेस ४७. भारतीय ग्रंथ माला, ४८. भार्गव पुस्तकालय, ४९. मिश्रबन्धु कार्यालय, ५१. हिन्दी विश्व भारती ५१ साधना मन्दिर, ५२. हिन्दी साहित्य मण्डल, ५३. सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, ५४. चौधरी मुख्तार सिंह। ५५ अ० भा० ग्राम उद्योग संघ, ५६ अ० भा० चर्खा संघ, ५७ हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, ५८ आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी।

कुछ अंग्रेजी पुस्तकें

	Rs.	as.	ps.
×Ramgarh Congress Souvenir	2	0	0
Home & Village Doctor Leather bound	6	0	0
Cloth ,,	5	0	0
The Story of My Experiments with Truth (By Gandhiji)	4	0	0
Satyagraha in South Africa ,,	4	8	0
Self-restraint Vs Self-indulgence (2 Vols.) ,,	2	0	0
My Soul's Agony ,,	0	8	0
From Yervada Mandir ,,	0	2	0
Hind Swaraj ,,	4	0	0
Cent per Cent Swadeshi ,,	1	8	0
To the Students ,,	2	0	0
Christian missions ,,	2	0	0
The Story of Bardoli (M. D.)	2	8	0
The Epic of Travancore ,,	1	8	0
With Gandhiji in Ceylon ,,	1	0	0
Gandhiji in Indian Villages ,,	2	0	0
Satyagraha in Champaran (Rajendra Prasad)	2	0	0
Public Finance and Our poverty (J. C. Kumarappa)	0	12	0
Seven Months with Mahatma Gandhi	3	8	0
Preparation for Science	0	12	0
The Epic Fast (Pyarelal)	1	4	0
Status of Indian Princes ,,	0	4	0
Education for Life (J. C.)	0	3	0
A Survey of Matar Taluka ,,	2	0	0
The Heart of a Gopi (Miss R. Tyabji)	1	8	0
Indian Prohibition Manual	0	4	0
Plighted Word (C. R.)	0	2	0
Upanishad ,,	0	6	0
Bhagawad-Gita ,,	0	6	0
The Shastras on Untouchability	0	1	3
Cow Protection (Valji Desai)	0	13	0
The Power of Non-violence (R. B. Gregg)	2	0	0
Through Congress Eyes (Subhas Bose)	2	8	0
Secret of Japan (Chaman Lal)	2	8	0
×Bleeding wound (Gandhiji)	1	0	0
An Autobiography (Jawaharlal)	6	0	0
Letters from a father to his Daughter	1	0	0
Hindu America (Chamanlal)	7	0	0

A. I. C. C. PUBLICATIONS

Congress and War Crisis.	1	0	0
Congress and War	0	2	0
The Indian Federation.	0	8	0
Excluded Areas Under The New Constitution.	0	3	0
Public revenue and expenditure in India.	1	0	0
Survey of a South Indian Village.	0	2	0
Salaries of public Servants.	0	4	0
Indian Foreign Policy.	0	4	0
India on China.	0	8	0
Resolutions passed by the Congress during the period (January 1930 September 1934)	1	4	0
—do—1934-36	0	10	0
—do—April 1936-Jan.1937	0	10	0
—do—1938-39.	0	8	0
History of the Congress	2	8	0
The Gandhian Way.	2	0	0
Non-violent Revolution.	0	4	0
The Latest Fad.-Basic Education.	1	0	0
Our Countrymen Abroad.	0	8	0
India's Challenge to Christians	2	0	0
India's Stand.	0	2	0
Indian National Congress (1939-40.)	0	8	0

× निशानवाली पुस्तकें 'मण्डल' तथा 'जी० सा०' के ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेंगी।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

न, १९४१
ई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

वर्ष पहला
अंक ग्यारहवाँ

प्रगति-गीत

जब विषम स्वर बज रहे हों, तब न निज स्वर मंद कर हे !
बढ़ रहे हों चरण सम में,
वे न जा पहुँचें विषम में,
इन विवादी स्वरों की सब मूर्च्छनायें बंद कर हे !
छेड़ अपनी रागिनी तू
चित्त प्राणोन्मादिनी तू
दग्ध जीवन के कणों को, स्निग्ध नव मकरंद कर हे !
यदि सुने कोई न तव रव,
चुप न रह, गा गीत नव-नव,
रुक गयी गति जिन उरों की, आज उनमें स्पंद भर हे !
बढ़ उधर, हो जिधर आँधी,
चढ़ उधर, हो जिधर गाँधी,
बंदिनी के मुक्ति-पथ की यातना आनन्दकर हे !

सोहनलाल द्विवेदी

प्रगतिशील साहित्य

[हरिभाऊ उपाध्याय]

प्रगतिशील साहित्य पर कुछ लिखने के पहले हमें "प्रगति" और "साहित्य" का मतलब अच्छी तरह समझ लेने की ज़रूरत है। सवाल उठते हैं कि प्रगति किसकी ? साहित्य क्या और किसलिए ? जब इनकी गहराई में जाते हैं तो जवाब मिलता है—'प्रगति' जीवन की ओर 'साहित्य' जीवन के लिए। जो साहित्य जीवन को प्रगति की तरफ़ ले जाता है वही प्रगतिशील साहित्य है। और फिर साहित्य क्या है ? सुन्दर शब्दों में जीवन की अभिव्यक्ति ही साहित्य है।

जब यह कहा जाता है कि साहित्य तो शाश्वत वस्तु है, राजनीति युग-युग में। पलटती रहती है, अतएव अस्थिर और गर्ह्य है, उसमें दलबंदियाँ हैं, छोटे दर्जे के जीवों का वह स्थान है. साहित्यिक उच्च, निर्मल, आकाश में संचार करनेवाला मनीषी है, तब मुझे यही लगता है कि हमने न साहित्य को समझने की कोशिश की है न राजनीति को, न जीवन को। हमने एक-एक टुकड़े को ले लिया है, उसे ही 'पूर्ण' समझ लिया है और उन सबके एक सूत्र 'जीवन' तक पहुँचने की ज़रूरत ही नहीं समझी है। मेरी राय में तो जैसे साहित्य जीवन की शब्दों में अभिव्यक्ति है वैसे ही राजनीति व्यवस्था-रूपी कर्म विशेष में जीवन की अभिव्यक्ति है। राजनीति का उद्देश्य है जीवन को सुव्यवस्थित बनाना और प्रगति की ओर ले जाना। साहित्य का उद्देश्य है जीवन को प्रसन्न और सुसंस्कृत बनाना। और संस्कारिता तथा व्यवस्थिति प्रगति के ही साधन हैं। वास्तव में जीवन को हम किसी एक खाने में बाँटकर या बन्द करके नहीं रख सकते। उसे समझने के लिए उसके कल्पित टुकड़े कर लेने पड़ते हैं।

अब यह सवाल पैदा होता है कि जीवन क्या है ? मेरी समझ में जीवन शरीर में या आकारों में बँधा हुआ चैतन्य का कण या स्रोत है। गति, प्रवाह, वेग, हलचल, आन्दोलन, क्रिया, चमक ये चैतन्य के लक्षण हैं। शरीर या आकार में बंध जाने से चैतन्य या जीवन को एक मर्यादा जरूर प्राप्त हो जाती है लेकिन उसका असर इतना ही हो सकता है कि चैतन्य या जीवन की शक्ति कुछ कुंठित हो जाये, मगर उसके असली लक्षण तो उसमें ज़रूर ही पाये जायेंगे। साकार या शरीरबद्ध हो जाने से जहाँ उसकी शक्ति को मर्यादा में रहना पड़ता है, तहाँ उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। आकाश की बिजली में अधिक व्यापक ताकत है; लैंप की बिजली की ताकत सीमित होती है। मगर इसलिए लैंप निरंतर मधुर प्रकाश देता रहता है और आकाश की बिजली की चमक आँखों को चौंधिया देती है, और फ़ायदा कुछ नहीं।

जब जीवन चैतन्य है, उसमें क्रिया, हलचल, वेग आदि हैं तो साहित्य और राजनीति आदि जो उसकी जुदा-जुदा अभिव्यतियाँ या साधन है, उनमें भी ये लक्षण दिखायी देने चाहिएँ। शाश्वत धर्म और युग-धर्म में फ़र्क़ या फासला महज़ पैर और आँख का है। आँख ऊपर और दूर तक देखती है, पैर चलता है, धीरे-धीरे भी और दौड़कर भी। मगर आँख जितनी तेजी उसमें नहीं। जो शख्स देखता दूर तक है, मगर चलता नहीं और जो शख्स चलता है मगर देखता नहीं, उन दोनों में कुछ-कुछ खामियाँ हैं। असली मनुष्य वह है जो देखता भी है और चलता भी; और पूर्ण मनुष्य वह है, जिसके देखने और चलने में सामञ्जस्य है, मेल है। देखनेवाला आदर्शवादी और चलनेवाला व्यावहारिक कहलाता है। सच्चा मनुष्य व्यावहारिक आदर्शवादी हो ही सकता है। यानी वह तो आदर्श को अमल में लाने की ज्यादा-से-ज्यादा कोशिश करता है। आदर्श हमें शाश्वत धर्म की तरफ़ मुख़ातिब करता है और व्यवहार हमें युग-धर्म की उपयोगिता और महत्ता बताता है। यदि साहित्य शाश्वत धर्म का उपासक है तो राजनीति युग-धर्म से बँधी हुई है क्योंकि साहित्य कहता और इशारा करता है और

को करना पड़ता है। जिसे करना पड़ता है, उसे नज़दीक, आगे-पीछे, आस-पास भी देखना है और उसका हिसाब लगाना पड़ता है। साहित्य यदि भाव या विचार है तो राजनीति कर्म यदि ऋषि है तो राजनीति सिपाही या कर्मयोगी है। जो दोनों में नाता नहीं देखते या डालना चाहते हैं वे साहित्य और राजनीति दोनों का—शाश्वत-धर्म और युग-धर्म दोनों का ते हैं।

साहित्य के भी दो रूप हैं एक उल्लास देनेवाला, दूसरा ज्ञान और सुसंस्कार देनेवाला। बहुतेरे लोग मनोरंजक, ललित या उल्लास देनेवाले साहित्य को ही साहित्य कहते हैं, शेष को या तत्त्वज्ञान में दाखिल करते हैं। लेकिन साहित्यके शाश्वत महत्त्व पर तो ज़ोर वही लोग दे हैं, जो उसे व्यापक अर्थ में मानते हों, क्योंकि साहित्य का शिक्षण या तत्त्वज्ञान नामक अंग ही धर्म के अन्दर आ सकता है, मनोरंजक या ललित अंग नहीं। वह तो सरेदस्त क्षणिक है।

गति जीवन का लक्षण है, इसलिए साहित्य भी गतिमान होना चाहिए। लेकिन महज़ 'गति' मानी नहीं हैं जबतक कि उसका कोई उद्देश न हो। किसी लक्ष्य की तरफ जो गति होती गति कहते हैं। तो जीवन का लक्ष्य क्या है? पूर्ण विकास से अच्छा बुद्धिगम्य नाम जीवन को नहीं दिया जा सकता। जीवन के जितने लक्षण या धर्म हैं उन सबका अधिक-से- विकास ही जीवन का लक्ष्य हो सकता है। लेकिन विकास किसलिए? मनुष्य ही नहीं जीव- सुख, समृद्धि, स्वतन्त्रता और शान्ति के लिए। इससे हम इस नतीजे पर पहुँचे कि जो जीवन को सुख, समृद्धि, स्वतन्त्रता और शान्ति की तरफ ले जाता है वही प्रगतिशील साहि- जा सकता है।

क्या हिन्दी का साहित्य प्रगतिशील है? 'प्रगति' शब्द शाश्वत धर्म के लिए लागू नहीं हो युग-धर्म पर ही लागू हो सकता है। वह समयसापेक्ष है। वह वर्तमान की अपेक्षा रखता मान की तुलना में ही आप किसी को प्रगतिशील या उससे उलटा बना सकते हैं। तो इस हिन्दुस्तान की आवश्यकता क्या है? हिन्दुस्तान का जीवन विकास की या प्रगति की किस में है? यह साफ है कि हिन्दुस्तान अभी गुलाम है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से वह बुरी जकड़ा हुआ है और उसे उससे जल्दी-से-जल्दी छूटकर अपनापन पा लेना है और बाद ही ऐसे मानव-समाज का निर्माण करना है जो सुखी, समृद्ध, स्वतन्त्र और शान्तिमय हो। , यह संघर्ष, यह आतुरता, अधीरता, व्याकुलता हिन्दुस्तान का वर्तमान जीवन है। क्या हिन्दी-साहित्य में हमारा यह जीवन अभिव्यक्त हो रहा है?

यह तय है कि हिन्दुस्तान की आज़ादी जनता की जाग्रति, संगठन और बल से मिलनेवाली सब की सारी कोशिश यही है और होनी चाहिए कि जल्द से जल्द जनता को इसके लिए करें—हिन्दुस्तान का मानस जनताभिमुख हो। हिन्दुस्तान के जीवन की सबसे बड़ी पुकार हिन्दी-साहित्य में यह प्रतिध्वनित हो रही है?

हिन्दुस्तान को जो राज कायम करना है, जो समाज बनाना है वह मुट्ठी भर लोगों के लिए जनता के लिए होगा। तभी वह सच्चा राज और समाज बन और कहला सकता है। जो राज-व्यवस्था यहाँ रही है और जो समाज बना हुआ है उसमें समाज के सुख का तो रखा गया है मगर उसकी आज़ादी और आज़ाद भावों में बननेवाली प्रणालियों, संस्कृ- और उनकी रक्षा का खयाल नहीं किया गया है। अब जो राजप्रणाली बनेगी, जो संस्कृति उसमें स्वाधीन भावों का पूरा खयाल रखा जायगा। क्या इस भावी राष्ट्र-निर्माण की का प्रतिबिम्ब हमारे वर्तमान साहित्य में मिलता है?

हिन्दुस्तान अहिंसात्मक साधन से आज़ादी हासिल करने के लिए प्रयत्नशील है और अब ऐसा दिखलायी देने लगा है कि इसी तरीके से वह आज़ाद हो जायगा। यदि ऐसा हुआ तो हमारी शासन-रचना, सुधार, प्रगति-सम्बन्धी कल्पनायें आमूल बदल जायेंगी। अब भी बदल रही हैं। अहिंसात्मक युद्ध का एक नया ही शास्त्र बन रहा है, इसी प्रकार अहिंसात्मक समाज-व्यवस्था का शास्त्र भी बनेगा और बनाना पड़ेगा। क्या इस प्रवृत्ति और इन प्रयोगों का परिचय हमारे वर्तमान साहित्य से अच्छी तरह मिलता है ?

हम यह मोटे तौर पर कह सकते हैं कि हिन्दी के कुछ लेखकों और कवियों ने गुलामी की पीड़ा को अनुभव किया है, आज़ादी की पुकार को सुना है, लेकिन उसके सच्चे स्वरूप को, सफल हो सकने योग्य साधन को कितनों ने अच्छी तरह पहचाना है ? भावी भारतीय समाज की कल्पना तो शायद ही किसी को छू तक गयी हो। इनपर अगर किसी ने लिखा है तो वे "साहित्यसेवियों" में नहीं "राष्ट्रसेवकों" में खपनेवाले होंगे। इस प्रकार लिखनेवालों, या राष्ट्रभाषा का प्रचार करनेवालों को तो 'साहित्यसेवी' कहनेवाले "साहित्यसेवा" के आँगन में आने लायक ही नहीं समझते ! इधर कुछ दिनों से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में राष्ट्रीय वृत्ति के हिन्दी-भक्तों का प्रभाव बढ़ रहा है तो बस हमारे ऐकांतिक "साहित्यसेवी" ऐसा मानने लगें हैं मानो 'साहित्य-सेवा' के क्षेत्र में अनधिकारी लोग घुस पड़े हों और साहित्य पर कुठाराघात हो रहा हो। उनके दिल में ऐसा डर न पैदा होता, वे इतने नाराज़ न होते, अगर हिन्दुस्तान के जीवन में उन्होंने अपने आपको डुबा दिया होता। वे उससे बिल्कुल या बहुत-कुछ अछूते हैं, इसलिए उनकी रचनायें पाठक के हृदय को छूती नहीं हैं और न जन-समाज में प्रिय या प्रचलित ही होती हैं।

हिन्दी-साहित्यिकों को इस बात की बड़ी शिकायत रहती है, कि हिन्दी लेखकों और साहित्य-सेवियों की कोई क़द्र नहीं करता, उन्हें अर्थ-कष्ट से पीड़ित रहना पड़ता है और कुछ ऐसा लगता है, जैसे पुरस्कार, पारिश्रमिक या ऐसी ही कुछ कसौटी उन्होंने बना रखी है किसी लेखक की सफलता की, उसकी क़द्र की। पुरस्कार रुपया रोटी की जिन्हें 'शिकायत' रहती है उन्होंने क्या तो साहित्यिक के आदर्श और उसकी जिम्मेदारी को समझा है और क्या उनसे साहित्य-सेवा होगी या हुई होगी ? यह समझना भूल है कि दिमाग़ की कोरी कल्पनाओं से, मन की मस्त हिलोरों से कोई साहित्य सृजन कर सकता है, जबतक कि वह जीवन की गहराई में गोते न लगाता हो और उनमें से रत्न चुन-चुनकर न लाता हो। जिन कल्पनाओं, भावों और विचारों का जीवन से, जीवन की अनुभूतियों से कोई नाता न हो, हमारे आसपास के नित्य और प्रत्यक्ष जीवन से जिनका लेन-देन न होता हो उनमें न सजीव प्रेरणा रहती है, न वास्तविक अनुभूति की अभिव्यक्ति। वे कल्पना-जगत् की अथवा मिथ्या हैं। इसलिए वे लोक-हृदय पर अधिकार नहीं जमा सकतीं।

यह एक दुःखद प्रश्न है कि हिन्दी में कोई रवीन्द्रनाथ, गांधी, गोर्की क्यों नहीं ? इसका उत्तर यह है कि हिन्दी में जीवन की बनिस्बत साहित्य को, साधना की बनिस्बत कल्पनाओं को, अनुभूति की अपेक्षा निराधार भावों को महत्त्व दिया गया है और दिया जाता है। हिंदी के अधिकांश लेखक पुरस्कार या रोटी के लिए लिखते हैं, उसके ऊपर उठकर नहीं रहते। वे "फाकेमस्त" नहीं "फाके-शिकायत" हैं। यदि उन्होंने सत्य जीवन की साधना के द्वारा अपना व्यक्तित्व बना लिया हो तो उनके पास जगत को देने के लिए नित-नयी अनमोल चीज़ें होतीं और जगत उनपर अपनेको न्यौछावर कर देता। और यह कहां की "सेवा" है जो हर घड़ी "पुरस्कार" का हिसाब लगाती है और अपनी "भूख" का रोना रोती है ? सरकारी नौकर, 'जी हुजूर', खुशामदी, दब्बू, दुर्बल, पतित कहीं सजीव मुक्ति और अमृतदायी साहित्य रच सकते हैं ? यह लिखते समय में हिन्दी लेखकों की कठि

मूल्य नहीं आँक रहा हूँ, बल्कि एक उच्च साहित्यसेवी के कार्य और जिम्मेदारी का अपना कर रहा हूँ। पं० जवाहरलालजी को कोई साहित्यसेवी कहेगा ? फिर क्यों उनकी लिखी मामूली हिन्दी पढ़ा भी पढ़ना चाहता है और क्यों 'प्रियप्रवास" या "बिहारी-सतसई" या कौमुदी" से दूर भागता है ? एक ने जनता के हृदय को छुआ है। दूसरे ने थोड़े से उच्च पढ़नेवालों को आह्लादित करने का प्रयत्न किया है ? क्यों प्रेमचन्द के लिए सब रोते हैं मैथिलीशरण बरबस खींचते हैं ? इसीलिए कि उन्होंने जनता में डूबने, जीवन की गहराई से नापने की कोशिश की है। —

जीवन या मानव-जीवन अमर प्रेरणा, अनन्त अनुभूति और दिव्य संदेशों का स्रोत है। उससे दूर हम न खुद ही जीवन पा सकते हैं न दूसरों को दे सकते हैं। जीवन का लक्ष्य या आदर्श तो इस बात के लिए जाग्रत और सावधान रखता है कि हम गलत दिशा में तो नहीं जा रहे हैं। जीवन का वर्तमान हमें यह सिखाता है कि किस समय क्या कहें, क्या लिखें और क्या करें ? आग लग गयी हो, उस समय जो साहित्यसेवी उत्तान शृंगार रस का काव्य लिख रहा होगा, सत्य की, जीवन की या साहित्य की सेवा का दावा कर सकता है ? जो अनुभूति आसपास वेदना, आनंद, उल्लास यानी सुख-दुख से अछूती रहती है वह सत्य की अनुभूति कैसे है ? जिन साहित्य-सेवियों के उच्च विचार सुन्दर भाव और दिव्य तत्त्व उनके दैनिक जीवन नहीं जाते, उनकी साधना के विषय नहीं बनते, वे यदि लोगों को खोखले ही लगें, और लोगों दिन तक न ठहरें तो यह किसका कसूर ?

मेरे कहने का भाव यह है कि प्रगतिशील साहित्य की रचना हम तभी कर सकते हैं जब हम प्रगति के साथ-साथ रहें, चलें और दौड़ें। जो साहित्य जीवन के उतार-चढ़ाव से अछूता प्रगतिशील साहित्य नहीं। हिंदी में प्रगतिशील साहित्य का अभाव तो नहीं है, परन्तु वह प्रभाव-नहीं है, हिन्दी-सेवकों का इस तरफ ध्यान जाना चाहिए। यदि वे ध्यान देंगे तो उन्हें जीवन से दूर भागने और अपनी एक अलग जाति बना लेने की अपेक्षा जीवन में और वर्तमान की प्रेरणा मिलेगी और उन डुबकियों से वे जो चीजें लाकर हिन्दी जगत् को देंगे उनसे न वे खुद अमर होंगे, बल्कि सारे हिन्दुस्तान को आज़ादी की ही तरफ नहीं, अमरता की तरफ देंगे।

इससे नसीहत लें

[महात्मा इमर्सन]

मुझे सभी उत्तम पुस्तकों के भाषान्तर पढ़ने में कोई संकोच नहीं होता। किसी पुस्तक में जो कुछ सर्वोत्तम है—कोई भी सच्ची अन्तर्दृष्टि या उदार मानव-विचार—उसका अनुवाद है। मैं देखता हूँ कि हमारी बाइबिल और दूसरी उच्च या नैतिक पुटवाली पुस्तकों में माधुर्य और प्रसाद का वैसी ही मधुर वाक्यावली में अनुवाद कर लेना सुगम एवं अनिवार्य किसी लैटिन, ग्रीक, जर्मन, इटालियन यहाँतक कि फ्रेंच पुस्तक का भी अच्छा अंग्रेजी मुझे मिल सकता है, मैं उसे मूलभाषा में बहुत कम पढ़ता हूँ। मैं महान् इंग्लिश भाषा ऋणी बना रहना चाहता हूँ। यह भाषा एक महासागर के सदृश है, जिसमें भूमण्डल के मार्गों से नदी-नाले जल लाकर डालते हैं। अपनी मातृभाषा में पुस्तकों का अनुवाद मिलने मेरा उन सब पुस्तकों को उनकी मूलभाषाओं में पढ़ने की इच्छा करना वैसा ही है, जैसा को छोड़कर नदी को तैर कर पार करने की इच्छा करना।

गांधीवाद के कवि : श्री सोहनलाल द्विवेदी

[सुमित्रानन्दन पन्त]

गांधीवाद के भीतर श्री सोहनलालजी द्विवेदी अपना राष्ट्रीय काव्य खादी के ताने-बाने से बुनकर हिन्दी-संसार को भेंट कर रहे हैं। 'भैरवी' उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह है, जिसमें राष्ट्रीय जागरण के वंदना-गीतों में कवि ने अपना भी श्रद्धापूर्ण स्वर मिलाया है। राष्ट्रीय जागरण के इस प्रभात में म उनकी 'भैरवी' के कोमल प्राणपदों का मुक्त हृदय से स्वागत करता हूँ।

गोरे, लंबे, स्वस्थ-सुडौल शरीरवाले प्रसन्न-मुख भावुक इस युवक कवि के खादी के स्वर अपनी एक विशेषता रखते हैं। उनकी कविता सुविज्ञ साहित्यिकों की ही नहीं, जनता-जनार्दन की भी प्रिय वस्तु है। उनकी सरल प्रसादमयी भाषा, सहज भावुकता, सुबोध कल्पना तथा विश्वास और भावनामयी देशभक्ति जनता के लिए विशेषत: आकर्षक है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त, 'भारतीय आत्मा' और नवीनजी ने भी राष्ट्रीय कविता की है। श्री सोहनलालजी इनसे यहाँपर भिन्न हैं। मैथिलीबाबू ने प्रेरणा पौराणिक संस्कृति से और उससे भी अधिक पौराणिक कला से पायी है। और गांधीवाद उसे एक प्रकार से प्रश्रय ही देता है। 'भारतीय आत्मा' में राष्ट्रीय भावुकता है. और नवीनजी के काव्य में राष्ट्रीय भावना तो है ही, साथ ही गांधीवाद के भीतर से नवीन मानवता की भी कल्पना मिलती है, यद्यपि उसके आधार बौद्धिक एवं वास्तविक न होकर भावना-प्रधान ही हैं। इन तीनों कवियों ने 'गांधीवाद' को वाणी देने का प्रयत्न किया है, क्रमश: पुनर्जागरण द्वारा, भावुकता द्वारा, अपनी भावना-कल्पना द्वारा।

तो क्या ये तीनों कवि गांधीवाद के सफल कवि कहे जा सकते हैं? गांधीवाद का भावात्मक अथवा सांस्कृतिक स्वरूप अभी भविष्य के गर्भ में है, वह वर्तमान के राजनीतिक तथा सामाजिक संघर्षों और विद्रोहों से दबा हुआ है।

श्री सोहनलालजी ने उस भावतत्त्व को असमय वाणी देने का व्यर्थ प्रयत्न नहीं किया है। संभव है अपनी स्वाभाविक कवि-प्रवृत्ति से प्रेरित हो, उन्होंने गांधीवाद के आवरण-पक्ष को गया है, जहाँ युग का अभाव और दारिद्र्य गांधीवाद में प्रतिफलित हुआ है, और इसीलिए उन्हें सफलता मिली है। **उन्होंने अहिंसात्मक क्रान्ति को, विद्रोह को, तथा सुधारवाद को अत्यन्त सरल, सबल और सफल ढंग से काव्य बनाकर 'जन-साहित्य' बनाने के लिए उसे मर्म-स्पर्शी और मनोरम बना दिया है।**

गांधीवाद के वर्तमान स्वरूप को अभिव्यक्ति देने के लिए कवि ने अपनी स्वाभाविक रुचि और नैसर्गिक प्रतिभा से जिन विषयों को चुना है, उनमें से कुछ के नाम ये हैं: **युगावतार गांधी, खादी गीत, गाँवों में, किसान, दांडीयात्रा, त्रिपुरी कांग्रेस, बढ़ो अभय जयजयजय ! राष्ट्रीय निशान** आदि।

ये सभी रचनायें भाषा, भावोच्छ्वास, छंदविन्यास और जनसाहित्य की दृष्टि से उत्तम सृष्टि हैं। भाषा कहीं-कहीं तो सरलता की सीमा तक पहुँच गयी है। जैसे 'गाँवों में' शीर्षक कविता में—

अपनी उन रूपकुमारी में
जिनके नित रूखे रहें केश,
अपने उन राजकुमारों में
जिनके चिथडों से सजे वेश
अंजन को तेल नहीं घर में
कोरी आँखों के हावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में

है जिनके पास एक धोती
है वही दरी उनकी चादर,
जिससे वे लाज समेट सदा
निकला करतीं घर से बाहर

१९४१]

पुरवधुओं का क्या हो शृंगार
जो बिका रईसों - रावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में
सोने-चाँदी का नाम न लो
काँसे - फूले के कडे - छडे
मिल जायें बहूरानी को तो
समझो उनके सौभाग्य बडे
राँगे की काली बिछियों में,
पति के सुहाग के भावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में

युगावतार गांधी को किस स्वरूप में कवि ने अंकित किया है ! —

चल पड़े जिधर दो डग मग में,
चल पडे कोटि पग उसी ओर,
पड़ गयी जिधर भी एक दृष्टि,
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर
जिसके शिर पर निज धरा हाथ,
उसके शिर रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया,
झुक गये उसीपर कोटि माथ,
हे कोटिचरण, हे कोटिमाथ,
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम,
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति, तुमको प्रणाम !
युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भ्रकुटि देख
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख
तुम बोल उठे, युग बोल उठा
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर,
युगकर्म जगा, युगधर्म तना
युगपरिवर्तक, युगसंस्थापक,
युगसंचालक हे युगाधार !
युगनिर्माता, युगमूर्ति तुम्हें
युग-युग तक युग का नमस्कार !

कवि का 'खादी गीत' पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुका है, और उसके कुछ अंश का रेकार्डिंग भी हो चुका है—

खादी के धागे - धागे में
अपनेपन का अभिमान भरा
माता का इसमें मान भरा
अन्यायी का अपमान भरा
खादी की रजत चंद्रिका जब
आकर तन पर मुसकाती है,
तब नवजीवनकी नयी ज्योति
अन्तरतम में जग जाती है,
खादी में कितने ही नंगों
भिखमंगों की है आस छिपी
कितनों की इसमें भूख छिपी
कितनों की इसमें प्यास छिपी

खादी गांधीवाद का आवरण है, अहिंसात्मक क्रांति के लिए परम आवश्यक त्यागपूर्ण सीधे-सादे आत्मनिर्भर जीवन का प्रतीक, जिसके भीतर गांधीवाद का सांस्कृतिक हृदय पदार्थभेद के कारण स्वतंत्र रूप से सुरक्षित है। **लोकशिराओं में नवजीवन का रक्त संचार करने को स्पंदनोत्सुक खादी को वाणी दिये बिना गांधीवाद का सांप्रतिक स्वरूप निराधार ही हो जाता है।**

'दांडीयात्रा' और 'त्रिपुरी कांग्रेस' सजीव मार्मिक भावना में ओतप्रोत सुंदर काव्य के नमूने हैं।

'दांडीयात्रा' में कवि की भावना का उद्ग्रीव सिंधु मुखर हो उठा है !

'त्रिपुरी कांग्रेस' में कवि ने अपनी कल्पना के बल से धरणी के स्तर को चीरकर पुरातन कोशल के साम्राज्य के ध्वंस को फिर से उठा दिया है !

त्रिपुरी क्या बसी अनूपम छवि,
जैसे हो त्रिपुरी राज्य उठा,
धरणी के स्तर को चीर,
पुरातन कोशल का साम्राज्य उठा
उठ आये उसके सिंहद्वार
उठ आयीं गुंबद मीनारें,

मेहराब उठे, शुचि श्रृंग उठे,
ध्वज, तोरण कलसी मीनारें

. जय जय जय, प्रयाण-गीत, जय राष्ट्रीय निशान भी सबल एवं स्फूर्तिदायिनी रचनायें हैं—

(१)

फूंको शंख ध्वजायें फहरें
चले कोटि सेना, घन घहरें
मचे प्रलय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !
नित पददलित प्रजा के क्रंदन
अब न सहे जाते हैं बन्धन
करुणामय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !
बलि पर बलि ले चलो निरन्तर
हो प्राची में आज युगान्तर
हे बलमय !
हे बलिमय !
बढ़ो अभय !
अमर सत्य के आगे थर थर
विश्व कँपे, काँपे विश्वम्भर
हे प्रणमय !
हे व्रणमय !
बढ़ो अभय !
राजतंत्र के इस खँडहर पर
प्रजातंत्र के उठें नवशिखर
जनगण जय !
जनमत जय !
बढो अभय !

(२)

रहे समक्ष हिमशिखर
तुम्हारा प्रण उठे निखर
भले ही जाय तन बिखर
रुको नहीं
झुको नहीं
बढ़े चलो
बढ़े चलो
घटा घिरी अटूट हो
अधर में कालकूट हो
वही अमृत का घूंट हो
मरे चलो
जिये चलो,
अशेष रक्त तोल दो
स्वतन्त्रता का मोल दो
कडी युगों की खोल दो
डरो नहीं
मरो वहीं
बढ़े चलो
बढ़े चलो

(३)

मस्तक पर हो शोभित रोली
बढ़े शूरवीरों की टोली,
खेलें आज मरण की होली
बूढ़े और जवान
बूढ़े और जवान
जय राष्ट्रीय निशान !
जबतक एक रक्तकण तन में
तिल भर डिगें न अपने प्रण में
हाहाकार मचावें रण में
जननी की सन्तान
जननी की सन्तान
जय राष्ट्रीय निशान !

श्री सोहनलालजी से हिन्दी-जगत भली-भांति परिचित है । मेरा विश्वास है कि उनकी राष्ट्रीय प्रभात सूचक 'भैरवी' को वह यथेष्ट स्थान और सम्मान देगा ।

राष्ट्रीयता और साहित्य

[स्वर्गीय योगेश्वरसिंह]

हित्य जीवन का दर्पण है, तत्कालीन और प्राकृतिक व्यवहार उसमें अनि- प्रतिबिम्बित होता है। लेकिन साहित्यिक और कैमरे के फ़ोटो में सजीवता का होता है। साहित्य में गति होती है, तक उसकी पहुँच होती है, उसमें जीवन है। साहित्य-रचयिता सामयिक और को अनन्त में लीन करने की चेष्टा है और अपने समकालीन समाज में उन आदर्शों के रोचक चित्र खींचता है जो सौन्दर्य की रहस्यमय परिभाषा हैं। उपन्यासकार अथवा अन्य लेखक जो सुन्दर को सुन्दर भाषा में सजाना चाहता है, यही होगा कि वह जीवन का निकट से अध्ययन उसमें सौन्दर्य अथवा कुरूपता की पहचान । बनावटी शृंगार के भ्रम में पड़कर हृदय रत्नागार को ठुकरा देना, सच्चे के लिए सम्भव नहीं। वास्तव में, सौन्दर्य और सौन्दर्य ही सत्य है।

ष्ट्रीयता भी जीवन का एक मुख्य पहलू एक देश-विशेष के वासियों का प्रेम- है। राष्ट्रीयता और मानवता का कोई नहीं है। राष्ट्रीय भावना तो मानव के आदर्श तक पहुँचने की एक सीढ़ी- है। अन्यायपूर्ण और स्वार्थी राष्ट्रीयता ही के संहार और अशान्ति का कारण है। जो भावना हमें प्रेम से सम्बद्ध होने में हो वही सभ्यता का साधन बन सकती स्थानीय और साम्प्रदायिक भेदभावों हमारी राष्ट्रीयता पारस्परिक प्रेम के चौड़ा करती है, अनन्त दिशाओं की फैलाती है तो वह एक सुन्दर सुखद प्राप्ति की ओर अग्रसर है और साहित्य सहचर बन सकता है।

ही आध्यात्मिक सौन्दर्य का सबसे स्वरूप है। इसमें न्याय नहीं वरन् उदारता, सहिष्णुता ही नहीं वरन् त्याग की कसौटी का प्रयोग होता है। यह प्रेम जो दूसरे के प्रेम में स्वयं पीड़ा सहन करने में प्रमुदित होता है, एक ऐसा आनन्द है जिसमें न कोई सीमा है न द्वार। ईर्षारहित स्वतन्त्र प्रेम ही संसार को इस पारस्परिक दासत्व से मुक्त कर सकेगा। इसी विश्वव्यापी हार्दिक प्रेम को एक भाषा प्रदान करना साहित्य का काम है। घृणा के साहित्य लिखे गये हैं, परन्तु उन्हें अमरत्व का वरदान नहीं है। ज्योंही अस्थायी वैमनस्य के कारणों का लोप और नये हितों का समीकरण होता है त्योंही उन्हें पढ़ते लज्जा अथवा हँसी आती है। विश्व-कल्याण-कारी साहित्य प्रेम की ही भाषा में लिखा जा सकता है। वही प्रेम जो सबको समझने की चेष्टा करे, जो व्यापक कुप्रवृत्तियों से ऊपर उठ सके और जिसमें विकसित होने की उत्कट इच्छा हो, हमें एक ऐसी भाषा प्रदान कर सकता है जो शान्त, सभ्य जीवन के लिए अनिवार्य-सी है। भाषा को भी राष्ट्रीयता का एक अंग कहा गया है।

भारतवर्ष एक राष्ट्र है या नहीं, एक निरर्थक-सा प्रश्न है। यहाँकी जनता यदि यह समझने लग जाय कि एक राजनैतिक बन्धन में संगठित होने ही से वह अपना पूर्ण आर्थिक और मानसिक और सामाजिक विकास कर सकेगी तो उसे एक राष्ट्र स्वीकार करना होगा, चाहे उनमें भाषा, धर्म व नस्ल सम्बन्धी कैसे भी भेदभाव क्यों न हों। एकता की इच्छा ही राष्ट्रीयता की सच्ची पहिचान है। वैसे तो अनेक देश ऐसे हैं जिनमें भाषा व धर्म और नस्ल एक-सी ही है और एक ही भौगोलिक खंड में स्थित हैं परन्तु फूट और द्वेष का बीज उन्हें चैन से नहीं रहने देता। और स्वीज़रलैंड जैसे देश भी हैं जहाँ अनेक धर्म और भाषा के अवलम्बी, सुदूर कैण्टनों में बसने पर भी, एक दृढ़ राष्ट्रीयता के सूत्र में बँधे हुए हैं। वास्तव में भाषा मनुष्यकृत है और उसे

मनुष्य की सुगमता के अनुसार परिवर्धित किया जा सकता है। भारतवर्ष में अनेक भाषायें हैं—कुछ लिखित और कुछ बोलचाल की। यदि इन सब भाषाओं के सम्मिश्रण से एक राष्ट्रीय हिन्दुस्तानी भाषा का निर्माण किया जाय तो वह कितनी प्रगतिशील और गम्भीर होगी इसका अनुमान किया जा सकता है। इसी राष्ट्रीय भाषा में वह राष्ट्रीय साहित्य लिखा जा सकेगा जो सहानुभूति में सर्वस्पर्शी, ज्ञान में सम्पूर्ण और भावना में उचित होगा। इसी साहित्य में सभी स्थानीय और साम्प्रदायिक साहित्यों का सुमधुर रस प्रवाहित होगा और इसी साहित्य के अन्दर, उन सबको अपने पूर्ण विकास का अवसर मिल सकता है।

प्राचीन विस्तृत और व्यापक अंग्रेज़ी साहित्य और भाषा अनेक जातियों की ही नहीं अनेक राष्ट्रों की सभ्यता की निधि है। वे सब मिलकर एक सुगठित और एकरस साहित्य में विलीन से हो गये हैं। रोमन, नॉर्मन और सैक्सन शब्द बड़ी सुमधुरता से, कंधे-से-कंधा भिड़ाये हुए, व्यवहृत हुए हैं और कोई भी शब्द जब तक अनुपयुक्त न हो इस कारण से कभी नहीं खटकता कि वह एक विभिन्न सभ्यता अथवा जाति की विभूति है। परन्तु प्रायः हमारे साहित्य के निर्मातागण यह आदेश देते हैं कि हमें 'शुद्ध' भाषा लिखनी चाहिए जिसमें उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत की बेमेल खिचड़ी न पकी हो! उनके कोमल कानों को "आमफ़हम भाषा" खटकती है। परन्तु वस्तुतः भाषा की शुद्धि तो भाव की शुद्धि है। कोई शब्द स्वयं कर्कश अथवा मधुर नहीं हुआ करता वरन् वह भाव होता है जिसका वह द्योतक है। यह सम्भव है कि "इन्क़लाब जिन्दाबाद" किसी लिबरल दलवाले महानुभाव को शोरगुल का एक बेहूदा शब्द-समूह जान पड़े, और किसी क्रान्तिकारी को वह सृष्टि के उस मधुर संगीत-सा प्रतीत हो जो सदा पर्वत-शिखरों से उछलता-कूदता निर्झरों में गूँजता और समुद्र की अमर लहरों में गरजता रहता है। वास्तव में. यह तो कलाकार की ही प्रतिभा है जो शब्दों अथवा अन्य व्यक्त चिन्हों में रोचकता, सार्थकता और सजीवता उत्पन्न कर सकती है। भविष्य का राष्ट्रीय कलाकार तभी अपने उपयुक्त साधन चुन सकेगा जब उसकी इच्छा होगी कि वह हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख ईसाई, पारसी व अन्य सभी हिन्दुस्तानियों के हृदय तक अपनी सूक्ष्म और कोमल भावनाओं तथा उत्कट अभिलाषाओं को पहुँचाये और उन सबके समान दुख-सुख में भाई की तरह खुले हृदय से सम्मिलित हो।

आजकल के तथाकथित साहित्यिक अधूरे ही हैं कि जिन्होंने अभी तक अतीत की विभूतियों को विनाश से बचाने के लिए अथक परिश्रम किया, दुरुह और जटिल संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के शब्दों को व्यावहारिक साहित्य में प्रविष्ट कराकर उसे सजीव बनाया, परन्तु भूत की रक्षा में उन्होंने भविष्य का ध्यान बिलकुल भुला दिया। वे संध्या की उपासना में प्रभात का स्वागत करना भूल गये। हिन्दू स्वतन्त्रता और समृद्धि के दिन थे जब कालिदास जैसे रत्नों ने भाषा को अलंकृत किया। मुसलमानी साम्राज्य और ऐश्वर्य के भी दिन थे जब आलिमों ने अपनी कला को हर तरह सजाया। परन्तु उस सबका श्रेय हमें क्या है? वे हमारे आदर के पात्र हैं परन्तु निश्क्रिय आदर तो आध्यात्मिक पतन की ओर ले जानेवाली चीज़ है। हमारा विकास, पुराने गीत गाने में नहीं वरन् नये गीत बनाने में है। राष्ट्रीय कवि आयेगा और ऐसा गीत गायेगा जो सबके हृदय को छू ले और जिसे सुनकर सभी कह उठें "यह तो मेरी ही आवाज़ है।" भविष्य में जन्म लेनेवाली सन्तति भी गान को अपनाकर, अपनी जीवन-क्रीड़ा प्रारम्भ करेगी। यही राष्ट्रीय साहित्य का गुण होना चाहिए।

इस साहित्य की भाषा भी होगी राष्ट्र की भाषा —हिन्दू की संस्कृत नहीं और मुसलमान की फ़ारसी-अरबी नहीं! यह नहीं कि इन महान् स्रोतों से निकले हुए सुन्दर भावपूर्ण और

शब्दों का किसी प्रकार तिरस्कार होगा । प्रेम का साहित्य इन सब शब्दों को एक प्रदान करेगा और उनके प्रयोग में करेगा । उसके हृदय में किसी प्रकार में साम्प्रदायिक ईर्षा अथवा मोह न । बहुत-से समअर्थी शब्द हैं जिनमें कोई और सर्वमान्य भेद नहीं रक्खा गया यदि उनके आशय का सूक्ष्म भेद दिखाया तो भाषा बहुत सुगमता और सुघराई से को स्पष्ट कर सकेगी । क्रोध, रोष, गुस्सा, आदि, जैसे अनेक शब्द हैं जिनसे एक तो वरन् एक-से ही भाव का आभास होता अच्छे साहित्यिक के हाथ में इनका प्रयोग विशेषता-सी ग्रहण कर लेता है कि एक की पर दूसरे को इस्तेमाल करना ठीक नहीं करता। शब्दों के अर्थ का इस प्रकार करण ही प्रत्येक शब्द को, चाहे वह अरबी, अंग्रेज़ी व संस्कृत का क्यों न हो, भाषा का एक अनिवार्य और आवश्यक बना लेगा, और भाषा भी स्वयं बड़ी चपलता से भाव के घुमावफेर के साथ तुड़-मुड़ सकेगी ।

राष्ट्रीय साहित्य के परिपूर्ण विकास के लिए हमें ऐसे साहित्यिकों की आवश्यकता है जो निष्पक्षता से, जनता की बोली को साहित्यिक ओज प्रदान करें और साहित्य में जीवन के तकाज़े को पूरा करे । आज भारतीय जीवन चाहता है राष्ट्रीय एकता । हमारा साहित्य-सेवी भारतीय साहित्य को ऐसी एकता दे सकता है जिसमें आपसी भेदभावों का लेश भी न रह जाये । हिन्दी, उर्दू, बंगाली, गुजराती, तामिल, तैलगू, सभी की कृतियों को अपने देश की विभूतियाँ समझकर अपनाना और उनमें अपने व्यक्तित्व की छाप लगाकर उन्हें अपने कल्पना-कोष में स्थान देना सच्चे राष्ट्रीय कवि का कर्त्तव्य है । जैसे-जैसे यह भावना दृढ़ होती जायगी, वैसे ही इस महान् जगद्गुरु की पुर्नप्रतिष्ठा निकट आती जायगी और जिस प्रकार देर तक सोनेवाला आलसी, दोपहरी के सूर्य का आभास करता है, हम भी एक दिन आँखें मलते हुए, इस राष्ट्र-वैभव का स्वागत करेंगे ।

निजी पुस्तकालय

[कुँवरकिशोर सेठ]

निजी पुस्तकालय की प्रत्येक गृह में आवश्यक है, यह बात अनेक बार सुनने में आयी हिन्दी के पक्षपाती कुछ लोग निजी पुस्तकालय बनाने का अनुरोध इस कारण करते हैं इससे लेखक और पुस्तक-विक्रेता की जीविका चलती है। यदि पुस्तकें विकेंगी नहीं तो कौन लिखेगा और कौन छापेगा ? कुछ का इस आधार पर है कि यूरोप के अधिकांश देशों में पुस्तकों का संग्रह करने की प्रथा है । वहाँ साधारण जन तो पुस्तकालय को अपनी बैठक का आभूषण ही समझते हैं ।

यह बात तो निर्विवाद है कि पुस्तकें सभ्यता का एक आवश्यक अंग हैं; परन्तु महत्त्व तो पुस्तकों के अध्ययन में है न कि केवल पुस्तक-संग्रह मे । इस दृष्टि से देखा जाये तो निस्संदेह निजी पुस्तकालय हमारे जीवन में एक विशेष अंग की पूर्त्ति करता है और वह है मानसिक विकास, आध्यात्मिक उन्नति तथा समृद्धिशाली जीवन । अतः रसोई और पूजा-स्थल के साथ-साथ इसका भी भारतीय घरों में एक विशिष्ट स्थान होना चाहिए ।

अवश्य ही प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था में इसे कोई स्थान प्राप्त नहीं था, क्योंकि उसके दो प्रत्यंग पुरोहित और वानप्रस्थ संन्यासी—इस कमी को पूरा करते थे । गुरुजनों के मुख से सुनी हुई कथा-वार्ता जन-समुदाय की धार्मिक निष्ठा के अतिरिक्त उनकी साहित्यिक पिपासा को भी तृप्त करती थी । अतिथि-सत्कार की भावना देश-देशान्तर से आये हुए साधु-सन्तों

से लोगों का परिचय करने में हितकर होती थी, जिससे अनेक लाभ होते थे। मनुष्यों की दृष्टि विस्तृत होती थी। अनुसन्धान को, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो, साधारण मनुष्य तक लाने और जीवन में उसका यथार्थ प्रयोग करने-कराने का यह एक अनुपम मार्ग था और साधुओं के अपने अनुभव सामाजिक, सार्वजनिक तथा गृह के जीवन में आवश्यकतानुसार सुधार करने में भी सहायक सिद्ध होते थे।

लेकिन हमारी सामाजिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने से अब इन दो अनुपम संस्थाओं का अधःपात हो गया है। नेता, गुरु या साधु की आशा छोड़कर लोगों ने अपने जीवन का मार्ग स्वयं निर्धारित करने का प्रयत्न आरम्भ किया। इस कारण प्रसिद्ध लेखकों और महान आत्माओं से उनकी कृतियों तथा जीवनियों द्वारा सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक-सा हो गया है। इसीलिए निजी पुस्तकालय एक अनिवार्य चीज़ है।

यह कहना तो कठिन है कि निजी पुस्तकालय इस कमी की पूर्ण रूप से पूर्त्ति कर देगा, मगर यह निश्चय है कि जातीय निर्माण में इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहेगा। जहाँ हमारी शारीरिक व्यवस्था और धार्मिक निष्ठा का प्रतिबिम्ब हमारे घर की रसोई तथा पूजा-स्थान हैं, वहाँ निजी-या घरेलू पुस्तकालय जीवन की गूढ़ समस्याओं के अध्ययन तथा आध्यात्मिक उन्नति का द्योतक है। जिस आशय से हम भोजन करते हैं और जिस श्रद्धा से हम पूजा-पाठ करते हैं, उसका प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ना अनिवार्य-सा है। इसी प्रकार जिस इच्छा से हम पुस्तकालय में प्रवेश करते हैं उसका प्रतिविम्ब भी हमारे जीवन के अनेकों कार्यों में मिलता है।

इसलिए हमारा निजी पुस्तकालय घर के सबसे पवित्र स्थान में होना चाहिए। यह पुस्तकालय फर्नीचर के रूप में सजावट के लिए ड्राइंगरूम में नहीं होना चाहिए, बल्कि रसोई तथा पूजा-स्थल की भाँति घर के एकान्त स्थान में होना चाहिए, जहाँ मनोरंजन के लिए या किसी गूढ़ विषय के अध्ययन के लिए एकाग्रचित्त होकर बैठ सकें।

कुछ लोग कहते हैं कि यदि निजी पुस्तकालय सब घरों में बन जावेंगे तो सार्वजनिक पुस्तकालयों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। परन्तु यह भ्रम है। आजकल पुस्तकें इतने धड़ल्ले से छप रही हैं कि हरेक के लिए सब की सब पुस्तकें को खरीदना या पढ़ना असम्भव है। ऐसी दशा में चुनाव ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है और इसमें सार्वजनिक पुस्तकालय पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है। पहले वहाँसे कोई पुस्तक निकलवाकर पढ़ी जा सकती है। यदि वह पसन्द हो और उसके पढ़ने में अपूर्व आनन्द प्राप्त हो तो अवश्य ही उस पुस्तक का समावेश निजी पुस्तकालय में होजाना चाहिए।

किसी पुस्तक का उपयोग एक बार पढ़ने से ही समाप्त नहीं हो जाता, चाहे वह किसी योग, कला या विज्ञान-सम्बन्धी गूढ़ विषय की पुस्तक हो या गल्प-उपन्यास जैसी रोचक या आनन्ददायक विषय की। जितनी बार उसका अध्ययन किया जायेगा, उतना ही अधिक आनन्द उससे प्राप्त होगा। इसके अलावा किसी पुस्तक का आनन्द पढ़ने के समय की परिस्थिति पर भी निर्भर होता है। कई पुस्तकें जो प्रथम बार पढ़ने से अरुचिकर प्रतीत होती हैं, वे ही किसी दूसरे समय में जीवन-साथी बन जाती हैं। अतः सार्वजनिक पुस्तकालय में जहाँ सब विषयों की पुस्तकें होती हैं, निजी पुस्तकालय में केवल उन्हीं पुस्तकों का समावेश होना चाहिए जिनके प्रति व्यक्ति-विशेष की रुचि हो। इसीमें उसका महत्त्व है और यही उसका व्यावहारिक रूप भी है।

१६६३, गली हाकिम बका,
हौज़ काज़ी, दिल्ली]

भाषाओं का वंश-निर्णय

[राममूर्ति मेहरोत्रा]

'मनुष्य' तथा 'आदमी' से मानव-जाति की उत्पत्ति का पता चलता है। 'मनुष्य' मनु और 'आदमी' आदम से बने हैं। हिन्दू धर्मानुसार सृष्टि की उत्पत्ति 'मनु' से और ईसाई तथा इस्लाम धर्म के अनुसार 'आदम' से हुई है। इस प्रकार यद्यपि भिन्न-भिन्न धर्मों के आदि पुरुषों में विभिन्नता है, परन्तु यह सर्वमान्य है कि मनुष्य-जाति की उत्पत्ति किसी एक आदि-पुरुष से हुई है। अतएव समस्त भाषाओं की जननी अथवा मूल भाषा भी उसीकी भाषा होगी। शनैः शनैः जब मनुष्य अधिक संख्या में हो गये और भिन्न-भिन्न स्थानों में फैल गये, तो भौगोलिक, शारीरिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक भेद के कारण उनकी भाषा में भी भेद हो गया। परन्तु चूँकि भाषा एक सामाजिक संस्था है, उसका मुख्य उद्देश्य विचार-विनिमय कराना है, अतः यह भाषा-भेद इतना नहीं बढ़ने पाया कि परस्पर सम्पर्क में आनेवाले निकटवर्ती समुदायों के व्यक्ति भी एक-दूसरे की बोली न समझ सकें। इस प्रकार परस्पर-सम्बन्धित समुदायों अथवा जातियों की भाषा एक रही, परन्तु दूरवर्ती समुदायों में सम्बन्ध-विच्छेद हो गया और सेमेटिक-[illegible], चीनी-तुर्की आदि अनेक भाषा-परिवार बन गये। कालान्तर में कोई-कोई भाषा-परिवार इतने असंबद्ध हो गये कि उनमें शब्दात्मक रचनात्मक, व्याकरणिक आदि किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहा और उनके मूल रूप में एकता [illegible]ना असम्भव हो गया—जैसे आर्यन, सेमेटिक तथा तूरानी में। यही कारण है कि अनेक विद्वान भाषाओं की उत्पत्ति एक मूलभाषा से न मानकर अनेक भाषा-परिवारों से ही मानते हैं, यद्यपि यह है भ्रमात्मक।

पारिवारिक वर्गीकरण का आधार

यों तो एक ही नगर की भिन्न-भिन्न जातियों की बोलियों में भी अन्तर पाया जाता है, परन्तु इतना नहीं कि एक-दूसरे की बात न समझ सकें। यह प्रश्न दूसरा है कि कुछ कठिनाई पड़े और देर लगे। यदि एक मनुष्य अटक से कटक तक पैदल यात्रा करे, तो उसको पंजाबी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया आदि भिन्न-भिन्न भाषाओं के क्षेत्रों में होकर जाने के कारण बराबर भाषा-भेद मिलेगा; परन्तु इतना नहीं कि परस्पर विचार-विनिमय न हो सके। यदि वही मनुष्य काबुल की यात्रा करे, तो लहँदा के क्षेत्र को पार करके पेशावर के बाद पश्तो भाषा के क्षेत्र में पहुँच जायेगा। वहाँ एक शब्द भी उसकी समझ में नहीं आयेगा। इस प्रकार वह सरलता से जान लेगा कि लहँदा, पंजाबी पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी तथा उड़िया एक परिवार की और पश्तो दूसरे परिवार की भाषा है। अतः एक से दूसरी भाषा को हम जितनी अधिक सरलता से समझ सकें उनमें उतना ही निकटवर्ती सम्बन्ध समझना चाहिए।

भाषाओं का परस्पर-सम्बन्ध स्थापित करने अथवा उनका वंश-निर्णय करने के लिए उनका तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है।

तुलनात्मक अध्ययन

प्रत्येक भाषा के दो रूप होते हैं। साहित्यिक तथा लौकिक। साहित्यिक भाषा कृत्रिम एवं सीमित होती है और लौकिक प्राकृतिक तथा सार्वजनिक; अतः केवल लौकिक भाषाओं की तुलना करनी चाहिए, साहित्यिक की नहीं। यह तुलना दो प्रकार से हो सकती है, शब्दों में और व्याकरणिक सम्बन्धों में, अर्थात् शाब्दिक और व्याकरणिक।

(क) शाब्दिक तुलना

(१) शब्द-संबन्धी तुलना ऐसे शब्दों की करनी चाहिए जिनका रूप स्थायी हो। साहित्य, दर्शन, विज्ञान, कला, न्यायालय आदि के शब्द शब्द-कोष में अथवा केवल कुछ ही मनुष्यों तक सीमित रहते हैं और नित्य व्यवहार में प्रयुक्त

नहीं होते, अतः उनके रूपों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। ऐसे शब्द जिनके रूप में विकार नहीं के बराबर होता है केवल वे हो सकते हैं जो नित्यप्रति सर्वसाधारण के व्यवहार में आते रहते हैं।

इस प्रकार के शब्द निकट-सम्बन्ध-सूचक शब्द, जैसे माता-पिता भाई-बहिन आदि, पुरुष-वाचक सर्वनाम, जैसे मैं, हम, तू, तुम, वह आदि, संख्यायें विशेषतः एक से दस तक, साधारण स्थानों, वस्तुओं तथा जानवरों के नाम, जैसे गाँव, खेत, रुपया-पैसा, गाय-बैल, कुत्ता-बिल्ली आदि, शरीरावयव के नाम जैसे हाथ-पैर और साधारण क्रिया तथा गुणबाधक शब्द जैसे उठना-बैठना, लेना-देना, होना-करना, खाना-पीना, भला-बुरा आदि हैं। इनकी तुलना इस प्रकार करनी चाहिए—

हिन्दी	**संस्कृत**	**लैटिन**	**ग्रीक**	**गॉथिक**	**जर्मनी**	**अंग्रेज़ी**	**फ़ारसी**
पिता	पितृ	pater	pater	fadar	vater	father	पिदर
मैं	अहम्	ego	ego	ik	ich	I	अम
तीन	त्रि	tres	treis	threis	derei	three	सेह
गाय (गऊ)	गो	bos	bous	—	kuh	cow	गाव
पैर	पद	pedispes	podospous	fotus	fuss	foot	पा
भर	भृ	fero	phero	bairan	beran	bear	बुर्दन

(२) तुलना शब्दों के उच्चरित स्वरूप की करनी चाहिए, लिखित की नहीं, अर्थात् उनके हिज्जे से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। उदाहरणार्थ जब हम (हि०) बहिन, (पं०) भैण, (गुज०) बेहेण, (म०) बहीण आदि में साम्य दिखाते हैं, तो हमारा आशय उनके उच्चरित स्वरूप से होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी कुछ अक्षर लिखे तो जाते हैं, परन्तु उनका उच्चारण नहीं होता—जैसे dam (n), (w) rite, (kn) ight आदि में कोष्ठबद्ध अंश तथा गरदन, बोलना, इमली के र, ल तथा म में 'अ'कार। इनकी उपेक्षा न कर इनका और अधिक ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी ये प्राचीन उच्चारण के द्योतक होते हैं।

(३) शब्दों के साधक अंश अथवा प्रत्ययांश को पृथक् करके केवल उनके प्रकृत्यांश की तुलना करनी चाहिए, क्योंकि कभी-कभी उनके सप्रत्यय रूपों में बड़ा अन्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि 'हुआ' तथा 'अभवम्' की तुलना करनी है, तो 'हुआ' से भूतकालिक 'आ' और 'अभवम्' से भूतकालिक विभक्ति 'अम्' तथा आगम 'अ' पृथक् करके केवल 'होना' तथा 'भू' की तुलना करेंगे।

(४) कभी-कभी मूल शब्दों में कोई पारिवारिक सम्बन्ध न होने पर भी उनके रूपों में समानतः होती है, परन्तु यह रूप-साम्य आकस्मिक होता है। जैसे (अं०) page (बाल-अनुचर) तथा page (पृष्ठ) दोनों का रूप एक ही है, परन्तु इनमें पारिवारिक सम्बन्ध कोई नहीं है; क्योंकि पहला page (लै०) pagensis से निकला है और दूसरा (लै०) pagina से। इसी प्रकार (हि०) काम (सं०) काम, (हि०) सूप (अं०) soup, (हि०) आम (अ०) (आम), इत्यादि समानश्रुति परन्तु भिन्नार्थक हैं और इनमें कोई पारिवारिक सम्बन्ध नहीं है। अतः केवल रूप-साम्य अपर्याप्त है, इसके साथ अर्थ-साम्य भी देखना चाहिए।

(५) कभी-कभी एक ही मूल शब्द से निकले हुए दो शब्दों के अर्थों में कालान्तर में भेद हो जाता है जैसे कार्य, कारज तथा काज तीनों (सं०) कार्य्य से निकले हैं, परन्तु इनमें काल-भेद से अर्थ-भेद हो गया है। इसी प्रकार (सं०) पश् धातु से 'पशु' और उसके लैटिन स्वरूप pecus से (लै०) pecunia तथा peculium और उनसे क्रमशः (अं०) pecuniary तथा peculiar निकले हैं, परन्तु पशु, pecuniary peculiar तीनों के अर्थों में बहुत अन्तर है; (अं०) caitive तथा caitiff (लै०) ivus से निकलने पर भी अर्थ में भिन्न हैं। दशा में ये सब शब्द एक ही वंश के माने हैं। अतः अर्थ-साम्य देखने के लिए शब्दों के रूप तथा अर्थ की खोज करना भी आवश्यक है।

(६) कभी-कभी राजनैतिक, धार्मिक, तिक, आकस्मिक आदि बाह्य कारणों से भाषा के शब्द दूसरी भाषा में चले जाते हैं। ऐसी दशा में उन शब्दों के रूप और अर्थ में साम्य होने पर भी उनकी भाषाओं को संबंधी नहीं कहा जा सकता। जैसे (हि०) चाय, (फा०) चा (रूसी) chai तथा (तु०) chay (चीनी) ch'a के विकृत रूप हैं, हिन्दी, फारसी, रूसी तथा तुर्की समानवंशी नहीं कही जा सकतीं, इसी प्रकार (अं०) tobacco (ज०) tabak (स्पे०) tabaco (फ्रें०) tabac (फा०) तंबाकू तथा (हि०) तमाकू के आधार पर इनकी भाषायें समवंशी नहीं कही जा सकतीं क्योंकि इनमें शब्द अमरीकन भाषा से आये हैं; अंग्रेज़ी में हिन्दी, अरबी, फारसी आदि के अनेक शब्द हैं loot (हि०), ryot (अ०) rupee (सं०) (फा०) coolie (मुं०) curry (ता०) हिन्दी में चुंगी (ते०) साबू (मलया), (ता०) कागज (फा०) चाकू (तु०) (अ०) इंच (अं०) तुरुप (डच), (फ्रें०), कमरा (पु०) आदि अनेक शब्दों का अन्य भाषा-परिवारों से आगम हुआ तथा (अं०) cover तथा (हिब्रू) kophar में कोई पारिवारिक संबंध न होते हुए भी साम्य है। अतः शब्दों के इतिहास का अनुसंधान करना नितांत आवश्यक है।

(७) कभी-कभी परस्पर-संबंधित शब्द भिन्न-भिन्न भाषाओं में स्थान-भेद, भौगोलिक परिस्थिति आदि बाह्य कारणों से इतने विकृत हो जाते हैं कि पहिचानने में नहीं आते; जैसे (सं०) कपर्द, महिष, सूची, क्षीणालय, प्रथर, अस्थि, प्रतिवासी आदि हिन्दी में क्रमशः कौड़ी, भैंस, सुई, छिनाल, पहिला, हड्डी तथा पड़ौसी और (सं०) भ्रातृ, धा तथा श्वन अंग्रेज़ी में क्रमशः brother, do, तथा hound हो गये। यद्यपि ये सब इतने विकृत हैं कि इनमें प्रत्यक्षतया कोई संबंध प्रतीत नहीं होता, परंतु ये सब विकार ध्वनि-नियमों के अनुसार हैं। अतः रूप साम्य देखने में ध्वनि-नियमों का ध्यान रखना आवश्यक है।

(८) कभी-कभी आधुनिक भाषाओं के शब्दों में कोई संबंध नहीं होता, परंतु उन्हींके पर्य्यायवाची शब्दों में उनकी प्राचीन भाषाओं में संबंध होता है, जैसे यद्यपि (अं०) dog तथा (हि०) कुत्ता में कोई संबंध नहीं है, परंतु इनके पर्य्यायवाची शब्द hound तथा श्वान में संबंध है। hound एंग्लो-सेक्सन hund से और श्वान संस्कृत श्वन् से निकले हैं और ये दोनों परस्पर संबंधित हैं, इनमें श तथा ह का अंतर ग्रिम नियम के अनुसार है। इसी प्रकार (इटै०) cavallo अथवा (फ्रें०) chaval का (हि०) घोड़ा से कोई संबंध नहीं है, परंतु (लै०) equus का (सं०) अश्व से है।

अतएव यदि हम ध्वनि-नियमों का ध्यान रखते हुए और शब्दों के प्राचीन रूपों का अनुसंधान करके उनकी व्युत्पत्ति करते हुए शाब्दिक तुलना के आधार पर भाषाओं में पारिवारिक संबंध स्थापित करें, तो निकटतया ठीक निर्णय हो सकता है। परंतु क्योंकि शब्द का अर्थ वाक्य में ही खुलता है तथा व्याकरणिक संबंधों का बोध वाक्यान्वय द्वारा ही होता है, अतः केवल शब्दों की तुलना अपर्याप्त है और अशुद्धि हो जाने की संभावना है। अतएव शब्द-साम्य के साथ-साथ व्याकरणिक संबंधों में सादृश्य देखना भी अनिवार्य है।

(ख) व्याकरणिक तुलना

व्याकरणिक तुलना से हमारा आशय धातुओं के वर्णात्मक अथवा अक्षरात्मक सादृश्य,

प्रकृति-प्रत्यय के भेद-प्रभेद, व्याकरणिक संबंधों का प्रत्यय अथवा विभक्ति द्वारा बोध कृदंत तथा तद्धितांत आदि बनाने की विधि, संहित अथवा व्यवहित वाक्य-रचना, इत्यादि की तुलना से है। इसकी विस्तृत व्याख्या भाषाओं के रचनात्मक वर्गीकरण में की जा चुकी है, अतः यहाँ तुलना-संबंधी कुछ विशेष नियम दिये जाते हैं:—

(१) प्रत्येक भाषा के व्याकरण में कुछ अपनी निजी विशेषतायें होती हैं, जिनका अन्य भाषाओं के व्याकरण से कोई संबंध नहीं होता। इनकी उपेक्षा करके केवल उस अंश की तुलना करनी चाहिए जिसका अन्य भाषाओं से संबंध हो। ऐसे मूल अंश का पता प्राचीन साहित्य अथवा लेखों से लग सकता है।

(२) भाषा परिवर्तनशील है, उसका कोई भी रूप स्थायी नहीं कहा जा सकता। अतः व्याकरणिक नियम भी शाश्वत नहीं कहे जा सकते, उनमें भी समयानुसार परिवर्तन होता रहता है। अतएव प्राचीन रूप की तुलना प्राचीन रूप से और नवीन की नवीन से करनी चाहिए, प्राचीन तथा नवीन की नहीं। उदाहरणार्थ, हम संस्कृत तथा लैटिन की अथवा इटैलिक तथा हिन्दी की तुलना कर सकते हैं, परंतु लैटिन तथा हिन्दी अथवा इटैलिक तथा संस्कृत की नहीं। फलतः भाषाओं के व्याकरण का इतिहास जानना नितांत आवश्यक है।

(३) व्याकरणिक इतिहास की खोज प्राचीन साहित्य तथा लेखों द्वारा हो सकती है। परन्तु किसी-किसी भाषा में इसका अभाव होने के कारण उसका शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता। ऐसी दशा में जहाँ ऐतिहासिक शृंखला टूटती हो अथवा संदेह हो, वहाँ उससे मिलती-जुलती भाषा के इतिहास से सहायता लेनी चाहिए। उदाहरणार्थ, संस्कृत तथा लैटिन का इतिहास पूर्णतः मिलता है, अतः जहाँ लिखित प्रमाण के अभाव के कारण देशी भाषाओं के इतिहास की शृंखला टूटती है, वहाँ हम इटैलियन के इतिहास से सहायता ले सकते हैं।

इस प्रकार उक्त विधि से शाब्दिक तथा व्याकरणिक तुलना के आधार पर हम किसी भाषा का वंश-निर्णय कर सकते हैं, परंतु इसके यह मानी नहीं हैं कि हम उसको समझ सकते हैं। प्रत्येक भाषा अथवा बोली में अपनी कुछ निजी स्थानीय, सांस्कृतिक, उच्चारणात्मक अथवा व्याकरणिक विशेषता होती है। जिसके कारण हम उसे उस समय तक नहीं समझ सकते जबतक कि पूर्णतः अभ्यस्त न हो जायें। उदाहरणार्थ, हिन्दी-भाषी गँवार संस्कृति-भेद के कारण 'क्या' को 'का', 'मनुष्य' को 'मनई', 'वह' को 'ऊ', 'यह' को 'ई', 'उसको' को 'ओहका', 'विसको', 'वाको', 'गया' को 'गवा', 'तुम्हारा' को 'तुहार' आदि बोलता है। यद्यपि पंजाबी, प० हि०, बंगला, मराठी आदि एक ही आर्य-परिवार की उपभाषायें हैं, परंतु परंपरागत अथवा स्थानीय उच्चारण-भेद के कारण प० हि० 'कहा' को ब्रज भाषी 'कह्यो', अवधी 'कहिन' अथवा 'कहिस', बिहारी 'कहल' तथा पंजाबी 'कहंदा' और प० हि० के 'गया' को बलिया-वासी 'गइली', बिहारी 'गेल', मराठी 'गेला' तथा बंगाली 'ग्यालो' बोलते हैं। इसी प्रकार स्काच 't' (ट) को 'th' (ठ) की भाँति उच्चारण करते हैं। चीनी बर्मी, तिब्बती आदि में तो उच्चारण (स्वर)-भेद से अर्थ-भेद तक हो जाता है। बंगला और हिन्दी दोनों यद्यपि एक ही वंश की हैं और दोनों में संस्कृत शब्दों की भरमार है, परंतु दोनों की व्याकरणिक विशेषताओं में विभिन्नता होने के कारण रूपों में और स्थानीय भेद के कारण उच्चारण में बहुत भेद है। अतः किसी दो भाषाओं में पारिवारिक संबंध स्थापित हो जाने पर भी बिना कुछ समय तक एक-दूसरे के क्षेत्र में रहे और अभ्यस्त हुए हम उन्हें समझ सकें यह आवश्यक नहीं है। **रानी कटरा, लखनऊ।**

सुराज्य का एक आदर्श चित्र

[सूर्यनारायण चौधरी]

प्रायः दो सहस्र वर्ष पूर्व अश्वघोष नामक महाकवि हो गया है। वह सुवर्णाक्षी का साकेत-निवासी था। ब्राह्मण-कुल में वह हुआ था और बाद में बौद्ध भिक्षु हो गया उसने बौद्ध-धर्म-विषयक कई काव्य व नाटक हैं, जिनसे विविध शास्त्रों का उसका गम्भीर प्रकट होता है। उसने जो कुछ लिखा वह के दृष्टि-कोण से उत्तम है और, इससे बढ़ उसमें सन्मार्ग से भटके हुए मनुष्यों के लिए कल्याणकारी संदेश है। अपने 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य के अन्त में उसने स्वयं कहा है—"प्रायः लोगों को विषय-रत और मोक्ष-विमुख देखकर काव्य के बहाने सत्य का उपदेश दिया है। मोक्ष ही सबसे ऊपर है। इस ग्रन्थ में मोक्ष के अतिरिक्त जो कुछ कहा गया है वह इस काव्य-शास्त्र के अनुसार सरस बनाने ही के लिए है, जैसे औषधि को पीने लायक बनाने के लिए उसमें मधु मिलाया जाता है।"

'सौन्दरनन्द' के अतिरिक्त उसका दूसरा प्रसिद्ध महाकाव्य 'बुद्धचरित' है। यह २८ सर्गों में लिखा गया था; किन्तु अब इसके प्रथम सवा तेरह सर्ग ही शेष हैं। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में अमृतानंद ने 'बुद्धचरित' की पूरी प्रति न मिलने के कारण सर्ग १४ से १७ तक अपनी कल्पना से रच डाले। पाँचवीं सदी के प्रथम चरण में धर्मरक्ष, धर्मरत्न या धर्माक्षर नामक एक भारतीय विद्वान् ने इस ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में किया था। ७वीं या ८वीं सदी में इसका तिब्बती अनुवाद भी हुआ था, जो इतना अविकल है कि उसके आधार पर संस्कृत में 'बुद्धचरित' के अप्राप्त अंशों का उद्धार हो सकता है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग ने सातवीं सदी के अन्तिम चरण में भारत-भ्रमण किया था। 'बुद्धचरित' की मुक्तकण्ठ प्रशंसा करते हुए उसने लिखा था—"भारत के पाँचों प्रान्तों और दक्षिण सागर के देशों (द्वीपों) में सर्वत्र इसका गान होता है। कवि ने थोड़े ही शब्दों में अनेक अर्थ और भाव भर दिये हैं, जिससे पाठक का हृदय इतना आनन्दित हो जाता है कि वह इस काव्य को पढ़ने से थकता नहीं।"

यूरोपीय भाषाओं में 'बुद्धचरित' के कई अनुवाद हो गये हैं, पर हमारी हिन्दी में एक भी नहीं। अतः हिन्दी की कई संस्थाओं तथा विद्वानों की सम्मति से मैं इसका हिन्दी अनुवाद कर रहा हूँ। इसके दूसरे सर्ग के शुरू में राजा शुद्धोधन के सुराज्य का जो आदर्श चित्र खींचा गया है उसके एक अंश का अनुवाद इस प्रकार है—

"उसके राज्य में गायें बहुत थीं; वे पुष्ट व सन्तुष्ट, साध्वी और निर्मल उत्तम तथा बहुत दूध देनेवाली और बछड़ों से युक्त थीं (५)। उसका शत्रु मध्यस्थ (=निष्पक्ष), मध्यस्थ मित्र, और मित्र विशेषतः घनिष्ठ होगया; इसके दो ही पक्ष रहे, तीसरा पक्ष (शत्रु) नहीं रहा (६)। और उसके लिए (वृष्टि–) देव ने जिसके बादल विद्युन्मण्डल से मण्डित थे, मन्द अनिल और मेघ-गर्जन के साथ, अश्म-वर्षा और वज्र-पात के दोषों के बिना, (उचित) समय और स्थान पर वृष्टि की (७)। अति कृषि-श्रम किये बिना ही फल-युक्त शस्य उचित ऋतु में बढ़ा; और उसके लिए वे ही ओषधियाँ रस व सार से खूब भर गयीं (८)। यद्यपि (प्रसव–)काल शरीर के लिए उतना ही संदेहजनक है जितना कि युद्ध-संघर्ष, तथापि स्त्रियों ने स्वस्थ रहते हुए सुख-पूर्वक व बिना किसी रोग के समय पर प्रसव किया (९)। व्रतियों[1] को छोड़कर (अन्य) लोगों ने, चाहे उनका वैभव कितना ही तुच्छ क्यों न हो, दूसरों से कुछ नहीं माँगा; और उसी समय कोई भी आर्य, चाहे उसका धन कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो, माँगे जाने पर विमुख नहीं हुआ (१०)। उस समय उसके राज्य में—नहुष के

---

[1] १. **व्रती=साधु-संन्यास-धर्म के नियम पालन करनेवाले।**

पुत्र ययाति के राज्य की तरह—बन्धुओं का असम्मान करनेवाला, अदाता, अव्रती,[1] झूठा और हिंसक कोई नहीं था (११)। धर्म के अभिलाषियों ने स्वर्ग का मानों प्रत्यक्ष दर्शन कर उद्यान, देव-मन्दिर, आश्रम, कूप, पनसाले, पोखर और उपवन बनाये (१२)। दुर्भिक्ष, भय और रोग से मुक्त होने के हर्ष में लोग ऐसे सुखी थे, जैसे स्वर्ग में; पति ने पत्नी के विरुद्ध व्यभिचार (सदाचार-भंग) नहीं किया अर्थात् दोनों एक-दूसरे के प्रति सच्चे रहे (१३)। किसी ने रति के लिए काम का सेवन नहीं किया, किसी ने काम (-सेवन) के लिए धन की रक्षा नहीं की, किसी ने धन के लिए धर्माचरण नहीं किया, किसी ने धर्म के लिए हिंसा नहीं की (१४)। शत्रुता और चोरी आदि नष्ट होगयीं; उसका राज्य 'स्वस्थ, स्वतंत्र, विदेश के शासन से मुक्त, सुखी और अन्न से भरा था, जैसे प्राचीन काल में अनरराय का राज्य (१५)।"

संस्कृत-भवन, टीकापट्टी जि० पूर्णिया (बिहार)]

---

[1] अव्रती=धर्म के नियम न पालन करनेवाले।

भाव : गुण : बल

[हरिभाऊ उपाध्याय]

भाव एक स्फुरणा, गुण एक साधना, बल एक प्रभाव है।

भाव जब आकार धारण करता है, क्रियात्मक रूप ग्रहण करता है तब गुण कहलाता है। गुण जब दूसरों को प्रभावित करता है तब बल हो जाता है।

भाव में प्रेरणा, गुण में आकर्षण व बल में दबदबा होता है।

बल के पुजारी प्रभाव को मानते हैं; गुण के पुजारी आकर्षण देखते हैं; भाव के पुजारी संवेदन को खोजते हैं।

भाव मस्त-उन्मत्त करता है; गुण चेतना, कार्य-प्रेरणा देता है; बल दबाता, आतंकित करता है।

भाव हृदय को स्पर्श करता है; गुण बुद्धि को प्रमुदित करता है; बल शरीर को वशीभूत करता है।

भाव अपने-आप बहता है; गुण साधना से आता है; बल आयोजन व अभ्यास से प्राप्त होता है।

भाव आत्मिक, गुण मानसिक, बल शारीरिक है।

बल में रागद्वेष, गुण में स्नेह, भाव में आनन्दोत्साह होता है।

बलपूजक पार्थिव जगत् में, गुणपूजक नैतिक जगत् में, भावपूजक चैतन्य-जगत् में रहता है।

बलपूजक उठता-गिरता चलता है; गुणपूजक सीधा आगे वेग से चला जाता है; भावपूजक हवा में उड़ता है।

भाव में असीमता, गुण में मर्यादा, बल में बन्धन है।

बल से गुण, गुण से भाव-शुद्धि की ओर प्रवृत्ति उन्नति का, एवं भाव से हटकर गुण व गुण से हटकर बल की सिद्धि की ओर झुकाव अवनति का लक्षण है।

कवि कौन ?

[कामेश्वर शर्मा]

र वाइल्ड ने अपने 'डि प्रोफंडिस' नामक त्मा ईसा को 'कवि' का स्थान प्रदान है। यदि उसके इस स्थान-प्रदान को भी स्वीकार कर लें तो 'कवि' शब्द की शेष गम्भीर एवं व्यापक हो जाती है न्देह नहीं। 'कवि' शब्द का व्यवहार हाँ अबतक जिस अर्थ में होता आया हुत ही संकीर्ण तथा अपूर्ण है।

वि की विशिष्टता को यदि किसी एक में कोई पूछे, तो वह होगा कल्पना ation)। मनुष्य में जब कल्पना- की विस्फूर्ति होती है, तो उसके ललाट री आँख खुलती है, ऐसा मानना चाहिए। शक्ति के उदय के साथ ही मनुष्य दृश्य दृश्य दोनों वस्तुओं का विश्लेषण एक दृष्टि से, नूतन-प्रणाली में करने लगता अभिनव दृष्टि—नूतन विचार-प्रणाली के साथ ही मनुष्य के हृदय में किसी की आतुरता जगती है, और अवसर वह विविध मार्गों से विविध रूप धारण निकलती है। छन्दों के बीच जब वह फूटती है, तो उसे 'कविता' और जब रंगीन होकर पटल या पट पर है, तो उसे हम 'चित्र' कहते हैं। कवि होती है 'भाषा', तो चित्रकार की ती है 'तूली'। मानव-हृदय की यही जब स्वरों में फूटती है तो उसे 'संगीत' छेनी और हथौड़े की सहायता से स्तर-खण्ड पर अंकित होती है तो उसे र्ति कहते हैं।

विता, चित्र, संगीत और मूर्ति—ये सभी ला के अन्तर्गत हैं और सभी ललित- में शिल्पी की रचनात्मक प्रवृत्ति e Impulse) की झलक स्पष्ट दिखायी है। कला-वैचित्र्य केवल उनके प्रकाशन के है। पर वह ढंग कैसा भी क्यों न हो, उस वैचित्र्य की आड़ में एक सत्य अवश्य है; और वह सत्य कल्पना-शक्ति की प्रचुरता है। हाथ में कलम हो या कूँची, सितार हो अथवा छेनी, शिल्पीमात्र के मस्तिष्क में कल्पना का प्राचुर्य्य अत्यावश्यक है।

उपर्युक्त सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने में यदि किसी को कुछ हिचकिचाहट—कोई संकोच नहीं हो, तो केवल ईसा को ही नहीं, बल्कि बुद्ध, तथा गांधी—जैसे किसी महापुरुष को कवि मान लेने में कभी कुछ संशय नहीं होगा। कारण जिस कल्पना-शक्ति के प्राचुर्य्य में मनुष्य कवि कहलाता है, उसी कल्पना-शक्ति की अधिकता इन महापुरुषों के जीवन में भी दिखायी देती है। और इसी कल्पना-शक्ति की अधिकता को ईसा के जीवन में देखकर ऑस्कर वाइल्ड ने अपनी उक्त पुस्तक में लिखा था—"Christ's place, indeed, is with the poets." —ईसा का स्थान, वस्तुतः, कवियों में है।

ऑस्कर वाइल्ड ने अपनी उसी पुस्तक में 'कल्पना' शब्द की भी एक चामत्कारिक व्याख्या दी है। वह कहता है कि कल्पना-शक्ति प्रेम की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नही है। (The imagination is simply a manifestation of love) सचमुच मनुष्य की कल्पना-शक्ति के प्राचुर्य्य में हमें प्रेम का करुण-कोमल रूप ही निखरा मिलता है। कल्पना के प्राचुर्य्य में सूक्ष्म, संवेदनशील हृदय को लेकर प्रेमानुभूति जब कवि के भाव-जगत् में उतरती है, तब कल्पना का क्षेत्र काल, स्थान और समाज-विशेष तक ही सीमित न होकर सम्पूर्ण मानवता में परिव्याप्त हो जाता है और कवि की वेदना मर्मस्पर्शी शब्दों में फूट पड़ती है। एक जगह वाल्ट ह्विटमैन की कविता में है—

"जो घायल है, उससे हम यह नहीं पूछते कि तुम कैसे हो ? उसके दर्द से हम खुद घायल हो

जाते हैं।"[१]

इस कथन में जो वस्तु हमें आकर्षित करती है, वह कवि की प्रेमानुभूति है और उस अनुभूति को प्रकट करने की उसकी शक्ति है। घायल सिपाही की वेदना में अपनी चेतना को मिला देने की क्षमता हर किसी में नहीं रहती। वह क्षमता केवल कवि के पास है, क्योंकि वह कल्पना के धन से धनी है। दूसरों के दुःख को पूरी तरह अनुभव करने के लिए हमें उसके दुःख तक पहुँचना होगा और दूसरों के दुःख तक पहुँचने का मार्ग कल्पना के सिवा दूसरा क्या हो सकता है ?

पर प्रत्येक व्यक्ति कल्पना क्यों नहीं कर पाता ? चूँकि प्रत्येक व्यक्ति प्रेम करना नहीं जानता। मनुष्य जब प्यार करता है, तभी वह अपने प्यारे के दुःख को समझता है। केवल उसके दुःख को ही समझता है, यही नहीं, बल्कि उसके आनन्द से आनन्दित भी होता है। बच्चे के शरीर में गर्मी आते ही माँ समझ जाती है कि उसे ज्वर है। पर इसीलिए किसी डॉक्टर को थर्मामीटर की शरण लेनी पड़ती है !

कवि की सहानुभूति भी इसी गम्भीर प्रेमानुभूति के सहारे होती है। घायल की तकलीफ़ कहाँ और कैसी है, डॉक्टर की तरह कवि से ऐसा सवाल नहीं पूछा जा सकता। वह भी माता की तरह पराये की वेदना को अपने शरीर के रोम-रोम में अनुभव करता है। कवि में कोई कर्त्तव्य-बुद्धि नहीं है, प्रत्युत एक सहज-सुन्दर अनुभूति है।

दीपों के जगमग प्रकाश में खिड़कियों पर वारांगनायें आँखें बिछाकर बैठी रहती हैं। पर उनके मर्म की ओर कौन झाँकता है ? साधारण मनुष्य अपनी साधारण बुद्धि से उसमें देखता है—एक वारांगना की मोहक छवि। किन्तु कवि जब अपना अन्तर्नयन खोलकर उस ओर देखता है, तो उसे वहाँ मिलती है—अपने अन्तदवता की प्रतिमूर्ति – वह प्रतिमूर्ति जिसे मैटरलिंक ने 'अगोचर देवता' कहा है। वाल्ट ह्विटमैन की एक कविता है 'टु ए कॉमन प्रॉस्टिट्यूट'। जिस दृष्टि से श्री रवीन्द्रनाथ ने 'पतिता' लिखी है, उसी दृष्टि से वाल्ट ह्विटमैन ने लिखा है—

शान्ति धारण करो। मेरे सम्मुख संकुचित न हो। मैं वाल्ट ह्विटमैन हूँ। प्रकृति की भाँति ही उदार तथा जीवन की चंचलता से परिपूर्ण।

जबतक सूर्य्य तुम्हारा परित्याग नहीं करेगा, तबतक मैं भी तुम्हें न भुलाऊँगा।

जल जबतक तुम्हें देखकर चमचमाना नहीं भूलेगा, पत्ते मर्मर-स्वर न छोड़ेंगे, तबतक मेरी भाषा भी तुम्हारा गीत गाने से नहीं चूकेगी।

इस तरह की वाणी उसी मनुष्य के कण्ठ से निःसृत हो सकती है, जिसकी दृष्टि सर्वसाधारण की दृष्टि से पृथक् और अन्तर्भेदी होगी। और चूँकि कवि कल्पना के रथ का रथी है—प्रेम के पथ का पथिक है, इसीलिए वह अन्तर्भेदी दृष्टि उसे प्राप्त है। निर्बल मानव-समुदाय के प्रति एकान्त प्रेमानुभूति से कवि की कल्पना को व्यापकता मिलती है और इसी व्यापकता के सहारे वह उस गहराई तक उतर जाता है, जहाँ सूर्य का प्रवेश भी असम्भव है।

ऊपर की पंक्तियों में जो कुछ कहने का प्रयत्न किया गया है, उसका एक मात्र तात्पर्य यही है कि कवि की विशेषता कल्पना के प्राचुर्य में है, और इस कल्पना के प्राचुर्य की जड़ में प्रेमानुभूति का निवास है। कविता की कड़ियाँ उस कल्पना-शक्ति के प्रकाशन का एक मार्गभर हैं।

महात्माओं के जीवन में भी मुझे उसी कल्पना-शक्ति की अधिकता दिखायी देती है। ऑस्कर वाइल्ड ने कल्पनाशक्ति की अधिकता को देखकर ही ईसा मसीह को कवि कहा था, और यहाँ इसी कल्पना-शक्ति को ध्यान में रखकर हम बुद्ध तथा गांधी को भी कवि कहना चाहते हैं। कल्पना-शक्ति को जितनी अभिव्यक्ति छन्दों के बीच मिलती या मिल सकती है, उसकी उतनी

---

[१] "I donot ask the wounded person how he feels.

I myself became a wounded person.

My heart turns burid upon me as I lean.

On a can and observe."

अभिव्यक्ति मनुष्य अपने आचरण दिखला सकता है। इस कथन की पुष्टि प्रभु ईसा के जीवन की दो-एक घटना उल्लेख करना चाहता हूँ। एक रोज ने एक दुश्चरित्र नारी को उनके उपस्थित किया, और धर्मशास्त्रों हीनता के लिए जो दण्ड के विधान थे, ओर ईसामसीह का ध्यान आकृष्ट करते उन्होंने उनसे पूछा कि इसे कौन-सा दण्ड जाना चाहिए? ईसा पहले तो कुछ क्षण रहे। बाद में वहाँ जितने लोग मौजूद की ओर देखते हुए बोले—'तुम लोगों जिसने कभी कोई पाप नहीं किया है, वही पहले इस स्त्री पर पत्थर फेंककर उसे वह एक विश्व-मानव-प्रेमी महाकवि की हो सकती है। साधारण मनुष्य अपने मनुष्य का विचार करते समय उसके तो भूल जाता है, और विचार करता उसके दोषों एवं त्रुटियों पर। दूसरों की करते समय वह स्वयं को सर्वथा निष्कनिष्पाप समझ लेता है। उसे इसका रंचक भी नहीं होता कि कभी किसी तरह का उसने खुद भी किया है, या इस समय भी रहा है। पर मनुष्य मनुष्य के पाप का करे, ऐसी अपाप-विद्ध आत्मायें इस पृथ्वी कितनी हैं? ईसा के जीवन की इस घटना उल्लेख करते हुए ऑस्कर वाइल्ड ने लिखा It was worthwhile living to have that अर्थात्—ईसा यदि जीवन में कोई कुछ कार्य नहीं भी करते, केवल इतनी बात कह जाते, तब भी उनका जीवन सार्थक होता।

भगवान बुद्ध के जीवन की भी एक घटना घटी है। एक रोज़ श्रावस्ती के किसी धनवान सेठ का निमन्त्रण त्यागकर, उन्होंने आम्रपाली नामक एक शहरी वेश्या के यहाँ भोजन किया था। और उसके अत्यधिक आग्रह पर संघाराम में भी ले लिया था। इसपर भगवान के शिष्य भी बहुत क्षुब्ध हुए थे। पर तथागत की नज़रों में उसे नारी का कोई कलुषित रूप तो दिखायी नहीं दिया था। उन्होंने उसे जिस रूप में ग्रहण किया था, वह रूप किसी वारनारी का रूप नहीं था, बल्कि एक ऐसी नारी का रूप था, जो अपने अतीत जीवन के दुष्कर्मों के कारण अनतप्त होकर बुद्ध की शरण में आयी थी—**"संघं शरणं गच्छामि," "बुद्धम् शरणं गच्छामि।"** अनुताप-दग्ध हृदय एवं सजल कातर नेत्र लेकर वह तथागत के पाद-प्रान्त में उपस्थित हुई थी—उस समय जहाँ औरों ने उस चरित्रहीन वेश्या के केवल कलुषित अतीत जीवन को देखा, वहाँ बुद्ध को उसका वर्तमान रूप उसी प्रकार निष्कलंक दीख पड़ा, जिस प्रकार कीचड़ से भरे सरोवर के जल पर उत्थित सहस्रदल कमल।

इस प्रकार की कल्पनात्मक सहानुभूति के साथ मनुष्य का विचार करने की दृष्टि जिस प्राणी में होगी, उसका हृदय कितना विशाल होगा, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वह कवि नहीं, महाकवि होगा। और महाकवि के हृदय में बहनेवाली प्रेम-सरिता विश्व-महामानव रूपी प्रेम-महासागर की तरंगों में मिलकर अपने अस्तित्व को विलीन कर देने के लिए आकुल वेग से दौड़ती रहेगी। जिस समय इस आतुरता का वेग कवि के लिए असह्य हो उठता है, उस समय उसका प्रेम समस्त बन्धनों से विच्छिन्न होकर, क्षुद्र, संकुचित सीमा-क्षेत्रों का अतिक्रमण करके असीम बनकर प्रसारित हो जाता है। गृह-परिवार की मोह-ममता, स्वजन-परिजन का आदर-स्नेह, आत्मीय जनों की प्यार-मनुहार—इन सबसे परे होकर वह अपने व्यक्तित्व को निजत्व की परिधि से सर्वथा मुक्त कर देता है। उस समय प्रेमिक कवि का निष्ठुर-करुण रूप कितना सुन्दर मालूम होता है। कपिलवस्तु के राजकुमार ने गम्भीर निशीथ में सोती हुई प्रियतमा भार्या तथा उसकी गोद में चिपटे सुकुमार नन्हें बालक राहुल को छोड़कर जब राजप्रासाद से प्रयाण किया था, उस समय

का दृश्यपट कितना करुण—कितना सुन्दर है ! विश्व-वेदना की अनुभूति होते ही राजकुमार के हृदय की प्रेम-सरिता बाँध तोड़कर उच्छलित हो पड़ी और प्रेमिक कवि राजकुमार प्रेमिक कवि संन्यासी के रूप में संसार के दुःख-पीड़ित प्राणियों का अश्रुमोचन करने के लिए व्याकुल हो उठा। राजकुमार गौतम के इस संन्यास के उग्र रूप में भी काव्यगत एक कोमलता है, जो अनिर्वचनीय माधुर्य से परिपूर्ण है।

१९२१ ई० में, जब गांधीजी ने कोपीन धारण किया था, तब फिर एक संन्यासी के आवरण के बीच संसार को कवित्व का प्रकाश दिखायी दिया। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार तो सहज है। पर सर्वसाधारण के पास महँगी खादी के लिए पैसे कहाँ ? गांधीजी ने कहा—"इस गर्म मुल्क में अधिक कपड़ों की ज़रूरत ही कहाँ ? कपड़ों की गिनती कम कर देने से ही काम चल जायगा। और फिर खादी के महँगेपन की समस्या अपने आप सुलझ जायगी। इस कथन को अपने आचरण में लाकर बैरिस्टर गांधी ने हैट-पैण्ट हटाकर जन-साधारण को स्वदेशी का मार्ग सुझाया। और तब कोपीनधारी नग्नकाय संन्यासी में संसार ने एकबार फिर प्रेमिक का करुण-कोमल रूप देखा। कल्पना के द्वारा गांधी ने मालूम किया कि गरीबों के लिए खादी खरीदना कठिन अवश्य है। अतः अल्प वस्त्र-धारण द्वारा स्वदेशी का पथ प्रशस्त करने के लिए उन्होंने स्वयं कोपीन धारण कर लिया। कल्पना की प्रचुरता का और अनुभूति की निबिड़ता ही तो मनुष्य को कवि बनाती है ? गांधी में इसी कल्पना और अनुभूति की चरम सीमा है।

कोहाट की दुःखद घटना के उपरान्त गांधीजी ने २१ दिन के कठिन उपवास का संकल्प लिया। इस संकल्प-ग्रहण के समय उनके चित्त की क्या अवस्था थी, इसपर स्वर्गीय एन्डरूज ने एक जगह पर लिखा था—"**गांधीजी की आँखों में लगातार कई रात नींद नहीं आयी। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य का उपाय सोचते हुए वह रात-रात भर ओसारे में चहलकदमी करते रहे और अन्ततः साम्प्रदायिकता की वेदी पर स्वयं को आहूत कर देनें के निष्कर्ष पर पहुँचे।**"

२१ दिन के कठिन उपवास द्वारा स्वयं को आहूत कर दो जातियों को मिला देने का संकल्प क्या एक महाकवि का संकल्प नहीं है ? घन्टों के बीच जिस अनुभूति—जिस विश्व-वेदना का प्रकाश हमें कविता के रूप में दिखायी पड़ता है, क्या वही अनुभूति—वही विश्व-वेदना हमें गांधीजी के इस आचरण में भी दिखलायी नहीं देती ? धर्मान्धता की भट्टी में जलनेवाली दो जातियों के सर्वनाश का विचार क्या गांधीजी के हृदय को एक कवि के हृदय की तरह विचलित नहीं करता ? यदि गांधीजी में एक कवि का हृदय नहीं होता, तो क्या उनका जीवन सर्वसाधारण को आज कविता की भाँति ही इतना सरल, सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होता ?

वास्तव में वही तो कवि है जिसका जीवन प्रतिपल माधुर्य से परिपूर्ण है; और जिसका प्राण चिरसुन्दर को वरमाल पहिनाने के लिए सदा लालायित रहता है। ऐसा कवि जब अपने प्रचण्ड मनोहर सुर में नवजीवन का आगमनी गान गाने लगता है तो उसके इस गाने को सुनकर अत्याचारियों के हृदय काँप उठते हैं, शृंखलितों के मन नवीन आशा से खिल उठते हैं और तरुण दल किशोर प्राण नाच उठते हैं और चंचलता, अपनी धमनी में अशान्त सागर की चंचलता, हृदय में अपरिसीम शक्ति, चित्र में मानव-प्रीति और नेत्रों में चिर सुन्दर की मूर्ति धारणा कर वीरभाव से अपनी जय-यात्रा आरम्भ करता है।

मोर, डा० सुलतानपुर, पटना]

सौष्ठव-पूजा

[प्रभाकर माचवे]

ननकुआ नाई

कलाकान्तजी गाँव की एक प्राचीन से परिचय करने के लिए चले। यह एक चलती-बोलती हुई सप्राण संस्था से गाँव का अखबार कह सकते हैं। इसे का मनरंजन भी कह सकते हैं। गाँव का नहीं है कि जिससे यह संस्था नावाकिफ इस संस्था का ननकुआ नाई है। और ने उसे एकाक्ष बनाया है। फिर भी काम फुर्ती से चल रहा है, और कलाकान्त भी किसी तरह संस्था को अपनी भेंट हैं।

कलाकान्त—यूरोप और अमरीका में हेअर-की बड़ी कीमत होती है। 'शॅम्पू' एक ख़ास है। बालों की वे इतनी फिक्र रखते हैं।

ननकुआ—विलायत में शायद लोगबागों को की फिक्र नहीं होती। इसलिए वे बालों की, की, नाखूनों की और ऐसी ही चीज़ों की में पड़े रहते हैं।

क०—क्यों, तुम्हारा क्या सवाल है? तो गुज़र ठीक से चल जाती होगी? का एक सिर भी मूँडो तो शहरों में चार कटिंग और दो आना डाढ़ी के लेते हैं, हिसाब से—

न०—चार आना? क्या बात करते हैं! अजी, मुश्किल से चार आने यहाँ सात में जुट पाते हैं। यहाँ का रेट चार पैसा है, करना इसके अलावा।

क०—कैसे गँवार आदमी हैं! ज़मीदार तो देता होगा।

न०—उनकी कुछ न पूछो। सालभर में पच्चीस 'पायली' (धान का एक नाप = तोले) ज्वार दे दें तो बड़ी मिहरबानी। हाँ, उनका लड़का है न साहब, वो के इस्कूल में पढता है, वह जब बैसाख में आ जाता है, तब हर हफ्ते बाल-कटाई और नगद पैसे देता है। वह ठीक रहता है हिसाब।

क०—असल में तुम्हें शरीर-सौष्ठव, मुद्रा-सौष्ठव और ऐसी ही चीज़ों से, इस शास्त्र से परिचित रहना चाहिए। विलायत में इसपर सैकड़ों किताबें मिल जाती हैं?

न०—कोई किताब, साहब पैसा कमाने की जुगत बतानेवाली है? पाँडेजी कहते थे कि एक मंत्र-पुस्तक— (लेकिन कलाकांतजी आगे बढ़ गये थे)

कल्लू कुम्हार

कल्लू कुम्हार सावन के मेले के लिए मिट्टी के खिलौने बनाने में व्यस्त था। उसकी स्त्री उन खिलौनों को चूने से पोत रही थी। चक्का एक ओर घूम रहा था। अवा एक ओर लगा था। और झौंपड़ी के अन्दर एक ओर लाल-काले मटकों का ढेर पड़ा था। कलाकार महाशय पेंटर मियाँ के बाद इस शख्स की कला में अधिक 'इन्टरेस्टेड' दीखे। मिट्टी की पनिहारिन, मिट्टी की पीसनेवाली और उसकी चक्की, मिट्टी के शेर, मिट्टी की बिल्ली, मिट्टी का सिपाही और मिट्टी के टेसू…

क०—मगर तुम इतने भौंडे और बदशकल पुतले क्यों गढ़ते हो? (खुद पुतले की नाक-आँख बनाकर) ऐसे सुडौल बनाओ तो क्या बिगड़ता है?

कु०—देखिए, कहीं सीखे तो हैं नहीं साहब, हम मूरतकारी। जैसी बनाते आ रहे हैं, पीढ़ियों से, वैसी बनाते हैं। अच्छी कहाँ से बनायें?

क०—मगर ये कूँची जो तुम काम में लाते हो—यह अच्छी क्यों नहीं होती? भला दिया-सलाई की सींक के रुई लपेटकर भी उसकी कूँची बनती है? और ये रंग? उफ़, एकदम नेटिव—

कु०—और रंग कहाँ से लायें? बड़ी मुश्किल से (हाथों से आकार बताकर) ये इतनी-इतनी ऊँची पुतली दो पैसे में लोग खरीदते

हैं। अब खेल-खिलौने खरीदने का शौक़ भी लोगों में कम हो गया। पहिले आखातीज को यहाँ हमारे बाप के वखत ही इस गाँव में मटके पचास-सौ तक उठ जाते, एक दिन में। अब पच्चीस बड़ी मुश्किल से जाते हैं। दुनिया में धरम-करम का खयाल ही नहीं रहा साब !'

क०--हाँ धर्म से एक फायदा तो था कि ग्रामीण कारीगरों का काम चल जाता था। अब धर्म अधर्म हो गया है और कारीगर भूखों मर रहे हैं। और वो' अन्दर बड़े-बड़े पुतले कैसे हैं ?

कु०--कठपुतलियों के तमाशे के खिलौने हैं। वो' देखिए फिरंगी, वो' सुल्तान, वो' मज़ाकिया बुड्ढा। इनको सन की दाढ़ी और गोटे के कपड़े पहिनाकर लोग-बाग तमाशा करते हैं। गाँव-गाँव घूमते हैं। पर अब शहरों में सनीमा चल गया। और कहाँ की रही है नटगिरी ? हमारे सब धन्धे एक-एक कर डूब गये !...

क०--ठीक है, जापानी लड़के आकर हमारी गलियों में नटगिरी करके पैसा कमा ले जाते हैं, पर अपने देश के ही कई कारीगर कुछ नहीं कमा पाते। कसूर इन कारीगरों का ही है कि वक्त देखकर काम नहीं करते।

कु०--पर साहब विलायतवाले 'सनीमा' की कल यहाँ भिजवा देते हैं, तो उसके आगे हम करें तो क्या करें ?

क०--(हँसकर) सच है, सच है।

हरिजी हलवाई

कलाकान्तजी को भूख लगी और वे हरिजी की दूकान के सामने पड़ी एक बेंच पर डट गये। दूकान महा-घिनौनी थी। मक्खियाँ, बर्र, मच्छर, सामने एक पनाला-सा। जूठे दौने इधर-उधर। एक भट्टी। सकोरों का कोने में ढेर। हरिजी का लिबास बिल्कुल मैला। एक बिना दरवाज़े की अलमारी में थाल, दही का मिट्टी का बर्तन वगैरह।

क०--इतने गन्दे क्यों रहते हो हलवाईजी ? इससे कितनी बीमारियाँ फैलने का अन्देशा है। तुम नहीं जानते ?

ह०--अरे, हमारे परदादा से हम ये पेशा कर रहे हैं। कभी भी तो कोई हमारे यहाँ से 'पेड़े' खा गया हो, और एक दिन भी जुकाम से बीमार रहा हो ऐसा नहीं सुना।

क०--मगर साबुन अगर थोड़ा सा काम में ले भी आओ तो क्या बिगड़ता है ? चार पैसे का साबुन एक हफ्ते काफी होगा।

ह०--दूर के ढोल सुहावने। आपके शहरों में भी क्या होता है, सायब ? सब जगह गन्दगी है। आदमी है, वहाँ गन्दगी है। हफ्ते के मुश्किल से दो रुपये मिलें। उनमें से घर में १० आदमी हैं, हरएक के पीछे चार पैसे साबुन के खर्च करूँ तो दस आने तो योंही निकल जायँ। और दूकान में ये कहार रक्खा है, उसको साफ रहने को कैसे सिखलाऊँ ? महीने का एक रुपया कलदार तनख्वाह देता हूँ उसे !

क०--पर तुम साफ-सुथरी चीज़ें बनाते जाओ तो तुम्हारे ग्राहक और बढ़ जायें कि नहीं ?

ह०--कहाँ के गिराकों की बात कर रहे हैं ! यहाँ मिठाई खानेवाला है ही कौन ? मूँगफली के दाने गुड़ में मिला लिये या गुड़के सेव बना लिये, बस यह है यहाँ की मिठाई। यहाँ शक्कर मिलेगी कहाँ से ?

क०--क्यों ? यह नदी किनारे मैंने इतने खजूर और ताड़ के पेड़ देखे हैं। बेकार जा रहे हैं। उनकी शकर नहीं बना सकते ? उनका गुड़-

ह०--ताडी का गुड़ ? (हँसता है) आप भी खूब ठठ्ठा करते हैं ! कोई बाम्हन-बनिया उसे छूएगा भी ?

क०--तो तुम समझते हो कि यह जो गुड़-शकर तुम खाते हो उसे तो शुद्ध सनातन-धर्मी ही बनाते होंगे ! और मारेशस की शकर--

ह०--हमसे बहस न करो सायब। सौ बात की एक बात इतनी सी है कि आपका ये किरिस्टान गुड़ हमारे यहाँ नहीं चल सकता।

(क० पैसे चुकाकर आगे बढ़ते हैं)

लछमन दर्ज़ी

कलाकान्तजी अब गाँव के दर्ज़ी के पास पहुँचे,

हाथ से सीने की एक मशीन बहुत उसने, दूसरे से 'सेकिंड हैंड' खरीदी है। एक कैंची, रंगीन और सफेद डोरे सुई वग़ैरह चीज़ें भी बिखरी पड़ी हैं बंडियाँ, वासकट और घागरे सीता है। और कभी पजामे। कोट वह सी सकता। गाँव और शहर के सिलाई के दामों अन्तर है वह सुनकर भी हमारे कलाकान्त चकरा जाते हैं।

—छः पैसा और दस पैसा सिलाई ? लेते हैं इस एक पैंट की सिलाई शायद दूकान की इस सब सीने के काम के होगी। क्यों सच है न ? तुम अपनी, बढ़ा नहीं सकते ? छः पैसे न लो, गे।

—देगा कौन ? और दशरथ दर्जी अलग लूं तो वह तो पाँच में ही सी दे।

—तुम फैंसी काम क्यों नहीं करते ? सुन्दर रुमाल, गले के मफलर, मौज़े वगैरह टोपियां सियो, तो तुम्हारी आमदनी सकती ?

—जापानी माल के आगे हम क्या जी ! अपने करम को रोते हुए बैठते बस है। लड़के को तो मैंने शहर की भेज दिया ! वहीं ठीक से रहेगा। दूसरा में जाता है। मगर स्कूल क्या है, है !

कलाकान्तजी को याद आता है कि शहरों में कालेजों में टर्म फीस ही होती है डेढ़-रुपया।

सीताराम सुनार

और आखिर कलाकान्तजी सुनार महाशय पहुँचे। ये सुनार-सज्जन गाँवभर में ठगने में प्रसिद्ध गिने जाते थे। उनके यहाँ भी कलाकान्तजी ने वही नये-नये तर्ज़ के का उपदेश दिया। सुनार ने वही में बताया कि ये गहने लेगा कौन ? कलाकान्तजी ने उसे प्रामाणिकता और सज्जनता से काम लेने का उपदेश दिया। जो उसने चुपचाप सुन लिया। पी गया। मगर उससे कलाकान्तजी के हाथ की अँगूठी देखकर रहा नहीं गया। पूछ बैठा—यह कहाँ से बनायी है ? कलाकान्तजी ने किसी बड़े शहर का नाम लिया। सुनार ने उसके दाम पूछे। पता चला कि सिर्फ उसके बनाने के ही सुनार को दस-पन्द्रह रुपये दिये हैं। गँवार सुनार काफ़ी अचरज में पड़ गया। फिर सोने के भाव की इधर-उधर की बातें करने लगा। इतने में उसके दूकान पर दो-चार गाँववाले आये। वह उन्हें चुपचाप अन्दर कमरे में ले गया। रुपये गिनने की अन्दर से आवाज़ आयी। वे गाँववाले चले गये। तो चोरी का माल लेने, गलाने और सूद पर रुपये देने की कला में भी ये सज्जन सिद्धहस्त हैं। कलाकान्त यहाँसे भी बुरी तरह, मन में एक विद्रूप भावना लिये भारी हृदय से उठ गये।

जाते-जाते वे सोचने लगे—कला को जीवन के निकटतम हम कैसे लायेंगे ? शहर और गाँव के बीच का यह भयानक अन्तर कब कम होगा ? यह अन्तर कम करने की कला किसके पास है ?...

और इन ग्रामीण कलाकारों के पतन के कारण कितने हैं—आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक नैतिक, राजनैतिक...! परन्तु मुख्यत: आर्थिक !!

शहर के ये धनिक और मध्यवित्त कला-प्रेमी इसके लिए क्या कर सकते हैं ?

हमारी शहरों की और गाँवों की संस्कृति सुरुचि के अभाव में सड़ रही है। उसे सुधारने का क्या उपाय होगा ?

हमारी माताओं, बच्चों सबको कला-शिक्षण हमें अनिवार्य रूप से देना होगा। शिक्षण कलाद्वारा ही हो सकेगा। अन्यथा जीवन के प्रत्येक अंग को कला छू नहीं सकेगी।

जीवन के व्यवहारी तल पर अगर सौन्दर्य-प्रतीति के उच्चादर्शों को लाना है, तो उसे सौष्ठव और सुरुचि का ही रूप देना आवश्यक है।

और यह सौष्ठव-पूजा हमारे देश के गाँव-गाँव तक कैसे पहुँचेगी ?

तभी जबतक हमारे सभी कलाकार, टालस्टाय के बताये कला के तीनों गुणों को मन में नहीं उतार लेते—'Three thing are important for Art in the first place Uprightness; secondly, Uprightness; thirdly; Uprightnest' सौजन्य, सौजन्य, सौजन्य ! प्रामाणिकता, प्रामाणिकता, प्रामाणिकता !

सौष्ठव-पूजा का आरंभ हम अपने घरों से, अपने बच्चों से कर सकते हैं । क्या हम यह सब पढ़कर कुछ करेंगे नहीं ?

युद्ध का अर्थ

[महात्मा रस्किन]

जनसाधारण का यह विश्वास कि "सामाजिक जीवन के प्राण शान्ति और सद्गुण साथ-साथ पनपते हैं" सर्वथा निराधार है । शान्ति और दुर्गुण का ही परस्पर जोड़ा है । हम सदा शांति और शिक्षा, शान्ति और सम्पदा एवं शान्ति और संस्कृति के गीत गाया करते हैं, पर इतिहास ने इन शब्द-युगलों को कभी एकताल नहीं किया है । इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ से तो सदा शान्ति और विलास, शान्ति और स्वार्थ, शान्ति और पतन एवं शान्ति और मृत्यु की आवाज़ ही बुलन्द हुई है । थोड़े में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक महान् राष्ट्र ने सत्य-पालन और विचार-दृढ़ता युद्ध में ही सीखी है । युद्ध उनका पालक और शान्ति उनकी संहारिणी थी; युद्ध उनका गुरु और शान्ति माया थी; युद्ध उनका शिक्षक और शान्ति मृगमरीचिका थी; एक शब्द में युद्ध उनका आदि और शान्ति उनका अन्त थी ।

ऊपर कही हुई बातें हर तरह के युद्ध पर लागू नहीं होती हैं; असुर की दन्त-पंक्ति का प्रत्येक दाँत इन्सान नहीं पैदा करता । वह युद्ध वर्वर भेड़ियों के गिरोह की लूटमार नहीं है जैसा कि हमने गेनसेरिक अथवा स्वेरों के ज़माने में देखा । वह सीमाप्रान्त की ज़ंगली जातियों के अशान्ति-मूलक हमलों का रूप नहीं है जैसा कि स्काटलेंड के सीमान्तों में होता था; वह धीर-वीर जाति के जीवन-संग्राम का परिणाम नहीं है जैसा कि स्विस लोगों के आस्ट्रिया पर किये गये संग्रामों से पता चलता है; और न यह केवल शक्ति-लोलुप कौमों की साम्राज्य-विस्तार की लिप्सा का ही फल है जैसा कि नेपोलियन द्वारा किये गये अथवा अमेरिका में हुए युद्ध हैं । इन युद्धों ने तो केवल कब्रों को खड़ा किया है । पर निर्माणकारी प्राण-संचारक युद्ध तो वह है जिसमें मानव-स्वभाव-जन्य अशान्ति और संघर्ष का निग्रह सर्वसम्मति से सांधातिक पर सुन्दर खेल के रूपों में होता है; जिसमें सर्वव्यापक बुराइयों पर एकान्त विजय से शक्ति, प्रेम और लालसा का नियमन होता है, और जिसमें आत्मरक्षा की स्वाभाविक भावनाओं की शुद्धि, संस्थाओं की महत्ता एवं उनसे रक्षित परिवारों की पवित्रता पर निर्भर होती है । इसी युद्ध के लिए प्राणि-मात्र का जन्म हुआ है और इसी युद्ध के लिए हँसते-हँसते वह अपने प्राणों की बलि चढ़ाता है। इसी युद्ध से गत सम्पूर्ण युगों में मानवता के सारे सद्गुणों और सद्भावनाओं का आविर्भाव हुआ है।[१]

अनु०—**रामनारायण विजयवर्गीय**

पुरुष को उन्मुक्त, विकासोन्मुख और स्वतन्त्र होना चाहिए । संसार में उसे परिस्थितियों से लड़ते रहना है । वह घड़ीभर मन बहलाने के लिए जिस तरह चाहे रह सकता है । उसके आचरण में, कर्म में, नदी की धारा की तरह प्रवाह होना चाहिए । तालाब के बँधे पानी-सा उसके जीवन का जल सड़ने और सूखने के लिए होगा तो वह भी जड़ और स्पन्दन-विहीन होगा ।

[भारती भण्डार 'तितली']

—**जयशंकर 'प्रसाद'**—

---

[१] मूल 'क्राउन ऑफ वाइल्ड ओलाइव' ग्रन्थ से ।

प्रस्तुत प्रश्न

त्यिक क्या करें ?

"जी० सा०" के सितम्बर अंक में प्रकाशित त्यिक क्या करें" लेख में यह प्रश्न समाविष्ट पाठक और साहित्यसेवी दोनों ही आधुनिक से अत्यन्त असन्तुष्ट हैं । किन-किन ओं और प्रवृत्तियों से यह अधोगति हुई, यह भाविक है । अब तो साहित्यसेवियों को त' और 'स्वास्थ्यकर' साहित्य का निर्माण चाहिए, 'अस्वास्थ्यकर' अथवा 'मृतक' का नहीं । 'जीवित' या 'स्वास्थ्यकर' में उस साहित्य को समझता हूँ जिसमें लिखी बातें हों—

(१) लेखक के 'व्यक्तित्व' को पाठक में करने की शक्ति । साहित्य ऐसा होना जिससे लेखक की निजी अवस्था का पाठक में हुए बिना न रह सके । इस से यह नतीजा सहज ही निकलता है कि लेखकों का निजी कोई 'व्यक्तित्व' नहीं, उन्हें -निर्माण करने का अधिकार न हो और ने ऐसा व्यक्तित्व बना लिया है उनको भी उस व्यक्तित्व से समन्वित साहित्य को ही करने का अधिकार होना चाहिए ।

(२) केवल उपर्युक्त एक बात से ही ' और 'स्वास्थ्यकर' साहित्य की रचना हो जाती । आचरण को नष्ट करनेवाले में भी कई बार लेखक अपने व्यक्तित्व पाठक में सञ्चरित करने में समर्थ होजाता परन्तु ऐसा साहित्य तो हानिकर होगा । दूसरी बात साहित्य में यह होनी चाहिए 'उदात्त' जीवन का प्रेरक भी हो ।

इसमें दो मत नहीं हो सकते कि ऐसा स्थ्यकर और जीवित साहित्य वाञ्छनीय है; ऐसे साहित्य की उत्पत्ति के लिए मेरे विचार लिखी बातें आवश्यक हैं—

(क) सबसे पहली बात यह है कि लेखक अपने जीवन में क्रियात्मक रूप में उदात्त व्यक्तित्व पैदा करना चाहिए और वह जो कुछ लिखे वह उससे उत्पन्न गहरे अवलोकन, चिन्तन और मनन का फल होना चाहिए । जिन लेखक-बन्धुओं में यह बात नहीं उनकी कृतियाँ केवल मानसिक बलात्कार ही हैं । उदाहरणार्थ, दैनिक समाचार का सम्पादक कभी ज्ञानी, कभी नीतिज्ञ और दार्शनिक, कभी चतुर वैद्य कभी मानस-शास्त्री, तो कभी सुजनन या भूगर्भशास्त्रविशारद बन जाता है । संसार में शायद ही कोई विषय हो जिसपर इस महानुभाव की लेखनी न चलती हो और वह भी प्रामाणिक बनकर ! क्या सचमुच सम्पादक महोदय का व्यक्तित्व इतने विस्तृत और संसार-व्यापी अनुभव के बाद उपजा है ? क्या प्रतिदिन की इतनी उपज वस्तुतः किसी गहरे आत्म-चिन्तन और उससे उत्पन्न आत्म-ज्ञान (अतिविस्तृत अर्थों में) का परिणाम है ? यदि नहीं, तो वह केवल मानसिक बलात्कार है ।

(ख) दूसरी बात जो आवश्यक है वह यह कि साहित्य-सेवी को जिसे मैं 'दिमागी ऐयाशी' कह सकता हूँ, छोड़नी चाहिए । ऐसे सब साहित्य को जो लेखक व पाठक के **केवल** मनोरञ्जनार्थ लिखा जावे—मिसाल के तौर पर रेल के मुसाफिरों को यात्रा की लम्बाई से उकताकर पढ़ने के लिए व्हीलर कंपनी से ख़रीदने पर जो कुछ मिला करता है— मैं 'दिमागी ऐयाशी' कहता हूँ । और इस विषय में मुझे क्या अभीष्ट है यह मैं एक उदाहरण से स्पष्ट करता हूँ । भोजन जैसे शरीर और आत्मा का सम्बन्ध कायम रखने और दोनों की वृद्धि और पुष्टि के निमित्त हो तो उचित और आवश्यक है, परन्तु यदि खाने के लिए ही 'जीना' समझ लिया जाये तो वह अनुचित है, उसी प्रकार मनोरञ्जनार्थ साहित्य का निर्माण करना वहींतक उचित और आवश्यक है जहाँतक वह जीवित और स्वास्थ्यकर साहित्य के निर्माण का साधक या पूरक है; यदि वह ऐसे साहित्य में बाधक बनता है अथवा उससे घातक और अस्वा-

स्थ्यकर साहित्य निर्मित होता है तो उसे तिलाञ्जलि दे देनी चाहिए। मनोरञ्जनार्थ लिखा साहित्य प्रायः ऐसा ही होता है और इस ओर साहित्य-सेवियों का झुकाव दिनों-दिन उन्नति और वृद्धि पर है।

(ग) यदि उपर्युक्त बातें ठीक-ठीक समझी गयी हैं तो मेरी समझ में यह बात सहज में ही इनमें समायी हुई है कि साहित्य-सेवियों को केवल लिखने और साहित्य-निर्माण करके जीविका कमाने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। ऐसा न होने पर वे मार्गदर्शक नहीं बल्कि जनता के पीछे लगनेवाले ही हो सकेंगे।

(घ) इस सबके अनन्तर कहना न होगा कि सात्त्विक-साहित्य में स्त्रियों के बाह्य नखशिख-वर्णन और उनको अप्सरायें या गुडियाँ बनाकर वर्णन करना अन्याय है और यह प्रवृत्ति निर्मूल हो जानी चाहिए।

कोई यह न समझे कि मैं एक ही प्रकार का साहित्य निर्मित हुआ देखना चाहता हूँ। भिन्न-भिन्न साहित्य-सेवियों का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न हो सकता है; अतः उनकी कृतियाँ भी भिन्न-भिन्न और विविध होती हैं; क्योंकि भिन्नता तो जीवन का रस है। आवश्यकता केवल उपर्युक्त नियमों को ध्यान में रखने और उनको पालने की है।

कांगड़ा] **हरचरणदास लूँबा**

'उलझन' का एक हल

मार्च मास में प्रकाशित श्री सिद्धराज ढड्ढा का 'उलझन' लेख पढ़कर मैंने भी अपने पिछले जीवन पर एक दृष्टि डाली। हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि मैंने लगभग छोटी-बड़ी २५० पुस्तकें पढ़ डाली हैं। मैंने जानना चाहा कि उनमें था क्या? और एक-एक करके उनको अपने दिमाग़ में लाने लगा। लेकिन उनमें से लगभग आधों के नाम और लेखकों को मैं भूल चुका था। मुझे एक जबर्दस्त धक्का-सा लगा और मुझे अपनी आँखों के आगे से एक पर्दा-सा हटता नज़र आया। तब मैंने अन्तर्मुख होकर सोचा कि मुझे सचमुच किस अध्ययन की ज़रूरत है? मेरी अभिरुचि दर्शन-शास्त्र की ओर थी। अतएव मैंने पहिला काम यह किया कि दर्शन-शास्त्र के अतिरिक्त जितनी भी और पढ़ने की सामग्री थी उसकी ओर से लगभग एक तरह की करवट ही ले ली।

मगर अभी एक परेशानी और थी कि दर्शन-शास्त्र की पुस्तकें पढ़ी किस प्रकार जायें? इस मुश्किल को मैंने साहित्य का काल-विभाजन करके दूर किया। पहले मैं एक लेखक को पकड़ता, फिर दूसरे को, उसके बाद तीसरे को। नतीजा यह होता कि मैं हर बार इसी तरह पुस्तकें ले जाता, पर यह पता न चलता कि मुझे हरेक की कितनी जानकारी प्राप्त हो गयी है और कितनी अभी बाक़ी है? इसलिए मैंने हेलेनिक सभ्यता से लेकर अबतक का समय ४००-४०० साल के हिसाब से बाँट लिया और फिर प्रत्येक काल के मुख्य-मुख्य दर्शनशास्त्रियों के नाम छाँटकर उनकी मुख्य-मुख्य किताबें और उनपर प्रसिद्ध टीका-टिप्पणियाँ पढ़ीं। इससे एक बड़ा लाभ हुआ कि मेरा ध्यान प्रत्येक 'छपे हुए काग़ज' को पढ़ने से हट गया। अब मुझे पहिले की तरह पढ़ने की जल्दी नहीं रहती। और अब मैं जबतक एक लेख को भली भाँति पुरानी और नयी रोशनी में देखकर समझ नहीं लेता तबतक आगे नहीं बढ़ता।

बहुत-सी ओर ध्यान बँट जाने से तो किसी ओर भी गति का होना मुश्किल हो जाता है। हमारा मुख्य साहित्यिक अध्ययन तो हमारी अपनी विचार-धारा के अनुसार ही होना चाहिए। इसके अलावा अपने को प्रगतिशील रखने के लिए १-२ घंटे अलग रखे जा सकते हैं। मगर जहाँ-तक हो सके उस समय के अलावा और किसी भी समय में असम्बन्धित साहित्य न देखा जाय। कम-से-कम मेरी उलझन तो इस उपाय से बहुत-कुछ सुलझ चुकी है।

अशोक
(बी. ए. विशारद)

हुसैनगंज, लखनऊ]

आज की कविता

भारतवर्ष सदा से कविता-प्रधान देश रहा है। आदि-काल से लेकर चरम उन्नति के समय

और दासता के काल से राजनीति के युग इसमें कविता-सरस्वती की आराधना होती है। और अब भी वह युग बीत नहीं गया तो यह है कि मानस-बन्धन के समय भी यह गुण प्रधान रहा है। मैं मानता हूँ रस अतिरेक ही कविता का स्रोत है। आज जब हमारी विवशता सप्राण मूक होकर जीवन का देखना चाहती है, उसके लिए तड़प रही निराशा का वेग भी अविच्छिन्न प्रवाह से की ओर ही उन्मुख हुआ हो तो इसमें ही क्या है !

आज का भारतीय पंजरबद्ध पक्षी की तरह होने के स्वप्न देख रहा है। मार्ग उसके कोई नहीं है। तब कल्पना के रूप और से वह उसी दिशा की ओर उड़ जाने को होना चाहता है जिसमें उसका मानव बन्धन तोड़ सके। उसके सामने या तो के प्रति विरक्ति है, उसका उद्वेग है, है या फिर भावी सुख का वह आलोक, वह कल्पना कर सकता है।

इसीलिए कल्पना और अनुभूति की प्रचुरता छायावादी और रहस्यवादी बना है और की ओर आँख खोलकर देखने पर प्रभाव- या प्रगतिशील भी। कदाचित् छायावाद आत्मतोष है और यथार्थवाद प्रत्यक्ष के विद्रोह तथा जीवन के सीमा-बन्धन को तोड़- उसे कुचलकर वहाँ पहुँचने की चाह, जिस यथार्थ मस्तिष्क की दासता से परे और की आकांक्षाओं से पूर्ण हो।

कहा जा सकता है कि हँसिया, हथौड़े, मज़- किसान, गरीब, क्षुधित, पीड़ित, दलित में का बिलकुल ह्रास हो गया है। वह शान्ति और जीवन में प्रेरणा, स्फूर्ति वस्तु नहीं रह गयी है। उसका रूप 'उपदेश' बनता जा रहा है। वह एक की पद्यबद्ध मीठी राजनीतिक फटकार भर है—यह हेय है—अनुपादेय है ! इसका दुख है कि कविता वस्तुतः कविता नहीं रह गयी है। वह स्वर्ग से उतरकर मर्त्यलोक में भिखारिन के फटे कपड़ों में, उसकी सदय वाणी में मूक रूप से आकर बैठ गयी है। वह किसान की दुरवस्था, उसकी अनन्य पीड़ा से बँध गयी है, जहाँसे जल्दी छुटकारा पाजाने की कदाचित् कोई सम्भावना भी दिखायी नहीं देती। वह अपने आदर्श से भी गिर गयी है।

परन्तु क्या जीवन के साथ उसका कोई सामंजस्य नहीं हो सकता ? हमारे साथ, हमारी अनुभूति के साथ-साथ क्या उसकी कोई संगति नहीं बैठ सकती ? जहाँ जीवन है, वहीं उसका साहित्य है। यदि कविता को स्वर्ग से उतरकर नरक में आना पड़ा है, तो हम भी तो स्वर्ग से ही उतरे हैं ! मुझे यहाँ एफ० आर० लीविस के वे वाक्य उद्धृत करने मे कोई आपत्ति नहीं है कि जिनमें उसने साहित्य के साथ जीवन का समन्वय स्थापित करते हुए कहा है—"युग का प्रतिबिम्ब लेखक की उस सजीव रचना से हमें प्राप्त होना चाहिए जिसमें वह हमें बतावे कि उसने किस हद तक युग की आत्मा को अभिव्यक्त किया है।"

इसीलिए और केवल इसीलिए यदि साहित्य के अंगों के समान कविता का दृष्टिकोण भी बदलकर चेतावनी-मात्र रह गया है, हमें कौंच कर उठाना-भर रह गया है, तब कला के उन पुराने मित्रों को, हम नहीं समझते, आपत्ति क्यों होनी चाहिए ?

यदि इतिहास में मकरन्द-मादिनी रानियों ने भी समय के फेर में पड़कर बाँदियों का काम किया है, उन्होंने जगत् को आँख खोलकर स्पष्ट जगत् की ओर देखना सिखाया है, यदि हरिश्चन्द्र को राजा होकर भी स्मशान में कफ़न-खसोटी काम करना पड़ा है, तो मनुष्य को सोते से उठाने के बाद कविता अपने पुराने रूप में पुरानी आत्मा में भी तो आ सकती ! कविता जैसे स्वर्ग है वैसे ही जीवन भी है, जैसे वाणी है वैसे ही क्रिया भी है, प्राण भी है, हृदय भी है ?

'निर्झर' की भूमिका में] **उदयशंकर भट्ट**

'आत्म-कथा' और हिन्दी अनुवाद

किसी देश के साहित्य-संवर्द्धन में किसी काल-विशेष की अपेक्षा नहीं रहती। साहित्य तो समाज का दर्पण है, वह कभी तो धूलिधूसरित और कभी स्वच्छ दिखायी देता है। हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य की ओर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उस काल के साहित्य की अभिवृद्धि अनुवाद से नहीं हुई, वह तो टीका-टिप्पणी, व्याख्या और भाषा के द्वारा बट वृक्ष की तरह बढ़ता गया। उदाहरणार्थ 'पाणिनि व्याकरण', 'अष्टाध्यायी' या 'दर्शन' ग्रन्थ। इनके सूत्र बहुत छोटे कलेवर में हैं। किन्तु इनके अर्थ-गाम्भीर्य को स्पष्ट करनेवाले ग्रन्थों से सही संस्कृत-साहित्य देवी सरस्वती का अक्षय भाण्डार बन गया है।

किन्तु हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि अधिकतर अनुवाद ग्रन्थों से हो रही है। यह प्रणाली दूषित तो नहीं है, किन्तु अनुवादक के लिए उन दोनों भाषाओं को भली भाँति जानना अनिवार्य है जिससे व जिसमें अनुवाद किया गया हो। ऐसा न होने से उस अनुवाद के द्वारा कई बार मिथ्या प्रचार हो जाता है।

विश्ववन्द्य म० गांधी की 'आतम-कथा' का एक हिन्दी अनुवाद इसका उदाहरण है। मूल पुस्तक 'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' गुजराती भाषा में है और चरितनायक गांधीजी की कृपा से वह नागरी लिपि में 'नवजीवन-प्रकाशन प्रकाशन मन्दिर', अहमदाबाद से अगस्त १९४० में प्रकाशित हुई है। थोड़ा-सा गुजराती भाषा से परिचय होने और मूल भाषा में ही कथा का रसास्वादन करने की अभिलाषा से मैंने उस अभिनव प्रकाशन को पढ़ना शुरू किया और कठिन प्रसंगों पर सहायता के लिए पं० कार्तिकेय-चरण मुखोपाध्याय द्वारा अनूदित और कलकत्ता से संवत् १९८९ में प्रथमवार प्रकाशित 'आतमकथा या सत्य के प्रयोग' को पा सका। प्रधानतया पढ़ता था उसी गुजराती भाषा में लिखी कथा को किन्तु जहाँ अटकता वहाँ कलकत्ते के इस अनुवाद से सहायता लेता था। पर देखने में यह आया कि यह अनुवाद महत्त्व की जगह पर स्वयं उलझा हुआ है। मैं स्वयं इतनी गहराई से विचार नहीं कर रहा हूँ कि वह उल्था केवल शब्दानुवाद है, छायानुवाद है या भावानुवाद है। वह किसी प्रकार का अनुवाद हो कोई चिन्ता नहीं किन्तु मूल ग्रंन्थ का आशय तो नहीं बिगड़ना चाहिए था। इस अनुवाद में कई गलतियाँ मिलीं। उस मूल पुस्तक के सौ पृष्ठों में सात ऐसे स्थल हैं जिनका अनुवाद मुखोपाध्यायजी से न बन सका और मूल वाक्यों का सारा भाव बदल गया। यह पाठक आगे दोनों के उद्धरणों से जान लेंगे। मूल पुस्तक, पृष्ठ २०, पंक्ति १८वीं में :—

'ज्याँ प्रेम एक पक्ष तरफ थी पण होय, त्यां सर्वांशे दुख तो न ज होय'—

इसका सही अनुवाद है कि 'जहाँ प्रेम एक पक्ष की तरफ से भी होता है, वहाँ सर्वांश में तो दुख नहीं होता है।' यह वाक्य दाम्पत्य-प्रेम विषयक है।

इसका अनुवाद पृ० २६, पंक्ति ३री में हुआ है—

'जहाँ प्रेम एक ओर से होता है, वहाँ सब तरह से दुख ही दुख होता है।'

अनुवादक महोदय ने यहाँ तो दाम्पत्य-जीवन के शकट को ही उलट दिया! सम्भव है उनकी अनुभूति ऐसी ही हो, किन्तु पूज्य बापूजी का अनुभव तो लोकसम्मत है। इतना होने पर भी 'पण' की भी तो खास जगह है, उसकी ओर तो करुणा-कटाक्ष पात भी नहीं हुआ।

मू० पु० पृ० २३, पं० १४वीं में —

'ने पाँचमा तथा छठ्ठा धोरणमाँ अनुक्रमे मासिक चार रुपिया ने दश रुपिया शिष्यवृत्ति पण मिली हती।'

अनु० पृ० २९, पं० ६ठी में —

'चौथे और पाँचवें दर्जे में क्रमशः ४) और १०) की छात्रवृत्ति भी मिली थी।' अनुवादक महोदय ने 'ने' को पहिचाना ही नहीं और 'पाँचवाँ तथा छठा धोरणमां' का अनुवाद अनुग्रह-पूर्वक 'चौथे और पाँचवें दर्जे में' किया।

पु॰ पृ॰ ३१, पं॰ ५वीं—
हड़प तो बहु सरस हती'—इसको तो
महोदय ने हड़प ही लिया ।
पु॰ पृ॰ ६८, पं॰ ९वीं में·—
ने बादशाही दिलना वड़ील भाइनी
सोनानो अछोड़ो मँगाव्यो ?
नीचे अनुवाद में देखेंगे कि वड़ील
बादशाही दिलना' (बादशाही दिलवाला
) जो विशेषण पद है, उसको विशेष्य
करके कर्त्ता के साथ कर दिया और
की मंशा पर पानी फेर दिया ।
पद को विशेष्य पद से हटाकर उस
विशेषता ही नष्ट कर दी गयी !!
की जगह उलट-पलट कर दिया—
पृ॰ ८३, पं॰ २१वीं में—
मैंने **बादशाही मिजाज में आकर** अपने
को घड़ी के लिए सोने की डबल चेन
लिखा ।'
पु॰ पृ॰ ८६ पं॰ १ली में—
साधारण पैसा मात्र 'डोशी' पण हवा
बोली हती ।' 'डोशी' कहते हैं बूढ़ी विधवा
उल्था करते हैं, पृ॰ १०६, पं॰ २री
अमीर विधवा महिला भोजन करने
थी ।'

मूल पुस्तक के पृ॰ ९७वें की दो बातों
करके 'तिल-तण्डुल' न्याय से यहीं
कर देना है ।
पु॰ पृ॰ ९७, पं॰ ७वीं में—
तमारे **त्यां आवीश**' यानी मैं ही
आया करूँगा ।

अनु॰ पृ॰ ११९, पं॰ ५वीं में—

'मैं ही आपके पास **जाया करूँगा** ।'

मू॰ पु॰ पृ॰ ९७ पं॰ २२वीं में—

'मारी पछी बीजाओ भले वधारे आपे' यानी मेरे बाद दूसरे लोग भले ही अच्छा अनुवाद देवें ।

अनु॰ पृ॰ ११९ पं॰ २२वीं में —

'यदि इससे अधिक कोई गुजराती भाषा को कुछ देना चाहे, तो वह मेरी अपेक्षा विद्वान् होकर इस काम का भार ले लें ।' इस प्रकरण के उल्लेखनीय व्यक्ति 'नारायण हेमचन्द्रजी' सीधी-सादी पोशाक के थे और जिनको केवल कई एक भाषाओं में से गुजराती जनता को अनुवाद ग्रंथ भेंट करने की धुन थी वे भावार्थ से दूर नहीं भटकते थे और उन्हें सन्तोष हो जाता था । किन्तु मैं नहीं जानता आदरणीय मुखोपाध्याय जी भी अपने अनुवाद से सन्तुष्ट हैं या नहीं ।

आज 'गांधी' नाम में जो आकर्षण है और जो एक अमोघ मन्त्र की शक्ति है उसके कारण भला उसके 'सत्य के प्रयोग या आत्म-कथा' को पढ़ने की किसको इच्छा न होगी ? इसलिए इस बात की बहुत आवश्यकता है कि उनके ग्रन्थों के अनुवाद शुद्ध हों, महज़ व्यापार की दृष्टि से न हों । मैंने अनुवाद ('आत्मकथा') के १२३ पृष्ठ तक ही पढ़कर आगे उससे मीलान करना समय का अपव्यय समझकर छोड़ दिया । जबकि सस्ता साहित्य-मंडल, दिल्ली प्रामाणिक सत्साहित्य प्रकाशित करता है तब अन्य विक्रेताओं से भी निवेदन है कि आप्रामाणिक प्रकाशकों को उत्साहित करना हितकर नहीं है ।

मगनवाड़ी, वर्धा] **बोधव्यास 'मालव्य'**

प्रकृति में विषमता तो स्पष्ट है । नियन्त्रण के द्वारा उसमें व्यावहारिक समता का विकास न
। भारतीय आत्मवाद की मानसिक समता ही उसे स्थायी बना सकेगी । यांत्रिक सभ्यता पुरानी
ढीली होकर कठोर हो जायगी । × × × मैं मानता हूँ कि पश्चिम एक शरीर तैयार
है; किन्तु उसमें प्राण देना पूर्व के अध्यात्मवादियों का काम है । यही पूर्व और पश्चिम
संगम होगा, जिससे मानवता का स्रोत प्रसन्न धारा में बहा करेगा ।
]

—जयशंकर 'प्रसाद'— **[भारती-भण्डार**

कसौटी पर

अग्निगान : रचयिता—श्री हरिकृष्ण प्रेमी; प्रकाशक—वाणी-मन्दिर लाहौर; पृ० संख्या ९६; मूल्य १)

स्वयं कवि के शब्दों में, 'हिन्दी-जगत् कवि 'प्रेमी' को शायद भूल चला है, किन्तु 'अग्निगान' आज फिर उसके अस्तित्व का परिचय देने आ रहा है।' पर हम कहेंगे कि 'प्रेमी' के हृदय में कैसी ज्वाला है, यह उसीकी लपटें दिखाने आया है। ये १६ लपटें अबतक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट होती रही हैं पर यहाँ उन्होंने एक साथ जुटकर कवितादेवी के सोलहों शृंगार किये हैं।

'अग्निगान' की सोलहों कवितायें आज के विषमतामय संसार का सजीव चित्र हैं। ग़रीबों, पीड़ितों, असहायों और दलितों की युग-युग की पीड़ा और उससे उत्पन्न विद्रोह इनमें घनीभूत होकर ध्वनित हुआ है। सुख से जीवित रह सकना आज संसार में एक समस्या बनकर खड़ा हुआ है। अभावों ने जीना दूभर कर दिया है या कहें कि विषम आर्थिक व्यवस्था और एक के भौतिक स्वार्थ ने दूसरे का निरन्तर शोषण किया है, कवि ने इसे अनुभव किया है। एक ओर बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी अट्टालिकायें, दूसरी ओर भग्नप्राय झोंपड़ियाँ और उनमें रहनेवाले वे नरकंकाल !! 'अग्निगान' का कवि अपनी वीणा में विद्रोह की अग्नि भरकर इसी विषम व्यवस्था को जलाने का उपक्रम कर रहा है।

व्यथा और करुणा के इन गानों में कहीं-कहीं करुणा के सजल चित्र आप ही आप उत्तर आये हैं—

धू-धू करती आँधी आती,
कुटिया के तृणपात उड़ाती
तू क्यों आ पहुँची है, बहना,
यहाँ कभी बरसात न आती।

कवि की राष्ट्रीयता भी कहीं-कहीं बड़ी सजीव होकर बोल रही है—

दीपक-से-दीपक जलता है
ज्योति अमर माँ के मन्दिर की
तुम दीपक की ज्योति बढ़ा दो,
बत्ती काटो मेरे सिर की

और युग की हुंकार का स्वर भी कवि के कण्ठ से फूटा है—

अब फूलों की सेज जला दो,
शूलों की शैया अपनाओ
नववसन्त का उत्सव त्यागो,
अमर-मरण त्यौहार मनाओ
प्रिये, प्रजापति के आसन पर
महाकाल को अब बैठाओ
सृष्टि मरे विध्वंस जिये,
सखि, महाप्रलय के प्राण जगाओ,
अपनी घनी और जहरीली
वेणी को खोलो अलबेली
नभ में बादल-से फैलाती
आओ मेरी प्रलय-सहेली

'प्रलय-सहेली' के बदले 'प्रणय-सहेली' कवि ने कहा होता तो इस हुंकार की तीव्रता और भी बढ़ जाती।

'प्रेमी' की कविताओं की अपनी विशेषतायें —प्रसादगुण के साथ एक तन्मयता, मस्ती और स्वारस्य—वे यहाँ एकत्र देखने को मिलती हैं। एक-दो को छोड़कर सब प्रेयसी के प्रति निवेदित होने से 'प्रेमी' के इन गीतों में शृंगारिकता भी मिलती है—

अधरों की मुसकान, हृदय की धड़कन,
आँखों की चल-चितवन
चपल चरण-गति नूपुर का कलरव,
प्राणों का मतवालापन।

समस्त पुस्तक कवि के जलते हुए हृदय की दर्दभरी चीख है। प्रेम का सागर भी उनमें लहर-लहर उठता है, क्रान्ति, प्रलय, परिवर्तन का वह पुजारी है, पर उसके रूखेपन व कठोरता में कला की कोमलता झुलसने नहीं पायी है।

उपदेशात्मक ही न रहकर इन कविताओं की पीड़ित आत्मा की सच्ची झंकार रहती है। 'जादूगरनी', 'अनन्त के पथ' आदि दूसरे काव्य-ग्रंथों से 'अग्निगान' में कम नहीं है, बल्कि इसमें सच्ची अनुभूति है—क्योंकि कवि इसमें अपने को के साथ व्यक्त कर सका है।

जहाँ संघर्ष, रोग, विद्रोह है, वहाँ अग्नि है जहाँ कविता है—वीणा है, वहाँ गान है। 'अग्निगान' में ये दोनों बातें हमें मिलती हैं। में जलते हुए गायक का वह ऐसा अग्नि करनेवाला गान है, जो जीवन का समस्त कूड़ा-करकट भस्म कर देने को गाया है।

प्रिये, उठा दो मेरी वीणा,
अब मेरा स्वर रुक न सकेगा।
छिप न सकेगा, बँध न सकेगा,
मुड़ न सकेगा, झुक न सकेगा।
आसमान में महाप्रलय की
ज्वाला होगी, लपटें होंगी
जिसकी झुलस सम्हाल सकेंगे
कहाँ जगत् के कपटी ढोंगी—
हम मजलूमों को कतार में
प्रिये, खड़ा करने आये हैं।
प्राणों में प्रतिशोध-भावना
भीषणतम भरने आये हैं।

अंत में हम कहना चाहेंगे कि हिन्दी कविता में जो विराट् परिवर्तन हो चुका है 'अग्निगान' तो उसीका विजयघोष करने है।

सुधीन्द्र

तकली: लेखक—श्रीकुन्दर बलवंत दिवाण; प्रकाशक-हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम, ; पृष्ठ संख्या २८६; चित्र-संख्या ९६;

ज्यों-ज्यों देश में कताई-धुनाई का प्रचार होता जा रहा है, इस सम्बन्ध की ऐसी शास्त्रीय पुस्तकों की भी आवश्यकता होती जारही है, जिनमें कताई-धुनाई की कला का विस्तृत वैज्ञानिक वर्णन हो।

सबसे पहले श्रीग्रेग तथा श्रीमगनलाल गांधी ने साबरमती-आश्रम से ऐसी पुस्तकें निकालना शुरू किया था, और उन्होंने **'चर्खाशास्त्र'** तथा **'तकली-शिक्षक'** नामक दो पुस्तकें प्रकाशित करायी थीं। पर चूँकि इधर इस हस्तकला में कई महत्त्वपूर्ण सुधार होगये हैं, इसलिए इन पुरानी पुस्तकों से अब काम नहीं चलता। वर्धा-शिक्षा-याजना के अनुसार जो पाठशालाय चलायी जा रही हैं, उनके शिक्षकों के लिए भी उद्योग-शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों की आवश्यकता महसूस हो रही है। इन्हीं पाठशाओं के शिक्षकों के लिए यह पुस्तक लिखी गयी है।

लेखक ने पुस्तक का नाम 'तकली' रक्खा है और तकली-सम्बन्धी प्रत्येक क्रिया का विस्तार के साथ उसमें वर्णन किया है। वर्णन के साथ-उन क्रिया के बोधक चित्र भी दिये हैं। कताई-सम्बन्धी अन्य बातें भी साधारण तौर पर पुस्तक में दी गयी हैं, जैसे, ओटना, धुनना पूनी बनाना आदि।

पुस्तक के अध्यायों में तकली की खूबियाँ तकली का पूरा वर्णन, बुनने लायक रेशे, कपास की तैयारी, तकली पर कातने के तरीक़े, तकली के अभ्यासों आदि का वर्णन है।

तकली—अभ्यास सम्बन्धी सभी बातें लेखक ने बहुत योग्यता और अनुभवपूर्वक लिखी हैं। चित्रों ने भी पुस्तक को बहुत उपयोगी बना दिया है। इसलिए शिक्षकों तथा योग्य विद्यार्थियों को समान रूप से लाभदायक है। इस दिशा में काम करनेवाले सब सज्जनों को इस पुस्तक की एक-एक प्रति जरूर अपने पास रखनी चाहिए।

पुस्तक में प्रूफ की कुछ गल्तियाँ रह गयी हैं सही, पर मामूली-सी। चित्रों में भी कहीं-कहीं अस्पष्टता है। जनता तक ऐसी परमोपयोगी पुस्तक पहुँचाने के लिए लेखक तथा प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं।

एक बात और। ओटना, तुनना, धुनना, तकली पर कातना आदि का विस्तृत वर्णन तो इस पुस्तक में आ चुका; अब जरूरत है सभी

तरह के चरखों के सम्बन्ध में भी ऐसी ही उपयोगी पुस्तक लिखने की। यदि इसी पुस्तक के दूसरे संस्करण में चर्खा-सम्बन्धी सामग्री भी जोड़ दी जाये तो यह और भी उपयोगी हो जायेगी। पुस्तक का आकार इससे अवश्य बढ़ जायेगा, पर लोगों को इससे कताई-कला-सम्बन्धी सभी सामग्री एकत्र मिल जायेगी। **पूर्णानन्द**

समाजवाद, क्रान्ति और कांग्रेस : सम्पादक—आचार्य नरेन्द्रदेव; प्रकाशक युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस समाजवादी पार्टी लखनऊ; मू० ।=)

प्रस्तुत पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट है। लेखक ने इसमें कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दृष्टिकोण से समाजवाद, क्रान्ति, श्रेणी-संघर्ष, संयुक्त-मोर्चा, कांग्रेस, भारतीय-स्वराज्य का रूप और हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन आदि कितनी ही समस्याओं पर विचार किया है। यद्यपि इसके कुछ लेख पुराने और असामयिक-से पड़ गये हैं, तथापि इस पुस्तक के लेख पाठक के सामने एक अच्छी विचार-सामग्री अवश्य देते हैं।

परन्तु हमें यह कहने के लिए क्षमा किया जाय कि लेखन-शैली कहीं-कहीं ऐसी हो गयी है कि पाठक उसके युक्ति-क्रम को समझ नहीं सकता। लेखक स्वयं समाजवाद और राष्ट्रीयता की दो विचारधाराओं में कुछ उलझ-सा गया है। इन थोड़ी-सी पंक्तियों में हम समाजवाद के मूलभूत सिद्धान्तों की आलोचना नहीं करना चाहते, लेकिन यह अवश्य कहना चाहते हैं कि लेखक ने गांधीजी और कांग्रेस के साथ न्याय की चेष्टा करते हुए भी न्याय नहीं किया। एक ओर लेखक जनता के सच्चे प्रजातंत्रीय स्वराज्य में ही मज़दूरों और किसानों का राज्य देखता है, और मजदूरों-किसानों के राज का नारा लगाना नहीं चाहता लेकिन दूसरी ओर कांग्रेस को पूँजीवादी प्रजातंत्रीय संस्था मान लेता है। और गांधीजी पर सच्ची प्रजातंत्रीय संस्था का समर्थक न होने का आरोप करता है। एक ओर लेखक संयुक्त मोर्चा बनाने की धुन में मज़दूर-नेताओं को यह सलाह देता है कि मिलों के राष्ट्रीयकरण की आवाज़ न उठाओ, पर दूसरी ओर किसान-सभाओं की जमींदारी-पद्धति उड़ाने की माँग को उचित ठहराता है। मध्यमश्रेणी को अभी इसलिए कांग्रेस से निकलना भी नहीं है कि वे कहीं पूंजीवादियों के साथ मिल न जावें, परन्तु मजदूरों और किसानों का प्रभुत्व भी रखना होगा। और जबतक विभिन्न श्रेणियों के सहारे एक क्रान्ति न करली जाय, तबतक उनका सहारा लो और फिर रूसी क्रान्ति का आदर्श रखते हुए उनको भी धता बता दो, यही लेखक कहना चाहता है।

परन्तु हमारा अर्थ यह नहीं है कि लेखक विवेकशील नहीं है। कांग्रेस-विरोधियों, कम्यूनिस्टों और रायवादियों की भी वह तीव्र आलोचना करता है और ठीक ही कहता है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता ही हमारा तात्कालिक उद्देश्य है और हमें संयुक्त मोर्चा बनाना है। उग्र वामपन्थियों को लेखक ने बहुत सुन्दर और विवेकपूर्ण सलाह दी है। **कृष्ण**

युगवाणी—(कविता-संग्रह): कवि—प्रो० माहेश्वरीसिंह 'महेश' एम. ए.; प्रकाशक—युगान्तर-साहित्य-मंदिर, भागलपुर; मूल्य ॥=) आकार ४"×१०", बही साइज

प्रस्तुत पुस्तक में कवि की राष्ट्रीय कवितायें संग्रहीत हैं। श्री जनार्दनप्रसाद "द्विज" ने भूमिका लिखी है और पुस्तक के आवरण पर किन्हीं हरेन्द्रदेवनारायण ने कवि का कुछ अजीब-सा परिचय दिया है। 'द्विज' ने जो कुछ भी अपनी भूमिका में लिखा है, वही पुस्तक का श्रेष्ठतम है और शेष पुस्तक में कोई सार नहीं मिलेगा। कवि ने गीतों के विषय स्वीय न रखकर तथाकथित प्रगतिवाद की धारा में हाथ धोना चाहा है। विषय हैं—'मातृभूमि' 'किसान', 'आरती', 'सभ्यताकुमारी' आदि, जिनमें वह वास्तव में वस्तुगत काव्य का सौष्ठव निहित नहीं कर सका है, और न ही उन्हें वह अनुभूतिसिक्त कर सका है, जो गीतिकाव्य का अनिवार्य गुण है।

युगवाणी' की अधिकांश कविताओं में जान है। उनका व्यक्तित्व बिखरा-बिखरा है। विचारों को पद्य का रूप देने में 'युग- पंत की असाधारण कला-कुशलता और प्रतिभा अपेक्षित होती है, केवल आधुनिक के प्रति रोष, विश्व की विषमता के प्रति और पराधीनता के कारण दुख होने से कोई कवि नहीं बन सकता। यदि इन को 'महेश'जी गद्य-गीतों के रूप में तो उचित होता। कवि की शब्द-शक्ति दुर्बल है। 'लिए' के लिए 'हित', के स्थान पर 'काढ़े' और 'कराहने' का संस्करण 'कहर' कर देना अच्छा नहीं। छन्द-रचना पर भी लेखक को कौशल है। 'विहार का भूकम्प' और 'पकरिया' अपेक्षाकृत अच्छी बन पड़ी हैं।

में यह जो परिपाटी चल पड़ी है कि प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकों का नाम हैं, वह जनता को भुलावे में डालना की 'युगवाणी' के पश्चात् 'महेश'जी का पुस्तक का 'युगवाणी' नामकरण करना अपराध है। **कान्तिचन्द्र सोनरिक्सा**

भाभी के पत्र—लेखक—श्रीव्यथितहृदय; —भार्गव पुस्तकालय, काशी, पृ० सं० ; मूल्य १।)

पत्र भाभी ने अपनी नवविवाहिता ननंद लिखे हैं। भाभी-ननन्द का सम्बन्ध ऐसा है जिसमें भाभी ननंद से दाम्पत्य जीवन बातें निस्संकोच कर सकती है। प्रस्तुत में भाभी ने अपनी बीबी—अपनी आशा ही स्वाभाविक सरस और सरल ढँग से जीवन को सफल बनाने का नारी-जीवन आदर्शों तक पहुँचने का उपाय सुझाया है। ही पुरुष के स्वभाव को—मनोवृत्तियों को चित्रित किया है और उसके सौन्दर्यप्रिय कल्पनापूर्ण मानस को बाँध रखने का उसके हृदय पर डिक्टेटर बनकर नहीं हृदय-रानी बनकर राज करने का उपाय भी बतलाया है।

भाभी के इस कथन से सभी को सहमत होना होगा कि नारी-जीवन की परिपूर्णता सफल मातृत्व ही है। आज की नारी मातृत्व मात्र को पूर्णता मान लेती है उसने 'सफल' शब्द को भुला दिया है और उसकी उसी भूल का असर हमारे समाज और राष्ट्र पर पड़ रहा है।

इसमें भाभी द्वारा जहाँ आधुनिक यूरोपियन नारी की व्यायाम-प्रियता और यौवन-रक्षा की वृत्ति का समर्थन है वहाँ उसकी स्वेच्छाचारिता और अश्लील प्रेम की भर्त्सना भी है। साथ ही जहाँ भारतीय नारी के प्राचीन आदर्शों की सराहना है वहाँ राष्ट्रघातक पुरानी रूढ़ियों और प्रथाओं की निन्दा भी। इससे प्रकट है कि भाभी की दृष्टि व्यापक है। पूर्व और पश्चिम के इस समन्वय को हम विवेकमूलक कहेंगे।

नारी में क्या-क्या गुण-दोष होते हैं या घर कर लेते हैं इसका भी इसमें अच्छा वर्णन है।

श्री 'व्यथितहृदय' की कथा का जो स्रोत तरुण बहनों के विवाहित जीवन को सफल-सार्थक बनाने के प्रयत्न में उमड़ा है, वह यहीं न रुककर यदि समस्याओं के पुंज नारी-जीवन पर सर्वांगीण प्रकाश डाल सके तो और भी अच्छा हो। दाम्पत्य जीवन भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस दृष्टि से प्रस्तुत रचना नवविवाहिता बालिकाओं के लिए उपयोगी होगी और इस विषय की किताबों में यह सरल, सुग्राह्य और सुबोध है, यह निस्सन्देह है।

परंतु लेखक ने जैसे इसमें सदा ग़रीब बहनों का ध्यान रखा है वैसे ही यदि इसकी क़ीमत भी उन्हींके खयाल से कम रखी गयी होती तो अच्छा था। १४४ पृष्ठों की इस पुस्तक की क़ीमत १।) अधिक जान पड़ती है।

शकुन्तला ('विशारदा')

समालोचनार्थ प्राप्त

विश्वभारती-ग्रन्थालय, कलकत्ता के प्रकाशन

विश्व-परिचय : ले०—रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी; मूल्य १)

नटी की पूजा : ले०—रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक—श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला; मूल्य १)

जीवन के गान : ले०—श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन', प्रकाशक—प्रदीप-कार्यालय, मुरादाबाद मूल्य १)

इण्डियन प्रेस, प्रयाग के प्रकाशन

भैरवी : श्री सोहनलाल द्विवेदी; मूल्य १।)

युग और साहित्य : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी; मूल्य २)

हिन्दी प्रचारिणी सभा, बरेली कॉलिज, बरेली के प्रकाशन

स्वस्तिका : ले०—निरंकारदेव 'सेवक'; मू० ।।=)

कलरव : ले०—निरंकारदेव 'सेवक'; मू० ।=)

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ के प्रकाशन

निस्सहाय हिन्दू : ले०—श्री राधाकृष्णदास; मू० ।)

अन्तःपुर का छिद्र : ले०—श्री गोविंदवल्लभ पन्त; मू० ।=)

कुबेर : ले०—श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल' मू० १।)

स्त्री-सौन्दर्य और स्वास्थ्य : ले०—श्री बुद्धिसागर वर्मा; मू० २)

भोजन और स्वास्थ्य : ले०—डॉ० सत्यप्रकाश तथा डॉ० संतप्रसाद टण्डन; मू० १)

बिहारी-सुधा : संपा०—मिश्रबन्धु; मू० ।=)

मनुष्य का विकास : ले०—ज्योतिलाल भार्गव; मू० ।=)

आहें : ले०—श्री राजकुमार सण्ड, मुरादाबाद; मू० १) १।)

भूगोल कार्यालय, प्रयाग के प्रकाशन

हालैण्ड, रूस, थाईदेश देशदर्शन-मासिक के ७-८-९वें अंक : सम्पादक—पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०, मू० ४), प्रत्येक का ।=)

विश्व की महिलायें : ले० श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ एम० ए०; प्रकाशक—साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग; मू० १)

अर्थशास्त्र-शब्दावली : लेखकत्रय : श्री दयाशंकर दुबे, श्री गदाधरप्रसाद अम्बष्ट, श्री भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन, मू० १)

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर बम्बई के प्रकाशन

सुनीता : ले०—जैनेन्द्रकुमार; मूल्य ।।=)

कुलीनता : ले०—सेठ गोविन्ददास; मू० १)

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के प्रकाशन

भाषा का प्रश्न : ले०—श्री चन्द्रबली पाण्डे एम० ए०; मूल्य ।।।)

कचहरी की भाषा और लिपि : ले० चंद्रबली पाण्डे एम० ए०; मूल्य ।।)

मुगल बादशाहों की हिन्दी : ले०—चन्द्रबली पाण्डे, एम० ए०; मूल्य ।।)

बिहार में हिन्दुस्तानी : ले०—श्री चन्द्रबली पाण्डे एम० ए०; मूल्य ।)

गल्पहार : प्र०—बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ; ।=)

कृष्ण-मन्दिर में

श्री बीरबलसिंह जी : एम० एल० ए०, युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष; 'नवशक्ति' आदि पत्रों में 'बीरबल-विनोद' लेखमालाओं के चिर-परिचित लेखक; इतिहास तथा राजनीति के प्रौढ़ विद्वान्, काशी विद्यापीठ के आचार्य (प्रिंसिपल)

श्री राजाराम शास्त्री : काशी विद्यापीठ के दर्शनशास्त्र के अध्यापक; मनोविज्ञान की पुस्तक 'मन के भेद' के लेखक।

श्री यशपाल : 'हिन्दी-मिलाप' (लाहौर) के सम्पादक; कहानी-लेखक।

श्री जयप्रकाशनारायण : प्रसिद्ध समाजवादी नेता, समाजवाद के अच्छे लेखक और विद्वान्।

श्री श्यामप्रकाश दीक्षित : जिला जालौन हरिजन-सेवक संघ के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, हिन्दी के लेखक, झाँसी से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'स्वतन्त्र' के स्थानापन्न प्रधान-सम्पादक।

क्या और कैसे ?

ादी का अवसर

सका एक आदर्श, एक संगठन व एक हो उसे सच्चा राष्ट्र कह सकते हैं उसमें विविध जातियाँ हों, विविध धर्मों के लोग हों। अपनी जातीय या धार्मिक साम्प्रदायिक विशेषताओं की रक्षा करते ार वे देश या राष्ट्र के मामलों में एक दिलचस्पी लेते या काम करते हैं तो उन्हें राष्ट्र कहलाने का पूरा अधिकार है अवतक हिन्दुस्तान एक राष्ट्र होने का फख्र कर ा। हिन्दू-मुसलमान, पारसी, ईसाई, सिक्ख ई जातियों व धर्मों के लोगों के रहते हुए एक राष्ट्र है; क्योंकि सब जातियों का राजनैतिक आदर्श है—भारतवर्ष की स्वाधीनता। कुछ समय पहले तक प्रायः सारा भारत एक संगठन—कांग्रेस—को मानता था। अनुशासन में हजारों-लाखों देशभक्तों वेदी पर अपनेको चढ़ा दिया। लेकिन समय से वदकिस्मती ने क़ायदे आज़म साहव के हाथों में मुस्लिम लीग की वागडोरी और उन्होंने हिन्दू-मुसलमान को दो कौम (राष्ट्र) बताना व प्रतिपादन शुरू किया, जिससे कई जगह मुसलमानों अजीव हवा फैल गयी। बहुत लोगों का ाल है कि इधर बंबई, अहमदावाद, कानपुर में जो हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए उनकी बुनियाद दो कौमों की कल्पना है। दूसरे शब्दों में मानों का एक अलग राज्य—पाकिस्तान—करने की धुन ही इनका मूल कारण । इन दंगों का सही कारण खोज निकालना व माकूल इलाज करना हरेक हिन्दुस्तानी कर्तव्य है।

हिन्दुओं व मुसलमानों में जो इतनी तनातनी दिखायी देती है उसका असली कारण है राजनैतिक होड़। कम-से-कम नेताओं के दिमाग़ में यही बात है। सामाजिक या मजहबी रस्म-रिवाज जैसे गौ-हत्या, बाजा या घड़ी-घण्टा मसजिद के सामने न बजाना, वग़ैरा प्रश्न तो इन राजनैतिक उद्देशों या आकांक्षाओं के लिए उभाड़े जाते हैं। इसलिए इसका तात्कालिक निपटारा राजनैतिक ढँग से ही हो सकता है, धार्मिक या सांस्कृतिक आधार पर नहीं—कम-से-कम फिलहाल तो नहीं, हालाँकि इसका स्थायी हल सांस्कृतिक धरातल पर ही निकलेगा; परन्तु उसे समय व अनुकूल आबोहवा चाहिए, जो कि आज नहीं है। इसका सही राजनैतिक हल तो यही है कि हिन्दुस्तान में अब पंचायती राज हो; किसी एक जाति या मजहबवालों का नहीं। जिन जातियों या गिरोहों की तादाद कम हो उनके हक़ूक की पूरी हिफाज़त हो और उसका उन्हें यकीन दिलाया जाय। कांग्रेस ने आजतक यही किया है, व यही कर रही है। बल्कि महात्माजी ने तो मुसलमानों को खुश करने की इस हद तक कोशिश की है कि हिन्दू-सभा खुल्लमखुल्ला उन पर यह इल्जाम लगाती है कि वे मुसलमानों का पक्ष लेते हैं और हिन्दू-हितों का खयाल नहीं करते। मगर वे भूल जाते हैं कि बड़ी जाति या बहुसंख्यक लोगों का छोटी जातियों या अल्पसंख्यकों के साथ उदारता का व्यवहार ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वास्तविक न्याय का व्यवहार हो सकता है। ख़ैर।

हिन्दुस्तान को दो टुकड़ों में बाँटना, हिन्दुओं व मुसलमानों के अलहदा-अलहदा राज्य कायम करना, यह सही इलाज नहीं है ऐसा बहुतेरे मुसलमानों का भी मत है। हिन्दू और दूसरे लोग तो प्रायः एक स्वर से इसके खिलाफ हैं। ऐसी हालत में कांग्रेस ने जो रास्ता बताया है वही सही व अमली रास्ता है।

अब रहा दंगों का सवाल। अगर हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र ही बनकर रहना है तो ये दंगे असंभव होजाने चाहिएँ। प्रत्येक हिन्दू-मुसलमान पारसी-ईसाई देशभक्त का फर्ज है कि वह इनको

रोकने की अजहद कोशिश करे। बिना गुण्डों की सहायता या अगवानी के दंगे हरगिज नहीं हो सकते। एक ऐसी शान्ति-सेना कायम की जानी चाहिए, जिसमें सभी जातियों के प्रभावशाली व शान्तिप्रिय लोग हों, जो इन गुण्डों की जानकारी प्राप्त करे, रक्खे व इनपर अपना असर कायम करे। हर मुहल्ले में सभायें करके ऐसे प्रस्ताव पास कराये जायें कि मुहल्ले का जो भी आदमी दंगे में शरीक पाया जायगा मुहल्लेवाले उससे पूरा असहयोग करेंगे। हर जाति व संस्था में इसी आशय के प्रस्ताव पास कराये जायें व उनपर सख्ती से अमल किया जाय। मतलब यह कि गुंडों को यह मालूम होजाना चाहिए कि सरकारी क़ानून के अलावा समाज की तरफ़ से भी उनके साथ क्या सलूक होगा, जिससे उन्हें पता रहे कि दंगे में शरीक होने की कितनी क़ीमत देनी पड़ेगी? इतना बुनियादी काम कर लेने से दंगों का अन्देशा ज़रूर ही कम हो जायगा।

फिर शान्तिसेना दूसरा काम यह करे कि दंगे की आशंका होते ही कतार बाँधकर बिगुल बजाते हुए मुहल्ले में पहुँचे जिससे दूसरे लोगों तथा मुहल्लेवालों व दंगाइयों को मालूम हो जाय कि शान्ति-सेना आपहुँची है और उसके लोग बीच-बचाव करेंगे व ऐसा करते हुए अपने प्राण दे देंगे। उन्हें पहले ही से व्याख्यानों, पर्चों आदि के जरिये यह मालूम कराते रहना चाहिए कि यदि दंगा हुआ तो शान्तिसेना के लोग किस तरह उसे शान्त करने का प्रयत्न करते हुए अपने आपका बलिदान करेंगे। इस सेना में उस मुहल्ले के बड़े व प्रतिष्ठित लोग होंगे तो दंगाइयों पर और भी असर पड़ेगा व दंगा करने के पहले वे बीस दफ़ा सोचेंगे।

यदि एक जगह दंगे में शान्तिसेना के कुछ लोग काम आ गये, व मुहल्ले तथा जाति या संस्थावालों ने दंगाइयों के साथ पूरा असहयोग किया तो दूसरी जगह के गुंडों को बड़ा सबक़ मिलेगा व वहाँ दंगा होना रुक सकता है। गुंण्डों में भी सब एक दरजे के नहीं होते और वे सभी समय गुण्डे नहीं बने रहते। उनके मानवी भावों को स्पर्श करते रहने से उनकी दुष्ट प्रवृत्तियाँ अवश्य कम हो सकती हैं।

अब महायुद्ध एशिया में प्रवेश कर गया है। अतः देश की रक्षा का प्रश्न गंभीरता से हमारे सामने आरहा है वैसे तो इसकी जिम्मेदारी सरकार पर है; परन्तु लोगों को भी अपने कर्त्तव्य पर विचार करना होगा। जो हथियारों से रक्षा करना चाहते हैं वे तो सरकार के सहारे ही ऐसा कर सकते हैं, लेकिन जिन्होंने हथियारों का रास्ता छोड़ दिया है वे क्या करें? उनका नेतृत्व कांग्रेस व महात्मा गांधी ने लिया है। वे जो मार्ग बतावें व आदेश दें उनका पालन सबको करना चाहिए। बहरहाल हरेक हिन्दुस्तानी देशभक्त के लिए अब ऐसा समय आ रहा है जब उसे चाहे भीतरी दंगों को रोकने के लिए चाहे बाहरी हमलों का मुकाबला करने के लिए भारी क़ुरबानी करने को तैयार रहना है।

दुनिया को नहीं, अपने को

अप्रैल के 'जी० सा०' में मैंने निष्पक्षों की बंबई-परिषद् के बारे में लिखा था—'सरकार निष्पक्षों की बात मानेगी—यह जंचता नहीं है। × × × बुद्धि जहाँतक हिसाब लगा सकती है वहाँतक तो सरकार इस बार भी इस प्रश्न पर झुकती नज़र नहीं आती।" अनुभव ने इसी को सच साबित कर दिया। भारत-मंत्री एमरी सा० ने फिर वही रूखा जवाब दे दिया—भारत के विभिन्न दलों के नेता मिलकर माँग करें। निष्पक्षों से कहा—पहले आप धारासभा में अपना बहुमत बनाइए। इस उत्तर से भारतीय जनता व कांग्रेस की स्थिति अधिक पुष्ट ही हुई है। अब नरम या निष्पक्ष लोगों ने भी देख लिया कि ब्रिटिश सरकार सचमुच हिन्दुस्तान को वास्तविक सत्ता देने के लिए तैयार नहीं है। मेरा ख़याल तो यह है कि युद्ध के अन्त तक अब हिन्दुस्तान का राजनैतिक मसला हल नहीं हो सकेगा। युद्ध के भविष्य पर ही इसका भविष्य

ता है। युद्ध का फैसला किसके हक में —वह भगवान् ही जानता होगा । जाहिरा दीखता है कि जिसके पास मारक व बल, संगठन, साधन अधिक होंगे वही । हमारी श्रद्धा यह कहती है कि जिसका अधिक न्याययुक्त व जिसके साधन अधिक होंगे—वह जीतेगा । मगर जहाँतक की समस्या से संबंध है इससे भी अधिक सचाई यह है कि हमारा निपटारा हमीं —हमारे संगठन, त्याग, अनुशासन पर—— है। दुनिया में जैसी महान् घटनायें रही हैं, भारत में जैसी उलझनें पेश आ रही को देखते हुए भी मुझे भारत के उज्ज्वल में पूर्ण विश्वास है । खासकर इसलिए ने अहिंसा का परम मानवोचित रास्ता यार कर रक्खा है । जो व्यक्ति या राष्ट्र मंगल-कामना करता है, किसीको अपनी के मुसीबत में डालना नहीं चाहता, अपने की सफलता के लिए खुद ही हर किस्म के उठाने को तैयार रहता है, यदि उसका उज्ज्वल न होगा तो फिर किसका होगा ? दूसरे को खा जाने पर तुले बैठे हों उनसे ही उनकी तथा दुनिया की रक्षा कर है। अतएव हिन्दुस्तान को दुनिया पर से हटाकर अपनी ओर ही देखने व अपने तरह से ठीक-ठाक रखने का ही पूरा करना चाहिए।

की योजना

'भारती भवन' उज्जैन से पं० सूर्यनारायणजी ने 'सत्साहित्यिक-सेवक-समाज' की एक बनाकर प्रकाशित की है, जो मुझे अच्छी है। उसका सार उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार है—

"...हमने सोचा महज हाय-हायात्मक लेख या लिखने से कुछ होता-जाता नहीं; अब हमें यदि अपने को समझदार समझते हैं) 'कुछ कर्म —त्याग करने पर आमादा होना होगा। निश्चय किया कि हम उज्जैन में "सत्साहित्यिक-सेवक-समाज" नाम की एक संस्था स्थापित करें जो यथाशक्ति और ज़रूरत मृत साहित्यिकों के परिवार की पुष्ट सेवा किया करे। साथ ही यह सेवा सर्वथा साहित्यिकों की पवित्र सहायता से हो । धनिकों या अन्य सहृदय-प्रशंसकों के हम निन्दक नहीं; वे भी यदि कर्त्तव्य समझकर कुछ मदद करेंगे तो यह संस्था उपकार ही मानेगी; मगर, दारमदार सारा रहेगा हमारे ग़रीब किन्तु योग्यता से 'अमीर' साहित्यिकों ही की मदद पर। अब हम अपने 'आर्त' को भीख से नहीं, बातों से भी नहीं, अपने पसीने की कमाई और रक्त से सन्तुष्ट-पुष्ट करेंगे। हम चाहेंगे कि पंडित रमाशंकरजी शुक्ल 'हृदय' ही से यह सत्कार्य आरम्भ हो। उनकी स्मृति में उनकी सहृदयता की दाद में, उनके बाल-बच्चों के उपकारार्थ १२ पुस्तकों का एक सेट सर्वाधिकार के साथ छपाकर हम उनके परिवार को समर्पित करना चाहते हैं। प्रत्येक पुस्तक आठ आने की होगी। हिन्दी के श्रेष्ठ बारह लेखक अपनी नवीन या श्रेष्ठतम रचनायें इस माला में गूथेंगे, यह निस्सन्देह सत्य है। अभी तक दो सुलेखकों से एक-एक रचना मिलने का वचन भी मिल चुका है; जिनके शुभ नाम हैं— पं० हरिभाऊजी उपाध्याय और श्री पांडेय बेचन शर्माजी 'उग्र'। ये लेखक अपनी रचनायें और उनका सर्वाधिकार बन्धुवर "हृदय"जी की स्मृति में समर्पित कर देंगे। हमारे अन्य आदरणीय लेखक-बन्धु भी हमें सूचना दें कि वे अपनी कौनसी रचना विश्वविभु के चरणों में समर्पण करने को तैयार हैं। आठ आना सीरीज़ में छप सकें रचनाये इतनी ही बड़ी चाहिए। हमें विश्वास है कि हमारे शत-शत उदार साहित्यिक बन्धु अपनी एक-एक रचना देने का वादा जरूर करेंगे, और यथासंभव शीघ्र अपनी सुन्दर रचना भेजकर इस नवीन आयोजन का शुभारंभ कर देंगे। संस्था धन की व्यवस्था कर पुस्तकें स्वयं छपा देगी। एक दूसरी बड़ी और विख्यात संस्था ने प्रकाशन को साधारण कमीशन पर बेचवा देनें का वचन भी दिया है।

हम अपने सभी सहृदय साहित्यिक, पत्रकार और हिन्दी-सेवक भाइयों की सहायता, अनुमति और आशीर्वाद अपने इस प्रयत्न में सविनय चाहते हैं--बस।"

इस 'अभिनव आयोजना' का मैं हृदय से समर्थन करता हूँ और इस कल्पना के उत्पादकों को धन्यवाद देता हूँ। हमारी सहानुभूति या भावना की कीमत हमारे शब्दों से नहीं हमारी कृति से ही लगायी जा सकती है। इस दृष्टि से यह आयोजन और भी स्वागत-योग्य है। मगर एक बात में अपने सहृदय मित्र व्यासजी से जरूर कहना चाहता हूँ। अनुभव बताता है कि कोई कार्य या संस्था, कम-से-कम हमारे देश में, तबतक नहीं चलते जबतक कोई एक आदमी उसके पीछे हाथ धोकर नहीं पड़ जाता। यह योजना या संस्था इसका अपवाद नहीं हो सकती। यदि व्यास जी स्वयं इसमें समय-शक्ति लगावें या दूसरे कोई मित्र इसमें जुट पड़ें तभी उनकी यह सदिच्छा कुछ फल ला सकेगी। महाकाल की नगरी में स्थापित यह सत्संस्था कृतकार्य हो!

दुःख की बात

श्री बोधव्यासजी का इस अंक के 'प्रस्तुत-प्रश्न' स्तंभ में प्रकाशित लेख एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका के सम्पादकजी ने नहीं छापा। इससे लेखक को आशंका हुई कि शायद और भी कोई न छापेंगे। 'जी० सा०' की तरफ उनकी निगाह गयी व उन्होंने मुझे लेख भेज दिया। मुझे उक्त अनुवाद में बताये उनके दोष सही मालूम हुए और यह सचमुच बड़े दुःख की बात है कि महात्माजी जैसे के ग्रन्थों के अशुद्ध अनुवाद निकलते हैं—खासकर उस हालत में जबकि महात्माजी की तरफ से यह बार-बार जाहिर कर दिया गया है कि उनकी पुस्तकों के अनुवाद उनकी इज़ाजत के बिना कोई न छापें। उनकी पुस्तकों का 'कापी राइट' जैसा तो उन्होंने नहीं रक्खा है लेकिन शिष्टता का और जिम्मेदारी का तकाज़ा है कि महात्माजी की इस इच्छा का हर तरह समादर किया जाय और उनकी पुस्तकों के अनुवाद बहुत जानकार, अनुभवी व जिम्मेदार लेखकों से कराये जायें। ह० उ०

प्रतिभाशाली देशभक्त

श्री श्रीनिवास अयंगार के स्वर्गवास से भारतमाता का एक प्रतिभाशाली देशभक्त पुत्र व कांग्रेस का एक नेता उठ गया। उनकी प्रतिभा ने उन्हें मदरास का एडवोकेट जनरल बनाया, लेकिन तेजस्विता व देशभक्ति ने उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष-पद पर पहुँचा दिया। अधिक तत्त्ववादी या आदर्शवादी होने के कारण उनका बाद का बहुतेरा जीवन एकान्त-सेवन में ही बीता। शायद अति स्वतंत्रप्रकृति होने से उनका बनाव मदरास में राजाजी व कांग्रेस में महात्माजी तक से न हुआ, यह खेद की ही बात रही। ताहम अपनी प्रतिभा, त्याग व तेजस्विता के बदौलत वे सर्वदा भारतवासियों के हृदय में अमर रहेंगे। दुनिया व लोकप्रियता के पास इस बात की कद्र नहीं है कि आपमें कितनी प्रतिभा या त्याग या तप आदि है। उसकी कसौटी यह है कि आपने इन गुण या शक्तियों का उपयोग जनहित में करके कितना प्रत्यक्ष फल बताया है? श्री आयंगर कोई प्रत्यक्ष फल न बता सके इसलिए दुनिया की निगाह से ओझल रहे, हालाँकि आज उनकी दुखद मृत्यु के समाचार से किस भारतवासी के हृदय में उनके इन गुणों का स्मरण न हुआ होगा? उनके शोकाकुल कुटुम्बियों के प्रति 'जी० सा०' व 'मण्डल'-परिवार की हार्दिक समवेदना है। ह० उ०

युवकोपयोगी तीन अनुपम पुस्तकें

आत्म संयम—लेखक—पं० जगपति चतुर्वेदी। यह पुस्तक कई प्रसिद्ध अंग्रेजी, संस्कृत, तथा हिन्दी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। संसार में अपने शत्रु पर विजय पाना कठिन नहीं, जितना काम, क्रोध आदि षट्विकारों, मन तथा वासनाओं पर विजय पाना। इस पुस्तक में अपने मन, वाणी आदि इन्द्रियों तथा वासनाओं पर अधिकार करने सरल उपाय बताये गये हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। मल्य १)

देश की आन पर—लेखक—गणेश पांडेय। इस पुस्तक में देश-प्रेम और देश-भक्ति लिए अपने सर्वस्व निछावर करनेवाले वीर-वीरांगनाओं की कहानियों का संग्रह है। कहानी बहुत ही आकर्षक शैली में लिखी गई है, ओजस्वी और ज़ोरदार भाषा में लिखी हुई कहानियाँ प्रत्येक युवक को देश-प्रेम में मतवाला बनानेवाली हैं। सुन्दर कवर से पुस्तक का मूल्य ।॥)

चरित्र-निर्माण की कहानियाँ—लेखक—श्री व्यथितहृदय। इस पुस्तक में उन कहानियों का संग्रह है, जो विद्यार्थियों और नवयुवकों के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव डाल सकती हैं। चरित्र-निर्माण के लिए इससे बढ़कर उपयोगी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य ।॥)

मैनेजर—**छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग**

कानपुर के सोल एजेंट : साहित्य निकेतन, कानपुर

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

श्रीयुत. एम. के. आचार्य, एम. एल. ए. (मद्रास)—"आपका दंत-मंजन तो मैंने अपनी दंत-पीड़ा के लिए **गत पाँच वर्षों में व्यवहृत देशी-विदेशी सब मंजनों से श्रेष्ठतर पाया।** मंजन दाँतों, मसूड़ों और तालु के घावों पर जादू का-सा असर दिखलाता है।"

श्री. एम० एस० वरदाचार्य एडवोकेट (मद्रास हाईकोर्ट)—"दो वर्ष पूर्व मुझे दंत-पीड़ा हुई थी जो बढ़ती ही गयी और मसूडों में घाव हो गये; **परन्तु आपके मंजन से अब मेरे मसूडे स्वस्थ हैं और दांत में पीड़ा नहीं होती।** मैं तो कहूँगा कि मेरे व्यवहृत दंत-मंजनों में सर्वश्रेष्ठ आपका दंतामृत ही है।"

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

आरोग्य शास्त्र का प्रतिनिधि पत्र

जीवन सखा

वास्तव में जीवन-सखा है

यह एक नहीं अनेकों की राय है : आप भी पढ़कर यही कहेंगे।

'आज' काशी

"शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य के जबर्दस्त हामी 'जीवन-सखा' ने ५ वर्ष के भीतर ही अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। विशेषांक में कही गई बातों के अनुसार जीवन व्यतीत कर हम अपार लाभ उठा सकते हैं।"

'सरस्वती' प्रयाग

"प्रत्येक साध्य तथा असाध्य मर्ज का निवारण प्रकृति-द्वारा हो सकता है, यही इस पत्र का सन्देश है।"

'जीवन-साहित्य' नई दिल्ली

"जीवन-सखा के अंकों और विशेषांक को देखकर यह कहना होगा कि इसका नाम बिलकुल सार्थक है। आरोग्य-शास्त्र का सुन्दर मानसिक होने से यह वास्तव में जीवन-सखा ही है। विशेषांक में प्राकृतिक-चिकित्सा, इन्द्रिय निग्रह की समस्या, प्रकृति बनाम दावा, अधार निदान, भाजी और फल, भोजन और धूप, योग और स्वास्थ्य, विटामिन की कहानी, विद्युत-चिकित्सा आदि लेखों से पता चलता है कि सम्पादक स्वास्थ्य के विषय में सब विचार-धाराओं के लेख जुटाने में कितने सतर्क हैं। कहना नहीं होगा कि एक-एक लेख इसका पाठनीय और आचरणीय है।"

'हिन्दुस्तान' दिल्ली

"जीवन-सखा" के विशेषांक में स्वस्थ्य सम्बन्धी पारायण करने योग्य भरपूर सामग्री दी गई है। लेख पढ़ने, मनन करने और आचरण करने योग्य हैं।"

'नवशक्ति' पटना

"यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रिकाओं में......जीवन-सखा का सर्वोच्च स्थान है। छपाई-सफ़ाई तो आदर्श है।"

'हल' प्रयाग

"......अंक सुपाठ्य और संग्रहणीय है। प्राकृतिक चिकित्सा के छोटे कोष का काम करता है।"

'विशाल-भारत' कलकत्ता

"जीवन-सखा का विशेषांक सब तरह से उपयोगी है।"

'हंस' बनारस

"......हिन्दी में जीवन-सखा अपने ढंग का विशेष पत्र है। विशेषांक में स्वास्थ्य, व्यायाम, चिकित्सा आदि के समम्बन्ध में प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के विशेषज्ञों अथवा इसमें दिलचस्पी रखनेवालों—जैसे महात्मा गांधी, बरनर मैकफेडन, श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती आदि के पठनीय लेख हैं। हिन्दुस्तान के प्राकृतिक चिकित्सकों के पते देकर एक उपयोगी कार्य किया गया है।"

'Leader', Allahabad

"The Special January number is sumptuously got-up and contains a number of useful informative and thought-provoking articles......well written and require a careful perusal. Needless to say, the highly educative value of the monthly is obvious and commendable and we have no doubt adout its success in the world of journalism."

विशेषांक का मूल्य १) : वार्षिक चन्दा, ३ आज ही भेजकर इसे प्राप्त कीजिए।

बहुत थोड़ी प्रतियाँ रह गई हैं।

मैनेजर—जीवन-सखा कार्यालय, इलाहाबाद

बी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमेन—सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये

भुगतान पूँजी—१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहां हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजरः—

८, रॉयल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता

या

ई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को।

राष्ट्रको हर परिस्थिति में रास्ता दिखानेवाले
गांधीजीके तीनों अखबार तो
बन्द हो गये।

अब क्या पढ़ें ?

सर्वोदय

गांधी-मत के अनुसार जीवनस्पर्शी सब
विषयों की चर्चा करनेवाला

मासिक-पत्र

सम्पादक :
काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

[हर महीनेकी पहली तारीख़ को वर्धा से प्रकाशित होता है ।]

यह तो गांधीमत, गांधी-सिद्धान्त या गांधी-प्रवृत्ति की अपनी-अपनी दृष्टि से सांगोपांग मीमांसा करनेवाले विचारकों और लेखकों का 'सत्संग' है।

[आगामी अगस्त से चौथा वर्ष शुरू होगा]

वार्षिक मूल्य :—देश में रु० ३, बर्मा में रु० ३॥, विदेश में
६ शिलिंग १.५० डालर

छः आने के टिकट भेजकर आज ही नमूना मँगाकर पढ़िये।

व्यवस्थापक—
'सर्वोदय' कार्यालय,
बजाजवाडी, वर्धा (सी० पी०)

बिड़ला जूट मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी, लि०

के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स, एम. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, नई दिल्ली.

बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स, खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
बीबीहटिया, बनारस सिटी.

झाँसी, जबलपुर, सागर
मेसर्स, बीडीचन्द मक्खनलाल,
छावनी, झाँसी.

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स, एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, देहरादून.

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, बरेली.

नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत
मेसर्स, हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, नैनीताल.

सेलिंग एजेन्ट्स :—

सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.

मैनेजिंग एजेन्ट्स,

८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

टेलिग्राम:—“जूटवीवर”

टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग

के

प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योति:प्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला

१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)

२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)

३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)

४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)

५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योति:प्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद दक्षिण, अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

'सबकी बोली'

सम्पादक—काका कालेलकर

[यह मासिक पत्रिका हर महीने की १५वीं तारीख़ को निकलती है।]

अिसमें आहिस्ता आहिस्ता हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की साहित्यिक और भाषा-विषयक बातें प्रकाशित हुआ करेंगी।

अिसका मुख्य अुद्देश्य है :—

हिन्दुस्तान की तमाम भाषाओं का आपस में हार्दिक संगठन करना।

भारतमाताको पहचानके लिये और अुसकी सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त करने के लिये जिन बातोंकी ज़रूरत होगी, अुन सभी विषयोंकी चर्चा 'सबकी बोली' में हुआ करेगी।

अिसके 'साहित्य-सत्कार' विभागमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सहयोग से राष्ट्रकी अुन्नति करनेवाले सेवकों की विचारधारा का परिचय तथा अुनके साहित्य की समालोचना रहा करेगी।

अिसमें अेक खास विशेषता यह होगी—

पारिभाषिक शब्द-चर्चा, कहानी, प्रवास, विशिष्ट व्यक्तियोंके शब्द-चित्र, राष्ट्रभाषा-आन्दोलन-सम्बन्धी व विद्यार्थियोंके लाभ के नियमित लेख।

वर्धा-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति भी अपनी सभी ज़रूरी सूचनाअें अिसमें प्रकाशित करती है।

ख़ास सूचना :—

राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओंमें बैठनेवाले विद्यार्थी अपनी चालू क्रम-संख्या बतलाकर, १ रुपया वार्षिक चन्दा देकर, अेक वर्ष के लिये 'बोली' पा सकते हैं। सर्व-साधारणसे वार्षिक चंदा रु० १-४-० मनीऑर्डर से ही लिया जायगा। हम वी० पी० नहीं भेजते। पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम और पता साफ़-साफ़ नागरी हर्फ़ों में लिखने की कृपा करें। फुटकर संख्या का तथा पुराने अङ्क का मूल्य दो आना। डाक ख़र्च पुरानी संख्याके लिए प्रति अंक)।।। और नये अङ्कके लिये)। अङ्क की क़ीमतके साथ अवश्य आ जाना चाहिये।

पता—व्यवस्थापक,

सबकी बोली, वर्धा

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

इसलिये उपरोक्त सामग्री के लिये—

फ़ोन नं० ६३२७

मुरारी फ़ाइन आर्टवर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच- [illegible] देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच- कसेरट बाजार आगरा

और हमारे
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषताएँ हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएँ।

(२) अंतर्राष्ट्रीय व अंतर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।

(३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि 'कहानी' सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इंडियन पी० ई० एन—

'...इसमें जो कहानियाँ हैं, वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।...इस विशेषांक की कहानियाँ पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं...यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है...हिन्दी के प्रेमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'...विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। उनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है...'

श्री सुदर्शन—

'...इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है।...मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'...छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है।...'

श्री उषादेवी मित्रा—

'...'कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है—अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना...'

श्री देवराज उपाध्याय—

'कथा-साहित्य संबंधी जितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है...'

श्री उदयशंकर भट्ट—

'...पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा...इस अंक की संपूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई।'

श्री रवीन्द्र

'Cheap Sentimental कहानियों से मुझे बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश हो गई...'

श्री पहाडी—

'...'कहानी' के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेंगी।'

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल तीन रु० है। एक प्रति का चार आना।

कृपया आज ही ३) मनीआर्डर से भेज दें : पुस्तकालय २।।) भेज सकते हैं।

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
के नवीन प्रकाशन

* * *

चरित—रचयिता पं. रामचन्द्र शुक्ल, मूल्य २।।) । महात्मा बुद्ध का उज्ज्वल चरित्र, सुन्दर व्रजभाषा काव्य, इस पुस्तक की महत्त्वपूर्ण भूमिका में व्रज, खड़ी और अवधी भाषाओं का व्याकरण-विवेचन किया गया है ।

वियत् भूमि—ले० महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, मूल्य ५) । इस के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए हिन्दी में अद्वितीय ग्रन्थ ।

कला—ले० राय कृष्णदास, मूल्य १।) भारतवर्ष की मूर्तिकला की आद्योपांत तात्विक व्याख्या ।

त्रकला—ले० राय कृष्णदास, मूल्य १।) । चित्रकला पर अपने ढंग की सर्वोत्तम पुस्तक ।

मनोविज्ञान—ले० पण्डित रामजीलाल शुक्ल, मूल्य १।) हिन्दी में बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी सर्वश्रेष्ठ रचना ।

सिरुल् उमरा, भाग १ और २—अनु० बाबू व्रजरत्नदास, मूल्य ४) प्रति भाग । मुगल शासनकाल के सरदारों की सबसे प्रमाणिक जीवनियाँ ।

हार में हिन्दुस्तानी—ले० पण्डित चन्द्रवली पाण्डेय, मूल्य ।) बिहार प्रान्त में हिन्दी हिन्दुस्तानी समस्या की तात्विक व्याख्या ।

का प्रश्न—ले० पण्डित चन्द्रवली पाण्डेय, मूल्य ।।।) । भाषा सम्बन्धी प्रश्नों का विस्तृत और विवेचनापूर्ण उत्तर ।

हरी की भाषा और लिपि—ले० पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय, मूल्य ।।।) । अदालतों की भाषा और लिपि का विस्तृत विवेचन ।

प्रदेश का इतिहास—ले० रायबहादुर डॉ० हीरालाल बी० ए०, मूल्य १।।) । मध्यप्रदेश का सबसे प्रमाणिक और शोधपूर्ण इतिहास ।

-साहित्य का इतिहास—ले० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, मूल्य ५) प्रवर्धित संस्करण । हिन्दी-साहित्य का सबसे अच्छा और विस्तृत इतिहास ।

थ-रूपक—सम्पादक-महतावचन्द खारैड, मूल्य २) । डिगल भाषा का अत्युत्तम काव्य ।

लियन बोनापार्ट—ले० राधामोहन गोकुलजी, मूल्य १।) नैपोलियन की प्रमाणिक जीवनी ।

खों का उत्थान और पतन—ले० पण्डित नन्दकुमार देव, मूल्य १।) सिक्ख जाति के अभ्युदय और पतन का सर्वांगपूर्ण इतिहास ।

पितामह—ले० गणपति जानकीराम दूबे, मूल्य १।) । भीष्म पितामह की जीवन-घटनाओं का बहुत ही मार्मिक और मनोरंजन वर्णन ।

र्श और यथार्थ—ले० बाबू पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव, मूल्य ।।।) काव्य में आदर्श और यथार्थवाद का बहुत स्पष्ट और ऐतिहासिक विवेचन ।

नी-माला—ले० श्रीमती मालती शर्मा, मूल्य ।।) पन्द्रह उत्तमोत्तम कहानियों का संग्रह ।

णी—लेखक-पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, मूल्य १) । सूर, तुलसी और जायसी पर लेखक के आलोचनात्मक निबन्धों के विशिष्ट अंशों का संग्रह ।

मिलने के पते—

आपके नगर के प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेता अथवा **नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।**

लोकतन्त्र के लिए शिक्षा ?

※ आज के इस जलते हुए सवाल का उत्तर आपके पास क्या है ?

※ विश्व में युद्ध, कलह और अशान्ति क्यों है ? इसका मूल कारण आप जानते हैं ?

※ आपका लाडला इतना दुखी और अव्यवस्थित क्यों है ? वह स्कूल जाना क्यों पसन्द नहीं करता ? घर को सर पर क्यों उठाये हुए है ? इन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर आप जानते हैं ?

※ माता-पिता के कर्त्तव्य क्या है ? सच्चा शिक्षक और स्कूल क्या है, आप जानते हैं ? श्री हरिपद मैति कलकत्ता विश्व-विद्यालय के चित्त विश्लेषण के अभ्यासी विद्वान् हैं। वे बालकों के कठिन प्रश्नों का उत्तर देते हैं। पर यह सब महत्वपूर्ण ज्ञान आपको—

बालहित

में प्रतिमास मिल जायेगा।

वार्षिक २) **नमूना ≡)** **उदयपुर (मेवाड़)**

हिन्दी की सुन्दर सचित्र मासिक पत्रिका

वीणा

सम्पादक

श्रीकालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'

प्रकाशक

श्रीमध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति,

डॉक्टर बाबूराम सक्सेना, एम. ए. डी. लिट्, भू. पू. प्रधान-मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयागः—

"'वीणा' हिन्दी की उच्च कोटि की पत्रिका है और मातृ-भाषा और साहित्य की प्रचुर सेवा कर रही है।"

एक प्रति ।≤)

वार्षिक मूल्य ४) नमूने का अंक फ्री नहीं भेजा जाता

व्यवस्थापक—'वीणा' इन्दौर

स-परिवार’ योजना

रु० की पुस्तकें २५) रु० में
की प्रतिनिधि : क्रांतिकारी
उपयोगी : सस्ती

ारतीय-पुस्तक-माला
(क) कायाकल्प (३ भाग)
(ख) स्नेह-यज्ञ [१-२-३]

हंस' पुस्तकें
(क) मा [भाग १-२-३]
(ख) गाड़ीवानों का कटरा [भाग, ३]

ल-संसार-माला
प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ कहानी-संग्रह।

गतिशील पुस्तकें
(क) नया हिन्दी-साहित्य : एक दृष्टि और पाँच अन्य पुस्तकें

नवसृजन ग्रंथावली
(क) शोभा : ले० इन्द्र वसावड़ा
(ख) संजीवनी : ले० ‘सोपान’
(ग) प्रायश्चित्त [भाग १-२] : ले० सोपान

रत-महिला-साहित्य
(क) पिकनिक : लेखिका— कमलादेवी चौधरी
(ख) पिया : लेखिका— उषादेवी मित्रा
(ग) कौमुदी : लेखिका— शिवरानी देवी

आज की किताब
(क) कँटीले तार [भाग १-२]
(ख) जाई-जुई
और ९ अन्य पुस्तकें

'हंस' मासिक १२ अंक

'कहानी' मासिक के १२ अंक

सदस्य बनिए

इसके साथ हम जिन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं उनका कुल मूल्य रु० ३३-१४-० होता है। पर हम अपने बहुत-से कृपालु ग्राहकों तथा विशेषतया सार्वजनिक संस्थाओं की सुविधा के लिए यह चाहते हैं कि इन प्रवत्तियों की मात्रा २५ रु० में दें। इसमें हमें आज की मँहगी के ज़माने में कितनी हानि उठानी पड़ेगी, यह हमारे दयालु सहायकगण समझ ही सकते हैं स्मरण रहे कि अंग्रेज़ी अथवा किसी दूसरी भाषा में मूल पुस्तक का जो मूल्य है, हंस-परिवार योजनान्तर्गत उस अनुदित पुस्तक को हम तिहाई मूल्य में दे रहे हैं। हमने हिसाब लगाकर देखा है कि हम ७५) की पाठ्य-सामग्री २५) में दे रहे हैं। यह संस्था तो सेवा के लिये ही खड़ी है। इन नौ प्रवृत्तियों के ग्राहक बननेवालों को हम ‘हंस-परिवार’ का एक सदस्य मान लेंगे और उनकी सूची आदि भी समय-समय पर प्रकाशित करेंगे।

इस मूल्य में निःशुल्क बारह महीने तक दो मासिक हर महीने मिलते रहेंगे और एक वर्ष में छोटी-बड़ी कुल मिलाकर ४७ पुस्तकें मिलेंगी जिनकी पृष्ठ संख्या कुल जोड़कर १०,००० के लगभग होती है; अर्थात् पत्रिका के पृष्ठों और सामग्री को छोड़कर २॥) रु० में १००० पृष्ठ मिलते हैं। इससे सस्ती योजना भारत की किसी प्रान्तीय भाषा में तो क्या, अंग्रेज़ी में भी नहीं है। यह योजना बेजोड़ है। निस्सन्देह।

इन पुस्तकों में विविधता कितनी है, इसका परिचय नीचे लिखे परिचय से मिल जायगा।

[१] १२०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद। [२] १२०० पृष्ठों में संसार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद। [३] २४०० पृष्ठों में भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं से सुन्दरतम कहानियों का अनुवाद, जिसमें आप भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित हो जाते हैं। [४] प्रगतिशील दृष्टिकोण से लिखे निबन्धों, कहानियों और कविताओं के ६ संग्रह। १००० पृष्ठ की उत्तम पाठ्य-सामग्री आपको देंगे। [५] गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यासों का अनुवाद, ९०० पृष्ठों में उचित किया गया है। [६] महिलाओं के लिए उन्हीं के दृष्टिकोण से लिखे उपन्यासों और कहानियों के तीन ग्रन्थ-रत्न। ये आपके परिवार में पत्नी तथा माँ-बहन के लिए स्वास्थ्यकर मानसिक भोजन प्रदान करेंगे। [७] ‘आज की किताब’ के अन्तर्गत एक वर्ष में आपको १२ किताबें मिलेंगी जिनमें आज की समस्याओं का सुझाव रहेगा। अधिकांश तो ये छोटे-छोटे उपन्यास होंगे जो आपको अपने यथार्थवाद से चौंका देंगे।

सरस्वती-प्रेस, बनारस : इन्दौर : लखनऊ

कमला

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]
संपादक—श्री बाबूराम विष्णु पराड़कर
सहायक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

मैनेजर, 'कमला',
गायघाट, बनारस

नारी-जागरण का महान् सन्देश सुनानेवाली हिन्दी की प्रमुख सर्वोत्तम मासिक पत्रिका 'कमल के प्रकाशन से हिन्दी को पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में एक अजीब तहलका मच गया है। हर एक उसकी गम्भीरता और उपयोगिता का कायल हो रहा है। यदि आपका विश्वास न हो तो एक प्रति मँगाकर देख लें। नमूने के लिए ।≈) के टिकट भेजिए। वार्षिक मूल्य ४।) रखा है। आज ही चंदा भेजिए या नमूना मँगाइए।

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

काशी का

मकरंदीय दशवार्षिक पञ्चाङ्ग

सं० २००१ से २०१०तक

पञ्चाङ्गकर्त्ता पं० इन्द्रदत्त ज्योतिषी मूल्य २॥)

पुस्तक व पञ्चाङ्ग मिलने का पता—

भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

क्या आप किसी के पिता और पति हैं ?

यदि हाँ, तो

भाभी के पत्र

पढ़िए और अपनी स्त्री तथा कन्याओं को पढ़ाइए,

भूमिका-लेखक—कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' बनारसी : लेखक—श्री 'व्यथितहृदय'

मूल्य सजिल्द १।)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, ब्रांच, चौक, कचौड़ी गली, बनारस।

लोपयोगी इतिहास-माला

युग-युगल के इस ज़माने में अनेक देश के नागरिकों को संसार के उलट-फेर से कराने के लिये **'बालोपयोगी संसार का इतिहास'** ३७ खंडों में निकालनें की हैं। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से गयी हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस समझदार न समझें। कहानी के ढंग पर पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार, प्रत्येक का १)

काशित—वैदिक भारत, पौराणिक भारत, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश और भारत।

में—**तुर्क भारत, मुगल भारत, राज-, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) जाति और महाराष्ट्र,** विशेष जानकारी के विवरण पत्र मँगाइए।

हार, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बड़ौदा
में शिक्षा-विभाग की स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक सामग्री देनेवाला अपने ढंग का अकेला मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन , साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त है।

पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया , विज्ञान के शोधकों और साहसिकों प्रसंगों का परिचय कराता है। कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।-)

का अंक **'उपकथांक'** है।

इस विशेषांक का मूल्य ।)

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा	३)
बिहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट	५)
बिहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,	१।)
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक	१।)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	२)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१।)
जीवन-यात्रा	,, ,,	॥=)
रामचरित चितामणि	रामचरित उपाध्याय	२)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	॥)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट	१)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	।)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	॥)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।=)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	॥)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	२)
स्टालिन	रामइक़बालसिंह	२)
खिलौना घर	हेनरिक इसेन	॥)
मज़दूरों की छाती पर	के० पी० झा	२)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१)
रजकण	,, ,,	॥)
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद	॥)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१।)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	।)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	॥)
कहानी-एक कला	गिरधारीलाल शर्मा गर्ग	॥)
विमान	गिरधारीलाल शर्मा	१।)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	।।=)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	२)

-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

हिन्दी
समालोचना
के
अग्रदूत
—❖—
मासिक
साहित्य संदेश
का ही
यह
साहस
है

शुक्ल-अंक का परिचय

प्रस्तुत अंक तीन खण्डों में है और सचित्र छपा है

परिचय—

१. परिचय	स्वर्गीय श्री रामचन्द्र शुक्ल
२. पंडित रामचन्द्र शुक्ल : जीवन-परिचय	बा० श्यामसुन्दरदास
३. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल : एक झांकी	श्री केशवचन्द्र शुक्ल
४. स्वर्गीय आचार्य का अन्तिम दर्शन	श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'
५. उन चार वर्षों की याद में	श्री उदय एम० ए०

समीक्षा—

६. शुक्लजी की मानसिक भूमिका	श्री जैनेन्द्र
७. शुक्लजी और हिन्दी की परम्परा	श्री रामविलास शर्मा
८. आ० शु० और आई. ए. रिचर्ड्स	श्री नगेन्द्र एम० ए०
९. हिन्दी आलोचना और आचार्य शुक्ल	श्री नन्ददुलारे बाजपेयी
१०. आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल	श्री रामस्वरूप शर्मा
११. आ० शु० और काशी नागरीप्रचारिणी सभा	श्री रामबहोरी शुक्ल
१२. शुक्लजी का आलोचकों में स्थान	श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी
१३. रामचन्द्र शु० : समालोचक और निबन्धकार	श्री नलिन विलोचन शर्मा एम.ए.
१४. प्रबन्धकार शुक्लजी	श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी
१५. शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध	श्री गुलाबराय एम० ए०
१६. हिन्दी-साहित्य का इतिहास	श्री विश्वम्भरदयाल 'मानव' एम.ए.
१७. आ० शु० की सर्वप्रथम मौलिक रचना	श्री शिवपूजन सहाय
१८. शु० के इंदौरवाले भाषण की कुछ विशेषताएँ	श्री प्रभाकर माचवे
१९. शु० के काव्य में रहस्यवाद की झलक	श्री गुलाबराय एम० ए०
२०. अनूदित बुद्धचरित	श्री गोपाल व्यास एम० ए०
२१. शुक्लजी के अनुवाद	श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़
२२. शु० की तीन भूमिकाएँ : जायसी, तुलसी, सूर	श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, श्री सत्येन्द्र एम. ए. श्री गुलाबराय
२३. शुक्लजी की हिन्दी साहित्य को देन	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री नलिनीमोहन सान्याल, श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री उदयनारायण तिवारी और श्री प्रभाकर माचवे

आभार—इसमें अनेकों लेखकों के व्यक्तिगत पत्र संकलित हैं, संपादकीय

६ महीनों में चार विशेषांक

दो छप गये : दो और भी छपेंगे

* नमूना मुफ्त मँगाइए *

मूल्य ३) वार्षिक, विद्यार्थियों के लिए २) पता—साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा

जीवन-साहित्य

[जीवन और साहित्य का समन्वयकार मासिक-पत्र]

संपादक—**हरिभाऊ उपाध्याय**

यह क्या है ? कैसा है ? और क्यों है ?

यह इन सम्मतियों से आप जान सकते हैं—

हूँ यह लोकोपयोगी होगा।" **विनोबा**

x x आशा हुई कि ऐसा विलक्षण पत्र रह सकेगा।......" **अमरनाथ झा**

स्वाभाविक परिस्थितियों के कारण से बिदककर भागते हुए साहित्य की जीवन करने में 'जीवन-साहित्य' सफल होगा।"

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

के पहलुओं पर विचार किया गया है। स्पष्ट है कि साहित्य 'सुन्दर' होते हुए भी हो सकता है।" **बाबूराम सक्सेना**

हिन्दी-साहित्य के निर्माण और प्रकाशन सुथरी और निष्पक्ष विवेचना में किसी में नहीं देख सका।" **रामकुमार वर्मा**

पत्र के द्वारा जीवन की जिस व्याख्या का आपका उद्देश्य है, उससे मेरा किसी का विरोध नहीं है। मैं आपके पत्र की हार्दिक चाहता हूँ।"

सुमित्रानन्दन पन्त

इस नये पत्र का हृदय से स्वागत करता में विचारपूर्ण साहित्यिक पत्रिका की बहुत दिनों से अनुभव करता आया हूँ।"

(राजकुमार) **रघुबीरसिंह**

सात्विक दृष्टि को इसने अपनाया के प्रसार की बहुत आवश्यकता है।"

सियारामशरण गुप्त

"विषय की दृष्टि से अद्भुत है। एक-एक शब्द सजीव।.........मेरे लिए तो यह पत्रिका अमृत है।"

श्रीनाथसिंह

"अपने ढंग का हिन्दी-साहित्य में यह अकेला पत्र निकला है, इसमें सन्देह नहीं।" —**'देशदूत'**

"'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र का प्रकाशन मण्डल की प्रवृत्तियों में एक शुभ वृद्धि है।"

—**'नेशनल हेरल्ड'**

"राष्ट्र के जीवन-निर्माण में कैसा साहित्य वाञ्छनीय है, इसकी रूपरेखा हमें 'जी०-सा०' के अंकों में सहज ही देखने को मिल सकेगी।"

—**'साहित्य-संदेश'**

"पत्रिका का उद्देश्य ऐसे साहित्य की सृष्टि करना है, जो जीवनस्पर्शी हो, जीवन के विकास और उसकी पूर्णता का साधक हो।" —**'संघर्ष'**

"ऊँची कोटि और उच्चादर्श के कारण पत्र हिन्दी में अपना विशेष स्थान बना लेगा।"

—**'हिन्दुस्तान टाइम्स'**

"पत्र तेजस्वी और गम्भीर है। × × इसने शीघ्र ही साहित्य-जगत् में अपने लिए सम्माननीय स्थान बना लिया है।" —**'आरती'**

इसमें जीवन की कसौटी पर कसे हुए विशेष अध्ययन, चिन्तन, मनन व अनुभव से युक्त लेख रहते हैं।" —**'दीपक'**

इसमें 'मण्डल' की तथा दूसरी पुस्तकों के उत्तमोत्तम समाचार रहते हैं।
इसमें छपा विज्ञापन प्रतिमास हज़ारों विचारशील और उपयोगी हाथों में जाता है।

वार्षिक मूल्य २) :: 'मण्डल' के ग्राहकों से १)

यह उच्च कोटि का पत्र 'मण्डल' ने

२००० पाठकों को मुफ्त

—देने की घोषणा की है। विवरण अलग देखिए—

Regd No. L 46

'मराडल' के नवीन प्रकाशन

जनवरी १९४१ से मई १९४१ तक

प्रकाशित

ये पुस्तकें जल्दी मँगालें—

'लड़खड़ाती दुनिया' तथा 'बिखरे विचार' तो लगभग खतम हो गयीं है।

१. **लड़खड़ाती दुनिया**—पंडित जवाहरलाल नेहरू के लिखे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और समस्या पर लेख। दाम ॥)

२. **सेवाधर्म : सेवामार्ग**—पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल एम. ए. एम. एल. ए की लिखी सेवा के धर्म और सेवा किन मार्गों से की जानी चाहिए, इसपर सुन्दर पुस्तक। दाम १)

३. **दुनिया की शासन-प्रणालियाँ और वर्तमान यूरोपीय युद्ध।** कलतक संसार के प्र देशों में किस प्रकार की शासन-प्रणालियाँ प्रचलित थीं और आज वे किस प्रकार तहस-नहस हो रही हैं इस सबका इसमें करुण, बीभत्स और ज्ञानप्रद दर्शन मिलेगा। दाम १॥)

४. **यूरोपीय युद्ध और भारत (२)**—इसमें वर्तमान यूरोपीय युद्ध और भारत के राजनैति संकट पर महात्माजी के 'हरिजन' में प्रकाशित लेखों में से चुने हुए प्रधान अंश लिये हैं और जवाहरला जी के हाल ही प्रकाशित Parting of the ways का अनुवाद दिया गया है। दाम ।)

५. **देशी नरेशों का दरजा**—महात्माजी के प्रा० सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल के लिखे देशी नरेशों के दरजे और उनके अधिकार तथा अंग्रेज़ों के साथ हुई संधियों के बारे में अध्ययन और गवेषणा लेखों का यह संग्रह है। इसकी भूमिका महात्मा गांधी ने लिखी है। दाम ।)

६. **डायरी के पन्ने**—श्री घनश्यामदास बिड़ला की 'बापू' के बाद की मौलिक और चमत्कारपूर्ण पुस्तक। दूसरी गोलमेज़ परिषद् में गांधीजी के साथ के तथा परिषद् के संस्मरण। सस्ता संस्करण। दाम ॥।) १)

७. **बिखरे विचार**—श्री घनश्यामदासजी के समय-समय पर लिखे और पत्र-पत्रिकाओं में छपे सुन्दर और विचारपूर्ण लेखों का संग्रह। दाम १॥) २)

८. **प्रलय-वीणा**—श्री सुधीन्द्र एम. ए., साहित्यरत्न की नवीन और भावपूर्ण युगसंदेश-वाहिनी कविताओं का संग्रह। दाम १)

९. **सोने की माया**—श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला का लिखा रुपये के चलन और विनिमय को समझानेवाला रोचक रूपक। दाम ≡)

१०. **एक सत्यवीर की कथा**—महात्मा गांधी का लिखा यूनान के सुविख्यात महा सुकरात के मुक़दमे और उनकी सफाई का वर्णन। दाम ≡)

प्रधान कार्यालय—कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखायें :—दरीबा दिल्ली : अमीनुद्दौला पार्क लखनऊ : खजूरी बाजार इन्दौर।

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ीवन साहित्य

ंक १

अगस्त : १९४१

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

पुस्तकालय [illegible]

सन्देश और प्रेरणा

तुलसी और लोकमान्य आज के भारत के लिए हमें क्या सन्देश देते हैं ? कौनसी स्फूर्ति व प्रेरणा करते हैं ? तुलसी ने शैवों व वैष्णवों के टूटे दिल मिलाये। तुलसी का स्मरण करके क्या हम अपनी टूटी राष्ट्रीय एकता को नहीं जोड़ सकते ? क्या तुलसी से हमारा काम इस समय ज्यादा विकट है ? तुलसी ने दोनों की बुराइयाँ कुरेदकर नहीं दोनों की भली बातों को मिलाकर उनका हृदय जोड़ दिया। इस माला के बनाने में उनकी उच्च, शुद्ध व विशालहृदयता अर्थात् महान् साधुता ने धागे का काम किया। क्या उनकी साधुता को हम समझेंगे, उनके सन्देश को सुनेंगे ?

लोकमान्य हमें स्वराज्य का पाठ पढ़ा गये। कह गये—'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' वे देख रहे होंगे कि इस अधिकार को पाने के लिए हम कितनी कुरबानी कर रहे हैं, कैसा संगठन कर रहे हैं ? क्या हम उन्हें अच्छा हिसाब दे सकेंगे ? उन्होंने हमारे दिलों में अन्याय का घोर प्रतीकार करने की भावना पैदा की। क्या हम अपने जीवन में सब जगह अन्याय से लड़ते हैं ?

मृत्यु के समय भी लोकमान्य आशावादी रहे। जिसमें ऊँचा चरित्र-बल हो वही अन्त तक आशावादी रह सकता है। हम कितने आशावादी हैं ? अपने चरित्र में कितने अडिग हैं ?

क्या आज हम अपने-अपने दिलों को टटोलेंगे ?

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. जय जय जाग्रत हे ! १
[श्री सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०]
२. जीवन-परक साहित्य २
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
३. अछूत[श्री विष्णु अम्बालाल जोशी,एम. ए] ४
४ भावी स्वर्णयुग में ५
[श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन]
५. राम-राज्य ८
६. वृक्षों का व्यक्तित्व ९
[श्री ब्रजमोहन गुप्त, एम. ए.]
७. तर्क का परदा न डालें [राय कृष्णदास] १०
८. व्यावहारिकता चाहिए ११
[श्री बृजनारायण नह्ला]
९. राष्ट्रभाषा कैसे बने ? [श्री जैनेन्द्रकुमार] १४
१०. वही तो कलाकार है[श्री सोमनाथ गुप्त] १७
११. परीक्षक से [श्री वियोगी हरि] १८
१२. पत्रकार चिन्तामणि [श्रीराजेन्द्रशंकर भट्ट] १९
१३. प्रस्तुत प्रश्न २१
सहयोगी आलोचक-मण्डल; नया तूफ़ान
१४. समालोचनार्थ प्राप्त २४
१५. कसौटी पर २५
'प्रलय-वीणा'; 'सुनीता'; 'कुलीनता; 'स्वस्तिका' और 'कलरव; 'प्रजासेवक'
१६. प्रगति की ओर २९
१७. सैर-सपाटा ३०
१८. क्या और कैसे ? ३१
गलत दिशा में; बंगाल और राष्ट्रभाषा; समभाव से; आलोचक-मण्डल; उपयोगी सुझाव; राजनैतिक दुनिया में; लेखक और प्रकाशक का इक़रारनामा; सत्साहित्य-सेवक-समाज
१९. 'मंडल' की ओर से ३६

सचित्र मासिक पत्र

धर्म-दूत

वार्षिक मूल्य १) : नमूना मुफ्त

यदि आप संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष भगवान बुद्ध की जीवनी और उनका उपदेश पढ़ना चाहते हैं, यदि आप बौद्धकालीन भारतीय संस्कृति, सभ्यता, साहित्य और कला का अध्ययन करना चाहते हैं और यदि आप यह जानना चाहते हैं कि बौद्धधर्म के साथ साथ इन वस्तुओं का संसार में कैसे प्रचार हुआ तो शीघ्र ही "धर्म दूत" के ग्राहक बनिए।

पता—

"धर्म-दूत" सारनाथ (बनारस)

—'बापू' बिना मूल्य—

'मण्डल' के एक प्रेमी की इच्छा है

कि

श्री घनश्यामदास बिड़ला की

'बापू' पुस्तक की

५० प्रतियाँ उन व्यक्तियों में बाँट दी जायें जो राष्ट्रीय विचार के हों पर गांधी-विचार-धारा से मतभेद रखते हों। इसलिए जो व्यक्ति इस कोटि में आते हों, वे इस बात के प्रमाण के साथ =)॥ के डाक टिकट भेजें, उन्हें पुस्तक की एक प्रति बुक पोस्ट से पोस्टल सर्टिफिकेट लेकर मुफ्त में भेज दी जायगी।

सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सरकस
नई दिल्ली

'मण्डल' के पाठकों व प्रेमियों

के लिये

एक खुश ख़बर

मध्यप्रांत : महाराष्ट्र : हैदराबाद (दक्षिण)

के लिए

'मण्डल' की नई शाखा खुल गई

मध्यप्रांत, महाराष्ट्र, बरार व हैदराबाद (दक्षिण) में बसने वाले मण्डल के प्रेमी पाठकों व हितैषियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उपरोक्त स्थानों में 'मण्डल' का प्रचार व बिक्री संगठन करने के लिए श्री रिषभदासजी रांका के संचालकत्व तथा श्री लक्ष्मीनारायण 'भारतीय' के व्यवस्थापकत्व में लोकमान्य की इस शुभ तिथि (१ अगस्त) से मण्डल की शाखा खुल गई है। अभी फिलहाल शाखा का कार्यालय बजाजवाड़ी, वर्धा में ही रहेगा। पर सुविधा तथा समय आने पर नागपुर में उसे लेजाने का विचार है।

आशा है 'मण्डल' के हितेच्छु बुजुर्ग, स्नेही मित्र तथा उदार पाठक 'मण्डल' के कार्य को उत्तम रीति से चलाने में अपनी सलाह, मार्गप्रदर्शन तथा साधनों से सहायता करने की कृपा करेंगे :—

मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली।

'सबकी बोली'

सम्पादक—काका कालेलकर

[यह मासिक पत्रिका हर महीने की १५वीं तारीख़ को निकलती है ।]

अिसमें आहिस्ता आहिस्ता हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की साहित्यिक और भाषा-विषयक बातें प्रकाशित हुआ करेंगी ।

अिसका मुख्य अुद्देश्य है :—

हिन्दुस्तान की तमाम भाषाओं का आपस में हार्दिक संगठन करना ।

भारतमाताको पहचानके लिये और अुसकी सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त करने के लिये जिन बातोंकी ज़रूरत होगी, अुन सभी विषयोंकी चर्चा 'सबकी बोली' में हुआ करेगी ।

अिसके 'साहित्य-सत्कार' विभागमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सहयोग से राष्ट्रकी अुन्नति करनेवाले सेवकों की विचारधारा का परिचय तथा अुनके साहित्य की समालोचना रहा करेगी ।

अिसमें अेक खास विशेषता यह होगी—

पारिभाषिक शब्द-चर्चा, कहानी, प्रवास, विशिष्ट व्यक्तियोंके शब्द-चित्र, राष्ट्रभाषा-आन्दोलन-सम्बन्धी व विद्यार्थियोंके लाभ के नियमित लेख ।

वर्धा-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति भी अपनी सभी ज़रूरी सूचनाअें अिसमें प्रकाशित करती है ।

खास सूचना :—

राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओंमें बैठनेवाले विद्यार्थी अपनी चालू क्रम-संख्या बतलाकर, १· रुपया वार्षिक चन्दा देकर, अेक वर्ष के लिये 'बोली' पा सकते हैं । सर्व-साधारणसे वार्षिक चंदा रु० १–४–० मनीऑर्डर से ही लिया जायगा । हम वी० पी० नहीं भेजते । पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम और पता साफ़-साफ़ नागरी हर्फों में लिखने की कृपा करें । फुटकर संख्या का तथा पुराने अङ्क का मूल्य दो आना । डाक खर्च पुरानी संख्याके लिए प्रति अंक)॥। और नये अङ्कके लिये)। अङ्क की क़ीमतके साथ अवश्य आ जाना चाहिये ।

पता—व्यवस्थापक,

सबकी बोली, वर्धा

सुलभ साहित्य माला की नई योजना

अन्य नामी लेखकों के ग्रन्थ भी प्रकाशित होने लगे

मूल्य, पृष्ठ संख्या, टाइप आदि वही

पाटन का प्रभुत्व

बम्बई की कांग्रेस-सरकार के गृह-सचिव और गुजराती के प्रतिभाशाली लेखक श्री कन्हैया-निकलाल मुनशी का यह ऐतिहासिक उपन्यास दो भागों में प्रकाशित हो गया है और दूसरा 'गुजरात का नाथ' प्रेस में जा रहा है।

फ्रान्स के अमर लेखक ड्यूमा ने जिस तरह अपने देश के इतिहास के आधार पर एक दूसरे कई उपन्यास लिखे हैं उसी तरह मुनशी ने गुजरात के इतिहास को लेकर चार उपन्यास कर गुजराती साहित्य में अमर कीर्ति प्राप्त की है। ये उपन्यास इतने सुन्दर, सरल और हैं कि गुजरात में घर-घर पढ़े जाते हैं। इनका एक-एक पात्र हृदय में हमेशा के लिए र लेता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की कमी को देखते हुए हमारा विश्वास है कि खूब सत्कार होगा। दोनों भागों का मूल्य सवा रुपया।

सुनीता : परख-स्पर्द्धा

इसी माला में श्री जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों के ये दो भाग भी छपे हैं। इनका मूल्य दस आना है। 'सुनीता' का मूल्य पहले तीन रुपया था।

राधा (भावनाट्य)

पं० उदयशंकर भट्ट हिन्दी के नामी कवि और नाटक-लेखक हैं। उनका यह पद्यबद्ध नाटक बिलकुल ही नये ढंग की रचना है। राधा का ऐसा सुन्दर चरित्र-चित्रण आपने कहीं होगा। मूल्य दस आना !

कुलीनता (नाटक) : सेठ गोविन्ददास १) **ग्रामीण समाज** (शरत्) ॥=) **दो चिड़ियाँ** नियाँ) : जैनेन्द्रकुमार १) **पुष्पलता** (सुदर्शन) १।)

नोट—पास के बुकसेलरों से खरीदिए। नहीं तो फिर हमसे मँगाइए। सूचीपत्र के लिखिए।

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय**

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

बिहार की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'पुस्तक-भण्डार' की कुछ साहित्यिक पुस्तकें

काव्य-ग्रन्थ

१	विद्यापति की पदावली		२)
२	बिहारी-सतसई		१।।)
३	तुलसी-सतसई		१।।।)
४	गोविन्द-गीतावली		१।।)
५	रसकलस	(हरिऔध)	४)
६	पारिजात	(,,)	४)
७	रेणुका	(दिनकर)	२।।)
८	रसवन्ती	(,,)	१)
९	द्वन्द्वगीत	(,,)	।।)
१०	गुनगुन	(मनोरंजन)	।।।)
११	अन्तर्जगत्	(लक्ष्मीनारायण मिश्र)	।)

आलोचनात्मक

१	भारतेन्दु-साहित्य	(स्व०रामचन्द्र शुक्ल)	१)
२	हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास		५)
३	बिहार का साहित्य		२)
४	वाग्विलास	(महावीरप्रसाद द्विवेदी)	१।।)
५	कविरत्न मीर	(रामनाथ सुमन)	१)
६	दागे जिगर	(,, ,,)	१।।)
७	नूरजहाँ		२।।)

उपन्यास-कहानी

१	देहाती दुनिया	(शिवपूजनसहाय)	१।।)
२	प्रेमिका	(स्व० ईश्वरीप्रसाद शर्मा)	२।।)
३	प्रेम-पथ	(भगवतीप्रसाद बाजपेयी)	२)
४	विमाता	(अवधनारायण)	२)
५	पुरुष-परीक्षा		१)
६	विभूति	(शिवपूजन सहाय)	२)
७	किसलय	(प्रो० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज')	१।।)
८	कानन	(जानकीवल्लभ शास्त्री)	१।।)

बालमनोरंजक

१	बड़ों का बचपन	१।।)
२	आविष्कार और आविष्कारक	।।)
३	सियार पाँड़े	।।)
४	बगुला भगत	।।)
५	बिलाई मौसी	।।)
६	हीरामन तोता	।।)
७	जादू का राग	३)
८	बाल बोस्ताँ	=)
९	बालकों का योरप	।=)
१०	देवता	।=)

यात्रा-सम्बन्धी

१	आवारे की यूरप-यात्रा (सत्यनारायण, पी-एच. डी.)	२।।)
२	कैलाश-दर्शन	१।।)
३	उत्तराखंड के पथ पर	३)

कुछ अमूल्य और उत्तमोत्तम पुस्तकें

[भारतीय-दर्शन-परिचय—न्याय खण्ड ५); बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन २); बिहार का चित्रित गौरव १); भारतीय इतिहास की बालपोथी १।।); भूलोक-परिचय २); प्रतिवेश-परिचय १।।); बच्चों का चिड़ियाखाना २); आदर्श राघव १); आत्मचरित-चम्पू १।।); रचना-नवनीत १।।) व्याकरण-चंद्रोदय १)]

पता—पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय और गोविंदमित्र रोड, पटना

मनोरंजक, रोमांचक, एवं शिक्षाप्रद

चार नये उपन्यास व कहानी-संग्रह

---

(१) नरमेध

लेखक—श्री सर्वदानंद वर्मा, जिनके ‘...रण’ नामक उपन्यास ने उपन्यास-जगत् में तहलका मचाकर सन् १९४० के उपन्यासों में अपने को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया था, उन्हीं का इस साल का यह सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है; यह उपन्यास क्या है, भविष्य के आर्थिक आधारों पर स्थित समाज की रूपरेखा है। मूल्य १।)

(२) कुचक्र

लेखक—नरसिंहराम शुक्ल। प्रस्तुत उपन्यास-लेखक की सातवीं कृति है। इस उपन्यास में भारत की विख्यात नगरी बम्बई के कुछ प्रसिद्ध व्यापारी पश्चिमी भारत की कुछ रियासतों में व्यापारिक एकाधिपत्य कायम करने के लिए षड्यन्त्र रचते हैं—जालसाजों का एक भयंकर गुट्ट तैयार हो जाता है, जिसमें दो सुन्दरियों के आ पडने से एक अनूठी सरसता और रोमान्स आजाता है। यह उपन्यास वर्णनशैली घटनाओं की विचित्रता तथा सरसता के कारण बेजोड़ है। मूल्य १।)

(३) मातृ-मन्दिर

रचयिता जगदीश झा‘विमल’। इस उपन्यास में अपने जनस्थान के प्रति मनुष्य के हृदय में कितनी ममता होती है, निराश्रय हो अन्यत्र पाले-पोसे जाने के बाद तिरस्कृत होने पर अनाथ बालक कैसी ग्लानि का अनुभव करता है तथा सिर पर सैकड़ों मुसीबतें उठाकर वह किस प्रकार अपने को समर्थ बनाकर अपने जन्म-स्थान पर विशाल भवन बनाता है, इन सब बातों का सजीव और ओजस्वी वर्णन मिलेगा। इस उपन्यास को पढ़कर आप अपने हृदय में पवित्रता, त्याग तथा आशा का संचार पायेंगे। **मूल्य १।)**

(४) सच्ची रोमांच कहानियाँ

ले०—चौधरी शिवनाथसिंह ‘शांडिल्य’। यों तो आपने सनसनी घटनाओं से पूर्ण तथा रोमांचक कई कहानियाँ पढ़ी होंगी, पर इस पुस्तक की कहानियाँ सब सच्ची घटनाओं पर लिखी हुई हैं, जो काल्पनिक कहानियों से भी रोचक तथा रोमांचकारी हैं। आप इन्हें पढ़कर आश्चर्य रोमांच और करुणा से पूर्ण हो जायँगे। **मूल्य १)**

व्यवस्थापक—

छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योति:प्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योति:प्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

लोपयोगी इतिहास-माला

पुथल के इस ज़माने में अनेक देश के नागरिकों को संसार के उलट-फेर से कराने के लिये 'बालोपयोगी संसार का इतिहास' ३७ खंडों में निकालनें की है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से ती हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस दार न समझें। कहानी के ढंग पर पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार, प्रत्येक का १)

शित—वैदिक भारत, पौराणिक भारत, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश और भारत। तुर्क भारत, मुगल भारत, राज-, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) जाति और महाराष्ट्र,

विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र ।

युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बड़ौदा
में शिक्षा-विभाग की स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक सामग्री देनेवाला अपने ढंग का अकेला मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त है।

पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों प्रसंगों का परिचय कराता है। कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।–)

अप्रेल के अंक 'उपकथांक' से आरंभ हो है, किशोर के नमूने के लिए ।) का टिकट भेजिये,

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा	३)
बिहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट	५)
बिहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,	१॥)
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक	१॥)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	२)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१॥)
जीवन-यात्रा	,, ,,	॥।=)
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय	२)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	॥।)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२।)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट	१।)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	।)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	॥।)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।=)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	॥।)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	२)
स्टालिन	रामइक़बालसिंह	२)
खिलौना घर	हेनरिक इसेन	॥।)
हृदय की ओर	दुर्गाशंकर प्र० सिंह	२)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१।)
रजकण	,, ,,	॥।)
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद	॥।)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१॥)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	।)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	॥।)
कहानी-एक कला	गिरधारीलाल शर्मा गर्ग	॥।)
संस्मरण	सर्वदानंद वर्मा	१॥)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	॥=)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	२)

शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया। मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

श्रीयुत. एम. के. आचार्य, एम. एल. ए. (मद्रास)—"आपका दंत-मंजन तो मैंने **अपनी दंत-पीड़ा के लिए गत पाँच वर्षों में व्यवहृत देशी-विदेशी सब मंजनों से श्रेष्ठतर पाया।** मंजन दाँतों, मसूडों और तालु के घावों पर जादू का-सा असर दिखलाता है।"

श्री. एम० एस० बरदाचार्य एडवोकेट (मद्रास हाईकोर्ट)—"दो वर्ष पूर्व मुझे दंत-पीड़ा हुई थी जो बढ़ती ही गयी और मसूडों म घाव हो गये; **परन्तु आपके मंजन से अब मेरेमसूडे स्वस्थ हैं और दाँत में पीड़ा नहीं होती।** मैं तो कहूँगा कि मेरे व्यवहृत दंत-मंजनों में सर्वश्रेष्ठ आपका दंतामृत ही है।"

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

गांधीवाद का अभिनव काव्य

कविश्री सोहनलाल द्विवेदी

रचित

भैरवी

सजिल्द : सचित्र : दाम दो रुपये

प्रकाशक

इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग

सस्ता-साहित्य-मण्डल की सब शाखाओं, संयुक्तप्रान्त के गांधी आश्रम खादी-भाण्डारों तथा प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

न, १९४१
ई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरा वर्ष
पहला अंक

जय जय जाग्रत हे !

जय जय जाग्रत हे !
जय जय भारत हे !
रण-प्रण-बद्ध विपुल सेना-दल,
उठे युगों के ज्यों गौरव-बल;
आज मुखर आँगन में हलचल,
जय प्रस्थान-निरत जयध्वनि-मय, गति-मति-संयत हे !
जय जय जाग्रत हे !
जय जय भारत हे !

*

विस्मृत जातिभेद चिर-उद्भव
विकसित राष्ट्रप्रेम नववैभव,
गलित पुरातन रूढ़ि, राज्यरव,
जन-गण-सागर ऊर्ध्व, उच्छ्वसित, विस्तृत, उन्नत हे !
जय जय जाग्रत हे !
जय जय भारत हे !

*

उदित भाग्य दुर्भाग्य तिरोहित,
दृग-मन नव-आलोक-निमज्जित;
सबल संगठन आज मुक्ति-हित,
नवनिर्माण-निरत प्रतिपद नव बलिपथ-उद्यत हे !
जय जय जाग्रत हे !
जय जय भारत हे !

सोहनलाल द्विवेदी

जीवन-परक साहित्य

जीवन-परक साहित्य के दो मानी हो सकते हैं--(१) जीवन को समझाने व बनानेवाला साहित्य, (२) जीवन में से उपजा हुआ साहित्य। हमारे लिए जीवन के भी तीन हिस्से हो सकते हैं। (१) मानव जीवन, (२) भारतीय जीवन, (३) हिन्दू जीवन।

जीवन को समझानेवाले साहित्य में दर्शन व विज्ञान आता है, बनानेवाले साहित्य में धर्म, नीति आते हैं। जीवन में से उपजे हुए साहित्य में तमाम प्रयोग, अनुभव, जीवन-चरित, इतिहास, वर्णन आदि का समावेश होता है। अतएव यदि हमें जीवन-परक साहित्य देना है तो उसका यह अर्थ हुआ कि पूर्वोक्त सब विषयों की ज्ञान-सामग्री पाठकों को देनी चाहिए। और वह होनी चाहिए जीवन को समझाने व बनाने की दृष्टि से।

अब यह सवाल रहा कि किस जीवन को प्रधान मानकर चलें—मानवीय, भारतीय या हिन्दू जीवन को? विचारान्त में कहना पड़ता है कि भारतीय व हिन्दू जीवन का आधार मानव जीवन के आधार से मूलतः भिन्न नहीं है। भारतीय और हिन्दू संस्कृति मानव संस्कृति से असंगत या अनमेल नहीं है। मानव व भारतीय संस्कृति में अगर कोई फ़र्क़ है तो यही कि मानव संस्कृति सार्वजनीन है, भारतीय संस्कृति एक-राष्ट्रीय या एकदेशीय। यदि हम भौगोलिक आधार पर मानव संस्कृति के दो भाग करें—पूर्वी व पश्चिमी संस्कृति, तो कहना पड़ता है कि दोनों में बड़ा अन्तर दिखायी देता है। पर उस हालत में 'मानव-संस्कृति' को 'विश्व-संस्कृति' नाम देना ठीक होगा; क्योंकि 'मानव संस्कृति' में तो 'मानव' को, मानवी भावों व गुणों को, प्रधान मानकर चलना होगा। भारतीय व हिन्दू जीवन का आधार दो तत्त्वों पर है--एकात्म-भाव व सर्वभूत-हित। 'एकात्म-भाव' में जीवन को समझा गया है, 'सर्वभूत-हित' में जीवन को बनाने का श्रेष्ठ मार्ग बताया गया है। मानव जीवन का भी आधार इससे श्रेष्ठ या पृथक् क्या हो सकता है? हाँ, आगे विकास में जाकर हिन्दू संस्कृति ने अपनी कुछ विशेषता बनायी है जो दूसरी जातियों या राष्ट्रों की संस्कृति से कुछ भिन्न पड़ती है। वह है उसका पुनर्जन्म का सिद्धान्त, वर्णाश्रम-व्यवस्था व गो-रक्षा की भावना। वैसे 'पूर्वी' व 'पश्चिमी' संस्कृति की भाषा में बोलें तो दोनों में यह फर्क दिखाया जाता है कि पूर्वी संस्कृति योग-प्रधान व पश्चिमी संस्कृति भोग-प्रधान है। एक को 'श्रेय' प्रिय है, दूसरी को 'प्रेय'। लेकिन जहाँतक इस भावना से सम्बन्ध है कि सृष्टि के सब मनुष्य बराबर हैं, सब भाई-भाई हैं, व इस स्थिति को पाने के इस उपाय से सम्बन्ध है कि सबकी सेवा की जाय, सबका भला चाहा जाय, वहाँतक न 'पूर्वी' और 'पश्चिमी' संस्कृति के मूल-विचारों में कोई भेद दीख पड़ता है, न मानवी, भारतीय और हिन्दू-संस्कृति में। 'योग-प्रधान' व 'भोग-प्रधान' **भाषा** भी ऊपरी अवलोकन का परिणाम मालूम होती है। इसका सम्बन्ध अर्थ-व्यवस्था या समाज-व्यवस्था की ऊपरी बातों से जितना है उतना जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों से नहीं। पश्चिमी संस्कृति ईसाई-संस्कृति है। क्या ईसाई धर्म-ग्रंथों में अध्यात्म-तत्त्व का या श्रेय-साधन का अभाव है? इस्लाम में भी क्या नीति, धर्म, सदाचार को कम महत्त्व दिया गया है? क्या पूर्वी संस्कृति की उच्चता का दावा करनेवाले देश, जाति या समाज में भोगवादी व भोगी कम हैं? जीवन या संस्कृति की परीक्षा हमें उसके मुख्य आधारों, मूल रूपों को देखकर करनी चाहिए, न कि विकृत या प्रचलित रूपों को देखकर। रूप तो देश, काल, पात्र के अनुसार बनते-बिगड़ते रहते हैं और वे समाज, जाति या राष्ट्र की तत्कालीन अवस्था के सूचक-मात्र होते हैं।

हिन्दू-जीवन या संस्कृति की विशेषताओं में 'पुनर्जन्म' अलबत्ता दार्शनिक वस्तु है, वर्णाश्रम धर्म व गो-रक्षा का सम्बन्ध समाज-व्यवस्था से है। लेकिन अब तो वैज्ञानिक खोज के इस नये जमाने में ऐसा समय आ गया है जब हमको सब बातों पर नये सिरे से, नये प्रकाश में, फिर से विचार

जरूरत पेश आ गयी है । भले ही उस प्रकाश में देखकर घूम-फिरकर हम बहुतांश में उसी पर पहुँचें, जिसपर हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि, तत्त्ववेत्ता व समाजशास्त्री पहुँचे थे । पर नये नवीन साधनों के द्वारा, नवीन ज्ञान के आलोक में हमें सब बातों को फिर देखना, तौलना, व अवश्य होगा । मुझे ऐसा लगता है कि 'सर्वात्मभाव' व 'सर्वभूतहित' इन दो बातों में तो के तहाँ रहते दीखते हैं; हाँ, समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था या राज-शासन में कुछ उलट-फेर करने पड़ें । लेकिन इनका यहाँ गहराई व तफसील से विचार करना अप्रासंगिक होगा । यहाँ सामने सवाल तो यह है कि किस जीवन को प्रधान मानकर हम साहित्य-सामग्री पाठकों को विवेचन से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि चाहे हिन्दू-जीवन को लें, चाहे भारतीय को या मानव जीवन को, उनके मूलाधारों में अन्तर नहीं है; बाहरी रूप-रंग-व्यवस्था में फर्क जरूर है । अतएव अच्छा होगा कि मूलाधारों की चर्चा तो हम वस्तु को समझने भर के करें, लेकिन उनके बाहरी रूपों व भेदों की चर्चा खुलकर की जाय, जिससे हम यह तय कर कि हम अपने समाज, संस्कृति या जीवन की सुन्दर व्यवस्था किस प्रकार करें ?

तो हम अब जीवन को समझने के लिए पहले इसी प्रश्न पर नये सिरे से विचार कर लें कि भाव' नामक उसका आधार सही है या ग़लत । 'एकात्म' शब्द आध्यात्मिक है । यदि लौकिक जिक भाषा में बोलना चाहें तो हम कहेंगे––'मनुष्य सब बराबर हैं', अर्थात समानाधिकार के आधार पर समाज या जीवन खड़ा है या खड़ा रहना चाहिए । क्या इस सामाजिक या सामाजिक आदर्श में कोई ग़लती है ? या कोई भ्रम है ? विद्वान् और विचारक इसपर डालने की कृपा करें ।

अब 'सर्वभूत-हित' की भावना को लें । लौकिक और सामाजिक भाषा में इसे हम 'परस्पर-, सहानुभूति और सहयोग का भाव रखकर लोक-व्यवहार करना' कहेंगे । जब मनुष्य मनुष्य हैं तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध को हम किस भित्ति पर खड़ा करें ? भय, मारकाट, दबाव-, या बदले की नीति, प्रणाली और व्यवस्था पर, या प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता, सहयोग की प्रणाली और व्यवस्था पर ? इनके गहरे विचारों में से हिंसा व अहिंसा की दो विचारधारायें निकलती हैं । इसपर भी विचार-मंथन होने की जरूरत है और अधिकारी लोग अपने-अपने उपस्थित करने की कृपा करें ।

इन दो खंभों के जमजाने पर हमारे लिए यह विचार करना आसान हो जायगा कि समाज की प्रकृत रचना या व्यवस्था क्या, क्यों और कैसे हो ?

अब रही हिन्दू-संस्कृति की विशेषता । इसमें पहला 'पुनर्जन्म' है । हिन्दू-विचारकों में भी हैं जो पुनर्जन्म को तर्क-सिद्ध या वास्तविक नहीं मानते । इसकी भी चर्चा होनी चाहिए । का हमारे सामाजिक आदर्श या समाज-व्यवस्था पर कोई असर पड़ता है या नहीं, इसकी होनी चाहिए । वर्णाश्रम-व्यवस्था के लिए स्थान है या नहीं ? उसमें क्या सुधार होना ? या कोई नवीन व्यवस्था होनी चाहिए ? नवीन हो तो किस तरह की ? साम्यवाद के पर या गांधीवाद के आश्रय पर ? इसका ऊहापोह होना जरूरी है ।

अब गोरक्षा । यह विषय हिन्दू ही नहीं भारतीय समाज की अर्थ-व्यवस्था और कृषि-व्यवस्था सम्बन्ध रखता है । इसके मूल में तो मनुष्य से निचली श्रेणी के जीवों के प्रति दयालुता है, जो कि बहुत स्वाभाविक और उचित है । परन्तु समाज-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था गहरा सम्बन्ध है । इसलिए इसकी भी फिर से जाँच-पड़ताल होनी चाहिए ।

जीवन के आधारभूत प्रश्न हुए । अब हमें यह देखना चाहिए कि इन समस्याओं का

हल कहाँ-कहाँ क्या निकला, इसके कहाँ-कहाँ कैसे अमली प्रयोग हुए, उनमें से क्या निचोड़ या अनुभव हाथ आया, इसका भी वर्णन होना चाहिए। हमारे अपने देश में हमारी संस्कृति और समाज के संशोधन और निर्माण के क्या-क्या प्रयत्न हो रहे हैं, इनका भी वर्णन और विचार होना चाहिए। भारत का वर्तमान जीवन विकास की किस अवस्था से गुज़र रहा है? दूसरे राष्ट्र के जीवन की तुलना में उसकी क्या स्थिति है? उसके किन-किन अंगों में क्या-क्या सुधार-संशोधन होना चाहिए? इसकी भी विवेचना हो।

मैं समझता हूँ शुरुआत के लिए जीवन-परक साहित्य की इतनी रूप-रेखा लेखकों के लिए काफ़ी होगी। इनपर मित्रों के सुझाव व विचार कृतज्ञतापूर्वक लिये जायेंगे और उनसे लाभ उठाया जायगा।

हरिभाऊ उपाध्याय

अछूत

[**विष्णु अम्बालाल जोशी**]

समाज के पंच-शिरोमणि ने मुझे दुत्कार-कर कहा—

'तू दूर हो जा मेरी नज़र से ढीठ कलंकी!'

मैंने समाज से चलने-फिरने का अधिकार माँगा था, हिलमिल कर प्रेम से जीने की इच्छा प्रकट की थी।

पर, मुझे रुखा तिरस्कार मिला।

मंदिर के पुजारी ने कुपित होकर कहा---

'तू दूर हो जा मेरी नज़र से ढीठ अधर्मी!'

मैंने पुजारी से अपने साईं के दर्शन करने का अधिकार माँगा था; भक्ति से 'राम-नाम' के उच्चारण करने की इच्छा प्रकट की थी।

मुझे रूखा तिरस्कार मिला।

हताश अन्धकार में मैं छिपे-छिपे राजपथ के एक किनारे चला जा रहा था। इस मार्ग का अंत कितने योजन दूर है इससे मैं अनभिज्ञ था; पर अभी तो मेरे गाँव के मंदिर की शयन-पूजन-ध्वनि वायु-मंडल को भेदती हुई कानों में गूँज रही थी। मेरे पाँव थक गये थे। जठरानल मुझे अत्यधिक सता रहा था।

मुझे विवश-निष्प्राण होकर उस राजपथ के एक किनारे ताड़ वृक्ष का सहारा लेकर बैठ जाना पड़ा।

विक्षिप्तावस्था में मैंने अनुभव किया कि चारुचन्द्र शीतल किरणों के तारों पर अपनी कलंक की बात मंद संगीत में कह रहा है। मैं बोला, "मैं भी ऐसा ही कलंकी हूँ, देव!"

मैंने सुना—"अन्धकार की छाया में अपने आँचल को आत्मा के नन्हें ओसकणों से तरल कर ले।"

मैंने आग्रह से अपने जीर्ण-शीर्ण आँचल को अन्धकार में बिछा दिया।

वह दीप्त अटल नक्षत्र ध्रुव अपनी कोमल किरणों से मेरे लज्जित तथा कुंठित मुँह को छूकर एक करुण स्वप्न में अपनी कहानी कह गया। मैं बोला—"मैं भी ऐसा ही तिरस्कृत हूँ देव!"

मैंने सुना—संसार अपनें कलंक में दूसरे को कलंकी देखता है। तू एकाग्रता की शान्ति में, मनन से संचित ओसकणों को एक लड़ी में पिरो ले। निर्दिष्ट समय पर प्राची के निरभ्र कोने से महापुरुष की एक रश्मि स्पर्श कर उनको अनुरंजित कर जायगी।"

उस झिलमिल रात्रि में मैं अपने आँचल को ओस-बिन्दुओं से भरने में सफल हुआ हूँ। अब मैं उस निर्दिष्ट समय की प्रतीक्षा में हूँ जब कि मेरे जीर्ण-शीर्ण आँचल के ओसकण उस महापुरुष की रश्मि से रंजित होकर संसार को प्रेम और करुणा से नहला देंगे।

भावी स्वर्णयुग में

[सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन]

अगर तुम्हारा बस चलता, तो तुम कौन ज़माने में जीना पसन्द करते ?' यह सवाल अपने में एक खतरनाक सवाल है, और इस तरह के सवाल में बहुत ज्यादा दिलचस्पी रखना एक स्वस्थ मन का लक्षण नहीं है । बात ढी लगती है, लेकिन इसकी सचाई का उस आदमी की बात से मिल सकता है, जिसने यह सवाल पूछा जाने पर एक ठंडी साँस जवाब दिया था कि 'मेरा बस चलता, तो दुनिया का पहला आदमी होता ।' क्यों ? इसलिए कि तब मैं आत्महत्या कर लेता, और यह का झमेला कभी शुरू ही न हुआ होता ; मेरे और सबको भी छुट्टी मिल जाती !'

इस जवाब को ध्यान में रखकर ज़रा गहरे देखें, तो हम पायेंगे कि जो इंसान अपने के जीवन से बहुत दुःखी और निराश है वही अपना ध्यान किसी पुराने ज़माने की तरफ़ ले जाता है और बीती हुई सुख की की कल्पना में रम रहता है ।

मैं इसे ज़रूरी समझता हूँ कि हमारा रागा-त्मक झुकाव वर्त्तमान की ओर ही हो । हम अपने की तह में वर्तमान के साथ एक गहरे संबंध का जीवित स्पन्दन अनुभव करें––फिर भले ही वर्तमान के कड़े आलोचक भी बने रहें । इसको ही खतरनाक, अस्वस्थ और निकम्मा वाली हालत मानता हूँ कि किसी का शरीर जिये आज के ज़माने में और मन या दिल रहे बीते हुए ज़माने के साथ ।

इसीलिए मुझे इस तरह के बुद्धि के खिलवाड़ है कि मैं कौन से ज़माने में रहना ! और अपने देश की तरफ़ देखते हुए तो इस वामखयाली पर झुँझलाहट भी हो आती क्योंकि हिन्दुस्तान में इस तरह प्राचीनकाल के अवलम्बन कर लेने की प्रवृत्ति बहुत लोगों पायी जाती है । कोई वेदों के ज़माने में रहता कोई रामराज्य में, कोई मुग़ल बादशाहों के रंगमहल में, तो कोई नवाब वाजिदअली के बावर्ची-खाने की काल्पनिक ख़ुशबू में ही मस्त रहता है !

कोई कह सकता है कि भविष्य के साथ ऐसा रिश्ता जोड़ना भी तो एक तरह का भागना ही है ! और मैं मानता हूँ कि इस आपत्ति में काफ़ी ज़ोर है । बल्कि मैं तो यहाँतक कहने को तैयार हूँ कि आजकल के बहुत-से प्रगतिशील कहलानेवाले लोग असल में ऐसे ही लोग हैं जो कि वर्तमान से ठीक इसी तरह भाग गये हैं । यानी उन्होंने रागात्मक सम्बन्ध भविष्य के साथ जोड़ लिया है । हैं ये भी रामराज्य के रहनेवाले ; फ़र्क़ इतना ही है कि उनका रामराज्य बीता नहीं है, आगे आनेवाला है ।

लेकिन पीछे देखने और आगे देखने में एक बड़ा भारी अन्तर है । अगर हम मान भी लें कि आगे देखनेवाले ने भी रागात्मक सम्बन्ध वर्तमान के साथ नहीं रखा, तो भी हम देखेंगे कि उसे भविष्य की तरफ़ ले जाना अधिक श्रेयस्कर है । यह इसलिए कि अच्छे भविष्य की कल्पना एक प्रेरणा-शक्ति भी हो सकती है । वह इंसान को, बल्कि समूची जाति को, उन्नति के पथ पर बढ़ने के लिए प्रोत्साहन भी दे सकती है । इसका एक बहुत अच्छा नमूना यहूदी जाति में मिल सकता है । यहूदियों में मसीहा के आने के विश्वास ने उनके जातीय जीवन और उनके ऐतिहासिक विकास पर कितना गहरा असर डाला, यह किसीसे छिपा नहीं है । आज भी यहूदियों में जो आश्चर्यजनक जातीय एकता पायी जाती है वह इसी सपने की नींव पर कायम है । यहूदियों की तुलना में हम आज के औसत हिन्दुस्तानी की उस प्रवृत्ति को रख सकते हैं जिसके कारण उसके व्यक्तित्व का सारा ज़ोर गुज़रे हुए ज़माने पर टिक जाता है, और वर्तमान पर शिथिलता और मुर्दनी छायी रहती है ।

भविष्य की कल्पनाओं का––आनेवाले युग की किसी उम्मीद या कल्पना का—महत्त्व व्यक्ति

के लिए, समाज के लिए और अक्सर सारी जाति के लिए, कितना अधिक होता है, यह आज का वैज्ञानिक अच्छी तरह समझता है। ये जातिगत स्वप्न या कल्पनायें—जिन्हें आज का वैज्ञानिक Racial fantasies कहता है—जाति के जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध रखती हैं, और उसकी आत्मा को समझने में इतिहास से कहीं ज्यादा मदद देती हैं। जातियों के मनोविज्ञान में या मानव के वंश-विकास में रुचि रखनेवाले इस बात को जानते हैं।

यह तो हुई एक बात। दूसरी बात यह है कि भविष्य की ओर रुख रखने से हमें अपने वर्तमान को ठीक साँचे में ढालने में भी बड़ी मदद मिलती है। जिसका आदर्श अतीत में है, यानी पीछे है, वह उस आदर्श पर अपने वर्तमान को आँकेगा भी, तो उसमें सिर्फ़ एक कुढ़न, एक व्यर्थ की झुँझलाहट, और फिर एक निराशा पैदा होगी। उसकी आलोचना तोड़नेवाली ज्यादा होगी, रचनेवाली कम। उसको बराबर वर्तमान बीते हुए ज़माने से घटिया लगेगा, और यह धारणा उसके दिल में घर कर जायगी, कि इंसान बराबर गिरता चला जा रहा है। उसमें कोई अच्छाई बाक़ी नहीं रह गयी है, और यदि रह भी गयी है, तो बहुत जल्दी ग़ायब हो जायगी। नतीजा यह होगा कि वह ख़ुद अपनी अच्छाइयों की क़द्र नहीं करेगा; सोचेगा कि अच्छाइयों का ज़माना तो गया। आपने शायद देखा भी हो कि जो आदमी हर बात पर कह देते हैं, "अरे भाई, कलजुग है कलजुग!" वे ख़ुद सबसे ज्यादा कलजुगी तबीयत के आदमी होते हैं।

दूसरी ओर जिस आदमी का आदर्श आगे है, वह भी बराबर वर्तमान को उसकी कसौटी पर परखता है, और उसमें खोट देखकर असंतुष्ट होता है, लेकिन यह असन्तोष उसे निकम्मा नहीं बनाता, परास्त नहीं होने देता, बल्कि उसे भड़काता है कि वर्तमान को बदलकर एक नया ढाँचा तैयार कर, अपने आदर्श का सहारा लेकर बदलते हुए युग के प्रवाह के साथ बढ़ने के लिए अपने को समर्थ बनाये, अपने और अपनी जाति के विकास में भरसक सहायक हो।

इतनी लम्बी भूमिका के बाद अब चलिए हम भविष्य की तरफ़ चलें। आप अलादीन के जिन्न के कन्धों पर बैठ जायँ या बगदादी चोर की दरी पर बैठें या गुलबकावलीवाली उड़न-टोपी पहन लें या एच० जी० वेल्स की 'टाइम मशीन' पर सवार हो लें—मैं तो चल पड़ा।

यह लीजिए हम आ गये भविष्य में। आस-पास कैलेण्डर नहीं दीख रहा है, इसलिए मैं नहीं कह सकता कि सन् २००० है या ११०४१, पर ऋतु वसन्त की है, और... किन्तु ऋतु का वर्णन मैं नहीं करूँगा। इस तरह की मोटी-मोटी बातें तो हर कोई अपने कल्पना-लोक के बारे में सोच ही लेता है। वहाँ बारहों महीने वसन्त रहता है, फूल खिलते हैं, झरने झरते हैं, चिड़ियाँ चहकती हैं, कहीं किसी रोग-शोक का नाम-निशान नहीं दीखता, हारमोनियम नहीं चीख़ते, 'प्रीत की रीत' के गीतों के फ़िल्मी रिकार्ड नहीं बजते, आदि आदि। ऐसी बातें आप अपने मन से जोड़ लीजिए। वैसे भी मैं इनको ज्यादा महत्त्व नहीं देता। मैं आपको वही बातें बताना चाहता हूँ, जो मुझे सन् ४१ से खींचकर यहाँ ले आयी हैं।

सामने रेडियो है, तो लीजिए, रेडियो से ही शुरू करता हूँ। यहाँ पर रेडियो की सुविधा सबको मुफ्त मिलती है। रेडियो ही क्यों, डाक, तार, रेडियोतार, रेडियो टेलीफ़ोन, रेडियो सिनेमा, अख़बार, बस, ट्राम, रेल, बिजली, गाड़ी, हवाई रेल आदि सब तरह की सुविधायें बिना किराये या महसूल के मिलती हैं। अस्पताल सबके लिए खुला है। डाक्टर बिना फ़ीस के मिल सकते हैं, दवाइयाँ मुफ्त मिलती हैं। वे सब सुविधायें क्यों और कैसे मुफ्त मिलती हैं, कौन इसका इन्तज़ाम करता है, यह देखने की बात है। असल में यह सब प्रबन्ध एक नगर-पंचायत करती है, जिसे पुराने ज़माने में—यानी बीसवीं सदी में—म्युनिसिपैलिटी कहते थे। यह पंचायत केवल एक टैक्स लेती है, जिसे नागरिकता-कर कहते

की तरफ़ यह ‘यूटिलिटी टैक्स’ कहलाता टैक्स के बदले पंचायत उन सब बातों करना अपना धर्म समझती है, जो कि के आराम के लिए ज़रूरी या उचित जाती हैं।

जानता हूँ कि आपका जी ललच आया आप सोचते होंगे कि हम इस ज़माने में दिन भर हवाई रेल की सैर किया लेकिन अजीब बात है कि इस ज़माने में आदमी इन सुविधाओं का दुरुपयोग नहीं लोगों की नागरिक या सामाजिक चेतना बढ़ी हुई है। इस चेतना के पैदा करने में कितने वर्षों का या कितनी पीढ़ियों का परिश्रम लगा है। इसका पूरा ब्योरा आप दूँगा, लेकिन सामाजिक जिम्मेदारी की से ही यह काम हो सका है। जिम्मेदारी भावना किस तरह बढ़ायी गयी, इसके कुछ लीजिए : बुढ़ापे का, बेकारी का, काल का, और अन्य प्रकार के सामाजिक का प्रबन्ध तो राज्य ने कर ही दिया था, एक नियम उन्होंने यह भी बनाया कि किसी व्यक्ति के पड़ोस में कोई आदमी है या किसी भी वजह से तकलीफ़ में है, बात की सूचना पंचायत को न देना भी ही बड़ा जुर्म है जितना कि उसकी मदद ना। इस तरह के उपायों से हर आदमी में यह भावना पैदा की गयी कि वह अपने ही नहीं, अपने पड़ोसी के सुख-दुःख के भी जवाबदेह है। कुछ और प्रबन्ध भी गये। आपको याद होगा कि सन् १९४१ डाकघरों में बिका करती थी। लेकिन यह प्रबन्ध किया गया कि सब तरह के रोगों की दवाइयाँ डाकघरों से मुफ्त मिल। उदाहरण के लिए मधुमेह का रोगी एक का सर्टिफ़िकेट ले लेता, और उसके काम के किसी भी डाकघर से वह यथासमय प्राप्त कर सकता।

इस तरह के प्रयत्नों के बावजूद कभी-कभी नागरिक धर्म की उपेक्षा हो जाती है। इस तरह की भूलें अधिक होने पर पंचायत दोषी को ‘दूसरे दर्जे का नागरिक’ घोषित करके विशेष संस्थाओं में भिजवा देती थी, जहाँपर वैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों, और मनोविज्ञान के आचार्यों की मदद से उसकी नागरिक चेतना का नया संस्कार होता था। कभी-कभी यह भी काफ़ी नहीं होता था। तब पंचायत की आज्ञा से ऐसे व्यक्तियों को मनोवैज्ञानिक अस्पताल में भेजा जाता था, जहाँ उनकी असामाजिक या समाज-विरोधी प्रवृत्तियों का पता लगाकर इलाज किया जाता था। ऐसे उपयोगों से जेलों, पागलखानों, थानों, फ़ौजदारी अदालतों, अनाथालयों और ऐसी अन्य चीज़ों की आवश्यकता धीरे-धीरे मिट गयी, और अब नागरिकों की अपनी पंचायत ही ऐसी सब समस्यायें सुलझा लेती हैं।

यह तो है जीवन का एक पहलू। नागरिक जीवन के अलावा केन्द्रीय जीवन का भी संगठन है। पुलिस तो है ही नहीं, न अदालतें हैं। नगर-पंचायत के अलावा ‘बाकायदा’ सरकार की ज़रूरत नहीं है। केवल देश के अलग-अलग हिस्सों का सहयोग बनाये रखने के लिए एक केन्द्रीय संस्था है जो एक छोटा-सा केन्द्रीय टैक्स लेती है। अनुभव से पेशबन्दी आवश्यक समझकर सैनिक-शिक्षा का प्रबन्ध रखा गया है, और सभी स्वस्थ नागरिक यह शिक्षा पाते हैं। मौक़ा पड़ने पर कुल जनता का आठवाँ हिस्सा तत्काल मोर्चे लेने के लिए बुलाया जा सकता है।

सुनते हैं कि आगे चलकर इसकी भी ज़रूरत नहीं रहेगी। सामाजिक व्यवहार और भी विकसित हो जायगा और तब अलग-अलग देशों की केन्द्रीय संस्थायें नहीं रहेंगी——सारे संसार का एक ही संघ होगा।

क्या आप एक नज़र उस ज़माने पर भी डालना चाहेंगे? आइए, चलिए——लेकिन क्षमा कीजिएगा, मुझे यह उड़न-टोपी तो केवल पन्द्रह मिनट के लिए उधार मिली थी। ख़ैर, कभी

मौक़ा पाकर इसे चुरा ही लूँगा—अभी तो लौट चलूँ । लीजिए यह रहा सन् १९४१, ३० जून की शाम और दिल्ली का रेडियो स्टेशन ! [१]

---

[१] दिल्ली रेडियो पर पठित और डायरेक्टर के सौजन्य से प्रकाशित ।

राम-राज्य

म० गांधी का कार्य मध्ययुगीन साधु-संतों के आगे निकल गया है । उनकी राम-राज्य की कल्पना अधिक परिणत और आधुनिक काल के अधिक अनुरूप है । 'राम-राज्य' शब्द सुनते ही आधुनिक शिक्षितों के मन में एक राज-सत्ताक राज्य की कल्पना खड़ी होती है और मध्ययुगीन साधु-संतों का राम-राज्य उस प्रकार का था भी । परन्तु गांधीजी का राम-राज्य इतना संकुचित और मर्यादित नहीं है । राम-राज्य से उनका अभिप्राय राज-सत्ताक राज्य-पद्धति ही नहीं है । राम-राज्य चाहे राजसत्ताक हो, प्रजा-सत्ताक हो, अथवा समाज-सत्ताक हो, ये उसके बाह्य रूप हैं । मगर राज्य का अन्तरंग हमेशा न्याय-स्वरूपी ही होना चाहिए । राम का राज्य धर्म का, न्याय का राज्य ही हो सकता है । 'राम' नामक व्यक्ति अब फिर भूलोक में नहीं आ सकता । लेकिन हर मनुष्य के अन्तःकरण में राम और रावण ये दो वृत्तियाँ रहती हैं । पहली से धर्म-बुद्धि और न्याय-भावना का उदय होता है और दूसरी स्वार्थ-बुद्धि के रूप में प्रगट होती है । मनुष्य के हृदय में स्वार्थ-बुद्धि का अन्त होकर न्याय-बुद्धि का राज्य स्थापित हो यही अन्तःकरण का राम-राज्य है । समाज में स्वार्थ-बुद्धि से उत्पन्न अनेक कलह नष्ट होकर उसमें न्याय स्थापित होने का नाम ही धर्म-स्थापना या धर्म राज्य अथवा राम-राज्य की स्थापना है । जिस राज्य को समाज की न्याय-बुद्धि का आधार है, जिस राज्य के कानून समाज की न्याय-बुद्धि के अनुसार बनते हैं, न्याय-बुद्धि से प्रेरित होकर चलनेवाले मनुष्य को जिस समाज के किसी प्रकार के कानून से बाधा नहीं होती, जिस समाज के सब व्यवहार मनुष्य की आन्तरिक न्याय-बुद्धि को सहज रूप से जँचनेवाले हों, अन्याय से धन कमाना और सत्ता का उपभोग करना जिस समाज में असंभव हो, और जहाँ की राज-सत्ता प्रजा से संगठित आत्मबल के सामने झुक सकती हो, उस राज्य को राम-राज्य समझना चाहिए । आज के समाज-शास्त्रीय व राजशास्त्रीय विचारों की व समाज-रचना की दृष्टि से आज का भारतवर्षीय राम-राज्य राजसत्ताक न होकर प्रजा-सत्ताक हो और वह ऐसा ही होगा यही म० गांधी की कल्पना है ।

आज का राष्ट्र-निर्माण प्रजातंत्र के सिद्धान्त पर हो और प्रजा के स्वराज में सामाजिक समता व नागरिक स्वतंत्रता सबके लिए खुली होनी चाहिए—यह बात म० गांधी ने अपनी उक्ति और कृति दोनों से अ-संदिग्ध रूप में लोगों को स्पष्ट कर दी है । हाँ, उनका यह स्पष्ट मत अवश्य है कि यह प्रजातंत्र योरपीय प्रजातन्त्र की तरह पूंजीवाद का गुलाम न हो और प्रजातन्त्र के नाम पर धनिक सत्ता की स्थापना इस देश में न होनी चाहिए । आधुनिक यूरोप में जो संस्कृति निर्माण हुई उसने धर्म का अधिष्ठान छोड़ दिया, जिससे वह भ्रष्ट हो गयी व उसमें पूंजीवाद और समाजवाद उदय हो गये । फलतः वह आज रसातल को जा रही है । इसीलिए उनका आग्रह है कि हमारी संस्कृति धर्म का अधिष्ठान न छोड़े व आधुनिक संस्कृति यूरोपीय संस्कृति का अंधानुकरण न करे ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि 'राम-राज्य' का उनका अर्थ आधुनिक शिक्षित लोग जैसा समझते हैं उससे भिन्न है । इसी तरह जब वे यह कहते हैं कि हमारे राष्ट्रनिर्माण में अथवा राजनीति में धर्म की भावना होनी चाहिए तब 'धर्म' शब्द का उनका अर्थ भी आजके पढ़े-लिखे लोग जो समझते हैं उससे भिन्न होता है ।

सस्ता साहित्य मण्डल से प्रकाशित होनेवाली 'हमारी आजादी की लड़ाई' से]

वृक्षों का व्यक्तित्व

[ब्रजमोहन गुप्त]

जनों और मित्रों से घिरा हुआ मनुष्य के साथ अधिक आत्मीयता का अनुभव र पाता। शहरों के सिनेमा, थियेटर आदि और चहल-पहल तो इस बात की ता और भी कम कर देते हैं। जिस व्यक्ति ों और बाजारों में सभी जगह रात को का प्रकाश फैला रहता है, वह यह अनुभव नहीं कर पाता कि जंगलों से घिरे मैदान में अकेला रहनेवाला वह व्यक्ति छोटे-से सूने घर में रात को एक दीपक लाया करता है, और घर के बाहर अँधेरी में घने अंधकार का असीम समुद्र उमड़ता है, चाँदनी रातों की किस उत्सुकता और ता से बाट जोहा करता है !

हरों का जीवन व्यस्त ! वहाँ किसके पास समय है कि पेड़-पौधों-फल-फूलों,पशु-पक्षियों प्रातः-सायंकाल की अरुणिमा और पूर्ण की ज्योत्सना के साथ मन अटका सके। पर रिस्थिति मनुष्य को परिजनों तथा मित्रों से, किसी ऐसे स्थान पर ले जाकर छोड़ दे से जंगलों और मैदानों में लगभग अकेले पड़े, तो ये सब पशु-पक्षी, पेड़-पौधे ही परिजन और स्वजन बन जाते हैं। उसके वार्तालाप करने, हँसने-खेलने लगते हैं ! ों के लिए परिस्थिति ने मुझको भी ऐसे न पर पहुँचा दिया था।

विद्यार्थी-जीवन समाप्त करते ही मैं एक मिडिल स्कूल का हैडमास्टर होकर एक रियासत में चला गया। छोटा-सा ग्राम, नों कच्चे घरों के बीच में एक विशाल-पक्का राज-भवन। पंसारियों,हलवाइयों, ों की थोड़ी-सी छोटी-छोटी दुकानें, जिनको मिट्टी के तेल की कुप्पियाँ या जला करतीं। गाँव छोटा पर बहुत साफ़ तरफ़ मैदान और कुछ जंगल जिनमें हरिणों के झुण्ड कभी भी देखे जा सकें। समीप ही एक तरफ़ छोटी-सी पहाड़ी नदी।

बस्ती में तो कोई भी रहने योग्य मकान खाली था नहीं। उससे कोई आध मील दूर मैदान में पक्का बना हुआ लम्बा-सा एक कमरा हमें मिला था, जो सुना है, अपना वानप्रस्थ-जीवन व्यतीत करने के लिए पिछले राजा साहब ने बनवाया था। मेरे साथ मेरे एक साथी और थे, श्री पुरुषोत्तम वर्मा।

कमरे के दोनों तरफ़ लगभग पचास-पचास क़दम की दूरी पर मरघट था—एक ओर मुर्दे जलाने के लिए, दूसरी ओर बच्चे दफ़न करने के लिए। जिन मनुष्यों के सम्पर्क में आना पड़ता था उनमें से कुछ तो स्कूल के मास्टर और विद्यार्थी थे, और कुछ राज्य के कर्मचारी। उन लोगों से घनिष्ठता और स्नेह तथा सहानुभूति का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। ऐसी स्थिति में वहाँ जीवन में मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि प्रत्येक वृक्ष का अपना-अलग व्यक्तित्व होता है, और पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी मित्र और स्वजन-परिजन बन सकते हैं।

क्षीणकाया सरिता के किनारे मरघट-भूमि फैली हुई थी, बिल्कुल बंजर और उजाड़। केवल दस-बीस वृक्ष इधर-उधर छिटके हुए थे। इधर-उधर फैले हुए प्रस्तर-खण्डों के ढेर उनके नीचे दफ़नाये गये शिशुओं के विषय में अनेक प्रकार की भावनायें हृदय में जगा देते थे। वहीं तीन कैथे के वृक्ष भी थे—लगभग बीस-बीस क़दम की दूरी पर, ठीक एक सीधी रेखा में। जब मैं वहाँ गया था तो उनमें पत्ते बिल्कुल नहीं थे। उनकी शाखायें झाड़-झंखाड़ सी फैली हुई थी। वे वृक्ष मरघट के विषाद को और भी गहरा कर देते थे, और न जाने क्यों उन्हें देखते ही मरु-भूमि की याद आ जाती थी। वसन्त ऋतु में वे तीनों वृक्ष हल्के हरे रंग की नन्हीं पत्तियों से लहलहा उठे। ऐसा लगने लगा मानों उस मरघट में जलाये और दफ़नाये गये सब प्राणियों

की अतृप्त आकांक्षायें वासन्ती हवा के स्पर्श से सजीव होकर कैथे के उन तीनों वृक्षों में पत्तियाँ बन-बनकर फूट निकली हों।

नदी-किनारे के एक टीले पर एक बहुत बड़ा इमली का पेड़ था। छाया उसकी बहुत ही घनी थी। बच्चे ढेले मार-मारकर उसपर से कच्ची इमलियाँ तोड़ा करते थे। गर्मी की दोपहरियों में जब धरती आवें की तरह तपा करती थी, गाय, भैंस और बकरियाँ उसके नीचे गुट्ट-मुट्ट जमा हो जाती थीं। चाँदनी रात में वह इमली का वृक्ष ऐसा दिखायी पड़ता था जैसे कोई भव्य पुरुष सुनहरी हरी चादर ओढ़े खड़ा हो।

हमारे कमरे की बग़ल में एक बहुत ऊँचा खजूर का वृक्ष भी था। फल उसपर नहीं आते थे। न तो मैंने उसमें कभी पतझड़ होते देखा और न कभी नये पत्ते निकलते। कुछ पुराने आधे सूखे और आधे हरे पत्तों का छत्र सिर पर लिये वह सदैव खड़ा रहता था—एकाकी और मौन, मानो कोई द्वन्द्वातीत वीतराग बूढ़ा दार्शनिक जीवन-मरण की समस्या सुलझाने में लवलीन हो। तेज हवा चलती थी तो वह झुक-झूम भर लेता था, जीवन का बस इतना ही चिन्ह उसमें शेष रह गया था।

और मैदान के किनारे एक आँवले का वृक्ष था। आँवले उसपर काफ़ी बड़े-बड़े आते थे। हम लोगों के पत्थरों का आघात भी उसे हर दूसरे-तीसरे दिन सहना पड़ता। भूनकर चटनी बनाने के लिए दो-तीन दिन भर को आँवले हम उससे तोड़ लाते थे। चाँदनी रात में उसकी झीनी हरी चादर की छटा भी देखने योग्य होती थी।

आम के वृक्ष आस-पास काफ़ी थे। दिन आये तो पीले-पीले सुगंधित बौरों से वे लद गये। कुछ दिन बाद पीले बौरों में गुलाबी बुन्दकियाँ पड़ने लगीं और फिर वे लाल-लाल-से होकर किशमिशी हो गये। भरी दुपहरी में भी उनपर कोयल रह-रहकर कूक उठती थी।

इनके अलावा नदी में शिकार खेलनेवाले बगुले और वृक्षों पर चहचहानेवाले नाना प्रकार के पक्षी मेरी दुनिया को वहाँ आबाद किये हुए थे।

वहाँ के एकाकीपन में ये सब मेरे जीवन में इस प्रकार घुल-मिल गये थे कि आज भी जब कि वहाँ के कष्टों की याद तो स्मृति-पट से धुल चुकी है, इन सबकी मधुर और स्नेह-भरी सुधि बिछड़े हुए परिजनों और मित्रों की याद की नाईं हृदय में एक मधुर-मधुर वेदना सी उठा देती है। आज भी इच्छा होती है कि उन सबके लिए, केवल उन सबको एक बार फिर देखने के लिए, सैकड़ों मील का सफ़र करके वहाँ पहुँच जाता !

[मुजफ्फरनगर (यू० पी०)

तर्क का परदा न डालें

[राय कृष्णदास]

मई के '**जी० सा०**' में जैनेन्द्रजी ने पूज्य बापू के आत्मचरित का अंश-विशेष पढ़कर चंचल हो उठने की चर्चा करके श्री मश्रुवाला की बात का ही समर्थन किया है।

किसी पहले संस्कार-वश ही तो वह ऐसे असमर्थ बन गये हैं कि "उस गहरे पश्चात्ताप की अश्रुकथा" तक से इस दशा को पहुँच जाते हैं। ऐसे संस्कार न बनने पावें, इसीलिए तो अश्लीलता की रोक-थाम आवश्यक है। सब साधु-महात्मा नहीं हो सकते। स्वयं साधु-महात्मा भी तो जन्म के साधारण नर ही होते हैं; नर से ही तो नारायण बनते हैं।

किन्तु आज इसके लिए कितनी प्रतिकूल परिस्थिति हो रही है ! एक सन्तकवि की उक्ति याद आती है—'**मानहु नर कै अर्थ नरक भा**'। जैनेन्द्रजी मानवता पर रहम करें—समस्या पर तर्क का परदा डालने से काम न चलेगा। घाव ऊपर से पुज गया और भीतर-भीतर पाल करता गया तो ?……। यों तो, चोर भी अपने पक्ष की तात्त्विक व्याख्या कर सकता है।

व्यावहारिकता चाहिए

[वृजनारायण नरूला]

…सा०' के विद्वत्ता-पूर्ण लेखों में मुझे … दिलचस्पी रहती है और इसी कारण … व अश्लील की चर्चा ने मेरा भी … आकर्षित किया है। जैनेन्द्रजी का मई मास … में अश्लीलता-सम्बन्धी आपके नाम का … । उनके विचारों का अध्ययन करने के … मुझे ऐसा लगा कि जिस औसत दर्जे के … का पक्ष लेकर उन्होंने इस विषय में अपना … दिया है, उसी मनुष्य को उन्होंने आदर्श- … के इतने ऊँचे मंच पर बिठला दिया है कि … और व्यावहारिक बुद्धि की दृष्टि से वह … सर्वथा त्रुटि-पूर्ण हो गया है। जैनेन्द्रजी के … मेरे हृदय में बड़ी श्रद्धा है। उनके आदर्श- … उच्चवृत्ति का मैं हमेशा प्रशंसक रहा हूँ। … मुझे हमेशा यह अनुभव होता रहा है कि … अपनी कृतियों द्वारा "चाहिए" की ही … है जबकि संसार को "करो" की देन की … आवश्यकता है। प्रस्तुत विषय में भी जिन … को लेकर उन्होंने अपना निर्णय दिया … एक उच्च आदर्शवादी के लिए ही संभव … हमारे औसत दर्जे के मनुष्य का वहाँ क्या …!

…जैनेन्द्रजी लिखते हैं—"इसपर से मैं नतीजा … चाहता हूँ कि अश्लीलता यदि है तो … नहीं, व्यक्ति में है। मेरे भीतर जिस … को लेकर बुराई उभर उठी है वह … उतना भर्त्सनीय नहीं जितना मैं स्वयम् … बुराई को अपने भीतर न टटोलकर उसे … आरोपित करूँ तो यह मेरे हक में छल … होगी।"—"अश्लीलता कहाँ धरी है … में? और हो तो उसमें दम कितना है?" … वृत्ति का प्रश्न है, वस्तु का वह थोड़े

…सिद्धान्ततया यदि इन विचारों पर मनन … जाय तो इसमें कदापि संदेह नहीं कि … ने बड़ी तथ्यपूर्ण और सही बात कही है। परन्तु व्यावहारिकता के यन्त्र से यदि इसे परखा जाय तो यह विचार केवल सराहने योग्य ही रह जाता है, अमल में लाने योग्य कदापि नहीं; क्योंकि औसत दर्जे का मनुष्य अधिकतया वस्तु के गुण-दोष उस वस्तु में ही देखता है। यह उसकी प्रकृति बन चुकी है, फिर वह चाहे कितनी भी त्रुटि-पूर्ण क्यों न हो। इस त्रुटि-निवारण के लिए हमारे यह कह देने से कार्य थोड़े चलेगा कि हम गुण-दोष वस्तु में न देखकर अपने में उन्हें देखें, बल्कि पहिले तो हमें गुणवाली व दोष-युक्त वस्तुओं का विश्लेषण करके गुणवाली वस्तुओं को अपनाने का ही पाठ पढ़ाना होगा और उसके बाद जबकि उनके विचार गुणों को ग्रहण करने योग्य होजावेंगे तो उन्हें धीरे-धीरे गुण व दोष की कल्पना के भूत को मिटा देने का सामर्थ्य आ जायगा। मनुष्य का वस्तु-ज्ञान **वस्तु + उसके विचार** ही तो है। साधारण मनुष्य में इतना सामर्थ्य कहाँ कि वह इसका विश्लेषण करके वस्तु को वस्तु के हवाले कर, अपने विचारों के लिए अपने आपको सज़ा दे? उसे तो उसके विचार भी उस वस्तु के अंग-प्रत्यंग प्रतीत होते हैं और इसीलिए वह उस वस्तु को ही दोषयुक्त व गुणवाली कह कर संतोष कर लेता है। इसके अलावा सबसे बड़ी बात तो यह है कि बहुत-सी वस्तुओं का ज्ञान उसे विरासत में भी मिलता है। उसे उस वस्तु को जानने के लिए बुद्धि खर्च ही नहीं करनी पड़ती। ऐसी अवस्था में मनुष्य की वृत्ति पर ही उसके वस्तु-ज्ञान को छोड़ देना त्रुटि-पूर्ण ही नहीं वरन ख़तरनाक भी है। वृत्ति अपना काम करती है। बहुधा अवसर आते हैं कि औसत दर्जे का मनुष्य भी अपनी वृत्ति पर निर्भर रहकर वस्तु-ज्ञान प्राप्त करता है। परन्तु साधारण मनुष्य के लिए वृत्ति का प्रश्न उसका ख़ुद का नहीं है। उसकी वृत्ति तो बाह्य वातावरण बनाती है। वह समय और वातावरण की दासी है। ऐसी हालत में वृत्ति तो मनुष्य को धोखा

देने में ही प्रवृत्त होगी। जैनेन्द्रजी ने इसपर एक उदाहरण दिया है--"मैं कह सकता हूँ कि सम्भ्रान्त श्रेणी में पहिनी जानेवाली चटकीली साड़ियाँ और निमन्त्रण देते जम्पर और ब्लाउज अश्लील है और जंगल में लकड़ी बीनती या घास छीलती नग्न-प्राय एक भील युवती की मूर्ति में अश्लीलता नहीं है।" सम्भ्रान्त श्रेणी की युवती की पोशाक भी अश्लील है वह इसीलिए न कि वह निमन्त्रण देनेवाली है, उसमें विलास ही विलास की गन्ध है। परन्तु नग्नप्राय भील युवती भी अश्लील है अवश्य; चाहे वह एक आदर्शवादी के लिए न हो। क्या एक साधारण मनुष्य जो कि भील-समाज का एक व्यक्ति नहीं है (भील समाज की वृत्ति तो उस वातावरण में ही बनी है) एक नग्नप्राय युवती को देखकर कामासक्त होने से बच सकेगा? इसी नग्नप्राय भील युवती को यदि उसके समाज में भी पूर्ण नग्न अवस्था में भेजें तो क्या वह समुदाय भी उसमें अश्लीलता नहीं देखेगा? देखेगा और अवश्य।

श्रद्धेय मश्रुवालाजी ने बड़ी तथ्यपूर्ण बात लिखी है। वे लिखते हैं "भोजन, शृंगार आदि के प्रकृति-धर्म मादक हैं। उनमें चित्तशुद्धि या शरीर-शुद्धि की सहज प्रसन्नता नहीं उत्पन्न होती; पर मद का उन्माद—जिसे आनन्द माना जाता है—होता है। जहाँ मादकता है वहाँ मर्यादा-धर्म उत्पन्न हो ही जाता है।" इन पंक्तियों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि वृत्ति को वश में कर लेना मादकता के लिए कहीं आसान काम है। और इसीलिए मादकता को मर्यादित करना वांछनीय है।

जैनेन्द्रजी लिखते हैं—"अश्लीलता को लेकर हम आतंक में न पड़ें। स्त्री-पुरुष-संबंध से इसका कोई संबंध नहीं है। वैसा हो तो विवाह-संस्कार गृहस्थ-धर्म, पितृऋण, मातृ-सेवा आदि सब झूठे पड़ जायेंगे। विवाह से वर-कन्या पति-पत्नी बनते हैं। अर्थात् विवाह उन्हें परस्पर में (भोग द्वारा) सन्तति सृष्टि करने की अनुमति देता है। विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है। इसी तरह पितृत्व, मातृत्व आदि समाज को कायम रखनेवाली पवित्र संस्थायें हैं।" जैनेन्द्रजी के इन विचारों में भी भूल है। अश्लीलता यदि स्त्री-पुरुष-संबंध से नहीं उपजती है तो फिर है क्या? कामोत्तेजक वस्तु ही तो अश्लील है और कामोत्तेजन स्त्री-पुरुष-संबंध ही में तो निहित है। इस परिभाषा से विवाह-संस्कार इत्यादि क्योंकर दूषित हो सकते हैं! **विवाह-संस्कार धर्म माना गया है न कि वह स्वयं ही धर्म है। उसको धर्म का जामा इसीलिए पहनाया गया है कि समाज की सुसंस्कृत-रूप से वृद्धि हो सके।** वर्ना क्या पति-पत्नी का भोग अश्लील नहीं है? वह है अवश्य, परन्तु क्योंकि इसकी अनिवार्यता देखकर उसे धर्म का नाम देकर मर्यादित कर दिया गया है, हम विवाह-संस्कार को धर्म के नाम से ही याद करना सीख गये हैं, और उसमें निहित अश्लीलता हमारी आँखों से ओझल होगयी है।

पुत्र क्या पिता या माता को धर्म के कारण मानता है? धर्म-वृत्ति उसको उन्हें सम्मान देने में सहायक अवश्य होती है, परन्तु असली कारण तो कुछ और ही है। पुत्र अपने पिता-माता को अपना जन्मदाता मानकर ही उन्हें पूजता है। इस पूजा में पूरी उच्चता है। उसका यह पूजना उसके उत्पत्ति-कारण से क्योंकर दूषित हो सकता है? वह तो उसका चिन्तन भी नहीं करता और क्यों करे? उसे क्या पड़ी कि वह यह जाने कि उसकी उत्पत्ति क्योंकर हुई? उसे तो यही जानना है कि उसकी उत्पत्ति हुई और अमुक माता-पिता के द्वारा। वह उसी को ऋण-स्वरूप लेकर उनको आदर और श्रद्धा देता है। धर्म इस आदर और श्रद्धा में स्थायित्व की पुट दे देता है। ऐसा ही एक उदाहरण जैनेन्द्रजी ने महात्मा गांधी की 'आत्म-कथा' में से दिया है। उस उदाहरण से तो साफ़ यह प्रतीत होता है कि अश्लीलता का मर्यादित करना अत्यन्त आवश्यक है। महान् साहित्यों में अश्लीलता के समावेश ने जिस प्रकार का बीभत्स लाभ उठाने का मौका दिया है वह क्या किसी की आँखों से छिपा है? 'आत्म-कथा'

यह उद्धरण भी अश्लील ही होता, यदि वह महात्मा गांधी की लेखनी से न निकलता––क्यों के महापुरुषों को ही मर्यादा-भंग करने का अधिकार हो सकता है। उनकी हरएक बात शिक्षा-प्रद होती है और उनके हर लेख व उसको शिक्षा के रूप में ही मनन करना चाहिए। क्या एक महापुरुष की लेखनी के एक उद्धरण से साधारण मनुष्य का मन नहीं डिगा ? क्या यह पर्याप्त सबूत नहीं कि अश्लीलता बहुत ही खतरनाक है और उसका मर्यादा में रखना अत्यन्त आवश्यक है। इनका नाश नहीं किया जा सकता क्योंकि यह अनिवार्य जो है। परमात्मा ने इसे एक साधन बनाया है जिसपर कि समाज के बने रहने का ही दारोमदार है। इसलिए अश्लीलता को मर्यादित ही किया जा सकता है। अतएव अश्लीलता के कीटाणु सत्य की धूप से मरेंगे अवश्य, परन्तु सत्य की धूप तो पहले उत्पन्न की जाय। आज कितने ऐसे सामर्थ्य-वान हैं जो अपनी वृत्ति पर भरोसा रखकर जीवन-यापन कर सकते हैं ? यहाँ पर तो अँधेरा-ही-अँधेरा है, जिसमें कि यदि अश्लीलता को पनपने दिया जाय तो वह अनजाने में ऐसा गला दबोचे कि समाज का प्राणान्त ही करके छोड़े। अश्लीलता को मर्यादित करके पहले हम सत्यवृत्ति तो पैदा कर लें। तभी हम यह कह सकेंगे कि सत्य की धूप हमारे पास है, लुकाने-छिपाने के लिए अँधेरे की हमें आवश्यकता ही क्या ह ?

मैं तो अंत में यह कहकर ही समाप्त करता हूँ कि वस्तु में भी अश्लीलता की संभावना कम मिक़दार में नहीं होती। यह बात मानने योग्य है कि चित्तवृत्ति द्वारा ही हम श्लील और अश्लील का बोध पाते हैं, परन्तु चित्तवृत्ति बाह्य कारणों से भी तो बनती है। वैसे तो संसार ही एक माया है और हममें और परमात्मा में भेद हमारी चित्त-वृत्ति का ही भेद है। परन्तु बाह्य सृष्टि ने हमारे भेद को एक स्थायी और सत्य रूप-सा दे दिया है। अतएव यह मानते हुए भी कि अश्लीलता वृत्ति पर निर्भर है, वस्तु स्वयं भी अश्लील हो सकती है। यह भी संभव है कि वह एक के लिए हो और दूसरे के लिए न हो; परन्तु किसी के लिए है तो। जैसे एक नग्न युवती का चित्र। बालक के लिए चाहे वह चित्र मात्र हो, वृद्ध के लिए भी वह ज्यादा मानी न रखता हो परन्तु एक युवा के लिए तो वह कामोत्तेजक और अश्लील ही है। वह उसकी चित्तवृत्ति को अवश्य ही भड़कायगा। समर्थ पुरुष ही चित्त-वृत्ति को वश में रख सकते हैं, वर्ना क्या औसत दर्जे के मनुष्य को बाह्य अश्लीलता डिगा नहीं सकती ? मेरे विचार में भी अश्लीलता का मूल आरम्भ स्थान तो चित्त-वृत्ति ही है परन्तु औसत दर्जे के लिए वह मूल स्थान कुछ मानी नहीं रखता और बाह्य वस्तु ही उसके लिए मूल-स्थान बन जाती है।

जैनेन्द्रजी ने श्रद्धेय मश्रुवालाजी के लेख पर टिप्पणी करके एक आदर्श ही का नमूना रखा है। चाहिए थी उसमें वास्तविकता और व्यावहारिकता।

सच्ची माता

एक सच्ची माता जो वास्तव में ईश्वर के नियम को जानती है अपने बच्चों को भी उस नियम का पालन करनेवाला बनायेगी। ऐसी माता जब अपने बच्चे को आवश्यकता से अधिक खाता हुआ देखेगी, अत्यधिक लाड़-प्यार से बिगड़ता हुआ देखेगी और ज़रूरत से ज्यादा कपड़ों से लदा हुआ देखेगी तो उसे हार्दिक दुःख होगा।

ऐसी स्त्री अपने बच्चे को वह शिक्षा न देगी, जो उसे अपने ईश्वरीय कर्तव्य को छोड़कर बाहर निकलने को प्रेरित करे। वह तो उसे वही शिक्षा देगी, जिससे बालक अपने जीवन-श्रम का भार बखूबी उठा सकें।

[स० सा० मण्डल]

—टॉल्सटॉय—

[हम क्या करें ?

राष्ट्रभाषा कैसे बने ?

प्रिय सम्पादक जी,

पिछले महीने का पत्र मैंने आपको टीकमगढ़ से लिखा था। वहाँ हिन्दी के काम करनेवाले कई जमा हो गये थे। बनारसीदासजी तो थे ही। हम लोग मिलकर एक-एक दिन एक-एक विषय को ले लेते और चर्चा द्वारा एक दूसरे को समझने की कोशिश करते। इस स्वाध्याय-मण्डल में एक रोज़ राष्ट्र-भाषा के बारे में भी विचार हुआ और हम लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि—

(१) भाषा लोक-व्यवहार के सुभीते के लिए है। उससे अलग उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं। इसलिए लेखक की हैसियत से भाषा के बारे में इतना ही विचार काफ़ी है कि वह सहज और हार्दिक हो।

भाषा का प्रश्न असल में जीवन के प्रश्न में घुला-मिला है। इसलिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि व्यक्ति की सहानुभूति सब ओर खुली हो और उसका जीवन उत्तरोत्तर व्यापक हो। वह आसपास के जीवन से विलग न हो, बल्कि उससे मिला हुआ हो। तब भाषा अपने आप जैसी चाहिए वैसी होती चलेगी।

(२) हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा वह है जो उसके अधिक से अधिक भाग में समझी और बोली जाती है। उसे एक किनारे से हिन्दी तो दूसरे किनारे से उर्दू भी कहा जा सकता है। आसानी के लिए उसे 'हिन्दुस्तानी' कह सकते हैं।

(३) राष्ट्र-भाषा की लिपि (अभी तो) नागरी और फारसी दोनों मानी जा सकती हैं। जब एक लिपि का सवाल आवे, तो देश के सब लोग मिलकर उसका विचार और निर्णय करें।

(४) प्रत्येक हिन्दी के लेखक को उर्दू और हर उर्दूवाले को हिन्दी जानना ज़रूरी है।

(५) कोशिश करनी चाहिए कि हिन्दीवाले अपनी सभा और समाजों में उर्दू के काम करनेवालों को और उर्दूवाले अपनी सभाओं और जलसों में हिन्दी-कार्यकर्ताओं को बुलावें। इसके लिए अगर एक ही प्लैटफार्म बनाने की योजना हो तो अच्छा है। इस सम्मिलित योजना की भूमिका सांस्कृतिक हो।

(६) भाषा के बारे में किसी शब्द के प्रति बहिष्कार की वृत्ति न हो। ध्यान यही रखा जाय कि वह शब्द आम जनता में खपने लायक है।

(८) राजनीति, विज्ञान या और शास्त्रीय विषयों के लिए जहाँ नये शब्दों की जरूरत पड़े वहाँ भरसक देशज शब्दों से काम चलाया जाय।

(९) भाषा के बारे में यह चेतना बिल्कुल न रखी जाय कि उसमें संस्कृत और फ़ारसी से निकले शब्दों का अनुपात कितना है ?

(१०) असल में तो राष्ट्रभाषा के निर्माण में सब प्रांतीय भाषाओं और प्रादेशिक बोलियों को अपना-अपना दान देना है। इसलिए उस प्रश्न पर अखिल-भारतीय दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए, न कि हिन्दी-उर्दू के मेल के खयाल से।

इसमें कलम (३) में 'अभी तो' को कोष्ठक में मैंने किया है। आज हिन्दी उर्दू दो हों, और दोनों में बदगुमानी हो लेकिन क्यों न हम मान लें कि एक दिन आ सकता है, जब लगभग सब कोई दोनों लिपियाँ जानगे और इसलिए किसी भी एक की तरफ़दारी किये बिना उनपर विचार कर सकेंगे ? तब समय होगा कि राष्ट्र-शक्ति के मितव्यय की दृष्टि से हम एक राष्ट्र-लिपि का निर्णय कर सकें। 'अभी तो' कहकर हम भविष्य के सम्बन्ध में इसी राष्ट्रीय आत्मविश्वास का परिचय देते हैं। उसके नीचे छल नहीं, सद्भावना है। फिर भी चूँकि हवा में शक भरा है इससे कोष्ठक के शब्द गिराये जा सकते हैं।

पहली धारा में वह रुख है, जिससे इस प्रश्न को लेना चाहिए। अर्थात् भाषा के प्रश्न पर हिन्दुस्तानी नागरिक की, न कि इस या उस प्रान्तवासी या भाषाभाषी की, हैसियत से विचार करना चाहिए। भाषा के सवाल से

ज़िन्दगी का सवाल है। यह ज़रूरी है स्तान के लोगों से हमारा हेलमेल बढ़े। हिन्दी में संस्कृत की तरफ़ और उर्दू में की तरफ़ बढ़ने की भावना कम हो। बल्कि तब वे एक-दूसरे की तरफ़ । राष्ट्रीयता अगर साम्प्रदायिकताओं में कमज़ोर पड़ रही है, तो बहुत-कुछ इस- कि हम पड़ोसी को पड़ोसी नहीं, बल्कि र्मी या विधर्मी, स्वपक्षी या विपक्षी के देखते हैं। पड़ोसी-धर्म पर ज़ोर देने से ता हूँ कि भाषा की समस्या की कठिनाई होती जायगी।

अपने-अपने दायरों में घूमते हैं। हिन्दी- हिन्दी में, उर्दूवाला उर्दू में। तमाशा यह पड़ोस का साहित्यिक मेरे लिए एक- अपरिचित रहता है और काशी-प्रयाग- मेरे अपने बन जाते हैं। यह सिर्फ़ अन्तर से कि वह अपनी कहानी दूसरी में लिखता है। यह हालत आज हमको स्वाभाविक लग आनी चाहिए। इससे, आगे ता हूँ कि उर्दू-हिन्दीवाले आपस में मिला करें सांस्कृतिक मंच पर वह मिलना हो।

'संस्कृति' शब्द यहाँ निरर्थक नहीं है। सीदासजी की राय थी कि वह न रहे। मैं उस शब्द को न गिरा सका। वजह यह मिलते तो हम अब भी राजनीतिक धरातल हैं; पर वह मिलना क्या काफ़ी हुआ है? ऊपर से मिलाकर किसी क़दर अन्दर बढ़ने का सबब नहीं हो गया है? क्योंकि नीति के मंच पर अधिकारों की चेतना है, राजनीति विभेद डालती देखी जाती है, जगाती नहीं। उससे मेल होता भी है तो का, मन का नहीं। मन का मेल यह नहीं माँगता हमारी पार्टी में या गिरोह में आओ। जहाँ रहो, पर मित्र रहो। किसी को उसकी से, यानी उसके विश्वासों और विचारों से, ने की इच्छा नहीं, बल्कि सिर्फ़ आपसी और मेल बढ़ाने की तबीयत है, उसको मैं सांस्कृतिक धरातल कहता हूँ। हिन्दी और उर्दू के काम करनेवालों को पास आने और मिलने-जुलने की ज़रूरत है, तो उसी धरातल पर। उसीका कुछ फल निकलेगा।

इन धाराओं में एक दिशा और भी देखी जा सकती है। वह यह कि भाषा के प्रश्न के समाधान के लिए हिन्दी उर्दू की तरफ़ या उर्दू हिन्दी की तरफ न देखे। जब मसला इस ढंग पर रक्खा जाता है कि इस नये अंग्रेज़ी शब्द के लिए हम फारसी-अरबी के सहारे से देसी शब्द बनायें या संस्कृत के सहारे से, तो सवाल मुश्किल हो जाता है। ऊपर सुझाया गया है कि ऐसे समय हम देहात की शरण लें। वहाँ शिष्ट भाषा की जैसी दरिद्रता नहीं है। प्रादेशिक बोलियों में बहुत शब्द भरे पड़े हैं, जो बड़ी सुघराई के साथ उठाकर अन्तर्प्रान्तीय चलन में लाये जा सकते हैं। अपने ही घर के उस भंडार से आँख मोड़कर हिन्दी और उर्दू में अनबन तो बन सकती है, निपटारा नहीं हो सकता। असल में तो हिन्दी-उर्दू दोनों ही हिन्दुस्तान में जनमी हैं। उर्दू में हों कितने ही शब्द विदेशी, वह हमारे हिन्दुस्तान की धरती से टूट नहीं सकती। यह तो हिन्दुस्तान की सिफ़त है और रही है कि बाहर के लोग, प्रभाव, शब्द आये हैं और पच गये हैं। उर्दू ने हिन्दी को समृद्ध किया है। उर्दू से सदा हिन्दी-लेखक की कलम में खूबी ही पैदा हुई है। उससे उसकी भाषा का वैभव बढ़ा है। इसलिए, जैसे हिन्दी वैसे ही उर्दू, दोनों अपने को भरने और बढ़ाने के लिए हिन्दुस्तान के देहात की शरण लें। इन दोनों भाषाओं के विज्ञों की कमिटियों में झगड़ा मिलेगा, देहात में बनाबनाया सुलझाव मिल सकेगा। इससे कहा गया है कि जहाँतक हो नये भावों के लिए 'देशज' शब्दों से काम लिया जाये।

धारा (९) के बारे में भी मतभेद था। बनारसीदासजी उसे अनावश्यक देखते थे। लेकिन उसमें कहा गया है कि संस्कृत या फारसी से निकले हुए शब्दों की बराबर-बराबर तोल रखने से हिन्दुस्तानी न बनेगी। वह निगाह ही

ग़लत है । यानी अगर राष्ट्रीय सुविधा के लिए आदर्श हिन्दुस्तानी का निर्माण होना है, तो उसके लिए ज़रा भी यह नहीं सोचना होगा कि संस्कृत के शब्द काफ़ी आ गये या नहीं या फ़ारसी शब्दों का समुचित प्रतिनिधित्व हो गया है अथवा नहीं ? राजनीतिक सदभिलाषा में ऐसी भूल होती देखी जाती है । एक राष्ट्रीय मुस्लिम नेता जहाँ-तहाँ अपने भाषण में संस्कृत के शब्द छिड़ककर शायद मानें कि वह हिन्दुस्तानी की माँग को पूरा कर रहे हैं । इसी तरह हिन्दू राष्ट्रवादी मौक़े-बे-मौक़े अपनी भाषा में फ़ारसी लफ्ज डालकर अपने को सही दिशा में चलता हुआ मान सकते हैं । पर सच यह है कि यह काफ़ी नहीं है । दोनों को शब्द के असली अर्थ में डेमोक्रेटाइज़ होना होगा, यानी जनता का आदमी बनना होगा, तब उनसे असल तौर पर हिन्दुस्तानी का भला हो सकता है । उर्दू और हिन्दी के मेल के इरादे से एक कृत्रिम, अनमिल, गाँठदार भाषा देने से 'हिन्दुस्तानी' की सेवा नहीं होती । भाषा तो हर हालत में सहज और हार्दिक और सुबोध होनी चाहिए । भाषा में सुबोधता आयेगी तो तभी जबकि व्यक्ति का जीवन जनता से मिल चलेगा। **जबतक व्यापक लोक-जीवन के साथ हमारा मेल नहीं है, तबतक सच्चे अर्थों में सुलभ और सही हिन्दुस्तानी भाषा का निर्माण होने में हम से मदद नहीं मिलेगी ।** अर्थात् हिन्दी-उर्दू के संयोग से बननेवाली 'हिन्दुस्तानी' को अपने आप में एक अतिरिक्त उद्देश्य बनाकर हम बोलें-लिखेंगे तो उससे मुश्किल उतनी हल नहीं होगी, जितनी कि तब होगी, जब बग़ैर किसी हिन्दी-उर्दू के ख़याल के जनता के साथ अपने सुख-दुख को मिला देने की कोशिश में हम भाषा का व्यवहार करेंगे । कुछ यही आशय मानकर नवीं क़लम को रद्द नहीं किया सका ।

आखिरी धारा में भी यही बात स्पष्ट की गयी है । इस जगह पंडित सुन्दरलालजी के अभी आज ही पढ़े लेख का ज़िक्र असंगत न होगा। उन्होंने सवाल को इतिहास की ओर से देखा है । सवाल अमल का है और इतिहास में बहस है। यों वह लेख पढ़ने लायक़ है । उसमें 'हिन्दी' नाम की ऐतिहासिक परम्परा को देखते हुए उसे 'अवधी', 'ब्रज', 'राजस्थानी' आदि भाषाओं से अलग अम्बाले से मुरादाबाद तक के प्रदेश में बोली जानेवाली 'खड़ी बोली' के अर्थ में लिया गया है । उसी पर से फिर राष्ट्रभाषा का विवेचन किया है। कहा है कि यह 'हिन्दी' (खड़ी बोली) अन्तर्प्रांतीय व्यवहार का माध्यम थी । लेकिन अब 'हिन्दी' की सत्ता यहाँ से हटकर दूर—संस्कृत-मिश्रित भाषा की अभिधा में—चली गयी है, जबकि 'उर्दू' नाम क़रीब-क़रीब वहीं क़ायम है इस तरह आज अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए जब एक राष्ट्र-भाषा का सवाल है तब हिन्दी के बजाय उर्दू कहने से ठीक-ठीक खड़ी बोली का भाव मिल सकता है ।

पंडितजी की बात ठीक हो सकती है। पर आज राष्ट्रभाषा खड़ी बोली के आधार पर ही और उसी दायरे में बनेगी, यह स्थिति नहीं रह गयी है । ऊपर अंतिम धारा (१०) इसीलिए कहती है कि राष्ट्रभाषा के निर्माण में न सिर्फ़ हिन्दी और उर्दू बल्कि और भी प्रांतीय भाषाओं और बोलियों से योग माँगा जायगा । इसलिए हिन्दी-उर्दू की सुलह या अनबन पर राष्ट्रभाषा का सवाल टलनेवाला नहीं है और उसपर उस दृष्टि से नहीं बल्कि अखिल भारतीय दृष्टिकोण से ही विचार किया जाना चाहिए ।

इस सबके बाद एक मैं अपने मन की बात कह देना चाहता हूँ । आज देश के सामने है कि वह चुन ले कि वह अपने लिए क्या भविष्य और कैसी संस्कृति चाहता है ? हम शहर चाहते हैं कि गाँव चाहते हैं—मिलें चाहते हैं कि खेती चाहते हैं ? हम अपने बीच समता चाहते हैं कि ऊँच-नीचता (Aristocracy) भी चाहते हैं ? मेरे मन में किंचित् सन्देह नहीं है कि भाषा के सवाल के समाधान की जड़ें अगर है

हीं हैं। उसी बिंदु के चारों ओर और सवाल हुए हैं। अगर हम शहरी सभ्यता चाहते र पश्चिम से आयी हुई इसी क़िस्म की और फ़ौजें और सरकार चाहते हैं, तो के लिए हम 'रोमन' ले सकते हैं,—सकते ही लेनी पड़ेगी—और अंग्रेज़ी की शिक्षा रे देश में अनिवार्य बनाने का आन्दोलन सकते हैं। पर अंग्रेजी से गुलामी आयी है, राष्ट्रभाषा का अगर सवाल उठा है तो गुलामी को तोड़ने के लिए। और यह भी है कि गुलामी हमारी दरिद्रता पर कायम और दरिद्रता हमारी शहरी लूट पर कायम इससे अगर सचमुच गुलामी से छूटना है, हात को आवाद करना होगा और जो वहां पैदा होती, पर खिंचकर कहीं और जाती है, उसको वहीं पहुँचाना होगा। मैं चाहता हूँ कि भाषा की असल समृद्धि हीं से आयेगी। इसलिए क्या तो हिन्दी- और क्या उर्दूवाले, सबको कहना होगा कि अलग अर्थ की या भाषा की सम्पन्नता जाओ, क्योंकि उसमें जूँठन और उतरन है। उर्दू कृत्रिम है और तुम्हारी हिंदी कृत्रिम है। दोनों लौट चलो वहाँ जहाँ सब अकृत्रिम हैं। वहाँ से भाषा लो। वह एक ही साथ हिन्दी का काम दे जायगी और उर्दू का भी काम दे जायगी। क्योंकि वही असल 'हिन्दुस्तानी' होगी।

ऊपर के मन्तव्य की क़ीमत इस लिहाज से सविशेष है कि कई हिन्दी-लेखकों का वह 'संयुक्त प्रतिनिधित्व' करता है। मैं चाहूँगा कि आप उसको ग़ौर से देखें, आवश्यक हो तो संशोधन सुझायें और फिर अन्तिम रूप से जो मसविदा बने उसको हिन्दी-संसार के आगे प्लैटफॉर्म के तौर पर मजबूती से जमाने में मदद करें। राजनीतिक राष्ट्रवादी पुरुषों से सुनते रहने के लिए ही साहित्यिक जन नहीं हैं, उन्हें उस बारे में अपना आधार ख़ुद पा लेना होगा। आप राष्ट्रीय युद्धों में जेल गये हैं, पर यहाँ तो हम साहित्य को लेकर साथ हैं। आशा है कि आप इस आवश्यकता पर ध्यान देंगे और एक स्वस्थ और जीवन-तत्पर साहित्य-मंच का आविर्भाव हिन्दी में होने देंगे।

सप्रणाम आपका

७, दरियागंज, दिल्ली]

जैनेन्द्रकुमार

वही तो कलाकार है

[सोमनाथ गुप्त]

वही तो कलाकार है, जो संसार की विभूतियों में सामंजस्य उत्पन्न कर देता है।

जिसकी तूलिका से रूपसी उर्वशी अंकित होती है और भिखारिणी के चिथड़े खिल उठते हैं। जो मृदुल वाणी के आवरण में जीवन के सत्य को अवतरित कर जो प्रेय और श्रेय का समन्वय ता है।

अनुभूति ही उसकी साधना है। उसीके सहयोग से वह सत्यं, शान्तं और शिवं को सुन्दरं से ंजित करता है।

केवल कल्पना ही उसकी क्रीड़ाभूमि नहीं। जीवन-पक्ष की सत्यता उसके भावकणों के रूप में की तरह हमें आर्द्र कर देती है। सूर्य्य की रश्मि के समान वह हमारे जीवन में नयी शक्ति र नया उत्साह भर देता है।

वह यथार्थ का आदर्श से मेलकर, परुष और कोमल के विशाल बंधुत्व की घोषणा करता है। उसका संसार अनुपम है। कहीं धूप, कहीं छाया फैलाकर वह अपनी माया रचता है पर कितनी , कितनी आकर्षक, कितनी सत्य और कितनी स्थायी ! क्योंकि वह कलाकार है !

परीक्षक से

[वियोगी हरि]

लोग पूछते हैं, कि तुम सारी परीक्षाएँ पार कर चुके होगे, नहीं तो दूसरों के परीक्षक तुम कैसे बन पाते ? यह भी भला कोई प्रश्न है ?

साफ़ ही यह उनका भ्रम है। परीक्षा लेने का परीक्षा देने से कोई सम्बन्ध नहीं। यह तो बिल्कुल बेतुकी बात है। परीक्षा तो चाहे जो चाहे जिसकी ले सकता है।

दूसरों को सज़ा देनेवाले न्यायाधीश के लिए यह आवश्यक थोड़ा ही है कि वह खुद सारी सजाएँ काट चुका हो। मोती निकालनेवालों का धंधा तो है नहीं कि बिना खुद गोता लगाये मोती हाथ ही न आ सकें। किसीका फ़ैसला करते या परीक्षा लेते समय खुद बहुत गहरे जाने की ज़रूरत नहीं होती।

परीक्षक, तुम्हारा काम तो दूसरे के अज्ञान को टटोलना है, तुम तो केवल इतना देखना चाहते हो कि उसके अन्दर अज्ञान कहाँ-कहाँ छिपा पड़ा है ?

तुम्हें यह नहीं देखना कि उसमें ज्ञान का अंश कितना है। यह काम तो खुद परीक्षार्थी का है।

परीक्षा यों कोई नयी शोध नहीं है। परीक्षा पहले भी होती थी, पर तब इसका इतना विकास नहीं हुआ था। तब की परीक्षाएँ बर्बर युग की याद दिलाती हैं। परीक्षकों की निष्ठुरता सामने आती है, तो हृदय काँप उठता है।

विश्वामित्र नें हरिश्चन्द्र की परीक्षा ली थी; राम ने सीता की; कृष्ण और अर्जुन ने मोरध्वज की; और इन्द्र ने शिवि की। सब-के-सब वे कैसे निर्दय परीक्षक थे !

वे जीवन की परीक्षा लेते थे, जब कि तुम मनुष्य की बौद्धिक योग्यता को परखते हो, और वह भी एक अच्छे वैज्ञानिक ढंग से।

उन पुराने परीक्षकों के पास परीक्षा का कोई पैमाना नहीं था। ज्ञान को नापने का तुम्हारे पास, जब कि, एक अद्भुत फीता है, जिससे तुम परीक्षार्थी के मस्तिष्क को निश्चित अंकों से बाँध लेते हो।

तुम्हारी निर्णय-बुद्धि की ओर कोई उँगली नहीं उठा सकता। तुम हज़ारों परीक्षार्थियों की योग्यता को खूब बारीकी से नाप लेते हो। तुम्हारे चेहरे पर की भाव-रेखाएँ बतला देती हैं कि किस परीक्षार्थी ने तुम्हारे प्रश्न को किस तरह हल किया है।

तुम्हें आश्चर्य होता है कि प्रश्नों का तुम खुद जैसा उत्तर लिखते वैसा परीक्षार्थी ने क्यों नहीं लिखा—तुम्हारी जैसी योग्यता उसकी क्यों नहीं है !

संयोग से किसी प्रश्न का उत्तर देखने से छूट जाये, या अंकों का जोड़ ग़लत लग जाये, या उत्तर-पुस्तक जाँचते समय ध्यान तुम्हारा कहीं इधर-उधर चला जाये, तो उसके लिए तुम थोड़े ही दोषी ठहराये जा सकते हो ?

और वह कमबख्त असफल विद्यार्थी रेल की पटरी पर लेटकर जान दे दे, तो उसकी मृत्यु के जवाबदेह तुम थोड़े ही हो सकते हो ?

तुमने तो अनासक्त भाव से अपने हाथ में योग्यता-अयोग्यता नापने का फीता पकड़ रखा है—नाप लेते समय सूत-दो-सूत वह इधर-का-उधर हो जाये और उससे कोई आत्मघात कर बैठे, तो उसे 'संयोग' ही कहा जायेगा; परीक्षा की वैज्ञानिकता इससे सदोष नहीं कही जा सकती।

और तुम्हारा वह 'संयोग' हमेशा ही घातक नहीं होता; किसी-किसी के हक़ में तो वह श्रेयस्कर सिद्ध होता है। तुम्हारी अंकों की आकस्मिकता से निपट अयोग्य भी कभी-कभी योग्य बन जाता है।

कभी-कभी तुम उदारता की लहर में आकर 'कृपांक-दान' से भी काम लेते हो। आशय यह कि पुराने बर्बर परीक्षकों से तुम बहुत आगे निकल गये हो।

परीक्षा लेने की तुम्हारी पद्धति को इधर कुछ आलोचकों ने अप्राकृतिक और ग़लत साबित

हैं। पर तुम उनकी आलोचना से कभी
नहीं हुए और न कोई कारगर परीक्षा-
ही वे अबतक निकाल पाये हैं। और
आलोचनाओं पर तुमने कभी ग़ौर से
भी नहीं किया है। परीक्षा तुम्हें खुद तो
नहीं, इसलिए परीक्षा-पद्धति पर विचार
करने की ज़रूरत भी नहीं।

परीक्षक, तुम्हारे श्रम को अबतक तो सफलता ही मिली है; साथ ही, विवेक और न्याय को उत्तेजना भी। और स्वयं आलोचक भी तुम्हारे हाथ से प्रमाण-पत्र पाने की अभिलाषा रखते हैं।

पत्रकार चिन्तामणि

[राजेन्द्रशंकर भट्ट]

सी.(चिरुवरी)वाई.(यज्ञेश्वरम्) चिन्ता-
जुलाई को स्वर्गस्थ होगये और हमारे
एक ऐसा व्यक्ति उठ गया, जिसने भारत
के परे तक ख्याति प्राप्त कर ली थी।
श्री चिन्तामणि मृत्यु के समय 'सर' उपाधि
थे; इलाहाबाद और बनारस हिन्दू
विद्यालयों के 'डाक्टर' थे; धन-वैभव से
थे; लेकिन श्री चिन्तामणि के व्यक्तित्व का
मूल्य यश-वैभव की सूचना देनेवाली इस
में नहीं समझा जासकता। इसके लिए
पृष्ठभूमि को ही देखना होगा, जिसपर
में यह महान् व्यक्तित्व आधारित था।

श्रेणी के एक ब्राह्मण-परिवार में
, १८८० को श्री चिन्तामणि ने
(दक्षिण भारत) नामक नगर में
था। अतएव जीवन में प्रवेश करने
उन्हें वह सुविधा प्राप्त नहीं हुई, जो
से दूध पिला सकनेवाले परिवार
को प्राप्त होती है। मैट्रिक परीक्षा में
होने के बाद उन्होंने और किसी स्कूली
में सफलता नहीं पायी, क्योंकि स्थानीय
में फँस जाने के कारण वे इंटर की
में उत्तीर्ण नहीं हुए, और इसके बाद तो
नियमित शिक्षा की ही समाप्ति करदी।
उन्हें जीवन प्रारम्भ करते वक्त
से प्राप्त डिग्रियों का भी सहारा नहीं
। उनके पिता राजगुरु थे, अतएव
उनका खानदानी धन्धा भी नहीं था, जिसके कारण इस धन्धे की बारीकियाँ शुरू से उनके खून में दौड़ती रही हों। संक्षेप में, केवल अपने सहारे तमाम असुविधाओं का सामना करके श्री चिन्तामणि ने अपनी जीवन-चर्या प्रारम्भ की।

जनता में और जनता की समस्याओं में उनकी रुचि शुरू से थी। अंग्रेजी भाषा पर उनका बड़ा अधिकार था और उनकी स्मरण-शक्ति तो महाप्रचंड और सतत जागरूक थी, इसीलिए उन्हें 'सजीव विश्वकोष' कहते थे। किसी भी नयी समस्या के सामने आते ही उसपर अपने विचार प्रस्तुत करने की क्षमता उनमें थी। साहस और प्रत्यक्ष उनमें असाधारण था। और यही सब उनकी पूँजी थीं, जिसके सहारे वे जीवन-सरिता में उतरे, और जिसके बलपर उसे अनुकरणीय सफलता से पार कर गये।

श्री चिन्तामणि के जीवन की कुछ और भी विशेषतायें थीं। उनकी बुद्धि और समझ जिस बात को ग्रहण कर लेती थी, उसे आप निधड़क कलम से सामने ला देते थे। शब्दों के मायाजाल में अपनी अन्तरात्मा के साथ खिलवाड़ करना उनकी आदत के खिलाफ़ था। इसी कारण उन्हें अपनी प्रिय संस्था कांग्रेस छोड़नी पड़ी, और कई मित्रों का विरोध करना पड़ा। इसी कारण उनको उतनी ख्याति और राजनैतिक सत्ता नहीं मिली, जो उन-जैसे समर्थ व्यक्ति के लिए अन्यथा सहज होती। पद या धन का लालच उनके कर्तव्य-मार्ग का काँटा नहीं बन

पाया। वे जो ठीक समझते थे, उसे कहने में नहीं चूकते थे।

आत्मसम्मान उनके चरित्र की दूसरी विशेषता थी। अपनी और अपनी प्यारी चीज़ों की इज्जत बेचकर रहना चिन्तामणिजी को नहीं आता था। २८ महीनों की उनकी मिनिस्ट्री सचमुच स्वाभिमान की—जो वास्तव में गोरों के बीच कालों का सम्मान था—रक्षा की कहानी है, और जब उनसे संबंधित एक मामले में गवर्नर ने उनकी उपेक्षा की, तब मिनिस्ट्री को ठुकराकर उन्होंने स्वाभिमान की ही रक्षा की। इसके लिए सभी राष्ट्रीय विचार के लोगों ने उनकी प्रशंसा की थी।

श्री चिन्तामणि की कलम में बहुत ज़ोर था—इतना कि उनके विरोधी भी उनके लेखों को आदर के साथ पढ़ते थे। उन्होंने अपने लेखों द्वारा नौकरशाही की बहुत आलोचना की। यू. पी. की सरकार और उसके कर्मचारी उनके लेखों से घबराते थे। पर उनकी कलम उतनी ही तेज तब कांग्रेस के विरुद्ध भी चली, जब वे कांग्रेस से अलग हो चुके थे, अर्थात् जब उनके ख़याल से कांग्रेस पथभ्रष्ट हो चुकी थी। सहयोग का उन्होंने सदा विरोध किया, लेकिन, साथ ही, सरकारी दमन भी उनकी आलोचना का शिकार हुआ। वर्तमान युद्ध के प्रारम्भ होने पर कांग्रेस द्वारा मंत्रीपद छोड़ना उनको पसन्द नहीं था, युद्ध-सहायता के बारे में उनका एक सुनिश्चित मत था कि मित्र-राष्ट्रों की भरपूर सहायता की जाय। 'साइमन-कमीशन' और 'साम्प्रदायिक निर्णय' का उनकी कलम ने जो उग्र विरोध किया, वह इस बात का साक्षी है कि श्री चिन्तामणि राष्ट्रीयता के हामी थे, पर तथाकथित राष्ट्रीयता के लिए वे किसी जाति-विशेष के उचित अधिकारों का बलिदान सहन नहीं कर सकते थे। कहा जाता है, जब श्री चिन्तामणि ने मिनिस्ट्री स्वीकार करने के लिए "लीडर" का संपादन छोड़ा, तब महात्मा गांधी और श्री चिन्तामणि के बीच "लीडर" और "यंग इंडिया" द्वारा एक गंभीर वादविवाद हो रहा था। श्री चिन्तामणि के संपादक न रहने पर भी "लीडर" ने वह विवाद जारी रखना चाहा, पर गांधीजी ने उसमें रस लेना इसलिए बंद कर दिया कि तब "लीडर" के वार वीरों के लिए अशोभनीय (below the belt) होने लगे थे। श्री चिन्तामणि की कलम में कितना समय और गांभीर्य था, यह इस उदाहरण से साफ़ मालूम हो जाता है। उनकी आलोचना कड़ी होती थी, ओछी नहीं।

पत्रकार तो श्री चिन्तामणि बहुत ऊँचे थे ही। "लीडर" की धाक इसका सजीव प्रमाण है। पर इन पंक्तियों के लेखक की तरह, जो श्री चिन्तामणि को पत्रकार मात्र मानते हैं, वे तो यही कहेंगे कि श्री चिन्तामणि को जीवन में जो कुछ सम्मान मिला वह सफल पत्रकार होने के नाते मिला। वे पत्रकार शुरू में और पत्रकार अन्त में थे। जो कुछ काम उन्होंने दूसरे क्षेत्र में किया—और वह काम कुछ कम नहीं है—वह उन्होंने या तो पत्रकार का कर्तव्य मान कर किया या उसका अधिकार। कितनी मामूली स्थिति से उठकर भी एक पत्रकार देश का ऊँचे से ऊँचा सम्मान पा सकता है, एक पत्रकार के लिए सभी कुछ कर सकना सम्भव है, यह श्री चिन्तामणि का जीवन पुकार-पुकारकर कह रहा है। वास्तव में उन्होंने अपनी लगन और योग्यता के बल पर पत्रकारों का सम्मान बढ़ाया। और उनकी इस साधना के स्वीकृति-स्वरूप उन्हें सम्मान मिला।

श्री चिन्तामणि का जीवन अपने में सफल और प्रायः पूर्ण था। उन्होंने एक जीवन में उतना कर दिया जितना एक संस्था कर पाती। और उनकी जीवन-कहानी तब सफल कही जायगी जब भारतीय पत्रकार उससे प्रेरणा प्राप्त करेंगे। वैसे संसार के महान् पत्रकारों में श्री चिन्तामणि की गिनती सदैव की जायगी।

प्रस्तुत प्रश्न

सहयोगी आलोचक-मंडल

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रतिमास पुस्तकों की जो आलोचनायें निकलती हैं उनसे हमारे लेखक, प्रकाशक, पाठक, आलोचक और स्वयं सम्पादक सभी असंतुष्ट रहते हैं। लेखकों और प्रकाशकों की शिकायत है कि आलोचक चुने हुए शब्दों में, पुस्तक बिना पढ़े ही, केवल भूमिका में इधर-उधर झाँक-झूँककर उसकी आलोचना कर दिया करते हैं। कभी-कभी तो बार-बार पत्र लिखने पर भी कई महीने तक आलोचना छापती ही नहीं। पाठकों की शिकायत है कि पत्र-पत्रिकाओं में की हुई आलोचनाओं से हमें पुस्तक का यथार्थ मूल्य ज्ञात ही नहीं होता और इसके आधार पर पुस्तकें खरीदने में हमें बड़ा धोखा खाना पड़ता है। आलोचकों का कहना है कि मुफ्त में हम पूरा ग्रंथ पढ़ने और आलोचना लिखने में अपना समय क्यों नष्ट करें? इसी प्रकार सम्पादक कहा करते हैं कि हमारे पास तो इतना समय ही नहीं कि आलोचनार्थ आयी हुई सभी पुस्तकों की हम स्वयं आलोचना कर सकें और दूसरी बात यह कि हमें ऐसे निष्पक्ष आलोचक मिलते ही नहीं जो यथासमय आलोचनायें भेजकर हमारी सहायता करते रहें।

यहाँ एक योजना हिन्दी के लेखकों, प्रकाशकों, आलोचकों और पत्र-सम्पादकों के सम्मुख रक्खी जा रही है। हमें पूरा विश्वास है कि यदि इस योजना को कार्य-रूप देने में हमारे साहित्य-सेवियों ने हमारी सहायता की, तो हिन्दी में एक संगठित समालोचक-मण्डल की शीघ्र स्थापना हो सकेगी।

रूप-रेखा

लखनऊ में एक "सहयोगी आलोचक-मंडल" स्थापित किया जाय। पत्र-सम्पादक (अथवा प्रकाशक) इसके ग्राहक-सदस्य होंगे। और विद्वान हिन्दी-प्रेमी आलोचक, सेवक-सदस्य। लेखकों और प्रकाशकों द्वारा भेजी हुई पुस्तकें विद्वान आलोचकों के पास पहुँचाना, समय पर उनसे आलोचना लिखवाकर, सम्पादित और संकलित करके उन्हें पत्र-सम्पादकों के पास भेज देना—हमारा यही कार्य होगा। पत्र-संपादकों से हम इसके लिए मासिक शुल्क के रूप में कुछ धन लेंगे। आलोचकों का पारिश्रमिक, चिट्ठी-पत्री, कार्य-व्यवस्था के खर्च के साथ सम्पादन, संकलन और पत्रव्यवहार आदि में अपना समय देने के लिए स्वयं कुछ पारिश्रमिक इसी धन में से दिया-लिया जायगा। हमारा अनुमान है कि हमारा पारिश्रमिक और आफ़िस-खर्च आय के चौथाई भाग से चल जायगा; शेष तीन-चौथाई हम आलोचकों को बाँट देंगे। इस संस्था के आय-व्यय का वार्षिक ब्योरा हम पत्र-पत्रिकाओं में छपा दिया करेंगे। इससे हिन्दी-जगत को ज्ञात हो जायगा कि हमारी संस्था का उद्देश्य व्यापार नहीं, साहित्य-सेवा ही है।

लेखकों और प्रकाशकों से

(१) पुस्तक की एक-एक प्रति उन पत्रों में भेज दी जाय जिनमें वे उसकी आलोचना प्रकाशित कराना चाहते हों और साथ ही जो हमारे मंडल के ग्राहक-सदस्य भी हों।

(२) यदि हमारे उस विषय के आलोचक लखनऊ के बाहर के हों तो उन्हें एक प्रति उनके पास भेज देनी चाहिए और एक प्रति हमारे पास। यदि आलोचक लखनऊ के हों तो उन्हें दो प्रतियाँ हमारे पास भेज देनी चाहिए।

आलोचकों से

प्रत्येक आलोचना के लिए उन्हें पारिश्रमिक दिया जायगा।

एक कमी

इसमें एक कमी बतायी जा सकती है। एक ही लेखक की आलोचना हम सभी संपादकों के पास भेजेंगे। पर सभी सम्पादक एक ही लेखक की आलोचना छापना स्वीकार न करेंगे। साथ ही लेखक भी एक से अधिक विद्वानों की

सम्मतियाँ अपनी पुस्तक के विषय में जानना चाहता है ।

इस सम्बन्ध में हमें केवल इतना कहना है कि आलोचनायें प्रायः पाठकों के लिए ही प्रकाशित की जाती हैं । यों कभी-कभी वे दो-चार पत्र भले ही देख लें, पर साधारणतः एक पाठक नियमित रूप से एक ही पत्र पढ़ता है । ऐसी स्थिति में एक ही विद्वान आलोचक की सम्मति से सभी संतुष्ट हो जायँगे । फिर भी हमारा प्रयत्न आलोचक-मण्डल को विस्तृत करना ही रहेगा और हम यही चाहेंगे कि प्रत्येक पत्र के लिए नयी आलोचना ही भेजी जाय । हाँ, आरम्भ में ऐसा होना कठिन है ।

हमारा आलोचक-मण्डल

निम्नलिखित विषयों और लेखकों की सूची हमने बनायी है । हिन्दी-लेखक, आलोचक और संपादक इसे विस्तृत करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हैं:

(१) **अर्थशास्त्र** : पं० दयाशंकर दुबे, प्रयाग । (२) **इतिहास** : डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, प्रयाग; श्री चन्द्रगुप्त वेदालंकार, दिल्ली । (३) **लेखन-कला** : श्री भारतीय, प्रयाग । (४) **गृह-विज्ञान** : श्रीमती सीतादेवी, कलकत्ता । (५) **तर्क** और **दर्शनशास्त्र** : बा० गुलाबराय, आगरा; प्रो० छंगालाल मालवीय, लखनऊ । (६) **भू-विज्ञान** : पं० रामनारायण मिश्र, प्रयाग । (७) **राजनीति** : डा० बेनीप्रसाद, प्रयाग । (८) **शिक्षा** : बाबू कालिदास कपूर लखनऊ । (९) **साहित्य (पद्य)**: पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांति-निकेतन; प्रो० शिवपूजन सहाय, छपरा; पं० नंददुलारे बाजपेयी, काशी; पं० शांतिप्रिय द्विवेदी, काशी; प्रो० सत्येन्द्र, मथुरा; प्रो० नगेंद्र, दिल्ली; पं० किशोरीदास वाजपेयी, हरद्वार; पं० भोलानाथ शर्मा, बरेली । (१०) **साहित्य (गद्य)** : पं० श्रीधर पंत, बरेली; प्रो० गोपाललाल खन्ना, लखनऊ; पं० सद्गुरुशरण अवस्थी, कानपुर; पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, टीकमगढ़; श्री प्रेमनारायण टंडन, लखनऊ ।

आशा है कि हिन्दी-प्रेमी सभी सज्जन इस योजना के सम्बन्ध में अपने विचार शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित करने की कृपा करेंगे ।

कालिदास कपूर, प्रेमनारायण टंडन ।

पत्र-व्यवहार का पता—
प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०, रानी कटरा, लखनऊ ।

नया तूफ़ान

श्री सुन्दरलालजी के बंबईवाले एक भाषण की कुछ बातों को लेकर हिन्दी के पत्रों में काफ़ी हलचल मची है । छपा है कि सुन्दरलालजी ने ऐसा कुछ कहा कि हिन्दी-प्रचार का आन्दोलन हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की एक बहुत बड़ी वजह है । और एक सदी पहले हिन्दुस्तान की सिर्फ़ एक कौमी जबान थी उर्दू । अबतक यह बात किसीने न कही थी । हिन्दी-प्रचार आन्दोलन पर इन दोनों कथनों का बहुत बुरा असर पड़ सकता है, इसलिए हिन्दी-भक्तों को इससे बड़ी चोट लगना स्वाभाविक ही है । यदि सुन्दरलालजी का कहना गलत है तो उसे जोर के साथ गलत कहा जाय, उसका खंडन किया जाय—उसके लिए माकूल दलीलें दी जायँ । यह सब मुनासिब व ज़रूरी है । लेकिन अगर सुन्दरलालजी अपना एक खयाल ज़ाहिर करते हैं वह हमें अप्रिय लगता है या उससे हमें नुकसान पहुँचने का अन्देशा है तो इसके लिए उन्हें गालियाँ देना किसी तरह मुनासिब नहीं है जैसा कि कुछ पत्रों ने उन्हें ढोंगी, दुरात्मा कहा है व उनके 'पाखण्ड और दूषित कर्मों' की ओर संकेत किया है । गालियाँ देने से हमारे पक्ष की कमज़ोरी ही नहीं, हमारी असभ्यता व जहालत भी दिखायी देती है । क्यों हममें इतना साहस, धैर्य्य व सहिष्णुता न होनी चाहिए कि हम अपने बरखिलाफ़ कटु-से-कटु बात को भी शान्ति के साथ सुन सकें, विचार कर सकें, व जवाब दे सकें ? अगर सुन्दरलालजी एक बात को सच समझते हैं और उस सच को कहना देश के लिए फ़ायदेमन्द मानते हैं तो अपने देशवासियों से वे वैसा क्यों न कहें और देश उनकी बात पर विचार और छानबीन क्यों न करें ? क्या वे ज़बरदस्ती अपनी बात हमारे

में ठूँस रहे हैं ! जबतक शान्तिपूर्वक जी अपने मत का प्रचार कर रहे हैं उन्हें ऐसा करने का पूरा हक़ है । गालियाँ उन्हें उससे हटाया नहीं जा सकता । हमारी मान्य बातों पर हमला होने से चोट व प्रतिकार का भाव पैदा होना का लक्षण है; परन्तु गालीप्रदान को तिकार का स्वरूप मिलना हमारे दिमाग़ लियापन व हमारी सभ्यता का छोटापन खाता है ।

इस तरह किसी के बारे में ऐसा इशारा जिससे लोगों के दिलों में उसके लिए तरह की शंकाएँ पैदा हों और भी बुरा है । इससे बढ़कर अन्याय किसी के साथ हो सकता । हमें सुन्दरलालजी के कथन पर करना है न कि उनकी शख्सियत पर ।

ना लिख चुकने के बाद हमने सुन्दरलाल- एक लेख 'हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी' (१३ जुलाई) में पढ़ा, जिसमें उन्होंने स्थिति व विचारों की सफ़ाई पेश की है । उन्होंने इस सवाल के ऐतिहासिक पहलू रोशनी डाली है । वे कहते हैं–'जहाँ हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू नामों का संबंध देश की उस ज़बान के लिए, जिसे बाद में बोली भी कहा जाने लगा, 'हिन्दी' नाम 'हिन्दु- नाम से तीन सौ बरस ज्यादा पुराना और नाम से कम-से-कम चार सौ बरस ज्यादह है । नाम तीनों मुसलमानों के आने के बाद और मुसलमानों के ही रक्खे हुए हैं ।' फिर कई प्रमाण देकर यह बताया है कि कब- हिन्दी-उर्दू दो जबानें नहीं थीं, व कब दो में फटीं । आपने यह भी दिखाया है कि तरह कलकत्ता के अंग्रेज प्रोफेसरों ने संस्कृत- भाषा को बढ़ावा दिया व अंग्रेज़ पादरियों अपनाया । मगर यह ऐतिहासिक पहलू निगाह में एक हद के आगे महत्त्व नहीं । इसमें मतभेद की भी गुंजाइश हो सकती है । अतः इसके अमली पहलू पर ही हमें ज्यादा ध्यान देना चाहिए । इस सिलसिले में उनके नीचे लिखे उद्धरण ग़ौर करने लायक हैं—

'मुझे इस (हिन्दी व उर्दू की) अलहदगी में हिन्दुस्तान के टुकड़े होने की खतरनाक जड़ें दिखायी देती हैं । न ज़बान से बढ़कर दुनिया में मिलानेवाली कोई चीज़ है, और न ज़बान की अलहदगी से बढ़कर फूट डालनेवाली । मैं चाहता हूँ कि मेरा देश इस भयंकर आपत्ति से बचे । मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि हम फिर से हिन्दी और उर्दू दोनों में एक ही मातृभाषा के दर्शन करने और उन दोनों को फिर से मिलाकर एक करने की कोशिश करें । हम एक थे । हमने बहुत दर्जे तक अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारी । हम दो हो गये । हमें फिर एक होना है । मेरी राय में इसीमें हिन्दू-मुसलमान दोनों की और इस देश की असली भलाई है ।''

फिर वे राष्ट्रभाषा का स्वरूप कैसा हो इसके बारे में लिखते हैं—

''मैं न फारसी-अरबीभरी उर्दू को इस देश की कौमी जबान बनाना चाहता हूँ, और न संस्कृत-भरी हिन्दी को । मेरी राय साफ है । हमें सबसे पहले अपनी इस घातक संकीर्णता को दूर करना होगा कि किसी लेख में ''दृष्टि'' की जगह ''नज़र'' आया और हमारी भौं चढ़ी । इससे कोई लाभ नहीं हो सकता । इसमें बरबादी की सूरत है । असली हल यह है कि उर्दूवालों और हिन्दीवालों, दोनों को साथ बैठकर उस हिन्दुस्तानी ज़बान को तैयार करना है जो सच-मुच सब भारतवासियों की कौमी ज़बान बन सके । बिहार में राजेन्द्रबाबू और मौलवी अब्दुलहक की हिन्दी-उर्दू की जंग को ख़त्म कर देने की मिली-जुली कोशिशों को नष्ट-भ्रष्ट कर देनें से कुछ हासिल नहीं हो सकता । ज़रूरत इस तरह की कोशिशों को कामयाब बनाने की है ।

मुझे इस बात का भी पूरा विश्वास है कि जो ज़बान इस तरह मिलकर तैयार होगी वह अन्त में अलग-अलग हिन्दी और उर्दू की निसबत

कहीं ज्यादह प्यारी, कहीं ज्यादह सरल, और आम-फ़हम और शब्दों, मुहावरों और आगे की सम्भावनाओं की दृष्टि से कहीं ज्यादह मालामाल होगी। बात केवल दिल की है। जरूरत इस बात की है कि हम एक दूसरे को प्रेम से समझने और एक दूसरे के पास आने की कोशिश करें। इस तरह की कोशिशें हमें अपने देश की आम जनता के भी ज्याह नज़दीक ले आवेंगी। संस्कृत-भरी हिन्दी या फारसी-अरबीभरी उर्दू ने हमें जनता की ज़िन्दगी से कोसों दूर फेंक दिया। इसके अलावा मिली-जुली सरल आमफहम हिन्दुस्तानी का रास्ता ही पश्चिमोत्तर सरहद से बंगाल तक और सिन्ध से मद्रास तक प्रान्तों-प्रान्तों और सारे हिन्दुस्तान को एक करने का रास्ता है, दूसरा रास्ता फूट और टुकड़े-टुकड़े हो जाने का है।"

बात यह है कि हमें सबसे पहले अपनी गुलामी की बेड़ियों को तोड़ना जरूरी है व बिना राष्ट्रीयता व राष्ट्रीय एकता के यह असम्भव है। इस एकता में जो भाषा व जो लिपि सहायक हो उसे हम राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि मानें। इसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने की हमारी तैयारी होनी चाहिए। ३५ करोड़ हिन्दुस्तानियों की भलाई, बहबूदी व सुविधा की दृष्टि से यह सवाल हल होना चाहिए। प्रांतीय, जातीय या दूसरी संकुचितता इसमें बाधक न होनी चाहिए।

इस दृष्टि व भावना से हमें अपनी भाषा, लिपि, रूढ़ियों प्रणालियों आदि पर विचार करके निर्णय करना चाहिए और ऐसा निर्णय हमें जहाँ ले जाय वहाँ तक खुशी से जाने का उत्साह, साहस व दृढ़ता हममें होनी चाहिए। मुझे यह स्पष्ट भविष्य दिखता है कि यदि हम संकुचित अभिमान से भाषा व लिपि के प्रश्न को देखेंगे तो हम न केवल अपने इन बंधनों को और जकड़नेवाले साबित होंगे बल्कि अपनी प्यारी हिन्दी भाषा व नागरी-लिपि को भी हानि पहुँचानेवाले साबित होंगे।

ह० उ०

समालोचनार्थ प्राप्त

राधा : ले०—श्री उदयशंकर भट्ट; प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बई; मूल्य ।।=)

अवध के ग़दर का इतिहास : ले०—श्री देवीदत्त शुक्ल; प्रकाशक—गंगा पुस्तकमाला लखनऊ; मूल्य १।।)

राष्ट्रपति जवाहर : ले०—श्री गौरीशंकर मिश्र; प्रकाशक—राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, पटना; मूल्य ।।)

हिन्दुस्तानी-आन्दोलन की समीक्षा : संपादक—श्री कमलनारायण झा 'कमलेश'; दरभंगा साहित्य सम्मेलन, दरभंगा; मूल्य १।)

मेघकुमार : ले०—पं० छोटेलाल यति; प्रकाशक—जीवन-कार्यालय अजमेर; मूल्य ।-)

दीनबन्धु को श्रद्धाञ्जलि : संग्रहकर्ता—श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी; प्रकाशक—पुस्तक-भण्डार लहरियासराय; मूल्य १।)

पत्र-पत्रिकायें

दुनिया : सम्पादक—श्री भारतीय; शारदा प्रेस, नया कटरा प्रयाग; वार्षिक मूल्य २)

हिन्दू गृहस्थ : सम्पादक—श्री चुन्नीलाल गर्ग बी० ए०, श्री देवकीनन्दन बन्सल; मथु मन्दिर हाथरस; वार्षिक मूल्य ३)

शिक्षा-सुधा : सम्पादक—'सुमन' शेखूपुरी 'साहित्यरत्न'; मण्डी धनौरा (मुरादाबाद); वार्षिक मूल्य २)

हिन्दी ग्रामणी : सम्पादक—श्री ना. हुद्दा सर्कल ४, नागपुर शहर; वा० मू० १)

नालंदा : (परिचय) नालंदा-विद्यापी

कसौटी पर

-वीणा : लेखक—सुधींद्र, एम० ए०; —सस्ता साहित्य मण्डल : सोल-एजेंसी- दिल्ली; पृ० १३४+१६; मूल्य १)

जी राष्ट्रीय भावना के कवि हैं। तिनिधित्व उनकी कृतियों की विशेषता शर्मा और माखनलाल चतुर्वेदी की वृति प्रधान काव्य-प्रवृत्ति नहीं है, दोनों प्रधानतः राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। 'ली' में राष्ट्रीयता की ही एकरसा- है। सुधीन्द्रजी भी प्रधानतः देश के के कवि हैं। युग के उत्पीड़न उनमें हैं के व्यक्तीकरण में वे अनुपम रूप से हुए हैं। सुधीन्द्रजी युग के प्रभाव से में बचे रहे। उनकी कविताओं को नहीं कहा जा सकता। रहस्यवाद से अधिकतर दूर ही हैं। उन्नतिशील ठोस के घात-प्रतिघात के पुष्ट रूप देने में के झमेले की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। की कोई भी कविता लोकमंगल के लोकमंगल को छोड़कर नहीं चलती। में इतर-लोक की तंद्रा अतीन्द्रिय जगत और सूक्ष्म विश्व की अग्राहिता नहीं इस रूप तक सुधीन्द्र साथ नहीं देते। फिलासफी उन्हें यही सिखाती है। उनकी कविताओं में भी तूफ़ानी बर्बरता है। उनमें लोकरंजन की सहज हिचक

की इन रँगरलियों में,
चिरजीवन का ध्येय न भूलो!
की इन अलियों में,
नित्य चिरंतन प्रेय न भूलो!!
अपने पावन प्राण-कलश को,
मन-मन के मधु अमृत से भर
अविनश्वर के पूजार्चन में,
धर दो उसको प्रेम पुरस्सर
के आराधक तुम,
जड़ प्रतिमा के चरण न छू लो!
गायक, गीत-स्वराराधन में,
आदि-अनश्वर गेय न भूलो!!
अपने मृण्मय अधर छुओ मत,
करो न यह पीयूष हलाहल
झरने दो निर्झर वह अविरल,
बनने दो प्राणों को निर्मल
कोमल स्वप्न-हिंडोलों पर हे,
अमर सत्य के स्तम्भ, न झूलो!
अपने प्राण-समर्पण में तुम,
जीवन-धन का देय न भूलो!!
कज्जलमयी प्रणय की लौ से,
सके विलोचन - दीप नहीं जग
अकलुष-अमल प्रेम-ज्वाला से,
होने दो अन्तरतम जगमग
स्वर्ण-वर्ण भंगुर काया में,
पा प्रियतम की झलक न फूलो!
प्रेयस् के इस आकर्षण में,
सत शिव सुन्दर श्रेय न भूलो!!

कवि की दार्शनिक चिंतना देखिए:—

विभ्रमों का है पारावार,
मोह-माया का है आगार
रुदन-क्रन्दन का चिर आवास,
सदा संघर्षणमय संसार
यहाँ पर छिपी तृप्ति में प्यास,
प्यास में तृप्ति अपार
जीवन क्या है? द्वन्द्वों का अद्भुत सम्मेलन
तन क्या है? बस आधि-व्याधि के संचित अणु कण
सुख क्या है? परितोष-आवरण से आवृत संताप
दुःख क्या है? नैराश्य-चक्र से जग का नर्तन
यहाँ थिरकता है क्रन्दन से मिश्रित सुख का हास
असफलता में यहाँ सफलता का मिलता आभास
यहाँ है यह अद्भुत व्यापार!
पुण्य करते पर होता पाप,
माँगते वर हम मिलता शाप
बनाते हैं पर मिटते काम,
चाहते सुख मिलता है ताप

और फिर मिल जाता साफल्य,
यहाँ पर अपने आप
करते रहते प्राण यहाँ जीवन का अभिनय
क्षण-प्रतिक्षण होते जाते फिर वे मृति में लय
उदय और क्षय, पुनः उदय-क्षय, यही उदय-क्षय चक्र
चलता जाता अबाध अनवच्छिन्न वेगमय
जन्म-मरण की आँखमिचौनी में जग रत निर्बाध
अनियम जग के नियम न इसमें अदृष्ट का अपराध
व्यर्थ है व्यर्थ यहाँ परिताप !

सुधीन्द्रजी के चित्र साफ़ और भाषा सुथरी है। उनमें प्रवाहप्रेषणीयता है। क्रान्ति के तूफान में बे-लगाम उफान कहीं नहीं है। भावना को लपेटे रहती है उनकी कल्पना। दोनों के मेल में कला पकड़ में आ गयी है। प्रसाद-गुण की प्रधानता और वाच्यार्थ की खड़ी झड़ी कहीं-कहीं मन मस्त कर देती है। करुणा के गाने की अनुभूति पूर्ण है।

पुस्तक की भूमिका तरुण राष्ट्रीय कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने लिखी है जो काफ़ी सुलझी हुई है। इससे पुस्तक के पढ़ने में बड़ी सहायता मिलती है।

सुनीता : ले०—श्री जैनेन्द्रकुमार; प्रकाशक-हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बम्बई; मूल्य ।।=)

प्रस्तुत पुस्तक पूरे प्रकार से उपन्यास नहीं कही जा सकती, क्योंकि उपन्यास की समस्तता और अनेकरूपता इसमें नहीं है। छोटी आख्यायिका भी नहीं है, क्योंकि प्रमुख संवेदनायें भी कई हैं, और गति में तीव्रता और एकाग्रता नहीं है। फिर भी यह कथा-जगत की साहित्यिक वस्तु है जिसका साम्य उपन्यास से ही अधिक ठहरता है।

'सुनीता' में घटनायें केवल मुट्ठीभर हैं। वे भी कथा को बढ़ाने के लिए नहीं है, वरन पात्रों को विभिन्न परिस्थिति में डालकर उनका रूप सामने लाने के लिए। पात्रों की संख्या भी इनीगिनी है। सुनीता, उसका पति और हरिप्रसन्न; सत्या का बहुत कम उपयोग है, चंद्रकांत और भी कम आया है। पुस्तक में सुनीता को खोला गया है, रमणी के रूप में, नारी के रूप में और पत्नी के रूप में। हरिप्रसन्न को सामने रखा गया है क्रान्तिकारियों के सरदार के रूप में, अपने से सर्वथा उदासीन और देश के लिए मरने को सर्वथा उद्यत। श्रीकांत उपेक्षणीय-सा है, वह सच्चा मित्र है—बड़ा नज़दीकी मित्र है, प्रेमी पति है। गहरा नहीं है। पत्नी सुनीता के उपयोग में ही अधिक आता है, हरिप्रसन्न के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत, परन्तु बिना उलझाववाला, बिना जटिलता का बना-बनाया रूप। यह पुस्तक मनोभाव-प्रधान है, लेखक का उद्देश्य है पात्रों के मन में घुस जाना और उन्हें खोलकर रख देना, मन की बातें समझाना—यही सब कुछ है। शरीर और वातावरण के मेल में मन की गति को परखना, देखना और दिखाना लेखक का काम है। इस व्यवस्था को पूरा करने के लिए कहीं-कहीं लेखक सामने आकर खड़ा हो जाता है। पात्र, कथा सभी पीछे पड़ जाते हैं, परन्तु केवल समझाने के लिए, अपने को अधिक स्पष्ट करने के लिए, उपन्यास-कला जहाँ हल्की भी हो जाती है वहाँ मन को संतोष मिल जाता है।

श्रीकांत का अपनी पत्नी को हफ्ते भर के लिए अकेले घर छोड़ जाना, वहाँ जाकर फिर एक अजीब ढंग का खेल खेलना, जैसे सरल श्रीकांत पत्नी से कुछ चाहता है दूसरे के लिए, सुनीता का इतना ढीठ हो जाना कि अकेले दूसरे के साथ रात भर के लिए चल देना; बीच-बीच की चपट-झपट; ये समस्त घटनायें बड़ी सुकुमार हैं। और यही इस उपन्यास के प्राण हैं। हरिप्रसन्न के समक्ष देशभक्ति की भारी चिंता है। उसे नवयुवकों की व्यवस्था की फ़िक्र और भावनाओं से विरक्ति जैसी है। अतएव नास्तिक होकर भी समाज में विवाह इत्यादि बंधनों को योंही समझता हुआ भी वह सुनीता को भाभी ही बनाये है। कमज़ोरी की भावनायें उठकर लक्षित कम हो पाती हैं। केवल एक समय वह श्रीकांत की सारी भलाई को भूलकर भाभी के बीच से भाई को हटा देना चाहता है। यह उसका कलंक

है। फिर भी वह सँभला रहता है, या
कि सँभाला रहता है। लेखक के
दौलत यथार्थता की दौलत नही है।
सुनीता भी केवल लेखक की कल्पना
चढ़ाव के ढीलेपन और उतार की
को ठीक-ठीक तय नहीं कर सका, और
में उछालकर अपनी सुनीता को ऊपर
है। चाहे पथ का प्रमाद अथवा
का उतावलापन, चाहे पुरुष का
किसी प्रमदा को वहाँ तक पहुँचा देंगे,
से पूँछना है। डराकर बचना और
इसीलिए बिल्लू आँखें घूरकर घुर्राता
है तो ठीक भी हो सकता है।
ठीक बचा-सम्हला—यह ठीक भी हो तो
समय समस्त रिक्रूट गिरफ्तार हो रहे
खतरा सामने हो, रिवाल्वर चला रहे
देने की आपत्ति हो, उस समय
प्रणय के लिए सोचे और उसकी संगति
जाय कि वह दो दिन में मरने जा
—बहुत स्वाभाविक नहीं। अकेले घर में
कमज़ोरी को झेल गया उसे दूसरे बड़े
के उत्थित हो जाने पर भी प्रश्रय
कलाकार ने धोखा खाया है।

अपने ढंग की अच्छी है। शैली में
है। शब्दों में बोलचाल की भाषा की
तालिका है। 'अँधेरा' शब्द तो न जाने
बार आया है। यह फब जाता है।

सद्गुरुशरण अवस्थी (एम० ए०)

लीनता (नाटक) : ले०—सेठ गोविंद-
—हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय;
बम्बई, मूल्य १)।

पुस्तक एक ऐतिहासिक नाटक है।
महाकोशल की एक प्राचीन ऐतिहासिक
आधार पर है। लेकिन लेखक ने अपनी
और उदार भावना तथा कल्पना के बल
सामयिक और उपयोगी बना दिया है।
कथा संक्षेप में यह है कि महाकोशल
राजा विजयसिंह देव कुतुबुद्दीन के माण्डलिक बनने को तैयार हो जाते हैं, लेकिन उसके प्रधानमंत्री सुरभि पाठक विदेशियों की पराधीनता सहन नहीं करते और राज्य छोड़कर यदुराय नामक एक गोंडवीर के पास चले जाते हैं। यदुराय वीर, योग्य और साहसी व्यक्ति था। उसका कलचुरि-नरेश विजयसिंहदेव की कन्या से प्रेम था, परन्तु उसने उसे अकुलीन कहकर राज्य से निकाल दिया। सुरभि पाठक के यदुराय की शरण जाने पर विजयसिंह देव ने हमला कर दिया, लेकिन परास्त हो जाता है। अन्त में वह अपनी गलती समझ जाता है और यदुराय से अपनी पुत्री का विवाह कर देता है, तबसे कलचुरि की जगह गोडवंश का राज्य शुरू होजाता है।

नाटक का मुख्य उद्देश्य अकुलीन-कुलीन की दूषित हिन्दू-भावना पर कुठाराघात करना है और इसमें सन्देह नहीं कि लेखक को सफलता भी प्राप्त हुई है। यदुराय सब तरह से योग्य होते हुए भी इसीलिए ठुकराया जाता है कि वह क्षत्रिय कुलोत्पन्न नहीं है। वह आत्माभिमानी इससे खिन्न होता है और उसका श्रेय चरम सीमा पर पहुँच जाता है, जब वह अपनी प्रेयसी को भी 'कुलीन' देखकर धिक्कार देता है। यह स्वाभाविक ही है। वस्तुतः दलित इतने अत्याचारों के होते हुए भी क्यों हिन्दू जाति के प्रति विद्रोही नहीं हो गये, यही आश्चर्य है! अकुलीन होनें के कारण ही यदुराय अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ नहीं सका। परन्तु नाटक के अन्त तक लेखक ने यदुराय का विद्रोह का भाव नहीं रखा और दोनों घराने मिल जाते हैं।

विंध्यबाला के रूप में लेखक एक ऐसी हिन्दू नारी का चित्र खींचता है, जो पति-भक्त होते हुए भी पति की अन्धानुगामिनी नहीं है और उसे सन्मार्ग दिखाती जाती है। लेकिन उसके पति के घर पर आते ही पत्नी का एकदम तीव्र विरोध कर बैठना कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है। वहाँ शांति और प्रेम का अभाव है, केवल दृढ़ता और कर्तव्य-बुद्धि मात्र है। रेवासुन्दरी, भोली, प्रेममय परन्तु सच्चे दिल की कन्या है। चण्ड के रूप में

खल-नायक का भी चित्रण है, लेकिन इसमें कोई विशेष नवीनता नहीं है। यह विजयसिंह देव को पतन के मार्ग पर ले जाता है, परन्तु अन्त में स्वयं भी मारा जाता है।

नाटक प्राचीन काल की कथा लेकर लिखा गया है, इसलिए उस समय के रहन-सहन, रीति-रिवाज़ तथा भाषा आदि का प्रयोग पाठक के सामने वस्तुतः प्राचीन काल का एक चित्र-सा खींच देता है।

कृष्ण

स्वस्तिका और कलरव——ले० श्री निरंकार देव सेवक; प्रकाशक—हिंदी-प्रचारिणी सभा बरेली कॉलिज, बरेली, क्रमशः पृ० सं० १२०, मूल्य ॥=); पृ० सं० १०४ छोटा साइज़ मूल्य ।=)।

कवि के दोनों कविता-संग्रहों में कोमल भावनायें और मधुर प्रवाह है, शैली और भाव दोनों ही के दृष्टिकोण से कवि 'निशा-निमंत्रण' के पूर्व-कालीन 'बच्चन' से बहुत अधिक प्रभावित है—

वह कली जो कल खिली थी
सूखकर झरने लगी लो,
वह लता जो कल हरी थी
शुष्क हो गिरने लगी लो,
वह विहंगम-बालिका जो
फिर रही थी कूकती कल,
गिर धरा पर मूक अन्तिम
आह-सी भरने लगी लो,
हँस रही थीं जो दिशायें
कल वही हैं आज रोती,
कौन-सा मधुमास लाकर
इस बयाबाँ को बसाऊँ ?
आज मैं सखि, सत्य अपने
स्वप्न को कैसे बनाऊँ ?

—उलझन

तृष्णा-तट पर मादकता का
सागर आकर लहराता है,
मिलकर हम-तुम कर पायेंगे
पर कितना-सा मधु-पान, प्रिये !
अपने प्रेमालापों का भी
हो जायेगा अवसान, प्रिये !

—अवसान

संसार की कटुता और कुरूपता के प्रति विद्रोह की भावना कवि में नहीं है और इस लिए वह पलायन-प्रवृति का सहारा लेता है—

कुटिलताओं से है परिपूर्ण
यहाँ मानव-जीवन-व्यापार,
नहीं मेरे रहने के योग्य
कहीं पृथ्वी पग भी दो चार'

× × ×

इसलिए——**चलूँगा विहग ! तुम्हारे साथ**
त्याग मैं यह नश्वर संसार,
बनाऊँगा निज पर्ण-कुटीर
कहीं उस ओर क्षितिज के पार।

पर 'क्षितिज-पार' का मोह छोड़कर आज के कवि को दो-चार पग पृथ्वी ही को रहने योग्य बनाने के प्रयत्न में योग देना है।

'कलरव' के "ग्राम्य-जीवन" "बरसात" और "पावस" में ताज़गी और मौलिकता दोनों हैं। कवि में काव्य-प्रतिभा है और हमें आशा है कि भविष्य में उसकी वाणी में अधिक बल होगा और उसका दृष्टिकोण अधिक स्वस्थ होगा।

व्रजमोहन गुप्त (एम० ए०)

प्रजा-सेवक : (साप्ताहिक)—प्रजा-सेवक कार्यालय, जोधपुर; वा० मू० ४); एक अंक ।)

यह जोधपुर राज्य की 'लोक-परिषद्' का पत्र है। देशी रियासतों के इतिहास में यह शायद पहला मौका है कि एक उच्च कोटि के राष्ट्रीय साप्ताहिक का प्रकाशन पिछले ९-१० मास में प्रारम्भ हुआ है। इसके लिए हम जोधपुर राज्य को बधाई देते हैं। पत्र के संपादक श्री अचलेश्वर प्रसाद शर्म्मा के अनुभव का लाभ इसे मिल रहा है अतः यह पाठकों को सब प्रकार की सामग्री देकर तृप्त करता है। अखिल-राजस्थानीय पत्रों में तो उसका प्रमुख स्थान है ही, हमारी कामना है कि वह अखिल-भारतीय महत्त्व प्राप्त करे।

सु०

प्रगति की ओर

[इस स्तम्भ में जीवन और राष्ट्र-निर्माणकारी प्रवृत्तियों तथा संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जायगा। जो प्रवृत्तियाँ व संस्थाएँ देश व समाज में 'समभाव' बढ़ाने की दृष्टि से काम ...हीं हैं उन्हीं के लिए इस स्तम्भ में स्थान रहेगा। 'समभाव' ही हमारे नज़दीक उनकी प्रगति-...की कसौटी होगी। ——संपादक

...मण्डल, उदयपुर (राजपूताना)

...पूताने में हालाँकि अब जगह-जगह ...ज्ञान या किताबी शिक्षा देनेवाली कन्या-...लायें खुल गयी हैं, लेकिन इस दिशा में ...स्थली (जयपुर-राज्य) के राजस्थान-बालिका-...लय के बाद बालिका-विद्यालय व महिला-..., उदयपुर के प्रयत्न सराहनीय हैं। उसका ... मई व जून का कार्य-विवरण यों है—

(१) स्थानीय कन्या-पाठशालाओं की २१० ...र्थिनियों और अध्यापिकाओं ने स्वयं-...सेविकायें बनकर इसी गर्मी की छुट्टी में १०५० ...बहिनों को साक्षर बनाया।

(२) अलग-अलग मोहल्लों में महिलाओं ...शिक्षण के १० स्थायी और २ अस्थायी ...वर्ग चल रहे हैं।

(३) महिला-पुस्तकालय की ८०० पुस्तकों ...वाचनालय के ४५ सुप्रसिद्ध पत्रों से ५४०० ...बहिनों ने लाभ उठाया।

(४) तीन मोहल्लों में मैजिक लालटेन से ...र किया।

(५) महिला-मंडल के पाठशालाओं की ...ध्यापिकाओं ने अपनी पाठशाला की ओर से ...अपने मोहल्ले की महिलाओं को एकत्रित ...महिला-दिवस मनाये।

(६) चार बृहद् महिला-सम्मेलन किये।

(७) वर्णमाला की ३०० पुस्तकें मुफ्त में ...बांटीं।

(८) सिलाई, कटाई, कताई और बुनाई ...आदि उद्योग सिखाने के लिए महिला-मंडल ...लय में एक ट्रेनिंग क्लास शुरू की है।

(९) विधवा-सहायता-विभाग से ग़रीब ...विधवाओं को कताई का कार्य देकर सहायता की।

सेवासंघ, डूँगरपुर, (राजपूताना)

श्री भोगीलाल पण्ड्या, अपने चुने हुए साथियों के साथ, कोई ३ साल से, पिछड़ी हुई व बड़ी ग़रीब भील-जाति की सेवा-सुधार का काम कर रहे हैं। श्रीमान् डूँगरपुर-नरेश की भी सुदृष्टि उनके काम पर है। दूसरे वर्ष में नीचेलिखे काम संघ के द्वारा हुए—

(१) ९ केन्द्रों में ९ लड़कों की, ५ कन्याओं की व २५ रात्रि पाठशालायें चलीं जिनमें १६०९ तक छात्र और २३३ तक छात्राओं की संख्या रही। एक शिक्षण-शिविर खोला गया। ३६० छात्र-छात्राओं को पाठ्य-सामग्री मुफ्त दी गयी।

(२) १४ वाचनालयों के द्वारा ६५७९ व्यक्तियों ने लाभ उठाया।

(३) ३३३ परिवारों को खेती के लिए बिनौले मुफ्त दिये।

(४) ९७ व्यक्तियों से तम्बाकू व कइयों से अफ़ीम छुड़वायी गयी।

(५) २९ ओषधि-वितरण-केन्द्र खोले; जिनमें ३००२८ रोगियों को दवा दी गयी।

(६) २६९ नये कुएँ खुदाकर, २६८ पुराने कुओं को गहरे कराकर, १६०-)॥ की बीज-बैल सहायता ग़रीब किसानों को देकर, कताई पिंजाई, लुढाई आदि के काम द्वारा २५८=)॥ की अन्न-सहायता देकर, अनाथ-रक्षा में १३२) लगाकर अकाल-सेवा का काम किया।

(७) ६७ खाद के खड्डे खुदवाकर, खाद की विधि बताकर, नये धान्यों की खेती कर.के कृषि-सुधार का उद्योग किया।

(८) कन्या-विक्रय, स्त्री-अपहरण, मृत्यु-भोज आदि कुरीतियों को मिटाने का प्रयत्न किया।

(९) हवादार मकान व पशुओं के लिए

अलग मकान बनाने तथा नियमित दातुन, स्नान करने की आदत डालने की कोशिश हुई।

(१०) एक दिन की व एक रात की पाठशाला द्वारा ७९ हरिजन बच्चों ने शिक्षा पायी। बागड़, परतापपुर, भीलूड़ा, बांसवाड़ा में क्रमशः ४७, ८७, ७०, तथा ५६ बच्चों ने तालीम पायी।

संघ में छोटे-बड़े ३४ कार्यकर्त्ता रहे। कुल ६५०५~)॥ २ वर्ष में ख़र्च हुए।

संघ ने त्रैवार्षिक योजना बनायी है जिसके अनुसार राज्य की पाँच प्रतिशत जन-संख्या को साक्षर बनाने, ५०० स्त्री-पुरुषों को कातना सिखाने, सर्वत्र खादी का प्रचार करने, संघ के क्षेत्रों में दारू व दूसरी कुरीतियाँ दूर करने, ग्राम-पंचायत, सहयोग-समितियाँ, नवयुवक-मण्डल, वाचनालय आदि स्थापित करने का प्रयत्न किया जायगा।

सैर-सपाटा

पिछले महीने 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' बखेड़ा पत्र-पत्रिकाओं में बहुत देखने में आया, यहाँ तक कि कई पत्र-सम्पादकों ने साधारण शिष्टाचार तक की अवहेलना कर दी। श्री सुन्दरलालजी का बम्बई का भाषण तथा पूर्वभारतीय राष्ट्र-भाषा-परिषद् में हुए राजेन्द्रबाबू तथा डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के भाषण ही चर्चा के विषय रहे! सुन्दरलालजी पर हुई बौछारों का अत्यन्त सौजन्यपूर्ण तर्कसंगत उत्तर उन्होंने **'प्रताप'** (१३ जुलाई) में दिया है—जिसका इस अंक में उल्लेख है। **'जी० सा०'** के प्रस्तुत अंक में श्री जैनेन्द्र का पत्र 'राष्ट्रभाषा' कैसे बननी चाहिए, यह बतलाता है। उनके सुझाव सभी बुद्धिवादियों के अमल में लाने लायक हैं। श्रीयुत काका कालेलकर का **'सबकी बोली'** वाला मन्तव्य भी पठनीय है।

जी० सा० द्वारा जो साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता का प्रश्न उठाया गया था, उसे जाने किधर घसीट लिया गया और और मूल श्लीलता-अश्लीलता की चर्चा होने लगी और विषय उलझ-सा गया, बड़े-बड़े लोगों के मतभेद उस विषय में हैं। इस अंक में राय कृष्णदासजी की पंक्तियाँ बड़ी नपी-तुली हैं। **'हंस'** में प्रकाशित श्री कामेश्वर शर्म्मा के **"प्रवृत्ति और निवृत्ति"** के विचार इस विषय में समन्वयकारी हैं और समझ में आते हैं। इस सब हलचल की प्रतिक्रिया स्वास्थ्यकर ही होगी, ऐसा विश्वास है।

मई-जून मास की **'आरती'** में श्री प्रभाकर माचवे की उनके चिन्तनशील लेख **'एक सांस्कृतिक समस्या'** की चिन्ता सद्भावनापूर्ण है। वस्तुतः विचार-भेद होने पर विकार और विचार का समन्वय होना ही श्रेयस्कर है। **'गुप्तजी : राष्ट्रीय कवि या जातीय ?'** लेख कुछ भाता नहीं, पर वात्स्यायनजी का **'नागरिक स्वतन्त्रता'** लेख पाठक को पकड़ता है। उसे पढ़कर हमें जानना चाहिए कि हम नागरिक कर्त्तव्य की कितनी अवहेलना करते हैं! श्री हज़ारीप्रसादजी द्विवेदी की गद्य के ढंग पर लिखी या छपी मधुर लय-मय अतुकांत कविता बड़ी दिलचस्प है—पर साथ ही वह अपनी एक पीड़ा—एक प्रश्न—एक समस्या पेश करती है—**'बोलो, काव्य के मर्मज्ञ!'**

जुलाई की **'कमला'** में श्री अलखमुरारी हजेला ने **'सहशिक्षा'** के समर्थन में अच्छी युक्तियाँ दी हैं। **'हिन्दी-साहित्य में नारी-भावना'** लेख और अधिक अध्ययन के बाद लिखा गया होता तो अच्छा होता।

'विश्वमित्र' में **'वर्ण-व्यवस्था और उसके समर्थक'** लेख के विचार प्रगतिशील हैं, इसमें किसे सन्देह हो सकता है! प्रो० शंकरसहाय सक्सेना के **'महात्मा गांधी के आर्थिक विचार'** भी पठनीय हैं।

देश में **"घी-दूध की समस्या"** बड़ी विकट होती जा रही है। श्री प्रो० प्रेमचन्द मलहोत्रा एम० ए० ने **'माधुरी'** में इसी नाम के लेख में उसे सुलझाने के कई काम के उपाय बताये हैं।

क्या और कैसे ?

दिशा में

कन्हैयालालजी मुनशी व इन्द्रजी के इस्तीफों का सवाल गौर करने लायक है। के भीतरी बखेड़ों-दंगों का मुकाबला जाय, शरीर या शस्त्र-बल से अथवा से, इस विषय पर मतभेद होने से ये हुए हैं। मुनशीजी के सामने शायद का प्रश्न उतना नहीं है जितना आचार । उनकी बुद्धि तो आत्म-बल या अहिंसा बेहतर मानती है, लेकिन इस समय वह होगी, या वे उसका प्रयोग कारगर तौर कर सकेंगे, ऐसा उन्हें लगता है। और ओं की ऐसी स्थिति होगी व हो सकती आदर्श व सिद्धान्त के सवाल को एक दें तब भी. व्यावहारिक दृष्टि से सोचने क्या सचमुच शरीर-बल या शस्त्र-बल समय संगठित किया भी जा सकता है उसके फल-स्वरूप राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय बढ़ायी या मजबूत की भी जा सकेगी? हिन्दुस्तान' मोर्चे की आवाज जो मुनशीजी करना चाहते हैं उसमें मुसलमान बहुत कम होंगे। इसलिए नहीं कि सबको 'पाकिस्तान' है, बल्कि इसलिए कि अपनी जाति- की बुराइयों का सामना करने की हिम्मत रखनेवाले मुसलमानों में लोग ही बहुत । ऐसी हालत में वह ज्यादातर हिन्दुओं संगठन हो रहेगा। सो भी मुसलमानों का करनेवाला अर्थात हिन्दू-मुस्लिम भिड़न्त उसे मिलेगा। इस भिड़न्त से राष्ट्रीय या 'अखंड हिन्दुस्तान' कैसे निर्माण होगा? कठिन है। यदि 'अखंड हिन्दुस्तान' हिन्दुओं और मुसलमानों के दिल की निकलकर उनमें सद्भाव व सहयोग की हो तब तो वह अच्छी ही है; मगर तो कांग्रेस का मंच ही सबसे अच्छा छोड़ने की जरूरत ही मुनशीजी को न होनी चाहिए। उन्हें अभी यह लगता है कि शरीर-बल व शायद शस्त्र-बल के संगठन से वे पाकिस्तान व उसके पुछल्ले उपद्रवों की रोक-थाम कर सकते हैं। मुझे यह पूरा अन्देश है कि इससे मुसलमान गुण्डों व शरारतियों की बखेड़े-बाज़ी बढ़ेगी, सो भी ज्यादा मजबूती के साथ व संगठित रूप से। अबतक के हिन्दू-संगठन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मुस्लिम-संगठन ही ज्यादा मजबूत व व्यापक हुआ है। हिन्दू शोर ज्यादा मचाते हैं, मुसलमान संगठित ज्यादा होते हैं। फिर जिस संगठन का मूलाधार शरीर-बल या शस्त्र-बल है उसमें से प्रेम, एकता, समभाव के पैदा होने की कल्पना करना मानस-शास्त्र की व अबतक के दुनिया के इतिहास एवं अनुभव के खिलाफ़ है। एकता तो मन को ही शुद्ध, स्निग्ध, समभावी बनाने से हो सकती है। पहले हम अपने मन को ऐसा बना सकेंगे तभी तो दूसरे पर उनका असर पड़ेगा न? जब हमी सामने-वाले को अपना बलवान शरीर या तेज तलवार दिखाते हैं तो उससे संयम, सहनशीलता, एकता की श्रीमुनशी जैसे विचक्षण पुरुष आशा रक्खें यह ताज्जुब की ही बात है। मेरी तो मजबूत राय है कि श्रीमुनशी का उद्योग गलत दिशा में है व इसका बुरा ही नतीजा निकलेगा। कांग्रेस में दुविधा व बुद्धिभेद पैदा होगा सो अलग—सो भी ऐसे वक्त जब कि कांग्रेस को एकता की सबसे ज्यादा जरूरत है। इससे हिन्दुओं का भी अहित ही होने की संभावना ज्यादा है।

बंगाल और राष्ट्र-भाषा

राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन, कलकत्ता के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद के भाषण से हमें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि—बंगाल ने अभी-तक राष्ट्र-भाषा को नहीं अपनाया है, यद्यपि वह भारत के उन्नत व अग्रगण्य सूबों में बहुत ऊँचा स्थान रखता है। न उसने राष्ट्रभाषा के प्रचार में ही वह उत्साह दिखलाया जो दक्षिण भारत

अथवा महाराष्ट्र व गुजरात में देखने में आता है। बंगाल इस विषय में उड़ीसा व आसाम से भी पिछड़ा हुआ है। जब यह मालूम हुआ कि 'वसुमती' व 'आनन्दबाजार-पत्रिका' जैसे बंगला के लब्धप्रतिष्ठ पत्रों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने के खिलाफ अपनी सम्मति प्रकट की है तब तो हमारे दुःख का ठिकाना न रहा। 'वसुमती' कहती है कि 'हम हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने लायक़ भाषा नहीं मानते। हमारा विश्वास है कि जो बंगाल की परवा न करके हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का उद्योग कर रहे हैं उनका एक मात्र उद्देश है बंगालियों और बंगाल को क्षमता-भ्रष्ट कर देना। हाल में कलकत्ते में नये आयोजन से नयी चेष्टा की जा रही है···बंगालियों के लिए कोई कारण नहीं है कि इसमें उत्साह दिखाया जाय।'' 'आनन्दबाजार पत्रिका' लिखती है––''हम जोर के साथ कहेंगे कि राष्ट्रभाषा बनने का बंगला का जो हक़ है वह अनेक दृष्टियों से हिन्दी से अधिक है।······असल बात यह है कि भारत की नाना प्रादेशिक भाषाओं में बंगला ही सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। इसलिए बंगाली लोग बंगला को राष्ट्रभाषा बनाने की माँग छोड़ नहीं सकते।''

ऐसे तंगखयाल बंगाली भाइयों के मत का ख़ुद डा० चटर्जी ने ही खण्डन कर दिया है। वे कहते हैं––''कुछ बंगाली सज्जन, जिनमें ऐसे मनस्वी हैं जो कि न केवल बंगाल के परन्तु समग्र भारत के श्रेष्ठ नेता गिने जाते हैं, राष्ट्रभाषा बनाने के लिए बंगाल का दावा पेश कर रहे हैं। इनकी चेष्टा मेरे विचार से निरर्थक है।······हिन्दी का स्थान आकस्मिक नहीं है। केवल प्रचार का फल नहीं है। वैदिक, लौकिक, संस्कृत, पाली, शौरसेनी, प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश, ब्रजभाषा, खड़ी बोली हिन्दी––अन्तप्रदेशिक भाषाओं की इस परम्परा से हिन्दी आयी है। केवल साहित्य के कारण किसी भाषा का फैलाव नहीं होता। बंगला का आधुनिक साहित्य बहुत श्रेष्ठ है, यह ठीक है; पर हिन्दी के प्राचीन साहित्य का महत्त्व कुछ कम नहीं है''

हिन्दी राष्ट्रभाषा का दावा लेकर जिस धरातल पर खड़ी है उसपर हिन्दुस्तान की कोई प्रान्तीय भाषा खड़ी नहीं रह सकती। वह धरातल साहित्यिक नहीं, राष्ट्रीय व व्यावहारिक है। भारत को एक राष्ट्र सिद्ध करने के लिए, उसके तमाम राष्ट्रीय व्यवहारों को आसानी से चलाने के लिए, देश के इस छोर से उस छोर तक जो सबकी समझ में आ जाती है, व जिसे टूटा-फूटा सभी प्रान्तों के लोग आज बोल सकते हैं, जिसे दक्षिण, महाराष्ट्र, गुजरात, असम, उड़ीसा-जैसे अहिन्दीभाषी प्रान्तों ने राष्ट्रभाषा के तौर पर मंजूर कर लिया है, ऐसी कोई एक भाषा अगर हिन्दुस्तान में है तो वह हिन्दी ही है। इस इतने बड़े सूर्य-प्रकाश जैसे सत्य को भी यदि बंगाल के कुछ बड़े लोग नहीं देख सकते तो कहना होगा—''सूर्यस्य किं दूषणम् ?'' असल बात यह है कि बंगाल में अभी प्रान्तीय अभिमान पक्षपात की हद तक बढ़ा हुआ है। वह प्रान्तीय अभिमान जो हमारी राष्ट्रीय बुद्धि को कुंद व दृष्टि को धुँधला कर देता है, राष्ट्र-कार्य को तो बिगाड़ता ही है, दूर दृष्टि से देखने पर, प्रान्तीय हित को धक्का पहुँचाता है क्योंकि दोष उनके निर्णय में नहीं है, दृष्टि-बिन्दु में है। यदि हमारी मूल दृष्टि ही खराब हो गयी है तो उसमें हमें न देश का हित सही-सही दीख सकता है, न प्रान्त का, न अपने घर का ही।

समभाव से

भाई श्री बनारसीदासजी व जैनेन्द्रजी ने विचार-टीकमगढ़ में जो भाषा व लिपि-सम्बन्धी मन्थन किया और जिसका निचोड़ जैनेन्द्रजी ने अपने पत्र में दिया है, उससे मैं बहुतांश में सहमत हूँ। मेरी राय है कि इन मित्रों के सोचने की दिशा सही है व उनके नतीजे भी बहुत-कुछ सही हैं। हिन्दुस्तान के हरएक मसले को हमें हिन्दुस्तान की ३५ करोड़ जनता की दृष्टि से ही सोचना व हल करना चाहिए। हमारे सोचने की स्पिरिट में 'समभाव' रहना जरूरी है। अर्थात्

जो ३५ करोड़ में से एक हिन्दुस्तानी हमारे दूसरे भाइयों के सुख-दुःख व का विचार खुद हमारे सुख-दुःख व जैसा ही समझकर करें तभी हम पर पहुँचेंगे। फिर हमारे अमल में समभाव की स्पिरिट होनी चाहिए। हम के प्रति ईमानदार रहने व जोर-जबर- अपनी बात न मनवाने का दृढ़ संकल्प 'समभाव' अपने-आप हमारी स्पिरिट रहेगा। यह 'समभाव' हमारी संस्कृति, समाजवाद, गांधीवाद, अध्यात्मवाद, व्यावहारिक न्याय, सभी तराजुओं उतरता है। मुझे खुशी है कि इसी वृत्ति से टीकमगढ़ में चर्चा व निर्णय हुए लिए मैं उन मित्रों को बधाई देता हूँ।

चक-मण्डल

कालिदास कपूर व श्री प्रेमनारायण द्वारा प्रस्तावित आलोचक-मण्डल की अच्छी लगी है। कुछ कठिनाइयाँ प्रस्तावकों की निगाह में आ गयी हैं। योजना में सुधार किये जा सकेंगे। बड़ी मुश्किल मालूम पड़ती है वह को लेकर उसके पीछे अपनी सारी जीवन लगा देनेवालों की कमी की। या टण्डनजी इस मज़बूती के साथ को रखते हों तो योजना की कमियों कोई महत्त्व नहीं देता। योजना का यह वाक्य—'आलोचकों का कहना में हम पूरा ग्रन्थ पढ़ने और आलो- में अपना समय क्यों नष्ट करें?'— खटका। आलोचकों की यह टका-वृत्ति नहीं। इन मित्रों की आलोचनायें अगर ही बल पर मिलनेवाली हों तो मुझे से विशेष आशा नहीं होती। जिस में सेवा का या त्याग का भाव नहीं बल, व स्थिरता की आशा मुझे होगी। हाँ, जो आलोचक पुरस्कार मिले जीवन-निर्वाह नहीं कर सकते उन्हें अवश्य व चलाकर पुरस्कार या पारिश्रमिक दिया जाय। इसमें भी एहसान की भावना कतई न हो। जो लेखक व आलोचक सम्पन्न हैं, जिनके निर्वाह का दूसरा जरिया है, उन्हें लेखन-कार्य से एक पैसा भी न लेने का व्रत लेना चाहिए, बल्कि अपना श्रम, व ज़रूरत पड़ने पर पैसा, भी लगाकर साहित्य की व निर्धन साहित्य-सेवियों की सेवा—सहायता नहीं––करनी चाहिए। हिन्दी के हम लेखक कहलानेवाले जबतक निर्वाह-मात्र पर सन्तोष मानकर शेष धन या श्रम का उपयोग सेवा-भाव से नहीं करेंगे, न होने देंगे, तबतक हिन्दी-साहित्य में प्राणवान् व मौलिक साहित्य की आशा दुराशा-मात्र है। फाकेमस्त साहित्य-सेवियों की राख में से ही स्फूर्तिदायी साहित्य व साहित्यकारों का जन्म हो सकता है। इस निवेदन के साथ मैं इस योजना की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

उपयोगी सुझाव

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, से श्री मगनभाई देसाई ने 'जी०-सा०' के लिए उपयोगी सुझाव भेजे हैं। वे लिखते हैं—"जी०-सा० को मैं पढ़ता हूँ। ऐसा लगता है कि आपने हिन्दी साहित्यिकों में नवीन विचार की कुछ हलचल जगायी है। × × × कहीं आप साहित्य के प्रचलित अर्थ की तरफ़ तो अधिक नहीं झुकते हैं न? साहित्य के कलेवर की बनिस्बत उसकी आत्मा पर अधिक ज़ोर देने की बहुत जरूरत आपको नहीं मालूम होती? जीवन-साहित्य कहकर आप यही सूचित करना चाहते हैं, ऐसा समझूँ तो गलत नहीं न?

यह भी आशा रखनी उचित है कि 'आपके मासिक पत्र के द्वारा 'हिन्दुस्तानी' की एक सरल व रोचक शैली का निर्माण हो। मुझपर कुछ ऐसा असर है कि हिन्दी में अति आडम्बरी शैली बहुत-कुछ घुस गयी है। सम्भव है वह गलत भी हो। यदि सच हो तो क्या उसका सुधार भी 'जी०-सा०'का काम नहीं समझा जाना चाहिए?"

कलेवर की बनिस्बत साहित्य की आत्मा की

तरफ़ ध्यान देने, हिन्दुस्तानी भाषा की एक सरल रोचक शैली बनाने तथा आडम्बरी शैली में सुधार करने के सुझाव सभी हिन्दी-लेखकों के ध्यान देने योग्य हैं। साहित्य की आत्मा क्या है या क्या हो? 'सत्य' जिसके आधार पर सारा जीवन व सारा जगत् खड़ा है, वही साहित्य की आत्मा है व हो सकती है। सत्य का ज्ञान या प्रकाश, साहित्य का प्रकाश, सत्य की साधना साहित्य की साधना होनी चाहिए। सत्य जहाँ ले जाय वहाँ बेधड़क चले जाना, सत्य जो प्रेरणा करे वही निडर होकर बोलना व लिखना व वैसे आचरण की प्रेरणा करना साहित्यकार का काम है। सत्य जीवन का यह प्रकाश साहित्यकार जिस लैंप में रखकर संसार को भेट करेगा वह साहित्य का कलेवर होगा। कहना नहीं होगा कि शुद्ध व बलिष्ठ आत्मा ही लैंप में अच्छा प्रकाश दे सकेगी। इसलिए साहित्य के बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा साहित्य के मूल अधिष्ठान की तरफ़ हमारा ध्यान पहले जाना चाहिए। इस दृष्टि से देसाईजी का यह सुझाव बिल्कुल उचित व समय के अनुकूल है।

हिन्दी में आडम्बरी शैली के अस्तित्व से हम इनकार नहीं कर सकते। जीवन व साहित्य में आडम्बर तभी आता है जब सच्चाई या वास्तविकता से हम दूर पड़ गये हों। ज्यों-ज्यों हम सत्य के निकट आवेंगे अपने-आप सरल होते जायेंगे। हमारी साधना में यदि अहंकार है तो शैली रूखी बन जायगी, यदि प्रसन्नता है तो शैली रोचक हो जायगी। शैली को सुधारने के लिए भी हमें अपने मन की वृत्ति को ही सुधारना पड़ेगा। उसे सत्याभिमुख बनाना पड़ेगा और चित्त की समता, जिसमें से प्रसन्नता उपजती है, प्राप्त करनी होगी।

लेकिन हिन्दी-संसार के वर्तमान वातावरण में 'हिन्दुस्तानी' की शैली के बनने में बड़ी कठिनाई दीखती है। 'हिन्दी' व 'उर्दू' के विवाद ने हमारे संकुचित अहम् को इतना छुई-मुई बना दिया है कि सत्य की आवाज़ उसे सुहाती नहीं मालूम होती। संस्कृत के द्वारा जिस तरह पहले सारा भारत एक राष्ट्र था उसी तरह अब हिन्दुस्तानी' के द्वारा उसे फिर एक राष्ट्र साबित कर देना है, यह उच्च आकांक्षा भी उस 'अहम्' को विस्तृत नहीं होने देती है। यह अचेतन या सुप्त-अवस्था का लक्षण है। लेकिन सत्य की पुकार जिनके कान सुनते हैं व जिनके हृदय में उसका प्रकाश पड़ता है वे चुप या निष्क्रिय कैसे रह सकते हैं? फिर भी यह काम विकट ज़रूर है। हिन्दुस्तान के कई भागों में खासकर, दक्षिण में संस्कृत-प्रधान भाषायें प्रचलित हैं। इधर उत्तरी भारत में उर्दू का प्रचार ज्यादा है। हिन्दू-मुसलमान-वैमनस्य के कारण उर्दू-हिन्दी का सवाल हिन्दू-मुसलमान-सवाल बन गया है और इन झगड़ों से परे रहनेवाले लोग एक तरफ से 'जाति-अभिमान-शून्य' कहकर दुराये जाते हैं व दूसरी तरफ से अगर वह हिन्दू है तो मुसलमान व मुसलमान है तो हिन्दू भी उसकी सचाई व ईमानदारी पर पूरा विश्वास नहीं रखते। ऐसी कठिन दशा में उर्दू-हिन्दी के मेल से सरल शैली बनाना बहुत मुश्किल होगया है अब तो दोनों ही नहीं बल्कि सभी प्रान्तीय भाषाओं व देहात की बोलियों में से भी हम शब्द, मुहावरे आदि न लेंगे तो सच्ची 'हिन्दुस्तानी' की शैली नहीं बन सकती। शुरू में उसका रोचक होना कठिन होगा, क्योंकि वह खिचड़ी बोली होगी, जो कानों को खटकेगी। कैसी भी मुश्किल हालत हो आखिर काम तो करने ही से होगा। 'जी० सा०' तो उसी भाषा का हामी है जो ३५ करोड़ हिन्दुस्तानियों का काम चलावे। 'हिन्दुस्तानी' ही उसका नाम हो सकता है। लेकिन नाम के झगड़े में वह नहीं पड़ना चाहता। स्वरूप व उपयोग असली चीज है। 'जी० सा०' के मेहरबान लेखक ऐसी ही सरल शैली में लिखने की कोशिश करेंगे तो हिन्दुस्तान के इतिहास में अमर रहनेवाली सेवा करेंगे।

रिक दुनिया में

सराय की नयी व बड़ी कार्य-कारिणी कौंसिल बन गयी। उससे देश को नहीं हुआ। महात्माजीने ठीक ही कहा है कांग्रेस की माँग पूरी नहीं होती। तो वाइसराय पर बहुत ही बिगड़ लीग में फूट डालने का गुनहगार को ठहरा दिया। विद्रोही मुस्लिम-को 'जाब्ता कार्रवाई' की धमकी दे परिषद भी शायद ही संतुष्ट हो, की माँग के मुताबिक रक्षा व अर्थ-हिंदुस्तानी मंत्रियों को नहीं दिये गये। की ओर से यह सुधार युद्ध-परिस्थिति के हुआ जाहिर किया गया है, न कि सुधार के अंग के तौर पर; फिर भी वीर को उसपर फिदा होते हुए देख होता है। सवाल यह नहीं है कि जो गये हैं वे कौन और कैसे हैं? असली है कि नये मंत्रियों को नये अख्तियार गये हैं? इस लिहाज से युद्ध-संचालन भी इन घोषणाओं का मूल्य बहुत

'फारवर्ड ब्लाक' के भाइयों ने तो कारिणी में यहाँतक कह दिया है में हमारा विश्वास नहीं और इसे देना चाहिए। महात्माजी ने बड़े और अनिच्छा के साथ सत्याग्रह शुरू अनुगामियों के तकाज़ों के बावजूद को काफी अर्से तक रोक रक्खा। गालियाँ तक खायीं। सभी जानते हैं सत्याग्रह बतौर आपद्-धर्म के चल रहा ही क्यों न हो, लेकिन है तो यह । कोई भी लड़ाई उसी हालत में बन्द होती है जब या तो जीत हो जाय, जाय। सत्याग्रह की लड़ाई में हार नहीं, समझौता सरकार को इस समय पुसाता नहीं है। तब सत्याग्रह कैसे स्थगित किया जाय? अफसोस है कि यह मोटी-सी बात भी महात्माजी के इन सलाहकारों की समझ में नहीं आयी।

हाँ, एक और सूरत है जब सत्याग्रह बंद और स्थगित हो सकता है। अगर यह धर्म के भरोसे पर अधर्म किया जा रहा हो। लेकिन इसके लिए महात्माजी को किसी की सलाह की जरूरत नहीं है। उनकी अंतरिन्द्रिय काफ़ी जाग्रत और सचेत है।

सत्याग्रह एक लड़ाई है; वह लड़ाई के कायदे और अनुशासन से ही चल सकती है। लड़ाई के समय में बुद्धिभेद पैदा करना, उसे कमजोर बनानेवाली सलाहें सार्वजनिक रूप से देना हमें तो 'कोर्ट मार्शल' के लायक गुनाह लगता है। लड़ाई में सिपाहियों की ज़रूरत ज्यादा होती है; हमारे देश में, दुर्भाग्य से, नेताओं और सलाहकारों की इफरात है!

लेखक और प्रकाशक का इकरारनामा

पिछली सूचना के अनुसार 'जी० सा०' के पाठकगण इस अंक में 'मण्डल' द्वारा उठाये हुए लेखकों और प्रकाशकों के इकरारनामे की चर्चा खोजेंगे; परन्तु अन्तिम विचार होने से पहले यह आवश्यक मालूम होता है कि इस विषय में रुचि रखनेवाले बाक़ी लेखक और प्रकाशक-बन्धु भी इधर ध्यान दें और अपने-अपने विचार भेज दें ताकि अगले अंक में निश्चय और विस्तारपूर्वक कुछ कहा जा सके।

'सत्साहित्य-सेवक-समाज'

'सत्साहित्य-सेवक-समाज' ने सूचित किया है कि श्री पं० देवीदत्त शुक्ल और श्रीयुत 'निराला' जी ने भी अपनी एक-एक पुस्तक श्री 'हृदय' जी के परिवार की सहायतार्थ भेंट की है।

ह० उ०

'मण्डल' की ओर से—

आज लोकमान्य तिलक की इस पुण्य-तिथि (१ अगस्त) के दिन 'जीवन-साहित्य' नये वर्ष में अग्रसर हो रहा है और आज ही वर्धा में श्री० रिषभदासजी राँका की देखरेख में श्री लक्ष्मीनारायणजी 'भारतीय' ने 'मण्डल' की मध्यप्रांतीय शाखा के कार्य का शुभारम्भ किया है। बुजुर्गों के आशीर्वाद तथा मित्रों के सहयोग और सहायता से उनको पूरी सफलता मिलेगी ऐसा भरोसा है।

इसी महीने श्री० राजेश्वरप्रसाद सिंह (संचालक हिन्दी-साहित्य-एजेंसी, पटना) सारे बिहार के लिए 'मण्डल' के सोल सेलिंग एजेंट नियुक्त किये गये हैं। वे बिहार में 'मण्डल' के कार्य का संगठन और प्रतिनिधित्व करेंगे और इसी महीने 'मण्डल' के प्रधान कार्यालय के कार्य में हमारे सहयोगी श्री महादेव जोशी कलकत्ते में 'मण्डल' का एक केन्द्र स्थापित करने तथा उसे चालू कर देने के उद्देश्य से वहाँ पहुँच गये हैं।

इसी प्रकार प्रयाग और काशी में भी एक-एक केन्द्र स्थापित करने के प्रयत्न चल रहे हैं और संभव है, इसी महीने वहाँ के बारे में भी आप कोई शुभ समाचार सुन लें।

अब बम्बई, करांची, लाहौर आदि स्थानों में भी 'मण्डल' के केन्द्र स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इस तरफ कोई सुयोग्य और उत्साही तथा कर्मशील सज्जन ध्यान दें तो यह कोई कठिन काम नहीं है। 'मण्डल'-जैसी सजीव और लोकप्रिय संस्था के बढ़ते हुए कार्य में सफलता की ही सम्भावना हो सकती है।

आज की परिस्थिति में, काग़ज़ों तथा छपाई के दाम बढ़ जाने पर भी लोकोपयोगी विषयों पर कई नयी पुस्तकें प्रेस में छप रही हैं। **मेरी कहानी** का चौथा संस्करण प्रकाशित हो गया है। **दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह** (म० गांधी) भी इसी सप्ताह तैयार हो जायगा। **राष्ट्रीय गायन** तथा **भाई के पत्र** इस महीने के अन्त तक पाठकों के पास पहुँच जावेंगे।

'जीवन-साहित्य' के नये ग्राहकों तथा 'मण्डल' के पाठकों के लिए नयी सुविधाओं और रिआयतों का उल्लेख पिछले अंकों में किया जा चुका है। हम पाठकों का ध्यान फिर उधर आकर्षित करना चाहते हैं कि उनका लाभ उठाकर वे 'मण्डल' की पुस्तकें सुलभ मूल्य में तथा 'जीवन-साहित्य' बिना मूल्य प्राप्त करें।

अंत में 'जीवन-साहित्य' के उन ग्राहकों से निवेदन है जिनका चंदा जुलाई महीने में समाप्त हो गया। पिछले अंक में उनको सूचना दी थी कि अपना चंदा भेज दें। जो अबतक न भेज पाये हों उनको यह अंक बतौर याददिहानी के और भेज दिया जाता है; पर अगर इस महीने भी उनका चंदा नहीं आया तो आगे 'जी. सा.' अनिच्छापूर्वक बंद करना होगा।

इसी प्रकार इन ग्राहक-संख्या वालों का चन्दा भी अगस्त महीने में पूरा होता है:—

४३२, ५००, ५२३, ५२४, ५४९, ५५०, ५९३, ५९४, ५९५, ६२९, ६३०, ६३१, ६३३, ६३४, ६३६, ६३७, ६३८, ६४१, ६४२, ६४३, ६४७, ६४९, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ७३५, ७६९, ८०८, १०४९, १०५०।

इनसे हमारी प्रार्थना है कि ये भी अपना चंदा इसी महीने शीघ्र भेज देने की कृपा करें। चंदा न आने की हालत में हम उनको अगला अंक भेजने में असमर्थ होंगे।

मंत्री

बिड़ला जूट मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी, लि०

के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स, एस. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, नई दिल्ली.

बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स, खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
दीवीहतिया, बनारस सिटी.

आगरा, अलीगढ़, मथुरा,
मेसर्स सुखलाल जमसावाल
१ ताजरोड आगरा,

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स, एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, देहरादून.

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, बरेली.

नैनीताल, अलमोड़ा, रानीखेत
मेसर्स, हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, नैनीताल.

सेलिंग एजेन्ट्स :

सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.

मैनेजिंग एजेन्टस्,

८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

टेलीग्राम:—"जूटवीवर"

टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

लोकतन्त्र के लिए शिक्षा ?

※ आज के इस जलते हुए सवाल का उत्तर आपके पास क्या है ?

※ विश्व में युद्ध, कलह और अशान्ति क्यों है ? इसका मूल कारण आप जानते हैं ?

※ आपका लाडला इतना दुखी और अव्यवस्थित क्यों है ? वह स्कूल जाना क्यों पसन्द नहीं करता ? घर को सर पर क्यों उठाये हुए है ? इन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर आप जानते हैं ?

※ माता-पिता के कर्त्तव्य क्या है ? सच्चा शिक्षक और स्कूल क्या है, आप जानते हैं ? श्री हरिपद मैति कलकत्ता विश्व-विद्यालय के चित्त-विश्लेषण के अभ्यासी विद्वान् हैं। वे बालकों के कठिन प्रश्नों का उत्तर देते हैं। पर यह सब महत्वपूर्ण ज्ञान आपको—

बालहित

में प्रतिमास मिल जायेगा।

वार्षिक २)　　नमूना ≡)　　उदयपुर (मेवाड़)

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और खास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं।

बी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमेन--सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये

भुगतान पूँजी—१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहां हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजर:—

८, रॉयल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता

या

म्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को।

बाजारू कहानियों व गल्पों की [illegible] से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषताएँ हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएँ।

(२) अंतर्राष्ट्रीय व अंतर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।

(३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि 'कहानी' सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इंडियन पी० ई० एन—

'...इसमें जो कहानियाँ हैं, वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।...इस विशेषांक की कहानियाँ पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं...यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है...हिन्दी के प्रमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'...विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। उनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है...'

श्री सुदर्शन—

'...इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है।...मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'...छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है।...'

श्री उषादेवी मित्रा—

'...'कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है—अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना...'

श्री देवराज उपाध्याय—

'कथा-साहित्य संबंधी जितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है...'

श्री उदयशंकर भट्ट—

'...पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा...इस अंक की संपूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई।'

श्री रवीन्द्र

'Cheap Sentimental कहानियों से मुझे बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश हो गई...'

श्री पहाडी—

'...'कहानी' के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेंगीं।'

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल तीन रु० है। एक प्रति का चार आना।

कृपया आज ही ३) मनीआर्डर से भेज दें : पुस्तकालय २।।) भेज सकते हैं।

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट।

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद दक्षिण, अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

कमला

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]
संपादक—श्री बाबूराम विष्णु पराड़कर
सहायक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

मैनेजर, 'कमला',
गायघाट, बनारस

नारी-जागरण का महान् सन्देश सुनानेवाली हिन्दी की प्रमुख सर्वोत्तम मासिक पत्रिका 'कमला' के प्रकाशन से हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में एक अजीब तहलका मच गया है। हर एक उसकी गम्भीरता और उपयोगिता का कायल हो रहा है। यदि आपका विश्वास न हो तो एक प्रति मँगाकर देख लें। नमूने के लिए ।=) के टिकट भेजिए। वार्षिक मूल्य ४।।) रखा है। आज ही चंदा भेजिए या नमूना मँगाइए।

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

काशी का

मकरंदीय दशवार्षिक पञ्चाङ्ग

सं० २००१ से २०१० तक

पञ्चाङ्गकर्त्ता पं० इन्द्रदत्त ज्योतिषी मूल्य २॥)

पुस्तक व पञ्चाङ्ग मिलने का पता—

भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

क्या आप किसी के पिता और पति हैं ?

यदि हाँ, तो

भाभी के पत्र

पढ़िए और अपनी स्त्री तथा कन्याओं को पढ़ाइए,

भूमिका-लेखक—कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' बनारसी : लेखक—श्री 'व्यथितहृदय'

मूल्य सजिल्द १।)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, ब्रांच, चौक, कचौड़ी गली, बनारस।

आपका व्यापार,

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्डबोर्डबक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

फोन नं०
३२८

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

मुरारी फ़ाइन आर्टवर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
[illegible]
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

हिन्दी समालोचना के अग्रदूत

❋

मासिक

साहित्य संदेश का ही यह

❋

साहस

❋

है

शुक्ल-अंक का परिचय

प्रस्तुत अंक तीन खण्डों में है और सचित्र छपा है

परिचय—

१. परिचय	स्वर्गीय श्री रामचन्द्र शुक्ल
२. पंडित रामचन्द्र शुक्ल : जीवन-परिचय	बा० श्यामसुन्दरदास
३. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल : एक झांकी	श्री केशवचन्द्र शुक्ल
४. स्वर्गीय आचार्य का अन्तिम दर्शन	श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'
५. उन चार वर्षों की याद में	श्री उदय एम० ए०

समीक्षा—

६. शुक्लजी की मानसिक भूमिका	श्री जैनेन्द्र
७. शुक्लजी और हिन्दी की परम्परा	श्री रामविलास शर्मा
८. आ० शु० और आई. ए. रिचर्ड्स	श्री नगेन्द्र एम० ए०
९. हिन्दी आलोचना और आचार्य शुक्ल	श्री नन्ददुलारे बाजपेयी
१०. आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल	श्री रामस्वरूप शर्मा
११. आ० शु० और काशी नागरीप्रचारिणी सभा	श्री रामबहोरी शुक्ल
१२. शुक्लजी का आलोचकों में स्थान	श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी
१३. रामचन्द्र शु० : समालोचक और निबन्धकार	श्री नलिन विलोचन शर्मा एम.ए.
१४. प्रबन्धकार शुक्लजी	श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी
१५. शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध	श्री गुलाबराय एम० ए०
१६. हिन्दी-साहित्य का इतिहास	श्री विश्वम्भरदयाल 'मानव' एम.ए.
१७. आ० शु० की सर्वप्रथम मौलिक रचना	श्री शिवपूजन सहाय
१८. शु० के इंदौरवाले भाषण की कुछ विशेषताएँ	श्री प्रभाकर माचवे
१९. शु० के काव्य में रहस्यवाद की झलक	श्री गुलाबराय एम० ए०
२०. अनूदित बुद्धचरित	श्री गोपाल व्यास एम० ए०
२१. शुक्लजी के अनुवाद	श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़
२२. शु० की तीन भूमिकाएँ : जायसी, तुलसी, सूर	श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, श्री सत्येन्द्र एम. ए. श्री गुलाबराय
२३. शुक्लजी की हिन्दी साहित्य को देन	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री नलिनीमोहन सान्याल, श्रीवासुदेव-शरण अग्रवाल, श्री उदयनारायण तिवारी और श्री प्रभाकर माचवे

आभार—इसमें अनेकों लेखकों के व्यक्तिगत पत्र संकलित हैं, संपादकीय

६ महीनों में चार विशेषांक

दो छप गये : दो और भी छपेंगे

* नमूना मुफ्त मँगाइए *

मूल्य ३) वार्षिक, विद्यार्थियों के लिए २) पता—साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा

साहित्य का एकमात्र उद्देश्य जीवन का निर्माण है !

तब आप निर्जीव और घातक साहित्य की ओर न ललचावें ।

साधुमना सन्तों, महापुरुषों और राष्ट्रनेताओं की वाणी

और विचार ही हमें अमृत प्रदान कर सकते हैं !

जीवन के बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक,
समस्त अंगों को बनानेवाला साहित्य

सस्ता-साहित्य-मण्डल से ही मिलेगा ।

—: कुछ चुने हुए रत्न :—

फ्रीका का सत्याग्रह	[महात्मा गांधी]	स्त्री-पुरुष	[महात्मा टॉल्स्टॉय]
न्ति की राह पर	,,	हम क्या करें ?	,,
त्म कथा	,,	प्रेम में भगवान्	,,
रा कलंक	,,	मेरी मुक्ति की कहानी	,,
धी-अभिनन्दन-ग्रन्थ	[सर राधाकृष्णन्]	गांधी-विचार-दोहन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
री कहानी	[जवाहरलाल नेहरू]	विश्व-इतिहास की झलक	[जवाहरलाल नेहरू]
दुस्तान की समस्यायें	,,	लड़खड़ाती दुनिया	,,
टी का सवाल	[क्रोपाटकिन]	संघर्ष या सहयोग	[क्रोपाटकिन]
ग्रेस का इतिहास	[डा० पट्टाभि सीतारामैया]	हमारे राष्ट्रनिर्माता	[रामनाथ 'सुमन']
वन-सन्देश	[खलील जिब्रान]	समन्वय	[डॉ० भगवान्दास]
ता-मीमांसा	[बालूभाई मेहता]	गीता-मंथन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
-जीवन	[काका कालेलकर]	विनोबा के विचार	[विनोबा]
जीवन	[स्वेट मार्डेन]	जीवन-सूत्र	[टॉमस कैम्पिस]
वाणी	[वियोगी हरि]	सन्तवाणी	[वियोगी हरि]
मारे गांवों की कहानी	[रामदास गौड़]	गांवों का सुधार-संगठन	[रामदास गौड़]
	[घनश्यामदास बिड़ला]	तीस दिन: मालवीयजी के साथ	[रामनरेश त्रिपाठी]

छप रही हैं— १. महावीर-वाणी २. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन
३. युद्ध और अहिंसा ४. हमारी आज़ादी की लड़ाई

मण्डल के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में

सस्ता-साहित्य-मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—दिल्ली, लखनऊ, इन्दौर, नागपुर और कलकत्ता

हिंदी का एक अभूत-पूर्व ग्रन्थ !

भारत के तपोनिष्ठ ब्रह्मर्षि

महामना मदनमोहन मालवीय

की पवित्र सेवामयी जीवनी का अभाव 'मंडल' की पुस्तकों में आपको खटका होगा। आपने अनुभव किया होगा कि महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं की आत्मकथाओं को पढ़ लेने पर भी महामना मालवीयजी की जीवन-गंगा में अवगाहन किये बिना जीवन अधूरा-सा लगता है। क्योंकि हमारे राष्ट्र के निर्माण करनेवालों में मालवीयजी का एक अनुपम स्थान है।

पर

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने

मूल्य
अजिल्द : डेढ़ रुपया

तीस दिन

मूल्य
सजिल्द : दो रुपया

मालवीयजी के साथ

'जी० सा०' तथा 'मण्डल' के ग्राहकों को

केवल १=) में

यह पुस्तक भी महात्माजी की आत्मकथा की ही तरह रोचक व पावन है।

लिखकर

हिन्दी के इस बड़े अभाव की पूर्ति कर दी है।

मेरी कहानी

[पं० जवाहरलाल नेहरू]

के नये संस्करण में पंडितजी ने भारतीय राजनीति की ताजी घटनाओं पर भी दृष्टि डाली है। इस प्रकार अब वह अद्यतन (UP-TO-DATE) हो गयी है।

आज ही आर्डर भेजिए।

दाम तीन रुपये

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर : वर्धा (नागपुर) : कलकत्ता

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ीवन साहित्य

अंक २

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

सितंबर : १९४१

2-9-41
गु. पुस्तकालय

मानव में देव

गुरुदेव आत्मा, सौन्दर्य व संस्कृति के कवि थे। वे केवल कल्पना-जगत् में नहीं उड़ते थे; अपने आदर्श को भूतल पर उतारने का उन्होंने जी-जान से प्रयत्न किया है। 'विश्वभारती' के द्वारा उन्होंने कवि व कर्मी का मेल संसार को दिखाया है।

उनकी प्रतिभा और उसके जीवन का विकास सभी दिशाओं में हुआ था। कविता, नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध-प्रबन्ध, सबमें उनकी प्रतिभा चमकी है; अपनी जमीदारी के प्रबन्धक 'श्रीनिकेतन' तथा 'विश्वभारती' के संचालक के रूप उनके जीवन ने अपना जौहर दिखाया है।

वे कलामूर्ति थे। काव्य-साहित्य के तो सम्राट् ही थे। संगीत, नृत्य, चित्र कला भी उनमें व उनके आश्रम में फूली-फली है। मृदुलता उनकी कला का कोमल प्राण, सौन्दर्य उनकी कला का देवता व मानवता उनकी कला का उत्कर्ष था।

उनके जीवन का, उनके सारे व्यक्तित्व का सन्देश है मेल—पूर्व व पश्चिम में मेल, प्राचीन व आधुनिक में मेल, कला व जीवन में मेल, कल्पना व कर्म में मेल, अध्यात्म व संसार में मेल।

गुरुदेव मानव में देव थे। उन्हें खोकर हमने मानवता, कला व संस्कृति के देवता को खो दिया है!

ह० उ०

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. एक ही नमस्कार में (कविता) ३७
[स्व० श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]
२. 'इकरारनामे' पर सम्मतियाँ ३८
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
३. श्रद्धाञ्जलि [श्री जैनेन्द्रकुमार] ४१
४. सापेक्षतावाद ४४
[श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला]
५. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ४७
[श्री प्रभाकर माचवे, एम. ए.]
६. पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों के चित्र ४९
[डा० सत्यप्रकाश, डी. एस-सी.]
७. रवीन्द्रनाथ का हिंदी कविता पर प्रभाव ५१
[श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला']
८. रवीन्द्रनाथ का युग-दर्शन ५४
[श्री सुधीन्द्र एम. ए., साहित्यरत्न]
९. अर्घ्य (संकलित) ५७
१०. प्रस्तुत प्रश्न ५८
'खुली चिट्ठी'; खुले पत्र का सारभाग
११. कसौटी पर
चंद्रिका (ह० उ०), खिलौना घर, कार्ल और अन्ना (श्री मुकुट विहारी वर्मा); हिलोर (व्रजेन्द्र); प्रजातन्त्र (कृष्ण); प्रेमचन्द (निरंजन) ६२
१२. समालोचनार्थ प्राप्त ६५
१३. सहयोगियों में से ६६
शिक्षक का कर्त्तव्य (श्री महादेव देशाई); साहित्य और संस्कृति; (श्री बनारसीदास चतुर्वेदी)
१४. प्रगति की ओर ६८
१५. जीवन-समस्याएँ ६९
१६. हिन्दी की हलचलें ६९
१७. क्या और कैसे ? ७०
मुसीबत की तोबा; अपनी-अपनी देन; गरीब लेखकों की ओर से; शोक-समाचार
१८. मण्डल की ओर से— ७२

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, ३९१ अपर चिनपुर रोड, कलकत्ता

एक पंथ दो काज

व्यापार में लाभ

और

सेवा-कार्य में सहायता

ये दोनों कार्य यदि हो सकें तो हरेक व्यक्ति करना चाहता है।
हमारे यहाँ की बनी हुई विशुद्ध औषधियाँ, रस, भस्म,
आसव, अरिष्ट, सुगन्धित तैल, पापड़ वगैरह
बेचकर आप भी व्यापार में लाभ
व सेवा-कार्य में सहायता पहुँचा
सकते हैं।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के पाठकों व प्रेमियों
के लिए

एक और खुशख़बरी

कलकत्ता में भी
'मण्डल' की शाखा खुल गई

कलकत्ता नगर के 'मंडल' के प्रेमी पाठकों व हितैषियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि कलकत्ता में 'मण्डल' का प्रचार व बिक्री-संगठन करने के लिए श्री महादेव जोशी के व्यवस्थापकत्व में 'मण्डल' की शाखा खुल गई है। अभी फ़िलहाल शाखा का कार्यालय १३२।१ हरिसन रोड, (शुद्ध खादी भंडार के पास) में ही रहेगा।

आशा है 'मण्डल' के हितेच्छु बुजुर्ग, स्नेही मित्र तथा उदार पाठक 'मण्डल' के कार्य को उत्तम रीति से चलाने में अपनी सलाह, मार्गप्रदर्शन तथा [illegible] से सहायता करने की कृपा करेंगे।

मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

के नवीन प्रकाशन

सोवियत भूमि—ले० महापंडित राहुल सांकृत्ययान, मूल्य ५ रु० रूसके संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिये हिन्दी में अद्वितीय पुस्तक।

मूर्तिकला—ले० राय कृष्णदास, मूल्य १ रु० ४ आ०। भारतवर्ष की मूर्तिकला की आदि से अब तक की तात्त्विक व्याख्या।

चित्रकला—ले० रायकृष्णदास, मूल्य १रु० ४आ० चित्रकला पर अपने ढंग की सर्वोत्तम पुस्तक।

बाल मनोविज्ञान—ले० पंडित लालजी रामशुक्ल, मूल्य १ रु० ४ आ०। हिन्दी में बाल-मनोविज्ञान संबंधी सर्वश्रेष्ठ रचना।

मआसिरुल उमरा भाग १ और २—अनु० बाबू ब्रजरत्नदास, मूल्य ४ रु० प्रति भाग मुग़ल शासनकाल के सरदारों की सबसे प्रामाणिक जीवनियाँ।

बिहार में हिन्दुस्तानी—ले० पं० चन्द्रबली पांडेय, मूल्य ४ आ०। बिहार प्रांत में हिन्दी हिन्दुस्तानी समस्या की तात्त्विक व्याख्या।

कचहरी की भाषा और लिपि—ले० पं० चन्द्रबली पांडेय, मूल्य १२ आ०। अदालतों की भाषा और लिपि का विस्तृत विवेचन।

मध्य प्रदेश का इतिहास—ले० रायबहादुर डा० हीरालाल, बी० ए०, मूल्य १ रु० ८ आ० मध्य प्रदेश का सबसे प्रामाणिक और शोधपूर्ण इतिहास।

हिन्दी साहित्य का इतिहास—ले० पं० रामचन्द्र शुक्ल, मूल्य ५ रु० प्रवर्द्धित संस्करण। हिन्दी साहित्य का सबसे अच्छा और विस्तृत इतिहास।

सिक्खों का उत्थान और पतन—ले० पं० नन्दकुमार देव, मूल्य १ रु० ४ आ०। सिक्ख जाति के अभ्युदय और पतन का सर्वांग पूर्ण इतिहास।

नई कहानियां—सं० श्री राय कृष्णदास, पं० पद्मनारायण आचार्य, मूल्य १।) बारह सर्वोत्तम नई कहानियों का अत्यन्त रुचिपूर्ण संग्रह।

मोहें जो दोड़—ले० श्री सतीशचन्द्र काला, मूल्य २) मोहें जो दड़ो की खोदाई के आधार पर लिखी प्राचीन भारतीय सभ्यता के सम्बन्ध में विद्वत्तापूर्ण सचित्र पुस्तक।

रघुनाथ रूपक गीतांरो—सं० श्री महताबचन्द खारैड, मूल्य २)। डिंगल भाषा में भगवान रामचन्द्र का मंछ कवि कृत सुन्दर कवित्वपूर्ण वर्णन।

मुग़ल बादशाहों की हिन्दी—ले० पं० चन्द्रबली पांडेय, मूल्य ।।) मुग़ल बादशाह हिन्दी से प्रेम करते और हिन्दी में रचना करते थे, इसका स्पष्ट प्रमाण यह पुस्तक है।

मुल्क की जबान और फाजिल मुसलमान (उर्दू में)—संकलयिता शाह साहेब नासिरुद्दीन पुरी मूल्य ।=) हिन्दी भाषा और लिपि के सम्बन्ध में मुसलमान विद्वानों की सम्मतियाँ।

मिलने के पते—**प्रत्येक नगर के प्रतिष्ठित पुस्तक विक्रेता**

अथवा

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, बम्बई के भूतपूर्व गृह-सचिव

गुजरात के इस श्रेष्ठ कलाकार की
रचनाओं को सस्ते-से-सस्ते मूल्य में हमारी
'सुलभ साहित्यमाला' में
अवश्य पढ़िए। अब तक

मुन्शी-साहित्य के

दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। मूल्य दस-दस आना इन भागों में
मुंशी का सबसे पहला ऐतिहासिक रोमान्स

पाटन का प्रभुत्व

है। शरत् बाबू की सम्पूर्ण रचनाओं की तरह मुंशी की भी सम्पूर्ण रचनाओं को
साहित्य माला में निकालने का निश्चय कर चुके हैं।
अन्य भाग भी शीघ्र निकलेंगे।

शरत-साहित्य

का प्रकाशन भी हो रहा है। शेष-प्रश्न प्रेस में दे दिया गया है
श्री कान्त का चतुर्थ पर्व भी शीघ्र निकलेगा।

राधा

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और नाट्यकार पण्डित उदयशंकर का यह भाव-नाट्य
हाल ही प्रकाशित हुआ है। मूल्य दस आने

प्रकाशक—हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—व्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला

१. **वीरअभिमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१६३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१६३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१६३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१६३७ ई० में	३५,५६,५००	,,
१६३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१६३६ ई० में	५०,११,७६८	,,
१६४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और ख़ास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं ।

व्यापारिक ज्ञान, व्यापारिक शिक्षा और व्यापारिक विद्या की

परमोपयोगी पुस्तकें

हिन्दी महाजनी का नया बहीखाता

[दो भागों में]

प्रथम भाग : यह यू० पी० बोर्ड, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, तथा जयपुर, जोधपुर बीकानेर, कोटा, बूंदी राज्य के शिक्षा विभागों में द्वारा पाठ्य क्रम में स्वीकृत है । और अपने विषय की एक ही पुस्तक है, पाँचवाँ संस्करण मूल्य ॥-)

दूसरा भाग : इसका दूसरा भाग भी यू० पी० बोर्ड की हाई स्कूल और इंटर मीजियेट में स्वीकृत है । तीसरा संस्करण । ४८४ पृष्ठों के इस अद्वितीय ग्रंथ का मू० १॥=)

प्रारंभिक व्यापार और टाइप-राइटिंग

विषय को सरल भाषा और सरल तरीकों से समझानेवाली सब सूचना से पूर्ण एक ही पुस्तक; मूल्य ॥-)

इन तीनों पुस्तकों की इस विषय के विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है और पढ़ाई में बहुत प्रचलित हैं । आप भी अवश्य उन्हें पढ़कर ज्ञान प्राप्त कीजिए ।

मिलने के पते—**प्रियतम-पुस्तक-भण्डार एण्ड कम्पनी**

(१) पिलानी (२) जयपुर सिटी

बिड़ला जूट मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी, लि०

के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स, एम. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, नई दिल्ली.

बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स, खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
नीचीबाग, बनारस सिटी.

आगरा, अलीगढ़, मथुरा,
मेसर्स सुखलाल जमसावाल
१ ताजरोड आगरा,

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स, एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, देहरादून.

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, बरेली.

नैनीताल, अलमोड़ा, रानीखेत
मेसर्स, हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, नैनीताल.

सेलिंग एजेन्ट्स :

सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.

मैनेजिंग एजेन्ट्स,
८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

टेलीग्राम:—"जूटवीवर"
टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

नव वर्ष के विशेषांक में नवीनता

'कहानी' भेंट

◆

- युद्ध और शान्ति की रोमांचकारी कहानियाँ
- अद्वितीय गाम्भीर्य और हास्य
- आधुनिक प्रेम-कथायें
- निम्नवर्गों की मार्मिक गल्पें
- भारत और विदेशों की चुनी कहानियाँ
- कहानी-कला पर समीक्षात्मक लेख
- पद्यबद्ध रसमय कथायें
- कलात्मक रेखाचित्र, नखचित्र

आदि के साथ

अनेकों सादे बहुरंगे मनोरम और कलापूर्ण चित्र।

इनके अतिरिक्त——

भेंट में

✦ दो रुपये मूल्य का एक उत्कृष्ट उपन्यास

यह आठ आने मूल्य का कहानी-कला का ग्रन्थरूप विशेषांक और भेंट-पुस्तक केवल वे ही ग्राहक पा सकेंगे जो अपना चन्दा ४) मनीआर्डर से २५ सितम्बर तक भेज देंगे।

विशेषांक और भेंट-पुस्तक की सीमित प्रतियाँ छप रही हैं

इसलिये चार आने भेज कर अगस्त की कहानी में विवरण देखें या हमसे पूछें——

'कहानी' कार्यालय, बनारस कैंट।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

त, १९४१
ई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरा वर्ष
दूसरा अंक

एक ही नमस्कार में

एक मात्र ही नमस्कार में
प्रभो, एक ही नमस्कार में—
देह समस्त लुट पड़े मेरी
इसी तुम्हारे सुसंसार में !

सावन के घन सघन धरा पर
झुक जाते हैं ज्यों रस भर-भर
मन मेरा झुककर रुक जाये
प्रभो, तुम्हारे भवनद्वार में !
एकमात्र ही नमस्कार में
प्रभो, एक ही नमस्कार !

धारा बन नाना आकुल स्वर
मिल जायें निज को विलीन कर
मेरे सब गायन समाप्त हों
प्रभु, नीरव सागर अपार में !
एक मात्र ही नमस्कार में
प्रभो, एक ही नमस्कार में !

हंस उड़े मानस-यात्रा पर
वैसे ही अविरत निशिवासर
मेरा प्राण-हंस यह भगवन् !
चले उड़ महामरणपार में !
एक मात्र ही नमस्कार में
प्रभो, एक ही नमस्कार में !

स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु०-सुधींद्र

'इकरारनामे' पर सम्मतियाँ

मुझे खुशी है कि 'लेखक बनाम प्रकाशक' प्रश्न पर मेरा अनुरोध मान करके देश के महान् नेता, मेरे गुरुजन, आदरणीय मित्र व प्रिय साथियों ने प्रस्तावित इकरारनामे के मसविदे के सम्बन्ध में अपनी सम्मति व सुझाव भेजने की कृपा की है, जिसके लिए मण्डल उनका बहुत कृतज्ञ है। जिन-जिनने यह कष्ट उठाया है उनकी नामावलि इस प्रकार है—

(१) बाबू राजेन्द्रप्रसाद, (२) श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला, (३) काका कालेलकर, (४) बा० श्यामसुन्दरदास, (५) डा० सत्य प्रकाश, (६) पं० रामनरेश त्रिपाठी, (७) डा० धीरेन्द्र वर्मा, (८) श्री जैनेन्द्रकुमार, (९) प्रो० शंकरसहाय सक्सेना, (१०) श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, (११) प्रो० दयाशंकर दुबे, (१२) श्री श्री गणेश पाण्डेय, (१३) श्री भानुकुमार जैन, (१४) श्री कृष्णानंद गुप्त, (१५) श्री ज्योति प्रसाद 'निर्मल,(१६)डा० हरि राम चन्द्र दिवेकर, (१७) श्री रामनाथ 'सुमन', (१८) श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी और (१९) श्री रवीन्द्र।

इनके अलावा 'हंस' में श्री शि० सि० चौहान ने एक विस्तृत टिप्पणी दी है। और किसी पत्र-पत्रिका में इसपर कोई चर्चा हुई हो तो वह मेरे देखने में नहीं आयी है। इन नामों ही से पाठक यह जान लेंगे कि इनमें अधिकांश लेखक-वर्ग के हैं व कुछ प्रकाशक-वर्ग के। मतलब यह कि दोनों वर्ग के विचारशील व अनुभवी लोगों की सलाह का, जिनमें लेखकों की बहुतायत है, लाभ 'मण्डल' को मिला है। 'मण्डल' अवश्य ही इनकी सम्मतियों व सूचनाओं पर उनकी उपयुक्तता के अनुरूप ही ध्यान देकर आदरपूर्वक विचार करेगा और अपना निर्णय पाठकों के सामने रक्खेगा। इनमें सर्व-श्री डा०राजेन्द्रप्रसाद, काका कालेलकर, कि० घ० मश्रुवाला व 'सुमन' जी की सम्मतियों का ज़िक्र मेरे 'लेखक बनाम प्रकाशक' लेख ('जी० सा०' अप्रेल, १९४१) में आ चुका है। श्री जैनेन्द्रजी का समूचा पत्र ही पाठक जुलाई, ४१ के 'जी० सा०' में पढ़ चुके हैं। शेष की चर्चा अब यहाँ करनी है।

जो सम्मतियाँ मिलीं या प्रकाशित हुई हैं, उनके दो भाग हो जाते हैं—(१) आलोचना या सम्मति और (२) सुझाव। इस लेख में आलोचनाओं व सम्मतियों की ही चर्चा करने के लिए स्थान मिल सकता है। पहले आलोचना को लें। इनमें पहला नम्बर 'हंस' की टिप्पणी का आता है। उसे पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि चौहानजी ने बहुत जल्दी में व गुस्से में आकर वह टिप्पणी लिखी है जिससे उनके हाथों, शायद न चाहते हुए, मण्डल के साथ अन्याय हो गया है। मेरा खयाल है कि गुस्सा उतर जाने पर उन्हें खुद उसपर पछतावा हुआ होगा। उस टिप्पणी का सारा स्वर यहाँ से वहाँ तक ऐसा है कि सारा लेख उद्धृत किये बिना पाठकों को उसका परिचय कराना असम्भव है। फिर भी कुछ वाक्यों से पाठकों को उसकी बानगी मिल जायगी। मैंने अपने 'ले० बनाम प्र०' लेख में लिखा था—'मण्डल का उद्देश नफा कमाना नहीं, विशुद्ध साहित्य-सेवा करना ही है। अतएव लेखकों का शोषण करने की उसके मन में कल्पना भी नहीं आ सकती।' और 'लेखक उत्पादक है और प्रकाशक विस्तारक है। उत्पादक उच्च कोटि के जीवन का नहीं तो साधारण जीवन बिताने योग्य पारिश्रमिक पाने का अधिकारी तो अवश्य ही है।' इन वाक्यों पर चौहानजी टिप्पणी करते हैं—

"पहले अंश में एक पवित्र (pious) किन्तु मिथ्या भावना है, लेखकों की सद्भावना अपनी ओर खींचने के या बाजार की प्रतियोगिता में दूसरे प्रकाशकों को पछाड़कर आगे बढ़ने के उद्देश से तथा दूसरे अंश में पाश्चात्य पूंजीवाद के उपरोक्त फार्मूला (अर्थात् मज़दूर को पेट भरने लायक वेतन देना अपने ही हक में अच्छा होता है) का हिन्दी रूपान्तर है।...पहले अंश में यदि लेखक के शोषण और नफ़े से तोबा किया

दूसरे अंश में नफ़े में से लेखक को भी हिस्सा देने का आश्वासन है। अर्थात् ज्यादा भाग तो प्रकाशक की जेब में ही चाहिए यह पहले से ही मान लिया है।"

के बाद मुझपर यह आक्षेप करते हुए कि इस प्रश्न का हल लेखक के दृष्टिकोण से न प्रकाशक के दृष्टिकोण से किया है; यद्यपि वे लेखक हैं और ऐसी हानिकर व अपमानजनक शायद ही मंजूर करेंगे' वह 'मण्डल' पर नहीं नीयत पर इस तरह हमला है—"पहले संस्करण के बाद के सभी ों का मुनाफा मण्डल की तिजोरी में ही है और उसमें से लेखक को कुछ नहीं ।"

भी सचाई पर पर्दा कैसे डाला जाय? एक मसविदा पेशकर स्वयं मंत्रीजी ने उठा दिया है। हम आभारी हैं। इस पर्दे शोषण करने और मुनाफ़ा उठाने की ही अपने भैरव रूप में लेखकों को निगलने ार में मुंह खोले बैठी है कि कब पवित्र श्लोकों से अंकित रागनामी पर्दे में आकर लेखक भीतर पाँव रखें, और उदरस्थ कर लें। पूँजीवादी विज्ञापन- मुख्य सिद्धान्त है कि वह लोगों के की यह भावना उत्पन्न करदें कि का सेवन किये बिना उनका जीवन है, या कि उसको व्यवहार में लाकर ही समझे जा सकते हैं आदि, और ऊपर ऐलान भी कि अमुक कम्पनी ने मानव रक्षार्थ अमुक वस्तु तैयार कर महान् उपकार किया है। मुनाफे का उद्देश्य छिपा ही रहता कभी उघाड़ना चाहिए? कभी नहीं, नकारना ही चाहिए, तभी तो दूसरों में बाजी मारी जा सकती है। सस्ता मण्डल ने पूँजीवादी विज्ञापन-कला का भी सीख लिया है।"

और में, अपनी सम्मति का निचोड़ चौहानजी ने इन शब्दों में पेश किया है—

"इस प्रकार इकरारनामे का यह मसविदा मृगमरीचिका के समान धोखे की टट्टी है।...

"मंडल जैसी पुरानी संस्था जिस मसविदे को पेश कर रही है उससे तो ज्ञात होता है कि वह लेखक-वर्ग को कतई रियायतें देने को तैयार नहीं है।"

जबकि वे शुरू से ही यह मानकर चले हैं कि मंडल मुनाफा कमानेवाली, शोषण करनेवाली, धोखा देनेवाली पूँजीवादी संस्था है, तो इसका क्या जवाब दिया जाय सिवा इसके कि चौहानजी ने मंडल को सही आँखों से नहीं देखा है। मेरी राय में यह आलोचना की स्वस्थ पद्धति नहीं है। इसमें मानसिक रुग्णता की शंका होती है। फिर चौहानजी के अलावा किसी ने भी मंडल की दानत पर ऐसी शंका नहीं प्रकट की है। जिस चर्चा को छेड़ने के लिए कई महानुभावों ने मंडल को सराहा व बढ़ावा दिया है उसी के लिए चौहानजी ने मंडल को न जाने क्या-क्या कह डाला है? यदि मण्डल नफा कमानेवाली संस्था होती तो उसे अबतक १८०००) का घाटा न उठाना पड़ता? इतनी सस्ती पुस्तकें क्यों दी जातीं? बाद के संस्करणों में कई पुस्तकों के दाम क्यों घटाये जाते? कुछ पुस्तकों पर तो व्यवस्था खर्च भी नहीं लगाया गया है, केवल कागज व छपाई की लागत के दाम पर ही बेची जाती हैं।

प्रो० शंकरसहाय सक्सेना ने 'मंडल' के पारिश्रमिक के आधार पर कुछ नुक्ताचीनी की है, जिसे भी यहाँ दे देना उचित है—

"सस्ता साहित्य मंडल ने वेतन के इस (जीवन बिताने योग्य पारिश्रमिक) आधार को नहीं अपनाया। श्री हरिभाऊजी के लेख व प्रस्तावित इकरारनामे को देखकर तो यही कहना पड़ता है कि मंडल इस दिशा में हिन्दी के अन्य प्रकाशकों से एक कदम भी आगे नहीं है।" उन्होंने मेरे इस कथन को भी भ्रमपूर्ण बताया है कि हिन्दी के अन्य प्रकाशक मौलिक की लिखाई

।।), ।।=) व अनुवाद के ।), ।=) प्रति पृष्ठ तक देते हैं, पर साथ ही वे स्वीकार करते हैं कि "जहाँ-तक मंडल का प्रश्न है उससे धोखे की कल्पना नहीं की जा सकती और न उसके स्थायित्व में ही सन्देह किया जा सकता है।"

सक्सेनाजी का यह कहना बिलकुल ठीक है कि मंडल ने अभी मेरे जीवन-वेतन के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया है; मण्डल के सामने यह सारा प्रश्न ही विचारार्थ रक्खा जानेवाला है। और प्रकाशकों से मण्डल आगे हो या न हो, उसने पारिश्रमिक की न्यूनतम दर अपने यहाँ तय कर रक्खी है, जो शायद और जगह नहीं है।

अब सम्मतियों को भी देख लें। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-विभाग की ओर से श्री ज्योतिप्रसादजी 'निर्मल' लिखते हैं—

"मेरी समझ में इकरारनामा ठीक है। सम्मेलन के ३० वर्ष के जीवन में किसी भी लेखक और सम्मेलन के बीच पुस्तकों के सम्बन्ध में इकरारनामा नहीं हुआ। केवल नैतिक दृष्टि से ही काम होता रहा है। अबतक किसी भी लेखक को सम्मेलन के प्रकाशन-व्यवसाय के सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं हुई। लेकिन इकरारनामा आवश्यक है।"

श्रद्धेय बा० श्यामसुन्दरदासजी धारा ३ (अ) और (ब) में कुछ संशोधन सुझाते हुए काशी से लिखते हैं—"अन्य सब मुझे ठीक जान पड़ता है।"

छात्र-हितकारी पुस्तकमाला प्रयाग के श्री गणेश पाण्डेय लिखते हैं—"इकरारनामा पढ़ा। मेरी राय में यह इकरारनामा बहुत ठीक है। इसमें मैं सुधार की कोई गुंजाइश नहीं समझता। इसमें दोनों के हितों का पूरा ध्यान रक्खा गया है। आपने यह मसविदा प्रकाशित कर लेखकों और प्रकाशकों का बड़ा हित किया है। इसमें सभी बातें स्पष्ट कर दी गयी हैं जिनसे भविष्य में दोनों के बीच किसी प्रकार की गड़बड़ी पैदा होने की गुंजाइश नहीं रह जायगी।"

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डा० धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं—"'लेखक बनाम प्रकाशक' शीर्षक लेख मैंने ध्यान से पढ़ा। उसके मूल सिद्धान्तों से मैं सहमत हूँ। पारिश्रमिक की दर भी मौलिक के लिए १) व अनुवादक के लिए ।।) वर्तमान स्थिति को देखते हुए ठीक ही है।···इकरारनामे के कुछ स्थल यदि और अधिक स्पष्ट किये जा सकें तो अच्छा हो।"

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग से पं० रामनरेशजी त्रिपाठी लिखते हैं—"जी० सा० के······जो इकरारनामा छपा हुआ है उससे मैं पूर्ण सहमत हूँ। इकरारनामे के अनुसार व्यवहार चलाने से लेखकों और अनुवादकों को प्रत्यक्ष लाभ होगा।"

कानपुर से प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी लिखते हैं—"'ले० बनाम प्र०' लेख को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। मेरा तो विश्वास है कि लेखक और प्रकाशक के बीच इरारनामे की जो रूपरेखा जी० सा० ने उपस्थित की है वह सभी प्रकार पूर्ण है और उससे लेखक और प्रकाशक दोनों का ही लाभ होगा। इस प्रकार की योजना भावी साहित्य की वृद्धि में अवश्य सहायक होगी। अतएव इस सुझाव से मैं पूरी तरह सहमत हूँ।"

प्रयाग से प्रो० दयाशंकर दुबे ने लिखा है—"इकरारनामे की शर्तें अच्छी हैं। लेखकों की दशा सुधारने का सस्ता-साहित्य-मंडल जो प्रयत्न कर रहा है वह दूसरे प्रकाशकों के लिए अनुकरणीय है।"

प्रयाग विश्व-विद्यालय के डाक्टर सत्यप्रकाश लिखते हैं—"जो इकरारनामा छपा है वह सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी परम व्यावहारिक है।"

"टीकमगढ़ से श्री कृष्णानन्द गुप्त लिखते हैं—"···शीर्षक लेख मैंने बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा है। लेखक और प्रकाशक के बीच जो इकरारनामा है उसमें मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि लेखक की ओर से उसमें कोई शर्त नहीं रखी गयी है। इस इकरारनामे में लेखक ही प्रकाशक के नज़दीक पूर्ण रूप से बाध्य जान

है। परन्तु लेखक के प्रति प्रकाशक का भी होगा अथवा नहीं और यदि होगा तो का कुछ उल्लेख इकरारनामे में नहीं।"

कालेज, उज्जैन के डा० दिवेकर है—"लेखक-प्रकाशकों के बीच में समझौते जी० सा० में प्रकाशित योजना ठीक मेरा विषय नहीं। मैं तो समझता हूँ कि उत्तम है तो प्रकाशक भी मिल जाता इस विषय में मुझे अनुभव नहीं।"

श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी मथुरा से लिखते आपने 'जी० सा०' में लेखक व प्रकाशकों को उठाया है। यह बहुत शुभ है। मैं 'जी० सा०' को इस स्तुत्य प्रयत्न के लिए बधाई देता हूँ।"

डा० सत्यप्रकाश, प्रो० सक्सेना, श्री रामनाथ सुमन, श्री भानुकुमार जैन, श्री रवीन्द्र और श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने विस्तृत पत्र लिखकर सुझाव भेजे हैं। इन सबको स्थानाभाव से 'जी० सा०' में प्रकाशित नहीं किया जा सकता। हाँ यह सुझाया गया है कि तीन सुयोग्य व्यक्तियों की समिति उन सबपर विचार करके जिस निर्णय पर पहुँचे, उसे अवश्य प्रकाशित किया जावे। पाठक-गण इसकी प्रतीक्षा करने की कृपा करें।

ह० उ०

श्रद्धाञ्जलि

सम्पादकजी,

को रविबाबू हमारे बीच से उठ आज रविबाबू के साहित्य नहीं स्वयम् ध्यान जाता है। साहित्य का अन्तरंग है? उसको मैं संस्कृति कहता हूँ। रविबाबू पर मन में कुछ ऐसी जिज्ञासा उठ जो साहित्य के अन्तरंग में जाना है।

विश्वकवि थे और दुनिया के बौद्धिक से आध्यात्मिक प्रहरी थे। मानवता के उन्होंने ऊँचे रक्खा। किसी राष्ट्रीयता से अस्त नहीं होने दिया।

में युद्ध-घमासान मचा है। जाने क्या भविष्य निकलेगा! भविष्य की का विश्वास खोने का हक किसी को फिर भी वर्तमान को देखकर जी काँपता इस रक्तस्नान में से निकलकर मानवता लेगी, कहा नहीं जा सकता। पर मन में दूसरा ही सवाल उठा है। पर विजय पाने के लिए लाखों रहा है और लाखों ले रहा है। अस्त्र-हानि की तो गिनती ही क्या है? लेकिन रविबाबू के निधन के बाद पत्र को देखने से जान पड़ता है कि उन्होंने एक मुल्क के नहीं, तमाम दुनिया के हृदय को जीता है। यह कैसे सम्भव हुआ?

आज यही बड़ा सवाल है। जीतने की ठान ठानकर जब कोई चलता है तो देखा जाता है कि हर क़दम पर प्रतिरोध ह। मुल्क तो मुल्क आदमी से भी सीधे गर्दन नहीं झुकवायी जा सकती। शक्ति का ज़ोर दूसरी तरफ़ भी प्रतिरोध के ज़ोर को चलने देता है। कोई जीते जी बस में नहीं आना चाहता। ऐसे विजेता मुर्दों की खोपड़ियों पर खड़े होकर ही अपने को विजेता कह सकता है और उन खोपड़ियों के नीचे सुलगता हुआ वैर छिपा रहता है जिसमें से उस विजेता का कभी आगे जाकर शत्रु पैदा होता है। हमारी आँखों के आगे शक्ति का युद्ध चल रहा है, जहाँ चप्पा-चप्पा ज़मीन सैकड़ों-हज़ारों की जान बहाने पर ही जीती जा सकी है; फिर भी ज़मीन जीती जा सकी है, आदमी नहीं और वह विजय जाने किस छन पराजय बन जायेगी! इसमें सन्देह है कि उस प्रकार की विजय विजेता के लिए भी गौरव की बात है।

दूसरी ओर यह विजय देखता हूँ, जहाँ आपस में स्पर्धा है, कि हम अपनी श्रद्धा अधिक गाढ़ी दिखा सकें, जिस श्रद्धा के समर्पण में राजा-प्रजा, राजनीतिक और साहित्यिक सब एक हो गये हैं। पत्रों में देखा कि सरकार के प्रथम प्रतिनिधि वाइसराय के साथ सरकार के प्रथम विद्रोही गांधीजी की श्रद्धांजलि छपी है।

उस विजय के विस्तार की ओर मुझे नहीं देखना है। उसकी प्रकृति से ही मुझे काम है। और मैं मानता हूँ कि इस प्रकार की विजय चाहे फिर उसकी व्याप्ति कितनी ही स्वल्प हो, सैनिक विजय से चाहे फिर वह कितनी ही महान हो, मेरे निकट अधिक क़ीमती है। कोई चाहे साम्राज्य बना दिखाये और पृथ्वी-खण्ड के तमाम भूपतियों को परास्त करके एक-छत्र चक्रवर्ती क्यों न बन जाये, पर वह बिल्कुल दूसरी चीज़ है। वह विजय के पहले प्रकार से एकदम भिन्न है और उसकी समता नहीं कर सकती।

रवीन्द्रबाबू के उपलक्ष से मेरा ध्यान उसी पद्धति की ओर जाता है जिससे दूसरे के हृदय को जीता जाता है। मैं सचमुच मानता हूँ कि सैनिक बहादुरी के बड़े-से-बड़े कारनामे से बड़ा करिश्मा वह मालूम होता है जहाँ कि एक आदमी स्वेच्छापूर्वक दूसरे के आगे माथा झुकाता है; जहाँ जो माथा झुकाता है, वह अपने झुकने के कारण अपने को उतना ही धन्य भी अनुभव करता है। इस दुनिया में जहाँ अहंकारों की लड़ाई है, वहाँ इससे बड़ी और स्थायी वजह हो क्या सकती है कि आदमी अपने अहंकार को ऐसा जीते कि दूसरा कृतार्थ-भाव से आप ही उसके आगे झुक जाये। मैं मानता हूँ कि यह नैतिक विजय है।

हाथ की ताकत को हम जानते हैं, उसके असर को जानते हैं। बुद्धि की ताकत को भी हम जानते हैं और वह यूरोप की लड़ाई में देखी जा सकती है। पर रवि बाबू के उदाहरण में जो ताक़त काम कर रही है, वह दैहिक नहीं है, वह अस्त्र-शस्त्र की नहीं है और वह चतुराई की भी नहीं है। वह उनसे भिन्न है और अमोघ है। मैं उसको आत्मा की ताक़त कह सकता हूँ।

वह नहीं दीखती लेकिन कैसे कहा जाये कि वह नहीं दीखती? क्योंकि वह नहीं तो रवि बाबू के प्रति विश्व के हार्दिक शोकोद्गार में दूसरी और क्या चीज़ दीखती हुई मानी जा सकती है? कोई आतंक से विजय पाये, उन्होंने स्नेह से हृदयों को जीता और जो जीता गया, उसे पता न चला कि वह विजित है, बल्कि उसने भी वैसा ही आह्लाद अनुभव किया कि जैसे वह स्वयं विजेता हो। और यह सच है क्योंकि सचमुच उसने अपने अहंकार पर विजय पायी है।

एक कथा सुनी थी, कि एक मुनि से धोबी उलझ पड़ा। मुनि ने भी लिहाज़ न की। ऐसे जब मुनि पर मार पड़ी तो, उन्होंने ईश्वर को पुकारा। भगवान ने सेवकों को बुलाकर कहा—देखो, किसी मुनि पर संकट है, जाकर रक्षा करो। सेवक चला गया। लौटा, तो भगवान ने पूछा—क्या हुआ? सेवक ने कहा कि महाराज, दोनों की हाथापाई में मैं तो जान ही न सका कि कौन मुनि है और कौन धोबी?

यही बात है। असल युद्ध है मानव के भीतर के देवता का और दानव का। रवि बाबू की साधना देव-मार्ग की थी। इसीसे मैं मानता हूँ कि उसमें स्थायित्व है। मनुष्य जाति के विकास के इतिहास में उसकी गणना होगी। वह ऊंचा उठानेवाली है। उससे अहंकार को उत्तेजन नहीं मिलता। स्नेही की व्यथा ही और गंभीर हो रहती है। उससे आदमी में वज़न बढ़ता है और आपाधापी कम होती है।

प्रचार और अखबार के ज़माने में सहसा जान पड़ता है कि जीवन के महत्त्व-सम्पादन का उसे छोड़ दूसरा रास्ता नहीं है। जैसे नामवरी ही महत्ता है; पर रवीन्द्र के उदाहरण से यह प्रकट हो जाना चाहिए कि यह भ्रम है। अखबारी शोर सत्य को डुबाने के लिए और विज्ञापनवाली प्रसिद्धि असलियत को ढके रहने के लिए है। पर, सत्य के अपने ही नियम हैं और

न में प्रकट होता ही है। प्रचार और ओर अपने सिवा कुछ भी और न सुनने कितनी ही कोशिश किया करे, हृदय वाणी हृदय को एक अलक्ष्य तार के ही जाती है। उसमें रव कम है, प्रभाव अधिक है। शाब्दिकता कम है, हार्दिकता उसमें से अनायास स्फुरित है।

बाबू की कविता के पीछे मैं मानता हूँ की ओर सहानुभूति की वही गहन थी। उसी सुर से उनके शब्द पाठक के में एक झनकार छोड़ जाते थे और पाठक उनका ऋणी बनता था। इसकी अपने-गाँठ इस सहानुभूति के सन्देश से जैसे खुली थी, और अपने को खो रहने से बड़ी उपलब्धि क्या है, उससे बड़ा दूसरा आह्लाद है?

नुष्य की इस सहानुभूति पर तरह-तरह के ओं की मर्यादा लदी होती है। कोई अपने ों को प्रेम करता है, किन्तु उस प्रेम में ही की रहती है कि वह विधर्मी को न मिले। देशवासी को स्नेह करता है, पर बस देश र के वासी को कहीं वह न पहुँच जाये। जाति, संप्रदाय राष्ट्र-धर्म और इस तरह ना भेद-विभेदों में मानव सहानुभूति का उलझकर रह जाता है। शायद रविबाबू इन ों से उभर सके थे। वह हिंदुस्तानी थे और न गुलाम है; फिर भी उनमें क्षमता थी कि के सम्बन्ध में अंग्रेज में जो प्रभुता का है, वह उनकी दृष्टि से नीचे रह जाये और अंग्रेज को वह अपना सहज स्नेह दे सके। कल्पना है कि रवि बाबू के उन्नत मस्तक को किसी अंग्रेज को इस अहंगर्व में मदद नहीं कि यह हमारा गुलाम है। इस तरह अंग्रेज को स्वतन्त्रता (क्योंकि सच पूछा तो अंग्रेज आज स्वतंत्र नहीं हैं) का तथ्य में उनसे मदद मिली। अंग्रेज़ आज उनसे सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता सीख सकता है। वह चाहे तो उनके उदाहरण से अपनी संकीर्ण अंग्रेज़ियत से उद्धार पा सकता है।

मैं मानता हूँ कि राष्ट्रीयता से अलग शुद्ध इन्सानियत का सदा पक्ष लेकर रवीन्द्र ने राष्ट्र और राष्ट्रीयता की बड़ी सेवा की। इसी से वह सच्चे राष्ट्र-प्रेमी थे, स्वयम् में स्वच्छ और अच्छे बनकर वह एक ही साथ सच्चे बंगाली, सच्चे हिंदुस्तानी और सच्चे विश्व-नागरिक हो सके। अंग्रेजी पर किसी से कम उनका अधिकार न था, फिर भी सदा उन्होंने बंगला में लिखा—जो भाषा कि उन्हें सहजप्राप्त थी। अपनी जमीन से, परम्परा से, अतीत से अपने को विच्छिन्न नहीं किया। किसी भाँति उन्हें कम आधुनिक नहीं कहा जा सकता, पर उन्हीं से हम उपनिषद-काल की झाँकी पा सकते हैं, युग उनसे बिछुड़ नहीं सकता, क्योंकि युग-युगानुमोदित सत्य में उनका अधिष्ठान था।

हमारी राजनीति हिंसा को लेकर चले और अपने तात्कालिक प्रयोजन साधने की सोचा करे पर उसकी प्रगति उन मूलभूत आधारों से टूट नहीं सकती, जिनकी सत्यता का साक्ष्य अनादि काल से द्रष्टाओं की एक सतत परम्परा द्वारा हमको मिलता रहा है। प्रेम से विकास सधा है और हिंसा के ज़ोर से किसी वर्ग का प्रयोजन भले सधता दीखे मानवता के हित की तो उससे हानि ही हो सकती है। इससे उन्नति का मार्ग वही है जहाँ दूसरे के व्यक्तित्व का दमन नहीं किया जाता, अपने ही विकारों के शमन द्वारा दूसरों से साम्य और ऐक्य साधा जाता है। उसका नाम है अहिंसा; और संस्कृति यदि प्रगति कर सकी है या करेगी तो अहिंसा के ही द्वारा।

अपनी इस प्रतीति द्वारा रवि बाबू की स्मृति में एक ऋणी मानव के नाते मैं अपनी श्रद्धा भेंट करता हूँ।

दिल्ली
१२–८–४१

सप्रणाम आपका
जैनेन्द्रकुमार

सापेक्षतावाद

[किशोरलाल घ० मश्रुवाला]

सत्य, धर्म, सदाचार, नीति आदि अनेक विषयों में सापेक्षतावाद की दृष्टि से शंका उठाने की अेक वृत्ति इस ज़माने में कुछ ज़ोर से पैदा हुई है। जैनदर्शन के स्याद्वाद अथवा अनेकान्तिकवाद का ही वह अेक भिन्न रूप है। तलवार और सुई अेक दृष्टि से अेक ही चीज़ हैं और दूसरी दृष्टि से जुदी-जुदी चीज़ें हैं। इसलिअे, उन्हें एक कहने का आग्रह रखनेवाला भी ठीक कहता है, और भिन्न कहनेवाला भी ठीक कहता है, और दोनों गलत भी कहते हैं। इसलिअे निरपेक्ष दृष्टि से हमें न उन्हें अेक कहना चाहिअे, न भिन्न। यह इस तर्कश्रेणी का छोटा-सा रूप है। इसी तरह सापेक्षतावादी कहते हैं कि किसी आचार, विचार या उच्चार के विषय में हम निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते कि वह सत्य, धर्म, नीति आदि से युक्त है या असत्य, अधर्म, अनीति आदि से; क्योंकि सत्य, नीति, धर्म आदि का कोई निरपेक्ष नाप है ही नहीं। इस विचार से जब मैंने श्लील और अश्लील साहित्य में भेद करने की अपनी अेक दृष्टि पेश की, तब अनेक विद्वान् लेखकों ने मेरे नाप पर आपत्ति उठायी, और करीब-करीब यह सिद्ध कर बताया कि श्लील-अश्लील की मर्यादा समझने के लिअे हमारे पास कोई साधन ही नहीं है।

साहित्य-परीक्षण मेरा विषय नहीं है, और इत्तिफाक से ही मेरे सर पर यह चर्चा आ पड़ी। मुमकिन है कि मेरे उस लेख में कुछ विचार-दोष भी हो। और विचार-दोष न हो तो भी अन्य विचारकों का मुझसे प्रामाणिक मतभेद भी हो सकता है। कई विषय इस प्रकार के होते हैं कि जो सदैव चर्चास्पद ही रहते हैं, और कुछ हद तक चर्चा हो जाने पर अपना मत प्रकट करके मौन धारण करने में हरेक का सयानपन होता है। अपना कोई सम्प्रदाय बनाने की दृष्टि रखे बिना यदि अैसी चर्चा होती है, तो मतभेद होते हुअे भी परस्पर आदर और मैत्री का नाता कायम रहता है। इस दृष्टि से श्लील-अश्लीलता के विषय में मेरी विचारश्रेणी पर आपत्ति उठानेवाले मित्रों को जवाब देने की दृष्टि से कुछ लिखना मुझे उचित मालूम नहीं होता। यह लेख तो उस चर्चा में प्रकट किये गये सापेक्षतावाद का ही कुछ विचार करने के लिअे लिखा गया है। मेरे लेखों में हमेशा यह प्रयत्न रहता है कि विचारधारा चलाने की हमारी पद्धति स्वतंत्र, स्पष्ट और साफ हो और अनुभव के क्षेत्र में आनेवाली हो। कोई कल्पना, मान्यता, पूर्वाग्रह या वाद के आधार पर यथासम्भव न बनी हो। और जो निरपेक्षता अनुभव की मर्यादा से बाहर हो, उसे भी व्यवहार के लिअे काल्पनिक ही कहना चाहिअे।

यह बात सही है कि कई बातें अेक देश और काल याने परिस्थिति में सत्य, धर्म, नीति आदि से युक्त मानी जा सकती हैं, और दूसरी में विरुद्ध। लेकिन अैसी बात सिर्फ नैतिक विषयों में ही नहीं है। मामूली स्थूल पदार्थों के गुण-वर्णन में भी अैसा ही होता है। उबलता हुआ पानी, उबलते हुअे लोहे के रस की दृष्टि से बहुत ही ठंडी चीज़ है और जमाया हुआ पानी (बर्फ़) जमाये हुअे आक्सिजन के आगे बहुत गर्म पदार्थ कहा जा सकता है। फिर भी, किसी भी मनुष्य का बर्फ की गरमी से अपनी सर्दी उड़ाना या उबलते हुअे पानी को छूना सम्भव नहीं है। मनुष्य मात्र के लिअे निश्चयपूर्वक बर्फ़ बहुत ठंडा ही है, और उबलता हुआ पानी बहुत गर्म ही। ठंड और गर्मी सापेक्ष गुण होते हुअे भी मनुष्य की अपनी सहनशक्ति के नाप से बर्फ अति-शीतलता के प्रदेश में है और उबलता हुआ पानी अति-उष्णता के। अपने शरीर की उष्णता को नजर में रखकर उसनें एक मापदण्ड बना दिया है और व्यवहार के लिए वही माप उसके लिए काफी ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। मनुष्यों की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है, और हरेक का ठंड और

निर्णय कुछ-कुछ भिन्न हो सकता है। यह भेद अेक छोटे से न्यूनतम और अधिकतम के बीच में ही रहता है। उदाहरणार्थ, सर्दी की व्याख्या ४०° से ७०° अंश के सकती है, और गर्मी की ८०° से १००° में। अैसा कोई आदमी मिलना संभव जो ३०° अंश उष्णता को असह्य गर्म अथवा १३०° अंश की उष्णता को गर्म । और अनुभव से यह भी कहा जा है कि साधारण तौर पर मनुष्य का सर्दी-गर्मी के फ़रकों की सुखपूर्वक बरदाश्त करने ६५° से ८५° अंश तक की है। बहुतेरे कुछ ही सर्दी महसूस करेंगे, और गर्मी। तब मोटेरूप में और आम नज़र में रखकर यह कहने में आपत्ति हवा में शीतोष्णता की सुखप्रद मात्रा अंश है। इसलिअे 'बराबर-हवा-कंडिशंड) मकानों में अक्सर ७०° से तक गर्मी रखने का इंतज़ाम किया जाता और ८५° जैसे हम कुछ निश्चित आँकड़े हैं, क्योंकि हमने अेक थर्मामीटर बना है। पर जब थर्मामीटर की भाषा मालूम भी मनुष्य का स्वानुभव का अेक मापदण्ड होता है। अंकों की परिभाषा नहीं बोल सकता। लेकिन इसके नहीं कि मोटेरूप में उसे उसकी कोई हो नहीं। हरेक को उसकी कल्पना है दो मित्र मिलते ही 'आज बहुत गर्मी ज़्यादा सर्दी है, आज बहुत अच्छा दिन होता है, अब ठंड उड़ गयी, अब गर्मी है' आदि कहते हैं। हरेक का ठंड-नाप कुछ अंश में अलग-अलग होते अेक मोटे तौर पर समान अनुभव है, समान अनुभव पर वे व्यवहार कर है। यह सब भाषा सापेक्ष गुणों के बारे की सभी ने अेक समशीतोष्ण माध्यम और अेक दूसरे को समझने के लिअे वह होता है।

इस जमाने के वैज्ञानिकों ने ताप के निरपेक्ष शून्यांश का भी अेक स्थान माना है। पानी के शून्यांश से ३७३° अंश वह नीचे है। लेकिन संभव है कि आये जमाने में वह भी सापेक्ष ठहराया जाय। लेकिन मानव व्यवहारों में आज का भी निरपेक्ष शून्यांश का माप-दंड रोज के कामों में उपयोग में लाया नहीं जा सकता। रोज के कामों में तो शीतोष्णता का जल पर जो असर होता है, उसी को नजर में रखकर बनाया हुआ थर्मामीटर इस्तेमाल किया जाता है, और वह काफी उपयोगी मालूम होता है।

इसी तरह क्या सत्य है क्या असत्य, क्या नीति है क्या अनीति, क्या सदाचार है क्या दुराचार, क्या श्लील है और क्या अश्लील आदि में निरपेक्ष सत्य, नीति, सदाचार, शील आदि की व्याख्या खोज सकें तो भले ही वह प्रयत्न किया जाय। लेकिन उसके अभाव में, चाहे वह विशिष्ट देशकाल के मानवों के लिअे ही क्यों न हो, यदि हम एक व्यवहारोपयोगी साधारण मानवों के अनुभव के क्षेत्र में आनेवाले मापदंड की व्याख्या बना लें, तो वह काफी है।

कला या साहित्य के अेक नमूने का अेक बिलकुल ही बालबुद्धि, मूढ़ अथवा अत्यंत स्थिरबुद्धि ज्ञानी के दिल पर क्या असर होता या नहीं होता, ये दोनों सिरे छोड़ देने चाहिअे। वे थर्मामीटर के शून्यांश और २१२° हैं। जिस तरह साधारण मानवों के लिअे सुखपूर्वक उपभोग्य सर्दी-गर्मी ६५° से ८५° के बीच में की है, उसी तरह उनके लिअे निर्दोष कला और साहित्य की अनुभव के क्षेत्र में आनेवाली अेक मर्यादा बनायी जा सकती है,और वह व्यवहार के लिअे काफी है।

मैंने श्लील-अश्लील ठहराने की जो व्याख्या बनायी, वह व्यवहारोपयोगी है या नहीं, इसका विचार किया जाय। साहित्य और कला का उपभोग करनेवाले कोई अत्यन्त बालबुद्धि, मूढ़ या अत्यन्त स्थिरबुद्धि ज्ञानी नहीं होते। वे संसार में रचे-पचे हुअे साधारण लोग होते हैं। उनके दिल में कुछ न कुछ भाव पैदा करने के लिअे

ही साहित्य और कला का सर्जन होता है। उसे करनेवाले भी कुछ न कुछ भावों से हिले हुअे होते हैं। भाव ज्ञानतन्तुओं द्वारा होनेवाला अेक शारीरिक फेरफार है। शरीर पर अनेक तरह के परिणाम हो सकते हैं। उनमें से अेक परिणाम काम-प्रकोप का भी है। यह कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है, प्रत्यक्ष अनुभव की चीज़ है। अेक साहित्य या कला का सर्जन करने तथा उपभोग करनेवाले सौ या हजार साधारण मनुष्यों के दिल पर उसका क्या असर होता है अथवा होना संभव है, इसका पता लगाना मुश्किल नहीं है। (मैं जान-बूझकर 'प्रकोप' शब्द लिख रहा हूँ, और उसी अर्थ में जैसे पित्त-प्रकोप कफ-प्रकोप आदि इस्तेमाल किये जाते हैं।) यदि साधारण जन कहे जानेवाले कर्ता और भोक्ता में से किसी को भी वह काम-प्रकोप करानेवाली चीज़ है अथवा होना सम्भव है तो वह अश्लीलता के क्षेत्र में आनेवाली चीज़ है।

इसी तरह साधारण जनों के लिअे उपयुक्त होनेवाली सदाचार-दुराचार, नीति-अनीति, सत्य-असत्य आदि की व्याख्याएँ बनाना मुश्किल नहीं। उदाहरणार्थ,आत्म-बल(सोल फोर्स या स्पिरिचुअल फोर्स) और नीति-बल (मौरल फोर्स) का इस तरह भेद और लक्षण किया जा सकता है: जो बल एक मनुष्य को किसी उद्देश की सिद्धि के लिअे अपने सुख-संपत्ति और प्राण तक का बलिदान देने की शक्ति देता है, वह आत्म-बल है। और जो बल एक मनुष्य को सुख-संपत्ति की प्राप्ति और प्राण की रक्षा करने के प्रयत्नों में कुछ मर्यादा बाँधकर, प्रलोभन होते हुअे भी उस मर्यादा को न छोड़ने की ताकत देता है, वह नीति-बल है। इसपर से कह सकते हैं कि सत्य और नीति वे चीज़ें हैं जो क्रमशः आत्म-बल और नीति-बल, याने मनुष्य की बलिदान और संयम शक्ति, को बढ़ाती हैं और असत्य तथा अनीति वे जो उन्हें घटाती हैं। ये व्याख्याएँ वैज्ञानिक की दृष्टि से सापेक्ष जरूर हैं। लेकिन इसलिअे वे बेकाम की नहीं। ये नाप हमारे अनुभव की कक्षा में आते हैं, और सब समझ सकते हैं।

हमारे धार्मिक साहित्य और कला में भी अश्लील चीज़ें भरी पड़ी हैं। उन्हें धार्मिक श्रद्धा के साथ जोड़ दिया गया है इसलिअे सज्जन और सदाचारी भक्त भी उनका गौरव करते हैं, और उसकी अश्लीलता के प्रति दुर्लक्ष करते हैं जो विचारन्यूनता का ही एक परिणाम है। सुना है कि वारांगनाएँ भी तो धार्मिक साहित्य और कला की चीज़ें ही अपने ग्राहकों के आगे पेश करती हैं। उनका हेतु निश्चय काम-प्रकोप कराने का ही होता है, और वे इन चीज़ों को उसके लिअे उपयुक्त समझती हैं, तभी तो इनका आश्रय लेती हैं। दंभी और पाखण्डी गुरु क्यों अपनी शिष्याओं के साथ कृष्ण-गोपी का अनुकरण करते हुअे पाये जाते हैं? धर्म के नाम पर साहित्य और कला में अश्लील चीज़ें पैठी हुई हैं, तभी तो वे उसका अनुचित लाभ उठाते हैं। ये चीज़ें धार्मिक साहित्य और कला में होने के कारण ही मैं उन्हें शुद्ध, निर्दोष, या श्लील कहने के लिअे तैयार नहीं हूँ; बल्कि मैं कहूँगा कि कृष्ण-गोपी और दूसरे भी देवों के अैसे शृंगार-वर्णन और उसे युक्त मनानेवाले तत्त्व-विचार ने हमारी संस्कृति और समाज में बहुत कुछ अपवित्रता और गंदगी फैला दी है, और हमारे समाज को बहुत गिराया है।

यह प्रतिपादन करने के लिअे कि "अैसा साबित किया जा सकता है कि जो कुछ होता है वह ठीक ही है" हमें सापेक्षतावाद का उपयोग न करना चाहिअे। मेरी राय में उसका उपयोग सिर्फ समभाव से दूसरे पक्ष का दृष्टिबिन्दु समझने के लिअे और उसकी या हमारी कहाँ भूल होती है, यह खोजने के लिअे है। स्याद्वाद का भी उपयोग यही है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

[प्रभाकर माचवे]

के व्यक्तित्व में उनकी कविता घुली- है। जैसा व्यक्तित्व, वैसा काव्य : सीधा- बाह्यावरण से मुक्त, नियमित, छन्दोभंग सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिये श्रद्धा की अखंड ज्योति साथ लिये हुए, मुक्तक की सृष्टि के लिए आवश्यक मधु- जैसी अनवरत श्रम-पूजा—ये ही कुछ हैं जिनमें हम चाहें तो उस महाप्राण को बाँधें ।

बार किसी को गुप्तजी के ग्रंथों की संख्या विनोद में सूझा था कि यदि उनकी सब की एक-एक प्रति लेकर उसका 'पिरा- बनाएं और अगर गुप्तजी उसके पास बैठें वह पुस्तक-राशि उनसे ऊँची निकल । न केवल संख्या और परिमाण में, वरन् और परिणाम में भी उनकी कृतियों की उनसे बड़ी है। और कवि को 'मनीषी स्वयम्भू' इसीलिए कहा गया है ।

न्दी-पत्रों में चर्चा उठती है कि गुप्तजी राष्ट्रीय कवि हैं या जातीय या प्रान्तीय ! ज्ञानमूलक चर्चा है । गुप्तजी हमारे हैं, यानी इस ऐतिहासिक या भौगोलिक विभाजन से परे मानवता का जो तत्त्व वे कवि हैं। गुप्तजी ने राष्ट्रीय तो लिखा ही है। 'भारत-भारती' अभी रत की भारती है, 'प्रालेतारिया' आख्या- है। साहित्य-सम्मेलन की साहित्य-परिषद ति पद से कहा गया था कि गुप्तजी मचन्दजी का युग बीत गया ! बीत गया जी तो अब भी वैसे ही हैं, और युग के हैं। या उनकी गिरफ्तारी ही पर कहें, वे युग के साथ हैं। 'जातीय' उन्हें कहना अन्याय होगा। हिन्दू वीरों के और के चरित उन्होंने अधिक गाये हैं, मगर भी कविताएँ लिखी हैं; हसन-हुसैन पर लिख रहे हैं; और उमर खय्याम का भी अनुवाद किया है। और मुन्शी अजमेरी आपके कैसे अभिन्न थे यह कौन नहीं जानता ? जिसे संस्कृति मात्र में रुचि होती है, उसे यह-या-वह संस्कृति कोई माने नहीं रखती, उसे सब एक-सी वंद्य हैं। प्रान्तीयता उन्हें छू तक नहीं गयी; सब प्रांतों के वीरों उन्होंने पर रचनाएँ लिखी हैं—बाजीप्रभु, सिद्धराज, पलासीर युद्ध (अनुवाद) !

गुप्तजी पर प्रायः यह आक्षेप लगाया जाता है कि वे गद्यात्मक हैं। मैं स्वयम् विद्यार्थीकाल में निरी कोमल-कान्त-पदावलीवाली निरर्थक भावुकता की छाया-माया को कविता समझता था, गुप्तजी को ऊँचा कवि मानने के लिए तैयार नहीं था। मगर फिर मैंने पढ़े अभिजात (क्लासिक) कवि। इनके अलावा मैंने अंग्रेजी में 'पोप' भी पढ़ा, मराठी में चन्द्रशेखर और मोरोपंत, और गुजराती में नान्हालाल। मुझे याद आता है, आदरणीय सन्मित्र श्री शान्तिप्रसाद वर्मा ने एक बार 'हंस' में मैथिलीशरणजी की बड़ी अच्छी तुलना उर्दू के विख्यात 'मुसद्दस'-कार हाली से की थी। गुप्तजी में वे ही सब गुण हैं जो एक अभिजात, आख्यानकार में आवश्यक हैं। आख्यान पद्यबद्ध करते समय कई कड़ियाँ निरी वर्णनात्मक-इतिवृत्तात्मक हो जाना स्वाभाविक ही है। परन्तु 'जयद्रथ-वध' से 'यशोधरा' या 'द्वापर' में आकर, इतिवृत्तकार की गद्यात्मकता से और भावुक छायावादी की निरर्थकता से बचने की एक यत्नसाध्य सतर्कता दीखती है। और जो कविता को स्वप्निल और आसमानी ही बनाये रखना चाहते हैं, उन्हें यह सतर्कता गद्यात्मक जान पड़ सकती है। परन्तु जग-जीवन गद्य है, युग कठोर है, और क्या स्वप्न-पूजा ही कवि-कर्म रहेगा ? कवि-कर्म तो विशाल शिल्प कृति है; और गुप्तजी की कौन-सी कृति किसी गुहास्थित विराट् मूर्ति-अंकन से कम अध्यवसाय और एकनिष्ठता से भरी है ?

चिरगाँव का यह अचिर काव्य-स्रष्टा जन्म से वणिक्-कुल का, धर्म से वैष्णव और व्यवसाय

से एक प्रेस का संचालक है। वह स्वयम् अपना प्रकाशक है। पर आज की आर्थिक भगदड़ की दुनिया में आप किस वणिक् से निम्न पंक्तियां की अपेक्षा कर सकते हैं ?

दोनों ओर प्रेम पलता है !
काम नहीं, परिणाम निरखता,
यही मुझे खलता है।

'साकेत' में उर्मिला को प्राधान्य देने पर गांधीजी ने गुप्तजी को प्रेमभरा उलहना दिया था। पर गुप्तजी की महानता शायद इसी में है कि जैसे रामायण में उर्मिला, उसी प्रकार जीवन में जो उपेक्षित, दलित, वंचित-मुंचित वर्ग है उसको अपनी रचना में उन्होंने सम्मान का स्थान दिया है—'किसान' 'अछूत'।

खद्दर का घुटनों तक का कुर्त्ता, बुंदेलखण्डी पगड़ी, ऐनक तो कभी पढ़ते वक्त लगाते। बीच में तो खशखशी दाढ़ी भी रख ली थी। अत्यधिक नम्रता से भरी बातचीत, परन्तु पुस्तकों पर सम्मतियाँ देते समय निर्मम संयतता – यह नहीं कि आशीर्वाद पर प्रशंसा की चाहे-जैसी पंक्तियाँ लिख दें। कुशाग्र-जिज्ञासु, अभ्यासी वृत्ति, मितभाषी, 'भज्जा' से बोलते समय प्यारी बुंदेलखंडी बोल-भाषा का प्रयोग। प्रथम दर्शन में एक भोला गँवई किसान। पर इस किसान ने 'किसान' काव्य की कृषि की।

गुप्तजी के अनुज का उल्लेख किये बिना, उनपर शब्द-चित्र पूरा बनता नहीं; क्योंकि सियारामशरण का अपना व्यक्तित्व है, तो भी उनपर अपने अग्रज की पूरी छाप है। सियारामशरण में मैथिलीशरण से अधिक आधुनिकता है। दोनों ध्येयवादी हैं। 'है हमारे अर्थ बस आदर्श ही आराध्य।' दोनों की निर्मल-हृदयता उनकी बाह्य सादगी और ग्रामीणता में इस प्रकार प्रसुप्त है, जैसे चट्टानों में छिपा हुआ उत्स या झाड़ियों में ओझल बेतवा।

हाल में गुप्तजी के साथ जो कुछ हुआ है, सब जानते हैं। इससे मुझे गुप्तजी की 'व्यास-स्तवन' नामक कविता की एक कड़ी याद आ रही है—

करने को तव सन्मार्ग लुप्त
हैं हुए यत्न बहु प्रकट-गुप्त।
वे हुए किन्तु निष्फल, निषिद्ध,
हो क्योंकर सत्य, असत्य सिद्ध।

वरन् हथकड़ियाँ और कविता की कड़ियाँ–इनकी साझेदारी पुरानी है और कवि की वाणी के लिए कैद कैसी ? कविता की कड़ियों के लिए कोई हथकड़ियाँ बनाये ऐसे संशोधक या वैज्ञानिक की अभी दुनिया में कमी है।

गुप्तजी बन्दी हैं। पर गुप्तजी के जो चाहनेवाले हैं, आप और हम, क्या उनके कारावास की खबर को चुपचाप पी डालें? साहित्य-सम्मेलन के लिए यह एक गौरव का इतिहास होना चाहिए कि उसके सभापति कारावासी रहें: गतवर्ष संपूर्णानन्द, इस वर्ष गुप्तजी, आगामी वर्ष राहुल सांकृत्यायन। सम्मेलनवालों ने इस खबर को सुनकर एक अक्षर भी वक्तव्य प्रकाशित किया ? और हम सम्मेलनों में व्यासपीठ पर चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं—

हिन्दी राष्ट्रभाषा है !
राष्ट्र-भाषा की जय ! राष्ट्रकवि की जय!!

शांति-प्रार्थना

समुखे शांतिपारावार : भासाओ तरणी, हे कर्णधार !
तुमि हबे चिरसाथी
लओ, लओ हे, क्रोड़ पाति
असीमेर पथे ज्वलिबे ज्योतिर ध्रुवतारका
मुक्तिदाता, तोमार क्षमा, तोमार दया
हबे चिरपाथेय चिरयात्रार

हय जेन मर्तेर बन्धन क्षय
विराट विश्व बाहु मेलि लय
पाय अन्तरे निर्भय परिचय
महा अजानार !

—रवींद्रनाथ ठाकुर—

पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों के चित्र

[डॉ० सत्यप्रकाश]

समझता हूं कि जिस प्रकार प्रत्येक नव- ... की प्रवृत्ति होती है, आज से १३- ... मेरी भी आकांक्षा थी, कि लेखों के ... भी चित्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ... परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के उपरान्त नव- ... विभूषित विद्यार्थियों के हृदय में भी एक ... होती है कि वे अपने स्नातक-वेश में अर्थात् ... में चित्र खिंचवावें। एम० एस-सी० होने ... मैंने भी इस लालसा की पूर्ति की। ... नामक कविता संग्रह में मैंने अपने इस ... को मुद्रित भी करा डाला। उसके बाद ... चित्र 'सुधा' के एक विशेषांक में एक ... साथ छपा। इन दो अवसरों के उपरान्त ... और प्रतिच्छायाओं से मुझे ऐसी उपेक्षा ... कि आजतक मेरी प्रवृत्ति चित्र खिचवाने ... को छपवाने की ओर नहीं होती।

... और अवसर ऐसा आता है जब लोग ... अपना चित्र खिचवाते हैं, और वह ... है अपनी सहचरी के साथ विवाह का। पर ... पत्नी का आग्रह होने पर भी मैं अब- ... इस प्रलोभन से वच सका हूँ। यूनिवर्सिटी ... के सामूहिक चित्रों में औरों की ... मुझे अवश्य सम्मिलित होना पड़ा है। ... एक महा विपदा आयी थी। पूना साहित्य- ... की विज्ञान-परिषद् का मैं अध्यक्ष बनाया ... मैं जानता था कि ऐसे अवसरों पर बचना ... है, हुआ भी ऐसा ही। यह मेरी प्रतिच्छा- ... का एक छोटा-सा इतिहास है। "सुधा"- ... के पास १२ वर्ष पुराना मेरा ब्लाक है, ... वह आजतक छपता आ रहा है। लोगों के ... भी विचित्र होते हैं। मेरे पास अपना ... कोई चित्र नहीं, मेरे रूप में कोई विशेषता ...—किसी का सुन्दर चित्र छाप दीजिए, मेरे ... का स्थान रिक्त रहने दीजिए आदि उलटी- ... बातें कहकर पीछा छुड़ाना पड़ता है। न ... चित्र होगा, और न यह विपदा उपस्थित होगी—इस सिद्धान्त ने मेरी बहुत कुछ रक्षा की है।

हिन्दी-पत्रिकाओं में लेखों के साथ चित्र छापने की प्रथा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। विशेष लेखकों के परिचय-सहित चित्र 'सरस्वती' 'प्रभा', 'शारदा' आदि पुरानी पत्रिकाओं में यदा-कदा पहले भी छपते थे, पर उतनी प्रचुरता से नहीं, जितनी कि आजकल। हिन्दी की पत्रिकाओं के इतिहास में 'माधुरी' और 'चाँद' ने विशेष परिवर्तन उपस्थित किया। 'माधुरी' में दुलारेलाल-जी ने नये और पुराने लेखकों को धूम-धाम से जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। तब से अब मैं देखता हूँ कि लेखों के साथ लेखकों के चित्र प्रचुरता से छापे जाने लगे हैं।

लेखकों के चित्र छापने से कई लाभ भी हैं। लेख के पीछे लेखक का एक व्यक्तित्व होता है, और यह व्यक्तित्व लेखक के स्वरूप से भी प्रतिभासित होता है। ऐसी अवस्था में लेखक का चित्र देखकर हमें लेख और लेखक के व्यक्तित्व में समन्वय करने का अवसर प्राप्त होता है। एक रहस्यवादी कवि के चित्र से छिछोरा-पन या छैलापन व्यक्त होने पर हम सहसा यह धारणा बना सकते हैं कि इसने रहस्यवाद को अपने जीवन का विषय नहीं बनाया है, उसकी रचना हृदय से प्रवाहित नहीं हुई, उसकी मुखाकृति रचना में समन्वय नहीं पा रही है। लेखक के चित्र का वातावरण भी इस प्रकार के अनुमानों में कुछ सहायता दे सकता है। निसर्ग-प्रेम से परिप्लावित कविता या लेख के साथ सजे-सजाये ड्राइंगरूम की सामग्री से सम्पन्न चित्र हृदय को आघात पहुँचाता है। हमारे लेखकों में विरोधाभास की सामग्री अधिक पायी जाती है। कवियों में यह बात पराकाष्ठा को पहुँच गयी है। तारों की विरदावली गानेवाले कितने कवि ऐसे हैं जो तारों को देखकर सहसा मुग्ध हो जाते हों! संभवतः उन्होंने नीलाकाश और तारों का

विवरण रजाई में दुबके हुए कमरे में खाटपर लेटे-लेटे लिखा हो। कुएँ पर जल भरनेवाली युवती की अपेक्षा उन्हें ताँगे पर जाती हुई विश्वविद्यालय की बाला अधिक आकर्षक प्रतीत होती होगी, फिर भी कवि और चित्रकार अब भी प्रथावश पहले का ही अधिक चित्रण करते आ रहे हैं। लेखों के साथ छपे हुए लेखकों के चित्र इस प्रकार के विरोधाभासों के अध्ययन में कभी-कभी सहायता दे जाते हैं।

पर यह बात सदा ठीक नहीं उतरती। यदि किसी पत्रिका के संचालक ने लेखक का एक चित्र प्राप्त कर लिया और उसका यदि एक बार ब्लाक तैयार हो गया तो वह चित्र वर्षों छपता रहता है। ऐसा होने से कभी-कभी मनोरञ्जक घटनाएँ भी देखने को मिल जाती हैं। मेरे पिताजी (श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय) के कुछ वर्षों पूर्व तक मूँछें थीं। बाद को मूँछों को तिलाञ्जलि दे दी गयी। पर पत्रिकाओं के चित्रमय जगत् में बहुत दिनों बाद तक ये मूँछें ही छपती रहीं। हमारे एक लेखक को बड़े-बड़े बाल रखने का शौक था, और उस समय चित्र खिंचवाने का भी, बाद को उनके बाल छोटे हो गये, और संभवतः नये चित्रों के ब्लाक बनवाने का अवसर भी नहीं मिला। फलतः उनका मुंडन हो जाने के उपरान्त भी चित्रों में उनके सुन्दर केश छपते रहे। दूसरे एक मित्र कुछ दिनों पहले दुबले-पतले थे, पर आगे चलकर उनका उदर उनके वश से बाहर हो गया। पत्रिका के संचालक के पास अब भी वही पुराना चित्र है (चित्र का ब्लाक है) और वह छपता आ रहा है। एक सूट-बूटधारी सज्जन बाद को खद्दरधारी हो गये। राहुल सांकृत्यायन जी ने संन्यास-वेश त्यागकर गृहस्थ-धर्म धारण कर लिया, पंतजी ने लम्बे केशों को विदाई दे दी, पर अबतक छपनेवाले बहुत से चित्रों में उनका ही पहले का ही रूप है।

स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठकजी के मस्तक पर एक स्पष्ट गुलथी थी; पर चित्रकार से आग्रह करके उन्होंने उसे मिटवा दिया। वृद्धावस्था में भी उन्हें अपने यौवन का चित्र छपवाना संभवतः अधिक रुचिकर रहा। प्रत्येक प्रौढ़ आयु के लेखक की यह आकांक्षा रहती है कि चित्र में तो कम-से-कम वह युवा प्रतीत हो। यदि चित्रकार उनके बुढ़ापे को छिपाने में सफल न हुआ, तो उसे कुशल कलाकार माना ही नहीं जाता। मानों लेखों के साथ चित्रों का छपवाना भी अपने विवाह का विज्ञापन देना है।

हिन्दी-साहित्यिक जगत् में फोटो-एजेन्सी का सर्वथा अभाव है। पत्रिकाएँ लेखकों के नये-पुराने चित्रों देकर अपने को 'सचित्र' बना लेती हैं। इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि प्रमुख लेखकों के नये-से-नये चित्र प्राप्त हों जिनसे उनके जीवन के अध्ययन में सहायता मिले। पत्रिकाओं में पारस्परिक सहयोग हो, और एक चित्र के पाँच-छः ग्राहक मिल जायें, तो कुछ फ़ोटो-प्रेमी ऐसे चित्रों को प्राप्त करने में सहायता दे सकते हैं। इसका व्यवसाय भी चल सकता है। गुप्त, हरिऔध, जैनेन्द्र, पन्त, महादेवी, निराला, उग्र, वर्मा, वाजपेयी, बच्चन आदि के ताज़े फ़ोटोग्राफ न केवल पत्रिकाओं के हाथ बेचे जा सकते हैं, प्रत्युत अन्य साहित्य-प्रेमी और साहित्यिक चित्रों संस्थाएँ भी इन्हें ले सकती हैं। लेखकों के के एलबम भी फिर सस्ते तैयार हो सकते हैं।

ताज़े चित्र किस प्रकार के हों, इस बात में भी सावधानी रखनी चाहिए। उग्रजी के इधर कुछ चित्र पत्रिकाओं में देखने को मिले—उनमें एक विशेष जीवन है। निराला के साथ भी परिहास किया गया है—उनकी नंग-धड़ंगी वक्षीय बस्ट भी कौतूहलजनक है। इस सम्बन्ध में कोई नियम तो नहीं बनाया जा सकता; पर हाँ, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चित्र सुरुचिपूर्ण हों, और जीवन की विशेषताओं को व्यंजित करनेवाले हों, अथवा उनमें और कोई विशेषता हो। किस अवसर का चित्र खींचा जाय, यह जानना कलाकार का काम है, और हमें आशा है कि हमारे फ़ोटो-कलाकार अपनी कुशलता का अवश्य परिचय दिया करेंगे।

रवीन्द्रनाथ का हिन्दी कविता पर प्रभाव

[सूर्य्यकान्त त्रिपाठी 'निराला']

से धातु का अर्थ जिस तरह भी हों, 'प्र' का प्रयोग प्रकृष्ट अर्थ में भी है। प्रभाव को यहाँ हम विशद भाव में ापेक्षता के बिना किसी भी वस्तु या अस्तित्व, विकास, परिणति, विवेचन हीं हो सकता। हिन्दी-काव्य के लिए प्रतिभा, विकास, अध्ययन, पर्यवेक्षण, सूक्ष्मता, कला, सौन्दर्य आदि गुणों के रवीन्द्रनाथ की किरणों की सापेक्षता थी। महत् की तरफ़ खिंचने के प्राकृतिक को लघु तोड़ नहीं सकता।

न हिन्दी अर्थात् ब्रजभाषा-अवधी की त्ति प्राचीन् बंगाल में नहीं, इसीलिए, स समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार और कृष्ण की भूमि की संस्कृति की रक्षा था कान्यकुब्ज और इन्द्रप्रस्थ की वाहरी को अपनी सभ्यता मानकर उसके चिन्ह में डाल रखने के कारण, बंगला हिन्दी से हुई थी। अंग्रेजी आधिपत्य के होने पर साहित्यिक रुचि बदली—इसके विवेचन नों की नज़र कर हम इस विषय पर हैं कि हिन्दी नये रूप से निखरती हुई, की सहकारिता लिये हुए रस, ध्वनि अलं-आदि की पुरानी परिपाटी छोड़कर कला आँखों से देखती है। बंगला की अनुवा-ता के प्रमाण पार कर हम कहेंगे हिन्दी धुनिक छायावादी कविता अपनी मौलिकता त होती हुई भी रवीन्द्रनाथ की किरणों पार नहीं कर पाती, यह अधिकांश कों का मत है। इसमें सन्देह नहीं कि इन कों की आँखों में जितनी छायावाद की य है, उतना रवीन्द्रनाथ की रचना का नहीं; ये बंगला के जितने गहरे पानी में नाथ की छप्परवाली नाव खेते हैं, उतने में ती ही नहीं—घिसटती है; जो अंग्रेजी टेककर रवीन्द्रनाथ की कविता की मंजिल तै करते हैं, ये असाध्य-साधन करते हैं। जो मर्मज्ञ हैं, उन्होंने देखा है, फूल की शोभा वृन्त पर है। फिर भी प्रभाव पड़ता है, जैसे कालिदास का जयदेव पर, बिलकुल बदला हुआ, शेक्सपियर का कीट्स पर; रवींद्रनाथ का हिन्दी की कविता पर सुन्दर दिव्य स्वप्न की तरह।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखक कहते हैं, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की 'चित्रांगदा' का अनुवाद पहले हुआ गोपालराम गहमरी द्वारा। इसके पश्चात पं० रूपनारायणजी पाण्डेय ने 'राजा-रानी' का पद्यात्मक अनुवाद किया। पं० गिरिधर-जी शर्मा 'नवरत्न' ने कवीन्द्र की कुछ स्फुट कविताओं का अमित्र छन्द में अनुवाद किया। इसी समय सुप्रसिद्ध कलावेत्ता साहित्यिक राय कृष्णदासजी की 'साधना' निकली। इसकी मौलिकता ने हिन्दी-भाषियों को मुग्ध कर दिया। यह गद्य-काव्य है, पर काफी सफल। हिन्दी के इतिहास-लेखकों का कहना है, इसपर रवीन्द्रनाथ की अंग्रेजी 'गीतांजलि' का प्रभाव प्रत्यक्ष है। इसके साथ साथ हिन्दी के नवीन काव्य के प्रवर्तक कवि 'प्रसाद' जी का हिन्दी में आगमन होता है। पहले 'प्रसाद' जी ब्रजभाषा में कविता लिखते थे; रवीन्द्रनाथ के नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद से या कुछ पहले से रहस्यवादी रचनाएँ करने लगे।

कुछ उद्धरण देता हूँ—

रवीन्द्रनाथ—

"महाराज, कोनो राज्य कोनो दिन
पारे नाइ तोमारे धरिते;
समुद्रस्तनित पृथ्वी, हे विराट,
तोमारे भरिते
नाहीं पारे,
ताइ, ए धरारे
जीवन-उत्सव-शेषे दुइ पाये ठेले
मृत्पात्रेर मत जाओ फेले।

तोमार कीर्तिर चेये तुमि जे महत्,
ताइ तव जीवनेर रथ
पश्चाते फेलिया जाय कीर्तिरे तोमार, बारम्बार।
ताइ
चिन्ह तव पडे आछे तुमि हेथा नाइ"

—'प्रसाद' जी का ऐसा ही भाव—

"चढ़कर मेरे जीवन-रथ पर
प्रलय चल रहा अपने पथ पर,
मैंने निज दुर्बल पदबल पर
उससे हारी होड़ लगाई।'

एक दूसरा भाव रवीन्द्रनाथ और सुमित्रा-नन्दन पंत का

रवीन्द्रनाथ—

"द्विधाय जड़ितपदे कम्पवक्षे नम्रनेत्रपाते
नाहि चल सलज्जित वासरशय्याते
स्तब्ध अर्धराते।"

पंत—

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकम्पित मृदु उर पुलकित शान्त,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ितपद नमितपलक दृगपात,
पास जब आ न सकोगी प्राण,
लाज की छुईमुई-सी म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण,

एक और भाव रवीन्द्रनाथ की इसी उर्वशी से—

मुक्तवेणी विवसने विकसित विश्ववासनार
अरविन्द, माझखाने पादपद्म रेखेछ तोमार
अतिलघुभार।

पंत—

अये, वेदनाविकच विश्व का मानस-शतदल
छान रहे हो कुटिल काल-कृमि से घुस पल-पल।

रवीन्द्रनाथ से मैंने कुछ अनुवाद किया है; अपनी कविता में कुछ भाव लिये हैं। उन्हें मनोयोग से पढ़ने के कारण मेरे अज्ञातभाव से भी रवीन्द्रनाथ के भाव आगये होंगे। एक उद्धरण—

कितने ही बन्दों में कितने छंदों में वह लडी गई,
कितने ही ग्रन्थों में कितने पन्थों में है पढ़ी गई।

हिन्दुस्तान के यथार्थ जातीय कवि रवीन्द्रनाथ ही कहे जा सकते हैं। इनमें भारतीय भावों का मार्जन इतने अच्छे ढंग से हुआ है जिसकी हद नहीं। सौन्दर्य, दर्शन, प्रेम आदि का जो निर्झर रवीन्द्रनाथ की कविता से झरता है वह अनुकरणीय है। हिन्दी का विकास अपने ढंग से होने पर भी छायावाद में रवीन्द्रनाथ का प्राधान्य स्वीकार करना ही होगा। मैं छन्दों की बात लेता हूँ—

बहती जाती साथ तुम्हारे स्मृतियाँ कितनी,
दग्ध चिता के कितने हा-हाकार।
नश्वरता की थीं सजीव जो कृतियाँ कितनी,
अबलाओं की कितनी करुण पुकार॥

—निराला

यह छन्द असल में अंग्रेज़ी का है इसे रवीन्द्रनाथने भी अपनाया है। प्रसाद जी, पंतजी और महादेवीजी के छंन्द हिन्दी की अपनी विभूति से विकसित हैं।

ब्रजभाषा का—

बेगि चलु, बेगि चलु, जाति जामिनि घटति
कुंज में केलि कर अमिय रस घूटबो

का खड़ी बोली में जहाँ तक का मुझे स्मरण है प्रयोग नहीं हो पाया था—

रवीन्द्रनाथ का—**श्रावण घन गहन मोहे**
गोपन तव चरण फेले
निशार मत नीरव ओहे,
सवार दीठि एड़िये एले,

मेरा—**प्रात संघात के सिन्धु के तीर में**
गिनता रहूँगा न कितने तरंग हैं,
धीर मैं ज्यों समीरण कंचन तरण,
दे मैं कंचन वरण।
लाभ छना इन्धन हृदय तल जले अनल
भक्तिनत नयन में चलूँ अविरत सबल,
पार कर जीवन प्रलोभन समुपकरण।

ऐसे अनेक छन्द दिये जा सकते हैं। रवीन्द्रनाथ के असाधारण छन्द कौशल को मैंने अपनी साधारण शक्ति के अनुसार सँभालने का प्रयत्न किया। दूसरी जगह से भी छंद लिये, अपने भी तैयार किये। सात, बारह, सोलह, आठ,

ीव्र, छः मात्राओं के गाने भी काव्य के के अतिरिक्त लिखे । गीतों की रचना में ाव के विवेचन के अनुसार भी काम की कोशिश की है । काव्य के छन्द का दाहरण और दूँ—

ाय के शा-जहान से—

कथा जानिते' तुमि भारत-ईश्वर शा-जहान,
ोते भेसे जाय जीवन-यौवन धन-मान ।
ुधु तव अन्तरवेदना
िरन्तन होये थाक सम्राटेर
छिल ए साधना ।
ाजशक्ति वज्रसुकठिन
न्ध्यारक्त-राग-सम तन्द्रा-तले हय होक लीन
केवल एकटि दीर्घश्वास
नित्य-उच्छ्वसित होये सकरुण करुण आकाश
एइ तव मने छिल आश ।
हीरा-मुक्ता-माणिक्येर घटा
येन शून्य दिगन्तेर इन्द्रजाल इन्द्रधनुच्छटा,
जाय यदि लुप्त होये जाक,
ुधु थाक,
एक विन्दु नयनेर जल
कालेर कपोल-तले शुभ्र समुज्वल
ए ताजमहल ।

"म्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति" से—

वैभव विशाल,
साम्राज्य-सप्त-सागर-तरंग-दल-दन्त-माल,
हे सूर्य छत्र,
मस्तक पर सदा विराजित लेकर आतपत्र,
विच्छुरित छटा,
जल-स्थल-नभ में विजयिनी वाहिनी
विपुल घटा
सब क्षणभर पर,
बदलती इन्द्रधनु इस दिशि से उस दिशि सत्वर,
वह महासद्म,
लक्ष्मी का शतमणिलालजटित ज्यों रक्तपद्म,
बैठे उसपर,
नरेन्द्र-वन्दित ज्यों देवेश्वर ।

रवीन्द्रनाथ के स्वर का प्रभाव भी हिन्दी कविता पर पड़ा है । मेरी 'गीतिका' की भूमिका में रवीन्द्रनाथ के स्वर का थोड़ा-सा विवेचन है जैसा उन्होंने स्वयं किया है ।

कला की विवेचन थोड़े समय में नहीं हो सकता । इसपर एक जगह शायद लिख चुका हूँ, चिरन्तनता के साथ सामयिक कला भी है । दोनों का वही सापेक्ष सम्बन्ध है । भिन्न-भिन्न साहित्य के विकास के साथ कभी-कभी कला का भी भिन्न विकास हुआ है; मन के साथ एक क्रम, एक परम्परा भी है । फिर, दृश्यमान संसार के अनेकानेक पेड़ों, पत्तियों, फूलों, फलों की तरह उसकी रूपरेखाएँ भी अलग-अलग हैं । भाव-भाषा के अलग-अलग प्रकाशन । लेकिन, तने, डालों, पत्तियों, फूलों और खुशबू की तरह विषय का सम्बन्ध होना चाहिए और क्रम-विकास । फिर भी कोई नियम कला के विकास में लगाया नहीं जा सकता । रवीन्द्रनाथ इसके बहुत बड़े आचार्य हैं । उनके इस ज्ञान का भी प्रभाव हिंदी पर पड़ा है ।

शैली को मैं यह कहकर छोड़ता हूँ कि हर आदमी की अपनी शैली होती है । रवीन्द्रनाथ की गद्य-पद्य की शैलियाँ अनेक हैं । अब भी एक सम्बन्ध उनमें दृष्टिगोचर होता है । इस शैली का, मुमकिन, हिन्दी में वैसा समावेश न हो सका हो, इसके सम्बन्ध में कवीन्द्र स्वयं कह चुके हैं, यह बंगला की विशेषता है । दार्शनिकता, समाजोन्नयन, विश्वमानवता आदि से रवीन्द्रनाथ की साधना हिन्दी में यथेष्ट प्रतिफलित हुई है । इन विषयों पर इतना कहा गया है कि श्रोता अच्छी तरह परिचित होंगे । भारत तथा संसार के कवि-गुरु आज हममें नहीं हैं । उनके प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि देता हूँ ।[१]

---

[१] ऑल इण्डिया रेडियो, लखनऊ के सौजन्य से ।

रवीन्द्रनाथ का युग-दर्शन

[सुधीन्द्र]

रवीन्द्रनाथ आज शरीर से नहीं हैं, परन्तु अपने बहुसंख्यक अमर गीत जो आज वे हमें देकर चले गये हैं, हमारे युग की चिरनिधि होकर भी युग-युग तक को आलोक देते रहेंगे। कविगुरु ने जीवन-पर्यन्त अपनी कविताओं द्वारा यह पदार्थ-पाठ दिया कि कवि वस्तुतः युग और युग-युग का समन्वयकार होता है। वह जिस युग में साँस लेता है, उसका स्पन्दन वाणी में व्यक्त करते हुए भी युग-युग तक की बात कहता है। तुलसी, कबीर, सूर आदि महाकवियों के चरणचिन्हों का ही कवींद्र रवींद्रनाथ ने अनुसरण किया। उनकी कविताओं और गीतों से युग-जीवन को जो प्राणरस मिला है, उसका यहाँ हम थोड़ा पान करना चाहते हैं।

आज जिसकी रक्षा के लिए भारत ही नहीं, समस्त आक्रान्त राष्ट्र आक्रामक राष्ट्रों से जूझ रहे हैं उस स्वाधीनता का मंगल और सुन्दर रूप उन्होंने अपने जिस गीत में प्रतिष्ठित किया है वह यह है :

चित्त जेथा भयशून्य, उच्च जेथा शिर,
ज्ञान जेथा मुक्त, जेथा गृहेर प्राचीर
आपन प्रांगणतले दिवस-शर्व्वरी,
वसुधारे राखे नाइ खण्ड क्षुद्र करि,
जेथा वाक्य हृदयेर उत्समुख ह'ते
उच्छ्वसिया उठे, जेथा निर्वारित स्रोते
देशे देशे दिशे दिशे कर्म्मधारा धाय
अजस्र सहस्रविध चरितार्थताय;

[जहाँ हो चित्त भयों से शून्य,
जहाँ ऊँचा हो जन का भाल,
ज्ञान हो जहाँ मुक्त निर्बन्ध
अमल-अकलंक रहे चिरकाल;
जहाँ आँगन ही में दिन-रात
नहीं यह घर-घर की प्राचीर
करे छोटे-छोटे से खण्ड
हृदय विस्तृत वसुधा का चीर
हृदय के तल से हो उच्छ्वसित
जहाँ उद्गार उठें अनिवार
सहस्रों फल करती चरितार्थ
बहे दिशि-दिशि कर्मों की धार]

आज की भयाक्रान्त नतभाल, रुद्धज्ञान, द्वेष-जर्जर राष्ट्र-जनता के लिए उनके गीत की ये पंक्तियाँ अप्रतिम आदर्श की स्थापना करती हुई स्वतन्त्रता का सच्चा छायाचित्र प्रदान करती हैं।

आज जो महा 'वीर' अपने विपुल पराक्रम और ध्वंसक अस्त्र-शस्त्रों से संसार में सर्वनाश बरसा रहे हैं, उनकी आत्मा से कवि रवि ठाकुर ने सीधे-से शब्दों में ही दो बातें पूछी हैं :

(१) प्रभुगृह हते आसिल जेदिन वीरेर दल
सेदिन कोथाय छिल जे लुकानो विपुल बल?
कोथाय वर्म्म, अस्त्र कोथाय,
क्षीण दरिद्र अति असहाय
चारिदिक हते एसेछे आघात अनर्गल

[जिस दिवस प्रभु-गेह से था
चला वीरों का सबल दल,
रे, छिपा उस दिन पड़ा था
यह कहाँ उनका विपुल बल?
वर्म, अस्त्र कहाँ पड़े थे?
दीन-क्षीण मलिन बड़े थे?
सब दिशा से थे हुए उनपर
प्रखर आघात अविरल]

(२) प्रभुगृह माझे फिरिल जेदिन वीरेर दल
सेदिन कोथाय लुकाल आबार विपुल बल!
धनुशर-असि, कोथा गेल खसि
शांतिर हासि उठिल विकशि'
चले गेल राखि सारा जीवनेर सकल फल

[लौट आया जिस दिवस
प्रभु-गेह वीरों का सबल दल,
छिप गया उस दिन कहाँ पर
फिर वही उनका विपुल बल?
धनुर्बाण कहाँ गये गिर?
शांति की स्मिति खिल उठी फिर!
चल दिये सब छोड़ पीछे
अखिल जीवन के सकल फल]

विजयी (?) अलक्षेन्द्र और नेपोलियन
री हिटलर के बड़े-बड़े योद्धा आज क्या
में इनका उत्तर देंगे ?
के उपेक्षित दीन-दलित जनों के प्रति
विश्वकवि का हृदय शतसहस्र धाराओं
निकला था :

र दुर्भागा देश ! जादेर करेछ अपमान
ने होते हवे ताहादेर सबार समान
मानुषेर अधिकारे
वंचित करेछ जारे
दांडाये रेखे तवु कोले दाओ नाइ स्थान !
[हतभाग्य देश तुम !
करते हो जिनका अपमान
होकर तुमको भी
, होना होगा उन्हीं-समान
मानव का अधिकार छीन कर
दिया जिन्हें है दीन-हीन कर
न्हें सम्मुख रखकर भी
देते नहीं क्रोड़ में स्थान !]
र परशेरे प्रतिदिन ठेकाइया दूरे
करियाछ तुमि मानुषेर प्राणेर ठाकुरे
विधातार रुद्ररोषे
दुर्भिक्षेर द्वारे बसे
करे खेते हवे सकलेर साथे अन्न-पान
मानव-स्पर्श नित्य जो
दूर किया कर-कर अभिमान
णा से अपमानित है
मानव प्राणों का भगवान
पर विधना के रुद्ररोष पर
रे, अकाल के द्वार बैठकर
बाँटकर करना तुम्हें पड़ेगा भोजन-पान]

छूत का पाप देवता को अपमानित करने
र जघन्य है और इसके लिए उन्होंने
पावन राष्ट्र की भी विगर्हणा की है :

आसन हते जेथाय तादेर दिल ठेले
शक्तिर तव निर्वासन दिले अवहेले
चरणे दलित हये
धुलाय से जाय बये
सेइ निम्ने नेमे एसो नहिले नाहिरे परित्राण
[तुमने निज आसन से जिनको
गिरा दिया है जहाँ धकेल
वहाँ शक्ति अपनी ही तुमने
निर्वासित कर दी है ठेल
है चरणों से आज दलित वह
रहा धूल में हो लुंठित वह
आओ नीचे उतर नहीं तो
तुमको मिल न सकेगा त्राण]
शतेक शताब्दी धरे नामे शिरे असम्मानभार
मानुषेर नारायणे तवुओ करो ना नमस्कार !
तवु नत करि आँखि देखिबारे पाओ ना कि
नेमेछे धूलार तले हीन पतितेर भगवान !
[युग-युग से तुम लिये भार-सा
सिर पर असम्मान अविराम
तो भी उस नर-नारायण को
करते हो तुम नहीं प्रणाम
पलभर अपने झुका विलोचन
पाते हो अब भी क्या देख न ?
आया है वह उतर धूल में
हीनों-पतितों का भगवान]

नर-नारायण के प्रति उनका यह श्रद्धासिक्त नमस्कार क्या युग की बड़ी-से-बड़ी वन्दना नहीं है ?

कवि ने एक गीत में तो अपने प्रभु के चरणों का वास उन्हीं दीनातिदीन, हीन जनों में देखा है :

जेथाय थाके सबार अधम दीनेर हते दीन
सेइखाने जे चरण तोमार राजे
सबार पिछे, सबार नीचे, सब-हारादेर माझे
[हैं जहाँ अधम दीनातिदीन
हैं वहाँ तुम्हारे चरण आज
सबके पीछे, सबके नीचे,
जनगण में हे राजाधिराज !]

और रिक्तभूषण, दीनदरिद्र जनों में ही उन्होंने अपने राजाधिराज की अवतारणा की है, संगीहीनों के संग में ही उसको देखा है :

रिक्तभूषण दीनदरिद्र साजे—
सबार पिछे, सबार नीचे, सब हारादेर माझे ।
संगी हये आछ जेथाय संगिहीनेर घरे

सेथाय आमार हृदय नामे ना जे
सबार पिछे, सबार नीचे, सब हारादेर माझे।

[घूमते जहाँ तुम हतभूषण
निर्धन-दरिद्र-सा वेश साज
सबके पीछे, सबके नीचे
जन-जन में हे राजाधिराज !
झुककर न कभी मेरा अन्तर
जाता संगीहीनों के घर
प्रतिपल जिनके संगी बन तुम
सर्वदा रहे उनमें विराज]

समाज-विधान में रवीन्द्रनाथ ने 'कर्मयोग'—श्रम—की प्रतिष्ठा की है। दिन-रात घोर परिश्रम करके पसीना बहानेवालों ही ने समाज की सुखसमृद्धि के लिए अमृत अर्जित और संचित किया है, और इसीलिए भगवान का सच्चा स्थान और सच्ची पूजा श्रम ही में अधिष्ठित है—यह वे नहीं भूलते। उसके आगे 'भजन-पूजन-साधन-आराधना' सब उपेक्षणीय हैं :

भजन पूजन साधन आराधना समस्त थाक् पडे
रुद्धद्वारे देवालयेर कोणे केन आछिस् ओरे ?
अंधकारे लुकिये आपन मने,
काहारे तुइ पूजिस संगोपने ?
नयन मेले देख् देखि तुइ चेये
देवता नाइ घरे

[भजन-आराधन पूजा-पाठ
पुजारी, दूर हटा सब ठाठ !
द्वार देवालय के कर बन्द
अँधेरे कोने में मतिमंद !
बंद कर आँखें अपनी आप
पूजता रे किसको चुपचाप ?
देख तो आँखें अपनी खोल
देवता है कब घर में, बोल ?]

तिनि गेछेन जेथाय माटि भेङे
करछे चाषा चाष,—
पाथर भेङे काटछे जेथाय पथ,
खाटछे बारो मास।

[गया है वहाँ अरे, भगवान
जोतता धरती जहाँ किसान
बनाने मार्ग जहाँ मजदूर
कर रहा पत्थर चकनाचूर]

अंत में, 'मुक्ति' के लोभी पुजारियों को उन्होंने मुक्ति का वास्तविक मार्ग-निर्देश किया है :

मुक्ति ? ओरे मुक्ति कोथाय पाबि ?
मुक्ति कोथाय आछे ?
आपनि प्रभु सृष्टि-बाँधन प'रे
बाँधा सबार काछे।
राखोरे ध्यान, थाक्रे फुलेर डालि,
छिडुक् वस्त्र, लागुक् धूलाबालि,
कर्म्मयोगे ताँर साथे एक हये
घर्म्म पडुक् झरे

[मुक्ति ? है कहाँ पुजारी मुक्ति ?
मिलेगी कहाँ विचारी मुक्ति ?
सृष्टि-बंधन में सबके साथ
बँधा है जब संसृति का नाथ ?
बंद कर ध्यान, हटा ये फूल,
वस्त्र धर दे, लगने दे धूल
कर्म में उसके सँग हो एक
अरे, बहने दे स्वेद-प्रसेक]

कुछ ही महीनों पहले प्रकाशित 'गांधी-महाराज' कविता में 'अहिंसा-धर्म' की उनकी अडिग आस्था व्यञ्जित हुई है। उसके सभी अवयव—दीनों का शोषण न करना, अपरिग्रह, निर्भीकता, मन-वचन-कर्म की शुद्धता और सरलता, कष्टसहिष्णुता, तप आदि को उन्होंने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है :

गांधी महाराजेर शिष्य
केउ वा धनी, केउ बा निःस्व
एक जायगाय आछे मोदेर मिल;
गरीब मेरे भराइ ने पेट
धनीर काछे हइ ने तो हेट
आतंके मुख हय ना कभु नील

[गांधी महाराज के अनुचर
कोई धनी, दीन कोई, पर
एक बात ऐसी है जिसमें बने हुए हम सभी अभिन्न—
मार दीन को पेट न भरते
धनिक-चरण पर माथ न धरते

आतंक कभी हम हो जाते भयभीत न खिन्न]
लिवे भाषाय बलि कथा,
स्वच्छ ताहार सरलता,
द्वंसिर नाइको असुविधे
[बात सरल-सीधी कहते हम
भाषा जिसकी शुद्ध स्वच्छतम
नहीं दांवपेंच या कूटनीति के कारोबार]
दले-दले हरिण बाड़ि
चलल् जारा गृह छाड़ि
घुचल् तादेर अपमानेर शाप
चिरकालेर हातकड़ि जे
धूलाय खसे पड़ल निजे
लागल् भाले गांधीराजेर छाप
[दल के दल हम जब घर तजकर
आ जुड़ते हैं जेल-मार्ग पर
धुल जाता है तब पलभर में
अपमानों का सब अभिशाप
युग-युग की हथकड़ी खिसककर
गिर जाती है धरा धूल पर
लग जाती आकर ललाट पर
गांधीमहाराज की छाप !]

‘यही गांधी-महाराज की छाप’ उनकी अनेक कविताओं में है ।

निःसहाय-निर्बल प्राण को जीवन के जटिल पथ पर प्रेरित करनेवाले मन्त्र-रूप उनका गीत ‘एकला चल रे’ और दुःखित तथा थके हुए प्राणियों को सजीव सन्देश-रूप उनका अमर गान—‘दुःसमय’—तो हमारे युग ही को नहीं, युग-युग को उनका सर्वश्रेष्ठ सन्देश होगा ।

रवीन्द्रनाथ की कविताओं के अध्ययन से वह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि जबतक कवि या द्रष्टा युग की याचना को, प्यास को, जिज्ञासा को तृप्ति नहीं देता, तबतक वह युग-युगानुमोदित सत्य की ओर उन्मुख भी नहीं हो पाता ।

कविगुरु रवींद्रनाथ ने युग की माँग को न भुलाते हुए युग को युग-युग का सन्देश दिया है उन्होंने युग के स्वर को उपेक्षित नहीं किया, वरन् उसे गाया, उसे उद्घोष दिया, बल दिया ।

युग किसी कवि को अपने क्रोड़ में छिपा लेना नहीं चाहता, यदि वह बीते हुए युग-युग की बात कहने और आनेवाले युग-युग को आलोक देने में युग की ओर दृष्टिभर डालना न भूले । रवीन्द्र वास्तव में युगदर्शी कवि थे, इसीलिए युग-युग उन्हें नहीं भुला सकेंगे ।

अर्घ्य

पूर्व

‘रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मृत्यु से वर्तमान युग का सबसे बड़ा कवि, सच्चा राष्ट्रवादी और मानवता का प्रेमी उठ गया !’ **महात्मा गाँधी**

‘रवीन्द्र की मृत्यु से आज हम अकेले और अन्धकार में रह गये हैं। भारत का महान् ज्योतिर्मय नक्षत्र अस्त होगया ।’ **जवाहरलाल नेहरू**

‘एक महान माली चल बसा ! परन्तु उसका सौन्दर्य के गीत का पौधा अनन्त काल [illegible] रहेगा ।’ **सरोजनी नायडू**

‘रवीन्द्र के उठजाने से मानवता को भारी [illegible] हुई है।’ **--महाराजा नेपाल**

‘वह वृद्ध तपस्वी अब नहीं रहा ! संसार अब उसके श्रेष्ठ शिक्षापूर्ण वचन नहीं सुन सकेगा । पूर्वी सभ्यता ने तो अपना एक महान् गुरु खो दिया ।’ **चांग काई शेक**

पश्चिम

‘भारत का एक सबसे बड़ा सुपुत्र उठ गया ।’ **लार्ड लिनलिथगो**

‘रविबाबू अपनी लेखनी और आदर्श जीवन के कारण विश्व के गौरव थे ।’ **मि० एमरी**

‘उन्होंने अपने विचारों और लेखों द्वारा भारत के अमूल्य खजाने को संसार की दृष्टि में लाने की चेष्टाएँ की ।’’ **लॉर्ड हैलिफैक्स**

‘रविबाबू का अध्ययन करके ही हम जान सके कि यूरोप को अभी भारत से क्या-क्या सीखना है ।’ **‘मैञ्चेस्टर गार्जियन’**

प्रस्तुत प्रश्न

खुली चिट्ठी

'प्रगतिशील साहित्य' नामक मेरे लेख (जी० सा०: जून, ४१) के उन वाक्यों से, जो कि लेखक के मेरे आदर्श से सम्बन्ध रखते हैं, नाराज होकर श्री कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा ने आवेश में एक लम्बी खुली चिट्ठी छापने के लिए भेजी है। मैंने चाहा था कि कान्तिचन्द्रजी खुद थोड़े में मतलब की बातें लिखकर भेज देते। अस्वस्थता से वे ऐसा न कर पाये। सारा पत्र कुछ ऐसा अटपटा है कि उसका सारांश निकालना कठिन है। अतएव उन्हीं की सूचना के अनुसार उनके ज़रूरी प्रश्नों का उत्तर देने या शंका-समाधान करने का प्रयत्न करता हूँ।

उस लेख के जिन अंशों पर कान्तिचन्द्रजी ने आपत्ति की है वे दरअसल इन दो प्रश्नों के उत्तर में लिखे गये हैं— (१) हिन्दी-साहित्यिकों की कद्र नहीं होती व (२) हिन्दी में कोई रवीन्द्र नाथ, गांधी, गोर्की क्यों नहीं है? दूसरे शब्दों में हिन्दी में युगान्तरकारी लेखक क्यों नहीं है? दोनों के मैंने दो जवाब दिये हैं (१) हिन्दी के अधिकांश लेखक रुपयों के लिए लिखते हैं व (२) आधुनिक हिन्दी में अनुभूति व साधना की बनिस्बत कल्पनाओं व निराधार भावों का प्राबल्य है। इसी आशय को मैंने उन वाक्यों में ज्यादा खोलने की कोशिश की है। अच्छा हो कि पाठक मेरे उन वाक्यों को 'जी० सा०' में एक बार फिर पढ़ लें, क्योंकि उन्हें सौनरिक्साजी ने अपनी खुली चिट्ठी में 'हिंसा से भरा' कहा है और लिखा है कि 'आपने हिन्दी व उसके गरीब लेखक का अपमान किया है।' सौनरिक्साजी ने मेरे उन वाक्यों का निष्कर्ष अपनी भाषा में इस प्रकार दिया है—

"(१) हिन्दी का लेखक पुरस्कार या पारिश्रमिक को सफलता की कसौटी समझता है और उसे पारिश्रमिक की पुकार करने का कोई हक नहीं है और पारिश्रमिक की बात करना कम-से-कम साहित्यिक पाप है, अपराध है, क्योंकि (२) वह रवीन्द्र, गोर्की, गांधी नहीं है, वह रोटी खानेवाला जानवर है, इन्सान नहीं; इन्सान वह जो रोटी न खाए; वह साहित्यसेवा नहीं कर सकता—यानी वह लेखक नहीं है। (३) कल्पना मिथ्या है (४) हिन्दी में रवीन्द्र, गांधी, गोर्की नहीं हैं और इसका कारण यह है कि हिन्दी में साहित्य, कल्पना और निराधार भावों को महत्व दिया जाता है; जीवन, साधना और अनुभूति को नहीं, और अधिकांश हिन्दी-लेखक रोटी के लिए लिखते हैं, उसके ऊपर उठकर नहीं रहते।"

अब पाठक ही सोचें कि मेरे इस वाक्य से कि 'हिन्दी के अधिकांश लेखक पुरस्कार या रोटी के लिए लिखते हैं उसके ऊपर उठकर नहीं रहते।...और यह कहाँ की सेवा है जो हर घड़ी पुरस्कार का हिसाब लगाती है व अपनी भूख का रोना रोती है?' यह निष्कर्ष कैसे निकला कि 'हिन्दी-लेखकों को पारिश्रमिक की पुकार करने का कोई हक नहीं है और पारिश्रमिक की बात करना कम-से-कम साहित्यिक पाप है, अपराध है'। इसका आशय तो सिर्फ इतना ही है कि पैसे के लिए लिखने से हम ऊँचे दरजे के साहित्यिक नहीं बन सकते। जिसे साहित्यसेवा करनी है वह पैसा मिले या न मिले अपना काम करेगा ही। जो दिये बिना नहीं रह सकता वह देगा ही—धन-जन-सम्बन्धी कोई बाधा उसे रोक नहीं सकती और यह तो कोई भी बेवकूफ न कहेगा कि लेखक हवा खाकर साहित्य लिखे। उसका काम अगर अपनी रचना का पुरस्कार या पारिश्रमिक लिये बिना नहीं चलता है तो वह जरूर ले। मगर अपनी सेवा को उसपर अवलम्बित न रखे। मेरे इस आशय से अधिक 'जो पुरस्कार लेता है वह रोटी खानेवाला जानवर है......' आदि-आदि जो कुछ उन्होंने मान लिया है उसके जिम्मेदार वे खुद हैं—मैं किसी तरह नहीं। हाँ, यह मेरी राय जरूर है कि जिनकी गुज़र-बसर का दूसरा

उन्हें लेखन-कार्य से पैसा नहीं लेना पैसा हमें उतना ही लेना चाहिए जितना के लिए ज़रूरी है, संग्रह के लिए निर्वाह, सुख और विलास इनमें से हमें—रखनेवालों को—निर्वाह के लिए ही का हक होना चाहिए। तुलसी, कबीर, पुरस्कार लेने या माँगने गये थे ? विशेषता के द्वारा हमने अपना बना लिया है तो पैसा हमारे पास आवेगा—नहीं भी आया तो उसके जो कष्ट होगा वह हमें दीन व लाचार देगा—हमारे जौहर को अधिक ही गा।

जी आगे लिखते हैं—

हिन्दी के अधिकांश ही नहीं लगभग जीवित लेखकों से परिचित हूँ। यहाँ मेरा अभिप्राय केवल मात्र, पहले, दूसरे, के साहित्यिकों से है जो किसी-न-किसी एवं प्रतिष्ठित हैं। इन साहित्यकारों तक मैंने किसी के भी मुँह से लेखक पुरस्कार की कसौटी से आँकते ।" जानकारी का यह यह दावा मुझे ही लगता है। लेकिन अधिक ही इसपर ठीक निर्णय दे सकते हैं। जी के इण्टर क्लास में सफर करने से-बढ़िया सूट-टाई पहनने का उदा- आप लिखते हैं 'दुनिया में किसी भी एक कसौटी हो सकती है, तो वह है महत्त्व ('Human values')।' में उन भावों और विचारों का अधिक है जो लेखक के अपने जीवन व आचार से रखे। इसके बाद 'साहित्य-सेवा किसे यह प्रश्न पूछकर भिन्न-भिन्न उद्देश्य से वाली साहित्य-सेवा का जिक्र करके कार्य की यह व्याख्या दी है—"**सेवा-है जो नितांत रूप से परहित हो जिसमें अपनेपन का लगाव न हो, जिसमें कर्तव्य का भाव हो, ख्वाह उससे ख़ुद आपको कोई नुकसान या फ़ायदा हो।**" इसे मैं अपनी भाषा में यों कहना चाहूँगा जो कर्म अपने सुख (physical comfort) या स्वार्थ के उद्देश्य से न किया गया हो वह सेवा है। इस सेवा के फलस्वरूप पैसा मिलना हो तो ले लेना एक बात है और न मिले तो उसकी शिकायत करना दूसरी बात है। पहली बात सेवा-भाव के विपरीत नहीं है।

फिर आपने गांधी, जवाहरलाल, रवीन्द्रनाथ आदि जिन-जिन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं का पुरस्कार लिया है उनका हवाला देकर प्रश्न किया है—"**यदि साहित्य और जीवन का धन से कोई सम्बन्ध नहीं या वैसा नहीं जैसा आप चाहते हैं, तब क्यों 'जीवन-साहित्य' व 'मण्डल' की पुस्तकों का मूल्य रखा गया है, वे क्यों बेची जाती हैं, क्यों नहीं आप अपनी पुस्तकें मुफ्त बाँटकर हिन्दी-साहित्य-सेवा का अधिकतम श्रय लूटकर लोक-हृदय पर अपनें लेखकपन और सेवकपन की अमिट छाप लगाकर श्रेष्ठतम साहित्यिक बन जाते, ताकि गांधी, गोर्की व रवीन्द्र के साथ आप अपना नाम गिना सकते ?**" मेरी राय में ये उदाहरण बेमौज़ू हैं; क्योंकि इन्होंने रुपया लिया भले ही हो पर कमाने के लि नहीं लिखा। फिर जो पैसा मिला भी है उसका उन्होंने सार्वजनिक उपयोग किया है। 'जी॰ सा॰' का मूल्य ? लागत से भी कम है और 'मण्डल' की पुस्तकें भी लागत मात्र पर बेची जाती हैं। कुछ पुस्तकों पर तो लागत में व्यवस्था-खर्च भी नहीं जोड़ा गया है, महज़ कागज़ व छपाई के दाम लिये गये हैं। जहाँतक मुझसे सम्बन्ध है मैंने पैसे को लक्ष्य बनाकर अबतक कुछ नहीं लिखा है। जो पैसा मिला है उसका उपयोग गांधी-सेवा-संघ का सदस्य बनने के पहले तक निर्वाह-मात्र में किया है और बाद में सार्वजनिक कामों में। मेरी राय में अपनी आवश्यकताओं को कम-से-कम रखना और आवश्यकता भर के लिए, अपने परिश्रम के फलस्वरूप पैसा लेना कोई बुराई नहीं। सेवा का अर्थ सबको मुफ्त बाँटना नहीं है।

आगे चलकर आपने प्रश्न किया है कि रोटी **के ऊपर उठकर कैसे लिखा जाता है, क्या भूखे पेट रहकर ?** मेरा जवाब यह है कि 'अगर **रोटी** न मिली तो उसका रोना न रोकर और फिर भी अंगीकृत कार्य न छोड़कर। जो इस आँच में तप सकेगा वही सेवा-क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ेगा। दुनिया का सिर उसके चरणों पर झुकेगा। भूखे मरने की नौबत आने पर जिन्होंने सेवा-कार्य छोड़ दिया वे अपनी साधना और तप में कच्चे साबित हुए, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आगे आपने लिखा है कि **"प्रकाशन-संस्था को साहित्यसेवी कहनेवाले ऐसे प्रकाशक अवश्य हैं जो कतिपय लेखकों से पुस्तकों का अनुवाद कराते हैं और अनुवादक की जगह केवल नाम अपना ही देते हैं; जो अपने पत्र का सम्पादन किसी गरीब निरीह प्रतिभाशाली हिन्दी-लेखक से कराते हैं, उसे कुछ दे देते हैं, और सम्पादक की जगह सिर्फ़ अपना ही नाम देते हैं। उस बेचारे का नाम सहायक में भी नहीं देते। क्या यह अहिंसा और सत्य के अनुरूप है ? यह नैतिक पतन लेखक का है या प्रकाशक का ?** "दोनों का हो सकता है। जो अनुचित रूप से दबा हो उसका भी और जिसने अनुचित रूप से दबाया हो उसका भी। अगर लेखक व प्रकाशक ने ऐसा ठहराव बिना दबाव के राजी-रजामन्दी से किया है तो वह नैतिक पतन नहीं समझा जा सकता। फिर आप लिखते हैं कि हिन्दी के ९९% साहित्यिकों को जिनमें से अनेक आपके 'जी० सा०' में स्थान पाते हैं केवल एक शिकायत है—**"हिन्दी का प्रकाशक शोषक है, हिन्दी का सम्पादक अयोग्य है।"** यदि यह शिकायत सही है तो हिन्दी के प्रकाशकों का बहिष्कार होना चाहिए और हिंदी-सम्पादक निकाल दिये जाने चाहिएँ। इसके बाद आपने भिन्न-भिन्न लेखकों के आदर्श, सिद्धान्त और महत्त्व की भिन्नता का वर्णन करके पूछा है—**"तब, उपाध्यायजी, आपको या किसी को क्या अधिकार है कि आप या वह 'क' को लेखक मानें और 'ख' को नहीं, 'स' से कहें तुम ऐसी बात लिखो, ऐसी नहीं, तभी हम तुम्हारी चीज छापेंगे। लेखक अच्छा है या बुरा, इसका निर्णय आप—प्रकाशक और सम्पादक—को नहीं करना, यह पाठक, समालोचक, और समय आप ही कर लेते हैं, और कर लेंगे।"** मेरी राय में प्रत्येक व्यक्ति को अपने मत के अनुसार 'क' को लेखक मानने व 'ख' को न मानने का अधिकार है और 'स' से यह कहने का भी कि ऐसी बात लिखो और ऐसी नहीं। लेखक अच्छा है या बुरा ऐसा निर्णय अपनी रुचि के अनुसार करने का प्रत्येक को अधिकार है। पाठक, समालोचक व समय की तरह प्रकाशक और सम्पादकों को भी अपनी अपनी दृष्टि से निर्णय करने का अधिकार अवश्य है।

साहित्य-सृजन कोरी कल्पनाओं के आधार पर नहीं, अनुभूति के आधार पर होना चाहिए, मेरे इस विचार के विरोध या खंडन में दुनिया भर के साहित्यिकों के नाम व कृतियाँ गिनाकर चार-पाँच पृष्ठ आपने लिखे हैं। मुझे खेद है कि लेखक ने मेरे इन वाक्यों को ध्यान से पढ़ा ही, नहीं। कल्पनाओं के पहले 'कोरी' और हिलोरों के पहले 'मस्त' विशेषणों की तरफ उन्होंने ध्यान देने की कोई जरूरत ही नहीं समझी। मैं कोई साहित्यिक नहीं हूँ, फिर भी इतना तो जानता ही हूँ कि साहित्य-सृजन में कल्पनाओं और भावनाओं का बड़ा स्थान है। मैंने तो उन कल्पनाओं और भावों पर आपत्ति की है जो जीवन की अनुभूति से सम्बन्ध नहीं रखतीं। ऐसी दशा में इस विषय पर अपनी खुली चिट्ठी में लेखक ने जो कुछ लिखा है वह सब अप्रस्तुत है। फिर आपने प्रश्न किया है **"हिन्दी क्या सूर, तुलसी, पंत, प्रसाद, प्रेमचन्द जैसे लालों के होते हुए भी विश्व के किसी साहित्य से हेय है ?"** बेशक सूर-तुलसी का साहित्य सारे संसार के साहित्य में अद्वितीय है और पंत, प्रसाद, प्रेमचंद पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है। फिर भी यह निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य में गांधी, गोर्की व रवीन्द्र का स्थान खाली है।

ने 'पं० जवाहरलालजी ने जनता के हुआ है' मेरे इस कथन के विरोध में बहुत लम्बा-चौड़ा मज़बून लिखा है। णों का तात्पर्य स्पष्ट है। मैंने तो उनके बात की ओर ध्यान दिलाया है कि विशेषता और व्यक्तित्व होता है उसकी कमान्य व लोकप्रिय होती है। जनता जिसकी जितनी समवेदना अधिक होगी, ति और अपने जीवन के प्रति जो जितना क सच्चा होगा उसकी कृति उतनी ही हृदय पर अधिकार करेगी—एक काल के हीं, सर्वकाल के लिए। यदि इस मूलभाव जी ग्रहण कर लेते, तो वे बहुत-सी निक बातें लिखने के कष्ट से बच जाते। उनकी यह शिकायत सही है कि **"गांधीजी** हरएक चीज **गुजराती में और नेहरूजी** में लिखते हैं। **हिन्दी को सदैव उनकी** हीं मिलती है।" लेकिन गांधीजी तो गुजराती हैं। हाँ, जवाहरलालजी के बारे शिकायत बिलकुल सही है। लेकिन मैंने जवाहरलालजी की गिनती साहित्य- में कब की है? उनका नाम गिनाने से लब इतना ही जतलाना था कि साहि- ता के साथ अगर प्रबल व्यक्तित्व भी वही युग-निर्माता साहित्यिक हो सकता साहित्यिक का स्मरण और उसके अभाव महसूस कराने के लिए मैंने गांधी, गोर्की, का नाम लिया। मेरे सारे कथन का यह है कि जबतब किसी का व्यक्तित्व और रोटी का रोना रोने की गुंजा- इश के लिए रहती है, तबतक वह गांधी रवीन्द्रनाथ के टक्कर का साहित्य-सेवी नहीं सकता। संसार की कोई दलील और कोई उदा- इस सत्य का खंडन नहीं कर सकता। ह०उ०

का सारभाग यह है—

हिंदी या विश्व की अन्य किसी भाषा कोई भी महान और सम्मानित साहित्य- साहित्य की सेवा नहीं करता, न कभी किसी ने की। किसी ने अपने पेट के लिए लिखा, किसी ने अपने नाम भर के लिए अपनी प्रतिभा का उपयोग किया, किसी ने अपने आत्म-संतोष के लिए, किसी ने अपने विचार फैलाने के लिए, किसी ने भगवान के लिए—या अपनी मुक्ति के लिए,··· सबने लिखा अपने निजी स्वार्थ से, साहित्य की सेवा करने की दृष्टि, के प्रयोजन, के ध्येय से नहीं।"

"शेक्सपियर ने नाटक मेरे और आपके और दुनिया के लिए नहीं लिखे थे, थियेटर में खेलने और उससे अपनी रोटी कमाने के लिए लिखे थे। फ़िरदौसी ने शाहनामा सोने की एक लाख अशर्फ़ियों के लिए लिखा था। कालिदास ने विक्रमादित्य से धन-सम्मान पाने के लिए काव्य और नाटक रचे थे। वे साहित्यकार, जो विश्व के सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं, अपने पेट के लिए ही लिखते थे, प्रत्यक्ष में या परोक्ष में। रवीन्द्र भी अपने भूखों मरते शांति-निकेतन—जो उनका अस्तित्व और प्राण और आदर्श और स्वर्ण स्वप्नों का जीवित शरीर है—के पोषण के लिए जगह-जगह नृत्य और नाटक प्रदर्शित करने निकले थे!"

"सभी देशों में, सभी युगों में, सभी साहित्यों में, सभी धर्मों में, जीवन के सभी विभागों में अच्छे और बुरे दामन-चोली से साथ चलते हैं। जहाँ प्रेमचन्द के 'गोदान' का महत्त्व है, वहाँ 'क़िस्सा तोता-मैना' और 'चन्द्रकान्ता संतति' का भी; 'गीतांजलि' का जितना महत्त्व है, उतना ही चावड़ी में गा-गाकर बेचनेवालों की 'भजनावली' का भी, मैं तो कहूँगा कि 'साकेत' से अधिक 'राधेश्याम की रामायण' प्रचलित है, लोक-हृदय के निकट है और उसका महत्त्व है।"

"नेहरूजी की ओर यदि वह खिंचता भी है, तो इसलिए नहीं कि नेहरू अच्छा लिखते हैं, कलाकार हैं, साहित्यकार हैं, वरन इसलिए कि वे एक महान् पुरुष हैं, सब उनकी बात करते हैं, बड़ाई करते हैं, वे प्रसिद्ध हैं—यानी उसके हृदय में नेहरू के प्रति वीर पूजा, श्रद्धा, विस्मय का एक भाव रहता है—जो उसे नेहरू से दूर रखता है, उसने उसके हृदय को छुआ तक नहीं।"

कसौटी पर

बीमारी के इन दिनों में बिस्तर पर लेटे-लेटे अचानक "चन्द्रिका"[१]—कहानियों की एक पुस्तक—समालोचनार्थ मेरे हाथ में आ गयी। उसकी भूमिका पढ़ने से मालूम हुआ कि उसमें स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के विषय में कुछ नवीन दृष्टि-बिन्दु से विचार किया है तो मैंने समग्र पढ़ डाला। यह पुस्तक कहानी कहने के लिए नहीं लिखी गयी, नारी जीवन के कुछ पहलू खास तौर पर हमारी निगाह में लाने के उद्देश्य से लिखी गयी है। अबतक हमारे समाज में यह धारणा चली आ रही है कि सभी के प्रेम का आलंबन अकेला उसका पति ही है दूसरे से प्रेम का ख़याल करना पातिव्रत को भंग करना है। इसके विपरीत 'चन्द्रिका' की कहानियों में यह विचार पेश किया गया है कि स्त्री पति-परायणा रहते हुए भी दूसरे से प्रेम रख सकती है और उसमें कोई दोष की बात नहीं। इस दृष्टि से ये कहानियाँ उन सब व्यक्तियों को पढ़ लेनी चाहिएँ जो इस नये दृष्टि-बिन्दु को जानना या समझना चाहते हों।

हमारे समाज के सामने सचमुच यह सवाल बड़ी तेजी से आ रहा है कि दाम्पत्य-जीवन और स्त्रियों की दृष्टि से पत्नी-जीवन की मर्यादा क्या हो? प्रेम और प्रणय या भोग इन सबका पत्नी के लिए एक ही अधिष्ठाता पति हो या भिन्न-भिन्न? प्रेम, प्रणय या भोग से ऐसी घुली-मिली वस्तु है जो उससे कभी अलग नहीं हो सकती या भोग और प्रणय का अधिष्ठान एक रहते हुए भी प्रेम के आलम्बन अनेक हो सकते हैं? प्रेम के अनेक और स्वतन्त्र आलम्बनों की कल्पना सचमुच वास्तविक है या ये प्रणय और भोग के भिन्न-भिन्न स्वरूप या विकार हैं? ये विचारणीय प्रश्न हमारे सामनें हैं जिनका जवाब और सन्तोष-जनक जवाब हमारे मानस-शास्त्रियों और समाज-शास्त्रियों को देना है। पुरुष और स्त्री का जो परस्पर-आकर्षण है उसमें क्या शुरु से आखिर तक प्रणय ही की भावना काम करती रहती है या उसमें प्रेम के लिए भी कोई स्थान है? यदि सब प्रणय-ही-प्रणय है ऐसा मानें तो फिर भाई और बहिन, पिता और पुत्री के प्रेम को भी क्या प्रणय का ही एक अविकसित रूप माना जाय? प्रेम और प्रणय यदि दो हैं तो इसकी विभाजक रेखा क्या समझनी चाहिए? इसी तरह विवाह और प्रेम तथा विवाह और गृह या समाज-व्यवस्था का परस्पर कितना नाता है या होना चाहिए, यह भी एक सवाल पैदा होता है। यदि समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का समान दर्जा है—यह सिद्धान्त सही है तो फिर प्रेम और प्रणय के क्षेत्र में स्त्री को वही समानता मिल सकती है और मिलनी चाहिए यह उसका फलितार्थ निकलता है। केवल पश्चिम के स्वतंत्र या भोग-वादी मतों के अनुसार ही नहीं बल्कि पूर्वीय समभाव की दृष्टि से भी इस पहलू पर रोशनी पड़ने की ज़रूरत है। यदि आत्मभाव या समभाव ही पूर्वीय संस्कृति की नींव है तो उसके तमाम समाज और जीवन-व्यापार समभाव ही से चलने चाहिएँ। इस दृष्टि से विचार करें तो हमारे वर्तमान दाम्पत्य जीवन व प्रेम तथा प्रणय-संबंधी रुढ़ कल्पनाओं और भावों की जड़ें हिलती नज़र आती हैं। क्या वह वांछनीय है?।

ह० उ०

खिलौना-घर (उपन्यास) : अनुवादक—प्रो० विश्वमोहनकुमारसिंह एम० ए०; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी प्रेस, बाँकीपुर (बिहार); मूल्य ।।।)

यह इब्सेन के सुप्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास, 'डॉल्स हाउस' का अनुवाद है। भूमिका में विस्तार से इब्सेन की जीवनी, उसके समय, उसकी कला

---

[१] लेखक—श्री रामस्वरूप व्यास; प्रकाशक—नारी-जागरण कार्यालय, इलाहाबाद, मिलने का पता—सतयुग-आश्रम, नं० २८, बहादुरगंज, इलाहाबाद, पृ० सं० ९६, दाम ।।।)

खिलौना-घर' की कथा का विवेचन देकर क ने अपनी अध्ययन-प्रियता का परिचय है। उपन्यास मनोरंजक है और वस्तुतः एक हैं। हेल्मर और नोरा बड़े प्रेमी पति-पत्नी किन एक ज़रा-सी बात का—वह भी ऐसी एक मात्र अपने प्रियतम हेल्मर की प्राण-के लिए की गयी थी—रहस्योद्घाटन होते र समाज की निन्दा के भय से बचाने के सार बिगड़ उठता है ! यहीं नोरा को न होता है। पति-प्रेम का उसका भ्रम जाता है और उसकी आत्मा कह उठती वह स्त्री है तो क्या ? पहले वह मनुष्य है, नी और माता है।' और सोचती है, 'जब योचित अधिकारों का उपभोग नहीं कर तो पत्नी होकर क्या ?' इसी उधेड़बुन में ति और बच्चों को भी छोड़ देती है। और क्रौगस्टड और लिण्डेन हैं। इनमें मित्रता थी, पर आवश्यकतावश उन्हें एक से जुदा रहना पड़ा। बहुत दिनों बाद जब में एक को स्त्री का और दूसरे को पुरुष का न था; अतः एक-दूसरे के स्पष्ट ज्ञान के बातों को बिसारकर वे ऐसे विवाह-सम्बन्ध बद्ध होगये, जिसके सुखप्रद होने की छिपी रहता है। इसका भावार्थ यह हुआ कि "प्रेम परस्पर के स्पष्ट ज्ञान पर स्थित विवाह ही विवाह है," अथवा वर्तमान सामाजिक प्रथा ति के लिए पत्नी मानो एक गुड़िया के समान और गृहस्थी एक खिलौना-घर। हमारे विचार समस्या का अतिरंजित रूप है और वास्त-गत है समाज की मर्यादा—जिसके पालन लिए, समाज द्वारा स्वीकृत नियमों को रक्षार्थ, कभी अपने प्रियजनों के साथ भी मनुष्य को बनना पड़ता है। अनुवाद यों तो योग्य हुआ है, पर भाषा कहीं-कहीं विशृंखल है 'पैसा' जैसे शब्दों से बिहारीपन छलक ता है।

र्ल और अन्ना : अनुवादक—प्रो० देव-उपाध्याय, एम० ए०; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस; पृष्ठ ९३; मूल्य ॥)

यह जर्मन उपन्यासकार लियनहार्ड फ्रैंक के उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद है। इसमें भी गार्हस्थ्य-जीवन का एक अजीब चित्रण किया गया है। युद्ध के साथ बन्दी बने हुए दो व्यक्ति निर्जन स्थान में एकसा जीवन बिताते हुए अपनी बीती बातों को कह-कहकर ही मन बहलाते हैं। उनमें एक जो विवाहित था, अपने विवाहित जीवन के अनुभव और दृश्य सुना-सुनाकर अपना बोझ हल्का करता रहता था। इस सिलसिले में अपनी पत्नी के अंग-प्रत्यंग तथा हर समय के हाव-भाव तक का विस्तार से वह वर्णन कर गया, जिसे सुनते-सुनते उसका साथी निर्दोष भाव से उसकी पत्नी की ओर अनुरक्त हो गया और वह भी वैसे ही सुख-स्वप्न लेने लगा। संयोगवश वह पहले मुक्त हुआ; और तत्काल सीधा मित्र-पत्नी के पास पहुँचा और उसके पतित्व का दावा किया। पत्नी भी कैसी भोली कि आखिर उसपर विश्वास करके उसीको पति मानने लगी ! बाद में पति आया; पर उसकी पत्नी दूसरे की होचुकी थी। पति इसपर स्वभावतः कुपित हुआ और आवेश में आया; पर पत्नी ने बीच में पड़कर कहा, "मैं उसके बिना जी नहीं सकती। मेरी हत्या कर डालो।" तब वह कटे वृक्ष की भाँति बैठ गया और पत्नी अपने नये पति के साथ चल दी। यह जीवन कहाँ तक स्वाभाविक है, इसमें हमें सन्देह है। प्रकाशक ने शुरू में ही दिया है कि 'सम्भव है कुछ पाठकों की सुरुचि-भावना के प्रति यह पुस्तक बलात्कार करे।" इसलिए इसमें ऐसी किसी बात के लिए तो तैयार थे; परन्तु हम प्रकाशक की इस बात से सारी पुस्तक पढ़ लेने के बाद भी सहमत नहीं हो सके कि "जीवन की अनिवार्यताओं का कोई जवाब नहीं है।" हमारी समझ में यह संयम से स्वच्छन्दता की ओर प्रेरणा है, जो कभी वांछनीय नहीं। इसी कारण हम इसे 'अमर कृति' मानने को भी तैयार नहीं हैं। बल्कि ऐसी पुस्तकों से बहुत लाभ हो सकता है, इसमें भी हमें तो सन्देह ही है।

मुकुटबिहारी वर्मा

हिलोर (१२ कहानियों का संग्रह) : लेखक-श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी; प्रकाशक—गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ; मूल्य १); पृष्ठ-संख्या १८२, क़ाग़ज और छपाई उत्तम।

इस संग्रह की सभी कहानियाँ पवित्र, उज्ज्वल और आदर्श प्रेम पर आधारित हैं। कहानियों में गति है, भाव निखरे हुए हैं, विचार निखरे हुए हैं, शैली नवीन है। और फिर भगवती बाबू की कहानियों के बारे में एक शब्द ही काफ़ी होगा कि वे उत्कृष्ट कला का जागता हुआ नमूना हैं।

'हिलोर' के प्राक्कथन में प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर श्री अमरनाथ झा ने लिखा है—कहानी लिखने में बड़ी विलक्षण योग्यता उपेक्षित है। और मैं समझता हूँ झा साहब ने जिस योग्यता की ओर इशारा किया है, वह प्रस्तुत कहानीकार में पूर्णरूपेण विद्यमान है। इस संग्रह की कहानियों में सर्व-श्रेष्ठ कहानी है, झाँकी; इसके चरित्र, वार्तालाप, भाव, भाषा और वातावरण अन्य कहानियों से अधिक मँजे हैं। 'उस क्षण का सुख', 'अपमान', 'हत्यारा', त्याग और 'टिकुली' क्रमशः अन्य कहानियों से आगे हैं।

कथाकार भगवतीप्रसाद अपनी अन्य रचनाओं की ही तरह 'हिलोर' की कहानियों में भी स्पष्टतया खुले हुए हैं और उनकी ये कहानियाँ भी हिन्दी कथा-साहित्य में उनकी अन्य रचनाओं की तरह अपना अलग स्थान रखती हैं। फिर भी एक बात है, उनका यथार्थवाद अभी उतना सामने नहीं है जितना होना चाहिए। सब मिलाकर संग्रह सफल है। **ब्रजेन्द्र**

प्रजातन्त्र : लेखक-श्री बा० रा० मोडक : अनुवादक—श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे; प्रकाशक-ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर; पृष्ठ २४४; १॥)

प्रस्तुत पुस्तक प्रजातन्त्र शासन-पद्धति पर एक गम्भीर और अध्ययनपूर्ण प्रयत्न है। प्रजातंत्र का विकास, उसकी विशेषताएँ, प्रजातन्त्र-पद्धति का स्वरूप, व्यवस्थापक सभाएँ, मन्त्रि मण्डल, दलबन्दी, स्थानिक स्वराज्य, संस्था, आदि प्रजातन्त्र के प्रायः सभी अंगों की विस्तृत विवेचना के बाद प्रजातन्त्र के गुणदोषों पर विस्तार से विचार किया गया है और अन्त में व्यक्तिवाद, समाजवाद और डिक्टेटरशिप की पद्धतियों का प्रतिपादन करते हुए प्रजातन्त्र के भविष्य पर प्रकाश डाला गया है। इस तरह पुस्तक को सर्वांग-संपूर्ण बनाने का सुन्दर प्रयत्न किया गया है। प्रतिपादन-शैली में बहुत सरसता नहीं, लेकिन शास्त्रीय विषय की भाषा के अनुरूप ही है, यद्यपि कुछ स्थलों पर भाषा संस्कृतबहुल और अधिक क्लिष्ट शब्दों के कारण जटिल हो गयी है।

आजकल के अनेक विचारक कहते हैं कि समाजवाद प्रजातन्त्र का सर्वोच्च विकास है, पर लेखक समाजवाद के चकाचौंध में नहीं पड़ा। वह समाजवाद के दोषों से अच्छी तरह परिचित है और उसने समाजवाद की आलोचना करते हुए उचित साहस से काम लिया है। "समाजवाद से सरकार पहले से भी बनिया बन जायगी।" "पूँजीवाद भी सरकार के हाथों में जाकर और बलवान बन गया है।" "समाजवाद से एक अति प्रबल प्रचण्ड, सर्वाधिकारी नौकरशाही निर्माण होगी। यह नौकरशाही प्रयत्न प्रभावशाली और सर्वाधिकारी बनकर राष्ट्रहित की दृष्टि में बाधक बन जाती है।" "समाजवाद प्रजातन्त्र के सिर पर एक जोखम है।" उसने केवल भारी स्थापनाएँ योंही नहीं कर डालीं, लेकिन उसके इसके लिए उसने युक्तियाँ भी काफ़ी दी हैं।

लेकिन दूसरी ओर लेखक जहाँ प्रजातन्त्र के गुणों पर प्रकाश डालने में सफल हुआ है, वहाँ वह प्रजातन्त्र पर उठायी गयी आपत्तियों का निराकरण उतने सजीव और जोरदार शब्दों में नहीं कर सका। वह प्रायः हर एक दोष को दबे शब्दों में स्वीकार कर लेता है और इससे पाठक के हृदय में एक ऐसा भाव छूट जाता है जो उसे प्रजातन्त्र का जबर्दस्त हामी नहीं रहने देता। एक स्थल पर तो लेखक स्वयं आपत्तियों से प्रभावित होकर कह देता है—सच्चा और विशुद्ध प्रजातन्त्र केवल एक आभास है।

यद्यपि लेखक भूमिका में ऐतिहासिक दृष्टि

लोगों के संशय को दूर करने की का दावा करता है, तथापि प्रथम तिम अध्याय को छोड़कर प्रजातन्त्र के वर्णन और स्पष्टीकरण में इतिहास का प्रयोग कर पाया है। उदाहरणतः दूसरी कौंसिल की उपयोगिता के कुछ ऐतिहासिक देने आवश्यक थे। सिर्फ सबकी नकल में से काम नहीं चलेगा कि वह आवेशपूर्ण पर प्रतिबंध लगाती है। यह भी बताना कि किस देश में रईसी कौंसिल ने राष्ट्र से बचाया। अन्य अनेक स्थलों की लिए भी ऐतिहासिक उदाहरण देने थे।

में एक कमी और है। पुस्तक को दृष्टि से लिखने की कोशिश नहीं की गयी। का भावी शासन-पद्धति में क्या स्थान है, इसकी भी चिन्ता नहीं की गयी। **कृष्ण**

प्रेमचन्द (आलोचनात्मक परिचय) : लेखक—श्री रामविलास शर्मा, पी-एच० डी०; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य २) पृष्ठ १८३, क़ाग़ज व छपाई अच्छी।

स्व० प्रेमचन्द का युग समाप्त हो चुका है, परन्तु उन्होंने अपने युग में जो कार्य किया है वह आज के हमारे प्रगतिशील साहित्य का प्रारम्भिक जीवन कहा जा सकता है।

इस पुस्तक में प्रेमचन्दजी की कथा, आदर्श, और विचारों का सम्पूर्ण आलोचनात्मक परिचय है। प्रेमचन्द के समाज, उनकी राजनीति और प्रगतिशीलता पर शर्माजी ने मननीय विचार पेश किये हैं। प्रेमचन्द का हर दृष्टि से अध्ययन करने के बाद यह पुस्तक लिखी गयी है। साहित्य के विद्यार्थियों के काम की चीज है। निरंजन

समालोचनार्थ प्राप्त

नी, एक कला : ले०—श्री गिरधरलाल प्रकाशक—ग्रन्थमाला-कार्यालय, पटना; ।)

रतीय ईश्वरवाद : ले०—श्री पं० रामाव-; प्रकाशक—ग्रंथमाला-कार्यालय, पटना;

रिक शिक्षा : ले०—श्री भगवानदास प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृंदावन; =)

गान : ले०—श्री काशीराम शास्त्री ; प्रकाशक—शिक्षा-सदन, सन्तनगर, ; मूल्य ।।)

र : ले०—श्री गिरिजाकुमार माथुर; —इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग; मूल्य ।।।)

ज्ञात : ले०—श्री आनन्द कौसल्यायन; —सुमन वात्स्यायन, सारनाथ (बनारस); =)

: इसके गुण तथा उपयोग : ले०—श्री कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय; प्रकाशक—महेन्द्र रसायनशाला, कटरा, इलाहाबाद; मूल्य ।=)

तुलसी-दर्शन : सं०—श्री कमलधारीसिंह 'कमलेश' : शुभकरण सुराणा; प्रकाश माहेश्वरी विद्यालय, ४, शोभाराम वैशाख स्ट्रीट, कलकत्ता

सन्त-साहित्य : लेखक—श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव, एम० ए०; प्रका०—ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर; पृ० २९४; मू० २)

पत्र-पत्रिकाएँ

प्रदीप : सम्पादक—श्री जगदीश एम० ए०; 'प्रदीप'-कार्यालय, मुरादाबाद; वार्षिक मूल्य ४)

व्यापारी कानून : सं०—श्री कपूरचन्द्र जैन; प्रकाशक—के० सी० सत्यवादी, नई सड़क; देहली; वार्षिक मूल्य १।।)

भूगोल (आसाम-अंक) : संपादक—पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०; प्रका०—'भूगोल' कार्यालय, प्रयाग; पृ० सं० १२७; मू० १)

सहयोगियों में से

शिक्षक का कर्त्तव्य

संसार के इतिहास को लेकर अहिंसक समाज को अपना लक्ष्य बनानेवाले शिक्षक को, बालकों को बताना चाहिए कि जिस प्रकार हर-एक युद्ध घरेलू कलह अथवा यादवस्थली है, उसी प्रकार हरएक खून एक अपघात है। खून करनेवाला व्यक्ति जिसका खून करता है, उसका उतना नहीं बिगाड़ता जितना कि वह खुद अपना और अपने आदमियों का बिगाड़ता है।···

और यह सिखाते हुए आपको बालकों को यह सिखाना होगा कि उन्हें मनुष्य से देवता बनना है, पशु बनना नहीं है! मुझसे कुछ शिक्षक पूछते थे कि 'इतिहास किस तरह सिखाया जाय? उसमें तो औरंगजेब का वर्णन करने से भी टण्टा खड़ा हो जाता है।' मैं विनय-पूर्वक कहना चाहता हूँ कि अगर आप पक्षपात-रहित होकर इतिहास सिखायेंगे, तो टण्टा होने की सम्भावना नहीं रहेगी। अगर औरंगजेब था तो अकबर भी था और अगर हैदर था तो टीपू भी तो था ही। लड़ाइयाँ केवल हिन्दू-मुसलमानों के ही बीच नहीं होतीं। प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिकों में तथा मुसलमान और ईसाइयों में खूंख़ार लड़ाइयाँ हुई हैं। परन्तु इतिहास में से पाठ यही सीखना है कि इस जंगलीपन में से हमें मनुष्य बनना है।···

आपके दिल मे अहिंसा हो, करुणा हो, तो विद्यार्थियों के दिलों में सारी घटना के विषय में आप उद्वेग और घृणा उत्पन्न कर सकेंगे। अन्यथा विद्यार्थियों को भी मज़ा आयगा और उन्हें लगेगा कि कहीं हम भी यह आग देख सकते! इस प्रकार मनुष्य मनुष्यता से गिर कर पशु बन जाता है, इसका अच्छा पाठ आप लड़कों को सिखा सकते हैं।···

शिक्षक ने साम्प्रदायिकता को अगर सम्पूर्ण-रूप से तिलांजलि दे दी हो, तो उसे सर्व धर्म-समानत्व के विकास का प्रयत्न करना चाहिए।···

अब थोड़ी-सी सूचनाएँ करता हूँ, आप हिन्दू शिक्षकों को अपने घर न्यौता देते हैं, चाय पीने बुलाते हैं, भोजन का निमंत्रण देते हैं; कभी किसी मुसलमान-शिक्षक को भी बुलाते हैं? उससे सम्पर्क कीजिए, उससे उसके धर्म की बातें सीखिए, अपने धर्म की बातें सुनाइए। विद्यार्थियों के साथ कितना सम्पर्क रखते हैं? हमारे ज़माने में शिक्षक विद्यार्थियों को अपने घर बुलाकर मुफ्त में पढ़ाते थे। आप मुसलमान विद्यार्थियों को इस तरह कभी बुलाते हैं? मुसलमान विद्यार्थियों को मुफ्त पढ़ाने के लिए घर पर क्यों नहीं बुलाते? उनमें आप जितना भी प्रेम बोयेंगे उसका फल मीठा ही होगा।···

शिक्षक का धंधा पवित्र धन्धा है और आज की विकट परिस्थिति में उनके सामने बड़ा भारी कर्तव्य है।

'सर्वोदय']

महादेव देशाई

साहित्य और संस्कृति

एक मनचले महानुभाव ने खूब डटके पी ली थी और फिर रातभर नाव खेते रहे। उम्मीद थी कि दस-पन्द्रह मील तो आगे निकल ही गये होंगे, पर सवेरा होने पर देखते क्या हैं कि नाव जहाँ की तहाँ मौजूद है! बात यह हुई थी कि नाव की रस्सी नदी तट के एक पेड़ से बँधी हुई थी और उसे खोलना आप भूल गये थे!

बस यही स्थिति हमारे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलनों की है। हम '**प्रगतिशील**' '**प्रगतिशील**' जोरों के साथ चिल्लाते तो हैं पर हमारा जीवन अवनतिशील अथवा प्रतिक्रियावादी है! दूसरों को मुजरिम समझकर उनपर जज बनकर बैठने की कोई इच्छा हमारे मन में नहीं, इसलिए जब हम इस विषय पर कुछ लिखते हैं तो अपराधियों की सूची में सबसे पहला नाम अपना लिख लेते हैं। अपने अंतर्द्वन्द्व का मुख्य कारण हम यही मानते हैं कि एक लक्ष्य निश्चित करके उसकी ओर निरन्तर बढ़ते जानें का कार्य

भी प्रारम्भ नहीं किया । कुछ इने-गिने वियों को छोड़कर, जिनका राजनैतिक तना ही दखल है जितना साहित्य-क्षेत्र लोगों में से शेष का जीवन लक्ष्यहीन है । हित्य के माप-दण्ड' 'सांस्कृतिक मूल्यांकन' का सृजन' और 'संस्कृति के आधार' शब्दों का प्रयोग तो हमारे यहाँ ख़ूब हो र इन शब्दों के पीछे कोई दृढ़ व्यक्तित्व ..."

हमारे यहाँ के अच्छे-से-अच्छे लेखकों के आप पढ़ जाइए, आपको उनके शब्द-के पीछे मतलब की बात बहुत थोड़ी ही । यदि कोई हमसे पूँछे "आख़िर आप और संस्कृति किसके लिए चाहते हैं ? आप सेवा करना चाहते हैं, उन्हीं के सवार हैं !" तो इसका उत्तर यही हो है—"हमारी साहित्यसेवा या संस्कृति की बुद्धिजीवियों का चोचला ही समझना । ईमानदारी का तक़ाज़ा है कि हम लोग को स्वीकार करलें और आगे से सत्य अनुसरण करने की प्रतिज्ञा करें । जो भी आज अपने हृदय को नहीं टटोलता मानसिक शक्ति को अपने चारोंओर की सेवा के उद्देश्य से प्रेरित नहीं , वह अपने सिर पर ज़बरदस्त शाप लिये है। कुसमय का वाणीविलास भी बेवक्त विलास से कम अक्षम्य नहीं । सबसे अधिक हैं वे, जो सरासर ग़लत रास्ते पर जा और अपनी ग़लती मंजूर भी नहीं करते ! कई वर्ष पूर्व आयर्लैंण्ड के प्रसिद्ध कवि, और विचारक ए० ई० ने लिखा था:—

"सी राष्ट्र को हम सुसंस्कृत कह सकते हैं, साधारण नागरिक—मामूली औसत दर्जे भी (केवल असाधारण व्यक्ति नहीं) हों और अपने राष्ट्र के विचारों, कल्प-तथा बौद्धिक इतिहास से उसका परिचय । जिस देश में सार्वजनिक संस्कृति पायी जाती उसका असर घरों में चित्रों या चित्रपटों में बाग़-बग़ीचों में और जीवन-सम्बन्धी सभी क्षेत्रों में दीख पडता है । लोगों में सुरुचि का संचार हो जाता है, गृहजीवन में अनजाने ही सौन्दर्य का प्रवेश हो जाता है और जिस चीज़ का नाम सभ्यता है वह हमारे प्रत्यक्ष हो जाती है । नवयुवक प्रमाद और गप्पाष्टक को छोड़कर अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करने लग जाते हैं । स्त्रियों की पोशाक में सुधार हो जाता है और कला तथा संगीत का मानव-जीवन पर प्रभाव पड़ने लगता है । संक्षेप में यों कहना चाहिए कि हमारी आत्मा में जो भौतिकता या दुनयबी-पन है वह कण-कण करके आध्यात्मिकता में परिणत हो जाता है । सर्वोत्तम विचारों, सर्वोत्तम आदर्शों और सर्वोत्तम तरीक़ों को सर्वसाधारण तक पहुँचाना ही हमारा आदर्श होना चाहिए, जिससे हमारे देश का औसत जीवन उच्चकोटि का बन जाय । किसी भी देश के लिए यह बात गौरवजनक हर्गिज़ नहीं है कि उसमें थोडे से आदमी तो असाधारण विद्या-बुद्धिवाले हों और अधिकांश जनता के हृदय में अन्धकार का साम्राज्य हो ।...हमारे देश के सर्वसाधारण में जल्दी-से-जल्दी नागरिकता का भाव जाग्रत होना चाहिए और हमें चिन्ता इस बात की करनी चाहिए कि साधारण जनता का रहन-सहन ठीक ढंग का हो । इसके सिवा और सारी बातें फालतू हैं । सरकार की सत्ता केवल इसीलिए है, साहित्य तथा कला का उद्देश्य भी यही है और उद्योग-धंधों का अस्तित्व इसी कारण है ।"

क्या ही अच्छा हो यदि हम हिन्दी साहित्य-सेवी इस तराज़ू पर अपनी रचनाओं को तोलें और बढ़-बढ़कर बातें करने के बजाय स्वयं अपने जीवन को उपर्युक्त सिद्धान्त पर ढालना प्रारम्भ करें ।

सर्वसाधारण के जीवन से अपने जीवन को मिला देने में और इस प्रकार दोनों को उन्नत बनाने में ही हमारा स्वार्थ और परमार्थ है । बाक़ी सब कोरमकोर शब्द-जंजाल है—महज़ लफ्फ़ाजी है ।

'मधुकर']

बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रगति की ओर

[इस स्तम्भ में जीवन और राष्ट्र-निर्माणकारी प्रवृत्तियों तथा संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय व विवरण दिया जायगा। जो प्रवृत्तियाँ व संस्थाएँ देश व समाज में 'समभाव' बढ़ाने की दृष्टि से काम कर रही हैं उन्हीं के लिए इस स्तम्भ में स्थान रहेगा। 'समभाव' ही हमारे नज़दीक उनकी प्रगतिशीलता की कसौटी होगी। —संपादक]

ग्रामकुटीर, सेंधवा (होलकर-राज्य)

यह कुटीर बारेला नामक जंगली जाति की, जो भीलों से मिलती-जुलती है, सेवा ६ साल से बड़ी दृढ़ता व लगन से कर रही है। इसके कार्य को देश-सेवकों ने ही नहीं इंदौर-राज्य के दीवान तथा दूसरे बड़े अधिकारियों ने भी सराहा है। वनवासियों को पढ़ना-लिखना सिखाने, स्वच्छता व आरोग्य का ज्ञान देने व रोग-निवारण करने, खादी को प्रधान मानकर ग्राम-उद्योगों का संगठन करने व वस्त्र-स्वावलंबन की भावना बढ़ाने तथा नशे का बहिष्कार, सामाजिक सुधार, हरिजन-सेवा, गोपालन, कृषि-सुधार, स्वदेशी आदि का प्रचार करने के उद्देश से यह कुटीर स्थापित हुई है। छठे वर्ष में यह काम हुआ है—

(१) चार विद्यालयों में १८८ विद्यार्थियों ने शिक्षा पायी। आध घंटा नित्य प्रार्थना-भजन होते हैं। बालकों के शरीर, दाँत, नाखून, वस्त्रादि की सफ़ाई व नियमित स्नान पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

(२) चारों औषधालयों में २७४२ रोगियों को ३७७८ बार मुफ्त दवा दी गयी।

(३) दो केन्द्रों में १२८० लटी सूत कता व २॥ मन कपास एक केन्द्र में लुढ़ाया गया। ८४ गज खादी बुनवायी जा सकी।

(४) पुस्तकालय की ४१७ पुस्तकों में से १९६ बार पुस्तकें लेकर लोगों ने पढ़ीं।

(५) कुँवा-दुरुस्ती, छुआछूत दूर करने, पुस्तकालय, आदि के द्वारा हरिजनों की सेवा की।

(६) किसानों के आपसी झगड़े निपटाने, दहेज की कुप्रथा के खिलाफ लोकमत बनाने, स्वच्छता, दुर्व्यसन-रोक का काम लिया गया।

इस साल १७६४।) खर्च हुआ। अगले साल के लिए २६२५) का खर्च अन्दाजा गया है।

मारवाडी रिलीफ़ सोसाइटी, कलकत्ता

१९१३ ई० में देश की इस लोकसेवी संस्था की स्थापना हुई थी और १९३८ में उसे २५ वर्ष हुए। प्रारम्भ में ४ सेवाभावी युवकों द्वारा बनी हुई इस संस्था का रूप आज महान् और विशाल हो गया है। अपनी रजत-जयन्ती पर संस्था ने अपने कार्य का छोटा-सा इतिहास प्रकाशित किया है, जिससे प्रकट होता है कि संस्था ने किस-किस प्रकार १९१६ तक '**मारवाडी सहायक समिति**' और बाद में '**मारवाडी रिलीफ़ सोसाइटी**' के नाम से अब तक भिन्न-भिन्न प्रांतों के स्थानों पर आनेवाले संकटों—बाढ़, दुर्भिक्ष, अकाल, प्लेग, भूकम्प आदि में पीड़ित जनता की तन, मन और विपुल धन से सहायता की है।

संस्था के प्रमुख विभागों में चिकित्सा [आयुर्वेद, एलोपैथी, विद्युत] विभाग, कागज-उद्योग, शिक्षा-विभाग, रसायन-शाला आदि विशे उल्लेखनीय हैं।

संस्था ने अपनें सेवाकार्यों में अभीतक लाखों रुपया खर्च किया है। पीड़ितों की सेवा करनेवाली शायद यह देश की सबसे बड़ी संस्था है।

स्वाध्याय-मण्डल, फ़ीरोज़ाबाद

फ़ीरोजाबाद का श्रीभारती-भवन पुस्तकालय पिछले ३० वर्षों से नगर की साहित्यिक सेवा कर रहा है। अभी गत ३० जुलाई को 'तुलसी-जयन्ती' के उत्सव के अवसर पर श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रयत्न से सुरुचिपूर्ण शुद्ध साहित्य के प्रसार तथा स्थानीय साहित्यिकों के संगठन और विचार-विमर्ष के लिए उसके द्वारा एक '**स्वाध्याय-मण्डल**' की स्थापना की गयी। नगर के अनेक साहित्यिक इसके सदस्य बन गये हैं और मण्डल का कार्य्य उत्साहपूर्वक आरम्भ हो गया है।

जीवन-समस्याएँ

-एक कुँवारी लड़की के गर्भ रह गर्भ रहा वह विवाहित है। लड़की भी है। दोनों में काफी प्रेम है। डर से भयभीत हैं। उन्हें कोई मार्ग सकता है ?

—वे अपना दोष अपने पालकों पर । पुरुष या तो पहली पत्नी के मान व ध्यान रखते हुए इस लड़कीसे दूसरा ले या लड़की के साथ निर्मल प्रेम का रखकर सुपात्र के साथ विवाह करा दें।

—एक स्त्री का पति सन्तान पैदा करने है। स्त्री को दूसरे से गर्भ रहा व से प्रकट भी कर दिया। अब दोनों कर्तव्य है ?

-यदि पति सन्तानोत्पादन में असमर्थ तो उसे शादी ही न करनी चाहिए लेने पर पत्नी को दूसरा विवाह आजादी दे देनी चाहिए थी। अब री जगह विवाह कर देना ही उचित तो यह होगा कि जिससे गर्भ रहा विवाह कर ले। उस पुरुष में या दूसरे ऐसा साहस होना ही चाहिए। जबतक काम नहीं लिया जायेगा तबतक ऐसे निवारण न हो सकेगा। इसके लिए जो कष्ट या 'बदनामी' उठानी पड़े वह इस दोष का 'प्रायश्चित्त' या सुधार के लिए 'तप' समझा जाना चाहिए।

स०—एक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता की लड़की की सगाई उसकी माता ऐसे लड़के से करना चाहती है जो कार्यकर्त्ता के विचार व सिद्धान्त के अनुसार ठीक नहीं है। डर है कि माता सगाई कर देगी तो पिता को क्या करना चाहिए ?

ज०—अव्वल तो माता को यह उचित नहीं कि पिता के भावों व सिद्धान्तों को ठुकराकर लड़की की सगाई करे। लड़की की राय भी उसमें अवश्य ली जानी चाहिए। सगाई-विवाह में गहने व रुपये का विचार सबसे ऊपर रखना बहुत ही गलत व हानिकर है। बहुधा स्त्रियाँ इसी लोभ या विचार से अनमेल सम्बन्ध कर लेती हैं। यदि पिता की न चले व माता अपनी मर्जी से सगाई कर दे तो पिता उसके विवाह में शरीक न हो। लड़की में यदि दम व ज़ोर हो तो वह भी ऐसे सम्बन्ध से इनकार करे। यदि कन्या को भी वह संबंध मंजूर न हो तो पिता के द्वारा पैसे का असहयोग भी किया जा सकता है। इसमें कोई धर्म-संकट पैदा होता हो तो आपद् धर्म के तौर पर उतना ही पैसा देना चाहिए जितना संस्कार-मात्र के लिए ज़रूरी हो। ह० उ०

हिन्दी की हलचलें

मा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अगले के प्रश्न पर स्थायी समिति ने निर्णय कि शोलापुर में अधिवेशन होना संभव इसकी जाँच की जाये।

के प्रथम सप्ताह में राष्ट्रके अनेक नगरों -दिवस तथा जयंती-समारोह मनाये गये। जेल के राजबंदियों ने राष्ट्रकवि गुप्त की ५६वीं वर्षग्रंथि मनायी रवींद्रनाथ ठाकुर के महाप्रयाण के सभापतित्व में शोक-सभा की।

श्री सियारामशरण गुप्त के 'नारी' उपन्यास का तामिल-अनुवाद हो चुका है और अंग्रेज़ी और गुजराती में भी होने जा रहा है।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित श्री घनश्यामदास बिड़ला के 'बापू' का तामिल-अनुवाद भी प्रकाशित होगया है। गुजराती अनुवाद प्रेस में है।

हिंदी पुस्तकों का व्यापक प्रचार करने के लिए सहारनपुर में 'साहित्य-सदन' की स्थापनाहुई है।

प्रयाग की एक समिति हिंदी के विख्यात कवि ठाकुर गोपालशरणसिंह की ५०वीं वर्षग्रंथि पर उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट करनेवाली है।

क्या और कैसे ?

मुसीबत की तोबा

सर्व-श्री चर्चिल व रूजवेल्ट ने ब्रिटेन व अमेरिका की तरफ से भावी नयी विश्व-व्यवस्था के सिद्धान्तों की घोषणा की है जिसमें हिन्दुस्तान की दृष्टि से महत्त्व की बात यह है कि उस व्यवस्था में (१) जातियों की ऊँच-नीचता का लिहाज नहीं रहेगा व (२) सब देशों के लोग अपनी पसन्द की शासन-व्यवस्था रख सकेंगे। इसके साथ ही निःशस्त्रीकरण की जरूरत भी महसूस की गयी है। वैसे बातें तो ये अच्छी ही हैं; मगर मुसीबत के समय वादे अक्सर मुसीबत के साथ ही आते जाते रहते हैं। हिन्दुस्तान तो वादों व आश्वासनों से ऊब उठा है। जब हिटलर ने अपनी जाति की सर्वश्रेष्ठता का दावा किया तब चर्चिल सा० की हमदर्दी 'छोटी' व 'नीची' जातियों के साथ बढ़ी। जब भारत ने वर्षों से बग़ावत मचा रक्खी है, व दूसरे देश शंकित हो उठे हैं तब 'अपनी पसंदगी की शासन-व्यवस्था' का ऐलान किया गया--फिर भी उसमें हिन्दुस्तान का नाम कहीं भी नहीं लिया गया है।

निःशस्त्रीकरण की बात तो अब भी सिर्फ़ आक्रामक देशों के लिए कही गयी है। इससे इसका मूल्य कम हो जाता है। मतलब यह कि कुल मिलाकर हमारे मन में इस ऐलान ने नवीन विश्वास या स्फूर्ति का संचार नहीं किया। क्योंकि यह ऐलान उसमें ग्रथित सिद्धान्तों के गुण महत्त्व व मूल्य के कारण किया हुआ नहीं मालूम होता—मुसीबत के वक्त की तोबा मालूम होती है। जो हो—चूँकि ये सिद्धांत खुद अच्छे हैं इसलिए ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि इन्हें अमल में लाने का बल व सुविधा इन दोनों महान् राष्ट्रों को दे। हिन्दुस्तान मुसीबत के इन वादों पर न भूल सकता है न फूल सकता है। वह समझता है कि उसका भाग्य तो उसके अपने आत्म विश्वास व त्याग-बलिदान पर ही अवलम्बित है।

अपनी-अपनी देन

इधर 'मण्डल', 'जी० सा०' तथा मेरे लिए हिन्दी के कुछ पत्रों में बुरा-भला कहा गया है। कुछ मित्रों ने प्रेरणा की है कि उनका जवाब दिया जाय। मेरी राय में दलील व हकीकत का तो जवाब दिया जा सकता है, गालियों का अपशब्दों का क्या जवाब दिया जाय? उन्हें सह लेना ही उचित है; क्योंकि यदि किसी ने गुस्से में लिखा है तो गुस्सा उतर जाने पर वह आप ही पछताने लगेगा। यदि आदत से लाचार होकर लिखा है तो उसका क्या इलाज है? इन मित्रों के बारे में तो दादू ने बहुत पहले कह दिया है—

निंदक बाबा बीर हमारा।
आपन डूबे और को तारै,
ऐसा प्रीतम पार उतारै।

फिर यह तो अपनी-अपनी देन है। जिसकी जो कमाई होती है उसीमें से वह दूसरों को दे सकता है। लेनेवाले अपने-अपने लिए चुनाव कर लिया करें। यहाँ जेल में बनी कुछ सतरें याद आ रही हैं--

"काँटों का यह बाग लगाया काँटों के हैं फूल;
अर्पण हैं तेरे चरणों में तीखे-तीखे शूल।"

भक्त के पास जो कुछ कमाई थी वह उसने भगवान् को अर्पण की। हमारी तरफ से यदि जवाब चाहिए ही तो वह भी दादू ने दे रक्खा है—

"जुग-जुग जीवौ निंदक मोरा"

ग़रीब लेखकों की ओर से—

हिन्दी की कुछ पुस्तकों के एक लेखक बड़े दुःख के साथ लिखते हैं—" जी० सा०' में 'एक कार्यकारी योजना' पढ़ी। उसमें कुछ सफल, कुशल औरधनसम्पन्न लेखकों से थोड़ी-सी ही दक्षिणा में अपनी रचित पुस्तकों को देने के लिए आग्रह--या यूँ समझिए निवेदन—किया गया है। बात है भी ठीक; आज साहित्यिक दुनिया में ही क्या, संसार में उन्हीं की पूजा होती है, जो सम्पन्न,

व कुशल हों। दिन भर मज़दूरी करके,
रोटियाँ खाकर, एक टिमटिमाते दीपक के
रात्रि भर जागरण करनेवाले लेखकों
ओं के प्रति भी आप एक इशारा कर
इसके बाद वे अपनी करुण-कथा इस तरह
है—

उन्हीं लेखकों में से एक अभागा लेखक
) रोज का मजदूर हूँ। ८ बजे दिन से
बीच के दो घण्टे छोड़, ७ बजे रात तक
करता हूँ। मैंने सूखी रोटियाँ खायीं
के तेल के दिये के उजाले में ३००
दीं। ताज्जुब होगा कि इनमें मुझे २०
का खयाल है। मैंने सबसे पहली पुस्तक
……। वह जब्त हो गयी। दो पुस्तकें और
। लेकिन प्रकाशकों ने हमें जो दिया वह
बराबर था०। आप आश्चर्य न करें, मैं
लिखने में गुजारता हूँ। दिनभर……
करता हूँ और मिलते हैं ।।=) रोज।
बहुत-से लिखे गये हैं—मगर मेरे
को देखकर आप एक बार अवश्य चकित
। मैं ऐसी दशा में यह पत्र लिख रहा
कि मेरे पास एक धोती पहनने को है।
यह अर्थ नहीं कि मैं आपसे सहायता
हूँ ऐसे लेखकों की ओर आपका ध्यान
ही मेरा उद्देश है।"

खेद है कि मेरे उस लेख से इन भाई
अर्थ लिया। मेरा वाक्य इस प्रकार है—
क्योंकि मण्डल लागत मात्र पर पुस्तकें
उद्देश रखता है तब वह लेखकों से भी
रखना चाहता है कि वे उसे थोड़ी
पर पुस्तकें दें—खासकर उन लेखकों से
ही सम्पन्न हैं जिनके सुख या निर्वाह की
व्यवस्था मौजूद है।' पाठक देख लेंगे कि
और दक्षिणा 'कम' लेने पर है और
'कम' लेने का आग्रह मैंने खुशहाल
खासतौर पर किया। इसमें निर्धन
उपेक्षा करके खुशहाल लेखकों की
जैसा कुछ नहीं है। मेरी यह पक्की
राय है कि जिनके गुजर-बसर का स्वतंत्र ज़रिया है उन्हें बिना मिहनताना लिए ही लेख व ग्रंथादि लिखने चाहिएँ। जो लेखन पर ही गुजर करते हैं उन्हें ज़रूर सम्मानपूर्वक मिहनताना देना चाहिए। जो प्रकाशक ऐसे लेखकों की मजबूरी या ग़रीबी से लाभ उठाते हैं वे गुनहगार समझे जाने चाहिएँ।

अब एक शब्द मेरे निर्धन लेखक-भाइयों से। आपकी दुखभरी हालत पर किसे गहरी हमदर्दी न होगी? मुझे तो है व मेरा बस चले तो मैं किसी ग़रीब को गिड़गिड़ाने न दूँ। मैं खुद भी 'गरीबों' की ही गिनती में हूँ, रोटी-कपड़े से ज्यादा वेतन नहीं लेता हूँ व मौका आ पड़े तो लेखन-कार्य से ही गुजर करने की इच्छा रखता हूँ। सादगी व गरीबी से रहता हूँ। ज़रूरी कपड़े-लत्ते, बरतन व पुस्तकों के अलावा जेवर या सम्पत्ति जैसी कोई चीज़ मेरे पास नहीं है। बीमारियों की हालत में भी यथेष्ठ फल खाने, दवाओं के दाम देने, मिहमानों को मिष्टान्न खिलाने के लिए मेरे पास पैसा नहीं रहता। सार्वजनिक कार्यों में सहायता देनेवाले मित्रों के रहते हुए भी निजी खर्च में अपने ७५) मासिक में ही चलाता हूँ। इसी को उचित मानता हूँ व ग़रीबी के कष्टों को अपने ब्राह्मणत्व का भूषण मानता हूँ। इतनी रामकहानी मैंने इसलिए लिखी कि पाठक जान जायें कि मुझे अपने ग़रीब भाइयों से सच्ची हमदर्दी करने का, उनकी तरफ़ से कुछ कहने का व खुद उन्हें भी दो शब्द सम्बोधन करने का अधिकार पहुँचता है। मैं ग़रीबी को समझ सकता हूँ, ग़रीबों की इज्जत करता हूँ, उनका सेवक अपने को समझता हूँ, मगर गरीबी की वजह से 'गिड़गिड़ाना' या 'गालियाँ देना' दोनों से मुझे चिढ़ है। ग़रीब होने का मतलब स्वाभिमान-शून्य या असभ्य होना नहीं है। 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्' के अनुसार जीवन बनाना व बिताना ही हमारी 'साहित्य-सेवा' की भावना की कसौटी होनी चाहिए। जब निर्धनता के ऐसे आदर्श की

तरफ़ मेरी प्रवृत्ति है तो फिर खुशहाल लेखकों से मैं यह निवेदन किये बिना रही नहीं सकता कि वे बिना दक्षिणा लिए साहित्य-सेवा करें। निर्धन लेखकों से मेरी प्रार्थना है कि उनका दर्जा मनीषियों का है। वे 'निर्धनता' व 'बेबसी' की शिकायतें कर करके अपने स्वाभिमान व साहित्य-सेवा को बट्टा न लगावें, न अपने व्यवहार में 'सौदे' या 'बनियापन' की बू आने दें। प्रकाशक 'बनिया' होता है, या बनता है, इसलिए लेखक को भी बनिया बनना पड़े तो यह लेखक की अधोगति व प्रकाशक की अयोग्यता का प्रमाण समझना चाहिए। फूल ही सुगन्ध छोड़ देगा तो फिर उसकी आशा और कहाँ की जायगी ?

ह० उ०

गत २२ जुलाई को दो हिन्दी-साहित्य-सेवियों का दुखद अवसान हो गया—'स्वतन्त्र' (झांसी) के सम्पादक श्री जगदीशनारायण रूसिया और लखनऊ विश्वविद्यालय के गणित विभाग के रिसर्च स्कालर श्री अवध उपाध्याय।

रूसियाजी ने इससे पूर्व 'विश्वमित्र,' 'प्रताप' आदि के सम्पादन में सफलतापूर्वक कार्य किया था और वह अपने जिले के प्रमुख कांग्रेसी थे।

उपाध्यायजी गणित के विद्वान तो थे ही, हिन्दी-साहित्य के भी अच्छे समीक्षक थे।

छपते-छपते समाचार मिला है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध हास्य-लेखक श्री मिर्जा अज़ीमबेग चग़ताई का भी क्षय से देहावसान हो गया !

हम 'मण्डल' और 'जी० सा०' परिवार की ओर से तीनों दिवंगत आत्माओं के शोकाकुल परिवारों के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं। सु०

'मण्डल' की ओर से

कलकत्ता-शाखा

'मण्डल' के हितैषियों, पाठकों और स्नेहियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि कलकत्ता में १३२।१ हरिसन रोड पर मण्डल की शाखा खुल गयी। शाखा में केवल 'मंडल' की पुस्तकें रखने की व्यवस्था की गयी है।

सिंध में भी

सिंध प्रान्त में भी 'मण्डल' की शाखा या सोल सेलिंग एजेंन्सी होने के प्रयत्न चल रहे हैं। हैदराबाद या कराँची इन दो स्थानों में से कहीं पर वह होगी।

मध्यप्रान्त शाखा

मध्यप्रान्त की शाखा का कार्यालय अभी बजाजवाड़ी, वर्धा में रखा गया है। वहाँ उन्होंने अपना कार्य पूरे जोर-शोर से चालू कर दिया है।

रवीन्द्र-स्मृति-ग्रंथ

'मण्डल' ने विश्व-कवि स्व० रवीन्द्रनाथ की स्मृति में एक ग्रंथ निकालकर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने का आयोजन किया है। उसकी एक छोटी-सी रूपरेखा हिन्दी के पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजी है। इस बारे में पूरी योजना शीघ्र ही प्रकाशित की जायेगी।

'जीवन-साहित्य' का चन्दा

निम्नलिखित ग्राहक संख्यावाले सज्जनों का 'जीवन-साहित्य' का चन्दा इस अंक में समाप्त होता है। वे चंदे का १) शीघ्र भेजने की कृपा करें।

६४४ से ६४६ ७३५, ७६९, ८०८, ९४७

एक शिकायत

हम अपने ग्राहकों तथा पाठकों का ध्यान एक ऐसी बात की ओर दिलाते हैं जो उनके नैतिक कर्त्तव्य से सम्बन्ध रखती है। 'जीवन-साहित्य' के अंकों में जो कार्ड कृपालु पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ से चिपकाकर भेजे जाते हैं उनमें उनके घर के बालक या दूसरे अविवेकी भाई जिनके हाथ में वे पड़ जाते हैं, ऊटपटाँग, भद्दी या अश्लील बातें लिखकर डाक में डाल देते हैं। यों संस्था का कार्ड को यहाँ छुड़ाना पड़ता है। तो पैसा बिगड़ता है ही, जिन भाइयों के यहाँ से ऐसे कार्ड आते हैं, उनकी साख पर भी इससे भारी बट्टा लगता है। आशा है, आगे वे सावधानी रखेंगे और इस सुविधा का इस प्रकार दुरुपयोग न होने देंगे।

मन्त्री

बी जनरल इंश्योरेंस कं० लि०

आफिस—८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता

चैयरमैन—श्री ब्रजमोहन बिड़ला

जीवन, अग्नि, मोटर, और समुद्र दुर्घटना के लिए

बीमा-प्रतिष्ठान

सन् १९४० में ३० लाख से भी ऊपर जीवन-बीमे की पालिसियाँ की हैं।

कुल सम्पत्ति का परिमाण २८ लाख के क़रीब है, चुकता मूलधन १४ लाख ४० हज़ार है।

शाखाएँ—

बंबई, मद्रास, कोलम्बो

नई दिल्ली, कानपुर, रंगून,

लाहौर, पटना इत्यादि

'सबकी बोली'

सम्पादक—काका कालेलकर

[यह मासिक पत्रिका हर महीने की १५वीं तारीख़ को निकलती है।]

अिसमें आहिस्ता आहिस्ता हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की साहित्यिक और भाषा-विषयक बातें प्रकाशित हुआ करेंगी।

अिसका मुख्य अुद्देश्य है:—

हिन्दुस्तान की तमाम भाषाओं का आपस में हार्दिक संगठन करना।

भारतमाताकी पहचानके लिये और अुसकी सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त करने के लिये जिन बातोंकी ज़रूरत होगी, अुन सभी विषयोंकी चर्चा 'सबकी बोली' में हुआ करेगी।

अिसके 'साहित्य-सत्कार' विभागमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सहयोग से राष्ट्रकी अुन्नति करनेवाले सेवकों की विचारधारा का परिचय तथा अुनके साहित्यकी समालोचना रहा करेगी।

अिसमें अेक खास विशेषता यह होगी—

पारिभाषिक शब्द-चर्चा, कहानी, प्रवास, विशिष्ट व्यक्तियोंके शब्द-चित्र, राष्ट्रभाषा-आन्दोलन-सम्बन्धी व विद्यार्थियोंके लाभ के नियमित लेख।

वर्धा-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति भी अपनी सभी ज़रूरी सूचनाअें अिसमें प्रकाशित करती है।

खास सूचना:—

राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओंमें बैठनेवाले विद्यार्थी अपनी चालू क्रम-संख्या बतलाकर, १ रुपया वार्षिक चन्दा देकर, अेक वर्ष के लिये 'बोली' पा सकते हैं। सर्व-साधारणसे वार्षिक चंदा रु० १-४-० मनीऑर्डर से ही लिया जायगा। हम वी० पी० नहीं भेजते। पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम और पता साफ़-साफ़ नागरी हर्फों में लिखने की कृपा करें। फुटकर संख्या का तथा पुराने अङ्क का मूल्य दो आना। डाक खर्च पुरानी संख्याके लिए प्रति अंक)॥। और नये अङ्कके लिये)। अङ्क की क़ीमतके साथ अवश्य आ जाना चाहिये।

पता—व्यवस्थापक,

सबकी बोली, वर्धा

आपका व्यापार,

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कैलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लैबिल आदि

पर ही निर्भर है

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

ोन नं०
३२८

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,

४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
यावडियान
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे

२० वर्ष के अनुभव

से लाभ उठाइए

बिहार की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'पुस्तक-भण्डार' की कुछ

साहित्यिक पुस्तकें

काव्य-ग्रन्थ

१ विद्यापति की पदावली २)
२ बिहारी-सतसई १।।)
३ तुलसी-सतसई १।।।)
४ गोविन्द-गीतावली १।।)
५ रसकलस (हरिऔध) ४)
६ पारिजात (,,) ४)
७ रेणुका (दिनकर) २।।)
८ रसवन्ती (,,) १)
९ द्वन्द्वगीत (,,) ।।)
१० गुनगुन (मनोरंजन) ।।।)
११ अन्तर्जगत् (लक्ष्मीनारायण मिश्र) ।)

आलोचनात्मक

१ भारतेन्दु-साहित्य (स्व०रामचन्द्र शुक्ल) १)
२ हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास ५)
३ बिहार का साहित्य २)
४ वाग्विलास (महावीरप्रसाद द्विवेदी) १।।)
५ कविरत्न मीर (रामनाथ सुमन) १)
६ दागे जिगर (,, ,,) १।।)
७ नूरजहाँ २।।)

उपन्यास-कहानी

१ देहाती दुनिया (शिवपूजनसहाय) १।।)
२ प्रेमिका (स्व० ईश्वरीप्रसाद शर्मा) २।।)
३ प्रेम-पथ (भगवतीप्रसाद बाजपेयी) २)
४ विमाता (अवधनारायण) २)
५ पुरुष-परीक्षा १)
६ विभूति (शिवपूजन सहाय) २)
७ किसलय (प्रो० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज') १।।)
८ कानन (जानकीवल्लभ शास्त्री) १।।)

बालमनोरंजक

१ बड़ों का बचपन १।।)
२ आविष्कार और आविष्कारक ।।)
३ सियार पाँड़े ।।)
४ बगुला भगत ।।)
५ बिलाई मौसी ।।)
६ हीरामन तोता ।।)
७ जादू का राग ३)
८ बाल बोस्ताँ ≡)
९ बालकों का योरप ।≡)
१० देवता

यात्रा-सम्बन्धी २।।)

१ आवारे की यूरप-यात्रा
(सत्यनारायण, पी-एच. डी.) १।।)
२ कैलाश-दर्शन ३)
३ उत्तराखंड के पथ पर

कुछ अमूल्य और उत्तमोत्तम पुस्तकें

[भारतीय-दर्शन-परिचय—न्याय खण्ड ५); बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन ३); बिहार का चित्रित गौरव १); भारतीय इतिहास की बालपोथी १।।); भूलोक-परिचय २); प्रतिवेश-परिचय १।।); बच्चों का चिड़ियाखाना २); आदर्श राघव १); आत्मचरित-चम्पू १।।); रचना-नवनीत १।।।) व्याकरण-चंद्रोदय १)]

पता—पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय और गोविंदमित्र रोड, पटना

हंस

के विशेषांक हिन्दी साहित्य के सृजन में अग्रणी क्यों हैं ?

क्योंकि

- ● उनका दृष्टिकोण सदैव ही प्रगतिशील रहा है ।
- ● उनके लेखक अपने विषय के दिग्गज विद्वान हैं ।
- ● उनके विषयों का चुनाव अभिनय रहा है ।

हंस : कविता-अंक

के लेखक हैं

मित्रानन्दन पन्त
रामशरण गुप्त
राला'
वीन'
लीशरण गुप्त
च्चन
नकर
ज्ञेय
देवी वर्मा
कुमार वर्मा
नलाल चतुर्वेदी
न्द्र शर्मा

अंचल
भगवतीचरण जोशी
उमाशंकर जोशी
स्टीफेन स्पेंडर
हरीन्द्र चट्टोपाध्याय
हीरालाल गोदीवाला
आरदेशर फ० खबरदार
सुनीतिकुमार चटर्जी
शिवदानसिंह चौहान
प्रभागचन्द्र शर्मा
देवेन्द्र सत्यार्थी
एहतिशाम हुसैन

केदारनाथ अग्रवाल
नगेन्द्र
नेमिचन्द्र जैन
नरोत्तमप्रसाद नागर
रामविलास शर्मा
'सत्येन्द्र'
नन्ददुलारे वाजपेयी
हजारीप्रसाद द्विवेदी
गुलाबराय
प्रकाशचन्द्र गुप्त
आदि आदि...

अपनी प्रतियों के लिए अभी से न लिखने पर आपको निराश न होना है, इसलिए अपना चन्दा आज ही भेज दीजिये ।

कविता-अंक की प्रति सरस्वती-प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, प्रयाग से मिलेंगी । आप अपना चन्दा इन शाखाओं में जमा कर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं ।

वार्षिक ६)
अंक का आठ आने
कविता-अंक का १)

व्यवस्थापक,
'हंस'
बनारस कैंट

बालोपयोगी इतिहास-माला

उथल-पुथल के इस ज़माने में अनेक देश के भावी नागरिकों को संसार के उलट-फेर से परिचित कराने के लिये **'बालोपयोगी संसार का संक्षिप्त इतिहास'** ३७ खंडों में निकालनें की योजना है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से लिखी गयी हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस और उलझनदार न समझें। कहानी के ढंग पर लिखी पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार, **मूल्य प्रत्येक का १)**

प्रकाशित—**वैदिक भारत, पौराणिक भारत, रामायण, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश और बौद्ध भारत। तुर्क भारत, मुगल भारत, राजस्थान, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) सिख जाति और महाराष्ट्र,**

विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मँगाइए।

बिहार, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बड़ौदा
में शिक्षा-विभाग की स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक पठन-सामग्री देनेवाला अपनें ढंग का अकेला सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराता है।

प्रेरक कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।–)

४ था अप्रेल के अंक **'उपकथांक'** से आरंभ हो गया है, किराये के नमूने के लिए ।) का टिकट भेजिये,

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा	३)
बिहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट	५)
बिहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,	१।।)
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक	१।।)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	२)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१।।)
जीवन-यात्रा	,, ,,	।।।=)
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय	२)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	।।।)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२।)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट	१।)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	।।)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	।।।)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।=)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	।।।)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	२)
स्टालिन	रामइक़बालसिंह	२)
खिलौना घर	हेनरिक इसेन	।।।)
हृदय की ओर	दुर्गाशंकर प्र० सिंह	२)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१)
रजकण	,, ,,	।।।)
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद	।।।)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१।।)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	।।)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	।।।)
कहानी-एक कला	गिरधारीलाल शर्मा गर्ग	।।।)
संस्मरण	सर्वदानंद वर्मा	१।।)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	।।=)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	२)

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

इतिहास, संस्कृति और राजनीति की मासिक पत्रिका

'विश्ववाणी' ही क्यों पढ़ें ?

'विश्ववाणी' का नामकरण स्वर्गीय कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया है

'भारत में अंगरेज़ी राज' के रचयिता पं० सुन्दरलाल इसके संरक्षक हैं

'विश्ववाणी' पर लोकमत

तो मैं किसी को आज कल कुछ संदेश नहीं भेजता, लेकिन 'विश्ववाणी' को मैंने दी। 'विश्ववाणी' की विशेषता कि उसमें ज़ाहिर खबर नहीं ली जाती मुझे बहुत मुझे यह भी अच्छा लगा कि 'विश्ववाणी' में सब धर्मों के लेख भरे पड़े हैं…।

—महात्मा गान्धी

'विश्ववाणी' जिस महान् उद्देश्य को लेकर निकली है, मुल्क को उसकी बेहद ज़रूरत हिन्दुस्तानी को 'विश्ववाणी' पढ़नी चाहिए

—राष्ट्रपति आज़ाद

ऐसे महान उद्देश्य को लेकर जिस साहस के साथ आपने 'विश्ववाणी' निकालने का किया है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ

—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी में इतनी उच्चकोटि की कोई दूसरी पत्रिका नहीं है।

—आचार्य नरेन्द्रदेव

निस्सन्देह 'विश्ववाणी' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है।

—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

'विश्ववाणी' का एक-एक अङ्क संग्रह की वस्तु है !

आज ही छै रुपये भेजकर ग्राहक बन जाइए

मैनेजर—

'विश्ववाणी' कार्यालय, साउथ मलाका, इलाहाबाद

हिन्दी
समालोचना
के
अग्रदूत
❖
मासिक
साहित्य संदेश
का ही
यह
❖
साहस
❖
है

शुक्ल-अंक का परिचय

प्रस्तुत अंक तीन खण्डों में है और सचित्र छपा है

परिचय—

१. परिचय	स्वर्गीय श्री रामचन्द्र शुक्ल
२. पंडित रामचन्द्र शुक्ल : जीवन-परिचय	बा० श्यामसुन्दरदास
३. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल : एक झांकी	श्री केशवचन्द्र शुक्ल
४. स्वर्गीय आचार्य का अन्तिम दर्शन	श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'
५. उन चार वर्षों की याद में	श्री उदय एम० ए०

समीक्षा—

६. शुक्लजी की मानसिक भूमिका	श्री जैनेन्द्र
७. शुक्लजी और हिन्दी की परम्परा	श्री रामविलास शर्मा
८. आ० शु० और आई. ए. रिचर्ड्स	श्री नगेन्द्र एम० ए०
९. हिन्दी आलोचना और आचार्य शुक्ल	श्री नन्ददुलारे बाजपेयी
१०. आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल	श्री रामस्वरूप शर्मा
११. आ० शु० और काशी नागरीप्रचारिणी सभा	श्री रामबहोरी शुक्ल
१२. शुक्लजी का आलोचकों में स्थान	श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी
१३. रामचन्द्र शु० : समालोचक और निबन्धकार	श्री नलिन विलोचन शर्मा एम.ए.
१४. प्रबन्धकार शुक्लजी	श्री सद्गुरुशरण अवस्थी
१५. शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध	श्री गुलाबराय एम० ए०
१६. हिन्दी-साहित्य का इतिहास	श्री विश्वम्भरदयाल'मानव'एम.ए.
१७. आ० शु० की सर्वप्रथम मौलिक रचना	श्री शिवपूजन सहाय
१८. शु० के इंदौरवाले भाषण की कुछ विशेषताएँ	श्री प्रभाकर माचवे
१९. शु० के काव्य में रहस्यवाद की झलक	श्री गुलाबराय एम० ए०
२०. अनूदित बुद्धचरित	श्री गोपाल व्यास एम० ए०
२१. शुक्लजी के अनुवाद	श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़
२२. शु० की तीन भूमिकाएँ : जायसी,तुलसी,सूर	श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, श्री सत्येन्द्र एम. ए. श्री गुलाबराय
२३. शुक्लजी की हिन्दी साहित्य को देन	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री नलिनीमोहन सान्याल,श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, श्री उदयनारायण तिवारी और श्री प्रभाकर माचवे

आभार—इसमें अनेकों लेखकों के व्यक्तिगत पत्र संकलित हैं, संपादकीय

६ महीनों में चार विशेषांक

दो छप गये : दो और भी छपेंगे

* नमूना मुफ्त मँगाइए *

मूल्य ३) वार्षिक, विद्यार्थियों के लिए २) पता—साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा

हिंदी का एक अभूत-पूर्व ग्रन्थ !

भारत के तपोनिष्ठ ब्रह्मर्षि

महामना मदनमोहन मालवीय

की पवित्र सेवामयी जीवनी का अभाव 'मंडल' की पुस्तकों में आपको खटका होगा। आपने अनुभव किया होगा कि महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं की आत्मकथाओं को पढ़ लेने पर भी महामना मालवीयजी की जीवन-गंगा में अवगाहन किये बिना जीवन अधूरा-सा लगता है। क्योंकि हमारे राष्ट्र के निर्माण करनेवालों में मालवीयजी का एक अनुपम स्थान है।

पर

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने

मूल्य
अजिल्द : डेढ़ रुपया

तीस दिन

मालवीयजी के साथ

मूल्य
सजिल्द : दो रुपया

'जी० सा०' तथा 'मण्डल' के ग्राहकों को

केवल १=) में

यह पुस्तक भी महात्माजी की आत्मकथा ही की तरह रोचक और पावन है।

लिखकर

हिन्दी के इस बड़े अभाव की पूर्ति कर दी है।

मेरी कहानी

[पं० जवाहरलाल नेहरू]

के नये संस्करण में पंडितजी ने भारतीय राजनीति की ताजी घटनाओं पर भी दृष्टि डाली है। इस प्रकार अब वह अद्यतन (UP-TO-DATE) हो गयी है।

आज ही आर्डर भेजिए।

दाम तीन रुपये

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर : वर्धा (नागपुर) : कलकत्ता

Regd No L 4671

साहित्य का एकमात्र उद्देश्य जीवन का निर्माण है !

तब आप निर्जीव और घातक साहित्य की ओर न ललचावें।

साधुमना सन्तों, महापुरुषों और राष्ट्रनेताओं की वाणी

और विचार ही हमें अमृत प्रदान कर सकते हैं !

जीवन के बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, समस्त अंगों को बनानेवाला साहित्य

सस्ता-साहित्य-मण्डल से ही मिलेगा

—: कुछ चुने हुए रत्न :—

द० अफ्रीका का सत्याग्रह	[महात्मा गांधी]	स्त्री-पुरुष	[महात्मा टॉल्स्टॉय]
अनीति की राह पर	,,	हम क्या करें ?	,,
आत्म-कथा	,,	प्रेम में भगवान्	,,
हमारा कलंक	,,	मेरी मुक्ति की कहानी	,,
गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ	[सर राधाकृष्णन्]	गांधी-विचार-दोहन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
मेरी कहानी	[जवाहरलाल नेहरू]	विश्व-इतिहास की झलक	[जवाहरलाल नेहरू]
हिन्दुस्तान की समस्यायें	,,	लड़खड़ाती दुनिया	,,
रोटी का सवाल	[क्रोपाटकिन]	संघर्ष या सहयोग	[क्रोपाटकिन]
कांग्रेस का इतिहास	[डा० पट्टाभि सीतारामैया]	हमारे राष्ट्रनिर्माता	[रामनाथ 'सुमन']
जीवन-सन्देश	[खलील जिब्रान]	समन्वय	[डॉ० भगवान्दास]
खादी-मीमांसा	[बालूभाई मेहता]	गीता-मंथन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
लोक-जीवन	[काका कालेलकर]	विनोबा के विचार	[विनोबा]
दिव्य जीवन	[स्वेट मार्डेन]	जीवन-सूत्र	[टॉमस कैम्पिस]
बुद्धवाणी	[वियोगी हरि]	सन्तवाणी	[वियोगी हरि]
हमारे गाँवों की कहानी	[रामदास गौड़]	गाँवों का सुधार-संगठन	[रामदास गौड़]
बापू	[घनश्यामदास बिड़ला]	तीस दिन: मालवीयजी के साथ	[रामनरेश त्रिपाठी]

और 'जीवन साहित्य' मासिक-पत्र : वार्षिक मूल्य १।)

छप रही हैं—
१. महावीर-वाणी
२. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन
३. युद्ध और अहिंसा
४. हमारी आज़ादी की लड़ाई

'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में

सस्ता-साहित्य-मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—
दिल्ली, लखनऊ, इन्दौर, वर्धा, (नागपुर) और कलकत्ता

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ीवन साहित्य

ंक ३

अक्तूबर : १९४१

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

५२

गांधी महाराज

गांधि महाराजेर शिष्य
केउ बा धनी, केउ बा निःस्व
क जायगाय आछे मोदेर मिल;
गरिब मेरे भराइ नि पेट,
धनीर काछे हइ नि तो हेट;
ातंके मुख हय न कभु नील।
षण्डा जखन आसे तेड़े
ऊँचिये घुषि डांडा नेड़े
आमरा हेसे बलि जोयानटाके;
ए जे तोमार चोख - रांगानो
खोकाबाबूर घुम - भांगानो,
भय ना पेले, भय देखाबे काके ?

सिधे भाषाय बलि कथा,
स्वच्छ ताहार सरलता,
डिप्लमैसिर नाइको असुविधे;
गारदखानार आइनटाके
खूँजते हय ना कथार पाके,
जेलेर द्वारे जाय से निये सिधे।
दले-दले हरिन बाड़ि
चल्ल जारा गृह छाँड़ि
घूचल तादेर अपमानेर शाप;
चिरकालेर हातकड़ि जे
धूलाय खसे पड़ल निजे
लागल भाले गांधीराजेर छाप !

स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
नाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. बढ़े चलो मैं साथिन राही ! (कविता) ७३
[श्री सत्यव्रत 'सुजन', एम. ए.]
२. गरीब लेखकों की समस्या ७४
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
३. बापू ['एक बालक'] ७६
४. हिन्दी बनाम उर्दू ७९
[प्रो० शांतिप्रसाद वर्मा, एम. ए.]
५. साहित्य क्यों ? [श्री हंसकुमार तिवारी] ८२
६. मेरे लड़के की तालीम [एक पिता] ८५
७. ये जेलखाने ! [श्री रामकृष्ण खद्दरजी] ८७
८. अश्लीलता पर कुछ व्यावहारिक सुझाव ८९
[श्री जैनेन्द्रकुमार]
९. हमारी साम्प्रदायिक समस्या : एक व्यावहारिक दृष्टिकोण ९२
[श्री जवाहिरलाल जैन, एम. ए. 'विशारद']
१०. प्रस्तुत प्रश्न ९५
संयम का स्थान [श्री सम्पूर्णानन्द];
आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् [श्री जनार्दनराय];
अश्लीलता का दमन [श्री कुँवरकिशोर सेठ]
११. कसौटी पर ९९
मध्यप्रदेश का इतिहास; कताई-गणित; नागरिक-शिक्षा; गद्य-सुमन; वर्तमान युद्ध में पोलैण्ड का बलिदान; भारती; विश्ववाय कहानी–एक कला; गल्पहार; देशदर्शन; उपनिषदों की कथाएँ; पड़ोसी; हिल्लोल; सुगम बाल-बोध; लोरियाँ और बालगीत।
१२. हिन्दी की हलचलें १०४
१३. प्रगति की ओर १०५
१४. क्या और कैसे ? १०६
पंजाब की जिम्मेदारी; 'आलोचक-मण्डल' की स्थापना; जरूरी आयोजन; फ़ायदा नहीं; ध्यान देने लायक; स्व० ठाकुर केसरीसिंह बारहठ ! ; गांधी महाराज

आप बेकार क्यों बैठे हैं ?

हमारे काम में हाथ बटाइए, न !

उसका अर्थ स्वतः सेवाकार्य भी हो जायगा

हमारी विशुद्ध ओषधियाँ, रस, भस्म, आसव, अरिष्ट सुगन्धित तैल और पापड़ इत्यादि बेचकर आप रुपये कमा सकते हैं और हमारे द्वारा अनाथों और पीड़ितों के सेवा-कार्य में भी इस प्रकार आप सहायक हो सकते हैं।

तुरन्त पत्र-व्यवहार कीजिए

↓

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ३९१ अपर चितपुर रोड कलकत्ता

'हिन्दी मन्दिर' प्रयाग का प्रकाशन

सस्ता साहित्य मण्डल तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को

पौने मूल्य में

अन्यत्र पढ़ चुके हैं कि 'मण्डल' ने पण्डित रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संचालित 'हिन्दी
ारा स्टॉक और स्वामित्व अपने अधिकार म ले लिया है। प्रयाग में 'मण्डल' के अधीन
न्दिर पुनस्संगठित किया जा रहा है। 'मण्डल' की शाखा भी वहाँ खोल दी गयी है।
न्दिर' की पुस्तकें 'मण्डल' की अन्य पुस्तकों की भांति उसके स्थायी ग्राहकों तथा
हित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेंगी। 'मंडल' की अन्य शाखाओं में भी ये पुस्तकें रखने
ा की जा रही है। हिंदी मन्दिर की पुस्तकों की सूची और मूल्य नीचे दिये जा रहे हैं—

साहित्यिक

	ले०	मू०
ंता-कौमुदी, पहला भाग	रामनरेश त्रिपाठी	३)
,, दूसरा भाग	,,	४॥)
,, चौथा भाग (उर्दू,)	,,	३)
,, सातवाँ भाग (बंगला)	,,	३)
ीदास और उनकी कविता		
ला भाग		२)
रा भाग		२॥)
ामा-चरित, सटीक	,,	।)
ती-मंगल, ,,	,,	।)
ोध्या-काण्ड, ,,	,,	।।।)
ी का संक्षिप्त इतिहास	,,	।=)
वि-कौमुदी ,,	,,	।।।)
ति के श्लोक, अर्थ-सहित	,,	॥)
रवाड़ के मनोहर गीत	,,	।)
ू ज़बान का इतिहास	,,	॥)
ाव और साहित्य (निबंध) (दो भाग)	आनन्दकुमार	१॥)
ा-बावनी	रामनरेश त्रिपाठी	॥)
ों के चित्र	,,	।)

कविता

क		
श्वर	रामनरेश त्रिपाठी	॥)
	,,	॥)

पुस्तक	ले०	मू०
२०—स्वप्न	रामनरेश त्रिपाठी	॥)
२१—मानसी	,,	॥)
२२—हिन्दी-पद्य-रचना—पिंगल		॥)
२३—रत्ना	कुँ० सोमेश्वरसिंह	॥)
२४—दृग-जल	,,	॥)
२५—तूणीर	देवदूत	॥)
२६—Hindi Folk Songs	A. G. Shirreff	१)
२७—पुष्प-बाण	आनन्दकुमार	॥)

नाटक

२८—बानर-संगीत (बच्चों के लिए)	रामनरेश त्रिपाठी	।)
२९—जयन्त (युवकों के लिए)	,,	।।।)
३०—प्रेम-लोक (युवतियों के लिए)		॥)
३१—वफ़ाती चाचा (हिंदू-मुसलिम-एकता के लिए)		॥)

कहानियाँ

३२—तरकस	रामनरेश त्रिपाठी	॥)
३३—वीथिका	श्रीगोपाल नेवटिया	॥)
३४—यूरोप की कहानियाँ	,,	२॥)

स्त्री-शिक्षा

३५—कुल-लक्ष्मी (अनुवाद)	पुरुषोत्तमदास लोहिया	॥)
३६—दम्पति-सुहृद ,,	भगवानदीन पाठक	॥)
३७—सोहर	रामनरेश त्रिपाठी	॥)

बाल-साहित्य

पुस्तक	ले०	मू०
३८—जवाहर-ताश	रामनरेश त्रिपाठी	।।)
३९—गांधी-पत्ता	,,	।।)
४०—गुपचुप-कहानियाँ, दो भाग	,,	।।)
४१—बताओ तो जानें (गोरख-धंधा)		।।)
४२—बाल-कथा-कहानी, १७ भाग	,,	।=)
४३—परियों की कहानियाँ, पहला भाग	आनन्दकुमार	।=)
४४— ,, दूसरा भाग	द्वारकाप्रसाद	।=)
४५—राक्षसों की कहानियाँ	आनन्दकुमार	।=)
४६—जादू की कहानियाँ	आनन्दकुमार	।=)
४७—मोहनमाला (कविता)	रामनरेश त्रिपाठी	।।।)
४८—हँसू की हिम्मत ,,	,,	।)
४९—नेता-बुझौवल ,,	,,	।)
५०—खोजो, खोज निकालो	,,	।)
५१—मोतीचूर के लड्डू	,,	।)
५२—सस्ती कहानियाँ (१४ भाग)		प्रत्येक का मूल्य =)

जीवन-चरित

पुस्तक	ले०	मू०
५३—अशोक	रामनरेश त्रिपाठी	।)
५४—चन्द्रगुप्त	,,	।)
५५—महात्मा बुद्ध	,,	।)
५६—आल्हा	,,	।)
५७—मुसलिम सन्तों के चरित	श्रीगोपाल नेवटिया	२)

वैद्यक

पुस्तक	ले०	मू०
५८—घर का वैद्य	अत्रिदेव	१२)
५९—घरेलू इलाज		।)

व्यायाम

पुस्तक	ले०	मू०
६०—योग के आसन और कसरतों के चित्र	रामनरेश त्रिपाठी	१)
६१—कबड्डी	मुनीश्वरप्रसाद त्रिपाठी	।)

कोष

पुस्तक	ले०	मू०
६२—हिन्दुस्तानी कोष	रामनरेश त्रिपाठी	२)
६३—पॉकेट डिक्शनरी (हिंदी-अंग्रेजी)		१।।)

फुटकर

पुस्तक	ले०	मू०
६४—सद्गुरुरहस्य	कोशलेंद्रप्रताप साही	२।।)
६५—हिन्दुओं के व्रत और त्योहार	कुँवर कन्हैयाजू	१।।)
६६—अंग्रेजी शिष्टाचार		२)
६७—चिन्तामणि (भजनों का संग्रह)		।-)

किसानोपयोगी

पुस्तक	ले०	मू०
८६—नमूने का गाँव और मिट्टी के सुखदायक घर	रामनरेश त्रिपाठी	१)
६९—किसानों की कहावतें	आनन्दकुमार	।)
७०—किसानों के काम की बातें	रामनरेश त्रिपाठी	।)
७१—हमारा ग्राम-साहित्य	,,	१।)

रीडरें

पुस्तक	ले०	मू०
१०१-१०६—हिन्दी-ज्ञानोदय, छः भाग		२।-)
१०७-११३—कन्या-शिक्षावली	,,	१।।।-)
११४—हिन्दी प्राइमर, दो भाग	,,	≡)
११५—हिन्दी-पत्र-शिक्षक	,,	=)

—मिलने का पता—

हिन्दी मन्दिर

[संचालक—सस्ता-साहित्य-मण्डल]

प्रयाग

सूचना—पुस्तक-विक्रेताओं को खास रिआयतों के लिए 'मण्डल' से पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

व्यवस्थापक

सम्पत्ति प्राप्त कीजिए, फिर पैसा बचाइए। बीमा कराने से आपको एक निश्चित रकम ज्ञात रहती है। फिर आप क़िश्त से रुपया चुका सकते हैं।

जीवन-बीमे में मूल्य घटता नहीं,
समय पाकर बढ़ता
ही है।

परामर्श कीजिए :—

वी जनरल इंश्योरेंस
कं० लि०

चैयरमैन
सेठ व्रजमोहन बिड़ला

हेड आफिस—
नं० ८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

शाखाएँ—
बई, नई दिल्ली, मद्रास लाहौर कानपुर
टना अहमदाबाद रंगून कोलम्बो इत्यादि।

इतिहास, संस्कृति और राजनीति की मासिक पत्रिका

'विश्ववाणी' ही क्यों पढ़ें ?

'विश्ववाणी' का नामकरण स्वर्गीय कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया है

'भारत में अंगरेज़ी राज' के रचयिता पं० सुन्दरलाल इसके संरक्षक हैं

'विश्ववाणी' पर लोकमत

यों तो मैं किसी को आज कल कुछ संदेश नहीं भेजता, लेकिन 'विश्ववाणी' को मैंने चन्द मिनट दीं। 'विश्ववाणी' की विशेषता कि उसमें ज़ाहिर ख़बर नहीं ली जाती मुझे बहुत प्रिय लगी। मुझे यह भी अच्छा लगा कि 'विश्ववाणी' में सब धर्मों के लेख भरे पड़े हैं"...।

—महात्मा गान्धी

'विश्ववाणी' जिस महान् उद्देश्य को लेकर निकली है, मुल्क को उसकी बेहद ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को 'विश्ववाणी' पढ़नी चाहिए।

—राष्ट्रपति आज़ाद

ऐसे महान उद्देश्य को लेकर जिस साहस के साथ आपने 'विश्ववाणी' निकालने का आयोजन किया है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ।

—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी में इतनी उच्चकोटि की कोई दूसरी मासिक पत्रिका नहीं है।

—आचार्य नरेन्द्रदेव

निस्सन्देह 'विश्ववाणी' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है।

—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

'विश्ववाणी' का एक-एक अङ्क संग्रह की वस्तु है !

आज ही छै रुपये भेजकर ग्राहक बन जाइए

मैनेजर—

'विश्ववाणी' कार्यालय, साउथ मलाका, इलाहाबाद

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

नं०
२८७

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

बालोपयोगी इतिहास-माला

उथल-पुथल के इस ज़माने में अनेक देश के भावी नागरिकों को संसार के उलट-फेर से परिचित कराने के लिए **'बालोपयोगी संसार का संक्षिप्त इतिहास'** ३७ खंडों में निकालनें की योजना है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से लिखी गयी हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस और उलझनदार न समझें। कहानी के ढंग पर लिखी पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार, **मूल्य प्रत्येक का १)**

प्रकाशित—**वैदिक भारत, पौराणिक भारत, रामायण, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश** और **बौद्ध भारत। तुर्क भारत, मुगल भारत, राजस्थान, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) सिख जाति और महाराष्ट्र,**

विशेष जानकारी के लिए विवरण-पत्र मँगाइए।

बिहार, युक्त प्रान्त, मध्यप्रान्त और बड़ौदा
के शिक्षा-विभाग से स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक पठन-सामग्री देनेवाला अपने ढंग का अकेला सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराता है।

प्रेरक कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।-)

८ था वर्ष अप्रेल के 'उपकथांक' से आरंभ हो गया है। नमूने के लिए ।) का टिकट भेजिए,

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा
बिहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट
बिहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी
साहित्यिकी	,, ,,
जीवन-यात्रा	,, ,,
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय
पद्य-प्रमोद	हरिऔध
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी
स्टालिन	रामइक़बालसिंह
खिलौना घर	हेनरिक इसेन
हृदय की ओर	दुर्गाशंकर प्र० सिंह
भाई-बहन	मोहनलाल महता
रजकण	,, ,,
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़
पुण्य फल	व्यथित हृदय
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह
कहानी-एक कला	गिरधारीलाल शर्मा गर्ग
संस्मरण	सर्वदानंद वर्मा
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)--ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोतमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

वीरकाव्य संग्रह—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

डिंगल में वीररस—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

चित्ररेखा—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)।

ाधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।)

-साहित्य-माला
1. **बीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
2. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
3. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।~)
4. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
5. **बालकविताबली** (कविता) मूल्य ।)

'सम्मेलन-पत्रिका'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक र प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। ेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।

हाहाकार-भरी गृहस्थियों को सुखमय बनानेवाली
'भाई के पत्र' के लेखक श्री रामनाथ 'सुमन' की दो नयी पुस्तकें

१. आनन्द-निकेतन

२५ अध्याय और ३०० पृष्ठ

गृहस्थ-जीवन का पथ-प्रदर्शन करनेवाली श्रेष्ठ पुस्तक। प्रत्येक युवक, कुमारी और स्त्री के लिए माता-सी हितकारी। उपन्यास-सी मनोरंजक पर अमृत-सी कल्याणकारी। जिन लोगों ने 'सुमन' जी की पुस्तक 'भाई के पत्र' पढ़ी है वे जानते हैं कि उनकी रचनाओं में जीवन को बल और प्रकाश देने की कैसी शक्ति है। जो लोग विवाह करना चाहते हैं, करने जा रहे हैं या कर चुके हैं उन सबको एक बार इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। कितने ही सज्जन इस पुस्तक की प्रतियाँ बँटवाने के लिए खरीद रहे हैं। लगभग साढ़े तीन सौ पृष्ठ, सुन्दर कागज़ और छपाई मनोरम रंगीन कवर, मूल्य केवल २)

२. घर की रानी

[श्रीरामनाथ 'सुमन']

कुमारियों और विवाहिता स्त्रियों के जीवन को सफल और सुखी बनाने के व्यावहारिक उपाय बतानेवाली अत्यन्त मनोरंजक पुस्तक। पत्रों के रूप में छपी हुई है। प्रत्येक कन्या, स्त्री के हाथ में देने योग्य है। इस पुस्तक की लगभग १००० प्रतियाँ छपने के २० दिन के अन्दर बिक गयी हैं। मूल्य केवल १)

३. भक्त-तरंगिणी

इसमें प्राचीन काल से लेकर आजतक के १०० एक सौ कवियों की भक्ति-भावपूर्ण श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह किया गया है। इसके संग्रहकर्त्ता अनेक पुस्तकों के लेखक, 'भारत' के भूतपूर्व प्रधान सम्पादक और अंग्रेजी के विख्यात दैनिक 'लीडर' के सहकारी सम्पादक श्री केशवदेव शर्मा हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें एक भी कविता ऐसी नहीं है जिसमें सुरुचि का अभाव वा अश्लीलता या गन्दी शृंगारिकता की गन्ध हो। स्कूलों-कालेजों में पढ़ायी जाने योग्य। मूल्य १)

४. अहंवादी की आत्मकथा

रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार के एक प्रसिद्ध उपन्यास का हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास और कहानी-लेखक श्री इलाचन्द्र जोशी द्वारा किया अनुवाद। संघर्ष में पड़े व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व की सुन्दर कहानी। उच्चकोटि का मनोवैज्ञानिक उपन्यास। मूल्य १)

साधना-सदन ६६, लूकरगंज, इलाहाबाद

नोट—ये पुस्तकें 'मण्डल' की सब शाखाओं पर भी मिलेंगी।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

, १९४१
दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरा वर्ष
तीसरा अंक

बढ़े चलो मैं साथिन राही !

बढ़े चलो, मैं साथिन राही !
चुन-चुन कंटक फूल सँजोती, मैं वनपथ की मालिन राही !

●

मोती कौन बिछाती पथ पर ?
किसका प्यार एक छन पाकर,
दिवस चला चल रहा, न रुकता, लौटे कितने गिन-गिन राही !

●

काजल-रात, प्रभञ्जन पागल,
चला मेघ ले सागर का जल,
चमक-चमक जो पन्थ दिखाती, वह तो सदा-सुहागिन राही !

●

चले नदी-नद, मधु-जल सारा,
बँधे सिन्धु में, पुष्कल-खारा,
सुरभि खोल पंखड़ियाँ झड़तीं, उग बढ़ता फल छिन-छिन राही !

●

तब थी प्राण ! तुम्हारी माया,
अब हूँ मधुर ! तुम्हारी छाया,
जनम-जनम के संगी हम, बस पौन कोस, थोड़ा दिन राही !
बढ़े चलो, मैं साथिन राही !

सत्यव्रत 'सुजन'

'गरीब' लेखकों की समस्या

श्री ब्रजमोहन गुप्त ने लेखकों के मिहनताने का एक दूसरा पक्ष अपने एक पत्र में पेश किया है। उनके कथन का सार इस तरह है—

“आपने लिखा है कि ‘मेरी यह पक्की राय है कि जिनके गुजर-बसर का स्वतन्त्र जरिया है उन्हें बिना मिहनताना लिए ही लेख व ग्रन्थादि लिखने चाहिएँ।’ मेरा विचार भी यही था। लेकिन अभी मेरे सामने एक और दृष्टिकोण उपस्थित किया गया जिसे मैं गलत नहीं कह सकता। मुझसे कहा गया—‘हिन्दी के बहुत से लेखकों के भूखों मरने की जिम्मेदारी आप तथा आप ही की तरह मुफ्त लिखनेवाले और लेखकों पर है। पत्र-पत्रिकाओं को जब काफ़ी सामग्री मुफ्त मिल जाती है तो उन्हें क्या जरूरत है कि वे पैसा देकर रचनाएँ लें। अगर हिन्दी का प्रत्येक लेखक यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले कि वह बिना पारिश्रमिक लिये एक पंक्ति भी नहीं लिखेगा तो पत्र-पत्रिकाओं को विवश होकर सब रचनाओं पर पारिश्रमिक देना पड़े और गरीब लेखकों के भूखों मरने की समस्या हल हो जाये। आप समस्या पर इस दृष्टिकोण से भी थोड़ा-सा प्रकाश डालें।

“इसीसे सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रश्न और है। आपने लिखा है—‘ग्रन्थादि भी बिना मिहनताना लिये ही लिखना चाहिए।’ एक प्रकाशक ने इच्छा जाहिर की कि मैं उन्हें अपनी वैज्ञानिक कहानियों का, आलोचनात्मक निबन्धों का और एक कविताओं का संग्रह प्रकाशनार्थ दे दूँ और क्योंकि ‘गुजर-बसर का स्वतन्त्र ज़रिया है’ इसलिए उनसे पारिश्रमिकस्वरूप कुछ न लूँ। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के आदर्श से मैं बहुत प्रभावित हूँ। इसलिए मैंने उत्तर दिया, “बेशक आप मेरी तीनों पुस्तकें ले सकते हैं; किन्तु मेरी दो शर्तें हैं—एक तो आप प्रत्येक पुस्तक के मुखपृष्ठ पर ये आठ शब्द छाप दें—‘कोई अधिकार रक्षित नहीं, जो चाहे सो छापले’ और पुस्तकों का मूल्य लगभग लागत-मात्र रखें।” इस बात के लिए वह प्रकाशक तैयार नहीं हुए। वे चाहते थे कि मैं उन्हें कापीराइट लिख दूँ और पुस्तक का मूल्य रखने में भी स्वतन्त्र छोड़ दूँ, जो सम्भवतः डेढ़ सौ पृष्ठ की पुस्तक के लिए एक रुपये से कम न होगा। गुज़र-बसर का स्वतन्त्र जरिया होने पर भी उनकी इस इच्छा को पूरा करने में मैंने अपने आपको असमर्थ पाया; क्योंकि ‘सस्ता साहित्य मण्डल’ की तरह कम पैसों में ऊँचे दर्जे की चीजें जनता को देना भी उनका उद्देश्य नहीं था।

“हाँ, तो निवेदन यही है कि जो ग्रन्थादि लेखक को बिना पैसा दिये ही लिये जाते हैं उनपर मुनाफ़ा उठाने का अधिकार प्रकाशक को भी नहीं होना चाहिए।

“यह प्रश्न मेरा व्यक्तिगत ही नहीं है; इसलिए अगर आप ‘जीवन-साहित्य’ में इसपर अपनी राय दें तो अच्छा होगा।”

मेरी राय में लेखक और प्रकाशक दोनों का काम साहित्य की और उसके द्वारा समाज की सेवा करना है। उनका स्वार्थ अगर समझा जाये या गिना जाये तो वह इतना ही है कि अपने गुजर-बसर के लिए आवश्यक पैसा उसमें से ले लें। प्रकाशक ज्यादा से ज्यादा अपने रुपये का मामूली ब्याज ले ले। इससे अधिक संग्रह करने या मुनाफा पाने की बात मेरी समझ में नहीं आती।

खुशहाल लेखक अपनी पुस्तकों के लिए जब मेहनताना नहीं लेते हैं तो उन्हें लागत मात्र मूल्य पर पुस्तकें बेचने की शर्त रखने का पूरा अधिकार है। उनके त्याग का लाभ प्रकाशक को नहीं बल्कि गरीब जनता या गरीब लेखक को मिलना चाहिए। जब लागत मात्र मूल्य की शर्त रख दी जाती है, तब ‘कोई अधिकार रक्षित नहीं, जो चाहे सो छापले’ यह ऐलान गैरज़रूरी हो जाता है।

यह एक प्रश्न ही है कि लेखकों के भूखों मरने की जिम्मेदारी सचमुच किसपर है? इ

में एक मित्र नें हाल ही में एक पत्र में जो उद्गार प्रकट किये हैं वे ध्यान देने लायक हैं— आपको कितने माई के लाल 'खुशहाल' मिले हैं ? और गरीब बेचारा अपने ताने-बाने से ही नहीं पाता। फुर्सत निकाली तो उसे मजदूरी की चिन्ता रहती है कि इतने पेज किये और इतने ... उसमें काम के लिए जो निश्चिन्तता और मौज चाहिए वह मुश्किल है। साहित्य का काम लोगों का है या फिर वैरागियों, त्यागियों का है। भिखमंगों से साहित्य-निर्माण नहीं होगा, न से। उनसे खेती होगी, कारखाने चलेंगे, इमारतें बनेंगी। उन्हें साहित्य पढ़ना चाहिए, बनाना लों में कोई एक साहित्य-निर्माता हुआ करता है। जैसे गाँवभर में एकाध कुम्हार। सब गढ़ने नहीं जानते। हाँ; ईंटें पाथने का काम तो दो ही दिनों में आ जाता है। पता नहीं क्यों आप कहते हैं कि आज के लेखकों में तुलसीदास जैसे लेखक नहीं हैं ! आप यह भूल जाते हैं कि न तुक्कड़ थे, न लेखक। वह महात्मा थे, भक्त थे। पहले महात्मा और भक्त हो लिये तब सुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा'। उस चीज का मुकाबला आप किसी की रचना से करने बैठें तो बैठें ? उसे अलौकिक कहकर छोड़ दीजिए। बन गयी एक चीज़ बन गयी। आजके से ओं के बीच ऐसी किसी चीज़ की आशा दुराशा-मात्र है।"

यह सच है कि साहित्य-निर्माण और लेखकों की बेकारी ये दो स्वतन्त्र प्रश्न हैं। साहित्य-को गुजर का जरिया बनाने का रिवाज हमने पश्चिम से लिया है। मगर पश्चिम की तरह संख्यक पाठक हमारे यहाँ हैं, न वैसे बड़ी पूँजीवाले प्रकाशक ही हैं, न लेखक ही उस कोटि के। तो ऐसा लगता है कि साहित्य-सेवा और ज्ञानदान का पौधा हिन्दुस्तान की ज़मीन पर क वातावरण में पनप नहीं सकता। बेकारी की आम समस्या ने ऐसे लोगों को, जो कुछ जाते हैं, और दूसरा काम जिनकी रुचि या योग्यता से मेल नहीं खाता, लेखन-कार्य के लिए किया है। **'भिखमंगों से साहित्य-निर्माण नहीं होगा, न मजदूरों से'** यह कहकर हमारे मित्र ने स्या के सही हल पर अपनी उँगली रख दी है। लेखकों का यह निश्चय कि वे बिना कुछ लिये ों को लेख नहीं देंगे इस समस्या को हल नहीं कर सकता। क्योंकि इसके जवाब में यदि शक यह तय करलें कि हम पैसा देकर किसी की कोई चीज़ न छापेंगे तो किसका निश्चय कारगर और सफल होगा ? लेखक में यदि योग्यता और व्यक्तित्व है तो उसकी रचना का [illegible] मिल जायेगा। एक मुश्किल यह भी है कि हर कोई लेखक अपनी चाहे जैसी रचना मांगने लगता है। और चूँकि लेखन ही उसकी गुजर का एकमात्र साधन है, असफलता की वह अप्रसन्न और क्रुद्ध हो जाता है। जबतक समाज में सेवा-भाव से साहित्य-निर्माण करनेवाले हीं होते, तबतक 'गरीब' लेखकों का जहाँ अपनी रचना का दाम चाहना आवश्यक है वहाँ उसकी का इस योग्य होना भी जरूरी है।

फिलहाल गरीब लेखकों की समस्या हल करने के कुछ उपाय सूझ रहे हैं—

(१) पारिश्रमिक दी जाने योग्य रचनाओं का एक स्टैण्डर्ड बनाया जाये, जिसके अनुसार क दिया जाये।

(२) पारिश्रमिक वही लें जिनके गुजर का जरिया लेखन-कार्य ही है।

(३) खुशहाल लेखकों को पारिश्रमिक लेने का आग्रह छोड़कर अपने पारिश्रमिक की रक़म लेखकों को पारिश्रमिक देने में लगाने देना चाहिए। इससे प्रकाशकों को किसी भी पुस्तक पर [illegible] की जरूरत नहीं रहेगी व सब पुस्तकें सस्ती भी पड़ेंगी। आशा है, हिन्दी के लेखक इसपर विचार करेंगे।

हरिभाऊ उपाध्याय

बापू !

अब तुम तिहत्तर के हो गये हो। पचहत्तर में दो कम है : सौ में सत्ताईस ! तुम पचहत्तर को भी पार करो और सौ को भी पार करो ! यही में चाहता हूँ। यही मेरी दुनिया चाहती है।

पता नहीं तुम क्या चाहते हो ? तुम्हारा सिरजनहार क्या चाहता है ? क्या मैं मान लूँ कि तुम भी वही चाहते हो जो मैं चाहता हूँ, मेरी दुनिया चाहती है ?

बापू ! तुम चाहने लगो तो तुम्हारा सिरजनहार भी चाहने लगेगा। वह तुम्हारे पीछे है; क्योंकि तुम उसके पीछे हो। तुम्हारा चाहा वह जरूर पूरा करेगा। तुम उसका चाहा जो पूरा कर रहे हो ?

लेकिन हम ? क्या हम तुम्हारा चाहा पूरा कर रहे हैं बापू ! शायद नहीं कर रहे। शायद करना भी नहीं चाहते। शायद कर भी नहीं सकते ! फिर हम किस मुँह चाहें कि तुम सौ बरस जियो ? और तुम हमारी क्यों सुनो ? तुम्हारा सिरजनहार हमारी क्यों सुने ?

बापू ! हम अपनी तरफ देखते हैं, और गड़ जाते हैं। तुम्हारी तरफ़ देखते हैं, और खिल उठते हैं। यह कैसा खेल है, बापू ! कैसा चमत्कार है ! कुछ सूझ नहीं पड़ता कि यह रोने का खेल है कि हँसने का ?

हम तो देखते हैं कि तुम ऊपर से हँसते हो, और अन्दर से रोते हो ! अपने लिए नहीं, हमारे लिए।

और हम ? हम ऊपर रोते हैं, अन्दर रोते हैं। हँसें कैसे ?

तुम्हारी दवा हमपर असर नहीं करती बापू ! हमारा रोग ही शायद असाध्य है बापू ! लेकिन तुम—तुम तो महान् आशावादी ठहरे ! तुम निराश क्यों होने लगे ! हिम्मत क्यों खोने लगे ! तुम रोज़ हमारी नाड़ी देखते हो ! रोज़ अपना नुस्खा बदलते हो ! पर हम बड़े नाजुक रोगी हैं बापू ! हमसे तुम्हारा पथ्य-परहेज़ पाला नहीं जाता।

हाँ, हमने थोड़ा ढोंग जरूर सीख लिया है। दिखावा जरूर सीख लिया है। अब हम मुँह पर 'हाँ-हाँ' करना सीख गये हैं। हम मंच पर चढ़कर बोल सकते हैं। हम अखबारों में लिख सकते हैं। हम पत्रों में अपने को छपवा सकते हैं। हम अपने जुलूस निकालवा सकते हैं। हम अपनी जय बुलवा सकते हैं। हम चाँदी-सोने के कीमती मानपत्र ले सकते हैं। हम छोटे-बड़े ओहदों को आनन-फानन हथिया सकते हैं। हम 'सिपाही' बनकर जेल भी जा सकते हैं।

लेकिन......लेकिन तुम्हारा पथ्य-परहेज पाल नहीं सकते ! देखा तुमने ? कैसा कमाल हासिल किया है हमने ? और सो भी तुम्हारी दवा के नाम पर ! तुम गुरु होकर भी गुड़ हो, और आज हम चेला होकर भी शक्कर हैं बापू ! पता नहीं, हमारी यह शक्कर तुम्हें मीठी लगती होगी या कड़वी ! हम तो इसीमें पले हैं और छके हैं।

बापू मेरे ! तुम कहते हो : चर्खा चलाओ; खादी पहनो; हरिजनों को अपनाओ; मुसलमानों से मिलो; उनका विश्वास करो; उनके दिल में बैठो; गाँवों में जाओ; गाँववालों की सेवा करो; गाँवों में बनी चीज़ें खरीदो; देशी उद्योग-धन्धों को बढ़ावा दो; गरीबों की सेवा करो; बच्चों को नयी तालीम दो; बहनों को बराबरी के हक़ दो; उन्हें घर के कैदखानों से छुड़ाओ; सुबह से शाम तक मेहनत मजदूरी करो; पसीने का कमाओ, पसीने का खाओ; किसी को लूटो मत; किसी को ठगो मत; किसी को कुचलो मत; किसी से लड़ो मत; किसी पर बिगड़ो मत !

और बापू ! तुम कहते हो : सच्चे बनो, सच बोलो; अहिंसक बनो, हिंसा मत करो; जीने के लिए खाओ; खाने के लिए मत जियो; जरूरत की चीज़ें लो, रक्खो; गैरजरूरी चीज़ों को बाँट दो; तन-मन-धन से किसी की चोरी

किसी को चोर बनने के लिए न लल-
ले बनो; ब्रह्मचारी बनो; श्रमी बनो;
बुरा करो; न किसी से डरो; न किसी
रो; सब धर्मों का आदर करो; सबको
ओ; स्वदेशी का पालन करो; जीवन
और, छूत-अछूत के भाव को निकाल दो।
मेरे! तुम कहते हो : व्रत की तरह
पालो; एक मिनट भी इनसे न डिगो;
उपासना करो; इन्हें साधो।

कहते हो बापू! इनसे स्वराज्य मिलेगा;
आज़ादी मिलेगी; इनसे गुलामी का नाश
इनसे ग़रीबी मिटेगी; इनको साधकर
आदमी बनेगा; नहीं हैवान इन्सान बनेगा;
शैतान न रह जायेगा!

तुम्हारी अचूक हो सकती है, बापू!
पर वह हम रोगियों के लिए बेहद कड़वी
इतनी कि हम उसे निगल नहीं सकते—
नहीं सकते!

तुम्हारा कहना सच हो सकता है बापू! पर
हमारे गले उतरती नहीं। उतरती भी है,
समझ में आती नहीं।

आज दुनिया में जो हो रहा है, जिस ढंग
रहा है, जिस रफ्तार से हो रहा है, जैसी
और शान के साथ हो रहा है, जितने
पैमाने पर हो रहा है, जिस कामयाबी के
हो रहा है, उससे तुम्हारी बातें मेल नहीं
बापू!

हम भौंचक हैं; स्तब्ध हैं; किंकर्त्तव्यविमूढ़
हमारी बुद्धि लुञ्ज है; हमारी आँखों पर
रहा है।

हम अकसर सोचते हैं : तुम सनक गये हो!
बैठे हो! तुम फटते हुए आसमान को
से रोकना चाहते हो! तुम उल्टी गंगा
बहाना चाहते हो! तुम हमें घसीटकर हज़ार
पीछे लेजाना चाहते हो! तुम हमें हैवान
से देना चाहते—मनुष्य बनाना चाहते
विष को अमृत में बदलना चाहते हो!
मगर यह रसायन होगा बापू!

पर हम उसे कहाँ पायें? कैसे पायें? क्यों पायें?

तो क्या हमारे लिए दुनिया ऐसी ही रहेगी बापू? कोई आशा, कोई उम्मीद, हमारे लिए हमारी इस दुनिया के लिए तुम्हारे दिल में है, बापू?

तुम दिलदार हो बापू मेरे! तुम दिल की बातें जान सकते हो! हमारी कमज़ोरियों और खामियों से तुम खूब वाक़िफ हो! तुम्हारी-सी आशा, तुम्हारी-सी श्रद्धा, तुम्हारी-सी लगन और तुम्हारी-सी तड़प हम कहाँ से लायें बापू?

हम तो सिर्फ़ एक बात जानते हैं। एक कक्का पढ़े हैं।

तुम हमें जिलादो। तुम हममें प्राण फूँक दो। तुम हमारा बेड़ा पार कर दो। तुम हमें आज़ाद बना दो। तुम हमें आबाद बना दो। हमारे लिए जो कुछ भी करना हो, तुम्हीं कर दो! हमसे कुछ न कहो!

हम तो तुम्हारी तरफ़ देखेंगे। तुम्हारा तेल काढ़ेंगे। तुम्हारी कमज़ोरियों पर खड्गहस्त होंगे, तुम्हारी निन्दा करेंगे। तुम्हारा मज़ाक उड़ायेंगे। तुम्हें बदनाम करेंगे। तुम्हें धोखा देंगे। तिल-तिल कर तुम्हें तड़पायेंगे। चोट पर चोट तुम्हें पहुँचायेंगे।

और बापू! यश के भागी हम बनेंगे। अपयश का ठीकरा तुम्हारे सिर फोड़ेंगे। हम सुख की नींद सोयेंगे—सदियों सोयेंगे, घोड़े बेचकर सोयेंगे, मगर तुम्हें एक क्षण भी न सोने देंगे! हम रोज माल-मलीदा खायेंगे, मगर तुमको रूखी-सूखी भी सुख से खाने न देंगे।

बापू! जानते हो, तुम जयचन्द के देश में पैदा हुए हो? यह जर्मनी नहीं है, रूस नहीं है, इंग्लैण्ड नहीं है, अमेरिका नहीं है और यह चीन नहीं है!

यह मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का भारत नहीं है। यह योगीराज कृष्ण का आर्यावर्त नहीं है बापू! यहाँ तो दाने डाले जा सकते हैं, और मुर्गे लड़ाये जा सकते हैं! हड्डी फेंकी जा सकती है, और

कुत्ते लड़ाये जा सकते हैं।

बूढ़े बापू ! तुम किसपर आशा बाँधे बैठे हो ? कौन तुम्हारी सुन रहा है ! कौन तुम्हें जिला रहा है ! कहाँ से तुम्हें प्रेरणा मिल रही है ! —अखण्ड और अविरत प्रेरणा !

तुम कह रहे हो बापू ! : भाई यह सिर्फ जयचन्दों की ही तो भूमि नहीं ! यह परम प्राचीन देवभूमि है। राम और कृष्ण ने अपनी पावनी लीलाओं से इसे पवित्र किया है। बुद्ध और महावीर की यह जननी है। प्रताप और शिवाजी इसकी गोद में खेले हैं। तिलक और गोखले, अजमल और अंसारी, देशबन्धु और दीनबन्धु राममोहन और विवेकानन्द, रवीन्द्र और अरविन्द मोती और जवाहर इसी माई के अनोखे लाल हैं।

शायद इसलिए तुम जयचन्दों को भूल जाते हो। और इन महामहिम नरश्रेष्ठों को निरन्तर अपनी आँखों के सामने रखते हो। शायद यही तुम्हें जिला रहे हैं। ये ही तुम्हें प्रेरणा दे रहे हैं।

तुम्हारी-सी जीवट हम कहाँ से लायें बापू ? तुम जो यह भारी पहाड़ उठाये हुए हो, तीव्र आग में जल रहे हो, तिक्त हलाहल पी रहे हो, कड़ी सर्दी को सह रहे हो, निविड़ अँधेरे में प्रकाश फेंक रहे हो, अकेले दुर्गम मंजिल को पार कर रहे हो, वह तो तुम्हीं कर सकते हो, बापू !

तुम तो अपनी चाल चले जा रहे हो। कोई तुम्हारे पीछे चले या न चले, तुम क्यों इसकी पर्वा करने लगे ? तुम क्यों मुड़कर देखने लगे !

और तुम कह रहे हो कि आप मरे बिना स्वर्ग नज़र नहीं आता। चलनेवाला मुक़ाम पर पहुँच जायेगा—सोनेवाला सोता रह जायेगा।

बापू मेरे ! आज के दिन दिल में न जाने कितने सवाल तो उमड़ रहे हैं ! मन मथानी पर चढ़ा हुआ है। आखिर हमारा क्या होगा ?

कभी मक्खन निकलेगा ? कभी कोई सुध लेगा ? कोई सुनेगा ? कोई झकझोरकर जगा जायेगा ?

पर बापू ! तुमसे भी बढ़कर जगानेवाला हमें कोई मिलेगा ?

तुम्हारे रहते मिलेगा ? तुम हमें जगा हुआ देख सकोगे ?

तुम हमें दौड़ते हुए देख सकोगे ? तुम हमें चढ़ते देख सकोगे ?

हम मिट्टी के पुतले हैं। मिट्टी से बने हैं। मिट्टी में मिल जायेंगे।

तुम्हारी तरह वज्र-सा कठोर और कुसुम-सा कोमल तन-मन हमें नहीं मिला है बापू !

तुम मरकर भी अमर रहनेवाले हो, बापू ! तुम्हारे पास वह कीमिया है !

इसीलिए तो तुम जियो ! सौ बरस जियो ! उतने से कम न चले, तो सवासौ बरस जियो ! सवा हज़ार बरस जियो ! जबतक ज़रूरत समझो, तबतक जियो ! और जीकर एक बार हमें अच्छी भाँति जिला जाओ—जीना सिखा जाओ !!

—'एक बालक'

खादी

'खादी के द्वारा तुम वास्तविक कलपूर्वक बनोगे, क्योंकि दरिद्रनारायण के चेहरे पर ताजगी, सुर्खी तुम ला सकोगे। समाज में जो भाई मरणोन्मुख हैं, उन्हें जिलाकर समाज में दाखिल करा सकोगे। इससे बढ़कर कला कौन-सी हो सकती है।

खादी के द्वारा द्रव्य का वितरण होता है वह अत्यन्त मोहताज, मेहनती और दरिद्र मज़दूरों को मिलता है। खादी के द्वारा कला की—जीवित कला की—उपासना होती है। ईश्वर के बनाये जीवित चित्रों को न कोई धोता है न तोंछता है, और न कोई सजाता है। उधर निर्जीव चित्रों को सुन्दर-सुन्दर चौखटों से सजाते हैं; लेकिन इधर दरिद्र बालकों के शरीर पर न कपड़ा है न पेट में अन्न। ये रिक्त चित्र खादी के द्वारा साफ हो गए।

—विनोबा

हिन्दी वनाम उर्दू

[शान्तिप्रसाद वर्मा]

दी-गद्य के आधुनिक प्रवर्त्तकों में मुंशी लाल, इंशाअल्ला खाँ, सदल मिश्र और लाल के नाम लिये जाते हैं। इनमें से सदल और लल्लूजीलाल ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज क्राइस्ट के मातहत काम किया था। की भाषा, कम या अधिक संस्कृत-मिली का दोष कभी-कभी अंग्रेज़ों की उस की हिन्दुओं के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति या जाता है। एक साहब लिखते हैं—

हिन्दी का आज प्रचार किया जा रहा हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी राज्य के द्वारा कर पैदा की गयी है, क्योंकि फ़ोर्ट कॉलेज की स्थापना के पहले उसकी ति ही न थी।" डॉ० ताराचन्द भी यही हैं कि आज की संस्कृत-मिली हिन्दी १३५ अधिक पुरानी नहीं है, और उसके पहले हिन्दुस्तान में फ़ारसी-मिली भाषा का ही था। यह ऐतिहासिक सत्य नहीं है। यह है कि मुस्लिम राज्यकाल में जन-ता की बोलचाल की भाषा में फ़ारसी अरबी के काफ़ी शब्द होते हुए भी उसका संस्कृत में ही था। भारतवर्ष एक बहुत है। उसका समाज अनेक दायरों में जो एक दूसरे का स्पर्श करते थे और कभी करते थे, बँटा हुआ था। इनमें से एक छोटा दल जो मुस्लिम शासन और संस्कृति के संपर्क में आया था, उर्दू का पक्षपाती देश का अधिकांश समाज, जिसमें हिन्दू मुसलमान दोनों शामिल थे, संस्कृत-प्रधान को काम में लाता था।

अंग्रेज़ मिशनरियों के सामने प्रधान कार्य धर्म का प्रचार करना था। जिस भाषा जनता तक पहुँच सकते थे उसे उन्होंने और क्योंकि उन्होंने एक ऐसी भाषा स्वीकार किया जिसका आधार संस्कृत थी यह साफ़ हो जाता है कि उस समय जनता में इसी भाषा का प्रचार था। जन-साधारण की भाषा में फ़ारसी और अरबी के भी काफ़ी शब्द रहे होंगे, और ग्रामीण भाषाओं के शब्दों का प्रयोग तो उसमें बहुतायत से होता रहा होगा; पर वर्तमान काल के हमारे सारे राष्ट्रीय जीवन व आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास जिस ढंग पर हुआ उसमें फ़ारसी और अरबी के शब्दों को क्रमशः छोड़े जाने और देहाती शब्दों से अपने को अलहदा काट लेने इन दोनों प्रवृत्तियों का होना लाजिमी-सा हो गया। मौजूदा परिस्थितियों में हमारे राष्ट्रीय विकास का प्रारंभ जातीय विकास के रूप में होना स्वाभाविक ही था।

वर्तमान भारतीय नवयुग की शुरुआत के समय, कई सदियों पहले विदेशों से आनेवाली मुस्लिम संस्कृति भारतीय संस्कृति में घुल-मिल गयी थी, आत्मसात् हो गयी थी और भारतीय जीवन से अपने को अलहदा काटकर चलनेवाली जो एक धारा मुग़ल-साम्राज्य के वैभव काल के आख़िरी दिनों में ज़ोर पकड़ती जा रही थी वह उस साम्राज्य के पतन के बाद ही तितर-बितर हो चली थी, और अबतक उसमें एक बूँद भी कहीं बाकी नहीं रह गया था। ऐसी परिस्थिति में हमारे देश ने जब नवयुग की एक करवट बदली तो यह स्वाभाविक था और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया कि हम अपनी संस्कृति का मूल तलाश करने के लिए गंगा और यमुना के किनारे उपनिषद्कारों की वाणी से उच्छ्वसित होनेवाली विचार-धारा में प्रवेश करने की चेष्टा करें। जहाँतक हिन्दुओं का ताल्लुक़ था उनमें वर्त्तमान जाग्रति का विकास इसी प्रवृत्ति के अनुसार हुआ और यही हिन्दी के दिन पर दिन अधिक संस्कृत-प्रधान होते जाने का मूल कारण हुआ।

संस्कृत का यह प्राधान्य हिन्दी तक ही सीमित नहीं है। उर्दू को छोड़कर देश की सभी

भाषाओं में हम इस प्रवृत्ति को अपने पूरे ज़ोर पर पाते हैं। इसके पीछे किसी प्रकार की संकुचित जातीयता की भावना नहीं थी। राष्ट्र के प्रत्येक नवोत्थान में प्राचीन की ओर जाने की एक प्रवृत्ति रहती है, जिसका प्राचीन धर्म से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा करता, यूरोप के नवोत्थान (Renaissance) में भी हम इस प्रवृत्ति को पाते हैं। वहाँ प्राचीन का प्रेम तो था, पर ईसाई-धर्म के प्रति अवज्ञा की ही भावना रही। भारतवर्ष में भी यह मनोवृत्ति प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम की मनोवृत्ति थी; संकुचित जातीयता अथवा धर्म से उसका कोई ताल्लुक़ नहीं था। इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में श्री० मुंशी लिखते हैं—"प्रांत-प्रांत में संस्कृत भाषा और साहित्य की तरफ आकर्षण बढ़ा। हरेक प्रान्त में ऐसा एक संप्रदाय उठ खड़ा हुआ, जो संस्कृत द्वारा साहित्य का पुनः संगठन करने लगा। इस सम्प्रदाय ने संस्कृत-साहित्य की गंगा से देशभाषा के प्रदेश को सींचकर पवित्र किया। भाषा संस्कृतमयी, प्रौढ़ और सुन्दर होने लगी। कालिदास और बाण की कल्पना-सृष्टि की सुन्दरता प्रान्तीय साहित्यों को सुन्दर बनाने लगी।"

मुसलमानों में जाग्रति की लहर देर से, और एक अलग ढंग पर उठी। दोनों की प्रवृत्ति एक-सी थी—वही प्राचीन की ओर उसके अपने शुद्धरूप में लौटने की। पर लक्ष्य भिन्न थे, हिन्दू-समाज के सामने जहाँ उपनिषदों के काल का आदर्श था, मुसलमानों के सामने अरब और ईरान का प्राचीन वैभव हिलोरें ले रहा था; शुद्ध राष्ट्रीयता का विकास अभी तक दो में से किसी समाज में नहीं हुआ था। मुस्लिम समाज में जाग्रति का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में रायबरेली के सय्यद अहमद ने दिल्ली के एक बड़े विद्वान शाह अब्दुल अज़ीज़ से मुस्लिम धर्म-पुस्तकों का अध्ययन किया था। उनकी तहरीक, जो बाद में वहाबी आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुई, इस्लाम को उसके प्राचीन, शुद्ध और अमिश्रित रूप की ओर लौटा ले जाने की थी। उन्हें अपने प्रचार में बड़ी सफलता मिली। पढ़े-लिखे और अपढ़ सभी वर्गों में सय्यद अहमद का आदर था। उन्होंने अपने आंदोलन को तरीक़ए मोहम्मद का नाम दिया था। सय्यद अहमद की मृत्यु के बाद यह आन्दोलन बंगाल, पंजाब और हैदराबाद तक फैला। उसकी शक्ति तीन बातों पर अवलंबित थी—(१) काफ़िर शासकों के प्रति तीव्र घृणा, (२) उसके समर्थकों में इस्लाम के शुद्धीकरण और सुधार के लिए एक तीव्र लालसा, और (३) संगठन की मज़बूती। इनके अलावा सय्यद अहमद के व्यक्तित्व का भी आन्दोलन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। गम्भीर, शान्त और विनम्र, वह पैग़म्बर की याद दिलाता था। उनकी शिक्षा का आधार 'तौहीद' अथवा एकेश्वरवाद था। उन्होंने पीर-पूजा आदि का बड़ा विरोध किया। हज़रत मुहम्मद के सच्चे सिद्धान्तों की ओर लौटने की उनकी अपील का गाँवों के मुसलमानों के दैनिक जीवन पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा, और उनमें जाग्रति की एक नयी लहर उठी।

हिन्दू और मुस्लिम समाजों में उठनेवाली जाग्रति की दोनों लहरें धीरे-धीरे अपने अलग-अलग दायरों में फैलती गयीं। राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज की जो विशाल संस्था बंगाल में क़ायम की थी उसकी शाखाएँ, प्रार्थना-समाज के रूप में, महाराष्ट्र तक फैलीं। छोटी-छोटी धार्मिक संस्थाओं से आरम्भ होकर जाग्रति का यह आंदोलन आर्यसमाज और अन्य सामाजिक आन्दोलनों के साथ-साथ समस्त हिन्दू-समाज में व्यापक होता गया, और विवेकानंद व बंगाली क्रांतिकारियों ने उसे राष्ट्रीय स्वरूप दिया। मुस्लिम समाज में तरक्क़ी के पहिये को बड़ी ज़ोर से घुमाने का श्रेय सर सय्यद अहमद को है। उन्होंने अलीगढ़ में मुस्लिम कॉलेज की स्थापना करके मुसलमानों की उन्नति के लिए एक बहुत बड़ा रास्ता खोल दिया।

और चूँकि आगे बढ़ते हुए इन दोनों समाजों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के

अलग-अलग भाषाओं की ज़रूरत थी, बड़ी से, और बड़े स्वाभाविक तरीक़े से, बिना दिक्क़त और झगड़े के, हिन्दी और उर्दू क जाग्रति की इन दो लहरोंका माध्यम बन और क्योंकि दोनों ही समाजों में पीछे की ओर की प्रवृत्ति काम कर रही थी, हिन्दी अधिक-क संस्कृत-प्रधान और उर्दू फ़ारसी-प्रधान गयी। श्रीयुत मुंशी के शब्दों में ‘ संस्कृत-प्रधान और फ़ारसीमय उर्दू जिन्होंने बनायी उन्हें ना पकड़े बिना छुटकारा ही न था। इस में न कशमकश थी, न बैर, न संप्रदाय-था। x x हिन्दी का लेखक आज शृंगार का विकास करे, या ऐतिहासिक उपन्यास तो वह जयदेव और व्यास-वाल्मीकि की ही खोजेगा, दूसरी प्रेरणा मिलना संभव । मुसलमान लेखक साहित्य-रचना करे तो दी और हाफ़िज़ को छोड़कर वह और की शरण में जाये ?”

हिन्दू और मुसलमानों की अलहदा सामा-तरक्क़ी का असर हिन्दी और उर्दू के रूप ना स्वाभाविक था। तरक़्क़ी के इन दो ओं में बँट जाने में ही घबराने की कोई नहीं हो सकती थी—बशर्ते कि वे धाराएँ ता के क्षेत्र में एक-दूसरे से हिल-मिलकर रहें। सामाजिक आन्दोलन राष्ट्र के विभिन्न ओं में आन्तरिक सुधार की धाराएँ हैं। इन शील धाराओं का केवल एक ही लक्ष्य हो ता है—विशेषकर एक ऐसे देश में जिसकी यता एक स्वदेशी संस्कृति की ग़ुलामी से कारा पाने के प्रयत्नों में लगी हो—कि वे को संपूर्णतः राष्ट्रीयता के विकास में लगा जबतक वे अपने इस लक्ष्य को भूल नहीं तबतक उनका स्वागत ही किया जाना । वे राष्ट्र-जीवन को सशक्त बनाने में ही होंगी। और जबतक वे दोनों धाराएँ से बह रही हैं उनकी अभिव्यक्ति की —भाषाओं—के आपसी अन्तर से भी घबराने की वजह नहीं है।

पर हमारे देश में जहाँ एक ओर राष्ट्र एकीकरण की प्रवृत्तियाँ काम कर रही है वहाँ दूसरी ओर ऐसी शक्तियाँ भी तो मौजूद हैं जो उसके टुकड़े कर डालना चाहती हैं। इसीलिए हमें सजग, सतर्क और प्रयत्नशील रहने की ज़रूरत है। अंग्रेज़ों के पहले भी हिन्दू और मुसलमानों में सामाजिक भेद थे, और हिन्दी और उर्दू का अन्तर भी मौजूद तो था ही, पर राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे का हाथ बँटाते थे, और भाषा के प्रेमी हिन्दीवाले उर्दू जानने की और उर्दूवाले हिन्दी से परिचित रहने की ज़रूरत मानते थे। पर आज समाज और भाषा के ये भेद हमारे राष्ट्रीय जीवन को गँदला बनाते हैं। इसीसे इन प्रश्नों को लेकर आज ग़लतफ़हमियों का एक बड़ा अम्बार खड़ा हो गया है।

पर, जवाहरलालजी के शब्दों में, “समन्वय की दिशा में काम करनेवाली प्रवृत्तियाँ इतनी ज़बर्दस्त हैं कि वे व्यक्तियों द्वारा नहीं रोकी जा सकतीं।” मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जिन्हें आज के इस घने अँधेरे वातावरण में भी आनेवाले प्रभात की आशा है (क्योंकि रात आख़िर चलेगी कबतक ?) मैं न दोनों समाजों के विरोध में भी जो जाग्रति है उसकी ओर आशापूर्ण नज़रों से देख रहा हूँ। ये दोनों समाज आज एक-दूसरे से चाहे जितने ही दूर जा भटकें, पर अंत में, राष्ट्रीयता की समान भूमि पर ज़रूर मिलेंगे; और इस राष्ट्रीय समन्वय के साथ हिन्दी और उर्दू का अन्तर भी मिट जायगा और उनके मेल से एक प्रभावशाली भाषा का जन्म होगा। वह हमारी राष्ट्रीयता के इतिहास में एक नया युग होगा। आज के पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में यह बात चाहे कितनी ही कठिन दिखायी दे, पर उसकी सचाई अग्नि की किरणों के समान शुद्ध और प्रखर है।

साहित्य क्यों ?

[हंसकुमार तिवारी]

उपयोगिता की भावना इस युग की एक खास उपज है। वस्तु-विशेष की श्रेष्ठता और निकृष्टता के लिए उपयोगिता की ही कसौटी सबके आगे रहती है। जिन चीज़ों से जीवन-यात्रा में किसी तरह की मदद मिलती है, जिन चीज़ों से जीवन की जरूरतें हल होती हैं, मानव-समाज के लिए वे ही वस्तुएँ उपादेय और आवश्यक हैं। ऐसी दशा में स्वभावतः एक प्रश्न मन में उठता है कि आखिर इस ललित कला और साहित्य का क्या उद्देश्य है? हम लिखते क्यों हैं? क्यों हम सूक्ष्म कारु-कला या चारु-कला की सृष्टि करते हैं?

रवींद्रनाथ ने कहा है, कला या साहित्य मानव-अन्तर का प्राचुर्य है। प्राचुर्य वह है, जो हमारी आवश्यकता के अतिरिक्त है, लेकिन, साफ बात तो यह है कि साहित्य से हमारी रोटी की समस्या हल नहीं होती। मानव-समाज की इस सदा की समस्या पर जो शास्त्र थोड़ा-बहुत प्रकाश डालता भी है, उस अर्थशास्त्र को साहित्य की सीमा में प्रवेश करने का अधिकार नहीं। क्योंकि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की परिभाषा के अनुसार वह शास्त्र उत्तीर्ण नहीं होता। कला से हमारी नग्नता-निवारण का मसला नहीं हल होता। गर्ज़ कि आहार, निद्रा, मैथुन आदि जीवन की जो स्थूल आवश्यकताएँ हैं, उनकी पूर्ति में हमें कला-रचना या साहित्य-सृष्टि से किसी तरह की सहूलियत नहीं होती। काम-शास्त्र जो हमारी शास्त्रोक्त आवश्यकताओं में से एक ओर मदद करता है, वह भी साहित्य नहीं है। फिर साहित्य या कला का, जिसे हमने जीव और जगत में इतना तूल दे रक्खा है, क्या उद्देश्य हो सकता है? और मज़ा यह कि न तो हम इसकी प्रेरणा को बाद दे सकते हैं, न इसकी सृष्टि को। शिल्प का कोई अत्युत्तम निदर्शन हमारी आँखों के आगे आता है, हम मुग्ध हो जाते हैं। साहित्य का कोई मार्मिक स्थल हमारे अन्तर को छू लेता है, हम आनन्दित हो जाते हैं। तो क्या यही मान लिया जाये कि इस अनुभव और दर्शन में जो एक सूक्ष्म आनन्द है, साहित्य का मूल और महत् उद्देश्य इतना ही, सिर्फ यही है?

मरुभूमि में ओसिस जैसे एक शांति और विराम की जगह है, जीवन-संग्राम में जूझने वालों के लिए साहित्य और कला ऐसी ही एक शीतल छाया समझी जाती है। दिन-रात रोटी के लिए लड़नेवाले मस्तिष्क की शिथिल नसों को साहित्य की शरण में शांति और स्फूर्ति दोनों ही मिलती हैं। दैनंदिन जीवन के कर्तव्यों क जहाँ जीवन पर शासन होता है, वहाँ मनुष्य क दासता है. दीनता है। दासता में न तो जीव का सन्तोष है, न आनन्द ही। इसीलिए मनुष्य की श्रांत और ऊबी हुई चाह एक ऐसी दुनिया की ओर दौड़ती है, जहाँ कर्तव्य की कदर्थता नहीं, जहाँ वास्तव का वही बँधा-बँधाया निरा नन्दमय वातावरण नहीं। जहाँ रिक्त, क्लां और दग्ध हृदय को शांति और सांत्वना मिलती है। यही दूसरी दुनिया है कल्पना की, जिसे ह एक अभिनव स्वर्ग भी कहते हैं। इस दूसरी दुनिया की शरण में आने का उद्देश्य चाहे ए ही हो, स्वरूप एक नहीं। कोई संगीत, को शिल्प, कोई साहित्य, इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि के अनुसार ही अपना आश्रय स्थल ढूँढता है।

इंग्लैंड के स्वनामधन्य साहित्यिक बर्नार्ड की एक किताब है-- टू ट्रू टु बी गुड' उसमें एक पात्री एक सेनाध्यक्ष से कहती है--"आश्च है कि आप चित्र बनाकर अपना समय बर्बा करते हैं!" सेनापति ने उत्तर दिया --

"काउंटेस, मैं चित्र सिर्फ इसलिए बनाता कि मेरा दिमाग दुरुस्त रहे। इन औरत-मर्दों व्यवहार करते तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं पाग हो गया। सांत्वना के लिए जब-जब मैं मनुष्यों के पास गया, मुझे विफल-मनोरथ हो लौट आन

परन्तु प्रकृति के निकट जाकर कभी नहीं पड़ा !"

तः इस दृष्टि से साहित्य की उपयोगिता रत्तीभर भी ज्यादा नहीं। जैसे बच्चों के बहलाने का साधन उनके खेल हैं, उसी हमारे दिलबहलाव की सामग्री साहित्य रिक कर्तव्य के कठोर आघातों से जर्जर नीरस वातावरण से जरा देर के लिए के आँगन में सुस्ता लेना चाहता है और हमारी कल्पना की सृष्टि है, ख़यालों निया है, जो वास्तव में रहनेवाले लोगों के दूर, बहुत दूर खींच लेती है।

एक बात और। इसे हम स्वभावगत नियम भी छुटकारा नहीं पा सकते। कला और प्रकृति की नकल तो हर्गिज नहीं हो । यह हमारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करने गौरव-केतन है, क्योंकि साहित्य में हम के स्वरूप को ही फिर से भाषा में नहीं करते। प्रकृति और हमारे मन के संमिश्रण एक विशेष भाव-जगत् की सृष्टि होती साहित्य उसका स्वरूप है। यहाँ प्रकृति से हम ज्यादा पाते हैं, इस बात को अस्वीकार कर सकते, किन्तु प्रकृति को हम देते भी हैं, यह बात भी गौरव के साथ ही । प्रकृति फूल खिलाती है, उसे हम भाषा तारे चुप-चाप हँसते हैं, हम उनके हृदय से टटोल लेते हैं। मानव के हृदय का जो अतीत से भी अधिक अंधकारमय है, उसे प्रकाश में ले आते हैं। यही कारण है कि को हमने इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दे है। स्वाभाविक गर्व से कवींद्र रवींद्र ने है—

रे दिये छो गान, गाय सेइ गान,
तार वेशी करे ना से दान।
रे दिये छो स्वर आमि तार वेशी करि दान,
आमि गाइ गान ।

पक्षी को तुमने गान दिया, वह वही है, उससे अधिक वह कुछ नहीं देता। और मुझे तुमने स्वर दिया, मैं उससे अधिक देता हूँ—मैं गान गाता हूँ।

यहाँ मनुष्य को अपनी सृष्टि का गौरव मिलता है। पछी के गाने और मनुष्य के गाने की प्रेरणा एक-सी नहीं है। पक्षी अपनी प्राप्ति-भर को ही लुटा सकता है, हम मानव प्राप्ति को सूद समेत लौटाते हैं। फलतः यह बात स्पष्ट है कि साहित्य-सृष्टि के मूल में इससे भी बड़ा कोई उद्देश्य है। हमारी जो स्थूल प्रयोजनीयता है, उससे चाहे साहित्य-सृष्टि का कोई स्पष्ट सम्बन्ध न हो, लेकिन साहित्य-सृष्टि का प्रयोजन है, यह हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव-अन्तर की एक व्याकुल प्यास है और वह प्यास है आत्म-प्रकाश की। इसी विकलता ने मनुष्य को आज विकास की इस चोटी तक पहुँचाया है। कथित और लिखित, दोनों ही प्रकार के साहित्य की जननी मानव की यही विकलता है। उस समय जब मानव-मन के दर्पण में प्रकृति के अतुल सौंदर्य का प्रतिविम्ब पड़ता था और हृदय के जारक-रस से उस अवस्था में जो भाव बनते थे, उनको प्रकाश में लाने का कोई साधन नहीं था, तो कितने विकल थे मनुष्य! एक दूसरे के पास-पास होते हुए भी वे परस्पर दूर—बहुत दूर थे। इसके बाद अपने को दूसरों पर प्रकट करने के लिए मनुष्यों ने भाषा बनायी। लेकिन, इससे भी उसे संतोष नहीं हुआ, क्योंकि इसमें आत्म-प्रकाश को व्यापक रूप नहीं मिलता था। वह कुछ ही लोगों और कुछ ही काल के लिए सीमित हो जाता था। इस अपनेपन या अहम् की भावना को दीर्घकालीन और बहुसंख्यक लोगों के लिए व्यापक बनाने की वासना से उत्पत्ति हुई साहित्य की। मनुष्यों की अपने को प्रकाशित करने की वासना चिरंतन है। हमारा यह साहित्य और कुछ नहीं, अपनी-अपनी सृष्टि द्वारा प्रत्येक मनुष्य का हृदय दूसरों में अपना विस्तार चाहता है, दूसरों के आगे अमरता की प्रार्थना करता है। साहित्य द्वारा जैसे वह कह रहा हो—

अयम् अहं भोः — मैं यहाँ हूँ । चाहे जिस क्षेत्र में देखें, वहीं आपको यह मूर्तिमान अहम् मौजूद मिलेगा । वह हर रूप में स्वयं अपने को देखता है और दूसरों को दिखाता है ।

हमारी हर सृष्टि में हमारे भीतर का 'हम' ही सिर उठाये विभिन्न मूर्तियों में खड़ा है । हमने स्वयं जो अनुभव किया, हमारी जो अपनी प्राप्ति है, उसे केवल अपनी ही बनाकर रखना अपने को एक संकीर्ण परिधि में आवद्ध कर लेना है । इसीलिए मानव को यह काम्य नहीं । और उसे बहुतों तक पहुँचाने की प्रवृत्ति भी और कुछ नहीं, दूसरों के पास अपनी सत्ता की प्रतिष्ठा करना है । कभी अशोक ने पहाड़ों की चट्टानों पर अपने अत्यन्त प्रिय उपदेश इसी लिए खुदवा दिये थे कि उनके साथ-साथ युग-युग तक उनकी अपनी सत्ता भी कायम रहे । साहित्य या कला में मनुष्य के अपने सुख-दुःख ही स्थायी नहीं होते, उसका अन्तर, उसका मन भी अमर होकर रहता है । नील नदी के किनारे आकाश तक सिर उठाये एक-से सदा खड़े रहने-वाले पिरामिड हमें उस अतीत युग का इतिहास कहते हैं । काल ने किसे साबित रहने दिया, किंतु मुमताज बेगम की स्मृति में खड़ा ताजमहल संसार को आज भी बादशाह शाहजहाँ की प्रेम-कहानी सुना रहा है । कवि के शब्दों में——

तोमार दूत अमलिन
श्रांति - क्लांति - हीन
तुच्छ करि राज्य भांगा - गड़ा
तुच्छ करि जीवन-मृत्युर ओठा-पड़ा
युगे - युगांतरे
कहितेछे एक स्वरे
चिर-विरहीर वाणी निया
"भूलिनाइ, भूलिनाइ, भूलिनाइ प्रिया ।"

जीवन-मृत्यु, उत्थान-पतन सबको तुच्छ करता हुआ श्रांति-क्लांति-हीन अमलिन ताजमहल युगयुगान्तर से चिरविरही सम्राट् की वाणी का प्रचार कर रहा है कि प्रियतमे, मैं तुम्हें भूल नहीं गया हूँ ।

यही कारण है कि विज्ञान के विकसित युग में जब विश्लेषण की प्रवृत्ति प्रबल होती जारही है, भावना की यह मंदाकिनी मंद नहीं होती । हम अपने भावों में अमर रहें, यही साहित्य की साधना है, यही कला-सृष्टि की तपस्या है ।

हम ऊपर मन को प्रकृति का दर्पण कह आये हैं । साहित्य को भी जीवन और जगत् का दर्पण कहते हैं । फ्रांस के एक साहित्यिक ने तो साहित्य को ही जीवन कहा है । यहाँ एक बात याद रखनी चाहिए कि प्रकृति जिस रूप में साहित्य-साधकों के अंतर तक जाती है, उसी रूप में वह साहित्य में नहीं आ सकती । साहित्य एक तीसरी दुनिया है, जो मन की दुनिया और बाहरी दुनिया के संघर्ष से बनती है । मैथ्यू आर्नल्ड के Art is the things which they are का अर्थ बहुत बार लोग बिल्कुल उलटा लगा लेते हैं । यह वाक्य कुछ और अभिप्राय रखता है, न कि यथायथ चित्रण का निर्देश करता है । अगर दुनिया जैसी है, वैसा ही चित्रित करना साहित्य का उद्देश्य होता, तो प्रत्यक्ष दुनिया ही सब कुछ होती, नकली साहित्य का मूल्य क्या होता ? लेकिन वास्तव में वाह्य और आंतरिक दुनिया से जो एक तीसरा जगत बनता है, वह रसमय होता है, इसीलिए आनंददायक भी । आनंद का मूल रस ही है । इस रसमय जगत का स्रष्टा है एक मन, जो कल्पना की रंगीन तूलिका से एक अभिनय जगत् का निर्माण करता है । इसी मन से हरेक की साधना का स्वरूप अलग-अलग हुआ करता है, जिसमें उसका व्यक्तित्व या 'अहम्' प्रकट होता है । मनुष्य का दैनंदिन जीवन और उसकी कल्पना की दुनिया दोनों की थाह लेने पर सच्चे मनुष्य या वह मनुष्य क्या है, इसकी पहचान हो सकती है । ये दोनों ही बातें साहित्य में पायी जाती हैं, क्योंकि साहित्य मनुष्य की अपनी सत्ता को अमर बनाने का प्रयास है ।

मेरे लड़के की तालीम

रिका के "रोटेरियन" नामक मासिक ता ने अपने लड़के को किस तरह दी है, इसकी कहानी लिखी है जो बालकों के बड़े काम की चीज़ है। इसलिए हाँ उद्धृत करते हैं।]

साल पहले मैंने अपने लड़के की तालीम । मेरा ध्येय यही था कि इसका जीवन हो और उसमें आत्मविश्वास पैदा हो। है कि हम बच्चों की तालीम की ज़िम्मेदारी स्कूल पर ही छोड़ देते में तो बच्चों के स्कूल जाने से बहुत घर में उनकी तालीम शुरू होजानी और बच्चे स्कूल जाते रहें, तब भी उनकी घर की तालीम जारी रहे।

लड़के जॉन की उम्र तेईस है; तन्दुरुस्ती । खेल-कूद और पढ़ने में शौक़ है; सबके जुलकर रह सकता है। पिछले साल की पढ़ाई खत्म की। अभी बड़े दिलचस्पी के साथ इंजीनियर का काम है।

तालीम देने में हमारा सबसे बुनि- यह रहा कि सच्ची तालीम की बुनि- त्म-निर्भरता—स्वावलंबन। स्वावलंबी के लिए सबसे पहली ज़रूरत यह है कि हाथों का उपयोग करना जानें। इस- जब तीन साल का था, तभी से मैंने थों की तालीम शुरू की। हम दोनों ज़मीन पर बैठकर लकड़ियों के टुकड़ों थे। किस तरह का घर बनाना है की मर्ज़ी की बात थी; लेकिन जब- दीवारें सीधी, घर के कोने समकोण, के खंभे पक्के नहीं हो जाते थे, तबतक नहीं था। मैं यह चाहता था कि पहले के हाथ की उँगलियों को सावधानी से काम करने की आदत हो जाये। साढ़े तीन साल का हुआ, तबसे उसका औज़ारों के साथ परिचय शुरू हुआ। मेरा विश्वास है कि औज़ारों के उपयोग से हाथ और दिमाग़ दोनों को एक साथ तालीम मिलती है। इससे एकाग्रता आती है, विचार-शक्ति बढ़ती है, कार्य-कारण-सम्बन्ध के समझने की बुद्धि आप ही आप मिलती है, हाथों को ठीक-ठीक काम करने की आदत पड़ती है और लगकर काम करने की ताक़त बढ़ती है।

अगर ताली का कोई हिस्सा खराब होजाता, या सिलाई की मशीन बिगड़ जाती या टूटा हुआ खिलौना जोड़ना होता, तब भी हमारे काम का तरीक़ा यही रहता। हम दोनों मिलकर सोचते कि हम किन-किन औज़ारों का उपयोग करें, कैसे-कैसे आगे बढ़ें? जॉन के हाथ जैसे-जैसे मज़बूत होते गये, मैं उसे अपने हाथों से काम करने के लिए प्रोत्साहित करता गया। जब वह पाँच साल का हुआ तब वह मामूली तौर पर घर की छोटी-बड़ी मरम्मत कर सकता था। मैं कहता—"जॉन, कपड़े धोने के टब की टोंटी जंजीर से अलग हो गयी है।" वह बक्स खोलकर ज़रूरी औजार निकालता और थोड़ी देर में आकर मुझे खबर देता—"बाबूजी, अब ठीक है।"

मेरे दोस्त मेरी हँसी उड़ाते—"अरे भाई, इसे तो दिमाग़ी काम करके रोजी कमाना है। इसे मजदूर की तालीम देने से क्या फ़ायदा होगा?" लेकिन मैं अपनी बात पर अड़ा रहा। मैं तो यह मानता हूँ कि उसे आज जो काम मिला है, उसकी वजह यही है कि वह अपनी कॉलेजी तालीम से असली फ़ायदा उठाना जानता था। उसके ऐसे बहुत साथी थे, जिनके दिमाग तो जॉन से तेज थे, लेकिन उन्हें और मुश्किलों का सामना करना पड़ा। चूँकि जॉन की तालीम की शुरुआत हाथ के काम से हुई थी, इसलिए उसका दिमागी काम भी दूसरों से आगे रहा।

जैसे-जैसे जॉन बड़ा होता गया, वह मुझसे पूछने लगा—"यह चीज़ कैसे काम करती है?" मैं

इसके जवाब में फिर उसी से पूछता था, "भला, तुम्हीं बताओ, यह कैसे काम करती है?" तब मैं उससे कहता कि खोलकर देखो, कैसे काम करती है। इस तरह मेरी देखरेख में उसने घर के सारे औज़ार और कल-पुरजों के समान खोल डाले। मैं भी खुद कोई कारीगर नहीं था, इसलिए मैं भी जॉन के साथ-साथ सीख रहा था। आज हमारे घर में या मोटर में ऐसी कोई मशीन नहीं है, जिसे जॉन ठीक न कर सके।

उसे ऐसी आदत पड़ गयी है कि वह सोच-विचारकर एक-एक क़दम उठाता है। जब किसी मशीन के पुरज़े खोलता है, तब हरएक हिस्से का काम और उनका एक दूसरे के साथ सम्बन्ध ग़ौर से देखता जाता है। इस तरीक़े से तालीम पाने से सारी बातों में उसकी मनोवृत्ति ही यह पूछने की हो गयी है कि "यह काम कैसे होता है?"

जॉन की माँ और मैं दोनों यही कोशिश करते कि जबतक उसे "क्यों?" इस सरल प्रश्न का संतोषजनक जवाब न मिले, तबतक उसे कल न हो। पहले हम उसी से पूछते—"भला, तुम बताओ, तुम्हें क्या सूझता है?" यदि हम दोनों में से किसीको भी ठीक जवाब नहीं सूझता, तो हम किताबों या जानकारों की मदद लेते। एक बार मोटर के एक पुरज़े का काम समझाने के लिए मुझे उसके साथ मोटर सुधारने के कारखाने तक जाकर एक मिस्त्री से सलाह लेनी पड़ी थी।

एक बार उसने पूछा, "फौलाद के छोटे-छोटे टुकड़े तो पानी में डूब जाते हैं, फिर फौलाद के बने जहाज़ क्यों नहीं डूबते?" मैंने उसे समझाने की बहुत कोशिश की; लेकिन उसके दिमाग़ में वह बात चित्र-जैसी स्पष्ट न हुई। कुछ दिनों के बाद जब वह पानी के टब में नाव चला रहा था, मैंने पानी में एक भारी पेपर-वेट और काँच का बर्तन छोड़कर दिखाया कि पेपर-वेट तो डूब गया; पर बर्तन जो उससे भी भारी था, नहीं डूबा। तब जॉन के लिए यह बात स्पष्ट हो गयी। थोड़े दिनों बाद मैंने उसे अपने से एक बड़े आदमी को यही सवाल अच्छी तरह से समझाते हुए सुना।

आप शायद कहेंगे कि इसके लिए तो बहुत समय और धीरज की ज़रूरत है। समय की ज़रूरत नहीं, पर धीरज की तो है। सभी माँ-बाप अपने बच्चों के प्रश्नों का जवाब देने में, उन्हें अनुशासन सिखाने में और उनके दिल बहलाने में बहुत समय देते हैं। हमने भी उतना ही समय दिया, पर इस समय का उपयोग किया। जो कुछ जॉन पूछता था, उससे हम ऐसे खेल बनाते कि साथ ही किसी नयी चीज़ की खोज में एक नया रास्ता उसे मिल जाता। बचपन में एक स्वाभाविक ऐसी चेष्टा होती है कि माँ-बाप अगर थोड़ा-सा भी ध्यान दें तो बहुत-सा काम अपने ही वेग से आसानी से हो जाता है।

जॉन को सिखाते-सिखाते हमें एक बहुत बड़ा सबक़ यह मिला कि अगर बचपन में ही अच्छी आदतें न डाली जायें, तो पीछे जब उसकी दिलचस्पी का कोई काम नहीं मिलता और वह शरारत करता है, तब उसे सुधारने में बहुत अधिक ताक़त व समय खर्च करना पड़ता है।

जॉन कोई ख़ास बुद्धिमान् लड़का नहीं है। दूसरे लड़कों का बचपन जैसे खेलकूद और शरारत में बीतता है, वैसे ही उसका भी बचपन बीता। हमारी सिर्फ़ यही कोशिश रहती कि उसकी स्वाभाविक दिलचस्पियों को समझकर उसे ऐसा काम दें, जिससे उसे आनन्द भी आवे, और उसके भावी जीवन के लिए कुछ पूँजी भी इकट्ठी हो। लेकिन उसे यह मालूम न हो कि हम उसे तालीम दे रहे हैं।

हमने जॉन के साथ ठीक वैसा ही बर्ताव किया जैसा कि बड़ों के साथ करते हैं। हमने कभी उसे सस्ते या बेकार खिलौने देकर उसका अपमान नहीं किया। हमने यह निश्चय किया था कि जहाँतक हो सके, हम उसको बड़ों के काम में आने लायक काम की चीज़ें ही देंगे। जब उसने हमसे मिस्त्री के औज़ार माँगे, हमने उसे

एक पूरा सेट दिया। इससे उसने क़ीमत समझना सीखा। हमारा हुआ।

उसने बहुत तक़लीफ़ से कुछ पैसे और उनसे हाथ से छापने का एक टाइप लिये। थोड़े दिन बाद मैंने कि इसे जो सीखना है, वह तो सीख साथ-साथ कुछ पैसे भी क्यों न मैंने उससे कहा—"चलो, हम छापा- और अपने पड़ोसियों का छपाई का काम लें।" इसके लिए कुछ और पैसे पड़े। हम दोनों इस व्यापार में रोज़ शाम को और इतवार को मैं उसकी मदद करता रहा। इसीके ज़रिये मैंने उसे धीरे-धीरे व्यापार में पूँजी लगाना, उसका उपयोग करना और उसके फायदे आदि के सब नियम सिखा दिये।

असल बात तो यह है कि हमें समझना है कि जबसे बच्चा बोलने और चलने लगता है, तभीसे उसकी तालीम शुरू हो जाती है, न कि जब वह स्कूल में भर्ती होता है तबसे। हमें उसके खेलकूद, उसकी रुचि, उसकी जिज्ञासा सबसे पूरा-पूरा लाभ उठाकर उसका विकास करना है। जब हम यह मानकर चलेंगे कि बच्चों के मन का विकास एक गंभीर साधना की वस्तु है, तभी उसका मन हमारी कोशिशों से विकसित होगा।

ये जेलखाने !

[रामकृष्ण खद्दरजी]

की पाठशालाओं में शिक्षा दे-दे निर्जीव गुलाम तैयार किये जाते मनुष्य तैयार होते हैं जो जन्म भर शरीर से माँदे रहते हैं जो समाज मचानेवाले, समाज का नियम भंग और अनागरिक होते हैं। इस अशांति आज की शिक्षा ही है। शान्ति की कहाँ जारही है! जो शाला बालक स्वास्थ्य के लिए कुछ नहीं कर सकती नहीं, जेल है। शालाओं का सर्व- है बालक के स्वास्थ्य की रक्षा और शरीर का विकास करना और मनुष्य की को निकालकर उन कारणों को जिनसे में गुण्डापन आया हुआ है जड़ से

शालाओं के मकान सड़ी गलियों में एकदम शहर के बाहर खुली हवा में । दिन का सबसे उपयोगी समय में व्यतीत करता है। बालकों को सीलवाले और जहाँ कभी सूर्य का प्रकाश न पहुँचे ऐसे स्थानों पर शिक्षा देना भारी अपराध है—इन भोली आत्माओं के साथ विश्वासघात करना है। बाल-शाला के लिए मकान स्वच्छ, प्रकाशवाले और खूब हवादार होने चाहिएँ।

भविष्य के लिए शान्तिप्रिय मनुष्य तैयार करने हैं तो शाला में शान्त वातावरण उपस्थित करिए। ट्रामगाड़ियों की, घोड़ागाड़ियों की, मोटरों की घड़घड़ाहट और सौदेवालों की चीख-पुकार में बालकों का शान्तिप्रिय बनाने के सपने बेकार हैं। अतः शाला का बातावरण इन झंझटों से दूर ही होना चाहिए।

दूसरी बात है शाला का सामान। शाला के कमरे को मेज़ों-कुर्सियों से भर देना बालकों के स्वतंत्र हलन-चलन में बाधक है। बालकों के लिए छोटी-छोटी चौकियाँ और छोटे-छोटे आसन हों जिन्हें बालक जी चाहे जैसे उठाकर जहाँ चाहें वहाँ बैठकर काम कर सकें।

बालकों के पहिरावे में भी शाला ही को परिवर्तन करना होगा। जिनके पहिनने या उता-

रने में बालक को दूसरों की सहायता लेनी पड़े ऐसे कपड़ों को फौरन दूर कर देना चाहिए। भिंचे हुए और अधिक कपड़े बालकों के शरीर-विकास की दृष्टि से हानिकर हैं। बालक ऋतु के अनुकूल कपड़े पहिनता है या नहीं, स्वच्छ कपड़े पहनता है या नहीं, आसानी से पहनने और उतारनेलायक पहनता है या नहीं अथवा अधिक और भिंचे कपड़े तो नहीं पहनता, इसका निर्णय माता-पिताओं और शालाओं को ही करना है। शालाओं को माता-पिताओं से लड़ना पड़ेगा और इसका नफ़ा-नुक्सान माँ-बापों के दिमाग़ में बैठाना होगा।

शालाओं को बालक के अंग-प्रत्यंग को भी साफ़, स्वच्छ और स्वस्थ रखने के लिए भगीरथ-प्रयत्न करना पड़ेगा। माता-पिताओं को इसके लिए समझाना और राह दिखाना होगा। जबतक इन बातों के लिए परिश्रम नहीं किया जायगा तबतक आज के बालक और भावी प्रजा रोग से मुक्त नहीं हो सकते; और तबतक दवाखानों का बोलबाला बना ही रहेगा।

जिस प्रकार रोगी बालकों के लिए दवाखाने हो गये हैं उसी प्रकार मन के रोगों के लिए जेलखाने हैं। कोई गुनाह करने पर ही कोई क़ैदी बनता है और कोई भी गुनाह किसी भी व्यक्ति के मानसिक रोग का द्योतक है। आज की शिक्षा से बालकों में गुनाह की आदत पड़ती है। सजा के डर से गुनाह की वृत्ति छिप अवश्य जाती है, जड़-मूल से नहीं जाती। यदि मन के रोग मिटाने का काम आज की शाला ले ले तो जेलखाने भी बन्द हो सकते हैं। आज के शिक्षा-शास्त्रियों को कोई काम करना है तो यही कि जिससे सब जेलख़ाने शालाओं में बदल जायें और क़ैदियों के बदले भविष्य में अच्छे और उपयोगी नागरिक बन सकें। हमारी आज की शालाएँ ही बहुत अंश तक जेलों के लिए जिम्मेदार हैं। हम अपनी मान्यताओं को बालकों पर लादने के लिए ही इनाम और दण्ड का सहारा लेते हैं। बालकों के मन की यह स्थिति उसके लिए जेल के प्रथम दण्ड जैसी है। बालक की पहली जेल शाला है। शाला में उसको क़ैदी की तरह शिक्षा के कब्जे में रक्खा जाता है। जब तक शालाओं में मानसिक रोगों को डाक्टरी दृष्टि से दूर करने के शास्त्रीय साधन प्रयोग में नहीं आते, तबतक वे जेलखाने ही रहेंगी। वे सरकारी जेलखानों के लिए क़ैदी ही तैयार करती रहेंगी।

गणित, भूगोल या इतिहास जैसे विषय सिखानेवाली शालाएँ शालाएँ नहीं हैं। इस प्रकार के विषयों की शिक्षा तो मनुष्य किसी भी स्थान पर ले सकता है। इससे मनुष्य जाति का कभी कल्याण नहीं हो सकता। इस प्रकार के योग से कभी जेलखाने और दवाखाने बन्द नहीं हो सकते। शाला तो वही है जो बालक के अन्दरसे गुनाह की वृत्तियों को निकालकर उसको नैतिक बल और शारीरिक बल प्रदान करे तथा अच्छा नागरिक बनावे एवं मनुष्य में जितनी सुप्त शक्तियाँ हैं उनका सम्यक् विकास और पोषण करे।

कितने ही बालक घर के वातावरण से या आनुवंशिक संस्कारों से ज़रा रास्ते से बाहिर चलने लगते हैं। उनके भी ठीक-ठीक इलाज की जरूरत है। 'तूफानी' बालक शिक्षा के लायक़ ही हैं यह हमको मानना पड़ेगा। किन्तु 'जिनको हम तूफानी बालक के नाम से पुकारते हैं, उनका तूफान बहुत बार शिक्षण-पद्धति के विरुद्ध उनका व्यक्तिगत विद्रोह ही होता है।' मानसिक रोग का एक-मात्र इलाज शिक्षण ही है।

शिक्षा-शास्त्रियों को इस ओर ध्यान देना होगा और शालाओं में उपयुक्त शिक्षण-पद्धति प्रचलित करनी होगी। जबतक किसी देश में दवाखाने और क़ैदख़ाने हैं तबतक समझना चाहिए कि वहाँकी शिक्षण-पद्धति में कोई-न-कोई दोष अवश्य है। किसी भी देश में अधिक-से-अधिक दवाखानों और जेलखानों का होना वहाँ के शिक्षा शास्त्रियों के लिए कलंक है। इस कलंक को दूर करने के लिए शिक्षा-शास्त्रियों को उचित दिशा में प्रयास और भगीरथ-प्रयत्न करना चाहिए।

अश्लीलता पर कुछ व्यावहारिक सुझाव

ादक जी,

बार में कुछ और लिखता पर मशरूवाला ापेक्षवाद' ने मेरी कुछ कठिनाई मेरे ा दी है। उसे लाँधकर बढ़ना मुश्किल

ी में दो चीजें हैं : विचार और कर्म। ं तो ये दो नहीं होनी चाहिएँ। उनमें म्बन्ध होना चाहिए। करना विचारने त होना चाहिए। पर प्रायः विचारक रहते हैं और कर्म-पक्ष उनमें मूर्च्छित हो ं। और कर्मठ हैं जो विचार का कष्ट नहीं दुनिया के लोगों में इनका सन्तुलन और विरल है। सबमें इनकी तरतमता ही ं है।

ां एक बात साफ है। विचार व्यक्तिगत ैसा व्यक्तिगत नहीं रहता। कर्म पर ों भी रोक-थाम है। विचार पर भीतरी न ही हो सकती है। कर्म परस्परता उत्पन्न ै। प्रत्यक्ष हिसाब में आता है तो कर्म। ो दीखता भी नहीं। विचार और भावना करण तभी तो भीतर अलक्ष्य रखे गये र्म के उपकरण हमारे दीखनेवाले अंगो- ैं।

ार से मैं यह परिणाम निकालता हूँ विचार और भावना की समस्याओं को खबारी लिखा-पढ़ी नहीं की जानी चाहिए। सामुदायिक यानी व्यवहार की होकर ही निक पत्रों द्वारा विचारणीय बनती है। किसी प्रश्न को शास्त्रीय रूप नहीं मिल चाहिए। वह शास्त्रीय बना कि खोया भी फिर वह विवाद के भँवर से छूट नहीं ।

भी खयाल नहीं था कि अश्लीलता की में पड़ूंगा। ऐसे प्रश्नों की चर्चा हो ही मक होनी चाहिए। यानी अश्लीलता को पहनाना नहीं, बल्कि उसका निराकरण करना हो, तभी चर्चा छिड़े तो उसमें योग दिया जा सकता है। अश्लीलता की चुनौती यह नहीं है कि उसे जानो, वह तो यह है कि उसे जीतो।

मुझे अचरज हुआ था कि श्री मशरुवाला इस प्रश्न को विचार में नीचे उतारकर अमल की सतह से यह दूर क्यों खींच ले चले? तथ्य पाने चला जायेगा तो अश्लीलता तो एकदम अतथ्य वस्तु निकलेगी, और इस ढंग से देखने पर वह वीर्य-व्यय के साथ नहीं बल्कि असत्य के, कपट के साथ जुड़ी हुई पायी जायेगी। मैं अब भी मानता हूँ कि देह से या वीर्य से उसका सम्बन्ध नहीं, मन के मैल से उसका सम्बन्ध है। और हम भारी भूल करेंगे अगर देह से चिपटा हुआ उसे देखेंगे।

न न, विचार में सापेक्षवाद को कोई मौक़ा नहीं। दो और दो चार ही हो सकते हैं। न एक अंश कम, न एक अंश अधिक। चार के कितने भी आसपास हो, वह संख्या ग़लत ही कहलायेगी; दो और दो के योगफल के रूप में एक और अकेला चार ही होगा जो सही उत्तर होगा। इस धरातल पर बाल-बराबर फ़र्क़ भी असह्य होना चाहिए। यहाँ का अपेक्षावाद विचार-शिथिलता का ही दूसरा नाम है।

अर्थात् पदार्थ-विवेचन और तत्त्व-निर्णय का जहाँ प्रश्न है वहाँ कोई दूसरी और अपेक्षा नहीं है : वहाँ बस मैं हूँ और मुझपर प्रतिफलित सत्यानुभूति है। किन्तु यह व्यक्तिगत तल की बात है। सत्य को कोई चुका नहीं सकता। सबको सत्य की एक झाँकी ही प्राप्य है। आदमी को अधिक-से-अधिक इतना ही हक़ पहुँचता है कि वह अपनी झाँकी पर प्राण दे दे, पर उसे इन्कार न करे। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण सत्य के प्रति व्यक्ति का सम्बन्ध उपासना, प्रार्थना और आराधना का ही हो सकता है। स्वानुभवित सत्यांश के आग्रह में हाँ प्राण भी निछावर किये जा सकते हैं।

क़िन्तु उस व्यक्ति-धर्म के धरातल से उतर-

कर हमें प्राप्त होती है : अहिंसा। व्यवहार-धर्म वह है। कहना चाहिए कि सामाजिक मनुष्य का सत्य अहिंसा है। व्यक्तिगत भूमिका से अलग जब सामाजिक भूमिका पर किसी समस्या का विचार प्रस्तुत हो तो उसके लिए कसौटी अहिंसा हो सकती है, न कि सत्य।

इस ऊपर की बात पर ज्यादा ज़ोर भी कम है। यदि हम किसी विचार को कर्म में सफल करना चाहते हैं तो उसका मतलब यही है कि उस विचारणा द्वारा हम अहिंसा को सिद्ध करना चाहते हैं। यह व्यवहारोपयोगी विचार-प्रयोग की सीमा और शर्त है।

व्यवहारोपयोगी विचार शास्त्रीय और वैज्ञानिक विचार से भिन्न हैं। विज्ञान में और दर्शन आदि शास्त्रों में विचार स्वयम् अपना इष्ट हो सकता है। वहाँ कर्म द्वारा उसके समर्थन की अपेक्षा नहीं है। वह निरपेक्ष है। किन्तु व्यावहारिक विचार निरपेक्ष हो सकता ही नहीं है; न उसे होना चाहिए।

शास्त्रीय विचार में अपेक्षावाद नहीं चल सकता। वहाँ सापेक्षता का इस्तेमाल है भी तो, निषेध (elimination) के प्रयोजन से।

पर व्यवहार की तो शर्त ही अपेक्षावाद है। मैं ही सच्चा हूँ, यह मानकर चलने से तो अगले कदम पर झगड़ा आ जायेगा। इसलिए मानना पड़ेगा कि वह भी सच्चा है और तुम भी सच्चे हो। सब अलग-अलग कहते हैं। पर सब अपने ढँग से ठीक भी कह सकते हैं।

श्लील-अश्लील का प्रश्न ब्रह्मचर्य-अब्रह्मचर्य का प्रश्न नहीं है। पहला सामाजिक है; दूसरा व्यक्तिगत। ब्रह्मचर्य की परिभाषा श्लीलता की परिभाषा नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य परम धर्म है। वह मुक्ति तक साथ है। श्लील-अश्लील की व्याप्ति थोड़ी है। सामाजिक से बाहर उस प्रश्न की स्थिति नहीं है।

लोक-मर्यादा और लोक-शिष्टता से अश्लीलता के प्रश्न का सीधा सम्बन्ध है। उसमें पारिवारिक शील की रक्षा का प्रश्न गर्भित है। हमको जानना चाहिए कि समाज परिवारों को लेकर बनता है और परिवार विवाह पर बनता है। परिवार में माता-पिता और पुत्र-कन्या आदि होते हैं। स्पष्ट है कि परिवार को मिटाकर समाज नहीं बन सकता और विवाह को मिटाकर परिवार नहीं फल सकता।

ब्रह्मचर्य तो परम-धर्म है। उसका दायित्व ऐहिकता पर समाप्त नहीं है। ब्रह्मचर्य के ख़िलाफ यह दलील नहीं दी जा सकती कि उससे फिर समाज कैसे चलेगा ! व्यक्ति को सामाजिक नहीं, वरंच उससे भी आगे समष्टिगत यानी सर्वात्मरूप बनाने की साधना ब्रह्मचर्य की है। इससे एक जगह जाकर ब्रह्मचर्य की परिणति ज़ाहिरा असामाजिक भी दीखती है।

पर मैं मानता हूँ कि श्लील-अश्लील को ब्रह्मचर्य के रूप में देखना भूल से खाली नहीं होगा। अगर वीर्य-दमन को श्लीलता की कसौटी माना जायेगा तो उससे व्यवहार सँभलेगा नहीं, बल्कि उल्टे गड़बड़ में पड़ जायेगा। सास अपनी बहू को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे तो क्या हमें उसे अश्लील मानना होगा ? मश्रुवालाजी की बतायी कसौटी व्यवहार का नहीं काम देती और वह लोक-नेतृत्व की कुशलता में से नहीं निकली है—यह मानने के कारण ही उस बारे में कुछ लिखना पड़ा था। वीर्य-रक्षण उपादेय है ही, पर लक्षण के रूप में और तो और वह ब्रह्मचर्य का लक्षण भी नहीं कहा जा सकता। उसको लक्षण मानने से लाभ से अधिक ब्रह्मचर्य की हानि ही हुई है। अश्लीलता के प्रसंग में तो वह एक दम असंगत है ही।

पति-पत्नी स्वेच्छित भाव से भाई-बहन के तौर पर रहने लगें, तो मेरे लेखे यह अपने आप में सचमुच बहुत इष्ट बात हो। पर अश्लीलता के विरोधी को आवश्यकरूप से इसी का उपदेश करने में नहीं लग जाना होगा। एक सद्गृहस्थ अश्लीलता का विरोध कर सकता है, बल्कि सच पूछिए तो यह गृहस्थों का ही काम है। अश्लीलता कौटुम्बिक मर्यादा और शील की जड़ों

जा रही है। कुटुम्ब की पवित्रता की ही अश्लीलता की बाढ़ से लड़ना और र्य है। लेकिन अश्लीलता यदि वीर्य- दि किसी स्थूलता से जोड़ी जायेगी तो यह नहीं देखते कि उससे तो फिर की नींव ही उखड़ जायेगी। अरे, पिता तो पुत्री के शील की चिन्ता इसीसे तो है ता है। क्या अपनी कन्या के सम्बन्ध हम याद दिलाना चाहेंगे कि वह पिता ! हम कृपया कोई ऐसी बात न करें कि को अपने ऊपर लज्जित होना पड़े।

लीलता से बचने की दिशा में पहली यह बताना है कि अपने प्रति र रहो। कोई पुस्तक पढ़ते हो तो मत। दुष्कर्म कुछ बनता भी है तो झूठ ो। छिपो मत, चुराओ मत। दुर्गुण है, साधुता की ओट उसे मत दो। विकार ते तो ऐसे ही। अन्यथा मनको मैला ोट को कसा रखने से कुछ न होगा।

जनिक रूप से अश्लीलता के प्रति अरुचि करनी होगी; क्योंकि वह तो पाप भी नहीं गंदगी है। साहित्य में की अश्लीलता को है तो साहित्यिकों से बहस नहीं मोल ी, बल्कि उन्हीं से कहना होगा कि तुम ा मानते हो, वही तो तुम्हारी उज्ज्व- विकास को रोक रहा है। साहित्य के को मौका देना होगा कि अपने क्षेत्र की े खुद ही पायें और खुद ही उसे दूर उसकी परिभाषा बनाकर नहीं देनी स्वयम् अपनी परिभाषा बना लेने देना नेतृत्व के लिए हम लोगों पर आरोप नहीं आ सकते। वह काम हम स्वयं उनके हृदय की वाणी बनकर सहज है।

अहिंसा का शब्द आगया है। कट्टरता है। अहिंसक में अधिकाधिक स्थितियों है। अहिंसक की सहानुभूति से कोई वंचित नहीं हो सकता। बल्कि जो पतित है अहिंसक उसके आगे उतना ही अनुतप्त है; क्योंकि हरएक का पतन उसे अपना दोष लगता और प्रभु-प्रार्थना में लीन करता है। कोई हमसे कटकर लूट जाता है तो वही मानो हमारी अहिंसा को चुनौती है। इससे यदि लोक-जीवन को सँभालने के लिए चलना है तो उसपर ऊपर से कुछ डालना नहीं, बल्कि भीतर से ही कुछ उभारना होगा। नीति के सूत्र देने से अधिक नैतिक जाग जगाना इष्ट है।

मैं सोचता हूँ कि इस स्थल पर यह विचारना अधिक उपयोगी होगा कि अश्लीलता के प्रतिकार के लिए किस सार्वजनिक उपाय का अवलम्बन किया जाये? भारत की कोई केन्द्रीय साहित्य-संस्था काम करती हुई हमारे पास नहीं है। भारतीय-साहित्य-परिषद् जब थी, तब गांधीजी की प्रेरणा से उस ओर दिशा-दर्शक एक प्रस्ताव भी स्वीकृत किया गया था। पर काका के शब्दों में वह परिषद् तो सुला दी गयी। राष्ट्र-भाषा की भी कोई हिन्दुस्तानी संस्था नहीं है। तब प्रयाग का हिंदी-साहित्य-सम्मेलन है। क्या उसके द्वारा प्रयत्न किया जाये? सोचना चाहिए कि अपने अगले अधिवेशन में क्या वह इस दिशा में कुछ दिशा-दर्शन दे सकता है? दूसरे लोग अपनी भाषा या अपने प्रभाव के क्षेत्र में क्या कर सकते हैं यह देखें। सम्पादक की हैसियत से आपसे विनय है कि विवेचन से हटकर व्यावहारिक रूप से हिन्दी के क्षेत्र में क्या और कैसे कुछ किया जा सकता है, इसपर कृपया ध्यान दें। और 'जीवन-साहित्य' द्वारा अन्य हितैषियों से सुझाव माँगें।

इस आलोचन-विवेचन का यदि कोई अमली परिणाम निकल सका तो वह भी क्षम्य और सार्थक हो जायेगा। नहीं तो इससे पहले कि विवाद तर्क-विलास का रूप ले, उसे समाप्त कर देना चाहिए।

दिल्ली
२४-९-४१

विनीत
जैनेन्द्रकुमार

हमारी सांप्रदायिक समस्या : एक व्यावहारिक दृष्टिकोण

[जवाहिरलाल जैन]

'हिन्दू पानी', 'मुसलमान रोटी', 'मुसलमान पानी', 'हिन्दू मिठाई'—ये आवाज़ें प्रायः हरेक स्टेशन पर रेल में सफर करनेवालों के कान में पड़ती हैं। पर कितनों के दिल को इन आवाज़ों को सुनकर धक्का लगता है ? प्रकृति के द्वारा सबको मुफ्त में मिलनेवाले पानी और मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता रोटी पर भी हमारे अभागे देश में साम्प्रदायिकता का ट्रेडमार्क लगा रहता है ! ये आवाज़ें कितनी अमंगल हैं ! हमारी साम्प्रदायिकता का कैसा घृणित और नंगा चित्र है यह !

हिन्दू लोग गर्मियों में जनसाधारण को पानी पिलाने के लिए धर्मार्थ प्याउएँ लगाया करते हैं। बड़ा लोकोपकारी और प्रशंसनीय कार्य है—इसमें दो मत नहीं हो सकते। प्यासे को पानी पिलाना और भूखे को रोटी देना—हरेक धर्म में पुण्य माना गया है, किन्तु इसमें भी हम लोग साम्प्रदायिकता और अहंकार से नहीं बच पाये ! ऊँची जातियों के समझे जानेवाले लोगों को यहाँ गंगासागर से पानी पिलाया जाता है और नीची जाति के समझे जानेवालों के लिए एक नाली की व्यवस्था और होती है। गंगासागर से नाली में पानी डालते हैं और उसी पानी को वे लोग पी सकते हैं। ये नालियाँ प्रायः टीन की होती हैं और आम तौर पर गंदी, टूटी हुई और भद्दी ! उच्च से उच्च श्रेणी के मुसलमान और शिक्षित-से-शिक्षित इतरजातीय हिन्दू को इसी नाली का पानी पीना पड़ता है। क्यों ? शायद ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के अतिरिक्त और लोगों को गंगासागर से पानी पिला देने पर हिन्दुओं का धर्म नष्ट हो जाता है ! क्या हमने कभी इसका विचार किया है कि इस तरह के बर्त्ताव से किसी भी स्वाभिमानी मुसलमान अथवा तथाकथित स्पर्श और अस्पर्श्य शूद्र के चित्त को कितनी ठेस पहुँचनी चाहिए ? यदि यही बर्ताव हमारे साथ हो तो ?

अभी कुछ दिन पहले पंजाब एक्सप्रेस द्वारा कलकत्ते से दिल्ली आते वक्त एक विचारोत्तेजक घटना हो गयी। थर्डक्लास के डिब्बे में मेरे बराबर कई मुसलमान सज्जन बैठे हुए थे। एक भाई ने स्वयं उठकर अपनी जगह मुझे दे दी, जहाँ मैं रात को अपनी पीठ सीधी कर सका। और उसने दूसरी जगह शायद किसी मित्र के पास बैठकर रात काटी। भीड़ बराबर बढ़ती जा रही थी। बैठने की तो बात ही कहाँ, खड़े रहने भर को जगह न थी। इतने में एक हिन्दू युवक आया। जब उसें कहीं जगह न मिली तो वह उक्त मुसलमान सज्जन के ट्रंक और बिस्तर पर बैठ गया। वे सब बैठे-बैठे घंटों बातचीत करते रहे, जिसमें उस हिन्दू युवक तथा आस-पास के हिन्दू-मुसलमान सभी ने हिस्सा लिया। अचानक और सम्भवतः अनजान में उक्त मुसलमान ने अपने सामान पर बैठे हुए हिन्दू मित्र से कहा—'भाई ज़रा यह लोटा टोकरी में रख देना।' टोकरी उस हिन्दू के पास ही लटक रही थी। हिन्दू भाई का हिन्दुत्व, जो शायद अबतक सो रहा था, जाग पड़ा। उसने फौरन इन्कार कर दिया और कहा—मुसलमान का बर्तन छूने से मेरी तो जात चली जायेगी। वह मुसलमान शायद सैनिक या पुलिस नौकरी में था। एकदम क्रोधित हो उठा और उसने धक्का देकर हिन्दू से कहा—रातभर मेरे बिस्तर आराम करने से तेरी जात नहीं गयी और मेरा लोटा उठाकर रख देने से वह चली जायेगी ! हिन्दू दीनतापूर्वक बिस्तरे से हटकर खड़ा हो गया और अपनी जाति रहने और जाने के बारे में इससे ज्यादा और कुछ न कह सका—हम धर्म के विपरीत काम कैसे करें ? इतने में एक मौलवी साहब उस मुसलमान से बोले—'अरे ! यह बहुत अच्छा हुआ जो उस हिन्दू ने तुम्हारे लोटे को नहीं छुआ। वर्ना हिन्दू के छू लेने से तुम्हारा बर्तन नापाक हो जाता !

अक्सर देखा है कि हिन्दू और मुसलमान पर बैठे हैं। अगर हिन्दू को पानी भी तो वह उस फ़र्श से उठकर अलग चला या मुसलमान स्वयं उस फ़र्श को छोड़कर जायेगा। इस छुआछूत की एक और होती है। मुसलमान हिन्दू के लिए पीने की चीज़ लाकर नहीं दे सकता कूट आदि के लिए छूट है। यह भी है कि मियाँ साहब लगे हुए पान या धागे से लटकाकर लम्बा हाथ किये जी के वास्ते लिये चले आ रहे हैं !

उदाहरण योंही दैनिक जीवन में से रख दिये गये हैं। ये घटनाएँ रोज़मर्रा और साधारण लगती हैं, परन्तु इनपर करने की ज़रूरत है। कोई मुसलमान दलित हमारे भोजन को छू ले तो भोजन हो जायेगा। अगर उसके कपड़े हमारे पात्रों से लग जायें तो भोजन फेंकना अगर उसकी छाया भोजन पर पड़ जाये में ग्लानि उत्पन्न हो जायेगी। क्या यह का अपमान नहीं है? अगर कोई ज्यादा गंदा रहता है, या रोगी है या के कपड़े गंदे हैं तो इस तरह की छुआछूत स्वास्थ्य की दृष्टि से समर्थन किया जा है, किन्तु दूसरी जाति या मजहबवालों के जो इस देश में ताने और बाने की तरह गुथे इस प्रकार का व्यवहार अक्षम्य है।

ऊँच-नीच की यह भावना जहाँ एक ओर का पोषण करती है वहाँ दूसरी ओर घृणा या गुलामी के भावों को दृढ़ करती दोनों ही निःसंदेह हमारी सामाजिक और उन्नति में अड़चनें हैं।

के उत्तर में लोग दलीलें पेश कर सकते सब रिवाज नये तो नहीं हैं। यह तो हज़ारों वर्षों का प्रचलित व्यवहार है। जब मुसलमान इस देश के शासक थे, तब बर्ताव चालू थे ही, तो फिर अब इनके आवाज़ उठाना मुसलमानों और दूसरी जातियों को भड़काने के बराबर है या नहीं? तीसरे, जिन लोगों के प्रति इस प्रकार का बर्ताव किया जाता है वे स्वयं इसका विरोध नहीं करते तब दूसरों का उनकी वकालत करने को खड़ा हो जाना 'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्तवाली' बात है।

ये सारी दलीलें नैतिक दृष्टिकोण से तो बेकार हैं। सबसे पहला सवाल यही है कि उक्त व्यवहार न्यायपूर्ण है या नहीं? क्या यह बर्ताव अपमानमूलक, अन्याययुक्त और मानवता के प्रतिकूल नहीं है? जब इस प्रकार का व्यवहार नैतिक दृष्टि से मान्य नहीं, तब चाहे वह पुराना हो चाहे नया, चाहे लोग उसे निर्विरोध मानते हों या नहीं, वह अनुचित है, बुरा है, अतः त्याज्य है।

कोई बुरी बात सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है तो इसी कारण से वह ग्राह्य नहीं हो सकती, बल्कि उसे तो हटाना ही हमारा कर्त्तव्य है। यही नहीं, हमारे पूर्वजों द्वारा किये गये दुर्व्यवहार और अन्याय का भी हमें प्रायश्चित्त करना चाहिए। इस प्रकार पुराने ज़माने से चालू अन्याय को दूर करना तो हमारे लिए और भी ज्यादा ज़रूरी है।

दूसरी दलील ज़रा विचारणीय है। मुसलमानों ने अपने शासन-काल में इस प्रकार का बर्ताव कैसे चलने दिया? इस विषय में पहली बात जो मेरे ध्यान में आती है वह यह है कि कि तत्कालीन मुसलमान शासक बड़े उदार-हृदय तथा सहिष्णु थे। वे अपनी प्रजा के धार्मिक भावों और आचार-विचारों का बहुत अधिक ध्यान रखते थे। वे हमेशा इस बात की पर्वा रखते थे कि कहीं उनकी हिन्दू रिआया का दिल न दुखे। दूसरी बात यह है कि उस समय मुसलमानों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी थी। हिन्दू-मुसलमानों का सम्पर्क विशेषतः नगरों में था और वह ऊँचे दर्जे के लोगों में। उन लोगों का इख़लाक़-व्यवहार इतना शिष्टतापूर्ण था कि वे एक दूसरे के भावों को ठेस लगने का मौक़ा नहीं आने देते थे। वे लोग एक दूसरे के त्योहारों,

ब्याह-शादियों आदि में बड़े शौक से शामिल होते थे ।

पर अब वह बात नहीं है । आज मुसलमान साधारण प्रजा के रूप में हैं । शासक के रूप में जो उदार भावना उनमें पहले थी, उसकी अब अपेक्षा नहीं की जा सकती । आज अल्पसंख्यक जाति के रूप में मुसलमान हिन्दुओं से उदारतापूर्ण व्यवहार की आशा करते हैं । बात यहीं तक सीमित नहीं है । आज एक दूसरे की ईमानदारी पर शक पैदा होगया है और मुसलमानों तथा दूसरी जातियों में हीनत्व-भावना (inferiority complex) ने घर कर लिया है । अबतक ये लोग इस प्रकार के व्यवहार को चुपचाप सहन कर लेते थे । अब पढ़े-लिखों, अधपढ़ों और अनपढ़ों में भी इस प्रकार के व्यवहार के प्रति विद्रोह का भाव उठ खड़ा हुआ है । पाकिस्तान और द्राविड़िस्तान आदि इसी लघुत्व-भावना के मूर्तरूप हैं ।

आज सभी को आत्मचिंतन और गंभीर विचार की आवश्यकता है—खासकर उच्चवर्ण समझेजानेवाले हिन्दुओं को । दूसरे लोग अबतक उदारतापूर्वक इनके व्यवहार को सहते आ रहे हैं, किन्तु इन्हें तो अपने अनौचित्य को दूर करना ही चाहिए । जो-जो व्यवहार हमें अनुचित मालूम दें, उन्हें पहले-पहल खुद ही दूर करें, तो साम्प्रदायिक ऐक्य के महान् कार्य में वास्तविक सहायता दे सकते हैं । पाकिस्तान, सिक्खिस्तान द्राविड़िस्थान, द्विराष्ट्र-सिद्धान्त, संघ-विधान, अनिर्दिष्ट अधिकार (Residual Powers) आदि बड़ी-बड़ी बातें और चक्करदार विचार तो बड़े आदमियों—क़ायदेआज़मों और वीरकेसरियों के लिए ही छोड़ दें ।, उन्हें ही इन महान् योजनाओं के आसमान में विहार करने दें तो ठीक है । हम लोग—ज़मीन पर चलने और रहनेवाले साधारण हिन्दुस्तानी हिन्दू-मुसलमान—रोज़मर्रा के बर्ताव और व्यवहार, आपस के रहन-सहन के तरीक़ों पर ही विचार करके उन्हें सुधारें । जो-जो बातें हमें अनुचित, अन्याययुक्त और दूसरों के दिल को दुखानेवाली लगें, उन्हें दूर करने का स्वयं ही प्रयत्न करें और इस तरह भले पड़ौसियों की तरह रह सकें तो इस क्षुब्ध वातावरण में हम अपने देश के इस जटिल प्रश्न को हल करने में व्यावहारिक सहायता दे सकते हैं और हिन्दुस्तान की बड़ी-से-बड़ी भलाई कर सकते हैं ।

यह तिरस्कार !

तरस आता है, उन कलाकारों पर, जो आज जब उनका देश जल रहा है पेट और फूट की ज्वाला में, नंगे होकर ठिठुर रहा है, जल रहा है शीत की रात में, ग्रीष्म के दिन में—तब वे यौवन, सौन्दर्य, प्रेम के विलास में ही अपने को डुबो डालना चाहते हैं ! भविष्य जब देश का इतिहास लिखने बैठेगा, तो वर्तमान के ये कलाकार क्या उत्तर देंगे ?

भविष्य पूछेगा उनसे जब तुम्हारे देश में आग लगी थी, एक प्रहर, आधे पेट खाकर किसान मरते थे, देशव्यापी सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़ा हुआ था, तब तुमने क्या दिया उसे ? **तुम्हारा तो काम उस मूक पंगु जनता के नेतृत्व का था ?** तब तुम आकाश के तारे गिनते रहे ! उस समय, तुम्हारी सहृदयता निर्झर के सौन्दर्य में बहती रही, तुम्हारी भावना नग्न सौन्दर्य के चित्रण में लगी रहीं **अमर साहित्य की रचना में, यशोलिप्सा में ?** क्या यही धर्म था तुम्हारा ? उस समय, क्या जवाब देंगे ये हमारे कलाकार ?

संसार लिखेगा अपने इतिहास में कि ये जीवन-संघर्ष से भागनेवाले; भोगवादी साहित्यकार थे, इन्हें अपनी जाति से कोई सरोकार न था ।

यह तिरस्कार ! यह लाञ्छन क्या सह सकेंगे वे ? मैं जानना चाहता हूँ इन कलाकारों से ।

—सोहनलाल द्विवेदी—

प्रस्तुत प्रश्न

स्थान

उपन्यास के लेखक श्री सर्वदानन्द
पिता श्री सम्पूर्णानंदजी का भेजा एक
' में छपा है। वह प्रायः ज्यों-
दिया जाता है। —संपादक]

उपन्यास का उद्देश्य समाज के किसी
का चित्र खींच देना हो तब तो कुछ
है, जहाँ बाग़ और मंदिर और प्रासाद
गन्दी नालियाँ भी होती हैं; परन्तु
मान बैठे कि समाज अपूत-नालिका-
केवल गन्दी नालियाँ ही हैं, तो
होगी। फिर कलाकार की दृष्टि में
भी चित्र रहता है। प्राक्कथन में
है कि तुमने अनागत समाज के स्वरूप
किया भी है। यह स्वरूप क्या
तो समझा कि स्त्रियाँ खुद कमाती
क्या यह पर्य्याप्त है या स्वतः कोई
है? आज पुरुष कमाने के बल पर
समझता हो और स्त्री न कमाने
हीन मानती हो; पर केवल दो या
उपार्जन करनेवालों का संयोग
बना सकता। गृहस्थी में हजारों
कर्तव्य पैदा होते हैं, जिनके लिए
पूरा समय देना चाहिए। ये काम
महत्त्व के हैं जितना कि रुपया कमाना।
यह नहीं है कि सब कमाने में लग
यह कि एक कमाये, दूसरा घर सँभाले
का पद समान माना जाये। यदि एक
या कमानेवाला न रहे या पूरे
घर देखनेवाला न रहे तो परिवार,
नहीं चल सकता।

प्रश्न यह हो सकता है कि गृहस्थी
? इस बात को ध्यान में रखकर ही
किया है कि भविष्यत् में खाना-पीना
होगा और बच्चे किंडरगारटन को
जायेंगे। व्यवहार में यह असम्भव नहीं है; परन्तु अभी व्यवहारणीय नहीं है, अर्थात् अभी स्यात् १०००—५०० वर्ष तक इसको व्यवहार में लाना न चाहिए। गृहस्थी की नींव वही है जो तुमने लिखा है: निजी सम्पत्ति उसका आधार है, पुरुष अपनी उपार्जित सम्पत्ति अपनी सन्तति को देना चाहता है, इसीलिए सतीत्व पर उसने ज़ोर दिया इत्यादि। पर यह एक ध्रुव सत्य है कि इस जगत् में प्रगति इसीलिए होती है कि चीज़ें अपने मूल का अतिक्रमण कर जाती हैं। मनुष्य के पूर्वज वानर थे और सभी प्राणियों के पूर्वज त्वगिन्द्रियमात्र एक कोष्टक जीव थे। परन्तु अब मनुष्य इन मूल आकृतियों और स्वभावों से बहुत आगे बढ़ गया है। सदाचार में जो मूर्द्धन्यगुण—आत्मत्याग, सत्य, आस्तेय हैं उनका मूल यही है कि जब मनुष्य जंगलों में रहता था तो बिना आपस में इस प्रकार का बर्ताव किये सामूहिक जीवन असम्भव हो जाता और तत्कालीन हिंस्र पशुओं और विपुल शक्ति-शालिनी प्रकृति के सामने सामूहिक जीवन के अभाव में वैयक्तिक जीवन नष्ट हो जाता। परन्तु अब ये सद्गुण मनुष्य की शोभा हैं। ये जिस मनुष्य में पाये जाते हैं वह इनके स्वार्थ की भित्ति पर खड़े मूल को नहीं जानता। इनको स्वतः श्रेयस्कर मानता है। यदि लोग विश्लेषण करके जड़ तक जायें तो सबका व्यवहार क्षुद्र 'स्वार्थ' में केन्द्रीभूत हो जाये और समाज तथा समाज से ही प्राप्य व्यक्ति का ऊँचा जीवन, व्यक्ति की सभी ऊँची अनुभूतियाँ नष्ट हो जायें।

इसी प्रकार सतीत्वादि की उत्पत्ति चाहे जैसे हुई, ये स्वतः श्लाघ्य गुण हैं और सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की उन्नति के स्तम्भ हैं। यदि निष्पक्ष भाव से देखा जाये, तो सौ में कम-से-कम ५० पुरुषों में पत्नीव्रत पाया जाता है। मैं तो संख्या और ऊँचे रखना चाहता हूँ। स्त्री के जीवन में गर्भाधान से लेकर कुछ वर्षों तक ऐसा समय कई बार आता है जब उनके लिए Sexlife

(सम्भोग) अवाञ्छनीय और अवाञ्छित होती है; पुरुष के लिए ऐसा समय कभी नहीं आता। फिर भी अधिकांश पुरुष शरीरेण व्यभिचारी नहीं होते। फिर भी यदि पुरुष में एकपत्नीत्व की कमी है तो उसे बढ़ाना चाहिए, न कि स्त्री के एक-पतिव्रत को नष्ट करना। **यह विरोध का मार्ग तो है पर ऊँची कला नहीं है। नीचे को उठाना कठिन होता है, उठे को गिराना सुकर।**

मनुष्य के जीवन की उन्नति का रहस्य है संयम अपनी यौन प्रवृत्तियों का, परिग्रह-प्रवृत्तियों का, क्रोध का संयम। संयम में कष्ट होता है, टीस होती है, यही उसमें रस का अंश है। संयम से ही भावों का विकास होता है और कला के विभिन्न विभागों की तथा भक्तिभाव की सृष्टि और पुष्टि होती है। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी कष्ट असह्य हो उठता है, बाँध टूट जाता है। हम ऐसी अवस्था में सहानुभूति से काम लें यह उचित है; पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि यह व्यवस्था कराने का प्रयत्न करें कि बाँध तोड़ ही दिया जाये। यदि यौन प्रवृत्ति का दमन न किया जाये तो परिग्रह-प्रवृत्ति का ही क्यों किया जाये? फिर समाज का रूप क्या होगा? हमारा जीवन केवल अपने लिए है, इस आधार पर समाज नहीं चल सकता और न व्यक्ति ही मनुष्योचित जीवन बिता सकता है। जब जीवन समाज के हितार्थ माना जायेगा—सबके हित के द्वारा ही स्वहित समझा जायेगा—तब गृहस्थी का भी उपयोग समझ में आयेगा।

किंडर गार्टन को सौंप देना बच्चे के लिए ठीक नहीं है। जो लाड़-प्यार उसे घर पर मिल सकता है वह किसी सार्वजनिक संस्था में नहीं मिल सकता और बिना लाड़ प्यार के, बिना अपनेपन के अनुभव के उसके बहुत से गुण विकसित ही न हो सकेंगे। कम-से-कम अभी सैकड़ों वर्ष तक तो यही देख पड़ता है। इसीलिए रूस में परिवार की ढहती हुई दीवारों को फिर से खड़ा करना पड़ा है।

तुम बार-बार लिखते हो कि स्त्री प्रेयसी है। प्रेयसी कहते हैं प्रेमपात्र को। प्रेम करनेवाले में उत्सर्ग, त्याग होता है, प्रेमपात्र में आदान होता है, वह लेना जानता है, परोपजीवी होता है। प्रेयसी का अर्थ हुआ जो प्रेम करना चाहे उसके प्रेम का पात्र अर्थात् श्रुति मधुर शब्दों में 'वेश्या'। यह ऊँचा आदर्श नहीं है।

इन सब बातों का यह तात्पर्य नहीं है कि समाज में रोग नहीं है, वैवाहिक पद्धति और पारिवारिक शैली निर्दोष है। उसमें हजार दोष हैं और उनको निर्भीकता से दिखलाना ही चाहिए; परन्तु मार्ग का प्रदर्शन केवल वही कर सकता है जो सम्यक् दृष्टि डाल सकता हो, गहराई से सोच सकता हो। अन्यथा कोरा भावावेश, एकदेशीय विचार, माडलीन सेन्टीमेन्टेलिटी बहुत दूर ले जाने में असमर्थ है।

हितू,
सम्पूर्णानन्द

आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्—

['लेखक बनाम प्रकाशक' विषय पर श्री जनार्दनराय ने एक बड़ा मर्मस्पर्शी लेख भेजा है जिसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है—संपादक]

"...मेरी शर्त यह है कि लेखक को अपनी कृति पर स्वामित्व का अधिकार रहे। मैं मुनाफे का अन्तिम हिस्सा पाने के लिए तैयार हूँ। मैं प्रकाशकजी को रेडियो सुनते देख सकता हूँ, दार्जिलिंग में स्वास्थ्य सुधारते हुए देख सुखी हो सकता हूँ, उनकी भारी-भरकम मिल्कियत को मीठी निगाह से देख सकता हूँ; पर उसे लेखक की आत्मा का पुश्तैनी स्वामी नहीं देख सकता। लेखक व प्रकाशक का मूलभेद यही है कि एक आत्मा बेंचता है व दूसरा खरीदता है। कोरी भावुकता में मैं यह नहीं लिख रहा। हिन्दी-संसार में आज लेखक बिकता है। जिसने बिकने से इन्कार किया उसकी पुस्तक का विज्ञापन नहीं हुआ, वह आलोचना के लिए नाममात्र को गयी, बरसों से खाते का हिसाब नहीं। जो लेखक आज बिकने को तैयार नहीं, क्या वह आज जी सकता है? मेरे इस प्रश्न का उत्तर

में आज कौन देगा ? बनारसीदास- ? हरिभाऊजी देंगे ? श्यामसुन्दरदासजी हिन्दी का लेखक अपनी कृतिपर अपना अपना स्वामित्व माँगता है। वह भूखा नहीं। जिसे आत्मसम्मान है वह करके भी पापी पेट भर लेगा।

नहीं मानता कि प्रकाशक लेखक को है। मैं नहीं मानता कि प्रकाशक लेखक त्साहन देता है, कीर्ति देता है। वह को जन-साधारण तक पहुँचाने का एक वाहन है। लेखक को बनानेवाला जीवन समुद्र है, संघर्ष है। वह जन्म ही से और गति लेकर आता है। यह गति ही उसे बनाती है। प्रकाश को बनाती, वह उसे बताती है।

चारों ओर शोषण दिखायी देता है। देखो धनहीन मनुष्य, अवसरहीन ईश्वर पिसते-मरते दिखायी देते हैं। रोग है। कोरे विरोध-लेखों, चर्चाओं से यह दानवत्व देवत्व में बदलने यह भयंकर शोषण तो सर्वस्व के त्याग से पड़ेगा। आज हमारी वह मधुमयी बुझ चुकी है। आज हम पृथिवी के किसी के पास अमृत की दृष्टि, वाणी लेकर नहीं जाते। हम तो जानते- आज फूल को लूटते हैं, बादल को और धरणी को काटते हैं। जिस संसार सोना तथा भोगविलास के लिए प्रतिदिन को तलवार के घाट उतारा जाता हो, करोड़ों को नागपाशों से सदियों जकड़ हो, जहाँ विद्वान् ब्राह्मण और स्वयं- दधीचि की भाँति अपनी हड्डियों तक पड़ रहा हो, वहाँ हिन्दी के प्रकाशक पकड़ झकझोरने से होगा भी क्या ?

तो तब सम्भव है, जब हिन्दी के कीर्ति, यश तथा धन की दृष्टि से इस शर्मनाक, हीन, दोनों को पतित अवस्था का नाश तो तब हो जब लेखक पृथिवी तक को आत्म की रक्षार्थ त्याग देने को तैयार रहे। यह मनुष्यत्व का सवाल होगया है; मानवता की जीवट के साथ रक्षा करने का सवाल है। राष्ट्रभाषा के आभारतीय गौरव से जगमग हिन्दी का लेखक, कवि “इस अभिनव रसभारती का मधुपुत्र-पुत्री—क्या अपना खून बेचना चाहता है चाँदी के टुकड़ों के लिए ? क्या वह प्रकाशकों के दरवाज़े दुम हिलाया करे इसकी बनिस्बत मिट्टी खोदकर मक्की की राबड़ी पीना पसन्द न करेगा ? क्षुब्ध तथा जाग्रत हिन्दी का मधुपुत्र व उसकी अमृतपुत्री अपने मनोरथ, अपनी कल्पनाएँ, अपने अमृत-फल कदापि न बेचेंगे।

“मैं कभी-कभी सोचता हूँ—क्या लेखक अपना संगठन नहीं बना सकते ? अपना प्रकाशन तथा बिक्री नहीं कर सकते ? जब हम अन्य संस्थाएँ चला सकते हैं, तो प्रकाशन-संस्था क्यों नहीं ? राजनीति और समाज में समाजवाद चाहे परसों आवे, हमारे घर तो उसे आज ही आना है। हम लेखक और कवि नये जमाने के पहिले जाग्रत श्रमजीवी बनें। हमें नम्रता किंतु दृढ़तापूर्वक अपना महत्त्व जानना और प्रतीत करना चाहिए; हमें ज्ञात होना चाहिए। राष्ट्रभाषा के रसघनों को वास्तव में समुद्र पर कर बफ-दज़कर भी अमृतजलों की वर्षा करना है। भारतीय राष्ट्र के अमृत वाणी-पुत्र को तो आज नहीं कल पृथिवी के राज की कामना छोड़नी पड़ेगी। वह तो एक सघन मेघ के समान है। वह अपनी अभिनिधि के साथ घहरता है और राष्ट्र की वसुधा को सींच जाता है।

“पर इसका यह अर्थ तो है ही नहीं कि वह अपना स्वमान बेच दे; अपना धर्म और मनुष्यत्व बेच दे। आखिर राष्ट्र भी मानव-जीवन की यात्रा में एक विश्राम - स्थान है। अवश्य वह शीतल शान्त सघन विश्राम-स्थान है। पर वह अन्तरात्मा के प्रकाश से बढ़कर नहीं है। यह सुन्दर, सरस, सघन पृथ्वी आत्मा से बढ़कर नहीं। वह उसके लिए है। राष्ट्रभाषा

हिन्दी का लेखक आत्मा के लिए पृथिवीतक का जिस दिन त्यागना सीखेगा, उस दिन राष्ट्र की वाणी को लेकर वह एक राजहंस के समान चिरंतन मानसरोवर में विहार करेगा। उस दिन उसे नीर और क्षीर का भेद करना आ जायेगा। उस दिन वह एक सतर्क क्रान्तिदर्शी के जीवन का अबाध-आनन्द, तेज तथा संजीवन पा जायेगा। उस दिन वह पृथिवी पर एक अमृत मेघ के समान छाना तथा बरसना सीख लेगा।"

अश्लीलता का दमन

राष्ट्रीय संन्यासी स्वामी विवेकानन्द एक स्थल पर कहते हैं—

"सभी महान् गुरुओंने यह उपदेश दिया है कि 'बुराई का अवरोध न करो,' क्योंकि अवरोध न करना एक उच्च नैतिक आदर्श है। परंतु हम सभी जानते हैं कि यदि हममें से कुछ व्यक्ति इस आदेश का पूर्ण रूप से प्रयोग करने का प्रयत्न करें तो हमारी सामाजिक व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न हो जायेगी और दोष हमारे जीवन तथा हमारी निधियों पर अधिकार करके हमारे साथ जो चाहेंगे सो करेंगे। यदि एक दिन के लिए भी इस अवरोध न करने के आदर्श का पालन किया जाये तो इसका परिणाम भीषण होगा।

इस सिद्धान्त का प्रचार मानव-जाति के अधिकांश भाग को निन्दनीय ठहराने के तुल्य है। इतना ही नहीं इससे मनुष्यों को यह अनुभव होगा कि वे सदा गलती पर रहे और उनके सारे कार्यों के संबंध में उनके अन्तकरण में संशय उत्पन्न हो जावेगा। यह उन्हें दुर्बल बना देगी। अन्य कोई दुर्बलता इतने दोष उत्पन्न नहीं करती जितनी कि निरन्तर आत्मग्लानि करती है। जो व्यक्ति अपने से घृणा करने लग गया है उसके लिए पहले पतन का मार्ग खुल जाता है। यही बात जाति के लिए सत्य है।

"हमारा कर्तव्य सर्वप्रथम यह है कि हम अपने से घृणा न करें; क्योंकि उन्नति के लिए पहले हमारा अपने-आपमें विश्वास होना चाहिए और फिर भगवान में। जिस मनुष्य का अपने आपमें विश्वास नहीं वह भगवान में भी विश्वास नहीं रख सकता।......"

अश्लीलता भी एक बुराई है। यदि इसका अवरोध न किया जाये तो इससे भी वही दुष्परिणाम निकलेंगे जिनका उल्लेख स्वामीजी के शब्दों में ऊपर किया गया है। जबकि हमारा सामाजिक वातावरण दूषित है, आत्मोद्धार के लिए अश्लील साहित्य का दमन अनिवार्य हो जाता है। यह ठीक है कि विकार मनुष्य में उपजता है परन्तु उस विकार को प्रोत्साहन तो बाहर से मिलता है। दूषित वातावरण में विचार पहले से ही खराब होते हैं, ज़रा-सा प्रोत्साहन मिलने पर वे भड़क उठते हैं। विकार मनुष्य के मस्तक में मँडराने लगते हैं, और मनुष्य कुमार्गगामी हो जाता है। इसप्रकार रसिकतापूर्ण साहित्य और आग में इंधन का काम करता है।

स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध नैसर्गिक है; परन्तु मानव-जीवन के अन्य कार्यों की भाँति इस सम्बन्ध में भी संयम की अधिक बल्कि सबसे अधिक आवश्यकता है। रोग-निवारण के लिए दवा का प्रयोग उचित है, परन्तु उसका निरन्तर सेवन मनुष्य के अंगों को दुर्बल और शिथिल बना देता है। यही सिद्धान्त स्त्री-पुरुष-संबन्ध में लागू होता है। अतः जिस साहित्य के अध्ययन से काम-विचार मन को लुभाते और विचलित करते रहें वह तो जीवन को गिरावट की ओर ही ले जायेगा। अतः अश्लील साहित्य का दमन और आत्मसंयम ही उत्कृष्ट मार्ग है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि **"आत्मसंयम प्रदर्शित कार्यों की अपेक्षा अधिक शक्ति का द्योतक है। चार घोड़ों से जुती गाड़ी पहाड़ी पर से भगायी जाये और सारथि द्वारा उन घोड़ों को रोका जाये इनमें कौनसा कार्य अधिक शक्ति का द्योतक है? उनको जाने देना या रोके रखना ?"**

ऐसे तो बहुत कम मनसा स्वस्थ मनुष्य होंगे जो अश्लील साहित्य का भी सत्य की हवा और धूप में अध्ययन करें, जिससे अश्लीलता के कीटाणु मर जावें।

कुँवरकिशोर सेठ

कसौटी पर

मध्यप्रदेश का इतिहास : लेखक—रायबहादुर डॉ० हीरालाल; प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १०६ मूल्य १॥)

मध्यप्रदेश के अन्धकार में पड़े हुए प्राचीन इतिहास की खोज करनेवाले विद्वानों में स्वर्गीय रायबहादुर डॉ० हीरालाल सबसे आगे हैं। प्रस्तुत 'मध्यप्रदेश का इतिहास' उनकी मृत्यु के बाद काशी नागरीप्रचारिणी सभा की कृपा से प्रकाश में आया है।

इस इतिहास में अन्धकारमय प्राचीन काल से आधुनिक काल तक का क्रमबद्ध इतिहास दिया गया है जिसे पढ़ने से हमारे देश के प्राचीन भाग दण्डकारण्य, विदर्भ, महाकोशल, चेदि, मण्डल और डाहल तथा उनकी राजधानियाँ श्रीपुर, भद्रावति, कुण्डिनपुर, त्रिपुरी, गढ़मण्डल, विनीतपुर आदि-आदि की चलचित्र की भाँति सामने आती जाती हैं। प्राचीन राजवंश मौर्य, शिशुनाग, शुंग, आन्ध्र-गुप्त, हूण, वाकाटक, राष्ट्रकूट, कलचुरि, नाग, तथा आधुनिक काल के परमार, गोंड़, बुन्देलों और मराठों की गौरवगाथा क्षेत्र-पथ में फिर से संचरण करने लगती है। जिन प्रतापशाली राजाओं और रानियों ने भागों और वंशों को अपनी कृति और कीर्ति से उज्वल किया उन कार्तवीर्य, चन्द्रगुप्त, खारवेल, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त), वर्मन, महाशिवगुप्त, हर्षवर्द्धन, गांगेयदेव, रत्नराज, सोमेश्वर, रानी दुर्गावती, और गोविन्दराय के विषय में अनेक बातें इसमें मिलती हैं।

स्वर्गीय डाक्टर साहब ने अथक परिश्रम से शिलालेखों ताम्रपत्रों और प्रशस्तियों के आधार पर इस प्रदेश के क्रमिक इतिहास की प्रतिष्ठा की है। यद्यपि कहीं-कहीं इनसे सहायता न मिलने पर जोड़ने के लिए कल्पना और जनश्रुति का आधार उन्हें लेना पड़ा ह। इतिहास का विशाल भवन बनाने के लिए नींव उन्होंने डाल दी है। भवन की पूर्णता के लिए अभी बहुत-सी बातों की खोज करना शेष है जिनके बिना वह अधूरा ही रहेगा। लेखक ने कई बातें ऐसी भी लिखी हैं जिनका पूर्ण रीति से कभी निर्णय नहीं हो पाया है। कुछ बातें विवादग्रस्त भी हैं। उदाहरण के लिए उनके मत से दण्डकारण्य इसी भाग का प्राचीन नाम था। और रावण की लंका भी इसीके आस-पास अमरकण्टक में थी। इस सम्बन्ध में डाक्टर साहब ने अपने जीवनकाल में पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी छपवाये थे; किन्तु इसके विपरीत ऐतिहासिक और भौगोलिक प्रमाणों से ये स्थान दक्षिण ही में सिद्ध होते हैं।

माहिष्मती के मण्डला अथवा मान्धाता में होने के विषय में भी मतभेद है। साथ ही आपने एक जगह स्वीकार किया है कि "खारवेल के पूर्व महाकौशल में किसका राज्य था, इसका पता नहीं चलता। अनुमान से मौर्यों का आधिपत्य माना जा सकता है।" चौथी शताब्दि में महाराज समुद्रगुप्त ने जिस महेन्द्र नामक राजा को जीता था "उसके उत्तराधिकारी कौन हुए ? इसका पता नहीं चलता।" इस बात का भी अभी निश्चय नहीं हो पाया है कि राजर्षितुल्यकुल और राजर्षि वंशकुल एक ही थे या अलग-अलग। इसी प्रकार श्रीपुर में राजधानी स्थापित करनेवाले सोमवंशी राजा का भी पता अभी तक नहीं चला। बरार में दर्भ न होने के कारण उसका नाम 'विदर्भ' पड़ना और कुश की बहुलता होने के कारण 'कोशल' नाम रखा जाना भी कल्पना ही मानी जायेगी। सागर हर्ष के राज्य में सम्मिलित था इसके लिए वर्तमान सागर ज़िले में वैद्यों की अधिकता होना कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार हैहयों की प्राचीन राजधानी त्रितसौर्य कहाँ पर थी, इसका पता भी अभी तक नहीं लग सका है। ये सब बातें ऐसी हैं कि जिनकी इतिहास के

अन्वेषकों को अभी भी खोज करनी है।

किन्तु इससे भी लेखक का महत्त्व कम होने के बदले बढ़ता ही है क्योंकि उन्होंने उपेक्षा के गर्त में पड़े हुए मध्यप्रान्त के इतिहास का उद्धार किया और उसकी ओर देश का ध्यान आकर्षित कराया। अब उनके उत्तराधिकारियों पर यह भार है कि वे उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर अपने इतिहास को पूर्ण और समृद्ध बनावें। प्रस्तुत पुस्तक इस विषय की सर्वप्रथम पुस्तक है, इसलिए वह पथप्रदर्शक और उपादेय है।

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

कताई-गणित (१): लेखक—श्री कृष्णदास गांधी; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम; पृ० ६०; मू० ।)

वर्धा-शिक्षा-योजना में उद्योग के द्वारा शिक्षा देने का नया सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। पर इस विषय की पुस्तकें अभी नहीं के बराबर हैं। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ इस कमी को पूरा करने का बराबर प्रयत्न कर रहा है। इसी सिलसिले में खादी-विशेषज्ञ श्रीयुत कृष्णदास गांधी ने मूल उद्योग—कताई के शिक्षाओं तथा विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी है।

प्रस्तुत पुस्तक में कताई-सम्बन्धी वे बातें दीगयी हैं जो शुरू के कातनेवालों के लिए बहुत ही जरूरी हैं। विद्यार्थियों के विचार से प्रश्न दिये गये हैं और प्रश्नों को हल करके दिखाया गया है। इसमें कताई-सम्बन्धी इतनी बातें दी गयी हैं कि इसे केवल 'कताई-गणित' के बदले 'आरंभिक कताई-शास्त्र' कहें तो अधिक ठीक होगा।

'कताई-गणित' में कताई की क्रियाओं का वर्णन अनुभवों के आधार पर किया गया है। बच्चों की डायरी कैसे रखी जाये, उन्हें जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि कताई द्वारा कैसे सिखाये जायें, यह उदाहरण देकर समझाया गया है। कताई-सम्बन्धी परिभाषिक शब्द भी उपयोगी हैं। पुस्तक को आदि से अंत तक पढ़ जाने से पाठक कताई-शास्त्र का आरंभिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कताई में पड़नेवाली कठिनाइयों को स्वयं दूर कर सकता है।

कताई का काम जबतक गरीब ग्रामीण कत्तिनों का काम था, तबतक वह एक साधारण धंधा बना रहा, और शिक्षा तथा कला की दृष्टि से उसमें कुछ विशेषता लोगों को नहीं दिखायी दी। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से यह कार्य शिक्षा तथा कला की दृष्टि से देशवासियों का ध्यान अपनी ओर खींच रहा है। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन से निस्सन्देह इस कला का समुचित विकास होगा।

पूर्णानन्द

नागरिक-शिक्षा: लेखक—श्री भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन; पृष्ठ-संख्या १२८; मूल्य ॥=)

हिन्दी में राजनीतिक और अर्थशास्त्र-विषयक साहित्य के पाठक केलाजी से काफी परिचित हैं। उन्होंने इन उपयोगी विषयों पर अनेक अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं।

नागरिक-शिक्षा में श्री केलाजी ने नागरिकों के लिए ज्ञातव्य बातों का वर्णन किया है जिनका अज्ञान ही हमारे भारतीय समाज की अधिकांश कमज़ोरी का कारणरूप है। भारतवर्ष का शासन-यंत्र किस प्रकार टिका हुआ है और उसके अलग-अलग पुर्जे किस प्रकार अपनी-अपनी धुरियों पर घूमते हुए सारी मशीन को चला रहे हैं, इसको स्पष्ट करने के लिए सरकार के व्यवस्था, शासन और न्याय विभागों के अतिरिक्त सेना, पुलिस, जेल, डाक तार, रेलवे, शिक्षा और कृषि आदि विभागों का सीधा और सरलवर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त नागरिक-जीवन और उसके सुधार के लिए अलग-अलग दृष्टि-कोणों से विवेचन करते हुए उन्होंने पुस्तक को ऐंसा रूप दिया है कि वह ग्रामसुधार तथा उसके कार्यकर्त्ताओं के लिए विशेष उपयोगी बन गयी है।

नागरिकों और राजनीति के विद्यार्थियों को प्रारम्भिक जानकारी के लिए यह पुस्तक अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु इस पुस्तक का मूल्य ॥=) कुछ अधिक जान पड़ता है। इससे साधारण ग्रामीण को इसे खरीदने में कुछ कठिनाई होगी।

सुमन (संकलन) : प्रकाशक—हिन्दी बम्बई; मूल्य अजिल्द ।), सजिल्द ।।) ११०।

के सुप्रसिद्ध लेखकों के ये छोटे-छोटे र्थियों के कोमल मस्तिष्कों पर शिक्षा दृष्टिकोण द्वारा अपनी छाप बैठाते को व्यक्त करने की भाषा और शैली क्लिष्ट होती हुई सामान्यतः मधुर और साधारण हिन्दी भी पाठकों के मनोरंजन है।

मान युद्ध में पोलैण्ड का बलिदान : राजबहादुर सिंह; प्रकाशक—वर्तमान मंडल, बाजार सीताराम दिल्ली; पृष्ठ- मूल्य अजिल्द १।), सजिल्द १।।)

पुस्तक के प्रथम १६ पृष्ठों में लेखक एक पृष्ठ में आसकनेवाली भूमिका तिहाई पृष्ठ में आ सकनेवाले प्रकाशकीय के अतिरिक्त और कुछ न रखकर आज समय में १।) या १।।) देकर पुस्तक पाठक को लूटा गया है। एक-एक लिए पैसा चुकानेवाले पाठक को १६ पृष्ठों को पलटने में कितना कष्ट उठाना होगा! इस पुस्तक को देखकर यह जान है कि उसका कलेवर बढ़ाने के लिए ही कई छोटे-छोटे अनावश्यक लेख जोड़ हैं जिनका 'पोलैण्ड के बलिदान' शीर्ष होना ही नहीं चाहिए था। 'युद्धारम्भ' संहार' अध्यायों के ४८ पृष्ठों में ही का खातमा हुआ; बस यही एक चीज़ है कि पुस्तक के नाम से सीधा सम्बन्ध है। और शैली अच्छी है।

रती (संकलन) : प्रकाशक—हिन्दी बम्बई; पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य ।)

पुस्तक छोटी-छोटी कहानियों और का संग्रह है। राष्ट्रीय भावना का इसमें गया है। बालक-बालिकाओं के लिए है।

धाय'—ले०—भगवानदास वर्मा; प्रकाशक—साहित्य सदन अबोहर (पंजाब); पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य ।)

गाय, उसकी उपयोगिता और महत्त्व तथा उसकी रक्षा के साधनों पर इस पुस्तिका में चर्चा की गयी है, किन्तु रक्षा के साधनों में व्यापारिक दृष्टिकोण को ही माध्यम बनाकर उसके द्वारा होनेवाले फ़ायदों से पाठक को फुसलाया गया है। गो-रक्षा के किसी ठोस साधन का इस पुस्तक में अभाव-सा है। बनस्पति घी का प्रचार और नये से नये जूते पहिनने की होड़ को घटाने तथा इसे प्रोत्साहन देनेवाले लोगों का सामाजिक बहिष्कार कराकर गोरक्षा हो सकती थी, यह इसमें नहीं है।

पुस्तिका में छै-सात चित्र भी हैं।

सामान्यतः पुस्तक अच्छी है। म. श.

कहानी—एक कला : ले०—श्रीगिरिधारीलाल शर्मा गर्ग; प्रकाशक—ग्रन्थ-माला कार्यालय, बाँकीपुर; मूल्य १)

इस पुस्तक में लेखक ने कहानी के कलात्मक और शास्त्रीय रूप का विवेचन किया है। इसका प्रथम अध्याय जहाँ नीरस, शुष्क और किसी अंग्रेज़ी ग्रन्थ का अनुवाद-मात्र जान पड़ता है, वहाँ इसके अगले अध्याय सजीव जान पड़ते हैं। कहानी के मुख्य अंग, चरित्र-चित्रण, कहानी का प्रारंभ और समाप्ति आदि विविध अंगों की विस्तार से चर्चा की गयी है। बीच-बीच में विविध कहानियों से उद्धरण देकर अपने मत का समर्थन किया गया है, लेकिन 'कहानी का उद्देश्य' और 'यथार्थवाद' दो अध्याय अस्पष्ट रह गये हैं। उद्देश्य में तो पंडुक की कहानी ने स्थान बहुत ले लिया है, परन्तु विषय पर प्रकाश बहुत कम डाला है। 'हिन्दी कथा-साहित्य की प्रगति' भी बहुत संक्षिप्त हो गयी है।

अब भारत में गल्पकार इतने अधिक हो गये हैं कि अब भी विदेशी विद्वानों के ही वाक्य उद्धृत करना अनावश्यक प्रतीत होता है।

गल्पहार : संकलनकर्त्ता—भानुकुमार जैन; प्रकाशक—बम्बई हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई

यह पुस्तिका आठ कहानियों का संग्रह है। संग्रह एक विशेष दृष्टिकोण से किया गया है। राष्ट्रीयता, मानवता, सांप्रदायिक एकता आदि की भावनाएँ सब कहानियों में प्रधान हैं। जहाँ रवीन्द्र, प्रेमचन्द, सुदर्शन और ज़ाकिर-हुसैन की कहानियाँ सरस हैं, वहाँ "भैंस की कहानी" कुछ अनावश्यकरूप से लम्बी हो गयी है और शेष कहानियों से मेल नहीं खाती। 'अमर पिकेटिंग' में थोड़ी सी असावधानी हो गयी है। पिकेटिंग करनेवाली बाला कामान्ध व्यक्ति को 'भाई' के रूप में सम्बोधित करने के बदले यदि 'पिता!' कहकर चुम्बन देने के लिए तैयार होती, तो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से अधिक उचित होता।

देशदर्शन-(थाइ देश; रूस और हालैण्ड) : सम्पादक---श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक---भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ४) प्रति वर्ष; एक अङ्क का ।=)

श्री रामनारायण मिश्र और उनके 'भूगोल'-कार्यालय ने हिन्दी-साहित्य में भौगोलिक ज्ञान की कमी को बहुत-कुछ अंश में दूर कर दिया है। उनकी अन्य प्रवृत्तियों के सिवाय 'देशदर्शन' योजना भी चालू है। प्रति मास एक-एक देश का संक्षिप्त परिचय, संक्षिप्त इतिहास, जलवायु रहन-सहन, पहरावा, पेशे, खेलकूद, बालक, उपज, खनिज और संपत्ति आदि का संक्षेप से विवरण दिया जाता है। विषय शुष्क तथा नीरस न हो, इस दृष्टि से बालकों की कथाएँ आदि देकर उन्हें मनोरंजक बनाने का प्रयत्न किया गया है। बीच-बीच में चित्रादि की बहुलता से पुस्तक और भी दिलचस्प हो गयी है। तीन अंक हमारे सामने हैं। थाई देश और हालैण्ड के वर्णन जितने रोचक बन पड़े हैं, उतना रोचक रूस का नहीं हो सका। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने किसी बहुत पुरानी पुस्तक के आधार पर लिखा है, जिसमें नवीन रूस के नये जीवन का परिचय अच्छी तरह से नहीं दिया जा सका।

उपनिषदों की कथाएँ : लेखक—श्री शंकर दत्तात्रेय देव; अनु०—श्री० शकुन्तला पाठक; प्रकाशक---सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, मूल्य ।)

हर्ष की बात है कि अब सस्ता साहित्य मंडल ने राजनैतिक साहित्य से भिन्न इस नवीन दिशा में पहला कदम रखा है। इसमें उपनिषदों से ली गयी ९ कथाएँ हैं, लेकिन लेखन-शैली स्वतंत्र है। प्रत्यक कथा के आध्यात्मिक स्वरूप की रक्षा करते हुए उन्हें आजकल की परिस्थिति के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया गया है।

दो-तीन कहानियों के अन्त में उपनिषदों के मूल श्लोक भी दिये गये हैं। यदि यह परिपाटी सभी कथाओं में रखी जाती, तो अधिक अच्छा होता। फिर श्लोक अन्त में न देकर यथा-स्थान (और टिप्पणी में अर्थ) देना ज्यादा संगत होता।

कृष्ण

पड़ोसी : लेखक—ठाकुर श्रीनाथसिंह; प्रकाशक—नेशनल लिटरेचर कंपनी, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या १६८; मूल्य १।=)

'पड़ोसी' ठा० श्रीनाथसिह की बारह मौलिक कहानियों का संग्रह है। ठाकुर साहब की लेखनी से हिन्दी जगत भलीभाँति परिचित है। उनकी भाषा बड़ी मँजी हुई और भाव स्पष्ट होते हैं:—

"किसान की टेंट में जब कुछ पैसे जाते हैं तब प्रायः उसे गीत सूझता है और वह कुछ अकड़कर भी चलता है। बंसी एक अच्छा पहलवान और ख़ासा गवैंया था। इसीलिए जब वह जसरा-बाज़ार से एक कनस्टर घी बेचकर लौटा तब घमंड से उसकी छाती कुछ फूल गई थी और वह मुक्त स्वर से कुछ अलाप भी रहा था।" (पृष्ठ २०)

वैसे तो संग्रह की प्रायः सभी कहानियाँ सुन्दर हैं और उनमें मानव-प्रकृति का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है; लेकिन 'स्त्री का इच्छुक' कहानी विशेष रूप से मज़ेदार है।

आशा है पाठक संग्रह चाव से पढ़ेंगे।

हिल्लोल : लेखक—श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'; प्रकाशक—शान्ति-सदन, काशी विश्वविद्यालय; पृष्ठ-संख्या ९६; मूल्य १)।

की सफलता-असफलता की परीक्षा के ते हैं कि कवि की अनुभूतियों में की अनुभूतियों की छाया कहाँतक है? इस कसौटी पर श्री 'सुमन' की कुछ खरी उतरती है। उनके सुख- र अपने सुख-दुख की छाया पाता है। कवि इस चेतना को लेकर कविता बैठता। उसके हृदय में वेदना है आँसू गिर जाने से वेदना का भार ता है। इसीलिए कवि अपनी पीड़ा छुटकारा पाने के लिए रोता-गाता है—

उर में जो निहित व्यथा
कविता तो उसकी एक कथा
में गागा-कर ही मैं
क्षणभर को कुछ सुख पाजाता।

वर्तमान को अधिक महत्त्व देते हैं। वह पहचानते हैं। भविष्य की उन्हें हीं। मालिन पुष्प तोड़ने आती है तो ता है—

क्षणभर हँस खिल मिललें
कल की कल पर छोड़ो।

का नाम प्रगति है। प्रगति रुकी कि हो जाता है। 'सुमन'जी प्रगतिशील अदम्य उत्साह है। मंजिल दूर है तो ? चलना ही धर्म है। रुक बैठना है। वह कहते हैं—

चलना हमारा काम है !
गति प्रबल पैरों में भरी
फिर क्यों रहूँ दर-दर खड़ा,
जब आज मेरे सामने
है रस्ता इतना पड़ा ?
जबतक न मंज़िल पा सकूँ
तबतक मुझे न विराम है।

के अभिशाप का तुलनात्मक ढंग से चित्रण किया है—

· पीछे दाँये - बाँये
रही भूख की ज्वाल यहाँ।
तुम एक ओर, दूसरी ओर
चलने-फिरने के काल यहाँ।
इस ओर रूप की ज्वाला में
जलते अनगिनत पतंगे हैं,
उस ओर पेट की ज्वाला से
कितने नंगे-भिकमंगे हैं !

'सुमन' की शैली यद्यपि अभी परिमार्जित नहीं है; पर उनकी कविता में चुभन है। लेकिन उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है—जिसका श्री केशवप्रसाद मिश्र ने अपने 'आमुख' में उल्लेख किया है—**"सुमन" के रोने में भी एक दृढ़ता है, और तड़पने में भी एक आत्म-प्रतीति।**

आशा है हिन्दी-जगत भाई 'सुमन' की इस पुस्तक का समुचित आदर करेगा। **यशपाल**

सुगम बाल-बोध : लेखक—अध्यापक मुन्नीलाल गुप्त 'विशारद'; प्रकाशक—मास्टर बलदेवप्रसाद, सागर, सी० पी०। पृष्ठ-संख्या ३६ : मूल्य ≡)

यह पुस्तक पहली कक्षा के लिए नवीन शिक्षा-क्रम के अनुसार तैयार की गयी है। मोटा टाइप, ठीक रंग और सचित्र होने से यह बालकों के लिए मनोहर और उपयोगी है। अगर पढ़ानेवाला 'निर्जीव' न हो तो इसकी सहायता से बालकों को बड़ी जल्दी व पढ़ने की चाट लगायी जा सकती है।

लोरियाँ और बाल-गीत : लेखक और प्रकाशक—श्री कन्हैयालाल 'मत्त', ईंटारोडी, बुलन्दशहर। पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य =)

जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, यह छोटे बालकों के लिए है। काव्य की दृष्टि से यह ऊँचे दर्जे की न हो, लेकिन छोटे बच्चों को बहलाने के लिए अच्छी है। मार्च-गीत प्रेरणात्मक और साहस व निर्भयता की भावना से भरे हुए हैं। बाल-पाठ ज्ञानप्रद हैं अपने बच्चों को बहलाने और प्यार-प्यार में उनके अन्दर अच्छी भावनाएँ भरने के लिए माताएँ इसे काम में ला सकती हैं।

'मुकुट'

हिन्दी की हलचलें

अ० भा० हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

अ० भा० हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का अगला अधिवेशन अबोहर (पंजाब) में दिसम्बर १९४१ में होगा। साहित्य-सदन अबोहर द्वारा इसके लिए जोर-शोर की तैयारियाँ हो रही हैं।

सम्मेलन के अन्तर्गत साहित्य, समाजशास्त्र (इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र) दर्शनविज्ञान, तथा राष्ट्रभाषा परिषदें तथा कवि-सम्मेलन, पुस्तकालय-सम्मेलन, ग्राम-साहित्य-सम्मेलन, साहित्य-प्रदर्शिनी, अध्यापक और संपादक-सम्मेलन तथा महिला-सम्मेलन किये जाने की योजना बनी है। समस्त हिंदी-प्रेमियों का सहयोग वाञ्छनीय है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की अर्द्धशताब्दी

सं० २००० वि० में सभा की अर्द्ध शताब्दी मनायी जानेवाली है। उक्त अवसर पर सभा की जो विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित होगी, उसमें सभा का कार्यविवरण, हिन्दी की प्रगति, हस्त-लिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पुस्तकालय तथा कलाभवन की सूची, समस्त प्रांतीय हिंदी-संस्थाओं की सूची आदि महत्त्वपूर्ण अंग होंगे।

मध्यभारत हि० सा० सम्मेलन

आगामी ११, १२ और १३ अक्टूबर को म० भा० हि० सा० सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन महू में पं० सूर्यनारायणजी व्यास साहित्याचार्य्य, उज्जैन के सभापतित्व में मनाया जायेगा। सम्मेलन में निम्न आयोजन होंगे:—

(१) साहित्य-परिषद (२) कवि-सम्मेलन : (३) शिक्षा-परिषद (४) साहित्य-प्रदर्शिनी।

साहित्य-परिषद के श्री हरिभाऊजी उपाध्याय (यदि स्वास्थ्य ठीक रहा तो), और शिक्षा-परिषद के प्रो० ज्वालाप्रसादजी सिंहल एम. ए. एल.-एल. बी., एम. आर. ए. एस. सभापति होंगे।

प्रतिनिधि शुल्क १) रखा गया है। प्रतिनिधि किसी भी हिन्दी-संस्था के सदस्य, शालाओं के हिन्दी-शिक्षक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग या अन्य हिन्दी-संस्थाओं द्वारा संचालित परीक्षोत्तीर्ण व्यक्ति तथा हिन्दी-प्रेमी, लेखक या कवि हो सकेंगे।

साहित्य-प्रदर्शिनी में मध्यभारत से निकलनेवाली समस्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित पुस्तकें तथा मासिक पत्र-पत्रिकाएँ और मध्यभारतीय लेखकों की पुस्तकों की एक-एक प्रति प्रकाशकों या लेखकों को सम्मेलन-कार्यालय में भेज देनी चाहिए।

चतुर्वेदी-स्मृति-ग्रंथ

स्व० पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी की स्मृति-रक्षा के लिए सर्वश्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, अंबिकाप्रसादजी बाजपेयी, बनारसीदासजी चतुर्वेदी, सनेहीजी, तथा हालनाजी "चतुर्वेदी-स्मृति ग्रंथ" प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं— जिसमें चतुर्वेदीजी विषयक लेख, कविताएँ तथा संस्मरणादि होंगे।

त्रिपाठीजी साहित्य-क्षेत्र से विदा

लगातार पच्चीस वर्ष तक दिमाग़ी परिश्रम करते-करते थककर अब विश्राम के लिए मैं साहित्य-क्षेत्र से विदा ले रहा हूँ। हिन्दी-मन्दिर प्रयाग और हिन्दी-मन्दिर प्रेस मैंने दिल्ली के सस्ता-साहित्य-मंडल को दे दिया है।......

मैं सर्वसाधारण के लिए यह सूचना प्रकाशित करा रहा हूँ, कि उक्त बुकडिपो और प्रेस पर जिनका आजतक कुछ पावना था उसे मैं अपनी जानकारी के अनुसार चुकता किये जा रहा हूँ। फिर भी भूल से किसी का कुछ रह गया हो तो पत्र-द्वारा हिसाब भेजकर वे मुझसे अपना पावना ले लें। और जिनपर आज की तारीख तक हिन्दी-मन्दिर बुकडिपो या प्रेस का कुछ पावना बाकी है, वे कृपा करके उसे मेरे नये पते पर मुझे भेज दें।

हिन्दी-मन्दिर बुकडिपो अभी अपने ही नाम से कायम है। उससे जिनका पुराना सम्बन्ध था, वह अब समाप्त हो रहा है। नये संबंध के लिए अब हिन्दी मन्दिर प्रयाग को या सस्ता साहित्य-मंडल को नये सिरे से लिखना चाहिए।

रामनरेश त्रिपाठी
२५-९-४१

नया पता—
बसंत-निवास, सुलतानपुर

प्रगति की ओर

[इस स्तम्भ में जीवन और राष्ट्र-निर्माणकारी प्रवृत्तियों तथा संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जायगा। जो प्रवृत्तियाँ व संस्थाएँ देश व समाज में 'समभाव' बढ़ाने की दृष्टि से ही हैं उन्हीं के लिए इस स्तम्भ में स्थान रहेगा। 'समभाव' ही हमारे नज़दीक उसकी ता की कसौटी होगी। —सम्पादक]

भारत चर्खा संघ, वर्धा

के कार्य-विवरण से मालूम होता है ५१ लाख रुपये की नयी खादी तैयार के लिए कुल ६०८ केन्द्र चलाये गये। लाख रुपये की हुई जिसके लिए कुल भंडार चलाये गये। बंगाल, पंजाब, आन्ध्र, संयुक्तप्रान्त, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र व बम्बई प्रान्तों में वस्त्र-की दिशा में प्रयत्न हुआ। जीवन-दूरी अधिकांश शाखाओं में ३ आने गयी है। यह आशा प्रकट की गयी है सम्पूर्ण काम जीवन निर्वाह मजदूरी की तक जल्दी पहुँच जावेगी। देशी राज्यों बड़ौदा, भावनगर में वर्षों से राज्य की खादी-कार्य हो रहा है। इस वर्ष में रज, फलटन और ग्वालियर राज्यवालों वहाँ खादी-कार्य का सिलसिला शुरू सन् ३८ में संघ ने यह निश्चय किया बचत का रुपया कारीगरों को दिया सन् ४० में यह निर्णय हुआ कि एक साल में जमा की हुई रकम उसके आगामी खर्च करदी जाया करे। ५३,४५१ चर्खा-संघ के कार्य द्वारा कुल २,७६,१४६ को सहायता मिली। चर्खा-संघ ने ३,६१,००,०००) से अधिक मजदूरी औजारों में सुधार भी हुए। धनुष-नाई के बदले तुनाई, स्वयं धुनकर वाले यंत्र में तथा कपास ओटने के यंत्र उपयोग, मगन चरखे का श्री शतीश-गुप्त का संशोधित मॉडल तथा पेटीदार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कपास में भी सुधार करने का प्रयत्न कहीं-—विशेषकर संयुक्तप्रान्त में। संघ में कुल २९३९ कार्यकर्ता रहे, इनमें १८६९ का वेतन २०) मासिक से कम है, ९४१ का २०) से ४०) के दरमियान और ५०) से अधिक पानेवालों की संख्या ८३ है। चर्खा-संघ द्वारा खादी की प्रथमा, मध्यमा, विशारद नाम की तीन परीक्षाएँ भी कायम की गयीं। प्रत्येक की पढ़ाई का क्रम एक-एक साल का है।

राष्ट्रभाषा-प्रचारक मण्डल, सूरत

यह मण्डल राष्ट्रभाषा और उसके साहित्य के प्रचार तथा प्रसार का काम सन् १९३७ से कर रहा है। १९४१-४१ का कार्य-विवरण हमें मिला है। इसकी मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—

(१) हिंदी विद्यामंदिर; (२) राष्ट्रभाषा-अध्यापन-मंदिर; (३) पुस्तकालय; (४) वाचनालय, और (५) आमसभाएँ

इस विद्या-मंदिर की ११ शाखाओं में ४७६ भाई और १६१ बहिनों ने शिक्षा पायी और ४५ सेवाभावी अध्यापकों ने अध्यापन किया। सभी आयु, जाति, धर्म या व्यवसाय के भाई-बहन इसमें राष्ट्रभाषा की शिक्षा पाते हैं।

अध्यापन-मंदिर में १०९ अध्यापक भाई-बहिनों ने अध्ययन किया। मंदिर गुजरात की सर्वोत्तम राष्ट्रभाषा-प्रचारक संस्था सिद्ध हुआ है।

पुस्तकालय में २४४० हिंदी, गुजराती, अंग्रेज़ी पुस्तकें हैं, जिनका मूल्य ३२०६।।=) १० पाई है। इसके १८० सदस्य हैं।

वाचनालय से इस वर्ष १०००० वाचकों ने लाभ उठाया। इसमें ४५ पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं।

४ वर्षों में मंडल ने ५२ प्रचार-सभाएँ और २९ आमसभाएँ की। इस समय मंडल के १७७ सदस्य हैं। इन सब प्रवृत्तियों में मण्डल ने ४ वर्षों में १२२००) खर्च किया है।

क्या और कैसे ?

पंजाब की जिम्मेदारी

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन यदि एक मुस्लिम रियासत--हैदराबाद ने अपने यहाँ नहीं होने दिया तो दूसरे मुस्लिम-प्रधान प्रान्त--पंजाब ने उसे करने का बीड़ा उठाकर हैदराबाद को अपने कर्त्तव्य की ठीक दिशा दिखायी है। सम्मेलन का आगामी अधिवेशन पंजाब में होगा व साहित्य-सदन, अबोहर ने उसकी जिम्मेवारी अपने ऊपर ली है। पंजाब में यह संस्था 'मरुस्थल में जलस्रोत' की तरह एक नियामत है। साहित्यिक ही नहीं, दूसरी उपयोगी सेवाओं ने भी इसे पंजाब का भूषण बना दिया है। इसके कर्ता-धर्ता स्वामी केशवानन्द निरपेक्ष सेवा के नमूना हैं। उनके साथी कार्यकर्ताओं का सादा व सेवामय जीवन स्फूर्तिदायी है। हमें विश्वास है कि अबोहर की सहायता के लिए सारा पंजाब दौड़ पड़ेगा और सम्मेलन अपूर्व सफलता के साथ होगा।

'आलोचक-मण्डल' की स्थापना

श्री प्रेमनारायण टण्डन एम० ए० (रानी कटरा, लखनऊ) सूचित करते करते हैं कि 'सहयोगी आलोचक मंडल' की योजना को वे आगामी नवम्बर से कार्यरूप में ले आवेंगे। योजना का अबतक जिस तरह स्वागत हुआ है, उससे उनको प्रोत्साहन मिला है। इस योजना से पत्र-संपादकों और प्रकाशकों को जो लाभ होगा वह उनके शब्दों में इस प्रकार है—

"इससे पत्र-सम्पादकों का काम हलका हो जायेगा। पुस्तकों की आलोचना करने से तो वे छुटकारा पा ही जायेंगे, साथ ही उनके प्रेषकों से आवश्यक पत्र-व्यवहार के झंझट से भी उन्हें मुक्ति मिल जायेगी। पुस्तक की एक प्रति उनके पास पहुँचती ही रहेगी और हमारे मण्डल के सहायक सदस्य बन करके आर्थिक लाभ भी उठा सकेंगे। वर्तमान स्थिति में उन्हें एक प्रति के अतिरिक्त और मिलता ही क्या है ?

प्रकाशकों को इस योजना से जो लाभ होगा वे स्वयं समझ सकते हैं। (१) पुस्तक की यथार्थ आलोचना हो (२) नियत समय पर हो (३) अधिकारी व्यक्ति के द्वारा हो, यही वे चाहते हैं। इन्हीं के लिए हमारा प्रयत्न है। फिर यदि मंडल के द्वारा उनकी १५ पत्रों में आलोचना छपी तो जहाँ आजकल उन्हें दो प्रतियों के हिसाब से पुस्तक की ३० प्रतियाँ देनी पड़ती हैं वहाँ केवल १७ (१५ पत्रों को, १ मंडल को, १ आलोचक को) देनी होंगी। इस प्रकार वे १३ प्रतियाँ बचा सकेंगे, और आलोचना के लिए बार-बार सम्पादकों को लिखने से बच जायेंगे।"

पहले प्रत्येक पत्र से प्रति पृष्ठ १) लेने की बात थी। अभी तो वे उनसे वार्षिक शुल्क के रूप में ५) लिया करेंगे। यह धन दो किश्तों में दिया जा सकेगा। समालोचनाएँ वे उस समय छापेंगे जब पुस्तक की एक प्रति उनके पास पहुँच जायेगी।

प्रकाशकों को मंडल से विशेष लाभ होगा। अतः प्रत्येक पुस्तक की आलोचना के लिए वे मण्डल को कुछ आलोचक-शुल्क देंगे। १०० पृष्ठों की (या उससे कम की) पुस्तक के लिए उन्हें २) और फिर प्रति १०० पृष्ठों के लिए (अथवा कम हों) ।।) । इससे वे घाटे में नहीं रह सकते; क्योंकि इससे दस गुने मूल्य की पुस्तकें वे आसानी से बचा सकेंगे।

इस प्रकार पत्र-संचालक सहयोगी सदस्य, प्रकाशक ग्राहक सदस्य और आलोचक सहायक सदस्य होंगे।

आलोचकों को आरम्भ में १) या १।) प्रति पृष्ठ से अधिक न दे सकेंगे। कुछ आलोचकों के नाम और बढ़ाये हैं।"

लेखक व प्रकाशक आलोचक-शुल्क के साथ अपनी पुस्तकों की प्रतियाँ भेजें। एक-एक प्रति उन्हें उन पत्रों में भी भेज देनी चाहिए जिनमें वे

ना छपाना चाहते हों। इन पत्रों के नाम जी को भेज दें।

खुशी है कि टण्डन जी की योजना इस आगे आ गयी है। हमें आशा है कि हिन्दी सभी पत्र-पत्रिका, प्रकाशक व आलोचक को सहयोग देते रहेंगे व इससे लाभ होंगे।

आयोजन

श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने 'मधुकर' य-मण्डलों का प्रस्ताव किया है। आप हैं–

ब वक्त आगया है कि साहित्यिक तथा क कार्यों के लिए हम लोग स्वाध्याय- तथा घुमक्कड़-दलों की आयोजना करें।"

स्वाध्याय-मंडल में भाग लेने के लिए आठ- क्तियों से अधिक निमंत्रित न किये जावें। नुभाव आवें वे कम से-कम दो निबन्ध र अपने साथ लावें।

हमारे यहां अनेक उत्सव वैसे ही हुआ हैं–यथा तुलसी-जयन्ती, कवि-सम्मेलन, या जिला साहित्य-सम्मेलन इत्यादि। सरों पर हम लोग स्वाध्याय-मण्डल के न कर सकते हैं। इस प्रकार खर्च में भी त हो सकती है। कालेजों के विद्यार्थी तो आयोजना आसानी से कर सकते हैं। ठोस क कार्य के सिवाय सात्विक मनोरञ्जन मग्री भी होनी चाहिए। खूबी तब है जब तथा उल्लास के वाह्य वातावरण के र हम ठोस काम कर दिखावें। निकट के प्राकृतिक स्थलों की यात्रा का प्रबन्ध किया जाये। इन यात्राओं के चित्र भी जावें। खेलकूद, भाग-दौड़, कबड्डी, रस्सा- जैसा फुटबाल, बैडमिण्टन इत्यादि का आवश्यक है। साहित्य-सेवी होने के नहूसियत नहीं है। साहित्यिकों को तो अधिक सजीव होना चाहिए। "जिन्दगी दिली का नाम है।"

इस प्रकार के स्वाध्याय - मण्डलों के सफलतापूर्वक सञ्चालन के लिए सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है सहिष्णुता, बन्धुत्व की भावना, दूसरों की त्रुटियों के प्रति उदारता। यदि यह नहीं तो सारा गुड़ गोबर हो जायगा।"

हम इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करते हैं। साथ ही चतुर्वेदीजी की इस राय से भी अपनी सहमति प्रकट करते हैं—"सखेद हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि हम लोगों में—हिन्दी साहित्य-सेवियों में वैसी लगन नहीं पायी जाती जैसी देश के अनेक राजनैतिक कार्यकर्ताओं में पायी जाती है। हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र को आवश्यकता है असाधारण व्यक्तित्ववाले ऐसे साहित्यिकों की जिनमें आदर्शवादिता के साथ-साथ व्यापार-बुद्धि तथा प्रबन्ध - शक्ति भी हो, जो अपने को साहित्यिक शक्ति का केन्द्र बनाकर अपने चारों ओर सच्चे कार्यकर्त्ताओं का एक छोटा समूह इकट्ठा कर सकें। यदि देश के प्रत्येक जनपद में एक भी ऐसा साहित्यसेवी विद्यमान हो तो स्वाध्याय-मण्डल बड़ी आसानी से चलाये जा सकते हैं।"

फायदा नहीं

चर्चिल सा० के यह कहने पर कि एटलांटिक-घोषणा का हिन्दुस्तान की राजनीति पर कोई असर नहीं पड़ेगा, भारत के राष्ट्रीय नेताओं में बड़ी नाराजगी फैली है। तरह-तरह से ब्रिटिश-सरकार पर यह दबाव डाला जा रहा है कि वह राष्ट्रीय सरकार की स्थापना यहाँ कर दे, जैसे कि पूने में कांग्रेस ने माँग की थी। इसमें तो कोई शक ही नहीं कि यदि ब्रिटिश सरकार को युद्ध में सफलता पानी है, व भारत के साथ न्याय करना है तो 'राष्ट्रीय सरकार' से कम कोई कार्रवाई कारगर नहीं हो सकती; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि युद्ध के अंत तक भारत व ब्रिटेन का समझौता होने से किसी को कोई लाभ होने की आशा नहीं है। ब्रिटिश राजनेता शायद यह मान रहे हैं कि गुलाम भारत उनके जितने काम आ जायेगा उतना सत्ताधारी भारत नहीं। इसीलिए वे टालमटोल कर रहे हैं। इधर मुझे ऐसा लगता है कि इस

बीच समझौता करने से भारत को भी लाभ के बजाय उल्टी ज्यादा हानि होगी। जबतक युद्ध का अन्त नहीं हो जाता तबतक दोनों की ऐसी स्थिति नहीं माननी चाहिए कि कोई निश्चित बात तय पा सके व टिक सके। युद्ध में सहायता देने की शर्त पर ही ब्रिटेन कांग्रेस के साथ समझौता कर सकता है। लेकिन इस शर्त को मानने से खुद कांग्रेस के ही छिन्न-भिन्न हो जाने का अन्देशा है, जैसा कि पूनावाली माँग के बाद वह होने चली थी। कांग्रेस की ओर से बार-बार यह दुहराया जा रहा है कि वर्तमान सत्याग्रह युद्ध के अन्त होने तक, बल्कि भारत के स्वतंत्र होने तक, चलता रहेगा। ऐसी हालत में युद्ध के बाद शीघ्र ही भारत को स्वतंत्र कर देने व तबतक सरकार तुरन्त स्थापित करने की शर्त पर भी ब्रिटेन से समझौता करने में हमें तो कोई फ़ायदा नजर नहीं आता।

ध्यान देने लायक

कायदेआज़म हठीले हैं व अपनी हठ में उन्होंने हिन्दुस्तान को बहुत नुकसान पहुँचाया है यह सच है। दूरंदेशी से सोचने पर मुसलमानों का भी उन्होंने काफी अहित किया है, यही प्रतीत होगा। परन्तु हाल में उन्होंने मुसलिम लीग के उन तमाम मेंबरों पर, जिन्होंने वाइसराय की नयी कौन्सिल में या डिफेन्स कौन्सिल में जाना मंजूर कर लिया था, आनुशासनिक कार्रवाई करने का जो सिलसिला शुरू किया वह इस बात की तरफ़ जरूर ध्यान दिलाता है कि किसी संस्था के प्रमुख को अपनी संस्था की प्रतिष्ठा व मान-मर्यादा की रक्षा में कितना तत्पर रहना चाहिए। यदि किसी संस्था के सदस्य या कर्मचारी या कार्यकर्त्ता ही उसके आदेशों व विधि-विधानों की अवहेलना करने लग जायें तो वह संस्था चल ही नहीं सकती, न दूसरों को प्रभावित व आकर्षित ही कर सकती है। ऐसे लोग भी होते हैं जो किसी संस्था में, उसके मान-गौरव से लाभ उठाने के लिए, या उसे नुकसान पहुँचाने की नीयत से ही, उसमें शामिल होते हैं व मौका पाकर अपना दाँव साधते हैं। ऐसे स्वार्थियों से संस्था की रक्षा करने के लिए यदि संस्था के सञ्चालक सतर्क व सजग न हों तो वे अपने कर्त्तव्य से चूकते हैं। संस्थाएँ सेवा के साधन हैं, न कि स्वार्थ के। ह० उ०

स्व० ठाकुर केसरीसिंह बारहठ !

उस दिन राजस्थान उस 'राजस्थान-केसरी' में अपने एक ज्वलन्त देशभक्त सपूत, ओजस्वी कवि और सुयोग्य पत्रकार, साधक और तपस्वी को खो बैठा ! अपने सुपुत्र श्री प्रतापसिंह को देश-भक्ति की वेदी पर बलि चढ़ाकर, स्वयं ५ वर्ष तक कारागार में रहकर, वर्धा के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'राजस्थान-केसरी' के संचालन में योग देकर अपनी कविताओं और 'चेतावनियों' द्वारा एक राजा ही को नहीं, प्रजा को भी उद्बुद्ध करके स्व० ठाकुर साहब ने राजस्थान और राष्ट्रीय भारत के इतिहास में अपना अमिट स्थान बना लिया था। हम उनके परिवार के इस दुख में दुखी हैं। सु०

गांधी महाराज

मुखपृष्ठ की कविता का अर्थ इस प्रकार है :

गांधी महाराज के शिष्य कोई तो धनी हैं, कोई निःस्व हैं; परन्तु एक जगह हमारा मेल है :

हम गरीब को मारकर पेट नहीं भरते, धनी के निकट नतशिर नहीं होते; आतंक से हमारा मुख कभी नीला नहीं पड़ जाता।

संडा जिस क्षण गुस्से में भरकर, घूँसा उ और डंडा घुमाकर आता है, हम हँसकर उस जवान से कह देते हैं—ये तुम्हारी लाल-ला आँखें बच्चों की नींद उचकानेवाली ही हैं, उन हम भय नहीं पाते; भय किसे दिखाओगे ?

हम सीधी भाषा में बात कहते हैं, उस(बात) की सरलता स्वच्छ है। उसमें कूटनीति की को असुविधा (दाँवपेंच) नहीं होती। जेल के लिए कानून को बात की उलझन में पड़ना नहीं पड़ता, वह उसे सीधे जेल के द्वार ले जाता है।

जो झुण्ड के झुण्ड घर छोड़-छोड़कर चल लगे, उनका अपमानों का शाप धुल गया; चिरकाल की हथकड़ी खिसककर आप ही आप धूल में गि पड़ी और भाल पर गांधीराज की छाप लग गयी।

कमज़ोर, भद्दे कागज़ों के पेकिंग से होनेवाली

अपने व्यवसाय की हानि को बचाइए

हमारा मज़बूत, चीमड़ व सुन्दर

गैंडा मार्का

बैम्बू पल्प का बना हुआ क्राफ्ट पेपर

आपकी कठिनाइयों को हल करदेगा

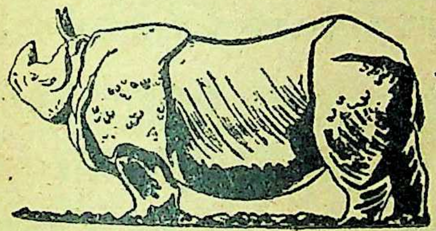

उच्चकोटि का
ग कागज़ है

भारतीय बाजार में आज
इसका सानी नहीं

एक बार इस कागज़ का व्यवहार करलेने पर
आप दूसरे पेकिंग कागज़ का नाम न लेंगे

अपना आर्डर तुरन्त भेजिए

ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड
८, रायल ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और ख़ास करके
हिन्दी पुस्तकों की छपाई
का काम
फेडरल ट्रेड प्रेस
नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७
में
बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है
एक बार परीक्षा कर देखें
यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था
'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें
हमारे यहाँ छपती हैं।

"राष्ट्रभाषा-समाचार"
[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का मुखपत्र]
सम्पादक : श्रीमन्नारायण अग्रवाल
हर महीने की १४ तारीख को निकलता है
अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी की प्रगति
भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई छोटी सुन्दर कहानियाँ,
निबन्ध, जीवन-परिचय अित्यादि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
की सभी प्रवृत्तियाँ,
अगर आप यह सब सामग्री अेक ही जगह और अेक ही साथ पढ़नें के अिच्छुक है
तो "राष्ट्रभाषा-समाचार" के ग्राहक बनिए
अिसका वार्षिक चन्दा सिर्फ १० आना मनीआर्डर से है।
यह बी० पी०से नहीं भेजा जाता
प्रबन्ध सम्पादक—"राष्ट्रभाषा-समाचार" वर्धा।

बिड़ला जूट मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी लि०

के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स एम. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, नई दिल्ली.

बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
वीहतिया, बनारस सिटी.

आगरा, अलीगढ़, मथुरा,
मेसर्स सुखलाल जमसावाल
ताजरोड आगरा,

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, देहरादून.

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, बरेली.

नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत
मेसर्स हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, नैनीताल.

सेलिंग एजेन्ट्स :
सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

मैनेजिंग एजेन्ट्स,
बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.
८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

ग्राम:—“जूटवीवर”
टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

हिन्दी-संसार में हलचल मचा देनेवाला

'जीवन-सखा' का 'व्यायाम-अंक'

जनवरी सन् १९४२ में प्रकाशित होगा

जो प्राकृतिक साधनों द्वारा स्वास्थ्य-लाभ करने के इच्छुक हिन्दी-प्रेमियों के लिए स्वास्थ्यविषयक एक अभूतपूर्व ग्रंथ होगा।

इसमें क्या रहेगा ?

१ फेफड़ा और मांसपेशियों पर व्यायाम का प्रभाव।
२ हृदय पर व्यायाम का प्रभाव।
३ जर्मन व्यायाम-प्रणाली।
४ स्वीडिश व्यायाम-प्रणाली।
५ फ्रांस व्यायाम-प्रणाली।
६ जापान व्यायाम'प्रणाली।
७ हिन्दुस्तानी व्यायाम-पद्धति।
८ युवक और युवतियों के लिए व्यायाम।
९ पेट की कमजारी और आँत उतरने का का इलाज।
१० व्यायाम बीमारियों के लिये।
११ मालिश।
१२ कब्ज का इलाज।
१३ श्वास-रोग का इलाज।
१४ रक्त-संस्थान की बीमारियों का इलाज।
१५ मोटापा, इसका कारण और इलाज।
१६ नाड़ी-दौर्बल्य और दर्द में व्यायाम-चिकित्सा।
१७ फालिज का इलाज।
१८ भोजन और व्यायाम।
१९ आँखों के लिये व्यायाम।
२० सूर्य्य-नमस्कार।
२१ योग-व्यायाम।
२२ अन्दरूनी सफाई के लिये योग-क्रियायें।
२३ हिन्दुस्तान के व्यायाम केन्द्रों-का सिंहावलोकन।
२४ व्यायाम के समय शरीर की आन्तरिक अवस्था
२५ व्यायाम के लिए अवस्था, व्यवसाय तथा स्त्री-पुरुष का विचार।
२६ खिलाड़ियों (Sportsmen) का व्यायाम।
२७ स्कूलों की व्यायाम-पद्धति।
२८ कालेजों और विश्वविद्यालयों में व्यायाम
२९ लड़कियों के स्कूलों और कालेजों में व्यायाम।
३० कन्धों की विषमता का कारण और इलाज।
३१ हकलाना और गले का इलाज।
३२ व्यायाम और विश्राम।
३३ शरीर के अंग-प्रत्यंग का व्यायाम।
३४ हिन्दुस्तानी व्यायाम-प्रवर्तकों की जीवनी और उनका कार्य।
३५ हिन्दुस्तान के प्रान्तों में व्यायाम।
३६ शरीर पर व्यायाम का प्रभाव।
३७ देश में व्यायाम-प्रसार की आवश्यकता।

अनेक चित्रों से सुसज्जित इस बृहद् विशेषांक का मूल्य १) होगा, किन्तु 'जीवन-सखा' के सभी नये पुराने ग्राहकों को मुफ्त मिलेगा। इसलिए यदि आप अबतक 'जीवन-सखा' के ग्राहक न बने हों, तो शीघ्र बनकर इसे प्राप्त करें। १५ दिसम्बर के पूर्व ही १) अग्रिम भेजकर विशेषांक की कापी अपने लिये रिजर्व करा सकते हैं। युद्ध के कारण जो अनिवार्य कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं उनकी वजह से यह विशेषांक सीमित संख्या में प्रकाशित होगा। इसलिए १५ दिन के पूर्व ही जिन्होंने विशेषांक की प्रति के लिये आवेदन नहीं किया, उन्हें फिर बाद में अंक प्राप्त नहीं हो सकेगा। अतः शीघ्रता कीजिए, अन्यथा निराश होना पड़ेगा।

मैनेजर—'जीवन-सखा', ८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,८६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

ाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

हंस

के विशेषांक हिन्दी-साहित्य के सृजन में अग्रणी क्यों हैं ?

क्योंकि

उनका दृष्टिकोण सदैव ही प्रगतिशील रहा है ।

उनके लेखक अपने विषय के दिग्गज विद्वान हैं ।

उनके विषयों का चुनाव अभिनव रहा है ।

हंस : कविता-अंक

के लेखक हैं

सुमित्रानन्दन पन्त
सियारामशरण गुप्त
'निराला'
'नवीन'
मैथिलीशरण गुप्त
बच्चन
दिनकर
अज्ञेय
महादेवी वर्मा
रामकुमार वर्मा
माखनलाल चतुर्वेदी
नरेन्द्र शर्मा
अंचल
भगवतीचरण जोशी
उमाशंकर जोशी
स्टीफेन स्पेंडर
हरीन्द्र चट्टोपाध्याय
हीरालाल गोदीवाला
आरदेशर फ० खबरदार
सुनीतिकुमार चटर्जी
शिवदानसिंह चौहान
प्रभागचन्द्र शर्मा
देवेन्द्र सत्यार्थी
एहतिशाम हुसैन
केदारनाथ अग्रवाल
नगेन्द्र
नेमिचन्द्र जैन
नरोत्तमप्रसाद नागर
रामविलास शर्मा
'सत्येन्द्र'
नन्ददुलारे वाजपेयी
हजारीप्रसाद द्विवेदी
गुलाबराय
प्रकाशचन्द्र गुप्त
आदि आदि...

अपनी प्रतियों के लिए अभी से न लिखने पर आपको निराश न होना पड़े, इसलिए अपना चन्दा आज ही भेज दीजिये ।

कविता-अंक की प्रति सरस्वती-प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, प्रयाग से मिलेंगी । आप अपना चन्दा इन शाखाओं में जमा कर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं ।

वार्षिक ६)
एक अंक का आठ आने
कविता-अंक का १)

◆

व्यवस्थापक,
'हंस'
बनारस कैंट

केवल १५ सितम्बर से ३१ अक्टूबर तक

❀ नये ग्राहकों को नयी सुविधा ❀

ीक्षांक — सम्मेलन की
' और 'रत्न' परीक्षा, यू० पी०
योग्यता' पंजाब की 'प्रभाकर,'
आदि और दक्षिण की 'राष्ट्रभाषा
' सूरत की 'कोविद' और बिहार
ियालंकार' परीक्षाओं को दृष्टि
निकाला गया है ।

— एवं —

कर जो विद्यार्थी इंटर, बी०
र एम० ए० की परीक्षाओं में
हो रहे हैं, उन्हें यह अंक विशेष
सहायता देगा ।

परीक्षांक

देखिए

परीक्षांक के

कुछ निबंध

चन्द और पृथ्वीराज रासो
विद्यापति का हि० सा० में स्थान
कबीर और सृष्टि-विज्ञान
जायसी का प्रेम-काव्य
सूर का वियोग-शृंगार
केशव की काव्य-कला
सेनापति का कवित्त-रत्नाकर
कामायनी
साकेत पर एक दृष्टि
सेवा-सदन
गोदान
रस और दोष

मुफ्त मिलेगा

'साहित्य-सन्देश' हिन्दी का एकमात्र समालोचनात्मक पत्र है, जिसमें हिन्दी-साहित्य
नतम प्रवृत्तियों, विभिन्न वादों और समस्याओं पर प्रति मास नियमित लेख छपते हैं ।
साहित्य में उसके लेखकों और उनके ग्रंथों पर आलोचनात्मक प्रकाश डालनेवाला यही
मासिक है ।

मूल्य ३) साधारण अंक का नमूना मुफ्त मँगाइए **विद्यार्थियों से २) साल**

र का पता—**साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा ।**

नववर्ष के विशेषांक में नवीनता

'कहानी' में भेंट ✦

- युद्ध और शान्ति की रोमांचकारी कहानियाँ
- अद्वितीय गाम्भीर्य और हास्य
- आधुनिक प्रेम-कथायें
- निम्नवर्गों की मार्मिक गल्पें
- भारत और विदेशों की चुनी कहानियाँ
- कहानी-कला पर समीक्षात्मक लेख
- पद्यबद्ध रसमय कथायें
- कलात्मक रेखाचित्र, नखचित्र आदि के साथ

अनेकों सादे बहुरंगे मनोरम और कलापूर्ण चित्र।

इनके अतिरिक्त—

भेंट में

✦ दो रुपये मूल्य का एक उत्कृष्ट उपन्यास

यह आठ आने मूल्य का कहानी-कला का ग्रन्थरूप विशेषांक और भेंट-पुस्तक केवल वे ही ग्राहक पा सकेंगे जो अपना चन्दा ४) मनीआर्डर से २५ सितम्बर तक भेज देंगे।

विशेषांक और भेंट-पुस्तक की सीमित प्रतियाँ छप रही हैं

इसलिए चार आने भेज कर अगस्त की कहानी में विवरण देखें या हमसे पूछें—

'कहानी' कार्यालय, बनारस कैंट।

'पथ के दावेदार' गवर्नमेण्ट ने जब्त कर लिया है।

बम्बई के भूतपूर्व गृह-सचिव श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
गुजरात के इस श्रेष्ठ कलाकार की
रचनाओं को सस्ते-से-सस्ते मूल्य में हमारी
'सुलभ साहित्यमाला' में
अवश्य पढ़िए। अबतक

मुन्शी-साहित्य के

दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। मूल्य दस-दस आना इन भागों में
मुंशी का सबसे पहला ऐतिहासिक रोमान्स

पाटन का प्रभुत्व

निकला है। शरत् बाबू की सम्पूर्ण रचनाओं की तरह मुंशी की भी सम्पूर्ण रचनाओं को इस 'सुलभ साहित्य माला' में निकालने का निश्चय कर चुके हैं। अन्य भाग शीघ्र निकलेंगे।

शरत-साहित्य

का प्रकाशन भी हो रहा है। शेष-प्रश्न सितम्बर के अन्त तक निकल जायगा
मूल्य दो भागों का सवा रुपया

राधा

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पण्डित उदयशंकर का यह भाव-नाट्य
हाल ही प्रकाशित हुआ है। मूल्य दस आने

संचालक—हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई

Regd No L 40/

इलाहाबाद में

सस्ता साहित्य मण्डल

की

नयी शाखा

जीरो रोड
इलाहाबाद

'मण्डल' के प्रेमी

पाठकों और ग्राहकों

तथा

हितचिंतकों और सहयोगियों

को

यह जानकर प्रसन्नता होगी

कि

विजयादशमी से

इलाहाबाद में 'मण्डल' की नयी शाखा खुल गयी है

हिन्दी-मन्दिर प्रयाग

के

समस्त प्रकाशनों का स्टॉक और उसका स्वामित्व

अब 'मण्डल' ने मोल लेलिया है

इसलिए अब

उसकी पुस्तकें मँगाने के लिए

'मंडल' को लिखने की कृपा कीजिए

पूरा विवरण अन्यत्र पढ़िए

अब—

हिन्दी-मन्दिर

इलाहाबाद

की

प्रकाशित सब पुस्तकें

'मण्डल' ही से लीजिए

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ीवन साहित्य

ङ्क ६

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

जनवरी : १९५२

अन्तःप्रेरणा व बुद्धि

मनुष्य की बुद्धि परिस्थिति से बँधी हुई रहती है, यह सच हो तो भी वह उसी बुद्धि की सहायता से परिस्थिति पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। इसीलिए बुद्धि के केवल परिस्थिति-निष्ठ होने से काम नहीं चलता, उसे आत्मनिष्ठ भी होना पड़ता है। यह आत्मनिष्ठ बुद्धि ज्ञात परिस्थिति के उस पार जाकर यह पहचान सकती है कि भावी काल की अज्ञात परिस्थिति अपने अनुकूल कैसे बनायी जाये। ज्ञात के उस पार उड़कर जाने की शक्ति मानवी बुद्धि को अन्तःप्रेरणा से प्राप्त होती है। सत्य-संशोधन, काव्यसृष्टि और राष्ट्र-निर्माण जैसे महत्कार्य के हेतु आवश्यक नेतृत्व-कला इन सबके लिए इस आत्मनिष्ठ बुद्धि की या अन्तःप्रेरणा-युक्त बुद्धि की आवश्यकता होती है। अलबत्ता अन्तःप्रेरणा के फेर में पड़कर बुद्धि की परिस्थिति पर की पकड़ ढीली न होने देनी चाहिए। वह ढीली हुई कि मनुष्य सांसारिक कार्यों व झगड़ों में टिकने के अयोग्य बन जाता है। बुद्धि के पीछे यदि अन्तःप्रेरणा का बल न हो तो वह परिस्थिति की दासी बन जाती है। इसके विपरीत यदि अन्तः-प्रेरणा को बुद्धि की सहायता न हो तो परिस्थिति के ज्ञान के अभाव में वह मनुष्य व्यवहार-शून्य आदर्शवादी बन जाता है। वास्तववाद व आदर्शवाद का समन्वय जो बुद्धि कर सकती है वही राष्ट्रनिर्माण कर सकती है।

—आचार्य जावडेकर—

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. **मानव से** (कविता) १८९
[स्व० प्रह्लाद पाण्डेय 'शशि']
२. **हवा में ?** [श्री हरिभाऊ उपाध्याय] १९०
३. **क्या हम सोचते हैं ?** १९१
[श्री रामनारायण उपाध्याय]
४. **छुट्टियाँ और काम का समय** १९२
[श्री कालिदास कपूर एम०ए०]
५. **साम्प्रदायिक झगडे कैसे मिटें ?** १९६
[श्री जवाहिरलाल जैन]
६. **एक वंश के हैं** [श्री सर्वपल्ली राधा०] १९७
७. **जीवन का उषाकाल**[श्री प्रभुदास गांधी] १९८
८. **वह गंजा लड़का** (कहानी) २०१
[श्री सत्यवती मलिक]
९. **प्रीति या पैसा ?** [श्री प्रयागनारायण] २०२
१०. **काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा** २०४
[श्री चन्द्रबली पाण्डे]
११. **प्रेम, प्रणय और भोग** २०७
[श्री रामस्वरूप व्यास]
१२. **प्रस्तुत प्रश्न** २१०
'घर की रानी' : कुछ विचार; लेखकों का संगठन कैसे हो; सिनेमा की ओर भी; पारिभाषिक शब्द।
१३. **कसौटी पर** २१४
आनन्द - निकेतन (वि०), राधा (हंसकुमार तिवारी), जीवन के गान, तीन पुस्तकें : गंगाजली, भाभी, काव्यालोचन (सद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए०); बिहारी-सुधा (प्रो० व्रजमोहन गुप्त), मंजीर; मुक्तिगान (हंसकुमार तिवारी)
१४. **समालोचनार्थ प्राप्त** २१८
१५. **१९४१ का हिन्दी-साहित्य : एक दृष्टि** २१९
[कलाकान्त]
१६. **हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का भाषण** [प्रो० अमरनाथ झा] २२३
१७. **क्या और कैसे ?** २२४
सवाल आज़ादी का है, धैर्य से, भाई-भाई की तरह, किससे आशा करें ? खेलों में भी ?, ठीक दिशा में, सभापति कौन हो ?, किस पर ?, गांधी ही, पहेली ?, दुहरी चोट।
१८. **मण्डल की ओर से** २२७

नये वर्ष के उपलक्ष्य में : जनवरी भर
'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को केवल २) की पुस्तकें मँगाने पर

आधे मूल्य में

डाक खर्च भी 'मण्डल' देगा

—ये पुस्तकें केवल नई दिल्ली से ही मँगायी जा सकती हैं—

---

१. मीरां की प्रेमवाणी	१।।।)	२. चीन की स्वाधीनता	१)
३. फेसिज्म और जर्मनी	।~)	४. Bleeding wound	१।।)
५. अंग्रेज़ी शिष्टाचार	२)	६. रसिक रहस्य	।।)
७. तरंगिणी (कविता संग्रह)	।।)	८. मोटर प्राइमर	१।।।=)
९. उच्छ्वास	।।।)	१०. रामदास	।।=)

मँगाने का पता
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

सस्ता साहित्य मण्डल

[इसमें 'हिन्दी-मन्दिर' इलाहाबाद भी सम्मिलित हैं]

प्रधान कार्यालय

कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ

१

दरीबा कलाँ, दिल्ली

२

अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ

३

खजूरी बाज़ार, इन्दौर

४

बजाजवाड़ी, वर्धा

५

३३।१ हरिसनरोड, कलकत्ता

६

ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

सूचीपत्र

—संस्था की प्रवृत्तियाँ—

१. गांधी-साहित्य
२. जवाहर-साहित्य
३. टॉल्स्टॉय-साहित्य
४. खादी-साहित्य
५. ग्राम-साहित्य
६. अर्थशास्त्र-साहित्य
७. राजनैतिक साहित्य
८. सामाजिक साहित्य
९. महिलोपयोगी साहित्य
१०. बालोपयोगी साहित्य
११. सामयिक साहित्य
१२. 'जीवन-साहित्य' (मासिकपत्र)
१३. 'हिन्दी-मंदिर'-साहित्य

सस्ता साहित्य मण्डल के प्रकाशन

स्थायी ग्राहक बनने पर ≡) रुपया कमीशन मिलेगा।

[एकसाथ पूरा सेट लेने पर सब पुस्तकें पौने मूल्य में]

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन-साहित्य ।।=) ३. तामिल वेद ।।।) ४. व्यसन और व्यभिचार ।।।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।।) १६. अनीति की राह पर ।।=) १८. कन्या-शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ।।) २५. स्त्री और पुरुष ।।) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें? १।) ३९. तरंगित हृदय ।।) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) : १।।) ४५. जीवन-विकास १।) ४७. फाँसी! ।=) ५१. भाई के पत्र १।।) ५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।) ५९. रोटी का सवाल १) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६४. संघर्ष या सहयोग? १।।) ६५. गांधी-विचार-दोहन ।।।) ६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता १।।) ६९. आगे बढ़ो! ।।) ७०. बुद्ध-वाणी ।।=) ७१. कांग्रेस का इतिहास २।।) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू) ३) ७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों? ।।।) ७६. नया शासन-विधान ।।।) ७७. गाँवों की कहानी ।।) ७८. महाभारत के पात्र १) ८०. संतवाणी ।।) ८१. विनाश या इलाज ।।।) ८२. अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।।) ८३. लोक-जीवन ।।) ८४. गीता-मंथन १।।) ८५. राजनीति-प्रवेशिका ।।) ८६. अधिकार और कर्त्तव्य ।।) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ।।) ९०. प्रेम में भगवान् ।।।) ९२. ब्रह्मचर्य ।।) ९३. हमारे गाँव और किसान ।।) ९४. अभिनन्दन-ग्रंथ १।) २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्याएँ १) ९६. जीवन-सन्देश ।।) ९८. समाजवाद : पूँजीवाद ।।।) ९९. मेरी मुक्ति की कहानी ।।) १००. खादी-मीमांसा १।।) १०१. बापू ।।=) १।) २) १०२. मधुकर (विनोबा) १) १०३. लड़खड़ाती दुनिया १) १०४. सेवाधर्मः सेवामार्ग १) १०६. डायरी के पन्ने ।।।) १।) १०७. तीस दिन १।।) २) १०८. युद्ध : अहिंसा ।।।) १०९. महावीर वाणी १) ११०. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन १।) १११. बिखरे विचार ।।।) ११२. अहिंसा-विवेचन ।।)

नवजीवन माला

१. गीताबोध =) २. मंगलप्रभात -) ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय -) ५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज ≡) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १२. गाँवों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गीत =) १४. खादी का महत्त्व -)।। १५. जब अंग्रेज नहीं आये थे ≡) १६. सोने की माया -) १७. सत्यवीर सुकरात (गांधीजी) -)

सामयिक साहित्य माला

३. हम कहाँ हैं? =) ४. युद्ध-संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे? ≡) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।) ७. देशी राजाओं का दरजा ।) ८. युरोपीय युद्ध और भारत ।) ९. रचनात्मक कार्य-क्रम (गांधीजी) =) अहिंसा और अनुशासन (ग्रेग) ।)

बाल साहित्य माला

१. कथा-कहानी =) २. शिवाजी-चरित्र ३. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ४. सीख की कहानियाँ ।)

विविध पुस्तकें

१. जवाहरलाल नेहरू =) २. मोतीलाल नेहरू ।) ३. सप्तसरिता (काका कालेलकर) ≡) ४. चारा दाना और उसको खिलाने के उपाय ≡) ५. पशुओं का इलाज ।।।) ६. उपनिषदों की कथाएँ ।) ७. आदर्श बालक ।।)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ।।) ३. फ्रांस की राज्य-क्रांति १।।) ४. गांधीवाद की रूपरेखा १) ५. पिता के पत्र पुत्री के नाम ।।) ६. प्रलय-वीणा १) ७. बहन ।।) ८. स्वास्थ्य के लिए शाक-तरकारियाँ १।।) ९. चौबोली ।।)

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग के प्रकाशन

'मण्डल' तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में

एक साथ पूरा सेट लेने पर एक तिहाई कमीशन

काव्य तथा साहित्य

कविता-कौमुदी (भाग १-२ हिन्दी) ७।।)
भाग उर्दू) ३) (सातवां भाग-बँगला)
क ।।) ३. मिलन ।।) ४. स्वप्न ।।)
।।) ६. दिमाग़ी-ऐयाशी (प्रहसन) ।।)
और उनकी कविता (२ भाग)
अयोध्याकांड (सटीक) ।।) ९. हिन्दु-
२) १०. पाकेट डिक्शनरी (अंग्रेजी
।।) ११. जयंत (नाटक) ।।।) १२.
(नाटक) ।।।) १३. वफ़ातीचाचा
।।) १४. तरकस (कहानी-संग्रह) ।।)
पद्यरचना (पिंगल) ।।) १६. सुकवि-
।।) १७. हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास ।=)
ज़बान का संक्षिप्त इतिहास ।।), १९.
की कविता का संक्षिप्त इतिहास ।।),
चरित ।) २१. पार्वती-मंगल ।)
वली ।) २३. कौन जागता है ?
) ।।) २४. हमारा ग्राम साहित्य २)
का विकास २) २६. पुष्पवाण ।।)
और साहित्य (निबन्ध : दो भाग)
मुस्लिम-सन्तों के चरित २) २९.
) ३०. यूरोप की कहानियाँ २।।)
(कहानी-संग्रह) ।।।) ३२. तूणीर
) ।।) ३३. घर का वैद्य (वैद्यक) ६)
लक्ष्मी (स्त्रियोपयोगी) ।।) ३५. दंपति
।।) ३६. हिन्दुओं के व्रत और त्योहार १।।)
शिष्टाचार २) ३८. योग के आसन
के चित्र (सचित्र) १) ३९. रत्ना
संग्रह) ।।) ४०. दृग-जल (कविता-
४१. नमूने का गांव और मिट्टी के
घर १) ४२. किसानों के काम की बात
किसानों की कहावतें (संग्रह) ।) ४४.
।) ४५. चिन्तामणि (भजन-संग्रह)
सपनों के चित्र (प्रहसन) ।।।) ४७.
२।।) ४८. बीस कहानियाँ (कहानी-
) ४९. हिमानी ।।) ५०. तरंगिणी
(कविता-संग्रह) ।।) ५१. नीति के श्लोक ।।) ५२. मारवाड़ के मनोहर गीत ।) ५३. सोहर ।)५४. सारिका(कविता) ।।।) ५५. Hindi Folk Songs : A. G. Shirreff १) ५६. Songs of Mirabai १)

बाल-साहित्य माला

१. बाल-कथा कहानी १७ भागों में। प्रत्येक भाग ।=) २. बताओ तो जानें (गोरखधंधा) ।) ३. बानर संगीत ४. हंसू की हिम्मत ।=) ५. नेता बुझौवल ।) ६. खोजो खोज निकालो (पद्य) ।) ७. परियों की कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।=) ८. राक्षसों की कहानियाँ ।=) ९. जादू की कहानियाँ ।=) १०. इतिहासों की कहानियाँ ।) ११. गुपचुप कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।) १२. मौत के सुरंग की कहानी ।=) १३. भूतों का किला ।=) १४. कहानी के कल-पुर्जे ।) १५. पेखन ।-) १६. मोतीचूर के लड्डू ।) १७. बलभद्दर ≡) १८. कबड्डी ।) १९. मोहन माला (कविता संग्रह) ।।।) २०. गांधी पत्ता या जवाहर ताश ।।) २१. हिन्दी पत्र शिक्षक =) २२. नई कहानियाँ ।=) २३. हरिश्चन्द्र ।) २४. महात्मा बुद्ध ।) २५. अशोक ।) २६. चन्द्रगुप्त ।) २७. आल्हा ।)

हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -।।) हिन्दी ज्ञानोदय—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।-) चौथा भाग ।।) पांचवां भाग ।।-) छठा भाग ।।=) **कन्याओं के लिए** नया हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -)।। कन्या शिक्षावली—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।) चौथा भाग ।-) पाँचवां भाग ।≡) छठा भाग ।।)

सस्ती कहानियाँ १. आदमी की क़ीमत २. सियार राजा और मेढ़क राजकुमार ३. पकड़ पूँछ कटे को ४. गड़बड़ गुम ५. तीन मेमने ६. तीन सुनहले बाल ७. रूपा ८. फूलरानी ९. बेलकुमारी १०. भय बिन होय न प्रीति ११. बुढ़िया बुढ़िया तुझे खाऊँ १२. चटक मटक की गाड़ी १३. चुड़ैल रानी १४. डंकू। दाम प्रत्येक का =)

'मण्डल' और 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकें प्राप्त करने
तथा
'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बनने के नियम

१. एक रुपया देकर स्थायी ग्राहक बन जाने से 'मण्डल' की पुस्तकों पर ≡) रुपया, 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकों पर ।) रुपया कमीशन मिलेगा और 'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र एक वर्ष तक १) में मिला करेगा।

२. खादी-भण्डारों पर से 'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों को 'मण्डल' की पुस्तकों पर =) रुपया कमीशन मिला करेगा।

३. 'जीवन-साहित्य' का १।।) में ग्राहक बनजाने पर एक वर्ष तक 'मण्डल' की पुस्तकें ≡) रुपया कमीशन पर और 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकें ।) रुपया कमीशन पर मिला करेंगी। एक बार १।।) में 'जी० सा०' का ग्राहक बन जाने पर दूसरे साल १) में ही ग्राहक चालू हो सकते हैं।

४. 'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को दूसरी बाहरी पुस्तकों पर साधारणतः ६¼% से १२½% तक कमीशन दिया जाता है। विशेष दशा में और रिआयतें हो सकती हैं।

५. नयी पुस्तकें प्रकाशित होने पर स्थायी ग्राहकों को 'जीवन-साहित्य' के द्वारा सूचना दे दी जाती है।

६. स्थायी ग्राहकों के लिए तथा 'जी० सा०' के ग्राहकों के लिए भी वर्ष में 'मण्डल' द्वारा प्रकाशित कम-से-कम ५) की पुस्तकें ख़रीदना अनिवार्य है।

७. साधारण ग्राहकों को साधारण रूप से पुस्तकें लेने पर 'मण्डल' की तथा 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकों पर -) रुपया कमीशन दिया जाता है।

८. 'मण्डल' की पुस्तकें पाठकों तथा ग्राहकों की सुविधा के लिए भारत के तमाम बड़े-बड़े पुस्तकविक्रेताओं तथा चर्खा-संघ द्वारा संचालित, यू० पी०, पंजाब, सिन्ध, बिहार, कलकत्ता, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, राजपूताना, मध्यभारत के खादी-भण्डारों में बिक्री के लिए रहती हैं। 'जी० सा०' तथा 'मण्डल' के ग्राहक भी वहाँ बन सकते हैं।

सद्ग्रन्थ, सद्भाव और सद्विचार फैलानेवाला हिन्दी का प्रमुख पत्र

जीवन-साहित्य

[सम्पादक—हरिभाऊ उपाध्याय]

- थोड़े से समय में ही इस पत्र ने हिन्दी-साहित्य में अपना विशेष स्थान बना लिया है।
- इसके इतने ग्राहक और पाठक हो गये हैं कि हिन्दी के किसी पुराने-से-पुराने और प्रतिष्ठित पत्र के न होंगे।
- इसमें दिया गया विज्ञापन ऐसे लोगों के पास पहुँचेगा जो समझ-बूझकर चीजों को अपनाते हैं। और इसमें ऐसे ही विज्ञापन लिये भी जाते हैं जो ग्राहकों को प्रलोभन में डालकर गलत रास्ते न ले जाते हों।

इस कारण इसमें विज्ञापन देना और इसका ग्राहक बनना दोनों ही लाभप्रद हैं।

वार्षिक मूल्य १।।) : 'मण्डल' के ग्राहकों से १) : नमूना =) के टिकटों में

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

न नं०
३२७

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
[illegible]
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

हंस

के विशेषांक हिन्दी-साहित्य के सृजन में अग्रणी क्यों हैं ?

क्योंकि

उनका दृष्टिकोण सदैव ही प्रगतिशील रहा है।
उनके लेखक अपने विषय के दिग्गज विद्वान हैं।
उनके विषयों का चुनाव अभिनव रहा है।

हंस : कविता-अंक

के लेखक हैं

- सुमित्रानन्दन पन्त
- सियारामशरण गुप्त
- 'निराला'
- 'नवीन'
- मैथिलीशरण गुप्त
- बच्चन
- दिनकर
- अज्ञेय
- महादेवी वर्मा
- रामकुमार वर्मा
- माखनलाल चतुर्वेदी
- नरेन्द्र शर्मा
- अंचल
- भगवतीचरण वर्मा
- उमाशंकर जोशी
- स्टीफेन स्पेंडर
- हरीन्द्र चट्टोपाध्याय
- हीरालाल गोदीवाला
- आरदेशर फ० खबरदार
- सुनीतिकुमार चटर्जी
- शिवदानसिंह चौहान
- प्रभागचन्द्र शर्मा
- देवेन्द्र सत्यार्थी
- एहतिशाम हुसैन
- केदारनाथ अग्रवाल
- नगेन्द्र
- नेमिचन्द्र जैन
- नरोत्तमप्रसाद नागर
- रामविलास शर्मा
- 'सत्येन्द्र'
- नन्ददुलारे वाजपेयी
- हजारीप्रसाद द्विवेदी
- गुलाबराय
- प्रकाशचन्द्र गुप्त
- आदि आदि...

अपना चन्दा आज ही भेज दीजिये।

कविता-अंक की प्रति सरस्वती-प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, प्रयाग से मिलेंगी। आप अपना चन्दा इन शाखाओं में जमा कर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं।

वार्षिक ६)
एक अंक का आठ आने
कविता-अंक का १)

व्यवस्थापक,
'हंस'
बनारस कैंट

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रतिदिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५०० रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,००० ,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५० ,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५०० ,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५० ,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८ ,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५० ,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखाएँ—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

भारतीय स्त्रियों और कन्याओं की
सबसे अच्छी और सबसे सस्ती
सचित्र मासिक पत्रिका

दीदी

वार्षिक मूल्य
२)
एक प्रति
=)

सम्पादक—श्रीनाथसिंह

आशीर्वाद

मुझे विश्वास है कि 'दीदी' अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगी। —राजेन्द्रप्रसाद

'दीदी' के द्वारा हिन्दी का एक अंग भरेगा यह मुझे भरोसा है।—पुरुषोत्तमदास टंडन

सदा कमनीय काम करके
लोक में कीर्तिवितान तने।
घरों में देवी कहा पुजे,
तिमिर में 'दीदी' दिव्य बने।

—"हरिऔध"

सम्पादिका-समिति

'दीदी' की संपादिका-समिति में निम्नलिखित पाँच प्रमुख महिलाएँ हैं—

रानी गिरिजादेवी (भदरी)।

कुमारी विद्यावती, बी. ए., सी. टी. (बेसिक), बी. टी.।

श्रीमती सत्यवती (स्नातिका), एम. एल. ए.।

कुमारी हरदेवी मलकानी, एम. ए.।

श्रीमती रत्नकुमारी एम. ए.।

सम्मतियाँ

"लड़कियों और स्त्रियों के लिए 'दीदी' जैसे सरल हिन्दी मासिक की आवश्यकता थी। अब यह कमी पूरी हुई।" —कर्मवीर

"....'दीदी' जबसे निकली है दिनोंदिन उन्नति करती जाती है।" —प्रताप

"......... काफी विचार-मंथन के उपरान्त श्री श्रीनाथसिंह ने 'दीदी' का प्रकाशन आरम्भ किया है। आपने जिस उत्साह से इस ओर क़दम बढ़ाया है, वह स्तुत्य है।" —आज

"गेट-अप और छपाई भारत की समस्त पत्रिकाओं से अच्छी है।" —आर्यमित्र

'दीदी' में क्या रहता है ?

'दीदी' में प्रतिमास चार सुन्दर कहानियाँ, एक सच्ची कहानी, शिशुपालन, गृहप्रबंध, रसोई, कसीदा, यौवन-सौंदर्य और प्रेम, फ़ैशन आदि पर विशेषज्ञों के लेख और घर-गृहस्थी की सैकड़ों बातें रहती हैं। एक शब्द में 'दीदी' उन सब सवालों का जवाब देती है जो किसी भी स्त्री के हृदय में उठ सकते हैं।

'दीदी' का नववर्षांक—दिसम्बर १९४१
'दीदी' का विशेषांक—जनवरी १९४२
में प्रकाशित होगा।

प्रजामण्डल श्रीनाथसिंह-लिखित सर्वथा नवीन उपन्यास मूल्य १।), 'दीदी' के ग्राहकों से सिर्फ़ १)।

ये दोनों विशेषाङ्क केवल उन्हीं को मिल सकेंगे जो नवम्बर सन् १९४१ से पहले वार्षिक मूल्य २) मनीआर्डर से भेजकर 'दीदी' के ग्राहक बन जायेंगे। पत्र या मनीआर्डर भेजने का पता—

प्रेमलता देवी, संचालिका 'दीदी', कटरा, इलाहाबाद।

कमज़ोर, भद्दे कागज़ों के पेकिंग से होनेवाली

अपने व्यवसाय की हानि को बचाइए

हमारा मज़बूत, चीमड़ व सुन्दर

गैंडा मार्का

बैम्बू पल्प का बना हुआ क्राफ्ट पेपर

आपकी कठिनाइयों का हल करदेगा

उच्चकोटि का
किंग कागज़ है

भारतीय बाजार में आज
इसका सानी नहीं

एक बार इस कागज़ का व्यवहार करलेने पर
आप दूसरे पेकिंग कागज़ का नाम न लेंगे

अपना आर्डर तुरन्त भेजिए

ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड
८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

विश्ववाणी की महान् योजना

जनवरी अङ्क विश्व और भारतीय संस्कृति का विशेषाङ्क

हमारा दावा है किसी भारतीय पत्रिका ने इतना सुन्दर विशेषाङ्क अबतक नहीं निकाला

यह विशेषाङ्क छै महीने के परिश्रम का परिणाम होगा

विशेषाङ्क के कुछ लेखक

एच० जी० वेल्स
जार्ज बर्नर्ड शा
रोमां रोलां
प्रो० आइन्सटाइन
मेडम चियांग काइ शेक
कु० ज़ोरा नील हर्स्टन
जान अर्सकिन
वाल्टर लिपमैन
अलबर्ट वाइटन
डाक्टर पाल ब्रण्टन
सर एडवर्ड बेन्थल
एलबर्ट ग्यूरार्ड

श्रीमती सरोजिनी नायडू
सर एस० राधाकृष्णन्
सर सी० वी० रमन
सर शिव स्वामी अय्यर
सर जदुनाथ सरकार
सर शफ़ात अहमद खां
सर सीताराम पाटकर
सर टी० विजयराघवाचार्य
सर तेजबहादुर सप्रू
सर अब्दुल क़ादिर
सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास
सर मिरज़ा इस्माइल

आचार्य क्षितिमोहन सेन
श्री राजगोपालाचारी
पण्डित सुन्दरलाल
भदन्त आनन्द कौशल्यायन
आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
श्री जैनेन्द्र कुमार
श्री सुमित्रानन्दन पन्त
डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त
डाक्टर ताराचन्द
श्री धर्मानन्द कौशाम्बी
डाक्टर डी० आर० भण्डारकर
महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

लेखों के अतिरिक्त दर्जनों कविताएँ, कहानियाँ, एकांकी नाटक आदि होंगे।

卐 इस महान् और वृहत् विशेषाङ्क की क़ीमत होगी केवल दो रुपया।

卐 किन्तु स्थायी ग्राहकों को यह अङ्क मुफ्त में मिलेगा।

जिन ग्राहकों का चंदा दिसंबर में समाप्त होता है वे भी छै रुपया मनीआर्डर से भेज दें।

विशेषाङ्क की कापी रिज़र्व न कराने पर निराश होना पड़ेगा

वार्षिक मूल्य ६)
विशेषाङ्क का २)

मैनेजर, विश्ववाणी
इलाहाबाद

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

जनवरी, १९४२
नई दिल्ली

मानव से

रे, विजय के मार्ग में रुकना न तू अनजान होकर !
आँसुओं से भरी पलकों में कसक पलती मिलेगी,
दाहिने-बायें पथों में आग भी जलती मिलेगी,
मनुज वह जो सह सके निज पन्थ के अंगार-छाले
आह का तूफ़ान सस्मित ओठ में अपने छिपाले
खिल उठेंगे फूल-जैसे शाप भी वरदान होकर !

◆

एक ही पथ है मनुज का—दूर हो या पास मञ्जिल
विघ्न-बाधा से भरे पथ पर चला रथ नित्य तिल-तिल
क्या तुझे इससे कि तेरा अथ कहाँ था ? इति कहाँ है ?
हँस उठे रोता हुआ जग जान गति की इति वहाँ है ?
आप नव-नव युग जगेंगे विगत का अवसान होकर !

◆

क्षितिज के उस द्वार से चीत्कार आती है दुखों की,
जल रही है नग्न भू के वक्ष पर होली सुखों की,
देख मानव का तड़पना मूँद लेना तू न लोचन
उस महान ममत्व में आत्मत्व का करदे विसर्जन
आज का मानव पुजेगा कल स्वयं भगवान होकर !
रे, विजय के मार्ग में रुकना न तू अनजान होकर !

—प्रह्लाद पाण्डेय 'शशि'—

हवा में ?

अब जापान भी लड़ाई में कूद पड़ा, जिससे अमेरिका को अपने-आप मैदान में उतरना पड़ा। इससे हिन्दुस्तान पर लड़ाई का संकट और नजदीक आगया। साथ ही लड़ाई अब सारी दुनिया में फैल गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि अब दुनिया का सर्वनाश या प्रलय और नजदीक आ गया। असीम आर्थिक, साम्राज्यिक व सैनिक महत्त्वाकांक्षाओं का दूसरा नतीजा हो भी क्या सकता है ? जिन्होंने योरप में पहले-पहल औद्योगिक क्रान्ति की थी, बड़े-बड़े कल-कारखाने खोले थे, उन्होंने शायद ही यह सोचा होगा कि यह क्रान्ति दुनिया में यह रंग लायेगी। कल-कारखानों में माल बहुतायत से बनने लगा जिसे बेचने के लिए बड़े-बड़े बाजारों को—देशों को अपने कब्जे में रखने की जरूरत पेश आयी और इसीसे आधुनिक साम्राज्यवाद की नींव पड़ी। दूसरों के देशों को हथियाने, हथियाये हुओं को अपने कब्जे में रखने व इसके लिए आपस में मरने-मारने का भयंकर दृश्य हम आज जैसा देख रहे हैं वैसा दुनिया ने न कभी देखा था, न सुना था। पहले की तरह अब केवल फौजें एक दूसरे से नहीं लड़तीं, बल्कि सारा देश का देश दूसरे देश से लड़ता है या लड़ाया जाता है, जिससे वह धर्मयुद्ध नहीं बल्कि सर्वनाश का युद्ध बन रहा है।

क्या इस सत्यानाश से बचने व बचाने का कोई उपाय नहीं है ? है, मगर उसपर चलने की शक्ति आज के इन युद्धचमान राष्ट्रों में नहीं दिखाई पड़ती। एक महात्मा पुकार-पुकार कहता है—हिंसा, हिंसा से बन्द नहीं होगी। इसमें जो मरे व हारे सो तो गये ही, पर जो जीतेंगे वे दुनिया में अधिक तबाही लायेंगे। अपने लिए भी व दुनिया के लिए भी, विजयोन्मत्त होकर वे क्या-क्या न करेंगे ? हारे हुए फिर जीतने की तैयारी में वर्तमान जर्मनी को भी मात करें तो ताज्जुब नहीं। क्या राष्ट्रों का व जनता का जीवन इसी सर्वनाश की चक्की में सदैव पिसते रहने के लिए है ? नहीं, तभी तो वह महात्मा कहता है––अहिंसा से हिंसा को निर्मूल करो। दुनिया भर की गलतफहमियों व खतरों को न्यौता देकर भी वह इस युद्ध के विरोध में अपनी आवाज उठा रहा है। पर उसकी आवाज शायद इसलिए नहीं सुनी जा रही है कि वह एक परतन्त्र देश में जन्मा है। लेकिन उसके देशवासियों ने तो उसकी आवाज सुनी है। पर क्या वे उसपर डटे भी रहेंगे ? युद्ध का यह दावानल ज्यों-ज्यों भारतवर्ष की सीमाओं के चहुँओर फैलता जाता है, त्यों-त्यों उनके मन में यह पृच्छा हो रही है कि क्या अहिंसा से देश की रक्षा हो सकेगी––क्या इस रक्षा से उदासीन रहना हमारा कर्त्तव्य हो सकता है ? इसी घबराहट से ये सुझाव आरहे हैं कि हम फिर धारासभाओं में जायें, प्रान्तीय शासन ग्रहण करें, सत्याग्रह बन्द करा दिया जाये आदि।

मगर इस घबराहट में हम यह भूल जाते हैं कि क्या हमारे शस्त्रास्त्र सचमुच भारत की व दुनिया की रक्षा कर सकेंगे ? प्रगति में, सुख-समृद्धि में, स्वाधीनता व समता के आदर्शों की पुष्टि में सहायक हो सकेंगे ? हिटलर को हराने के लिए सवाई हिटलर नहीं बनना पड़ेगा ? सवाई हिटलर की जीत घोर हिंसा की ही जीत न होगी ? उसमें से अहिंसा, जनतन्त्र-व्यवस्था, वर्गहीन समाज, आदि कैसे पैदा होगा ? हिटलर के आक्रमण यदि आज 'आसुरी' हैं, तो कल सवाई हिटलर की विजय 'दैवी' कैसे कही जायेगी या हो जायेगी ? बड़े-बड़े शस्त्रसज्जित देश भी क्या आज जर्जर नहीं हो गये हैं ? जो ज़ोरदार सामना कर रहे हैं वे भी भीतर से आशंकित, भयकम्पित नहीं दिखाई देते हैं ? क्या 'केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि' की तरह बरबस विनाश के मुहँ में धँसते हुए नहीं चले जा रहे हैं ?

हम विनाश से नहीं घबराते, यदि उसमें से संसार की सुव्यवस्था, शान्ति, कल्याण निपजता

महायुद्ध ने थोड़े ही दिनों में वर्तमान आसुरी संग्राम हमारे सामनें लाकर खड़ा किया। हमारे लिए दुनिया के लिए क्या तोहफा लायेगा इसका अनुमान करने के लिए ज्यादा जरूरत न होनी चाहिए। किन्तु बुद्धि हो तो भी शान्ति नहीं, श्रद्धा नहीं, इसका क्या ईश्वर, यह कैसी असहाय दशा ?

व श्रद्धा का अभाव क्या सूचित करता है ? नैतिकता की, चारित्र्य की कमी। जो राष्ट्र अपनें आदर्श, अपने सिद्धान्त, अपनी नीति पर नहीं चल सकता, चलने का साहस नहीं पाता, उसकी तह में अवश्य कोई स्वार्थ, अनुचित स्वार्थ, किसी किस्म की गंदगी, कोई असत्य पाया जायेगा। साहस उसीमें हो सकता है, जो स्वार्थों से व द्वेष से ऊपर हो। यदि हम अपने देश के हित के समान ही दूसरे देश के हित को समझने लगे तो फिर व इतने महान् हिंसाकाण्डों की जरूरत ही क्या रहे ? और ऐसा समझने में हमें खोना पड़ता है ? यदि दूसरों को अपना अंकित बनाने की महत्त्वाकांक्षा हम छोड़ दें तो दुनिया संकटों का रास्ता बन्द हो जाये। यह कोई बड़े त्याग की बात नहीं, सिर्फ न्याय पर बात है। यह कैसे दुर्भाग्य की व ईश्वरी अवकृपा की बात है कि इस साधारण सचाई करने की हिम्मत आज बड़े-बड़े राष्ट्रों के दिग्गज संचालकों में नहीं पायी जाती ? गनीमत में एक बूढ़ा तपस्वी अद्भुत आत्मविश्वास के साथ कहता है—तुम सब पागल हो राष्ट्रों को व मानव-जाति को विनाश से बचाने का एक मात्र उपाय है अहिंसा—शस्त्र- सारी दुनिया एक तरफ हो जाये तो भी मैं अकेला कहूँगा——'सच्चा रास्ता यही है।' दुनिया इसे कब पहचानेगी, कब सुनेगी ? क्या हम उसके देशवासी भी उसका सन्देश, हवा में उड़जाने देंगे।

हरिभाऊ उपाध्याय

क्या हम सोचते हैं ?

[रामनारायण उपाध्याय]

हमारे यहाँ बिजली की जगमगाहट होती हम सोचते हैं कि कइयों की कोठरियों अन्धकार छाया हुआ होता है ?

हम सुबह-सुबह ही उठकर नाश्ता करते क्या हम सोचते हैं कि उस नाश्ते के जितना भोजन पाने की टोह में अनेक कहीं चल दिये होते हैं।

हम लम्बी रातों में ऐशोआराम में हैं, तब क्या हम सोचते हैं कि पास लोग, भीगी आँखों, सन्ध्या को सबेरा ?

हम आज आवश्यकता न होने पर भी, सैकड़ों रुपयों को धरती में गाड़े रहते हैं, तब क्या हम सोचते हैं कि कुछ लोग उसका सौवाँ-हजारवाँ हिस्सा मात्र जीवन भर में पाने के लिए लोगों के आगे हाथ पसारे रहते हैं ?

जब हमारे यहाँ बड़े-बड़े भोजों के विराट आयोजन होते हैं, तब क्या हम सोचते हैं कि उसकी जूठन भर पाने के लिए न जाने कितनी आँखें, लालायित-सी हो, न जाने कबसे बाट जोहती रहती हैं ?

जब हमारे यहाँ चाय में शकर या मिठाई में घी, तनिक-सा भी कम हो जाने पर असन्तोष हो उठता है, तब क्या हम सोचते हैं कि अनेक व्यक्ति सूखी रोटी या दलिया पा लेने पर ही सन्तोष की साँस ले उठते हैं ?

छुट्टियाँ और काम का समय

[कालिदास कपूर]

शिक्षालयों की छुट्टियाँ और पढ़ाई का समय ऐसा विषय है जो कुछ पाठकों के लिए तो कौतूहलजनक है पर कुछ के लिए व्यर्थ।

भारतीय पाठशालाओं में निरर्थक छुट्टियों और जलवायु के प्रतिकूल पढ़ाई के समय के कारण बालकों की शिक्षा पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इस कारण शिक्षा पर किया हुआ जितना सार्वजनिक धन व्यर्थ नष्ट होता है, उसका अनुमान सर्वसाधारण को होना चाहिए कि राष्ट्रीय शासन के पूर्णतया स्थापित होने पर समुचित सुधार का मार्ग निष्कंटक हो जाये। बालकों के शिक्षकों और संरक्षकों को सर्वसाधारण का ध्यान इस ओर जाना चाहिए।

९९ प्रतिशत से अधिक भारतीय भाइयों को निरर्थक छुट्टियों और दस बजे से चार बजे तक काम करने के शारीरिक और मानसिक हानि-लाभ से विशेष सरोकार नहीं है, तो भी शासन की इस दुर्व्यवस्था के लिए इन्हें सरकारी टैक्स तो देने ही पड़ते हैं, इसलिए उन्हें यह जानना ज़रूरी है कि जो टैक्स वे देते हैं उनका कितना अधिक दुरुपयोग निरर्थक छुट्टियों और कुसमय काम के कारण होता है।

शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम को सफल करने के लिए पहले तो परिश्रम ऐसे समय होना चाहिए जब न बहुत गरमी हो और न बहुत जाड़ा। दूसरे परिश्रम के बाद नियमानुकूल अवकाश मिलना चाहिए, जिससे परिश्रम से विनष्ट शरीर के परमाणु अपनी क्षतिपूर्ति कर सकें। एक से काम का समय निश्चित होता है, दूसरी से छुट्टी का समय।

ब्रिटेन जैसे शीतप्रधान देश में तो सवेरे-शाम इतनी ठिठुरन या कोहरा रहता है कि घर के बाहर निकलकर काम करने की हिम्मत ही नहीं होती, वहाँ तो दोपहर के दोनों ओर के घंटे ही काम के लिए ठीक हैं; परन्तु भारतवर्ष में काम करने का सबसे अच्छा समय प्रातःकाल अथवा सायंकाल के निकट है। प्रचंड ग्रीष्म में प्रातःकाल और सायंकाल तो सुहावने लगते ही हैं, जाड़े में भी ये दोनों काल कष्टदायक नहीं होते। इसीलिए हमारे धार्मिक साहित्य और काव्य में 'ब्राह्म मुहूर्त' और 'गोधूलि को पवित्र माना गया है और कवियों ने भी उसकी छटा के गीत गाये हैं। पठन-पाठन, ज्ञान-ध्यान मेहनत-मजदूरी, व्यवसाय-अध्यवसाय सबके लिए दिन के वही घंटे उपयुक्त हैं जो प्रातःकाल और सायंकाल के निकट हैं।

अंग्रेज यहाँ आये परन्तु भारत में भिन्न जलवायु पाकर भी उन्होंने अपनी जीवनचर्या नहीं छोड़ी। उनके यहाँ आठ बजे से नौ बजे तक दफ़्तरों और स्कूलों के लगनें का समय है, तीन ब से पाँच बजे तक छुट्टी हो जाती है। प्रातःकाल हलका कलेवा करके वे अपने काम पर जाते हैं जिसे वे ब्रेकफ़ास्ट कहते हैं। दोपहर के क़रीब उन्हें एक घंटे की छुट्टी मिलती है। तब वे घ या किसी होटल में खाना खाते हैं, जिसे वे लं कहते हैं। यही नियम अंग्रेज़ों ने यहाँ भारत भी रखा। उनके हिन्दुस्तानी कर्मचारियों को घर के बाहर रसोई का मौक़ा कहाँ? इसलि दफ्तर या स्कूल के समय को उन्होंने एक घं बढ़ाकर नौ बजे से दस बजे कर दिया और लं का घंटा उड़ा दिया, यद्यपि बिरला ही अंग्रेज भारत में होगा जो आठ से नौ बजे त ब्रेकफास्ट न करता हो और एक बजे के करीब लंच पर न बैठता हो। इस प्रणाली के द्वारा पाठशालाओं के शिक्षक और शिष्य तथा अंग्रेजी दफ्तरों से संबंधित हिन्दुस्तानी कर्मचारी भारतीय जलवायु के प्रतिकूल काम करने के आदी हो गये

परन्तु प्रकृति के अटल नियमों का उल्लंघन करके कोई सजा पाये बिना नहीं रह सकता। फलतः हमारे नवयुवकों के मानसिक और शारी-

को जो हानि पहुँची है, उसके यद्यपि हैं, परन्तु उनमें विशेष महत्व प्रकृति शारीरिक और मानसिक परिश्रम ही है।

तो इस देश में कोई निश्चित जीवन- नहीं की जाती। खाने, खेलने, काम और सोने का कोई नियमित समय नहीं साधारणतया भारतीयों की प्राचीन अबतक यह जीवन-चर्या रही है : सूर्योदय के पहले उठना, नित्यकर्म से होना, जिसमें स्नान और पूजा सम्मिलित कलेवा, जिसके पश्चात अपने-अपने लगना, किसान खेत पर, कारीगर अपने में, दुकानदार अपनी दूकान में; दुपहरी बंद, किसान घर से लायी हुई रोटी खाता कारीगर तथा दूकानदार अपने घर में जाते हैं। घंटे-दो-घंटे विश्राम, फिर संध्या अपना-अपना काम, रात्रि के सात-आठ बजे उसके पश्चात् विनोद और नींद।

शासन या शिक्षा के दायरे में आये हुए की रहन-सहन अंग्रेज़ों की तरह निशा- गयी है:--वे भी प्रातःकाल के बाद उठते सिगरेट के बाद नित्यकर्म से निबटते हैं स्नान और पूजा सम्मिलत नहीं है) बजे तक 'छोटी हाजिरी' होती है। बाद स्कूल, कारखाना अथवा दफ्तर की । एक बजे के क़रीब एक घंटे का लंच, बजे तक काम, काम से लौटकर तीसरे चाय-पानी और विनोद, आठ बजे के डिनर', फिर बारह एक बजे तक विनोद काम, इसके बाद सैर अथवा विश्राम । यह जीवन-चर्या अंग्रेज़ों की सम्पन्न स्थिति और ब्रिटेन के जलवायु के अनुकूल होने हो सकती है, जहाँ गरमी में भी इस जाड़े-जैसी ठंड रहती है और जहाँ जाड़े घंटे से लेकर गरमी में सोलह घंटे तक रहता है। इस देश के अनुकूल वह नहीं हो जहाँ दिन-रात लगभग बराबर ही ठंडे रहते हैं, और जहाँ सूरज के प्रचण्ड होने पर स्वास्थ्य के लिए विश्राम नितांत आवश्यक हो जाता है।

प्रकृति का नियम है कि भूख दोपहर तक ही पक्की होती है। इसलिए प्रत्येक देश में प्रातःकाल के निकट हलका कलेवा होता है और दोपहर के निकट रसोई होती है। परन्तु दफ़्तर अथवा स्कूल लगने के लिए दस बजे का जो समय नियत किया गया है, वह कलेवा और रसोई के बीच का है। प्रकृति के विरुद्ध नौ बजे के करीब कच्ची भूख की दशा में स्कूली बालकों तथा उनके दफतरी संरक्षकों को अपना पेट भरकर स्कूल तथा दफ्तर की ओर दौड़ना पड़ता है। और देश की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति यह है कि दोपहर के निकट जब भूख लगती है और जिसके शांत करने पर कुछ विश्राम की आवश्यकता होती है उस समय न भोजन करने के समुचित साधन मिलते हैं और न विश्राम करने के। फलतः स्वास्थ्य पर तो बुरा प्रभाव पड़ता ही है, जिस खूबी से पढ़ाई अथवा दफ्तर का काम होना चाहिए वह भी नहीं आने पाती। भारतीय पढ़े-लिखे अच्छे खाते-पीते लोगों का स्वास्थ्य चिन्ताजनक होने का कारण भी यही अप्राकृतिक जीवन-चर्या है। बचपन से ही उनकी पाचन-शक्ति पर कुसमय भोजन का प्रभाव पड़ता रहता है। उन्हें न उचित समय पर व्यायाम करने का अवसर मिलता है, न विश्राम करने का। और जवान होने के पहले ही वे बूढ़े हो जाते हैं और बूढ़े होने के पहले ही वे संसार से चल बसते हैं।

सात भारतीय बालकों पीछे केवल एक को ही शिक्षा मिलती है, बाकी ६ अशिक्षित रहते हैं और रोजी कमानेवाले व्यक्तियों में सौ पीछे केवल एक की रोजी ऐसी सरकारी नौकरी अथवा अंग्रेज़ी व्यवसाय पर निर्भर है जिसमें उसे दस बजे की हाजिरी का नियम पालन करना पड़ता है, बाकी ९९ खेती, कारीगरी, मजदूरी और दूकानदारी जैसे व्यवसायों से पेट भरते हैं जिनमें दस बजे की हाजिरी का नियम

नहीं है। परन्तु शिक्षा अथवा सरकारी शासन पर जो कुछ खर्च होता है, उसके लिए तो सभी टैक्स देते हैं। इसलिए सरकारी शासन के दायरे के बाहर समाज की यदि शारीरिक हानि नहीं होती तो आर्थिक तो अवश्य ही होती है। और इधर हमारा ध्यान जाना चाहिए।

ब्रिटेन-जैसे ठंडे देशों में प्रतिदिन जितना समय काम के लिए दिया जा सकता है उससे कम समय ही इस गरम देश में दिया जा सकता है और उस कमी की पूर्ति करके ठंडे देशों के निवासियों का मुकाबला हम तभी कर सकते हैं जब हम वर्ष में जितने वे काम करते हैं, उससे अधिक हम काम करें। तात्पर्य यह कि जितनी छुट्टियाँ सभ्य योरोपीय देशों में होती हैं, उससे कम यहाँ हों। भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। सौ पीछे अस्सी गृहस्थों की गुजर खेती से होती है, बाकी कारीगरी अथवा दुकानदारी से गुजर करते रहे हैं। किसान इतवार की छुट्टी नहीं लेते और कारीगर अथवा दुकानदार यह समझते हैं कि हम जितनी छुट्टी लेंगे, उतना ही हमारा नुकसान होगा। फलतः किसानों को तभी छुट्टी रहती है जब खेतों पर काम नहीं होता और दुकानदार तथा कारीगर, होली, दिवाली, ईद, बकरीद मिलाकर वर्ष में सोलह दिन से अधिक अपना काम नहीं बन्द करते।

परन्तु भारत में अंग्रेजी शासन के सूत्रपात से अंग्रेज़ों की रविवार, ईस्टर और बड़े दिन की छुट्टियाँ यहाँ आयीं। अंग्रेजों के लिए प्रचण्ड गरमी में काम करना भी असम्भव था, इसलिए शिक्षालयों और कचहरियों में गरमी की छुट्टियों का सिलसिला शुरू हुआ। रह गये भारतीय शिक्षक और अन्य कर्मचारी जो अंग्रेजी शासन के सहायक हैं। धार्मिकता की न उनके अंग्रेज शासकों को फिक्र है न उनके सहायक हिन्दुस्तानियों को। परन्तु भारतीय भूमि में रहकर धर्म-रक्षा अनिवार्य है। इसलिए धर्म के नाम पर हिन्दुओं ने अपनी छुट्टियों की फेहरिस्त दी, मुसलमानों ने अपनी। ये छुट्टियाँ भी शासन-व्यवस्था के भीतर आ गयीं। भारतवर्ष के बाहर इंग्लिस्तान, चीन, जापान, मेक्सिको, इटली, रूस, जर्मनी, फ्रांस, संयुक्तराज्य, ईरान, तुर्की, मिश्र इन १२ देशों में कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ शिक्षालयों में इतनी अधिक छुट्टियाँ दी जाती हों, और जहाँ छुट्टियों का क्रम इतना अनियमित हो। परन्तु हमारे विश्वविद्यालयों और अन्य उच्चश्रेणी के शिक्षालयों में काम के दिनों की अपेक्षा छुट्टी के दिन अधिक हैं!

शिक्षालय में छुट्टी होना कोई बुरी बात नहीं है, यदि उस छुट्टी से शिक्षक अथवा शिष्य कोई मानसिक तथा शारीरिक लाभ प्राप्त कर सकें। यहाँ तो छुट्टी का क्रम शिक्षा अथवा आर्थिक आवश्यकता पर भी निर्भर नहीं है, बुआई और कटाई के समय भी जब किसानों को अपने लड़कों की सहायता की बहुत आवश्यकता होती है, देहाती स्कूलों में छुट्टी नहीं दी जाती है, छुट्टी दी जाती है गर्मी की, जब पढ़ने-पढ़ाने के लिए किसानों को फुरसत है और उनके बालकों को भी। नागरिक शिक्षालयों में हिन्दू मुसलमानों के त्यौहारों की तो छुट्टियाँ होती हैं जब शिक्षक और शिष्य घर बैठकर अनियमित समय पर खाने-पीने और गप-शप के अतिरिक्त कोई धार्मिक कृत्य नहीं करते, परन्तु जाड़े के बीच कोई लम्बी छुट्टी नहीं दी जाती जिसमें शिक्षक और शिष्य पढ़ाई के चक्कर से निकलकर पर्यटन और स्वाध्याय द्वारा अपनी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति कर सकें अथवा देहात जाकर अपने देहाती भाइयों में शिक्षा-प्रचार कर सकें।

एक बात और है। कहा जाता है कि हम बहुत गरीब हैं, देश में शिक्षा-प्रचार इस कारण नहीं बढ़ सकता कि हम अधिक खर्च नहीं कर सकते। परन्तु क्या यह ठीक नहीं है कि जो कुछ शिक्षा के साधन हमारे पास मौजूद हैं, जितना समय हमें शिक्षा के लिए मिलता है उसका भी पूरा उपयोग हम नहीं कर पाते? हमारे देश का जलवायु इतनी हमारे पक्ष में है कि शिक्षा-

इमारतों के लिए—विशेष रूप से शिक्षा के सम्बन्ध में—हमें अधिक की आवश्यकता नहीं है। इस देश में लगभग बराबर ही होते हैं। १० घंटे कभी भी नहीं होता। ऋतुएँ भी नियमित और समशीतोष्ण हैं कि पेड़ की के नीचे बैठकर ही वर्ष में कम-से-कम होने तो काम किया ही जा सकता है। से हमारे पुरखे लाभ अवश्य उठाते थे। स्थान के निकट, प्रातःकालीन प्रकृति की शिक्षा देने की व्यवस्था थी। परन्तु हम को खोकर अपने बालकों को स्वर्गीय के शब्दों में 'कीमती पिंजड़ों' में कराने लगे। वर्ष में ८७६० घंटे मुश्किल से १००० घंटे तक हम शिक्षा-इमारतों को काम में लाते हैं। विश्व-यों में इससे भी बहुत कम।

लिए शिक्षा-पद्धति में यह सुधार होना कि छुट्टियाँ हों तो, परन्तु शिक्षा और आवश्यकता के नाते, साम्प्रयिकता के । सुधार की योजना दो अंशों में है। यह है कि शिक्षालयों में दैनिक पढ़ाई पाँच घंटे से घटाकर तीन-चार घंटे । एक शिष्य-दल की पढ़ाई प्रातःकाल बजे से दस-ग्यारह बजे तक हो और की एक-दो बजे से पाँच-छः बजे तक। यों को पढ़ने का ऐसा समय मिलेगा पढ़ाई के साथ उनके व्यायाम का प्रबन्ध और उनके स्वास्थ्य पर आवश्यकता बोझ नहीं पड़ेगा। दूसरा लाभ के दृष्टिकोण से यह होगा कि एक ही और सामान द्वारा दूने बालक-बालिकाओं हो सकेगी।

यह है कि दैनिक पढ़ाई की मात्रा कम पर यह आवश्यक हो जाता है कि पढ़ाई बढ़ाये जायें और जो छुट्टियाँ दी जायें कि उनसे शिक्षा-कार्य के किसी अंग होती हो अथवा किसी सामाजिक और आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति होती हो। इसलिए छुट्टियों के सुधार के सम्बन्ध में यह योजना है कि धार्मिक छुट्टियाँ यथासंभव काट दी जायें और दीर्घ अवकाश एक की जगह दो अथवा तीन कर दिये जायें। नगरों के अंग्रेजी शिक्षालयों में अवकाश गरमी तथा सर्दी के मध्य में हो और देहात में भारी वर्षा तथा खरीफ और रबी की बुआई और कटाई के समय। छोटी छुट्टियों में वे छुट्टियाँ अवश्य दी जायें, जिनमें देहाती मेले होते हों, परन्तु इनके अतिरिक्त रविवार अथवा गरमी की छुट्टी देहाती शिक्षालयों के लिए बिलकुल अनावश्यक है। यों छुट्टियों के एक ही सिद्धांत के नागरिक और देहाती शिक्षालयों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने पर एक की फेहरिस्त दूसरी से अलग रहती है, जिसका परिणाम यह होता है कि नागरिक शिक्षालयों और विश्वविद्यालयों के शिक्षक और शिष्य अपने अवकाश का कुछ अंश देहात की सेवा में दे सकते हैं।

शिक्षालयों में छुट्टियों और पढ़ाई के समय का सुधार करने के उद्योग में तीन दलों को हाथ बँटाना है—शिक्षक, शिष्य और संरक्षक। शिक्षक को इसलिए कि वह शिक्षणकार्य अधिक सफलता से कर सके, शिष्य को इसलिए वह सर्वांगीण शिक्षा प्राप्त कर सके और संरक्षक को इसलिए कि वह फीस देता है, टैक्स देता है, वह अपने खर्च का सदुपयोग चाहता है, दुरुपयोग नहीं। इस उद्योग में शिक्षक और शिष्य उत्साह न दिखायें तो आश्चर्य नहीं है, क्योंकि सम्भव है कि कुछ शिक्षक वेतन-भोगी होने के कारण छुट्टियों का कम होना पसन्द न करें और शिष्यों को मिठाई से बढ़कर छुट्टी पसन्द है, परन्तु यदि संरक्षक उत्साह न दिखायें, यदि वे भी साम्प्रदायिक लहर में पड़कर धार्मिक छुट्टियों का पक्ष लें और स्थानीय संस्था अथवा व्यवस्थापक सभा के सदस्य की हैसियत से स्वार्थी धर्मार्थों से होड़ करते हुए सुधार का विरोध करें तो बड़े आश्चर्य की बात होगी।

साम्प्रदायिक झगड़े कैसे मिटें ?

[जवाहिरलाल जैन]

देश में फैले हुए साम्प्रदायिक झगड़े आज गंभीर चिंता और चिंतन का विषय हैं। इन झगड़ों के कारणों का अध्ययन दो रूपों में किया जा सकता है। कुछ कारण तो ऐसे हैं जिन्हें वाह्य कारण कहा जा सकता है। ये कारण इस समय देश में राजनीतिक समझौते और एकता में बाधक हो रहे हैं और देश की वर्त्तमान स्थिति में गति-रोध पैदा कर रहे हैं। उदाहरण के लिए निर्वाचन-प्रणाली, धारासभा के सदस्यों का अनुपात, मंत्रिमण्डल का निर्माण, अनिर्दिष्ट अधिकार और प्रान्त-विभाजन रक्खे जा सकते हैं। दूसरे कारण वे हैं जिन्हें आन्तरिक कारण कहा जा सकता है। इनकी जड़ गहरी है। इनकी वजह से भारत के विभिन्न धर्म तथा जातियों के लोग सैकड़ों और हजारों वर्षों से साथ-साथ रहने पर भी एक-दूसरे को नहीं समझ सके और समान विपत्तियों के मुकावले में भी संयुक्त मोर्चा नहीं बना सके। पहले कारण भी दर असल दूसरे कारणों की ही संतति हैं अथवा यों कह सकते हैं कि वे दूसरे कारणों से उत्पन्न विकृति के प्रकट रूप हैं।

इन कारणों में सबसे प्रमुख पारस्परिक अज्ञान है। हिन्दू और मुसलमान आज लगभग एक हज़ार वर्षों से साथ-साथ रह रहे हैं, फिर भी वे एक दूसरे को कितना जान पाये हैं! 'हिंदू' शब्द से मुसलमान के सामने जो चित्र खड़ा होता है वह ऐसे दब्बू इन्सान का है जो मूर्त्ति-पूजक है, उसके धर्म का विरोधी—काफ़िर है। वह दूसरे हिन्दू तक का छुआ या बनाया हुआ खाना नहीं खा सकता और मुसलमान का छुआ हुआ तो पानी भी नहीं पी सकता। 'मुसलमान' शब्द से हिंदू के सामने जो तसवीर खड़ी होती है वह विदेशी, विधर्मी तथा म्लेच्छ की है। वह गोभक्षी है, मंदिरों का तोड़नेवाला है; उसमें खान-पान का कुछ विवेक नहीं है। वह धर्म के नाम पर मरने मारने को तैयार, उसका धर्म हर बात में हिंदू धर्म से उल्टा है।

ये दोनों ही चित्र हमारी हज़ार वरसों से चालू ग़लतफहमी और अज्ञान के फल हैं। इस ग़लतफहमी की ज़िम्मेदारी हिन्दू और मुसलमान दोनों पर है।

मुसलमान हज़ार वर्ष तक हिन्दुओं के पड़ौसी रहकर भी मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचंद्र, श्रीकृष्ण, बुद्ध, हनूमान, शंकर आदि के चरित्र-रूपक और उनकी वास्तविक महत्ता को नहीं समझ पाये। हिंदू लोग सदियों तक मुसलमानों की प्रजा और पड़ौसी रहकर भी हज़रत मुहम्मद, अली, इब्राहीम आदि का कुछ भी सच्चा ज्ञान प्रम्प्त नहीं कर सके। क्या यह हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए शर्म की बात नहीं है ? यह इस देश का दुर्भाग्य है।

हम लोग इंग्लैण्ड का इतिहास, यूरोप, अमरीका और आस्ट्रेलिया का भूगोल, रेखागणित और बीजगणित की सारहीन रटन्त करा-कराकर बालकों का समय खोदेते हैं, किन्तु हिन्दू विद्यार्थी हज़रत मुहम्मद तथा इस्लामी वीरों के जीवन चरित, इस्लाम की विशेषताएँ, हिन्दू धर्म से उसकी समता तथा विभिन्नता और उसके कारण, अरब की तत्कालीन परिस्थिति से अनभिज्ञ रहते हैं और उसी प्रकार मुसलमान विद्यार्थी हिन्दू संस्कृति की विशेषताओं, उसकी सहिष्णुता और गंभीरता, भारत की धार्मिक परिस्थिति तथा हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों आदि के बारे में कुछ नहीं जानते! क्या एक दूसरे को सही ढंग से समझे बिना स्थायी एकता हो सकती है ?

और बात तो जाने दीजिए। मुसलमान इस देश में सदियों से मुर्रहम के अवसर पर शोक मनाते हैं, ईद का त्यौहार मनाते हैं, शबरात की खुशी मनाते हैं और रोज़े रखते हैं। मगर कितने हिन्दू होते हैं जो यह जानते हों कि इन सब त्योहारों के पीछे कौन-कौन सी महत्वपूर्ण

छिपी हुई हैं और मुसलमानों के जीवन क्या स्थान है ? जो भावनाएँ मुसल- के हृदय को मुहर्रम के दिनों में करुणा के भर देती हैं, कर्बला का युद्धक्षेत्र उन्हें बलिदान और धर्मप्रेम की याद दिलाता विषय में उनके पास और साथ रहने- हिन्दू इतने अनभिज्ञ हैं कि विश्वास नहीं । इसी तरह हिन्दुओं के धार्मिक त्यौहारों विकता के विषय में मुसलमान बिल्कुल और अनजान चले आ रहे हैं ।

हमारा यह अज्ञान संध्या-पूजा-स्तुति और नमाज़-इबादत तक में फैला हुआ है । संस्कृत अरबी के आवरण को भेदकर हम लोग अभी- एक-दूसरे के प्रति बनीहुई अश्रद्धा को नहीं सके । मुगलों तथा अन्य परवर्ती मुसलमान के समय में तथा उनके कारण मुसलमान जिस प्रेम और सहयोग से होली-दीवाली त्योहार मनाती थी उतने ही मनोयोग और भूति के साथ हिन्दू प्रजा मुहर्रम और अन्य रों में शामिल होती थी । हज़ारों मध्यकालीन मुसलमान संतों और सूफियों ने दोनों को का संदेश दिया, किन्तु वह प्रयत्न ऊपर तक और पारस्परिक अज्ञान के कारण आत्मा न पहुँच सका ।

अंग्रेजी राज्य के आरम्भ से यह प्रश्न और उलझ गया है । हमारे देश में पढ़ाये जानेवाले इतिहास तथा अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं की पाठ्य पुस्तकों ने जो ग़लतफ़हमी फैलादी है वह अज्ञान से भी कहीं अधिक भयंकर, विषैली और कूटनीतिपूर्ण है । उनसे इस तरह का वातावरण बन जाता है कि विद्यार्थी यह मान बैठते हैं कि इस देश में हिन्दू-मुसलमान सदा लड़ते रहे हैं और एक-दूसरे के बैरी रहे हैं; मुसलमानों ने हमेशा हिन्दुओं को हराया और उनपर अत्याचार किये हैं; हिन्दुओं ने मुसलमानों को हमेशा तंग किया और देश से निकालने की कोशिश की है; किन्तु अंग्रेजों ने हिंदू-मुसलमान दोनों को लड़ने से बचाया है जिसके फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमान इस देश में पास-पास शान्तिपूर्वक रह सके हैं ।

इस अज्ञान को दूर करने के विषय में सूत्ररूप से इतना कहा जा सकता है कि हम लोग एक दूसरे के साहित्य, धर्म, रीति-रिवाज, आचार-विचार और व्यवहार का अध्ययन करें । हम लोग एक दूसरे के सम्पर्क में अधिक से अधिक आने की चेष्टा करें और हँसी-खुशी, मौत-ग़मी, शादी-विवाह आदि में शामिल होकर आपस के दुख में दुखी और सुख में सुखी हों । जबतक हिन्दू और मुसलमान अपनी अलग-अलग दुनिया में रहेंगे और अनिवार्य न्यूनतम संपर्क से आगे नहीं बढ़ेंगे, तबतक दोनों ही अपने आपको कल्पना-लोक (fool's paradise) में पायेंगे और देश में साम्प्रदायिक एकता स्थापित नहीं होगी ।

एक वंश के हैं

हिन्दू और मुसलमान एक वंश के हैं । वे सारे देश में, यद्यपि विषम रूप से, फैले हुए हैं । वे भाषा बोलते हैं : बंगाल में बंगाली, गुजरात में गुजराती । वस्तुतः उन्होंने एक दूसरे की पूजा- का सम्मान किया है, और एक संस्कृति का विकास करने का यत्न किया है, जो कि न है न मुस्लिम है, बल्कि भारतीय है । कला और स्थापत्य में, संगीत और चित्रकारी में और में दोनों के विश्वासों का विष्कम्भक स्पष्ट दिखाई देता है । कबीर, नानक, दादू, चैतन्य तुकाराम की शिक्षाएँ और सूफी रहस्यवाद का विकास उस एकता की भावना को प्रगट करता जिसमें कि धार्मिक नेता काम करते थे । भारत के लाखों गाँवों में हिन्दू और मुसलमान एक ही में खुशियाँ मनाते हैं । उनके खेल और मनोरंजन की चीजें एक हैं । वे एक दूसरे के उत्सवों में होते हैं और ग्रामजीवन के सामान्य उद्देश्य को पूरा करते हैं । राजनीतिक संग्राम में भी हिन्दू मुसलमान साथ-साथ लड़े हैं ।

--सर्वपल्ली राधाकृष्णन्--

जीवन का उषाकाल

[प्रभुदास गांधी]

कबा काका[1]

सत्य और आत्मसम्मान के लिए सोने के ढेर तक को ठोकर मारने की कबा काका की अलौकिक क्षमता का परिचय उनकी बाँकानेर रियासत की वज़ारत के इतिहास से मिलता है।

बाँकानेर रियासत खोखली हो चुकी थी। रिश्वतखोरी और दूसरी अव्यवस्थाओं के मारे राजा साहब परेशान थे। किसीने उन्हें सलाह दी कि राजकोट से गांधीजी को बुलाकर दीवान बनाया जाय तो दशा सुधर सकती है।

राजा साहब और कबा काका की बातचीत हुई और कबा काका ने नीचे लिखी शर्तों पर दीवान बनना कबूल किया—पाँच वर्ष तक बाँकानेर रियासत उन्हें रखे; किसी भी प्रबन्ध-कार्य में राजा साहब हस्तक्षेप न करें; ६००) माहवार वेतन दें; हस्तक्षेप के कारण बीच में मंत्री-पद छोड़ना पड़े तो भी ५ वर्ष का पूरा वेतन उन्हें दें और साल भर के ७२००) के हिसाब से ५ वर्ष के ३६०००) राजकोट के चार नामी व्यापारियों के पास अमानत रखें।

राजा साहब ने और तो सब शर्तें मान लीं, केवल राजकोट के व्यापारियों के यहाँ नौ-नौ हजार रुपये जमा कराने के बदले बाँकानेर के व्यापारियों के यहाँ जमा कराये गये। परन्तु इस छोटी-सी बात पर कबा काका ने ध्यान न दिया।

कबा काका बाँकानेर गये। कुछ ही महीनों में तमाम हालत की पूरी-पूरी जानकारी उन्होंने पा ली और रियासत के अन्तरंग के प्रबन्ध में आवश्यक परिवर्तन करना शुरू कर दिया। कुछ उलट-फेर राजा साहब को अखरे और उन्होंने कबा काका को संदेश भेजा कि 'आपने यह न किया होता तो अच्छा रहता' कबा काका को यह बात खटकी, पर वे गम खा गये। दो-एक महीने में फिर उन छोटे-छोट हेर-फेरों पर टिप्पणी करते हुए उन्हें पत्र भेजा। कबा काका ने अब उत्तर भेजा—मैंने जो किया है, भलाई के लिए किया है। इस बार राजा साहब भी चुप रहे, पर थोड़े दिनों बाद तीसरा पत्र लिख बैठे—"गांधी, तुमने यह ठीक नहीं किया, यह बात बदल देना जरूरी है, यह शुरू से ही न हुआ होता तो अच्छा रहता आदि आदि।" अब तो काका का पुण्य प्रकोप जाग उठा। और 'मेरी व्यवस्था पसंद नहीं है तो मेरा यहाँ रहना ही बेकार है।' यह संदेश कहलाकर राजकोट चले आये।

किन्तु एक पखवाड़े के बाद ही राजा साहब की क्षमा देने और मंत्रित्व सँभालने की चिट्ठी उनके पास आ पहुँची और उन्हें फिर बाँकानेर जाना पड़ा। राजा साहब की बातों से वे जान गये कि वे अपनी बात नहीं छोड़ेंगे, ऐसी दशा में उन्होंन वहाँ रहने में कोई फायदा नहीं समझा और राजा साहब से कहा—'मुझे क्षमा करें, मुझसे और नहीं निभगा। शर्त के मुताबिक मुझे वेतन मिल जाये, मैं छुट्टी पाऊँ।' कबा काका ने इस्तीफा लिख दिया। इस्तीफे में लिखा—'आपने मुझे दो बार धोखा दिया है और जिस बात में आपको पड़ना न था उसमें पड़कर शर्तों को तोड़ा है, इसलिए मैं मंत्रीपद छोड़ रहा हूँ और जैसी कि शर्त थी, पाँच वर्ष का वेतन चाहता हूँ।'

राजा साहब ने त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया। बोले—शर्तभंग की बात का जिक्र न करके सीधा-सादा इस्तीफा लिख दो। मैं वेतन चुका दूँगा। करमचंद बापा ने अपनी बात पर अटल रहते हुए कहा—जो बात 'है' उसे 'न' कैसे लिखूँ ? मेरे यहाँ से हटने का और कारण ही क्या है ? कितना ही राजा साहब ने समझाया, डर भी बताया, पर कबा काका दृढ़ थे। सचाई छिपाकर झूठी खुशामद करना उन्हें न आया।

अन्त में राजा साहब ने कहा—'तब त्याग-पत्र की बात ही छोड़िए। आजतक के काम के

---

[1] जुलाई १९४१ के अंक से आगे

र रुपये ले लीजिए।' कबाकाका ने ठुकरा दिया। 'दें, तो कायदे से इस्तीफा के पूरा वेतन दें, नहीं तो फूटी कौड़ी नहीं चाहिए।' वे बोले।

साहब और कबा काका का परिचय वाले सज्जन के समझाने-बुझाने पर भी नहीं झुके और उठ खड़े हुए। उनकी दस हजार की थैलियाँ रखवा दी गयीं; उन्हें उठा-उठाकर चबूतरे पर रख और चले गये।

थोड़ा सा झुकने की बात थी। तिल भर दस हज़ार क्या चौगुना धन प्राप्त होता, का मूल्य रुपयों से अधिक होता है। शान और बान के साथ वे घर लौट दिनों दस हज़ार का मूल्य आज के हज़ार से भी अधिक था। पचास हज़ार आसामी आज जो बरक़त अनुभव नहीं करेगा दिनों में दस हज़ार का आसामी कर था।

बांकानेर से लौटने के बाद राजकोट में कार बन गये। एजेन्सी के अंग्रेज़ों की थी इसलिए राजनीतिक विभाग ने काठियावाड़ की अन्यान्य रियासतों में दिलवाने की कोशिश की। पालीताणा, के निमन्त्रण भी आये, पर दूर जाकर घर बसाने का उत्साह बापा को नहीं था। बापा पर दमे के रोग ने हमला किया। साहब देखने आये और बातचीत में कह "गांधी, तुम्हें और कहीं जाने की ज़रूरत हीं; राजकोट में अपना स्थान सुरक्षित।' वस्तुस्थिति यह थी कि करमचन्द दीवानी छोड़ने के बाद रियासत का खाली होगया था। पुलिस के महकमे छः-छः महीनों के वेतन नहीं दिये गये थे ढीला पड़ गया था।

काका को स्वास्थ्य-लाभ होजाने पर भी साहब की तरफ़ से कोई सन्देश नहीं बापा ने फिर और जगह नौकरी तलाश की। जूनागढ़ जाना तय हुआ; पर चलने के दिन दमे ने उन्हें धर दबाया। बीमारी सुनकर ठाकुर साहब फिर कबा काका से मिलने आये। कुशल-मंगल पूछते हुए राजा ने बापा से कहा—"तुम्हारे पास काम न होने से ही रोग बार-बार सताता है। चंगे होने पर तुम मुझे खबर करो, मैं तुम्हें काम दे दूँगा।" वहाँसे लौटते ही ठाकुर साहब ने कबा काका को वज़ारत सौंप दी।

इसके बाद, बापूजी के विवाह में राज ोट से पोरबंदर जाते हुए रास्ते में ताँगे के उलट जाने से बापा को सख्त चोट आयी जिसने नासूर का रूप ले लिया। यह सब बापूजी ने अपनी 'आत्म-कथा' में लिखा है। वे बड़ी कठिनता से राजकोट लौट आये। उनकी बीमारी में ठा० बावाजीराज ने स्वयं वज़ारत का बोझ सँभाला और कबा काका को पूरा वेतन चुकाते रहे। छः-छः महीनों तक इस तरह पूरा वेतन लेना अखरने से कबा काका ने ठाकुर साहब से अपना इस्तीफ़ा मंजूर करने की विनती की। परन्तु ठाकुर साहब नें उत्तर दिया—"कुछ चिन्ता नहीं, चाहे दो साल ही क्यों न बीतें !" फिर छः महीनें बीत गये। उधर नासूर नें अधिक भयानक रूप ले लिया और वे काम पर नहीं जा सके।

इस बीच ठाकुर बावाजीराज और उनके भायातों के बीच कुछ अनबन पैदा हुई। कबा काका ने न्याय भायातों की ओर देखा इसलिए उन्होंने ठाकुर साहब से झुकने की बिनती की। ठाकुर साहब बुरा मान गये और बोले—"हमारे इतने गाढ़े सम्बन्ध का भी तुम कुछ खयाल नहीं करते और मेरे विपक्षी का पक्ष लेते हो ?"

अपना प्रामाणिक मत दबाने की कायरता कबा काका में थी ही नहीं। इस सम्वाद के बाद फौरन कबा काका ने ठाकुर साहब को सूचित किया कि अब आप किसी दूसरे मंत्री को ढूंढ लें। मैं आपकी सेवा और अधिक न कर सकूँगा। मेरा स्वास्थ्य सुधरनें के बजाय गिरता ही जाता है। इस तरह लगभग सालभर तक बीमारी के बिस्तर पर पूरा वेतन चुकाने के बाद

ठाकुर साहब ने बापा का इस्तीफा मंजूर किया। बाद में उन्हें अंत तक यानी तीन बरस तक राजकोट रियासत से पेन्शन मिलती रही।

करमचन्द बापा की लंबी बीमारी में बापू (महात्मा गांधी) ने उनकी जो तीमारदारी की थी उसका 'आत्मकथा' में भावपूर्ण वर्णन है। मेरे दादाजी इस दृश्य का बड़ी भावुकता के साथ बखान करते नहीं थकते थे। दादाजी ने बताया कि कबा काका बीमारी में भी बहुत ही शान्त, स्वस्थचित्त और शक्तिपरायण रहते थे। वे बापूजी को 'मनु' कहा करते थे। कबा काका को कुछ भी चाहता होता तो पहली आवाज मनु को ही देते और मनु हाजिर ही रहता। सुबह उठकर मनु पिताजी को दतौन कराता, शौच के लिए बिठाता, पैर धोता, स्नान कराता, दवा कूट-पीस देता और इतना करके अपनी पढ़ाई में लग जाता।

मनु और करमचन्द बापा में परस्पर अगाध स्नेह और श्रद्धा थी। अन्तकाल में किसी ने कबा काका से पूछा। "काका, आपके बाद कौन?" तब आपने बड़ी संजीदगी से जवाब दिया--"मेरी नाक यह मनु रखेगा। वह कुल को उज्ज्वल करेगा" और ये आशीर्वाद सफल हुए। करमचन्द बापा को कभी सपना तक न होगा कि मनु इस उच्चतम भूमि पर पहुँचकर उनकी नाक रखेगा। नाक क्या रखी, पुत्र ने पिता को अमर बना दिया। यदि आज भी पुत्र के सफल कर्तृत्व का स्वर्गीय पिता की आत्मा को पता चलता होगा तो वह कितनी पुलकित होती होगी!

पिता की इस सेवा से वे खुद कितने कृतार्थ हुए हैं यह बापूजी ने एक बार मुझसे कहा था। उन्हें यहाँ देनें का मोह-संवरण नहीं होता। सन् १९३० में शिक्षा की चर्चा चल रही थी। बापूजी ने कहा--"आजकल शिक्षा का प्रवाह जिस ओर बह निकला है उसकी व्यर्थता लोगों के दिमाग में जाने कब आयेगी? सच्चा शिक्षण सेवा में ही छिपा हुआ है--यह मानो दुनिया भूल गयी है। हमें आश्रम के विद्यार्थियों को बड़ों की सेवा की ओर मोड़ना चाहिए। शिक्षक की और माता-पिता की सेवा हजारों पृष्ठों की पढ़ाई से बढ़कर है यह समझाना चाहिए। मैं इस उन्नति पर अपने पिता की सेवा के प्रताप से ही पहुँच पाया हूँ। मेरी पढ़ाई तो तेरे बराबर भी नहीं है।[1] मेरी बुद्धि का और हृदय का विकास, मेरे चारित्र्य का संगठन और मेरी सतत प्रगति यह सब एक मात्र बचपन में की हुई मेरी पितृसेवा के ही फलस्वरूप है। जिसे करना हो वह इस बात का अनुभव करके देखे उसे सेवा में अपना सर्वतोमुख विकास होता हुआ प्रतीत होगा।"

---

[1] इस कथन में बापूजी के दिल की अपार नम्रता और श्रद्धा के दर्शन होते हैं। मैं तो उनके ज्ञान-वाचन और मन के मुकाबले में सूर्य के पास हवा में तड़पते हुए दिये की लौ से भी गया-गुजरा मुझ नगण्य का वाचन होगा।

"अगर हम आज़ादी चाहते हैं तो सारा देश एक होना चाहिए। जात-पाँत, वर्ण-धर्म और प्रांत के द्वेष नष्ट होने चाहिएँ, प्रजा का आन्तरिक व्यवहार, न्याय और नीति के अनुसार चलना चाहिए। बलवानों को निर्बलों के लिए खपना चाहिए। हरएक को पेटभर रोटी, शरीर-भर कपड़ा और आराम-भर मकान मिलने का प्रबन्ध करने में सारे समझदार लोगों को एकमत हो जाना चाहिए। यह सब जुटाने के लिए व्यक्तिगत तथा समाजव्यापी अहिंसा की यानी दूसरे के लिए सन्तोष, कर्तव्य-बुद्धि और प्रेम से खपने की आवश्यकता है, न कि हिंसा या द्वेष की; ज़रूरत निःस्वार्थ बुद्धि की है, न कि स्वार्थबुद्धि की, सर्वव्यापी ममता की है न कि तंग दड़बों में बन्द किये हुए अहं-ममत्व के भाव की।

यदि हम अपने जीवन तथा संस्कारों में इस प्रकार की क्रांति कर सकें तो जर्मनी या जापान के आक्रमण से अपना बचाव करने की अहिंसक योजना भी हमें अपने आप सूझ जायेगी, क्योंकि यह क्रान्ति तो अहिंसा के अनुशीलन से ही हो सकेगी।"

— किशोरलाल मश्रुवाला —

[सस्ता साहित्य मंडल 'अहिंसा-विवेचन']

वह गंजा लड़का

[सत्यवती मलिक]

झील के किनारे खड़ी मैं अपने साथियों [illegible] कर रही हूँ। आज सारा दिन हमने [illegible] की पहाड़ी पर गुलाब की झरती हुई, [illegible] से सुवासित शीतल धारा के पास [illegible] जाता है।

[illegible] की शीतल छाया हरी-कच्ची घास [illegible] जगह बिखरे हुए छोटे-छोटे डेज़ी के [illegible] हरे आसमानी, शोषन, और न जाने [illegible] रंग-बिरंगी बेलें जिनमें लोटते-लोटते [illegible] भर उठे।

[illegible] के पार्श्व में झील से निकली, दूर [illegible] छोटी नदी है। धान के खेतों का जल [illegible] जहाँ से झर-झरकर मिल रहा है। [illegible] से आच्छादित, जहाँ उसका प्रवाह [illegible] छल-छल संगीतमय हो गया है, [illegible] हमलोगों ने स्नान किया है।

कुछ साथिनें साक्षात् गन्धर्व कन्याओं-[illegible] होती हैं। उनकी लम्बी, घनी अलकें [illegible] वायु के झकोरों से तरंगित हो रही हैं [illegible] के जल की तरह। और उनके [illegible] मुखों से पँखुड़ियों-सा मधुर हास्य [illegible] है।

[illegible] दिन ग्रामीण बालक, पर्वतीय ग्रामों से [illegible] अखरोट और ताज़े शहतूत, चिनार के [illegible] से निर्मित डालियों में सजा-सजा कर [illegible] है। इनमें से एक गंजा लड़का बहुत-से सुन्दर [illegible] लाया है "जंगली गुलाब"! जो मुझे [illegible] प्रिय हैं, इन्हीं फूलों के स्वप्न, मैं घर बैठी-[illegible] मूँदकर देख लिया करती थी।

[illegible] होने को है। हवा ज़ोर से चलने लगी [illegible] का हरित रंग बदलकर काला होता [illegible] है। उसका समूचा जल उछल-उछलकर [illegible] जाना चाहता हो। मैं पुनः ऊपर बाँध [illegible] आयी हूँ। और मेरे पीछे-पीछे वही [illegible] फूल लिये खड़ा है।

[illegible] फटे चीथड़ों से ढका बदन। सामनें के जंगलों में भटके हुए चिन्होंवाले लोहित पाँव और उसकी सरल मुद्रा कुछ ऐसा भाव प्रकट करती है जो शहरों में देखने को नहीं मिलती।

मुझे उसके मैलेपन से, दरिद्रता से कुछ वास्ता नहीं। मेरे मन में तो उन फूलों का आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। मेरी ललचाई आँखें उन सफेद गुँचों पर एकटक-सी पड़ रही हैं और मैंने हाथ बढ़ा दिये हैं।

उस गंजे बालक का चेहरा खिल उठा है। **"केवल एक पौंसा"** (पैसा) प्राप्त करने की आशा से। मैं जानती हूँ वह नाचता हुआ, पैसा लेकर—दूर ऊपर पहाड़ी घरों की ओर भाग जायेगा—ऊपर सघन वन में जहाँ से एक प्रपात गिरता दिखायी देता है!

लेकिन मेरा बढ़ा हाथ वहीं का वहीं रह गया है! मेरे साथी एक साथ चिल्ला उठे हैं—**"नहीं कभी नहीं!" "इन लोगों को कुछ मत दीजिए!"**

"पैसा!"

"हरगिज नहीं।" मैं निस्तब्ध हूँ।

"अजी ये लोग हमारे हाथ का खाना नहीं खाते……यह कौम ही ऐसी है।"

मेरे हाथ में पैसा है, लड़के के इस ओर बढ़े हुए हाथ में फूल हैं। मेरा जी एक उमंग से भर रहा है और उसका एक से……किन्तु मेरे साथी लैक्चर झाड़ रहे हैं—**"पहले इसे कहिए हमारे हाथ का खाना खाए नहीं तो हम नहीं लेने देंगे।"**

साथियों की विजय हुई है। मैंने अपना बढ़ा हुआ हाथ खेंच लिया है! लड़का जिन नेत्रों से मुड़-मुड़कर पीछे की ओर देखता हुआ, झील की परली ओर विलीन हो रहा है……

मेरा जी बिंध रहा है। और मानों रोम-रोम अभिशापित-सा हो रहा ह। इस मुक्त वायु में; इस स्वच्छन्द धरती पर, फैली मानवता में विषैले कीटाणुओं के बिखेरनेवालों पर…………।

प्रीति या पैसा ?

[प्रयागनारायण त्रिपाठी]

व्यक्ति के कर्तव्य का दायरा जब छोटा रहा होगा और उसकी आवश्यकताएँ कम, तब अवश्य ही उसे अपनी शक्ति को विकासोन्मुख करने का अवसर मिलता रहा होगा। वैदिक युग की महान् जीवन-साधना का नहीं तो और क्या रहस्य है ?

पर आज तो सब कुछ बदल गया है और बदल रहा है। अनेक प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं को बनाता-बिगाड़ता हुआ मानव आज एक अजीब उलझन की अवस्था में पड़ गया है। आज वह यह जानने के लिए आकुल और अधीर है कि अपना अस्तित्व कैसे सही-सलामत रखा जाये और 'जीवन' नाम की चीज़ को कैसे पाया जाये। आज का मानव जीने की कला की खोज में है।

जीनें के कला की खोज की उत्कट उत्कंठा से प्रेरित मनुष्य ने विज्ञान के नये-नये आविष्कार किये, विलास के उपकरणों के ढेर लगाये, समाज व शासन की नयी-नयी व्यवस्थाओं को जन्म दिया और समस्याओं को हल करनें के नये-नये साधन–जैसे क्रान्ति, युद्ध, कूटनीति आदि—खोज निकाले और आज बीसवीं सदी का विचारशील व्यक्ति भी मकड़ी की भाँति अपनी इन्हीं उलझनों में उलझा हुआ है।

आज के जीवन में जो एक और चीज़ आ पड़ी है, वह है पैसा। पैसा सदैव किसी-न-किसी रूप में हमारे जीवन में रहा है। व्यक्ति की उलझन सदैव इसी को लेकर बढ़ी है और विकासोन्मुख वह तभी हो पाया है जब 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' के सिद्धान्त को अपनाकर उसने जीवन-पथ पर पाँव बढ़ाया है। आज समस्त विचारशील व्यक्तियों का यही कहना है कि पैसा और पैसे के आधार पर बनी आज की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था ही हमारे सम्पूर्ण जीवन को विषमय बनाये हुए है।

पैसे के साथ ही साथ हमारे जीवन म एक और भी चीज़ का स्थान है। वह है प्रीति। यही वह सूक्ष्म और कोमल तन्तु है, जो मानव मानव को एक में आबद्ध करता है, जो व्यष्टि और समष्टि में ऐक्य स्थापित करता है तथा जीवन को सेवा-परायण और विकासोन्मुख बनाता है। इसीके अभाव में सदैव उलझनें बढ़ती रही हैं। हमारे जीवन में पैसे को अधिक महत्त्व मिला है या प्रीति को—हमारे विकास को इसी पैमाने से नापा जा सकता है।

हमारे आज के जीवन पर पैसा हावी है। राह चलते यदि आज हमें एक भिखारी मिल जाता है और बग़ल ही में एक चाँदी का गोल सिक्का, तो हममें से कितने लोग ऐसे होंगे जो सिक्के की ओर निगाह न उठाकर उस हीन, गन्दे भिखारी को देखने का कष्ट गवारा करेंगे ! हमारे आज के जीवन के मान (Values) पैसे के सहारे टिके हैं। वे पुष्प की भाँति हल्के वर्ण के और भीनी सुगन्धिवाले न होकर हीरे-जैसे चमकीले किन्तु कठोर ह। आज के जीवन की अतृप्ति, वैषम्य, नैराश्य, सबकी जड़ में एक ही चीज़ पैसा है।

इस पैसे के आ जाने से ही आज हमारे जीवन में क्रियात्मक तेजस्विता नहीं, प्रगति के लिए बेचैनी नहीं, स्वस्थ आदर्श की भावना नहीं, निश्चित उद्देश्य नहीं। हमारा आज का जीवन है आत्मतुष्टि का जीवन है, ऐहिकता का जीवन है, अप्रीति का जीवन है। व्यक्ति जब लालसाओं की तृप्ति के साधन जुटाने को ही अपना परम कर्तव्य समझ लेता है तो प्रीति नाम की चीज़ उसके जीवन में शेष नहीं रह जाती। उसे तो जल-जलकर बुझ जानेवाली सुख की झलक और अशान्ति, असन्तोष और निराशा ही हाथ लगेगी।

उस दिन रूस-जर्मन युद्ध की खबर अखबार

थी। पड़ोस के सेठजी व्यग्रतापूर्वक मेरे पास आकर उतावले से पूछने लगे——यह सच है कि रूस-जर्मनी में युद्ध छिड़ है? प्रश्न सुनकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ, कि सेठजी को रूस से और जर्मनी लेना-देना ? मैंने कहा—हाँ, यह ख़बर है। इसपर उन्होंने कुछ अजीब ढंग से में चाँदी का भाव बतलाने की 'कृपा' । मैंने उन्हें भाव बतलाकर विदा किया, पर में एक विचार जो घुमड़ उठा, उसे न विदा सका। मैंने सोचा—क्या सेठजी को रूस- नी युद्ध की बात केवल इसीलिए नहीं जाननी कि उन्होंने चाँदी का सट्टा किया है और के भाव के घटने-बढ़ने का संबंध बहुत कुछ र्मन युद्ध से है तब सेठजी के जीवन को क्या कहेंगे ? प्रीति का जीवन ?

अस्तित्व के लिए संघर्ष, जीने की कला की और पैसे की साधना—आज के व्यक्ति के न मुख्य कार्य हैं और ये तीनों ही कार्य को प्रीति से जोड़ते नहीं, तोड़ते हैं; समष्टि जोड़ते नहीं, अलग रखते हैं। ये तीनों अपने आपमें दोषपूर्ण नहीं, यदि इनको यां बनाकर हम आत्मोन्नति की ओर अग्र- होते जायें। पर अगली सीढ़ी पर पहुँचने के जैसे हमें पीछे की सीढ़ी को छोड़ते मोह होता, उसी प्रकार त्याग की भावना को जाग्रत् रखते हुए ही हम आगे बढ़ सकेंगे, उठ सकेंगे, प्रीति का जीवन व्यतीत कर गे।

प्रीति का जीवन क्या और कैसा हो ? के भीतर दुर्बलता और सबलता दोनों का है। अपनी दुर्बलताओं पर क्रमशः विजय करते हुए, छोटे से छोटे दायरे में प्रीति- बरतते हुए ही प्रीति के जीवन को पाया कता है। इसके लिए आवश्यक साधन मानता हूँ—त्याग, संयम और साधना। हो परार्थ 'स्व' का, आत्मार्थ 'अहं' का, पैसे के लगाव का; संयम हो कामनाओं का; साधना हो सेवा की, कर्म की, प्रीति की। लक्ष्य-प्राप्ति के पथ पर हम दृढ़ रहें, अचल रहें, धीर रहें, प्रत्येक परिस्थिति में समभाव रहें, जीवन कृत्रिम न होकर स्वाभाविक हो। सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह तथा श्रद्धा, विनम्रता और विवेक जीवन-विकास के लिए नितांत आवश्यक हैं। यदि हम सचमुच प्रीति का जीवन बिताना चाहते हैं तो इनको अपनाने में हमें कुछ भी कठिनाई न होगी। कठिनाई तभी पड़ती है जब हमारा विश्वास किसी निश्चित आधार की खोज में भटका रहता है। 'संशयात्मा विनश्यति' का यही तात्पर्य है। संशयालु व्यक्ति को कभी शांति और संतोष नहीं प्राप्त होता। आन्तरिक आनन्द की उपलब्धि तो तभी हुई है जब हमने व्यवहार में प्रीति को स्थान दिया है, आस्था के साथ जीवन बिताया है। पैसा और तन-मन की शक्ति के गर्व को प्राप्त करके मनुष्य ने समझा कि वह ऐसी व्यवस्था को जन्म देगा जो प्रगति को सम्भव बनायेगी; शांति, सुख और समृद्धि बढ़ायेगी। पर देखनें में तो उल्टी बात ही आयी है। प्रीति को आधार बनाकर ही मानव समस्याओं को भली भाँति सुलझाया जा सकता है, अन्यथा नहीं। पिछले महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर लोगों ने कहा था कि युद्ध की समाप्ति पर सारी उलझनें एक लम्बे अर्से के लिए सुलझ जायेंगी। पर २४ वर्ष बाद ही आज पहले से कहीं अधिक भयंकर दूसरा महायुद्ध छिड़ चुका है। इस महायुद्ध में भी किसी एक पक्ष की विजय हो जाने पर समस्याएँ हल न हो पायेंगी बल्कि उनकी जड़ें जमेंगी। शान्ति तभी स्थापित हो सकेगी जब पैसे पर निर्धारित मूल्यों और मानों को आमूल बदल दिया जायेगा। जीवन के प्रति जबतक हमारा दृष्टिकोण बहिर्मुखी है, तब तक उलझन है। अंतर्मुखी जीवन, आतमत्याग का जीवन, सेवा और आत्मोत्सर्ग का जीवन ही प्रगतिशील और विशुद्ध प्रीति का जीवन है। पैसे का जीवन जीवन नहीं, जीवन की सुप्तावस्था है।

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा

[चन्द्रबली पांडे]

काशी के क्वींस कालेज को इस बात का अभिमान होना चाहिए कि नागरी-प्रचार का सच्चा स्रोत वहीं से फूटा है। नागरी की प्रभुता के सामने जब अरबी और रोमन की धूम मची, तो काशी की तपस्विनी भूमि तड़प उठी और क्वींस कालेज के विद्यार्थियों में नागरी के उद्धार की पवित्र भावना जाग पड़ी। सहसा नागरी की क्षीण धारा में बल आ गया और छात्रों के अवकाश का समय नागरी-प्रचार की चिंता में व्यतीत होने लगा। फलतः संवत् १९५० वि० में काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। किसने क्या किया, इसका लेखा आज कौन ले सकता है? किन्तु तीन-चार छात्रों ने मिलकर जो सुदृढ़ नींव रखी थी, उसपर आज काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का प्रासाद खड़ा है और उसीकी विभूति आज हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के रूप में चारों ओर फैल रही है।

नागरी-प्रचारिणी सभा नागरी और साहित्य दोनों को ही लेकर चल रही है और फलतः बराबर चलती भी रहेगी। एक ओर सभा को प्रचार-कार्य करना है, तो दूसरी ओर साहित्य का प्रसार और निर्माण।

दैवयोग वा सौभाग्य की बात कहिए, कि विक्रम के २००० संवत् में सभा के ५० वर्ष पूरे होते हैं। उसी अवसर पर उसकी भी स्वर्ण-जयन्ती होने जा रही है। इन पंक्तियों में सभा के ५० वर्ष के कार्य की एक झलक देने का प्रयत्न है।

प्रचार-कार्य

जब कभी सरल शिक्षा का प्रश्न उठा है, देश के स्वच्छ और विमल बुद्धि के लोगों ने नागरी का नाम लिया है। विश्व-भर की सभी लिपियों में नागरी की पूर्णता मान्य है। उसकी सरलता और सुबोधता तो तुरंत बोल उठती है। फिर भी उसके सुननेवालों की इतनी कमी हो गयी थी कि कचहरियों और दफ्तरों में कोई उसे पूछता तक नहीं था। उसके लिए चारों ओर दफ़ा १४४ लगी हुई थी। सभा ने ६०००० व्यक्तियों के हस्ताक्षर प्राप्त करके महामना मालवीयजी को खड़ा किया और उनके अथक प्रयत्न और सर ऐंटनी मैकडानल की परम अनुकम्पा से युक्त-प्रान्त में नागरी को कचहरियों में स्थान मिल गया। २१ अप्रैल सन् १९०० ई० में सरकार के यहाँ नागरी को सफलता प्राप्त हो गयी। इसके बाद समय-समय पर नागरी-प्रचार के लिए सभा ने जो काम किये, उनका विवरण सभा से प्राप्त हो सकता है। **'नागरी कैरेक्टर'** के द्वारा उसने यह सिद्ध कर दिखाया कि वास्तव में नागरी लिपि रोमन लिपि से भी कहीं अधिक सुगम और सुबोध है। सभा की ओर से इसका प्रकाशन सम्वत् १९५२ वि० में हुआ था।

सम्वत् १९८८ वि० में **'कचहरी-हिन्दी-कोश'** भी बना, किंतु कचहरी के बाबुओं को वह प्रिय न हुआ। कचहरी जनता को साक्षर नहीं देखना चाहती उसकी मूढता में ही उसका हित है; परन्तु जनता को अपने उद्धार की चिन्ता करनी चाहिए 'कचहरी-हिन्दी-कोश' उसके हित के लिए बना है।

प्रचार के कार्य में सभा कुछ ढीली पड़ गयी थी, परंतु जब उसने प्रत्यक्ष देख लिया कि राष्ट्र के बड़े-बड़े नेता उर्दू के गूढ और घातक चक्र में फँस गये हैं और फलतः सम्मेलन भी 'किं करोमि' के फेर में पड़ गया है तब सभा ने खरी खोज के आधार पर उन्हें सुझाया कि राष्ट्र की परम्परागत भाषा हिन्दी ही है और नागरी ही उसकी परंपरागत राष्ट्रलिपि है। पुस्तकों से पूरा पड़ता दिखाई नहीं दिया, तो गत वर्ष उसने 'हिंदी-पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ किया जो जनता में हिन्दी का प्रचार कर रही है और नाममात्र के मूल्य (आठ आने वार्षिक) पर चलायी जा रही है। इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं हिन्दी पर संकट

ता है, वहाँ उसके सभासद जाते और पुष्ट के आधार पर हिन्दी की पताका फहराते दी के प्रचार ओर प्रतिष्ठा के निमित्त सभा त् १९९४ में संकेत-लिपि की कक्षा भी है, साथ ही गूढ़ हिन्दी टाइप की भी शिक्षा ती है। इसके सफल छात्र बड़ी योग्यता सम्पादन कर रहे हैं और कुछ छात्रों की ने अच्छे वेतन पर नियुक्ति की है।

साहित्य-निर्माण

सभा के छोटे-छोटे कार्यों की चर्चा व्यर्थ । उसके प्रकाशनों से सभी थोड़े-बहुत अव- हैं। परन्तु सभा का यह कार्य भी अर्थ-संकट रण शिथिल पड़ गया है। कुछ दानी नों की कृपा के कारण जो पुस्तकमालाएँ हैं उनका कार्य तो चल रहा है, पर सभा अपनी ओर से नहीं कर पाती है। राजरासो' और **'हिन्दी शब्दसागर'** जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित करनेवाली संस्था आर्थिक कठिनाइयों के कारण **'सूरसागर'** विश्वमान्य ग्रंथ के प्रकाशन में असमर्थ हो है! क्या फिर भी गर्व के साथ कहा जा है कि विश्व में कृष्ण के उपासक जीवित हैं राधाकृष्ण के गीत अब भी गाये जाते हैं? सभा ने **'नागरी-प्रचारिणी ग्रंथमाला'** की पहले से ही बना ली है और उसमें ३६ का प्रकाशन भी हो चुका है, परन्तु उसकी निधि नहीं अतः उसका कार्य स्थगित-सा है। **'मनोरंजन-पुस्तकमाला'** की ५४ पुस्तकों के सभाकी निम्नलिखित पुस्तक मालाएँ हैं:

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला'—यह र के स्व० मुंशी देवीप्रसाद के नाम पर के दान से चल रही है। संवत् १९७५ में प्रारम्भ हुआ था। इस माला में अबतक ऐतिहासिक पुस्तकें निकल चुकी हैं।

'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला'—संवत् १९७६ में धीश श्रीमान् महाराज उम्मेदसिंह के से इसकी स्थापना हुई थी। अबतक इसमें पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

'बालाबक्ष-राजपूत-चारण पुस्तकमाला'—यह जयपुर के बारहट बालाबक्षजी के दान से उन्हींके नाम पर चल रही है। इसमें उसके ब्याज से डिंगल तथा पिंगल के ग्रंथ प्रकाशित होते हैं। अबतक इसमें आठ पुस्तकें निकल चुकी हैं।

'देव-पुरस्कार-ग्रंथावली'—श्रीमान् ओड़छा-नरेश के दान से चल रही है। इसमें अभीतक दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

पत्रिकाएँ

हिन्दी की प्रसिद्ध **'सरस्वती'** पत्रिका का प्रवर्त्तन सभा से ही हुआ था। संवत् १९५६ में पाँच सज्जनों ने मिलकर इसका सम्पादन आरंभ किया और कुछ दिनों के बाद वह स्व० पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के वरद हाथों में जाकर चमक उठी।

'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' शोध के लिए प्रसिद्ध है। संवत् १९५२ में वह त्रैमासिक पत्रिका के रूप में निकली, संवत् १९६४ में कतिपय कारणों से मासिक कर दी गयी, किन्तु इस क्षेत्र में कार्य करना अधिक उपयोगी न देखकर उसे संवत् १९७७ से शोध-सम्बन्धी त्रैमासिक पत्रिका बना दिया गया और संवत् १९९५ में उसकी देख-रेख के लिए एक सम्पादक-मण्डल नियत किया गया जिसके सभी विभागों के लेख पूरी छान-बीन के साथ छापे जाते हैं। वे अन्य भाषा-भाषियों में भी प्रतिष्ठा तथा गौरव की दृष्टि से देखे जाते हैं।

'भारत-कला-भवन' का नाम तो भूला ही नहीं जा सकता। सभा की शोभा उससे चौगुनी बढ़ गयी है। काशी में कोई कलाविद् आये और उसकी परिक्रमा न करे, यह असम्भव है। प्राचीन साहित्य की गुत्थियों को सुलझाना हो तो एक बार इसका दर्शन अवश्य करना चाहिए। इसके एक-एक ठीकरे में कितनी संस्कृति छिपी है! अब तो इसे राजघाट की सारी सामग्री प्राप्त हो गयी है और बनारस प्रान्त की सभी चीजें इसमें संग्रहीत हो रही हैं।

सभा के **'खोज-विभाग'** में सरकार ने जितना योग दिया, जनता ने उससे उतना ही दूर रहना

अपना धर्म समझा। यदि जनता का ध्यान इधर होता तो सभा हस्तलिखित पुस्तकों से भर गयी होती। पर दशा तो यह है कि लोग सभा के खोजियों को पुस्तकें देखने को भी नहीं देते। सभा ने संवत् १९५६ में इसका श्रीगणेश किया था। युक्तप्रान्त की सरकार तभी से इसकी सहायता कर रही है और आज भी २००० रु० प्रतिवर्ष दे रही है। जब-तब अन्य प्रान्तीय सरकारों ने भी कुछ दे दिया और उनके क्षेत्र में भी खोज हुई, पर लगातार सहायता किसी से न मिली।

सभा के पुस्तकालय[1] के सम्बन्ध में इतना निवेदन कर देना पर्याप्त है कि वह हिन्दी का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। संवत् १९५० में ठाकुर गदाधरसिंहजी ने अपना 'आर्यभाषा पुस्तकालय' सभा को दान कर दिया। फलतः आज भी उसका नाम **'आर्यभाषा पुस्तकालय'** ही ह। संवत् ५५ में उन्होंने अपनी संपत्ति पुस्तकालय को दे दी। संवत् ८० में द्विवेदीजी और संवत् ८९ में रत्नाकरजी की पुस्तकें भी सभा को प्राप्त हो गयीं। इधर पंडित रामनारायण मिश्र ने भी अपनी पुस्तकें सभा को दे दी हैं। इस प्रकार सभा का पुस्तकालय भी बढ़ता जा रहा है। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं की भी कुछ पुस्तकें सभा में हैं। सभा में पुस्तकालय के साथ ही एक वाचनालय भी है जिसमें हिन्दी के प्रायः सभी अच्छे पत्र आते हैं। जनता के उपकार के लिए समय-समय पर व्याख्यानों का भी प्रबन्ध किया जाता है। स्व० श्रीजयशंकर 'प्रसाद' की निधि से संवत् १९८७ से **'साहित्य-गोष्ठी'** के अधिवेशन भी होते रहते हैं।

सुख और सन्तोष की बात है कि सभा के तीन संस्थापक अभी जीवित हैं और उसकी **'स्वर्ण-जयन्ती'** देखने के लिए उत्सुक हैं। रायबहादुर श्यामसुन्दरदासजी जब कभी किसी रोग के आक्रमण से मुक्ति पाते हैं तो यही कहते हैं कि सभा की स्वर्ण-जयन्ती के लिए जी रहा हूँ। सभा के दूसरे संस्थापक रायसाहब ठाकुर शिवकुमार सिंह भी वृद्धावस्था की लपेट में जा चुके हैं। उनके लिए कभी-कभी चलना-फिरना भी असम्भव हो जाता है, पर उनमें साहस का अभाव नहीं है। वे सभा के लिए सदा सन्नद्ध रहते हैं। संस्थापकों में पंडित रामनारायण मिश्र ही एक ऐसे हैं जो आज भी अदम्य उत्साह से हिन्दी-हित में मग्न हैं।

हिन्दी का सौभाग्य है कि अभी उक्त संस्थापक हमारी परीक्षा के लिए जीवित हैं और आशाभरी आँखों से टकटकी बाँधकर देख रहे हैं कि उनकी निष्ठा कहाँ तक सफल हो रही है! अब क्या आप इतना भी नहीं कर सकते कि सभा को ऋणमुक्त[1] कर उनके सामने धूमधाम से उसकी स्वर्ण-जयन्ती मनायें और प्रत्यक्ष दिखा दें कि विक्रम के २००० वर्ष के उपरांत भी भारतवासियों में विक्रमादित्य का पराक्रम बोल रहा ह और नागरी के झंडे के साथ गरुड़ध्वज भी फहरा रहा है? और कुछ नहीं तो सभा के सदस्य[2] बनकर तो अपने नागरी-प्रेम का परिचय दे ही सकते हैं?

---

१ इस पुस्तकालय में सब मिलाकर २४००० पुस्तकें हैं, जिनमें केवल हिंदी की छपी पुस्तकों की संख्या १६००० है।

१ सं० १९९७ के अंत तक सभा को कुल ८३१०६८ रु० ६½ आ० की आय हुई और ८२३६७३ रु० ६½ आ० व्यय हुआ। इसकी स्थायी निधियों का अंकित मूल्य ४७४५० रु० है। लगभग एक लाख रुपये की लागत का सभा का भवन तथा भूमि है। पर 'सूरसागर' के सम्पादन, भारत कला भवन तथा कई महत्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन के कारण इस समय सभा पर लगभग २०००) का ऋण है। स्वर्ण-जयन्ती के पहले इस ऋण को चुका देना तथा अपने स्थायी कोश में एक लाख रुपया जमा करना सभा के लिए आवश्यक है। स्थायी कोश में अभी केवल १७०००) इकट्ठा हो पाया है।

२. सभा के सभासदों की संख्या सं० १९९७ के अन्त में १०३७ थी।

प्रेम, प्रणय और भोग

[रामस्वरूप व्यास]

हरिभाऊजी ने मेरी पुस्तक 'चंद्रिका' की ना करते हुए कुछ ऐसे प्रश्न उठाये, हमारे सामाजिक जीवन और विशेषकर के आपस के सम्बन्ध से गहरा लगाव लेख में इन्हीं कुछ प्रश्नों का विवेचन रण, सामान्य जनता की दृष्टि से होगा। माजशास्त्रियों का एक वर्ग मनुष्य जीवन तिकरूप से सुखी रखने को तथा दूसरा वर्ग की उन्नति को समाज-व्यवस्था का ध्येय है।

श्चिम की भौतिकवादी समाज-व्यवस्था र्वसाधारण भी समझ सकता है। परन्तु व्यवस्था की व्यावहारिक दृष्टि से तत्व उसी प्रकार का है जैसा कि एक गुरुत्व आकर्षण था, और आज आइंस्टीन क्षवाद', जो सत्य होते हुए भी केवल ने प्रतिभाशाली लोगों का ज्ञान बनकर ता है।

केवल आत्मा की या केवल भौतिक उन्नति कर किसी सामाजिक प्रश्न की विवेचना की जा सकती। मनुष्य-जीवन में तो भौतिक चेतनाशील दोनों तत्त्व हैं और उनमें से को भी उपेक्षित न करके उनके सामंजस्य से विचार करना पड़ेगा।

'प्रेम' वह तत्त्व है जो परस्पर आकर्षण रे सम्बन्धों में पाया जाता है। इसका स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में ही नहीं होता, मनुष्य मनुष्य के, मनुष्य पशु के तथा मात्र के एक दूसरे के आकर्षण के सम्बन्ध भी किया जा सकता है। जड़ वस्तुओं के र आकर्षण—जैसे गुरुत्व आकर्षण—को भी-कभी प्रेम का नाम दिया गया है। अधिकतर 'प्रेम' का प्रयोग मनुष्यों के आपस सम्बन्ध और विशेषकर स्त्री-पुरुष के के लिए होता है। परन्तु यहाँ इसको तीन श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है, इससे श्री हरिभाऊजी, स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के लिए 'प्रेम' शब्द को मर्य्यादा में बाँध देना चाहते हैं, ऐसा लगता है। वह इससे स्त्री-पुरुष के उतने सम्बन्ध को इंगित किया चाहते हैं जिसका सम्बन्ध भोग से न हो, और यदि भोग से हो तो स्वार्थ से न हो। इसीलिए सम्भवतः उन्होंने 'प्रणय' शब्द का प्रयोग किया है।

हमें यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि जब मनुष्य-मनुष्य में प्रेम हो सकता है तब स्त्री-पुरुष में भी प्रेम हो सकता है। परन्तु स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध किस मर्य्यादा तक प्रेम कहा जाये यह निश्चय करना है। यहाँ हम प्रेम की एक व्याख्या दे देना चाहते हैं—

"बिनु गुन जीवन रूप धन, बिन स्वारथ,हित जानि
सुद्ध कामना ते रहित, प्रेम सकल रसखानि।"

इस व्याख्या से केवल एक ही भाव निकलता है कि वही प्रेम है जिसमें स्वार्थ नहीं है। वह सम्बन्ध जो कि किसी भी स्वार्थ भावना से किया जाये प्रेम नहीं कहा जा सकता। इस कसौटी पर कसने से—कुछ अपवादों को छोड़कर—साधारण स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को प्रेम-सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हमारी समाज-व्यवस्था में इसका जो रूप मिलता है उसमें काफ़ी स्वार्थ रहता है। हम इसे प्रेम नहीं मानते क्योंकि यह स्वार्थ पर स्थित होता है न कि इसलिए कि यह स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है, जातीय सम्बन्ध है; क्योंकि जातीय सम्बन्ध होते हुए भी यह सम्बन्ध किसी-किसी अवस्था में निःस्वार्थ होता है। जहाँ दो व्यक्तियों के स्वार्थ मिलकर कुछ इस तरह से एक हो जायें कि—**'तू तू न रहे, मैं मैं न रहूँ, कुछ ऐसे हम तुम मिल जायें'**—वाली बात चरितार्थ होजाये, वहाँ केवल इसलिए कि यह जातीय सम्बन्ध है, हम इसे प्रेम कहने से नहीं हिचक सकते।

'प्रणय' कुछ ऐसा सम्बन्ध है जो स्त्री-पुरुष के जातीय तथा प्रेम-सम्बन्ध की ओर इंगित करता है। इसमें भोग और प्रेम दोनों की कुछ मात्रा विद्यमान रहती है। हमारे आज के समाज में हमें प्रणय का जो रूप देखने को मिलता है वह प्राय: विवाह के ही रूप में होता है। धन, कुल मर्य्यादा इत्यादि को लेकर जितने गठबन्धन होते हैं वे अधिकतर प्रणय को सफल बनाने में सहायक नहीं होते। प्रणय को सफल बनाने के लिए एक निश्चित मात्रा में शरीर तथा मन का विकास हुआ होना चाहिए और आज जिस दशा में हिन्दू या भारतीय विवाह होता है, उसमें यह परिपक्वता नहीं होती। विवाह में प्रणय का विकास सबसे पहले इसलिए नहीं हो सकता कि स्त्री-पुरुष पूर्णतया परिपक्व हुए बिना ही संतानोत्पत्ति में तल्लीन हो जाते हैं। दूसरा कारण यह कि विवाह का मुख्य ध्येय संतानोत्पत्ति है और प्रणय का तो इसमें गौण भाग है। और तीसरा मुख्य कारण यह है कि स्त्री की स्थिति पुरुष की दासी व संपत्ति के समान है, और इस दशा में वह पुरुष की सेवा कर सकती है, प्रणय या सख्य भाव अनुभव नहीं कर सकती। यदि मानसिक वृत्तियों में साम्य न हो तो केवल केलि ही प्रणय का भाव उद्भव करने के लिए पर्य्याप्त नहीं होती।

समाज में बहुत बार विवाह-व्यवस्था को लोगों ने अनेक तरह से पोषित किया है, अनेक तर्कों तथा विचारों से इसे दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया है। विवाह-संस्था के पक्ष में बात यह भी है कि यह एक काफी प्राचीन संस्था है चाहे इसका सदा से यही रूप नहीं चला आया हो। प्राचीनता के कारण यह फिर विवाह-संस्था कुछ नैतिकता की पर्य्यायवाची हो गयी है, चाहे इसमें नैतिकता तथा विवाह का गठबन्धन इसलिए नहीं हुआ कि इसमें सबसे अधिक नैतिकता है वरन् इसलिए कि विवाह-संस्था बलशाली--पुरुष--के पक्ष में है, और उसके सदियों के प्रचार ने इसे नीतिमान बना दिया है। विवाह के नाम पर स्त्री-जाति पर जो-जो अत्याचार हुए हैं, सती-प्रथा चलायी गयी, उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण किया गया ये सब कार्य नैतिकता के विरोधी नहीं तो क्या थे?

परन्तु हम यहाँ नैतिकता को दूसरे रूप में लेते हैं। साधारणत: यह समझा जाता है कि विवाह की परिधि के अन्दर रहते हुए जो स्त्री-पुरुष का सम्भोग होता है वह नीति की मर्य्यादा में है, बाकी सब अनीतिपूर्ण। इसका कुछ कारण तो यह है कि साधारणत: सब धर्मों ने स्त्री-पुरुष के संभोग को तुच्छ दृष्टि से देखा है और उसे पापमय बतलाया है क्योंकि वे इस संसार से विरक्त होकर भविष्य में आनेवाली दुनिया का ही स्वप्न देखते थे और जो वस्तु उन्हें संसार की ओर खींचती वह निश्चित ही पापमय थी। स्त्री में इस दृष्टि से पुरुष के लिए बड़ा भारी आकर्षण होता है, और हमारे पुरुष धर्मगुरुओं ने इस सम्बन्ध पर अधिक-से-अधिक बन्धन लगाये। उन्होंने तो जीवन को आदि से अंत तक एक भार के रूप में--एक पाप-कर्म का परिणाम के रूप में बदल दिया है। उनका दृष्टिकोण एक साधारण स्वस्थ मनुष्य को ग्राह्य नहीं हो सकता। इसके साथ ही "जिस क्रिया के द्वारा प्रजा की उत्पत्ति होती है, एक चैतन्ययुक्त प्राणी का निर्माण होता है' उसे एक पवित्र तथा जीवन का सार्थक कर्म समझना चाहिए। उसके लिए घृणा या तिरस्कार की भावना को मन में स्थान देकर, स्वयं हम अपने आपको ही घृणित और तिरस्कृत बनाते हैं तथा जीवन की रचनात्मक शक्ति का महत्त्व कम करते हैं।

परन्तु, जहाँ हम इस महान शक्ति की अवहेलना नहीं कर सकते, वहाँ इस शक्ति का अपव्यय भी व्यक्ति और समाज के हित में न होगा। कुछ मर्य्यादा तो सब कोई स्वीकार करेंगे, परन्तु सबसे अधिक मतभेद तो मर्य्यादा की मात्रा में ही पाया जाता है। जहाँ एक ओर विवाह या संभोग को एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार किया जाता है, वहाँ दूसरी ओर एक नहीं अनेक विवाह करने को, रखेलियाँ रखने को, तथा वेश्याओं से सम्बन्ध रखने को भी बुरा नहीं

है। कम-से-कम कुछ समाज-व्यवस्थाओं स्वीकार किया है। ये दोनों अतिरेक पर हुए पहलू अपने काम न लगेंगे। एक में डर है तो दूसरे में भोग से लिप्तता है। हम यह स्वीकार करते हैं कि जीवन में का स्थान हो सकता है, वहाँ हम भोग को का लक्ष्य मानने को भी तैयार नहीं हैं। जीवन में दूसरे तत्त्वों का स्थान है वहाँ का भी है, परन्तु इस कारण सारा जीवन न बन जाना चाहिए।

कुछ पूर्व के विचारकों ने भोग निषिद्ध है। कुछ ने तो जीवन से इसका स्थान दिया है और इसे बौद्धिक या बुद्धिगम्य का प्रयत्न किया है। परन्तु समय-समय के थोड़े से मतावलंबियों को छोड़कर, से किसी भी प्रजा ने इसे स्वीकार किया। इसी प्रकार हमारे यहाँ ब्रह्मचर्य महिमा गायी गयी है। ब्रह्मचर्य का उस में, जब शरीर वृद्धि को प्राप्त कर हो, महत्त्व का स्थान है। परन्तु ब्रह्मचर्य 'फेटिश' का रूप देना तथा सारे जीवन पालन करने की बातें करना तो उचित लगता। माना कि ऋषियों ने ब्रह्मचर्य की महिमा गायी है, परन्तु उन्हीं द्विजोत्तम में ही तो ऐसे भी हुए हैं जो असंख्य वर्ष करने के बाद भी मेनका अप्सरा पर हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इसके उदाहरणों नहीं है। कुछ ब्रह्मचर्य की उपयोगिता बात करते हैं। परन्तु जहाँ यह जीवन को बनाने में सहायक हो सकती है वहीं इसके अनेक भयंकर परिणाम भी हो सकते हैं आजकल के मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण ने भली प्रकार दिखा दिया है। काम- का अत्यधिक अवरोध करने से भी जो होती हैं वे किसी से छिपी नहीं है।

अब प्रश्न यही उठता है कि स्त्री-पुरुष के को किस प्रकार की मर्यादा में बाँधें, यह अधिक-से-अधिक हितकारी हो सके।

मेरा अपना मत है कि मर्यादा इस प्रकार की हो जिसमें अधिक-से-अधिक व्यक्ति-स्वातन्त्र्य हो और कोई एक दूसरे की स्वतन्त्रता पर आघात न करे। लोग कहते हैं कि इस प्रकार के स्वतन्त्र वातावरण में ईर्ष्या तथा द्वेष को अधिक प्रोत्साहन मिलेगा, खून-खराबी होगी। परन्तु वे भूल करते हैं। अनेक समाज-व्यवस्थाएँ ऐसी रही हैं जहाँ बिना किसी सत्ता के होते हुए भी मनुष्यों ने ऐसी स्वतन्त्र समाज-व्यवस्थाओं को सफलता-पूर्वक चलाया है। वास्तव में तो हमारी आजकल की समाज-व्यवस्था ही ईर्ष्या को प्रोत्साहन देती है और उसे टिकाये रखना चाहती है। स्वतन्त्र सम्बन्ध वही हो सकता है जिसमें स्त्री-पुरुष एक दूसरे पर एकाधिपत्य प्राप्त न करें, एक-दूसरे को अपनी सम्पत्ति न समझें और न एक-दूसरे को अपने भोग का साधन। यह बात आज पुरुष पर अधिक लागू होती है परन्तु स्त्री पर भी लागू हो सकती है। स्त्री-पुरुष एक दूसरे के भोग्य हो सकते हैं, परन्तु केवल पुरुष को ही स्त्री को भोग्य वस्तु समझने का अधिकार न होना चाहिए। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध वास्तविक प्रणय पर स्थित होना चाहिए जिसमें सत्य भाव हो। धन, कुल इत्यादि कारणों से बन्धन में बँधना उचित न होगा। फिर इस समाज-व्यवस्था में व्यक्तियों के वैचित्र्य को भी कुछ स्थान मिलना चाहिए, जबतक कि वह पूर्ण रूप से समाज के लिए अहितकर न हो। समाज को साधारण विचित्रता से डटकर उसके प्रति जिहाद न बोल देनी चाहिए। समाज आज की अपेक्षा कहीं अधिक सहिष्णु रहकर भी अपनी मर्यादा को क़ायम रख सकता है। आज के समाज की नुक्ताचीनी की मनोवृत्ति तो उसके अन्दर के असंतोष की ही द्योतक है, जो न स्वयं संतोष पा सकती है न दूसरों को पाने देती है। स्त्री-पुरुष के आपस के सम्बन्ध में, तथा जातीय संबंध पर समाज के दृष्टिकोण में सहिष्णुता लाने की भारी आवश्यकता है।

प्रस्तुत प्रश्न

‘घर की रानी’ : कुछ विचार

श्रीयुत रामनाथ ‘सुमन’ लिखित ‘घर की रानी’[1] मैंने पढ़ी । पुस्तक बड़े ही रोचक ढंग से लिखी गयी है, जिसमें कहानी का सा स्वाद है । लेखक का दावा है कि उनको स्त्रियों की समस्याओं से बहुत दिलचस्पी है और उन्होंने उनका पूरा अध्ययन भी किया है । दावा ठीक मालूम होता है । लेखक के दिल में स्त्रियों के प्रति सच्चा आदर, श्रद्धा और प्रेम भी काफ़ी जान पड़ता है । साधारण स्त्रियों की मनोवृत्ति को वे समझे हुए हैं । पुस्तक केवल स्त्रियों को सलाह देने के दृष्टिकोण से लिखी गयी है, इसलिए केवल स्त्रियों का ही ध्यान उनके कर्तव्य की ओर दिलाया गया है ।

पुस्तक में जो शिक्षाएँ दी गयी हैं उनपर अमल करने से स्त्रियों का वैवाहिक जीवन अवश्य सुखमय हो सकता है, और हर एक विवाहिता नवयुवती को इसके पढ़ने से लाभ होगा । परन्तु कहीं-कहीं लेखक ने ऐसे दृष्टान्त दिये हैं जो कागज पर तो चल सकते हैं किन्तु जीवन में उनका व्यवहार में लाना बहुत कठिन है । पचास रुपये मासिकवाले एक कुटुम्ब का जो चित्र पुस्तक में खींचा गया है, उसका जीवन में किस प्रकार संचालन किया गया होगा इसका अनुमान लगाना कठिन है । पचास रुपये मासिक आयवाला कोई ऐसा मकान किराये पर ले जिसमें जनानी-मर्दानी बैठक अलग-अलग हो सके, जो चौबीस घंटे का नौकर भी रख सके, मिठाई-पकवान का नाश्ता भी कर सके, मित्रों की आवभगत और लड़कियों की ब्याह-शादी भी रचा सके, कपड़े-लत्ते में शौकीनी भी निभा ले—ये बातें आजकल के महँगे समय में जरा कठिन जान पड़ती हैं । आज-कल तो किसी शहर में रहकर पचास रुपये में इज्जत के साथ सादी दाल-रोटी भी चलानी कठिन है । इसीलिए तो बहुतों का ऐसा विचार है कि स्त्री-पुरुष दोनों ही को काम करके घर की आय की वृद्धि करनी चाहिए ।

‘सुमन’ जी का कहना है कि वे स्त्रियों की सभी माँगों के पक्षपाती हैं । स्त्रियों को पूर्ण शिक्षा मिलनी चाहिए । उनको नागरिक और सामाजिक हक मिलने चाहिएँ । शादी-ब्याह उनकी मर्जी से होने चाहिएँ । उनको आजादी मिलनी चाहिए ये सब बातें वह ठीक समझते हैं । लेकिन फिर भी उनको आजकल की स्त्रियों की चाल भ्रमजनक दिखाई पड़ती है । वे इसको केवल पुरुषों के व्यवहार की एक प्रतिक्रिया समझते हैं । उनका ऐसा विचार है कि क्रोध की नींव पर, बदला लेने की नीयत से स्त्री-आन्दोलन चलाया गया है; और इसीलिए वे समझते हैं कि स्त्रियाँ यह आन्दोलन उठा कर अपने आप को उभारने के बदले नीचे गिरा रही हैं, और अपने और पुरुष के जीवन को पहले से भी अधिक दुःखमय बना रहीं हैं ।

पहले गृहस्थ जीवन क्या था, कैसे चलता था, और अब क्या है, कैसे चलता है, इसकी तुलना करना आसान काम नहीं है । जिस शांतिमय, प्रेममय गृहस्थ जीवन के चित्र पुस्तकों में दिखाये जाते हैं, क्या वे सचमुच जीवन में वैसे ही घटते थे ? कौन कह सकता है कि पर्दे के पीछे, घरों की चार-दीवारी में छिपी हुई स्त्रियाँ किन-किन कष्टों-दुःखों को सहकर, और किन-किन सूखी आशालताओं को हृदय में छिपाकर अपनी संसार-यात्रा को समाप्त कर, इस संसार से बिना कुछ कहे सुने चल बसी हैं । कौन कह सकता है कि पहले गृहस्थों में झगड़े-टण्टे, झंझट, क्रोध-खीझ नहीं थी ? यदि किसी इतिहास-लेखक ने कभी मानव-समाज का इतिहास उसके साधारण स्त्री-पुरुषों के साधारण गृहस्थ जीवन की घट-

---

[1] प्रकाशक—साधना सदन, ६९ लूकरगंज, इलाहाबाद मूल्य १)

को लेकर लिखा होता तब तो तुलना हो ती थी। परन्तु अब तो जो कुछ इस में कहा जाता है, कहनेवाले की अपनी त है। उसमें कितनी सच्चाई है, कितनी ता है, कितनी अपने हृदय की प्रतिक्रिया की मात्रा अलग-अलग निकालना बहुत है। इतना अवश्य है कि अब सभी स्त्रियाँ रहकर कष्ट सहन नहीं कर लेती हैं। अब भी वाणी का प्रयोग सीख लिया है। अब कहीं-कहीं अपने अधिकारों को पाने ष्टा करने लगी हैं। मैं यह नहीं कहती कि भी पढ़ी-लिखी कभी भूल नहीं करती। कहीं और किसी-किसी पढ़ी-लिखी स्त्री का अवश्य ऐसा है कि जिसपर नुक्ता-चीनी जा सकती है। कहीं-कहीं औचित्य की सीमा ल्लंघन किया जाता है। मैं यह भी मानती कि आजकल की स्त्रियों को शारीरिक परिश्रम कर नहीं है, परन्तु यह बहुत-कुछ हमारी शिक्षा-प्रणाली का दोष है, न कि स्त्री- ार आन्दोलन का प्रभाव।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मानव-समाज की दें घरों पर पड़ती हैं। मनुष्य के जीवन गृहस्थी एक वृक्ष की जड़ के समान है के पनपने से मनुष्य और मानव-समाज ता और जिसके सूखने से वह सूखता है। इस ाई को स्त्री से अधिक दूसरा कौन जान सकता स्त्री का तो साम्राज्य ही उसकी गृहस्थी और स्त्री आन्दोलन में लगी हुई ऐसी किसी को मैं नहीं जानती जो इस सचाई को न ती हो। फिर भी मैं इस संकीर्णता की कोई कता नहीं समझती कि स्त्री अपनी दृष्टि हस्थी की चार-दीवारी के अन्दर ही सीमित और बाहर की किसी बात में हिस्सा न लेखक महाशय के निम्नलिखित आदर्श से मत नहीं हूँ :—

“हृदय में मधुर गन्ध, देह में मातृत्व का भरे, गृह के अंग-अंग में व्याप्त, दीवारें हास्य से चमकती हैं, द्वार जिसके उदार हाथ से आतिथ्य के सत्कार की घोषणा करते हैं तुलसी का चौरा, जिसके अंचल-दीप से आलौकित है, और पति का प्रकोष्ठ जिसके स्नेह-राग से रंजित है, घर में समायी हुई, मिट्टी और पत्थर को सजीव करनेवाली वह नारी आज कहाँ है ?”

स्त्री ‘घर की रानी’ होते हुए भी देश और जाति की सेविका हो सकती है और ऐसा होना उसके लिए उचित भी है। आज के संसार को स्त्री की सेवा की अत्यन्त आवश्यकता है। हम स्त्री की गृहस्थी की दीवारों को बढ़ाना चाहती हैं। हम रात-दिन इस खोज में हैं कि किस प्रकार स्त्री की गृहस्थी के कर्तव्य और देश की सेवा का समन्वय किया जाये ? हम स्त्री का विकास चाहती हैं। यदि वह सचमुच देवी है जैसा कि ‘सुमन’ जी विश्वास करते हैं तो हम यह चाहती हैं कि उसके देवत्व की छाप संसार के कोने-कोने में लग जाये। मेरी ‘सुमन’ जी से प्रार्थना है कि वे इस खोज में हमारे सहायक हों, और ऐसी जीवन-पद्धति तैयार करें जिसमें स्त्री केवल पुरुष का मनबहलाव करनेवाली न रहकर, उसकी सच्ची संगिनी बनकर, संसार के संचालन में उसका हाथ बटाये और विश्व की जटिल समस्याओं का हल करने में सफल हो।

रामेश्वरी नेहरू
अध्यक्ष, अ० भा० महिला सम्मेलन

लेखकों का संगठन कैसे हो ?

हिन्दी के लेखक की शोचनीय स्थिति पर तो काफ़ी प्रकाश डाला जा चुका है। पर अब तो प्रश्न यह रहता है कि उसकी स्थिति कैसे सुधरे ? आपने सलाह दी है कि लेखक अपना संगठन करे और अपनें शोषण को रोके। वह चाहे तो स्वयं प्रकाशक भी बन सकता है। प्रकाशकों के लिए एक ऐसी निधि बनाने की भी सलाह आपने दी है जो लेखकों को सहायता दे सके। इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव हैं।

लेखक अपना प्रकाशन कर सके यह तो बहुत ही अच्छी बात होगी, पर व्यावहारिक रूप से यह असम्भव-सा है। हिन्दी का लेखक साधा-

रणत: गरीब है। लिखने के लिए स्याही, कागज़, पुस्तकें व समाचारपत्र ही वह जुटा सके तो वही बहुत होगा। साधारण लेखक तो अपना प्रकाशन मामूली हालत में कभी करा ही न सकेगा। इसके साथ ही यदि कोई लेखक प्रकाशन के झंझट में पड़े भी तो उसे पुस्तक बेचने का प्रबन्ध करना कठिन होगा। पुस्तक का विज्ञापन कराना तथा बेचना भी उससे न हो सकेगा। इसके लिए भी अंत में उसे पुस्तक-विक्रेता की शरण लेनी पड़ेगी।

परन्तु इसका हल आसानी से निकल सकता है यदि लेखक अपनी छोटी 'सहकारी समितियाँ' (Cooperative Societies) बनालें तथा इनके द्वारा प्रकाशन तथा बिक्री का काम करें। इस तरह काम करने से पूँजी की दिक्कत भी हल हो जायेगी। साथ ही इस काम को थोड़े से व्यक्ति भी मिलकर चला सकते हैं। यदि इस काम में एक व्यक्ति २५) भी लगाये और १० सदस्य हों तो २५०) की पूँजी एकत्र हो सकती है। इससे शुरू-शुरू में प्रति वर्ष एक पुस्तक तो प्रकाशित हो ही सकती है। बिक्री में एक नहीं १० व्यक्ति मदद करेंगे। बाद में काम व पूँजी बढ़ने पर ऐसी समितियाँ प्रत्येक बड़े शहर में अवश्य ही बनायी जा सकती हैं। छोटी-छोटी जगहों में दो या तीन स्थान के व्यक्ति मिलकर यह काम चला सकते हैं।

इस प्रकार छोटे-छोटे समूह बनाकर यदि लेखक कार्य करेंगे तो उनमें संघ-शक्ति भी पैदा होगी तथा उनका शोषण भी रुकेगा।

लेखक को आर्थिक सहायता पहुँचने के लिए प्रकाशक को 'सहायक निधि' या उदारता पर निर्भर रहना उचित न होगा। इस व्यापारिक युग में ऐसी अपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। हाँ, समृद्ध लेखक इस दिशा में भले कर सकें। इस दिशा में लेखक सहायक समितियाँ या कोई संगठन कर सकें तभी उनका उद्धार हो सकेगा।

'विशाल भारत' में एक बार किसी ने लिखा था कि यदि कोई लेखक मर जाये तो उसके परिवार को सहायता के लिए हरेक लेखक कम-से-कम एक-एक रुपया भेजे। इस प्रकार उनकी सहायता के लिए ३००),४००) इकट्ठा हो सकेगा। मेरा इसमें यह संशोधन है कि प्रतिवर्ष होली और दिवाली पर प्रत्येक लेखक किसी एक लेखक को एक रुपया भेजे। इस प्रकार वर्ष में दो बार दो लेखकों के पास ३००), ४००) एक साथ इकट्ठा हो सकेगा और इससे वह या तो अपना प्रकाशन करा सकेगा या अपना ज्ञान बढ़ाने के साधन प्राप्त कर सकेगा।

इसके लिए एक स्थान पर सब लेखकों का रजिस्टर होना ज़रूरी होगा तथा जहाँ से यह सूचना जायेगी कि इस बार किसको रुपया भेजना है ? या फिर एक बीमा कम्पनी जैसी बना ली जाये जिसमें चार आने या आठ आने महीने के हिसाब से जमा हो और प्रत्येक मास या प्रत्येक तिमाही में जितना रुपया इकट्ठा हो वह एक सदस्य को मिल सके। यदि ३०० सदस्य हों और चार आने प्रतिमास का चन्दा रखा जाये तो प्रतिमास ७५) इकट्ठा हो सकेगा। इसमें ५) व्यवस्था-खर्च के लिए रखा जाकर ७०) प्रत्येक लेखक को मिल सकेगा और वर्ष भर में १२ लेखकों को यह सहायता मिल सकेगी। इसमें वर्ष में २५) प्रत्येक लेखक सदस्य को एक बार सहायता मिल सकेगी। उपरोक्त योजना में हेरफेर भी हो सकता है। इस प्रकार की सभाओं का संगठन अनेक दूसरे क्षेत्रों में हुआ भी है।

रामस्वरूप व्यास

सिनेमा की ओर भी

"लोक पर जितना प्रभाव आज चित्रपट का है, उतना साहित्य के किसी अंग का नहीं। उसके द्वारा जो रस अथवा विष समाज में प्रविष्ट किया जा रहा है; वह धीरे-धीरे, परन्तु दृढ़ता से, समाज की धमनियों में प्रवाहित होकर अपना प्रभाव दिखला रहा है। ऐसी दशा में साहित्य के इस अंग की उपेक्षा किसी प्रकार भी कल्याण-कर नहीं कही जा सकती। पुस्तकों में निरुद्ध साहित्य के विषय म आलोचक-वर्ग जितना

निरीक्षण रखता है, उससे कहीं अधिक निरीक्षण की आवश्यकता इस रजत-पट क्षर-निरक्षर, धनी-निर्धन, स्वामी-सेवक वयस्क-बालक, सबको समानरूप से ति से प्रतिदिन बँटनेवाले उस मनोरंजन जो केवल मनोरंजन ही नहीं करता अपितु रे हमारे समाज की विचारधारा, उसकी और चरित्र पर गहरा प्रभाव डालता चित्रपट के सत्य, शिव और सुन्दर की की ओर असत्य, अशिव और असुन्दर की की आज बहुत अधिक आवश्यकता है। समत ऐसा बनाना है जिसमें अशिव सके।'''

आलोचक अभी तक सिनेमा को अस्पृश्य मानते आ रहे हैं। फलतः इन चित्रपटों दोषों की सम्यक् परीक्षा नहीं हो पाती नता एक ऐसी कला के मर्म तक पहुँचने से रह जाती है, जिसका प्रभाव न केवल चारित्र्य, सुरुचि और कलाप्रेम ही पर है प्रत्युत उसकी संचित आर्थिक पूँजी पर ता है।

जिम्मेदार साहित्यिक पत्रों की तटस्थता के बाजारू सिनेमा-अखबार इस सम्बन्ध में की रुचि को और भी भ्रष्ट करते रहते हैं।”

साप्ताहिक से] **हरिहरनिवास द्विवेदी**

भाषिक शब्द

जीवन-साहित्य' के अगस्त १९४१ के अंक शित "राष्ट्रभाषा कैसे बने?" लेख में जी का कहना है कि अंग्रेजी के किसी पारि- शब्द का अनुवाद करते समय हमें देहाती के शब्द लेने चाहिएँ, क्योंकि 'वहाँ शिष्ट जैसी दरिद्रता नहीं है'। मुझे भय है बोली के बारे में यह राय वस्तुस्थिति भावनाओं की ऋणी है। विज्ञान, भूगोल, गणित, भूगर्भशास्त्र, चिकित्सा- प्राणिशास्त्र, अर्थशास्त्र, प्रजननशास्त्र, मनोविज्ञान, इत्यादि विद्याओं के लाखों के लिए देहाती बोली में हमें शब्द मिल जायेंगे यह कहना मुझे तो कम से कम अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है। यहाँ आश्रम में गुजराती और बंगला के विद्वान श्री अम्बालाल पुराणी, श्री नलिनीकान्त गुप्त आदि मिलकर श्रीअरविंद के साहित्य में आये हुए दार्शनिक पारिभाषिक शब्दों का एक कोश तैयार कर रहे हैं। उनकी इच्छा है कि जहाँ बन सके वहाँ ऐसा शब्द रखा जाये जो गुजराती, बंगला, मराठी, हिन्दी में समानरूप से चल सके। परन्तु इसमें बेहद कठिनाइयाँ आती हैं और संस्कृत के बिना तो एक पग भी नहीं चला जाता।

भगीरथ प्रयत्न करके आप प्रत्येक शब्द के लिए देहाती बोली से पर्याय खोज भी निकालेंगे पर फिर भी प्रश्न होगा कि उसे सब लोग समझ सकेंगे कि नहीं? देहाती बोली तो बारह कोस बाद बदल जाती है। छपरा में प्रयुक्त होनेवाले शब्द जौनपुरवालों के लिए और बलिया के शब्द मैनपुरीवालों के लिए एकदम अपरिचित होंगे।

जहाँतक हो सके ऐसे पारिभाषिक शब्द बनाने चाहिएँ जो सारे भारतवर्ष में चल सकें और मेरा ख़याल है कि यह काम हमारी सभी प्रान्तीय भाषाओं की जननी संस्कृत की सहायता के बिना होना मुश्किल है। अभी कुछ समय पहले इधर की भाषाओं (तामिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम) के लिए पारिभाषिक शब्दों के विषय में विचार करने के लिए एक उपसमिति बनी थी। वह इसी निष्कर्ष पर पहुँची है कि पारिभाषिक शब्द संस्कृत की सहायता से ही बनाये जायें ताकि सारे भारत में चल सकें।

अगर हर एक भाषा अपने देशज शब्दों से परिभाषाएँ बनाने लगी तो कुछ समय बाद हर पाठक के लिए यह जरूरी हो जायेगा कि वह (१) मातृभाषा के (२) राष्ट्रभाषा हिन्दी के और (३) अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य पढ़ने के लिए अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों को सीखे और यह कोई आसान काम नहीं है।

श्री अरविंदाश्रम, पांडीचरी] **रवीन्द्र**

कसौटी पर

आनन्द-निकेतन : लें०--रामनाथ 'सुमन' प्रकाशक--साधना-सदन, इलाहाबाद; पृ. ३०९, मूल्य २) रुपया।

आज मानव-जाति की सभ्यता और संस्कृति महान् संक्रान्ति-काल के बीच अधमरे कंकाल की भाँति कराह रही है। हमारे समाज का सोता दिन-दिन सूखता जा रहा है। वह अशान्त है, अभिशाप-त्रस्त है। इधर गृह-जीवन भी दारुण हाहाकार से भर गया है। जिस गार्हस्थ्य जीवन से हमारा जीवन पोषित होता है वह स्वयं आज क्यों चीत्कार कर रहा है और कराह रहा है? इस प्रश्न का उत्तर, इन शंकाओं का समाधान प्रस्तुत पुस्तक में मिलेगा।

'सुमन'जी दाम्पत्य-जीवन के विशेषज्ञ और नारी-समस्या के अध्येता हैं। उन्होंने गृहस्थ-जीवन का निकट से अध्ययन किया है। दुखी और सुखी दोनों ही परिवारों के अन्तर में पैठकर और उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करके गृह को 'आनन्द निकेतन' बनाने का मंत्र खोज निकाला है।

गृहस्थ-जीवन को केवल अपनी वासनाओं की तृप्ति और ऐश-आराम का साधन समझनेवाले दम्पतियों ने आज आत्म-निर्माण की समस्या को भुला दिया है। प्रत्येक नर-नारी पर सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक ज़िम्मेदारियाँ कितनी हैं, इसका स्पष्टीकरण और आत्म-निर्माण के पहलू को लेकर गृह-जीवन अपनी संस्कृति के सहारे किस प्रकार समाज का संस्कार कर सकता है, इसका सुन्दर विवेचन 'आनन्द-निकेतन' में किया गया ह।

'भाई के पत्र' और 'घर की रानी' तो एक वर्गविशेष की सम्पत्ति थीं, लेकिन 'आनन्द-निकेतन' स्त्री-पुरुष दोनों का पथ-प्रदर्शक है। इस पुस्तक में 'सुमन'जी ने विवाहित जीवन के प्रत्येक पहलू पर, गृह-जीवन की प्रत्येक समस्या पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया है।

पुस्तक में वास्तविक विवेचन के अतिरिक्त और भी कई आकर्षण हैं—'आनन्द-निकेतन' एक उपन्यास-सा लगता है। अनेक व्यक्तिगत अनुभवों से सम्बन्धित उदाहरण और सजीव चित्र इसमें भरे पड़े हैं। भाषा सरल और वेगवती धारा की भाँति प्रभाव और प्रवाहपूर्ण है।

प्रत्येक गृहस्थ से जो अपनी मंगलकामना चाहता है, अन्तर्कलह और मानसिक क्लेश मिटाना चाहता है और अपनी ज़िम्मेदारी को समझते हुए समाज को स्वस्थ बनाये रखने के लिए उत्सुक है, हमारी सिफ़ारिश है कि वह 'आनन्द-निकेतन' में अवश्य प्रवेश करे। वि०

राधा : ले० उदयशंकर भट्ट; प्रका०—हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई; मू० ।।=)

'राधा' कुल चार दृश्यों का एकांकी नाटक है जिसे लेखक ने स्वयं भावनाट्य कहा है। किन्तु यह गीति-नाट्य न हो, ऐसा कोई खास फ़र्क तो इसमें नहीं। गीति और भाव-नाट्य इन दोनों में काव्य-प्रतिभा को पर मारने का समान अधिकार है। रवीन्द्र-लिखित 'कर्णकुंती संवाद' और 'विदाय अभिशाप' इसी कोटि के नाटक हैं, जिन्हें आलोचक डा० सुकुमार वंद्योपाध्याय ने गीतिनाट्य में गिना है। इनमें कोई मसला, मानव के दैनंदिन सुख-दुख की कोई छवि नहीं। है एक ही बात कि कुंती कर्ण को लौटाने जाती है, कर्ण नहीं लौटता; देवयानी अपने जानेवाले प्रियतम को प्रेम-पाश में बाँधकर नहीं रख सकी। बस।

'राधा' भी मानव-जीवन के किसी मसले पर नया दृष्टिकोण नहीं पेश करती। 'साकेत' की उर्मिला या 'निराला' के 'तुलसीदास' की रत्नावली की तरह हम राधा का नया रूप ढूँढ़ते थे, लेकिन वह माधुर्य के आवरण में आकर भी भारतीय दर्शन की एक ज्ञान-किरण ही रह गयी। राधा आत्मा के चिरंतन विरह का प्रतीक बनकर आयी और परमात्मा से आत्मा के मिलन की आकांक्षा तथा उसकी सार्थकता का वही रूप हमारे सामने रख

जो आज से बहुत पहले सूर, विद्यापति, दास, जयदेव आदि वैष्णव कवियों ने शृंगार नी में धोकर विश्व के सामने रखा था। भट्टजी की राधा अपनी सखी विशाखा से ती है--

"कभी रो, कभी हँसकर भी बिता दूँगी ला, विरह-सा यह दीर्घ जीवन का महापथ।"

'विरह-सा' से राधा के मानवी रूप में ता लाने का जो प्रयास है, उससे प्रेम की आध्यात्मिकता को ठोकर लग गयी है, जो तन है। महादेवी के रह का जलजात जीवन, विरह का जल-जात' ता रवीन्द्रनाथ के मार माझरे जे आछे से गो कोनो विरहिणी णी।' में उपनिषद् का वह तत्त्व है जहाँ र ने आनन्द के लिए द्वैत की उपता समझी और अपने को उस अनादि एक श्याम' किया। इस तरह सारी सृष्टि में ह की पीड़ा और मिलन की आकांक्षा स्वत है और नारी से ईश्वर में मिलनें की कांक्षा में चिरन्तन सत्य है।

राधा कृष्ण की मुरली पर रीझती है। उसे सभी अन्तर में वही छबि, सभी प्राणों में वही र, सभी भावों में वही धुन, सभी गीतों में वही य" सुनायी पड़ती है, फिर वह घरवालों की ई, खरी-खोटी, श्वसुर-कुल की मरजाद, पति के प्रति अपना कर्त्तव्य, निंदा, अपमान, सब कुछ पर्दा छोड़ देती है। उसकी एक ही चिन्ता, ही उद्देश्य हो जाता है—

"र्ति उसकी हृदय में रख प्राण की आकंठ पीड़ा ती पीती रहूँ, पीती रहूँ युग-युग प्रलय तक।'

कृष्ण संयमी हैं, सामाजिक आदर्श के ती भी। वे उसे धर्म का पाठ पढ़ाते हैं, का आदर्श बताते हैं। मगर प्रेम भला अक्ल का बोझ क्यों उठाये? राधा चुल्लू में सागर पी ती है, विष पान कर; मगर कृष्ण के बिना वह नहीं सकती। वह तो हरदम कृष्ण की प्रतीक्षा ती है। ज़रा भी देर हुई नहीं कि सोचती है--

"क्या हुआ, वे क्यों न आये बाँधकर जो ले गये हैं सभी अन्तर की प्रतिध्वनि, गति, नियति, रति राशि-राशि।" कृष्ण मधुपुर गये। राधा को लगा--

"वे गये, ऐसे गये मानो कि साँसें ही गयी हों प्राण भी, हृत्कंप भी, आशा-मनोरथ साथ ही सब। एक ठठरी रह गयी हूँ, भावहीन निरर्थ भाषा!"

नारद आये। उद्धव गोपियों को वैराग्य बताने आये थे, नारद मान की सीख देने लगे। "मान औ' अपमान तो हैं द्वैत के ही रूप नारद!" कहकर राधा ने बताया, कृष्ण दूर कहाँ हैं भला! उनका अस्तित्व हर कहीं है। यहाँ की पंक्तियाँ उर्वशी के खो जानें के बाद पुरुरवा को समस्त प्रकृति में प्रिया का रूप दिखायी देता था, वैसी ही लगती हैं।

और अंत में सीमा असीम में खो गयी, किरण ने ज्योतिपुंज में अपनेको खोदिया। कृष्ण ने कहा—

"राधिके, मेरे हृदय की श्वास, भाषा, कल्पना तुम कृष्ण राधामय हुआ है, आज राधा कृष्णमय सब।"

राधा क्या थी, कृष्ण के शब्दों में—

"राधिका थी और कोई नहीं, थी वह श्वास, विभ्रम प्रेरणा, हेला, हँसी, मुस्कान मंजुल, पूर्ण जीवन-पूर्ण जीवन वासना से हीन मानव कामना का।"

राधिका मानव की चिरन्तन मिलन-कामना, वासनारहित कामना का रूप थी। यहाँ रवीन्द्रनाथ की उर्वशी की याद आ जाती है, जिसे कवि ने माता, कन्या, प्रिया (वधू) के बजाय एक अव्यक्त और एकान्त सौंदर्य का ही प्रतीक बनाया है।

भट्टजी का यह नाटक शैली, छंद-लालित्य और भावों की दृष्टि से बहुत सुन्दर बन पड़ा है। लेकिन दार्शनिकता का यह दही इतना मथा गया है कि छाछ का यह मक्खन फेन-सा ही फीका है; उनकी प्रतिभा ऐसे कुछ नये विषय में लगती कि दुनिया की रुचि कुछ नवीन प्राप्ति का आनन्द और गर्व अनुभव करती तो ज्यादा अच्छा होता।

हंसकुमार तिवारी

जीवन के गान : (कविता-संग्रह) **लेखक—श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'; प्रकाशक—'प्रदीप' कार्यालय, मुरादाबाद; पृ० सं० १२८; मूल्य लिखा नहीं।**

सीधे-सीधे साफ भाववाले ये गान सरल भाषा में लिखे गये हैं। राष्ट्रीय भावना की प्रधानता है। गाने छोटे हैं। कुछ बड़े होते तो भाव को काफी हदतक उठने का अवसर मिलता। 'निशा-निमन्त्रण' के ढंग की पंक्तियों में अभिव्यंजना-चातुर्य तो मिल जाता है पर भाव बौने-के बौने रह जाते हैं। फिर भी एक तरुण की स्पष्ट दृष्टि का अच्छा प्रतिबिम्ब है। नवीनता को और नयी चिन्तनधारा को हृद्गत करने में समय लगता है। 'मेरा पथ मत रोको रानी' में कवि बहुत आ गया है। 'फूल का हाल' शीर्षक कविता में से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

आज तो मैं भी हृदय का हार हूँ।
रूप देकर कल्पनाओं को किसी ने था सजाया
हाय कितनी साध से मुझको लताद्रुम में लगाया,
और कह डाला कि मैं संसार का सुखसार हूँ।
था उठा इठला अकिंचन जब ज्वलितकर स्नेह बाती
था भरा सौरभ इसी अपराध में दी छेद छाती
दूसरों के हित हृदय में मैं पिरोये तार हूँ।
अंत क्या होगा न जाना, है न इतना होश मुझको
सब समझता विश्व की गति, पर यही संतोष मुझको
हूँ चुका बदला व्यथित जग का हृदय दिनचार हूँ।
कंटकों की गोद में पलकर हुआ इतना बड़ा मैं,
शीशपर नभके तरलकण ही लियें अबतक खड़ा मैं
बिँध गया मेरा हृदय इससे नहीं किंचित दुखी मैं
चाहता था और कुछ दिन विश्व को करतासुखी मैं
चार दिन की जिन्दगी थी क्या करूँ लाचार हूँ।

पुस्तक कविताप्रेमियों के पढ़ने की चीज़ है।

तीन पुस्तकें

(१) गंगाजली (सात बालोपयोगी एकांकी नाटक) : लेखक—श्री शंभूदयाल सक्सेना; प्रकाशक—बालमन्दिर, बीकानेर; पृ. सं. ८२; ।।≡)

(२) भाभी (उपन्यास) : लेखक—वही; प्रकाशक—नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर; पृ. सं. १५६; मूल्य १।)

(२) काव्यालोचन (आलोचना) : लेखक—वही; प्रकाशक—अर्चना-मंदिर बीकानेर; पृ. सं. १५६; मल्य १।)

शम्भूदयालजी सक्सेना हिन्दी के परिचित लेखकों में हैं। साहित्य की अनेकरूपता उनमें है। **'गंगाजली'** में बच्चों के लिए छोटे-छोटे सात एकांकी नाटक संग्रहीत हैं। ये सब उन्हीं के लिखे हुए हैं। उन्होंने बालोपयोगी और भी छोटे एकांकी नाटक लिखे हैं। इन सब नाटकों का आधार रामायण है। छोटे बच्चों को ये नाटक बहुत रुचेंगे और वे इनका अभिनय भी कुशलता से कर सकेंगे। नाटकों की भाषा सरल और व्यवस्था अभिनेय है।

'भाभी' एक उपन्यास है। इसमें तीन भाभियाँ हैं। कदाचित बड़ी भाभी का नाम ही प्रमुख है। एक परिवार का चित्र है। देवरानी-जेठानी के झगड़ों का परिणाम दिखाया गया है। किसी आदर्श को सामने रखना सक्सेनाजी को उतना रुचिकर न था जितना एक घर का यथार्थ चित्र दे देना। पात्रों में काफी लोच है। वातावरण और व्यक्तियों में शरद् बाबू की सी सजीवता है। मँझली भाभी के चरित्र का पति की उपेक्षा के कारण सहसा मुड़ जाना कुछ पकड़ में कम आता है। किसी दार्शनिक समस्या का उलझाव नहीं है। यथार्थ की तसवीरें धीरे-धीरे चलती हैं।

'काव्यालोचन' में छोटे-बड़े १५ कवियों के ऊपर सरसरी तौर पर लिखी हुई समीक्षाएँ हैं। विद्यार्थियों के लिए पुस्तक अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। समीक्षाएँ पक्षपातरहित और निर्मल विवेक के सहारे लिखी गयी हैं। भाषा सरल है।

सद्गुरुशरण अवस्थी (एम० ए०)

बिहारी-सुधा **: संग्रहकार और टीकाकार-रावराजा डॉ० श्यामबिहारी मिश्र डी० लिट्० और रायबहादुर शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०। प्रकाशक—देव-सुकवि-सुधा-कार्यालय, कविकुटीर लखनऊ। पृष्ठ-संख्या ५६, मूल्य ।=)**

मिश्रबन्धुओं का जीवन हिन्दी-साहित्य के घनिष्ट सम्पर्क में व्यतीत हुआ है। मिश्रबन्धु विशेष रूप से हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य के पारखी हैं और इसी कारण बिहारी-सतसई से

२३० दोहों का चुनाव सुन्दर हुआ है। सुरुचि का ध्यान रखा गया है और उन को छोड़ दिया गया है जिनमें अश्लीलता इस दृष्टिकोण से पुस्तक विद्यार्थियों के लिए पयोगी है।

दोहों को भक्ति, प्रेम, नख-शिख, अलंकार, वर्णन आदि के अनुसार २३ भागों में विभा- कर दिया गया है। इससे अध्ययन में सुविधा ती है। अच्छा होता अगर भूमिका में बिहारी काव्यशैली का विस्तृत विवेचन भी दे होता।

अजिल्द पुस्तक का मूल्य ।=) और सजिल्द ॥=) है। पता नहीं जिल्द किस चीज़ से है कि उसका मूल्य पुस्तक से भी अधिक है !

ब्रजमोहन गुप्त (एम० ए०)

मंजीर : ले०—श्री गिरिजाकुमार माथुर; काशक—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; मू० ॥।)

'निराला'जी ने काव्य की जिस नवीनता, गेयता की जिस प्राचीनता के संमिश्रण का गर्व से भूमिका में उल्लेख किया है, उसका भास उन पाठकों को—जो कवि के व्यक्तिगत जीवन के संस्पर्श में आये हैं या अपने यहाँ, बाग़ पार्क में, गोमती के किनारे, सम्मेलनों में, ष्ठियों में, मित्रों की बैठक में बहुत बार उनकी ओमयी आवृत्ति' सुन चुके हैं—भले ही मिल ; पर जो पन्नों में उलझकर ये विशेष- ढूँढ़ेंगे, उन्हें तो बहुत हद तक निराश ही ना पड़ेगा।

पुस्तक में कवि की ४३ फुटकर रचनाएँ जिनमें उनकी प्रतिभा है—झरनों-सी मच- ली हुई कभी यहाँ, कभी वहाँ। भाव या चार की कोई अविच्छिन्न धारा नहीं। लेकिन ना तो साफ है कि 'मंजीर' 'धीमी निश्वासों स्वर' चलनेवाले एकाकी गीत पर ताल दे है। फलतः माथुरजी दुःख के कवि हैं।

कवि का (या की) 'तुम' उसे हँसने को, मनाने को कहता है, किन्तु लाचार कवि ता है—"**मैं कैसे आनन्द मनाऊँ ?**" क्योंकि **कवि जीवन से हार गया। (उसके) बिना आरती के पहिला ही जीवन का त्यौहार गया !**"

परन्तु कहीं-कहीं कवि ने हिम्मत भी बटोरी है। निराशा के इस पारावार में जीवन की नाव को उसने बेपतवार नहीं छोड़ा—

रूठ गये बरदान सभी फिर भी मैं मीठे गान लिये हूँ।
टूट गया मंदिर तो क्या, पूजन के तो अरमान लिये हूँ!

इस वाणी में जो बल है, जो धीरज है, वह सचमुच छूता है हृदय को। बहुत-से लोगों की तरह मैं निराशावाद या दुःखवाद को साहित्य के लिए अभिशाप नहीं मानता। किन्तु उस दुःखवाद को अपेक्षित समझता हूँ, जो आलस के आँसुओं में खतम न होकर, न गलकर, जीवन को त्याग की आग में तपाकर सोना बनाता है—जैसा कि वालमीकि, कालिदास आदि ने किया है। लेकिन माथुरजी की कविताओं में यौवन का आवेग-जनित क्षणिक विषाद है, जो लौकिक आशा-निराशा की धूप-छाया-सा है, जिसमें न आशा मार्मिक है न निराशा।

माथुरजी की कविताओं पर छायावाद से ज्यादा रोमांटिक प्रभाव है। एक युवक की प्यास की ज्वाला, बेबसी की तड़पन की बू ज्यादा तीव्र हो उठी है। मगर उड़ान भी कहीं-कहीं सुन्दर है। अनुभूति की तीव्रता और पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता से कुछ पंक्तियाँ इनकी कविता को चित्र-धर्मी और संगीतधर्मी बना सकी है। हम कवि के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं।

मुक्ति-गान : ले०—श्री काशीराम शास्त्री 'पथिक'; प्रका०—आचार्य नरेंद्रनाथ, शिक्षा-सदन, संतनगर, लाहौर; मूल्य ॥)

साहित्य की साधना जिस वातावरण में होती है उसकी स्पष्ट या अस्पष्ट छाप साहित्य पर पड़ती है। इसी लिए युग की समस्याएँ भी नाना रूपों में साहित्य में सदा से स्थान पाती रही हैं। आज हमारे यहाँ गरीबी की तड़पन बेबसी की आर्त पुकार से आकाश भी करुण हो उठा है और युग का तकाजा है कि इस करुणा को वाणी मिले। इसीलिए जहाँ

कल्पना के पर मारकर सपनों की दुनिया में सैर करनेवाले कवि हैं, वहीं ऐसे कवि भी दुर्लभ नहीं, जिन्हें दीनों के पसीनों की बूँदों में उसके अंतर का प्रतिबिंब देखने को मिलता है।

'मुक्ति-गान' के कवि को देश की पराधीनता का दुःख है। इसलिए वह यह संदेश सुनाता है—

आज गगन भी गूँज उठा है, गूँजा है ब्रह्मांड प्रदेश
विश्वंभर की उस वीणासे उठता है स्वर एक विशेष
जल में सुनलो, सुनलो पल में
सुनलो नभ के अंतस्तल में
सुनलो विहगों के कल-कल में,
मुक्त करो तुम अपना देश

गरीबों से कवि को पूरी हमदर्दी है और जग की इस विषमता पर विकलता है—

कहीं विभव को सुख से खोते
कहीं दीन बन सुख से रोते
कहीं घिरा तम राह न सूझे, कहीं जले घर-घर दीवाली

लेकिन एक कमी अखरती है—रचनाओं की मर्मस्पर्शिता। विषय की पुनरावृत्ति से रोचकता नष्ट हो गयी है। एक बात और इन गीतों में अनुभूति की तीव्रता से प्रचार की भावना उग्र है, फलतः सजीवता और माधुर्य नष्ट हो गया है। भाव के साथ ही भाषा भी कमजोर है। यह कवि का संभवतः पहला प्रयास है, भविष्य में हम उसे अधिक सफल पाने की आशा कर सकते हैं।

हंसकुमार तिवारी

समालोचनार्थ प्राप्त

नवयुग साहित्य-निकेतन, आगरा के प्रकाशन

भारतीय शासन-विधान, औपनिवेशिक स्वराज्य, हिटलर की विचारधारा, नयी युद्धकला, पाकिस्तान, साम्प्रदायिक समस्या, समाजवाद और गांधीवाद : लेखक—रामनारायण यादवेंदु

मेरा घर : लेखक—काशिनाथ त्रिवेदी; प्रकाशक—काशिनाथ त्रिवेदी, बड़वानी (सी० आई०); **रेल की रात :** लेखक—बालगोविन्द श्रीवास्तव; प्रकाशक—प्रकाश ब्रदर्स आगरा; **बेसिक शिक्षा :** लेखक—लक्ष्मीचन्द्र; प्रकाशक—आगरा बुकस्टोर, आगरा; **शिक्षा में नयी दृष्टि :** लेखक—हरभाई त्रिवेदी; प्रकाशक—साहित्य-सदन, अबोहर; **गांधी से हम क्या सीखें :** ले०—'बालबन्धु'; प्रकाशक—विद्यामन्दिर, लखनऊ; **आराधना :** लेखक—रजनीश; प्रकाशक—मानसरोवर, मुरादाबाद; **मेरा बचपन :** ले०—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक—विश्वभारती, कलकत्ता; **किरण-बेला :** लेखक—'अंचल'; प्रका०—सुखी-जीवन-ग्रन्थ-माला, दारागंज, प्रयाग; **महिला-धर्म-दीपिका :** संग्राहक—श्रीरतनलालजी डोशी; प्रकाशक—जैनरत्न विद्यालय, भोपालगढ़ (मारवाड़); **समाज में स्त्रियों के अधिकार :** लेखक श्री रामस्वरूप व्यास; प्र० नारी-जागरणकार्यालय

मारवाडी चेम्बर आफ कामर्स कलकत्ता की वार्षिक रिपोर्ट (१९४१)

नवयुग-ग्रंथ-कुटीर, बीकानेर के प्रकाशन

फूलों के गीत : हवाई क़िला : सतयुग की कहानियाँ : पालना : लेखक—श्री शम्भुदयाल सक्सेना; **उड़नछू :** लेखक—श्री गोपीनाथ तिवारी, **बौनों के देश में :** लेखक—श्रीरोशनलाल : **तलवार बहादुर :** ले०—श्री मुकुटबिहारीलाल श्रीवास्तव, **भूतों की कहानियाँ :** उपर्युक्त

काशी, पुस्तक-भण्डार, बनारस के प्रकाशन

किसान-सुखसाधन : लेखक—श्री देवनारायण द्विवेदी; **उद्योग-धंधा :** श्रीसूर्यबलीसिंह(संकलयिता);

१९४१ का हिन्दी-साहित्य : एक दृष्टि

पुस्तक-प्रकाशन

ीय युद्ध के कारण कागज़ की महँगाई होते हिन्दी में पुस्तक-प्रकाशन का कार्य जोरों से इण्डियन प्रेस, प्रयाग ने अपनी 'सरस्वती शुरू की, जिसमें सालभर में ५० के पुस्तकें निकलीं। इनमें ८ विश्व-उपन्यासों वाद, ३ जीवनियाँ, ४ कहानी-संग्रह, १० रोमांच'कारी पुस्तकें, ९ आधुनिक उपन्यास शेष 'धर्म', 'विचारधारा' 'ऐतिहासिक कथा' एवं 'साहित्य' विषय के ग्रंथ हैं। काशी ती प्रेस ने भी देशी-विदेशी उपन्यासों के द निकाले और कलकत्ते से अभिनव भारती ला में भी ५ अच्छे ग्रंथ निकले।

कविता के क्षेत्र में हरिऔध का 'पारिजात' का 'अग्निगान' सोहनलाल द्विवेदी की ँ, दिनकर का 'द्वन्द्वगीत' सियारामशरण मृत', सुधीन्द्र की 'प्रलयवीणा', नरेन्द्र लाशवन', सुमन का 'जीवन के गान' की 'किरणवेला', सुमित्राकुमारी का 'विहाग' महत्त्वपूर्ण हैं। महादेवी के चुने हुए गीतों का संग्रह 'आधुनिक (१) और पंत की चुनी हुई कविताओं का 'पल्लविनी' भी उल्लेखनीय हैं।

था-साहित्य में काशी के सरस्वती-प्रेस ने दूसरी भाषाओं के उपन्यासों के अनुवाद , वहाँ कलकत्ते की नेशनल लिटरेचर ने मौलिक कहानी-संग्रह तथा उपन्यास त किये। इंडियन प्रेस ने अपनी 'सरस्वती द्वारा कई विदेशी उपन्यासों तथा कहानियों के अनुवादों और कुछ मौलिक उपन्यासों था-साहित्य की वृद्धि की। इस क्षेत्र में का 'शेखर', अश्क का 'सितारों के खेल' प्रसाद वाजपेयी का 'खाली बोतल' यशपाल दा कामरेड', इलाचन्द्र जोशी का 'संन्यासी' त्रिपाठी का 'अमर सत्य' अपना-अपना रखते हैं।

महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक गद्यलेखों का संग्रह 'अतीत के चलचित्र' भी एक नयी ही चीज़ है।

नाटकों में एकांकी-संग्रह इस साल अच्छे निकले—उदयशंकर भट्ट का 'अभिनव एकाकी', रामकुमार वर्मा का 'रेशमी टाई', सद्गुरुशरण अवस्थी का 'दो एकांकी' और सेठ गोविन्ददास का 'सप्त रश्मि'। गोविन्दबल्लभ पन्त का 'अन्तःपुर का छिद्र', प्रेमी के 'छाया' और 'बन्धन', सेठ गोविन्ददास का 'सेवा-पथ', 'नवरस' और 'कुलीनता' तथा उदयशंकर भट्ट का गीति नाट्य 'राधा' उच्च कोटि के नाटक निकले।

साहित्य-समालोचना की पुस्तकों में शान्तिप्रिय द्विवेदी का 'युग और साहित्य', प्रकाशचन्द्र गुप्त का 'आज का हिन्दी-साहित्य', रामविलास शर्मा का 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन', गंगाप्रसाद पाण्डेय की 'महादेवी वर्मा', नंददुलारे बाजपेयी का 'जयशंकर प्रसाद', श्यामसुन्दरदास का 'हिन्दी के निर्माता' (१) और ब्रजेश्वर का 'हिन्दी के वैष्णव कवि' अच्छे प्रकाशन हुए।

राजनीति में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य और भाषा-सम्बन्धी बखेड़ों के कारण साहित्य में भी उसकी प्रतिक्रिया हुई। कालिदास कपूर की 'भारतीय सभ्यता का विकास', रुद्रनारायण की 'हिन्दुस्तान बनाम पाकिस्तान', पं० सुन्दरलाल की 'हजरत मुहम्मद और इस्लाम', कमलनारायण झा 'कमलेश' की 'हिन्दुस्तानी आन्दोलन की समीक्षा' और चन्द्रबली पाण्डे की 'भाषा का प्रश्न', 'मुग़ल बादशाहों की हिन्दी' आदि ४-५ पुस्तकें इस विषय पर प्रकाशित हुईं।

वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय विषयों पर भी कई अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुईं—'गांधी-मीमांसा' (रामदयाल तिवारी), 'नागरिक शास्त्र की विवेचना' (गोरखनाथ चौबे), 'आर्यों का आदिदेश' (सम्पूर्णानन्द), 'भारतवर्ष में जातिभेद' (क्षितिमोहन सेन), 'ब्रह्माण्ड और पृथ्वी'

(रामस्वरूप चतुर्वेदी), 'मध्यप्रदेश का इतिहास' (डॉ० हीरालाल), 'संसार की शासन-प्रणालियाँ' (रामचन्द्र वर्मा), 'भारतीय ईश्वरवाद' (रामावतार शर्मा), 'नीति-विज्ञान' (गोवर्द्धन लाल), 'साम्राज्य और उनका पतन' (केला) 'जिल्दसाज़ी' (भारतीय), 'भारतीय चीनी मिट्टियाँ' (मनोहरलाल मिश्र), 'कताई गणित' (कृष्णदास गांधी)। महिलोपयोगी और दाम्पत्य-शास्त्र की पुस्तकों में केवल ४ पुस्तकें उल्लेखनीय हैं—'घर की रानी' और 'आनंद-निकेतन' रामनाथ 'सुमन' की और 'भाभी के पत्र' और 'अभागे दम्पति' 'व्यथितहृदय' की।

बाल-साहित्य की हिन्दी में जितनी कमी है, उसे देखते हुए इसमें प्रकाशन कम हुआ, फिर भी जो हुआ अच्छा हुआ।

प्रयाग के 'हिंदी-मन्दिर' ने जो 'बाल-साहित्य' का विख्यात प्रकाशक है, इस साल 'फूलरानी', 'बेलकुमारी','तीन मेमने', 'भय बिन होय न प्रीति', 'बुढ़िया ! बुढ़िया ! तुझे खाऊँ !', 'चुड़ैल रानी' आदि १० चित्ताकर्षक पोथियाँ निकाली हैं।

बीकानेर के 'नवयुग ग्रंथकुटीर' की 'फूलों के गीत', 'हवाई क़िला' 'सतयुग की कहानियाँ' 'पालना', और 'गंगाजली' (सात एकांकी नाटक) पोथियाँ भी अच्छी और आकर्षक हैं।

सागर के मास्टर बलदेवप्रसाद ने 'सुगम बालबोध', 'वीर गाथाएँ', 'सुगम कहानियाँ', 'बाल सरोज' पोथियाँ निकालीं। 'हिन्दी शिक्षण पत्रिका' के सम्पादक श्री काशिनाथ त्रिवेदी ने इस साल अपनी 'मेरी माला' का शुभारम्भ किया है, जिसका अभी पहला ही मोती—'मेरा घर' निकला है।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला प्रयाग से 'महापुरुषों की जीवन-झाँकी', 'विद्यामन्दिर' लखनऊ से 'गांधी से हम क्या सीखें ?', शारदा प्रेस, प्रयाग से 'मनोहर कहानियाँ' निकलीं। सरस्वती प्रकाशन मन्दिर प्रयाग से 'बाल-खिलौना', 'मोदक,' 'पाँच कहानियाँ,' 'जानवरों की कहानियाँ, आदि सुन्दर बालोपयोगी अच्छी पुस्तकें निकली हैं। नवजीवन-प्रकाशन-मंदिर, अहमदाबाद से 'गांधीजी' और सस्ता साहित्य-मण्डल दिल्ली से 'उपनिषदों की कथाएँ' (कहानियाँ) और 'बहन' (नाटक) अच्छे अनुवाद निकले हैं।

अनुवादों में कुछ तो विदेशी उपन्यासों या कहानियों के अनुवाद निकले, कुछ देशी भाषाओं के। पहली श्रेणी में 'क्रान्तिकारी', 'अभिसारिका', 'बुभुक्षा', 'आना केरेनिना', 'तावीज़', 'रूसी कहानी-संग्रह', 'मोपासाँ की कहानियाँ', 'खिलौनाघर,' 'चार उपन्यास', 'अहंवादी की आत्मकथा', 'गाड़ीवालों का कटरा', 'कार्ल और अन्ना', 'कँटीले तार', 'सात इन्कलाबी इतवार', और दूसरे में 'पाटन का प्रभुत्व', 'शेष प्रश्न', 'नटी की पूजा', 'विश्व-परिचय', 'मेरा बचपन', 'बहन', 'अभिनव मेघ', 'कोकिला', 'स्नेहयज्ञ', के नाम लेना ज़रूरी है। दोनों में उपन्यासों का बहुमत है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकाशक पाठकों को ठोस ज्ञान-विज्ञान की सामग्री न देकर इस वैज्ञानिक युग में भी कल्पना-जीवी और अतिभावुक बनाये रखना चाहते हैं।

पत्र-संसार की प्रगति

पत्र-पत्रिकाओं ने अपने-अपने विशेषांक कागज़ महँगा होते हुए भी ठाठ-बाट से निकाले। सबसे पहले 'विशाल भारत' का 'ऐण्ड्रूज-अंक' निकला, और फिर तो एक लड़ी बन गयी—'साहित्य-संदेश' का 'शुक्ल-अंक', 'साधना' का 'परिचयांक', 'जीवन-सखा' का 'नववर्षांक', 'सुधा' का 'नव-वर्षांक', 'माधुरी' का 'युद्धांक', 'हंस' का 'कविता-अंक', 'कहानी' का 'नववर्षांक', 'वीणा' का 'धार-अंक', 'भूगोल' का 'आसाम-अंक' 'विश्ववाणी' का 'रवीन्द्र-अंक' 'संघर्ष', 'योगी', 'प्रजा-सेवक', 'देशदूत', 'तिरहुत-समाचार' ने भी अपने-अपने विशेषांक निकाले।

'प्रदीप' (मुरादाबाद) का पुनः प्रकाशन, 'सब की बोली' (वर्धा) की विदा, 'गुरुकुल' (कांगड़ी) का 'आर्य' में परिवर्तन उल्लेखनीय घटनाएँ हैं। 'जीवन' ग्वालियर से, 'विश्वबंधु' कलकत्ता से,

समाचार’ वर्धा से और ‘सिंह’ झाँसी लगे । ‘सैनिक’ का पुनः प्रकाशन इस हीं हो सका ।

साहित्यिक संस्थाओं की प्रगति

नवरी में दिल्ली में हिंदी पत्रकार-सम्मेलन अधिवेशन बुलाया गया, जिसमें हिन्दी पत्रकारों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया और ‘हिंदी पत्रकार-संघ’ बना, पर उसने शेष कार्य अभी तक नहीं किया । पटना में प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन हुआ ।

री में मेरठ में हिन्दी-परिषद की दूसरी हुई जिसमें दूर-दूर के विद्वानों ने अपने पढ़े, गोष्ठियाँ कीं, परिषद् को विकसित की योजना भी बनी, किंतु उसका काम आगे न बढ़ सका ।

टीकमगढ़ से ‘मधुकर’-संपादक बनारसी-र्वेदी ने अपने ‘सांस्कृतिक केंद्र’ स्थापित योजनाएँ बनायीं । ‘ब्रज-साहित्य मंडल’ स्थापना हुई, टीकमगढ़ में भी ‘स्वाध्याय-बना ।

धुकर’ परिवार द्वारा सांस्कृतिक तथा क क्षेत्र में अच्छा काम हुआ । श्री गुप्त ने ग्रामगीतों तथा बुन्देलखण्डी के शब्दों के संग्रह का काम हाथ में लिया दिनों-दिन इसमें सबकी दिलचस्पी बढ़ती है । आशा है कि उनसे प्रेरणा पाकर अगले स्य-साहित्य मंडल नाम की कोई संस्था में भी बने ।

हिन्दी साहित्यिकों की सहायता करने से, जो आर्थिक या अन्य परिस्थितियों यथोचित प्रगति नहीं कर सकते, श्री ‘प्रेमी’, ब्रजकिशोर ‘नारायण’, सर्वदयाल लाहौर में एक साहित्यिक-सहायक-समिति है और अगले वर्ष उसके प्रचार के लिए नेवाले हैं ।

लोचना के कार्य में निष्पक्षता, श्रेष्ठता लाने के लिए लखनऊ में ‘सहयोगी आलो-चक’ की योजना बनी, जिसे समर्थन भी मिला किंतु वह कार्यान्वित नहीं हो सकी । आशा है, नये वर्ष से वह होगी ।

उदयपुर में पिछले वर्ष दशहरे पर जो राजस्थान-साहित्य-सम्मेलन हुआ था सम्भवतः उससे प्रेरणा पाकर अक्टूबर में महू में मध्यप्रान्तीय साहित्य सम्मेलन हुआ ।

‘भारतीय इतिहास परिषद्’ बनारस ने भारतीय इतिहास को अंग्रेज़ी तथा हिंदी भाषा में लिखवाने की जो आयोजना की थी, उसमें प्रगति हुई है । उसके नीचे लिखे हिन्दी खंडों के सम्पादन भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा होकर शीघ्र ही परिषद् की ओर से ‘सस्ता साहित्य मण्डल’ द्वारा प्रकाशित होंगे ।

जिल्द १. भारतभूमि, उसके निवासी और प्रागितिहास—रावबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित, अध्यक्ष, भारतीय पुरातत्व विभाग, नई दिल्ली ।

जि० २. आर्य-उपनिवेश-स्थापन और वैदिक काल—श्रीक्षेत्रेशचन्द चट्टोपाध्याय, इलाहाबाद ।

जि० ४. नन्द और मौर्य साम्राज्य—प्रो० के० ए० नीलकंठ शास्त्री, मद्रास और डा० हेमचन्द्र रायचौधरी, कलकत्ता ।

जि० ५. शुंग सातवाहन और शक—डा० प्रबोधचन्द्र बाग्ची, कलकत्ता और प्रो० के० ए० नीलकंठ शास्त्री, मद्रास ।

जि० ६. वाकाटक और गुप्त-साम्राज्य—डा० रमेशचन्द्र मजूमदार, ढाका और डा० अनन्त सदाशिव कर, बनारस ।

जि० १२. अकबर का ज़माना—सर यदुनाथ सरकार ।

जि० १५. पिछले मुग़ल और पहले पेशवा—रावबहादुर गोविन्द सखाराम सर देसाई और सर यदुनाथ सरकार ।

जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं, अबोहर में प्रो० अमरनाथ झा के सभापतित्व में अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और रायपुर (मध्यप्रान्त) में व्योहार राजेन्द्रसिंह के सभापतित्व में मध्यप्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन होरहा है ।

—कलाकान्त

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का भाषण

अबोहर-सम्मेलन के सभापति श्री अमरनाथ झा के भाषण के इतने अंश हैं—

(१) भारतराष्ट्र की राष्ट्रभाषा-परम्परा के इतिहास की रूपरेखा

(२) हिन्दी-साहित्य के स्वनामधन्य और लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों की सेवाओं का उल्लेख

(३) भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवाओं का उल्लेख

(४) वैज्ञानिक परिभाषा की विवेचना

(५) हिन्दी-साहित्य के प्रधान जीवित तथा वर्त्तमान साहित्यकारों का उल्लेख

(६) हिन्दी साहित्य की कमियाँ—

"कुछ अंगों की पूर्ति आवश्यक है। वैज्ञानिक पुस्तकों की अब भी कमी है। मैं जानता हूँ कि पिछले पन्द्रह-बीस वर्ष में कई अच्छी पुस्तकें लिखी गयी हैं। विज्ञान तो इतना प्रगतिशील और उन्नतिशील है कि इसके प्रति अंग पर नयी-नयी पुस्तकों की रचना अभीष्ट है, जिनमें नये आविष्कारों और खोजों का समावेश हो।"

"दूसरी कमी इतिहास और जीवन-चरित की है। इनमें भी काम हो रहा है, परन्तु इतिहास के विद्वान् अभी यथेष्ट संख्या में हिन्दी में अपने ग्रन्थ नहीं लिखते हैं। यह सत्य है कि अँगरेजी में लिखने से उनकी ख्याति और देशों में होती है और उनका प्रचार अच्छा होता है। मैं नहीं चाहता कि वे अँगरेजी में लिखना छोड़ दें, पर साथ ही हिन्दी में लिखना उनका कर्त्तव्य है। आजकल के प्रधान इतिहासज्ञों और ग्रंथकारों में कई ऐसे हैं जो हिन्दी में लिख सकते हैं।"

"चरित्र-लेखन-कला में हमने अभी यथेष्ट उन्नति नहीं की है। जीवन-चरित्र केवल वृत्तान्तों का संकलन और एकत्रीकरण नहीं है। जन्म, अध्ययन, विवाह, सन्तान और मृत्यु का वर्णन पर्याप्त नहीं है। लेखक का कर्त्तव्य है कि पाठकों के सामने एक सजीव मूर्ति उपस्थित करे। जिस प्रकार कुशल चित्रकार बाह्य रूप, वेश-भूषा से अन्तर्हित आत्मा को देख और दिखा सकता है वैसे ही जीवन-चरित में—सफल-जीवन-चरित में—चरित्र-नायक से पूर्ण परिचय हो जाता है। ऐसी पुस्तकें हमारे यहाँ कम हैं।"

"समालोचना साहित्य का एक विशेष अंग है। खेद है कि हमारे समालोचकों में बहुत कम ने संस्कृत अथवा हिन्दी के काव्य-विषयक ग्रंथों का अवलोकन किया है। साहित्य-दर्पण, काव्यादर्श, काव्यप्रकाश, काव्यालंकार, कविकुलकंठाभरण, ध्वन्यालोक, रसगंगाधर, काव्यप्रदीप, रामचन्द्रिका, रसराज, कवित्तरत्नाकर, कविप्रिया इत्यादि ग्रंथों में हमारे देश के विद्वानों ने काव्य और नाटक के सिद्धातों की ऐसी विलक्षण व्याख्या की है, गुण और दोष का ऐसा अच्छा विवरण किया है, भाव और रस की इतनी गूढ़ समालोचना की है कि आज भी, इतने वर्षों पर भी, हम उनको पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। हम देखते हैं कि प्रगतिशील यूरोप में अब भी एरिस्टोटेल, हौरेस, लौंजाइनस इत्यादि के सूत्रों की कसौटी पर आधुनिक काव्य भी जाँचा जाता है तो कोई कारण नहीं कि हम भी विश्वनाथ, मम्मट, राजशेखर, दण्डिन, भामह, जगन्नाथ के मत का अनुसरण क्यों न करें और साहित्य की विवेचना उनके सिद्धान्तों के सहारे क्यों न करें? कुछ समालोचक तो अँगरेजी के द्वितीय और तृतीय श्रेणी के मर्म्मज्ञों का अनुकरण करते हैं, कुछ पंडितम्मन्य मनमाने सिद्धान्त यथावसर स्वयं गढ़ लेते हैं, और कुछ केवल वैयक्तिक पक्षपात अथवा द्वेष से प्रेरित होते हैं। विद्वानों को समालोचन-कला की ओर ध्यान देना चाहिए।"

"एक और विषय है जिसकी चर्चा मैं डरते हुए करता हूँ—वह यह कि हिन्दी के प्रधान ग्रंथों का अनुवाद और भाषाओं में होना चाहिए। विदेश में संस्कृत का आदर विद्वानों ने तभी किया जब यूरोपीय भाषाओं में, इटालियन, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी में संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हुए।"

"परन्तु अन्य भाषा-भाषियों का कितना उपकार हो और हिन्दी के प्रति उनकी कितनी श्रद्धा हो यदि सूरदास, नन्ददास, सेनापति, गिरधरदास,

देव, भूषण इत्यादि की अच्छी कविताओं वाद उनको उपलब्ध हो जाए !"

हमारे पत्रों की संख्या कम नहीं है और इनमें श्रेणी के हैं। हिन्दीप्रेमियों को चाहिए के ग्राहक बनें, और यह विशेष प्रयत्न होना कि इनमें विज्ञापन प्रकाशित हों। केवल ों के अवलम्ब पर पत्र चलाना कठिन है। ों के अनुभव से यह स्पष्ट है कि विज्ञापनों ों को बहुत सहायता मिलती है। हम यह ते हैं कि इन पत्रों में दो-चार ही ऐसे हैं खकों को लेखों का पारिश्रमिक देते हैं। ंकित नहीं कि बिना कुछ पुरस्कार के लेख जायें। नवयुवक उदीयमान लेखकों की कहें, लब्धप्रतिष्ठ लेखकों को भी लेखों के कुछ नहीं मिलता है। पत्र के संचालक केवल का खर्चा देते हैं, थोड़े वेतन पर उनको क मिल जाते हैं, और इन सम्पादकों का होता है कि लेखों को मँगवायें और वे ों की उदारता और कृपा से लेख पा भी हैं। इस स्थिति में परिवर्तन तभी होगा जब लेख भेजने की प्रथा बन्द होजाये और पारिश्रमिक देने पर सम्पादकों को बाध्य "

(७) 'हिन्दी' और 'हिन्दुस्तानी'—इस प्रश्न पर इस प्रकार विचार प्रकट किये :--

'हिन्दी चन्दबरदाई के समय से स्वाभाविक कर रही है इसका रूप लेखकों द्वारा निर्धा- हो चुका है। रामचरितमानस में अनेक और अरबी के शब्द हैं। बिहारी की सत- बहुत-से फ़ारसी शब्दों का समावेश है। व्यवहार में स्वाभाविकतया आ जाते बहिष्कार का प्रयत्न हिन्दी में नहीं हुआ तफ़हमी कहाँ से आ गयी, किसके मन गयी? यह तो हिन्दी के साथ अन्याय है सी, अरबी और अंग्रेजी के समान और अन्त में, करुणा और दया के भाव से को भी स्थान दिया जाये। हिन्दी का जन्म से है। जो कोई गम्भीर विषय पर हिन्दी में लिखेगा उसके लिए संस्कृत-शब्दों का प्रयोग अनिवार्य है। जो नये वैज्ञानिक शब्द हिन्दी में निर्माण होंगे वे संस्कृत से ही लिये जा सकते हैं। यदि हम आशा करते हैं कि हिन्दी अहिन्दी प्रान्तों में समझी जाये और व्यवहृत हो तो केवल वही हिन्दी सर्वग्राह्य होगी जो संस्कृतमयी होगी और जिसमें उन प्रान्तवालों को कुछ परिचित शब्दों और अपनी संस्कृत की झलक मिलेगी।"

"परन्तु यह भी मैं कहना चाहता हूँ कि यदि उच्चकोटि के साहित्य में, गम्भीर भावों के प्रकट करने में, वैज्ञानिक और दार्शनिक विवरण में, संस्कृत के शब्दों का प्रचुरता से व्यवहार आवश्यक है, जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है हमारी चेष्टा यह होनी चाहिए कि भाषा सरल हो। जन-साधारण से हम यह आशा नहीं कर सकते कि उनमें क्लिष्ट संस्कृत-शब्दों के समझने की योग्यता हो। समाचार-पत्रों की भाषा, लोकोक्तियों की भाषा और गीतों की भाषा तो ऐसी होनी चाहिए कि वह सद्यः हृदयंगम हो। ग्राम-साहित्य की भाषा ललित-साहित्य की भाषा से भिन्न होगी। हिन्दी में ऐसे यथेष्ट शब्द हैं जिनके द्वारा साधारण विषयों पर लेख लिखे जायें और गान रचे जायें।"

"यदि हिन्दी का ही दूसरा नाम 'हिन्दुस्तानी' है तो मुझे इस शब्द के व्यवहार में कोई आपत्ति नहीं है; और जैसा कि मैं कह चुका हूँ, उर्दू से मुझे प्रेम है। पंजाब और संयुक्त-प्रान्त में तो मैं चाहता हूँ कि बच्चा-बच्चा देवनागरी और फ़ारसी दोनों लिपि सीखे।"

(८) **उपसंहार** में उन्होंने कहा—

इस प्रान्त में हमारे आर्य पूर्वजों नें वेदों के मंत्रों से प्रभावित होकर भारतवर्ष की संस्कृति की रूपरेखा निर्धारित की थी। आज फिर हम इस प्रान्त में अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपने साहित्य की उन्नति के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं। बिना लड़े हुए, बिना द्वेष अथवा ईर्ष्या के, सबसे सुहृद्भाव रखते हुए, हम निश्चय करते हैं कि जो कुछ भी हो हम हिन्दी भाषा, हिन्दी-साहित्य और देवनागरी-लिपि का ह्रास नहीं होने देंगे।"

क्या और कैसे ?

सवाल आज़ादी का है

श्री राजगोपालाचार्य ने लखनऊ विश्वविद्यालयवाले अपने भाषण में अहिंसा के संबंध में महात्माजी से अपना जो मतभेद प्रकट किया वह हमें अप्रासंगिक मालूम होता है। एक तो विद्यार्थियों के समारम्भ को यह मतभेद प्रकाशित करने का प्रसंग बनाना सुरुचियुक्त न था, दूसरे कांग्रेस की दृष्टि से वह अनावश्यक भी था, जैसाकि मौ० आज़ाद व श्री नेहरूजी अपने वक्तव्यों में स्पष्ट कर चुके हैं। महात्माजी स्वतः निरपवाद अहिंसा के उपासक हैं; परन्तु कांग्रेस की स्थिति अभीतक उनसे भिन्न बनी हुई है। कांग्रेस ने फ़ौज व पुलिस न रखने का निश्चय अभी नहीं किया है और कांग्रेस के सामने हिंसा-अहिंसा या युद्ध में भाग लेने-न-लेने का प्रश्न उसी अवस्था में आ सकता है जबकि हिन्दुस्तान को पूर्णस्वतंत्रता दे दी जाये और कांग्रेसी सरकार बन जाये। उसके पहले तक तो यह सवाल कांग्रेस के सामने आज़ादी व ग़ुलामी का है न कि हिंसा व अहिंसा का।

धैर्य से

जापान के मलाया की तरफ़ बढ़ने के समाचार सुनकर कलकत्ते में भगदड़ मच गयी है। अपनेको और बाल-बच्चों को सुरक्षित जगह पर पहुँचाना एक बात है तथा घबड़ाकर हाय! दैया!! मचाना दूसरी बात है। पहला जहाँ हमारा कर्तव्य हो सकता है वहाँ दूसरा हमारी भीरुता व कायरता का परिचायक है। जबकि हम आज़ादी का दावा पेश करते हैं तो हमें यह भी साबित कर दिखाना चाहिए कि कठिनाई व संकट के अवसर पर हम शान्ति और धैर्य के साथ अपना कर्तव्य निभाना जानते हैं। सच्चा सूरमा वह है जो संकट आ जाने पर दूसरे को बचने का अवसर पहले देता है, अपने को संकट में डालकर दूसरों को बचाता है, व ख़ुद न हिम्मत छोड़ता है, न धीरज। जबतक दुनिया अहिंसा की पथिक नहीं बनती है तबतक आये दिन बम व टैंकों की मुसीबत लगी ही हुई है। आज यहाँ तो कल वहाँ। ऐसी हालत में भाग-दौड़ भी कहाँ-कहाँ व कबतक की जा सकेगी? इसे नित्य मानकर हमें अपना कार्यक्रम बनाना व स्थिरता से चलाना चाहिए।

भाई-भाई की तरह

हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक अविश्वास, संशय व झगड़ों के इस ज़माने में श्रीमान् रीवाँ महाराजा के नीचे लिखे उद्गार प्रशंसनीय व आशावर्धक हैं। पिछले 'ईदुल फितर' के अवसर पर ईदगाह में भाषण देते हुए आपने मुसलमानों से कहा—

जिस तरह आप लोग इस त्योहार को महत्वपूर्ण समझते हैं ठीक उसी तरह आप ही के मुआफिक ईद का यह त्योहार हमारे लिए भी है और हम इसे बड़े महत्त्व का समझते हैं। हम ऐसे मौके पर अपनी मुसलमान रिआया को हृदय से ईद की बधाई भेंट करते हैं।

हमें इस बात का फख्र है कि मुसलमानों के साथ हमारा, हमारी बांधवगद्दी का इसी तरह बिरादराना भाव एवम् रिश्ता रहता आया है। हमने सब दिन हरएक फिरका, हरएक कौम और हरएक जाति को एक नजर से देखा है और आज भी देख रहे हैं। हमारे राजघराने, हमारे राज्य में मुसलमानों के साथ सदा भाईचारे का सम्बन्ध रहा है और अब भी है। ऐसी हालत में हम अपनी मुसलमान रिआया को नसीहत देते हैं कि वह भाईचारे का व बिरादराना भाव सदा-सर्वदा हमारी रियासत में बना रहेगा। ऐसा होने से ही हमारी और हमारे राज्य की उन्नति अवश्यम्भावी है।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि खुदा पर एतबार करते हुए हमारी हरएक रिआया अपने-अपने

पर अमल करती हुई अपनी उन्नति करती जिससे कि हमारी रिआया के बीच यह राना भाव जो सदियों से चला आ रहा यों तक कायम रहे।

हमने इस बिरादराना भाव को और भी दृढ़ की नियत से ही लापरहेजी को तरजीह और प्रतिवर्ष इसका एक बड़ा जलसा जाता है जिसमें सभी हिन्दू-मुसलमान भाई की तरह बैठकर भोजन करते हैं। यह हमारे लिए और भी गौरव की है।"

जबकि हिन्दुओं व मुसलमानों को इसी देश , रहना व मरना है तो वे एक दूसरे के बनकर ही मजे में रह सकते हैं। उन्हें लड़ने इस तरह मिलने के तरीके सोचना चाहिएँ।

से आशा करें ?

नेतावर्ग में अक्सर यह चर्चा चलती रहती नये कार्यकर्ता ज्यादा तादाद में नहीं । पुराने पिसते-घिसते और थकते चले जा उनका स्थान लेनेवाले नये बहुत कम आते हैं। कॉलेज के विद्यार्थियों पर निगाह है, मगर उनमें बातें ज्यादा व काम कम आता है। आन्दोलन में तो वे रुचि खूब हैं, विध्वंसक कामों में उत्साह से आगे हैं, मगर ठोस, रचनात्मक या सृजनकारी में नाक-भौंह चढ़ाते हैं, कइयों को तो वे व बेकार मालूम पड़ते हैं। उन्हें कैसे समझाया कि मकान बड़े धैर्य से एक-एक ईंट जोड़कर जाता है। उस रोज श्री मुन्शी ने ठीक कहा कि महात्माजी ने भारतीय राष्ट्र को में एक-एक टुकड़ा जोड़कर खड़ा किया व है। यह उनकी सबसे बड़ी खूबी है। के प्राण—नवयुवक—ही यदि राष्ट्र-रचना में उदासीन हैं तो फिर किससे आशा ? क्या नवीन पीढ़ी नेंताओं की इस को मिटाने में अग्रसर न होगी ?

ों में भी ?

राष्ट्रीयता के मुकाबले में जातिगत भावों या सवालों को महत्त्व मिलना फूट की ही एक मिसाल हो सकती है। हिन्दुस्तान के दो मेवे 'फूट और बैर' कहावतों में मशहूर हैं। कांग्रेस, लिबरल फेडरेशन, सोश्यलिस्ट पार्टी जैसी संस्थाएँ जहाँ देश में राष्ट्रीयता को मजबूत बनाकर पूर्वोक्त कहावत को झूठा साबित करने की कोशिश कर रही हैं, तहाँ दुर्दैव से कुछ जातीय संस्थाएँ जातिगत भावों को उभाड़कर देश की प्रगति को धक्का पहुँचा रही हैं। और तो ठीक, बम्बई की तरफ खेलों में भी जातीयता की बुराई घुस गयी है। कुछ समय पहले महात्माजी का एक वक्तव्य इसके विरोध में निकला था। यह खुशी की बात है कि जामनगर, पटियाला व इंदौर के महाराजाओं ने भी खेल में जातिगत टुकड़ियों के रखने का विरोध किया है और हाल ही बम्वई में ऐसे एक बड़े खेल पर जोर का पिकेटिंग भी हुआ। विद्यार्थियों व युवकों के मन में जातिगत भावों के संस्कार डालना किसी प्रकार वाञ्छनीय नहीं हो सकता। आखिर इन्हों पर तो सारे राष्ट्र का आधार है। खुद विद्यार्थियों को ही इस जहर से अपने को बचाना चाहिए। दुनिया न तो अब संकुचित दायरों में घिरी व बँटी रह सकती है, न रहना वाञ्छनीय ही है।

ठीक दिशा में

मराठा व राजपूत राजाओं में एक अच्छी हलचल शुरू हुई है। उत्तर के क्षत्रिय दक्षिण में जाकर 'मराठा' हो गये व राजपूताने में बसकर 'राजपूत' कहलाये। मराठों के हमले जब राजपूताने में हुए तो मराठा–राजपूत एक-दूसरे के बैरी हो गये। राजपूत अबतक मराठों के—कल्पित हो या सही—जुल्मों की याद कटुता के साथ किया करते थे। एकता व राष्ट्रीयता के इस युग में यह वैर घुलता हुआ दिखाई देता है और इस पर हमें हर्ष है। मराठा-राजपूत-सम्मेलन को सुदृढ़ बनाने के लिए देवास से 'मराठा-राजपूत' नामक मासिक पत्र भी निकलने लगा है, जिसके

संरक्षक मराठा व राजपूत राजा लोग हैं। इसमें अच्छी ज्ञातव्य सामग्री रहती है। इन विभेदों को मिटाने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि रखना बहुत आवश्यक है। यदि हम मूल खोजने लगें तो सबमें एकता-ही-एकता पायेंगे। सब का स्रोत एक ही दिखाई देगा। हम विस्तार की तरफ निगाह डालेंगे तो अनेकता व बहुमुखता दिखाई देगी। एक ही वस्तु के इन दो रूपों को हमें न तो भुलाना ही चाहिए, न इन्हें दो पृथक् वस्तु ही समझ लेने की भूल करनी चाहिए। हम एक से अनेक हुए हैं। हमारी अनेकविध जीवन-यात्राओं का अन्त एक ही स्थान में फिर होना है। द्वैत में अद्वैत की यह दृष्टि ही सत्य व कल्याणकारिणी है।

सभापति कौन हो ?

राजस्थान हि० सा० सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन जोधपुर में होनेवाला है। उसका सभापति कौन हो ? मेरी राय में झालरापाटन के अस्तंगत 'सौरभ' के सम्पादक पं० रामनिवास शर्मा सभापति बनाये जायें तो अच्छा रहेगा। 'सौरभ' जितना बढ़िया निकलता रहा उतनी उसकी व्याप्ति व ख्याति न हो पायी, यह खेद की बात रही। पं० रामनिवासजी भी कोने में पड़े रहे। मेरे अनुभव में वे एक विद्वान् लेखक व विचारक हैं। यदि हम उन्हें सम्मेलन का सभापति बनाते हैं तो न केवल उनकी यथोचित कद्र ही करेंगे, बल्कि उन्हें प्रान्त की अपनी सेवा-व शक्ति से लाभ पहुँचाने का भी अवसर देंगे।

किसपर ?

ज्यों-ज्यों लड़ाई हिन्दुस्तान के नज़दीक आती जा रही है त्यों-त्यों यह सवाल ज़ोर से सामने आ रहा है कि हिन्दुस्तान का बचाव कैसे किया जाये ? इससे पहले यह सवाल उठता है कि किसपर इस बचाव की ज़िम्मेदारी है और कौन इस ज़िम्मेदारी को उठा सकता है ? यह भी एक सवाल हई है कि आखिर क्यों यह मुसीबत हमारे देश पर आ रही है ? इसका सीधा व सही जवाब तो यही है कि ब्रिटिश साम्राज्य के मातहत होने के कारण हिन्दुस्तान पर रास्ते चलते ये मुसीबतें आ रही हैं। हिन्दुस्तान ने अपनी खुशी से किसीसे लड़ाई नहीं ठानी है। हिन्दुस्तान अपने घर में, अपने बचाव के लिए आज आज़ाद भी नहीं है। उसके पास अपने बचाव की कुल सत्ता भी नहीं है। ऐसी हालत में बचाव की सारी जिम्मेदारी हिन्दुस्तान की सरकार पर है और वह उस जिम्मेदारी को अपने ढंग से अदा भी कर रही है। जो लोग हथियारों की लड़ाई में विश्वास रखते हैं और कांग्रेस का असर जिनपर नहीं है वे उसमें सरकार की मदद कर ही रहे हैं। कांग्रेस उस ज़िम्मेदारी में तभी साझी हो सकती है जब पहले हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्य की अधीनता से मुक्त कर दिया जाये। कांग्रेस के नेता यह बात पुकार-पुकारकर कह रहे हैं।

गांधी ही

अमेरिका व जापान के इस लड़ाई में कूद पड़ने के बाद यह निश्चित हो गया है कि सारा संसार इस दावानल में भस्म होकर ही रहेगा। इसके अन्त में जो जीता बचेगा उसकी स्थिति की कल्पना हम महाभारत के अन्त की स्थिति से अच्छी तरह कर सकते हैं। एक अमेरिका था जिससे यह आशा हो सकती थी कि वह बीच-बचाव करके संधि स्थापित करे। अब हिंसात्मक शक्तियाँ तो बीच-बचाव करनेवाली रही नहीं। अहिंसात्मक शक्ति की तरफ़ ही निगाह जा सकती है। उसके केन्द्र महात्मा जी हैं। 'टाइम्स ऑव इण्डिया' ने प्रकारान्तर से सुझाया है कि शान्तिवादी सुलह का कोई अच्छा नुस्खा पेश करें। यदि इसमें सच्चाई है तो उसे व उसके जैसे विचार रखनेवालों को शान्तिवादियों का हाथ मज़बूत व रास्ता सुगम बनाना चाहिए। क्या उनमें यह हिम्मत है कि वे महात्माजी-जैसे को पंच बनानें की तजवीज पेश करें ? युद्ध की सर्वग्रासी ज्वालाओं से संसार की व मानव जाति

करती हो तो गांधी को बीच में डाले ति नहीं है। आज यह बात हास्यास्पद, बड़ी बात जैसी लगती हो, किन्तु वह येगा जब 'पागल' गांधी की नीति को दार' युद्ध-नेता 'एक मात्र सही नीति' करेंगे जितनी जल्दी वह दिन आयेगा ही ज्यादा संसार बरबादी से बचेगा।

ी?

ओर सरकार ने काँग्रेस के सत्याग्रही को छोड़ना शुरू किया तो दूसरी ओर में हिन्दू महासभा के नेता जेल में जाने ायदे आजम जिना साहब ने भी सरकार दी है कि यदि सरकार ने ८ अगस्त को बदला तो मुसलमान जेल भर र सावरकर सत्याग्रह को कोसते रहते का मजाक उड़ाते हैं, और जिना साहब त्याग्रह का वास्ता ही क्या? किन्तु अमल नेता महात्माजी का अनुकरण करते वह कैसा विचित्र संयोग है? कोई इस को बूझेंगे?

ह० उ०

ी चोट

जीवन-साहित्य के छपते-छपते एक पत्र में खबर मिली थी कि इन्दौर के नहीं रहे। हृदय डर रहा था कि श्रीनिवास चतुर्वेदी न निकलें! परन्तु जो वह छिपा कबतक रह सकता था?

प्रो० चतुर्वेदी संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान, हिंदी के विचारवान् लेखक और सफल शिक्षक थे। उनके महाप्रयाण से मध्यभारत की ही नहीं अनेक हिंदी-साहित्यिकों की अपनी वस्तु खो गयी है। परमात्मा उनके वियोग को सहने की उन्हें शक्ति प्रदान करे।

और आज जबकि जी० सा० छप रहा है, एक और दुखदायी समाचार मिला है।

मुखपृष्ट पर इन्दौर के श्री प्रह्लाद पाण्डेय 'शशि' की कविता देते समय क्या खबर थी कि उन्हीं पर आँसुओं से ये पंक्तियाँ भी लिखनी पड़ जायेंगी! कैसे कहें कि वह भी अब नहीं हैं और उनकी मृत्यु का कारण जानकर तो हृदय मानों विलाप कर उठता है। गरीबी के कारण गिरते स्वास्थ्य को सुधारनें के साधन न देखकर करुणामयी मृत्यु ने उन्हें अपने चिरशीतल अंक में सुला लिया!

इंदौर को इस प्रकार यह दूसरी चोट लगी।

'शशि' एक प्रतिभाप्रेरित उदीयमान् युवा कवि थे। कवि ही न थे भूखे-प्यासे देहातों में घूम-घूमकर कविता को चरितार्थ करनेवाले भी थे।

उन जैसे कवि की आज के युग को, आज के भारत को आवश्यकता थी। उनकी आत्मा यहाँ से जाकर भी पुनः यहीं आने के लिए छटपटा रही होगी। हम प्रार्थना करें कि वह 'शशि' पुनः शीघ्र ही भारत माँ की गोद में कहीं जन्म ले!

सु०

'मण्डल' की ओर से

र्ष

नवरी से 'मण्डल' का नया वर्ष शुरू होता वर्ष में 'मण्डल' ने 'लड़खड़ाती दुनिया,' शासन-प्रणालियाँ,' 'सेवा-धर्म : सेवा-यरी के पन्ने,' 'युद्ध और अहिंसा,' इलाज,' 'यूरोपीय युद्ध और भारत' ों का दरजा', 'सोने की माया', 'सत्य-ाग', 'उपनिषदों की कथाएँ,' 'आदर्श बालक' ये १२ नयी पुस्तकें निकालीं।

इस वर्ष की खास बात वर्धा, कलकत्ता तथा इलाहाबाद में 'मंडल' की शाखाएँ खुलना हुई। और यह सूचित करते हुए प्रसन्नता होती है कि तीनों जगह हमें आशातीत सफलता मिली है। प्रयाग में तो 'मंडल' ने श्री रामनरेश त्रिपाठी के 'हिन्दी-मन्दिर' को स्वत्वाधिकार सहित खरीद लिया है। 'मण्डल' के हाथ में आनें

के बाद से 'हिन्दी-मन्दिर' का काम संगठित हो गया है। सुविधा होते ही साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन की भी योजना है। अभी तो ज़रूरी पुस्तकों के पुनर्मुद्रण किये जा रहे हैं।

'मण्डल' के कार्य में पिछले वर्ष जिन महानुभावों ने किसी भी प्रकार सहायता की है या उत्साह बढ़ाया है, उनके हम अत्यन्त आभारी हैं और उनसे हमारी सविनय प्रार्थना है वे कि आगे भी इसी प्रकार हमपर स्नेह और कृपाभाव बनाये रखकर हमारा उत्साह बढ़ाते रहें।

स्थायी ग्राहकों और खादी-भण्डारों से

स्थायी ग्राहकों को नये वर्ष से जो कमीशन मिलेगा उसकी सूचना आप पढ़ ही चुके होंगे। अब उनको मण्डल की पुस्तकों पर ≡) रुपया कमीशन मिलेगा। हिंदी-मन्दिर की पुस्तकों पर ।) रुपया मिलेगा। भण्डारों पर से ।) रुपया मिलेगा।

खादी भण्डारों पर जी० सा० तथा मण्डल के जो ग्राहक बनें उनकी सूचना हमें तुरंत मिल जानी चाहिए। देर होने पर ग्राहकों को शिकायत रहती है।

नवीन प्रकाशन

जनवरी के अन्ततक निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो जायेंगी—

१. तीस दिन : मालवीयजी के साथ : ले० रामनरेश त्रिपाठी, १।।)

२. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन ले० रामनारायण यादवेन्दु १।)

३. महावीर-वाणी : (बेचरदास दोशी) १)

४. अहिंसा-विवेचन : (किशोरलाल भाई) ।।)

'पशुओं का इलाज' का मूल्य कम

लेखक श्री परमेश्वरीप्रसाद गुप्त के आग्रह से इस पुस्तक का दाम ।।।) से ।।) कर दिया गया है। अतः यह पुस्तक आगे से ।।।) के बजाय ।।) में ही लोगों को मिला करेगी। आशा है लोग इस सुविधा से लाभ उठायेंगे।

अप्राप्य पुस्तकें

'मण्डल' से अबतक लगभग १४० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पर उनमें से कई खतम हो चुकी हैं। कुछ के नये संस्करण हो चुके हैं; कई के हो रहे हैं। पर कुछ पुस्तकें ऐसी हैं जिनको आज की युद्ध-स्थिति में काग़ज की मँहगाई और तंगी के कारण छपा सकना कठिन है। अतः ऐसी पुस्तकों की सूची 'मंडल' के बड़े सूची-पत्र में देदी गयी है इन्हें प्रकाशित करने का 'मण्डल' का अभी इरादा नहीं है। अनुकूल समय आने पर छापेंगे।

'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकों के मूल्य में कमी

'हिन्दी-मन्दिर' की निम्न पुस्तकों की क़ीमतें कम करदी गयी हैं। आशा है, पाठक उससे काफ़ी लाभ उठायेंगे।—

	पहले का दाम	कम किया दाम
१. घर का वैद्य	१२)	६)
२. पाकेट डिक्शनरी (हिन्दी-अंग्रेजी)	१।।)	।।।)
३. समाज और साहित्य	१।।)	।।।)
४. अयोध्याकाण्ड	१)	।।)
५. चिन्तामणि	।-)	=)

नये वर्ष से नया कार्य

'मण्डल' के पाठकों को, खासकर नई दिल्ली निवासियों को, जानकर प्रसन्नता होगी कि जनवरी से 'मण्डल' नई दिल्ली में एक पुस्तकालय खोल रहा है। 'मण्डल' के उद्देश्यों में पुस्तक प्रकाशन, पत्र-प्रकाशन आदि के साथ पुस्तकालय खोलना भी है। नई दिल्ली में हिंदी का कोई पुस्तकालय नहीं है। इसलिए सबसे पहले नई दिल्ली से ही इस प्रकार का पुस्तकालय खोलने की वह शुरुआत कर रहा है। हिन्दी के प्रेमी पाठकों के आग्रह से, हिन्दी और राष्ट्रीय भावों के प्रचार की दृष्टि से जनवरी से 'मण्डल' के कार्यालय (कनाट सर्कस, बाम्बे लाइफ बिल्डिंग : हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के पास) में इस प्रकार का पुस्तकालय खोलने का प्रयत्न हो रहा है। नियमादि अलग छपकर तैयार हैं जो या तो पत्र द्वारा मँगाये जा सकते हैं या शाम को स्वयं ५ से ६ बजे तक दफ्तर में माँगने पर मिल सकते हैं।

—मंत्री, स० सा० मंडल

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और ख़ास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली :: फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं ।

"राष्ट्रभाषा-समाचार"

[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का मुखपत्र]

सम्पादक : श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हर महीने की १४ तारीख को निकलता है

अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी की प्रगति

भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई छोटी सुन्दर कहानियाँ,
निवन्ध, जीवन-परिचय इत्यादि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
की सभी प्रवृत्तियाँ,
अगर आप यह सब सामग्री एक ही जगह और एक ही साथ पढ़ने के इच्छुक हैं
तो "राष्ट्रभाषा-समाचार" के ग्राहक बनिए
इसका वार्षिक चन्दा सिर्फ १० आना मनीआर्डर से है ।
यह वी० पी० से नहीं भेजा जाता

प्रवन्ध सम्पादक—**"राष्ट्रभाषा-समाचार" वर्धा ।**

शरत्-साहित्य का बीसवाँ-इक्कीसवाँ भाग

शेष प्रश्न

छपकर तैयार है । यह शरत्‌बाबू के अन्तिम दो उपन्यासों में से एक है और सबसे निराला है । यह हमारे परम्परागत विचारों और धारणाओं में उथल-पुथल मचा देनेवाली और एक नये ही दृष्टिकोण से सोचने समझनें के लिए मजबूर करनेवाली चीज है । बड़े-से-बड़े सुधारक और स्त्री-स्वातंत्र्य के पक्षपाती भी इसकी मुख्य नायिका कमल के विचार सुनकर आपे से बाहर हो जायेंगे । पृष्ठ संख्या ३१२ । मूल्य सवा रुपया ।

शरत्साहित्य का तेरहवाँ-चौदहवाँ भाग 'पथ के दावेदार' जब्त हो गया है । इसे छोड़कर और सब भाग मिलते हैं । मूल्य प्रत्येक का दस आना ।

पाटन का प्रभुत्व

के० एम० मुंशी के उपन्यासों में से यह पहला उपन्यास दो भागों में छपकर निकल गया है । मूल्य सवा रुपया । दूसरा उपन्यास 'गुजरात का नाथ' छपाने का प्रबन्ध हो रहा है ।

राधा—सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पं० उदयशंकर भट्ट का यह भाव-नाट्य हिन्दी में बिल्कुल नये ढंग की रचना है । मू० दस आनें ।

कुलीनता—सेठ गोविन्ददासजी का नया ऐतिहासिक नाटक । मू० १)

दो चिड़ियाँ—श्री जैनेन्द्रकुमारजी की कहानियों का संग्रह । मू० १)

सुनीता—जैनेन्द्रजी का प्रसिद्ध उपन्यास । मूल्य सिर्फ दस आने

परख-स्पर्द्धा—जैनेन्द्रजी के दो छोटे उपन्यास । मूल्य सिर्फ दस आनें

दो फूल—श्रीमती सत्यवती मलिक की सुन्दर कहानियाँ । मू० १)

शिवाजी—सर जदुनाथ सरकार । मू० १।)

हिन्दी-साहित्य की भूमिका—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी । मूल्य २)

कबीर

लेखक—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य

सन्त कबीर के विषय में अपूर्व ग्रंथ । फरवरी में तैयार होगा । मूल्य लगभग ढाई रुपया

नोट—कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगाइए ।

संचालक—

हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई नं० ४

पहले सम्पत्ति प्राप्त कीजिए, फिर पैसा बचाइए। बीमा कराने से
आपको एक निश्चित रक़म ज्ञात रहती है। फिर आप
क़िश्त से रुपया चुका सकते हैं।
जीवन-बीमे में मूल्य घटता नहीं,
समय पाकर बढ़ता
ही है।

* * *

परामर्श कीजिए :—

रूबी जनरल इंश्योरेंस
कं० लि०

* * *

चैयरमैन
सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

हेड आफिस—
नं० ८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

शाखाएँ—
बंबई, नई दिल्ली, मद्रास, लाहौर, कानपुर,
पटना, अहमदाबाद, रंगून, कोलम्बो इत्यादि।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कविताएँ और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कविताएँ तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गयी है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखी हुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ। मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

'सम्मेलन-पत्रिका'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता— साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

बिड़ला जूट मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी लि०
के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स एम. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, नई दिल्ली.

नारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
वीवीहतिया, बनारस सिटी.

आगरा, अलीगढ़, मथुरा,
मेसर्स सुखलाल जमसावाल
१ ताजरोड आगरा,

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, देहरादून.

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, बरेली.

नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत
मेसर्स हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, नैनीताल.

सेलिंग एजेन्ट्स :

सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

मैनेजिंग एजेन्ट्स,

बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.

८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

ग्राम:—“जूटवीर”

टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

'कहानी'-नववर्षांक

के लेख और लेखक

कहानियाँ

मृत्यु की आड़ में—उषादेवी मित्रा
हुस्न और हैवान—कृष्णचन्द्र
कर्मनिरता—एण्टन चेखव

उपन्यास

निरैया—रवीन्द्रनाथ देव
मैचा—राजनाथ पाण्डेय

पद्यबद्ध कहानियाँ

जंगल की बात—नरेन्द्र शर्मा
खिलौना—सियारामशरण गुप्त

डायरी

पूँजीपति की डायरी—शिवदानसिंह चौहान

मेरी क़लम का राज

गुलाबराय, पहाड़ी, उषादेवी मित्रा, अश्क, सत्यवती मल्लिक, शौकत थानवी, कौशिक, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, शिवपूजन सहाय, रामविलास शर्मा—

स्केच

नूरी—सत्यवती मल्लिक
फेरीवाला—प्रकाशचन्द्र गुप्त
म्यूज़िक कान्फ्रेंस—मुहम्मद तक़ी

युद्ध की कहानियाँ

स्पेन के गृह-युद्ध के दो पृष्ठ—पहाड़ी
चलो भाग चलें—वांडा डाइनौस्का

संस्मरण

प्रेमचन्द—शिवरानी देवी

कहानी-कला पर लेख

बीवी की कहानियाँ—नरोत्तमप्रसाद नागर
आज की कहानी—अमृतराय
कहानी का प्लाट—श्रीराम शर्मा
विज्ञान और कहानी साहित्य—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

हास्य

हमसफ़र—शौकत थानवी

इसके अतिरिक्त पुस्तकालय, अनेकों कलापूर्ण चित्र आदि से सुसज्जित विशेषांक प्रकाशित हो गया है। अब थोड़ी ही प्रतियाँ बची हैं।

एक प्रति का मूल्य अलग से आठ आना। वार्षिक ३)

कहानी नववर्षांक की प्रति सरस्वती-प्रेस बुकडिपो अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, इलाहाबाद से भी मिलेंगी। आप अपना चंदा इन शाखाओं में जमाकर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं।

व्यवस्थापक, 'कहानी', बनारस कैण्ट

निराश रोगियों को आशा का सन्देश

आरोग्य-मन्दिर

जहाँ सभी नये-पुराने रोगों की चिकित्सा धूप, जल, मिट्टी, वायु से, आसन-प्राणायाम, सूर्य-किरण चिकित्सा, बिजली, मालिश से, उपवास, युक्त आहार, दूध से और विचारशक्ति से सफलतापूर्वक होती है। सुन्दर प्रबन्ध, समुचित व्यवस्था, व्यक्तिगत देखभाल आरोग्य-मन्दिर की विशेषता है। खर्च कम से कम। पत्र-व्यवहारद्वारा चिकित्सा मुफ्त। विशेष जानकारी के लिए पत्रोत्तर के लिए डाक-टिकट के साथ आज ही लिखिए।

—पत्र व्यवहार का पता—

आरोग्य-मन्दिर सूड़ी कुआँ,
दशारथपुर, गोरखपुर

विठ्ठलदास मोदी

साधना-मन्दिर-प्रकाशन

'जीवन-साहित्य' या 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ग्राहकों को

पूरा सैट लेने पर पौने मूल्य में

हिन्दी-साहित्य के अद्वितीय जीवनी-लेखक और शब्द-चित्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, इनमें से अधिकांश के लेखक हैं!

१. जापान के गांधी कागावा (ब. दा. च.)
४. अराजकवादी लुई माईकेल (ब. दा. च.)
५. प्रिंस क्रोपाटकिन (ब. दा. च.)
६. अराजकवादी मैलटेस्टा (ब. दा. च.)
७. मंगलमय महावीर (साधु दास्वानी)
८. बालशिक्षण और माँ-बाप (भानुकुमार)
९. विप्लव-गान या क्रान्ति-गीत (संकलित)
१०. महापंडित राहुल सांकृत्यायन (ब.दा.च.)
११. अमरगान—(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)
१२. श्रीमती हैरियट एलीजबेथ स्टो (ब.दा.च.)
१३. भगवान बुद्ध (भदंत आनंद कौसल्यायन)
१५. स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (राजबहादुरसिंह)
१६. पुस्तकालय और पुस्तक-महिमा (लक्ष्मण त्रिपाठी)
१७. पतिव्रता जयिनी (ब. दा. च.)

१६वें का दाम ।॥ शेष का ≈) है।

इन्हें मँगाकर पढ़िए, और प्रचारित कीजिए।

'मंडल' से तथा उसकी शाखाओं से मँगाइए।

केवल १५ सितम्बर से ३१ अक्टूबर तक

❀ नये ग्राहकों को नयी सुविधा ❀

परीक्षांक—सम्मेलन की 'विशारद' और 'रत्न' परीक्षा, यू० पी० की 'विशेष योग्यता' पंजाब की 'प्रभाकर,' 'भूषण' आदि और दक्षिण की 'राष्ट्रभाषा विशारद,' सूरत की 'कोविद' और बिहार की 'साहित्यालंकार' परीक्षाओं को दृष्टि में रखकर निकाला गया है।

— एवं —

हिन्दी लेकर जो विद्यार्थी इंटर, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाओं में प्रविष्ट हो रहे हैं, उन्हें यह अंक विशेष रूप से सहायता देगा।

परीक्षांक

परीक्षांक के
कुछ निबंध

चन्द और पृथ्वीराज रासो
विद्यापति का हिं० सा० में स्थान
कबीर और सृष्टि-विज्ञान
जायसी का प्रेम-काव्य
सूर का वियोग-शृंगार
केशव की काव्य-कला
सेनापति का कवित्त-रत्नाकर
कामायनी
साकेत पर एक दृष्टि
सेवा-सदन
गोदान
रस और दोष

मुफ्त मिलेगा

'साहित्य-सन्देश' हिन्दी का एकमात्र समालोचनात्मक पत्र है, जिसमें हिन्दी-साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों, विभिन्न वादों और समस्याओं पर प्रति मास नियमित लेख छपते हैं। हिन्दी-साहित्य में उसके लेखकों और उनके ग्रंथों पर आलोचनात्मक प्रकाश डालनेवाला यही सर्वप्रथम मासिक है।

वार्षिक मूल्य ३) साधारण अंक का नमूना मुफ्त मँगाइए **विद्यार्थियों से २) साल**

पत्र-व्यवहार का पता—**साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।**

काशित हो गया ! प्रकाशित हो गया !!

'जीवन-सखा'

का

'व्यायाम-अंक'

इस अंक के द्वारा आप केवल दण्ड-बैठक आदि व्यायाम की क्रियाओं से ही परिचित ही होंगे बल्कि संसार में प्रचलित व्यायाम प्रणालियाँ तथा उनका क्रमिक विकास, भारत प्राचीन तथा आधुनिक व्यायाम-शैली, रोगों के निवारण में व्यायाम का उपयोग आदि नेक महत्वपूर्ण बातों की भी आपको जानकारी होगी। इस विशेषांक के कुछ लेखों की ची देखिए।

आधुनिक व्यायाम-पद्धति पर एक दृष्टि।
व्यायाम-प्रसार पर कुछ व्यावहारिक सुझाव।
सम्यक् व्यायाम (श्री भिक्षु आनन्द कौशल्यायन)
शालाओं में शारीरिक शिक्षा।
नृत्यकला और व्यायाम।
स्वस्थ रहने के लिए विश्राम।
व्यायामियों का भोजन।
व्यायाम की प्रारम्भिक शिक्षा।
छुट्टियाँ और काम करने का समय। (श्री कालिदास कपूर, एम० ए०)
१०. व्यायाम के क्षेत्र में आसनों का महत्व।
११. आसन (श्री बालेश्वर प्रसाद)
१२. योग-क्रियाएँ (श्री बालेश्वर प्रसाद)
१३. साँस की कसरतें (श्री अब्दुल सत्तार खैरी एम० ए०)
१४. बाल कवायद (प्रो० मानिकराव, बड़ोदा)
१५. योगासन के सम्बन्ध में आवश्यक बातें (श्री स्वामी शिवानन्द)
१६. शरीर को सुडौल बनानेका अचूक उपाय।
१७. सूर्य नमस्कार।
१८. कब्ज और उसका इलाज।
१९. मेदरोग या मुटापा।

यूरोपीय व्यायाम पद्धति, भारतीय वृषभ स्कन्ध तथा 'हरनियाँ' का इलाज इत्यादि। अनेक चित्रों से सुसज्जित इस वृहद् विशेषांक का मूल्य १) है किन्तु 'जीवन-सखा' भी नये पुराने ग्राहकों को मुफ्त दिया जा रहा है। इसलिए यदि आप अबतक 'जीवन-सखा' के ग्राहक न बनें हों तो शीघ्र ३) भेजकर बन जाइए। युद्ध के कारण जो अनिवार्य कठिनाइयां उत्पन्न हो गयी हैं उनकी वजह से यह विशेषांक सीमित संख्या में प्रकाशित हुआ है। अतः शीघ्रता कीजिए अन्यथा निराश होना पड़ेगा।

मैनेजर—'जीवन-सखा' ८७, हिम्मतगंज, इलाहाबाद।

सिलाई कटाई शिक्षा

इस पुस्तक में हर तरह के कपड़े काटने और सीने की विधि चित्रों द्वारा इतनी सुगमता से समझायी गयी है कि आप थोड़े परिश्रम से अच्छे दर्जी हो सकते हैं। जिस घर में सिलाई की मैशीन है, वहाँ तो इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ही रहनी चाहिए। पुस्तक में लगभग ६० लाइन तथा ८ हाफटोन ब्लाक दिये गये हैं। बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, सुनहरी जिल्द। धड़ाधड़ बिक रही है।

मूल्य केवल १॥)

मिलने का पताः—

बम्बई बुक डिपो तथा **सस्ता साहित्य मण्डल**

१६५/१ हरीसन रोड, कलकत्ता। कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

फ्री इन्डिया जनरल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

प्रधान कार्यालय : कानपुर

जिन्दगी, आग, मोटर, मज़दूरों के कम्पेन्सेशन, ईमानदारी और साधारण तया तमाम दुर्घटनाओं के बीमे व उनके प्रतिनिधित्व के लिए लिखिए।

[चेयरमैन—सेठ पद्मसिंह सिंहानिया]

मूलधन	रु०
अधिकृत (आथराइज्ड कैपिटल)	१,००,००,०००
प्रकाशित (इश्यूड कैपिटल)	२०,००,०००
विक्रीत (सब्सक्राइब्ड कैपिटल)	१६,२७,६२५
ग्रहीत (पेड अप कैपिटल)	४,८४,६६५
बीमादारों के हितार्थ सुरक्षित रखी गई रक़म	२२,००,००० से अधिक

विशेष जानकारी के लिए लिखें:—

मैनेजिंग डाइरेक्टर

एन. के. भरतिया, B. A., F. C. I.

आप बेकार क्यों बैठे हैं ?

हमारे काम में हाथ बटाइए न !

उसका अर्थ स्वतः सेवाकार्य भी हो जायेगा

हमारी विशुद्ध ओषधियाँ, रस, भस्म, आसव, अरिष्ट सुगन्धित तैल और पापड़ इत्यादि बेचकर आप रुपये कमा सकते हैं और हमारे द्वारा अनाथों और पीड़ितों के सेवा-कार्य में भी इस प्रकार आप सहायक हो सकते हैं।

तुरन्त पत्र-व्यवहार कीजिए

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ३६१ अपर चितपुर रोड कलकत्ता

आज़ादी के रोड़े

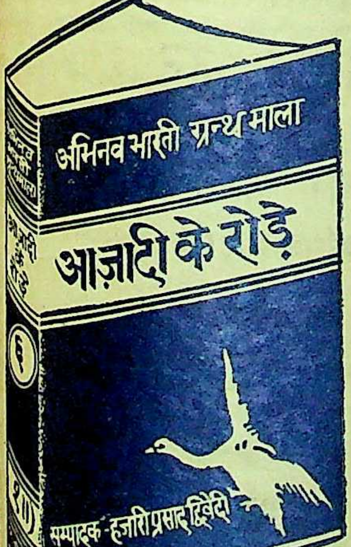

(१) यदि आप यह जानना चाहते हों कि हमें स्वराज्य क्यों नहीं मिला—

(२) यदि आप यह जानना चाहते हों कि हमें स्वराज्य कैसे मिलेगा ? तो 'आज़ादी के रोड़े' अवश्य पढ़ें। प्रत्येक राजनीति के विद्यार्थी को इस पुस्तक की एक-एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥)

व्यवस्थापक

अभिनव भारती-पुस्तकालय

१७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता

Regd. No. L. 4071

सस्ता साहित्य मण्डल

का १९४१ का प्रकाशन

चरखा-संघ के खादी-भण्डारों तथा प्रधान-पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य

सर्वोदय साहित्य माला

१०३. लड़खड़ाती दुनिया : (जवाहरलाल नेहरू) आज की दुनिया की तस्वीर। देश-विदेश पर लिखे गये महत्त्वपूर्ण लेखों का सुन्दर संग्रह। भूमिका लेखक : आचार्य नरेन्द्रदेव। दाम १)

१०४. सेवाधर्म-सेवामार्ग : (श्री कृष्णदत्त पालीवाल) इसमें सेवा के क्षेत्र, सेवा के प्रकार और सेवा के तरीके पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला गया है। दाम १)

१०५. दुनिया की शासन-प्रणालियाँ : दुनिया की प्रचलित शासन-प्रणालियाँ, उनके संगठन तथा कार्य के साथ वर्तमान युद्ध की पृष्ठभूमि, उसकी वर्तमान गतिविधि तथा उसके होनेवाले असर का रोचक वर्णन है। दाम १॥)

१०६. डायरी के पन्ने : (श्री घनश्यामदास बिड़ला) ये पन्ने उस समय के हैं जब दूसरी गोलमेज़ परिषद् में लेखक गांधीजी के साथ गये थे। रोचक और ज्ञानवर्धक होने के साथ यह भारतीय राजनीति के विद्यार्थी के लिए बहुत उपयोगी है। अनेक चित्रों सहित। दाम ॥|), १)

१०७. तीस दिन× : पूज्य मालवीयजी के साथ तीस दिन रहकर पंडित रामनरेशजी ने नयी शैली में उनकी जीवन-कथा लिखी है। १॥)

१०८. युद्ध और अहिंसा : महात्मा गांधी के युद्ध और अहिंसा पर लेख। दाम ॥|)

१०९. महावीर-वाणी× : (पं० बेचरदास दोशी) भगवान् महावीर के वचनों का सानुवाद संकलित संग्रह। दाम १)

११०. भारतीय संस्कृति नागरिक जीवन× (श्री रामनारायण यादवेन्दु) भारत के सांस्कृतिक और नागरिक जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाली। दाम १)

नवजीवन माला

१६. सोने की माया : (श्री किशोरलाल मशरूवाला) विनिमय और मुद्रा पर रोचक रूपक। दाम ~)

१७. सत्यवीर सुकरात : (महात्मा गांधी) ग्रीस के महापुरुष सुकरात के मुक़दमे और उनके बयान का दिलचस्प और शिक्षाप्रद वर्णन। दाम ~)

सामयिक साहित्य माला

७. देशी राजाओं का दरजा : (प्यारेलाल) देशी राजाओं के अधिकार और दरजे के बारे में अधिकारपूर्ण पुस्तक। दाम |)

८. यूरोपीय युद्ध और भारत (२) : (गांधी : जवाहरलाल) यूरोपीय युद्ध और भारतीय संकट को स्पष्ट समझानेवाली पुस्तक। इसमें पहले खण्ड से आगे का हाल है। दाम |)

विविध प्रकाशन

५. पशुओं का इलाज : (परमेश्वरी प्रसाद गुप्त) पशुओं के इलाज पर अनुभूत और वैज्ञानिक पुस्तक। दाम ॥)

६. उपनिषदों की कथाएँ : उपनिषदों की १० रोचक उपदेशप्रद कथाएँ |)

७. आदर्श बालक : समस्त दुनिया के और प्रधान रूप से भारत के आदर्श बालकों के जीवन की रोचक कथाएँ। दाम ॥)

×ये पुस्तकें छप चुकी हैं। जनवरी, १९४२ में प्रकाशित होंगी।

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ीवन साहित्य

क ७

फ़रवरी : १९४२

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

हमारा कर्त्तव्य

अब समय आगया है कि हर कांग्रेसी को कुछ-न-कुछ निश्चय करना पड़ेगा। उसके सामने एकमात्र मार्ग शान्ति का सेवक या सैनिक बन जाना है। तलवार रखनेवाले सिपाहियों के विपरीत शांति के सिपाही को युद्ध-काल और शांति-काल दोनों में अपना हरेक पल शान्ति बनाये रखने के काम में लगाना होता है।

कांग्रेस की लोक-प्रियता का कारण उसका साम्राज्यवाद से लड़ने में सबसे आगे रहना है। पर आज यह तरीका किस काम का है? इस समय तो कोई भी आदमी सार्वजनिक विद्रोह की बात नहीं सोचता। सबसे अच्छा, शीघ्रगामी और प्रभावशाली उपाय नींव से ही इमारत तैयार करना है।

वह महत्त्वपूर्ण क्षण अब आगया है। 'गाँवों की ओर लौटो'! का नारा प्रत्येक दृष्टि से आवश्यक हो गया है। यही समय है जबकि निर्माण और वितरण का केंद्रीयकरण बन्द होना चाहिए। प्रत्येक गाँव को अपनी-अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर लेनेवाला प्रजातन्त्र बन जाना होगा। इसके लिए बहादुराना प्रस्तावों की आवश्यकता नहीं है। असल में आवश्यकता है बुद्धि, वीरता और सहयोग से कार्य करने की।

प्रत्येक कांग्रेसी को आज यह सोच लेना चाहिए कि उसे शांति का सैनिक या सेवक बनकर स्वराज का भवन बनाने के काम में भाग लेना है कि नहीं?

मो० क० गांधी

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
नाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. प्रलयागम (कविता) [श्री सुमनेश] २२९
२. वर्धा-निश्चय का मर्म २३०
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
३. विद्यार्थी-संगठन [महात्मा गांधी] २३२
४. महाराष्ट्र के कवि-सम्राट् २३४
[श्री श्रीपाद जोशी]
५. पाक मुसलमान [श्री सिद्धराज ढड्ढा] २३६
६. रवीन्द्रनाथ की शिक्षा-संस्थाएँ २३८
[श्री कुँवरकिशोर सेठ]
७. सत्याग्रह (सत्य घटना) २४०
[श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक]
८. अबोहर-सम्मेलन २४२
[श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल]
९. अबोहर और उसके बाद ? २४४
[श्री जैनेन्द्रकुमार]
१०. स्वास्थ्य की बातें २४९
[श्री विठ्ठलदास मोदी]
११. प्रस्तुत प्रश्न २५०
साहित्य की कुछ समस्याएँ, स्पष्टीकरण, सम्मेलन की परिषदें
१२. कसौटी पर २५३
तीस दिन : मालवीयजी के साथ (सु०), हमारा प्रधान उपनिवेश, भोजन और स्वास्थ्य, एलबम (कृष्णचन्द्र विद्यालंकार), सचित्र हठयोग, आध्यात्मिक शिक्षावली, बाल नाटकमाला (ब्रजमोहन गुप्त एम. ए०) मठा, उसके गुण तथा उपयोग, कादम्बरी-कथा-सार (म० श०) किरण-वेला (वि०)
१३. समालोचनार्थ प्राप्त २५८
१४. क्या और कैसे २५९
पहले ही से, निर्मूल सुख-स्वप्न, आज के विद्यारण्य, भँवर से निकले, मूर्तिमती तपस्या, दुहरा फायदा, बधाइयाँ ।

नये वर्ष के उपलक्ष्य में
'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को केवल २) की पुस्तकें मँगाने पर
आधे मूल्य में
डाक खर्च भी 'मण्डल' देगा
—ये पुस्तकें केवल नयी दिल्ली से ही मँगायी जा सकती हैं—

१. मीरां की प्रेमवाणी	१।।।)	२. चीन की स्वाधीनता	१)
३. फ़ेसिज़्म और जर्मनी	।=)	४. Bleeding wound	१।)
५. अंग्रेज़ी शिष्टाचार	२)	६. रसिक रहस्य	।)
७. तरंगिणी (कविता संग्रह)	।)	८. मोटर प्राइमर	१।।।=)
९. उच्छ्वास	।।।)	१०. रामदास	।।=)

मँगाने का पता
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

सस्ता साहित्य मण्डल

[इसमें 'हिन्दी-मन्दिर' इलाहाबाद भी सम्मिलित है]

प्रधान कार्यालय

कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ

१

दरीबा कलाँ, दिल्ली

२

अमीनुदौला पार्क, लखनऊ

३

खजूरी बाज़ार, इन्दौर

४

बजाजवाड़ी, वर्धा

५

२।१ हरिसनरोड, कलकत्ता

६

ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

सूचीपत्र

—संस्था की प्रवृत्तियाँ—

१. गांधी-साहित्य
२. जवाहर-साहित्य
३. टॉल्स्टॉय-साहित्य
४. खादी-साहित्य
५. ग्राम-साहित्य
६. अर्थशास्त्र-साहित्य
७. राजनैतिक साहित्य
८. सामाजिक साहित्य
९. महिलोपयोगी साहित्य
१०. बालोपयोगी साहित्य
११. सामयिक साहित्य
१२. 'जीवन-साहित्य' (मासिकपत्र)
१३. 'हिन्दी-मंदिर'-साहित्य

सस्ता साहित्य मण्डल के प्रकाशन

स्थायी ग्राहक बनने पर ≡) रुपया कमीशन मिलेगा।

[एकसाथ पूरा सेट लेने पर सब पुस्तकें पौने मूल्य में]

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन-साहित्य ॥=) ३. तामिल वेद ।।।) ४. व्यसन और व्यभिचार ।।।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।) १६. अनीति की राह पर ॥=) १८. कन्या-शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ॥) २५. स्त्री और पुरुष ॥) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें ? १।) ३९. तरंगित हृदय ॥) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) : १।) ४५. जीवन-विकास १।) ४७. फाँसी ! ।=) ५१. भाई के पत्र १॥) ५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।) ५९. रोटी का सवाल १) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६४. संघर्ष या सहयोग ? १॥) ६५. गांधी-विचार-दोहन ।।।) ६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता १॥) ६९. आगे बढ़ो ! ॥) ७०. बुद्ध-वाणी ॥=) ७१. काँग्रेस का इतिहास २॥) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू) ३) ७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों ? ।।।) ७६. नया शासन-विधान ।।।) ७७. गाँवों की कहानी ॥) ७८. महाभारत के पात्र १) ८०. संतवाणी ॥) ८१. विनाश या इलाज ।।।) ८२. अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ॥) ८३. लोक-जीवन ॥) ८४. गीता-मंथन १॥) ८५. राजनीति-प्रवेशिका ॥) ८६. अधिकार और कर्त्तव्य ॥) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ॥) ९०. प्रेम में भगवान् ।।।) ९२. ब्रह्मचर्य ॥) ९३. हमारे गाँव और किसान ॥) ९४. अभिनन्दन-ग्रंथ १।) २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्याएँ १) ९६. जीवन-सन्देश ॥) ९८. समाजवाद : पूँजीवाद ।।।) ९९. मेरी मुक्ति की कहानी ॥) १००. खादी-मीमांसा १॥) १०१. बापू ॥=) १।) २) १०२. मधुकर (विनोबा) १) १०३. लड़खड़ाती दुनिया १) १०४. सेवाधर्मः सेवामार्ग १) १०६. डायरी के पन्ने ।।।) १।) १०७. तीस दिन १॥) २) १०८. युद्ध : अहिंसा ।।।) १०९. महावीर वाणी १) ११०. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन १।) १११. बिखरे विचार ।।।) ११२. अहिंसा-विवेचन ॥)

नवजीवन माला

१. गीताबोध =) २. मंगलप्रभात ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय ५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १२ गाँवों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गी =) १४. खादी का महत्त्व -)॥ १५. जब अंग्रेज नहीं आये थे ≡) १६. सोने की माया -) १७ सत्यवीर सुकरात (गांधीजी) -)

सामयिक साहित्य माला

३. हम कहाँ हैं ? =) ४. युद्ध-संकट और भार ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे ? ≡) ६. राष्ट्री पंचायत ।) ७. देशी राजाओं का दरजा ।) ८. युरोपीय युद्ध और भारत ।) ९. रचनात्मक कार्य-क्र (गांधीजी) =) अहिंसा और अनुशासन (ग्रेग) रचनात्मक कार्यक्रम पर कुछ सुझाव (राजेंद्रबाबू)

बाल साहित्य माला

१. कथा-कहानी =) २. शिवाजी-चरित्र ३. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ४. सीख की कहानियाँ ।)

विविध पुस्तकें

१. जवाहरलाल नेहरू =) २. मोतीलाल नेहरू ।) ३. सप्तसरिता (काका कालेलकर) ४. चारा दाना और उसको खिलाने के उपाय ५. पशुओं का इलाज ।।।) ६. उपनिषदों की कथा ।) ७. आदर्श बालक ॥) रूमी की कहानियाँ

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ३. फ्रांस की राज्य-क्रांति १॥) ४. गांधीवाद रूपरेखा १) ५. पिता के पत्र पुत्री के नाम ॥) प्रलय-वीणा १) ७. बहन ॥) ८. स्वास्थ्य के लि शाक-तरकारियाँ १॥) ९. चौबोली ॥)

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग के प्रकाशन

'मण्डल' तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में

एक साथ पूरा सेट लेनें पर एक तिहाई कमीशन

काव्य तथा साहित्य

विता-कौमुदी (भाग १-२ हिन्दी) ७॥)
ाग उर्दू) ३) (सातवां भाग-बँगला)
॥) ३. मिलन ।।) ४. स्वप्न ।।)
।) ६. दिमाग़ी-ऐयाशी (प्रहसन) ।।)
और उनकी कविता (२ भाग)
ोध्याकांड (सटीक) ।।) ९ हिन्दु-
) १०. पाकेट डिक्शनरी (अंग्रेजी
११. जयंत (नाटक) ।।।) १२.
(नाटक) ।।।) १३. वफ़ातीचाचा
) १४. तरकस (कहानी-संग्रह) ।।)
रचना (पिंगल) ।।) १६. सुकवि-
१७. हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास ।=)
ान का संक्षिप्त इतिहास ।।), १९.
ी कविता का संक्षिप्त इतिहास ।।),
चरित ।) २१. पार्वती-मंगल ।)
ावनी ।) २३. कौन जागता है ?
।) २४. हमारा ग्राम साहित्य २)
का विकास २) २६. पुष्पवाण ।।)
और साहित्य (निबन्ध : दो भाग)
मुस्लिम-सन्तों के चरित २) २९.
) ३०. यूरोप की कहानियाँ २।।)
(कहानी-संग्रह) ।।।) ३२. तूणीर
।) ३३. घर का वैद्य (वैद्यक) ६)
(स्त्रियोपयोगी) ।।) ३५. दंपति
. हिन्दुओं के व्रत और त्योहार १।।)
शिष्टाचार २) ३८. योग के आसन
के चित्र (सचित्र) १) ३९. रत्ना
) ।।) ४०. दृग-जल (कविता-
. नमूने का गाँव और मिट्टी के
१) ४२. किसानों के काम की बात
ानों की कहावतें (संग्रह) ।) ४४.
) ४५. चिन्तामणि (भजन-संग्रह)
ों के चित्र (प्रहसन) ।।।) ४७.
) ४८. बीस कहानियाँ (कहानी-
. हिमानी ।।) ५०. तरंगिणी
(कविता-संग्रह) ।।) ५१. नीति के श्लोक ।।) ५२. मारवाड़ के मनोहर गीत ।) ५३. सोहर ।)५४. सारिका(कविता) ।।।) ५५. Hindi Folk Songs : A. G. Shirreff १) ५६. Songs of Mirabai १)

बाल-साहित्य माला

१. बाल-कथा कहानी १७ भागों में। प्रत्येक भाग ।=) २. बताओ तो जानें (गोरखधंधा) ।) ३. बानर संगीत ४. हंसू की हिम्मत ।=) ५. नेता बुझौवल ।) ६. ख़ोजो खोज निकालो (पद्य) ।) ७. परियों की कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।=) ८. राक्षसों की कहानियाँ ।=) ९. जादू की कहानियाँ ।=) १०. इतिहासों की कहानियाँ ।) ११. गुपचुप कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।) १२. मौत के सुरंग की कहानी ।=) १३. भूतों का किला ।=) १४. कहानी के कल-पुर्जे ।) १५. पेखन ।-) १६. मोतीचूर के लड्डू ।) १७. बलभद्दर ≡) १८. कबड्डी ।) १९. मोहन माला (कविता संग्रह) ।।।) २०. गांधी पत्ता या जवाहर ताश ।।) २१. हिन्दी पत्र शिक्षक =) २२. नई कहानियाँ ।=) २३. हरिश्चन्द्र ।) २४. महात्मा बुद्ध ।) २५. अशोक ।) २६. चन्द्रगुप्त ।) २७. आल्हा ।)

हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -।।) हिन्दी ज्ञानोदय—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।-) चौथा भाग ।।) पाँचवां भाग ।।-) छठा भाग ।।=) कन्याओं के लिए नया हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -)।। कन्या शिक्षावली—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।) चौथा भाग ।-) पाँचवां भाग ।≡) छठा भाग ।।)

सस्ती कहानियाँ १. आदमी की क़ीमत २. सियार राजा और मेढ़क राजकुमार ३. पकड़ पूँछ कटे को ४. गड़बड़ गुम ५. तीन मेमने ६. तीन सुनहले बाल ७. रूपा ८. फूलरानी ९. बेलकुमारी १०. भय बिन होय न प्रीति ११. बुढ़िया बुढ़िया तुझे खाऊँ १२. चटक मटक की गाड़ी १३. चुड़ैल रानी १४. डंकू। दाम प्रत्येक का =)

संस्कृति अंक ○ दूसरा भाग

देश और विदेश के महान् लेखकों ने 'विश्ववाणी' के संस्कृति अंक के लिए इतने अधिक और महत्वपूर्ण लेख भेजे हैं कि हमें संस्कृति अंक के और भाग प्रकाशित करने पड़ रहे हैं। जनवरी अंक के २०० पृष्ठों में तो भारतीय संस्कृति के ही पूरे लेख नहीं आ सके। इसलिए हमारा नम्र आयोजन है कि—

आगामी फ़रवरी अङ्क संस्कृति अङ्क का दूसरा भाग होगा

फ़रवरी अङ्क के लेखों की सूची

१ संस्कृति तो है ही नहीं—जार्ज बर्नर्ड शा
२ संस्कृति का मूल आधार—अलबर्ट आइंस्टाइन
३ हमारे जीवन की संस्कृति—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
४ विज्ञान और भारतीय संस्कृति—सर सी. वी. रमन
५ भारतीय संस्कृति की नवचेतना—सर पी. एस. शिव स्वामी अय्यर
६ तलवार की संस्कृति—मेरिक डाड
७ अन्तर्राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय संस्कृतियाँ—अलबर्ट ग्यूरार
८ युद्ध और संस्कृति—श्री गोपाल हालदार
९ हम पीड़ित और शोषित निग्रो—और है हमारी भी संस्कृति—कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन
१० चीनी संस्कृति की नवचेतना—मेडम चियांग काइ शेक
११ सोवियत् रूस में शिक्षा और संस्कृति—श्री बुद्धदेव वसु
१२ अरबों का वर्तमान और भविष्य—अलबर्ट वाइटन
१३ सर्वधर्मसमभाव—स्वामी दरबारीलाल सत्यभक्त
१४ हिंदू-न्याय विधान—सर सीताराम पाटकर
१५ रणजीतसिंह—सर शफ़ात अहमद खां
१६ हिन्दू-मुसलमानों के लिए विचारणीय प्रश्न—सर मिरजा इसमाइल
१७ हिन्दू-मुस्लिम भ्रातृभाव—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी
१८ नव व्यवस्था—श्री शंकर गणपतराव कोकने

इनके अतिरिक्त और अनेक लेख, सुन्दर कहानियाँ और रोचक एकांकी नाटक आदि होंगे

'विश्ववाणी' साहित्य की निर्मल गंगा है

देश के सभी विद्वानों की राय है कि 'विश्ववाणी' का एक-एक अंक हिन्दी-साहित्य की स्थायी वस्तु है। हिन्दी पाठकों का धार्मिक और पवित्र कर्तव्य है कि साहित्य के इस नव-निर्माण में वे 'विश्ववाणी' का हाथ बटाएँ।

आज ही पत्र लिखकर स्थायी ग्राहकों में अपना नाम लिखाइये

वार्षिक मूल्य ६) एक अङ्क का ॥=)

मैनेजर, 'विश्ववाणी', इलाहाबाद

आप स्वयं अपने को रोगमुक्त करेंगे

आरोग्य-मन्दिर

मैं तो केवल आपको प्राकृतिक चिकित्सा के साधन जल, धूप, मिट्टी, वायु, आसन-याम, मालिश, उपवास युक्त आहार की विधि ही करायी और बतायी जायेगी। सूर्य-किरण ला, दूध-कल्प, बिजली, जड़ी-बूटियाँ और विचारशक्ति के प्रयोग से भी आप परिचित । अपना स्वास्थ्य लौटाने के साथ-साथ अपने कुटुम्बवालों और इष्टमित्रों को प्राकृतिक ों द्वारा रोगमुक्त होनें और स्वस्थ रहने की सलाह देनेलायक हो जायेंगे।

इतना होने पर भी खर्च कम से कम

पत्र-व्यवहार द्वारा चिकित्सा मुफ्त। विशेष जानकारी के लिए उत्तर के लिए डाक-टिकट के साथ आज ही लिखिए।

— पत्र-व्यवहार का पता —

आरोग्य मन्दिर, सूँड़ीकुआँ
बशारतपुर, गोरखपुर

विठ्ठलदास मोदी

साधना-मन्दिर-प्रकाशन

'जीवन-साहित्य' या 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ग्राहकों को

पूरा सैट लेने पर पौने मूल्य में

हिन्दी-साहित्य के अद्वितीय जीवनी-लेखक और शब्द-चित्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, इनमें से अधिकांश के लेखक हैं!

जापान के गांधी कागावा (ब. दा. च.)
अराजकवादी लुई माईकेल (ब. दा. च.)
प्रिंस क्रोपाटकिन (ब. दा. च.)
अराजकवादी मैलटेस्टा (ब. दा. च.)
मंगलमय महावीर (साधु वास्वानी)
बालशिक्षण और माँ-बाप (भानुकुमार)
विप्लव-गान या क्रान्ति-गीत (संकलित)
महापंडित राहुल सांकृत्यायन (ब.दा.च.)
११. अमरगान—(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)
१२. श्रीमती हैरियट एलीजबेथ स्टो (ब.दा.च.)
१३. भगवान बुद्ध (भदंत आनंद कौसल्यायन)
१५. स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (राजबहादुरसिंह)
१६. पुस्तकालय और पुस्तक-महिमा (लक्ष्मण त्रिपाठी)
१७. पतिव्रता जयिनी (ब. दा. च.)

१६वें का दाम)॥ शेष का -) है।

इन्हें मँगाकर पढ़िए, और प्रचारित कीजिए।
'मंडल' से तथा उसकी शाखाओं से मँगाइए।

हिन्दी-कथा-साहित्य में यदि

- कलात्मक,
- सरस,
- सुरुचिपूर्ण

कहानियाँ पढ़ना चाहते हैं तो केवल

कहानी

ही पढ़िये। अन्य बाजारू कहानी-मासिक-पत्रों की भाँति आपको इसमें विकृत साहित्य न मिलेगा। यह पत्रिका आपके बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी को रुचिकर और स्वस्थ सामग्री देगी। फिर भी इसका मूल्य सबसे सस्ता है।

सर्व-प्रशंसित विशेषांक या साधारण अंक की एक प्रति मँगाकर देखें।

साधारण प्रति चार आना : विशेषांक १९३९ चार आना
ताज़ा विशेषांक आठ आना : ,, १९४० चार आना

वार्षिक तीन रुपये

कहानी की प्रतियाँ सरस्वती प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला पार्क लखनऊ, चौक बनारस तथा कामताप्रसाद कक्कड़ रोड इलाहाबाद से भी मिल सकेंगी।

व्यवस्थापक, 'कहानी', बनारस कैंट।

कमज़ोर, भद्दे कागज़ों के पेकिंग से होनेवाली

अपने व्यवसाय की हानि को बचाइए

हमारा मज़बूत, चीमड़ व सुन्दर

गैंडा मार्का

बैम्बू पल्प का बना हुआ क्राफ्ट पेपर

आपकी कठिनाइयों का हल करदेगा

उच्चकोटि का

कागज़ है

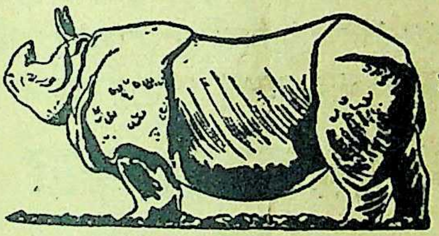

भारतीय बाजार में आज

इसका सानी नहीं

एक बार इस कागज़ का व्यवहार करलेने पर

आप दूसरे पेकिंग कागज़ का नाम न लेंगे

अपना आर्डर तुरन्त भेजिए

रियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड

८, रायल ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

सिलाई कटाई शिक्षा

इस पुस्तक में हर तरह के कपड़े काटने और सीने की विधि चित्रों द्वारा इतनी सुगमता से समझायी गयी है कि आप थोड़े परिश्रम से अच्छे दर्जी हो सकते हैं। जिस घर में सिलाई की मैशीन है, वहाँ तो इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ही रहनी चाहिए। पुस्तक में लगभग ६० लाइन तथा ८ हाफटोन ब्लाक दिये गये हैं। बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, सुनहरी जिल्द। धड़ाधड़ बिक रही है।

मूल्य केवल १।।)

मिलने का पताः—

बम्बई बुक डिपो तथा **सस्ता साहित्य मण्डल**

१६५/१ हरीसन रोड, कलकत्ता। कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और ख़ास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

फरवरी, १९४२
नयी दिल्ली

प्रलयागम

आता है तूफ़ान-बवण्डर रे, उसका पथ रोक रहे क्यों ?
नवयुग के इस अन्धड़ का यह स्वर युग-युग से आता ही है ।
जड़ निश्चेष्ट पड़े प्राणों में यह नवस्पन्दन लाता ही है ।
सदियाँ बीतीं जीर्ण-शीर्ण हो चले नियति के दारुण बन्धन,
इस संसृति की वीणा पर यह गीत प्रलय के गाता ही है ।
तुम अभिनन्दन कर न सके तो युग के ही प्रतिकूल बहे क्यों ?
इस नवयुग के स्वर में प्रलयंकर परिवर्तन बोल रहा है ।
इसकी साँसों में जग के नवसर्जन का रव डोल रहा है ।
सदियों की दासता जल उठे इसमें वे ज्वालाएँ धधकीं,
यह नवयुग युग-युग के अवगुण्ठन के बन्धन खोल रहा है ।
तुम गतिमय मानव हो इसकी गति के बाधक बोल कहे क्यों ?
इस नवयुग के स्वर ने भू पर फिर अमृत की धार बहा दी ।
इस नवयुग ने मृण्मय कंकालों में जीवन-ज्योति जगा दी ।
इस नवयुग में छिन्न हो गये रूढ़िवाद के बन्धन सारे,
इस नवयुग ने आज अचेतन जग में चेतनता पहुँचा दी ।
यह नवयुग युगपूर्व पुरातन साधक के स्वर आज सहे क्यों ?
आज लाल लपटों से सजकर नवयुग का अभिनन्दन कर लें ।
सत्-शिव-सुन्दर संस्कृतियों के अधिनायक का वन्दन कर लें ।
आज प्रलय के प्रेरक युग के परिवर्तक विद्रोहक के स्वर,
महागान की तरह प्राण में नूतन एक सँदेसा भर लें ।
अरे, बावले महाबाढ़ को आज रोककर व्यर्थ ढहे क्यों ?

—'सुमनेश'—

वर्धा-निश्चय का मर्म

महात्माजी की सिफारिश व आग्रह से वर्धावाली महासमिति ने बारडोली की कार्य-समिति के राजनैतिक माँग व युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव को पुष्टि दी । उस प्रस्ताव में यह कहा गया है कि जबतक भारत स्वतन्त्र नहीं हो जाता तबतक युद्ध में सहयोग नहीं दिया जा सकता । बारडोली में एक और भी घटना हुई थी जिससे देश में बड़ी गलतफहमी फैली । वह यह कि कांग्रेस की ओर से सत्याग्रह स्थगित किया गया, महात्माजी को उसके नेतृत्व से छुट्टी दी गयी व अपनी जिम्मेदारी पर सत्याग्रह चालू करने की सत्ता उन्हें सौंपी गयी । इससे कई लोग यह समझ गये थे कि महात्माजी कांग्रेस से हट गये । कार्यसमिति के सरदार पटेल, राजेन्द्रबाबू आदि लगभग आधे नेताओं ने उसके प्रस्ताव से अपना मतभेद भी लोगों में प्रकाशित किया । उन्होंने कहा कि बीस साल से जिस अहिंसा-मार्ग से कांग्रेस को इतनी शक्ति व सफलता मिली है उसे छोड़ना व युद्ध में शरीक होना देश के लिए हानिकारक है । यह अबतक की कार्यसमिति की प्रणाली व परम्परा के खिलाफ हुआ । इससे यह अन्देशा फैल गया कि कहीं कांग्रेस में फूट न फैल जाये व वर्धा में कांग्रेस के टुकड़े न हो जायें; लेकिन वर्धा में राष्ट्रपति, पं० नेहरू व महात्माजी के खुलासों ने तमाम गलतफहमियों का अन्त कर दिया व जो लोग कांग्रेस में फूट फैलने के सुख-स्वप्न देख रहे थे उन्हें बुरी तरह निराश कर दिया । हम खुद पसन्द करते कि वर्धा में किसी भी युद्ध में भाग न लेने की नीति निश्चित कर दी जाती । हम मानते हैं कि बारडोली में कांग्रेस कुछ पीछे हटी है । इससे हमें भय व आशंकाएँ भी हुईं । लेकिन महात्माजी का यह कहना सही है कि लोग वही करें जो उन्हें स्वतन्त्र रूप से व अन्तःकरण से ठीक मालूम हो । हमारा अवलोकन तो यह है कि आज भारत की जनता का हृदय युद्ध में सहयोग के लिए तैयार नहीं है व अहिंसा की नीति एवं शक्ति उनके दिल में बस गयी है । यदि कांग्रेस के खुले अधिवेशन में इसकी जांच की जाये तो हमारी राय सही मालूम होगी । हाँ, इसपर जोर देने से आज कार्यसमिति व महा-समिति में जरूर फूट पड़ जाती व देश की मौजूदा हालत में उसका अच्छा असर किसीपर भी नहीं पड़ता । महात्माजी की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वे एक जबरदस्त एकता लाने व बढ़ानेवाली ताकत हैं । हिन्दुस्तान को इस समय एकसूत्रता व एक-संगठन-बद्ध रहने की जितनी जरूरत है, उतनी दूसरी किसी बात की नहीं । ऐसी हालत में कांग्रेस के कुछ पीछे हटने पर भी अगर उसकी एकता कायम रही तो इसे बड़ी नियामत समझना चाहिए । इस दृष्टि से हम वर्धा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेना उचित समझते हैं । इससे महात्माजी व उनके अहिंसा-मार्गी अनुयायी सत्याग्रह व रचनात्मक कार्यों द्वारा अहिंसात्मक संगठन व मुकाबला करने के लिए खुले रहते हैं; मौ० आजाद व पं० नेहरू अपनी आजादी की माँग को पुरज़ोर बनाने व उसपर डँटे रहने के लिए मौका पाते हैं; राजाजी व उनके साथियों को सरकार से समझौता करने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए रास्ता मिलता है; व सब विचार-धाराओं के लोग दो बातों पर एक हो जाते हैं—

(१) भारत को आजादी मिले विना युद्ध में सहयोग न देना,
(२) शक्तिभर अहिंसा-नीति को ही आगे बढ़ाते जाना ।

इतने लाभ एक साथ दूसरे किसी प्रस्ताव से इस समय नहीं हो सकते थे । कांग्रेस का युद्ध में सहयोग लेने न लेने की जिम्मेदारी सरकार पर पड़ी रह जाती है । बाहरी दुनिया को खासकर ब्रिटेन व अमरीका को इस शिकायत की गुंजाइश नहीं रह जाती कि हमारे जीवन-मरण के संकट-काल में हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था सातवें आसमान पर बैठकर आदर्शों व सिद्धान्तों की दुहाई देती रही । लोक-संग्रह की दृष्टि से यह लाभ भी कम नहीं है ।

फिर अहिंसा-सम्बन्धी मतभेद का अपने स्थान पर बड़ा महत्त्व होते हुए भी उसके अमल का आज ही सामने खड़ा नहीं हुआ है । मौ० आज़ाद के इस अन्दाज से हम सहमत हैं कि ब्रिटिश से कांग्रेस की सुलह हो नहीं सकती । हमारे खयाल में दोनों पक्षों के कई लोगों ने अपनें-अपनें हिसाब लगाकर देख लिया है कि युद्ध के पहले सुलह होने में किसीका भी फायदा नहीं है । अतः तो "न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेंगी" वाली कहावत चरितार्थ होती दीखती है । ऐसी में आज ही इस वैचारिक मतभेद को तूल देकर कांग्रेस को विभक्त करना गैरजरूरी व असा- था । जब ब्रिटिश सरकार भारत की आजादी को मंजूर करने पर सहमत हो जायेगी तब हिंसा- नीति का प्रश्न अमली दुनिया में आवेगा । ऐसी स्थिति में "अशुभस्य कालहरणम्" वाली से काम लेने में महासमिति ने कोई भूल की हो ऐसा हमें नहीं लगता ।

लेकिन जो यह कहा करते हैं कि 'हमें अहिंसा अच्छी तो लगती है मगर महात्माजी अहिंसा की ऊंचाई पर हैं और हम उनतक नहीं पहुँच सकते', उनकी सचाई की परीक्षा इस बात में है कि त्माजी की ज्यादा स्तुति न करते हुए अपने व जनता के अन्दर अहिंसा के विकास व सिद्धि का प्रयत्न कितना करते हैं, रचनात्मक कामों में कितनी प्रकृत दिलचस्पी लेते हैं—जिस तरह कि नेको अहिंसा के आकण्ठ हामी मानते हैं उनकी सचाई की परीक्षा इस बात में है कि वे अपने यों के प्रति कितनी कम कटुता अपने मन में रखते हैं व कितनी ज्यादा सक्रिय सद्भावना अपनी से उनकी ओर दौड़ाते हैं ? महात्माजी के अन्तःकरण का यह शुद्ध चित्र—जवाहरलाल मेरे दा वारिस हैं; राजाजी तो मेरे रिश्तेदार ही हैं—उनके लिए अच्छा मार्ग-दर्शक हो सकता है । आध्यात्मिक भाषा बोलनी हो तो महात्माजी ये शब्द इसलिए बोल सके कि उन्होंने अपनें अहं- को मटियामेट कर दिया है, उन्हें पूर्ण सत्य के दर्शन होते रहते हैं जिससे वे आंशिक सत्यों की में से एकसूत्रता को खींचकर प्रकाश में ले आते हैं व दुनिया को चकित कर देते हैं । हम लोग जो अपनी-अपनी अस्मिता में अपने आगे किसीकी कुछ सुनते ही नहीं, किसीको कुछ समझते हीं, उनके लिए गांधीजी की इस समय की भूमिका एक दीपस्तम्भ है । मौ० आजाद ने सच कहा गांधीजी का व्यक्तित्व अनूठा है; मरने पर ही वे हमसे जुदा हो सकते हैं ।

भले ही महा-समिति ने इस समय देश को आगे कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित न किया हो, बल्कि कुछ पीछे ही हटी हो, परन्तु हमें लगता है कि उसने कई भीतरी बुराइयों व कमजोरियों को दिया है, जिससे कांग्रेस की शक्ति बढ़ने की ही आशा है । असली शक्ति तो हमारा भीतरी संग- ही है । यदि हम अगले कुछ महीनों में, महान् राष्ट्रीय व अन्तःराष्ट्रीय क्षोभ तथा विस्फोट के निरंतर चंचल व संदिग्ध वातावरण में, भिन्न-भिन्न रचनात्मक कार्यों के सहारे अपना संगठन बना सके तो भीतरी व बाहरी किसी भी संकट का सामना करने के लिए हम वर्तमान सैनिक से बढ़कर कारगर व कामयाब साबित होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है । किसी भी देशी या , वर्तमान या भावी शक्ति को उसका हिसाब लगाना होगा । उसके बल की वह सहज ही उपेक्षा सकेगी । यही कारण है जो वर्धा की महा-समिति ने एक स्वर से रचनात्मक कार्यक्रम पर ही ज्यादा जोर दिया है । हमें इस मर्म को समझने में गलती या सुस्ती न करनी चाहिए ।

हरिभाऊ उपाध्याय

विद्यार्थी-संगठन

—महात्मा गांधी

विद्यार्थियों को मैंने सबसे पीछे के लिए रक्खा है। मैंने हमेशा उनसे निकट सम्पर्क स्थापित किया है। वे मुझे जानते हैं और मैं उन्हें जानता हूँ। उन्होंने मुझे अपनी सेवाएँ दी हैं। कालेज से पढ़कर निकलनेवाले बहुत से आज मेरे समादरणीय साथी हैं। मैं जानता हूँ कि वे भविष्य की आशाएँ हैं। असहयोग की आँधी के ज़माने में उन्हें स्कूल और कॉलेज छोड़ने का आह्वान किया गया था। कुछ प्रोफ़ेसर और विद्यार्थी, जो कांग्रेस के इस आह्वान पर बाहर आगये थे, साबितक़दम रहे और उससे उन्होंनें देश के और स्वयं अपने लिए काफ़ी लाभ उठाया। वह आह्वान फिर नहीं दुहराया गया। इसका कारण यह था कि उसके लिए अनुकूल वातावरण नहीं था। लेकिन अनुभव नें यह बता दिया है कि वर्त्तमान शिक्षा यद्यपि झूठी और कृत्रिम है, तो भी देश के नौजवानों पर उसका मोह बहुत ही अधिक चढ़ा हुआ है। कालेज की शिक्षा से उनको कमाई के साधन मिल जाते हैं। नौकरी के मोहक क्षेत्र एवम् भद्रसमाज में प्रवेश पाने का यह एक तरह का परवाना है। ज्ञान प्राप्त करनें की क्षम्य पिपासा प्रचलित परिपाटी पर चले बिना पूरी हो नहीं सकती थी। मातृभाषा का स्थान छीने बैठी हुई एक सर्वथा विदेशी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने में अपनें बहुमूल्य वर्ष बरबाद कर देने की वे परवाह नहीं करते। इसमें कुछ पाप है यह वे कभी अनुभव नहीं करते। उन्होंने और उनके अध्यापकों ने अपना यह खयाल बना रखा है कि आधुनिक विचार-राशि और आधुनिक विज्ञान में प्रवेश करने के लिए देशी भाषाएँ बेकार हैं—निकम्मी हैं। मुझे आश्चर्य है कि जापानी लोग अपना काम किस तरह चलाते होंगे, क्योंकि जहाँतक मुझे मालूम है, वहाँ सारी शिक्षा जापानी भाषा में ही दी जाती है। चीन के सर्वेसर्वा सेनाधिपति को तो अंग्रेज़ी का कुछ ज्ञान है भी तो वह नहीं के ही बराबर है।

लेकिन विद्यार्थी जैसे भी हैं इन्हीं नवयुवक-युवतियों में से देश के भावी नेता निकलनेवाले हैं। दुर्भाग्यवश उनपर हर तरह की हवा का असर आसानी से होजाता है। अहिंसा उन्हें बहुत आकर्षक प्रतीत नहीं होती। घूँसे के जवाब में घूँसा या दो के बदले में कम-से-कम एक थप्पड़ मारने की बात सहज ही उनकी समझ में आजाती है। उसका परिणाम तत्काल निकलता दिखाई दे जाता है यद्यपि वह क्षणिक होता है। यह पशु-बल का कभी समाप्त न होनेवाला वह प्रयोग है, जो हम जानवरों के बीच होता देखते रहते हैं और युद्ध में जो कि अब विश्वव्यापी हो गया है, मनुष्य-मनुष्य के बीच चलता देख रहे हैं। अहिंसा की अनुभूति के लिए धैर्य्य के साथ खोज करने और उससे भी अधिक धैर्य्य और कष्ट-सहन के साथ उसका अमल करने की आवश्यकता है। जिन कारणों से मैंने किसान-मज़दूरों को अपनी ओर खींचनें की प्रतिद्वन्द्विता से अपने को रोका, उन्हीं कारणों से मैं विद्यार्थियों के सहयोग को अपनी-अपनी ओर खींचने की प्रतिद्वन्द्विता में भी नहीं पड़ा। बल्कि मैं स्वयं उन्हींकी तरह एक विद्यार्थी हूँ। सिर्फ़ मेरी यूनिवर्सिटी उनकी से निराली है। उन्हें मेरी इस यूनिवर्सिटी में आने और मेरी शोध में सहयोग देनें के लिए मेरी ओर से खुला निमन्त्रण है। उसमें प्रवेश पाने की शर्तें ये हैं—

१—विद्यार्थियों को दलगत राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। वे विद्यार्थी हैं, शोधक हैं, राजनीतिज्ञ नहीं।

२—वे राजनैतिक हड़तालों में शरीक न हों। उनके अपने श्रद्धा-भाजन नेता एवम् वीर पुरुष अवश्य हों, लेकिन उनके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति का प्रदर्शन, उनके उत्तम कार्यों के अनुसरण द्वारा होना चाहिए, इनके जेल जानें, स्वर्गवासी होने अथवा फाँसी पर चढ़ाये जाने तक पर हड़ताल करके नहीं। अगर उनका शोक असहनीय हो और सब विद्यार्थी समान रूप से अनुभव करते हों तो अपनें प्रिंसिपल की स्वीकृति से ऐसे मौक़े पर स्कूल

बन्द किये जा सकते हैं। अगर प्रिंसिपल बात न सुनें तो उन्हें अधिकार है कि वे पूर्वक इन स्कूल-कॉलेजों को छोड़ जायें और उनके व्यवस्थापक पछताकर उन्हें वापिस तबतक वापिस न जायें। जो विद्यार्थी साथ न दें उनके अथवा अधिकारियों के किसी भी हालत में वे बल-प्रयोग न करें। यह विश्वास होना चाहिए कि यदि उनमें में एकता और उनके आचरण में शिष्टता रही तो उनकी विजय निश्चित है।

३—उन सबको शास्त्रीय—वैज्ञानिक—ढंग ाई-यज्ञ करना चाहिए। उनके औज़ार हमेशा साफ़ और व्यवस्थित रहें और सम्भव हो अपने औज़ार ख़ुद ही बनाना भी सीख लें। सूत स्वभावतः ही सर्वोच्च कोटि का होगा। ाई-सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन कर उसके आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक ओं को अच्छी तरह समझने की कोशिश ें।

४—वे हमेशा खादी ही काम में लायेंगे और तरह की देशी-विदेशी मिलों की चीज़ें छोड़-गाँवों में बनी चीज़ें ही बरतेंगे।

५—वे दूसरों पर 'वन्देमातरम्' गान अथवा राष्ट्रीय झण्डा ज़बरदस्ती न लादेंगे। वे राष्ट्रीय झण्डेवाले बटन लगायें, लेकिन दूसरों इसके लिए ज़बरदस्ती न करें।

६—तिरंगे झण्डे के सन्देश को वे अपनें में उतारेंगे और साम्प्रदायिक अथवा छुआ-की भावना को कभी भी अपने हृदय में स्थान । दूसरे धर्म के विद्यार्थियों तथा हरिजनों साथ वे अपने सम्बन्धियों की तरह सच्चे सम्बन्ध स्थापित करेंगे।

७—वे अपने किसी पड़ोसी के चोट लग पर ध्यानपूर्वक उसकी तात्कालिक चिकित्सा और अपने पड़ोस के गाँव में मेहतर का का काम करेंगे और वहाँके बालकों और को पढ़ाने का काम भी करेंगे।

८—वे राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी का, उसके हिन्दी और उर्दू के दुहरे अध्ययन करेंगे, जिससे कि हिन्दी-उर्दूभाषी सभी जगहें उन्हें अनुकूल प्रतीत हों।

९—वे जो कुछ भी नयी बात सीखेंगे उसका अपनी मातृभाषा में अनुवाद करेंगे और अपने साप्ताहिक भ्रमण के मौक़े पर गाँववालों को पढ़ सुनायेंगे।

१०—वे कुछ भी काम छिपाकर या गुप्त रूप में न करेंगे, अपने सब व्यवहार में वे सन्देह की गुंजाइश न होने देंगे, वे अपना जीवन संयम और शुद्धता के साथ बितायेंगे, सब तरह का भय छोड़ देंगे, अपने कमज़ोर सहपाठी-विद्यार्थी की रक्षा के लिए हमेशा तैयार रहेंगे और दंगा होने पर अपने जीवन को ख़तरे तक में डालकर अहिंसा के ज़रिये उसे दबाने के लिए तत्पर रहेंगे। आन्दोलन जब अपनी पूरी तेज़ी पर पहुँच जायेगा, वे अपनी संस्थाएँ—स्कूल-कालेज छोड़ देंगे और ज़रूरत होने पर अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने को बलिदान कर देंगे।

११—अपने साथ पढ़नेवाली विद्यार्थिनियों के प्रति अपना व्यवहार अतिशय सरल और शिष्ट रखेंगे।

विद्यार्थियों के लिए मैंने जो यह कार्य-क्रम बनाया है उसके लिए उन्हें कुछ समय अवश्य निकालना चाहिए। मैं जानता हूँ कि वे अपना बहुत-सा समय सुस्ती में बरबाद करते हैं। पूरी पूरी मितव्ययिता से काम लें तो वे कई घण्टे बचा सकते हैं। लेकिन मैं किसी भी विद्यार्थी पर कोई अनुचित भार नहीं डालना चाहता। इसलिए मैं देशभक्त विद्यार्थियों को सलाह दूँगा कि वे अपना एक वर्ष—एक साथ नहीं, बल्कि अपनें सारे अध्ययन-काल में थोड़ा-थोड़ा करके,—इस काम में लगायें। वे देखेंगे कि इस तरह दिया हुआ उनका यह एक वर्ष बरबाद नहीं गया। इस प्रयत्न से उनके मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास में वृद्धि होगी और अपने अध्ययन-काल में ही आज़ादी की लड़ाई में उनकी ओर से ठोस हिस्सा अदा होगा। ['रचनात्मक कार्यक्रम' से

महाराष्ट्र के कविसम्राट्

—श्रीपाद जोशी

७ दिसम्बर १९४१ का दिन महाराष्ट्र के साहित्यिक इतिहास में अत्यन्त दुःखजनक तथा निराशापूर्ण गिना जायेगा। इस दिन वर्तमान महाराष्ट्र ने अपने समय का सबसे ऊँचा कवि खोया—श्री भास्कर रामचन्द्र तांबे।

स्व० तांबेजी का जन्म ग्वालियर रियासत के मुंगावली गाँव में १८७४ ई० में हुआ था। बचपन में ही आपके पिताजी का देहान्त हो जाने के कारण आपकी परवरिश तथा शिक्षा का भार आपके मामा पर पड़ा। उन्होंने उसे अच्छी तरह निभाया। सन् १८९३ ई० में आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय की प्रवेश (मैट्रिक) परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की, मगर आर्थिक कठिनाइयों के कारण आप उच्च-शिक्षा न पा सके। फिर भी अपनी कार्यशक्ति तथा असामान्य प्रतिभा के कारण आपने कई स्थानों में बड़े-बड़े ओहदों पर नौकरियाँ कीं और अन्त में ग्वालियर दरबार के राजकवि तथा महाराष्ट्र के राष्ट्रकवि बन गये।

यों तो महाराष्ट्र ने प्रतिभाशाली कवियों की कमी शायद ही कभी महसूस की होगी मगर हमारे जमाने ने तांबेजी-जैसा सर्वांगपरिपूर्ण भावकवि पाकर पिछले जमानों को मात कर दिया है। उनके कार्य की विशेषता यह है कि जबकि दूसरे कवि प्रेम और शृंगार की कविताओं में मस्त हो झूम रहे थे, उन्होंने स्वातंत्र्योत्सुक महाराष्ट्र को अमरत्व का सन्देश देकर अपनी प्रतिभा को कृतार्थ किया।

तांबेजी ने किसी खंड या महाकाव्य की रचना नहीं की है, केवल मुक्तक काव्य ही महाराष्ट्र को प्रदान किये हैं। मगर यह देन इतनी विपुल और ठोस है कि उन्हें 'महाकवि' कहने में किसीको हिचकिचाहट नहीं हो सकती।

इतना होते हुए भी इस कवि—भास्कर ने कभी जनता की आँखों को चका-चौंध नहीं किया। एक तो वह असली महाराष्ट्र से बहुत दूर थे, महाराष्ट्र के साथ उनका संबंध बहुत कम रहता था और दूसरे, वह अत्यन्त प्रसिद्धि-विमुख थे। लोगों के सामने आने से वह नयी बहू की तरह शरमाते थे। किन्तु उनकी कविता इतनी अधिक प्रभावपूर्ण निकली कि उसने उनके लिए उनसे सैंकड़ों मील दूर महाराष्ट्र के घर-घर में आदर का स्थान बना दिया और दो बार उन्हें कवि-सम्मेलन अध्यक्ष पद पर बिठला दिया।

कवि के प्रारंभिक जीवन में उसकी कविता यौवन की बहार में बिहार करती है। इस समय वह कुछ ढीली-ढाली किन्तु रसीली है। उसका साज-सिंगार कुछ पुराने ढंग का है, लेकिन फिर भी वह बड़ी प्यारी लगती है। प्रीति के निवास-स्थान के बारे में कवि कहता है:—

प्रीति ना वसे कधींहि उच्च त्या गडावरी,
उतर-उतर ये—प्रीति हवि तरी !
रुचति खालच्याच तिला मोकळचा निळचा दरी! !

[प्रीति कभी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर नही बसा करती। उसको तो नीचे की खुली, नीली घाटियाँ ही पसंद आती हैं। अगर तू उसको पाना चाहता है तो आ, नीचे उतर आ।]

उसका अनुभव दिन-दिन गहरा होता जाता है और उसके प्रभाव से उसकी कविता भी अधिकाधिक पुष्ट और गंभीर होती जाती है। भाव अधिक गहरे तथा दिलकश होते जाते हैं और छंदों में नवीनता आती जाती है। वर्तमान महाराष्ट्र की कविता की यह विशेषता है कि वह पहले की अपेक्षा गेय और भावनापूर्ण हुई है। जिसकी बुनियाद तांबेजी ने ही डाली है।

तांबेजी की कविता में कला और जीवन, प्रचार और भावुकता, राष्ट्रीयता का सन्देश और अध्यात्म-चिन्तन साथ-साथ चलते हैं। इसलिए उनकी चाहे जो कविता उठायी जाये, उसमें कुछ न कुछ लेने लायक मिलेगा ही।

तारुण्य की वसन्त ऋतु में जब वे बोल उठते हैं—

कुणि कोडें माझें उकलिल कां ?
गुलाब माझ्या हृदयीं फुलला,
रंग तुझ्या गालांवर खुलला,
काँटा माझ्या पायीं रुतला
शूल तुझ्या उरिं कोमल कां ?

[क्या मेरी इस समस्या को कोई व्यक्ति हल केगा ? हे सखि, मेरे हृदय में प्रीति का खिल उठा है; मगर उसका रंग जमा तेरे पर। काँटा तो मेरे पाँव में चुभा, मगर कसक तेरे कोमल उर में स्थान किये है।]

ारे दिल में एक गुदगुदी सी पैदा होती वही जब अपने जीवन के अन्तिम दिनों प्रकार चित्रण करते हैं :

ढळला रे ढळला दिन सखया !
सन्ध्या-छाया भिवविति हृदया,
अता मधूचें नाव कासया ?
ले नेत्र रे पैल तिरी—
मधु मागशि माझ्या सख्या, परी
मधुघटचि रिकामे पडति घरीं !

[हे मेरे साथी ! तू मेरे पास (काव्य-) मधु ता है, लेकिन ओफ् ! यहाँ मेरे घर पर तो मधु-घट खाली पड़े हैं । ऐ प्यारे, देख वह ढलने को हुआ है, मेरे इस हृदय को सन्ध्या डरा रही है, ऐसे वक्त पर मधु का नाम ? अब तो मेरी आँखें उस पार लगी हैं] हमारी भी आँखें गीली हो जाती हैं ।

'आनन्दी आनन्द **मुळांनो, आनन्दी आनन्द**' र कवि जब बालक बन जाता है तब हम उसके साथ बाल-काल में प्रवेश करके उछलने- लगते हैं। और '**भ्रमण भुतापरि आले भाला**' और किसी अभागिनी विधवा नारी के हृदय चित्र हमारे सामने खड़ा कर देते हैं तो हम कर लज्जित हो जाते हैं ।

जो कवि जीवित होगा, जिसने अपनी प्रतिभा पहाड़ों के देवताओं को रिझाया होगा वह न के किसी क्षेत्र में अन्याय को बर्दाश्त नहीं सकता। जब उसे किसी अन्याय का भान ता है तब वह यह नहीं सोचता कि अगर मैं के खिलाफ अपने भावों का प्रदर्शन करूँ तो रोज़ी छीन ली जायेगी या मुझपर कोई आयेगी । वह तो जो कुछ कहना हो कही ता है। अपनी '**रुद्रास आवाहन**' कविता में कहता है :

डुम्डुमत डमरु ये, खण्खणत शूल ये,
शंख फुंकीत ये, ये इ रुद्रा !
पाउ सिंघासनें दुष्ट हीं पालथीं,
ओढ हत्तीवरुनि मत्त नृप खालती,
मुकुट रंकास दे, करटि भूपाप्रती
झाड खट्खट तुझें खड्ग क्षुद्रां !

[ऐ रुद्र आओ ! अपने डमरू को डिमडिमाते हुए आओ ! अपने शूल को खनखनाते हुए आओ ! अपने शंख को जोर से फूँकते हुए आओ !! देखो यहाँ आकर, वह जो दुष्ट सिंहासन है उसको गिरा दो। मत्त नृपों को हाथियों पर से नीचे धूल में घसीट लाओ, उनके मुकुट गरीबों को दे दो और दे दो बड़े-बड़े भूपतियों को भीख माँगने का खप्पर । नीचों का नाश करने के लिए तुम अपना खड्ग उठाओ।]

स्व० तांबेजी की विशेषता तो यह है कि जब वे मृत्यु का विचार करते हैं तब भी अपने प्यारे देश और उसकी स्वतन्त्रता को नहीं भूलते । उदात्त आत्मानुभूति और प्रगाढ़ वैयक्तिक प्रेम की कविताओं में उनकी वन्दनीय 'तिलक' 'गांधी' की मातृभूमि कभी भूली नहीं जा सकती ।

एक जगह वह कहते हैं :

मरणांत खरोखर जग जगतें ।
अधि मरण अमरपण ये मग तें ।।
अनन्त मरणें आधि मरावीं,
स्वातंत्र्याची आंस धरावी,
मारिल मरणचि मरणा भावी,
मग चिरंजीव पण ये बघ ! तें—

[विश्व तो वास्तव में मृत्यु में ही जीवित रहता है । प्रथम मृत्यु का वरण करने के बाद ही अमरत्व प्राप्त होता है । पहले अनन्त बार मर लिया जाये, स्वतन्त्रता की आशा रखी जाये, तो मृत्यु ही भावी मौत को मारेगी और फिर अमरत्व प्राप्त होगा।]

स्वर्गीय श्री तांबेजी आज के महाराष्ट्र के टैगोर थे। तरुण महाराष्ट्र ने उनकी कविता से प्रेरणा और स्फूर्ति पायी है । उनकी बिदाई से महाराष्ट्र के साहित्य की अपार हानि हुई है ।

पाक मुसलमान

—सिद्धराज ढड्ढा

मेरे लड़कपन की बात है, हमारे घर में एक उम्ररसीदा मुसलमान ड्योढ़ी पर तैनात था। भरा हुआ वदन, ऊँचा कद, चेहरे पर राजपूती ठाठ की बीच में से सँवारकर ऊपर की ओर चढ़ायी हुई काली दाढ़ी, सर पर 'फेंटा', बदन में कुरता और तमीज़ से बाँधी हुई 'दुलाँगी' धोती। नाम बहादुरखाँ था; पर उसमें और उसी दरजे के किसी हिन्दू में कोई फर्क नहीं मालूम होता था। खान-पान, रहन-सहन, बातचीत, किस्से-कहानियाँ सभी में तो समानता थी। वह भी अपनेको अरब से आया हुआ कोई अजनबी नहीं समझता था। वह बेचारा शायद यह भी नहीं जानता होगा कि 'अरब' चीज क्या है? वह हमारे यहाँ का विश्वासपात्र नौकर समझा जाता था और घर के बड़े-बूढ़ों को छोड़कर सभी उसे 'बहादुरखाँजी' कहकर सम्बोधित करते थे। घर पर पिताजी के मिलनेवालों में और भी कितने ही बुजुर्ग मुसलमान आया करते थे। पढ़े-लिखे होने से उन लोगों की बोली में कुछ फारसी शब्द ज्यादा होते थे। पर फारसी हमारे यहाँ की राजभाषा थी इसलिए हिन्दुओं में भी जो पुराने और 'अहलकार' आदमी आते थे वे सब भी वैसी ही भाषा बोलते थे। पिताजी खुद फारसी के अच्छे विद्वान् हैं, अंग्रेजी के साथ-साथ स्कूल और कॉलेज में उनकी 'दूसरी भाषा' फारसी ही रही थी। उस वक्त उर्दू हिन्दी के झगड़े का जन्म नहीं हुआ था। उन आनेवाले सभी लोगों की बातचीत में आपस के व्यवहार में कितनी शराफत, कितनी हमदर्दी और कितनी शाइस्तगी थी! वही एकसी पोशाक एकसी बोली, एकसे जीवन के अनुभव की एक सी बातें। यह समझने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी कि हिन्दू या मुसलमान में सिवाय अपने-अपने धर्म अलग होने के और कोई फर्क था। हाँ, वे लोग एक दूसरे के धर्म की और सामाजिक रीति-रिवाजों की इज्जत करते थे। खान-पान के सम्बन्ध में छुआछूत का खयाल जरूर था, पर वह सब जैसे स्वाभाविक-सा लगता था, उसके पीछे कटुता नहीं थी।

मैं कोई बाबा आदम के जमाने का आदमी नहीं हूँ, न उस जमाने की बात कर रहा हूँ। अभी तो मेरी उम्र की 'तीसी' शुरू हुई है और ये सब बातें मुश्किल से १५-२० वर्ष पुरानी हैं। मुझे तो भरोसा है कि हमारे देश के अधिकतर गाँवों और कस्बों के 'पुराने' घरों में आज भी ऐसे सलोने-सुहावने दृश्य देखने को मिल सकते हैं। पर शहरों में आज सारा वातावरण ही दूसरे किस्म का है। वहाँ आज हिंदू और मुसलमानों का जीवन एक दूसरे के लिए 'बन्द किताब' है। हमारे मनों में यह भावना घर करती जारही है कि मुसलमान एक 'पाक' नहीं 'नापाक' जाति है जो अकस्मात् ही इस देश में आगयी है और उससे हमारा मेल नहीं हो सकता। यह द्वेष-भाव हमारे मन में गहरी जड़ें फैला चुका है। बड़े शहरों का कुत्सित जीवन और आजकल की विध्वंसक सभ्यता के सारे उपकरण जैसे रेल, सिनेमागृह, समाचारपत्र आदि इस भेदभाव को बढ़ा ही रहे हैं। शायद यह बात कुछ अटपटी सी लगे; क्योंकि साधारण तौर पर तो यह माना जाता है कि रेल, सिनेमा आदि सार्वजनिक जगहों में उलटे जाति-पाँति के बंधन ढीले होजाते हैं, पर थोड़ी सी बारीकी से देखने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। यह बड़े शहरों, रेल के स्टेशनों-जैसी जगहों में ही हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद की दीवारें मजबूत हुई हैं।

आजकल की शहरी सभ्यता में अधिकांश लोगों को सोचने या अपने विचारों के अनुसार चलने की छूट लेने का मौका ही नहीं आता। शहरों में हम-जैसे अधिकांश आदमी दिन-रात अपनी-अपनी चक्की में पिसते रहते हैं। हिंदू मोहल्ले अलग, मुसलमान मोहल्ले अलग। कभी जीवन के सुख-दुःख की बात एक दूसरे के साथ बैठकर करने की नौबत ही नहीं आती और

व्यवस्था होती है वह किसी अदृश्य हाथ रिचालित होती है जिससे अगर हमें उस के बारे में कुछ शिकायत भी हो तो सोसकर रह जाना पड़ता है। जनता का काम तो सिर्फ इतना रह गया है भी व्यवस्था उनके लिए प्रस्तुत की जाये बिना चूँ-चरा किये जो फायदा-नुकसान हों उठा लें। शहरों में बड़े-बड़े मकानों खड़े हैं। न मालूम किसका मकान है, मालिक है ? तुम्हें रहना है, किराया दो रहो—तुम्हें यह नुक्ता-चीनी करने का नहीं है कि इस घर में किसी मुसलमान किराये पर क्यों नहीं दिया जाता ? अकलमन्दी दिखायी तो मकान से बाहर। घरों में, जो भी अच्छी बुरी फिल्म है, ही है, तुम्हें देखनी हो पैसे दो, और वरना अपना रास्ता नापो। और यह खेल और 'मैच' ! — आज 'हिन्दू साइड' सलमान साइड' से 'मैच' है और कल का पारसियों से ! थोड़े से आदमियों प्रतियोगिता में भाग लेनेवाली को 'हिन्दू' और 'मुसलमान' के दायरों दिया है। रेलों में लाखों आदमी सफर और आज उनकी नसों में, उनके खून पुश्त-दर-पुश्त के खून में 'हिन्दू पानी' 'मुसलमान पानी', 'हिन्दू चा' और 'मुसल- चा' पहुँचायी जारही है।

शैतानी सभ्यता में औसत आदमी को लिए निश्चित की हुई व्यवस्था से अलग या उसके बारे में सोच-विचार या करने की गुंजाइश ही नहीं है। और आज की व्यवस्था की बागडोर सम्हाले उन्हें इसीमें लाभ है कि हिन्दू और दोनों अलग होजायें और अलग ।

यह कटुता, हिन्दू-मुसलमान के बीच भेद दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। समाचारपत्र भी तो अधिकतर ऐसे वर्ग द्वारा चलाये जाते हैं जिसकी जड़ें देश की मिट्टी में गहरी नहीं गयी हैं—और वह भी इस बहाव में बहते रहते हैं। उस दिन एक मित्र मुझसे मिलने आये थे, उनका छोटा भाई सिविल सर्विस (I.C.S.) की परीक्षा में बैठा था। मुलाकात (interview) के वक्त वह न लिया जा सका। उनका कहना था कि परीक्षा लेनेवाले बोर्ड में एक मुसलमान सज्जन हैं। हो सकता है कि उस हिन्दू परीक्षार्थी की असफलता का कारण भी इन्हीं सज्जन का पक्षपात हो।

एक बार मैं कलकत्ते से रेल में सफर कर रहा था। कलकत्ते-जैसे शहर में रहते हुए हमारा अन्तर भी इस बात को भूल जाता है कि हमारे इस सारे शहरी जीवन के और ऐशो आराम के पीछे या उसके अधिकारस्वरूप एक और तरह का जीवन भी देश में है—मुक्ताकाश के नीचे हल चलाता, अधनंगे शरीरवाला किसान, खेतों में कुछ काटती हुई या घास के भारे सिर पर रख कर लेजाती हुई स्त्रियाँ, गाँव के आसपास के छोटे-छोटे गड्ढों में भैंसों के साथ नहाते हुए बालक, चरते हुए ढोरों और भेड़-बकरियों के झुंड और रेल की यात्रा में जो नये-नये आदमी देखने को मिलते हैं, नित नये अनुभव होते हैं वे कितने मनोहारी, कैसे अवर्णनीय हैं !

जब हम लोग डिब्बे में चढ़े तो हमारे सिवाय उसमें कोई नहीं था। गाड़ी चलने में देर थी। कुछ देर बाद एक मुसलमान सज्जन उस डिब्बे में सवार हुए। न मालूम क्यों, एक क्षण के लिए मुझे उनका आना अच्छा नहीं लगा। हमारे बदनसीब देश में हिंदू और मुसलमानों के बीच की खाई कितनी गहरी होगयी है ! मैं अपने आपको एक बहुत स्वतन्त्र विचार का और सब तरह की संकीर्ण और साम्प्रदायिक भावनाओं से परे व्यक्ति मानता हूँ, पर आसपास के सारे वातावरण का, दिनरात लोगों से जो बातें सुनते हैं उनका असर, अन्दर-ही-अन्दर सही, हमपर पड़ता ज़रूर है; और किस चालाकी से वह हमारे मानस पर छाप डालता है ।

वह मुसलमान सज्जन प्रौढ़ उम्र के थे। मुसलमानी ठाठ की कतरी हुई दाढ़ी और मूछें थीं। तंग पाजामा और कुरता उनकी लिबास थी। संयोग की बात है उसी डिब्बे में दो और सज्जन आकर बैठे। वे भी मुसलमान थे। किसी भी मध्यवर्ग के शहरी व्यक्ति की-सी शकल के थे। सफाचट दाढ़ी और कतरी हुई मूछें, सफेद पोश और मुँह में पान। गाड़ी रवाना होते-होते एक दो हिन्दू सज्जन और आगये। ये लोग करीब-करीब सभी व्यापारी-वर्ग के थे और दो-चार मिनटों में ही सबने अपनी जान-पहचान निकाल ली। दाढ़ीवाले उन मुसलमान सज्जन ने बातचीत के सिलसिले में एक बार कहा कि कानपुर से उन्हें बड़ी नफरत होगयी है। जब देखो तब दंगा होजाता है। हिन्दू-मुसलमान लड़ते रहते हैं। यह भी कोई आदमीयत है? हम हिन्दू लोग आज अक्सर यही सोचते रहते हैं कि हरएक मुसलमान संकुचित विचारवाला और दंगई होगा। हमें हर एक मुसलमान की ओर से बदनीयती और दंगे का डर रहता है। और यही हालत शायद मुसलमानों की भी है! पर इन मुसलमान सज्जन की बातें सुनकर मुझे मन-ही-मन अपने ऊपर शर्म आरही थी। थोड़ी देर बाद वे उठे। 'वजू' की (अर्थात् हाथ, मुँह, पाँव धोये) और इस तरह सोने से पहले खुदा की इबादत करने की तैयारी की। वजू के बाद घुटने टेककर जब उन्होंने प्रार्थना शुरू की और हाथ जोड़कर ऊपर को आँखें उठायीं तो उनके मुख पर एक भक्त की कातर मुद्रा छागयी। और उस पाक मुसलमान को मैं मन-ही-मन आदर से प्रणाम किये बिना न रह सका।

रवींद्रनाथ की शिक्षा-संस्थाएँ

—कुँवरकिशोर सेठ

कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर ने भारत को और भारत द्वारा विश्व को क्या कुछ प्रदान नहीं किया! उन्होंने जीवन में जो तप और साधना थी उसके आधार पर शांत हृदय से एक शिक्षा-पद्धति का सूत्रपात किया था। इसका व्यावहारिक रूप है 'शांतिनिकेतन', 'श्रीनिकेतन' और 'विश्वभारती', जहाँ गत ४० वर्ष से शिक्षा-संबंधी प्रयोग हो रहे हैं। इन संस्थाओं को रवीन्द्र ने अपने प्राणों से सींचा है। हम कह सकते हैं कि उनके जीवन-वृत्त का वास्तविक स्वरूप भी यही संस्थाएँ हैं।

इन संस्थाओं की स्थापना की कहानी यों है। १९०२ में रविबाबू ने कलकत्ते के सुखद जीवन को छोड़कर बोलपुर के निर्जन स्थान में अध्यापक का सरस कठिन और तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया, और वे अपनी शिक्षा-कल्पनाओं को कार्यरूप में परिणत करने लगे। सर्वप्रथम उनके शिष्यों की संख्या आधी दर्जन भी नहीं थी। उस समय यह कल्पना भी किसे थी कि कवि का यह प्रयास बढ़कर इतना व्यापक हो जायेगा कि उसकी कीर्ति सारे भारत ही नहीं विश्व भर में फैल जायेगी?

कवीन्द्र के विचारानुसार बालक पहले-पहल अपनी बुद्धि से इतना ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता जितना वह अपने अवयवों और इंद्रियों से प्राप्त करता है। बालक का मन प्रत्यक्ष वस्तुओं को ध्यानपूर्वक देखता है। इसीसे उसके मन में, प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा, वस्तुओं का चित्र अच्छी तरह अंकित हो जाता है। अतः अध्यापक को चाहिए कि बालक को प्रकृति से शिक्षा लेने में सहायता दे और ऐसे वातावरण का निर्माण करे जिसमें बालकों की ग्रहण-शक्ति बढ़े और उनका शारीरिक विकास स्वतन्त्र रीति से होसके। प्रकृति-संसर्ग के सतत भावों और शारीरिक विकास के साथ-साथ संगीत और कलाओं द्वारा बालकों की मनोवृत्तियों को भी साधने का प्रयत्न होना चाहिए। भारतीय जीवन के सम्भवतः प्रत्येक क्षेत्र में संगीत और कला की प्रधानता है, परन्तु इसकी आत्मा जैसे मर चुकी है। रवीन्द्र ने इसकी

के पुनरुद्धार का प्रयत्न किया है। कवीन्द्र रों में मानव-जीवन की शिक्षा को सर्वांग- ना चाहिए, अन्यथा मानव-विकास में जायेगी और इससे समाज और व्यक्ति को हानि पहुँचने की सम्भावना है। इसी की नींव पर 'शांतिनिकेतन' और 'विश्व- का प्रादुर्भाव हुआ है।

ांतिनिकेतन' पाश्चात्य विश्वविद्यालयों की केवल अध्ययन का ही केन्द्र नहीं बनाया हां अध्ययन के साथ-साथ प्रकृति-संसर्ग की ष्ठा की गयी। इस नैसर्गिक जीवन को िक रूप देने के लिए भारत की आर्थिक ओं और सामाजिक समस्याओं का परि- गया। इस आशय की पूर्ति के लिए में 'श्रीनिकेतन' की स्थापना की गयी। द्यार्थियों को ग्राम-जीवन का अनुभव करने अच्छा अवसर मिलता है। सभ्य तथा समाज और भारतीय ग्रामीण जीवन में है वह बढ़कर इतना विशाल हो गया एक की वृद्धि दूसरे के लिए घातक प्रतीत ी। बढ़ते हुए इस हानिकारक भेद को के लिए कवीन्द्र की कल्पना का व्याव- रूप ही 'श्रीनिकेतन' है। शिक्षा और की प्रौढ़ विचारधारा में ग्रामीण समस्याओं ाने की यहाँ लगातार चेष्टाएँ की गयीं धीरे-धीरे 'श्रीनिकेतन' ग्रामोद्धार का केन्द्र है। ग्रामीण जीवन का विकास तथा और साधारण तथा आवश्यक उद्योग- शिक्षा की व्यवस्था भी इसका एक मह- अंग बन गयी है।

र्गिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक के सम्मिश्रण को ही कवीन्द्र ने मानव- की पूर्ण शिक्षा नहीं समझा। स्वदेश तथा की विचारधाराओं का विनिमय भी उन्हें प्रतीत हुआ है। परन्तु पाश्चात्य शिक्षा- का अन्धाधुन्ध अनुसरण उन्हें अखरता था। चेतावनी दी कि ऐसा करना भारत की िक अवनति करेगा। हमें अपने जीवन के विकास के लिए स्वयं अपने ऊपर—अपनी बुद्धि तथा अपने कौशल पर—अवलम्बित होना चाहिए, न कि दूसरों की रची हुई सभ्यता के रूप-रंग पर। जीवन का विकास वैदेशिक सभ्यता तथा सांस्कृतिक संस्थाओं की नकल करने में नहीं है, बल्कि उनके तत्त्व तथा मर्म के अनुशीलन में है। आध्यात्मिक उन्नति तथा आत्म-सम्मान के लिए पुरातन साहित्य तथा सभ्यता का पुनर्निर्माण शान्तिनिकेतन में विद्याभवन द्वारा किया जा रहा है।

भारतीय जीवन के विकास के इस प्रयत्न में कवींद्र ने शिक्षा-कल्पनाओं को राष्ट्रीय क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा। जिस प्रकार उन्होंने अध्ययन प्रकृति से, नैसर्गिक जीवन का सामाजिक जीवन से, कला का विज्ञान से सम्पर्क स्थापित किया उसी प्रकार मानव-जीवन के विकास के लिए भारतीय पुरातन सभ्यता के अध्ययन के साथ-साथ विश्व की विविध संस्कृतियों तथा धर्मों की मार्मिक व्याख्या और समीक्षा का भी प्रयत्न किया। 'शान्तिनिकेतन' का यह विस्तृत क्षेत्र 'विश्वभारती' के नाम से प्रतिष्ठित है। चीनी, तिब्बती, इस्लामी, बौद्ध तथा हिन्दू सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन इसकी एक विशेषता है। इनमें से चीन की सभ्यता के अध्ययन के लिए चीन-भवन की स्थापना हो चुकी है।

इस समय यह कहना कठिन है कि कवीन्द्र की यह शिक्षा-कल्पना भारतीय संस्कृति पर क्या प्रभाव डालेगी और विश्व की विभिन्न जातियों तथा धर्मों में सहानुभूति तथा प्रेम का प्रवाह किस अंश तक बहा सकेगी? ४० वर्षों का निरन्तर प्रयत्न अभी पूर्ण रूप से विकसित भी न हो सका था कि रवीन्द्रनाथ का निधन हो गया! जिस विश्वव्यापी भावना से कवीन्द्र की शिक्षा-कल्पना ने भौतिक रूप धारण किया है, उसी से यदि इस संस्था का संचालन होता रहा तो निश्चय है कि निकट भविष्य में यह अपना प्रभाव मानव-समाज पर अंकित कर सकेगी।

सत्याग्रह

—विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

"अच्छा हो पंडितजी, यदि आप अपना नाम वापिस ले लें।"

"ऐसा कैसे हो सकता है, मेरे नादान दोस्त! ज़िम्मेदारी मुझे पुकार रही है, मैं पीछे हट सकूँगा भला ?"

"ज़िम्मेदारी की परिभाषा इतनी संकुचित न करो। पाँच-पाँच प्राणियों का बलिदान तुम्हारी ज़िम्मेदारी में छिपा है। इतनी क़ीमत न चुकाओ पंडितजी ! घर की ओर देखो, इनका बोझ किसके कन्धों पर छोड़कर जा रहे हो ! अभी ठहरो ! देश इतना बड़ा बलिदान नहीं चाहता।"

"मोह-वश तुम इस चित्र के दूसरे पहलू पर विचार नहीं कर रहे हो। मेरे पास रहने पर भी ये सब जायें, ऐसा भी तो हो सकता है ! हो सकता है कल सब स्वाहा हो जाये, और मेरी रीढ़ ऐसी टूटे, कि मैं फिर उठ भी न सकूँ। आखिर तो दुर्बल मानव ही ठहरा ! मुझे जाने दो मित्र !"

मैं निराश होकर लौट आया। सुन्दरलाल को न मना सका !

× × ×

"सुन्दर ! मेरा मन तो न जाने कैसा हो रहा है, दिल की धड़कन भी कुछ तेज़ है; क्या तू जायेगा ही ?"

"हाँ पिताजी, मुझे जाना ही चाहिए। मेरी तारीख़ तय हो चुकी है पिताजी ! मुझे जाना ही होगा। में जाऊँगा ही।"

पिता की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। सुन्दर ने मुँह फेर लिया, वह न रुका !

× × ×

"बेटा मुझे तो आज कुछ भी नहीं सूझता; बुद्धि मेरी काम नहीं कर रही है। ये बीमार पड़े हैं। दमा मेरा दम तोड़े डालता है। कौन देख-भाल करेगा बेटा !"

"भरोसा रखो मा, मा के करुण-क्रन्दन से ही तो आज मैं पागल हो उठा हूँ। आज मैं अपने कर्तव्य पर दृढ़ हूँ। माँ की पुकार व्यर्थ नहीं जा सकती।"

"बेटा, गरीबनी मा के आँसू क्या तू नहीं देख रहा है ? पिता की कराह क्या तुझे नहीं सुन पड़ रही है ?"

"युगों से बहते हुए मा के आँसू ही आज सुन्दर को अपने कर्तव्य की ओर ले जा रहे हैं, मा !"

मा सिसक-सिसककर रोने लगी। सुन्दर न डिगा !

× × ×

"पिताजी मरणासन्न हैं; माताजी का प्राण भी न जानें इस सूखे शरीर में कहाँ उलझा है, और मैं भी अपनी क्या कहूँ ?"

"मैं सब देख रहा हूँ शुभे ! पर कर्तव्य का पथ मुझे अधिक स्पष्ट दीख रहा है।"

"चाहते तो कुछ रोज की छुट्टी भी ले सकते थे। तारीख ही बदलवालो। ऐसे समय स्तीफ़ा भी तो दिया जा सकता है। ज़रा अपनी ज़िम्मेदारी भी देखो! मुन्नी का तेज़ बुख़ार भी अभी तक नहीं उतरा। और मोहन की पढ़ाई भी रुक जायेगी…"

"मोह-माया में फँसकर भी तो सब कुछ जा सकता है। मैं क्या रोक सकूँगा ? सभी छुट्टी लेंगे, सभी स्तीफा देंगे तो हो लिया काम ! ना-ना, मैं अवश्य जाऊँगा। मुझे जाना ही है। भगवान् तुम्हें बल दे; तुम सब सह सकोगी बलवन्ती !"

सुन्दर विचलित न हुआ। मित्र के तर्क थोथे साबित हुए। पिता और माता की ममता उसे न बाँध सकी। पत्नी का आर्द्र-कण्ठ उसे न पिघला सका।

× × ×

५ जनवरी को सत्याग्रह करके सुन्दर जेल चला ही गया। साथियों ने बीमारों की दशा पूछी। 'उसने अच्छा नहीं किया'—सुन्दर ने सुना। वह मुसकराकर रह गया।

× × ×

बीस दिन बाद जेल में सुन्दरलाल को मा का ख़त मिला। "बेटा, जो नहीं होना था वह होकर रहा। तुम्हारे पिता परसों रात हम अभागों को छोड़कर चले गये, सदा के लिए। तुम जमानत पर पन्द्रह दिन के लिए आ सकोगे ?"

सुन्दरलाल ने पत्र पढ़कर लौटा दिया। उसके चेहरे पर विषाद की एक रेखा तक नहीं

। साथी कैदियों ने देखा वह नित्य की भाँति र कैदियों को दूध और दवाइयाँ बाँट रहा है। ेल भर में सुन्दरलाल के पिता के देहान्त की ैल गयी। कोई रोया, किसीने सहानुभूति ाना छोड़ा। पर सुन्दरलाल ने न खाना छोड़ा र वह रोया ही। संध्या को 'वन्देमातरम्' के समय लोगों ने देखा— नित्य की भाँति ी ही लगन और तन्मयता के साथ सुन्दर ा का संचालन कर रहा है।

ार्थना के बाद साथियों ने कहा—"सुन्दर-! पन्द्रह दिन के लिए पैरोल पर घर इन्त- क़रने चले जाओ न।"

"लेकिन उससे क्या होगा? जो होना था ो हो ही चुका। और जो होना है होता रहे। ी बात से पीछे नहीं हट सकूँगा, जेलर के ुषिक व्यवहार का विरोध तो करना ही ा। मुझे कल से दूसरा क़दम जो उठाना है।"

× × ×

ुन्दरलाल की मा जेल पर अपने बेटे से े आयी है।

"सुन्दरलाल को बुला दो, मैं उसकी मा हूँ।"

"वह ऊपर है, आज उसका मुकदमा है, उसनें भूख-हड़ताल करके जेल का क़ानून तोड़ा है!"

"भूख-हड़ताल! मुक़दमा! बेटा मेरे!" माँ की आवाज़ भर्रायी हुई थी।

थोड़ी देर बाद सुन्दरलाल ऊपर से आकर बोला—"मा, अभी-अभी नौ महीने की सज़ा और बढ़ गयी है। में तुम्हारे दुःख में हाथ न बटा सका, मुझे दुःख है।"

'बेटा मेरे! जिसका बेटा तू है, मैं भी तो उसी की बेटी हूँ। मातृ-भूमि की पुकार निश्चय ही मेरी पुकार के आगे कुछ नहीं है। तू अपने कर्तव्य पर डटा है बेटा! मेरे लिए तो यही सुख-सौभाग्य है। आज में धन्य हुई!" माँ की आँखों में आँसू छलछला आये।

इतने ही में जेलर बोला—"तुम्हारे इण्टरव्यू का वक्त खत्म हो गया है सुन्दरलाल!" सूखी सी चार हड्डीवाले चेहरे पर की आँखें चमक उठीं। "मुझे ध्यान है" कहकर सत्याग्रही फाटक के अन्दर हो गया।

पार्लमेंट्री प्रवृत्ति से स्वराज्य नहीं आयेगा। साम्प्रदायिक समझौते होते हों तो भी उनके हार्दिक एकता या मेल न होने से वे बेकार होंगे। हार्दिक एकता के बिना देश में शान्ति होना ंभव है। यह एकता एक दूसरे की सेवा और सहयोग से ही आ सकती है।

'पृथक चुनाव' पद्धति से दिल फटे हैं क्योंकि उनके पीछे थी पारस्परिक अविश्वास और हित-ेष की भावना। इससे हमारे बीच भेद हुए और अविश्वास गहरा जमा।

तो यह उलझन सुलझे कैसे? मैं मानता हूँ कि धर्म के आधार पर मनुष्य मनुष्य में भेद ा निरी अनुचित बात है; क्योंकि धर्म तो बदल भी सकता है। भूमिकर, स्वास्थ्य, सफाई, ा, न्याय और सार्वजनिक संस्थाओं के उपयोग पर तो हिन्दू-मुसलिम विरोध होने ही क्यों लगा? ो धार्मिक रूढ़ि में होगा, रीति रिवाज में होगा। शासन का उसके साथ क्या नाता?

कांग्रेसी हिंदू को अगर दूसरे हिंदुओं से मिलकर अलग ही नहीं बन जाना है तो वह पृथक् वाली धारासभाएँ या स्थानिक संस्थाएँ छोड़ दे। कांग्रेसी हिंदू को तो अपने मुसलमान भाई ा कोई हित हो ही नहीं सकता। अगर मैं सब हिंदुओं को कांग्रेसी वृत्ति का बना सकूँ तो मैं स्थाओं से हर एक हिंदू को निकाल लूँ और मुसलमानों के ऊपर हिंदुओं की रक्षा का भार डालदूँ।

कांग्रेसियों में हिंदू ज्यादा हैं। उनके लिए यह सुवर्ण अवसर है कि अपना अहिंसक बल, निस्वार्थता और असांप्रदायिकता सिद्ध करें और बतादें कि वे अपने मुस्लिम देशभाइयों के ों में भी रह सकते हैं। ऐसा वे रूठकर नहीं, सच्चे राष्ट्रवादी और मुसलमानों के मित्र करें।

——मो० क० गांधी

अबोहर-सम्मेलन

: १ :

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अबोहर अधिवेशन के पहले हिन्दी-जगत अत्यन्त क्षुब्ध और चिन्तित था। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा-सम्बन्धी डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के प्रस्तावों के कारण काफी ग़लतफ़हमी फैल गयी थी और लोग समझते थे कि वर्धा के कार्यकर्त्ता राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति को सम्मेलन से अलग कर उसपर कब्ज़ा कर लेना चाहते हैं, ताकि वे 'हिन्दुस्तानी' का प्रचार कर सकें। वास्तव में हिन्दी जनता के यह विचार उचित नहीं थे। श्री राजेन्द्रबाबू के प्रस्ताव केवल राष्ट्रभाषा-प्रचार की सुविधा और स्थायित्व की दृष्टि से थे। अगर वर्धा से हिन्दी के बजाय 'हिन्दुस्तानी' के नाम पर उर्दू-प्रचार करने का प्रयत्न होता, तो राजेन्द्रबाबू इस बात को स्पष्ट कह देते। हमें इतना तो विश्वास रखना था कि राजेन्द्रबाबू-जैसे राष्ट्रीय नेता धोखा-धड़ी से कोई काम करना पसन्द नहीं करेंगे।

खैर, जब जनता में बहुत ग़लतफ़हमी फैल गयी, तो राजेन्द्रबाबू ने अपने दोनों प्रस्ताव वापिस ले लिये। इस प्रकार आम जनता की दृष्टि से अबोहर-सम्मेलन के सामने कोई विशेष चर्चा का विषय रह ही नहीं गया। लोग समझते थे कि अबोहर में अच्छा 'दंगल' रहेगा, चख-चख सुनने में मज़ा आयेगा। लेकिन उन्हें निराशा हुई, क्योंकि राजेन्द्रबाबू अखाड़े में उतरे ही नहीं। शायद इसीलिए अबोहर में प्रतिनिधियों की जितनी भीड़ लगनी चाहिए थी उतनी नहीं लगी।

× × ×

काका साहब कालेलकर भी अबोहर-सम्मेलन में शामिल हुए, यह अच्छा ही हुआ। उनके 'सर्वोदय' वाले लेख से लोगों में बहुत कटुता फैल गयी थी। यद्यपि श्री काका साहब के मूल विचार ठीक थे, उनकी लेख-शैली ही ज़रूरत से ज्यादा तीव्र थी; लेकिन एक ओर से जिन शब्दों में उनके लेख का उत्तर दिया गया वे अनुचित थे। हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक और पत्रकार बीसवीं सदी और सन् १९४१ में भी इस प्रकार की भाषा लिख सकते हैं, प्रत्येक हिन्दी-भाषी के लिए यह बड़े दुःख और आश्चर्य का विषय है। काका साहब इस अपमान को सहकर भी अबोहर गये और उन्होंने अपना दृष्टिकोण नम्रतापूर्वक समझाने की पूर्ण कोशिश की। इससे कटुता दूर हो गयी, वातावरण सुधर गया। विचारों में मतभेद भले ही रहगया हो, किन्तु मनोमालिन्य मिट गया।

× × ×

सम्मेलन के अध्यक्ष पं० अमरनाथ झा का भाषण विद्वत्तापूर्ण था। उन्होंने हिन्दी साहित्य और राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी सभी पहलुओं पर अपने विचार सुलझी भाषा में जनता के सामने रखे। कुछ लोगों का कहना था कि अध्यक्षीय भाषण ज़रा नीरस था। लेकिन आजकल की 'सरसता' के नाम पर बहुत-सी निस्सार बातें कही जाती हैं जिनका मूल्य अक्सर क्षणिक ही होता है। इसलिए झा साहब का भाषण सरस नहीं भी था तो उससे किसीका नुक़सान नहीं हुआ।

हाँ, पं० झा के भाषण में कुछ ऐसे विचार अवश्य हैं, जिनसे मैं सहमत नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, उन्होंने यह साबित करने की कोशिश की कि भारतीय विश्वविद्यालयों ने हिन्दी की पूर्ण सेवा की है; क्योंकि वर्तमान हिन्दी-सेवियों में से अधिकांश विश्वविद्यालयों में पढ़ चुके हैं। यह दलील बहुत पुरानी-सी है। अंग्रेज लोग भी इसी तरह हमेशा कहा करते हैं कि वर्तमान अंग्रेज़ी शिक्षण से हिन्दुस्तान को बहुत लाभ हुआ है, क्योंकि आजकल के सभी नेता अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे हैं। अंग्रेज़ी से जो फ़ायदा हुआ है वह किसीसे छिपा नहीं है। किन्तु अंग्रेज़ी शिक्षण-पद्धति के कारण ही लोग नेता बन सके, यह ग़लत विचार है। इसी तरह यदि विश्वविद्यालयों में पढ़े लोगों ने हिन्दी की सेवा की है तो इसमें विश्वविद्यालयों को अधिक श्रेय नहीं है। इन लोगों ने विश्वविद्यालयों के वातावरण को—

ग्रेज़ीमय हैं—झेलकर भी हिन्दी-सेवा की, आनन्द और संतोष का विषय है।

झा साहब ने सम्मेलन का कार्य बड़ी कुशसे चलाया। सम्मेलन को झा साहब जैसे कुशल, विद्वान् और हिन्दी-प्रेमी अध्यक्ष यह हर्ष की बात है।

× × ×

सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर विभिन्न परिषदें होती हैं उनका 'अभिनय' ही हुआ। इन परिषदों के लिए समय कम रहता है। इसलिए स्वागताध्यक्ष और क्ष के भाषणों के अलावा प्रायः और कुछ हो पाता। भाषण भी अकसर छपे हुए होते उन छपे भाषणों को स्वागताध्यक्ष और पढ़ते जायें और लोग अपनी-अपनी यों को हाथ में लेकर देखते जायें, इसमें किस दिलचस्पी आ सकती है? फलतः परिषदों कम लोग शामिल होते हैं। परिषदों के ओं का एक प्रकार से अपमान ही होता है। सम्मेलन इस ओर ध्यान दे तो अच्छा आगे से अधिवेशन के समय केवल दो परिषदें होनी चाहिएँ—'साहित्य-परिषद्' 'राष्ट्रभाषा-परिषद्'। साहित्य-परिषद् हिन्दीत्य-सम्मेलन का मुख्य अंग बननी चाहिए। में साहित्य की विभिन्न समस्याओं पर गंभीरताक विचार-विनिमय होना चाहिए। साहित्यद् के लिए पूरा एक दिन अवश्य मिलना ए।

सम्मेलन के खुले अधिवेशन में बहुत से प्रस्ताव हुए। प्रस्ताव ज्यादातर पंजाब में हिन्दी चित स्थान मिलने के ही सम्बन्ध में थे। भारतीय सम्मेलन के मंच पर से बहुत-से प्रस्ताव, जिनका सम्बन्ध किसी एक से ही हो, स्वीकृत होना कुछ शोभा नहीं। इस प्रकार के प्रस्ताव अगर राष्ट्रभाषाया साहित्य-परिषद् में स्वीकृत हुआ करें दा उचित होगा।

हर-सम्मेलन में सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव श्रद्धेय टंडनजी का था जिसमें उन्होंने 'हिन्दी', 'उर्दू' और 'हिन्दुस्तानी' शब्दों का स्पष्टीकरण किया और हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं का पारस्परिक सम्बन्ध बतलाया। प्रस्ताव का मुख्य अंग यह है—

"'हिन्दुस्तानी' या 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग मुख्यकर इसलिए हुआ करता है कि वह देशी शब्द-व्यवहार से प्रभावित हिन्दी-शैली तथा अरबी फारसी शब्द व्यवहार से प्रभावित उर्दू शैली दोनों का एक शब्द से एक समय में निर्देश करे। कांग्रेस, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी और कुछ गवर्नमेण्ट विभागों में इसी अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है और होता है। कुछ लोग इस शब्द का प्रयोग उस प्रकार की भाषा के लिए भी करते हैं जिसमें हिंदी और उर्दू शैलियों का मिश्रण हो।

इस प्रकार निश्चित अर्थों में उर्दू और हिन्दुस्तानी शब्दों का प्रचलन है। इस विषय में सम्मेलन का कोई विरोध नहीं है। किन्तु सम्मेलन साहित्यिक तथा राष्ट्रीय दोनों दृष्टियों से अपने और अपनी समितियों के काम में हिन्दी शैली का और उसके लिए हिन्दी शब्द का ही व्यवहार और प्रचार करता है।"

प्रस्ताव में कई बातों का स्पष्टीकरण होगया है। 'हिन्दुस्तानी' की, जिसको कांग्रेस ने राष्ट्रभाषा कहा है, दो शैलियाँ हैं—हिन्दी और उर्दू। सम्मेलन हिन्दी-शैली का प्रचार करता है क्योंकि वह प्रांतीय भाषाओं के अधिक नज़दीक है। प्रान्तीय भाषाओं को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी बोलते हैं। इसलिए हिन्दी-शैली के प्रचार में साम्प्रदायिकता का भाव आ ही नहीं सकता। हिन्दी में अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी और प्रांतीय भाषाओं के भी शब्द आयेंगे और उनका बहिष्कार करना सम्मेलन घातक मानता है। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि आज की साहित्यिक उर्दू-शैली हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती, क्योंकि वह प्रान्तीय भाषाओं से बहुत दूर है। लेकिन जो उर्दू का प्रचार राष्ट्रभाषा के तौर पर करते हैं, खुशी से करें। सम्मेलन उनका विरोध नहीं

करता। हाँ, जहाँ मातृभाषा हिन्दी को दबाकर राजसत्ता के बल पर उर्दू का प्रचार किया जा रहा है वह अवश्य निन्दनीय है। उर्दू से हमें घृणा नहीं है, न हो सकती है। वह भी हिंदुस्तान की एक भाषा-शैली बन गयी है जिसमें अच्छा साहित्य है। लेकिन हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है, यह उर्दू के हिमायतियों को क़बूल करना चाहिए। दुर्भाग्य से हिन्दी और उर्दू का प्रश्न साम्प्रदायिक बना दिया गया है। लेकिन भाषा के सवाल में राजनीति नहीं आनी चाहिए। शुद्ध वैज्ञानिक व शास्त्रीय दृष्टि से अगर राष्ट्रभाषा का मसला हल किया जाये तो हिन्दी-शैली ही स्वीकार की जा सकेगी। इसमें मुसलमान भाइयों को बुरा मानने का कोई कारण नहीं है। हिन्दी नाम भी तो उन्हींका दिया हुआ है।

अबोहर-सम्मेलन में पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी भी बहुत वर्षों बाद शरीक हुए, यह खुशी की बात हुई। उन्होंने हिन्दी की बहुत सेवा की है। आज भी वे बुन्देलखण्ड में सांस्कृतिक रचनात्मक काम कर रहे हैं। पं० माखनलाल चतुर्वेदी, श्री जैनेन्द्रकुमार और पं० सोहनलाल द्विवेदी की उपस्थिति ने भी सम्मेलन के अधिवेशन को सफल बनाने में सहायता दी। कविवर माखनलालजी के भाषणों को सुनकर कौन आह्लादित न होगा! सम्मेलन में उनके कई भाषण बहुत ही मार्मिक और सुन्दर रहे।

× × ×

अबोहर पंजाब की एक छोटी मण्डी है। एक अखिल भारतीय सम्मेलन के अधिवेशन का वहाँ समुचित प्रबन्ध करना कठिन था। स्वागत-समिति को समय भी बहुत थोड़ा ही मिला। फिर भी प्रबन्ध साधारण ठीक था। किन्तु यह मानना होगा कि अगर थोड़ा अधिक ध्यान दिया जाता तो प्रबन्ध ज्यादा अच्छा हो सकता था। नहाने-धोने और भोजन की व्यवस्था ठीक न होने के कारण प्रतिनिधियों को काफ़ी कष्ट उठाना पड़ा। किन्तु पंजाबी भाइयों के प्रेम और अतिथि-सत्कार-भावना को देखकर हमें अपनी सारी कठिनाइयाँ भूल जानी पड़ीं। स्वामी केशवानन्दजी की हिन्दी-सेवा और उनके 'साहित्य-सदन' को प्रत्यक्ष रूप में देखकर किसको आनन्द न हुआ होगा। उन्होंने जिस त्याग और लगन से कार्य किया है वह सचमुच अनुकरणीय है। 'दीपक' के सम्पादक श्री तेगरामजी और श्री बंसीधरजी की भी ठोस सेवा सराहनीय है। स्वामी केशवानन्द जी और उनके सहयोगियों नें अपना कार्य आस-पास के ग्रामों में भी खूब फलाया है। इसलिए अबोहर-सम्मेलन में गाँवों के काफ़ी लोग शरीक हुए और कार्रवाई में पूरी दिलचस्पी दिखलायी। ग्रामीणों का भाग लेना सम्मेलन में एक नयी और आशाप्रद घटना समझना चाहिए। ग्रामों से सम्पर्क बढ़ाये बिना कोई भी राष्ट्रीय आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। हिन्दी-प्रचार की ओर अब गाँवों का भी ध्यान आकर्षित हो रहा है। यह संतोष की बात है।

अगला अधिवेशन भी पंजाब में ही होगा। आशा है सम्मेलन के अधिवेशनों के कारण पंजाब में हिन्दी की दयनीय दशा कुछ सुधर जायेगी।

अबोहर और उसके बाद? : २ :

—जैनेन्द्रकुमार

प्रिय सम्पादकजी

खयाल न था कि अबोहर जाना होगा। बल्कि तय था कि नहीं जाना होगा। पर होती होनहार है। आदमी की मनचीती ही हुआ करे तो विधाता के लिए क्या शेष रह जाय? बनारसीदासजी अपने भरे-पूरे साहित्यिक परिवार के साथ अबोहर की राह में दिल्ली टिके थे। अपने वेग में हम जैसों को उखाड़ते न चलें तो बनारसीदासजी क्या? सो अगले दिन गाड़ी के ऐन समय देखता हूँ कि उनके साथ ताँगे पर सामान जा रहा है और एक

में जा रहा हूँ ।

म्मेलन के बारे में मैंने 'जीवन-साहित्य' में खा ही था । मेरे विचारों की दिशा वही म्मेलन को अगर 'हिन्दी' का और 'साहित्य' और सचमुच का 'सम्मेलन' होना है तो उसे और 'साहित्य' और 'सम्मेलनत्व' (लोक-के प्रतिनिधित्व) के प्रति दृढ़प्रतिज्ञ रहना । इस समय तो वह बात नहीं है । राष्ट्रभाषा चार की वृत्ति का उसपर बहुत दबाव है उसका सम्मेलनत्व भी नीति से अधिक की प्रधानता के कारण किंचित् संदिग्ध है । न हो सकता है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार और साहित्य क्या विरोधी बातें हैं ? नहीं, धी तो नहीं हैं, पर भिन्न तो वे हैं । सम्मेलन का आकलन कर सकता है । पर उन दोनों सर में उलझने देकर सम्मेलन दोनों के और अपने प्रति अन्याय करने का ही भागी ता है । सम्मेलन के पिछले पाँच अधिवेशनों बात अनुभव से मैं कह सकता हूँ । हिंदी राष्ट्रभाषा तथा साहित्य और प्रचार इनके जस्य की व्यर्थता और कटुता का प्रदर्शन का इतिहास रहा है । समय बर्बाद गया है र्मी भड़की है । दूर-दूर के लोग आये हैं नकी शक्तियों का कोई उपयोग नहीं हुआ क्ति बिखरी पड़ी है और सम्मेलन के अधि-पर वह एकत्रित भी होती है, पर कोई की कल्पना नहीं जो उसे ऐक्य में ढालकर का रूप दे ।

जेन्द्रबाबू का प्रस्ताव सम्मेलन के आगे हीं हुआ । वह आ नहीं सकते थे इससे ले लिया गया । वह प्रस्ताव मेरी सम्मति न था । सही वह हो सकता था यदि टण्डनजी हार्दिक भाव से उसके प्रस्तावक प्रस्ताव की रू से जिनको अधिकार मिल वे नहीं, बल्कि जिनकी ओर से मिल रहा ही उसके प्रस्तावक होने चाहिएँ ।

किन उससे यह उजागर सचाई ओट में चाहिए कि सम्मेलन जितना खुलकर और जमकर हिन्दी का होकर काम करेगा उतना वह सबल और सार्थक होगा । हिन्दी पर जोर देने से हो सकता है कि कुछ की निगाह में उसकी अखिल भारतीयता असिद्ध ठहरे । लेकिन अखिल भारतीयता का मोह असली काम को दाबकर क़ागजी काम को बढ़ाता हुआ देखा जाता है । सच्ची अखिलता आत्मा में रहती है । शरीर अखिल बन सकता तो शरीर न होता । यानी अपनी भौगोलिक सीमाएँ बड़ी बताकर कोई बड़ा नहीं बन सकता; जबकि एक व्यक्ति या समिति या संघ, कितने भी परिमित क्षेत्र में सही, सच्ची सेवाभावना से काम करके अखिलता का अर्जन करता है । नहीं तो क्या बात है कि एक संत, जो ड़-धूप के नाम बस अपनी कुटिया से बाहर नहीं जाता, दुनियाभर का समझा जाता है और दुनिया उसे अपना समझती है ?

इसलिए अखिल भारतीयता अपने आप में भ्रम है । उसका दावा थोथी महत्त्वाकांक्षा हो सकती है । हिन्दी का होकर उसी कारण सम्मेलन अखिल भारतीयता से गिर नहीं जाता । हाँ, असाहित्यिक होकर जरूर वह अखिलता क्या सच्ची प्रान्तीयता से भी गिर जाता है । असाहित्यिक दृष्टि अधिकार की छीन-झपट की दृष्टि है । साहित्य की दृष्टि संस्कृति यानी निरभिमान सेवा की है ।

यह समझना भारी मोह है कि हिन्दी-साहित्य की दिशा में अपनी सब या प्रधान शक्तियों को लगाकर सम्मेलन अपने को ह्रस्व कर लेगा । प्रचार के बल पर जो बड़प्पन आता है उसकी असलियत और स्थायित्व दैनिक अखबारों के विज्ञापन के मानिन्द है । उससे धन यानी माया बटोरी जाती है । पर उसीसे सच्चे जीवन का ह्रास होता है । जो अपना अंग यानी दास नहीं, वह धन परिग्रह है । वह व्यक्ति के विकास में बाधा है । इसी तरह सम्मेलन की व्यापकता जरूरी तौर पर उसका बल नहीं है । बल्कि कौन जाने वह परिग्रह हो ।

लेकिन मैं बहका । राजेन्द्रबाबू के प्रस्ताव

के अर्थ में कोई खोट न थी । बल्कि पिछले ५–७ वर्षों का सम्मेलन का इतिहास बताता है कि वही एक उपाय है। राष्ट्रभाषा हवा में नहीं रह सकती । तय है कि हिन्दुस्तान के लिए कोई राष्ट्रभाषा हो सकती है तो वह जो उत्तर भारत में आम तौर पर बोली जाती है । इसलिए नहीं कि उत्तर भारत में बोली जाती है, बल्कि इसलिए कि दक्षिण और शेष भारत में भी समझी जाती है । दूसरी और हमारे पास क्या है ?

उस राष्ट्रभाषा को हिन्दी कहते हो तो सच कहते हो । पर सकुचे दिल से कहते हो तो झूठ कहते हो। हिन्दी यदि वह है जो अखण्ड भारत-राष्ट्र के किसी अंग को, यानी उस अंग की भाषा को, अकृत्रिम भाव से अपने में पचाने से बचती और डरती है तो कृपया वह कुछ हो, अत्यन्त शुद्ध वस्तु वह हो, पर, राष्ट्रभाषा वह नहीं है । हिन्दी को ठेठ रखने की ज़िद हिन्दुस्तानी शब्द के आविष्कार के मूल में है। अगर हिन्दुस्तान वह है जिसमें मैं भी हूँ और तुम भी हो तो वह हिन्दी जो मेरी है और तुम्हारी नहीं है हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। 'अरे भाई, तुम अपनी भाषा को उर्दू कहते हो ? ठीक है, मेरी हिन्दी उससे पराई नहीं है ।' इस मनोवृत्ति के बिना हम राष्ट्रभाषा के विस्तार और सँवार में कुछ भाग नहीं ले सकते ।

लेकिन साफ़ है कि अखण्ड राष्ट्र की अखंड निष्ठा दुर्लभ है। हम विभक्त जीवन जीते हैं। अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी की कृपा। हिन्दी का मुँह पूरब को है तो उर्दू का पच्छिम को। पर किनारे दो हों और उनमें फ़ासला हो, बीच की धारा को जीवित रखने में तो दोनों ही जरूरी हैं । एक ही किनारा जिसका हो ऐसी जीवित वस्तु दुनिया में कहीं कोई नहीं । इसलिए किसी किनारे को तोड़ने की ज़िद नहीं हो सकती । पर जहाँ मझधार है वहाँ किनारे की क्या बिसात ? हिन्दी और उर्दू दो हैं, इसको साबित करने के लिए किसी तर्क की जरूरत नहीं । पीठ और छाती क्या दो नहीं है ? लेकिन वे दोनों अपनी दुई को सहते रह सकते हैं, क्योंकि दोनों के बीच, जैसे कि उनके संरक्षण में, हृदय है जो कि दोनों का एक इष्ट है । पीठ और छाती दोनों की ही सत्ता इसलिए है कि वे अपने भीतर के न दीखनेवाले दिल और फेफड़े पर किसी तरह का आघात न होने दें ।

पर यह दीख क्या रहा है ? दिल और फेफड़े की तरफ अपना दायित्व भूलकर पीठ और छाती क्या अपनी-अपनी अस्मिता में भूलकर आपस में झगड़ा मचाना चाह रहे हैं ? भाषा थी इसलिए कि वह भावना का वहन करे । भावना है इसलिए कि खण्ड अपने को अखण्डता की अनुभूति में लीन कर सके । युग-युग के इसी प्रयास में मानव को जन्म मिला और मानव ने संस्कृति को जन्म दिया । आज क्या ये भाषाएँ संस्कृति से अपना पल्ला छुड़ाकर अपनी-अपनी अलहदगी को ही स्वतन्त्र सत्य मानकर एक-दूसरे को नोचना चाहती हैं ? ऐसे तो राष्ट्र का निर्माण नहीं उसकी मृत्यु ही हो सकती है। भाषा का हृदय है साहित्य। कौन कहता है कि प्रस्ताव से या सरकार से कोई भाषा बनी या बिगड़ी। जिन्होंने अपने समूचे मर्म को वाणी मे उँडेलकर रख दिया है सदा उन्होंने ही भाषा को बनाया है । कोई सरकारी टैक्स्ट बुक रामायण जितनी नहीं बिकी, न बिक सकेगी । अवधी बोली तुलसीदास के स्पर्श से भारतभर की भाषाओं की नसों में प्रचार पा गयी । अवध प्रान्त का प्रान्त-प्रेमी नवाब लाख फौज इस्तेमाल करके क्या अपने यहाँ की भाषा का कुछ भी प्रचार कर सकता था ? पर तुलसीदास को क्या अपनी भाषा का पता था ? नहीं, वह तो निपट रामभक्त थे ।

इसीसे निश्चित विश्वास के साथ में मानता हूँ कि सच्चे साहित्य से उसकी भाषा का सच्चा प्रचार होता है और हिन्दी-प्रचार के हित में यदि सम्मेलन सर्वाधिक उपयोगी काम करना चाहता है तो उसे रचनात्मक दिशा में साहित्यिक काम करने की ओर प्रवृत्त होना होगा ।

राष्ट्रभाषा ? हैं हमारे देश में कुछ ऐसे लोग जो सामयिक सब प्रश्नों को अखण्ड राष्ट्र की

और दृष्टि से देखते हैं । दे दो राष्ट्रभाषा नके हाथ में । जो हमारा है वह केवल आत्मा के बल से ही हमारा हो सकता न्यथा वह परिग्रह है । सम्मेलन के लिए भाषा का प्रश्न परिग्रह हो रहा है । हिन्दी पर उससे दबाव पड़ रहा है । सम्मेलन कार्य हो रहा है । यदि वह अपनें हिन्दी-में सचेत होना चाहता है तो उसे अपने से परधर्म से छुटकारा पा लेना चाहिए । शक्ति है वहींतक कर्तव्य है । जहाँ कर्तव्य की पहुँच नहीं है वहाँकी चिन्ता चित नहीं है । राष्ट्रभाषा की चिन्ता से न को दुबला नहीं होना चाहिए । उसे रहना चाहिए कि हिन्दी से छूटकर सरकार, कोई कांग्रेस किसी भाषा को सच्चे में राष्ट्रभाषा नहीं बना सकती । और इस सर्वांश में हिन्दी का बन रहकर सम्मेलन भाषा को हिन्दी के अधिक-से-अधिक निकट बल्कि हिन्दी ही बनाये रखने, की दिशा में क सफल हो सकता है ।

र, इन भावनाओं को लेकर मुझे क्या करना -अबोहर पहुँचते ही मैं इस सोच में पड़ा । लाऊँ ? प्रतिनिधियों से मिलकर आन्दोलन या एक बार खुलकर किसी तरह अपनी कह डालूँ और बस ?

र श्रीमन्जी मुझे कहते थे कि इन महीनों में जो बेचैनी रही वह क्या यों इस बारे में सम्मेलन को क्या कुछ नहीं करना है ? यहाँ तो यही दीखता है कि शान्ति है । इस अत्रसन्न प्रतीक्षा के बीच जी का प्रस्ताव आया । महत्त्व का था शायद पीछे आया । शाम को सुना भर गया । विचार के लिए विषय-निर्वाचिनी की बैठक रखी गयी । यह बड़ी शुभ बात अगले दिन प्रस्ताव की छपी प्रतियाँ विषय-नी के हाथों में थीं । उस अगले दिन के और पिछले दिन के सुनाये गये प्रस्ताव में एक संक्षिप्त और अत्यन्त शुभ अन्तर था । उसकी ओर कदाचित् किसी का ध्यान नहीं गया । सद्भाग्य सब सहज स्वीकार करते हैं, याद चोट की रहती है । मानता हूँ कि मैं कोई गोपनीय बात नहीं खोल रहा हूँ । पर यदि वह गुह्य हो तो भी जानी जाने लायक है ।

प्रस्ताव सुनाया गया तब जहाँ उसमें हिन्दी और उर्दू शैलियों का उल्लेख है वहाँ उर्दू के लिए था कि वह विकृत शैली है । प्रस्ताव की छपी प्रति में 'विकृत' शब्द न रहा । प्रस्ताव के प्रस्तावक टंडनजी की ओर से तो वह शब्द आया था, वापस खिच गया तो उसका सब श्रेय टंडनजी को देने में कठिनाई है । उनकी कृपा कि पुनर्विचार में उन्होंने उस शब्द को गिर जाने दिया । पर मेरे लिए उसके गिर जाने से उसका आना कुछ अधिक ही अर्थपूर्ण है ।

प्रस्ताव ध्यान से पढ़ने योग्य है । वह उर्दू और हिन्दुस्तानी शैली और शब्दों के हिन्दी से अलग प्रचलन को पहचानता है । पहले शब्द थे 'स्वीकार करता है'; पर लोगों ने कहा कि स्वीकार में क्या समर्थन भी नहीं आ जाता ? सो अंत में यह 'स्वीकार' वहाँ से हट गया । अब एक वाक्य है : 'इस विषय में सम्मेलन का कोई विरोध नहीं है ।'

मेरी कल्पना है कि विरोध न होने सम्बन्धी उस एक वाक्य के सहारे यह आशा टंड़नजी के मन में विश्वास बनी हुई है कि गांधीजी जिस समभाव को अपने जीवन में धार्मिक नियम बनाकर पालते हैं, वही समभाव गांधीजी को इस प्रस्ताव में दीख सके या दिखाया जा सकेगा । इस तरह गांधीजी का पृष्ठबल सम्मेलन को प्राप्त रहेगा ।

मैंने प्रस्ताव का विरोध किया । विरोध तो किया, पर अपने से बाहर जहाँ कहीं विरोध देखा उसे शांत भी किया । निस्सन्देह अपने भाषण में मैंने कहा कि जो 'हिन्दी ही' को राष्ट्रभाषा मानने के सम्बन्ध में स्पष्ट और आग्रही हैं या उस 'हिन्दुस्तानी' को राष्ट्र-भाषा मानना चाहते हैं जिसकी व्याख्या स्वयं प्रस्ताव की तीसरी कलम में है—वे दोनों ही अपने प्रति पूरे ईमानदार

रहना चाहें तो इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकते हैं। प्रस्ताव के हृदय में समन्वय नहीं है, उसकी भाषा में संकट टालने की लाचार इच्छा के कारण एक समझौता भर है।

पर असल में मेरा विरोध इस आधार पर था कि वह प्रस्ताव वहाँ उपस्थित लोकमत की मनस्थिति को सही व्यक्त नहीं करता है। इस दृष्टि से उसमें असत्य है। वह प्रतिनिधि-वर्ग के स्वेच्छित विचार-निर्णय का परिणाम नहीं है। इस तरह वह सामयिक सुविधा करता प्रतीत होता हो, पर असल में वह सम्मेलन की शक्ति को बढ़ानेवाला नहीं हो सकता। प्रत्युत वह सम्मेलन की अशक्ति की गाँठ (Complex) को ही कुछ झलकाता और एक तरह कायम करता है। मेरा पक्का विश्वास है कि वह अपनी पूछ में और-और व्याख्याओं को उपजाने का कारण बनेगा। धुएँ को चीरकर प्रकाश दे सकनेवाला वह हो ही नहीं सकता। हिन्दी के भारी लोकमत को मार्गदर्शन सीधी-साफ बात दे सकती है। चतुराई केवल काम ही चला सकती है। प्रस्ताव में सत्य नीति का बल नहीं है। अधिक से अधिक लोकनीति का उसमें किंचित् समावेश मान सकते हैं। पर क्या आज सन् '४२ में यह साबित करने की बात है कि सत्य नीति से टूटकर लोकनीति सदा अपने लिए संकट ही बुला सकी है ?

अबोहर हुआ। वह तो अधिवेशन था। सम्मेलन स्थायी संस्था है। स्थायी है यानी गतिशील है अपने अतीत से बँधा वह नहीं रह सकता। भविष्य उन्हीका है जो अतीत बनते जाते हुए प्रत्येक वर्तमान के पल के लिए न रोकर भविष्य की ओर से चली आती हुई अपरीक्षित घड़ियों का आह्वान कर सकते हैं; जिनके लिए कृतकर्म कोई बंधन नहीं छोड़ जाता और जो अपने व्यवहार को प्रचलित व्यवहार-नीति से जकड़ नहीं देते प्रत्युत उसे आदर्श नीति में निष्ठा रखकर ऊपर उठा पाते हैं।

सम्मेलन जो नहीं कर सका वह आगे भी नहीं कर सकेगा, यह नास्तिक ही मान सकता है। संदेहशील होना कमजोर होना है। अविश्वास आत्मविश्वास की त्रुटि का द्योतक है। हर पल सम्मेलन के सामने अवसर है कि वह अपने स्वधर्म को पहचान ले और उसमें अधिष्ठित हो जाये। 'हिन्दी-साहित्य' यह उसके नाम की पहली शर्त है। यानी यही उसके स्वधर्म की अंतिम सीमा है। और 'सम्मेलन' में यह भाव है कि जाग्रत लोकमत ही उसका संचालन करे, व्यक्ति मात्र माध्यम हो। वह सम्मेलन नहीं जिसका हर प्रतिनिधि अपने अपने क्षेत्र में नेता न हो। नेता वही जो सेवक है। और लोकमत का गहरा और हार्दिक विश्वास जिसने सम्पादन नहीं किया है, वह वाक्चातुर्य या हठाग्रह से यदि किसी सम्मेलन का संचालन कर पाता है तो उसका यही अर्थ है कि उसका सम्मेलनत्व संदिग्ध है। और ऐसी वस्तु किसी भाषा, किसी साहित्य अथवा किसी लक्ष्य की सेवा नहीं कर सकती। अस्मिता गिरने के लिए होती है। एक व्यक्ति की अस्मिता के पीछे एक राष्ट्र का अन्धानुसरण चाहे हो वह उसी कारण स्पृहणीय नहीं होता। काल सबका कलेवा कर जाता है। इसलिए लोक-संचालन की नीति सत्यनीति से भिन्न होकर कुछ हो ही नहीं सकती। आज तो हम लोक-जाग्रति चाहते हैं। वह सबके ऊपर होकर नहीं, सबके नीचे ही बनकर हम कर सकते हैं। कार्य-संचालन की उस नीति का नाम सेवा है। महत्त्वाकांक्षा उससे उल्टी वस्तु है। महत्त्वाकांक्षा में अधिकार की चाह है, सेवा में अधिकार एक परिग्रह है जो जीवन के साथ यद्यपि लगा तो है, फिर भी जो आत्मसिद्धि में बाधा है।

बस, इतने लम्बे पत्र से आपको सताकर मैं अब क्षमा चाहता हूँ।

विनीत
जैनेन्द्रकुमार

स्वास्थ्य की बातें

[आज के रोगी मानव के लिए स्वास्थ्य-रक्षा ही आवश्यक वस्तु है। यह स्तम्भ स्वास्थ्य-के लिए रखा गया है। —सम्पादक]

प्र०—मेरा पेट कुछ बढ़ रहा है और सीना रहा है। कृपाकर कोई उपाय बताएँ।

—एम० एल० टेकरीवाल, गोरखपुर

उ०—आप नित्य कुछ व्यायाम करें और दो-मील टहलें भी। भोजन की मात्रा में भी कीजिए। यदि आप रोज पाँच-सात मिनट पंजों के बल टहलें तो पेट बहुत जल्द घट गा। यदि तीन-चार मिनट तक हाथों और के सहारे चला जा सके तो बहुत ही शीघ्र होगा।

प्र०—मेरी उम्र ५५ साल की है। मैं वर्षों फीम खाता हूँ। इस समय आमदनी इतनी है कि बच्चों के लिए खाना जुटाना भी र हो गया है। इससे निजात दिला सकेंगे?

—शाकिरअली, गोंडा

उ०—जितनी अफीम आप खाते हैं उसे इतने ी में घोल डालें जितना सौ भिगोये चने न कर सके। आप रोज इस तरह चने ोइए और रोज एक-एक चना कम खाइए। तरह आप सौ दिन में इस मर्ज से छुटकारा जायेंगे। चनों को खूब चबा-चबाकर खाइए। से आपको कब्ज रहता होगा तो वह भी चला गा।

प्र०—क्या कोई ऐसी तरकीब है जिससे ाम का बार-बार होना बन्द हो जाये ?

--गणेश पांडे 'विशिष', गौरी बाजार

उ०—इस बार आपको जब जुकाम हो तो तीन दिन तक आराम कीजिए और नाक का गरम दूध पीकर न रोकिए। अच्छा होगा आप एक-दो दिन कुछ न खायें, केवल पालक, टर, मूली, शलजम, चुकन्दर, गाजर वगैरा सूप[1] बनाकर सवेरे, दोपहर, शाम और सोते वक्त एक-एक गिलास जरूर पीएँ। इससे जुकाम तेजी से बहकर निकल जायेगा और पेट भी साफ़ होता रहेगा। इस प्रकार जुकाम निकल जाने के बाद यदि आप अपने भोजन में हरी तरकारियों और ताजे फलों को ज्यादा स्थान दें तथा नित्य कुछ-न-कुछ कसरत करते रहें तो फिर जुकाम आपको नहीं होगा या होगा भी तो बहुत कम।

प्र०—मेरे शरीर में हलकी-हलकी खुजली चला करती है और त्वचा सूखी रहती है। जाड़े में तो यह खुश्की और भी बढ़ जाती है और कभी-कभी बदन खुजाते ही रात बीतती है।

—देवीप्रसाद, झुंझनूं

उ०——आप नित्य सवेरे नहाने के पहले अपने शरीर को हथेली से खूब रगड़िए। पीठ को मोटे तौलिये से रगड़ा जा सकता है। इस क्रिया में पाँच-सात मिनट जरूर लगाना चाहिए। शरीर रगड़ डालने के बाद ठंडे पानी से स्नान कीजिए और फिर बदन को तौलिये से सुखाने के बजाय हाथों से रगड़कर ही सुखाइए। इससे आपको बहुत लाभ होगा। यदि आपने यह स्नान दो सप्ताह भी किया तो आपकी त्वचा की रंगत ही बदल जायेगी। खुश्की के बजाय उसपर कोमलता छा जायेगी। भोजन तो आपका सादा होना ही चाहिए पर यदि आप गाजर का भी सेवन कर सकें तो लाभ शीघ्र होगा। गाजर कच्ची ही खानी चाहिए। गाजर में त्वचा के रोग खोने की अद्भुत शक्ति है। दूध और गाजर खाने से कई रोगियों की पुरानी खाज तक दूर हो गयी है। इसका नाश्ते के तौर पर प्रयोग किया जाये तो ज्यादा ठीक होगा।

आरोग्य मन्दिर,
गोरखपुर
विट्ठलदास मोदी

---

[1] तरकारियों को काटकर थोड़े-से पानी के हलकी आँच पर पतीली में पकाने के बाद जो रस कपड़े में छानने से निकलता है उसे सूप कहते हैं। इसमें नीबू का रस निचोड़कर उसे अधिक स्वादिष्ट और लाभदायक बनाया जा सकता है।

प्रस्तुत प्रश्न

साहित्य की कुछ समस्याएँ

जन-साहित्य की रूपरेखा

हमारे जन-साहित्य की रूप-रेखा क्या हो ? (१) क्या जन-साहित्य वह है जिसकी रचना जनसाधारण द्वारा की जाये ? (२) अथवा यह कि रचित वह चाहे जिस समुदाय द्वारा हो, किन्तु उसका ध्येय ऐसी शासन-व्यवस्था का समर्थन होना चाहिए, जिसमें पूँजीपति सत्ताधारियों की अपेक्षा श्रमजीवियों के अधिकारों का अधिक पोषण सम्भव हो। (३) अथवा उस साहित्य में कुछ ऐसी संजीवनी शक्ति हो कि एक ओर से वह जन-साधारण की भावधाराओं का पोषण करनेवाली हो, तो दूसरी ओर अखिल मानवता के उत्पीड़न और जागरण पर भी प्रकाश डालती हो।

प्रथम प्रकार के साहित्य के सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई यह होगी कि जन-साधारण के द्वारा जो साहित्य आयेगा, उसका बौद्धिक धरातल बहुत निम्न कोटि का होगा। यह ठीक है कि प्रतिभा वर्ग की चेरी नहीं है। वह निम्नवर्ग में भी हो सकती है। किन्तु जन-साधारण के ज्ञान और चिन्तन का स्तर प्राय: उतना उच्च नहीं होता जितने की अपेक्षा, साहित्य के विकास के लिए, अनिवार्य होती है

द्वितीय प्रकार के साहित्य का उद्देश्य वर्ग-संघर्ष है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार के राष्ट्रीय नवनिर्माण की ओर हमारी दृष्टि आज उन्मुख है, वर्ग-चेतना उसके लिए अनिवार्य्य है। किंतु यहाँ विचारणीय यह है कि ज्ञान और प्रतिभा, विवेक और भावोच्छ्वास के समन्वय के लिए वर्ग-संघर्ष, आज की परिस्थिति देखते हुए, हमारे साहित्य के लिए युक्तिसंगत कहाँ तक है ? यहाँ यह भी स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि नैतिक आलोक और बौद्धिक विकास के क्षेत्र पर केवल वर्ग-संघर्ष को अधिकृत कर देना साहित्य के स्वतंत्र प्रतिष्ठान के लिए सदा हितकर नहीं होता। समाज का अन्तिम विकसित रूप वह होगा, जिसमें वर्ग-विभेद का लोप हो जायेगा। तब तो समस्त समाज ही एक वर्ग हो जायेगा। इसके सिवा क्या निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि इस वर्ग-भेद की उत्पत्ति समाज की उस अव्यवस्था ने की है जो उसमें असमान वितरण की पोषक रही है ? और सम्पूर्ण साहित्य को इस सीमा में घेर देने का अर्थ न साहित्य का विकास हो सकता है, न राष्ट्र की नवचेतना।

किन्तु थोड़ी देर के लिए हम यह मान भी लें कि जन-साधारण में वर्ग-संघर्ष उत्पन्न करना समाज के नवनिर्माण के लिए परमावश्यक है। परन्तु तब इस विषय की एक दूसरी दिशा भी हमें देखनी होगी। क्या इस समय हमारे राष्ट्र की ऐसी परिस्थिति है कि वर्ग-संघर्ष के द्वारा उसमें गृह-युद्ध का विष फैलाया जाये ? जो राष्ट्र स्वाधीन नहीं है, क्या उसकी यह पहली आवश्यकता है कि गृह-युद्ध की महामारी से वह अपने आपको जर्जर कर डाले ? इस दिशा में, वर्तमान परिस्थिति में, स्पष्ट रूप से में एक भ्रान्ति देखता हूँ। हमें तो इस समय वास्तव में ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो (१) हमारी सामूहिक ज्ञान-पिपासा को शान्त करे, (२) उन दुर्बलताओं पर प्रकाश डाले, जिन्होंने हमारे सामाजिक संगठन को शक्तिहीन और जर्जर कर रखा है। और (३) हमारी उन मानसिक विकृतियों को दूर करे, जो समाज के स्वस्थ जीवन के लिए आज प्राणघातक और आर्थिक परिपोषण के लिए विनाशात्मक हो रही हैं।

तीसरे प्रकार के साहित्य के लिए काल और युग का कोई बन्धन नहीं हो सकता। वह सदा रचा गया है और रचा जायेगा।

प्रगतिवाद

हमारे कुछ प्रगति-समीक्षक बन्धु वर्ग-संघर्ष के नाम पर उस साहित्यिक समुदाय के प्रति आज

हो उठे हैं, जिनके साथ उनका मतभेद तो यह प्रवृत्ति विदेशीय है और उसकी हमारे वे बन्धु यहाँ उस परिस्थिति में हैं, जो उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से भिन्न है। दूसरे इस समय वह हमारे देश कल्याणकर भी नहीं है। जिस राष्ट्र समय विदेशी शासन की दासता से होना है, उसके भीतर साहित्यिक समुदाय नात्मक एकता का नाश करनेवाली इस फैलाना राष्ट्र की स्वतंत्रता के मार्ग को करता नहीं तो और क्या है? हमारे वादी होने का यह अर्थ तो नहीं है कि जो वादी नहीं हैं, हम कहें कि वे साहित्यकार हैं या उनके प्रति ऐसा ढंग बना लें, जैसे नहीं हैं। यह एक विकृति है और इसका करण होना ही चाहिए।

साहित्य में प्रगति का आकलन केवल वर्ग-आर्थिक समस्याओं पर सीमित नहीं होना । मनुष्य-जीवन के नाना रूपों और उसकी कार्य-प्रणालियों पर एकमात्र आर्थिक नता का ही प्रभाव है, यह बात नहीं है। हमें यह भी पड़ेगा कि (१) समाज के व्यक्ति का बौद्धिक स्तर उसके भावी के मार्ग में उत्तरोत्तर ऊँचा बन रहा है और यदि कहीं उसकी उन्नति में अवरोध-कुछ वाधाएँ रूढ़ि और परम्परा के समर्थन पिष्ट-पेषण, नवीन अनुभवों और प्रयोगों के उदासीनता, तटस्थता और विरोध को लेकर ड़ी हुई हैं, तो उनके प्रति समाज का दृष्टि-क्या है? इसके अतिरिक्त हमें इस बात पर ष्टि रखनी होगी कि (२) समाज के औसत का मानसिक स्वास्थ्य कैसा है। हो सकता प्रगति के नाम पर कुछ ऐसी प्रवृत्तियों ने रूप धारण कर लिया हो, किसी देश-में और युग-विशेष में जो बहुत महत्व की हुई हों, किन्तु कालान्तर में, दूसरे देश के हितकारक होने की अपेक्षा सर्वथा अहितकर हों। और (३) विचार हमें उन कारणों पर भी करना पड़ेगा जिनके द्वारा प्रगति के साधनों के अधिनायक और समर्थक ही अपने व्यावहारिक जीवन में उन दुर्बलताओं के शिकार हुए हैं, जो प्रगति-विरोधी हैं।

हिन्दी साहित्यकारों की कठिनाइयाँ

इस समय हिन्दी साहित्यकारों की आन्तरिक स्थिति बहुत ही भयावह है। उनके पोषण के सारे मार्ग अवरुद्ध हैं। उनका अपना कोई संगठन नहीं है। वे टुकड़ियों में विभाजित हैं। आर्थिक हीनता, आत्मिक असन्तोष और सामाजिक सहानुभूति के अभाव के कारण वे हीनभाव से आहत हो रहे हैं--यह कितने परिताप का विषय है। हमारे जो बन्धु साहित्य के विविध क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व रखते है, मैं पूछता हूँ कि क्या वे अपने भाग का उत्तरदायित्व निर्वाह करते हैं? क्या हम सब मिलकर कोई ऐसा आयोजन नहीं कर सकते, जिससे साहित्य के रचनात्मक अभावों की पूर्ति करते हुए हम अपने प्रतिभाशाली, योग्य किन्तु आर्थिक अवलम्ब-हीन बन्धुओं की आधारभूत समस्याओं का समाधान तो कर सकें?

हिन्दी का औसत प्रकाशक अर्धशिक्षित और पूँजीहीन है। अन्य कोई कार्य न कर सकने की ही दशा में वह इस ओर आया है। देश और साहित्य के प्रति उसका क्या दृष्टिकोण होना चाहिए, इसकी अपेक्षा उसके लिए इस बात पर सजग होना अधिक आवश्यक, निकटवर्ती, सुलभ और स्वाभाविक है कि (१) कौन पुस्तक जल्दी बिक जायेगी? (२) किसमें लागत कम लगेगी और (३) किसमें लेखक को रुपया कम-से-कम देना होगा? और उसकी इस स्थिति में सहायक है। आज की पुस्तक-बिक्री। जब उसकी आधारिक स्थिति ही दृढ़ नहीं है, तब वह तात्कालिक लाभ की चिन्ता अधिक क्यों न करे? अधिक रुपया चाहने वाले लेखकों से सहयोग वह क्यों करे, जब ऐसे भी लेखक उसे मिल जाते हैं, जो रुपया कम चाहते हैं, या कतई नहीं चाहते; चाहते केवल यह हैं कि वे किसी-न-किसी रूप में लेखक मान लिये जायें। विचार करने की बात है कि ऐसी स्थिति मे एक

श्रमजीवी साहित्यकार कहाँ जायेगा और कैसे रहेगा ? सुनते हैं विदेशों में ऐसी एजेंसियाँ हैं, जो प्रकाशकों को लेखक और लेखकों को प्रकाशक देने का कार्य करती हैं। हममें संगठन, सूझ और ईमानदारी, दृढ़ता और मिशिनरी स्पिरिट हो, तो क्या हम इतना भी नहीं कर सकते कि आंदोलन करें, उस साहित्य और प्रकाशक के विरुद्ध, जो समय की गति के प्रति सजग नहीं है ? हममें कल्पना की अपेक्षा व्यावहारिक सद्बुद्धि हो, तो क्या हम ऐसी संस्थाएँ नहीं बना सकते, जो एक ओर समय पर लेखकों की आवश्यकता-पूर्ति करें, दूसरी ओर उसे अपनी आवश्यकता की कृति तैयार करवा लें ? **भगवतीप्रसाद वाजपेयी**

अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अबोहर की 'साहित्य-परिषद्' के सभापति पद से]

स्पष्टीकरण

जनवरी अंक में श्री अरविंदाश्रम पांडीचरी के रवीन्द्रजी मेरा उद्धरण देकर लिखते हैं कि देशज शब्दों से काम नहीं चलेगा। पारिभाषिक शब्दावली के लिए संस्कृत का सहारा लेना होगा। मेरा उससे विरोध नहीं है। मेरे पहले लेख का वाक्य हैं : भरसक देशज शब्दों से काम चलाया जाये। 'भरसक' शब्द में हार की स्वीकृति है। यानी कि बेशक सब काम उससे नहीं चलेगा। पर उस 'भरसक' शब्द में सही दिशा का सूचन भी है। यानी कि प्रथम प्रयत्न की दिशा देहात की ओर होनी चाहिए न कि शास्त्र की ओर। शिष्ट भाषा की सम्पन्नता आज के शहर की सम्पन्नता-जैसी खोखली और कृत्रिम है। पिछले दिनों भरे-पूरे खातेबही के लोग गेहूँ के लिए चिंतित होने लगे। बस वैसा ही हमारी शिष्ट भाषा का हाल है। जीवन के निकट स्पर्श के व्यवहार के शब्दों की बात कहें तो एकदम असंदिग्ध है कि देहात में प्रचुरता है, शिष्ट शहर में दैन्य।

जैनेन्द्रकुमार

सम्मेलन की परिषदें

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशनों के अन्तर्गत कई वर्षों से साहित्य, दर्शन, विज्ञान, समाजशास्त्र, राष्ट्रभाषा आदि की परिषदें होती आरही हैं। धूमधाम से सभापतियों का निर्वाचन होता है, वे अत्यन्त अध्ययन और परिश्रम से अपने-अपने भाषण लिखते हैं और उन्हें परिषदों के थोड़े से समय में उपस्थित व्यक्तियों के सामने पढ़ देते हैं। छपे हुए भाषण होते हैं तो वे पत्र-पत्रिकाओं में उद्धृत भी हो जाते हैं। क्या इन परिषदों का काम इतना ही है ?

हमारी धारणा के अनुसार परिषद् स्वयं एक ठोस रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्था होनी चाहिए। यदि अपने-अपने क्षेत्र में साहित्य-रचना को वह प्रगति न दिला सके और उनके लेखकों को संगठित न कर सके तो उससे कोई लाभ नहीं। परिषद् के सभापति को तो अवश्य इससे सम्मान मिल जाता है, पर उससे साहित्यिकों या जनता को क्या मिलता है ?

वस्तुतः होना यह चाहिए कि परिषदों को एक सजीव संस्था बनाने के लिए उस विषय में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों को साग्रह आमंत्रित किया जाना चाहिए। फिर उनके सहयोग से परिषद् के कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित होनी चाहिए। उस विषय-विशेष के अभाव-अभियोगों, प्रस्तुत प्रश्नों और कठिनाइयों पर गहराई से विचार-विनिमय होना चाहिए। अनिवार्य कार्यों के लिए योजनाएँ बननी चाहिएँ और उनके प्रकाश में सालभर में कुछ काम करके दिखाना चाहिए। यदि हो सके तो ध्वनि-विस्तारकों की शानबान से दूर रहकर इन्हें एक बड़े कमरे या हाल में किया जाये तो अच्छा; क्योंकि बहुजन-समाज को, जिसमें कई दर्शक-भर होते हैं, इनका गंभीर कार्यक्रम भारी हो उठता है।

आशा है, परिषदों के सम्बन्ध में इसी तरह की कोई योजना सम्मेलन की ओर से शीघ्र बनेगी। इसके लिए साहित्यिक बन्धुओं को भी शक्तिशाली आन्दोलन करना चाहिए।

सुधींद्र

कसौटी पर

तीस दिन : मालवीयजी के साथ : लेखक नरेश त्रिपाठी; प्रकाशक—सस्ता साहित्य ल, नयी दिल्ली; पृ० संख्या ३५५; मूल्य १।।); एंटीक का २)

हात्मा गांधी और महामना मालवीय दोनों के सांस्कृतिक सूर्य-चन्द्र कहे जा सकते हैं, राष्ट्र के विविध क्षेत्रों में आलोक फैला नों अपने-अपने गौरव और गुणों में अनुप-, दोनों का जनता के हृदय पर राज है। ी तक मालवीयजी को पूजायोग्य मानते ऐसे तीर्थ-रूप महापुरुषों की जीवनी को मार्गदर्शक होती । परन्तु मालवीय तो स्वयम् अपनी जीवनी लिखी नहीं है। ीताराम चतुर्वेदी ने एक विशालकाय 'महामना मदनमोहन मालवीय' अवश्य लिखा र वह एक तो बहुत बड़ा है, दूसरे उसका इतना है कि जनसाधारण को सुलभ नहीं कता। इस दृष्टि से लेखक और प्रकाशक का यह प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है और, कि भूमिका से जान पड़ता है, श्री घनश्याम बिड़ला इसके लिए हिन्दी-भाषी जनता के वाद के पात्र हैं।

'तीस दिन : मालवीयजी के साथ' महामना वीयजी की क्रमबद्ध जीवनी नहीं है। लेखक रितनायक के साथ कई दिन रहकर उनके न की जिन घटनाओं, गुणों या विचारों की ग्रहण की है, उसीके चित्रण से यह चित्र-तैयार हुआ है। मालवीयजी के अपने मुँह से, थी-सहचरों, सहकारियों, मित्रों, परिजनों, ों, ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं और अन्य लेखों से जो यक सामग्री लेखक को उपलब्ध हो सकी है, सबको इन थोड़े से पन्नों में समेटने का उन्होंने प्रयत्न किया है। तीसों दिन की अपनी तों का क्रमिक वर्णन देने से जीवन की ओं का क्रम सध नहीं पाया है, यथाप्रसंग ऐं आयी हैं उनका आकलन हो गया है; परंतु इस प्रकार भी तीस दिन में किये गये इस चित्रांकन से समूचे जीवन की एक झाँकी मानस-नेत्रों में खिंच आती है।

लेखक ने लिखा है कि 'मैं कितना संग्रह करता ! वर्षों का काम एक मास में कैसे हो सकता था ! मालवीयजी का जीवन एक अथाह और अपार समुद्र के समान है। उसे पार करना मेरी शक्ति के सर्वथा बाहर की बात है। वस्तुतः जो व्यक्ति लगातार साठ वर्षों तक, एक क्षण के लिए अन्यमनस्क हुए बिना, अपनी सम्पूर्ण शक्ति से अपने विस्तृत देश और विशाल जाति का हृदय बनकर उनकी धमनियों में अजस्र धारा फेंकता रहा है; जो राह में पड़े हुए अनाथ भिक्षुक से लेकर राजा-महाराजाओं, संतों-महंतों और वाइस-रायों और बादशाह तक, अनेक रंग के फूलों की माला में एक डोरे की तरह, निरन्तर प्रवेश करता रहा है; जिसने अपनी मधुर वाणी से लाखों क्या करोड़ों मनुष्यों के मर्मस्थल को स्पर्श किया है और जिसने यश की ओर एक क्षण के लिए भी गर्दन नहीं घुमायी है, उसके संस्मरण क्या एक महीने में लिखे जाकर ओरा सकते हैं ? असम्भव है ! ऐसे व्यापक पुरुष का जीवन-चरित कागज पर लिखा भी तो नहीं जा सकता। आगे किसी दिन सुख-समृद्धि-सम्पन्न हिन्दू जाति और स्वतन्त्र भारत ही उसका जीवन-चरित होगा।' यह निःसंशय है।

फिर भी इस प्रयत्न द्वारा महामना मालवीय-जी के जीवन की उन अज्ञात घटनाओं का ज्ञान पाठकों को हो जाता है जो उनके मित्रों, सह-योगियों तक को शायद विदित न होगा। विदित होता है कि मालवीयजी ने कविताएँ भी लिखी हैं। उनके संस्कृत श्लोक पढ़िए, दोहे पढ़िए और सवैये पढ़िए। सवैये पढ़कर तो रसखान और देव की याद आ जायेगी। प्रसंग से उनकी स्थापित की हुई अनेक संस्थाओं की भी बहुत-कुछ अज्ञात बातें मालूम हो आती हैं। कुछ स्थलों को छोड़कर सर्वत्र लेखन-शैली रोचक, सरस और कविसुलभ

भावुकतामय होने से उपन्यास जैसा लुभावनापन पुस्तक में आ गया है।

पुस्तक के अंत में जो ७४ पृष्ठों का लम्बा उपसंहार है, वह चरितनायक के चरित्र-बल, संयम, दयालुता, दानशीलता, सेवाभाव, क्षमा, सत्यनिष्ठा, निस्पृहता, उदारता, निर्भयता, त्याग, सदाचार आदि अनेक गुणों को दिखलाने का प्रयत्न है। दृष्टान्तों और रोचक संस्मरणों ने उसे मनोरम बना दिया है। परन्तु इससे ज्यादा अच्छा यह होता कि इन्हें भी भीतर ही यथास्थान उल्लिखित कर दिया जाता, जबकि लेखक ने चरितनायक और अपने वार्तालाप के वर्णन से हटकर स्वतन्त्ररूप में उनका गुणगान किया ही है। हाँ, अन्त में जीवन-घटनाओं की तालिका दे देने से पुस्तक की उपादेयता बढ़ गयी है और कई चित्रों ने उसे और भी नयनाभिराम बना दिया है।

परन्तु पढ़ते-पढ़ते कई बार ऐसा लगता है कि पुस्तक का नाम ही 'तीस दिन' जैसा शुष्क न होकर 'तीर्थ-स्नान' या ऐसा ही कुछ होता! और भूमिका जिस रूप में त्रिपाठीजी ने लिखी है, उसकी भी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

यद्यपि घनश्यामदासजी नें 'बापू' में जिस प्रकार हिन्दी को जीवन-अध्ययन की एक नवीन शैली और पद्धति दी, उसी प्रकार त्रिपाठीजी ने भी—भले ही पाश्चात्य शैली से प्रभावित—एक निराले ढंग से जीवन-दर्शन किया है और वह अन्य जीवनी-लेखकों के लिए अनुकरणीय भी है, परन्तु इतना हम कहना चाहते हैं कि दोनों प्रकार की शैलियों में लेखक का आत्मप्रदर्शन से, जहाँतक हो, बचना ही श्रेयस्कर है। ऐसी प्रवृत्ति जीवनी के चरितनायक के प्रति अन्याय करेगी। 'बापू' में जहाँ इस बात का अभाव है, वहाँ 'तीस दिन' में इसका प्रभाव! पर यह बात भी पुस्तक के नाम—'मालवीयजी के साथ तीस दिन'— के अनुकूल ही हो गयी है।

इन कुछ कमियों के होते हुए भी 'मालवीयजी के साथ तीस दिन' हिन्दी में अपने ढंग की अद्वितीय पुस्तक है। अच्छा हो कि दूसरी देशी भाषाओं में भी इसी विषय पर पुस्तकें लिखी जायें या प्रस्तुत पुस्तक का, कुछ अंशों को बचाकर, अनुवाद ही कर दिया जाये और दूसरी अनिवार्य आवश्यकता यह है कि तीस दिन की इस फैली हुई जीवन की चित्रपटी की घटनाओं को क्रम से सजाकर इसका एक संक्षिप्त बालोपयोगी संस्करण भी प्रस्तुत किया जाये, जिससे बालक भी लाभ उठा सकें।

सु०

हमारा प्रधान उपनिवेश : ले०—सेठ गोविंददास एम. एल. ए.; प्रकाशक—सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद; मूल्य १।)

दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका यद्यपि आज ब्रिटिश उपनिवेश है, तो भी वहाँ भारतीयों के काफ़ी संख्या में बसने के कारण भारत की रुचि और दिलचस्पी अफ़्रीका में कम नहीं है। म० गाँधी के सत्याग्रह के बाद से तो वहाँ की समस्याओं के प्रति हमारी रुचि निरंतर बढ़ती रही है। वहाँ की सरकार ने भारतीयों के साथ समय-समय पर अत्याचार किये हैं और आज भी जो अपमानजनक व्यवहार वहाँ हो रहे हैं उनके कारण वह हमारे राजनीतिज्ञों के भी विचार का विषय हो गया है। परन्तु बहुत कम राजनीतिज्ञ ऐसे हैं, जो अफ्रीका की समस्या की गहराई तक पहुँचे हैं। केवल अखबारी कतरनें या वक्तव्य उनके अफ्रीका-संबंधी ज्ञान का आधार होते हैं। इसी बड़ी कमी को पूरा करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका की यात्रा की थी और उसीका वर्णन इस पुस्तक में है।

सेठ गोविन्ददास हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं, इसलिए उनकी पुस्तक में सरलता और सजीवता का अभाव न हो, यह स्वाभाविक है। अनेक स्थलों पर प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन या लेखक के उद्गार बहुत सुन्दर हैं।

किन्तु एक राजनीतिक नेता और असेम्बली के सदस्य से हम जो आशा करते थे, उसका पुस्तक में सर्वथा अभाव है। लेखक पूर्वी अफ़्रीका को स्वतन्त्र भारतीय साम्राज्य के प्रधान उपनि-

रूप में देखने का स्वप्न लेते हैं। हम सम- कि वे पूर्वी अफ्रीका के बारे में पाठकों नकारी भी बढ़ावेंगे, अफ़्रीका की सम- वहाँ भारतीयों की स्थिति, भारतीयों के में बने हुए कानून, भारतीयों का व्यापारिक सामाजिक संगठन आदि विषयों पर विस्तार डालेंगे और भारतीयों की राज दलबन्दी दूसरी समस्याओं का विवेचन करेंगे; लेकिन शायद उनकी चिन्ता का क्षेत्र ही नहीं । यह पुस्तक केवल एक यात्रा-वर्णन रह और उसमें भी इनके सम्मान में किये गये ोहों के विस्तृत वर्णन से अधिकांश पुस्तक लेवर भर गया है। उनको दी गयी टी पार्टियों मानपत्रों का और उनके गले में हार पह- स्टेशन पर स्वागत करनेवाले प्रतिष्ठित कों के नामों तथा अपने या अपने दामाद गों आदि का वर्णन विस्तृत है। यही सब एक मित्र ने ठीक ही राय दी कि इस का नाम 'अफ़्रीका में मेरा स्वागत' होता धिक अच्छा होता। यात्रा-वर्णन में कहीं संगवश अफ्रीका की राजनैतिक या सामा- समस्याओं पर रोशनी पड़ अवश्य गयी है, वह लेखक का मुख्य उद्देश्य नहीं रहा। उसके यात्रा-वर्णन की संगति न बैठती। क्या हम करें कि पुस्तक के विद्वान् लेखक इस पुस्तक ले संस्करण में उसे वह रूप देंगे जो उसके से ही अपेक्षित है। तभी वास्तव में वह पाठकों के लिए उपयोगी और उपादेय केगी।

भोजन और स्वास्थ्य : ले०—डा० सत्य- और डा० सन्तप्रसाद; प्रकाशक—श्री लाल भार्गव, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ; ।)

द्यपि आजकल विटामिन-सिद्धान्त तथा शर्करा आदि भोज्य पदार्थों के विश्लेषण धार पर हिन्दी में भी अनेक पुस्तकें प्रका- हो चुकी हैं, पर इस पुस्तक में एक विशे- । साधारणतः लेखक वैज्ञानिक शब्दावली और परिभाषाओं में इतने अधिक उलझ जाते हैं कि वे न तो भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति की चिंता करते हैं और न साधारण देहाती जनता में फैले हुए अज्ञान की। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में वैज्ञानिक परिभाषा के अतिरिक्त साधारण देहाती जनता या सर्वसाधारण शहरियों को सुलभ गाजर, मूली, शलजम आदि खाद्य-पदार्थों के गुण सरल भाषा में समझाये गये हैं। लेखक ने सिर्फ़ शहरों में मिलनेवाले भोजनों के गुणावगुणों पर ही नहीं, मद्यपान से हानियों पर भी एक अध्याय लिखा है जो विशेषतः उपयोगी है। सब बातें अत्यन्त सरल भाषा में, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझायी गयी हैं। विषाणु, कीटाणु, ग्लैण्ड और विटामिन सभी नये पाश्चात्य सिद्धान्तों को भी सरल भाषा में समझाया गया है। साधारण देहाती जनता तो नहीं, मध्यम श्रेणी के शिक्षित पाठक यह पुस्तक पढ़कर नवीन सिद्धान्तों से अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं।

एलबम : लेखक—भारतीय एम. ए.; प्रकाशक—शारदा प्रेस, प्रयाग; मूल्य ।।=)

इस पुस्तक में गृहिणी, सामाजिक दम्पती, अफ़सर, भाईसाहब, सेठजी, बनारसी, माँ का हृदय आदि नौ शब्द-चित्र हैं। इन सबमें लेखक ने हमारे समाज या परिवार के वास्तविक और स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक चित्र खींचने का प्रयत्न किया है। इनमें से गृहिणी, सामाजिक दम्पती और अफ़सर तो बहुत सुन्दर हैं। इनके गुण और दोष बहुत ही सरस और सजीव भाषा में चित्रित हो सके हैं। बीच-बीच में हमारी वर्तमान सभ्यता, राजनीतिक पराधीनता आदि पर व्यंग्यभरी चुटकियाँ ली गयी हैं। जैसे—"अफ़सर को सदा इसका ध्यान रहता है कि उसके मातहत यह न समझें कि वह भी उन्हीं जैसा मनुष्य है। नहीं तो उसकी अफसरी खाक में मिल जायगी।" "मातहतों को आत्मविश्वास, आत्माभिमान, आत्मानुभूति के आक्रमण से बचाने के लिए ही अफ़सर की सृष्टि होती है।" "सामाजिक दम्पती आप को सहानुभूति से सांत्वना देने नहीं पहुँचते, वरन् आपके

यहाँ जाकर आपको आभारी बनाने के उद्देश्य से।" "मनुष्य को घर दबाना ही आधुनिक सभ्यता का आदर्श है।"

लेकिन सभी चित्र सुन्दर नहीं बन पाये। मिस्टर पी० में एक साधारण स्त्री का पति की परीक्षा मात्र के लिए अंधकारपूर्ण मेले में रात के समय जाना अस्वाभाविक है। नवविवाहित पत्नी न तो पति पर इतना संदेह कर सकती है और न रात को अकेले पगडंडियों पर घूमने का साहस ही कर सकती है। वहाँ उसके अन्य आततायियों का शिकार होने की भी प्रतिक्षण संभावना थी। सेठजी या भुलई भी साधारण-सी कहानियाँ भर हैं। उन्हें शब्द-चित्रों की कोटि में नहीं रखा जा सकता। **कृष्णचन्द्र विद्यालंकार**

सचित्र हठयोग : पृष्ठ संख्या १५४, मूल्य १) आध्यात्मिक शिक्षावली : पृष्ठ संख्या १२५ मूल्य ॥); लेखक—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती; प्रकाशक—जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड, ८३ पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

हठयोग का महत्त्व आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी है और सांसारिक दृष्टिकोण से भी। प्रस्तुत पुस्तक में आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध, धौती, वरित, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाती, योगिक षट्कर्म आदि हठयोग के सभी आवश्यक अंगों का बड़े ही सरल ढंग से विवेचन किया गया है। पुस्तक में दिये गये दर्जनों चित्रों से आसनों आदि के अभ्यास का ठीक-ठीक ढंग समझने में बहुत सहायता मिलती है।

स्वामी शिवानन्द बहुत काल तक डाक्टर रहे हैं, अनेक रोगों को दूर करने के लिए उन्होंने जो आसनों तथा प्राणायाम आदि की सरल विधियाँ इस पुस्तक में दी हैं, वे बहुत ही उपयोगी हैं। केवल रूढ़ि का अनुसरण न करके उन्होंने इस पुस्तक में अपनें अनुभवों के आधार पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया है।

बंगलौर के प्रोफेसर के० वी० अइयर, जो संसार के सर्वश्रेष्ठ स्वास्थ्य-विज्ञान-विशारदों में से एक माने जाते हैं, स्वास्थ्य-उन्नति की भारतीय यौगिक पद्धति को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। उनके बारह रुपये की कीमत के कोर्स में जो आसन तथा अन्य क्रियाएँ दीगयी हैं, उनकी लगभग साठ प्रतिशत इस उपयोगी पुस्तक में हैं।

'आध्यात्मिक शिक्षावली' में वैराग्य, कर्मयोग, भवितयोग, ज्ञानयोग और प्राणायाम आदि का विवेचन है। साधकों के लिए अपने दैनिक जीवन में पालन करने के लिए अनेक नियम तथा साधना-सम्बन्धी अनेक विषयों पर उपदेश हैं। आध्यात्मिक उन्नति के इच्छुक को इस पुस्तक से निस्सन्देह बहुत सहायता मिलेगी।

बाल-नाटक-माला : लेखक—बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव; प्रकाशक—हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ५६, मूल्य ।)

प्रस्तुत पुस्तक में श्रवणकुमार, लव-कुश, वीर अभिमन्यु, बालक ध्रुव, महात्मा बुद्ध, राणाप्रताप आदि की बारह कथाएँ छोटे-छोटे नाटकों के रूप में दीगयी हैं, प्रत्येक नाटक में छोटे-छोटे तीन या चार दृश्य हैं, और भाषा बालकों के लिए उपयुक्त अत्यन्त सरल है। नाटकों को लिखने में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि बालक सरलता से थोड़े समय में उनका अभिनय भी कर सकें।

हिन्दी में बाल-नाटक अधिक नहीं हैं,—इस दृष्टिकोण से लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है। **ब्रजमोहन गुप्त**

मठा, उसके गुण तथा उपयोग : ले०—कविराज महेन्द्रनाथ पांडेय; प्रकाशक—महेन्द्र रसायनशाला कटरा, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या ५१ मूल्य ।=)

प्रस्तुत पुस्तक मठे से होनेवाली गृहचिकित्सा पर है। लेखक ने इसमें मठे के द्वारा होनेवाले गुणों को समझाया है। वास्तव में प्रत्येक अमीर-गरीब को यह पुस्तक पढ़ लेनी चाहिए।

कादम्बरी-कथा-सार—सम्पादक श्री गुलाबराय एम० ए०; प्रकाशक—गयाप्रसाद एंड सन्स, आगरा; पृष्ठ संख्या ९१; मूल्य ॥=)

न्नति की
ानते हैं।
ोर्स में जो
हैं, उनकी
तक में हैं।
ग्य, कर्म-
ाम आदि
ने दैनिक
नयम तथा
देश हैं।
पुस्तक से

लगोविन्द
हृत्य-सम्मे-

-कुश, वीर
राणाप्रताप
कों के रूप
छोटे तीन
ं के लिए
लिखने में
ा गया है
में उनका

हीं है,—
ंसनीय है।
ोहन गुप्त
: ले०—
क—महेंद्र
संख्या ५१

हचिकित्सा
ा होनेवाले
क अमीर-
।
श्री गुलाब-
एंड सन्स,

स्तुत पुस्तक अलंकारादि की क्लिष्टता से रहकर अत्यन्त रोचक ढंग से लिखी गयी री की कथा है। इसके पढ़ने से संस्कृत की एक अनूठी कथा-पुस्तक से परिचय ता है।

म० श०

िरण-वेला—लेखक श्री 'अंचल'; प्रका--सुखी-जीवन ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग; १२८; मू० १)

मधूलिका' और 'अपराजिता' के सुपरिचित 'अंचल' का यह तीसरा कविता-संग्रह है। किरण-वेला' एक युग के उस निविड़ अन्ध-के अन्त की सूचना देने आयी है जो समाज कुछ सत्ताधारियों के शोषण और उत्पी-से छाया हुआ है, जिसमें एक ओर घोर ता और भुखमरापन है तो दूसरी ओर और विलास के प्रमोदागार हैं, जिसमें एक चिरपीड़ित नर-कंकालों के चीत्कारों और कियों की आर्त्तध्वनियाँ हैं और दूसरी ओर और नूपुर-शिंजित मधुर ध्वनियों का न(?)संगीत। 'किरणवेला' में उन शोषित नों और मजदूरों के जागरण का उद्घोष है, दियों से शोषकों के भार से दब रहे हैं। 'सर्व से उसका यह संबोधन है—

तुम्हें अनहोनी कहता,
सर्वनाश के दीप जलाओ।
देख चुकी हो राजमहल की
कितनी लोचभरी सुकुमारी।
जो शराब से बढ़कर मादक
अंगूरी रसवन्ती नारी।
किन्तु उसे देखो तो जो, नस-
नस में उनकी भरता यौवन।
जो मिट्टी से नूर बनाता
किन्तु निचुड़ता जिसका जीवन।
उसीकी ज्वाला सी तुम,
उठो किरण का शंख बजाओ।

× × ×

भूल गया अल्लाह जिन्हें भी
जल का मालिक, थल का स्वामी।
भूल गयी मानवता जिनको,
मिट्टी की पुतली अनुगामी।
बस दो मुट्ठी अन्न जिन्हें बन
जीवन का त्यौहार उठाता।
चिथड़ों में सज पाट पटम्बर
जिनके जीवन का सुख आता।
किंतु निहाँ उनकी आहों में
नीलकण्ठ का सा दावानल।
जल-जल उनकी ही जय बोलो
खोलो चिरयौवन उच्छृंखल।
आज सृजन की कैसी चिंता
महाप्रलय विध्वंस मचाओ।
कौन तुम्हें अनहोनी कहता
महामरण के दीप जलाओ।

समाज की विषमताओं से कवि क्षुब्ध है, जहाँ—

आज लगते हैं हथोड़ों से करोड़ों आर्त्त प्राणी।
एक सा आघात जिनका, एक सी दुर्धर्ष वाणी,

जहाँ,

'वह मजदूर की अन्धी लड़की कुम्हलाती बुझते चिराग सी टिम-टिम करती' हुई **'यहाँ अँधेरे खन्दक में खामोश।**

सूखी जर्जर कभी-कभी बेहोश
पड़ी रह जाती।' है

और जहाँ **'धानी चुनरी बिछाये लेटी नारी,**
घायल चील सी
अधनंगी अज्ञात
किसी श्रमजीवी की अभिशाप,
चूसता फिर निचोरता सूखे स्तन
भूखा शिशु।

हृदय को मथ डालनेवाले ऐसे अनेक कारुणिक चित्र 'किरण-वेला' में हैं जो कवि की बेधक दृष्टि ने छुए हैं अतः अपने आप बोलते हैं।

कवि के स्वयं के जीवन में भी सामाजिक विषमताओं के धक्के लगे हैं। 'हवेली', 'सर्वहारा', 'जागरण का पर्व' आदि की पंक्तियाँ तीखे दर्द से भरी हुई हैं। चोट खाये हुए सर्प की भाँति कवि जहाँ फुफकार उठा है, वहाँ उसकी कविताओं

में बड़ा बल आगया है ।

'सर्वनाश' 'संहार' और 'प्रलय' के उद्घोष के साथ-साथ 'किरण-वेला' में 'नवसर्जन' और 'नवजागरण' की प्रेरणा भी है ।

'मधूलिका' और 'अपराजिता' से 'किरण-वेला' की कविताओं को देखते हुए कवि से युग की सच्ची पुकार को व्यक्त करने की पूरी-पूरी आशा बँधती है । बस शिकायत है तो यही कि एक तो वे 'प्रगतिशीलता' के लफ़्फ़ाजी झोंकों से बचे रहें तो अच्छा है, क्योंकि शब्द-जाल में (अथवा भावावेश में) कहीं-कहीं उन की उक्तियाँ अस्पष्ट भी होगयी हैं; जैसे—

'आँसुओं की स्याह महफ़िल,
अब न गीली आँच करती ।'
'जज्ब मुझे करने दो वे फाँसे,
जो दिल में दर्द बनातीं ।'
'सृष्टि के सौन्दर्य की संवेदना का नाज लेकर ।'

दूसरे वे तथाकथित 'इम्प्रेशनिस्ट' चित्रों की आड़ में कविता में गद्य की नीरसता न आने दें । नीचे की पंक्तियों में भावना जहाँ बड़ी सुन्दर है वहाँ उनकी अभिव्यक्ति हमें गद्यात्मक लगती है ।

दूँगा शान्तिहीन मानवता को नयी दृष्टि
जाग्रति का सन्देश—मृत्युहीन अपरूप ।
सींचने ही आया मैं
भग्न निचुड़े चुसे मनुज की काया को
दोपहर के रवि और शोले की लाली से ।
जीवन समाज का हो जिससे नया निर्माण
चारों ओर हो यही निनादित प्रतिध्वनित
'मानवता जिन्दाबाद' वि०

समालोचनार्थ प्राप्त

सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग के प्रकाशन

नक्शे का रंग : लेखक—कुमारहृदय; **राका** : लेखक——मनवोधनलाल श्रीवास्तव; **नागरिक जीवन** : लेखक—कृष्णानन्द गुप्त; **जीवन-संगीत** : लेखक—बलदेवप्रसाद मिश्र; **पुरस्कार** : लेखक—कृष्णानन्द गुप्त; **नवरस** : लेखक—गोविन्ददास; **पदार्थ-परिचय** : लेखक—कृष्णानन्द गुप्त; **ग्राम-शिक्षा का इतिहास** : लेखक—श्रीनारायण चतुर्वेदी; **कोंपल** : लेखक—भगवतीप्रसाद चन्दोला; **जीव की कहानी** : लेखक—कृष्णानंद गुप्त; **जानवरों की कहानियाँ** : लेखक—शालिग्राम वर्मा; **मोदक** : लेखक—सोहनलाल द्विवेदी; **बाल-खिलौना** : लेखक—स्वर्णसहोदर; **पाँच कहानियाँ** : लेखक—सोहनलाल द्विवेदी; **रैनबसेरा** : लेखक—चन्द्र प्रकाश वर्मा 'चन्द्र'; **अर्चना** : लेखक—भगवन्त शरण जौहरी; **शेफाली** : लेखक—राजेश्वर गुरु; **सफर** : लेखक—पहाड़ी ।

सयानी कन्या से : लेखक—नरहरि परीख और महादेव देसाई; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद । **निर्दोष** : लेखक—केसरी नारायण सिंह; प्रकाशक—साहित्य-कुटीर, गोरखपुर। **संस्कृत का अध्ययन** : लेखक—डा० राजेन्द्रप्रसाद; प्रकाशक—आरती-मन्दिर, पटना । **अन्तहीन अन्त** : लेखक—उदयशंकर भट्ट; प्रकाशक—उदयशंकर भट्ट, ५ कृष्णगली लाहौर । **कला की दृष्टि** : लेखक—भगवतीप्रसाद वाजपेयी; **हृदयध्वनि** : लेखक—सद्गुरुशरण अवस्थी ; प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर ।

गयाप्रसाद एंड संस, आगरा के प्रकाशन

हिन्दी-साहित्य में निबंध : लेखक—ब्रह्मदत्त शर्मा; **नवाबी सनक** : लेखक—जयनाथ 'नलिन'; **मर्यादा का मूल्य** : लेखक—कुँवर वीरेंद्रसिंह रघुवंशी तथा रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' ।

पुस्तक-भवन, काशी के प्रकाशन

घाघ और भड्डरी की कहावतें : लेखक—श्रीकृष्ण शुक्ल; **सद्गुणी बालक** : लेखक—नारायण हेमचन्द्र, अनु०—श्रीकृष्णदत्त भट्ट; **वीर विरदावलि** : सम्पादक—वियोगी हरि; **हिंदी राजतरंगिणी** : लेखक—कल्हण, अनुवादक—गोपीकृष्ण द्विवेदी ।

क्या और कैसे ?

ही से

स्तान पर हमला होने की अवस्था में
क्षा की सत्ता चाहे हमारे हाथ में न हो,
ों को उसके संकट से बचाने, हताहतों की
व शुश्रूषा करने, आवागमन के साधन
जाने या रुक जाने की हालत में उन्हें
ही आवश्यक अन्न-वस्त्र आदि सामग्री पहुँ-
में निर्भयता तथा साहस का सतत संचार
ने आदि का भार तो हम पर है ही।
आदेश दिया है कि कांग्रेसी इस कार्य
ी अन्य संस्थाओं से सहयोग कर सकते
सरकारी कार्यों में बाधा न डालेंगे।
का अन्देशा शहरों में ज्यादा है; लेकिन
लूट-मार व जीवन-सामग्री की कमी का
जायेगा। ऐसे समय प्रत्येक कांग्रेसी ही
येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह
ोसी घर व गव की हर तरह सहायता
ो तैयार रहे। गाँव-गाँव आपसी संगठन
ले ही से आवश्यक धन-जन तथा अन्न-
ग्री की समुचित व्यवस्था कर रखें।

सुख-स्वप्न

लोग यह खयाल करते हैं कि युद्ध के
अमन-चैन फैल जायेगा; नवीन विश्व-
बन जायेगी, जिसमें आज की दुनिया
पाप धुल जायेंगे; व इस लोभ से वर्त-
का स्वागत भी करते हैं। हमारी
कोरा स्वप्न ही नहीं, निर्मूल सुख-
। हमें तो उलटा यह भय है कि जिस
व क्रूरता के साथ यह युद्ध लड़ा
, जैसा वेशुमार नर-संहार इसमें हो
देखते हुए तो उनके खून तथा लाशों
मांस आदि की सड़न से भयंकर बीमा-
ी, खेती-बारी व जमीन का सत्या-
से अकाल का आक्रमण होगा। पुरुषों
बहुत घट जाने से स्त्रियों में अनीति
होगा, अपरिमित धन खर्च होने से प्रजा
को महान् अर्थसंकट का सामना करना होगा। पिछले युद्ध के बाद फौरन् ही इन्फ्ल्युंजा का दौर हुआ, उसके पहले रूस-जापान युद्ध के अनन्तर ही प्लेग फैला था। अबकी बार कोई और राक्षस इस युद्ध के गर्भ में अपना पोषण कर रहा होगा। अतएव अच्छी बात तो यह है कि यदि इस युद्ध में से हम अपना निस्तार किसी तरह नहीं कर पाते हैं तो युद्धकालीन संकटों की अपेक्षा युद्धोत्तर काल में ज्यादा आपत्तियों के लिए अपने आपको तैयार कर रखें, न कि पूर्वोक्त सुख-स्वप्न देखने में लगे रहें।

आज के 'विद्यारण्य'

राजाजी बहुत सच्चाई से व छटपटाहट के साथ भारत के बचाव की अपनी व देश की जिम्मेदारी को महसूस करते हैं और पूछते हैं कि हम कैसे अपनी इस जिम्मेदारी से मुँह मोड़ सकते हैं? जिस किसी हालत में भी हमें देश की आजादी मिले हम उसे कैसे नामंजूर करेंगे व किस मुँह से कहेंगे कि हमारे देश की रक्षा की जिम्मेदारी हमपर नहीं अँगरेजी हुकूमत पर है? नैतिक दृष्टि से राजाजी का कहना सही है; किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से आज की हालत में आजादी मिलने पर भी हम शस्त्र-द्वारा अपनी रक्षा करने में कहाँ तक समर्थ हो सकेंगे यह प्रश्न ही है और इसे यों ही हवा में नहीं उड़ा दे सकते। जो हो; राजाजी के इन भाषणों को व उनकी व्याकुलता को देखकर जी कह उठता है—क्या अच्छा होता, युद्ध की शुरुआत के पहले ही भारत आजाद हो गया होता व दक्षिण के इस आज के 'विद्यारण्य' को भारत के राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री के रूप में ऐसे संकट के अवसर पर राष्ट्र-रक्षा की अबाध सत्ता मिली होती। पर अब आज…?

भँवर से निकले

अबोहर का सम्मेलन जिस क्षोभ और उद्वेग के वातावरण में होने जा रहा था, उससे यह अंदेशा था कि कहीं कटुता बढ़ न जाये और

उसमें हिन्दी का व सम्मेलन का अहित न हो किन्तु सभापति श्री झा के समुचित भाषण, श्रद्धेय टण्डनजी के समयोचित प्रस्ताव ने, जिसमें कि उन्होंने हिन्दी, हिन्दुस्तानी शब्दों के प्रति सम्मेलन की नीति साफ़ कर दी है, तमाम आरंभिक आशंकाओं को निर्मूल कर दिया। और यह साबित कर दिया कि सम्मेलन के नेता भँवर में से अपनी नाव को किनारे लगाना जानते हैं। इसके साथ ही जब 'सर्वोदय' में काका साहब का लेख 'हिन्दी जगत् से विनय' पढ़ा तो मन में हुआ कि उनके कट्टर विरोधी को भी उनके अनन्य हिन्दी-प्रेम का दावा मानना पड़ेगा। इस तरह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में राष्ट्र-भाषा व उसकी प्रचार-समिति के प्रश्न को लेकर जो खलबली मची थी वह शान्त हो गयी यह इस सम्मेलन की खास विशेषता समझनी चाहिए।

यह जानकर हमें दुःख ही हुआ कि दूसरी परिषदें एक 'जाब्ता कार्रवाई' होकर ही रह गयीं। यह खिलवाड़ तो अब बन्द हो ही जाना चाहिए। अश्लील या अशिष्ट साहित्य की रोकथाम के लिए सम्मेलन ने कुछ नहीं किया। नव साहित्य सर्जन की दिशा में भी कुछ हुआ जान नहीं पड़ता। हमारी यह पक्की राय है कि सम्मेलन को भाषा-प्रचार से सन्तोष न मानकर साहित्य-सृजन व साहित्यिक प्रवृत्तियों के संशोधन व संगठन में अपनी शक्ति लगानी चाहिए।

मूर्तिमती तपस्या

शान्तिनिकेतन यदि कला व संस्कृति का प्रतीक है तो हिन्दू-विश्वविद्यालय विद्या व संस्कृति का। हि० विश्व वि० पूज्य मालवीयजी की पिछली २५ वर्ष की एकनिष्ठ साधना का महान् फल है। उसकी इस रजत-जयन्ती के अवसर पर पूज्य मालवीयजी तथा सर राधाकृष्णन् व उसके तमाम कार्यकर्त्ता किसी रूप में कृतार्थता व धन्यता का अनुभव करें तो वह उचित ही है। हि० वि० वि० की कुछ बातों से देश के बड़े-बड़े नेताओं का मतभेद रहा है और शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टि से उसमें कुछ बातों की कसर अबतक रहती चली आयी है। जिनका उल्लेख महात्माजी ने अपने भाषण में स्पष्ट शब्दों में किया ही है। परन्तु इन कमियों के बावजूद हि० वि० वि० भारत में पूर्वी सभ्यता व शिक्षा का एक महान् केन्द्र है—इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। भारतीय विद्या, शिक्षा व संस्कृति का प्रत्येक प्रेमी यही चाह सकता है कि मालवीयजी महाराज की यह मूर्तिमती तपस्या निर्धूम अग्नि की तरह चमके व उसके तेज से सारा भारत मालवीयजी महाराज के निर्मूल चरित्र व धवल यश की तरह दिगदिगन्त के गौरव का विषय बने।

दुहरा फायदा !

हमें विश्वस्त सूत्र से यह जानकर खुशी हुई है कि श्री प्रह्लाद पाण्डे 'शशि' जीवित हैं। अखबारों में छपी एक गलत खबर के आधार पर हमने उनपर शोक-टिप्पणी लिखदी। अगर 'शशि' जी को उससे दुःख पहुँचा हो तो हम उनसे क्षमा-प्रार्थी हैं। यों तो जीते जी अपने लिए अच्छी टिप्पणियाँ पढ़ लेने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ—इसके लिए उन्हें उस संवाददाता को धन्यवाद ही देना चाहिए। फिर पुरानी रूढ़ि के अनुसार तो जीते जी मृत्यु-समाचार फैलने से उलटी उम्र बढ़ जाती है, सो 'शशि' जी दुहरे फायदे में रहे !

ह० उ०

बधाइयाँ

इन पंक्तियों द्वारा हम जी० सा० परिवार की ओर से निम्नलिखित हिन्दी-साहित्यकारों को बधाई देते हैं जिनका इन दिनों किसी न किसी रूप में सम्मान हुआ है :

श्री सम्पूर्णानन्दजी : मंगलाप्रसाद पुरस्कार-विजेता; श्री सुमित्राकुमारी सिन्हा : सेकसरिया पुरस्कार-विजयित्री; श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' : रत्न-कुमारी पुरस्कार-विजेता; श्री काशीराम 'पथिक' : नारंग पुरस्कार-विजेता; श्री बाबू श्यामसुन्दरदास : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि द्वारा सम्मानित; श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' : मध्य प्रान्तीय हि० सा० समिति से अभिनन्दन ग्रंथ द्वारा सम्मानित।

सु०

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रतिदिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

खाएं—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—वीरकाव्य संग्रह—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कविताएँ और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—डिंगल में वीररस—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कविताएँ तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।।)

४—संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गयी हैं। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—चित्ररेखा—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखी हुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ। मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

'सम्मेलन-पत्रिका'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।**

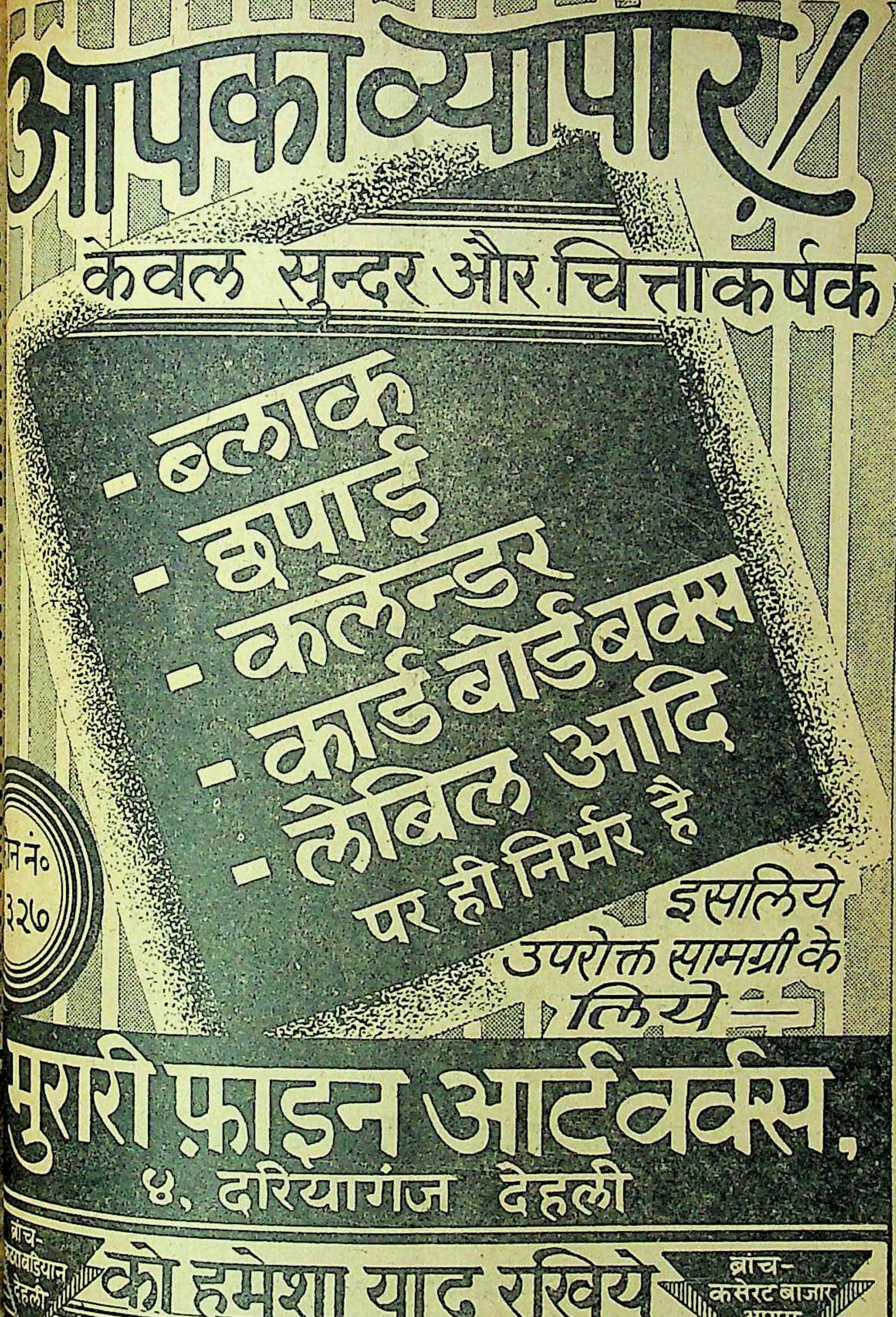

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

न नं०
३२७

मुरारी फ़ाइन आर्टवर्क्स,

४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
वाडियान
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे

२० वर्ष के अनुभव

से लाभ उठाइए

राष्ट्रको हर परिस्थिति में रास्ता दिखानेवाले
गांधीजीके तीनों अख़बार तो
बन्द हो गये ।

अब क्या पढ़ें ?

सर्वोदय

गांधी-मत के अनुसार जीवनस्पर्शी सब
विषयों की चर्चा करनेवाला

मासिक-पत्र

सम्पादक :
काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

[हर महीनेकी पहली तारीख़ को वर्धा से प्रकाशित होता है ।]

यह तो गांधीमत, गांधी-सिद्धान्त या गांधी-प्रवृत्ति की अपनी-अपनी दृष्टि से सांगोपांग मीमांसा करनेवाले विचारकों और लेखकों का 'सत्संग' है ।

[आगामी अगस्त से चौथा वर्ष शुरू होगा]

वार्षिक मूल्य :—देश में रु० ३, बर्मा में रु० ३॥, विदेश में
६ शिलिंग १.५० डालर

छः आने के टिकट भेजकर आज ही नमूना मँगाकर पढ़िये ।

व्यवस्थापक—
'सर्वोदय' कार्यालय,
बजाजवाडी, वर्धा (सी० पी०)

बी जनरल इंश्योरेंस कं० लि०

हेड आफ़िस—८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता

चैयरमैन—श्री ब्रजमोहन बिड़ला

जीवन, अग्नि, मोटर, और समुद्र दुर्घटना के लिए

बीमा-प्रतिष्ठान

सन् १९४० में ३० लाख से भी ऊपर जीवन-बीमे की पालिसियाँ की हैं।

कुल सम्पत्ति का परिमाण २८ लाख के क़रीब है, चुकता मूलधन १४ लाख ४० हज़ार है।

शाखाएँ—

बंबई, मद्रास, कोलम्बो
नई दिल्ली, कानपुर, रंगून,
लाहौर, पटना इत्यादि

हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य का एकमात्र प्रतिनिधि

हंस

जिसका प्रत्येक अंक किसी भी पत्रिका के विशेषांक से श्रेष्ठतर साहित्य से परिपूर्ण रहता है—क्योंकि हंस का प्रत्येक अंक साहित्य के लिए नयी प्रेरणाएँ और नये संदेश लाता है, हंस हिन्दी-साहित्य का ऐसा सजग और जागरूक नेता है जिसके पथ-प्रदर्शन में उसके वर्तमान और भविष्य का निर्माण हो रहा है। और हिन्दी के सजग पाठक उसके प्रति ऐसी ही श्रद्धा रखते हैं इसका उत्कृष्ट प्रमाण है कि गत अक्टूबर में प्रकाशित

कविता-अंक

की एक भी प्रति नहीं वची। आगे के अंकों की भी इतनी माँग है कि नियमित ग्राहक न रहनेवाले पाठकों को निराश रहना पड़ता है।

यदि आधुनिक साहित्य की प्रगति समझने के लिए हंस की प्रतियाँ रखने की अनिवार्यता वढ़ती जा रही है तो आप क्यों निराश हों?

अपना चन्दा तुरन्त भेजकर ग्राहक क्यों नहीं बन जाते?

हंस में आपको जो

▣ कलापूर्ण कहानियाँ,
▣ विवेचनात्मक लेख,
▣ सरस कविताएँ,
▣ खरी आलोचनाएँ,

पढ़ने को मिलेंगी वे आप अन्यत्र नहीं पा सकते। प्रत्येक रचना हिन्दी-साहित्य की प्रगति को एक क़दम आगे वढ़ाती है और एक नयी टेकनीक, नयी शैली और नयी दृष्टि की ताज़गी से पाठक का ज्ञान-वर्धन और मनोरंजन करती है।

वार्षिक मूल्य ६), एक अङ्क का ॥)

व्यवस्थापक, 'हंस', बनारस कैंट

बिड़ला जूट मैन्युफैक्चरिंग कंपनी

लिमिटेड

—मैनेजिंग एजेंट—

बिड़ला ब्रदर्स लिमिटेड,

८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

*

'पद्म' छाप जूट कार्पेटों के निर्माता

जो फर्शों को सजाने की सब तरह की सामग्री से सबको सन्तुष्ट करने के लिए प्रसिद्ध हैं

क्या उनका कोई स्टॉकिस्ट आपके नगर में नहीं है ?

तो

कृपया हमारे सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स को लिखिए ।

पता

मैसर्स गॉल्सन्स एण्ड कम्पनी

११, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता

पोस्टबक्स नं० ६६३

तार का पता 'CARPETS'

शरत्-साहित्य के इक्कीस भाग,

पाटन का प्रभुत्व,

सुनीता और परख-स्पर्द्धा

सुलभ साहित्य माला की इन पच्चीस पुस्तकों का मूल्य

बारह-बारह आने कर दिया गया

कागज के भाव बेहद बढ़ जाने के कारण लाचार होकर हमें यह मूल्य बढ़ाना पड़ा है। २८ फरवरी के बाद अब ये पुस्तकें दस आने की जगह बारह आने की दर से ही मिल सकेंगी।

हमारी प्रकाशित की हुई अन्य सब पुस्तकों की कीमत ज्यों की त्यों रहेगी।

कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

मुग़ल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण—ले० प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति मू० ४।)

शेष स्मृतियाँ—राजकुमार डा० रघुवीरसिंहजी डी० लिट् मूल्य २) ,

प्रस्तुत प्रश्न—श्री जैनेन्द्रकुमार मू० २)

सिद्धार्थ (महाकाव्य)—पं० अनूपशर्मा एम० ए०, एल० टी० मू० ३)

अरबी काव्यदर्शन—मौलवी महेशप्रसाद। मू० १।)

राधा—सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पं० उदयशंकर भट्ट का यह भाव-नाट्य हिन्दी में बिल्कुल नये ढंग की रचना है। मू० दस आने।

कुलीनता—सेठ गोविन्ददासजी का नया ऐतिहासिक नाटक। मू० १)

दो चिड़ियाँ—श्री जैनेन्द्रकुमारजी की कहानियों का संग्रह। मू० १)

दो फूल—श्रीमती सत्यवती मलिक की सुन्दर कहानियाँ। मू० १।)

शिवाजी—सर जदुनाथ सरकार। मू० १॥)

हिन्दी-साहित्य की भूमिका—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी। मूल्य २)

कबीर

लेखक—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य

सन्त कबीर के विषय में अपूर्व ग्रंथ। फरवरी में तैयार होगा।

नोट—कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगाइए।

संचालक—

हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई नं० ४

आप बेकार क्यों बैठे हैं ?

हमारे काम में हाथ बटाइए न !

उसका अर्थ स्वतः सेवाकार्य भी हो जायेगा

हमारी विशुद्ध ओषधियाँ, रस, भस्म, आसव, अरिष्ट सुगन्धित तैल और पापड़ इत्यादि बेचकर आप रुपये कमा सकते हैं और हमारे द्वारा अनाथों और पीड़ितों के सेवा-कार्य में भी इस प्रकार आप सहायक हो सकते हैं।

तुरन्त पत्र-व्यवहार कीजिए

↓

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ३६१ अपर चितपुर रोड कलकत्ता

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य द्वारा सम्पादित

अभिनव भारती ग्रन्थमाला की पुस्तकें

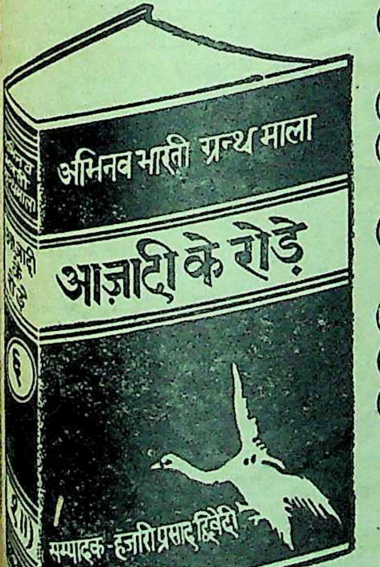

(१) **भारतवर्ष में जातिभेद**—आचार्य क्षिति-मोहन सेन एम. ए. शास्त्री मू० २)

(२) **मन के भेद**—प्रो० राजाराम शास्त्री मू० १)

(३) **आधुनिक हिन्दी-साहित्य**—सम्पादक स० ही० वात्स्यायन मू० १।।)

(४) **ब्रह्माण्ड और पृथ्वी** (सचित्र)—श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी मू० १)

(५) **बौद्ध धर्म**—श्री गुलाबराय एम. ए. मू० १।)

(६) **आजादी के रोडे**—श्री राममनोहरसिंह मू० १।।)

(७) **समुद्रपार के मोती**—श्री कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा बी. ए. १।)

व्यवस्थापक

अभिनव भारती-पुस्तकालय

१७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता

Regd No L 4671

सस्ता साहित्य मण्डल

का

नवीनतम प्रकाशन

तीस दिन : मालवीयजी के साथ

यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति करती है। प्रसिद्ध कवि और लेखक श्री रामनरेश त्रिपाठी ने महामना मालवीयजी के साथ रहकर उनके जीवन की कई झाँकियाँ इसमें संकलित की हैं। पुस्तक उपन्यास-जैसी रोचक है, साथ ही ज्ञानवर्द्धक और अपना जीवन बनानेवाले नव-युवकों के लिए दिशादर्शक भी। पृष्ठ ३५५; सादे कागज़वाली १।।), सजिल्द २)

भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन

श्री रामनारायण यादवेन्दु ने इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति के प्राचीन और अर्वाचीन स्वरूपों पर प्रकाश डाला है और हमारे नागरिक-जीवन का विवेचन करते हुए उसके अभावों और अभियोगों को व्यक्त किया है। पृष्ठ; ३१४ मूल्य १।)

युद्ध और अहिंसा

महात्मा गांधी के युद्ध और अहिंसा के प्रश्न पर समय-समय पर लिखे गये लेखों का अद्यतन (up-to-date) संग्रह। पृष्ठ २२०; मूल्य ।।।)

अहिंसा-विवेचन

गांधीवाद के गंभीर विचारक श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला ने इसमें अहिंसा का नये ही ढंग से विवेचन किया है, जो अहिंसा के कई पक्षों पर प्रकाश डालता है। मूल्य ।।)

रचनात्मक कार्यक्रम

इस छोटी-सी पुस्तिका में गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम की रूप-रेखा समझायी है। रचनात्मक कार्यक्रम गांधीजी के शब्दों में पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति का कार्यक्रम है। अतः पराधीन भारतीयों के लिए अनिवार्य रूप से पढ़ने योग्य। पृष्ठ २२ मूल्य =)

रूमी की कहानियाँ

विश्व-विख्यात महाकवि मौलाना रूमी की दार्शनिक और शिक्षाप्रद सुंदर कहानियों का हिन्दी रूपान्तर। अनुवादक—श्री चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य। पृष्ठ १०२, मू० ।।)

प्राप्ति-स्थान

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

दरीबा कलाँ दिल्ली : अमीनुद्दौला पार्क लखनऊ : खजूरी बाज़ार इन्दौर
जीरो रोड इलाहाबाद : १३२।१ हरिसन रोड, कलकत्ता
तथा हिन्दुस्तान भर के चर्खा-संघ के खादी-भण्डार

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

गु० कु० पुस्तकालय

ीवन साहित्य

अंक ८

मार्च : १९५२

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

जनता के प्रति

आप अहिंसा की शक्ति को खूब समझिए, तौलिए और यदि वह आपको उपयोगी, बलदायी और कार्यसाधक मालूम पड़े तो उसे अपने जीवन का धर्म बना लीजिए। जीवन के हर विभाग में उसे स्थान दीजिए। यदि आपको यह इतमीनान हो चुका है कि सत्य और अहिंसा के सिवाय आपके उद्धार का दूसरा मार्ग नहीं है, तो आपको अब दूसरा क़दम उठाना होगा। वह यह कि आप उन कामों को हाथ में लें जो राष्ट्रनिर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। उनके बिना न तो आप अपने लक्ष्य तक ही पहुँच सकते हैं, न भावी राष्ट्र की रचना की ही कल्पना कर सकते हैं; क्योंकि जैसे-जैसे राज्य-शासन में आपका दखल होता जायेगा और आपको सत्ता व अधिकार मिलते जायेंगे, वैसे-वैसे आपमें यह इच्छा स्वभावतः ही पैदा होनी चाहिए कि आप ग़रीबों की ज़्यादा-से-ज़्यादा सेवा करें जब आपका यह उद्देश्य है तो आपको ग्राम-सुधार के कार्यों को हाथ में लेकर ग्रामों की और ग्रामीणों की दशा को सुधारना होगा। उन्हें उचित ढंग की शिक्षा देकर उनके मानसिक अन्धकार को दूर करना होगा। साक्षरता ही शिक्षण का एक मात्र लक्षण नहीं है। जनता की आर्थिक दशा भी ठीक करनी है। इसके लिए ग्राम-उद्योगों को बढ़ाना भी ज़रूरी है। शराबखोरी मिटाने को आपके कार्यक्रम में खास स्थान मिलना चाहिए। इसी तरह तमाम सामाजिक बुराइयों को, कुरीतियों को हटाने के लिए भी उद्योग करना चाहिए। इन सबसे बढ़कर है सब जातियों में एकता क़ायम करना। दुर्भाग्यवश इन दिनों ऐसा मालूम होता है जैसे हमारा एक-दूसरे के धर्मों के प्रति—नहीं खुद आपसमें भी—प्रेम और आदर खत्म हो चुका है। घृणा और द्वेष का यह वातावरण हमारे राष्ट्रीय जीवन को कुतर-कुतर कर खा रहा है, विषैले फोड़े की तरह दुखदायी हो रहा है।

—स्व० जमनालाल बजाज—

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. **प्रार्थना** (कविता) २६१
[श्री सोहनलाल द्विवेदी]
२. **श्रद्धांजलि** [आचार्य विनोबा] २६२
३. **वैष्णवजन** [श्री हरिभाऊ उपाध्याय] २६४
४. **वह भक्त सेठ** [श्री जैनेन्द्रकुमार] २६७
५. **गांधी-युग की महिला** २६८
[श्री रमादेवी मिश्र]
६. **हमारे वस्त्र कैसे हों ?** २७०
[श्री हरिशंकर कपूर]
७. **जीवन का उषाकाल** २७३
[श्री प्रभुदास गांधी]
८. **'भैरवी' का गायक** २७६
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
९. **आयु की वृद्धि** [श्री पूर्णचन्द्र जैन] २७८
१०. **आरोग्य-मन्दिर से** २७९
[श्री विट्ठलदास मोदी]
११. **प्रस्तुत प्रश्न** २८०
सामयिक और शाश्वत साहित्य; शिक्षा में परिवर्तन; बालकों की पुस्तकें; चेतावनी और प्रार्थना; उपनाम या तखल्लुस।
१२. **कसौटी पर** २८४
शिक्षा में नयी दृष्टि, बुनियादी तालीम के दो साल (काशिनाथ त्रिवेदी); नवरस, जूनिया, कौटल्य के आर्थिक विचार, औपनिवेशिक स्वराज्य या विधान-परिषद, प्रजातंत्र (कृष्ण) ; अभिनवमेघ (ब्रजमोहन गुप्त); मोदक, पाँच कहानियाँ, बाल खिलौना, सद्गुणी बालक (वि०); विश्व भारती पत्रिका, विश्ववाणी : संस्कृति अंक (दो भाग), विशाल भारत : रवीन्द्र अंक, जीवन-सखा : व्यायाम अंक (सु०)
१३. **क्या और कैसे ?** २९०
हमारा नरसी मेहता ! ; फिर आशा ! ; वीरोचित, खेद जनक विवाद।

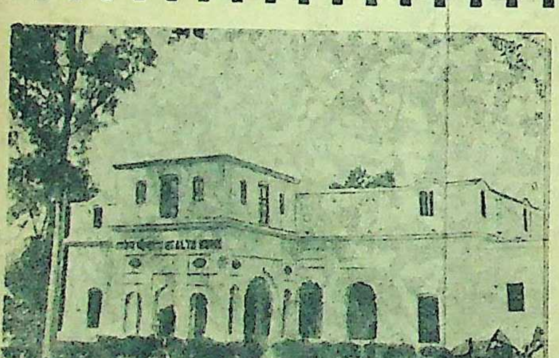

आरोग्य-मंदिर
में
आप स्वयं अपने को
निरोग बनावें—

यहाँ आपको प्राकृतिक चिकित्सा के साधन जल, धूप, मिट्टी, वायु, आसन-प्राणायाम, मालिश, उपवास युक्त आहार की विधि ही करायी और बतायी जायेगी। सूर्य-किरण चिकित्सा, दूध-कल्प, बिजली, जड़ी-बूटियाँ और विचारशक्ति के प्रयोग से भी आप परिचित होंगे। अपना स्वास्थ्य लौटाने के साथ-साथ अपने कुटुम्बवालों और इष्टमित्रों को प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगमुक्त होने और स्वस्थ रहने की सलाह देनेलायक हो जायेंगे।

इतना होने पर भी खर्च कम से कम

पत्र-व्यवहार द्वारा चिकित्सा मुफ्त। विशेष जानकारी के लिए उत्तर के लिए डाक-टिकट के साथ आज ही लिखिए।

पता—विट्ठलदास मोदी, आरोग्य मन्दिर, सूड़ीकुआँ, गोरखपुर।

कमज़ोर, भद्दे कागज़ों के पेकिंग से होनेवाली

अपने व्यवसाय की हानि को बचाइए

हमारा मज़बूत, चीमड़ व सुन्दर

गैंडा मार्का

बैम्बू पल्प का बना हुआ क्राफ्ट पेपर

आपकी कठिनाइयों का हल करदेगा

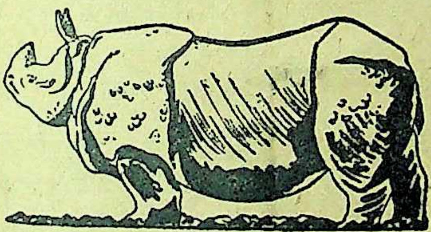

उच्चकोटि का
ग कागज़ है

भारतीय बाजार में आज
इसका सानी नहीं

एक बार इस कागज़ का व्यवहार करलेने पर
आप दूसरे पेकिंग कागज़ का नाम न लेंगे

अपना आर्डर तुरन्त भेजिए

रियएट पेपर मिल्स लिमिटेड

८, रायल ऐक्स्चेंज प्लेस, कलकत्ता

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और खास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था
'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें
हमारे यहाँ छपती हैं।

सिलाई कटाई शिक्षा

इस पुस्तक में हर तरह के कपड़े काटने और सीने की विधि चित्रों द्वारा इतनी सुगमता से समझायी गयी है कि आप थोड़े परिश्रम से अच्छे दर्जी हो सकते हैं। जिस घर में सिलाई की मैशीन है, वहाँ तो इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ही रहनी चाहिए। पुस्तक में लगभग ६० लाइन तथा ८ हाफटोन ब्लाक दिये गये हैं। बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, सुनहरी जिल्द। धड़ाधड़ बिक रही है।

मूल्य केवल १।)

मिलने का पता:—

बम्बई बुक डिपो तथा सस्ता साहित्य मण्डल
१६५/१ हरीसन रोड, कलकत्ता। कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

बिड़ला जूट मैन्युफैक्चरिंग कंपनी
लिमिटेड

—मैनेजिंग एजेंट—

'बिड़ला ब्रदर्स लिमिटेड,
८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

* * *

'पद्म' छाप जूट कार्पेटों के निर्माता

जो फर्शों को सजाने की सब तरह की सामग्री से सबको सन्तुष्ट करने के लिए प्रसिद्ध हैं

क्या उनका कोई स्टॉकिस्ट आपके नगर में नहीं है ?

तो

कृपया हमारे सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स को लिखिए ।

पता

मैसर्स गॉलसन्स एण्ड कम्पनी
११, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता

पोस्टबक्स नं० ६६३
तार का पता 'CARPETS'

संस्कृति अंक ० दूसरा भाग

देश और विदेश के महान् लेखकों ने 'विश्ववाणी' के संस्कृति अंक के लिए इतने अधिक और महत्वपूर्ण लेख भेजे हैं कि हमें संस्कृति अंक के और भाग प्रकाशित करने पड़ रहे हैं। जनवरी अंक के २०० पृष्ठों में तो भारतीय संस्कृति के ही पूरे लेख नहीं आ सके। इसलिए हमारा नम्र आयोजन है कि—

आगामी फ़रवरी अङ्क संस्कृति अङ्क का दूसरा भाग होगा

फ़रवरी अङ्क के लेखों की सूची

१ संस्कृति तो है ही हीं—जार्ज बर्नर्ड शा

२ संस्कृति का मूल आधार–अलबर्ट आइंस्टाइन

३ हमारे जीवन की संस्कृति—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

४ विज्ञान और भारतीय संस्कृति–सर सी. वी. रमन

५ भारतीय संस्कृति की नवचेतना—सर पी. एस. शिव स्वामी अय्यर

६ तलवार की संस्कृति—मेरिक डाड

७ अन्तर्राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय संस्कृतियाँ–अलबर्ट ग्यूरार

८ युद्ध और संस्कृति—श्री गोपाल हालदार

९ हम पीड़ित और शोषित निग्रो–और है हमारी भी संस्कृति–कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन

१० चीनी संस्कृति की नवचेतना—मेडम चियांग काइ शेक

११ सोवियत् रूस में शिक्षा और संस्कृति–श्री बुद्धदेव वसु

१२ अरबों का वर्तमान और भविष्य–अलबर्ट वाइटन

१३ सर्वधर्मसमभाव—स्वामी दरबारीलाल सत्यभक्त

१४ हिंदू-न्याय विधान–सर सीताराम पाटकर

१५ रणजीतसिंह–सर शफ़ात अहमद खां

१६ हिन्दू-मुसलमानों के लिए विचारणीय प्रश्न—सर मिरजा इसमाइल

१७ हिन्दू-मुस्लिम भ्रातृभाव—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

१८ नव व्यवस्था—श्री शंकर गणपतराव कोकने

इनके अतिरिक्त और अनेक लेख, सुन्दर कहानियाँ और रोचक एकांकी नाटक आदि होंगे

'विश्ववाणी' साहित्य की निर्मल गंगा है

देश के सभी विद्वानों की राय है कि 'विश्ववाणी' का एक-एक अंक हिन्दी-साहित्य की स्थायी वस्तु है। हिन्दी पाठकों का धार्मिक और पवित्र कर्तव्य है कि साहित्य के इस नव-निर्माण में वे 'विश्ववाणी' का हाथ बटाएँ।

आज ही पत्र लिखकर स्थायी ग्राहकों में अपना नाम लिखाइये

वार्षिक मूल्य ६)

एक अङ्क का ॥=)

मैनेजर, 'विश्ववाणी', इलाहाबाद

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रतिदिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५०० रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,००० ,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५० ,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५०० ,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५० ,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८ ,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५० ,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखाएँ—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

प्रकाशित होगया ! अवश्य देखिये !!

'जीवन-सखा'

का

'व्यायाम-अंक'

'जीवन-सखा' प्राकृतिक तथा शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य-विषयक अपने क्षेत्र का प्रतिनिधि पत्र है। यह आज सात वर्षों से जनता की सेवा करता आ रहा है। सातवें वर्ष की समाप्ति के अवसर पर इसका जनवरी का अंक व्यायाम सम्बन्धी विविध विषयों से विभूषित सर्वांग सुन्दर 'व्यायाम-अंक' के रूप में प्रकाशित हुआ है। आज ही ३) भेजकर ग्राहक बन जाइये और 'व्यायाम-अंक' के अलावा साल भर स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्तमोत्तम लेखों को पढ़कर लाभ उठाइये।

मैनेजर, 'जीवन-सखा',
प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह
८७, हिम्मतगंज, इलाहाबाद।

निराश जनों की एक ही आशा

प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह

जहाँ कितने ही असाध्य समझेजानेवाले रोगियों ने अपने को अच्छा कर लिया।

रोगियों की सुविधा का विशेष प्रबन्ध

रोगियों के आराम और सुविधा के खयाल से स्वास्थ्य-गृह में इस साल से कुछ परिवर्तन कर दिये गये हैं। इस वर्ष से तीन श्रेणियाँ करदी गयी हैं। प्रथम श्रेणीवाले रोगियों से कमरे का किराया १५) और परामर्श शुल्क ३०) मासिक और द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के रोगियों से क्रम से १०) कमरे का किराया और २०) परामर्श शुल्क, तथा ७) कमरे का किराया और १०) परामर्श शुल्क मासिक लिये जायेंगे। सुविधाओं का पूरा विवरण पत्र लिखकर मँगाइये। पत्र के साथ टिकट भेजना जरूरी है।

मैनेजर, प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह,
८७, हिम्मतगंज,
इलाहाबाद।

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

न नं०
२७

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये—

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
लाइयान
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे
२० वर्ष के अनुभव
से लाभ उठाइए

साहित्य सदन, अबोहर

का

सरल, सुबोध और सर्व सुलभ प्रकाशन

सरल स्वास्थ्य-साधन

नियमित तथा संयत आहार-विहार द्वारा समस्त रोगों का अचूक इलाज हो सकता है, इस कथन पर शायद आपको विश्वास न हो। तब एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। एक बा केवल डेढ़ रुपये खर्च कर, दवाइयों पर खर्च होनेवाले सैंकड़ों रुपये बचाइये और अपने बहुमूल् स्वास्थ्य का बीमा करा लीजिये। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक में प्रतिपादित नियमों का पालन करने पर आपको कभी डाक्टर या वैद्य की जरूरत न पड़ेगी। अपने विषय के विशेषज्ञ विद्वान् द्वार लिखित ३० चित्रों से युक्त २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १।) है।

शिक्षा में नयी दृष्टि

शिक्षा-संसार में यह पुस्तक अपने ढंग की अकेली है। नवीन मनोविज्ञान तथा नयी शिक्षा के सिद्धान्तों का विषद् विवेचन एक सुप्रसिद्ध शास्त्री की कलम से प्रसूत इस पुस्तक में पढ़ें। माँ-बाप शिक्षक तथा प्रत्येक बाल-हितैषी की यह पथ-प्रदर्शिका है। सिर्फ आठ आने में इसे खरीदकर अपने बच्चों का भविष्य उज्वल बनाइये।

आज का जापान

वर्तमान विश्व-युद्ध में जापान का महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी आंतरिक विशेषताओं तथ दुनिया को चकाचौंध करनेवाली आकस्मिक उन्नति का रहस्य बतानेवाली यह बिलकुल सामयि पुस्तक है। सचित्र, मूल्य केवल १)

ग्राम-सुधार (नाटक)

ग्रामों में फैली हुई कुरीतियाँ, अन्ध विश्वास और अत्याचार-पीड़ित किसानों की दुर्दशा क नग्न चित्र इस पुस्तक में पढ़िए। मूल्य ।।=) मात्र।

बाल-गीत

भावी राष्ट्र के निर्माता बालकों में स्वातन्त्र्य-प्रेम और निर्भीकता का संचार करनेवाली इ पुस्तिका को अपने बच्चों के हाथ में अवश्य दीजिए। मूल्य केवल ।।)

विश्वधाय

गोपालन के ऊपर एक विशेषज्ञ की लिखी हुई इस अत्यन्त उपयोगी तथा सचित्र पुस्तक का मूल्य

ईसप-नीति निकुंज

महर्षि ईसा-की नीति की ६१ शिक्षाप्रद, मनोरंजक कहानियों का सुन्दर पद्यमय अनुवाद। मूल्य ।

बाल-गोपाल

संयुक्त अक्षरों से रहित सरस कविताओं का एक अनूठा बालोपयोगी संग्रह। मूल्य ≈)।।

बलिदान (एकांकी नाटक)

भारतीय स्त्री-समाज पर होनेवाले रोमांचकारी अत्याचारों की झाँकी इस नाटक में देखिए। मू०)।।

सस्ता साहित्य मंडल

—दिल्ली, लखनऊ, इन्दौर,
कलकत्ता, इलाहाबाद

कनाटसर्कस, नयी दिल्ली

१ मार्च १९४२

'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों की सेवा में

होदय,

पिछले वर्ष मई के महीने में 'जीवन-साहित्य' के द्वारा आपकी सेवा में निम्नलिखित नयी की सूचना भेजी थी—

१ लड़खड़ाती दुनिया
२ सेवा-धर्म : सेवा-मार्ग
३ दुनिया की शासन प्रणालियाँ
४ यूरोपीय युद्ध और भारत
५ देशी नरेशों का दर्जा
६ डायरी के कुछ पन्ने
७ बिखरे विचार
८ प्रलय-वीणा
९ सोने की माया
१० सत्यवीर सुकरात

आज हम फिर अपनी नयी पुस्तकों की सूचना इसके द्वारा आपको देरहे हैं। हमें खेद है रणवश इससे पहले नयी पुस्तकों की सूचना हम आपको नहीं दे पाये। इस वर्ष निम्न- नयी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

तीस दिन : मालवीयजी के साथ (रामनरेश त्रिपाठी)	१॥), २)
युद्ध और अहिंसा : (म० गाँधी)	।॥)
महावीर वाणी (पं० बेचरदास दोसी)	१), १॥)
भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन : (रामनारायण 'यादवेन्दु')	१।)
बिखरे विचार : (घनश्यामदास बिड़ला) सस्ता संस्करण	।॥)
अहिंसा-विवेचन : (किशोरलाल मशरूवाला)	॥)
पशुओं का इलाज : (परमेश्वरीप्रसाद गुप्ता)	॥)
उपनिषदों की कथाएँ	।)
आदर्श बालक (बालचरित्र संग्रह)	॥)
हमी की कहानियाँ : (चौ० शिवनाथसिंह शांडिल्य)	॥)
रचनात्मक कार्यक्रम : (म० गाँधी)	=)
रचनात्मक कार्यक्रम : कुछ सुझाव (डा० राजेन्द्रप्रसाद)	≡)
वहन : (यशवन्त पंड्या) (बालक-नाटक)	॥)
स्वास्थ्य के लिए शाक तरकारियाँ : (महेन्द्रनाथ पाण्डेय)	१।)
चौवोली (४ राजस्थानी कहानियाँ)	॥)
मन्दिर (सात एकांकी नाटक) : (हरिकृष्ण प्रेमी)	।॥)

इनमें १ से ६ नं० तक की पुस्तकें सर्वोदय साहित्य-माला की, ७ से १० नं० तक की पुस्तकमाला की, ११, १२ सामयिक साहित्य-माला की तथा १३ से १५ नं० तक की न्सी की पुस्तकें हैं। १६ नं० की पुस्तक हिन्दी-मन्दिर द्वारा प्रकाशित है।

इनमें मंडल द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर स्थायी ग्राहकों को तीन आना रुपया; सोल एजेन्सी हिन्दी-मन्दिर की पुस्तकों पर चार आना कमीशन मिलेगा।

इनके अलावा निम्नलिखित पुस्तकें भी मंडल के स्थायी ग्राहक पौने मूल्य में मँगा सकते हैं—

१.	आनन्द निकेतन : (श्री रामनाथ सुमन)	२)
२.	घर की रानी ,,	१)
३.	अहंवादी की आत्मकथा (फ्रेंच उपन्यास)	१)
४.	भक्ति तरंगिणी (भक्ति विषयक कविता संग्रह)	१)

ये पुस्तकें साधना-सदन, प्रयाग की हैं और मंडल के ग्राहकों को दिल्ली ऑफिस तथा मंडल की शाखाओं पर से मँगाने पर पौने मूल्य में मिल सकती हैं ।

आपको यह तो ज्ञात हो ही गया होगा कि प्रयाग का 'हिन्दी-मन्दिर' मंडल ने खरीद लिया है । अब हिन्दी-मन्दिर की पुस्तकें आप अपने लिए पौने मूल्य में मँगा सकते हैं । 'मंदिर' की पुस्तकों का सूचीपत्र भी इसके साथ दिया गया है ।

खादी-भण्डारों पर केवल 'मंडल' की पुस्तकें ही आपको **दो आना रुपया** कमीशन पर मिला करेंगी : सोलएजेन्सी और हिन्दी मन्दिर तथा साधना मंदिर की और फुटकर पुस्तकें आप मंडल के प्रधान कार्यालय तथा उसकी शाखाओं पर से ही मँगा सकते हैं ।

ग्राहकों को कमीशन संबंधी नये नियम तो मालूम हो ही गये होंगे । अब स्थायी ग्राहकों को मंडल की पुस्तकों पर ≡) रुपया तथा सोलएजेन्सी और 'हिन्दी मन्दिर' की पुस्तकों पर ।) रुपया कमीशन मिलेगा । 'खादी भण्डारों' पर से मंडल की पुस्तकें आपको =) रुपया कमीशन पर मिला करेंगी ।

पहले हम आपको जवाबी कार्ड छपाकर भेजा करते थे जिसके पैसे हम यहाँसे देते थे । पर अब हमें खेद है कि उस प्रथा को हमें कारण वश स्थगित कर देना पड़ा है । अब आप कृपा करके अपनी ओर से ही आर्डर बनाकर भेजें, ऐसी प्रार्थना है ।

भवदीय

मार्तण्ड उपाध्याय प्रधान व्यवस्थापक

सद्ग्रन्थ, सद्भाव और सद्विचार फैलानेवाला हिन्दी का प्रमुख पत्र

जीवन-साहित्य

[सम्पादक—**हरिभाऊ उपाध्याय**]

- ● थोड़े से समय में ही इस पत्र ने हिन्दी-साहित्य में विशेष स्थान बना लिया है ।
- ● इसके इतने पाठक होगये हैं कि हिन्दी के किसी पुराने-से-पुराने और प्रतिष्ठित पत्र के न होंगे ।
- ● इसमें दिया गया विज्ञापन ऐसे लोगों के पास पहुँचेगा जो समझ-बूझकर चीज़ों को अपनाते हैं और इसमें ऐसे ही विज्ञापन लिये भी जाते हैं जो ग्राहकों को प्रलोभन में डालकर ग़लत रास्ते न ले जाते हों ।

इस कारण इसमें विज्ञापन देना और इसका ग्राहक बनना दोनों ही लाभप्रद हैं ।

वार्षिक मूल्य १।।) : 'मण्डल' के ग्राहकों से १) : नमूना =) के टिकटों में

'सस्ता साहित्य मण्डल' के प्रकाशन

[१) देकर स्थायी ग्राहक बनने पर ये पुस्तकें तीन आना रुपया कमीशन पर और का मुख-पत्र 'जीवन-साहित्य' १) वार्षिक में मिला करेगा। 'मण्डल' का पूरा सेट थ लेने पर एक सुन्दर शेल्फ मिलेगा। या सारी पुस्तकें पौनी क़ीमत में मिलेंगी]

सर्वोदय-साहित्य-माला

१. **दिव्य जीवन** : स्वेट मार्डेन की Miracles of Right Thought' नामक का अनुवाद। जीवन की कठिन समस्याओं युवकों के लिए, यह पुस्तक संजीवनी के समान है। ।=)

२. **जीवन-साहित्य** : काका कालेलकर के संस्कृति, सभ्यता, राजनीति आदि महत्त्व-षयों पर लिखे निबन्ध। मूल्य ।।=)

३. **तामिल वेद** : दक्षिण के अछूत महात्मा ल्लुवर की उच्च कोटि की नैतिक, धार्मिक, तिक, सामाजिक शिक्षाओं से भरा हुआ ।।।)

. **भारत में व्यसन और व्यभिचार** : ों में फँसे भारतवासियों की दुर्दशा का वर्णन उससे छूटने के उपाय। ।।।=)

१४. **दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह** : त्मा गांधी) सत्याग्रह की उत्पत्ति तथा उसके का खुद गांधीजी द्वारा लिखा इतिहास। १।)

१६. **अनीति की राह पर** : संयम, ब्रह्मचर्य पर गांधीजी के लेख ।।=)

१८. **कन्या-शिक्षा** : (स्व० चन्द्रशेखर ी) इसमें कन्याओं के जीवन तथा उनके ों की चर्चा प्रश्नोत्तर के रूप में बड़े सुन्दर सरल ढंग से की गयी है। ।)

१९. **कर्मयोग** : (अश्विनीकुमार दत्त) र्म' सिद्धांत पर विवेचनात्मक पुस्तक ।=)

२२. **व्यावहारिक सभ्यता** : (गणेशदत्त) रोज़ के व्यवहार में आनेवाली शिक्षाओं की , शिक्षाप्रद तथा ज्ञानप्रद पोथी। ।।)

२४. **स्त्री और पुरुष** : (टॉल्स्टॉय) संयम, , स्त्री-पुरुषों के संबंध आदि पर विवेच-प्रवचन ।।)

२६. **सफ़ाई** : (गणेशदत्त 'इंद्र') घर, गाँव तथा शरीर की सफ़ाई के बारे में उत्तम पुस्तक ।=)

२७. **हम क्या करें?** टॉल्स्टॉय की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'What shall we do then?' का अनुवाद। पीड़ितोंकी समस्याएँ और उनका हल। एक समभावी हृदय का मंथन। १।)

३६. **तरंगित हृदय** : स्वामी अभयदेवजी की विचार-तरंगों का सुन्दर संग्रह। स्व० स्वामी श्रद्धानन्द के आशीर्वाद सहित। ।।)

४१. **दुखी दुनिया**: (च० राजगोपालाचार्य) सच्ची घटनाओं पर लिखी कहानियाँ। ग़रीब और पीड़ित मानवी दुनिया के करुण चित्र। ।।)

४३. **आत्म-कथा** : (महात्मा गांधी) संसार के साहित्य का एक उज्ज्वल रत्न। उपनिषदों की भाँति पवित्र और उपन्यासों की भाँति रोचक। चरित्र को निर्मल और मन को ऊँचा उठानेवाला। हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा किया गया प्रामाणिक अनुवाद। ।।) १) १।)

४५. **जीवन-विकास** : डार्विन के विकास-वाद के सिद्धान्त को विशद रूप से समझानेवाली पुस्तक.। १)

४७. **फाँसी (विक्टर ह्यूगो)** : फाँसी की सजा पाये हुए एक युवक का हृदय-मंथन। ।=)

५१. **भाई के पत्र** : (रामनाथ 'सुमन') स्त्री-जीवन पर प्रकाश डालनेवाली, उनकी घरेलू एवं रोज़मर्रा की कठिनाई में पथ-प्रदर्शक, बहनों के हाथों में दिये जाने योग्य एक ही पुस्तक। १।)

५८. **इंग्लैण्ड में महात्माजी** : (महादेव देसाई) महात्माजी की दूसरी गोलमेज परिषद् के समय की इंग्लैण्ड की यात्रा का सुन्दर, सरस और मज़ेदार वर्णन। (दुबारा छप रहा है) १)

५९. **रोटी का सवाल अथवा भावी क्रान्ति का संगठन** : प्रिंस क्रोपाटकिन की अमर

कृति 'Conquest of Bread' का सरल अनुवाद। अराजक समाजवाद का सरल और सुबोध विवेचन। (दुबारा छप रहा है) १)

६०. दैवी-सम्पद् : (रामगोपाल मेहता) 'दैवी-सम्पद् से मनुष्य को मोक्ष होता है।' गीता की इस उक्ति का सुन्दर विवेचन। ।=)

६४. संघर्ष या सहयोग ? : क्रोपाटकिन की 'Mutual Aid' नामक पुस्तक का अनुवाद। इसमें बताया है कि जीवन का आधार संघर्ष नहीं परस्पर सहयोग है। १।)

६५. गांधी-विचार दोहन : (किशोरलाल मश्रुवाला) इसमें महात्माजी के विचारों का विषयवार संकलन किया है। महात्माजी की सम्मति-सहित ॥।)

६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता : (रामनाथ 'सुमन') राष्ट्रनिर्माताओं के जीवन-परिचय और उनके जीवन की झलक। १॥)

६९. आगे बढ़ो : स्वेट् मार्डेन के 'Pushing to the Front' का संक्षिप्त अनुवाद। कठिनाई में पड़े युवकों को सच्चे साथी के समान रास्ता बतानेवाली पुस्तक। ।)

७०. बुद्ध-वाणी : (वियोगी हरि) भगवान् बुद्ध के चुने हुए वचनों का विषयानुक्रम से किया गया संकलन। बौद्ध-धर्म के विषय में हिन्दी में मिलनेवाले सब ग्रन्थों का सार-तत्त्व। ॥=)

७१. कांग्रेस का इतिहास : डॉ० पट्टाभि सीतारामैया की लिखी 'History of the Congress' का हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा संपादित प्रामाणिक अनुवाद। २।)

७२. हमारे राष्ट्रपति : (सत्यदेव विद्यालंकार) कांग्रेस के पहले अधिवेशन से अबतक के तमाम सभापतियों के जीवन-परिचय। भूमिका-लेखक श्री बाबू राजेन्द्रप्रसाद। (छप रहा है) १)

७३. मेरी कहानी : पं० जवाहरलाल नेहरू की आत्म-कथा। वर्तमान समय की अद्वितीय पुस्तक। सन् १९३५ के बाद की घटनाओं के बारे में जवाहरलालजी ने इसमें अपने संस्मरण एक नये अध्याय में लिख दिये हैं। ३)

७४. विश्व-इतिहास की झलक : पण्डित जवाहरलालजी के अपनी पुत्री के नाम लिखे पत्रों का संग्रह। इसमें उन्होंने सारी दुनिया के इतिहास की झाँकी बड़ी सरलता से करायी है। ८)

७५. पुत्रियाँ कैसी हों ? लड़कियों के लिए उपयोगी पुस्तक (छप रही है) ॥)

७६. नया शासन-विधान [प्रान्तीय स्वराज्य] : (हरिश्चंद्र गोयल) नये शासन-विधान के प्रांतीय स्वराज्य का विवेचन। ॥।)

७७. गाँवों की कहानी : (स्व० रामदास गौड़) हमारे गाँवों के अतीत वैभव और आज की चिंतनीय दशा का दर्शन। ॥)

७८. महाभारत के पात्र : (दो भाग) (आचार्य नानाभाई) महाभारत के पात्रों का सरस परिचय। १)

७९. गाँवों का सुधार और **संगठन** (स्व० रामदास गौड़) हमारे गाँवों के सुधार और संगठन की समस्या पर हिन्दी में यह बहुत महत्त्वपूर्ण और मप्रामाणिक ग्रंथ है। (दुबारा छप रहा है) १)

८०. सन्तवाणी (वियोगी हरि) कबीर, नानक, सूर, तुलसी, रैदास, दादू आदि सुप्रसिद्ध संतों—की मुख्य-मुख्य वाणियाँ। टीका और संतों के परिचयसहित। ।)

८१. विनाश या इलाज ? म्यूरियल लेस्टर ने इसमें अपने अनुभव से यह साबित किया है कि दुनिया में जो हिंसा व युद्ध मचा हुआ है उससे अहिंसा और शांति से ही मुक्ति मिल सकती है। ॥)

८२. (४) अंग्रेज़ी राज में हमारी दशा : (ज़ेड० ए० अहमद) (दुबारा छप रही है) ॥)

८३. (५) लोक-जीवनः (काका कालेलकर) ग्राम-जीवन के सरल और सुबोध निबन्धों का संग्रह। ॥)

८४. गीता-मंथन : (किशोरलाल मश्रुवाला) गीता पर अत्यंत सरल सुबोध और सरस विवेचन। उपन्यासों की भाँति रोचक (छप रही है)

८५. (६) **राजनीति-प्रवेशिका :** हेरल्ड ...ी की 'Introduction to Politics' का ...ाद ।।)

८६. (७) **हमारे अधिकार** और **कर्तव्य :** ...चन्द्र विद्यालंकार) नागरिकों के अधिकार ...देश, समाज और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य को ...भाषा में समझानेवाली पुस्तक ।।)

८८. **स्वदेशी** और **ग्रामोद्योग :** महात्मा ...ी के इस विषय के लेखों का संग्रह ।।)

९०. **प्रेम में भगवान् :** टॉल्स्टॉय की अठारह ...हुई शिक्षाप्रद कहानियाँ, पृष्ठ २८० । ।।।)

९२. **ब्रह्मचर्य :** महात्माजी के ब्रह्मचर्य तथा ...पर लिखे ताज़े लेखों का संग्रह है । ।।)

९३. (१०) **हमारे गाँव** और **किसान :** ...ौधरी मुख्तारसिंह) गाँवों और किसानों ...हद दर्जे की ग़रीबी का वर्णन और उसके ...रने के उपाय ।।)

९४. **गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ :** गांधीजी ...७१ वीं वर्षगाँठ पर समर्पित ग्रन्थ का हिंन्दी ...ुवाद; सम्पादक: सर्वपल्ली राधाकृष्णन् १।) २)

९५. **हिन्दुस्तान की समस्याएँ :** पं० ...हरलाल नेहरू के भारत की समस्याओं पर ...ारपूर्ण निवन्ध । १)

९६. **जीवन-सन्देश:** विश्व-प्रसिद्ध सीरियन ...ि ख़लील जिब्रान की मशहूर पुस्तक 'The ...phet' का अनुवाद । (छप रहा है) ।।)

९८. **समाजवाद : पूँजीवाद :** प्रसिद्ध ...क बर्नार्ड शॉं की प्रसिद्ध पुस्तक के आधार ...लिखी । ।।।)

९९. **मेरी मुक्ति की कहानी :** महर्षि ...स्टॉय की पारदर्शक आत्म-कहानी तथा उनके ...न के सुन्दर संस्मरण । ।।)

१००. **खादी-मीमांसा :** खादी-शास्त्र का ...न करके उसे तर्क तथा आँकड़ों और उद्धरणों ...मझानेवाली अद्वितीय पुस्तक ।-(नया संस्करण ...रहा है). १।।)

१०१. **बापू :** (घनश्यामदास बिड़ला) ...त्मा गांधी का अत्यन्त निकट से किया हुआ विश्लेषण, अनेक निजी रोचक तथा स्मरणीय प्रसंगों से पूर्ण—१३ सुन्दर चित्रों सहित; ।।=), सजिल्द १।), हाथ कागज़ की २)

१०२. **विनोबा और उनके विचार :** विनोबा के अमूल्य विचार रत्नों का संग्रह । दूसरा सुसंपादित संस्करण (छप रही है) १)

१०३. **लड़खड़ाती दुनिया :** (जवाहरलाल नेहरू) आज की दुनिया की तस्वीर । देश-विदेश पर लिखे गये महत्त्वपूर्ण लेखों का सुन्दर संग्रह । भूमिका-ले०—आ० नरेन्द्रदेव । (छप रही है) १)

१०४. **सेवाधर्म-सेवामार्ग :** (श्रीकृष्णदत्त पालीवाल) इसमें सेवा के क्षेत्र, सेवा के प्रकार और सेवा के तरीके पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला गया है १)

१०५. **दुनिया की शासन-प्रणालियाँ**

दुनिया की प्रचलित शासन-प्रणालियाँ उनके संगठन तथा कार्य के साथ वर्तमान-युद्ध की पृष्ठ-भूमि, उसकी वर्तमान गतिविधि तथा उसके होनेवाले असर का रोचक वर्णन है । (दुबारा छप रही है) १।।)

१०६. **डायरी के पन्ने**—(श्री घनश्यामदास बिड़ला) ये पन्ने उस समय के हैं जब दूसरी गोलमेज़ परिषद् में ले० गाँधीजीके साथ गये थे । रोचक और ज्ञानवर्धक होने के साथ यह भारतीय राजनीति के विद्यार्थी के लिए बहुत उपयोगी है । अनेक चित्रों सहित— ।।।), १।)

१०७. **तीस दिन :** पूज्य मालवीयजी के साथ तीस दिन रहकर पण्डित रामनरेशजी ने नयी शैली में उनकी जीवन-कथा लिखी है । १।।) २)

१०८. **युद्ध** और **अहिंसा :** म० गांधी के युद्ध और अहिंसा पर लेख । ।।।)

१०९ **महावीर-वाणी** (पं० बेचरदास दोशी) भगवान महावीर के वचनों का सानुवाद संकलित संग्रह । १)

११०. **भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन :** श्रीरामनारायण यादवेंदु की लिखी अपने विषय की यह मौलिक पुस्तक है । १)

१११. **बिखरे विचार :** (श्री घनश्यामदास

बिड़ला) के चुने हुए लेखों का संग्रह—नया संस्करण मूल्य ।।।) सजिल्द १।।) २)

११२. अहिंसा विवेचन–किशोरलालभाई के निबंधों का संग्रह। गांधीजी की प्रस्तावना सहित— ।।)

नवजीवन-माला

१. गीताबोध—(म० गांधी) गीता का सरल तात्पर्य। =)

२. मंगल प्रभात—(म० गांधी) सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों पर प्रवचन। -)

३. अनासक्तियोग—(म० गांधी) गीता की टीका—=), श्लोक-सहित ≡), सजिल्द ।)

४. सर्वोदय—रस्किन के 'Unto This Last' का गांधीजी का किया गया रूपान्तर। -)

५. नवयुवकों से दो बातें—प्रिंस क्रोपाटकिन के 'A word to Youngmen' का अनुवाद। -)

६. हिन्द-स्वराज—महात्माजी की भारत की मौजूदा समस्या पर लिखी पुरानी पुस्तक जो आज भी ताज़ी है। ≡)

८. किसानों का सवाल–(डॉ० ज़ेड० ए० अहमद) इसमें किसानों के सवाल पर बड़ी सुन्दरता से विचार किया गया है। =)

९. ग्राम-सेवा—ग्राम-सेवा पर गांधीजी ने इसमें विशद प्रकाश डाला है। =)

१२. गाँवों का आर्थिक सवाल—गाँवों के आर्थिक प्रश्न तथा उनको हल करने की योजनाओं का संग्रह। ≡)

१३. राष्ट्रीय गीत—राष्ट्रीय गीतों और कविताओं का संग्रह। =)

१४. खादी का महत्व—(श्री गुलजारीलाल नन्दा) खादी-विषयक प्रामाणिक और खादी की महत्ता और उपयोगिता बतानेवाला -)।।

१५. जब अँग्रेज़ नहीं आये थे—अंग्रेज़ों के भारत आने से पहले भारत की दशा का वर्णन ≡)

१६. सोने की माया—(श्री. किशोरलाल) विनिमय और मुद्रा पर रोचक रूपक। -)

१७ सत्यवीर सुकरात.(म० गांधी) ग्रीस के महापुरुष सुकरात के मुक़दमे और उनके बयान का दिलचस्प और शिक्षाप्रद वर्णन। -)

सामयिक साहित्य माला

३. हम कहाँ हैं? कांग्रेस की वर्तमान हालत और देश की मौजूदा समस्याओं पर पं० जवाहरलालजी के लेख। =)

४. युद्ध-संकट और भारत। वर्तमान यूरोपीय युद्ध और भारत की स्थिति पर कांग्रेस की ओर से तथा म० गांधी, राष्ट्रपति आदि द्वारा दिये गये वक्तव्यों का संग्रह। ।)

५. सत्याग्रह : क्यों, कब और कैसे? (म. गांधी) सत्याग्रह कब, क्यों और कैसे शुरू किया जाये, इसपर महात्माजी के लेख। ≡)

६. राष्ट्रीय-पंचायत। 'Constituent Assembly' पर महात्माजी, पं० जवाहरलाल नेहरू, राजाजी आदि के लेख। ।)

७. देशी राजाओं का दरजा। (प्यारेलाल) देशी राजाओं के अधिकार और दरजे के बारे में अधिकार पूर्ण पुस्तक। ।)

८. यूरोपीय युद्ध और भारत (२) (गांधी : जवाहरलाल) यूरोपीय युद्ध और भारतीय संकट को स्पष्ट समझानेवाली पुस्तक। इसमें पहले खण्ड से आगे का हाल है। ।)

९. रचनात्मक कार्यक्रम—सत्याग्रहियों के लिए महात्माजी द्वारा तैयार किया हुआ नया प्रोग्राम। =)

१०. अहिंसा और अनुशासन—(ग्रेग) अहिंसात्मक युद्ध के लिए किस प्रकार अनुशासन की आवश्यकता होती है यह बतलानेवाला निबंध महात्माजी की प्रस्तावना सहित— ।)

रचनात्मक कार्यक्रम : कुछ सुझाव—श्री० राजेन्द्र बाबू ने महात्माजी द्वारा लिखी रचनात्मक कार्यक्रमवाली पुस्तक को समझाते हुए यह पुस्तिका लिखी ह। ≡)

विविध प्रकाशन

१. पं० मोतीलाल नेहरू—श्री 'सुमन' ।)

२. पं० जवाहरलाल नेहरू— ,, =)

३. सप्तसरिता—भारत की सात लोक-ों का भक्तिपूर्वक किया हुआ उपस्थान; —आचार्य काका कालेलकर =)

४. चारा दाना और उसके खिलाने के -(परमेश्वरीप्रसाद गुप्त) पशुपालन विषय क और वैज्ञानिक पुस्तक ≡)

पशुओं का इलाज—उपरोक्त ले० की पशुओं पर अनुभूत और वैज्ञानिक पुस्तक । ।।)

. उपनिषदों की कथाएँ—उपनिषदों की नक उपदेशप्रद कथाएँ । ।)

. आदर्श बालक—समस्त दुनिया के ान रूप से भारत के आदर्श बालकों के की रोचक कथाएँ । ।।)

. रूमी की कहानियाँ: (अनु०—चौ० सिंह शांडिल्य) प्रसिद्ध फ़ारसी कवि रूमी की कुछ चुनी हुई आदर्श और द कहानियों का हिन्दी अनुवाद । ।।)

सोल एजेन्सी

१. लोपामुद्रा: (श्री कन्हैयालाल मुनशी) ग्वेदकालीन उपन्यास में अगस्त्य ऋषि की की जीवन कथा है । १)

२. रोटी का राग: (श्री० श्रीमन्नारायण एम० ए०) यह रोटी का राग नये युग ग है। महात्माजी के शब्दों में रचयिता का स्पष्ट और निर्मल है।" ।।)

३. फ्रांस की राज्य-क्रांति: (डॉ० सत्य-विद्यालंकार) फ्रांस की राज्यक्रान्ति का स। १।।)

४. गांधीवाद की रूपरेखा: (श्री रामनाथ) गांधीवाद का विवेचन और सभी दृष्टियों जी के विचारों की परख । १)

. पिता के पत्र पुत्री के नाम: (पंडित, लाल नेहरू) अपनी पुत्री कुमारी इंदिरा के नाम दुनिया के शुरू की कहानी पत्रों ी है। ।।)

६. प्रलय-वीणा: (श्री सुधीन्द्र, एम. ए.) इसमें कवि की बिल्कुल नये दृष्टिकोणवाली नयी कविताएँ संग्रहीत हैं । १)

७. स्वास्थ्य के लिए शाक-तरकारियाँ—इसमें बड़े सरल ढंग से बताया है कि जो शाक-तरकारियाँ हम रोज़ खाते हैं उनको किस प्रकार किस ढंग और किस हेरफेर के साथ खाने से हम स्वस्थ रह सकते हैं और इस प्रकार स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं। १।)

८.—बहिन—गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री यशवन्त पंड्या के बालकों के खेले जाने योग्य नाटकों का संग्रह। एक रंगीन तथा कई सादे चित्रों सहित ।।)

९. चौबोली—चार सुन्दर राजस्थानी कहानियाँ ।।)

अप्राप्य पुस्तकें

नीचे लिखी पुस्तकें समाप्त हो गयी हैं। क़ाग़ज की मंहगाई और तंगी की वजह से इनको अभी तुरत छपाने में हम असमर्थ हैं। अतः इनकी मंगाने का कष्ट न करें।

५. सामाजिक कुरीतियाँ (ज़ब्त) ६. भारत के स्त्री-रत्न ७. अनोखा ८. ब्रह्मचर्य-विज्ञान ९. यूरप का इतिहास १०. समाज विज्ञान ११. खद्दर का संपत्ति-शास्त्र १२. गोरों का प्रभुत्व १३. चीन की आवाज़ १५. विजयी बारडोली १७. सीता की अग्नि-परीक्षा २०. कलवार की करतूत २२. अँधेरे में उजाला २३. स्वामीजी का बलिदान २४. हमारे जमाने की गुलामी (ज़ब्त) २८. हाथ की कताई-बुनाई २९. आत्मोपदेश ३०. यथार्थ आदर्श जीवन ३२. गंगा गोविन्दसिंह ३३. श्रीरामचरित्र ३४. आश्रम-हरिणी ३५. हिन्दी मराठी कोष ३६. स्वाधीनता के सिद्धान्त ३७. महान् मातृत्व की ओर ३८. शिवाजी की योग्यता ४०. नरमेध ४२. जिन्दा लाश ४४. जब अंग्रेज़ आये ४६. किसानों का बिगुल (ज़ब्त) ४८. अनासक्तियोग गीताबोध ४९. स्वर्ण-विहान (ज़ब्त) ५०. मराठों का उत्थान और पतन ५२. स्वगत ५३. युगधर्म

५४. स्त्री-समस्या ५५. विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला ५६. चित्रपट ५७. राष्ट्रवाणी ६१. जीवनसूत्र ६२. हमारा कलंक ६३. बुद्बुद् ६६. एशिया की क्रांति (ज़ब्त) ६८. स्वतन्त्रता की ओर ८७. गांधीवाद समाजवाद ८९. सुगम चिकित्सा ९१. महात्मा गांधी ९७. समन्वय । **नवजीवनमाल** ७. छूतछात की माया—१०. खादी और गादी की लड़ाई (विनोबा) =) ११. मधुमक्खी-पालन— **सामयिक साहित्य माला** १. कांग्रेस-इतिहास (१९३५-३९) ।-) २. दुनिया का रंगमंच **विविधि प्रकाशन** १. पंडित मोतीलाल नेहरू—

आगे प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ

१. हमारी आजादी की लड़ाई——मराठी के प्रसिद्ध लेखक आचार्य जावड़ेकर की पुस्तक "आधुनिक भारत" का श्री. हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा किया हुआ रूपान्तर दाम २)

२. मेरी हिमाक़त——श्री वियोगी हरि के सुन्दर और व्यंग्यात्मक २१ लेख जो 'सर्वोदय' और 'जीवन-साहित्य' में निकल चुके हैं उनका संग्रह दाम ।||)

३. हिन्दू धर्म की आख्यायिकाएँ——महाभारत के पात्र के लेखक आचार्य नानाभाई की लिखी आख्यायिकाओं का संग्रह १।)

४. मालिक और मजदूर——टाल्स्टॉय के निबन्धों का संग्रह ।||)

५. देशी राज्यों की समस्या——महात्मा गांधी के देशी राज्यों सम्बन्धी लेखों का संग्रह ।

६. खादी का अर्थ शास्त्र——महात्माजी के खादी सम्बन्धी लेखों का संग्रह ।

७. विद्यार्थी धर्म——महात्माजी के विद्यार्थियों के लिए लिखे लेखों का संग्रह ।

८. यंत्र की मर्यादा——श्री नरहरि भाई की मंत्र बनाम गृह उद्योगों की चर्चा करनेवाली पुस्तक ।

हिन्दुस्तान में 'मण्डल' की पुस्तकें मिलने के स्थान

निम्नलिखित स्थानों पर 'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों को मंडल की पुस्तकें एक रु० में दो आने कमीशन पर मिला करेंगी तथा वहीं 'जीवन साहित्य' के ग्राहक भी बन सकते हैं—

संयुक्तप्रान्त—सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ, साहित्य निकेतन, कानपुर, श्री गांधी आश्रम मुरादाबाद,इलाहाबाद, मेरठ,मुजफ्फरनगर,काशी, मथुरा, बरेली, देहरादून, फैजाबाद, गोरखपुर, सहारनपुर, डिबाई, फर्रुखाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, अक़बरपुर, शामली, हरदोई,जौनपुर, सीतापुर, झाँसी, गाज़ीपुर बलिया,नैनीताल,शिकोहाबाद ।

बिहार—चर्खासंघ खादी भंडार हाजीपुर, राँची, मधुबनी, बेतिया, हजारीबाग़, लहेरियासराय, मुजफ्फरपुर, गया, सीतामढ़ी, पटना, डाल्टनगंज, बेगूसराय, मोतीहारी, भागलपुर, छपरा, समस्तीपुर ।

मध्यप्रान्त व महाराष्ट्र चर्खासंघ खादी भंडार नागपुर (सीताबर्डी), गोंदिया, जबलपुर रायपुर, खण्डवा ।

राजपूताना-मध्यभारत—सस्ता साहित्य मंडल इन्दौर, आदर्श पुस्तक भण्डार अजमेर, राजस्थान चर्खा संघ खादी भंडार अजमेर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, मन्दसौर, ग्वालियर, इन्दौर, मुकुन्दगढ़, नवलगढ़, भेलसा, भरतपुर ।

पंजाब—गांधी खादी-भंडार लाहौर, भिवानी, आदमपुर, गांधी सेवा आश्रम, शहादरा (लाहौर)

दिल्ली—सस्ता साहित्य मण्डल कनाट सर्कस नयी दिल्ली, तथा दरीबा कलाँ, श्री गांधी आश्रम ।

कलकत्ता—सस्ता साहित्य मण्डल हरिसन रोड ।

बम्बई-प्रान्त—खादी भंडार भुसावल, खादी भंडार जलगाँव ।

सिंध—खादी भंडार हैदराबाद, करांची, सक्खर ।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

मार्च, १९४२
नयी दिल्ली

प्रार्थना

अभय करो हे !
युग-युग का जड़ प्रमाद
छिन्न करो क्षिप्र विषाद
नव बल का दो प्रसाद
निर्बल तन, निर्बल मन, ओज भरो हे !
अभय करो हे !

नयनों में तम अपार
करुणा की किरण ढार
खोल प्राण रुद्ध द्वार,
नूतन पथ, नूतन रथ, सूत्र धरो हे !
अभय करो हे !

शिर पर हो वरद हस्त,
क्यों फिर हो देश त्रस्त ?
नव बलि में सकल व्यस्त
युग-युग के बन्धन चिर, अचिर हरो हे !
अभय करो हे !

—सोहनलाल द्विवेदी—

श्रद्धाञ्जलि

—आचार्य विनोबा

उस दिन शाम को चार बजे महिलाश्रम में मेरा व्याख्यान था। उस व्याख्यान के लिए मैं वहाँ पहुँचा। बहनें आ बैठीं। मैं अपना व्याख्यान शुरू करनेवाला था कि इतने में मोटर आयी। सन्देश मिला कि जमनालाल जी बीमार हैं। मुझे बुलाया है। जमनालाल जी ऐसे खास बीमार तो थे ही नहीं, सदा की भाँति वे दोपहर तक अपना काम करते रहे थे इसलिए उनकी बीमारी की गम्भीरता मैं न समझ सका। किन्तु व्याख्यान छोड़कर मैं गांधी-चौक पहुँचा। गाड़ी से उतरते ही दिलीप ऊपर से नीचे आये। उनके चेहरे पर दु:ख की छाया थी, परन्तु फिर भी मैं पूरी कल्पना नहीं कर सका। स्वास्थ्य के बारे में पूछने पर उन्होंने कहा—"वह तो गये।"

ऐसी अनपेक्षित, दु:खदायी, चित्त को हिला देनेवाली खबर सुनकर मुझे क्या महसूस हुआ होगा यह आप समझ सकते हैं। खबर तो क्लेशदायी थी, परन्तु मुझे अपने भीतर एक आनन्द का आभास हुआ। मन की उसी अवस्था में मैं उनके कमरे में गया। वहाँ जो लोग बैठे थे उन सबके चेहरे पर जब मैंने दु:ख की छाया देखी तो मैंने महसूस किया कि घटना ऐसी ही हुई है जिससे कइयों को दु:ख हो सकता है। फिर भी मुझे मानना चाहिए कि मेरी आनन्द की भावना में कमी नहीं हुई व अग्निदाह पर गीता व उपनिषदों का पाठ करते समय आनन्द की उस भावना की सीमा नहीं रही।

मेरी यह अवस्था रात भर ऐसी ही रही। प्रात: उठने पर जमनालालजी के चले जाने से हम लोगों की जो क्षति हुई व हमपर जो ज़िम्मेदारी आ गिरी उसकी भी पूरी कल्पना हुई। आगे का सब हाल आप समझ सकते हैं।

परन्तु मेरी खुशी का कारण मुझे आपको बताना होगा। जेल में मुझे मालूम हुआ था कि जमनालालजी ने गो-सेवा के काम की जिम्मेदारी ली है। मुझे सन्तोष हुआ था। यह कार्य जमनालालजी ने उठाया, तो देश को इससे लाभ तो होगा ही, उनके चित्त को भी शान्ति मिलेगी, लेकिन उनके थके हुए शरीर के लिए यह काम बहुत ज्यादा होगा, ऐसा मेरा खयाल था। जेल से छूटने पर उन्होंने इस नये काम के बारे में मेरी राय पूछी। मैंने अपना सन्तोष व्यक्त किया। उनकी आँखों में आँसू चमके। तबसे आज तक इन दो महीनों में मैंने देखा कि वह खुश थे, उनके चित्त में प्रसन्नता थी, इसलिए कि उन्हें एक पवित्र तथा आत्मोन्नति में सहायता देने का कार्य मिला और जब वे चल बसे, तब उनकी मानसिक अवस्था जितनी अच्छी थी, उतनी उनके पिछले बीस वर्षों में कभी नहीं थी। पिछले २० वर्षों से उन्हें सूक्ष्म आत्म-निरीक्षण की आदत थी। परन्तु मन की जो उन्नत अवस्था वे अब-तक प्राप्त न कर सके थे वह इन दो-तीन महीनों में उन्होंने बड़ी तेजी से हासिल करली थी। अब की बार ही मैं देख सका कि जमनालालजी के दिल में देह-भाव का अवशेष भी नहीं रहा था, केवल सेवा ही सेवा रही। इससे अच्छी मृत्यु और क्या हो सकती है? अन्तिम समय पर सेवा करते रहने पर मृत्यु का प्राप्त होना कितने भाग्य की बात है! इसलिए इस दु:खदायी घटना में भी जो सुखदायी बात छिपी हुई है, वह आपके सामने रखने की मेरी इच्छा हुई। हमें भी ऐसी मृत्यु की परमेश्वर से याचना करनी चाहिए।

तुलसीदास ने रामायण में राम-बाली-संवाद दिया है। भगवान राम का बाण लगने पर बाली ने राम को उलेहना दिया। तब वे कहते हैं "ओ मेरे प्यारे बालक, मैंने तो तुमपर बाण नहीं, प्रेम बरसाया है। अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें ज़िन्दा रख सकता हूँ। बाली ने उस समय जो जवाब दिया वह मननीय है। उसने कहा "आज तो आपके दर्शन भी मिले और मृत्यु भी। आगे जब मृत्यु मिलेगी तब आपका दर्शन मिलेगा यह कौन बता सकता है? इसलिए मैं अभी मरना ही पसन्द करता हूँ। जब आपके दर्शन हो रहे हैं तभी मृत्यु

लिगन करना मैं अपना भाग्य समझता हूँ।" कहकर बाली मुक्त हो गये । उनकी आत्मा हो गयी, चित का शोधन करते-करते अवस्था प्राप्त करनी चाहिए और उसी में देह छोड़ना चाहिए । मेरा विश्वास है कि लालजी को भी ऐसी ही मृत्यु प्राप्त हुई इसलिए यह दुःख की बात नहीं, खुशी और की बात है ।

हम उनके अनेक गुणों का वर्णन कर सकते नका सबसे बड़ा गुण यह था कि सेवा करते वे अपनी सेवा का हिसाब तो रखते ही थे, इस सेवा का मापन मुख्यतः अपने हृदय रीक्षा लेकर ही करते थे । उनका विश्वास जिस सेवा का परिणाम चित्त-शुद्धि के रूप ता हो वही सेवा सच्ची है । जितनी मात्रा परिणाम कम दिखाई देगा उतनी ही वह अधूरी व जिस सेवा से चित्त-शुद्धि बिलकुल हीं होती हो वह झूठी । वे हर प्रकार की को चित्त-शुद्धि की कसौटी पर कसा करते और चित्त-शुद्धि की कसौटी को ही वह सेवा सौटी मानते थे । मन की ऐसी पवित्र ा में जो जीव शरीर छोड़कर चला जाता जाता ही नहीं बल्कि छोटासा शरीर त्याग समाज रूपी व्यापक देह में प्रवेश करता है । आत्मा के विकास के लिए है; परन्तु जिनकी महान् है उनके विकास के लिए मानव-देह ना पड़ता है। ऐसे समय वह महान् आत्माएँ कभी अपने दुर्बल शरीर को छोड़ जाती हैं रहित अवस्था में अधिक सेवा करती है । लालजी की यही स्थिति है । आपके व हमारे शरीर में उन्होंने प्रवेश किया है ऐसा मैं तो मानता हूँ । इसका असर हम सबपर होगा ही, परन्तु हमें अपने हृदय के द्वार खुले रखना चाहिए । एक छोटी-सी मिसाल उनकी पत्नी की मैं दूँ । वह एक सीधी-सादी देवी हैं, विशेष पढ़ी-लिखी भी तो नहीं हैं, परन्तु जमनालालजी की मृत्यु ने उन्हें अपना जीवन सेवा-कार्य में समर्पण करने की प्रेरणा दी । अपनी सारी निजी संपत्ति भी देश-कार्य के ही लिए समर्पण करने का संकल्प उन्होंने किया । जमनालालजी की मृत्यु का यह परिणाम हुआ । सदेह आत्मा जितना असर नहीं कर पाती उतना या उससे कितना ही अधिक विदेह (यानी देह बिना) आत्मा ने किया । यह एक ऐसी ही मिसाल है । भविष्य में ऐसे और भी उदाहरण हो सकते हैं क्योंकि महान् विभूतियाँ देह छोड़ने पर ही अधिक बलवान बनती हैं । सन्तों के उदाहरण हमारे सम्मुख हैं ही । उनके जीवन-काल में समाज ने उनका आदर करने के बजाय छल ही किया। देह जाने के बाद देह बिना रहकर ही वे लोगों के चित्त पर अधिक प्रभावशाली परिणाम अंकित कर सके। ऐसे सन्तों में छोटा-सा ही क्यों न हो जमनालालजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसलिए उन्होंने जिस प्रकार अपनी सारी ताकत लगाकर जो सेवा-कार्य किया, उससे भी अधिक शक्ति से वह कार्य आगे बढ़ाते रहने की प्रेरणा ईश-कृपा से हमें मिल सकती है । यह प्रेरणा ग्रहण करने के लिए हमारे हृदय-द्वार खुले रहें, इतनी ही प्रार्थना परमात्मा से कर मैं अपनी श्रद्धांजलि समाप्त करता हूँ ।

संगठन की अपनी असाधारण क्षमता के कारण जमनालालजी उन लोगों के जीवन को संग- र सकते थे जो उनके सम्पर्क में आते थे । वह होनहार व्यक्तियों को अपना लेते थे और उन्हें जीवन-कार्य देते थे । वे लोगों को अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल जमा देते थे ।………

ने हिन्दू-शास्त्रों द्वारा वर्णित सच्चे धनिक थे । वह धन इसलिए रखते थे कि उसे योग्य पुरुषों और उचित कार्यों में लगा दें । जिस किसीको शुभ कार्य के लिए रुपये की जरूरत होती वह से या उनके द्वारा मिल जाता था । हाँ, वह प्राप्तिकर्ता की पात्रता की परीक्षा अवश्य कर लेते पात्र को एक पाई नहीं देते थे । योग्य व्यक्ति को कुछ भी देने में उन्हें हिचक न होती थी । परिग्रह' की भावना से दान देते थे ।

—कन्हैयालाल मुनशी

'वैष्णव जन'

—हरिभाऊ उपाध्याय

"आपके ऊपर कुटुम्ब का कितना बोझ है ?

"छोटे बड़े १० प्राणियों की जिम्मेदारी मुझपर है।"

"अच्छा; यह तो भारी जिम्मेदारी है ! और महात्माजी के काम में तो आपको किसी भी समय जेल जाना पड़ सकता है। उस हालत में कुटुम्बियों के निर्वाह के बारे में कुछ सोचा है?"

"जी हाँ, जब महात्माजी के पास आने का निश्चय किया तभी इसका विचार करलिया था।"

"तो आखिर क्या विचार किया ?"

"जबतक मैं आजाद हूँ, या जिन्दा हूँ तबतक खरी कमाई से जो कुछ मिले, उससे पहले अपने कुटुम्बवालों का भरण-पोषण करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। जिस दिन मैं जेल चला गया या मर गया उस दिन मेरी जिम्मेदारी खतम। मेरे मरने पर जो हाल परिवारवालों का हो सकता है वही जेल जाने पर हो रहेगा। कोई तो उनकी खैर-खबर लेगा ही और किसीने न भी ली तो देश के बावन लाख भिखारियों में १०,५ की संख्या और बढ़ जायेगी। मैंने तो यही सोचा है । स्वराज की लड़ाई में यही मेरा सबसे अच्छा हिस्सा होगा।"

"आपने बहुत ठीक सोचा है। मेरा भी यह विश्वास है कि जो देश के लिए कष्ट उठाते हैं, उनके परिवार की चिन्ता रखनेवाले लोग निकल ही आते हैं।"

यह सेठ साहब (जमनालालजी) से मेरा पहला संवाद था—जब कि १९२१ ई० में मैं "हिन्दी-नवजीवन" निकालने के सिलसिले में महात्माजी से मिलने बम्बई गया और उन्होंने मुझे अन्तिम बात करने के लिए उनके पास भेजा था। इस बात-चीत के दौरान में सेठ साहब ने मुझे इतना कसा कि मेरे मन में एक किस्म की झुँझलाहट पैदा हुई और मैंने मन में कहा कि महात्माजी ने किस 'जल्लाद' के पास भेज दिया। महात्माजी के सामने मैंने प्रस्ताव रखा था कि ,'यंग इण्डिया" का हिन्दी संस्करण निकाला जाये। महात्माजी तो पहले से ही चाहते थे किंतु वर्धा से निकाला जाये या साबरमती से और उसका प्रबन्ध क्या हो, इसका निर्णय सेठ साहब करनेवाले थे। अपनें शब्दों के द्वारा सेठजी ने शायद ही कोई ऐसा भाव प्रकट किया हो जिससे मुझको उत्साह मिले। परन्तु बराबर मेरे अनुभव में यह बात आती रही कि मुझसे और महात्माजी से भी कहीं अधिक चिन्ता उस काम को जमाने की वह रखते थे, यही उनके स्वभाव की बहुत बड़ी विशेषता थी। कहना कम और कर दिखाना ज्यादा, यह उनका स्वभाव ही नहीं, सिद्धान्त भी था। महात्माजी के बाद उनके निकटवर्ती नेताओं में जमनालालजी ही एक ऐसे थे जो जितना कहते थे उससे ज्यादा निभाते थे। उनकी इस जाहिरा रुखाई या कड़ाई की वजह से बहुत लोग उनसे शुरू में नाराज़ होजाते थे। लेकिन जब उनकी भीतरी सहृदयता का परिचय उन्हें मिलता था तब वे अपनी भूल पर पछताते थे। आपने देखा कि इस पहली मुलाकात में उन्होंने मुझे एक बहुत अप्रत्यक्ष हलका-सा आश्वासन दिया—"जो देश के लिए कष्ट उठाते हैं उनके परिवार की चिन्ता रखनेवाले लोग निकल ही आते हैं।" मगर मैंने अपने उनके साथ के इस २१ वर्ष के सम्पर्क में प्रायः नित्य देखा कि वे एक नहीं सैकड़ों कार्यकर्ताओं और उनके कुटुम्बियों के सुख-दु.ख की चिन्ता अपने लड़केबालों व कुटुम्बियों से भी ज्यादा रखते थे। उनके इस अचानक स्वर्गवास से यदि आज सैकड़ों स्त्री-पुरुष अपने पिता, बन्धु या वाली के अभाव का अनुभव करते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

× × ×

वे एक मामूली वैश्य (स्व० श्री कनीरामजी, काशी का वास, जयपुर राज्य) के यहाँ पैदा होकर वर्धा के सेठ बछराजजी के पुत्र सेठ रामधनदासजी के गोद गये थे। यह लखपति का घर था। सेठ साहब ने खुद भी लाखों रुपया कमाया था और चाहते तो करोड़ों कमा सकते थे। परन्तु एक

निःस्पृह और विरक्त की भाँति वे अपने
सदा यह मानते रहे कि मैं एक गरीब के
पैदा हुआ एक गरीब हूँ और इसीलिए
और मामूली लोगों के साथ उनकी बड़ी
हमदर्दी रहती थी। उन्होंने कई बार यह
कि अपनी सारी सम्पत्ति का एक सार्वजनिक
बनाकर खुद गांधी-सेवा-संघ के दूसरे सदस्यों
तरह साधारण निर्वाह लेकर गुजर करें;
महात्माजी उन्हें रोकते रहे। हम गांधी-
संघ के सदस्यों के सामने कई दफा उन्होंने
कि मैं आप लोगों के संघ का सभापति होने
योग्य नहीं हूँ, जबतक कि मैं आप लोगों की
निर्वाह लेकर न रहूँ तबतक आप लोगों की
री में बैठने लायक भी नहीं, फिर सभापति
का तो मुझको अधिकार ही कहाँ है! एक
धनी और बड़े नेता होते हुए इतनी नम्रता व
भिमानता दूसरी जगह ढूंढे भी न मिलेगी।

× × ×

"हरिभाऊजी, आप चिन्ता न करें। बिजौ-
का काम ठीक हो रहा है, मैं पूज्य माल-
जी से मिल लिया हूँ। सर सुखदेवप्रसाद से
के सामने बात-चीत हो गयी है। ईश्वर
गा तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। मैं काफी
रहा हूँ। आप चिन्ता कर रहे होंगे, इसलिए
आपको समाचार देने आया हूँ।"—बम्बई के
अस्पताल में जब मेरा आपरेशन हुआ
भाईजी (अब वे मेरे लिए सेठजी नहीं रहे
भाईजी हो गये थे) बहुत जरूरी कामों से
निकालकर मुझे 'तसल्ली' देने आये थे।
उस समय की है जब १९३१ में
लिया (मेवाड) के सत्याग्रह के सिलसिले
महात्माजी से सलाह लेने गया था और
ने सत्याग्रह स्थगित कराके भाईजी को
नों और ठिकाने में समझौता कराने के लिए
किया था। सेठजी की यह एक दूसरी विशे-
थी कि जब वे दूसरे का भी काम अपने
ले लेते थे तो उसे वे उससे भी अधिक
और संलग्नता के साथ करते थे। मैंने
भाईजी से कहा कि इसकी तो अधिक चिन्ता मुझे होनी चाहिए। यह तो मेरी झंझट आपके गले बँधी है। मुझे आपको निश्चिन्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह दैव की लीला है कि मैं यहाँ अस्पताल में पड़ा हूँ और सारा बोझ आपके सिर पर आ पड़ा है।"

"आप बीमार हैं इसीलिए तो आपको निश्चिन्त करने की जिम्मेदारी मुझपर ज्यादा है। टेलीफोन से सब बात आपको नहीं कह सकता था और आपकी तबीअत भी तो देखनी थी।" और मैंने देखा कि बीमारी के बिस्तर पर दिन में मुझे भले ही नींद आ जाती, मगर जबतक समझौते का रास्ता नहीं निकल आया तबतक उनको रात में भी कभी-कभी नींद हराम हो जाती थी। कार्य को साधने की चिन्ता के साथ-साथ अपने एक मामूली आदमी की भी मनःस्थिति का वे कितना खयाल रखते थे! कभी कोई बात बिगड़कर कह दी, तो थोड़े ही समय के बाद आकर कहने लगते कि हरिभाऊजी, आपसे इतनी निकटता अनुभव करता हूँ कि जिस तरह जानकीदेवी से लड़ पड़ता हूँ उसी तरह आपको कुछ कह बैठता हूँ। मुझसे यह बर्दाश्त नहीं होता कि आपके हाथ से कोई काम बिगड़े और लोगों का बुरा-भला आपको सुनना पड़े।" जमनालालजी के बाद 'पराई पीड़' को जाननेवाला 'वैष्णव जन' कहाँ मिलेगा? महात्माजी के प्रिय भजन

वैष्णव जन तो तेनें कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे,
पर दुःखे उपकार करे तोए मन अभिमान न आणेरे।

को जमनालालजी से अधिक किसनें चरितार्थ किया है?

जो जमनालालजी मामूली आदमी के बोझ को उठाने के लिए इतने तत्पर रहते थे वह अपने बापू के बोझ की भला कितनी चिन्ता रखते होंगे। सन् १९२८ से ही उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि बापू पर अपना और अपने कार्यों का बोझ कम-से-कम डाला जाये और उनका बोझ ज्यादा-से-ज्यादा उठाया जाये।

एक बार पू० महात्माजी साबरमती में सहसा

बेहोश हो गये। हम सब जो पास थे हक्के-बक्के रह गये। ऐसी हालत होगयी थी कि अगली साँस आये या न आये। हमारी घबड़ाहट और परेशानी का कैसे बयान हो? सारे संसार का पुण्य पुरुष हमारे सामने घड़ी-पल का हो रहा था!

मनुष्य-जाति के सौभाग्य से उसने आँखें खोलीं और हमारी जान में जान आयी। भाईजी और मेरे बीच बातें हुईं कि अब बापू के शरीर का ठिकाना नहीं, हमें उनके सामने ही अपने को बड़ी जिम्मेदारी के लिए तैयार कर रखना चाहिए। सलाह, निर्देश और आज्ञा लेने भर के लिए ही उन्हें कष्ट देना चाहिए। बापू की हालत नाजुक देखकर हम लोगों का इरादा कुछ दिन साबरमती ठहरकर फिर जाने का हो रहा था। लेकिन इस निश्चय के बाद वहाँ ठहरना बापू की रुचि के खिलाफ और उनका बोझ बढ़ाने के समान था। अतः दूसरे दिन सुबह हम दोनों ने उनसे (बापू से) विदा माँगी और अपना निश्चय उन्हें कह सुनाया। बापू को तो यह पसन्द ही हो सकता था। मैंने देखा है कि तबसे भाईजी जहाँ बापू ने कोई नया काम उठाया कि उसमें झट साझी हो जाते थे। महात्माजी के अंगीकृत कार्यों में शायद ही कोई ऐसा हो जिसमें जमनालालजी ने काफी हिस्सा न लिया हो। गो-सेवा-संघ के इस आखिरी काम में तो वे इतने प्राणपण से जुट गये थे कि उसे अपने जीवन का अन्तिम कार्य बनाकर ही छोड़ना चाहते थे। मेरा खयाल है कि मगन भाई जब गये तब जो धक्का पू० बापू को लगा, उससे अधिक ही धक्का भाईजी के जाने से लगा होगा। महात्माजी में तो बड़े-से-बड़े धक्के को एक मुस्कराहट में या एक राम-नाम की साँस में बिसरा देने का दैवी सामर्थ्य है पर उन लोगों या कामों का क्या हाल, जिनके एक या बहुत बड़े अवलम्ब भाईजी ही थे?

× × ×

वह पैदा तो वैश्य-कुल में हुए थे, परन्तु स्वभाव से क्षत्रिय थे। घर में, समाज में, देश में, जहाँ कहीं अन्याय और अत्याचार दिखाई देता उससे लड़ना उनका स्वभाव-धर्म था। स्वाभिमान के खिलाफ कोई बात सुनना और करना वे नहीं जानते थे। ब्रिटिश भारत में और रियासतों में उन्होंने कई जगह काले और गोरे अधिकारियों से टक्करें लीं। जयपुर के तानाशाह जैसे सर सेन्ट जॉन बीचम ने उन्हें चेलेंज दिया कि तुम जयपुर में नहीं आ सकते हो। सेठजी ने कहा—'अच्छा, तुम सात समुद्र पार से यहाँ आकर जयपुर के हितैषी बन गये और जयपुर की मिट्टी में पैदा हुआ मैं जयपुर राज्य में प्रवेश करने का भी अधिकारी नहीं? उन्होंने जबरदस्त सत्याग्रह की लड़ाई ठानी। अन्त में सर बीचम जयपुर से गये और सेठजी जयपुर में आदरपूर्वक आये।

सेठजी लिखे-पढ़े बहुत मामूली थे। मगर बुद्धिमत्ता उन्हें आला दरजे की मिली हुई थी। वे हम पढ़े-लिखों को अपनी मिसाल देकर अक्सर बड़े कामों के लिए उत्साहित किया करते थे। कोई भी एक भाषा, खुद हिन्दी भी, वे शुद्ध नहीं बोलते थे। फिर भी वे अपनी टूटी-फूटी गुजराती, मराठी और अंग्रेजी धड़ल्ले से बोलने में सकुचाते नहीं थे। श्री घनश्यामदास बिड़ला अक्सर उनकी कम पढ़ाई का मजाक उड़ाया करते। मगर उन्होंने उसे कभी अपनी उन्नति का बाधक नहीं माना। बल्कि अक्सर कहते कि ज्यादा पढ़ा-लिखा होता तो सम्भव है मेरी वास्तविक उन्नति रुक जाती। उन्होंने अपनी किसी सन्तान को अपनी तरफ से जिसको लोग उच्च शिक्षा कहते हैं उसके लिए प्रेरित नहीं किया। घनश्यामदासजी विनोद में कहते—तुम यह कैसे देख सकते हो कि तुम्हारे लड़के-बच्चे तुमसे ज्यादा पढ़ जायें? इतने कम पढ़े-लिखे होने पर भी वे बड़े-से-बड़े सेठ-साहूकार, राजा-महाराजा और देश के महान् नेताओं में गण्यमान्य समझे जाते थे। उनकी सरलता, सादगी और परदुःख-कातरता को देखकर ही महात्माजी ने एक बार अपने एक अजीज़ को लिखा था कि तुम जमनालालजी के पास गये हो यह अच्छा हुआ, उनका साथ

समागम के समान है। अपने विचार में भावों में भी यदि वे यह देख पाते कि उस-छ दोष या मलिनता है तो वे उसे मिटाने ए हमेशा छटपटाते रहते थे। उनका जीवन खुली पुस्तक था। और वह अनेक सद्गुण सैंकड़ों बोधप्रद घटनाओं का समुद्र था। इन पन्नों में वह कैसे समाये? उसके लिए विशाल पुस्तक की आवश्यकता है। फिर तो इस वज्रपात से सँभल भी नहीं पाया हूँ। आज उनके जाने से भारत का एक ध्वज टूट गया। वे एक जबरदस्त व्यक्ति थे, अपने आप में एक महान् संस्था थे। हम अपने खातिर भले ही उनको याद कर-करके रोयें-धोयें। परन्तु यह तो उसकी महान् आत्मा का अपमान ही होगा। उनकी मृत्यु से जहाँ कहीं रंकता आगयी है उसे मिटाने में अपना सर्वस्व लगा देना ही उसका स्मारक या उसकी शान्ति का साधक हो सकता है।

ह भक्त सेठ

——जैनेन्द्रकुमार

ठजी का साथ कुल मिलाकर आध-पौन मुझे मिला होगा। पर सम्बन्ध सन् २१ से सन् ४२ तक बराबर रहा है। जाने क्या थी कि मिलने के पहले क्षण से अन्त तक मैं पिता की जगह मानता रहा। कभी पास नहीं तो भी मैं अपने भीतर जानता था कि जीवन संकट के समय सबको छोड़कर मुझे उनकी में पहुँच जाना होगा। अभी शुरू फरवरी भाई मातादीन भगेरिया से मैंने कहला भेजा था इन गर्मियों में बाल-बच्चे उन्हींके पास आकर वाले हैं। मातादीन ने आकर सुनाया कि अपने बराबर एक कुटिया डलवा लेने का ने विचार कर लिया था। कुछ था उनमें आदमी को बरबस खींच लेता था। मैं पारमार्थिक प्रेम यानी अहिंसा का नाम है।

अध्यात्म और व्यवहार यदि दो नहीं हैं उनका ऐक्य ही सत्य है तो उस सत्योपलब्धि दृष्टि से मेरे मन पर गांधीजी के बाद ही छाप है गांधीजी को मैं बापू न कह न लिख पाता हूँ। मुझे वे अपनी आंत-में इतने दुर्गम लगते हैं कि डर हो आता पास. पहुँचते में काँप जाता हूँ। मेरे मन के तो सेठजी ही बापू थे यद्यपि खोलकर मैं कभी यह बात उनके आगे या उनके जीते जी नहीं कह पाया।

मैंने उन्हें बहुत नहीं देखा। पर आँख खोलकर देखनें के बजाय आँख मींचकर देखना मेरे लिए अधिक विश्वसनीय होता है। उस निगाह से मुझे तो यह दीखा है कि वह भीतर से निपट अकिंचन थे। वह अकिंचनता का ही बल था कि जिसके आधार पर स्वयं सेठ बने रहना और समझे जाते रहना वह झेल पाते थे।

दिन था कि मैं भी मानता था कि वह पूँजीपति हैं। पर एक बार के दो मिनट के साक्षात्कार से मेरा भ्रम सदा के लिए कट गया। तबसे समझदार मित्र बार-बार मुझे सुनाने आ गये कि जमनालालजी पूँजीपति हैं, और कुछ नहीं हैं। मैं मूढ़ बना सुनता रहा, कुछ जवाब नहीं दे सका। अरे 'असल जाननहार तो अंतर्यामी है न! सो सेठजी ने भी अपना पिछला जीवन अंतर्यामी को साक्षी करके चलाया। उसके बाद उन्हें किस और को क्या समझाना और क्या दिखलाना था? मैं मानता हूँ कि वह भीतर प्राणों में भीगे थे। यानी वह भक्त थे।

गांधी-युग की महिला

—रमादेवी मिश्रा

बहुत दिनों के बाद भारत में भी, पाश्चात्य संस्कृति की 'व्यक्ति-स्वातंत्र्य' की घोषणा सुनाई दी। इस शब्द के आस-पास कैसे शोभन भाव रहे होंगे किसे पता है ? किन्तु यहाँ तो 'व्यक्ति-स्वातंत्र्य' का अर्थ "सामाजिक उत्तरदायित्व का नाश" ही बन गया है ! वर्षों से अन्धकार में पड़ा हुआ, और मृत्यु की निर्बलता से विरूप बना हुआ समाज "व्यक्ति-स्वातंत्र्य" की घोषणा को अपनाने के लिए उठा। यों कहिए कि समाज का एक अंग जागा।

इस "व्यक्ति-स्वातंत्र्य" की आकांक्षा ने अनेक जीवन-स्पर्शी विषयों को देखने की प्रेरणा की है। इतना ही नहीं, गहरे असंतोष की चिनगारी प्रकट करके स्त्री-पुरुष को अपने व्यक्तित्व को नये दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा भी की है। दोनों को सामाजिक बंधन कठिन लगते हैं। दोनों को अपना वर्तमान जीवन परिवर्तन का आकांक्षी नज़र आता है। फलस्वरूप समाज के दो अंग स्त्री-पुरुष आंतर विग्रह की तैयारी कर रहे हों ऐसा मालूम होता है। स्त्री को पुरुष सत्ताशील, स्वतंत्र, सुखी मालूम होता है और वह अपनी जाति को दलित कहती है। पुरुष की वेदना और ही है। दिन-पर-दिन जीवन-कलह भयंकर रूप धारण करता जाता है। इससे वह स्त्री की मृदुलता की अधिक अपेक्षा रखता है। किन्तु नयी स्त्री इस मृदुता में गुलामी समझती है।

स्त्रियों में नयी महत्त्वाकांक्षा जगगयी है। इससे वे हरएक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी करने में गौरव मानने लगी हैं। जिस जमाने में यह बराबरी नहीं थी, उसको वे पुरुष के अत्याचार का जमाना मानती हैं। वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। फिर भी आन्दोलन के आरंभ होने के बाद से लेकर आज तक दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई दी हैं। यह चिन्ह जाग्रति के लिए आवश्यक है। अब देखना इतना है कि वे इस जाग्रति के बाद भी फिर सोती हैं या नहीं ? जाग्रति के चमत्कार के बाद यह जुगनू पुनः पंख बंद कर देनेवाले हैं या नहीं ? मदभरी आँखों की निद्रा भंग हो, और फिर घोर निद्रा आ जाये, ऐसा तो नहीं होगा ?

स्त्रियाँ किधर जा रही हैं ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए स्त्रियों की दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों पर दृष्टि डालनी होगी। "व्यक्ति-स्वातंत्र्य" पर इमारत बनानेवाला वर्ग कहेगा कि अभी स्त्री-समाज ने चलना शुरू नहीं किया। अभी स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व का भान नहीं हुआ। समान अधिकार भोगने की इच्छा इनमें अभी जाग्रत नहीं हुई। पक्षपाती शास्त्रकारों ने और अत्याचारी हिन्दू-समाज ने स्त्रियों को सदा दबाये रखने के लिए सूत्रावली की जो नाग-पाश डाली है वह अभी ढीली नहीं पड़ी है। दूसरा वर्ग कहेगा कि स्त्री जागी है।

कोई कुमारी साइकल पर सवार होकर कालेज जाती है तो कोई युवती खुद मोटर चलाती है। कोई युवती चूड़ी, कुंकुम तथा लम्बे केशों का परित्याग करके 'बॉब्ड हेअर' में बहुत-सी पिनें लगाकर, हाथ में काग़ज़ों का बंडल लेकर आफ़िस जाती है, तो कोई 'रैकेट' लेकर टेनिस-ग्राउन्ड की तरफ़। कोई अपनी दशा के लिए पुरुषों को गालियाँ देती है, या मिथ्या दोषरोपण भरे हुए नये-नये लेख लिखती है, तो कोई स्त्रियों के विरुद्ध होनेवाले अन्याय के विरुद्ध व्याख्यान-मंच पर खड़ी होकर रोष की वर्षा करती है। पहले प्रकार के जवाब के नीचे ये दृश्य तैर रहे हैं। इसलिए सुधारक आनन्दित होते हैं। किन्तु इस आनन्द के पीछे असंतोष की वेदना है। वेदना इसलिए है कि ऐसी 'स्त्री' ने पाँच-दस या सौ-दो सौ की संख्या में यह दृश्य देखने की इच्छा नहीं रखी थी बल्कि हजारों या लाखों की संख्या में। झोली लेकर चन्दा माँगना, शराब या विदेशी वस्त्रों पर पिकेटिंग करना, शरीर पर लाठी लगने का डर होने पर भी साहस के साथ अगुआ बनना आदि-आदि स्त्रियों की प्रवृत्तियों पर दृष्टि रखते हुए दूसरा वर्ग इसका उत्तर देता है।

ऊपर के चित्रों से ये दूसरे चित्र अवश्य भक्ति-पूर्ण हैं। यद्यपि इसपर से बड़ी लम्बी ृति खींचकर स्त्री-समाज जागा है, यह नहीं जा सकता, फिर भी ये चित्र स्त्री-विकास उज्ज्वल रेखा तो अवश्य हैं। किन्तु जो ासोन्नति के भव्य दर्शन के लिए यत्न कर रहे न्हें कुछ अधिक देखना है—चक्षुओं और चक्षुओं को शारीरिक और आध्यात्मिक तेज। हिताहित की दृष्टि से माप निकालते हैं वे देखने की इच्छा रखते हैं।

बेशक स्त्रियाँ जागृत हुई हैं, किन्तु जागृति चेतना अभी स्त्री-समाज में नहीं फैली है। समाज का बड़ा, बहुत बड़ा, वर्ग ऐसा है जहाँ ृति का असर भी नहीं है। वहाँ अभी वही ान, वही निर्बलता और वही की वही मनोदशा। इसका नाश अवश्य होगा। पर अभी तो नहीं है। सुधारक इस विषय पर बहुत कम विचार े हैं। इस विषय को महत्त्व न भी दें पर उपेक्षा नहीं की जा सकती। पुरुषों के सामने थोड़े अंतर के बाद तिरस्कार में परिवर्तन प्राप्त ा है।

परन्तु स्त्री पुरुष को हृदयहीन, अत्याचारी रूप में देखते हुए, धन कमाने की व्यवस्था े को लक्ष्य के तौर पर गिनकर रसोई के जीवन जीवन को घबरानेवाला माने, सेवा में गुलामी े, धर्म में निर्बलता अनुभव करे, शिशु-पालन अत्याचार समझे, तो यह सब क्या उन्नतिकारक ? इससे क्या राष्ट्र का उत्कर्ष होगा ?

ऐसे सुधार की लहर के बाद के सुधार में ांधी-युग के सुधार में) कुछ संगीनता और ीरता आयी। स्वार्थी और पक्षपाती विचारों प्रवाह में गंभीरता ने मानव कर्तव्य की और ाहित की चिन्ता के तत्वों को बढ़ाया। इसने ल को कार्य-बल में परिणत किया। स्वरूप नयी शक्ति का आगमन हुआ। नाजुक के शौक़ दबे, और जो तत्त्व-ज्ञान की बातें कर सकती, राजनीति या कारबार की ग्रंथि सुलझा सकती, भाषण करने का जिसमें साहस नहीं ऐसी शक्ति घूँघट दूर करके आयी और जो काम मिला सो कर स्त्रीत्व को प्रकाशित कर गयी—पहले के सुधारों की उत्पन्न की हुई घोर निराशा के अंधकार में बिजली चमका गयी।

आज ये दोनों वायु-धाराएँ बह रही हैं। पहली पुरानी होने से सतत बहती रही और उसमें नयी वायु का प्रवाह मिला। दोनों ने अपनी-अपनी विशिष्टता सुरक्षित रखते हुए भी एक रूप लिया। किन्तु देखना है कि इसका परिणाम क्या होगा ? दूसरी वायु भारी होने से शायद जमीन पर बैठ जाये और पहली हलकी होने से शायद उड़ती रहे।

मालूम होता है भारत के स्त्री-समाज में से स्त्रीत्व की अग्नि कभी नहीं बुझी। हाँ, बरसों से अज्ञान की राख पड़ी रहने के कारण इस अग्नि की गर्मी कम हो गयी है। प्रारंभिक सुधार की भावना ने पाश्चात्य पवन की फूँक से इसे उड़ाने का प्रयत्न किया। यह फूँक एक टुकड़ी के मुख से निकली। इस टुकड़ी में स्त्री-पुरुष दोनों थे। स्त्रियाँ अच्छी तरह आगे की पंक्ति में खड़ी हुईं। इन स्त्रियों में कुमारियाँ और बड़े आदमियों की पत्नियाँ थीं। जिन्होंने समाज की दूसरी तरफ़ दृष्टि नहीं डाली थी उन्हें यह ज्ञान होगा, किन्तु मानस शास्त्र की उन्होंने उपेक्षा ही की।

प्रवृत्ति ने पृथ्वी पर के आकाश को उज्वल बना दिया। कितने ही पुरुषों ने भी सहयोग किया। परिणाम यह हुआ कि स्त्री स्त्री होने के कारण उच्च है—ऐसी दलीलें आँधी पर चढ़ीं। ऐसे समय में इस वातावरण के विरुद्ध सत्य या असत्य असुरक्षितता दिखने लगी। फलस्वरूप न प्रतिकार हुआ, न तत्वज्ञान की वृद्धि। इससे यह प्रवृत्ति बढ़ नहीं सकी। दूसरी तरफ़ इस प्रवृत्ति को स्वीकार करनेवालों में शब्द-चातुर्य का विकास हुआ और आदर्श की आकांक्षा बढ़ी।

सत्याग्रह-संग्राम ने इसमें की कुछ शक्तियों को प्रोत्साहन देकर नया जीवन दिया। इस संग्राम में जितनी स्त्रियाँ शामिल हुई थीं उन

सबों ने ऐसा जीवन स्वीकार नहीं किया। इससे लड़ाई को कुछ नुक़सान हुआ हो, ऐसा निश्चय करते नहीं बनता। बलिदान चाहनेवाले कार्य किये जाते थे: फिर भी नासमझ और अनुदार व्यक्तियों की तरफ़ से इस विषय में टीका की जाती है वह इस स्त्री-मानस के ही कारण है।

इस विलासी वातावरण से घिरी हुई नारी कार्य की गंभीरता के अनुरूप सादगी और गंभीरता न साध सकी। उसने असहकार की प्रवृत्तियों को अनुकूल बनाकर सेवा में सत्ता के शौक़ की तृप्ति देखी।

गांधी-युग ने स्त्री को जागृत और बलवान बनाने का प्रयत्न किया, साथ ही उसकी स्त्रीत्व-रक्षा का भी ध्यान रखा। शब्द-बल से कार्य-बल बहुत आवश्यक है, यह उसे समझाया और वर्षों के विलायत के असरवाले सुधारकों के भाषण पुरुष-हृदय में स्त्री-सम्मान का जो आलोक न ला सके, सो इस युग की हलचल ने थोड़े में ही ला दिया। स्त्रियों के लिए पुरुष की मान्यताओं में उदार परिवर्तन सर्वत्र नहीं दीखता। फिर भी जो-कुछ हुआ वही बहुत है। गांधी-युग घर के आवश्यक और अनावश्यक युद्धों का भेद भी करके बताता है।

स्त्री-सम्बन्धी आदर्श और आर्य-महिला की धारणा का प्रभाव पड़े इस दिशा में संयोगों की विचित्रता और ऐसा कार्य करनेवाली टुकड़ी के अभाव से कार्य नहीं हुआ है। किन्तु गांधीयुग ने अपने विशिष्ट विचारों को पेश करके उन्हें गति में ला दिया है। अच्छी वस्तु को बिगाड़ने में देर नहीं लगती। किन्तु फिर बनाने में समय और प्रयत्न दोनों की आवश्यकता रहती है। गांधीयुग ने पहले के बल दबाये अवश्य, फिर भी पुनः सिर ऊँचा करने जैसी स्थिति वह लाया है। दिन पर दिन नये बनाव बनते जाते हैं, एक बल दबकर दूसरा बल ऊपर आता है। गांधीजी की हलचल होगी ऐसा उस समय कौन जानता था? आगे भी ऐसा बल पैदा होगा जो स्त्री-विकास की हलचल को योग्य रास्ते पर लगा देगा, ऐसी आशा क्यों न की जाये?

जो भारतवर्ष का मुख उज्ज्वल रखें और अपने गृह-संसार को मधुरतम और सुखमय बनायें ऐसी आर्य महिलाएँ शीघ्र प्रकट हों यही हमारी आकांक्षा है।

हमारे वस्त्र कैसे हों ?

—(डॉक्टर) हरिशंकर कपूर

प्रकृति ने मनुष्य के लिए एक सर्वोत्तम वस्त्र दिया है। वह है वायु। यह अनन्त विस्तारित शून्य तथा उसके अन्तर्गत यह विस्तृत वायुमण्डल ही मनुष्य का एक मात्र वाञ्छनीय अम्बर है। यही मनुष्य का नैसर्गिक वस्त्र है। इस अनन्त वायुमण्डल के अन्दर दिगम्बर रूप में वह अपने सर्वोत्तम चिकित्सक सूर्य के साथ साक्षात्कार करता है।

भारतवर्ष प्राचीनकाल से नग्नता का उपासक रहा है, आज से चार-पाँच हजार वर्ष पूर्व, उस समय जब कि यूरुप के गगनमण्डल में सभ्यता के सूर्य का उदय भी नहीं हुआ था, हमारे अर्धनग्न और नग्न पूर्वजों ने व्याकरण, शब्दकोष, कविता नाटकादि-विषयक सर्वोच्च साहित्य की रचना की थी जिसके आगे आज सभ्य संसार सिर झुकाता है। पाश्चात्य संसार में अब नग्नता का प्रचार ज़ोरों से हो रहा है, धड़ाधड़ पुस्तकों पर पुस्तकें और समाचारपत्र नग्नता के गुणानुवाद करते हुए निकल रहे हैं। जनता की रुचि भी इस ओर तीव्र वेग से बढ़ रही है। पाश्चात्य देशों में आज अनेक संस्थाएँ हैं जहाँ नग्नता के प्रेमी एकत्र हो नग्नरूप से आमोद-प्रमोद में प्रतिसप्ताह कुछ घण्टे व्यतीत किया करते हैं। वहाँ नग्नता अब असभ्यता की निशानी नहीं समझी जाती है, न दुश्चरित्रता की उसमें गंध आती है। सभ्यता और सच्चरित्रता

मन्त्र शिक्षा है, न कि कपड़े। वस्त्र हमारे के लिए कोई उपयोगी वस्तु नहीं हैं। जो कपड़े पहनते हैं, वे केवल अपनी नग्नता और शरीर की शोभा बढ़ाने के विचार करते हैं। वस्त्रत्याग करने पर सम्भव है क्रम मनुष्य को उन्नत पथ पर ले जाये, सूर्य-प्रकाश, शुद्ध ताजी हवा तथा अन्य का स्वाभाविक जीवन उसे आज से हृष्ट-पुष्ट, ऊँचा और दीर्घजीवी बनाये। स्थ्य की दृष्टि से तो वस्त्रों का सर्वथा त्याग नीय है। इससे (१) शरीर को सूर्य-प्रकाश वायु मिलती है। (२) पसीना बराबर ता रहता है। (३) शारीरिक स्वच्छता और ध्यान बना रहता है। (४) शारीरिक ता बनी रहती है।

सूर्य की स्वास्थ्य-प्रद किरणों की हमारे को परमावश्यकता रहती है। कपड़ों होकर ये किरणें हमारे शरीर तक नहीं पातीं। यदि हम सूर्य की इन स्वास्थ्य-प्रद णों से लाभ उठाना चाहते हैं, तो यह आवहै कि हमारे शरीर और सूर्य के बीच में रुकावट न डालें। शारीरिक स्वास्थ्य पर किरणों (Ultra-violet rays)का भारी प्रभाव ता है। जब ये किरणें हमारे शरीर की चमड़ी पड़ती हैं तो वे उसे उसके कार्य में उत्तेजना हैं, क्योंकि चर्म शरीर का बृहत् और मुख्य है, अतः उसकी स्वस्थता और अस्वस्थता से र की स्वस्थता और अस्वस्थता का गहरा न्ध है और उसका प्रभाव शरीर के प्रत्येक व पर पड़ता है। चमड़ी के नीचे ही अगणित छोटी रक्तवाहिनी शिराएँ हैं,हमारे शरीर का इनसे होकर प्रति मिनट ७०–८० बार की से बहता है। चर्मछिद्रों के द्वारा रक्त त पदार्थों को बाहर फेंकता है और उपयोगी र्थों को ग्रहण करता है। इन किरणों के अभाव मारे शरीर की चमड़ी अपना कार्य बराबर न नहीं कर सकती। नग्न रहने से शारीरिक च्छता स्पष्ट दीखती है, इससे स्वच्छता की ओर अधिक ध्यान दिया जाना सम्भव है।

मनुष्य का खून गरम रहता है। हमारे शरीर की उष्णता, जो कि स्वस्थ अवस्था में लगभग ९८° डिग्री फेहरनहाइट रहती है, सदा बनी रहनी चाहिए। इस शारीरिक उष्णता का न्यूनाधिक होना, हमारे लिए रोग और मृत्यु का कारण हो सकता है। शारीरिक उष्णता उसकी उत्पत्ति और व्यय पर निर्भर है। जहाँ एक ओर शरीर में उष्णता पैदा होती है वहाँ दूसरी ओर उसका व्यय भी होता है। इस आय-व्यय में हमारी चमड़ी का बहुत बड़ा भाग रहता है। कपड़े इस कार्य में रुकावट डालते हैं, नग्नता शारीरिक उष्णता को स्थिर रखने में बहुत-कुछ सहायता देती है।

पसीना आने पर शरीर में ठण्डक पहुँचती है। प्रतिदिन औसत रीति पर हमारे शरीर से लगभग एक सेर पसीना निकलता है। पसीने की यह मात्रा दूषित पदार्थ के त्याग और शरीर की उष्णता स्थिर रखने की दृष्टि से अति लाभदायक है। पसीना और पेशाब की तादाद परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर है। यदि स्वेदछिद्र बराबर काम न दें, तो पसीना कम निकलने से गुर्दों पर अधिक बोझ पड़ता है, क्योंकि जितना ही कम पसीना निकलेगा उतना ही अधिक पेशाब बनाकर गुर्दों को इस कमी की पूर्ति करनी होगी।

प्रकृति ने हमारी चमड़ी में स्वेदनिर्माण के लिए कई लाख स्वेदग्रंथियाँ दी हैं। इन्हें अपना कार्य बराबर करते रहने के लिए सूर्य-प्रकाश और शुद्ध वायु की परमावश्यकता है। जब हमारी चमड़ी कपड़ों से नहीं ढकी रहती, तब पसीना बराबर बनता रहता और भाप बनकर उड़ता रहता है। इस प्रकार जहाँ एक ओर पसीना बनता रहता है वहाँ दूसरी ओर वह शीघ्र ही भाप बनकर उड़ता रहता है और यह क्रम बराबर जारी रहता है किन्तु जब हम अपने शरीर को कपड़ों से ढांककर रखते हैं तब पसीना भाप बनकर शीघ्र ही नहीं सूख सकता है और शरीर के वस्त्रों में भिदता रहता है। इस प्रकार पसीना

निकलने और उसके भाप बनकर उड़ने के क्रम में रुकावट होने के कारण पसीना निकलना बहुत-कुछ कम पड़ जाता है। पसीने से गीले ये शरीर-वस्त्र धीरे-धीरे सूखते हैं। सूखते समय ये शरीर-वस्त्र शरीर की उष्णता का उपयोग करते हैं और इस प्रकार शरीर की उष्णता को कम और शारीरिक शक्ति को क्षीण करते हैं। ग्रीष्मऋतु में ये पसीनें से भीगे हुए वस्त्र कभी-कभी स्वेदछिद्रों को फुला देते हैं, जिससे शरीर में छोटी-छोटी फुंसियाँ-सी उठ आती हैं, जिसे घमोई (prickly heat) कहते हैं।

चोटी से एड़ी तक के हमारे कृत्रिम वस्त्र उपयोगिता, स्वास्थ्य तथा स्वच्छता की दृष्टि से सर्वथा निरर्थक हैं। शिरोवस्त्र का धारण करना हानिकर ह, किन्तु फिर भी फैशन के लिए ही लोग शिर पर कुछ न कुछ पहनते ही हैं। बंगाल और दक्षिण भारत के लोग प्रायः सदैव नंगे सिर रहते हैं। उनके स्वास्थ्य पर इससे कोई बुरा असर नहीं पड़ता। किन्तु पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त भारतीय शिर पर कसकर तंग बैठनेवाले हैट पहनते हैं। यह हैट पाश्चात्य देशों में शिर को ठंड से बचाने के लिए आवश्यक हो सकता है, किन्तु हमारे लिए इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह कष्टकर होता है तथा इसे पहनते हुए हमारे शिर को हवा और सूर्य-प्रकाश भी नहीं मिल पाता एवं जो पसीना निकलता है, वह शिर के बालों ही में भिदता रहता है। यही हाल टोपी और साफ़ा पहननेवालों का है।

इसी प्रकार कंधे से नीचे हमारे हाथ और जाँघ से नीचे हमारे पाँव कपड़ों से ढाँकना आवश्यक नहीं है। हमारे पूर्वज शरीर के इन भागों को खुले रखते रहे हैं। इससे अबकी अपेक्षा शरीर के बहुत अधिक भाग को सूर्य-प्रकाश मिल सकेगा और जनमत इसका विरोध भी नहीं करेगा। हो सकता है ठंड के दिनों में छाती और पेट को ढाँकना आवश्यक हो, क्योंकि इन भागों में शरीर के मुख्य अवयव हैं, किन्तु यहाँ भी कपड़े ऐसे हों कि जिससे शरीर पर किसी प्रकार का बोझ न पड़े। वे तंग न होते हुए ऐसे हों कि जिससे शरीर की हलचल में कोई रुकावट न हो शरीर के इस भाग को एक चादर से ढाँक लेना काफ़ी होगा।

गले के कालर, टाई, कमरपट्टा, मौजे और मौजे के बन्द और जूते, ये सब हमारे शरीर के लिए कष्ट के साधन हैं, कि जिन्हें हमनें स्वयं अपने लिए निर्माण किया है। कालर गरदन को इधर-उधर स्वतन्त्रतापूर्वक हिलाने में रुकावट डालता है। तंग कालर और टाई से एक प्रकार से दम घुटता-सा है, साँस लेने में कष्ट होता है तथा रक्तप्रवाह में रुकावट होती है, जिससे मस्तिष्क को खून कम मिलता है। कमरपट्टे तंग होते हैं और अंतड़ियों को दबाते हैं, जिससे भोजन बराबर पच नहीं पाता और रक्त-प्रवाह में रुकावट होती है। मोजे के तंग बंद भी पाँव में ख़ून की दौड़ में रुकावट डालते हैं।

इसी प्रकार जूते शारीरिक कष्ट के वे साधन हैं जिन्हें मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक धारण करता है, इन्हें पहनकर मनुष्य ने स्वयं अपने पाँव अपनी अदूरदर्शिता के कारण कुडौल बना लिये हैं। ऊँची एड़ी के जूतों से पाँव विकृत हो जाता है और कमर और रीढ़ की हड्डी के टेढ़े होने का डर रहता है। जूतों के सिकुड़े अग्रभाग के कारण पाँव के पंजे और अंगुलियाँ बराबर फैले हुए न होकर दबे रहते हैं। इस प्रकार जूते पाँव की बनावट और उनका रूप बिगाड़ देते हैं। जूते पहनने से पसीना बहुत निकलता है जो ठीक-ठीक हवा और सूर्य-प्रकाश न मिलने के कारण भाप बनकर उड़ भी नहीं सकता पाँव में ही भिदता रहता है, जिससे एक प्रकार की सड़ी दुर्गंध निकलती रहती है। जूते पहनने से पाँव में अनेक प्रकार की बीमारियाँ भी हो जाती हैं, जैसे छाले पड़ना, खुजली चलना, पाँव की अँगुलियों के बीच दराड़ पड़ना, इत्यादि। यदि पादत्राण की आवश्यकता पड़े तो अधिक से अधिक खड़ाऊँ अथवा खुले चप्पल पहनना काफ़ी होगा।

वन का उषाकाल

—प्रभुदास गांधी

'बड़े बापूजी'

रे दादाजी श्री खुशालचन्द गांधी को (महात्मा गांधी) से अलग पहिचानने िए हम 'बड़े बापूजी' कहते थे। आयु में बापूजी बापूजी से अठारह वर्ष बड़े थे। बापूजी जब चार वर्ष के थे तभी उन्होंने ी गोद खोदी थी और जब चौदह वर्ष तब पितृविहीन हो गये थे। तब कबाकाका तुली काकी उनके माता-पिता बने। उन्होंने भतीजे का इतना अच्छा पालन किया कि माता-पिता का अभाव उन्हें न लगा।

ढ़ाई खतम होते ही बड़े बापूजी ने रोजगार लाश की। सबसे पहिले तो उन्हें राजकोट सत के भायातों के लड़कों को पढ़ाने का मिला। परन्तु वह स्थायी काम न था इसकबाकाका उनके लिए किसी अच्छी जगह खोज में थे। इस बीच रियासत में थानेदार जगह खाली हुई। दादाजी राजकोट के दार बने और पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट के पद पहुँचे। बाद में म्युनिसिपल इन्स्पेक्टर नियुक्त और अन्त में ऑडिटर की नौकरी की। तार रियासती नौकरी करते हुए बड़े बापूजी पना हाथ बिलकुल साफ रखा। रिश्वत से ों परे रहने की करमचंद बापा की विरासत सावधानी से उन्होंने सम्हाली। इसमें आर्थिक ति कभी भी सुधरी नहीं। सिर्फ नौकरी का सिला बने रहने के कारण दरिद्रता के पंजे से रहे और परिवार की गुजर, रीति-रसम बालकों की अंग्रेजी पढ़ाई ही येन-केनरेण कर पाये।

गांधी-कुटुंब के दो तीन युवकों ने क्षत्रियों मुकाबले की थानेदारी की है। बड़े बापूजी ने कोट में अपनी गहरी धाक जमा रखी थी। ठियावाड़ के नामी डाकुओं से भी उन्हें मुठभेड़ नी पड़ती थी। कभी-कभी आधी-रात ऊँट घोड़े पर भागना पड़ता था। दादाजी के इन कर्मों का किस्सा दादाजी के मुँह से सुनकर मैंने अनुमान किया है कि मेरे दादाजी ने कैसे-कैसे भीषण पराक्रम किये थे।

राजकोट रियासत की राज्य-व्यवस्था में ठाकुर साहब बावाजी राज के निधन के बाद गांधी कुटुंब का प्रभाव नामशेष हो गया। बड़े बापूजी जैसे अकेले गांधी भी रियासत की नौकरी में नये आनेवालों को अखरने लगे। नतीजा यह हुआ कि बड़ी उम्र हो जाने से पहले ही बड़े बापूजी को रियासत की नौकरी से अलग होना पड़ा।

नौकरी छूट जाने के बाद उन्होंने अपनी सारी शक्ति स्वाध्याय और चिंतन-मनन में लगायी ८७ बरस की उम्र हो जाने तक बड़े बापूजी का यह स्वाध्याय अखंड रूप से चला। अंतिम छः सात वर्षों में आँख और कान की शक्ति काफी क्षीण हो चुकी थी लेकिन उससे पहले एक पचीस वर्ष के जवान की भाँति पूरे उत्साह के साथ उनका अध्ययन दिन भर चलता रहता था। संस्कृत और गुजराती धर्म-ग्रंथों का गहरा अध्ययन उन्होंने किया था। नया-नया तत्त्वज्ञान और सांख्य के भिन्न-भिन्न वाद समझने और सीखने की उनकी दिलचस्पी अखीर तक बनी रही। मैंने एक बार पूछा—"बापूजी, अब तो आपको बिलकुल आराम लेना चाहिए" तो फौरन उत्तर मिला—"बुढ़ापे में ज्ञान-संग्रह के अतिरिक्त ऐसा कौनसा काम है जिसमें मैं अपना समय बिता सकूँ? अभी पाया हुआ ज्ञान अगले जन्म में उपयोगी होगा। नये जन्म में बचपन से ही बुद्धि तीव्र बनेगी। मैंने जिंदगीभर और कोई संग्रह किया ही नहीं है। ये धर्मग्रंथ ही मेरी विरासत हैं। मुझे उम्मीद है कि तुम इस विरासत का पूरा-पूरा लाभ उठाओगे।"

दादाजी को वृद्धावस्था ने वर्षों पहले से घेर लिया था। शरीर के अंग-अंग में शिथिलता आ चुकी थी। फिर भी अँधेरे में ढाई-तीन बजे से उठ बैठते और माला लेकर जप करने के लिए अर्ध पद्मासन से बैठ जाते। दिन निकलने तक

ध्यान और जप चलते रहते और फिर स्नानादि से निवृत्त होकर आठ बजे से दुबारा मध्यान्ह तक पूजा-पाठ में रहते। पूजा में नित्य गीता के छः अध्यायों का पारायण करते। प्रायः चालीस-पचास वर्ष तक गीता का यह पारायण बाबाजी ने नियम से किया था। थानेदारी के समय भी वह पूजा और गीता-पाठ नहीं छोड़ते थे।

अपने ठेठ बचपन से, जबसे सुनने समझने लगा तबसे, घर की पूजाकुटी से निकलनेवाले गीता के ये उद्घोष मेरे कान में निरंतर पड़ते रहे हैं और संस्कृत भाषा के उच्चार मेरे लिए गुजराती जैसे ही परिचित बन गये हैं।

केवल धार्मिक स्वाध्याय से ही बड़े बापूजी में मनका संतोष कर लेने की संकीर्णता नहीं थी। बापूजी (महात्माजी) के क्रान्तिकारी जीवन का बुद्धिपूर्वक अनुशीलन उन्होंने जीवन भर किया था। बापूजी की जिस-जिस बात को उन्होंने समझ लिया, जिसमें उन्होंने सत्य की झलक देखी, उसी बात को उन्होंने ग्रहण किया। अपनी वृद्धावस्था में अपने जीवन में जो परिवर्तन हो सका वह किया। स्वयं जिस जीवन-परिवर्तन को अमल में न ला सके उसे अपने पुत्र-पौत्र को अपनाते हुए देखकर वे सदैव प्रसन्न हुए हैं और उन्हें सतत आशीर्वाद दिया है।

बापूजी जब पहली बार विलायत गये तब पोरबंदर की मोढ़ बिरादरी ने तीव्र विरोध किया था। बिरादरी से निकाले जाने का जोखिम उठाकर भी बड़े बापूजी बापूजी को बम्बई तक विदा देने गये थे। और तबसे सदा के लिए बिरादरी से बाहर रहने का साहस बनाये रखा। उस घटना के बाद जो कुछ बापूजी ने कहा प्रायः उसे बड़े बापूजी ने माना। स्वयं बड़े होने पर भी अपने घर की सारी व्यवस्था उन्होंने बापूजी के हाथ से ही होने दी है।

कुछ समय के लिए मैं दादाजी के पास रहने को आश्रम से राजकोट गया था। उन दिनों में अपने नियमानुसार प्रातः स्नान करके थोड़ा अध्ययन करता था और बाद में सुबह आठ बजे से खादी की बुनाई सीखने के लिए हरिजनों के पास चला जाता था। तीन घंटे तक नले-ताने का काम करके मैं घर पर लौट आता और हाथ धोकर भोजन करने बैठता। मेरी दादीजी को इस तरह ढड -चमारों के बीच बैठकर उनके पानी से सनकर आने के बाद बिना नहाये मेरा भोजन पर बैठ जाना अखरता था। लेकिन मैं तो भंगियों की पाठशाला में काम करनेवाला, छात्रावास में दिन-रात भंगी के बालकों के साथ रहनेवाला ठहरा। इसलिए मन ही मन में वह अपना दुःख दबा देती थीं। फिर भी एक दिन मेरी यह रीति उन्हें असह्य हो पड़ी और परोसते हुए कह उठीं— "प्रभु, तू सवेरे नहाकर बुनकर के पास जाता है इसके बदले लौटकर नहाया कर तो ठीक रहेगा।" मैं कुछ भी उत्तर दूं इसके पहले ही दादाजी ने दादीजी से कहा "मोहनदास भाई के कदम-कदम पर यदि हम नहीं चल पाते हैं, तो लड़कों को तो उनके कदम पर चलने ही देना चाहिए। हम तो एक खास ढर्रे में पड़ चुके हैं। अपनी पुरानी आदत झट से छोड़ नहीं सकते पर लड़कों को आगे बढ़ने से नहीं रोकना चाहिए। यदि वे कुमार्ग पर चले जायें तो अवश्य हमें रोक-टोक करनी चाहिए परन्तु जब वे बापू के मार्ग पर चलते हैं तब उनका और हमारा सबका कल्याण ही है।" जिनके रोम-रोम में अस्पृश्यता की भावना कूट-कूटकर भरी हो, उनका इतनी मानसिक उदारता बना सकना क्या कम बात है?

दो-दो, चार-चार वर्ष के अन्तर पर जब बड़े बापूजी और बापूजी की मुलाकात होती थी तब का दृश्य बड़ा ही हृदयग्राही होता था। मुझे तो रोमांच हो आता था। बापूजी के चरण छूनेवाले लाख-लाख लोग देखे हैं, परन्तु बापूजी किसीके चरण छू रहे हों ऐसा दृश्य क्वचित् ही देखने को मिला। बापूजी अपने आसन पर बैठकर काम कर रहे हों और उन्हें पता न हो कि उनके कमरे में बड़े बापूजी आये हैं तो ऐसे मौके पर बड़े बापूजी दूर खड़े रहकर एकाग्रता से बापू के

न करते और देवमूर्ति की तरह बापूजी के प्रति अंजलि जोड़ते । ज्योंही बापूजी को के आने का पता चल जाता वह फुर्ती से ने आसन से उठकर खड़े होजाते और क़दम आगे बढ़कर बड़े बापूजी के चरणों में र झुका देते । बाद में दोनों एक आसन पर कर बैठते और आनन्दोत्साह के साथ परस्पर ल समाचार पूछते और बात-चीत करते । -डेढ घंटे के बाद जब बड़े बापूजी बापूजी के रे से बाहर आते और बापूजी अपने काम में एकाग्र होजाते तब बड़े बापूजी दुबारा पूजी के प्रति दूर से हाथ जोड़ते और ट जाते । बड़े भाई छोटे भाई के प्रति ऐसी क्ति और श्रद्धा रखते हों ऐसे उदाहरण विरले ही होंगें। संध्या-पूजा की समाप्ति के बाद बापूजी को बापूजी के चित्र को प्रणाम करते मैंने अनेकबार देखा है और इस अद्भुत श्य से असीम प्रेरणा पायी है ।

करीब अठासी वर्ष की आयु में जब बड़े पूजी ने देह-त्याग किया तब उनके समीप होने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला था । परन्तु नारायण-दास काका जो उनके समीप ठीक मौके पर पहुँच चुके थे कह रहे थे "ठीक दोपहर के स्वाध्याय का कार्यक्रम पूरा करने के बाद उन्हें कमज़ोरी महसूस होनेलगी । पण्डितजी जबतक श्लोक सुना रहे थे तबतक उसे सुनने और प्रश्न करने में पूरे सावधान थे । पण्डितजी के जाने पर सिर में ज़रा-सा दर्द हुआ और चक्कर आया । कुछ बेहोशी हुई और वे लिटा दिये गये । मेरे पास आदमी दौड़ता हुआ आया । मैं पहुँचा तो आँखें खोलदीं । 'ओ३म्' का उच्चार किया और कहा, मुझे कुछ भी स्पृहा अब नहीं रही है । गीता का पाठ करो । मैंने गीता-पाठ शुरू किया । कुछ मिनिट तक उसे आँख खोलकर सुनते रहे और फिर आँखें मूँद लीं । गीता-पाठ चलता रहा । सारा पाठ होगया और बड़े बापूजी समाधि-सी बेहोशी में लेटे रहे । प्रातःकाल होने के समय चेहरे पर प्रसन्नता की झलक आयी और सदा के लिए साँस बन्द होगयी ।

जैसा पुनीत जीवन बिताया था वैसी ही पुनीत उनकी मृत्यु रही ।

कला की साधना

विशुद्ध कलाकृति के लिए कलाकार का अन्तःकरण निर्दोष होना चाहिए । अन्तःकरण की मलिनता को धोने के लिए—मलिन वासनाओं को मिटाने के लिए सत्य की आराधना ज़रूरी है । भौतिक वस्तुओं की आराधना उसे अधोमुख करेगी और क्षुद्रताओं से, राग-द्वेष से, ऊपर न उठने देगी । हर जगह से सत्य को ही ग्रहण करने की वृत्ति उसे सत्य से भिन्न व नीची वस्तुओं के लोभ से ने की चेष्टा करेगी और इस क्रिया में उसका हृदय विशुद्ध होता जायेगा । उसमें स्वार्थ, भोग, परोपकार आदि के संस्कार नष्ट होते जायेंगे; क्योंकि ज्यों-ज्यों वह सत्य की ओर आगे बढ़ेगा त्यों-त्यों उसमें इतना आनन्द, सुख और परोपकार देख पड़ेगा कि स्वार्थ, भोग आदि से उसका मन अपने आप हटता जायेगा । इनकी साधना से मिलनेवाला आनन्द या सुख बिलकुल क्षणिक, भ्रमपूर्ण और परिणाम में पश्चात्ताप-दायी मालूम होने लगेगा । इस तरह कलाकार जितना सत्यव्रत होगा उतनी ही उसकी कृति पवित्र व उज्ज्वल होगी । कला कलाकार की सृष्टि है । वह अपने जीवन के सारे को कलाकृति के रूप में जगत् की भेंट करता है । उसकी कृति में जितनी ही सत्य की झलक होगी, सत्य का साक्षात्कार होगा उतनी ही उसकी कला-सृष्टि दिव्य व अमर होगी, उतनी ही वह जगत् को स्फूर्ति, जीवन, चतन्य, आनन्द और सुख देगी ।

—हरिभाऊ उपाध्याय

'भैरवी' का गायक

—हरिभाऊ उपाध्याय

'भैरवी' के गायक श्री सोहनलाल द्विवेदी 'त्यागभूमि' के जमाने के राष्ट्रीय कवि हैं। उनकी

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक
बन गये आज ही वैरागी!
उत्फुल्ल मधुमदिर सरसिज में
यह कैसी तरुण अरुण आगी?

से प्रारंभ होनेवाली राणा प्रताप को उद्बोधित करनेवाली कविता 'त्यागभूमि' के पाठकों को भूली न होगी। जब 'जी० सा०' निकला तब यह विचार था कि इसमें कविता व कहानी को स्थान न देंगे। दूसरे पत्रों में इनकी भरमार रहती ही है। फिर 'जी० सा०' का छोटा कलेवर इनसे बचाया जा सके तो अच्छा ही है। किन्तु पहले अंक के लिए ही द्विवेदीजी की यह 'वन्दना' कविता मिली व साथ ही कविता न छापने के निश्चय पर उलहना भी—

वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो!
वन्दिनी मा को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो,
अर्चना के रत्नकण में एक कण मेरा मिला लो!
जब हृदय का तार बोले
शृंखला के बंद खोले
हों जहाँ बलि शीश अगणित एक शिर मेरा मिला लो!

कहना नहीं होगा कि कविता छपी ही नहीं, बल्कि उसने भविष्य में 'जी० सा०' में कविताएँ छापने का मार्ग भी खोल दिया। 'वंदना' मुझे इतनी पसंद आयी कि कई बार जब भक्ति, वन्दना या उपासना की मनस्थिति में होता हूँ तो

'वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो'

गुनगुनाने लगता हूँ।

उदयपुर के राजस्थान हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में स्वयं उनके मुख से 'वासवदत्ता', 'युगावतार गांधी', 'किसान' आदि रचनाएँ मैंने सुनीं। वस्तुतः 'वासवदत्ता' सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी अमर रचना है। 'युगावतार गांधी' में महात्माजी के वैराट का जैसा प्रभावशाली चित्र थोड़े शब्दों व पदों में प्रस्तुत होता है वैसा मैंने हिन्दी की किसी कविता में नहीं देखा।—

चल पडे जिधर दो डग मग में
चल पडें कोटि पग उसी ओर
पड़ गयी जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर

× × ×

जिसके सिर पर निज धरा हाथ
उसके सिर रक्षक कोटि हाथ
जिसपर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसीपर कोटि माथ

× × ×

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख

× × ×

तुम बोल उठे युग बोल उठा
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे कर संचित
युगकर्म जगा, युगधर्म तना

× × ×

हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु!
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम!
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति तुमको प्रणाम!

और अब तो उनकी 'भैरवी' ही हाथ में है। इस मंगल व प्रसन्न रागिनी का नाम 'भैरवी' न जाने कैसे पड़ गया! जिसे 'भैरवी' के कोमल-प्राण स्वरों का बोध नहीं है उसे यह नाम भयंकर लगे तो आश्चर्य नहीं। 'भैरवी' द्विवेदीजी की कुछेक अच्छी रचनाओं का संग्रह है, यद्यपि उनकी 'वासवदत्ता', 'कुणाल' आदि और भी अच्छी रचनाएँ इस संग्रह में नहीं आ पायी हैं।

द्विवेदीजी की रचनाओं में सबसे बड़ा गुण मैंने पाया है प्रभाव व प्रसाद। उनका शब्द-सामर्थ्य बाण की याद दिलाता है। उनके गाने का अपना

ोखा ढंग है। श्रोता मंत्र-मुग्ध हो जाता है। नलालजी दुर्बलता, पीड़ा, रोदन,आँसू के नहीं, न, उत्साह, तारुण्य, वेग, प्रभाव व बल के हैं। उनमें वेदना है, पर वह व्यक्तिगत ं, वह 'कसक' में नहीं, ओज में ध्वनित होती महादेवी, 'नवीन', 'प्रेमी' की पीड़ा और व्यथा क्ति में से जन्म पाकर सामाजिक बनती है। व उसमें एक व्यक्तिगत व रागात्मक अपील ती है। सोहनलालजी की व्यथा का उद्गम राष्ट्र होता है और उसकी अभिव्यक्ति भावात्मक विधायक होती है।

द्विवेदीजी का कवि युग के प्रति वफ़ादार। जो कवि अपनें आपके प्रति सच्चा रहता है सबके प्रति सच्चा रह सकता है। सोहनलाल- को मैं युग-कवि मानता हूँ। गांधीजी ने युग की ा को प्रकाशित किया है इसलिए वे 'युगा- र' हैं। सोहनलालजी ने युग के सुर में सुर ाया है अतः वे युग-कवि हुए। गांधीवाद में य कम, आंतर अधिक है। वह साधना चाहता खानापुरी नहीं। वाणी नहीं, मौन उसके ा निकट है। सोहनलालजी ने जितना गांधी के प्रभाव को ग्रहण किया है, उतना शायद प्रकाश को नहीं। उनका कवि गांधी से जितना प्रभावित है उतना शायद उनका व्यक्ति नहीं। पर क्या कवित्व व्यक्तित्व से भिन्न रह सकता है?

सोहनलालजी सुरुचि, उच्च संस्कृति व उदात्त भावों के धनी हैं। उनके चित्रों में मौलिकता भले कम हो, पर सजीवता गजब की है। शब्द तो मानों उनके सामने हाथ जोड़े खड़े हों। यदि प्रसन्नता, सजीवता, प्रभावोत्पादकता कविता का प्रधान गुण हो, तो सोहनलालजी इसमें लाजवाब हैं।

'भैरवी' का गायक स्वस्थ मानस का कवि है, वह यौवन का मादक नहीं, तेजस्वी कवि है। उसमें विलास नहीं, उल्लास है। उसमें कहीं प्रणय का काँटा नहीं चुभ रहा है, बल्कि सेवा व भक्ति की सुगन्ध चारों ओर फैलती है। प्रगतिशीलता के नाम पर अपने दिल की जलन बुझाने, प्रेम व कला के नाम पर अश्लीलता की पूजा करने, व स्वतंत्रता के नाम पर निरंकुशता को गले लगाने के इस युग में मन को स्वस्थ-बलिष्ठ बनानेवाली रस-सामग्री के दाता सोहनलालजी-जैसे शिष्ट कवि गनीमत हैं।

ाजवाद और गांधीवाद [युग और साहित्य से]

—शांतिप्रिय द्विवेदी

यह तो समझ में ही नहीं आता कि कोई चा समाजवादी गांधीवाद का क्योंकर विरोधी सकता है? वास्तविक समाजवादी तो गांधी- का विरोधी न होकर उसके प्रति अनुरोधी होगा। यदि आज समाजवाद को गांधीवाद कार नहीं करता तो इसके माने यह हैं कि जवादियों में तपस्या नहीं है। तपस्वी तो स्या से ही आकृष्ट होता है न। चर्खा तपस्या एक शान्त गृहयज्ञ है। जो उसे ही स्वीकार ं कर पाता, वह जीवन में कितनी साधना सकता है? मानव-स्वावलम्बन, संवेदन और माजिक एकता के प्रतीक चर्खे और खद्दर को ीकार करनेवाला वैज्ञानिक भले ही हो, तु वह लोकसाधक नहीं। वह महत्त्वाकांक्षी सकता है, शुभाकांक्षी नहीं। वह वैज्ञानिक द्धान्तों की ओट में आत्मप्रवञ्चक है। स्वाधीनता-दिवस की नयी प्रतिज्ञा में चर्खा न केवल राजनीतिक (आर्थिक) प्रतीक है बल्कि इसके भी ऊपर नैतिक प्रतीक है। उसे वही अपना सकेंगे जिनमें मनोनियोग है, जिनमें अनुशासन के लिए आत्मशासन है। जिनमें मनोनियोग नहीं है उनके लिए चर्खा भी बिना एकाग्रता के जपी हुई सुमिरनी की तरह है।

समाजवाद में जिस दिन एक भी तपस्वी निकल आयेगा (और वह तपस्वी निम्नवर्ग के दीन-दलितों के भीतर से ही आयेगा) उस दिन वही गांधीवाद को समाजवाद में आत्मसात् कर युग को नवजन्म दे देगा। भविष्य में या तो गांधीवाद को समाजवाद में मिल जाना होगा या समाजवाद को गांधीवाद में। संसार की समस्या के ये दो परमतत्त्व विलग नहीं रह सकते, ब्रह्म और माया की तरह एक हो जायेंगे।

आयु की वृद्धि

—पूर्णचन्द्र जैन

चहारदीवारी से घिरा हुआ हरा-भरा उद्यान-जिसमें सुन्दर-सुन्दर वृक्ष थे—कुछ काटे-सँवारे, पंक्तियों में लगे हुए, कुछ फूलों से भरे, कुछ फलों से लदे—घने और ऊँचे, अपनी सौंदर्य-श्री पर आप ही मुग्ध हो झूमनेवाले।

आसपास के छोटे-बड़े वृक्षों को तुच्छ दृष्टि से देखते हुए आम्र वृक्ष ने कहा, "कितना ऊँचा मेरा भाल है! कैसी मोहक गंध में वायु को मुक्तहस्त हो लुटाता हूँ? कितने रसभरे मेरे फल हैं! इस सबपर भी माली को फल और छाया का दान देने में कितना तत्पर हूँ मैं!"

सुन्दर अंगोंवाला सरों का वृक्ष गर्व से मस्तक डुलाते हुए और आम्र के शब्दों की उपेक्षा करते हुए कहता—"सुरभि और फल, छाया और विश्राम की बात कितनी छलमयी है। माली जो अपने श्रम से पाता है उसे तुम दान देना कहकर दंभ करते हो। मैं यह सब दंभ नहीं करता। लेकिन कवि और कलाकार, सौंदर्य-प्रेमीऔर भावुक के हृदय को अनायास ही आंदोलित कर देता हूँ। कितनी सुडौलता, कितना आकर्षण, कितनी सरलता मेरे अंग-प्रत्यंग में है!"

इसी तरह गुलाब और चम्पा, अशोक और बकुल, जामफल और अनार आदि के वृक्ष गर्वमयी वाणी से अपने गंध और फल, छाया और विश्राम के दान अथवा निर्दंभ व्यवहार और व्यक्तित्व की प्रशंसा में दो-दो शब्द कहते और झूमने लगते थे।

× × ×

चहारदीवारी बनने और माली के लालन पालन अथवा स्वामी के अभिमानी हाथों का आशीर्वाद मिलने के वर्षों पूर्व से निरभिमान खड़ा हुआ वटवृक्ष सबकी बातें सुनता, सबके द्वारा एक दूसरे पर आरोपित व्यंग्योक्तियों पर मुसकराता, और शांत, गंभीर दार्शनिक की भाँति अपने कार्य में जुटा रहता।

× × ×

वर्षों बाद—

बाग के स्वामी का कहीं ठौर-ठिकाना न था, माली अपनी जीविका के लिए घर-बार को ले न जाने कबसे कहीं अन्यत्र चक्कर लगा रहा था। चहारदीवारी के पत्थर-कंकर मांसहीन अस्थि-पञ्जर की भाँति बिखरे पड़े थे। बाग की समतल भूमि का हृदय वर्षा और शीत, ग्रीष्म और वन्य पशुओं के प्रहार से विदीर्ण हो चुका था। आहों के उद्वेग से अप्रत्याशित उथल-पुथल हो गयी थी।

वटवृक्ष ने आम्र और सरों, अशोक और बकुल, गुलाब और चम्पा के वृक्षों को तड़प-तड़प कर सूखते और मिट्टी में मिल जाते देखा। उसने देखा था कि धनी और अभिमानी स्वामी के पैसों पर जो वृक्ष जितने ही अधिक इठलानेवाले और अपने दूसरे साथियों को तुच्छ समझनेवाले थे उन्होंने उतनी ही अधिक अपने चरित्र की दुर्बलता और आयु की क्षीणता का परिचय दिया।

वटवृक्ष अब भी अपने निरभिमान रूप में दार्शनिक की भाँति शांत खड़ा था। उसका हृदय अधिक दयापूर्ण हो गया था और उसने प्राणियों को यत्किञ्चित् सांत्वना देने के लिए अपनी भुजाएँ और अधिक फैला दी थीं। इसीसे मानो उसकी आयु बढ़ती जा रही थी।

अगर हमारा साधन अहिंसात्मक होगा तो फलत: जो स्वराज हम स्थापित कर सकेंगे वह भी अहिंसात्मक ही होगा—अर्थात् उसमें शोषणवृत्ति नहीं रहेगी—उसके स्थान पर सेवावृत्ति ही प्रधान रहेगी। यह स्पष्ट है कि हिंसात्मक साधन द्वारा हम अहिंसात्मक समाज की रचना नहीं कर सकते। आज के समाज में जो वैमनस्य फैला हुआ है जो समय-समय पर युद्ध के रूप में फूट निकलता है और जिसके द्वारा इतनी क्रूरता, निर्दयता और अमानुषिक व्यवहार किये जाते हैं उस समय तक दूर नहीं होगा जबतक यह भौतिक हिंसावृत्ति अर्थात् शोषकवृत्ति दबायी न जाये और उसके स्थान पर सेवावृत्ति की स्थापना न हो जाये।

—राजेन्द्रप्रसाद

आरोग्य-मन्दिर से

प्रश्न—भोजन के बाद पानी पीना चाहिए अथवा नहीं ?

—भैरोलाल, सारनाथ

उत्तर—पानी की अधिक जरूरत तब पड़ती जब भोजन में मिर्च-मसाले अधिक होते हैं अथवा शाक-तरकारी की मात्रा कम । भोजन के साथ जब पानी अधिक पिया जाता है तो निश्चय ही पाचक रस पतले पड़ जाते हैं और पाचन-क्रिया में मन्दता आ जाती है । फिर भी भोजन के साथ चाव भर तक पानी पीना हानिकारक नहीं है । भोजन के आध घण्टे पहले पानी पीने से भूख अच्छी लगती है और भोजन के एक घण्टे बाद पीने से पचे भोजन को आमाशय से छोटी आँतों में आने में सहायता मिलती है ।

प्रश्न——मैं विद्यार्थी हूँ । मुझे नींद बहुत कम आती है, आधी रात के बाद तक जगते रहने के कारण दिन की पढ़ाई में बाधा पड़ती है । कृपया कोई उपाय सुझायें ।

——सत्यनारायण अवस्थी, बनारस

उत्तर—यदि आप मानसिक श्रम के साथ-साथ शारीरिक श्रम पर भी ध्यान दें तो आपको नींद अच्छी आनी चाहिए । आप अपना पढ़ना घंटे भर पहले ही समाप्त कर दीजिए और डेढ़-दो मील टहलने निकल जाइए । जाइए तो तेज, पर आते समय चाल धीमी कर देनी चाहिए । ज्यों-ज्यों घर के निकट आप पहुँचते जायें आपकी चाल मन्द होती जाये । आप अनुभव करें कि आप बहुत थक गये हैं, शरीर पर सुस्ती छा गयी है और आकर बिस्तर पर लेट जायें और आँख बन्द कर लें । प्रगाढ़ निद्रा आप पर अधिकार जमा लेगी । सवेरे आप तरोताजा उठेंगे और शाम को जो अपनी पढ़ाई घंटे भर कम हुई है वह सवेरे पूरी हो जायेगी ।

प्रश्न—मुझे गठिया रोग होगया है । रोग बहुत बढ़ा नहीं है पर अक्सर किसी-न-किसी जोड़ में दर्द पैदा हो ही जाता है । एक साल हुआ मुझे ज्वर हो आया था उस समय तो सभी जोड़ों में दर्द होने लग गया था । एक प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों से परिचित मित्र कहते हैं कि मेरे रोग के लिए बुखार होना अच्छा था ।

--सत्यदेवसिंह, बृजयनगंज

उत्तर—मैं भी आपके मित्र से सहमत हूँ कि ज्वर हो जाना अच्छा था और यदि उसका उपचार ठीक तरह किया जाता तो आपका गठिया रोग चला जाना चाहिए था । ज्वर तो उस विष को, जिसके कारण आपको गठिया रोग हो गया है, अपने से बाहर निकालने का शरीर का जोरदार प्रयत्न था । बहुत कम रोगी ऐसे होते हैं जिनके शरीर में जीवनी शक्ति इतनी प्रबल हो जो रोगों को निकालनें में बिना बाहरी सहायता के इस तरह मदद कर सके । जबतक ज्वर का जोर रहे कुछ भी खाना न चाहिए और आँतों को एनिमा की सहायता से नित्य साफ करना चाहिए । ज्वर होने पर भोजन की इच्छा तो होती ही नहीं । प्यास लगने पर सादा पानी या पानी में नीबू या नारंगी का थोड़ा-सा रस मिलाकर पियें । गठिया के रोगी को जो हृदय-रोग हो जाया करता है वह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है । यह तो ऐसे ही ज्वर को ओषधियों द्वारा दबाने का साधारण फल है ।

अबकी बार जब आपके कहीं दर्द शुरू हो तो तीन-चार दिन का उपवास कीजिए और जहाँ दर्द हो वहाँ मिट्टी को खूब गरम पानी से सानकर बाँध दीजिए । मिट्टी घंटे भर बँधी रहे । यह क्रिया दिन में तीन-चार बार की जासकती है ।

आप अपने भोजन में हमेशा ही अधिक से अधिक फल और तरकारियों का उपयोग कीजिए । दाल को कुछ दिनों के लिए छोड़ दीजिए तो अच्छा रहे । मुझे पूरी आशा है कि इस विधि से आप अपने को शीघ्र ही रोग मुक्त कर सकेंगे ।

आरोग्य-मन्दिर, **गोरखपुर** **विट्ठलदास मोदी**

प्रस्तुत प्रश्न

सामयिक और शाश्वत साहित्य

मैंने कितने ही साहित्यकारों को यह कहते पाया है—"आज का हिन्दी-साहित्य तो अपने मुख्य ध्येय को भुलाकर राजनैतिक प्रचार का साधन बन रहा है—बनने जा रहा है।" कितनों को साहित्य के द्वारा मौजूदा आवश्यकता की पूर्ति होते देख अतीव सन्तुष्टि हो रही है। कुछ ऐसे भी हैं जरूर, जो केवल यही दृष्टि रखते हैं कि साहित्य के द्वारा तत्कालीन आवश्यकता की ही पूर्ति होनी चाहिए, इसके सिवा उसके दूसरे अंग की पुष्टि की ओर से वे लापरवाह और बिलकुल ही उदासीन हैं।

जब हम साहित्य के इतिहास पर स्वच्छ और गम्भीर दृष्टि डालते हैं, अपनी अन्वेषणशील वृत्ति को जागरूक रखकर उसमें प्रवेश करते हैं तो स्वाभाविक रूप से सामयिक भावनाओं का प्राचुर्य्य और प्रसार सर्वत्र ही देखते हैं। पुस्तकों की अधिकता, जनता की आदर-वृत्ति, प्रसिद्धि और संरक्षण की भावना सब-के-सब उसी ओर आकर्षित होते हुए देख पड़ते हैं। ऐसा होने के लिए किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह को खास आन्दोलन करते हुए नहीं पाते, इसलिए ऐसा होना स्वाभाविक ही हुआ। इसे रोकने की चेष्टा करना, असफलता को ही निमन्त्रण देना है। सारांश, किसी भी काल के साहित्य में सामयिक भावों के प्राधान्य का रहना अनिवार्य्य ही है। जिस समय राष्ट्र का जीवन संघर्ष में पड़ा हो, सर्वत्र हाहाकार मच रहा हो, उस समय शुद्ध शृंगारिकता के गीत गाना कैसे शोभनीय हो सकता है? इस संकट-काल के कवि यदि सामयिक भावनाओं की ओर से उदासीन होकर केवल अपने वैयक्तिक विलास-संगीतों को ध्वनित करें, तो क्या वे कवि हृदयवान कहे जासकते हैं? यदि उसके अन्तर में 'हृदय' हो भी तो वह मनुष्य का नहीं, क्रूर वृत्तिवाले शिकारी पशु का हृदय ही हो सकता है जिसे अपने स्वार्थ-सुख की सीमा से बाहर देखने की दृष्टि ही नहीं है। ऐसे कवि का समाज क्यों आदर करे?

संकट-काल में राष्ट्र को एक विशेष प्रकार के भाव एवं तद्भूत चेष्टाओं और प्रयत्नों की अत्यंत आवश्यकता होती है। उक्त भाव एवं प्रयत्न को दूसरे भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों और प्रयत्नों से पोषण और सहायता मिलती है--कुछ प्रत्यक्ष, कुछ परोक्ष रूप से। समाज इन सबों के रक्षण-पोषण में हाथ बँटा सकता है, पर जिसके चलते उक्त प्रयत्नों, भावों में व्याघात उत्पन्न होता हो, कम-से-कम शिथिलता आती हो, तो ऐसी चीज़ों की स्थिति उसे क्यों अच्छी लगे? इसी स्थान में सामयिक और शाश्वत का संघर्ष होता है।

संकटकालीन जीवन में जिसकी बिलकुल ही आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, जीवन की सम्पूर्णता में तो उसकी आवश्यकता है ही। भारतीय साहित्य के नवों रसों की आवश्यकता, जीवन के सर्वांगीण विकास और उत्कर्ष में पड़ती या पड़ सकती है, ऐसा माना जाना चाहिए। तब शाश्वत साहित्य के निर्माणेच्छु क्या करें? इस प्रश्न पर यह पूछा जा सकता है कि क्या सामयिक भावों तथा उसके पोषक अन्य भावों को ही लेकर शाश्वत साहित्य की सृष्टि नहीं की जा सकती? यदि शाश्वत साहित्य के निर्माता यह मान लें कि 'की जा सकती हैं' तो इसी जगह सामयिकता और शाश्वत के संघर्ष का परिहार हो जाता है। आखिर सामयिक भाव भी तो जीवन के शाश्वत भावों का ही एक अंग है। क्या इसका अमरत्व साहित्य को शाश्वत जीवन नहीं प्रदान कर सकता? किसी भी महाकाव्य में, जो शाश्वत साहित्य कहलाने का अधिकारी है, हम देखते हैं कि किसी भाव—रस विशेष का ही प्राधान्य है। उसकी सहायता

और पोषण के लिए अथवा सर्वांगीण पूर्णता के लिए साहित्य के दूसरे रस भी उसमें समाविष्ट कर दिये जाते हैं। क्या इस प्रकार सामयिक साहित्य को ही शाश्वत साहित्य के रूप में नहीं ढाला जा सकता ?

तब फिर सामयिक और शाश्वत में संघर्ष कहाँ से पैदा होता है ? अज्ञता और दुराग्रह से। जब हम किसी वस्तु के एक अंग को ही देख कर उसीको सब कुछ समझ लेते हैं, उसके दूसरे अंग की त्रुटि, उससे दूसरे वस्तुओं की अच्छाइयों को देखने का धैर्य्य नहीं रख सकते तभी दुराग्रह का जन्म होता है और यही अज्ञान का प्रवेश-द्वार है। यहाँपर आकर हम अपने ज्ञान-चक्षु के मार्ग में फाटक लगा देते हैं, जिज्ञासा-भाव को जबर्दस्ती सुषुप्ति-दशा में ला देते हैं। यही संघर्ष का बीज रूप है। यदि हमारी सद्-वृत्ति जगी रहे, जिज्ञासा-भाव गतिमान हो एवं ज्ञान-प्रकाश फैलाने के कार्य में संलग्न हो तो हम किसी भी उलझन और ग्रन्थि को भली-भाँति खोलने में समर्थ हो सकते हैं। उस समय संघर्ष की अपेक्षा समन्वय का भाव अधिक होगा। तब हम सामयिकता और शाश्वतता में संघर्ष की अपेक्षा सामञ्जस्य अधिक खोजेंगे। यही विकास—सर्वांगीण उत्कर्ष का सर्वोत्तम पथ है।

जिन्होंने भविष्य से उदासीन वृत्ति ग्रहण कर केवल काल की आवश्यकता को ही प्रधानता दे रखी है, उनका भी देखना अधूरा दर्शन ही है। काल की आवश्यकता ही सब कुछ नहीं है। वह तो विकास की अन्तिम ऊँचाई पर चढ़ने की सीढ़ी है। इससे अधिक महत्त्व उसको देना तो उसी जगह पड़े रहकर सड़ना है। "जीवन के एक पक्ष के उत्कर्ष से सर्वांगीण अभ्युन्नति नहीं होती"—यह दृष्टि तो शाश्वत साहित्य के निर्माताओं को ही उन्हें देनी है। वे जब समझ लेंगे कि मैं जिस अंग को पुष्ट करने जारहा हूँ उसकी स्थायी पुष्टि सभी अंगों के पुष्ट रहने पर ही निर्भर है, तब वे भी वैसा नहीं करेंगे। उन एकमात्र समयोन्मुख व्यक्तियों के पथ के रोड़े बाधक न बनकर यदि हम स्वयं सामयिक भावनाओं के प्राधान्य पर शाश्वत साहित्य का निर्माण कर पथ-दर्शन करें, तो इसीसे उनको प्रकाश मिलेगा। रोड़ा बनने से तो दुराग्रह बढ़ जाने की ही सम्भावना रहती है।

इतना होने पर भी कुछ शुद्ध सामयिक साहित्य की आवश्यकता हो सकती है, पर इसे भी जीवन के अन्य अंगों को विस्मृत करके नहीं निर्मित किया जाना चाहिए। इसीमें सामयिक साहित्य की सार्थकता है।

हरिश्चन्द्र

शिक्षा में परिवर्तन

तेली को क्या सूझी, अपने बालक को पढ़ने भेजो। अच्छा है बाबू बन जायेगा। तेली के काम में क्या धरा है ? बालक ने दसवीं कक्षा पास की। तेली का रुपया खूब लुटा। बालक ने नौकरी तलाश की। वह न मिली। हाथ पर हाथ रखकर बैठ गया। तेली ने कहा, 'भाई, तेली का ही काम कर लो।' लड़के ने कहा, 'चाहे भूखा मर जाऊँ, भीख माँगकर खा लूँ, लेकिन तेली का काम कभी न करूँगा।'

यह है आज की शिक्षा का जीता-जागता नमूना ! पढ़कर बालक न घर का रहा, न घाट का। आज की शिक्षा ने हमें केवल बौद्धिक और तार्किक बनाकर छोड़ दिया है। उसमें हमें औद्योगिक शिक्षण बिल्कुल न मिलने से आज हमारे हाथ-पैर और आँख-कान लूले, अपंग और अशक्त हैं। किसी प्रकार के भी शरीर-श्रम को ओछी बात मानकर कोरी बुद्धि लगाकर कलम घिसने में ही हम शान समझते हैं। फलतः हम आज अपने हर काम में पराधीन हो गये हैं। जूते की सफाई, कोट के टूटे बटन टाँकने के लिए आज दूसरे पर निर्भर रहते हैं। और बौद्धिक शिक्षण भी तो हमें अधूरा ही मिला। शिक्षण में केवल हमारी स्मरण-शक्ति और आँख पर ही जोर दिया गया, हमें केवल रट्टू पीर ही बनाया गया। बौद्धिक शिक्षण पाये हुए व्यक्ति तो हमारे सामने शोधक, महान् योद्धा, वैज्ञानिक, इंजीनियर,

चित्रकार, शिल्पी और संगीतशास्त्रियों के रूप में आते और झट अपने धन्धे में लग जाते हैं। लेकिन आज के बौद्धिक शिक्षण ने हमें केवल मुंशी, कारकुन, क्लर्क ही बनाया। ज्यादा कुछ बढ़े तो वैद्य-डाक्टर, वकील-बैरिस्टर बन गये। लेकिन हाथ-पैर की शिक्षा बिना अपंग ही रहे। आज की शिक्षा हमें गुलामी का जीवन बिताने के लिए दी जा रही है।

ज़माना बदल रहा है। दुनिया पर्वत-शिखर पर चढ़कर गरज-गरजकर कह रही है, 'इस गुलामी की शिक्षा को क़बूल न करो, अपने देश में औद्योगिक शिक्षण का विकास करो, उद्योगी बनो, और स्वाधीन बनो।' आज संसार को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो विचारशील और कर्मयोगी हों। ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो सोच सकें और काम कर सकें। अकेले इतिहास, भूगोल या भाषा और गणित के ज्ञान से मनुष्य मनुष्य नहीं बनता। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का उपयुक्त और सम्यक् विकास ही वास्तविक शिक्षा है। दुनिया आज हमारे शिक्षण को देख—नहीं-नहीं हम ही स्वयं पढ़े-लिखे मिट्टी के माधवों को देख थरथरा उठे हैं। आज हमें इस शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध लड़ना है, अकेली बुद्धि-प्रतिष्ठा को भंग करना है, बौद्धिक शिक्षण के साथ हाथ-पैर की शिक्षा का भी प्रबंध करना है। शरीरश्रम के प्रति लोगों की घृणा हटानी है। इसके लिए नेताओं को, महान् लेखकों को, व्याख्यान-दाताओं को, शिक्षण-शास्त्रियों को, शिक्षकों और माता-पिताओं को स्वयं भी हस्त-श्रमी बनना पड़ेगा। अपने हृदय से हस्त-श्रम के प्रति घृणा के भाव निकालने पड़ेंगे। इसके अलावा हस्त-श्रमियों को, चमारों को, जुलाहों को, कुम्हारों को, हरिजनों को गले से लगाना होगा और उन्हें चेता, कबीर, विश्वकर्मा और हरि के रूप में देखना होगा। तभी हम वास्तविक श्रमिक-जीवन के प्रति दूसरों के हृदयों में प्रेम, लगन और उत्साह जगा सकेंगे।

शिक्षा-प्रणाली में आज इसी प्रकार की सर्वांगीण क्रांति की आवश्यकता है। आगे आनेवाले युग को उज्ज्वल बनाने के लिए आज से ही तैयारी करनी होगी। शालाओं में उद्योग-शिक्षण का समावेश करके बालकों को, जीवनपर्यन्त काम के गौरव का पाठ पढ़ाने की व्यवस्था से ही भविष्य का मनुष्य उद्योगी, स्वावलम्बी, स्वतन्त्र और प्रजा का सुन्दर अंग बन सकेगा।

रामकृष्ण 'खद्दरजी'

बालकों की पुस्तकें

बालक व बालिकाओं के लिए जो पुस्तकें आज पाठ्यक्रमों में नियत की जाती हैं वे प्रायः इतनी दोषपूर्ण हो जाती हैं कि उनसे बालक-बालिकाएँ और शिक्षक तक अच्छी तरह पचकर भी कुछ लाभ नहीं उठा सकते। उनमें बालकों की अवस्था, योग्यता व कठिनाई का भी कुछ ध्यान नहीं रखा जाता। प्रायः नीचे लिखे दोष सभी पुस्तकों में पाये जाते हैं:

लेखक पहले कोई शब्द-सूची तैयार नहीं करते और न यही विचार करते हैं कि प्रत्येक पाठ में कम-से-कम कितने नये शब्द होनें चाहिएँ। ऐसी दशा में कुछ पुस्तकें तो बहुत कठिन हो जाती हैं और कुछ बहुत ही सरल।

बालस्वभाव की दृष्टि से और मनोवैज्ञानिक पद्धति से उनकी रचना नहीं होती और इसी कारण विचारों की कठिनता और भाषा की रोचकता पर भी ध्यान नहीं दिया जाता।

यही दशा गणित-सम्बन्धी पुस्तकों की भी है। इनकी भाषा भी कठिन होती है, जिससे प्रश्नों का उनका उत्तर निकालना तो दूर असली तात्पर्य तक समझने में कठिनाई होती है, छोटी कक्षाओं की पुस्तकों में ऐसे-ऐसे प्रश्न मिलते हैं जो सम्भवतः कक्षा के सम्पूर्ण बालकों में से किसी के भी जन्मभर व्यवहार में न आयें। पहली और दूसरी कक्षा की पुस्तकों में इस प्रकार के प्रश्न रखना जिनका हल चौथी और पाँचवीं कक्षा के बालक भी न निकाल सकें किसी भी दशा में वांछनीय नहीं है।

इसी प्रकार भूगोल की पुस्तकों में भी ऐसी कई त्रुटियाँ मिलती हैं; जैसे—भारत के भूगोल

छोटे-छोटे कस्बों आदि का वर्णन मिलता उस प्रान्त के निकटवर्ती भी नहीं जानते, न्हींको अन्य दूरस्थ प्रान्तों के छात्र रटते हैं ! की भी वही कठिनता मिलेगी । इतिहास अन्य विषयों का भी कुछ यही हाल है । इसका कारण है, अनुभवी और अपने-अपने ों के विद्वानों से पुस्तकें न लिखवाना । सिफ़ा- और सस्ते लेखकों पर ही इसकी ज़िम्मेदारी कम-से-कम पैसे में प्रकाशक पुस्तकें तैयार लेते हैं और सिफारिश के बल पर कोर्स में करा देते हैं । अनुभवी शिक्षकों, बाल-हितैषी ों और सच्चे सेवाभावी प्रकाशकों को इधर देना चाहिए ।

एक शिक्षक

वनी और प्रार्थना

कुरुचि और विलासिता बढ़ाने में सिनेमा का भाग है । यह आजकल के जमाने में एक शक्ति है । इसलिए हमारे कला- ों को इसके प्रति अरुचि या उदासीनता से काम न चलेगा । सिनेमा की कला शक्ति का सदुपयोग बहुजनसमाज के कल्याण लिए कैसे हो, इसकी योजना या विधान तो कला के जानकार ही बना सकते हैं । मेरा तो इतना ही है कि मैं एक ओर उन लोगों इसकी अवहेलना करते हैं कहूँ कि वे इस को दुरुस्त करें । इस कला को उन्नत मंगलमयी बनाना उनका कर्तव्य है और उन ों से जो इस महान् शक्ति का उपयोग जनता रुचि को बिगाड़ने और जनता की आमोद- या रस-भावना के बलिदान पर अपना साधने में करते हैं, उन्हें चेतावनी दूँ कि वे बाज आयें ।

उन विद्यार्थियों और नवयुवक-युवतियों से जिनके बजट में आजकल सिनेमा-खर्च भोजन मान ही आवश्यक बन गया है, मेरी प्रार्थना कि वे चित्रों के चुनाव में सुरुचि का, अपने की उन्नति व कल्याण का पूरा ध्यान रखें । कला व विनोद के नाम पर अपने जीवन, समय और धन को बिगाड़ने के पाप से अपने को बचायें ।

ह० उ०

‘उपनाम’ या ‘तखल्लुस’

अपनी रचनाओं में अपने नाम की छाप लगाने के उद्देश्य से हिन्दी और उर्दू के कवियों ने छन्दों की यति-गति की दृष्टि से लम्बे-लम्बे नामों के स्थान पर छोटे-छोटे नाम (उपनाम या तखल्लुस) रखे । जैसे तुलसीदास ने ‘तुलसी’, कबीर दास ने ‘कबीर’, देवदत्त ने ‘देव’, अयोध्यासिंह ने ‘हरिऔध’ । कालान्तर में ये उनकी विशेषता प्रकट करने लगे । प्रेम के जिज्ञासु कवि ने ‘प्रेमी’, नवीनता के उपासक ने ‘नवीन’ और निरालापन लानेवाले कवि नें अपना नाम ‘निराला’ पसन्द किया । पर कहीं-कहीं इसका भी अपवाद हुआ, जब साहित्यिकों ने भिन्नता-प्रदर्शन या पहचान के लिए उपनाम रखना शुरू किया । श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अनुवादित रचनाओं को ‘मधुप’ नाम से प्रकाशित किया । ‘प्रेमचन्द’ उपनाम तो नाम ही बन गया ।

धीरे-धीरे यह पद्धति इतनी बढ़ गयी कि रोग बन बैठी । अब तो एक ही उपनाम कई ख्याततनामा या अप्रसिद्ध लेखकों के साथ चिपका मिलेगा । एक ‘सुमन’ उपनाम ही न जाने कितने साहित्यिकों ने रखा । इसलिए अब केवल उपनाम से लेखक की पहचान होना कठिन हो गया । वास्तव में इससे पाठकों और जनता में कभी-कभी बड़ा भ्रम फैल जाता है । लेखों या कविताओं की चोरी तक हो सकती है । इसको रोकने का यदि कोई उपाय है तो यही कि उपनाम रखनेवाले कवि या लेखक ऐसा ही उपनाम चुनें जो अभी तक किसी का न हो ।

एक के द्वारा अपनाया हुआ उपनाम चुनने से क्या हम यह भी नहीं सिद्ध करते कि हममें शब्द-दारिद्रच है या फिर हममें एक प्रकार की हीनता का भाव––इन्फ़ीरियॉरिटी कॉम्प्लैक्स–– आगया है ?

सुधींद्र

कसौटी पर

शिक्षा में नयी दृष्टि : लेखक—आचार्य हरभाई त्रिवेदी; अनुवादक—आचार्य बंसीधर; प्रकाशक—साहित्य-सदन, अबोहर; पृष्ठ-संख्या १२०; मूल्य ।।)

शिक्षण-साहित्य की दृष्टि से हिंदी का भण्डार अभी तक रीता-सा है—वह इतना रीता है कि उसे देखकर विस्मय भी होता है। पता नहीं, शिक्षण-साहित्य के प्रति हिन्दी के धुरीणों की यह उपेक्षा क्यों है ? वास्तव में साहित्य में शिक्षा के अंग की उपेक्षा करके हम घाटे में रहे हैं। खुद भी कमजोर बने हैं, और साहित्य को भी कमज़ोर बनाया है। हम जड़ को सींचना भूल गये और डाल-पात को सींचने में लगे रहे ! परिणाम वही हुआ, जो होना था।

जिस कर्तव्य का पालन हमने स्वेच्छा से नहीं किया, परिस्थितियाँ अब हमें विवश कर रही हैं कि हम अपने उस भूले हुए कर्तव्य का पालन अधिक तत्परता और सजगता के साथ करें। 'शिक्षा में नयी दृष्टि' ऐसे ही कर्तव्य-पालन की पुकार का एक मीठा जवाब है। इसके लेखक आचार्य श्रीहरभाई त्रिवेदी अपने विषय के सिद्ध-हस्त लेखक हैं। गुजरात के धुरन्धर शिक्षा-शास्त्रियों में उनका अपना एक स्थान है। आधुनिक मनोविज्ञान और शिक्षा-शास्त्र का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया है। वर्षों तक वे गुजरात-काठियावाड़ की एक अग्रगण्य शिक्षा-संस्था के आचार्य रहे हैं। इस समय भी वे भावनगर की 'घरशाला' के सम्पादक, संचालक और आचार्य हैं। उन्होंनें जो कुछ लिखा है, अपने वर्षों के अनुभव, अवलोकन और अध्ययन के आधार पर लिखा है। हिन्दीवालों का यह सद्भाग्य है कि श्रीबंसीधर के प्रयत्न से उन्हें आचार्य श्री हरभाई के नूतन शिक्षण-संबंधी विचारों को हिन्दी में पढ़ने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। पुस्तक के दस अध्यायों में लेखक ने स्वतंत्रता-अनुशासन, मनोविज्ञान-परिचय, कामविज्ञान, पाठ्यक्रम, सज़ा, परीक्षा-नम्बर, प्रतिस्पर्द्धा-इनाम, अनिवार्य-ऐच्छिक, डॉल्टन-योजना और वर्धा-योजना जैसे महत्त्व के विषयों पर अपने परिपुष्ट अनुभवों और विचारों का अमृत-सा बरसाया है। पुस्तक का एक-एक पृष्ठ ध्यान से पढ़ने योग्य है। बच्चों के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले शिक्षकों, माता-पिताओं, अभिभावकों और समाज व राज के धुरीणों के लिए पुस्तक में सोचने-समझने की क्रांतिकारी सामग्री सरल, सरस और प्रभावशाली ढंग से दी गयी है। अनुवादक अपने काम में सफल हुए हैं। पता नहीं ज़माना कब आयेगा, जब ऐसी पुस्तकें हिन्दी में हाथों हाथ हजारों-लाखों की संख्या में बिका करेंगी ? आशा करें कि वह दिन जल्दी ही आये।

बुनियादी तालीम के दो साल : प्रकाशक—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम, वर्धा; आकार-रॉयल आठपेजी; पृष्ठ—२३२, मूल्य १)

शिक्षा-जगत् में 'बुनियादी तालीम' का नाम अब किसीसे छिपा नहीं है। चार साल पहले जो चीज़ शिक्षा के क्षेत्र में कुतूहल और विस्मय का कारण बनी थी, जिसे बड़े-बड़े शिक्षा-शास्त्रियों ने भी आशंका और आलोचना की दृष्टि से देखा था, वही अब एक बड़े खासे पैमाने पर लोकमान्य और राजमान्य बनती जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में नयी दृष्टि के साथ काम करनेवालों के लिए इससे बढ़कर हर्ष का कोई सम्वाद नहीं हो सकता। प्रस्तुत पुस्तक इसी बुनियादी तालीम के दो साल का लेखा-जोखा है क्योंकि वह दूसरी बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् (जो अप्रेल, १९४१ में जामियानगर दिल्ली में हुई थी) के विवरण के रूप में प्रस्तुत हुई है। प्रस्तावना और परिशिष्ट सहित उसमें दस भाग हैं। गांधीजी का सन्देश और बुनियादी शिक्षा की प्रगति का प्रान्तवार सिंहावलोकन खास अध्ययन की चीज़ है। पहले भाग में डा० जाकिर हुसैन और डा० राजेन्द्रप्रसाद के भाषण

ादी तालीम के मर्म को बड़ी कुशलता के व्यक्त करते हैं। नयी तालीम के विद्यार्थियों ए ये दोनों भाषण मनोयोगपूर्वक पढ़ने मनन करने की चीज़ हैं। बुनियादी तालीम क्ष्य और कार्य के सम्बन्ध में आज भी सुशि- समाज में जो भ्रम फैला हुआ है ये भाषण उन- ीधा प्रहार करते हैं और बुनियादी शिक्षा के स्वरूप को जनता के समक्ष प्रकट करते हैं।

दूसरे भाग में देश के विभिन्न प्रान्तों में काम वाले बुनियादी स्कूलों के कार्य का ब्यौरा गया है, जो इस पुस्तक की अपनी विशेषता बुनियादी तालीम के विकास और विस्तार लचस्पी रखनेवाले सभी पाठक-पाठिकाओं ए यह भाग विशेष रूप से पढ़ने योग्य है।

तीसरे भाग में बुनियादी पाठ्यक्रम पर य यदुनन्दनप्रसाद द्वारा लिखित दो वर्षों के वों का उद्बोधक विवरण है। पांडेय जी का अनुभव बुनियादी तालीम के प्रेमियों के लिए ा का एक संदेश है।

चौथे भाग में अनुबन्ध की पद्धति पर चार न्ध संग्रहीत हैं, जो अपने विषय के अनुभवी ापकों द्वारा रोचक ढंग से लिखे गये हैं। ों निबन्ध अनुबन्ध के महत्त्व और उसकी नाइयों पर अच्छा प्रकाश डालते हैं।

पाँचवें भाग में बुनियादी तालीम के लिए शिक्षक तैयार करने की समस्याओं पर चार कारी विद्वानों के विचारोत्तेजक निबन्ध दिये हैं। नयी तालीम का कार्य तभी सफल हो ता है, जब उसके लिए नयी दृष्टि, नयी आशा, उमंग और नयी श्रद्धावाले कर्मठ और ण शिक्षक अधिक-से-अधिक संख्या में सुलभ । इस विभाग में ऐसे शिक्षकों को प्राप्त करने र प्राप्त शिक्षकों को नयी तालीम के अनुकूल ाने में आनेवाली विविध कठिनाइयों का और छले दो वर्षों के अनुभव पर उन कठिनाइयों के का विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया । इस दृष्टि से ये चारों निबन्ध विशेषरूप से न करने योग्य हैं।

छठे भाग में बुनियादी शिक्षा में कला और कलाकार के स्थान का विवेचन दो छोटे निबन्धों में बड़ी उत्तमता के साथ किया गया है। हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में कला का अपना कोई स्थान नहीं है। अबतक हमने अपने जीवन और अपनी शिक्षा में कला की अक्षम्य अवहेलना की है। नयी तालीम अपने दायरे में इस कलंक को प्रश्रय देना नहीं चाहती। उसके क्षेत्र में कला का शिक्षा से और शिक्षा का कला से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रनेहवाला है।

सातवें भाग में बुनियादी तालीम की प्रदर्शिनी के कुछ संस्मरण दिये गये हैं, जो इस नयी तालीम की निश्चित और आशाजनक प्रगति को सिद्ध करते हैं। परिषद् के प्रस्तावों के साथ पुस्तक का आठवाँ भाग समाप्त होता है। परिशिष्टवाले भाग में पाठ्च-क्रम-सम्बन्धी परिवर्तनों आदि की चर्चा है।

राष्ट्रहित की चिन्ता रखनेवाले सभी माता-पिताओं, शिक्षकों और सेवकों को इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक का ध्यान से अध्ययन करना चाहिए और राष्ट्र के बालकों की शिक्षा-दीक्षा के इस महायज्ञ में तन-मन-धन से राष्ट्रनायकों और शिक्षा-विशारदों की उत्साहपूर्वक सहायता करनी चाहिए। गांधीजी के शब्दों में "किसी प्रयत्न की सफलता सरकार की सहायता से ज्यादा खुद अपनी सहायता पर निर्भर है, क्योंकि सरकार की नीयत चाहे जितनी अच्छी हो, फिर भी उसे सावधानी के साथ चलना पड़ता है। हमारे प्रयोग की परिपक्वता के लिए उसे कहीं-न-कहीं तो खोट और बाहरी हस्तक्षेप से बचा रहना चाहिए।" यह तभी सम्भव हो सकता है, जब इस महान् प्रयोग में राष्ट्र के सभी विचारशील लोगों का हार्दिक सहयोग प्रयोगकर्ताओं को निरन्तर प्राप्त होता रहे। पाठशालाओं, पुस्तकालयों और पढ़े-लिखे घरों में तो इस पुस्तक की एक-एक प्रति रहनी ही चाहिए।

काशिनाथ त्रिवेदी

नवरस : लेखक—सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए० ; प्रकाशक—सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद; मूल्य लिखा नहीं ।

प्रस्तुत पुस्तक नाम से नौ रसों का शास्त्रीय विवेचन मालूम होती है; किन्तु वस्तुत: यह एक नाटक है, जिसमें योग्य नाटककार ने नौ रसों के मूर्तरूप नौ विविध पात्रों का चित्रण किया है । नाटक का कथानक सुन्दर और मनोरंजक है । उसपर वर्तमान सत्याग्रहमय राजनीतिक युद्ध की छाप है । राजा वीरसिंह अपने सेनापति रुद्रसेन की प्रेरणा से मधु नामक एक बालक राजा पर बिना किसी अपराध के आक्रमण कर देता ह, किन्तु वीरसिंह की बहन शान्ता अपने भाई को इस अनुचित आक्रमण के विरुद्ध जब समझाने में सफल नहीं होती, तब अपने भाई के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध करती है और वीरसिंह के हृदय को बदलने में सफल हो जाती है । लीला, करुणा, ग्लानिदत्त, अद्‌भुतचन्द्र आदि अन्य पात्रों द्वारा लेखक ने अन्य रसों का परिचय दिया है । यद्यपि लेखक ने नौ रसों की चहारदीवारी और गाँधीजी के सत्याग्रह-सम्बन्धी सिद्धान्त की सीमाओं में अपनी कल्पना और प्रतिभा के क्षेत्र को स्वयं ही बहुत मर्यादित कर दिया है, तथापि लेखक अत्यन्त कुशलता से अपने कथानक को निभा सका है । नाटक पढ़ते समय वर्तमान और मध्यकालीन समयों का कहीं-कहीं सम्मिश्रण होना कुछ खटकता-सा है ।

जूनिया : लेखक—श्री गोविन्दवल्लभ पन्त; प्रकाशक—गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या २६६, मूल्य १।।)

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त द्वारा लिखा हुआ, यह उपन्यास उनके नाम के अनुरूप नहीं हो सका । इसमें उपन्यास की औपन्यासिकता के बजाय शिक्षा देने की प्रवृत्ति लेखक के हृदय में ज्यादा काम करती दीखती है । और यही कारण है कि लेखक उसे सरस और सजीव बनाने में विशेष सफल नहीं हो सका । अस्पृश्य जाति का एक दरिद्र बालक हिन्दू समाज के अत्याचारों से परेशान होकर ईसाई बन जाता है, और शनैः-शनैः वहाँ अपनी लगन और सेवा-भावना से उन्नति करता जाता है । किन्तु आगे लेखक इस कथा को निभा नहीं सका है । उसकी उन्नति रुक जाती है और उसकी समस्त तपस्या या साधना व्यर्थ-सी हो जाती है । न जाने लेखक इस अन्त से दिखाना क्या चाहता है ? हम हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक से कुछ अधिक ऊँची चीज़ की आशा रखते थे ।

कौटल्य के आर्थिक विचार : ले०—श्री जगनलाल गुप्त और श्री भगवानदास केला; प्रकाशक—श्री भगवानदास केला, व्यवस्थापक भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन; मूल्य ।।=)।

मौर्यकाल भारतीय इतिहास का एक स्वर्ण-युग माना जाता है और उस समय की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान तबतक नहीं हो सकता, जबतक कि कौटल्य का अर्थशास्त्र न पढ़ लिया जाये । वस्तुत: यह पुस्तक इतनी महत्वपूर्ण है कि इसके सम्बन्ध में जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हों कम हैं । प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक अर्थशास्त्र के क्रम से अर्थ या धन, उपभोग के पदार्थ, धनोत्पत्ति के साधन, भूमि, श्रम, पूंजी, व्यवस्था, खेती, मुद्रा-मूल्य, व्यापार के मार्ग, भूमिकर वेतन, सूद, लाभ और धन-वितरण आदि विषयों पर पृथक्-पृथक् आचार्य चाणक्य या कौटल्य के विचार शृङ्खलाबद्ध रूप में दिये गये हैं । इतिहास के विद्यार्थियों को यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगी ।

यह हर्ष की बात है कि हिन्दी में अर्थशास्त्रीय व राजनैतिक साहित्य को लाने का श्रीगणेश करनेवाले श्री भगवानदास केला आज भी अपने अध्यवसाय और परिश्रम से हिन्दी की अथक सेवा कर रहे हैं । प्रस्तुत पुस्तक उनकी प्रसिद्ध माला का १९ वाँ ग्रंथ है ।

औपनिवेशक स्वराज्य या विधान-परिषद् : ले०—श्रीरामनारायण यादवेन्दु; प्रकाशक-नवयुग साहित्य निकेतन, राजामण्डी आगरा; पृष्ठ संख्या ७६; मूल्य ।।=);

वह पुस्तक औपनिवेशिक स्वराज्य की ा और उसके प्रति भारत व ब्रिटिश र के रुख पर विशेष प्रकाश डालने के लिखी गयी थी । औपनिवेशिक स्वराज्य : क्या है, इसका कानूनी और अमली तौर कास का संक्षिप्त परिचय देते हुए ब्रिटिश र के विभिन्न अधिकारियों और भारतीय ों के भारत के राजनैतिक ध्येय के संबंध त्वपूर्ण वक्तव्यों और भाषणों का उल्लेख या गया है, जो राजनीति के विद्यार्थी के बहुत उपयोगी है । विधान-निर्मात्री परिषद े में लेखक स्थानाभाव से बहुत संकोच या है । वह उसके विविध पहलुओं पर — कर उसके मार्ग की क्रियात्मक कठिनाइयों प्रकाश नहीं डाल पाया । इस कारण कुछ अधूरा रह गया है । इसी तरह लेखक न-परिषदों के कुछ ऐतिहासिक उदाहरण र से दे देता तो अधिक अच्छा होता ।

जातंत्र : ले०—श्री बा० रा० मोडक; दक—श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे । प्रकाशक ला कार्यालय, बांकीपुर, पृष्ठ संख्या २४४, १॥)

स्तुत पुस्तक प्रजातंत्र शासन-पद्धति पर भीर और अध्ययनपूर्ण प्रयत्न है । प्रजातंत्र कास, उसकी विशेषताएँ, प्रजातंत्र-पद्धति रूप, व्यवस्थापक सभाएँ, मंत्रिमण्डल, दल- स्थानिक स्वराज्य-संस्था आदि प्रजातंत्र के सभी अंगों की विस्तृत विवेचना के बाद त्र के गुण-दोषों पर विस्तार से विचार किया है और अन्त में व्यक्तिवाद, समाजवाद और टरशिप की पद्धतियों का प्रतिपादन करते जातंत्र के भविष्य पर प्रकाश डाला है । तरह पुस्तक को सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है । प्रतिपादन-शैली में सरलता नहीं, लेकिन शास्त्रीय विषय की के अनुरूप ही है, यद्यपि कुछ स्थलों पर संस्कृतबहुल और अधिक क्लिष्ट शब्दों रण कठिन अवश्य हो गयी है ।

आजकल के अनेक विचारक कहते हैं कि समाजवाद प्रजातंत्र का सर्वोच्च विकास है । पर लेखक समाजवाद की चकाचौंध में नहीं पड़ा । वह समाजवाद के दोषों से अच्छी तरह परिचित है और उसने समाजवाद की आलोचना करते हुए उचित साहस से काम लिया है । समाजवाद से सरकार पहले से भी बनिया बन जायेगी । "पूंजीवाद भी सरकार के हाथों में जाकर और बलवान बन गया है ।" "समाजवाद से एक अति प्रबल-प्रचण्ड सर्वाधिकारी नौकरशाही निर्माण होगी । यह नौकरशाही अत्यन्त प्रभावशाली और सर्वाधिकारी बनकर राष्ट्रहित की दृष्टि में बाधक बन जाती है ।" "समाजवाद प्रजातंत्र के सिर पर एक जोखम है ।" उसने केवल भारी स्थापनाएँ यों ही नहीं कर डालीं, बल्कि इसके लिए उसने युक्तियाँ भी काफी दी हैं ।

लेकिन दूसरी ओर लेखक जहाँ प्रजातंत्र के गुणों पर प्रकाश डालने में सफल हुआ है, वहाँ वह प्रजातंत्र पर उठायी गयी आपत्तियों का निराकरण उतने सजीव और जोरदार शब्दों में नहीं कर सका । वह प्रायः हरएक दोष को दबे शब्दों में स्वीकार कर लेता है और इससे पाठक के हृदय में एक ऐसा भाव छोड़ जाता है जो प्रजातंत्र का उसे जबर्दस्त हामी नहीं रहने देता । एक स्थल पर तो लेखक स्वयं आपत्तियों से प्रभावित होकर कह देता है । 'सच्चा और विशुद्ध प्रजातंत्र केवल आभास है ।'

यद्यपि लेखक भूमिका में ऐतिहासिक दृष्टि से संशयग्रस्त लोगों के संशय को दूर करने की कोशिश का दावा करता है तथापि प्रथम और अन्तिम अध्याय को छोड़कर प्रजातंत्र के सिद्धान्त-वर्णन और स्पष्टीकरण में इतिहास का बहुत कम प्रयोग कर पाया है । उदाहरणतः दूसरी रईसी कौंसिल की उपयोगिता के कुछ ऐतिहासिक उदाहरण देने आवश्यक हैं । सिर्फ सबकी नकल में यह कहने से काम नहीं चलेगा कि वह आवेश-पूर्ण विचारों पर प्रतिबंध लगाती है । यह भी बताना चाहिए कि किस देश में रईसी कौंसिल ने

राष्ट्र को आपत्ति से बचाया। अन्य अनेक स्थलों की पुष्टि के लिए भी ऐतिहासिक उदाहरण देना चाहिए था।

पुस्तक में एक कमी और है। पुस्तक को भारतीय दृष्टि से लिखने की कोशिश नहीं की गयी। गांधीवाद का भावी शासन-पद्धति में क्या स्थान है, इसकी भी चिन्ता नहीं की गयी। कृष्ण

अभिनव मेघ : अनुवादक—श्री अनिरुद्ध एम० ए०; प्रकाशक—स्वतन्त्र कार्यालय झाँसी, पृ० सं० ५९ मू० ।।)

प्रस्तुत पुस्तक कालिदास के संसार-प्रसिद्ध 'मेघदूत' का नवीन हिन्दी रूपान्तर है। 'बच्चन' जी ने इसकी भूमिका में कविसुलभ सहृदयता और अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से 'मेघदूत' की विवेचना की है। उनके मत से 'मेघदूत' की महानता का रहस्य यह है, **दुनिया के किसी गीत काव्य में उतना सूक्ष्म बाह्य वर्णन नहीं जितना 'मेघदूत' में, दुनिया के किसी वर्णनात्मक काव्य में उतनी तीव्रतम भावना नहीं जितनी 'मेघदूत' में।"**

अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा के कारण श्री अनिरुद्ध को अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त हुई है। छंद तथा शब्द-चयन सुन्दर और हृदयग्राही हैं।

प्रत्येक पृष्ठ पर फुट-नोट हैं जिनमें काव्य में आयी हुई अन्तर्कथाएँ हैं और काव्य के विशेष सौन्दर्य का विवेचन भी है।

पुस्तक के आरम्भ में दिये गये मेघमार्ग के मान-चित्र ने पुस्तक का महत्त्व और भी बढ़ा दिया है। अच्छा होता यदि हिन्दी रूपान्तर के साथ-साथ संस्कृत के मूल छंद भी दे दिये जाते। पुस्तक की सजधज संतोषजनक नहीं है।

ब्रजमोहन गुप्त

मोदक तथा पाँच कहानियाँ : लेखक श्री सोहनलाल द्विवेदी। बाल-खिलौना : लेखक स्वर्ण सहोदर; प्रकाशक—बाल-साहित्य मन्दिर, इलाहाबाद; मूल्य–मोदक ।), पाँच कहानियाँ ।।=), बाल-खिलौना ।)

तीनों पुस्तकें बड़े आकारवाली और रंग-बिरंगे चित्रों से सुसज्जित हैं। छोटे-छोटे बालकों के लिए ये कविताएँ बड़ी सरस और सरल भाषा में लिखी गयी हैं। साथ के चित्र कविता और कहानियों के भावों को और भी स्पष्ट कर देते हैं। 'मोदक' में चारों ऋतुओं का वर्णन और प्रत्येक ऋतु का खेल दिया गया है। अन्त में चार सुन्दर खेल के गीत भी जोड़ दिये गये हैं। 'पाँच कहानियाँ' मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा भी देती चलती है। इसमें 'हितोपदेश' की पाँच कहानियाँ—खरगोश और शेर, बन्दर और मगर, मेंढक और साँप, हाथी और खरगोश, सत्तूराम लपट्टूराम हैं। पद्य में ये कहानियाँ इतने सरल और मनोहर ढंग से सजायी गयी हैं कि बालक आसानी से ही कंठस्थ करलें।

'बाल-खिलौना' में २० फुटकर पद्य हैं। बालकों का खासा मनोरंजन करनेवाले विषय चुन-चुनकर लेखक ने बड़े ही मीठे ढंग से रखे हैं। जैसे 'म्याऊँ आजा', 'नटखट बन्दर', 'मेंढक बोले' और 'कुकड़ूँकूँ' आदि। भाषा भी सरल और भाव भी मीठे। अंग्रेजी में तो इतनी सजधज की बालोपयोगी किताबें हैं पर हिन्दी में शायद यह पहला ही प्रयत्न है। चित्रमय और अच्छे कागज पर होने से दाम जरूर ज्यादा हैं, पर बालकों को इतनी सुन्दर और सजी हुई सामग्री देने के लिए इतना खर्च करना बुरा नहीं है।

सद्गुणी बालक : लेखक–स्व० नारायण हेमचन्द्र; प्रकाशक–पुस्तक-भवन, काशी; मू. ।।।)

मूल पुस्तक गुजराती में है। इसे हिन्दी में लाने का श्रेय इसके अनुवादक श्री कृष्णदत्त शास्त्री को है। पुस्तक में ७० के लगभग आदर्श बालक-बालिकाओं की जीवनियाँ हैं, जिनमें देशी-विदेशी सभी सम्मिलित हैं। कहानियों से तरह-तरह की शिक्षाएँ मिलती हैं। मातृभक्ति, पितृभक्ति, भ्रातृ-भक्ति के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। इसके अतिरिक्त मातृ-भूमि के प्रति श्रद्धा, कर्त्तव्य-पालन आदि के भी आदर्श उपस्थित किये गये हैं। निश्चय ही यह पुस्तक राष्ट्र की भावी आशा बालकों के बड़े ही काम की वस्तु है। ऐसी चरित्र-निर्माणकारी आदर्श पुस्तकें

न्दी में और भी लिखी जायें तो राष्ट्र का बड़ा कार हो। इस पुस्तक की भाषा भी सरल है र लिखने का ढंग भी सरस है।

—वि०

पत्र-पत्रिकाएँ

भारती-पत्रिका : वार्षिक मूल्य ६)

शान्तिनिकेतन में हिन्दी-भवन की स्थापना वसर पर स्वर्गीय गुरुदेव ने यह इच्छा प्रकट थी कि विश्वभारती से एक ऐसी हिंदी का प्रकाशित हो, जिसके द्वारा भारतवर्ष की हित्यिक और सांस्कृतिक साधना का जो कुछ तम है, उसका नियमित रूप से प्रचार और यन होता रहे। गुरुदेव की जो इच्छा उनके न में फलित न होसकी, अब 'विश्वभारती-का' (त्रैमासिक) के रूप में हो रही है। का प्रथमांक हमारे सामने है।

हिन्दी के प्रसिद्ध मनीषी पं० हजारीप्रसाद दी,जो शांतिनिकेतन के हिंदी भवन के अध्यक्ष सके संपादक हैं। उनके योग्य संपादन में जैसी का होनी चाहिए, वैसी ही यह है। प्रस्तुत में गुरुदेव का १ लेख, ४ कविताएँ और १ नी है। सर्वश्री डॉ. राजेंद्रप्रसाद का 'अहिं-मक साध्य और साधन', आचार्य क्षितिमोहन का 'भारतीय संस्कृति के अध्ययन की एक क्षित दिशा,' डॉ० आनन्दकुमार स्वामी का आदि शून्यवाची शब्द एवं आकाश के साथ का धार्मिक संबंध' आदि लेख विद्वत्तापूर्ण मननीय हैं। हिन्दी-साहित्य को 'शान्ति-तन' केंद्र से बहुत-कुछ अमूल्य सांस्कृतिक निधि के द्वारा प्राप्त होगी, इस आशा के साथ हम का का अभिनंदन करते हैं।

श्ववाणी' : संस्कृति-अङ्क (१-२) मू० २), १)

हिन्दी में आज सांस्कृतिक और नैतिक यों को लेकर जो उच्चकोटि के पत्र निकल रहे नमें 'विश्ववाणी' का प्रमुख स्थान है। उसका द्र अंक' बहुत सुन्दर निकला। अब उसने ति-अंक' नाम से एक विशेषांक दो खण्डों में ला है। इनमें जार्ज बर्नाड शॉ, अलबर्ट आइन्स्टाइन, सर राधाकृष्णन्, सर चं० व्यं० रमन, मेडम च्यांग काई-शेक आदि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त मनीषियों के अतिरिक्त चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, डॉ० दे० रा० भण्डारकर, क० मा० मुंशी, डॉ० महमूद, डॉ० राधाकुमुद मुकुर्जी, डॉ० राधाकमल मुकर्जी, राय कृष्णदास, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, देवेन्द्र सत्यार्थी, भदंत आनंद कौसल्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं० सुन्दरलाल आदि भारतीय लेखकों के सुन्दर और मननीय लेख हैं। 'संस्कृति' की प्राचीन, अर्वाचीन, पाश्चात्य और पूर्वीय धारणाओं को हृदयंगम करने के लिए ये दोनों अंक एक संदर्भ-ग्रंथ का काम करेंगे। हिंदी-भाषी जनता से हमारी सिफ़ारिश है कि इनका संग्रह करे।

'विशाल भारत' : रवींद्र-अङ्क : मू० २)

'विशाल भारत' का जनवरी १९४२ का अंक 'रवींद्र अंक' नाम से प्रकट हुआ है। पू० गांधीजी के संदेश के अतिरिक्त, सर्व श्री आचार्य क्षिति बाबू, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, हजारीप्रसाद द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, दीनबंधु एंड्रूज, आचार्य गुरुदयाल मलिक, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, सोफिया वाडिया, रामानंद चट्टोपाध्याय और दादा धर्माधिकारी के लेख रवींद्रनाथ के जीवन, उनकी साहित्यिक प्रतिभा, मानसिक जगत् आदि की झाँकी देते हैं। इस दिशा में कोई भी प्रयत्न पूर्ण और त्रुटिहीन तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतना निसंःकोच कहा जा सकता है कि प्रस्तुत विशेषांक रवींद्रनाथ के विषय में अध्ययन करने वालों के लिए अनुपेक्षणीय है।

'जीवन-सखा' : व्यायाम अङ्क

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का यह मासिक हिन्दी में अपने क्षेत्र में बेजोड़ है। आलोच्य अंक में ये लेख बड़े महत्त्वपूर्ण हैं— आधुनिक व्यायाम-पद्धतियों पर एक दृष्टि; आसन-व्यायाम, यूरोप में स्वास्थ्य-आंदोलन, योग-क्रिया और अन्दरूनी सफाई और सब अपने-अपने विषय के विशेषज्ञों के लिखे हुए हैं। कुछ लेख खास-खास रोगों पर हैं। अंक संग्राह्य है। सु०

क्या और कैसे ?

हमारा नरसी मेहता !

श्रद्धेय जमनालालजी को गये आज १४ दिन हो गये । किन्तु अभी तक यह विश्वास नहीं हो रहा है कि वे चले गये । मेरा ही नहीं सैकड़ों का यह हाल हो रहा है । एक बड़े सहृदय मित्र लिखते हैं—"यह विश्वास ही नहीं होता कि वे चले गये । उनकी याद आते ही आँखें भीग उठती हैं । गला भर आता है और मन में एक अगम विषाद-सा छा जाता है । उनका जीवन ही नहीं मृत्यु भी अनुकरणीय हुई । जैसा वे चाहते थे वैसा ही हुआ । बात की बात में चटपट हो गये । बापू से मिलकर जाने का भी धीरज नहीं रख सके । ऐसा ही बुलावा वे चाहते थे । वे मरकर अमर हुए व हमें अमर बनने का रास्ता दिखा गये । अभी उनकी उम्र ही क्या थी ? बापू से २० बरस छोटे होकर भी वे उनके 'पुरखा' बन गये । बापू उनका श्राद्ध करेंगे, उन्हें अंजलि देंगे और वे बापू के हाथों यह सब ग्रहण करेंगे ! यह कैसा न्याय है ?"

एक आदरणीय मित्र लिखते हैं—"श्री भाई जमनालालजी तो हम लोगों को छोड़कर चले गये । क्या कहूँ । कुछ कहा नहीं जाता । हृदय सूना-सूना सा लगता है । कर्तव्य तो यह मालूम होता है कि अफ़सोस छोड़कर जिन कामों में वह मगन थे उनमें हम भी मगन हों । पर साहस नहीं होता । अभी तो दिमाग चल-विचल हो रहा है ।"

एक विद्यार्थिनी बहन लिखती है —"पूज्य काकाजी इस असार संसार को छोड़कर चले गये । परमात्मा को शायद यह सुहाया नहीं कि मेरा कोई आधार यहाँ रहे । मेरे क्या ऐसे हजारों बालक-बालिकाओं के आधार वे थे । वे सबको निराधार बना गये हैं । मैं कुछ तो पहले से ही अनाथ थी, अब और भी अनाथ बनाकर चले गये । × × गोपुरी में उनका शवदाह हुआ । हम सब वहीं थीं । आँखों से प्रत्यक्ष जलते देखा, पर अब भी विश्वास नहीं होता कि वे हमें छोड़ कर चले गये हैं । कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ—सब कुछ छोड़ देने की इच्छा होती है ।"

इस तरह के कई पत्र मेरे पास आये हैं वे तथा सारे भारत में उनका जो अभाव अनुभव किया जा रहा है उससे पता चलता है कि भाईजी सचमुच सारे भारत की आत्मा में व्याप्त हो चुके थे । उनके आत्म विकास का यह ज्वलन्त प्रमाण है । उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी सुयोग्य धर्मपत्नी जानकी मैयाजी ने जो सर्वस्व त्याग किया तथा भाईजी की रही सही ६ लाख की सम्पत्ति के कृष्णार्पण होने का जो समाचार मिला उसने भारत के धनी-मानियों के सामने महान् त्याग का आदर्श उपस्थित किया है । भारत में एक भामाशाह इतिहास-प्रसिद्ध है । लेकिन भाईजी के त्याग व जीवन की तुलना तो नरसी मेहता से ही की जा सकती है । उनका स्मारक या उनके स्थान की पूर्त्ति तो उनके रहे अधूरे कामों में अपने को झोंक देने के निश्चय द्वारा ही हो सकती है । परमात्मा हमें ऐसा बल दे ।

फिर आशा !

मार्शल चांगकाई शेक ने भारत से बिदा होते समय ब्रिटेन को सन्देश दिया है कि वह हिन्दुस्तानियों को पूर्ण राजनैतिक सत्ता जल्दी दे दे । इधर ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल में सर एडवर्ड क्रिप्स शरीक किये गये हैं और आम सभा के नेता बनाये गये हैं । यह ब्रिटिश परम्परा के विपरीत हुआ है । सर क्रिप्स मजदूर दल के नेता रहे हैं । उन्होंने भारत को शीघ्र बराबरी का दर्जा देने की पैरवी हाल ही की थी । आगे चलकर उनके प्रधान मन्त्रि-बनने की भी संभावना इंग्लैण्ड में की जा रही है । इधर युद्ध-मन्त्रि-मण्डल में भारत का प्रति-

धि लेने की घोषणा ब्रिटिश सरकार ने की
। सदूरपूर्व में जापानी आतंक बढ़ता ही जा
है। बर्मा खतरे में हुई है । इसके बाद ही हिंदु-
न का नम्बर आ सकता है । शायद इस संकट
ब्रिटिश राजनेताओं की आँखें खुलें । इन सब
रणों व सम्भावनाओं से हिन्दुस्तान में फिर
आशावाद जाग्रत हुआ ह कि सम्भवत: अब
न व भारत की सुलह हो जायेगी । सर सप्रू
दिल्ली से श्री एमेरी व मैक्सवेल को बुरी
फटकारा है । वे इण्डिया आफिस से बिल-
निराश हो गये हैं और उसे तोड़ देने की
ारिश करते हैं । किन्तु पं० जवाहरलाल
जैसे कांग्रेस के नेता यह नहीं मानते कि
ार से हिन्दुस्तान की कोई सुलह अभी हो
ती ह । इधर हमारे घर में कायदे आज़म भी
समझ से काम लेते नजर आते हैं । उन्होंने
राजाजी के सामने पासा फेंका ह कि कांग्रेस
अधिकार लेकर बोलो व फिर देखो कि मुस्लिम
समझौता करने को राजी है या नहीं । लेकिन
जाहिरा सुचिह्नों के बावजूद हमें पं० नेहरू
की धारणा ही सच होती हुई दिखाई देती
। हम तो उन सज्जनों को जो इन उतार-
वों से जल्दी-जल्दी प्रभावित होते रहते हैं
कहना चाहते हैं कि बाहर से जो-कुछ होने-
होगा वह होता रहेगा; हम तो इस समय
बात में अपनी शक्ति लगावें कि किस तरह
अपनी देहाती जनता को संगठन के एक सूत्र
बांध सकते हैं व युद्धजात संकट में उनकी हर
र से सहायता-सेवा करें । इसीमें हमारे
राज्य के आने व ठहरने की शक्ति निहित ह ।

रोचित

मलाया व खासकर सिंगापुर के पतन से
टिश मंत्रिमण्डल में हलचल मच गयी है व
में परिवर्तन होंगे । यह जबरदस्त धक्का
लैंड को लगा है, लेकिन अंगरेज़ों को व उनके
प्रधान मन्त्री को धन्य है कि संकट के अव-
र पर धैर्य छोड़ना नहीं जानते । हम अंगरेज़ों के इस गुण के प्रशंसक हैं । इसी साहस व धैर्य की बदौलत वे मुट्ठी भर व सात समुद्र पार होते हुए भी भारत-जैसे विशाल देश पर इतने हावी हो सके हैं । पर उनमें एक अवगुण भी है । अपनी स्वतन्त्रता की तरह वे दूसरों की स्वतन्त्रता की क़द्र नहीं करते । वे एकांगी स्वतन्त्रता के हामी हैं । खुद स्वतन्त्रता चाहते हैं, अपनी स्वतन्त्रता खोने के बजाय बरबाद होजाना पसन्द करेंगे; परन्तु दूसरों की स्वतन्त्रता की उतनी परवाह नहीं करेंगे । सच्चे मानी में यह स्वतन्त्रता की उपासना नहीं हो सकती है । सच्चा स्वतन्त्रता-प्रेमी वह है जो खुद भी स्वतन्त्र रहना पसन्द करे व दूसरों को भी स्वतन्त्र रहने दे । इतना ही नहीं, दूसरों को भी स्वतन्त्र बनाने का उद्योग करे । ब्रिटेन इस युद्ध में दावा तो यही करता है कि वह दूसरे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहा है; किन्तु हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में उसका जो रवैया है उससे यह दावा झूठा साबित हो रहा है । असल में वह योरपीय राष्ट्रों की व सच कहें तो खुद अपनी ही स्वतन्त्रता को खतरे में देखकर उसकी रक्षा के लिए वह लड़ रहा है । जो हो; इसमें सन्देह नहीं कि अंगरेज़ बड़ी जवांमर्दी से इस संकट में अपने शत्रुओं का मुकाबला कर रहे हैं । उनके ऐसे समय में श्री चर्चिल जैसे दिलावर नेता का उनमें होना एक ईश्वरी देन है । सिंगापुर के पतन पर उनके मुँह से निकले वीर वचन उनके जैसे वीरों के योग्य ही हैं । सिंगापुर के पतन के बड़े दूरवर्ती राजनैतिक परिणाम होंगे; किन्तु हम अन्त तक डटकर लड़ते रहेंगे । इस दृढ़ता से हम भारतवासी क्या कुछ शिक्षा न लेंगे ?

खेद जनक विवाद

आखिर रा० हि० सा० सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन के सभापतित्व का उलझा हुआ प्रश्न अजमेर में हुई स्थायी समिति की बैठक में सम्मेलन के वर्तमान सभापति श्री मुनि जिनविजयजी के निर्णय से हल हो गया और पंडित श्री राम-

निवासजी शर्मा सभापति घोषित कर दिये गये। मैं उन्हें इसके लिए बधाई देता हूँ। यदि यह मान का विषय है तो यह मान, और सेवा का अवसर है तो यह अवसर, आपको इससे पहले ही मिल जाना चाहिए था। जो पंडितजी से अपरिचित हैं—उन्हें भले ही यह शंका रही हो कि पंडितजी वर्ष भर डटकर काम कर सकेंगे या नहीं। परन्तु मुझे तो इसका पहले ही विश्वास था और अब तो यह भी विश्वास होने लगा है कि पंडितजी वर्ष भर ही नहीं, जीवन भर साहित्य-सेवा में संलग्न रहेंगे।

परन्तु खेद है कि सभापतित्व के प्रश्न को लेकर जोधपुर की स्वागत-समिति में कुछ अधिक उलझन बढ़ती जा रही है—यह राजस्थान के लिए दुर्भाग्य की ही बात है। अगर हम कहीं के भी, किसीके भी अन्तिम निर्णय को न मानेंगे और अपने आग्रह को ही निभाना चाहेंगे तो संसार में कोई अनुशासन और संस्था नहीं टिक सकती।

अजमेर में जो भी निर्णय हुआ और जिस तरह हुआ आज की परिस्थिति में उससे बढ़कर और कोई हल न था। स्वागत-समिति के प्रतिनिधि के द्वारा जो कठिनाइयाँ सामने लायी गयीं—उनपर पूर्ण सहानुभूति के साथ काफ़ी सोचा-विचारा गया और अंत में स्थायी समिति और स्वागत-समिति दोनों के मान की रक्षा करते हुए श्री मुनिजी पर ही सभापति के निर्णय का भार सौंप दिया गया।

किसी भी संस्था में उसका अध्यक्ष सब दलों और पक्षपातों से ऊपर समझा जाता है और हमारे सम्मेलन में तो मुनिजी विशेषरूप से इस गौरव के अधिकारी हुए हैं। अतएव ऐसे निर्णय पर मतभेद रखते हुए भी कोई विवाद न खड़ा करने में ही जोधपुर की स्वागत-समिति की शोभा थी। अब दुर्भाग्यवश यदि वहाँ विवाद खड़ा होगया है तो मेरी जोधपुर के सभी विचारशील विद्वानों, साहित्यिकों और लोकनेताओं से प्रार्थना है कि वे सम्मेलन के हित और जोधपुर के गौरव की रक्षा के लिए वहीं एक साथ बैठकर ऐसा मार्ग निकाल लें जिससे सम्मेलन का अधिवेशन वहाँ उसी उमंग के साथ किया जा सके, जिससे कि उदयपुर में जोधपुर के प्रतिनिधियों ने आमंत्रित किया था।

मेरे अनुभव में वैधानिक कठिनाइयाँ पेश करने की इच्छा मनुष्य को प्रायः तभी होती है जब और दलीलें खतम हो जाती हैं। जहाँतक सम्मेलन से सम्बन्ध है, उसकी स्थिति साफ़ है। मुनिजी का निर्णय प्रान्त ने स्वीकार किया है। स्वतः श्री जनार्दनराय ने, जिन्हें कि कुछ बातों पर बहुत आपत्तियाँ थीं, इस निर्णय को जिस सच्चाई के साथ अपनाया है—वह जोधपुर के हमारे अन्य मित्रों के लिए भी अनुकरणीय है।

सम्मेलन का अधिवेशन तो दूसरी जगह भी हो सकेगा परन्तु राजस्थान के साहित्यिक जागरण के इस इतिहास में जोधपुर का नाम सदा के लिए कलंकित हो जायेगा—जिसकी कल्पना मात्र से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

श्री जैनेन्द्रजी के वक्तव्य पर स्वागत-मंत्रीजी ने काफ़ी रोष प्रकट किया है—वहाँसे दूर बैठे हुए सम्भव है हम उनके वास्तविक कारणों को ठीक-ठीक न जान सके हों—इसलिए उनकी मनोभावनाओं का पूरा चित्र हमारे सामने न हो। परन्तु इतना स्पष्ट है कि ऐसे रोषपूर्ण वक्तव्य परिस्थितियों को सुलझाने में कामयाब नहीं हो सकते। सार्वजनिक जीवन में ऐसे ही वक्तव्यों के लिए स्थान है जिनसे परिस्थितियों को सुलझाने, कठिनाइयों को हल करने और कार्य को सफल बनाने में सहायता मिले।

मुझे विश्वास है, जोधपुर के मेरे अभिमानी मित्र अपनी आन पर किसी तरह की ठेस न आने देंगे और सम्मेलन का अधिवेशन वहीं सफलतापूर्वक कराने का शीघ्र आयोजन करेंगे।

ह० उ०

हिन्दी-मंदिर, प्रयाग के प्रकाशन

['मण्डल' तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में । पूरा सेट लेने पर एक तिहाई ीशन मिलेगा । —**व्यवस्थापक**]

१. **कविता-कौमुदी** : (भाग १, २, ४, ७) ले-**दूसरे भाग** में महाकवि चन्दबरदाई से र वर्तमान समय के कवियों के जीवन-परिचय ा चुनी हुई कविताएँ संग्रहीत हैं । अन्त में ता-कुंज के रूप में भी कई सुन्दर रचनाएँ दी ी हैं । पहले भाग के शुरू में हिन्दी भाषा का हास तथा दूसरे भाग के प्रारम्भ म 'खड़ी ी की कविता का संक्षिप्त परिचय दिया है हिन्दी के गद्य तथा पद्य साहित्य के विकास दर्शन कराता है । **चौथे भाग** में उर्दू के वली हब से लेकर आजतक के मशहूर शायरों की ाने और रुलानेंवाली ग़जलों तथा तीर की तरह भनेवाले शेरों के संग्रह के साथ भाषा का दिल-स इतिहास और कवियों के परिचय दिये गये । **सातवें भाग** में बंगला के कवियों की कविताएँ ा जीवन-परिचय दिये गये हैं । बंगला साहित्य ा प्रारम्भ से आजतक का इतिहास भी दिया ा है । दूसरे भाग का दाम ४॥) है, शेष का ३) है ।

२. **पथिक** (खण्ड-काव्य) : रचयिता पं० मनरेश त्रिपाठी । इस काव्य में देश की दशा, र्तव्यपालन की दृढ़ता, आत्मबल की महिमा र आत्म-त्याग की कथा बड़ी मार्मिक और रस भाषा में लिखी गयी है । दाम ॥)

३. **मिलन** (खण्ड-काव्य) : पथिक के मान ही यह खंड-काव्य भी अत्यन्त सरस है । ाम ॥)

४. **स्वप्न** (खण्ड-काव्य) : त्रिपाठीजी का ह काव्य उपरोक्त दोनों काव्यों से भिन्न प्रकार ा है । इसमें प्रकृति वर्णन के साथ शृंगार, रह, प्रेम और देशभक्ति का सुन्दर मिश्रण है । ाम ॥)

५. **मानसी** (कविता-संग्रह) : यह पाठीजी की कविताओं का संग्रह है । दाम ॥)

६. **दिमाग़ी ऐयाशी** (प्रहसन) : त्रिपाठीजी का यह प्रहसन पढ़कर आप हँसते-हँसते लोटपोट हो जायेंगे । ये साहित्यिक व्यंग-चित्र हैं जो एक बार अवश्य पढ़े जाने चाहिएँ— दाम ।)

७. **तुलसीदास और उनकी कविता** (दो भाग) : लें० पं० रा० न० त्रिपाठी । गोस्वामी तुलसीदासजी तथा उनकी कविता के सम्बन्ध जितने ज्ञातव्य विषय हैं सब इसमें आ गये हैं यह ग्रंथ बड़े खोज और परिश्रम से लिखा गया है । दाम ४॥)

८. **अयोध्याकांड** (सटीक) : टीकाकार पंडित रामनरेश त्रिपाठी । प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार मूल पाठ ठीक करके सरल टीका के साथ यह कांड अलग से छपाया गया है । यह पुस्तक कई जगह कोर्स में है । दाम ॥)

९. **हिन्दुस्तानी-कोष** : इस कोष में हिन्दी भाषा में बोलचाल में आनेवाले सभी भाषाओं के शब्दों का संग्रह और उनका अर्थ दिया गया है । यह सच्चे अर्थों में हिन्दुस्तानी कोष है । दाम २)

१०. **पाकेट डिक्शनरी** : अंग्रेज़ी से हिन्दी शब्दों के जानने के लिए यह जेबी कोष बहुत काम का और सस्ता है । अंग्रेज़ी समाचारपत्रों में आनेवाले शब्द भी इसमें मिलते हैं । शब्दों के उच्चारण भी दिये गये हैं । दाम ॥)

११. **जयंत** (नाटक) : लें०—पं० रामनरेश त्रिपाठी । इसका कथानक सामाजिक और राजनीतिक है । सीधी-सादी भाषा में ग़रीबों की दशा का हृदयहारी वर्णन है । दाम ॥)

१२. **प्रेमलोक** (नाटक) :—त्रिपाठीजी का यह दूसरा नाटक है । बहुतों की राय में यह 'जयन्त' से भी श्रेष्ठ है । दाम ॥)

१३. **बफ़ाती चाचा** (नाटक):पं० रामनरेश त्रिपाठी ने यह नाटक हिन्दू-मुस्लिम एकता को

लक्ष्य करके लिखा है। इसके गाने बड़े ही लोकप्रिय हुए हैं। इसके बारे में श्री टण्डनजी लिखते हैं कि 'आपने सुन्दर चित्र खींचा है।' दाम ।।)

१४. तरकस (कहानी-संग्रह) : यह पंडित रामनरेशजी की १० चुनी हुई लोकप्रिय कहानियों का सुन्दर संग्रह है। दाम ।।)

१५. हिंदी-पद्य-रचना : यह हिंदी का पिंगल है। इसे पढ़ लेने से हिन्दी पद्य-रचना का मार्ग सरल हो जाता है। कवि बननेवालों के काम की चीज़ है। दाम ।।)

१६. सुकवि-कौमुदी (संपादक रा० न० त्रिपाठी) : हिन्दी और उर्दू के पुराने और नये सुप्रसिद्ध कवियों की चुनी हुई कविताओं का इसमें संग्रह है। दाम १)

१७. हिंदी का संक्षिप्त इतिहास : त्रिपाठीजी ने इसमें हिन्दी का एक हज़ार वर्ष का इतिहास बड़ी खोज के बाद लिखा है। दाम ।≈)

१८. उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास : त्रिपाठीजी ने इसमें उर्दू भाषा और उसकी कविता का शुरू से लेकर आजतक का इतिहास दिया है। दाम ।।)

१९. खड़ी बोली की कविता का सं० इतिहास : इसमें त्रिपाठीजी ने हिन्दी-कविता के इतिहास का विकास बताया है। आधुनिक कविता के प्रवाह का सुन्दर परिचय कराती है। दाम ।।)

२०. सुदामा-चरित : हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि नरोत्तमदास का सुदामाचरित अपने विषय का एक उच्चकोटि का काव्य है। त्रिपाठीजी की सुन्दर टीका सहित। दाम ।)

२१. पार्वती-मंगल : यह गो० तुलसीदासजी की अमर रचना है। त्रिपाठीजी की सरल सुबोध टीका सहित। दाम ।)

२२. शिवाबावनी : यह सुप्रसिद्ध कवि भूषण की लोकप्रसिद्ध रचना है। त्रिपाठीजी की सुन्दर टीका सहित। दाम ।)

२३. कौन जागता है ? (नाटक) : गुजराती के लेखक और यू० पी० के ज़िलों के कलक्टर तथा कमिश्नर श्री वी० एन० मेहता का यह नाटक मानव-स्वभाव का सुन्दर चित्रण है। दाम ।।)

२४. हमारा ग्राम-साहित्य : हिन्दी में अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। इसमें ग्राम-साहित्य का संक्षिप्त सारगर्भित परिचय दिया गया है। गाँवों की संस्कृति और प्राकृति पर विवेचनात्मक प्रकाश डाला गया है। तथा ग्रामगीतों का चना हुआ संग्रह भी दिया गया है। दाम २)

२५. हिन्दी-कविता का विकास (श्री आनन्दकुमार) : हिन्दी-कविता के विकास दरसानेवाले निबन्धों का संग्रह। दाम २)

२६. पुष्पवाण (कविता संग्रह) : आनंदकुमारजी की कविताओं का संग्रह। दाम ।।)

२७. समाज और साहित्य (निबन्ध : दो भाग) : आनन्दकुमारजी के कुछ निबन्धों का संग्रह। दाम ।।।)

२८. मुस्लिम संतों के चरित (श्रीगोपाल नेवटिया) : मुसलमानों के सुप्रसिद्ध औलियाओं, फ़क़ीरों, साधु-सन्तों, महात्माओं और तपस्वियों की पवित्र त्यागभरी शांत और सरस जीवन घटनाएँ दी गयी हैं। इस्लाम के रत्नों का यह अमूल्य खज़ाना है। प्रत्येक देशभक्त और धर्मप्राण व्यक्ति के पढ़ने योग्य। दाम २)

२९. काश्मीर (यात्रा-वर्णन) : भू-स्वर्ग काश्मीर का श्रीगोपालजी द्वारा यह आँखोंदेखा वर्णन बड़ा ही रोचक और सजीव है। सचित्र और सुन्दर जिल्द। दाम ५)

३०. यूरोप की कहानियाँ (श्री गोपाल नेवटिया) : यूरोप की चुनी हुई कहानियों का सरस संग्रह। दाम २।।)

३१. वीथिका (कहानी-संग्रह) : श्री नेवटियाजी की १२ चुनी हुई कहानियों का संग्रह। दाम ।।।)

३२. तूणीर (गद्यगीत) : श्री देवदूत विद्यार्थी के गद्यगीतों का संग्रह। दाम ।।)

३३. घर का वैद्य (अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार) : बीमारी में अपना इलाज स्वयं

ते में मदद देनेवाली पुस्तक । इसमें देशी, नी और अंग्रेजी तीनों चिकित्सा-प्रणालियों वर्णन है । सैकड़ों ऐसे नुसखे दिये गये हैं जिससे बड़े-बड़े रोगों की दवा ४-५ पैसे में र हो सकती है । दाम ६)

३४. **कुललक्ष्मी** (स्त्रियोपयोगी) : स्त्रियों लिए उनके कर्तव्यों, कार्यों, दोषों, का ज्ञान नेवाली तथा नैतिक और धार्मिक शिक्षा वाली पुस्तक । दाम ॥)

३५. **दम्पति-सुहृद** : यह पुस्तक स्त्री- दोनों के काम की है । यह दोनों के मित्र काम देगी । दाम १।)

३६. **हिन्दुओं के व्रत और त्योहार** : वर कन्हैयाजू) इसमें हिन्दुओं के व्रतों और हारों का सरल, सरस और सुबोध वर्णन है । की कथाएँ भी दी गयी हैं । कन्याओं, बहुओं बहनों को उपहार में देने योग्य । दाम १॥)

३७. **अंग्रेजी शिष्टाचार** (रा० न० त्रिपाठी) : जी समाज की रहन-सहन, बोलचाल रस्म-रिवाज तौर-तरीकों का रोचक वर्णन । विदेश-यात्रा नेवालों के काम की चीज है । दाम २)

३८. **योग के आसन और कसरतों के** त्र (सचित्र) : योग और उसके आसनों का त्र वर्णन है । इसमें १८० चित्र दिये गये हैं । १)

३९. **रत्ना** (कविता संग्रह) : हिन्दी के ष्ठित कवि ठा० गोपालशरणसिंहजी के सुपुत्र सोमेश्वरसिंह की चुनी हुई कविताओं का है । दाम ॥)

४०. **दृगजल** (कविता-संग्रह) : कुँ० श्वरसिंह की कविताओं का दूसरा संग्रह । ये न धारा की कविताएँ हैं । इनमें करुणरसका ही मधुर और मर्मस्पर्शी प्रवाह है । दाम ।)

४१. **नमूने के गाँव और मिट्टी के सुख-** द घर : (एक जानकार) इसमें सरलता से या गया है कि गाँव के लोग जितने खर्च से घर बनाते हैं उतने ही खर्च में सुन्दर और र और स्वास्थ्य के लिए उपयोगी घर कैसे बना सकते हैं । गाँववालों के लिए काम की चीज है । दाम १)

४२. **किसानों के काम की बातें** (रा० न० त्रिपाठी) : किसानों की हालत सुधारने के लिए बहुत-सी बातें इस पुस्तक में बतायी गयी हैं । भाषा सरल है और मोटे अक्षरों में होन से साधारण पढ़ा-लिखा किसान भी पढ़ सकता है । दाम ।)

४३. **किसानों की कहावतें** (संग्रह) : किसानों के काम की ग्रामीण कहावतों का संग्रह है जिनसे किसानों का साधारण ज्ञान प्रकट होता है और उनके अनुभव की बातेंमिलती हैं । दाम ।)

४४. **घरेलू इलाज** (आनन्दकुमार) : इसमें साधारण रोगों के लिए ऐसे-ऐसे नुसखे दिये गये हैं जिनमें पैसे का खर्च बहुत ही कम पड़ता है । देहात में मिलनेवाली जड़ी-बूटियों से ओषधि बनाकर रोग दूर करने की विधि इसमें बतायी गयी है । साधारण जनों के काम की चीज है । दाम ।)

४५. **चिंतामणि** (भजन-संग्रह) : संत महात्माओं के चुने हुए भजनों का संग्रह । पाकेट साइज़ में सुन्दर छपी पुस्तक का दाम केवल =)

४६. **स्वप्नों के चित्र** (प्रहसन) : रामनरेश त्रिपाठी के ९ प्रहसनों का संग्रह । दाम ॥।)

४७. **सद्गुरु-रहस्य** (कुँ० कोशलेन्द्र-प्रतापसाही) : एक राजवंशीय भगवद्भक्त के गम्भीर मनन का फल । इसमें काल-कर्म, माया, प्रेम तथा ज्ञान-विज्ञान की परीक्षा करके भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध की गयी है । उपहार में देने योग्य । दाम २॥)

४८. **बीस कहानियाँ** (कहानी-संग्रह) : श्री रामचन्द्र टण्डन द्वारा किया गया हिंदी की चुनी हुई कहानियों का संग्रह । दाम २)

४९. **हिमानी** (कविता-संग्रह) : हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और लेखक श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कविताओं का संग्रह । दाम ॥)

५०. **तरंगिणी** (कविता-संग्रह) : श्री किशोरीदासजी बाजपेयी के चुने हुए दोहों का संग्रह । दाम ॥)

५१. **नीति के श्लोक** (श्लोक-संग्रह) : इसमें नीति के उत्तम श्लोकों का अर्थसहित संग्रह किया गया है। दाम ।।)

५२. **मारवाड़ के मनोहर गीत** (गीत-संग्रह) : मारवाड़ की जनता में प्रचलित रोचक और शिक्षाप्रद गीतों और दोहों का संग्रह। दाम ।)

५३. **सोहर** : (ग्रामगीत-संग्रह) सोहर के समय गाये जानेवाले गीतों का संग्रह। दाम ।)

५४. **सारिका** : श्री आनन्दकुमार की कविताओं का संग्रह। दाम ।।)

५५. Hindi Folk Songs; A. G. Shirreff हिन्दी ग्रामगीत। १)

५६. Songs of Mirabai by R. C. Tandan : मीराँ बाई के गीतों के अंग्रेजी अनुवाद। १)

बाल-साहित्यमाला

'हिन्दी-मन्दिर' का एक प्रधान और महत्त्वपूर्ण कार्य बाल-साहित्य का निर्माण और काशन-कार्य है। इस समय हिन्दी में प्रकाशन-कार्य करनेवाली जितनी भी संस्थाएँ हैं उनमें दो-तीन को छोड़कर सबसे अधिक बालोपयोगी पुस्तकें हिन्दी-मन्दिर ने निकाली हैं। और तरह-तरह के विषयों के चुनाव में वह सबसे आगे रहा है।

१. **बाल-कथा-कहानी** (१७ भागों में) : बालकों के लिए ये कहानियाँ इतने रोचक ढंग से लिखी और सुन्दर ढंग से छापी गयी हैं कि बालक एक बार हाथ में ले लेने पर पूरा किये बिना छोड़ता ही नहीं। सब कहानियाँ सचित्र हैं। बच्चे पढ़ते-पढ़ते लोट-पोट हो जाते हैं। प्रत्येक परिवार में इसका एक सेट अवश्य होना चाहिए। हिन्दी में इतना लोकप्रिय बाल-कहानी संग्रह और कोई नहीं है। दाम प्रत्येक भाग ।=)

२. **बताओ तो जानें** : इसमें कई मनोरंजक गोरखधंधे दिये गये हैं जिनको हल करने से बालकों की बुद्धि तेज होती है। दाम ।)

३. **बानर-संगीत** (गीत संग्रह) : बालोपयोगी गायनों और गीतों का संग्रह। स्वर-लिपियों के साथ। दाम ।)

४. **हंसू की हिम्मत** (एक पद्यात्मक कहानी) : बच्चों में घूमने-फिरने का शौक पैदा करनेवाली। दाम ।=)

५. **नेता-बुझौवल** : यह बड़ी रोचक पुस्तक है। इसमें आठ नक्शे हैं—प्रत्येक नक्शे में ३२ खाने हैं और प्रत्येक खाने में किसी नेता का नाम लिखा है। पूछनेवाला इन नेताओं में से मनमें किसी नेता का नाम ले लेता है तो बूझनेवाला इन खानों की ही मदद से मन में लिये नेता का नाम बता देता है। दाम ।)

६. **खोजो, खोज निकालो** : यह कविता की पोथी है पर उन कविताओं में फलों, फूलों, पहाड़ों, नदियों आदि के नाम हैं जो बुद्धि लगाने से खोजे जाते हैं। इससे बच्चों की बुद्धि तेज होती ह। दाम ।)

७. **परियों की कहानियाँ** (दो भाग) : इनमें परियों की रोचक और मनोहर कहानियाँ दी गयी हैं। दाम प्रत्येक का ।=)

८. **राक्षसों की कहानियाँ** (आनन्दकुमार): बालकों की रुचि का ध्यान रखकर राक्षसों की कहानियाँ दी गयी हैं। पुस्तक सचित्र है। दाम ।=)

९. **जादू की कहानियाँ** (आनन्दकुमार) : इसमें पुरानी रोचक और अनोखी कहानियाँ संग्रह की गयी हैं। कहानियाँ सब सचित्र हैं। दाम ।=)

१०. **इतिहासों की कहानियाँ** (आनन्द-कुमार) : इसमें वीर महापुरुषों की ऐतिहासिक कहानियाँ दी गयी हैं। भाषा सरल और मज़ेदार है। दाम ।)

११. **गुपचुप कहानियाँ** (दो भाग) : इसमें कहानियाँ चित्रों में कही गयी हैं। बच्चे चित्र देखकर कहानियाँ बना लेते हैं। दाम प्रत्येक ।)

१२. **मौत के सुरंग की कहानी** : बालोपयोगी रोचक और कँपा देनेवाली क़हानी। दाम ।=)

१३. **भूतों का क़िला** : (आनन्दकुमार) बालोपयोगी एक अनोखी और मजेदार कहानी। दाम ।=)

१४. **कहानी के कल पुर्जे** : हिन्दी में यह बिलकुल नयी चीज है। इसमें कहानियाँ लिखी

हैं जो पढ़ी जायें। इनमें चित्र दिये गये नपर से देखी जाती हैं और गढ़ी जाती हैं। चित्रों को देखकर बालक कहानी अपने-आप लेते हैं। दाम ।)

१५. **पेखन** (बाल-नाटक) : स्कूलों और में खेलने योग्य त्रिपाठीजी के बाल-नाटकों ग्रह। यह बड़ा ही लोकप्रिय हुआ है। दाम ।=)

१६. **मोतीचूर के लड्डू** : इसमें छोटे-बच्चों के लिए सरल और बड़े टाइपों में और ों के बीच-बीच कविताएँ दी गयी हैं। दाम ।)

१७. **बलभद्दर** (आनन्दकुमार) : बालकों समझ में आने लायक़ रोचक भाषा में लिखी कहानी पुस्तक। दाम ≡)

१८. **कबड्डी** (मुनीश्वरप्रसाद त्रिपाठी) : ान सभ्यता में हमारे बच्चों के घरेलू खेल गये हैं। स्कूलों में भी देशी खेलों की व्यवस्था है। लोग उन्हें भूलने लगे हैं। इस पुस्तक कबड्डी खेल का वर्णन है। दाम ।)

१९. **मोहनमाला** (कविता-संग्रह) : इसमें कों के लिए बहुत ही मनोरंजक उपदेशप्रद र मीठी कविताएँ हैं जिनको बच्चे बड़ी जल्दी कर लेते हैं। दाम ।।।)

२०. **गांधी पत्ता या जवाहर ताश** : यह ीन ढंग का ताश है जिसके द्वारा शब्दों की नकारी और उनके ठीक अर्थ जानने में बड़ी या होती है। साथ ही जोड़ बाकी का भी हो जाता ह। इसे हरेक श्रेणी के लोग क से बूढ़ेतक खेल सकते हैं। खेलने की िसहित। दाम ।।)

२१. **हिन्दी पत्र शिक्षक** (रामनरेश त्रिपाठी): पन से ही बालकों को पत्र लिखने की शिक्षा ाली पोथी। दाम =)

२२. **हिन्दी की नयी रीडरें** :

इन रीडरों में जो पाठ रक्खे गये हैं, उनमें क-बालिकाओं को देशभक्त, आत्माभिमानी, ज-सेवक, सभ्य, सदाचारी बनाने की पूरी है। इन रीडरों के पढ़ाने से बालक-काओं में विलासिता के बदले सादगी, उच्छृंखलता के बदले सत्कुलाचरण और अपव्यय के बदले मितव्ययता की आदत पड़ेगी। शिक्षा प्रेमी सज्जनों से हमारा अनुरोध है कि वे इन रीडरों को अपने स्कूल-पाठशालाओं में स्थान दें और दिलावें। दोनों प्रकार की रीडरें मिडिल-कक्षा तक के लिए तैयार हैं। मूल्य भी इनका बहुत ही कम रक्खा गया है।

बालकों के लिए

हिन्दी-प्राइमर नं० १, २ प्रत्येक -)।। हिन्दी ज्ञानोदय—पहला भाग =); दूसरा भाग ≡); तीसरा भाग ।-); चौथा भाग ।।); पाँचवाँ भाग ।।-); छठाँ भाग ।।=) डाक-व्यय ।।।=)

कन्याओं के लिए

नया हिन्दी-प्राइमर नं० १, २ प्रत्येक -)।। कन्या-शिक्षावली, पहला भाग =); दूसरा भाग ≡); तीसरा भाग ।); चौथा भाग ।-); पाँचवाँ भाग ।≡); छठा भाग ।।) डाक-व्यय ।।।=)

२३. सस्ती कहानियाँ

आदमी की क़ीमत =) सियार राजा और मेढक राजकुमार =) पकड़ पुँछ कटे को =) गड़-बड़गुम =) तीन मेमने =) तीन सुनहले बाल =) रूपा =) फूलरानी =) बेलकुमारी =) भयबिन होय न प्रीति =) बुढ़िया बुढ़िया तुझे खाऊँ? =) चटक मटक की गाड़ी =) चुड़ैलरानी =) डंकू =)

१. **हरिश्चन्द्र** : अयोध्या के राजा सत्यवादी हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त : उनकी प्रतिज्ञा, सत्य-पालन की दृढ़ता, उदारता, और कष्ट सहन की रोचक कहानी। दाम ।)

२. **महात्मा बुद्ध** : भगवान बुद्ध के जीवन और उनके प्रचारित धर्म को समझानेवाली पोथी। दाम ।)

३. **अशोक** : देवताओं के प्रिय सम्राट् अशोक की जीवन-कथा। दाम ।)

४. **चन्द्रगुप्त** : भारत-सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की जीवन कथा। दाम ।)

५. **आल्हा** : वीर-रस की पोथी। आल्हा का परिचय और उनकी लड़ाइयों का वर्णन, संक्षिप्त कथा आदि रोचक ढंग से लिखी गयी है। दाम ।)

‘मण्डल’ और ‘हिन्दी-मन्दिर’ की पुस्तकें लेने

तथा

‘जीवन-साहित्य’ के ग्राहक बनने के नियम

१. एक रुपया देकर स्थायी ग्राहक बन जाने से ‘मण्डल’ की पुस्तकों पर ≡) रुपया, ‘हिन्दी-मन्दिर’ की पुस्तकों पर ।) रुपया कमीशन मिलेगा और ‘जीवन-साहित्य’ मासिक पत्र एक वर्ष तक १) में मिला करेगा।

२. खादी-भण्डारों पर से ‘मण्डल’ के स्थायी ग्राहकों को ‘मण्डल’ की पुस्तकों पर =) रुपया कमीशन मिला करेगा।

३. ‘जीवन-साहित्य’ का १।) में ग्राहक बनजाने पर एक वर्ष तक ‘मण्डल’ की पुस्तकें ≡) रुपया कमीशन पर और ‘हिन्दी-मन्दिर’ की पुस्तकें ।) रुपया कमीशन पर मिला करेंगी। एक बार १।) में ‘जी० सा०’ का ग्राहक बन जाने पर दूसरे साल १) में ही ग्राहक चालू हो सकते हैं।

४. ‘जीवन-साहित्य’ के नमूने के लिए =) का टिकिट भेजना चाहिए।

५. ‘मण्डल’ के स्थायी ग्राहकों तथा ‘जीवन-साहित्य’ के ग्राहकों को दूसरी बाहरी पुस्तकों पर साधारणतः कमीशन -) रुपया दिया जा सकता है। विशेष दशा में और रिआयतें हो सकती हैं।

६. नयी पुस्तकें प्रकाशित होने पर स्थायी ग्राहकों को ‘जीवन-साहित्य’ के द्वारा सूचना दे दी जाती है।

७. स्थायी ग्राहकों के लिए तथा ‘जी० सा०’ के ग्राहकों के लिए भी वर्ष में ‘मण्डल’ द्वारा प्रकाशित कम-से-कम ५) की पुस्तकें खरीदना अनिवार्य है।

८. साधारण ग्राहकों को साधारण रूप से पुस्तकें लेने पर ‘मण्डल’ की तथा ‘हिन्दी-मन्दिर’ की पुस्तकों पर -) रुपया कमीशन दिया जाता है।

९. ‘मण्डल’ की पुस्तकें पाठकों तथा ग्राहकों की सुविधा के लिए भारत के तमाम बड़े-बड़े पुस्तकविक्रेताओं तथा चर्खा-संघ द्वारा संचालित, यू० पी०, पंजाब, सिन्ध, बिहार, कलकत्ता, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, राजपूताना, मध्यभारत के खादी-भण्डारों में बिक्री के लिए रहती हैं। ‘जी० सा०’ तथा ‘मण्डल’ के ग्राहक भी वहाँ बन सकते हैं।

१०. ‘मण्डल’ की तथा हिन्दी जगत की पुस्तकों के प्रकाशन तथा गतिविधि जानने के के लिए ‘जीवन साहित्य’ का ग्राहक होना आवश्यक है।

११. १०) से अधिक का माल मँगाने पर चौथाई रक़म पेशगी भेजना आवश्यक है।

१२. पत्र-व्यवहार हिन्दी में होना आवश्यक है। माल मँगाते समय अपने स्थान के पास के रेलवेस्टेशन का नाम अवश्य लिखा करें।

१३. जो पुस्तकें न भेजी जा सकें उनके लिए यही समझ लेना चाहिए कि वे हम नहीं दे सकते या मण्डल के स्टाक में नहीं हैं।

१४. इससे पहले के नियम रद्द समझे जायँ और इनमें भी समय-समय पर परिवर्तन करने का मण्डल को अधिकार है।

मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

राष्ट्रको हर परिस्थिति में रास्ता दिखानेवाले
गांधीजीके तीनों अखबार तो
बन्द हो गये।

अब क्या पढ़ें ?

सर्वोदय

गांधी-मत के अनुसार जीवनस्पर्शी सब
विषयों की चर्चा करनेवाला

मासिक-पत्र

सम्पादक :
काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

[हर महीनेकी पहली तारीख़ को वर्धा से प्रकाशित होता है।]

यह तो गांधीमत, गांधी-सिद्धान्त या गांधी-प्रवृत्ति की अपनी-अपनी दृष्टि से सांगोपांग मीमांसा करनेवाले विचारकों और लेखकों का 'सत्संग' है।

[आगामी अगस्त से चौथा वर्ष शुरू होगा]

वार्षिक मूल्य :—देश में रु० ३, बर्मा में रु० ३।।, विदेश में
६ शिलिंग १.५० डालर

छः आने के टिकट भेजकर आज ही नमूना मँगाकर पढ़िये।

व्यवस्थापक—
'सर्वोदय' कार्यालय,
बजाजवाडी, वर्धा (सी० पी०)

शरत्-साहित्य के इक्कीस भाग,

पाटन का प्रभुत्व,

सुनीता और परख-स्पर्द्धा

सुलभ साहित्य माला की इन पच्चीस पुस्तकों का मूल्य

बारह-बारह आने कर दिया गया

कागज के भाव बेहद बढ़ जाने के कारण लाचार होकर हमें यह मूल्य बढ़ाना पड़ा है। २८ फरवरी के बाद अब ये पुस्तकें दस आने की जगह बारह आने की दर से ही मिल सकेंगी।

हमारी प्रकाशित की हुई अन्य सब पुस्तकों की कीमत ज्यों की त्यों रहेगी।

कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण—ले० प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति मू० ४।)

शेष स्मृतियाँ--राजकुमार डा० रघुवीरसिंहजी डी० लिट् मूल्य २)

प्रस्तुत प्रश्न--श्री जैनेन्द्रकुमार मू० २)

सिद्धार्थ (महाकाव्य)—पं० अनूपशर्मा एम० ए०, एल० टी० मू० ३)

अरबी काव्यदर्शन—मौलवी महेशप्रसाद। मू० १।)

राधा—सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पं० उदयशंकर भट्ट का यह भाव-नाट्य हिन्दी में बिल्कुल नये ढंग की रचना है। मू० दस आने।

कुलीनता—सेठ गोविन्ददासजी का नया ऐतिहासिक नाटक। मू० १)

दो चिड़ियाँ—श्री जैनेन्द्रकुमारजी की कहानियों का संग्रह। मू० १)

दो फूल—श्रीमती सत्यवती मलिक की सुन्दर कहानियाँ। म० १।)

शिवाजी—सर जदुनाथ सरकार। मू० १॥)

हिन्दी-साहित्य की भूमिका—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी। मूल्य २)

कबीर

लेखक—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य

सन्त कबीर के विषय में अपूर्व ग्रंथ। फरवरी में तैयार होगा।

नोट—कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगाइए।

संचालक—

हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई नं० ४

बी जनरल इंश्योरेंस कं० लि०

हेड आफिस—८, **रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता**

चैयरमैन—**श्री ब्रजमोहन बिड़ला**

जीवन, अग्नि, मोटर, और समुद्र दुर्घटना के लिए

बीमा-प्रतिष्ठान

सन् १९४० में ३० लाख से भी ऊपर जीवन-बीमे की पालिसियाँ की हैं।

कुल सम्पत्ति का परिमाण २८ लाख के क़रीब है, चुकता मूलधन १४ लाख ४० हज़ार है।

शाखाएँ—

बंबई,
नई दिल्ली.
लाहौर,
मद्रास,
कानपुर,
पटना
कोलम्बो
रंगून,
इत्यादि

* आलोचना-साहित्य का भण्डार *

—हमारा अपना प्रकाशन—

—❀ o ❀—

गुप्तजी की कला—(दूसरा परिवर्द्धित संस्करण हो रहा है) लेखक–प्रो० सत्येन्द्र एम. ए. । १)

प्रसादजी की कला—(दूसरा परिवर्द्धित संस्करण हो रहा है) संपादक–बा० गुलाबराय एम.ए.। १)

सुमित्रानन्दन पन्त—लेखक प्रो० नगेन्द्र । दूसरा परिवर्द्धित संस्करण अभी छपा है । १॥)

साकेत : एक अध्ययन—लेखक प्रो० नगेन्द्र । पहला संस्करण समाप्त होनेवाला है । १॥)

हिन्दी-साहित्य का सुबोध इतिहास—ले० बाबू गुलाबराय एम. ए. । हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए आलोचनात्मक दृष्टि से लिखा हुआ सबसे सरल इतिहास । तृतीय संस्करण । १।)

रसज्ञ-रञ्जन—आचार्य द्विवेदीजी के साहित्यिक निबंधों का सर्वश्रेष्ठ संग्रह । पाँचवा संस्करण ।॥।)

साहित्य की झाँकी—प्रो० सत्येन्द्रजी के उत्कृष्ट साहित्यिक निबन्ध । द्वितीय संस्करण । ॥।)

साहित्य मीमांसा—श्री किशोरीदास वाजपेयी । ।)

प्रताप समीक्षा—पं० प्रतापनारायण मिश्र के लेखों की समालोचना और नमूनें के निबन्ध । ॥।)

जेबुन्निसा के आँसू—राजकुमारी जेबुन्निसा की कविता की आलोचना, उर्दू कविता का इतिहास और नमूने । १)

बिहारी का संक्षिप्त अध्ययन—
ले० श्री 'सरोज' ।=)

—आलोचना की नयी पुस्तकें—

—❀ o ❀—

हिन्दी नाटच चिन्तन—शिखरचन्द्र जैन । ४)
प्रिय-प्रवास दर्शन—बालधर त्रिपाठी । १)
आधुनिक कवि—महादेवी वर्मा । १॥)
महादेवी वर्मा—गंगाप्रसाद पांडेय । १॥)
सूर संदर्भ—नन्ददुलारे वाजपेयी । ॥)
आधुनिक हिन्दी-साहित्य—वात्स्यायन । १॥)
नया हिन्दी-साहित्य—प्रकाशचन्द्र गुप्त । १)
हिन्दी के निर्माता—श्यामसुन्दरदास । ॥)
उपन्यास कला—विनोदशंकर व्यास । १॥)
प्रसाद और उनका साहित्य—वि० शं० व्यास । २)
हरिऔध का प्रिय-प्रवास—धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी । १)
हमारी नाटच परम्परा—दि० ना० उपाध्याय १)
हिन्दी नाटच विमर्ष—गुलाबराय । २)
जयशंकर प्रसाद—नन्ददुलारे वाजपेयी । १)
युग और साहित्य—शान्तिप्रिय द्विवेदी । २)
प्रेमचन्द्र—रामविलास शर्मा । २)
सूर-साहित्य की भूमिका—रा० र० भटनागर १॥)
उच्च विषयक लेखमाला—न० मो० सान्याल १॥)
कवि-दर्शन—बेनीमाधव शर्मा । ॥)
कहानी : एक कला—गिरधारीलाल शर्मा । १)
तुलसी-दर्शन—कमलधारीसिंह । १)
सन्त-साहित्य—भुवनेश्वरनाथ मिश्र । २)
छायावाद और रहस्यवाद—गंगाप्रसाद पांडेय १)
प्रसाद का नाटच चिन्तन—शिखरचन्द्र जैन । २)

— साहित्य सन्देश —

आलोचना-साहित्य का एक मात्र मासिक पत्र

हिन्दी के विद्यार्थियों और पुस्तकप्रेमियों, पुस्तकालयों और शिक्षा-संस्थाओं के लिए आवश्यक तथा हिन्दी के मासिक पत्रों में सबसे अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध पत्र ।

मूल्य तीन रुपया, विद्यार्थियों और शिक्षा संस्थाओं के लिए १) की रियायत ।

नोट:—काग़ज का भाव बढ़ता ही जाने से कह नहीं सकते कि यह रियायत कब रोकनी पड़े ।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा ।

हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य का एकमात्र प्रतिनिधि

हंस

जिसका प्रत्येक अंक किसी भी पत्रिका के विशेषांक से श्रेष्ठतर साहित्य से रिपूर्ण रहता है—क्योंकि हंस का प्रत्येक अंक साहित्य के लिए नयी प्रेरणाएँ और ये संदेश लाता है, हंस हिन्दी-साहित्य का ऐसा सजग और जागरूक नेता है जसके पथ-प्रदर्शन में उसके वर्तमान और भविष्य का निर्माण हो रहा है। और न्दी के सजग पाठक उसके प्रति ऐसी ही श्रद्धा रखते हैं इसका उत्कृष्ट प्रमाण है के गत अक्टूबर में प्रकाशित

कविता-अंक

ी एक भी प्रति नहीं बची। आगे के अंकों की भी इतनी माँग है कि नियमित ाहक न रहनेवाले पाठकों को निराश रहना पड़ता है।

यदि आधुनिक साहित्य की प्रगति समझने के लिए हंस की प्रतियाँ रखने ी अनिवार्यता बढ़ती जा रही है तो आप क्यों निराश हों ?

अपना चन्दा तुरन्त भेजकर ग्राहक क्यों नहीं बन जाते ?

हंस में आपको जो

- कलापूर्ण कहानियाँ,
- विवेचनात्मक लेख,
- सरस कविताएँ,
- खरी आलोचनाएँ,

पढ़ने को मिलेंगी वे आप अन्यत्र नहीं पा सकते। प्रत्येक रचना हिन्दी-ाहित्य की प्रगति को एक क़दम आगे बढ़ाती है और एक नयी टेकनीक, नयी शैली ौर नयी दृष्टि की ताज़गी से पाठक का ज्ञान-वर्धन और मनोरंजन करती है।

वार्षिक मूल्य ६), एक अङ्क का ॥)

व्यवस्थापक, 'हंस', बनारस कैंट

श्रीनाथसिंह-लिखित नवीन उपन्यास

"प्रजामंडल"

इधर हिन्दी में जितने उपन्यास निकले हैं यह उन सबसे श्रेष्ठ है।

एक पत्र

भाई श्रीनाथसिंह जी,

सबसे पहले मैंने आपका 'प्रेम परीक्षा' नामक उपन्यास पढ़ा था। उससे अच्छा मुझे आपका 'उलझन' जान पड़ा। और आपका 'जागरण' नामक उपन्यास तो बेजोड़ है। इसने सभी हिन्दी उपन्यास-लेखकों को पीछे छोड़ दिया है। आज ही मैंने आपका 'प्रजामंडल' समाप्त किया है। इसे पढ़ने के लिए मुझे रात भर जागना पड़ा, नींद ही नहीं लगी। और बिना खतम किए सोना संभव नहीं था। यह उपन्यास सबों से रोचक है। क्या अच्छा हो कि हिन्दी के उपन्यास-लेखक लेखनी उठाने से पहले एक बार आपके उपन्यासों को पढ़ जायें। प्रजामंडल में यदि कोई दोष है तो यही कि उसका नाम अच्छा नहीं है। इसका नाम आप "आग" रखते तो अच्छा होता। खैर, इसके लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

—राजलक्ष्मी, 'दीदी' की ग्राहिका

दो सम्मतियाँ

ठाकुर साहब अबतक कई उपन्यास लिख चुके हैं। हाल में उन्होंने प्रजामंडल नाम का एक और रोचक उपन्यास प्रकाशित किया है। इसमें आपने देशी राज्यों का अन्धेर, देशी नरेशों की कामुकता, दीवानों के अत्याचार ज्वलन्त भाषा में अंकित किए हैं।......हम हिन्दी संसार से यह आशा करते हैं कि वह इस बिल्कुल नये ढंग के उपन्यास को अवश्य सादर ग्रहण करेगा।

—**'माधुरी'**

"श्री कन्हैयालाल मुंशी के गुजराती उपन्यास के बाद रियासती समस्या को लेकर यह दूसरा उपन्यास हमारे पढ़ने में आया है। और यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं कि कथानक के चुनाव, उद्देश्य की स्पष्टता, वस्तु स्थिति के चित्रण आदि सभी में श्रीनाथसिंह का यह उपन्यास मुंशी के उपन्यास से कहीं अधिक ऊँचा स्थान रखता है। पुस्तक रोचक इतनी है कि एक साँस में ही पढ़ जाने को जी करता है।

—**'विश्ववाणी'**

प्रजामंडल का मूल्य १।।) है। यदि मूल्य मनिआर्डर से भेजें तो उसके

साथ ।-) रजिस्ट्री के लिए भी भेजें।

पता—प्रेमलता देवी, संचालिका 'दीदी', इलाहाबाद

हिन्दी-कथा-साहित्य में यदि

● कलात्मक,

● सरस,

● सुरुचिपूर्ण

कहानियाँ पढ़ना चाहते हैं तो केवल

कहानी

ही पढ़िये। अन्य बाजारू कहानी-मासिक-पत्रों की भाँति आपको इसमें विकृत साहित्य न मिलेगा। यह पत्रिका आपके बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी को रुचिकर और स्वस्थ सामग्री देगी। फिर भी इसका मूल्य सबसे सस्ता है।

सर्व-प्रशंसित विशेषांक या साधारण अंक की एक प्रति मँगाकर देखें।

साधारण प्रति चार आना : विशेषांक १९३९ चार आना
ताज़ा विशेषांक आठ आना : ,, १९४० चार आना

वार्षिक तीन रुपये

कहानी की प्रतियाँ सरस्वती प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला पार्क लखनऊ, चौक बनारस तथा कामताप्रसाद कक्कड़ रोड इलाहाबाद से भी मिल सकेंगी।

व्यवस्थापक, 'कहानी', बनारस कैंट।

आज चीन में भयङ्कर युद्ध हो रहा है। आप जानते हैं चीन के इस युद्ध में जान फूंकने, लोगों में विशेष उत्साह पैदा करने में किसका हाथ है ? साम्यवादी दल का, उसके नेताओं का और इस दल द्वारा परिचालित जिस प्रदेश में शासन होता है, उसकी पद्धति का। दल के प्रमुख नेताओं के विस्तृत परिचय की एकमात्र पुस्तक—

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी लिखित

लालचीन

भूमिका में—श्री जयप्रकाश नारायण लिखते हैं—"हिन्दुस्तानी भाषाओं में तो ऐसी कोई पुस्तक नहीं है—जहाँतक मैं जानता हूँ, अंग्रेज़ी में भी किसी एक पुस्तक में ये सब बातें नहीं मिल सकती हैं।" मू० २)

स्टालिन

आप जानते हैं सोवियट प्रजातन्त्र आज नाजी आततायियों के साथ जीवन-मरण का युद्ध कर हैं। इस संकटमय समय में उसमें दृढ़ता और नवजीवन के संचारक सोवियट रूस के प्राण मोशिये स्टालिन का महत्त्वपूर्ण हाथ है। ऐसे युग-पुरुष की जीवनी पढ़ना कभी न भूलें। मू० २)

प्रजातन्त्र

आज की लड़ाई देश और सीमा के लिए ही नहीं हो रही है, बल्कि यह नाजीवाद और प्रजातन्त्र की लड़ाई है। ब्रिटेन और उसके साथी प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं। प्रजातन्त्र का वास्तविक रूप और उसका मूलभूत सिद्धान्त क्या है ? इसकी जानकारी आवश्यक है। मू० १॥)

शीघ्र ही प्रकाशित होंगी

गुजराती साहित्य के मूर्द्धन्य कलाकार

श्री धूमकेतु की कहानियों का संग्रह

वैजयंती

१५ उत्कृष्ट कहानियाँ, १ एकांकी नाटक १ संवाद और १ शब्द चित्र। मूल्य प्रायः १

गोधूलि

तरुण कथाकार श्री नरेश की सर्वोत्कृष्ट कहानियों का संग्रह। इसकी प्रत्येक कहानी मे आपको मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, अति आधुनि भाषा-शैली और मनोमुग्धकर वार्तालाप के साथ साथ अन्तर्जगत के सूक्ष्म विवेचन, आनन्द-विषा और रहस्य रुदन के चित्र मिलेंगे। आपके कर्म-क्लान्त मस्तिष्क को इस पुस्तक से एक ताज़गी और स्फूर्ति मिलेगी। मूल्य प्रायः १)

बिहार, युक्तप्रांत, मध्यप्रान्त और बड़ौदा के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत—

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्ध पठन-सामग्री देनेवाला अपने ढंग का अकेल सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राची संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शा करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवन-क्रम, दुनिय के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिक के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराता है।

प्रेरक कविताएँ, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा विषयक लेख 'किशोर' की विशेषताएँ हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।-)

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कविताएँ और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कविताएँ तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गयी है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखी हुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ। मूल्य ।~)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

'सम्मेलन-पत्रिका'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।**

प्रदीप

जनता के जीवन-अधिकार का पहरेदार : बीसवीं-सदी-राजनीति का हिन्दुस्तानी मासिक

योरोप हिटलर का आखेट पड़ा है

एशिया पर महासागर की अँधियारी झूल आयी

हिन्दुस्तान में जीवन-मौत के सवाल खड़े हैं

आपने ऐसी हालत में घर-बाहर की सही-पूरी जानकारी के लिए क्या प्रबन्ध किया है ?

आपने, जो आजादी के लिए लड़ रहे हैं ! आजादी की ओर बढ़ रहें है !!

आज़ादी असंभव नहीं, इंसान का सहज अधिकार है, पर हमें उसके लिए तय्यार तो होना चाहिए। हम क्या हैं ? कैसी हैं ? हमारी जरूरतें किस तरह की हैं ? कैसी आज़ादो उन्हें पूरा कर सकेगी ? और कैसे वह आज़ादी हम पा सकेंगे ? अपने पास रख सकेंगे ?

—हमें यह सब अब समझना ही होगा—

प्रदीप हिन्दुस्तानी जनता की

यह सब जरूरतें पूरा करने की एक अनूठी कोशिश है

क्या आप उसकी एक प्रति ढूँढकर नहीं पढ़ेंगे ?

सम्पादक: जगदीश, एम० ए० *प्रकाशक: प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद यू० पी०*

वार्षिक: पाँच रुपया आठ आना प्रति

साधना-मन्दिर-प्रकाशन

'जीवन-साहित्य' या 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ग्राहकों को

पूरा सैट लेने पर पौने मूल्य में

हिन्दी-साहित्य के अद्वितीय जीवनी-लेखक और शब्द-चित्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, इनमें से अधिकांश के लेखक हैं !

१. जापान के गांधी कागावा (ब. दा. च.)
४. अराजकवादी लुई माईकेल (ब. दा. च.)
५. प्रिंस क्रोपाटकिन (ब. दा. च.)
६. अराजकवादी मैलटेस्टा (ब. दा. च.)
७. मंगलमय महावीर (साधु वास्वानी)
८. बालशिक्षण और माँ-बाप (भानुकुमार)
९. विप्लव-गान या क्रान्ति-गीत (संकलित)
१०. महापंडित राहुल सांकृत्यायन (ब.दा.च.)
११. अमरगान—(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)
१२. श्रीमती हैरियट एलीज़बेथ स्टो (ब.दा.च.)
१३. भगवान बुद्ध (भदंत आनंद कौसल्यायन)
१५. स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (राजबहादुरसिंह)
१६. पुस्तकालय और पुस्तक-महिमा (लक्ष्मण त्रिपाठी)
१७. पतिव्रता जयिनी (ब. दा. च.)

१६वें का दाम ॥ शेष का ~) है।

इन्हें मँगाकर पढ़िए, और प्रचारित कीजिए।

'मंडल' से तथा उसकी शाखाओं से मँगाइए।

जिसकी लाल सेना ने हिटलर की शेखी भुला दी

वह लाल रूस

बेनीपुरी लिखित

मू० १॥)

वह 'लाल रूस' क्या है, कैसा है ?
क्या है उसकी 'आयोजित अर्थनीति ?'
जिस आयोजित अर्थनीति ने क्या-क्या युगान्तरकारी
परिवर्तन किये हैं कहाँ ?
ध्रुवदेश में गुलाब पैदा करनेवाले किसान
साइबेरिया के जंगल में मंगल मनानेवाले मज़दूर,
वाल्गा जैसी नदी को नापनेवाले इंजीनियर
असम्भव को सम्भव
बनानेवाले वैज्ञानिक, अन्वेषक और साहसिक
संसार को नई सभ्यता देनेवाली नई मानवता
इस पुस्तक में देखिये

कहानी से भी ज्यादा मनोरंजक,
कविता से भी ज्यादा दिलचस्प
अपटुडेट आँकड़ों के आधार पर लिखित

नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य द्वारा सम्पादित
अभिनव भारती ग्रन्थमाला की पुस्तकें

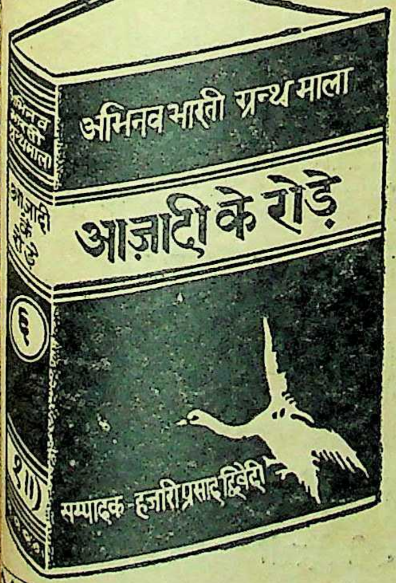

(१) भारतवर्ष में जातिभेद—आचार्य क्षितिमोहन सेन एम. ए. शास्त्री मू० २)
(२) मन के भेद—प्रो० राजाराम शास्त्री मू० १।)
(३) आधुनिक हिन्दी-साहित्य—सम्पादक स० ही० वात्स्यायन मू० १॥)
(४) ब्रह्माण्ड और पृथ्वी (सचित्र)—श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी मू० १)
(५) बौद्ध धर्म—श्री गुलाबराय एम. ए. मू० १।)
(६) आजादी के रोडे—श्री राममनोहरसिंह मू० १॥)
(७) समुद्रपार के मोती—श्री कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा बी. ए. १।)

व्यवस्थापक
अभिनव भारती-पुस्तकालय
१७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता

Regd No L 4671

‘जीवन-साहित्य’ का विशेषांक

“महान् विभूतियाँ देह छोड़ने पर ही अधिक बलवान बनती हैं। सन्तों के उदाहरण हमारे सम्मुख हैं ही। उनके जीवन-काल में समाज ने उनका आदर करने के बजाय छल ही किया। देह जाने के बाद देह बिना रहकर ही वे लोगों के चित्त पर अधिक प्रभावशाली परिणाम अंकित कर सके। ऐसे सन्तों में छोटा-सा ही क्यों न हो जमनालालजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।”

—विनोबा

ऐसे पुण्य श्लोक स्व० जमनालाल बजाज की विश्व-व्याप्त आत्मा की पुनीत स्मृति में ‘जीवन-साहित्य’ का अगला अंक विशेषांक के रूप में होगा। उसे पढ़कर पाठक इन पंक्तियों की सचाई का अनुभव कर सकेंगे:—

> ‘जो ज्योति जमनालालजी में सीमित थी, वह अब सीमा रहित विश्व-ज्योति में, यानी हम सबमें समा गयी है। जबतक जीवित थे जमनालालजी कुछ ही लोगों के थे; किन्तु अब वे सारे विश्व के बन गये हैं। उनके शरीर का अन्त हुआ है किन्तु उनके व्रत, उनकी प्रतिज्ञाएँ, उनकी गो-सेवा, उनकी खादी-सेवा, सत्य और अहिंसा की उनकी लगन, ये सब तो अब हममें आकर मिल गयी हैं—हमारी विरासत बन गयी हैं। उन्होंने इन सब व्रतों को सिद्ध करने के लिए जो कुछ किया सो सब तो अब हमारा है ही, लेकिन जितना कुछ वह अधूरा छोड़ गये हैं, उसे पूरा करने का ज़िम्मा भी हमारा है। अपनी मृत्यु द्वारा वे आज हमें यही सिखा गये हैं।

साथ ही ‘सस्ता साहित्य मण्डल’ का विचार शीघ्र ही स्व० सेठजी की एक प्रामाणिक जीवनी भी प्रकाशित करने का है। जिससे उनके जीवन-चरित के अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व के अनेक स्वरूपों का दर्शन हिंदी-पाठकों को सुलभ हो सकेगा।

मूल्य, प्रकाशन-तिथि आदि विस्तृत विवरण
की
—प्रतीक्षा कीजिए—

मन्त्री
सस्ता साहित्य मण्डल,
कनाट सर्कस : नयी दिल्ली

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ीवन साहित्य

अंक ११
सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
जून : १९४२

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

शूरों के हथियार

अहिंसा और असहयोग, दोनों रथ के दो पहिये हैं और ये दोनों मिलकर अपने उपासकों से अधिक-से-अधिक साहस और बलिदान की अपेक्षा रखते हैं। गांधीजी बार-बार कहते हैं कि यह शूरों में शूर का हथियार है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसके लिए आत्मा के शौर्य की आवश्यकता है। इसलिए इसका उपयोग हर कोई—पुरुष, स्त्री, बालक, सबल, अबल कर सकता है; शर्त्त सिर्फ़ यही है कि उसका दिल मजबूत, श्रद्धा दृढ़ और मन निर्भय होना चाहिए। अहिंसा में सामर्थ्य और बल भरनेवाली चीज़ है असहयोग—यानी वह शक्ति जो मरने को तैयार रखती है, और बुराई के वश होने या उसके साथ सहयोग करने से दृढ़तापूर्वक इनकार करती है।

इस अर्थ में यह बात पूरी सचाई के साथ कही जा सकती है कि आक्रमणकारियों से देश की रक्षा करने के लिए असहयोग एक प्रबल साधन है। आज आक्रमणकारियों के सामने एक ही ध्येय रहता है पराजित प्रजा से अपने लिए और अपने लाभ के लिए काम कराना और उसका शोषण करना। यह काम ही सहयोग है। असहयोग शोषण को असम्भव बना देगा और स्वयं आक्रमण की व्यर्थता को सिद्ध कर देगा। असहयोग से हम परिचित हैं। उसका आचरण हमारी अहिंसा को कड़ी-से-कड़ी कसौटी पर चढ़ायेगा, लेकिन यदि हम हमलों, मार-पीट, शारीरिक यातना और गोलीबारी आदि का सामना बिना प्रतीकार के या प्रतीकार का थोड़ा भी यत्न किये बिना कर सके, और तिसपर भी असहयोग को चालू रख सके, तो लड़ाई में हमारी जीत होनी ही चाहिए। इस प्रकार के वीरतापूर्ण कष्ट-सहन के उदाहरणों की कमी नहीं है।

कैलासनाथ काटजू

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. **विवा-लग्न में** (कविता) ३७३
[श्री प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक]
२. **आर्य-नारी का यशोगीत** ३७४
[संक०श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, एम. ए.]
३. **जीवन की साधना** (एक पत्र) ३७८
[श्री अम्बालाल पुराणी]
४. **वस्तु-पक्ष और कला-पक्ष** [श्री शीलभद्र] ३८२
५. **स्वगत** [श्री हरिभाऊ उपाध्याय] ३८४
६. **अहिंसा** [श्री ब्रजमोहन गुप्त, एम. ए.] ३८५
७. **गुरु-शिष्य-समस्या** ३८७
[श्री गणेशदत्त 'इन्द्र', विद्यावाचस्पति]
८. **गृह-पुस्तकालय और महिलाएँ** ३८९
[श्री कमलेश्वर]
९. **राजस्थानकी एक आदर्श शिक्षण-संस्था** ३९२
[श्री विट्ठलदास मोदी]
१०. **आरोग्य-मन्दिर से** ३९४
११. **प्रस्तुत-प्रश्न** ३९६
सामाजिक प्रत्यावर्तन [श्री रामस्वरूप व्यास] हिन्दुस्तानी भाषा और फारसी लिपि [डॉ० हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम० ए०, डी० लिट्]
१२. **कसौटी पर** ४००
संस्कृत के अध्ययन की उचित दिशा; कुछ बालोपयोगी पुस्तकें; द्वापर की राज्य-क्रांति; हिन्दी साहित्य में निबन्ध; मर्यादा का मूल्य; नवाबी सनक; अवरुद्धा।
१३. **समालोचनार्थ प्राप्त** ४०४
१४. **क्या और कैसे ?** ४०५
मर्ज और बढ़ गया; पाकिस्तान का भूत; हिन्दुस्तानी-प्रचार-संघ, विक्रम द्विसहस्राब्दि उत्सव; बधाई; दुखद अवसान; हिन्दी-पत्रकार-संघ से; प्रांतीय संगठन का स्वरूप।

फ्री इन्डिया जनरल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

प्रधान कार्यालय : कानपुर

ज़िन्दगी, आग, मोटर, मज़दूरों के कम्पेन्सेशन, ईमानदारी और साधारणतया तमाम दुर्घटनाओं के बीमे व उनके प्रतिनिधित्व के लिए लिखिए।

[चेयरमैन—सेठ पद्मसिंह सिंहानिया]

मूलधन	रु०
अधिकृत (आथराइज्ड कैपिटल)	१,००,००,०००
प्रकाशित (इश्यूड कैपिटल)	२०,००,०००
विक्रीत (सब्सक्राइब्ड कैपिटल)	१६,२७,६२५
ग्रहीत (पेड अप कैपिटल)	४,८४,६६५
बीमादारों के हितार्थ सुरक्षित रखी गई रक़म	२२,००,००० से अधिक

विशेष जानकारी के लिए लिखें:—
मैनेजिंग डाइरेक्टर
एन. के. भरतिया, B. A., F. C. I.

श्री जमनालालजी बजाज
की
प्रामाणिक जीवनी

जमनालालजी क्या थे और उनकी पराधीन भारत के लिए क्या-क्या देन हैं इसको जानने के लिए उनके जीवन के अन्तरंग और बहिरंग दोनों रूपों पर दृष्टि डालना आवश्यक है। श्री जमनालालजी की इस जीवनी को पढ़कर आपको विदित होगा कि किस प्रकार वे वैष्यर्षि से राजर्षि हुए और राजर्षि से अन्त में ब्रह्मर्षि के मार्ग पर बहुत दूरतक चल चुके थे। उनके मुमुक्षु जीवन के क्रमिक विकास की झाँकी उसमें आपको मिलेगी, उनकी सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की त्रिवेणी में आपको स्नान करने को मिलेगा।

—लेखक—

श्रीहरिभाऊ उपाध्याय

यह जीवनी अत्यन्त प्रामाणिक होगी, क्योंकि वह बड़े-बड़े राष्ट्रनेताओं, लोकसेवकों, उनके अन्तरंग मित्रों, सहकर्मियों, और परिचितों के पूर्ण हार्दिक और कृपापूर्ण सहयोग के साथ बड़े परिश्रम से लिखी जा रही है। अनेक चित्र भी होंगे।

शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

—प्रतीक्षा कीजिए—

मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल,

कनाट सर्कस : नयी दिल्ली

सस्ता साहित्य मण्डल के प्रकाशन

स्थायी ग्राहक बनने पर ≡) रुपया कमीशन मिलेगा।

[एकसाथ पूरा सेट लेने पर सब पुस्तकें पौने मूल्य में]

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन-साहित्य ॥=) ३. तामिल वेद ॥।) ४. व्यसन और व्यभिचार ॥।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १॥) १६. अनीति की राह पर ॥=) १८. कन्या-शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ॥) २५. स्त्री और पुरुष ॥) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें ? १।) ३९. तरंगित हृदय ॥) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) : १॥) ४५. जीवन-विकास १।) ४७. फाँसी ! ।=) ५१. भाई के पत्र १॥) ५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ॥।) ५९. रोटी का सवाल ॥।) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६४. संघर्ष या सहयोग ? १॥) ६५. गांधी-विचार-दोहन ॥।) ६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता १॥) ६९. आगे बढ़ो ! ॥) ७०. बुद्ध-वाणी ॥=) ७१. कांग्रेस का इतिहास २॥) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू) ३) ७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों ? ॥।) ७६. नया शासन-विधान ॥।) ७७. गाँवों की कहानी ॥) ७८. महाभारत के पात्र १) ८०. संतवाणी ॥) ८१. विनाश या इलाज ॥।) ८२. अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ॥) ८३. लोक-जीवन ॥) ८४. गीता-मंथन १॥) ८५. राजनीति-प्रवेशिका ॥) ८६. अधिकार और कर्त्तव्य ॥) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ॥) ९०. प्रेम में भगवान् ॥।) ९२. ब्रह्मचर्य ॥) ९३. हमारे गाँव और किसान ॥) ९४. अभिनन्दन-ग्रंथ १।) २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्याएँ १) ९६. जीवन-सन्देश ॥) ९८. समाजवाद : पूँजीवाद ॥।) ९९. मेरी मुक्ति की कहानी ॥) १००. खादी-मीमांसा १॥) १०१. बापू ॥=) १।) २) १०२. मधुकर (विनोबा) १) १०३. लड़खड़ाती दुनिया ॥।=) १०४. सेवाधर्मः सेवामार्ग १) १०६. डायरी के पन्ने ॥।) १।) १०७. तीस दिन १॥) २) १०८. युद्ध : अहिंसा ॥।) १०९. महावीर वाणी १) १॥) ११०. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन १।) १११. बिखरे विचार ॥।=) ११२. अहिंसा-विवेचन ॥) ११३. मेरी हिमाक़त ॥।)

नवजीवन माला

१. गीताबोध =) २. मंगलप्रभात -) ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय -) ५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज ≡) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १२. गाँवों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गीत =) १४. खादी का महत्त्व -)॥ १५. जब अंग्रेज़ नहीं आये थे ≡) १६. सोने की माया -) १७. सत्यवीर सुकरात (गांधीजी) -) १८. भजनावली

सामयिक साहित्य माला

३. हम कहाँ हैं ? =) ४. युद्ध-संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे ? ≡) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।) ७. देशी राजाओं का दरजा ।) ८. युरोपीय युद्ध और भारत ।) ९. रचनात्मक कार्य-क्रम (गांधीजी) =) ११. रचनात्मक कार्यक्रम पर कुछ सुझाव (राजेंद्रबाबू) ≡)

बाल साहित्य माला

१. सीख की कहानियाँ (१) =) २. कथा-कहानी =) ३. शिवाजी-चरित्र =) ४. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ५. सीख की कहानियाँ (२) =) ६. बीरबल की कहानियाँ =)

विविध पुस्तकें

१. जवाहरलाल नेहरू =) २. मोतीलाल नेहरू ।) ३. सप्तसरिता (काका कालेलकर) =) ४. चारा दाना और उसको खिलानें के उपाय ≡) ५. पशुओं का इलाज ॥) ६. उपनिषदों की कथाएँ ।) ७. आदर्श बालक ॥) रूमी की कहानियाँ ॥)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ॥) ३. फ्रांस की राज्य-क्रांति १॥) ४. गांधीवाद की रूपरेखा १) ५. पिता के पत्र पुत्री के नाम ॥) ६. प्रलय-वीणा १) ७. बहन ॥) ८. स्वास्थ्य के लिए शाक-तरकारियाँ १॥) ९. चौबोली ॥) १०. राजस्थान में प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की खोज २) ११. आवारा १)

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग के प्रकाशन

'मण्डल' तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में

एक साथ पूरा सेट लेनें पर एक तिहाई कमीशन

काव्य तथा साहित्य

१. कविता-कौमुदी (भाग १-२ हिन्दी) ७।।)
ौथा भाग उर्दू) ३) (सातवाँ भाग-बँगला)
. पथिक ।।) ३. मिलन ।।) ४. स्वप्न ।।)
ानसी ।।) ६. दिमाग़ी-ऐयाशी (प्रहसन) ।।)
ुलसीदास और उनकी कविता (२ भाग)
८. अयोध्याकांड (सटीक) ।।) ९ हिन्दु-
ी कोष २) १०. पाकेट डिक्शनरी (अंग्रेजी
) ।।।) ११. जयंत (नाटक) ।।।) १२.
ंक (नाटक) ।।।) १३. वफ़ातीचाचा
क्र) ।।) १४. तरकस (कहानी-संग्रह) ।।)
हिन्दी-पद्यरचना (पिंगल) ।।) १६. सुकवि-
ी १) १७. हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास ।=)
उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास ।।), १९.
बोली की कविता का संक्षिप्त इतिहास ।।),
सुदामा चरित ।) २१. पार्वती-मंगल ।)
शिवाबावनी ।) २३. कौन जागता है ?
टक) ।।) २४. हमारा ग्राम साहित्य २)
हिन्दी का विकास २) २६. पुष्पवाण ।।)
समाज और साहित्य (निबन्ध : दो भाग)
२८. मुस्लिम-सन्तों के चरित २) २९.
ीर ५) ३०. यूरोप की कहानियाँ २।।)
वीथिका (कहानी-संग्रह) ।।।) ३२. तूणीर
गीत) ।।) ३३. घर का वैद्य (वैद्यक) ६)
कुल-लक्ष्मी (स्त्रियोपयोगी) ।।) ३५. दंपति
१।) ३६. हिन्दुओं के व्रत और त्योहार १।।)
अंगरेजी शिष्टाचार २) ३८. योग के आसन
कसरतों के चित्र (सचित्र) १) ३९. रत्ना
ता-संग्रह) ।।) ४०. दृग-जल (कविता-
।।) ४१. नमूने का गाँव और मिट्टी के
यक घर १) ४२. किसानों के काम की बात
३. किसानों की कहावतें (संग्रह) ।) ४४.
इलाज ।) ४५. चिन्तामणि (भजन-संग्रह)
६. स्वप्नों के चित्र (प्रहसन) ।।।) ४७.
रहस्य २।।) ४८. बीस कहानियाँ (कहानी-
२) ४९. हिमानी ।।) ५०. तरंगिणी
(कविता-संग्रह) ।।) ५१. नीति के श्लोक ।।) ५२. मारवाड़ के मनोहर गीत ।) ५३. सोहर ।)५४. सारिका (कविता) ।।।) ५५. मन्दिर (एकांकी नाटकों का संग्रह) ।।।) Hindi Folk Songs : A. G. Shirreff १) Songs of Mirabai १)

बाल-साहित्य माला

१. बाल-कथा कहानी १७ भागों में । प्रत्येक भाग ।=) २. बताओ तो जानें (गोरखधंधा) ।) ३. बानर संगीत ४. हंसू की हिम्मत ।=) ५. नेता बुझौवल ।) ६. खोजो, खोज निकालो (पद्य) ।) ७. परियों की कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।=) ८. राक्षसों की कहानियाँ ।=) ९. जादू की कहानियाँ ।=) १०. इतिहासों की कहानियाँ ।) ११. गुपचुप कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।) १२. मौत के सुरंग की कहानी ।=) १३. भूतों का किला ।=) १४. कहानी के कल-पुर्जे ।) १५. पेखन ।-) १६. मोतीचूर के लड्डू ।) १७. बलभद्दर ≡) १८. कबड्डी ।) १९. मोहन माला (कविता संग्रह) ।।।) २०. गांधी पत्ता या जवाहर ताश ।।) २१. हिन्दी पत्र शिक्षक =) २२. नई कहानियाँ ।=) २३. हरिश्चन्द्र ।) २४. महात्मा बुद्ध ।) २५. अशोक ।) २६. चन्द्रगुप्त ।) २७. आल्हा ।)

हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -।।) हिन्दी ज्ञानोदय—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।-) चौथा भाग ।।) पाँचवाँ भाग ।।-) छठा भाग ।।=) **कन्याओं के लिए** नया हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -)।। कन्या शिक्षावली—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।) चौथा भाग ।-) पाँचवाँ भाग ।≡) छठा भाग ।।)

सस्ती कहानियाँ १. आदमी की क़ीमत २. सियार राजा और मेढ़क राजकुमार ३. पकड़ पूँछ-कटे को ४. गड़बड़ गुम ५. तीन मेमने ६. तीन सुनहले बाल ७. रूपा ८. फूलरानी ९. बेलकुमारी १०. भय बिन होय न प्रीति ११. बढ़िया बुढ़िया तुझे खाऊँ १२. चटक मटक की गाड़ी १३. चुड़ैल रानी १४. डंकू । दाम प्रत्येक का =)

'साहित्य-सन्देश' का नवीन साहस

तीन हज़ार पुराने और एक हज़ार नवीन ग्राहकों को

४०००) रु० की पुस्तकें भेंट

पुस्तकों का विवरण

प्रतियाँ	नाम व विषय	मूल्य
७००	राखी (कहानी संग्रह)	१)
७००	नारी जीवन (स्त्रियोपयोगी)	१)
३००	नैवेद्य (कविता संग्रह)	१)
२५०	पद्य रत्न-संग्रह (कविता)	१)
२५०	अनमोल कहानियाँ	॥)
	अमर शहीद यतीन्द्रनाथदास	।)
४००	भग्नवीण (कविता)	॥)
	मनोरञ्जन (हास्य)	।-)
२५०	शुभ्रा (गद्य काव्य)	।)
	चार यात्री (भ्रमण)	।)
१५०	मोहिनी (उपन्यास)	।)
	प्राच्य और पाश्चात्य (राष्ट्रीय)	।≡)
२००	प्रताप समीक्षा (निबन्ध)	॥)
	प्रतिच्छाया (कविता)	।=)
८५०	बुद्धगीता (नीति)	॥)
	शिक्षा का आदर्श (शिक्षा)	।-)

'सन्देश' का वार्षिक मूल्य ३) है पर शिक्षा-संस्थाओं और विद्यार्थियों से २) लिये जाते हैं।

३१ जुलाई १९४२ तक यह रियासत सभी ग्राहकों को दी जायेगी। साथ ही पुराने और सभी ग्राहकों को एक-एक रुपये मूल्य की पुस्तकें और भेंट में मिलेंगी। इसका अर्थ है कि 'साहित्य-सन्देश' के १२ अंकों के ५०० से ऊपर पृष्ठ का ठोस मैटर केवल एक रुपया में मिल जायगा। परन्तु :—

यह रियासत केवल उन्हीं ग्राहकों को मिल सकेगी जो अपना आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य ३१ जुलाई १९४२ से पहले-पहले भेज देंगें, और वार्षिक मूल्य के २) के साथ पुस्तक के पैकिंग पोस्टेज और रजिस्ट्री खर्च के लिए ।) मनिआर्डर से भेज देंगे। पुस्तकें रजिस्ट्री से ही भेजी जावेंगी। बिना रजिस्ट्री के वी. पी. नहीं की जायगी।

पुस्तकों की छाँट

इस सूची में एक-एक रुपये की पुस्तकों की जोटें बना दी हैं। ग्राहक जिन पुस्तकों को लेना चाहें, मनिआर्डर कूपन पर उनका नाम लिख दें। उनको वही पुस्तकें भेज दी जायेगीं। पर यदि उनका मूल्य आने से पूर्व ही वह पुस्तक या जोड़ा समाप्त हो जायगा तो उसे भेजने के लिए हम बाध्य न होंगे। इस रियायत की अन्तिम तिथि ३१ जुलाई है, किन्तु यदि इससे पूर्व ही ४०००) की पुस्तकें समाप्त हो जावेंगी तो हम आगे यह रिआयत देने की बाध्य न होंगे। इसलिए प्रेमी ग्राहक महानुभावों को जल्दी से जल्दी २।) मनिआर्डर से भेज देना चाहिये।

—: इस रिआयत से लाभ उठाने में शीघ्रता कीजिए :—

मैनेजर—'साहित्य-सन्देश', आगरा।

दो नये ग्रन्थ

कबीर

लेखक—पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी शास्त्राचार्य

कबीर, उनके साहित्य और उनके दर्शन पर इतनी गहराई के साथ अबतक किसी ी ग्रंथ में विचार नहीं किया गया है। कबीर को समझने के लिए यह ग्रन्थ परम ावश्यक है। इसमें कबीर के वे १०० पद्य भी दिये गये हैं, जिनका अनुवाद स्व० गुरुदेव वीन्द्रनाथ ठाकुर ने अंग्रेजी में किया था। मूल्य ढाई रुपया।

श्रीकान्त (चतुर्थ पर्व)

शरत्साहित्य के २१ भाग तो निकल ही चुके हैं। २२वाँ भाग भी जिसके लिए पाठक बरसों से उत्कण्ठित हो रहे थे, निकल चुका है। मू० बारह आने।

ारत्साहित्य २२भाग, पाटन का प्रभुत्व, सुनीता, परख-स्पर्द्धा

सहित सुलभ साहित्य माला की इन छब्बीस पुस्तकों का मूल्य

बारह-बारह आने कर दिया गया है

पर हमारी प्रकाशित की हुई अन्य सब पुस्तकों की कीमत ज्यों की त्यों रहेगी।

कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

मुग़ल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण—ले० प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति। मू० ४॥)

दो चिड़ियाँ—श्री जैनेन्द्रकुमार। मू० १)

प्रस्तुत प्रश्न--श्री जैनेन्द्रकुमार। मू० २)

सिद्धार्थ (महाकाव्य)—पं० अनूप शर्मा एम० ए०, एल० टी०। मू० ३)

राधा—सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पं० उदयशंकर भट्ट का यह भाव-नाट्य िन्दी में बिल्कुल नये ढंग की रचना है। मू० दस आने।

कुलीनता—सेठ गोविन्ददासजी का नया ऐतिहासिक नाटक। मू० १)

दो फूल—श्रीमती सत्यवती मलिक की सुन्दर कहानियाँ। म० १।)

हिन्दी-साहित्य की भूमिका—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी। मूल्य २)

नोट—कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगाइए।

संचालक—

हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई नं० ४

नया रूप-रंग ! नया आयोजन !! नया आकर्षण !!!

हिन्दी-प्रेमियों के सुपरिचित श्री प्रवासीलाल वर्मा मालवीय-द्वारा सम्पादित

साधना

ज्ञान और मनोरंजन की विविध-विषय-विभूषित मासिक-पत्रिका

"साधना" अभी तक केवल साहित्य के स्वाध्यायियों के योग्य पत्रिका थी; पर सर्व-साधारण के आग्रह से हमने उसे सबके लायक बना दिया है। अब उसमें प्रति-मास साहित्य, इतिहास, शिक्षा, मनोविनोद, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य, समाज; तत्त्वज्ञान, विज्ञान, गृह- विज्ञान, व्यवसाय-उद्योग, कला-कौशल, आदि पर अपने विषय के अध्ययन-शील विद्वान लेखकों-द्वारा सरल भाषा में लिखे सुपाठ्यलेख, मनोहारी कहानियाँ, आत्म-कथाएँ, संस्मरण, भावपूर्ण कविताएँ और एकांकी नाटक आदि प्रकाशित होंगे। प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी गृहस्थके लिये शिष्ट साहित्य की यह अनोखी पत्रिका है। प्रतिवर्ष बृहत् आकार में, १।।) मूल्य का, इसका एक सुन्दर '**विशेषांक**' भी निकलता और ग्राहकों को मुफ्त में मिलता है। रूपरंग, छपाई-सफाई दर्शनीय है। वार्षिक मूल्य केवल २) है। एक पत्र भेजकर आज ही नमूना मँगाइये।

खुद ग्राहक बनिए और अपने मित्रों को भी बनाइये।

पता—**'साधना'-कार्यालय**, एज्यूकेशनल प्रेस, **आगरा**।

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रतिदिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५०० रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,००० ,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५० ,,
१९३७ ई० में	३५,५६,५०० ,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५० ,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८ ,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५० ,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखाएँ—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपुर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

'विश्ववाणी' की

नवयुगनिर्माणकारी महान योजना

सोवियत्-संस्कृति-अंक

इस अङ्क के सम्पादक

डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त

इस अङ्क के कुछ महत्वपूर्ण लेख

श्री रजनी पामदत्त	...	...	यूरोप में क्रान्ति
श्री डी० डी० कोसम्बी	...	...	सोवियत् में विज्ञान-साधना
श्री जे० डी० बर्नल	...	...	विज्ञान को सोवियत् की देन
श्री हीरेन्द्र मुखर्जी	...	...	सोवियत् राष्ट्र-व्यवस्था
श्री गोपाल हालदार	...	...	सोवियत्-संस्कृति
डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त	...	...	रूसी समाज-तत्व
श्री वीणा दास	...	...	सोवियत् नारी
स्वामी सहजानन्द सरस्वती	...	...	सोवियत् और हमारा कर्तव्य
श्री महादेवप्रसाद साहा	...	...	मध्य एशिया में सोवियत्-सभ्यता
डा० जैड० ए० अहमद	...	...	सोवियत् और साम्प्रदायिक समस्या

उपरोक्त प्राप्त लेखों के अतिरिक्त

डा० मुल्कराज आनन्द, श्री डी० एन० प्रिट् एम० पी०, श्री सिडिनी वेब, डा० के० एम० अशरफ, श्री सज्जाद जहीर, डा० एम० ए० अलीम, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्री नरेन्द्र आदि सज्जनों ने भी लिखने का वचन दिया है।

कागज की कमी के कारण परिमित संख्या में ही हम यह अंक छाप रहे हैं। हमारा दावा है सोवियत् रूस पर हिन्दी में आज तक ऐसी सुन्दर और महत्वपूर्ण सामग्री नहीं प्रकाशित हुई।

अभी से अपनी प्रति रिज़र्व करा लीजिये

'विश्ववाणी' का जुलाई अंक "चीन-अंक" होगा

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्माऽमृतं गमय।

रा वर्ष
ारहवाँ अंक

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

जून, १९४२
नयी दिल्ली

विदा-लग्न में

१

आज रण-हुंकार है !
ज दल-के-दल सजी सेना चली है मृत्यु के मुख
ज दीवाने चले हैं ढूंढ़ने को प्यार का सुख
ग में उन्माद है, है बाहु में उन्मत्त फड़कन,
ों में मादक-चपल गति, है हृदय में तेज धड़कन
करुण अवसान लय का, मृत्यु की झंकार है !
आज रण-हुंकार है !

२

आज रण-हुंकार है !
बजउठा रणवाद्य, तुरही गाउठी रण-गीत, कण-कण
कँपउठी धरती, अचानक चल पड़ी लो वायु सनसन
आज स्वर-में-स्वर मिलाकर कररहा आकाश गर्जन
गरजते सैनिक प्रलय बन, बज उठी तलवार झनझन
रक्त से उन्मत्त धरती का नया शृंगार है !
आज रण-हुंकार है !

३

र जय-माला लिये है एक बाला मुस्कराती
ां से कुछ झूमती-सी कौन-सा पद गुनगुनाती ?
में है गान, नयनों में भरे हैं अश्रु छल-छल
ं हाहा-रव हृदय में, सरित गाती गीत कल-कल
र आकर्षण भरा है, पर उधर ललकार है !
आज रण-हुंकार है !

४

हाथ में कुंकुम-तिलक का थाल है, युगचरण पथ पर
केशरी पट से सजी ऊषा खड़ी ज्यों किरण-रथ पर
भाल में सिंदूर, उर में दहकता अंगार हू–हू
उठ रहीं लपटें चतुर्दिक जल रही है आग धू–धू
पदों में रुनझुन उधर, स्वर में इधर टंकार है !
आज रण-हुंकार है !

५

संभाषण भरा है आज नयनों में, न गुंजन
ओं में बाहु, अधरों में अधर, उर में प्रकंपन
क्यों हैं ये अमंगल पुण्य का दिन आज मानिनि !
के पथ जा रहा हूँ, दो विदा चिर प्राण-संगिनि !
रणचंडी खड़ी वह दे रही चीत्कार है !
आज रण-हुंकार है !

६

विकल वह बाला खड़ी हा शेष चुंबन लेरही है
हाय हँस-हँस प्राणप्रिय को मरण-कुंकुम देरही है
कहो कवि, कितनी भरी है उस हँसी में विषम ज्वाला?
हाय! अपने हाथ से वह पी रही है गरल-ज्वाला!
कंठ गद्गद्, आँख से बरसा रही जलधार है !
आज रण-हुंकार है !

७

मौत, हाँ, वह मौत है कितनी मधुर-मीठी रसीली
हृदय में कितना अमृत है; मुक्त कुंतल, कांति नीली
एक प्यार अमर हृदय में आग से वह से रही है
जो मिटे उसके लिए वह प्यार युग से दे रही है
कौन है वह अमर, किसमें वह सनातन प्यार है ?
आज रण-हुंकार है !

— प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक —

आर्य-नारी का यशोगीत

[संकलनकर्ता—वासुदेवशरण अग्रवाल]

यस्यां भूतं समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् ।
तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ।

किसमें भूतकाल के प्राणियों ने जन्म पाया, जिसमें सारा जगत् आश्रित है, जो सबकी जननी है, वह नारी जिस उत्तम यश की पात्र है, उस यशोगाथा को आज हम गाते हैं—

(१) मनु का यशोगीत

१—जहाँ स्त्रियों का पूजन होता है, वहाँ देवता बसते हैं। जहाँ इनका आदर नहीं होता, वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल जाती हैं।

२—जिस कुल में पति पत्नी से और पत्नी पति से संतुष्ट रहती है, वहाँ स्थायी कल्याण निवास करता है।

३—स्त्री की प्रसन्नता से सब सुखी रहते हैं। उसके असंतुष्ट रहने से कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

४—स्त्री को सदा हँसमुख रहना चाहिए। उसे चाहिए कि घर के कामकाज में जी से संलग्न रहे। सब सामान को साफ-सुथरा रक्खे और व्यय करने में हाथ को रोके रहे।

५—मंत्रों के साथ जो विवाह-संस्कार किया जाता है, उससे प्राप्त होनेवाला पति स्त्री को इस लोक में और परलोक में स्थायी सुख का देनेवाला होता है।

६—स्त्रियों के लिए अलग यज्ञ, व्रत या उपवास का विधान नहीं है। पति की अनुकूल सेवा से ही वे स्वर्ग में उच्च स्थान प्राप्त करती हैं।

७—जो पुरुष यत्नपूर्वक स्त्री का पालन करता है, वह उसके द्वारा अपनी संतान, चरित्र, परिवार, धर्म और अपने आपकी रक्षा करता है।

८—अनेक कल्याणों को देनेवाली स्त्रियाँ पूजा के योग्य हैं; ये घर की ज्योति हैं। प्रजापति ने प्रजाओं के जन्म के लिए स्त्री को बनाया है। स्त्री घर में साक्षात् लक्ष्मी है। स्त्री में और लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं है।

९—संतति को जन्म देना, उत्पन्न हुए पुत्रों का पालन करना और नित्य प्रति की लोकयात्रा (भोजन-व्यवस्था) का एकमात्र प्रत्यक्ष कारण स्त्री ही है।

१०—अपत्य, धर्मक्रिया, शुश्रूषा, उत्तम आनन्द और अपनी तथा पुरुखों की सद्गति स्त्री के अधीन है।

११—मन, वाणी और शरीर से अपने-आपको वश में रखकर जो स्त्री पति के अनुकूल रहती है, वह इस लोक में सती नारियों के यश का पात्र बनती है और अन्त में पतिलोक की यात्रा करती है।

१२—देवों के सामने प्रतिज्ञा करके पुरुष स्त्री के साथ विवाह करता है, कामोपभोग की इच्छा से नहीं। अतएव दोनों की प्रसन्नता के लिए यह उचित है कि स्त्री को भरण-पोषण के द्वारा संतुष्ट रक्खा जाय।

१३—पूर्व ऋषियों के द्वारा कहा हुआ यह पुण्य नारी-वृत्त सब जनों का हित करनेवाला है। आतमा-जाया-प्रजा, इतना ही पुरुष का विस्तार है। जो पति है वही अभिन्न रूप से पत्नी है—

यो भर्ता सा स्मृतांगना

पुरुष के द्वारा किये हुए समस्त धर्माचरणों में स्त्री का साझा है।

१४—माता हजार पिताओं से गौरव में भारी है। माता पृथिवी है। वह क्षमाशील धात्री के रूप में परिवार का भरण-पोषण करती है।

१५—जिस घर में स्त्रियाँ शोक करती हैं, वह कुल जल्दी ही डूब जाता है। जहाँ स्त्री दुःखी नहीं होती, वह कुल हमेशा बढ़ता रहता है।

१६—अनादर से क्षुब्ध होकर स्त्रियाँ जिन घरों को शाप दे देती हैं, वे कुल राक्षसियों से सताये हुओं की तरह सब तरफ से चौपट हो जाते हैं।

१७—पिता, भाई, पति और देवरों को अपने कल्याण की कामना से स्त्रियों का आदर

ता चाहिए और उन्हें वस्त्र-आभूषण आदि से न रखना चाहिए ।

१८—जिस प्रकार वायु के सहारे से सब जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम के श्रय से अन्य सब आश्रम स्थित रहते हैं ।

१९—जैसे नदी और नद समुद्र में पहुँचकर जाते हैं, वैसे ही अन्य सब आश्रमों के लोग स्थाश्रम के ऊपर टिके हुए हैं ।

२०—दान और अन्न के द्वारा गृही और आश्रमों को धारण करता है, इसलिए थ सबमें ज्येष्ठ है ।

२१—जो अक्षय स्वर्ग चाहता है और जो लोक में सुख चाहता है, उसे यत्नपूर्वक थ आश्रम को सँभालना चाहिए । जिनकी याँ दुर्वल हैं वे गृहस्थाश्रम को धारण नहीं सकते ।

(२) महाभारत का भार्या-गीत

[आपद्धर्मपर्व १४४।६-१७]

१—घर का नाम घर नहीं है । गृहिणी ही ा घर है । गृहिणी के बिना गृह जंगल की सूना लगता है ।

२—गृहस्थ का घर बेटे, पोते, पुत्र-वधू नौकर-चाकरों से चाहे जितना भरा-पूरा र बिना स्त्री के वह घर गृहस्थ के लिए ही रहता है ।

३—मीठा बोलनेवाली, सुन्दर अंगोंवाली कोये से युक्त नेत्रोंवाली स्त्री यदि घर में है तो जीवन व्यर्थ है ।

४—पतिव्रता नारी पति को भोजन कराये स्वयं भोजन नहीं करती, पति के स्नान हले स्वयं स्नान नहीं करती, पति के खड़े पर वह बैठती नहीं और उसके सो जाने स्वयं सोती है ।

५—पति के प्रसन्न होने पर वह प्रसन्न है, उसके दुःखी होने से दुःखित हो जाती ति के विरह में मलिनबदन रहती है और क्रोध करने पर प्रिय वचन कहती है ।

६—पतिव्रता, पतिपरायणा, पति के हित में अनुरक्त—ऐसी भार्या जिसको प्राप्त हो, वह पुरुष लोक में धन्य है ।

७—जो नारी पति की भक्त, स्थिर स्नेह-वाली, तप और यश से युक्त है वह थके-माँदे और भूखे-प्यासे पति का सब प्रकार से सम्मान करती है ।

८—जिसके पास स्त्री है वह यदि पेड़ के नीचे भी पड़ा रहे तो वहाँ भी उसके लिए घर है । स्त्री के बिना महल भी वन के समान सूना लगता है ।

९—धर्म, अर्थ और काम के साधन-कार्यों में स्त्री पुरुष की सहायक होती है । विदेश जाते समय भी पुरुष उसीके विश्वास पर सब-कुछ छोड़ जाता है ।

१०—इस लोक में स्त्री-पुरुष के लिए परम पदार्थ कही गयी है । निस्सहाय व्यवित की लोकयात्रा में वही सहायता देती है ।

११—रोग से सताये हुए और आपत्ति में पड़े हुए पुरुष के लिए स्त्री के समान अन्य कोई मित्र और ओषधि नहीं है ।

१२—भार्या के सदृश बन्धु नहीं है, भार्या के समान आश्रय नहीं है, धर्म-संग्रह के कार्य में भार्या के समान और कोई सहायक नही है ।

१३—साध्वी और प्रियवादिनी स्त्री जिसके घर में नही है, उसे वन में चले जाना चाहिए, उसके लिए घर और वन दोनों एक से हैं ।

(३) सारस्वत अनुवाक

विवाह-संस्कार के समय मंडप के नीचे जब वर वधू का पाणिग्रहण करता है तब स्त्री के उत्तम यश का गान करने के लिए अति प्राचीन काल से कुछ गाथाएँ गायी जाती हैं । उनका नाम है सारस्वत अनुवाक । इस श्रेष्ठ गान का प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

यस्यां भूतं समभवत् यस्यां विश्वमिदं जगत्
तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ।।

अर्थात् यह संसार जिससे उत्पन्न हुआ है, और जिसमें यह सब जगत् आगे भी आश्रित रहेगा, उस स्त्री का जो उत्तम यश है, उसकी

यशोगाथा को हम आज गाते हैं।

विवाहमंडप में स्वयं प्रकृति कन्या के रूप में अपना साक्षात् दर्शन देती है। सब जगत् की धात्री, सर्वलोकनमस्कृता, सबकी माता उस देवी को नारीरूप में साक्षात् देखकर उसकी महिमा और यश का गान करने की किसे अभिलाषा न होगी ? आर्यों का सारस्वत अनुवाक उसी इच्छा की काव्यमय अभिव्यक्ति है। इस गान में बीस श्लोक हैं। पारस्कर आदि गृह्यसूत्रों में केवल पहली ऋचा देकर गान का संकेत मात्र कर दिया है। परन्तु सौभाग्य से लौगाक्षि गृह्यसूत्र की २५ वीं कंडिका में यह पूरी गाथा पायी जाती है। पुरोहित वर के द्वारा इस गाथा का गान कराता था। जो व्यक्ति विवाह के द्वारा एक स्त्री को अपने जीवन का साथी बनाने चला है, उसके मन में नारी की उच्च पदवी का कितना सामान है, यह भी इस गान से विदित होता है।

१—हे सरस्वति, हे सुभगे, हे वाज शक्ति से सम्पन्न देवि ! तुम इस उत्पन्न हुए संसार से भी पूर्व में विद्यमान रहती हो। तुमको लक्ष्य करके मैं तुम्हारे यश का गान करता हूँ।

२—जो इस सबके पूर्व में थी, जिसमें यह सब जगत् है, उस स्त्री की प्रशंसक वाणी का मैं गान करूँगा जो वाक् स्त्री के मन को सबसे अधिक प्रिय है।

३—इस लोक में जो पूर्वपुरुष थे, और पूर्वों से भी पूर्व में जो थे, उनसे भी पहले एक बड़े मस्तकवाला गन्धर्व देवों को प्रकाश देता था। [तुम उस गन्धर्व के लिए अप्सरा रूप थीं]

४—जो पवमान प्राची आदि सब दिशाओं में चारों ओर से व्याप्त है, उस मूर्धन्वान् गन्धर्व के लिए जो देवों को प्रकाश देता था, तुम अप्सरा-रूप थीं।

५—मैं ओषधिरूप में जबतक जीवित हूँ हे सौभाग्यवती स्त्री, तू तबतक अमर है।

वह बड़े सिरवाला गन्धर्व जो पहले देवों को प्रकाश देता था, उसके लिए तुम अप्सरा रूप थीं।

६—सुवर्ण के समान तेजस्वी वह गन्धर्व तेरे आचार को मेरे मन के अनुकूल बनावे। जिस प्रकार बाँकी भौंहोंवाला राजा अपनी समिति को प्राप्त होता है, वैसे ही मैं तुझे प्राप्त होऊँ।

७—हे स्त्री, मैं वायु हूँ। तुम वाक् रूप में वायु की पत्नी हो। वायु के समक्ष कोई ठहरता नहीं, वायु की कुछ इयत्ता नहीं है, सबके धुरे को वायु ने धारण कर रक्खा है, वायु का अपमान कोई नहीं कर सकता।

८—सूर्य का सत्यात्मक प्रकाशमान् सुन्दर हिरण्मय रथ गतिशील है। वायु ही दृढ़ धुरी से उसको प्रेरित करता रहता है। उस वायु की तुम पत्नी हो।

९—हे राजन् गाजे-बाजे और दुन्दुभिघोष सब तुम्हारे लिए हैं। पूर्व और पश्चिम की वायु तुम्हारे रथ के घोड़े हैं। चित्ररथ वन तुम्हारे विहार का स्थान है। [यह जो राजा या वर का वैभव है, तुम उसकी रानी हो]

१०—गुहा में छिपा हुआ जो इन्दु का तेज

---

१. सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति।
यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रगायाम्यस्याग्रतः॥
२. याऽग्रे सर्वमभवद् यस्यां विश्वमिदं जगत्।
तामद्य वाचं गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं मनः॥
३. या इह पूर्वे जना आसन् पूर्वे तूर्वेतरेभ्यः।
मूर्धन्यां स्तेभ्यो गन्धर्वः पुरा देवेभ्य आतपत्॥
४. य एति सर्वतः प्राग्भ्यो दिशोऽधि पवमानः।
मूर्धन्वाँस्तेभ्यो गन्धर्वः पुरा देवेभ्य आतपम्॥
५. स भगवो न मरिष्यसि अहं चेदस्मि भेषजम्।
भूर्धन्वाँस्तेभ्यो गन्धर्वः पुरा देवेभ्य आतपत्॥
६. हिरण्यवर्णो वैरम्यः स त्वा मन्मनसो करोतु।
यद् राजा याति समितिं समुद्रमिव सौभ्रवः॥
७. न वातस्याभि वायते नोद्वातस्याभिधीयते।
न वातस्था धुरं वहतो नोद्वातस्यापमीयते॥
८. आ सत्य हरितो रथः सौभ्रवः सुहिरण्मयः।
तं वात उद्ध्रीजयति उद्वातो दृढ़या धुरा॥
९. तवैव राजन् दुन्दु भयस्तव दुन्दुभिरानकः।
तव वातोद्वाता अश्वो तव चैत्ररथं वनम्॥

उसे जिन्होंने प्राप्त किया है, उन सपत्नों को त्वान् गन्धर्व ने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

११—सुवर्ण की तरह पीतवर्ण सुन्दर र पवित्र कन्या के हाथ को मैं ग्रहण करता मैं जितेन्द्रिय एवं पर्वत के समान स्थिर हूँ, की कामना से तू सुभग पति को प्राप्त हो।

१२—मुनियों से सेवित, हरे-भरे इस पर्वत जहाँ इच्छानुसार रमण की सामग्री है, हम ां अमर होकर सुन्दर मन से विचरण करें। हस्थ-आश्रम ही संकल्पानुकूल रमण पर्वत है]

१३—जिस प्रकार रथ के पहिये में धुरी यी रहती है, और जल सींचनेवाले मेघ में की चमकीली बिजली बसती है, उसी प्रकार प्सरा, तू मेरी वशवर्तिनी और मेरे मन के कूल हो।

१४—जो जलवर्षक मेघ के ऊपर विराजती जो वसु के साथ विचरनेवाली और सूर्य की से युक्त है, उस विद्युत की तरह तू मेरे भूत और मेरे मन से मिली हुई हो।

१५—पीपल के ऊपर बैठा हुआ जो सुहा- पक्षी है, उसके साथ उसकी पत्नी ऐसे अनु- होती है जैसे चन्द्रमा रात्रि के साथ। तू भी साथ उसी प्रकार अनुरागवती हो।

१६—हे सुभगे, जैसे पर्वत से निकलकर नदी अपनी शाखाओं में जल का विभाग करती है, उसी प्रकार तू माता बनकर दुहिताओं को अपने ऐश्वर्य का विभाग कर।

१७—दैवी और आसुरी छन्दों के बीच में जिस प्रकार अनुष्टुप् छन्द है, उसी प्रकार दैवी और आसुरी कामनाओं की मध्यवर्ती यह स्त्री है। उस स्त्रीरूप छन्द की योग्य दक्षिणा लाल-पीले वस्त्रों से अलंकृत वर है। जो इस पहेली को जानता हो, वही इस मंडप में आने के योग्य है।

१८—सींक के समान सुनहले रंगवाली, लकीर जैसी भौंवाली, सौभाग्यवती पत्नी, सर्वश्रेष्ठ गन्धर्व मुझे प्रदान करे।

१९—देव और गन्धर्व, दोनों एक साथ मिलकर तुझे बुलाते हैं। उनमें से तू जिनको चाहती है, हे सरस्वति, तू उनके सामने उपस्थित हो।

२०—मैं देवों के सामने आता हूँ। गायन करनेवाले को हम सब चाहा करते हैं। गान करनेवाले पुरुष को स्त्रियाँ ब्रह्मवादी से भी बढ़ कर प्यार करती हैं।

२१—जो आत्मतन्मयता के साथ विहार करती हुई मेघ के ऊपर मखमली दुशाले की तरह छायी हुई है, उस विद्युत के समान तेरे ओज का मैं श्रवण करूँ।

उपरोक्त गाथाओं में भारतवर्ष के वैदिक युग में गाये जानेवाले विवाह-संगीतों का एक

ते शुक्रं शक्रस्याऽविन्दन् परांच निहितं गुहा।
मूर्धन्वाँस्तेभ्यो गन्धर्वः पुरा जत्रुभ्य आनृदः॥
हिरण्यवर्णं सुभृतं शोभमानं कन्याया हस्तं
परिगृह्य पुण्यम्। सा पुत्रकामा सुभगाय भर्त्रे
भव वशीयान् गिरवत् स्थिराय॥
वैरम्पे मुनि पर्वते सिरौ हरितसंकाशे।
संकल्परमणेऽमरावुभौ सुमनसौ चरावः॥
आणीव रथवेष्टिसि वने वारिवर्षण्ये।
अप्सराः सूर्यवर्चसिनी वशिनि मन्मना भूयाः॥
या सा उपरि तिष्ठति वने वारिवर्षण्ये।
वसुगा सूर्य वर्चसिनी वशिनि मन्मना भूयाः॥
अश्वत्थक उपरि श्येनो रमणीयतरो नाम।
तस्मिन् ह रम्भा रमते शक्र इव परितक्म्यायाम्

१६. आस्यन्दमाना सुभगे निर्गिरिभ्यः सरस्वति।
मातेव दुहितृभ्यः कुल्याभ्यो विभजा वसु॥
१७. मध्यं तच्छन्दस आहुर्यत्रादधुर्नाम परेति
देवाः। अरुण पिशंगोऽश्शोऽस्य दक्षिणा
यस्तद्वेद, स इहागन्तुमर्हति।
१८. इषीकवर्णे लेखभ्रूः सुभगे सुस्थिते।
मूर्धन्वांस्त्वा गन्धर्वो मामभि नियच्छतु।
१९. उभये त्वा देवगन्धर्वा सध्र्यंचो विह्वयामहे।
तेषां यतरान् कामयसे तान् अभ्येहि सरस्वति।
२०. अभ्यावर्तेऽहं देवान् गायतः कामयामहे।
गायंतं स्त्रियः कामयन्ते न तथा ब्रह्मवादिनम्॥
२१. या सा उपरि पर्वत आत्मना रममाणेव।
क्षौममृद्वी ह वा असि त्वोत ओजसि शृणोमि॥

सुन्दर संस्मरण है। स्त्री के प्रति कल्याणकी भावना प्रकट करनेवाले और भी कुछ मंत्र ये हैं—

१–गृहस्थ अग्नि इस स्त्री की रक्षा करे। इसकी संतान दीर्घजीवी हो। इसकी गोद सूनी न रहे। यह जीवित पुत्रों की माता हो और यह पुत्रों के भी पुत्र होने के आनन्द का अनुभव करे।

२–यह पृथिवी ध्रुव है, द्युलोक ध्रुव है, यह सारा संसार ध्रुव है, पर्वत भी अपने स्थान पर ध्रुव है। इसी प्रकार यह स्त्री पतिकुल में ध्रुव हो।

३–जिस प्रकार समुद्र नदियों पर सम्राट है, उसी प्रकार पतिगृह में जाकर यह स्त्री सम्राज्ञी हो।

४–श्वशुर, देवर, ननद और सास—सबके ऊपर तू पटरानी बनकर रहे।

५–जो हमारे बड़े-बूढ़े वधूदर्शक बनकर आज इसे लिवाने आये हैं, वे इस वधू को, वे इस पत्नी को, संतान का आशीर्वाद देकर जावें।

जीवन की साधना

[एक पत्र]

परम प्रिय भाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने अपनी वर्तमान दशा का जो अपूर्ण चित्र खींचा है उसके आधार पर मैं तुम्हारी स्थिति के बारे में कुछ कल्पना कर सकता हूँ। स्वयं मुझे भी इस विचित्र मन्थन-दशा में काफी रहना पड़ा है। आन्तरिक मन्थन-काल (transition stage) में मनुष्य की स्थिति उस मल्लाह की सी हुआ करती है जिसकी नौका मँझधार में पड़ी हो, तूफान भी उठ रहा हो और पतवार भी काबू में न हो। और फिर आजकल तो सारा देश नहीं समस्त पृथ्वी एक विचित्र दशा में से गुजर रही है। अनेकानेक परस्परविरोधी आदर्श टक्करें लेते दिखाई दे रहे हैं। ऐसी अवस्था में युवकों का मन एक अनिश्चित और अर्धदग्ध होते हुए भी आदर्श की गुलाबी छटा लिये हुए एक आकर्षक दशा का अनुभव करता है। प्रकृति का विधान भी युवावस्था में कई कठिनाइयाँ उपस्थित करता है। कई नये तत्त्व उसके स्वभाव में अपनी स्वाभाविक रीति से कार्य करना शुरू करते हैं। युवक उन्हें भली भाँति नहीं पहचान पाता और सीधी राह छोड़ टेढ़े रास्ते पर जा लगता है। जिनके अन्दर उच्चाभिलाषा, पवित्र भावना, आदर्श के लिए तड़प तथा स्वभाव में उच्च तत्त्वों का बाहुल्य हो, जिन्हें कुटुम्ब में भी उच्च वातावरण प्राप्त हो और अच्छी संगति और अच्छी संस्थाओं की सहायता भी मिले उन लोगों में भी यह काल कोई बहुत सरलता से नहीं बीत जाता। तुम मन्थन दशा का अनुभव कर रहे हो यह एक बहुत ही अच्छा चिन्ह है क्योंकि यह आगे बढ़ने और प्रगति करने की संभावना पैदा करती है।

तुम्हारे पत्र से लगता है कि तुम किन्हीं अंशों में अपने आपको ठीक तरह देख सकते हो। यह भी एक शुभ चिह्न है। युवकों में आत्म श्रद्धा होती है जो उनके स्वभाव में अहंता और मिथ्याभिमान के रूप में दिखाई देती है और वे यह समझ बैठते हैं कि वे दोषहीन हैं। किसी दिशा में प्रगति करने के लिए अपनी त्रुटियों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है पर साधारणतः इसके स्थान पर यह वृत्ति पायी जाती है कि 'उहँ, मैं तो पूर्ण हूँ'। इस प्रकार की भूल को दूर करके उसके स्थान पर निष्पक्ष निरीक्षण-वृत्ति पैदा करनी चाहिए। तुम्हारे पत्र से लगता है कि तुम्हें आत्म-निरीक्षण करने की आदत है यद्यपि वह अभी पूरे और ठीक स्वरूप में नहीं आ पायी है। यह बहुत आवश्यक चीज है और इसे बढ़ाना चाहिए।

तुम्हारे अन्दर आत्मप्रगति के दो चिह्न असन्तोष (या इसे दिव्य असन्तोष कहें) और आत्मनिरीक्षण या दोष-दर्शन मौजूद हैं। अतः तुम्हें निराश होने की कोई जरूरत नहीं। धीरे धीरे सत्य या अनुसरण करने की हिम्मत पैदा करोगे तो 'निश्चित मार्ग', 'आत्मकल्याण', 'विश्व-कल्याण' आदि सब बातें सध जायेंगी।

इसमें घबराने की कोई बात नहीं है कि

नुष्य के अन्दर जितनी कमजोरियाँ होती उनमें से अधिकतर" तुम्हारे अन्दर मौजूद । यह सब इसीलिए है कि तुम भी ष्य हो, इनमें से कोई भी कमजोरी या ऐसी नहीं है जिसे तुमने पैदा किया हो । विश्व-प्रकृति के अन्दर मौजूद होती हैं और ु, संस्कार, ज्ञान आदि के संयोगों से ये वृत्तियाँ र में प्रकट होती हैं । इसमें डरने और घब- की कोई बात नहीं है और इसके आधार अपने आपको बुरा मान लेना भी एक भूल पर हाँ, इन्हें कुदरती और स्वाभाविक मान- इन वृत्तियों को सन्तुष्ट करना और इन्हें ना-पोसना तो अत्यन्त भयंकर है । ठीक बात यह है कि ये सभी वृत्तियाँ हमारे अन्दर बाहर विष्ट हुआ करती हैं और हम इनसे बिल- जुदा हैं, अपने अन्तर में इस भिन्नता के भव को दृढ़तापूर्वक स्थापित करना चाहिए । पूछो तो यह कहना तत्त्वज्ञान की दृष्टि से कुल गलत है कि 'मैं विचार करता हूँ' अथवा मेरी इच्छा है ।' सही बात तो यह है कि विचारों और इच्छाओं का हमारे अन्दर होता है । इसी प्रकार यदि कर्म, वासना, क्ति, विचार, कामना आदि को अपने से जुदा देखने की आदत डाली जाये तो इन सब यों का जोर कम हो जाता है और फिर जब ष्टि से खोटे-खरे की परख करने की जागृत हो जाये तो हमारे अन्दर जितनी प्रकार की वृत्तियाँ हैं वे सब दूर हो जायेंगी । मार्ग शान्ति और धैर्य के साथ ग्रहण करने प्रयत्न करना चाहिए और यदि एक दम सफ- न मिले तो व्यर्थ में सिर पटकने की जरूरत है ।

ायद अब तुम समझ गये होंगे कि तुम्हारे र आत्मश्रद्धा का अभाव क्यों है ? जब-जब अपनी कमजोरियों के साथ ऐक्य का अनुभव लगते हैं तब-तब हमारे अन्दर अपने पापी निर्बल होने का भाव जागृत होता है । पर एक गलत राह है । इसके स्थान पर हमें ऐसी वृत्ति जगानी चाहिए कि "मैं पवित्र हूँ", "मैं इन सब कमजोरियों से भिन्न हूँ", "मेरे अन्दर अतुल बल है" । अपने आपको निर्बलताओं से ऊँचा उठाकर उस उच्च स्थान से इन्हें देखने की आदत डालनी चाहिए ।

भाग्य और पुरुषार्थ दोनों में ही कुछ सत्य है । हमसे बिलकुल भिन्न कोई खुदमुख्तार सत्ता ऐसी नहीं है जो हमारे भाग्य का विधान करती हो । यदि परा प्रकृति को प्राप्त करके उसमें बिताया जानेवाला जीवन ही भाग्य है तब तो यह कहा जा सकता है कि उसका नियत करनेवाला परमेश्वर है; पर यह मानना तो सरासर भूल है कि अज्ञानावस्था में बिताया जानेवाला जीवन भी प्रारब्ध के वश है और पहले से ही नियत और निश्चित है । आत्मप्रगति की क्रिया में हमारे अपने हिस्से का नाम ही पुरुषार्थ है । सच्चा ज्ञान प्राप्त होने पर यह अनुभव होता है कि हमारा यह प्रयत्न भी ईश्वर की इच्छा (शक्ति) के अधीन होकर चलता है ।

हाँ, यह बिलकुल ठीक है कि 'भगवान के लिए ही कार्य करना चाहिए" और इतना ही नहीं बल्कि जीवन पूर्ण तभी हो सकता है जब हम भगवान ही के लिए, उन्हीके द्वारा निश्चित की हुई विधि से जीवन व्यतीत करें और यह काम कोई बहुत आसान नहीं है । पर इसका मतलब यह नहीं कि ऐसा करना असम्भव है । नहीं, यदि हम उसकी सब शर्तें पूरी करें तो यह मुश्किल काम भी आसान हो सकता है । तुम्हारे मन में एक दम यह प्रश्न उठेगा कि आखिर वे शर्तें कौन-सी हैं ? इस प्रश्न का पूरा-पूरा और ठीक-ठीक उत्तर तो कोई अनुभवी ही दे सकता है, पर मैं यहाँ एक-दो बतलाने की कोशिश करूँगा । पहले तो यह कि जीवन की यही एक मात्र साध होनी चाहिए । ईश्वर-प्राप्ति और ईश्वरेच्छा के अनुसार चलने की अभीप्सा को छोड़ बाकी सब चीजों को परे फेंकने की शक्ति होनी चाहिए । और दूसरे, ईश्वर में अटल श्रद्धा और उनकी दिव्य शक्ति के चरणों में सर्वभाव से समर्पण करने की

शक्ति होनी चाहिए। यदि इन दो बातों को लेकर प्रारम्भ किया जाये तो अपने आदर्श की ओर प्रगति अवश्यम्भावी है। और भी कई बातें हैं पर इन दो को ही मुख्य माना जा सकता है।

ईश्वर के लिए जीना हम जितना समझते हैं उतना सरल नहीं है। हमारे मन में तो इस प्रकार विचार हुआ करता है पर अन्तर की गहराइयों में नजर डालने से पता लगता है कि वास्तव में तो हम अपने विचारों के अनुसार ही जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। हम सचमुच अपने आपको ईश्वर के प्रति सर्मापित नहीं करना चाहते; अपितु आपने आदर्शों को सिद्ध करने के लिए ईश्वर को साधन बनाना चाहते हैं। हम जान-बूझकर इस वृत्ति को नहीं अपनाते, वह तो अपने आप हमारे अज्ञान के कारण घुस आती है। इसे भली प्रकार देखकर जहाँ-जहाँ इसने अधिकार कर रखा हो वहाँ-वहाँ से एक दम निकाल फेंकना चाहिए। कहने को तो हम ईश्वर के लिए कर्म कर रहे होते हैं। पर वास्तव में कीर्तिलाभ के लिए, बड़े कहलाने के लिए, देश का हित साधने के लिए अथवा ऐसे ही किसी अन्य हेतु के लिए प्रयत्नशील होते हैं। अपने ही अन्दर से इस प्रकार की मक्कारी को निकाल बाहर करना चाहिए और अपने आप निकालने में समर्थ न हो तो कम से कम उससे सावधान तो रहना चाहिए और उसे निकालने के लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए।

तुम्हें अपने स्वभाव में 'आमूलचूल परिवर्तन करने' की जरूरत जान पड़ती है—यह ठीक ही है। पशु में मानसिक शक्तियाँ अपूर्ण रीति से ही उपस्थित होती हैं परन्तु मनुष्य का मन पूर्णता की ओर प्रगति कर सकता है। शरीर, मन और प्राण में अविद्या का राज्य है इसलिए इनमें केवल सापेक्ष पूर्णता ही प्राप्त की जा सकती है। अविद्या का अर्थ है अज्ञान, अपने आपको परिमित शरीर, कुछ इच्छाओं, वासनाओं और विचारों का पुंज तथा अमुक लोगों का समझना अविद्या के ही कारण हुआ करता है। जबतक मनुष्य इन तीन में (मन, प्राण और शरीर) में बँधा है तबतक वह अपूर्ण ही रहेगा। मन अपने आपमें पूर्ण नहीं, पूर्णता की ओर जाने की पहली सीढ़ी है। सदा मन की ही भूमिका में रहकर सर्वांश में पूर्णता प्राप्त करना सम्भव नहीं। इस अवस्था में मनुष्य चाहे जितना ऊँचा क्यों न हो जाये, पर रहेगा फिर भी अपूर्ण ही।

यहाँ यह प्रश्न उठेगा कि फिर आखिर किया क्या जाये ? मन से परे की चेतना में आरोहण करके विकास पाना मनुष्य के लिए सम्भव है। जैसे जड़ पदार्थ में से उत्तरोत्तर वनस्पति, जन्तु, पक्षी, पशु, वानर और मनुष्य ने विकास पाया है, उसी प्रकार मानव से भी परे अतिमानव (Superman) हुआ जा सकता है। चेतना की इस अवस्था को विज्ञानमय अवस्था कहते हैं और यदि यत्न करें तो हम इस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। उस चेतना को प्राप्त करके हमें जंगल में जाकर नहीं बैठना होगा। विज्ञान की स्थिति प्राप्त करके हमें अपने मन, प्राण और शरीर को उसीके अनुसार ढालना होगा। इतना ही नहीं बल्कि व्यावहारिक जीवन और समाज में पूर्णता लाने के लिए उसके आधार पर हमें एक नवीन जीवन की भित्ति खड़ी करनी होगी। पर यह सब तो बहुत कठिन काम है,और यह लिखने का उद्देश्य केवल इतना है कि तुम जो कहते हो कि सारा स्वभाव ही बदलना होगा इसकी सचाई तुमपर स्पष्ट हो जाये। मनुष्य-स्वभाव का वर्तमान विधान और उसका आधार किसी भी प्रकार की अन्तिम पूर्णता प्राप्त करने के योग्य नहीं है। शायद तुम्हें यह बात ठीक न जँचे और तुम कहो कि क्या अमुक लोग आत्म-संयम नहीं कर पाये। पर सूक्ष्म दृष्टि से देखो तो यह मालूम होगा कि मन द्वारा तो अधिक से अधिक केवल सात्विकता ही प्राप्त हो सकती है परन्तु उसमें भी अपने कर्त्तापन और अपने परिमित व्यक्तित्व की अज्ञानभरी भावनाएँ उपस्थित होती हैं और कामवासना तथा विलास-

ति आदि पर भी पूर्ण विजय नहीं प्राप्त की सकती। बहुत हुआ तो मन द्वारा इन्हें दबा जाता है या इन्हें निश्चित क्रियाओं के रूप प्रकट किया जाता है; पर क्या इसे विजय कह ते हैं ? सात्विक विचारों में सत्य का अंश क होता है और इसी तरह उसका अज्ञान ज्यादा समर्थ और मोहक होता है इसीलिए पनिषद् में उसे "हिरण्यमय पात्र" कहा है कहा है कि जो विद्या (सात्विकता) में हैं उनके अज्ञान का दूर होना ज्यादा न है।

बहुत से बड़े-बड़े व्यक्तियों ने मन द्वारा ति पर विजय प्राप्त करने के भगीरथ प्रयत्न हैं और परिणामस्वरूप इस कार्य को भव बताया है। भगवान बुद्ध ने इसके लिए न किया और वे किस परिणाम पर पहुँचे तुम्हें मालूम ही होगा, ईसामसीह के प्रयत्नों परिणाम भी बहुत आशाजनक नहीं है, इसो यही लगता है कि मन की नींव पर खड़े र पूर्णता प्राप्त करने का विचार ठीक नहीं इसके लिए मन से परे की भूमिका को प्राप्त के प्रयोग कर देखना चाहिए, इसका अर्थ यह ा कि स्वभाव की सारी नींव ही बदलकर पूरा रूपान्तर किया जाये।

'तीव्र भाव' (Emotions) पैदा करना चित्त कार्य है। मानव के अन्दर जितने आन्तरिक होते हैं उन सबके लिए अनुभव से जुदा-नाम और स्थान जाने जा सकते हैं। भाव होने के स्थान को चित्त अथवा सामान्य में हृदय कहते हैं और उसका स्थान हृदय सामने है। सब भाव वहीं उत्पन्न होते हैं। यह तो ठीक नहीं कि भाव ही जीवन का नेतृत्व रहें लेकिन सात्विक भावों के उत्पन्न होने कोई खराबी नहीं। भाव मन में उठते हों तो उनका अनुभव करना चाहिए और आग्रहपूर्वक उन्हें ईश्वर की ओर ऊर्ध्वाविमुख करना चाहिए।

यह तो ठीक है कि पूर्ण हुए बिना कार्य न किया जाये। परन्तु पूर्ण होने लिए भी तो कार्य करना होगा न; और यह कोई ऐसा-वैसा कार्य नहीं है।

मन को धीर और शान्त बनाओ और चाहे आत्मश्रद्धा न भी हो तो भी भगवान में श्रद्धा रखो। यह तो जरूरी है कि भाव भी पूर्णता को प्राप्त करें; पर हमारे अन्दर उठनेवाले भाव सदा ही पूर्ण नहीं हुआ करते; इसलिए अपने आपको उनके हाथ में सौंप देना ठीक नहीं। मन, प्राण और शरीर सभी को पूर्ण बनाना है। इस दिशा में धैर्य और दृढ़ता के साथ प्रयत्न करने से एक दिन यह अनुभव अवश्य होगा कि इस मार्ग पर ले चलनेवाला पथप्रदर्शक सदा तुम्हारे साथ है। हृदय का वर्तमान आर्तनाद न रहेगा। इसके स्थान पर सदा श्रीकृष्ण की मुरली की मीठी तान सुनाई देगी, वृत्तियों की खींच-तान की जगह दृढ़ तपःशक्ति ले लेगी, विचारों की ऊटपटाँग धाराओं के स्थान पर दिव्य ज्ञान के सूर्य की चिरस्थापना होगी, भावों की बढ़ती-घटती नदियों के स्थान पर सच्चे, स्थिर, धीर और गम्भीर भाव-समुद्र की प्रतिष्ठा होगी, और क्षुद्र शरीर की भावना के बदले यहीं इस शरीर में और इसी पृथ्वी पर अमरत्व और आनन्द की प्राप्ति होगी।

श्रद्धापूर्वक अचल शक्ति के साथ इस मार्ग पर चलने का निश्चय करना होगा। अपने अन्तर से पूछकर इसका निर्णय करना। उतावलेपन की जरूरत नहीं, शाश्वत काल तुम्हारे आगे पड़ा है।

श्रीअरविन्दाश्रम,
पाँडीचरी

तुम्हारा
अम्बालाल पुराणी

वस्तु-पक्ष और कला-पक्ष

[शीलभद्र]

जीवन-यात्रा के दो महान् संवल वस्तु-तत्त्व और कलातत्त्व प्रत्येक यात्री के हृदय में परोक्षरूप से विद्यमान रहते हैं, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति का झुकाव इनमें से किसी विशेष प्रवृत्ति की ओर होता है। कोई तो चरमकोटि का वस्तुवादी बन जाता है और कोई पूरा-पूरा कलाकार। एक की पूर्णता ही दूसरे की अपूर्णता है और इन दोनों तत्त्वों का समुचित समन्वय ही जीवन का पूर्ण विकास है। जीवन के इन दोनों तत्त्वों का विवेचन आजतक साहित्य-कला में ही होता रहा है, इसलिए आये दिन कलाक्षेत्र में यह धाँधली मची रही है, कि कोई तो कला में सौन्दर्य, नग्न सौंदर्य को ही सब कुछ समझता है और किसी-किसी के मुंह से आदर्शवादी वस्तुवादी कला ही कला है। कला के सम्बन्ध में हमें इतना ही कहना है कि वह **"जीवन से, जीवन की ओर, जीवन के लिए"** है।

अब यदि हम जीवन के इन दोनों तत्त्वों को जीवन में ही ढूंढ़ने और उनका विवेचन करने में थोड़ा-सा ध्यान दें तो यह प्रश्न आप-से-आप हल हो जायेगा। सच बात तो यह है कि ये दोनों तत्त्व वस्तुपक्ष और कलापक्ष मानव जीवन की पूर्णता के लिए हैं। इनमें से किसी एक के बिना ज़ीवन अपूर्ण, अधूरा और निकम्मा रहता है। इन दोनों का सुखद समय ही जीवन का मोल, जीवन का तत्त्व बढ़ाता है। जहाँ इनमें से किसी एक का भी संतुलन कम हुआ कि जीवन-यात्रा का रथ डगमगाने लगता है। वस्तु-पक्ष तो एक पात्र है जिसमें हम अपनी कलात्मक प्रवृतियों से जीवन का अमरत्व संचित करते हैं। यदि पात्र ही नहीं तो फिर रस किसमें संचित होगा ? और रस के बिना, मधुरता के बिना सौंदर्य के अभाव में, रिक्त पात्र, कोरे वस्तु की क्या कीमत रह जायगी ?

जीवन में जब हम इन दोनों में से किसी एक तत्त्व की उपेक्षा कर बैठते हैं तभी हम में अनियमितता, असंयम और भोंडापन आजाता है। कोरा वस्तुपक्ष जीवन को नीरस, शुष्क और अशोभनीय बना देता है। कोरी कला हममें विलासिता, लापर्वाही; अनागरिकता और कामुकता उत्पन्न कर देती है। हम गगनस्पर्शी काल्पनिक व्योमयानों में स्वर्गलोक की अलका की कल्पना भले ही करें किन्तु हमारे पैर रामगिरि के ठोस पर्वत पर ही रहें, नहीं तो हम परकटे विहंग-से छटपटा-छटपटाकर ही रह जायँगे।

कलापक्ष या भावपक्ष से हम शून्य आकाश में––जगती के कटु-मधु-पूर्ण, कर्म-कोलाहलमय हाहाकार से दूर, बहुत दूर की उड़ानें भरकर भले ही अपने सिद्धान्तों के रेखाचित्र खींचलें, किन्तु उन्हें मूर्तिमंत करने के लिए इसी पृथ्वी की रंगीन मिट्टी और पानी का हमें सहारा लेना पड़ेगा।

व्यक्तित्व सर्वदा दुहरा होता है। एकहरा व्यक्तित्व व्यक्तित्व नहीं 'टाइप' है। हमें विचारों से, भावों से कलावादी बनना है। और जीने के लिए वस्तुपक्ष का सहारा लेना होगा। जीने के लिए एक मजदूर को मजदूरी करनी ही होगी। भले ही वह उस मजदूरी की अनाकर्षक घड़ियों को अपने प्राणों की मधुर रागिनी से सींचता रहे। चक्की पीसनेवाली वह नवयुवती जिसका पति गाँव से दूर बैलगाड़ी हाँककर व्यापार से दो पैसे कमाने गया है––अपनी चक्की की घरघराहट के साथ पति के साथ बिताये हुए सुनहले दिवसों की स्मृति में, यदि गुनगुनाती जाती है तो उसके चक्की पीसने का समय आनन्द से कट जाता है। इसी तरह वह मजदूर बैलगाड़ी के चूं-चूं चरड़-मरड़ के साथ यदि 'विरहा' गाता जाता हो तो जेठ की चिलचिलाती दोपहरी का मार्ग उसके लिए सुगम होता जाता है। यही है वस्तुपक्ष और कलापक्ष का सम्मिलन और इसीका नाम है जीवन। किन्तु यदि वह जीवन के वस्तु-पक्ष को ही सब-कुछ समझकर कला की उपेक्षा

र बैठता है तो उसके लिए यह संसार असार-ृ और जीवन की सुखद और अनमोल घड़ियाँ न-सी प्रतीत होने लगती हैं। यहीं उसके ीवन में अकर्मण्यताजन्य वैराग्य का प्रादुर्भाव ता है और वह झुंझलाकर संसार को उपेक्षणीय मझने की भ्रान्त धारणा बना लेता है।

किन्तु यदि वह चक्की पीसनेवाली चक्की ीसना छोड़कर, गाड़ीवान गाड़ी हाँकना छोड़- र अपने प्रिय प्रियतम के ध्यान में ही लीन होकर भावना की चरम सीमा पर ुंचकर वस्तुपक्ष का, यथातथ्य का छायावादी वियों की तरह तिरस्कार कर बैठे तो उसका ह कार्य जीवनयात्रा को सरस बनानेवाले ाधनों को साध्य मानना ही कहा जायगा और सकी यह भावुकता उसे अकर्मण्य, मात्र स्वप्न- टा बनाकर कहीं का न छोड़ेगी।

कोरी कला निठल्लापन उत्पन्न करती है। ारा वस्तुपक्ष जीवन को एकांगी शुष्क और रस बना डालता है। मनुष्य को मनुष्य बनना ाहिए। देवता बनने की कामना में मनुष्यत्व को कराकर वह अपनी ही हत्या करता है। हमें न्धविश्वास और कट्टरता को छोड़कर अपने ो थोड़ा-सा लचीला और मधुर बनाना चाहिए। न्तु यह स्मरण रहे कि लचीला बनने में, ात्मक प्रवृतियों की ओर झुकने में, हम वस्तु- का तिरस्कार कर कहीं नागरिकता के रदायित्व से च्युत न हो जायें।

हमें जीवन को व्यापक दृष्टिकोण से देखना ा—जीवन केवल इस्पात की तरह कठोर ाकर रखे जाने की ही वस्तु नहीं है अपितु उसे ज्रादपि कठोर कुसुमादपि मृदु" बनाकर रखने ी हम उसे विकसित कर सकते हैं।

केवल संयम-साधना ही जीवन का सब कुछ ीं। इसके परे भी एक अनिर्वचनीय आनन्द, य सौन्दर्य-निधि, दिव्य आलोक और अनन्त न्ति का सुनहला संसार है—जिसे हम हँसते- ते शिशु के मुख पर, सद्यःप्रस्फुटित पाटल- ुष्प पर, कलकलनिनादिनी सरिता के कछार में, रमणी की उन्मादक मुस्कान में **"वह चितवन औरे कछू, जेहि बस होत सुजान"** वाले नुकीले नयनों के भ्रू निक्षेप में एक कलाकार की आँखों से ही देख सकते हैं।

केवल वस्तुपक्ष की साधना और कला की उपेक्षा कर हम इस उन्मुक्त सौन्दर्य के मधुर प्रसाद से वंचित ही रहेंगे।

संसार में ऐसे बहुत से व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने अपने जीवन में इन दोनों तत्त्वों का मधुर सामंजस्य किया था। और अभी भी बहुत से व्यक्ति हैं जिनके जीवन में उनका सुन्दर समन्वय दीखता है। हमारे काका कालेलकर, माखनलालजी, सुकवि दिनकर, 'नवीन'जी तथा प्रि० वंशीधरजी ऐसे ही व्यक्तियों में से हैं जो जीवन में वस्तुपक्ष और कलापक्ष दोनों पहलुओं का सामान्य संतुलन रखते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे महापुरुष भी हैं जिनके जीवन का वस्तुपक्ष उनके कलापक्ष को दबाकर उभड़ा हुआ-सा प्रतीत होता है। ऐसे ही लोगों में साधु-महात्माओं का समुचित प्रतिनिधित्व करनेवाले विश्ववन्द्य महात्मा गांधी और उनसे प्रभावित कुछ गांधीवादी नेता लोग हैं। कुछ ऐसे महापुरुष भी संसार में हो गये हैं जिनके महान् कलापक्ष ने उनके वस्तुपक्ष को दबाकर ही उन्हें अमर कर दिया है। ऐसे ही लोगों में स्वर्गीय कवीन्द्र रवीन्द्र, माइकेल मधुसूदन दत्त, कविवर जयशंकर 'प्रसाद' और शरद बाबू का नाम लिया जा सकता है। किन्तु मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि उनका वस्तुपक्ष बिलकुल ही दुर्बल था, बल्कि यह है कि उनका कलापक्ष उनके वस्तुपक्ष को प्रायः दबाये रहता था।

कुछ ऐसे महापुरुष भी होते हैं जिनकी आत्मा वाह्य जगत के हाहाकारों से हिल-मिलकर वस्तुपक्ष की ओर उन्मुख होती है और तब उनके उद्गार रस्किन के 'अन्टु दिस लास्ट', महात्मा टाल्सटाय के "हम क्या करें?" और हमारे सुकुमार कलाकार सुमित्रानन्दन पंत की "युगवाणी" के रूप में फूट पड़ते हैं।

संसार में बहुत-से ऐसे महापुरुष भी हो गये हैं जिनके जीवन का वस्तुपक्ष कौड़ी काम का नहीं था । नागरिकता भी दृष्टि से उनका जीवन अपूर्ण–अविकसित ही कहा जा सकता है । किन्तु उनके लिए यही बात लागू होती है **'समरथ को नहिं दोष गुसाईं ।'**

अब प्रश्न यह है कि सर्वसाधारण के लिए जीवन में इनका क्या स्थान है ? असल बात तो यह है कि सर्वसाधारण ही नहीं कवि, महाकवि और महान कलाकार को भी चाहिए कि वह विवेचक हो, वह खाने-पीने, उठने-बैठने, चलने-फिरने और सांसारिक कार्यों में भी कलाकार हो । तभी हम उसे पूरा कलाकार कहेंगे । उसे चाहिए कि वह अपने जीवन में वस्तुपक्ष और कलापक्ष दोनों का पलड़ा बराबर रखे ।

यह परम्परा पाश्चात्य शैली का अन्धानुकरण ही है कि मैं कलाकार हूँ, मुझे संयम-असंयम से, जगद्व्यवहार के झमेलों से, दुनियादारी के बंधनों से क्या रिश्ता-नाता ? मैं तो कलाकार हूँ पूरा कलाकार––हूँ स्वयभू ।

यह ठीक है कि आप कलाकार हैं, स्वयंभू हैं किन्तु मेरा तो सिर्फ इतना ही कहना है कि आप केवल "स्वयंभू" नहीं, कविर्मनीषी, 'परिभू' भी हैं और आपमें जो ये चारों तत्त्व छिपे हैं । आप इन्हें चमका दीजिए । फिर आप देखिए आप क्या नहीं हैं ?

भारतीय सिद्धान्त में 'श्रेय' और 'प्रेय' दोनों दो चीजें नहीं । दोनों एक ही हैं । जो वस्तुपक्ष की यथातथ्यता है, चिरसत्य है वही 'श्रेय' है; वही हमारी सुकुमार भावनाओं के संघर्ष से मानवता के साहचर्य्य से हमारी कलाप्रियता की ममता से 'प्रेय' भी बन जाता है ।

सत्, चित् और आनन्द तीनों के सामंजस्य से ही तो जगत् है । फिर जीवन में इसकी उपेक्षा क्यों ?

प्रत्येक व्यक्ति को 'कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू' बनना चाहिए तभी वह सच्चा नागरिक, पूर्ण मनुष्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है । वह कवि हो किन्तु साथ ही मनीषी (विचारक) हो परिभू (शक्तिशाली) हो और स्वयंभू हो अर्थात् अपने ऊपर खड़ा होना––अपने प्रकाश में चलना सीखे तभी वह पूर्णत्व को प्राप्त कर सकता है । पहले उसका कवि होने की अपेक्षा कलाकार होने के बदले आदमी होना जरूरी है । पीछे वह जो चाहे बने । और इन तीनों गुणों के मूलतत्त्व––वस्तुपक्ष एवम् कलापक्ष की समन्वय-शीलता के बिना प्रत्येक व्यक्ति अपूर्ण है, अधूरा है ।

स्वगत

[हरिभाऊ उपाध्याय]

सिपाही का प्रभाव तभीतक है जबतक उसकी कमर में चमकीली तलवार लटकती रहती हैं; सेवक की प्रतिष्ठा तभीतक है जबतक उसकी सेवा-शक्ति चमकती रहती है ।

सार्वजनिक सेवा या हित के नाम पर किसी की पगड़ी उछालने या किसी को गिराने की चेष्टा वही कर सकते हैं जिन्होंने या तो ऐसी 'सेवा' या 'हित' का कभी खयाल ही नहीं किया या इनकी कोई अलग व्याख्या उन्होंने बना रक्खी है ।

जबतक मुझसे कोई डरता व आशंकित रहता है तबतक मुझ में हिंसा का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए ।

जब बच्चों पर क्रोध न आवे, बीवी पर गुस्सा न उतरे, तब समझो कि अहिंसा की दिशा में कदम बढ़े हैं ।

सपने में एक खिड़की से मैंने एक शेर को अपनी तरफ लपकते हुए देखा । मैंने तैश में खिड़की उखाड़कर उसके सिर पर दे मारी । जगने पर मैंने नतीजा निकाला—भगोड़ा नहीं, तो अभी अहिंसक भी नहीं हूँ ।

अहिंसा

[ब्रजमोहन गुप्त]

बात विद्यार्थियों के बीच की है। प्रश्न किया ा कि अहिंसा का समर्थन किया जाता है, तु वर्तमान संकट में उसका क्या उपयोग किया सका ?

निःसंदेह अहिंसा-बल अभी तक योरप की ा-जनित ज्वाला को शांत करने में समर्थ नहीं सका। अहिंसा के नाम पर हिटलर से एक अधिक बार अपील की गयी, किन्तु साक्षात् उसका कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। ति के समर्थक राष्ट्र भी धीरे-धीरे युद्ध-ज्वाला ईंधन बनने के लिए खिंचे चले आये। आज उस युद्ध की लपटें भारत के द्वार को भी पार चुकी हैं किन्तु यह सिद्ध नहीं हो सका कि नाश से देश को बचाने में अहिंसा किस प्रकार र्थ हो सकेगी ? बड़े-बड़े पक्के विश्वासियों के विश्वास डिग गये। कहा गया कि देश की ा के लिए तो सेना और शस्त्र की आवश्यकता ी ही। इस प्रकार कांग्रेस ही गांधीसे भिन्न ा में चल पड़ी।

कायरता को तो गांधीजी स्वयं ही हिंसा से बदतर बता चुके हैं, किन्तु प्रश्न है कि क्या त्मक बल-प्रयोग से भी राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता रक्षा कर सके ? अपने देश को विनाश से बचा ? फ्रांस संसार की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्तियों में से एक गिना जाता था। किन्तु ने सहयोगी ब्रिटेन की विनाशकारी शक्तियों साथ मिलकर भी वह कितने दिन टिक सका ? र फिर सम्पूर्ण यूरोप की संहारक शक्तियों के बले भारत की संहारक शक्तियों की तो ना ही क्या ?

बात गलत नहीं है; किन्तु हिंसा भी देश की ा में कारगर नहीं हो सकी, क्या यह अहिंसा समर्थन में काफी जानदार दलील है ? अगर व्यक्ति एक राह चलकर अपने लक्षित न तक नहीं पहुँच सका, तो क्या यह मान ी की लाचारी है कि उल्टी दिशा में जो ी पगडंडी गयी है वह लक्षित स्थान तक पहुँचा ही देगी, या कि वहाँतक पहुँचाने में वह सहायक अवश्य ही होगी ?

अहिंसा अभीतक युद्ध-ज्वाला को शांत करने में सफल नहीं हुई, किन्तु चित्र एक और सामने आगया। हजार लठैतों का एक दल रिवाल्वर से गोली चलाते हुए एक व्यक्ति को मारने के लिए आगे बढ़ा। उनमें से पाँच-सात धराशायी हुए; किन्तु आगे बढ़नेवाला दल इरादे का कच्चा नहीं था। जल्दी-जल्दी कई बार रिवाल्वर में और गोलियाँ भरी गयीं। दल के बीस, पचास, सौ आदमी और काम आये किन्तु अंत में रिवाल्वर से रक्षित वह व्यक्ति मारा गया। तो क्या अब मुझे यह कहने के लिए छुट्टी है कि क्योंकि उस व्यक्ति की रिवाल्वर उन लाठियों के मुकाबले भारी साबित नहीं हुई इसलिए लाठी रिवाल्वर से अधिक कारगर हथियार है ?

शायद गांधीजी भी कहते हैं कि हजार हिंसात्मक सैनिकों के मुकाबिले सौ अहिंसात्मक सैनिक तो तैयार करो, तब निर्णय देना कि दोनों में से किसकी शक्ति अधिक है ?

एक विद्यार्थी फिर भी बोला—निकले तो थे साम्प्रदायिक दंगे के समय गणेशशंकर विद्यार्थी अहिंसा का अस्त्र लेकर।

बेशक, वे अहिंसा का अस्त्र लेकर निकले थे और काम आगये। किन्तु अहिंसक औरों के मुकाबले अपने आपको बचाने की चिन्ता करता कब है ? इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। प्रत्येक साम्प्रदायिक दंगे में पचासों ही व्यक्ति मर जाते हैं। किन्तु कौन कह सकेगा कि उन पचासों सैकड़ों की मौतों के मुकाबले अकेले शंकर का बलिदान संकट टालने में सैकड़ों गुना अधिक कारगर नहीं हुआ। कौन कह सकेगा कि प्रसादरूप में ग्रहण की गयी गणेशशंकर की मौत ने उसी साम्प्रदायिक दंगे में और बाद के भी सैकड़ों दंगों में हजारों व्यक्तियों की जान नहीं बचायी ?

ऊपर दिये चित्र की ओर एक बार और

ध्यान आर्कषित करना चाहूँगा। रिवाल्वरवाले व्यक्ति ने एक कार्य किया किन्तु उसके व्यवहार का एक और तरीका भी हो सकता था। सामने से आते हुए लठैतों से वह कहता—देखो, भरा हुआ जो मेरा यह रिवाल्वर है, यह भी मैं तुम्हारी ही ओर फेंके देता हूँ। जो कुछ करने तुम आ रहे हो वह तुम्हारे हक में भी अच्छी बात नहीं है। वैसे, लो निहत्था मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, पहले मेरा सिर तुम उतारलो, फिर मेरे बच्चों तथा अन्य आश्रितों पर हाथ उठाना। यह आग्रह मेरा नहीं है कि इस व्यवहार से उसके प्राणों की रक्षा हो ही जाती, किन्तु इस विषय में मैं निश्चिन्त हूँ कि इस प्रकार की मौत वैमनस्य को काटने में अधिक कारगर होती।

एक विद्यार्थी को शंका हुई कि हत्या के लिए कटिबद्ध, सामने से आते हुए व्यक्ति को अहिंसा की बात कैसे समझायी जाये ?

अहिंसा दूसरे को समझायी जाने से अधिक अपने अभ्यास के लिए है। मारने के लिए सामने से आते हुए व्यक्ति के लिए अगर हमारे हृदय में रोष के स्थान पर उसी प्रकार की व्यथा हो जैसी पत्नी के कड़े बेचकर सट्टे के दाँव पर लगा देनेवाले अपने सगे भाई के लिए होती है तो वह व्यर्थ नहीं जायगी।

अब से लगभग बीस सदी पूर्व लोगों ने ईसा को सूली पर लटका दिया। काँटों का ताज उसके सिर पर रखा गया। उसके हाथों और पाँवों में कीलें ठोक दी गयीं। भाले की चोट उसकी पसलियों पर की गयी तो खून का फव्वारा छूट पड़ा। हृदय में व्यथा और नेत्रों में आँसू ईसा के भी थे। किन्तु वह व्यथा मौत के भय की और आँसू शारीरिक कष्ट के नहीं थे। व्यथा और आँसू सत्यासत्य से अनजान उन व्यक्तियों के उस अनुचित कृत्य के लिए थे, उसी प्रकार जैसे एक अनजान अंधे दुर्बल व्यक्ति को काँटोंवाले गहरे गढ़े में गिरते देखकर अचानक उमड़ आते हैं इनके प्रति रोष के स्थान पर ईसा के हृदय में उनके उस पाप को भी अपने सिर पर ओढ़ लेने की उत्कट इच्छा थी और सूली पर लटके-लटके अंत समय उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि मेरे आसमानी पिता! इन सबको तू क्षमा कर क्योंकि ये नहीं जानते कि इन्हें क्या करना चाहिए और क्या कर रहे हैं ?

बाइबिल में लिखा है कि (शायद) तीसरे दिन ईसा जिंदा होगया। मेरी आस्था है कि दुबारा जिंदा होजाने के बाद फिर वह कभी मरा नहीं। बादलों और आसमान के उस पार कहीं स्वर्ग में भी वह नहीं चला गया क्योंकि हम सब के बीच आज भी वह विद्यमान है।

सच है कि संसार के सभी ईसाई राष्ट्र आज पैशाचिक संहारकारी युद्ध में रत हैं किन्तु यह कौन कह सकेगा कि ईसा का बलिदान, मनुष्य के, अपने पूर्वज बनमानुस का उत्तराधिकारी बने रहने की अपेक्षा, ईश्वर का प्रतिरूप बनने में सहायक नहीं हुआ।

उनके जीवन-काल में ईसा के शिष्य दस-बारह थे। सुकरात के शागिर्दों की संख्या भी अँगुलियों पर गिनी जाती है। बुद्ध के अनुयायी उनके जीवन-काल ही के देशदेशांतरों तक में हो गये थे ऐसे प्रमाण नहीं मिलते। अबसे ढाई-दो हजार वर्ष पूर्व मानव-समाज सुकरात और ईसा के आदर्शवाद को नहीं झेल पाया और उन्हें मृत्यु का दंड मिला। उन महापुरुषों के शुद्ध अहिंसात्मक बलिदान मानवता के विकास के दृष्टिकोण से, व्यर्थ नहीं चले गये, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि आज का मानव समाज गांधी के उन महापुरुषों से भी ऊँचे आदर्शवाद को झेलने में समर्थ हो सका है और उनके जीवन-काल में ही देश-देशांतरों में उनके न जाने कितने अनुयायी हैं !

इन सब बातों पर विचार करके क्या हम कह सकते हैं कि अहिंसा कभी भी पराजित हुई है या होगी ?

रु-शिष्य-समस्या

[गणेशदत्त 'इन्द्र']

आज भारत के सामने जो कई समस्याएँ ज्ञाने को हैं उनमें एक गुरुशिष्य-समस्या भी है। शिष्य की दृष्टि में गुरु का कोई विशेष महत्व —कोई आदर नहीं। उसके प्रति कोई श्रद्धा, सम्मान नहीं। इसी तरह गुरु की दृष्टि में कोई गण्य वस्तु नहीं, उसपर कृपा नहीं, नहीं, वात्सल्य नहीं, अनुकम्पा नहीं, शुभ-नाएँ नहीं। दोनों ओर से समान व्यवहार वर्षों एक दूसरे के साथ रहें, दोनों का अधि-समय एक दूसरे की संगति में व्यतीत हो, कार और चित्रपट जैसा सम्बन्ध रहे और भी एक दूसरे के प्रति कोई श्रद्धा, कोई कोई आदर और कोई कृपा न रखे? यह भारत का कोई प्राचीन आंदर्श नहीं है। तीय संस्कृति में ऐसे व्यवहार को कोई स्थान दिया जा सकता। हमारे इतिहासों में गुरु-य-सम्बन्धी अनेक बेजोड़ कथाएँ मिलती हैं। शिष्यों के उज्ज्वल सम्बन्ध की अनेक गाथाएँ परन्तु आज उसी आदर्श भूमि पर यह गुरु-समस्या उत्तरोत्तर जटिल ही नहीं गर्हित होती जा रही है। इसका मुख्य कारण वर्त्त-पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति है। वर्तमान शिक्षा स समस्या पर ध्यान ही नहीं दिया गया। लिए वह निरन्तर विकृत होती जा रहीं है। भारतीय शिक्षार्थियों और शिक्षकों के मन ऐसा कुप्रभाव जमाया है कि हमारी संचित ति का एक दम सत्यानाश हो गया।

वर्षों घोरतम परिश्रम करने के बाद और के नाम पर सैकड़ों, हजारों रुपयों की कर देने के बाद भी आज हमें इस में वह आनन्द, वह सुख और वह शान्ति दिखाई पड़ती जो पहले भारत में दीख थी। आज का गुरु-शिष्य-जीवन हाहाकार-न गया है। वे एक-दूसरे के शत्रु से बने ई पड़ते हैं। शिक्षार्थी समझता है—अध्यापक पढ़ाने की तनख्वाह पाता है उसका कर्त्तव्य वह पढ़ाये। यदि वह पढ़ाता है तो किसी के माथे अहसान ही क्या है? वह नहीं पढ़ायेगा तो निकाल दिया जायेगा, उसके स्थान पर कोई दूसरा हमें पढ़ाने आयेगा ही—जगह सूनी नहीं रह सकती इत्यादि। गुरु समझता है कि मैं वेतनभोगी हूँ अतः नियत समय तक मुझे पढ़ाना है, कोई पढ़े या न पढ़े, इसकी विशेष चिन्ता नहीं रहती। उसे तो वह पढ़ाई करनी है जिससे उसके निरीक्षक और उच्चाधिकारी उसे अच्छा समय और तरक्की देते रहें। अधिकारियों के विचारों और व्यवहारों का रंग-ढंग देखकर अध्यापक विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं। बेचारों को पेट भरना है अतएव अधिकारियों की प्रसन्नता का ध्यान उन्हें विद्यार्थियों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है।

इसी समस्या का हल यदि हमें खोजना है तो हमारे प्राचीन ऋषियों की ओर देखना होगा वैदिक काल में

"आचार्यदेवोभव, मातृदेवोभव, पितृदेवोभव"

आदि वाक्य शिक्षार्थियों के आदर्श थे। छान्दोग्योपनिषद् में भी कहा है:

"आचार्यवान पुरुषोवेद।
तस्मादात्मज्ञंह्यर्चयेद् भूतिकामः।"

जो पुरुष सद्गुरु से विद्याप्राप्त करते हैं वे ही ज्ञानी बनकर अभ्युदय को पहुँचते हैं। इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् में भी कहा गया है:

"तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्,
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं॥"

अध्यात्म-ज्ञान की इच्छा से पूजा-द्रव्य लेकर गुरु के पास पहुँचना चाहिए। श्वेताम्बर में कहा है:

"यस्य देवे पराभाक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशते महात्मनः॥"

ईश्वर-भक्ति की भाँति ही यदि गुरु-भक्ति की जाये तो वह संसार में बड़ा भारी ज्ञानी हो सकता है। अर्थात् आचार्य के प्रति पूज्य बुद्धि रखना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं:

"आचार्योपासनं शौचस्थैर्यमात्मविनिग्रहः।"

ज्ञान-प्राप्ति के लिए पवित्रता, स्थिरता और चित्त-निग्रह जिस प्रकार अपेक्षित है उसी प्रकार गुरु की सेवा भी आवश्यक है।

"यद्यप्युद्दाम बुद्धिः पठनपरिणयेद्वेदशास्त्रार्थसारार्थौं।
नह्याचार्यं विनासौ तदपिपरिचिनोत्येतदुक्तं रहस्यम्।

कितना ही कोई बुद्धिमान व्यक्ति अभ्यास द्वारा वेदशास्त्रों का अध्ययन क्यों न करले परन्तु विना गुरु की सहायता के उसका रहस्य समझ लेना कठिन है।

'तद्ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनुभवउदितोयस्यकस्यापिचेद्वै।
पुंसः श्रीसद्गुरूणामतुलितकरुणा पूर्ण पीयूष दृष्ट्या॥'

गुरु की अनुपम दयादृष्टि से ही मनुष्य ज्ञान का अधिकारी हो सकता है।

"न मीमांसा तर्क ग्रहगणित सिद्धान्तपठनैः—
न वेदैर्वेदान्तैः स्मृतिभिरभिधानैरपि न च।
तथापि छन्दाव्याकरण कवितालंकृति मयैः,
मुनेस्तत्त्वावाप्तिर्निज गुरु मुखादेव विहिता।"

तर्क, मीमांसा, ज्योतिष, सिद्धान्त, वेद, वेदांत, स्मृति, कोष, छन्दशास्त्र, व्याकरण, साहित्य आदि का ज्ञान विना गुरुमुख के व्यर्थ हो जाता है। विष्णु-स्मृति में लिखा है :

"गुरुशुश्रूषणश्चैव पापबन्धैः प्रशाम्यति॥"

गुरु की सेवा से सब पापों का नाश हो जाता है।

"स्वराज्य साम्राज्य विभूतिरेषा—
भवत्कृपा श्रीमहिमप्रसादात।
प्राप्तामया श्री गुरुवे महात्मने
नमोनमस्तेऽस्तु पुनर्नमस्ते।"

स्वराज्य, साम्राज्य और ऐश्वर्य गुरु की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है—ऐसे गुरुदेव को बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

"नमस्तस्मै सदैकस्मै कस्मै चिन्महसे नमः।
यदेतद्विश्वरूपेण राजते गुरु राजते॥"

जो अनिवर्चनीय आनन्ददाता है, जो संसारके ज्ञान का भण्डार है उस गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ।

"हिमकर करसार सान्द्राः कांक्षितवरदान कल्प विशेषतः।
श्री गुरुचरण कटाक्षाः शिशिरा शमयन्ति चित्त सन्तापम्॥

कल्पवृक्ष के समान, इच्छित वर देनेवाले गुरुदेव के चरण मनः संताप को नाश करते हैं।

"गुरुकृपयैव सुनावा प्राक्तनभाग्य वृद्धमारुतया।
दुःसह दुःखतरङ्गस्तुङ्ग संसार सागरस्तीर्णः।"

इस असह्य दुःख-तरंगों से उद्वेलित संसार-समुद्र को गुरुकृपा रूपी नाव के द्वारा भाग्य के तूफान में भी पार किया जा सकता है।

"अज्ञानान्ध विहन्ता विरचित विज्ञान पङ्कजोल्लासः।
मानस गगनतलं मे भासयति श्रीनिवास गुरुभानुः॥

अज्ञानान्धकार को हटानेवाले और ज्ञान-कमल को विकसित करनेवाले मनरूपी आकाश में विराजमान सूर्यतुल्य गुरु हैं।

"गुरौ विमुखतां याते विमुखाः सर्वदेवताः।
भवन्ति क्रियमाणांच पुण्यं पापं हि जायते॥"

जब गुरु अप्रसन्न हो जाता है तो सब देवता भी रुष्ट हो जाते हैं और पुण्य कर्म भी पाप में परिणत हो जाते हैं।

गुरुं यो मान्यवैरन्यैः समं पश्यति मोहतः।
न तस्यास्मिन् भवेल्लोके सुखंनैव परत्र वा॥

जो व्यक्ति अपने गुरु को साधारण मनुष्य की भाँति मानता है उसे इस लोक और पर-लोक में शान्ति नहीं होती।

"एकाक्षर प्रदातारं गुरुं यो नैव मन्यते।
समूढो नरकं यान्ति यावदाभूति संप्लवम्॥"

जो अक्षर सिखानेवाले गुरु की अवहेलना करता है वह प्रलयपर्यन्त नरक में रहता है।

"कृतघ्नानां हि ये लोका ये लोका ब्रह्मघातिनाम्।
सृत्वातानभिसंयाति गुरुद्रोहपरो नरः॥"

कृतघ्नी और ब्रह्महत्या करनेवालों की जो गति होती है वही गति गुरुद्रोह करनेवाले की भी होती है। इत्यादि सैकड़ों श्लोक गुरुमहिमा के हमारे प्राचीन आर्षग्रन्थों में उपलब्ध हैं। यदि सबको यहाँ लिखने का स्थान नहीं है। यदि गुरुमहात्म्य-सम्बन्धी सभी प्राचीन वचनों को संग्रह किया जाये तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो

ता है। यहाँ हमने हमारे भारतीय-अर्वाचीन ार्थियों के सामने, वर्तमान गुरुशिष्य समस्या हल करने एवं इनपर मनन करने के ए कुछ वाक्य उद्धृत कर दिये हैं, आशा है ये वाक्य इस समस्या के हल करने में सहायक जरूर होंगे। इस वाक्य के साथ इस लेख को भी समाप्त करता हूँ—

“श्री गुरुचरणद्वंद्वं वन्देऽहं मथितदुःसहद्वन्द्वम्॥

ृह-पुस्तकालय और महिलाएँ

[कमलेश्वर]

ज्योंही हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि ेक भारतीय के घर में छोटा-मोटा एक निजी तकालय होना चाहिए त्योंही यह प्रश्न उठता कि घर में रहनेवाली महिलाओं का गृह- तकालय से क्या सम्बन्ध हो सकता है ?

रतीय समाज की विशेषता

भारतीय समाज के प्राण उसके सार्वजनिक वन में नहीं, वरन् उसके कौटुम्बिक जीवन विद्यमान हैं और सदा से रहे हैं। गत १०० र्ष से भारत में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, वसायिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में उत्थान के प्रयत्न किये गये हैं उनमें पूर्ण रूप से सफ- ता प्राप्त न होने का एक विशेष कारण यह रहा है कि इन प्रयासों में गृह-जीवन के र्माण एवं संचालन को कोई स्थान प्राप्त नहीं आ। इसीलिए हमें भारतीय जीवन की वर्तमान वनति के कारण कौटुम्बिक जीवन के कलह, , असन्तोष, अविश्वास, भीरुता और संघर्ष- वातावरण में प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। रत को फिर से प्रभावशाली, आदर्श तथा त्र बनाने के लिए उसके गृह-जीवन में परि- र्तन, परिवर्द्धन और संशोधन करना अनिवार्य- है। इस गृह-जीवन का आधार-स्तम्भ हैं हिलाएँ। जबसे उनका सम्पर्क सभ्यता की विध विचार-धाराओं से टूट गया और जब- देश की सामाजिक, राजनैतिक एवं व्याव- यिक क्षेत्रों की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का अव- कन न करने से वे गृह-जीवन में समयानुकूल वर्तन न कर सकीं, तबसे उनकी, फलतः रतीय समाज की अवनति का आरम्भ हुआ।

पुनर्निर्माण के लिए महिलाओं को फिर से सभ्यता की विविध धाराओं का अवलोकन करना अभीष्ट है और इस सम्पर्क के आधार पर उन्हें घर में ऐसे वातावरण का सूत्रपात करना चाहिए जिसमें भारतीयों में शौर्य, बल, आत्मविश्वास, विवेक का पुनः संचार हो जाये। चारित्र्य के ये गुण मानव जीवन की अमूल्य निधि हैं, जो उसको उच्च, आदरणीय और देवतुल्य बनाते हैं। इस आदर्श को जीवन का लक्ष्य बनाने में और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य को उत्साहित करने में अनेक साधनों में से एक साधन पुस्तकों का भी है। सम्भवतः दूसरे साधनों से इसका प्रभाव अधिक और स्थायी होता है।

स्वाध्याय

पुस्तकों के प्रति उदासीन रहने से जहाँ स्त्रियों ने अपना अहित किया, वहाँ कौटुम्बिक जीवन अव्यवस्थित बन गया और राष्ट्र कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। अतः महिलाओं को स्वयं ग्रंथ-अवलोकन के प्रति श्रद्धा और प्रेम उत्पन्न करना चाहिए। जिस प्रकार वे नित्य प्रातः स्नान करती हैं, रसोई बनाती हैं, उसी प्रकार नियमित रूप से कुछ-न-कुछ अध्ययन भी करने की आदत डालने का प्रयत्न करें। हमारे पूर्वजों ने अध्ययन को वही स्थान दिया है जो पूजा आदि धार्मिक कर्त्तव्यों को प्राप्त है। इसलिए तो हम ‘पूजा-पाठ’ एक साथ कहते हैं। किसी चीज का बार-बार अन्धविश्वास से रटने का नाम पाठ नहीं है अपितु किसी वस्तु का मर्म अथवा समझाने के लिये अनेक बार मनन करने का नाम है। किसी चीज का परिशीलन करते हुए उसके प्रति

श्रद्धा और भक्ति का भाव रखना **पूजा-पाठ** की भावना को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। इसी के उदर में भारत की धार्मिक निष्ठा केवल भावुकता पर नहीं बल्कि आध्यात्मिक बल और और विवेक पर ही अवलम्बित थी। और धार्मिक निष्ठा के इस सात्विक रूप का पुर्ननिमाण हो सकता है स्वाध्याय के आधार पर।

प्राचीन काल में पुस्तकों की इतनी अधिकता नहीं थी जितनी आजकल होगयी है। इसलिए इनका क्षेत्र भी उस समय सीमित था, उनका मनन केवल ज्ञानवर्धन और आत्म-उन्नति की इच्छा से किया जाता था, परन्तु अब पुस्तकें ज्ञान-भण्डार के साथ-साथ मनोरंजन की वस्तु भी बन गयी हैं। इनका क्षेत्र इतना विस्तृत होगया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार पुस्तकें चुनने में भी कठिनाई होने लगी है। अंग्रेजी निबन्धकार बेकन ने ठीक ही कहा है कि "कुछ पुस्तकों का अवलोकन करना पर्याप्त है, अन्य का पृष्ठपर्यटन करना उचित है, परन्तु कुछ थोड़ी-सी पुस्तकें ऐसी हैं जिनका भलीभाँति मनन होना चाहिए।"

क्या पढ़ें ?

श्रम-विभाग की प्रणाली ने अपना प्रभुत्व शारीरिक परिश्रम के अतिरिक्त मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन में भी स्थापित कर लिया है। इसके फल-स्वरूप हमारे जीवन का दृष्टिकोण संकुचित होगया है और हम उन्हीं पुस्तकों को पढ़ते हैं जिनकी व्यावसायिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से उपयोगिता मानते हैं। परन्तु गृह-पुस्तकालय में सभी विषयों की पुस्तकों का समावेश होना चाहिए और महिलाओं को भी केवल उन्हीं विषयों की पुस्तकों का अध्ययन नहीं करना चाहिए जिनका उनके जीवन से निकटतम सम्बन्ध है अर्थात् भोजन, शिल्प-कला, शिशु-पालन इत्यादि। विद्या-क्षेत्र को इस प्रकार सीमित करना अनुचित प्रतीत होता है। यद्यपि भारतीय महिलाओं के जीवन का ध्येय विशेषज्ञ बनना नहीं है, उनका जीवन विज्ञान-प्रधान नहीं कला-प्रधान है फिर भी कला-कौशल के लिए विज्ञान का सहयोग आवश्यक है। अतः विज्ञान के विशाल क्षेत्र के विविध विषयों का थोड़ा-बहुत परिचय होना लाभप्रद है।

मनोरंजन के लिए पढ़ने की सामग्री जुटाने का प्रश्न तो और भी कठिन है। प्रायः यह कहा जाता है कि जो मनुष्य के आनन्द तथा उल्लास की वस्तु है, वही उसके पतन का द्वार है। उपन्यास, गल्प, गाथा आदि साहित्य को किशोरों के हाथ में देने में बड़े-बूढ़े सदा आनाकानी करते आये हैं। कहा जाता है कि ऐसी पुस्तकों को पढ़ने से मनुष्य जीवन की कठिनाइयों से घबराने लगता है, कल्पना-जगत् में घूमता है, उसका चरित्र दूषित हो जाता है। परन्तु फिर भी पूछा जा सकता है कि क्या ये दोष उपन्यास आदि में विद्यमान होते हैं? ऐसा तो जान नहीं पड़ता। रामायण-महाभारत की कथा भी तो उपन्यास के सदृश है। यदि किसी ने रामायण या महाभारत की कथा पहिले न सुनी हो तो उसे उनके पढ़ने से उपन्यास का-सा आनन्द आयेगा। दोनों पुस्तकों में ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटी हैं जबकि पाठक बार-बार पूछता है, अब क्या होगा? इसका क्या बनेगा? फिर भी इन पुस्तकों के पाठ का माहात्म्य बहुत समझा है। क्यों?

असल बात यह है कि जिन कठिनाइयों में मनुष्य स्वयं व्यथित तथा व्याकुल रहता है, उन्हीं कठिनाइयों में दूसरे को देखकर या उसका वर्णन या पढ़कर वह विचारमग्न हो जाता है, उस कठिनाई से बाहर निकलने का मार्ग ढूंढ़ने के लिए यत्नशील हो जाता है, उन कठिनाइयों में कौन सा आचरण न्यायसंगत है—इसका नैतिक दृष्टि से निश्चय करने की भी चेष्टा करता है। इसके फलस्वरूप मनुष्य आगामी कठिनाइयों में वीरतापूर्वक झेलने का साहस करता है, विषम परिस्थितियों में वह अपने चारित्र्य-बल को बनाये रखने के लिए उद्यत हो जाता है। गल्प, नाटक और उपन्यास की यहसामग्री मनुष्य को इतना चरित्रवान बनानेवाली होनेपर

मनोरंजन की सामग्री है। सम्भवतः इसी ण से रामायण और महाभारत का इतना हत्त्व बताया जाता है। इसी आशय को ध्यान रखते हुए जार्ज बनार्ड शा ने अपने कों के संस्करण की प्रस्तावना में लिखा है "यदि मैं तुम्हारा उपहास करता हूँ तो तुम्हें याद रखना चाहिए कि मुझ जैसे सुखान्त कार का काम है उपहास से नैतिक भावना द्ध करना, और यदि मैं तुम्हें तुम्हारी ा अनुभव कराता हूँ तो तुम्हें यह याद ा चाहिए कि इसी कार्य से मैंने मूर्खता से री रक्षा कर दी—ठीक उसी प्रकार जिस र दन्तवैद्य तुम्हारा दाँत उखाड़कर दन्त-ा को शान्त कर देता है।

इस दृष्टिकोण से लिखित मनोरंजन की कों में जीवन की वास्तविकता का अंश ा है। जीवन की कसौटी पर हम उन पुस्तकों रख सकते हैं, और उनको अपने जीवन का बना सकते हैं। मनोरंजन के लिए ऐसी कों का पढ़ना लाभप्रद होता है।

ना पढ़ा जाये और कब ?

मानव समाज के सब व्यक्तियों के लिए की एक मात्रा निर्धारित करना इतना ही न है जितना उन सबके लिए भोजन की मात्रा स्थिर करना। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि बिना चिंतन के ा ऐसा है जैसा बिना पचाये भोजन करना। का अभ्यास डालने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि अध्ययन प्रति दिन निश्चित समय पर करने का प्रयत्न किया जाये। उस समय बड़ी उत्सुकता से, चाह से, लगन से, पुस्तक को खोला जाये। पहले-पहल यह स्थिति बहुत अखरेगी, पढ़ने में मन नहीं लगेगा, कई-कई दिन बिना पढ़े—बिना अध्ययन किये व्यतीत हो जायेंगे। परन्तु धैर्य से धीरे-धीरे हमारी यह आदत स्वाभाविक रूप धारण कर लेगी। तब बिना कुछ अध्ययन किये हमें स्वयं ही संतोष नहीं होगा। इसके लिए सर्वप्रथम आकर्षक जिल्दों में बँधी हुई कुछ थोड़ी सी पुस्तकों को एक अलमारी में सजा देना चाहिए ताकि पहले-पहल उनके आकार से परिचय किया जाये, फिर उनके विषय से सम्पर्क स्थापित किया जाये अन्त में धीरे-धीरे उन्हें चिर-स्थायी मित्र बनाया जाये।

फिर तो पुस्तकें इतनी प्रिय हो जायेंगी कि यदि कभी किसी सखी-सहेली ने उन सजी-सजायी पुस्तकों को देखकर पूछा, "बहन, यह पुस्तकें कैसी है ?" तो वे बड़े प्रेम से उनका परिचय कर सकेंगी और उनमें वर्णित विषय की संक्षिप्त व्याख्या से अपनी सखी को उन्हें पढ़ने के लिए लालायित कर सकेंगी। कभी अवकाश के समय में वे अपने कुटुम्ब के बालकों को कथा-कहानी के रूप में इन पुस्तकों का परिचय सरल परन्तु रसीले शब्दों में करायेंगी, ताकि उनके मन में भी यह उमंग पैदा हो कि "बड़े होकर हम भी इन पुस्तकों का अध्ययन कर अमृतपान करेंगे।"

प्रेम और वासना

जो काव्य का उद्गम प्रेम को मानते हैं, मैं उनसे असहमत नहीं। किन्तु वासना और प्रेम लग-अलग वस्तुएँ हैं; वासना शरीर का धर्म है, प्रेम हृदय का।

जो शरीर सुख चाहता है, समझना चाहिए वह वासना की तृप्ति चाहता है, जो आत्म-चाहता है, समझना चाहिए उसके हृदय में प्रेम है। प्रेम ऊपर उठानेवाला है, वासना नीचे नेवाली।

प्रेम की पावन आधार-शिला पर खड़ी हुई रचनाएँ मानव-जाति के ज्योतिस्तम्भ का कार्य कर है, किन्तु वासना के गहरे जल के आवर्त उसे अकाल ही उदरस्थ करना चाहते हैं। समाज के र कवि को समाज की तरणी वासना के मधुर-मुखर आवर्त-विवर्तों से सँभालकर खेना चाहिए प्रत्येक यात्री अपने यात्रा के इष्ट पथ पर पहुँच सके।

—सोहनलाल द्विवेदी

राजस्थान की एक आदर्श शिक्षण-संस्था

[विट्ठलदास मोदी]

"पिताजी मेरे लिए स्कूल बनवा दीजिए मैं वहाँ पढ़ाऊँगी !"

"हाँ-हाँ जरूर, पर तुम ईंट तो बनाओ। बिना ईंट कहीं स्कूल बनता है ?"

घर बनने की तैयारी हो रही थी, मजदूर लगे थे, ईंटें पक रही थीं, बढ़ई पल्ले-कड़ी बना रहे थे। लड़की ने ईंटें बनानी शुरू कीं, धीरे-धीरे लगभग सौ के बनायी थीं। सौ पूरी होते न होते लड़की को एक रात ज्वर आया और वह अपने पिता-माता, मित्र-सम्बन्धियों को शोकातुर छोड़ चौबीस घंटे के अन्दर चल बसी ! माता रतनदेवी जी शास्त्री और पिता हीरालालजी शास्त्री उससे बड़ी आशाएँ लगाये बैठे थे। वह एक ही संतान पुत्र और पुत्री दोनों की पूर्ति करती थी। रतनदेवीजी तो विक्षिप्त-सी हो उठीं। वे उस कष्ट को महीनों न भुला सकीं। अन्त में इस दुःख-समुद्र के मंथन से एक विचार-रत्न निकला—'जो शान्ता करना चाहती थी वह मैं ही क्यों न करूँ ? मित्रों की बच्चियाँ भी तो अपनी ही हैं; उन्हें ही क्यों न मातृजाति एवं देश की सेवा के लिए तैयार किया जाये ?' यह विचार बड़ा सुखद था और साथ ही उठानेवाला। हीरालालजी शास्त्री को भी भाया। और शान्ता की श्मशान-भूमि में शान्ता की बनायी उन ईंटों की नींव पर 'श्री शान्ताबाई शिक्षा-कुटीर' बनी। पाँच-सात बच्चियों को लेकर मातृजाति की सेवा का कार्य शुरू कर दिया गया। फिर तो लड़कियाँ बढ़ीं, मकानात बढ़े, स्टाक बढ़ा और जरूरत के लायक रुपया भी आता गया और आज लड़कियों की संख्या १८० तक छात्रावास में रखने की हदतक पहुँच चुकी है। यह कैसे हो गया यह स्वयं रतनदेवीजी को भी नहीं मालूम।

बनस्थली जयपुर स्टेट रेलवे पर निवाई से पाँच मील की दूरी पर है। मैं निवाई पहुँचा और एक बहली किराये पर करके लगभग तीन बजे बनस्थली पहुँचा। विद्यालय के बन्द होने में घंटे डेढ़ घंटे की देर थी। अध्यापन चल रहा था पर छोटी लड़कियों की छुट्टी हो चुकी थी। चित्रकला की कक्षा बन्द नहीं हुई थी। वहाँ जाने पर पता लगा कि विद्यालय ने मातृजाति के उत्थान की दृष्टि से राष्ट्रीयता को मद्देनजर रखते हुए अपने शिक्षालय को पाँच अंगों में बाँट रखा है : (१) नैतिक और व्यावहारिक शिक्षा, (२) खेल और व्यायाम, (३) घर के काम-काज (४) कला और उद्योग, (५) पुस्तकीय शिक्षा। जिस प्रकार यहाँ पुस्तकीय शिक्षा को पाँचवें क्रम पर रखा गया है, ठीक उसी तरह आज की डिग्री दिलाने की चमक से अपने को बचाकर विद्यालय में पुस्तकीय शिक्षा को सबसे अन्तिम स्थान ही दे रखा है। फल यह है कि जहाँ विद्यालय छात्राओं में मनुष्योचित व्यावहारिक गुण पैदा करने एवं उनमें सर्वधर्मसमन्वय और राष्ट्र-प्रेम के भाव उत्पन्न करने; शारीरिक विकास के अलावा छात्राओं में साहस, स्फूर्ति, संगठन-शक्ति उत्पन्न करने; कुशल गृहिणी एवं माता के गुण पैदाकर शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न करने, जीवन में सुरुचि और सुन्दरता का, स्वावलम्बन का दृष्टिकोण बनाने की ओर अधिक ध्यान दे पाता है वहाँ स्कूल और कालिज में दी जानेवाली साधारण शिक्षा देने के अलावा उसकी अपूर्णता तथा उसके दोषों को यथाशक्ति दूर करने की दृष्टि से विद्यालय ने अपना विशेष पाठ्यक्रम भी शामिल किया है। शारीरिक विकास एवं साहस उत्पन्न करने के लिए जहाँ घुड़सवारी, तलवार, भाला, लाठी, लेजिम, तैरना, फुटबाल, कबड्डी का सहारा लिया जाता है वहाँ घर के काम-काज में पानी भरना, झाड़ू-बुहारी, आटा पीसना, भोजन बनाना, कपड़ों की धुलाई-रंगाई और बर्तनों पर कलई करना आदि शामिल हैं। कला और उद्योग में चित्रकला, संगीत, गर्बा, कताई सिलाई, कशीदा, जिल्दबन्दी, कटाई, चमड़े के बटुवे बनाना, खिलौने बनाना आदि शामिल किये गये हैं।

हाँ, तो मैं जब विद्यालय देखने पहुँचा चित्रकला की कक्षा चल रही थी। यह चित्रकला

विशेष क्लास था इसमें सभी दर्जे की लड़-ां शामिल थीं। लड़कियों को उनकी रुचि झुकाव के अनुसार उन्हें कला की विशेष ा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। वें दर्जे में पढ़नेवाली एक लड़की का चित्र देखा, क्लास की सभी लड़कियों से अच्छा यह उसकी विशेष प्रतिभा के प्रोत्साहन का था कि वह दसवें दर्जे की छात्राओं से भी े चित्र बनाती थी। कताई-कक्षा केवल शोभा-के लिए नहीं लगती देखी। मजबूत सम कातने की ओर ध्यान दिया जा रहा था। की ओर भी पूरा ख़याल था।

पढ़ाई का समय खतम हो गया। लड़कियाँ उद्योग का कार्य करके छात्रावास चली गयीं। ये लड़कियाँ बड़े चाव से कपड़े धोती, खींचती और सफ़ाई-कार्य करती दिखीं। ेज की पढ़ाई करनेवाली बालिकाएँ बिना क के चक्की चला रही थीं और प्रधान रसोड़े अलावा दर्जन भर चूल्हे अलग चल रहे थे तीन-चार लड़कियाँ एक साथ मिलकर न बनाने में व्यस्त थीं। एक तरफ कलई ने का भी काम चल रहा था। सारे छात्रावास रिवार का सा वायुमंडल था। संचालिकाएँ बहन का सा ही सम्मान पाती थीं।

शाम को खेल देखे, तब समझ में आया कि े स्वस्थ होने का रहस्य क्या है? सारी ियों में एक ही लड़की मुझे अस्वस्थ-सी ी। मैंने इसका कारण भाई गोयलजी से पूछा उन्होंने कहा कि आप स्वयं इस बहन से बात ए। पूछा तो पता लगा कि वह बहन विद्या-में अभी सप्ताह भर पहले ही प्रविष्ट हुई है।

कसरत क्या हो रही थी चार फर्लांग के रे में जीवन-सा जग उठा था। प्रभावशाली था। लड़कियाँ कोतल घोड़ों को सरपट दौड़ा थीं। दूसरी ओर साइकिलें चल रहीं थीं, ाल खेला जा रहा था और छोटी लड़कियाँ प की ताल पर कसरत कर रही थीं। विद्यालय में सभी छोटी लड़कियाँ पाजामा और कमीज पहनती हैं और बड़ी लड़कियाँ साड़ी। कसरत के लिए भी विशेष पहनावे की व्यवस्था है। छोटी लड़कियाँ पाजामे की जगह जांघिया पहनती हैं और बड़ी लड़कियाँ पंजाबी शलवार और कुर्ता; ऊपर से बसन्ती दुपट्टे की कमर-पेटी। कुरते का रंग पीला और शलवार का कोकटी। लड़कियों के लिए कसरत के समय यह पहनावा रखकर बड़ी सूझ से काम लिया गया है।

दूसरे दिन और सभी वर्ग देखे—नृत्य का, संगीत का, छोटे बच्चों की पढ़ाई का और कई क्लासों की शिक्षा का। छोटे बच्चे खेल-खेल में पढ़ रहे थे जैसे घर में हों। शिक्षा में हर जगह अपनी विशेषता दिखाई दी। कक्षा में एक बहुत ही सुन्दर नक्शा टँगा था जिसमें निवाई का सारा अध्ययन था और युद्ध की गति-विधि समझानेवाले नक्शे छात्राओं ने बनाकर लगाये थे। एक नक्शे में राजस्थान में सत्याग्रह की प्रगति का सुन्दर अंकन था। हर चीज़ में स्वतंत्र सूझ दिखाई देती थी।

भोजन भी मैंने छात्रावास में ही किया, वही जो छात्राओं को मिलता है। मीठे-खट्टे-तीते से विहीन पर स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही ठीक। हर छात्रा को नित्य एक सेर दूध भी मिलता है। और भोजन, वस्त्र, पाठ्यसामग्री, तेल, साबुन आदि सभी के लिए १३ वर्ष तक की आयु वाली छात्रा से केवल दस रुपया एवं उससे अधिक आयु वाली छात्रा से केवल १२) प्रतिमास लिया जाता है! सबके एक से कपड़े, सबका एक सा भोजन, लड़कियों को आपस में हिल मिल-जाने में सहायक होते हैं और इस तरह लघुता का भाव उत्पन्न नहीं होने पाता।

शान्ताबाई की मृत्यु से जो विचार-बीज पैदा हुआ था, वह आज फूलता-फलता उद्यान बनकर लहलहा उठा है। कवि ने शान्ताबाई की असामयिक मृत्यु को लक्ष करके ठीक ही कहा है:

एक म्हाँको फूल प्यारो, अधखिल्यो कुमला गयो।
सोग बीत्यो, हर्ष छायो, फूल-बाग लगा गयो॥

आरोग्य-मन्दिर से

प्रश्न—मेरा शरीर बहुत अधिक स्थूल था। मैंने दाल-भात व आलू का उपयोग बन्द कर दिया है और दूध भी बहुत थोड़ा पीता हूँ। इससे मेरा वजन तो बहुत घट गया है पर जहाँ-तहाँ त्वचा ढीली-सी हो गयी है और मुंह पर ठुड्डी के पास लटकने सी लगी है। इसे ठीक करने का कोई रास्ता सुझावें। **—जयन्ती शर्मा, हरदोई**

उत्तर—भोजन-सुधार के साथ-साथ कोई कसरत भी की जाये जो वजन और भी तेजी से घटता है तथा शरीर भी सुडौल बना रहता है। टहलना, बन सके तो कुछ दौड़ना, अच्छी कसरत है। पीसने, कूटने, घर में झाड़ू लगाने में भी काफ़ी कसरत होती है। मुंह को पाँच-सात मिनट अँगुलियों से मलना स्वाभाविक आकृति बनाने में सहायक होगा। पहले गरम फिर ठण्डे पानी से तीन-चार बार धोने से भी लाभ होगा।

प्रश्न—कसरत के साथ गहरी साँसों का मेल कैसे बैठाया जावे ?

—रामरेखा उपाध्याय, कानपुर

उत्तर—कुछ कसरतें ऐसी जरूर हैं जिनके साथ गहरी साँसों को सम्मिलित करना संभव एवं लाभदायक है। पर अच्छा यही है कि कसरत करते समय साँस स्वाभाविक तौर से चलती रहे। कसरत से ध्यान हटाकर साँस की ओर लगाने में कइयों की कसरत में बाधा पड़ सकती है। उसके लिए उन्हें अलग ही समय निकालना चाहिए।

प्रश्न—मुझे सवेरे उठते ही शौच होता है और दोपहर और शाम को भोजन करने के बाद ही फिर शौच की हाजत होती है। लोग इसे बुरा कहते हैं और मुझे भी परेशानी होती है। क्या यह संभव हो सकता है कि यह आदत छूट जाये ? **—शालिग्राम गोयल, भोपाल**

उत्तर—यदि मल स्वाभाविक हो तो चिंता की कोई बात नहीं है। कई लोगों का अनुभव है कि भोजन के बाद जब शौच होता है तो अधिक साफ होता है। इसका कारण भी है। जब भोजन किया जाता है तो उस समय बड़ी आँतों की मल को नीचे की ओर लेजाने की चाल चौगुनी बढ़ जाती है। आप इसके लिए चिन्ता न कीजिए। पेशाब-पाखाने की जब हाजत हो तब तुरन्त जाना ही चाहिए।

प्रश्न—इधर प्रायः नौ महीने से मेरी त्वचा सूखी-सी रहती है। बारबार प्यास लगती है और सुस्ती सी छाई रहती है। मेरे डाक्टर मेरे पेशाब की जाँच के बाद बताते हैं कि मुझे मधुमेह-रोग हो गया है। वे कहते हैं कि मेरे पेशाब में दो प्रतिशत चीनी जा रही है। वे मुझे जौ-चने की रोटी और गोश्त खाने को कहते हैं और दूध-फल के लिए मना करते हैं। मेरी तबियत शन्तरा खाने को बहुत चाहती है और दूध पीना भी मुझे बहुत प्रिय है। आपकी क्या राय है ? **—गोमतीप्रसाद, दरभंगा**

उत्तर—मधुमेह के दो ही प्रधान कारण है माँस और चीनी का अत्यधिक प्रयोग। आपके डाक्टर के बताये भोजन से पेशाब में चीनी आना कम हो सकता है पर आपकी यह दवा नहीं है। असल में शन्तरा ही जिसे खाने की आपकी प्रबल इच्छा रहती है, आपकी दवा है। यदि आप तीन-चार दिन केवल शन्तरा खाकर रह जायें तो आपके पेशाब में चीनी आना बिल्कुल बन्द हो जाये। मेरे पास आये कई रोगियों की तो इतने ही अवधि में तीन प्रतिशत आती चीनी बन्द हो गयी है। दूध आप न लें। उसके बजाय मठे का व्यवहार करें। आपके भोजन में हरी भाजियों और तरकारियों की भरमार होनी चाहिए। जो कच्ची खायी जा सकने लायक हों, उन्हें कच्चा लें और बाकी को उबालकर। तरकारी, मठा और शन्तरे, अनन्नास, जामुन, मकोय फलों का प्रयोग आपके पेशाब में आती चीनी को वर्त्तमान के लिए ही लुप्त नहीं कर देगा वरन् धीरे-धीरे आपकी पाचन की स्वाभाविक स्थिति

आयेगी और तब आप नाशपाती, सेव, अमरूद आदि मीठे फल, दूध तथा उचित ा में अन्न का व्यवहार भी बेखटके कर ो। पर इन भोजन के साथ-साथ आपको दो-चार मील टहलना भी चाहिए। टहलते गहरी साँसें लीजिए और कब्ज तो कभी ही न दीजिए।

प्रश्न—इस समय घी मिलने में बड़ी कठि- हो रही है। पूरे दाम देने पर भी मिलावट ही घी मिलता है। क्या घी का सर्वथा त्याग से स्वास्थ्य नष्ट न होगा ? घी के बजाय इस्तेमाल किया जाये ?

—जवाहरलाल, बुलन्दशहर

उत्तर– आजकल बाजार में अधिकतर मिल ना घी की शक्ल का तेल ही बिकता है। और भी सस्ता करने के लिए उसमें बेचने- अक्सर चर्बी मिला देते हैं क्योंकि चर्बी ही ों से सस्ती वह वस्तु है जो घी-तेल में मिल घी की शक्ल की दिख सकती है। ऐसे घी ा शुद्ध घी के मुकाबले में भी नारियल या ली का शुद्ध तेल किसी प्रकार कम स्वास्थ्य- न होगा। पर तेल सड़े-गले नारियल या ली का न होना चाहिए। अपनी देख-रेख च्छे से अच्छे तेल-पदार्थ का तेल निकलवाना िए। इस तेल में घी के मुकाबले में बहुत क विटामिन होते हैं। कितने ही लोगों को स्थ पशु के दूध से बने घी के प्रयोग से यक्ष्मा हो गया है जिसका इस तेल के प्रयोग में डर नहीं है। भारत के अनेक प्रान्तों में के बजाय तिल, सरसों और नारियल का काम में लाया भी जाता है।

दूध कुछ अधिक सेवन करें तो घी छोड़ने से ोरी न आयेगी। हमारे देश में तो ऐसे ों की संख्या बहुत अधिक है जिन्हें न दूध ता है, न घी, फिर भी उनका स्वास्थ्य बुरा नहीं रहता। यदि दूध की मात्रा अपने भोजन में अधिक न भी करें तो धीरे-धीरे बिना घी के भी काम चलने लगेगा पर शुरू में यदि कुछ कमजोरी मालूम हो तो उससे घबराना न चाहिए।

प्रश्न——जब मैं सवेरे उठती हूँ तो देखती हूँ कि मेरे पैर और अंगों की अपेक्षा ठण्डे हैं और नाक बहुत लाल। यह चीज धीरे-धीरे घंटे दो घंटे में जब मैं काम करना शुरू करती हूँ, अपने आप चली जाती है। क्या आप इसका कारण और उसके सुधार का उपाय बताने की कृपा करेंगे ?

——होमवती देवी, आगरा

उत्तर——आपने जो लिखा है उसके आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आपके शरीर का रक्तसंचालन सम नहीं है। इसके लिए आप नित्य सवेरे स्नान के पहले अपने सारे शरीर को हथेली से पाँच-सात मिनट रगड़ा करें। इससे आपको स्नान में तो अधिक आनन्द आवेगा ही, आपकी शिकायत शीघ्र ही चली जायेगी।

प्रश्न——गर्भवती स्त्री का भोजन कैसा होना चाहिए ?

——रमादेवी अवस्थी, काशी

उत्तर——जो भोजन साधारणतया किया जाता है उससे गर्भवती का भोजन कुछ खास दूसरा हो यह आवश्यक नहीं है। पर यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उसे दिन में दो बार अवश्य ही खुलकर शौच होता रहे। यदि फल और तरकारियों का उपयोग विशेष किया जायेगा तो इसमें कोई कठिनाई न होगी। किसी को भी और खासकर गर्भवती को तो निश्चय ही मांस न खाना चाहिए। हाँ, यह आवश्यक है कि उसे दूध मिले। बच्चे की हड्डियों की बनावट में चूने की अधिक जरूरत होती है और चूना दूध में बहुत सुपाच्य अवस्था में भी बहुत अधिक होता है।

आरोग्य-मन्दिर,
गोरखपुर

विट्ठलदास मोदी

प्रस्तुत प्रश्न

सामाजिक प्रत्यावर्तन

सामाजिक प्रत्यावर्तन [1] मनुष्य के स्वभाव का वह गुण है जो कि सामाजिक परिस्थिति द्वारा पैदा हुए कारण से हमारे मन पर प्रभाव डाले और उसके अनुकूल आचरण करने के लिए हमें प्रेरित करे। सामाजिक परिस्थिति का अर्थ वह परिस्थिति है जो व्यक्तिगत जीवन या निकटतम संबन्धियों से संबंध न रखती हुई विस्तृत समुदाय से संबंध रखे। मित्रमंडली या कुटुम्ब में जो परिस्थिति हो और उसका प्रभाव व्यक्ति पर पड़े तब इससे पैदा हुए कार्यों को सामाजिक प्रत्यावर्तन नहीं कहा जा सकेगा। मित्र तथा कुटुम्ब व्यक्ति के अपने जीवन का ही भाग बन गये हैं, वे उसके लिए विस्तृत समाज का भाग नहीं रहे हैं। कुटुम्ब तथा मित्रता के संकुचित दायरे से निकलकर हमारा समाज के दूसरे व्यक्तियों के प्रति क्या भाव है इसको हम सामाजिक प्रत्यावर्तन की जड़ कह सकते हैं। एक विदेशी, एक अनजान के प्रति जो हमारा व्यवहार हो उसे हम सामाजिक प्रत्यावर्तन कह सकते हैं। किसी देश या जाति की सामाजिक प्रत्यावर्तन की भावना जितनी गहन और विशाल होती है, उतना ही वह देश व जाति उन्नत भी होती है, और जितनी यह भावना संकुचित होती है उतनी ही पतनोन्मुख।

हमारे अच्छे से अच्छे व्यक्तियों में सामाजिक एकता का भाव इतना ढीला पड़ गया है और स्वार्थ तथा स्व-हित की बातें जीवन में इतनी भयंकरता से फैल गयी हैं कि इसकी कल्पना करना भी कठिन होगा। पहले तो हमारी दृष्टि हमारी जाति (caste या sub-caste) के लोगों को छोड़कर आगे ही नहीं बढ़ती। हमारे वास्तविक संसार की सीमा का अंत यहीं हो रहता है। इसके बाहर निकलकर यदि हम कभी कुछ करते हैं तब या तो वाणिज्य-व्यापार के नाते या भय के कारण। परन्तु इसमें हमारा भाव स्वाभाविक नहीं होता, और न हम जाति के दायरे के बाहर अपना कोई कर्तव्य ही स्वीकार करते हैं।

यह कोई केवल साधारण अशिक्षित लोगों की बात नहीं है। यह हमारे शिक्षित समुदाय तथा नेताओं की भी बात है। हमारे जीवन में स्वार्थपरता तथा संकुचितता का इतना एकच्छत्र साम्राज्य है कि शायद ही किसी दूसरी जाति के जीवन में ऐसा हमें मिलेगा। हम केवल साधारण प्रकार के कथनों पर ही नहीं जायँगे, हम तो इस संबंध में कुछ जानकारी भी पाठकों के सामने रखना चाहते हैं।

सामाजिक प्रत्यावर्तन का माप यों तो अनेक प्रकार से लिया जा सकता है, तथा अमेरिका और दूसरे देशों में घर-घर जाकर इस संबंध में पूछताछ भी होती है। हमारे पास इस हमारे सामाजिक प्रत्यावर्तन का माप समाचारपत्रों तथा पत्रों से अच्छी तरह निकाला जा सकता है। जिस समाज में एकता की भावना और सहयोग की इच्छा होगी, उस समाज की भावना उच्च प्रकार की होती है, उसमें मनुष्य जीवन की सारी आकाक्षाएँ स्वार्थ पर केंद्रित नहीं होतीं। वहाँ एक व्यक्ति का संदेश दूसरे के हृदय के तारों को झंकृत कर सकना है और उसका सहानुभूतिपूर्ण उत्तर भी पा सकता है। यह बात हमारे जीवन में कहाँ तक है यह निम्न बातों से ज्ञात हो जायगा।

हममें से पढ़े-लिखे व्यक्तियों में लगभग ५०% किसी न किसी प्रकार का समाचारपत्र (दैनिक, साप्ताहिक, मासिक) तो पढ़ते ही होंगें, परन्तु उनमें से कितने ऐसे होंगे जो वास्तव में समाचारपत्रों से प्रभावित होते हैं? हम यह नहीं कहना चाहते कि इनका प्रभाव नहीं पड़ता,

---

[1] **इसे अंग्रेजी में** 'social response' **कह सकते हैं।**

ा तात्पर्य इतना ही है कि वे हमें ऊपर से कर चले जाते हैं, अंतस्तल को नहीं छूते। इनकी बातें हमारे अंतस्तल को छुएँ और उनपर विचार करें, तथा लेखक और क को अपना योगदान दें, हमारे मन पर ी क्या प्रतिक्रिया हुई यह बतावें, तब वह र्तन होगा। हमें ज्ञात है कि हमारे पत्रों सा प्रत्यावर्तन कम होता है। हजार व्यक्तियों छे एक या दो व्यक्ति भी कभी लेखक म्पादक को अपने विचार लिखने का कष्ट करते। हमारे पत्र जनमत की एकमार्गीय (one way traffic) हैं। परन्तु जहाँ त सजग होता है, जीवन की प्रतिक्रियाओं के जागरूक होता है वहाँ अधिक नहीं तो १० त के लगभग तो संपादक और लेखक उनके पड़े हुए प्रभाव से अवगत करते रहते हैं। कारण वहाँ के लेखकों और संपादकों का त भी अधिक होता है। लेखकों तथा संपा- की डाक का भारी हिस्सा इस प्रकार के न के प्रतीक पत्रों का होता है।

समाचारपत्रों के सम्बन्ध में तो हमारे पास निश्चित अंक नहीं हैं, परन्तु पत्रों के—— ण व्यवहार के पत्रों के——सम्बन्ध में हमने अंक एकत्रित किये हैं। इनपर से ज्ञात होता हमारा व्यापारी-वर्ग ही नहीं, वरन शिक्षक नेता लोग भी कुछ इस प्रकार के दलदल से हैं कि जिसका समझना कठिन हो है। उनके लिए तो जनता के प्रति जाग- होनी चाहिए। परन्तु उनमें भी यह बात है। नीचे दिये हुए अंक इस बात का प्रमाण १५ पत्र ऐसी राष्ट्रीय नेता स्त्रियों को एक संस्था द्वारा लिखे गये थे जिनके नाम समा- त्रों में प्रकाशित होते हैं, परन्तु केवल एक को छोड़कर किसीने भी उत्तर तक नहीं । इसी संस्था ने ५ सबसे ऊँची श्रेणी की महिला नेता को उत्तर के लिए टिकट रख- लिखे, परन्तु केवल १-२ का उत्तर प्राप्त इसी संस्था द्वारा ८ जवाबी पत्र समाचारपत्र-सम्पादकों को लिखे, परन्तु उनमें से केवल दो ने उत्तर देने की कृपा की। बम्बई के एक विख्यात स्कूल के समाजशास्त्र के प्रोफेसर को उत्तर के लिए टिकट रखकर पत्र लिखा गया जिसमें उनके विषय से सम्बन्धित बातें पूछी गयी थीं, परन्तु पत्र का कोई उत्तर न मिला। देश की सर्वोच्च महिला-सभा की अध्यक्षा को पत्र लिखा गया, परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। उपरोक्त सभी पत्र समाजसेवा-सम्बन्धी कार्यों के विषय में लिखे गये थे, और व्यक्तिगत न थे कि उत्तर देने में कोई परेशानी होती।

निम्न कुछ पत्र व्यवसाय-सम्बन्धी विषयों में लिखे गये थे। अधिकतर क्या, सभी पत्र-सम्पादकों को लिखे गये थे। ४ पत्रों के सम्पादकों को लगातार ४ पत्र लिखने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। एक पत्र के मैनेजर को दो साधारण पत्र तथा एक रजिस्टर्ड पत्र भेजने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। एक पचीस वर्ष अधिक पुराने अंग्रेजी के मासिक पत्र के वयोवृद्ध सम्पादक को दो पत्र लिखने पर कोई उत्तर न मिला। उक्त पत्र भारतवर्ष का सबसे उच्च कोटि का अंग्रेजी पत्र है। इसकी आर्थिक दशा भी अच्छी है।

व्यवसाय के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक होगा कि ये पत्र रुपये-सम्बन्धी हों या दूसरे प्रकार के इनकी पहुँच या उत्तर तो अवश्य ही दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत बम्बई के पत्र 'टाइम्स' द्वारा सारे पत्रों का उत्तर दिया जाता है। इसी सम्बन्ध में इंग्लैंड की एक पुस्तक-विक्रेता की फर्म का जिक्र करना अनुचित न होगा। इससे एक पुस्तक के कापीराइट के सम्बन्ध में पूछा गया। पुस्तक का कापीराइट इनके पास न था। तो भी इन्होंने पत्र लिखा और सूचना दी कि कहाँसे इस पुस्तक के सम्बन्ध में अधिक सूचना मिल सकती है।

कहना न होगा, कि उक्त बातें हमारे सामाजिक जीवन की विशृंखलता का साधार प्रमाण हैं। और हमारे सम्पादक, प्रकाशक, राष्ट्रीय नेता तथा समाजशास्त्र के अध्यापक दूसरों के

प्रति अपने कर्तव्य की अवहेलना करते हैं तो दुख होता है । साधारण जनता या शिक्षित मागरिकों से हम क्या अपेक्षा कर सकते हैं ? उक्त बातें हमारे सामाजिकता के अभाव, सामाजिक प्रत्यावर्तन की भयंकर कमी के चिन्ह हैं । और वास्तव में ऐसे भयानक चिन्ह हैं जो हमारी समाज-व्यवस्था के अत्यधिक पतन के द्योतक हैं ।

हिन्दुस्तानी भाषा और फ़ारसी लिपि

महात्माजी का एक लेख निकला है तारीख ८ फरवरी के 'हरिजन' में । लेख का सिरनामा है 'हिन्दी + उर्दू = हिन्दुस्तानी' । उक्त लेख में गांधीजी ने एक संस्था बनाने की अपनी मंशा जाहिर की है । यह संस्था हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं को देवनागरी तथा फारसी दोनों लिपियों के द्वारा फैलाने के उद्देश से काम करेगी । अर्थात् यह स्पष्ट ही है कि हिंदी जाननेवालों को फारसी लिपि द्वारा उर्दू का और उर्दू के आलिमों को देवनागरी लिपि द्वारा हिन्दी का ज्ञान कराना इस संस्था का प्रधान कार्य रहेगा ।

आज-कल हवा जिस दिशा से बह रही है उसका तथा महात्माजी जिस 'एकनिष्ठ'(unitary) नीति का प्रतिपादन कर रहे हैं उसका विचार करते हुए तो यही दीख रहा है कि महात्माजी के अनुयायियों में से बहुत से हिन्दी-भाषा-भाषी लोग पहले फारसी लिपि सीखेंगे तथा अपनावेंगे। लेखक स्वयं दोनों लिपियाँ भली भाँति जानता है । पर फारसी लिपि पढ़ाते समय तथा दूसरे लोगों में प्रचार करते समय उसके सामने जो अड़चनें आती हैं उन्हें दिखाना वह ठीक समझता है । सम्भव है, आगे होनेवाली संस्था को इससे कुछ मार्ग मिल जावे ।

हिन्दुस्तान जैसा बड़ा देश जिसे अपनावेगा न वह भाषा आज की किसी भाषा की दृष्टि से शुद्ध स्वरूप में रहेगी, न वह लिपि । अमरीका तथा इंग्लैंड दोनों देशों के लोग एक ही भाषा बोलते हैं और एक ही लिपि का प्रयोग करते हैं । पर दोनों के प्रयोगों में फर्क पड़ ही जाता है । विराट् जनता द्विनेत्र न रहते सहस्राक्ष बनती है । वह सुगमता या सुलभता की ओर अधिक ध्यान देती है, शुद्धता—संकुचित शुद्धता की ओर कम । इसीलिए अमरीकन लेखकों की तर्ज 'अमरीक़न अंग्रेजी' के नाम से इंग्लैंड के अंग्रेजों द्वारा पहचानी जाती है । जो हाल बोलने का वही लिखने का । थोड़े से अंग्रेज through भले ही लिखें, अमरीकन जनता उसे लिखती है thro । अंग्रेजों का colour अमरीका पहुँचकर color बन जाता है । किन्तु इन फर्कों के रहते भी भाषा कहलाती है अंग्रेजी और लिपि कहलाती है रोमन ।

हिन्दुस्तान में रोमन लिपि बेतरह बरती जाती है । अपने को सुशिक्षित कहलानेवाले लोग प्रायः अपने दस्तखत रोमन लिपि में ही करते हैं । ऊपर का सारा-का-सारा पत्र मातृ-भाषा में क्यों न हो, नीचे हस्ताक्षर अवश्य अंग्रेजी में ही होंगे । पर ऐसा होते भी अक्षरों की जोडणी सबों की एक न होगी । 'वासुदेव' में कई आरंभिक 'व' के लिए लिखेंगे 'वी' तो कई लिखेंगे 'डब्ल्यू' । उत्तरी भारत के कई लोग 'बवयोरभेदः' के न्याय से आरंभ करेंगे 'बी' से। विचारे 'देव' का तो हाल ही न पूछिए । Deva, Deb, Dev, Deo इत्यादि अजीब रूपों में लेखक की इच्छानुसार उसे प्रकट होना पड़ता है । अगर कहा जाये कि रोमन अक्षरों से शुद्ध संस्कृत लिखी ही नहीं जा सकती, तो यह भूल है । सारी वेद-संहिता रोमन अक्षरों में अत्यन्त शुद्धता से लिखी जा सकती है और छपी भी है । पर यह शुद्धता केवल इने-गिने पंडितों के लिए रह जाती है । समूची जनता शुद्धता की अपेक्षा सुगमता का विचार अधिक करती है । वह चाहती है केवल इतना कि जो कुछ लिखा है उससे पाठक मतलब समझ जाय ।

लिपि की सुगमता है उच्चारानुसार वर्णों की जोडणी करने में । देवनागरी लिपि की यही विशेषता है । पर शुद्धता की दृष्टि से वह भी पूर्णतया निर्दोष नहीं । पाँचों वर्गों में महाप्राण

के लिए भिन्न चिन्हों की आवश्यकता नहीं। अंग्रेजी एफ् या फारसी फे के उच्चार के तथा अन्य ऐसे ही अन्य भाषाओं के उच्चारों लिए चिन्ह नहीं हैं। यद्यपि नीचे बिन्दु देकर ोग लिया जाता है पर वहाँ भी सारे देव- री के लेखक इसका उपयोग नहीं करते। ानते हैं कि पाठक मतलब समझ ही जावेगा। देवनागरी के पक्ष के लोग उनके लिए ऐसा ने का आग्रह भी नहीं रखते सार यह कि ी भी लिपि को सारे हिन्दुस्तान के लिए ुक्त करना हो तो कट्टर शुद्धता को थोड़ा दूर रखना ही पड़ेगा। उक्त लिपि को उच्चार के अनुसार रखकर सुलभ करना ड़ेगा।

सारा हिन्दुस्तान अपनी बोली देवनागरी के फारसी लिपि में लिखने लगे तो कोई हानि । सम्राट् अशोक के जमाने में उसकी ाएँ भी दो लिपियों में लिखी हुई पायी जाती िनमें से 'ब्राह्मी' बायें से दायीं ओर लिखी ी थी और 'खरोष्ट्री' दायें से बायीं ओर। ों लिपियों का पाठ एक ही रहता था। उसी र हिंदुस्तानी को देवनागरी तथा फारसी दोनों ियों में लिखना बुराई नहीं वरन एक दृष्टि ला ही है। हिन्दुस्तानी के लिए एक लिपि सकती है छापे के लिए, और दूसरी लिखने के । लेखनलिपि की दृष्टि से फारसी अधिक ुक्त है। प्रत्येक अक्षर लिखने के बाद कलम उठाना नहीं पड़ता। कई अक्षर मिलाकर ने से समय बचता है। फारसी लिपि में नेवाला लघु-लेखक के बहुत पीछे नहीं ा।

र इसलिए फारसी लिपि का एक दोष निकाल बड़ा जरूरी है। उच्चार के अनुसार सुलभ न रखने के लिए एक उच्चार की जगह एक ही होना चाहिए व वर्गस्थ महाप्राण वर्णों के फारसी लिपि ने जो बचत की है वह निस्संदेह फायदे की है। ख, घ इत्यादि वर्णों का क्ह, ग्ह इस प्रकार लिखना असंमत नहीं है। पर यही बचत की दृष्टि अन्य अक्षरों में नहीं है। उच्चार एक ही पर उसे प्रकट करनेवाले चिन्ह अनेक। जैसे अ का उच्चार होता है एक पर चिन्ह होते हैं दो——अलिफ और ऐन। 'त' के लिये 'ते' और 'तोय' दो अक्षर हैं। 'से', 'सीन' 'स्वाद' तीनों का उच्चार एक ही 'स'। 'ह' का उच्चारण बतलानेवाले दो अक्षर। 'य' के लिये दो चिन्ह। 'ज़ाल', 'जे', तथा 'ज्वाद' तीनों में से कोई भी लिखदो, उसका उच्चारण होता है 'ज़' ही।

संभव है, इनके उच्चारण में आरम्भ में कुछ भेद रहा हो। पर आजकल के उर्दू पढ़नेवाले लोग उसे नहीं जानते। बड़े-बड़े उर्दूदाँ अगर जानते हैं तो इतना ही ही कि

"साओ, हाओ, सादो, जादो,
ताओ, जाओ ऐनो काफ"

अर्थात् से, हे, स्वाद, ज्वाद, तोय, जोय, और काफ ये आठ अक्षर अरबी लफजों में होते हैं, फारसी में नहीं। पर सादा उर्दू पढ़नेवाले ही नहीं, बड़े-बड़े विद्वान् भी अबीर और अमीर इन दो शब्दों में आद्याक्षर के उच्चार का भेद न समझ सकेंगे। पर यह सब जानते हैं कि अबीर लिखा जाता है ऐन से और अमीर अलिफ से। इसी तरह सप्त लिखा जाता है 'से' से, सख्त में रहता है 'सीन' और सब्र में आता है 'स्वाद', यद्यपि सभी में स का उच्चारण एक-सा ही है। इसी तरह 'ताब' में 'ते' क्यों और 'तास' में 'तोय' क्यों ? इसका सबब ऐसा जबरदस्त नहीं कि इन्हें न बदला जाय। यदि ये झगड़े मिटा दिये जायँ, अ के लिए एक अलिफ, त के लिए ते, स के लिए सीन, ज के लिए जे, ड के लिए डाल इत्यादि रखा जाये तो हिन्दुस्तानी का फारसी लिपि में लिखना आसान होकर सार्वत्रिक होने में बड़ी मदद मिलेगी।

(डॉक्टर) हरि रामचन्द्र दिवेकर

कसौटी पर

संस्कृत के अध्ययन की उचित दिशा : लेखक--डॉ० राजेन्द्रप्रसाद; प्रकाशक—आरती-मंदिर, पटना; पृष्ठ-संख्या १२८; मूल्य १) १।)।

वर्तमान भारतीय भाषाओं में अधिकांश संस्कृत से उत्पन्न हैं। संस्कृत भाषा इन सबों की जननी है और इन भाषाओं में दक्षता प्राप्त करनेवाले अभ्यासी को संस्कृत का अध्ययन करना परमावश्यक है। वह केवल भारतीय भाषाओं का ही नहीं प्रत्युत हमारी सारी सभ्यता का और संस्कृति का स्रोत है। ऐसा भी कई लोग मानते हैं कि कदाचित् संस्कृत प्राचीन साहित्य में हमें ऐसा कुछ प्राप्त हो जो आज की प्रक्षुब्ध अवस्था में शांतिप्रद औषध का काम दे। इन सब कारणों से संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य ही है। बाबू राजेंद्रप्रसाद ने दरभंगा-नरेश के निमंत्रण पर इन सब विषयों पर जो दो विचार-पूर्ण व्याख्यान दिये थे वे अब पुस्तकरूप में प्रकाशित हुए हैं।

इस पुस्तक में संस्कृत वाङमय के सब अंगों का संक्षेप में विचार किया गया है। संस्कृत का ज्ञान-भाण्डार, भाषाविज्ञान, व्याकरण, वर्णमाला, अंकलिपि, विज्ञान, कला इत्यादि पर ही नहीं परन्तु इस बात पर भी विचार किया है कि संस्कृत वाङमय भारतीय प्राचीन इतिहास की खोज में भी कैसे उपयोगी हो सकता है? आज-तक इन विषयों पर जितना कुछ संशोधन हुआ है उसका निचोड़ इस पुस्तक में सामान्य वाचक तक को सुलभ हो सकता है।

और अंत में लेखक महोदय ने संस्कृत के अध्ययन की उचित दिशा दिखलाने का प्रयत्न किया है, जो बड़ा महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत के अध्ययन की दो रीतियाँ प्रसिद्ध ही हैं—एक प्राचीन, जो भारत वर्ष में प्रचलित थी और अब प्राचीन पद्धति के नाम से पहचानी जाती है। बाबूजी कहते हैं कि इस रीति के कारण प्राचीन पंडितों को किसी बाह्य पदार्थ पर बहुत निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस पद्धति की और एक विशेषता यह है कि इस प्रणाली से अध्ययन करनेवाले को ग्रंथार्थ की गहराई में खूब उतरना पड़ता है। इस रीति का पंडित अपने पाठ्य ग्रंथों को सम्यक् प्रकार से जानता है। ग्रंथों का अक्षर-अक्षर तक वह समूची रीति से पहचानता है। पर इस प्रकार का पंडित प्रायः एकांगी बन जाता है। इस विषय में जो कुछ है वह यही है, यह उसकी धारणा बन जाती है। 'यदिहास्ति न तदन्यत्र' या 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वं' इत्यादि वचनों को वह अक्षरशः प्रमाण मानने लगता है। उन ग्रंथों के ज्ञान को ही वह इतना प्राधान्य देने लगता है कि प्राप्त ज्ञान में किसी प्रकार की वृद्धि की वह कल्पना ही नहीं कर सकता। पक्षान्तर में नयी पद्धति पाश्चात्यों के द्वारा प्रचलित हुई है। इसमें ग्रंथार्थ की अपेक्षा बाहरी बातों को ही अधिक प्राधान्य दिया जाता है। ग्रंथ का काल, उसके लिखे जाने के कारण, तत्कालीन परिस्थिति, अन्य विषयों से उसकी तुलना इत्यादि इस पद्धति के विशेष अंग हैं। इस प्रणाली का पंडित गुलाब के फूल की पंखुड़ियाँ, उसके काँटे, उसका रंग, उसके पैबंद इत्यादि बातों में ही ऐसा उलझ जाता है कि गुलाब की सुगंध से आनन्द उठाना तक भूल जाता है। अतः दोनों पद्धतियों के गुणों का स्वीकार तथा दोषों का त्याग करनेवाली जो संयुक्त रीति हो वही लाभप्रद हो सकती है। पुरानी बातों से आज भी हम लाभ उठा सकते हैं, 'मगर तभी जब हम प्रयोगों से न डरें।' बाबूजी का कहना ठीक ही है कि हम अगर अपनी पुरानी रीति को नयी रीति से देखें और उसमें संशोधन करने का प्रयत्न करें तो हम बहुत-कुछ कर सकते हैं। इसी प्रकार संस्कृत से प्राप्त ज्ञान का प्रसार सामान्य जनता में करना अत्यंत आवश्यक है और इसलिए संस्कृत पंडितों को हिंदी की उपेक्षा न करनी चाहिए। इस विषय में भी दो मत नहीं हो सकते।

किंतु जब पाठक पढ़ता है कि 'आज से ः ११-१२ सौ वर्ष पहले संस्कृत की उन्नति स्रोत बंद हो गया। ऐसा जान पड़ता है कि नी तरुण अवस्था को पहुँचकर मानो उसपर ी आगंतुक व्याधि ने हमला कर दिया और अपंग बना दिया।' (पृ० १२१), तब वह क्षा करता है कि लेखकश्री इस स्रोत-स्थगन या इस आगंतुक व्याधि का विचार करेंगे। यह अपेक्षा पूरी नहीं होती। कितना अच्छा ा यदि बाबूजी इसपर अपने कुछ विचार ट करते !

पूछते हैं कि घोड़ा अड़ा क्यों ? पान सड़ा ? रोट जला क्यों ? जवाब एकही है— ा नहीं। यही दृष्टांत यहाँ चरितार्थ है। हमारी ति का स्रोत बंद क्यों हुआ ? हमपर हमला सने किया ? हम अपंग क्यों बने ? जवाब ही है और वह है हमारी पराधीनता। अलग-ग प्रयोग करने के लिए जिस उत्तेजना की वश्यकता होती है, पुरानी बातों को नयी दृष्टि देखने के लिए जो सामर्थ्य लगता है, परानता में उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। आयु- को ही लीलिए। जबतक वैद्यों को स्वन्त्रता-ंक प्रयोग करने की अनुज्ञा न हो तबतक नये ोग नहीं हो सकते। किसी से यह छिपा नहीं कि कांग्रेस-शासन के अल्पकाल में भी प्राचीन ाओं को कैसी उत्तेजना मिली। सार यह संस्कृत के पंडितों को स्वतंत्रता मिले तो फिर वही स्रोत बह सकता है।

(डॉ०) हरि रामचंद्र विवेकर

कुछ बालोपयोगी पुस्तकें

(१) महात्मा गांधी से हम क्या सीखें ? --श्री 'बालबन्धु' एम० ए०, प्रकाशक—विद्या- र, रानी कटरा, लखनऊ; पृ० सं० ५६ ।-)

स्टर बल्देवप्रसाद, सागर के प्रकाशन

(२) सचित्र बालसरोज : ले०—श्री शंकर- तिवारी 'बेढब', पृ० सं० ३१, मूल्य ≡)

(३) विदेश की कहानियाँ : ले०—'साहित्यरत्न' पं० बाबूलाल भार्गव; पृ० सं० ६८, मूल्य ।)

(४) सुगम नागरिकता (२) : ले०--पं० गौरीशंकर पंडा, पृ० सं० ३६, मूल्य =)।। सचित्र

(५) वीरगाथाएँ : ले०--श्री रामकृष्ण शर्मा 'कृष्ण'; पृ० सं० २८, मूल्य =)

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हिन्दी में आज भी बहुत पुराने दृष्टिकोण से बालोपयोगी साहित्य लिखा जाता है। अच्छे-अच्छे विद्वानों का भी यह विश्वास मालूम होता है कि बालकों पर हमेशा किसी-न-किसी रूप में उपदेश की वर्षा होती रहनी चाहिए। उनको नीतिमान्, धार्मिक, सदाचारी, विद्वान्, देशभक्त, शूर बनने का एक ही कीमिया हमारे लेखकों को मालूम है कि बालकों को समय-असमय उपदेशामृत का पान कराया जाये। आज के इस मनोवैज्ञानिक शिक्षण के युग में भी हमारे विद्वान् इसी सदियों पुरानी चीज को हृदय से लगाये बैठे हैं। क्या यही कारण नहीं है कि आज तक हिन्दी में प्रभावशाली और उपयोगी बाल-साहित्य की रचना नहीं हो सकी ?

श्री बालबंधु एम० ए० की पुस्तक '**महात्मा गांधी से हम क्या सीखें ?**' हमारे सामने है। लेखक का दावा है कि 'उन्होंने इसमें गंभीर विषय के साथ-साथ कहानी की रोचकता लाने का भी प्रयत्न किया है।' इस इच्छा के लिए लेखक धन्यवाद के पात्र हैं किन्तु वे इसमें सफल नहीं हुए। उपदेश, सरल भाषा में किया जाय या कठिन भाषा में, कहानी के रूप में किया जाय या निबंध के रूप में उपदेश ही रहता है और यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बालक इस 'उपदेश' को कभी रुचि के साथ ग्रहण नहीं कर सकते। इससे उनका मुंह मीठा नहीं होता, बल्कि वह एक ऐसी कड़वाहट छोड़ जाता है कि स्वस्थ बालक दुबारा ऐसी चीजों से दूर-दूर भागता है।

ऐसी ही एक पुस्तक है श्री पंडित शंकरलाल तिवारी की सचित्र '**बालसरोज**'। यह ९ बालोपयोगी कहानियों का सचित्र संग्रह है, जो बालकों

में सदाचार की भावना पैदा करने की दृष्टि से ही लिखा गया है। भूमिका के विद्वान् लेखक के शब्दों में कहानियाँ 'उपदेशात्मक' हैं। पर बालोपयोगी कहानियों का उपदेशात्मक होना ही उनका सबसे बड़ा अवगुण है। अपने आपमें कहानियों की कथावस्तु कुछ बुरी नहीं। लेकिन इनका भी जो उपयोग किया गया है वह बाल-मनोविज्ञान के अनुकूल नहीं। कहानी के अन्त में उसका सार और उपदेश देने की प्रथा पुरानी है और उसका दुष्परिणाम स्पष्ट है। कथावस्तु और कथनशैली में ही इतना बल और सामर्थ होना चाहिए कि बालक उस कथामात्र को पढ़कर सदा के लिए प्रभावित हो जाये। अंत में उपदेश देने की आवश्यकता शायद इसीलिए समझी जाती है कि लेखक को अपनी कहानी के प्रभाव में विश्वास नहीं होता। भूमिका भी बहुत ही पांडित्यपूर्ण भाषा में लिखी गयी है। बालोपयोगी पुस्तकों में ऐसी भूमिकाएँ न रहें तो अच्छा।

तीसरी पुस्तक श्री बाबूलालजी भार्गव लिखित **'विदेश की कहानियाँ'** हैं। ये भी 'नसीहतआमेज' बतायी गयी हैं। 'नसीहत आमेजी' पर हम अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। इन विद्वान् लेखक से भी हमारा निवेदन है कि वे बालकों के मित्र बनकर उन्हें दुनिया की अच्छी-अच्छी बातों की जानकारी कराने का आदर्श तो अवश्य अपने सामने रखें, लेकिन उनके गुरु बनकर, उपदेश देने का अनावश्यक दायित्व अपने ऊपर न लें। कहानियों का चुनाव अच्छा हुआ है और अपने आपमें ये कहानियाँ काफी सूचक और सजीव हैं।

गौरीशंकर पंडा की पुस्तक **'सुगम नागरिकता'** भी आलोचक के सामने है। पाठ्य पुस्तक का यह दूसरा भाग बालकों में नागरिकता की भावना पैदा करने के लिए लिखा गया है। दस पाठ हैं, जो प्रायः सभी संवाद के रूप में है। पहले पाँच पाठों के साथ एक-एक गाने लायक 'पद्य' भी है। अंतिम पाँच पाठों में से २ पद्ययुक्त, एक पद्यमय और दो केवल सम्वादात्मक हैं। और पद्य ऐसे हैं कि जिन्हें पढ़ते कहीं भी न तो दिल गुदगुदाता है न मनको तृप्ति मिलती है। पृष्ठ १९ पर डाक्टर के गीत की पंक्तियाँ ही देखिए—

> **तुम दवा डाक्टर की अगर खाओगे**
> **तो अच्छे भी जल्दी से हो जाओगे**
> **तुम्हें आती हो खाँसी या ज्वर हो चढ़ा**
> **दाद, खुजली हो फुंसी या फोड़ा बड़ा**
> **अस्पताल में जो तुम चले जाओगे**
> **तो अच्छे भी जल्दी से हो जाओगे।**
> **डाक्टर देख नाड़ी बता देयगा**
> **एक पैसा न कौड़ी भी लेयगा**
> **तुम्हें चिट्ठी बनाकर लिख देयगा**
> **चिट्ठी लेकर कम्पाउन्डर दवा देयगा**
> **दवा शीशी में भरके जो पी जाओगे**
> **तो अच्छे भी जल्दी से हो जाओगे**

पोलिसवाला, चिट्ठीरसा, कोटवार, डाक्टर सड़क का खेल, शीर्षक ५ और ५ आत्मरक्षा के उपायों की चर्चा करनेवाले विषयों से नागरिकता के रसमय ज्ञान का दान करने का प्रयत्न किया गया है। पर कितने यांत्रिक ढंग से ! हमारी यह मनोवृत्ति अब बदलनी चाहिए।

श्री रामकृष्ण शर्मा 'कृष्ण'की लिखी **'वीरगाथाएँ'** नामक पुस्तक अवश्य बालोपयोगी शिक्षा-कविताओं का छोटा-सा संग्रह है जो प्राथमिक-शालाओं के बालकों के लिए सरल और सुबोध भाषा में लिखा गया है। इसमें कुल सात वीरों की गाथाएँ हैं और सातों रोचक ढंग की और बहुत ही संक्षेप में हैं। प्रताप, शिवाजी, गढा-मंडले की रानी, छत्रसाल, झाँसीवाली रानी, सुल्तान हैदरअली, और वीर हमीर इनके नायक हैं। लेखक ने इन गाथाओं के बहाने बालकों को उपदेश देने की नीति का विशेष आग्रह नहीं रखा है। इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। 'पूंछने' 'मयान' 'मालुम' जैसे कुछेक चिन्त्य प्रयोगों को छोड़कर पुस्तक निर्दोष मालूम होती है। आशा है बालक इसे चाव से पढ़ेंगे।

कीमतें और की तो ठीक हैं, पर 'महात्मा से हम क्या सीखें ?' का मूल्य आकार- र व पृष्ठसंख्या देखते हुए बहुत ही अधिक गांधीजी पर इतनी महँगी पुस्तक देने में क्या काशक का हित होगा और क्या पाठक को ? उक्त पुस्तकों के विद्वान् लेखक और उनके ाही प्रकाशक अगले संस्करणों में यदि इन ों पर ध्यान देंगे तो पुस्तकें वास्तव में ोपयोगी' बन सकेंगी । **काशिनाथ त्रिवेदी**

्वापर की राज्यक्रान्ति : ले०—श्री किशोरी- बाजपेयी; प्रकाशक—हिमालय एजेंसी ल; पृ० ८८; मूल्य ।।=)।

बाजपेयी जी आलोचक अधिक हैं, कवि और ककार कम; फिर भी उनका यह पौराणिक क उनकी सफलता का द्योतक है । कथा कृष्ण सुदामा की मैत्री से सम्बन्धित है । इस र कथानक पुराना तो है फिर भी इसमें एक कता है । दीन सुदामा श्रीकृष्ण के कैसे मित्र बने जबकि अन्य अनेक सहपाठियों से का वैसा सम्बन्ध नहीं था और सुदामा की ी के मूल में क्या कारण थे—इस नाटक में प्रश्नों को सचाई और स्पष्टता के साथ किया गया है ।

कला की दृष्टि से नाटक में कुछ भी अद्- और आकर्षक नहीं है पर अभिनेय होने के उपादेय अवश्य है। पात्रों में आदर्श और ता है, विलास और वासना की भावना । यथास्थान जो गीत इसमें हैं वे कुछ पसंद आये । शैली पुराने टाइप की है और भाषा किन्तु अधिकांश में लचर है । **वि०**

हिन्दी-साहित्य में निबन्ध : ले०——श्री त शर्मा, एम० ए०, प्रका०—गयाप्रसाद एंड शफाखाना रोड, आगरा; मू० १।)

साहित्य की श्री– वृद्धि के लिए सृष्टि जितनी यक है, आलोचना की प्रयोजनीयता उससे ो अंश में कम नहीं । निबन्ध-साहित्य की ि के लिए भी आलोचना की प्रयोजनीयता उतनी ही महत्त्वपूर्ण है । अंग्रेजी-साहित्य के संस्पर्श में आने के बाद से ही हिन्दी-निबन्ध-साहित्य की उन्नति हुई । इसलिए यद्यपि हिन्दी-निबन्ध-साहित्य का इतिहास बहुत थोड़े दिनों का है फिर भी इस थोड़े अर्से में इसने जो उन्नति की है, उसे हम आशातीत कह सकते हैं। अतः ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता रही है जो इसकी रूपरेखा पाठकों की दुनिया में रखतीं। इस दिशा में शर्माजी की यह पुस्तक बड़े काम की है । साहित्य में निबन्ध का स्थान, उद्देश्य, प्रकार, उपयोगिता, शैली, निबन्ध-साहित्य (हिंदी-अंग्रेजी) का क्रम-विकास आदि आवश्यक विषयों का विवेचन और प्रतिपादन इसमें बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है । विषय-विवेचन गंभीर और शैली सुलझी हुई है ।

हिन्दी-निबन्ध-साहित्य की श्रीवृद्धि में महत्व-पूर्ण भाग लेनेवाले कुछ प्रमुख लेखकों को लेखक ने याद नहीं किया । पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी, पं० रामदहिन मिश्र, पं० किशोरीदास बाजपेयी, श्री रामनाथ 'सुमन', श्री शिवपूजनसहाय, श्री 'सुधांशु', श्री 'द्विज' आदि की सेवा भूलने की चीज नहीं। पुस्तक और भी सुन्दर हो सकती थी, किन्तु साहित्य के विद्यार्थियों के लिए इससे भी कम लाभ नहीं होगा ।

मर्यादा का मूल्य : ले० श्री—कुँवर वीरेन्द्र-सिंह रघुवंशी और श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चंद्र' एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न; प्रकाशक—उपर्युक्त; मू० १।)

यह एक मौलिक ऐतिहासिक नाटक है और एक उत्तम आदर्श सामने रखता है । कथानक मुगलकालीन है । रंगमंच पर खेलने में भी यह सफल उतर सकता है । हास्य और संगीत की कुछ कमी, पात्र-पात्री बहुत अधिक और कथोपकथन कहीं-कहीं बहुत लंबा हो जाने से नीरस लगता है । बातचीत में लेखक और थोड़े संयत होते तो पुस्तक और भी सुन्दर बन पड़ती। मूल्य भी कुछ कम होना चाहिए था ।

नवाबी सनक : ले०–श्री जयनाथ 'नलिन'; प्रकाशक––उपर्युक्त; मू० १)

इसमें नवाब साहब का इंसाफ, बटेरों के शौकीन, लोमड़ियों का शिकार, शतरंज के खिलाड़ी और लखनवी बहादुर, ये पाँच प्रहसन हैं। प्रहसन काफी मजेदार और मनोरंजक हैं। साथ ही नवाबों के जमाने की एक तस्वीर-सी उपस्थित करते हैं। भाषा चलती हुई, साफ-सुथरी है। हास्य कहीं-कहीं अशिष्ट हो गया है। पुस्तक पढ़ने में तो मनोरंजक है ही, रंगमंच पर खेलने से भी काफी मनोरंजक साबित हो सकती है।

अवरुद्धा : ले०–श्री 'विनोद'; प्रका०–साधना-मन्दिर, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद; मू० १)

प्रस्तुत पुस्तक में कवि की ३९ फुटकर कविताएँ हैं, जिनसे उनकी निजस्व भाव-धारा का स्पष्ट परिचय नहीं मिलता। 'मृत्युपर्व,' 'प्रलय-ज्वाला', 'हुंकार' आदि कविताओं में वर्तमान समाज-व्यवस्था के प्रति विद्रोह के वे सस्ते उच्छ्वास हैं, जो आज के युग की पिष्टपेषित बात हो गयी है, जिनमें उग्र शब्द-जाल के सिवा जी को छूने की मार्मिकता नहीं। संभवतः ये कविताएँ प्रारंभिक हों। 'विदा', 'प्रेमी की कामना', 'इंद्रजाल विलासिनी' में लौकिक प्रेम की अतृप्त प्यास है और 'परदेशी', 'मन की गाँठ खोल' आदि में वैष्णव-काव्य से ली गयी विरस आध्यात्मिकता। 'अवरुद्धा' इस तरह तीन पृथक् भावधाराओं की त्रिवेणी है, जिनकी अनुभूति-लहरियों में कवि का अस्तित्व दबा है। हम मानते हैं कि 'विनोद'जी में प्रतिभा है पर उसे एक निश्चित दिशा नहीं मिल सकी है। जिस दिन वह सच्चा लक्ष्य पायेगी, उसका प्रवाह गतिशील, निर्मल होगा। भूमिका लेखक राय कृष्णदास के ही शब्दों में कहूँ तो––" 'अवरुद्धा' का कवि अभी बनने के बनने के क्रम है उनमें वेग है, सुकुमारता है और है ग्राहिणी शक्ति, जो निश्चित रूप से युवक कवि के आवश्यक गुण है। इस प्रकार 'विनोद' जी ठीक अर्थ में एक उदीयमान कवि है।" "अवरुद्धा" में जो कुछ है उससे अधिक की आशा के साथ हम कवि का स्वागत करते हैं।' पुस्तक का मूल्य १) अधिक है।

समालोचनार्थ प्राप्त

––कविता––

अंगारा : ले०––श्री पुरुषोत्तमदास 'विजय' प्रकाशक––अमर साहित्य प्रकाशन मन्दिर, १७४ मल्हारगंज, इन्दौर; मूल्य १।)

वासवदत्ता : ले०––श्री सोहनलाल द्विवेदी, प्रकाशक––इंडियन प्रेस लि० प्रयाग।

––दर्शन––

दर्शन का प्रयोजन : ले० डॉ० भगवान्दास; प्रकाशक––हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद; मूल्य २)

भारतीय सृष्टिक्रमविचार : ले० श्री सम्पूर्णानन्द; प्रकाशक––काशी नागरीप्रचारिणी सभा; मूल्य ।=)

––पत्र-पत्रिकाएँ––

'विश्ववाणी' : बौद्ध-संस्कृति अंक : संपादिका श्री महादेवी वर्मा, एम० ए०, 'विश्ववाणी' प्रेस साउथ मलाका, प्रयाग; मूल्य १)

'समाज-सेवक' : सेठ जमनालाल बजाज स्मृति अंक; संपादक––श्री भारतभूषण अग्रवाल एम० ए०; १५२ । ब, हरिसन रोड कलकत्ता; मूल्य ।)

––स्फुट––

'मेहरोत्रा बैंकिंग डायरेक्टरी' : श्याम भवन, फर्रुखाबाद (यू० पी०); मूल्य १॥)

क्या और कैसे ?

और बढ़ गया

'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' यह वत इन दिनों सर स्टेफर्ड क्रिप्स की त-सम्बन्धी योजनाओं पर जितनी सच्ची त हुई है उतनी शायद ही दूसरी बात पर हो। सर क्रिप्स तथा मौलाना आजाद व पं० हरलाल नेहरू के वक्तव्यों ने न केवल उन वों का खोखलापन ही जाहिर किया है, क ब्रिटिश राजनेताओं की नीयत पर हिन्दु- नियों का सन्देह और भी मजबूत कर दिया यहाँतक कि महात्मा गांधी ने सन्तप्त होकर भी कह दिया कि अब मैं इस युद्ध में अंगरेजों साथ नैतिक सहानुभूति भी नहीं रख सकता। गांधीजी जैसे अंगरेजों के परम मित्र के हृदय इस हद तक चोट पहुँची है, तब प्रत्येक मेदार व समझदार अंगरेज को इसपर बहुत दगी व चिन्ता के साथ सोचने का अवसर उन्हें शीघ्र ही ऐसे उपाय काम में लाने हिए जिससे फिर महात्माजी का नैतिक सम- उन्हें प्राप्त हो। अमेरिका व चीन की सर- वालों को भी अब हिन्दुस्तान की समस्या को झाने में अपना पूरा असर डालना चाहिए— तो हिन्दुस्तान में बहुत विकट परिस्थिति होने का अन्देशा है।

किस्तान का भूत

पाकिस्तान की कल्पना का हमने विरोध है; उसकी कोई योजना तो उसके हामी अभी तक पेश नहीं कर सके। सच्चा पाकि- न तभी बन सकता है जब हिन्दू व मुसलमान ग-अलग क्षेत्रों में बँट जायँ। ऐसा होना न मुमकिन ही है, न मुसलमानों के हित में ही— कई मुसलिम लीगी भी स्वीकार करते हैं। वालों ने नाम भले ही 'पाकिस्तान' पकड़ लिया र वे जो कुछ चाहते हैं उसके लिए 'पाकि- ' शब्द मौजूं नहीं है। इसीलिए श्री राजगोलाचार्य कहते हैं पाकिस्तान दर असल कुछ है नहीं, महज एक भूत है, जिसकी दाढ़ी हिलाकर मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि यह एक हवा है, और इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। कइयों की यह राय है कि जबतक कांग्रेस और हिन्दू 'पाकिस्तान' का विरोध करते हैं तबतक लीगियों के हाथ में वह एक हथियार का काम देता है। जिस दिन ये कह देंगे—अच्छा आओ हमें पाकिस्तान मंजूर है; तुम उसकी योजना पेश करो, तो लीगियों को लेने के देने पड़ जायेंगे। डा० अम्बेडकर ने तो अपनी पुस्तक में यह भली भाँति साबित कर दिया है कि पाकिस्तान खुद मुसलमानों को भारी पड़नेवाला है और कहा है कि हिन्दू व्यर्थ ही उसके नाम से घबड़ाते हैं। ऐसी दशा में हमें तो यही उचित मालूम होता है कि राजाजी की बातों पर हम गंभीरता से विचार करें।

हिन्दुस्तानी-प्रचार-संघ

महात्माजी ने हाल में ही यह संघ स्थापित किया है। इसका उद्देश्य है राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी का प्रचार करना। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की तरफ से अबतक महात्माजी के ही नेतृत्व में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार कर रही थी, वह अब भी कायम है; लेकिन राष्ट्रभाषा के लिए नाम व कुछ स्वरूप का विवाद उपस्थित हुआ। एक पक्ष हिन्दी का आग्रह करके उसे संस्कृत की तरफ अधिक ले जाने लगा, व दूसरा हिन्दुस्तानी का आग्रह करके हिन्दी+उर्दू की खिचड़ी की तरफ। इस विवाद में हिन्दू-संस्कृति व मुस्लिम संस्कृति-सम्बन्धी विशिष्ट धारणाओं व आग्रह ने मानो आग में घी का काम किया व अब 'हिन्दी' वालों का एक कट्टर सम्प्रदाय बन गया है, व संगटित हो रहा है। उधर हिन्दुस्तानी-प्रचार-संघ के द्वारा मुख्यतः उर्दू का प्रचार होने से

कई लोग दुबिधा में पड़ गये हैं—क्योंकि हिन्दी का प्रचार तो राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति द्वारा हो ही रहा है अतः हिन्दुस्तानी-प्रचार-संघ के लिए मुख्यतः उर्दू-प्रचार का ही काम रह जाता है। जबतक हिन्दू व मुसलमान दोनों अपनी संस्कृतियों को अलग मानते रहेंगे व उनकी दृष्टियों से भाषा व लिपि के सवाल को देखते रहेंगे तबतक न राष्ट्रीय एकता हो सकती है, न राष्ट्रभाषा बन सकती है। राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रीय भावना अर्थात् राष्ट्र की सभी जातियों को एक व समान दृष्टि से देखने की वृत्ति की जरूरत है। जब हम ऐसी भावना बना लेंगे तब न किसी को उर्दू सीखने में हानि मालूम होगी, न 'हिन्दी' व 'हिन्दुस्तानी' के नाम का बखेड़ा शेष रह जायगा। जब हिन्दू धर्म व इस्लाम धर्म की मूल शिक्षाओं में खास अन्तर नहीं है तो दोनों की अलग-अलग संस्कृतियों के प्रश्न को तूल देना न केवल अपने अपने धर्मों को ही हानि पहुँचाना है, बल्कि सारे भारत के राष्ट्रीकरण में भी बाधक होना है। हमने धार्मिक रीति-रिवाजों व परम्पराओं को जितना महत्व दे रक्खा है वह गलत है। हमें धर्म के मूल पाये की तरफ ज्यादा ध्यान देना चाहिए और उसके प्रकाश में रीति-रिवाजों व परम्पराओं को बदलते रहना चाहिए। आज हम जड़ को भूलकर या छोड़कर फूल-पत्तों के लिए आपस में विवाद व झगड़े बढ़ा रहे हैं व अपने को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। हमें ऐसा लगने लगा है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में हिन्दू संस्कृति की दृष्टि जोर पकड़ रही है, व उसके प्रभाव से 'हिन्दी' शब्द राष्ट्रभाषा की व्यापकता से हटकर सांस्कृतिक संकुचितता की तरफ बढ़ रहा है। इधर हिन्दुस्तानी-प्रचार-संघ बिल्कुल राष्ट्रीय दृष्टि से उर्दू का प्रचार करेगा, अतः राष्ट्र-भाषा-प्रचार समिति व हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा का परस्पर एकता की तरफ बढ़ने की अपेक्षा एक दूसरे से दूर-दूर होते चले जाने का अन्देशा कइयों को होता है—दोनों का नेतृत्व महात्माजी के हाथों में है इससे भले ही इस आशंका को स्थान न रहे। ईश्वर इस आशंका को गलत साबित करे।

विक्रम-द्विसहस्राब्दि उत्सव

मालवे के हमारे उत्साही साहित्यिक व विद्वान् मित्र पं० सूर्यनारायणजी व्यास के प्रयत्न से तथा श्री मुन्शी, श्रीमंत देवास (जूनियर)-महाराज के समर्थन से आगामी २००० संवत् पर मालवे के महान् पराक्रमी व विद्या-कला-संस्कृति के परम उन्नायक सम्राट् विक्रमादित्य का स्मृति-उत्सव अब मूर्त रूप ग्रहण करने लगा है। हमें यह जानकर खुशी हुई है कि श्रीमन्त ग्वालियर-महाराज का भी ध्यान इस ओर गया है और यह विश्वास किया जाता है कि उनकी सहानुभूति से यह आयोजन सफल हो सकेगा। इसके सिलसिले में विक्रम-स्तम्भ, विक्रम-लायब्रेरी व विक्रम-विश्वविद्यालय बनाने के सुझाव पेश हुए हैं। मालवे के लिए एक अच्छे विश्वविद्यालय का अभाव वर्षों से अनुभव किया जा रहा है। हाल ही श्रद्धेय टण्डनजी ने उज्जैन की सभा में ऐसे विश्वविद्यालय की योजना का जोर के साथ समर्थन किया है, जिसमें हिन्दी के द्वारा पढ़ाई हो। सुना है कि ऐसे विश्वविद्यालय की योजना का अध्ययन करने के लिए श्रीमन्त ग्वालियर महाराजा ने अपने शिक्षाविभाग के दो उच्च अधिकारियों को नियुक्त किया था। इससे हमें आशा होती है कि ग्वालियर-महाराजा की प्रकृत सहायता या अगवानी से यह योजना कार्य-रूप में परिणत हो सकेगी। ह० उ०

बधाई

अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से अनेक पुरस्कार उत्कृष्ट पुस्तकों पर प्रदान किये जाते हैं। इस वर्ष की सूची में कुछ का उल्लेख तो हमने पिछले एक अंक में किया ही था, दो पुरस्कारों की सूचना और हमें मिली है:

(१) श्री रामनाथ 'सुमन' लिखित 'गांधी-वाद की रूपरेखा' पर मुरारका पारितोषिक मिला;

(२) श्री रामनारायण 'यादवेन्दु' लिखित त का दलित समाज' पर राधामोहन गोकुल रस्कार मिला।

वर्ष का 'देव-पुरस्कार' ब्रजभाषा की रचना दयालुसिंह कृत 'दैत्य वंश' पर मिला है। तीनों लेखकों को हमारी ओर से बधाई!

द अवसान

उस दिन जब सुना कि हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, के श्री नाथूराम प्रेमी के सुयोग्य पुत्र मचन्द्र मोदी का मोतीज्वर (टाइफॉयड) से क देहांत हो गया, तो हृदय पर आघात। स्व० हेमचन्द्रजी का 'ग्रंथ रत्नाकर' के और उत्थान में बड़ा हाथ रहा है। वह कई मालाओं के संचालक, अच्छे अनुवादक आलोचक थे। इस तरह प्रेमीजी के वह सच्चे धिकारी ही थे। पर अब तो वह पिता अपना उत्तराधिकारी बना गये! प्रेमीजी टि को तो शब्दों में कैसे बाँधा जाय? वह हसूस ही की जा सकती है। सु०

ी-पत्रकार-संघ से

फरवरी-मार्च ४२ को दिल्ली में हुए हिन्दी-र-सम्मेलन के आगे मैंने यह प्रस्ताव रखा था: "जगत की वर्तमान संकट की हालत देखते और भावी निर्माण के प्रति अपनी भी दारी पहचानकर साथ ही यह अनुभव कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा यानी भारत की की भाषा होने के कारण हिन्दुस्तान के मी लोक-जीवन में हिन्दी पत्रों का प्रमुख और दायित्व होगा, सब प्रांतों के हिन्दी रों का यह सम्मेलन अपनी स्थिति में मूल-स निष्ठा को प्रगट करता है कि

(अ) पत्रकारों में उत्तरोत्तर सामाजिक आर्थिक समानता की सुविधा हो।

(आ) उनके बीच श्रम और पूँजी का कर ऐक्य आवे, यानी पूँजी श्रमाधीन और

(इ) उनके परस्पर संबन्ध सर्वथा सहयोग वाभाव पर आश्रित हों।

सम्मेलन तदनन्तर यह आवश्यक मानकर कि उसका कार्यक्रम मूलनिष्ठा की दिशा में और उसकी पूर्ति करनेवाला हो आगे लिखे व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त करता है और उन्हें आदेश देता है कि वे निम्नलिखित बातों पर अपना मन्तव्य और सिफ़ारिश तैयार करके ३० अप्रैल '४२ तक सम्मेलन की कार्य-समिति को दे दें।

१. पत्रों की मिलकियत; उनकी आय, उसके साधन और उसका बँटवारा; शासन-सत्ता और अर्थ-सत्ता के साथ उनके सम्बन्धों की स्थिति।

२. विज्ञापन-विषयक नीति।

३. सम्पादकीय विभाग के कार्यकर्त्ताओं का न्यूनतम वेतन।

४. लेखकों और सम्वाददाताओं का कापी-राइट, रायल्टी और पारिश्रमिक।

५. पत्रकारों का समुचित शिक्षण एवं उन्हें प्रमाणित करने की आवश्यकता।

६. सम्मेलन के सदस्य के लिए न्यूनतम कर्त्तव्य का निर्देश।

७. पत्रकारों की स्थिति से सीधा सम्बन्ध सम्बन्ध रखनेवाला अन्य प्रस्तुत विषय।

समिति के सदस्य ये होंगे—

१. श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
२. ,, श्रीप्रकाश
३. ,, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
४. ,, हरिशंकर विद्यार्थी
५. ,, जैनेन्द्रकुमार

समिति अपने साथ यथावश्यक अन्य सदस्य ले सकती है।"

संघ में पत्रों के संचालक और वैतनिक कार्यकर्ता दोनों हैं। इससे सिद्ध है कि संघ का आधार हित-विग्रह नहीं हित-सामंजस्य है। वही बात प्रस्ताव के पहले हिस्से में दुहरायी और साफ की गयी है वैसी निष्ठा न हो तो संघ दोनों में से किसी एक पक्ष की ओर झुका रहेगा और उसमें आंतरिक संघर्ष की सम्भावना रहेगी।

प्रस्ताव अव्यावहारिक इसलिए नहीं है कि

संघ का व्यावहारिक अगला कदम क्या हो इसका विचार एक समिति को सौंपा गया है। समिति यदि व्यावहारिक है तो प्रस्ताव अव्यावहारिक नहीं हो सकता।

समिति से जिन बातों पर प्रकाश माँगा गया है उनमें नं० १ के बारे में कुछ खटका हो सकता है। पर वह अनभीष्ट है। समझा जानेवाला पत्र का मालिक आज अपने में स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वह स्वयं चक्की के दो पाटों के बीच है। ऊपर शासनसत्ता का दबाव उसपर है और दूसरी ओर से लोकमत का। इस तरह पत्र-मालिक की स्थिति श्रमिक की स्थिति से कुछ विशेष स्पृहणीय नहीं कही जा सकती। इस भाँति 'मिल्कियत, आय, उसके साधन और बटवारे' सम्बन्धी गवेषणा का अर्थ जरूरी तौर पर वर्तमान व्यवस्था का उलट-फेर नहीं है। अपेक्षा उससे यही है कि स्थिति की सम्पूर्ण दृष्टि हमें प्राप्त हो।

आशा है कि संघ सुविधा पाकर इस प्रस्ताव पर गंभीरतासे विचार करके उपयुक्त निर्णय करेगा।

प्रांतीय संगठन का स्वरूप

पिछले दिनों आगरा में हुए युक्तप्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर एक प्रश्न तात्कालिक आवश्यकता का बनकर सामने आया। प्रान्तीय संगठन का रूप क्या हो? शासन का काम सत्ता को केन्द्रित चाहता है। सत्ता के केन्द्रित होने के सुभीते भी हैं। पर सेवा का काम सत्ता और अधिकार का विकीरण (decentratisation) चाहेगा। यह प्रश्न तत्त्वशास्त्र का नहीं जीते-जलते व्यवहार याने राजनीति का है।

ऐसा लगता है कि परिधि के लिए केन्द्र अनिवार्य तो है पर मानव समाज ज्यों-ज्यों विकसित होगा केन्द्र उत्तरोत्तर शुद्ध नैतिक होता जायेगा। आत्मा एक है, शरीर अनेक। यानी नीति ही केन्द्रित होगी, शक्ति उत्तरोत्तर विकेन्द्रित होती जायेगी।

सीधे सत्ता जब कहीं केन्द्रित होती है तो शेष अंग उससे निःशक्त और निर्बल पड़ता जाता है। इससे अधिक की हानि पर कुछ का लाभ होता है। सार्वजनिक विकास का तकाज यह है कि ऊपर का दबाव क्रमशः शून्य हो भीतर से ही चेतना जगायी जावे।

इस दृष्टि से वहाँ यह सुझाया गया था वि प्रांतीय साहित्यिक संगठन प्रान्त में फिलहाल का करनेवाली स्थानीय समितियों और सभाओं के सं (फेडरेशन) का रूप ले। प्रान्तीय संघ स्थानी सभाओं को नैतिक पृष्ठ-बल दे, उनमें कर्म औ दिशा-सम्बन्धी एकसूत्रता लाये। बाकी बातों उन्हें स्वायत्त और स्वनिर्णायक रहने की सुविध और प्रोत्साहन दे।

यह प्रश्न आज अत्यन्त सामयिक है। साहित संस्कृति का वाहन है। राजनीति संस्कृति वे प्रति अपना दायित्व नहीं अनुभव करती। इस लिए राजनीति ने जो सार्वजनिक काम की पद्धि हमको दी है, हो सकता है कि सांस्कृतिक प्रयो जन में वह उपयुक्त नहीं साबित हो। चुनाव त हर हालत में मन बिगाड़ते हैं। जहाँ अनिवा न हो वहाँ चुनाव से क्यों न बचा जाये? प में यह लालसा हो सकती है, पर साहित्यि संस्थाओं के पद के पीछे क्या सत्ता और अधिका है कि लालसा लहकाये? इससे साहित्यिक संग ठनों में चुनाव को अनिवार्य नहीं मानना चाहिए साथ ही साहित्यिक काम सदा स्वल्पारंभी हो चाहिए। बड़े नाम और बड़े क्षेत्र की अभिलाष सेवाधर्मी को क्यों? राष्ट्रसेवा पड़ोसी-सेवा वे अतिरिक्त उनके लिए कुछ रहती ही नहीं।

प्रचार-कार्य के लिए सचमुच बड़ी संस्था और बड़े साधन चाहिए। पर रचनात्मक का त आरंभ जो जहाँ बैठा है वहीं से कुछ-न-कुछ क सकता है। आवश्यकता जगह-जगह फैले हु ऐसे रचनात्मक केन्द्रों की है। वह हो तो प्रचा के लिए सक्षम व्यापक संस्था अनायास बन जाये

जैनेन्द्रकुमार

बिड़ला जूट मैन्युफैक्चरिंग कपनी
लिमिटेड

—मैनेजिंग एजेंट—
बिड़ला ब्रदर्स लिमिटेड,
८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

'पद्म' छाप जूट कार्पेटों के निर्माता
जो फर्शों को सजाने की सब तरह की सामग्री से सबको सन्तुष्ट करने के लिए प्रसिद्ध हैं

क्या उनका कोई स्टॉकिस्ट आपके नगर में नहीं है ?
तो
कृपया हमारे सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स को लिखिए।

पता
मैसर्स गॉल्सन्स एण्ड कम्पनी
११, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता

बक्स नं० ६६३
तार का पता 'CARPETS'

प्राकृतिक चिकित्सा जगत का देवदूत

जीवन-सखा

भारतवर्ष में प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा-प्रणाली तथा आरोग्यमय जीवन का संदेश सुनानेवाला यह अपने क्षेत्र का प्रतिनिधि पत्र है। इस पत्र की कुछ खास विशेषताएँ— योगासन, स्वास्थ्य सम्बन्धी ठोस सामग्रियाँ।

प्रत्येक अंक में किसी-न-किसी रोग विशेष का निदान तथा प्राकृतिक उपचार सम्बन्धी अनुभवपूर्ण लेख।

आहार-शास्त्र सम्बन्धी आवश्यक बातों की जानकारी की चीजें।

और

व्यायाम-अंक जैसी अप्रतिम वार्षिक कृति

'जीवन सखा' का कोई भी अंक ढूंढकर देखिये फिर आपको इसकी योग्यता बतकी आवश्यकता न रह जायगी।

विशेषांक के लिये तो आज ही लिखें

क्योंकि अब बहुत कम प्रतियां बच गई हैं। विशेषांक का मूल १) वार्षिक मूल्य ३)

× × × ×

भारतवर्ष में अपने ढ़ँग का अनोखा

प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह

यह स्वास्थ्य गृह पिछले ७ वर्षों से आश्चर्यजनक सफलतापूर्वक आरोग्य-दान कर रहा है। यहाँ पर केवल प्राकृतिक तथा योगिक क्रियाओं के द्वारा प्रायः सभी प्रकार के रोगों से सदा के लिये छुटकारा दिलाया जाता है। यहाँ की चिकित्सा-पद्धति ही इस संस्था की लोकप्रियता का कारण है।

यह स्वास्थ्यगृह प्रयाग स्टेशन से १ मील की दूरी पर स्थित है। सुन्दर प्रशस्त बाग़, शांतिपूर्ण तथा स्वच्छ वातावरण, रोगियों के रहने का उत्तम प्रबन्ध इसकी ख़ास विशेषताएँ हैं।

स्वास्थ्य-गृह चिकित्सक

(१) डा० बालेश्वरप्रसाद सिन्हा।
(२) डा० चन्द्रा एम. बी, बी. एस.
(३) डा० ब्रजनन्दन प्रसाद बी. ए. एन, डी, वाई।
(४) डा० सीताराम सिनहा एन. डी. डी. वाई।
(५) डा० कृष्णबिहारी चौधरी एन. डी. डी. वाई।

आवश्यकता पड़ने पर इस लोकप्रिय संस्था को एक बार अवश्य याद करें

नोटः—यहाँ पर संक्रामक रोगों से पीडित होनेवाले व्यक्तियों का चिकित्सा भी की जाती है लेकिन उनके रहने का स्वास्थ्य गृह में प्रबंध नहीं है। अन्य विवरण जाननें के लिये लिखें—

मैनेजर—

प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह ८७ हिम्मतगञ्ज, **इलाहाबाद।**

पहले सम्पत्ति प्राप्त कीजिए, फिर पैसा बचाइए। बीमा कराने से
आपको एक निश्चित रक़म ज्ञात रहती है। फिर आप
किश्त से रुपया चुका सकते हैं।
जीवन-बीमे में मूल्य घटता नहीं,
समय पाकर बढ़ता
ही है।

परामर्श कीजिए :—

रूबी जनरल इंश्योरेंस
कं० लि०

चैयरमैन
सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

हेड आफिस—
नं० ८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता
शाखाएँ—
बंबई, नई दिल्ली, मद्रास, लाहौर, कानपुर,
पटना, अहमदाबाद, रंगून, कोलम्बो इत्यादि।

देशी राज्यों की वर्तमान अवस्था का चित्र

"प्रजामंडल"

यह श्री श्रीनाथसिंह लिखित सर्वथा नवीन उपन्यास है।

इस उपन्यास की हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी सभी पत्रों ने बड़ी प्रशंसा की है।

प्रसिद्ध हिंदी साप्ताहिक 'प्रताप' लिखता है :

प्रजामंडल--लेखक, ठाकुर श्रीनाथसिह प्रकाशक, दीदी कार्यालय, इलाहाबाद। मूल्य १॥), पृष्ठ संख्या २३८।

इस उपन्यास में देशी राज्यों की वर्तमान अवस्था का चित्र खींचा गया है। बीहड़ राज्य के पुरोहित महेशानन्द की कन्या भुवनमोहिनी पर बीहड़ नरेश आसक्त हो जाते हैं। पूजा के लिए मन्दिर जाते समय उसे राज-कर्मचारी बलपूर्वक ले भागते हैं। सरकस में काम करनेवाली चपला अचानक उस मोटर में कूद पड़ती है, और उसे बचाती है। यह 'ललकार' राज-कर्मचारियों के लिए असह्य हो उठती है। वे भुवनमोहिनी और चपला को प्राप्त करने के लिए सब प्रयत्न करते हैं। इधर ये दोनों लड़कियाँ बाबा बजरंगी के के सहयोग से प्रजामंडल-आन्दोलन खड़ा कर देती हैं। एक ओर राज्य का विपुल वैभव है, और दूसरी ओर 'निर्बल के बल राम'। अन्त में आन्दोलन सफल होता है। भुवनमोहिनी को राज्य की शक्तियों से लड़ना पड़ता है। अपने हृदय में भी वह शान्ति नहीं पाती। वहाँ भी संघर्ष है उसके प्रेमी बैरिस्टर मदनगोपाल के लिए। पर अन्त में वह अपने को एक सफल नारी सिद्ध कर देती है। उपन्यास का कथानक आदि से अन्त तक घटना-प्रधान है। घटना-क्रम में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई है। उसकी रोचकता बनाये रखने के लिए लेखक ने किसी कृत्रिम उपाय का अवलम्बन नहीं किया है। तारतम्य सर्वथा स्वाभाविक और क्रमबद्ध है। सिनेमा की तीव्र चपलता के समान हर घड़ी घटना नया और आकर्षक रूप धारण करती है।

चरित्र-चित्रण में लेखक ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। पत्रकारों की भी अच्छी खबर ली गयी है। कवियों की अर्थलोलुपता पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। चरित्रों का विकास स्वयं अवस्था-भेद के अनुसार होने दिया गया है। शिथिलता या अस्वाभाविकता का अभाव है। लेखक ने देशी राज्यों की शासन-संबंधी बुराइयों, नरेशों की अत्यधिक विलास-प्रियता का नंगा चित्र जनता के सामने रखा है। अँधेरे रंगमहल में "टटोल टटोल" का दृश्य किसी भी सभ्य कहलाने वाले के रोंगटे खड़े कर देगा। उपन्यास में मनोवेगजन्य छोटे वार्तालापों की कमी है। लेखक ने स्वयं इस काम को निबाहा है। उपन्यास आदि से अन्त तक रोचक और पठनीय है। देशी नरेशों की हालत जानने के लिए तो यह एक अमूल्य पुस्तक है।

मूल्य १॥) 'दीदी' के ग्राहकों से सिर्फ़ १), डाकव्यय।-)। आज ही एक कार्ड लिखिए।

पता--'दीदी' कार्य्यालय, इलाहाबाद

कमज़ोर, भद्दे कागज़ों के पेकिंग से होनेवाली

अपने व्यवसाय की हानि को बचाइए

हमारा मज़बूत, चीमड़ व सुन्दर

गैंडा मार्का

बैम्बू पल्प का बना हुआ क्राफ्ट पेपर

आपकी कठिनाइयों का हल करदेगा

यह उच्चकोटि का
पेकिंग कागज़ है

भारतीय बाजार में आज
इसका सानी नहीं

एक बार इस कागज़ का व्यवहार करलेने पर
आप दूसरे पेकिंग कागज़ का नाम न लेंगे

अपना आर्डर तुरन्त भेजिए

ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड

८, रायल ऐक्स्चेंज प्लेस, कलकत्ता

हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य का एकमात्र प्रतिनिधि

हंस

जिसका प्रत्येक अंक किसी भी पत्रिका के विशेषांक से श्रेष्ठतर साहित्य से परिपूर्ण रहता है— क्योंकि हंस का प्रत्येक अंक साहित्य के लिए नयी प्रेरणाएँ और नये संदेश लाता है, हंस हिन्दी-साहित्य का ऐसा सजग और जागरूक नेता है जिसके पथ-प्रदर्शन में उसके वर्तमान और भविष्य का निर्माण हो रहा है। और हिन्दी के सजग पाठक उसके प्रति ऐसी ही श्रद्धा रखते हैं इसका उत्कृष्ट प्रमाण है कि गत अक्टूबर में प्रकाशित

कविता-अंक

की एक भी प्रति नहीं बची। आगे के अंकों की भी इतनी माँग है कि नियमित ग्राहक न रहनेवाले पाठकों को निराश रहना पड़ता है।

यदि आधुनिक साहित्य की प्रगति समझने के लिए हंस की प्रतियाँ रखने की अनिवार्यता बढ़ती जा रही है तो आप क्यों निराश हों ?

अपना चन्दा तुरन्त भेजकर ग्राहक क्यों नहीं बन जाते ?

हंस में आपको जो

- कलापूर्ण कहानियाँ,
- विवेचनात्मक लेख,
- सरस कविताएँ,
- खरी आलोचनाएँ,

पढ़ने को मिलेंगी वे आप अन्यत्र नहीं पा सकते। प्रत्येक रचना हिन्दी-साहित्य की प्रगति को एक क़दम आगे बढ़ाती है और एक नयी टेकनीक, नयी शैली और नयी दृष्टि की ताज़गी से पाठक का ज्ञान-वर्धन और मनोरंजन करती है।

वार्षिक मूल्य ६), एक अङ्क का ।।)

व्यवस्थापक, 'हंस', बनारस कैंट

दिवंगत साहित्यकार के प्रति श्रद्धांजलि !

श्री सत्साहित्यिक-सेवक-समाज, उज्जैन का

आदर्श प्रयत्न

हिन्दी के सहृदय कवि स्वर्गीय रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' के परिवार की सहायतार्थ उनके निकट बन्धुओं और स्नेहियों ने अपनी-अपनी कृति समर्पित करने का जो निश्चय किया था उसके अनुसार प्रथम कृति प्रकाशित होगयी है :

आवारा

पृष्ठ १०८ [अद्भुत सामाजिक नाटक] मूल्य १)

लेखक—**पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'**

आप भी पुस्तक मँगाकर मुक्त आत्मा के प्रति अपना कर्त्तव्य-पालन कीजिए।

मिलने का पता——

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर : वर्धा : कलकत्ता : इलाहाबाद

हिंदी साहित्य को "अग्रवाल हितैषी" की अनुपम भेंट

सेठ जमनालाल बजाज की स्मृति में

जून के अन्तिम सप्ताह में बजाज अंक प्रकाशित होगा

अनेक लेखों और चित्रों से सुसज्जित : दूसरी विशेषतायें होंगी

१—सेठजी के व्यक्तित्व व कार्यों का सजीव चित्र और विस्तृत वर्णन।

२—भारत के प्रसिद्ध और अधिकारी लेखकों का सहयोग।

३—सेठजी के जीवन-सम्बन्धी अनेक संस्मरण, नयी ज्ञातव्य, खोजपूर्ण सामग्री का सुन्दर संकलन-सम्पादन।

इस अंक का सम्पादन करेंगे

हिन्दी व अंग्रेजी के ख्यातिनामा लेखक और भारत के सुप्रसिद्ध पत्रकार

—श्री॰ प्रेमनारायणजी अग्रवाल एम॰ ए॰—

अग्रवालजी का नाम इसकी लोक-प्रियता, उपयोगिता और सफलता की गारंटी है। इस अंक का दाम १) एक रुपया होगा और अभी से ३) भेजकर ग्राहक बननेवालों को मुफ्त मिलेगा। कागज की मँहगाई के कारण प्रतियाँ अभी से बुक करानी चाहिए, नहीं तो पीछे पछताना पड़ेगा।

व्यवस्थापक—"अग्रवाल हितैषी", हींग की मंडी, आगरा।

साहित्य सदन, अबोहर

का

सरल, सुबोध और सर्वसुलभ प्रकाशन

सरल स्वास्थ्य-साधन

नियमित तथा संयत आहार-विहार द्वारा समस्त रोगों का अचूक इलाज हो सकता है, इ
कथन पर शायद आपको विश्वास न हो । तब एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए । एक ब
केवल डेढ़ रुपये खर्च कर, दवाइयों पर खर्च होनेवाले सैकड़ों रुपये बचाइये और अपने बहुमू
स्वास्थ्य का बीमा करा लीजिये । हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक में प्रतिपादित नियमों का पाल
करने पर आपको कभी डाक्टर या वैद्य की जरूरत न पड़ेगी । अपने विषय के विशेषज्ञ विद्वान् द्वा
लिखित ३० चित्रों से युक्त २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १।) है ।

शिक्षा में नयी दृष्टि

शिक्षा-संसार में यह पुस्तक अपने ढंग की अकेली है । नवीन मनोविज्ञान तथा नयी शिक्षा
सिद्धान्तों का विशद विवेचन एक सुप्रसिद्ध शास्त्री की कलम से प्रसूत इस पुस्तक में पढ़ें । माँ-बा
शिक्षक तथा प्रत्येक बाल-हितैषी की यह पथ-प्रदर्शिका है । सिर्फ आठ आने में इसे खरीदकर अ
बच्चों का भविष्य उज्वल बनाइये ।

आज का जापान

वर्तमान विश्व-युद्ध में जापान का महत्वपूर्ण स्थान है । उसकी आंतरिक विशेषताओं त
दुनिया को चकाचौंध करनेवाली आकस्मिक उन्नति का रहस्य बतानेवाली यह बिलकुल साम
पुस्तक है । सचित्र, मूल्य केवल १)

ग्राम-सुधार (नाटक)

ग्रामों में फैली हुई कुरीतियाँ, अन्धविश्वास और अत्याचार-पीड़ित किसानों की दुर्दशा
नग्न चित्र इस पुस्तक में देखिए । मूल्य ।।=) मात्र ।

बाल-गीत

भावी राष्ट्र के निर्माता बालकों में स्वातन्त्र्य-प्रेम और निर्भीकता का संचार करनेवाली इ
पुस्तिका को अपने बच्चों के हाथ में अवश्य दीजिए । मूल्य केवल ।।)

विश्वधाय

गोपालन के ऊपर एक विशेषज्ञ की लिखी हुई इस अत्यन्त उपयोगी तथा सचित्र पुस्तक का मूल्य

ईसप-नीति निकुंज

महर्षि ईसप-की नीति की ६१ शिक्षाप्रद, मनोरंजक कहानियों का सुन्दर पद्यमय अनुवाद । मूल्य

बाल-गोपाल

संयुक्त अक्षरों से रहित सरस कविताओं का एक अनूठा बालोपयोगी संग्रह । मूल्य =)।।

बलिदान (एकांकी नाटक)

भारतीय स्त्री-समाज पर होनेवाले रोमांचकारी अत्याचारों की झाँकी इस नाटक में देखिए । मू० -)।

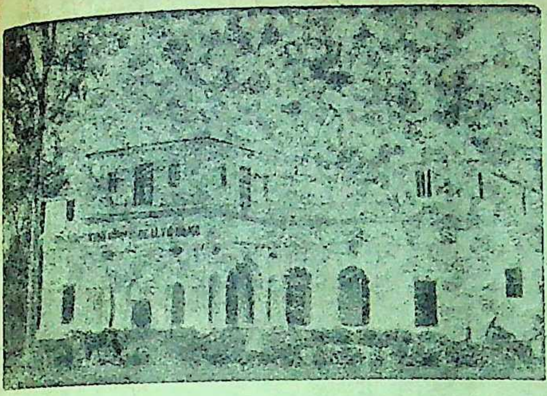

इस

आरोग्य-मंदिर

में

आकर

आरोग्यलाभ कीजिए !

यहाँ आपको प्राकृतिक चिकित्सा के साधन जल, धूप मिट्टी, वायु, आसन, प्राणायाम, मालिश, उपवास युक्त आहार की विधि करायी और बतायी जायेगी। सूर्य-किरण-चिकित्सा, दूध-कल्प, बिजली, जड़ी-बूटियाँ और विचार-शक्ति के प्रयोग से भी आप परिचित होंगे। अपना स्वास्थ्य लौटाने के साथ-साथ अपने कुटुम्बवालों और इष्टमित्रों को प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगमुक्त और स्वस्थ रहने की सलाह देनेलायक हो जायेंगे।

आरोग्य–मन्दिर
की
निजी गोशाला

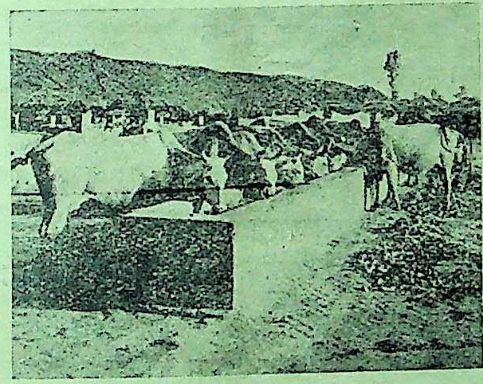

जिससे हृष्ट-पुष्ट
गायों का दूध रोगियों
को
उपलब्ध होता है।

इतना होने पर भी **कम-से-कम खर्च** !

विशेष जानकारी के लिए
डाक-टिकिट के साथ आज ही
लिखिए—

विट्ठलदास मोदी,
आरोग्य-मन्दिर, सूडीकुआँ
गोरखपुर

— स्वास्थ्याभिलाषियों के रहने के कुछ कमरे —

सस्ता साहित्य मण्डल : नये प्रकाशन

तीस दिन : मालवीयजी के साथ

पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संकलित महामना मालवीयजी के जीवन की झाँकियाँ। पृष्ठ ३५५ सचित्र : सादी १॥); एंटीक कागज, सजिल्द २)

भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन

श्री रामनारायण यादवेन्दु ने इस पुस्तक में भारतीय संस्कृति के प्राचीन और अर्वाचीन स्वरूपों पर प्रकाश डाला है और हमारे नागरिक-जीवन का विवेचन करते हुए उसके अभावों और अभियोगों को व्यक्त किया है। पृष्ठ ३३४; मूल्य १)

युद्ध और अहिंसा

महात्मा गाँधी के युद्ध और अहिंसा-सम्बन्धी लेख। पृष्ठ २२०; मूल्य ॥।)

अहिंसा-विवेचन

श्री किशोरलाल मश्रूवाला द्वारा अहिंसा का व्यावहारिक विवेचन। पृष्ठ ११८, मू० ॥)

महावीर-वाणी

महावीर स्वामी के वचनों का प्रामाणिक सटीक संग्रह। पृष्ट १८८; मूल्य १), १॥)

लड़खड़ाती दुनिया (नवीन परिवर्द्धित संस्करण)

पं० जवाहरलाल नेहरू के वर्तमान अन्तराष्ट्रीय राजनीति और भावी विश्व-व्यवस्था-सम्बन्धी लेखों का संग्रह। सचित्र; पृष्ठ २१०, मूल्य ॥।=)

मेरी हिमाकत

श्री वियोगी हरि के व्यंजनात्मक लेखों का संग्रह; पृष्ठ ११९; मूल्य ॥)

रचनात्मक कार्य-क्रम

गाँधीजी द्वारा रचनात्मक कार्य-क्रम की रूपरेखा। पृष्ठ २२; मूल्य =)

रचनात्मक कार्य-क्रम : कुछ सुझाव

श्री राजेन्द्रबाबू द्वारा गाँधीजी की पुस्तिका की पूरक व्याख्या। पृष्ठ ३२; मूल्य ≡)

रूमी की कहानियाँ

महाकवि मौलाना रूमी की दार्शनिक कहानियों का हिन्दी रूपान्तर। **अनुवादक**—चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य। पृष्ठ १०२; मूल्य ।)

बीरबल की कहानियाँ

बीरबल की मनोरंजक कहानियों का संग्रह। पृष्ठ ४२; मूल्य =)

भजनावली

श्री वियोगी हरि द्वारा सुप्रसिद्ध "आश्रम-भजनावलि" के ढंग पर संकलित तथा संपादित हिंदी तथा अन्य भाषाओं के गेय भजनों का संग्रह। मूल्य ≡)

मन्दिर

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के एकांकी नाटक। 'हिन्दी-मन्दिर'-प्रकाशन। पृष्ठ १३३, मूल्य ॥।)

— शीघ्रातिशीघ्र आर्डर दीजिए —

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ीवन साहित्य

: अंक १२ | सम्पादक | जुलाई : १९४२

हरिभाऊ उपाध्याय

3. 6. 82
गु. पुस्तकाल

अकस्मात् के अवसर पर

कहा नहीं जा सकता कि हिन्दुस्तान अपनी परतन्त्रता का नाश करने के लिए तीव्र और फौरन् उपाय काम में लाने का मार्ग अख्त्यार करेगा या इंग्लैण्ड और उसके दोस्त तथा जापान के झगड़ों का लाचार साक्षी बनकर नसीब के आसरे बैठेगा। लेकिन दोनों परिस्थितियों में अकस्माती कामों का प्रबन्ध करना महत्व का होगा। एक या दूसरे प्रकार के दंगे, लड़ाई, अंधाधुंधी के लिए लोक-सेवकों को तैयार रहना होगा और जनता को भी तैयार रखना होगा। बार-बार लोग बड़ी संख्या में दूर या नजदीक भागेंगे; कभी सरकार के हुक्म से और कभी डर से। उस वक्त अकाल, बीमारी, लूटपाट आदि की परिस्थिति पैदा होगी। नये-नये टोलीपति, सरदार वगैरा निकल आवेंगे। कोई अपना अधिकार छोटे से क्षेत्र में जमा लेंगे; कोई बड़े क्षेत्र पर। ये दो तरह के होंगे स्वार्थी, व देशाभिमानी। देशाभिमानी दो तरह के होंगे—शुद्ध अहिंसावादी ओर अहिंसा-हिंसा दोनों का आश्रय लेनेवाले। शान्ति संघ के नाम से काम करनेवाले कार्यकर्ताओं में से भी इन तीनों तरह के नायक निकलना सम्भव है। पर जो स्वार्थी होंगे वे जल्दी ही अलग हो जायेंगे और लूट-मार आदि की प्रवृत्ति में पड़ेंगे। लेकिन जो देशाभिमानी होंगे उनमें हिंसा का पूरा निषेध करनेवाले और एक हद तक उसका आश्रय लेनेवाले कार्यकर्त्ता परस्पर सहयोग करेंगे, या एक दूसरे से अलग हो जायेंगे, या कुछ क्रियात्मक काम करते हुए सिर्फ बहस करते रहेंगे. इसपर काम की सफलता का बहुत आधार रहेगा।

— **किशोरलाल मश्रुवाला** —

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. **दो पैसे** (कविता) ४०९
[श्री सियारामशरण गुप्त]

२. **ग्राम-सेवक का कार्य** ४१०
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]

३. **कला और जीवन** ४११
[श्री रणजीत कुमार सील]

४. **हमारे पाखाने और उनकी सफाई** ४१४
[श्रीमती रामेश्वरी नेहरू]

५. **आज की कहानी** [श्री सुबोध अदावाल] ४१७

६. **देशी राज्य व सत्याग्रह** ४२०
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]

७. **हिन्दी-लेखकों की समस्याएँ** ४२२
[श्रीशंकरसहाय, सक्सेना, एम.ए. एम.काम]

८. **व्यवहार-पूजा** (एक व्यंग्य) ४२५
[श्री प्रभाकर माचवे, एम. ए.]

९. **मन्दिर** (श्री 'होनहार') ४२९

१०. **जीवन-निर्माण में परिस्थिति और साहित्य**
[श्री हरिश्चन्द 'विशारद'] ४३०

११. **कसौटी पर** ४३३
ज्योति; मरीचिका; नागयज्ञ; ग्राम-सुधार नाटक; निर्दोष; राका; रेल की रात; रैन-बसेरा; हमारे बालक, आगामी कल, मानव धर्म ।

१२. **समालोचनार्थ प्राप्त** ४३६

१३. **क्या और कैसे** ४३७
नया रूप; रूपरेखा; दुःखद विवाद; काका सा० का खुलासा; सहानुभूति के योग्य; 'विक्रम द्विसहस्राब्दि महोत्सव' की रूपरेखा; 'हिन्दी-सेवी-संसार'; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, की अर्द्धशताब्दि ।

फ्री इन्डिया जनरल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड

प्रधान कार्यालय : कानपुर

जिन्दगी, आग, मोटर, मजदूरों के कम्पेन्सेशन, ईमानदारी और साधारणतया तमाम दुर्घटनाओं के बीमे व उनके प्रतिनिधित्व के लिए लिखिए।

[चेयरमैन—सेठ पद्मपत सिंहानिया]

मूलधन	रु०
गृहीत मूलधन	२०,००,०००)
चुकता मूलधन	५,००,०००)
सरकार में जमा	२,५०,०००) से अधिक
क्लेम चुकता किये	६,००,०००) से अधिक
जीवन कोष	४,००,०००) से अधिक

विशेष जानकारी के लिए लिखें:—

ब्रांच मैनेजर :—
एस० डी० मित्तल,
कटरा अशरफी के ऊपर, चांदनी चौक, दिल्ली।

मैनेजिंग डाइरेक्टर :—
एन. के. भरतिया,
B. A., F. C. I.

सस्ता साहित्य मण्डल

ाखाएं:—दिल्ली, लखनऊ, इन्दौर,
वर्धा, कलकत्ता, इलाहाबाद

कनाटसर्कस, नयी दिल्ली
१ जुलाई १९४२

'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों की सेवा में

प्रिय महोदय,

इसी वर्ष मार्च के महीने में 'जीवन-साहित्य' के द्वारा आपकी सेवा में निम्नलिखित नयी पुस्तकों की सूचना भेजी थी—

१. तीस दिन : मालवीयजी के साथ
२. युद्ध और अहिंसा
३. महावीर वाणी
४. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन
५. बिखरे विचार
६. अहिंसा-विवेचन
७. पशुओं का इलाज
८. उपनिषदों की कथाएं
६. आदर्श बालक
१०. रुमी की कहानियाँ
१. रचनात्मक कार्यक्रम (गांधीजी)
१२. रचनात्मक कार्यक्रम: कुछ सुझाव
३. बहन
१४. स्वास्थ्य के लिए शाक-तरकारियाँ
५. चौबोली
१६. मन्दिर

आज हम फिर अपनी निम्नलिखित नयी पुस्तकों की सूचना इसके द्वारा आपको दे रहे हैं। त तीन मास में निम्नलिखित नयी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

१—मेरी हिमाक़त :	(वियोगी हरि)	॥)
२—भजनावली :	(सम्पादक : वियोगी हरि)	–≡)
३—बीरबल की कहानियाँ :	(शिवनाथसिंह शाण्डिल्य)	=)
४—आवारा (सामाजिक नाटक) :	(पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र')	१)
५—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज— (प्रथम भाग) :	(मोतीलाल मेनारिया एम० ए०)	३)

इनमें १ नं० की पुस्तक सर्वोदय साहित्य-माला की, २ नं० की पुस्तक नवजीवन-माला की, नं० की पुस्तक बाल साहित्य माला की और नं० ४ तथा ५ की पुस्तकें सोल एजेन्सी की हैं।

इनमें 'मण्डल' द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर स्थायी ग्राहकों तथा जी० सा० के ग्राहकों तीन आना रुपया तथा सोल एजेन्सी की पुस्तकों पर चार आना कमीशन मिलेगा।

आपको यह तो ज्ञात हो ही गया होगा कि प्रयाग का 'हिन्दी मन्दिर' मंडल ने खरीद लिया । अब 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकें आप अपने लिए पौने मूल्य में मँगा सकते हैं। 'मंदिर' की पुस्तकों सूचीपत्र भी इसके साथ दिया गया है।

खादी-भण्डारों पर केवल 'मण्डल' की पुस्तकें ही आपको **दो आना रुपया** कमीशन पर मिला गी : सोल एजेन्सी और 'हिन्दी मन्दिर' की पुस्तकें आप मण्डल के प्रधान कार्यालय तथा उसकी ाओं पर से ही मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक, सस्ता साहित्य मण्डल

सस्ता साहित्य मण्डल के प्रकाशन

स्थायी ग्राहक बनने पर ≡) रुपया कमीशन मिलेगा।

[एकसाथ पूरा सेट लेने पर सब पुस्तकें पौने मूल्य में]

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन-साहित्य ।।=) ३. तामिल वेद ।।।) ४. व्यसन और व्यभिचार ।।।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।।) १६. अनीति की राह पर ।।=) १८. कन्या-शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ।।) २५. स्त्री और पुरुष ।।) २६. घरों की सफ़ाई ।=) २७. क्या करें? १।) ३९. तरंगित हृदय ।।) ४१. दुखी दुनिया ।=) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) : १।।) ४५.जीवन-विकास १।) ४७. फाँसी ! ।=) ५१. भाई के पत्र १।।) ५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।) ५९. रोटी का सवाल ।।।) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६४. संघर्ष या सहयोग ? १।।) ६५. गांधी-विचार-दोहन ।।।) ६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता १।।) ६९. आगे बढ़ो ! ।।) ७०. बुद्ध-वाणी ।।=) ७१. काँग्रेस का इतिहास २।।) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू) ३) ७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) ७५. पुत्रियाँ कैसी हों ? ।।।) ७६. नया शासन-विधान ।।।) ७७. गाँवों की कहानी ।।) ७८. महाभारत के पात्र १) ८०. संतवाणी ।।) ८१. विनाश या इलाज ।।।) ८२. अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।।) ८३. लोक-जीवन ।।) ८४. गीता-मंथन १।।) ८५. राजनीति-प्रवेशिका ।।) ८६. अधिकार और कर्त्तव्य ।।) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ।।) ९०. प्रेम में भगवान् ।।।) ९२. ब्रह्मचर्य ।।) ९३. हमारे गाँव और किसान ।।) ९४. अभिनन्दन-ग्रंथ १।) २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्याएँ १) ९६. जीवन-सन्देश ।।) ९८. समाजवाद : पूँजीवाद ।।।) ९९. मेरी मुक्ति की कहानी ।।) १००. खादी-मीमांसा १।।) १०१. बापू ।।=) १।) २) १०२. मधुकर (विनोबा) १) १०३. लड़खड़ाती दुनिया ।।।=) १०४. सेवाधर्म: सेवामार्ग १) १०६. डायरी के पन्ने ।।।) १।) १०७. तीस दिन १।।) २) १०८. युद्ध : अहिंसा ।।।) १०९. महावीर वाणी १) १।।) ११०.भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन १।) १११. बिखरे विचार ।।।=) ११२. अहिंसा-विवेचन ।।) ११३. मेरी हिमाक़त ।।।)

नवजीवन माला

१. गीताबोध =) २. मंगलप्रभात -) ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय -) ५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज ≡) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १२. गाँवों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गीत =) १४. खादी का महत्त्व -)।। १५. जब अंग्रेज नहीं आये थे ≡) १६. सोने की माया -) १७. सत्यवीर सुकरात (गांधीजी) -) १८. भजनावली

सामयिक साहित्य माला

३. हम कहाँ हैं ? =) ४. युद्ध-संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे ? ≡) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।) ७. देशी राजाओं का दरजा ।) ८. युरोपीय युद्ध और भारत ।) ९. रचनात्मक कार्य-क्रम (गांधीजी) =) ११. रचनात्मक कार्यक्रम पर कुछ सुझाव (राजेंद्रबाबू) ≡)

बाल साहित्य माला

१. सीख की कहानियाँ (१) =) २. कथा-कहानी =) ३. शिवाजी-चरित्र =) ४. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ५. सीख की कहानियाँ (२) =) ६. बीरबल की कहानियाँ =)

विविध पुस्तकें

१. जवाहरलाल नेहरू =) २. मोतीलाल नेहरू ।) ३. सप्तसरिता (काका कालेलकर) =) ४. चारा दाना और उसको खिलानें के उपाय ≡) ५. पशुओं का इलाज ।।) ६. उपनिषदों की कथाएँ ।) ७. आदर्श बालक ।।) रूमी की कहानियाँ ।।)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ।।) ३. फ्रांस की राज्य-क्रांति १।।) ४. गांधीवाद की रूपरेखा १) ५. पिता के पत्र पुत्री के नाम ।।) ६. प्रलय-वीणा १) ७. बहन ।।) ८. स्वास्थ्य के लिए शाक-तरकारियाँ १।।) ९. चौबोली ।।) १०. राजस्थान में प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की खोज ३) ११. आवारा १)

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग के प्रकाशन

'मण्डल' तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में

एक साथ पूरा सेट लेने पर एक तिहाई कमीशन

काव्य तथा साहित्य

१. कविता-कौमुदी (भाग १-२ हिन्दी) ७।।)
ौथा भाग उर्दू) ३) (सातवाँ भाग-बँगला)
. पथिक ।।) ३. मिलन ।।) ४. स्वप्न ।।)
ानसी ।।) ६. दिमाग़ी-ऐयाशी (प्रहसन) ।।)
ुलसीदास और उनकी कविता (२ भाग)
८. अयोध्याकांड (सटीक) ।।) ९. हिन्दु-
ी कोष २) १०. पाकेट डिक्शनरी (अंग्रेजी
ी) ।।।) ११. जयंत (नाटक) ।।।) १२.
ोक (नाटक) ।।।) १३. वफ़ातीचाचा
टक) ।।) १४. तरकस (कहानी-संग्रह) ।।)
हिन्दी-पद्यरचना (पिंगल) ।।) १६. सुकवि-
री १) १७. हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास ।=)
उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास ।।), १९.
बोली की कविता का संक्षिप्त इतिहास ।।),
सुदामा चरित ।) २१. पार्वती-मंगल ।)
शिवाबावनी ।) २३. कौन जागता है ?
टक) ।।) २४. हमारा ग्राम साहित्य २)
हिन्दी का विकास २) २६. पुष्पवाण ।।)
समाज और साहित्य (निबन्ध : दो भाग)
२८. मुस्लिम-सन्तों के चरित २) २९.
ीर ५) ३०. यूरोप की कहानियाँ २।।)
वीथिका (कहानी-संग्रह) ।।।) ३२. तूणीर
ीत) ।।) ३३. घर का वैद्य (वैद्यक) ६)
कुल-लक्ष्मी (स्त्रियोपयोगी) ।।) ३५. दंपति
१।) ३६. हिन्दुओं के व्रत और त्योहार १।।)
अँगरेजी शिष्टाचार २) ३८. योग के आसन
कसरतों के चित्र (सचित्र) १) ३९. रत्ना
ता-संग्रह) ।।) ४०. दृग-जल (कविता-
।।) ४१. नमूने का गाँव और मिट्टी के
ायक घर १) ४२. किसानों के काम की बात
३. किसानों की कहावतें (संग्रह) ।) ४४.
इलाज ।) ४५. चिन्तामणि (भजन-संग्रह)
६. स्वप्नों के चित्र (प्रहसन) ।।।) ४७.
रहस्य २।।) ४८. बीस कहानियाँ (कहानी-
) २) ४९. हिमानी ।।) ५०. तरंगिणी
(कविता-संग्रह) ।।) ५१. नीति के श्लोक ।।) ५२. मारवाड़ के मनोहर गीत ।) ५३. सोहर ।)५४. सारिका (कविता) ।।।) ५५. मन्दिर (एकांकी नाटकों का संग्रह) ।।।) Hindi Folk Songs : A. G. Shirreff १) Songs of Mirabai १)

बाल-साहित्य माला

१. बाल-कथा कहानी १७ भागों में। प्रत्येक भाग ।=) २. बताओ तो जानें (गोरखधंधा) ।) ३. बानर संगीत ।) ४. हंसू की हिम्मत ।=) ५. नेता बुझौवल ।) ६. खोजो, खोज निकालो (पद्य) ।) ७. परियों की कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।=) ८. राक्षसों की कहानियाँ ।=) ९. जादू की कहानियाँ ।=) १०. इतिहासों की कहानियाँ ।) ११. गुपचुप कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।) १२. मौत के सुरंग की कहानी ।=) १३. भूतों का किला ।=) १४. कहानी के कल-पुर्जे ।) १५. पेखन ।-) १६. मोतीचूर के लड्डू ।) १७. बलभद्दर ≡) १८. कबड्डी ।) १९. मोहन माला (कविता संग्रह) ।।।) २०. गांधी पत्ता या जवाहर ताश ।।) २१. हिन्दी पत्र शिक्षक =) २२. नई कहानियाँ ।=) २३. हरिश्चन्द्र ।) २४. महात्मा बुद्ध ।) २५. अशोक ।) २६. चन्द्रगुप्त ।) २७. आल्हा ।)

हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -)।। हिन्दी ज्ञानोदय—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।-) चौथा भाग ।।) पाँचवाँ भाग ।।-) छठा भाग ।।=) **कन्याओं के लिए** नया हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -)।। कन्या शिक्षावली—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।) चौथा भाग ।-) पाँचवाँ भाग ।≡) छठा भाग ।।)

सस्ती कहानियाँ १. आदमी की क़ीमत २. सियार राजा और मेढ़क राजकुमार ३. पकड़ पूँछ-कटे को ४. गड़बड़ गुम ५. तीन मेमने ६. तीन सुनहले बाल ७. रूपा ८. फूलरानी ९. बेलकुमारी १०. भय बिन होय न प्रीति ११. बुढ़िया बुढ़िया तुझे खाऊँ १२. चटक मटक की गाड़ी १३. चुड़ैल रानी १४. डंकू। दाम प्रत्येक का =)

यदि आप हिन्दी में साहित्यिक मासिक पत्र चाहते हैं तो

हंस

ही पढ़ें

क्योंकि यथार्थ में 'हंस' साहित्यिक मासिक ही नहीं है किन्तु साहित्यिक पत्रों का नेतृत्व करता है। उसमें भरती की सामग्री बिलकुल नहीं रहती। 'हंस' का प्रत्येक लेख उस विषय के विशेषज्ञों द्वारा आग्रहपूर्वक लिखाया जाता है, जिससे पाठक साहित्य में नयी प्रेरणा और साहित्यिक नवनिर्माण से परिचित रहता है।

प्रगतिशील साहित्य का तो

हंस

एक मात्र प्रतिनिधि है। इसमें आपको नयी शैली और नयी टेकनीक की कहानी और कविता, सारगर्भित विवेचनात्मक लेख, उत्कृष्ट सरस कवितायें तथा निष्पक्ष निर्भीक समालोचना मिलेंगी।

एक अंक मँगा कर देखिये।

वार्षिक ६)   एक अङ्क का आठ आना

व्यवस्थापक, 'हंस', बनारस कैंट

बिड़ला जूट मैन्युफैक्चरिंग कंपनी
लिमिटेड

—मैनेजिंग एजेंट—

बिड़ला ब्रदर्स लिमिटेड,
८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

*

'पद्म' छाप जूट कार्पेटों के निर्माता

जो फर्शों को सजाने की सब तरह की सामग्री से सबको सन्तुष्ट करने के लिए प्रसिद्ध हैं

क्या उनका कोई स्टॉकिस्ट आपके नगर में नहीं है ?
तो
कृपया हमारे सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स को लिखिए।

पता
मैसर्स गॉल्सन्स एण्ड कम्पनी
११, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता

पोस्ट बक्स नं० ६६३
तार का पता 'CARPETS'

'साहित्य-सन्देश' का नवीन साहस

तीन हज़ार पुराने और एक हज़ार नवीन ग्राहकों को

४०००) रु० की पुस्तकें भेंट

पुस्तकों का विवरण

प्रतियाँ	नाम व विषय	मूल्य
७००	राखी (कहानी संग्रह)	१)
७००	नारी जीवन (स्त्रियोपयोगी)	१)
३००	नैवेद्य (कविता संग्रह)	१)
२५०	पद्य रत्न-संग्रह (कविता)	१)
२५०	अनमोल कहानियाँ	।।।)
	अमर शहीद यतीन्द्रनाथदास	।)
४००	भग्नवीणा (कविता)	।।।)
	मनोरञ्जन (हास्य)	।-)
२५०	शुभ्रा (गद्य काव्य)	।।)
	चार यात्री (भ्रमण)	।।)
१५०	मोहिनी (उपन्यास)	।।)
	प्राच्य और पाश्चात्य(राष्ट्रीय)	।=)
२००	प्रताप समीक्षा (निबन्ध)	।।।)
	प्रतिच्छाया (कविता)	।=)
८५०	बुद्धगीता (नीति)	।।।)
	शिक्षा का आदर्श (शिक्षा)	।-)

'सन्देश' का वार्षिक मूल्य ३) है पर शिक्षा-संस्थाओं और विद्यार्थियों से २) लिये जाते हैं।

३१ जुलाई १९४२ तक यह रियायत सभी ग्राहकों को दी जायेगी। साथ ही पुराने और सभी ग्राहकों को एक-एक रुपये मूल्य की पुस्तकें और भेंट में मिलेंगी। इसका अर्थ है कि 'साहित्य-सन्देश' के १२ अंकों के ५०० से ऊपर पृष्ठ का ठोस मैटर केवल एक रुपया में मिल जायगा। परन्तु :—

यह रियायत केवल उन्हीं ग्राहकों को मिल सकेगी जो अपना आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य ३१ जुलाई १९४२ से पहले-पहले भेज देंगे, और वार्षिक मूल्य के २) के साथ पुस्तक के पैकिंग, पोस्टेज और रजिस्ट्री खर्च के लिए ।।) मनिआर्डर से भेज देंगे। पुस्तकें रजिस्ट्री से ही भेजी जावेंगी। बिना रजिस्ट्री के वी. पी. नहीं की जायगी।

पुस्तकों की छाँट

इस सूची में एक-एक रुपये की पुस्तकों की जोटें बना दी हैं। ग्राहक जिन पुस्तकों को लेना चाहें, मनिआर्डर कूपन पर उनका नाम लिख दें। उनको वही पुस्तकें भेज दी जायेंगी। पर यदि उनका मूल्य आने से पूर्व ही वह पुस्तक या जोड़ा समाप्त हो जायगा तो उसे भेजने के लिए हम बाध्य न होंगे। इस रियायत की अन्तिम तिथि ३१ जुलाई है, किन्तु यदि इससे पूर्व ही ४०००) की पुस्तकें समाप्त हो जावेंगी तो हम आगे यह रियायत देने को बाध्य न होंगे। इसलिए प्रेमी ग्राहक महानुभावों को जल्दी से जल्दी २।।) मनिआर्डर से भेज देना चाहिये।

—: इस रियायत से लाभ उठाने में शीघ्रता कीजिए :—

मैनेजर—'साहित्य-सन्देश', आगरा।

कमज़ोर, भद्दे कागज़ों के पेकिंग से होनेवाली

अपने व्यवसाय की हानि को बचाइए

हमारा मज़बूत, चीमड़ व सुन्दर

गैंडा मार्का

बैम्बू पल्प का बना हुआ क्राफ्ट पेपर

आपकी कठिनाइयों का हल कर देगा

यह उच्चकोटि का
पेकिंग कागज़ है

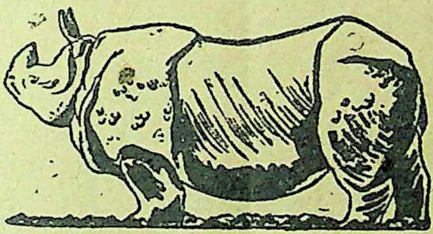

भारतीय बाजार में आज
इसका सानी नहीं

एक बार इस कागज़ का व्यवहार करलेने पर
आप दूसरे पेकिंग कागज़ का नाम न लेंगे

अपना आर्डर तुरन्त भेजिए

ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड

८, रायल ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

* हमारी दो नई पुस्तकें *

[जून का प्रकाशन]

चारुमित्रा :

लेखक—डा० रामकुमार वर्मा एम. ए., पी. एच-डी.

इसमें हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ एकांकी नाटककार श्री वर्मा जी के सर्वश्रेष्ठ और बिल्कुल नये चार नाटक हैं। ३२ पौंड ऐंटिक कागज, कपड़े की मोटी जिल्द, नयनाभिराम दोरंगा प्रोटेक्टिंग कवर। मूल्य दो रुपये।

* * *

शृँखला की कड़ियाँ :

लेखिका—श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०

भारतीय नारी की स्थिति, आवश्यकताओं, समस्याओं, आशा–आकांक्षाओं का एक जाग्रत नारी द्वारा गम्भीर विवेचन। ३२ पौंड ऐंटिक पेपर, कपड़े की सुन्दर जिल्द, सुन्दर आवरण। मूल्य पौने दो रुपये।

* * *

हाहाकार भरी गृहस्थियों को स्वर्ग बनाने के लिए

'भाई के पत्र' के लेखक श्री रामनाथ 'सुमन' की दो नई पुस्तकें।

१—आनन्द निकेतन	२)
×२— घर की रानी	१)

(× महिला विद्यापीठ की विदुषी परीक्षा में पाठ्य ग्रन्थ)

अवश्य खरीदिये। प्रत्येक बहन, भाई के पढ़ने और उपहार देने योग्य।

हमारी पुस्तकें निम्नलिखित पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ भी मिलती हैं :—

१. सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली और उसकी सब शाखाएँ।
२. सरस्वती प्रेस काशी और उसकी सब शाखाएँ।
३. हिंदी पुस्तक एजेंसी और उसकी सब शाखाएँ।
४. मालवीय पुस्तक भंडार, अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ।
५. शिवाजी बुक डिपो, अमीनाबाद, लखनऊ।
६. साहित्य भवन लिमिटेड, जीरो रोड, प्रयाग।
७. हिंन्दी भवन हास्पिटल रोड, लाहौर।
८. साहित्य रत्न-भण्डार, सिविल लाइंस, आगरा।

साधना - सदन

६९, लूकरगञ्ज, इलाहाबाद

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्माऽमृतं गमय।

दूसरा वर्ष
बारहवाँ अंक

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

जुलाई, १९४२
नयी दिल्ली

दो पैसे

मैं बजार कर आया अपना देकर जो दो पैसे,
गये किसी बहु दूर देश की यात्रा पर वे जैसे।
प्रान्त पार करके स्वदेश की लाँघ गये वे सीमा,
उन्हें लिये जाती हैं उत्थित उदधि ऊर्मियाँ भीमा।
देश-देश में, दिशा-दिशा में चर्चा एक उन्हींकी,
उनके बिना राज-भवनों की सुषमा-सुश्री फीकी।
उनके लिए विरह से व्याकुल श्रीमन्तों के मन हैं,
उन्हें नहीं पा लेते जबतक धन उनके निर्धन हैं।
उनके लिए खुल गये अर्गल जल-थल-व्योम पथों के,
घर्घर करके घूम उठे हैं सौ-सौ चक्र रथों के।
राजनीतिकों के कौशल में ज्वार उमड़कर आये,
खुले कृपाणों के वीरों ने हाथ अनन्त बढ़ाये।
और सभी के मुख में जल जब, सजल दृगों से कैसे,
ताक रहा भूखा दरिद्र वह मेरे वे दो पैसे!

२

मैं बजार कर आया था जो देकर निज दो पैसे,
सोच रहा हूँ, क्या से क्या हो बदल गये वे कैसे!
शत संघर्षों से विदेश में पहुँचे दूर वहाँ वे,
संगी-साथी मिले न जानें कितने कहाँ-कहाँ के।
उन्हें अपरिचित श्रमिक ले चला निज कन्धों पर ढोकर,
उनके महा भार से मग में दूनर-सा हो-होकर।
यहाँ-वहाँ कितनी गलियों में उतरे और चढ़े वे,
सुनता हूँ, अब किसी व्योम के पथ से लौट पड़े वे।
मँडरा रहे निकट के नभ में विकट भिन्न वेशी हैं,
नई योनि में जाकर अब वे पूरे परदेशी हैं।
किसी बड़े से विस्फोटक में कील रूप में रूप के,
खोज कर रहे हैं ऊपर से मेरी चुपके-चुपके।
अनजाने संबंध पूर्व का जाग गया है जैसे,
मुझे भेटने को उत्सुक हैं मेरे वे दो पैसे!

—सियारामशरण गुप्त—

ग्राम सेवक का कार्य

ग्राम-सेवा का महत्त्व इस बात में है कि ग्राम भारतवर्ष की प्राण रूप ईकाई है। यदि गाँव नहीं है तो जिस भारत पर हम गर्व करते हैं, वह भारत भी नहीं रहने का। जब भारत में शहर बसने और बनने शुरू हुए तो हमने माना कि हम सभ्यता और संस्कृति की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। मगर आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि शहरों ने हमें बहुत बेकस और बेबस बना दिया है। शहर उन बड़े-बड़े साम्राज्यों के प्रतीक बन गये हैं जो बहुतों को चूसकर थोड़ों के लिए सुख-साधन जुटाते हैं। इस कटु और निठुर अनुभव ने हमें शहरों से ध्यान हटाकर ग्रामों की ओर धकेला है। हम गाँवों की तरफ मुखातिब तो हुए हैं लेकिन शुद्ध ग्राम-सेवा की भावना हमारे मन में उतनी नहीं है जितनी राजनैतिक संगठन की; और अब इस युद्ध-काल में तो आत्मरक्षा की दृष्टि से भी ग्राम-सेवा का महत्त्व बढ़ गया है। राजनैतिक संगठन वा आत्मरक्षा दोनों अपनी जगह मौजूं हैं; पर यदि हम ग्राम-सेवा के लिए तत्पर हुए हैं तो हमें ग्राम-वासियों की '**सेवा**' ही हमारा सर्वोच्च लक्ष्य रखना चाहिए।

'**सेवा**' के सीधे अर्थ दो होते हैं—एक तो किसी प्रकार के बदले की आशा न रखना और दूसरे प्राथमिक अभावों व आवश्यकताओं की पूर्ति करना। हमारे राजनैतिक या दूसरे कार्यक्रम में उनका उपयोग करेंगे—यह भावना बदले की ही आशा है। हमें यह विश्वास ही रहना चाहिए कि यदि हमने उनके अभाव-अभियोग दूर किये तो उससे उनमें जीवन, जागृति, व बल का संचार होगा ही। फिर उसका उपयोग वे स्वतः ही अपने जीवन के लिए उपयोगी व आवश्यक कामों में करने लगेंगे। एक बीमार की बीमारी दूर कर दी, उसमें शक्ति व नवजीवन का संचार होगया, वैद्य का काम पूरा हुआ। अब वह व्यक्ति अपने-आप अपने कर्तव्यों को निबाहेगा। ग्राम-सेवक का काम एक प्रकार से ऐसे वैद्य का ही काम है। राजनैतिक जागृति या स्वराज्य का आन्दोलन जिन्हें करना है वह करें और करेंगे ही; ग्राम सेवक तो सबसे पहले उनकी मानवी आवश्यकताओं और अभावों की पूर्ति मेंअपना समय व शक्ति लगावेगा। वह देखेगा कि गाँव के लोगों को जो-कुछ रोटी-कपड़ा मिलता है सफाई, सुघड़ता व सुव्यवस्था के साथ उसका उपयोग करना सीखें। घर, आँगन, पशुशाला, साफ-सुथरी रहे, जिससे बीमारियों का अन्देशा कम हो; घर के व खेत के कूड़े-कचरे तथा पशुओं के मल-मूत्र का उपयोग खाद के लिए हो जिससे खेती की पैदावार बिना अधिक खर्च किये बढ़ सके। बीमारियों के अवसर पर उनके लिए उचित दवाओं का प्रबन्ध हो। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई तथा वयस्कों की ज्ञान-वृद्धि का उपाय हो। कुरीतियों से बचें और उन्हें दूर करने में कटिबद्ध हों। अपना कपड़ा तथा दूसरी जरूरियात जहाँ तक हो अपने घर, खेत, गाँव या पड़ौस से पूरी करने की आदत डालें। परस्पर सहयोग से मिलकर व एक होकर काम करना सीखें। झूठ, लड़ाई-झगड़ों से दूर रहें। सच बात कहते और सच काम करते हुए किसी से न दबें न डरें। अपने लड़ाई झगड़े अपनी पंचायतों में ही निबटा लिया करें। अपनी, अपने गाँव की हिफाजत व अन्न-वस्त्र की पूर्ति का पूरा ध्यान रक्खें। ये संस्कार, यह ज्ञान और आचार स्वराज्य या स्वतन्त्रता की असली बुनियाद है।

ग्राम-सेवा का यह सबसे अच्छा कार्यक्रम है। भले ही इसे आप नीरस रचनात्मक कार्य-क्रम कहें। भले ही राजनैतिक कार्य से इसका मूल्य कम आंका जाय। मगर मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि इस 'नीरस' कार्य-क्रम के बिना राजनैतिक काम या आन्दोलन फीका ही नहीं, बेकार और पंगु है। जो योग्यता और क्षमता मैंने रचनात्मक कार्य-कर्ताओं में पाई है, वह केवल राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं में नहीं मिलती। राजनैतिक कार्य-कर्ताओं में एक चमक तो होती है, पर स्थिर प्रभाव का अभाव रहता है। उनका साहस व कष्ट सहन प्रत्यक्ष होता है; इसलिए उनके प्रति आदर तो रहेगा; परन्तु प्रभाव की कुंजी रचनात्मक कहे जानेवाले कार्यकर्ताओं के हाथों में

गी । क्योंकि उनका जनता के नित्य जीवन से सम्बन्ध व सम्पर्क रहेगा । उनकी नित्य तपस्या के साक्षी रहते हैं ।

मगर राजनैतिक काम जितना सरल है, रचनात्मक काम उनना ही कठिन है । ग्रामों में कर रचनात्मक काम करना तो और भी मुश्किल है । जो भाई गाँव में जाकर बैठे हैं उनकी स्या के आगे 'पंचाग्नि' तपना कठिन नहीं है । पद, प्रसिद्धि, कीर्ति तो दूर, स्वास्थ्य व जीवन के लिए वश्यक साधन-सामग्री से भी वंचित रहकर जो प्रसन्नतापूर्वक ग्राम-सेवा में लगे हुए हैं उन्हें मेरे शः प्रणाम हैं ।

--हरिभाऊ उपाध्याय

कला और जीवन

[रणजीतकुमार सील]

कला ?

कला याने, जो कुछ सुन्दर वही, कला याने दर का वर्णन, कला याने ऐसी एक शक्ति जो दर की सृष्टि करती है ।

कला के बारे में कोई भी सवाल उठने पर न्दर' का नाम लेने से ही जैसे उसका जवाब हो जाता है ।

पर यह 'सुन्दर' क्या है ? इस शब्द का कोई नहीं जानता हो ऐसा आदमी शायद ही निया में मिले । किसी से अगर पूछें, "सुन्दर है ?" वह मेहरबानी की निगाह से जरा कर कहेगा--

"सुन्दर क्या, सुन्दर नहीं जानते ?"

जवाब में अगर कहा जाय--"जी नहीं, नना चाहता हूँ ।"

"अरे, आप भी कैसे ? सुन्दर याने--सुन्दर ने--"

ध्यान देने पर देखा जायगा, जवाब देने हिचकिचाता है, शायद उसके पसीना भी ल आया होगा ।

बहुत देर से जवाब मिलेगा--"सुन्दर याने र ।" कोई कहेगा--" 'सुन्दर' तो अनुभव की चीज है ।" पूछिए--"वह अनुभव हो सकता है ?" जवाब नहीं मिलेगा ।

इस 'अनुभव' का आजतक कोई नाम नहीं । एक जर्मन समालोचक ने कहा है--

"Art is the sense of taste, art is the sense of smell, art is the sense of touch, art is the sense of hearing, art is the sense of sight—याने चखने से, सूंघने से, छूने से, सुनने से, देखने से—इस तरह पाँचों इंद्रियों से ही कला का अनुभव होता है । इन पाँच इंद्रियों के अनुभव के बीच में है, सुन्दर को पाने की इच्छा—याने सौन्दर्य बोध ।

दिल में अब एक सवाल उठता है, कला का रूप प्रतिपादन करनेवाला यह 'सुन्दर' या 'सौन्दर्य' क्या है ? इस सवाल का एक ही जवाब दो सौ साल से दुनिया के श्रेष्ठ विद्वान् भी नहीं दे सके । हरेक का जवाब नया होता है । एक दूसरे से नहीं मिलता ।

इस पेचीदा सवाल को छोड़कर, हम उसी सीधी और पुरानी बात पर लौट चलें । याने 'कला एक ऐसी शक्ति है जो सुन्दर की सृष्टि करती है ।' लेकिन सुन्दर का मतलब बड़ा पेचीदा हो उठा है । आमतौर पर हम कला किसे कहते हैं—?

तुरत जवाब मिलेगा "क्यों, चित्रांकन, संगीत नृत्य, नाटक कविता, साहित्य ।"

दुनिया में कितने ही चित्रकार, संगीतकार नर्तक, नाट्यकार, कवि और साहित्यिक अपने खून का पसीना बहाकर कला के इस दावे को पूरा कर रहे हैं । मनुष्य की कर्म-शक्ति एक

युद्ध व्यवसाय के सिवा शायद और किसी भी काम में जीवन-मृत्यु का प्रण करके नहीं लगी है। इस काम में सिर्फ कर्म-शक्ति ही बरबाद हो रही है, ऐसा नहीं, युद्ध के मैदान की तरह लाखों मनुष्यों का जीवन भी उत्सर्ग हो रहा है। हम कहते हैं, यह सब कला के लिए ही हो रहा है और यह कला एक जरूरी चीज है। लेकिन क्या यह सच है, कि 'कला' एक ऐसी जरूरी चीज है, जिसके लिए लाखों के बलिदान की जरूरत हो? जो कला हरेक को खुश नहीं कर सकती, दुनिया का हरेक नर और नारी के पास सुन्दर का आवेदन नहीं पहुँचा सकती, जो कला हर दिल के सौन्दर्य-बोध को नहीं जंगा सकती, उसके लिए क्यों यह बलिदान, क्यों यह उत्सर्ग? फिर भी हम कहते हैं—"Art is universal" इस महान् मेहनत की बरबादी, इन लाखों जीवों का उत्सर्ग, सबके ऊपर, मनुष्य के प्रति मनुष्य के प्रेम को, जिस 'कला' के लिए बलिदान कर रहे हैं, वही कला हमारे पास रह जाती है, एक पहेली, एक रहस्य की तरह—और इस कला के बारे में मनुष्य का ज्ञान रह जाता है अनिश्चित।

हैरत के साथ देखना पड़ता है, 'कला' को जो चाहते हैं, उनमें से हरेक अपने-अपने 'वाद' की ताईद करने के लिए जो युक्तियाँ बता रहे हैं, वह आपस में एक दूसरे में इतनी विषमता पैदा करती है कि 'कला' के क्षेत्र में जिन चीजों को वह 'कला' नहीं कहकर विरोध करते हैं, अगर उन चीजों को हटा लिया जाय तो 'कला' का और कुछ वाकी नहीं रहता—कम से कम जिसे हम कला कहना चाहते हैं, वही कला।

काव्य में ही देखें। आदर्शवादी दल वास्तववादी (realist) दल को नहीं मानना चाहते। वास्तववादी दल भी उसके और आदर्शवाद के विरोधी दल को मानने के लिए राजी नहीं हैं। ये दोनों विरोधी दल भी उनके पहले की मत-प्रणाली को नहीं मानेंगे। साहित्य में, चित्रकला में, नाट्यकला में भी यही हाल है।

फिर भी हम देखते हैं, इसी कला के लिए युगों से मेहनत की बरबादी हो रही है, जीवन का उत्सर्ग हो रहा है, एक दल के साथ दूसरे दल का मत विरोध चल रहा है, याने मनुष्य मनुष्य को प्रेम करना भूल रहा है। लेकिन जिसे हम 'कला' कहते हैं, क्या वह एक ऐसी चीज है जिसके लिए हम मनुष्य होकर मनुष्य से प्रेम करना भूल जाँय? क्या, यही कला का उद्देश्य है? क्या, यही कला की सार्थकता है?

एक मत कला की एक व्याख्या करता है, और उसी आदर्श को सामने रखकर युगों से चला आ रहा है, कला सेवकों का आत्म-निवेदन लेकिन, क्या यह न्याय है? एक किसी भी दल के अन्दर व्याख्या के अन्दर बन्दी इस कला के लिए युगों से मनुष्य की यह आत्माहुति—यह बलिदान—क्या उचित है? मनुष्य से जो प्रेम करते हैं, वह एक आवाज से विरोध करके कहेंगे—"नहीं"। वे कहेंगे—"कुचल डालो इस कला को, जो युगों से मानवता के ऊपर अपना रक्तमय विजय-रथ चलाती जारही है, जिसके रथ के नीचे आकर मनुष्य की आत्मा कुचल रही है।" कला की इसी झूठी माया और मृगजल के पीछे ही हम आज भाग रहे हैं।

हम लोगों के समाज में जो अपने को शिक्षित और सभ्य कहकर गर्व करते हैं, और जो अपने को दूसरों से बड़ा समझते हैं, वे इस मरीचिका के पीछे भाग रहे हैं, क्योंकि आज की दुनिया में हरेक धर्म की असली शिक्षा में वे विश्वास करना भूल रहे हैं। ईसाई, मुस्लिम, और हिन्दू-धर्म के बीच में एक समानता है—वहीं पर इन तीनों धर्मों का मिलन होता है। तीनों धर्मों का मूल-मन्त्र एक ही है—मनुष्य के प्रति मनुष्य का प्रेम। इस सत्य के ही दर्शन में कला का दर्शन है। मनुष्य को वंचित करना कला नहीं है। "Art is Universal"—यह कोई खास आदमी या दल का कथन नहीं है। इसलिए एक विशेष दल के मतवाद को चिपक कर मनुष्य की जीवन शक्ति को बरबाद करना कला की सेवा नहीं है।

समाज के ऊँचे स्तर में जो रहते हैं, वे नते हैं, साधारण से वे ऊँचे हैं। इस प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए, साधारण श्रेणी और नके बीच में एक दीवार खड़ी करनी होगी। क्षित और अशिक्षित, धनवान और गरीब, नी और मूर्ख के बीच में एक लकीर खींचना गा। इसलिए, बल्कि इस भेद के लिए ही, कला का नया-नया, अर्थ बनाकर नया नाम कर इस वैशिष्ट्य को दिखाना चाहते हैं--सी तरह वह अशिक्षित, मूर्ख और गरीबों को हना चाहते हैं--"देखो, तुम लोग कला को हीं समझ सके, इसीलिए तुम छोटे और हम ड़े।" साधारण समाज इसे मान लेता है। वह न्ध-विश्वास से कला की सेवा कर रहा है, मझकर वह "शहीदों" की तरह जीवन को उत्सर्ग रता है। कला का संरक्षक दल इस हत्याकाण्ड को मजे के साथ देखता है।

लेकिन, इन सबको एक सत्य मानना ही ड़ेगा। वह सत्य, जो कि स्वेच्छा या अनिच्छा उनके दिल में अचानक जाग उठता है। वह त्य है--'हम लोगों का सच्चा, शुभ मंगल और ल्याण है विश्व-मानव की एकता में, मनुष्य प्रति मनुष्य के भाईचारे में, मनुष्य के प्रति नुष्य के प्रेम में।'

अगर मैं कहूँ, गांधीजी ही है आज की निया के सबसे बड़े कलाकार तो कुछ लोग लझन में पड़ जायेंगे। वह बूढ़े और हड्डी सली वाले अधनंगे आदमी, जिसमें कला की तक नहीं, वह कैसे कलाकार हो सकता है। र, वह भी सबसे बढ़कर ? लेकिन, उलझन पड़ने की कोई बात नहीं। बुद्ध और ईसा र्म के मूलसूत्र से विश्वमानव को एक करना चाहते थे, वह मनुष्य से प्रेम कर सके थे। इसलिए वह कलाकार हैं। इसलिए धर्म के बीच में ही उस रोज कला प्रकट हुई थी। धर्म के सूत्र से अगर विश्वमानव को बाँध सकते हैं, धर्म के बीच अगर कला की सार्थकता मिल सकती है, तो फिर धर्म ही क्यों कला का गौरव पाने से दूर रहे ? यह जरूर है, कि यह धर्म किसी एक खास संप्रदाय या जाति का नहीं है। यह ऐसा एक धर्म होगा जिसके साथ विश्व-मानव के दिल का संयोग रहेगा, जो धर्म विश्व-मानव के दिल में जिन्दादिली पैदा करेगा।

यह धर्मबोध, जो मनुष्य के दिल में आज अज्ञात प्रभाव विस्तार कर रहा है, जिस रोज मनुष्य उसे पहचानकर मान लेंगे, उसी दिन, उसी मुहुर्त में, साधारण कला और उच्च कला का भेद मिट जायगा। उसी दिन सब कला मिलकर एक दूसरे के प्रति हमदर्द ऐसी एक सार्वजनिक universal art को जन्म देंगी। आज जिस कला ने हमारे आपस में धर्म और विश्वास के साथ विरोधपूर्ण वातावरण पैदा कर दिया है, विश्वमानव को न मिलाकर भेद-नीति को प्रोत्साहन दिया है--उस कला को मनुष्य दूर फेंक देगा, उसे आज जो इज्जत मिल रही है, उसको तख्त से खींच लाकर मिट्टी में मिला देगा।

गांधी-युग का साहित्य होगा, महामानव का मिलन-कुंज। खादी, ग्रामोद्योग, और दूसरे रचनात्मक कामों में खिल उठेगा उस मिलन का छंद। नये युग में बज उठेगा विश्व मानव का राग। नये संसार में हम सुनेंगे विश्व की वाणी।

उस रोज जीवन और कला का संगम होने पर हम--सत्यं, शिवं, सुन्दरम् को पायेंगे।

हमारे पाख़ाने और उनकी सफ़ाई

[रामेश्वरी नेहरू]

सन् १९३३ में मैंने अपना हरिजन काम लाहौर के मेहतरों में शुरू किया था। लगभग दो वर्ष तक मैं बराबर उनके मुहल्लों में फिरती रही, उनके घरों में जाती रही, उनके जीवन को नजदीक से देखती रही। तब से मेहतरों के काम में और उनके काम करने के ढंग में मुझे खास तौर पर दिलचस्पी हो गई। फिर तो मैं जहाँ कहीं भी गयी मेरा पहला काम यही रहा कि मेहतरों में रहने और उनके काम करने के ढंग का निरीक्षण करूँ। भारतवर्ष के बहुत बड़े भाग में भ्रमण करके मैं उनके काम करने के ढंग को अच्छी प्रकार से देख चुकी हूँ। उन का काम तो अधिकतर शहरों में ही है। दक्षिण और मध्यभारत के छोटे शहरों में भी इनका काम अधिक नहीं है। वहाँ ज्यादातर घरों में टट्टियाँ नहीं रहतीं। लोग—जिनमें स्त्री, बालक, बड़े बूढ़े सभी शामिल हैं—बहुधा गाँव से बाहर खेतों में जाकर अपनी जरूरत रफा करते हैं। इसलिए मेहतरों की समस्या अधिकतर शहरों में और विशेष करके बड़े शहरों में ही है। मैंने निरीक्षण करके जितना भी देखा है, उससे मुझे यह अनुभव हुआ है कि उनका काम करने का ढंग वही पुरानी रीति से चल रहा है। हमारे घरों में टट्टियाँ, पाखाने वैज्ञानिक ढंग पर नहीं बनाये जाते। उनमें आसानी से सफाई हो सके, इस बात का ध्यान नहीं रक्खा जाता। अधिकतर स्थानों के पढ़े लिखे सभ्य घरानों में भी मैले के लिए बरतन काम में नहीं लाये जाते। टट्टियों में यदि बरतन रक्खे भी जाते हैं तो ऐसे छिछले, तंग और छोटे होते हैं कि उनके रखने से गन्दगी के फैलाव में कुछ भी कमी नहीं होती। मेहतरों के साफ करने का ढंग ऐसा गन्दा होता है कि जिससे उनके हाथ, पांव, कपड़े बराबर मैले हो जाते हैं। ड्रेनेज या पानी के निकास का हमारे गांवों या शहरों में कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं किया जाता। बहुत से मुहल्लों और नगरों में जमीन में गढ़ा खोदकर उसमें पानी जमा कर दिया जाता है, जिसकी सफाई मेहतर अन्दर हाथ डालकर करते हैं। इस पुरानी रीति के काम करने के गन्दे ढंग को बदलने के लिए मैं भरसक प्रयत्न करती रही हूँ। स्थान-स्थान पर कार्यकर्त्ताओं का ध्यान इस ओर मैंने आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। परन्तु इस कार्य में अबतक कोई विशेष सफलता होती दिखलाई नहीं दी।

इस वर्ष के जनवरी मास में राजपूताने के राज्यों में हरिजन प्रवास करते समय मैं अजमेर गयी थी। वहाँ की म्यूनिसिपैलिटी ने शहर के मैले के निकास का एक अद्भुत ढंग निकाला है। एक छोटी पहाड़ी पर सफेद टाइल का एक बड़ा सा कुण्ड बना रखा है। यह कुण्ड या हौज खुला हुआ है। शहर के मैले की गाड़ियाँ उसके किनारे पर पहुँचकर उनमें से मैला दूर से उसमें छोड़ दिया जाता है। मैले को पानी में घोलकर हौज में से मोरियों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। हर सुबह इस गन्दगी के हौज में सात मेहतर अन्दर घुसकर मैले और पानी को मिलाते हैं। जिस समय मेहतर हौज के भीतर घुसते हैं, उनके पांव टखने तक मैले में डूबे रहते हैं। इस काम को करते हुए उनके हाथ, पांव, मुंह, सिर, कपड़े, सभी मैले की छींटों से भर जाते हैं। इस हौज को तो मैंने अपनी आंखों से देखा है, परन्तु इस नारकीय कार्य को करते हुए अपनी आँख से देखने का साहस मुझे नहीं हुआ। इस हौज को मैंने १९३७ में भी देखा था। तभी से मेरे हृदय पर इसे देखकर भारी आघात लगा था। मैं उसे अभी तक भूली नहीं थी। अजमेर के गण्य-मान्य सज्जनों का ध्यान इस ओर मैंने १९३७ ही में आकर्षित करने का उद्योग किया था। गाँधीजी को, ठक्कर बापा को, महादेवभाई को, सभी को जो-कुछ देखा था उसका मार्मिक वृत्तान्त लिखा था। फिर भी १९४२ में, चार-

पाँच वर्ष पीछे, जब अजमेर पहुँची तो देखा कि वह हौज वैसा-का-वैसा ही बना है। काम उसी अमानुषिक रीति से बराबर चला चलता है। यह सब देखकर मेरा मन भारी व्याकुल हुआ और फिर से मैंने उद्योग किया कि यह नारकीय कुण्ड बन्द किया जाय और काम का ढंग बदला जाय। मैं और ठक्कर बापा स्थानीय कार्यकर्ताओं के साथ म्यूनिसिपैलिटी के प्रेसीडेण्ट के पास पहुँचे। उनको सब हाल कह सुनाया। उनसे बिनती की कि वे काम के ढंग को बदलें। मनुष्यों को मैले में घुसाकर उनसे यह गन्दा काम लेना बन्द कर दें। हौज को बन्द करें और जो काम मेहतर हाथों से करते हैं उसको औजारों से लेना शुरू करें। प्रेसीडेण्ट साहब ने हमारी बात को गौर से सुनकर वचन दिया कि वे अवश्य इधर ध्यान देंगे और जितना भी हो सकेगा इस कार्य में सुधार करेंगे।

इसी अजमेर शहर में, शहर के गन्दे पानी के निकास के लिए बहुत बड़ी-बड़ी ढकी हुई मोरियाँ हैं। वे मोरियाँ इतनी गन्दी हैं कि आस-पास की सड़क और मकानों में भी उनकी बदबू भर जाती है। इन ढकी हुई मोरियों के भीतर हर सुबह मेहतर घुसते हैं और उनको साफ करने का प्रयत्न करते हैं। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि इन गन्दी मोरियों के भीतर घुसकर सफाई करने में उन बेचारों को कितना कष्ट पहुँचता होगा ?

शहर में रहनेवालों में से किसने मेहतरों और मेहतरानियों को सिर पर और कमर पर मैले की टोकरियाँ रखकर लेजाते नहीं देखा है। कौन नहीं जानता कि इस प्रकार मैला लेजाते हुए इनके कपड़े और देह सब भर जाते हैं।

हमारे शहरों में इस आमानुषिक ढंग से आज शताब्दियों से सफाई हो रही है। म्यूनिसिपैलिटियाँ बनी हैं। बड़ी धूमधाम से उनके मेम्बरों का चुनाव होता है। हेल्थ ऑफिसर हैं, सैनिटरी इन्सपेक्टर हैं, सफाई दरोगा हैं, एक पूरा महकमा, जिसमें वेतन भोगी बहुत से नौकर रक्खे जाते हैं, सफाई के काम पर जुटा रहता है। म्यूनिसिपैलिटी के प्रेसीडेन्ट, उसके अधिकतर मेम्बर, एक्जीक्यूटिव आफिसर, हेल्थ आफिसर इत्यादि उच्च अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए शिक्षित वर्ग में से होते हैं। परन्तु आजतक उनमें से किसने गरीब मेहतरों के काम करने के ढंग को बदलने का जरा भी उद्योग किया है ? अच्छे से अच्छे कार्यकर्त्ता भी केवल इतना ही देखते हैं कि उनका कार्य अच्छा हो जाय। उनका शहर साफ रहे, उनके गली कूचों में मैला और गन्दगी न हो, परन्तु यह कोई नहीं देखता कि जिन अभागे मनुष्यों से यह काम लिया जा रहा है उनके मनुष्यत्व पर इस कार्य के अमानुषिक ढंग से कितना आघात पहुँचता है। किसी का ध्यान भी कार्य के ढंग को सुधारने की ओर नहीं जाता। कोई नहीं सोचता कि यदि हम सफाई करने के तरीके में वैज्ञानिक ढंग को इस्तैमाल करेंगे तो सफाई ज्यादा अच्छी रीति से होना संभव है। आखिर मैले की सफाई तो संसार के हर प्रदेश में की जाती है, और थोड़े से नगरों को छोड़कर जहाँ सैनिटरी ढंग पर सफाई करने का प्रबन्ध वैज्ञानिक रीति से कर लिया गया है, अधिकतर सफाई का काम हाथों से मनुष्यों द्वारा ही किया जाता है। परन्तु कहीं भी भारतवर्ष के समान गन्दे और अनोखे तरीके नहीं बरते जाते। मैं समझती हूँ कि इस ओर हमारी यह शोचनीय उदासीनता इस कारण से है कि हमने सफाई के काम के लिए मेहतरों की जाति को अपने जीवन से बिलकुल अलग और दूर बना रक्खा है। मेहतर का हमारे साथ कोई सम्पर्क नहीं है, सिवाय इसके कि वह हमारी गन्दगी को साफ करे। किस ढँग से वह साफ करता है इससे हमको क्या सरोकार। हमारी दृष्टि में तो वह मनुष्य है ही नहीं। घर के गाय-बैल पशु की भी हम सेवा शुश्रूषा करते हैं। इसलिए कि खाद्य सामग्री की उत्पत्ति के लिए उसका स्वस्थ रहना हमारे लिए आवश्यक है। परन्तु मेहतर के लिए तो हम इतना भी करने को राजी नहीं हैं। उसके

बाल-बच्चे गाय-बैल के बछड़ों से भी सस्ते हैं। हम उसके कार्य के ढंग को सुधारने में अपनी बुद्धि और अपनी शक्ति का व्यय क्यों करें? हमने तो इस समस्या को इस प्रकार हल कर लिया है कि हम उसको अपने नजदीक नहीं आने देते। उससे सम्पर्क नहीं रखते। सिवाय टट्टियों और मोरियों के अपने घर के किसी भाग में उसको घुसने नहीं देते। बस फिर हमको क्या? यदि हमारी सफाई करने में उसको मैले में डूबना भी पड़े तो हमारी इसमें क्या हानि है?

यह सब देख-देखकर और उसको सोच-सोच कर मुझे काफी दुख रहता है। गत अप्रैल की २८ और २९ तारीखों को 'अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ' की बैठक हुई थी। उसमें मैंने इस प्रश्न को छेड़ा था। बैठक में यह प्रस्ताव पेश किया था कि हरिजन सेवक संघ की ओर से मैले की सफाई के लिए आरम्भ से अन्त तक एक प्रामाणिक योजना बनाई जाय जिसमें सफाई करने के तमाम औजार तैयार किये जावें और मैले के निकास का सबसे अच्छा ढँग तैयार किया जाये। और अगले वर्ष की हरिजन सेवक संघ की बैठक में यह योजना पेश की जाये और संघ के पास होजाने पर संघ इस बात का प्रयत्न करे की संघ की बनाई हुई इस योजना को देश की सारी म्यूनिसिपैलिटियाँ अपनावें और संघ के बताये हुए ढँग पर सफाई करने का आद्योपान्त प्रबन्ध करें।

संघ ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करके एक कमेटी ठक्कर बापा की अध्यक्षता में नियुक्त की है। इस कमेटी ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है। इसकी ओर से बहुत जल्दी एक प्रश्नावली भेजी जावेगी जिसमें भिन्न-भिन्न प्रान्तों और नगरों में आजकल की सफाई की प्रचलित रीति क्या है इसके सम्बन्ध में प्रश्न किये जावेंगे, और उसमें सुधार के लिए क्या-क्या होना चाहिए यह सवाल कार्यकर्त्ताओं और अन्य लोगों से पूछा जायगा। मुझे आशा है कि इस कार्य में जनता की ओर से हरिजन सेवक संघ को पूरा-पूरा सहयोग और सहायता मिलेगी। महात्मा गाँधी ने जब हरिजन सेवक-संघ का कार्य आरम्भ किया था तब इस प्रश्न पर बहुत जोर दिया था। अपने साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' में उन्होंने अनेक बार कार्यकर्ताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था और वे बार-बार यह कहते रहे हैं कि सफाई करने की हमारी दूषित प्रणाली में अवश्य ही सुधार होना चाहिए और यह सुधार तभी हो सकता है जब शिक्षित लोग इधर ध्यान दें। उक्त प्रस्ताव भी महात्मा गांधी के सामने रक्खा गया था और उन्होंने उसका पूरा समर्थन किया था। हरिजन सेवक-संघ के सदस्यों से जिस दिन उनकी भेंट हुई थी उस दिन भी प्रश्न किये जाने पर उन्होंने यही कहा था कि यह कार्य अत्यावश्यक है और इसको कार्यकर्ताओं को हाथ में लेकर जल्दी-से-जल्दी पूरा करना चाहिए।

मैं विशेष करके हरिजन कार्यकर्ताओं से, समाज-सेवकों से, विशेषकर स्त्रियों से, अनुरोध करती हूँ कि वे इस ओर ध्यान दें और अपने विचार और अनुभवों को लिखकर हमारे दफ्तर **हरिजन निवास, किंग्स्वे, दिल्ली,** भेजें। कोई भी बहिन या भाई ऐसा विचार न करें कि यह एक तुच्छ, नीच या गन्दा काम है। सभ्यता और सज्जनता इसमें नहीं है कि हम ऐसे सवालों के जिक्र करने में गन्दगी मानें और उनसे अपने-आपको बचाये रक्खें, बल्कि इसमे है कि इन आवश्यक प्रश्नों के हल करने में अपने समय और बुद्धि का प्रयोग करें और अपने देश में अच्छे-से-अच्छा ढँग कार्य करने का प्रचलित कर दिखावें।

आज की कहानी

[सुबोध अग्रवाल]

बड़ा लम्बा सफर है—दो रातें और एक दिन ट्रेन में ही बितानी हैं। समय का उपयोग और मन बहलाव का जरिया केवल पुस्तकें हैं। मैंने व्हीलर के यहाँ से काफी चीजें खरीद लीं—माया सीरीज की दो पुस्तकें–कहानी संग्रह और माया, मनोहर कहानियाँ तथा रसीली कहानियाँ आदि अनेक पत्रिकाएँ।

पहले मैं संग्रह उठा लेता हूँ—एक-एक कहानी में मैं घुल जाना चाहता हूँ। मेरी जवानी का जोश उनमें उपयुक्त विचार पाकर उबल पड़ना चाहता है; पर उसमें है–युवक-युवती प्रेम, विरह, क्रीड़ा-कौतूहल, आलिंगन-चुम्बन और अन्त में मृत्यु या ऐसी ही कुछ असफलता। मैंने कुछ दूर तक उस संग्रह को पढ़ा, एक शुरू की कहानी, एक बीच की और एक अंत की; पर सभी में वही गाथा, वही एक बात। लाओ पत्रिकाओं को ही देखूं, और उनमें भी वही सब कुछ। आखिर चारों ओर यह खुराफात क्यों फैली हुई है ?

आज की कहानी का यही एक विषय है—यही एक उद्देश्य। किसी भी तरह की कहानी देख लीजिए; किसी में कोई विशेष बात नहीं, कोई नयापन नहीं। आरंभ पढ़कर आप बता सकते हैं कि अंत कैसा होगा। लेखक का व्यक्तित्व कहानी में नहीं झलकता, मौलिकता का सर्वथा अभाव। अनायास ही प्रश्न मुंह में आजाता है, यह सब क्यों ?

कहानी की परिभाषा में विषय का बंधन नहीं रहा है, अतः राष्ट्र की परिस्थिति और उसकी उन्नति को ध्यान में रखकर ही हम कहानी के विषय चुन सकते हैं। कहानी केवल मनोरंजन के लिए नहीं होती, उसका उद्देश्य किसी संदेश को मनोरंजक बनाकर प्रकट करना होता है; यहीं पर कला का जन्म होता है; वैसे निरे सत्य को हम कला कभी नहीं कहते। सत्य को कला द्वारा ही सँवारा जाता है—और फिर मनोरंजन भी तो कई प्रकार के होते हैं, वेश्या के यहाँ का मनोरंजन और देश-सेवा का मनोरंजन।

आज की कहानी क्या सन्देश देती है यह समझ में ही नहीं आता। मनोरंजन वह करती है; पर नीचे स्तर का। विषम परिस्थितियों को लेकर संघर्ष (conflict) दिखला देने में ही उसका सारा उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। उस संघर्ष को किस प्रकार बचाया जाय, उलझी हुई गुत्थी किस प्रकार सुलझाई जाय इसका संकेत उसमें नहीं मिलता। आज का कहानी लेखक शायद केवल इतना ही चाहता है कि राष्ट्र के सारे युवक-युवती एक दूसरे के प्रेम में फँस जायँ—उन्हें एक दूसरे के गले में बाहें डालकर घूमने की इजाजत मिल जाय, और आपस में–वैसे कोई जरूरी तो नहीं–स्वच्छंद होकर विवाह करने की स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो जाय। यह सब ठीक हो या न हो पर ऐसी उच्छृंखलता ही तो जीवन का उद्देश्य नहीं। मान लीजिए इसकी इजाजत आपको मिल गई—फिर आप क्या करेंगे ? आपके सारे कष्टों और संघर्षों या विरोधों का अंत तो न हो जायगा। मैं तो इस प्रकार की विचार धारा को कोरा मानसिक पतन (Prostitution of the mind) ही कहूँगा। बात यह है कि आज के नवयुवक में शक्ति है, दिमाग में बल है और कुछ करने की धुन है; पर यह शक्ति निकले किस रास्ते से ? आवश्यकता है इस शक्ति को सही रास्ते पर लगाने की, उसे उच्चता व दिव्यता की तरफ लेजाने की।

राष्ट्र और समाज की क्या आवश्यकताएँ हैं ? आज का कहानी लेखक यह नहीं देखता। बात यह है कि आज का कहानी लेखक अपने समाज और राष्ट्र से बहुत ही असंतुष्ट है, और होना भी चाहिए। मैं तो यह मानता हूँ कि जब युवकदल राष्ट्र और समाज की स्थिति से असंतुष्ट हो जायगा तभी उसकी उन्नति का परिच्छेद प्रारम्भ होगा। पर बुरी बात तो यह है कि यह असंतोष क्रियाशीलता को जन्म

नहीं देरहा है। हम कमजोर हैं अतः हम बलवान् बनें–के स्थान पर–अरे पड़े रहो जी, क्या होगा उठकर, कहीं कोई दबोच न दे–का भाव हमारे मन में घुसा हुआ है। यही कारण है कि हम किसी भी परिस्थिति पर ध्यान-पूर्वक विचार करना ही नहीं चाहते। उसमें कष्ट जो होता है। अरे होगा जी––अलमस्ती की निशानी तो है, अवनति की भी।

समाज अथवा राष्ट्र की गलती सुझा देना ही कहानी लेखक का काम नहीं। कहानी लेखक स्वयं समझता है कि युवक-युवती को इस प्रकार के वासनापूर्ण उच्छृंखल प्रेम की इजाजत होनी चाहिए। पर क्या अपने जीवन में वह अपने पुत्र अथवा पुत्री को ऐसी इजाजत दे सका है? शायद वह समाज से डरता है; पर क्यों? मैं तो कहूँगा कि वह अपने विचारों पर दृढ़ नहीं रह सकता। उसमें लड़ने की शक्ति नहीं, शायद आपने सिद्धान्तों व विश्वासों से वह स्वयं ही सहमत नहीं। तभी तो वह शक्तिशाली होकर भी कमजोर है और और उसका चारित्र्य ऊँचा नहीं।

बात यह है कि आज का कहानी लेखक जीवन की कटु परिस्थिति से भागना चाहता है। मनोविज्ञान का कहना है कि युवावस्था में मनुष्य अपने विचारों में आदर्शवादिता की प्रधानता पाता है, पर वास्तविक संसार इस आदर्शवादिता से दूर दिखाई देता है। युवक चाहता है ऐसा हो, पर संसार में वैसा नहीं। वह चाहता है कि मैं संसार को बदल दूं, पर सारे संसार के विरुद्ध अकेले खड़े होने की शक्ति उसमें नहीं। परिणाम स्वरूप वह विचारमय रहने लगता है––जमीन आसमान के कुलाबे मिलाने लगता है––यानी वह दिवा-स्वप्न देखने लगता है। इस भावनाओं के राज्य में कल्पना का प्रधान स्थान रहता है और युवक-युवती संसार से दूर-बहुत दूर–अनंत में उठ जाना चाहते हैं, जहाँ सब कुछ उन्हींके मन का होगा और परिणाम स्वरूप यह संसार उनके काल्पनिक 'स्वर्णिम-प्रदेश' के आगे फीका लगने लगता है। वास्तविकता की हद से बाहर चले जाने का प्रधान कारण अशक्तता ही है। आज की कहानी इसी दिवास्वप्न का परिणाम है––तभी उसमें कल्पना का बहुत बड़ा हाथ है और तभी तो वह वास्तविकता से—जीवन के कटु सत्य से इतनी दूर हो गई है।

कहानी-कार दलील पेश करता है—आखिर हृदय भी तो कोई चीज है। अपनी इस दलील को वह इतनी जोरदार समझता है कि कहानी के भीतर भी वह उसे रखकर उच्छृंखल प्रेम की सार्थकता सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। साथ ही वह यह भी कहता है कि श्रृंगार तो रसराज है अतः प्रेम विषयक रचनाएँ होना स्वाभाविक ही है। मैं कुछ हद तक ये सब दलीलें मान लूंगा—पर मेरे लिए हृदय केवल **एक** चीज है, **सब कुछ** नहीं। अविवेकी हृदय मेरे लिए फाँसी पर चढ़ा देनें योग्य है—जो हृदय दूसरों की भलाई नहीं सोचता वह नष्ट कर देने योग्य है। भावनाओं की दुनिया को इतना महत्त्वपूर्ण क्यों बनाया जाय? क्यों न अपने चारों तरफ देखा जाय? हम आँख खोलकर भी अंधे क्यों बनें? और वह रसराज वाली दलील—मैं तो केवल इतना ही कहूँगा कि यदि आजकल की वासनापूर्ण, मानसिक व शारीरिक उत्तेजना देने वाली प्रेम-गाथा इसी रसराज की प्रजा है तो ऐसे राजा को मैं दूर से ही नमस्कार करूँगा। रसराज में राजा जैसी भव्यता और बड़प्पन तो होना ही चाहिए।

आज हमारे सामने विविधि समस्याएँ मुंह बाए हुए खड़ी हैं—वे शायद प्रमुख भी हैं—पर हम उनकी ओर से आँखें मीच कर कहीं एक कोने में पड़ी हुई छोटी सी समस्या—प्रेम-विवाह अथवा प्रेम के विषय में समाज की संकीर्णता को लेकर एक तूफान खड़ा कर देते हैं। देश की स्वतन्त्रता, रोटी और पेट का सवाल, अपने अधिकारों की माँग, विद्या और ज्ञान के क्षेत्र में हमारी हीनता आदि न जाने कितने प्रश्न अपनी भीषणता लेकर उपस्थित हैं और हमारा

ानीकार इनको न सुलझा कर मस्ती और न के राग गा रहा है !

एक उदाहरण ले लीजिए—एक युवक-युवती पस में प्रेम करते हैं—उच्छृंखल होकर, और कहीं अड़चन आ पड़ती है तो दोनों नदी में द कर जान दे देते हैं। आखिर जीवन का यह व्यय क्यों? क्या जीवन का इससे अधिक च्छा उपयोग नहीं हो सकता था? क्या म की निराशा देश-सेवा, जन-सेवा अथवा ाम-सेवा को जन्म नहीं दे सकती थी? मरने बजाय प्रेमी यह क्यों नहीं सोचते कि हम माज में रहकर उसकी इस गलती को ठीक रके छोड़ेंगे? हमेशा मौत को ही क्यों स्वीकार या जाता है? सदैव पागल ही क्यों बना ाय? मान लिया एक आध बार ऐसा होगया र सभी प्रेमियों का सदैव पागल ही हो जाना सनकी राष्ट्र की निशानी है। मैं तो यही हूंगा कि जीवग से टक्कर लेने की ऐसे निराश मियों में हिम्मत नहीं होती और फिर ऐसे ायरों की कहानियाँ हम सबके सामने रखना या उचित है? हमें ठोस आदमी चाहिए जो ीवन से बाजी लगा सकें और लड़ते हुए मरें, कि छिप कर रात में नदी में कूद कर।

आज की कहानी में इन्हीं कारणों से मुर्दा- न विशेष-रूप से पाया जाता है—मानो उनमें ान ही न हो—कोई अधमरा घसीट रहा हो। सी जीवन हीन भावना का प्रभाव कहानी की ली पर पड़ता है;—उसके लम्बे-लम्बे वर्णन, ठकों का बैठकर मन ही मन न जाने क्या-क्या चना, बुदबुदाना और पागलों की तरह उन्माद डूबे रहना, धीमी गति से कहानी का बढ़ना र अचानक अंत हो जाना—सब इसीकी वजह है। कहानी भावना के अनुसार चलती है— री-गिरी, लस्त-पस्त होकर। उसमें चाहिए वेग, जीवन की गति, आगे बढ़ने वाला प्रभाव, संघर्ष-मयी दुनिया की छाया। हमें अपनी पतनोन्मुखी भावना छोड़नी होगी और फिर सब ठीक हो जायगा।

कला कला के लिए वाला प्रश्न उठाना बेकार होगा। हमें जीवन की वास्तविकता समझनी चाहिए और इन बड़े-बड़े शाब्दिक जाल में फँसने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। इन आवाजों के पीछे छिपकर वही चलते हैं जिनमें कोई तथ्य नहीं होता। योग्यता रखनेवाला आदमी काम करके दिखाता है—आवाजों के पीछे छिप कर अपनी सार्थकता सिद्ध नहीं करता। और फिर भी यदि कला कला के लिए है तो कहानी लिखिए और फाड़ कर फेंक दीजिए—उसे मेरे सामने क्यों रखते हैं? मैं तो कला को इतना स्वार्थी नहीं समझता कि वह केवल अपने लिए ही जीवित रहे। शायद वह इस संकीर्ण भावना से बहुत ऊँचे स्तर पर है—जहाँ वह केवल दूसरों की भलाई अपना अस्तित्त्व मिटाकर भी करना चाहती है।

आज की कहानी की इस जटिल समस्या को सुलझाने के लिए नियम नहीं बनाये जा सकते। यह प्रत्येक कहानी लेखक की अपनी समस्या है जिसे वह स्वयं ही सुलझा सकेगा और उसे स्वयं ही सुलझानी भी चाहिए। आज के कहानी लेखक को चाहिए कि लिखने से पहले वह ठंडे दिल से विषय पर सोच ले—ध्यानपूर्वक विचार कर ले। बिना सोचे समझे कहानी-कला का दुरुपयोग करना कला और मनुष्य जाति दोनों के लिए हानिकारक है। अतः सोच समझकर वह अपना पथ-निर्धारित करे और तब भी यदि कोई कहानीकार प्रेम-पूर्ण कहानी लिखेगा तो मैं सबसे पहले उसपर फूल बरसाऊँगा—उसमें अपने विचारों की दृढ़ता और उन पर खड़े रहने की शक्ति तो है।

देशी राज्य व सत्याग्रह

[हरिभाऊ उपाध्याय]

'सत्याग्रह' से अभिप्राय यहाँ उस बल से है जिसका प्रयोग महात्मा गांधी शस्त्र-बल के ऐवज में करते हैं। उसे आत्मबल या प्रेम बल भी कहते हैं; नैतिक प्रतिकार भी कहा जाता है।

यद्यपि सत्याग्रह का सिद्धान्त सार्वकालिक व व सार्वजनिक है तथापि नैतिक बल के रूप में उसका उपयोग अवसर-विशेष या प्रश्न-विशेष पर ही किया जाता है। व्यक्ति, कुटुम्ब, देश, समाज सब अपने किये गये अन्याय-अत्याचारों को मिटाने के लिए व अपने अधिकार, हक, धर्म आदि की रक्षा के लिए उसका अवलम्बन कर सकते हैं। अबतक देश व समाज में जहाँ कहीं जिन-जिन बातों के लिए शस्त्र-बल या दण्ड-बल से काम लिया जाता है वहाँ-वहाँ सत्याग्रह से काम लेने का उपदेश महात्माजी करते हैं। वह कहते हैं कि यह शस्त्रबल से अधिक प्रभावकारी, यशदायी व उभय पक्ष के लिए कल्याणकर है। शस्त्रबल से एक पक्ष जीतता व दूसरा हारता है, एक को लाभ व दूसरे को हानि होती है; सत्याग्रह की जीत व लाभ का अनुभव दोनों पक्ष करते हैं। यदि आप गलत रास्ते से सही रास्ते पर आजाते हैं तो आप अपना लाभ ही अनुभव करेंगे। ऐसे समय जो 'झुक जाना' कहा जाता है वह आपको चुभनेवाली 'हार' नहीं प्रतीत होगी, ऊँचा उठानेवाली क्रिया मालूम होगी। शस्त्रबल से जो अमर्याद धन-जन की हानि होती है, शान्ति और व्यवस्था में जिस तरह अस्तव्यस्तता हो जाती है लोक समाज में जैसा हाहाकार व त्राहि-त्राहि मच जाती है, उस तरह सत्याग्रह के प्रयोग में नहीं होता। इसीलिए विचारशील व सहृदय व्यक्तियों के दिल व दिमाग पर सत्याग्रह अपना असर जमाता जा रहा है।

इस सत्याग्रह के लिए देशी-राज्यों में कितना अवसर है यह हमारे लेख का विषय है। सत्याग्रह यद्यपि एक सर्व साधारण शस्त्र है, फिर भी उसका उपयोग आजकल राजनैतिक अधिकारों की माँग की पूर्ति या शासन के अन्यायों व बुराइयों को मिटाने के उद्देश से विशेष रूप से किया जाता है। पहले अधिकारों की मांग के सत्याग्रह पर विचार करें। राजनैतिक दृष्टि से देशी राज्य व्यवहारतः ब्रिटिश सत्ता के सब तरह अधीन हैं, भले ही सन्धियों में उनका मित्रता का दर्जा मान लिया गया हो। इस सत्य को प्रमाणित करने की जरूरत नहीं है। फिर हिन्दुस्तान के देशी-राजा 'विदेशी' नहीं कहला सकते। इन दोनों कारणों से राजनैतिक आन्दोलन का जो रूप ब्रिटिश भारत में है वह देशी-राज्यों में उसे नहीं मिल सकता। देशी राज्यों में राजनैतिक अधिकारों की अर्थात् नागरिक स्वतन्त्रता व उत्तरदायी शासन की जो मांग प्रजा की तरफ से बलवती हुई है व उसके लिए जो प्रजाकीय आन्दोलन या सत्याग्रह चलते हैं वे, सच पूछिए, देशी राजा-महाराजाओं व नबाबों के माध्यम से अँग्रेजी साम्राज्य सत्ता के ही खिलाफ हैं। परन्तु इस सत्य को देशी राजे भी भूल जाते है व प्रजा के नेता भी। जब सारे भारत में लोगों के मन में अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता को प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा जागृत हो गई है, और देशी राज्यों की प्रजा भारत के बाहर की प्रजा नहीं है, तो उसके अनुसार देशी राज्यों की प्रजा में भी वे भावनायें जागृत होना अनिवार्य है। चूंकि ब्रिटिश भारत में सीधी विदेशी सत्ता है, वहाँ वह 'आजादी' का आन्दोलन है, और देशी राज्यों में जाहिरा देशी सत्ता है, 'उत्तरदायी शासन' का आन्दोलन है; क्योंकि हम मानते हैं कि वर्तमान देशी नरेश यदि राजनैतिक सुधार करना चाहें भी तो वे उसके लिए आजाद नहीं हैं। ब्रिटिश साम्राज्य-सत्ता से जिस तरह का हमारा आमूल विरोध है वैसा देशी नरेशों की सत्ता से तबतक न होगा जबतक वे उसी अर्थ में स्वतन्त्र नहीं हो जाते जिस अर्थ में ब्रिटिश पार्लमेन्ट हिंदुस्तान के लिए है। इसीलिए देशी राज्यों के प्रजामण्डलों ने अपना ध्येय 'पूर्ण स्वतन्त्रता' नहीं बल्कि 'नरेशों की छत्र-छाया में उत्तरदायी शासन

म किया हैं । इस फर्क व इस सद्‌भावना को दि देशी नरेश समझलें तो फिर वे प्रजामण्डलों आन्दोलन, व उनके द्वारा किये गये छोटे-बड़े याग्रहों को कलुषित दृष्टि से न देख सकेंगे । चूंकि बीच में हैं इसलिए उनकी आँच से साफ नहीं बच सकते, परन्तु इस सत्य व तथ्य को मेशा मद्दे नजर रखेंगे तो प्रजा के नेताओं का उनका वैमनस्य कदापि नहीं हो सकता; लड़ाई अवसर आते रहते हुए भी दोनों एक दूसरे से र नहीं होंगे इसी तरह देशी-नरेशों की इस ाध्यस्थ या असमर्थ अवस्था को प्रजा नेता कई ार भूल जाते हैं । ब्रिटिश साम्राज्यवाद की गह नरेशों को ही अपना सीधा निशाना समझ ते हैं, जिससे उनकी कटु आलोचना व उन पर ीखे प्रहार करने लगते हैं । ब्रिटिश साम्राज्यवाद हिन्दुस्तानियों की लड़ाई सीधी ‘स्वदेशी बनाम िदेशी’ लड़ाई है तहाँ देशी राज्यों के अन्दर का ाजनैतिक आंदोलन ‘घरेलू लड़ाई’ के रूप में या सके द्वारा अप्रत्यक्ष ‘स्वदेशी बनाम विदेशी’ ड़ाई है। इसका घरेलू लड़ाई रूप देशी नरेश प्रजा-नेता दोनों के सदैव याद रखने की चीज । ‘घरेलू बात’ को याद रखने से देशी नरेशों ो प्रजा-नेताओं के तीखे तीर भी पुष्प बाण ालूम होने लगेंगे व प्रजा नेता उनपर विषाक्त ीर छोड़ना अवांछनीय समझने लगेंगे ।

इसी दृष्टिकोण से मेरी समझ में, महात्माजी देशी-राज्यों के सत्याग्रह पर कई तरह की ंद लगा रक्खी है । युद्ध-विरोधी सत्याग्रह की ो कतई मनाई कर रक्खी है । हम स्थानिक न्याय या कष्ट के प्रश्नों पर स्थानिक मण्डल या ा नेता अपनी जिम्मेदारी पर सत्याग्रह करना ाहें तो उसकी रोक उन्होंने नहीं की है; क्योंकि ेद नरेशों या शासकों के अन्यायों को दूर करने म्बन्धी सत्याग्रह की स्थिति दूसरी है । बाहरी सत्ता इनको आमतौर पर प्रजापर जुल्म करने के लिए मजबूर नहीं कर सकती, फिर भी उनसे कोई सलाह मांगता है तो उनकी प्रवृत्ति, वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय विषम परिस्थिति में, उन्हें प्रोत्साहन देने की तरफ नहीं है । महात्माजी हिसाबी आदमी हैं व सत्याग्रह भी हिसाब की चीज है । यदि निश्चित मांग के लिए सत्याग्रह है तो उनमें हिसाब अनिवार्य है । महात्माजी ने हिसाब लगाकर देख लिया है कि वर्तमान विषम अवस्था में देशी राज्यों में सत्याग्रह करने से लाभ कम व हानि ज्यादा होने की सम्भावना है । परन्तु वे सर्वज्ञ नहीं हैं स्थानिक स्थितियों से सब तरह परिचित रहने के सुलभ साधन भी उन्हें सदा उपलब्ध नहीं रहते इसलिए स्थानिक नेताओं को अपने निर्णय की स्वतन्त्रता उन्होंने दे रक्खी है । यही उचित भी है ।

परन्तु सत्याग्रह अन्तिम शस्त्र है, प्रारम्भिक नहीं । शस्त्र-युद्ध में जो स्थान गोली, बम या टैंकों का है वह शान्ति-युद्ध में सत्याग्रह का है। सत्याग्रह का अवलम्बन करने के पहले इतनी शर्तों का पालन करना लाजिमी है ।

(१) माँग न्यायोचित हो व पहिले शासकों के सामने पेश की गई हों ।

(२) उनके दाद न देने पर जनता का समर्थन उसे प्राप्त हो चुका हो व उसके लिए आवश्यक लोकमत तैयार हो चुका हो ।

(३) प्रतिज्ञाबद्ध सत्याग्रहियों का अच्छा-दल बन चुका हो ।

(४) सत्याग्रह आरम्भ करने के पहले मुख्य शासक को सुधार या पूर्ति के लिए उचित अवधि की सूचना दी गई हो ।

स्मरण रहे कि पूर्ण अहिंसात्मक रहने की शर्त सत्याग्रही के लिए सब दशाओं में पालनीय है ।

हिन्दी लेखकों की समस्याएं

[शंकर सहाय सक्सेना]

हिन्दी-लेखक-वर्ग उस श्रेणी का सदस्य है, जिसका निरन्तर शोषण हो रहा है, जो अपने रुधिर की स्याही से लिखता है, जीवन-भर निर्धनता के भार को ढोता हुआ—कभी-कभी स्वाभिमान का भी सौदा करके--जीवित रहता है, बीमार पड़ने पर बिना चिकित्सा के मरता है और अपने कुटुम्ब को निरावलम्ब छोड़ कर चला जाता है; और उपेक्षित इतना कि उसके सम्बन्ध में कोई कुछ जानना, सुनना या लिखना नहीं चाहता। अपने जीवन काल में भी अपनी पुस्तकों के प्रकाशन सम्बन्धी जो कटु अनुभव उसे होते हैं, वह किसी भी साधारण व्यक्ति को हताश कर देने के लिए यथेष्ठ हैं। जब स्वर्गीय प्रेमचन्द को भी इससे विपरीत परिस्थिति न मिल सकी तब छुट भाइयों का तो कहना ही क्या। इस पर भी हिन्दी लेखकों के आलोचकों और उनके पुरुषार्थ की अवहेलना करनेवालों की कमी नहीं है। कठिनाई यह है कि जो व्यक्ति समाज को जीवन और जागृति का पाठ पढ़ाता है, वह स्वयं अपनी समस्याओं की ओर से इतना अधिक उदासीन है कि उसकी समस्याओं का हल निकाल सकना कठिन हो रहा है। यह कह देना सरल है कि प्रकाशक लेखकों का शोषण करते हैं। इसमें बहुत कुछ सत्य होते हुए भी यह पूर्ण सत्य नहीं है। हिन्दी का प्रकाशन भी बहुत लाभदायक व्यापार हो, ऐसी बात नहीं है। हाँ, प्रकाशक की स्थिति लेखकों से बहुत अच्छी है। किन्तु प्रकाशक व्यवसायी है। यदि उसकी पत्रिका को बिना पारश्रमिक दिये लेख मिलते हैं तो वह पारिश्रमिक क्यों देने लगा? और उस पुस्तक को ही वह प्रकाशित क्यों करने लगा कि जिसकी कम खपत होने की सम्भावना है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के प्रकाशक में दूरदर्शिता, कल्पना और हिन्दी-साहित्य के निर्माण की भावना का अभाव है। किन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि उसका मुख्य लक्ष्य पैसा है। लेखक के लिए यदि कोई कुछ कर सकता है तो वह हिन्दी संस्थाएँ अथवा लेखकों का अपना संगठन ही कर सकता है। आज जैसी परिस्थिति है, हिन्दी की संस्थाएँ भी लेखक के लिए कुछ अधिक नहीं कर पा रही हैं, अस्तु। लेखक यदि चाहते हैं कि उनकी स्थिति में सुधार हो तो उन्हें अपना संगठन स्वयं खड़ा करना होगा। जबतक हिन्दी लेखक अपना संगठन नहीं खड़ा करते तबतक उनकी स्थिति में सुधार होना कठिन है।

आइए हिन्दी लेखक की प्रधान समस्याओं का सिंहावलोकन कर लें और फिर देखें कि उनको किस प्रकार हल किया जा सकता है। संक्षेप में हिन्दी लेखक की प्रधान समस्याएं निम्नलिखित हैं:--

(१) प्रकाशन सम्बन्धी कठिनाइयाँ, जिसके साथ उसकी आर्थिक समस्या जुड़ी हुई है।

(२) लेखन-कार्य के लिए संदर्भ पुस्तकालय तथा अन्य साधनों की कमी।

(३) लेखकों की समस्याओं का अध्ययन करने और उनके लिए आवश्यक सुविधायें प्राप्त करनेवाले संगठन का अभाव।

(४) लेखकों का पथ प्रदर्शन करने और उन पर एक नैतिक नियन्त्रण स्थापित करने की आवश्यकता।

पुस्तक प्रकाशन की समस्या टेढ़ी है और लेखक के लिए वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। हिन्दी में आज कुछ थोड़े-से लेखकों को छोड़कर कि जिनका बाजार में नाम बिकता है, प्रत्येक लेखक के सामने यह समस्या उपस्थित होती है और इसी कारण प्रकाशक लेखक का मनमाना शोषण करने में समर्थ हो रहे हैं। इस समस्या को हल करने के दो ही रास्ते हैं। (१) लेखक अपनी एक सहकारी समिति बना लें, जो कि प्रकाशन और बिक्री का प्रबन्ध करे। (२) अथवा ऐसी सहकारी समिति स्थापित करें कि जो केवल बिक्री का प्रबन्ध करे। पुस्तक-प्रकाशन-कार्य लेखक स्वयं करें। लेखक ने कई वर्ष हुए

‘लेखक सहकारी समिति’ की योजना ‘लेखक’ तथा ‘विशाल भारत’ में प्रकाशित कराई थी। अतएव विस्तार पूर्वक उस योजना को यहाँ देना उचित नहीं है। उसके आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

कोई भी व्यक्ति उस समिति का सदस्य हो सकता है। सदस्य को समिति में कम-से-कम एक हिस्सा अवश्य खरीदना होगा। हिस्से का मूल्य १००) रु० से कम नहीं और २००) रु० से अधिक न होगा। सदस्य यदि चाहें तो एक से अधिक हिस्से खरीद सकते हैं। किन्तु प्रत्येक सदस्य को केवल एक ही वोट देने का अधिकार होगा। समिति केवल सदस्यों की पुस्तकें ही प्रकाशित करेगी। प्रत्येक सदस्य को अपनी लिखी पुस्तक पहले समिति को ही देनी होगी। यदि किसी कारणवश समिति उसकी पुस्तक प्रकाशित न कर सके, तभी वह अन्य किसी प्रकाशक को उसे दे सकेगा। सदस्यों को समिति साधारणतः रायल्टी देगी। ऐसी पुस्तकें जिनकी अधिक मांग की सम्भावना न हो, किन्तु जो महत्वपूर्ण हों, उनके लिए एक मुश्त पारिश्रमिक भी दिया जा सकता है। समिति को जो कुछ लाभ हो, उसमें से २५ प्रतिशत रक्षित कोष में १० प्रतिशत लेखकों को छात्रवृत्ति देने, उनके परिवार की सहायता करने इत्यादि कार्यों के लिए और ५ या १० प्रतिशत पुस्तकालय के लिए रख लिया जाय और शेष सदस्यों में उनकी रायल्टी के अनुपात में बांट दिया जाय। हिस्सों पर ३ से ५ प्रतिशत तक सूद दिया जाय। प्रकाशन के अतिरिक्त समिति अपनी शाखायें तथा एजेंट बनाकर बिक्री का प्रबन्ध करे।

यदि प्रकाशन का कार्य समिति न करना चाहे तो सदस्य अपने व्यय से पुस्तक छपवा लें और केवल बिक्री का प्रबन्ध समिति करे। ऐसी दशा में हिस्सा पूंजी कम होगी और शेष नियम वही होंगे। समिति किसी भी प्रान्त में सरकार के सहकारिता विभाग से रजिस्टर्ड कराई जा सकती है। यदि आवश्यकता पड़े तो रजिस्टर्ड होने पर सहकारी बैंकों से उचित सूद पर उसे ऋण भी मिल सकेगा।

समिति के लाभ का कुछ अंश लेखक सहायक कोष में रक्खा जायगा। धीरे-धीरे समिति के पास एक उच्च कोटि का पुस्तकालय हो जायगा, जिसका लेखक उपयोग करेंगे। यदि व्यापारिक दृष्टि से समिति सफल हो तो आगे चल कर समिति कुछ विषयों के विद्वानों को रख कर नवीन लेखकों को लेखन-कार्य में सहायता पहुँचा सकती है। यही नहीं, समिति हिन्दी-संस्थाओं, शिक्षा-संस्थाओं तथा सरकार के सामने लेखकों की समस्याओं को रखकर उनसे लेखकों के लिए सहायता प्राप्त कर सकती है।

इस योजना को कार्य में परिणत करते समय कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी। जबतक यथेष्ट संख्या में लेखक इसके सदस्य न बनें, तबतक उसको स्थापित करने में कठिनाई होगी। साथ ही कुछ प्रसिद्ध लेखकों के सदस्य बन जाने से कार्य सरल हो जायेगा। जबतक कि समिति व्यापारिक दृष्टि से सफल और लाभदायक न हो तबतक उसका मंत्री तथा अन्य विभागीय मंत्री जो कि सदस्य ही होंगे कोई वेतन न लें और समिति के डाइरेक्टरों को मार्ग-व्यय के अतिरिक्त कोई फीस इत्यादि न दी जाय। आरम्भ में दो या तीन ऐसे व्यवितयों की आवश्यकता होगी कि जो समिति के लिए अधिक समय दें और उसको सफल बनाने का प्रयत्न करें।

एक कठिनाई और है, वह यह है कि समिति किसी विशेष आदर्श को लेकर चले अथवा नहीं। उदाहरण के लिए ‘सस्ता साहित्य मण्डल’। उसका उद्देश्य गांधीवाद का प्रचार करना है। मैं समझता हूँ कि ‘लेखक सहकारिता समिति’ के लिए किसी राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण को स्वीकार करना सम्भव न होगा। वह हिन्दी के प्रकाशित साहित्य की जांच करके एक पंच वर्षीय योजना बनाये और उसके सदस्य उसके आधार पर पुस्तकें तैयार करें।

आज बहुत से योग्य हिन्दी लेखक भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखना चाहते हैं किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती कि वे लेखन कार्य में अधिक समय लगा सकें। अतः अपनी उदर में पूर्ति के लिए उन्हें और कुछ करना पड़ता है। इस प्रकार बहुत सी प्रतिभा नष्ट होती जारही है और हिन्दी में उपेक्षित विषयों पर ऊँचा साहित्य उत्पन्न नहीं हो रहा है। लेखक का निश्चित मत है कि आज की स्थिति में जब तक कि हम कुछ विद्वान लेखकों को छात्रवृत्ति देकर उन्हें उदरपूर्ति की चिन्ता से मुक्त नहीं कर देते तबतक गम्भीर विषयों पर ऊँचा साहित्य यथेष्ठ मात्रा में उत्पन्न नहीं हो सकता। आवश्यकता इस बात की है कि अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, दर्शन, साहित्य, विज्ञान, कृषि, वस्तुनिर्माण कला, इत्यादि विषयों के योग्य व्यक्तियों को छात्रवृत्तियाँ देने का प्रबन्ध किया जाय। इस कार्य में हिन्दी संस्थायें तथा हिन्दी प्रेमी पैसेवाले सहयोग कर सकते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, ओड़छा नरेश, मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति, बिड़लाजी, सस्ता साहित्य मण्डल आदि चाहें तो इस समय भी एक-एक छात्रवृत्ति का प्रबन्ध कर सकते हैं। ७० या ७५ रुपये मासिक का प्रबन्ध कर देने से आज की स्थिति में एक व्यक्ति को सन्तोष कर लेना चाहिए। जिस प्रकार राजनैतिक, रचनात्मक तथा सामाजिक कार्य के लिए कुछ स्थायी रूप से कार्य करने वालों की आवश्यकता है उसी प्रकार साहित्य के निर्माण करने के लिए कुछ सेवकों की आवश्यकता है। आज हिन्दी संसार में कुछ पुरस्कारों की स्थापना हुई है। लेखक उनका विरोध नहीं करता, किन्तु उससे भी अधिक आवश्यकता है कि छात्रवृत्तियाँ स्थापित की जाँय जो भिन्न-भिन्न विषयों के लेखकों को दी जाँय। क्या हिन्दी की संस्थायें इस आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण कार्य की ओर ध्यान देंगीं। यदि लेखक समिति का संगठन हो और उसके पास लेखक सहायक कोष में इतना धन हो तो वह भी इस कार्य में सहायक हो सकती है।

एक बात और, **नवीन** लेखकों का मार्ग प्रदर्शन करने और उन्हें सलाह देने के लिए भी कोई प्रबन्ध होना आवश्यक है। जबतक और कोई अधिक स्थायी और अच्छा प्रबन्ध नहीं हो सकता तबतक हिन्दी साहित्य सम्मेलन को प्रत्येक विषय पर तीन-तीन विद्वानों की एक समिति बना देनी चाहिए जिनसे उस विषय के लेखक परामर्श ले सकें। लेकिन इन समितियों में उन्हीं व्यक्तियों को रखना चाहिए कि जो उस विषय के विद्वान होने के साथ-साथ कुछ समय देने को तैयार हों। किसी भी संस्था के लिए यह कठिन है कि सब विषयों के संदर्भ ग्रन्थों का बृहद् पुस्तकालय स्थापित कर सके। अतएव प्रत्येक संस्था एक या दो विषयों के संदर्भ ग्रन्थों को इक्ट्ठा करने का प्रयत्न करें तो हिन्दी लेखकों की कठिनाई दूर हो सकती है।

यह कह देना सहल है कि हिन्दी में यह कमी है, वह कमी है; किन्तु हिन्दी का लेखक जिन परिस्थितियों में लिखता है उनकी ओर ध्यान न देना उसके साथ अन्याय करना है। हिन्दी लेखकों की समस्यायें व्यक्तियों की समस्यायें नहीं हैं; यह हिन्दी की समस्यायें हैं और उनकी ओर से उदासीन रहना हिन्दी के प्रति उपेक्षा की भावना रखने के सदृश है। अतएव हिन्दी संस्थाओं को जहाँतक हो सके उनके मार्ग को प्रशस्त बनाना चाहिए किन्तु अन्ततः लेखकों को स्वयं ही यह कार्य करना होगा। क्योंकि संस्थाओं का यंत्र राजयंत्र की भांति धीरे-धीरे चलता है और वर्तमान स्थिति में उनसे बहुत आशा नहीं की जा सकती। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि ''एक सबके लिए और सब एक के लिए'' सिद्धान्त के आधार हिन्दी और भारत-राष्ट्र की सेवा के उद्देश्य से लेखकों का एक सहकारी संगठन खड़ा किया जाय। क्या हिन्दी लेखक इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर सोचेंगे।

व्यवहार-पूजा (एक व्यंग्य)

[प्रभाकर माचवे]

[आजकल हिन्दी-साहित्य में एकांकी संक्रामक रोग की तरह बढ़ रहे हैं। वस्तु मूल में विदेशी है, पर योग्य मंच हो तो ग्रहणीय है। 'जी० सा०' के पुराने अंकों में 'श्रम-पूजा' और 'सौष्ठव-पूजा' लिखकर इन पंक्तियों के लेखक ने प्राचीन मूल्य-त्रयी सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के प्रथम और अन्तिम शब्दों में परिवर्तन 'श्रम' और 'सौष्ठव' शब्दों द्वारा करने का सुझाव प्रस्तुत किया था। शिवं अथवा अच्छाई की, श्लीलता की नैतिक कसौटियाँ चाहे बहुत सूक्ष्म और अशरीरी हों, वे ज्ञेय में हो अथवा ज्ञाता में उसकी सच्ची कसौटी निष्कपट और निश्छल व्यवहार है। यही सद् व्यवहार दिखाने के लिए नीचे की नाटिका में मनुष्य के मन के तीन रूप :–आचार, विचार और वाक् प्रचार के दोनों पहलुओं को पात्र कल्पित कर एक छोटा-सा दो दृश्यों का स्केच रचने का यह प्रयास है]

१. श्री विचार (वृद्ध, दार्शनिक भाव से दुनिया की ओर देखनेवाले सरल अनुभवी सन्त)

२. आचार (नवयुवक, विद्रोही कलाकार। अधीर और क्रिया के लिए चिरोद्यत)

३. वाक्प्रचार (लेखक-सम्पादक-प्रकाशक तीनों स्वरूपों में काम करनेवाला एक अशील व्यक्तित्व)

४. अविचार (अदृश्य शक्तियों से स्फूर्ति देनेवाला, भविष्य वाणियों में विश्वास रखनेवाला तान्त्रिक, पाखण्डी धर्मगुरु)

५. अनाचार (एक विलासी पंजीपति यशाभिलाषी अप्रकट रूप से शोषक तथा प्रकट रूप से दानवीर)

६. जनता (भिखारिणी)

दृश्य–पहला : प्रभात

आचार (अधीरता से प्रवेशकर) सुना आपने ? सत्य को आज सूली दी जायगी। उसका अपराध कुछ नहीं है, उसने न्याय का पक्ष लिया है। न्याय इस राज्य में विद्रोही माना गया है। सब इस राज्य की प्रशंसा करते हैं। न्याय ने बुलन्द होकर कहा कि यह प्रशंसा ठीक है, पर बुनियाद इस शोषक संस्था की मुझे पूछकर नहीं चलती । आप जानते हैं कसौटियों को लोग जाली बताने लगे। धर्म-कांटा अधर्म-कांटा बन गया है, न्याय-दाता मनु और मूसा मरणासन्न हैं, हिंसा भक्षिणी ही अहिंसा रक्षिणी बन गई। आप ऐसे गम्भीर समय कुछ नहीं करेंगे, विचार दादा?

विचार (सोचता है) हाँ, करना तो कुछ-न-कुछ चाहिए । पर जो करें, सोच-समझकर करें। आचार की अधीरता को संयम का बंधन आवश्यक है। अन्यथा आचार अंधी उपत्यका में कूद पड़ेगा। (प्रकाश्य रूप से) क्या कहा ? सत्य को सूली दे रहे हैं। हा-हा-हा सत्य कभी मर सकता है ? खून के करोड़ों समुद्रों में सत्य को डुबाया नहीं जा सकता। सत्य गीता—(अच्छेद्योयमदाह्योयमक्ले······

आचार—यह सब तत्त्व-चर्चा छोड़ो, बूढ़े दादा ! आज हमें नीतिशास्त्रीय-चिन्ता छोड़कर कृति के तर्क की बात करना है। आज अवकाश नहीं है कि हम सत्य के आत्मा की अक्षुण्णता की बात से ही उसके दैहिक विनाश को टाल सकेंगे। हमें प्रत्यक्ष काम की आवश्यकता है समझे !

वाक्प्रचार – (बीच में आकर) आप कुछ नहीं जानते ? कल मैंने सुर्खियाँ दी थीं 'सत्य का हनन यही सर्व श्रेष्ठ अधर्म है ।' आज सुर्खियाँ दूंगा—'सत्य का अन्त महान् धर्म है ।' मृदंग पर जिस ओर आटा लगादो, उस ओर वह मीठे बोल देता है। मैं अखबारी दुनिया का प्रतीक हूँ—मैं भी वैसी ही मीठे बोल बोलूंगा, जिधर मेरा स्वार्थ है। बोलो आचार—बोलो विचार तुम मेरा कोई हित कर सकते हो ? नहीं तो तुम सब झूठे हो। क्या कहा, मैंने तुम्हारा उपयोग किया था—हा-हा-हा ! यह दुनिया का व्यवहार है। हम कृतघ्न बनें। सब पुरानी बातें भुला दें। आचार, तुमने अपनी कला से मुझे सहायता दी मेरे पास शक्ति है, प्रतिभा है। पत्थर छूता हूँ, स्वर्ण बना देता हूँ; फिर मनभायी मूर्ति गढ़ते कितनी

देर लगती है। मैं सूत्रधार हूँ, तुम···तुम कहो, मुझे आश्वासन देते हो ?

विचार—तुम्हारी शक्ति से परिचित हूँ। भद्रा ! तुम्हारे बीच ही मेरा कार्यक्रम है।

वाक्प्रचार—क्या ? ओ···सद्गुरू का स्वप्न देख रहे हो, विचार ! पर जानते हैं वह गुरुता 'गिरिधर' की इस अँगुली पर ही तो नाचती है। उस पर तुषारपात करते कितनी देर लगती है। मैं ऐसी निन्दा···

आचार—कीर्ति ही ऐसी है तुम्हारी ! मैं कहूँ, तुम्हें याद है—'निन्दक बाबा बीर हमारा', 'राणाजी बदनामी लागे म्हांने धणी मीठी और 'निन्दकाचें घर असावें शेजारी', ये सन्देश हमें नानक, मीरा और तुकाराम ने दिये हैं। वह तुषारपात उन अमिट अक्षरों की हरित शोभा को कालिमामय नहीं बना सकता। हिमालय का हिम महारण्य के निकट आते-आते गलकर उसके पात-पुष्प में नवजीवन ही संचार करता है, यह नहीं जानते ?

वाक्प्रचार—मैं क्या नहीं जानता—इसकी ओर संकेत करना··· (अट्टहास करता है) अपनी विडम्बना है। इस संसार में तुम्हें अभी बहुत कुछ जानना बाकी है। समझे आचार महाशय ! यही मैं दिखाने का प्रयत्न करूँगा। (फिर तिरस्कार से) हूँ······(जाता है)

आचार—(आतुरता से) चलिए महर्षि सत्य को बचायें। रक्षा···

विचार—रक्षा की कह रहे हो युवक ! जहाँ से सब बचाव निकलते हैं उसे क्या बचाओगे ?

आचार—(झुंझलाकर व्यथित सा)पर·· पर दादा, कुएँ को ही आग लगे तो पानी कहाँ से लाओगे ? अगर वाणी ही असभ्य, नीरस और मत्सर ग्रस्त हो जाय तो विचार, आचार की शुद्धता क्या करेगी ? ऐसी वाणी का विरोध आवश्यक है, विचार दादा।

विचार—(गंभीरता से) भूल कर रहे हो आचार ! वाड़वाग्नि कब समुद्र के जल को सुखा सकी है। इतना ही तो होता है कि समद्र में उसके कारण उत्ताल तरंगें प्रवाहित हो जाती हैं। कगारों की ओर प्रवल प्रहार होते हैं, पर जल कायम रहता है। जल की मर्यादा कायम रहती है। वाणी की चपलता क्षम्य है। वह क्या कर सकती है यदि संकल्प की दृढ़ता और बुद्धि की शुद्धता हमारे पास हो। आचार, संकल्प तुम्हारा और मेरा एकसा पिता है। निश्चयात्मिका बुद्धि हमारी माता है। सत्य बचेगा, वह मर नहीं सकता। धैर्य रक्खो, क्रियाशील युवक ! अच्छा, चलें।"

आचार—चलिए।

दृश्य दूसरा

(दोपहर; वधस्थल; मध्य भाग में एक सूली क्रूस की तरह टँगी है जिस पर सत्य को लटकाया जायगा। आसपास खड़े हैं अनाचार, अविचार और वाक्प्रचार)

वाक्प्रचार—(अति क्रुद्ध) मेरा उस आचार नामक 'अनार्य' ने अपमान कर दिया। सतजुगी विचार भी मदद देता है। बुड़भस की सफेदी मैं डामर से पोत दूंगा। वे मुझे क्या समझते हैं ? मेरे पास ये प्रभावशाली शस्त्र हैं।

[संकेत करता है, और पीठिका का परदा उठता है, एक ओर नवीन आविष्कारों से अलंकृत रेडियो-स्टेशन मध्य में है, व्यासपीठ, जिस पर व्याख्याता खड़े हैं दूसरे छोर पर विशालकाय मुद्रण यंत्र है] मैं इनके सहारे विचार का मनन करना बन्द कर दूंगा, आचार की क्रियात्मक शक्ति का ह्रास कर दूंगा। ठीक है न, मेरे जीवन के अराध्य देव ?

अविचार—भक्त, इस अन्धकार-युग में मेरे आश्रित नरवीर की कामना-पूर्ति में कौन बाधक होकर मेरी प्रचण्ड क्रोधाग्नि की ज्वालाओं का शिकार बनेगा ? प्राचीन तथा अर्वाचीन, प्राच्य तथा पाश्चात्य—सब विद्याओं का समुद्र-मंथन कर 'गरल' पीनेवाला मैं हूँ। संसार के महान परिवर्तन के सृष्टा के बुद्धि-वैभव को वह उदासीन, एकान्तवासी, अमृत की हलकी गुटकी पीने और पिलानेवाला सत्य क्या जाने ? मैं दश वेदों का भाष्यकार, नीति का देव, विजेता रावण, समस्त धर्मों का प्रतीक, साहित्य का केशवदास

हूँ। सत्यवाणी की स्वतन्त्रता चाहता हूँ। स्वतंत्रता–मैं प्रदान करता हूँ। मेरे राज्य में वाक्प्रचार, तुम स्वतन्त्र हो, सत्य मेरी शक्ति क्यों न स्वीकार करले ? बस फिर 'पाकत्व' की सब स्थानों में, सब पक्षों में स्थापना हो जायगी। और नहीं तो वे मेरी शक्ति को··· (अविचार के रक्तमय नेत्र विस्फाटित होकर आकाश में छाये हुए अन्धकार में एक और गड़ जाते हैं। उसका अंग-अंग क्रोध से काँपने लगता है। और वह अपना हाथ उठाकर किसी अदृश्य शक्ति का आवाहन करता दिखाई देता है। वह देखो, वह मेरी देवी का ताण्डव नृत्य······ (अनाचार की ओर देखकर) क्रीड़ावतार सखा, तुम्हारी माया फैले, मादक हाला के कलसे मेरी मधुशाला में भर जायँ, फिर मैं विद्युत अस्त्र से आकाशवाणी निर्माण कर दूंगा। मैं विचार को सिद्ध कर दूंगा कि वह हरिजन है, निर्घृण है। आचार को सिद्ध कर दूंगा कि वह सत्ताधारी है, वर्णाभिमानी है।

अनाचार—क्यों नहीं, सर्वशक्तिमान् मेरा भामाशाही कोष–बैंक आपका ही है। आप जो मेरी लक्ष्मी के साथ करेंगे, पुण्य कर्म ही करेंगे। मुझे आप पर पूरा भरोसा है। शास्त्र-प्रमाणित मदिरा की 'बम्बई' में कमी नहीं है। देव ! फिर बचे भारत में क्या कमी ? लो···तुम भी आओ, भक्त वाक्प्रचार !

(सब मदिरापान करते हैं)

(सत्य, शृंखलाबद्ध, बन्दी वेष में लाया जाता है। उसके साथ-साथ जनता नामक एक भिखारिणी भी बाल बिखराये आती है। उसे दो प्रहरी पकड़े हुए हैं)

वाक्प्रचार—बोलो सत्य, तुम्हें सूली देने में हम तुम्हारे साथ और जनता के साथ न्याय ही कर रहे हैं।

अनाचार—हमारे महान् कार्यों में तेरी यह निःसत्व, नगण्य बाधा भी हम बर्दाश्त नहीं कर सकते। जनता का हित क्या है, हम जानते हैं।

वाक्प्रचार—हम जानते हैं ! हाँ हम जानते हैं !! क्यों न देव ?

अविचार—अवश्य ! तू नहीं जानता, कंकाल ! हमारी नीति सर्व मान्य है। न्याय और धर्म की साक्षी से यही पद्धति सर्वथा माननीय मानी गई है। उसे मानने में संसार का शुभ है। तू नहीं मानेगा तो जानता है क्या होगा ? मेरी देवी का कोप देखा है, हहहह···और सुनता हूँ तू हमारे नाम से उपवासी है, मूर्ख ! तेरी नाक में ठूँस-ठूँसकर हम तुझे अन्न खिलायेंगे।

वाक्प्रचार—इस पर एक और गुरुतर अपराध लगाया गया है, महाराज !

अविचार - क्या ? (वाक्प्रचार के संकेत को समझकर) मैं बताऊँ, हम शाक्तों के धर्म में युद्ध श्रेष्ठ धर्म बतलाया गया है। यह कायर बौद्ध और जैनियों की तरह अहिंसा का यानी हमारी दृष्टि से अधर्म का प्रचार करता है। कहता है युद्ध-मात्र पाप है। क्या ऐसे गंभीर समय जब हमारा राष्ट्र संसार की बलाढ्य अन्यायी ताकतों से लोहा ले रहा है, इस भले मानस का जीना ठीक है ? यह राष्ट्र-द्रोही है, अतः इसकी बोटी-बोटी नुचवा देनी चाहिए।

अविचार—द्रोह ! महा पाप !! अधम सत्य, क्या यह सब सच है ?

(सत्य, केवल, अविचार के कथन पर मंद मुस्करा देता है)

अविचार—(क्रोधातुर) घोर अवहेलना ! इसे सूली दो, प्रहरी !

प्रहरी—जैसी आज्ञा देव !

सत्य—(मृदुभाव से) मैं दीर्घकाल से रखा अपना मौन तोड़ रहा हूँ, मैं दया की भीख नहीं चाहूँगा। अहिंसा का गीत मेरे स्तरस्तर की झंकार है और इसीलिए उसमें भीरुता की भावना का वास नहीं है। अपने हृदय की सम्पूर्ण शक्ति, निर्भयता से मैं मनुष्य मात्र की दैवी आत्मा की आवाज को सुना देना चाहता हूँ; जिससे मेरे शारीरिक क्षय के बाद भी वही जीवित रहे। यह सामने खड़ी जनता

पद-दलित है। इसके वाह्याभरण को तुमने लूटा है। मैंने इसके आन्तरिक धन को पाया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह निष्कपट, सद्व्यवहार द्वारा ही इस संसार का नव-निर्माण करेंगी। इसीमें मेरे जीवन की मेरे मरण की विजय है। इसीमें पराजय है तुम्हारे जीवन, तुम्हारे अशिवत्व……

अविचार—(सक्रोध बाधा देते हुए) मुझ पर अशिवता का आरोप? मैं शाक्त हूँ—मैं शिव के तांडव रूप का पुजारी हूँ। महाकाल के तृतीय नेत्र का मैं उपासक हूँ। मैं तेरा रक्त और माँस काली का प्रसाद समझकर सब में बाँट दूँगा। तेरी अभिसारिका जनता को जबर्दस्ती खिला दूंगा।

अनाचार—(प्रहरियों से) जल्दी करो। देखते क्या हो? (सत्य की ओर घूमकर) ओ……रोता है। कहता था 'भीरुता की भावना का मेरे में वास नहीं!' अब, अब, ये आँसू किस भावना के सूचक है, ढोंगी सत्य?

सत्य—मुझे दुःख है, श्री अनाचार, कि आप गलत भावना की कल्पना कर रहे है। इनकी कीमत—

अनाचार—आंसुओं की कीमत? मैं—मैं नहीं जानता। रीति काल के श्रृंगार रस को क्रियात्मक स्वरूप देकर उसका भोग करने वाला मैं आँसुओं की कीमत नहीं जानता। ये विशाल अट्टालिकायें ये नन्दन कानन सदृश वाटिकायें, ये यक्ष, किन्नरी आदि सुन्दिरियों से ध्वनित नृत्य शालायें और—

सत्य—माटी सा मूल्य है, श्री अनाचार! मुझे आप सबके अज्ञान पर तरस आता है।

वाक्प्रचार—चुप रहो। मैं, हम सब अज्ञानी? मैं प्रचार-दुनिया का प्रतीक हूँ। सम्पूर्ण विश्व को अपनी भावनानुकूल करने की क्षमता मैं रखता हूँ। मेरे उपकरणों में आकर्षण है, शक्ति है। तू मुझे क्या समझता है?

(सत्य गंभीरता से सुनता रहता है, इसी समय वहाँ विचार और आचार आते हैं।)

अविचार—कौन?

विचार—मैं हूँ बन्धु! कहता हूँ धैर्य्य से काम लो। अपने अन्धकारपूर्ण घर की जुगनू सी बची प्रभा को बुझाने का प्रयत्न मत करो। तुम मुझे जन्म से अपना शत्रु समझते हो मुझे मार डालो। सत्य को छोड़ दो, मुक्त कर दो।

अनाचार—विभीषण! युग-युग बीत गये हैं, तेरा कलंक अभी तक नहीं धुला है। अब कलिकाल में तेरे उस कुकृत्य का बदला मिलेगा। तू बच नहीं सकता।

आचार—(आतुर) नहीं नहीं, पहले मुझे सूली दो! फिर आप सत्य को छू सकेंगे। आप किस दुनिया में बसते हैं। भोग-नगर के अधिपति अनाचार तुम्हें हम त्याग-नगरी का अहिंसक पराक्रम दिखलाने आये हैं। हम बलि होंगे और हमारे रक्त बीज से एक-एक 'रिसरेक्शन' (ईसा का पुनरुत्थान) विश्व को छा लेगा।

वाक्प्रचार – हटाओजी, एक वाक्य बोलने की तो तमीज नहीं—और बातें बढ़ाते हो—कुछ दिन मेरे पास बोलना सीखने के लिए रहो!

विचार—जहाँ विचार को मुक्ति नहीं है, वहाँ न बोलना भला। हरिजन वहाँ चुप रहता है, जहाँ असुरों का कोलाहल हो।

अनाचार
वाक्प्रचार
अविचार
चढ़ाओ सत्य को सूली पर,
इनको बड़बड़ाने दो।

[सत्य को सूली पर चढ़ाने जाते हैं, इतने में जनता आगे होकर अपने आपको सूली के लिए प्रस्तुत करती है। जनता से पहले आचार आगे आता है आचार के आगे विचार]

अनाचार
वाक्प्रचार
अविचार
चढ़ाओ सबको एक साथ सूली पर। यही हमारा व्यवहार है। यही हमारी पूजा है। हम विश्व में अपनी असीम शक्ति प्रदर्शन से ख्याति और इष्टदेव शिव के प्रति श्रद्धा भक्ति प्रकट कर वरदान अर्जन करेंगे।

(सत्य की जय, सदाचार की जय, सद्विचार की जय के नारों में यह दृश्य समाप्त होता है।)

मंदिर का मालिक कौन है, यह प्रश्न नहीं। मंदिर की रक्षा कौन करता है, यह वीरता खानी है। उसके आँचल पकड़े रहने से उसकी तिष्ठा न रहेगी परन्तु उसके फाड़नेवाले को राशायी कर देने से; उसकी प्रसव-वेदना जानने । दूध पीकर कृतघ्न बन जा सकते हो, माँ कुछ कहेगी नहीं; परन्तु देश तथा संसार के सपूतों के सामने कैसे मुंह दिखाओगे ?

हम अपनी मातृ-भूमि की सेवा करना कर्तव्य यों नहीं समझते हैं ? क्योंकि उसको सच्चे रूप नहीं देखते। उसको नहीं पहचानते। सेवा का ी हमें प्रतिफल चाहिए—ऐसी ओछी हमारी नियत है। हममें 'मातृवत्' का भाव नहीं है। उससे हमारा तादात्म्य, साक्षात् दर्शन का-सा अनुभव अभी नहीं हुआ है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अमर वाणी हमनें भुलादी है। हम पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए लड़ना एक बाहर का काम समझते हैं–व्यर्थ–दूसरे का–अपना नहीं। अपनी रोटी का प्रश्न कैसे हल हो, अथवा होता है, इसके मूल र विचार करना चाहिए। जिस मशीन के नीचे हम सब दबे हैं उसे ही हटाने का कार्य सफल कहा जा सकता है। दूसरी सबसे बड़ी कमजोरी हममें यह है कि हम किसी प्रश्न, विशेषतः इस प्रश्न पर सीधे आना नहीं चाहते, इधर उधर अथवा बगल से झांकना चाहते हैं। दुश्मन को न तो आड़ से मारने की कोशिश करते हैं, न तो पीछे से, न सामने से। यही कारण है कि हमारे कार्य का असर नहीं होता या होता भी है तो सिर्फ 'कुएँ के मेढ़क की उछल' के बराबर। इस प्रकार हम सर्वदा अंधकार में रहते हैं और प्रकाश में आने की चेष्टा भी नहीं करते, हालाँकि इतना जानते हैं कि यहाँ, इधर प्रकाश है। क्या इससे भी बढ़कर नादानी, कायरता हो सकती है ? से भी अपना, अपने राष्ट्र एवं मानव जाति का अधिक से अधिक, सबसे बढ़िया ढंग पर शीघ्र से शीघ्र भलाई और कल्याण हो सके, उनके बन्धन कट सकें, हमें वही करना है। इस जीवन का उद्देश्य समझना चाहिए—माता की पूजा।

धर्म संकट पग-पग पर है। कर्तव्य से विचलित हो जाने का बराबर भय है। अतः जीवन में समन्वय की एक धारा बहाने के लिए अपने कर्तव्य में संतुलन की आवश्यकता है। नहीं तो उनके टकराने तथा एक दूसरे के मार्ग में आ खड़े होने की पूरी संभावना है। पत्थर काटकर सँकरी पगदंडी बनाना कितना कठिन है ? आगे राजमार्ग है, परन्तु उससे क्या ? हमारी प्रारंभिक अड़चनें कम थोड़े ही हो जाएँगी। 'हम क्या करें ?' इसकी कसौटी हमारा दृढ़ निश्चय ही है। इस पर सच्चा उतरने से अपने देश की और अपनी भलाई कहाँ तक न हो जाएगी ! हमारा व्यक्तित्व स्वार्थ की पुड़ियों पर नहीं पला है। 'आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्' इसी अजेय घोष में अपने को मानव-दुःख सुख के साथ घोल देने की चिरंतन ध्वनि वर्तमान है। पूर्ण गवेषणा और विचार के पश्चात् कोई निर्णय मजबूत बनता है। तभी क्राँति होती है।

कोई कार्य छोटा ही क्यों न हो, करना है, दिल तोड़ परिश्रम से करना है, माँ के लिए करना है, सच्चाई के साथ करना है। उसकी कड़ियों को काटना है, चाहे जिधर से आरम्भ करें। स्वार्थ के अंधकूप में पड़ जाने से हम विनष्ट हो जाएँगे। सब यही कहते हैं; 'योद्धा बड़ा बहादुर है दूसरों के लिए, देश के लिए बलिदान हो गया।' 'साहुजी बड़े धर्मात्मा हैं, एक धर्मशाला खड़ी कर दी' 'जज बड़ा न्यायी है, दूध-और पानी पृथक कर देता है।' अपना-अपना और 'मैं-मैं' करते न जाने कितने स्वार्थी, कायर मृत्यु के कितने पहले यहाँ से लोप हो गए। उनके पड़ोसियों ने एक भी आह न भरी, बल्कि सुख की साँस ली।

राष्ट्र-उद्धार, मातृ-मंदिर की रक्षा एक का धंधा नहीं, देश के सभी निवासियों का है। माता का चीर-हरण होते देखना महापाप है—समझदार के लिए मौत है। करोड़ों माताओं की इज्जत

पाक साफ देखना चाहते हो तो इस 'महामाता' की सेवा में लग जाओ। माँ को आततायियों की कुचारपूर्ण ज्वाला की आँच से बचा लेना ही माता से उऋण होने का सीधा परन्तु दुष्कर मार्ग है। माता के प्रति क्षण-स्थायी प्रेम उसको बेड़ियों से क़भी छुड़ा न सकेगा। उसकी सेवा मे शर्त की दीवार मत खड़ी करो। यह उसके प्रेमालय में उपजी विष-वेदि की तरह त्याज्य है शर्त लगाना माता को एक बुरी गन्दी गाली सुनाने से बढ़कर है।

जिस दिन मां पूर्ण स्वाधीन होगी और हम उसके स्वतन्त्र आंचल पर शान से विचरते निकलेंगे, तब सेवा का फल कितना मधुर, महान् होगा !

जीवन-निर्माण में परिस्थिति और साहित्य

[हरिश्चन्द्र]

जन्म से ही सभी की संस्कृति भिन्न-भिन्न होती है। पुनर्जन्म को न माननेवाले भी इसे देखते तथा स्पष्ट अनुभव करते हैं। इस संस्कृति-वैचित्र्य का सम्बन्ध चाहे पूर्व जन्म के कर्मो से रहे अथवा गर्भ-स्थिति-काल में माँ के खान-पान, आचार-व्यवहार और भाव-विचार से हो, पर यह सर्व मान्य है जरूर।

जन्म के समय मानव-अन्तःकरण में जो कुछ मौजूद है, वही उसकी संस्कृति है, वही उसका इस जन्म का प्रारम्भिक व्यक्तित्व है; भले ही वह बीज रूप में अवस्थित हो। उसका विकास इस संसार से सम्बन्ध रखकर ही होता है और इससे सम्बन्ध हटाकर किसी का व्यक्तित्व कायम रह ही नहीं सकता। किसी व्यक्ति का प्रारम्भिक-व्यक्तित्व भी संसार का ही एक अंश है, किन्तु जब हम केवल व्यक्ति को देखना चाहते हैं तो उसके सिवा सृष्टि के शेष अंगों को अलग करके ही देख सकते हैं। इस प्रकार जब देखते हैं तब व्यक्ति और संसार, इस प्रकार दो चीजें अगल-अलग होजाती है। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से भिन्न कुछ नहीं है और वह अपने पोषण एवं विकास के लिए इस संसार से ही तत्व ग्रहण करते हैं; अतः व्यक्ति के अलावा जो कुछ भी अवशिष्ट रह जाता है, सब-के-सब उस व्यक्ति के लिए परिस्थिति ही है। चाहे वह आकाश हो, वायु हो, सूर्य, चन्द्र, तारे, कीट, पशु, पक्षी, मानव-समाज एवं उसके भाव, विचार, ज्ञान, दर्शन, कला और साहित्य ही क्यों न हो!

व्यक्ति यद्यपि परिस्थिति से ही अपने विकास के सारे तत्व लिया करते हैं, किन्तु उसमें जो एक खास विशिष्टता है, वह किसी तरह मिटाई नहीं जा सकती। पीपल तथा वट के बीज एक ही मिट्टी, पानी, हवा, धूप एवं आकाश से अपनी वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक-तत्व ग्रहण करते हैं पर दोनों एक से कभी नहीं हो जाते। यही व्यक्तित्व की विशिष्टता है। परिस्थिति में भी इसी प्रकार की विशिष्टता है। वह भी किसी के द्वारा नष्ट नहीं की जा सकती है। मिट्टी में जो तत्व मौजूद है, उसके सिवा दूसरे प्रकार का कोई तत्व, व्यक्तित्व की विशिष्टता लाख चेष्टा करके भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसीमें परिस्थिति की महत्ता निहित है। परिस्थिति की एक विशेषता और है। यह यद्यपि अपनी अमरता का दावा तो नहीं कर सकती, पर यह इतनी प्रभावशालिनी है कि बड़ी ही गम्भीर-शक्ति-पूर्ण-चेष्टा-द्वारा ही इससे मुक्ति पायी जा सकती है। कोई वृक्ष, जल की कमी के कारण सूख रहा है। उसे विष-मिश्रित-जल से सींच दिया जाता है। उस समय यद्यपि उसे विशुद्ध-जल की ही आवश्यकता है, इसलिए उसे उनमें से केवल जल को ग्रहण कर लेना चाहिए, पर ऐसा नहीं कर पाता। इसी प्रकार ही एक फल के बीज भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर विभिन्न प्रकार के रंग और रस देते हैं। किसी घने अरण्य में भिन्न-भिन्न तरह के वृक्ष अपने-अपने विशिष्ट गन्ध को लिये मौजूद हैं। कहीं पर यदि कोई एक

चन्दन का वृक्ष लगा दे तो सभी तरुवरों को अपने स्वाभाविक-गन्ध का परित्याग कर चन्दन-सौरभ को अपनाना ही पड़ता है। बांस की तरह अपने स्वाभाविक-गन्ध को कायम रख पाना बड़े ही पुरुषार्थ का काम है।

परिस्थिति की इसी विशिष्टता और महत्ता को ध्यान में रखकर ही भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में भिन्न-भिन्न-विशिष्ट-गुण-सम्पन्न व्यक्तियों को उत्पन्न करने की चेष्टा होती है और वे प्रायः सफल होते हैं। यद्यपि किसी भी राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति में संस्कृति-वैचित्र्य होता ही है पर जैसे चन्दन के अरण्य में विभिन्न तरुवर अपने भिन्न-भिन्न रँग, रूप, स्वाद को कायम रखते हुए भी गन्ध को अपने स्वाभाविक-रूप में स्थिर नहीं रख पाते, वही स्थिति उक्त राष्ट्र के व्यवितयों की भी होती है। इसीलिए हम देखते हैं कि भारत के और इंग्लैण्ड के मनुष्यों में एक खास विशेषता है, जिसके कारण हम दोनों को भिन्न-भिन्न देशवासी समझ लेने में सफल होते हैं। पर उसी राष्ट्र में चन्दन और बांस जैसे व्यवित भी होते हैं, जो अपने को किसी दूसरे के प्रभाव से प्रभावान्वित नहीं होने देते। एक केवल अपने को स्थिर रखते हैं, दूसरा स्थिरता कायम रखते हुए अपने प्रभाव का विस्तार भी करता है। बाँस केवल चन्दन के प्रभाव से अपने को बचाता है, किन्तु चन्दन सर्प के विष का कोई असर न लेकर अपने प्रभाव को विस्तृत करता रहता है। संसार के अधिकांश मानव इतर वृक्षों के तुल्य हैं; बांस और चन्दन की तरह कुछ कम। जो राष्ट्र जैसे व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहता है, वह वैसे ही आचार-व्यवहार, दर्शन, साहित्य और कला का प्रणयन करता है। उसकी शिक्षा-दीक्षा पद्धति भी उसीके अनुकूल होती है।

मानव के आचार-व्यवहार उसके भाव-विचार के ही दूसरे रूप होते हैं। इसी भाव-विचार में परिष्करण, संशोधन मिश्रण और परिवर्तन कर कोई राष्ट्र विशेष प्रकार के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। विचार परिवर्तन के लिए दर्शन और विज्ञान-शास्त्र जैसे ज्ञान-ग्रन्थों की आवश्यकता है और भाव-परिवर्तन के लिए कला और साहित्य जैसे आकर्षक तत्त्वों की, जिससे आकर्षित होकर मानव-अन्त.करण के सुषुप्त-भाव, उल-बुलाने लगते है, जगे भाव उस ओर दौड़ पड़ते हैं। भाव और विचार, हृदय और बुद्धि वृत्ति एवं ज्ञान एक-दूसरे से बिल्कुल-पृथक् नहीं किये जा सकते, इसीलिए हमें ज्ञान-ग्रन्थों में साहित्य और साहित्य में ज्ञान की बातें मिल जाती है। जिस ग्रन्थ में जिसकी प्रधानता रहती है वह उसीके नाम से अभिहित किया जाता है।

मनुष्य के जीवन-निर्माण में, उसके व्यवहार संचालक में ज्ञान और भाव दोनों का हाथ है, पर दोनों में प्रधानता किसकी है, इसे कह देना जितना सरल है, सिद्ध करने में उतना ही कठिन। मैं मानता हूँ कि एक को दूसरे से अलग कर देने से दूसरे खड़े रह ही नहीं सकते। इसीलिए दोनों में कौन बड़े कौन छोटे के तर्क में नहीं पड़कर मैं केवल यह दिखाना चाहता हूँ कि भाव को यानी साहित्य को जीवन-निर्माण-विधि में कितने बड़े-सहायक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

साहित्य मनुष्य के भावों–वृत्तियों के कार्यों का इतिहास है। साथ ही वह एक ऐसा तत्व है कि जिसके स्पर्श मात्र से कितने भाव और वृत्तियाँ सुषुप्त-दशा का परित्याग कर उठ जाती हैं। कर्म का वेग जोरों से प्रवाहित होने लगता है, जिसमें पड़कर मनुष्य का जीवन कहाँ से बहकर कहाँ जा लगता है, इसका उसे पता तक नहीं रहता। जिस समय मनुष्य के भावों में भयंकर तूफान उठ खड़ा होता है उस समय उसकी विचार-तरणि डूबने उतराने लगती है, या तो उसके साथ उसे बहना पड़ता है या डूब जाने को विवश होती हैं। इससे जान पड़ता है कि जिसमें इतनी गति-शक्ति है उसी पर यदि इस जीवन को लादकर ठिकाने से—पथ से भटकने नहीं देकर चलाया जाय तो थोड़े समय में बहुत दूरी का रास्ता तय किया जा सकता है। यानी अतिशीघ्र जीवन का बहुत

ज्यादा विकास इसके द्वारा सम्भावित है। मैंने देखा है, शायद कितनों ने देखा होगा कि जिस व्यक्ति में जीवनी-शक्ति, उत्साह की मात्रा जितनी ही अधिक है वह किसी भी क्षेत्र में उतना ही शीघ्र आगे बढ़ जाता है। यदि वह डाकू हुआ तो भयंकर डाकू, प्रेमी हुआ तो दुर्दान्त-प्रेमी, धर्मात्मा हुआ तो बेजोड़ धर्मात्मा, भक्त हुआ तो भक्तराज बन जाता है। सारांश महत्व के मार्ग में वह थोड़े समय में जितना बढ़ सकता है, पाप के गर्त्त में उतना ही नीचे गड़ भी सकता है। यह उसकी क्षमता की करामात है। ठीक यही हाल इन वेग-स्वरूप-वृत्तियों का है और यही वेग स्वरूप वृत्ति या भाव, साहित्य का मूलाधार है।

साहित्यिक और साहित्य-निर्माता——शायद ये दोनों शब्द अबतक एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मैं दोनों को भिन्न और विशेष अर्थ वाची मानता हूँ। जो भाव-वृत्तियों का अनुसरण कर केवल तज्जन्य कर्मों का इतिहास मात्र लिखते हैं वे साहित्यिक हैं और साहित्य-निर्माता है वह, जो इस भाव और वृत्ति को अपने काबू में करके उसे सुष्ठु मार्ग से एक विशेष-दिशा में नियोजित करते हैं, ले जाते हैं।

चाहे मैटर (Matter) हो या परमात्मा, पर एक मूलतत्व को सभी मानते हैं, जिससे इस सृष्टि का विकास हुआ है। हम इस संसार में थोड़ी या बहुत किसी भी मात्रा में जो कुछ देखते हैं, वह अपरिमित मात्रा में उसमें जरूर ही होगी। जिनके सारे प्राणी आनन्द चाहते हैं, ज्ञान चाहते हैं, सौन्दर्य की वांछा रखते हैं। इसके लोभ की कोई सीमा नहीं दीखती। जितने की प्राप्ति हो जाती है, उससे ज्यादा पाने की चाह भी ठीक उसी समय उत्पन्न हो आती है। जबतक ये पूर्ण—अपरिमित मात्रा में उसकी प्राप्ति नहीं कर लेंगे तबतक इन्हें चैन नहीं, तृप्ति नहीं——शान्ति नहीं। इसीलिए ज्ञातत: अज्ञातत: सब उसीकी ओर प्रभावित होने की चेष्टा कर रहे हैं। इसीलिए जो हमें उस ओर ले जाते हुए दीखता है, या उस ओर जाने में सहायता भी करता है उसे हम सुन्दर-सुन्दर नामों से अभिहित करते हैं। उसे सत्, कल्याण, ज्योति, अमरत्व वाची शब्दों से विभूषित कर देते हैं, पर सभी जानते हैं कि उसकी वास्तविक प्राप्ति उस पूर्णता में, मूल में——आत्मा परमात्मा या मैटर में ही जाकर होगी पर भौतिकवादी तो मैटर को जड़-तत्व मानते हैं अतः हम यही कहेंगे कि उसकी वास्तविक प्राप्ति आत्मा या परमात्मा में ही होगी, जो सदा चिन्मय है, (ज्ञान मय है), आनन्द स्वरूप है।

अतः जो साहित्य हमें निरन्तर, विषाद से, थोड़े सुख से, कुरूपता से, साधारण सौन्दर्य से, साधारण-रस से उठाकर उस पूर्णता में पहुँचाने की गति-प्रेरणा शक्ति प्रदान करे वही हमारे लिए सत्साहित्य है। किन्तु जो हमें भुलावा देकर, मोह से मुग्ध कर अपूर्णता को ही पूर्णता बताकर, उसीमें रमाने की चेष्टा करे तो उसे हम सत्साहित्य की कोटि में नहीं रख सकते। इससे तो अच्छा वह साहित्य है जो इसकी अपेक्षा सौन्दर्य और सुख की कोटि में ओछा होने पर भी निरन्तर उस अन्तिम-पूर्णता की ओर अग्रसर और गतिशील है।

भाव या वृत्ति में जितनी तीव्रतर गति है, उसके जोरदार प्रवाह में जीवन के अन्य उपकरण बह जाते हैं इसीलिए सम्पूर्ण जीवन भावमय ही दीखने लगते हैं। इसी जीवन के अभिव्यक्तिकरण को कितने लोग 'साहित्य' कहते हैं। यहाँ जीवन साहित्यमय और साहित्य जीवनमय हो जाता है। लगता है बिना साहित्य के जीवन की 'अस्ति' ही नहीं। जीवन-निर्माण में साहित्य की महत्ता इसी जगह स्पष्ट झलक उठती है। चाहे कुछ हो, पर जीवन-निर्माण में सबसे अधिक सहायता और साधन-सामग्री हमें साहित्य को छोड़ अन्यत्र नहीं मिलती। मेरे लिए साहित्य का अर्थ ही सत्साहित्य है।

कसौटी पर

आलोचना

ज्योति : रच०—श्री अम्बिकाप्रसाद भट्ट 'अम्बिकेश'; प्रका० रामदुलारे श्रीवास्तव, शारदा प्रेस, नया कटरा, प्रयाग; मू० १।।)

पुस्तक के दो भाग हैं। पहले भाग में ब्रजभाषा की, और दूसरे में खड़ी बोली की कविताएँ संगृहित हैं। दोनों ही प्रकार की कविताओं में कवित्त और सवैया, इन्हीं दो छंदों की प्रधानता है। छंदों में प्रवाह, रस परिपाक और अलंकार आदि का चमत्कार सुन्दर है। पुरानी परिपाटी के अनुयायी होते हुए भी अंबिकेशजी ने भावों में नवीनता लाने में बहुत हद तक सफलता पायी है। ऋतु वर्णन, आंगिक वर्णन और यशोगाथा में भावों का लालित्य है, शब्द-सौष्ठव तो है ही। आधुनिकता से इसी बात में अन्तर है कि छोटे विषय की विषद भूमिका है। पुराने साँचे की ढलाई होने से आज का युग ठीक नहीं उतरा है। पुस्तक काव्य-प्रेमियों को आनन्द देगी।

मरिचिका : रच०—श्री दयालगिरि गोस्वामी प्र० श्री अमृतलाल पी० त्रिवेदी-माइन ओनर, बालाघाट, सी० पी०; मू० १)

हमें ठीक-ठीक ज्ञात नहीं कि 'मरीचिका' कवि महोदय का पहला ही प्रयास है या नहीं, किन्तु कवितायें प्रथम प्रयास की ओर इशारा करती हैं। इसमें भावों के निर्वाह में न तो संयम है, न भाषा प्रयोग में अधिकार। और छपाई तो इतनी भ्रष्ट है कि कुछ कहना नहीं। प्रत्येक पृष्ठ में अशुद्धियाँ हैं तथा गेटअप की रुचि बड़ी दीन है। दो-चार गीत अपेक्षाकृत सुन्दर उतरे हैं, जिनसे कवि के भविष्य की उन्नति का आभास मिलता है, अगर सच्ची लगन हो।

नागयज्ञ : ले०—पं० सत्यभक्त; प्रका० सत्याश्रम, वर्धा; मू० ।।)

महाभारत के आदि पर्व में राजा जन्मेजय के सर्पयज्ञ की कथा उल्लिखित है। प्रस्तुत नाटक की कथा वस्तु उसी से ली गयी है। लेकिन विज्ञ लेखक ने उसमें रोचकता और स्वाभाविकता लाने के लिए काफी हेर-फेर किया है। इस नाटक की रचना हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के पावन उद्देश्य से की गयी है और शुरू में इसी पर एक लम्बी भूमिका है, जिसमें इन दोनों जातियों की फूट के कारणों का निराकरण किया गया है। लेखक ने नागों को सर्पकुल न मानकर मानव-जाति विशेष माना है, जो तब बहुत गिरे थे और आर्यों द्वारा सताये जाते थे। दोनों जातियों के वैमनस्य और लड़ाई के लिए कारण और घटनाओं की सृष्टि उपयुक्त हुई है। किन्तु लेखक के उपदेश-दान की प्रबल आकांक्षा से युग और वातावरण की रक्षा नहीं हो सकी है, जो नाटक की जान है। नाटक के कथोपकथन में लेखक की सुधारवादी मनोवृति इतनी तीव्र होगयी है कि अभिनय आर्य-समाजियों के भाषण-सा हो पड़ा है। इसलिए आदर्श के हिसाब से यह नाटक चाहे जिस कोटि में आये, इसमें नाटक की दृष्टि से कुछ त्रुटि रह गयी है।

ग्राम-सुधार नाटक : ले०—सैयद कासिम अली, साहित्यालंकार; प्रका० साहित्य सदन, अबोहर (पंजाब); मू० ।।=)

पुस्तक का उद्देश्य इसके नाम से ही स्पष्ट है। इसमें ग्राम और ग्रामीणों की आये दिन-की प्रमुख समस्यायें सरल भाषा और सजिव चरित्रों द्वारा पेश की गयी हैं। गीत भी देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हैं। नाटक गाँवों में खेलने योग्य है। इससे गाँव की समस्या में स्वयं गाँववाले समझ सकेंगे और उन्हें सद्प्रेरणा मिलेगी।

—हंसकुमार तिवारी,

निर्दोष : ले० श्री केसरी नारायणसिंह सरकारी प्रकाशक—साहित्य-कुटीर, गोरखपुर; पृष्ठ १०० मूल्य ।।=)।

प्रस्तुत नाटक सामाजिक कुरीतियों का दिग्दर्शन करता है। ईरावती और नवीन प्रधान

पात्र हैं। ईरा नवीन की प्रेमिका है, दोनों के विवाह की बातचीत चलती रहती है अन्त को नवीन के धनी पिता की राय से विवाह नहीं हो पाता। चरित्रहीन कंटकचंद की कुचालों से ईरा की शादी शराबी देवेन्द्र से हो जाती है। देवेन्द्र वृद्ध है निदान ईरा विधवा हो जाती है। नवीन अपना पहला प्रेम भूला नहीं है। कंटक ईरा को वेश्या बनाता है और अन्त में एक फिल्म कम्पनी में नवीन और ईरा का मिलन होता है।

नाटक का कथानक तो रोचक है पर दृश्यों का संघटन सफलता से नहीं हो सका है और बहुत सी अविश्वसनीय बातें भी नाटक में मिलती हैं जैसे पुलिस इन्स्पेक्टर का नवीन के रूमाल को पहचान लेना आदि । 'निर्दोष' में नाटकीय गुण तो हैं ही नहीं साथ ही भाषा भी अत्यन्त गिरी हुई है। यथा प्रसंग आए हुए गाने एकदम निम्न कोटि के हैं। कल्पनाओं के लिए लेखक का मस्तिष्क तो बुरा नहीं है पर नाटक की कला से अनभिज्ञ अवश्य है। पुस्तक की छपाई और कागज भद्दे हैं। मूल्य अधिक है।

राका : ले०—श्री० मनबोधनलाल श्रीवास्तव प्रकाशक—सरस्वती प्रकाशन मन्दिर प्रयाग; मूल्य १।); पृष्ठ १८१।

प्रस्तुत पुस्तक में श्रीवास्तवजी की विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित १५ कहानियाँ संग्रहीत हैं। अलबत्ता कथानक तो कहानियों के से हैं पर कहानियों में कला और उसके अनुकूल टेकनिक का अभाव है । हमें सबसे सुन्दर 'परीक्षा' शीर्षक कहानी जँची। अन्तिम कहानी 'विश्वासघात' अच्छी तो है पर प्रेमचंद की 'सारन्धा' शीर्षक कहानी की छाया-सी जान पड़ती है। 'निपटारा' और 'होली' ध्येय विशेष को लेकर लिखी गई जान पड़ती है। 'निपटारा' को न कहानी ही कह सकते हैं न रेखा-चित्र ही। स्वास्थ्य-विभाग के अध्यक्ष मैजिक-लैण्टर्न द्वारा इसका उपयोग करें तो अच्छा हो । 'होली' हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए लिखी गई है। 'करिचा' कहानी रोचक और स्त्री मनोवृत्ति की परिचायक है । अन्य कहानियाँ बुरी नहीं हैं पर कहानी-साहित्य में उनका स्थान है यह कहना मुश्किल मालूम होता है।

रेल की रात : ले०—बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव । प्रकाशक—प्रकाश ब्रदर्स, आगरा, मूल्य ॥); पृष्ठ ७२;

श्रीवास्तवजी हिन्दी के अच्छे कहानीकारों में से हैं। कुछ गम्भीर कहानियों के अतिरिक्त आपने हास्यरस की भी कहानियाँ लिखी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आपकी ग्यारह कहानियाँ हैं। ये सभी हास्यरस की हैं। कहानियाँ घटना-प्रधान हैं और इनका हास्य संयम और शिष्टता की सीमा को नहीं लाँघ गया है। इन कहानियों में एक यह खूबी है कि पात्रों के चरित्रों को हास्य का विषय न बनाकर घटनाएँ इस प्रकार से घटी हैं कि वे स्वयं ही हास्य का कारण बनी हैं। कहानियाँ कल्पना के जंजाल में नहीं फँसी हैं इसलिए स्वाभाविक मालूम होती हैं। भाषा कहानियों के अनुकूल सरल और मुहावरेदार है।

ऐसी मनोरंजक पुस्तक का आठ आना मू० अधिक जान पड़ता है।

रैन बसेरा : ले० श्री० चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चंद'; प्रकाशक—सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद; मूल्य १) पृष्ट ९३।

चन्द्रप्रकाशजी हिन्दी के जाने पहिचाने कवि हैं। आपका पिछला कविता-संग्रह 'समाधिदीप' हिन्दी-साहित्य में बड़े आदर के साथ देखा गया था। आपकी शैली, आपके विचार, आपकी कल्पनाएँ अपनी ही होती हैं। प्रस्तुत कविता संग्रह उनकी चुनी हुई रचनाओं का, जिनमें पिछले संग्रहों की कुछ सुन्दर कविताएँ भी आ जाती हैं, संग्रह है। कुछ कविताओं को छोड़कर सभी कविताएँ एक ही विचारधारा प्रेम, आशा निराशा और सपनों में गुथी हुई हैं। युवक सुलभ स्नेह और प्यार इन कविताओं में है पर वह संयत और श्लील है न कि कामुकता और अश्लीलता को लिये हुए। जीवन की जटिल

समस्याओं पर भी पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार की रचनाओं में हृदय के वास्तविक उद्गार प्रकट होते हैं।

प्रस्तुत संग्रह में सुन्दर रचनाओं के बीच कुछ कविताएँ बहुत ही हल्की जान पड़ती हैं, जैसे 'जीत होगी', 'तकरार', 'सन्देश', इत्यादि। कहीं कहीं शब्दों का विचित्र प्रयोग कुछ खटकता सा है जैसे 'रंगीन शाम' 'छबि कंकर 'इत्यादि'

हमारी कामना है 'चन्द्र'जी का माधुर्य और उनकी कोमलता उनके कवित्व में सरसता, प्रौढ़ता और उज्ज्वलता पैदा करे। **'बटुक'**

हमारे बालक (मासिक पत्र) सम्पादक और प्रकाशक—श्री रामकृष्ण 'खद्दरजी', १७२०, चूड़ीवालान, दिल्ली। वार्षिक मूल्य १।)

बालकों के लिए यह नया मासिक बाल-मनोविज्ञान के ज्ञाता श्री 'खद्दरजी' ने निकाला है। छपाई-सफाई की दृष्टि से तो यह आकर्षक है ही, दूसरी सामग्री भी उपयोगी है। बालकों के माता-पिता उसको हृदयंगम करके उसके अनुसार अपने बालकों का पालन करें तो उनका बहुत विकास कर सकते हैं। कुछ सामग्री ऐसी भी है जिसमें स्वयं बालक भी रस ले सकते हैं—वह अगर मोटे टाइप में हो तो अधिक उपयोगी साबित होगी। आशा है बालकों के लिए निकलने वाले पत्रों में जल्दी ही यह अपना विशिष्ट स्थान बना लेगा। **'मुकुट'**

आकामी कल : (मासिक-पत्र) वार्षिक मूल्य ४) और एक प्रति का ।-) आना।

यह मासिक पत्र हिन्दी के प्रगतिशील लेखक श्री प्रभागचन्द्र शर्मा के सम्पादन में खण्डवा से हाल ही प्रकाशित होने लगा है। जैसा कि पत्र के नाम से प्रकट है, वह समाज की नयी व्यवस्था का हामी है। उसका दावा है कि वह 'वाद' से मुक्त स्वस्थ बुद्धिवादियों का एक शुद्ध सैद्धान्तिक मोर्चा तैयार करने का व्रत लेकर अवतीर्ण हुआ है। किन्तु उसका झुकाव मार्क्सवाद की ओर ही प्रतीत होता है। वह आर्थिक समता का स्वप्न देखता है। उस पर विदेशी लेखकों की विचार धारा की गहरी छाप है। साथ ही भारत की प्राचीन संस्कृति की ओर भी उसका आकर्षण है। वह कथित प्रगतिशील लेखकों कम्युनिस्टों और रायवादियों से सहमत नहीं कि भारत को बिना किसी शर्त के युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता करनी चाहिए। पत्र में मननीय सामग्री दी जाती है। अच्छा हो यदि उसे भारतीय वेष-भूषण पहिना कर पाठकों के सामने उपस्थित किया जाय। उस दशा में उसे ज्यादा आसानी से समझा जा सकेगा।

विक्रम :(मासिक-पत्र) वार्षिक मूल्य ४) है। और उज्जैन (मालवा) से प्राप्तव्य है।

मध्यभारत के ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायण जी व्यास और हिन्दी के 'आवारा' लेखक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के समन्वय ने विविध विषय विभूषित इस मासिक पत्र को मध्यभारत की प्राचीन नगरी उज्जयिनी से जन्म दिया है। 'उग्र' अटपटे लेखक की ख्याति अर्जन कर चुके हैं, किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि उनकी लेखनी में नवीनता, मौलिकता, ओज और एक विशेष रस-प्रवाह रहता है। 'विक्रम' को देखने से पता चलता है कि समय ने उनके प्रवाह पर संयम का बांध बाँध दिया है। 'विक्रम' की ठोस सामग्री उनकी अध्ययन और परिश्रमशीलता की गवाही देती है। अभी पत्र के दो ही अंक प्रकाशित हुए हैं, किन्तु उसका भविष्य उज्वल प्रतीत होता है। 'बिन्दु-बिन्दु विचार' स्तम्भ में अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मासिक 'माडर्न रिव्यु' के ढंग पर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय, रियासती और साहित्यिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर विस्तार से सम्पादकीय मन्तव्य प्रकट किया जाता है। मध्यभारत के उदीयमान कवि और साहित्यकार स्वर्गीय रमा शंकर शुक्ल 'हृदय' की रचनाओं को 'विक्रम' में प्रमुख स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त भविष्य की चर्चा और अतीत की खोज 'विक्रम' के प्रिय विषय प्रतीत हुए, 'महन्त मूजी राम महाराज स्तम्भ में 'उग्र' की पुरानी रंगीली तबियत के दर्शन होते हैं। 'मंथन' शीर्षक में

अन्य पत्रों की बोधदायक सामग्री संग्रह की जाती है। सम्पादक जी ने 'विक्रम' के द्वितीय अंक में महात्मा गाँधी की 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' की योजना को 'सांस्कृतिक हत्या के बीज-वपन' का कार्य बताया है। उनके इस कथन से शायद ही कोई विवेकी सहमत होगा। किन्तु उन्हें अपनी राय रखने का हक है।

हम सहयोगी का कार्य-क्षेत्र में स्वागत करते हैं। आशा है वह मध्यभारत की सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों का पोषण और लोक रुचि का स्वस्थ पथ-प्रदर्शन करेगा।

मानवधर्म : (मासिक पत्र) वार्षिक मू० ४≡) एक प्रति का मू० ।=) है।

यह मासिक पत्र श्री दीनानाथ भार्गव 'दिनेश' के सम्पादकत्व में लगभग एक वर्ष से दिल्ली से प्रकाशित हो रहा है। पं० दीनानाथजी को दिल्ली का रेडियो सुननेवाले गीता के सुन्दर कथाकार के नाते भली भाँति जाते हैं। 'मानव धर्म' का उद्देश्य है कर्म, भक्ति, ज्ञान और सदाचार का प्रचार एवं धर्म तथा संस्कृति की रक्षा। यह खंडन-मंडन से अपने को दूर रखता है, इसमें लेखों, कविताओं, कहानियों आदि के द्वारा मनुष्य की सुप्त आध्यात्मिक वृत्ति को जगाने का प्रयत्न किया जाता है, गीता की कथा इसकी अपनी विशेषता है। पत्र का झुकाव स्वभावतः हिन्दू धर्म की ओर विशेष है और उसीके सिद्धान्तों का इसमें खासतौर पर प्रतिपादन किया जाता है। अन्य धर्मों की विशेषताओं का भी इसमें समन्वय किया जाया करे तो यह अपने 'मानव धर्म' नाम को अधिक सार्थक कर सकेगा। पत्र की छपाई सफाई सुन्दर है।

आज के सन्तप्त मानव को मानवधर्म की सबसे अधिक आवश्यकता है, आशा है सहयोगी सच्चे मानवधर्म का प्रचार करेगा और उसके आचरण पर विशेष जोर देगा। हम सहयोगी की सफलता चाहते हैं। **—शोभालाल गुप्त**

समालोचनार्थ प्राप्त

जैन साहित्य और इतिहास (सजिल्द) लेखक—श्री नाथूराम प्रेमी। प्रकाशक—श्री हेमचन्द्र मोदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव बम्बई। पृष्ठ संख्या ६१५, मूल्य ३)

जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त (सजिल्द) लेखक—श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु एम० ए०। प्रकाशक—युगान्तर साहित्य मन्दिर, भागलपुर सिटी (विहार)। पृष्ठ संख्या ३३७, मूल्य ३)

बंगला साहित्य की कथा मूल लेखक—श्री डाक्टर सुकुमार सेन, अनुवादक श्री भोलानाथजी शर्मा। प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग। पृष्ठ संख्या १९७, मूल्य १।)

ब्राह्मण गौरव—लेखक—पं० रामकिंकर भगवानवल्लभ पाण्डेय। प्रकाशक—उत्तर भारतीय साहित्य सदन, कनखल (हरिद्वार)। पृष्ठ-संख्या ६१, मूल्य ॥)

विश्ववाणी (सोवियत् संस्कृति अंक) इस अंक के संपादक भूपेन्द्रनाथ दत्त। वार्षिक मू० ६) इस अंक का मूल्य ॥=)

समुद्र पार के मोती—(कहानी संग्रह) ले० कांतिचन्द्र सौनरिक्सा। प्रकाशक—कलकत्ता पुस्तक भंडार, कलकत्ता—मू० १।)

क्या और कैसे ?

नया रूप

अगले अंक से जी० सा० तीसरे वर्ष में कदम रखेगा। पाठक उसमें काफी परिवर्तन पावेंगे। अबसे इसके सक्रिय या प्रधान सम्पादक भाई महावीरप्रसादजी पोद्दार रहेंगे। वह कर्म-जगत् में भी अपनी स्थिति रखखेगा। हिन्दी-संसार भाई पोद्दारजी से अपरिचित नहीं हैं। 'टाम काका की कुटिया' जैसा सरल व रोचक अनुवादं पोद्दारजी ने हिन्दी-जगत को आज से कोई ३० साल पहले भेंट किया था। 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' के वे आदि प्रवर्तक हैं। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के संचालक मण्डल में वे शुरू से ही हैं व उसकी उन्नति में काफी दिलचस्पी लेते हैं। 'जी० सा०' उन्हीं की प्रेरणा से निकला है, और मुझे खुशी है कि अब उसके संपादन की पूरी जिम्मेदारी वह ले रहे हैं। अपने चुनाव व गुण-दोष-परीक्षण के लिए वह प्रसिद्ध ही हैं। वणिक या व्यापारी के यहाँ जन्म लेकर जो ब्राह्मणत्व की ओर बढ़ रहे हैं, साधुता की ओर प्रगतिशील हैं उनमें भाई पोद्दारजी का अच्छा स्थान है। उन्होंने पूज्य काका सा० का सहयोग भी 'जी० सा०' के संपादन में प्राप्त कर लिया है; ऐसी दशा में मुझे विश्वास है कि 'जी० सा०' अपने नये जीवन में अधिक ठोस सेवा करेगा। उसकी रूप-रेखा भाई पोद्दारजी के वक्तव्य से मालूम हो जायगी। मैं उन तमाम लेखक--कवि व समालोचक मित्रों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने जी० सा० की भरसक सहायता की है और इन दो वर्षों में मुझसे उन्हें किसी प्रकार कष्ट पहुँचा हो तो उसके लिए उनसे क्षमा चाहता हूँ। आशा करता हूँ कि वे भाई महावीरप्रसादजी को भी वैसा ही बल्कि उससे भी अधिक सहयोग देते रहेंगे। **ह० उ०**

रूप-रेखा

अगले अंक से जीवन-साहित्य तीसरे वर्ष में प्रवेश कर रहा है। उसकी दो साल की सेवा पाठकों के सामने मौजूद है। 'जीवन-साहित्य' शब्द में जीवन से सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी साहित्य शामिल हो सकता है। पर यदि साहित्य को ही प्रधानता देनी हो तो उसके साथ 'जीवन' यह विशेषण लगभग व्यर्थ हो जाता है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के संचालकों का 'जीवन-साहित्य' में जीवन को प्रधानता देने का खयाल रहा है। उनकी निगाह में जीवन-साहित्य का अर्थ होना चाहिए जीवन के विकास के लिए व्यक्ति और समाज द्वारा चलाई हुई ठोस प्रवृत्तियों के अनुभव, आदेश और उसके प्रचार से सम्बन्धित साहित्य।

वर्तमान काल में जीवन-शुद्धि और जीवन विकास के लिए यदि किसीको अधिक-से-अधिक सर्वांगीण प्रवृत्ति चलाने का श्रेय दिया जा सकता है तो गाँधीजी को ही। सत्य, अहिसा, निर्भयता स्वदेशी, त्याग, बलिदान आदि उत्थान योग्य सद्गुणों पर काफी जोर देने के साथ-साथ खादी, ग्रामोद्योग, हरिजन-सेवा, गोसेवा 'हिन्दुस्तानी'-प्रचार, राष्ट्रीय शिक्षा, बुनियादी तालीम इत्यादि अनेक ठोस प्रवृत्तियाँ उन्होंने जारी की हैं।

इसके साथ की उनकी और भी अनेक प्रवृत्तियाँ हैं जो उतने जोरों के साथ देश के सामने नहीं आई हैं। भारत का बल-वीर्य बढ़ाने और उनका स्वास्थ्य सुधारने के लिए उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के श्रेष्ठतम अंग आहार तथा अन्य अनुसंगिक विषयों पर कम विचार नहीं किया है। भोजन पर तो जिन्दगी भर से वे प्रयोग कर रहे हैं। यह कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं होगी कि इस विषय में वे देश के एक प्रधान अधिकारी पुरुष हैं। गांधीजी की ये सारी प्रवृत्तियां कैसी चल रही हैं उनके कार्यकर्त्ताओं को कैसे-कैसे अनुभव हो रहे हैं और इन सब क्षेत्रों में देश-हित की कितनी गुंजाइश है यह सब देश के सामने रखना अब से जीवन-साहित्य का प्रधान कार्य होगा। जीवन-शुद्धि, जीवन-विकास और जीवन-समृद्धि के

प्रत्यक्ष प्रयत्नों में से पैदा हुआ साहित्य जीवन-साहित्य माना जायगा।

खादी, ग्रामोद्योग, बुनियादी तालीम, इत्यादि विषयों के लिए अलग मासिक पत्र हैं। पर प्राकृतिक-चिकित्सा, गो-सेवा इत्यादि अनेक ऐसी प्रवृत्तियां हैं जिनके लिए कोई निजू मुख-पत्र नहीं है। 'जीवन-साहित्य' की ऐसी सब प्रवृत्तियों का मुखपत्र बनने की महत्वाकाँक्षा है। इसके यह माने नहीं कि जिनके मुख-पत्र हैं उनका जिक्र 'जीवन साहित्य' में नहीं आएगा।

हमें आशा है 'जीवन-साहित्य' के पाठकों को यह परिवर्तन पसन्द होगा। हम उम्मीद करते हैं कि हिन्दुस्तान की जनता का सर्वांगीण विकास चाहनेवाले सब लोग जीवन साहित्य के ग्राहक बनकर दूसरों को भी बनाने में हमारी सहायता करेंगे।

सम्पादक से सम्बन्धित पत्र-व्यवहार संपादक 'जीवन साहित्य' गोरखपुर (यू० पी०) के पते से करना चाहिए। प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र-व्यवहार पूर्ववत् मैनेजर 'जीवन साहित्य' नई दिल्ली से।

महावीरप्रसाद पोद्दार

दुःखद विवाद

पिछले अंक में 'पाकिस्तान का भूत' लिखने के बाद गाँधीजी ने अपने व श्री कृपलानी ने कांग्रेस के पाकिस्तान-सम्बन्धी विचारों को बहुत साफ तौर पर देश के सामने रख दिया है। गांधीजी सारी जाति-विशेष को स्वयं निर्णय का अधिकार देने के लिए तैयार हैं व कांग्रेस ने प्रान्त विशेष को स्वयं निर्णय का अधिकार अपने प्रस्ताव द्वारा दे दिया है। जहां कि राजाजी मुस्लिम लीग को ही यह अधिकार देदेना चाहते हैं। दूसरा फर्क यह कि राजाजी अंग्रेजी सत्ता के रहते ही यह अधिकार देदेना चाहते हैं, तहाँ गांधीजी यह मानते हैं कि तीसरी सत्ता या शक्ति के रहते हुए सच्ची एकता असम्भव है। इन मतभेदों को लेकर देश में काफी विवाद बढ़ रहा है, जो विचार-स्पष्टता की दृष्टि से ठीक समझा जाय तो भी राष्ट्रीय एकता व कांग्रेस की एक सूत्रता की दृष्टि से हानिकर साबित हो रहा है। ऐसी दशा में गांधीजी ने इस विवाद से अपने को बचाकर उचित ही दिशा दिखाई है। यह तो मानना ही होगा कि राजाजी ने इस तथा मदरास को स्वतन्त्र रूप से सरकार बनाने के सवाल को जिस समय व जिस तरीके से एक साथ उठाया है उससे गलत-फहमी बढ़ी है। अब कार्यसमिति की आगामी बैठक में कुछ ऐसा उपाय होना चाहिए जिससे यह विवाद शान्त हो जाय। गांधीजी के नये आन्दोलन की योजना में तो इस विवाद को शमन करने की काफी शक्ति क्यों न होनी चाहिये?

काका सा० का खुलासा

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की नीति-रीति स्पष्ट करते हुए पूज्य काका सा० ने जून के सर्वोदय में एक लेख दिया है—'राष्ट्र-भाषा के बारे में हमारी भूमिका।' उसे पढ़ लेने के बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन व हिन्दुस्तानी प्रचार सभा में खाई पड़जाने की जो आशंका इधर-उधर देखी जाती है उसका कोई कारण नहीं रह जाता। इस लेख में काका सा० लिखते हैं— "अब हम अपनी नई संस्था द्वारा हिन्दी व उर्दू दोनों—लिपियों व शैलियों—का प्रचार करेंगे, दोनों की एक साथ परीक्षा लेंगे, दोनों का साहित्य प्रकाशित करेंगे ×××। उत्साह के साथ उर्दू का अध्ययन और प्रचार करने के कारण हिन्दी को हम छोड़नेवाले नहीं हैं। अब सम्मेलन में जाकर राष्ट्रभाषा के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द के भी व्यवहार करने का आग्रह हमें नहीं करना है। सम्मेलन के लिए तो अब सिर्फ हिन्दी व नागरी ही रहती है। सम्मेलन की ओर से जो कोई काम करेंगे वे इस मर्यादा के अन्दर रहकर ही करेंगे। ××× हम आशा करते हैं कि उर्दू के स्वीकार और प्रचार के कारण हमारा हिन्दी का प्रचार ज्यादा आसान होगा। और

उर्दू वाले भी देख लेंगे कि उर्दू को हिन्दी के साथ-साथ रखने से उर्दू की मुखालिफत देश में कितनी कम होजायगी। × × ×

"सम्मेलन का हम पर इतना विश्वास है कि अगर हम राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा दोनों में रहें तो सम्मेलन का कोई हर्ज नहीं है। यह विश्वास गान्धीजी की हिन्दी-सेवा और सर्व समन्वयकारी वृति के कारण और श्री टण्डनजी जैसे सम्मेलन के अनन्य सेवकों की राष्ट्रीयता के कारण ही पैदा हुआ है।"

सहानुभूति के योग्य

राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन का प्रश्न अभी खटाई में ही पड़ा हुआ है। जोधपुर के मित्रों के अपनी असमर्थता प्रकट करने पर तुरन्त ही दूसरी जगह अधिवेशन की तैयारी होनी चाहिए थी। और उदयपुर वाली स्थायी समिति के निर्णय की लोग इस दृष्टि से उत्सुकता-पूर्वक राह देख रहे थे। किन्तु वहां जो निर्णय हुआ उससे अधिवेशन और दूर जा पड़ा। इस निर्णय के अनुसार पहले एक विशेष अधिवेशन में सम्मेलन का विधान पास किया जायगा व फिर उसके अनुसार सभापति का निर्वाचन व स्थान-निर्णय होगा। सभापति के प्रश्न को लेकर जो चख-चख चली उसके मूल में कुछ वैधानिक आपत्तियाँ भी थीं– इस निर्णय से वे दूर होजायेंगी, किन्तु कुछ हल्कों में यह प्रश्न उठ रहा है कि अब तक जो सभापति निर्वाचित माने गये उनकी क्या स्थिति होगी? मुझसे पूछा गया है कि अजमेर का निर्णय वैधानिक था तो फिर क्या उसकी हत्या इस तरह करना ठीक था? मेरी अपनी राय तो यही थी कि सभापति के प्रश्न को फिर से खोलने में कठिनाइयाँ व उलझनें बढेंगी व अधिवेशन चक्कर में पड़ जायगा; किन्तु उदयपुर में उपस्थित स्थायी समति के जिम्मेदार सदस्यों ने जब एक मत से एक फैसला कर दिया है तो वह किसीको कितना ही अप्रिय व कटु लगे व उससे कुछ कठिनाइयाँ भी बढ़ने की संभावना हो तो भी उसका पालन करना ही हम सबका कर्त्तव्य है। श्री मुनिजी के निर्णय के प्रति विरोधी भावना रखकर जोधपुर के मित्रों ने अच्छी मिसाल नहीं पेश की है। किसी भी दिशा व हल्के से ऐसी भूल फिर न होनी चाहिए। कोई भी सार्वजनिक संस्था एक दिन नहीं चल सकती यदि उसके निर्णयों को उसके सदस्य ही स्वीकार न करें या उनके पालन में ढिलाई या लापरवाही की जाय। जहांतक पं० रामनिवासजी शर्मा का संबन्ध है, मैं समझता हूँ, यदि वे चाहें तो उन्हें फिर से सभापति के लिए चुनाव में खड़े होने का अधिकार है और यदि वे अब की नए विधान के अनुसार चुनाव में आगये तो किसी को किसी तरह आपत्ति करने की गुंजायश न रहेगी। एक बार सभापति निर्वाचित होने की घोषणा होने के बाद फिर बिना किसी निश्चित कुसूर किसी का ऐसी स्थिति में पड़ जाना, जिसमें पंडित रामनिवासजी पड़ गये हैं, अवश्य ही खेदजनक है। और इस दृष्टि से मेरी उनके प्रति पूरी सहानुभूति है; परन्तु अब किसी विषय के विवाद को न बढ़ाकर स्थायी समिति के निर्णय को वफादारी के साथ मानते हुए आगे की कार्रवाई में लग जाना ही मेरी राय में सम्मेलन के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

ह० उ०

'विक्रम द्विसहस्राब्दि महोत्सव' की रूप-रेखा

विक्रम द्वि-सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन करनेवाली उज्जैन की 'इतिहास संशोधन सभा' की ओर से श्री सूर्यनारायण व्यास ने निम्न लिखित रूपरेखा प्रकाशित है। इस महोत्सव के सर्व-व्यापी महत्व-पूर्ण कार्य-क्रम पर हम सभी संस्थाओं, राज्यों और देश के प्रमुख पुरुषों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

"अब यह समय शीघ्र ही निकट आ रहा है जब कि विक्रम संवत् के दो हजार वर्ष पूर्ण होंगे। (सं० २००० कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को) स्थानीय इतिहासानुसंधान समिति यत्नशील है कि विश्व विख्यात विक्रमादित्य की साम्राज्य-धानी का गौरव प्राप्त करनेवाली उज्जैन नगरी में द्विसहस्राब्दि महोत्सव बृहद् समारोह के साथ सम्पन्न किया जाय।

द्विसहस्राब्दि मनाने में हमारा हेतु 'विभूति-पूजन' होते हुए भी इस युग में जब कि विभिन्न संस्कृतियों का परस्पर संघर्ष हो रहा है, 'न्यू ऑर्डर' (नव-विधान) की पुकार मच रही है, यह आवश्यक है कि एक 'आर्य-संस्कृति', जो हमारी पैतृक है, सुरक्षित रखने का कर्तव्य करें। उत्सव मनाने में यही हमारा मुख्य ध्येय है।

इस समय के लिए संशोधन सभा ने जिन प्रयोगात्मक कार्यक्रम की संक्षिप्त रूप-रेखा निश्चित की है वह इस प्रकार हैं:—

(१) विक्रम विद्यालय की स्थापना जिसमें राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षण देकर आर्य संस्कृति का गौरव प्रस्थापित करना।

यह विश्व विद्यालय अवन्तिका (उज्जैन) ही में हो, क्योंकि उज्जैन भारत का पुराकाल से संस्कृति-केन्द्र रहा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी नगरी में अध्ययन कर इसका गौरव बढ़ाया है, प्राचीन-विद्या-कला-वैभव का यह पवित्र केन्द्र-स्थानीय भू-भाग है। प्राकृतिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक परम्परा के कारण भी विश्वविद्यालय के लिए यही महत्व का स्थान है।

(२) इसी प्रकार एक 'विक्रम प्राच्य साहित्य संस्था' (विक्रम ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट) की स्थापना की जाय, जिसमें एक—

(अ) संग्रहालय (म्यूझियम) हो, जो इस प्रांत के सभी ऐतिहासिक साधन-सामग्री को सुरक्षित रख सकें। इसीके अंतर्गत—

(ब) ज्योतिर्विद्या के संशोधन, ग्रहगति जानने आदि का कार्य होता रहे।

(स) एक प्राचीन ग्रंथ-पत्री का संग्रहालय हो, जिसमें पुरातन साहित्य का संशोधन हो, प्रकाशन हो, और इस संस्था से एक संशोधक त्रैमासिक का प्रकाशन भी होता रहे।

(ड) इतिहास संशोधन समिति का कार्य इसीमें हो, जिसमें कालिदास तथा विक्रम के समस्त साहित्य का संग्रह और उनका अनुसंधान होता रहे। भूगर्भ शोधन और उसका 'रिसर्च' कार्य भी इसके द्वारा सम्पन्न हो।

(ई) आधुनिक संस्कृत का एक ऐसा विशाल पुस्तकालय स्थापित हो, जिसमें जगत् के प्राचीन साहित्य का अपने ढँग का एक ही सुन्दर-संग्रह हो!

इनके लिए एक विशाल नवीन स्थापत्य कला के सर्वथा अनुरुप भवन हो, और इन संस्थाओं का उसमें समावेश रहे।

(१) इस कार्यक्रम के अतिरिक्त एक 'विक्रम-विजय' स्तम्भ की स्थापना की जाय, जो कि महान् विक्रमादित्य के दो सहस्र वर्ष की (विजय महोत्सव) स्मृति में हो। यह स्तम्भ अवन्तिका के प्राचीन ऐतिहासिक भूभाग पर हो, इसके स्वरूप का निर्णय एक विद्वत्समिति करेगी।

(२) इसी प्रकार इस समय विशेष रूप से एक ग्रंथ का प्रकाशन हो, जिसका नाम 'विक्रम सहस्राब्दि अभिनंदन ग्रंथ, रहे। इस ग्रंथ में विक्रम, और विक्रम कालीन कला, साहित्य आदि पर इन दो हजार वर्ष में हुए, क्रम विकास पर अधिकारी विद्वानों के सहयोग से प्रकाश डाला जावे। यह एक प्रकार से सुन्दर स्मारक-संग्रह के रूप में कला का उत्कृष्ट नमूना बनाया जावेगा।

जिस समय यह उत्सव मनाया जावे उस समय वह उत्सव स्थल प्राचीन उज्जयिनी के रूप में (अस्थाई रूप में) प्रदर्शित हो, जिसके निर्माण में विक्रम कालीन कला, और शैली का अनुसरण किया जावेगा। विक्रम कालीन कला और वस्तुओं का तत्संबंधी, साहित्य का विशाल प्रदर्शन होगा (प्राचीन अवंतीका एक चित्र ही प्रत्यक्ष नेत्र के सम्मुख आ जावें इस प्रकार उत्सव की योजना की जावेगी) उस समय

विक्रम-कालीदास की नवरत्न-सभा इनके साहित्य पर विद्वानों के भाषण, अनुसंधानात्मक निबंध-चर्चा, अभिनय, कला-कौशल उस काल के काव्य साहित्य का प्रवचन, पराक्रम प्रदर्शक खेल, बालक बालिकाओं तथा सैनिक प्रदर्शन, वीर पूजा के आयोजन आदि गंभीर एवं रोचक कार्यक्रम रहेंगे।

उत्सव सभागृह (पंडाल) दो हजार वर्ष पूर्व की कला का स्मारक स्वरूप बनाया जाकर उसके चतुर्दिक में दीपक-स्तम्भ निर्माण किये जाएंगे, जो पंडाल ही नहीं समस्त नगर को प्रकाश से स्नान कराते रहेंगे। भारत से लेकर सभी देशों के विशिष्ट पुरुषों को इस समय आमंत्रित किया जायगा और महान् आयोजन के स्वरूप में यह महोत्सव सम्पादित होगा। देश-विदेश की सभी प्रकार की संस्था और राज्यों को अपने प्रतिनिधि द्वारा—विक्रमादित्य की स्मृति में श्रद्धांजलि सर्मपित करने को आमंत्रित किया जायेगा। इस महोत्सव के सभी आयोजनों में विक्रम की राजधानी उज्जैन के राज्याधिकारी होने का कारण श्रीमन्त महाराज गवलियर के सम्पूर्ण सहयोग की पूर्ण आशा है। उनका नेतृत्व इस सार्वदेशीय महोत्सव की सफलता का कारण बन सकेगा इसमें संदेह नहीं।

ऊपर कथित महत्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना द्वारा उज्जैन का अतीत गौरव महाराजा के शुभोद्योग से बढ़े यह हमारी कामना है।"

'हिन्दी सेवी संसार'

श्री कालिदास कपूर एम. ए. एल. टी. और श्री प्रेमनारायणजी टण्डन एम. ए. सा० र० की ओर से 'हिन्दी सेवी संसार' नामक ग्रंथ तैयार करने तथा प्रकाशित करनेकी जो सूचना नीचे छपी है उस ओर हम प्रत्येक हिन्दी हितैषी भाई का ध्यान दिलाना चाहते हैं। हमारी राय में हिन्दी में ऐसे ग्रंथ की बहुत जरूरत है जो इन बातों की जानकारी हिन्दी पाठकों को देसकें। हम इस प्रयत्न की पूर्ण सफलता चाहते हैं और हिन्दी संसार से अनुरोध करते हैं कि इस ग्रंथ के तैयार करने में श्री. कपूरजी और श्री. टंडन जी को सब प्रकार की सहायता प्रदान करें।

"हिंदी में एक ऐसा ग्रंथ हम प्रकाशित करना चाहते हैं जिसमें समस्त भारत में फैले हुए उसके सच्चे सेवकों, प्रमुख लेखकों-लेखिकाओं, प्रकाशकों, पुरस्कारदाताओं—प्रसिद्ध संस्थाओं और उच्चकोटि के पत्र-पत्रिकाओं का संक्षिप्त परिचय हो। इस ग्रंथ द्वारा सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि हिंदी सेवा के अत्यंत पुनीत और महत्वपूर्ण कार्य में योग देनेवाले सभी महानुभाव परस्पर आत्मीयता का अनुभव कर सकेंगे; उन्हें अपनी सम्मिलित शक्ति का ज्ञान होगा और पारस्परिक सहायता अथवा सहयोग में भी सुविधा मिलेगी। साथ ही अन्य-भाषा-भाषियों को भी हिंदी-संसार का पूरा परिचय मिल सकेगा।

"हिंदी सेवियों से निवेदन है कि अपने-अपने वर्ग की नीचे लिखी बातों के आधार पर वे अपना परिचय शीघ्र से शीघ्र हमारे पास भेजने की कृपा करें।

(क) लेखक-लेखिका—पूरा नाम (उप-नाम और उपाधि-सहित) जन्म-काल, शिक्षा, सार्वजनिक कार्य, ग्रंथ (प्रकाशन-क्रम और काल-सहित) प्रिय विषय, पूरा पता।

(ख) प्रकाशक—प्रकाशन-आरंभ-काल, संगठन और उद्देश्य, प्रकाशित ग्रंथों की विशेषता और संख्या, पूरा पता।

(ग) संस्था—(i) गैर सरकारी—स्थापना काल, उद्देश्य, सदस्यता के नियम, सदस्य-संख्या, सेवा का संक्षिप्त विवरण संस्था की आवश्यकता, पूरा पता।

(ii) सरकारी—उद्देश्य नियम, सदस्यों के नाम (पते सहित) संस्था का पता।

(घ) पत्र-पत्रिका—उद्देश्य और नीति, प्रकाशन का इतिहास, संपादक भूतपूर्व और वर्तमान (काल-सहित) आर्थिक स्थिति, वार्षिक चंदा, पूरा पता।

(ङ) पुरस्कार—नाम और परिचय, उद्देश्य

नियम, अबतक के विजेता, पूरा पता ।

"यथोचित सामग्री के इकट्ठा होते ही ग्रंथ के प्रकाशन की सूचना दी जायगी ।

"पत्र व्यवहार का पता—**श्री प्रेमनारायण टण्डन एम. ए., सा० र० विद्या मन्दिर, रानीकटरा, लखनऊ ।**"

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की अर्द्ध शताब्दि

नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने अपने विगत ५० वर्षों के जीवनकाल में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की जो ठोस सेवा की है वह हिन्दी जगत को अविदित नहीं है । सौभाग्यवश सभा की आयु के ५० वर्ष विक्रमीय संवत् २००० के साथ ही पूरे हो रहे हैं । इसलिए सभा ने अपनी अर्धशताब्दि और महाराज विक्रम की द्विसहस्राब्दि एक साथ ही मनाने का निश्चय किया है । इस अवसर के लिए सभा के प्रधान मंत्री बाबू रामचन्द्र वर्मा ने एक योजना भेजी है। जो नीचे दी जा रही है। इस ओर हम हिन्दी प्रेमी भाइयों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। और उनसे अनुरोध करते हैं कि जितना अधिक से अधिक सहयोग इस कार्य के लिए सभा को दिया जाय अवश्य दें ।

"इस अवसर पर सभा कई कार्य विशेष रूप से कर रही है। हिन्दी साहित्य और भाषा की उन्नति एवं प्रचार के हेतु कई नवीन महत्वपूर्ण योजनाओं की व्यवस्था की गई है ।

१. सभा की ओर से एक विस्तृत रिपोर्ट इस अवसर पर प्रकाशित की जायगी जो चार जिल्दों में होगी। पहली जिल्द में आवश्यक परिशिष्टों सहित सभा का ५० वर्षों का कार्यविवरण रहेगा । दूसरी, तीसरी और चौथी जिल्द में क्रमशः हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पुस्तकालय की सूची और कला भवन की पूरी सूची रहेगी ।

२. हिन्दी-साहित्य के गत ५० वर्षों का इतिहास भी प्रकाशित किया जायेगा । उसमें प्रत्येक प्रांत की हिन्दी की प्रगति का इतिहास रहेगा। यह इतिहास अधिकारी विद्वानों द्वारा ही तैयार कराया जा रहा है और हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक अंग पर इसमें प्रकाश डालने का प्रयत्न हो रहा है।

३. हिन्दी के कवियों और लेखकों का विवरण भी उनकी कृतियों के संक्षिप्त परिचय सहित तैयार किया जा रहा है, उसमें यथासंभव चित्र भी रहेंगे ।

४. हिन्दी-साहित्य के इतिहास के साथ-साथ प्रांतीय भाषाओं का गत ५० वर्षों का संक्षिप्त इतिहास भी तैयार किया जा रहा है ।

हिंन्दी तथा भारत की अन्य प्रांतीय भाषाओं में जिसमें उर्दू भी सम्मिलित है, अथवा संस्थाओं के द्वारा जो विभिन्न शब्दावलियाँ बनाई गई हैं उनका एक संग्रह तैयार हो रहा है । यह पारिभाषिक शब्दकोश अर्द्धशताब्दी के अवसर पर विभिन्न प्रान्तों से आमंत्रित विद्वानों की परिषद् में निर्णयार्थ उपस्थित किया जायगा ।

६. महाराज विक्रम की द्विसहस्राब्दि के अवसर पर सभा ने इस विषय के दो महत्वपूर्ण कार्य करने का निश्चय किया है । एक तो ऐतिहासिक और दूसरा ज्योतिष-सम्बन्धी । महाराज विक्रम के काल-निर्णय के लिए तथा भारतीय काल-गणना के सिद्धांतों में एकता स्थापित करने के लिए विद्वानों की सभा भी की जायगी ।

(क) हमारे देश और हमारी जाति में विक्रम संवत् का जो महत्व है उसे ध्यान में रखते हुए उसके मूल और वास्तविक इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले जितने लेख और निबन्ध आदि अबतक प्रकाशित हुए हैं उनका समन्वय करके, उनका निष्कर्ष प्रकाशित किया जायगा, और इस विषय के निर्णयार्थ इतिहासों की नई स्थापनाओं को भी एकत्रित करके प्रकाशित किया जायगा ।

(ख), प्रचलित पंचांगों की तिथियों और दृश्य गणित की तिथियों में कभी-कभी अंतर पड़ जाता है और पुराने ज्योतिष ग्रंथों में ग्रहों की गतिविधि के संबंध में दिये गये अंकों के अनुसार ग्रहों के जो स्थान आते हैं वे उन स्थानों से

भिन्न होते हैं जहाँ पर ग्रह सचमुच होते हैं। इस प्रकार के अंतरों को दूर करने अर्थात् काल-गणना के सिद्धांतों तथा वस्तु-स्थिति में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया जायगा। इसके लिए विद्वानों की जो सभा द्विसहस्राब्दी के अवसर पर होगी उसका निर्णय प्रमाण-सहित प्रकाशित किया जायगा।

उक्त विवरण पर से हिन्दी प्रेमी विद्वान् स्वयं यह निश्चय करें कि वे अपने लिये कौन-सा कार्य चुनते हैं और तद्विषयक क्या सहयोग वे सभा को दे सकते हैं। अपने इस निश्चय की सूचना सभा के अर्द्धशताब्दी विभाग को भी देने की कृपा करें और जो भी सहयोग दें उसे तुरन्त कार्यान्वित करना आरम्भ कर दें, क्योंकि समय थोड़ा है और कार्य महान् है।"

मा०

'जीवन-साहित्य' का बजाज-स्मृति-अङ्क

सम्पादक

हरिभाऊ उपाध्याय

इसमें स्वर्गीय जमनालालजी बजाज के जीवन और उनके कार्य तथा उनकी सेवाओं के बारे में महात्मा गांधी, राजेन्द्र बाबू, च० राजगोपालाचार्य, राजकुमारी अमृतकौर, महादेव देसाई, काका कालेलकर घनश्यामदास बिड़ला, किशोरलाल घ० मश्रुवाला, श्रीकृष्णदास जाजू, कन्हैयालाल मुन्शी, रामेश्वरी नेहरू, बृजलाल बियाणी आदि देशके महापुरुषों, नेताओं और सेवकों की श्रद्धांजलियाँ, संस्मरण और कथायें हैं। संक्षेप में यह श्री जमनालालजी की जीवनी की एक 'झलक' है।

इसकी एक प्रति आपके घर में आपके मार्गदर्शन का काम देगी—

एक प्रति का मूल्य ।।)

—आवश्यक सूचना—

'जीवन साहित्य' का चन्दा समाप्त होगया : अगले वर्ष के लिए शीघ्र भेजिए

जिन सज्जनों का निम्नलिखित ग्राहक नंबर है उनका वार्षिक चन्दा इस अङ्क में समाप्त होगया है। **वे कृपा करके जुलाई के महीने में ही**

१. एक रुपया प्रधान कार्यालय में मनिआर्डर से भेजदें, या

२. खादी भंडार में या हमारी शाखाओं तथा एजेण्टों के यहाँ जमा करादें। और हमें तुरन्त ही सूचना दें।

३. अगर जुलाई में आपने १) जमा नहीं कराया तो फिर आगे १।) चन्दा ही लिया जायगा। आशा है इस ओर आप अवश्य और शीघ्र ध्यान देकर कार्रवाई करने की कृपा करेंगे—

अप्रैल-मई में

९६७ से ९७८, ९८० से ९८२, ९८४ से ९९०, ९९२, ९९६, ९९८ से १००५, १००७ से १०१४, १०१७ से १०३८, १०४१ से १०४७, १०५१ से १०७८, १०८०, १०८३, १०८८ १०९०, १०९२, १०९३ १०९५ से ११२४, ११३४ से ११३६, ११३८ से ११५३, ११५६से ११५७

जून में

११२१, ११३०, ११३३, ११५५, ११५८, ११६०, ११६१, ११६२, ११६४, ११६५, ११६९, ११७०, ११७१, ११७२ से ११८१, २२१९ से १९२२, १२२८, १२६८, १२६९, १२७४।

जुलाई में

१ से ४, ८, ९, ११, से १४, २२, २३, २६, ३०, ३५, ३९, ४१, ४२, ४४, ४६, ४८, ५१, ५३, ५९ से ६१, ६३, ६४, ६५, ६७ से ७३, ७७, ७८, ८०, ८१, ८४, ८८, ९०, ९२ से ९४, ९८, १०१ से १०५, १०८, ११२, ११७, ११९, १२७, १२९, १५०, १५१, १५३, १५४, १५६ से १५९, १६१, १६२, १६५, १६७, १७०, १७१ से १७३, १८१, १८३, १८६, २०१, २०३, २०६ से २१२, २१४, २१९ से २२१, २२४ से २२८, २३२, २३४, २३७, २४१, २४२, २४६, २५४, २५८, २६१, २६३, २७५, २७६, २७८, २८० से २८२, २८५, २८७, २९४, २९६, २९७, ३००, ३०२ से ३०४, ३१०, ३११, ३१६, ३२०, ३२८, ३३०, ३३४, ३३५, २३७, ३३८, ३४०, ३४६, ३४७, ३५०, ३५८, ३६२, ३७१, ३७५, ३७६, ३८४, ३८६, ३८७, ३९३, ३९५, ४०२, ४०९ से ४११, ४१६, ४२१, ४२६, ४२८, ४३४ से ४३९, ४४१, ४४९, ४५३, ४५८, ४६०, ४६४, ४७०, ४७४, ४७६, ४८३, से ४८५, ४८७, ४८८, ४९१, ४९३, ४९९, ५००, ५०४, ५१०, ५२७, ५२९ से ५३१, ५३३ ५३६ से ५३८, ५४७, ५४८, ५५१, ५५२, ५५५, ५५६, ५६५, ५६७, ५६८, ५७७, ५८७, ५८८, ५९८, ६०१, ६१५, ६२०, ६२३ से ६२५, ६३८, ६४०, ६४२, ६४३, ६५०, ६५५, ६५८, ६६२, ६७९, ६८२, ६८५, ६८९, ६९३, ७१२, ७१४, ७१६, ७१८, ७२०, ७२८, ७२९, ७३२, ७३५, ७४०, ७४६, ७५९, ७६०, ७६७, ७७७, ७८३, ७९१, ८०३, ८२२, ८४४, ८४५, ८५५, ११५४, ११६३, १२६५ से १२६७, १२७३, १२७५, १२७६, १२७७, १२७९ से १२८३, १२८५, १३१० से १३१४, १३१६, से १३५४, १३७५, १३७७ से १३८८, १३९३, से १३९६, १४०१ से १४०५, १४०८, १४१४, १४१९, १४२०, १४२४, १४२७, से १४२९, १४३१, १४५१, १४७६ से १४८२, १५१४ से १५१७, १५२४, १५४७, १५७१, १५७७, १६५३, १६५४।

'जीवन साहित्य' तथा 'मंडल' के ग्राहकों से

* विशेष सूचनायें *

ध्यान देकर तुरंत कार्रवाई करने की कृपा करें

१—इस अङ्क से 'जीवन साहित्य' के कई ग्राहकों का चन्दा समाप्त होता है। इस अङ्क में ग्राहक नम्बर की सूची दी गई है। कृपा करके अगले वर्ष का चन्दा इस महीने के अन्त तक अवश्य भेज देने की कृपा करें। जुलाई के बाद 'जी० सा०' का वार्षिक चन्दा सब से १।।) ही लिया जायगा। १) नहीं।

२—आगे से 'जी० सा०' का चन्दा 'मण्डल' के ग्राहकों से भी १।।) ही लिया जायगा और उनको 'मण्डल' की पुस्तकें तीन आना रुपया कमीशन पर 'मंडल' की शाखाओं से मिल सकेंगी तथा खादी भण्डारों से =)रुपया कमीशन पर।

३—इसी अङ्क के शुरू में ही 'मण्डल' की नई पुस्तकों की सूचना दी जा रही है। ये पुस्तकें अपने पास के खादी भण्डार, 'मण्डल' की शाखा या प्रधान कार्यालय से शीघ्र मँगा लेने की कृपा करें। इधर पुस्तकों की माँग अधिक होने तथा कागज की कमी के कारण संस्करण बहुत जल्दी खतम हो जाते हैं इस कारण अपनी पुस्तकें शीघ्र मँगालें।

४—अगले वर्ष से 'जीवन साहित्य' नये रूप रङ्ग और नये विषयों से सज्जित होकर निकलेगा। आगे से पत्र का उद्देश्य पूज्य गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम जैसे गो-सेवा, हरिजन-सेवा, खादी, ग्रामोद्योग आदि तथा प्राकृतिक स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों का ज्ञान कराना तथा इन विषयों पर साहित्य प्रस्तुत करना होगा। अतः आप सब भाई जल्दी से अपना चन्दा भेजकर अगले वर्ष के लिए ग्राहक बन जाने की कृपा करें।

भवदीय—

व्यवस्थापक, 'जीवन साहित्य', सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली

कहानी

जनप्रिय पत्रिका क्यों है ?

क्योंकि इसमें प्रति मास ऐसी कहानियाँ प्रकाशित होती हैं जो ऊँचे और साधारण दोनों कोटि के पाठकों का मनोरंजन करती हैं। हिन्दी के नये और पुराने कलाकारों की कहानियों के साथ ही 'कहानी' में भारतीय तथा विदेशी भाषाओं की उत्कृष्ट कहानियाँ भी रहती हैं। इनके अतिरिक्त 'कहानी' के प्रकाशन में एक उद्देश्य है—

कला और सुरुचि

जिसके कारण आज यह पत्रिका सर्वप्रिय है। इसमें आप आबालवृद्ध सभी के योग्य स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण साहित्य पावेंगे।

इसके साथ ही प्रतिवर्ष एक सुन्दर विशेषांक और भेंट-पुस्तक 'कहानी' की अपनी विशेषता है। एक प्रति मँगा कर देखिये।

वार्षिक ३) : १९३९ का विशेषांक ।)
एक प्रति का चार आना : १९४० का विशेषांक ।=)
१९४१ का विशेषांक आठ आना

व्यवस्थापक, 'कहानी', बनारस कैंट।

दो नये ग्रन्थ

कबीर

लेखक—पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी शास्त्राचार्य

कबीर, उनके साहित्य और उनके दर्शन पर इतनी गहराई के साथ अबतक किसी भी ग्रंथ में विचार नहीं किया गया है। कबीर को समझने के लिए यह ग्रन्थ परम आवश्यक है। इसमें कबीर के वे १०० पद्य भी दिये गये हैं, जिनका अनुवाद स्व० गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अंग्रेजी में किया था। मूल्य ढाई रुपया।

श्रीकान्त (चतुर्थ पर्व)

शरत्साहित्य के २१ भाग तो निकल ही चुके हैं। २२वाँ भाग भी जिसके लिए पाठक बरसों से उत्कण्ठित हो रहे थे, निकल चुका है। मू० बारह आने।

शरत्साहित्य २२भाग, पाटन का प्रभुत्व, सुनीता, परख-स्पर्द्धा

सहित सुलभ साहित्य माला की इन छब्बीस पुस्तकों का मूल्य

बारह-बारह आने कर दिया गया है

पर हमारी प्रकाशित की हुई अन्य सब पुस्तकों की कीमत ज्यों की त्यों रहेगी।

कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

मुग़ल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण—ले० प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति। मू० ४॥)

दो चिड़ियाँ—श्री जैनेन्द्रकुमार। मू० १)

प्रस्तुत प्रश्न—श्री जैनेन्द्रकुमार। मू० २)

सिद्धार्थ (महाकाव्य)—पं० अनूप शर्मा एम० ए०, एल० टी०। मू० ३)

राधा—सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पं० उदयशंकर भट्ट का यह भाव-नाट्य हिन्दी में बिल्कुल नये ढंग की रचना है। मू० दस आने।

कुलीनता—सेठ गोविन्ददासजी का नया ऐतिहासिक नाटक। मू० १)

दो फूल—श्रीमती सत्यवती मलिक की सुन्दर कहानियाँ। मू० १।)

हिन्दी-साहित्य की भूमिका—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी। मूल्य २)

नोट—कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगाइए।

संचालक—

हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई नं० ४

साहित्य सदन, अबोहर

का

सरल, सुबोध और सर्वसुलभ प्रकाशन

सरल स्वास्थ्य-साधन

नियमित तथा संयत आहार-विहार द्वारा समस्त रोगों का अचूक इलाज हो सकता है, इस कथन पर शायद आपको विश्वास न हो। तब एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। एक बार केवल डेढ़ रुपये खर्च कर, दवाइयों पर खर्च होनेवाले सैकड़ों रुपये बचाइये और अपने बहुमूल्य स्वास्थ्य का बीमा करा लीजिये। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक में प्रतिपादित नियमों का पालन करने पर आपको कभी डाक्टर या वैद्य की जरूरत न पड़ेगी। अपने विषय के विशेषज्ञ विद्वान् द्वारा लिखित ३० चित्रों से युक्त २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १।।) है।

शिक्षा में नयी दृष्टि

शिक्षा-संसार में यह पुस्तक अपने ढंग की अकेली है। नवीन मनोविज्ञान तथा नयी शिक्षा के सिद्धान्तों का विशद विवेचन एक सुप्रसिद्ध शास्त्री की कलम से प्रसूत इस पुस्तक में पढ़ें। माँ-बाप, शिक्षक तथा प्रत्येक बाल-हितैषी की यह पथ-प्रदर्शिका है। सिर्फ आठ आने में इसे खरीदकर अपने बच्चों का भविष्य उज्वल बनाइये।

आज का जापान

वर्तमान विश्व-युद्ध में जापान का महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी आंतरिक विशेषताओं तथा दुनिया को चकाचौंध करनेवाली आकस्मिक उन्नति का रहस्य बतानेवाली यह बिलकुल सामयिक पुस्तक है। सचित्र, मूल्य केवल १)

ग्राम-सुधार (नाटक)

ग्रामों में फैली हुई कुरीतियाँ, अन्धविश्वास और अत्याचार-पीड़ित किसानों की दुर्दशा का नग्न चित्र इस पुस्तक में देखिए। मूल्य ।।=) मात्र।

बाल-गीत

भावी राष्ट्र के निर्माता बालकों में स्वातन्त्र्य-प्रेम और निर्भीकता का संचार करनेवाली इस पुस्तिका को अपने बच्चों के हाथ में अवश्य दीजिए। मूल्य केवल ।।)

विश्वधाय

गोपालन के ऊपर एक विशेषज्ञ की लिखी हुई इस अत्यन्त उपयोगी तथा सचित्र पुस्तक का मूल्य ।)

ईसप-नीति निकुंज

महर्षि ईसप की नीति की ६१ शिक्षाप्रद, मनोरंजक कहानियों का सुन्दर पद्यमय अनुवाद। मूल्य ।)

बाल-गोपाल

संयुक्त अक्षरों से रहित सरस कविताओं का एक अनूठा बालोपयोगी संग्रह। मूल्य =)।।

बलिदान (एकांकी नाटक)

भारतीय स्त्री-समाज पर होनेवाले रोमांचकारी अत्याचारों की झाँकी इस नाटक में देखिए। मू० -)।।

रूबी जनरल इंश्योरेंस कं० लि०

हेड आफ़िस—८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

चेयरमैन—श्री ब्रजमोहन बिड़ला

जीवन, अग्नि, मोटर और समुद्र-दुर्घटना के लिए

बीमा-प्रतिष्ठान

सन् १९४० में ३० लाख से भी ऊपर जीवन-बीमे की पालिसियाँ की हैं।

कुल सम्पत्ति का परिमाण २८ लाख के क़रीब है, चुकता मूलधन १४ लाख ४० हज़ार है।

शाखाएँ—

बंबई, मद्रास, कोलम्बो,
नई दिल्ली, कानपुर, रंगून,
लाहौर, पटना इत्यादि

दिवंगत साहित्यकार के प्रति श्रद्धांजलि !

श्री सत्साहित्यिक-सेवक-समाज, उज्जैन का

आदर्श प्रयत्न

हिन्दी के सहृदय कवि स्वर्गीय रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' के परिवार की सहायतार्थ उनके निकट बन्धुओं और स्नेहियों ने अपनी-अपनी कृति समर्पित करने का जो निश्चय किया था उसके अनुसार प्रथम कृति प्रकाशित होगयी है :—

आवारा

पृष्ठ १०८ [अद्भुत सामाजिक नाटक] मूल्य १)

लेखक—**पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'**

आप भी पुस्तक मँगाकर मुक्त आत्मा के प्रति अपना कर्त्तव्य-पालन कीजिए।

मिलने का पता—

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर : वर्धा : कलकत्ता : इलाहाबाद.

साधना-मन्दिर-प्रकाशन

'जीवन-साहित्य' या 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ग्राहकों को

पूरा सैट लेने पर पौने मूल्य में

हिन्दी-साहित्य के अद्वितीय जीवनी-लेखक और शब्द-चित्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, इनमें से अधिकांश के लेखक हैं !

१. जापान के गांधी कागावा (ब. दा. च.)
४. अराजकवादी लुई माईकेल (ब. दा. च.)
५. प्रिंस क्रोपाटकिन (ब. दा. च.)
६. अराजकवादी मैलटेस्टा (ब. दा. च.)
७. मंगलमय महावीर (साधु वास्वानी)
८. बालशिक्षण और माँ-बाप (भानुकुमार)
९. विप्लव-गान या क्रान्ति-गीत (संकलित)
१०. महापंडित राहुल सांकृत्यायन (ब.दा.च.)
११. अमरगान—(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)
१२. श्रीमती हैरियट एलीज़बेथ स्टो(ब.दा.च.)
१३. भगवान बुद्ध (भदंत आनंद कौसल्यायन)
१५. स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (राजबहादुरसिंह)
१६. पुस्तकालय और पुस्तक-महिमा (लक्ष्मण त्रिपाठी)
१७. पतिव्रता जयिनी (ब. दा. च.)

१६वें का दाम)॥ शेष का -) है।

इन्हें मँगाकर पढ़िए और प्रचारित कीजिए।

'मंडल' से तथा उसकी शाखाओं से मँगाइए।

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रतिदिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५६,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखाएँ—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपुर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

देशी राज्यों की वर्तमान अवस्था का चित्र

“प्रजामंडल”

यह श्री श्रीनाथसिंह लिखित सर्वथा नवीन उपन्यास है।

इस उपन्यास की हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी सभी पत्रों ने बड़ी प्रशंसा की है

प्रसिद्ध हिंदी साप्ताहिक 'प्रताप' लिखता है:

प्रजामंडल——लेखक, ठाकुर श्रीनाथसिंह प्रकाशक, दीदी कार्यालय, इलाहाबाद। मूल्य १॥), पृष्ठ संख्या २३८।

इस उपन्यास में देशी राज्यों की वर्तमान अवस्था का चित्र खींचा गया है। बीहड़ राज्य के पुरोहित महेशानन्द की कन्या भुवनमोहिनी पर बीहड़ नरेश आसक्त हो जाते हैं। पूजा के लिए मन्दिर जाते समय उसे राज-कर्मचारी बलपूर्वक ले भागते हैं। सरकस में काम करनेवाली चपला अचानक उस मोटर में कूद पड़ती है, और उसे बचाती है। यह 'ललकार' राज-कर्मचारियों के लिए असह्य हो उठती है। वे भुवनमोहिनी और चपला को प्राप्त करने के लिए सब प्रयत्न करते हैं। इधर ये दोनों लड़कियाँ बाबा बजरंगी के सहयोग से प्रजामंडल-आन्दोलन खड़ा कर देती हैं। एक ओर राज्य का विपुल वैभव है, और दूसरी ओर 'निर्बल के बल राम'। अन्त में आन्दोलन सफल होता है। भुवनमोहिनी को राज्य की शक्तियों से लड़ना पड़ता है। अपने हृदय में भी वह शान्ति नहीं पाती। वहाँ भी संघर्ष है उसके प्रेमी बैरिस्टर मदनगोपाल के लिए। पर अन्त में वह अपने को एक सफल नारी सिद्ध कर देती है। उपन्यास का कथानक आदि से अन्त तक घटना-प्रधान है। घटना-क्रम में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई है। उसकी रोचकता बनाये रखने के लिए लेखक ने किसी कृत्रिम उपाय का अवलम्बन नहीं किया है। तारतम्य सर्वथा स्वाभाविक और क्रमबद्ध है। सिनेमा की तीव्र चपलता के समान हर घड़ी घटना नया और आकर्षक रूप धारण करती है।

चरित्र-चित्रण में लेखक ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। पत्रकारों की भी अच्छी खबर ली गयी है। कवियों की अर्थलोलुपता पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। चरित्रों का विकास स्वयं अवस्था-भेद के अनुसार होने दिया गया है। शिथिलता या अस्वाभाविकता का अभाव है। लेखक ने देशी राज्यों की शासन-संबंधी बुराइयों, नरेशों की अत्यधिक विलास-प्रियता का नंगा चित्र जनता के सामने रखा है। अँधेरे रंगमहल में "टटोल टटोल" का दृश्य किसी भी सभ्य कहलाने वाले के रोंगटे खड़े कर देगा। उपन्यास में मनोवेगजन्य छोटे वार्त्तालापों की कमी है। लेखक ने स्वयं इस काम को निबाहा है। उपन्यास आदि से अन्त तक रोचक और पठनीय है। देशी नरेशों की हालत जानने के लिए तो यह एक अमूल्य पुस्तक है।

मूल्य १॥) 'दीदी' के ग्राहकों से सिर्फ़ १), डाकव्यय।-)। आज ही एक कार्ड लिखिए।

पता——'दीदी' कार्य्यालय, इलाहाबाद

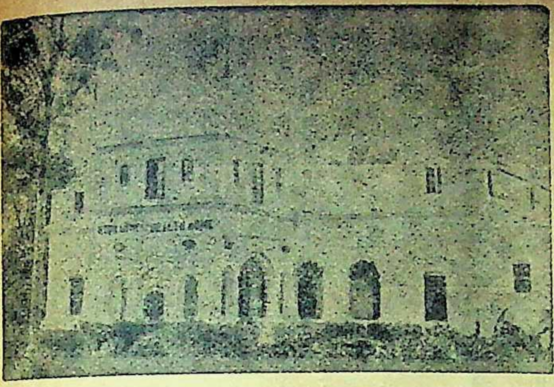

इस

आरोग्य-मंदिर

में

आकर

आरोग्य लाभ कीजिए !

यहाँ आपको प्राकृतिक चिकित्सा के साधन जल, धूप मिट्टी, वायु, आसन, प्राणायाम, मालिश, उपवास युक्त आहार की विधि करायी और बतायी जायेगी। सूर्य-किरण-चिकित्सा, दूध-कल्प, बिजली, जड़ी-बूटियाँ और विचार-शक्ति के प्रयोग से भी आप परिचित होंगे। अपना स्वास्थ्य लौटाने के साथ-साथ अपने कुटुम्बवालों और इष्ट मित्रों को प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगमुक्त और स्वस्थ रहने की सलाह देने लायक हो जायेंगे।

आरोग्य—मन्दिर
की
निजी गोशाला

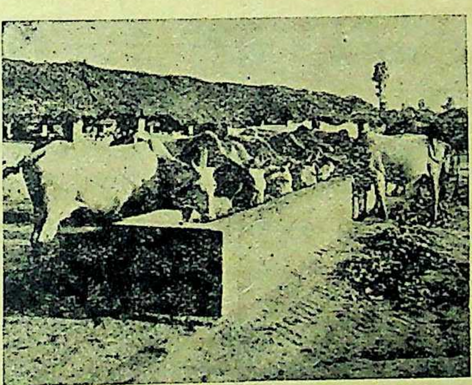

जिससे हृष्ट-पुष्ट
गायों का दूध रोगियों
को
उपलब्ध होता है।

इतना होने पर भी **कम-से-कम ख़र्च** !

विशेष जानकारी के लिए
डाक-टिकिट के साथ आज ही
लिखिए—

विट्ठलदास मोदी,
आरोग्य-मन्दिर,
गोरखपुर

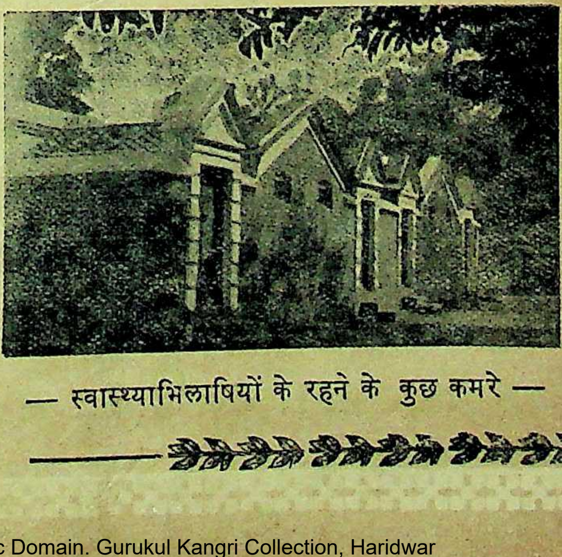

— स्वास्थ्याभिलाषियों के रहने के कुछ कमरे —

नवीन वर्ष से नवीन परिवर्तन में

'जीवन-साहित्य'

[गाँधीजी की रचनात्मक प्रवृत्तियों का मुखपत्र]

सम्पादक

काका कालेलकर
हरिभाऊ उपाध्याय
महावीर प्रसाद पोद्दार

पृष्ठ संख्या ३२ से ४८ : : वार्षिक मूल्य १॥)

एक प्रति का ≡)

✿ श्री काका सा० कालेलकर तथा श्री महाबीरप्रसाद पोद्दार के सहयोग से 'जीवन-साहित्य'—नवीन रूप में आपकी सेवा में उपस्थित हो रहा है।

✿✿ महात्माजी की देशव्यापी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ जैसे खादी, ग्रामोद्योग, गो-सेवा, हरिजन सेवा, बुनियादी तालीम, हिन्दुस्तानी-प्रचार आदि कैसी चल रही हैं, उनके कार्यकर्त्ताओं को कैसे अनुभव हो रहे हैं और इन सब क्षेत्रों में देश-हित की कितनी गुंजाइश है यह सब देश के सामने रखना अब से जी० सा० का प्रधान काम होगा।

✿✿✿ जीवन-शुद्धि, जीवन-विकास और जीवन-समृद्धि के प्रत्यक्ष प्रयत्नों में से पैदा हुआ साहित्य-जीवन साहित्य माना जायगा।

✿✿✿✿ ऐसे 'जीवन-साहित्य' के नये वर्ष से जुलाई में ही ग्राहक बन जाते हैं तो आप से—

केवल १) ही लिया जायगा।
नहीं तो बाद में १॥) देना होगा। अतः
आप शीघ्रातिशीघ्र ग्राहक बनकर देश की रचनात्मक प्रवृत्ति में
अपना हिस्सा अदा कीजिए

KANGRI

व्यवस्थापक

'जीवन-साहित्य', कनाट सर्कस, नयी दिल्ली।

संपादकीय पत्र व्यवहार निम्न पते से करें :

संपादक, 'जीवन-साहित्य', गोरखपुर (यू० पी०)

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली, में छपकर मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित

जीवन साहित्य

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

प्राकृतिक चिकित्सा, गोसेवा, हरिजन-सेवा, खादी आदि
गांधीजी की रचनात्मक प्रवृत्तियों का

प्रमुख-पत्र

अगस्त, १९४८

इस अंक के प्रमुख लेख

शिक्षा क्या है ? [महात्मा गांधी]
प्राकृतिक चिकित्सा का तत्त्व [डॉ. जे. एम. जस्सावाला]
प्राकृतिक चिकित्सा की मर्यादा [श्री घनश्यामदास बिड़ला]
अपने डॉक्टर आप बनिए [श्री. के. लक्ष्मण शर्मा]
मन का शरीर पर प्रभाव [श्री. आनन्दवर्द्धन]
हमारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य [डॉ. एस. सी. दास]
स्वास्थ्य और स्वतन्त्रता [श्री स्वामी शिवानन्द]
नश्तर के बदले सहज घरेलू इलाज [श्री स्वामी भिक्षु]
अनिद्रा का कारण : दूर करने के उपाय [विट्ठलदास मोदी]
मैं प्राकृतिक चिकित्सक कैसे बना [प्रो० भवानीप्रसाद]
हमारा हृदय और उसके रोग [डॉ. के. आर. दिलकश]
विशेषज्ञ चाहिए [श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
डोला-पालकी की समस्या [श्रीमती रामेश्वरी नेहरू]

जीवन-साहित्य

वर्ष ३ : अङ्क १ • • • अगस्त, १९४४

सलाहकार मण्डल
श्री काका कालेकर : श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री महावीरप्रसाद पोद्दार (सम्पादक)

वार्षिक मूल्य १॥) एक प्रति का =)

पत्र व्यवहार का पता

सम्पादकीय
श्री महावीरप्रसाद पोद्दार
गोरखपुर (यू० पी०)

व्यवस्थापकीय
सस्ता साहित्य मण्डल
कनाट सर्कस, नई दिल्ली

विषय सूची

१. शिक्षा क्या है ? (महात्मा गांधी)
२. प्राकृतिक चिकित्सा का तत्त्व—डॉ० जे. एम. जस्सावाला एन. डी. डी., ओ. डी. सी. (इंग्लैण्ड) मेम्बर ऑफ हेल्थ प्रेक्टीशनर्स असोसियेशन (लन्दन)
३. प्राकृतिक चिकित्सा की मर्यादा—श्री घनश्यामदास बिड़ला
४. प्रकृति स्वयं चिकित्सक है—श्री लक्ष्मीनारायणजी, मंत्री-विहार चर्खासंघ
५. अपने डाक्टर आप बनिए—श्री. के. लक्ष्मण शर्मा
६. अनुभव—श्री बालेश्वरप्रसाद सिंह, संपादक 'जीवन सखा' तथा संचालक 'प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह' १
७. मन का शरीर पर प्रभाव—श्री 'आनन्दवर्द्धन' १
८. गोश्त छोड़ रहा हूँ—श्री उम्मन वर्की १
९. हमारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य (एक पत्र)—डॉ० एस. सी. दास, लेट चीफ मेडिकल आफिसर नैपाल गवर्नमैंट १५
१०. स्वास्थ्य और स्वतंत्रता—श्री स्वामी शिवानन्द १६
११. नश्तर के बदले सहज घरेलू इलाज—श्री स्वामी भिक्षु १
१२. अनिद्रा का कारण और उसे दूर करने के उपाय—श्री विट्ठलदास मोदी २०
१३. डायरी का एक पृष्ठ—श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन २२
१४. मैं प्राकृतिक चिकित्सक कैसे बना ?—प्रो० भवानीप्रसाद प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्रोपाध्याय कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय २३
१५. 'यह उतना ही कठिन है जितना कि…'—एक प्राकृतिक चिकित्सक २४
१६. हमारा हृदय और उसके रोग—डा. के. आर. दिलकश, एम. एस. बी. एन. डी. २६
१७. स्वप्नदोष—(एक पत्र) × × × २७
१८. भरत की रामकहानी—श्री भरतदास अग्रवाल २९
१९. विशेषज्ञ चाहिए—श्री हरिभाऊ उपाध्याय ३०
२०. डोला-पालकी समस्या—श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ३१
२१. सम्पादकीय … … … ३४
२२. स्वास्थ्य-प्रश्नोत्तरी … … … ३७

पुस्तकालय
कांगड़ी

पुस्तकें तो आप कोई-न-कोई पढ़ते ही रहते हैं। कभी अध्ययन-मनन के लिए तो कभी ज्ञानोपार्जन के लिए। कभी मन बहलाने के लिए तो कभी समय काटने के लिए। तो भी उनमें आप चुनाव तो करते ही होंगे। पुस्तक प्रेमी होने के कारण आप **सस्ता साहित्य मण्डल** की पुस्तकों से परिचित होंगे ही। आगे के पन्नों में हमने आपकी सुविधा के लिए कुछ चुनाव किया है। आप देखें कि वह आपको कैसा पसन्द पड़ता है ? वह आपकी रुचि के मुताबिक न जंचे तो अन्त के पन्नों में पूरी सूची दी है। आप अपना चुनाव करके हमें लिखिए और कुछ पुस्तकें मंगाइए। 'जीवन साहित्य' का ग्राहक बन जाने या 'मण्डल' का स्थायी ग्राहक बन जाने से पुस्तकों पर उचित कमीशन भी दिया जाता है।

आप दुनिया की राजनीति में दिलचस्पी रखते हैं ?

भारत की तथा दुनिया की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं की चर्चा तथा उनके हल निकालने के प्रयत्नों में

हिस्सा लेना चाहते हैं ? भारत को आज़ाद करने की तमन्ना है ?

तो

पं० जवाहरलाल नेहरू	की	मेरी कहानी	३)
		विश्व इतिहास की 'झलक'	८)
		हिन्दुस्तान की समस्यायें	१)
		लड़खड़ाती दुनिया	।।।≈)
महात्मा गांधी	का	हिन्द स्वराज	≡)
		द० अफ्रीका का सत्याग्रह	१।।)
		युद्ध और अहिंसा	।।।)
श्री राजेन्द्र बाबू	"	रचनात्मक कार्यक्रम	≡)
" किशोरलाल भाई	"	गांधी विचार दोहन	।।।)
" घनश्यामदास बिड़ला	की	डायरी के पन्ने	१।)
" बालूभाई मेहता	"	खादी मीमांसा	१।)
प्रिंस क्रोपाटकिन	का	रोटी का सवाल	१)
श्री महादेव देसाई	"	इंग्लैण्ड में महात्माजी	१।।)
डॉ० पट्टाभि सीतारामैया	"	कांग्रेस का इतिहास	२।।)
" हरिश्चन्द्र गोयल	"	नया शासन विधान	।।।)

तथा युद्ध-संकट और भारत, युरोपीय युद्ध और भारत, सत्याग्रह कब, क्यों और कैसे (गांधीजी), हम कहाँ हैं ? (जवाहरलाल) आदि पुस्तकें आपके दिमाग़ में एक नई विचारधारा पैदा कर देंगी, इनसे आपके विचार सुलझेंगे और आपको एक निश्चय पर पहुंचाने में मदद देंगी—

—अधिक विवरण के लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइए—

आप नवयुवक हैं ? आपको नसों में खून दौड़ रहा है ? आपकी आकांक्षायें महान् हैं ? दुनिया की बीहड़ घाटियों में से आपको रास्ता खोजना है ? तो आइए

महात्मा गांधी	की	आत्म कथा १), अनीति की राह पर ॥≈), ब्रह्मचर्य ॥), सर्वोदय	–)
		सत्यवीर सुकरात	–)
स्वेट् मार्डेन	का	दिव्य जीवन ।≈), आगे बढ़ो	॥)
श्री विनोबा	के	विचार	॥।)
" रामनरेश त्रिपाठी	के	तीस दिन : मालवीयजी के साथ	१॥)
" घनश्यामदास बिड़ला	के	बिखरे विचार	॥।≈)
च० राजगोपालाचार्य	की	दुखी दुनिया	।≈)
श्री वियोगी हरि	की	मेरी हिमाक़त	॥)
प्रिंस क्रोपाटकिन	की	नवयुवकों से दो बातें	–)
म० टाल्स्टॉय	का	क्या करें ?	१।)
"	का	स्त्री और पुरुष	॥)
विक्टर ह्यूगो	की	फांसी !	।≈)
श्री रामनाथ सुमन	का	हमारे राष्ट्र निर्माता	१॥)
" कृष्णचन्द्र विद्यालंकार	का	हमारे अधिकार और कर्तव्य	॥)
" कृष्णदत्त पालीवाल	का	सेवाधर्म और सेवामार्ग	१)
काका कालेकर	का	जीवन-साहित्य	॥≈)

आदि पुस्तकें आपका रास्ता सरल और सुगम करेंगी; आपमें कठिनाइयों को हंसते-हंसते पार करने की शक्ति भरेंगी और आप अपने जीवन में अपने उच्चादर्श को प्राप्त करने में सफल होंगे।

— अधिक विवरण के लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइए —

दुनिया की झंझटों से दूर होकर

कुछ समय

आत्म-चिंतन, आत्म-मनन और अध्ययन में भी लगाइए

महात्मा गांधी	की	आत्म कथा १) सर्वोदय	−)
		मंगल प्रभात −) गीता बोध	=)
		अनासक्तियोग =) ब्रह्मचर्य	।।)
विनोबा	के	विचार	।।।)
वियोगी हरि	द्वारा संपादित	संतवाणी	।।)
		भजनावलि	≡)
		बुद्धवाणी	।।=)
ऋषि तिरुवल्लुवर	का	तामिल वेद	।।।)
श्री बेचरदासजी	द्वारा संपादित	महावीरवाणी	१)
म० टाल्सटाय	का	क्या करें ?	१)
”	की	मुक्ति की कहानी	।।)
खलील जिब्रान	का	जीवन संदेश	।।)
म० एपिक्टेटस	का	आत्मोपदेश	।)
थॉमस केंपिस	”	जीवन सूत्र	।।।)
स्वामी अभयदेव	”	तरंगित हृदय	।।)

आदि पुस्तकें ऐसी हैं कि आप इनका अध्ययन करें तो आंतरिक शान्ति और मानसिक सुख अनुभव करेंगे। दुनिया की झंझटों का असर आपके शरीर और मन पर नहीं होगा। जीवन शुद्ध और पवित्र बनेगा।

— अधिक विवरण जानने के लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइए —

लेकिन अगर आप

रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास रखते हैं—

आप मानते हों कि ग्रामोद्योग, ग्रामसुधार और ग्राम-संगठन से ही

भारत का भला है तो आपको

महात्मा गांधी व राजेन्द्र बाबू	का	रचनात्मक कार्यक्रम	=) ≡)
महात्मा गांधी	की	ग्रामसेवा	=)
श्री जवेरभाई पटेल	द्वारा संकलित	गाँवों का आर्थिक सवाल	≡)
" गुलजारीलाल नन्दा	का	खादी का महत्व	=)
" परमेश्वरीप्रसाद गुप्त	"	पशुओं का इलाज	॥)
		चारा दाना और उसके खिलाने के उपाय	≡)
" बालूभाई मेहता	की	खादी मीमांसा	१॥)
स्व० रामदास गौड़	की	गांवों की कहानी	॥)
		गांवों का सुधार संगठन	१)
काका कालेलकर	का	लोक जीवन	॥)
चौधरी मुख्तारसिंह	का	गांव और किसान	॥)
महात्मा गांधी	का	स्वदेशी और ग्रामोद्योग	॥)
श्री गणेशदत्त शर्मा	की	सफाई	॥)
" बैजनाथ महोदय	का	भारत में व्यसन और व्यभिचार	॥=)
" कृष्णदत्त पालीवाल	का	सेवाधर्म और सेवामार्ग	१)

आदि पुस्तकें पढ़नी चाहिएं। ये आपके कार्य में सहायक होंगी। आपके लिए दिशा सूचक होंगी और इनके अनुसार चलने से अपने कार्य में सफल होंगे।

— अधिक विवरण के लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइए —

बालोपयोगी पुस्तकों का

तो

— खजाना भरा पड़ा है —

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी का

बालसाहित्य

हिन्दी को खास देन है

बाल-कथा कहानी (१७ भागों में)		गुपचुप कहानियां (दो भाग)	।)
प्रत्येक का दाम	।=)	मौत के सुरंग की कहानी	।=)
बताओ तो जानें	।)	भूतों का किला	।=)
बानर संगीत	।)	कहानी के कल-पुर्जे	।)
हंसू की हिम्मत (कविता में कहानी)	।=)	पेखन	।=)
खोजो खोज निकालो	।)	मोतीचूर के लड्डू	।=)
नेता बुझौवल	।)	मोहन माला	॥।)
परियों की कहानियां	।≡)	अशोक	।)
राक्षसों की कहानियां	।=)	चन्द्रगुप्त	।)
जादू की कहानियां	।=)	महात्मा बुद्ध	।)
इतिहास की कहानियां	।)	हरिश्चन्द्र	।)

इनके अलावा 'मण्डल' की पुस्तकों में

आदर्श बालक	॥)	उपनिषदों की कथाएँ	।)
शिवाजी चरित्र	=)	देश-प्रेम की कहानियां	=)
बीरबल की कहानियां	≡)	सीख की कहानियां	=)
रूमी की कहानियां	॥)	व्यावहारिक सभ्यता	॥)
बहिन	॥)	पिता के पुत्र-पुत्री के नाम	॥)

— अवश्य मंगावें, इनके बिना आपका संग्रह अधूरा रहेगा —

माताओं, बहनों व बेटियों के लिए भी यहाँ

पुस्तकें हैं

दुनिया के संग्राम में अपने पुत्रों, भाइयों और पतियों का

हाथ बटाने की प्रेरणा देनेवाली,

पश्चिमी विचारों की बुराइयों से दूर

पर

अच्छाइयां की सुगंध लिये हुए

भारतीय आदर्शों की ओर लेजानेवाली

भारत के स्त्री रत्न	(तीन भाग)	प्रत्येक का १)
कन्या शिक्षा	स्व० चन्द्रशेखर शास्त्री	।)
पिता के पत्र पुत्री के नाम	जवाहरलाल नेहरू	॥)
विश्व इतिहास की झलक	"	८)
प्रेम में भगवान	म० टॉल्स्टॉय	॥।)
स्त्री और पुरुष	"	॥)
अनीति की राह पर	म० गांधी	॥=)
ब्रह्मचर्य	"	॥)
आत्म-कथा	"	१)
बहिन	श्री यशवंत पंड्या	॥)
भाई के पत्र	" रामनाथ सुमन	१॥)

—अधिक विवरण के लिए सूची पत्र मंगाइए—

आप गम्भीर और विचार प्रधान पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते

कुछ ऊब उठें तो इनको हाथ में उठा लीजिए

आपका मनोरंजन भी होगा और शिक्षा तथा ज्ञान तो मिलेगा ही

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य	की	दुखी दुनिया	।=)
काका कालेलकर	की	सप्तसरिता	=)
श्री कन्हैयालाल मुन्शी	की	लोपामुद्रा	१)
पं० जवाहरलाल नेहरू	के	पिता के पुत्र-पुत्री के नाम	।।)
श्री नानाभाई भट्ट	के	महाभारत के पात्र	१)
म० टाल्स्टॉय	का	प्रेम में भगवान	।।।)
प्रो० कन्हैलाल सहल	की	चौबोली	।।)
श्री घनश्यामदास बिड़ला	की	डायरी के पन्ने	१।)
" वशवन्त पंड्या	की	बहिन	।।)
" हरिकृष्ण प्रेमी	का	मंदिर	।।।)
" रामनरेश त्रिपाठी	का	स्वप्न ।।) पथिक	।।)

मिलन ।।) मानसी ।।) जयंत ।।) प्रेम लोक ।।)

पेखन ।=) कविता कौमुदी (भाग १. २. ४. ७) प्रत्येक का ३)

—— अधिक विवरण के लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइए ——

आप विचारक हैं ? तत्वचिंतक हैं ? विचरों और व्यक्तियों को गहरी छान-बीन करते हैं ?

तो आपके लिए

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	द्वारा संपादित	गांधी अभिनंदन-ग्रंथ	२)
श्री घनश्यामदास बिडला	का	बापू	।।=)
डॉ० भगवानदास	का	समन्वय	१।।)
अश्विनीकुमार दत्त	का	कर्मयोग	।=)
प्रिंस क्रोपाटकिन	का	संघर्ष या सहयोग ?	१।।)
म्यूरियल लेस्टर	का	विनाश या इलाज ?	।।।)
श्री किशोरलाल भाई	का	अहिंसा विवेचन	।।)
" रामनाथ सुमन	की	गांधीवाद की रूपरेखा	१।)

आदि पुस्तकें आपके बहुत काम की साबित होंगी।

—अधिक विवरण के लिए बड़ा सूचीपत्र मगाइए—

जीवन-साहित्य

प्राकृतिक चिकित्सा तथा हरिजन-सेवा, गो-सेवा, खादी आदि
गांधीजी की रचनात्मक प्रवृत्तियों का प्रमुख पत्र

३ : अंक १ अगस्त १९४२ नई दिल्ली

शिक्षा क्या है ?

मैंने भूगोल विद्या सीखी, बीजगणित का स्वाद लिया, भूमिति का ज्ञान प्राप्त किया, भूगर्भ विद्या भी घोंटी; पर इन सबका नतीजा ? मैंने इनसे क्या तो अपना भला किया और क्या अपने आसपासवालों का ? मैंने यह सारा ज्ञान क्यों लिया ? मुझे इसमें क्या फ़ायदा हुआ ? एक अंग्रेज विद्वान (हक्सले) ने शिक्षा के सम्बन्ध में कहा है—

"वास्तविक शिक्षा उस मनुष्य ने पाई है जिसका शरीर उसके काबू में रहता है और वह शरीर सौंपे हुए काम को आराम और आसानी से पूरा करता है। सच्ची शिक्षा उसे मिली कहनी चाहिए कि जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शान्त है और न्याय-परायण है। उस मनुष्य ने सच्ची शिक्षा ली है कि जिसका मन प्राकृतिक नियमों से पूर्ण है और इन्द्रियां उसके वश में हैं। जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध है, जो बुरे आचरणों को धिक्कारता है और सबको अपने समान मानता है, ऐसा मनुष्य सही तौर से शिक्षित माना जायगा; क्योंकि वह प्रकृति के नियमों पर चलता है। प्रकृति उसका सुन्दर उपयोग करेगी और वह प्रकृति का सुन्दर उपयोग करेगा।"

जो सच्ची शिक्षा की यह परिभाषा हो तो मुझे कसम खाकर कहना चाहिए कि ऊपर मैंने जिन शास्त्रों का जिक्र किया है वे अपने शरीर या अपनी इन्द्रियों को वश में करने में मेरे किसी काम नहीं आये।

—महात्मा गांधी—

प्राकृतिक चिकित्सा का तत्त्व

डा० जे. एम. जस्सावाला, एन. डी., डी. ओ. डी. सी.(इंग्लैण्ड),
मेम्बर आफ हेल्थ प्रैक्टिशनर्स एसोसियेशन (लंदन)

डाक्टर जस्सावाला भारत के प्रथम युवक हैं जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के अध्ययन के लिए इंग्लैण्ड की यात्रा की है। इस समय आप बम्बई में 'नेचुरल थेरेपी क्लिनिक' नामक आरोग्य-मन्दिर का संचालन कर रहे हैं। आपकी सफल लेखनी द्वारा लिखा गया यह लेख पाठकों को प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के तत्त्व समझकर उसे बुद्धिपूर्वक ग्रहण करने में सहायक होगा।—सं०

> तुम दुःखी हो, पीड़ित हो,
> पर इन दुःखों और पीड़ाओं का कारण ?
> कारण तुम्हीं हो।
> जिन पापों के कारण तुम्हें ये भोग भोगने पड़ रहे हैं,
> उनके लिए न तुम्हें कोई बाध्य कर सकता था
> और न उनसे तुम्हें कोई बचा ही सकता था,
> जीवन और मृत्यु दोनों तुम्हारे हाथ में हैं। ——सिद्धार्थ

प्रकृति के विरुद्ध आचरण का फल

मनुष्य प्रकृत्या पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए बना है। यदि बाह्य कारणों से कभी वह बीमार पड़ भी जाय तो उसकी जीवनी-शक्ति उसे स्वस्थ कर देती है। पशु बीमार पड़ने पर अपनी पशु-बुद्धि से प्रेरित होकर अपनी जीवनी-शक्ति का सहारा लेता है और प्रकृति से उसका सामंजस्य स्थापित कर चंगा होजाता है।

सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ मनुष्य ने जीवन के प्रकृतिदत्त साधनों को भी सभ्यता का जामा पहनाने की कोशिश की, जिसका फल यह हुआ है कि वह रसना के वशीभूत होकर खाद्यों को अधिक-से-अधिक रांध, खटाई-मिठाई, नमक-मिर्च द्वारा अस्वाभाविक, निष्प्राण और दुष्पाच्य बनाकर उन्हें ग्रहण करता है। शरीर की आराम की मांग को वह नहीं सुनता, इसके विपरीत कृत्रिम साधनों द्वारा स्नायुओं को उत्तेजित कर-करके आनन्द की घड़ियों को अधिकाधिक लम्बी बनाने में लगा रहता है। स्वच्छ वायु-सेवन की आवश्यकता की वह उपेक्षा करता है, श्रमसाध्य व्यायाम करने लायक उसका शरीर ही नहीं रहा——ऐसी अस्वाभाविक परिस्थितियों में पड़कर तो अच्छा-से-अच्छा शरीर टूट जासकता है।

जीवन-प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता

आज हमने अपना रहन-सहन जैसा बना लिया है उसमें सच्चे और शुद्ध रूप में जीवन और स्वास्थ्य दोनों ही नहीं प्राप्त किये जासकते। इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के अनुसरण द्वारा इस बिगड़ी बात को बहुत कुछ बनाया जा सकता है। मेरे इस कहने का यह मतलब हर्गिज नहीं है कि स्वस्थ होने के लिए 'प्रकृति की ओर लौटो' के नाम पर हम फिर जंगली होजायं। प्राकृतिक चिकित्सा न तो हूश या जंगली जीवन की पुनरावृत्ति का कार्यक्रम है न——जैसा कि कुछ लोग समझ बैठे हैं ——कुछ लोगों के बहके विचारों एवं धारणाओं का संग्रह है।

वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा एक पूर्ण चिकित्सा-पद्धति है। स्वास्थ्य रोग एवं जीवन के सम्बन्ध में इसका अपना दर्शन है।

जीवन-शक्ति का प्रयास—पूर्ण स्वास्थ्य

प्रत्येक जीव, पशु, पौधे अथवा मनष्य में जीवन है

रहस्यमय 'जीवन' वस्तुतः है क्या चीज, इसका किसी भी पता नहीं है । पर यह तो निश्चित है कि यह वन ही है, जीवनी-शक्ति ही है जो जीव को पूर्ण स्थ बनाने का प्रयास सदा करती रहती है । जीवनी-क्ति के इस प्रयास की स्वीकारोक्ति ही प्राकृतिक कित्सा का पहला सिद्धान्त है । अतः यह स्वयंसिद्ध कि रोग-विनाशक शक्ति अपने अन्दर से मिलती है ।

मनुष्य के शरीर में स्वास्थ्य प्रदान करनेवाली, ग से मुक्ति दिलानेवाली शक्तियां स्वयं सन्निहित हैं । शक्ति को अनुकूल परिस्थिति एवं उपकरण प्रदान ने पर शरीर अपने नव-निर्माण का कार्य आरम्भ र देता है और जिस प्रकार रात्रि के बाद सूर्योदय श्चित है उसी प्रकार स्वास्थ्य का आगमन अवश्यम्भावी । शरीर को अवसर दीजिए वह स्वयं अपने लिए ायन तैयार कर लेगा । बाहर से ठूंसे औषध-द्रव्य का र कभी स्थायी नहीं होसकता ।

स्थ्य-रक्षार्थ प्रकृति का विधान

'प्रकृति स्वयं चिकित्सक है'—यह स्वर्णवाक्य येक व्यक्ति को सदा ध्यान में रखना चाहिए । त्वचा होनेवाले साधारण रोगों का ही उदाहरण लीजिए । ला, ददोरा-मुंहासा, दाद-खाज से लेकर फोड़े-फुंसी, र तक प्रकृति की स्वयं शुद्धि की इच्छा के द्योतक प्रयास के सूचक मात्र ही तो हैं । इन सबका अर्थ यही है न कि शरीर में सन्निहित जीवनी-शक्ति र में इकट्ठे विजातीय, अनावश्यक एवं विषैले र्थ को बाहर निकाल फेंकने का प्रयास कर रही है । -जुकाम, खांसी, आंव आदि के रूप में——जो आज गों के लिए रोज की चीज होरहे हैं——प्रकृति अनि-त सड़े गले एवं शरीर में इकट्ठे कूडे-करकट को, कफ के रूप में शरीर में इकट्ठा हो जाता है, नाक, और मल के रास्ते बाहर निकालती है ।

ये सब नवीन रोग तथा ज्वर, प्रकृति की स्वयं-शुद्धि की चेष्टा हैं——यह सर्वांग सुन्दर सिद्धान्त सहज में लोगों की समझ में आजाता, पर इसके रास्ते में डाक्टरों ने 'कीटाणु रोग के कारण हैं' यह जाल बिछा रखा है । इस अनिष्टकारक एवं अतिरंजित विचार ने लोगों को भौचक बना रखा है और लोग इसकी माया में भरम गये हैं ।

प्रकृति की स्वयं शुद्धि की शक्ति की सहायता—रोग-निवारण

अतः प्राकृतिक चिकित्सा का यह दृढ़ मत है कि हर तरह का शारीरिक कष्ट एवं प्रत्येक रोग का निराकरण एवं निवारण प्रकृति को रास्ता देकर ही किया जासकता है । प्रकृति के स्वयं परिशोधन के कार्य में रुकावट पड़ रही है उसे हटाकर, शरीर की दशा जहांतक बन सके सुधार कर—और इस प्रकार स्वयं शुद्धि और स्वयं निर्माण का कार्य निर्बाध और पूरे तौर से चलने में सहायक होकर ही——रोग को निर्मूल किया जासकता है ।

इससे यह अच्छी तरह समझा जासकता है कि प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ रोग के लक्षणों और स्वयं रोग का निवारण मात्र नहीं है । वरन् उत्तम प्रकार के जीवन का शिक्षण भी है, जिससे फिर तो रोग होंगे ही नहीं ।

इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा को एक व्यावहारिक विज्ञान की भांति ही जानना चाहिए, जो पहले रोगों के मूलभूत कारण का निरूपण करता है और जिसके समुचित उपयोग से पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है । 'सभी रोग एक हैं और उनकी चिकित्सा भी एक है' इस सिद्धान्त के समझ लेने के बाद यह साफ होजाता है कि प्राकृतिक चिकित्सा–शास्त्र कोरी खिलवाड़ की चीज न होकर सिद्धान्तों की दृढ़ चट्टानों पर अवस्थित है ।

(सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित)

* * *

प्राकृतिक चिकित्सा की मर्यादा

श्री घनश्यामदास बिड़ला

मेरे एक डाक्टर मित्र हैं, जिनकी गणना अत्यन्त विशिष्ट डाक्टरों में की जाती है। उनके पास लन्दन की डिग्रियाँ हैं और दीर्घकाल का अनुभव भी। उनकी गणना देश के दिग्गज चिकित्सकों में है। पर रोगी अक्सर उनकी शिकायत करते हैं। कारण, रोगी से भारी भरकम फ़ीस लेने के बावजूद डाक्टर साहब रोगी को न उसके रोग का नाम बताते हैं, न नुस्खा देते हैं। कुछ दिन तो मल-मूत्र, रक्त इत्यादि की जाँच में ज़ाया कर देते हैं। फिर विटामिन की या कोई मामूली गोली-गुटका देकर सन्तोष कर लेते हैं। नतीजा यह होता है कि रोगी डाक्टर साहब की इस चेष्टा को लापरवाही की एक निशानी मानता है। इसलिए उन्हें कभी गाली भी देता है, पर बुलाता भी रहता है। बुलाता रहता है इसलिए कि वह एक विशिष्ट उपचारक माने जाते हैं, बुलाये बिना सन्तोष नहीं होता। गाली देता है इसलिए कि बुलाकर भी सन्तोष नहीं होता।

मैंने अपने इन डाक्टर मित्र से उनके इस दुर्गुण की एक बार चर्चा की, तो उन्होंने मुझे अपना एक अनुभव सुनाया। उनके अस्पताल में मियादी बुखार (टाइफाइड) के दो रोगी थे। एक असाध्य अवस्था में पहुँच चुका था, एक कुछ ठीक था। डाक्टर साहब अस्पताल में जब अपना रोज का चक्कर लगाने गये, तो जिस रोगी की हालत अब-तब होरही थी उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया। डाक्टर ने कहा कि यह दवा की परिधि पार कर चुका है, इसे अब राम नाम की घूंटी पिलाओ। पर जिसकी हालत ठीक थी, उसके लिए दवा बताकर अपना रास्ता लिया। चार दिन बाद उन दोनों रोगियों को सम्हाला। जो अब-तब था और जिसकी अवहेलना की थी वह ठीक मिला, और जिसे दवा दी थी उसकी हालत गिरती पाई। नर्स से पूछा तो उसने कहा, "जिसे दवा दी थी उसकी हालत बराब गिर रही है और जिसे बेदवा के चलाया वह सुधर जारहा है। डाक्टर ने कहा, "तो जिसे दवा देते थे उं भी बेदवा के कर दो।" थोड़े दिनों बाद दोनों रोग ठीक होगये।

डाक्टर ने यह अनुभव सुनाते हुए कहा, "रोगी व मैं क्या बताऊं? हम सब रोगों का निदान पूरा-पू कहां कर पाते हैं। और कुछ अटकल पच्चू कह बैठें त रोगी और असमंजस में पड़ेगा। दवा क्या दूं? सब रोग की दवा है भी कहाँ? क्या मैं ख्वाहमख्वाह उसके पे में जहर डालता रहूं? मेरा अनुभव है कि ७० प्रतिश रोगियों को तो दवा दें न दें, समय पर वे अपने आ ठीक होजाते हैं। २० प्रतिशत को ठीक दवा देने लाभ होता है। १० प्रतिशत हैं जिनके लिए हमारे पा कोई निश्चयात्मक औषधि नहीं है। इसलिए उन दवा के प्रयोग क्या होते हैं, अंधेरे में ढेले से निशान लगाया जाता है। लग गया तो तीर नहीं तो तुक्का जब यह हाल है तो क्या दवा दूं और क्या रोग का ना बताऊं? मुझे फीस दवा देने के लिए नहीं, रोग मिटाने लिए मिलती है। इसलिए ऐसे ७० प्रतिशत को दवा देकर ही मैं रोगी का भला और अपना कर्तव्य-पाल कर सकता हूं, तो क्यों न करूं?"

अपने समर्थन में एक मजेदार किस्सा सुनाते हु डाक्टर कहने लगे, कहीं एक मोटर बस में एक डाकू घु गया और मुसाफिरों को पिस्तौल दिखाकर ललकार हुए बोला, अपने-अपने सब पैसे दो या जान दो। स मुसाफिर अपनी जेबों से मालमता निकाल-निकाल डा के हाथ में सौंपने लगे। पर उनमें एक डाक्टर था, व तो हँसता ही रहा। डाकू ने पूछा, "हँसते क्या हो पैसे निकालो।" डाक्टर ने कहा, "हँसता इसलिए हूं

तुम कहते हो पैसे दो या जान। सो तुम तो एक ही चीज़ मांगनेवाले हो। पर मैं डाक्टर हूँ, पैसे और जान दोनों लेनेवाला। तुमसे मैं क्या डरूं?" डाक्टरों की हमारी यही परम्परा है। जो इस लकीर पर नहीं चलता वह गालियां खाता है।

मेरे इन डाक्टर मित्र की इस मनोहर मीमांसा से वैद्य और प्राकृतिक चिकित्सक दोनों काफी सबक ले सकते हैं। अक्सर डाक्टर, वैद्य और प्राकृतिक चिकित्सक भी ऐसे बड़े-बड़े बेढब दावे करते हैं कि समझदार श्रोता को श्रद्धा के बदले उनपर अश्रद्धा होने लगती है।

निस्सन्देह प्राकृतिक चिकित्सा एक अत्यन्त लाभदायक प्रणाली है, पर हमें इसकी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए। तभी इससे लोगों को लाभ होगा। जैसे एलोपैथी में विवेक चाहिए कि कब दवा देना और कब न देना, वैसे ही नैसर्गिक चिकित्सा से भी किस रोगी को लाभ होगा, किसे नहीं, इसका विवेक होना चाहिए। जो लोग यह दावा करते हैं कि सभी रोग—सौ में सौ—नैसर्गिक चिकित्सा-पद्धति से नष्ट किये जा सकते हैं, वे नैसर्गिक पद्धति की सेवा नहीं बल्कि उसका अनिष्ट करते हैं। किसीका यह दावा करना कि अपेंडिसाइटिस बिना शस्त्रक्रिया के ठीक होसकती है, रोगी को भुलावे में डालना है। कई ऐसे रोग हैं जो शस्त्रक्रिया से ही ठीक होसकते हैं। कम-से-कम अबतक उनके उपचार का दूसरा मार्ग चिकित्सकों को मिला नहीं है। इनपर नैसर्गिक चिकित्सा की आज़माइश एक प्रकार की निर्दयता है। प्राकृतिक चिकित्सक यदि अपनी सीमा को समझ ले तो उससे अवश्य नैसर्गिक पद्धति का ओज बढ़ेगा।

अमेरिका में डाक्टर केलाग एक जबरदस्त प्राकृतिक चिकित्सक हैं। उनके चिकित्सालय का वर्णन मैं यहां इसलिए देना चाहता हूं कि वहां नैसर्गिक उपचार विवेक और मर्य्यादा के साथ होता है। डाक्टर केलाग एक विद्वान डाक्टर हैं। उन्होंने बीमारियों का काफी अध्ययन किया है और पाचन-क्रिया पर कई प्रकार के प्रयोग भी किये हैं। जवानी में ही उन्हें नैसर्गिक चिकित्सा की धुन लगी। डाक्टर तो थे ही, अब नैसर्गिक चिकित्सा ने पड़कर उन्होंने सोने में सुगन्ध पैदा करदी। इस समय डाक्टर केलाग की उम्र ९० के क़रीब होचली है। जहाँ तक मुझे ख़बर है, ज़िन्दा हैं और स्वस्थ हैं। कुछ साल पहले उन्होंने मुझे लिखा था कि बुढ़ापा ८० से पहले नहीं आना चाहिए। अन्य रोगों की तरह बुढ़ापा भी एक रोग है और युक्त आहार-विहार से कुसमय आये हुए बुढ़ापे को भगाया भी जासकता है। इन डाक्टर केलाग के स्वास्थ्यगृह (सैनिटोरियम) में मैं कुछ दिन रहा था।

सन् १९३१ की बात है। जाड़े का मौसम था, मझ पौष का महीना। झीनी-झीनी बर्फ गिर रही थी, साथ ही ठंढी हवा इस तेजी से बहती थी कि गर्म कपड़ों में छिपे डील में भी कंपकंपी होती थी। केलाग सैनिटोरियम बैटलक्रीक नाम के एक छोटे-से क़स्बे में है। यह स्थान शिकागो के निकट है। मैंने सैनिटोरियम के मैनेजर को तार से अपने पहुँचने की सूचना दी थी। बैटलक्रीक एक छोटा-सा स्टेशन है। मैनेजर मेरी अगवानी के लिए स्टेशन पर आये। पर इतने छोटे स्टेशन पर कुली कहाँ? इसलिए अपने हाथों ढोकर सामान मोटर में धरना पड़ा। रातभर विश्राम के बाद दूसरे दिन सैनिटोरियम के एक डाक्टर के पास पहुँचाया गया।

सैनिटोरियम का मकान क़रीब बीस मंजिला है, जिसकी लागत साढ़े तीन करोड़ की बताई गई। एक हज़ार स्वास्थ्य-इच्छुकों या भिक्षुकों के लिए वहाँ रहने का प्रबन्ध हैं। चालीस-पचास डाक्टर हैं और कुछ विशेषज्ञ भी—जैसे आंख, कान, फेफड़े और हृद्रोग के। आगन्तुक रोगियों को दस-पन्द्रह चिकित्सकों के बीच बाँट दिया जाता है। मैं जिस चिकित्सक के अधीन किया गया था उसके पास मैं नियत समय पर पहुँच गया। उसने चुपचाप मेरी कथा सुनकर मुझे विशेषज्ञों के पास भेज दिया। दो-तीन दिन तक तो मैं विशेषज्ञों के पास ही जाता रहा। नाकवाले ने नाक देखी, आँखवाले ने आँखें, फेफड़ेवाले ने फेफड़ों का चित्र लिया, पाचन-क्रिया के विशेषज्ञ ने आमाशय-स्थित पित्तों की जांच-पड़ताल की, कुछ तस्वीरें आँतों की खींची। मल, मूत्र, थूक, रक्त इत्यादि की परीक्षा हुई। इस तरह सबने देख-भाल कर अपनी-अपनी पूरी रिपोर्ट बाजाब्ता मेरे चिकित्सक के पास भेज दी और उसने सारी रिपोर्ट का संक-

लन कर उसका अच्छी तरह अध्ययन करने के बाद फिर मुझे तलब किया और बतलाया कि मुझे कोई रोग नहीं है। महज भोजन में फेरफार करने की ज़रूरत है। मुझे वहाँ ज्यादा ठहरना नहीं था। सिर्फ वहाँकी व्यवस्था देखनी थी, इसलिए उपचार का तरीक़ा देखने के लिए कुछ दिन में वहाँ और ठहर गया।

अब मेरा उपचार शुरू हुआ। उपचार क्या था, सबसे ज्यादा मतलब की जो चीज़ थी वह तो भोजन का फेरफार था और थीं कुछ ऊपरी क्रियाएँ। मुझे बताया गया कि मेरे भोजन में किस चीज़ की कमी है और किस चीज की ज़्यादती। इस सम्बन्ध में ब्यौरेवार पूरी हिदायत तो भोजनालय-प्रबन्धक के पास भेज दी गई। उसे बता दिया गया कि भोजन में क्या-क्या रद्दोबदल करना चाहिए। उस सारे फेरफार को अमल में लाने की जिम्मेदारी भोजन-विशेषज्ञ की थी। अब जब मैं अपनी मेज पर खाने बैठता तो क्या परिवर्तन किया गया है इसका मुझे कोई भान भी नहीं होता था। नित नई बानगियाँ खाने की मेज़ पर आती थीं। पर मिकदार और ख़ासियत में बिलकुल मेरे चिकित्सक की हिदायत के मुताबिक। मुझे न किसी चीज से परहेज की जरूरत होती थी और न किसी चीज के मांगने की आवश्यकता ही। सारा काम यन्त्रवत चलता था।

ऊपरी चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यक आदेश भी जलचिकित्सक को देदिये गये थे। मैं वहाँ अपने समय पर पहुँच जाता था और आदेश के अनुसार मुझे चिकित्सा मिल जाती थी। कभी पेट की मालिश, कभी सेंक, कभी कटि-स्नान तो कभी वाष्प-स्नान। कभी क्रमशः गर्म और ठंढा स्नान। पर इन सबके सिवा महत्त्वपूर्ण बात वहाँ यह है कि रोगी का न केवल उपचार ही किया जाता है, बल्कि रोगी को ज्ञान भी दिया जाता है। रात को रोज तरह-तरह के स्वास्थ्य सम्बन्धी व्याख्यान होते हैं। रोगी को यदि अपने शरीर का ज्ञान न हो, तो वह सैनिटोरियम से निकलने पर फिर बीमार पड़ सकता है। इसलिए रोगी की शिक्षा वहाँ अनिवार्य समझी जाती है। रोगी को भोजन का केवल ज्ञान ही नहीं कराया जाता, उसे भोजन पकाना भी सिखाया जाता है। तरह-तरह के व्यायाम सिखाये जाते हैं। सबसे बड़ी बात है कि आत्मा को उठानेवाले धार्मिक व्याख्यान भी होते रहते हैं। निर्मल आमोद-प्रमोद के साधनों की तो कोई कमी ही नहीं है।

आप इससे यह न समझें कि वहाँ दवा बिलकुल बहिष्कृत है। हाँ, बहिष्कृत के बराबर जरूर है। जहाँ शस्त्रक्रिया की आवश्यकता समझी जाती है, वहाँ रोगी को जर्राह के सुपुर्द भी करते हैं।

एक मर्तबा मुझे एक निर्दोष-सी दवा की आवश्यकता थी। मैंने गाँव में से मँगवा ली। घंटाभर बाद ही मेरे चिकित्सक ने मुझे बुलाकर पूछा, "क्या आप गाँव से अमुक दवा खरीदकर लाये हैं?" मैंने कहा, "हाँ।" चिकित्सक ने कहा, "आपने यह उचित नहीं किया, हमारे यहाँ किसी रोगी को यह स्वतन्त्रता नहीं है कि वह मनमानी दवा—चाहे वह कितनी ही निर्दोष क्यों न हो—खुद खाले। जब हमने जिम्मेदारी लेली, तो फिर आपको हमारे नियंत्रण में रहना चाहिए।" मैंने चिकित्सक की बात का आदर किया और दवा वापस लौटा दी।

सैनिटोरियम में रहनेवाले कई मरीजों से बातें करने पर केलाग की पद्धति का मुझपर काफ़ी अच्छा असर पड़ा। **कई रोगी जो डाक्टरों से निराश होचुके थे उन्हें यहाँ नैसर्गिक चिकित्सा से काफी लाभ हुआ।**

पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि डाक्टर केलाग के सैनिटोरियम के सारे चिकित्सक विशिष्ट डाक्टर हैं। उन्हें भोजन का ज्ञान है, शारीरिक ज्ञान से वे पूर्णतया परिचित हैं। दवा का उन्हें इल्म है, चाहे वे उसका उपयोग न करें। नश्तर देने में वे दक्ष हैं। रोगों के निदान के लिए हर तरह के औजार और सुविधाएँ उन्हें सुलभ हैं।

हमारा मुल्क ग़रीब है इससे हमें यहाँ चाहे इतने विस्तृत साधन नैसर्गिक चिकित्सा के लिए उपलब्ध न हों, पर मैं नहीं समझ सकता कि किसी मनुष्य को यदि शरीर-रचना का ज्ञान न हो और न उसे भोजन के सम्बन्ध में कोई इल्म हो, न पाचन-क्रिया के सम्बन्ध की ही कोई जानकारी हो, तो वह महज दो-तीन तरह का स्नान कराकर और एक स्नान का टब साथ रखकर कैसे नैसर्गिक चिकित्सक बन सकता है? हर रोग के उपचार के लिए उसका निदान आवश्यक है और निदान

के लिए मल-मूत्र की परीक्षा, शरीर-विज्ञान आदि का जानना जरूरी है। यह ज्ञान नहीं, तो नैसर्गिक चिकित्सक कैसा ?

हमारे मुल्क में भी जबतक अनुभवी तथा ईमानदार डाक्टर नैसर्गिक चिकित्सा को अपने हाथ में न लेंगे, तबतक मुझे इसकी प्रगति का मार्ग रुका हुआ-सा लगता है। **नैसर्गिक चिकित्सा एक सीधी-सादी, कम खर्चीली और सुलभ पद्धति है, जिसे प्रोत्साहन देना हमारा धर्म है।** पर इस प्रणाली के दिन तभी उघड़ेंगे, जब यह विद्वानों के हाथ में पड़ेगी। आज का तरीका मुझे कुछ खतरनाक मालूम होता है। इसके यह मानी नहीं कि पासशुदा डाक्टरों को छोड़कर और कोई नैसर्गिक चिकित्सा हाथ में ले ही नहीं। गांधीजी कहाँ पासशुदा डाक्टर हैं ? पर जिन चीजों का मैंने ऊपर जिक्र किया है उन सबके सम्बन्ध में वह ज्ञान रखते हैं। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि नैसर्गिक चिकित्सक को भी इल्म और विवेक दोनों की जरूरत है। "नीम हकीम खतरये जान" सभी जगह लागू पड़ता है।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रकृति स्वयं चिकित्सक है

श्री लक्ष्मीनारायण, मन्त्री बिहार चर्खा संघ

पिछले चार जून की बात है। बिहार चर्खा संघ सरंजाम कार्यालय मधुबनी के तत्कालीन व्यवस्थापक श्री छगनलाल पटेल की हालत आठ बजे दिन में एकाएक बहुत खराब होगई। घण्टे में कई-कई कै और दस्त ने लगे। जड़इया होआया, कुछ-कुछ बुखार भी। परेशानी पैदा होगई। हमारे साथी ध्वजा बाबू ने अस्पताल के सिविल सर्जन महाशय को बुला भेजा। उन्होंने कहा कि यह इंटेसटाइनल मलेरिया--अन्तड़ियों का बुखार--है। इस बीमारी में इतने कै-दस्तों के होने से शरीर का डीहाईड्रैक्शन होजायगा, अर्थात् पानीय अंश सूख जायगा, जिससे रक्त-संचार कम होजायगा। उनकी राय हुई कि एक घण्टे के अन्दर इन्हें कुनैन का इन्जेक्शन लगना चाहिए, अन्यथा फिर बाजी हाथ में नहीं रहेगी। इधर छगनलालजी किसी तरह कुनैन का इन्जेक्शन लेने को राजी न किये जासके। कारण, डेढ़ वर्ष से डाक्टरी दवाएं खाते-खाते वह ऊब गये थे और डेढ महीने पहले बिना किसी औषधि के प्राकृतिक उपचार के एक अंग केवल भीगी चादर की पट्टी (वेट शीट पैक) से उनका तीव्र लेरिया ज्वर शान्त होचुका था। अस्पताल के डाक्टर साहब को भी इस बात का पता था कि छगनलाल भाई हले कुनैन का इस्तेमाल कर-करके बहुत परेशान होचुके हैं, इसलिए कुनैन नहीं लेंगे। वह यह कहकर चले गये कि अगर घण्टेभर यही हालत रहे तो मुझे सूचना दीजिएगा। कैसे भी इन्हें इन्जेक्शन देना होगा। हम लोग घबराये ए थे, पर हमारे यहाँ के प्राकृतिक चिकित्सक श्री बलवन्तराव ने हम लोगों का समाधान किया कि ये रोग के तीव्र लक्षण हैं, अपनेआप शीघ्र ही शान्त होजायंगे। ईश्वर-कृपा से घण्टेभर बाद ही छगनलाल भाई को निद्रा गई और उसी दिन शाम को उनकी हालत इतनी अच्छी होगई कि कुछ दूर पैदल टहल भी सके।

अपने डाक्टर आप बनिए

श्री के. लक्ष्मण शर्मा

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्

"आत्मवशता सुख है; परवशता दुःख" ऋषियों ने इसी सूत्र को सुखी जीवन का तत्त्व माना है।

पर आत्मवशता के मानी क्या हैं? उसका अर्थ दोहरा है। पहला यह कि दूसरे का भरोसा, परावलम्बन त्याग देना होगा। दूसरा यह कि सहारा सच्चे 'स्व' का लिया जाय, अज्ञान भरी, मिथ्या, माया का नहीं, जो खुद ही सारी बुराइयों की जड़ है।

दूसरों का—पेशेवर लोगों का—भरोसा करना ही हमारी आज की दयनीय दशा का कारण है। जब-जब हमने दूसरों को इसकी इजाजत दी कि वे हमारे स्वाभाविक कर्तव्यों में दखल दें, तब-तब उन्होंने उसे इस तरह वरता कि उनकी जेब भरे और हमारी हजामत बने। स्वावलम्बन से, आपस के सहयोग से, हम उस सारी हानि से बचकर अपनी पूरी भरपाई कर सकते हैं। हमारे हिताहित से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों के विषय में यही समझना चाहिए।

स्वास्थ्य के ही विषय को लीजिए। अवश्य ही एक समय ऐसा रहा होगा जब हरेक वयःप्राप्त स्त्री-पुरुष स्वाधीन था और आप अपनी और अपने कुटुम्ब के रक्षण-पोषण की चिन्ता करता था। उस जमाने में संभवतः हरेक कुटुम्ब अपने लिए अन्न खुद उपजाता, वस्त्र खुद बुनता और घर भी खुद बना लेता था। वह खाद्य ताजा और स्वास्थ्यकर होता था। वह उन चीजों के जैसा नहीं होता था जिन्हें हम आज पैसे से खरीदते हैं—वे चीजें जिन्हें सुदूर स्थानों में मालूम नहीं कौन लोग उत्पन्न करते हैं और बहुत दिनों तक रख छोड़ने और सैकड़ों हजारों मील के फासले पर भेज सकने की गरज से जो अपनी स्वाभाविक अवस्था में नहीं रहने दी जाती। उस समय लोगों को आहार और दूसरी आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी, इसलिए उन्हें नैसर्गिक और जोर की भूख लगती थी, इसलिए अपना सादा भोजन ही उन्हें मजेदार लगता था और जीभ से ललचाने की—मिर्च-मसाले के उपयोग की—कला सीखने की आवश्यकता उन्हें न थी। इस प्रकार वे प्रायः सदा स्वस्थ रहते थे। कोई कभी बीमार होता तो उसकी भूख विदा होजाती और वह उपवास करता। इससे वह जल्दी ही चंगा होजाता। इस तरह आरोग्य-लाभ के सबसे पुराने नियम '**लंघनं परमौषधम्**' का आविष्कार हुआ। कहीं जख्म होगया तो उन्होंने झट उसपर गीली मिट्टी बाँध दी और वह भर गया। ठंढा पानी या ठंढी हवा उसके लिए डरावनी चीजें न थीं। धूप से भी उन्हें डर न लगता था। वे सदा पंच महाभूतों के सम्पर्क में रहते थे। धीरे-धीरे उन्होंने अहानिकर जड़ी-बूटियों के गुणों का परिचय प्राप्त किया। उनका विश्वास था कि वे रोग-मुक्ति में सहायता करती हैं।

रोग और चिकित्सा-व्यवसाय की उत्पत्ति

धीरे-धीरे मनुष्य में सभ्यता बढ़ी। मुद्रा का आविष्कार हुआ और सम्पत्ति का विभाजन विषम होगया। इससे चोर-डाकुओं का भय पैदा हुआ और नगर बसे, जिनमें पंक्तिबद्ध, एक-दूसरे से सटे हुए मकान बनाये गये। नगरवासियों के हाथ जीवन की आवश्यक वस्तुएं बेचने के लिए बनिज-व्यौपार का जन्म हुआ। धीरे-धीरे विलास की वस्तुएं भी बनने लगीं। कुछ ऐसे लोग भी पैदा होगये जो कुछ काम न करते और खाना पूरा खाते थे। कुछ के पास बहुतसी बीबियां थीं, कुछ के पास एक भी नहीं। इससे व्यभिचार की सृष्टि हुई। खाना पकाने के पेचीदा तरीके ईजाद हुए। दुर्व्यसनों का चलन भी हुआ। इस प्रकार सबल, सतेज, स्वास्थ्य देनेवाली वह आदिम अवस्था न रही और रोग-निवारण के रोजगार के लिए अनुकूल स्थिति उत्पन्न होगई। इन चिकित्सा-व्यवसाइयों ने जड़ी-बूटियों के उपयोग की विद्या तो विरासत में पाई, पर प्रयोग और अनुभव

उन्होंने उसे और आगे वढ़ाया नहीं। बढ़ाई गई वस्तुएं विष थीं, और इस कारण वे बहुत जल्दी काम करने गीं। यह प्रभाव स्वास्थ्य और जीवन के लिए वस्तुतः हितकर है या नहीं, यह वे नहीं जानते थे। उन्हें इसकी परवा भी न थी। उन्हें उनकी फीस मिल गई, फिर और किसी उलझन में वे क्यों पड़ने लगे। इसका यह मतलब नहीं कि सब वैद्य-हकीम ऐसे ही होते थे। पर मानव-स्वभाव को देखते हुए हमें यह मानना ही होगा कि उनमें से अधिकांश ऐसे ही थे।

बर्नार्ड शा का कहना है कि जहां ज्ञान का अभाव होता है वहां अज्ञान अपनेको विज्ञान कहने लगता है। सच्चा ज्ञान वह है जो मनुष्य को परवशता से छुड़ाता और उसे सुखी बनाता है। क्या पेशेवर लोगों का सारा ज्ञान हमें सुखी बना सका है? हर्गिज नहीं। डाक्टर और दवाखाने जितने ही बढ़े लोगों के स्वास्थ्य की दशा उतनी ही दयनीय होती गई। डाक्टर-वैद्य को इससे मतलब नहीं कि हम सच्चे अर्थ में तन्दुरुस्त हों। हमें स्वास्थ्य-साधन की कला, जिसमें औषध-सेवन की आवश्यकता ही न हो, सिखाने के लिए उन्हें पैसा नहीं दिया जाता। उनकी पुस्तकों में दिया हुआ स्वस्थवृत्त व्यवहारतः उनके लिए निरर्थक होता है।

पर क्या अब हम अपने इन डाक्टर-वैद्यों को विदा कर शेष जीवन के लिए अपने चिकित्सक खुद आप बन सकते हैं? क्या चिकित्साशास्त्र एक विशाल और जटिल विषय नहीं है, जिसे हम बहुत खर्च उठाकर और किसी आयुर्वेद-विद्यालय या मेडिकल कालेज में चार-पांच साल तक नियमित पढ़ाई करके ही प्राप्त कर सकते हैं?

हम दूसरे सवाल का जवाब पहले देंगे। कालेजों में जो कुछ सिखाया जाता है वह विज्ञान नहीं बल्कि भयानक भूलें करनेवाली कला है। एक पेशेवर चिकित्सक के लिए लोगों के अज्ञान का लाभ उठाकर पैसे पैदा करने की दृष्टि से वह परम उपयोगी है। पर जो लोग सच्चा स्वास्थ्य प्राप्त करना और स्वस्थ सन्तान छोड़ जाना चाहते हैं उनके लिए वह किसी काम का नहीं है। हमें जरूरत है उस सच्चे स्वास्थ्य-विज्ञान और चिकित्साशास्त्र में पंडित होने की जिसमें ईश्वर वैद्य है और युक्त आहार-विहार औषधि। यह विज्ञान पशुओं तक को मालूम है। इसकी पुष्टि में मैं एक सच्ची कहानी सुनाता हूँ—

कर्नाटक प्रदेश के एक गाँव में एक बूढ़ा ब्राह्मण व्यापारी रहता था। उसकी पत्नी असाध्य संधिवात रोग से पीड़ित थी। उनके बेटों में से एक को सच्चे आरोग्यशास्त्र का पता लग गया था और उसकी सलाह से मैं उसकी चिकित्सा के लिए बुलाया गया। मैंने उसके लिए हलका पथ्य, धूप के और दूसरे स्नान तथा बीच-बीच में उपवास का इलाज तजवीज किया। एक सप्ताह तक चिकित्सा-क्रम की निगरानी करते रहने के बाद मैं और उत्तर चला गया तथा कुछ दिनों बाद रोगी को देखने के लिए लौटा। इस बीच वहाँ एक अद्भुत घटना घटित होचुकी थी—अद्भुत उन लोगों की दृष्टि से, अन्यथा वह थी सर्वथा स्वाभाविक।

पशु प्राकृतिक चिकित्सा के तत्त्व को समझते हैं

घर में गाय-भैंसें थीं और बछड़े-पंड़वे भी। एक पंड़वा बीमार पड़ा। लोगों ने उसे दवा खिलाई, पर "मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।" जान पड़ने लगा, अब यह चला। इसलिए दवा बन्द करदी गई। पर वह अब भी गोशाला में और जानवरों के साथ बांधकर रखा जाता था। एक दिन घर के एक आदमी के, जिसका प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति से कुछ परिचय हो चुका था, मन में आया कि बीमार पंड़वे को बांधकर रखने की कोई जरूरत नहीं। उन्होंने एक नौकर को उसे खोल देने की आज्ञा दी और वह खोल दिया गया। पंड़वा उठा और बड़ी कठिनाई से बाहर धूप की ओर जाने लगा। नौकर को यह अच्छा न लगा और उसने उसे फिर बांध देना चाहा, पर उसके युवा मालिक ने उसे ऐसा करने से मना किया। अतः पंड़वा यथेच्छ विचरण के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया। उसने धूप में लेटना पसन्द किया। वह जब असह्य होगई तो वह उठकर छाँह में चला आया और थोड़ा जल पीकर पड़ा रहा। उसने कोई तीन दिन तक यही क्रम चलाया और चंगा होगया।

उधर घरवालों को—एक आदमी को छोड़कर—

इसका अचम्भा होरहा था कि इस पंड़वे ने 'शर्माजी की चिकित्सा-पद्धति' कैसे जान ली। उन्होंने देखा कि पाड़ा एक तरह से उसी चिकित्सा-क्रम का अनुसरण कर रहा है जो वृद्धा के लिए बताया गया था। यह कहानी मुझे सुनाते समय वे मुश्किल से अपनी हँसी रोक सकते थे, क्योंकि उनके विचार से वह बड़ी विचित्र और मजेदार बात थी। उसके विवादवाले पहलू पर उनकी दृष्टि नहीं गई—अर्थात् एक पाड़ा तक सहज प्रेरणा से जिस बात को जानता था वे खुद उससे अनभिज्ञ थे।

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति को अपनाकर ही हम डाक्टर-वैद्यों की अधीनता से छुटकारा पा सकते हैं। अब पहले प्रश्न का उत्तर भी दिया जा सकता है। यह विधि इतनी सरल और सुगम है कि छोटे बच्चे तक इसे समझ सकते और पूरे विश्वास के साथ इसपर चल सकते हैं। इस दावे के सबूत में यह बात कही जा सकती है कि सैकड़ों-हजारों लोगों ने इस उपचार-विधि का अनुसरण कर रोग और चिकित्सकों से छुटकारा पाया है और शेष जीवन में सकुटुम्ब उसका उपयोग किया है।

अपनी मिसाल

मैं अपनी ही मिसाल पेश करता हूँ। मैंने कोई ३० साल पहले इस पद्धति को अपनाया और तबसे सदा पूरी निष्ठा के साथ उसका अनुसरण किया है। पत्नी सहज ही उसकी अनुगामिनी बन गई और सब बच्चे उसीका अनुसरण करते हुए पाले-पोसे गये हैं। अर्थात् किसी वैद्य-डाक्टर या गोली-चूरण को हमारे घर में कदम रखने की इजाजत नहीं मिली। अवश्य ही लोग बीमार होते थे। पर सबका इलाज बिना दवा के तरीक़े से किया गया और वे इतनी जल्दी चंगे हुए कि देखनेवाले अचम्भे में आगये। इसका फल यह हुआ है कि यद्यपि हम लोगों का स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं है, पर हमारे बच्चों की तन्दुरुस्ती निश्चित रूप में हमसे अच्छी है। जिन कुटुम्बों में बीमारियों का इलाज दवाइयां खिलाकर किया जाता है वहां आम तौर से बच्चे मां-बाप से कम तन्दुरुस्त होते हैं, क्योंकि उन्हें रोग के बीज पैतृक संस्कार के रूप में मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि परावलंबी चिकित्सा-विधि क्रमशः वंशक्षय की ओर लेजाती है और हमारी प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति वंशोन्नति करती है। वैद्य-डाक्टर की फीस और दवा के दाम की बचत ही क्या कम लाभ है? आज के समय में यह लाभ उपेक्षणीय नहीं है, जब गरीबी की मार से सभी त्रस्त होरहे हैं—दुनिया की दौलत मुट्ठीभर व्यापारियों और बड़े अफसरों के हाथ में इकट्ठी होरही है और उनका लोभ धन-वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता जारहा है।

अपने डाक्टर आप बनिए

मैंने कहा है कि प्राकृतिक उपचार-विधि सरल है और सहज में सीखी जा सकती है। पर इस विज्ञान के सिद्धान्त इतने सरल नहीं हैं कि हर आदमी उन्हें आसानी से समझ ले। अनुभव ने मुझे बताया है कि केवल सात्त्विक और तीक्ष्ण बुद्धिवाले ही उसके तत्त्वज्ञान को समझ सकते हैं। यही कारण है कि बहुतसे आदमी जो इस कला के पण्डित होने का दावा करते हैं, इसके तत्त्वज्ञान से कोरे होते हैं। और अगर कहीं वे पेशेवर चिकित्सक हुए तब तो धीरे-धीरे उनकी प्रवृत्ति इस कला को विरोधी पद्धतियों के तरीके उधार लेकर बिगाड़ने-बहकाने की ओर होजाती है। इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि किसी दूसरे का पल्ला न पकड़िए, चाहे वह अपने आपको प्राकृतिक चिकित्सक ही क्यों न कहता हो। सच्चा प्राकृतिक चिकित्सक वही है जो आपको अपना डाक्टर खुद बनने की सलाह देता है। अगर आपमें उसके लिए आवश्यक बुद्धि है, तो इस शास्त्र के सिद्धान्तों और विधियों का ज्ञान प्राप्त कीजिए। नहीं है तो शुद्धतम मार्गों से उसकी सच्ची विधियाँ सीखकर घर में उनका व्यवहार कीजिए और इस तरह उनका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लीजिए।

प्रकृति के रास्ते पर चलने में हम अपने अन्तर में बसनेवाले भिषक्, आरोग्य और दीर्घायु के ईश्वरीय पथ-प्रदर्शक का भरोसा करते हैं। वही हमारी सच्ची आत्मा है—देह और प्राण को धारण करनेवाला, और उसकी कृपा का भरोसा करना ही सच्चा स्वावलम्बन

है। यही ऋषि-मुनियों ने हमें बताया है। उसके अनुग्रह के अधिकारी बनने के लिए वह हमसे इतना ही चाहता है कि हम गलत रास्ते पर चलना छोड़ दें और भूतकाल की भूलों का प्रायश्चित्त करें। यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि जीवन-यापन का—युक्त आहार-विहार का—सही रास्ता क्या है और गलत रास्ते पर चलने का प्रायश्चित्त किस तरह किया जा सकता है? यह हम फिर बतलावेंगे।

* * *

अनुभव

श्री बालेश्वरप्रसाद सिंह, संपादक 'जीवन-सखा' और संचालक प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह

अपने लम्बे चिकित्सा-काल में मुझे प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अनेक अनुभव हुए हैं; उनका वर्णन 'जीवन-साहित्य' के पाठकों के लिए काफी रोचक और लाभदायक होसकता है। यही समझकर मैं रोगियों पर किये हुए कुछ प्रयोगों का अनुभव इसमें समय-समय पर देना चाहता हूँ। उनमें से एक अनुभव आज आपको सुना रहा हूँ। खयाल रहे कि प्राकृतिक चिकित्सा में प्रायः रोगी डाक्टरों से और जीवन से भी निराश होकर आते हैं। तब भी इसमें अच्छे होनेवालों की संख्या काफी रहती है।

जलोदर का रोगी

कुछ दिन हुए एक मौलवी साहब, जिनका नाम देने की जरूरत नहीं जान पड़ती, बहुत घबराहट की दशा में अपनी स्त्री को स्वास्थ्य-गृह में दिखाने को लाये। डाक्टर हकीमों ने उस स्त्री को इस दुनिया में दो-तीन दिन का मेहमान और बताया था। स्त्री की उम्र बत्तीस साल थी। पेट फूलकर ढोल बन गया था। अब फूटा तब फूटा, ऐसी-सी हालत होरही थी। हाथ-पैरों पर काफी सूजन थी। साथ ही दम फूलने की शिकायत भी। छः महीने से खाट पकड़ रखी थी। लेट नहीं पाती थी, जकड़न की वजह से पैर सीधे नहीं होते थे। हलका ज्वर रहता था, जो १०१° तक जाता था। यकृत में सूजन थी। यह बहन जब लाई गई तब मैं बाहर गया हुआ था। मेरे सहकारी ने इस शर्त पर उसे भर्ती किया कि आशा बहुत नहीं है; इलाज हम करेंगे, पर अगर कुछ बुरा होजाय तो उसकी जिम्मेदारी हमारी नहीं होगी। मौलवी साहब इसपर राजी होगये। मैं भी दो दिनों बाद बाहर से लौटा। देखा। मुझे बहुत आशा अच्छे होने की नहीं जान पड़ी, पर केस लिया जा चुका था, इलाज करना जरूरी होगया। परिणाम ईश्वर के हाथ था।

रोगिणी के लिए फल के रस के सिवाय और सब तरह का खाना-पीना बन्द कर दिया गया; पर बाजार में उन दिनों रसदार फलों का तोड़ा था, इसलिए दूध फाड़कर उसका पानी दिया गया। रोगिणी प्यास के कारण परेशान थी, पानी के लिए बराबर छटपटाती रहती थी, यह मालूम होरहा था कि इलाज नहीं चल सकेगा। पर दो दिनों बाद प्यास घट गई। अब दस्त होने शुरू हुए, जिनकी संख्या रोजाना चालीस-पचास तक पहुँची। धीरे-धीरे सूजन घट चली, छः दिनों बाद दस्तों की संख्या दिन में तीन-चार बार रह गई। रोगिणी पर सूर्य-किरण-चिकित्सा और योगक्रिया का प्रयोग भी किया गया। डेढ़ महीने के इलाज का असर तो ठीक हुआ, पर रोग की जड़ नहीं गई। इसी बीच वहाँ दूध अच्छा न मिलने के कारण दही का पानी शुरू किया गया, जिससे पन्द्रह दिनों में पेट का पानी बिल्कुल सूख गया। अब रोगिणी को भूख से व्याकुलता पैदा हुई। दही की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई गई। हालत बिल्कुल ठीक होगई। जकड़े हुए घुटने खुल गये, ढाई महीने बाद रोगिणी को रोटी-तरकारी और पीने को पानी दिया जाने लगा। अब किसी तरह की शिकायत नहीं रह गई।

मन का शरीर पर प्रभाव

—श्री 'आनन्दवर्द्धन'—

रोग क्या है, यह बताने की जरूरत नहीं जान पड़ती। बूढ़े से लेकर बेज़बान बच्चा तक, बड़े-से-बड़े पण्डित से लगाय बज्र देहाती तक जानते हैं कि किसी तरह की तकलीफ का नाम रोग है, इसीको बीमारी भी कहते हैं। बंगला में इसे 'ब्याराम' और देहात वाले 'बेराम' कहते हैं। बीमारी अर्थात् 'बे आराम'—जिसमें आराम न हो, चैन न हो, बेचैनी हो। ऐसा कौन है जो कभी बीमार न पड़ा हो ? कुछ का तो कहना है कि पड़ने की बात जाने दीजिए, ऐसा कौन है माई का लाल 'जो बीमार न हो' ? उनके मत के अनुसार तो पूर्ण निरोगी मनुष्य मिलना ही कठिन है। हां, कोई कम है, कोई ज़्यादा। कोई जब-तब अवसाद (depression) का शाकी है और कोई दिन-रात खाट पर पड़ा कराह रहा है। इस मत वाले कहते हैं, पूर्ण निरोगी तो हम उसे मानते हैं कि जिसके स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास (Sound mind in sound body) हो। इस कसौटी पर खरे उतरनेवाले आज तो दिखाई नहीं देते हैं।

जिनके मनजित् होने का कुछ खयाल होता है वे भी रोग-पीड़ित पाये जाते हैं।

पर जान यह पड़ता है कि यह सिद्धांत ग़लत नहीं है। इसमें संभव बात ही कही गई है। मनोजयी हो तो शरीर अवश्य स्वस्थ रहना चाहिए। ढोंगी की बात छोड़ दीजिए। क्योंकि मन और शरीर का अति निकट सम्बन्ध है। ज़रा सोचने से बात हरेक के ध्यान में आने योग्य है। मन में खिन्नता आते ही शरीर अवसन्न होजाता है, मन में विकार आते ही शरीर में विकार व्यापता है और मन से विकार जाते ही शरीर से भी चला जाता है। जैसे डोर और पतंग का संबंध है। डोर तानिए पतंग तन जाता है, डोर ढीली कीजिए पतंग ढीला पड़ जाता है। लोगों को आँखों से काम लेने की ऐसी आदत पड़ी हुई है कि जो चीज़ इन दो आंखों से दिखाई नहीं देती उसे हम जल्दीसे मानते ही नहीं। कहते हैं पतंग की डोर तो आँखों में दिखाई देती है, पर कहां तो मन है और कहाँ शरीर के साथ उसका ताल्लुक जोड़नेवाली डोर ? अब इन भाइयों को कैसे यह समझाया जाय कि सारी चीजें तो निरी आंखों से नहीं दिखाई जा सकतीं। आवाज को, हवा को, स्वाद को, गन्ध को आप कहां देखते हैं ? वाह, यह क्या कहते हैं आप ? सब काम आँख से कैसे होगा, इसके लिए तो भगवान ने हमें दो कान नाक, जीभ, त्वचा जो दी है। तब यह क्यों नहीं मानते कि इसी तरह भगवान ने हमें एक मन भी दिया है ? 'पर कान, नाक, जीभ तो हमें आंखों से दिखाई देते हैं, पर मन कहां दिखाई देता है ?' तो क्या दुनिया में जो चीज दिखाई न दे वह है ही नहीं ? तब आप कैसे कहेंगे, हटाइए यह सब बकवास, हमारे मन में सुनने की नहीं। नीबू का नाम सुनकर मुंह में पानी भर आता है, क्यों ? कान और मुंह जुड़े हुए हैं सही, पर नेनुआं का नाम सुनकर तो मुंह में पानी नहीं आता। सोचिए जरा तो, आपका कोई भी काम मन के बिना होता नहीं जान पड़ेगा। आंखें तो, आप कह देंगे कि, सोते हैं तब बन्द ही रहती हैं; पर कान के छेदों में तो आप रुई डालकर नहीं सोते, फिर सोते हुए आप लोगों की बातें क्यों नहीं सुनते ?

'अरे, आप कहां लिये जा रहे हैं हमें ? चले आराम-बेआराम की बातें बताने और लगे समझाने मन की बात ?'

मैं ठीक चल रहा हूं। कहिए रोग की पीड़ा अनुभव करने के लिए आपके पास कौनसा औजार, आला या इन्द्रिय है ? मैं तो नहीं देखता कोई। एक बार एक से मैंने कहा, आप कहते हैं 'सिर में दर्द है, बड़े जोरों का, सिर फटा जा रहा है।' पर मुझे तो कहीं फूटा-फटाया नहीं दिखाई देता। सावित सिर है आपका, वह दर्द है कहां ? 'अरे सिर में है, सिर में, सिर में कहाँ क्या ?' अंगुली रखकर बताइए तो खोजें कि कोई

ञान है क्या कहीं ? 'अरे, सारे सिर में है मेरे भाई, । मत करो, कुछ दवा बताओ।' कैसे जाना जाय रे भोले भाई ? 'खबरदार, भोले वगैरह मत बनाइए, ाप हमें बेवकूफ समझे बैठे हैं, हम बेवकूफ नहीं हैं। स, झगड़ा होजायगा।' इसपर मैंने कहा, लीजिए, एक दाहरण यहीं आपने उपस्थित कर दिया। मैंने आपको थप्पड़ मारा, न और कोई चोट पहुंचाई। भोले कहने र ही आप इतने गर्म होगये, माथे पर बल पड़ गये, ांखों में सुर्खी आगई, क्यों ? 'कानों में आवाज जो पड़ी।' । तो देर से आवाज पड़ रही थी, पर आप गर्म नहीं ए थे। इसी आवाज से क्यों गर्म हुए ? आपके मन ने हा कि यह आवाज खराब है और तुरन्त आपके तेवर दल गये। यही मन और शरीर का सम्बन्ध है।

'इस हिसाब से अगर मन का शरीर पर इतना कब्जा । तो फिर हम मन से मानलें कि हम बीमार नहीं हैं ो क्या हमारी बीमारी मिट जायगी ?' बेशक, बहुतसी ीमारियाँ मिट जायंगी। कुछ जगहों में इस तरह के लाज चल भी रहे हैं कि रोगी के मन में बिठाया ाता है कि रोग नहीं है और उसे आराम कर दिया ाता है। पर यह जरा मुश्किल यों होजाता है कि ोग है यह भी आप ही का मन मानता है, तो रोग नहीं । यह भी आपके उसी मन से मनवाना जरा कठिन ड़ता है। पर जिन्हें इस फन में महारत होगई है वे ह खूब कर सकते हैं।

हम सारे रोग मन से ही मोल लेते हैं। जैसे 'मन व मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः' कहा है वैसे ही ोगवाशिष्ठकार ने रोगों का कारण बहुत-कुछ मन को तलाया है। 'कैसे ? कौन चाहता है, मैं रोगी हो जाऊँ ?' हीं, यह तो कोई नहीं चाहता, सभी चाहते हैं हम ीरोग रहें, सुखी रहें, मौज में रहें। पर इसके साथ ही यह जो चाहते हैं कि गलत रास्ते पर जाकर भी ंजिले मकसूद पर पहुंच जायं। यह कैसे संभव होगा ? ाप इन्द्रियों का गलत इस्तेमाल करके भी नीरोग कैसे ह सकते हैं ? उनका उचित उपयोग समझलें और तदनुसार चलें तो अवश्य नीरोग रहेंगे। सब आपके मन ो समझने की बात है और मन से चलने की। आप न मझें और न चलें और फिर बीमार पड़ें तो इसमें कसूर किसका है ? 'मानों हमारी बीमारी के कारण हम ही ठहर गये। दुःख भी हम भोगें और कसूरवार भी हम ही। यह तो खूब रही।' है ही, यह जो कसूर आपने किया तो दुःख कौन भोगेगा ? इसीसे एक ने कहा है, 'A sick man is a rascal' बीमार दुष्ट है। हम कुछ बीमारियों में तो यह भावना रखते भी हैं, जैसे गर्मी, सुजाक वगैरह में कहते हैं, गये तो मजा लूटने, लो अब भोगो तुम्हीं। पर और बीमारियों में हमारी यह दृष्टि नहीं होती। लोग समझते हैं, बीमारियाँ अपनेआप होजाती हैं या भाग्य से होजाती हैं। पर सही मानिए कि यह सब आपके कर्मों का भोग है। कर्म माने भाग नहीं, 'करतब'।

प्रत्येक छोटे-से-छोटा रोग भी आपकी असावधानी से होता है। 'कैसे ?' मानिए कि आपकी इस वक्त शौच जाने की आदत है। हाजत हुई पर आप मेरे साथ बातों में लगे हैं, मुरव्वत में पड़े हैं, न यही कह सकते है कि मैं यहाँ पाखाने जाऊँगा और न उठकर अपने घर ही जाते हैं। हिन्दुस्तानी घरों में पाखाना तो जनानखाने में होता है, वहाँ होता है पर्दा, और पाखाना भी होता है इतना गन्दा कि कोई अपने पाखाने में दूसरे को ले नहीं जाना चाहता। पाखाना तो दूर रहा, पेशाब की हाजत लिये घंटों बैठे रहते हैं। अब इसका नतीजा क्या होगा ? समझ लीजिए कब्ज की इमारत की नींवस्वरूप पहली ईंट धरी गई। फिर कभी आप अलसाकर नहीं गये या राह चलते रहे या और किसी तरह भी वक्त टल गया। समझ लीजिए पूरी नींव भर गई। अब हाजत बन्द होजायगी—जायंगे आप जरूर, पर काँखेंगे, हवा निकलेगी, मुश्किल से पाखाना होगा। होगा या नहीं भी होगा। बहुत जोर-जार लगाने से थोड़ा-सा निकल जायेगा, बाकी इधर-उधर मोटी (बड़ी) आंत में चिपटेगा, सूखेगा, सड़ेगा। बड़ी आंत मल में से पानी का हिस्सा सोखकर खून में देती है। बस उस सड़े हुए मल का अंश खून में जायेगा। और वह अंश जो बीमारी पैदा न करे सो कम ही समझिए।

अब खाने पर चलिए। रोज के खाने में क्या तत्त्व कम-ज्यादा है इसका ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश आप नहीं करते सो तो है ही, बैठे-बिठाये मन

में आजाती है, आज जरा हलवा बन जाय, जरा मसालेदार कचौड़ी बन जाय, जरा आलूदम बन जाय, और क्या-क्या अला-बला बन जाय । करदी किसी दोस्त की दावत, उसके बहाने भांति-भांति के खाने बना विगाड़कर खाये, खिलाये । यह सब मन का ही तो काम है ।

सिनेमा गये । तंग जगह में, गंदे लोगों के सांस की बदबू से भरी हवा में घंटों बैठे रहे । किसीका सिर न दुखता हो तो दुखने लगे ।

शतरंज, ताश, चौपड़ में बैठ गये, रात के १२ बजा दिये, नींद पूरी नहीं होपाई। शरीर तो जड़ है, जै मन से उसको चलाइएगा चलेगा । पतंग अपनेआ नहीं बढ़ेगा । डोर से उड़ाइएगा तभी उड़ेगा, जिध घुमाइएगा घूमेगा । इसी प्रकार इस शरीर का कारबा भी बहुत करके मन की मार्फत ही चलता है । मन क सुधारिए, शरीर भी सुधरेगा । और फिर ज्यों-ज्य शरीर सुधरता जायगा, मन के अधिकाधिक सुधरने उससे मदद मिलेगी । बिगड़ने की भी यही रीति और सुधरने की भी । जाने और वापस आने का मा एक ही है ।

गोश्त छोड़ रहा हूँ

[श्री उम्मन वर्की]

मेरे मित्र श्री एम० ओ० वर्की प्रोफेसर सेंट ऐण्ड्रूज कालेज, गोरखपुर का एक बारह वर्षीय बालक कुछ दिनों से आरोग्य-मन्दिर में अपने बाएँ हाथ की जन्म से कुछ कमजोर अँगुलियों को सशक्त बनाने की इच्छा से मालिश तथा इलाज के लिए आरहा है । भोजन में मांस की हानिकरता उसने यहाँ सुनी और बिना किसी प्रेरणा के अपना छोटा-सा सपना लिखकर देगया । स्वास्थ्य की दृष्टि से मांस दुष्पाच्य और हानिकर है । यह तो उसके विरुद्ध एक बड़ी दलील है ही, लेकिन इस ईसाई बालक ने जो नैतिक पहलू रखा है वह भी कम विचारणीय नहीं है ।––सं०

एक रात मैंने सपना देखा कि बहुत-सी बकरियाँ और मछलियाँ मेरे सामने आईं और रोते-रोते कहने लगीं कि 'तुम हमारे बच्चों को मारे-खाये जारहे हो, इसका हम लोगों को बहुत दुःख है । तुम्हारे स्वाद के लिए हमारा नाश होरहा है, यह कहते-कहते उन सभी रोना शुरू कर दिया । मैंने उनके रोने-धोने पर कुछ खयाल नहीं किया, जवाब में इतना ही कहा कि 'भाग जाओ।' इसपर बकरियाँ और मछलियाँ चली गईं । थोड़ी देर बाद, दैत्य की शक्ल के चार बड़े-बड़े जीव आये, जिनके मुंह इतने बड़े थे कि उनमें दो बैल एकसाथ समा जायं और कान तो सूप की तरह के थे । हाथ भी बहुत बड़े-बड़े थे । उनके सरदार ने मुझको झकझोर कर कहा, 'सुनो जी !' मैं चौंककर उठा और बोला—क्या कहते हो, कहो ! उसने कहा, 'अगर तुम बकरियों और मछलियों की बात नहीं मानते तो हम तुम सबको खा लेंगे । इसपर मैं बहुत डरा । सुबह उठते ही मैंने सोचा कि अब मैं गोश्त, मछली खाना छोड़ूंगा और तब से मैं अपनी गोश्त, मछली खाने की आदत छोड़ रहा हूँ ।

* * * *

हमारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य

सम्पादक 'जीवन साहित्य', गोरखपुर ।

य मित्र,

मैं पहले पाठकों के सामने हिन्दुस्तान की स्वास्थ्य
म्बन्धी दिल दहलानेवाली और दर्दनाक हालत का
त्र खींचना चाहता हूँ, जिससे वे अच्छी तरह समझ सकें
यह विषय कितना महत्त्वपूर्ण है और उसमें दिल से
हयोग कर सकें। केवल व्यक्तिगत ही नहीं, बल्कि
ष्ट्रीय स्वास्थ्य के सुधार का आप जो सुन्दर प्रयत्न
र रहे हैं, इसे मैं अपने राष्ट्रीय जीवन के विशेषतः
स संकट के समय हरेक का फर्ज समझता हूँ।
दुस्तान में लोगों की उम्र का औसत केवल २३ वर्ष
, इंग्लैण्ड में ५६ वर्ष और अमेरिका में ६० वर्ष ।
दुस्तान में ३० फी सदी गर्भवती स्त्रियों के गर्भ
ट होजाते हैं, परन्तु इंग्लैण्ड में इस तरह की हानि
रीब ८ फी सदी ही होती है । यहाँ जीवित पैदा होने
ले बच्चों में २५ से ३० फी सदी तक अपनी
क वर्ष की उम्र में ही परलोक सिधार जाते हैं ।
पने देश के बच्चों की इस भयानक मृत्यु-संख्या
मुकाबले पाश्चात्य देशों में सिर्फ ८ फी सदी बच्चे
रते हैं । फिर एक वर्ष की जिन्दगी पार कर जाने
ले बच्चों की हालत देखिए । ये बच्चे प्रायः सब
रह की बीमारियों का शिकार बनते हैं । हमारे नव-
वानों में बहुतेरे स्वास्थ्य की परवा नहीं करते ।
लीस वर्ष की उम्र होजाने के बाद हममें से बहुतेरे
ग-ग्रस्त होजाते हैं । हमारे अधिकांश प्रतिभावान
ष प्रायः ५० वर्ष की अल्प आयु में ही हृदय की
ति रुकने से अचानक या किसी असाध्य रोग के कारण
रे-धीरे काल-कवलित होते हैं। यह है हमारे हिन्दुस्तान
राष्ट्रीय स्वास्थ्य का चित्र । क्या हम इस निराश
शा में चुपचाप पड़े रहेंगे ? पाश्चात्य देशों में जहाँ
ष्ट्रीय स्वास्थ्य हमसे बहुत अधिक उन्नत है, जहाँ
ग ५० वर्ष की अवस्था में बूढ़े नहीं होजाते, बल्कि
जवानी की ताकत रखते हैं, वहाँ भी मनुष्य अपनी स्वास्थ्य-दशा से सन्तुष्ट नहीं हैं, बल्कि उसे अधिकाधिक सुधारने में ही लगे रहते हैं। हिन्दुस्तान में भी इसके लिए यथासम्भव उपाय और साधन खोजने की कोशिश करना बहुत जरूरी है ।

मैं खूब समझता हूँ कि कुछ ऐसी बातें हैं, जो हिन्दुस्तान में स्वास्थ्य की इस दुःखद दशा के लिए जवाबदेह हैं, जैसे घोर दरिद्रता, सार्वजनिक अशिक्षा, बालविवाह और सबसे बढ़कर राजनैतिक गुलामी और उसके कारण एक सच्ची राष्ट्रीय सरकार का अभाव जो इस सवाल को सन्तोषजनक रीति से हाथ में ले सके । उधर हमारे बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेता जीवन के विभिन्न—राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक क्षेत्रों में इन प्रश्नों के हल करने की अपने ढंग से भरपूर चेष्टा कर रहे हैं । इधर हम जैसे छोटे-छोटे व्यक्ति भी स्वास्थ्य और बीमारी के विषय में—कैसे बीमारियाँ पैदा होती है, भोजन क्या होना चाहिए और स्वास्थ्य तथा बीमारी में उसका अन्ततः क्या मूल्य है आदि के बारे में—ठीक-ठीक खयालात फैलाकर बहुत कुछ हाथ बँटा सकते हैं। इसीलिए मैं आपके 'जीवन-साहित्य' को स्वास्थ्य-प्रधान पत्र बनाने के प्रयत्न का स्वागत करता हूँ। मुझे आशा है कि यह लोगों को स्वास्थ्य का शुभ संवाद देगा और बतलायगा कि किस तरह मनुष्य सदा सुन्दर स्वस्थ दशा में रहते हुए जीवन बिता सकता है और जो लोग स्वास्थ्य खोचुके हैं, उन्हें उसको फिर पाने के लिए क्या उपाय करने चाहिए । आपके इस सार्वजनिक प्रयत्न में पूरी सफलता की कामना करने वाला,

आपका भाई,

एस० सी० दास

लेट चीफ मेडिकल आफ़िसर

नेपाल गवर्मेण्ट

सेवाग्राम, वर्धा

२९-६-४२

स्वास्थ्य और स्वतन्त्रता

[स्वामी शिवानन्द]

नन्हें से कण से लेकर शक्तिशाली सूर्य तक सारी सृष्टि नियम के अधीन चलती है। सर्वत्र पूर्ण व्यवस्था है। सूर्य बिल्कुल नियमित रूप से अपना काम करता है। ठीक समय पर उगता है और ठीक ही समय पर अस्त होता है। तारे और नक्षत्र व्यवस्थित रूप में घूमते हैं। सभी नियमानुगत हैं। मानसिक क्षेत्र में नियम हैं, भौतिक विज्ञान में नियम हैं, ज्योतिष में नियम हैं, अंकगणित में नियम हैं। सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा के नियम हैं, जिनके नियंत्रण में हम स्वयं चलते हैं। इस विशाल सृष्टि में मनुष्य ही केवल ऐसा है जो नियमों को भंग करता है, व्यवस्था का उल्लंघन करता है। अनियमितता और स्वेच्छाचार का केवल एक ही उदाहरण है; और वह है—मनुष्य। वह जान-बूझकर स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना करता है, असंयमी जीवन बिताता है और फिर बीमार होने पर, दुःख पाने पर, आश्चर्य करता है। समझ-बूझकर भी स्वास्थ्य-रक्षा के तथा अच्छे ढंग से जीवित रहने के नियमों की उपेक्षा करता है और उस समय ढाड़ें मारकर रोता है जब अपनेको किसी असाध्य रोग का शिकार बना हुआ पाता है।

ऐसी कौन-सी अमूल्य वस्तु है जिसके कारण जीवन वस्तुतः जीवन बनता है? एक शब्द में—स्वास्थ्य। "शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्"—मानव-जीवन के चरमलक्ष्य की प्राप्ति के लिए सबसे पहली आवश्यक वस्तु वस्तुतः शरीर है। अथवा यों कहिए कि मानव-जीवन के उद्देश्य की पूर्ति का सबसे प्रथम आवश्यक साधन शरीर है। महर्षि चरक अपनी संहिता में कहते हैं—

धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्,
रोगस्तस्य अपहर्तारश्रेयसो जीवितायच ।

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों की जड़ आरोग्य है। जीवन का आनन्द इसीमें है। रोग आरोग्य को चौपट करनेवाली वस्तु है।' आपका कर्तव्य है कि आप स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों पर सबसे अधिक और सबसे पहले ध्यान दें। स्वास्थ्य के नियम प्रकृति के नियम हैं। इनका उल्लंघन करनेवाला दण्ड पाये बिना बच नहीं सकता। जो लोग इनकी उपेक्षा करते हैं वे असाध्य रोगों के शिकार बनते हैं और आनन्दहीन जीवन बिताते हैं।

स्वास्थ्यरक्षा और उत्तम बल तथा शक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक उपादान हैं—उत्तम सात्त्विक आहार, जिसमें खाद्योज-विटामिन यथेष्ट मात्रा में हों आसन तथा प्राणायाम का नियमित अभ्यास, पवित्र तथा सादा जीवन और उच्च विचार। इन्हीं उत्तम नियमों पर चलकर हमारे प्राचीन ऋषि और योगी दीर्घ और शांतिपूर्ण जीवन बिताया करते थे यही वे आवश्यक उपाय हैं जिनके आधार पर शरीर और मस्तिष्क के स्वास्थ्य की पूर्णता प्राप्त करने के लिए उन्होंने योग-प्रणाली स्थापित की। मृतप्राय राष्ट्र यदि अपनी खोई हुई कीर्ति और सम्मान को लौटाना चाहता है तो इन्हीं मजबूत खम्भों के बल पर वह टिक सकता है। संसार को अच्छी स्वस्थ माताओं की आवश्यकता है, स्वस्थ और हट्टे-कट्टे लड़के-लड़कियों की आवश्यकता है। परन्तु आज हम भारत में क्या देखते हैं? जिस भारत ने भीष्म, भीम, अर्जुन द्रोण, अश्वत्थामा, कृप, परशुराम और असंख्य अन्य पराक्रमी वीरों को जन्म दिया, जिस भूमि में अपार साहस, अतुलनीय वीरता और अद्वितीय शक्ति सम्पन्न असंख्य राजपूत वीर होगये, वहीं आज हमें चारों ओर दुर्बल, पुंसत्वहीन प्राणी दिखाई पड़ते हैं। जो अभी स्वयं बच्चे हैं उनके बच्चे पैदा होजाते हैं स्वास्थ्य के नियमों की बड़ी उपेक्षा और अवहेलना की जाती है। राष्ट्र पीड़ित है और अन्तिम उसासें लेरहा है। आज संसार को असंख्य वीर, चरित्रवान, आध्यात्मिक सैनिकों की आवश्यकता है जिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये ५ गुण भरे हों। जिनमें शक्ति और स्वास्थ्य है, जिनमें उपर्युक्त ५ गुण हैं, जिन्हें आत्मा का ज्ञान है; वे ही संसार के लिए वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं।

नश्तर के बदले सहज घरेलू उपचार

—श्री स्वामी भिक्षु (तेलगू)—

श्री स्वामी भिक्षु पहले बर्मा में एक प्रसिद्ध सिविल सर्जन थे। चिकित्सा में आये अनुभवों के कारण आपको एलोपैथी से घृणा होगई। तब आपने आयुर्वेद का अध्ययन किया और उसके सहारे लोगों का उपचार करने लगे। यह चिकित्सापद्धति भी आपको संतोषजनक प्रतीत नहीं हुई। अन्त में आपको प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा संतोष हुआ। अब प्रायः बीस वर्षों से आप उसीके द्वारा लोगों को स्वास्थ्य-दान देरहे हें। आपने 'सरस्वती संघम्' नामक एक संस्था मद्रास में स्थापित कर रखी है जहाँ हरिजन-सेवा, खादी आदि गांधीजी की अनेक प्रवृत्तियों के साथ प्राकृतिक चिकित्सा भी चलती है। आपकी अनुभवपूर्ण लेखनीद्वारा लिखा गया यह लेख पाठकों के बहुत लाभ का होगा।—सं०

सब यह जानते हैं कि सरलता के आश्रय से सुख मलता है और जटिलता दुःखदायी होती है। तथापि न ानें क्यों दुनिया जटिलतापूर्ण जीवन की ओर झुकती है। ाक्टरी-वैद्यक भी इस साधारण नियम से बरी नहीं हैं।

पच्छिम विज्ञानक्षेत्र में अगुआ ह और औषध-ज्ञान तथा विशेषकर शल्य-चिकित्सा में तो उसने नाम दा कर रखा है। नित नयी औषधों, औजारों और शल्य-कित्सा के साधनों के आविष्कारों का अन्त ही नहीं है।

भारतीय औषध-विज्ञान

औषध-विज्ञान और शल्य-चिकित्सा में पाश्चात्य देशों ा महत्त्व स्वीकार करते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि स क्षेत्र में भारत का भी अतीत और वर्तमान भी कुछ म गौरवपूर्ण नहीं रहा है। प्राचीन काल में भारत ायुर्वेद तथा शल्यशास्त्र में बहुत आगे बढ़ा हुआ था। ल्यशास्त्र में तो वह शीर्षस्थानीय होने का भी ावा कर सकता है। पर भारतीय शल्यशास्त्र को मुखता प्राप्त करने का अवसर नहीं मिल सका। कारण, हाँ ऐसे देशभक्तों का अभाव रहा है जो इस प्रश्न ा मनन कर इसका संरक्षण करते। यदि लोग भारतीय ल्योपचार का महत्त्व ठीक-ठीक समझलें तो वे इसे ोरन अपना लेने को तैयार होंगे। यह सत्य है कि इस षय में भारत इधर विशेष प्रगतिशील नहीं रहा है, पर ोषध-साध्य रोगों के उपचार में तो उसका स्थान आज ो स ोपरि है।

सभी चमकीली चीजें सोना ही नहीं हुआ करतीं। ऐसे ही रसायनशाला में होनेवाले सभी प्रयोग मानव शरीर के लिए लाभदायक नहीं ठहराये जासकते। पशु-पक्षियों के शरीर पर होनेवाले प्रयोग अपने विशेष क्षेत्र में भले ही महत्त्वपूर्ण हों, पर मानव शरीर के स्वास्थ्य की समस्या हल कर सकने में वे विशेष रूप से सहायक नहीं होसकते। हमारी चिकित्सा-पद्धति का आधार तो वे अनुभव हैं जो जीवित मनुष्यों के संबंध में किये गये अनुसन्धानों से प्राप्त हुए हैं।

रोग क्यों उत्पन्न होते हैं ?

रोगोत्पत्ति के कारणों के सम्बन्ध में हमारे सिद्धान्त से कीटाणुवाद (कीटाणुओंद्वारा रोग-प्रवेश) का सिद्धान्त मेल नहीं खाता। यदि कीटाणुवाद से पिंड छूट जाय तो संसार बहुत कुछ निरापद होजाय। हमें शरीर के भीतरी उपादानों के अपक्षय पर बाहरी कीटाणुओं की अपेक्षा अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है। शल्योपचार में यह परमावश्यक है।

शल्य-साध्य रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण कीटाणु नहीं, बल्कि मनुष्य की अस्वास्थ्यकर स्थिति और उसीके साथ उसके आहार में पोषक द्रव्यों की अनुपयुक्तता है। कुछ लोग फोड़े-फुन्सी, सूजन, ग्रंथिव्रण और ग्रंथिवृद्धि इत्यादि को स्थानीय रोग मानते हैं; पर यह धारणा भ्रमात्मक है। दरअसल कोई रोग स्थानीय

नहीं हुआ करता । जिन रोगों को लोग स्थानीय समझते हैं, वे अस्वास्थ्य के परिचायक चिन्हमात्र हैं । शल्य-साध्य रोगों के उपचार में इस तथ्य का सदा स्मरण रखना चाहिए । इन रोगों में भी आहार और पोषक द्रव्यों को वही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, जो उन्हें औषधसाध्य रोगों में है । अगर औषध सम्बन्धी रोगों के उपचार में आहार का नियन्त्रण परमावश्यक है तो शल्य सम्बन्धी रोगों के उपचार में उसके नियन्त्रण की आवश्यकता उससे सौ गुनी ज्यादा है ।

घरेलू उपचार

पाश्चात्य कीटाणुवाद ने दुनिया में एक क़हर पैदा कर दिया है और हमारे सीधे-सादे घरेलू उपचारों को तो बिल्कुल ही अस्त-व्यस्त कर दिया है । लोगों के दिमागों में छूत का भूत घुसा दिया है । आज सब लोग पाश्चात्य विशेषज्ञों से ही रोगों का उपचार कराना आवश्यक समझने लगे हैं । लोगों के दिलों में यह विश्वास जमाया जाता है कि साधारण व्यक्ति इन रोगों का उपचार कर ही नहीं सकते और यदि करें भी तो रक्त को विषाक्त करके रोगी को मौत का मेहमान बना देंगे । पर वस्तुस्थिति इससे उलटी है । रोग और स्वास्थ्य तथा रक्त के विषाक्त होने और न होने के सिद्धान्त से पूर्णतः अपरिचित होते हुए भी हमारे घर की बड़ी-बूढ़ियाँ औषध और शल्य सम्बन्धी दोनों प्रकार के रोगों का उपचार करती ही हैं और परिणाम पाश्चात्य पद्धति के मुक़ाबले में किसी प्रकार कम सन्तोषजनक नहीं हुआ करता । बल्कि देखा तो प्रायः यह जाता है कि मामूली घरेलू उपचार कहीं ज्यादा सस्ता और लाभदायक हुआ करता है ।

आज की यह साधारण प्रवृत्ति होगई है कि लोग महज मामूली तकलीफों के लिए भी डाक्टरों की शरण में दौड़े जाते हैं, सीधे-सादे घरेलू उपचारों की गुणकारिता जानते हुए भी लोग फोड़े, खुजली, मामूली सूजन जैसे क्षुद्र रोगों का उपचार विशेषज्ञों से ही कराना पसन्द करते हैं ।

शल्य-साध्य रोगों में साधारणतः बाहरी उपचारों को विशेष महत्व दिया जाता है, पर इन उपचारों का अपना विशेष गुण होते हुए भी अगर उनके साथ नियन्त्रित आहार और उन उपायों का सहारा लिया जाय, जिनसे शरीर की शुद्धि होती है, तो विशेष लाभ होने की सम्भावना रहेगी । औषध-साध्य रोगों की तरह शल्य-साध्य रोग भी शरीर में विकारों के संचित होने, बुरे खाद्य-पदार्थ और रक्त-संचार में त्रुटि होने के कारण ही उत्पन्न होते हैं । इसलिए बाह्य उपचारों को कारगर बनाने के लिए ऐसे फल और हरी तरकारियाँ खाना नितान्त आवश्यक है, जो पोषक और जल्द पचनेवाली तो हों ही, साथ ही विटामिनों से पूर्ण और शरीर के विकार को बाहर निकालनेवाली भी हों ।

फोड़ा-फुन्सी, सूजन, ग्रंथिवृद्धि, खसरा इत्यादि रोग शरीर में एकत्र विकार को बाहर निकालने के लिए ही उत्पन्न होते हैं और उपदंश, सूजाक, कुष्ठ, क्षय, मधुमेह, वात आदि रोगों में उनके आनुषंगिक या परिचायक चिन्हों के रूप में नजर आते हैं ।

नश्तर लगाना ज़रूरी नहीं

सबसे पहले इस भ्रमात्मक सिद्धान्त को दूर कर देना चाहिए कि बहना शुरू होने के पहले ही फोड़े को जरूर चीर देना चाहिए, नहीं तो रक्त विषाक्त होजायगा । दरअसल व्रण पककर बहने के कारण रोगी की मृत्यु नहीं हुआ करती; मृत्यु तो अच्छी तरह विचार किये बिना ही जल्दबाजी में चीरा लगा देने के कारण होती है । शल्योपचारवाले रोगों में न तो नश्तर बहुत जल्द लगाना चाहिए और न पकी हुई हालत में सुदीर्घ काल तक छोड़ना चाहिए । प्रायः ऐसा होता है कि जरूरत न होने पर भी नश्तर लगा दिया जाता है, जिसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि रोग बढ़ जाता है और प्रायः रोगी को अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ता है । यदि सच पूछा जाय तो फोड़ा, सूजन, ग्रंथिवृद्धि, टान्सिल आदि रोगों का उपचार बिना नश्तर के सहारे के बड़ी सफलता के साथ हो सकता है ।

हमारे घरों में स्थानीय रोगों पर बहुतसी दवाओं का प्रयोग किया जाता है । और कुछ भारतीय चिकित्सक तो सूजन आदि पर खास-खास जड़ी-बूटियों का प्रयोग करते हैं । हरेक वैद्य अपनी दवा को सर्वोत्तम बतलाता है । बहुतसी स्थानीय रोग सम्बन्धी दवाएँ गुप्त-

ा रखी जाती हैं, जिनमें से कुछ का तो चिकित्सक के साथ अन्त होजाता है ।

इन गुप्त दवाओं का अपने विशेष क्षेत्र में उपयोग ान लेने के वाद भी ऐसी बहुतसी मामूली घरेलू वाएँ हैं, जो स्थानीय रोगों पर बहुत मुफीद सावित ोती हैं। फोड़ा, सूजन और आकस्मिक या जीर्ण दाह में चावल या गेहूँ के आटे की पुलटिस बड़ी णकारी होती है । इससे सूजन तो कम हो ही जाती ; यदि पकना शुरू होगया है तो यह जल्द पकाकर (फोड़े आदि को) बहा भी देती है। बौरहिया (अंगुलि विद्रधि) में तो डाक्टर की छुरी तवाही रपा कर देती है । नश्तर लगवाने से अंग तो जरूर ी बदशक्ल होजाता है । अगर मामूली पुलटिस लगाई ाय तो जल्दी आराम होगा और कोई गड़बड़ी पैदा हीं होगी।

मिट्टी का महत्त्व

मिट्टी की पट्टी, नीम की पत्ती, नीम के तेल ौर हल्दी की गुणकारिता का यहाँ उल्लेख करना अप्रासांगिक न होगा। मिट्टी पहले खूब साफ करली ाय और तब पीसकर उसकी पट्टी बनाली जाय और ूजन या जलन पर लगा दी जाय। पट्टी मोटी होनी ाहिए और उसे बराबर तर करते रहना चाहिए। तभी ह अपना गुण अच्छी तरह दिखला सकेगी। अगर वह ूखी पड़ जायगी तो शरीर में संकुचन लाकर चिनचिनाहट पैदा कर देगी। हमारा तो अनुभव है कि मिट्टी ी पट्टी शायद ही कभी नाकामयाब होती है। अगर मिट्टी के साथ नीम की पत्ती और हल्दी मिला ली जाय ो इसकी शक्ति बहुत बढ़ जायगी। अगर बदन में लन हो तो इन्हें मिलाना ठीक न होगा। ठंढक होने पर ो विशेष लाभदायक होंगी।

खसरा, जलन, फोड़ा, गंडमाला, गिलटी, गजचर्म, ालका, कोषवृद्धि की आरंभिक अवस्था, आँतों तथा ूत्राशय की जलन आदि रोगों में मिट्टी की पट्टी हमारा साधारण बाहरी उपचार है। जहरबाद की तो यह शर्तिया दवा है और इसमें अबतक कभी नाकामयाबी नहीं हुई है। विद्रधि, घातक रसौली और अनेक प्रकार की सूजन और फोड़ों में इसका प्रयोग दर्द और जलन कम कर देता है। यह इन रोगों का बिल्कुल अन्त तो नहीं कर सकती, पर उसके फूटने में जरूर मदद करती है। गर्भाशय संबंधी रोगों---प्रसव के वाद गर्भाशय का संकुचन न होना, पेशाब उतरने में तकलीफ होना, आदि---में इसके प्रयोग से बड़ा लाभ होता है। भगन्दर और अर्श में यह खास लाभ की चीज है। पेशाब न उतरने की हालत में पेड़ू पर इसका प्रयोग 'कैथेटर' (पेशाब उतारने की नली) का काम देता है। रुधिर-प्रदाह में भी यह लाभदायक सिद्ध होती है।

नासूर, जीर्णनाड़ीव्रण, कुष्ठ और उपदंशजन्य व्रण आदि पर मिट्टी का प्रयोग तबतक करते जाना चाहिए जबतक व्रण बिल्कुल साफ न होजाय। मवाद देनेवाले व्रणों को नीम की पत्ती और हल्दी के (उबाले हुए) पानी से धोना चाहिए। धोने और मिट्टी के प्रयोग से जलन, सूजन और मवाद आना रुक जाने पर व्रण पर नीम का तेल लगाना चाहिए। जहाँतक संभव हो व्रण खुला रहे जिसमें सूर्य का प्रकाश, हवा और गरमी उसमें बराबर लगती रहे। वह कपड़े आदि से बाँधा भी न जाय, सिर्फ तेल से बराबर ढका रहे। व्रण के खुले रहने से छूत लगने का कोई भय नहीं है। शल्यसाध्य रोगों को दूर करने में सूर्य का प्रकाश, गरमी और हवा बहुत सहायक होती है।

रासायनिक द्रव्यों और लोशनों का, जो प्रायः गलानेवाले (कास्टिक) होते हैं और मांस की पेशियों को गलाकर व्रण को विषाक्त कर देते हैं, व्रण पर कभी प्रयोग नहीं करना चाहिए। बहुतसे रोगों में यों भी नश्तर लगाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि इससे रोग के बढ़ने की ही संभावना रहती है। अनिवार्य होने पर ही नश्तर लगवाना चाहिए, अन्यथा नहीं।

* * *

अनिद्रा का कारण और उसे दूर करने के उपाय

श्री विट्ठलदास मोदी

वर्षों से अनेक वैज्ञानिक माथा लड़ाते रहने पर भी अभीतक इस सम्बन्ध में कुछ निश्चय नहीं कर पाये हैं कि नींद क्यों आती है अथवा सोते समय शरीर की क्या अवस्था होती है। पर यह तो निश्चित हो-चुका है कि नींद आना स्वाभाविक है और बिना सोये या कम सोकर काम चलाने का प्रयास स्वास्थ्य के लिए खतरे से खाली नहीं है। नैपोलियन अथवा एडिसन आदि के बारे में जो यह कहा जाता था कि वे घंटे दो घंटे सोकर ही काम चला लेते थे वह भी भ्रमपूर्ण साबित होचुका है। हाँ, यह अवश्य है कि नींद की गंभीरता के अनुपात से कुछ कम घंटों से भी काम चल सकता है। जिन्हें स्वभावतः गहरी नींद आती है या जिन्होंने इस कला को हस्तगत कर लिया है वे, जहाँ दूसरों को सात-आठ घंटे सोने की जरूरत होती है, अपना काम ५-६ घंटों में ही चला लेते हैं या यह कहें कि वे इतने ही समय में दिनभर के काम की थकान निकाल लेते हैं और दूसरे दिन के काम के लिए तरोताजा होकर उठते हैं।

जहाँ एक ओर मीठी नींद लोगों को आनन्द, खुशी, ताजगी प्रदान करती है वहाँ ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो सोकर ऐसे थके उठते हैं जैसे कि रातभर खेत गोड़ते रहे हों। अनेकों की रात तारे गिनते बीतती है और कुछ ऐसे भी मिलेंगे जो रातभर खाट पर आँखें मूंदे, घर्र-घर्र नाक बजाकर भी सवेरे यह निश्चय नहीं कर पाते कि वे रात को सोये रहे हैं या जागते। यह दशा अक्सर धीरे-धीरे ही उत्पन्न होती है और यदि स्वास्थ्य ढीला-ढ़ाला ही चलता है तो एकाएक भी उत्पन्न होसकती है। जो भी हो, यह रोग आदमी के जीवन को दुःखमय बना देता है। समझदार को इस दशा से यही संकेत ग्रहण करना चाहिए कि अच्छे दिखनेवाले शरीर के भीतर बड़ी पोल-पट्टी चल रही है।

अनिद्रा का कारण अक्सर मानसिक अथवा शारीरिक कार्याधिक्य ही हुआ करता है। मानसिक कार्य से आदमी का मस्तिष्क ही नहीं थकता, शरीर भी बुरी तरह थकता है। इसलिए अधिकतर इस रोग के रोगी मानसिक कार्य करनेवाले ही पाये जाते हैं। यदि शारीरिक कार्य भी बहुत कठिन प्रकार का एवं शक्ति से अधिक किया जाय तो छीजन और थकान स्नायुजाल को हिला देती है और शरीर के समन्वयीकरण की विधि बिगड़ जाती है और नींद में बाधा पड़ती है। पर ऐसा बहुत कम होता है कि शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्ति को बढ़िया नींद न आवे। श्रम करना तो नींद आने की एक ही औषध है।

चिन्ता, विषय-भोग सम्बन्धी मानसिक चित्र देखते रहना, किसी भी इन्द्रिय के वशीभूत होना, सिगरेट-तम्बाकू का अधिक व्यवहार, रात को देर से भोजन करना, रात गये तक व्यापार सम्बन्धी कार्यों से माथा-पच्ची करते रहना, उत्तेजनापूर्ण साहित्य का अध्ययन, बन्द कमरे में सोना, मादक द्रव्यों का व्यवहार, सोने से पहले ताश-शतंरज आदि खेलना नींद को काफूर करने में एक-से-एक बढ़कर हैं। हृदय की धड़कन, अपच, गठिया या किसी तरह का दर्द, दांतों की पीड़ा आदि भी नींद उड़ा दे सकते हैं। यदि ये कारण हों तो इनके निवारण द्वारा ही नींद आवेगी। यदि पड़ोस में शोर-गुल होता रहे तो भी नींद नहीं आती। ऐसी हालत में उस स्थान को छोड़ना ही श्रेयस्कर है। कई अनिद्रा के रोगी केवल इसी लिए अपने रोग को लिये फिरते हैं कि उन्हें सोने को कभी शान्त वातावरण नहीं मिलता। लोग सोचते रहते हैं कि शोर-गुल के आदी

होने पर नींद आने लगेगी। पर अनुभव बताता है कि शोर-गुल में कभी नींद नहीं आती। पड़-पड़, तड़-तड़ की आवाज कान के पर्दों पर चोट करती रहती है और नींद को कभी गहरा नहीं होने देती।

कभी-कभी आत्मग्लानि के कारण भी नींद नहीं आती। किये गये पापों की याद दिल को कोंचती रहती है। इसके लिए भी यही कहा जा सकता है कि बीमार पड़ने के पहले ही बीमारी का बचाव करना अच्छा है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपने अपराधों को, पापों को, एक थाती की तरह हृदय में रखे रहते हैं और परेशान होते रहते हैं। प्रायश्चित्त से हो अथवा जिस तरह भी हो, उन्हें अपनी आत्मा का परिशोधन कर डालना चाहिए। अपने प्रिय मित्र या आदरणीय गुरु पर अपने मन के कलुष को प्रकट कर देने से भी मन हलका होजाता है। अपराधों को अपने में बांधे न रहिए। भूत की भूलों के संसार में न बिचरिए, उसे मुर्दा समझकर गाड़ दीजिए और भविष्य के लिए सजग रहकर अच्छे काम करने की आशा बाँधकर आगे कदम बढ़ाइए।

किसी कठिन काम से बचने के लिए भी लोग अक्सर नींद पर फूंक मार देते हैं। यह वे अपनी जानकारी में कम, अनजान में ही अधिक करते हैं। सोने जाते समय वे सोचते हैं कि कल तो वह बेहूदा काम करना है, कहाँ यह बला सिर पर पड़ी। पर जिस तरह सिर-दर्द काम से छुट्टी दिला सकता है, उसी तरह अनिद्रा भी तो कार्य-मुक्त कर सकती है। सबेरे मुंह बनाये वे खड़े होजाते हैं। कहते हैं, भाई, नींद ही नहीं आई, काम कहाँ से करें। यह आदत काम को ढेर-का-ढेर इकट्ठा कर देती है, जो सभी कठिनाई का जामा पहने रहने पर भी करने ही पड़ते हैं। कैसे भी पेचीदा क्यों न हों, नित्य के कार्य पूरे करके मीठी नींद सोना काम के डर से रात-भर जागते रहने से कहीं अच्छा है।

सोना एक कला

सोना भी एक कला है। उसके अंगों और उपांगों से परिचित रहना चाहिए।

१—अच्छी नींद, खुली हवादार शांत जगह में साफ-सुथरे बिछावन, हलके ढीले कपड़े पहनकर सोने से ही आती है।

२—मुझे नींद नहीं आवेगी ऐसी शंका करने से नहीं, सारी झंझटों को दिमाग से निकालकर संशय को ताक पर रखकर बदन को ढीला करके आराम लेने से ही नींद आती है।

३—सोने के समय के आध घंटा पहले दिमाग पर जोर डालनेवाले कामों से छुट्टी पालेनी चाहिए।

४—बँधे समय पर भोजन करना, और बँधे समय सोने जाना, निद्रा के ये दो परमप्रिय सहोदर हैं।

५—शरीर की गर्मी सम रहे, इसलिए मिर्च-मसाले का व्यवहार कम-से-कम कीजिए और मांस तथा मादक द्रव्यों का व्यवहार तो कदापि न कीजिए। फल-तरकारियों का अधिक व्यवहार कर अपना रक्त विकार-रहित और शुद्ध बनानेवाले भाग्यवान की निद्रा चेरी बनी रहने में अपना सौभाग्य समझती है।

अच्छी नींद लाने के इच्छुक उपर्युक्त नियमों से खूब लाभ उठा सकते हैं। पर जिनकी नींद चली गई है, जो निद्रा प्रियतमा से चिरवंचित हैं, उन्हें तो कुछ अधिक साधन की जरूरत होगी। बाजारू दवा के फेर में पड़कर तो आप नींद को अधिकाधिक दूर ही भगावेंगे। जो दवा नींद को आज आपमें कैद कर देगी, कुछ दिन बाद उसीके लिए उसकी दूनी मात्रा की जरूरत होगी और फिर तो वैसी नींद दवा के व्यवहार के पहले आती थी कैसी उसकी हजार मिन्नत करने पर भी नहीं आवेगी। इन दवाओं से इतनी ही हानि होती तो बस था, पर ये तो इतनी विषैली होती हैं कि इनके कुछ दिन के ही व्यवहार से अच्छे-से-अच्छे शरीर टूट जाते हैं। इनसे सदा बचे रहने में ही कुशल है।

अनिद्रा का रोग जड़ से तो युक्त आहार-विहार, नित्य की कसरत एवं चिन्तारहित जीवन द्वारा ही दूर किया जा सकता है एवं लाभ को स्थायी बनाया जा सकता है। नींद आना सिर में धीरे-धीरे रक्त के अभाव की एक क्रिया है और अनिद्रा रक्त के सिर में अधिक होने का सूचक है। सोने के पहले पांच-सात मिनट गरदन और कमर की कोई हलकी-सी कसरत करने से अथवा गरदन पर चार अंगुल चौड़ी और एक अंगुल मोटी ठंढे पानी में भीगी पट्टी बाँधने से सिर हलका होजाता है और नींद आजाती है। ऐसी ही आठ अंगुल

चौड़ी पट्टी कमर में लपेटने से बड़ा आराम मिलता है और नींद बहुत जल्द आती है। गीली पट्टी पर सूखा तौलिया लपेटकर बिछावन को भीगने से बचाया जासकता है।

सोने के पहले थोड़ेसे पानी से फुर्ती के साथ बदन मलते हुए नहाना भी बहुत कारगर साबित हुआ है। एक पाव गरम पानी या आधा पाव गरम दूध पीकर सोते ही नींद आते देखी गई है। पेट में गरम द्रव्य के पहुंचते ही खून सिर से पेट की ओर दौड़ता है और नींद आजाती है। सोने के पहले एक सेब खाने से भी बहुधा लोग निद्रा प्राप्त करने में सफल हुए हैं।

मानसिक उत्तेजना के कारण जिन्हें नींद नहीं आती उन्हें सोने के पहले शरीर-ताप से दो-तीन डिगरी अधिक गरम पानी में अपने पैर दस-पन्द्रह मिनट तक रखने चाहिए। इस समय सिर पर ठंढे पानी से भीगा तौलिया रखने से काम और जल्द बनता है। ऐसे रोगी यदि आदमकद टब में शरीर-ताप जितने गरम पानी में आध घंटे तक लेटे रहें तो उन्हें इसके बाद अवश्य नींद आवेगी। यह नहान स्नायु-जाल की उत्तेजना को शांत करता एवं स्नायुओं को सशक्त बनाता है। आदत होने पर पानी ही में नींद आजाती है। ऐसी आध घंटे की नींद से वही लाभ होता है जो बाहर दो घंटे सोने में। पानी में जो शिथलीकरण होता है वह योगी के लिए भी दुर्लभ है।

अधिक लोगों को तो इसीलिए नींद नहीं आती कि वे शारीरिक श्रम बिल्कुल नहीं करते। दिन में यदि काम से थकान पैदा करली जाय तो नींद आने में सन्देह न रहेगा। सोने से पहले टहलने जाकर भी यही लाभ प्राप्त किया जासकता है। मील दो मील तेजी से टहलने निकल जाइए और वापसी में कदम धीरे कर दीजिए, घर तक पहुँचते-पहुँचते ऐसा अनुभव कीजिए कि आप खूब थक गये हैं तथा चाल और भी धीमी कर दीजिए, बिस्तर पर देह फैलाते ही नींद आने में कोई सन्देह नहीं रहेगा।

कई लोग तरह-तरह के विचारों के आवेग के कारण सो नहीं पाते। वे एक दूसरी तरकीब करें। एक बालिश्त लम्बी-चौड़ी दपती पर एक सफेद कागज चिपका लें। आराम से करवट के बल कमरे की बत्ती बुझाकर या धीमी करके लेटें और एक पेंसिल से उसपर आधी-आधी मिनट पर शून्य के चिन्ह बनाते जायँ। सबेरे उठने पर उन्हें अपनी पट्टी पर पाँच-सात चिन्ह ही बने मिलेंगे।

ये सब उपाय हैं, जिनमें से समय और रोगी की अवस्था के अनुसार एकाधिक का प्रयोग कर मैंने कितने ही नये और पुराने रोगियों को 'पवित्र निद्रा', 'देवताओं का उपहार निद्रा', 'प्रकृति-भोजनशाला का पुष्टतम खाद्य निद्रा' प्राप्त करने में सहायता दी है। आप या आपका पड़ोसी यदि इस रोग से पीड़ित हैं तो लेख में बताये गये नियमों पर चलकर अवश्य ही लाभान्वित होसकते हैं।

डायरी का एक पृष्ठ

सारनाथ सवा महीने की गैरहाजिरी के बाद आया था, इसलिए कुछ काम संचित होगया था। उससे उलझ रहा था। परसों ज्वर आगया। दो एनिमा, पेड़ू पर ७-८ मिट्टी की पट्टी और अभीतक केवल जलाहार के प्रभाव से बेचारा कल रात ही भाग गया। जहाँ न खाने को मिले, न दवाई, वहाँ रहकर वह क्या करेगा? आज शाम को ज्वर छूटने के २४ घंटे बाद किसी तरकारी का कुछ रस लेने का संकल्प है। इस समय दवात की स्याही तो सूखी जारही है, किन्तु पसीना खूब बह रहा है।

—आनन्द कौसल्यायन

मूलगन्ध कुटी विहार, सारनाथ
९-६-४२

मैं प्राकृतिक चिकित्सक कैसे बना

प्रोफेसर भवानीप्रसाद, प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्रोपाध्याय
काँगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय

किसी संस्थापित सिद्धान्त वा वाद की कोरी विचारात्मक दार्शनिक चर्चा की अपेक्षा उसके कार्य-प्रसूत मूर्तिमान उदाहरणों की कथा अधिक प्रभावोत्पादक और मन में जमनेवाली होती है। यह बात स्वास्थ्य और चिकित्सा सदृश क्रियात्मक विज्ञान के लिए तो और अधिक सही है।

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोगों के मूलोच्छेदन में सफलता और किसी स्वास्थ्य को हारे हुए,देह के दिवालिये, व्यक्ति की अप्राकृतिक जीवन को छोड़ प्राकृतिक जीवन के ग्रहण द्वारा स्वास्थ्य का नया पट्टा पाने की चरितात्मक कथाएँ बहुतेरे दुखी जनों को भयंकर रोगों के पंजे से छुड़ाकर उन्हें अकाल मृत्यु की यातनाओं से बचा सकती हैं और अपने साधारण स्वास्थ्य को समुन्नत करके सुरक्षित बनाये रखने के अभिलाषी जनों का बहुत कुछ भला कर सकती हैं। इसलिए मैं इन पंक्तियों में अपने प्राकृतिक चिकित्सा की सहायता से अकाल मृत्यु से बचने और उसके (स्वभाविक स्वास्थ्य-शास्त्र के) भक्त बन जाने की बात संक्षेप में यहाँ देना चाहता हूं।

मेरे बड़कों में कोई अपने जीवन के पचास वर्ष पूरे नहीं कर पाता था। वे अपनी युवावस्था में ही इस संसार से विदा होजाते थे। इसलिए उनकी यह धारणा होगई थी कि उनके इस दुर्भाग्य का कारण किसी रुष्ट देवता या औलिया का अभिशाप है। चालीस की उम्र में मैं भी समझने लगा था कि मेरा अन्तकाल अब नजदीक ही है। उस समय मैं जीर्ण अजीर्ण--अपच रोग से ग्रस्त था। बचपन से ही मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। हर साल गरमी और बरसात में मेरे मँह पर बहुत फुंसियाँ निकला करतीं और इन फुंसियों में से खराब खून को चूसने के लिए जोंकें लगवाई जातीं। पर नतीजा कुछ न होता। बल्कि और खराब। जोंकों के काटने से मेरा मुँह भयंकर रूप से सूज जाता था। फुंसियों में पीप बढ़कर भारी पीड़ा होती थी और मुँह पर से बाल-सुलभ शोभा चली गई थी। लोगों का खयाल है कि जोंकें अशुद्ध रक्त पीती हैं, पर यह गलत जान पड़ता है। जोंकिए जोंकों के पेट से जो काला रुधिर निकालकर दिखाते हैं वह बाहर निकालने पर हवा लगने से काला पड़ जाता है और लोग समझ लेते हैं कि हमारा खराब खून जोंक ने खींच लिया है।

मेरे मुँह की फुंसियों का कारण मेरा अप्राकृतिक आहार--मिर्च, तेल का अचार तथा तीक्ष्ण मसालों का अति सेवन था। अथवा माता के गर्भ से ही मुझे विकृत शरीर विरासत के रूप में मिला था, क्योंकि मेरी माता की मृत्यु भयंकर प्रकार की चेचक से हुई थी। मेरे पिता की मृत्यु भी तैंतीस वर्ष की आयु में ही होगई थी। उस समय मेरी आयु तेरह वर्ष की होगी। पिता की मृत्यु के बाद घर की देख-रेख का भार मुझपर पड़ा। घर में अक्सर लोग बीमार रहते और मुझे उनके लिए वैद्य-हकीमों के यहां दौड़ना पड़ता। इसी सिलसिले में चिकित्सा-कार्य के प्रति मेरा आकर्षण होगया और बहुतसे नये-पुराने ग्रन्थ पढ़कर मैं नीम हकीम बन गया।

मैं दूसरों की दवा तो करने लगा, पर मेरा पुराना अजीर्ण रोग नहीं छूटा। किसी वैद्य, हकीम, डाक्टर की दवा मैंने बाकी नहीं रखी। पर किसीसे कुछ हुआ नहीं। अन्त में मुझे एक परोपकारी प्राकृतिक चिकित्सक मिले, जिन्होंने मुझे लूई कूने की पद्धति सिखलाई। मैं नियमित बाथ लेने लगा और अपने भोजन का क्रम बिल्कुल बदल दिया। मिर्च, मसाले, खटाई, मिठाई, पान वगैरह छोड़कर बिल्कुल सादे भोजन पर आगया। इससे मेरा जीर्ण रोग जड़ से जाता रहा। आज मेरी आयु ६५ वर्ष की होने पर भी मेरी कार्य करने की शक्ति यथेष्ट है।

मैंने बहुतों की चिकित्सा सफलतापूर्वक की है और इसका विलक्षण प्रभाव देखा है। मैं ऐसे बहुतों को जानता हूं कि जो जीवन से निराश होचुके थे पर इस चिकित्सा से उन्हें नया जीवन मिल गया है। आशा है। 'जीवन-साहित्य' के पाठक इस सहज प्रणाली को अपनाकर अपना जीवन सुधारेंगे।

'यह उतना ही कठिन है जितना कि ...'

एक प्राकृतिक चिकित्सक

ईमानदार होना उतना ही कठिन है जितना कि बेईमान होना, तब फिर ईमानदार ही क्यों न बना जाय ? सच बोलना उतना ही कठिन है जितना कि झूठ बोलना, तो सच ही क्यों न बोलें ? स्वस्थ रहना उतना ही कठिन है जितना कि अस्वस्थ रहना, तब स्वस्थ ही क्यों न बनें ?

सवाल यहाँ यह पैदा होता है कि हम स्वस्थ रह कैसे सकते हैं ? हम अस्वस्थ हैं क्यों ?

उच्च और मध्यम श्रेणी के लोगों के बुरे स्वास्थ्य में मुख्य कारण तीन हैं :—

(१) स्नायविक दबाव, जो आगे चलकर मनुष्य में भय की भावना के संचार का कारण बनता है ।

(२) स्वस्थ्यनियमों से विरुद्ध भोजन के तरीके ।

(३) समुचित व्यायाम का अभाव ।

(१) स्नायविक दबाव--हममें से बहुतेरे हैं, जो पैसा कमाने के पीछे बेतहाशा पड़े रहते हैं । किस तरह जल्दी-से-जल्दी अधिक-से-अधिक धन आ जाय, यही धुन उन्हें परेशान किये रहती है । धनाकांक्षा बुरी बात नहीं है, सीमित रूप में इसका होना अच्छा है । हमें मिथ्याचारी बनने से अपनेको बचाना चाहिए । हम बाहर से दुनिया के धन-दौलत अथवा सुख-समृद्धि की निन्दा करें पर मन में सांसारिक भोगों का जोरों से चिन्तन करें, यह मिथ्याचार है ।

हम अपने मजहबों के अनुसार गीता, कुरान आदि धार्मिक ग्रन्थ पढ़ते हैं और यह सोचते हैं कि हम भौतिक सुख-समृद्धि से उदासीन हैं। लेकिन वास्तव में यह सब बहानाभर है । इस प्रवृत्ति को दूर करने के लिए हमें काफी ईमानदारी से काम लेना चाहिए । धनोपार्जन करने और उसकी हिमायत करने में शर्म नहीं आनी चाहिए ।

लेकिन धन कमाने की तीव्र इच्छा और हमेशा उसके पीछे पड़े रहने के कारण हमारे स्नायुओं पर अनावश्यक भार, तनाव पड़ता है । बहुतेरे प्रतिभावान युवकों को मैंने देखा है कि २५-३० साल तक बड़े परिश्रम, दौड़-धूप और फिक्र-चिन्ता के बाद धन तो खूब कमाया, पर इस धनोपार्जन में उन्होंने अपनी स्नायु-प्रणाली को अव्यवस्थित और बेदम कर डाला । अब वे अपने स्वास्थ्य तथा सुख से हाथ धो बैठे हैं और अपने दुःखमय जीवन का अवशिष्ट भाग अपने खोये हुए स्वास्थ्य और सुख को पुनः प्राप्त करने की झूठी आशा में अपने अधिकांश एकत्रित धन को नष्ट करते हुए व्यतीत कर रहे हैं । मुझे अचरज होता है इस बात पर कि धन के पीछे स्वास्थ्य को इस तरह लोग कैसे गँवा देते हैं ? पहले स्वास्थ्य गँवाकर धन कमाते हैं, फिर धन गँवाकर स्वास्थ्य कमाना चाहते हैं । अन्त में धन भी जाता है और गया हुआ स्वास्थ्य फिर नहीं लौटता । यों धन एकत्रित करना अन्त में केवल संकट और दुःख का कारण बनता है ।

इस समय मेरे इलाज में दो नवयुवक हैं । दोनों काफी धन-सम्पन्न हैं । पर वे और धन बढ़ाने के काम में इतने अधिक लवलीन रहते हैं कि आराम या विश्राम के लिए उनके पास समय ही नहीं बचता । न समय से खा-पी सकते, न मित्रों से मिल-जुल पाते, न मनोरंजन के लिए, जिससे स्नायुओं को आराम मिले, कोई समय निकाल पाते हैं । उनमें से एक की उम्र मुश्किल से २० साल है, पर वह रक्त-दबाव की अधिकता से पीड़ित होरहा है । दूसरा नवयुवक स्नायु-दौर्बल्य के किनारे पर खड़ा है । देखता हूँ उन्हें कितना ही सावधान करो, उनपर कोई असर नहीं होता । उनकी शराबियों की-सी हालत है । वे चाहते हैं कि धनलिप्सा से अपना पिंड छुड़ा लें, पर इसमें वे असमर्थ-से होरहे हैं । उन युवकों के इस पागलपन से होनेवाले नतीजे का मुझे पूरा पता है । पर मैं उन्हें इस पागलपन से निकालने में असमर्थ होरहा हूँ ।

इसी प्रकार अधिकारलिप्सा का भी शरीर और मस्तिष्क पर मादक प्रभाव पड़ता है। इसका शिकार होनेवाला व्यक्ति सिवाय अधिकार-प्राप्ति की प्रगाढ़ लालसा के और सब कुछ भूल जाता है। उसकी और-और की रटन मिटती ही नहीं। आज हम जो दुःख युद्ध के कारण भोग रहे हैं, वह अधिकांश में उन प्रतिभावान व्यक्तियों की दूसरों पर अधिकार स्थापित करने की प्रबल इच्छा का फल ही तो है? ये लोग अपने अधिकारों का उपयोग समाज-विरोधी कार्यों में करने के बजाय सामाजिक उपयोगी कार्यों में करते तो उनका अस्तित्व मानव-जाति के लिए अभिशाप होने के बदले वरदान के रूप में परिणत होजाता।

जब किसी व्यक्ति की आकांक्षा, चाहे वह धन के लिए हो या अधिकार के लिए, स्नायविक शक्ति की सीमा लांघ जाती है तो उसके स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा होजाता है। हमारे शरीर की मांसपेशियों, पाचन-प्रणाली तथा अन्य महत्त्वपूर्ण क्रियाओं का संचालन स्नायु-प्रणाली के द्वारा होता है। जब स्नायु-प्रणाली पर आवश्यकता से अधिक खिंचाव या दबाव पड़ता है तब हृदय, आमाशय तथा चर्म, प्लीहा, उदर, फेफड़ा आदि महत्वपूर्ण अंग सामान्य रूप से अपना कार्य पूरा नहीं कर पाते। ऐसे व्यक्ति को अनिद्रा रोग होसकता है, वह बेचैन और चिड़चिड़ा बन सकता है। हृदय जोरों से धड़कने लगता है या हृदय की गति बहुत मन्द होजाती है। वे साधारण भोजन पचाने में भी असमर्थ होजाते हैं। कब्ज पैदा हो जाता है। उनके शरीर का रक्त बिल्कुल विषाक्त होजाता है।

शरीर की यह विकृत अवस्था मानसिक और आध्यात्मिक दुर्बलता पैदा कर देती है, किसी काम में एकाग्रता न लगने की शक्ति जाती रहती है। साहस का स्थान भय ग्रहण कर लेता है—आशा का स्थान निराशा लेलेती है। फिर तो सारा जीवन ही भारमय और दुःखपूर्ण बन जाता है। ऐसे व्यक्ति अक्सर गम्भीरतापूर्वक आत्महत्या करने का विचार करते रहते हैं। ऐसे जीवन से जिसमें लेशमात्र भी सुख नहीं रह गया है, वे छुटकारा पा जाना चाहते हैं उनके हृदय से परमात्मा परे होजाता है और पाप-ताप आबसते हैं।

(२) स्वास्थ्यनियमों के विरुद्ध भोजन के तरीके--

पोषण-तत्त्व सम्बन्धी अनुसन्धान करनेवाले कोनूर के डा० मैकरीसन आदि विशेषज्ञों ने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करके बता दिया है कि चूहों को यदि साधारण बंगाली अथवा मद्रासी के भोजन पर रखा जाय तो वे बहुत जल्द मर जाते हैं। इसमें कल्पना से काम नहीं लिया गया है, बल्कि इसे प्रयोग द्वारा प्रत्यक्ष किया गया है। हममें से अधिकांश भोजन को उदर-पूर्ति का एक साधनमात्र समझते हैं, उनकी दृष्टि में भोजन का इसके सिवा और कोई महत्त्व ही नहीं जान पड़ता। भोजन हमारे लिए प्राणदाता है, उससे हमें जीवन मिलता है। लेकिन जब वह गलत तरीके का हो तो उससे अच्छे फल की आशा कैसे की जा सकती है? लेकिन इस बात पर कौन ध्यान देता है?

हम भोजन में कोई सुधार करने के बजाय सिर्फ इस बात पर आश्चर्य प्रकट करना जानते हैं कि संसार के अन्य देशों के प्राणियों की अपेक्षा भारतीयों की औसत आयु इतनी कम क्यों है? हमारा शारीरिक सामर्थ्य इतना क्षीणप्राय क्यों है? हमारे यहाँ मृत्यु-संख्या इतनी अधिक क्यों है? इसके लिए हम केवल अपने भाग्य को दोष देना जानते हैं। अक्सर लोगों को यही कहते सुना जाता है कि 'भाई! क्या करें, हमारा जन्म ही किसी ऐसे नक्षत्र में हुआ है, जिसकी वजह से हमें जिन्दगी-भर दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ता है।' कभी-कभी लोग अपनी इस हीनावस्था के लिए अपने अभिभावक तथा माता-पिता को दोषी ठहराते हैं। बस, सिवा भोजन के अन्य सभी बातों को अपनी इस दुर्दशा का कारण मान सकते हैं!

जबतक हम शरीर-विज्ञान की दृष्टि से अपने भोजन में आवश्यक सुधार नहीं करते, जबतक हम अपनी रसना (जीभ) पर, जिसे मिर्चें, मसाले, पकवान और सुस्वाद भोजनों की चाट लग गई है, अधिकार नहीं जमाते और उसे इस योग्य नहीं बनाते कि वह केवल उन्हीं वस्तुओं का स्वाद ले कि जो हमारे शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं, जबतक हम खान-पान के अपने परम्परागत तरीकों से छुटकारा नहीं

(शेष पृष्ठ २८ पर)

हमारा हृदय और उसके रोग

डाक्टर के० आर० दिलकश, एम० एस० बी० एन० डी०

हृदय

मानव शरीर की इस आश्चर्य जनक मशीन में हृदय एक ऐसा पुर्जा है जो मनुष्य के जन्म से ही नहीं किन्तु उसके गर्भ में आने से लेकर अन्त होने तक पल भर का भी विश्राम लिये बिना निरन्तर अपना काम करता रहता है। यह कुछ मांस पेशियों से संगठित एक लाल रंग का थैला सा है। आकार में मनुष्य की मुट्ठी के बराबर और प्रकार में एक कलमी आम की तरह। छाती के बाएं भाग में इसकी स्थिति है, काम इसका है सिकुड़ना और फैलना। एक मिनट में ७२ बार सिकुड़ता है और फैलता है।

हृदय के दोनों ओर दो फेफड़े हैं। और सामने की ओर रक्षा के लिए छाती की हड्डी और बाईं ओर की तीसरी, चौथी, और पांचवीं पसलियाँ हैं। हृदय की लम्बाई ५″, चौड़ाई ३½″ और मोटाई २½″ इंच होती है। भार लगभग ५ छटांक के होता है।

हृदय के चारों ओर एक झिल्लीदार थैली सी होती है जिसमें हृदय सुरक्षित रहता है। यह 'हृदयावरण' कहलाता है। मानव हृदय को बीच में से चीर कर देखने से हमें उसके अन्दर चार कोठरियां मिलेंगी। वास्तव में हृदय दो बड़ी दाईं और दो बड़ी बाईं कोठरियों में विभाजित किया जा सकता है। ये दो दाईं और दो बाईं कोठरियां फिर दो भागों में या कोठरियों में विभाजित की जा सकती हैं। ऊपर की दोनों कोठरियों में जिन्हें हम 'अलिन्द' कहते हैं शरीर से रक्त वापस आता है। और नीचे की कोठरियों यानी 'निलय' से रक्त शरीर के विभिन्न भागों में जाता है। 'अलिन्द' और 'निलय' के बीच में ऐसी दीवारें पाई जाती हैं जिनके द्वारों में होकर रक्त ऊपर की कोठरियों से नीचे की कोठरियों में ही आ पाता है। क्योंकि इनके द्वारों पर ऐसे पट अथवा किवाड़ लगे होते हैं जो एक ओर को खुलते हैं। ये 'कोष्ठछिद्र' और किवाड़ या 'कपाट' कहलाते हैं।

एक मिनट में ७२ बार सिकुड़ने के हिसाब से हृदय एक घंटे में ४३२० बार, एक दिन यानी २४ घंटे में १०३६८० और एक साल में ३७८४३२०० बार सिकुड़ता-फैलता रहता है।

हर सिकुड़न पर हृदय अपने अन्दर से एक छटांक से अधिक खून बाहर गुजार देता है। यों एक मिनट में लगभग ५½ सेर, एक घंटे में ७½ मन या यों कहिये कि एक दिन में १८० मन रक्त को अपने अन्दर से ढकेल कर शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचाता है। शरीर का कुल रक्त लगभग दो मिनट में हृदय की कोठरियों में होकर निकल पाता है।

अब आप खुद अन्दाज करें कि इस छोटे से मांस के थैले यानी हृदय को कितना कठोर परिश्रम करना पड़ता है। और यह सब इस ढंग से हमारे शरीर में होता रहता है कि हमें कुछ पता भी नहीं चलता। हमारा हृदय शरीर का एक सर्व प्रमुख और अत्यन्त आवश्यक अंग माना गया है। इसे चाहे जिन दामों निरोग रखना बहुत जरूरी है। पर आज सब खाका ही उल्टा है। सैंकड़ों अन्य रोगों की भांति हृदय के रोग भी रोज-रोज बढ़ते जा रहे हैं, सार्वत्रिक हो रहे हैं।

रोग

हृदय-रोग से मरनेवालों की संख्या कम नहीं है। डाक्टरों तथा अस्पतालों की जोरदार कोशिशों के बावजूद ऐसी बीमारियाँ रोज-ब-रोज बढ़ती जा रही हैं। चिकित्सालयों की बाढ़ ने मानव समाज की परेशानी, मुसीबत और घबराहट को जरा भी कम नहीं किया। जब इन स्वास्थ्य के ठेकेदारों यानी डाक्टरों के सामने, इस भयानक परिस्थिति के विरुद्ध आवाज उठाई जाती है तो ये ठेकेदार अपने पागलपन के नशे में केवल यह कहकर जनता को बहलाने की कोशिश करते हैं कि ये सब भयानक रोग तो सृष्टि के आदि से

ले आये हैं। पहिले पता लगाने के साधन नहीं थे, आज उपलब्ध हैं, इसीसे परिस्थिति भयंकर लगती है। भी हम लोगों के हाथ ऐसे रोगों का पूरा-पूरा निदान और ऐसी दवाइयाँ लग रही हैं कि हम ऐसे रोगों पर घ्र विजय पालेंगे। पर हम देखते हैं कि यह सारा आश्वासन झूठा है, दशा दिन-दिन बिगड़ ही रही है।

दवाइयों द्वारा रोग दूर करने की प्रणाली की नींव ही गलत सिद्धान्तों पर रक्खी गई है। फिर हम हानि उठावें तो उसमें क्या आश्चर्य है। (क्रमशः)

* * *

स्वप्नदोष

स्वप्नदोष से पीड़ित व्यक्तियों के हमारे पास अनेक पत्र आये हैं। उनका विस्तार से सम्मिलित उत्तर देना चाहते थे, पर स्थानाभाव के कारण इस अंक में यह सम्भव नहीं है। तबतक हम उक्त पत्र-लेखकों से निम्नलिखित पत्र से पथ-प्रदर्शन ग्रहण करने की सिफारिश करते हैं। इस पत्र के लेखक को जेल में 'आनन्दवर्द्धन' जी मिल गये थे और जो चिकित्सा लिखकर दी थी उससे उन्हें लाभ हुआ था। हमने उनसे अपना अनुभव लिख भेजने की प्रार्थना की थी। आया उत्तर यहां अविकल प्रकाशित किया जारहा है। नाम जानकर छोड़ दिया गया है। —सं०

श्रद्धेय भाई जी !

कल सायंकाल आपका पत्र मिला था। मुझे आपके नवीन परिचय की आवश्यकता नहीं है। जेल में श्री हरिभाई के साथ आपके बारे में बहुत बार चर्चा हुई है। जेल से छूटने के बाद तो दो दिन गोरखपुर रहा भी। आपसे मिलने की चेष्टा भी की, किन्तु मेरा दुर्भाग्य, आपसे भेंट न होसकी।

मेरा स्वप्नदोष सन् १९२० में आरम्भ हुआ। मनोविकार से तो कम, पर अव्यवस्थित भोजन से ही इसका ज्यादा सम्बन्ध था। तबसे अबतक वैद्यों की कितनी ही रासायनिक दवाइयाँ खाईं, कुछ थोड़ा-बहुत घट-बढ़ चाहे जाय किन्तु पन्द्रह दिन से अधिक कभी नहीं रुका। दवाइयों से जो हानियाँ हुईं उन्हें यहां कहने से कोई लाभ नहीं है। खास नुकसान यह हुआ कि इस विषय में मन पर काबू जाता रहा।

जेल में जाकर मन पर तो काबू हुआ; किन्तु स्वप्नदोष अब क्रमशः साप्ताहिक, यहाँतक कि तीसरे दिन, और एक सप्ताह तो प्रतिदिन होता रहा। कभी-कभी रात में दो-दो बार होजाता। बिल्कुल थक गया। डाक्टरी दवा से मुझे घृणा है, अतः जेल में राम पर भरोसा करने के सिवा और क्या होसकता था ?

मेरी इस कारुणिक दशा का मेरे एक मित्र के द्वारा श्री 'आनन्दवर्द्धन' जी को पता लगा। उन्होंने कृपा कर जेल के लिए अति दुर्लभ चीज पावभर पालक नित्य भेजनी शुरू की। मैं भोजन के साथ यह कच्ची ही खाने लगा। उनकी आज्ञानुसार भोजन में दोनों समय जेल के लिए अति सुलभ चीज़ चोकर भी एक-एक छटाँक शामिल किया और भोजनोपरान्त एक अमरूद और मूली भी खाने लगा। इनसे क़ब्ज चला गया और स्वप्नदोष भी। प्रथम ही उन्नीस रोज तक स्वप्नदोष नहीं हुआ, जो बाईस वर्षों के बाद एक नई बात थी और मेरी इस कारुणिक दशा को देखते हुए तो बहुत ही आश्चर्यजनक। तबसे मन भी शान्त है और घर पर आने पर भी इच्छा पर काबू है, यद्यपि पालक और फल नहीं मिल रहे हैं क्योंकि अभीतक दौरे में था। पर अब सारी व्यवस्था निश्चित होगई है, चोकर

मिलता जारहा है। और भी एक बड़ा लाभ हुआ है। मेरे एक कान में जो बिल्कुल बहरा था पहले से अन्तर होने लगा है, क्योंकि वीर्य संचित होरहा है।

'आनन्दवर्द्धन' जी ने मेरे लिए चिकित्सा का एक व्यवस्थापत्र भी दिया था जो किसी सज्जन ने जेल में ले लिया था पर उपचार स्मरण है। मैं प्रति दिन उन सूचनाओं का पालन करता हूँ। वे ये हैं—

(१) भोजन खूब चबा-चबाकर खाना।

(२) यह वहम निकाल देना कि कच्ची तरकारियां नुकसानदेह हैं।

(३) सोते समय पेशाब करके और जल पीकर सोना।

(४) पेशाब और पाखाने की इच्छा एक मिनट भी न रोकना।

(५) खुले कमरे या खुले बरामदे में सोना। मुंह न ढकना।

(६) नित्य कुछ न कुछ परिश्रम अवश्य करना।

(७) कुछ मौसमी फल अवश्य खाना। पर फल खाने के लिए पेट में जगह जरूर रखना।

अपने स्वास्थ्य के बारे में प्रसन्नता के कारण मेरे पास शब्द नहीं हैं।

आज से बिल्कुल निश्चिन्त रहना है। अब शाम के भोजन में अंकुरित गेहूँ और कच्ची तरकारियाँ खाकर रहना चाहता हूँ। 'आनन्दवर्धन' जी का तो जेल में नित्य का यही भोजन था। देखूं मैं चला सकूंगा या नहीं।

अपने रोग के बारे में अब मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है।

आपका भाई

×××

* * *

(२५ पृष्ठ का शेष)

पा सकते, तबतक हम स्वस्थ और सबल राष्ट्र बनने का स्वप्न नहीं देख सकते। मैं आज यहाँ बहस नहीं करूँगा कि सही भोजन क्या है। सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि साधारण लोग जो अपने भोजन में बहुतेरी रद्दी अनुपयुक्त महँगी चीजें रखते हैं, उनकी अपेक्षा चाहें तो कम खर्च में वे स्वास्थ्यदायक भोजन पासकते हैं।

(३) **अपर्याप्त व्यायाम**—हमारे शरीर में ७५ फी सदी मांसपेशियाँ हैं, इन मांसपेशियों को स्वस्थ और सबल बनाने के लिए हमें रोज कोई-न-कोई कसरत जरूर करनी चाहिए। लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है कि और तो और हम केवल अपने जबड़ों (मुख) की मांसपेशियों की कसरत, जो भोजन करने में होती है, पूरी नहीं करते। अर्थात् भोजन को पूरा चबाते नहीं। शरीर की अन्य मांसपेशियों की कसरत करना तो हम जानते ही नहीं। नहीं, उनकी हम उपेक्षा करते हैं। आज आम तौर से हमें या तो दुबले-पतले अथवा विजातीय द्रव्यों से परिपूर्ण स्थूलकाय व्यक्ति देखने को मिलते हैं। क्या ऐसे व्यक्तियों से राष्ट्र बनेगा? इसका उत्तर हमारे पाठक ही दें।

* * *

> “हम मान बैठे हैं कि दवा बिना रोग नहीं जाता। यह भारी भ्रम है।······बीमारी का इलाज वाजबी है, लेकिन उसे दूर करने को दवा लेना व्यर्थ है।······दवा से नुकसान ही नुकसान है।
>
> **मो० क० गांधी**

भरत की रामकहानी

श्री भरतदास अग्रवाल

यह राम के भाई भरत की कहानी नहीं है। यह एक नवयुवक भरत की कहानी है, जो गोरखपुर के निवासी हैं और उर्दू बाजार में सोने-चांदी के दुकानदार हैं। प्राकृतिक चिकित्सा की बदौलत इनका पीतल-सा पीला पड़ा हुआ, मुर्झाया बदन सोने की तरह चमकने लगा है। पाठक इनकी कहानी नीचे इन्हींकी जबानी सुनें।—सं०

मेरी उम्र १८ वर्ष है, वजन ११२ पौंड। दस वर्ष की उम्र से ही रोग ने घेरा। कमजोरी, कुछ-कुछ बुखार, सुस्ती। खाने में कोई सावधानी नहीं रखी। खटाई-मिठाई सब चलती थी। दवा डाक्टरी-वैद्यक दोनों की होती रही। डाक्टर सूइयां और टानिक देते रहे। सूइयां सैकड़े से ऊपर चुभाई गईं। नस में, पुट्ठे में, मांस में, जहाँ डाक्टर का जी चाहा घुसाता गया। डाक्टर के आदेश से रोटी-दाल, तरकारी, मक्खन, फल, खाता रहा। पढ़ाई डाक्टरों के हुक्म से छोड़ देनी पड़ी। दिनभर पड़े रहने का हुक्म था। यह हालत साल-डेढ़साल रही। इससे कमजोरी और बुखार कुछ दिनों के लिए गया सही, पर सालभर बाद फिर कमजोरी आई और बुखार भी। फिर डाक्टरी दवा का दौर चला। पहले डाक्टर······की और उसके बदल जाने के बाद डाक्टर······की। फिर वही सूइयां और टानिक। चार-पाँच महीने यही सिलसिला चला। रोज आठ-दस दस्त होते रहे। डाक्टरों ने खाना बन्द कर बारली के पानी पर रखा। आठ-दस पौंड वजन घट गया। फिर दोपहर का खाना शुरू हुआ। दवा चलती रही। डाक्टर दस्तों का कारण पेट में एक तरह की कीड़ियाँ बताते थे, पर जाँच में कभी कीड़ियाँ नहीं पाई गईं। आगे चलकर दस्तों की तादाद चार-पाँच होगई, पर दस्त की हाजत बराबर-सी रहने लगी। हर वक्त की हाजत से घबराकर डाक्टर को छोड़ा। वैद्य की शरण ली। वैद्यजी ने हाजत मिटाने, भूख बढ़ाने और घटे वजन को पूरा करने के लिए भस्म और आसव का इस्तेमाल कराया। कुछ फायदा हुआ, पर वजन न बढ़ सका। सालभर बिना दवा के बीता, पर फिर वजन घटता देखकर दुबारा डाक्टर की शरण ली। वजन पूरा हुआ, पर टट्टी की हाजत फिर जारी होगई। डाक्टर से बार-बार इसकी शिकायत करने पर डाक्टर ने कहा कि पुरानी बीमारी है, यह जायगी नहीं। इसपर दवा छोड़ दी और एक हकीमजी के चक्कर में पड़ा। महीनेभर उनकी दवा खाने के बाद भी निराशा ही हाथ लगी। फिर वैद्य···के पास गया। वह मेरे पिता के दोस्त हैं। उन्होंने कहा कि अच्छा हो कि आप इनका प्राकृतिक उपचार **'आरोग्य-मन्दिर'** में करायें। जरा देखा जाय कि प्राकृतिक चिकित्सा से भी कुछ होता है क्या? मेरे पिताजी ने मुझे **'आरोग्य-मन्दिर'** को इस शर्त पर सौंपा कि रोग हटे पर वजन एक औंस भी न घटे। उन्हें डर था कि प्राकृतिक चिकित्सा में लोग दुबले-पतले होजाते हैं।

मैंने दो महीने जमकर इलाज करवाया। मेरे भोजन में सुधार किया गया। कई प्रकार के स्नान दिलाये गये। व्यायाम कराये गये, मालिश हुई और सूर्य-किरण-चिकित्सा का प्रयोग भी हुआ। यहाँ मैं अपने इलाज का विस्तृत ब्यौरा देना चाहता था, पर स्थल-संकोच से उसे छोड़ देरहा हूँ। अब खुलकर पाखाना होता है। बराबर जो हाजत बनी रहती थी वह जाती रही। वजन अबतक आठ पौण्ड बढ़ चुका है। ताकत भी खूब बढ़ी है। स्वप्नदोष का होना बन्द होगया है। पीले मुर्झाये बदन में सुर्खी आगई है। और अब मुझे किसी तरह की शिकायत नहीं है।

विशेषज्ञ चाहिए

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

यदि हिन्दुस्तान को देहात मिटाकर शहरों का हिन्दुस्तान नहीं बनना है और यदि देहात का मिटाना असाध्य भी है तो हिन्दुस्तान का भला ग्रामोद्योगों में ही है, बड़े-बड़े कल-कारखानों में नहीं, इसे अब साबित करने की जरूरत नहीं रह गई है। यह भी अब सिद्ध हो चुका है कि ग्रामोद्योगों में खादी सब की सिरमौर है। लेकिन ज्यों-ज्यों यह विश्वास मजबूत होता जाता है त्यों-त्यों यह समस्या भी सामने आती जारही है कि खादी ही नहीं, तमाम हाथ की व घर की बनी चीजें मशीन की बनी चीजों से कम मजबूत न हों। भले ही वे सुन्दर व नफीस कम हों, कुछ मँहगी भी हों, लेकिन कम टिकाऊ न हों। यह अपेक्षा गाहक रक्खे तो उसे उचित ही कहना होगा। लेकिन कोरी दलीलों से, व्याख्यानों से या लेखों से हाथ की बनी चीजें मिल की चीजों से मजबूत नहीं बन सकतीं। यह अध्ययन अवलोकन, उद्योग व कौशल की अपेक्षा रखता है। इसमें बारीकी व गहराई दोनों तरफ जाने की जरूरत है। जबतक हम यह न जान लेंगे कि क्यों दूसरी चीज ज्यादा सुन्दर, मजबूत व टिकाऊ है, व हमारी चीज कमजोर व भद्दी है, क्या उपाय करने से ये कमियाँ व खामियाँ दूर हो सकती हैं, तबतक खादी या हाथ बनी कोई चीज ज्यादा समय तक महज भावना के भरोसे ही नहीं चल सकेगी। भावना तो तमाम आन्दोलनों का प्राण होती ही है, किन्तु जैसे आत्मा को भी अपना काम करने के लिए शरीर की जरूरत है वैसे भावना को भी स्थिर लाभ पहुँचाने के लिए मजबूत उपकरण तो चाहिए ही। अतः दिन-दिन इस बात की आवश्यकता महसूस हो रही है कि खादी आदि को पनपाना हो तो उनके प्रेमियों व भक्तों को कोरा जानकार ही नहीं पूरा कारीगर बने बिना गति नहीं है। दोनों चीजों का तुलनात्मक अध्ययन, वर्तमान औजारों अर्थात् यंत्रों में आवश्यक संशोधन व सुधार करने के लिए आवश्यक यांत्रिक ज्ञान, उसका प्रयोग व उपयोग करने के लिए जरूरी व्यवहार-ज्ञान, इसके बिना ग्रामोद्योग की प्रगति रुकने लगी है। प्रत्येक प्रान्त में प्रयोगशाला, विद्यालय, कारखाना (वर्कशाप) जरूरी है। लेकिन इनका आधार तो है इन विषयों व कामों के जानकार। इस समय व्याख्याताओं व लेखकों की बनिस्बत विशेषज्ञों की, विशेषज्ञ बननेवालों की बहुत जरूरत है।

कोई यह सवाल करेगा कि एक ओर हिन्दुस्तान पर लड़ाई के बादल मँडरा रहे हैं, दूसरी ओर महात्माजी व कांग्रेस के एक महान् क्रान्तिकारी आन्दोलन, या बगावत की शुरूआत होने को है, ऐसे प्रलय-काल में ये सब चीजें ठहरेंगी व चलेंगी किस तरह? यदि आपने, वर्तमान युद्ध किस तरह चल रहा है, उसके चलते हुए भी किस तरह नवीन युद्ध-सामग्री बड़े उत्साह प्रयास व परिश्रम के साथ तमाम कारखानों में बन रही है, नये-नये प्रयोग व सुधार भी किये जारहे हैं, इन बातों पर जरा भी ध्यान दिया है तो आपके मन में ऐसी शंका पलभर भी न ठहरनी चाहिए। जो विशेषज्ञ न बन सकें उन्हें कम से कम अपने काम की पूरी जानकारी व अपने काम को पूरी जिम्मेदारी व दक्षता के साथ चलाने की योग्यता तो होनी ही चाहिए। इसकी ओर हमने ध्यान नहीं दिया तो हमारा बहुतेरा परिश्रम इच्छित फल लाने में सफल न हो सकेगा, ऐसी शंका व चिन्ता होने लगी है। आशा है हिन्दुस्तान को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी, सम-भावी बनाने की व यहाँकी बेकारी तथा कंगाली मिटाने की जो लोग आकांक्षा रखते हैं वे इस तरफ जरूर ध्यान देंगे।

डोला-पालकी समस्या

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

संयुक्तप्रान्त के उत्तर-पश्चिम में गढ़वाल का पहाड़ी जिला कुछ दिनों से सवर्णों और हरिजनों के पारस्परिक संघर्ष के कारण विख्यात होरहा है। डोला-पालकी के झगड़ों के समाचार वहाँसे आये दिन मिलते रहते हैं। परन्तु शायद साधारण जनता को डोला-पालकी की समस्या का पूरा हाल न मालूम हो, इसलिए संक्षेप में उसका कुछ वर्णन नीचे लिखती हूँ।

गढ़वाल में हिन्दू अधिक हैं। उनमें छठा भाग हरिजन हैं, जो 'शिल्पकार' या 'डूम' और सवर्ण हिन्दू 'बिठ' कहलाते हैं। कुछेक हरिजनों की ही अपनी जमीन है, बाकी बिठ जमींदारों की जमीन पर मजदूरी करते हैं और उनकी सेवा के अन्य काम करके अपनी जिन्दगी बसर करते हैं। पर पिछले दिनों इनमें से कुछ लोग बाहर से पैसा कमा लाये हैं। इधर कई वर्षों से आर्यसमाज के प्रचार के कारण उनकी एक बड़ी संख्या अपनी शुद्धि कराकर आर्य कहलाने लगी। कई कुटुम्ब कुछ पढ़-लिख भी गये। उनकी सामाजिक-आर्थिक अवस्था कुछ उन्नत होगई। उनमें आत्म-गौरव का संचार हुआ। उन्हें अस्पृश्यता असहनीय हुई। पर गढ़वाल के 'बिठ' भाई जहाँ-के-तहाँ हैं। ऊँच-नीच के भावों के कारण हरिजनों का समानाधिकार उन्हें सहन नहीं होता। यहाँ पहले हरिजनों और सवर्णों में कोई संघर्ष नहीं था, दोनों मेल से रहते थे। यहाँतक कि एक-दूसरे को चाचा, बाबा, भाई, ताऊ कहकर पुकारते थे। पर अन्दर अस्पृश्यता और ऊँच-नीच के भाव जरूर थे। अन्यथा आज यह डोला-पालकी के किस्से पैदा न होते।

कुछ दशा सुधरने और जागृति आने पर हरिजनों ने सवर्णों के रीति-रिवाज अपनाने शुरू किये। सवर्णों से यह बिल्कुल सहा नहीं जाता। वे अपना अपमान मान कर उन्हें इससे रोकने का प्रयत्न करते हैं।

२२ दिसम्बर १९३३ को लंगूरी ग्राम के हरिजनों की एक बरात पालकी में मैंदोली ग्राम जा रही थी, मार्ग में जहरी गाँव के बिठों ने अपनी सरहद में बरात को पैदल जाने को कहा। बरात में पुलिस अफसर और कानूनगो भी थे। कानूनगो के कहने पर वर पालकी से पैदल होगया। दूसरे दिन जब बरात डोला-पालकी समेत उसी स्थान पर पहुँची तो वर तो पालकी से उतर गया पर वधू डोले में ही बैठकर उस रास्ते से निकल गई। इसपर कानूनगो ने कुछ बरातियों पर यह अभियोग लगाकर मुकद्दमा चलवाया कि उसकी आज्ञा भंग करके बरातियों ने वधू को डोले से नहीं उतारा, इससे गाँव का रिवाज भंग हुआ है। हाईकोर्ट के फैसले से हरिजन कानूनगो द्वारा लगाये अपराध से ही मुक्त नहीं हुए, बल्कि सदैव के लिए इस निर्णय द्वारा उन्हें डोला-पालकी के उपयोग का अधिकार मिल गया।

गढ़वाल में ऐसे भी अनेक गाँव हैं जहाँ हरिजन अपनी शादी के अवसर पर घी के पकवान नहीं बना सकते। जहाँ ऐसा किया गया वहाँ अन्त में बिठों से तंग आकर दण्ड देकर पिण्ड छुड़ाना पड़ा। अभीतक ऐसी प्रथाएं यहांके पिछड़े हुए भागों में मौजूद हैं।

हरिजन अब कहीं-कहीं वर को घोड़े अथवा पालकी पर और वधू को डोले पर लेजाते हैं। सवर्ण कहते हैं, पहले कभी ऐसा नहीं होता था; सवर्णों के लिए यह अपमानजनक है। इसलिए १९२० से आज तक उन हरिजनों की कई बरातें, जो अपने वर और वधू को डोला-पालकी पर लेजाते हैं, रोकी गई हैं। तिमल्याणी, ओडगाँव (आर्यनगर), भौंराड, बिजोली, मैंदोली, भोजपुर और अन्य कई स्थानों पर सवर्णों ने हरिजनों की बरातों को रोका और इस बात पर आग्रह किया कि डोला-पालकी को छोड़कर वर-वध को पैदल ले

जाया जाय। उधर हरिजनों ने भी इस अपमान का पूरा-पूरा विरोध किया। कितने ही अवसरों पर बरातें कई-कई सप्ताह रुकी पड़ी रहीं। कहीं-कहीं दो-दो वर्ष तक के लिए बरातें रोक ली गई, परस्पर मार-पीट हुई, दंगा-फिसाद हुआ, मुक़द्दमे चले। अन्त में सरकार और पुलिस की सहायता से बरातें निकाली गईं।

ऐसी ही एक घटना दिसम्बर १९४० में बिंजोली और मैंदोली में हुई। महात्मा गांधी को उसकी सूचना भेजी गई। उस समय अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध वहाँ सत्याग्रह का आन्दोलन चल रहा था। हरिजनों और हरिजन-सेवकों की ओर से कहा गया कि जबतक सवर्ण हरिजनों को नागरिक अधिकार देने पर राजी नहीं होते तबतक उन्हें अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करने का नैतिक अधिकार नहीं है। महात्मा गांधी ने इस कथन की सचाई को मानकर गढ़वाल में इस आन्दोलन को उस समय तक के लिए स्थगित कर दिया जबतक कि सवर्ण लोग हरिजनों को डोला-पालकी में अपने वर-वधू को लेजाने की खुशी से आज्ञा न देदें। इसपर सारे देश का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। कांग्रेस के नेताओं ने हरिजनों और सवर्णों में परस्पर समझौता कराने का उद्योग किया। पं० गोविंदवल्लभ पन्त, पं० जवाहरलाल नेहरू और अन्य कई नेताओं ने सवर्णों से अपीलें कीं। रुकी हुई बिंजौली और मैंदोली की बरातें अन्त में पुलिस और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट की सहायता से निकाली गईं। परन्तु परस्पर का संघर्ष तो बराबर जारी ही रहा। २३ फरवरी १९३९ के दिन लैंस्डौन में सवर्णों ने एक सभा की, जिसमें हरिजनों को भी बुलाया और इस सभा में यह प्रस्ताव पास किया कि सवर्ण हरिजनों को डोले-पालकी पर वर-वधू को लेजाने का अधिकार देते हैं परन्तु इतना चाहते हैं कि मन्दिरों के सामने से गुजरते हुए और अन्य ऐसे स्थानों के नजदीक से जाते हुए, जहाँ सम्मान के लिए सवर्ण भी अपने वर-वधू को उतारकर पैदल चलाते हैं, हरिजन भी डोला-पालकी से अपने वर-वधू को उतार कर पैदल चलावें। सवर्णों ने तो यह प्रस्ताव पास कर दिया और स्थान-स्थान पर कई सभाओं में यह प्रस्ताव दुहराया गया; परन्तु हरिजनों को, विशेषकर आर्य हरिजनों को, इससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने इसको स्वीकार करने से इन्कार किया। उनके मन में यह शंका थी कि मन्दिरों और सम्मानित स्थानों का बहाना करके सवर्ण भाई उनको अपमानित करेंगे और उन स्थानों पर भी जहाँ सवर्णों के वर-वधू डोला-पालकी पर लेजाये जाते हैं इनके वर-वधू पैदल चलाये जायँगे।

मई १९४१ में ठक्कर बापा और मैं इस घोर समस्या को सुलझाने गढ़वाल गये। दस-बारह दिन रहकर सवर्णों, हरिजनों और आर्यों से मिलकर पारस्परिक उलझनों को दूर करने का प्रयत्न किया। २३ फरवरी के प्रस्ताव का कुछ विस्तार करके दोनों पक्षों में समझौता करा दिया। तय पाया कि डोला-पालकी कमेटी के सदस्य नई बरातों को स्वयं मौक़े पर जाकर अपने सामने निकलवा दिया करेंगे और परस्पर के झगड़े का समझौता डोला-पालकी कमेटी के हरिजन और सवर्ण मेम्बर मिलकर स्वयं कर दिया करेंगे। सरकार ने भी इस काम में सहयोग दिया। डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने आवश्यकता होने पर पुलिस की सहायता देने का वचन दिया। इसके बाद एक जगह झगड़ा हुआ, पर काफी संख्या में बरातें शान्तिपूर्वक समझौते के साथ डोला-पालकी सहित निकाल दी गईं। गत वर्ष से अबतक उदैपुर, सीला, लंगूर, अजमेर, कौड़िया, बदलपुर, सावली और बिजलौट आदि पट्टियों (एक पट्टी में लगभग १०० से अधिक और २०० से कम गाँव होते हैं) के अनेक ग्रामों में लगभग २५ बरातें बिना विघ्न-बाधा के निकली हैं। गढ़वाल के हरिजन-सेवकों से मिलनेवाली सूचनाओं के आधार पर लगभग १६ बरातों को डोला-पालकी कमेटी और हरिजन-सेवकों ने स्थानीय बिठों का मत-परिवर्तन करके निकाला है तथा लगभग ११ बरातें बिना कोई सहायता प्राप्त किये ही निकली हैं। इन बरातों के निकालने में हमारे हरिजन-सेवकों ने स्थानीय बिठों का और समाजसुधारक तथा राष्ट्रीय सेवकों का सहयोग प्राप्त करने का पूरा उद्योग किया और वे कई स्थानों में सफल भी रहे। डोला-पालकी कमेटी के प्रयत्न करने पर कई बरातें ऐसी निकली हैं जिनमें बिठों ने अपने

हरिजन भाइयों को स्वेच्छा से डोला-पालकी उपयोग करने का अधिकार देदिया। ऐसी बरातें रामजीवाला, माला और खोलकांडी ग्रामों में निकली हैं। लगभग एक वर्ष तक शान्तिपूर्वक काम होता रहा। परन्तु अब फिर यह दुःखद समाचार दक्षिण गढ़वाल आर्यनगर (ओडगाँव) से मिला है कि वहाँ हरिजनों की एक और बरात रोक दी गई। यह बरात ओडगाँव से दांथा गाँव को जारही थी। वर पालकी में बैठा था। कुछ आर्यसमाजी कार्यकर्त्ता बरात के साथ थे। जगसियाखाल पहुँचने पर लगभग तीनसौ सवर्ण हिन्दुओं ने आकर बरात को रोक दिया। सड़क पर लकड़ी के बड़े-बड़े कुंदे डालकर रास्ता बन्द कर दिया। बरात सड़क के किनारे पर पालकी रखकर चुपचाप बैठ गई। थोड़ी देर बाद ७० गाँववासियों के साथ लड़की के पिता ने आकर कहा कि वह डोले-पालकी वाली बरात का स्वागत नहीं कर सकता। यह तो जाहिर है कि लड़की के पिता ने यह बात सवर्णों के भय से कही, परन्तु वर ने डोले से उतरकर जाने से इन्कार किया। यह कहा जाता है कि कन्या को किसी गुप्त स्थान में छिपा कर रखा गया है। परन्तु बिठों के भय दिखाने पर लड़की के पिता ने उन्हींकी सहायता से ऐसा किया। बिठों को यह डर था कि अगर लड़की को विशेष देख-रेख में छिपाकर न रखा जायगा तो कहीं सरकारी इन्तजाम के साथ डोला-पालकी न निकल जाय और लड़की का पिता बरातियों के कहने में न आजाय, इसलिए बिठों ने उसको अनेक प्रकार से भय दिखाकर ऐसा करने को मजबूर किया। एक आर्य हरिजन भाई श्री थानसिंह ने यह घटना होते देख उसी क्षण अपनी भतीजी का ब्याह उस वर के साथ कर दिया और इस नववधू को लेकर डोला-पालकी पर बरात ओडगाँव वापस आने को रवाना हुई। रास्ते में फिर सवर्णों का वही जत्था मिला और इस बार लाठी और पत्थर मार कर बरात को रोका गया। दयानन्द सालवेशन मिशन के पं० अर्जुनदेवजी को और अन्य कई लोगों को चोटें आई। बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर भी सवर्ण बरा को लेजाने देने पर राजी न हुए और जब अन्त में व से २५) दंडस्वरूप इस उसूल पर वसूल किये वि अधिकार न रहते हुए भी वह डोला-पालकी का उपयो कर रहा है तब बरात अपने घर तक आसकी वे रुपये बिठों ने परस्पर बाँट लिये थे। हरिजन-सेवक संघ के कार्यकर्त्ता श्री बल्देवसिंह आर्य ने बहुत कोशिशें के बाद किसी-किसी बिठ से उसमेंसे कुछ वापस भी कराया।

लगभग एक वर्ष तक डोला-पालकी का झग नहीं हुआ था। ऐसा समझा जाता था कि गढ़वा के सवर्ण भाइयों को अब समझ आगई है, वे जा गये हैं कि हरिजन भाई भी नागरिक अधिकारों में उनके समान हैं और इस प्रकार धींगाधांगी करके अत्याचा करना अन्याय है। पर यह घटना बता रही है कि अ तक सवर्णों के हृदय हरिजनों के प्रति साफ़ नहीं हु हैं। पुराने संस्कार बार-बार प्रबल होउठते हैं। गढ़वा के हरिजन-सेवकों को पूर्णरूप से सचेत होजान चाहिए। केवल हरिजन-सेवक ही नहीं बल्कि समस्त सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं का धर्म है कि वे इस कलंक को अपने प्रदेश से बिल्कुल मिटा दें। जबतक वे इस का को पूरा नहीं करते, जबतक वे हरिजन भाइयों को अत्याचार के भय से मुक्त कर अपने बराबर पूर्ण अधिका व्यवहार में दिलाने में सफल नहीं होते, तबतक वे किसी और क्षेत्र में काम करने के अधिकारी नहीं बनते एक बार सत्याग्रह-आन्दोलन को स्थगित करके महात्मा गांधी कार्यकर्त्ताओं को यह बात पूर्ण रूप से समझ चुके हैं। इसलिए गढ़वाल के समस्त कार्यकर्त्ताओं से मेरा सविनय निवेदन है कि वे इन घटनाओं को तुच्छ न समझें, ऐसा विचार न करें कि ये बातें समय बीतने पर अपनेआप ठीक होजायंगी। वे अपनी समस्त शक्ति लगाकर अस्पृश्यताजनित ऊँच-नीच के इन भावों को गढ़वाल-निवासियों के हृदय से पूरा-पूरा निकाल देने का भगीरथ प्रयत्न करें।

सम्पादकीय

बाढ़ के पहले बांध बांधो

कुछ लोग कहते हैं कि रोगी के लिए साफ हवा होनी चाहिए, उसके कपड़े धूप में दिये जाने चाहिएं, भोजन हलका होना चाहिए, वगैरा-वगैरा। ऐसे लोग यह नहीं समझते कि ये सब चीजें उस आदमी के लिए भी उतनी ही जरूरी हैं जो रोगी होना नहीं चाहता। अगर हम इन सब बातों की ओर खयाल रखें तो रोगी हों ही बहुत कम। रोगी होकर फिर अच्छा होने में जो खर्च, श्रम और परेशानी है रोगी न होने के यत्न में उससे बहुत कम मेहनत और खर्च है। पर अफ़सोस है कि लोग इन बातों को नहीं समझते। लड़का बीमार पड़ने पर तो वे उसके लिए अनार का भी बन्दोबस्त कर लेंगे, पर अच्छा रहते अमरूद भी मुहाल। अज्ञान के सिवा इसका और क्या कारण कहा जासकता है? कोई अपढ़ गंवार ऐसा ही करते हों सो बात नहीं है, बड़े-बड़े डिग्रीधारियों का रोज का यही ढर्रा है। तपेदिक होगया आदमी को, तो सौ रुपया महीना खर्च करके उसे भुवाली और अल्मोड़ा में रखना कबूल, पर उसी आदमी को तन्दुरुस्ती की हालत में साफ हवा में रखने के लिए अगर एक रुपया महीना मकान का ज्यादा किराया देना पड़ा तो मंजूर नहीं करेंगे। गरीबी का बहाना सामने है। पर बीमारी आते ही न जाने यह गरीबी कहां रफूचक्कर होजाती है। कहा जाता है कि तब तो मजबूरी होजाती है न। पर यह मजबूरी आती ही क्यों है? कहते हैं न,

दुख में राम सब कोई भजे, सुख में भजे न कोय,
जो सुख में राम भजे, तो दुख काहे को होय।

अखिल-भारतीय-चर्खा-संघ

गांधीजी को खुद अपनी जिन चन्द चीजों पर नाज है उनमें एक खास चीज खादी अर्थात् चर्खा है। इसपर लिखने, बोलने और समझाने में उन्होंने कभी कोताही नहीं की। साबरमती-आश्रम की बात है, वह एक दिन तकुए पर एक आश्रमवासी भाई से काफी देर तक बात करते और समझते-समझाते रहे। अन्त में मैंने पूछा, बापू, आप इन चीजों को बहुत वक्त देते हैं। बोले, 'तुम नहीं समझते कितनी जरूरी चीज है यह।' मैंने पूछा, और भी तो जरूरी चीजें हैं। बोले, 'नहीं, मेरे जीवन में से खादी को निकाल लो तो और बहुत कम बचेगा।' खादी को खड़ा करने के लिए उन्होंने अद्भुत लगन और श्रम से काम लिया है। अपने लिए वह खाना जितना जरूरी समझते हैं चर्खा चलाने को भी उससे कम नहीं मानते। खाने में रोज जितना वक्त खर्च करते हैं करीब-करीब उतना ही चर्खे में भी लगा देते हैं। और चीजों के बढ़ाने में दूसरे नेताओं ने उन्हें काफी सहयोग दिया है, पर यह तो उनकी अकेली मिल्कियत समझी जायगी। काँग्रेस पहले से थी, दलितोद्धार का काम भी कुछ समाजों की ओर से 'जरा मरा' पहले भी हुआ था, गोसेवा आदि की भी किसी रूप में चर्चा थी, पर खादी का क्षेत्र तो बिल्कुल अछूता था। उन्होंने इस मुद्दत से परती पड़े क्षेत्र को अपने श्रम से खूब जोता, सींचा।

उतावले लोग कहते हैं, इतने दिनों में क्या हुआ? ऐसों को मजदूर के श्रम का पता नहीं होता, ये 'मार मार' करना जानते हैं, हाथ से काम करना नहीं। घर में रहना सीखे हैं घर बनाना नहीं। ऐसे लोग जब किसी श्रमवाले काम में देर होती देखते हैं तो मजदूर को खूब डाँटते हैं, पर इनमें कोई मनचला उतावल के मारे काम में हाथ लगाने के लिए जरा आगे बढ़ आता है तब उसे पता चलता है कि अरे, यह तो मेहनत का काम है। फौरन हट जाता है और फिर जबान की उतनी तेजी तो नहीं दिखाता, पर बेहयाईवश मार-मार तो किये ही जाता है। खयालात के साथ हाथ नहीं दौड़ाये जा सकते। इस दृष्टि से देखें तो गाँधीजी का इस दिशा में किया हुआ काम अचंभे में डालनेवाला है।

मेरे सामने अखिल भारतीय चर्खा संघ का पिछले साल का वार्षिक विवरण है। 'जीवन-साहित्य' के बहुतेरे पाठकों ने—चर्खा-संघ के कार्यकर्ताओं को छोड़कर—उसका नाम सुना होगा, पर उसके बारे में अधिक जानकारी रखने-

वाले शायद थोड़े ही होंगे । हम चाहते हैं कि हमारे प्रत्येक पाठक, जिन्हें रचनात्मक कामों से कुछ भी प्रेम है, यह विवरण किसी खादी-भंडार से लेकर पढ़ें । इसमें उन्हें बहुत जानने-समझने की सामग्री मिलेगी । यों तो चर्खा-संघ की स्थापना १९२५ में हुई थी । पर इसके काम में जोर १९२९ से आया है ।

इसके पास इस समय ४५ लाख के लगभग की पूंजी है । अबतक इसने पौने चार करोड़ रुपये के लगभग मजदूरी गरीबों में बाँटी है । तीन लाख के लगभग आदमियों को इससे काम मिल रहा है । वर्त्तमान वर्ष में तो शायद यह संख्या दूनी होजाय । साढ़े तेरह हजार गांवों में काम होरहा है । ३,००० के लगभग इसके कार्यकर्ता हैं । अब तो इसका काम अधिक तीव्रगति से बढ़नेवाला है ।

चर्खा-संघ के आरम्भिक दिनों में जो खादी बनती थी उससे आज जमीन-आसमान का अन्तर होगया है । एक बार का जिक्र है, मैंने मलखाचक के खादी-भंडार में कागज में लपेटी हुई एक जोड़ा धोती देखी । पसन्द आई, लेना चाहा । मालूम हुआ, खास तौर से पं० मोतीलालजी के लिए बनी है । अब तो वैसी और उससे कहीं अच्छी खादी की धोतियाँ बनने, बिकने लगी हैं । सबसे बड़ी बात जो हुई है वह खादी की कला की उन्नति है । इसकी वजह से पहले जो चीज किसी खास प्रान्त या स्थान में ही बन पाती थी वह अब चाहे जहाँ, चाहे जिस गाँव में, बनाई जासकती है । खादी की कला को एक शास्त्र का रूप प्राप्त होगया है । उसके औजारों में बड़ी तरक्की हुई है ।

हम देख रहे हैं कि इस समय कपड़े की तंगी की वजह से खादी के फैलने की बड़ी गुंजाइश है और बहुत लोग इस ओर झुक भी रहे हैं । पर जो लोग इसकी कला से परिचित हुए बिना, इसका अभ्यास किये बिना, इसकी बारीकियों को समझे बिना, काम को शुरू करेंगे वे काम को आगे नहीं बढ़ा सकेंगे । रुई चुनाई से लेकर वस्त्र की तैयारी तक में बहुतसी बातें हैं जिन्हें अच्छी तरह जानने की जरूरत है । 'जीवन-साहित्य' में जब-तब इन विषयों की विस्तृत चर्चा करने का विचार है । पर इस सम्बन्ध में अधिक जानने की इच्छा रखनेवाले पाठकों से हम अनुरोध करेंगे कि दो रुपये का मनीआर्डर भेजकर वर्धा से निकलनेवाले 'खादी जगत' के ग्राहक बन जायं ।

हमें खादी काम यों ही शुरू न कर उसका विशेषज्ञ होना चाहिए । इस सम्बन्ध में श्री हरिभाऊ उपाध्याय का 'विशेषज्ञ चाहिए' शीर्षक लेख पाठक इसी अंक में अन्यत्र पढ़ेंगे । ग्रामोद्योग के प्रेमियों को इस लेख पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए । यद्यपि बारीकियां सभी कलाओं में होती हैं और उनका पूर्ण ज्ञान होने के लिए बहुत समय चाहिए, पर काम चलाऊ विशेषज्ञता तो लगन होने पर शीघ्र प्राप्त की जासकती है ।

एक चेतावनी

महात्मा गांधी 'खादी-जगत' में लिखते हैं :— एक चेतावनी देता हूँ । बिकती पूनियां लेकर कातने की आदत खोटी है । अन्त में यह नुकसान पहुँचायेगी । अब तो तुनाई के शोध के बाद पूनी बना लेना आसान होगया है । इसे सब सीख लें ।"

पाखानों की सफाई

पाठकों ने 'जीवन-साहित्य' के पिछले अंक में श्रीमती रामेश्वरी नेहरू का 'हमारे पाखाने और उनकी सफाई' लेख पढ़ा होगा । हम अपने समझदार पाठकों से फिर उस लेख को पढ़ जाने की प्रार्थना करते हैं । उन्हें इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने चाहिएं कि मैले की सफाई में किन उपायों से काम लिया जाय कि भंगियों को गन्दगी और तकलीफ का कम-से-कम सामना करना पड़े ।

मैला करनेवाले का काम है कि सफाई करनेवाले को ढंग सिखावे और उसके आराम का खयाल रखे । भंगी हमारे लिए बहुत ही उपकारी वर्ग है, उसका हमें एहसान मानना चाहिए कि इतने सस्ते में वह हमारी गन्दगी साफ कर देता है । भंगी न हो तो शहरी जिन्दगी का खात्मा ही होजाय । शहरी समाज के लिए डाक्टर जितना गैरजरूरी है भंगी उतना ही जरूरी है । ऐसे आवश्यक और उपकारी वर्ग के कष्टों की ओर ध्यान न देना हमारी भारी कृतघ्नता है । जैसे शरीर के किसी नन्हे-से अंग की पीड़ा सारे शरीर को बेचैन कर देती है, वैसे ही समाज के किसी भी वर्ग का थोड़ा भी कष्ट सारे समाज को पीड़ित करने के लिए काफी है ।

इस विषय पर आये हुए योग्य विचारों को हम जीवन-साहित्य’ में सहर्ष स्थान देंगे।

वाचनालय-संचालकों से

श्री हरिप्रसाद अग्रवाल, संयोजक श्री हरि पुस्तकालय, ब्यावर, लिखते हैं, कि श्री काका साहब कालेलकर ने उनके पुस्तकालय के लिए सन्देश भेजते हुए एक बहुत उपयुक्त सूचना दी है :—

“वाचनालय के साथ वाचकों को सलाह देनेवाले किसी वाचक मित्र की भी नियुक्ति होना अच्छा है। उनका काम होगा कि वाचनालय के सब नियत-कालिकों को पढ़कर वाचकों के हित के लिए रोज शाम को १५ मिनट कुछ बातें करें। और कहां क्या पढ़नेलायक है सो उसके महत्व के साथ बतावें। ऐसे एक वाचक मित्र के बिना वाचनालय अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकेगा।”

सभी वाचनालयों के लिए हमारी समझ में यह सूचना सचमुच विशेष उपयोगी है। हर पाठक दुनिया का कूड़ा-करकट पढ़कर उसमें से सार निकालने की झटपट में पड़े इससे बहुत अच्छा है कि कोई एक समझदार व्यक्ति अपना दिमाग़ खपावे और दूसरों को लाभ पहुंचावे। ऐसा आदमी तो लोगों को अखबार पढ़ना भी सिखा सकता है। अखबारों में आजकल इतनी गप्पें छपती हैं कि कोई सबको समान रूप से सत्य या ग़लत मान ले तो दिन-दहाड़े धोखा खाय। हमने लोगों को धोखा खाते देखा-सुना है। उन्हें बचाने के लिए जरूर एक वाचक मित्र होना चाहिए।

जीवन-साहित्य’ के बारे में मत

अक्सर पत्र अपनी तारीफ में आई हुई सम्मतियां छापा करते हैं। पर हम छापने के लिए नहीं, यह जानने के लिए कि हमारा उद्योग उन्हें कितना पसन्द आरहा है और हमें उसमें क्या फेर-बदल करना चाहिए, जीवन-साहित्य’ के इस परिवर्तन पर अपने सहयोगी बन्धुओं की और अपने सहृदय पाठकों की सम्मतियाँ चाहते हैं। वास्तव में तो हमारे श्रम की कसौटी हमारे पाठक ही हैं।

हम अपने काम में अपने पाठकों का हर प्रकार का सहयोग चाहते हैं। हमें वे मदद दें और जो हम उन्हें मदद दे सकते हों वह हमसे लें।

पाठक अपने अनुभव लिखें

‘जीवन-साहित्य’ के ग्राहकों में बहुतेरे ऐसे होंगे कि जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ उठाया होगा, अथवा उनके मित्रों या परिचितों में ऐसे लोग हो सकते हैं कि जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा अपने रोग खोये हों। हम चाहते हैं कि हमारे पाठकों में से ऐसे लोग हमें ‘जीवन-साहित्य’ में छपने के लिए इस तरह के विवरण भेजने की कृपा करें। इसकी चिन्ता न करें कि उनकी भाषा टकसाली नहीं होगी या लिखने में भूलें होंगी। भाषा दुरुस्त होजायगी, चीज काम की होनी चाहिए। दूसरे पाठकों को उनके अनुभव का लाभ मिलेगा, यह कम लाभ की बात नहीं है।

कविता छापने में असमर्थता

‘जीवन-साहित्य’ की नई नीति के अनुसार भविष्य में हम ‘जीवन-साहित्य’ में कविताओं के लिए स्थान नहीं रख सकेंगे। आशा है इसके लिए उदार-हृदय कवि हमें क्षमा करेंगे।

प्रकाशकों से निवेदन

अबतक ‘जीवन-साहित्य’ में नियमित कुछ पुस्तकों की आलोचना हुआ करती थी। पर अब भविष्य में यह क्रम नहीं रहेगा। हम सिर्फ उन्हीं पुस्तकों तक अपनी चर्चा सीमित रखना चाहते हैं जो प्राकृतिक चिकित्सा, गोसेवा, हरिजन, खादी तथा गांधीजी की अन्यान्य रचनात्मक प्रवृत्तियों से सम्बन्ध रखनेवाली होंगी या और कोई खास पुस्तक जो बहुत उपयोगी होगी।

स्व० जमनालालजी की जीवनी

मंडल शीघ्र ही स्व० श्री भाई जमनालालजी बजाज की एक पूरी जीवनी प्रकाशित करनेवाला है। श्री हरिभाऊजी उसकी सामग्री इकट्ठी कर रहे हैं। जो सज्जन इस सम्बन्ध में अपने संस्मरण, घटनाएं, पत्रादि तथा अन्य बातें, जिनसे स्व० जमनालालजी की प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता हो, उपाध्यायजी को भेज सकते हों, भेजने की कृपा करें।

पताः—

श्री हरिभाऊ उपाध्याय, खादी-विद्यालय,
पो० हरमाड़ा (वाया किशनगढ़)।

स्वास्थ्य प्रश्नोत्तर

टान्सिल

प्रश्न—मेरे सारे दाँत विषाक्त होगये थे और उन्हींके कारण टान्सिल भी । डाक्टरों के कहने से मैंने सभी दाँत उखड़वा दिये, पर टान्सिल में कुछ भी लाभ नहीं हुआ । वे जब-तब सूज जाते हैं और मेरे गले में बहुत बुरी खराश उत्पन्न होजाती है । डाक्टर कहते हैं कि टान्सिल का आपरेशन करा लो, पर आपरेशन कराने पर मेरी आस्था नहीं रही है । सुनता हूँ, प्राकृतिक चिकित्सा की राह चलकर मैं आपरेशन से बच सकता हूँ । क्या आप मेरे पथ-प्रदर्शक का काम कर सकते हैं ? बड़ा आभार मानूंगा ।

—कान्तिलाल, जूनागढ़

उत्तर—गठिया, संग्रहणी आदि अनेक रोगियों के दांत जरा भी खराब हुए तो डाक्टर दाँतों को ही रोग का कारण बताकर सारे दाँत उखड़वा देते हैं, पर इसके द्वारा रोग के निवारण में बहुत कम सफलता मिलती है । टान्सिल की खराबी का कारण विषाक्त दाँत ही नहीं, बल्कि सारा शरीर है । टान्सिल की खराबी तो खतरे की सूचना मात्र है । शरीर में विष इकट्ठा होता रहता है और आश्चर्य तो यह है कि शरीर बहुत बार इसे बहुत देर तक सहता रहता है तब वह खतरे के चिन्ह के रूप में अपने मालिक को इसकी सूचना देना आरम्भ करता है । शुरू में तो टान्सिल मे सूजन ही आती है और जब उसपर ध्यान नहीं दिया जाता तो मवाद इकट्ठी होनी शुरू होजाती है और तब गले का कष्ट बहुत बढ़ जाता है । टान्सिल निकलवा देना तो मरम्मत होती हुई सड़क पर सम्हल कर चलने के लिए लगाई गई लालटेनों को हटाने के समान है । टान्सिल का आपरेशन होजाने के बाद दो-चार दिन तक कुछ खाया-पीया नहीं जाता और इस प्रकार बरजोरी किये गये उपवास का लाभ मिल जाता है और इसलिए टान्सिल के रूप में इकट्ठा कुछ विष भी निकल जाता है । पर टान्सिल निकलवा देने से तो शरीर में विष इकट्ठा होना रुक नहीं जाता, वह तो फिर निकलेगा ही, चाहे दूसरे रोग के रूप में ही क्यों न निकले ।

टान्सिल की खराबी दूर करने का सही रास्ता है, जब टान्सिल में सूजन आवे तो आप तुरन्त उपवास करना शुरू करदें और तबतक उपवास करें जबतक कि टान्सिल साधारण स्थिति पर न पहुँच जायँ । डरिए नहीं, दो-चार दिन से अधिक उपवास नहीं करना पड़ेगा । टान्सिल जब फूल जाते हैं तो खाना-पीना कहाँ अच्छा लगता है और भोजन में स्वाद भी क्या आता है ? उपवास के दिनों में फल और तरकारियों का रस इच्छा भर पीजिए । दिन में तीन-चार बार ठंढे पानी से कुल्ले कीजिए । ठंढे पानी में सूजन को कम करने की अद्भुत शक्ति है । उपवास करते समय रोज गुनगुने पानी का एनिमा लेकर आंतों को साफ कीजिए । उपवास के कारण शरीर से निकला हुआ बहुत-सा विष आंतों में इकट्ठा होजाता है, उसे धो देना आवश्यक है । तीन अंगुल चौड़ी और आध अंगुल मोटी कई तह कपड़े की पट्टी ठंढे पानी में भिगोई हुई यदि गले पर आध घंटे के लिए लपेटकर ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट दिया जाय तो भी टान्सिल में बहुत लाभ होता है । पर प्रधान कार्य तो शरीर की शुद्धि ही है, जो उपवास द्वारा ही संभव है ।

उपवास के बाद दो-तीन दिन फल खाकर रहिए और फिर तीन दिन फल और दूध पर । इसके बाद सवेरे फल और दूध, दोपहर को रोटी-सब्जी और शाम को फल-दूध के साधारण भोजन पर आजाइए । यदि फिर कभी टान्सिल में तकलीफ शुरू हो तो उपवास का कार्यक्रम नये सिरे से दुहरा दीजिए । पर यदि साधारण भोजन में आप व्यतिक्रम नहीं करेंगे तो टान्सिल क्या, शायद किसी रोग का कष्ट आपको नहीं सहना पड़ेगा ।

प्रश्न — रक्तवृद्धि के लिए कौनसे खाद्य उपयोगी हैं ?

—कृपाकुमार शर्मा, कलकत्ता

उत्तर—रक्त की वृद्धि पवित्र सात्विक भोजन से ही होसकती है, न कि पशु के रक्त अथवा उसके रक्त अथवा उसके रक्तप्लावित मांस से। यदि शरीर में रक्त की बहुत अधिक कमी होगई है तो प्रोटीन-प्रधान भोजन करना चाहिए। प्रोटीन प्राकृतिक भोजन बादाम, मूंगफली, अखरोट, काजू, चिलगोजा आदि उन सभी प्राकृतिक मेवों में होता है जिनका कड़ा छिलका छीलकर निकाल देना पड़ता है। उरद, मटर, सेम और हर प्रकार की दालों में भी रक्त बनाने की अच्छी ताकत है। एक सेर दाल से एक पाव रक्त बन सकता है। पर दाल का प्रोटीन अच्छा नहीं माना जाता।

गेहूँ में भी रक्त बनाने की अच्छी शक्ति है। वायुकारक, भूख को कम करनेवाले और पाचनशक्ति का नाश करनेवाले खाद्य-पदार्थों का सर्वथा त्याग करना चाहिए। खटाई-मिर्च भी अच्छी चीज नहीं हैं, इनके कारण रक्त शुद्ध नहीं बनने पाता। पर नींबू, सन्तरा, चकोतरा, अनन्नास और पके टमाटर सरीखे खट्टे फल लाभदायक हैं। ये कृमि-नाशक एवं मूत्रल होने के कारण वायु का शमन करते हैं और शरीर के विकार को पेशाब द्वारा बाहर निकालते हैं। हरी तरकारियाँ—पालक, गाजर, खीरा, ककड़ी आदि सभी—नूतन रक्त-निर्माण में सहायक होती हैं।

खून बनने में लौह-प्रधान भोजन की बडी आवश्यकता होती है। उनका उपयोग भी अवश्य किया जाना चाहिए। जैसे—पालक, शलजम की पत्ती और सभी हरी पत्तियां, सरसों का साग, किशमिश, अंजीर, काली मुनक्का आदि।

प्रश्न—वर्षों से मुझे मासिक-धर्म के समय बड़ी पीड़ा होती है। बीच का एक दिन तो बड़े कष्ट से कटता है। डाक्टर-वैद्यों से मैंने बहुत चिकित्सा कराई, पर कोई लाभ नहीं होता। आप ही मेरी कुछ सहायता कीजिए।

—रत्नवतीदेवी, गया

उत्तर—उचित आहार एवं व्यायाम द्वारा यदि स्वास्थ्य उन्नत किया जाय तो अनेक स्त्रियों का कष्ट, जो हर महीने उनके सामने खड़ा रहता है, जा सकता है। स्त्रियों के लिए पीसना, कूटना, घर के काम में लगे रहना अच्छी कसरतें हैं। कुछ दिन हलके गरम पानी का योनिडूश लेना चाहिए। इससे भी दर्द में कमी होती है और रक्तस्राव ठीक होता है। यदि इस विधि से पीड़ा में कमी न हो तो किसी अच्छी दाई को दिखाना चाहिए। बच्चेदानी के अपनी जगह से खिसक जाने से भी कष्ट होता है। यदि यह कारण हो तो कुछ ऐसी कसरतें बताई जासकती हैं कि जिससे बच्चेदानी अपनी जगह पर आजाय। बहुतसी दाइयाँ मालिश द्वारा भी यह काम कर देती हैं।

प्रश्न—मुझे प्रायः चार-पाँच वर्ष से बवासीर की शिकायत है। अब तो मस्से इतने बड़े होगये हैं कि उनसे बड़ा कष्ट होता है। उनकी चिन्ता मुझे घेरे रहती है, जिससे दुकान का काम भी नहीं कर पाता। इधर महीनेभर से मैंने भोजन में बहुत सुधार किया है। इससे कब्ज तो चला गया है, पर मस्सों में कोई फर्क नहीं है। उनमें भी लाभ हो, कुछ ऐसी तरकीब बताइए।

—श्यामनारायण, अम्बिकापुर

उत्तर—केवल भोजन-सुधार से आपका काम नहीं चलेगा। आप थोड़ी कसरत भी कीजिए। अधिक बैठे रहने और शारीरिक श्रम न करने से भी यह रोग हो जाता है। पेट की कसरतें और टहलना आपके लिए अधिक लाभदायक होगा।

शौच होजाने के बाद किसी बड़े तसले या ऐसे ही किसी बरतन में ठंढा पानी डालकर दो-तीन मिनट बैठिए। पैर बाहर रहने चाहिए। आधी छटाँक कागजी नींबू का रस छटाँकभर गरी के तेल में मिलाकर रात को सोते समय किसी पिचकारी द्वारा गुदा में प्रविष्ट कर लीजिए। इस विधि से शौच के समय होनेवाले कष्ट में शीघ्र कमी होगी और मसे भी धीरे-धीरे सूख जायंगे।

आरोग्यमन्दिर }
गोरखपुर }

विट्ठलदास मोदी

सस्ता साहित्य मण्डल के प्रकाशन

स्थायी ग्राहक बनने पर ≡) रुपया कमीशन मिलेगा ।

'सर्वोदय साहित्य माला'

१. दिव्य जीवन ।=) २. जीवन-साहित्य ।।=) ३. तामिल वेद ।।।) ४. व्यसन और व्यभिचार ।।।=) १४. दक्षिण अफ़्रीका का सत्याग्रह १।।) १६. अनीति की राह पर ।।=) १८. कन्या-शिक्षा ।) १९. कर्मयोग ।=) २०. कलवार की करतूत =) २१. व्यावहारिक सभ्यता ।।) २५. स्त्री और पुरुष ।।) २७. क्या करें ? १।) ३९. तरंगित हृदय ।।) ४१ दुखी दुनिया ।=) ४३. आत्मकथा (गांधीजी) १) : १।।) ४५. जीवन-विकास १।) ४७. फाँसी ! ।=) ५१. भाई के पत्र १।।) ५८. इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।) ५९. रोटी का सवाल ।।।) ६०. दैवी सम्पद् ।=) ६४. संघर्ष या सहयोग ? १।।) ६५. गांधी-विचार-दोहन ।।।) ६७. हमारे राष्ट्र-निर्माता १।।) ६९. आगे बढ़ो ! ।।) ७०. बुद्ध-वाणी ।।=) ७१. काँग्रेस का इतिहास २।।) ७३. मेरी कहानी (ज० नेहरू) ३) ७४. विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) ७६. नया शासन-विधान ।।।) ७७. गाँवों की कहानी ।।) ७८. महाभारत के पात्र १) ८०. संतवाणी ।।) ८१. विनाश या इलाज ।।।) ८२. अंग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।।) ८३. लोक-जीवन ।।) ८४. गीता-मंथन १।।) ८५. राजनीति-प्रवेशिका ।।) ८६. अधिकार और कर्त्तव्य ।।) ८८. स्वदेशी और ग्रामोद्योग ।।) ९०. प्रेम में भगवान् ।।।) ९२. ब्रह्मचर्य ।।) ९३. हमारे गाँव और किसान ।।) ९४. अभिनन्दन-ग्रंथ १।) २) ९५. हिन्दुस्तान की समस्याएँ १) ९६. जीवन-सन्देश ।।) ९८. समाजवाद : पूँजीवाद ।।।) ९९. मेरी मुक्ति की कहानी ।।) १००. खादी-मीमांसा १।।) १०१. बापू ।।=) १।) २) १०२. मधुकर (विनोबा) १) १०३. लड़खड़ाती दुनिया ।।।=) १०४. सेवाधर्मः सेवामार्ग १) १०६. डायरी के पन्ने ।।।) १।) १०७. तीस दिन १।।) २) १०८. युद्ध : अहिंसा ।।।) १०९. महावीर वाणी १) १।।) ११०. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन १।) १११. बिखरे विचार ।।।=) ११२. अहिंसा-विवेचन ।।) ११३. मेरी हिमाक़त ।।।)

नवजीवन माला

१. गीताबोध =) २. मंगलप्रभात -) ३. अनासक्तियोग =) ≡) ।) ४. सर्वोदय -) ५. नवयुवकों से दो बातें -) ६. हिन्दस्वराज ≡) ८. किसानों का सवाल =) ९. ग्रामसेवा =) १२. गाँवों का आर्थिक सवाल ≡) १३. राष्ट्रीय गीत =) १४. खादी का महत्त्व -)।। १५. जब अंग्रेज़ नहीं आये थे ≡) १६. सोने की माया -) १७. सत्यवीर सुकरात (गांधीजी) -) १८. भजनावली

सामयिक साहित्य माला

३. हम कहाँ हैं ? =) ४. युद्ध-संकट और भारत ।) ५. सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे ? ≡) ६. राष्ट्रीय पंचायत ।) ७. देशी राजाओं का दरजा ।) ८. युरोपीय युद्ध और भारत ।) ९. रचनात्मक कार्यक्रम (गांधीजी) =) ११. रचनात्मक कार्यक्रम पर कुछ सुझाव (राजेंद्रबाबू) ≡) अंग्रेज भारत से बिदा लें । (गांधीजी)

बाल साहित्य माला

३. शिवाजी-चरित्र =) ४. देश-प्रेम की कहानियाँ =) ५. बीरबल की कहानियाँ =)

विविध पुस्तकें

१. जवाहरलाल नेहरू =) २. मोतीलाल नेहरू ।) ३. सप्तसरिता (काका कालेलकर) =) ४. चारा दाना और उसको खिलाने के उपाय ≡) ५. पशुओं का इलाज ।।) ६. उपनिषदों की कथाएँ ।) ७. आदर्श बालक ।।) रूमी की कहानियाँ ।।)

सोल एजेन्सी की पुस्तकें

१. लोपामुद्रा १) २. रोटी का राग ।।) ३. फ्रांस की राज्य-क्रांति १।।) ४. गांधीवाद की रूपरेखा १) ५. पिता के पत्र पुत्री के नाम ।।) ६. लय-वीणा १) ७. बहन ।।) ८. स्वास्थ्य के लिए शाक-तरकारियाँ १।।) ९. चौबोली ।।) १०. राजस्थान में प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की खोज ३) ११. आवारा १)

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग के प्रकाशन

'मण्डल' तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में

काव्य तथा साहित्य

१. कविता-कौमुदी (भाग १-२ हिन्दी) ७।।) (चौथा भाग उर्दू) ३) (सातवाँ भाग-बँगला) ३) २. पथिक ।।) ३. मिलन ।।) ४. स्वप्न ।।) ६. दिमाग़ी-ऐयाशी (प्रहसन) ।।) ७. तुलसीदास और उनकी कविता (२ भाग) ४।।), ९. हिन्दुस्तानी कोष २) ११. जयंत (नाटक) ।।।) १२. प्रेमलोक (नाटक) ।।।) १३. वफ़ातीचाचा (नाटक) ।।) १४. तरकस (कहानी-संग्रह) ।।) १५. हिन्दी-पद्यरचना (पिंगल) ।।) कौमुदी १) १७. हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास ।=) १८. उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास ।।). १९. खड़ी बोली की कविता का संक्षिप्त इतिहास ।।), २०. सुदामा चरित ।) २२. शिवाबावनी ।) २३. कौन जागता है ? (नाटक) ।।) २४. हमारा ग्राम साहित्य २) २५. हिन्दी का विकास २) २८. मुस्लिम-सन्तों के चरित २) २९. काश्मीर ५) ३०. यूरोप की कहानियाँ २।) ३४. कुल-लक्ष्मी (स्त्रियोपयोगी) ३६. हिन्दुओं के व्रत और त्योहार १।।) ४१. नमूने का गाँव और मिट्टी के सुखदायक घर १) ४२. किसानों के काम की बातें १) ४३. किसानों की कहावतें (संग्रह) ।) ४८. बीस कहानियाँ (कहानी-संग्रह) २) ५१. नीति के श्लोक ।।) ५५. मन्दिर (एकांकी नाटकों का संग्रह) ।।।)

बाल-साहित्य माला

१. बाल-कथा कहानी १७ भागों में। प्रत्येक भाग ।=) २. बताओ तो जानें (गोरखधंधा) ।) ३. बानर संगीत ।) ४. हंसू की हिम्मत ।=) ६. खोजा, खोज निकाला (पद्य) ।) ९. जादू की कहानियाँ ।=) १०. इतिहासों की कहानियाँ ।) ११. गुपचुप कहानियाँ (दो भाग) प्रत्येक ।) १२. मौत के सुरंग की कहानी ।=) १३. भूतों का किला ।=) १४. कहानी के कल-पुर्जे ।) १५. पेखन ।-) १६. मोतीचूर के लड्डू ।) १७. बलभद्दर =) १८. कबड्डी ।) २०. नागर पत्रा या जवाहर ताश ।।) २१. हिन्दी पत्र शिक्षक =) २२. नई कहानियाँ ।=) २३. हरिश्चन्द्र ।) २४. महात्माबुद्ध ।) २५. अशोक ।) २६. चन्द्रगुप्त ।)

हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -)।। हिन्दी ज्ञानोदय—पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।-) चौथा भाग ।।) पाँचवाँ भाग ।।-) छठा भाग ।।=) कन्याओं के लिए नया हिन्दी प्राइमर नं० १-२ प्रत्येक -)।। कन्या शिक्षावली पहला भाग =) दूसरा भाग ≡) तीसरा भाग ।) चौथा भाग ।-) पाँचवाँ भाग ।≡) छठा भाग ।।)

THE LIFE NATURAL published six times a year, gives you articles on Health-physical and spiritual (based on the teachings of Bhagwan Sri Ramana Maharshi and the great Rishis of yore).

Annual Subscription Re. 1-8-0. Single copy As. 4.

Subscriptions are to be remitted to :—

The Nature-Cure Publishing House,
PUDUKKOTTAI, TRICHY:

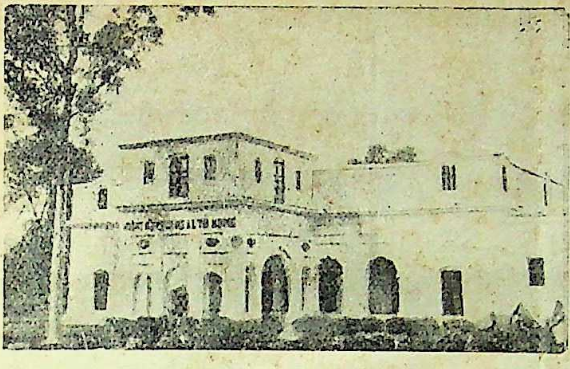

इस

आरोग्य-मंदिर

में

आकर

आरोग्य लाभ कीजिए !

यहाँ आपको प्राकृतिक चिकित्सा के साधन जल, धूप मिट्टी, वायु, आसन, प्राणायाम, मालिश, उपवास युक्त आहार की विधि करायी और बतायी जायेगी। सूर्य-किरण-चिकित्सा, दूध-कल्प, बिजली, जड़ी-बूटियाँ और विचार-शक्ति के प्रयोग से भी आप परिचित होंगे। अपना स्वास्थ्य लौटाने के साथ-साथ अपने कुटुम्बवालों और इष्ट मित्रों को प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगमुक्त और स्वस्थ रहने की सलाह देने लायक हो जायेंगे।

28750

आरोग्य–मन्दिर
की
निजी गोशाला

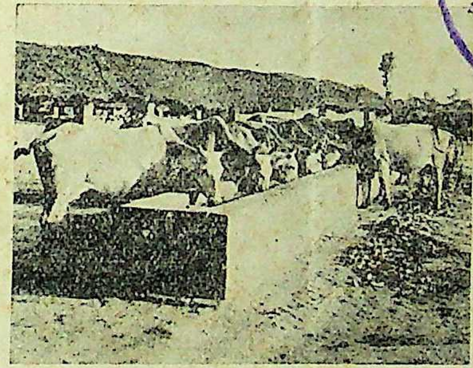

जिससे हृष्ट-पुष्ट
गायों का दूध रोगियों
को
उपलब्ध होता है।

इतना होने पर भी कम-से-कम ख़र्च !

विशेष जानकारी के लिए
डाक-टिकिट के साथ आज ही
लिखिए—

संचालक
आरोग्य-मन्दिर,
गोरखपुर

— स्वास्थ्याभिलाषियों के रहने के कुछ कमरे —

Regd No L 4671

'मण्डल' और 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकें लेने
तथा
'जीवन-साहित्य' के ग्राहक बनने के नियम

१. एक रुपया देकर स्थायी ग्राहक बन जाने से 'मण्डल' की पुस्तकों पर ≡) रुपया, 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकों पर ।) रुपया कमीशन मिलेगा और 'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र एक वर्ष तक १) में मिला करेगा।

२. खादी-भण्डारों पर से 'मण्डल' के स्थायी ग्रा० को 'मण्डल' की पुस्तकों पर =) रु० कमीशन मिलेगा।

३. 'जीवन-साहित्य' का १।) में ग्राहक बनजाने पर एक वर्ष तक 'मण्डल' की पुस्तकें ≡) रुपया कमीशन पर और 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकें ।) रुपया कमीशन पर मिला करेंगी।

४. 'जीवन-साहित्य' के नमूने के लिए ≡) का टिकिट भेजना चाहिए।

५. 'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को दूसरी बाहरी पुस्तकों पर साधारणतः -) रुपया कमीशन दिया जा सकता है। विशेष दशा में और रिआयतें हो सकती हैं।

६. नई पुस्तकें प्रकाशित होने पर स्थायी ग्राहकों को 'जीवन-साहित्य' के द्वारा सूचना दे दी जाती है।

७. स्थायी ग्राहकों के लिए तथा 'जी० सा०' के ग्राहकों के लिए भी वर्ष में 'मण्डल' द्वारा प्रकाशित कम-से-कम ५) की पुस्तकें खरीदना अनिवार्य है।

८. साधारण ग्राहकों को 'मण्डल' की तथा 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकों पर -) रुपया कमीशन दिया जा सकता है।

९. 'मण्डल' की पुस्तकें पाठकों तथा ग्राहकों की सुविधा के लिए भारत के तमाम बड़े-बड़े पुस्तकविक्रेताओं तथा चर्खा-संघ द्वारा संचालित, युक्त प्रांत, पंजाब, सिन्ध, बिहार, कलकत्ता, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, राजपूताना, मध्यभारत के खादी-भण्डारों में बिक्री के लिए रहती हैं। 'जी० सा०' तथा 'मण्डल' के ग्राहक भी वहाँ बन सकते हैं।

१०. 'मण्डल' की गतिविधि जानने के के लिए 'जीवन साहित्य' का ग्राहक होना आवश्यक है।

११. १०) से अधिक का माल मँगाने पर चौथाई रक़म पेशगी भेजना आवश्यक है।

१२. पत्र-व्यवहार हिन्दी में होना आवश्यक है। माल मँगाते समय अपने स्थान के पास के रेलवेस्टेशन का नाम अवश्य लिखा करें। यह भी लिखें कि पुस्तकें डाक से भेजें या रेल से।

१३. जो पुस्तकें न भेजी जा सकें उनके लिए यही समझ लेना चाहिए कि वे हम नहीं दे सकते या स्टाक में नहीं हैं।

१४. इससे पहले के नियम रद्द समझे जायँ और इनमें भी समय-समय पर परिवर्तन करने का मंत्री को अधिकार है।

नोटः—१. स्थायी ग्राहकों का कमीशन ग्राहकों को हमारी शाखाओं, हमारे द्वारा प्रचारित खादी भंडारों तथा हमारी सोल एजेंसियों पर से ही मिल सकता है। अन्य साधारण एजेण्टों या विक्रेताओं से नहीं।

२. स्थायी ग्राहकों को किसी भी पुस्तक की अधिक से अधिक २ प्रतियाँ ही मिल सकती हैं। अधिक प्रतियाँ लेने पर -) रुपया ही कमीशन दिया जायगा।

मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, न[illegible]ी, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल [illegible] द्वारा प्रकाशित।

[illegible] H.P. Horse power

नरेन्द्रप्रताप

नरेन्द्रप्रताप

Compiled
1999-2000